VAGBHATA'S

ASHTANGAHRIDAYA

WITH

SHIV DIPIKA COMMENTARY

BY

SHIV SHARMA, AYURVEDACHARYA,

FORMERLY SENIOR PROFESSOR OF MEDICINE & TOXICOLOGY AT THE DAYANAND AYURVEDIC COLLEGE, LAHORE EXAMINER IN MIDWIFERY, ALL INDIA AYURVEDA VIDYA PEETHA; VICE-PRESIDENT RISHIKUL SANCHALAKA MANDAL, HARDWAR, U. P.; AUTHOR OF *THE SYSTEM OF AYURVEDA* ETC. ETC.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADAS

SHRI VENKATESHWAR STEAM PRESS,

BOMBAY

1929.

श्रीः ।

श्रीवाग्भटाचार्य-विरचित

अष्टाङ्गहृदय

संहिता ।

पटियाला राज्यके प्रधान चिकित्सक वैद्यरत्न
पं० रामप्रसादजी राजवैद्यके पुत्र पं० शिव-
शर्मा-आयुर्वेदाचार्यकृत 'शिव-
दीपिका' भाषाटीकासहित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास

अध्यक्ष-"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम-प्रेस,

बम्बई.

सं० १९८६.

मुद्रक और प्रकाशक

खेमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक-"**श्रीवेङ्कटेश्वर**" स्टीम्-प्रेस, **बम्बई.**

भूमिका ।

सुश्रुतो न श्रुतो येन वाग्भटो न च वाग्भटः ।
नाधीतश्चरको येन स वैद्यो यमकिङ्करः ॥

आयुर्वेदके प्रधान आर्ष ग्रन्थ **चरकसंहिता** और **सुश्रुतसंहिता**के अनन्तर जो पठन पाठनमें मान पाया हुआ ग्रन्थ है वह यही **श्रीवाग्भटाचार्य**–प्रणीत **अष्टाङ्गहृदय** नामक संहिता है। इसके **सूत्रस्थान**को देखकर चरक सुश्रुतके पण्डितोंको भी मुक्तकण्ठ होकर " सूत्रस्थाने तु वाग्भटः" कह देना पड़ा है । इसके सूत्रस्थानका संग्रह सर्वोपयोगी होनेसे चरक जैसे महान् ग्रन्थके पण्डित भी अपने बालकोंको अति प्रयत्नसे वाग्भटका सूत्रस्थान पढ़ाते हैं। सूत्रस्थानके अतिरिक्त इसके निदानस्थान और चिकित्सास्थान भी परमोपयोगी बने हुए हैं ।

यह ग्रंथ आर्ष न होनेपर भी विद्वान् पुरुषोंने चरक सुश्रुतके समान ही वृद्धत्रयीका एक अंग माना है । इस ग्रन्थको **श्रीवाग्भटाचार्यजीने** (१) सूत्रस्थान, (२) शारीरस्थान, (३) निदानस्थान,(४) चिकित्सास्थान, (५) कल्पस्थान और (६) उत्तरस्थान इन छः स्थानोंमें विभक्त किया है ।

इस **अष्टाङ्गहृदय**से प्रथम एक **अष्टाङ्गसंग्रह** नामक ग्रन्थ **श्रीवाग्भटाचार्यने** संग्रह किया था, जो **वृद्धवाग्भट** नामसे प्रकाशित हुआ है। इसके ऊपर एक इन्दुनामक संस्कृत टीका साथ छपी हुई मिलती है । इस **अष्टाङ्गसंग्रह**का संग्रह करनेके अनन्तर **श्रीवाग्भटाचार्यने** इसीको काट छांट कर अपनी इच्छानुसार सुन्दर बनाकर ग्रंथका नाम **अष्टाङ्गहृदय** रक्खा है ।

इसके (१) शल्य, (२) शालाक्य, (३) कायचिकित्सा,(४) भूतविद्या, (५) कौमारभृत्य,(६) अगदतन्त्र, (७) रसायन तन्त्र और (८) बाजीकरण तन्त्र ये आठ अङ्ग हैं । सब प्रकारकी सम्पूर्ण चिकित्सा इन आठ अङ्गोंमें ही आ जाती है । इस **अष्टाङ्गहृदय** संहिताको यथार्थरूपसे पढ़ जानेपर मनुष्य आयुर्वेदका योग्य पण्डित हो जाता है। इसका पाठ श्लोकबद्ध होनेके कारण पढ़नेवाले विद्यार्थी इसको कण्ठ रख सकते हैं । यद्यपि काव्यरूपमें होनेसे तथा भिन्न भिन्न विषय एक ही श्लोकमें होनेसे कहीं कहीं किंचित् कठिन प्रतीत होता है, परन्तु इस समय इस ग्रन्थपर तीन संस्कृत टीका अति उत्तम हैं, जिन्हे पूज्य पिताजी (वैद्यरत्न पं० **रामप्रसादजी**) ने उत्तम रीतिपर शोधन कर कठिन कठिन स्थलोंपर अपनी बनायी हुई संस्कृत टिप्पणी भी लगायी है, जिससे विवादग्रस्त विषयोंका यथार्थ निर्णय हो जाता है ।

इसका सूत्रस्थान (१) अरुणदत्तकृत सर्वाङ्गसुन्दरा, (२) श्रीचन्दनदत्तकृत पदार्थचन्द्रिका, (३) श्रीहेमाद्रिकृत आयुर्वेदरसायन (हेमाद्रि) इन तीन संस्कृत टीकाओं और पूज्यपिताजीकृत संस्कृत टिप्पणी सहित **श्रीवेंकटेश्वर** प्रेसमें छप चुका है ।

भूमिका ।

यह सर्वोपयोगी ग्रन्थ संस्कृतके जाननेवाले वैद्योंको इन संस्कृत टीकाओंके कारण कहीं भी कठिन या अज्ञात नहीं रह सकता । परन्तु हिन्दीभाषामें अभीतक इसके ऊपर प्रायः जानकार वैद्यकी बनायी हुई कोई टीका नहीं है, अतः जिससे इस ग्रन्थका मर्म ऊंची श्रेणीके विद्वानोंके अतिरिक्त सामान्य वैद्य भी जान सकें इस कारण समयानुसार इस ग्रन्थकी हिंदी भाषा बनानेकी आवश्यकता पड़ी। जब मैं इसकी हिंदी भाषा लिखने लगा तो—इन्दु और सर्वाङ्गसुन्दरा आदि चार संस्कृत टीका सूत्रस्थानकी मेरे पास थीं, इस कारण मुझे इसकी भाषाटीका बनानेमें कुछ कठिनाई नहीं पड़ी । इसके अतिरिक्त पूज्य पिताजीके समीप होनेसे कोई कठिनाई थी ही नहीं । इन सब सुयोगोंके कारण यह भाषा शीघ्र बन गयी और मैं समझता हूँ कि यह हिंदी जाननेवालोंके अतिरिक्त संस्कृत पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके लिये भी ग्रन्थका मर्म कहनेमें हितकारिणी ही होगी।

वैद्य और विद्यार्थियोंके सुभीतेके लिये सम्पूर्ण संहिताकी भाषाटीका बना दी है जो सम्पूर्ण एक जिल्दमें बँधी है। केवल सूत्रस्थान मँगानेवालोंके लिये अकेला सूत्रस्थान मात्र भी अलग छपवा दिया है परन्तु यह ग्रन्थ सम्पूर्ण ही पढ़ने और विचारने योग्य है ।

जहांतक मुझसे बन पड़ा है भाषा सरल ही की गयी है। यदि फिर भी मानुषी बुद्धिके कारण या प्रेसके दृष्टिदोषके कारण कोई त्रुटि रह गयी हो तो सज्जन जन सूचना देनेकी कृपा करें, जिससे दूसरे संस्करणमें वह दोष दूर कर दिया जाय ।

विनीत-

शिवशर्मा, पटियाला.

Ayurvedodharak Vaidyapanchanan Vaidyaratan
Pandit Ramprasad Vaidyopadhya
Raj Vaidya (Patiala)

Dedicated

TO

MY REVERED FATHER

VAIDYA RATNA

PANDIT RAM PRASAD

RAJ VAIDYA OF PATIALA

PREFACE.

The work of Vagbhata is looked upon with great reverence by the Ayurvedic physicians, and is considered next only to Charaka and Sushruta. These three works are called the *Vriddhatrayi* or the 'Venerable Trio' of the Ayurvedic System of Medicine.

While there are many vernacular translations extant on the works of Charaka and Sushruta, there was no responsible translation in Hindi on this great work, and there being as yet only a small number of Ayurvedic Colleges in India, the junior practioners and students of Ayurveda experienced much difficulty in studying *Ashtangahridaya*. This was one reason for my attempting this translation.

It cannot be denied that Vagbhata's language is very complex and puzzling compared to the simple fluent Sanskrit of Charaka and Sushruta. This is probably due to the fact that Vagbhata flourished much later than Charaka and Sushruta when the easy language of the *Rishis* had been replaced by the terse and complex style of the later writers[1].

In versifying the wholy treatise Vagbhata has added to the complexity of his style. My labour over this huge work therefore was great, and it is doubtful if it could have been written without the warm reception that the first part of this work, the Sutrasthana, met at the hands of the profession.

In presenting this commentary, therefore, it is hoped that the work would supply a much needed demand.

I have not only attempted to translate the complete text in an easy and intelligible language but appended notes and comments wherever it appeared that mere translation would not unlock the

1. For attempts to ascertain the date of Vagbhata, see Hoernle's *Studies in Ancient Indian Medicine* (Oxford), Kunte's Preface to *Ashtangahridaya* (Nirnayasagar), and Dr. P. C. Ray's *History of Hindu Chemistry* (Calcutta). Hoernle places Vagbhata somewhere near the 6th century A. D. and Kunte assumes 200 B. C. in which Vagbhata probably flourished. Capt. P. Johnston-Saint (India the Real Home of Medicine), also corroborates Kunte's statement. Nothing, however, can be said very definitely.

construction of the text for the students. Even a layman would follow the text with this translation in hand, though it will prove of special value to the students of Ayurveda and the Ayurvedic practitioners.

I have consulted the following commentaries on Ashtangahridaya in the course of my work: 1. Hemadri's *Ayurveda Rasayana*, available on Sutrasthana and Kalpasthana only; 2. Chandra Nandana's *Padartha Chandrika*, available on Sutrasthana and Sharirasthana only; 3. Aruna Datta's *Sarvanga Sundara* on the complete text; 4. *Indu Vyakhya* on *Ashtanga Sangarh*. The first two MSS. were in an unprinted form when I was translating the portions concerned, but now the two commentaries have been published by Shri Venkateshwar Press, along with *Sarvanga Sundara* and a commentary by my revered father Vaidya Ratna Pandit Ram Prasad, on Sutrasthana only.

BOMBAY
12th August, 1929.

SHIV SHARMA.

अथ

अष्टाङ्गहृदय (सूत्रस्थान) की विषयानुक्रमणिका ।

प्रथमोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

विषय. पृष्ठाङ्क.

द्वादशोऽध्यायः ।

विषय. पृष्ठांक.

त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः।

पञ्चदशोऽध्यायः।

षोडशोऽध्यायः।

सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

एकोनविंशोऽध्यायः।

विंशोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः ।

द्वाविंशोऽध्यायः ।

विषय.	पृष्ठाङ्क.

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

षड्विंशोऽध्यायः ।

सप्तविंशोऽध्यायः।

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

त्रिंशोऽध्यायः ।

इति

अष्टाङ्गहृदय सूत्रस्थान विषयानुक्रमणिका।

समाप्त ।

अथ

अष्टाङ्गहृदय शारीरस्थानकी विषयानुक्रमणिका ।

प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

इति शारीरस्थानकी विषयानुक्रमणिका ।

अथ

अष्टाङ्गहृदयनिदानस्थानकी विषयानुक्रमणिका।

प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः।

सप्तमोऽध्यायः।

अष्टमोऽध्यायः।

नवमोऽध्यायः।

दशमोऽध्यायः।

इति निदानस्थानकी विषयानुक्रमणिका ।

अथ

अष्टाङ्गहृदय चिकित्सास्थानकी विषयानुक्रमणिका ।

प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

विषय.	पृष्ठाङ्क.

त्रयोदशोऽध्यायः।

चतुर्दशोऽध्यायः।

पञ्चदशोऽध्यायः।

षोडशोऽध्यायः।

विषय.	पृष्ठाङ्क.

एकविंशोऽध्यायः ।

द्वाविंशोऽध्यायः ।

इति अष्टाङ्गहृदय चिकित्सास्थानकी विषयानुक्रमणिका ।

अथ

अष्टाङ्गहृदय कल्पस्थानकी विषयानुक्रमणिका।

प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः।

चतुर्थोऽध्यायः।

इति अष्टाङ्गहृदय कल्पस्थानकी विषयानुक्रमणिका ।

अथ

अष्टाङ्गहृदय उत्तरस्थानकी विषयानुक्रमणिका ।

प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः।

अष्टमोऽध्यायः।

नवमोऽध्यायः।

सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

द्वाविंशोऽध्यायः ।

षड्विंशोऽध्यायः ।

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

चत्वारिंशोऽध्यायः।

इति उत्तरस्थानकी विषयानुक्रमणिका।

विज्ञापन ।

सब प्रकारके शास्त्रीय विधिसे बनेहुए मकरध्वज आदि रस, स्वर्णादि धातुभस्म, फलघृतादि घृत, नारायणतैलादि तैल, योगराज गुग्गुल आदि गुग्गुल, अमृतभल्लातकादि पाक, सुदर्शन चूर्णादि चूर्ण और आसव बनीहुई औषधियों तथा लक्ष्मणा, शिवलिङ्गी, बाराहीकन्द और दशमूल आदि वनस्पति नीचे लिखे पतेसे साधारण मूल्य पर मिलसकती हैः-

पण्डित महेशदत्त शर्म्मा वैद्य.

शिवशङ्कर औषधालय.

कालका ।

अथ

अष्टाङ्गहृदयम्।

शिवदीपिका-भाषाटीकासहितम्।

सूत्रस्थानम्।

प्रथमोऽध्यायः १.

टीकाकारका मंगलाचरण।

हृदि स्मृतो यो दुरितापहारकः
पवित्रयत्याशु नरान् खलानपि।
शिवो नु सोऽस्मद्गिरमाविलामपि
स्वसेविनीं किं न पवित्रयिष्यति ? ॥१॥
लब्धं यतो ज्ञानमिदं वपुस्तथा
परोपकारैकरतो हि यः सदा।
तस्यैव तातस्य पदाम्बुजद्वयं
सुवन्दितं वैद्यवरैर्नमाम्यहम् ॥ २ ॥
ये चानधीतविविधागमतर्कशास्त्रा
बोद्धुं क्षमा विबुधवैद्यकृता न टीकाः।
तेषां कृते विशदभावकरीं विचित्रां
मिथ्याप्रपञ्चरहितामिह वाग्भटस्य ॥३॥
पट्टालयस्थसुभिषग्वरवैद्यरत्न-
रामप्रसादतनुजश्शिवशर्म्मवैद्यः।
हिन्दीगिरा गुरुवरस्य पितुर्निदेशाद्
व्याख्यां करोति सरलां शिवदीपिकाख्याम् ॥

ग्रन्थकार श्रीवाग्भटाचार्य्य अपने इस बुद्धिस्थ ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये प्रारम्भमें शिष्टाचार-परम्पराप्राप्त नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण करते है जैसे-

रागादिरोगान् सततानुषक्ता-
नशेषकायप्रसृतानशेषान्।
औत्सुक्यमोहारतिदान् जघान
योऽपूर्ववैद्याय नमोऽस्तु तस्मै ॥ १ ॥

सम्पूर्ण शरीरमें फैले हुए तथा उत्सुकता (क्षोभ), मोह और अशान्तिके देने वाले जो राग, द्वेष, मोह, लोभ आदि मानसिक रोग, एवं वात-पित्त-कफके वैष-म्यनिमित्तक शारीरिक रोग, तथा जन्म, मरण आदि जो स्वाभाविक रोग है, उन सब रोगोंको समूल नष्ट करनेवाले, आदिवैद्य, वीतराग, भगवान् श्रीइष्टदेवको मै (वाग्भट) भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

इस ग्रन्थकी प्रामाणिकता।

अथात आयुष्कामीयाध्यायं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥ २ ॥

प्राचीन मुनिजन शरीर और जीवात्माके संयो-गको जीवन कहते है। वह जब तक बना रहे आयु कहा जाता है, उस आयुकी सुखपूर्वक वृद्धिके लिये ही इस अनन्त आयुर्वेद महाशास्त्रकी प्रवृत्ति हुई है, इस लिये आयुकी हितकामनाको मुख्य रखते हुए हम अब (मङ्गलाचरणके अनन्तर) सबसे प्रथम आयुष्का-मीय अध्यायका प्रवचन करेंगे। इस प्रकार महर्षि आत्रेय आदि ब्रह्मवेत्ताओंने कहा है, इससे ग्रन्थकारने अपने इस ग्रन्थको स्वकपोलकल्पितत्वसे रहित कर प्राचीन मुनियोंके मतानुकूल प्रामाणिक सिद्ध किया है २॥

आयुर्वेदशास्त्रकी उपादेयता।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥ ३ ॥

धर्म, अर्थ और सुखका असाधारण साधन, दीर्घायुको चाहने वाले मनुष्यको आयुर्वेदके उपदे-

शोंमें विशेष आदर (श्रद्धा और अटल विश्वास) रखना चाहिये, कारण कि आयुर्वेदके अमृतमय उपदेशोंके अनुसार सदा आहार व्यवहार करनेसे मनुष्य यहां नीरोग रहता हुआ, अपना धर्मकृत्य सम्पादन कर परलोक सुधार सकता है अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंकी प्राप्तिका सर्वोत्तम साधन एक मात्र स्वास्थ्य है, वह इसी शास्त्रपर सर्वथा निर्भर है ॥ ३ ॥

आयुर्वेद शास्त्रका अपौरुषेयत्व तथा उत्पत्तिक्रम ।

ब्रह्मा स्मृत्वायुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन् ।
तेऽग्निवेशादिकांस्ते तु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ४

सबसे पहले सृष्टिकर्ता भगवान् श्रीब्रह्माजीने इस आयुर्वेद शास्त्रको स्मरण कर दक्ष प्रजापतिको पढाया, तदनन्तर देववैद्य श्रीअश्विनीकुमारोंने इसे उन (दक्षप्रजापति) से सीखा, फिर इन्हों (अश्विनीकुमारों) ने देवराज इन्द्रको पढाया; इन्द्रसे आत्रेय, आदि महर्षियोंने ग्रहण किया और उनसे अग्निवेश आदि ऋषियोंने पढ़कर अपने पृथक् पृथक् ग्रन्थ बनाये ॥ ४ ॥

इस ग्रन्थकी अन्यान्य प्राचीन ग्रन्थोंसे श्रेष्ठता ।

तेभ्योऽतिविप्रकीर्णेभ्यः प्रायः सारतरोच्चयः ॥
क्रियतेऽष्टाङ्गहृदयं नातिसंक्षेपविस्तरम् ॥ ५ ॥

उन त्रिकालदर्शी महर्षियोंके इधर उधर बहुत बिखरे हुए अगाध एवम् असंख्य ग्रन्थोंमेंसे प्रायः सारभूत उपादेय वस्तुओंका संग्रह करके मैं इस अष्टाङ्गहृदय नामक ग्रन्थको बनाता हूं, जो न तो इतना संक्षिप्त हो कि ग्रन्थका भाव समझनेके लिये साधारण बुद्धिमान् पुरुषोंको दूसरे ग्रन्थों [illegible] विद्वानोंकी सहायता लेना पडे, और न इतना विस्तार ही हो कि जिसे बडे २ विद्वानोंके अतिरिक्त सामान्य जन कुछ भी न समझ सके ॥ ५ ॥

आठों अङ्गोंका सामान्य विवरण ।

कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान् ॥
अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता ६॥

१ काय (कायचिकित्सा) २ बाल (बालतन्त्र) ३ ग्रह (भूतविद्या) ४ ऊर्ध्वाङ्ग (शालाक्यतन्त्र) ५ शल्य (शल्यचिकित्सा) ६ दंष्ट्रा (अगदतन्त्र) ७ जरा (रसायनतन्त्र) और ८ वृष (वाजीकरणतन्त्र) इस प्रकार इन आठ अंगोंमें चिकित्साके संस्थित रहनेसे इस ग्रन्थके ये आठ अङ्ग कहे हैं— इसलिये इसको **अष्टाङ्गहृदय** कहा है । इनमें—

(१) शरीरके सम्पूर्ण अङ्गोंमें व्याप्त जो ज्वर, अतिसार, रक्तपित्त, शोष, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ और प्रमेह आदि उन रोगोंको शमन करनेके लिये जो यत्न किया जाता है वह कायचिकित्सा कही जाती है ।

(२) बालतन्त्रमें बालकको दूध पिलाना, धायके दूधके दोष दूरकर उसके स्तनोंके दूधको शुद्ध करना, दूषित दूधके पीनेसे उत्पन्न हुए बालकोंके रोगोंको निवृत्त करना और स्कन्द, पूतनादि ग्रहोंसे बालकोंमें होनेवाले रोगोंकी चिकित्सा तथा बालकोंके पालनकी विधिको कहते हैं । इसीका नाम कौमारभृत्य भी है ।

(३) देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितृगण, पिशाच, नाग, सूर्यादि ग्रह आदिसे पीड़ित चित्तवाले मनुष्योंके कष्टकी निवृत्तिके लिये तथा ग्रहशान्तिके लिये, शान्तिकर्म और बलिप्रदानादिके द्वारा चिकित्सा करनेको भूतविद्या कहते है ।

(४) जिसमे ऊर्ध्वजत्रुगत श्रवण, नयन, मुख और नासिका आदिमे संश्रित व्याधियोंकी चिकित्सा, नेत्रनिर्माणप्रकार, नासिकानिर्माण और कर्णपालीनिर्माण आदि चिकित्सा [illegible] हो, उसे शालाक्यतन्त्र कहते है ।

(५) जो अनेक प्रकारके तृण, काष्ठ, पत्थर, कणके, लोहादि तीक्ष्ण [illegible], अस्थि, बाल, नख,

शस्त्रादिके टुकड़े और दूषित रक्त, राध आदिको, जो शरीरके किसी भागमे शल्यरूपसे स्थित हों उनको निकालनेके लिये तथा मरे हुए गर्भ आदिको निकालनेके लिये और व्रणोंके विशेष निश्चयके लिये जो यन्त्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि, तुम्बी, जलौका, सिंगी आदिके द्वारा रोगनिवृत्तिके लिये चिकित्सा की जाती है। उसको शल्यचिकित्सा कहते है।

(६) सांप, विषयुक्त कीट, बिच्छू, मूषक आदि विषयुक्त जीवोंके काटे हुए की चिकित्सा करनेको तथा अनेक प्रकारके विषोंके सयोगसे उपहत मनुष्योंके विषको शात करनेके लिये जो चिकित्सा की जाती है, उसको अगदतन्त्र कहते है।

(७) जिसमे मनुष्योंकी आयु, बुद्धि और बल आदिकी वृद्धि, एवम् उन्हे नाना प्रकारके रोग तथा बुढापेसे बचाकर नीरोग और सामर्थ्यवान् रखनेके लये उत्तमोत्तम उपाय कहे जायँ उसको रसायनतन्त्र कहते हैं।

(८) जो अल्पवीर्यवाले, दुष्टवीर्यवाले, शुष्क वीर्यवाले और क्षीणवीर्यवाले मनुष्योंके वीर्यको शुद्ध एवं पुष्ट कर अधिक मात्रामें बढानेके लिये तथा स्त्रीसंगमे स्तम्भनकी शक्तिको बढ़ानेके लिये चिकित्सा की जाय उसे वाजीकरण चिकित्सा कहते है।

इस प्रकार इस सहितामें इन आठ अङ्गोंका विभाग कर वर्णन किया जावेगा ॥ ६ ॥

वातादिदोषोंका नामनिर्देश वा सामान्य वर्णन।

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ॥

वात, पित्त और कफ, ये तीन दोष संक्षेपसे कहे है, ये तीनों साम्यावस्थामें रहते हुए देहको धारण करते है, इस लिये ये धातु कहे जाते हैं और अपने कारणोंसे स्वय मलिन होकर रसादि धातुओंको मलिन करते हैं इस लिये इनको मल भी कहते हैं। तथा रसादि धातुओंको दूषित करने वाले होनेसे ये दोष कहे जाते हैं। किसी किसी तन्त्रवाले रक्तको भी दोष मानते है। परन्तु "दूषयन्तीति दोषाः" यह वाक्य वात, पित्त और कफपर ही सार्थक हो सकता है। तथा जैसे वातप्रकृति, पित्तप्रकृति और कफप्रकृति, सब तन्त्रकारोंने मानी है, वैसे "रक्तप्रकृतिः रक्ताद् दोषचतुष्टयम्" इत्यादि वाक्योंसे सुश्रुतादि आचार्योंने कहीं रक्तकी प्रकृति पृथक् नहीं लिखी है।

इसके अतिरिक्त जैसे यह वातज्वर है, यह पित्तज्वर है और यह कफज्वर है; यह सुश्रुतादि आचार्योंने लिखा है, वैसे यह रक्तका ज्वर है, यह किसीने कहीं नही लिखा। यदि कहो कि जैसे वातादि ज्वरोंमें वातादि दोष कारण होते है; उसी प्रकार कुष्ठ विसर्पादिकोमे रक्तका प्रकोप कारण होनेसे रक्तको भी एक चौथा दोष मानना चाहिये, तो हम कहते हैं कि विषूचिकामे इसी प्रकार रसकी विकृति कारण है, रसाळीमें मासविकृति कारण है, और मेदोरोगमें दुष्टमेद कारण है, जब आप रक्तको चौथा दोष मानेंगे तो रसादि धातुओंको भी उन्ही हेतुओसे दोष मानना चाहिये और इस प्रकार कल्पना करनेसे दोषोंकी अनन्त कल्पना की जा सकती है। वस्तुतः कुष्ठ, विसर्पादिकोंमें भी घृतदग्ध न्यायसे अर्थात् जिस प्रकार लोकमे गर्म किये हुए घी, तेल आदिके भीतर रहती हुई अग्निसे जल जानेपर घी आदिसे जल गया ऐसा कहा जाता है ठीक उसी प्रकारसे रक्तमें स्थित हुए वातादि दोषोंके प्रकोपसे कुष्ठ विसर्पादिकोंकी उत्पत्ति होती है, केवल रक्तसे नहीं, इस लिये संक्षेपसे वात, पित्त और कफ ये तीनों ही दोष माने जाने चाहिये।

देहका नाश और पालनके प्रति दोषोंकी कारणता।

विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च ॥८॥

सम्पूर्ण मनुष्योंके सुख और दुःख, उनके स्वास्थ्यपर निर्भर है। उस स्वास्थ्यमें वात, पित्त और

कफकी साम्यावस्था ही कारण है । यथार्थमें सम्पूर्ण सृष्टिके स्वास्थ्यका कारण सूर्य, चन्द्रमा और वायु देवता है, क्योंकि वेदोंने जगत्को अग्निसोमात्मक माना है, इसीके आधारपर धन्वन्तरि भगवान्का उपदेश है कि चन्द्रमा सृष्टिको क्लेदित करता है और सूर्य भगवान् शोषण करते है और वायु दोनोंका आश्रय लेकर साम्यावस्था रखते हुए सृष्टिका पालन करता है । इसी आधारपर सर्वज्ञ ऋषि मुनियोंने वात, पित्त और कफके विज्ञानको कथन किया है । आज कलकी प्रथाके अनुसार किसी भी रोगकी खोज केवल प्रत्यक्षमूलक हेतुओंसे की जाती है, किन्तु ऋषियोंने विज्ञानमूलक खोजसे जिस विषयका कथन किया है, वह तीनों कालमे एकसा रहते हुए संसारके हितसाधनमे निर्दोष कारण होता है और केवल प्रत्यक्षमूलक विज्ञान थोडे २ समय पर बदलता हुआ कभी २ संसारके लिये हानिकारक भी होता है ।

वर्तमान पाश्चात्य चिकित्सा प्रणालीमे विज्ञानमूलक वात, पित्त और कफका पूर्ण विचार न होकर ही नित्य परिवर्तन होता रहता है । ऋषियोंने त्रिदोष विज्ञानको जिस विशाल त्रिकालदर्शीतासे कथन किया है, उसका किंचित् दिग्दर्शनमात्र हम नीचे कहते है:—

सम्पूर्ण प्राणिमात्रके शरीरमे तीन क्रियायें होती है, जैसे सञ्चालन, स्वेदन और स्नेहन, इनमें सञ्चालन क्रियाका कारण वायु है, इसीका धर्म है कि शरीरमे संपूर्ण संचालन क्रिया करते हुए मल-मूत्रादिका निकालना और रस,रक्त आदि धातुओंका यथासमय परिवर्तन, विभाग और संचालनादि क्रमसे शरीरका पालन करना और कफ, पित्तको भी साम्यावस्थामें रखना । यह वायुकी क्रिया मनकी गतिके किंचित् परिवर्तन होनेसे भी विकृत हो जाती है, जैसे लंघनादि कारणोंसे पवनकी साम्यावस्था बिगड़कर वातप्रकोप हो जाता है: वैसे ही काम शोकादि मनके विकारोंसे भी वायुका प्रकोप होता है, लक्षणों और अनुमानसे तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है । परन्तु आधुनिक पाश्चात्यविज्ञानसे मूर्च्छितावस्थामें अथवा मृत शरीरमें जो शारीरिक पदार्थ देखे जा सकते है, उनमें वातका विज्ञान नहीं हो सकता है यही कारण है कि उस विद्याके जाननेवाले वातादि दोषोंका विज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते, यद्यपि वे नित्य देखते है कि किसी मनुष्यको धन पुत्रादिकोंके नाश होनेकी खबर मिलनेसे उसके शरीरमे एक विचित्र विकृति वा मृत्यु तक हो जाती है । इसका कारण न जानते हुए पाश्चात्य चिकित्सकोंको किसी कारणसे हृदयकी गति रुक जाना कह देनेके सिवाय इसी विज्ञानके आधारपर कोई बात कहना अभीतक नही आया है ।

जैसे साम्यावस्थामे रहता हुआ वायु शरीरकी रक्षा और पोषण आदि करता है और विकृत होने पर शरीरका विनाश तक कर डालता है, उसी प्रकार पित्त शरीरमे स्वेदन, पाचन आदि क्रिया करता हुआ शरीरकी रक्षा, वातकफकी साम्यावस्था, अन्नके परिपाक आदि और इसके रक्त आदि बनानेमें तथा आलोचन, प्रकाशन, आदि क्रियाओंको करता रहता है । अपने कारणोंसे विकृत होनेपर शरीरमें रोग आदिका कारण हो जाता है । ऐसे ही कफ स्नेहन आदि-क्रियाओंसे शरीरका पालन, वात, पित्तकी साम्यावस्था और शरीरके अंगोको स्थिर रखता हुआ दीर्घायुका कारण होता है । यही विकृत होनेपर पवनकी गतिको बिगाड़कर तथा स्रोतोंको रोककर कफके रोगोंका और मृत्युका कारण हो जाता है ।

जैसे वायु अपनी साम्यावस्थामें रहकर शरीरमें रस, रक्तादिका सञ्चालन करता हुआ यथार्थरूपसे शरीरका पालन करता है, वैसे ही पित्त, स्वेदन और कफ, स्नेहनक्रियासे शरीरका पालन करता है। जैसे काम आदि मनोविकारसे वायु विकृत होकर अपनी शुद्ध क्रियाओंको बिगाड़ देता है, वैसे ही क्रोधसे पित्त बढ़कर शरीरमें विकार उत्पन्न करता है

तथा ऐसे ही मनकी अधिक प्रसन्नतासे कफकी वृद्धि होकर शरीरमें स्थौल्य आदि कफके रोग उत्पन्न होते है। यदि पवन बढ़कर शरीरमें विशेष गतिको प्राप्त होजाय तो स्नेहनक्रियाका शोषण होकर कफकी हानि और उसी अंगमें शोषण आदि वातविकार उत्पन्न होजाता है। यदि इसमें विकृत पित्तका संसर्ग हो तो इस वातव्याधिमें दाह आदि पित्तविकारके लक्षण भी दिखायी देने लगते है। यदि विकृत कफका इसके साथ संसर्ग हो तो उस वातदूषित अंगमें गुरुत्वादि कफविकारके लक्षण भी दिखायी देने लगते है।

तात्पर्य यह है कि किंचित् मनोविकारसे भी वात आदि दोष विकृत होकर शरीरके पालन और धारण करनेवाली क्रियाओंको बिगाड़कर रोग और विनाशका कारण होजाते है तथा एक दोषकी विकृतिसे अन्य दो दोषोंका भी विकृत होना आवश्यक है, इस लिये मूलकारने ठीक लिखा है कि ये तीनों दोष अविकृत अर्थात् साम्यावस्थामें रहनेसे शरीरका धारण और पालन आदि करते हुए दीर्घायुके कारण होते है और साम्यवस्थासे विपरीत अर्थात् न्यूनाधिक होनेसे शरीरके नाशका कारण होते है ॥ ८ ॥

दोषोंके नियत स्थान।

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः ९

वे तीनों वातादि दोष अपने कार्यक्रमसे सम्पूर्ण शरीरका धारण और पालन करते हुए भी संपूर्ण शरीरमें व्यापक रहते हुए शरीरके तीन भागोंमें विशेषरूपसे आश्रित रहते है, जैसे हृदयसे ऊपरके भागमें कफ, हृदय और नाभिके मध्य भागमे पित्त, तथा नाभिसे नीचेके भागमें वायुका विशेष स्थान है इसी लिये आगे चिकित्साक्रममें कफकी विशेषतामें वमन, पित्तकी विशेषतामें विरेचन और वायुकी विशेषतामें स्नेहबस्ति आदिका विशेष रूपसे प्रयोग किया जाता है ॥ ९ ॥

दोषोंके नियत काल।

वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात्।

वे ही वातादि दोष अवस्था, दिन, रात्रि, और भोजनके अन्त, मध्य और आदिमें क्रमसे बलवान् होते है, जैसे बाल्यावस्थामें कफ, युवावस्थामें पित्त और वृद्धावस्थामें वायुकी प्रधानता होती है। इसी प्रकार प्रातःकालमें कफ, मध्याह्नमें पित्त और सायंकालमें विशेष बल होता है। ऐसे ही रात्रिके प्रथम भागमें पित्त और अन्तिम भागमें वायुकी प्रधानता होती है तथा भोजन करते ही कफ, भोजनके परिपाकके समय पित्त और भोजन पच जानेके अनन्तर वायुका प्राधान्य रहता है। ये तीनों दोष अपने अपने प्रधान कालमें रोगोंको बढ़ाते और उत्पन्न करते है॥ १० ॥

दोष विशेषसे जाठराग्निका विषमादि स्वरूप।

तैर्भवेद्विषमस्तीक्ष्णो मन्दश्चाग्निः समैः समः११॥

उन दोषोंमे वाताधिक्य होनेसे मनुष्योंकी जठराग्नि विषम परिपाक करती है अर्थात् खाया हुआ अन्न कभी ठीक पच जाता है और कभी पेटमे हवा आदिके भरनेसे नही या देरसे पचता है। ऐसे ही शरीरमें पित्ताधिक्य होनेसे जठराग्नि तीक्ष्ण (तेज) होती है, वह भस्मक आदि रोगोंकी कारण होती है, ऐसे ही कफप्रधान शरीरमे जठराग्नि मन्द हो जाती है वह अन्नका ठीक २ परिपाक करनेमें असमर्थ होनेसे कफप्रधान रोगोंका कारण होती है और इन तीनों दोषोंकी साम्यावस्था होनेसे जठराग्नि सम अर्थात् उचित मात्रामे खाये हुए अन्नका ठीक परिपाक करनेवाली होती है। इसको शास्त्रकारोंने श्रेष्ठ माना है॥ ११॥

चार प्रकारके कोष्ठ।

कोष्ठः क्रूरो मृदुर्मध्यो मध्यः स्यात्तैः समैरपि१२

मनुष्योंका कोष्ठ भी इसी प्रकार चार प्रकारका माना जाता है, जैसे वायुकी अधिकतासे कोष्ठ क्रूर

होता है, क्रूरकोष्ठवाले मनुष्यको वमन, विरेचन आदि शोधनक्रिया कराते समय यदि स्नेहन, स्वेदन और पाचन द्रव्योंद्वारा उचित अवस्थामें नही लाया जावे तो रेचनादिकी यथार्थ मात्रा देनेपर भी उसका कुछ फल नहीं होता है; ऐसे ही पित्तकी अधिकतासे कोष्ठ मृदु होता है, मृदु कोष्ठवालेको साधारण ओषधी देने पर भी शीघ्र ही रेचनादि फल हो जाता है। कफप्रधान पुरुषका कोष्ठ मध्यम होता है, यह मध्यमकोष्ठ समकोष्ठ नही माना जाता, क्योंकि इसमे भी कफाधिक्य होनेसे शोधनक्रियासे प्रथम कफको पाचन करनेकी आवश्यकता होती है, इस लिये जिस मनुष्यके शरीरमे वात, पित्त और कफकी साम्यावस्था हो उसके कोष्ठको सम कहते है, सम कोष्ठमे सब प्रकारकी क्रियाये यथार्थ फल देनेवाली होनेसे समकोष्ठ अत्यन्त श्रेष्ठ माना जाता है ॥ १२ ॥

वातादि प्रकृतियोंका स्वरूप।

शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषक्रिमेः ॥
तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीनमध्योत्तमाः पृथक्।
समधातुः समस्तासु श्रेष्ठा निन्द्या द्विदोषजाः॥१३

गर्भाधानके समय पिताके शुक्र और माताके रजमे वात, पित्त और कफका जो न्यूनाधिक्य होता है, उसीके अनुसार जन्मके आदिमे ही मनुष्योंकी तीन प्रकारकी प्रकृतिया बन जाती है, उनमे वातकी अधिकतासे हीन, पित्तकी अधिकतासे मध्य और कफकी अधिकतासे उत्तम, शरीरकी प्रकृति मानी गयी है। तथा गर्भाधानके समय वात, पित्त और कफकी साम्यावस्था होनेसे समप्रकृतिक प्राणी उत्पन्न होता है। सम प्रकृतिवाले शरीरको शास्त्रकारोंने श्रेष्ठ माना है। और दो दो दोषोंकी प्रधानता जैसे वातपित्तप्रधान, कफपित्तप्रधान, वातकफप्रधान, ये तीनों प्रकृतिया निन्द्य कही गयी है। गर्भाधानके समयमे सब ही दोष एकसे विपरीत गुण रखनेवाले होनेपर भी एक दूसरेके लिये सहज और साम्य होनेसे हानिकारक नही होते जैसे सर्पादि विषक्रिमिको उसके शरीरमें स्थित हुआ सहज विष कुछ भी हानि नही पहुँचाता है ॥१३॥

वायुके गुण।

तत्र रूक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः॥१४

उनमें वायु रूखा, हलका, ठण्डा, खरा, सूक्ष्म अर्थात् शरीरके समस्त स्रोतोंमे प्रवेश करनेवाला, और चंचल है, यद्यपि गौतम आदि मुनियोंने वायुको अनुष्णाशीत अर्थात् न गर्म और न ठण्डा ही माना है और हमारे शास्त्रमे भी योगवाही होनेसे अनुष्णाशीत ही कहा गया है; जैसे वायु पित्तके सयोगसे दाह करनेवाला और कफके सयोगसे शीत करनेवाला होता है परतु उसके योगवाही होते हुए भी कुपित पित्तके सयोगसे उतनी ही देरमात्र दाह होनेसे वायुकी स्वाभाविक शीतता नष्ट नही होती। तथा उष्ण उपायोसे वायु शान्त होता है इस लिये ही यहां वायुका शीत गुण वर्णन किया गया है॥ यह वायु प्राणादि भेदसे शरीरमे पाच प्रकारका होता है। जैसे हृदयमे प्राण, गुदामे अपान, नाभिमे समान, गलेमे उदान और समस्त शरीरमें व्यान नामक वायु स[illegible] स्थिर रहता है॥ १४ ॥

पित्तके गुण।

पित्तं सस्नेहतीक्ष्णोष्णं लघु विस्रं सरं द्रवम् १५

पित्त कुछ चिकना, तीक्ष्ण, आशुकारी गर्म, हलका, विस्र अर्थात् मछलियोंकीसी दुर्गन्धवाला, अनुलोमक और द्रव अर्थात् तरल पदार्थ होता है, वह शरीरमे पाचक, आलोचक, भ्राजक, रंजक और साधक भेदसे पाच प्रकारका होता है और प्रकृतिस्थ हुआ शरीरका पालन करता है। जैसे—अग्न्याशयमें अग्निरूप तिलप्रमाण जो पित्त रहता है, उसको पाचकपित्त कहते है। भ्राजकपित्त शरीरमे कान्तिदायक है और लेप तथा अभ्यग आदिको पचाता है। रंजकपित्त यकृत् और प्लीहाके बलसे रसको रँगकर रक्त बनाता है। आलोचकपित्त दोनों नेत्रोंमे रह कर रूप दिखानेका काम करता है। साधकपित्त हृदयमें रहता हुआ मेधा और प्रज्ञाको बढाता है ॥१५॥

कफके गुण।

स्निग्धःशीतो गुरुर्मन्दःश्लक्ष्णो मृत्स्नःस्थिरःकफः।

कफ चिकना, ठण्डा, भारी, मन्द (चिरकारी), श्लक्ष्ण (मृदु) अर्थात् नरम, मृत्स्न (पिच्छिल) अर्थात् चेपदार पदार्थ जो अंगुलीसे मसलनेपर चिपट जावे और स्थिर अर्थात् अव्याप्तिशील होता है, यह तमोगुणप्रधान और मधुर रसवाला होता है। विदग्ध होनेपर लवणताको प्राप्त होता है। कफ भी क्लेदन, अवलम्बन, रसन, स्नेहन और विश्लेषण भेदसे पाच प्रकारका होता है। आमाशय, हृदय, कण्ठ, सिर और सन्धि ये कफके नियत स्थान है। उनमे क्लेदनकफ अपनी शक्तिसे आमाशयमे रहकर अन्नको क्लेदित करता है और अन्य श्लेष्मस्थानोंकी उदककर्मसे सहायता करता है । अवलंबनकफ रसयुक्त होकर हृदयमे रहता हुआ अपनी शक्तिसे हृदयका अवलबन करता है, और त्रिकस्थानको धारण करता है। रस और रसना दोनों जलीय पदार्थ है इस लिये रसना और रसनकफ ये दोनों एक ही स्थानमे रहते हुए रसज्ञानको करते है। स्नेहनकफ संपूर्ण इन्द्रियोंको स्नेहदानसे तृप्त करता है। सश्लेषण कफ समस्त सन्धियोंका सश्लेषण करता है॥ १६॥

संसर्ग और सन्निपातका स्वरूप।

संसर्गः सन्निपातश्च तद्द्वित्रिक्षयकोपतः ॥१७॥

अपने स्वाभाविक प्रमाणसे घटे या बढे हुए दो कुपित दोषोंके संयोगको संसर्ग और ऐसे ही तीनों दोषोंके सयोगको सन्निपात कहते हैं॥ १७॥

शरीरके सात धातुओंका वर्णन।

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः। सप्त दूष्याः ॥ १८॥

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात शरीरके धातु है, कारण इनसे ही शरीरका धारण होता है। इन्हें पूर्वोक्त वात आदि दोष दूषित करते है, अत एव ये दूष्य भी कहे जाते है॥१८॥

शारीरिक मल।

मला मूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपि च ॥१९॥

विष्ठा, मूत्र और स्वेद अर्थात् पसीना आदि दुर्गन्धवाले सब पदार्थ शरीरस्थ धातुओंके मल कहे जाते है। यथा मल और मूत्र अन्नके मल है एव प्रस्वेद, मेद अर्थात् चर्बीका मल होता है। आदि शब्दसे मास, हड्डी, मज्जा आदि अन्यान्य धातुओंके भी नख, रोम आदि मल जानने। "अपि च" इस शब्दसे ये (मल मूत्रादि) केवल मलसज्ञक ही नहीं, किन्तु "दूष्य" भी कहे जाते है, कारण वातादि दोष रसादिके समान इन्हे भी दूषित करते है। इससे जिस प्रकार रसादिकी दूष्य और धातु नामसे दो प्रकारकी संज्ञा पहले कही गयी है, उसी प्रकार विष्ठा-मूत्रादि भी मल और दूष्य इन दो संज्ञाओंके अधिकारी है। इनका प्रयोजन और नाम निर्देश आगे चलकर ग्रन्थकार स्वयं करते है, यथा—"दोषधातुमला मूल सदा देहस्येत्यादि" ॥ १९ ॥

दोष, धातु और मल आदिके हानि, वृद्धि और ह्रासका कारण।

वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः ॥ २० ॥

इन सब दोष, धातु और मल आदि शरीरस्थ पदार्थोंकी उनके समान गुण (स्वभाव) वाले द्रव्य, गुण और कर्मसे वृद्धि होती है और विपरीत अर्थात् विशेष वा पृथक् गुणवाले पदार्थोंसे सम्पूर्ण दोषादिका ह्रास अर्थात् क्षय होता है। द्रव्यमे यथा--रक्तसे रक्त, मांससे मांस, मेदसे मेद, अस्थिसे अस्थि, मज्जासे मज्जा, शुक्रसे शुक्र और कच्चे गर्भसे गर्भकी वृद्धि होती है, उसी प्रकार जलमय दूध अपने समान गुणवाले कफको बढाता है तथा दूधसे उत्पन्न हुआ घृत शुक्रको बढाता है। ऐसे ही सौम्यस्वभाववाले पदार्थ जैसे जीवन्ती (रायडोडीके नामसे यहां मुम्बईके शाक-बाजा-

रमें बहुत मिलती है), काकोली, क्षीरकाकोली आदि वृष्य वस्तुएं सौम्य धातुओंसे उत्पन्न होनेवाले स्नेह, बल और पुंस्त्व अर्थात् पुरुषपनेको, एवं मरिच, पञ्चकोल और भिलावां आदि आग्नेय पदार्थ तद्-गुणक बुद्धि, मेधा (धारणशक्ति) और अग्नि आदिको बढाते है ॥ गुणसे यथा—आम, केला, खजूर आदि पार्थिव वस्तुओंका द्रव्यत्वरूपसे निर्देश होने पर भी वे अपने स्निग्ध, गुरु और शीत आदि गुणोंमें कफके समानधर्मी होने और उनमें जलका भाग अधिक रहनेसे जलात्मक कफको विशेषरूपसे बढाते है । इसी प्रकार काय, वाणी और मनका व्यापार-स्वरूप कर्म भी अपने तुल्यधर्मवाले दोषोंको बढाते हैं, जैसे धावन (दौड़भाग) लङ्घन अनशन अर्थात् भोजन न करना, प्लवन (कूद-फांद) आदि दैहिक क्रियायें चलनरूप कर्मकी समानतासे वायुको बढाते है, उसी प्रकार पढ़ना, बोलना और गाना आदि वाचिक कर्म भी वायुकी वृद्धिमे सहायक होते है, तथा चिन्ता, शोक और भय आदि मानसिक चेष्टाये चित्तको दुःख पहुँचानेके कारण वायुको बढाती है, इसी प्रकार क्रोध, ईर्ष्या (डाह, दूसरेकी बड़ाईको न सहना) आदि मनको सन्ताप पहुँचानेसे पित्तको एवम् अधिक सोना, आलस्य, अथवा चारपाई आदि पर लेटे रहना आदि स्थैर्यगुणसे समान होनेसे कफको बढाते है ॥ विरुद्धधर्मवाले द्रव्यादिकोंसे वृद्धिका विपर्यय अर्थात् क्षय होता है, जैसे द्रव्योंमें, गवेधुक धान्य (एक प्रकारका जंगली धान) रूक्ष एवं वात-प्रधान होनेसे पार्थिव मांस आदि स्निग्ध पदार्थोंको सुखाता वा घटाता है, तथा तजस (आग्नेय) पदार्थ क्षार आदि अपने विपरीत गुणवाले कफको शीघ्र नष्ट वा कम कर देते है, उसी प्रकार गुणसे यथा—जलीय वस्तु कांजी, अपने लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण और विशद आदि कफविरुद्ध गुणोंसे कफको घटाती है, इसी प्रकार कर्मसे यथा—निद्रा, आलस्य, और सौमनस्य अर्थात् मनकी प्रसन्नता ये स्वयं अस्फुरित स्वभाववाले होनेसे अपने विपरीत अर्थात् प्रस्फुरित स्वभाववाले परिस्पन्दी वायुको पृथक् २ विखेर डालते हैं, तथा परिस्पन्दरूप (स्फुरणधर्मवाले) चिंता, व्यवाय और व्यायाम आदि कर्म मन्दपरिस्पन्दी कफको विलय वा विच्छिन्न कर डालते है ॥ २० ॥

छः प्रकारके रसोंका विवरण ।

रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणकषायकाः ।
षड् द्रव्यमाश्रितास्ते तु यथापूर्वं बलावहाः॥२१

पाञ्चभौतिक द्रव्योंमें रहनेवाले रस, स्वादु, अम्ल, लवण, तिक्त, कटुक और कषाय इन भेदोंसे छः प्रकारके होते है और वे यथापूर्व बलके देनेवाले होते है, अर्थात् शरीरको सम्पूर्ण रसोंसे अधिक बल देनेवाला मधुर (मीठा) रस घृत और गुड़ आदि-में, उससे कम अम्ल (खट्टा), इमली, बिजौरा निम्बू आदिमें, उससे न्यून लवण, यथा सैंधव आदि-में, उससे हीनबल तिक्त रस; यथा निम्ब आदिमें, उससे कम कटुक अर्थात् कडुआ मरिच आदिमें और सबसे हीन—बल—दायक कषाय रस होता है जो हरड़े आदिमें रहता है । रस छः ही प्रकारके होते है, इनसे अधिक वा न्यून नहीं होते । यद्यपि इन रसोंके गुण स्वाद्वादि भेदसे, संसर्गसे, अनुरस और तारतम्य (न्यूनाधिक्य) कल्पना वशसे भी अनेक प्रकारके हो सकते है, किंतु वे सब इन्हीं छः रसोंके अन्तर्गत हो जाते है ॥ २१ ॥

रसोंका दोषकर्तृत्व ।

तत्राद्या मारुतं घ्नन्ति त्रयस्तिक्तादयः कफम् ।
कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते ॥२२॥

उनमे पहले कहे तीन अर्थात् मधुर, अम्ल और लवण रस वायुको शान्त करते है और बाकी रहे तीन अर्थात् तिक्त, ऊषण (कटुक) और कषाय, ये वायुको कुपित करते है, इस प्रकार तिक्तादि तीन (तिक्त, कटुक, कषाय) कफको नाश करते है और बाकी रहे तीन अर्थात् मधुर, अम्ल और लवण, ये कफको बढ़ाते है । वैसे ही कषाय, तिक्त और

मधुर रस पित्तको घटाते है और बाकी रहे तीन अर्थात् अम्ल, लवण और कटुक उसी पित्तको बढ़ाते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि मधुर रस वात-पित्तका नाशक और कफको बढ़ानेवाला होता है, एवम् अम्लरस वायुनाशक और कफपित्तको कुपित करनेवाला होता है तथा लवण रस वायु-नाशक और कफ-पित्तका करनेवाला होता है, एवं तिक्तरस कफ और पित्तको दूरकर वायुको बढ़ाता है, उसी प्रकार कटुक रस कफनाशक और वात-पित्तका उत्पादक है एवं कषाय रस कफ-पित्तको हटाकर वायुको उत्पन्न करता है, इसका स्पष्टीकरण नीचेके चक्रसे सुगम होता है ॥ २२ ॥

मधुरादि रसोंके द्वारा दोषोंका उपशम और प्रकोप बतानेवाला चक्र।

रसके द्वारा	उपशमनीय दोष	प्रकोपणीय दोष
मधुर	वायु, पित्त.	कफ.
अम्ल	वायु	पित्त, कफ.
लवण	”	” ”
तिक्त	कफ, पित्त.	वात.
कटुक	कफ.	वात, पित्त.
कषाय	कफ, पित्त.	वात.

द्रव्योंके शमनादि भेद।

शमनं कोपनं स्वस्थहितं द्रव्यमिति त्रिधा २३

ऊपर कह आये है कि रस द्रव्योंमे रहते है, अतः द्रव्यका वर्णन करते है कि वे द्रव्य शमन, कोपन और स्वस्थहित इन भेदोंसे तीन प्रकारके होते है जो द्रव्य किसी कारणसे कुपित हुए वात आदि दोषोंको शान्त करे वह शमन, यथा तैल, घृत और मधु क्रमसे त्रिदोष शामक है, जैसे तैलमें स्नेह, औष्ण्य और गुरुत्व आदि गुणोंका योग होनेसे वह अपने विपरीत गुणवाले वायुको शान्त कर देता है। घीमें माधुर्य, शैत्य और मन्दता आदि गुणोंके रहनेसे वह उससे विरुद्ध गुणवाले पित्तको नष्ट करता है। इसी प्रकार मधु (शहद) में रौक्ष्य, तैक्ष्ण्य और कषाय गुणका सम्बन्ध रहनेसे वह अपने विरुद्धधर्मी कफको शमन कर देता है ॥ जो द्रव्य वातादि दोषों, रसादि धातुओंऔर मूत्रादि मलोंको कुपित करे वह कोपन कहा जाता है यथा-यवक, पाटल, माष, मत्स्य, कच्ची मूली, सरसों, मन्दक, दधि, किलाट और विरुद्ध भोजन अर्थात् मछली और दूध आदि ॥ जो द्रव्य पहले कहे हुए इन दोष आदिको एक समान अवस्थामें रक्खे वह स्वस्थ हित कहा जाता है, जैसे आगे चल कर इसी ग्रन्थकी दिनचर्या और ऋतुचर्या अध्यायोंमें हिता-हित आहार-विहारका वर्णन किया गया है। तथा मात्राशितीय अध्यायमें रक्तशालि, साठीका चावल, जौ, गेहूं, जंगली जीवोंका मांस जीवन्ती शाक, दिव्य जल और दूध आदिके सेवन करनेका विधान है। इसी प्रकार बल, ओज और तेजके बढ़ानेवाले रसायन (जो बुढ़ापा और रोग का नाश करे) और वाजीकरण अर्थात् स्त्रीप्रसंगमे अधिक आनन्द और शक्ति देनेवाले द्रव्योंका सदा सर्वदा सेवन करना लिखा है इत्यादि ॥ यह शमनादि को द्रव्यभेद मानने वाले सर्वाङ्गसुन्दरा टीका करनेवाले **अरुणदत्त** और पदार्थचन्द्रिका टीका करनेवाले आचार्य **श्रीचन्द्रनन्दन**जीका मत है, किन्तु चतुर्वर्ग-चिन्तामणि जैसे महान्ग्रन्थके रचयिता **श्रीहेमाद्रि** (टीकाकार)यहां द्रव्यशब्दसे प्रभाव लेकर शमन आदिको उसीका भेद मानते हुए इस प्रकार व्याख्या करते हैः- जो द्रव्य समान अथवा समविपरीत रसादिसे युक्त होकर भी वात आदि दोषोंको शान्त करता है वह शमन कहा जाता है जैसे जीवन्ती (दोडी-नामका शाकविशेष) मधुर और शीतगुणविशिष्ट होनेपर भी कुपित कफको शान्त कर देता है, तथा लशन कटुपाक और कटुरसवाला, गुरु एवं स्नेहगुण विशिष्ट होता हुआ भी कफ और वायुको शान्त करता है ॥ जो द्रव्य विपरीत अथवा समविपरीत

रसादिसे युक्त होकर भी वात आदि दोषोंको कुपित करता है वह कोपन द्रव्य कहा जाता है, जैसे फाणित (राब) द्रव्य—गुरु, उष्ण, स्निग्ध और मधुर रसवाला होकर भी वायुको कुपित करता है, तथा वैसे ही गुणोंवाला माष (उड़द) पित्त और कफको कुपित करता है ॥ जो द्रव्य वात आदि दोषोंकी हानि और वृद्धिका कारण होकर भी स्वस्थ शरीरके वात आदि दोषोंको घटा वा बढ़ा नहीं सकता है, वह द्रव्य स्वस्थहित कहा जाता है, जैसे यवधान्य, गुरु, मधुर, रूक्ष और शीतगुणविशिष्ट होकर भी स्वस्थ मनुष्यके पित्तको नहीं घटाता है और गुरु, मधुर, स्निग्ध एवं शीतस्वभाववाला दूध स्वस्थशरीरमें स्थित हुए कफको कुपित नहीं करता है. इसी प्रकार और भी सम्पूर्ण द्रव्योंमें रसादिके अतिरिक्त कुछ न कुछ विशिष्ट कार्य करनेका सामर्थ्य (प्रभाव) अवश्य रहता है जैसा आगे कहेंगे "रसादिसाम्ये यत् कर्म विशिष्टं तत् प्रभावजम्" इति। अर्थ द्रव्योंमें रस, वीर्य और विपाक आदिके समान होने पर भी जो विशिष्ट कार्य करनेकी शक्ति होती है वह प्रभावोत्पन्न शक्ति कही जाती है, जैसे आमले, रस, वीर्य और विपाकमें लकुच (बड़हल) के समान होते हुए भी तीनों दोषोंको शान्त करते है, और लकुच तीनों दोषोंको बढ़ाता वा कुपित करता है; इनमें भेद केवल प्रभावजन्य ही है ॥ कुछ टीका-कार शमन आदिको द्रव्यक भेद मानते है यह ठीक नहीं, कारण द्रव्यभेद होनेसे एक ही द्रव्यके शमन, कोपन और स्वस्थहित होनेमें अनुचित सांकर्य हो जाता है। धर्मभेद माननेमें रसादिकोंके सांकर्यके समान धर्मसंकर अनुचित नहीं होता। यदि ग्रन्थ-कारको यहां द्रव्यभेद ही अभीष्ट होता तो वे इन्हें बीचमें न कहकर रसादि धर्मभेदोंके पहले वा पीछे कहते। इससे सिद्ध हुआ कि शमनादित्रितय प्रभावके ही भेद है, द्रव्यके नहीं ॥ २३ ॥

द्रव्योंमें दो प्रकारके वीर्य।

उष्णशीतगुणोत्कर्षात्तत्र वीर्यं द्विधा स्मृतम्।

उस द्रव्यमें उष्ण और शीतगुणके उत्कर्ष अर्थात् अतिशय आधिक्यसे दो प्रकारका वीर्य होता है। यद्यपि जाठराग्निके पाकसे गुरु, लघु आदि आठ प्रकारके गुण उत्पन्न होते है, तथापि उन सबमें उष्ण और शीत गुणकी प्रधानतासे दो ही प्रकारका वीर्य होता है, कारण अन्यान्य गुणोंका अभिभव करके उनपर अपना प्रभाव डालनेकी विशेष शक्तिका नाम उत्कर्ष है। यद्यपि द्रव्योंमें अनेक गुण और रस होते है तथापि संसारके अग्निसोमात्मक होनेसे उनमें वीर्य दो ही प्रकारका होता है ॥ २४ ॥

द्रव्योंके त्रिविध विपाक।

त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्वम्लकटुकात्मकः॥२५

स्वादु, अम्ल और कटुक भेदसे द्रव्यका विपाक तीन प्रकारका होता है। जाठराग्निके सम्बन्धसे रसके स्वरूपान्तरमें प्रगट होनेका नाम विपाक है और वह कार्यसे जाना जाता है। मधुर और लवण रसका विपाक मधुर होता है, खट्टेका खट्टा और तिक्त, कटु और कषाय रसवाले द्रव्योंका विपाक कटुक अर्थात् कडुआ होता है ॥ २५ ॥

द्रव्योंके बीस गुण।

गुरुमन्दहिमस्निग्धश्लक्ष्णसान्द्रमृदुस्थिराः।
गुणाः ससूक्ष्मविशदा विंशतिः सविपर्ययाः॥२६

द्रव्यमें गुरु आदि दश और इनके विपर्यय अर्थात् विरोधी दश इस प्रकार बीस प्रकारके गुण होते है। बृंहण कर्ममें गुरु (भारी) और उसका विपर्यय लंघनमें लघु (हलका), शमनमें मन्द और उसके विपरीत शोधनमें तीक्ष्ण, स्तम्भनमें हिम और उसके विरुद्ध स्वेदन कर्ममें उष्ण, क्लेदनमे स्निग्ध और उसके विपरीत शोषणमें रूक्ष, रोपणमें श्लक्ष्ण और इसका विपर्यय लेखनमें खर, प्रसादनमें सान्द्र और इसके विपरीत विलोडनमें द्रव, श्लथनमें मृदु

और उसके विपरीत कर्ममें स्थिर कठिन, धारणमें स्थिर और इसके विपरीत प्रेरणमें चल, विवरणमें सूक्ष्म और उसके विपरीत संवरणमें स्थूल, क्षालनमें विशद और उसका विपर्यय विलेपनमें पिच्छिल गुणका उपयोग किया जाता है। यद्यपि व्यवायि, विकाशी, आशुकारी, प्रसन्न, और सुगन्ध आदि और भी सविपर्यय अनेक गुण शास्त्रान्तरोंमें लिखे है, किंतु उन सबका इन बीसोंमें ही अन्तर्भाव हो जाता है। ग्रन्थके बढ जानेके भयसे उनका उल्लेख यहां नहीं किया जाता है। जो चाहे चरक और सुश्रुत आदिमें देखे ॥ २६ ॥

रोग और आरोग्यके असाधारण कारण।

कालार्थकर्मणां योगो हीनमिथ्यातिमात्रकः।
सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम् २७

काल, अर्थ और कर्मका अनुचित संयोग रोगका कारण होता है, तथा इनहींका सम्यग्योग अर्थात् उचित सम्बन्ध आरोग्यका प्रधान कारण है। वह काल यहां शीत, उष्ण और वर्षा इन भेदोंसे तीन प्रकारका माना गया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध इन पांच विषयों (महाभूतोंके गुणों) का नाम अर्थ है। काय, वाणी और मनकी व्यापृत्तिरूप चेष्टाको कर्म वा क्रिया कहते है। इनके हीनयोग (स्वरूपकी हानि), मिथ्यायोग (स्वरूपका वैपरीत्य) और अतियोग (स्वरूपका अतिशय आधिक्य) से सम्पूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति होती है- और इनका अपने यथावस्थित प्रमाणके अनुरूप स्वरूपमें रहना ही आरोग्यका हेतु है ॥ जाड़ा, गर्मी और वर्षाका कम होना कालका हीनयोग है, तथा जाड़ेके दिनोंमें अत्यन्त गर्मी, गर्मीके दिनोंमें जाड़ा और वर्षाऋतुमें वर्षाका बिल्कुल न होना कालका मिथ्यायोग होता है, इसी प्रकार जाड़े, गर्मी और वर्षाका बहुत अधिक होना कालका अतियोग कहा जाता है॥ ये तीनों ही रोगके कारण है और इनका समयोग स्वास्थ्यका हेतु होता है। इसी प्रकार इन्द्रियोंका अपने २ विषयोंके साथ स्वल्प सम्बन्ध होना आर्थिक हीनयोग कहा जाता है। इन्द्रियोंका वैयक्तिक अनिष्ट वस्तुओंके साथ अनुचित सम्पर्क होना मिथ्यायोग एवम् इन (शब्दादि) का अपने प्रमाणसे अत्यन्त अधिक स्वरूपमें बढ जानेका नाम आर्थिक अतियोग है ॥ कायिक, वाचिक और मानसिक चेष्टाओंकी स्वल्प प्रवृत्तिका नाम कर्मका हीनयोग है और मल, मूत्र आदि स्वाभाविक धर्मोंके वेगोंका रोकना, आधी वा इससे भी कम मात्रामें भोजन करना, व्यर्थ बक् बक् करना और राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि दुष्ट मनोविकारोंको उत्तेजना देना आदि त्रिविध कर्मोंका मिथ्यायोग होता है तथा इनकी ही प्रचुर प्रवृत्तिको विद्वान लोग कर्मका अतियोग कहते है। यद्यपि इन सब द्रव्योंका इस प्रकारका संयोग संसारमें सर्वदा होता ही रहता है, किन्तु जब इनका हीनादि भेदसे विषम वा अनुचित योग होता है, तब दोषवैषम्य और जब सम्यग्योग अर्थात् यथोचित योग होता है, तब दोषसाम्य होता है, जो रोग और आरोग्यके असाधारण कारण है ॥ २७ ॥

रोगोंकी उत्पत्तिका सामान्य कारण।

रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता॥ २८॥

वात आदि दोषोंमें किसी एक दो अथवा तीनोंके अपने प्रमाणसे न्यून वा अधिक हो जानेके कारण जो वेदना होती है उस विकारका नाम रोग है और उक्त दोषोंका साम्यावस्थामें रहना ही आरोग्य है ॥ २८ ॥

रोगोंके दो भेद।

निजागन्तुविभागेन तत्र रोगा द्विधा स्मृताः२९

उनमें रोग दो प्रकारके होते है, एक निज और दूसरा आगन्तु जो स्वयं वातादि दोषोंके वैषम्यसे उत्पन्न होकर शरीर और मनको दुःख पहुँचावे, वह निज रोग और जो शस्त्र आदि बाहरी हेतुओंसे उत्पन्न हो वह आगन्तुक व्याधि कही जाती है॥ इन दोनोंमें भेद यह है कि निज रोगमें वात आदि दोष

पहले विकृत होते हैं और पीछे व्यथारूप व्याधिको उत्पन्न करते हैं और आगन्तुमें तो पहले व्यथा (पीड़ा) उत्पन्न होती है और उसके पीछे वात आदि दोष कुपित होते हैं। इन दोनों प्रकारकी व्याधियोंसे चित्तको सन्ताप (क्लेश) होता है कारण देह और मन ये दोनों ही रोगोंके आश्रयीभूत स्थान हैं इन दोनोंका परस्परमें आधाराधेयभाव सम्बन्ध होनेसे एकके सन्तप्त होनेपर दूसरा भी अवश्य सन्तप्त हो जाता है जैसे आगमें लाल किये हुए लोहेके गर्म गोलेको ठण्डे कड़ाहेमें रख दिया जाय तो वह उस कड़ाहेको भी गर्म बना लेता है अथवा गर्म तवे आदिपर रक्खे हुए घृतादि ठण्डे पदार्थ भी कुछ ही समयमें अत्यन्त गर्म होजाते हैं। ठीक उसी प्रकार शारीरिक व्याधियां मनको और मानसिक व्याधियां शरीरको सन्ताप पहुँचाती है ॥ २९ ॥

रोगोंका आश्रयस्थान।

तेषां कायमनोभेदादधिष्ठानमपि द्विधा ॥३०॥

उन निज और आगन्तुक रोगोंका अधिष्ठान अर्थात् आश्रय भी दो प्रकारका होता है, एक शरीर और दूसरा मन। उनमें ज्वर, रक्तपित्त और कास आदिका अधिष्ठान शरीर है एवं मद, मूर्च्छा, संन्यास, ग्रह, भूत, उन्माद, अपस्मार और राग, द्वेष आदिका आयतन मन है ॥ ३० ॥

मनके द्विविध दोष।

रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ ॥३१॥

यह किसी कारणसे कुपित हुए वात आदि दोष शारीरिक रोगोंको उत्पन्न करते है जो पहले कह आये है। अब मानसिक रोगोंके कारणको कहते है कि रजोगुण और तमोगुण ये दो मनके दोष कहे गये है, चकारसे वात आदि दोष भी लिये जाते है॥ ३१॥

त्रिविध रोगपरीक्षा।

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणम् ॥३२॥

दर्शन (देखना), स्पर्शन (छूना) और प्रश्न पूछना) इन तीन उपायोंसे रोगीकी परीक्षा करनी चाहिये। यथा–खांसी, प्रमेह और यक्ष्मा आदि रोगोंसे पीडित मनुष्योंके सफेद व पीले रंगके आकार, प्रमाण, उपचय (वृद्धि) छाया, विष्ठा, मूत्र, वमन और कफ आदिको देखकर तथा ज्वर, गुल्म और विद्रधि आदिको हाथसे छूकर एवं शूल, अरोचक, छर्दि, सुच्छन्द, दुश्छन्दत्व, मृदुकोष्ठत्व, क्रूरकोष्ठत्व, स्वप्नदर्शन, सहजरोग, सुख, दुःख, सात्म्य और असात्म्य आदिको रोगीसे पूछकर परीक्षा करें॥ ३२॥

रोग जाननेके अन्य पांच उपाय।

रोगं निदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाप्तिभिः ॥ ३३॥

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति इन पांच उपायोंसे रोगकी परीक्षा करे। रोगके उत्पन्न करनेमें आदिकारणका नाम निदान है। निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये शास्त्रमें व्यवहारके लिये निदानके पर्याय वाचक शब्द है। वह आसन्न और विप्रकृष्ट भेदसे दो प्रकारका होता है। और आसन्न भी फिर आसन्न और अत्यासन्न भेदसे दो प्रकारका हो जाता है। रूखे, हलके और ठण्डे आदि पदार्थोंका सेवन करना रोगका आसन्न कारण है, जिससे तत्काल रोगकी उत्पत्ति हो वह अत्यासन्न हेतु है, जैसे कुपित हुए वातादि दोष। विप्रकृष्ट हेतु उसे कहते है जो कुछ समय पीछे रोग उत्पन्न करे यथा हेमन्त ऋतुमें ठण्डसे सचित (जमा हुआ) कफ वसन्त ऋतुमें सूर्यके सन्तापसे पिघल कर नाना प्रकारके रोगोंका कारण होता है। इसी प्रकार हविष्प्राश अर्थात् घृतके सेवनसे मेह और कुष्ठ रोगकी कालान्तरमें उत्पत्ति हुई, यह बात **चरकमें** लिखी है, यथा –"तस्मिन् हि दक्षाध्वरध्वंसे देहिनां नानादिक्षु विद्रवतामभिद्रवण–तरण–धावन– लङ्घन–प्लवनाद्यैर्देहविक्षोभणैः पुरा गुल्मोत्पत्तिरभूत्। हविष्प्राशात् प्रमेह–कुष्ठानाम्। भय–त्रास–शोकैरुन्मादानाम्। नानाविधभूताशुचिसंस्पर्शादपस्माराणाम्। ज्वरस्तु खलु महेश्वरललाटादभवत्। तत्सन्तापाद् रक्तपित्तम्। अतिव्यवायात् पुनर्नक्षत्रराजस्य राजयक्ष्मा," इति।

(च. नि. स्था. अ. ८) ऐसी वस्तुओंके सेवनसे इस प्रकारका रोग पैदा होता है, यह बात निदानमे ही जानी जा सकती है इसलिये रोग जाननेका सबसे पहला उपाय निदान है एवं चिकित्साक्रममें भी सबसे पहले निदान अर्थात् रोग उत्पन्न करनेवाली वस्तुओंका ही परित्याग करना लिखा है, जैसा सुश्रुतमें-"सामान्यतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम् " इति ॥ रोगज्ञानका दूसरा उपाय पूर्वरूप है, जिसमें उत्पन्न होनेवाले रोगके कुछ लक्षण पहले ही अप्रकट रूपसे दिखायी दें, यथा ज्वरमें थकावट और अशान्ति आदि ॥ तीसरा उपाय लक्षण अर्थात् रूप है, जिसमें सम्पूर्ण दोषोंके विशिष्ट लक्षण स्पष्ट रूपसे दीखते हों; जैसे-ज्वरमें पसीनेका न आना इत्यादि ॥ जिस प्रकार एक राजाके कुछ लोग (राजदूत आदि) सबसे आगे, कुछ बलवान् और वीर अंगरक्षक योद्धा साथमें और कुछ अनुचर सदा पीछे चलते है, ठीक उसी प्रकार एक रोगके भी ये पारिवारिक परिग्रह स्वरूप पूर्वरूप, रूप आदि आगे, साथमे और पीछे २ चलते है । उनमें जो पहले पहल कुछ दुर्बल और बिखरे हुए लक्षणोंद्वारा रोगराजके आनेकी सूचना करते है वे पूर्वरूप कहे जाते है, साथमें अर्थात् रोगके आक्रमणकी अवस्थामें जो खूब बढे चढे भयङ्कर लक्षण दिखायी देते है वे सब रोगके साक्षात् रूप है एवं क्रान्तिकालके पीछे एकरोगके ऊपर ही अन्यान्य अनेक रोगोंके प्रादुर्भावका नाम उपद्रव है, जैसे ज्वरमें खांसी आदि ॥ उपशयका सामान्य अर्थ यह है कि औषध, आहार, विहार, देश, काल और प्रकृति आदिसे रोगीको सुख मिले, अर्थात्-हेतु और व्याधि इन दोनोंके व्यस्त (पृथक् पृथक्) अथवा समस्त (समुदायात्मक) रूपसे विपरीत एवं वैसे ही भिन्न भिन्न अथवा समष्टिरूपसे इन दोनोंके निदान और रोगके विपरीत अर्थकारी अर्थात् निदानके समानधर्मी होते हुए भी प्रभावविशेषसे रोगको शान्त करनेवाले जो औषध, अन्न और विहार, आदिके सुखदायक उपयोगका नाम उपशय है, वह व्याधिसात्म्य भी कहा जाता है । अमुक प्रकारके औषध आदिसे इस रोगीके शरीरमें कुछ भी पीडा वा परिवर्तन नहीं हुआ और इस औषध वा अन्न, विहार आदिके सेवनसे यह फल हुआ, इस प्रकारका निश्चय उपशय और अनुपशयसे ही हो सकता है, जैसा चरकमें लिखा है कि-**गूढलिङ्गं व्याधिमुपशयानुपशयाभ्यां परीक्षेत** यथा. " **अभ्यङ्ग स्नेहस्वेदाद्यैर्वातदोषो न शाम्यति । विकारस्तत्र विज्ञेयो दुष्टमत्रास्ति शोणितम् ॥" इति ॥ अर्थः**-जिस रोगके लक्षण साफ दिखायी न पड़ें, उसकी उपशय और अनुपशयसे परीक्षा करनी चाहिये । जैसे, यदि शरीरके किसी भागमे उत्पन्न हुआ वात दोष (वेदना आदि) अभ्यङ्ग स्नेह (तैल आदिके मर्दन) और स्वेद (बाष्पसेक) आदिसे शान्त न हो तो विद्वान् वैद्य उसे रुधिरका विकार समझे और शीतोपचारसे शान्त करे ॥ अनुपशयका निदानमें अन्तर्भाव होनेसे वह पृथक् नहीं माना गया । आप्ति, निर्वृत्ति, सम्प्राप्ति, आगति और जाति ये सब सम्प्राप्तिके पर्याय नाम है । वैद्यकशास्त्रमे रोगकी इतिकर्तव्यताका नाम सम्प्राप्ति है, अर्थात् अमुक दोष इस तरह इस स्थानमें स्थित होकर इस दोष वा धातु आदिके आगे पीछे वा सम्मिलित होकर, इस मार्गसे चलता हुआ अमुक रोग उत्पन्न करता है ऐसी विशिष्टकल्पनाको सम्प्राप्ति कहते है ॥

इन पांचोंमे पृथक् पृथक् किसी एक वा दो, तीन, चार अथवा पांचों ही उपायोंके मेलसे रोगका विशिष्ट ज्ञान अर्थात् निश्चय होता है । इसमे यदि कोई कहे कि इनमेंसे किसी एक उपायके द्वारा रोगका निश्चय हो जाने पर अन्यान्य उपायोंसे उसी रोगके निश्चय करनेमें कृतकरणता (एक बार किये गये कार्यका फिर करना) दोष आता है, जो एक प्रकारसे पिष्टपेषणके समान व्यर्थ ही है, जैसा किसीने कहा है । **कृतस्य करणं नास्ति मृतस्य मरणं नहि । भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं न च॥**

इसपर कहते हैं कि यह बात ठीक नहीं, कारण एक वस्तुके निर्णय करनेमें अनेक अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द इन चारों प्रमाणोंका एकत्र समावेश बहुत बार देखा जाता है, एवम् अधिकाधिक प्रमाणोंके द्वारा उक्त (एक) अर्थकी अनेक बार पुष्टि हो जानेसे वह सर्वथा निर्दोष प्रमाणित हो जाता है, जिससे प्रमाताको कुछ भी हानि न पहुंच कर उलटा **"अधिकस्याधिकं फलम्"** के अनुसार विशेष लाभ होता है ॥ क्या अनुमान प्रमाणसे एक बार प्रतीत हुई (जानी गयी) अग्निका फिर प्रत्यक्ष और शब्द प्रमाणोंके द्वारा साक्षात्कार नहीं होता ? यह कभी नहीं, किन्तु अवश्य होता है। तथा क्या कोई प्रेक्षावान् पण्डित (समालोचक) "निदान आदि पांचों उपाय रोगज्ञानके कारण नहीं होते" ऐसी अनिष्ट आलोचना करेंगे ? कभी नहीं, किन्तु "ये पांचों ही रोग जाननेके असाधारण उपाय हैं" इस प्रकारकी ही शिष्ट समालोचना सदा करेंगे। इन (निदान आदि पांचों उपायोंमें से किसी एकके द्वारा ही रोगका सम्पूर्ण निश्चय हो चुका, इस बात पर हमें विश्वास नहीं, ऐसा मधुकोष-टीकाके करने वाले विद्वान् श्रीयुत विजयरक्षित कहते हैं ॥ अब यहां पर यह शंका उठती है कि इनमेंसे किसी एकके द्वारा ही रोगका निश्चय हो जानेपर उसी (रोगविज्ञान) के लिये पूर्वरूप आदि अन्यान्य उपायोंका उपादान वा अवलम्बन करना व्यर्थ है। इसका समाधान वा निवारण यों किया जाता है कि इन सबोंके भिन्न भिन्न प्रयोजन होनेसे कोई भी व्यर्थ नहीं, अर्थात् सब ही सार्थक हैं, वह इस प्रकार कि यदि निदान न कहा जाय तो इसका परित्याग कैसे हो सकता है ? जैसा कि **सुश्रुतमें** लिखा है **"सामान्यतः क्रियायोगो निदानपरिवर्ज्जनम्"** अर्थात् रोग उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंका परहेज (परिहेय = परित्याग) करना सबसे पहली सामान्य चिकित्सा है ॥ पूर्वरूपसे व्याधिका विशेष ज्ञान होता है, जैसा **चरकमें** लिखा है कि—**"हारिद्रवर्णं रुधिरं च मूत्रं विना प्रमेहस्य हि पूर्वरूपैः। यो मूत्रयेत् तं न वदेत् प्रमेहं रक्तस्य पित्तस्य हि स प्रकोपः ॥"** अर्थः—जो प्राणी प्रमेहके पूर्वरूपोंके विना ही यदि हलदीके समान पीला और लाल रंगका मूत्रोत्सर्ग करे तो उसे प्रमेह नहीं कहना चाहिये, कारण वह रक्तपित्तका प्रकोप है ॥ एव पूर्वरूपके द्वारा जानी गयी व्याधिके पूर्वरूपमें भी चिकित्साका क्रम देखा जाता है, जैसा **चरकमें** लिखा है— **"ज्वरस्य पूर्वरूपे लघ्वशनमपतर्पणं वा"** अर्थात् ज्वरके पूर्वरूपमें हलका भोजन वा लंघन करना हित है। और **सुश्रुतमें** भी वातिकज्वरके पूर्वरूपमें घृतपानका विधान है, तथा रोगके साध्य वा असाध्य होनेका परिज्ञान भी इसी (पूर्वरूप) से होना है जैसा **चरकमें** लिखा है—**"पूर्वरूपाणि रूपाणि ज्वरोक्तान्यतिमात्रया। यं विशन्ति विशत्येनं मृत्युर्ज्वरपुरस्सरः ॥ अन्यस्यापि च रोगस्य पूर्वरूपाणि यं नरम्। विशन्त्यनेन कल्पेन तस्यापि मरणं ध्रुवम्"** कि जिस प्राणीके शरीरमें ज्वरके सम्पूर्ण पूर्वरूप अत्यन्त अधिक मात्रासे प्रवेश करें मानो उस शरीरमें ज्वरको आगे करके कराल काल ही अपना प्रवेश कर रहा है। इसी प्रकार और भी किसी रोगके सम्पूर्ण पूर्वरूप यदि किसी प्राणीपर बलात्कारसे आक्रमण करें तो निश्चय जानो कि वह प्राणी अवश्य मर जायगा। रूपसे भी रोगका सुखसाध्य, कष्टसाध्य और असाध्य होना जाना जाता है, क्योंकि जिस रोगमे थोड़े लक्षण देख पड़ें वह सुखसाध्य, मध्यरूपोंवाला कष्टसाध्य एवं जिसमें सम्पूर्ण लक्षण बलवान् रूपसे दिखायी दें वह असाध्य होता है। तथा सुखसाध्य व्याधियोंका वर्णन करते हुए भगवान् **श्रीचरकमुनि** कहते हैं—**"हेतवः पूर्वरूपाणि रूपाण्यल्पानि यस्य च। न च तुल्यगुणो दूष्यो न दोषः प्रकृतिर्भवेत्"** अर्थात् जिस रोगके हेतु, पूर्वरूप और रूप थोड़े हों, तथा दूष्य (रस वा रक्त आदि) तुल्यगुण अर्थात् दोषके समान गुणवाला न हो वह सुखसाध्य, जैसे कफसे

दूषित हुआ रक्त यहां कफ, शीतगुण एवं रक्त उष्णगुण विशिष्ट है अतएव यह सुखसाध्य व्याधि है। इसी प्रकार जिसमें दोष (वात आदि) ही प्रकृति न हो वह भी सुखसाध्य, जैसे पित्त–प्रकृतिवाले प्राणीको वायु वा कफका विकार हो जाना सुखसाध्य लक्षण है। कष्टसाध्य–व्याधियोंके लक्षणोंमें श्रीचरकाचार्य कहते हैं "निमित्त-पूर्वरूपाणां रूपाणां मध्यमे बले" तथा च (दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ) "सर्वसम्पूर्णलक्षणः, । सन्निपातज्वरोऽसाध्यः"(कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा) कि हेतु, पूर्वरूप और रूप इनके मध्यम बलवान् होनेसे व्याधिको कष्ट–साध्य-स्वरूप समझना चाहिये एवं जिस रोगके समस्त और सम्पूर्ण अर्थात् बलवान् लक्षण दिखाई दें वह असाध्य होता है ॥ उपशयके बिना संकीर्ण अथवा अप्रकटित लक्षणोंवाली व्याधिमें दोषविशेषका बोध नहीं हो सकता है, जैसा चरकमें लिखा है "गूढलिङ्गं व्याधिमुपशयानुपशयाभ्यां परीक्षेत" अर्थात् जिस (व्याधि) के भीतरी लक्षण बाहरसे स्पष्ट दिखाई न दें ऐसे "गूढलिङ्ग" (छिपे लक्षणों वाले) रोगोंकी परीक्षा उपशय वा अनुपशयसे करनी चाहिये, जैसा सुश्रुतमें लिखा है कि–अभ्यङ्गस्नेहस्वेदाद्यैर्वातरोगो न शाम्यति। विकारस्तत्र विज्ञेयो दुष्टमत्रास्ति शोणितम्" इति ॥ अर्थात् जो वातरोग अभ्यङ्ग (उबटन), स्नेह (तेल मर्दन) और स्वेद (वाष्प सेक) आदिसे शान्त न हो उसे वैद्य वायुका विकार न जाने, किन्तु वहां रक्त विकृत अर्थात् किसी दोषविशेषसे बिगड़कर दूषित हो गया है ऐसा जाने ॥ यदि सम्प्राप्तिको न कहें तो पूर्वरूप आदिके द्वारा रोगकी प्रतीति हो जाने पर भी उसकी चिकित्सामें अत्यन्त उपयोगी जो अंशांशकल्पना, बल और काल आदि संप्राप्तिके भेद हैं उनको बिना जाने चिकित्सा विशेषका बोध नहीं हो सकता है, इस लिये निदान आदि पांचों ही उपायोंके भली भांति जाननेसे सम्पूर्ण रोगोंका यथार्थ ज्ञान वा निश्चय होता है ॥ ३३ ॥

भूमि और देहके भेदसे देशविशेषका वर्णन।

भूमिदेहप्रभेदेन देशमाहुरिह द्विधा।
जाङ्गलं वातभूयिष्ठमनूपं तु कफोल्बणम्।
साधारणं सममलं त्रिधा भूदेशमादिशेत्॥३४॥

अब औषधका वर्णन करते हैं–वह देश और कालके अनुसार गुण करता है इस लिये पहले देशको कहते हैं कि इस आयुर्वेदशास्त्रमें भूमि और देहके भेदसे देश दो प्रकारका होता है, उनमें भौम देश जांगल, अनूप और साधारण भेदसे तीन प्रकारका होता है। जिस देशमें पानी और पर्वत बहुत थोड़े हों वहां वायु अपने रौक्ष्य धर्मसे अत्यन्त बढ़कर वातप्रधान पक्षाघात आदि रोगोंको उत्पन्न करता है एवम् उस देशमें उत्पन्न हुए औषध, मृग पशु पक्षी और मनुष्य आदि प्राणीमात्र वातप्रकृतिक (वायवीय स्वभाववाले) होते हैं, वह जांगल कहा जाता है। जिस देशमें जल, वृक्ष और पर्वत आदि बहुत हों तथा वायु (हवा) और धाम थोड़े हों, वह अनूप कहा जाता है उसमें कफ अपने शैत्य धर्मसे अधिक बढ जाता है इस लिये वहांके औषधादिक स्निग्ध और कफप्रधान होते हैं। जिसमें दोनों देशोंके थोड़े लक्षण हों वह साधारण देश कहा जाता है। उसमें तीनों दोष प्रायः समान अवस्थामें रहते हैं अत एव यह स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त उत्तम स्थान है। देश–देशका वर्णन प्रकृति भेदसे पहले(श्लो. स. १३ में) हो चुका ॥ ३४ ॥

कालके भेद।

क्षणादिर्व्याध्यवस्था च कालो भेषजयोगकृत्॥३५

अब कालके भेदको कहते हैं, कि काल (समय) क्षणादि और व्याध्यवस्थाके भेदसे दो प्रकारका होता है जो औषधकी योग्यताको सम्पादन करता है। क्षणादिका काल [illegible] है। अ[illegible]शब्दसे लव,

त्रुटि, मुहूर्त, याम, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और युग आदिका ग्रहण है। इसका उदाहरण जैसे " **पूर्वाह्णे वमनं देयं मध्याह्ने तु विरेचनम्। मध्याह्ने किंचिदावृत्ते बस्तिं दद्याद्विचक्षणः॥**" अर्थ स्पष्ट है। व्याध्यवस्था नाम रोगके साम, निराम, मृदु, मध्य और तीक्ष्ण आदि अवस्था विशेषको देखकर उसके योग्य औषधका प्रबन्ध करना है, जैसे-"**लङ्घनं स्वेदनं कालो यवागूस्तिक्तको रसः। मलानां पाचनानि स्युर्यथावस्थं क्रमेण वा॥ ज्वरे पेयां कषायांश्च सर्पिः क्षीरं विरेचनम। षडहं षडहं युञ्ज्याद् वीक्ष्य दोषबलाबलम॥ तथा—मृदुर्ज्वरो लघुर्देहश्चलिताश्च मला यथा। अचिरं ज्वरितस्यापि भेषजं योजयेत्तदा॥**" अर्थात् लंघन, स्वेदन (बफारा), काल (आठ दिनके पीछे) यवागू और तिक्त रसवाले पदार्थ, ये अवस्थाके अनुसार क्रमसे दोषोंके पकानेवाले हैं। ज्वरमें पेया, कषाय, घृत, दूध और विरेचन ये दोषोंका बलाबल देखकर छः छः दिनसे देने चाहिये। उसी प्रकार ज्वरके मृदु (मन्दवेग) और शरीरके लघु (हलके) हो जानेपर और मल अर्थात् वातादि दोष वा मूत्रादि मलोंके यथाविधि प्रवृत्त हो जानेसे शीघ्र ही ज्वरवाले मनुष्यको दोषोंकी निरामता समझकर शमन औषध देनी चाहिये॥ ३५॥

औषधके दो भेद।

शोधनं शमनं चेति समासादौषधं द्विधा॥३६॥

साधारणतः समस्त औषधियां शोधन और शमनरूपसे दो प्रकारकी होती है। यद्यपि संसारमें बहुत प्रकारकी औषधियां हो सकती है तथापि इन दोनों शोधन और शमनरूप लक्षणोंमे उन सबका समावेश हो जाता है। शोधन उसे कहते है जो कुपित हुए दोषोंको बाहर निकालकर रोगका उपशमन करती है। एवं शमन वह होती है जो अपने २ स्थानमें स्थित हुए दोषोंको साम्यावस्थामें रक्खे॥ ३६॥

शारीर रोगोंकी परमौषधी।

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम्। बस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु॥३७॥

शरीरमें स्थित हुए वात आदि दोषोंके क्रमसे बस्ति, विरेक और वमन यह शोधन स्वरूप एवं तैल, घृत, और मधु यह शमन स्वरूप परम औषध है अर्थात् बस्तिक्रिया (पिचकारीके द्वारा गुदामें स्नेह वा काथ आदिको पहुँचाना) सब रोगोंकी सामान्य और वायुकी विशेष चिकित्सा है। तथा कोई विरेचन द्रव्य (जो मुखमें सेवन करनेपर शरीरमें स्थित हुए दोषोंको गुदाके मार्गसे बाहर निकाल दे) साधारणतः समस्त रोगोंमें उपयोगी होते हुए भी पित्तके विकारोंको हटानेके लिये परम अर्थात् प्रधान औषध है, इसी प्रकार वमन द्रव्य (जो मुहसे खाये जाने पर उसीके द्वारा आमाशय और उरोभाग (छाती) में जमे हुए कफ आदि मलोंको बाहर निकाल फेंके, जैसे मदनफल आदिका सेवन अन्यान्य रोगोंको नाश करता हुआ भी कफका[1] विशेषरूपसे संहारक है, इसी प्रकार तैल आदि शमन औषधोंको भी क्रमसे इन तीनों दोषोंकी प्रधान औषधी जाने॥ काल आदि देश विशेषका आश्रय लेकर प्रायः सभी औषधियां सब शारीरिक रोगोंका नाश करती हैं। अब मनोविकारकी औषध कहते है॥ ३७॥

मानसिक रोगोंकी परम औषध।

धीधैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधं परम्॥३८॥

धी अर्थात् बुद्धि (जिससे हित और अहितका विवेक हो) धैर्य अर्थात् धृति वा कर्मवश प्राप्त हुई विपत्तियोंके सह जानेकी शक्ति (जिससे हितका सेवन और अहितका परित्याग हो सके) और आत्म—विज्ञान अर्थात् योगाभ्याससे परमात्माके स्वरूपका विज्ञान वा आत्मा, देश और काल आदिका विशिष्ट विवेचन (जैसे मै कौन हूँ ? यहां कसे आ गया ? कहां जाऊगा ? मुझे किसीके साथ कब कैसा

व्यवहार करना चाहिये ? इत्यादि आध्यात्मिक विषयोंका विचार) मनोदोष अर्थात् रजोगुण और तमोगुणसे उत्पन्न हुए मनके विकारोंका परम (उत्कृष्ट) औषध है ॥ ३८ ॥

चिकित्साके चार पाद ।

भिषक् द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।
चिकित्सितस्य निर्दिष्टं प्रत्येकं तच्चतुर्गुणम् ३९

पूर्वके श्लोकमें कह आये है कि चारों पादोंसे युक्त हुआ ही चिकित्साक्रम यथार्थ कार्य कर सकता है अन्यथा नहीं, इसलिये अब हम पाद चतुष्टयको कहते है कि वैद्य औषधादि द्रव्य, उपस्थाता (परिचारक) और रोगी अर्थात् आतुर ये चारों चिकित्साके पाद अर्थात् आधारस्थान है और इन प्रत्येकमें चार चार गुण होते है इस प्रकार प्रत्येक रोगकी चिकित्सामें सोलह गुणोंका होना अत्यन्त आवश्यक है । इनमे सबसे पहले वैद्यराजका उल्लेख है जो चिकित्सामें प्रधान साधन है, जैसा शास्त्रमें लिखा है "**योक्ता प्रयोक्ता शास्ता च प्रधानो भिषगत्र तु**" और संग्रहमें भी लिखा है "**यद्वैद्ये विगुणे पादा गुणवन्तोऽप्यनर्थकाः । सपादहीनानप्यार्तान् गुणवान् यश्च यापयेत् । चिकित्सायास्तमेवातः प्रधानं कारणं विदुः ॥**" अर्थात् यदि वैद्य निर्गुणी हो तो अन्यान्य तीनों पादोंका गुणवान् होना भी व्यर्थ है, कारण विद्वान वैद्यके विना ये कुछ भी नहीं कर सकते है । और गुणी वैद्य इन (पादों) के न होनेपर भी रोगीके रोगको समूल न मिटाकर कुछ समयके लिये तो किसी प्रकार रोक ही सकता है । इसलिये शास्त्रोंमें चिकित्साका प्रधान कारण वैद्य माना गया है ॥ ३९ ॥

अधिकारी वैद्यके लक्षण ।

दक्षस्तीर्थात्तशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा शुचिर्भिषक् ४०

सबसे पहले वैद्यके चार गुणोंका वर्णन करते है कि वैद्य सब बातोंमें चतुर एवं जिसने गुरुसे आयु-

---

१ वैद्यस्य विशेषगुणाश्चैवं संग्रहे, हेमाद्रौ—
च अभेद्योऽनुद्धतोऽस्तब्धः सूरतः प्रियदर्शनः ।
बहुश्रुतः कालवेदी जितग्रन्थोऽर्थकर्मवित् ॥
अनाथान् रोगिणो यश्च पुत्रवत् समुपाचरेत् ।
गुरुणा समनुज्ञातः स भिषक्शब्दमश्नुते ॥
यस्तु केवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः ।
स मुह्यत्यातुरं प्राप्य यथा भीरुरिवाहवम् ॥
यः पुनः कुरुते कर्म धाष्टर्यात् शास्त्रार्थवर्जितः ।
स सत्सु गर्हामाप्नोति वधं-चार्हति राजतः ॥
हेतौ लिङ्गे प्रशमने रोगाणामपुनर्भवे ।
ज्ञानं चतुर्विधं यस्य स राजार्हो भिषग्वरः ॥
शास्त्रं शस्त्राणि सलिलं गुणदोषप्रवृत्तये ।
पात्रापेक्षीण्यतः प्रज्ञां बाहुश्रुत्येन बृंहयेत् ॥
प्रदीपभूतं शास्त्रं हि दर्शनं विपुला मतिः ।
ताभ्यां मनःसुयुक्ताभ्यां चिकित्सन् नापराध्यति ॥
आहूत एव यो याति सुवेषः सुनिमित्ततः ।
गत्वाऽऽतुरार्थादन्यत्र न निधत्ते मनः क्वचित् ॥
व्याधिं परीक्षते सम्यक् निदानादिविशेषतः ।
गोपनीयां च तद्वार्तां न प्रकाशयते बहिः ॥
सहसा न च तस्यापि क्रियाकालं न हापयन् ।
जानाति चोपचरितुं स वैद्यः सिद्धिमश्नुते ॥
नाददीतामिषं स्त्रीभ्यस्तदध्यक्षे पराङ्मुखे ।
ताभिश्च रहसि स्थानं परिहासं च वर्जयेत् ॥
जिजीविषुर्व्याधितोऽपि पूर्वोक्तगुणवर्जितान् ।
क्रियाविक्रयिणो वैद्यान्, मृत्योरग्रेसरा हि ते ।
यद् वैद्ये विगुणे पादा गुणवन्तोऽप्यनर्थकाः ।
सपादहीनानप्यार्तान् गुणवान् यश्च यापयेत् ।
चिकित्सायास्तमेवातः प्रधानं कारणं विदुः ॥
व्याधिं पुरा परीक्ष्यैवमारभेत ततः क्रियाम् ।
स्वार्थविद्यायशोहानिमन्यथा ध्रुवमाप्नुयात् ॥
साध्ययोरपि संयोगो बलिनोर्यात्यसाध्यताम् ।
विद्यादसाध्यमेवातः साध्यासाध्यसमागमम् ॥
असाध्यः साध्यतां याति साध्यो याति त्वसाध्यताम् ।
पादापचाराद् दैवाद् वा यात्यवस्थान्तरं गदः ॥
वरमाशीविषविषं दीप्तमग्निमयोऽपि वा ।
उपयुञ्जीत न त्वार्तादामिषं कृपणाज्जनात् ॥
परो भूतदयाधर्म इति मत्वा चिकित्सया ।
वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते ॥
इत्यादि । विशेषस्तु चरकचिकित्सिते चतुर्विंशतितमेऽध्याये द्रष्टव्यः ।

वैदशास्त्रका यथाविधि अध्ययन किया हो तथा जिसने बहुत बार चिकित्साओंको देखा हो एवं जो देह, वाणी और मनसे सदा शुद्ध हो ॥ ४० ॥

उत्तम औषधके लक्षण ।

बहुकल्पं बहुगुणं संपन्नं योग्यमौषधम् ॥ ४१॥

औषधी भी चार प्रकारकी होती है जैसे १ (प्रथम) बहुकल्प अर्थात् जिसमें स्वरस, क्वाथ, चूर्ण, और गुटिका आदि अनेक प्रकारके कल्प (विधान) हों। २ रा बहुगुण अर्थात् जिसमें गुरु, मन्द आदि अनेक गुण हों । ३ रा संपन्न जो रसादिकी सम्पत्तिसे युक्त हो । ४ था योग्य अर्थात् देश, काल और प्रकृतिके अनूकूल स्वभाववाला हो जो रोग, देश, काल, दोष, रूप, देह, अवस्था और बल आदिको देखकर यह औषध इस रोगमे अवश्य लाभ करेगा ऐसे विचारपूर्वक देना इत्यादि ॥ ४१ ॥

स्वामिभक्त सच्चे सेवकके चार गुण ।

अनुरक्तः शुचिर्दक्षो बुद्धिमान् परिचारकः ४२

उसी प्रकार परिचारकके चार गुणोंको कहते है कि जो रोगीका परमभक्त, शरीर, वाणी और मनके व्यापारोंसे शुद्ध, सम्पूर्ण चेष्टाओंमें चतुर और बुद्धिमान अर्थात् तात्कालिक प्रतिभावाला हो, वह श्रेष्ठ परिचारक (रोगीका सेवक) कहा जाता है ॥४२॥

योग्य रोगीके लक्षण ।

आढ्यो रोगी भिषग्वश्यो ज्ञापकः सत्त्ववानपि ।

रोगी भी इन चार गुणोंसे युक्त हो वह श्रेष्ठ है, जो उपयुक्त धनवाला हो, सदा वैद्यकी आज्ञानुसार काम करे, एवं अपने सुख, दुःख, आहार, विहार आदिको भली भांति वैद्यराजके प्रति निवेदन कर सके तथा जो सत्त्ववान् अर्थात् मनोबल वा धैर्यसे युक्त हो ॥ ४३ ॥

रोगके सुखसाध्यादि लक्षण ।

'साध्योऽसाध्य इति व्याधिर्द्विधा तौ तु पुनर्द्विधा।
सुसाध्यः कृच्छ्रसाध्यश्च याप्यो यश्चानुपक्रमः ।
सर्वौषधक्षमे देहे यूनः पुंसो जितात्मनः ॥
अमर्मगोऽल्पहेत्वग्ररूपरूपोऽनुपद्रवः ।
अतुल्यदूष्यदेशर्तुप्रकृतिः पादसंपदि ॥
ग्रहेष्वनुगुणेष्वेकदोषमार्गो नवः सुखः ॥४४॥

असाध्य व्याधिमें औषधका परिहार करनेके लिये रोगके साध्य, याप्य और असाध्य लक्षण कहे जाते है, उनमें, साध्य व्याधि सुखसाध्य और कृच्छ्रसाध्य भेदसे दो प्रकारकी होती है । सुखसाध्य व्याधीमें ये लक्षण होते हैं जो रोग तीक्ष्ण, मध्य और मृदु, रूपवाली, अनेक देशोंमें उत्पन्न हुई, शमन और शोधनरूप तथा विष एवं क्षार आदि सम्पूर्ण औषधियोंको सह जानेवाले शरीरमें उत्पन्न हुए हों । युवा अर्थात् तरुण अवस्थावाले एवं जितेन्द्रिय पुरुषके हों । जो सिर, हृदय और बस्ति आदि मर्मस्थानोंमें न पहुंचा हो । जिसमें हेतु (निदान) पूर्वरूप और रूपके थोडे लक्षण दीखते हों जिसमें किसी प्रकारका उपद्रव न हो जो दोष, दूष्य, देश, ऋतु और प्रकृतिके तुल्य न हो, जैसे असमान दूष्य मेद और मज्जा आदि धातुओं, अनूपदेश तथा शीत ऋतुमें वायुकी प्रकृतिवाले पुरुषके पित्तका रोग होना सुखसाध्य होता है ॥ अतुल्य दूष्य, यथा ठण्डे स्वभाववाले कफसे गर्म रक्तका दूषित होना ॥ अतुल्य देश व्याधि, यथा—अनूपदेशमें पित्तका कुपित होना ॥ अतुल्यऋतु, जैसे—शरदमें कफ वा वायुका विकार होना ॥ अतुल्य प्रकृति, जैसे—पित्तकी प्रकृतिवाले पुरुषको कफका रोग होना इत्यादि ॥ चारों पादोंके ठीक अनुकूल एवं सूर्यादि ग्रहोंके केन्द्र त्रिकोण आदि शुभस्थानोंमें स्थित होनेपर ॥ एक ही दोष तथा मार्गसे रोगके उत्पन्न होने और चलनेपर यथा एक दोषोल्वण व्याधि वातिक, पैतिक आदि । मार्ग शाखादि तथा बाह्य, आभ्यन्तर और मध्य भेदसे तीन प्रकारका होता है उनमें किसी एक पथपर चलता हुआ रोग सुखसाध्य होता है । और जो नवीन हो

अर्थात् न्यूनसे न्यून एक वर्षसे अधिक दिनोंकी उत्पन्न हुई न हो, कारण एक वर्ष व्यतीत हो जानेपर सब रोग असाध्य हो जाते है ॥ इन उल्लिखित लक्षणों वाला रोग सुखसाध्य होता है ॥ ४४ ॥

कृच्छ्रसाध्य व्याधिके लक्षण।

शस्त्रादिसाधनः कृच्छ्रः संकरे च ततो गदः ४५॥

जिस रोगकी शस्त्र आदि साधनोंके द्वारा चिकित्सा की जाय वह, एव जो पहले कहे हुए सुखसाध्य व्याधिके लक्षणोंके सांकर्य अर्थात् दो तीन लक्षणोंके मेलमें स्थित हो वह व्याधि कृच्छ्रसाध्य कही जाती है, जैसे यद्यपि कोई रोगी युवा (सुखसाध्य-लक्षण) हो, किन्तु जितेन्द्रिय न हो अथवा उसका वह किसी मर्म स्थानमे स्थित हो । इसी प्रकार किसी (रोगी) का शरीर सर्वौषधक्षम अर्थात् सब औषधियोंको सह सकने वाला हो, किन्तु उसकी अवस्था वृद्ध हो अथवा इसके विपरीत अर्थात् रोगी युवा हो, परन्तु उसका शरीर इतना दुर्बल होगया हो कि वह औषधकी सामर्थ्यको नहीं सह सके इत्यादि और भी सब। और इनमें भी अल्प, तुल्य और बहु विपर्ययके भेदसे न्यूनाधिक तारतम्य अपनी बुद्धिसे स्वयं कल्पना करनी चाहिये जैसे अल्प विपर्यय सांकर्यमें कृच्छ्र, तुल्य सर्कीर्णतामें कृच्छ्रतर एव बहु विपर्यय संकरमें रोग कृच्छ्रतम हो जाता है ॥ आदि पदसे क्षार, अग्निकर्म और विष लेप आदि बाह्य उपचारोंका ग्रहण है ॥ ४५ ॥

याप्य व्याधिके लक्षण ।

शेषत्वादायुषो याप्यः पथ्याभ्यासाद्विपर्यये ४६

पूर्वोक्त सुख साध्य लक्षणोंसे विपरीत लक्षणोंके दिखायी देने पर पथ्य (हित) आहार और विहारोंके सेवनसे जो रोग बराबर न मिटकर कुछ समय तक टिका रहे वह याप्य होता है, यदि आयु (रोगीका जीवन) शेष हो तो ।

टीकाकार इसका अर्थ यों करते है–कि पथ्य (औषधादि) के अभ्यास (नित्य सेवन) करते रहनेपर भी जो रोग समूल नष्ट न होकर कुछ अवशिष्ट रह जाते हे वे याप्य कहे जाते है क्योंकि औषधादिके द्वारा जो रोग बिलकुल मिट जाते हैं, वे साध्य एवं जिनमे औषधादिसे कुछ भी लाभ न प्रतीत हो वे असाध्य होते है, किन्तु जो साध्य और असाध्य इन दोनों अवस्था वाला हो वह याप्य होता है, वह कब तक याप्य रहता है ? इस पर कहते हैं "आ आयुषः" अर्थात् जब तक आयु बनी रहती है तब तक वह रोग याप्य कहा जाता है। पदार्थ-चन्द्रिकाकार, चन्द्रनन्दन इसकी यों व्याख्या करते हैं कि आयु शेष अर्थात् क्षीण न होनेसे जो व्याधि रोगीको मार न सके और पथ्य आहार–विहारोंके द्वारा कुछ काल तक बचाये रक्खे वह याप्य वा यापनीय कहाती है। इसमे असाध्य व्याधिसे इतनी ही विशेषता है कि याप्य व्याधिमें आयुःशेषता रहती है अर्थात् " रोगीका जीवन अभी बाकी है " इस आयुशेष मात्रताको छोड़कर और सब लक्षणोंमें असाध्य व्याधिके समान ही यह व्याधि होती है। जो एकवार चिकित्सासे कुछ शान्त हो जाती है। किन्तु थोडासा भी कोई प्रतिकूल कारण मिला कि रोग फिर उभड आया ॥ ४६ ॥

असाध्य व्याधिके लक्षण ।

अनुपक्रम एव स्यात्स्थितोऽत्यन्तविपर्यये ॥
औत्सुक्यमोहारतिकृद्दृष्टरिष्टोऽक्षनाशनः ॥४७॥

अब असाध्य व्याधिका लक्षण कहते है कि जो रोग अत्यन्त विपर्ययमे स्थित हो अर्थात् मज्जा, शुक्र आदि गम्भीर धातुओंमे पहुचा हो वा मर्म और सन्धियोंमे गया हो एव जिसमे सपूर्ण चिकित्सायें व्यर्थ हो गयी हों वह अनुपक्रम अर्थात् चिकित्सा करने योग्य नहीं होता है । तथा जो औत्सुक्य (विषयोंमें अत्यन्त उत्कट इच्छाका होना) मोह (मूर्च्छा वा सज्ञानाश) और अरति अशान्ति अर्थात् कहीं भी मनका न लगना इन तीनों बातोंका करने-वाला, एव जो इन्द्रियोंका नाश करनेवाला और

जिसमें मरनेके लक्षण देखे गये हों वह रोग असाध्य होता है उसकी चिकित्सा न करे अथवा कहीं करनी ही पड़े तो उसका पहलेसे प्रत्याख्यान (निषेध) करके विचारपूर्वक करे जिससे स्वार्थ, विद्या और यश आदिको कुछ हानि न पहुंचे॥ ४७॥

साध्य लक्षणोंसे युक्त होते हुए भी चिकित्सा न करने योग्य रोगी ।

त्यजेदार्तं भिषग्भूपैर्द्विष्टं तेषां द्विषं द्विषम् ।
हीनोपकरणं व्यग्रमविधेयं गतायुषम् ।
चंडं शोकातुरं भीरुं कृतघ्नं वैद्यमानिनम्॥४८॥

वैद्य ऐसे रोगीको, चाहे वह उपक्रम्य अर्थात् चिकित्सा करने योग्य एवं सुखसाध्य लक्षणोंसे युक्त भी हो छोड दे, जिसे वैद्य और राजा लोग बुरा समझते हों तथा जो इन (वैद्य और राजाओं)को बुरा कहे सुने, जो अपना शत्रु हो, जिसके पास चिकित्साके लिये धन, जन वा औषधादि सामग्री ही न हो । जो व्यग्र हो अर्थात् जिसके कार्य बहुत हों उन्हें वह अकेला न कर सकनेके कारण दूसरोंसे करवावे, जिसका मन सब कार्योंके देख भालमें इधर उधर भटकता रहे कभी शान्त और स्थिर न हो । जो वैद्यकी आज्ञाका पालन नहीं करे जो गतायु अर्थात् परिक्षीण जीवनवाला हो । जो चण्ड अर्थात् तत्काल दूसरेका अपमान करनेवाला और क्रूरकर्मा हो । जो शोक (स्त्रीपुत्र आदि अपने इष्ट जन और धन आदिके वियोगसे उत्पन्न हुई चिन्ता) से पीडित हो जो भीरु अर्थात् डरपोक हो (व्यापत्तिके भयसे जो औषध ही न लेवे), जो कृतघ्न अर्थात् उपकार करनेवालेका भी अपकार करता हो । जो स्वयं वैद्य न होकर भी अपनेको वैद्यसा मानता हो अर्थात् जो मूर्ख अपने आप ही औषधादि करता हो ऐसे मूर्खोंकी साध्यावस्थामें भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये कारण इनसे कुछ भी लाभ न होकर सर्वप्रकारसे हानि ही होती है ॥ ४८ ॥

इस ग्रन्थके स्थान और अध्यायोंकी संक्षिप्त अनुक्रमणिका ।

तन्त्रस्यास्य परं चातो वक्ष्यतेऽध्यायसंग्रहः ।
आयुष्कामदिनर्त्वीहारोगानुत्पादनद्रवाः ॥
अन्नज्ञानान्नसंरक्षामात्राद्रव्यरसाश्रयाः ।
दोषादिज्ञानतद्भेदतच्चिकित्साद्व्युपक्रमः ॥
शुद्ध्यादिस्नेहनस्वेदरेकास्थापननावनम् ।
धूमगण्डूषदृक्सेकतृप्तियन्त्रकशस्त्रकम् ॥
सिराविधिः शल्यविधिः शस्त्रक्षाराग्निकर्मकाः ।
सूत्रस्थानमिमेऽध्यायास्त्रिंशत् ॥ ४९ ॥

अब इसके आगे हम इस ग्रन्थकी अध्यायोंके संग्रहको कहते है कि इस ग्रन्थमें सब छः स्थान और उनमें एक सौ वीस अध्याय हैं, यथा सूत्रस्थानमें आयुष्कामीयादि तीस,शारीरमें गर्भ विक्रान्ति आदि छः, निदान स्थानमें सर्वरोगनिदानादि सोलह, चिकित्सास्थानमें ज्वर चिकित्सादि बाईस, कल्पमें वमनकल्पादि छः, और उत्तरस्थानमें बालोपचरणीय आदि चालीस अध्याय है । जिनमें पहले सूत्रस्थानके तीस अध्यायोंका निर्देश करते है कि–

सूत्रस्थानीय अध्यायोंका विवरण ।

आयुष्कामीय, दिनचर्या, ऋतुचर्या, रोगानुत्पादनीय, द्रवद्रव्यविज्ञानीय, अन्नस्वरूपविज्ञानीय, अन्नरक्षा, मात्राशितीय, द्रव्यादिविज्ञानीय, रसभेदीय, दोषादिविज्ञानीय, दोषभेदीय, दोषोपक्रमणीय, द्विविधोपक्रमणीय, शोधनादिगणसंग्रहीय, स्नेहविधीय, स्वेदविधीय, वमनविरेचनविधीय, बस्तिविधि, नस्यविधानीय, धूमपानविधीय, गण्डूषविधि, आश्च्योतनाञ्जनविधि, तर्पणपुटपाकविधि, यन्त्रविधि, शस्त्रविधि, सिराव्यधविधि, शल्याहरणविधि, शस्त्रकर्मविधि और क्षाराग्निकर्मविधानीय इन तीस अध्यायोंका संग्रह सूत्रस्थानमें किया गया है ॥ ४९ ॥

शारीरस्थानीय अध्यायोंके नाम ।

शारीरमुच्यते ।
गर्भावक्रान्तितद्व्यापदङ्गमर्मविभागिकम् ।
विकृतिर्दूतजं षष्ठम् ॥ ५० ॥

अब शारीरस्थानकी छः अध्यायोंका नाम निर्देश करते है, कि गर्भावक्रान्ति, गर्भव्यापविधि, अङ्गविभागशारीरीय, मर्मविभागशारीरीय, विकृतिविज्ञानीय, और दूतादिविज्ञानीय ये छः अध्याय शारीरस्थानकी है ॥ ९० ॥

निदानस्थानमें आनेवाले अध्यायोंका वर्णन ।

निदानं सार्वरौगिकम् ।
ज्वरासृक्श्वासयक्ष्मादिमदाद्यर्शोऽतिसारिणाम् ।
मूत्राघातप्रमेहाणां विद्रध्याद्युदरस्य च ॥
पाण्डुकुष्ठानिलार्तानां वातास्रस्य च षोडश९१

अब निदानस्थानीय अध्यायोंका वर्णन करते है कि सर्वरोगनिदान, ज्वरनिदान, रक्तपित्तकासनिदान, श्वासहिक्कानिदान, राजयक्ष्मादिनिदान, मदात्ययादिनिदान, अर्शोनिदान, अतिसारग्रहणीदोषनिदान मूत्राघातनिदान, प्रमेहनिदान, विद्रधिगुल्मनिदान, उदरनिदान, पाण्डुशोथविसर्पनिदान, कुष्ट–श्वित्र–कृमिनिदान, वातव्याधिनिदान, और १६ वां वातरक्तीयनिदान, ये सोलह अध्याय निदानस्थानकी कही जाती है ॥ ९१ ॥

चिकित्सास्थानीय अध्यायोंका संकलन ।

चिकित्सितं ज्वरे रक्ते कासे श्वासे च यक्ष्मणि ।
वमौ मदात्ययेऽर्शःसु विशि द्वौ द्वौ च मूत्रिते ।
विद्रधौ गुल्मजठरपाण्डुशोफविसर्पिषु ॥
कुष्ठश्वित्रानिलव्याधिवातास्रेषु चिकित्सितम् ।
द्वाविंशतिरिमेऽध्यायाः ॥ ९२ ॥

ज्वरचिकित्सा, रक्तपित्तचिकित्सा, कासचिकित्सा, श्वासचिकित्सा, हिक्काचिकित्सा, राजयक्ष्मचिकित्सा, छर्दिहृद्रोगतृष्णाचिकित्सा, मदात्ययचिकित्सा, अर्शश्चिकित्सा, अतीसारचिकित्सा, ग्रहणीरोगचिकित्सा, मूत्राघातचिकित्सा, प्रमेहचिकित्सा, विद्रधिवृद्धिचिकित्सा, उदरचिकित्सा, पाण्डुरोगचिकित्सा, श्वयथुचिकित्सा, विसर्पचिकित्सा, कुष्टचिकित्सा, क्रिमिचिकित्सा, वातव्याधिचिकित्सा और वातरक्तचिकित्सा ये बाईस अध्याय चिकित्सा स्थानमें है ॥ ९२ ॥

कल्प और सिद्धिस्थानकी अध्यायोंका संक्षेप ।

कल्पसिद्धिरतः परम् ।
कल्पो वमेर्विरेकस्य तत्सिद्धिर्बस्तिकल्पना ।
सिद्धिर्बस्त्यापदां षष्ठो द्रव्याकल्पोऽत उत्तरम्९३

इससे आगे कल्प और सिद्धिस्थानका वर्णन करते है कि वमनकल्प, विरेचनकल्प, वमनविरेचनव्यापत्सिद्धि, बस्तिकल्प, बस्तिव्यापत्सिद्धि और छठा द्रव्यकल्प इसप्रकार कल्पसिद्धिस्थानमें छः अध्याय है९३

उत्तरतन्त्रकी अध्यायोंका विवरण ।

बालोपचारे तद्व्याधौ तद्ग्रहे द्वौ च भूतगौ ।
उन्मादेऽथ स्मृतिभ्रंशे द्वौ द्वौ वर्त्मसु संधिषु९४
दृक्तमोलिङ्गनाशेषु त्रयो द्वौ द्वौ च सर्वगौ ।
कर्णनासामुखशिरोव्रणे भग्ने भगन्दरे ॥ ९५ ॥
ग्रन्थ्यादौ क्षुद्ररोगेषु गुह्यरोगे पृथग्द्वयम् ।
विषे भुजङ्गे कीटेषु मूषकेषु रसायने ॥ ९६ ॥

इससे आगे उत्तरतन्त्रके अध्यायोंका वर्णन करते है कि बालोपचरणीय, बालरोगप्रतिषेधनीय, बालग्रहप्रतिषेधनीय, भूतविज्ञानीय, भूतप्रतिषेधनीय, उन्मादप्रतिषेधनीय, अपस्मारप्रतिषेधनीय, वर्त्मरोगविज्ञानीय, वर्त्मरोगप्रतिषेधनीय, सन्धिसितासितरोगविज्ञानीय, सन्धिसितासितरोगप्रतिषेधनीय, दृष्टिरोगविज्ञानीय, तिमिरप्रतिषेधनीय, लिङ्गनाशप्रतिषेधनीय, सर्वाक्षिरोगविज्ञानीय, सर्वाक्षिरोगप्रतिषेधनीय, कर्णरोगविज्ञानीय, कर्णरोगप्रतिषेधनीय, नासारोगविज्ञानीय, नासारोगप्रतिषेधनीय, मुखरोगविज्ञानीय, मुखरोगप्रतिषेधनीय, शिरोरोगविज्ञानीय, शिरोरोगप्रतिषेधनीय, व्रणप्रतिषेधनीय, सद्योव्रणप्रतिषेधनीय, भङ्गप्रतिषेधनीय, भगन्दरप्रतिषेधनीय. ग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदाऽपचीनाडीप्रतिषेधनीय, ग्रन्थ्यर्बुदापचीनाडीविज्ञानीय, क्षुद्ररोगविज्ञानीय, क्षुद्ररोगप्रतिषेधनीय, गुह्यरोगविज्ञानीय, गुह्यरोगप्रतिषेधनीय, विषप्रतिषेधनीय, सर्पप्रतिषेधनीय, कीटलूता-

दिविषप्रतिषेधनीय, मूषिकालर्कप्रतिषेधनीय, रसानीय, और वाजीकरणीय ये चालीस अध्याय उत्तरस्थानमें हैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

चत्वारिंशोऽनपत्यानामध्यायो बीजपोषणः ।
इत्यध्यायशतं विंशं षड्भिः स्थानैरुदीरितम्॥५७

इस प्रकार सूत्र, शारीर, निदान, चिकित्सा, कल्प, सिद्धि और उत्तर तन्त्ररूप छः स्थानोंमे एक सौ बीस अध्याय कहे है ॥ ५७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायाम्, वैद्यरत्नपण्डितश्रीरामप्रसादात्मजविद्यालङ्कारवैद्य-शिवशर्मविरचित–शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो दिनचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम दिनचर्या विषयक अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

ब्राह्म मुहूर्तमें उठनेके गुण ।

" ब्राह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः॥१॥

स्वस्थ (नीरोग) मनुष्यको अपनी आयुकी रक्षाके लिये ब्राह्म मुहूर्तमे शयनका त्याग कर जाग जाना चाहिये । दो घड़ीका एक मुहूर्त होता है । सूर्य उदय होने से चार घड़ी पहले ब्राह्म मुहूर्त लगता है । और दो घड़ी रह कर समाप्त हो जाता है । इस लिये सूर्योदयसे तीन घड़ी पहले प्रत्येक मनुष्यको अपनी आयुकी रक्षाके लिये जाग जाना चाहिये । ब्राह्म मुहूर्तमे जागनेसे शरीरके सब कार्य ठीक होते है, वात, पित्त और कफकी साम्याऽवस्था बनी रहती है इस लिये शरीरमें सचालन स्वेदन, और स्नेहन क्रियाएं ठीक रहनेसे मनुष्य निरोग रह कर दीर्घायुवाला होता है ॥

ब्राह्म मुहूर्तमें शय्या त्याग कर मल मूत्रादि त्याग करे, अर्थात् मलादि विसर्जन करे । मृत्तिका आदिसे मलद्वार और हाथ पांव आदि धोकर शरीरको पवित्र करे, जिससे शरीर निर्मल होकर दुर्गन्धादिकसे रहित हो शरीरमें कान्ति और बलकी प्राप्ति हो सके ॥ १ ॥

दन्तधावनमें ग्राह्य काष्ठ ।

अर्कन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिकम् ।
कनीन्यग्रसमस्थूलं प्रगुणं द्वादशांगुलम् ॥ २ ॥
प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं कषायकटुतिक्तकम् ।
भक्षयेद्दन्तधवनं दंतमांसान्यबाधयन् ॥ ३ ॥

इस प्रकार शुद्ध होनेके अनन्तर मुख शोधनके लिये दांतन करनी चाहिये । वह दांतन आक, वटवृक्ष, खदिर, करञ्ज या ककुभ आदि वृक्षकी सरल-सुन्दर शाखाका लेनी चाहिये और वह कनिष्ठिका अङ्गुलीके अग्रभागके समान मोटी तथा बारह(१२) अङ्गुल लम्बी लेनी चाहिये दांतनका अग्रभाग कूर्च समान नरम बना लेना चाहिये । तथा कटु, तिक्त और कषाय रस वाले वृक्षोंकी शाखा लेकर दोषानुसार जो जिस प्राणी के लिये हितकर हो सो लेकर दन्त शुद्धिके लिये प्रातःकाल और भोजनके अनन्तर दांतन कर दांतोंको मल रहित शुद्ध कर देना चाहिये, जब दांतन करे तो उसकी नरम कूचीसे एक २ दांतको इस प्रकार शुद्ध करे जिसमें दांत स्वच्छ हो जावे और दांतोंकी जड़ोंका मांस उखड़ न जावे । इस प्रकार दांतन करनेसे दांत दृढ रहते है तथा दांतोंके और मुखके रोग नहीं होते। प्रातःकालकी दांतन करनेके अनन्तर तो जिह्वाका मल किसी स्वर्ण, चांदी अथवा दांतनको फाड़ कर बनाई हुई जिह्वा मल हरण खपचीसे जीभकी मैलको उतार देना चाहिये । परन्तु भोजनके अनन्तर जब

१ 'पवनम्' इति पाठभेदः । दंताः पूयन्ते शोध्यन्ते अनेनेति 'दंतपवनम्' ।

दांत साफ करे तो जिह्वा मल हरण नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

दन्तधावनके अयोग्य रोगी ।

**नाद्यादजीर्णवमथुश्वासकासज्वरार्दिती ।
तृष्णास्यपाकहृन्नेत्रशिरःकर्णामयी च तत् ॥४॥**

अजीर्ण रोगी, वमनवाले रोगी, श्वास रोगी, खांसी, ज्वर, अर्दितवात, प्यास, मुखपाक, हृद्रोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, और कानके रोगवाले मनुष्योंको दांतन नहीं करनी चाहिये ऐसे प्राणियोंको दांतन करनेसे हानि हो सकती है ॥ ४ ॥

आंखोंमें नित्य अञ्जन (सुर्मा) डालनेके गुण ।

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत् ॥

सौवीर अञ्जन (सुर्मा) नित्य ही नेत्रोंमें डालना (आंजना) नेत्रोंके लिये परम हितकारी है इस लिये सुर्मा नित्य नेत्रों में लगाना चाहिये ।

आंखोंके स्रावणार्थ रसाञ्जनका विधान ।

**चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषात् श्लेष्मणो भयम् ।
योजयेत्सप्तरात्रेऽस्मात्स्रावणार्थं रसाञ्जनम् ॥५॥**

नेत्र तेजोमय है तथा आलोचक पित्तका स्थान हैं । इनको कफका सदैव भय है, इस लिये सात ७ रात्रिके अनन्तर रातको शयन करनेके समय नेत्रोंमें रसाञ्जन (रसौत) डालना चाहिये जिससे कफका स्राव होकर नेत्र स्वच्छ और हलके रहें तथा दृष्टि प्रसन्न रहे ॥ ५ ॥

नस्य आदिका सेवन ।

ततो नावनगण्डूषधूमताम्बूलभाग्भवेत् ॥ ६ ॥

प्रातःकाल दांतन आदिके अनन्तर तैलकी नस्य लेना (आगे नस्य विधान कहेंगे वह नस्य विधान पाँच कर्मादिकोंमें प्रयोग किया है, परन्तु नित्य प्रति किसी तैलकी साधारण रूपसे नस्य लेना हितकारी है) मुखमें जल धारण कर कुल्ले करना, सुगन्धित धूम पान करना और पानका बीड़ा चबाना हितकर है । इनसे मुख और मस्तक अच्छे होते हैं, आलस्य, मल, दुर्गन्धादि दूर हो कर स्वच्छता बढ़ती है ॥ ६ ॥

व्यक्तिविशेषको ताम्बूलका निषेध ।

**ताम्बूलं क्षतपित्तास्त्ररूक्षोत्कुपितचक्षुषाम् ।
विषमूर्छामदार्तानामपथ्यं शोषिणामपि ॥ ७ ॥**

परन्तु क्षतरोगी, रक्तपित्तवाला रोगी, रूक्षशरीरवाला, नेत्ररोगवाला, विष, मूर्छा, और मदसे पीड़ित तथा शोषरोगवालेको पान (ताम्बूल) खाना हानि कारक है इस लिये ऐसे प्राणी ताम्बूलचर्वण न करे ॥ ७ ॥

तैलमर्दनके गुण ।

**अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा ।
दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुःस्वप्नसुत्वक्त्वदार्ढ्यकृत् ॥८॥**

नित्य प्रति शरीरपर तैलकी मालिश करनी चाहिये क्योंकि तैलकी मालिशसे जरा (बुढ़ापा) श्रम (थकावट) और वातकी शान्ति होती है । तथा दृष्टिकी प्रसन्नता, शरीरकी पुष्टि, आयुकी वृद्धि, सुखपूर्वक निद्रा, त्वचाकी सुन्दरता और शरीरकी दृढ़ता यह सब होते है इस लिये नित्य तैल मर्दन करना चाहिये ॥ ८ ॥

अवयव विशेषपर मालिशका विशेष विधान ।

शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ।

शिरपर कानोंमें और पावोंके तलवोंमें तैलका विशेष प्रयोग करना चाहिये ॥

कुछ व्यक्तियोंमें तैलमर्दनका निषेध ।

वर्ज्योऽभ्यङ्गः कफग्रस्तकृतसंशुद्ध्यजीर्णिभिः ९

परन्तु कफसे ग्रस्त रोगीको तथा वमन विरेचनादिसे शुद्ध हुए मनुष्यको और अजीर्णवाले रोगीको तैलकी मालिश नहीं करनी चाहिये ॥ ९ ॥

व्यायामके गुण ।

लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः ।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥१०॥

व्यायाम (दण्ड बैठक आदि कसरत) करनेसे शरीरमे हलकापन सब काम करनेकी सामर्थ्य जठराग्निकी दीप्तता मेदका क्षय और शरीरके सब अङ्गोंका सुन्दर सगठन तथा घनता उत्पन्न होते है इस कारण स्वस्थ मनुष्योंको नित्य प्रातः काल व्यायाम करना चाहिये ॥ १० ॥

व्यायाम न करने योग्य व्यक्ति ।

वातपित्तामयी बालो वृद्धोऽजीर्णी च तं त्यजेत् ।
अर्धशक्त्या निषेव्यस्तु बलिभिः स्निग्धभोजिभिः

परन्तु वातपित्तके रोगीको, छोटे बालकको, बहुत वृद्धको और अजीर्ण रोगवालेको (अथवा जब तक भोजन यथाथ रूपसे परिपाक होकर जीर्ण न हो लेवे तब तक) व्यायाम (कसरत) नहीं करना चाहिये ।

व्यायाम करनेका प्रमाण वा परिमाण ।

व्यायाम अपने बलसे आधी शक्ति तक करना चाहिये और जो नित्य स्निग्ध (चिकना) भोजन करने वाले है व्यायाम उनको ही हितकर होता है क्योंकि व्यायाम से मेद और कफका गुरुत्व क्षय होकर शरीरमे लघुत्व और कर्मसामर्थ्यादि गुण उत्पन्न होते है । यदि विना घृतादि स्निग्ध पदार्थ सेवन किये व्यायाम किया जाय तो रूक्षता बढकर वात विकार हो सकते है इस लिये व्यायाम स्निग्ध भोजन करनेवालेको करना चाहिये । अधिक व्यायामसे क्षयादि रोग हो सकते है इस लिये आधीशक्तिसे व्यायाम करना चाहिये । व्यायाम न करनेसे शरीरमें आलस्य और कफ मेदादि बढकर शरीरको शिथिल बना देते है, इसलिये व्यायाम अवश्य करना चाहिये ॥ ११ ॥

व्यायामके लिये हितकाल ।

शीतकाले वसन्ते च मन्दमेव ततोऽन्यदा ।
तं कृत्वाऽनु सुखं देहं मर्दयेच्च समन्ततः ॥१२॥

शीतकाल और वसन्त ऋतुमें व्यायाम विशेष (यथार्थ) करना चाहिये अन्य ग्रीष्मादि ऋतुओंमें बहुत कम व्यायाम करना चाहिये क्योंकि ग्रीष्मादि गर्म समयमें पसीना आकर रोममार्ग खुले हुए होते है और पवनका बल होता है तथा वातपित्तकी अधिकतामे व्यायामका निषेध भी है इसलिये शीतकाल और वसन्तके अतिरिक्त थोडा २ व्यायाम करना उचित है ॥

व्यायाम करनेके अनन्तर सुखपूर्वक सम्पूर्ण देहको धीरे धीरे मलना (मसलना) चाहिये जिससे पसीना सूखने तक शरीरकी गर्मी साम्यावस्थामें पहुँच जावे और हवासे होनेवाले कोई विकार न होकर शरीर दृढ रहे ॥ १२ ॥

अतिव्यायामसे उत्पन्न होनेवाले रोग ।

तृष्णा क्षयः प्रतमको रक्तपित्तं श्रमः क्लमः ।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते१३

अत्यन्त व्यायाम करनेसे प्यास (तृष्णा) क्षयरोग, प्रतमक श्वास, रक्तपित्त श्रम (थकावट) क्लमं[१] (परिश्रम किये विना ही शरीरमे श्वासरहित श्रमका होना) खांसी, ज्वर और छर्दिरोग हो जाते हे इस लिये अति व्यायाम नहीं करना चाहिये । अपने शरीरकी शक्तिसे आधीशक्ति तक ही व्यायाम करना चाहिये ॥ १३ ॥

व्यायाम आदिके अत्यन्त सेवनसे हानि ।

व्यायामजागराध्वस्त्रीहास्यभाष्यादिसाहसम् ।
गजं सिंह इवाकर्षन् भजन्नति विनश्यति॥१४॥

अति व्यायाम करना, अत्यन्त जागना, बहुत अधिक मार्ग चलना, बहुत स्त्रीसङ्ग करना, बहुत हँसना, बहुत जोरसे बहुत बोलना और अत्यन्त भार उठाना तथा धनुष खैंचना आदि अति साहस करना मनुष्यको उस प्रकार मार डालता है

---

१ "योऽनायासश्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः । क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥" (सुश्रु० शारी० अध्या० ४)

जैसे सिंह (शेर) हाथीको खैंचकर मार डालता है इस लिये व्यायामादि अतिमात्रासे सेवन करने उचित नहीं है ॥ १४ ॥

उबटन करनेके गुण ।

उद्वर्तनं कफहरं मेदसः प्रविलापनम् ।
स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं परम् ॥१५॥

शरीरपर उद्वर्तन (उबटन) मलना कफको हरता है, मेदको विम्लापन करता है, अगोंको स्थिर करता है और त्वचाको प्रसादन करनेमें परम श्रेष्ठ है॥ १५॥

स्नानके गुण ।

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमूर्जाबलप्रदम् ।
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मजित्॥१६॥

स्नान करना—कण्डु (खाज), मल, श्रम, पसीना, तन्द्रा, प्यास, दाह और पापको दूर करता है तथा जठराग्निको दीपन करता है, वृष्य है, आयुको बढ़ाता है एवं ओज और बलको बढाता है ॥ १६॥

गर्म जलको सिरमें डालनेका निषेध ।

उष्णाम्बुनाधःकायस्य परिषेको बलावहः ।
तेनैव चोत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम् ॥१७॥

उष्णोदक (गर्मजल) से गर्दनसे नीचेके अङ्गोंका सेचन करना अङ्गोंको बल देता है । परन्तु मस्तकादि उत्तमाङ्ग (शिर) पर गरम जल डालनेसे केश और नेत्रोंके बलकी हानि होती है इस कारण गरम जल मस्तकपर नहीं डालना चाहिये ॥ १७ ॥

स्नानके अयोग्य रोगी ।

स्नानमर्दितनेत्रास्यकर्णरोगातिसारिषु ।
आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम्॥१८॥

अर्दितरोग (लकवा) नेत्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, अतिसार, आध्मान, पीनसरोग और अजीर्ण रोगवाले मनुष्योंको स्नान नहीं करना चाहिये, तथा भोजन करनेके अनन्तर भी स्नान करना अच्छा नहीं है ॥ १८ ॥

भोजनका काल और परिमाण ।

जीर्णे हितं मितं चाद्यान्न वेगानीरयेद्बलात् ।
न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्नाजित्वा साध्यमामयम्

प्रथम किया हुआ भोजन यथार्थ रूपसे जब जीर्ण (पाचन) हो जाय, तो हित और मित भोजन करना चाहिये, भोजन करनेमें चार प्रकारके दोषोंका बचाव अवश्य करना चाहिये जैसे (१) अध्यशन—क्षुधा लगने पर किञ्चित् कलेवादि भोजन कर उससे थोडी सी देरके बाद फिर भोजन करना अध्यशन कहा जाता है । (२) विरुद्धाशन अनेक प्रकारका होता है, मधुघृत समभाग मिलाकर खानेसे मान विरुद्ध हो जाता है, इस लिये अतिरूक्ष और अतिस्निग्ध दो पदार्थोंको मानमें बराबर मिला कर नहीं खाना चाहिये, इसी प्रकार मीठे खट्टे पदार्थ रस विरुद्ध हो जाते है ऐसे ही कोई क्रियाविरुद्ध, कोई सयोग विरुद्ध,कोई वीर्यविरुद्ध होते है। विरुद्धाशनसे रोग उत्पन्न होते है इस लिये विरुद्धाशन नहीं करना चाहिये।

(३) अजीर्णाशन—पहिला भोजन जीर्ण न होनेपर नया भोजन करनेको अजीर्णाशन कहते है ।

(४) विषमाशन—समयसे आगे पीछे और कभी अतिमात्रा कभी हीनमात्रासे भोजनकरनेको विषमाशन कहते है ॥ भोजनके समय इन चार प्रकारके अशन दोषोंसे बचाकर प्रकृति और ऋतुके अनुकूल हित तथा उचित मात्रासे भोजन करना चाहिये ॥

---

१ स्नानं जाठराग्नेर्बहिर्निर्गतानि रोमकूपाश्रितान्यर्चींषि रुद्ध्वा अन्तर्नयति, ततश्चाग्नेः प्रबलत्वं कुर्वद्दीपनं सम्पद्यते । यथा शीतकाले शीतानिलस्पर्शसंरुद्धस्य जाठराग्नेः प्रबलत्वम् । बालादित्यस्तु व्याचक्षिष्ट—यत् स्नानेन भ्राजकाख्यं त्वगाश्रितं पित्तमन्तः प्रविशदूष्माणं वर्द्धयति तेन तद्दीपनम् । अतएव परिषेके जलमुष्णमिष्यते । यस्माच्छीत निर्वापयति तेजो न देहस्यान्तः प्रवेशयति । शीतकाले यच्छीतानिलस्पर्शसंरुद्धस्याग्नेः प्रबलत्वं तत्काल एव तास्मिन् कालस्वाभाव्यादिति बोद्धव्यम् । तथा चान्यर्तौ शीते सति मन्दाग्नित्वमेव दृश्यते । यथा वर्षास्वग्निमान्द्यादेवान्तर्बहिर्वह्निसन्धुक्षणं भोजनं समुपदिष्टम्। इति सर्वाङ्गसुन्दरायामरुणदत्तः ।

वेगोंके उदीरण और धारण करनेका निषेध ।

मल, मूत्रादिके वेगोंको अपने बलसे अकारण उदीर्ण करनेके लिये जोर न लगावे अर्थात् विना आये हुए मलादि स्वय बाहेर निकालनेका बलपूर्वक प्रयत्न न करे। तथा स्वय आये हुए मलमूत्रादिके वेगोंको रोक कर किसी और कार्यमें प्रवृत्त न होवे अर्थात् आये हुए मलादि वेगोंको उसी समय विसर्जन करनेके अनन्तर फिर और दूसरा कार्य करना चाहिये, आये हुए मलादि वेगोंको रोकनेसे अनेक रोग उत्पन्न होते है इस लिये आये हुए मलादि वेगोंको रोकना नहीं चाहिये और विना आये वेगोंको अकारण बलपूर्वक उदीर्ण भी नहीं करना चाहिये।

यदि शरीरमें कोई साध्यरोग उत्पन्न हुआ हो उसको भी शीघ्र शमन करनेके अनन्तर ही किसी दूसरे कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये क्योंकि साध्यरोगकी शीघ्र चिकित्सा न करनेसे रोग कष्टसाध्य या असाध्य भी हो जाता है। इस लिये साध्य रोगको शीघ्र ही जीत लेना चाहिये ॥ १९ ॥

सुख आदि समस्त संपत्तियोंके परम साधन धर्मकी प्रशंसा ।

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः ।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥२०॥

सम्पूर्ण प्राणियोंकी प्रवृत्ति अथवा प्रयत्न सुख प्राप्तिके लिये है, परन्तु वह सुख धर्मके बिना किसीको नहीं मिल सकता, इस कारण मनुष्यको धर्म परायण ही होना चाहिये। क्योंकि ब्रह्मचर्यादि धर्म पालनके बिना शरीर बलवान् और दीर्घायुवाला नहीं हो सकता है और सत्य सतोपादिके बिना मानसिक सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती अतः ब्रह्मचर्यादि अवस्थाके धर्म तथा सत्यार्जवादि मानसिक धर्म और रहित आहार विहारादि सामयिक धर्म पालनके बिना कोई सुखी नहीं हो सकता इस लिये सुखी रहनेकी इच्छा वाले पुरुषको धर्म परायण ही रहना चाहिये ॥ २० ॥

मित्रोंके साथ शिष्ट व्यवहार ।

भक्त्या कल्याणमित्राणि सेवेतेतरदूरगः ॥२१॥

कल्याण (श्रमकर्म) और सच्चे मित्रोंमें निश्छल तथा सत्य प्रेम युक्त व्यवहार करे अर्थात् कल्याणकारी श्रमकर्मों और सन्मित्रोंकी भक्ति पूर्वक सेवा करे। परन्तु कुकर्मों और दुष्टमित्रोंसे दूर ही रहे अर्थात् पापकर्म और पापी पुरुषोंसे दूर रहे, उनसे किसी प्रकारका ससर्ग न रखना चाहिये ॥ २१ ॥

दश प्रकारके पाप ।

हिंसास्तेयान्यथाकामं पैशुन्यं परुषानृते ।
संभिन्नालापव्यापादमभिध्यादृग्विपर्ययम् ।
पापं कर्मेति दशधा कायवाङ्मानसैस्त्यजेत् २२

(१) हिंसा (वध) (२) स्तेय (चोरी) (३) अन्यथाकाम (परस्त्रीगमन या अयोनि मैथुन) यह तीन शारीरिक पाप कर्म है। १ पैशुन्य (दूसरोंमें अकारण भेदकारक वार्तालापादि) २ कठोर वचन ३ अनृत (झूठ बोलना) ४ व्यर्थ बकवाद करना यह चार प्रकारके वाणीसे होने वाले पाप कर्म है। १ दूसरे प्राणियोंके विनाशका विचार रखना, २ अभिध्या–पराये गुणोंको सहन न करना, ३ शास्त्रमर्यादासे विपरीत दृष्टि होना अर्थात् वेदशास्त्रादिमें अश्रद्धा रख नास्तिकता रखना यह तीन मानसिक पाप कर्म है, इन दश प्रकारके पापोंको शरीर, वाणी और मनसे त्याग देना चाहिये क्योंकि जैसे धर्मपालनसे मनुष्य सुखी रहता है, उसी प्रकार पाप कर्मसे इसके सुख नष्ट हो प्राणी सदैव दुःखी होता है इस लिये ऊपर लिख दश पापोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ॥ २२ ॥

अनाथ एवं असमर्थप्राणियोंपर दयालुता ।

अवृत्तिव्याधिशोकार्ताननुवर्तेत शक्तितः ।
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम् २३॥

जिन प्राणियोंकी शरीर पोषणादिके लिये कोई वृत्ति (रोजगार) नहीं है अर्थात् दरिद्र प्राणी

तथा रोग अथवा शोकसे पीडित प्राणियोंकी अपनी शक्ति अनुसार सहायता करनी चाहिये। और कीट पिपीलिका आदि जीव मात्र पर अपनी आत्माके समान हित और प्रेमकी दृष्टि रखनी चाहिये ॥२३॥

देवता आदिमें भक्ति ।

अर्चयेद्देवगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन् ।
विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत्॥२४॥

देवता, गौ, ब्राह्मण, वृद्धजन (पिता, माता, गुर्वादि) वैद्य, नृप और अतिथियोंकी सेवा पूजा करते रहना चाहिये। तथा याचकादिको विमुख न करे और याचकोंका अपमान अथवा उन पर आक्षेप कर उनको दुःखी भी न करना चाहिये ॥ २४ ॥

मनकी उच्चता और उदारता ।

उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ ।
संपद्विपत्स्वेकमना हेतावीर्ष्येत्फले न तु ॥२५॥

जहां तक बन सके सबका ही उपकार करना चाहिये इतना ही नहीं किन्तु अपकार करनेवाले शत्रुका भी उपकार ही करना चाहिये। तथा सम्पत्ति और विपत्तिके समय एकसा स्वभाव रखना चाहिये अर्थात् किसी उन्नतिके समय प्रसन्नता प्रगट कर घमण्ड न दिखावे और विपत्तिके समय रोदनादिकी अवस्था न दिखावे। संपत्ति और विपत्तिको दैवाधीन समझ कर धीर बना रहे ॥ तथा जिन लोगोंने परिश्रम कर उन्नति प्राप्त की है उनकी उन्नत अवस्था पर ईर्षा न करे। किन्तु जिस प्रकार शुद्ध परिश्रमसे उनको श्रमफल मिला है उसी प्रकार स्वयं भी उद्यम कर शुद्ध परिश्रमसे शुभ फलकी प्राप्ति करनेमें यत्न करे परन्तु दूसरोंके सुखको देख स्वयं ईर्षा कर दुःखी न बने ॥ २५ ॥

बोलने वा बातचीत करनेका ढंग और परिमाण ।

काले हितं मितं ब्रूयादविसंवादि पेशलम् ।
पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः करुणामृदुः २६

समयानुसार हितकारी और थोड़ा बोले तथा सत्य और मधुर भाषण करे। जब किसीसे मिले तो प्रसन्नमुख होकर पहले आप ही उनकी कुशलादि पूछे, बोलते समय अपना प्रेम और करुणायुक्त स्वभाव रखकर मधुर भाषण करे। ऐसा करना सबके लिये और अपने लिये भी हितकर होता है ॥२६॥

अपनी किसीसे शत्रुता और स्वामीकी रुखायीको प्रकाशित न करे ।

नैकः सुखी न सर्वत्र विश्रब्धो न च शङ्कितः।
न कंचिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्यचिद्रिपुम्।
प्रकाशयेन्नापमानं न च निःस्नेहतां प्रभोः २७

केवल अपने ही सुखसे सुखी न होवे किन्तु सबके सुखसे स्वयं भी सुखी होवे, तथा सब पर ही पूरा विश्वास भी न कर ले और न सबमें शंका ही बनाये रहे। सब समय विचारपूर्वक बर्ताव करे। एवं न किसीको अपना शत्रु कहकर प्रकाशित करे और न अपनेको किसीका शत्रु बतावे। किसीके द्वारा हो गये अपने अपमानको प्रकाशित न करे, तथा अपने मालिकके अस्नेहभावको भी प्रगट न करे ॥ २७ ॥

नौकरी करनेका वर्तमान (लौकिक) ढंग ।

जनस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति ।
तं तथैवानुवर्तेत पराराधनपण्डितः ॥ २८ ॥

जिस (मनुष्य) से व्यवहार पड़े उसके आशयको जांच कर जो (मनुष्य) जिस प्रकार प्रसन्न हो उससे उसी प्रकारका बर्ताव करना चाहिये, इस प्रकार पराराधन (नौकरी) में पण्डित पुरुष अथवा मालिकके अनुकूल चले। इसीको मारवाड प्रान्तमें "**हांमें हां मिलाना वा देवीसिंहकी शिला सरकाना**" कहते हैं। किन्तु यह कूट व्यवहार पहले बहुत बुरा समझा जाता था। जैसे किरातार्जुनीयमें भारवि कवि लिखते है–"**स किंसखा साधु न शास्तियोऽधिपं हितान्न यः संशृणुते स किं प्रभुः ॥**" इत्यादि ॥ २८ ॥

जितेन्द्रियका उपदेश ।

न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्याति लालयेत् २९

रसनादि इन्द्रियोंको कदन्नादिसे अति पीडन नहीं करना चाहिये, अर्थात् इन्द्रियोंको न तो अति पीडन करना चाहिये और न निरंतर विलासादि द्वारा इनका लालन ही करना चाहिये ॥ २९ ॥

कार्यका परिणाम सोचकर आरंभ और अपने सब व्यवहारोंमें मँझोली वृत्ति धारण करनेका विधान ।

त्रिवर्गशून्यं नारम्भं भजेत्तं चाविरोधयन् ।
अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्यमाम् ॥३०॥

धर्म, अर्थ और काम ये तीनों जिस कार्य द्वारा प्राप्त न हो सकते हों ऐसे कार्यका आरंभ नहीं करना चाहिये और यदि इन धर्मादि तीनोंमें किसी एककी सिद्धि द्वारा दूसरेकी हानि हो ऐसे कार्यका आरम्भ न करे किन्तु यदि एककी सिद्धिमे दूसरेकी हानि न हो वैसे कार्य करनेका निषेध नहीं है। सब कामोंमें धर्मानुसरण करते हुए मध्यम मार्गका अवलम्बन करे अर्थात् राग द्वेषसे रहित होकर मध्य स्थितिसे सब धर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये ॥३०॥

क्षौरादि एवं वेष भूषादिके धारणका विधान ।

नीचरोमनखश्मश्रुनिर्मलाङ्घ्रिमलायनः ।
स्नानशीलः सुसुरभिः सुवेषोऽनुल्बणोज्ज्वलः ३१

क्षौरद्वारा सिरके बाल उचित रीतिपर सभ्य पुरुषोंके समान कटाकर हाथ पावोंके नाखून (नख) और दाढ़ी (श्मश्रु) आदि कटवाकर सुंदर बनवाना तथा हाथ, पांव, मुख, नाक आदि निर्मल स्वच्छ बनाकर रखना चाहिये । एव नित्य स्नान संध्यादि कर चन्दनादि सुगन्ध द्रव्य लगाकर उज्ज्वल वस्त्र धारण करना और अनुद्धत भद्र पुरुषोंके वेशको धारण करना चाहिये॥३१॥

धारयेत्सततं रत्नसिद्धमन्त्रमहौषधीः ।
सातपत्रपदत्राणो विचरेद्युगमात्रदृक् ॥ ३२ ॥

तथा अपनी शक्तिके अनुकूल रत्न जटित अंगूठी आदि धारण करना चाहिये एवं सिद्ध मन्त्रौषधी आदि शुभ वस्तुको धारण कर रहना चाहिये ॥ जब बाहर भ्रमण या कार्यवश जाना पड़े तो जूता पहन कर और छाता लेकर जाना चाहिये। चलते समय चार हाथ आगेका मार्ग देख कर चलना चाहिये ॥३२॥

रात्रिमें यदि चलना पडे तो--

निशि चात्ययिके कार्ये दण्डी मौली सहायवान्॥

यदि रात्रिको कार्यवश बाहर जाना पड़े तो हाथमें दण्ड (छड़ी) आदि लेकर सिरपर पगड़ी आदि शिरस्त्राण रख किसी नौकर या मित्रको साथ लेकर जाना चाहिये ॥ ३३ ॥

चैत्य आदिके उल्लङ्घनका निषेध ।

चैत्यपूज्यध्वजाशस्तच्छायाभस्मतुषाशुचीन् ॥
नाक्रामेच्छर्करालोष्टबलिस्नानभुवोऽपि च ।
नदीं तरेन्न बाहुभ्यां नाग्निस्कन्धमभिव्रजेत् ३४

पूजनीय अश्वत्थादि वृक्ष या मन्दिर समाधि आदि पूज्यस्थान, पूज्य गुरु आदि और ध्वजादिपर आक्रमण न करना चाहिये तथा चाण्डालादिककी अपवित्र छाया, भस्म, तुषराशी, मलादि अपवित्र वस्तु रेतका ढेर, डले मट्टी आदिके ढेरपर बली देनेके स्थानपर और स्नानादिककी पवित्र भूमिपर आक्रमण नहीं करना चाहिये बिना नौकासे केवल अपनी बाहोंके बलसे नदीको तैर जानेका साहस नहीं करना चाहिये । और प्रज्वलित दावाग्नि आदिके सन्मुख नहीं जाना चाहिये ॥ ३४ ॥

संदेहवाली नाव और वृक्षपर चढनेका निषेध ।

संदिग्धनावं वृक्षं च नारोहेद्दुष्टयानवत् ।
नासंवृतमुखः कुर्यात्क्षुतिहास्यविजृंभणम्॥३५॥

दूषित (दुष्ट) सवारीमें नहीं चढ़ना चाहिये इसी

प्रकार जिसमें संदेह हो ऐसी नाव तथा वृक्षपर नहीं चढ़ना चाहिये ॥

छींक आदिके लेनेका प्रकार ।

खुले मुखसे–छींकना, हसना और जँभाई नहीं लेनी चाहिये ॥ ३५ ॥

कुछ दैहिक कुचेष्टाओंका निषेध ।

नासिकां न विकुष्णीयान्नाकस्माद्विलिखेद्भुवम्। नांगैश्चेष्टेत विगुणं नासीतोत्कटकस्थितः॥३६॥

अगुलीसे नासिकाको न खुरचे । अकारण ही भूमिपर न लिखे (पृथ्वीपर लकीरें विना कारण न निकाले) शरीरके अङ्गोंसे विगुण चेष्टा न करे और उत्कटक (उकडु) पावोंके भार बैठनेका अभ्यास न करे ॥ ३६ ॥

श्रमसे पहले व्यायाम आदिका निषेध ।

देहवाक्चेतसां चेष्टाः प्राक् श्रमाद्विनिवर्तयेत् । नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेन्नक्तं सेवेत न द्रुमम्॥३७॥

व्यायामादि देहकी चेष्टा, व्याख्यानादि भाषण वाणीकी चेष्टा और चितादि मनकी चेष्टा श्रम (थकावट) होनेसे पहले २ त्याग देनी चाहिये क्योंकि थकावट होजानेके अनन्तर भी एकसाथ काम करते रहनेसे क्षत, क्षयादि रोग होनेका भय होता है, यदि आवश्यक कार्य भी हो तो आराम करनेके अनन्तर बलानुसार फिर कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ऊपरको जानु करके देर तक नहीं बैठे और रात्रिके समय वृक्षके आश्रित न रहना चाहिये क्योंकि रात्रिको सर्पादि विषवाले जन्तु आदिका वृक्षाश्रित रहनेसे भय होता है।

रात और दिनमें भी कुछ विशिष्ट स्थानोंमें रहनेका निषेध ।

तथा चत्वरचैत्यांतश्चतुष्पथसुरालयान् । सूनाटवीशून्यगृहश्मशानानि दिवापि न॥३८॥

तथा चत्वर (चौपाड़ स्थान) मढ़ी अश्वत्थादि पूज्यस्थान, चतुष्पथ (चौराहा) और देव मन्दिर-आदि स्थानोंमें रातको नहीं रहना चाहिये ॥ एवं सूना (वध्यस्थान) निर्जन वन, शून्य घर, और श्मशान भूमिमें दिनमें भी नहीं रहना चाहिये॥३८॥

सूर्य और सूक्ष्मादि वस्तुओंके देखने एवं सिरसे भार ढोनेका निषेध ।

सर्वथेक्षेत नादित्यं न भारं शिरसा वहेत् । नेक्षेत प्रततं सूक्ष्मदीप्तामेध्याप्रियाणि च॥३९॥

सूर्य भगवान्को उदय और अस्त होते समय जल दर्पणादिमे प्रतिबिम्बित अवस्थामें अथवा दिनमे किसी प्रकार भी दृष्टि जमाकर नहीं देखना चाहिये, क्योंकि सूर्यपर दृष्टि जमानेसे दृष्टिका अतियोग या मिथ्या योग हो कर दृष्टि नाशका भय है, इस लिये सूर्यको सन्मुख दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये । तथा शिरपर भार (बोझ) उठाना उचित नहीं है एव अति सूक्ष्म पदार्थ विद्युदादि अति दीप्त वस्तु मलादि अमेध्य वस्तु और जिससे ग्लानि हो ऐसे अप्रिय वस्तुको भी नहीं देखना चाहिये ॥ ३९ ॥

मद्यके लेने, देने, बेचने, बनाने आदि सभी कामोंका प्रबल निषेध ।

मद्यविक्रयसंधानदानादानानि नाचरेत् ॥४०॥

मद्यका बेचना, मद्य बनाना, मद्य देना और मद्यका लेना आदि मद्य व्यवहार नहीं करना चाहिये । यह मद्य विषयक कर्मका निषेध द्विजाति मात्रके लिये है ऐसा अरुणदत्त कहते है और सभी धर्मशास्त्रोंमें यह अस्पृश्य माना गया है ॥ ४०॥

पूर्व-वायु आदिके सेवनका निषेध ।

पुरोवातातपरजस्तुषारपरुषानिलान् ॥ अनृजुः क्षवथूद्गारकासस्वप्नान्नमैथुनम । कूलच्छायानृपद्विष्टव्यालदंष्ट्रिविषाणिनः॥४१॥

पूर्व दिशाकी पवन और सन्मुख सूर्यकी धूपका सेवन नहीं करनी चाहिये तथा रज (गर्दा) तुषार (ओस) और परुष वायुका भी सेवन न करे । अनजुः (टेढ़ा) होकर छींकना, उद्गार लेना, खांसना, शयन करना और स्त्री सग करना उचित नहीं है इन छींक आदि पांच कर्मोंको विकृतामन होकर करनेसे वातजनित विकार हो जाते है ।

नदीके किनारे जो पानीके बहावसे ऊँचे स्थान हो मट्टीके टीलेसे रह जाते हैं, उनके नीचकी छाया में नहीं बैठना चाहिये क्योंकि उसको अचानक गिर जानेसे प्राणनाश होनेका भय है । इसी प्रकार राजा से द्वेष रखनेवाले पुरुषोंका सङ्ग तथा सांप दन्त विषवाले या व्याघ्रादि दंष्ट्रा प्रधान जन्तु और सींगवाले गैंड आदि जन्तुओंका संसर्ग या विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥

हीन, अनार्य और अतिचतुरजनोंकी सेवा तथा बडोंसे वैर एवं सन्ध्याकालमें न करने योग्य कार्योंका संकलन ।

हीनानार्यातिनिपुणसेवां विग्रहमुत्तमैः ।
संध्यास्वभ्यवहारस्त्रीस्वप्नाध्ययनचिन्तनम् ॥४२

इसी प्रकार कुलशीलादि रहित पतित पुरुषोंके संग या सेवा नहीं करनी चाहिये तथा अनार्य (दुष्ट पुरुषों) का संग या सेवा और अतिनिपुण जो अल्पतर बातोंकी गणना कर द्वेषादि संग्रह करनेमें नियुक्त हों ऐसे पुरुषोंकी सेवा या संसर्ग भी नहीं करना चाहिये तथा उत्तम पुरुषोंसे लड़ाई आदि करनेमें भी प्रवृत्त नहीं होना चाहिये । एवं संध्या समय भोजन स्त्रीसंग, शयन, अध्ययन और चिन्तन नहीं करना चाहिये ॥ ४२ ॥

त्यागने योग्य कतिपय अनिष्ट कर्म ।

शत्रुसत्रगणाकीर्णगणिकापणिकाशनम् ।
गात्रवक्त्रनखैर्वाद्यं हस्तकेशावधूननम् ॥ ४३ ॥

शत्रुओंका दिया अन्न अथवा शत्रुओंके साथ बैठ कर भोजन नहीं करना चाहिये तथा यज्ञमें जाकर भोजन न करे, क्योंकि यज्ञमें ऋत्विज और अनाथोंके अतिरिक्त अन्यपुरुषोंको भोजन करनेका निषेध है । ऐसे ही जिस स्थानमें झुम आदि कत्थकादि लोग विचरते हों ऐसे स्थानमें बैठ कर भोजन न करे और वेश्या आदिके साथ बैठ कर भोजन न करे और पणिकाशन अर्थात् निंदित अनाचार युक्त होटलादिमें अथवा दुकान पर बैठ कर भोजन नहीं करना चाहिये ।

कांख आदि शरीरके अङ्गोंसे, मुखसे और नखों से बाद्याकृति शब्द करना अनुचित है, एवं हाथों और केशोंको धुनना (विकृत फटकना) नहीं चाहिये ॥ ४३ ॥

तोयाग्निपूज्यमध्येन यानं धूमं शवाश्रयम् ।
मद्यातिसक्तिं विश्रंभस्वातंत्र्ये स्त्रीषु च त्यजेत् ॥४४

अज्ञात जल, अग्नि और पूज्य पुरुषोंके मध्यमेंसे अपनी सवारी लेकर जाना अच्छा नहीं है । तथा मृतप्राणीके दाहकी अग्निका धूम भी शरीरको स्पर्श नहीं होने देना चाहिये ॥ अधिक मद्यका सेवन नहीं करना चाहिये । स्त्रियोंमें अधिक विश्वास नहीं करना चाहिये तथा स्त्रियोंको सर्वथा स्वतन्त्र भी नहीं होने देना चाहिये ॥ ४४ ॥

बुद्धिमान् पुरुषके लिये अपने सब कर्तव्योंमें लोकका आदर्श ।

आचार्यः सर्वचेष्टासु लोक एव हि धीमतः ।
अनुकुर्यात्तमेवातो लौकिकेऽर्थे परीक्षकः ॥४५॥

बुद्धिमान् पुरुषके लिये सम्पूर्ण संसार ही सब कामोंकी शिक्षाके लिये आचार्य (गुरु) है । इस लिये लौकिक सब विषयोंमें परीक्षक होकर जिन कामोंको संसार भरमें भद्र पुरुष अच्छा मानते हों सो कार्य करे । जिन कार्योंको लोग बुरा समझते हों सो न करे अर्थात् लोक मर्यादाकी रक्षा करते हुए संसारसे ही शिक्षा लेकर धर्मानुसार लोक व्यवहार करे ॥ ॥ ४५ ॥

सद्वृत्तका लक्षण ।

आर्द्रसन्तानता त्यागः कायवाक्चेतसां दमः ।
स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु पर्याप्तमिति सद्व्रतम् ॥४६

सब जीवमात्रपर दयाभाव रखना, शक्तिके अनुसार दान देते रहना, शरीर वाणी और मनसे अनुचित कर्म न होने देना । तथा पराये कार्योंको अपना कार्य समझ कर उनमें सहायता करना यह श्रेष्ठ पुरुषोंका श्रेष्ठव्रत है जो श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा ही होता रहता है ॥ ४६ ॥

प्रतिक्षण स्मरणीय अत्युत्तम दुःखनिवारण-संस्मृति ।

नक्तंदिनानि मे यान्ति कथंभूतस्य संप्रति । दुःखभाङ्न भवत्येवं नित्यं संनिहितस्मृतिः४७॥

इस प्रकार ऊपर कहे हुए सदुपदेशको स्मरण रखते हुए यह विचार करते रहना चाहिये कि अब मेरे दिन रातका समय किस प्रकार व्यतीत होता है। मैं धर्मादिकोंमें नित्य उन्नत हो रहा हूं या अवनत अथवा आलस्य वश वृथा समय खो रहा हूं। इस प्रकार नित्य विचार रखने वाला पुरुष सद्वृत्तका स्मरण रखता हुआ दुःखको नहीं प्राप्त होकर सुखी रहता है ॥४७॥

इत्याचारः समासेन यं प्राप्नोति समाचरन् । आयुरारोग्यमैश्वर्यं यशो लोकांश्च शाश्वतान् ४८

इस प्रकार संक्षेपसे सदाचारका कथन कर दिया है इसके अनुसार चलनेवाला मनुष्य आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, यश और उत्तम पुण्यलोकोंको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायाम्, वैद्यरत्नपण्डितश्रीरामप्रसादात्मजविद्यालङ्कारवैद्य-शिवशर्मविरचित-शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथात ऋतुचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम ऋतुचर्या (जिसमें छः ऋतुओंके आहार व्यवहारका वर्णन है) अध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥

ऋतु अयन और आदान आदि कालोंका भेद और सयुक्तिक निर्वचन ।

छः ऋतुएं ।

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात् षड् ऋतवः स्मृताः। शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्मवर्षाशरद्धिमाः॥१॥

आदान उत्तरायण ।

शिशिराद्यैस्त्रिभिस्तैस्तु विद्यादयनमुत्तरम् । आदानं च तदादत्ते नृणां प्रतिदिनं बलम्॥२॥

तस्मिन् ह्यत्यर्थतीक्ष्णोष्णरूक्षा मार्गस्वभावतः। आदित्यपवनाः सौम्यान् क्षपयंति गुणान् भुवः३ तिक्तः कषायः कटुको बलिनोऽत्र रसाः क्रमात्। तस्मादादानमाग्नेयम् ॥ ४ ॥–

माघ आदि दो दो महीने पृथक् २ करनेसे छः ऋतुएं कही जाती है। जैसे माघ और फाल्गुन शिशिर। चैत्र और वैशाख वसन्त । जेठ और आषाढ ग्रीष्म। श्रावण और भाद्रपद वर्षा । आश्विन और कार्तिक शरद् । एवं मार्गशीर्ष और पौष हेमन्त ऋतु होती है । इस प्रकार दो दो मासकी छः ऋतुएं होती हैं। इनमें शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म इन ऋतुओंमें सूर्य उत्तरायण होता है । यह छः महीनेका समय आदान काल कहा जाता है। कारण कि सूर्य भगवान् इस कालमें प्रतिदिन पृथ्वी से स्नेहभागको आकर्षण करते हैं इसलिये प्राणियोंका बल क्रमसे ह्रासको प्राप्त होता है । क्योंकि इस समयमें सूर्य और पवन अपनी गतिके स्वभावसे अर्थात् सूर्यकी गति उत्तरकी ओर होनेसे प्रतिदिन सूर्यकी किरणें तीक्ष्ण होती जाती हैं इन किरणोंके द्वारा स्नेहभाग आकर्षण हो जानेसे पवनमें रूक्षता अधिक हो जाती है, इस कारण आदित्य और पवन अत्यन्त तीक्ष्ण, उष्ण और रूक्ष होनेसे पृथ्वीके स्निग्ध, गुरु आदि सौम्य गुणोंका विनाश कर देते है। इसी कारण उत्तरायणमें तिक्त कषाय और कटु ये तीन रस क्रमानुसार बलवाले हो जाते हैं। तथा मधुर, अम्ल और लवण ये तीन रस क्षीण हो जाते है, इस लिये इस आदान कालको अग्निगुण भूयिष्ठ होनेसे आग्नेय कहा है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

ऋतवो दक्षिणायनम् ॥

दक्षिणायन विसर्गकाल ।

वर्षादयो विसर्गश्च यद्बलं विसृजत्ययम् । सौम्यत्वादत्र सोमो हि बलवान् हीयते रविः ५ मेघवृष्ट्यनिलैः शीतैः शान्ततापे महीतले । स्निग्धाश्चेहाम्ललवणमधुरा बलिनो रसाः ॥६॥

वर्षा, शरद् और हेमन्त इन तीन ऋतुओंको दक्षिणायन कहते हैं। क्योंकि इन छः महीनोंमें

सूर्यकी गति दक्षिणकी ओर होनेसे सूर्यका बल क्रमसे क्षीण होता है और सोम (चन्द्रमा) का बल क्रमसे बढ़ता है इस लिये सौम्य गुणोंकी वृद्धि होती जाती है। एवं मेघ, वर्षा और शीतल पवनसे पृथ्वीका ताप शान्त हो जाता है। तब स्निग्ध गुणकी अधिकतासे अम्ल, लवण और मधुर ये तीनों रस क्रमसे बलवाले हो जाते है। जैसे आदानकालमें शिशिर ऋतुमे तिक्त, वसन्तमे कषाय और ग्रीष्ममें कटु विशेष बलवाले होते है, ऐसे ही वर्षामे अम्ल, शरदमे लवण और हेमन्तमे मधुर रस विशेष बलवाले होते है ॥ ५ ॥ ६ ॥

ऋतु विशेषमें मनुष्योंका त्रिविध बल।

शीतेऽग्र्यं वृष्टिघर्मेऽल्पं बलं मध्यं तु शेषयोः ॥७॥

शीतकाल अर्थात् हेमन्त और शिशिर ऋतुमे मधुर रस और सौम्य गुणकी अधिकता होनेके कारण प्राणियोंमे विशेष बल होता है। तथा वर्षा और ग्रीष्म ऋतुमे सौम्य गुणोंकी कमीसे मनुष्योंका बल अत्यन्त क्षीण होता है। एवं शरद् और वसन्त ऋतुओंमे आदान और विसर्ग कालके गुणोंकी सचित सामर्ग्रीकी मध्याऽवस्था होनेसे प्राणियोंमे मध्य बल रहता है ॥ ७ ॥

हेमन्तमें जठरानलकी प्रबलता आदि।

हेमन्तचर्या।

बलिनः शीतसंरोधाद्धेमन्ते प्रबलोऽनलः।
भवत्यल्पेन्धनो धातून् स पचेद्वायुनेरितः।
अतो हिमेऽस्मिन्सेवेत स्वाद्वम्ललवणान्रसान् ८

हेमन्त ऋतुमे प्राणियोंके बलका सञ्चय होनेसे उन बलवाले मनुष्योंकी जठराग्नि बाहरके शीतके संरोधसे अत्यन्त बलवाली हो जाती है। यदि इस बलवाली जठराग्निको यथोचित आहार न मिले तो वह जठराग्नि वायुसे प्रेरित हो कर रस रक्तादि धातुओंको दहन करने लगती है इस कारण हेमन्त ऋतुमें मधुर अम्ल और लवण रसोंका विशेष सेवन करना चाहिये ॥ ८ ॥

हेमन्तमें प्रातःकाल ही कुछ पौष्टिक पदार्थ खानेका नियम।

दैर्घ्यान्निशानामेतर्हि प्रातरेव बुभुक्षितः।
अवश्यकार्यं संभाव्य यथोक्तं शीलयेदनु ॥९॥

इस हेमन्त ऋतुमे रात्रि बड़ी होनेके कारण प्रातः-काल ही क्षुधा लग जाती है इस लिये प्रातःकाल आवश्यक शारीरिक कृत्य करनेके अनन्तर प्रातः ही मधुर स्निग्ध पदार्थका सेवन (भक्षण) करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इस शीतकालमें जठराग्नि अति बलवान् होती है और रात्रि बहुत बड़ी होती है यदि प्रातःकाल आवश्यक कृत्यसे निवृत्त हो उष्ण स्निग्ध कलेवा नहीं करे तो बढी हुई जठराग्नि पवनका बल प्राप्त कर रसादि धातुओंका नाश करेगी। इस कारण शीतकालमे प्रातःकाल आवश्यक कृत्योंसे निवृत्त हो प्रातःकाल ही उष्ण स्निग्ध मधुर पदार्थ खावे तो शरीर बलवान रहता है। जठराग्नि बलवाली होनेसे मधुर स्निग्ध द्रव्यको ठीक रीतिपर पाचन कर शरीरको विशेष पुष्ट करती है इस लिये इस ऋतुमे प्रातः-काल मोदकादि मधुर स्निग्ध पदार्थ सेवन करे ॥९॥

वातघ्न तैल आदिसे देहमर्दन।

वातघ्नतैलैरभ्यंङ्गं मूर्ध्नि तैलं विमर्दनम्।
नियुद्धं कुशलैः सार्धं पादाघातं च युक्तितः १०

हेमन्त ऋतुमे वातनाशक तैलोंकी मालिश करना, मस्तकपर तैल लगाना, बलवाले चतुर पुरुषों (पहलवानों) से कुस्ती (प्रेमपूर्वक मल्लयुद्ध) करे तथा बाहु युद्धके समान पादाघात (लातसे दाव चलाना) करे यह कुस्ती भी अर्द्ध बलसे युक्तिपूर्वक करना चाहिये व्यायामके समान ही इसप्रकारके युद्धसे शरीरका गठन और बलकी वृद्धि तथा युद्धचातुरी और स्फुरती होती है ॥ १० ॥

हेमन्तमें स्नान और चन्दनादिके लगानेकी विधि।

कषायापहृतस्नेहस्ततः स्नातो यथाविधि।
कुङ्कुमेन सदर्पेण प्रदिग्धोऽगुरुधूपितः ॥११॥

फिर किसी कषाय उबटन आदिसे शरीरकी चिकनाई दूर करके यथाविधि उष्णोदकसे स्नान करना चाहिये स्नानके अनन्तर केशर, कस्तूरी आदिका मस्तकादि अंगोंपर लेपन करे और अगर आदि सुगन्धसे धूप ग्रहण करे अर्थात् अगरबत्ती आदि सुगन्धित धूप लेवे ॥ ११ ॥

भोजन आदिका नियम ।

रसान् स्निग्धान् पलं पुष्टं गौडमच्छसुरां सुराम्।
गोधूमपिष्टमाषेक्षुक्षीरोत्थविकृतीः शुभाः ।
नवमन्नं वसां तैलं शौचकार्ये सुखोदकम्॥१२॥

तदनन्तर स्निग्ध हलुआ आदि पदार्थ मोदकादि मिष्ट द्रव्य, स्निग्ध रस, नीरोग पुष्ट जीवोंके उचित मांस, गुड़की मद्य या अच्छी सुरा, गेहूंके बने हुए अपूपादि पदार्थ, मैदेसे बने पूड़ी, हलवा, खुर्मा, जलेबी आदि पदार्थ, माषसे बने अमृती आदि मिठाई दूधसे बने खीर, पेड़ा, कलाकंद आदि मिठाई गन्नेसे बनी खांड आदि मीठे सुंदर पदार्थ, नवीन अन्न, चर्बी तैल आदि स्निग्ध द्रव्य सेवन करने चाहिये तथा हाथ प्रक्षालनादिके लिये सुखोष्णोदक लेना हितकारी होता है ॥ १२ ॥

हेमन्तमें कम्बल आदिका उपयोग और सोनेका विधान।

प्रवाराजिनकौशेयप्रवेणीकौचवास्तृतम् ।
उष्णस्वभावैर्लघुभिः प्रावृतः शयनं भजेत्॥१३

शीतकी निवृत्तिके लिये प्रावार रोमयुक्त मोटा वस्त्र "गुदमा" मृगचर्म, रेशमी वस्त्रोंके गदैले, रजाई, कम्बल आदि नरम और गरम स्वभावके वस्त्रोंसे बिछी हुई शय्यापर कोमल गरम रजाई आदि लपेट कर शयन करना चाहिये ॥ १३ ॥

युक्त्याऽर्ककिरणान् स्वेदं पादत्राणं च सर्वदा१४

तथा पीठकी ओरसे सूर्यकी किरणोंका सेवन करे । पसीजा लेवे और सर्वदा जुराब आदि पादत्राण पहिन कर रहे । विना जूता पहिने बाहर न निकले ॥ १४ ॥

शीतनिवारणमें ललनाओंकी सहायता ।

पीवरोरुस्तनश्रोण्यः समदाः प्रमदाः प्रियाः ।
हरंति शीतमुष्णाङ्ग्यो धूपकुंकुमयौवनैः॥१५॥

इस शीत ऋतुमें धूप और केशर आदि सुगंधित द्रव्योंसे और यौवनके मदसे उष्ण अङ्गोंवाली तथा पुष्ट है ऊरुस्थल (जांघे) और उतुङ्गस्तन एवं श्रोणिभाग जिनका ऐसी स्त्रियें भी शीतको शमन या हरण करती है ॥ १५ ॥

अंगीठी आदिसे शीतरक्षाका उपाय ।

अंगारतापसंतप्तगर्भभूवेश्मचारिणः ।
शीतपारुष्यजनितो न दोषो जातु जायते १६

इसी प्रकार अंगीठी आदिसे गर्म किये हुए कमरोंमें रहना भी शीतकी कठोरतासे होनेवाले दोषोंको उत्पन्न नहीं होने देता । इस कारण हेमन्त ऋतुमें इस उपरोक्त सम्पूर्ण विधिका पालन योग्य रीतिसे करना चाहिये ॥ १६ ॥

शिशिरऋतुचर्याका संक्षिप्त वर्णन ।

अयमेव विधिः कार्यः शिशिरेऽपि विशेषतः ।
तदा हि शीतमधिकं रौक्ष्यं चादानकालजम्१७

शिशिर ऋतुमें आदान–काल–जनित शीत और रूक्षता विशेष हो जाते है इसलिये शिशिर ऋतुमें भी हेमन्त ऋतुमें कही हुई सम्पूर्ण चर्या विशेष रूपसे करनी चाहिये ॥ १७ ॥

वसन्त ऋतुकी चर्याका वर्णन ।

कफश्चितो हि शिशिरे वसंतेऽर्कांशुतापितः ।
हत्वाऽग्निं कुरुते रोगानतस्तं त्वरया जयेत् १८॥

शिशिर ऋतुमें संचित हुआ कफ वसन्तऋतुमें सूर्य की किरणोंसे तपायमान होकर अग्निको नाश करके रोगोंको उत्पन्न करता है इस कारण कफको वसन्त ऋतुमें कफ–जनित रोग उत्पन्न होनेसे पहिले ही जीत लेना चाहिये । क्योंकि वसन्त ऋतु में कफका स्वाभाविक राज्य है । इधर मनुष्योंके

शरीरमें शीत कालके संचित कफका प्रकोप होनेका भी स्वाभाविक काल वसन्त ऋतु है इस कारण कफके रोग उत्पन्न होनेसे पहिले ही यदि तीक्ष्ण वमन नस्यादिके द्वारा कफका हरण कर दिया जावे तो फिर इस ऋतुमें होने वाले रोग उत्पन्न नहीं हो सकते इस लिये आगे कही विधिद्वारा कफको शीघ्र जीत लेना चाहिये ॥ १८ ॥

तीक्ष्णैर्वमननस्याद्यैर्लघुरूक्षैश्च भोजनैः ।
व्यायामोद्वर्तनाघातैर्जित्वा श्लेष्माणमुल्वणम् ॥
स्नातोऽनुलिप्तः कर्पूरचंदनागुरुकुंकुमैः ।
पुराणयवगोधूमक्षौद्रजांगलशूल्यभुक् ॥ २० ॥

प्रथम तीक्ष्ण वमन और नस्य आदि क्रियाओंसे तथा हलके रूखे आदि भोजनों द्वारा एवं व्यायाम (कसरत) उद्वर्तन (उबटन) भागने कूदने द्वारा कफको जीतकर फिर विधि अनुसार स्नान कर कपूर, चन्दन, अगर और केशरका लेपन कर पुराने यव और गेहूं से बना हुआ भोजन और मधु अथवा शूलपर भुना जंगली जीवोंका मांसका भोजन करे ॥ १९ ॥ २० ॥

सहकाररसोन्मिश्रानास्वाद्य प्रिययार्हितान् ।
प्रियास्यसंगसुरभीन् प्रियनेत्रोत्पलांकितान् ।
सौमनस्यकृतो हृद्यान्वयस्यैः सहितः पिबेत् ।
निर्गदानासवारिष्टसीधुमार्द्वीकमाधवान्॥ २१॥

तथा प्रियाके मुखसे सुगन्धित और प्रियाके नेत्र रूपी कमलोंसे अंकित एवं प्रियाके हाथसे दिये हुए आम्रके रस युक्त निर्दोष आसव, अरिष्ट, सीधु, द्राक्षासव और मध्वासव अपने मनोऽनुकूल प्यारे सुन्दर स्वभाव वाले मित्रोंके साथ बैठकर पीवे ॥ २१ ॥

शृंगवेरांबु सारांबु मध्वंबु जलदांबु वा॥२२॥

अथवा वसन्त ऋतुमें सोंठसे सिद्ध किया जल, या विजय सारादि से सिद्ध जल, अथवा मधुयुक्त जल या नागरमोथे से सिद्ध किया हुआ जल पीना चाहिये ॥ २२ ॥

दक्षिणानिलशीतेषु परितो जलवाहिषु ॥
अदृष्टनष्टसूर्येषु मणिकुट्टिमकांतिषु ॥ २३ ॥
परपुष्टविघुष्टेषु कामकर्मांतभूमिषु ॥
विचित्रपुष्पवृक्षेषु काननेषु सुगंधिषु ।
गोष्ठीकथाभिश्चित्राभिर्मध्याह्नं गमयेत्सुखी२४॥

वसन्त ऋतु (चैत्र वैशाख मास) में मध्याह्न (दो पहर) के समय ऐसे सुन्दर उपवन (बाग) में समय व्यतीत करे जिसमें दक्षिणकी सुन्दर शीतल पवन चलनेसे ठण्डापन हो रहा हो और चारों ओर सुन्दर नहर या पानीके झरने बह रहे हों, वृक्षोंकी घनि छटामें सूर्यकी किरणोंका ताप न लगता हो, ऐसी सुन्दर छाया हो, उस उपवनमें सुन्दर स्फटिकादिसे बने हुए उपवेशन स्थान मणियोंसे जटित हुए की सी शोभा दे रहे हों, तथा कोयलोंकी मधुर ध्वनि कानोंको सुख दे रही हो उस बागमें कामक्रीडा आदिके सुन्दर खिलने आदिके स्थान हों और विचित्र सुगन्धित पुष्पोंसे सुशोभित वृक्षोंके सुन्दर झुण्ड हों, ऐसे सुन्दर बगीचेमें रागद्वेषादिसे रहित होकर मनको प्रिय लगनेवाली अनेक प्रकारकी कथा वार्ता आदिसे सुखपूर्वक मध्याह्न व्यतीत करना चाहिये ॥ २३ ॥ २४ ॥

गुरुशीतदिवास्वप्नस्निग्धाम्लमधुरांस्त्यजेत् २५

वसन्त ऋतुमें दिनमें शयन करना और गुरु, स्निग्ध, शीत अम्ल एवं मधुर पदार्थोंका सेवन त्याग देना चाहिये । "यहां मधुरसे गुरु स्निग्ध मीठे पदार्थोंका निषेध है जो कफ वर्द्धक है परन्तु लघु, रूक्ष, शहद आदि पदार्थ जो कफ नाशक है उनका निषेध नहीं है" ॥ २५ ॥

ग्रीष्म ऋतुचर्याका विधान ।

तीक्ष्णांशुरतितीक्ष्णांशुर्ग्रीष्मे संक्षिपतीव यत्२६
प्रत्यहं क्षीयते श्लेष्मा तेन वायुश्च वर्धते ।
अतोऽस्मिन् पटुकट्वम्लव्यायामार्ककरांस्त्यजेत्

ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी किरणें अत्यन्त तीक्ष्ण हो जाती हैं और उन तीक्ष्ण किरणोंको सूर्य तीक्ष्ण

रूपसे पृथ्वीपर प्रक्षेप सा करते हैं इसलिये इस ऋतुमें तीक्ष्ण गर्मीके कारण प्रतिदिन कफका क्षय होनेसे वायुकी वृद्धि होती जाती है ॥ इसलिये ग्रीष्म ऋतुमें कटु नमकीन और खट्टे पदार्थ खाने नहीं चाहिये तथा सूर्यकी धूपसे बच कर रहना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥

भजेन्मधुरमेवान्नं लघु स्निग्धं हिमं द्रवम् ।
सुशीततोयसिक्तांगो लिह्यात्सक्तून् सशर्करान्॥

ग्रीष्म ऋतुमें मधुर पदार्थ विशेष खाना चाहिये तथा हलके, चिकने, शीतल और दूध, शर्बत आदि पतले पदार्थोंका विशेष सेवन करना चाहिये । ठंडे जलसे स्नान करना और शीतल जलका शरीर पर सेवन करना चाहिये तथा खांड मिले हुए सत्तुओं-को घोलकर पीना चाहिये ॥ २८ ॥

ग्रीष्ममें मद्यसेवनका भयंकर निषेध ।

मद्यं न पेयं पेयं वा स्वल्पं सुबहुवारि वा ।
अन्यथा शोफशैथिल्यदाहमोहान् करोति तत्॥

ग्रीष्म ऋतुमें मद्य सर्वथा ही नहीं पीना चाहिये । यदि मद्यके अभ्यास वाला पुरुष मद्य पीये विना न रह सके तो थोड़ीसी मद्यमें बहुत जल मिलाकर अत्यावश्यक समयमें पीवे जिससे मद्यकी गर्मी इस ग्रीष्म ऋतुमें हानि न कर सके ॥ क्योंकि ग्रीष्म ऋतुमें इस नियमसे विपरीत मद्य पीनेसे सूजन, शि-थिलता, दाह और मूर्छा आदि रोग उत्पन्न हो जाते है इस कारण ग्रीष्ममें मद्यका निषेध है ॥ २९ ॥

ग्रीष्ममें भोज्य वस्तुओंका वर्णन ।

कुंदेंदुधवलं शालिमश्नीयाज्जांगलैः पलैः ।
पिबेद्रसं नातिघनं रसालां रागखांडवौ॥ ३०॥
पानकं पञ्चसारं वा नवमृद्भाजनस्थितम् ।
मोचचोचदलैर्युक्तं साम्लं मृन्मयशुक्तिभिः३१

ग्रीष्म ऋतुमें कुन्दपुष्प और चन्द्रमाके समान सफेद वासमतीके सुगन्धित चावलोंका भात, उत्तम यूष अथवा जांगल जीवोंके मांसरससे खावे। (यहां हलके शीतल और स्निग्ध गुणोंके कारण चन्द्रमा और कुन्दपुष्पके समान गुणकी उपमा दी है) और पतले रस, शर्वत, रसाला (शिखरण), राग (अनार आदिके खटाईयुक्त शर्वत), खाण्डव (मधुर अम्ल लवणादि रसयुक्त खाण्डव) अथवा मधुर अम्ल लवण कटुकादि मिश्रित लेह, पानकर (द्राक्षा, महुआ, खजूर, काश्मरी और फालसा सम भाग लेकर बनाया हुआ शर्वत) नये मट्टीके पात्रमें रख पान करे । तथा कदलीफल और नारिकेलके दलयुक्त अनारकी खटाईसे अम्ल कर मट्टीके कसोरोंमें डाल-कर पीवे ॥ यहांपर अरुणदत्तने मोचका अर्थ केला और चोचका अर्थ पनस (कटहल) किया है हेमा-द्रिने मोचका अर्थ तो कदलीफल ही किया है परन्तु चोचका अर्थ नारिकेल फल किया है और दोनोंने दलशब्दका अर्थ कुछ नहीं किया परन्तु पदार्थ-चन्द्रिकामे कदलीफलके और नारिकेलफलके बारीक टुकड़े मिले हुए अर्थ किया है तब यह अर्थ हुआ, द्राक्षादिकोंसे बनाया हुआ पंचसार पानक मट्टीके पात्रमें डालकर उसमें नारियलकी गिरीके छोटे २ पत्र समान टुकडे और कदलीफलके टुकड़े मिलाकर इस रस (शर्वत) को अनार आदिसे किंचित् खट्टा कर मट्टीके सिकोरोंमें डालकर पीवे " मेरे विचारमें मोचसे दालचीनी और चोचसे तेजपत्र लेना चाहिये" ३०॥३१

पाटलावासितं चांभः सकर्पूरं सुशीतलम् ।

---

(१) लघुशीतास्निग्धगुणविशिष्टधवलत्वात् कुन्दे-न्दुग्रहणमिति हेमाद्रिः ।

(२) रसं नातिघनं पिबेत् । रसं मांसरसं फलादि-रसं वा । रसाला—शिखरिणी । मधुराऽम्ललवणपानकं

रागः । मधुराम्ललवणकटुककषायकं खाण्डवः । मध्वादिभिः पञ्चभिः कृतं पानकं पंचसारम्, यथा-"मधु-खर्जूरमृद्वीकापरूषकासिताम्भसा । मन्थो वा पंचसारेण सघृतैर्लाजसक्तुभिः॥" इति हेमाद्रिः॥"द्राक्षामधूकखर्जूर-काश्मर्यः सपरूषकाः। तुल्यांशैः कल्पितं पूतं शीतं कर्पूर-वासितम्। पानकं पंचसाराख्यं दाहतृष्णानिवर्तकम् ॥" अन्यत्र गुडदाडिमादियुक्ता विशेषा रागखाण्डवा इति अरुणदत्तः ।

शशांककिरणान् भक्ष्यान् रजन्यां भक्षयन् पिबेत्
ससितं माहिषं क्षीरं चन्द्रनक्षत्रशीतलम्॥३२॥

ग्रीष्म ऋतुमे पाटलाके पुष्पोंसे सुवासित कर तथा कर्पूरसे सुगन्धित कर शीतल जल पीना चाहिये। (ग्रीष्ममें ऐसे जल पीनेसे विसूचिकादि रोग न होकर जठराग्नि ठीक रहती है) ॥

रात्रिके समय कर्पूर नाडिका अथवा कर्पूर मिश्रित सुन्दर भोजन करते समय चन्द्रमा और तारोंकी छायामें शीतल किया हुआ मिश्री मिला भसीका दूध पीना चाहिये इस प्रकारके आहारसे ग्रीष्मकी क्लान्ति नहीं होती ॥ ३२ ॥

ग्रीष्ममें माध्याह्निक दिनचर्याका वर्णन ।

अभ्रंकषमहाशालतालरुद्धोष्णरश्मिषु ॥ ३३ ॥
वनेषु माधवीश्लिष्टद्राक्षास्तबकशालिषु ।
सुगंधिहिमपानीयसिच्यमानपटालिके ॥ ३४ ॥
कायमाने चिते चूतप्रवालफललुंबिभिः ।
कदलीदलकल्हारमृणालकमलोत्पलैः ॥ ३५ ॥
कल्पिते कोमलैस्तल्पे हसत्कुसुमपल्लवे ।
मध्यंदिनेऽर्कतापार्तः स्वप्याद्धारागृहेऽथवा ३६॥

मध्याह्नके समय जिस स्थानमें ऊचे ऊचे बडे २ ताल और शालके वृक्षोंसे सूर्यकी किरण रुककर गाढ़ छाया बनी हुई हो और वृक्षोंपर माधवी लता तथा द्राक्षाके गुच्छोसे युक्त अंगूरकी लता लिपटी हुई हों एवं सुगंधित और शीतल जलसे सींची हुई पटालिका पड़दे खसकी टट्टी आदि युक्त शयन–स्थानमे जहा मनोऽनुकूल आम्रके कोमल किसलय और मोर आदिसे स्थान सुशोभित हो, उस स्थानमें कदलीपत्रों, नील श्वेत आदि कमलपुष्पों तथा खिले हुए कोमल पुष्पों और उनके कोमल पत्रोंसे बनायी हुई सुंदर शीतल शय्यापर शयन करे अथवा जलके फुवारों वाले धारागृहमें ग्रीष्मके दुपहरमें शयन करे जिससे सूर्यकी तीव्र गर्मीका भय न रहे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६॥

पुस्तस्त्रीस्तनहस्तास्यप्रवृत्तोशीरवारिणि ।
निशाकरकराकीर्णे सौधपृष्ठे निशासु च ।
आसना–॥ ३७ ॥

रात्रिके समय ऊंचे महलकी छतपर जहां चन्द्रमाकी शीतल किरणे पड़ती हों तथा सुन्दर पाषाण या काष्ठादिसे बनी हुई स्त्रीमूर्तियोंके स्तन, हाथ और मुखसे निकले हुए फुवारों द्वारा खसका सुगन्धित जल सूक्ष्म फुवारोंसे गिरता हो ऐसे स्थानमें रात्रिको आसना अर्थात् उपवेशन वा बैठकका प्रबन्ध करे ॥ ३७ ॥

–स्वस्थचित्तस्य चंदनार्द्रस्य मालिनः ।
निवृत्तकामतंत्रस्य सुसूक्ष्मतनुवाससः ॥ ३८ ॥
जलार्द्रास्तालवृंतानि विस्तृताः पद्मिनीपुटाः ।
उत्क्षेपाश्च मृदूत्क्षेपा जलवर्षिहिमानिलाः ॥३९॥

ग्रीष्म ऋतुमे रागादिदोषसे रहित स्वस्थ चित्तवाले चन्दनादिसे लिप्त शरीरवाले और पुष्पमाला धारण किये हुए तथा कामविकारसे निवृत्त हुए एव सूक्ष्म रेशमी वस्त्र पहने हुए पुरुषके जलसे भिगोये हुए ताडपत्रों तथा बड़े बड़े कमलिनीके पत्रोंसे उत्क्षेप और मृदु उत्क्षेप करते हुए इन पत्रोंके व्यजनोंसे शीतलजलयुक्त पवन ग्रीष्मजनित क्लमको हरण कर शान्ति देता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

कर्पूरमल्लिका माला हाराः सहरिचंदनाः ।
मनोहरकलालापाः शिशवः सारिकाः शुकाः ४०
मृणालवलयाः कांताः प्रोत्फुल्लकमलोज्ज्वलाः।
जंगमा इव पद्मिन्यो हरंति दयिताः क्लमम् ४१

तथा कपूरकी माला, चमेलीका हार, हरिचन्दनका लेपन, मनको हरनेवाले कला और वार्तालाप, छोटे बालक, तोते, मैनाका भाषण और कमलकी मृणालकी वलय पहने हुए प्रफुल्लित कमलके समान उज्ज्वल कान्तिवाली तथा पद्मिनीके समान सुन्दर

(१) शशाङ्कः–कर्पूरः, कीर्यते–विक्षिप्यते येषु ते शशाङ्ककिरणाः=कर्पूरनाडिकादयः, तान् भक्ष्यान् भक्षयन् चन्द्रनक्षत्रशीतलं सितायुक्तं माहिषं दुग्धं पिबेत्। इति हेमाद्रिः ।

घूमती फिरती हुई कमलिनीके समान मनोरमा स्त्रियें मी ग्रीष्मजनित क्लमको हरण करती है ॥४०॥४१॥

वर्षाऋतुकी दिनचर्याका वर्णन ।

आदानग्लानवपुषामग्निः सन्नोऽपि सीदति ।
वर्षासु दोषैः-
-दुष्यंति तेऽबुलंबांबुदेऽम्बरे ॥ ४२ ॥
सतुषारेण मरुता सहसा शीतलेन च ।
भूबाष्पेणाम्लपाकेन मलिनेन च वारिणा४३॥
वह्निनैव च मंदेन-
-तेष्वित्यन्योन्यदूषिषु ।
भजेत्साधारणं सर्वमूष्मणस्तेजनं च यत् ४४ ॥

अब वर्षा ऋतुकी चर्या कहते है। आदान कालसे उत्पन्न हुई शरीरकी म्लानताके कारण अग्नि पहले ही मन्द होती है वह जठराग्नि दोषोंसे वर्षा ऋतुमें और भी हीन हो जाती है। फिर वर्षामे जब आकाश जलसे भरे हुए मेघों द्वारा व्याप्त होता है तब वे वातादि दोष तुषारयुक्त शीतल पवनके चलनेसे तथा पृथ्वीकी दोषयुक्त बाफसे और कालस्वभावज अम्लपाकवाले एवं लूता कीटादि युक्त मलिन जलसे मन्दाग्निके समान ही वातादि दोष भी और अधिक दुष्ट हो जाते हैं। यद्यपि वर्षाकालमें वातका ही प्रकोप होता है परन्तु जलके अम्लपाकसे पित्तका भी वृद्धिजनित कोप होता है और कफका क्षयज प्रकोप होता है इसी लिये चरकमें लिखा है "वर्षास्वग्निबले हीने कुप्यन्ति पवनादयः" अर्थात् वर्षा कालमें अग्निका बल हीन होनेपर पवनादि तीनों दोष कुपित हो जाते है ॥ उन वातादि दोषोंके परस्पर दूषित होनेपर वर्षा ऋतुमें सब साधारण और जठराग्निको तेज (चतन्य) रखनेवाले आहार विहारका अवलम्बन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

आस्थापनं शुद्धतनुर्जीर्णं धान्यं रसान् कृतान्।
जांगलं पिशितं यूषान् मध्वरिष्टं चिरंतनम्४५
मस्तु सौवर्चलाढ्यं वा पंचकोलावचूर्णितम् ।
दिव्यं कौपं शृतं चांभो भोजनं त्वतिदुर्दिने४६
व्यक्ताम्ललवणस्नेहं संशुष्कं क्षौद्रवल्लघु ।
अपादचारी सुरभिः सततं धूपितांबरः ॥४७॥

वह साधारण कर्म इस प्रकार है। जैसे विरेचनादिसे शुद्ध शरीर होकर आस्थापन बस्तिकर्म करे। तथा पुराने यव, गेहूँ आदि अन्न, स्नेह शुंटी आदिसे सिद्ध किये रस, हरिणादि जांगल जीवोंके मांस, मूग आदिके यूप, मधु और द्राक्षा आदिसे बने हुए पुराने अरिष्ट, सौवर्चल नमक युक्त दधि मस्तु अथवा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठके चूर्ण युक्त मस्तु (दहीका जल), एवं आकाश अथवा कूपका उबाल कर ठडा किया हुआ जल इन पदार्थोंका सेवन करना चाहिये ॥ जिस दिन अत्यन्त मेघवृष्टि होय, ऐसे दिन दाडिमादि अम्ल रस युक्त लवण और चिकनाई युक्त खट्टे नमकीन पदार्थ सूखे पदार्थ और मधुयुक्त पदार्थ तथा हलके पदार्थ खाने चाहिये। यद्यपि मधु रूक्ष होनेसे वात प्रकोप करता है, परन्तु वर्षा कालमें देहकी धातुएं क्लेदयुक्त होती है, इस लिये मधुकी शक्ति क्लेदको क्षीण करनेको ओर होनेसे वातका प्रकोप नहीं हो सकता; इस विचारसे वर्षाकाल में मधुका निषेध नहीं है ॥

वर्षा ऋतुमें सुगंध लगा कर और सुगन्धित धूपसे वस्त्रोंको धूपित कर पहिनना चाहिये तथा विना वाहन (सवारी) अथवा नंगे पावोंसे नहीं फिरना चाहिये। क्योंकि पृथ्वीमें कांटे, कीट, कीच आदि होनेसे वाहन, यान आदिके द्वारा ही चलना चाहिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

हर्म्यपृष्ठे वसेद्बाष्पशीतशीकरवर्जिते ।
नदीजलोदमंथाहःस्वप्नायासातपांस्त्यजेत् ४८॥

वर्षा कालमें पक्के चौबारे आदि ऊपरके ऐसे स्थानमें निवास करना चाहिये जिसमें पृथ्वीकी भांप, शीत और वर्षाकी फैंवार आदिका आगमन न हो ॥

१ पित्तस्य चयलक्षणा दुष्टिः वर्षादिषु पित्तस्येति वचनात्, कफस्य त्वचयपूर्वकः प्रकोपः वायोस्तु कोपकाल एव अत एवोक्तं चरके "भूबाष्पान्मेघनिष्यन्दात्पाकादम्लाजलस्य च । वर्षास्वग्निबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः॥"

वर्षामें कुछ वस्तुओंका परित्याग।

वर्षा ऋतुमें नदीका जल, जलमें बनाया सत्तु आदिका उद्मन्थ, दिनमें सोना, व्यायामादि आयास, और सूर्यकी आतप(धूप)इन सबका त्याग करना चाहिये। इति वर्षाचर्या ॥ ४८ ॥

शरदृतुचर्याक्रमः।

वर्षाशीतोचितांगानां सहसैवार्करश्मिभिः।
तप्तानां संचितं वृष्टौ पित्तं शरदि कुप्यति॥४९॥

अब शरत्कालकी चर्या कहते है। वर्षा ऋतुमें सात्म्य हो गया है शीत जिनको अर्थात् वर्षा ऋतुकी शीतलता अनुकूल हो चुकने पर शीघ्र ही शरद् ऋतुकी सूर्यकी किरणों द्वारा तपायमान अंग होनेसे वर्षामें संचित हुआ पित्त शरद् ऋतुमें प्रकुपित हो जाता है ॥ ४९ ॥

शरद् ऋतुमें विधेय आचारादि।

तज्जयाय घृतं तिक्तं विरेको रक्तमोक्षणम्।
तिक्तं स्वादु कषायं च क्षुधितोऽन्नं भजेल्लघु॥
शालिमुद्गसिताधात्रीपटोलमधुजांगलम्॥५०॥

उस पित्तको जीतनेके लिये तिक्त घृतोंका पान कराना तथा विरेचन कराना, एवं जलौका द्वारा रक्तमोक्षण कराना हितकारक होता है।

शरद् ऋतुका भोजन।

भोजनके लिये तिक्त, मधुर और कषाय रस-वाले हल्के अन्नका सेवन करना चाहिये, तथा शाली चावलोंका भात, मूङ्गका यूष, मिश्री, आमले, पटो-लका शाक, मधु, जंगली जीवोंका मांसरस सेवन करे ॥ ५० ॥

शरदृमें जलका अमृत होना।

तप्तं तप्तांशुकिरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः।
समंतादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम्॥५१॥
शुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिज्जलम्।
नाभिष्यंदि न वा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम्॥५२

जो जल दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तपायमान हो और रात्रिको चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल होता हो, तथा इस जलाशयके चारों ओर सम्पूर्ण रूपसे दिनमें सूर्यकी किरणें और रात्रिमें चन्द्रमाकी किरणें पड़ती हों तथा अगस्त्य ऋषिके उदय होनेसे ऋतुजनित विष शान्त हो चुका हो ऐसे निर्मल पवित्र जलको हंसोदक कहते है यह जल मल हरनेवाला, अनभि-ष्यन्दि अर्थात् क्लेदरहित तथा रूक्षतादि दोष-रहित होनेसे पीने आदि कार्यमें अमृतके समान कहा है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

शरदमें चन्दनादिका उपयोग।

चंदनोशीरकर्पूरमुक्तास्रग्वसनोज्ज्वलः।
सौधेषु सौधधवलां चंद्रिकां रजनीमुखे॥५३॥
तुषारक्षारसौहित्यदधितैलवसातपान्।
तीक्ष्णमद्यदिवास्वप्नपुरोवातान् परित्यजेत्॥५४॥

शरद ऋतुमें चन्दन, खस, कपूर, आदिका लेपन मोतियोंकी माला, सुगन्धित पुष्पोंके हार, और श्वेत उज्ज्वल वस्त्रोंको धारण करना चाहिये तथा सायं-कालमें चन्द्रमाकी श्वेत उज्ज्वल चान्दनीको महल आदिपर बैठकर सेवन करे। परन्तु रात्रिके समय अवश्याय (ओस) का सेवन नहीं करना चाहिये, क्योंकि ओस, यवक्षारादि क्षार, अधिक तृप्त हो कर भोजन, दधि, तैल, चरबी, सूर्यकी धूप, तीक्ष्ण मद्य, दिनमें सोना और पूर्वकी पवन, इन दस वस्तुओंका शरद् ऋतुमें सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

ऋतुपरत्वसे रसोंका सेवन।

शीते वर्षासु चाद्यांस्त्रीन् वसंतेऽन्त्यान् रसान्भजेत्
स्वादुं निदाघे शरदि स्वादुतिक्तकषायकान्॥५५

हेमन्त, शिशिर, और वर्षा ऋतुमें मधुर, अम्ल, और लवण, इन तीन रसोंका विशेष सेवन करना चाहिये। वसन्त ऋतुमें कटु, तिक्त और कषाय रसका विशेष सेवन करना चाहिये। ग्रीष्म ऋतुमें प्रायः मधुर रसका सेवन करना चाहिये, एवं शरद् ऋतुमें मधुर, तिक्त और कषाय रसका सेवन करना चाहिये ॥ ५५ ॥

ऋतुविशेषमें अन्नविशेषका उपयोग ।

शरद्वसंतयो रूक्षं शीतं घर्मघनांतयोः ।
अन्नपानं समासेन विपरीतमतोऽन्यदा ॥ ५६॥

शरद् और वसन्त ऋतुमें रूक्ष अन्न पानका सेवन करना चाहिये । ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें शीतल पदार्थोंका सेवन करना चाहिये अर्थात् शीतल स्वभाव वाले अन्न, पानका सेवन करना चाहिये और हेमन्त, शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुमे स्निग्ध पदार्थ सेवन करने चाहिये, तथा हेमन्त, शिशिर, वर्षा और वसन्त ऋतुमे उष्ण अन्न पानका सेवन करना चाहिये, इस प्रकार इन दो श्लोकोंमें सक्षेपसे ऋतु चर्य्याका कथन कर दिया है ॥ ५६ ॥

सदा सब रसोंके सेवन करनेका उपदेश ।

नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ५७

प्रायः नित्य प्रति मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, और कषाय, इन छहों रसोंका अभ्यास करन चाहिये, परन्तु जिस २ ऋतुमे जिस २ चर्य्या अर्थात् आहार विहारका विशेष सेवन करना विशेष हितकारी कहा है वह २ उस २ ऋतुमे विशेष रूपसे सेवन करना चाहिये, जैसे ऊपर कह आये हैं कि शीत और वर्षा ऋतुमें मधुर, अम्ल, लवण रसोंका विशेष सेवन करना इत्यादि । तथा इसके अतिरिक्त प्रति मनुष्यके स्वभाव आदि विचार कर दोष धातुओंको साम्यावस्थामें रखनेके लिये प्रत्येक मनुष्यकी प्रकृतिके विपरीत जैसे वात प्रधानको स्निग्ध, पित्त प्रधानको शीत और कफ प्रधानको उष्ण पदार्थ सेवन करना हितकारी होता है । इसी प्रकार देश धातु आदिका विचारकर साम्याऽवस्था उत्पन्न करनेके लिये देश और देहके अनुरूप–अनुकूल आहार विहारकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ५७ ॥

ऋतुसन्धिमें सेवन और त्याग करने-योग्य वस्तुओंका क्रमनिर्देश ।

ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहावृतुसंधिरिति स्मृतः ।
तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात् ॥
असात्म्यजाहि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात्

पहिली ऋतुके अन्तका सप्ताह और दूसरी ऋतुके आदिका सप्ताह ऋतुसन्धि कही जाती है जैसे शिशिर ऋतुके अन्तके सात दिन और वसन्त ऋतुके आदि के सात दिन मिला कर ये चौदह दिन ऋतुसन्धि हुई इसमें क्रमसे धीरे २ शिशिर ऋतुकी चर्य्याको त्याग कर क्रमानुसार वसन्तकी ऋतु चर्य्याका अभ्यास करना चाहिये क्योंकि सहसा (एकदम) पहिली ऋतुकी चर्य्याको त्याग कर दूसरी ऋतुचर्य्याका अवलम्बन करनेमे असात्म्यजनित रोग उत्पन्न हो जाते है इस लिये ऋतुकी सन्धिमें पहिली ऋतुकी चर्य्याको क्रमसे त्यागता हुआ आनेवाली ऋतुकी चर्य्याका अभ्यास करते रहना चाहिये ॥ ५८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायाम्, वैद्यरत्न–पण्डित–श्रीरामप्रसादात्मज–विद्यालङ्कार–वैद्य–शिवशर्मविरचित-शिवदीपिकाख्य–व्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो रोगानुत्पादनीयाध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम रोगानुत्पादनीय अर्थात् जिसमें कथन किये व्यवहारानुसार चलनेसे किसी प्रकारके रोगकी उत्पत्ति ही न हो सके ऐसे अध्यायकी व्याख्या करते हैं ।

शारीरिक वेगोंके रोकनेका निषेध ।

वेगान्न धारयेद्वातविण्मूत्रक्षवतृट्क्षुधाम् ।
निद्राकासश्रमश्वासजृंभाश्रुच्छर्दीरेतसाम् ॥ १॥

वात (अपानवात), विष्ठा, मूत्र, छींक, प्यास, क्षुधा, निद्रा, खांसी, श्रमजनितश्वास, जँभाई, आंसु, छर्दि और आये हुए वीर्यके वेगोंको रोकना नहीं चाहिये ॥ १ ॥

✓अपान वायुके अवरोधसे उत्पन्न होनेवाले रोग ।

अधोवातस्य रोधेन गुल्मोदावर्तरुक्क्लमाः ।
वातमूत्रशकृत्संगदृष्टयग्निवधहृद्गदाः ॥ २ ॥

अधोवायुके वेग रोकनेसे गुल्मरोग, उदावर्त, शूल, ग्लानि, अधोवातका रुकना, मूत्रका विबन्ध, मलका रुकना, दृष्टिका नाश, मन्दाग्नि और हृदयके रोग उत्पन्न होते है इस कारण अधोवातका वेग नहीं रोकना चाहिये ॥ २ ॥

उल्लिखित विकारोंका निवारण ।

स्नेहस्वेदविधिस्तत्र वर्तयो भोजनानि च ।
पानानि बस्तयश्चैव शस्तं वातानुलोमनम्॥३॥

अधोवायुके रोकनेसे उत्पन्न हुए विकारोंमें स्नेहन और स्वेदन विधि करना चाहिये तथा मैनफल आदि से बनायी हुई बत्ती गुदामें लगानी चाहिये और वातको अनुलोमन करनेवाले भोजन तथा पीनेके पदार्थोंका सेवन एवं वातानुलोमन करनेके लिये बस्तिकर्म करना हितकारक होता है ॥ ३ ॥

मलके वेगको रोकनेसे उत्पन्न होनेवाले दोषविशेष ।

शकृतः पिण्डिकोद्वेष्टप्रतिश्यायशिरोरुजः ।
ऊर्ध्ववायुः परीकर्तो हृदयस्योपरोधनम् ॥
मुखेन विट्प्रवृत्तिश्च पूर्वोक्ताश्चामयाः स्मृताः ४

मलका वेग रोकनेसे पिण्डलियोंमें उद्वेष्टनकीसी पीड़ा, प्रतिश्याय (जुखाम), मस्तकमें पीड़ा, ऊर्ध्ववात, परिकर्तिका, हृदयका उपरोध, मुखसे विष्टाका आना और अपानवायुके रोकनेसे उत्पन्न होनेवाले सब विकार उत्पन्न होते है ॥ ४ ॥

मूत्रके अवरोधसे उत्पन्न होनेवाले रोग ।

अङ्गभङ्गाश्मरीबस्तिमेढ्रवङ्क्षणवेदनाः ॥
मूत्रस्य रोधात्पूर्वे च प्रायो रोगास्तदौषधम् ५ ॥

मूत्रके वेगको रोकनेसे अङ्गोंका टूटना, पथरीरोग मेढ़ और वंक्षणकी सन्धियोंमें पीड़ा तथा उपर्युक्त अधोवात और मलके वेग रोकनेसे होनेवाले रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इस कारण मल अथवा मूत्रके वेगको नहीं रोकना चाहिये ॥ ५ ॥

मल-मूत्रके अवरोधसे उत्पन्नहुए रोगोंकी सामान्य प्रतिक्रिया ।

वर्त्यभ्यङ्गावगाहाश्च स्वेदनं बस्तिकर्म च ॥
अन्नपानं च विड्भेदि विड्रोधोत्थेषु यक्ष्मसु ६

मल और मूत्रके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमें मैनफल आदिसे बनायी हुई वर्तिका प्रयोग करना, उष्ण तैलोंका मलना, औषधसिद्ध गर्म जलमें बैठना या जलमें तैरना, स्वेदनक्रिया करना और बस्तिकर्म करना हितकारी होता है यह इन रोगोंकी सामान्य चिकित्सा है ॥ केवल मलका वेग रोकनेसे उत्पन्न हुए रोगमें इस उपर्युक्त सामान्य चिकित्साके अतिरिक्त मलको भेदन कर निकालने वाले अन्न पान भी सेवन कराने चाहिये ॥ ६ ॥

मूत्ररोधज विकारोंमें "अवपीडक" नामका घृतपान ।

मूत्रजेषु च पाने च प्राग्भक्तं शस्यते घृतम् ॥
जीर्णान्तिकं चोत्तमया मात्रया योजनाद्वयम् ।
अवपीडकमेतच्च संज्ञितम् ॥ ७ ॥

मूत्रके वेग रोकनेसे उत्पन्न हुए रोगमे स्वेदनादिके अतिरिक्त अवपीड़क नामका घृत पान कराना चाहिये भोजन करनेसे पूर्व और भोजन पच जानेके अन्तमें दोनों बार उत्तम मात्रासे घृतपान करानेको "अवपीड़क" घृतपान कहते है ॥ यद्यपि तैल भी वात नाशक है, परन्तु मलको बांधने और मूत्रको अल्प करनेवाला होनेसे यहांपर तैलका प्रयोग पीनेमें नहीं करना चाहिये । तथा मलमूत्रको निकालनेवाला होनेसे घृतका ही प्रयोग करना चाहिये और वह घृत भी यदि गोखुरू आदि द्रव्योंसे सिद्ध कर पिलाया जावे तो विशेष गुण करता है ॥ ७ ॥

उद्गारके रोकनेसे उत्पन्न हुए विकार और उनकी सामान्य चिकित्सा।

धारणात्पुनः ॥
उद्गारस्यारुचिः कम्पो विबन्धो हृदयोरसोः॥८॥
आध्मानकासहिध्माश्च हिध्मावत्तत्र भेषजम् ॥
शिरोऽर्तीन्द्रियदौर्बल्यमन्यास्तम्भार्दितं क्षुतेः९॥

उद्गार (डकार) का वेग रोकनेसे अरुचि, कम्प, हृदय और छातीका जकड़ जाना, आध्मान, खांसी और हिचकी आदि रोग उत्पन्न हो जाते है। इस रोगमें हिचकी रोगमें कही सम्पूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

छींकके अवरोधसे उत्पन्न हुए रोगोंके नाम और निवारण।

तीक्ष्णधूमाञ्जनाघ्राणनावनार्कविलोकनैः ॥
प्रवर्तयेत्क्षुतिं सक्तां स्नेहस्वेदौ च शीलयेत्१०॥

छींकका वेग रोकनेसे—शिरमे पीड़ा, चक्षु आदि इन्द्रियोंमें दुर्बलता, मन्यास्तम्भ और अर्दितरोग (लकवा) ये रोग उत्पन्न होते है ॥

छींक रोकनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमे तीक्ष्ण धूमपान करना, तीक्ष्ण अञ्जन आंजना और तीक्ष्ण नस्य लेकर नासिकाको सूर्यकी ओर करके रुकी हुई छींक को प्रवृत्त करना तथा स्नेहन और स्वेदनक्रिया करना चाहिये ॥ १० ॥

तृष्णावरोधजनितविकार और उनका शमन।

शोषाङ्गसादबाधिर्यसंमोहभ्रमहृद्गदाः ॥
तृष्णाया निग्रहात्तत्र शीतः सर्वो विधिर्हितः११

तृष्णा (प्यास) के वेगको रोकनेसे मुखका सूखना, अंगसाद, कानोमें बहरापन, मूर्छा, भ्रम और हृयके रोग उत्पन्न होते हैं। इस रोगमे सब शीतल क्रियायें करनी चाहिये तथा शीतल जलसे स्नान और मधुर शीतल पानक पिलाना हितकारी होता है ॥ ११ ॥

भूखको रोकनेसे उत्पन्न हुए रोगोंके नाम और प्रतीकार।

अङ्गभङ्गारुचिग्लानिकार्श्यशूलभ्रमाः क्षुधः ॥
तत्र योज्यं लघु स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम्१२

क्षुधाका वेग रोकनेसे अङ्गोंका टूटना, अरुचि, ग्लानि शरीरका कृश होना, पक्वाशयमे पीड़ा और भ्रम आदि रोग उत्पन्न हो जाते है। इस रोगमें हलका चिकना और उष्ण अन्न थोड़ा २ भोजन कराना चाहिये। फिर शरीर अच्छा हो जानेपर यथेच्छ भोजन कराना चाहिये ॥ १२ ॥

समयपर नींद न लेनेके अवगुण और उसका उपाय।

निद्राया मोहमूर्धाक्षिगौरवालस्यजृंभिकाः ॥
अङ्गमर्दश्च तत्रेष्टः स्वप्नः संवाहनानि च॥१३॥

निद्राका वेग रोकनेसे मोह, मूर्छा, नेत्रोंमें भारीपन, आलस्य, जभाई और अगमर्द (अगड़ाई) आदि रोग उत्पन्न होते है। इस रोगमे यथेच्छ सोना और शरीरको दबवाना (चांपी कराना) हितकारी होता है ॥ १३ ॥

खांसीके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए रोगोंका वर्णन।

कासस्य रोधात्तद्वृद्धिः श्वासारुचिहृदामयाः॥
शोषो हिध्मा च कार्योऽत्र कासहा सुतरां विधिः॥

खांसीका वेग रोकनेसे—खांसीका बढ़ना, श्वासरोग होना, अरुचि, हृद्रोग, शोष और हिचकी ये रोग उत्पन्न हो जाते है। ऐसा होनेपर खांसीकी चिकित्सामें कही सब कासनाशक विधिका प्रयोग करे ॥ १४ ॥

श्रमश्वासके अवरोधजन्य विकारोंका वर्णन।

गुल्महृद्रोगसंमोहः श्रमश्वासाद्विधारितात् ॥
हितं विश्रमणं तत्र वातघ्नश्च क्रियाक्रमः॥१५॥

थकावटके श्वासको रोक लेनेसे गुल्मरोग,हृदयके रोग और मूर्छा तक हो जाते हैं ऐसा होनेपर शान्तिपूर्वक

आरोग्य होने तक विश्राम करना और वातनाशक सम्पूर्ण क्रियाओंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १५ ॥

जँभाई रोकनेके अवगुणोंका नाम और निवारण।

जृंभायाः क्षववद्रोगाः सर्वश्चानिलजिद्विधिः१६॥

जंभाईका वेग रोकनेसे मस्तकपीड़ा, इन्द्रिय-दौर्बल्य, मन्यास्तम्भ और अर्दित आदि रोग हो जाते है। इस व्याधिमें सम्पूर्ण वातनाशक विधिका प्रयोग करना चाहिये ॥ १६ ॥

आँसुओंके रोकनेसे उत्पन्न व्याधिका वर्णन।

पीनसाक्षिशिरोहृद्रुङ्मन्यास्तंभारुचिभ्रमाः। सगुल्मा बाष्पतस्तत्र स्वप्नो मद्यं प्रियाःकथाः१७

बाष्प (दुःखजनित अश्रु) का वेग रोकनेसे नेत्ररोग, मस्तक पीड़ा, हृदयरोग, मन्यास्तम्भ, अरुचि, भ्रम और गुल्म आदि रोग होते है। ऐसा होनेपर अच्छी तरह निद्रा लेना, मद्य पीना और मनको संतोष देने वाली प्यारी कथा आदि सुनना हितकारक होते है ॥ १७ ॥

वमनके निरोधसे उत्पन्न हुए रोगोंकी चिकित्सा।

विसर्पकोठकुष्ठाक्षिकंडूपांड्वामयज्वराः। सकासश्वासहृल्लासव्यंगश्वयथवो वमेः॥ १८ ॥ गंडूषधूमानाहारान् रूक्षं भुक्त्वा तदुद्वमः। व्यायामः स्रुतिरस्रस्य शस्तं चात्र विरेचनम्। सक्षारलवणं तैलमभ्यंगार्थे च शस्यते ॥ १९ ॥

वमन (छर्दि) का वेग रोकनेसे विसर्परोग, कोठ (शरीरपर चींटीके काटे कासा सामान्य शोथ) रोग, कुष्ठ, नेत्रोमें खुजली, पाण्डुरोग, ज्वर, खांसी, श्वास, हृल्लास, जी मिचलाना या मतली व्यंग (झांई) और सूजन आदि रोग उत्पन्न हो जाते है।

छर्दि निग्रहसे उत्पन्न हुए रोगोंमे गंडूष (कुल्ले) करना, धूमपान करना, लंघन करना, रूक्ष भोजन कर उसको वमन करा देना, व्यायाम करना, रक्तमोक्षण कराना, विरेचन कराना और सुहागा तथा लवण मिलाये हुए तैलको शरीरपर मालिश करना हितकारी होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

वीर्यके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए रोग और उनकी चिकित्सा।

शुक्रात्तत्स्रवणं गुह्यवेदना श्वयथुर्ज्वरः। हृद्व्यथा मूत्रसंगांगभंगवृद्ध्यश्मषंढताः ॥ २० ॥

शुक्र (वीर्य) का वेग रोकनेसे वीर्यका स्राव, गुह्य इन्द्रियमें पीड़ा, गुह्यस्थानमें सूजन, ज्वर, हृदयमें पीड़ा, मूत्रका रुकना, अङ्गोंमें टूटनेकी सी पीड़ा, अण्डवृद्धि, अश्मरी (पथरी) और नपुंसकता आदि रोग हो जाते है ॥ २० ॥

ताम्रचूडसुराशालिबस्त्यभ्यंगावगाहनम्। बस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं भजेत्क्षीरं प्रियाः स्त्रियः २१

शुक्राऽवरोधज रोगोंमें मुर्गेका मांसरस, मद्य, शाली चावलोंका भात, बस्तिकर्म तैलाऽभ्यंग, जलाऽवगाहन, मूत्राशयको शोधन करनेवाले गोखुरू आदि द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ दूध पीना और प्रिया स्त्रीका संगम ये सब हितकारी होते है ॥२१॥

असाध्य वेगरोधीके लक्षण।

तृट्शूलार्तं त्यजेत् क्षीणं विट्वमं वेगरोधिनम् ॥

वेगाऽवरोधज रोगकी असाध्यताको कहते है। जो रोगी तृषा और शूलसे पीड़ित हो तथा क्षीण हो और जिसको उदावर्तके कारण मुख द्वारा विष्ठा आती हो उसको असाध्य जानकर त्याग देवे २२ ॥

वेगोंके उदीरण और धारणसे सब रोगोंकी उत्पत्ति।

रोगाः सर्वेऽपि जायंते वेगोदीरणधारणैः। निर्दिष्टं साधनं तत्र भूयिष्ठं ये तु तान् प्रति२३ ततश्चानेकधा प्रायः पवनो यत्प्रकुप्यति। अन्नपानौषधं तत्र युंजीतातोऽनुलोमनम्॥२४॥

मल मूत्रादिकोंके आये हुए वेगको रोकनेसे प्रायः सम्पूर्ण रोग उत्पन्न हो जाते है। कहनेका तात्पर्य

यह है कि वेगोंके रोकनेसे जिन २ रोगोंका उत्पन्न होना ऊपर कह आये है, उतने ही रोग नहीं किन्तु अन्य भी सम्पूर्ण रोग आये हुए वेगको रोकनेसे उत्पन्न हो सकते है ॥

उन वेगावरोधज रोगोंके शान्त करनेके उपाय प्रायः प्रतिरोगमें कथन कर आये है । प्रायः उदीर्ण वेगोंके रोकनेपर अनेक प्रकारसे वायुका प्रकोप होता है, इसलिये वेगाऽवरोधज रोगोंमें वातको अनुलोमन करनेवाले अन्न पान और औषधका प्रयोग करना चाहिये । जिन रोगोंकी चिकित्सा यहां विस्तारसे न कही गयी हो उन वेगावरोधज विकारोंकी चिकित्सा उन २ रोगोंकी चिकित्साऽनुसार करनी चाहिये ॥ २३ ॥ २४ ॥

कुछ धारणीय वेगोंका वर्णन ।

धारयेत्तु सदा वेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च ।
लोभेर्ष्याद्वेषमात्सर्यरागादीनां जितेंद्रियः २५॥

इस लोक और परलोकके हितकी इच्छावाले मनुष्यको लोभ, ईर्षा, द्वेष, मात्सर्य, और राग आदि मनके वेगोंको रोकना चाहिये और जितेन्द्रिय रहना चाहिये। महर्षि चरकने लिखा है कि "जितेन्द्रिय नानुपतन्ति रोगाः" अर्थात् जितेन्द्रिय पुरुषको कोई रोग उत्पन्न नहीं हो सकता सो जितेन्द्रिय पुरुष ही लोभ आदि मानसिक वेगोंको रोक सकता है इस लिये कहा है कि जितेन्द्रिय पुरुष उभय लोकके हितके लिये लोभ, ईर्ष्या आदि मनके वेगोंको रोक लेवे लोभ क्रोधादि रोकनेसे उभय लोकके सुखकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥

मलशोधनकी अत्यन्त आवश्यकता ।

यतेत च यथाकालं मलानां शोधनं प्रति ।
अत्यर्थसंचितास्ते हि क्रुद्धाः स्युर्जीवितच्छिदः॥
दोषाः कदाचित्कुप्यंति जिता लंघनपाचनैः ।
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः २७॥

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि मलोंको यथा समय धन करनेमें यत्न करे । जैसे आगे कहेंगे कि शीतकालमें संचित हुए कफको वसन्त ऋतुमें वमनादिके द्वारा शोधन कर देना चाहिये और ग्रीष्म में संचित हुए वातको प्रावृट् ऋतुमें शोधन कर देना चाहिये । एवं वर्षामे सचित हुए पित्तको शरद् ऋतुमे विरेचनादिसे शोधन कर देना चाहिये. । क्योंकि अत्यत संचित हुए वात, पित्त और कफ कुपित हो कर रोगोंको उत्पन्न कर जीवनका ही नाश कर देते है, इस कारण यथा समय दोषोंका शोधन कर देना चाहिये ॥

क्योंकि लङ्घन और पाचनके द्वारा शमन किये हुए दोष अल्प हेतु पाकर फिर भी कभी कुपित हो सकते है परन्तु ठीक समय पर वमन विरेचन आदिसे शोधन किये हुए दोषोंका पुनः प्रकोप नहीं हो सकता, इस कारण यथा समय दोषोंका अवश्य शोधन कर देना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥

शुद्ध शरीर व्यक्तिको रसायनका प्रयोग ।

यथाक्रमं यथायोगमत ऊर्ध्वं प्रयोजयेत् ।
रसायनानि सिद्धानि वृष्ययोगांश्च कालवित्२८

देश कालादिको जाननेवाला वैद्य शोधनके अनन्तर क्रमानुसार पेय आदि पथ्य कराकर अवस्था ठीक हो जानेपर देश कालादि विचार कर देह और समयके अनुकूल अनुभूत सिद्ध रसायन योगोंका अथवा वृष्ययोगोंका प्रयोग करावे ॥ २८ ॥

संशोधनसे क्षीण हुए पुरुषके लिये पौष्टिक प्रयोग ।

भेषजक्षपिते पथ्यमाहारैर्बृंहणं क्रमात् ।
शालिषष्टिकगोधूममुद्गमांसघृतादिभिः ॥२९ ॥
हृद्यदीपनभैषज्यसंयोगाद्रुचिपक्तिदैः ।
साभ्यंगोद्वर्तनस्नाननिरूहस्नेहबस्तिभिः॥ ३० ॥

वमन विरेचन आदि शोधन करानेवाली औषधोंसे जो शोधन होकर मनुष्यके शरीरमें क्षीणता आजाती है उसको निवृत्त करनेके लिये क्रमानुसार पथ्य आहारोंका सेवन कराकर शरीरको पुष्ट करें। उन पथ्य आहारोंमें शाली चावल और षष्टिक(साठी)चाव-

लोंका भात, गेहूँका हलका फुलका, मूँगका यूष, क्रमानुसार मांसरस और घृत, दूध आदि हृदयको प्रिय लगनेवाले तथा औषधिके संयोगसे दीपन पाचन एवं रुचिकर बनाकर सेवन करावे तथा तैलाऽभ्यंग, उबटन, स्नान, निरूहण बस्ति और अनुवासन बस्तिके द्वारा शरीरको निर्दोष और पुष्ट बनावे ॥२९॥३०॥

शोधन बृंहण और रसायन क्रियाके गुण।

तथा स लभते शर्म सर्वपावकपाटवम्।
धीवर्णेंद्रियवैमल्यं वृषतां दैर्घ्यमायुषः ॥ ३१॥

इस प्रकार शोधन, बृहण और रसायनका यथाक्रम प्रयोग होजानेसे पुरुष स्वास्थ्यके सुखको प्राप्त होता है तथा सब प्रकारसे शरीरमे रहनेवाली पांच भूताग्नि जाठराग्नि और धात्वग्निकी उत्तम शक्ति बढ़ जाती है, जिससे सम्पूर्ण शरीरगत बल और तेज, उत्तम हो जाता है एवं बुद्धि, वर्ण, और इन्द्रियां निर्मल हो जाती है, और स्त्रीसंगकी शक्ति बढ़ जाती है तथा सुखयुक्त दीर्घायुकी प्राप्तिहोती है ॥ ३१ ॥

आगन्तुक रोगोंका वर्णन।

ये भूतविषवाय्वग्निक्षतभंगादिसंभवाः।
कामक्रोधभयाद्याश्च ते स्युरागंतवो गदाः ३२

जो रोग भूतादिके लग जानेसे, अथवा विषके संयोग या विषयुक्त जन्तुके दंशनसे अथवा दोषयुक्त वायुके लगजानेसे, या अग्निके संसर्गसे अथवा शस्त्रादिके द्वारा क्षत होनेसे या किसी अंग भंग आदि होनेसे उत्पन्न होते है, उन सब रोगोंको आगन्तुक कहते है। जो रोग शरीरके अभ्यन्तर दोष प्रकोपके विना ही अकस्मात् बाहरसे आकर शरीरमें प्रवेश करते है उनको आगन्तुक कहते है ॥ ३२ ॥

आगन्तुक व्याधिकी चिकित्सा।

त्यागः प्रज्ञापराधानामिंद्रियोपशमः स्मृतिः।
देशकालात्मविज्ञानं सद्वृत्तस्यानुवर्तनम् ३३॥
"अथर्वविहिता शांतिः प्रतिकूलग्रहार्चनम्।
भूताद्यस्पर्शनोपायो निर्दिष्टश्च पृथक् पृथक् ३४"
अनुत्पत्त्यै समासेन विधिरेष प्रदर्शितः।
निजागंतुविकाराणामुत्पन्नानां च शान्तये ३५

इन सब रोगोंकी साधारण चिकित्सा इस प्रकार है दुराचरणादि प्रज्ञापराधोंको त्याग देना, इन्द्रियोंके विषयोंका संयम करना, धर्मादि शास्त्रकी आज्ञाओंको सदा सर्वदा स्मरणमें रखना, देश, काल और अपने आत्म सम्बन्धमें पूर्ण ज्ञान रखना और शास्त्रकी आज्ञानुसार सद्वृत्त (सदाचार) का पालन करना। यह विधि सेवन करनेसे निज वात पित्त और कफके वैषम्यसे उत्पन्न हुए रोग और आगन्तुज रोग उत्पन्न नहीं होते तथा जो उत्पन्न हो चुके हों वे सब रोग शमन हो जाते है "एवं अथर्ववेदोक्त-भूतादिनाशक मन्त्रोंसे शान्तिकर्म करना और जन्मलग्नादिसे प्रतिकूल हुए ग्रहोंका पृथक् २ पूजन जपादि करा देना भी भूत और ग्रहजनित पीडाओंको दूर करता है" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

इस अध्यायका संक्षिप्त सार।

एतत्सारभूतम्।

"शीतोद्भवं दोषचयं वसंते
विशोधयन् ग्रीष्मजमभ्रकाले।
घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक्
प्राप्नोति रोगानृतुजान्न जातु ॥ ३६ ॥

हेमन्त और शिशिर ऋतुमे कफका संचय होकर वसन्त ऋतुमे प्रकोप हो जाता है इस लिये कफजनित रोग होनेसे प्रथम ही वमनादिके द्वारा वसन्त ऋतुमे कफका शोधन कर देना चाहिये। ऐसे ही ग्रीष्म ऋतुमें जो वातका संचय होता है उसको बस्तिकर्मादिसे वर्षा ऋतुमें शोधन कर देना चाहिये और वर्षा ऋतुमें जो पित्तका संचय होता है, उसको शरद् ऋतुमें विरेचनादिसे शोधन कर देना चाहिये। इस प्रकार शोधन कर देनेसे ऋतुओंमें होनेवाले विकार किंचित् भी उत्पन्न नहीं हो सकते इस लिये यथा समय दोषोंका शोधन कर देना चाहिये ॥ ३६ ॥

नीरोग रहनेके अत्युत्तम उपाय ।

"नित्यं हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दाता समः सत्यपरः क्षमावा-
नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ॥ ३७ ॥"

जो मनुष्य नित्य हित आहार और विहारका सेवन करता है, तथा शास्त्रीय विचारपूर्वक सब कामोंको करता है और विषयोंमें सक्त न होकर जितेन्द्रिय रहता है एवं समयपर दान देता है, सब जीवोंमें सम व्यवहार करता है सत्यपरायण और क्षमावान् रहता है तथा गुरुजनादि आप्त पुरुषोंकी सेवा करता रहता है वह पुरुष सदा ही निज और आगन्तुक रोगोंसे बचा रहता है ॥ ३७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायाम्, वैद्यरत्नपण्डितश्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कार-वैद्य-शिवशर्मविरचित शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातोद्रवद्रव्यविज्ञानीयमध्यायंव्याख्यास्यामः

अब हम जलादि द्रव द्रव्योंके गुणादि विशेष विज्ञानके अध्यायकी व्याख्या करते है ।

गंगोदक ।

"जीवनं तर्पणं हृद्यं ह्लादि बुद्धिप्रबोधनम् ।
तन्वव्यक्तरसं मृष्टं शीतं लघ्वमृतोपमम् ॥ १ ॥
गंगांबु नभसा भ्रष्टं स्पृष्टं त्वर्केंदुमारुतैः ।
हिताहितत्वे तद्भूयो देशकालावपेक्षते ॥२॥

आकाशसे गिरा हुआ गंगोदक नामक जल जीवनको देनेवाला, तर्पणकारक, हृदयको हितकारी, प्रसन्नता करनेवाला, बुद्धिवर्धक, पतला, स्वच्छ, अव्यक्तरस, शुद्ध, शीतल, हलका और अमृतके समान होता है । यह आकाशसे गिरा हुआ जल सूर्य और चन्द्रमाकी किरणों तथा पवनके स्पर्शसे उत्तम गङ्गोदक कहलाता है, यह गङ्गोदक उपरोक्त गुणोंवाला होते हुए भी देशकाल आदिके संयोगसे हित और अहितकारक हो जाता है ॥ १ ॥ २ ॥

गंगोदककी परीक्षा ।

येनाभिवृष्टममलं शाल्यन्नं राजतस्थितम् ।
अक्लिन्नमविवर्णं च तत्तेयं गांगम्
अन्यथा ॥ ३ ॥

अब उक्त जलकी परीक्षाका विधान कहते है, जो आकाशसे ग्रहण किया हुआ निर्मल जल चांदीके पात्रमें रखकर उसमें शालीके चावल डाल दिये जावें उन चावलोंके पड़े रहनेपर भी जल निर्मल (स्वच्छ) रहे उसमे विवर्णतया क्लेद उत्पन्न न हो तो उस जलको गङ्गोदक समझकर पीने आदिमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

सामुद्र जल ।

सामुद्रं तन्न पातव्यं मासादाश्वयुजाद्विना ।
ऐंद्रमंबु सुपात्रस्थमविपन्नं सदा पिबेत् ॥ ४ ॥
तदभावे च भूयिष्ठमंतरिक्षानुकारि यत् ।
शुचिपृथ्वसितश्वेते देशेऽर्कपवनाहतम् ॥ ५ ॥

गंगोदकसे विपरीत गुणोंवाला सामुद्र जल जानना चाहिये । इस जलको आकाशसे लिया हुआ होनेपर भी नहीं पीना चाहिये, परन्तु आश्विनके महीनेमें वर्षा हुआ जल पीनेका दोष नहीं है क्योंकि अगस्त्योदय होनेसे प्रायः सब जल शुद्ध हो जाते हैं ।

शुद्ध जल ।

आकाशसे वर्षा हुआ पृथ्वीपर बिना गिरे अच्छे पात्रमें लिया हुआ जल यदि चावल डालकर रखनेसे क्लेदादियुक्त न होकर निर्मल (स्वच्छ) रहे तो किसी भी ऋतुका वर्षा हुआ होनेपर सदा पीने योग्य होता है ।

यदि आकाशसे वर्षा हुआ पात्रमें लिया जल न मिल सके तो उसीके समान गुणोंवाला, काली या श्वेत पवित्र पृथ्वीमें होनेवाला निर्मल जल-जो सूर्य और पवनसे सब ओर स्पर्श किया गया हो वैसा स्वच्छ जल लेना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

अग्राह्य जल।

न पिबेत्पंकशैवालतृणपर्णाविलास्तृतम् ।
सूर्येंदुपवनादृष्टमभिवृष्टं धनं गुरु ॥ ६ ॥
फेनिलं जन्तुमत्तप्तं दन्तग्राह्यतिशैत्यतः ।
अनार्तवं च यद्दिव्यमार्तवं प्रथमं च यत् ॥
लूतादितंतुविण्मूत्रविषसंश्लेषदूषितम् ॥ ७ ॥

जिस जलमें कीचड़, शैवाल, घास और पत्र मिले हुए हों तथा गन्दला, या तन्तुयुक्त हो एवं उस जलको सूर्य और पवनका स्पर्श न होता हो अथवा उसी समय वर्षकर पृथ्वीपर गिरनेसे गाढ़ा और भारी हो अथवा झागदार या कीटादियुक्त और धूपसे तपा हुआ हो अथवा अयन्त शीतल होनेसे दांतोंको बिगाड़ता हो ऐसा जल नहीं पीना चाहिये ।

इसी प्रकार जो बिना ऋतुसे वर्षा हुआ जल हो अथवा ऋतु कालमे भी पहिली वृष्टिका जल हो या लूतादि जन्तुओंसे युक्त तथा तन्तु, विष्ठा, मूत्र, विषके सम्बन्धसे दूषित हो ऐसे जलको भी नहीं पीना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

पथ्य जलवाली नदियें।

पश्चिमोदधिगाः शीघ्रवहा याश्चामलोदकाः ॥
पथ्याः समासात्ता नद्यो विपरीतास्त्वतोऽन्यथा

जो नदियें पश्चिमके समुद्रमे जाकर गिरती है तथा शीघ्रगामी और निर्मल जलवाली है वे नदियें सं॰पसे पथ्य जलवाली होती है, इससे विपरीत मन्दगतिवाली और मलयुक्त जलवाली कुपथ्य जाननी चाहिये ॥ ८ ॥

गंगादि नदियोंका जल।

उपलास्फालनाक्षेपविच्छेदैः खेदितोदकाः ॥९॥
हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्यास्ता एव च स्थिराः ।
कृमिश्लीपदहृत्कंठशिरोरोगान् प्रकुर्वते ॥१०॥

हिमाचल और मलयाचलसे उत्पन्न हुई नदियें पत्थरों पर इधर उधर उछलते हुए और आक्षेप तथा विच्छेदोंसे खेदित वच्छ जलवाली गंगादि नदियोंका जल पथ्य होता है, परन्तु इन्हीं नदियोंका जल जब सीधी समतल भूमिमें स्थिर होकर अपनी शीघ्र गतिको छोड़ देता है तब यही जल कृमिरोग, श्लीपद हृद्रोग कण्ठरोग और शिरोरोगआदि रोगोंके उत्पन्न करने वाला हो जाता है ॥ ९ ॥ १० ॥

गौड़ादि देशकी नदियोंका जल।

प्राच्यावन्त्यपरांतोत्था दुर्नामानि महेंद्रजाः ।
उदरश्लीपदातंकान् सह्यविन्ध्योद्भवाः पुनः ११॥
कुष्ठपाण्डुशिरोरोगान् दोषघ्न्यः पारियात्रजाः ।
बलपौरुषकारिण्यः सागरंभस्त्रिदोषकृत्॥१२॥

गौड़, बगाल देश और मालवा देश तथा कौङ्कण देशकी नदियोंका जल प्रायः अर्शादि रोगोंको करता है । महेन्द्र पर्वतसे उत्पन्न हुई नदियोंका जल श्लीपदरोग और उदररोगको उत्पन्न करनेवाला होता है । सह्याद्रि और विन्ध्याचलसे उत्पन्न हुई नदियोंका जल कुष्ठरोग, पाण्डुरोग और शिरोरोगको उत्पन्न करनेवाला होता है । पारियात्र पर्वतसे उत्पन्न हुई नदियोंका जल त्रिदोषनाशक बल और पौरुषके बढानेवाला होता है और समुद्रका जल त्रिदोषकारक होता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

कूपादिका जल।

विद्यात्कूपतडागादीन् जांगलानूपशैलतः १३॥

सामान्यरूपसे जांगल देशमे होनेवाले कूप, तालाव, बावली आदिका जल हलका होता है, क्योंकि जांगल देशमे बाह्य जलकी कमी होनेके कारण और अधिक दूर पृथ्वीमे जल होनेसे जलका स्वभाव हलका होता है और आनूप देशमे बहुत जलका सबन्ध होनेसे कूपादिकोंका जल भी भारी होता है । एवं पर्वतोंपर जलकी अधिक कमी होनेके कारण जलमे अधिकतर हल्कापन होता है । इन पर्वतोंमें भी जांगल देश या आनूप देशके समीप होनेसे उन पर्वतोंके जलमें भी गुरुता और लघुताकी न्यूनता और अधिकता होती है ।

मूलमें आदि शब्दसे कूप तालावके अतिरिक्त वापी आदिका भी ग्रहण है, जैसे--कूप, सर, तालाव,

चौण्ड्य, निर्झर, उद्भिद्, बावली और नदी इन भेदोंसे जलाश्रय आठ प्रकारके होते है। इनमें कूपका जल स्वादु त्रिदोपनाशक हलका और सर्वदा पथ्य होता है। खारे कुएंका जल कफ-वातनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला और पित्तकारक होता है। कसैले स्वादवाले कुएंका जल कफ-पित्तनाशक और वातकारक होता है।

सरका जल तृषानाशक, बलकारक, कषायानुरस, मधुर और हलका होता है।

औद्भिद जल मधुर, पित्तनाशक, दीपन और किंचित् भारी होता है।

बावलीका जल त्रिदोपनाशक होता है और नवीन बावलीका जल जिसमें वर्षाका पानी न मिला हो वह सुस्वादु तथा किंचिद्दोषयुक्त और हलका होता है।

नदीका जल क्लेदरहित, कटुकानुरस, कफपित्तनाशक, स्वच्छ, वातकारक, रूक्ष और अनवस्थित लघुत्ववान् होता है।

सुश्रुतमे इन जलाशयोंके लक्षण इस प्रकार हैः-

(१) पृथिवीमें गहरा खात खोदनेसे स्वच्छ इन्द्रनीलमणिके समान निकला हुआ जल कूपका जल कहा जाता है।

(२) पर्वतोंसे निकलकर निरन्तर चलनेवाला जल नदीजल कहा जाता है।

(३) कुमुद और कमलोंसे युक्त भरा हुआ विशाल जल सारस कहा जाता है।

(४) अच्छी भूमिमे खोदकर विशाल खातमें पक्के चूनेसे बनाया हुआ विधिवत् चौकोन खात जिसमें कई वर्षोंके जलोंका संग्रह हो उसको तालाव कहते है।

(५) जो पर्वतकी स्वच्छ शिलापरसे नील कमलके समान स्वच्छ जल झरता हो और लतावितान आदिसे ढका हुआ हो उसको चौण्ड्य कहते है।

(६) जो जल पर्वतके किसी अंगमेंसे चश्मेके समान निकले उसको सूर्यकी धूप, हवा और चन्द्रमाकी चांदनीका सर्वतः स्पर्श होता हो तथा वह जल शीतल, मधुर और निर्मल हो तो उसको प्रास्रवण कहते है।

(७) पृथ्वीको फाड़कर बड़ी धारासे निकला हुआ जल औद्भिद कहा जाता है। यह प्रायः रेतीली नदियोंके किनारोंमें रेतके नीचेसे निकलता है।

(८) पृथ्वीको खोदकर कूपके समान ईंट या पाषाणसे निर्माण की हुई चौकोन या गोल सीढ़ीवाले जलाशयको बावली कहते है॥ १३॥

जल पीनेका निषेध।

नांबु पेयमशक्त्या वा स्वल्पमल्पाग्निगुल्मिभिः।
पांडूदरातिसारार्शोग्रहणीदोषशोथिभिः॥
ऋते शरन्निदाघाभ्यां पिबेत्स्वस्थोऽपि चाल्पशः

मन्दाग्निवाला, गुल्मरोगी पाण्डुरोगी, अतिसारवाला, अर्शरोगी, ग्रहणीरोगवाला और शोथरोगवाला इन मनुष्योंको जल नहीं पीना चाहिये। यदि प्यासके कारण जल पीये विना रहनेका सामर्थ्य न हो तो थोड़ा जल पीना चाहिये।

और स्वस्थ मनुष्योंको भी ग्रीष्म और शरद् ऋतुके विना जल थोड़ा ही पीना चाहिये॥ १४॥

भोजनादिमें जल पीनेके गुण।

समस्थूलकृशा भुक्तमध्यांतप्रथमांबुपाः॥१५॥

भोजनके मध्यमे जल पीनेसे मनुष्यका शरीर साम्यावस्थामे रहता है और भोजनके अन्तमें जल पीनेसे शरीर स्थूल हो जाता है तथा भोजनके आदिमे जल पीनेसे शरीर कृश हो जाता है, क्योंकि भोजनके मध्यमे जल पीनेसे जठराग्नि बलवान् होकर अन्नका यथार्थ परिपाक होनेसे शरीरकी साम्यावस्था रहती है और भोजनके अन्तमें जल पीनेसे कफकी वृद्धि होकर शरीर स्थूल हो जाता है। एवं भोजनके आदिमे जल पीनेसे अग्निका साद होनेसे वायुका प्रकोप होकर शरीर कृश हो जाता है। इसलिये भोजन करते समय बीच २ मे थोड़ा २ जल पीना हितकारी होनेसे शरीरकी साम्यावस्था रखता है॥ १५॥

शीतल जलके गुण ।

शीतं मदात्ययग्लानिमूर्च्छाच्छर्दिश्रमभ्रमान् ॥
तृष्णोष्णदाहपित्तास्रविषाण्यंबु नियच्छति १६

शीतल जल-मदात्यय, ग्लानि, मूर्छा, छर्दि, श्रम, भ्रम, प्यास. उष्णता, दाह, पित्तरक्त और विषविकार इन सबको दूर करता है। यहां शीतल जलका प्रयोग पीने, स्नान करने और मुखपर छींटे आदि देनेमें रोगानुसार करना चाहिये। जैसे-प्यासमे शीतल जल पीना, मूर्छामे नेत्रोंपर छींटे देना, मदात्यय और ग्लानिमे शीतल जलका स्नान और पान करना, उष्णतामें शीतलजलावगाहन आदि करने चाहिये १६

उष्ण जलके गुण ।

दीपनं पाचनं कण्ठ्यं लघूष्णं बस्तिशोधनम् ॥
हिध्माध्मानाऽनिलश्लेष्मसद्यःशुद्धे नवज्वरे ।
कासामपीनसश्वासपार्श्वरुक्षु च शस्यते ॥१७॥

गरम जल—अग्निको दीपन करता है, कण्ठको हितकारी है, पाचन है, हलका है, बस्तिका शोधन करता है तथा हिचकी, आध्मान, वातविकार और कफविकार इनको दूर करता है। एव सद्यःशुद्धिमे, नवज्वरमें, खासीमें,आमविकारमे, प्रतिश्यायमें, श्वासमें और पार्श्वशूलमें भी गरम जलका प्रयोग करना ही हितकारी होता है। क्योंकि इन रोगोंमें शीतल जलका सर्वथा निषेध है ॥ १७ ॥

शृतशीत जल ।

अनभिष्यंदि लघु च तोयं कथितशीतलम् ॥
पित्तयुक्ते हितं दोषे व्युषितं तत्त्रिदोषकृत१८॥

जलको क्वाथके समान उबाल देकर शीतल कर लेनेसे वह जल हलका हो जाता है और क्लेद या कफकारक नहीं रहता, इसलिये किसीके मतमें जो आनूप देशके ससर्गसे भारी जल होते है उनको उबाल करके शीतल होनेपर पीना चाहिये। जलको उबालकर शीतल करके पित्तयुक्त दोषमें अर्थात् वात-पित्तमें, पित्तकफमे, सन्निपातमें और जहां पित्तका योग या पित्तकी अधिकता हो वहांपर कथित शीतल जल देना ही हितकारी होता है। परन्तु वह उबालकर शीतल किया हुआ जल यदि चार पहरसे अधिक रखा जाय अथवा प्रथम दिनका उबाला हुआ जल दूसरे दिन पीनेको दिया जाय तो वह त्रिदोषकारक हो जाता है। इस लिये जिन रोगोंमे कथित कर शीत किया हुआ जल देना हो वहांपर नित्य उबालकर शीतल किया हुआ देना चाहिये और वह भी प्रातःकालका उबाला हुआ सायंकालतक और सायंकालका उबाला हुआ प्रातःकालतक देना चाहिये ॥

इस शृतशीत जलका विधान देशभेदसे इस प्रकार है:— जांगल देशमें चौथा भाग जलकर तीन भाग शेष रहनेपर जलको उतारकर शीतल करना चाहिये, साधारण देशमे तीसरा भाग जल जानेपर दो भाग शेष रहे हुए जलको उतारकर शीतल करना चाहिये और आनूप देशमें अर्धावशेष जल शीतल करके प्रयोग करना चाहिये।

जिन रोगोंमे जलपानका सर्वथा निषेध है अथवा पित्तका ससर्ग होनेसे उष्णोदकका निषेध है उन रोगोंमें भी कथित शीत जल देनेका निषेध नहीं है, क्योंकि कथित शीत जल दोषघ्न,पाचन और लघु होता है ॥ १८ ॥

नारिकेलका जल ।

नालिकेरोदकं स्निग्धं स्वादु वृष्यं हिमं लघु ।
तृष्णापित्तानिलहरं दीपनं बस्तिशोधनम् १९॥

नारिकेल फलके अन्दरका जल चिकना, मधुर, वीर्यवर्धक, शीतल, हलका, प्यासनाशक, वातपित्तनाशक, दीपन और बस्तिको शुद्ध करनेवाला है ॥ १९ ॥

अन्तरिक्षका जल ।

वर्षासु दिव्यनादेयं परं तोयं वरावरं ॥ २० ॥
"गव्यं माहिषमाजं च कारभं स्त्रैणमाविकम् ।"

वर्षाऋतुमें अन्तरिक्षका जल अर्थात् पात्रमें लिया हुआ आकाशसे गिरा हुआ जल पथ्य होता है, परन्तु

यह जल वर्षाके आदिमें प्रथम वर्षाका नहीं होना चाहिये । गङ्गाजलकी परीक्षाकी विधिसे इस जलकी परीक्षा कर लेनी चाहिये । वर्षाऋतुमें वर्षाके वेगसे अनेक प्रकारका पृथ्वीका मल नदियोंमें बहकर आता है इसलिये नदीका जल वर्षामें अपथ्य होता है और आकाशका जल पात्रमे लेनेसे स्वच्छ (निर्मल) और निर्दोष होनेसे पथ्य होता है ॥ २० ॥

दुग्धवर्ग ।

ऐभमैकशफं चेति क्षीरमष्टविधं मतम् ॥ २१॥

अब दूधके वर्गको कहते हैः—

दूध आठ प्रकारका होता है. जैसे—१ गौका, २ भैंसीका, ३ बकरीका, ४ ऊटनीका, ५ स्त्रीका, ६ भेड़का, ७ हस्तिनीका और ८ घोड़ी या गधीका इन सबके सामान्य और विशेष गुण आगे कहते हैं २१

दूधके सामान्य गुण ।

स्वादुपाकरसं स्निग्धमोजस्यं धातुवर्धनम् ॥
वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरु शीतलम् ।
प्रायः पयः ॥ २२ ॥

दूधके सामान्य गुण—दूध प्रायः रस और पाकमे मधुर है, स्निग्ध है, ओजवर्द्धक है, रसादि धातुओंको बढ़ाता है, वात और पित्तको शमन करता है, वीर्यवर्द्धक है, कफकारक है, भारी है और शीतलस्वभाववाला है ॥ २२ ॥

गोदुग्धके गुण ।

अत्र गव्यं तु जीवनीयं रसायनम् ॥
क्षतक्षीणहितं मेध्यं बल्यं स्तन्यकरं सरम् ।
श्रमभ्रममदालक्ष्मीश्वासकासार्तितृट्क्षुधः ॥
जीर्णज्वरं मूत्रकृच्छ्रं रक्तपित्तं च नाशयेत् २३

गायका दूध जीवनको देनेवाला, रसायन, क्षत और क्षीणतावालेको हितकारी, बुद्धिवर्द्धक, बल देनेवाला, स्तनोंमें दूध बढ़ानेवाला, दस्तावर, थकावटको दूर करनेवाला, भ्रमरोगनाशक, मदनाशक, कान्तिवर्द्धक, श्वासरोगको हरनेवाला, कासनाशक, क्षुधा और प्यासको शमन करनेवाला, जीर्ण ज्वरको हरनेवाला, एवं मूत्रकृच्छ्र और रक्तपित्तको नाश करनेवाला है ॥ २३ ॥

भैंसीके दूधके गुण ।

हितमत्यग्न्यनिद्रेभ्यो गरीयो माहिषं हिमम् २४

भैंसीका दूध भारी है और शीतल है तथा निद्रा लानेवाला और तृप्तिकारक है, इसी कारण जिनकी तीव्र जठराग्नि है और जिनको निद्रा कम आती हो उनके लिये भैंसका दूध विशेष हितकारी है ॥ २४ ॥

बकरीके दूधके गुण ।

अल्पाम्बुपानव्यायामकटुतिक्ताशनैर्लघु ।
आजं शोषज्वरश्वासरक्तपित्तातिसाराजित् २५॥

बकरी जल बहुत कम पीती है. घूम फिरकर व्यायाम अधिक करती है तथा कटु और तिक्त पदार्थोंको अधिक खाती है इस कारण बकरीका दूध हलका होता है एवं शोषरोग, ज्वर, श्वास, रक्तपित्त और अतिसार रोगको जीतनेवाला है ॥ २५ ॥

ऊँटनीके दूधके गुण ।

ईषद्रूक्षोष्णलवणमौष्ट्रकं दीपनं लघु ।
शस्तं वातकफानाहकृमिशोफोदरार्शसाम् २६॥

ऊँटनीका दूध किंचित् रूक्ष, उष्ण, लवणानुरसयुक्त, दीपन और हलका होता है । तथा वातविकार, कफविकार, अनाह, कृमि, सूजन और अर्शरोगमें हितकारी होता है ॥ २६ ॥

स्त्रीके दूधके गुण ।

मानुषं वातपित्तासृगभिघाताक्षिरोगजित् ।
तर्पणाश्चोतनैर्नस्यैः ॥ २७ ॥

स्त्रीका दूध वात पित्त नाशक, रक्तविकारनाशक, अभिघात और नेत्ररोगोंको दूर करनेवाला होता है । प्रायः स्त्रीका दूध नेत्रतर्पण आश्च्योतन कर्म और नस्यमें प्रयोग किया जाता है । क्योंकि स्त्रीका दूध नेत्ररोगादिकोंमें ही प्रयोग किया जाता है और पीनेमें केवल दूध चूँघनेवाले बच्चोंके लिये ही हित-

कारी होता है । इसलिये इसका विशेष वर्णन कौमारभृत्यमें किया जावेगा ॥ २७ ॥

भेड़के दूधके गुण ।

अहृद्यं तूष्णमाविकम् ॥
वातव्याधिहरं हिध्माश्वासपित्तकफप्रदम् ।
हस्तिन्याः स्थैर्यकृत् ॥ २८ ॥

भेड़का दूध हृदयको अप्रिय, उष्ण और वातव्याधिनाशक होता है । तथा हिचकी श्वास और पित्त–कफके विकारको उत्पन्न करनेवाला होता है ।

हस्तिनीके दूधके गुण ।

हस्तिनीका दूध शरीरको स्थिर करनेवाला होता है ॥ २८ ॥

घोड़ी या गधीके दूधके गुण ।

बाढमुष्णं त्वेकशफं लघु ॥
शाखावातहरं साम्ललवणं जडताकरम् ॥२९॥

घोड़ी या गधीका दूध अत्यन्त गरम, हलका, शाखावातको हरनेवाला, अम्लतायुक्त, लवणानुरस तथा जड़ताको उत्पन्न करनेवाला होता है । यहांपर जड़ताका अर्थ अरुणदत्तने "अङ्गजाड्यकरणहेतु" लिखा है, जिसका अर्थ अगोंमें जड़ता करनेका हेतु लिखा है सो सर्वथा मूलके विरुद्ध है । क्योंकि जो शाखागत वातको हरनेवाला है वह हस्तपादादि अङ्गोंमें जड़ता करनेवाला नहीं हो सकता इसलिये हेमाद्रिने यहां जड़ताका अर्थ "प्रज्ञाहीनत्वम्" किया है सो सर्वथा ठीक है । क्योंकि घोड़ी या गधीका दुध बुद्धिनाशक होता है ॥ २९ ॥

कच्चे आदि दूधके गुण ।

पयोऽभिष्यन्दि गुर्वामं युक्त्या शृतमतोऽन्यथा ॥
भवेद्गरीयोऽतिशृतं धारोष्णममृतोपमम् ॥३०॥

अब अवस्था विशेषसे दूधके गुण लिखते है । कच्चा दूध अभिष्यन्दि अर्थात् कफ-क्लेदादिकारक और भारी होता है । युक्तिपूर्वक अवस्थानुसार जल आदिसे युक्त कर उबाला हुआ दूध हलका होता है और क्लेदकारक नहीं होता । देरतक गरम करके गाढ़ा किया हुआ दूध भारी होता है । और धारोष्ण दूध अमृतके समान गुणकारी होता है ॥ (दूधका विशेष वर्णन बड़े निघंटुओंमें किया हुआ है) ॥३०॥

दधिवर्ग । दधिके सामान्य गुण ।

अम्लपाकरसं ग्राहि गुरूष्णं दधिवातजित्॥
मेदःशुक्रबलश्लेष्मपित्तरक्ताऽग्निशोफकृत् ।
रोचिष्णु शस्तमरुचौ शीतके विषमज्वरे ॥
पीनसे मूत्रकृच्छ्रे च रूक्षं तु ग्रहणीगदे ॥३१॥

अब दधिका वर्णन करते हैः–दधि पाक और रसमें अम्ल, ग्राही, भारी, उष्ण, वायुको जीतनेवाली, मेदवर्धक, शुक्रवर्धक, बलवर्धक, कफवर्धक, पित्तरक्तको बढ़ानेवाली, अग्निवर्धक, सूजनको उत्पन्न करनेवाली और रुचिकारक होती है ।

दधिका प्रयोग अरुचिमें सरदी लगकर होनेवाले वातप्रधान विषमज्वरमे प्रतिश्यायमें और मूत्रकृच्छ्रमें हितकारक होता है । तथा मलाई आदि चिकनाई दूर करके रूक्ष दधि अथवा घृत निकाले हुए दूधका दधि अथवा घृत निकालकर बाकी रही छाछ ग्रहणी रोगमें हितकारी होती है । (दधिका विशेष वर्णन बड़े निघण्टुके दधिवर्गमें देखना चाहिये) ॥ ३१ ॥

दधिभक्षणका निषेध ।

नैवाद्यान्निशि नैवोष्णं वसन्तोष्णशरत्सु न ॥
नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं तन्नाघृतसितोपलम् ॥३२॥
न चानामलकं नापि नित्यं नामन्दमन्यथा ॥
ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठपाण्डुभ्रमप्रदम् ॥३३॥

अब दधिसेवनका निषेध कहते हैः–दधिको रात्रिके समय अथवा उष्ण करके नहीं खाना चाहिये तथा वसन्त ऋतुमें, ग्रीष्म ऋतुमें और शरद् ऋतुमें भी दधिके खानेका निषेध है । दधिको विना मूंग सूप (दाल) अथवा विना मधु या विना घृत

अथवा विना मिश्रीके नहीं खाना चाहिये। अथवा आमलेके विना दधि नहीं खाना चाहिये। नित्यप्रति बहुत दधि खानेका अभ्यास भी नहीं करना चाहिये और मन्दक (अधजमा दही) भी नहीं खाना चाहिये। यदि इस उपरोक्त विधिको छोड़कर रात्रि आदिको दहीका सेवन किया जाय तो ज्वर रक्त-पित्त, विसर्प, कुष्ट, पाण्डुरोग और भ्रमादिरोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस लिये शास्त्रोक्त विधिसे ही दधिका सेवन करना चाहिये। क्योंकि रात्रिको दधि खानेसे कफपित्तका प्रकोप होता है और शरीरकी कान्ति नष्ट होती है। अग्निपर दधि गरम करके खानेसे अम्लपित्तादि रोग हो जाते है. वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ऋतुओंमे दधि खानेसे कफपित्तका प्रकोप और क्लेदादि द्वारा त्रिदोपका प्रकोप होता है, मूगकी दाल आदिके साथ खानेसे दधि पथ्य, रुचिकारक और हितकारी होता है। मधु मिलाकर खानेसे कफजनित विकार नहीं होते। घृत और मिश्री मिलाकर खानेसे रसायनके गुणोंको करती है। दधिके साथ यद्यपि आमलेका स्वादकी दृष्टिसे मेल नहीं है परन्तु आमलेके साथ दही खानेसे दधिभक्षणजनित रक्त-पित्तका प्रकोप नहीं होता। नित्यप्रति दधिका अधिक अभ्यास करनेसे शरीरमें कफ और क्लेदकी वृद्धि होकर रोग उत्पन्न होते है। मन्दक दधिके खानेसे त्रिदोपका प्रकोप हो जाता है। इसी लिये मूलकारने विधिरहित दधिसेवनका निषेध किया है क्योंकि विधिरहित दधिसेवनसे ज्वरादि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

तक्रके गुण ।

तक्रं लघु कषायाम्लं दीपनं कफवातजित् ॥
शोफोदरार्शोग्रहणीदोषमूत्रग्रहारुचीः ।
प्लीहगुल्मघृतव्यापद्गरपाण्डवामयान् जयेत् ३४

तीन भाग दधि और एक भाग जलको मिलाकर बिलोनेसे तक्र होता है। तक्र हलका, कषाय और अम्लानुरस, दीपन और कफवातनाशक है। तथा सूजन, उदररोग, अर्श (बवासीर), ग्रहणी-रोग, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, प्लीहा, गुल्म, घृतका अजीर्ण, गर (कृत्रिम विषविकार) और पाण्डुरोगको दूर करता है। वाताधिक्यमे अम्ल तक्र सेंधा नमक मिलाकर पीना चाहिये। पित्ताधिक्यमें मीठा तक्र खांड मिलाकर पीना चाहिये और कफकी अधिकतामें किञ्चित् अम्ल तक्र सोंठ, मिर्च, पीपल और मंचर नमक मिलाकर पीना उचित है ॥ ३४ ॥

मस्तुके गुण ।

तद्वन्मस्तु सरं स्रोतःशोधि विष्टम्भजिल्लघु ३५॥

दधिके द्रवभागको मस्तु कहते है। मस्तु तक्रके समान गुणोंवाला है। विशेषकर मलको अनुलोमन करनेवाला, स्रोतोंको शोधन करनेवाला, विष्टम्भ-नाशक और हलका है। यहांपर तक्रके समान गुण-वाला कहकर भी लघु लिखना विशेष लघुत्वसूचक है। सुश्रुतने तृषानाशक, क्लमको हरनेवाला, अवृष्य, आह्लादजनक -आदि गुण मस्तुके अधिक लिखे है ३५

द्विविध नवनीतके गुण ।

नवनीतं नवं वृष्यं शीतं वर्णबलाग्निकृत् ॥
संग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शोऽर्दितकासजित् ३६
क्षीरोद्भवं तु संग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगजित् ३७॥

दधिसे निकाला हुआ ताजा मक्खन वृष्य, शीतल, बलवर्धक, वर्णकारक, अग्निवर्धक, संग्राही तथा वात, पित्त, रक्तविकार, क्षय, अर्श, अर्दितवात और खांसीको जीतने वाला है।

दूधसे निकाला हुआ मक्खन सग्राही, रक्तपित्त-नाशक और नेत्ररोगोंको दूर करनेवाला होता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

घृतके गुण ।

शस्तं धीस्मृतिमेधाग्निबलायुःशुक्रचक्षुषाम् ।
बालवृद्धप्रजाकान्तिसौकुमार्यस्वरार्थिनाम् ३८॥
क्षतक्षीणपरीसर्पशस्त्राग्निग्लपितात्मनाम् ।
वातपित्तविषोन्मादशोषाऽलक्ष्मीज्वरापहम् ३९॥

स्नेहानामुत्तमं शीतं वयसः स्थापनं परम् ।
सहस्रवीर्यं विधिभिर्घृतं कर्मसहस्रकृत् ॥४०॥

घृत-धारणाशक्ति, स्मरणशक्ति और ज्ञानशक्तिको बढ़ानेवाला है । तथा अग्नि, बल, आयु, वीर्य और दृष्टिशक्तिको भी बढ़ाता है और घृत बालक, वृद्ध, सन्तानकी इच्छावाले पुरुष, शरीरकी कान्ति, सुन्दरता और स्वरकी इच्छावाले मनुष्योंको परम हितकारी है । तथा क्षत, क्षीण, विसर्परोगी, शस्त्राहत, अग्निदग्ध; इन मनुष्योंको भी हितकारक होता है । एवं वातविकार, पित्तविकार, विषविकार, उन्माद, शोष, अलक्ष्मी और ज्वरको दूर करनेवाला है । घृत सब स्नेहोंमें उत्तम होता है, शीतल है और आयुको स्थिर रखनेवाले द्रव्योंमें परम श्रेष्ठ है । एक बात घृतमें यह सबसे बढ़कर है कि यदि घृतको ओषधियोंके योगसे सहस्र बार पाक किया जाय तो सहस्र बार ही ओषधियोंके गुणको लेकर सहस्रगुणा गुणकारी हो जाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

पुराने घृतके गुण ।

मदापस्मारमूर्छायशिरःकर्णाक्षियोनिजान् ।
पुराणं जयति व्याधीन् व्रणशोधनरोपणम् ॥४१॥

पुराना घृत-उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, शिरके रोग, कानके रोग, नेत्ररोग और योनिरोगोंको जीतता है । तथा व्रणोंका शोधन और रोपण करता है ॥ ४१ ॥

किलाटादिके गुण ।

बल्याः किलाटपीयूषकूर्चिकामोरणादयः ।
शुक्रनिद्राकफकरा विष्टम्भिगुरुदोषलाः ॥४२॥

दूधको कटाहीमें डाल अग्निपर चढ़ा खौंचेसे हिलाकर जो खोया बनता है उसको किलाट कहते हे । अथवा दूधमें दही या छाछ मिलाकर अग्निपर रखनेसे दूधका फटकर जो घन भाग रह जाता है (जिसकी बंगालादि देशोंमे रसगुल्ला नामक मिठाई बनती है) उस फटे हुए दूधके घन भागसे बनाये खोयेको भी किलाट कहते है ।

मोरण ।

फटे हुए दूधके पानीको मोरण या मोरट कहते हें ।

पीयूष ।

तत्काल ब्याई हुई गाय या भैंसीके दूधको पीयूष कहते है ।

कूर्चिका ।

दधि या छाछके बनाये हुए घन पिण्डको कूर्चिका कहते है ।

किसीके मतमें समभाग जलयुक्त दूधको अग्निपर गरम करके उसमें खट्टा दधि मिला दिया जाय उसको दधिकूर्चिका कहते है ।

आदि शब्दसे दूधकी मलाई, दधिकी मलाई, रबड़ी आदि दूध, दधिसे बननेवाले पदार्थ जानने चाहिये ।

अब इस मूलका यह अर्थ हुआ कि किलाट पीयूष, कूर्चिका और मोरणादि पदार्थ शुक्रवर्धक, निद्राजनक, कफकारक, विष्टम्भी, भारी और दोषवर्धक होते है ॥ ४२ ॥

गोदुग्धादिकी श्रेष्ठता ।

गव्ये क्षीरघृते श्रेष्ठे निन्दिते चाविसंभवे ॥४३॥

सब प्रकारके दूध और घृतोंमें गायका दूध तथा घृत श्रेष्ठ होता है । यहांपर दूध शब्दसे ही दधि तक्रादिका ग्रहण है, इसलिये गायके घृत, दूध दधि और तक्र सब प्रकारके दुग्ध घृतादिकोंमें श्रेष्ठ होते हैं और भेड़के घृत दुग्धादि सब प्रकारके घृत दुग्धादिकोंमें निन्दित होते है ॥ ४३ ॥

इक्षुवर्ग ।

गन्नेके रसके गुण ।

इक्षो रसो गुरुः स्निग्धो बृंहणः कफमूत्रकृत् ॥
वृष्यः शीतोऽस्रपित्तघ्नः स्वादुपाकरसः सरः ॥
सोऽग्रे सलवणो दंतपीडितः शर्करासमः ॥४४॥

अब क्षीरादि वर्गके अनन्तर इक्षुवर्गका कथन करते हैं—गन्नेका रस भारी, स्निग्ध, बृंहण, कफमूत्र-

वर्धक, वृष्य, शीतल, रक्तपित्तनाशक, पाक और रसमें मधुर और सारक होता है। गन्नेके अग्रभागका रस किंचित् लवणरस युक्त होता है। दांतोंके द्वारा गन्ना चूसा हुआ खाण्डके समान गुण करता है ४४॥

मूलाग्रजंतुजग्धादिपीडनान्मलसंकरात्।
किंचित्कालं विधृत्या च विकृतिं याति यांत्रिकः।
विदाही गुरुर्विष्टंभी तेनासौ

तत्र पौंड्रकः।

शैत्यप्रसादमाधुर्यैर्वरस्तमनुवांशिकः ॥ ४६ ॥
शातपर्वककांतारनैपालाद्यास्ततः क्रमात्।
सक्षाराः सकषायाश्च सोष्णाः किंचिद्विदाहिनः॥

यन्त्रमें पीड़न करते समय गन्नेकी जड़ अग्रभाग और जन्तुओंसे खाया हुआ गन्ना आदि सब कुछ पीड़न हो जाता है। इस लिये मलादिका संकर होनेसे और कुछ काल पीड़न कर रस रखा हुआ रहनेसे यन्त्र-द्वारा पीड़ा हुआ रस विदाही, भारी और विष्टम्भि हो जाता है।

पौंडेके रसके गुण।

इनमे पौण्डेका रस शीतलतामें, स्वच्छतामे और माधुर्यमे सबसे श्रेष्ठ होता है। इससे दूसरे दर्जे पर वांशिक नामक गन्नेका रस होता है।

वांशिकादि इक्षुओंके गुण।

वांशिक गन्नेसे शातपर्वक कान्तार और नेपाल आदि गन्ने शैत्यादि गुणमें क्रमसे हीन होते है। शातपर्वादि गन्ने किंचित् क्षार और कषायरस वाले, ईषत् उष्ण और किंचित् विदाही होते है ॥ ४५ ॥ ॥४६॥४७ ॥

फाणितके गुण।

फाणितं गुर्वभिष्यंदि चयकृन्मूत्रशोधनम्।
नातिश्लेष्मकरो धौतः सृष्टमूत्रशकृद्गुडः ४८॥

फाणित (राब) भारी अभिष्यन्दि दोषोंके संचयको करनेवाला और मूत्रशोधक होता है। रसको साफ करके बनाया हुआ गुड़ अधिक कफको नहीं करता तथा मल मूत्रको शोधन करने-वाला होता है ॥ ४८ ॥

गुड़के गुण।

प्रभूतकृमिमज्जासृङ्मेदोमांसकफोऽपरः।
हृद्यः पुराणः पथ्यश्च नवः श्लेष्माग्निसादकृत् ४९

जो गुड़ विना साफ किये हुए बनता है वह प्रायः अत्यन्त कृमिवर्धक तथा मज्जा, रक्त, मेद, मांस और कफको बढ़ाता है।

पुराने गुड़के गुण।

एक वर्षसे अधिक पुराना गुड़ हृदयको हितकारी और पथ्य होता है। तथा नवीन गुड़ कफकारक और अग्निको मन्द करनेवाला होता है ॥ ४९ ॥

खांड मिश्री आदिके गुण।

वृष्याः क्षतक्षीणहिता रक्तपित्तानिलापहाः।
मत्स्यंडिकाखंडसिताः क्रमेण गुणवत्तमाः ५०॥

खाण्ड, बूरा और मिश्री क्रमसे अधिक गुणवाले होते है। खाण्डसे बूरा, बूरेसे मिश्री अधिक गुण-वाली है, तथा ये वृष्य, क्षत और क्षीण रोगियोंको हितकारक, रक्तपित्त और वायुको शमन करनेवाले होते हे ॥ ५० ॥

यवास शर्करा (तरंजवीन) के गुण।

तद्गुणा तिक्तमधुरा कषाया यासशर्करा।
दाहतृट्छर्दिमूर्च्छासृक्पित्तघ्न्यः सर्वशर्कराः५१

खाण्डके समान ही यवास शर्करा अर्थात् जवासे से वनी हुई शक्कर भी खाण्डके समान ही गुण करती है और कषायरस युक्त होती है। इसको प्रायः दोष पाचन और निस्सारण करनेके लिये काथादिकों-में प्रयोग करते है ॥

खांडके सामान्य गुण।

सब प्रकारकी खाण्ड सामान्य रूपसे दाह, प्यास, छर्दि, मूर्छा और रक्तपित्तको दूर करनेवाली होती है ॥ ५१ ॥

फाणितादिके गुण।

शर्करेक्षुविकाराणां फाणितं च वरावरे ॥९२॥

गन्नेसे बने हुए फाणित आदिमें शर्करा सबमें श्रेष्ठ और फाणित सबमें निकृष्ट गुणोंवाला होता है। इन खाण्ड आदिमें भी संस्कारादिकोंसे जितना इनको निर्मल बनाया जाय उतना ही उनमें स्नेह लाघव शैत्यादि गुण अधिक आ जाते है ॥ ९२ ॥

मधुके गुण।

चक्षुष्यं छेदि तृट्श्लेष्मविषहिध्मास्रपित्तनुत् ॥
मेहकुष्ठकृमिच्छर्दिश्वासकासातिसारनुत्।
व्रणशोधनसंधानरोपणं वातलं मधु ॥ ९३ ॥
रूक्षं कषायमधुरं तत्तुल्या मधुशर्करा।
उष्णमुष्णार्तमुष्णे च युक्तं चोष्णैर्निहंति तत्९४

अब मधुके गुण कहते हैं—मधु नेत्रोंके लिये हितकारी, छेदी तथा प्यास, कफ, विष, हिचकी, रक्तपित्त, प्रमेह, कुष्ठ, कृमि, छर्दि, श्वास, खांसी और अतिसारको दूर करता है। एवं व्रणको शोधन, संधान और रोपण करनेवाला है। तथा वातकारक, रूक्ष, कषाय और मधुर होता है। मधुके समान ही मधुशर्करामें भी गुण होते है।

उष्णादि मधुका निषेध।

वह मधु गरम करके खाया हुआ अथवा उष्ण पदार्थोंके साथ मिलाकर खाया हुआ या उष्ण समयमें खाया हुआ अधिक उष्णतावाले मनुष्यको मार डालता है। इसलिये मधुको उष्ण करके या उष्णकालमें अथवा अधिक उष्ण द्रव्योंके साथ तथा उष्णार्त मनुष्यको नहीं खाना चाहिये ॥९३॥९४॥

उष्ण मधुका प्रयोग।

प्रच्छर्दने निरूहे च मधूष्णं न निवार्यते।
अलब्धपाकमाश्वेव तयोर्यस्मान्निवर्तते ॥९५॥

जिस मनुष्यको वमन या निरूहण कराना हो उसको छर्दन या निरूहण योगमें गरम किया हुआ मधु देनेका दोष नहीं है। क्योंकि छर्दन और निरूहणमें प्रयोग किया हुआ मधु विनाही परिपाकको प्राप्त हुए निकल जाता है इस कारण इनमें उष्ण किये हुए मधुका दोष नहीं है ॥ ९५ ॥

तैलवर्ग।

तैलोंके सामान्य गुण।

तैलं स्वयोनिवत्तत्र मुख्यं तीक्ष्णं व्यवायि च।
त्वग्दोषकृदचक्षुष्यं सूक्ष्मोष्णं कफकृन्न च ९६

अब तैलके गुण कहते हैं—तैल अपने कारण द्रव्यके अनुसार ही गुणोंवाला होता है। जैसे सरसोंके तैलमें सरसोंके समान गुण, एरण्ड तैलमें एरण्डके समान गुण होते है। कारण द्रव्यके गुणोंके अतिरिक्त जो विशेषता जिस प्रकार तैलोंमें होती है वह कथन करते है।

तिलतैलका मुख्यत्व।

सब तैलोंमें प्रायः तिलतैल ही मुख्य माना जाता है और तैल शब्दसे प्रायः तिलतैलका ही ग्रहण किया जाता है। इसलिये प्रथम तिलतैलके गुण कहते है।

तिलोंका तैल तीक्ष्ण, व्यवायी और खानेसे त्वचाको दूषित करनेवाला, नेत्रोंको अहितकारी, सूक्ष्म, उष्ण और कफको न करनेवाला होता है। यहांपर तीक्ष्ण शब्दसे मन्द विपरीत, व्यवायिसे व्याप्तिशील, सूक्ष्मसे रोममार्गमें प्रवेश कर जानेवाला, उष्णसे उष्णवीर्य जानना चाहिये। उष्णवीर्य होनेसे ही स्निग्ध होते हुए भी कफकारक नहीं होता। यदि तैलकी मालिश की जाय तो त्वचाको उत्तम बनाता है तथा शिरपर और कानोंमें डालनेसे एवं पावोंके तलवोंमें मलनेसे नेत्रोंके लिये भी विशेष हितकारी होता है। मूलमें जो " त्वग्दोषकृदचक्षुष्यं " लिखा है वह तैलके खानेके विषयमें लिखा है। वह भी संस्काररहित तैलके विषयमें लिखा है ९६॥

तैल मर्दनके गुण ।

कृशानां बृंहणायालं स्थूलानां कर्शनाय च ।
बद्धविट्कं कृमिघ्नं च संस्कारात्सर्वदोषजित् ५७

तैल मर्दन करनेमें कृश मनुष्योंके लिये परमौषधि है, क्योंकि कृशताके कारण सकुचित हुई त्वचामें सूक्ष्मगुणके कारण रोममार्गसे शीघ्र प्रवेश करके बृंहण अर्थात् शरीरको पुष्ट करनेवाली क्रिया कर देता है। इसलिये स्रोत शुद्ध होकर रसधातुओंमें बृंहण क्रिया होनेसे बल, वर्ण और पुष्टि होती है। इसी प्रकार स्थूल मनुष्योंके शरीरमे सूक्ष्म स्रोतों द्वारा प्रवेश करके अपने तीक्ष्ण और उष्ण गुण योगसे मेदके संचयको क्षीण करके कृश और बलवान् शरीर कर देता है। इसलिये तैल कृशोंको पुष्ट और स्थूलोंको कृश करके साम्याऽवस्थामें लानेके लिये परमौषधि है। तैल मलको बान्धनेवाला, कृमियोंको नष्ट करनेवाला और औषधियोंके संस्कारसे सम्पूर्ण रोगोंको नाश करनेवाला हो जाता है ॥ ५७ ॥

एरण्ड तैलके गुण ।

सतिक्तोषणमैरंडं तैलं स्वादु सरं गुरु ।
वर्ध्मगुल्मानिलकफानुदरं विषमज्वरम् ॥५८॥
रुक्शोफौ च कटीगुह्यकोष्ठपृष्ठाश्रयौ जयेत् ।
तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं विस्रं रक्तैरंडोद्भवं त्वति ५९

एरण्डका तैल–किंचित् तिक्त, उष्ण, स्वादु, दस्तावर और भारी होता है। तथा वर्ध्मरोग, गुल्मरोग, वात, कफ, उदररोग, विषमज्वरको नाश करता है। एवं कमर, गुह्यस्थान, मलाशय, और पीठमें होनेवाले शूल तथा सूजनको शान्त करता है।

लाल एरण्डका तैल अति तीक्ष्ण, उष्ण, पिच्छल, दुर्गन्धित होता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

सरसोंके तैलके गुण ।

कटूष्णं सार्षपं तीक्ष्णं कफशुक्रानिलापहम् ।
लघुपित्तास्रकृत् कोठकुष्ठार्शोव्रणजंतुजित् ६०॥

सरसोंका तैल–कटु, उष्ण, और तीक्ष्ण होता है। तथा कफ, शुक्र, और वायुको नाश करता है। एवं हलका, रक्तपित्त कारक, कोठनाशक, कुष्ठनाशक, अर्शनाशक, व्रण और यूकादि जन्तुओंको नाशकरता है ॥ ६० ॥

बहेड़ेके तैलके गुण ।

आक्षं स्वादु हिमं केश्यं गुरु पित्तानिलापहम् ।
नात्युष्णं निंबजं तिक्तं कृमिकुष्ठकफप्रणुत् ६१

बहेडेका तैल–मधुर, शीतल, केशोंको हितकारी, गुरु तथा पित्त और वातको नाशकरता है।

निम्ब तैलके गुण ।

निम्बका तैल–किंचित् गरम, तिक्त, तथा कृमि, कुष्ठ और कफको नाशकरता है ॥ ६१ ॥

अलसी और कुसुम्भेके तैल ।

उमाकुसुंभजं चोष्णं त्वग्दोषकफपित्तकृत् ६२

अलसीका तैल और कुसुम्भेका तैल, उष्ण होते है तथा त्वचाके दोष, कफ और पित्तको उत्पन्न करते है ॥ ६२ ॥

वसा और मज्जाके गुण ।

वसा मज्जा च वातघ्नौ बलपित्तकफप्रदौ ॥
मांसानुगस्वरूपौ च विद्यान्मेदोऽपि ताविव ६३

स्नेहान्तर्गत होनेसे वसा और मज्जाके गुण लिखते हे–वसा और मज्जा वातनाशक, बल वर्धक पित्तकारक और कफप्रद होती है। वसा और मज्जा जिस जीवके मांससे निकाली जायें। उस जीवके स्वभावके अनुसार ही इनमें भी उष्ण स्निग्धादि गुण होते है। इसी प्रकार वसा मज्जाके समान ही शूकरादि बड़े जीवोंकी मेद (चर्वी) के गुण भी जानने चाहिये। जिस देश और जिस प्रकृति का जो जीव होता है उसकी चर्वी और मज्जाका वैसा ही गुण जानना ॥ ६३ ॥

मद्यके गुण ।

दीपनं रोचनं मद्यं तीक्ष्णोष्णं तुष्टिपुष्टिदम् ॥
सस्वादुतिक्तकटुकमम्लपाकरसं सरम् ।
सकषायं स्वरारोग्यप्रतिभावर्णकृल्लघु ॥ ६४ ॥
नष्टनिद्राऽतिनिद्रेभ्यो हितं पित्तास्रदूषणम् ।

कृशस्थूलहितं रूक्षं सूक्ष्मं स्रोतोविशोधनम् ॥
वातश्लेष्महरं युक्त्या पीतं विषवदन्यथा ६५॥

अब मद्यके गुणोंको कथन करते है—सब प्रकार-की मद्य दीपन, रुचिकारक, तीक्ष्ण, उष्ण, चित्तको परितोष और शरीरको पुष्ट करने वाली होती है। तथा किंचित् स्वादु, तिक्त, कटु पाक और रसमें अम्ल, कषायरसयुक्त, दस्तावर, स्वर वर्धक, आरोग्य-प्रद, प्रतिभा कारक, वर्ण कारक और हलकी होती है। जिनको निद्रा न आती हो अथवा अधिक निद्रा आती हो उनके लिये हितकारक होती है। कृश और स्थूल मनुष्योंके लिये हितकारी, पित्त और रक्तको दूषित करने वाली, रूक्ष, सूक्ष्म, स्रोतोंको शोधन करने वाली, वात और कफके हरने वाली होती है। यह युक्ति पूर्वक उचित मात्रासे मद्यपीनेके गुण है। इससे विपरीत अनुचित रीति पर मद्य-पीना विषके समान प्राणनाशक होता है। "मद्यपीने-की युक्ति मदात्यय रोगके निदान और चिकित्सामे कथन करेंगे" ॥ ६४ । ६५ ॥

नवीन मद्यके गुण ।

गुरु त्रिदोषजननं नवं जीर्णमतोऽन्यथा ॥६६॥

नवीन मद्य भारी और त्रिदोष जनक होती है। अधिक पुरानी मद्य हलकी और त्रिदोष नाशक होती है॥ ६६ ॥

मद्यका निषेध ।

पेयं नोष्णोपचारेण न विरिक्तक्षुधातुरैः ।
नात्यर्थतीक्ष्णमृद्वल्पसंभारं कलुषं न च ॥६७॥

जिस मनुष्यका उष्ण आहार विहार आदि उप-चार हो उसको मद्य नहीं पीनी चाहिये। तथा विरेचनके अनन्तर और क्षुधातुर मनुष्यको भी मद्य नहीं पीनी चाहिये। एव अतितीक्ष्ण अथवा अति मृदु मद्य नहीं पीनी चाहिये। अतितीक्ष्ण मद्यसे विप-वत् दोष होते है। अतिमृदु मद्य मद्यके गुणोंसे रहित होती है। जिस मद्यमें योगानुसार द्रव्य न डाले गये हों वह मद्य भी नहीं पीनी चाहिये और कलुषित (गन्धला) मद्य भी नहीं पीनी चाहिये ॥ ६७ ॥

सुराके गुण ।

गुल्मोदरार्शोग्रहणीशोषहृत् स्नेहनी गुरुः ।
सुराऽनिलघ्नी मेदोसृक्स्तन्यमूत्रकफावहा॥६८॥

सुरा (मद्यका भेद)—गुल्मनाशक तथा उदररोग, अर्श और ग्रहणी दोषको हरनेवाली, स्नेहकारक, भारी, वातनाशक, एवं मेद, रक्त, स्तनोंका दूध, मूत्र और कफको बढ़ानेवाली होती है ॥ ६८ ॥

वारुणीके गुण ।

तद्गुणा वारुणी हृद्या लघुतीक्ष्णा निहंति च ।
शूलकासवमिश्वासविबंधाध्मानपीनसान् ६९ ॥

वारुणी मद्य भी उसीके समान गुणवाली, हलकी और तीक्ष्ण होती है तथा शूल, खांसी, वमन, श्वास विबन्ध, आध्मान और पीनसको दूर करती है ॥ ६९ ॥

बिभीतककी सुराके गुण ।

नातितीव्रमदा लघ्वी पथ्या बैभीतकी सुरा।
व्रणे पांड्वामये कुष्ठे न चात्यर्थं विरुध्यते७०॥

बहेड़ोंसे बनायी हुई सुरा किंचित् मदकारक हलकी और पथ्य होती है। यह सुरा व्रणरोगमें, पाण्डुरोगमें और कुष्ठमें भी और मद्योंके समान अधिक हानिकारक नहीं होती ॥ ७० ॥

यवोंकी सुराके गुण ।

विष्टम्भिनी यवसुरा गुर्वी रूक्षा त्रिदोषला७१॥

यवोंसे बनायी हुई सुरा-विष्टम्भकारक, भारी, रूक्ष और त्रिदोषकारक होती है ॥ ७१ ॥

अरिष्टोंके गुण ।

यथाद्रव्यगुणोऽरिष्टः सर्वमद्यगुणाधिकः ॥
ग्रहणीपांडुकुष्ठार्शःशोफशोषोदरज्वरान् ।
हंति गुल्मकृमिप्लीहान् कषायकटुवातलः७२॥

अरिष्ट जैसे द्रव्योंसे बनाया जाता है उन्हीं द्रव्योंके गुणोंके अनुसार गुण करता है और मद्यके सम्पूर्ण गुणोंकरके भी युक्त होता है। अरिष्ट ग्रहणी

रोग, पाण्डु, कुष्ट, अर्श, सूजन, शोष, उदररोग, ज्वर, गुल्म, कृमि और प्लीहारोगको नाश करता है। तथा कषाय और कटु रसवाला होता है, एवं वातकारक होता है ॥ ७२ ॥

मार्द्वीक मद्यके गुण।

मार्द्वीकं लेखनं हृद्यं नात्युष्णं मधुरं सरम्।
अल्पपित्तानिलं पांडुमेहार्शःकृमिनाशनम् ७३॥

अंगूरी शराब–लेखन, हृदयको हितकारी, किंचित् उष्ण, मधुर, दस्तावर, किंचित् पित्त और वातको करनेवाली तथा पाण्डु, प्रमेह, अर्श और कृमि-रोगको नाश करती है ॥ ७३ ॥

खार्जूरी मद्यके गुण।

अस्मादल्पांतरगुणं खार्जूरं वातलं गुरु ॥७४॥

खर्जूरकी मद्य अंगूरोंकी मद्यसे गुणोंमें बहुत कम अन्तरवाली होती है। तथा वातकारक और भारी होती है ॥ ७४ ॥

शार्कर मद्यके गुण।

शार्करः सुरभिः स्वादुहृद्यो नातिमदो लघुः७५

खाण्डके योगसे बनायी हुई मद्य सुगन्धित, स्वादु, हृदयको हितकारी और हलकी होती है। तथा अधिक मदको नहीं करती है ॥ ७५ ॥

गौडी मद्यके गुण।

सृष्टमूत्रशकृद्वातो गौडस्तर्पणदीपनः ॥ ७६ ॥

गुड़के योगसे बनायी हुई मद्य मल, मूत्र और वायुको निकालनेवाली, तर्पण तथा दीपन होती है ॥ ७६ ॥

सीधुके गुण।

वातपित्तकरः सीधुः स्नेहश्लेष्मविकारहा॥
मेदःशोफोदरार्शोघ्नस्तत्र पक्वरसो वरः ॥७७॥

सीधु (गन्नेके रससे बनायी हुई मद्य) वातपित्तकारक, स्नेहविकार और कफके विकारको नाश करती है।

इक्षु रसको पकाकर बनायी हुई सीधु मेदरोग, सूजन, उदररोग और अर्शको नाश करती है। तथा कच्चे रससे बनी हुई सीधुकी अपेक्षा यह श्रेष्ठ होती है ॥ ७७ ॥

मध्वासव।

छेदी मध्वासवस्तीक्ष्णो मेहपीनसकासजित् ७८

मधुसे बनाया हुआ आसव अर्थात् माध्विक-नामक मद्य छेदी, तीक्ष्ण, प्रमेहनाशक, पीनस और खांसीको जीतनेवाली होती है ॥ ७८ ॥

शुक्त (सिरके) के गुण।

रक्तपित्तकफोत्क्लेदि शुक्तं वातानुलोमनम्।
भृशोष्णतीक्ष्णरूक्षाम्लहृद्यं रुचिकरं सरम्॥
दीपनं शिशिरस्पर्शं पांडुदृक्कृमिनाशनम् ७९

शुक्त [सिरका] रक्त, पित्त और कफको क्लेदन करनेवाला, वातको अनुलोमन करनेवाला, अत्यन्त उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, अम्ल, हृदयको प्रिय, रुचिकारक, दस्तावर, दीपन, स्पर्शमें शीत तथा पाण्डुरोग, दृष्टि और कृमियोंको नाश करता है ॥ ७९ ॥

गुड़ शुक्तके गुण।

गुडेक्षुमद्यमार्द्वीकशुक्तं लघु यथोत्तरम्॥
कंदमूलफलाद्यं च तद्वद्विद्यात्तदाऽऽसुतम्॥८०॥

गुड़शुक्तसे इक्षुशुक्त, इक्षुशुक्तसे मद्यशुक्त, मद्य-शुक्तसे द्राक्षाशुक्त क्रमानुसार अधिक हलके होते हे।

सिरकेमें डाले हुए द्रव्योंके गुण।

उस शुक्त [सिरके] में डाले हुए कन्द मूल फल आदिकोंके टुकड़े कुछ कालतक रखनेसे सिरके-के समान खट्टे हो जानेपर सिरकेके समान ही दीपन पाचनादि गुणोंवाले हो जाते है ॥ ८० ॥

शाण्डाकीके गुण।

शांडाकी चासुतं चान्यत्कालाम्लं रोचनं लघु८१

मूली या सलजमके टुकड़ोंको जलमें उबालकर उसमें सोंठ जीरा राई आदि डालकर सन्धान करके जो खट्टा जल हो जाता है उसको शाण्डाकी कहते है। यह शाण्डाकी रुचिकारक और हलकी होती है ॥ ८१ ॥

धान्याम्लके गुण।

धान्याम्लं भेदि तीक्ष्णोष्णं पित्तकृत्स्पर्शशीतलम्।
श्रमक्लमहरं रुच्यं दीपनं बस्तिशूलनुत् ॥
शस्तमास्थापने हृद्यं लघु वातकफापहम् ८२॥

धान्याम्ल [काञ्जी] भेदक, तीक्ष्ण, उष्ण, पित्तकारक, स्पर्शमें शीतल, श्रम, क्लमको हरनेवाली, रुचिकारक, दीपन और बस्तिके शूलको नाश करती है। तथा आस्थापन बस्तिमे हितकारक, हृदयको प्रिय, हलकी और वातकफनाशक होती है ॥८२॥

आठ प्रकारके मूत्र।

मूत्रं गोऽजाविमहिषीगजाश्वोष्ट्रखरोद्भवम् ॥
पित्तलं रूक्षतीक्ष्णोष्णं लवणानुरसं कटु।
कृमिशोफोदरानाहशूलपांडुकफानिलान् ॥
गुल्माऽरुचिविषश्वित्रकुष्ठार्शांसि जयेल्लघु॥८३॥

अब मूत्रोंके गुणोंको कहते हे—गोमूत्र, अजामूत्र, भेड़का मूत्र, भैंसका मूत्र, हस्तिका मूत्र, घोड़ेका मूत्र, ऊंटका मूत्र और खर (गधे) का मूत्र इन आठ मूत्रोंको मूत्राष्टक कहते है। सामान्यतासे मूत्र पित्तकारक, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण, लवणानुरस और कटु होता है। तथा कृमि, सूजन, उदररोग आनाह, शूल, पाण्डुरोग, कफ, वात, गुल्म, अरुचि, विष, श्वित्र, कुष्ठ और अर्शको जीतता है तथा हलका है। इनमे गोमूत्र प्रधान है प्रायः ये सब गुण गोमूत्रमे होते है। इनमें बकरीका मूत्र, श्वास, कास नाशक और कानमे डालनेसे कानसे शूलको दूर करता है। हस्ति और घोड़का मूत्र किलास कुष्ठमे और क्षयमे प्रयोग किया जाता है। खरका मूत्र उन्माद, अपस्मार. कृमि और प्रमेहको नाश करता है॥८३॥

अध्यायका उपसंहार।

तोयक्षीरेक्षुतैलानां वर्गैर्मद्यस्य च क्रमात् ॥
इति द्रवैकदेशोऽयं यथास्थूलमुदाहृतः ॥८४॥

इस अध्यायमें जलवर्ग, दुग्धवर्ग, इक्षुवर्ग, तैलवर्ग, मद्यवर्ग और मूत्रवर्गको क्रमसे द्रवपदार्थोंके उद्देश्यसे यथास्थूल गुणोंको कथन कर दिया है ॥ ८४ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायाम्, वैद्यरत्न-पं. रामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कारवैद्यशिव-शर्मविरचित-शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः।

अथातोऽन्नस्वरूपविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम अन्नोंके स्वरूप (स्वभाव) का विज्ञान करानेवाले अध्यायकी व्याख्या करते है।

शालीधान्योंके गुण।

रक्तो महान् सकलमस्तूर्णकः शकुनाहृतः।
सारामुखो दीर्घशूको रोध्रशूकः सुगंधकः॥१॥
पतंगास्तपनीयाश्च ये चान्ये शालयः शुभाः।
स्वादुपाकरसाः स्निग्धा वृष्या बद्धाल्पवर्चसः॥२॥
कषायानुरसाः पथ्या लघवो मूत्रला हिमाः।
शूकजेषु-
-वरस्तत्र रक्तस्तृष्णात्रिदोषहा ॥ ३ ॥
महांस्तस्यानुकलमस्तं चाप्यनु-
-ततः परे ॥ ४ ॥

सब धान्यों (अन्नों) में शाली चावल आदि चावल पथ्य और सर्वोपयोगी होनेसे प्रधान है इस कारण प्रथम शाली धान्योंके गुण कथन करते है॥

रक्तशाली, महाशाली, कलमशाली, तूर्णक शकुनाहृत, सारामुख, दीर्घशूक, रोध्रशूक, सुगन्धक, पतंगा और तपनीया यह सब शाली चावलोंके धानोंकी जातिये है, इनके अतिरिक्त और भी जो चावलोंकी उत्तम जातियें है वह सब प्रकारके शाली चावल--पाक और रसमें मधुर होते है तथा स्निग्ध, वृष्य,

मलको बांधनेवाले, मलको कम करनेवाले, कषायानु-रस पथ्य, हलके, मूत्र लानेवाले और शीतल होते है । उन रक्तशाली आदि शूक धान्योंमें लाल वर्णके शालीचावल प्यास और त्रिदोषको दूर करनेवाले होनेसे गुणमे सबसे श्रेष्ठ होते है रक्तशालीसे महाशाली, महाशालीसे कलम और कलमशालीसे तूर्णक गुणमे उत्तरोत्तर न्यून होते है । इसी प्रकार तूर्णक चावलोंसे तपनीय तक क्रमसे उत्तरोत्तर किंचित् गुणमें न्यून होते है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

यवकादि धान्योंके गुण ।

यवका हायनाः पांसुबाष्पनैषधकादयः ॥
स्वादूष्णा गुरवःस्निग्धाःपाकेऽम्लाःश्लेष्मपित्तलाः
सृष्टमूत्रपुरीषाश्च पूर्वं पूर्वं च निंदिताः ॥ ५ ॥

इनके अतिरिक्त यवक, हायन, पांसु, बाष्प और नैषध आदि चावल स्वादु, उष्ण, भारी, स्निग्ध, पाकमे अम्ल, कफ पित्तवर्द्धक और मल मूत्रको निकालनेवाले होते हे । इनमें यवकसे हायन श्रेष्ट होते है । हायनसे पांसु, पांसुसे बाष्प, बाष्पसे नैषध आदि चावल क्रमसे उत्तरोत्तर गुणमें श्रेष्ठ होते है ॥ ५ ॥

षष्टिक धान्यके गुण ।

स्निग्धो ग्राही गुरुः स्वादुस्त्रिदोषघ्नः स्थिरो हिमः
षष्टिको व्रीहिषु श्रेष्ठो गौरश्चासितगौरतः ॥ ६ ॥

षष्टिक (सट्ठी)के चावल--स्निग्ध, ग्राही, भारी, रस और पाकमें स्वादु, त्रिदोषनाशक, अवस्थाको स्थिर रखनेवाले और शीतल होते हे । सब प्रकारके व्रीहि धान्योंमे सट्ठी श्रेष्ठ होती है । सट्ठीके चावलोंमें भी कृष्णतायुक्त गौर वर्णके चावलोंसे गौर वर्णके षष्टिक चावल श्रेष्ठ होते है ॥ ६ ॥

महाव्रीहि आदि धान्योंके गुण ।

ततः क्रमान्महाव्रीहिकृष्णव्रीहिजतूमुखाः ।
कुक्कुटांडकपालाख्यपारावतकशूकराः ॥ ७ ॥
वरकोद्दालकोज्ज्वालचीनशारददुर्दराः ।
गंधनाः कुरुविंदाश्च गुणैरल्पान्तराः स्मृताः ॥८॥

महाव्रीहि, कृष्णव्रीहि, जतूमुख, कुक्कुटाण्ड, कपालधान्य, पारावतव्रीहि, शूकरव्रीहि वरक, उद्दालक, उज्ज्वाल, चीनक, शारद, दुर्दर, गंधन और कुरुविन्दन यह सब धान्य क्रमसे षष्टिक चावलोंसे गुणमे न्यून होते है । जैसे षष्टिक चावलोंसे महाव्रीहि और महाव्रीहिसे कृष्णव्रीहि एवं कृष्णव्रीहिसे जतूमुख गुणोंमें न्यून होते है इसी प्रकार उत्तरोत्तर प्रथम धान्यसे दूसरे गुणमें न्यून जानना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

स्वादुरम्लविपाकोऽन्यो व्रीहिः पित्तकरो गुरुः ।
बहुमूत्रपुरीषोष्मा त्रिदोषस्त्वेव पाटलः ॥ ९ ॥

अन्य प्रकारके व्रीहि धान्य—रसमें स्वादु, विपाकमे अम्ल, पित्तकारक, गुरु, मूत्रवर्धक, मलवर्द्धक और ऊष्माको बढ़ाते है और पाटलधान त्रिदोषकारक होते है ॥ ९ ॥

कङ्गुनी आदि क्षुद्र धान्योंके गुण ।

कंगुकोद्रवनीवारश्यामाकादि हिमं लघु ।
तृणधान्यं पवनकृल्लेखनं कफपित्तकृत् ॥ १० ॥
भग्नसंधानकृत्तत्र प्रियंगुर्बृंहणी गुरुः ।
कोरदूषः परं ग्राही स्पर्शशीतो विषापहः ॥११॥

कंगुनी, कोद्रव, नीवार और श्यामाकादि तृणधान्य—शीतल, हलके, रूखे, वातवर्द्धक, लेखन और कफपित्तको हरनेवाले हे । ये तृणधान्योंके सामान्य गुण कहे है । इनमें भी प्रियगु (कंगुनी) भग्नसन्धानकारी (टूटे हुएको जोड़नेवाली) पुष्टिकारक और भारी होती है । तथा कोरदूष (कोद्रव) परम ग्राही (मलको बांधनेवाला), स्पर्शमें शीतल और विषनाशक होता है ॥

ऊपर मूलमें श्यामाकादिसे जलश्यामाक, हस्तिश्यामाक, सन्तनु, वरकादि कुधान्य जानने ॥

सुश्रुतने कंगुनी आदि धान्योंको "वातपित्तप्रकोपनाः" वातपित्तको कुपित करनेवाले लिखा है और यहां शीतल और कफपित्तनाशक लिखा है । इन परस्पर विरोध वाक्योंका तात्पर्य इस प्रकार है कि ये तृणधान्य कटुपाकी और लेखन होनेसे कफ-

युक्त पित्तको शमन करते है। शीतल यहां स्पर्शसे संबन्ध रखता है। हल्के, रूखे और कटुपाकी होनेसे वातयुक्त पित्तको बढ़ाते है। इस प्रकार सुश्रुत और वाग्भटकी कथनप्रणालीसे विषयमें कोई विरोध नहीं है॥ १० । ११ ॥

यवोंके गुण।

रूक्षः शीतो गुरुः स्वादुः सरो विड्वातकृद्यवः।
वृष्यः स्थैर्यकरो मूत्रमेदःपित्तकफान् जयेत्॥१२॥
पीनसश्वासकासोरुस्तंभकंठत्वगामयान्।
न्यूनो यवादन्ययवः–
–रूक्षोष्णो वंशजो यवः ॥ १३ ॥

यव (जौ) रूक्ष है, शीतल है, भारी है, पाकमें मधुर है, विष्ठा और वायुको बढ़ानेवाले है, वृष्य है, शरीरको स्थिर करनेवाले है तथा मूत्र, मेद, पित्त और कफको जीतनेवाले है ॥ एवं पीनस, श्वास, खांसी, ऊरुस्तम्भ, गलेके रोग और त्वचाके रोगोंको नाश करते है॥ विदेशी स्थूलयव गुणोंमें इन यवोंसे न्यून होते है॥

बांसके यवोंके गुण।

बासके यव रूक्ष और उष्ण होते है॥१२॥१३॥

गोधूम (गेहूं) के गुण।

वृष्यः शीतो गुरुः स्निग्धो जीवनो वातपित्तहा।
सन्धानकारी मधुरो गोधूमः स्थैर्यकृत्सरः॥
पथ्या नंदीमुखी शीता कषायमधुरा लघुः १४॥

गोधूम (गेहू)—वीर्यवर्धक, शीतल, गुरु, स्निग्ध, जीवनवर्धक, वातपित्तनाशक, सन्धानकारी (टूटे कटेको जोड़नेवाले) मधुरपाकी, अवस्थाको स्थिर करनेवाले और दस्तावर होते है॥

नन्दीमुखी (लंबी सफेद गेहू)—पथ्य, शीतल, कषायानुरस मधुर पाकवाली और हलकी होती है॥ १४॥

मुद्ग आदि (द्विदल) शिंबी धान्योंके गुण।

मुद्गाढकीमसूरादि शिम्बीधान्यं विबन्धकृत् १५
कषायं स्वादु संग्राहि कटुपाकं हिमं लघु।
मेदःश्लेष्मास्रपित्तेषु हितं लेपोपसेकयोः॥१६॥

मूंग, आढकी (अरहर) और मसूर आदि शिंबी (फलीमेंसे निकले हुए) धान्य-प्रायः विबन्धकारक, कषायरसयुक्त, मधुर, सग्राही, कटुपाकी, शीतल, तथा मेद, कफ और रक्तपित्तमें लेप, सेक एव व्यवहारमें हितकारी होते है। ऊपर आदि शब्दसे चना, मटर, मोठ आदि जानने यह सबके सामान्यसे गुण है॥ १५ ॥ १६ ॥

मुद्गको श्रेष्ठत्व।

वरोऽत्र मुद्गोऽल्पचलः कलायस्त्वतिवातलः।
राजमाषोऽनिलकरो रूक्षो बहुशकृद्गुरुः १७॥

इन शिबी धान्योंमें मूंग सबसे श्रेष्ठ है तथा किंचित् वातकारक है। मटर अधिक वातकारक होते है।

राजमाषके गुण।

राजमाष (लोबिया)—वातकारक, रूखे, मलको बढ़ानेवाले और भारी होते है॥ १७॥

कुलत्थके गुण।

उष्णाः कुलत्थाःपाकेऽम्लाःशुक्राश्मश्वासपीनसान्
कासार्शःकफवातांश्च घ्नन्ति पित्तास्रदाः परम्१८

कुलथी—गर्म, पाकमे अम्ल तथा शुक्र, अश्मरी, श्वास, प्रतिश्याय, कास, अर्श और कफवातको नाश करती है। एव रक्तपित्तको करनेवाली है॥ १८॥

निष्पावके गुण।

निष्पावो वातपित्तास्रस्तन्यमूत्रकरो गुरुः।
सरो विदाही दृक्शुक्रकफशोफविषापहः॥१९॥

निष्पाव–(राजशिबी) वातकारक, रक्तपित्तवर्धक, स्तनोंमें दूध बढ़ानेवाले, मूत्रकारक, गुरु, दस्तावर और विदाही होते है। तथा दृष्टि, वीर्य,कफ,सूजन और विषको नाश करनेवाले होते है॥ १९॥

माष (उड़द) के गुण।

माषः स्निग्धो बलश्लेष्ममलपित्तकरः सरः।
गुरूष्णोऽनिलहा स्वादुः शुक्रवृद्धिविरेककृत् २०

माष--स्निग्ध, बलकारक, कफवर्धक, मलवर्धक, पित्तकारक, दस्तावर, भारी, उष्ण, वातनाशक, मधुर, वीर्यको बढ़ाने और निकालनेवाले होते हैं॥ २०॥

सेमके गुण ।

फलानि माषवद्विद्यात्काकांडोलात्मगुप्तयोः २१

सेमके बीज और कौंचके बीजोंके गुण-माष (उड़द)-के समान जानने ॥ २१ ॥

तिलोंके गुण ।

उष्णस्त्वच्यो हिमः स्पर्शे केश्यो बल्यस्तिलोगुरुः
अल्पमूत्रः कटुः पाके मेधाऽग्निकफपित्तकृत् २२

तिल—उष्णवीर्यवाले, त्वचाको हितकारी, स्पर्शमें शीतल, केशवर्द्धक, बलदायक, भारी, मूत्रको कम करनेवाले, पाकमें कटु, बुद्धिवर्धक, जठराग्निवर्द्धक, कफ और पित्तको बढ़ानेवाले हैं ॥ २२ ॥

अलसीके गुण ।

स्निग्धोमा स्वादुतिक्तोष्णा कफपित्तकरी गुरुः ।
दृक्शुक्रहृत्कटुः पाके—
तद्वद्वीजं कुसुंभजम् ॥ २३ ॥

अलसी—चिकनी, मधुर, तिक्त, उष्णवीर्यवाली, कफपित्तकारक और भारी है, तथा दृष्टि और वीर्यको हरनेवाली एव पाकमे कटु होती है ॥

कुसुम्भेके गुण ।

कुसुम्भेके बीजों (कड़) में भी अलसीके समान ही गुण है ॥ २३ ॥

निकृष्ट शिंबी धान्य ।

माषोऽत्र सर्वेष्ववरो यवकः शूकजेषु च ॥
नवं धान्यमभिष्यंदि लघु संवत्सरोषितम् ।
शीघ्रजन्म तथा सूप्यं निस्तुषं युक्तिभर्जितम्२४

सब प्रकारके शिंबी धान्योंमें माष निषिद्ध होते है। और शूकधान्योंमें यवक निषिद्ध होते है ।

नये पुराने धान्योंमें भेद ।

सब प्रकारके नवीन धान्य अभिष्यन्दी (क्लेद-कारक) होते है । एक वर्षके पुराने होनेपर सब धान्य हलके हो जाते हैं । तथा मुद्गादि जो शीघ्र जन्म जाते हैं वे भी हलके होते हैं । एवं युक्ति-पूर्वक भुन जानेसे सब ही धान्य हलके हो जाते हैं२४

मण्ड पेयादि बनानेकी विधि और मण्डके गुण ।

मण्डपेयाविलेपीनामोदनस्य च लाघवम् ।
यथापूर्वं शिवस्तत्र मण्डो वातानुलोमनः॥२५॥
तृड्ग्लानिदोषशेषघ्नः पाचनो धातुसाम्यकृत् ।
स्रोतोमार्दवकृत्स्वेदी संधुक्षयति चानलम् २६॥

मण्ड, पेया, विलेपी और ओदन ये यथापूर्व क्रमसे लघु (हलके) होते है अर्थात् ओदनसे विलेपी, विलेपीसे पेया और पेयासे मण्ड लघु होता है । इनमें मण्ड-आरोग्यप्रद और वातको अनुलोमन करनेवाला है । तथा प्यास, ग्लानि और लंघन पाचनादिसे शेष रहे दोषोंको नाश करनेवाला है, एव पाचन है, धातुओंको साम्य करनेवाला है, स्रोतोंको मृदु करता है, स्वेदजनक है तथा जठराग्निको चैतन्य करनेवाला है । इनमे तण्डुल अथवा लाजा आधी छटाक लेकर तीन पाव पानीमें पकावे यथार्थ सिद्ध होनेपर छान कर इस जलमें सोंठ, जीरा, सेंधानमक और अनारका रस मिलाकर पीवे इसको मण्ड कहते है । मण्ड पीछेका नाम है । जो लाजाका सिद्ध जल सैंधव, पीपल, धनियाँ, सोंठ और दाड़िमका रस डालकर सिद्ध मण्ड या पेया पी जाती है उनमे दीपन, पाच-नादि विशेष गुण होते है (१) जिसमें लाजा या तण्डुल कण न हों उसको मण्ड कहते है । (२) जिसमें थोडे लाजा या तण्डुलके कणके हों उसको पेया कहते है । (३) जिसमें कण अधिक होनेसे पतली लेइसी बन जावे उसको विलेपी कहते है (४) और चावलोंके भातको ओदन कहते है ॥ २५ ॥ २६ ॥

पेयाके गुण ।

क्षुत्तृष्णाग्लानिदौर्बल्यकुक्षिरोगज्वरापहा ।
मलानुलोमनी पथ्या पेया दीपनपाचनी २७॥

पेया—क्षुधा, प्यास, ग्लानि, दुर्बलता, कुक्षिका आटोप और ज्वरको शमन करती है तथा वातादि दोषों और मल मूत्रको अनुलोमन करती है, पथ्य है एवं दीपन और पाचन है ॥ २७ ॥

विलेपीके गुण।

विलेपी ग्राहिणी हृद्या तृष्णाघ्नी दीपनी हिता।
व्रणाक्षिरोगसंशुद्धदुर्बलस्नेहपायिनाम् ॥ २८ ॥

विलेपी–ग्राही, हृद्य, प्यासनाशक, दीपनी तथा व्रणरोगी, अक्षिरोगी, वमन विरेचनसे शुद्ध देहवाले दुर्बल और स्नेहपान किये हुए मनुष्योंके लिये परम हितकारी होती है ॥ २८ ॥

ओदनके गुण।

सुधौतः प्रसृतः स्विन्नोऽत्यक्तोष्मा चोदनो लघुः।
यश्चाग्नेयौषधक्वाथसाधितो भृष्टतंडुलः ॥ २९ ॥
विपरीतो गुरुः क्षीरमांसाद्यैर्यश्च साधितः।
इति द्रव्यक्रियायोगमानाद्यैः सर्वमादिशेत्३०

अच्छे चावलोंको पानीसे भली प्रकार धोकर पात्रमें डाल अग्निपर सिद्ध करे जब चावल पक जावें तो उनके अन्दरका पानी निचोड़कर उसकी तेज ऊष्मा निकल जानेपर जो खाने योग्य ऊष्मायुक्त भात होता है उसको ओदन कहते है। यह ओदन शुण्ठी आदि अग्निवर्धक द्रव्यके क्वाथमें बना जाय अथवा भुने हुए चावलोंसे बनाया जाय तो जल्दी पच जानेवाला और हलका होता है। इससे विपरीत जो दूध अथवा मांसरसादि डालकर सिद्ध किया हुआ भात होता है वह पाकमें भारी होता है।

इस प्रकार द्रव्य क्रियाके योगसे और मान आदिसे सब द्रव्योंके निर्माणकी प्रक्रिया और लघु गुरु आदि गुणोंकी कल्पना कर लेनी चाहिये। जैसे शाली चावलोंमें रक्तशाली लघु और यावकादि गुरु होते है। यह द्रव्यज्ञानसे जानना। जैसे जलयुक्त गरम किया हुआ दूध लघु और उसी दूधका खोया बनाया हुआ गुरु हो जाता है। यह क्रियासे जानना। जैसे जलके योगसे बनाया हुआ भृष्ट तण्डुलोंका भात हलका होता है और क्षीर मांसरसादिमें बनाया हुआ गुरु होजाता है। यह योगसे जानना। ऐसे ही मान आदिसे लघु गुरु आदि सब प्रकारका विचार कर लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त कोई द्रव्य क्रियासे विरुद्ध होजाते है, जैसे मकोयके शाकको एरण्डकी लकड़ीसे बनाना क्रियाविरुद्ध होता है। दूध और मूली अथवा नमक और दूध अथवा खट्टी वस्तु और दूध आदि योग विरुद्ध हो जाते है। ऐसे ही मधु और घृत मानमें सम होनेसे विरुद्ध होजाते हैं। इस प्रकार आगे जो कहेंगे और इस समय जो दिग्दर्शन मात्र कह दिया है। इससे सब प्रकारकी कल्पना कर लेनी चाहिये २९।३०।

मांस रसके गुण।

बृंहणः प्रीणनो वृष्यश्चक्षुष्यो व्रणहा रसः।
मौद्गस्तु पथ्यः संशुद्धव्रणकंठाक्षिरोगिणाम्३१

मांस रस-शरीरको पुष्ट करनेवाला, तृप्तिकारक, वीर्यवर्धक, नेत्रोंको हितकारी और व्रणोंको नाश करनेवाला होता है।

मुद्गयूषके गुण।

मूंगका यूष–शुद्धकाय मनुष्यको अर्थात् रेचनादिसे शुद्ध होने पर पथ्य है तथा व्रणरोगवालेको, कण्ठरोगवालेको और नेत्ररोगीको हितकारी है। मूंगके यूषको बनानेके अनेक प्रकार है, जिस रोगमें मूंगका यूष देना हो उसमें उसीके अनुसार सोंठ, धनियाँ, आमलक आदि द्रव्योंके योगसे बनाना चाहिये। और देश दूष्य दोषादि विचार कर औषधिके योगसे सिद्ध किया हुआ मूंगका यूष सबके लिये परम हितकारी होता है॥ ३१॥

कुलथीके यूषके गुण।

वातानुलोमी कौलत्थो गुल्मतूनिप्रतूनिजित्।
तिलपिण्याकविकृतिः शुष्कशाकं विरूढकम् ॥
शांडाकीवटकं दृग्घ्नं दोषलं ग्लपनं गुरु ॥३२॥

कुलथीका यूष–वायुको अनुलोमन करनेवाला तथा गुल्म, तूनीरोग और प्रतितूनी रोगको जीतनेवाला होता है।

तिलकुटके गुण।

तिलकुट और तिलोंकी खली मूलीको छोड़कर सब तरहके सूखे शाक, विरूढ़ धान्य और काञ्जीके बड़े ये सब दृष्टिको हनन करनेवाले, त्रिदोषकारक, ग्लानिके करनेवाले और पाकमें भारी होते है ॥ ३२ ॥

रसालाके गुण ।

रसाला बृंहणी वृष्या स्निग्धा बल्या रुचिप्रदा ३३

दहीमे खाण्ड और कालीमिर्च, जीरा, इलायची, आदि मिलाकर रसाला बनती है । रसाला शरीरको पुष्ट करनेवाली, वीर्यवर्धक, चिकनी, बलकारक और रुचिकारक होती है ॥ ३३ ॥

पानकके गुण ।

श्रमक्षुत्तृट्क्लमहरं पानकं प्रीणनं गुरु ।
विष्टंभि मूत्रलं हृद्यं यथाद्रव्यगुणं च तत्॥३४॥

पानक–थकावट, भूख, प्यास, और क्लमको शमन करनेवाला होता है । तथा प्रीणन, भारी, विष्टम्भि, मूत्रल, हृदयको हितकारी और जैसे द्रव्यसे बनाया जाय वैसे गुण करनेवाला होता है । पानक जल मिश्री आदि अथवा द्राक्षा, फालसा आदि पदार्थोंसे बनाया हुआ पीने योग्य पतला पदार्थ पानक कहा जाता है । अनार बादामके शरबत आदि भी पानकके ही भेद है ॥ ३४ ॥

लाजाके गुण ।

लाजास्तृट्छर्द्यतीसारमेहमेदःकफच्छिदः ।
कासपित्तोपशमना दीपना लघवो हिमाः॥३५॥

लाजा [धानकी खीलें]–प्यास, छर्दि, अतिसार, प्रमेह, मेद और कफका नाश करती है । तथा खांसी और पित्तको शमन करती है, एव दीपन, हलकी और शीतल है ॥ ३५ ॥

चिड़वेके गुण ।

पृथुका गुरवो बल्याः कफविष्टम्भकारिणः ३६॥

पृथुक [चिड़वे]–भारी, बलकारक, कफ और विष्टम्भको करनेवाले होते हैं ॥ ३६ ॥

धाणियोंके गुण ।

धाना विष्टंभिनी रूक्षा तर्पणी लेखनी गुरुः३७॥

धाना गेहूँ [या यव भूनकर गुड़मिश्रिता धाणिये]–रूक्ष, तृप्तिकारक, लेखनी और भारी होती है ॥३७॥

सत्तुओंके गुण ।

सक्तवो लघवः क्षुत्तृट्श्रमनेत्रामयव्रणान्[१] ।
घ्नंति संतर्पणाः पानात्सद्य एव बलप्रदाः ॥
नोदकांतरिता न द्विर्न निशायां न केवलान् ।
न भुक्त्वा न द्विजैश्छित्त्वा सक्तूनद्यान्न वा बहून्

सक्तु [सत्तू]–हलके तथा क्षुधा, प्यास, श्रम, नेत्ररोग और व्रणोंको हरते हे । मीठा और जल मिलाकर पीनेसे तृप्तिकारक और बलप्रद होते है ॥

सत्तुओंको खाते समय बीचमें जल नहीं पीना चाहिये, एक दिनमें दो वार सत्तू नहीं खाने चाहिये, रात्रिको भी सत्तू नहीं खाना चाहिये, जल, मीठा आदि विना मिलाये केवल सूखा सत्तू भी नहीं खाना चाहिये, भोजनके अनन्तर भी सत्तू नहीं खाना चाहिये, सत्तुओंका पिण्ड बनाकर दांतोंसे काटकर नहीं खाना चाहिये और सत्तुओंको अधिक मात्रामे भी नहीं खाना चाहिये ॥ ३८ ॥

तिलोंकी खलके गुण ।

पिण्याको ग्लपनो रूक्षो विष्टंभी दृष्टिदूषणः ।
वेसवारो गुरुः स्निग्धो बलोपचयवर्धनः ॥३९॥

तिलोंकी खल–रूक्ष, विष्टम्भकारी और दृष्टिको दूषित करनेवाली होती है ।

बेसवारके गुण ।

बेसवार–भारी, स्निग्ध बलवर्धक और शरीरको पुष्ट करनेवाला होता है । सोंठ, धनियां, जीरा, हींग और घृतादि मिलाकर संस्कार किये हुए कुट्टित मांसको बेसवार कहते है ॥ ३९ ॥

मूंगे आदिसे बना बेसवार ।

मुद्गादिजास्तु गुरवो यथाद्रव्यगुणानुगाः ॥४०॥

मूंग आदिसे बनाया हुआ बेसवार–भारी तथा जिस द्रव्यसे बनाया गया हो उसीके समान गुणोंवाला होता है । यहांपर मूँग चणकादिकी पिष्टीसे

१ 'नेत्रमलश्रमयान्' इति पाठांतरम् ।

घृतमें पकाकर बनायी हुई पूपालिका आदि दाड़िम, जीरक, लवणादिसे युक्त पदार्थ अथवा घृत शर्कराके योगसे बनाये हुए मुद्गादि पिष्टीके भक्ष्य पदार्थ लेने चाहिये ॥ ४० ॥

कुकूलकर्परभ्राष्ट्रकंदंगारविपाचितान् ।
एकयोनींल्लघून्विद्यादपूपानुत्तरोत्तरम् ॥ ४१ ॥

किसी गोधूम आदि एक द्रव्यसे बनायी हुई रोटी आदि कुकूलक [गोमयाग्नि] खर्पर [अग्निपर तपाया हुआ लोहकपाल] भट्ठी, कन्दुक [तन्दूराकृति भट्ठी] और कोयलेकी अग्नि, इनमें किसी एकपर पकानेसे उत्तरोत्तर हलके होते है । यहांपर मूलमें अपूपशब्द फुलका और रोटीका वाचक है ॥ ४१॥

अब मांसवर्ग कहते हैं ।

मृगोंकी जाति ।

हरिणैणकुरंगर्क्षगोकर्णमृगमातृकाः ।
शशशंबरचारुष्कशरभाद्या मृगाः स्मृताः४२॥

हरिण [ताम्र मृग], एण [कृष्ण मृग], कुरङ्ग [कखड़], ऋक्ष [चित्र मृग] गोकर्ण [बृहन्मृग], मृगमात्रिका [लघु पृथूदरा मृगजाति], शशा [खरगोश], साभर [बारहसिंगा], चारुष्क और सरभ आदि मृग कहे जाते है ॥ ४२ ॥

विष्किर पक्षी ।

लाववर्त्तीकवार्तीररक्तवर्त्मककुक्कुभाः ।
कपिंजलोपचक्राख्यचकोरकुरुबाहवः ॥
वर्तको वर्तिका चैव तित्तिरिः क्रकरः शिखी ।
ताम्रचूडाख्यबकरगोनर्दगिरिवर्तिकाः ॥
तथा शारपदेंद्राभवारटाश्चेति विष्किराः ॥४४॥

लवा, बटेर, वार्तीर, रक्तवर्त्मक, कुक्कुभ, कपिञ्जल, उपचक्र, चकोर, कुरुबाहु, वर्तक, वर्तिका, तित्तिरी, क्रकर, मोर, मुर्गा, बकर, गोनर्द, गिरिवर्तिका, सारपद, इन्द्राभ, बारट; ये सब पक्षिविशेष विष्किर कहे जाते है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

प्रतुद पक्षी ।

जीवंजीवकदात्यूहभृंगाह्वशुकसारिकाः ।
लट्वाकोकिलहारीतकपोतचटकादयः ॥
प्रतुदा भेकगोदाहिश्वाविदाद्या बिलेशयाः ॥

जीवंजीवक, दात्यूह, भृंगराज, शुक, सारिका, लट्वा, कोयल, हरियल, कबूतर और चटक आदि पक्षी प्रतुद कहे जाते है ।

बिलेशय ।

मेढक, गोह, सांप और सेह आदि बिलेशय कहे जाते है ॥ ४५ ॥

प्रसह जीव ।

गोखराश्वतरोष्ट्राश्वद्वीपिसिंहर्क्षवानराः ॥ ४६ ॥
मार्जारमूषिकव्याघ्रवृकबभ्रुतरक्षवः ।
लोपाकजंबुकश्येनचाषवांतादवायसाः ॥ ४७ ॥
शशघ्नीभासकुररगृध्रोलूककुलिंगकाः ।
धूमिका मधुहा चेति प्रसहा मृगपक्षिणः ॥४८॥

गौ, खर, खच्चर, ऊँट, घोड़ा, शेर, हाथी, रीछ, वानर, बिलाव, मूषक, व्याघ्र, भेड़िया, बभ्रु, तरक्षु, लोमड़ी, शृगाल, बाज, चाष, कुत्ता, काक, शशघ्नी, भास, कुरर, गृध्र, उलूक, कुलिङ्ग, धूमिका, मधुहा ये सब मृग और पक्षी प्रसह कहे जाते है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

महामृग ।

वराहमहिषन्यंकुरुरुरोहितवारणाः ।
सृमरश्चमरः खड्गो गवयश्च महामृगाः ॥४९॥

वराह, महिष, न्यकु, रुरु, रोहित, हाथी, सृमर, चमर, गैंड़ा, गवय; इनको महामृग कहते है । यहां महिषशब्दसे जंगली भैंसा जानना ॥ ४९ ॥

जलचर ।

हंससारसकादंबबककारंडवप्लवाः ।
बलाकोत्क्रोशचक्राह्वमद्गुक्रौंचादयोऽप्चराः ॥

हंस, सारस, कादम्ब, बक, कारण्ड, प्लव, बलाका, उत्क्रोश, चक्राह्व, मद्गु और क्रौंच आदि पक्षी अप्चर कहे जाते है ॥ ५० ॥

जलजन्तु ।

मत्स्या रोहितपाठीनकूर्मकुंभीरकर्कटाः ।
शुक्तिशंखोद्रशंबूकशफरीवर्मिचंद्रिकाः ॥५१ ॥

चुलूकीनक्रमकरशिशुमारतिमिंगिलाः । राजीचिलिचिमाद्याश्च-
-मांसमित्याहुरष्टधा ॥९२॥

रोहितक, पाठीन,कूर्म, कुम्भीर, कर्कट, शुक्ति,शंख, उडू, शम्बूक, शफरी, वर्मी, चन्द्रिका, चुलूकी, नक्र, मकर, शिशुमार, तिमिङ्गिल, राजी और चिलचिम आदि जलजजन्तु मत्स्य कहे जाते है।

आठ प्रकारके मांस।

इस प्रकार मांस आठ प्रकारकी श्रेणियोमे विभक्त है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

"मृग्यं वैष्किरकं तत्र प्रतुदं च बिलेशयम् । प्रसहं च महामृग्यमपचरं मात्स्यमष्टधा ॥९३॥"

मृग्य, विष्किर, प्रतुद,बिलेशय,प्रसह, महामृग,अप्चर और मत्स्य; इस प्रकार इन जीवोंकी आठ श्रेणियें है ॥ ९३ ॥

योनिष्वजावी व्यामिश्रगोचरत्वादनिश्चिते । आद्यांत्या जांगलानूपा मध्यौ साधारणौ स्मृतौ॥

इन आठ प्रकारकी मांसकी श्रेणियोंमें बकरी और भेड़ जांगल देशमें भी होती हे और आनूप देशमें भी होती हे। इसलिये यह निश्चय नहीं हो सकता कि इनको जांगल या आनूप इनमें कौन सा कहा जाय, क्योंकि इनके मिश्रित लक्षण है।

जांगल जीव।

इन सबमें मृग, विष्किर और प्रतुद, यह तीन प्रकारके जीव जांगल कहे जाते है।

आनूप जीव।

महामृग, अप्चर और मत्स्य यह तीन प्रकारके जन्तु आनूप कहे जाते है।

साधारण जीव।

बिलेशय और प्रसह साधारण कहे जाते है ॥

(१) इधर उधर ढूंढकर खानेवाले मृग कहे जाते है।

(२) पावोंसे बिखेरकर खानेवाले विष्किर होते हैं।

(३) चोंचसे चुभोकर खानेवाले होनेसे प्रतुद कहे जाते है।

(४) बिलोंमे रहनेवाले होनेसे बिलेशय कहे जाते हे।

(५) बलपूर्वक छीनकर खानेवाले होनेसे प्रसह कहे जाते हे।

(६) मृगोमें महान् होनेके कारण महामृग कहे जाते है।

(७) जलमेंसे चारा लेकर खानेवाले होनेसे अप्चर कहे जाते है।

(८) जलके अभ्यन्तर निवास करनेवाले होनेके कारण मत्स्य कहे जाते है ॥ ९४ ॥

जांगल जीवोंके मांसोंके गुण।

तत्र बद्धमलाः शीता लघवो जांगला हिताः । पित्तोत्तरे वातमध्ये सन्निपाते कफानुगे ॥९५॥

इन मांसोंमे जांगल जीवोंका मांस-मलको बाँधनेवाला, शीतल और हलका होता है तथा पित्ताधिक्य, वातमध्य, हीनकफ सन्निपातमें हितकारक होता है ॥ ९५ ॥

शशेके मांसका गुण।

दीपनः कटुकः पाके ग्राही रूक्षो हिमः शशः९६

शशेका मांस-दीपन, पाकमें कटु, रूक्ष और शीतल होता है ॥ ९६ ॥

बटेरका गुण ।

ईषदुष्णा गुरुस्निग्धा बृंहणा वर्तकादयः । तित्तिरिस्तेष्वापि वरो मेधाग्निबलशुक्रकृत् । ग्राही वर्ण्योऽनिलोद्रिक्तसन्निपातहरः परम् ९७

वर्त्तक (बटेर)से लेकर जितने जांगल जीव हैं सब गुरुपाकी, स्निग्ध और शरीरको पुष्ट करनेवाले होते है।

तीतरके मांसका गुण।

इन सबमें तीतर श्रेष्ठ होता है तथा मेधा, जठराग्नि बल और वीर्यको बढाता है. एवं ग्राही. वर्ण

कारक, वायुको निकालनेवाला और सन्निपातको हरने-वालोंमें श्रेष्ठ है ॥ ५७ ॥

मोरका गुण ।

नातिपथ्यः शिखी पथ्यः श्रोत्रस्वरवयोदृशाम् । तद्वच्च कुक्कुटो वृष्यः–

–ग्राम्यस्तु श्लेष्मलो गुरुः॥५८॥

शिखी (मोर) का मांस यद्यपि सब प्रकारसे ही पथ्य नहीं होता परन्तु श्रवणशक्तिको बढ़ानेमें, स्वर बढ़ानेमें, अवस्था स्थिर रखनेमें और नेत्रज्योति ठीक रखनेमें हितकारी होता है ।

मुर्गेके गुण ।

मोरके समान ही कुक्कुट (मुर्गे) के गुण हैं और यह वीर्यपुष्ट करनेवाला भी होता है। यह जंगली मुर्गेके गुण हैं ॥

ग्राममें रहनेवाला मुर्गा--कफकारक और गुरुपाकी होता है ॥ ५८ ॥

क्रकर और उपचक्रके गुण ।

मेधाऽनलकरा हृद्याः क्रकराः सोपचक्रकाः । गुरुः सलवणः काणकपोतः सर्वदोषकृत्॥५९॥

क्रकर और उपचक्रका मांस मेधाजनक, अग्नि-वर्धक और हृदयको हितकारी होता है ।

काण कपोतके गुण ।

काण कपोतका मांस गुरुपाकी, लवण रस युक्त और त्रिदोषकारक होता है ॥ ५९ ॥

चटकके गुण ।

चटकाः श्लेष्मलाः स्निग्धा वातघ्नाः शुक्रलाः परम्।

चटक [घरका चिड़ा] का मांसः—कफ-वर्धक, चिकना, वातनाशक तथा अत्यन्त वीर्य-वर्धक है ॥ ६० ॥

बिलेशयादि वर्गोंके गुण ।

गुरूष्णस्निग्धमधुरा वर्गाश्चातो यथोत्तरम् ॥ मूत्रशुक्रकृतो बल्या वातघ्नाः कफपित्तलाः। शीता महामृगास्तेषु क्रव्यादाः प्रसहाः पुनः६१

इसके आगे बिलेशय आदि वर्ग यथाक्रम उत्त-रोत्तर गुरुपाकी, उष्ण, स्निग्ध, मधुर, मूत्र और शुक्रके बढ़ानेवाले, बलकारक, वातनाशक, कफ और पित्तके बढ़ानेवाले होते हैं वराह आदि महामृग शीतवीर्य होते हैं ॥ ६१ ॥

हिंसकोंके मांसके गुण ।

लवणानुरसाः पाके कटुका मांसवर्धनाः । जीर्णार्शोग्रहणीदोषशोषार्तानां परं हिताः ६२॥

बलपूर्वक मांस खानेवाले मार्जार, गृध्रादिक प्रसह जन्तु-लवणानुरस, पाकमें कटु, मांसके बढ़ा-नेवाले तथा भस्मक, अर्श, ग्रहणीरोग और शोषसे पीड़ित मनुष्योंको परम हितकारी होते है ॥ ६२ ॥

बकरेके मांसके गुण ।

नातिशीतं गुरु स्निग्धं मांसमाजमदोषलम् । शरीरधातुसामान्यादनभिष्यंदि बृंहणम् ॥६३॥

बकरेका मांसः— किंचित् शीतवीर्य, भारी, स्निग्ध, दोषोंके प्रकोपको न करनेवाला तथा शरी-रकी धातुओंके साम्यगुण होनेके कारण क्लेदको नहीं करता और शरीरको पुष्ट करनेवाला होता है६३

भेड़के मांसके गुण ।

विपरीतमतो ज्ञेयमाविकं बृंहणं तु तत् । शुष्ककासश्रमाऽत्याग्निविषमज्वरपीनसान्॥६४॥

भेड़का मांसः—अत्यन्त गरम, दोष प्रकोपकारक, स्निग्ध, गुरु और भारी होता है तथा सूखी खांसी, श्रम, तीक्ष्णाग्नि (भस्मक) विषमज्वर और पीन-सको दूर करता है॥ ६४ ॥

महिषके मांसके गुण ।

कार्श्यं केवलवातांश्च गोमांसं संनियच्छति । उष्णो गरीयान्महिषः स्वप्नदार्ढ्यबृहत्त्वकृत् ६५

महिष—उष्ण, गुरुपाकी, निद्रावर्धक, दृढता-कारक और शरीर पुष्ट करनेवाला होता है ॥६५॥

वराहके मांसके गुण ।

तद्वद्वराहः श्रमहा रुचिशुक्रबलप्रदः । मत्स्याः परं कफकराः–

–चिलिचीमस्त्रिदोषकृत् ॥६६॥

वराहका मांस—उष्ण, निद्राजनक, दृढता और पुष्टिकारक, रुचिवर्धक, वीर्यवर्धक और बलकारक होता है ।

मत्स्यमांसके गुण ।

मत्स्यका मांस—अत्यन्त कफवर्धक और चिकना होता है, " पित्तकारक एवं वातनाशक होता है ।" परन्तु चिलचिम नामक मछलीका मांसः-त्रिदोष-कारक होता है ।। ६६ ।।

विष्किरमांसके गुण ।

लावरोहितगोधेणाः स्वे स्वे वर्गे वराः परम् ।

विष्किर जीवोंमें लाव (लवा) का मांस सबसे श्रेष्ठ होता है ।

रोहितमांसके गुण ।

मछलियोंमें रोहित मछलीका मांस सबसे श्रेष्ठ होता है ।

इनमें विशेषता ।

बिलेशयोंमें गोधा और मृगोंमें एण सबसे अपने वर्गमें श्रेष्ठ होते है—

सेवन योग्य मांस ।

मांसं सद्योहतं शुद्धं वयःस्थं च भजेत्—

मांस तत्काल काटा हुआ रोगरहित, शुद्ध और युवावस्थावाले जन्तुका सेवन करने योग्य श्रेष्ठ होता है ॥—

त्याज्य मांस ।

—त्यजेत् ॥६७॥

मृतं कृशं भृशं मेद्यं व्याधिवारिविषैर्हतम् ।

मृतजन्तु, अत्यन्त कृशजन्तु, अत्यन्त मेदयुक्त जन्तु तथा किसी व्याधि, जल या विष आदिसे हत हुए जन्तुका मांस नहीं खाना चाहिये ॥६७॥—

अंग विशेषसे मांस गुण ।

पुंस्त्रियोः पूर्वपश्चार्धे गुरुणी गर्भिणी गुरुः॥६८॥
लघुर्योषिच्चतुष्पात्सु विहंगेषु पुनः पुमान् ।
शिरःस्कंधोरुपृष्ठस्य कट्याः सक्थ्नोश्च गौरवम्।
तथामपक्वाशययोर्यथापूर्वं विनिर्दिशेत् ।
शोणितप्रभृतीनां च धातूनामुत्तरोत्तरम् ।
मांसाद्गरीयो वृषणमेढ्रवृक्कयकृद्गुदम् ॥७०॥

पुरुष जीवका अग्रभाग और स्त्रीजाति जीवका पिछला भाग गुरु अर्थात् पाकमें भारी होता है, गर्भ-वाला जीव भी गुरुपाकी होता है, चतुष्पाद जीवोंमें स्त्रीजाति हलकी होती है और पक्षियोंमें पुरुष जाति हलकी होती है ।

शिर, स्कन्ध, छाती, पीठ, कमर और सक्थियें उत्तरोत्तर भारी होती हे तथा आमाशय और पक्वाशयमें आमाशय विशेष भारी होता है ।

रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे मज्जा, मज्जासे शुक्र उत्तरोत्तर भारी होते है ।

मासमें भी बकरादि जन्तुओंमें मांससे वृषण, वृषणसे मेढ्र, मेढ्रसे यकृत्, यकृत्से गुद विशेष गरिष्ठ होते है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

शाकवर्ग ।

शाकं पाठासठीपूषासुनिषण्णसतीनजम् ।
त्रिदोषघ्नं लघु ग्राहि सराजक्षववास्तुकम्॥७१॥
सुनिषण्णोऽग्निकृद्वृष्यस्तेषु—
—राजक्षवः परम् ॥
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नः—
—वर्चोभेदि तु वास्तुकम् ॥ ७२ ॥

अब शाकवर्ग कहते हैं:—

पाठा [अम्बष्ठा] सठी [पुनर्नवा] पूषा [छोटे पत्रकी चौलाई] सुनिषण्ण [स्वस्तिकशाक] सती-नज [लाल चौलाई] राजक्षव [राजशाक] वास्तुक [छोटा बथुआ] ये सब शाक त्रिदोषनाशक, हलके और ग्राही होते है ।

सुनिषण्णके गुण ।

इनमें सुनिषण्ण-अग्निवर्धक और वृष्य होता है ।

राजशाकके गुण ।

राजशाक-ग्रहणी और अर्शके विकारको नाश करनेवाला होता है ।

बाथूशाकके गुण।

बथुएका शाक–मलको भेदन करनेवाला होता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

काकमाची (मकोय) के गुण।

हंति दोषत्रयं कुष्ठं वृष्या सोष्णा रसायनम् ॥
काकमाची सरा स्वर्या–
–चांगेर्यम्लाऽग्निदीपनी।
ग्रहण्यर्शोऽनिलश्लेष्महितोष्णाग्राहिणी लघुः ७४

काकमाची [मकोय] का शाक–त्रिदोषनाशक, कुष्ठको हरनेवाला, वीर्यवर्धक, किंचित उष्ण, रसायन, सारक और स्वरको उत्तम बनानेवाला होता है।

चांगेरी शाकके गुण।

चांगेरीका शाक–अम्ल, अग्निदीपक, ग्रहणी, अर्श, वातविकार और कफके रोगोंमें हितकारी होता है, एवं उष्ण, ग्राही और हलका होता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

पटोलादि शाकोंके गुण।

पटोलं सप्तलारिष्टशार्ङ्गेष्टावल्गुजामृताः।
वेत्राग्रं बृहती वासा कुंतली तिलपर्णिका ॥७५॥
मंडूकपर्णी कर्कोटकारवेलकपर्पटाः।
नाडीकलायं गोजिह्वा वार्ताकं वनतिक्तकम् ॥
करीरं कुलकं नंदी कुचेला शकुलादनी।
कठिल्लं केम्बुकं शीतं सकोशातककर्कशम् ॥
तिक्तं पाके कटु ग्राहि वातलं कफपित्तजित् ॥

पटोल, सप्तला, नीमकी कोपलें, शार्ङ्गेष्टा, बावची, गिलोय, वेंतकी कोंपल, बड़ी कटेलीके फल, बांसा, कुन्तलशाक, तिलपर्णी, मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी), ककौड़ा, करेला, पर्पट, नाड़ीशाक, मटर, गोभी, वृन्ताक, वत्सक, करीर, कुलक, नन्दीशाक, पाटाशाक, कच्चटशाक, बड़े पत्रकी पुनर्नवा, केम्बुक शाक, काली तोरी और कचनार ये पटोल आदि सब शाक–शीतल, तिक्त, पाकमें कटु, ग्राही, वातकारक और कफ पित्तको जीतनेवाले होते हैं ॥ ७५॥७६॥७७ ॥

पटोलके गुण।

हृद्यं पटोलं कृमिनुत्स्वादुपाकं रुचिप्रदम्।
पित्तलं दीपनं भेदि वातघ्नं बृहतीद्वयम् ॥७८॥

इनमें पटोल–हृद्य, कृमिनाशक स्वादुपाकी और रुचिकारक होता है ॥

दोनों प्रकारकी कटेलियोंके गुण।

दोनों प्रकारकी कटेलीके फलोंका शाक–पित्तकारक, दीपन, भेदी और वातनाशक होता है॥ ७८॥

बांसा शाकके गुण।

वृषं तु वमिकासघ्नं रक्तपित्तहरं परम्।
कारवेल्लं सकटुकं दीपनं कफजित्परम् ॥ ७९ ॥

बांसेका शाक–वमन और खांसीको हरनेवाला है, विशेष कर रक्त पित्तका नाश करता है ॥

करेलेके गुण।

करेलेका शाक–कुछ कड़वा, दीपन और विशेष कर कफको जीतनेवाला होता है ॥ ७९ ॥

वृन्ताक (बैंगन) शाकके गुण।

वार्ताकं कटुतिक्तोष्णं मधुरं कफवातजित्।
सक्षारमग्निजननं हृद्यं रुच्यमपित्तलम् ॥८०॥

वृन्ताक (बैंगन) का शाक–रसमें कटु, तिक्त, ऊष्णवीर्य, मधुर, कफ-वातको जीतनेवाला, किंचित क्षारयुक्त, अग्निवर्धक, हृद्य, रुचिकारक और पित्तको नाश करनेवाला होता है ॥ ८० ॥

करीर शाकके गुण।

करीरमाध्मानकरं कषायस्वादुतिक्तकम्।
कोशातकावल्गुजकौ भेदनावग्निदीपनौ ॥८१॥

करीरका शाक–अफारेको करनेवाला, कसैला, स्वादु और तिक्त होता है।

काली तोरई और बावची शाकके गुण।

काली तोरईका शाक और बावचीका शाक–दस्तावर और अग्निदीपक होते है ॥ ८१ ॥

चौलाई शाकके गुण।

तंडुलीयो हिमो रूक्षः स्वादुपाकरसो लघुः।
मदपित्तविषास्रघ्नः–

मुंजातं वातपित्तजित् ॥ ८२ ॥
स्निग्धं शीतं गुरु स्वादु बृंहणं शुक्रकृत्परम्॥८३॥

चौलाईका शाक–शीतल, रूक्ष, रस और पाकमें मधुर तथा हलका होता है, एवं मदनाशक, पित्तनाशक, विषविकार और रक्तविकारको नाश करनेवाला होता है।

मुञ्जातक शाकके गुण।

मुञ्जातक कन्दका शाक–वात–पित्तनाशक, स्निग्ध, शीत, गरिष्ठ, स्वादु, बृंहण और विशेषरूपसे वीर्यवर्धक होता है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

पालकके गुण।

गुर्वी सरा तु पालक्या–
–मदघ्नी चाप्युपोदका।
पालक्यावत्स्मृतश्चंचुः स तु संग्रहणात्मकः॥८४॥

पालकका शाक–भारी और दस्तावर होता है।

उपोदिका (पोई) के गुण।

पोईका शाक–मदनाशक होता है।

चञ्चुशाकके गुण।

चञ्चुशाक–सारक और मलको बांधनेवाला होता है ॥ ८४ ॥

विदारीके गुण।

विदारी वातपित्तघ्ना मूत्रला स्वादुशीतला।
जीवनी बृंहिणी कंठ्या गुर्वी वृष्या रसायनम्॥

विदारी–वात–पित्तनाशक, मूत्रको लानेवाली, मधुर, शीतल, जीवनप्रद, बृहणकर्त्री, कण्ठके लिये हितकारी, गुरुपाकी, वृष्य और रसायन होती है। किसी पुस्तकमें गुर्वीकी जगह 'बल्या' पाठ है, वहांपर बलकारक अर्थ करना चाहिये ॥ ८५ ॥

जीवन्तीके गुण।

चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवंती मधुरा हिमा ॥८६॥

जीवन्तीका शाक नेत्रोंको हितकारी, त्रिदोषनाशक, मधुर और शीतल होता है ॥ ८६ ॥

कूष्माण्डादिके गुण।

कूष्मांडतुंबकालिंगकर्कार्वेर्वारुतिंडिशम् ॥
तथा त्रपुसचीनाकचिर्भटं कफवातकृत्।
भेदि विष्टंभ्याभिष्यंदि स्वादुपाकरसं गुरु ॥८७॥

कूष्माण्ड [पेठा], तुम्ब [घीया और तुम्बा], कालिंग [तरबूज], कर्कारु [काशीफल और कद्दू तोरई], एर्वारु [ककड़ी], तिण्डिश [टिण्डे], त्रपुस [खीरा], चीनाक [चीना ककड़ी], चिर्भट [चीभड़] ये सब फलशाक कफवातकारक, भेदी, विष्टम्भी, क्लेदकारक, पाक और रसमे मधुर और गुरुपाकी होते है ॥ ८७ ॥

कूष्माण्डके विशेष गुण।

वल्लीफलानां प्रवरं कूष्माण्डं वातपित्तजित्।
बस्तिशुद्धिकरं वृष्यम्–
त्रपुसं त्वतिमूत्रलम् ॥ ८८ ॥

लताके फलोंमे कूष्माण्ड [पेठा]–सबमें श्रेष्ठ होता है तथा वातपित्तको जीतनेवाला, बस्तिको शुद्ध करनेवाला और वृष्य होता है।

त्रपुस (खीरा) के गुण।

त्रपुस [खीरा]–विशेष मूत्रके लानेवाला होता है ॥ ८८ ॥

तुम्बफलके गुण।

तुंबं रूक्षतरं ग्राहि कालिंगैर्वारुचिर्भटम्।
बालं पित्तहरं शीतं विद्यात्पक्वमतोऽन्यथा ८९॥

तुम्बा [घीया]–अत्यन्त रूक्ष होता है।

कालिङ्गादि फलके गुण।

कालिङ्गफल, ककड़ी और चीभड़ ग्राही और रूक्ष होते हैं। ये सब फलशाक बहुत छोटे और कच्ची अवस्थामें पित्तनाशक और शीतल होते हैं और पक्वावस्थामें पित्तकारक और उष्ण होते है ॥ ८९ ॥

शीर्णवृन्तके गुण।

शीर्णवृंतं तु सक्षारं पित्तलं कफवातजित्।
रोचनं दीपनं हृद्यमष्ठीलाऽऽनाहनुल्लघु ॥९०॥

शीर्णवृन्त [कचरा] का शाक–किंचित् क्षारयुक्त, पित्तकारक, कफवातको जीतनेवाला, रुचिकारक, दीपन और हृद्य है तथा आष्ठीलारोग और आनाह रोगको नाश करता है, एवं हलका है॥९०॥

मृणालादिके गुण।

मृणालबिसशालूककुमुदोत्पलकंदकम्।
नंदीमाषककेलूटशृंगाटककशेरुकम् ॥
क्रौंचादनं कलोड्यं च रूक्षं ग्राहि हिमं गुरु९१

मृणाल [कमलके नीचकी दण्डी], बिस [भिसें], शालूक [कमलकंद], कुमुद और उत्पलके कन्द, नन्दी शाक, वास्तुलशाक, केलूट, सिंघाड़ा, कशेरु, क्रौंचादन शाक, कलोड्य ये सब जलमें होनेवाले कन्दविशेष—रूक्ष, ग्राही, शीतल और भारी होते है ॥ ९१ ॥

कलम्बादिके गुण।

कलंबनालिकामार्षकुटिंजरकुतुंबकम् ॥ ९२ ॥
चिल्लीलट्टाकलोणीकाकुरूटकगवेधुकम् ।
जीवंतझुंझ्वेडगजयवशाकसुवर्चलम् ॥ ९३ ॥
आलुकानि च सर्वाणि तथा सूप्यानि लक्ष्मणम्।
स्वादु रूक्षं सलवणं वातश्लेष्मकरं गुरु॥ ९४ ॥
शीतलं सृष्टविण्मूत्रं प्रायो विष्टभ्य जीर्यति ।
स्विन्नं निष्पीडितरसं स्नेहाढ्यं नातिदोषलम्९५

कलम्बशाक, नालिकाशाक, मर्सेका शाक, कुटिञ्जरशाक, कुतुम्बक, चिल्लीशाक, लट्टाकशाक, लोणीका [सल्लनक], कुरूटकशाक, गवेधुक, जीवन्त, झुञ्झु, पनवाड़, यवशाक, सुवर्चलाका शाक, सब प्रकारके आलू, रतालू, हस्तिकन्दादि मुद्गादि, सब प्रकारकी दालें तथा लक्ष्मणाकन्दादिकन्द, ये सब स्वादु, रूक्ष, किंचित् नमकीन, वात—कफकारक, गरिष्ठ, मलमूत्रको बढ़ानेवाले और प्रायः विष्टम्भ उत्पन्नकर जीर्ण होते है। यदि इनको उबालकर और रस निचोड़कर घृतयुक्त करके खावे तो ये अधिक दोष नहीं करते ॥ ९२–९५ ॥

लघुपत्रके गुण।

लघुपत्रा तु या चिल्ली सा वास्तुकसमा मता ।
तर्कारीवरणं स्वादु सतिक्तं कफवातजित् ९६॥

छोटे पत्रवाला चिल्लीशाक—बथुएके शाकके समान गुणवाला होता है ।

तर्कारी और मालशाकके गुण।

तर्कारी (जयन्ती) और मालशाक—स्वादु, किंचित् तिक्त और कफ वातके जीतनेवाले हैं । अरुणदत्त और हेमाद्रिने तर्कारीका अर्थ अग्निमन्थ और वरणको वरुण वृक्ष माना है, परन्तु यहां तर्कारीसे जयन्तीका शाक और वरणसे मालशाक लेना चाहिये ॥ ९६ ॥

पुनर्नवादिके गुण ।

वर्षाभ्वौ कालशाकं च सक्षारं कटुतिक्तकम्।
दीपनं भेदनं हंति गरशोफकफानिलान् ॥९७॥

वर्षाभू और पुनर्भू (दोनों पुनर्नवा) और कालशाक (कलम्बक) ये तीनों शाक—किञ्चित् क्षारयुक्त, कटु, तिक्त, दीपन, भेदनकर्ता तथा गरविकार, सूजन, कफ और वातको जीतते हैं ॥ ९७ ॥

चिरिबिल्वांकुरके गुण ।

दीपनाः कफवातघ्नाश्चिरिबिल्वांकुराः सराः ।
शतावर्यंकुरास्तिक्ता वृष्या दोषत्रयापहाः ९८॥

चिरिविल्व (पूतिकरञ्ज) के नूतन अंकुरोंका शाक—दीपन, कफ—वातनाशक और सारक होता है ॥

शतावरी अंकुरोंके गुण ।

शतावरीके अंकुरोंका शाक—तिक्त, वीर्यवर्धक और त्रिदोषनाशक होता है ॥ ९८ ॥

वंशांकुरके गुण ।

रूक्षो वंशकरीरस्तु विदाही वातपित्तलः ।
पत्तूरो दीपनस्तिक्तः प्लीहार्शःकफवातजित्९९

बांसके अंकुर--रूक्ष, विदाही और वातपित्तकारक होते है ॥

पत्तूरके गुण ।

पत्तूर (शान्तिशाक)--दीपन और तिक्त है तथा प्लीहा, अर्श, कफ और वातको जीतता है ॥ ९९ ॥

कासमर्दके गुण ।

कृमिकासकफोत्क्लेदान् कासमर्दो जयेत्सरः ।
रूक्षोष्णमम्लं कौसुंभं गुरु पित्तकरं सरम् १००

कासमर्द (कसौन्दी)-सारक है तथा कृमि, खांसी, कफ और उत्क्लेद, (जीमचलाना) को जीतता है।

कुसुम्भ शाकके गुण।

कुसुम्भेका शाक-रूक्ष, अम्ल और उष्ण होता है तथा गुरुपाकी, पित्तकारक और सारक होता है ॥ १०० ॥

सार्षपशाकके गुण।

गुरूष्णं सार्षपं बद्धविण्मूत्रं सर्वदोषकृत्१०१॥

सरसोंका शाक-गुरुपाकी, उष्ण, मलमूत्रको बांधनेवाला (मलको बांधने वाला और मूत्रको बार बार आनेसे रोकनेवाला) और त्रिदोषजनक होता है ॥ १०१ ॥

बालमूलीके गुण।

यद्बालमव्यक्तरसं किञ्चित्क्षारं सतिक्तकम् ।
तन्मूलकं दोषहरं लघु सोष्णं नियच्छति ।
गुल्मकासक्षयश्वासव्रणनेत्रगलामयान् ॥१०२॥
स्वराग्निसादोदावर्तपीनसांश्च-
-महत्पुनः ।
रसे पाके च कटुकमुष्णवीर्यं त्रिदोषकृत् १०३
गुर्वभिष्यंदि च-
-स्निग्धस्विन्नं तदपि वातजित् ।
वातश्लेष्महरं शुष्कं सर्वम्-
-आमं तु दोषलम् ॥ १०४ ॥

जो मूली बहुत नरम और कची होती है तथा बाल होनेसे चरचरा रस प्रगट न हुआ हो, किंचित् क्षार हो और किंचित् तिक्त हो ऐसी मृदु मूली-त्रिदोष--नाशक, हलकी, किंचित् उष्ण तथा गुल्म, कास, क्षय, श्वास, व्रण, नेत्ररोग, गलरोग, स्वरभंग, अग्निमान्द्य, उदावर्त और प्रतिश्यायको दूर करती है॥

पक्कमूलीके गुण।

वही मूली पक्की होजाने पर रस और पाकमें कटु, उष्णवीर्य, त्रिदोषकारक, भारी और अभिष्यन्दि होती है।

मूलीको उबालकर घीमें छमककर भाजी बनाकर खावे तो पक्की मूली भी वातनाशक होती है ॥

सब प्रकारकी सूखी मूली वात और कफको नाश करती है ॥

सब प्रकारकी विना सुखाई या विना पकाई कची मूली दोषकारक होती है ॥ १०२-१०४ ॥

पिण्डालुके गुण।

कटूष्णो वातकफहा पिंडालुः पित्तवर्धनः१०५

पिण्डालु-कटु, उष्ण, वातकफनाशाक और पित्तवर्धक होता है। हेमाद्रि कहता है कि यहां पर पिण्डालु शब्दसे तुण्डालु या वाराहकन्द लेना चाहिये, क्योंकि यदि वाग्भटको आलु जातिके पिण्डालुसे प्रयोजन होता तो पहले "आलुकानि च सर्वाणि" जहां लिखा है वहींपर पिण्डालुके भी विशेष गुण लिखते और यहांपर सुश्रुत आदिके प्रमाणोंसे गुण सम्मेलन कर अपने पक्षको हेमाद्रिने पुष्ट किया है और इसको तुण्डालु माना है ॥१०५॥

कुठेरादिके गुण।

कुठेरशिग्रुसुरससुमुखासुरिभूस्तृणम् ।
फणिज्जार्जकजंबीरप्रभृति ग्राहि शालनम् ॥
विदाहि कटु रूक्षोष्णं हृद्यं दीपनरोचनम् ।
दृक्शुक्रकृमिहृत्तीक्ष्णं दोषोत्क्लेशकरं लघु १०६

कुठेर (कालमाल), शिग्रु(शौभाञ्जन),सुरस(तुलसी), मुसुख(वनतुलसी),आसुरि (राई), भूस्तृण, फणिज्ज (मरुआ), अर्जक (पोदीना) और जम्बीरी आदि शालन (मसाले), धनियाँ अजमोदादि शालन कहे जाते हैं। ये सब विदाही, कटु, रूक्ष, उष्ण, हृद्य, रोचन और दीपन होते हैं। तथा दृष्टि, शुक्र और कृमियोंको हरते हैं, एवं तीक्ष्ण दोषोंको उत्क्लेशित करनेवाले और हलके होते है ॥ १०६ ॥

सुरसके गुण।

हिध्मकासश्रमश्वासपार्श्वरुक्पूतिगंधहा।
सुरसः सुमुखो नातिविदाही गरशोफहा॥१०७॥

इनमें सुरस (तुलसी)-हिचकी, कास, श्रम, श्वास, पार्श्वशूल और दुर्गन्धको दूर करती है।

सुमुखके गुण।

सुमुख (वन तुलसी) किंचित् विदाही, गरनाशक और शोथनाशक होती है ॥ १०७ ॥

आर्द्रकके गुण।

आर्द्रिका तिक्तमधुरा मूत्रला न च पित्तकृत्१०८

आर्द्रक—तिक्त, मधुर, मूत्रके लानेवाला और पित्तको बढ़ानेवाला नहीं है, "परन्तु यही अदरक छीलकर सुखा देनेसे सोंठ होता है, सोंठ होनेसे पित्त-कारक होता है ॥ १०८ ॥

लशुनके गुण।

लशुनो भृशतीक्ष्णोष्णः कटुपाकरसः सरः।
हृद्यः केश्यो गुरुर्वृष्यः स्निग्धो रोचनदीपनः१०९
भग्नसंधानकृद्बल्यो रक्तपित्तप्रदूषणः।
किलासकुष्ठगुल्मार्शोमेहक्रिमिकफानिलान् ॥
सहिध्मपीनसश्वासकासान् हंति रसायनम् ११०

लसुन—अत्यन्त तीक्ष्ण, अत्युष्ण, रस और पाकमें कटु, सारक, हृदयको हितकारी, केशवर्धक, भारी, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, रुचिकारक और दीपन होता है तथा किलास कुष्ठ (फुलवारी), गुल्म, अर्श, प्रमेह, कृमि, कफ, वात, हिचकी, अतिश्याय, श्वास और कासको हरनेवाला है तथा "भग्नसंधानकारक, बल-कारक" रक्तपित्तको दूषित करनेवाला और रसा-यन होता है ॥ १०९ ॥ ११० ॥

पलाण्डुके गुण।

पलांडुस्तद्गुणन्यूनः श्लेष्मलो नातिपित्तलः।
कफवातार्शसां पथ्यः स्वेदेऽभ्यवहृतौ तथा १११

पलाण्डुः—लशुनसे किंचित् न्यून गुणवाला है तथा कफवर्धक, किंचित् पित्तकारक होता है, एवं कफ और वायुकी बवासीरमें इसका पाक कर स्वेदन करना अर्शके मस्सोंको शमन करता है तथा कफवातके अर्शमें इसका शाक बनाकर खाना पथ्य है। यद्यपि मूलमें श्लेष्मलका अर्थ कफवर्धक ही है और कफवर्धक कहनेसे कफके अर्शमें हितकारी नहीं हो सकता, परन्तु प्रभावसे और किंचित् पित्तप्रधान होनेके कारण कफ वातकी अर्शमें, भोजनमें और स्वेदनमें इसको पथ्य माना है ॥ १११ ॥

गृंजनके गुण।

तीक्ष्णो गृंजनको ग्राही पित्तिनां हितकृन्न सः॥

गृंजन [लालरंगका लशुन]—तीक्ष्ण, ग्राही और पित्तप्रधान पुरुषोंको अहितकारी होता है ॥ ११२ ॥

सूरन कन्दके गुण।

दीपनः सूरणो रुच्यः कफघ्नो विशदो लघुः।
विशेषादर्शसां पथ्यः—
—भूकंदस्त्वतिदोषलः॥ ११३॥

सूरणकन्द [जिमीकन्द] दीपन, रुचिकारक, कफनाशक, विशद, हलका और विशेष कर अर्शमें पथ्य होता है ॥

भूकन्दके गुण।

भूकन्द [भूस्फोट] त्रिदोषकारक होता है ॥ ११३ ॥

पत्रादिकोंका यथोत्तर गुरुत्व।

पत्रं पुष्पं फलं नालं कंदं च गुरुता क्रमात्११४॥

पत्रशाकसे पुष्पशाक, पुष्पशाकसे फलशाक, फल-शाकसे नालशाक, नालशाकसे कन्दशाक भारी होते हैं। परन्तु मूलीका शाक कन्द होने पर भी लघु होता है ॥ ११४ ॥

जीवन्ती और सर्षपके शाक।

वरा शाकेषु जीवंती सर्षपास्त्ववराः परम्॥११५॥

शाकोंमें जीवन्तीका शाक श्रेष्ठ होता है और सरसोंका शाक निकृष्ट होता है "सरसोंका पत्रशाक निकृष्ट होता है, परन्तु सरसोंकी डण्ठलका शाक सारक आदि गुण युक्त होनेसे दोषयुक्त नहीं होता" ॥ ११५ ॥

द्राक्षा (मुनक्का) के गुण।

द्राक्षा फलोत्तमा वृष्या चक्षुष्या सृष्टमूत्रविट्॥
स्वादुपाकरसा स्निग्धा सकषाया हिमा गुरुः॥

निहंत्यनिलपित्तास्रतिक्तास्यत्वमदात्ययान् ।
तृष्णाकासश्रमश्वासस्वरभेदक्षतक्षयान् ॥११६॥

अब फल वर्गका कथन करते है:—

द्राक्षा (मुनक्का)—फलोंमें श्रेष्ठ, वीर्यवर्धक, नेत्रोंको हितकारी, मल मूत्रको निकालनेवाली, रस और पाकमें मधुर, स्निग्ध, किंचित् कषायरसयुक्त, शीतल और भारी होती है तथा वात, पित्त, रक्त-विकार, मुखकी कटुता, मदात्यय, प्यास, खांसी, श्रम, श्वास, स्वरभेद, क्षत और क्षयको दूर करती है ॥ ११६ ॥

दाड़िम (अनार) के गुण ।

उद्रिक्तपित्तान् जयति त्रीन्दोषान्स्वादुदाडिमम् ।
पित्ताविरोधि नात्युष्णमम्लं वातकफापहम् ॥
सर्वं हृद्यं लघु स्निग्धं ग्राहि रोचनदीपनम्॥११७॥

मीठा अनार—उदीर्ण हुए रक्तपित्तको और तीनों दोषोंको जीतनेवाला होता है ॥

खट्टा अनार—पित्तको उत्पन्न न करनेवाला, किंचित् उष्ण, वात और कफको नष्ट करनेवाला होता है ॥

सब प्रकारके अनार हृदयको बल देनेवाले, हलके, स्निग्ध, ग्राही, रुचिकारक और दीपन होते है ॥११७॥

मोच (केले) आदिके गुण ।

मोचखर्जूरपनसनालिकेरपरूषकम् ॥ ११८ ॥
आम्राततालकाश्मर्यराजादनमधूकजम् ।
सौवीरबदरांकोल्लफल्गुश्लेष्मातकोद्भवम् ११९॥
वातामाभिषुकाक्षोडमुकूलकनिकोचकम् ।
उरुमाणं प्रियालं च बृंहणं गुरु शीतलम्॥१२०॥
दाहक्षतक्षयहरं रक्तपित्तप्रसादनम् ।
स्वादुपाकरसं स्निग्धं विष्टंभि कफशुक्रकृत्१२१॥

केलेके फल, खजूर या छुहारेके फल, पनसफल, नारिकेल, फालसा, आम्रातक, तालफल, काश्मरीफल, खिरनी, महुआ, बदरफल, बिल्वफल, अंजीर, लिसोड़ा, बादाम, अभिषुक, अखरोट, मकूलक, निकोचन, उरुमाण और चिरौंजी, यह सब फल सामान्य गुणसे बृंहण, भारी, शीतल, दाहनाशक, क्षत और क्षयके हरनेवाले, रक्त और पित्तको प्रसादन करनेवाले, रस और पाकमें मधुर, स्निग्ध, विष्टम्भी, कफकारक और शुक्रवर्धक होते है ॥ ११८-१२१ ॥

तालफलके गुण ।

फलं तु पित्तलं तालं सरं काश्मर्यजं हिमम् ।
शकृन्मूत्रविबंधघ्नं केश्यं मेध्यं रसायनम्॥१२२॥

इनमें विशेषता इस प्रकार है कि तालफल पित्त-वर्धक होते है ।

काश्मरीके फल—सारक, शीतल, मलमूत्रके विबन्धको खोलनेवाले, केशवर्धक, मेधाजनक और रसायन होते है ॥ १२२ ॥

बादाम और चिरौंजीके गुण ।

वातामाद्युष्णवीर्यं तु कफपित्तकरं सरम् ।
परं वातहरं स्निग्धमनुष्णं तु प्रियालजम् ॥
प्रियालमज्जा मधुरा वृष्यः पित्तानिलापहः १२३

बादाम—उष्णवीर्य, कफ-पित्त-वर्धक, सारक, वातके नाश करनेमें सर्वश्रेष्ठ और स्निग्ध होता है । इसमें आदि शब्दसे अभिषुक अखरोट आदि लेना चाहिये ॥

प्रियाल—शीतल होता है । तथा प्रियालमज्जा (चिरौंजी)—मधुर, वृष्य और वात-पित्तनाशक होती है ॥ १२३ ॥

बेरकी मज्जाके गुण ।

कोलमज्जा गुणैस्तद्वत्तृट्छर्दिः कासजिच्च सः१२४

बेरकी गुठलीकी मज्जा—चिरौंजीके समान गुण-वाली होती है तथा प्यास, छर्दि और खांसीको जीतती है ॥ १२४ ॥

पक्व बिल्वके गुण ।

पक्वं सुदुर्जरं बिल्वं दोषलं पूतिमारुतम् ।
दीपनं कफवातघ्नं बालं ग्राह्युभयं हि तत्॥१२५॥

बिल्वफल (बेलका पका हुआ फल)—दुर्जर, त्रिदोषवर्धक और दुर्गन्धित अपान वायुको बढ़ाने-

वाला होता है। परन्तु बिल्वका बाल फल (बहुत कचा बिल्वफल) दीपन और कफवातनाशक होता है। कचा और पका दोनों प्रकारके बिल्वफल मलको बांधनेवाले होते हैं ॥ १२५ ॥

कपित्थके गुण।

कपित्थमामं कंठघ्नं दोषलं दोषघाति तु।
पक्कं हिध्मावमथुजित्सर्वं ग्राहि विषापहम् १२६॥

कचा कपित्थफल—कण्ठको बिगाड़नेवाला और त्रिदोषकारक होता है। परन्तु पका कपित्थफल-त्रिदोषनाशक, हिचकीको हटानेवाला और वमनको जीतनेवाला होता है। कचा और पका दोनों प्रकारका कपित्थ मलको बांधनेवाला और विषनाशक होता है ॥ १२६ ॥

जांबव (जामुन) के गुण।

जांबवं गुरु विष्टंभि शीतलं भृशवातलम्।
संग्राहि मूत्रशकृतोरकंठ्यं कफपित्तनुत्॥१२७॥

जामुनका फल—भारी, विष्टम्भकारक, शीतल, वायुको अत्यन्त बढ़ानेवाला, मल और मूत्रका संग्रह करनेवाला, स्वरको बिगाड़नेवाला और कफपित्तनाशक होता है ॥ १२७ ॥

आम्रके गुण।

वातपित्तास्रकृद्बालं बद्धास्थि कफपित्तकृत्।
गुर्वाम्रं वातजित्पक्कं स्वाद्वम्लं कफशुक्रकृत् १२८

आम्रका अस्थि रहित बालफल—वात पित्त और रक्तको बढ़ाता है। गुठली पड़ जाने पर आमका फल कफपित्तकारक होता है। पका हुआ आम भारी, वातनाशक, मधुर, अम्ल तथा कफ और वीर्यको बढ़ानेवाला होता है ॥ १२८ ॥

वृक्षाम्लके गुण।

वृक्षाम्लं ग्राहि रूक्षोष्णं वातश्लेष्महरं लघु।
शम्या गुरूष्णं केशघ्नं रूक्षं पीलु तु पित्तलम् १२९
कफवातहरं भेदि प्लीहार्शःकृमिगुल्मनुत्।
सतिक्तं स्वादु यत्पीलु नात्युष्णं तत्त्रिदोषजित् ॥

वृक्षाम्ल—ग्राही, रूक्ष, उष्ण, वातकफनाशक और हलका होता है। इसको 'तिन्तिड़ीक' भी कहते हैं।

शमीफल और पीलुफलके गुण।

शमीफल—भारी, उष्ण, केशोंको नाश करनेवाला और रूक्ष होता है।

पीलुफल—पित्तवर्धक, कफवातनाशक, भेदक तथा प्लीहा, अर्श, कृमि और गुल्मका नाश करता है। जो पीलुफल मधुर तथा किंचित् तिक्त होता है वह किंचित् उष्ण और त्रिदोषको जीतनेवाला होता है ॥ १२९ ॥ १३० ॥

मातुलुंग (बिजौरे) के गुण।

त्वक्तिक्तकटुका स्निग्धा मातुलुंगस्य वातजित्।
बृंहणं मधुरं मांसं वातपित्तहरं गुरु ॥ १३१ ॥
लघु तत्केसरं कासश्वासहिध्मामदात्ययान्॥
आस्यशोषानिलश्लेष्मविबंधच्छर्द्यरोचकान्॥
गुल्मोदरार्शःशूलानि मंदाग्नित्वं च नाशयेत्॥

बिजौरेका छिलका—कटु, स्निग्ध, तिक्त और वायुके जीतनेवाला होता है। बिजौरेके फलका गुदा—बृंहण, मधुर, वातपित्तनाशक और भारी होता है। बिजौरे निम्बूके फलकी केशर—कास, श्वास, हिचकी, मदात्यय, मुखशोष और कफवातको नाश करती है तथा विबन्ध, छर्दि, अरुचि, गुल्म, उदररोग, अर्श, शूल और मन्दाग्निको नाश करती है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

भल्लातक त्वचादिके गुण।

भल्लातकस्य त्वङ्मांसं बृंहणं स्वादु शीतलम्।
तदस्थ्यग्निसमं मेध्यं कफवातहरं परम्॥१३३॥

भिलावेंकी त्वचा और गुदा—बृंहण, मधुर और शीतल होता है। भिलावेंकी गुठली—अग्निके समान तीक्ष्ण, मेधाजनक, कफ और वातको नाश करनेमें सर्वश्रेष्ठ है ॥ १३३ ॥

पालेवतके गुण।

स्वाद्वम्लं शीतमुष्णं च द्विधा पालेवतं गुरु।
रुच्यमत्यग्निशमनं रुच्यं मधुरमारुकम् १३४॥
पक्कमाशु जरां याति नात्युष्णं गुरु दोषलम्॥

दोनों प्रकारके पालेवत-मधुर, अम्ल, शीतल, उष्ण, भारी, रुचिकारक, तथा भस्मकरोगनाशक होते है। मीठे आडू रुचिकारक होते है।

पक्क पालेवतके गुण।

अच्छी तरहसे पके हुए मीठे आडू-जल्दी पच जाते है तथा किंचित् उष्ण, भारी और दोषकारक होते है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

द्राक्षा परूषकादिके गुण।

द्राक्षा परूषकं चार्द्रमम्लं पित्तकफप्रदम्।
गुरूष्णवीर्यं वातघ्नं सरं च करमर्दकम्॥१३६॥

द्राक्षा, फालसा और करौंदे ये विना सूखे अम्ल, पित्तकफकारक, भारी, उष्णवीर्य, वातनाशक और दस्तावर होती है ॥ १३६ ॥

बेर लकुच आम्रातकादि फल।

तथाऽम्लं कोलकर्कंधूलकुचाम्रातमारुकम्।
ऐरावतं दंतशठं सतूदं मृगलिंडिकम् ॥१३७॥
नातिपित्तकरं पक्वं शुष्कं च करमर्दकम्।
दीपनं भेदनं शुष्कमम्लीकाकोलयोः फलम्१३८
तृष्णाश्रमक्लमच्छेदि लघ्विष्टं कफवातयोः।
फलानामवरं तत्र लकुचं सर्वदोषकृत् ॥१३९॥

बेर, छोटे बेर, लकुचफल, आम्रातक, आडू, नारंगी, जम्बीरी निम्बू, शहतूत और इमली ये खट्टी और कची पित्तकफकारक, भारी, उष्णवीर्य, वातनाशक और सारक होते है। बेर आदि सब पके हुए होनेपर और सूखे हुए करौंदे अधिक पित्तकारक नहीं होते ॥

सूखे इमली आदि फलोंके गुण।

सूखे हुए इमलीके फल और दोनों प्रकारके बेर-दीपन, भेदन, प्यासनाशक, श्रम और ग्लानिको हरनेवाले, हलके तथा कफ और वातमें हितकारी होते है।

सम्पूर्ण फलोंमें लकुच (बड़हल) के फल-निकृष्ट और सर्वदोषकारक होते हैं॥१३७-१३९॥

अग्राह्य धान्यशाक और फल।

हिमानिलोष्णदुर्वातव्याललालादिदूषितम्।
जंतुजुष्टं जले मग्नमभूमिजमनार्तवम् ॥१४०॥
अन्यधान्ययुतं हीनवीर्यं जीर्णतयाऽपि च।
धान्यं त्यजेत्तथा शाकं रूक्षसिद्धमकोमलम्१४१
असंजातरसं तद्वच्छुष्कं चान्यत्र मूलकात्।
प्रायेण फलमप्येवं तथामं बिल्ववर्जितम्१४२॥

अब शाक या फल किस प्रकारके लेने चाहिये सो कहते हैः-जो धान्यशाक अथवा फल शीतसे, पवनसे, उष्णतासे अथवा दुर्वातसे अथवा सांपकी लाल आदिसे दूषित हों, अथवा कृमि आदि जन्तुओंसे युक्त हों, या जलमें डूबे हुए होनेसे दूषित हों, अथवा दूषित भूमिमें उत्पन्न, या अपनी स्वाभाविक ऋतुसे विपरीत ऋतुमे उत्पन्न हुए हों, या किसी दूसरे शूक धान्यादि अथवा विरुद्ध धान्यादिसे युक्त हों, या बहुत पुराने होनेसे हीनवीर्य होगये हों ऐसे धान्योंको भक्षणार्थ नहीं लेना चाहिये।

तथा इन्ही दोषोंसे युक्त अथवा कठोर या विना चिकनाईसे सिद्ध किये हुए अथवा जिनमें रस उत्पन्न न हुआ हो अथवा सूखे हुए शाक नहीं खाने चाहिये। परन्तु सूखी हुई मूली गुणकारी होती है, इसलिये मूलीके अतिरिक्त और सब प्रकारके शाक खाने योग्य नहीं होते।

प्रायः ऐसे ही दोषों करके युक्त जो फल होते हैं वे भी नही खाने चाहिये तथा बिल्वके सिवाय और कोई फल कचा नहीं खाना चाहिये ॥१४०-१४२॥

लवणोंके सामान्य गुण।

विष्यंदि लवणं सर्वं सूक्ष्मं सृष्टमलं विदुः।
वातघ्नं पाकि तीक्ष्णोष्णं रोचनं कफपित्तकृत्॥

सब प्रकारके लवण-विष्यन्दकारक, सूक्ष्म, मल-मूत्रको निकालनेवाले, अन्नादि तथा व्रणादिको पाचन करनेवाले, तीक्ष्ण, उष्ण, रुचिकारक और कफपित्तकारक होते है ॥ १४३ ॥

सैंधा लवण ।

सैंधवं तत्र सस्वादु वृष्यं हृद्यं त्रिदोषनुत् ।
लघ्वनुष्णं दृशः पथ्यमविदाह्यग्निदीपनम् १४४

इनमें सेन्धानमक—स्वादयुक्त, वृष्य, हृदयको हितकारी, त्रिदोषनाशक, हलका, शीतल, नेत्रोंके लिये पथ्य, अविदाही और अग्निको दीपन करनेवाला होता है ॥ १४४ ॥

सञ्चर लवण ।

लघु सौवर्चलं हृद्यं सुगंध्युद्गारशोधनम् ।
कटुपाकं विबंधघ्नं दीपनीयं रुचिप्रदम् १४५॥

सञ्चरनमक—हलका, हृदयको हितकारी, सुगन्धियुक्त, उद्गारको शुद्ध करनेवाला, कटुपाकी, अग्निको दीपन करनेवाला और रुचिकारक होता है तथा विबन्धको नाश करता है ॥ १४५ ॥

बिड्लवण ।

ऊर्ध्वाधःकफवातानुलोमनं दीपनं बिडम् ।
विबंधानाहविष्टंभशूलगौरवनाशनम् ॥ १४६ ॥

बिड् नमकः—ऊर्ध्व भागमें और अधो भागमें कफ और वायुको अनुलोमन करनेवाला, दीपन तथा विबन्ध, अनाह, विष्टम्भ, शूल और भारीपनको दूर करनेवाला होता है ॥ १४६ ॥

सामुद्र लवण और औद्भिद लवण ।

विपाके स्वादु सामुद्रं गुरु श्लेष्मविवर्धनम् ।
सतिक्तकटुकक्षारं तीक्ष्णमुत्क्लेदि चौद्भिदम् १४७

सामुद्र नमकः—विपाकमें मधुर, भारी और कफवर्धक होता है ॥

औद्भिद नमकः—किंचित् तिक्त, कटु, क्षार, तीक्ष्ण तथा उत्क्लेदकारक होता है ॥ १४७ ॥

काला रोमक और पांसु लवण ।

कृष्णे सौवर्चलगुणा लवणे गंधवर्जिताः ।
रोमकं लघु पांसूत्थं सक्षारं श्लेष्मलं गुरु ॥
लवणानां प्रयोगे तु सैंधवादीन्प्रयोजयेत् ॥१४८॥

काला नमकः—सञ्चर नमकके समान गुणवाला होता है, परन्तु इसमें सौवर्चल नमकको सी गन्ध नहीं होती ॥

रोमक नमकः—हलका होता है ॥

पांसु नमकः—क्षारयुक्त, कफकारक और भारी होता है ॥

जहांपर लवणोंका प्रयोग करना हो वहां सैन्धवादि एक या दो या योगानुसार तीन अथवा पांच अथवा सम्पूर्ण नमकोंका प्रयोग करना चाहिये । इन लवणोंमें पूर्व २ गुणोंकी उत्कृष्टता है और उत्तरोत्तर उष्णता होती है ॥१४८॥

यवक्षारके गुण ।

गुल्मकृद्ग्रहणीपांडुप्लीहानाहगलामयान् ।
श्वासार्शः कफकासांश्च शमयेद्यवशूकजः १४९

यवक्षारः—गुल्म, हृद्रोग, ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, आनाह, गलेके रोग, श्वास, अर्श, कफ और खांसीको शमन करता है ॥ १४९ ॥

सर्व क्षारोंके गुण ।

क्षारः सर्वश्च परमं तीक्ष्णोष्णः कृमिजिल्लघुः ।
पित्तासृग्दूषणः पाकी छेद्यहृद्यो विदारणः ।
अपथ्यः कटुलावण्याच्छुक्रौजःकेशचक्षुषाम् ॥

सब प्रकारके क्षार—अत्यन्त तीक्ष्ण, अत्यन्त उष्ण, कृमिनाशक, हलके, रक्त पित्तको दूषित करनेवाले, पाचक, छेदी, हृदयको हितकारी, व्रणादिकोंको पकाकर दारण करनेवाले, कटु और क्षार होनेके कारण शुक्र, ओज, केश और नेत्रोंको अहितकारी होते है ॥ १५० ॥ १५१ ॥

हींगके गुण ।

हिंगु वातकफानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ।
कटुपाकरसं रुच्यं दीपनं पाचनं लघु ॥१५२॥

हींगः—वात, कफ, आनाह और शूलको नाश करती है तथा पित्तकोपकारक, पाक और रसमें कटु, रुचिकारक, अग्निदीपक, पाचक और हलकी होती है ॥ १५२ ॥

हरीतकीके गुण ।

कषाया मधुरा पाके रूक्षा विलवणा लघुः ।
दीपनी पाचनी मेध्या वयसः स्थापनी परा१५३

**उष्णवीर्या सरायुष्या बुद्धींद्रियबलप्रदा ।
कुष्ठवैवर्ण्यवैस्वर्यपुराणविषमज्वरान् ॥ १५४ ॥
शिरोऽक्षिपांडुहृद्रोगकामलाग्रहणीगदान् ।
सशोषशोफातीसारमेदमोहवमिक्रिमीन् १५५॥
श्वासकासप्रसेकार्शःप्लीहानाहगरोदरम् ।
विबंधं स्रोतसां गुल्ममूरुस्तंभमरोचकम् ॥
हरीतकी जयेद्व्याधींस्तांस्तांश्च कफवातजान् ॥**

हरीतकीः—रसमें कषाय, पाकमें मधुर, रूक्ष, लवणरहित पञ्चरस युक्त, हलकी, दीपनी, पाचन करनेवाली, मेधाको बढ़ानेवाली, अवस्थाको स्थापन करनेवाली, उष्णवीर्य, सारक, आयुवर्धक, बुद्धि-वर्धक और इन्द्रियोंको बल देनेवाली होती है। तथा कुष्ठ, विवर्ण, वैस्वर्य, पुराना विषमज्वर, शिरोरोग, नेत्ररोग, पाण्डुरोग, हृद्रोग, कामला, ग्रहणी, शोष-रोग, सूजन, अतिसार, मदरोग, मूर्छा, वमन, कृमि-रोग, श्वास, कास, मुखस्राव, अर्श, प्लीहा, आनाह, कृत्रिमविषविकार, उदररोग, मलमूत्रादिका विबन्ध, गुल्म, ऊरुस्तम्भ और अरोचक इन सब रोगोंको जीतती है तथा कफवातजनित सम्पूर्ण रोगोंका नाश करती है ॥ १५३—१५६ ॥

आमलेके गुण ।

तद्वदामलकं शीतमम्लं पित्तकफापहम् १५७॥

हरीतकीके समान ही आमलेके गुण है तथा आमलाः—शीतल, अम्ल और पित्तकफको शमन करनेवाला होता है ।

जैसे हरीतकी पञ्चरस युक्त होते हुए भी कषाय-रसप्रधान है वैसे ही आमलक अम्लरसप्रधान है । सम्पूर्ण गुण आमलेमें सामान्य रूपसे हरीतकीके समान ही है । परन्तु हरीतकी उष्णवीर्य है और आमलक शीतवीर्य है, केवल इतना ही भेद है । इस लिये हरीतकी वातकफनाशक है और आमलक कफपित्त नाशक है; सामान्य रूपसे हरीतकी और आमलक त्रिदोषनाशक होते है ।

हरीतकी मधुर और अम्लरससे वायुको, कटु और तिक्त रससे कफको, कषाय और मधुर रससे पित्तको शमन करनेवाली होनेसे त्रिदोषनाशक होती है तथा रसायन होती है ।

इसी प्रकार आमले अम्लभावसे वायुको, माधुर्य और शैत्यगुणसे पित्तको, रूक्ष और कषाय होनेसे कफको जीतते है । इसलिये आमले त्रिदोषनाशक, रसायन और वृष्य होते है ॥ १५७ ॥

बहेड़ेके गुण ।

**कटुपाके हिमं केश्यमक्षमीषच्च तद्गुणम् ।
इयं रसायनवरा त्रिफलाऽक्ष्यामयापहा ॥
रोपणी त्वग्गदक्लेदमेदोमेहकफास्रजित् ॥१५८॥**

बहेड़ाः—पाकमें कटु, शीतल, केशवर्धक और हरड़ तथा आमलेके समान गुणोंमें किंचित् न्यून गुणोंवाले होते है अर्थात् बहेड़ोंमें भी हरीतकी और आमलेके समान ही गुण है, परन्तु किंचित् न्यून है ॥

त्रिफलाके गुण ।

हरीतकी, आमला और बहेड़ा इन तीनोंको मिलानेसे त्रिफला कहा जाता है । शास्त्रमें इनको मिलानेके परिमाण दो प्रकारके हैं, जैसे हरीतकी नई चिकनी, घन, वृत्त और भारी तथा जलमें डालनेसे डूब जानेवाली श्रेष्ठ होती है, ऐसे गुणोंवाली तोलमें दो तोलाकी हरड़ श्रेष्ठ होती है, ऐसी एक हरड़ और ऐसे गुणोंवाला तोलमें छे मासेका आमला श्रेष्ठ होता है, ऐसे ही चार आमले एवं बहेड़ेका फल नवीनादि गुण युक्त तोलमें एक तोलासे कम न हो, ऐसे दो बहेड़े मिलानेसे त्रिफलेका मान ठीक होता है, अर्थात् इन ऊपरके गुणोंवाली एक हरड़, चार आमले, दो बहेड़े लेकर इनका छिलका मिलानेसे प्रायः छिलकेका तोल समान भाग हो जाता है, यह एक प्रकार हुआ । यदि इस प्रकारके मानवाले फल न मिल सकें तो नवीनादि गुणोंवाले हरड़ बहेड़े आमलेके छिलके उतारकर सम २ भाग मिला लेनेसे त्रिफला हो जाता है । त्रिफलाः— आयुवर्धक, रसा-

यन, नेत्रोंको हितकारी अर्थात् नेत्रोंके रोगोंको दूर कर दृष्टिको बलवान् बनानेवाला, व्रणोंको शुद्धकर रोपण करनेवाला तथा त्वचाके कुष्ठादिरोग, क्लेद, मेद, प्रमेह, कफ और रक्तविकारको जीतनेवाला है ॥ १५८ ॥

त्रिजात और चतुर्जातके गुण।

सकेसरं चतुर्जातं त्वक्पत्रैलं त्रिजातकम् ॥
पित्तप्रकोपि तीक्ष्णोष्णं रूक्षं दीपनरोचनम्१५९

दालचीनी; पत्रज और इलायची, इन तीनोंको मिलाकर त्रिजात होता है. इसीको त्रिसुगन्ध भी कहते हैं, यदि इसमें नागकेशर भी मिला दिया जाय तो इसको चतुर्जात कहते हैं।

यह त्रिजात और चतुर्जात पित्तवर्धक, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, दीपन और रुचिकारक होते हैं॥१५९॥

गोल मिर्चके गुण।

रसे पाके च कटुकं कफघ्नं मरिचं लघु॥१६०॥

काली मिर्च [गोल मिरच]–रस और पाकमें कटु, कफनाशक, हलकी, (पित्तकोपकारक, तीक्ष्ण, उष्ण, दीपन और रेचक) होती है ॥ १६० ॥

पीपलके गुण।

श्लेष्मला स्वादुशीताद्री गुर्वी स्निग्धा च पिप्पली।
सा शुष्का विपरीताऽतः स्निग्धा वृष्या रसे कटुः
स्वादुपाकाऽनिलश्लेष्मश्वासकासापहा सरा।
न तामत्युपयुंजीत रसायनविधिं विना॥१६२॥

पीपल [मघ पीपल] यदि गीली हो तो कफकारक, विपाकमें मधुर, शीतल, भारी और स्निग्ध होती है। और जब पककर सूख जाती है तो वह सूखी पीपल गीली पीपलसे विपरीत गुणोंवाली अर्थात् उष्ण गुणवाली हो जाती है। सूखी पीपल–स्निग्ध, वृष्य, रसमें कटु, पाकमें मधुर तथा वात, कफ, श्वास और कासको हरनेवाली तथा सारक होती है, जैसे गीली पीपल शीतल और कफवर्धक होती है, वैसे ही सूखी पीपल उष्ण और कफनाशक होती है।

पीपलको वर्धमान पीपली सेवनविधि आदि रसायनविधिको छोड़कर पीपलका अधिक प्रयोग करना उचित नहीं है, क्योंकि रसायनविधिको छोड़कर अधिक सेवन करनेसे गुरु और प्रक्लेदीभावसे कफको उत्क्लेशित करती है। उष्णभावसे पित्तको कुपित करती है और अल्पस्नेह होनेसे वायुको भी शमन नहीं कर सकती, इस लिये अकेली पीपलका अधिक सेवन नहीं करना चाहिये। पीपल योगवाही होती है। इस लिये योगके अनुसार ही पीपलका प्रयोग करना चाहिये १६१।१६२

सोंठके गुण।

नागरं दीपनं वृष्यं ग्राहि हृद्यं विबंधनुत्।
रुच्यं लघु स्वादुपाकं स्निग्धोष्णं कफवातजित् ॥

सोंठः—दीपन, वृष्य, ग्राही, हृदयको हितकारी, विबन्धनाशक, रुचिकारक, हलकी, पाकमें मधुर, स्निग्ध, उष्ण और कफवातको जीतनेवाली होती है। छीलकर सुखाये हुए आर्द्रकको सोंठ कहते है। आर्द्रकके भी सोंठके समान गुण है ॥ १६३ ॥

त्रिकटुके गुण।

तद्वदार्द्रकमेतच्च त्रयं त्रिकटुकं जयेत्।
स्थौल्याग्निसदनश्वासकासश्लीपदपीनसान् १६४

सोंठ, मिरच, पीपल इन तीनोंको त्रिकटु कहते है। त्रिकटुः—स्थूलता, अग्निमान्द्य, श्वास, खांसी, श्लीपद और पीनसको जीतता है। (त्रिकटुमें सोंठ, मिरच और पीपल समभाग मिलाने चाहिये) ॥१६४॥

चव्य और पिप्पलीमूल।

चविका पिप्पलीमूलं मरिचाल्पांतरं गुणैः।
चित्रकोऽग्निसमःपाके शोफार्शःक्रमिकुष्ठहा१६५

चव्य और पिप्पलीमूल प्रायः काली मिरचके समान ही गुणवाले होते है। क्योंकि ये भी रस और विपाकमें कटु, कफनाशक, हलके और उष्णवीर्य होते है। पिप्पलीमूलको निद्रानाशमें निद्रा लानेके लिये जो प्रयोग किया जाता है वहां पर यह गुणोंसे निद्राजनक न होने पर भी प्रभावसे निद्रा उत्पन्न करनेवाला होता है ॥

चित्रकके गुण।

चित्रक—अग्निके समान तीक्ष्ण और उष्ण, पाकमें अत्यन्त उष्ण तथा सूजन, अर्श, कृमि और कुष्ठको नष्ट करनेवाला होता है ॥ १६५ ॥

पंचकोलके गुण।

पंचकोलकमेतच्च मरिचेन विना स्मृतम्।
गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं दीपनं परम् ॥१६६॥

पीपल, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक और शुण्ठी इन पांचोंको पञ्चकोल कहते है।

यह पञ्चकोलः—गुल्म, प्लीहा, उदररोग, आनाह और शूलको नाश करता है तथा अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला है ॥ १६६ ॥

बृहत्पञ्चमूलके गुण।

बिल्वकाश्मर्यतर्कारीपाटलाटुंटुकैर्महत्।
जयेत्कषायतिक्तोष्णं पंचमूलं कफानिलौ ॥१६७

बिल्व, काश्मरी [कम्भारी], अग्निमन्थ, पाटला और सोनापाठा इन पांचोंको समभाग मिलानेसे बृहत्पञ्चमूल कहा जाता है। बृहत्पञ्चमूल—कषाय, तिक्त, और ऊष्ण होता है तथा कफ और वायुको जीतता है ॥ १६७ ॥

लघु पञ्चमूलके गुण।

ह्रस्वं बृहत्यंशुमतीद्वयगोक्षुरकैः स्मृतम्।
स्वादुपाकरसं नातिशीतोष्णं सर्वदोषजित् १६८

बड़ी कटेली, छोटी कटेली, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और गोखुरु इन पांचोंको समभाग मिलानेसे लघुपञ्चमूल कहा जाता है। लघुपञ्चमूल पाक और रसमें मधुर, न अधिक उष्ण और न अधिक शीत होता है तथा त्रिदोषनाशक होता है। "इस बृहत्पञ्चमूल और लघुपञ्चमूलको मिलानेसे दशमूल कहा जाता है" ॥ १६८ ॥

मध्यम पञ्चमूलके गुण।

बलापुनर्नवैरंडशूर्पपर्णीद्वयेन तु।
मध्यमं कफवातघ्नं नाऽतिपित्तकरं सरम् ॥१६९॥

बला [खरेटी], पुनर्नवा, एरण्डकी जड़, माषपर्णी और मुद्गपर्णी इन पांचोंको मध्यम पंचमूल कहा जाता है, यह मध्यम पंचमूलः—कफवातनाशक, सारक और किंचित् पित्तकारक होता है। इसको बलादि पंचमूल भी कहते हैं ॥ १६९ ॥

जीवनपञ्चमूलके गुण।

अभीरुवीराजीवंतीजीवकर्षभकैः स्मृतम्।
जीवनाख्यं च चक्षुष्यं वृष्यं पित्तानिलापहम् ॥

शतावर, काकोली, जीवन्ती, जीवक और ऋषभक इन पांचोंको सम भाग मिलानेसे जीवनपञ्चमूल कहा जाता है। जीवनपञ्चमूलः—नेत्रोंको हितकारी, वृष्य तथा वातपित्तनाशक होता है ॥१७०॥

तृण पञ्चमूलके गुण।

तृणाख्यं पित्तजिद्दर्भकासेक्षुशरशालिभिः १७१।

दर्भ [कुशा] की जड़, कांसकी जड़, ईखकी जड़, सरकण्डेकी जड़ और शाली धान्यकी जड़ इन पांचोंको समभाग मिलानेसे तृणपंचमूल कहा जाता है। यह तृणपञ्चमूलः—पित्तके विकारोंको जीतता है ॥ १७१ ॥

अध्यायका उपसंहार।

शूकशिंबिजपक्वान्नमांसशाकफलौषधैः।
वर्गैरन्नलेशोऽयमुक्तो नित्योपयोगिकः १७२॥

अब अध्यायका उपसहार करते हैं:—

इस अन्न स्वरूप विज्ञानीयाध्यायमें शूकधान्यवर्ग, शिम्बीधान्यवर्ग, पक्वान्नवर्ग, मांसवर्ग, शाकवर्ग, फलवर्ग और औषधवर्ग; इस प्रकार इन नित्य उपयोगमें आनेवाले वर्गोंका दिग्दर्शनमात्र कथन कर दिया गया है ॥ १७२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्न-पण्डित-रामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कार-वैद्य-शिवशर्म्मविरचित शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने षष्ठाऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७ ।

प्राणाचार्यकी आवश्यकता ।

अथातोऽन्नरक्षाध्यायं व्याख्यास्यामः ।
राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्यं निवेशयेत् ।
सर्वदा स भवत्येवं सर्वत्र प्रतिजागृतिः ॥१॥

अब हम अन्नरक्षा नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैः—

राजाको उचित है कि अपने राजभवनके समीप ही प्राणाचार्य (राजवैद्य) का स्थान बनावे, राजाके समीप रहते हुए राजवैद्य सब कालमें अपने राजाके खाने, पीनेकी वस्तुओं तथा वस्त्र, माला, गंधादिको शत्रु आदिके किये हुए विषप्रयोगादिसे रक्षा करनेमें सावधान रह सकता है । क्योंकि प्राणाचार्यका प्रथम धर्म सब प्रकारसे राजाकी रक्षामें सावधान रहना है ॥ १ ॥

प्राणाचार्यका कर्तव्य ।

अन्नपानं विषाद्रक्षेद्विशेषेण महीपतेः ।
योगक्षेमौ तदायत्तौ धर्माद्या यन्निबंधनाः २॥

प्राणाचार्यको चाहिये कि वह राजाके खाने पीनेकी वस्तुओंको विषआदिसे बचाकर रखनेमें विशेष सावधान रहे । क्योंकि मनुष्योंके योगक्षेमकी रक्षा, प्रजाको तस्करादि उपद्रवोंसे बचाकर रखना, प्रजाके खेती आदिकी रक्षा करनी और प्रजाकी धर्म, अथ, काम, मोक्षकी राजाके द्वारा रक्षा होना आदि सब कल्याणकारी कार्य राजाके ही अधीन हैं, इस लिये राजाकी शरीररक्षामें ही प्रजाका सब प्रकार कल्याण देखता हुआ राजवैद्य सर्वदा प्रयत्नवान् रहे ॥ २ ॥

विषयुक्त अन्नादिकोंकी परीक्षा ।

ओदनो विषवान् सांद्रो यात्यविस्राव्यतामिव ।
चिरेण पच्यते पक्वो भवेत्पर्युषितोपमः॥ ३ ॥
मयूरकंठतुल्योष्मा मोहमूर्छाप्रसेककृत् ।
हीयते वर्णगंधाद्यैः क्लिद्यते चंद्रकाचितः ॥४॥

अब विषयुक्त अन्नादिकोंकी परीक्षाका कथन करते हैः—

विषयुक्त भात सान्द्र तारयुक्त सा गाढ़ा विना पानी निकाले विलेपीके समान हो जाता है, पकानेसे देरमें पकता है, पक जानेपर बहुत देरसे रक्खे हुए पर्युषितके समान होता है और उस भातकी भाप मोरके कण्ठ समान नील हरित वर्णवाली होती है । उस भापके लगनेसे मोह, मूर्छा और मुखसे लार बहना आदि उपद्रव होजाते है । तथा उस भातमें निर्दोष भातके समान गन्ध वर्ण नहीं रहते और थोड़ी देर रक्खा रहनेसे उसमें क्लेद उत्पन्न होजाता है तथा तैलविन्दुके समान चन्द्रिका सी उस भातमें चमकने लग जाती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

विषयुक्त व्यञ्जनादि ।

व्यंजनान्याशु शुष्यंति ध्यामक्काथानि तत्र च ।
हीनातिरिक्ता विकृता छाया दृश्यत नैव वा ५॥
फेनोर्ध्वराजीसीमंततंतुबुद्बुदसंभवः ।
विच्छिन्नविरसा रागाः खांडवाः शाकमामिषम्॥

अब व्यञ्जनादिकी परीक्षा कहते हैः—

सूप आदि व्यञ्जन यदि विषयुक्त हो तो यथार्थ संस्कृत होनेपर भी शीघ्र सूख जाते है, अथवा उनका रस मलिन वर्ण सा हो जाता है, व्यञ्जनवस्तु विशेष रूपसे सुकड़ जाती है, अथवा विशेषरूपसे फूलकर बड़ी होजाती है । इस व्यञ्जनके रसमें मनुष्यकी छाया विकृत दिखायी देती है, अथवा बिल्कुल दिखायी नहीं देती तथा व्यञ्जनके रसमें फेनका उत्पन्न होना, ऊर्ध्व रेखा सी प्रतीत होना, सीमन्त से बन जाना और इनमें तन्तु और बुल्बुले से उत्पन्न हो जाना ये लक्षण होते है । राग, खाण्डव, शाक और मांस ये यदि विषयुक्त हों तो इनमें ऊपरके से दोष आजाते है तथा इनका रस फट जाता है । और फटे हुए से वर्णवाले होजाते है रसमें तरह २ के वर्ण प्रतीत होने लगते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

विषयुक्त रस ।

नीला राजी रसे ताम्रा क्षीरे दधनि दृश्यते । श्यावा पीताऽसिता तक्रे घृते पानीयसन्निभा ॥ काली मद्यांभसोः क्षौद्रे हरित्तैलेऽरुणोपमा । पाकः फलानामामानां पक्वानां परिकोथनम् ८॥

मांस रस यदि विषयुक्त हो तो उसमें नीलवर्णकी रेखायें होजाती है । दूध यदि विषयुक्त हो तो उसमे ताम्रवर्णकी रेखायें प्रतीत होने लगती है । यदि दधि विषयुक्त हो तो उसमें श्यामवर्णकी रेखाये होजाती है । यदि तक्र विषयुक्त हो तो उसमें पीली और काली सी रेखायें होजाती है । यदि घृत विषयुक्त हो तो उसमें जलके से वर्णवाली रेखायें होजाती है । यदि मद्य विषयुक्त हो अथवा जल विषयुक्त हो तो काले वर्णकी रेखायें होजाती है । यदि मधु विषयुक्त हो तो हरितवर्णकी रेखाये और यदि तैल विषयुक्त हो तो लालवर्णकी रेखाये उनमें प्रतीत होने लगती है ॥

विषयुक्त फल ।

यदि फलोंमे विषका ससर्ग हो तो कच्चे फल पक जाते है और पके फल कोथयुक्त होजाते है ॥७॥८॥

विषयुक्त द्रव्य ।

द्रव्याणामार्द्रशुष्काणां स्यातां म्लानिविवर्णते । मृदूनां कठिनानां च भवेत्स्पर्शविपर्ययः ॥९॥

सूखे अथवा गीले द्रव्योंमें विषका संसर्ग होनेसे वे द्रव्य मलीन और विवर्ण से होजाते है ॥

मृदु द्रव्य विषके संसर्गसे स्पर्शमें कठिन और कठोर द्रव्य विषके संसर्गसे स्पर्शमें मृदु होजाते है ॥९॥

विषयुक्त पुष्पमाला ।

माल्यस्य स्फुटिताग्रत्वं म्लानिर्गंधांतरोद्भवः । ध्याममंडलता वस्त्रे शदनं तंतुपक्ष्मणाम् ॥१०॥

यदि पुष्पमालामें विषका संसर्ग हो तो उसका अग्रभाग स्फुटित और म्लानियुक्त होजाता है तथा गन्धमें विपरीतता होजाती है ॥

विषयुक्त वस्त्रोंके लक्षण ।

वस्त्रोंमें विषका संसर्ग होनेसे वस्त्रोंमें मलीन मण्डल से प्रतीत होने लगते है तथा वस्त्रोंके लोम और तन्तु गिरने लगते है अथवा छिन्न होजाते है ॥ १० ॥

धातुओंकी विषसे विवर्णता ।

धातुमौक्तिककाष्ठाश्मरत्नादिषु मलाक्तता । स्नेहस्पर्शप्रभाहानिः सप्रभत्वं तु मृन्मये ॥११॥

स्वर्णादि धातु, मोती, काष्ठ, पाषाण और रत्नादिमें विषका संसर्ग होनेसे उनमे मलीनता तथा चिकनाई, स्पर्श और प्रभाकी हानि होजाती है, यदि मिट्टीके पात्रमें विषका संसर्ग हो तो उसमें नवीन प्रभा प्रतीत होने लगती है ॥ ११ ॥

विष देनेवालेके लक्षण ।

विषदः श्यावशुष्कास्यो विलक्षो वीक्षते दिशः । स्वेदवेपथुमांस्त्रस्तो भीतः स्खलति जृंभते॥१२॥

विष देनेवालेके लक्षण—किसीको विष देनेवाले मनुष्यका मुख सूखा हुआ और श्याम वर्ण सा होता है तथा वह लोगोंकी दृष्टिसे बचाकर छिपी हुई दृष्टिसे इधर उधर देखता है तथा उसके शरीरमें स्वेद और कम्प होने लगता है, वह त्रासयुक्त और भयभीत सा रहता है, जभाइयें लेता है और उसकी गति चलते चलते स्खलित होनेवाली सी होती है । "इसका विशेष वर्णन सुश्रुतके कल्पस्थानके प्रथमाध्यायमें है" ॥१२॥

अग्निद्वारा विषपरीक्षा ।

प्राप्यान्नं सविषं त्वग्निरेकावर्तः स्फुटत्यति । शिखिकंठाभधूमार्चिरनर्चिर्वोग्रगंधवान् ॥ १३ ॥

अब अग्निद्वारा विषयुक्त पदार्थकी परीक्षाका कथन करते है:—

यदि विषयुक्त पदार्थ अग्निमें डाला जाय तो उसकी लाट चक्र खाकर ऊपरको जाती है तथा फट सी जाती है और चटचट शब्द करती है, अग्निमेंसे विषके कारण मोरके कण्ठ समान नील हरित वर्णके धूम और अर्चियें निकलती है, यदि अर्चि (लाट) न भी निकले तो उग्र गन्धवाला धूम निकलता है । उस

धूमके लगनेसे मनुष्यके मुखसे लाला गिरना, रोमहर्ष, मस्तकपीड़ा, प्रतिश्याय और दृष्टिकी आकुलता आदि होते है ॥ १३ ॥

मक्षिका आदिसे विषपरीक्षा।

म्रियंते मक्षिकाः प्राश्य काकः क्षामस्वरो भवेत्।
उत्क्रोशंति च दृष्ट्वैतच्छुकदात्यूहसारिकाः १४॥

अब विषयुक्त पदार्थकी मक्षिका आदि जन्तुओं-द्वारा परीक्षा कथन करते है:—

विषयुक्त अन्नपर मक्खियें नहीं बैठतीं अथवा विषयुक्त पदार्थको नहीं खाती, यदि विषयुक्त पदार्थको मक्खियें खाती है तो तुरन्त मर जाती है।

काक विषयुक्त पदार्थको खाकर क्षामस्वर (बैठी हुई आवाज) वाला हो जाता है।

विषयुक्त पदार्थको देखकर शुक (तोता), दात्यूह और मैना चिल्लाने लगते है ॥ १४ ॥

हंसः प्रस्खलति ग्लानिर्जीवंजीवस्य जायते।
चकोरस्याऽक्षिवैराग्यं क्रौंचस्य स्यान्मदोदयः१५

विषयुक्त अन्नको देखकर हंसकी गति स्खलित हो-जाती है। जीवनजीव पक्षी विषयुक्त अन्नको देखकर ग्लानि प्रकट करता है। चकोर आंखें फेर लेता है। क्रौञ्चपक्षी मतवाला हो जाता है॥ १५ ॥

कपोतपरभृद्दक्षचक्रवाका जहत्यसून्।
उद्वेगं याति मार्जारः शकृन्मुंचति वानरः १६॥

विषयुक्त अन्नसे कबूतर, कोयल, मुर्गा और चकवा प्राण त्याग देते है। बिल्ली उद्वेगको प्राप्त होती है। और वानर बार बार विष्ठा त्यागने लगता है ॥ १६ ॥

हृष्येन्मयूरस्तद्दृष्ट्वा मंदतेजो भवेद्विषम्।
इत्यन्नं विषवज्ज्ञात्वा त्यजेदेवं प्रयत्नतः॥
यथा तेन विपद्येरन्नपि न क्षुद्रजंतवः॥ १७॥

मयूर विषवाले पदार्थको देखकर प्रसन्न होता है और इसकी दृष्टि विषयुक्त पदार्थपर पड़नेसे विषयुक्त पदार्थ मन्दतेज हो जाता है॥

इस प्रकार विषवाले पदार्थ जांचकर किसी ऐसे स्थानमें गड़वा देवे जिससे उसको खाकर साधारण जन्तु मर न जायें ॥ १७ ॥

सविष अन्नके स्पर्शसे कण्डू आदिका होना।

स्पृष्टे तु कंडुदाहोषाज्वरार्तिस्फोटसुप्तयः।
नखरोमच्युतिः शोफः सेकाद्या विषनाशनाः॥

विषके स्पर्शसे खुजली, दाह, जलन, ज्वर, पीड़ा, स्फोट और त्वचाका सोना तथा नख या रोमोंका गिरना और सूजन आदि उपद्रव होजाते है। ऐसा होनेपर विषनाशक सेचन लेप आदिका प्रयोग करना चाहिये ॥ १८ ॥

विषजनित कण्डू, दाह आदिकी चिकित्सा

शस्तास्तत्र प्रलेपाश्च सेव्यचंदनपद्मकैः।
ससोमवल्कतालीसपत्रकुष्ठामृतानतैः॥ १९ ॥

जिस अंगपर विषका कण्डू दाहादि प्रभाव हो उस स्थानपर खस, चन्दन, पद्मकाष्ठ, कत्था, तालीस-पत्र, कूठ, गिलोय और तगर इनका लेप करना और इनके क्वाथसे सेचन करना हितकारी होता है ॥ १९ ॥

मुखगत विषमें लालास्राव आदिका होना।

लालाजिह्वौष्ठयोर्जाड्यमूषा चिमिचिमायनम्॥
दंतहर्षो रसाज्ञत्वं हनुस्तंभश्च वक्त्रगे।
सेव्याद्यैस्तत्र गंडूषाः सर्वं च विषजिद्धितम्॥

यदि विष मुखमें प्राप्त हो जाय तो मुखसे लाला-का स्राव, जिह्वा और होठोंमें जड़ता, उष्णवत् पीड़ा, चिमचिमाहट प्रतीत होना, दन्तहर्ष, रसका ज्ञान न रहना और हनुस्तम्भ होना ये लक्षण होते है। यदि मुखगत विषविकार हो तो ऊपर विषस्पर्शजनित विकारमें कहा हुआ खस आदिका क्वाथ मुखमें धारण कर कुरले करना चाहिये और सम्पूर्ण विषनाशक क्रियाओंका प्रयोग करना चाहिये॥ २० ॥ २१ ॥

आमाशयगत विषमें स्वेद आदिका होना।

आमाशयगते स्वेदमूर्च्छाध्मानमदभ्रमाः।
रोमहर्षो वमिर्दाहचक्षुर्हृदयरोधनम्॥ २२ ॥

बिंदुभिश्चाचयोऽगानां-

यदि विष आमाशयमें पहुँच जाय तो स्वेद, मूर्च्छा, आध्मान, मद, भ्रम, रोमहर्ष, वमन, दाह, नेत्रोंका और हृदयका रुक सा जाना और शरीरके ऊपर विषजनित छोटी छोटी नाना वर्णकी बूँदें सी प्रकट हो जाना ये लक्षण होते है ॥ २२ ॥-

पक्वाशयगत विषके विकार ।

-पक्वाशयगते पुनः ।
अनेकवर्णं वमति मूत्रयत्यतिसार्यते ॥ २३ ॥
तंद्रा कृशत्वं पांडुत्वमुदरं बलसंक्षयः ।

यदि विष पक्वाशयमें प्राप्त हो तो अनेक वर्णकी उल्टी होती है और बार बार मूत्र तथा दस्त आते है और तन्द्रा, कृशता, शरीरका पाण्डुवर्ण हो जाना, पेटका पीला पड़ जाना, बलका क्षय होना ये लक्षण होते हैं ॥ २३ ॥-

भुक्त विषकी चिकित्सा ।

तयोर्वांतविरिक्तस्य हरिद्रे कटभीं गुडम् ॥२४॥
सिंदुवारितनिष्पाववाष्पिकाशतपर्विकाः ।
तंडुलीयकमूलानि कुक्कुटांडमवल्गुजम् ॥
नावनांजनपानेषु योजयेद्विषशांतये ॥ २५ ॥

आमाशय और पक्वाशयगत विषमें प्रथम वमन और विरेचन कराकर फिर उस शुद्धकाय पुरुषको हल्दी, दारुहल्दी, कटभी (गिरिकर्णिका), गुड़, सम्भालू, निष्पाव (मटरकी जाति) वाष्पिका (हिंगुपत्री), वच, चौलाईकी जड़, कुक्कुटाण्ड और बावची, इन सबको नस्यमें, अंजनमें और क्राथ बनाकर पीनेमें विषशान्तिके लिये प्रयोग करना चाहिये । आमाशयगत विषमें प्रथम वमन करा देना चाहिये और पक्वाशयगत विषमें विरेचन कराना चाहिये,तदनन्तर हरिद्रा आदि औषधियोंसे नस्यादि कर्म कराने चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

हेमपानसे विषबाधाका अभाव ।

विषभुक्ताय दद्याच्च शुद्धायोर्ध्वमधस्तथा ॥२६॥
सूक्ष्मं ताम्ररजः काले सक्षौद्रं हृद्विशोधनम् ।
शुद्धे हृदि ततः शाणं हेमचूर्णस्य दापयेत् २७॥

जिस मनुष्यने विष खा लिया हो उसको प्रथम वमन विरेचन कराकर शुद्धकाय होनेपर ताम्रभस्म मधुमें मिलाकर चटाना चाहिये। इस मधुयुक्त ताम्रके चाटनेसे हृदय शुद्ध हो जाता है । हृदयके शुद्ध होनेके अनन्तर तीन मासे सुवर्णकी भस्म मधुमें मिलाकर चटा देनी चाहिये। अथवा हरिद्रा आदि द्रव्यको क्वाथमें मिलाकर पिला देनी चाहिये । " कोई ताम्र और सुवर्णकी भस्म न लेकर भस्मके समान बारीक पिसा हुआ ताम्र और सुवर्णका चूर्ण मानते है, परन्तु मेरे विचारमें भस्मका ही प्रयोग करना चाहिये ॥२६॥२७॥

हेमपानके गुण ।

न सज्जते हेमपांगे पद्मपत्रेऽम्बुवद्विषम् ।
जायते विपुलं चायुर्गरेऽप्येष विधिः स्मृतः ॥

इस प्रकार शुद्धकाय पुरुषके शरीरमें जब स्वर्ण व्याप्त हो जाता है तो जैसे कमलके पत्रपर जलका कण चिपट नहीं सकता उसी प्रकार स्वर्णसे व्याप्त शरीरमे विषका कोई असर नहीं होता । तथा उसकी आयु विपुल हो जाती है। यही विधि गर (कृत्रिम विष) का शरीरमें संसर्ग होनेपर करनी चाहिये ॥ २८ ॥

विरुद्धाहारके विष गरकी उपमा और विरुद्ध भोजनके लक्षण ।

विरुद्धमपि चाहारं विद्याद्विषगरोपमम् ।
आनूपमामिषं माषक्षौद्रक्षीरविरूढकैः ॥ २९ ॥
विरुध्यते सह बिसैर्मूलकेन गुडेन वा ।
विशेषात्पयसा मत्स्या मत्स्येष्वपि चिलीचिमः॥

अब विरुद्र भोजनमें विषत्व दिखाते हैः-विरुद्ध आहार भी विष और गरके समान ही रोग अथवा मृत्युका कारण होता है, इस लिये विरुद्ध भोजनोंके विज्ञानके लिये यहाँपर दिग्दर्शनमात्र कथन करते हैं, जैसे आनूप जीवोंका मांस,उड़दकी दाल,मधु,दूध और विरूढ धान्य इनमेंसे किसी एकके या सबके साथ मिलाकर खानेसे विरुद्ध होजाता है । ऐसे ही आनूप मांस,बिस (कमलजड़ें) मूली, या गुड़के साथ मिलाकर खानेसे

विरुद्ध होजाता है । आनूप मांसोंमें भी विशेष कर मछलीका मांस और मछलियोंमें भी चिलीचिम मछलीका मांस दूधके साथ मिलाकर खाना विशेष कर विरुद्ध होजाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

दूधके साथ अम्लद्रव्य और कुलथी आदिका विरोध।

विरुद्धमम्लं पयसा सह सर्वं फलं तथा ।
तद्वत्कुलत्थवरककङ्गुवल्लमकुष्ठकाः ॥ ३१ ॥

दूधके साथ काञ्जी आदि अम्ल पदार्थ मिलाकर खाना विरुद्ध होता है तथा आम्रातक, लकुच, करौंदा, केला, कपित्थ आदि सब प्रकारके अम्ल फल दूधके साथ मिलाकर नहीं खाने चाहिये । अथवा दूधसे पहले पीछे भी नहीं खाने चाहिये । ऐसे ही दूधके साथ कुलथी, वरक (तृणधान्य) कगणी, शिम्बीधान्य और मोठ ये सब खानेसे विरुद्ध हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

मूली आदि सेवनके अनन्तर पयका त्याग ।

भक्षयित्वा हरितकं मूलकादि पयस्त्यजेत् ३२॥

मूली आदि हरितशाक खाकर ऊपरसे दूध नहीं पीना चाहिये । यहांपर अरुणदत्तने लिखा है कि उबालकर घृतमें भूनी हुई मूली खाकर दूध पीना विरुद्ध नहीं है, कच्ची मूली खाकर दूध पीना विरुद्ध है । ऐसे ही मूली आदि सम्पूर्ण शाकोंका विरोध नहीं केवल हरितशाकोंका है ॥ ३२ ॥

सेधा मांसके सहित वराहमांसका निषेध ।

वाराहं श्वाविधा नाद्याद्दध्ना पृषतकुक्कुटौ ।
आममांसानि पित्तेन माषसूपेन मूलकम् ॥
अविं कुसुंभशाकेन बिसैः सह विरूढकम्३३॥

वराहके मांसके साथ सेहका मांस मिलाकर नहीं खाना चाहिये और दहीके साथ पृषत (घुग्गी) तथा कुक्कुटका मांस मिलाकर नहीं खाना चाहिये । पित्तके साथ मिलाकर कोई भी कच्चा मांस नहीं खाना चाहिये । उड़दकी दालके साथ मूली नहीं खानी चाहिये । कुसुम्भेके शाकके साथ भेड़का मांस नहीं खाना चाहिये । भिसोंके साथ विरूढ धान्य नहीं खाने चाहिये ॥ ३३ ॥

लकुचके साथ माष आदिका निषेध ।

माषसूपगुडक्षीरदध्याज्यैर्लाकुचं फलम् ।
फलं कदल्यास्तक्रेण दध्ना तालफलेन वा ३४॥

लकुच (बढ़हर) का फल- माषके सूप, गुड़ अथवा दूध, दही और घी इन एक एक के या इन सबके साथ मिलाकर नहीं खाना चाहिये ।

केलेका फल तक्रके साथ दहीके साथ अथवा तालफलके साथ मिलाकर नहीं खाना चाहिये॥ ३४॥

मकोय शाकके साथ मघपीपल आदिका निषेध ।

कणोषणाभ्यां मधुना काकमाचीं गुडेन वा ।
सिद्धां वा मत्स्यपचने पचने नागरस्य वा ॥
सिद्धामन्यत्र वा पात्रे कामात्तामुषितां निशाम् ।
मत्स्यनिस्तलनस्नेहसाधिताः पिप्पलीस्त्यजेत् ॥

मकोयका शाक-मघपीपल और काली मिरचके साथ अथवा शहद या गुड़के साथ नहीं खाना चाहिये । मछली पकानेके पात्रमें अथवा सोंठ पकानेके पात्रमें पकाया हुआ मकोयका शाक अथवा किसी अन्यपात्रमें पकाया हुआ होने पर भी यदि रात्रि भर व्युषित करके खाया जाय तो विरुद्ध होजाता है । मछलीको तलकर बचे हुए घृतमें तली हुई पीपल नहीं खानी चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

क्रियाविरुद्ध ।

कांस्ये दशाहमुषितं सर्पिरुष्णं त्वरुष्करे ।
भासो विरुध्यते शूल्यः कंपिल्लस्तक्रसाधितः॥

कांसीके पात्रमें दश दिनतक रक्खा हुआ घृत नहीं खाना चाहिये । भल्लातकका सेवन करते हुए उष्ण पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये । भासपक्षीका मांस शूलके ऊपर सेका हुआ होनेसे विरुद्ध होजाता है । कमीलेका शाक तक्रमें सिद्ध करनेसे विरुद्ध होजाता है ॥ ३७ ॥

खीर आदिका एकत्र और मधु आदिका समभागमें खानेका निषेध ।

ऐकध्यं पायससुराकृशराः परिवर्जयेत् ।
मधुसर्पिर्वसातैलपानीयानि द्विशस्त्रिशः ॥३८॥
एकत्र वा समांशानि विरुध्यंते परस्परम् ।
भिन्नांशे अपि मध्वाज्ये दिव्यवार्यनुपानतः ॥

खीर, मद्य और खिचड़ी ये तीनों एकसाथ मिलाकर नहीं खानी चाहिये ।

मधु, घृत, चर्बी, तैल और जल इनमेसे दो अथवा तीनको समभाग मिलाकर नहीं खाना चाहिये, अथवा सबको भी समभाग मिलाकर नहीं खाना चाहिये । जैसे मधु घृत, मधु वसा, मधु तैल, मधु जल ये दो दो समभाग मिलाकर नहीं खाने चाहिये। ऐसे ही मधु घृत वसा अथवा मधु घृत तैल या मधु घृत जल इस प्रकार तीन तीन, अथवा मधु आदि सम्पूर्ण वस्तुएं समभाग मिलाकर खानेसे विरुद्ध होजाती है ॥

मधु घृत विषम भागमे मिलाकर खानेपर ऊपरसे आकाशका जल पीनेसे विरुद्ध होजाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

मधु आदिके एकत्र सेवनका निषेध ।

मधुपुष्करबीजं च मधुमैरेयशार्करम् ।
मंथानुपानः क्षैरेयो हारिद्रः कटुतैलवान् ॥४०॥

मधु और कमलगट्टे अथवा मधु (मार्द्वीकमद्य) खजूरकी मद्य और शर्कराकी मद्य एक समयमें मिलाकर नहीं पीने चाहिये ।

पायस खाकर ऊपरसे शरबत पीना विरुद्ध हो जाता है । हारिद्र [कुप्रसवपीत छत्रवान् कन्द शाक] शाक कटु तैलके साथ विरुद्ध होजाता है॥४०॥

तिल कल्कमें सिद्ध उपोदका और बलाका पक्षीका मांस वारुणी आदिके साथ निषेध ।

उपोदकातिसाराय तिलकल्केन साधिता ।
बलाका वारुणीयुक्ता कुल्माषैश्च विरुध्यते ॥
भृष्टा वराहवसया सैव सद्यो निहंत्यसून् ॥४१॥

तिलकल्कमें सिद्ध की हुई उपोदकीको खानेसे अतिसार रोग उत्पन्न होता है ।

बलाका पक्षीका मांस वारुणी मद्यके साथ और कुल्माषके साथ खानेसे हानिकारक होता है । यदि बलाकाके मांसको वराहकी चरबीमें भूनकर खायाजाय तो शीघ्र प्राणोंका नाश होता है॥ ४१ ॥

तित्तर आदिका मांस एरण्डकी अग्निसे सिद्ध किया मृत्युकारक ।

तद्वत्तित्तिरिपत्राढ्यगोधालावकपिंजलाः ।
ऐरंडेनाग्निना सिद्धास्तत्तैलेन विमूर्छिताः ॥४२॥

उसी प्रकार तित्तरका मांस या मोरका मांस अथवा गोधा या लवाका मांस अथवा कपिञ्जलका मांस एरण्डकी लकड़ीकी अग्निसे सिद्ध करनेसे अथवा एरण्डके तैलमें भूननेसे रोगकारक या मृत्युकारक होजाता है ॥ ४२ ॥

हारीतका मांस योगविशेषसे जीवितहर ।

हारीतमांसं हारिद्रशूलकप्रोतपाचितम् ॥ ४३ ॥
हारिद्रवह्निना सद्यो व्यापादयति जीवितम् ।
भस्मपांशुपरिध्वस्तं तदेव च समाक्षिकम् ४४॥

हरीयल पक्षीका मांस—दारुहलदीकी सीकमे डालकर पकानेसे अथवा दारुहलदीकी लकड़ीकी आगमे भूननेसे विरुद्ध होता है, इसके खानेसे मनुष्य शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त होता है ।

हरीयल पक्षीका मांस जो भस्म तथा पांसुसे लिपटा हुआ हो उसको मधुके साथ खानेसे जीवनका नाश होता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

विरुद्ध व्यापिके लक्षण ।

यत्किंचिद्दोषमुत्क्लेश्य न हरेत्तत्समासतः ।
विरुद्धं शुद्धिरत्रेष्टा शमो वा तद्विरोधिभिः॥४५॥

जो द्रव्य दोषोंको उत्क्लेशित करके बाहर नहीं निकाले उसको विरुद्ध कहते है । यह विरुद्धका संक्षेप लक्षण है ।

विरुद्धाशन द्वारा उत्क्लेशित हुए दोषोंको वमन विरेचन द्वारा शुद्ध कर देना चाहिये। अथवा जिस विरुद्ध पदार्थके खानेसे दोष उत्क्लेशित हुए हों उसके विरुद्ध गुणवाले द्रव्योंसे विरुद्धाशनजनित दोषको शमन कर देना चाहिये ॥ ४५ ॥

विरुद्धाहारमें शरीरसंस्कारकी श्रेष्ठता।

द्रव्यैस्तैरेव वा पूर्वं शरीरस्याऽभिसंस्कृतिः।

अथवा विरुद्धाशनजनित दोषसे विपरीत गुण-वाले द्रव्योंसे शरीरका पहिले ही ऐसा संस्कार कर-लेना चाहिये जिससे शरीरमें विरुद्धाशनजनित दोष उत्पन्न न होने पावे ॥

व्यायामादि करनवालोंको विरोधी भोजन।

व्यायामस्निग्धदीप्ताग्निवयःस्थबलशालिनाम्।
विरोध्यपिन पीडायै सात्म्यमल्पं च भोजनम्॥४६

ऐसे पुरुषोंको विरुद्धाशन हानिकारक नही होता है अथवा अल्पतर हानि करता है, जैसे जिनका शरीर व्यायाम करनेसे बलवान् रहता है अथवा जिनका शरीर तैलमर्दनादिसे बलिष्ट और स्निग्ध होता है या जिनकी जठराग्नि बहुत बलवान् होती है अथवा जो युवावस्थावाले और बलवान् होते है अथवा जो सात्म्य अथवा क्षुधा रखकर भोजन करते है उनको विरुद्ध भोजन किया हुआ भी हानि-कारक नही होता ॥ ४६ ॥

पथ्यापथ्य भोज्यका त्यागप्रकार तथा हित निषेवण।

पादेनापथ्यमभ्यस्तं पादपादेन वा त्यजेत्।
विषेवेत हितं तद्वदेकद्वित्र्यंतरीकृतम्॥ ४७ ॥

जिस कुपथ्यको अभ्यासद्वारा सात्म्य कर लिया हो उस कुपथ्यको एक बार ही त्याग देनेसे हानि होती है, इस लिये उस अपथ्यके त्यागकी विधिको कथन करते है—जिस अपथ्यका अभ्यास किया हुआ हो उसको कुछ दिन चौथा भाग अथवा सोलहवां भाग कम करके सेवन करे और उस चौथे भागको पथ्य और हित द्रव्यसे पूर्ण करता जाय। इसी प्रकार धीरे २ अपथ्य पदार्थको कम करते हुए और पथ्यको बढ़ाते हुए अपथ्यका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है, जैसे प्रथम दिन अपथ्य तीन भाग और पथ्य एक भाग मिलाकर भोजनकी पूर्ति करे, दूसरे दिन फिर प्रथमा-भ्यास किये हुए अपथ्यके ही चार भाग सेवन करे, फिर तीसरे दिन तीन भाग अपथ्य और एक भाग पथ्यका सेवन करे, चौथे दिन दो भाग अपथ्य और दो भाग पथ्यका सेवन करे, फिर पांचवें और छठे दिन तीन भाग अपथ्य और चौथा भाग पथ्य सेवन करना चाहिये। फिर सातवे दिन दो भाग अपथ्य और दो भाग पथ्यका सेवन करना चाहिये। आठवे दिन एक भाग अपथ्य और तीन भाग पथ्य, फिर नवमें, दशमें और ग्यारहवें दिन दो भाग पथ्य और दो भाग अपथ्यका सेवन करना चाहिये, फिर बारहवें दिन एक भाग अपथ्य और तीन भाग पथ्य सेवन करना चाहिये, फिर तेरहवें दिन चारों भाग पथ्य और चौदहवे दिन और पन्द्रहवें दिन तथा सोलहवें दिन एक भाग अपथ्य और तीन भाग पथ्यका सेवन करे। और सत्रहवे दिन सम्पूर्ण चारों भाग पथ्यका सेवन करे इस प्रकार अपथ्य-का त्याग और पथ्यका सेवन करते हुए क्रमसे अपथ्यका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। इसी प्रकार सोलहवां भाग त्यागनेके क्रमकी कल्पना करनी चाहिये ॥४७॥

पथ्य गुणोंकी स्थिरता।

अपथ्यमपि ह त्यक्तं शीलितं पथ्यमेव वा॥
सात्म्यासात्म्यविकाराय जायते सहसाऽन्यथा॥

यदि अपथ्यको भी एकाएक त्याग दिया जाय और पथ्यको भी एकदम सेवन किया जाय तो सात्म्य पदार्थ भी असात्म्यजनित विकारोंको पैदा करता है, अथवा एकदम सात्म्य और असात्म्यका विना क्रम सेवन करनेसे विकार उत्पन्न हो जाता है, इसलिये सात्म्य किये हुए अपथ्यका भी क्रमसे त्याग और पथ्यका भी क्रमसे ग्रहण करना चाहिये ॥ ४८ ॥

अपथ्यत्याग और पथ्यस्वीकारके गुण ।

क्रमेणापचिता दोषाः क्रमेणोपचिता गुणाः ।
नाप्नुवंति पुनर्भावमप्रकंप्या भवंति च ॥ ४९ ॥

अपथ्याभ्यासजनित दोषोंको उपरोक्त क्रमसे नाश कर देनेपर वे फिर उत्पन्न नहीं हो सकते और क्रमसे पथ्याभ्यास द्वारा प्राप्त किये हुए गुण स्थिर हो जाते है, इसलिये उपरोक्त क्रमसे अपथ्यका त्याग और पथ्यका सेवन करना आवश्यक है ॥ ४९ ॥

अहिताहारका त्याग ।

अत्यंतसन्निधानानां दोषाणां दूषणात्मनाम् ।
अहितैर्दूषणं भूयो न विद्वान् कर्तुमर्हति ॥५०॥

अत्यन्त समीप होनेवाले अर्थात् शरीरमें रहनेवाले दोष जो यत्किंचित् अहित पदार्थोंसे दूषित होकर शरीरको दूषित करनेवाले हो जाते है उन दोषोंको विद्वान् पुरुष अहित आहार विहारसे फिर प्रकुपित नहीं कर सकता, अर्थात् यदि किसी कारणसे दोषोंका संचय हो गया और वैद्योंने उन दोषोंका विधिपूर्वक हरण करके स्वस्थावस्था बना दी तो फिर पुरुषको चाहिये कि दूसरी बार वह ऐसे आहार विहारका अभ्यास न करे जिससे फिर दोषोंका प्रकोप हो सके ॥ ५० ॥

आहारादिकोंसे शरीरका धारण ।

आहारशयनाब्रह्मचर्यैर्युक्त्या प्रयोजितैः ।
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणैः ॥५१॥

आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य इन तीनोंको युक्तिपूर्वक प्रयोग करनेसे शरीर निरन्तर धारित रहता है। जैसे युक्तिपूर्वक स्तम्भ दिवार आदिके आश्रित घर ठीक बना रहता है, उसी प्रकार आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य इन तीन स्तम्भोंके आश्रित रहनेसे शरीर भी शतायुवाला हो सकता है ॥ ५१ ॥

आहारो वर्णितस्तत्र तत्र तत्र च वक्ष्यते ॥५२॥

इन तीनोंमें प्रथम आहार विधिको ऋतुचर्य्या और द्रवान्न स्वरूप विज्ञानीय आदि अध्यायोंमें कह आये है और आगे मात्राशितीय अध्यायमें तथा ज्वरचिकित्सादिमें कथन करेंगे ॥ ५२ ॥

शयन ब्रह्मचर्यकी विधि ।

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम् ।
वृषता क्लीबता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च ५३॥

निद्रा विषयका कथन करते हैं:—मनुष्योंके सुख और दुःख, पुष्टि और कृशाता, बल और निर्बलता, वृषता और क्लीबता, ज्ञान और अज्ञान जीवन और मरण ये सब निद्राके अधीन होते हे, "इसलिये निद्राके विषयमें कथन करते है" ॥ ५३ ॥

दुष्ट निद्राका निर्देश ।

अकालेऽतिप्रसंगाच्च न च निद्रा निषेविता ।
सुखायुषी पराकुर्यात्कालरात्रिरिवाऽपरा ॥५४॥

विना काल निद्रा लेनेसे अथवा बहुत अधिक सोनेसे या सर्वथा न सोनेसे सुखवाली आयु (तन्दुरुस्ती) का नाश हो जाता है । यह निद्राका मिथ्या योग, अतियोग और अयोग कालरात्रिके समान मनुष्योंके आरोग्य अथवा जीवनका नाश कर देते है ॥ ५४ ॥

जागरणके गुण ।

रात्रौ जागरणं रूक्षं स्निग्धं प्रस्वपनं दिवा ।
अरूक्षमनभिष्यंदि त्वासीनप्रचलायितम् ॥५५॥

रात्रिको जागनेसे रूक्षता और वायुका प्रकोप होता है, दिनमें सोनेसे स्निग्धता और कफका प्रकोप होता है, एवं बैठे २ सोनेसे रूक्षता और अभिष्यन्दता दोनों नहीं होते । हेमाद्रिने भेड़सहिताका प्रमाण देकर लिखा है कि—"स्वप्नकामो दिवाकाममुपविष्टः शयीत वा । प्रस्तीर्णामस्य जन्तोर्हि श्लेष्मा कोष्ठे प्रवर्तते ॥" तात्पर्य यह हुआ कि रात्रिको जागनेसे रूक्षता बढ़कर रोग होनेका भय है और दिनमें सोनेसे कफ बढ़कर रोग उत्पन्न होनेका भय है, इसलिये रात्रिको जागरण नही करना चाहिये और दिनको सोना नहीं चाहिये । भेड़का प्रमाण देकर हेमाद्रि कहता है कि यदि आलस्य और निद्रा दिनमें बहुत सतावे तो बैठे २ आलस्य निवृत्यर्थ किंचित् सो लेनेसे रूक्षता और अभिष्यन्द दोनों उत्पन्न नहीं होते

हैं, किन्तु दिनमें शय्या बिछाकर सोनेसे ही मनुष्यके कोष्ठमें कफका प्रकोप होता है ॥ ५५ ॥

दिवास्वापका गुण और दोष ।

ग्रीष्मे वायुचयादानरौक्ष्यरात्र्यल्पभावतः ।
दिवास्वप्नो हितोऽन्यस्मिन्कफपित्तकरो हि सः॥५६

परन्तु ग्रीष्म ऋतुमे वायुका सचय होनेसे और आदानकालजनित रूक्षताके कारण एव रात्रिके छोटी होनेके कारण दिनमें सोना हितकारक होता है । ग्रीष्म ऋतुके अतिरिक्त अन्य सब ऋतुओंमें दिनमे सोनेसे कफ और पित्तका प्रकोप होता है ॥ ५६ ॥

मुक्त्वा तु भाष्ययानाध्वमद्यस्त्रीभारकर्मभिः ।
क्रोधशोकभयैः क्लांतान् श्वासहिध्मातिसारिणः॥
वृद्धबालाबलक्षीणक्षततृट्शूलपीडितान् ।
अजीर्णाभिहतोन्मत्तान् दिवास्वप्नोचितानपि ॥
धातुसाम्यं तथा ह्येषां श्लेष्मा चांगानि पुष्यति ।

जो मनुष्य बहुत बोलनेसे अथवा घोड़े आदिकी सवारीसे या रास्ता चलनेसे अथवा मद्य पीनेसे या स्त्रीसगसे अथवा भार उठाने या अन्य शारीरिक परिश्रम करनेसे अथवा क्रोध, शोक और भयसे क्लान्त हुए मनुष्य हो उनको किसी भी ऋतुमे श्रमनिवृत्त्यर्थ दिनमे सोनेका निषेध नहीं है ।

तथा श्वास, हिचकी और अतिसार रोगवाले मनुष्यको, अथवा वृद्ध, बालक, निर्बल, क्षीण तथा क्षत, प्यास, शूलसे पीड़ित मनुष्योंको भी दिनमे सोनेका निषेध नहीं है । इसी प्रकार अजीर्ण रोगी, उन्मत्त और जिन्होने दिनमे सोनेका अभ्यास किया है उनको विना दिनमे सोये कष्ट प्रतीत होता है, ऐसे पुरुषोंको दिनमे सोनेका निषेध नहीं है । ऐसे पुरुषोंके शरीरमें दिनमें सोनेसे कफविकार उत्पन्न न होकर धातुए साम्य होकर अगोंको पुष्ट करती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

पुरुषविशेषको शयनका निषेध ।

बहुमेदःकफाः स्वप्युः स्नेहनित्याश्च नाहनि ॥
विषार्तः कंठरोगी च नैव जातु निशास्वपि ५९॥

जिन मनुष्योंके शरीरमें मेद और कफकी अधिकता है अथवा जो लोग नित्य घृत आदि चिकने पदार्थोंको विशेष सेवन करते है उनको दिनमें नहीं सोना चाहिये ।

जो मनुष्य विषसे पीडित हों और कण्ठके रोगवाले मनुष्य इनको रात्रिमें भी नहीं सोना चाहिये, क्योंकि विषार्त्त मनुष्यके शरीरमें सोनेसे विषका सचार होता है और कण्ठरोगीके शरीरमें सोनेसे कफ बढ़कर कण्ठकी सूजनको बढ़ा देती है, तब कण्ठरोग असाध्य होजाता है ॥ ५९ ॥

अकालशयनसे मोह आदिका होना ।

अकालशयनान्मोहज्वरस्तैमित्यपीनसाः ।
शिरोरुक्शोफहृल्लासस्रोतोरोधाग्निमंदता॥६०॥

विना समय सोनेसे—मोह, ज्वर, स्तैमित्य, प्रतिश्याय, मस्तकपीड़ा, सूजन, हृल्लास, स्रोतोंकी रुकावट और मन्दाग्नि आदि होजाते हैं ॥ ६० ॥

तत्रोपवासवमनस्वेदनावनमौषधम् ॥ ६१ ॥

ऐसा होनेपर उपवास, वमन, स्वेदन, नस्यकर्म आदिका प्रयोग कर आरोग्य प्राप्त करना चाहिये॥६१॥

अतिनिद्राकी चिकित्सा ।

योजयेदतिनिद्रायां तीक्ष्णं प्रच्छर्दनांजनम् ।
नावनं लंघनं चिंतां व्यवायं शोकभीक्रुधः ।
एभिरेव च निद्राया नाशः श्लेष्मातिसंक्षयात् ६२

यदि अत्यन्त निद्रा आती हो तो तीक्ष्ण छर्दन, अंजन, नस्यकर्म, लघन करना चाहिये तथा चिन्ता, स्त्रीसग, शोक, भय और क्रोध आदि उत्पन्न करदेना चाहिये । इन उपायोंसे कफका क्षय होकर अधिक निद्रारूपी रोग भी शान्त हो जाता है ॥ ६२ ॥

निद्रानाशजन्य विकार ।

निद्रानाशादंगमर्दशिरोगौरवजृंभिकाः ।
जाड्यं ग्लानिभ्रमापक्तितंद्रारोगाश्च वातजाः६३
यथाकालमतो निद्रां रात्रौ सेवेत सात्म्यतः ।
असात्म्याज्जागरादर्धं प्रातः स्वप्यादभुक्तवान्६४

निद्रानाश होनेसे अर्थात् जिस मनुष्यको जितनी निद्रा लेनी चाहिये उतनी निद्रा न होनेसे या सर्वथा

निद्राभंग होनेसे अंगमर्द, शिरमें गुरुता, जम्भाई, जड़ता, ग्लानि, भ्रम, मन्दाग्नि, तन्द्रा और वात-जनित रोग उत्पन्न होते हैं।

इसलिये यथाकाल रात्रिको सात्म्यानुसार निद्रा लेनी चाहिये।

यदि जितनी निद्रा सात्म्य हो उतना रात्रिमें न शयन कर सके तो प्रातःकाल भोजन करनेसे पहिले रात्रिके जागरणसे आधा शयन कर लेना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

मन्दनिद्रावालेको क्षीर आदिका सेवन।

शीलयेन्मंदनिद्रस्तु क्षीरमद्यरसान् दधि।
अभ्यंगोद्वर्तनस्नानमूर्धकर्णाक्षितर्पणम् ॥ ६५ ॥
कांताबाहुलताश्लेषो निर्वृतिः कृतकृत्यता।
मनोऽनुकूला विषयाः कामं निद्रासुखप्रदाः ६६

जिस मनुष्यकी निद्रा कम होगयी हो उसको दूध, मद्य, मांसरस, दहीका सेवन करना चाहिये तथा तैल-मर्दन, उबटन, स्नान, एव मस्तक, कान और नेत्रों-का तर्पण करना चाहिये तथा प्रिय स्त्रीका मैथुन-रहित आलिङ्गन, कार्यकी पूर्णता, सतोष, मनोऽनु-कूल दर्शन गायनादिकी प्राप्ति भी निद्राके सुखको देनेवाले होते है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

ब्रह्मचर्यरतेर्ग्राम्यसुखनिस्पृहचेतसः।
निद्रा संतोषतृप्तस्य स्वं कालं नातिवर्तते॥६७॥

जो पुरुष ब्रह्मचर्यमें रत रहते है, जिनके चित्तमे ग्राम्य सुखोंकी यत्किंचित् भी इच्छा नहीं है तथा सन्तोषरूपी अमृतसे जिनका हृदय तृप्त है उनको सर्वदा यथाकाल सुखपूर्वक निद्रा आजाती है ॥ ६७॥

मैथुनके स्वीकार और त्यागप्रकार।

ग्राम्यधर्मे त्यजेन्नारीमनुत्तानां रजस्वलाम्।
अप्रियामप्रियाचारां दुष्टसंकीर्णमेहनाम् ६८॥
अतिस्थूलकृशां सूतां गर्भिणीमन्ययोषितम्।
वर्णिनीमन्ययोनिं च गुरुदेवनृपालयम् ॥६९॥
चैत्यश्मशानाऽयतनचत्वरांबुचतुष्पथम्।
पर्वाण्यनंगं दिवसं शिरोहृदयताडनम् ॥ ७० ॥
अत्याशितोऽधृतिःक्षुद्वान् दुःस्थितांगःपिपासितः
बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥

अब स्त्रीसंगके नियम कहते हैः-

पुरुषको आरोग्य और धर्मकी रक्षाके लिये उचित है कि उलटी स्त्री, रजस्वला, अप्रिया, दुष्ट आचारवाली, दुष्ट या संकीर्ण योनिवाली, अतिस्थूल, अतिकृश, प्रसूता, गर्भिणी, परस्त्री और ब्रह्मचारि-णी स्त्रीसे मैथुन न करे तथा अयोनि मैथुन भी न करे। इसी प्रकार गुरुके स्थानमें, देवस्थानमें, राज-स्थानमे, चैत्यस्थानमें, श्मशानमें, दुष्टस्थानमें, चौरा-हेमें, चौपाड़मे, एकादशी, अमावस्या आदि पर्वके दिन, निन्दित मार्गसे, दिनमे, शिर और हृदयको पीटते हुए, बहुत भोजनके अनन्तर, अन्यचित्त होकर, क्षुधातुर, विषमासन होकर और प्यासे पुरुषको मैथुन नहीं करना चाहिये। तथा बाल वृद्ध मल मूत्रादि वेगवाले और रोगी मनुष्यको भी मैथुन नहीं करना चाहिये ॥ ६८-७१ ॥

ऋतुविशेषसे निधुवननियम।

सेवेत कामतः कामं तृप्तो वाजीकृतां हिमे।
त्र्यहाद्वसंतशरदोः पक्षाद्वर्षानिदाघयोः ॥ ७२ ॥

जो मनुष्य वाजीकरण ओषधियोंसे तृप्त हो तथा नीरोग हो वह हेमन्त और शिशिर ऋतुमे अनुकूल और प्रिया स्त्रीसे इच्छानुसार मैथुन करे तथा वसन्त और शरद् ऋतुमे तीन तीन दिनके अनन्तर एव वर्षा और ग्रीष्म ऋतुमे पन्द्रह पन्द्रह दिनके अनन्तर स्त्रीसंग करना चाहिये ॥ ७२ ॥

अन्य प्रकार स्त्रीगमनसे भ्रम आदिका होना।

भ्रमक्लमोरुदौर्बल्यबलधात्विंद्रियक्षयः।
अपर्वमरणं च स्यादन्यथा गच्छतः स्त्रियम् ७३

इस नियमसे विपरीत स्त्रीसंग करनेसे भ्रम, क्लम, ऊरुस्थलकी दुर्बलता, बलकी हानि, धातु और इन्द्रियोंका क्षय और अकालमरण होजाता है। इसलिये नियमसे विपरीत स्त्रीसंग नहीं करना चाहिये ॥ ७३ ॥

युक्त निधुवनरतसे स्मृति आदिका ठीक रहना ।

स्मृतिमेधायुरारोग्यपुष्टींद्रिययशोबलैः ।
अधिका मंदजरसो भवंति स्त्रीषु संयताः ॥७४॥

नियमानुसार स्त्रीसग करनेसे—स्मृति, मेधा, आयु, आरोग्य, पुष्टि, इन्द्रिय, यश और बल तथा युवावस्था देरतक बने रहते है । इसलिये नियमका अवश्य पालन करना चाहिये ॥ ७४ ॥

रतिके अनन्तर कर्तव्य ।

स्नानानुलेपनहिमानिलखंडखाद्य-
शीतांबुदुग्धरसयूषसुराप्रसन्नाः ।
सेवेत चानुशयनं विरतौ रतस्य
तस्यैवमाशु वपुषः पुनरेति धाम ॥ ७५ ॥

स्त्रीसंगके अनन्तर--स्नान करके चन्दनका लेपन करना, स्वच्छ पवनका सेवन करना, उत्तम मिठाई खाना, शीतल जल पीना, शीतकाल हो तो गरम दूध पीना, मांसरस, स्निग्धयूष, अथवा सुरा या प्रसन्नामद्य पीकर सोजाना चाहिये । इस प्रकार शयन करनेसे स्त्रीसंगजनित विकलता दूर होकर शरीरकी सम्पूर्ण धातुए पहिलेके समान पूर्ण होकर शरीरमें वैसा ही तेज आजाता है ॥ ७५ ॥

राजाको देह रक्षाके लिये वैद्यकी आवश्यकता ।

श्रुतचरितसमृद्धे कर्मदक्षे दयालौ
भिषजि निरनुबंधं देहरक्षां निवेश्य ।
भवति विपुलतेजःस्वास्थ्यकीर्तिप्रभावः
स्वकुशलफलभोगी भूमिपालश्चिरायुः ॥७६॥"

जो राजा—शास्त्रमें चतुर,बहुश्रुत, शुद्ध चरित्रवान्, ओषधि आदि उपकरणयुक्त, चिकित्सा कर्ममें दक्ष, दयालु वैद्यके आश्रयमें निरन्तर अपनी देहकी रक्षाका भार सौंप देता है वह राजा विपुल तेजयुक्त, स्वास्थ्यवान्, कीर्तिमान्, प्रभाववाला, कुशल, शुभ कर्मोंके शुभफल भोगनेवाला होकर चिरायु होता है ॥७६॥

इस सप्तम अध्यायको, सूत्ररूप यह सार ।
यथाबुद्धि हम भी लिख्यों, भाषामात्र विचार ॥ १ ॥
जो नर इस उपदेशके, चलि है नित अनुसार ।
सो पावहिं सुख दीर्घयुत, जीवन भले प्रकार ॥ २ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायाम्, वैद्यरत्न—पण्डित—श्रीरामप्रसादात्मज—विद्यालङ्कार—वैद्य—शिवशर्मविरचित-शिवदीपिकाख्य—व्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातो मात्राशितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

आहारकी मात्रा ।

मात्राशी सर्वकालं स्यान्मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्तिका ।
मात्रां द्रव्याण्यपेक्षंते गुरूण्यपि लघून्यपि ॥१॥
गुरूणामर्धसौहित्यं लघूनां नातितृप्तता ।
मात्रा प्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद्विजीर्यति॥२॥

अब हम मात्राशितीय अध्यायकी व्याख्या करते है:—

मनुष्यको सर्वदा ही उचित मात्रानुसार भोजन करना चाहिये, क्योंकि ठीकमात्रा ही जठराग्निकी यथार्थ प्रवृत्तिका कारण होकर देहकी स्थितिका हेतु होती है । इस लिये अग्निबलानुसार ठीक मात्राका ही प्रयोग करना चाहिये । मात्रा गुरु और लघु द्रव्योंके अनुसार होती है । इसलिये भारी द्रव्योंको अर्ध तृप्ति करके सेवन करना चाहिये और लघु द्रव्योंको तृप्तिसे किंचित् न्यून खाना चाहिये । मैदेसे बने हुए पूड़ियें, बालूसाही आदि और दूधसे बने हुए पेड़ा आदि गरिष्ठ पदार्थोंको तृप्तिसे आधा खाना चाहिये और शाली चावलोंका भात और मूंगकी दाल आदि हलके पदार्थ पूर्ण तृप्तिसे किंचिन् न्यून खाने चाहिये ।

जो आहार ठीक समयमें सुखपूर्वक पाचन होजाय और किसी प्रकारके विकारको न करे वह मात्राका यथार्थ प्रमाण जानना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

हीनमात्राका दोष ।

भोजनं हीनमात्रं तु न बलोपचयौजसे ।
सर्वेषां वातरोगाणां हेतुतां च प्रपद्यते ॥ ३ ॥

यदि यथार्थ मात्रासे कम आहार किया जाय तो बल, शरीरकी पुष्टि और ओजकी कमी होने लगती है । वह हीनमात्राका आहार वातजनित रोगोंका कारण है ३

अतिमात्राका दोष ।

अतिमात्रं पुनः सर्वानाशु दोषान् प्रकोपयेत् ।

इसी प्रकार यदि मात्रासे बहुत अधिक आहार किया जाय तो वह आहार सब दोषोंको शीघ्र ही प्रकुपित कर देता है ।

अलसकादिकी सम्प्राप्ति ।

पीड्यमाना हि वाताद्या युगपत्तेन कोपिताः॥४॥
आमेनान्नेन दुष्टेन तदेवाविश्य कुर्वते ।
विष्टंभयंतोऽलसकं च्यावयंतो विषूचिकाम् ।
अधरोत्तरमार्गाभ्यां सहसैवाजितात्मनः ॥ ५ ॥

अधिक खाये हुए अन्नसे आमाशयमे वातादि दोष पीड़ित होकर एक कालमें ही कोपको प्राप्त होते है, फिर वे दोष उस विना पचे दूषित कच्चे अन्नसे ही संमिलित होकर, उस अन्नमें प्रवेशकर उसी अन्नको विष्टब्ध बना देते है, फिर उस दुष्ट अन्नके साथ मिलकर उस अजितात्मा पुरुषके ऊर्ध्वमार्ग और अधोमार्गसे निकालते हुए विषूचिका रोगको उत्पन्न कर देते है अथवा विष्टब्ध कर अलसकको उत्पन्न कर देते है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अलसककी निरुक्ति ।

प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न च पच्यते ।
आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः ६॥

जो आहार आमाशयमें दूषित होकर न तो वमन द्वारा उर्ध्वमार्गसे निकले और न रेचन द्वारा अधोमार्गसे निकले किंतु अलसीभूत होकर आमाशयमें ही स्थित हुआ कष्ट देता रहे उसको अलसक [गुम्म हैजा] कहते है ॥ ६ ॥

विषूचिकाकी निरुक्ति ।

विविधैर्वेदनोद्भेदैर्वाय्वादिभृशकोपतः ।
सूचीभिरिव गात्राणि विध्यतीति विषूचिका ॥

अत्यन्त कुपित हुए वाय्वादि दोष शरीरमें अनेक प्रकारसे वेदना और भेदनकी सी पीड़ा करते हुए तथा सूचियोंके समान वेधन करते हुए अगोंमें विचरण करते है, इसलिये इसको विषूचिका कहते है ७॥

विषूचिकामें वातादि दोष जनित विकार।

तत्र शूलभ्रमानाहकंपस्तंभादयोऽनिलात् ।
पित्तज्ज्वरातिसारांतर्दाहतृट्प्रलपादयः॥ ८ ॥
कफाच्छर्द्यंगगुरुतावाक्संगष्ठीवनादयः ॥ ९ ॥

उस विषूचिकामें शूल, भ्रम, आनाह, कम्प और स्तम्भ भेदादिक वायुसे होते हैं । और ज्वर, अतिसार, अन्तर्दाह, प्यास और मूर्च्छा आदिक पित्तसे होते है, एव छर्दि, अंगोंमें भारीपन, वाणीका रुकना, मुखसे लार आदि गिरना, ये लक्षण कफसे होते है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अलसकके सम्प्राप्तिपूर्वक लक्षण ।

विशेषाद्दुर्बलस्याऽल्पवह्नेर्वेगविधारिणः ।
पीडितं मारुतेनान्नं श्लेष्मणा रुद्धमंतरा ॥१०॥
अलसं क्षोभितं दोषैः शल्यत्वेनैव संस्थितम् ।
शूलादीन्कुरुते तीव्रांश्छर्द्यतीसारवर्जितान्११॥
सोऽलसः-

प्रायः दुर्बल पुरुष जिनके शरीरमे जठराग्नि मन्द हो और वे मल मूत्रादि वेगोंको रोकनेवाला हो यदि ऐसा पुरुष अधिक मात्रासे अन्न खाय तो वह अन्न वायुसे पीड़ित होजाता है और कफ द्वारा दोनों ओरसे रोक दिया जाता है । ऐसा अलसित हुआ अन्न दोषोंसे क्षोभित होकर शल्यके समान उदरमें स्थित होकर तीव्र शूल आदिको करता है, किंतु वमन और विरेचनको नहीं करता, अर्थात छर्दि और अतिसारको छोड़कर शूल, भ्रम आनाह, कम्पादिको करता है, इस रोगको अलसक कहते है ॥ १० ॥ ११ ॥ —

दण्डालसकके लक्षण ।

**–अत्यर्थदुष्टास्तु दोषा दुष्टामबद्धखाः ।
यांतस्तिर्यक्तनुं सर्वां दंडवत्स्तंभयंति चेत् ॥
दंडकालसकं नाम तं त्यजेदाशुकारिणम् ॥१२॥**

अत्यन्त दुष्ट हुए दोष दुष्ट आम दोषके द्वारा शरीरके छिद्रोंको रोककर तिर्यक् गमन करते हुए यदि शरीरको दण्डके समान स्तम्भित कर दे तो इस रोगको दण्डालसक कहते है। यह दण्डालसक रोग शीघ्र ही प्राणोंको नाश कर देता है। इसलिये इसको यशकी इच्छावाला वैद्य त्याग देवे ॥१२॥

आम विषका निर्देश ।

**विरुद्धाध्यशनाजीर्णशीलिनो विषलक्षणम्॥१३॥
आमदोषं महाघोरं वर्जयेद्विषसंज्ञकम् ।
विषरूपाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वतः ॥ १४ ॥**

विरुद्ध भोजन करनेवाले अथवा अध्यशन या अजीर्णाशन करनेवाले मनुष्यके शरीरमे विषके लक्षणोंवाला महाघोर आमदोष उत्पन्न हो जाता है। वह विषसंज्ञक आमदोष विषरूप और शीघ्र नाशकारी होनेसे तथा चिकित्सामें विरुद्ध उपक्रम होनेसे त्याग देने योग्य होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अलसादिकों पर चिकित्साक्रम ।

**अथाऽऽममलसीभूतं साध्यं त्वरितमुल्लिखेत् ।
पीत्वा सोग्रापटुफलं वार्युष्णं योजयेत्ततः॥१५॥
स्वेदनं फलवर्तिं च मलवातानुलोमनीम् ।
नाम्यमानानि चांगानि भृशं स्विन्नानि वेष्टयेत् ।**

१ तथा सुश्रुते चोक्तम्––"सुच्छर्दितविरिक्तस्य गात्रायामेऽनिदाहणे । भल्लातकमधूच्छिष्टसीसपिण्याकनागरैः। घृततैल पचेत् साम्लैस्तच्च खल्लीघ्नमुत्तमम्॥त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठैरम्लप्रपिष्टैः सवचाशताहैः । उद्वर्तनं खल्लिविषूचिकाघ्नं तैल विपक्वं च तदर्थकारि ॥ शिरीषनक्ताह्वफणिज्जबीजत्र्यायंत्यपामार्गफलानि वर्तिः । बस्तस्यमूत्रेण विषूचिकाघ्नी प्रलेपनस्यांजनधूमयोगैः" इति।

यदि अलसीभूत आमदोष साध्य हो तो उसको शीघ्र उल्लेखनकर निकाल देवे। उल्लेखनकर निकालनेका योग कहते हैं:–वच, लवण और मैनफलका बारीक चूर्ण गरम जलसे पिलावे, इससे वमन होकर अलसित आम ऊपरके मार्गसे निकल जाता है।

इसके अनन्तर स्वेदन कराकर मल और वायुको अनुलोमन करनेके लिये मैनफलसे बनायी हुई अगुष्ठप्रमाण बत्ती घीसे चिकनी कर गुदामें प्रवेश करे, इस बत्तीका योग सर्वाङ्गसुन्दरामे इस प्रकार लिखा है––गोमूत्र, कांजी, मधु, दन्ती, मैनफलका चूर्ण, मघपीपल, बिड़लवण, गृहधूम और कुठ इन सबको बारीक कर गोमूत्र, कांजी और मधुमे मिला अग्निपर पकाकर अगुष्ठ प्रमाण बत्ती बना ले, यह बत्ती घृतसे चिकनी करके प्रयोग करनी चाहिये। फिर जिन अगोंको नम्र करना हो उनको अत्यन्त स्वेदन कर कपड़ेकी पट्टीसे लपेटकर बांध देना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

विषूचिकाकी चिकित्सा ।

**विसूच्यामतिवृद्धायां पार्ष्ण्योर्दाहः प्रशस्यते ।
तदहश्चोपवास्यैनं विरिक्तवदुपाचरेत् ॥ १७ ॥**

अत्यन्त बढ़ी हुई विषूचिकामे विषूचिकावाले पुरुषकी दोनो पार्ष्णियो (एड़ियो) पर आगमे तपायी हुई लोहशलाकासे दाहकर्म करना चाहिये। तदनन्तर उस दिन उपवास कराकर विरेचनसे शुद्ध हुए पुरुषके समान इसको पेयादि क्रमका पालन कराना चाहिये।

हेमाद्रि सुश्रुतका प्रमाण देकर कहता है कि विषूचिका, अलसक और विलम्बिका इन तीनोंमे पार्ष्णिदाह करनेका विधान मानता है और भेड़संहिताका प्रमाण देकर दाहक्रममे आगमें दग्ध की हुई पिप्पली अथवा अरण्योपलकी अग्निसे या लोहशस्त्रसे दाहकर्म करना चाहिये। ऐसा लिखता है जिस दिन आम दोषका विकार निवृत्त हुआ हो उस दिन उपवास कराकर आमदोषनाशक द्रव्योंसे सिद्ध की हुई पेया आदिका प्रयोग करना चाहिये ॥ १७ ॥

आमाजीर्णमें चिकित्सा क्रम।

तीव्रार्तिरपि नाजीर्णी पिबेच्छूलघ्नमौषधम्।
आमसन्नोऽनलो नालं पक्तुं दोषौषधाशनम्॥
निहन्यादपि चैतेषां विभ्रमः सहसाऽऽतुरम्१८॥

अजीर्ण रोगीको तीव्र शूल होने पर भी शूल-नाशक औषधिका पान नहीं करना चाहिये, क्योंकि आमसे सन्न हुई जठराग्नि आमदोषको और खायी हुई औषधि तथा अन्नको पचानेमे समर्थ नहीं हो सकती। फिर इन दोष, औषध और आमान्नकी व्यापत्ति होनेपर शीघ्र ही रोगीका नाश होता है। इसलिये अजीर्णजनित तीव्र शूलमे भी प्रथम अलसक रोगमें कहे अनुसार दोषको लेखनकर निकाल देना चाहिये॥ १८॥

औषध देनेका समय।

जीर्णाशने तु भैषज्यं युंज्यात् स्तब्धगुरूदरे॥
दोषशेषस्य पाकार्थमग्नेः संधुक्षणाय च॥१९॥

यदि खाया हुआ अन्न जीर्ण होजाय, परन्तु पेट स्तब्ध और भारी सा रहे तो शेष दोषके परिपाकके लिये और अग्निको चैतन्य करनेके लिये औषधिका प्रयोग करना चाहिये॥ १९॥

औषधिका प्रकार।

शांतिरामविकाराणां भवति त्वपतर्पणात्।
त्रिविधं त्रिविधे दोषे तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत्२०
तत्राऽल्पे लंघनं पथ्यं मध्ये लंघनपाचनम्।
प्रभूते शोधनं तद्धि मूलादुन्मूलयेन्मलान् २१॥

आम विकारोंकी शान्ति अपतर्पण द्वारा होती है। वह अपतर्पण तीन प्रकारके आमदोषोंमें तीन प्रकारसे ही विचारपूर्वक प्रयोग करना चाहिये।

(१) यदि आमदोष बहुत थोड़ा सा हो तो एक दिन उपवासमात्र कर देना ही हितकारी या पर्याप्त होता है। (२) यदि आमदोष मध्यबलवाला हो तो उसमें लंघन भी कराना चाहिये और साथ ही पाचन औषधिका प्रयोग भी कराना चाहिये। (३) यदि आमदोष विशेष बढ़ा हुआ हो तो प्रथम वमन विरेचन द्वारा दोषको निर्मूल करदेना चाहिये। फिर यथार्थ वातानुलोमनादि होजानेपर जब क्षुधा चैतन्य हो तो पाचन द्रव्योंसे सिद्ध पेयादिका क्रम पालन करावे। इस प्रकार तीन प्रकारके अजीर्णोंमें तीन प्रकारका ही अपतर्पण करानेका विधान है॥ २०॥ २१॥

हेतुविपरीतादि सामान्योपदेश।

एवमन्यानपि व्याधीन् स्वनिदानविपर्ययात्।
चिकित्सेदनुबंधे तु सति हेतुविपर्ययम्॥२२॥
त्यक्त्वा यथायथं वैद्यो युंज्याद्व्याधिविपर्ययम्॥

जैसे अधिक अन्न भक्षणसे उत्पन्न हुए आमदोषमें अधिक भक्षणरूप हेतुसे विपरीत लंघन द्वारा व्याधिका उपशम होता है उसी प्रकार अन्य सम्पूर्ण व्याधियोंमें भी हेतु परिवर्जन अथवा हेतुविपरीत चिकित्सा करनी चाहिये। यदि हेतुविपरीत चिकित्सा करनेपर भी व्याधि बनी रहे तो हेतुविपरीत चिकित्साको छोड़कर यथादोष व्याधिविपरीत अर्थात् व्याधिनाशक चिकित्सा करनी चाहिये॥ २२॥ २३॥

पक्वदोषकी चिकित्सा।

तदर्थकारि वा पक्के दोषे त्विद्धे च पावके।
हितमभ्यंजनस्नेहपानबस्त्यादियुक्तितः॥२४॥

अथवा जब हेतुविपरीतादि उपक्रमसे दोष परिपक्व हो जायँ और जठराग्नि यथार्थ चैतन्य हो जाय तो युक्तिपूर्वक अभ्यञ्जन, स्नेहपान और बस्तिकर्मादि रसायन क्रमका प्रयोग करना चाहिये॥ २४॥

दोषपरत्वसे अजीर्णका लक्षण।

अजीर्णं च कफादामं तत्र शोफोऽक्षिगण्डयोः।
सद्यो भुक्त इवोद्गारः प्रसेकोत्क्लेशगौरवम्॥२५॥

कफसे आमाजीर्ण होता है, आमाजीर्णमें अक्षिकूट और गण्डस्थलमें सूजन होती है तथा तुरन्त भोजन किये हुएकी तरह डकार आती है तथा मुखसे लार गिरना, जी मचलाना और अंगोंका भारीपन होता है॥ २५॥

विष्टब्धाजीर्ण।

विष्टब्धमनिलाच्छूलविबंधाध्मानसादकृत्।

वातप्रकोपसे विष्टब्धाजीर्ण होता है। यह अजीर्ण शूल, विबन्ध, आध्मान, अगसाद आदिको उत्पन्न करता है।

विदग्धाजीर्ण।

पित्ताद्विदग्धं तृण्मोहभ्रमाम्लोद्गारदाहकृत् २६॥

पित्तप्रकोपसे विदग्धाजीर्ण होता है। इसमें प्यास, मोह, भ्रम, खट्टी डकारें और कण्ठमे तथा छातीमे दाह सी प्रतीति होती है ॥ २६ ॥

त्रिविध अजीर्णकी चिकित्सा।

लंघनं कार्यमामे तु विष्टब्धे स्वेदनं भृशम्।
विदग्धे वमनं यद्वा यथावस्थं हितं भजेत्२७॥

आमाजीर्णमे लघन कराना विशेष हितकारी होता है। विष्टब्धाजीर्णमे स्वेदन कराना हितकारी होता है। विदग्धाजीर्णमे वमन कराना हितकारी है, अथवा अवस्थानुसार जिस जिम अजीर्णमें जिस प्रकारकी चिकित्साकी आवश्यकता हो करानी चाहिये। जैसे आमाजीर्णमे भी यदि स्वेदन और वमनकी आवश्यकता हो, या विदग्धाजीर्णमे लघन और स्वेदनकी आवश्यकता हो तो ये भी कराने चाहिये। हेमाद्रि लिखते है कि विष्टब्धाजीर्णमे स्वेदन, वर्त्तिप्रयोग और लवणयुक्त गरम जल पिलाना चाहिये। विदग्धाजीर्णमें वमन, उपवास और विरेचन कराना चाहिये, अथवा अवस्थानुसार जैसा उचित हो वैसी चिकित्सा करे॥ २७ ॥

विलम्बिकाका लक्षण।

गरीयसो भवेल्लीनादामादेव विलंबिका।
कफवातानुबद्धामलिंगा तत्समसाधना ॥२८॥

बढ़े हुए आमदोषके विश्लेषसे विलम्बिका रोग उत्पन्न होता है। यह रोग कफ वातसे अनुबद्ध आमके लक्षणोंवाला होता है और आमकी चिकित्साके अनुसार ही उसकी चिकित्सा है। इसके लक्षण सुश्रुतमें इस प्रकार लिखे है—" दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्ध्वमधश्च यस्य। विलम्बिकां, तां भृशदुश्चिकित्स्यां आचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः॥" अर्थात् भोजन किया हुआ अन्न कफ और वायुसे दूषित हो जाय और वमनद्वारा ऊर्ध्वमार्गसे, रेचनद्वारा अधोमार्गसे न निकले किन्तु दूषित होकर कफ वातके उपद्रवों सहित उदरमें ही स्थित रहे, इम अत्यन्त दुश्चिकित्स्य रोगको शास्त्रके जाननेवाले प्राचीन ऋषि विलम्बिका कहते है। कोई कहते है कि जैज्जटने विलम्बिकाको ही अलसक माना है, परन्तु भेड़ कहते है कि विलम्बिका विदग्धमूलक अजीर्णसे उत्पन्न होती है और दण्डालसक विष्टब्धमूलक आमाजीर्णसे उत्पन्न होता है और इसी भेदवादको हेमाद्रिने समर्थन किया है। परन्तु विचारसे यदि हेतु और लक्षणोंपर ध्यान दिया जाय तो अलसक या दण्डालसक और विलम्बिकामें कुछ भेद प्रतीत नही होता और कफ वातका कोप प्रधान मानते हुए विलम्बिकाको विदग्धमूलका कहना भी निर्मूल है, क्योंकि खरनादने भी—"आमाजीर्णं विलम्बिका " अर्थात् आमाजीर्णरूप ही विलम्बिका होती है, ऐसा कहा है। इसलिये विदग्धाजीर्णमूलक तो हो नही सकता किन्तु यदि—" दीर्घकालविलम्बनात् विलम्बिका " कहकर अलसक या दण्डालसकसे इसका थोड़ा भेद मान लिया जाय तो इतना कह सकते है कि अलसक या दण्डालसक शीघ्र मृत्युकारी होता है और विलम्बिका कुछ विलम्बसे मृत्युकारी हो सकती है। मधुकोशने जो विलम्बिका और अलसकका भेद कथन करते हुए लिखा है कि अलसकमे शूलादि होते है और विलम्बिकामें नहीं होते यह भी मधुकोशकारका हेतुपर और व्याधिपर पूर्णदृष्टि न देना ही है, क्योंकि कफ और वायुसे अनुबद्ध आमदोषमें शूल और गुरुत्व होना अत्यावश्यक है। इसलिये यद्यपि हेतु और सम्प्राप्त तथा व्याधिमें सामान्यरूपसे कुछ भेद नहीं किन्तु अवस्थाभेदसे शीघ्रकारित्व और विलम्बकारित्वमात्र ही भेद माना जा सकता है तथा दोषबलके न्यूनाधिकसे सम्प्राप्तिमें और चिकित्सामे

एवं रोगके लक्षणोंमें सूक्ष्म भेदकल्पना करलियाजाय तब भी कोई दोष नहीं है ॥ २८ ॥

आहारसार रसाजीर्णके लक्षण ।

अश्रद्धा हृद्व्यथा शुद्धेऽप्युद्गारे रसशेषतः ।
शयाति किंचिदेवात्र सर्वश्चानाशितो दिवा ॥
स्वप्यादजीर्णी संजातबुभुक्षोऽद्यान्मितं लघु२९

यदि अन्नपाचन होजानेपर शुद्ध उद्गार भी आने लगे परन्तु आमरस शेष रह जाय तो उसको रसाजीर्ण कहते है यह रस जो अन्नके परिपाकसे शुद्ध रस बनता है वह रस नहीं किन्तु आमदोषयुक्त रस शेष रह जानेसे इसको रसाजीर्ण कहते है । रसाजीर्णमें-अन्नकी इच्छा न होना, हृदयमें व्यथा होना, ये लक्षण होते है।

रसशेषाजीर्णमें अथवा सम्पूर्ण अजीर्णोंमें दिनमें विना कुछ भोजन किये सोना चाहिये । जब रस जीर्ण होकर अथवा सब प्रकारका अजीर्ण निवृत्त होकर यथार्थ रूपसे क्षुधा लगे तब बहुत थोड़ा और हलका तथा अजीर्णनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ पेया आदि भोजन करे ॥ २९ ॥

सामान्याजीर्णके लक्षण ।

विबन्धोऽतिप्रवृत्तिर्वा ग्लानिर्मारुतमूढता ।
अजीर्णलिंगं सामान्यं विष्टंभो गौरवं भ्रमः३०॥

सामान्याजीर्णमें मलका विबन्ध होना अथवा मलकी अतिप्रवृत्ति होना, ग्लानि, वायुकी मूढता, विष्टम्भ, गौरव और भ्रम, ये लक्षण होते है ॥३०॥

अजीर्णके अन्य कारण ।

न चातिमात्रमेवान्नमामदोषाय केवलम् ।
द्विष्टविष्टंभिदग्धामगुरुरूक्षहिमाशुचि ॥ ३१ ॥
विदाहि शुष्कमत्यंबुप्लुतं वान्नं न जीर्यति ।
उपतप्तेन भुक्तं च शोकक्रोधक्षुधादिभिः ॥३२॥

केवल अतिमात्रासे भोजन करना ही आमदोषका कारण नहीं है, किन्तु जिस अन्नसे विद्वेष हो उसके खानेसे तथा विष्टम्भि, दग्ध, कच्चे, भारी, रूक्ष, अतिशीतल, अपवित्र, विदाही और अत्यन्त सूखेहुए अन्न खानेसे अथवा अन्नके साथ बहुत अधिक जल पीनेसे भी अन्नका यथार्थ परिपाक न होकर अजीर्ण होजाता है । एवं शोक, क्रोध और अतिबुभुक्षा आदि कारणोंसे अति उपतप्त पुरुषका किया हुआ भोजन भी यथार्थरूपसे जीर्ण नहीं होता ॥३१॥३२॥

समशन और अध्यशनादिके लक्षण ।

मिश्रं पथ्यमपथ्यं च भुक्तं समशनं मतम् ।
विद्यादध्यशनं भूयो भुक्तस्योपरि भोजनम्३३
अकाले बहु चाल्पं वा भुक्तं तु विषमाशनम्॥
त्रीण्यप्येतानि मृत्युं वा घोरान्व्याधीन्सृजंति वा

पथ्य और अपथ्यको एकसाथ मिलाकर खानेको समशन कहते है । भोजन करने पर थोड़ी सी देरके बाद फिर दूसरी बार भोजन करनेको अध्यशन कहते है। विना समय कभी बहुत कभी थोड़ा भोजन करनेको विषमाशन कहते है । ये समशन, अध्यशन और विषमाशन तीनों ही अशनदोष अनेक प्रकारकी घोर व्याधियोंको उत्पन्न करते है । अथवा मृत्युके कारण भी हो जाते है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

भोजनका नियम ।

काले सात्म्यं शुचि हितं स्निग्धोष्णं लघु तन्मनाः
षड्रसं मधुरप्रायं नातिद्रुतविलंबितम् ।
स्नातः क्षुद्वान् विविक्तस्थो धौतपादकराननः३६
तर्पयित्वा पितॄन् देवानतिथीन् बालकान्गुरून्।
प्रत्यवेक्ष्य तिरश्चोऽपि प्रतिपन्नपरिग्रहान्॥३७॥
समीक्ष्य सम्यगात्मानमनिंदन्नब्रुवन् द्रवम् ।
इष्टमिष्टैः सहाश्नीयाच्छुचि भक्तजनाहृतम्३८॥

ठीक समयपर मलादि निवृत्तिपूर्वक स्नानादिके अनन्तर यथार्थ क्षुधाके समय भोजनमें मन लगाकर पवित्र होकर पवित्र, हित, स्निग्ध, उष्ण, षट्रसयुक्त, प्रायः मधुर आहारको न बहुत जल्दी और न बहुत देरमें यथार्थरूपसे भोजन करे । उसका विधान यह है-जैसे स्नानके अनन्तर क्षुधाके यथार्थ चैतन्य होनेपर एकान्तस्थानमें हाथ, पाव, धोकर

पवित्र आसनपर बैठजाय, तदनन्तर पितरोंको और देवताओंको तर्पण करके, अतिथि, बालक और गुरु तथा जिनका पालन पोषण आदिक भार अपने ऊपर हो उनको और पक्षी आदिकोंको बलि देनेके अनन्तर अपनी शारीरिक जठराग्नि आदिको देखकर इष्टमित्रोंके सहित भोजन करे। भोजन बनाने और परोसनेवाले पवित्र और भक्तजन होने चाहिये, फिर भोजन करते समय किसी प्रकारका बकवाद या निन्दा आदि न करते हुए मौन होकर मधुर प्रायः और द्रवाधिक्य इष्ट प्रियभोजनको मन लगाकर यथार्थमात्रासे करे ॥ ३५–३८ ॥

त्याज्य भोजन।

भोजनं तृणकेशादिजुष्टमुष्णीकृतं पुनः।
शाकावरान्नभूयिष्ठमत्युष्णलवणं त्यजेत् ॥३९॥

जो भोजन तृण, केश आदिसे युक्त हो, अथवा व्युषित अन्नको दूसरी वार गरम किया गया हो, अथवा अधिक पत्रशाक या कदन्न अधिक प्रायः हो, अथवा अत्यन्त उष्ण या अधिक लवणयुक्त हो ऐसे भोजनको नहीं खाना चाहिये ॥ ३९ ॥

अधिक परिशीलनके अयोग्य पदार्थ।

किलाटदधिकूचीकाक्षारशुक्तामसूलकम्।
कृशशुष्कवराहाविगोमत्स्यमहिषामिषम् ॥४०॥
माषनिष्पावशालूकबिसपिष्टविरूढकम्।
शुष्कशाकानि यवकान् फाणितं च न शीलयेत्॥

दूधका खोआ, दधिकूर्चिका, क्षार, सिरका, कच्ची मूली, कृश जीवका मांस और सूखा मांस, वराहमांस, भेड़, गौ,मत्स्य और भैंसका मांस, माष,निष्पाव, शालूक, भिसें, मैदेकी वस्तुएं, विरूढ़धान्य, शुष्कशाक, यवकधान्य और फाणित इनका नित्य खाना हानिकारक होता है। जैसे खोआ आदिसे दोषप्रकोप और स्रोतोंका प्रलेप होकर अनेकरोग उत्पन्न होते है। क्षारसे पुंस्त्वहानि,सिरकेसे दृष्टिहानि,वराह मांसादिकोंसे धर्मादिकी हानि और त्रिदोषकोप होता है। इसलिये इनका अभ्यास नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥ ४१ ॥

नित्य सेवन योग्य पदार्थ।

शीलयेच्छालिगोधूमयवषष्टिकजांगलम्।
सुनिषण्णकजीवंतीबालमूलकवास्तुकम् ॥४२॥
पथ्यामलकमृद्वीकापटोलीमुद्गशर्कराः।
घृतादिव्योदकक्षीरक्षौद्रदाडिमसैंधवम् ॥
त्रिफलां मधुसर्पिर्भ्यां निशि नेत्रबलाय च ४३

आरोग्य रहनेकी इच्छावाले मनुष्यको शालीचावल, गेहूं, यव, शाठीके चावल; मांसाहारियोंको जांगलमांस, शाकाहारियोंको चौलाईका शाक, जीवन्तीका शाक, बालमूलीका शाक, बाथूका शाक, हरीतकी, आमले, अंगूर, मुनक्का, परवल, मूंगका यूष, खाण्ड, मिश्री, घृत, आकाशसे लिया हुआ गांग जल, दूध, मधु, अनार, सेन्धा नमक, इनका सेवन करना चाहिये तथा नेत्रोंके बलके लिये रात्रिको मधु घृतमें मिलाकर त्रिफलेका सेवन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

स्वास्थ्यानुवृत्तिकृद्यच्च रोगोच्छेदकरं च यत्४४

तथा जो द्रव्य मनुष्यके आरोग्यको बढ़ानेवाला हो और रोगोंका नाश करनेवाला हो, एवं ऋतुचर्यादि विधिसे आरोग्यकारक और आयुर्वर्धक हो उन सबका भी नियमानुकूल सेवन करना चाहिये ॥ ४४ ॥

भोजनकी व्यवस्था।

बिसेक्षुमोचचोचाम्रमोदकोत्कारिकादिकम्।
अद्याद्द्रव्यं गुरु स्निग्धं स्वादु मंदं स्थिरं पुरः ॥
विपरीतमतश्चांते मध्येऽम्ललवणोत्कटम् ॥४५॥

भोजन करते समय भिसें, इक्षुविकार [मिठाई], केला, नारियल, आम्र, मोदक और पूरियें आदि जो द्रव्य भारी, स्निग्ध, स्वादु, मन्द और स्थिर गुणोंवाले हों उनको प्रथम भोजन करना चाहिये और इनसे विपरीत जो हलके और रूक्षादि पदार्थ हों उनको भोजनके अन्तमें तथा अम्ल, लवण और कटु पदार्थोंको भोजनके मध्यमें खाना चाहिये ॥ ४५ ॥

भोजनका परिमाण ।

अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशौ पानेनैकं प्रपूरयेत् ।
आश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत् ॥ ४६ ॥

भोजन करते समय उदरके दो भाग अन्नसे पूर्ण करने चाहिये और एक भाग जलसे पूर्ण करना चाहिये और चौथा भाग वातादिकोंके संचारके लिये खाली छोड़ देना चाहिये । यह भोजन करनेका साधारण नियम है ॥ ४६ ॥

अनुपान विधि ।

अनुपानं हिमं वारि यवगोधूमयोर्हितम् ॥ ४७॥
दध्नि मद्ये विषे क्षौद्रे कोष्णं पिष्टमयेषु तु ।
शाकमुद्गादिविकृतौ मस्तुतक्राम्लकांजिकम् ४८
सुरा कृशानां पुष्ट्यर्थं स्थूलानां तु मधूदकम् ।
शोषे मांसरसो मद्यं मांसे स्वल्पे च पावके ४९

यव और गेहूंके पदार्थ भोजन करनेके अनन्तर तथा दही, मद्य और मधु सेवनके अनन्तर एवं विष विकारमें यदि प्यास हो तो शीतल जलका अनुपान करना चाहिये ।

मैदे आदिसे बने गरिष्ठ पदार्थोंके पीछे कोष्ण-जलका अनुपान करना चाहिये ।

शाक, मुद्ग आदि यूप खाकर मस्तु, तक्र या कांजीका अनुपान करना चाहिये ।

कृश पुरुषोंको पुष्ट करनेके लिये सुरा और स्थूल पुरुषको कृश करनेके लिये मधुयुक्त जलका अनुपान करना चाहिये ।

शोष रोगमें—मांसरसका अनुपान करना चाहिये । मांस खानेके अनन्तर मद्यका अनुपान करना चाहिये तथा मन्दाग्निवालेको भी मद्यका अनुपान करना चाहिये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

व्याध्यौषधाध्वभाष्यस्त्रीलंघनातपकर्मभिः ।
क्षीणे वृद्धे च बाले च पयः पथ्यं यथाऽमृतम्५०

व्याधिसे या औषधसे अथवा मार्ग चलने, बोलने, स्त्रीसंग, लंघन, अधिक धूपसेवन आदि कर्मसे जो क्षीण हो गये हों उनको दूधका पीना अमृतके समान गुण करता है। ऐसे ही वृद्ध और बालकोंके लिये भी दूध पीना अमृतके समान पथ्य है ॥ ५० ॥

सामान्य अनुपान ।

विपरीतं यदन्नस्य गुणैः स्यादविरोधि च ।
अनुपानं समासेन सर्वदा तत्प्रशस्यते ॥ ५१ ॥

जो जलादि द्रव आहारके गुणोंसे विपरीत तथा अविरोधी हो वह अनुपान संक्षेपसे सर्वदा प्रशंसनीय होता है ॥ ५१ ॥

अनुपानके गुण ।

अनुपानं करोत्यूर्जां तृप्तिं व्याप्तिं दृढांगताम् ।
अन्नसंघातशैथिल्यविक्लित्तिजरणानि च ॥५२॥

अनुपान—मनकी प्रसन्नता, तृप्ति, भुक्त आहारकी व्याप्ति, अंगोंकी दृढ़ता, अन्नके कठोर संघातकी शिथिलता, विक्लेदन और अन्नकी परिणति इन गुणोंको करता है ॥ ५२ ॥

शीतजलपानका निषेध ।

नोर्ध्वजत्रुगदश्वासकासोरःक्षतपीनसे ।
गीतभाष्यप्रसंगे च स्वरभेदे च तद्धितम् ॥५३॥

ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंमें, श्वासमें, कासमें, उरःक्षतमें, प्रतिश्यायमें, स्वरभेदमें, एवं गायन और भाषणके अनन्तर जलपान नहीं करना चाहिये । यहांपर केवल शीतल जलका निषेध है, थोड़ा सा उष्णोदक या गरम दूधका निषेध नहीं है । अरुणदत्त लिखते है कि ऊर्ध्वजत्रु आदिमें अनुपान करनेसे वह अनुपान आमाशय, छाती और कण्ठमें स्थित आहारजनित स्नेहसे मिश्रित होकर अभिष्यन्द, अग्निमान्द्य और छर्दि आदि विकारोंको करता है । यह केवल शीतल जलके विषयमें है, क्योंकि इससे तीन श्लोक पहिले ही भाषणके अनन्तर गरम दूध पीना अमृतके समान कह आये हैं ॥ ५३ ॥

अनुपानका निषेध ।

प्रक्लिन्नदेहमेहाक्षिगलरोगव्रणातुराः ।
पानं त्यजेयुः—

जिन मनुष्योंकी देह क्लेदित हो तो अनुपान नहीं करना चाहिये तथा प्रमेहरोगमें, अक्षिरोगमें, गलरोगमें और व्रणरोगमें जलपान या अन्य द्रवका पान करना ही नहीं चाहिये ॥—

भोजनोत्तर ताप आदिका निषेध।

—सर्वश्च भाष्याध्वशयनं त्यजेत् ॥
पीत्वा भुक्त्वाऽऽतपं वह्निं यानं प्लवनवाहनम्॥५४

भोजनके अनन्तर या जलादि पीकर धूपमें बैठना, अग्नि सेकना, कूदना, भागना, घोड़े आदिकी सवारी करना, बहुत बोलना, रास्ता चलना और निद्रा लेना, इन सबका सर्वथा निषेध है। यह सब अन्नपानके अनन्तर तुरन्त ही नहीं करने चाहिये, किन्तु भोजन करनेके अनन्तर धीरे धीरे सौ पांवतक टहलकर बाईं करवटसे लेटना चाहिये ॥ ५४ ॥

भोजनका काल।

प्रसृष्टे विण्मूत्रे हृदि सुविमले दोषे स्वपथगे।
विशुद्धे चोद्गारे क्षुदुपगमने वातेऽनुसरति।
तथाऽग्नावुद्रिक्ते विशदकरणे देहे च सुलघौ
प्रयुंजीताहारं विधिनियमितः कालः स हि मतः

जब मलमूत्र यथार्थरूपसे त्यक्त हो गये हों, हृदय शुद्ध प्रतीत होता हो, वातादि दोष अपनी शुद्धगतिसे अपने अपने मार्गमें गमन करते हों, उद्गार शुद्ध आती हो, क्षुधा यथार्थ प्रतीत होती हो, वायुका यथार्थ अनुसरण होता हो, अग्नि चैतन्य हो, इन्द्रियें निर्मल हों और देहमें हलकापन हो तो ऐसे समय पूर्व कही हुई विधिके अनुसार भोजन करना चाहिये, यथार्थमें यही भोजनका ठीक समय है ॥ ५५ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्य्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्नपण्डितश्रीरामप्रसादात्मज—विद्यालङ्कारवैद्य—शिवशर्मविरचित—शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः।

अथातोद्रव्यादिविज्ञानीयमध्यायंव्याख्यास्यामः

अब हम द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभावके विज्ञानवाले अध्यायकी व्याख्या करते है ॥

द्रव्यकी प्रधानता।

द्रव्यमेव रसादीनां श्रेष्ठं ते हि तदाश्रयाः।
पंचभूतात्मकं तत्तु—

द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभावमें द्रव्य ही प्रधान है, क्योंकि सम्पूर्ण रसादिक द्रव्यमें ही आश्रित रहेते है। द्रव्यके विना रसादिकोंका कोई अधिष्ठान नहीं है और आरम्भ सामर्थ्यसे जैसे—'हरीतकी ले आओ' 'शुण्ठी पाचक, ग्राही और भेदक है' 'चिरायता ज्वरनाशक है' इत्यादि वाक्योंसे और रसादिकोंका अधिष्ठान होनेसे द्रव्य ही प्रधान है ॥

वह द्रव्य पञ्चभूतात्मक होता है, क्योंकि सम्पूर्ण यावन्मात्र जगत् है सब पञ्चभूतात्मक ही है ॥—

द्रव्य पञ्चभूतात्मक।

—क्ष्मामधिष्ठाय जायते ॥ १ ॥

वह द्रव्य पञ्चभूतात्मक होते हुए भी पृथ्वीके आश्रित होकर उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

अंबुयोन्यग्निपवननभसां समवायतः।
तन्निर्वृतिविशेषश्च व्यपदेशस्तु भूयसा ॥ २ ॥

पृथ्वीके आश्रित होते हुए भी इसकी उत्पत्ति और परिणाममें जल कारण होता है,इसलिये यह द्रव्य अम्बुयोनि कहा जाता है। द्रव्यमें रस आदि जलके योगसे होते है, रस और रसना जलके आधिक्यसे होते हैं, इसलिये द्रव्य पृथ्वीके आश्रित होकर, जलसे संयुक्त हो अग्नि,पवन और आकाशके योगसे निष्पत्तिको प्राप्त होता है। इस कारण द्रव्यको पाञ्चभौतिक माना गया है। यद्यपि द्रव्य पाञ्चभौतिक है अर्थात् सम्पूर्ण द्रव्य पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांच महाभूतोंसे ही उत्पन्न होते हैं और सम्पूर्ण द्रव्योंमें ये पञ्चमहाभूत रहते हैं, परन्तु जिस द्रव्यमें जिस महा_

भूतका गुण अधिक होता है उसीके नामसे वह पुकारा जाता है; जैसे—'यह पार्थिव द्रव्य है' 'यह जलीय है' इत्यादि, परन्तु होते सब पाञ्चभौतिक ही है ॥ २ ॥

द्रव्योंमें अनेक रस।

तस्मान्नैकरसं द्रव्यं भूतसंघातसंभवात्।
नैकदोषास्ततो रोगास्तत्र व्यक्तो रसः स्मृतः ॥
अव्यक्तोऽनुरसः किंचिदंते व्यक्तोऽपि चेष्यते ३

क्योंकि सब द्रव्य पाञ्चभौतिक ही होते है, इस लिये सब द्रव्योंमें मधुर लवणादि पञ्चमहाभूतोंके गुणोंसे अनेक प्रकारके रस होते है।

जिस प्रकार एक रसवाला द्रव्य नहीं होता, उसी प्रकार एक दोषसे किसी रोगकी उत्पत्ति भी नहीं होती। जैसे व्यक्तरस मधुर होनेसे किसी द्रव्यको मधुर कहा जाता है, परन्तु उसमें अव्यक्त रूपसे अन्य रस भी रहते है; किन्तु कोई तो अव्यक्त (अप्रगट) होनेसे प्रतीत नहीं होते और कोई अनुरस होनेसे प्रधान रसके अनन्तर सूक्ष्म रूपसे अपने अप्रधान रसका स्वाद दे जाते है। तात्पर्य्य यह है कि रस तो प्रत्येक द्रव्यमें अनेक होते है परन्तु जो रस उसमें प्रधान और व्यक्त होता है उसीके नामसे वह मधुर या अम्ल आदि कहा जाता है। ऐसे ही रोगमें जो दोप प्रधान होता है, उसीके नामसे वह वातज या पित्तज कहा जाता है, यथार्थमें एक दोषकी विकृतिके साथ ही अन्य दोप भी विकृत होते है। इसी प्रकार एक रसके साथ अन्य रस भी सम्मिलित रहते हैं ॥३॥

द्रव्योंमें पार्थिवादि गुण।

गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये।
रसेषु व्यपदिश्यंते साहचर्योपचारतः ॥ ४ ॥

आगे इसी अध्यायमें मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय इन पाञ्चभौतिक रसोंका वर्णन करेंगे। अब कहते हैं कि मधुरादि रस तो पृथिवी आदि पञ्चमहाभूतोंमे सम्मिलित हुए व्यक्त या अव्यक्त अथवा अनुरसके रूपमें रहते हैं, परन्तु गुरु आदि गुण रसादिकोंमें कैसे होते है? वह गुरु आदि गुण द्रव्याश्रित हैं अथवा रसाश्रित? सो कहते हैं—वह गुरु आदि गुण रसके आश्रयभूत जो पार्थिव आदि द्रव्य हैं उन द्रव्योंके ही गुरु आदि गुण हैं, परन्तु साहचर्य्यके उपचारसे रसादिकोंमें कहे जाते है। जैसे 'गुड़ मधुररसप्रधान है' यह गुड़में माधुर्य्य पृथ्वीके और जलके आधिक्यसे है, इसलिये इसमें पार्थिव गुरुत्व होना स्वाभाविक मधुर रसके साहचर्य्यसे आगया, इसलिये पृथ्वीका गुरुत्व मधुर रसमें कहा जाता है। यथार्थ गुण वह पार्थिव ही होता है ४॥

पृथ्वीकी प्रधानता।

तत्र द्रव्यं गुरु स्थूलं स्थिरगंधगुणोल्वणम्।
पार्थिवं गौरवस्थैर्यसंघातोपचयावहम् ॥ ५ ॥

उन पाञ्चभौतिक द्रव्योंमें पृथ्वी प्रधान होनेसे पार्थिव कहा जाता है। पार्थिव द्रव्य-गुरु, स्थूल, स्थिर तथा गन्धप्रधान होता है। इसलिये मनुष्योंके शरीरमें गौरव, स्थैर्य्य, संघात और उपचयको करता है॥५॥

जलीय द्रव्य।

द्रवशीतगुरुस्निग्धमंदसांद्ररसोल्वणम्।
आप्यं स्नेहनविष्यंदक्लेदप्रह्लादबंध[१]कृत् ॥ ६ ॥

आप्य द्रव्य—द्रव, शीत, स्निग्ध, गुरु, मन्द, सान्द्र और अधिक रसवाला होता है। इस कारण जलीय द्रव्य—स्नेहन, विष्यन्दन, क्लेदन, प्रह्लादन और सब वस्तुओंको मिलाकर इकट्ठा कर देना आदि कार्य करता है ॥ ६ ॥

आग्नेय द्रव्य।

रूक्षतीक्ष्णोष्णविशदसूक्ष्मरूपगुणोल्वणम्।
आग्नेयं दाहभावर्णप्रकाशपचनात्मकम् ॥ ७ ॥

आग्नेय द्रव्य—रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण, विशद, सूक्ष्म और रूपगुणप्रधान होता है। इस कारण आग्नेय द्रव्य—दाह, कान्ति, वर्णका प्रकाश और पाचन आदि गुण करता है ॥ ७ ॥

---

१ बंधः परस्परयोजनम्।

वायव्य द्रव्य।

वायव्यं रूक्षविशदं लघुस्पर्शगुणोल्वणम्।
रौक्ष्यलाघववैशद्यविचारग्लानिकारकम् ॥ ८ ॥

वायव्य द्रव्य—रूक्ष, विशद, लघु और स्पर्श-गुणप्रधान होता है। इस कारण शरीरमें रूक्षता, हलकापन, विशदता, चालन और ग्लानिको करता है ८

आकाशीय द्रव्य।

नाभसं सूक्ष्मविशदलघुशब्दगुणोल्वणम ॥९॥
सौषिर्यलाघवकरं—

आकाशीय द्रव्य--सूक्ष्म, विशद, लघु और शब्द-गुणप्रधान होता है। इस कारण सुषिरता और लघुता आदि करता है ॥ ९ ॥—

द्रव्यमात्रको औषधत्व।

—जगत्येवमनौषधम्।
न किंचिद्विद्यते द्रव्यं वशान्नानार्थयोगयोः१०॥

संसारमें जो कुछ भी द्रव्य है वह सब युक्ति और प्रयोजनके अधीन होकर औषधरूप ही है। जगत्में सिकता, पांसु आदि कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो किसी न किसी युक्ति प्रयोग द्वारा चिकित्सामें औषध-रूपसे काम न देती हो ॥ १० ॥

ऊर्ध्वगामी स्वभाववाले द्रव्य।

द्रव्यमूर्ध्वगमं तत्र प्रायोऽग्निपवनोत्कटम्।

जो द्रव्य अग्नि और वायुके गुणोंमें प्रधान होंगे अर्थात् जिनमें अग्नि और वायु यह दो महाभूत अधिक है वे द्रव्य ऊर्ध्वगामी स्वभाववाले होनेसे वामक अर्थात् प्रायः छर्दि लानेवाले होते है। जैसे—"मैनफल पाञ्च-भौतिक होते हुए भी अग्नि, पवन प्रधान होनेसे वमन लाता है" ॥—

अधोगामी स्वभाववाले द्रव्य।

अधोगामि च भूयिष्ठं भूमितोयगुणाधिकम् ११

जो द्रव्य भूमि और जलके अधिक गुणों-वाला होता है वह रेचक अर्थात् दस्त लानेवाला होता है। जैसे—"निशोथ भूमि और जल प्रधान होनेसे रेचक है" ॥ ११ ॥

इति द्रव्यं रसान्भेदैरुत्तरत्रोपदेक्ष्यते ॥ १२ ॥

इस प्रकार द्रव्यका वर्णन कर चुके हैं। रसोंको त्रेसठ (६३) भेदोंसे अगले (दशवें) अध्यायमें कहेंगे ॥ १२ ॥

द्रव्योंके अष्टविध वीर्य।

वीर्यं पुनर्वदंत्येके गुरुस्निग्धहिमं मृदु।
लघु रूक्षोष्णतीक्ष्णं च तदेवं मतमष्टधा ॥१३॥

अब वीर्यको कहते है—द्रव्योंका वीर्य कोई आठ प्रकारका मानते है, जैसे—१ गुरु (भारी), २ चिकना, ३ शीतल, ४ मृदु, ५ लघु, ६ रूखा, ७ उष्ण और ८ तीक्ष्ण ॥ १३ ॥

चरकस्त्वाह वीर्यं तद्येन या क्रियते क्रिया।
नावीर्यं कुरुते किंचित्सर्वा वीर्यकृता हि सा१४

चरकने कहा है कि जिसके द्वारा द्रव्य क्रिया करता है उसको वीर्य कहते है। वीर्य रहित द्रव्य कुछ भी नहीं कर सकता। जो क्रिया द्रव्य द्वारा होती है वह सब द्रव्यके वीर्य द्वारा ही होती है ॥ १४ ॥

गुर्वादिष्वेव वीर्याख्या तेनान्वर्थेति वर्ण्यते।
समग्रगुणसारेषु शक्त्युत्कर्षविवर्तिषु।
व्यवहाराय मुख्यत्वाद्बह्वग्रग्रहणादपि ॥ १५ ॥
अतश्च विपरीतत्वात्संभवत्यपि नैव सा।
विवक्ष्यते रसाद्येषु वीर्यं गुर्वादयो ह्यतः ॥१६॥

उपरोक्त गुरु, स्निग्ध आदि आठ प्रकारके ही द्रव्योंके वीर्य होते है। इन आठोंमें ही वीर्य शब्द अन्वर्थ होनेसे चरितार्थ है, क्योंकि गुरु आदि गुणोंकी ही वीर्य संज्ञा है, रस, विपाक, प्रभावकी वीर्य संज्ञा नहीं है मन्द, सान्द्र आदि रसके गुणोंमें चिरस्थायी और विशेष शक्तिवाले होनेसे भी गुरु, स्निग्ध आदि आठ प्रकारके वीर्य ही प्रधान है। व्यवहारके लिये भी गुरु आदिकोंमें मुख्यता है तथा गुरु आदिके ग्रहणसे ही बहुतसे द्रव्य रसादिकोंका ग्रहण हो जाता है। एवं आयुर्वेद शास्त्रमें गुरु आदि आठ गुणोंका ही प्रथम ग्रहण है, अर्थात् पांच महाभूतोंके गुणनिरूपणमें या वातादि दोष निरूपणमें भी गुरु, स्निग्धादि गुणोंको प्रधान-

रूपसे माना है, इस कारण जो गुरु आदि आठ गुण कहे हैं उनमें ही वीर्य संज्ञा चरितार्थ है ॥

वीर्य स्थायी गुण होनेसे और रसादि अस्थायी होनेसे रस, विपाक और प्रभावको वीर्य नहीं कहा जा सकता, अर्थात् द्रव्यमें जो रस होते है वे परिपाकके साथ बदल जाते हैं, परन्तु गुरु आदि वीर्यसंज्ञक गुण परिवर्तित नहीं होते, इस कारण गुरु आदि आठ गुणोंकी ही वीर्य संज्ञा है ॥ १५ ॥ १६ ॥

द्विविध वीर्य ।

उष्ण शीतं द्विधैवाऽन्ये वीर्यमाचक्षतेऽपि च१७

अन्य ऋषि उष्ण और शीत गुणोंके उत्कर्षसे वीर्य उष्ण और शीत इन दो भदोंसे केवल दो प्रकारका मानते है ॥ १७ ॥

द्विविधवीर्यमें युक्ति ।

नानात्मकमपि द्रव्यमग्नीषोमौ महाबलौ ।
व्यक्ताव्यक्तं जगदिव नातिक्रामात जातुचित्१८

जैसे सम्पूर्ण जगत् व्यक्त और अव्यक्त इन दो भावोंसे बाहर नहीं है वैसे ही नानात्मक द्रव्य भी अग्नि और सोमके गुणोत्कर्षसे बाहर नहीं है, अर्थात् जैसे नानात्मक स्थावर जंगम जगत् अव्यक्त और व्यक्तके अन्दर सब आजाता है; व्यक्ताऽव्यक्तसे परे कुछ नहीं है, इसी प्रकार नानात्मक द्रव्य भी अग्नि और सोमके गुणोंके उत्कर्षसे सब अग्नि सोमात्मक ही है । इस कारण कोई द्रव्य उष्णवीर्य और कोई शीतवीर्य होनेसे वीर्य दो प्रकारके ही मानने चाहिये। इसी कारण मत्स्य और दूध एक साथ खानेसे विरुद्ध होजाते है, क्योंकि मत्स्य और दूध दोनों रस और विपाकमें मधुर होते हुए भी मत्स्य उष्णवीर्य और दूध शीत-वीर्य होनेसे विरुद्ध होजाते हैं। इसलिये वीर्य उष्ण और शीत दो प्रकारका ही मानना चाहिये ॥ १८ ॥

द्विविध वीर्योंके गुण ।

तत्रोष्णं भ्रमतृड्ग्लानिस्वेददाहाशुपाकिताः ।
शमं च वातकफयोः करोति शिशिरं पुनः ॥
ह्लादनं जीवनं स्तंभं प्रसादं रक्तपित्तयोः॥१९॥

इनमें उष्ण वीर्य--भ्रम, प्यास, ग्लानि, स्वेद, दाह, शीघ्र-पाकिता और वातकफको शमन करता है ।

और शीतवीर्य-आह्लादन, जीवन, स्तम्भन, प्रसादन तथा रक्तपित्तको शमन करता है ॥ १९ ॥

विपाकका वर्णन ।

जाठरेणाऽग्निना योगाद्यदुदोत रसांतरम् ।
रसानां परिणामांते स विपाक इति स्मृतः २०

अब वीर्यके अनन्तर विपाकको कहते है :—जो आहारके रसोंका जठराग्निके संयोगसे परिवर्तन होकर रसान्तर बनता है उसको विपाक कहते है ॥ २० ॥

स्वादुः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः ।
तिक्तोषणकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः२१

यह विपाक-१ मधुर, २ अम्ल और ३ कटु इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है। उनमें मधुर और लवण रसका विपाक मधुर (मीठा) होता है । अम्लरसका अम्ल (खट्टा) होता है और तिक्त, कटु और कषाय रसका कटु विपाक होता है ॥ २१ ॥

विपाकसे दोषोंकी उत्पत्ति ।

रसैरसौ तुल्यफलस्तत्र द्रव्यं शुभाशुभम् ।
किंचिद्रसेन कुरुते कर्म पाकेन वाऽपरम् ॥
गुणांतरेण वीर्येण प्रभावेणैव किंचन ॥ २२ ॥

विपाक-- रसोंके समान ही फल करनेवाला होता है। जैसे मधुररसवाले विपाकसे कफकी उत्पत्ति, अम्ल विपाकसे पित्त और कटु विपाकसे वातकी वृद्धि होती है । इस प्रकार द्रव्य कोई कर्म रससे, कोई विपाकसे शुभाशुभ फल करता है। रस और विपाकसे गुणान्तर होनेपर जो शुभाशुभ फल होता है । वह कोई द्रव्यके वीर्यसे और कहीं प्रभावसे होता है॥२२॥

रसादिकोंसे कार्य ।

यद्यद्द्रव्ये रसादीनां बलवत्त्वेन वर्तते ।
अभिभूयेतरांस्तत्तत्कारणत्वं प्रपद्यते ॥ २३ ॥

द्रव्यमें रस, वीर्य, विपाक और प्रभावके मध्यमें रस अथवा वीर्य अथवा विपाक या प्रभाव जो अधिक

बलवाला होता है वह अन्य गुणोंको जीतकर अपने फलको करदेता है। इसी कारणसे द्रव्य कहीं रससे, कहीं विपाकसे, कहीं वीर्यसे और कहीं प्रभावसे कर्म करता है। इसमे जिसका अंश अधिक और बलवान् होता है उसीसे द्रव्य कर्म करता है ॥ २३ ॥

विरुद्धगुणसंयोगे भूयसाऽल्पं हि जीयते ॥२४॥

जहां पर दो विरुद्ध गुणोंका संयोग हो वहां विशेप गुण अल्पगुणको जीतकर अपना कर्म करता है। विरुद्ध गुणोंका संयोग दोका हो या अनेकोंका हो, परन्तु जो गुण बलवान् होगा वह विपरीतगुणको जीतकर कर्म करता है। विरुद्ध दो प्रकारसे होता है। कोई स्वरूपसे, कोई कार्यसे। जैसे गुरुसे लघु और शीतसे उष्ण स्वरूपसे विरोधी, होते है। कोई कार्यसे विरुद्ध होते है—जैसे वायुको जीतनेके लिये उष्ण स्निग्ध द्रव्यका उपयोग करना चाहिये। यहां पर रूक्ष शीत गुणवाले वायुसे उष्ण स्निग्ध द्रव्यके उपयोग द्वारा जो कर्म किया जाता है वह कार्यरूपमें विरुद्ध होता है। इन दोनों प्रकारके विरुद्ध गुणोंमें बलवान् गुण अल्पगुणको जीत लेता है ॥ २४ ॥

रस, वीर्य, विपाक और प्रभावके कर्म।

रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान्व्यपोहति।
बलसाम्ये रसादीनामिति नैसर्गिकं बलम् २५॥
रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम्।
दंती रसाद्यैस्तुल्याऽपि चित्रकस्य विरेचनी।
मधुकस्य च मृद्वीका घृतं क्षीरस्य दीपनम् २६

जहां पर रस, विपाक, वीर्य और प्रभावमें साम्यावस्था हो वहांपर अपने स्वाभाविक बलसे रसादिकोंके क्रमसे साम्यबल होते हुए भी रसको विपाक, रस और विपाकको वीर्य और रस विपाक वीर्यको प्रभाव जीत लेता है। जैसे शहदके मधुर रसको उसका कटु विपाक जीत लेता है। इसी कारण शहद मधुर रसवाला होनेपर भी वायुको नहीं जीत सकता, किन्तु कटु विपाकी होनेके कारण वातकारक होजाता है। तथा महिष-मांसरस और विपाकमें मधुर होनेपर भी उष्णवीर्य होनेसे पित्तको दूषित करता है। यह रस विपाकमें मधुर होनेसे पित्तशामक होना चाहिये था, परन्तु विपाकमें उष्ण होनेसे पित्तको दूषित करता है। यह वीर्यका गुण है। कोई द्रव्य रस, वीर्य, विपाक इन तीनोंको जीतकर प्रभावजनित विचित्र कर्मको करता है, वह उसका प्रभावजनित कर्म होता है।

(दृष्टांत) एकसे दो द्रव्योंमें रसादिकोंकी साम्यावस्था होते हुए भी जो एक द्रव्य विशिष्ट कर्म करता है वह प्रभावजनित होता है। जैसे—दन्ती और चित्रक रस, वीर्य, विपाकमें साम्य होते हुए भी दन्ती रेचन करनेवाली होती है और चित्रक रेचन नहीं कर सकता। इसी प्रकार मधुक और मुनक्का रसादिकोंमें तुल्य होते हुए भी मुनक्का रेचक है और मुलहठी मुनक्काके समान गुण नहीं करती। एवं घृत और दूध दोनों रसादिकोंमें साम्य होते हुए भी घृत अग्निदीपन करता है, दूध नहीं करता। यह सब प्रभावसे ही कर्मोंमें विशेषता होती है ॥ २५॥२६॥

द्रव्योंके गुणोंमें विशेषता।

इति सामान्यतः कर्म द्रव्यादीनां पुनश्च तत्।
विचित्रप्रत्ययारब्धद्रव्यभेदेन भिद्यते ॥ २७ ॥

यह द्रव्यादिकोंके सामान्य कर्म कथन कर दिये गये, जो द्रव्य रस, वीर्य, विपाक और प्रभावसे करते हैं। अब विशेषगुण का कथन करते हैं:—द्रव्य, रसादि समान प्रत्ययारब्ध होनेसे समान कर्मको करते हैं। वह कर्म उनके रसाद्यनुगुण होनेसे सामान्य कर्म होते हैं। जैसे—दूध शर्करा आदि समान प्रत्ययारब्ध होनेसे समानगुणको करते है। परन्तु कुछ द्रव्य उत्पत्ति क्रमसे ही पाञ्चभौतिक विचित्र प्रत्ययारब्ध होनेसे अर्थात् पाञ्चभौतिक संघातके समय परस्पर विलक्षण कारण होनेसे रसादिकोंमें सामान्य होते हुए भी विचित्र कर्मको करते हैं ॥ २७ ॥

उदाहरण।

स्वादुर्गुरुश्च गोधूमो वातजिद्वातकृद्यवः।
उष्णा मत्स्याः पयः शीतं कटुः सिंहो न शूकरः

जैसे—रसादिकोंमें और गुणोंमें गेहूं रसमें स्वादु और गुणमें गुरुत्ववान् होते हुए भी वातनाशक और यव वातकारक होते है। यह भेद इनमें पाञ्च-भौतिक संघातकी विचित्रतासे होता है। यहाँपर गेहूँ स्वादुरस और गुरु गुणयुक्त होते हुए समान भौतिकारम्भ होनेसे वातनाशक होता है और यव मधुररस और गुरु गुणयुक्त होते हुए भी विचित्र भौतिक संघातारम्भसे वातकारक होता है। इसी प्रकार मत्स्य और दूध रसादिमें साम्य होते हुए भी मत्स्य उष्णवीर्य और दूध शीतवीर्य होता है। तथा सिंह और शूकर भी रस और गुणमें मधुर, गुरु होते हुए सिंह विपाकमें कटु और शूकर विपाकमें मधुर होता है। यह प्रभाव विपाक और वीर्य उत्पत्तिक्रममें पाञ्च-भौतिक संघातके विचित्र होनेसे भेदको प्राप्त हो जाता है॥ २८॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्नपण्डितश्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कार-वैद्यशिवशर्मविरचित-शिवदीपिका-ख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने नवमोऽध्यायः॥ ९॥

दशमोऽध्यायः।

अथातो रसभेदीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम रसके भेदवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं:—रसनेन्द्रिय (जीभ) का विषय रस है, रसका प्रधान कारण जल है, वह रस जलीय होते हुए भी अन्य पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाशके संसर्गसे अनेक रसोंवाला होजाता है। उन रसोंके प्रकटरस और अनु-रसादि बहुत से भेद होते हुए भी प्रधान आस्वादवाले छः रस होते हैं॥

छः रसोंकी उत्पत्ति।

क्ष्मांभोऽग्निक्ष्मांऽबुतेजःखवाय्वग्न्यनिलगोऽनिलैः
द्वयोल्वणैः क्रमाद्भूतैर्मधुरादिरसोद्भवः॥ १॥

जैसे—(१) पृथ्वी और जलकी अधिकतासे मधुर रस, (२) पृथ्वी और अग्निकी अधिकतासे अम्ल रस, (३) जल और अग्निकी अधिकतासे लवण रस, (४) आकाश और वायुकी अधिकतासे तिक्त रस, (५) अग्नि और वायुकी अधिकतासे कटुरस और (६) पृथ्वी तथा वायुकी अधिकतासे कषाय रसकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार इन प्रधान छे रसोंकी उत्पत्ति पृथ्वी आदि दो दो महाभूतोंसे होती है। इन पाञ्चभौतिक छे रसोंमें पृथ्वी आदि महाभूतोंके न्यूनाधिक संयोगसे अनेक प्रकारके असंख्य रस और अनुरस होजाते हैं॥ १॥

मधुर रसके गुण।

तेषां विद्याद्रसं स्वादुं यो वक्त्रमनुलिंपति।
आस्वाद्यमानो देहस्य ह्लादनोऽक्षप्रसादनः॥२॥
प्रियः पिपीलिकादीनाम्—

अत्र उन मधुरादि रसोंके लक्षण कहते हैं:—उन छे रसोंमें (१) मधुर रस—सुस्वादु (मीठा), मुखमें लिपटनेवाला, खाकर स्वाद लेनेसे देहमें प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला और चक्षुआदि सम्पूर्ण इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाला होता है। तथा चींटी आदि जन्तुओंको अत्यन्त प्रिय होता है॥ २॥—

अम्ल रसके गुण।

—अम्लः क्षालयते मुखम्।
हर्षणो रोमदंतानामक्षिभ्रुवनिकोचनः॥ ३॥

(२) अम्लरस—मुखमें स्वाद लेनेसे मुखमें स्राव पैदा कर देता है, तथा रोमहर्ष और दन्तहर्षको करता है, एवं नेत्र और भ्रकुटियोंको संकुचित कर देता है॥ ३॥

लवण रसके गुण।

लवणः स्यंदयत्यास्यं कपोलगलदाहकृत्।

(३) लवण रस—मुखको स्यन्दित करता है तथा कपोलों और गलोंमें दाह करता है। (एवं रोचन होता है)॥—

तिक्त रसके गुण।

तिक्तो विशदयत्यास्यं रसनं प्रतिहंति च ॥ ४॥

(४) तिक्त रस–मुखको विशद (पिच्छलतारहित) करता है और रसनेन्द्रिय (जीभ) को हनन करता है अर्थात् अन्य रस ग्रहण शक्तिको बिगाड़ता है ॥ ४ ॥

कटु रसके गुण।

उद्वेजयति जिह्वाग्रं कुर्वंश्चिमिचिमां कटुः।
स्रावयत्यक्षिनासास्यं कपोलौ दहतीव च ॥५॥

(५) कटुरस–जिह्वाके अग्रभागको उद्वेगयुक्त करता है तथा चरचराहट उत्पन्न करता है, एवं नेत्रोंसे, नासिकासे और मुखसे स्राव उत्पन्न करता है और कपोलोंमें दाह सा उत्पन्न कर देता है ॥ ५ ॥

कषायरसके गुण।

कषायो जडयेज्जिह्वां कंठस्रोतोविबंधकृत्।
रसानामिति रूपाणि कर्माणि

(६) कषाय रस–जिह्वामें जड़ता तथा कण्ठ और स्रोतोंका विबन्ध करनेवाला होता है ॥–

इस प्रकार मधुरादि छे रसोंके लक्षण कहे है, अब उनके कर्म कहते है।–

मधुर रसके कर्म।

मधुरो रसः ॥ ६ ॥

आजन्मसात्म्यात्कुरुते धातूनां प्रबलं बलम्।
बालवृद्धक्षतक्षीणवर्णकेशेंद्रियौजसाम् ॥ ७ ॥
प्रशस्तो बृंहणः कंठ्यः स्तन्यसंधानकृद्गुरुः।
आयुष्यो जीवनः स्निग्धः पित्तानिलविषापहः॥८॥
कुरुतेऽत्युपयोगेन समेदःकफजान् गदान्।
स्थौल्याग्निसादसंन्यासमेहगंडार्बुदादिकान्॥९॥

मधुर रस–जन्मकालसे ही सात्म्य होनेसे धातुओंके बलको प्रबल करता है तथा बाल, वृद्ध, क्षत और क्षीणोंके लिये हितकारी है तथा वर्णकारक, केशवर्धक, इन्द्रियोंको बल देनेवाला, ओजवर्धक, शरीरको पुष्ट करनेवाला, कण्ठको हितकारी, स्तनोंमें दूध बढ़ानेवाला, टूटे हुएको जोड़नेवाला, भारी, आयुवर्धक, जीवनप्रद, स्निग्ध, वातपित्तनाशक और विषविकारनाशक होता है। इस मधुर रसका अत्यंत उपयोग करनेसे मेद और कफके रोग उत्पन्न होते है तथा स्थूलता, मन्दाग्नि, संन्यासरोग, प्रमेह, गण्डमाला और अर्बुद आदि रोग होते है ॥ ६–९ ॥

अम्लरसके कर्म।

अम्लोऽग्निदीप्तिकृत्स्निग्धो हृद्यः पाचनरोचनः।
उष्णवीर्यो हिमस्पर्शः प्रीणनो भेदनो लघुः१०
करोति कफपित्तास्रं मूढवातानुलोमनम्।
सोऽत्यभ्यस्तस्तनोः कुर्याच्छैथिल्यं तिमिरं भ्रमम्
कंडुपांडुत्ववीसर्पशोफविस्फोटतृड्ज्वरान् ॥ ११

अम्लरस–अग्निको दीप्त करनेवाला, स्निग्ध, हृदयको प्रिय, पाचन, रुचिकारक, उष्णवीर्य, स्पर्शमें शीतल, पुष्टिकारक, भेदनकर्ता और हलका होता है। एवं कफवर्धक, रक्तपित्तवर्धक और मूढ़वातको अनुलोमन करनेवाला होता है। अम्लरस अत्यन्त अधिक सेवन करनेसे शरीरमें शिथिलता, तिमिररोग, भ्रम, कण्डू, पाण्डुरोग, वीसर्प, सूजन, विस्फोटक, प्यास और ज्वर आदि होते है ॥ १० ॥ ११ ॥

लवणरसके कर्म।

लवणः स्तंभसंघातबंधविध्मापनोऽग्निकृत्।
स्नेहनः स्वेदनस्तीक्ष्णो रोचनश्छेदभेदकृत् १२
सोऽतियुक्तोऽस्रपवनं खलितिं पलितं वलिम्।
तृट्कुष्ठविषवीसर्पान् जनयेत्क्षपयेद्बलम् ॥१३॥

लवणरस–जड़तानाशक, काठिन्यको दूर करनेवाला, स्रोतोंके बन्धको खोलनेवाला और जठराग्निवर्धक होता है तथा स्नेहन, स्वेदन, तीक्ष्ण, रुचिकारक, छेदी और भेदन करनेवाला होता है। लवणका अत्यन्त सेवन करना–वातरक्त, खालित्य (शिरके बाल उड़ जाना), बालोंका सफेद होजाना, शरीरपर झुरियें पड़ना, प्यास, कुष्ठ, विषविकार और विसर्पादिरोगोंको उत्पन्न करता है तथा बलको क्षीण कर देता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

तिक्त रसके कर्म ।

तिक्तः स्वयमरोचिष्णुररुचिं कृमितृड्विषम् १४
कुष्ठमूर्च्छाज्वरोत्क्लेशदाहपित्तकफान् जयेत् ।
क्लेदमेदोवसामज्जशकृन्मूत्रोपशोषणः ॥ १५ ॥
लघुर्मेध्यो हिमो रूक्षः स्तन्यकंठविशोधनः ।
धातुक्षयाऽनिलव्याधीनतियोगात्करोति सः १६

तिक्तरस—अपनेपर अरुचिको करता है अर्थात् तिक्त रसपर मनुष्योंकी रुचि नहीं होती । परन्तु तिक्तरस अरुचि, कृमि, तृषा, विषविकार, कुष्ठ, मूर्च्छा, ज्वर, उत्क्लेश, दाह, पित्त और कफको जीतता है। तथा क्लेद, मेद, वसा, मज्जा, मल और मूत्रको शोषण करनेवाला होता है । एवं हलका, मेधावर्धक, शीतल, रूक्ष, स्तनोंके दूध और कण्ठको शुद्ध करनेवाला होता है। तिक्त रस अत्यन्त सेवन करनेसे धातुक्षय और वातव्याधियोंको उत्पन्न करता है ॥ १४—१६ ॥

कटुरसके कर्म ।

कटुर्गलामयोदर्दकुष्ठालसकशोफजित् ।
व्रणावसादनः स्नेहमेदःक्लेदोपशोषणः ॥ १७ ॥
दीपनः पाचनो रुच्यः शोधनोऽन्नस्य शोषणः।
छिनत्ति बंधान् स्रोतांसि विवृणोति कफापहः
कुरुते सोऽतियोगेन तृष्णां शुक्रबलक्षयम् ।
मूर्च्छामाकुंचनं कम्पं कटिपृष्ठादिषु व्यथाम् १९

कटु रस—गलके रोगोको तथा उदर्द, कुष्ठ, अलसक और सूजनको जीतता है, व्रणोंको रोहण करता है एवं चिकनाई, मेद और क्लेदको शोषण करनेवाला होता है तथा दीपन, पाचन, रुचिकारक, शोधनकर्ता, अन्नको पाचन कर शोषण करनेवाला, मलादि बंधको छेदन करनेवाला, स्रोतोंको प्रसादन करनेवाला और कफनाशक होता है सो यह कटु रस अत्यन्त अधिक सेवन करनेसे तृषा, वीर्यक्षय, बलकी हानि, मूर्छा, शरीरका सुकड़ना, कम्प, कमर और पीठमें व्यथा आदि उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १७—१९ ॥

कषाय रसके कर्म ।

कषायः पित्तकफहा गुरुरस्रविशोधनः ।
पीडनो रोपणः शीतः क्लेदमेदोविशोषणः ॥२०
आमसंस्तंभनो ग्राही रूक्षोऽतित्वक्प्रसादनः ।
करोति शीलितः सोऽति विष्टंभाध्मानहृद्रुजः ।
तृट्कार्श्यपौरुषभ्रंशस्रोतोरोधमलग्रहान् ॥२१॥

कषायरस-पित्तकफनाशक, भारी, रक्तशोधक, पीडनकर्ता, रोपण, शीत, क्लेद और मेदको शोषण करनेवाला, आमको रोकनेवाला, ग्राही, रूक्ष और त्वचाको अत्यन्त प्रसादन करनेवाला होता है। कषाय रसको अति अधिक सेवन करनेसे विष्टम्भ, आध्मान, हृद्रोग, तृषा, कृशता, पुंस्त्वोपघात, स्रोतावरोध और मलकी रुकावट आदि उपद्रव होते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

मधुरस्कन्ध ।

घृतहेमगुडाक्षोडमोचचोचपरूषकम् ।
अभीरुवीरापनसराजादनबलात्रयम् ॥ २२ ॥
मेदे चतस्रः पर्णिन्यो जीवंती जीवकर्षभौ ।
मधूकं मधुकं बिंबी विदारी श्रावणीयुगम् २३
क्षीरशुक्ला तुगाक्षीरी क्षीरिण्यौ काश्मरी सहे ।
क्षीरेक्षुगोक्षुरक्षौद्रद्राक्षादिर्मधुरो गणः ॥ २४ ॥

अब मधुर स्कन्धका निर्देश करते हैं। घृत, सुवर्ण, गुड, आक्षोड़, कदलीफल, नारिकेलफल, फालसा, शतावरी, काकोली, पनस (कटहल), खिरनी, बला, अतिबला, नागबला, मेदा, महामेदा, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, जीवक, ऋषभक, महुवा, मुलैठी, बिम्बाफल, विदारीकन्द, मुण्डी, महामुण्डी, क्षीरविदारी, वंशलोचन, क्षीरकाकोली, दूधी, कुम्भेरण, सहा, महासहा, दूध, इक्षु, गोखरू, मधु, द्राक्षा और बादाम, चिरौंजी, खजूर आदि यह सब मधुर गण कहा जाता है ॥ २२—२४ ॥

अम्लस्कन्ध ।

अम्लोधात्रीफलाम्लीकामातुलुंगाम्लवेतसम् २५
दाडिमं रजतं तक्रं चुक्रं पालेवतं दधि ।
आम्रमाम्रातकं भव्यं कपित्थं करमर्दकम् २६

अम्लस्कन्ध कहते हैं—आमले, इमली, बिजौरा नींबू, अम्लवेत, दाड़िम, चाँदी, तक्र, चूका, पालेवत, दधि, आम्रफल, अंबाड़ा, भव्यफल, कपित्थफल और करौंदा आदिको अम्लवर्ग कहते है ॥२५॥२६॥

लवणस्कन्ध ।

वरं सौवर्चलं कृष्णं बिडं सामुद्रमौद्भिदम् ।
रोमकं पांसुजं शीसं क्षारश्च लवणो गणः २७

अब लवणस्कन्ध कहते हैं—सेन्धा नमक, सौवर्चल नमक, काला नमक, बिड्नमक, सामुद्र नमक, औद्भिद् नमक, रोमक नमक, पांसुनमक, शीसानमक और यवक्षार आदि क्षार इन सबको लवणगण कहते है ॥ २७ ॥

तिक्तस्कन्ध ।

तिक्तः पटोली त्रायंती वालकोशीरचंदनम् ।
भूनिंबनिंबकटुकातगरागुरुवत्सकम् ॥ २८ ॥
नक्तमालद्विरजनीमुस्तमूर्वाटरूषकम् ।
पाठापामार्गकांस्यायोगुडूचीधन्वयासकम् २९॥
पंचमूलं महद्व्याध्यौ विशालाऽतिविषा वचा ३०

तिक्तस्कन्ध—पटोलपत्र, त्रायमाण, सुगंधबाला, खश, चन्दन, चिरायता, निंब, कटुकी, तगर, अगर, कुटज, लताकरञ्ज, हलदी, दारुहलदी, नागरमोथा, मूर्वा, अडूसा, पाठा, अपामार्ग, कांसी, लोहा, गिलोय, जवासा, बिल्वमूल, सोनापाठा, काश्मरी, पाढल, अग्निमन्थ, कटेली, बड़ी कटेली, इन्द्रायण, अतीस और बच इन सबको तिक्तवर्ग कहते है ॥ २८—३० ॥

कटुकस्कन्ध ।

कटुको हिंगुमरिचक्रिमिजित्पंचकोलकम् ।
कुठेराद्या हरितकाः पित्तं मूत्रमरुष्करम् ३१॥

कटुकस्कन्ध कहते हैं—हींग, मरिच, वायविडङ्ग, पीपल, पीपलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, तुलसी, सुहांजना, सुरसातुलसी, वनतुलसी, राई, भूस्तृण फणिज्जक, अर्जक, हरियल, सब प्रकारके पित्त, सब प्रकारके मूत्र और भलात्रे इन सबको कटुवर्ग कहते हैं ॥ ३१ ॥

अब कषायस्कन्ध कहते हैं ।

वर्गः कषायः पथ्याक्षं शिरीषः खादिरो मधु ।
कदंबोदुंबरं मुक्ताप्रवालांजनगैरिकम् ।
बालं कापित्थं खर्जूरं बिसपद्मोत्पलादि च ३२

हरीतकी, बहेड़ा, शिरीष, खैर, मधु, कदम्ब, उदुम्बर, मोती, मूंगा, स्रोतोंऽजन, गेरू, बालकपित्थ, खजूर, भिसें और कमल आदिकी जड़ें तथा प्रियंगु, वट, रोध्रादि इन सबको कषाय वर्ग कहते है ॥ ३२ ॥

अब मधुरवर्गके गुण कहते हैं ।

मधुरं श्लेष्मलं प्रायो जीर्णाच्छालियवादृते ।
मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात्सिताया जांगलामिषात् ३३

पुराने शाली चावल, पुराने यव, पुरानी मूंग, पुराना गेहूं, शहद और मिश्री तथा जांगल जीवोंके मांस इन द्रव्योंके सिवाय मधुरवर्गके सम्पूर्ण द्रव्य प्रायः कफकारक होते हैं ॥ ३३ ॥

अम्ल और लवणवर्गके गुणोंका निरूपण ।

प्रायोऽम्लं पित्तजननं दाडिमामलकादृते ।
अपथ्यं लवणं प्रायश्चक्षुषोऽन्यत्र सैंधवात् ३४॥

दाड़िम और आमलेको छोड़कर अम्ल वर्गके सम्पूर्ण द्रव्य प्रायः पित्तकारक होते हैं ।

सैन्धव नमकको छोड़कर लवणवर्गके सम्पूर्ण द्रव्य प्रायः नेत्रोंको हानिकारक होते हैं ॥ ३४ ॥

तिक्त और कटुवर्गके गुणोंका निरूपण ।

तिक्तं कटु च भूयिष्ठमवृष्यं वातकोपनम् ।
ऋतेऽमृतापटोलीभ्यां शुंठीकृष्णारसोनतः ३५॥

गिलोय, पटोल, सोंठ, पीपल और लशुनके सिवाय तिक्तवर्गके और कटुवर्गके सब द्रव्य शुक्रनाशक और वात कोप कारक होते है अर्थात् गिलोय और पटोलके सिवाय सम्पूर्ण

तिक्त वर्गके द्रव्य तथा सोंठ, पीपल और लशुनके सिवाय सम्पूर्ण कटुवर्गके द्रव्य वीर्यनाशक और वातकोपकारक होते हैं ॥ ३९ ॥

कषाय वर्गके गुणोंका कथन।

कषायं प्रायशः शीतं स्तंभनं चाऽभयामृते ३६

हरीतकीको छोड़कर कषायवर्गके सम्पूर्ण द्रव्य-प्रायः शीतल और स्तम्भन कारक होते हैं॥ ३६ ॥

कटु अम्लादि रसोंकी उत्तरोत्तर वीर्यमें उष्णता तथा शीतताका निरूपण।

रसाः कट्वम्ललवणा वीर्येणोष्णा यथोत्तरम्।
तिक्तः कषायो मधुरस्तद्वदेव च शीतलाः ३७॥

छः रसोंमें कटु, अम्ल और लवण ये तीन रस क्रमसे उत्तरोत्तर वीर्यमें उष्ण होते हैं। इसी प्रकार तिक्त, कषाय और मधुर ये तीन रस क्रमसे उत्तरोत्तर शीतवीर्य होते हैं ॥ ३७ ॥

तिक्तादिकोंकी रूक्षतादिका निरूपण।

तिक्तः कटुः कषायश्च रूक्षा बद्धमलास्तथा।
पट्वम्लमधुराः स्निग्धाः सृष्टविण्मूत्रमारुताः ३८॥

प्रायः तिक्त, कटु और कषाय ये तीन रस रूक्ष और मलको बांधनेवाले होते हैं॥

लवण, अम्ल और मधुर ये तीन रस प्रायः स्निग्ध तथा मल मूत्र और वायुको निकालनेवाले होते हैं॥ ३८॥

लवणादि और अम्लादि रसोंका उत्तरोत्तर गुरुत्व लघुत्व।

पटोः कषायस्तस्माच्च मधुरः परमं गुरुः।
लघुरम्लः कटुस्तस्मात्तस्मादपि च तिक्तकः३९

लवणरससे कषाय, कषायसे मधुर उत्तरोत्तर विशेष भारी होते हैं॥

इसी प्रकार अम्लरससे कटु और कटुसे तिक्त क्रमसे उत्तरोत्तर विशेष हलके होते हैं॥ ३९॥

रसोंकी संयोगकल्पनाका विभाग।

संयोगाः सप्तपंचाशत्कल्पना तु त्रिषष्टिधा।
रसानां यौगिकत्वेन यथास्थूलं विभज्यते ४०॥

प्रधान छः रसोंका सत्तावन प्रकारसे संयोग करनेसे रसोंकी त्रेसठ प्रकारकी कल्पना होती है। यद्यपि सूक्ष्म संयोग विभाग क्रमसे रसोंकी असंख्य कल्पना हो सकती है। परन्तु यहां शरीरोपयोगिताके लिये तथा स्थूल त्रेसठ प्रकारसे रसोंके विभागको कथन करते हैं॥ ४०॥

रससंयोगोंका व्याख्यान।

एकैकहीनांस्तान्पंच पंच यांति रसा द्विके।
त्रिके स्वादुर्दशाम्लः षट् त्रीन्पटुस्तिक्त एककम्।
चतुष्केषु दश स्वादुश्चतुरोऽम्लः पटुः सकृत् ४१
पंचकेष्वेकमेवाम्लो मधुरः पंच सेवते।
द्रव्यमेकं षडास्वादमसंयुक्ताश्च षड्रसाः॥४२॥

रसोंको क्रमसे एक २ हीन करते हुए दो २ मिलानेसे पन्द्रह प्रकार बनते है। जैसे (१) मधुर अम्ल, (२) मधुर लवण, (३) मधुर तिक्त, (४) मधुर कटु, (५) मधुर कषाय। (६) अम्ल लवण, (७) अम्ल तिक्त, (८) अम्ल कटु, (९) अम्ल कषाय। (१०) लवण तिक्त, (११) लवण कटु, (१२) लवण कषाय। (१३) तिक्त कटु, (१४) तिक्त कषाय, (१५) कटु कषाय। इस प्रकार दो २ रसोंके मिलानेसे पन्द्रह प्रकारकी रसोंकी कल्पना हुई॥

अब तीनके योगोंसे दश प्रकारके योगोंको कथन करते हैं। जैसे (१) मधुर अम्ल लवण, (२)मधुर अम्ल तिक्त, (३) मधुर अम्ल कटु, (४) मधुर अम्ल कषाय, (५) मधुर लवण तिक्त, (६) मधुर लवण कटु, (७) मधुर लवण कषाय, (८) मधुर तिक्त कटु, (९) मधुर तिक्त कषाय, (१०) मधुर कटु कषाय। इस प्रकार तीन रसोंके योगसे दश भेद हुए॥

अब अम्ल रसके साथ दो २ अन्य रस मिलानेसे तीन और अम्लके स्थानमें तिक्त लगानेसे दो और तिक्त त्यागनेसे एक इस प्रकार जो छः भेद होते हैं सो कथन करते हैं। जैसे (१) अम्ल लवण तिक्त, (२) अम्ल लवण कटु, (३) अम्ल लवण कषाय,

(४) अम्ल तिक्त कटु, (५) अम्ल तिक्त कषाय, (६) अम्ल कटु कषाय । इस प्रकार छः विभाग हुए ।

लवणरसके योगसे तीन भेद होते हैं। जैसे(१)लवण तिक्त कटु, (२) लवण तिक्त कषाय और (३)लवण कटु कषाय।

इसी प्रकार तिक्तके योगसे एक। जैसे (१) कटु तिक्त कषाय । इस प्रकार दो २ के योगसे पन्द्रह और तीन २ के योगसे बीस योग हुए। दोनोंको मिलानेसे पैंतीस होते हैं ॥

अब चार २ रसोंके योगसे भेदकल्पना करते है। जैसे मधुर रसके साथ तीन २ और मिलानेसे दश भेद होते है। जैसे (१) मधुर अम्ल लवण तिक्त,(२)मधुर अम्ल लवण कटु, (३) मधुर अम्ल लवण कषाय, (४) मधुर अम्ल तिक्त कटु, (५) मधुर अम्ल तिक्त कषाय, (६) मधुर अम्ल कटु कषाय । (७) मधुर लवण तिक्त कटु, (८) मधुर लवण तिक्त कषाय, (९) मधुर लवण कटु कषाय । (१०) मधुर तिक्त कटु कषाय। इस प्रकार मधुरके साथ अम्ल रहते हुए छः, अम्लत्यागसे तीन और लवणत्यागसे एक, कुल मिलाकर दश योग हुए ॥

मधुरको त्यागकर अम्लादि योगसे चार २ मिलायें तो चार योग होते है। जैसे (१) अम्ल लवण तिक्त कटु, (२) अम्ल लवण तिक्त कषाय,(३)अम्ल लवण कटु कषाय । (४) अम्ल तिक्त कटु कषाय। इस प्रकार चार भेद हुए । और लवणके योगसे चार रस मिलाय तो एक भेद होता है। जैसे (१) लवण तिक्त कटु कषाय। इस प्रकार चार २ रसों-के मिलानेसे पन्द्रह भेद हुए ॥

अब पांचके मिलानेसे जो छः भेद होते है सो कथन करते है।

अम्लके योगसे एक । जैसे (१) अम्ल लवण तिक्त कटु कषाय। मधुरके योगसे पांच भेद होते है। जैसे(१) मधुर लवण तिक्त कटु कषाय, (२) मधुर अम्ल तिक्त कटु कषाय, (३) मधुर अम्ल लवण कटु कषाय, (४) मधुर अम्ल लवण तिक्त कषाय, (५) मधुर अम्ल लवण तिक्त कटु। इस प्रकार पांच२ रसोंके संयोगसे छः भेद हुए। एवं मधुर अम्ल लवण कटु तिक्त कषाय इन छः रसोंके योगसे एक भेद हुआ । इस प्रकार मधुरादि पृथक् २ छः। दो २ मिलानेसे पन्द्रह। तीन २ मिलानेसे बीस। चार २ मिलानेसे पन्द्रह । पांच २ मिलानेसे छः और छः रसोंके संयोगसे एक । एवं सबको जोड़ देनेसे रसके त्रेसठ भेद होजाते हैं। उसीको अगले श्लोकमें कहा है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

रसभेदोंका संक्षेपसे कथन।

षट्पंचकाः षट् च पृथग्रसाः स्यु-
श्चतुर्द्विकौ पंचदशप्रकारौ ।
भेदास्त्रिका विंशतिरेकमेवं
द्रव्यं षडास्वादमिति त्रिषष्टिः ॥ ४३ ॥

पांचके योगसे छः भेद अलग २ एक २ रस होनेसे छः भेद। चार २ मिलानेसे पन्द्रह भेद। दो २ मिलानेसे पन्द्रह भेद। तीन २ मिलानेसे बीस भेद और छः रसोंको एकत्र करनेसे एक भेद। सबको मिलानेसे कुल त्रेसठ भेद होते है ॥ ४३ ॥

रसादिकोंका उपयोग।

ते रसानुरसतो रसभेदा--
--स्तारम्यपरिकल्पनया च ।
संभवंति गणनां समतीता--
--दोषभेषजवशादुपयोज्याः ॥४४॥

वे रस यद्यपि रस अनुरसकी सूक्ष्म कल्पनासे असंख्य भेदोंको प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु यहांपर दोषभेदसे और औषधिकल्पना भेदसे जिन द्रव्योंका जहांपर उचित उपयोग हो वहांपर उस प्रकार उपयोग करना चाहिये। क्योंकि सब प्रकारके रसभेद दोषानुसार तथा औषधिकल्पनानुसार हितकारक प्रकारसे प्रयोग करने चाहिये ॥ ४४ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्नपण्डितश्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कारवैद्यशिवशर्मविरचित-शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातो दोषादिविज्ञानीयमध्यायंव्याख्यास्यामः

अब हम दोष, धातु और मलके विज्ञानवाले अध्यायकी व्याख्या करते है ।

देहके मूलकारण दोषादिकोंका निरूपण ।

दोषधातुमला मूलं सदा देहस्य तं चलः ।
उत्साहोच्छ्वासनिश्वासचेष्टावेगप्रवर्तनैः ॥ १ ॥
सम्यग्गत्या च धातूनामक्षाणां पाटवन च ।
अनुगृह्णात्यविकृतः पित्तं पक्त्यूष्मदर्शनैः ॥२॥
क्षुत्तृड्रुचिप्रभामेधाधीशौर्यतनुमार्दवैः ।
श्लेष्मा स्थिरत्वस्निग्धत्वसंधिबंधक्षमादिभिः॥३॥

देहके धारण रखनेमें दोष अर्थात् वात, पित्त, कफ, धातु अर्थात् रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र तथा पुरीषादि मल ये तीनों देहके धारण करनेमें सदैव मूल अर्थात् कारणभूत हैं ॥

इनमें वायु अविकृत अवस्थामें रहता हुआ शरीरमें उत्साह, उच्छ्वास और निश्वास, सब प्रकारकी चेष्टा, मलादि वेगोंका प्रवृत्त करना, रसादि धातुओंकी शुद्ध गतिको रखना, सम्पूर्ण इन्द्रियोंका स्वच्छ चैतन्य और अपने २ कर्ममें प्रवृत्त रखना आदि कर्मोंसे शरीरका पालन, पोषण धारणादि अनुग्रह कर्म करता है ॥

पित्त-साम्यावस्थामें रहता हुआ परिपाक, उष्णता, दृष्टिकम, क्षुधा, प्यास, रुचि, कान्ति, मेधा, बुद्धि, शौर्य, तनुत्व और मृदुता आदि कर्मोंसे देहको धारण पालनादि अनुग्रह करता है ॥

शुद्ध कफ साम्यावस्थामें रहता हुआ स्थिरता, स्निग्धता, सन्धियोंकी श्लिष्टता और सहिष्णुता आदि कर्मोंसे देहको धारण पालनादि करता है॥ १-३ ॥

सात धातुओंके कर्मका विवरण ।

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणपूरणे ।
गर्भोत्पादश्च धातूनां श्रेष्ठं कर्म क्रमात्स्मृतम् ४॥

जैसे रस शरीरको प्रीणन करता है । रक्त शरीरको जीवन अर्थात् प्राण धारण करता है । मांस शरीरमें लिपायमान होकर शरीरकी रक्षा करता है। मेद स्नेहन धर्मसे शरीरकी रक्षा करता है । अस्थियें शरीरको धारण करती है । मज्जा अस्थियोंको पूर्ण करती है । शुक्र गर्भको उत्पन्न करता है । इस प्रकार ये सात धातुओंके क्रमसे श्रेष्ठ कर्म है ॥ ४ ॥

मलोंके कर्म ।

अवष्टंभः पुरीषस्य मूत्रस्य क्लेदवाहनम् ।
स्वेदस्य क्लेदविधृतिः-
-वृद्धस्तु कुरुतेऽनिलः ॥ ५ ॥
कार्श्यकार्ष्ण्योष्णकामित्वकंपानाहशकृद्ग्रहान्
बलनिद्रेंद्रियभ्रंशप्रलापभ्रमदीनताः ॥ ६ ॥

अब मलोंके कर्मोंको कहते हैं-पुरीष देहधारणकी शक्तिको रखता है । मूत्र क्लेदको वहन करता है । स्वेद क्लेदको धारण करता है । इस प्रकार पुरीषादि मल शरीरधारणादि श्रेष्ट कर्मको करते है ।

इस प्रकार दोष, धातु और मलोंके साम्यावस्थामें रहते हुए शरीर पालन धारणादि शुभ कर्म होते है ॥

अब बढे हुए दोषादिकोंके कर्मको कथन करते है । अपनी साम्यावस्थासे जब वायु बढ जाता है तब शरीरमें कृशता, कालापन, उष्ण वस्तुओंकी इच्छा, कम्प, आनाह, मलकी रुकावटको करता है तथा बलका नाश, निद्रानाश, इन्द्रियोंकी क्षीणता, प्रलाप, भ्रम और दीनता आदि विकारोंको करता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

वृद्ध पित्त और वृद्ध कफका कर्म ।

पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक्क्षुत्तृड्दाहाल्पनिद्रताः ।
पित्तम्-
-श्लेष्माऽग्निसदनप्रसेकालस्यगौरवम् ।
श्वैत्यशैत्यश्लथांगत्वं श्वासकासातिनिद्रताः ॥७॥

बढ़ा हुआ पित्त—विष्ठा, मूत्र, नेत्र और त्वचाको पीले वर्णकी बना देता है तथा भस्मक रोग, तृषा, दाह और निद्रामें न्यूनताको करता है ॥

अपनी अवस्थासे बढ़ा हुआ कफ मन्दाग्नि, मुखसे लारका गिरना, आलस्य, भारीपन, नेत्रादिकोंमें श्वेतता, शीतता, अंगोंमें शिथिलता, श्वास, कास और अतिनिद्रताको करता है ॥ ७ ॥

बढ़े हुए रस और रक्तका कर्म ।

रसोऽपि श्लेष्मवद्रक्तं विसर्पप्लीहविद्रधीन् ॥८॥
कुष्ठवातास्रपित्तास्रगुल्मोपकुशकामलाः ।
व्यंगाग्निनाशसंमोहरक्तत्वङ्नेत्रमूत्रताः ॥ ९ ॥

अब रसादि धातुओंकी अतीव वृद्धिके विकारोंको कहते हैं—

यदि रस साम्यावस्थासे बढ़ जाय तो मंदाग्नि, लालाप्रसेक, आलस्य और गौरवादि कफके समान विकारोंको करता है ॥

यदि रक्त अपनी साम्यावस्थासे अत्यन्त बढ़ जाय तो विसर्प, प्लीहा, विद्रधि, कुष्ठ, वातरक्त, रक्तपित्त, गुल्म, उपकुशनामक दन्तरोग, कामला, व्यंग, अग्निमान्द्य और मूर्च्छाको उत्पन्न कर देता है । तथा त्वचा, नेत्र और मूत्रको लाल वर्णका बना देता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

वृद्धिको प्राप्त हुए मांस और मेदके कर्म ।

मांसं गंडार्बुदग्रंथिगंडोरूदरवृद्धताः ।
कंठादिष्वधिमांसं च—
—तद्वन्मेदस्तथा श्रमम् ।
अल्पेऽपि चेष्टिते श्वासं स्फिक्स्तनोदरलंबनम् १०

अपनी अवस्थासे बढ़ा हुआ मांस गलगण्ड, रसौली, ग्रन्थिमाला, गण्डमाला, अर्बुदाश्रित ग्रन्थि, ऊरुस्थलमें और उदरमें वृद्धि तथा कण्ठादिकोंमें अधिक मांसको उत्पन्न कर देता है ॥

मेद भी बढ़कर गलगण्डादि रोगोंको उत्पन्न करता है तथा श्रम, अल्प चेष्टा करनेपर भी श्वासकी वृद्धिको करता है एवं नितम्ब, स्तन और उदरको बढ़ाकर विशेषरूपसे लटका देता है ॥ १० ॥

वृद्धिको प्राप्त हुए अस्थि और मज्जाके कर्म ।

अस्थ्यध्यस्थ्यधिदंतांश्च—
—मज्जा नेत्रांगगौरवम् ।
पर्वसु स्थूलमूलानि कुर्यात्कृच्छ्राण्यरूंषि च ११

बढ़ीहुई अस्थि अध्यस्थि और अतिदन्त रोगको उत्पन्न करती है ॥

मज्जा वृद्धिको प्राप्त होकर नेत्रोंमें और अंगोंमें भारीपन करती है, जोड़ोंमें स्थूलमूलवाली और कष्टसाध्य अरुंषिकानामक पिटिकाको उत्पन्न कर देती है ॥ ११ ॥

बढ़े हुए शुक्रके कर्म ।

अतिस्त्रीकामतां वृद्धं शुक्रं शुक्राश्मरीमपि १२॥

अतिवृद्धिको प्राप्त हुआ शुक्र स्त्रीसंगकी इच्छाको अविकरूपसे उत्पन्न करता है तथा शुक्राश्मरी, शुक्रस्राव आदि शुक्रके विकारोंको उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

वृद्धिगत मल मूत्रके कर्म ।

कुक्षावाध्मानमाटोपं गौरवं वेदनां शकृत् ।
मूत्रं तु बस्तिनिस्तोदं कृतेऽप्यकृतसंज्ञताम् १३

अब बढ़े हुए पुरीषादि मलोंके विकारोंको कहते हैं—

बढ़ा हुआ पुरीष कुक्षियोंमें आध्मान, आटोप, गौरव और वेदनादि विकारोंको उत्पन्न करता है ।

वृद्धिको प्राप्त हुआ मूत्र वस्तिमें पीड़ाको करता है और मूत्रत्याग कर देनेपर भी पुनः मूत्रत्यागकी वैसी ही इच्छा बनी रहती है ॥ १३ ॥

वृद्धिगत स्वेदके कर्म ।

स्वेदोऽतिस्वेददौर्गंध्यकंडूः—
—एवं च लक्षयेत् ।

स्वेद वृद्धिको प्राप्त होकर पसीनेकी अधिकता, दुर्गन्ध और खुजलीको पैदा करता है ।

दूषिकादीनपि मलान् बाहुल्यगुरुतादिभिः१४॥

इस प्रकार अक्षिमलादि अन्य मल जो अपनी साम्यावस्थासे बढ़ जाते हैं उनको भी उनकी

अधिकता और गुरुता आदिसे जान लेना चाहिये ॥ १४ ॥

क्षीण वायुके कर्म ।

लिंगं क्षीणेऽनिलेऽङ्गस्य सादोऽल्पं भाषतेऽहितम्।
संज्ञामोहस्तथा श्लेष्मवृद्धयुक्तामयसंभवः॥१५॥

दोष, धातु और मलोंकी वृद्धिके लक्षणोंको कह चुके है । अब इनकी क्षीणावस्थाके लक्षणोंको कहते है–

वातकी क्षीणतासे अंगसाद अंगोंकी चेष्टा और भाषणमें अल्पता, संज्ञानाश तथा कफकी वृद्धिमें कहे हुए आलस्य गौरवादि कफविकार उत्पन्न हो जाते है ॥ १५ ॥

क्षीण पित्त और कफके कर्म ।

पित्ते मंदोऽनलः शीतं प्रभाहानिः–
–कफे भ्रमः ।
श्लेष्माशयानां शून्यत्वं हृद्द्रवश्लथसंधिताः १६॥

पित्तके क्षीण होनेसे अग्निमान्द्य, शीतता, कान्तिकी हीनता आदि विकार होते हैं ।

कफके क्षय होनेपर भ्रम, कफाशयोंमें शून्यता, अर्थात् छाती आदि शून्यसे प्रतीत होने, हृदयमें दीनता, सन्धियोंमें शिथिलता आदि विकार होते है ॥ १६ ॥

क्षीण रस और रक्तके कर्म ।

रसे रौक्ष्यं श्रमः शोषो ग्लानिः शब्दासहिष्णुता
रक्तेऽम्लशिशिरप्रीतिशिराशैथिल्यरूक्षताः१७॥

रसका क्षय होनेसे रूक्षता, श्रम, मुखशोष, ग्लानि, और शब्दका न सहना आदि विकार होते है ।

रक्तके क्षय होनेसे अम्ल और शीत पदार्थोंमें प्रीति, नाड़ियोंमें शिथिलता और रूक्षता आदि विकार होते हैं ॥ १७ ॥

क्षीण मांस और मेदके कर्म ।

मांसेऽक्षग्लानिगंडस्फिक्शुष्कतासंधिवेदनाः ।
मेदसि स्वपनं कटयाःप्लीह्नो वृद्धिःकृशांगता१८

मांसके क्षय होनेसे इन्द्रियोंमें ग्लानि, गण्डस्थल और नितम्बोंका सूखना तथा सन्धियोंमें वेदना होती है ॥

मेदके क्षय होनेपर कमरका सोयासा जाना, प्लीहाकी वृद्धि और अंगोंमें कृशता हो जाती है ॥ १८ ॥

क्षीण अस्थि और मज्जाके कर्म ।

अस्थ्न्यस्थितोदः शदनं दंतकेशनखादिषु ।
अस्थ्नां मज्जनि सौषिर्यं भ्रमस्तिमिरदर्शनम्१९

अस्थियोंकी क्षीणतासे अस्थियोंमें तोदकीसी पीड़ा तथा दन्त, केश और नखादिकोंमें शून्यतासी प्रतीत होने लगती है या केश आदि गिरने लगते है ।

मज्जाके क्षीण होनेसे अस्थियोंमें शोष, भ्रम और नेत्रोंके आगे अन्धकार प्रतीत होना ये लक्षण होते हैं ॥ १९ ॥

क्षीणशुक्रके कर्म ।

शुक्रे चिरात् प्रसिच्येत शुक्रं शोणितमेव वा।
तोदोऽत्यर्थं वृषणयोर्मेढ्रं धूमायतीव च ॥२० ॥

शुक्रके क्षीण होनेसे,–शुक्रका देरमें स्खलन होना अथवा शुक्रके स्थानमें रक्तका आना, दोनों वृषणोंमें अत्यन्त तोद होना, शिश्नेन्द्रियमें धूमनिर्गमसा प्रतीत होना ये लक्षण होते है ॥ २० ॥

क्षीणपुरीषके कर्म ।

पुरीषे वायुरंत्राणि सशब्दो वेष्टयन्निव ।
कुक्षौ भ्रमति यात्यूर्ध्वं हृत्पार्श्वे पीडयन्भृशम्२१

पुरीषके क्षय होनेसे वायु अन्तरोंको वेष्टितसा करती हुई तथा शब्द करती हुई कुक्षियोंमें भ्रमण करती है एवं हृदय और दोनों पार्श्वोंको अत्यन्त पीड़न करती हुई ऊर्ध्वगमन करती है ॥ २१ ॥

क्षीण मूत्र और स्वेदके कर्म ।

मूत्रेऽल्पं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विवर्णं सास्रमेव वा ।
स्वेदे रोमच्युतिः स्तब्धरोमता स्फुटनं त्वचः२२

मूत्रके क्षीण होनेसे अल्पमूत्रता अथवा कष्टसे मूत्रका उतरना या विवर्ण और रक्तयुक्त मूत्रका आना ये लक्षण होते हैं ॥

स्वेदके क्षय होनेसे रोमोंका गिरना अथवा रोमोंका स्तब्ध होना और त्वचाका फटना ये लक्षण होते है ॥ २२ ॥

घ्राणादि मलोंके क्षयका चिह्न।

मलानामतिसूक्ष्माणां दुर्लक्ष्यं लक्षयेत् क्षयम्।
स्वमलायनसंशोषतोदशून्यत्वलाघवैः ॥ २३ ॥

इसी प्रकार अतिसूक्ष्म मलोंके दुर्लक्ष्य क्षयको उन्हींके दुर्लक्षणोंसे जान लेवे। जैसे नासिका आदिके मलके क्षय होनेसे मलस्थानका शोष, तोद, शून्यता और लघुता होती है। इसी प्रकार नेत्रमलादिकोंके क्षयके लक्षणोंद्वारा उनके क्षयको जानना चाहिये २३

दोष धातु और मलोंका संक्षेपसे वृद्धि, क्षय।

दोषादीनां यथास्वं च विद्याद्वृद्धिक्षयौ भिषक्।
क्षयेण विपरीतानां गुणानां वर्धनेन च ॥२४॥

वैद्यको चाहिये, दोषादिकोंकी वृद्धि और क्षयको उनके लक्षणोंसे जान लेवे। जैसे वायु-रूक्ष चल आदि गुणवाला है, यदि वायुसे विपरीत स्निग्ध और स्थिर आदि गुण शरीरमेंसे क्षय हो जायें तो वायुकी अधिक वृद्धि जाननी चाहिये। यदि वायुसे विपरीत स्निग्ध, गुरु आदि गुणोंकी अधिक वृद्धि हो तो वायुका क्षय जानना चाहिये। इसी प्रकार वातादि तीनों दोषोंके विपरीत गुणोंकी वृद्धिसे उनका क्षय और विपरीत गुणोंके क्षयसे उनकी अतिवृद्धि जाननी चाहिये ॥ २४ ॥

वृद्धिं मलानां संगाच्च क्षयं चाऽतिविसर्गतः।
मलोचितत्वाद्देहस्य क्षयो वृद्धेस्तु पीडनः २५॥

यदि मलोंका बार २ अति निस्सरण हो तो मलोंकी वृद्धि जाननी चाहिये और यदि मलोंका दर्शन न हो तो उन मलोंका क्षीण हुए जानना चाहिये ॥

यद्यपि मलोंका बढ़ना और क्षय होना दोनों हानिकर है परन्तु मलोंका क्षय होना विशेषरूपसे हानिकारक होता है। क्योंकि शरीरधारियोंके लिये मलोंका क्षय होना उचित नहीं ॥ २५ ॥

दोषादिकोंके आश्रयाश्रयीभावका निरूपण।

तत्राऽस्थनि स्थितो वायुः पित्तं तु स्वेदरक्तयोः।
श्लेष्मा शेषेषु तेनैषामाश्रयाश्रयिणां मिथः॥२६
यदेकस्य तदन्यस्य वर्धनक्षपणौषधम्।
अस्थिमारुतयोर्नैवं प्रायो वृद्धिर्हि तर्पणात्२७॥
श्लेष्मणाऽनुगता तस्मात् संक्षयस्तद्विपर्ययात्।
वायुनाऽनुगतः-
-अस्माच्च वृद्धिक्षयसमुद्भवान्।
विकारान् साधयेच्छीघ्रं क्रमाल्लंघनबृंहणैः२८॥

इनमें वायु-अस्थियोंके आश्रित रहता है। पित्त-स्वेद और रक्तके आश्रित रहता है। कफ-रस, मांस, मेद, मज्जा और शुक्रके आश्रित रहता है। इसी कारण इन आश्रय और आश्रितोंमें आपसमें एकके क्षय होनेसे दूसरेका भी क्षय होता है, जैसे पित्तके क्षय होनेसे स्वेद और रक्तका भी क्षय होता है। इसी प्रकार रक्त और स्वेदकी क्षीणतासे पित्त भी क्षीण होता है। ऐसे ही इनकी वृद्धिके साथ वृद्धि भी होती है। कफकी वृद्धिसे मांस मेदादि जो कफके आश्रय है उनकी वृद्धि होती है और क्षीणतासे क्षीणता होती है। ऐसे ही रस, मांस, मेद, मज्जा और शुक्रकी वृद्धि या क्षयके साथही वृद्धि या क्षय होता है। इस लिये वृद्धि अथवा क्षीणतामें इन आश्रय और आश्रितोंमेंसे आश्रयके बढ़ा देनेसे आश्रितकी भी वृद्धि हो जाती है। ऐसेही आश्रयके शोधनसे आश्रितका भी शोधन हो जाता है॥ परन्तु यह नियम पित्त, कफका तो है पर वायुके लिये यह नियम नहीं है। इसी लिये मूलमें लिखा है कि अस्थि और वायुमें एकको वृद्धि या ह्रासरो दूसरेकी वृद्धि ह्रासका नियम नहीं है।

प्रायः रसादि धातुओंकी वृद्धि तर्पणसे होती है, अर्थात् तर्पणद्वारा रसादि धातु वृद्धिको प्राप्त होते हैं।

कफ तर्पणके अनुगत है, इस कारण तर्पणसे रसादि धातुओंकी और साथ साथ कफकी भी वृद्धि हो जाती है।

तर्पणसे विपरीत लंघनद्वारा रसादि धातुओंका क्षय होता है और वायु क्षयके अनुगत है, इसलिये जब अपतर्पणसे रसादि धातुओंका क्षय होता है तो क्षयके साथ ही अपतर्पणसे वायुकी वृद्धि होजाती है।

इस कारण वृद्धि अथवा क्षयजनित विकारोंको लंघन और बृंहणद्वारा जीतना चाहिये। "शरीरमें लघुता करनेवाले उपवास और शोधनादिको लंघन कहते है। तथा बढ़ाने और पुष्ट करनेवाली क्रियाको बृंहण कहते है॥" सो शरीरमें यदि किसी दोषधातुके वृद्धिजनित विकार हों उनको लंघनशोधनद्वारा क्षीण करके साम्यावस्थामें ले आना चाहिये। यदि किसी दोषधातुके क्षयसे विकार हो तो उस दोषधातुका बृंहण कर बढ़ा दे और साम्यावस्थामें ले आवे॥ २६-२८॥

वायोरन्यत्र तज्जांस्तु तैरेवोत्क्रमयोजितैः॥२९॥

परन्तु वायुको छोड़कर यह चिकित्साक्रम है। क्योंकि वायुके अतिरिक्त अन्य दोषधातु लंघनसे क्षय और बृंहणसे वृद्धिको प्राप्त होते है। किन्तु वायु लंघनक्रियासे बढ़ जाती है। इसलिये वायुकी वृद्धिसे उत्पन्न हुए शोष आदि विकारोंको बृंहणक्रियासे जीते तथा वातक्षय हो तो उसको लंघनादिसे बढ़ावे, यह नियम है। यह चिकित्साका सामान्य क्रम कह दिया है॥ २९॥

रक्त और मांस वृद्धिकी चिकित्सा।

विशेषाद्रक्तवृद्ध्युत्थान् रक्तस्रुतिविरेचनैः।
मांसवृद्धिभवान् रोगाञ्शस्त्रक्षाराग्निकर्मभिः ३०

अब विशेष चिकित्सा कहते हैं—जैसे रक्तकी वृद्धिसे उत्पन्न हुए रोगोंको रक्तमोक्षण और रेचनद्वारा जीतना चाहिये।

मांसवृद्धिसे उत्पन्न हुए रोगोंको शस्त्रकर्म, क्षारकर्म और अग्निकर्मसे जीतना चाहिये॥ ३०॥

मेद और अस्थिके वृद्धिक्षयकी चिकित्सा।

स्थौल्यकार्श्योपचारेण मेदोजानस्थिसंक्षयात्।
जातान् क्षीरघृतैस्तिक्तसंयुतैर्बस्तिभिस्तथा ३१

मेदकी वृद्धिसे उत्पन्न हुए रोगोंको स्थूलतानाशक चिकित्सा द्वारा जीते। और मेदके क्षयसे उत्पन्न हुए विकारोंको कृशतानाशक अर्थात् मेदवर्धक उपचारसे जीतना चाहिये॥ अस्थियोंके क्षयमें तिक्तद्रव्योंसे सिद्ध किये दूध और घृत पिलावे तथा तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत और दूधसे बृंहण बस्तिकर्म करना चाहिये॥ ३१॥

मलके वृद्धिक्षय जनित विकारोंकी चिकित्सा।

विड्वृद्धिजानतीसारक्रियया विट्क्षयोद्भवान्।
मेषाजमध्यकुल्माषयवमाषद्वयादिभिः॥ ३२॥

विष्ठाकी वृद्धिसे उत्पन्न विकारोंको अतिसार रोगकी चिकित्सानुसार पाचनादि करके जीतना चाहिये।

विष्ठाके क्षयजनितविकारोंको मेढ़े और बकरेके मध्यभागका मांस, कुल्माष, यव, माष और राजमाष आदि मलवर्धक द्रव्योंका उपयोग कराकर जीतना चाहिये॥ ३२॥

मूत्र और स्वेदके वृद्धिक्षयकी चिकित्सा।

मूत्रवृद्धिक्षयोत्थांश्च मेहकृच्छ्रचिकित्सया।
व्यायामाऽभ्यंजनस्वेदमद्यैः स्वेदक्षयोद्भवान् ३३

मूत्रवृद्धिको प्रमेहकी चिकित्सा द्वारा जीतना चाहिये। मूत्रकी क्षीणताको मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा द्वारा जीतना चाहिये॥

स्वेदके क्षयसे उत्पन्न हुए रोगोंको व्यायाम, तैलमर्दन, स्वेदन और मद्यके उपयोगसे जीतना चाहिये॥ ३३॥

धातुओंके वृद्धिक्षयका प्रकार।

स्वस्थानस्थस्य कायाग्नेरंशा धातुषु संश्रिताः।
तेषां सादातिदीप्तिभ्यां धातुवृद्धिक्षयोद्भवः ३४

जठराग्नि द्वारा धातुओंकी क्षयवृद्धिका क्रम कहते हैं—शरीरमें जठराग्नि अपने स्थानमें रहकर अपने

अंशोंसे धातुओंका पालन करती है। यदि जठराग्निके साम्य अंश उचितरूपसे धातुओंमें रहे तो धातुएं भी साम्याऽवस्थामें रहनेसे शरीर नीरोग रहता है। उस जठराग्निके धातुगत अंशोंकी न्यूनतासे अर्थात् जठराग्निकर्मकी मन्दतासे धातुएं दूषित रूपमें बढ़ जाती है और उन जठराग्निके अंशोंकी तीक्ष्णतासे धातुओंका क्षय हो जाता है॥ ३४॥

पूर्वो धातुः परं कुर्याद्वृद्धः क्षीणश्च तद्विधम्३५॥

रसादि धातुओंकी वृद्धि और क्षय सीधे क्रमसे पूर्वधातुके अनुसार होता है, जैसे—रसकी वृद्धिसे रक्तकी वृद्धि होती है, रक्तकी वृद्धिसे मांसकी वृद्धि होती है, मांसकी वृद्धिसे मेदकी वृद्धि, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा, मज्जासे शु ; इस प्रकार क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होते है। इसी प्रकार रसके क्षयसे रक्तका क्षय, रक्तके क्षयसे मांसका क्षय, मांसके क्षयसे मेदका क्षय होता है। इस क्रमसे पहली धातुके बढ़नेसे दूसरी धातुकी वृद्धि और पहली धातुके क्षयसे दूसरीका क्षय होता है॥ ३५॥

प्रकुपित दुष्ट दोषोंसे धातुओंका दूषण।

दोषा दुष्टा रसैर्धातून् दूषयंत्युभये मलान्।
अधो द्वे सप्त शिरसि खानि स्वेदवहानि च।
मला मलायनानि स्युर्यथास्वं तेष्वतो गदाः३६

दोषोंसे रसादि धातुओंके दूषणक्रमको कहते है—मधुरादि रसोंके अयोग या मिथ्यायोग अथवा अतियोग करनेसे " अथवा मिथ्या विहारसे" कुपित हुए वातादि दोष रस रक्तादि धातुओंको दूषित कर देते है। फिर दुष्टदोष और दूषितधातु दोनों मिलकर मलोंको दूषित कर देते है। फिर दूषित हुए मल द्वारोंको विकारयुक्त कर देते है॥

वह मलाशय इस प्रकार है—जैसे मूत्रद्वार या बस्ति, गुदा या मलाशय, यह दो तो अधोभागमें है। दोनेत्र, दोकान, दो नासिकाके छिद्र और एक मुख यह सात शिरके भागमें है। तथा स्वेदवाहक रोमछिद्र सम्पूर्ण शरीरमें है। इसलिये जिस मलका जो स्थान है वह मल दूषित होकर उसी स्थानमें विकारके लक्षणोंको करता है। जैसे दूषित रसादि धातु अपने अपने स्थानमें विकारके लक्षणोंको करते है, वैसे ही दूषित मल अपने २ स्थानोंमें विकारके लक्षणोंको दिखाते हैं॥ ३६॥

ओजका निरूपण।

ओजस्तु तेजोधातूनां शुक्रांतानां परं स्मृतम्।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबंधनम् ३७॥
स्निग्धं सोमात्मकं शुद्धमीषल्लोहितपीतकम्।
यन्नाशे नियतं नाशो यस्मिंस्तिष्ठति तिष्ठति॥
निष्पद्यंते यतो भावा विविधा देहसंश्रयाः३८॥

ओजका वर्णन करते है—रससे लेकर शुक्रपर्यन्त जो शरीरके सातधातुएं हैं, उन शुद्ध सात धातुओंका जो परम शुद्ध तेज है उसको ओज कहते हैं। ओजका स्थान हृदय है। यह ओज हृदयमें रहते हुए भी सम्पूर्ण देहमें व्यापक रहता है। यह ओज ही देहकी स्थितिका निबंधन है, अर्थात् ओज ही मनुष्यके जीवनका आधार है। ओज सोमगुणप्रधान, स्निग्ध, शुद्ध और किंचित् रक्तपीतवर्णवाला होता है। जिस ओजके नाश होनेसे देहका नाश अवश्य होजाता है, उस ओजके स्थित रहनेसे ही देह स्थिर रहती है। उस ओजकी ही कृपासे देहमें आश्रित सम्पूर्ण भाव उत्पन्न होते हैं॥ ३७॥ ३८॥

ओजका क्षय।

ओजः क्षीयेत कोपक्षुद्ध्यानशोकश्रमादिभिः।
बिभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं ध्यायति व्यथितेंद्रियः।
विच्छायो दुर्मना रूक्षो भवेत्क्षामश्च तत्क्षये ४०

ओजक्षयके कारण—कोप, क्षुधा चिन्ता, शोक और श्रम आदिके अतियोगसे ओजका क्षय होता है। ओजकी क्षीणतासे मनुष्य—भयातुर, दुर्बल,

१ चरकके टीकाकार गंगाधर तथा चक्रपाणि दोनों ही अपनी २ टीकाओंमें लिखते हैं कि, ओजका तीन प्रकारसे क्षय होता है, जैसे—विस्रंस, व्यापत और क्षय। यही तीन प्रकारका क्षय सुश्रुतने भी माना है—

क्षीण, निरंतर चिंतायुक्त, दुर्बलेन्द्रिय, कान्तिरहित, खिन्नमन, रूक्ष और क्षामस्वरवाला होजाता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

ओजक्षीणकी चिकित्सा तथा ओज-वृद्धिके गुण ।

जीवनीयौषधक्षीररसाद्यास्तत्र भेषजम् ।
ओजोविवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयः ४१ ॥

ओजकी क्षीणतामें जीवनीयगणसे सिद्ध किये हुए दूध, घृत पिलाना चाहिये । जीवनीय द्रव्योंसे सिद्ध तैल मर्दन कराना और युवावस्थावाले जीवोंका मांसरस पिलाना तथा जीवनवर्द्धक अन्य मक्खन, घृत आदि सेवन कराना चाहिये।

ओजकी वृद्धिसे मनमें प्रसन्नता और देहमें पुष्टि, बल एवं इन्द्रियोंमें बल तथा पराक्रमादि सब गुणोंकी वृद्धि होती है । इसलिये ओजकी वृद्धिको क्षीण नहीं करना चाहिये । किन्तु ओजवृद्धिमें ही प्रयत्नवान् रहना चाहिये ॥ ४१ ॥

-परन्तु सुश्रुत चरकादि आयुर्वेदीय ग्रन्थोंका सिद्धान्त है कि, ओजके क्षयसे मनुष्योंका नाश होजाता है और दूसरी ओर प्रमेहमें ओजका क्षय होना सभीने माना है। जब ओजके क्षय होनेसे मनुष्योंकी मृत्यु होती है और मधुमेहमें ओजका क्षय होना लिखा है, शास्त्रकारोंने अष्टबिन्दुमात्र शरीरमें ओजका प्रमाण कहा है, उस अष्टबिन्दुमेंसे किंचिन्मात्र भी ओजका क्षय होनेसे मनुष्यका नाश हो सकता है । इन विरोधिवाक्योंको देखते हुए यह सन्देह होता है कि मधुमेहमें जिस ओजका क्षय होता है वह वही अष्टबिन्दु ओज है या कोई और धातु है । इसका गंगाधर और चक्रपाणि इस प्रकार समाधान करते हैं कि अष्टबिन्दु ओज जो हृदयमें रहता है वह अन्य ओज है। इसके विनाशसे मनुष्यका अवश्य विनाश होजाता है । परन्तु इसके अतिरिक्त अर्धाञ्जलिमात्र अन्य ओज है, जो कफकेसे लक्षणोंवाला होता है, उस मधुमेहमें उस ओजका क्षय होता है, जिससे मनुष्यके क्षीणतादि लक्षण कहे गये हैं ।

संक्षेपसे वृद्धिक्षयकी चिकित्सा ।

यदन्नं द्वेष्टि यदपि प्रार्थयेताविरोधि तु ।
तत्तत्त्यजन् समश्नंश्च तौ तौ वृद्धिक्षयौ जयेत् ॥

वृद्धिक्षयको जीतनेका सामान्य क्रम कहते हैं-मनुष्यको कभी किसी वस्तुके खानेकी इच्छा होती है, कभी किसी पदार्थसे अनिच्छा हो जाती है। वह इस प्रकार है-जब रसक्षय होता है तो दूध पीनेकी इच्छा होती है, रसकी वृद्धिमें प्रायः दूध आदि रसकी अनिच्छा होती है। मांसक्षयमें मांस या मांसवर्द्धक पदार्थकी इच्छा होती है और सूखे शाकादिसे द्वेष होता है। वातवृद्धिमें स्निग्ध उष्ण पदार्थकी इच्छा, रूक्ष शीतसे द्वेष । पित्तवृद्धिमें शीत पदार्थोंकी इच्छा, उष्णसे द्वेष । इस प्रकार प्रायः हितकारक पदार्थकी इच्छा और अहितकारकसे द्वेष होता है । इस लिये मनुष्य जिस २ पदार्थकी इच्छा करे, यदि वह हानिकारक या विरोधी न हो तो वह सेवन करावे । और जिससे द्वेष हो, यदि उसके त्यागसे हानि न हो तो वह छुड़वा देवे । "यदि द्वेषवाले पदार्थसे लाभ हो तो उसको रुचिकर बनाकर सेवन करावे, यदि रुचिवाले पदार्थसे हानि हो तो उसको छुड़वा देवे अथवा औषधयोगसे हितकारी बनाकर देवे।" इस प्रकार हितका सेवन अहितका त्याग कराते हुए दोष धातुओंकी वृद्धिको क्षीण और क्षीणताको बढ़ाकर दोष धातुओंको साम्यावस्थामें ला देना चाहिये ॥ ४२ ॥

इष्ट भक्षणसे दोषोंके वृद्धिक्षयकी जीति।

कुर्वते हि रुचिं दोषा विपरीतसमानयोः ।
वृद्धाः क्षीणाश्च भूयिष्ठं लक्षयंत्यबुधास्तु न ॥

वातादि दोष प्रायः बढ़जाने पर अपने विपरीत पदार्थ पर रुचि कराते हैं और क्षीण होने पर प्रायः समान गुणवाले पदार्थों पर रुचि कराते हैं । जिसको दृष्टान्त रूपसे (४२ के श्लोकमें) लिख आये है। इन रुचि आदि चेष्टाओंको बुद्धिमान् पुरुष जानलेते हैं और मूर्ख नहीं समझते ।" इस कारण रुचि द्वारा भी दोष धातुओंके वृद्धि और क्षयको जानकर साम्यावस्थामें लानेका प्रयत्न करना चाहिये ॥ ४३ ॥

दोषोंकी वृद्धिक्षयका प्रकार ।

यथाबलं यथास्वं च दोषा वृद्धा वितन्वते ।
रूपाणि जहति क्षीणाः समाः स्वं कर्म कुर्वते ॥

अत्र दोषोंकी वृद्धि, क्षय और समानताके सामान्य लक्षण कहते हैं—वातादि दोष जब बढ़जाते है तो अपने बढ़नेके बलानुसार अपने गुण कर्म स्वभाववाले लक्षणोंको विस्तारसे दिखाते है, जैसे—वायुवृद्धिसे रूक्षता, कृशता और जृम्भणादि । पित्तवृद्धिसे दाह पीतनादि । और कफवृद्धिसे स्निग्धता, स्थूलता आदि लक्षण बढ़जाते है । इसी प्रकार जो दोष क्षीण होता है उसके धर्मवाले गुण कर्म भी क्षीण हो जाते हैं । जब दोष साम्यावस्थामें रहते है तो अपने२ समान गुणवाले शुभ रूपके होनेसे देहमें किसीकी वृद्धि या क्षय न होकर साम्यावस्था रहती है ॥४४॥

चिकित्सामें सावधान ।

य एव देहस्य समा विवृद्ध्यै
त एव दोषा विषमा वधाय ।
यस्मादतस्ते हितचर्ययैव
क्षयाद्विवृद्धेरिव रक्षणीयाः ॥ ४५ ॥

जो वातादि दोष साम्यावस्थामें रहते हुए देहको धारण पालन आदि कर शरीरकी पुष्टिका कारण होते है वही दोष बढ़कर या क्षीण होकर विषमाऽवस्थामें होनेसे रोग या शरीरके नाशको कर डालते है । इस लिये हित आचरण द्वारा ही उन दोषोंको बढ़ने या घटनेसे बचाकर साम्यावस्थामें ही रखना चाहिये, अर्थात् बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि वह इस प्रकार हित आहार विहारका सेवन करता रहे जिससे दोषोंकी साम्यावस्था बनी रहे और रोग उत्पन्न ही न होने पावें तथा शुभआयुकी प्राप्ति होवे ॥ ४५ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायाम्, वैद्यरत्न-पण्डित-श्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कारवैद्य-शिवशर्मविरचित-शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

——:०:——

अथाऽतो दोषभेदीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब दोषोंकी स्थानादिभेदसे भेदकल्पनावाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं:—

वायुका स्थान ।

पक्वाशयकटीसक्थिश्रोत्राऽस्थिस्पर्शनेंद्रियम् ।
स्थानं वातस्य तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः॥१॥

पक्वाशय, कमर, सक्थि, कान, अस्थियें और स्पर्शनेंद्रिय; ये वायुके स्थान है । इनमें भी पक्वाशय विशेषरूपसे वायुका स्थान है ॥ १ ॥

पित्तके स्थान ।

नाभिरामाशयः स्वेदो लसीका रुधिरं रसः ।
दृक् स्पर्शनं च पित्तस्य नाभिरत्र विशेषतः २॥

नाभि, आमाशय, स्वेद, लसीका, रक्त, रस, चक्षु, स्पर्शनेन्द्रिय, ये पित्तके स्थान है । इनमें भी नाभि विशेषरूपसे पित्तका स्थान है ॥ २ ॥

कफके स्थान ।

उरःकंठशिरःक्लोमपर्वाण्यामाशयो रसः ।
मेदो घ्राणं च जिह्वा च कफस्य सुतरामुरः ३॥

छाती, कण्ठ, शिर, क्लोम, सन्धियें, आमाशय, रस, मेद, नासिका और जिह्वा ये कफके स्थान है । इनमें भी उर (छाती) विशेषरूपसे कफका स्थान है ॥ ३ ॥

पञ्चात्मकवायु और प्राणवायुके गमनादिप्रकार ।

प्राणादिभेदात्पंचात्मा वायुः प्राणोऽत्र मूर्धगः ।
उरःकंठचरो बुद्धिहृदयेंद्रियचित्तधृक् ॥
ष्ठीवनक्षवथूद्गारनिःश्वासान्नप्रवेशकृत् ॥ ४ ॥

वायु—प्राण, उदान, व्यान, समान और अपान इन भेदोंसे पांच प्रकारका होता है । इनमें प्राणवायु शिरमें रहता है तथा छाती और कण्ठमें विच-

रता हुआ बुद्धि, हृदय, इन्द्रियज्ञान और चित्तको धारण करता है। एवं थूकना, छींकना, डकार लेना, निश्वासलेना और अन्नका आभ्यन्तर प्रवेश करना आदि काम करता है ॥ ४ ॥

उदानवायुके गमनादिप्रकार ।

उरःस्थानमुदानस्य नासानाभिगलांश्चरेत् ।
वाक्प्रवृत्तिप्रयत्नोर्जाबलवर्णस्मृतिक्रियः ॥५॥

उदानवायु-उरःस्थल (छाती) में रहता है तथा नासिका, नाभि और कण्ठमें गमन करता है और वाणीकी प्रवृत्ति, पदार्थ ग्रहणादिमें उत्साह, ऊर्जा (प्राणन), बल, वर्ण और स्मृतिको करना आदि काम करता है ॥ ५ ॥

व्यानवायुका गमनादिप्रकार ।

व्यानो हृदि स्थितः कृत्स्नदेहचारी महाजवः६॥
गत्यपक्षेपणोत्क्षेपनिमेषोन्मेषणादिकाः ।
प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन्प्रतिबद्धाः शरीरिणाम्

व्यानवायु-हृदयमें रहता हुआ बड़े वेगसे सम्पूर्ण देहमें विचरण करता है तथा गमन, अपक्षेपण, उत्क्षेपण, निमेष, उन्मेष आदि क्रियाओंको करता है। प्रायः शरीरधारियोंकी सम्पूर्ण क्रियाएं इस व्यान वायुके अधीन होकर होती है ॥ ६ ॥ ७ ॥

समानका गमनादिप्रकार ।

समानोऽग्निसमीपस्थः कोष्ठे चरति सर्वतः ।
अन्नं गृह्णाति पचति विवेचयति मुंचति ॥ ८ ॥

समानवायु-पाचकाग्निके समीप रहता हुआ सम्पूर्ण कोष्ठमें विचरता हुआ जठराग्निको संधुलक्षण करता है तथा अन्नको ग्रहण करता है, जठराग्निको बल देकर पकाता है,रस और मलको अलग अलग कर देता है, एवं रसको ग्रहण कर मलमूत्रको त्याग देता है ॥८॥

अपानका गमनादिप्रकार ।

अपानोऽपानगः श्रोणिबस्तिमेढ्रोरुगोचरः ।
शुक्रार्तवशकृन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणाक्रियः ॥ ९ ॥

अपानवायु-अपानस्थानमें रहता है और श्रोणी, गुदा, बस्ति, मेढ्र, वंक्षण और उरस्थलमें विचरता है तथा शुक्र (वीर्य), आर्तव (स्त्रीका मासिक रज), विष्ठा, मूत्र और गर्भको क्रमानुसार निकालनेका कर्म करता है ॥ ९ ॥

पञ्चात्मक पित्त ।

पित्तं पंचात्मकं तत्र पक्वामाशयमध्यगम् ।
पंचभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयात् ॥१०॥
त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मणाऽनलशब्दितम् ।
पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा॥११॥
तत्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् ।
करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम् १२

अब पंचात्मक पित्तके स्थानादि कहते हैं:- पित्त भी पाचक, रंजन, साधक, आलोचक और भ्राजक इन भेदोंसे पांच प्रकारका होता है ।

इन पांचों पित्तोंमें पक्वाशय और आमाशयके मध्यमें जो पित्त है वह पंचभूतात्मक होता हुआ भी तैजस गुणकी प्रधानताके कारण तथा इसमें सोमका द्रवत्व न होनेसे और पाचक अग्निके धर्म इसमें होनेसे इस पित्तको पाचक पित्त कहा जाता है। यह पाचक पित्त अन्नको पाचन करता है; अन्नपानको पकाकर उसका सार और मल अलग २ करदेता है और अपने स्थानमें रहता हुआ ही अपना बल देकर शेष रंजकादि पित्तोंपर भी अनुग्रह करता रहता है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

पित्तकी रंजकादि संज्ञायें ।

आमाशयाश्रयं पित्तं रंजकं रसरंजनात् ।
बुद्धिमेधाऽभिमानाद्यैरभिप्रेतार्थसाधनात्॥१३॥
साधकं हृद्गतं पित्तं-
-रूपालोचनतः स्मृतम् ।
दृक्स्थमालोचकं-
-त्वक्स्थं भ्राजकं भ्राजनात्त्वचः ॥१४॥

आमाशयके आश्रित रहकर यकृत्से सम्बन्ध रखते हुए अन्नके रसको रंगकर रक्त बनानेवाले पित्तको रंजकपित्त कहते हैं ॥

हृदयमें रहकर बुद्धि, मेधा और अभिमान आदिको तथा इन्द्रियों द्वारा ग्रहण, स्मरण आदि सब अर्थोंके साधन करनेवाले पित्तको साधक पित्त कहते हैं ॥

नेत्रोंमें रहकर रूपदर्शनादि करनेवाले पित्तको आलोचक पित्त कहते है ॥

और त्वचामें रहकर शरीरकी कान्ति, छाया आदिके प्रकाश करनेवाले पित्तको भ्राजक पित्त कहते है ॥ १३ ॥ १४ ॥

पञ्चात्मक कफ और उसकी अवलम्ब-कादिसंज्ञाओंका वर्णन ।

श्लेष्मा तु पंचधा–

–उरस्थः स त्रिकस्य स्ववीर्यतः ।

हृदयस्यान्नवीर्याच्च तत्स्थ एवांबुकर्मणा ॥१५॥

कफधाम्नां च शेषाणां यत्करोत्यवलंबनम् ।

अतोऽवलंबकः श्लेष्मा–

–यस्त्वामाशयसंस्थितः ॥१६॥

क्लेदकः सोऽन्नसंघातक्लेदनात्–

–रसबोधनात् ।

बोधको रसनास्थायी–

–शिरःसंस्थोक्षतर्पणात् ॥

तर्पकः–

–संधिसंश्लेषाच्छ्लेषकः संधिषु स्थितः ॥ १७ ॥

कफ भी अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक और श्लेषक इन भेदोंसे पांच प्रकारका है ॥

जो कफ उर (छाती) में स्थित रहकर अपने वीर्यसे त्रिकस्थानका अवलम्बन करता है तथा अपने स्थानमें रहता हुआ ही अन्नके वीर्यसे हृदयको बल देता रहता है और अपने स्थानमें रहता हुआ उदककर्मसे अन्य क्लेदक आदि कफोंको भी सहारा देता रहता है उस कफको अवलम्बककफ कहते हैं ॥

जो कफ आमाशयमें रहकर अन्नके संघातको क्लेदन करता है उसको क्लेदककफ कहते हैं ॥

जो कफ जिह्वामें रहकर मधुरादि रसोंका बोध कराता है उसको बोधककफ कहते हैं ॥

जो कफ शिरमें रहकर चक्षुआदि इद्रियोंका तर्पण करता रहता है उसको तर्पककफ कहते हैं ॥

जो कफ सन्धियोंमें रहकर संधियोंका आकुंचन प्रसारणमें संश्लेष करता रहता है उसको श्लेषक कफ कहते हैं ॥ १५–१७ ॥

दोषोंका उपसंहरण ।

इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्यविकृतात्मनाम् ।

व्यापिनामपि जानीयात्कर्माणि च पृथक्पृथक् ॥

इस प्रकार प्रायः अविकृत दोषोंके सम्पूर्ण शरीर-व्यापी होते हुए भी प्रधानस्थान और उनके कर्मोंका अलग अलग कथन करदिया है ॥ १८ ॥

चय, कोप तथा प्रशमका निदान ।

उष्णेन युक्ता रूक्षाद्या वायोः कुर्वंति संचयम् ।

शीतेन कोपमुष्णेन शमं स्निग्धादयो गुणाः १९

इस प्रकार स्थान और कर्म कथन कर अब अवस्थाभेदसे संचय, प्रकोप और प्रशमको कहते हैः–

उष्णगुणसे युक्त रूक्षादिवातगुण वायुका संचय करदेते हैं। शीतगुणसे युक्त रूक्षादिगुण वायुक प्रकोप करदेते है । और उष्णगुणसे युक्त स्निग्धादि गुण वायुका शमन करते है ॥

वातादिदोषोंकी अवस्था दो प्रकारकी होती है, एक साम्य और दूसरी विषम। इनमें क्षय और वृद्धिके भेदसे विषमावस्था भी दो प्रकारकी है। फिर वृद्धि भी चय और प्रकोपके भेदसे दो प्रकारकी है। इस प्रकार १ चय, २ प्रकोप, ३ क्षय और ४ साम्य। इन भेदोंसे अवस्था चार प्रकारकी होती है, परन्तु यहांपर चयके अनन्तर कोप और कोपके अनन्तर क्षय (प्रशमन) कहनेसे क्षय और साम्य दोनों अवस्थाओंको शम शब्दमें ही कहकर मूल पाठमें चय, कोप और शम ये तीन अवस्था कह दी हैं। जैसे ग्रीष्ममें उष्णताके बलको पाकर रूक्षादि वायुके गुणों द्वारा वायुका संचय होता है, फिर वह संचय प्रावृट्ऋतुमें शीतके बलसे रूक्षादिगुण बढ़नेसे प्रकोपको प्राप्त होजाता है। फिर शरद्ऋतुमें उष्णगुणके बलयुक्त रूक्षादि

गुणोंसे विपरीत स्निग्धादिगुण वायुका शमन करते हैं। यह सामान्यरीतिसे दोषोंकी संचयादि तीन अवस्थाओंका निर्देश है ॥ १९ ॥

पित्तका चय।

शीतेन युक्तास्तीक्ष्णाद्याश्चयं पित्तस्य कुर्वते।
उष्णेन कोपं मंदाद्याः शमं शीतोपसंहिताः २०

शीतगुणसे युक्त तीक्ष्ण आदि गुण पित्तका संचय करते हैं। फिर वही तीक्ष्ण आदिगुण उष्णगुणका बल पाकर पित्तका प्रकोप करते हैं। तथा शीतगुणयुक्त मन्दआदिगुण पित्तको शमन कर देते हैं॥ २० ॥

कफका चय।

शीतेन युक्ताः स्निग्धाद्याः कुर्वते श्लेष्मणश्चयम्
उष्णेन कोपं तेनैव गुणा रूक्षादयः शमम्॥२१

शीतगुणयुक्त स्निग्ध आदि गुण कफका संचय करते हैं। उष्णगुणसे युक्त स्निग्धादि गुण कफका प्रकोप करते है। तथा उष्णगुणसे युक्त रूक्ष आदिगुण कफका शमन करते है ॥ २१ ॥

चयादिकोंके लक्षण।

चयो वृद्धिः स्वधाम्न्येव प्रद्वेषो वृद्धिहेतुषु।
विपरीतगुणेच्छा च-
-कोपस्तून्मार्गगामिता ॥ २२ ॥
लिंगानां दर्शनं स्वेषामस्वास्थ्यं रोगसंभवः।
स्वस्थानस्थस्य समता विकारासंभवः शमः २३

अब चय आदिके लक्षण कहते हैं:—अपने स्थानमें ही दोषकी वृद्धि होनेको चय कहते हैं। जिस दोषका मनुष्यके शरीरमें चय होता है उसकी वृद्धिके हेतुओंसे मनुष्यको द्वेष होजाता है और विपरीत गुणवाले पदार्थोंकी इच्छा होती है। यहांपर अरुणदत्तजीने लिखा है कि वृद्धिके हेतुओंमें प्रद्वेष कहनेसे ही विपरीत गुणवाले द्रव्यकी इच्छाका बोध होजाता, फिर 'विपरीतगुणेच्छा' लिखनेसे यह प्रयोजन है कि कभी कभी वृद्धिके हेतुरूप द्रव्यकी भी इच्छा होजाती है। जैसे दौहृदके समय स्त्रीको कभी वृद्धिके हेतुओंमें भी इच्छा होजाती है। इसलिये दूसरी बार विपरीत गुणवाले द्रव्यकी इच्छा होना लिखा है। यह दोषके चयका लक्षण है ॥

संचय होनेके अनन्तर अपने स्थानको त्यागकर मार्गान्तरमें गमन करना कोप कहा जाता है। दोषका कोप होनेसे उन दोषोंके लक्षणोंका दिखायी देना, शरीरका अस्वस्थ होना और रोगोंकी उत्पत्ति होनी ये लक्षण होते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि दोषका अपने स्थानमें ही वृद्धिको प्राप्त होना संचय कहा जाता है और स्थानभ्रष्ट होकर अन्य स्थानमें जाना कोप कहा जाता है। दोषका कोप ही रोग होता है, जो लक्षणोंद्वारा अस्वस्थताद्वारा जाना जाता है ॥

दोषका अपने स्थानमें स्थित रहना, शरीरमें किसी प्रकारका विकार न होना और दोषको साम्यावस्थामें आजाना शमन या उपशम कहाजाता है॥२२॥२३॥

वातादि दोषोंका चय, प्रकोप और उपशमका वर्णन।

चयप्रकोपप्रशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु।
वर्षादिषु तु पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु २४

अब चय, कोप और शमका कथन करते हैं:—वायुका ग्रीष्मऋतुमें चय, वर्षाऋतुमें प्रकोप और शरद्ऋतुमें उपशम होता है ॥

पित्तका वर्षाऋतुमें संचय, शरद्ऋतुमें प्रकोप और हेमन्तऋतुमें शमन होजाता है ॥

कफका शिशिरऋतुमें संचय, वसन्तऋतुमें प्रकोप और ग्रीष्मऋतुमें उपशम होजाता है ॥ २४ ॥

वातादि दोषोंके सञ्चयकालमें प्रकोप न होनेका कारण।

चीयते लघुरूक्षाभिरोषधीभिः समीरणः।
तद्विधस्तद्विधे देहे कालस्यौष्ण्यान्न कुप्यति २५

ग्रीष्मऋतुमें वायु—लघु और रूक्षादि अन्नपानके योगसे संचित होकर वातप्रधान शरीरमें लघुता और रूक्षताका बल प्राप्त कर भी ग्रीष्मऋतुमें गरमीके कारण प्रकोपको प्राप्त नहीं होसकता, किन्तु संचित होजाता है ॥ २५ ॥

अद्भिरम्लविपाकाभिरोषधीभिश्च तादृशम् ।
पित्तं याति चयं कोपं न तु कालस्य शैत्यतः२६

पित्त—वर्षाकालमें अम्लविपाकी अन्नजल आदिके योगसे संचयको प्राप्त होजाता है, परन्तु अम्लविपाक आदि स्वभाववाला पित्तका संचय होनेपर भी वर्षाजनित शीतके कारण प्रकोप नहीं होता ॥ २६ ॥

चीयते स्निग्धशीताभिरुदकौषधिभिः कफः ।
तुल्येऽपि काले देहे च स्कन्नत्वान्न प्रकुप्यति२७

शीतकालमें स्निग्ध शीतादि गुणयुक्त अन्नजलादिके योगसे कफका संचय होता है, परन्तु देह और काल कफके समान गुणवाले होते हुए भी अतिशीतजनित कफका घनीभूत होनेसे प्रकोप नहीं होता ॥

यह कालके स्वभावसे संचय,प्रकोप और उपशमको कह चुके है ॥ २७ ॥

कालसे आहारादिकोंकी प्रधानता ।

इति कालस्वभावोऽयं आहारादिवशात्पुनः ।
चयादीन्यांति सद्योऽपि दोषाः कालेऽपि वा न तु

अब कहते है कि दोष आहारादिके वश होनेसे कभी कालकी अपेक्षा न करके तत्क्षण भी संचय आदिको प्राप्त होते है । और आहारादिके हित उपयोग करनेसे सञ्चय प्रकोप कालमें भी सञ्चय या प्रकोपको प्राप्त नहीं होते । तात्पर्य यह हुआ कि यदि मनुष्य अहित अहार विहारका सेवन करे तो विना कालसे भी सद्यः दोषप्रकोप हो सकता है । और यदि दोषके सञ्चय या प्रकोप कालमें भी हित और पथ्य आहार, विहार करे तो दोषका सञ्चय और प्रकोप नहीं हो सकता ॥ २८ ॥

दोषोंकी व्याप्ति, निवृत्तिमें विचित्रता ।

व्याप्नोति सहसा देहमापादतलमस्तकम् ।
निवर्तते तु कुपितो मलोऽल्पाल्पं जलौघवत्२९

दोष कुपित होकर पादतलसे लेकर मस्तक पर्यन्त सम्पूर्ण देहमें सहसा व्याप्त होजाता है, परन्तु निवृत्त होते समय थोड़ा २ कम होते हुए बहुत देरमें उपशमको प्राप्त होता है, जैसे अतिवृष्टिसे वृद्धिको प्राप्त हुआ जलसमूह शीघ्र ही आजाता है, परन्तु उसकी निवृत्ति धीरे २ बहुत देरमें होती है ॥ २९ ॥

विकारके हेत्वादिकोंकी सामान्यता ।

नानारूपैरसंख्येयैर्विकारैः कुपिता मलाः ॥३०॥
तापयंति तनुं तस्मात्तद्धेत्वाकृतिसाधनम् ।
शक्यं नैकैकशो वक्तुमतः सामान्यमुच्यते ॥३१

जिन २ अनेक और असंख्य कारणोंसे असंख्य रूपोंको धारण कर असंख्य प्रकारके विकारोंसे दोष कुपित होकर शरीरको तपायमान करते है, उनके अनन्त हेतु लक्षण और उनकी चिकित्साका साधन पृथक् २ एक २ करके कहना सर्वथा अशक्य है, इसलिये सामान्यरूपसे कथन करते है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

हेत्वन्तरका निरूपण ।

दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम् ।
यथा पक्षी परिपतन् सर्वतः सर्वमप्यहः ॥३२॥
छायामत्येति नात्मीयां यथा वा कृत्स्नमप्यदः ।
विकारजातं विविधं त्रीन् गुणान्नाऽतिवर्तते ३३
तथा स्वधातुवैषम्यनिमित्तमपि सर्वदा ।
विकारजातं त्रीन्दोषान्—
—तेषां कोपे तु कारणम् ॥३४ ॥

वात, पित्त और कफ ये तीन दोष ही सम्पूर्ण रोगोंके प्रधान कारण है । जैसे पक्षी सम्पूर्ण दिन भर भी सर्व ओर भ्रमण करते हुए अपनी छायासे अलग नहीं हो सकता और उसकी छाया उस पक्षीको छोड़कर अलग नहीं हो सकती, अथवा जैसे सम्पूर्ण स्थावर, जंगम जगत् सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणको छोड़कर उनसे अलग नहीं हो सकता, वैसे ही दोष, धातु, मल, वैषम्य निमित्तक सम्पूर्ण रोग भी सब कालमें तीनों दोषोंसे अलग नहीं हो सकते । इसलिये उन दोषोंके कोपमें जो हेतु होते है उनको कथन करते हैं ॥ ३२—३४ ॥

अर्थैरसात्म्यैः संयोगः कालः कर्म च दुष्कृतम् ।
हीनातिमिथ्यायोगेन भिद्यते तत्पुनस्त्रिधा ३५॥

दोषप्रकोपमें तीन प्रकारके कारण हैं, जैसे-(१) असात्म्यविषयोंसे इन्द्रियोंका संयोग, (२) शीत, उष्ण और वर्षा लक्षणोंवाला काल और (३) इस जन्म या पूर्व जन्मके किये हुए दुष्ट कर्म, ये तीन कारण दोषप्रकोपमें होते है। ये फिर अयोग, अतियोग और मिथ्यायोगके भेदसे तीन २ भेदाको प्राप्त होते है ॥ ३९ ॥

हीनमिथ्यातियोगका निर्देश ।

हीनोऽर्थेनेंद्रियस्याल्पः संयोगः स्वेन नैव वा ।
अतियोगोऽतिसंसर्गः सूक्ष्मभासुरभैरवम्॥३६॥
अत्यासन्नाऽतिदूरस्थं विप्रियं विकृतादि च ।
यदक्ष्णा वीक्ष्यते रूपं मिथ्यायोगः स दारुणः॥
एवमत्युच्चपूत्यादीनिंद्रियार्थान् यथायथम् ३७॥
विद्यात्-

चक्षु आदि पञ्चज्ञानेन्द्रियोंके विषयको अर्थ कहते है। उस अर्थका अल्प संयोग करना अथवा सर्वथा न योग करना हीनयोग कहा जाता है। जैसे-नेत्रों-से बहुत कम देखना अथवा सर्वथा न देखना चक्षु इन्द्रियका हीनयोग कहा जाता है। तथा बहुत देखना या देरतक दृष्टि लगाकर देखना चक्षु इन्द्रियका अतियोग कहा जाता है । इसी प्रकार अतिसूक्ष्म, अतिप्रकाश और अत्यन्त भयानक पदार्थोंको देखना अथवा अतिसमीपसे देखना या अति दूरकी वस्तुको देखना या अप्रिय और विकृतरूपको देखना यह चक्षुका दारुण मिथ्यायोग कहा जाता है ॥

इसी प्रकार श्रवण, घ्राण, रसन और स्पर्शन इन्द्रियोंके भी अयोग,अतियोग और मिथ्यायोगको जान लेना चाहिये। जैसे-शक्ति रहते हुए भी न सुनना श्रवणका हीन, अति उच्चशब्दोंको सुनना अतियोग और विकृत रीतिपर सुनना मिथ्यायोग होता है।

गन्धका न लेना घ्राणेन्द्रियका हीनयोग, बहुत देर तक या तीक्ष्ण गन्धका लेना अतियोग और विकृत या दुर्गन्ध आदिका लेना मिथ्यायोग कहा जाता है। इसी प्रकार रसनेन्द्रिय और त्वगिन्द्रियका भी हीनादि योग जान लेना चाहिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥-

तीन प्रकारका काल ।

-कालस्तु शीतोष्णवर्षभेदात्त्रिधा मतः३८
स हीनो हीनशीतादिरतियोगोऽतिलक्षणः ।
मिथ्यायोगस्तु निर्दिष्टो विपरीतस्वलक्षणः३९॥

काल-शीत, उष्ण और वर्षा इन भदोंसे तीन प्रकारका है। यदि शीतकालमें शीत अल्प हो, उष्ण-कालमें उष्णता कम हो और वर्षाकालमें वर्षा न्यून हो या न हो, इसको कालका हीनयोग कहते हैं। तथा शीतकालमें शीतका अत्यन्त अधिक होना, उष्णका-लमें अत्यन्त अधिक उष्णता होना और वर्षाकालमें अतिवृष्टिका होना कालका अतियोग कहा जाता है। इसी प्रकार शीत उष्ण वर्षाका अपने २ समयसे आगे पीछे होना या विपरीत रूपसे होना कालका मिथ्यायोग कहा जाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

तीन प्रकारका कर्म ।

कायवाक्चित्तभेदेन कर्माऽपि विभजेत्त्रिधा ।
कायादिकर्मणा हीना प्रवृत्तिर्हीनसंज्ञिका ॥४०
अतियोगोऽतिवृत्तिस्तु वेगोदीरणधारणम् ।
विषमांगक्रियारंभः पतनस्खलनादिकम्॥ ४१॥
भाषणं सामिभुक्तस्य रागद्वेषभयादि च ।
कर्म प्राणातिपातादि दशधा यच्च निंदितम् ।
मिथ्यायोगः समस्तोऽसाविह चामुत्र वा कृतम्

कर्म भी शारीरिक, मानसिक और वाणीके भेदसे तीन प्रकारका होता है। शरीर, मन और वाणीके कर्मोंको यथार्थ अवस्थासे हीन करना अथवा न करना कर्मका हीनयोग कहा जाता है । जसे शरीरके स्वाभाविक कर्मोंको न करना शरीरका हीनयोग कहा जाता है। वाणीका न बोलना या समयपर उचित बात न कहना वाणीका हीनयोग है। मनसे किसी प्रकारका भी विचार आदि न करना मनका हीन-योग है।

शरीरकी शक्तिसे बहुत अधिक काम लेना शरी-रका अतियोग कहा जाता है। अत्यन्त और देरतक

या जोरसे बोलना वाणीका अतियोग कहा जाता है। बहुत चिन्ता करते रहना या विचारमें मग्न रहना मनका अतियोग है ॥

मलमूत्रादिके उदीर्ण वेगोंको रोक लेना, विना आये वेगको निकालनेका यत्न करना, अंगोंकी पतन स्खलनादिक विषम चेष्टायें करना शरीरका मिथ्यायोग कहाजाता है ॥

भोजन करते २ वीचमें बहुत बोलना अथवा अण्ट सण्टादि बकवाद करना वाणीका मिथ्यायोग कहा जाता है।

राग द्वेष भय आदि मनका मिथ्यायोग कहाजाता है। यह तीनप्रकारके कर्मोंका हीनयोग, अतियोग और मिथ्यायोग तथा दिनचर्याध्यायमें जो हिंसा, स्तेयादि कर्म प्राणातिपातादि दस प्रकारका कहागया है वह भी मिथ्यायोग कहा जाता है ॥

वाणी और मनके कर्मोंका तथा इस लोकमें या पूर्व जन्ममें किया हुआ निन्दित कर्म अर्थात् पापकर्म भी मिथ्यायोग कहा जाता है॥ ४०—४२॥

दोषोंके निदान।

निदानमेतद्दोषाणां कुपितास्तेन नैकधा।
कुर्वंति विविधान्व्याधीञ्शाखाकोष्ठास्थिसंधिषु

ये हीनयोग, अतियोग और मिथ्यायोग ही दोषोंके प्रकोपके हेतु है। इनके द्वारा अनेक प्रकारसे कुपित हुए दोष शाखा, कोष्ठ, अस्थि और सन्धियोंमें अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करते है ॥ ४३॥

बाह्यमार्गी रोगोंके रक्तादिस्थान।

शाखारक्तादयस्त्वक च बाह्यरोगायनं हि तत्।
तदाश्रया मषव्यंगगंडालज्यर्बुदादयः।
बहिर्भागाश्च दुर्नामगुल्मशोफादयो गदाः४५॥

रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और त्वचा इन सबको शाखा कहते हैं। ये शाखागत रोगोंके स्थान हैं। इनमें मसे, छाई, गण्ड, (गिल्टीआदि), अलजी और अर्बुद आदि तथा अर्श, गुल्म और सूजन आदि बाहरके भागमें होनेवाले रोग उत्पन्न होते हैं॥ ४४॥ ॥ ४५॥

अन्तर्मार्गी रोग।

अंतःकोष्ठो महास्रोत आमपक्काशयाश्रयः।
तत्स्थानाश्छर्द्यतीसारकासश्वासोदरज्वराः।
अंतर्भागं च शोफार्शोगुल्मवीसर्पविद्रधि ४६॥

मुखसे लेकर गुदापर्यन्त जो आमाशय और पक्काशयका आश्रयभूत पोलवाली अम्तडीरूप महास्रोत है उसको अन्तःकोष्ठ कहते हैं। इसके अन्दर दोषोंका प्रकोपहोनेसे छर्दि, अतिसार, खांसी, श्वास, उदररोग और ज्वर तथा अन्तर्भागमें होनेवाले शोथ, अर्श, गुल्म, वीसर्प और विद्रधि आदि रोग होते हैं॥ ४६॥

मध्यमार्गी रोग।

शिरोहृदयबस्त्यादिमर्मण्यस्थ्नां च संधयः।
तन्निबद्धाः शिरास्नायुकंडराद्याश्च मध्यमाः ४७
रोगमार्गाः स्थितास्तत्र यक्ष्मपक्षवधार्दिताः।
मूर्धादिरोगाः संध्यस्थित्रिकशूलग्रहादयः॥४८॥

शिर, हृदय और बस्ति आदि मर्म, अस्थियोंकी सन्धियें तथा इनसे बधी हुई शिरा, स्नायु और कण्डरा आदि नाडियोंमें होनेवाले रोग मध्यममार्गी कहे जाते हे। वे रोग इस प्रकार हैं, जैसे—यक्ष्मा, पक्षाघात, अर्दितरोग, शिरःशूल या मूर्छा आदि मस्तकरोग, हृदयादि मर्मगत रोग तथा सन्धि, अस्थि और त्रिकस्थानमें शूल या अकड़ जाना आदि रोग होते हैं। इन रोगोंको मध्यममार्गी कहते हैं॥ ४७॥ ४८॥

दुष्ट वायुके कर्म।

स्रंसव्यासव्यधस्वापसादरुक्तोदभेदनम्।
संगांगभंगसंकोचवर्तहर्षणतर्षणम्॥ ४९॥
कंपपारुष्यसौषिर्यशोषस्पंदनवेष्टनम्।
स्तंभः कषायरसता वर्णः श्यावोऽरुणोऽपि वा।
कर्माणि वायोः—

स्रंस (सन्धियोंकी शिथिलता), व्यास (संकोचनकी असमर्थता,) व्यध (सूची वेधनवत् पीडा), स्वाप (स्पर्शका अज्ञान), साद (स्वकार्यकी असमर्थता),

शूल, भेदनवत् पीडा, संग(तत्स्थानमें ही स्थिर रहजाना), अंगोंका टूटना, अंगोंका सुकड़ जाना, अंगका टेढ़ा होकर मुड़ जाना, उदावर्तादि रोग, अंगहर्षहोना, तृषा, कम्प, परुषता, सौषिर्य शोष, स्पन्दन, वेष्टनवत्पीडा, अंगोंका स्तम्भ और मुखमें कषायरस प्रतीत होना तथा वर्णका श्याव या अरुण होना; यह बढ़ी हुई वायुके कर्म होते हैं ॥ ४९॥ ५० ॥—

वृद्ध पित्तके कर्म ।

—पित्तस्य दाहरागोष्मपाकिताः ॥ ५१ ॥
स्वेदः क्लेदः स्रुतिः कोथः सदनं मूर्च्छनं मदः ।
कटुकाम्लौ रसौ वर्णः पांडुरारुणवर्जितः ५२॥

बढ़ा हुआ पित्त—दाह, रक्तता, उष्णता, पचनक्रिया (व्रणादि पकाना या भस्मकादि), स्वेद, क्लेद, स्राव, कोथ, साद, मूर्छा, मद और मुखमें कटु, अम्लरस होना तथा पाण्डुर और अरुण वर्णके सिवाय अन्य पीत रक्तादि नाना वर्ण होना आदि कर्म करता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

वृद्ध कफके कर्म ।

श्लेष्मणः स्नेहकाठिन्यकंडूशीतत्वगौरवम् ।
बंधोपलेपस्तैमित्यशोफापत्त्यतिनिद्रताः॥५३॥
वर्णः श्वेतो रसौ स्वादुलवणौ चिरकारिता ।
इत्यशेषामयव्यापि यदुक्तं दोषलक्षणम् ॥५४॥

बढ़ा हुआ कफ—स्निग्धता, काठिन्य, कण्डू, शीतता, गुरुता, स्रोतोंका बन्ध, मुखमें उपलेप, शरीरका आर्द्र चर्म वेष्टित सा प्रतीत होना, शोथ, अग्निमान्द्य, अतिनिद्रा, वर्णका श्वेत होना, मुखका स्वाद मधुर या लवण रसवाला होना और सब कार्य देरमें करना आदि विकार करता है ।

इस प्रकार वातादि दोषोंके लक्षणों द्वारा सम्पूर्ण रोगोंका निर्देश करदिया है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

वैद्यको उपदेश ।

दर्शनाद्यैरवहितस्तत्सम्यगुपलक्षयेत् ।
व्याध्यवस्थाविभागज्ञः पश्यन्नार्तान् प्रतिक्षणम्

वैद्यको उचित है कि सावधानतापूर्वक दर्शन, स्पर्शन और प्रश्नों द्वारा इन उपरोक्त वातादि दोषोंके सम्पूर्ण रोगोंमे व्यापक रहनेवाले लक्षणोंको जान लेवे, क्योंकि प्रतिक्षण रोगियोंमें वातादिकोंके लक्षण देखता हुआ वैद्य व्याधियोंकी अवस्था और विभाग आदि भलीप्रकार जान लेता है ॥५५॥

अभ्यासात्प्राप्यते दृष्टिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनी ।
रत्नादिसदसज्ज्ञानं न शास्त्रादेव जायते ॥५६॥

क्योंकि जैसे बारबार अभ्यास करनेसे ही रत्नोंकी अच्छाई और बुराईका ज्ञान होता है; केवल ग्रन्थ पढ़नेसे नहीं हो सकता, इसी प्रकार चिकित्सा कर्मकी सिद्धि प्रकाशित करनेवाली दृष्टि भी बारंबार अभ्यास करनेसे ही प्राप्त हो सकती है । इस कारण वैद्यको दोष, व्याधि और चिकित्साके ज्ञानमें नित्य अभ्यास बढ़ाते ही रहना चाहिये ॥ ५६ ॥

त्रिविध व्याधि ।

दृष्टापचारजः काश्चित्काश्चित्पूर्वापराधजः ।
तत्संकराद्भवत्यन्यो व्याधिरेवं त्रिधा स्मृतः५७॥

कोई रोग तो ऐसे मिथ्या आहार—विहार—जनित होते हैं जिनके कारणोंको हम प्रत्यक्ष जानते हैं, अर्थात् जिनका दृष्ट कारण होता है कोई पूर्वकृत अपराधोंसे होते हैं; जिनका कारण दृष्ट नहीं है और कोई दोनों प्रकारके कारणोंसे व्याधि उत्पन्न होती है। इस प्रकार व्याधियें कारण भेदसे तीन प्रकारकी होती हैं ॥ ५७ ॥

यथानिदानं दोषोत्थः कर्मजो हेतुभिर्विना ।
महारंभोऽल्पके हेतावातंको दोषकर्मजः ॥५८॥

इनमें यथाक्रम अपने कारणोंसे कुपित हुए दोषोंसे उत्पन्न हुए रोगोंको दोषजरोग कहते हैं । तथा विना ही कारणके जो व्याधि उत्पन्न होजाय उसको कर्मज व्याधि कहते हैं । और जिस रोगका प्रत्यक्ष कारण तो बहुत अल्प हो और व्याधि उससे बहुत बड़ी उत्पन्न होजाय उसको दोषकर्मज व्याधि कहा जाता है ॥ ५८ ॥

त्रिविधरोगोंकी चिकित्सा ।

विपक्षशीलनात्पूर्वेः कर्मजः कर्मसंक्षयात् ।
गच्छत्युभयजन्मा तु दोषकर्मक्षयात्क्षयम् ५९॥

हेतु और व्याधिके विपरीत गुणवाले औषध अन्न विहारके उपयोगसे दोषजरोग शमन हो जाते हैं । किसी जपतपादि पुण्य द्वारा पूर्वकृत पापक्षय हो जानेसे कर्मज व्याधि शान्त हो जाती है । और पुण्यादिपूर्वक चिकित्सा होनेसे दोषकर्मज रोग शान्त होजाते है ॥ ५९ ॥

व्याधिके अन्य दो भेद ।

द्विधा स्वपरतंत्रत्वाद्व्याधयः–
–अंत्याः पुनर्द्विधा ।
पूर्वजाः पूर्वरूपाख्या जाताः पश्चादुपद्रवाः६०॥

व्याधि स्वतंत्र और परतन्त्र होनेसे दो प्रकारकी होनी है ॥

फिर परतन्त्र भी दो प्रकारकी होती है, जैसे-पूर्वज और उपद्रवरूप । इनमें रोगके पूर्वरूपमें होनेवाली व्याधिको पूर्वज कहते है । और व्याधि उत्पन्न होनेसे अनन्तर जो उसी दोषके प्रकोपसे अन्य विकार होते हैं उनको उपद्रव कहते है ॥ ६० ॥

स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधिके लक्षण ।

यथास्वजन्मोपशयाः स्वतंत्राः स्पष्टलक्षणाः ।
विपरीतास्ततोऽन्ये तु–
–विद्यादेवं मलानपि ॥ ६१ ॥

जो व्याधि अपने कारणोंसे स्पष्टरूपसे उत्पन्न हुई हो, उसके कारण और लक्षण स्पष्ट हों तथा उसकी ही स्पष्ट चिकित्साद्वारा उसका शमन होजाय उस व्याधिको स्वतन्त्र कहते है ॥

इससे विपरीत लक्षणोंवाली व्याधि जो दूसरी व्याधिके कारण उत्पन्न हुई हो और उस दूसरी व्याधिकी चिकित्सा करनेसे शमन होजाय उसको परतन्त्र कहते है ॥

इसी प्रकार वातादिदोषोंकी स्वतन्त्रता और परतंत्रताको भी जान लेना चाहिये ॥ ६१ ॥

तान् लक्षयेदवहितो विकुर्वाणान् प्रतिज्वरम् ६२

उन विकृत हुए वातादिदोषोंको प्रत्येक विकारमें सावधान होकर वैद्य जान लेवे कि इस रोगमें कौन दोष प्रधान है और कौन अप्रधान है, इत्यादि ॥ ६२ ॥

परतन्त्र व्याधिके शमनका उपाय ।

तेषां प्रधानप्रशमे प्रशमोऽशाम्यतस्तथा ।
पश्चाच्चिकित्सेत्तूर्णं वा बलवंतमुपद्रवम् ।
व्याधिक्लिष्टशरीरस्य पीडाकरतरो हि सः ६३॥

उन स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियोंमें प्रधान अर्थात् स्वतन्त्रव्याधिकी चिकित्सा करनेसे अप्रधान अर्थात् परतन्त्रव्याधि स्वयं शमन होजाती है । यदि प्रधानकी चिकित्सा होजाने पर अप्रधानव्याधि रहजावे तो पीछे उसकी भी चिकित्सा कर दे । नियम यह है कि प्रधान रोगकी चिकित्सा करनेपर प्रधान रोगके साथ ही अप्रधान भी शमन हो जाता है, परन्तु यदि प्रधानके शमन होने पर भी अप्रधानशमन न हो तो पीछे उसकी भी चिकित्सा कर शमन करदेना चाहिये । यदि अप्रधान अर्थात् उपद्रव बहुत बलवान् हो तो प्रधान चिकित्सासे भी प्रथम उस बढ़े हुए बलवान् उपद्रवको शमन करदेना चाहिये । क्योंकि व्याधिसे व्याकुल शरीरवाले पुरुषको वह बढ़ा हुआ उपद्रव अत्यन्त पीड़ाके करनेवाला होजाता है, इस कारण प्रथम उस उपद्रवको ही शमन करदेना चाहिये ॥ ६३ ॥

सम्पूर्ण रोगोंकी नामसे स्थिति न होना ।

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन ।
नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः॥
स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः ।
स्थानांतराणि च प्राप्य विकारान् कुरुते बहून् ॥
तस्माद्विकारप्रकृतीरधिष्ठानांतराणि च ।
बुद्ध्वा हेतुविशेषांश्च शीघ्रं कुर्यादुपक्रमम् ॥६६॥

दोष दूष्य भेदसे सम्पूर्ण रोगोंके नामोंकी निश्चयात्मक स्थिति नहीं होती है, इस कारण जिस

व्याधिका नाम वैद्य न जान सके उसका नाम न जाननेसे दोषकी चिकित्सा करनेमें लज्जा न करे। क्योंकि वह दोष कारणविशेषसे प्रकुपित होकर स्थानान्तरमें जाकर बहुतसे विकारोंको पैदा कर देता है। इस कारण विकारके उत्पन्न करनेवाले दोष और दोषके स्थान विशेष तथा दोषप्रकोपके हेतुओंको जानकर दोषको शमन करनेकी शीघ्र चिकित्सा करे ॥ "तात्पर्य यह हुआ कि हमने दोषप्रकोपादिके लक्षण और विज्ञानोपाय सब कथन कर दिये हैं। यदि कहीं दोषप्रकोपके लक्षण प्रतीत होते हों और कोई प्रसिद्ध नामवाली व्याधिका रूप न बना हो तो वैद्य व्याधिके रूप नामकी प्रतीक्षा न करके शीघ्र ही उस दोषप्रकोपको शमन कर देवे" ॥ ६४–६६ ॥

विचारपूर्वक चिकित्साके वैद्यका स्खलन न होना।

दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः।
सत्त्वं सात्म्यं तथाऽऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः॥
सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिरूपणे।
यो वर्तते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित्

जो वैद्य प्रथम–दूष्य, देश, बल, काल, जठराग्निबल, प्रकृति, वय, सत्त्व, सात्म्य, आहार और अवस्थाविशेष इन सबको पृथक् पृथक् सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपसे देख विचारकर दोष और औषधप्रयोग कथन करनेमें प्रवृत्त होता है वह चिकित्सा करनेमें कभी भी स्खलित नहीं हो सकता। इस कारण निदान कथन करने और औषधयोग कल्पना करनेसे प्रथम दूष्यआदि सब विषयोंपर पूर्ण ध्यान दे लेना चाहिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

सावधानतासे व्याधिका यथार्थज्ञान।

गुर्वल्पव्याधिसंस्थानं सत्त्वदेहबलाबलात्।
दृश्यतेऽप्यन्यथाकारं तस्मिन्नवहितो भवेत् ६९॥
गुरुं लघुमिति व्याधिं कल्पयंस्तु भिषग्ब्रुवः।
अल्पदोषाकलनया पथ्ये विप्रतिपद्यते ॥७०॥

ततोऽल्पमल्पवीर्यं वा गुरुव्याधौ प्रयोजितम्।
उदीरयेत्तरां रोगान् संशोधनमयोगतः ॥ ७१॥

कहीं २शरीर और सत्त्वके बलवान् होनेसे बलवान् व्याधि भी अल्पव्याधि प्रतीत होती है और कहीं अल्पव्याधि भी निर्बल देह या निर्बल सत्त्वके कारण गुरुतरव्याधि प्रतीत होने लगती है, इस कारण व्याधिके यथार्थ ज्ञानको सावधान होकर जान लेना चाहिये ॥

क्योंकि अन्यथा ज्ञानसे भिषगाभिमानी मूर्ख वैद्य गुरु व्याधिको लघु व्याधि मानकर अल्पदोष समझता हुआ पथ्य आदि देनेमें ज्ञानभ्रष्ट हो जाता है, फिर अल्पमात्रा अथवा अल्पवीर्यवाली ओषधिको गुरुतरव्याधिमें प्रयोग करदेता है, वह प्रयोग की हुई अल्पवीर्यवाली ओषधि यथार्थ संशोधन करनेमें असमर्थ होनेके कारण अन्य रोगोंको भी उदीर्ण कर देती है ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥

चिकित्साविपर्ययसे देहका नाश।

शोधनं त्वतियोगेन विपरीतं विपर्यये।
क्षिणुयान्न मलानेव केवलं वपुरस्यति ॥ ७२ ॥

इसी प्रकार अल्पव्याधिको अज्ञानवश गुरुतरव्याधि मानकर यदि तीक्ष्ण वीर्यवाली ओषधिके योगसे अत्यन्त तीक्ष्ण शोधन कर दिया जाय तो वह शोधन केवल दोषोंका ही क्षय नहीं करता किन्तु शरीरका भी नाश कर डालता है ॥ ७२ ॥

ज्ञानपूर्वक ओषधिका प्रयोग।

अतोऽभियुक्तः सततं सर्वमालोच्य सर्वथा।
तथा युंजीत भैषज्यमारोग्याय यथा ध्रुवम्७३॥

इस कारण निरन्तर शास्त्रमर्यादानुकूल सम्पूर्ण रूपसे सबप्रकार विचार करनेके अनन्तर ओषधिका प्रयोग ऐसे प्रकारसे करे जिससे अवश्य आरोग्यकी प्राप्ति हो जाय ॥ ७३ ॥

वातादिदोषोंके भेदका निरूपण।

वक्ष्यंतेऽतः परं दोषा वृद्धिक्षयविभेदतः।
पृथक् त्रीन् विद्धि संसर्गास्त्रिधा तत्र तु तान्नव७४

त्रीनेव समया वृद्ध्या षडेकस्याऽतिशायने।
त्रयोदश समस्तेषु-
-षड्द्व्येकातिशयेन तु ॥ ७५ ॥

अब दोषोंके वृद्धिक्षयभेदसे संयोग करनेपर त्रेसठ भेद कहते है। जैसे—वातवृद्ध पित्तकफसम, पित्तवृद्ध वातकफसम, कफवृद्ध वातपित्तसम, ये तीन भेद एक२की वृद्धिसे हुए। वायुपित्त, वातकफ, पित्तकफ, इन दो२की वृद्धिसे तीन भेद हुए इनमें वातपित्तवृद्ध कफसम, वातकफवृद्ध पित्तसम, पित्तकफवृद्ध वातसम इस प्रकार तीन भेद हुए। इन तीन संयोगोंमें एक२की अधिकतासे वृद्धि करनेसे छे (६) भेद होजाते हैं, जैसे—वातवृद्ध पित्तवृद्धतर, पित्तवृद्ध वातवृद्धतर, कफवृद्ध पित्तवृद्धतर, पित्तवृद्ध कफवृद्धतर, कफवृद्ध वातवृद्धतर, वातवृद्ध कफवृद्धतर, इस प्रकार छे भेद हुए।

तीनों दोषोंके मिलकर बढ जानेसे तेरह भेद होते है। उनमें एकके वृद्धतर होनेसे तीन भेद और दो वृद्धतर होनेसे तीन भेद, इन दोनोंको मिलानेसे छे भेद हो जाते है। जैसे—कफवृद्ध वातपित्त वृद्धतर, पित्तवृद्ध वातकफ अतिवृद्ध, वातवृद्ध पित्तकफ अतिवृद्ध, पित्त-कफवृद्ध वात अतिवृद्ध, वातकफवृद्ध पित्त अतिवृद्ध, वात पित्त वृद्ध कफ अतिवृद्ध,इस प्रकार छे भेद हुए७४।७५

तीनों दोषोंकी समवृद्धिसे एक-भेद होता है।

एकं तुल्याधिकैः-
-षट् च तारतम्यविकल्पनात्।

जैसे वात पित्त कफ इन तीनोंकी एकसमान वृद्धि, तीनों दोषोंमें तारतम्य भेदसे वृद्धि होनेपर छे भेद होते है। जैसे—वातवृद्ध पित्तवृद्धतर कफवृद्धतम। वातवृद्ध कफवृद्धतर पित्तवृद्धतम। पित्तवृद्ध कफवृद्धतर वातवृद्धतम। पित्तवृद्ध वातवृद्धतर कफ-वृद्धतम। कफवृद्ध वातवृद्धतर पित्तवृद्धतम। कफ-वृद्ध पित्तवृद्धतर वातवृद्धतम। इस प्रकार छे (६) भेद हुए इन तीनों दोषोंकी वृद्धिके तेरह भेदोंसे तेरह प्रकारके सन्निपात होते हैं॥—

पंचविंशतिमित्येवं वृद्धैः-
-क्षीणैश्च तावतः॥ ७६ ॥

वृद्ध दोषोंसे इस प्रकार तीन पृथक् ३, नौ (९) संसर्ग और तेरह सन्निपात मिलानेसे (२५) पच्चीस प्रकारके भेद हुए। जिस प्रकार (२५) भेद वृद्धिसे होते है उसी प्रकार (२५) भेद क्षीणतासे होनेपर (५०) भेद हो जाते है, जैसे—(१) वातक्षीण, (२) पित्तक्षीण, (३) कफ क्षीण। (४) वात पित्तक्षीण, (५) वात कफ-क्षीण, (६) पित्त कफक्षीण, (७) वातक्षीण पित्तक्षीणतर, (८) पित्तक्षीण वातक्षीणतर, (९) कफक्षीण पित्तक्षीणतर, (१०) पित्तक्षीण कफ-क्षीणतर, (११) कफक्षीण वातक्षीणतर, (१२) वातक्षीण कफक्षीणतर। (१३) कफक्षीण वात-पित्तक्षीणतर, (१४) पित्तक्षीण वातकफक्षीणतर, (१५) वातक्षीण पित्तकफक्षीणतर, (१६) पितकफक्षीण वात अतिक्षीण, (१७) वातकफक्षीण पित्त अतिक्षीण, (१८) वातपित्तक्षीण कफ अति-क्षीण। (१९) वातपित्तकफक्षीण, (२०) वातक्षीण पित्तक्षीणतर कफक्षीणतम,(२१) वातक्षीण कफक्षीणतर पित्तक्षीणतम, (२२) पित्तक्षीण कफ-क्षीणतर, वातक्षीणतम, (२३) पित्तक्षीण वात-क्षीणतर कफक्षीणतम, (२४) कफक्षीण वातक्षीण-तर पित्तक्षीणतम, (२५) कफक्षीण पित्तक्षीण-तर वातक्षीणतम, इस प्रकार क्षीणतासे (२५) भेद होनेपर वृद्धिके (२५) भेद मिलाकर (५०) पचास होगये॥ ७६॥

एकैकवृद्धिसमताक्षयैः षट् ते-
-पुनश्च षट्।
एकक्षयद्वंद्ववृद्ध्या सविपर्ययया‍पि ते।
भेदा द्विषष्टिर्निर्दिष्टाः-
-त्रिषष्टः स्वास्थ्यकारणम्॥ ७७ ॥

तीनों दोषोंमें एक वृद्ध, एक क्षय, एक सम होनेसे छे (६) भेद होते हैं, जैसे–(१) वातवृद्ध पित्तसम कफ क्षीण, (२) पित्तवृद्ध वातसम कफक्षीण, (३) कफवृद्ध पित्तसम वातक्षीण, (४) कफवृद्ध वातसम पित्तक्षीण, (५) वातवृद्ध कफसम पित्तक्षीण, (६) पित्तवृद्ध कफसम वातक्षीण, इस प्रकार छे भेद हुए।

फिर एक क्षय दोनोंकी वृद्धिसे तीन भेद और दो क्षय एक वृद्ध भेदसे तीन भेद हुए। इन दोनोंके मिलानेसे छे भेद हो जाते हैं, जैसे–(१) वातक्षीण कफपित्तवृद्ध, (२) पित्तक्षीण वातकफवृद्ध, (३) कफक्षीण वातपित्तवृद्ध, (४) वातपित्तक्षीण कफ-वृद्ध, (५) वातकफक्षीण पित्तवृद्ध, (६) पित्त-कफक्षीण वातवृद्ध, इस प्रकार दोनों षट्क मिलानेसे (१२) भेद हुए। इनमें पहले कहे हुए पचास (५०) भेद मिला देनेसे बासठ (६२) भेद निर्देश किये हे।

त्रेसठवां भेद तीनों दोषोंकी साम्याऽवस्था है; जो स्वास्थ्यका कारण है, अर्थात् उपरोक्त (६२) बासठ भेद तो व्याधिका कारण है, त्रेसठवां भेद जो वात, पित्त और कफकी साम्याऽवस्था है वह मनुष्योंके स्वास्थ्यका कारण है ॥ ७७ ॥

रसादि भेदोंसे दोषोंके अनन्त भेद।

संसर्गाद्रसरुधिरादिभिस्तथैषां
दोषांस्तु क्षयसमताविवृद्धिभेदैः।
आनंत्यं तरतमयोगतश्च यातान्
जानीयादवहितमानसो यथास्वम् ॥ ७८ ॥

यदि इन दोषोंके रस, रुधिरादि धातुओंके साथ मिलाकर क्षय, समता और वृद्धिके भेदोंसे पूर्वोक्त रीत्यनुसार भेद कल्पना किये जायँ फिर उन भेदोंको भी तर और तमके योगसे कल्पना करने लगे तो दोषोंके अनन्त भेद हो सकते है, परन्तु यहांपर शिष्योंकी व्युत्पत्तिके लिये अथवा बुद्धिमान् वैद्योंको कल्पना संकेत प्रदर्शनके लिये जो दिग्दर्शनमात्र कथन किया है उससे ही सावधानमन होकर यथा-दोष वृद्धि, क्षय, संसर्गादि दोषोंकी गति अवस्था भेदादि जान लेना चाहिये ॥ ७८ ॥

दोष भेद विज्ञानको, इह विधि जाने सार।
व्याधि ग्रस्त जनसंघको, सो करि है उद्धार ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्न–पण्डित–श्रीरामप्रसादात्मज-विद्याल-ङ्कारवैद्य–शिवशर्मविरचित–शिवदीपिका-ख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः।

अथाऽतो दोषोपक्रमणीयमध्यायंव्याख्यास्यामः

अब हम दोषोंके उपक्रम (शमनोपाय) वाले अध्यायकी व्याख्या करते है:–

वातप्रशमोपाय।

वातस्योपक्रमः स्नेहः स्वेदः संशोधनं मृदु।
स्वाद्वम्ललवणोष्णानि भोज्यान्यभ्यंगमर्दनम् १
वेष्टनं त्रासनं सेको मद्यं पैष्टिकगौडिकम्।
स्निग्धोष्णा बस्तयो बस्तिनियमः सुखशीलता २
दीपनैः पाचनैः सिद्धाः स्नेहाश्चानेकयोनयः[1]।
विशेषान्मेद्यपिशितरसतैलानुवासनम् ॥ ३ ॥

सब दोषोमें वात प्रधान होनेसे प्रथम वातको प्रशम करनेका विधान कहते है। वात वृद्धिमें प्रथम स्नेहन और स्वेदन कर मृदु विरेचन करा देना चाहिये। फिर वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध की हुई पेयादि पान करावे तथा मधुर, अम्ल, लवण, रसप्रधान उष्ण स्निग्ध भोजनादि सेवन करावे तथा वातनाशक तैल-मर्दन कराना भी वातको जीतता है। वातज अंगपी-ड़ामें उष्ण तैल मर्दन कर पट्टीसे कस कर बांधना

[1] तिलप्रियालाऽऽक्षोडादयोऽनेकयोनयो येषां तेऽनेकयोनयः स्नेहास्तेच वातस्योपक्रम इति अरुणदत्तः

वातज उन्मादादिमें पट्टी आदिसे बांधकर शस्त्रादि भय दिखाना, वातज शोथादिमें दशमूलादि काथोंसे सेचना करना, सब वातविकारोंमें गौडी तथा पैष्टिक मद्य पिलाना, बस्ति नियमानुसार उष्ण स्निग्ध बस्तियोंका प्रयोग करना और सुखपूर्वक रहना ये सब वातको शमन करते है।

तथा दीपन और पाचन द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए अनेक प्रकारके तैल तथा घृतोंका सेवन करना और मेद-प्रधान पुष्टजीवोंके मांससे सिद्ध किये हुए तैलोंसे अनुवासन बस्ति करना वातको विशेषरूपसे शमन करता है॥ १–३॥

पित्तके जीतनेका क्रम।

पित्तस्य सर्पिषः पानं स्वादुशीतैर्विरेचनम्।
स्वादुतिक्तकषायाणि भोजनान्यौषधानि च ४
सुगंधशीतहृद्यानां गंधानामुपसेवनम्।
कंठे गुणानां हाराणां मणीनामुरसा धृतिः ५॥
कर्पूरचंदनोशीरैरनुलेपः क्षणे क्षणे।
प्रदोषश्चंद्रमाः सौधं हारि गीतं हिमोऽनिलः ६॥
अयंत्रणसुखं मित्रं पुत्रः संदिग्धमुग्धवाक्।
छंदानुवर्तिनो दाराः प्रियाः शीलविभूषिताः७॥
शीतांबुधारागर्भाणि गृहाण्युद्यानदीर्घिकाः।
सुतीर्थविपुलस्वच्छसलिलाशयसैकते ॥ ८॥
सांभोजजलतीरांते कायमाने द्रुमाकुले।
सौम्या भावाः पयःसर्पिर्विरेकश्च विशेषतः ९॥

पित्तको शमन करनेके लिये मधुर और शीतल द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत पान कराना तथा मधुर और शीतगुणवाले द्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये। एवं मधुर, तिक्त, कषाय, रसवाले अन्न औषध आदि-का सेवन कराना चाहिये। तथा हृदयको प्यारी लगने-वाली शीतल सुगन्धित गन्धोंको सेवन करना चाहिये। कण्ठमें मोती आदि मणियोंके शीतल गुणवाले हार "माला" धारण करना तथा ऐसी ही मालाआदि छातीपर धारण करना चाहिये। इसी प्रकार कपूर, चन्दन, खस आदि शीतल द्रव्योंका क्षण क्षणमें बार बार लेप करना पित्तके दाहादिको शमन करता है। तथा प्रदोषकाल, चंद्रमाकी चाँदनी, सफेद पक्के मकानकी छतपर रात्रिका निवास, मनोहर गीत, शीतल पवन, स्वच्छन्दताका सुख, मित्रोंकी गोष्ठी, सन्दिग्ध और मुग्ध करनेवाले शब्दोंसे बोलनेवाला बालकपुत्र, सुन्दर स्वभाववाली शीलादिगुणयुक्त प्यारी आज्ञानुसार रहनेवाली पतिव्रता स्त्री, शीतल-जलकी धाराओं "फुंवारों"वाला सुन्दर शीतल घर, सुपुष्पित और बृहच्छायावाले वृक्षोंसे भरा बड़ा भारी बाग, स्वच्छ पैडियोंवाला सुन्दर जलसे भरा हुआ स्वच्छ सिकतायुक्त शीतल जलवाला ऐसा तालाव जिसमें सुगन्धित कमल खिले हुए हों और तटपर सुन्दर छायावाले वृक्ष हों ऐसे तालावके तटपर वृक्ष लता-ओंसे बना हुआ शीतल घर, मनको प्रसन्न करनेवाले सब भाव ये सब वस्तुएं पित्तको शमन करती हैं। तथा दूध, घृतका सेवन और विरेचन विशेषरूपसे पित्तको शमन करते है॥ ४–९॥

कफके शमन करनेका क्रम।

श्लेष्मणो विधिना युक्तं तीक्ष्णं वमनरेचनम्।
अन्नं रूक्षाऽल्पतीक्ष्णोष्णं कटुतिक्तकषायकम्॥
दीर्घकालस्थितं मद्यं रतिप्रीतिप्रजागरः।
अनेकरूपो व्यायामश्चिंता रूक्षं विमर्दनम् ११
विशेषाद्वमनं यूषः क्षौद्रं मेदोघ्नमौषधम्।
धूमोपवासगंडूषा निःसुखत्वं सुखाय च १२॥

कफको जीतनेके लिये तीक्ष्ण वमन विरेचन कराना ही शास्त्रसम्मत और विधिविहित है। तथा रूक्ष, अल्प, तीक्ष्ण, उष्णगुणयुक्त और कटु, तिक्त कषाय-रसप्रधान अन्न सेवन करना कफको शमन करता है।

---

१ मनःप्रसादनाः पदार्थाः पयःसर्पिर्विरेकश्चेति चतुष्टयं विशेषादौषधमिति हेमाद्रिः। विशेषेण तु पयो घृतं विरेकश्चोपक्रम इति अरुणदत्तः। शीतगुण-युक्तद्रव्यैर्विरेचनमेव विशेषतः पित्तोपक्रमः वातेऽनुवा-सनम्, पित्तेविरेचनम्, कफे चोद्वमनमेव विशेषोपक्रम इति नियमादिति भाषाकारशिवशर्म्मा।

एवं बहुत देरकी पुरानी मद्य, मैथुन, रात्रिको जागरण, अनेक प्रकारके दण्ड कसरतादि व्यायाम, चिन्ता और कायफलचूर्णादि रूक्ष मर्दन कफको जीतता है। वमन कराना कफको विशेषरूपसे जीतता है तथा त्रिफलेका यूप, मधु, मेदनाशक ओषधियें, धूमपान, उपवास, गंडूपधारण करना और पारलौकिक सुखके लिये यात्रा व्रत अनुष्ठानादि कष्टप्रद नियम, ये सब कफको शमन करनेवाले होते है ॥ १०-१२॥

दो मिले हुए और तीन मिले हुए दोषोंका शमनप्रकार।

उपक्रमः पृथग्दोषान् योऽयमुद्दिश्य कीर्तितः।
संसर्गसन्निपातेषु तं यथास्वं विकल्पयेत् १३ ॥

वातादि तीनों दोषोंका अलग २ शमनक्रम कह आये है। जहां दो दोषोंका संसर्ग हो वहां दोषसंसर्गानुसार दोनों प्रकारकी मिली हुई क्रियाद्वारा दोषोंके संसर्गको जीतना चाहिये।

यदि तीन दोष मिलकर प्रकुपित हुए हों तो तीनोंकी मिली हुई चिकित्साद्वारा तीनोंको जीते। परन्तु सन्निपातमें जीतनेके दो प्रकार है-(१) यदि दोष वृद्धि समान भावसे हो तो प्रथम कफको जीतना चाहिये, क्योंकि प्रथम कफके जीतनेसे स्रोत खुलनेपर तन्द्रादिशमन हो जाते हैं और चिकित्सामें आसानी हो जाती है। यदि कोई दूसरा दोष विशेष बलवान् हो तो अविरोधिक्रिया द्वारा प्रथम अधिक बलवाले दोषको ही जीत लेना चाहिये। (२) दूसरा नियम यह है कि-साम त्रिदोषमें प्रथम कफको जीतना, निराम त्रिदोषमें प्रथम पित्तको जीतना और पुराने जीर्ण ज्वरादिमें प्रथम वातको जीतना चाहिये। परन्तु विशेष ध्यान चिकित्सामें यह रखना चाहिये कि एक दोषके शमन करनेसे अन्य दोषका प्रकोप न हो जावे। तथा इस प्रकार अविरोधी चिकित्सा करे जिससे सब प्रकारके रोग शमित होकर दोष साम्यावस्थामें आ जावे और स्वास्थ्यलाभ होवे ॥ १३ ॥

द्विदोषमें चर्याविधान।

ग्रैष्मः प्रायो मरुत्पित्ते वासंतः कफमारुते।
मरुतो योगवाहित्वात्कफपित्ते तु शारदः १४॥

यदि वात पित्तका संसर्ग हो तो ग्रीष्म ऋतुकी चर्या हितकारी होती है। वात कफके संसर्गमें वसन्त ऋतुकी चर्या हितकर है, क्योंकि वात योगवाही होनेसे कफके साथ मिलकर कफके गुणोंका ही प्रकोप कर देता है, इस कारण वात कफके संसर्गमें वसन्तकी चर्याका विधान है। यदि कफ पित्तका संसर्ग हो तो शरद् ऋतुकी चर्याका प्रयोग करना हितकारक होता है ॥ १४ ॥

दोषोपक्रम काल।

चय एव जयेद्दोषं कुपितं त्वविरोधयन्।
सर्वकोपे बलीयांसं शेषदोषाविरोधतः ॥१५ ॥

वातादि दोषोंको चय कालमें ही पथ्य आहार, विहारसे जीत लेना चाहिये। जिससे वे अपने कालमें कुपित होकर व्याधिकारक ही न हो सकें। यदि चय कालमें न जीतनेसे दोषप्रकोप होजाय तो उसको इस प्रकार अविरोधी क्रियासे जीते जिससे उस दोषके जीतनेमें दूसरे दोषका प्रकोप न होकर आरोग्य लाभ होवे।

यदि तीनों दोषोंका कोप हुआ हो तो प्रथम अधिक बलवाले दोषको जीते, परन्तु अन्य दो दोषोंका प्रकोप न होने देवे। इस प्रकार अविरोधी क्रियाद्वारा त्रिदोषको जीतना चाहिये ॥ १५ ॥

प्रयोगः शमयेद्व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।
नाऽसौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत्१६

क्योंकि जो प्रयोग एक व्याधिको शमित करे और अन्यान्य विकारोंको उत्पन्न कर दे; ऐसे प्रयोगको विशुद्ध चिकित्सा नहीं कहते। किन्तु जो प्रयोग व्याधिका शमन करके अन्य विकारको उत्पन्न न होने देवे उसको ही विशुद्ध चिकित्साप्रयोग कहते है ॥ १६ ॥

दोषोंका शाखादि गमन।

व्यायामादूष्मणस्तैक्ष्ण्यादहिताचरणादपि ।
कोष्ठाच्छाखास्थिमर्माणि द्रुतत्वान्मारुतस्य च॥
दोषा यांति–
–तथा तेभ्यः स्रोतोमुखविशोधनात् ।
वृद्धयाभिष्यंदनात्पाकात्कोष्ठं वायोश्च निग्रहात्

व्यायाम करनेसे क्षोभको प्राप्त हुआ पवन द्रुत गतिसे द्रवीभूत दोषोंको कोष्ठसे लेकर शाखा, अस्थि और मर्मस्थानोंमें पहुँचा देता है। तथा अग्नि और आतपके तापसे भी द्रवीभूत होकर दोष शाखा, अस्थि तथा मर्ममें गमन करते है। तीक्ष्ण पदार्थोंकी ऊष्मासे विलायित होकर भी दोष कोष्ठसे शाखादिमें गमन करते है। और अहित आचारसे भी दोष कोष्ठसे शाखादिमें प्राप्त हो जाते है ॥

वे दोष स्रोतोंके मुख शुद्ध हो जानेसे शाखादिकोंमेंसे कोष्ठमें आ जाते है। तथा अतिवृद्धि होने पर भी दोष अपने स्रोतोंको भरकर कोष्ठमें आ जाते है। ऐसे ही क्षीरपानादिकोंसे अभिष्यन्दित होकर अथवा पाचनादि द्रव्योंसे पाचित होकर भी दोष कोष्ठमें आ जाते है। एवं वायुके निग्रहसे भी दोष कोष्ठमें आ जाते है ॥ १७ ॥ १८ ॥

कोष्ठगत दोषोंका कार्य।

तत्रस्थाश्च विलंबेरन् भूयो हेतुप्रतीक्षिणः ।
ते कालादिबलं लब्ध्वा कुप्यंत्यन्याश्रयेष्वपि१९

फिर वे कोष्ठमें आये हुए दोष रोगोत्पादन न करते हुए केवल हेतुमात्रकी प्रतीक्षा करते रहते है। अर्थात् कोष्ठमें स्थित हुए अथवा शाखादि मार्गान्तरमें गये हुए होने पर भी हीनशक्ति होनेसे विना अपने प्रकोपके हेतुओंके रोग उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हो सकते।

फिर वे ही दोष अपने सम गुणवाले काल, देश, दूष्य, प्रकृति और कुपथ्यादिके संयोगसे बलको प्राप्त होकर अपने स्थानमें अथवा अन्य शाखा मर्माश्रित होते हुए भी प्रकुपित हो जाते हैं ॥१९॥

परस्थानगत दोषोंकी विकल्पसे चिकित्सा।

तत्राऽन्यस्थानसंस्थेषु तदीयामबलेषु तु ।
कुर्याच्चिकित्सां स्वामेव बलेनान्याभिभाविषु ॥

यदि वे दोष निर्बलावस्थामें अन्य स्थानमें संस्थित हों तो उनकी उस स्थानके अनुसार अर्थात् जिस दूसरे दोषके स्थानमें जो दूसरा दोष गया हुआ हो और वह निर्बल हो तो स्थानिदोषसम्बन्धिनी चिकित्सा करनी चाहिये। परन्तु यदि वह आगन्तुक दोष अत्यन्त प्रबल हो तो स्थानिदोषसम्बन्धी चिकित्सा न करके उस प्रबल दोषकी ही चिकित्सा करनी चाहिये। क्योंकि आगन्तुक दोष अतिप्रबल होनेसे स्थानीय दोषको जीतकर स्वयं बलवान् होनेसे प्रधान हो जाता है, इस कारण पहले इसीको जीत लेना चाहिये ॥ २० ॥

आगंतुं शमयेद्दोषं स्थानिनं प्रतिकृत्य वा ।

यदि स्थानीय दोष और आगन्तुक दोष दोनों तुल्य बलवाले हों तो पहले स्थानीय दोषकी चिकित्सा करके पीछे आगन्तुकका उसकी चिकित्सा द्वारा शमन कर देवे, अथवा प्रथम आगन्तुक दोषको जीतकर पीछे स्थानीय दोषकी चिकित्सा करे ॥–

तिर्यग्गत दोषोंमें कर्तव्यता।

प्रायस्तिर्यग्गता दोषाः क्लेशयंत्यातुरांश्चिरम् २१
कुर्यान्न तेषु त्वरया देहाग्निबलविक्रियाम्।
शमयेत्तान् प्रयोगेण सुखं वा कोष्ठमानयेत् ॥
ज्ञात्वा कोष्ठप्रपन्नांश्च यथासन्नं विनिर्हरेत् २२॥

प्रायः शाखादिकोंमें तिर्यग्गमन करते हुए दोष रोगीको चिरकालतक क्लेश देते रहते हैं, इसलिये देह अग्निबलादिका जाननेवाला वैद्य उन तिर्यगत दोषोंको विना कोष्ठमें लाये वमन विरेचनसे शोधन न करे, किन्तु ऐसे दोषोंको सिद्ध प्रयोगोंद्वारा सुखपूर्वक शमन करे। अथवा वृद्धि अभिष्यन्दनादि तथा स्नेहनस्वेदनादिक्रियाद्वारा कोष्ठमें ले आवे फिर कोष्ठमें आये हुए दोषोंको जानकर वमन विरेचनादिद्वारा यथाक्रम हरण कर देवे अर्थात् निकाल देवे ॥ २१ ॥ २२ ॥

साम दोषोंके लक्षण ।

स्रोतोरोधबलभ्रंशगौरवानिलमूढताः ॥ २३ ॥
आलस्यापक्तिनिष्ठीवमलसंगारुचिक्लमाः ।
लिंगं मलानां सामानां निरामाणां विपर्ययः२४

अब साम दोषोंके लक्षण कहते हैं—स्रोतोंका अवरोध, बलका क्षय, शरीरमें भारीपन, वायुकी मूढ़ता, आलस्य, अन्नका परिपाक न होना, मुखसे बार २ थूक आना, मलका अवरोध, अरुचि, क्लम; ये सब लक्षण साम दोषोंके होते है ।

इससे विपरीत निराम दोषोंके लक्षण होते है। जैसे स्रोतोंकी शुद्धि, बल, हलकापन, वायुका अनुलोम होना, चैतन्यता, यथार्थ परिपाक, मलकी शुद्धि, रुचि और प्रसन्नता; ये लक्षण दोषोंके परिपाक हो जानेपर अर्थात् निराम होनेपर होते है॥२३॥२४॥

आमका संभव ।

ऊष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमांद्यमपाचितम् ।
दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते ॥ २५ ॥

आमके लक्षण कहते है। जैसे—जठराग्निके निर्बल होनेसे प्रथम धातु अर्थात् रस परिपक्व न होकर दूषित हुआ आमाशयमें प्राप्त होता है, इस दुष्ट रसको आम कहते है ॥ २५ ॥

अन्यमतसे आमकी उत्पत्ति ।

अन्ये दोषेभ्य एवातिदुष्टेभ्योऽन्योन्यमूर्च्छनात् ।
कोद्रवेभ्यो विषस्येव वदंत्यामस्य संभवम् २६॥

कोई कहते है, जैसे—कोद्रवोंका मन्थन करनेसे विष उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार दूषित हुए तीनों दोषोंकी आपसमें मूर्छना होनेसे आमकी उत्पत्ति होती है ॥ २६ ॥

१ अत्र क्षेपकी पद्यौ—
विण्मूत्रनखदंतत्वक्चक्षुषां पीतता भवेत् ।
रक्तत्वमतिकृष्णत्वं पृष्ठास्थिकटिसंधिरुक् ॥
शिरोरुक् जायते तीव्रा निद्रा विरसता मुखे ।
क्वचिच्च श्वयथुर्गात्रे ज्वरोऽतीसारहर्षणम् ॥

सामरोगोंका वर्णन ।

आमेन तेन संपृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः ।
सामा इत्युपदिश्यंते ये च रोगास्तदुद्भवाः २७

उस आमरससे संयुक्त हुए दोष तथा दूषित दूष्य साम कहे जाते हैं और इन दूषित दोष दूष्योंसे उत्पन्न हुए रोग भी साम कहे जाते है। (साम दोषोंके पृथक् २ लक्षण इस प्रकार हैं। आमयुक्त वायु—शूल और आध्मान करती हुई विचरती है। साम पित्त-दुर्गन्धित, नीलवर्ण, कटु, बहल और भारी होता है। साम कफ—गन्धला, तन्तुयुक्त, स्यान, प्रलेपी, पिच्छल और भारी होता है) ॥ २७ ॥

नहीं निकालने योग्य सामदोषोंका निरूपण ।

सर्वदेहप्रविसृतान् सामान् दोषान्न निर्हरेत् ।
लीनान् धातुष्वनुत्क्लिष्टान् फलादामाद्रसानिव ॥
आश्रयस्य हि नाशाय ते स्युर्दुर्निर्हरत्वतः२८॥

संपूर्ण देहमें फैले हुए सामदोषोंको निकालना नहीं चाहिये। ऐसे ही रक्तादि धातुओंमें मिले हुए सामदोषोंको शोधन नहीं करना चाहिये, क्योंकि जैसे आम्र आदि कच्चे फलके रस निकालनेसे यथार्थ रस भी नहीं निकलता और फलका नाश हो जाता है, उसी प्रकार सामदोषोंके निकालनेसे दोष कष्टपूर्वक भी हरण नहीं हो सकते और आश्रयभूत शरीरका भी नाश कर देते हैं२८

अनिर्हार्य सामदोषोंकी चिकित्सा ।

पाचनैर्दीपनैः स्नेहैस्तान् स्वेदैश्च परिष्कृतान् ।
शोधयेच्छोधनैः काले यथासन्नं यथाबलम् २९

इसलिये पाचन, दीपन, स्नेहन और स्वेदनों द्वारा दोषोंका यथार्थ परिपाक करके यथाकालमें बलानुसार वमन विरेचनादिद्वारा जो दोष जिस मार्गसे निकालना उचित हो उसी मार्गसे निकाल देना चाहिये ॥ २९ ॥

दोषोंके निकालनेके मार्ग ।

हंत्याशु युक्तं वक्रेण द्रव्यमामाशयान्मलान् ।
घ्राणेन चोर्ध्वजत्रूत्थान् पक्वाधानाद्गुदेन च ३०

आमाशयमें आये हुए दोषोंको मेनफलादि वामक द्रव्य मुखद्वारा शीघ्र निकालकर शमन कर देता है।

ऊर्ध्वजत्रुस्थित दोषोंको कायफलादिकी नस्यद्वारा नासिकामार्गसे निकाल देना चाहिये। और पक्काशयमें स्थित दोषोंको त्रिवृतादि द्रव्यके रेचनद्वारा अधोमार्गसे निकाल देना चाहिये ॥ ३० ॥

नहीं धारण करने योग्य आमदोष।

उत्क्लिष्टानध ऊर्ध्वं वा न चामान्वहतः स्वयम्।
धारयेदौषधैर्दोषान् विधृतास्ते हि रोगदाः ३१॥

यदि आमयुक्त दोष स्वयं उत्क्लेशित होकर ऊर्ध्व-मार्गसे वमनद्वारा अथवा अधोमार्गसे रेचनद्वारा निकलते हों तो उन कच्चे दोषोंको स्तम्भन औषधके द्वारा रोकना नहीं चाहिये, क्योंकि उत्क्लेशित होकर उदीर्ण हुआ दोष रुककर व्याधिके उत्पन्न करनेवाला हो जाता है ॥ ३१ ॥

नहीं धारण करने योग्य दोषोंमें करने योग्य प्रकार।

प्रवृत्तान् प्रागतो दोषानुपेक्षेत हिताशिनः।
विबद्धान् पाचनैस्तैस्तैः पाचयेन्निर्हरेत वा ३२॥

इसलिये अपने आप निकलते हुए दोषोंको रोके नहीं और हित, पथ्य, लघु आहार करता हुआ उनको स्वयं शुद्ध होने देवे। यदि दोष विबद्ध हो जायँ तो उनको पाचन द्रव्यों द्वारा पाचन कर देना चाहिये अथवा उत्क्लेशित कर शोधन करके निकाल देना चाहिये ॥ ३२ ॥

दोषोंका शोधनकाल।

श्रावणे कार्तिके चैत्रे मासि साधारणे क्रमात्।
ग्रीष्मवर्षाहिमचितान् वाय्वादीनाशु निर्हरेत्३३

दोषोंके शोधनका काल इस प्रकार है—साधारणरूपसे ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्तमें संचित हुए वात, पित्त और कफको क्रमसे श्रावण, कार्तिक और चैत्रमें शीघ्र हरण कर देना चाहिये। अर्थात् ग्रीष्ममें सञ्चित हुए वायुको श्रावणमें शोधन कर देना चाहिये और वर्षामें सञ्चित हुए पित्तको कार्तिकमें, एवं हेमन्तमें संचित हुए कफको चैत्र महीनेमें निकाल देना चाहिये। ये दोषोंके निर्हरण करनेके साधारण काल है। इनमें क्रमानुसार दोषोंका शोधन कर देनेसे ऋतुजनित सञ्चय प्रकोपसे होनेवाले विकार उत्पन्न ही नहीं हो सकते ॥ ३३ ॥

ग्रीष्मादिमें शोधनके अभावका कारण।

अत्युष्णवर्षशीता हि ग्रीष्मवर्षाहिमागमाः।
संधौ साधारणे तेषां दुष्टान् दोषान् विशोधयेत्

क्योंकि ग्रीष्म कालमें अत्यन्त उष्णताके कारण आदानकालजनित ग्लानि, पिपासा क्रम आदिसे तथा सूर्यकी तीक्ष्ण गर्मीके कारण अति शिथिल शरीरमें लीन हुए दोषोंके निकालनेसे रेचन ओषधिकी तीक्ष्णतासे शोधनका अतियोग होकर वातप्रकोप और शरीरकी हानि हो सकती है। इसी प्रकार वर्षाऋतुमें अतिवृष्टिके कारण तथा भूबाष्पादि संयोगसे ओषधियें अल्पवीर्य होनेसे वर्षाद्वारा सन्न देहोंमें रेचनादिका यथार्थ योग नहीं कर सकती। इसी प्रकार हेमन्तमें अतिशीतसे उपहत शरीरोंमें दोष विष्टब्ध होनेसे तथा ओषधिका वीर्य शीतसे उपहत होनेके कारण मन्दवीर्य ओषधि यथार्थ शोधन नहीं कर सकती। इसलिये ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्तमें वमनादि शोधन न कराकर इन ऋतुओंकी सन्धियोंमें जो श्रावण, कार्तिक और चैत्र महीने है उनमें साधारण वातादिदुष्ट दोषोंको क्रमसे शोधन कर देना चाहिये ॥ ३४ ॥

अधिकव्याधिमें तदनुसार शोधनकाल।

स्वस्थवृत्तमभिप्रेत्य व्याधौ व्याधिवशेन तु३५॥
कृत्वा शीतोष्णवृष्टीनां प्रतीकारं यथायथम्।
प्रयोजयेत्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत्३६॥

इस प्रकार स्वस्थ मनुष्योंकी स्वास्थ्यरक्षाके लिये शोधनका काल कहचुके है। अब व्याधिवशसे यदि किसी व्याधिमें शोधन करना आवश्यक हो तो उसका काल कथन करते है ॥

व्याधिमें यदि आवश्यक शोधन करना हो तो शीत, उष्ण और वृष्टिका प्रतीकार करके कृत्रिम

गुणोंसे शीत, उष्णादिकी समता बनाकर आवश्यक शोधन कर देना चाहिये। जिस रोगमें जिस प्रकार शोधनका जो काल हो उसमें ही इस रीतिसे शीतोष्णकी समता कर दोष हरण कर देना चाहिये। परन्तु व्याधिमें चिकित्साके कालका उल्लंघन नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

औषधके कालका निर्देश।

युञ्ज्यादनन्नमन्नादौ मध्येऽन्ते कवलांतरे।
ग्रासे ग्रासे मुहुः सान्नं सामुद्गं निशि चौषधम् ३७

औषध दो प्रकारके होते है—एक शोधन, एक शमन। शोधन औषधका काल कह चुके है। अब शमनका कहते है—औषधभक्षणके (१०) दश काल हैं। जैसे—(१) जो औषध प्रातःकाल खाली पेट खायी जाय और उसके परिणत होनेके अनन्तर भोजन किया जाय उसको अनन्न काल कहते है। (२) जो औषध खाकर ऊपरसे भोजन किया जाय उसको अन्नादि काल कहते है। इसी प्रकार (३) भोजनके मध्य कालमें। (४) भोजनके अन्तमें। (५) दो ग्रासोंके मध्यमें। (६) ग्रास ग्रासके प्रति। (७) वार वार। (८) अन्नमें मिलाकर। (९) भोजनसे प्रथम और अन्तमें। (१०) रात्रिमें शयनके समय—इस प्रकार औषध भक्षणके दश काल है ॥ ३७ ॥

विषय विभागसे ओषधिके काल।

कफोद्रेके गदेऽनन्नं बलिनो रोगरोगिणोः।
अन्नादौ विगुणेऽपाने समाने मध्य इष्यते ३८॥
व्यानेऽन्ते प्रातराशस्य सायमाशस्य तूत्तरे।
ग्रासग्रासांतयोः प्राणे प्रदुष्टे मातरिश्वनि॥३९॥

बलवान् मनुष्यके रोगमें, अथवा बलवाले रोगमें, जिसमें कफ उदीर्ण हो ऐसे रोगमें प्रातःकाल निरन्न औषध खाना चाहिये। अपान वायुकी विगुणतामें अन्नके आदिमें औषध खाना चाहिये। समान वायु विगुण हो तो भोजनके मध्यमें औषध खाना चाहिये। व्यानवायु विगुण हो तो प्रातःकालके भोजनके अन्तमें और उदान विगुण हो तो सायंकालके भोजनके अन्तमें ओषधि सेवन करना चाहिये। प्राण वायु विगुण हो तो दो ग्रासोंके मध्यमें औषध खाना चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

मुहुर्मुहुर्विषच्छर्दिहिध्मातृट्श्वासकासिषु।
योज्यं सभोज्यं भैषज्यं भोज्यैश्चित्रैररोचके ४०

विषविकार, छर्दि, हिचकी, प्यास, श्वास और खांसीमें वार २ ओषधि खाते रहना चाहिये॥ अरुचिमें सुन्दर अनेक प्रकारके रुचिकारक भोज्य पदार्थोंमें मिलाकर औषध खाना चाहिये ॥ ४० ॥

कंपाक्षेपकहिध्मासु सामुद्गं लघुभोजिनाम्।
ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु स्वप्नकाले प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

कम्प, आक्षेपक और हिचकीमें सामुद्ग अर्थात् भोजनके आदि और अन्तमें दोनों बार औषध खाना चाहिये। तथा हलका भोजन करना चाहिये।

ऊर्ध्वजत्रुगत विकारोंमें रात्रिमें शयन समय औषध खाना चाहिये ॥ ४१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्नपण्डितश्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कार-वैद्यशिवशर्मविरचितशिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः।

अथाऽतो द्विविधोपक्रमणीयमध्यायं-
-व्याख्यास्यामः।

अब हम दो प्रकारसे रोग जीतनेके विधानवाले "द्विविधोपक्रमणीय" अध्यायकी व्याख्या करते हैं:—

द्विविध उपक्रम।

उपक्रम्यस्य हि द्वित्वाद्द्विधैवोपक्रमो मतः।
एकः संतर्पणस्तत्र द्वितीयश्चापतर्पणः ॥ १ ॥
बृंहणो लंघनश्चेति तत्पर्यायावुदाहृतौ।
बृंहणं यद्बृहत्त्वाय लंघनं लाघवाय यत्।
देहस्य-
-भवतः प्रायो भौमापमितरच्च ते ॥ २ ॥

दोषोंकी वृद्धि और क्षय ही रोग कहा जाता है। वृद्धिमें अपतर्पण और क्षयमें संतर्पण; इन दो भेदोंसे दो प्रकारसे रोग जीतनेका उपक्रम कहा है॥

इनमें एक संतर्पण और दूसरा अपतर्पण है। संतर्पण बृंहणको कहते है और अपतर्पण लंघनको कहते है। जो शरीरकी वृद्धि और पुष्टि करनेवाला क्रम है उसको बृंहण कहते है। जो शरीरमें लघुता, कृशता करनेवाला क्रम है उसको लंघन कहते हैं॥

प्रायः भूमिके गुणोंसे युक्त जलीय द्रव्य शरीरको बृंहण करते हैं। और वायु, आकाश तथा अग्निके गुणवाले द्रव्य प्रायः लघुता करते है।'प्रायः'शब्द यहां इस कारण दिया है कि कोई अग्निपवनप्रधान शुंठी, पिप्पली आदि वृष्य भी होते हैं॥ १ ॥ २॥

स्नेहनादि कर्मोंका संतर्पण, अपतर्पणमें ही अन्तर्भावका निर्देश।

स्नेहनं रूक्षणं कर्म स्वेदनं स्तंभनं च यत्।
भूतानां तदपि द्वैध्याद्वितयं नाऽतिवर्तते ॥ ३ ॥

जो स्नेहन और रूक्षण तथा स्तम्भन और स्वेदन कर्म हैं वे भी भूतोंके संतर्पण और अपतर्पण इन दो गुणोंसे बाहर नहीं कहे जा सकते॥ ३॥

अपतर्पण।

शोधनं शमनं चेति द्विधा तत्राऽपि लंघनम्॥४॥

इनमें लंघन (अपतर्पण) भी दो प्रकारका होता है, एक शोधन और दूसरा शमन कहा जाता है॥४॥

शोधनके लक्षण और पांच भेदोंका निरूपण।

यदीरयेद्बहिर्दोषान्पंचधा शोधनं च तत्।
निरूहो वमनं कायशिरोरेकोऽस्रविस्रुतिः ॥५॥

जो दोषोंको बाहर निकाल देनेका क्रम है उसको शोधन कहते है। वह शोधन पांच प्रकारका होता है। जैसे-(१) निरूहण (वस्तिकर्म) (२) वमन (छर्दन) (३) कायविरेचन (दस्त कराना) (४)शिरोविरेचन (नस्यकर्म) और (५) रक्तस्रुति (सिंगी, जोंक या शिरावेधनद्वारा रक्तमोक्षणकर्म) कराना। इन भेदोंसे शोधन पांच प्रकारका है॥ ५॥

शमनके लक्षण और भेदोंका निर्देश।

न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि।
समीकरोति विषमान् शमनं तच्च सप्तधा ॥६॥
पाचनं दीपनं क्षुत्तृड्व्यायामातपमारुताः।
बृंहणं शमनं त्वेव वायोः पित्तानिलस्य च ॥७॥

जो द्रव्य दोषोंको न तो शोधन करे और न सम दोषोंको उदीर्ण करे, किन्तु विषम दोषोंको साम्यावस्थामें ला देवे उसको शमन कहते है। वह शमन भी सात प्रकारका होता है, जैसे-(१) पाचन, (२) दीपन, (३) अन्न न खाना, (४) जल न पीना, (५) व्यायाम, (६) सूर्यकी धूपका सेवन, (७) पवन-सेवन। इन भेदोंसे होता है॥

वायुकी वृद्धिमें बृंहण भी शमन ही कहा जाता है, क्योंकि वातजनित रूक्षता और कृशता आदि बृंहण द्रव्योंसे ही शमन होते है। यहांपर 'तु' और 'च' इन दो शब्दोंसे यह अर्थ होता है कि बृंहण —केवल वातका तो शोधन है और पित्तयुक्त वातका शमन है॥ ६॥ ७॥

बृंहण योग्य पुरुष।

बृंहयेद्व्याधिभैषज्यमद्यस्त्रीशोककार्शितान्।
भाराध्वोरःक्षतक्षीणरूक्षदुर्बलवातलान्।
गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धान् ग्रीष्मेऽपरानपि ८॥

अब बृंहण करने योग्य प्राणियोंका कथन करते है:- जो पुरुष व्याधिसे कृश होगया हो, जो रेचनादि औषधसे कृश होगया हो, जो मद्यसे कृश होगया हो, जो स्त्रीसंगसे कृश होगया हो अथवा जो पुरुष-शोकसे या भार उठानेसे या मार्ग चलनेसे कृश होगये हों, अथवा उरःक्षत या क्षय रोगवाले हों, अथवा रूक्ष,या दुर्बल या वातप्रकृतिवाले हों इन सब मनुष्योंको बृंहण करना चाहिये। तथा गर्भिणी स्त्री, प्रसूता स्त्री, बालक और वृद्धोंको भी बृंहण (स्निग्धादि पदार्थोंसे पुष्ट) करना चाहिये। एवं ग्रीष्म ऋतुमें सबको ही बृंहण करना अच्छा है॥ ८॥

बृंहण द्रव्य और कर्म।

मांसक्षीरसितासर्पिर्मधुरस्निग्धबस्तिभिः ।
स्वप्नशय्यासुखाभ्यंगस्नाननिर्वृतिहर्षणैः ॥ ९॥

मांस, दूध, मिश्री और घृतादि पदार्थोंके सेवन करनेसे तथा मधुर स्निग्ध द्रव्योंद्वारा बस्तिकर्म करनेसे शरीरका बृंहण (वृद्धि, पुष्टि) होता है। ऐसे ही आरामसे निद्रा लेना, आरामसे शय्या आदिका सुख लेना, तैलाभ्यंग करना, स्नान करना, निश्चिन्त रहना और प्रसन्नता देनेवाली पुत्रादिकी प्राप्ति ये सब बृंहण द्रव्य हैं। इनके द्वारा उपरोक्त मनुष्योंको बृंहण (पुष्ट) करना चाहिये ॥ ९ ॥

लंघनयोग्य प्राणी।

मेहामदोषातिस्निग्धज्वरोरुस्तंभकुष्ठिनः ॥१०॥
विसर्पविद्रधिप्लीहशिरःकंठाऽक्षिरोगिणः ।
स्थूलांश्च लंघयेन्नित्यं शिशिरे त्वपरानपि११॥

लंघन कराने योग्य ये पुरुष होते हैं, जैसे-प्रमेहरोगी, आमदोषवाले, अतिस्निग्ध, तरुणज्वरवाले, ऊरुस्तम्भरोगी, कुष्ठरोगी, विसर्परोगी, विद्रधिवाले, प्लीहरोगी, शिरोरोगी, कण्ठरोगी और नेत्राभिष्यन्दवाले रोगियोंको लंघन कराना हितकारी होता है। तथा स्थूलपुरुषोंको लंघन कराना हितकारी है। शिशिरऋतुमें प्रायः स्वस्थ पुरुषोंको भी टहलना, धूपसेवन करना और व्यायामरूप लंघन करना चाहिये ॥ १० ॥ ११ ॥

लंघनमें विशेष।

तत्र संशोधनैः स्थौल्यबलपित्तकफाऽधिकान् ।
आमदोषज्वरच्छर्दिरतीसारहृदामयैः ॥ १२ ॥
विबंधगौरवोद्गारहृल्लासादिभिरातुरान् ।
मध्यस्थौल्यादिकान् प्रायः पूर्वं पाचनदीपनैः१३
एभिरेवामयैरार्तान् हीनस्थौल्यबलादिकान् ।
क्षुत्तृष्णानिग्रहैर्दोषैस्त्वार्तान्मध्यबलैर्दृढान् ।
समीरणातपाऽऽयासैः किमुताऽल्पबलैर्नरान्१४

जिन मनुष्योंके शरीरमें स्थूलता, बल, पित्त और कफकी अधिकता हो उनके आमदोष, ज्वर, छर्दि, अतीसार, हृद्रोग, विबन्ध, गौरव, हृल्लास, उद्गार आदि रोगोंमें वमन, विरेचन आदि संशोधनरूप लंघनसे चिकित्सा करनी चाहिये।

जिन पुरुषोंके स्थौल्य बलादि मध्य अवस्थावाले हों उनके आम दोषादि रोगोंमें प्रायः प्रथम पाचन दीपनादिरूप लंघनसे ही चिकित्सा करनी चाहिये। यदि हीन स्थौल्य बलादिवाले पुरुषोंके शरीरमें आमदोष ज्वरादि रोग हों तो उपवास और तृषा निग्रहरूप लंघनद्वारा जीतना चाहिये। यदि दृढ पुरुषोंके शरीरमें मध्य बलवाले दोष हों तो पवन, आतप और आयासरूप लंघन द्वारा जीतना चाहिये। यदि मनुष्योंके शरीरमें अल्पबलवाले दोष हों तब तो अवश्य ही पवन, आतप और आयासरूप लंघनसे जीत लेना चाहिये ॥ १२-१४ ॥

न बृंहयेल्लंघनीयान् बृंह्यांस्तु मृदु लंघयेत् ।
युक्त्या वा देशकालादिबलतस्तानुपाचरेत् १५

परन्तु लंघन कराने योग्य दोष हों तो बृंहण कदापि नहीं करना चाहिये। किन्तु बृंहण योग्य पुरुषोंको मृदु लंघन करा सकते हैं। अथवा देश, काल और बलादि विचारकर विना लंघन कराये ही युक्तियुक्त चिकित्सासे साम्यावस्थामें ले आवे ॥ १५ ॥

बृंहितके लक्षण।

बृंहिते स्याद्बलं पुष्टिस्तत्साध्यामयसंक्षयः १६॥

यथार्थ बृंहण हो जानेसे शरीरमें बल, पुष्टि होती है और बृंहणद्वारा साध्यरोगोंकी शान्ति हो जाती है ॥ १६ ॥

लंघितके लक्षण।

विमलेंद्रियता सर्गो मलानां लाघवं रुचिः ।
क्षुत्तृट्सहोदयः शुद्धहृदयोद्गारकंठता ॥
व्याधिमार्दवमुत्साहस्तंद्रानाशश्च लंघिते ॥१७॥

यथार्थ लंघन हो जानेसे इन्द्रियोंमें निर्मलता, मल मूत्रादिका यथोचित निस्सरण होना, शरीरमें

हलकापन, अन्नपर रुचि, क्षुधा और तृषाका यथोचित उत्पन्न होना, हृदयका शुद्ध प्रतीत होना, स्वच्छ उद्गार आना कण्ठका शुद्ध प्रतीत होना, व्याधिका कम होजाना, उत्साह बढ़ना और तन्द्राका नाश होना, ये लक्षण होते है ॥ १७ ॥

अयुक्त लंघन बृंहणके दोष ।

अनपेक्षितमात्रादिसेविते कुरुतस्तु ते ।
अतिस्थौल्याऽतिकाश्यादीन्वक्ष्यंते ते च सौषधाः

दोषकी अपेक्षा विपरीत मात्रासे किया हुआ बृंहण या लंघन अतिस्थूलता या अतिकृशता आदि विकारोंको करता है। उन विकारोंको और उनकी ओषधियोंको आगे कथन करते है ॥ १८ ॥

अतिबृंहित और लंघितके लक्षण ।

रूपं तैरेव च ज्ञेयमतिबृंहितलंघिते ॥ १९ ॥

अतिबृंहणसे स्थौल्यादि रोग हो जाते हैं। और अतिलंघनसे कृशतादि रोग हो जाते हैं ॥ १९ ॥

अतिबृंहणसे होनेवाले रोग ।

अतिस्थौल्यापचीमेहज्वरोदरभगंदरान् ।
कासंसंन्यासकृच्छ्रामकुष्ठादीनतिदारुणान्॥२०॥

अतिबृंहणसे अतिस्थौल्य, अपची, प्रमेह, ज्वर, उदर रोग, भगन्दर, खांसी, संन्यासरोग, मूत्रकृच्छ्र, आमविकार और कुष्ठादि अतिदारुण रोग उत्पन्न हो जाते है ॥ २० ॥

बृंहणजनित रोगोंकी चिकित्सा ।

तत्र मेदोऽनिलश्लेष्मनाशनं सर्वमिष्यते ।
कुलत्थजूर्णश्यामाकयवमुद्गमधूदकम् ॥ २१ ॥
मस्तुदंडाहतारिष्टचिंताशोधनजागरम् ।
मधुना त्रिफलां लिह्याद्गुडूचीमभयां घनम् २२
रसांजनस्य महतः पंचमूलस्य गुगुल्गोः ।
शिलाजतुप्रयोगश्च साग्निमंथरसो हितः ॥२३॥

बृंहणसे उत्पन्न हुए अतिस्थौल्यादि रोगोमें मेद, वात और कफके नाश करनेवाली सब चिकित्सा करनी चाहिये ॥ जैसे—कुलथी, जूर्ण नामक तृण धान्य, श्यामक, यव, और मूंग इन अन्नोंका सेवन कराना मधुयुक्त जल, मस्तु, छाछ और अरिष्ट पिलाना। तथा चिन्ता करना, वमनादि शोधन और निद्रा बहुत कम लेना बृंहणजनित रोगोंको शमन करता है।

अथवा त्रिफलेका चूर्ण मधुमें मिलाकर चाटे। अथवा गिलोयका क्वाथ मधु मिलाकर पीवे। अथवा हरड़ या नागर मोथेका चूर्ण सहदसे खावे। अथवा रसौत, या बृहत् पञ्चमूल, अथवा गुग्गुल, या शिलाजीत, इनमेंसे किसी एकको अग्निमन्थके रसके साथ पीना भी स्थौल्यादि रोगोंको शमन करता है ॥ २१–२३ ॥

स्थौल्यादिकोंपर विडङ्गादियोग।

विडंगं नागरं क्षारः काललोहरजो मधु ।
यवामलकचूर्णं च योगोऽतिस्थौल्यदोषजित्२४

वायविडंग, सोंठ, यवक्षार, लोहभस्म, मधु, यवचूर्ण, आमले, इन सबको सम भाग लेकर नित्य छे मासे खावे तो अतिस्थौल्यादि दोष शमन होजाते हैं। इनमें मधुके सिवाय सब द्रव्य समभाग लेकर चूर्ण करे, फिर उस चूर्णमेंसे बल कालादि अनुसार मात्रा लेकर मधुमें मिलाकर चाटे तो अतिस्थौल्यादि दूर हो जाते है ॥ २४ ॥

व्योषादि योग ।

व्योषकट्वीवराशिग्रुविडंगाऽतिविषास्थिराः ।
हिंगुसौवर्चलाजाजीयवानीधान्यचित्रकाः २५॥
निशे बृहत्यौ हपुषा पाठा मूलं च केंबुकात् ।
एषां चूर्णं मधु घृतं तैलं च सदृशांशकम् २६॥
सक्तुभिः षोडशगुणैर्युक्तं पीतं निहंति तत् ।
अतिस्थौल्यादिकान्सर्वान्रोगानन्यांश्च तद्विधान्
हृद्रोगकामलाश्वित्रश्वासकासगलग्रहान् ।
बुद्धिमेधास्मृतिकरं सन्नास्याग्नेश्च दीपनम्२८॥

सोंठ, मिरच, पीपल, कुटकी, हरड़, बहेड़े, आमले, सोहाजना, बायविड़ंग, अतीस, शालपर्णी, हींग,

सञ्चरनमक, जीरा, अजवायन, धनिया, चित्ता, हल्दी, दारु हल्दी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, हाऊबेर, पाठा और केबुंककी जड़ इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे। चूर्ण १ भाग, मधु १ भाग, घृत १ भाग, तैल १भाग और जवोंके सत्तू १६ भाग, इनको उष्ण जलके योगसे पीवे तो अतिस्थौल्य आदि सम्पूर्ण रोग तथा अन्य वैसे ही आम और कफके रोग, हृद्रोग, कामला, श्वित्र, श्वास, खांसी, गलके रोग दूर होते हैं। तथा बुद्धि, मेधा और स्मृतिकी वृद्धि होती है। और सन्न हुई जठराग्नि चैतन्य हो जाती है ॥ २५–२८ ॥

अतिलंघनके विकार।

आतिकार्श्यं भ्रमः कासस्तृष्णाधिक्यमरोचकः।
स्नेहाऽग्निनिद्राहक्श्रोत्रशुक्रौजःक्षुत्स्वरक्षयः २९
बस्तिहृन्मूर्धजंघोरुत्रिकपार्श्वरुजा ज्वरः।
प्रलापोऽर्धानिलग्लानिच्छार्दिपर्वास्थिभेदनम्।
विण्मूत्रादिग्रहाद्याश्च जायंतेऽतिविलंघनात् ३०॥

अतिलंघन करनेसे अत्यन्त कृशता, भ्रम, कास, तृषाकी अधिकता, अरुचि, रूक्षता, अग्निमान्द्य, निद्रानाश, दृष्टिकी क्षीणता, श्रवणशक्तिका ह्रास, शुक्रक्षय, ओजक्षय, क्षुधानाश, स्वरका क्षय और बस्तिकी पीड़ा तथा हृदय, मस्तक, जंघा, ऊरु, त्रिक और पार्श्वमें पीड़ा होना, ज्वर, प्रलाप, अधोवात, ग्लानि, छर्दि, पर्वभेद, अस्थिभेद और मलमूत्रका रुकना आदि अनेकरोग होते है ॥ २९ ॥ ३० ॥

स्थौल्यसे कृशताका श्रेष्ठत्व।

कार्श्यमेव वरं स्थौल्यान्नहि स्थूलस्य भेषजम्।
बृंहणं लंघनं नालमतिमेदोऽग्निवातजित् ३१॥

अतिस्थूलतासे कृशता ही श्रेष्ठ होती है, क्योंकि अतिस्थूल पुरुषके लिये बृंहण, या लंघन दोनों ही चिकित्सारूपमें हितकर नहीं हो सकते, यदि अतिस्थूलको बृंहण करे तो मेद बढ़कर अत्यन्त स्थौल्य हो जाता है और यदि लंघन करावे तो अग्नि और वायुकी वृद्धि हो जाती है ॥ ३१ ॥

मधुरस्निग्धसौहित्यैर्यत्सौख्येन विनश्यति।
कृशिमा स्थविमाऽत्यंतविपरीतनिषेवणैः॥३२॥

इस कारण स्थौल्यसे कृशता सुखसाध्य है। कृशता तो मधुर और स्निग्ध द्रव्योंसे नित्य तृप्त करते रहनेसे सुखपूर्वक दूर होजाती है। परन्तु स्थूलता अत्यंत विपरीत गुण कर्मवाले आहारको बहुत कालतक सेवन करनेसे शमन होती है ॥ ३२ ॥

कृशतानाशक चिकित्सा।

योजयेद्बृंहण तत्र सर्वं पानान्नभेषजम्॥३३॥

कृशता दूर करनेके लिये बृंहण करनेवाले अन्न, पान और भेषजादि सब प्रयोग करने चाहिये ॥ ३३ ॥

अचिंतया हर्षणेन ध्रुवं संतर्पणेन च।
स्वप्नप्रसंगाच्च कृशो वराह इव पुष्यति॥३४॥

कोई भी चिन्ता न करनेसे, सर्वदा प्रसन्न चित्त रहनेसे, नित्य मधुर स्निग्धादि बृंहण द्रव्य खाने पीनेसे और आरामपूर्वक निश्चिंत निद्रा लेनेसे मनुष्य वराहके समान पुष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥

मांस भक्षणसे स्थूलता।

नहि मांससमं किंचिदन्यद्देहबृंहत्त्वकृत्।
मांसादमांसं मांसेन संभृतत्वाद्विशेषतः॥३५॥

देहको बहुत मोटा बनानेवालोंमें मांससे बढ़कर कोई पुष्टिकारक पदार्थ नहीं है। मांसोंमें भी मांस खानेवाले जीवका मांस मांससे पला हुआ होनेके कारण विशेष पुष्टिकारक होता है ॥ ३५ ॥

स्थूल और कृशकी संक्षेपसे चिकित्सा।

गुरु चाऽतर्पणं स्थूले विपरीतं हितं कृशे।

जो द्रव्य गुरु हो और तर्पणकारक न हो अर्थात् कृशताकारक हो वह द्रव्य स्थूल पुरुषके लिये हितकारी होता है, क्योंकि कृशताकारक गुरु द्रव्यसे

मेदका तो क्षय हो जाता है, परन्तु गुरुत्वके कारण वात-प्रकोप नहीं होता ॥

कृशतामें इससे विपरीत अर्थात् लघु और सन्तर्पण द्रव्य हितकारी होते है, क्योंकि अतिकृश पुरुषके जठराग्नि दुग्ध, शाली चावलादि लघु द्रव्यको यथार्थ परिपाक कर उसके सारभूत रससे शरीरको शीघ्र पुष्ट कर देती है ॥

स्थूल और कृशके लिये यव, गोधूमका सेवन।

यवगोधूममुभयोस्तद्योग्याहितकल्पनम् ॥३६॥

इस कारण स्थल और कृश पुरुषोंके लिये यव और गेहूं ये दो अन्न विशेष हितकारी होते है। इनमें स्थूल पुरुषके लिये यवका सेवन हितकारी है और कृशके लिये गेहूंका सेवन करना हितकारी होता है ॥ ३६ ॥

द्विविध उपक्रम।

दोषगत्याऽतिरिच्यंते ग्राहिभेद्यादिभेदतः।
उपक्रमा न ते द्वित्वाद्भिन्ना अपि गदा इव ३७

दोषोंकी अनेक गति होने पर भी और अनेक संसर्ग स्थान आदि भेदसे असंख्य होने पर भी वृद्धि और क्षयके भेदसे दो ही भेद हो सकते है। और अतिप्रवृत्त दोषमें ग्राही और अप्रवृत्त दोषमें भेदी। तथा दाहमें शीत और शीतमें उष्ण भेदसे द्रव्योंके भी दो ही भेद हो सकते है। बृंहण और कर्षण भेदसे उपक्रम भी दोसे अधिक नहीं हो सकते। ऐसेही सम्पूर्ण रोग भी साम और निराम भेदसे दो ही प्रकारके हो सकते है ॥ ३७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्न–पण्डितश्रीरामप्रसादात्मज–विद्यालङ्कारवैद्यशिवशर्मविरचितशिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पंचदशोऽध्यायः।

अथाऽतः शोधनादिगणसंग्रहमध्यायं–
–व्याख्यास्यामः।

अब हम शोधनादि गणोंके संग्रहवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं:—

मदनफलादि छर्दनगण।

मदनमधुकलंबानिंबबिंबीविशाला
त्रपुसकुटजमूर्वादेवदालीकृमिघ्नम्।
विदुलदहनचित्राः कोशवत्यौ करंजः
कणलवणवचैलासर्षपाश्छर्दनानि ॥ १ ॥

मैनफल, मुलैठी, कड़वी तुम्बी, नीम, बिम्बी (किन्दूरी), इन्द्रायण, त्रपुस (कड़वा खीरा), कुटज, मूर्वा, बन्दालडोडा, वायबिडंग, जलवेतस, चित्रक, मूषिकपर्णी, कड़वी तोरई, बड़ी कड़वी तोरई, करंज, पीपल, सेंधानमक, वच, इलायची और सरसों ये सब द्रव्य छर्दन अर्थात् वमन करानेवाले कहे जाते है ॥ १ ॥

रेचन गण।

निकुंभकुंभत्रिफलागवाक्षी
स्नुक्शंखिनीनीलिनितिल्वकानि।
शम्याककंपिल्लकहेमदुग्धा
दुग्धं च मूत्रं च विरेचनानि ॥ २ ॥

दन्ती, निशोथ, त्रिफला, इन्द्रायण, थूहर, शंखपुष्पी, नीलिनी, तिल्वकलोध्र, अम्लतास, कम्बीला, स्वर्णक्षीरी, दूध और गोमूत्रादि मूत्र ये सब विरेचन द्रव्य कहे जाते हैं ॥ २ ॥

निरूहण गण।

मदनकुटजकुष्ठदेवदाली-
मधुकवचादशमूलदारुरास्नाः।
यवमिसिकृतवेधनं कुलत्थो
मधुलवणं त्रिवृता निरूहणानि ॥ ३ ॥

मैनफल, कुड़ाकी छाल, कूठ, देवदाली, मुलैठी, वच, दशमूलकी दश ओषधियें (शालपर्णी, पृष्ठपर्णी,

कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, बिल्व, श्योनाक, काश्मरी, पाढ़ल, अग्निमन्थ), देवदारु, रास्ना, यव, सौंफ, कड़वी तोरई, कुलथी, मधु, सेन्धा नमक और निशोथ, इनको निरूहण द्रव्य कहते हैं । ये निरूहण बस्तिमें प्रयोग किये जाते हैं ॥ ३ ॥

शिरोविरेचन गण ।

वेल्लाऽपामार्गव्योषदार्वीसुराला
बीजं शैरीषं बार्हतं शैग्रवं च ।
सारो माधूकः सैंधवं तार्क्ष्यशैलं
त्रुटयौ पृथ्वीका शोधयंत्युत्तमांगम् ॥ ४ ॥

वायविडङ्ग, अपामार्ग, त्रिकटु, दारुहलदी, श्रेष्ठसर्ज रस, शिरीषके बीज, कटेलीके बीज, सुहांजनेके बीज, महुएका गोंद, सैन्धव नमक, रसौंत सूखी हुई, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, हिंगुपत्री, ये सब द्रव्य नस्य कर्ममें काम आनेवाले होनेसे इनको शिरो-विरेचन कहते हैं ॥ ४ ॥

वातनाशक गण ।

भद्रदारु नतं कुष्ठं दशमूलं बलाद्वयम् ।
वायुं वीरतरादिश्च विदार्यादिश्च नाशयेत् ॥५॥

देवदारु, तगर, कूठ, दशमूलके दशद्रव्य, इसी अध्यायके चौबीसवें श्लोकमें कहे हुए वीरतर्वादि गणकी ओषधियें और नौवें श्लोकमें कही हुई विदारी आदि गणकी ओषधियें; यह सब वातनाशक गण कहा जाता है ॥ ५ ॥

पित्तनाशक गण ।

दूर्वाऽनंता निंबवासाऽऽत्मगुप्ता
गुंद्राऽभीरुः शीतपाकी प्रियंगुः ।
न्यग्रोधादिः पद्मकादिः स्थिरे द्वे
पद्मं वन्यं सारिवादिश्च पित्तम् ॥ ६ ॥

दूर्वा, जवासा, निम्ब, अडूसा, कौंचके बीज, गुन्द्रपटेर, शतावर, शिखंडिका, प्रियंगु, इकतालीसवें श्लोकमें कही हुई न्यग्रोधादि गणकी ओषधियें; बारहवें श्लोकमें कहा हुआ पद्मकादि गण, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कमल, नरसल और ग्यारहवें श्लोकमें कहा हुआ सारिवादि गण, ये द्रव्य पित्तनाशक होनेसे पित्तनाशक कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

कफनाशक गण ।

आरग्वधादिरर्कादिर्मुष्ककाद्योऽसनादिकः ।
सुरसादिः समुस्तादिर्वत्सकादिर्बलासजित् ॥७॥

इसी अध्यायमें कहे हुए आरग्वधादिगण, अर्कादि-गण, मुष्ककादिगण, असनादिगण, सुरसादिगण, मुस्तादिगण और वत्सकादिगण, ये सब कफको जीतने वाले है ॥ ७ ॥

जीवनीय गण ।

जीवंती काकोल्यौ मेदे द्वे मुद्गमाषपर्ण्यौ च ।
ऋषभकजीवकमधुकं चेति गणो जीवनीयाख्यः

जीवन्ती, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महा-मेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, ऋषभक, जीवक और मुलैठी इन सब द्रव्योंको जीवनीयगण कहते हैं ॥ ८ ॥

विदार्यादि गण ।

विदारिपंचांगुलवृश्चिकाली
वृश्चीवदेवाह्वयशूर्पपर्ण्यः ।
कंडूकरी जीवनह्रस्वसंज्ञे
द्वे पंचके गोपसुता त्रिपादी ॥ ९ ॥

विदारी, एरण्ड, मेढ़ाशिंगी, वर्षाभू, देवदारु, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, कौंचके बीज, जीवनपञ्चमूल (शतावर, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, जीवक और ऋष-भक), लघुपंचमूल (शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कटेली, बृहती और गोखरू), सारिवा और हंसपदी; इन सबको विदार्यादिगण कहते हैं ॥ ९ ॥

विदार्यादिके गुण ।

विदार्यादिरयं हृद्यो बृंहणो वातपित्तहा ।
शोषगुल्मांऽगमर्दोर्ध्वश्वासकासहरो गणः ॥१०॥

यह विदार्यादिगण हृदयको हितकारी, शरीरको पुष्ट करनेवाला और वातपित्तनाशक है । तथा शोष, गुल्म, अंगमर्द, ऊर्ध्वश्वास और खांसीको नाश करता है ॥ १० ॥

सारिवादि गण।

सारिवोशीरकाश्मर्यमधूकशिशिरद्वयम् ।
यष्टी परूषकं हंति दाहपित्ताऽस्रतृड्ज्वरान् ११

सारिवा, खस, काश्मरी, महुआ, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, मुलैठी और फालसा, यह सारिवादिगण है। सारिवादिगण-दाह, रक्तपित्त, प्यास और ज्वरोंको नाश करता है ॥ ११ ॥

पद्मकादि गण।

पद्मकपुंड्रौ वृद्धितुगर्द्ध्यः
शृंग्यमृता दशजीवनसंज्ञाः ।
स्तन्यकरा घ्नंतीरणपित्तं
प्रीणनजीवनबृंहणवृष्याः ॥ १२ ॥

पद्माख, प्रपौंडरीक, वृद्धि, वंशलोचन, ऋद्धि, काकड़ासिंगी और जीवनीयगणकी दश ओषधियें; इनको पद्मकादिगण कहते हैं। यह पद्मकादिगण स्तनोंमें दूधके बढानेवाला, वातपित्तनाशक, प्रीणन, जीवन, बृंहण और वृष्य है। यहांपर अरुणदत्तने ऋद्धिका अर्थ मुंडी और वृद्धिका अर्थ महामुंडी किया है, परन्तु मेरे विचारमें अष्टवर्गमें कहे हुए ऋद्धि वृद्धि नामक कन्द लेना चाहिये ॥ १२ ॥

परूषकादि गण।

परूषकं वरा द्राक्षा कट्फलं कतकात्फलम् ।
राजाह्वं दाडिमं शाकं तृण्मूत्रामयवातजित् १३

फालसा, त्रिफला, द्राक्षा, कायफल, कतकफल, खिरनी, दाड़िम और शाकवृक्षके फल, इनको परूपकादिगण कहते है। परूपकादिगण प्यास, मूत्रके रोग और वायुको जीतता है ॥ १३ ॥

अंजनादि गण।

अंजनं फलिनी मांसी पद्मोत्पलरसांजनम् ।
सैलामधुकनागाह्वं विषांतर्दाहपित्तनुत् ॥ १४ ॥

स्रोतोंजन, प्रियंगु, जटामांसी, कमल, नीलोफर, रसोंत, छोटी इलायची, मुलैठी और नागकेशर, इनको अंजनादिगण कहते है। यह गण विप, अन्तर्दाह और पित्तको दूर करता है ॥ १४ ॥

पटोलादि गण।

पटोलकटुरोहिणीचंदनं
मधुस्रवगुडूचिपाठान्वितम् ।
निहंति कफपित्तकुष्ठज्वरान्
विषं वमिमरोचकं कामलाम् ॥ १५ ॥

पटोल, कुटकी, चन्दन, मूर्वा, गिलोय और पाठा; इन सबको मिलाकर पटोलादिगण होता है। यह (पटोलादिगण) कफ, पित्त, कुष्ठ, ज्वर, विष, वमन, अरुचि और कामलाको दूर करता है ॥ १५ ॥

गुडूच्यादि गण।

गुडूचीपद्मकारिष्टधानका रक्तचंदनम् ।
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहतृष्णाघ्नमग्निकृत् १६ ॥

गिलोय, पद्मकाष्ठ, निम्ब, धनिया और लाल चन्दन; यह गुडूच्यादिगण है। यह पित्त, कफ, ज्वर, छर्दि, दाह और तृषाको शमन करता है तथा जठराग्निको चैतन्य करता है ॥ १६ ॥

आरग्वधादि गण।

आरग्वधेंद्रयवपाटलिकाकतिक्ता
निंबाऽमृतामधुरसास्रुववृक्षपाठाः ।
भूनिंबसैर्यकपटोलकरंजयुग्मं
सप्तच्छदाऽग्निसुषवीफलवाणघोंटाः ॥ १७ ॥
आरग्वधादिर्जयति छर्दिकुष्ठविषज्वरान् ।
कफं कंडूं प्रमेहं च दुष्टव्रणविशोधनः ॥ १८ ॥

आरग्वध (अम्लतास), इन्द्रजौ, पाढ़, मंजीठ, निम्ब, गिलोय, मूर्वा, विंककत (कंडयाई वृक्ष), सोनापाठा, चिरायता, सहचर (पियाबांसा), पटोल, करंजवृक्ष, लताकरंज, सतोना, चित्रक, मेढ़ाशृंगी, मैनफल, कालाबांसा और उन्नाव; इन्हें आरग्वधादिगण कहते है। यह (आरग्वधादिगण) छर्दि, कुष्ठ, विपमज्वर, कफ, कण्डू और प्रमेहको नष्ट करता है तथा व्रणोंका शोधन करता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

असनादि गण।

असनतिनिशभूर्जश्वेतवाहप्रकीर्योः
खदिरकदरभंडीशिंशपामेषशृंग्यः ।

त्रिहिमतलपलाशा जोंगकः शाकशालौ
क्रमुकधवकुलिंगच्छागकर्णाश्वकर्णाः ॥१९॥
असनादिर्विजयते श्वित्रकुष्ठकफक्रिमीन् ।
पांडुरोगं प्रमेहं च मेदोदोषनिबर्हणः ॥ २० ॥

विजयसार, तिनिश, भोजपत्र, अर्जुनवृक्ष, पूतिकरंज, खदिर, श्वेतखदिर, शिरीष, शीसम, मेढासिंगी, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, पीतचन्दन, तालवृक्ष, ढांक, अगर, शाकवृक्ष (सागोन), शालवृक्ष, सुपारी, धववृक्ष, इन्द्रजौ, वस्तकर्ण (विधारा), अश्वकर्ण (शालविशेष); यह असनादिगण है। यह श्वित्रकुष्ठ, कफ, क्रिमि, पाण्डुरोग, प्रमेह और आमके दोषोंको जीतता है ॥ १९ ॥ २० ॥

वरणादि गण ।

वरणसैर्यकयुग्मशतावरी
दहनमोरटबिल्वविषाणिकाः ।
द्विबृहतीद्विकरंजजयाद्वयं
वहलपल्लवदर्भरुजाकराः ॥ २१ ॥

वरणवृक्ष, काले फूलका सहचर, पीले फूलका सहचर (पीयाबांसा), शतावर, चित्रक, मूर्वा, बिल्व, मेढासिंगी, कटेली, बड़ी कटेली, लताकरंज, वृक्षकरंज, जयन्ती, हरीतकी, सौहांजन, कुशा और रुजाकर, (हिताल, हितावली) इन सबको वरणादिगण कहते है ॥ २१ ॥

वरणादिः कफं मेदो मन्दाग्नित्वं नियच्छाति ।
अधोवातं शिरःशूलं गुल्मं चांतःसविद्रधिम् २२

यह वरणादिगण--कफ, मेद, मन्दाग्नि, अधोवात, शिरःशूल, गुल्म और अन्तर्विद्रधिको दूर करता है ॥ २२ ॥

ऊषकादि गण ।

ऊषकस्तुत्थकं हिंगु कासीसद्वयसैंधवम् ।
सशिलाजतु कृच्छ्राश्मगुल्ममेदःकफापहम् २३॥

ऊषक (कल्लरनमक), नीलाथोथा, हींग, कासीस, हीराकासीस, सेंधा नमक, शिलाजीत, इन सबको ऊषकादिगण कहते हैं। यह गण मूत्रकृच्छ्र, पथरी, गुल्म, मेद और कफको दूर करता है ॥ २३ ॥

वेल्लंतराराणिकबूकवृषाऽश्मभेद-
गोकंटकेत्कटसहाचरबाणकाशाः ।
वृक्षादनीनलकुशद्वयगुंठगुंद्रा-
भल्लूकमोरटकुरंटकरंभपार्थाः ॥ २४ ॥

नरसल, कुशा, दाभ, गुंठतृण, गुन्द्रपटेर, श्योनाक, मूर्वा, पीली कटसरैया, बड़ी अरणी और सुवर्चला, इन सबको वीरतरादिगण कहते हैं ॥ २४ ॥

वीरतरादि गण ।

वर्गो वीरतराद्योऽयं हंति वातकृतान् गदान् ।
अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्राऽऽघातरुजाहरः २५ ॥

यह वीरतरादिगण—संपूर्ण वातरोगोंको नष्ट करता है तथा अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातको दूर करता है ॥ २५ ॥

लोध्रादि गण ।

रोध्रशाबरकरोध्रपलाशा
जिंगिणीसरलकट्फलयुक्ताः ।
कुत्सितांबकदलीगतशोकाः
सैलवालुपरिपेलवमोचाः ॥ २६ ॥

वीरतर, अग्निमन्थ, ईश्वरवल्ली, अडूसा, पाषणभेद, गोखरू, कालाईख, सहचर, सरकंडा, कांस, वृक्षादनी (बंदाक), तिल्वकलोध्र, पठानीलोध्र, पलाश, जींगण, सरल वृक्ष, कायफल, कदम्ब, केला, अशोक, ऐलेय, परिपेलव (क्षुद्रमोथा), और मोचा (शाल्मलीवृक्ष), इनको लोध्रादिगण कहते है ॥ २६ ॥

एष रोध्रादिको नाम मेदःकफहरो गणः ।
योनिदोषहरः स्तम्भी वर्ण्यो विषविनाशनः २७

यह लोध्रादिगण—कफको नाश करता है तथा योनिदोषनाशक, स्तम्भनकर्ता, वर्णकारक और विषको नष्ट करता है ॥ २७ ॥

---

१ 'बूक' ईश्वरवल्लीति अरुणदत्तः । बकपुष्पेति हेमाद्रिः । २ 'इत्कटा' दीर्घलोहितयष्टिकाकाण्ड इति अरुणदत्तः । 'इक्षुः' इति हेमाद्रिः ।

अर्कादि गण ।

अर्कालर्कौ नागदन्ती विशल्या
भार्गी रास्ना वृश्चिकाली प्रकीर्या ।
प्रत्यक्पुष्पी पीततैलोदकीर्या
श्वेतायुग्मं तापसानां च वृक्षः ॥ २८ ॥

आक, श्वेत आक, नागदन्ती, लांगलीकन्द, भारंगी, रास्ना, वृश्चिकाली, करंजवृक्ष, अपामार्ग, मालकांगनी, लताकरञ्ज, किणही, महाश्वेता और इंगुदी, इन सबको अर्कादिगण कहते हैं ॥ २८ ॥

अयमर्कादिको वर्गः कफमेदोविषापहः ।
कृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्व्रणशोधनः ॥ २९ ॥

यह अर्कादिगण—कफ, मेद और विषको नष्ट करता है तथा कृमि और कुष्ठको शमन करता है, एवं विशेषरूपसे व्रणोंके शोधन करनेवाला है ॥ २९ ॥

सुरसादि गण ।

सुरसयुगफणिज्जं कालमाला विडंगं
खरबुसवृषकर्णीकट्फलं कासमर्दः ।
क्षवकसरसिभार्गी कार्मुका काकमाची
कुलहलविषमुष्टी भूस्तृणो भूतकेशी ॥ ३० ॥

श्वेततुलसी, कृष्णतुलसी, पोदीना, कृष्णअर्जक, बायविडंग, मरुवा, वृषकर्णी, कायफल, कसौंदी, नकछिक्कनी, सरसी, भारंगी, कामुका, मकोह, गोरखमुण्डी, कुचला, भूतिकतृण और बालछड़; इन सबको सुरसादिगण कहते है ॥ ३० ॥

सुरसादिगणः श्लेष्ममेदःकृमिनिषूदनः ।
प्रतिश्यायाऽरुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधनः ३१

यह सुरसाधिगण—कफ, मेद और कृमियोंको दूर करता है । तथा प्रतिश्याय, अरुचि, श्वास और खांसीको नष्ट करता है, एवं व्रणको शोधन करता है ॥ ३१ ॥

मुष्ककादि गण ।

मुष्ककस्नुग्वराद्वीपिपलाशधवशिंशपाः ।
गुल्ममेहाश्मरीपांडुमेदोऽर्शःकफशुक्रजित् ३२॥

मोखा, थूहर, त्रिफला, चित्रक, पलास, धव और शीसम; इसको मुष्ककादिगण कहते है । यह गुल्म, प्रमेह, अश्मरी, पाण्डु, मेदरोग, अर्श, कफ और शुक्रको जीतनेवाला है ॥ ३२ ॥

वत्सकादिगण ।

वत्सकमूर्वाभार्गी
कटुकामरिचं घुणप्रिया च गण्डीरम् ।
एलापाठाजाजी
कट्वंगफलाजमोदासिद्धार्थवचाः ॥ ३३ ॥
जीरकहिंगुविडंगं पशुगन्धा पञ्चकोलकं हंति ।
चलकफमेदःपीनसगुल्मज्वरशूलदुर्नाम्नः ३४॥

कुटज, मूर्वा, भारंगी, कटुकी, मरिच, अतीस, थूहर, एला, पाठा, जीरक, श्योनापाठा, मैनफल, अजमोद,सरसों, वच, काला जीरा, हींग, बायविडंग, अजवायन, पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), इसको वत्सकादिगण कहते है । यह वायु, कफ, मेद, पीनस, गुल्म, ज्वर, शूल और अर्शको नष्ट करनेवाला है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

वचादि और हरिद्रादि गण ।

वचाजलददेवाह्वनागराऽतिविषाऽभयाः ।
हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकलशीकुटजोद्भवाः ॥ ३५ ॥
वचाहरिद्रादिगणावामातीसारनाशनौ ।
मेदःकफाढ्यपवनस्तन्यदोषनिबर्हणौ ॥ ३६ ॥

वच, मोथा, देवदारु, सोंठ, अतीस, हर्ड, इसको वचादिगण कहते हैं ॥

हलदी,दारु हलदी, मुलैठी, पृष्ठपर्णी, इन्द्रजौ, इसको हरिद्रादिगण कहते हैं ।

ये दोनों गण आमातीसार, मेद, कफ, ऊरुस्तंभ, और स्तन्य दोषको नष्ट करनेवाले हैं ॥३५॥३६॥

---

१ 'वृषकर्णी' मूषिककर्णीति अरुणदत्तः । वृक्षकर्णीति हेमाद्रिः । सुदर्शना इति मे मतिः । २ सुरसीति पाठान्तरम् । 'सुरसी' कपित्थपर्णीति हेमाद्रिः । तुम्बरपत्रिका इति अरुणदत्तः । वन तुलसीति मे मतिः । ३ 'कामुका' रक्तमंजरीति अरुणदत्तः । प्राचीबल इति हेमाद्रिः । अतिमुक्तलता इति मे मतिः ।

प्रियंग्वादि गण ।

प्रियंगुपुष्पांजनयुग्मपद्मा-
पद्माद्रजोयोजनवल्ल्यनंता ।
मानद्रुमो मोचरसः समङ्गा
पुन्नागशीतं मदनीयहेतुः ॥ ३७ ॥

प्रियंगु, स्रोतोंजन, सौवीरांजन, भारंगी, पद्मकेशर, मंजीठ, जवासा, शाल्मली, शाल्मलीनिर्यास, लज्जावन्ती, शीत (चन्दन), मदनीयहेतु (धायके फूल) इसको प्रियंग्वादिगण कहते हैं ॥ ३७ ॥

अम्बष्ठादि गण ।

अम्बष्ठा मधुकं नमस्करी
नन्दीवृक्षपलाशकच्छुराः ।
रोध्रं धातकिबिल्वपेशिके
कट्वंगः कमलोद्भवं रजः ॥ ३८ ॥

अम्बष्ठा, मुलैठी, नमस्करी, नन्दीवृक्ष, पलाश, जवासा, लोध, धायके फूल, बेलकी गिरू, स्योनाक, पद्मरेणु, इसको अम्बष्ठादिगण कहते हैं ॥ ३८ ॥

गणौ प्रियंग्वंबष्ठादी पक्वातीसारनाशनौ ।
संधानीयौ हितौ पित्ते व्रणानामपि रोपणौ३९॥

ये दोनों प्रियंग्वादि और अम्बष्ठादिगण पक्वातीसारको नष्ट करनेवाले है तथा सन्धानकारक, पित्तप्रकोपमें हितकारी और व्रणोंको रोपण करनेवाले हैं३९

मुस्तादि गण ।

मुस्तावचाऽग्निद्विनिशाद्वितिक्ता-
भल्लातपाठात्रिफलाविषाख्याः ।
कुष्ठं त्रुटी हैमवती च योनि-
स्तन्यामयघ्ना मलपाचनाश्च ॥ ४० ॥

मोथा, वच, चित्ता, हलदी, दारुहलदी, कुटकी, काकतिक्ता, भिलावां, पाठा, त्रिफला, विषाख्या कूठ, छोटी इलायची, श्वेतवच, इसको मुस्तादिगण कहते हैं । यह योनिरोग और स्तनके रोगको जीतने वाला है तथा मलोंक पाचन करनेवाला है ॥ ४०॥

न्यग्रोधादि गण ।

न्यग्रोधपिप्पलसदाफलरोध्रयुग्मं
जम्बूद्वयाऽर्जुनकपीतनसोमवल्काः ।
प्लक्षाऽम्रवंजुलपियालपलाशनन्दी-
कोलीकदम्बविरलामधुकं मधूकम् ॥ ४१ ॥
न्यग्रोधादिर्गणो व्रण्यः संग्राही भग्नसाधनः ।
मेदःपित्तास्रतृट्दाहयोनिरोगनिबर्हणः॥ ४२ ॥

न्यग्रोध (वटवृक्ष), पीपल, सदाफल (गूलर), दोनों प्रकारका लोध्र, जामुन, राजजामुन, अर्जुनवृक्ष, कपीतन, सोमवल्क, प्लक्ष (अश्वत्थवृक्ष), आम्र, वेतस, पियाल (चिरौंजी), पलाश, नन्दीवृक्ष, कोली (बेरीका वृक्ष), कदम्ब, विरला (तिन्दुकी), मुलैठी, महुआ, इसको न्यग्रोधादिगण कहते है।

यह गण व्रणोंको हितकारी तथा संग्राही और टूटे हुएको जोड़नेवाला है। तथा मेद, रक्तपित्त, तृषा, दाह और योनिरोगको जीतनेवाला है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

एलादि गण ।

एलायुग्मतुरुष्ककुष्ठफलिनीमांसीजलध्यामकं
स्पृक्काचौरकचोचपत्रतगरस्थौणेयजातीरसाः ।
शुक्तिर्व्याघ्रनखोऽमराह्वमगुरुः श्रीवासकं कुंकुमं
चंडागुग्गुलुदेवधूपखपुराः पुन्नागनागाह्वयम्४३

बड़ी इलायची, छोटी इलायची, तुरुष्क, कूट, फलिनी (गन्धप्रियंगु), जटामांसी, जल (सुगन्धवाला) ध्यामकतृण, स्पृक्का, ग्रन्थिपर्णी, दालचीनी, पत्रज, तगर, थुनेरा, जातीरस, नखद्रव्य, व्याघ्रनखी, देवदारु, अगर, श्रीवास, केशर, चण्डा (गन्धद्रव्य), गुग्गुल, राल, कुदरू, पुन्नाग, नागकेसर; इनको एलादिगण कहते हैं ॥ ४३ ॥

एलादिको वातकफौ विषं च विनियच्छति ।
वर्णप्रसादनः कण्डूपिटिकाकोठनाशनः ॥४४॥

यह एलादिगण वात, कफ और विषको नष्ट करता है, वर्णको प्रसादन करता है तथा कण्डू, पिड़िका और कोठको नष्ट करता है ॥ ४४ ॥

श्यामादि गण ।

श्यामा दन्ती द्रवन्तीक्रमुककुटरणी
शंखिनी चर्मसाह्वा

स्वर्णक्षीरी गवाक्षी शिखरिरजनक-
च्छिन्नरोहाकरञ्जाः।
बस्तांत्री व्याधिघातो बहलबहुरस-
स्तीक्ष्णवृक्षात् फलानि
श्यामाद्यो हन्ति गुल्मं विषमरुचिकफौ
हृद्रुजं मूत्रकृच्छ्रम् ॥ ४५ ॥

काली निशोथ, दन्ती, द्रवन्ती, लोध, सफेद निशोथ, शंखपुष्पी, चर्मसाह्वा (ब्राह्मी या सातला), सत्यानाशी, इन्द्रायण, अपामार्ग, कम्बीला, गिलोय, करञ्ज, छागलान्त्री, अलमतास, इक्षु, पीलुके फल, यह श्यामादिगण कहा जाता है। यह गुल्म, विष, अरुचि, कफ, हृद्रोग और मूत्रकृच्छ्रको दूर करता है ॥ ४५ ॥

उक्त वर्गके अलाभमें तत्तुल्य अन्य ओषधिकी योजना।

त्रयस्त्रिंशदिति प्रोक्ता वर्गास्तेषु त्वलाभतः।
युंज्यात्तद्विधमन्यच्च द्रव्यं जह्यादयौगिकम्॥४६॥

इस प्रकार तेंतीस (३३) वर्ग इस अध्यायमें कहे है। इनमें जो द्रव्य नहीं मिल सके उसके बदले उसीके समान गुणवाला और द्रव्य मिला देना चाहिये। यदि कोई द्रव्य गणमें किसी रोगके लिये अहितकर हो तो वह निकाल देना चाहिये और उसके स्थानमें कोई अन्य हितकर द्रव्य मिला देना चाहिये ॥ ४६ ॥

वर्गोंके पानादि प्रकारसे रोगनाशकत्वका निरूपण।

एते वर्गा दोषदूष्याद्यपेक्ष्य
कल्कक्वाथस्नेहलेहादियुक्ताः।
पाने नस्येऽन्वासनेऽन्तर्बहिर्वा
लेपाभ्यंगैर्घ्नंति रोगान् सुकृच्छ्रान् ॥ ४७ ॥

ये वर्ग दोष दूष्यादिके अनुसार कल्क, क्काथ, स्नेह और अवलेह आदि कल्पना कर पीनेमें, नस्य-कर्ममें, अनुवासनमें, आस्थापनमें, निरूहणमें, लेपमें और अभ्यंगमें प्रयोग करनेसे बड़े २ कष्टसाध्य रोगोंको भी नष्ट करते हैं ॥ ४७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायाम्, वैद्यरत्न-पं. श्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कारवैद्यशिव-शर्मविरचित-शिवदीपिकाख्यव्याख्यासंहितायां सूत्रस्थाने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः।

—*—

अथातः स्नेहविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम स्नेहन विधिके अध्यायकी व्याख्या करते है:–

स्नेहन द्रव्यके गुण।

गुरुशीतसरस्निग्धमन्दसूक्ष्ममृदुद्रवम्।
औषधं स्नेहनं प्रायो विपरीतं विरूक्षणम् ॥१॥

जो द्रव्य गुरु, शीत, सारक, स्निग्ध, मन्द, सूक्ष्म, मृदु और द्रव हो वह प्रायः स्नेहन होता है। इससे विपरीत लघु, उष्ण, स्थिर, रूक्ष, तीक्ष्ण, स्थूल और कठिन गुणयुक्त हो वह प्रायः विरूक्षण द्रव्य होता है। प्रायः कथनसे यह नियम साधारण जानना, क्योंकि सरसोंका तेल, छागदुग्ध, विष्किर, प्रतुद, मृग ये सब लघु होते हुए भी स्नेहन करनेवाले है। मत्स्य, मांस उष्ण होने पर भी स्नेहन है। तथा यव गुरु, शीत और सारक होने पर भी रूक्षण करते है। इस कारण उपरोक्त साधारण नियममें प्रायः शब्दका प्रयोग किया है॥ १ ॥

चतुर्विध स्नेह।

सर्पिर्मज्जा वसा तैलं स्नेहेषु प्रवरं मतम्।
तत्रापि चोत्तमं सर्पिः संस्कारस्यानुवर्तनात् २

सब प्रकारके स्नेहोंमें घृत, मज्जा, मेद और तैल; ये चार स्नेह श्रेष्ठ होते है। इन चारोंमें भी घृत सबसे श्रेष्ठ होता है। क्योंकि घृत अन्य द्रव्योंसे संस्कार

करने पर जिन द्रव्योंसे संस्कार किया जाय उनके गुणको शीघ्र अपनेमें मिला लेता है। यहां पर हेमाद्रि लिखते हैं कि-"शीतैः संस्कृतं शीतताम् उष्णैः संस्कृतमुष्णतां भजति" अर्थात् घृत-शीत द्रव्योंसे संस्कृत किये जाने पर शीत और उष्ण द्रव्योंसे संस्कृत किये जाने पर उष्ण हो जाता है, इस कारण सब स्नेहोमें श्रेष्ठ है। अरुणदत्त लिखते हैं-"अनुशब्दोऽत्र सहायार्थे निपातानामनेकार्थत्वात्" अर्थात् घृत जैसे द्रव्योंसे सिद्ध किया जावे उनके गुणोंका सहायक होकर विशेष गुण करता है और अपने शैत्यादि गुणोंको भी नहीं त्यागता। किन्तु मज्जादि तीन स्नेहोंमें यह बात नहीं। वे संस्कार वशसे अपने गुण छोड़ देते है। इस कारण घृत सबमें श्रेष्ठ है ॥ उदाहरणके लिये चन्दनादि तैल और नारायणतैलादि देखिये, द्रव्योंके जैसे गुण होते है तैलोंके भी वैसे ही हो जाते हैं। तथा घृतसाध्य वातपित्तज्वरादिकोंमें तैल औषध सिद्ध होनेपर भी खानेसे अनिष्ट करता है। और घृत तैलसाध्य विकारोंमें भी द्रव्योंके संस्कारसे हितकारी हो जाता है, इस कारण सब स्नेहोमें घृत श्रेष्ठ माना जाता है ॥ २ ॥

चतुःस्नेहोंके गुण।

पित्तघ्नास्ते यथापूर्वमितरघ्ना यथोत्तरम्।
घृतात्तैलं गुरु वसा तैलान्मज्जा ततोऽपि च ३

इन घृतादि चार स्नेहोंमें यथाक्रम पूर्व २ पित्तघ्न होते हैं। और उत्तरोत्तर वातनाशक होते हैं। जैसे-तैलसे वसा, वसासे मज्जा, मज्जासे घृत विशेषरूपसे पित्तनाशक होते है। और घृतसे मज्जा, मज्जासे वसा, वसासे तैल उत्तरोत्तर वातकफनाशक होते है। घृतादि स्नेह कफवर्धक होनेसे यहां इतर शब्दसे कोई केवल वात लेना चाहिये; ऐसा मानते है ॥

घृतसे तैल, तैलसे वसा, वसासे मज्जा क्रमपूर्वक उत्तरोत्तर भारी होते है ॥ ३ ॥

यमक स्नेहादिकोंका निरूपण।

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतो महान् ४॥

दो स्नेहोंके मिलानेसे यमक और तीन स्नेहोंके मिलानेसे त्रिवृत्स्नेह और चार स्नेहोंके मिलानेसे महास्नेह होता है। जैसे-घृत तैल, घृत मेद, तैलमेद आदि दो २ मिलानेसे यमक स्नेह कहा जाता है। और घृत तैल मेद आदि तीन स्नेह मिलानेसे त्रिवृत् स्नेह तथा घृतादि चारों मिलानेसे महास्नेह कहा जाता है ॥ ४ ॥

स्नेहन योग्य प्राणी।

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचिंतकाः।
वृद्धबालाऽबलकृशा रूक्षाः क्षीणास्त्ररेतसः।
वातार्तस्यंदतिमिरदारुणप्रतिबोधिनः॥ ५॥
स्नेह्याः—

जिनको स्वेदन कराना हो, जिनको वमन विरेचनादि शोधन कराना हो तथा जो मद्यपानसे, स्त्री-

---

१ सर्पिरादीनां स्नेहप्रयोगे दोषविशेषेण तारतम्यज्ञानमाह-तैलाद्वसा ततो मज्जा ततः सर्पिष्पित्तघ्नं सर्पिषो मज्जा ततो वसा ततस्तैलं वातघ्नं कफघ्नं चेति हेमाद्रिः।

यो यः पूर्वो यथापूर्वं यो य उत्तरो यथोत्तरमिति "यथासादृश्य" इत्यव्ययीभावः। उत्तरमपेक्ष्य पूर्वः पूर्वं चापेक्ष्योत्तरः। तेन चतुर्णां स्नेहानां यथाविहितानां सर्पिरादीनां त्रय एव स्नेहाः वसामज्जसर्पिःसंज्ञका यथापूर्वत्वेन संबध्यन्ते न तु तैलाख्यः स्नेहस्तस्य पूर्वत्वाभावात्। न ह्यन्योऽस्मात्कश्चिदुत्तरोऽस्ति, यदपेक्षयैव पूर्वत्वमात्मन आसादयेत्तस्मान्नास्ति पूर्वत्वसम्बन्धस्तैलस्य। तथा चतुर्णां स्नेहानां त्रय एव स्नेहा मज्जावसातैलाख्या यथोत्तरत्वेनाऽ-भिसंबध्यन्ते न सर्पिःसंज्ञकः स्नेह उत्तरत्वाभावात्। न ह्यन्यः कश्चिदस्य पूर्वो विद्यते यदपेक्षयैवोत्तरत्वमात्मन आसादयतीत्युक्तम्। तदेवं यथापूर्वं पित्तघ्नत्वं वसामज्जसर्पिषां सामान्येनोक्तम्। विशेषेण च वसा पित्तघ्नी मज्जा पित्तघ्नतरः सर्पिः पित्तघ्नतममित्यर्थः। इतरघ्ना इति। इतरौ वातकफौ पित्तापेक्षया तौ घ्नन्ति पराकुर्वन्तीतीतरघ्नाः। यथोत्तरं त्रयः स्नेहा मज्जावसातैलाख्या वातश्लेष्मघ्नाः। तेन मज्जा वातश्लेष्मघ्ना वसा वातश्लेष्मघ्नतरा तैलं वातश्लेष्मघ्नतममिति प्रकृतामित्यरुणदत्तः।

संगसे, अतिव्यायामसे और चिंता आदिसे क्षीण शरीरवाले होगये हों उनको स्नेहन कराना चाहिये। एवं वृद्ध पुरुष, बालक, निर्बल, कृश, रूक्ष, क्षीणवीर्य, क्षीणरक्त, वातार्त, स्पन्दनार्त, तिमिर रोगवाले और जिनके नेत्र कष्टसे उन्मीलन हों उन सबको स्नेहन करना चाहिये ॥ ५ ॥

स्नेहनके अयोग्य प्राणी।

न त्वतिमन्दाऽग्नितीक्ष्णाग्निस्थूलदुर्बलाः।
ऊरुस्तंभाऽतिसारामगलरोगगरोदरैः ॥ ६ ॥
मूर्च्छाच्छर्द्यरुचिश्लेष्मतृष्णामद्यैश्च पीडिताः।
अपप्रसूता युक्ते च नस्ये बस्तौ विरेचने ॥७॥

अत्यन्त मन्दाग्निवाले, अत्यन्त तीक्ष्णाग्निवाले, अति-स्थूल, अतिदुर्बल, ऊरुस्तम्भरोगी, अतिसाररोगी, आमयुक्त, गलरोगी, उदररोगी तथा मूर्छा, छर्दि, अरुचि, कफ और तृषा इन रोगोंवाले, मद्यसे व्याकुल, कच्चे गर्भस्रावाली स्त्री इन सबको स्नेहन नहीं कराना चाहिये। तथा नस्यकर्म, बस्तिकर्म और विरेचनके अनन्तर भी स्नेहपान नहीं करना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

घृत और तैलसे स्नेहन योग्य प्राणियोंका वर्णन।

तत्र धीस्मृतिमेधाऽग्निकांक्षिणां शस्यते घृतम्।
ग्रंथिनाडीकृमिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिषु।
तैलं लाघवदार्ढ्यार्थिक्रूरकोष्ठेषु देहिषु ॥ ८ ॥

इन चार घृतादि स्नेहोंमें—बुद्धि, स्मृति, मेधा और अग्निकी कामनावाले मनुष्योंको घृतपान करना सबसे श्रेष्ठ है ॥

ग्रंथिरोग, नाड़ीरोग, कृमिरोग, कफरोग, मेद-रोग और वातरोगियोंको तथा शरीरमें हलकापन और दृढ़ताकी इच्छावालोंको और क्रूर कोष्ठवालोंको तैल हितकारी होता है ॥ ८ ॥

वसा, मज्जा द्वारा स्नेहन योग्य।

वाताऽऽतपाऽध्वभारस्त्रीव्यायामक्षीणधातुषु।
रूक्षक्लेशक्षमाऽत्यग्निवातावृतपथेषु च ॥ ९ ॥
शेषौ—
—वसा तु संध्यस्थिमर्मकोष्ठरुजासु च।
तथा दग्धाऽऽहतभ्रष्टयोनिकर्णशिरोरुजि॥१०॥

जो मनुष्य वातसे, आतपसे, मार्ग चलनेसे, अधिक भार उठानेसे, स्त्रीसंगसे, अधिक व्यायामसे और धातु-ओंके क्षीण होनेसे कृश होगये हों उनको वसा और मज्जासे स्नेहन करना हितकर है। तथा जो पुरुष रूक्ष शरीरवाले हों, जो क्लेश सहन करनेके अभ्यासी हों, जिनकी जठराग्नि अत्यन्त तेज हो और जिनके शरीरमें सब मार्गोंमें वायुकी अधिकता हो उनको वसा और मज्जा द्वारा स्नेहन करना हितकारी है ॥

सन्धि, अस्थि, मर्म और कोष्ठकी पीड़ामें तथा अग्निदग्धमें, चोट लगने आदिसे आहत होनेपर, योनिरोगमें, कर्णरोगमें और शिरोरोगमें वसाका प्रयोग विशेष हितकर है ॥ ९ ॥ १० ॥

ऋतु परत्वसे तैलादि स्नेहन।

तैलं प्रावृषि वर्षांते सर्पिरन्यौ तु माधवे ॥११॥

रेचनादिसे पूर्व जो स्नेहन क्रिया की जाती है उसकी विधिमें स्नेहनकी इस प्रकार विशेषता है:—

यदि प्रावृट् ऋतुमें स्नेहन करना हो तो तैलसे स्नेहन कर्म करना चाहिये। यदि शरद् ऋतुमें स्नेहन करना हो तो घृतसे स्नेहन करना चाहिये। और वसन्तमें स्नेहन करना हो तो वसा और मज्जा द्वारा स्नेहन करना हितकारी है। "अथवा ऋतुधर्मके अनुसार ओषधि-योगसे घृत या तैलको सिद्धकर प्रयोग करना भी हितकारी हो सकता है" ॥ ११ ॥

काल विशेषसे स्नेहका उपयोग।

ऋतौ साधारणे स्नेहः शस्तोऽह्नि विमले रवौ।
तैलं त्वरायां शीतेऽपि—
—घर्मेऽपि च घृतं निशि ॥ १२ ॥

---

१ अबलस्य स्नेहनत्वमतिदुर्बलस्याऽस्नेह्यत्वमित्य-विरोध इति हेमाद्रिः। २ मेधादिकांक्षिणामिति पाठान्तरम्। तत्रादिशब्देन स्वरायुर्वर्णादीनां ग्रहणम् ॥

मिश्येव पित्ते पवने संसर्गे पित्तवत्यपि ।
निश्यन्यथा वातकफाद्रोगाः स्युः पित्ततो दिवा

साधारण ऋतुओंमें अर्थात् श्रावण, कार्तिक और चैत्रमें वात, पित्त और कफके शमन करनेके लिये जब शोधनसे पूर्व स्नेहन करना हो तो जब आकाश निर्मल (मेघादिसे सूर्यकी किरण आच्छादित नहीं) हो तो ऐसे निर्मल दिनमें प्रातःकाल स्नेहपान करना चाहिये । यह स्नेहपान सामान्यरूपसे घृतादि स्नेहोंकी सामान्यविधि कही है ॥

यदि किसी आवश्यक व्याधिमें शीघ्र ही शोधनके लिये स्नेहपान कराना हो तो हेमन्त और शिशिरमें भी तैलका प्रयोग करना चाहिये । और वह दिनमें ही निर्मल आकाश रहने पर पिलाना चाहिये, अर्थात् यदि शीतकालमें भी कोई वातप्रधान ऐसा रोग हो जिसमें स्नेहन करना आवश्यक हो तो शीतकालमें भी निर्मल आकाश रहनेपर स्नेहन करना चाहिये । परन्तु वह स्नेहन केवल तैलके द्वारा ही कराना विशेष हितकर है ॥

यदि ग्रीष्म ऋतुमें भी अत्यावश्यक क्रियाके लिये स्नेहन करना हो तो रात्रिके समय घृतपान कराके स्नेहन कराना हितकर होता है । तथा पित्तप्रधान रोगमें या केवल पित्तके रोगमें अथवा पित्तवृद्धिमें या वातविकारमें अथवा पित्तकी प्रधानतावाले वातपित्तमें या पित्तकफमें भी यदि ग्रीष्म ऋतुमें स्नेहन कराना अत्यावश्यक हो तो रात्रिके समय घृतपान कराकर स्नेहन कराना चाहिये ॥

इससे विपरीत अर्थात् शीतकालमें शोधनार्थ रात्रिमें घृत प्रयोगसे स्नेहन करनेसे वातकफजनित विकार उत्पन्न होते है । और ग्रीष्म ऋतुमें तैलद्वारा दिनमें स्नेहनका प्रयोग करनेसे पित्तजनित विकार उत्पन्न हो जाते है । इस कारण नियमसे विपरीत स्नेहन प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

स्नेह प्रयोगकी विधि ।

युक्त्याऽवचारयेत्स्नेहं भक्ष्याद्यन्नेन बस्तिभिः ।
नस्याभ्यंजनगंडूषमूर्धकर्णाऽक्षितर्पणैः ॥ १४ ॥

घृतादि स्नेह—मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोषस्वभाव आदिका पूर्ण विचार कर उचित रीतिपर प्रयोग करना चाहिये । वह प्रयोग अनेक प्रकारकी रीतिसे बनाये हुए भोज्य लेह्यादि अन्नपानमें घृतादि स्नेह मिलाकर खिलाने चाहिये । तथा इसके अतिरिक्त बस्तिकर्ममें, अभ्यंजनमें, मुखमें धारण करनेमें, मस्तक और शिरपर प्रयोग करनेमें, कानमें डालनेमें और नेत्रतर्पणमें घृततैलादिका प्रयोग कर स्नेहन करना चाहिये ॥ १४ ॥

चौसठ स्नेह विचारणा ।

रसभेदैककत्वाभ्यां चतुःषष्टिर्विचारणाः ।
स्नेहस्याऽन्याभिभूतत्वादल्पत्वाच्च क्रमात्स्मृताः ॥

पीछे दसवें अध्यायमें रसके भेदोंसे एक २ भेद कल्पना करनेपर त्रेसठ (६३) भेद कह आये हैं । उन एक २ रसके भेदके साथ स्नेहप्रयोग करनेसे त्रेसठ (६३) भेद होते है । एक भेद केवल स्नेहका मिलानेसे चौसठ (६४) भेद स्नेहकी कल्पनाके हुए । यद्यपि भोज्यादि पदार्थोंमें, बस्तिकर्ममें, नस्य और अभ्यंजनादिमें पृथक् २ अंशांश भेदसे कल्पना करने-पर अनन्त विचारणा होसकती है, परन्तु यहांपर स्नेहमें अन्य रसोंकी एक २ रसभेदसे वृद्धि और ह्रास-क्रम द्वारा चौसठ (६४) प्रकारकी विचारणा कही हैं ॥ १५ ॥

अच्छ स्नेह ।

यथोक्तहेत्वभावाच्च नाच्छपेयो विचारणा ।
स्नेहस्य कल्पः स श्रेष्ठः स्नेहकर्माशुसाधनात् १६॥

किसी अन्य अन्नादि रस योगके विना केवल स्वच्छ घृतपानको विचारणा नहीं कहते, किन्तु इस केवल घृतपानको अच्छपेय कहते है । अच्छ स्नेहका पान करना स्नेहकर्ममें शीघ्र कार्यकर्ता होनेसे श्रेष्ठ कल्प कहा जाता है, क्योंकि अच्छस्नेह शीघ्र स्नेहन करता है । यद्यपि बस्ति आदिमें प्रयोग किया हुआ केवल स्नेह भी चौसठ (६४) विचारणामें आनेसे विचारणा कही जाती है, परन्तु केवल स्वच्छ घृतादि पीनेको अच्छस्नेह ही कहते हैं ॥ १६ ॥

स्नेहकी त्रिविध मात्रा ।

द्वाभ्यां चतुर्भिरष्टाभिर्यामैर्जीर्यति याः क्रमात् ।
ह्रस्वमध्योत्तमा मात्रास्तास्ताभ्यश्च ह्रसीयसीम्
कल्पयेद्वीक्ष्य दोषादीन् प्रागेव तु ह्रसीयसीम्

स्नेह पानकी मात्रा तीन प्रकारकी होती है । जो स्नेह पान किया हुआ दो प्रहरमें जीर्ण हो जाय वह स्नेहकी ह्रस्व (लघु) मात्रा कही जाती है । जो स्नेह पान किया हुआ चार प्रहरमें जीर्ण हो उसको मध्यम मात्रा कहते है । जो स्नेह पान किया हुआ आठ (८) प्रहरमें जीर्ण हो उसको उत्तम मात्रा कहते है । इनमें ह्रस्व मात्रामें भी जो न्यून करके दी जावे उसको ह्रसीयसी कहते है । वैद्यको उचित है कि देश, दोष, औषध, बल, कालादि विचार कर ह्रस्व, मध्यम और उत्तम मात्राकी कल्पना करे । उन तीन प्रकारकी मात्राओंमें भी जिसको जो मात्रा प्रयोग करनी हो उस मात्रामें भी प्रथम दिन अज्ञात कोष्ठ होनेके कारण मात्राको कुछ न्यून अर्थात् ह्रसीयसी मात्राका प्रयोग करे । फिर कोष्ठज्ञान होनेपर जो लघु, मध्य या उत्तम उस रोगीके लिये कल्पना की हो सो देनी चाहिये । मात्राकी कल्पना जठराग्निके बलपर ही की जासकती है ॥ १७ ॥

उत्तम मात्राका प्रयोग ।

ह्यस्तने जीर्ण एवान्ने स्नेहोऽच्छः शुद्धये बहुः १८

यदि शोधनके लिये स्नेहका प्रयोग करना हो तो जब प्रथम दिनका भोजन जीर्ण हो चुका हो और क्षुधा चैतन्य न हुई हो ऐसे समय प्रातःकाल स्नेहकी उत्तम मात्राका प्रयोग करना चाहिये । क्योंकि यदि रेचनके लिये विना अन्न जीर्ण हुए स्नेहकी मात्राका प्रयोग किया जाय तो उद्गमन होकर विफल हो जानेका भय है और यदि क्षुधाके चैतन्य होनेपर रेचनके लिये स्नेह प्रयोग किया जाय तो जठराग्निकी तीक्ष्णतासे पाचन होकर शोधन क्रियामें असमर्थ हो जायगा । इस कारण रेचनके लिये प्रथम दिनका भोजन जीर्ण होजाने पर क्षुधा चैतन्य होनेसे पहले प्रातःकाल अच्छ स्नेहकी उत्तम मात्राका पान करना चाहिये । वमन भी इसी प्रकार क्षुधित पुरुषको नहीं कराना चाहिये, क्योंकि क्षुधित पुरुषके आमाशयमें कफ क्षीण होनेसे वमन द्रव्यका यथार्थ गुण नहीं होता । "वमनकारक द्रव्य पिलानेसे पहले आमाशयको सचिक्कण और दोषको उत्क्लेशित कर लेना चाहिये" ॥ १८ ॥

मध्यम मात्राका प्रयोग ।

शमनः क्षुद्वतोऽनन्नो मध्यमात्रश्च शस्यते॥१९॥

यदि दोष शमन करनेके लिये स्नेहपान कराना हो तो विना भोजन किये क्षुधाके चैतन्य हो जानें पर मध्यम मात्रासे केवल अच्छ घृतका पान कराना हितकारी होता है । क्योंकि यदि विना क्षुधाके चैतन्य हुए शमनके लिये स्नेहकी मात्राका प्रयोग किया जाय तो वह स्नेह क्लेदाद्युपलिप्त स्रोतोंमें यथार्थ गुण नहीं कर सकता और संपूर्ण शरीरमें व्याप्त न होनेके कारण दोषोंको शमन नहीं कर सकता । इस कारण क्षुधा चैतन्य होने पर ही दोष शमनके लिये मध्यम मात्रासे स्नेहपान कराना चाहिये ।

अल्प मात्राका प्रयोग ।

बृंहणो रसमद्याद्यैः सभक्तोऽल्पः—

यदि बृंहणके लिये स्नेहका प्रयोग करना हो तो भोजनके साथ यूष, मांसरस, दूध आदि भक्ष्य पदार्थोंमें मिलाकर अल्प मात्रासे स्नेह प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ १९ ॥—

---

(१) 'अज्ञातकोष्ठे हि बहुः कुर्याज्जीवितसंशयम् ।' इति । इयं ह्रस्वेयं ह्रस्वा इयमनयोरतिशयेन ह्रस्वा ह्रसीयसीतीयसुन्, स्थूलदूरेत्यादिना लोपः । अन्यैस्तु पलद्वयपलचतुष्टयपलषट्कसंख्यावच्छिन्ना मात्रा उक्ताः । न चैतद्युज्यते । यतो जठरानलशक्तिमनपेक्ष्य स्नेहमात्रा प्रयुज्यमानाऽनर्थायैव । अतोऽस्माभिः पलद्वयादिसंख्याऽवच्छिन्ना नोक्ता । मुनेरपि नैतन्मतम् । तद्ग्रंथो हि—"अहोरात्रमहः कृत्स्नमर्धाहं च प्रतीक्ष्यते । प्रधाना मध्यमा ह्रस्वा स्नेहमात्रा जरां प्रति ॥" इत्यरुणदत्तः ।

हितः स च ।

बालवृद्धपिपासार्तस्नेहद्विण्मद्यशीलिषु ।
स्त्रीस्नेहनित्यमंदाग्निसुखितक्लेशभीरुषु ।
मृदुकोष्ठाऽल्पदोषेषु काले चोष्णे कृशेषु च २०

वह ह्रस्व मात्रासे घृतादि स्नेहका प्रयोग करना बालकोंके लिये, वृद्धोंके लिये, तृषार्त और स्नेहसे द्वेष करनेवालोंके लिये, मद्य पीनेवाले पुरुषोंके लिये तथा नित्य स्त्रीसंग करनेवालोंके लिये, नित्य घृतादि स्निग्ध पदार्थ खानेवालोंके लिये, मन्दाग्नि वालोंके लिये, सुखी पुरुषोंके लियें, कष्टसे डरनेवालोंके लिये, मृदुकोष्ठवालोंके लिये और अल्प दोषवालोंके लिये, एवं उष्णकालमें और बहुत कृश पुरुषोंके लिये ह्रस्व मात्राका प्रयोग करना हितकारी होता है॥२०॥

ह्रस्व मात्राका फल ।

प्राङ्मध्योत्तरभक्तोऽसावधोमध्योर्ध्वदेहजान् ।
व्याधीन् जयेद्बलं कुर्यादंगानां च यथाक्रमम्

यदि भोजनसे प्रथम ह्रस्व मात्रासे घृतादिका पान किया जाय तो शरीरके अधोभागमें उत्पन्न हुई व्याधियोंको जीतता है। यदि भोजनके मध्यमें स्नेहपान किया जाय तो मध्य देहमें उत्पन्न हुए रोग शमन होते हैं। और यदि भोजनके अन्तमें स्नेहपान किया जाय तो ऊर्ध्वगत व्याधियोंका शमन होता है। तथा इसी प्रकार अधोभाग, मध्यभाग और ऊर्ध्वभाग अंगोंमें यथाक्रम बल देता है। वाताधिक्यमें लवणयुक्त घृत, पित्तमें केवल घृत और कफमे त्रिकटु मिला हुआ घृत पान करना चाहिये ॥ २१ ॥

स्नेहपर अनुपान ।

वार्युष्णमच्छेऽनुपिबेत् स्नेहे तत्सुखपक्तये ।
आस्योपलेपशुद्ध्यै च तौवरारुष्करे न तु २२॥
जीर्णाजीर्णविशंकायां पुनरुष्णोदकं पिबेत् ।
तेनोद्गारविशुद्धिः स्यात्ततश्च लघुता रुचिः२३॥

अच्छा स्नेह (केवल घृतादि) पीनेके अनन्तर घृतादिके सुखपूर्वक परिपाक होनेके लिये और मुखके उपलेपादि शुद्ध करनेके लिये उष्ण जल पीना चाहिये। परन्तु यदि भिलावेका तैल या तुवर तैल पिया हो तो उष्ण जलका अनुपान नहीं करना, किन्तु शीतल जल पीना चाहिये।

यदि घृतादि स्नेह पानके अनन्तर स्नेहके जीर्णाजीर्णकी शंका रहे तो ऊपरसे फिर उष्णजल पीना चाहिये। उष्णजल पीनेसे उद्गारकी शुद्धि होती है तथा हलकापन और अन्नपर रुचि हो जाती है। घृतपानके अनन्तर वस्त्र धारण कर निर्वात स्थानमें रहे। यदि तृषा लगे तो थोड़ा सा उष्ण जल पीना चाहिये जब शिरका भारीपन आदि दूर होकर वायुका अनुलोमन होजाय तथा शान्ति, शरीरमें लघुता, स्वस्थता, उद्गारशुद्धि और क्षुधा प्रतीत हो तो स्नेहकी मात्रा जीर्ण होगयी जानना चाहिये ॥ २२ ॥ २३ ॥

उत्तम स्नेहपानमें पथ्य ।

भोज्योऽन्नं मात्रया पास्यन् श्वः पिबन् पीतवानपि
द्रवोष्णमनभिष्यंदि नाऽतिस्निग्धमसंकरम् २४॥
उष्णोदकोपचारी स्याद्ब्रह्मचारी क्षपाशयः ।
न वेगरोधी व्यायामक्रोधशोकहिमातपान्२५॥
प्रवातयानयानाध्वभाष्याभ्यासनसंस्थितिः ।
नीचात्युच्चोपधानाहः स्वप्नधूमरजांसि च२६॥
यान्यहानि पिबेत्तानि तावंत्यन्यान्यपि त्यजेत् ।
सर्वकर्मस्वयं प्रायो व्याधिक्षीणेषु च क्रमः २७॥

जो मनुष्य स्नेह पान कर चुका हो अथवा जिसने उसी दिन स्नेहकी मात्रा पान की हो अथवा जो स्नेहपान करनेवाला हो उसको मुद्गयूषादि द्रव पदार्थके साथ शाली चावल आदिका लघु और उष्ण अन्न अथवा पेयादि द्रव उष्ण अन्न जो अभिष्यंदि न हों तथा अतिस्निग्ध या कुपथ्य मिश्रित न हों ऐसा हलका उष्ण पथ्य भोजन करे और पीने तथा हस्त प्रक्षालनादिमें उष्णोदकका ही प्रयोग करना चाहिये। एवं ब्रह्मचारी रहना चाहिये, रात्रिको सोना चाहिये, मल मूत्रादिका वेग नहीं रोकना चाहिये। तथा व्यायाम, क्रोध, शोक, शीत, आतप, अधिक पवन, घोड़े आदिकी सवारी, मार्ग चलना, बहुत बोलना, पठन

आदिमें बहुत अभ्यास करना, अधिक बैठे रहना नहीं चाहिये । शिरके नीचे बहुत ऊंचा या बहुत नीचा तकिया नहीं होना चाहिये । दिनमें सोना नहीं चाहिये । तथा धुएं और गर्देसे बचकर रहना चाहिये । यह विधि जितने दिन घृतपान किया हो अन्य उतने ही दिन घृतपानके अनन्तर भी इसी प्रकार सेवन करना चाहिये । वमन विरेचनादि सब कर्मोंमें प्रायः सब जगह इसी क्रमसे पथ्यादि-सेवन करना चाहिये । और जो मनुष्य व्याधिसे क्षीण हों प्रायः उनको भी इसी विधिका पालन करना चाहिये । यहांपर 'प्रायः' शब्दका प्रयोग इसलिये किया है कि अतिसारादिसे क्षीण पुरुषको दिनमें सोनेका निषेध नहीं है ॥ २४-२७ ॥

शमन-स्नेहपानमें पथ्य ।

उपचारस्तु शमने कार्यः स्नेहे विरिक्तवत् ॥२८॥

यदि दोष शमनके लिये स्नेहपान कराया हो तो विरिक्त पुरुषके समान ही सब उपचार करने चाहिये । अर्थात् जैसे विरिक्तके लिये पेयादि पान और हित आचरणकी विधि है उसी प्रकार शमन-स्नेहपानमें भी करना चाहिये ॥ २८ ॥

स्नेहपानकी अवधि ।

त्र्यहमच्छं मृदौ कोष्ठे क्रूरे सप्तदिनं पिबेत् ।
सम्यक्स्निग्धोऽथवा यावदतः सात्मी भवेत्परम् ॥

मृदु कोष्ठवाले पुरुषको अच्छ स्नेह तीन दिन पीना चाहिये । यदि क्रूर कोष्ठ हो तो सात दिन स्नेहपान करना चाहिये । अथवा जबतक शरीरमें सम्यक् स्निग्ध (ठीक स्नेहन) के लक्षण प्रतीत न हों तबतक स्नेहपान करना चाहिये । फिर इसके अनन्तर स्नेह सात्म्य हो जाता है, अर्थात् शरीरमें अनुकूल पड़ जाता है और शोधनके लिये स्नेहनके जो गुण होने चाहिये वे न्यून होने लग जाते है । इस कारण स्नेहपान ठीक स्निग्ध होनेतक ही करना चाहिये ॥ २९ ॥

ठीक स्निग्धके लक्षण ।

वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ।
मृदुस्निग्धांगता ग्लानिः स्नेहोद्वेगोऽङ्गलाघवम् ३०
विमलेंद्रियता सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः ।
अतिस्निग्धे तु पांडुत्वं घ्राणवक्त्रगुदस्रवाः ३१॥

वायुका अनुलोमन होजाना, अग्निका दीप्त होना, मलका चिकना और ढीला आना, अंगोंका मृदु और स्निग्ध होना, ग्लानि सी प्रतीति होनी, स्नेहका उद्वेग होना, अंगोंका हलका होना और इन्द्रियोंका निर्मल होना; ये सब लक्षण ठीक (सम्यक्) स्निग्धके होते है ॥

यदि स्निग्ध न हुआ हो तो इससे विपरीत लक्षण होते है, अर्थात् वातानुलोमनादि नहीं होते ॥

यदि अतिस्निग्ध हो गया हो तो शरीरमें पाण्डुपन तथा नासिका, मुख और गुदासे स्राव होने लगता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

स्नेहका मिथ्यायोग ।

अमात्रयाऽहितोऽकाले मिथ्याहारविहारतः ।
स्नेहः करोति शोफार्शस्तंद्रास्तंभविसंज्ञताः ॥
कंडूकुष्ठज्वरोत्क्लेशशूलाऽनाहभ्रमादिकान् ३२॥

घृतादि स्नेह अनुचित मात्रासे पान किया हुआ हानिकारक होता है तथा विना समयसे पिया हुआ स्नेह या स्नेहपानकालमें आहार विहारके मिथ्या प्रयोग होनेसे वह स्नेह—शोथ, अर्श, तन्द्रा, स्तम्भ, संज्ञानाश, कण्डू, कुष्ठ, ज्वर, उत्क्लेश, आनाह और भ्रम आदि रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ३२ ॥

मिथ्या स्नेह प्रयोगकी चिकित्सा ।

क्षुत्तृष्णोल्लेखनस्वेदरूक्षपानान्नभेषजम् ॥
तक्रारिष्टं खलोद्दालयवश्यामाककोद्रवाः ॥३३॥

---

१ यदि सप्ताहपर्यन्तं स्नेहपानेनापि सम्यक् स्नेहपानलक्षणं नोत्पद्येत तदा दिनमेकं विश्रमय्य पुनः स्नेहः प्रयोज्य इति सर्वांगसुन्दरायामरुणदत्तः ।

१ 'खल' व्यंजनविशेष इति अरुणदत्तः । मूलैः फलैश्च कृतः व्यंजनविशेषः'खल' इति पदार्थचान्द्रिका ।

पिप्पलीत्रिफलाक्षौद्रपथ्यागोमूत्रगुग्गुलु ॥
यथास्वं प्रतिरोगं च स्नेहव्यापदि साधनम्॥३४॥

स्नेहपानके मिथ्यायोग होनेसे उत्पन्न हुए विकारोंमें क्षुधा और तृषाका सहन करना, वमन कराना, स्वेद लेना तथा रूक्ष गुणवाले अन्नपान और औषध सेवन करना, एवं तक्र, अरिष्ट, खल, उद्दालक (तृण धान्य), यव, श्यामाक, कोद्रव, पीपल, त्रिफला, मधु, हरीतकी, गोमूत्र और गूगल इनमेंसे घृतपानजनित जिस विकारमें जो उचित हो उसका प्रयोग करना चाहिये। अथवा जिस जिस दोषकी प्रधानता या प्रतिरोगमें जो जो चिकित्सा कही है उसका प्रयोग करना चाहिये॥ ३३ ॥ ३४ ॥

विरूक्षणके लक्षण।

विरूक्षणे लंघनवत्कृताऽतिकृतलक्षणम् ॥ ३५॥

स्नेह व्यापत्तिमें यदि विरूक्षण कराना हो तो विरूक्षणकी मात्रा लंघनके समान जाननी चाहिये। अर्थात् सम्यक् लंघनके लघुता विमलेन्द्रियता आदि लक्षणोंके समान लक्षण होना सम्यक् विरूक्षणके लक्षण है। और अतिलंघनके समान कृशता आदि अतिविरूक्षणके लक्षण जानने चाहिये॥ ३५ ॥

स्वेदनादि क्रम।

स्निग्धद्रवोष्णधन्वोत्थरसभुक् स्वेदमाचरेत्।
स्निग्धस्त्र्यहं स्थितः कुर्याद्विरेकं वमनं पुनः॥
एकाहं दिनमन्यच्च कफमुत्क्लेश्य तत्करैः॥३६॥

प्रथम स्निग्धकाय होनेके अनन्तर स्निग्ध, द्रव और उष्ण जांगल मांस रसादि भोजन करता हुआ पुरुष स्वेदन कर्म करे। यहां जो स्निग्धरसादि सेवन करे वह गुणमें और तुरन्तका बना हुआ होनेसे स्पर्शमें भी उष्ण ही होना चाहिये। स्वेद प्रयोग करता हुआ तीन दिन ठहरकर विरेचन करावे। यदि वमन कराना हो तो स्नेहन, स्वेदनके अनन्तर एक दिन ठहरकर दूसरे दिन कफको उत्क्लेशित करनेवाले द्रव्योंसे कफको उत्क्लेशित कर वमन करा देना चाहिये॥ ३६ ॥

मांसल स्नेह्य पुरुषोंको रूक्षणादि क्रमका निरूपण।

मांसला मेदुरा भूरिश्लेष्माणो विषमाग्नयः।
स्नेहोचिताश्च ये स्नेह्यास्तान् पूर्वं रूक्षयेत्ततः॥
संस्नेह्य शोधयेदेवं स्नेहव्यापन्न जायते॥३७॥

यदि अधिक मेदवाले, अधिक मांसवाले, अधिक कफवाले और विषमाग्निवाले पुरुषोंका रोग स्नेहसाध्य हो तो उनको प्रथम रूक्षण करके फिर स्नेहन करना चाहिये। स्नेहनके अनन्तर शोधन करना चाहिये। इस प्रकार रूक्षण तथा स्नेहन करनेसे इन मेदुरादि पुरुषोंको स्नेहजनित विकार नहीं हो सकते॥ ३७ ॥

अलं मलानीरयितुं स्नेहश्चासात्म्यतां गतः॥३८॥

तथा इस प्रकार इन मेदस्वी आदि पुरुषोंको कोई हानि न करके स्नेह असात्म्य होकर वातादि दोष और पुरीषादि मलोंको भी यथार्थरूपसे निकाल देनेमें समर्थ हो जाता है॥ ३८॥

बालादिकोंको स्नेह प्रयोग।

बालवृद्धादिषु स्नेहपरिहारासहिष्णुषु।
योगानिमाननुद्वेगान् सद्यःस्नेहान् प्रयोजयेत्॥३९॥

जो बाल, वृद्धादि पुरुष अच्छ स्नेह पानके पथ्यक्रमादि न सहन कर सकें उनके अर्थ इन आगे कहे हुए सद्यः स्नेहन करनेवाले और कोई उद्वेगादि न करनेवाले योगोंका प्रयोग करना चाहिये॥ ३९ ॥

प्राज्यमांसरसास्तेषु पेया वा स्नेहभर्जिता।
तिलचूर्णश्च सस्नेहफाणितः कृशरा तथा॥४०॥
क्षीरपेया घृताढ्योष्णा दध्नो वा सगुडः सरः।
पेया च पञ्चप्रसृताः स्नेहैस्तण्डुलपञ्चमैः॥
सप्तैते स्नेहनाः सद्यः स्नेहाश्च लवणोल्वणाः॥४१
तद्ध्यभिष्यंद्यरूक्षं च सूक्ष्ममुष्णं व्यवायि च४२

जैसे पुष्ट मांसवाले जीवोंका मांस रस या घृतादि स्नेहमें चिकनी की हुई पेया, तिलोंका चूर्ण, स्निग्ध किया हुआ फाणित, सचिक्कण खिचड़ी, दूध, अथवा पेया घृत मिलाकर गर्म गर्म २ पीना, अथवा

गुण मिला हुआ दहीका तोड़ या चारों स्नेह दस २ तोला और चावल दस तोला इन पांचोंसे बनायी हुई पेया । यह सात योग सद्यः स्नेहन करनेवाले हैं । तथा लवणयुक्त घृतादि स्नेह भी सद्यः स्नेहन करते हैं, क्योंकि लवण—अभिष्यन्दि, स्निग्ध, सूक्ष्म और व्यवायि होता है । इस कारण लवणके योगसे घृतादि शीघ्र ही स्नेहनकर्म कर देते हैं ॥ ४०—४२ ॥

कुष्ठादिकोंमें स्नेहार्थ द्रव्यविशेषका निषेध ।

गुडानूपामिषक्षीरतिलमाषसुरादधि ।
कुष्ठशोफप्रमेहेषु स्नेहार्थं न प्रकल्पयेत् ॥४३॥

यदि कुष्ठ, सूजन और प्रमेहमें स्नेहकर्म करना हो तो गुड़, आनूपमांस, दूध, तिल, माष और सुरा आदि द्रव्योंसे स्नेहन नहीं करना चाहिये ॥ ४३ ॥

कुष्ठादिकोंमें स्नेह कल्पना ।

त्रिफलापिप्पलीपथ्यागुग्गुल्वादिविपाचितान्॥
स्नेहान्यथास्वमेतेषां योजयेदविकारिणः॥४४॥

कुष्ठादिकोंमें यदि स्नेहपान कराना हो तो त्रिफला, पीपल, केवल हरीतकी अथवा गूगल आदिसे सिद्ध किये हुए घृतादिस्नेह प्रयोग करनेसे विकार नहीं करते। इस कारण कुष्ट, शोथ और प्रमेहमें त्रिफलादिसे सिद्ध किये घृतादि पानकर स्नेहन करना चाहिये ॥४४

रोगोंसे क्षीणपुरुषोंको स्नेह प्रयोग ।

क्षीणानां त्वामयैरग्निदेहसंधुक्षणक्षमान् ॥४५॥

जो पुरुष रोगोंके कारण क्षीण हो गये हों—यदि उनको स्नेहपान कराना हो तो उनको दीपन, पाचन गुणयुक्त घृतादि पान कराना चाहिये, जो जठराग्निको भी चैतन्य करे और देहको भी पुष्ट करे । क्योंकि व्याधिसे क्षीण पुरुषकी जठराग्नि भी क्षीण हो जाती है । इस कारण अग्नि और शारीरिक पुष्टि दोनोंको बढ़ानेवाले द्रव्योंसे सिद्ध घृतादिका प्रयोग करे ॥४५॥

स्नेह सेवनका फल ।

दीप्तांतराग्निः परिशुद्धकोष्ठः
प्रत्यग्रधातुर्बलवर्णयुक्तः ।
दृढेंद्रियो मंदजरः शतायुः
स्नेहोपसेवी पुरुषः प्रदिष्टः॥ ४६ ।

नित्य घृतादि स्नेह सेवन करनेवाले मनुष्यकी जठराग्नि दीप्त रहती है, कोष्ठ शुद्ध रहता है । तथा वह पुरुष उत्तम धातु, बल और वर्णयुक्त रहता है, उस पुरुषकी सम्पूर्ण इन्द्रियें दृढ़ रहती है और बूढ़ापन शीघ्र नहीं आता, एवं पूरी सौ वर्षकी आयुको भोगता है ॥ ४६ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्न-पण्डित—श्रीरामप्रसादात्मज—विद्यालङ्कारवैद्य—शिवशर्म-विरचित—शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथातः स्वेदविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब स्वेद विधिवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं:—

चतुर्विध स्वेद ।

स्वेदस्तापोपनाहोष्मद्रवभेदाच्चतुर्विधः ।

तापस्वेद, उपनाहस्वेद, ऊष्मस्वेद और द्रव-स्वेद; इन भेदोंसे स्वेद चार प्रकारका होता है ॥—

तापस्वेद ।

तापोऽग्नितप्तवसनफालहस्ततलादिभिः ॥ १ ॥

अग्निसे तपे हुए वस्त्रद्वारा स्वेदन करना तथा लोह-मय फालसे और हस्ततलादिसे स्वेदन करनेको ताप-स्वेद कहते है ।

तथा आदि शब्दसे काष्ठ रेत, घट और कांस्य-पात्रादिसे स्वेदन करना चाहिये ॥ १ ॥

उपनाहस्वेद ।

उपनाहो वचाकिण्वशताह्वादेवदारुभिः ।
धान्यैः समस्तैर्गंधैश्च रास्नैरंडजटामिषैः ॥ २ ॥

१ उपनहनमुपनाहो बन्धनमित्यर्थ इति चन्दनदत्तो हेमाद्रिश्च । उपनह्यते बध्यते चर्मपट्टादिनेत्यन्वर्थनामाऽऽख्योपनाह इति अरुणदत्तः ।

घद्रिक्तलवणैः स्नेहचुक्रतक्रपयःप्लुतैः ।
केवले पवने श्लेष्मसंसृष्टे सुरसादिभिः ॥ ३ ॥
पित्तेन पद्मकाद्यैस्तु साल्वणाख्यैः पुनः पुनः ।
स्निग्धोष्णवीर्यैर्मृदुभिश्चर्मपट्टैरपूतिभिः ॥ ४ ॥
अलाभे वातजित्पत्रकौशेयाऽविकशाटकैः ।
रात्रौ बद्धं दिवा मुंचन्मुंचेद्रात्रौ दिवाकृतम्॥५॥

वच, मद्य, कांजी आदिके नीचे जमा हुआ द्रव्य, सौंफ या शतावर, देवदारु, तिल, अलसी तथा माष आदि धान्य, कूठ, अगर, तगर, सुरसा आदि सब प्रकारके गन्ध द्रव्य, रास्ना, एरंडमूल और मांस इनको लवणयुक्त करके तैल घृतादि, खटाई, छाछ और दूध इनसे आलोडित कर पकाकर उष्ण२केवल वातविकारमें इनका स्वेदन करना हितकारी है । तथा कफयुक्त वातविकारमें पन्द्रहवें अध्यायमें कहे हुए सुरसादि गण युक्त इन्हीं चीजोंसे स्वेदन करना चाहिये । और पित्तयुक्त वातविकारमें पन्द्रहवें अध्यायमें कहे हुए पद्मकादि गण युक्त इन्हीं चीजोंसे स्वेदन करना हितकर है, अथवा पद्मकादि गण युक्त साल्वण नामक स्वेदसे बारंबार स्वेदन करना चाहिये । धन्वंतरिजीने साल्वण स्वेद इस प्रकार कहा है। जैसे—काकोल्यादि गण, वातनाशक गण, सब प्रकारका अम्ल वर्ग, उदकसंचारी और आनूप मांस तथा सब प्रकारके स्नेह लवण मिलाकर सुखोष्ण स्वेद करनेको साल्वण स्वेद कहते है । और इन तीनों प्रकारके उपनाह स्वेदोंमें अधिक लवण, स्नेह, चुक्र, तक्र और दूध भी मिला लेना चाहिये । यह स्वेद द्रव्य पुल्टिसकी तरह पकाकर पट्टी आदिसे बांधनेके कारण इसको उपनाह स्वेद कहते हैं।।

उपनाहस्वेद पुल्टिस बांधनेकी विधि कहते हैं:— पुल्टिस बांधनेके लिये दुर्गन्ध रहित स्निग्ध और उष्णवीर्य मृदु चर्मपट्ट लेना चाहिये । चर्मपट्टके अभावमें वातनाशक एरंडपत्रादि बांधकर उसके ऊपर रेशम या पशमीनेकी पट्टी बांध देनी चाहिये । यह पुल्टिस रात्रिको बांधी जाय तो प्रातःकाल खोल देनी चाहिये और प्रातःकाल बांधी जाय तो रात्रिको खोल देनी चाहिये ॥ २–५ ॥

ऊष्मस्वेदविधि ।

ऊष्मा तूत्कारिकालोष्टकपालोपलपांसुभिः ।
पत्रभंगेन धान्येन करीषसिकतातुषैः ।
अनेकोपायसंतप्तैः प्रयोज्यो देशकालतः ॥६॥

ऊष्मस्वेद अनेक प्रकारसे किया जाता है । जैसे किसी कांजी आदिमें भिगोये हुए वस्त्रको निचोड़कर उस गीले वस्त्रमें अग्निसे गर्म किया हुआ कोई लोष्ट, कपाल, पत्थर, सिकता आदि बांधकर उससे सेंक करना । अथवा यव, माष,एरण्डका बीज, अलसी आदि द्रव्यको कांजी आदिमें पीस, रोटीके समान टिकिया बना गर्म करके स्वेद करना । अथवा किसी लोष्ट कपाल,पांसु आदिको गर्म कर उसपर कांजी डाल उससे जो वाष्प निकले उससे स्वेदन करना । अथवा सम्भालू आदि या अर्कपत्रादि पत्रसमूहको गर्मकर स्वेदन करना । अथवा धान्याम्ल आदि किसी पात्रमें डाला उसमें यव एरंडपत्रादि डाल, उसके नीचे अग्नि जलाकर, पात्रसे निकले हुए वाष्पको निर्वात स्थानमें ऊपर वस्त्र लेकर वाष्प लेना, अथवा गोमयचूर्ण वालुका य तुष इनको वस्त्रमें पोटली बना स्वेदन करना । अथवा घन वस्त्र ऊपर लेकर किसी शय्यापर लेटकर उसके नीचे गर्म किया हुआ सिकता रख उसमें कांजी डालनेसे जो वाष्प निकले वह वाष्प लेना आदि वाष्पस्वेद कहा जाता है। यह (वाष्पस्वेद) देश, काल, दोष, दूष्यादि विचार कर उचित रीतिसे अनेक प्रकारके संतप्त पदार्थोंके वाष्पसे लेना चाहिये ॥ ६ ॥

द्रवस्वेद विधि ।

शिग्रुवीरणकैरंडकारंजसुरसार्जकात् ॥ ७ ॥
शिरीषवासावंशार्कमालतीदीर्घवृंततः ।
पत्रभंगैर्वचाद्यैश्च मांसैश्चाऽनूपवारिजैः ॥ ८ ॥
दशमूलेन च पृथक् सहितैर्वा यथामलम् ।
स्नेहवद्भिः सुराशुक्तवारिक्षीरादिसाधितैः ॥ ९ ॥

कुंभीर्गलंतीर्नाडीर्वा पूरयित्वा रुजार्दितम् ।
वाससाऽऽच्छादितं गात्रं स्निग्धं सिंचेद्यथासुखम्

द्रवद्रव्यको उबालकर उसके द्वारा कुम्भी कलशी या नाड़ीद्वारा वस्त्राच्छादित अंगपर सिंचन करना आदि द्रवस्वेद कहा जाता है । अथवा द्रवद्रव्यमें अवगाहन करना भी द्रवस्वेद है ॥ मुहांजना, वीरण, एरण्ड, करंज, सुरसा, तुलसी, अर्जकतुलसी, शिरीष, बांसा, बांस, आक, चमेली, सोनापाठा, इनके पत्रसमूह उपनाहमें कहे हुए वचादिद्रव्य, अनूप और जल-संचारी मांस ये सब वस्तुएँ एकत्रकर अथवा पृथक् २ यथादोष कल्पना कर दशमूलके साथ मिलाकर इनको स्नेहयुक्त सुरा कांजी जल दूध आदिमें उबालकर किसी घड़े अथवा गागर या नाड़ी अथवा दृती आदिमें भरकर स्वेदनयोग्य पुरुषको तैलादिसे स्निग्ध गात्र कर उसको वस्त्रसे आच्छादित कर सहता२ उस द्रवद्रव्य-से सिंचन करे । सब प्रकारके स्वेद निर्वातस्थानमें करना चाहिये ॥ ७--१० ॥

अवगाहस्वेद ।

तैरेव वा द्रवैः पूर्णं कुंडं सर्वांगगेऽनिले ।
अवगाह्याऽऽतुरस्तिष्ठेदर्शःकृच्छ्रादिरुक्षु च ॥ ११ ॥

द्रवस्वेदमें कहे हुए मुहांजना आदि द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए क्वाथ कांजी आदिसे भरे हुए कुण्डमें सर्वांग वातवाला रोगी बैठे तथा अर्श कृच्छ्रादि रोगवाला भी द्रवपूर्ण कुण्डमें स्थित रहे तो नीरोग होता है । इसी प्रकार अन्य कूपस्वेद, कुटीस्वेद, जेन्ताकस्वेद आदि स्वेदोंकी कल्पना दोष दूष्यादि विचारकर करनी चाहिये ॥ ११ ॥

स्वेदविधि ।

निवातेऽन्तर्बहिः स्निग्धो जीर्णान्नः स्वेदमाचरेत् ।
व्याधिव्याधितदेशर्तुवशान्मध्यवरावरम् ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यको स्वेदन करना हो उसको प्रथम दिनका भोजन जीर्ण होनेपर स्नेहपानद्वारा अन्दरसे और स्नेहाभ्यंगद्वारा बाहरसे स्निग्ध कर निर्वात स्थानमें स्वेदन करे । यह स्वेदन प्रथम दिनका भोजन जीर्ण होनेपर क्षुधासे चैतन्य होनेसे प्रथम कालमें करना चाहिये ।

स्वेदन कर्म व्याधि, रोगी, देश और ऋतुके विचारसे उत्तम अथवा मध्यम या निकृष्ट स्वेदकी कल्पना कर स्वेदन करना चाहिये ॥ १२ ॥

दोषादि भेदसे स्वेद ।

कफार्तो रूक्षणं रूक्षो रूक्षस्निग्धं कफानिले ।
आमाशयगते वायौ कफे पक्वाशयाश्रिते ॥
रूक्षपूर्वं तथा स्नेहपूर्वं स्थानानुरोधतः ॥ १३ ॥

कफार्त मनुष्य विना स्नेहन किये ही रूक्षस्वेद करावे तथा कफवातवाला रोगी रूक्ष और स्निग्ध स्वेदन करावे, अर्थात् यदि रूक्ष पुरुष हो तो स्निग्ध स्वेद करे, स्निग्ध हो तो रूक्षस्वेद करे । अथवा स्थानभेदसे वात-युक्त स्थानमें । स्निग्ध कफयुक्तमें रूक्ष स्वेद करावे ।

यदि आमाशयगत वायु हो तो प्रथम रूक्ष-स्वेद पीछे स्निग्धस्वेद करावे । यदि पक्वाशयस्थित कफ हो तो प्रथम स्निग्धस्वेद पश्चात् रूक्षस्वेद कराना चाहिये । क्योंकि स्थानके अनुरोधसे आमाशय कफका स्थान है, इस कारण प्रथम रूक्षस्वेद कर फिर आगन्तुक वातको स्निग्धस्वेदसे शमन करना चाहिये और पक्वाशय वायुका स्थान है । इसमें कफ आगन्तुक होनेसे प्रथम रूक्ष, पीछे स्निग्धस्वेद करना चाहिये । क्योंकि स्थानीयदोषका प्रतीकार करके फिर आगन्तुक दोषका शमन करना चाहिये ॥ १३ ॥

---

१ शयनस्याधोविस्ताराद्द्विगुणखाते कूपे वातहर-दारुकरीषाद्यन्यतरपूर्णदग्धे विगतधूमे स्वास्तीर्णशयनस्थं स्वेदयेदिति कूपस्वेदः । कुटीं नात्युच्चविस्तारां वृत्ता-मच्छिद्रामुपनाहद्रव्यकल्कघनप्रादिग्धकुड्यां सर्वतो विधू-मप्रदीप्तखदिरांगारपूर्णहसंतिकासमूहपरिवृतां विधाय तन्म-ध्यस्थितशय्यास्थं स्वेदयेदिति कुटीस्वेदः ।

"पद्मोत्पलादिभिः सक्तुं पिण्ड्या वाऽऽच्छाद्य चक्षुषी । शीतैर्मुक्तावलीपद्ममुकुलोत्पलभाजनैः । मुहुः करैश्च सजलैः स्विद्यतो हृदयं स्पृशेत् ॥" इत्यरुणदत्तः ॥

वंक्षणादिकोंमें अल्पस्वेदादिकी योजना।

अल्पं वंक्षणयोः स्वल्पं दृङ्मुष्कहृदये न वा ॥

यदि वंक्षणकी सन्धियोंमें स्वेदन करना हो तो अल्पस्वेद करना चाहिये। यदि दृष्टि, अंडकोष या हृदयपर स्वेद करना हो तो अत्यन्त हलका स्वेद करे, अथवा स्वेदन भी नहीं करना चाहिये। यदि आवश्यक हो तो मृदुस्वेद करना चाहिये ॥ १४ ॥

ठीक स्वेदितका आचार।

शीतशूलक्षये स्विन्नो जातेऽगानां च मार्दवे।
स्याच्छनैर्मृदितः स्नातस्ततः स्नेहविधिं भजेत्

जब स्वेदन हो जाने पर शीत और शूलादि रोग नष्ट हो जायँ और अंगोंमें मृदुता आ जाय तो धीरे धीरे अंगोंका मर्दन कर उष्ण जलसे स्नान करे और स्नेहपानमें कही हुई पथ्यविधिका सेवन करे ॥ १५ ॥

स्वेदका अतियोग।

पित्ताऽस्रकोपतृण्मूर्छास्वरांगसदनभ्रमाः।
संधिपीडाज्वरश्यावरक्तमंडलदर्शनम् ॥ १६ ॥
स्वेदाऽतियोगाच्छर्दिश्च तत्र स्तंभनमौषधम्।
विषक्षाराऽग्न्यतीसारच्छर्दिमोहातुरेषु च ॥ १७ ॥

स्वेदनके अतियोगसे रक्तपित्तका प्रकोप, तृषा, मूर्छा, स्वरका बैठना, अंगसाद होना, भ्रम, सन्धियोंमें पीड़ा, ज्वर, शरीरपर नीले और लाल मण्डलोंका दिखायी देना और छर्दि; ये लक्षण होते है। ऐसा होनेपर स्वेदके रोकनेवाली स्तंभन ओषधियोंका प्रयोग करना चाहिये तथा विषविकार, क्षारदग्ध, अग्निदग्ध, अतिसार, छर्दि और मोहसे पीडित रोगियोंको भी स्तम्भन ओषधिका प्रयोग करना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

स्वेदन और स्तम्भन द्रव्योंका निरूपण।

स्वेदनं गुरु तीक्ष्णोष्णं प्रायः स्तंभनमन्यथा।
द्रवस्थिरसरस्निग्धरूक्षसूक्ष्मं च भेषजम्।
स्वेदनं स्तंभनं श्लक्ष्णं रूक्षसूक्ष्मसरद्रवम् ॥ १८ ॥
प्रायस्तिक्तं कषायं च मधुरं च समासतः ॥ १९ ॥

गुरु, तीक्ष्ण और उष्ण स्वभावकी अधिकतावाले द्रव्य स्वेदन होते हैं। इससे विपरीत लघु, मन्द और शीतगुणकी अधिकतावाले द्रव्योंको स्तंभन कहते हैं। जो द्रव्य द्रव, स्थिर, सर, स्निग्ध, रूक्ष और सूक्ष्म गुणोंवाला हो वह स्वेदन होता है। जो द्रव्य श्लक्ष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म, सर और द्रवगुणवाला होता है वह स्तम्भन होता है ॥

तिक्त, कषाय और मधुररसप्रधान द्रव्य सामान्यरूपसे स्तंभन होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

स्तम्भित और अतिस्तम्भितके लक्षण।

स्तंभितः स्याद्बले लब्धे यथोक्तामयसंक्षयात्
स्तंभत्वक्स्नायुसंकोचकंपहृद्वाग्घनुग्रहैः ॥
पादोष्ठत्वक्करैः श्यावैरतिस्तंभितमादिशेत् ॥ २० ॥

जब स्वेदके अतियोगजनित रोग दूर होकर शरीरमें बलकी प्राप्ति हो तो ठीक स्तम्भितके लक्षण जानना चाहिये ॥

स्तम्भनके अतियोगसे शरीरका जकड़ना, त्वचा और स्नायुका संकोच, कम्प, हृदयका बद्ध सा होना, वाणीकी रुकावट सा होना, हनुग्रह तथा पाद, होठ, त्वचा और हाथोंका वर्ण श्याम सा हो जाना; ये लक्षण होते है ॥ २० ॥

अस्वेद्य रोगी।

न स्वेदयेदतिस्थूलरूक्षदुर्बलमूर्छितान् ॥ २१ ॥
स्तंभनीयक्षतक्षीणक्षाममद्यविकारिणः।
तिमिरोदरवीसर्पकुष्ठशोषाढ्यरोगिणः ॥ २२ ॥
पीतदुग्धदधिस्नेहमधून्कृतविरेचनान्।
भ्रष्टदग्धगुदग्लानिक्रोधशोकभयान्वितान् ॥ २३ ॥
क्षुत्तृष्णाकामलापांडुमेहिनः पित्तपीडितान्।
गर्भिणीं पुष्पितां सूतां मृदु चाऽत्ययिके गदे २४

अतिस्थूल, रूक्ष, दुर्बल, मूर्छित, स्तम्भन करने योग्य, क्षतरोगी, क्षीण, कृश, मद्यविकार युक्त, तिमिररोगी, उदररोगी, विसर्परोगी, कुष्ठरोगी, शोषरोगी और वातरक्तरोगवालेको स्वेदन नहीं कराना चाहिये। तथा जिन पुरुषोंने तत्काल दूध दही, स्नेह या मधु पान किया हो अथवा विरेचन कराया हो उनको भी स्वेदन नहीं कराना चाहिये।

एवं अतिसार या क्षार आदि लगानेसे जिनकी गुदा बाहर निकली हो या विदग्ध हो उनको तथा ग्लानि, क्रोध और भयसे युक्त पुरुषोंको अथवा क्षुधा, तृषा, कामला, पाण्डु और प्रमेह इनसे पीडित पुरुषोंको तथा गर्भिणी, ऋतुमती और प्रसूता स्त्रीको भी स्वेदन नहीं कराना चाहिये ॥

यदि किसी रोगवश स्वेदन कराना अत्यावश्यक हो तो मृदुस्वेद कराना चाहिये ॥ २१–२४ ॥

स्वेदन करने योग्य रोगी ।

श्वासकासप्रतिश्यायहिध्माऽऽध्मानविबंधिषु ।
स्वरभेदाऽनिलव्याधिश्लेष्मामस्तंभगौरवे॥ २५॥
अङ्गमर्दकटीपार्श्वपृष्ठकुक्षिहनुग्रहे ।
महत्त्वे मुष्कयोः खल्यामायामे वातकंटके २६॥
मूत्रकृच्छ्रार्बुदग्रंथिशुक्राघाताढ्यमारुते ।
स्वेदं यथायथं कुर्यात्तदौषधविभागतः ॥ २७ ॥

जो मनुष्य श्वास, कास, प्रतिश्याय, हिचकी, आध्मान, विबन्ध, स्वरभेद, वातरोग, कफरोग, आमवात, स्तम्भ, भारीपन, अंगमर्द, कटिशूल, पार्श्व-शूल, पृष्ठशूल, कुक्षिशूल, हनुग्रह, अंडवृद्धि, खल्ली-रोग, वातायाम, वातकंटक, मूत्रकृच्छ, अर्बुद, ग्रन्थि, शुक्राघात और उरुस्तम्भ, इन व्याधियोंमेंसे किसी व्याधिसे पीडित हों तो उसके रोगानुसार औषधिकी कल्पना कर यथादोष स्वेदन करना चाहिये ॥ २५–२७ ॥

स्थलविशेषसे अनाग्नेय स्वेद तथा उसके लक्षण ।

स्वेदो हितस्त्वनाग्नेयो वाते मेदःकफावृते।
निवातं गृहमायासो गुरुप्रावरणं भयम् ॥२८॥
उपनाहाऽऽहवक्रोधभूरिपानं क्षुधातपः ।

यदि वायु, मेद और कफसे आवृत हो तो अग्नि सम्बन्धसे रहित स्वेदन करना हितकारक होता है । वह स्वेद निर्वात स्थानमें रहनेसे, व्यायाम करनेसे, भारी कम्बल आदि वस्त्र ओढ़नेसे और अचानक भय भीत होनेसे हो जाता है ।

तथा विना अग्निपर तपाये हुए उष्ण स्वभाववाले द्रव्योंसे स्वेद, युद्ध, क्रोध, अधिक मद्यपान, क्षुधा और आतप इनके द्वारा स्वेदन करना भी मेदकफा-वृत वातमें हितकारी होता है ॥ २८ ॥

शुद्धिसे दोषोंका निर्हरण ।

स्नेहक्लिन्नाः कोष्ठगा धातुगा वा
स्रोतोलीना ये च शाखाऽस्थिसंस्थाः ।
दोषाः स्वेदैस्ते द्रवीकृत्य कोष्ठं
नीताः सम्यक्शुद्धिभिर्निर्ह्रियन्ते ॥ २९ ॥

जो दोष स्नेहन करनेसे क्लेदित होकर कोष्ठोंमें अथवा धातुओंमें जाकर अथवा स्रोतोंमें लीन होगये हों , अथवा शाखा और अस्थियोंके आश्रित हों वे सब दोष स्वेदोंके द्वारा द्रवीभूत कर कोष्ठमें लाकर वमन विरेचनादि शोधन क्रम द्वारा यथार्थ-रूपसे हरण किये जा सकते है ॥ २९ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्य-रत्न-पण्डित-श्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कार-वैद्य-शिवशर्म्मविरचित-शिवदीपिकाख्यव्याख्या-सहितायां सूत्रस्थाने सप्तदशोऽध्याय: १७

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथातोवमनविरेचनविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः

अब हम वमन विरेचनकी विधिवाले अध्यायकी व्याख्या करते है :—

वमन विरेचनका निर्देश ।

कफे विदध्याद्वमनं संयोगे वा कफोल्वणे ।
तद्वद्विरेचनं पित्ते–

केवल कफके रोगमें वमन करावे । अथवा जिन अन्य वात या पित्तके साथ मिले कफप्रधान रोग हों उनमें भी वमन कराना चाहिये । इसी प्रकार केवल

पित्तके रोगमें अथवा पित्तप्रधान अन्य संयोगज रोगोंमें भी विरेचन कराना चाहिये ॥-

वम्य रोगी ।

-विशेषेण तु वामयेत् ॥ १ ॥
नवज्वरातिसाराधःपित्तासृग्राजयक्ष्मणः ।
कुष्ठमेहाऽपचीग्रंथिश्लीपदोन्मादकासिनः ॥
श्वासहृल्लासवीसर्पस्तन्यदोषोर्ध्वरोगिणः ॥ २ ॥

विशेषरूपसे इन रोगोंमें वमनद्वारा शोधन करना चाहिये । जैसे-नवीन ज्वर, अतिसार, अधोगामी रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, कुष्ठ, प्रमेह, अपची, ग्रन्थी, श्लीपद, उन्माद, कास, तमकश्वास, हृल्लास, वीसर्प, स्तन्यविकार और ऊर्ध्वगत रोगोंमें यदि शोधन करना हो तो वमन कराना चाहिये ॥१॥२॥

वमन करानेके अयोग्य रोगी ।

अवम्या गर्भिणी रूक्षः क्षुधितो नित्यदुःखितः ।
बालवृद्धकृशस्थूलहृद्रोगिक्षतदुर्बलाः ॥ ३ ॥
प्रसक्तवमथुप्लीहतिमिरक्रिमिकोष्ठिनः ।
ऊर्ध्वप्रवृत्तवाय्वस्रदत्तबस्तिहतस्वराः ॥ ४ ॥
मूत्राघात्युदरी गुल्मी दुर्वमोऽत्यग्निरर्शसः ।
उदावर्तभ्रमाऽष्ठीलापार्श्वरुग्वातरोगिणः ॥ ५ ॥

सगर्भा स्त्री, रूक्ष,क्षुधातुर, नित्यदुःखित, बालक, वृद्ध, कृश, अतिस्थूल, हृद्रोगी, क्षतरोगी, दुर्बल, वमनरोगी, प्लीहरोगी, तिमिररोगी, कृमिकोष्ठवाला, ऊर्ध्वगत वात और ऊर्ध्वगत रक्त रोगवाला, बस्तिप्रयोगके अनन्तर, स्वरभंगरोगी, मूत्राघातरोगी, उदररोगी, गुल्मरोगी, जिसको वमन करानेसे दुःख होता हो, तीक्ष्णाग्निवाला, अर्शरोगी, उदावर्तरोगी, भ्रमरोगी, अष्ठीलारोगी, पार्श्वशूलवाले रोगी और वातरोगी; इन सबको वमन नहीं कराना चाहिये ३-५॥

विषादिकोंमें वमन ।

ऋते विषगराऽजीर्णविरुद्धाऽभ्यवहारतः ॥ ६ ॥

परन्तु इन अवम्य पुरुषोंमें भी यदि किसीने विष अथवा गर (कृत्रिम विष) खाया हो उसको वमन करा देनेका निषेध नहीं है, अर्थात् स भुक्त विष निकाल देनेके लिये वमन करा देना चाहिये तथा अलसकादि अजीर्ण या विरुद्धाशन होनेपर भी वमन करा देना अनुचित नहीं है ॥ ६ ॥

वमनादिका निषेध ।

प्रसक्तवमथोः पूर्वे प्रायेणामज्वरोऽपि च ।
धूमान्तैः कर्मभिर्वर्ज्याः सर्वैरेव त्वजीर्णिनः॥७॥

सगर्भा स्त्री, रूक्ष, क्षुधित, नित्यदुःखित, बाल, वृद्ध, कृश, स्थूल, हृद्रोगी, क्षती और दुर्बल तथा आमज्वरी इन सबको प्रायः गंडूषादि वमन, विरेचन, नस्य, धूमपान, बस्तिकर्म ये सब ही नहीं करने चाहिये । यहां प्रायः शब्दसे विकल्प जानना चाहिये । जैसे-गर्भिणीको निरूहणका निषेध नहीं है । ऐसी आवश्यक अवस्थाओंमें गंडूषादि किये जा सकते हैं । तथा अजीर्णरोगीको वमनादि कर्म और गंडूषादि कर्म नहीं करना चाहिये । यहांपर भी अलसक और वमन कर्ममें कथित सद्योऽजीर्णका निषेध नहीं है ॥७॥

विरेचनसाध्य रोगी ।

विरेकसाध्या गुल्मार्शोविस्फोटव्यंगकामलाः ।
जीर्णज्वरोदरगरच्छर्दिप्लीहहलीमकाः ॥ ८ ॥
विद्रधिस्तिमिरं काचः स्यंदः पक्वाशयव्यथा ।
योनिशुक्राशया रोगाः कोष्ठगाः कृमयो व्रणाः॥९
वातास्रमूर्ध्वगं रक्तं मूत्राघातः सकृद्ग्रहः ।
वम्याश्च कुष्ठमेहाद्याः-

जो रोग विरेचन कराकर शमन हो सकते हैं उनको कहते है । जैसे-गुल्म, अर्श, विस्फोटक, व्यंग, कामला, जीर्णज्वर, उदररोग, गरविकार, छर्दि, प्लीहरोग, हलीमक, विद्रधि, तिमिररोग, काचबिन्दु, नेत्राऽभिष्यन्द, पक्वाशयके रोग, योनिरोग, शुक्ररोग, कोष्ठगतरोग, कृमिरोग, व्रण, वातरक्त, ऊर्ध्वगत रक्त, मूत्राघात, मलका विबन्ध, कुष्ठ, प्रमेह, अपची, ग्रन्थि, श्लीपद, उन्माद, कास, श्वास, हृल्लास, वीसर्प, स्तन्यदोष और ऊर्ध्वगतरोग; इन सबके शमनार्थ विरेचन कराना हितकारी है ८॥९-

विरेचनके अयोग्य मनुष्य ।

–न तु रेच्यो नवज्वरी ॥ १० ॥
अल्पाऽग्न्यधोगपित्तास्रक्षतपाय्वतिसारिणः ।
सशल्याऽऽस्थापितक्रूरकोष्ठाऽतिस्निग्धशोषिणः

परन्तु नवीनज्वरवालेको विरेचन नहीं कराना चाहिये, क्योंकि नवीनज्वरमें अपक्व दोष न निकलकर हानिकारक हो जाते है। तथा अल्पाग्निवाले, अधोगतरक्तपित्त रोगी, गुदक्षतरोगी, अतिसाररोगी, तीर आदि शल्ययुक्त, आस्थापित, क्रूरकोष्ठ, अतिस्निग्ध और शोषरोगी; इनको विरेचन नहीं कराना चाहिये, क्योंकि अल्पाग्निबलमें औषधका वेग सहन नहीं हो सकता। अधोगत रक्तपित्त या अतिसारमें रेचनकी अतिप्रवृत्तिसे प्राणके नाशका भय है। क्षतगुदवाले मनुष्यको रेचन करानेसे प्राणनाशक पीड़ा होती है। शल्यके क्षतमें वातवृद्धि होकर प्राणनाशका भय है। आस्थापनबस्तिके अनन्तर औषधवेग असह्य होनेसे बलकी हानिका भय है। क्रूरकोष्ठवालेको औषधि निष्फल होकर हानि करती है। अतिस्निग्धको रेचनका अतियोग होनेसे हानि होती है। शोषरोगीका मलबल नाश होनेसे प्राण भय है ॥१०॥११॥

वमन करानेकी विधि ।

अथ साधारणे काले स्निग्धस्विन्नं यथाविधि ।
श्वोवम्यमुत्क्लिष्टकफं मत्स्यमाषतिलादिभिः॥१२॥
निशां सुप्तं सुजीर्णान्नं पूर्वाह्णे कृतमंगलम् ।
निरन्नमीषत्स्निग्धं वा पेयया पीतसर्पिषम् १३॥
वृद्धबालाबलक्लीबभीरून्रोगानुरोधतः ।
आकंठं पायितान्मद्यं क्षीरमिक्षुरसं रसम्॥१४॥
यथाविकारविहितां मधुसैंधवसंयुताम् ।
कोष्ठं विभज्य भैषज्यमात्रां मंत्राभिमंत्रिताम्१५

श्रावण, कार्तिक और चैत्र इन साधारण समयोंमें जिनको वमन कराना हो उनको यथाविधि स्नेहन तथा स्वेदनके अनन्तर जब देखे कि अब इसको कल वमन करायेंगे और मत्स्य, माष, तिल आदिकोंके खानेसे कफ उत्क्लेशित हो गया है तो वह रोगी रात्रिको आरामसे सो जावे और प्रातःकाल जब प्रथम दिनका अन्न जीर्ण हो चुका हो तो मंगल कर्म करके विना अन्नके घृत मिली हुई पेया पीकर किंचित् स्निग्ध हुए मनुष्यको वमन द्रव्य पिलावे। यदि वह वृद्ध, बालक, निर्बल, क्लीब, या भीरु हो तो उसको दोषव्याधिके अनुसार मद्य अथवा दूध या गन्नेका रस या मांसरस कण्ठपर्यन्त भरपेट पिलाकर विकारके अनुसार तथा लघु मध्य आदि कोष्ठका विचार कर उसके अनुसार मधु, सैन्धव और नमकयुक्त वमनद्रव्यकी मात्रा कल्पना कर आगे लिखे मंत्रसे अभिमन्त्रित करके पिलावे ॥ १२—१५ ॥

अभिमंत्रित करनेका मंत्र ।

"ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेंद्रभूचंद्रार्कोऽनिलाऽनलाः ।
ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसंघाश्च पांतु वः१६॥
रसायनमिवर्षीणाममराणामिवाऽमृतम् ।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥१७॥
ॐ नमो भगवते भैषज्यगुरवे वैदूर्यप्रभराजाय तथागतायाऽर्हते सम्यक्संबुद्धाय । तद्यथा । ॐ भैषज्ये भैषज्ये महाभैषज्ये समुद्गते स्वाहा॥"

प्रतीक्षापूर्वक वमन ।

प्राङ्मुखं पाययेत्–
–पीतं मुहूर्तमनुपालयेत् ।
तन्मना जातहृल्लासप्रसेकश्छर्दयेत्ततः ॥ १८ ॥
अंगुलिभ्यामनायस्तो नालेन मृदुनाऽथवा ।
गलताल्वरुजान्वेगानप्रवृत्तान् प्रवर्त्तयन् ।
प्रवर्तयन् प्रवृत्तांश्च जानुतुल्यासने स्थितः १९॥

इस प्रकार अभिमंत्रित कर रोगीको पूर्वाभिमुख बिठाकर पिलावे। और फिर एक मुहूर्ततक रोगी तन्मन अर्थात् वमन होनेमें मन लगाकर प्रतीक्षा करे। तदनन्तर जब जी मचलाने लगे और मुखसे लार गिरने लगे तो विना प्रयास वमन कर देवे। यदि स्वयं वमन प्रवृत्त न हो तो कण्ठतक अपनी दो अंगुलियें पहुँचाकर या एरंड आदिके पत्रकी डंडी या

ऐसी ही अन्य मृदुबाल लेकर उससे गल और तालुको स्पर्श कर अप्रवृत्त वेगोंको प्रवृत्त करे। दोनों जानुओंके बल बैठा हुआ रोगी प्रवृत्त हुए वमनोंको छर्दन करता रहे ॥ १६-१९ ॥

वमन करनेवाले पुरुषके पार्श्वादिका धारण।

उभे पार्श्वे ललाटं च वमतश्चाऽस्य धारयेत्। प्रपीडयेत्तथा नाभिं पृष्ठं च प्रतिलोमतः॥२०॥

पार्श्ववर्ती परिचारक वमन करनेवाले मनुष्यके दोनों पार्श्व और मस्तकको पकड़कर धारण किये रहे। तथा उसकी नाभि और पीठको वमनकी ओरको पीड़न करता रहे ॥ २० ॥

दोषभेदसे वमनद्रव्य कल्पना।

कफे तीक्ष्णोष्णकटुकैः पित्ते स्वादुहिमैरिति २१ वमेत् स्निग्धाम्ललवणैः संसृष्टे मरुता कफे। पित्तस्य दर्शनं यावच्छेदो वा श्लेष्मणो भवेत्२२

कफमें तीक्ष्ण, उष्ण और कटु द्रव्योंसे वमन कराना चाहिये। पित्तमें मधुर और शीतल द्रव्योंसे वमन कराना चाहिये। और वातयुक्त कफमें स्निग्ध अम्ल और लवण द्रव्योंसे वमन कराना चाहिये।

जबतक पित्त दिखायी दे अथवा कफका उच्छेद हो जाय तबतक वमन करना चाहिये ॥ २१॥२२ ॥

हीनवेगमें उपाय।

हीनवेगः कणाधात्रीसिद्धार्थलवणोदकैः। वमेत्पुनः पुनः-

यदि वमन यथार्थरूपसे न हुई हो और वमनके हीन होनेके कारण दोष शेष रह गया हो तो पीपल, आमले, सर्सों और लवण मिलाकर गर्म जल पीकर बार२ वमन करे ॥-

वमनका अयोग।

-तत्र वेगानामप्रवर्तनम् ॥ २३ ॥ प्रवृत्तिः सविबंधा वा केवलस्यौषधस्य वा। अयोगस्तेन निष्ठीवकंडूकोठज्वरादयः ॥ २४ ॥

वमनके प्रवृत्त न होनेको अयोग कहते हैं। यदि वमन प्रवृत्त भी हो जाय परन्तु दोषका विबन्ध न खुले उसको भी वमनका अयोग कहते है। एवं यदि केवल औषधिमात्र निकल जाय तो दोष वैसे ही रह जायँ उसको भी वमनका अयोग ही कहते हैं। वमनका अयोग होनेसे मुखसे लार गिरना, कण्डू, कोठ और ज्वरादिरोग उत्पन्न हो जाते हैं॥२३॥२४॥

सम्यक्योग और अतियोगके लक्षण।

निर्विबंधं प्रवर्तंते कफपित्ताऽनिलाः क्रमात्। सम्यग्योगे-

-अतियोगे तु फेनचन्द्रकरक्तवत्॥ २५॥ वमितं क्षामता दाहः कण्ठशोषस्तमो भ्रमः। घोरा वाय्वामया मृत्युर्जीवशोणितनिर्गमात्२६

वमनका सम्यक् योग होने पर प्रथम कफ, फिर पित्त, फिर वायु, क्रमसे निस्संग होकर प्रवृत्त हो जाते है अर्थात् निकल जाते हैं। " तथा शरीरमें लघुत्व और निर्मल इन्द्रिय आदि शुभ लक्षण हो जाते है " ॥

वमनका अतियोग होनेपर वमनमें फेन, चन्द्रिका और रक्त आने लगता है। तथा वमन करनेवाला पुरुष क्षीण हो जाता है। और उसके शरीरमें दाह, कंठशोष, नेत्रोंके आगे अन्धकार, भ्रम और घोर वायुके रोग उत्पन्न हो जाते है। यदि वमनके अतियोगमें जीवसंज्ञक रक्त निकल जाय तो मृत्यु ही हो जाती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

सम्यक् वमितको हितोपचार।

सम्यग्योगेन वमितं क्षणमाश्वास्य पाययेत्। धूमत्रयस्यान्यतमं स्नेहाचारमथाऽऽदिशेत् २७॥

ठीक वमन हो जानेके अनन्तर क्षणमात्र आराम कराकर स्निग्ध, मध्य और तीक्ष्ण, इन तीन प्रकारके धूमोंमेंसे जो उचित हो वह धूमपान करावे। इसके अनन्तर जैसे स्नेहपान कराये हुए रोगीके लिये सोलहवें अध्यायमें हित आचारका कथन कर आये हैं उन सब आचारोंका सेवन करावे ॥ २७ ॥

ततः सायं प्रभाते वा क्षुद्वान् स्नातः सुखांबुना। भुञ्जानो रक्तशाल्यन्नं भजेत्पेयादिकं क्रमम्॥२८॥

इसके अनन्तर सायंकाल अथवा पूर्वाह्नमें सुखोष्ण जलके साथ स्नान करनेके अनन्तर क्षुधा चैतन्य होने पर लाल शालिचावलोंसे बनायी हुई पेयादिका भोजन करते हुए पेयादिक्रमका सेवन करे ॥ २८ ॥

पेयादि क्रम।

पेयां विलेपीमकृतं कृतं च
यूषं रसं त्रीनुभयं तथैकम् ।
क्रमेण सेवेत नरोऽन्नकालान्
प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥ २९ ॥

प्रधान शुद्धि, मध्यशुद्धि और अवरशुद्धि, इन भेदोंसे तीन प्रकारकी शुद्धि होती है । इनमें पेयादि क्रमकी विधि इस प्रकार है—प्रधान शुद्धिमें पेयादिकोंको तीन २ अन्नकालोंमें भोजन करे । मध्यशुद्धिमें दो दो और अवरशुद्धिमें एक २ कालमें पेयाआदि सेवन करे । जैसे—प्रधान शुद्धिसे शुद्ध हुआ मनुष्य एक दिनके दोनों अन्नकालोंमें और दूसरे दिन प्रथम अन्नकालमें पेयापान करे, फिर चौथे अन्नकालमें अर्थात् दूसरे दिन सायंकाल और तीसरे दिनके दोनों समय विलेपीका आहार करे । इसी प्रकार चौथे दिन दोनों समय और पांचवें दिन मध्याह्नके समय इन तीन अन्नकालोंमें विना घृतादिसे संस्कार किया हुआ शुद्ध शालिचावलोंका भात और मुद्गयूष लवणादिसे संस्कार किया हुआ मिलाकर भोजन करे । पांचवें दिनके सायंकाल और छठे दिनके दोनों समय इन तीन कालोंमें संस्कार किया हुआ रस और शालिचावलोंका भात सेवन करे । तदनन्तर सातवें दिन प्रकृति अनुसार भोजन करना चाहिये।

जैसे—प्रधान शुद्धिमें तीन समय पेया और तीन समय विलेपी आदि कहे है उसी प्रकार मध्यशुद्धिमें दो दो समय पेयादि सेवन करे । जैसे—प्रथम दिन दोनों समय पेया, दूसरे दिन दोनों समय विलेपी, तीसरे दिन दोनों समय असंस्कृत भात और लवणादिसंस्कृत यूष, चौथे दिन मांस रसादिरस, पांचवें दिन प्रकृति अनुसार भोजन करना चाहिये ।

अवर शुद्धिमें प्रथम अन्नकालमें पेया, दूसरे अन्नकालमें विलेपी, तीसरे अन्नकालमें हलका भात और यूष, चौथे अन्नकालमें रस आदि और पांचवें अन्नकालमें स्वाभाविक हलका भोजन करना चाहिये ॥ २९ ॥

दृष्टान्त ।

यथाऽणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः
संधुक्ष्यमाणो भवति क्रमेण।
महान् स्थिरः सर्वपचस्तथैव
शुद्धस्य पेयादिभिरंतराग्निः ॥ ३० ॥

जैसे—बहुत अल्प अग्नि तृण सूखे गोवर आदि लगाकर चैतन्य करके धीरे २ क्रमसे तिणके छोटी लकड़ी आदि लगाते हुए अग्नि महान् और स्थिर होकर बड़े २ काष्ठादिकोंके जारण करनेमें समर्थ हो जाती है, वैसे ही वमनादिसे शुद्ध शरीरवाले मनुष्यकी जठराग्नि पेयादिक्रमसे वृद्धिको प्राप्त हो स्थिर और बलवाली होकर सब प्रकारके खाद्य पदार्थोंको पाचन करनेमें समर्थ होजाती है ॥ ३० ॥

वमनादि वेगोंकी संख्या ।

जघन्यमध्यप्रवरे तु वेगा-
श्चत्वार इष्टा वमने षडष्टौ ।
दशैव ते द्वित्रिगुणा विरेके
प्रस्थस्तथा स्याद्द्विचतुर्गुणश्च ॥ ३१ ॥

वमनमें वमनके चार वेग होना निकृष्टशुद्धि कही जाती है । वमनके छे वेग होना मध्यशुद्धि कही जाती है । और उत्तमशुद्धिमें वमनके आठ वेग होते है ।

विरेचनमें रेचनके (१०) दस वेग अवर, बीस (२०) वेग मध्य और (३०) तीसवेग उत्तम होते हैं। यह तो हुआ वेगोंकी संख्याका क्रम और विरिक्तमल तोलमें एक प्रस्थ हो तो अवर, दो प्रस्थ मध्यम और चार प्रस्थ मलका निकलना उत्तम शुद्धि कही जाती है ॥ ३१ ॥

वमन विरेचनमें मलनिकलनेका श्रेष्ठ क्रम।

पित्तावसानं वमनं विरेका-
दर्धं कफांतं च विरेकमाहुः ।

द्वित्रान् सविट्कानपनीय वेगान्
मेयं विरेके वमने तु पीतम् ॥ ३२ ॥

वमनमें प्रथम मल, फिर कफ, फिर पित्तका आना श्रेष्ठ होता है। विरेचनमें प्रथम मल, फिर पित्त और अन्तमें कफका आना श्रेष्ठ होता है। तथा वमनमें वान्तमल विरिक्त मलके मानसे आधा होना चाहिये। अर्थात् वान्तमल आधसेर अवर, एकसेर मध्य और दो सेर प्रवर कहा जाता है ॥

विरेचनमें पहले मलवाले दो या तीन वेगोंको छोड़कर बाकी वेगोंकी संख्या करनी चाहिये। और वमनमें पी हुई औषधिके निकल जानेके अनन्तर वेगोंकी संख्या करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

विरेचनका क्रम।

अथैनं वामितं भूयः स्नेहस्वेदोपपादितम्।
श्लेष्मकाले गते ज्ञात्वा कोष्ठं सम्यग्विरेचयेत् ३३

इस प्रकार वमन करानेके अनन्तर उस पुरुषको फिर स्नेहन और स्वेदन करके कफका समय निकल जानेपर मृदु, मध्य और क्रूर कोष्ठके अनुसार कोष्ठका ज्ञान कर कोष्ठानुसार विरेचन औषधिका प्रयोग कर विरेचन करावे ॥ ३३ ॥

मृदु और क्रूर कोष्ठ।

बहुपित्तो मृदुः कोष्ठः क्षीरेणाऽपि विरेच्यते।
प्रभूतमारुतः क्रूरः कृच्छ्राच्छ्यामादिकैरपि ३४

अधिक पित्तवाले मनुष्यका कोष्ठ मृदु होता है। मृदु कोष्ठवालेको दूध पीनेसे भी विरेचन हो जाता है॥

अधिक वातवाले मनुष्यका कोष्ठ क्रूर होता है। क्रूर कोष्ठवाले पुरुषको निशोथ, दन्ती, आदि द्रव्योंसे भी कठिनतासे रेचन होता है ॥ ३४ ॥

पित्तादिमें विरेचनद्रव्य।

कषायमधुरैः पित्ते विरेकः कटुकैः कफे।
स्निग्धोष्णलवणैर्वायौ–

आरग्वध आदि कषाय तथा मधुर द्रव्योंसे पित्तमें विरेचन कराना चाहिये।

कटु और उष्ण द्रव्योंसे कफकी अधिकतामें विरेचन कराना चाहिये। और स्निग्ध, उष्ण, लवण द्रव्योंसे वाताधिक्यमें विरेचन कराना चाहिये ॥–

अप्रवृत्ति और अल्पप्रवृत्तिमें उपाय।

–अप्रवृत्तौ तु पाययेत्॥ ३५॥
उष्णांबु स्वेदयेदस्य पाणितापेन चोदरम्।
उत्थानेऽल्पे दिने तस्मिन्भुक्त्वाऽन्येद्युःपुनःपिबेत्

यदि विरेचनकी प्रवृत्ति न हो तो गर्म जल पीना चाहिये और हाथको अग्निपर गर्मकर उस हाथसे उदरपर सेक (स्वेद) करे ॥

यदि विरेचनका वेग बहुत अल्प हो तो उस दिन भोजन कर ले, दूसरे दिन पुनः रेचक द्रव्य पीकर विरेचन करे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अदृढ़ स्नेहकोष्ठवाले पुरुषका दसदिन उपरान्त विरेचनादि क्रम।

अदृढस्नेहकोष्ठस्तु पिबेदूर्ध्वं दशाहतः।
भूयोऽप्युपस्कृततनुः स्वेदस्नेहैर्विरेचनम् ॥
यौगिकं सम्यगालोच्य स्मरन्पूर्वमतिक्रमम् ३७॥

यदि कोष्ठका दृढ़रूपसे स्नेहन न हुआ हो तो दसदिन पर्यन्त स्नेहन और स्वेदन कर शरीरका यथार्थ संस्कार करके फिर विरेचक औषध मात्रादिक्रमसे पिलावे। और पहले विरेचनके अयोगको स्मरण रखते हुए औषधयोग और मात्रा विचारकर पिलावे, जिससे इस वार ठीक विरेचन हो जाय ॥ ३७ ॥

रेचनके अयोग और योग।

हृत्कुक्ष्यशुद्धिररुचिरुत्क्लेशः श्लेष्मपित्तयोः ३८॥
कण्डूर्विदाहः पिटिका पीनसो वातविड्ग्रहः।
अयोगलक्षणम्–
–योगो वैपरीत्ये यथोदितात् ॥ ३९ ॥

हृदय और कुक्षियोंमें भारीपन, अरुचि, पित्त और कफका उत्क्लेश, कण्डू, विदाह, पिटिका, पीनस, वात और विष्ठाकी रुकावट; ये लक्षण विरेचनके अयोगसे होते हैं।

इससे विपरीत अर्थात् हृदयकी शुद्धि, कुक्षियोंमें हलकापन, अन्नपर रुचि, चित्तकी प्रसन्नता आदि शुभलक्षण विरेचनके ठीक योग होनेसे होते हैं ३८।३९।

विरेचनका अतियोग ।

विट्पित्तकफवातेषु निःसृतेषु क्रमात्स्रवेत् ।
निःश्लेष्मपित्तमुदकं श्वेतं कृष्णं सलोहितम् ४०॥
मांसधावनतुल्यं वा मेदःखंडाभमेव वा ।
गुदनिःसरणं तृष्णा भ्रमो नेत्रप्रवेशनम् ।
भवंत्यतिविरिक्तस्य तथाऽतिवमनामयाः ॥४१॥

क्रमसे विष्ठा, पित्त, कफ और वात निकलेनेके अनन्तर कफ, पित्त रहित और श्वेत, कृष्ण और लालवर्णका तथा मांसके धोवनके समान जल निकले या मेदके टुकड़ोंके समान निकलने लगे और गुदा बाहर निकल आये तथा प्यास, भ्रम और नेत्रोंका भीतरको प्रवेश हो जाना; ये लक्षण तथा वमनके अतियोगमें कहे हुए क्षामता आदि लक्षण विरेचनके अतियोगसे हो जाते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

विरिक्तको आचारोपदेश ।

सम्यग्विरिक्तमेनं च वमनोक्तेन योजयेत् ४२॥
धूमवर्ज्येन विधिना ततो वमितवानिव ।
क्रमेणान्नानि भुंजानो भजेत्प्रकृतिभोजनम् ४३॥

ठीक (सम्यक्) विरेचन हो जानेके अनन्तर विरिक्त पुरुषको धूमपानके सिवाय बाकी सब विधि वमनमें कही हुई विधिके अनुसार सेवन करना चाहिये । उसके अनन्तर वमित पुरुषके समान ही क्रमसे पेया, विलेपी आदिका पथ्य करते हुए स्वाभाविक भोजनतक पहुँच जाना चाहिये ॥४२॥४३॥

पीतभेषज पुरुषोंको लंघन और लंघनके लक्षणोंका निर्देश ।

मंदवह्निमसंशुद्धमक्षामं दोषदुर्बलम् ।
अदृष्टजीर्णलिंगं च लंघयेत्पीतभेषजम् ।
नेह वेदौषधोत्क्लेशसंगैरिति न बाध्यते ॥४४॥

शोधनके दिन इन पांच प्रकारके पुरुषोंको उपवास कराना चाहिये । जैसे—यदि रेचन करनेवाली औषधको पीकर यथार्थ रेचनके गुण न होकर मन्दाग्नि रहे तो उस दिन उपवास करे । शुद्धिके ठीक लक्षण न उत्पन्न हुए हों तो भी उस दिन उपवास करे । बहुत पुष्ट पुरुष भी उपवास करे । तथा दोषवृद्धिसे दुर्बल हो अथवा औषधजीर्ण होनेके लक्षण न प्रतीत हों तो भी उस दिन उपवास करे ॥

इस प्रकार लंघन (उपवास) करनेसे स्नेहन-स्वेदनजनित उत्क्लेश और संगका संबन्ध नहीं रहता अर्थात् यथार्थ शोधन न होनेसे मन्दाग्निवाले पुरुषोंके शरीरमें स्नेहन, स्वेदनसे उत्पन्न हुआ उत्क्लेश (जी मचलाना) आदि उस दिनके उपवाससे पाचन हो जाता है ॥४४॥

अग्निमांद्यसे पेयादि क्रमका निर्देश ।

संशोधनास्रविस्रावस्नेहयोजनलंघनैः ।
यात्यग्निर्मंदतां तस्मात्क्रमं पेयादिमाचरेत् ४५॥

वमन, विरेचन, रक्तस्रवण, स्नेहप्रयोग और लंघनोंसे जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, इस कारण पेया आदि क्रमसे जठराग्निको बलवाली बना लेनी चाहिये ॥ ४५ ॥

अल्पपित्त कफादिवाले मनुष्योंको पेयादि क्रमका निषेध ।

स्रुताल्पपित्तश्लेष्माणं मद्यपं वातपैत्तिकम् ।
पेयां न पाययेत्तेषां तर्पणादिक्रमो हितः॥४६॥

जिनका कफ और पित्त निकल जानेके कारण अल्प रह गया हो, जो नित्य मद्य पीनेके अभ्यासी हों और जो वातपित्त प्रकृतिके हों; इन तीन प्रकारके पुरुषोंको शोधनके अनन्तर पेयादि क्रमका पालन न कराकर "प्रथम अन्नकालमें लाजाके सत्तुओंसे बनाया हुआ तर्पण । दूसरे अन्नकालमें पुराने शाली चावलोंका भात । तीसरे अन्नकालमें यूष मांस रसादि युक्त पुराने चावलोंका भात देना आदि" तर्पण क्रमका पालन करावे ॥ ४६ ॥

पक्वाऽपक्वदोषनिष्कासन ।

अपक्वं वमनं दोषान् पच्यमानं विरेचनम् ।
निर्हरेद्वमनस्याऽतः पाकं न प्रतिपालयेत्॥४७॥

अपक्व दोषोंको वमन द्वारा निकाल देना चाहिये, अर्थात् जो आमाशयस्थित दोष निकालने योग्य हो तो उसको परिपक्व होनेका समय न देकर निकाल देना चाहिये । इसलिये वमनसे निकालने योग्य दोषको पाक करनेकी व्यवस्था नहीं है, परन्तु विरेचनद्वारा दोषोंको परिपाक करनेके अनन्तर ही निकालना चाहिये । अथवा जो दोष अपक्व ही निकालने योग्य है उसे वमनसे निकाल देना चाहिये । जो पच्यमान दोष निकालने योग्य हो उसे विरेचनसे निकाल देना चाहिये ॥ ४७ ॥

कारण विशेषसे भेदनीय भोज्योंकी योजना।

दुर्बलो बहुदोषश्च दोषपाकेन यः स्वयम् ।
विरिच्यते भेदनीयैर्भोज्यैस्तमुपपादयेत् ॥४८॥

यदि दुर्बल मनुष्यके बढ़े हुए दोष परिपक्व होनेसे अतिसारादि रूपसे स्वयं निकलने लगें तो उनको शुंठीआदि भेदन द्रव्योंसे और भेदन, पाचन भक्ष्य-पदार्थों द्वारा शुद्ध कर देना चाहिये ॥ ४८ ॥

मृदु औषधका प्रयोग ।

दुर्बलः शोधितः पूर्वमल्पदोषः कृशो नरः ।
अपरिज्ञातकोष्ठश्च पिबेन्मृद्वल्पमौषधम् ॥४९ ॥
वरं तदसकृत्पीतमन्यथा संशयावहम् ।
हरेद्बहूंश्चलान्दोषानल्पानल्पान् पुनः पुनः ५०॥

दुर्बल, शोधित मनुष्य, पहलेसे ही अल्पदोषयुक्त, कृश और अपरिज्ञातकोष्ठ; इन पांच प्रकारके मनुष्योंको यदि शोधन कराना हो तो मृदुस्वभाव-वाली और अल्पमात्रावाली ओषधि पिलानी चाहिये । तथा ऐसे पुरुषोंको एक ही बार औषध पिलाकर सम्पूर्ण दोष शोधन कर देना हानिकारक हो सकता है । इस कारण मृदु शोधन बार बार कराकर चले हुए बहुतसे दोषोंको थोड़ा थोड़ा करके निकाल देना अच्छा होता है। इस विधिसे दोषहरण करनेसे बलकी हानि भी नहीं होती और दोष भी सब निक-लकर कोष्ठादि शुद्ध हो जाते है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

दुर्बलके दोषहरण ।

दुर्बलस्य मृदुद्रव्यैरल्पान् संशमयेत्तु तान् ।
क्लेशयंति चिरं ते हि हन्युर्वैनमनिर्हृताः ॥५१॥

दुर्बल मनुष्यके दोषोंको मृदु शोधनों द्वारा निकाल देना चाहिये । यदि दुर्बल पुरुषके शरीरमें अल्प दोष हों तो उनको मृदु द्रव्यों द्वारा शमन ही कर देना चाहिये । क्योंकि विना शोधन या शमन किये हुए वे दोष बहुत कालतक कष्ट देते हैं । अथवा समयादिसे बल प्राप्त कर उस दुर्बल पुरुषको मार डालते है ॥ ५१ ॥

मंदाग्न्यादिमें शोधन ।

मंदाग्निं क्रूरकोष्ठं च सक्षारलवणैर्घृतैः ।
संधुक्षिताग्निं विजितकफवातं च शोधयेत् ५२॥

मन्दाग्नि और क्रूर कोष्ठवाले मनुष्यको प्रथम क्षार और लवणयुक्त घृतोंसे जठराग्निको चैतन्य करे, फिर कफ वातके जीतनेके अनन्तर शोधन करावे ॥ ५२ ॥

रूक्षादि पुरुषोंको भैषज्य परिणामादि और विरेकसे मलका निर्हार ।

रूक्षबह्वनिलक्रूरकोष्ठव्यायामशीलिनाम् ।
दीप्ताग्नीनां च भैषज्यमविरेच्यैव जीर्यति॥५३॥
तेभ्यो बस्तिं पुरा दद्यात्ततः स्निग्धं विरेचनम्।
शकृन्निर्हृत्य वा किंचित्तीक्ष्णाभिः फलवर्तिभिः
प्रवृत्तं हि मलं स्निग्धो विरेको निर्हरेत्सुखम् ५४

रूक्षशरीरवाले, अधिक वातवाले, क्रूर कोष्ठ-वाले, नित्य व्यायाम करनेवाले और तीक्ष्णाग्निवाले पुरुषोंके शरीरमें रेचक औषध विना रेचन किये ही जीर्ण हो जाता है । इस कारण ऐसे पुरुषोंको पहले बस्ति देकर फिर एरण्ड तैलादि स्निग्ध विरेचक औषध पिलावे । अथवा मैनफल आदिसे बनायी हुई तीक्ष्ण स्वभाववाली बर्त्ती मलद्वारमें देकर पहले

सूखा हुआ विष्ठा निकाल देवे, फिर शोधनके लिये रेचक औषध पिलावे तो इन पुरुषोंको भी ठीक रेचन हो जाता है।

क्योंकि बस्ति अथवा मैनफलादिकी वर्त्ती द्वारा मल प्रवृत्त होजानेसे स्निग्ध विरेचन सुखपूर्वक दोषको हरण कर देता है ॥ ५३-५५ ॥

विषादिसे पीडित पुरुषोंको विरेचन ।

विषाभिघातपिटिकाकुष्ठशोथविसर्पिणः ।
कामलापांडुमेहार्तान्नातिस्निग्धान् विरेचयेत्५६

विषार्त, अभिघातयुक्त, पिड़िकावाले, कुष्ठी, शोथयुक्त, विसर्परोगी, कामलारोगी, पाण्डुरोगी और प्रमेहवाले मनुष्योंको यदि विरेचन कराना हो तो इनको अतिस्निग्ध नहीं करना चाहिये, किन्तु किंचित् स्निग्ध कर विरेचन करा देना चाहिये ॥ ५६ ॥

विषार्तादि पुरुषोंका स्नेहविरेकसे शोधन ।

सर्वान् स्नेहविरेकैश्च रूक्षैस्तु स्नेहभावितान् ५७॥

विषार्त आदि रोगियोंको जो यथार्थ स्निग्ध नहीं किये जाते उन्हें यदि विरेचन कराना हो तो एरण्ड तैलादि स्निग्ध द्रव्यसे विरेचन करावे। और जो नियमानुसार स्निग्ध किये गये हों उनको त्रिवृत् आदिसे रूक्ष विरेचन कराना चाहिये ॥ ५७ ॥

वमनादिकोंके मध्यमें स्नेहनस्वेदका प्रयोग ।

कर्मणां वमनादीनां पुनरप्यंतरेऽन्तरे ।
स्नेहस्वेदौ प्रयुंजीत स्नेहमंते बलाय च ॥ ५८ ॥

वमन विरेचनमें जबतक वमन या विरेचन कराना हो उनके बीच बीचमें कर्म सिद्धिके लिये स्नेहन,स्वेदन करते रहना चाहिये। जैसे—प्रथम स्नेहन स्वेदन, फिर वमन। तदनन्तर स्नेहन स्वेदन, फिर विरेचन। फिर स्नेहन स्वेदन करके अनुवासन और फिर स्नेहन स्वेदनके अनन्तर निरूहण कर्म करना चाहिये। इस प्रकार शोधन कर्म हो जानेके अनन्तर पेयादि क्रमसे शरीर ठीक होनेपर फिर बलाधानके लिये घृतादिका सेवन करना चाहिये ॥ ५८ ॥

शोधनमें दृष्टान्त ।

मलो हि देहादुत्क्लेश्य ह्रियते वाससो यथा।
स्नेहस्वेदैस्तथोत्क्लेश्य ह्रियते शोधनैर्मलः ॥५९॥

जैसे—मैले वस्त्रको सज्जी साबुन आदि युक्तकर भट्ठीपर चढ़ाकर धो डालनेसे उसकी मैल दूर होकर वस्त्र स्वच्छ हो जाता है, ऐसे ही देहका मल स्नेहन स्वेदन द्वारा उत्क्लेशित कर वमन विरेचनादि द्वारा शरीरसे निकाल कर शरीर स्वच्छ कर दिया जाता है ॥ ५९ ॥

स्नेह- स्वेदके अनभ्याससे दोष ।

स्नेहस्वेदावनभ्यस्य कुर्यात्संशोधनं तु यः ।
दारु शुष्कमिवानामे शरीरं तस्य दीर्यते॥६०॥

यदि स्नेहन स्वेदन विना किये ही कोई पुरुष शोधन करता है तो जैसे सूखी लकड़ी नवानेसे फट या टूट जाती है उसी प्रकार उस पुरुषका शरीर भी हानिको प्राप्त हो जाता है ॥ ६० ॥

शोधनका फल ।

बुद्धिप्रसादं बलमिंद्रियाणां
धातुस्थिरत्वं ज्वलनस्य दीप्तिम् ।
चिराच्च पाकं वयसः करोति
संशोधनं सम्यगुपास्यमानम् ॥ ६१ ॥

यथार्थ शोधन करनेसे बुद्धिका प्रसादन, इन्द्रियोंमें बलकी प्राप्ति, धातुओंमें स्थिरता, जठराग्निकी चैतन्यता और आयुकी स्थिरताः ये सब शुभ फल प्राप्त होते है ॥ ६१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्य्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्नपण्डितश्रीरामप्रसादात्मज–विद्यालङ्कारवैद्य–शिवशर्मविरचित–शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थानेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः।

——:o:——

अथाऽतो बस्तिविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम बस्तिविधानवाले अध्यायकी व्याख्या करते है :-

वातोल्वण रोगोंमें त्रिविधबस्ति और निरूह बस्तिसे गुल्मादिकोंका साधन।

वातोल्वणेषु दोषेषु वाते वा बस्तिरिष्यते।
उपक्रमाणां सर्वेषां सोऽग्रणीस्त्रिविधश्च सः॥१॥

---

१ संग्रहे तु शीघ्रं सुखबृंहणादिकारित्वाद्विकृतानिलोच्छेदित्वाच्च सुखत्वादेव च बस्तिर्बाल-वृद्ध-कृश-स्थूल-क्षीणधात्विन्द्रियेषु च स्त्रीषु चानिलोपसर्गादप्रजासु कृच्छ्र-प्रजासु चोपदिश्यते। तथाग्निबलवर्णमेधास्वरायुःसुखप्रदो वयस्थापनः पङ्गूरुस्तम्भभग्नसंकुचितानिलाध्मानशूलारोचकोदावर्तपरिकर्तिकादिषु हित इति।

स तु बस्तिस्त्रिविधः। आस्थापनमनुवासनमुत्तरबस्तिश्च। तत्रास्थापनं दोषदूष्याद्यनुसारेण नानाद्रव्यसंयोगादिनिर्वृत्तम्। तस्य भेदाः—उत्क्लेशनं संशोधनं संशमनं लेखनं बृंहणं वाजीकरणं पिच्छा बस्तिर्माधुतैलिकमित्यादयः। माधुतैलिकस्य पर्यायाः—यापनो युक्तरथो दोषहरः स्निग्धबस्तिरिति। तेषां नामभिरेव स्वरूपमाख्यातम्।

तद्वयस्थापनाद्दोषस्थापनाद्वा स्थापनमित्युच्यते। शरीरारोहणाद्दोषनिर्हरणादचिन्त्यप्रभावतया यस्मिन्नूहासंभवान्निरूह इति।

अनुवासनं यथार्हौषधसिद्धः स्नेहनार्थः स्नेहः स्नेहविधौ स चतुर्धाभिहितः। तस्य भेदो मात्राबस्तिः। स पेयस्नेहह्रस्वमात्रातुल्यः।

सेव्यः सदा च माधुतैलिकवत्। बालवृद्धाध्वभारयानव्यायामचिन्तास्त्रीनित्यस्त्रीनृपेश्वरसुकुमारदुर्बलानिलभग्नाल्पाग्निभिर्निष्परिहारतया सुखो बल्यो वर्ण्यः सृष्टमलो दोषघ्नश्च, तथापि तौ नाजीर्णे योज्यौ, न च दिवा स्वप्नः सेव्यः। यतश्च सोऽन्नमनुवासन्नपि न दुष्यत्यनुवासरमपि वा दीयत इत्यनुवासनम्।

उत्तरबस्तिरपि स्नेहोऽनुवासनवच्छोधनं निरूहवदपि केचिदाहुः, सनिरूहादुत्तरमुत्तरेण वा मार्गेणदीयत इत्युत्तरबस्तिः॥

निरूहोऽन्वासनो बस्तिरुत्तरः-
-तेन साधयेत्।
गुल्मानाहखुडप्लीहशुद्धाऽतीसारशूलिनः॥२॥
जीर्णज्वरप्रतिश्यायशुक्राऽनिलमलग्रहान्।
वर्ध्माऽश्मरीरजोनाशान्दारुणांश्चाऽनिलामयान्

वात प्रधान दोषोंमें अथवा केवल वातमें सब प्रकारकी चिकित्साओंसे बस्तिकर्म श्रेष्ठ है। वह बस्तिकर्म—निरूहणबस्ति, अनुवासनबस्ति और उत्तरबस्ति भेदसे तीन प्रकारका है।

उनमें निरूहणबस्ति द्वारा गुल्म, आनाह, खुडरोग (वातरक्त), प्लीहा, निरामातिसार, शूल, जीर्णज्वर, प्रतिश्याय, शुक्रावरोध, वातावरोध, मलावरोध, वर्ध्म, अश्मरीरोग, रजोनाश और दारुणवातरोग, इन सबको जीतना चाहिये। अर्थात् इन रोगोंको यथावत् औषधोंद्वारा सिद्ध किये हुए बस्ति द्रव्यसे निरूहण बस्तिकर्म करके शमन कर देना चाहिये॥१-३॥

आस्थापन बस्तिके अयोग्य रोगी।

अनास्थाप्यास्त्वतिस्निग्धः क्षतोरस्को भृशं कृशः
आमातिसारी वमिमान् संशुद्धो दत्तनावनः॥४॥
कासश्वासप्रमेहाऽर्शोहिध्माऽऽध्मानाल्पवर्चसः।
शूनपायुः कृताहारो बद्धच्छिद्रो दकोदरी॥५॥
कुष्ठी च मधुमेही च मासान् सप्त च गर्भिणी॥

अतिस्निग्ध, उरःक्षतवाला, अतिकृश, आमातिसारवाला, वमनरोगी, पञ्चकर्मसे शुद्धकाय और जिसने नस्य ली हो, इनको निरूहण बस्ति नहीं करानी चाहिये। तथा कास, श्वास, प्रमेह, अर्श, हिचकी और आध्मान, इन रोगोंवाले मनुष्य, एवं क्षीण मलवाला, गुदाकी सूजनवाला, जो आहार कर चुका हो, जलोदरमें जिसका जल निकालकर छिद्र बांधा हुआ हो, कुष्ठी, मधुमेही और सात महीनोंमें गर्भिणी स्त्री, इनको भी निरूहण बस्ति नहीं करानी चाहिये। कारण कि अतिस्निग्धके शरीरमें निरूहण किया हुआ दोषोंको उत्क्लेशित कर उदरमें शोथको पैदा कर देता है। अतिकृश और उरःक्षतयुक्त मनुष्यके निरूहण किया हुआ क्षोभ व्यापत्ति आदिसे शरी-

रको पीडन करता है। आमातिसारमें दोषको यथार्थ न निकालकर देहमें अति पीड़ाका कारण हो जाता है। प्रसक्त छर्दिमें निरूहण दोषोंको उत्क्लेशितकर ऊर्ध्वगामी हो जाता है। पञ्चकर्म शुद्ध देहमें क्षत और क्षारके समान दाह कर देता है। नस्यकर्ममें ऊर्ध्वस्रोतके रुकनेके कारण गुदभ्रंश कर देता है। कास, श्वासादि रोगोंमें दोषोंके उत्क्लिष्ट होनेके कारण ऊर्ध्वगामी हो जाता है। अर्शादि रोगोंमें अत्यन्त आध्मान या मृत्यु भी कर देता है। क्षीण मल आदिकोंके स्तम्भ, जड़ता आदि रोग उत्पन्न कर देता है। गर्भिणीको सप्त मासमें निरूहण करनेसे स्तम्भ, जड़तादि दोष होनेका भय होता है॥४॥५॥

अनुवासन बस्तिके योग्य रोगी।

आस्थाप्या एव चान्वास्या विशेषादतिवह्नयः ६
रूक्षाः केवलवातार्ताः-

जिनको आस्थापन बस्ति दी जाती है उन्हींको अनुवासन बस्ति भी देनी चाहिये। तथा तीक्ष्णाग्निवाले मनुष्योंको रूक्ष मनुष्योंको और केवल वातपीड़ितोंको अवश्य ही अनुवासन करना चाहिये। "आस्थापन बस्ति निरूहण बस्तिका ही प्रकार है, इस कारण ही मूलमें कहीं निरूहणको ही आस्थापन लिख दिया है" ॥६॥-

अनुवासनके अयोग्य प्राणी।

-नाऽनुवास्यास्त एव च।
येऽनास्थाप्यास्तथा पांडुकामलामेहपीनसाः ७॥
निरन्नप्लीहविड्भेदिगुरुकोष्ठकफोदराः।
अभिष्यंदिकृशस्थूलकृमिकोष्ठाढ्यमारुताः॥
पीते विषे गरेऽपच्यां श्लीपदी गलगंडवान्॥८॥

जिनको आस्थापनबस्ति नहीं करानी चाहिये उनको अनुवासन भी नहीं कराना चाहिये। तथा पाण्डु, कामला, प्रमेह और पीनस; इन रोगवालोंको भी अनुवासन नहीं करना चाहिये। एवं क्षुधातुर, प्लीहरोगी, अतिसाररोगी, कोष्ठके भारीपनयुक्त, कफोदररोगी, अभिष्यन्दयुक्त, कृश, अतिस्थूल, कृमिकोष्ठवाला, वातरक्तरोगवाला, विष या गर पीया हुआ मनुष्य, अपचीरोगवाला, श्लीपदवाला और गलगण्डवाला; इन सब पुरुषोंको भी अनुवासन बस्ति नहीं करना चाहिये॥ ७॥ ८॥

निरूहण अनुवासनार्थ बस्तिनेत्र प्रमाण।

तयोस्तु नेत्रं हेमादिधातुदार्वस्थिवेणुजम्।
गोपुच्छाकारमाच्छिद्रं श्लक्ष्णर्जु गुलिकामुखम् ९

बस्ति (अनीमा करनेके यन्त्र) की मुख नलिका (जो गुदामें प्रवेश कर उसके द्वारा बस्तिका द्रव द्रव्य मलाशयमें पहुँचाया जाता है) को बस्तिनेत्र कहते है। वह बस्तिनेत्र सुवर्ण आदि किसी धातुका अथवा काष्ठका या हाथीदांत आदि अस्थिविशेषका या वेणु आदिका बनाना चाहिये। इस बस्तिनेत्रका आकार पीछेसे मोटा और मुखकी ओर छोटा गोपुच्छके समान होना चाहिये। इसमें मुखके अतिरिक्त और कोई बीचमें अन्य छिद्र नहीं होना चाहिये। तथा यह बस्तिनेत्र साफ, कोमल, चिकना, सीधा और मुखपरसे गुलिकाके समान होना चाहिये॥९॥

अवस्थाभेदसे बस्तिनेत्रप्रमाण।

ऊनेऽब्दे पंच पूर्णेऽस्मिन्नासप्तभ्योऽगुलानि षट्।
सप्तमे सप्त तान्यष्टौ द्वादशे षोडशे नव॥
द्वादशैव परं विंशात् वीक्ष्य वर्षांतरेषु च॥११॥
वयोबलशरीराणि प्रमाणमभिवर्धयेत्।
स्वांगुष्ठेन समं मूले स्थौल्येनाऽग्रे कनिष्ठया१२

एक वर्षसे कम उमरमें यदि बस्ति देनी हो तो बस्तिनेत्रका प्रमाण पांच अंगुल लम्बा होना चाहिये।

---

१ तत्र नेत्राणि सुवर्णरजतताम्रायोरीतिदंतशृंगमणितरुसारमयानि श्लक्ष्णानि दृढानि गोपुच्छाकृतीनि ऋजूनि गुटिकामुखानि। सांवत्सरिकबालस्य निरूहयन्त्रं षडंगुलप्रमाणं तत्कनिष्ठिकापरिणाहमग्रे ऽध्यर्द्धांगुलसंनिविष्टकर्णिकं कंकपत्रनाडीतुल्यप्रवेशमूलं मुद्गतुल्यस्रोत इति क्रमेणाष्टषोडशवर्षयोरपि विदध्यात्।

(यहां अंगुल उस अवस्थावाले बचेके ही प्रमाण हैं जिस अवस्थामें बस्ति देनी हो) एक वर्षसे ऊपर दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें और छठे वर्षमें छे अंगुल लंबी नेत्रनलिका होनी चाहिये। सातवें वर्षमें सात अंगुल लम्बी नेत्रनलिका होनी चाहिये। आठवें वर्षसे द्वादश वर्षतक आठ अंगुल लम्बी नेत्रनलिका होनी चाहिये। बारह वर्षसे सोलह वर्षतक नव अंगुल और सोलह वर्षसे बीस वर्षतक दस अंगुल नेत्रनलिकाकी लम्बाईका प्रमाण है। फिर २१ वर्षसे ऊपर द्वादश अंगुल लम्बी नेत्रनलिका चाहिये। इस प्रकार नियमका विचार रख नववें, दशवें आदि वर्षोंमें अवस्था, बल और शरीरके प्रमाणानुसार क्रमसे नेत्रनलिकाको बढ़ाना चाहिये ॥

नेत्रनलिका बस्तिकी ओर उसी रोगीके अँगूठेके समान मोटी होनी चाहिये और मुखकी ओरसे उसीकी कनिष्ठिकाके अग्रभाग समान पतली होनी चाहिये ॥ १०—१२ ॥

बस्तिनेत्रके मूल छिद्रका प्रमाण।

पूर्णेऽब्देऽङ्गुलमादाय तदर्धार्धप्रवर्धितम्।
त्र्यंगुलं परमं छिद्रं मूलेऽग्रे वहते तु यत्॥ १३॥
मुद्गं माषं कलायं च क्लिन्नं कर्कंधुकं क्रमात्।
मूलच्छिद्रप्रमाणेन प्रांते घटितकर्णिकम्॥१४॥
वर्त्याऽग्रे पिहितं मूले यथास्वं द्व्यंगुलांतरम्।
कर्णिकाद्वितयं नेत्रे कुर्यात्तत्र च योजयेत् १५॥

प्रथम वर्षके पूर्ण हो जानेपर बस्तिनेत्रके अग्रभागका छिद्रप्रमाण मूंगके दाने समान और मूलभागमें बस्तिकी ओर एक अंगुल छिद्र होना चाहिये। छे वर्षतक यही प्रमाण है। यह अंगुलमान गोल परिधिमान जानना। सातवें वर्षमें अग्रभागका छिद्र माषके दाने समान और मूलभागमें सवा अंगुल प्रमाण छिद्र होना चाहिये। यह प्रमाण सातवें वर्षसे एकादशवें वर्षतक होना चाहिये। फिर १२ बारहवें वर्षसे सोलहवें वर्षतक अग्रभागमें छोटे मटरके समान और मूलभागमें पौने दो अंगुल मोटा छिद्र होना चाहिये। सत्रहवें वर्षमें मूलभागमें दो अंगुल, अठारहँवे वर्षमें मूलभागकी ओर सवा दो अंगुल और उन्नीसवें वर्षमें मूलकी ओर ढाई २॥ अंगुल और अग्रभागमें बड़े मटरके समान छिद्र होना चाहिये। बीसवें वर्षमें मूल भागकी ओर २॥। पौने तीन अंगुल और इक्कीसवें वर्षमें तीन अंगुल तथा अग्रभागमें छोटे झड़बेरके समान बस्तिनेत्र नलिकाकी मोटाई होनी चाहिये।

इस नेत्रमें मूलछिद्रकी ओर एक मूलछिद्रके समान कर्णिका (गोल चक्राकार किनारा) बनाना चाहिये। यह किनारा बस्तिचर्मके अन्दर आ जाता है। फिर इससे दो अंगुलका अंतर छोड़ बाहर अग्रभागकी ओर दूसरी कर्णिका बनानी चाहिये, जो बस्तिचर्मसे बाहर रहे। इन दोनों कर्णिकाओंका प्रयोजन बस्तिसे नेत्रनलिका भीतर या बाहर न चली जाय; इस रुकावटका है। कारण कि बस्तिचर्मका मुख नेत्रनलिकाकी दोनों कर्णिकाओंके बीच दृढ़ बँध जानेसे फिर बस्तिके भीतरवाले द्रव द्रव्यको दबाकर बाहर निकालनेसे बस्तिनेत्र इधर उधर नहीं जा सकता और गुदाकी ओर भी अधिक आगे नहीं जाता, यही प्रयोजन है। इस बस्तिनेत्रको आगे लिखी बस्तिके मुखमें दृढ़ रीतिसे जोड़ देना चाहिये ॥ १३—१५ ॥

बस्तिके योग्य चर्म।

अजाविमहिषादीनां बस्तिं सुमृदितं दृढम्।
कषायरक्तं निश्छिद्रग्रंथिगंधसिरं तनुम् ॥१६॥

---

१ अंगुलमानं तु छिद्रस्य वृत्तपरिधौ ज्ञेयम्, पंचांगुलस्य मूले अर्द्धाङ्गुलमग्रे वनमुद्गवाहीति संग्रहोक्तमिति हेमाद्रिः।

२ 'कर्णिका' छत्राकारा गुदाधिकान्तःप्रवेशरोधिनीति अरुणदत्तः। 'कर्णिका' छत्राकारा गुदात्रिकान्तःप्रवेशरोधिनीति निबंधसंग्रहे। तत्थीमारूपां कर्णिकां घटयेदिति हेमाद्रिः।

ग्रथितं साधु सूत्रेण सुखसंस्थाप्यभेषजम् ।
बस्त्यभावेऽङ्कपादं वा न्यसेद्वासोऽथवा घनम् १७

बस्ति प्रायः बकरे और महिष आदिके मूत्राशयको लेकर उसको विधिपूर्वक मल धोकर साफ कर ले। वह बस्ति (मूत्राशय) मजबूत, ठीक, स्वच्छ, चिकनी, मर्दन कर ठीक बनायी हुई, कषाय रसवाले द्रव्योंसे रंगी हुई, अन्य छिद्र रहित, ग्रंथिरहित, दुर्गन्ध रहित, नाड़ी आदि सिरा रहित और सुन्दर सूक्ष्म होनी चाहिये। उसमें दोष दूष्यादि विचारकर, औषध क्वाथ आदि डालकर इस बस्तिके मुखमें पूर्वोक्त नेत्रनलिकाको रेशम आदिके अच्छे सूत्रसे बांध दे; जिससे नेत्रनलकी दोनों कर्णिकाओंके बीचमें बस्तिका मुख दृढ बँध जाय ॥

यदि छाग आदिका मूत्राशय अच्छा न मिले तो जितनी बस्ति बनानी हो उतना हिरण आदिकी जंघापरका चर्म लेकर उसको स्वच्छ नर्म बनाकर उसकी बस्ति बनावे, अथवा उत्तम घन वस्त्रकी बस्ति बनाकर मोम रोगन आदिसे लिपायमान कर उत्तम बस्ति बनावे। (या रबड़ आदिकी बस्ति बना ले) ॥ १६ ॥ १७ ॥

निरूहकी मात्रा।

निरूहमात्रा प्रथमे प्रकुञ्चो वत्सरात्परम् ।
प्रकुञ्चवृद्धिः प्रत्यब्दं यावत्षट्प्रसृतास्ततः १८॥
प्रसृतं वर्धयेदूर्ध्वं द्वादशाऽष्टादशस्य च ।
आसप्ततेरिदं मानं दशैव प्रसृताः परम् ॥१९॥

निरूहण द्रव्य (बस्तिमें डालनेके क्वाथादि द्रव) प्रथम वर्षमें एक पल, दूसरे वर्षमें दो पल; इस प्रकार प्रतिवर्ष एक एक पल बढ़ाते बढ़ाते द्वादश वर्षतक द्वादश पल मात्रा हो जाती है। फिर बारह वर्षसे अठारह वर्षतक प्रतिवर्ष दो पल बढ़ाकर अठारह वर्षमें चौबीस २४ पल बस्ति द्रव्यकी मात्रा होनी चाहिये। यह २४ पल पूर्ण मात्रा है। इस पूर्ण मात्राको सत्तर ७० वर्षकी आयुतक प्रयोग कर सकते है। फिर सत्तर वर्षकी आयुसे आगे बुढ़ापेमें बीस पलकी मात्रा कर देनी चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥

अनुवासनकी मात्रा ।

यथायथं निरूहस्य पादो मात्राऽनुवासने ॥२०॥

जितनी जितनी मात्रा जिस जिस अवस्थामें निरूहणकी कही हैं उस २ अवस्थामें अनुवासनकी मात्रा निरूहणसे चौथा भाग होनी चाहिये। जैसे— निरूहणकी मात्रा जहां एक पल है उस अवस्थामें अनुवासनकी मात्रा १ एक कर्ष होनी चाहिये ॥ २० ॥

निरूहणसे पूर्व अनुवासन ।

आस्थाप्यं स्नेहितं स्विन्नं शुद्धं लब्धबलं पुनः ।
अन्वासनार्हं विज्ञाय पूर्वमेवाऽनुवासयेत् ॥२१॥

जिस पुरुषको निरूहण बस्ति कराना हो उसको स्नेहन, स्वेदन और शोधन करनेके अनन्तर जब उस पुरुषमें बल आ जाय और अनुवासनके योग्य हो जाय तो प्रथम उसको अनुवासन बस्ति देवे ॥ २१ ॥

अनुवासनका काल और विधि ।

शीते वसन्ते च दिवा रात्रौ केचित्ततोऽन्यदा ।
अभ्यक्तस्नातमुचितात्पादहीनं हितं लघु ॥
अस्निग्धरूक्षमशितं सानुपानं द्रवादि च॥२२॥
कृतचंक्रमणं मुक्तविण्मूत्रं शयने सुखे ।
नात्युच्छ्रिते न चोच्छीर्षे संविष्टं वामपार्श्वतः२३
संकोच्य दक्षिणं सक्थि प्रसार्य च ततोऽपरम् ।
अथाऽस्य नेत्रं प्रणयेत्स्निग्धं स्निग्धमुखं गुदे२४
उच्छ्वास्य बस्तेर्वदने बद्धे हस्तमकम्पयन् ।
पृष्ठवंशं प्रति ततो नाऽतिद्रुतविलंबितम् ॥२५॥
नाऽतिवेगं न वा मन्दं सकृदेव प्रपीडयेत् ।
सावशेषं च कुर्वीत वायुः शेषे हि तिष्ठति२६॥

शीतकालमें अथवा वसन्त ऋतुमें दिनमें या रात्रिमें या किसी और समय जिसको अनुवासन देना हो तो जब वह तैल मलकर स्नानादिसे निवृत्त हो

जाय और जिसने नित्यप्रतिके भोजनसे चौथा भाग कम करके हित, हलका, न बहुत चिकना, न बहुत रूखा ऐसा भोजन किया हो, उसके ऊपर उचित-रूपसे जल आदि अनुपान किया हो और इच्छानुसार घूम फिर कर आया हो, मल मूत्रादि त्यागकर सुखपूर्वक उत्तम शय्यापर; जो शय्या न बहुत ऊंची हो, न उसके शिरकी ओरका भाग बहुत ऊंचा हो ऐसी सुखदायक शय्यापर वाम पार्श्वसे लेट जाय और बांई करवट लेटा हुआ बांई टांगको सीधी रक्खे और दहनी टांगको सुकेड़ ले, तब अनुवासन बस्तिकी चिकनी की हुई मुखनलिका बांई करवट लेटे हुए पुरुषकी चिकनी की हुई गुदामें प्रवेश करे ॥

फिर वैद्य बस्तिके मुखको उच्छ्वासित कर हवा निकाल दे। फिर पृष्ठवंशकी ओर किंचित् उठाकर सिद्धहस्तके साथ विना हाथको कँपाये न बहुत जल्दी, न बहुत देरमें, न बहुत तेजवेगसे और न अतिमन्द वेगसे बस्तिको पीडन करे, जिससे विना किसी कष्टके सम्पूर्ण स्नेह मलाशयमें चला जाय और दूसरी बार बस्तिको पीड़न न किया जाय, क्योंकि यदि एक बार ही सम्पूर्ण स्नेह बस्ति पीड़नसे मलाशयमें नहीं जायगा तो बस्तिमें वायु भर जानेसे दूसरी बार पीड़न करनेपर पवन अन्दर चला जायगा और हानि करेगा। इस कारण वस्तिगत स्नेह एक बार पीड़नसे ही मलाशयमें चला जाना चाहिये ! स्नेहके अन्दर चले जानेपर वस्तिनलिकाको धीरेसे निकाल लेना चाहिये ॥ २२–२६ ॥

स्फिक् हनन तथा अन्य अंगोंकी हनन–विधि।

दत्ते तूत्तानदेहस्य पाणिना ताडयेत्स्फिजौ।
तत्पार्ष्णिभ्यां तथा शय्यां पादतश्च त्रिरुत्क्षिपेत्
ततः प्रसारितांगस्य सोपधानस्य पार्ष्णिके।
आहन्यान्मुष्टिनांगं च स्नेहेनाभ्यज्य मर्दयेत् २८
वेदनार्तमिति स्नेहो नहि शीघ्रं निवर्तते।
योज्यः शीघ्रं निवृत्तेऽन्यः स्नेहोऽतिष्ठन्नकार्यकृत्

इस प्रकार स्नेह बस्ति देनेके अनन्तर पुरुषको सीधे लेट जाना चाहिये और उसके दोनों स्फिचों (चूतड़ों) पर हाथोंसे ताड़न करे और दोनों पाओंकी एड़ियोंसे ताड़न करे तथा पाओंकी ओरसे शय्याको तीन बार ऊपरको उठावे, जिससे अनुवासनका तैल अंतड़ीमें फैल जावे ॥

फिर वह सब अंगोको सीधा करके पसार लेवे और अपने शिरके नीचे हलका सा तकिया भी रख लेवे। तब उसकी दोनों एड़ियोंमें हाथकी मुट्ठीसे ताड़न करे, फिर उसके शरीरपर तैलकी मालिश करे। ऐसा करनेसे पीड़ातुर होनेपर स्नेह शीघ्र बाहर नहीं निकलता॥

यदि अनुवासनका तैल शीघ्र निकल जाय तो दूसरी वार इसी प्रकार और स्नेह वस्ति द्वारा दे देना चाहिये, क्योंकि यदि स्नेह मलाशयमें नहीं ठहरेगा तो स्नेहनकार्य नहीं कर सकेगा ॥ २७–२९ ॥

लघुमात्राका भोजन और स्नेह निकलनेकी प्रतीक्षा।

दीप्ताग्निं त्वागतस्नेहं सायाह्ने भोजयेल्लघु।
निवृत्तिकालः परमस्त्रयो यामास्ततः परम्३०॥
अहोरात्रमुपेक्षेत परतः फलवर्तिभिः।
तीक्ष्णैर्वा बस्तिभिः कुर्याद्यत्नं स्नेहनिवृत्तये३१॥

जब स्नेह निकल जाय और जठराग्नि चैतन्य हो तब सायंकाल हलका भोजन करना चाहिये ॥

स्नेह वस्तिके स्नेह वापिस निकलनेका काल तीन पहरका है, यह काल परमकाल कहा जाता है। इसके अनन्तर एक दिनरात्रितक प्रतीक्षा करके यदि अनुवासनका स्नेह वापिस नहीं निकले तो मैनफलकी बनायी हुई वर्तिकाका प्रयोग करे अथवा तीक्ष्ण निरूहण वस्तिद्वारा स्नेहके निकालनेका यत्न करे ॥३०॥३१॥

शुंठीधान्यम्बुपानका निर्देश।

अतिरौक्ष्यादनागच्छन्न चेज्जाड्यादिदोषकृत्।
उपेक्षेतैव हि तताऽध्युषितश्च निशां पिबेत्३२॥
प्रातर्नागरधान्यांभः कोष्णं केवलमेव वा ३३॥

यदि अतिरूक्षताके कारण अनुवासनका स्नेह वापिस न निकले और जड़ता अग्निसाद आदि कोई दोष नहीं करे तो उसके निकालनेका यत्न नहीं करना चाहिये। किन्तु उस रात्रि भर कुछ न खाकर प्रातः-काल सोंठ और धनिया उबालकर कोष्ण जल पान करे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

तृतीयादि दिनोंमें अनुवासनक्रम।

अन्वासयेत्तृतीयेऽह्नि पञ्चमे वा पुनश्च तम्।
यथा वा स्नेहपक्तिः स्यादतोऽत्युल्वणमारुतान्।
व्यायामनित्यान् दीप्ताग्नीन् रूक्षांश्च प्रतिवासरम्

फिर इस पुरुषको तीसरे दिन अथवा पांचवें दिन अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे। अथवा जिस प्रकार अनुवासनके स्नेहका ठीक परिपाक होजाय उतना अन्तर देकर अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे।

जिन मनुष्योंके शरीरमें वायुकी अत्यन्त अधिकता हो अथवा जो नित्य व्यायाम करते हों या जिनकी जठराग्नि तीक्ष्ण हो अथवा जो रूक्ष पुरुष हों उनको नित्य ही अनुवासन करना चाहिये ॥ ३४ ॥

निरूहशोधनप्रयोगका निर्देश।

इति स्नेहैस्त्रिचतुरैः स्निग्धे स्रोतोविशुद्धये।
निरूहं शोधनं युंज्यादस्निग्धे स्नेहनं तनोः ३५

इस प्रकार तीन बार या चारबार स्नेहवस्ति देनेसे स्निग्ध हुए शरीरमें स्रोतोंको शुद्ध करनेके लिये निरूहण वस्तिरूप शोधनका प्रयोग करे। यदि यथार्थरूपसे शरीरमें स्निग्धता न हुई हो तो निरूहणसे पहले फिर एक दो बार स्नेहवस्ति देकर यथार्थ स्निग्ध होनेपर निरूहण देकर स्रोतोंको शुद्ध कर देवे ॥ ३५ ॥

निरूहण वस्तिप्रयोग और निरूह-कल्पनाप्रकार।

पञ्चमेऽथ तृतीये वा दिवसे साधके शुभे।
मध्याह्ने किंचिदावृत्ते प्रयुक्ते बलिमङ्गले ३६ ॥
अभ्यक्तस्वेदितोत्सृष्टमलं नातिबुभुक्षितम्।
अवेक्ष्य पुरुषं दोषभेषजादीनि चादरात् ३७॥
बस्तिं प्रकल्पयेद्वैद्यस्तद्विधैर्बहुभिः सह।
क्वाथयेद्विंशतिपलं द्रव्यास्याऽष्टौ पलानि च ३८

अनुवासनके अनन्तर तीसरे अथवा पांचवें दिन शुभ मुहूर्तमें मध्याह्नसे कुछ पीछे बलिदान मंगल-कर्मादि करके जिस पुरुषको निरूहण कराना हो वह तैल मलकर पसीना ले, मल मूत्रादि त्यागकर जिस समय उसको अधिक क्षुधा न हो ऐसे पुरुषको उसके दोषों और औषधि आदिको देखकर वैद्य बहुत से वस्तिके जाननेवाले वैद्योंके साथ आदरपूर्वक विचार करके दोषानुरूप औषधियोंसे बस्तिकी कल्पना करे॥

निरूहणबस्तिके लिये क्वाथ्य द्रव्य यदि बीस(२०) पल हो तो उसमें आठ (८) मैनफल कूटकर डाल देने चाहिये। यह (२०) पल क्वाथ्य द्रव्य और आठ मैनफल एक बार क्वाथ करके ही वस्तिमें प्रयोग नहीं किया जा सकता। यह केवल मैनफलके संयोगका मान बतलाया है। इस कारण जिस बस्तिके लिये जितना मान हो उस हिसाबसे द्रव्य लेना चाहिये। जैसे पांचपल क्वाथ्य द्रव्य और दो मैनफलको लेकर सोलह गुणे (अस्सी ८०) पल जलमें पकावे, जब बीस पल बाकी रहे तो छान लेवे ३६-३८॥

वातादि दोषोंमें स्नेहकल्पनादिका निर्देश।

ततः क्वाथाच्चतुर्थांशं स्नेहं वाते प्रकल्पयेत्।
पित्ते स्वस्थे च षष्ठांशमष्टमांशं कफाधिके ३९॥
सर्वत्र चाऽष्टमं भागं कल्काद्भवति वा यथा।
नाऽत्यच्छसांद्रता बस्तेः—
—पलमात्रं गुडस्य च॥ ४० ॥
मधुपट्वादिशेषं च युक्त्या सर्वं तदेकतः।
उष्णांबु कुंभीबाष्पेण तप्तं खजसमाहतम् ४१॥

यदि वातकी अधिकता हो तो इस बीस पल क्वाथमें पांच पल तैलादि स्नेह मिलावे। यदि पित्तमें निरूहण बस्ति देनी हो अथवा स्वस्थ मनुष्यको रसा-

यन कर्मके लिये शोधन करनेको निरूहण बस्ति देना हो तो काथसे छटवां भाग स्नेह मिलाना चाहिये। यदि कफकी अधिकतामें निरूहणबस्ति देनी हो तो काथसे आठवां भाग स्नेह मिलाना चाहिये ।

निरूहण वस्तिके काथमें सर्वत्र ही अर्थात् वातमें, पित्तमें, कफमें और स्वास्थ्यमें सर्वत्र ही कल्कक्वाथसे आठवां भाग मिलाना चाहिये । अथवा जितना कल्क मिलानेसे वस्तिका काथ न बहुत पतला रहे, न बहुत गाढ़ा हो और बस्ति कर्ममें यथार्थ काम कर सके उतना कल्क मिलाना चाहिये ।

और इसमें गुड़ एकपल मिलावे। मधु और लवण जितना दोषानुसार उचित हो उतना मिलावे। जैसे चारपल मधु और एककर्ष लवण या यवक्षार मिलाना चाहिये । इन सबको एकत्र कर मथानीसे मथ डाले और गर्मजलसे भरे हुए पात्रके ऊपर रखकर जलकी भापसे गर्म करे ॥ ३९--४१ ॥

गुदामें औषध प्रणयन तथा अन्य मतका निर्देश।

प्रक्षिप्य बस्तौ प्रणयेत्पायौ नात्युष्णशीतलम् ।
नाऽतिस्निग्धं नवा रूक्षं नाऽतितीक्ष्णं नवा मृदु ४२
नात्यच्छसांद्रं नो नाऽतिमात्रं नाऽपटु नाऽति च
लवणं तद्वदम्लं च-
-पठंत्यन्ये तु तद्विदः ॥ ४३ ॥
मात्रां त्रिपलिकां कुर्यात्स्नेहमाक्षिकयोः पृथक्।
कर्षार्धं माणिमन्थस्य स्वस्थे कल्कपलद्वयम् ४४
सर्वद्रवाणां शेषाणां पलानि दश कल्पयेत् ।
माक्षिकं लवणं स्नेहं कल्कं क्वाथमिति क्रमात् ।
आवपेत निरूहाणामेष संयोजने विधिः ४५ ॥

फिर इसको बस्तिमें डालकर गुदामें विधिवत् बस्ति-द्वारा पहुँचावे । परन्तु यह निरूहण द्रव्य न बहुत गर्म, न बहुत शीतल, न अतिस्निग्ध, न अतिरूक्ष, न अतितीक्ष्ण, न अनिमृदु, न अतिपतला, न अतिगाढ़ा, न मात्रामें थोड़ा, न मात्रामें अधिक, न अतिलवण-वाला, न विना लवणका, न अतिअम्ल, न अनम्ल, होना चाहिये । अर्थात् इस प्रकार इन सब वस्तु-ओंका योग होना चाहिये, जिसमें अत्यन्त उष्ण शीतादि कोई दोष न हो ॥

कोई बस्तिकर्मके जाननेवाले योग्य वैद्य इस प्रकार कल्पना करते हैं। जैसे-तीन पल स्नेह, तीन पल मधु, आधा कर्ष सेंधा नमक, कल्क दो पल, क्वाथ और दूध या गोमूत्रादि द्रवपदार्थ दश पल लेवे । इनमें प्रथम मधु, फिर लवण, फिर स्नेह, फिर कल्क, फिर काथ इनको क्रमसे मिला देवे । यह निरूहण-द्रव्यके मिलानेकी विधि है। इस प्रकार निरूहण द्रव्यको मिलाकर जलकी वाष्पपर रख सुखोष्ण कर बस्तिद्वारा प्रयोग करे ॥ ४२--४५ ॥

निरूहरोगीकी स्थितिका प्रकार ।

उत्तान दत्तमात्रे तु निरूहे तन्मना भवेत् ।
कृतोपधानः सञ्जातवेगश्चोत्कटकः सृजेत्॥४६॥

निरूहणवस्तिको लेकर उसको निकलनेमें मन लगाये हुए शिरके नीचे तकिया रखकर प्रतीक्षा करे। जब वेग आवे तब पाओंके भार (उत्कट बैठकर) निरूहणद्रव्यको निकाल देवे ॥ ४६ ॥

अनागत निरूहकी चिकित्सा ।

आगतौ परमः कालो मुहूर्तो मृत्यवे परम् ४७॥
तत्राऽनुलोमिकं स्नेहक्षारमूत्राऽम्लकल्पितम् ।
त्वरितं स्निग्धतीक्ष्णोष्णं बस्तिमन्यं प्रपीडयेत्॥
विदध्यात्फलवर्तिं वा स्वेदनोत्रासनादि च४८॥

निरूहणके निकलनेके लिये अधिकसे अधिक एक मुहूर्तका परम काल है । यदि एक मुहूर्ततक नहीं निकले तो यह मृत्युका कारण हो जाता है । ऐसा होने पर अनुलोमन करनेके लिये एरंड तैलादि स्नेह, जवाखार, गोमूत्र और खट्टी कांजी आदि स्निग्ध, तीक्ष्ण,उष्ण, द्रव्ययुक्त अन्य बस्ति अतिशीघ्र कर देवे। अथवा मैनफलसे बनायी हुई बत्ती (जो आगे अर्श-चिकित्सामें कहेंगे) का प्रयोग करे तथा पेटपर सेंक करे और रोगीको भयआदि त्रासन भी ऐसे समय निरूहणद्रव्यको निकाल देता है ।

तात्पर्य यह है कि यदि निरूहणका द्रव एकमुहूर्ततक नहीं निकले तो उसको अन्य स्निग्ध तीक्ष्ण वस्ति या फलवर्ती प्रयोगकर निकाल देना चाहिये ॥ ४७ ॥ ४८॥

सम्यक् निरूहणपर्यन्त बस्तिविधान ।

स्वयमेव निवृत्ते तु द्वितीयो बस्तिरिष्यते ।
तृतीयोऽपि चतुर्थोऽपि यावद्वा सुनिरूढता॥४९॥

यदि निरूहण किया हुआ द्रव्य स्वयं निकल जावे तो दूसरी बस्तिका प्रयोग करे। ऐसे ही तीसरी या चौथी बस्ति देनी चाहिये । अथवा जबतक ठीक निरूहणके लक्षण हों तबतक निरूहणबस्ति करनी चाहिये ४९॥

विरिक्तवच्च योगादीन्विद्यात्—
—योगे तु भोजयेत् ॥
कोष्णेन वारिणा स्नातं तनुधन्वरसौदनम् ५०॥
विकारा ये निरूहस्य भवंति प्रचलैर्मलैः ।
ते सुखोष्णांबुसिक्तस्य यांति भुक्तवतः शमम् ५१

निरूहणवस्तिका सम्यक् योग आदि विरेचनके समान जानने चाहिये । सम्यक् योग हो जानेके अनन्तर सुखोष्ण जलसे स्नान कराकर जांगल मांसरसादिके साथ शालिभातका हलका भोजन करावे ॥

क्योंकि निरूहणसे चले हुए मलोंके जितने विकार होते है वे सब सुखोष्ण जलसे स्नानकर भोजन कर लेनेसे शमन हो जाते है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

वातार्दितको अनुवासन ।

अथ वातार्दितं भूयः सद्य एवाऽनुवासयेत्॥५२॥

यदि वातार्दित मनुष्य हो तो उसको फिर शीघ्र ही अनुवासनबस्ति देनी चाहिये ॥ ५२ ॥

अनुवासनके सम्यक् योगादि ।

सम्यग्घीनाऽतियोगाश्च तस्य स्युः स्नेहपीतवत्॥

अनुवासन, स्नेहन, बस्तिका सम्यक् योग, हीनयोग और अतियोग स्नेहपानमें जो पीछे सत्रहवें अध्यायमें कह आये है ; उसके समान जानना॥५३॥

अनुवासनका सम्यक् योग ।

किंचित्कालं स्थितो यश्च सपुरीषो निवर्तते ।
साऽनुलोमानिलः स्नेहस्तत्सिद्धमनुवासनम् ५४

जो अनुवासन बस्तिद्वारा दिया हुआ स्नेह किंचित् काल ठहरकर मल सहित निकले और वायु अनुलोम होकर स्वच्छ निकलने लगे तो स्नेहबस्तिका ठीक (सम्यक्) योग होगया; ऐसा जानना चाहिये॥५४॥

दोषपरत्वसे अनुवासनकी संख्या ।

एकं त्रीन् वा बलासे तु स्नेहबस्तीन् प्रकल्पयेत्
पञ्च वा सप्त वा पित्ते नवैकादश वाऽनिले ।
पुनस्ततोऽप्ययुग्मांस्तु पुनरास्थापनं ततः ५५॥

कफप्रधान रोगमें एक अथवा तीन अनुवासन बस्तिका प्रयोग करना चाहिये । पित्तमें या पित्तप्रधानमें पांच अथवा सात अनुवासन बस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये । वातमें अथवा वातप्रधानमें नौ (९) या ग्यारह (११) बस्तिका प्रयोग करना चाहिये। यदि इससे आगे भी अनुवासनकी आवश्यकता हो तो और भी एक या तीन बस्ति देनी चाहिये । यहां पर मूलमें 'अयुग्म' शब्द है, अरुणदत्तजीने लिखा है कि इससे आगे भी यदि स्नेह बस्तिकी आवश्यकता हो तो कफ और पित्तमें एक एक बस्ति देनी चाहिये और वातमें दो भी दे सकते है । परन्तु यहाँ पर अयुग्मसे एक या तीन आदि विषम संख्यासे प्रयोजन है । अनुवासन बस्तिकी संख्या इसी प्रकार होनी चाहिये । इसके अनन्तर फिर निरूहण बस्ति देनी चाहिये। बीच २ में भी निरूहण देते रहना चाहिये । यह 'पुनः' शब्दसे प्रतीत होता है ॥ ५५ ॥

दोषभेदसे पथ्य ।

कफपित्ताऽनिलेष्वन्नं यूषक्षीररसैः क्रमात् ५६॥

कफ, पित्त और वातमें क्रमसे यूप, क्षीर और

---

१ वातार्तस्य तु युग्मा अपि देया इत्येत्यरुणदत्तः । अयुग्मान् विषमसंख्याकान् तत्तदावृत्तिपूतो मध्ये मध्ये निरूहः कार्य इत्याह । पुनरास्थापनामिति आवृत्तौ क्रियमाणायामिति हेमाद्रिः ।

रसके साथ अन्न देना चाहिये। अर्थात् यदि कफमें अनुवासन बस्ति देते हों तो मुद्गयूप आदि यूषके साथ शाली चावलोंका भात आदि देना चाहिये। यदि पित्तमें अनुवासन दे रहे हों तो दूधके साथ शालीका भात देना चाहिये। यदि वातमें अनुवासन देते हों तो उष्ण तथा स्निग्ध रसोंके साथ शाली आदि अन्नका पथ्य देना चाहिये ॥ ५६ ॥

वातमें निरूहणके लिये द्रव्य।

वातघ्नौषधनिःक्वाथस्त्रिवृतासैंधवैर्युतः।
बस्तिरेकोऽनिले स्निग्धः स्वाद्वम्लोष्णरसान्वितः

वातमें दशमूलादि वातनाशक द्रव्योंके क्वाथमें निशोथका कल्क और सैन्धव लवण मिलाकर उसमें मधुर, अम्ल और उष्ण रस मिलावे। तथा एरण्ड तैलादि स्नेह मिलाकर इन सब द्रव्योंसे एक निरूहण बस्ति करे ॥ ५७ ॥

पित्तमें निरूहण द्रव्य।

न्यग्रोधादिगणक्काथौ पत्रकादिसितायुतौ।
पित्ते स्वादुहिमौ साज्यक्षीरेक्षुरसमाक्षिकौ ५८॥

पित्तमें निरूहण बस्ति करनी हो तो पन्द्रहवें अध्यायमें कहे हुए न्यग्रोधादिगण और पत्रकादि (दूर्वादि) गणके क्काथोंमें मिसिरी मिलाकर तथा दूध, घृत, गन्नेका रस, मधु आदि मधुर और शीतल गुणवाले द्रव्योंको मिलाकर दो निरूहण बस्ति देनी चाहिये ॥ ५८ ॥

कफमें निरूहण द्रव्य।

आरग्वधादिनिःक्काथवत्सकादियुतास्त्रयः।
रूक्षाः सक्षौद्रगोमूत्रास्तीक्ष्णोष्णकटुकाः कफे

कफाधिक्यामें आरग्वधादि गण तथा वत्सकादि गणके क्काथमें मधु और गोमूत्रादि तीक्ष्ण, उष्ण और कटु द्रव्य मिलाकर विना स्नेह मिलाये तीन रूक्ष निरूहण वस्तिमें देना चाहिये ॥ ५९ ॥

सन्निपातमें वस्तित्रयका निर्देश।

त्रयश्च संनिपातेऽपि दोषान्घ्नंति यतः क्रमात्।
त्रिभ्यः परं बस्तिमतो नेच्छंत्यन्ये चिकित्सकाः
नहि दोषश्चतुर्थोऽस्ति पुनर्दीयेत यं प्रति॥ ६०॥

सन्निपातमें भी तीनों ही प्रकारकी निरूहण वस्तियें देनी चाहिये। क्योंकि तीनों निरूहण दिये हुए क्रमसे तीनों दोषोंका नाश कर देते है "यहांपर हेमाद्रिने लिखा है कि वातपित्तमें, वातकफमें और पित्तकफमें भी दोषबलानुसार द्रव्य कल्पना कर दो दो वस्तियें देनी चाहिये और सन्निपातमें तीनों निरूहणवस्तियें देनी चाहिये।" तीनों निरूहण वस्तियोंसे आगे दोषकल्पनाके अनुसार चिकित्सक लोग चौथी वस्तिको नहीं मानते, क्योंकि तीन दोषोंके सिवाय और चौथा कोई दोष ही नहीं है, जिसके लिये चौथे प्रकारकी निरूहण वस्ति कल्पना की जावे। इस कारण सन्निपातमें भी तीन वस्तियोंका ही प्रयोग करना चाहिये ॥ ६० ॥

अन्य मतका निर्देश।

उत्क्लेशनं शुद्धिकरं दोषाणां शमनं क्रमात्।
त्रिधैवं कल्पयेद्बस्तिमित्यन्येऽपि प्रचक्षते॥ ६१॥

दोषोंका उत्क्लेशन करना, दोषोंका शोधन करना और दोषोंका शमना करना इन तीन भेदोंसे अन्य चिकित्सक भी वस्तिकल्पना तीन प्रकारकी ही मानते हैं ॥ ६१ ॥

कर्त्तव्य निर्देश।

दोषौषधादिबलतः सर्वमेतत्प्रमाणयेत्।
सम्याङ्निरूढलिंगं तु नाऽसंभाव्य निवर्तयेत् ६२

सब प्रकारकी वस्तियें दोष बलके अनुसार औषधादिकी कल्पना कर रोगीका बल, काल आदि विचार कर प्रयोग करना चाहिये।

जब तक सम्यक् निरूहणके लक्षण स्पष्ट दिखायी न दें तबतक निरूहण वस्तिका प्रयोग करते रहना चाहिये॥ ६२ ॥

---

१ 'एक' इति पुटापेक्षया न तु प्रयोगापेक्षया इति हेमाद्रिः।

कर्मसंज्ञक तीस वस्तियें ।

प्राक्स्नेह एकः पंचांते द्वादशाऽऽस्थापनानि च सान्वासनानि कर्मैवं बस्तयस्त्रिंशदीरिताः॥६३॥

एक प्रथम स्नेहवस्ति, पांच अन्तमें, द्वादश आस्थापनवस्ति और द्वादश आस्थापनोंके बीचमें द्वादश अनुवासनवस्ति इस प्रकार इन तीस वस्तियोंकी संख्या-को कर्मवस्ति कहा जाता है ॥ ६३ ॥

कालवस्ति ।

कालः पंचदशैकोऽत्र प्राक् स्नेहांते त्रयस्तथा । षट् पंच बस्त्यंतरिताः–

पन्द्रह वस्तियोंको कालवस्ति कहते है, जैसे–एक प्रथम स्नेहवस्ति, तीन अन्तमें स्नेहवस्तियें, पांच निरूहणवस्तियें और पांच निरूहणोंके बीच२में छे स्नेह-वस्तियें, इसप्रकार की हुई पन्द्रह वस्तियोंको काल वस्ति कहते है ॥

योगवस्ति ।

योगोऽष्टौ बस्तयोऽत्र तु । त्रयो निरूहाः स्नेहाश्च स्नेहावाद्यंतयोरुभौ ६४॥

एक प्रथम स्नेहवस्ति, एक अन्तमें स्नेहवस्ति, तीन निरूहणवस्तियें और बीच २ में तीन स्नेहन वस्तियें, इस प्रकार आठ (८) वस्तियोंको योगवस्ति कहाते हैं ॥ ६४ ॥

नितान्तवस्तिप्रयोगका निषेध ।

स्नेहवस्तिं निरूहं वा नैकमेवाऽतिशीलयेत् । उत्क्लेशाग्निवधौ स्नेहान्निरूहान्मरुतो भयम् ६५॥

स्नेहवस्ति अथवा निरूहवस्ति इन दोनों प्रकारकी वस्तियोंमेंसे किसी एक प्रकारकी वस्तिका निरन्तर सेवन करना नहीं चाहिये । क्योंकि स्नेहवस्तिका निरन्तर सेवन करनेसे दोष उत्क्लेशित हो जाते है और जठराग्नि मन्द हो जाती है। इसी प्रकार निरूहण वस्तिका निरन्तर प्रयोग करनेसे रूक्षता और वातप्रकोप हो जाता है।

इस कारण निरूहणके अनन्तर स्नेहन और स्नेह-नके अनन्तर निरूहण करना आवश्यक होता है ६५॥

विधिपूर्वक वस्तिप्रयोगका फल ।

तस्मान्निरूढः स्नेह्यः स्यान्निरूह्यश्चानुवासितः । स्नेहशोधनयुक्त्यैवं बस्तिकर्म त्रिदोषजित् ६६॥

इस प्रकार स्नेहन और स्वेदनकी युक्ति अर्थात् प्रयोगसे वस्तिकर्मका करना तीनों दोषोंको जीतनेवाला होता है। इस विषयमें संग्रहमें लिखा है–यदि अठा-रह २ दोनों प्रकारकी वस्तियोंका अर्थात् निरूहण और अनुवासन वस्तियोंका विधिपूर्वक प्रयोग किया जाय तो मनुष्य अजर, रोगरहित, सहस्रायुधारण-शक्तिवाला, पापरहित, स्थिरबुद्धिवाला और महाबल-आदि गुणोंवाला हो जाता है ॥ ६६ ॥

मात्रावस्ति ।

ह्रस्वया स्नेहपानस्य मात्रया योजितः समः ६७ मात्राबस्तिः स्मृतः स्नेहः शीलनीयः सदा च सः । बालवृद्धाध्वभारस्त्रीव्यायामासक्तचिंतकैः ६८॥ वातभग्नबलाऽल्पाग्निनृपेश्वरसुखात्मभिः । दोषघ्नो निष्परीहारो बल्यः सृष्टमलः सुखः ६९

ह्रस्व मात्रा अर्थात् दो प्रहरमें जीर्ण हो जानेवाली स्नेहपानकी मात्राके समान प्रयोग किया हुआ स्नेह मात्रावस्ति कही जाती है । यह मात्रावस्ति बालक, वृद्ध, मार्ग चलनेसे थके हुए, स्त्रीसंगसे कृश हुए, नित्य व्यायाम करनेवाले, नित्य पठनपाठनादि चिंता करनेवाले, वातार्त, निर्बल, अल्पाग्निवाले, राजा, महा-राजा, धनाढय और सुखमें रहनेवाले पुरुषोंको सदा सेवन करना चाहिये । यह मात्रावस्ति सेवन की हुई बलको बढ़ाती है, मलको स्वच्छतासे निकालती है, सुखकारी है तथा इसमें किसी प्रकारका नियन्त्रण नहीं है । यह वस्ति सब प्रकार हितकारी होती है ॥ ६७–६९ ॥

स्त्रियोंके लिये वस्तिकर्म ।

बस्तौ रोगेषु नारीणां योनिगर्भाशयेषु च । द्वित्रास्थापनशुद्धेभ्यो विदध्याद्बस्तिमुत्तरम् ७०

स्त्रियोंके गर्भाशय आदिके रोगोंमें प्रथम रोगिणी स्त्रीको अनुवासन और दो तीन आस्थापन वस्ति देकर शुद्ध होनेपर दो या तीन उत्तरवस्तियोंका प्रयोग मूत्राशय और गर्भाशयमें करना चाहिये । जैसे मल-

द्वारसे अनुवासन और आस्थापन वस्तियें की जाती है, वैसे ही मूत्रमार्गसे जो वस्ति की जाती है उसको उत्तर-वस्ति कहते हैं ॥ ७० ॥

पुरुषोंके लिये उत्तरवस्तिमें नेत्रनालिका-का परिमाण ।

**आतुरांगुलमानेन तन्नेत्रं द्वादशांगुलम् ।
वृत्तं गोपुच्छवन्मूलमध्ययोः कृतकर्णिकम् ७१
सिद्धार्थकप्रवेशाग्रं श्लक्ष्णं हेमादिसंभवम् ।
कुंदाश्वमारसुमनःपुष्पवृंतोपमं दृढम् ॥ ७२ ॥**

रोगीके बारह(१२)अंगुल परिमाण लम्बाई उत्तर-वस्तिके नेत्र (मुखनलिका) की होनी चाहिये । वह नेत्र गोल, मृदु, गोपुच्छके समान मूलभागमेंसे कुछ मोटाई लिये हुए अग्रभागमें सूक्ष्म और मूलभागमें कर्णिकायुक्त होना चाहिये । तथा उसका प्रवेशस्थान पीली सर्सोंके दानेके बराबर होना चाहिये । यह मूत्र-मार्गसे प्रवेश करनेकी शलाका (कैथिटर) अर्थात् उत्तरवस्तिका नेत्र स्वर्ण या चांदी आदि धातुसे बना हुआ और कुन्द, कनेर, या चमेलीके फूलकी डंडीके समान गोल और दृढ़ होनी चाहिये । यह नलिका पुरुषोंके उत्तरवस्तिमें प्रयोग की जाती है ७१॥७२॥

नेत्रवस्तिका निर्देश ।

तस्य बस्तिर्मृदुलघुर्मात्रा शुक्तिर्विकल्प्य वा ७३

उत्तरवस्तिमें प्रयोग करनेके लिये वस्ति बहुत नर्म, हलकी, जिसमें दो कर्ष परिमाण स्नेहादि आ सकें ऐसी होनी चाहिये। अथवा अवस्था,शरीर और बलके अनुसार वस्तिकी कल्पना करनी चाहिये। "इस समय यह वस्ति (पिचकारी) भी धातु आदिकी बनी हुई प्रयोग की जाती हैं " ॥ ७३ ॥

उत्तरवस्ति प्रयोग करनेकी विधि ।

**अथ स्नाताशितस्यास्य स्नेहबस्तिविधानतः ।
ऋजोः सुखोपविष्टस्य पीठे जानुसमे मृदौ ।
हृष्टे मेढ्रे स्थिते चर्जौ शनैः स्रोतोविशुद्धये ७४॥
सूक्ष्मां शलाकां प्रणयेत्तया शुद्धेऽनुसेवनीम् ।
आमेहनांतं नेत्रं च निष्कंपं गुदवत्ततः ।
पीडितेऽन्तर्गते स्नेहे स्नेहबस्तिक्रमो हितः७५॥**

जिस मनुष्यको उत्तरवस्ति कराना हो उसको प्रथम स्नेहवस्तिकी विधिके अनुसार स्नान भोजना-दिके अनन्तर जानुपर्यंत ऊंचे, सीधे और मृदु आसन (गद्देवाली चौकी) पर सीधा बठाकर उसकी प्रहृष्ट शिश्नेन्द्रियमें धीरे २ सीधी उत्तरवस्तिकी नलिका (कैथिटर) का प्रवेश करे । यह सूक्ष्म-शलाका मूत्र स्रोतकी शुद्धिके लिये और मूत्राशयके रोगनिवृत्तिके लिये प्रयोग करना चाहिये । इस सूक्ष्मशलाकाको शिश्नेन्द्रियके मूत्रद्वारसे धीरे २ सीव-नकी ओर संपूर्ण शिश्नेन्द्रियके अन्ततक विना हाथको कँपाये प्रवेश करना चाहिये । फिर इस शलाका (कैथिटर) में वस्तिका नेत्र लगाकर जैसे अनुवासन वस्ति आदिको पीड़न किया जाता है वैसे ही धीरेसे न बहुत देरमें, न बहुत शीघ्र वस्तिका स्नेहादि द्रव्य मूत्राशयमें पहुँचा देना चाहिये । यह उत्तरवस्ति प्रयोग करनेकी विधि है । इसमें सब क्रम स्नेहवस्तिके समान करना चाहिये ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

तीन या चार वस्तियोंका निर्देश ।

**बस्तीननेन विधिना दद्यात्त्रींश्चतुरोऽपि वा ।
अनुवासनवच्छेषं सर्वमेवाऽस्य चिंतयेत् ॥७६॥**

इस विधिसे तीन या चार उत्तरवस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये । बाकी सब क्रिया अनुवासनके समान इसके लिये करनी चाहिये । अर्थात् जब स्नेह वापिस आ जाय तो सब विधि अनुवासनके समान करनी चाहिये । "यदि तैलादि वस्ति देते ही शीघ्र निकल जाय तो तुरन्त अन्य वस्तिका प्रयोग कर देना चाहिये । यदि स्नेह नहीं निकले तो पीपल, अम्लतास, धूम, इन्द्रजौ, सैंधा नमक इनको गोमूत्र और कांजीमें रगड़कर सर्सोंके समान मोटी वत्ती अग्रभागमें और मापके समान मोटी मूलभागमें एसी बत्ती बना-कर छायामें सुखाकर मूत्रमार्गमें प्रवेश करे । इससे उत्तरवस्तिका दिया हुआ स्नेह बाहर निकल आता है । " इसके अनन्तर स्नानादि विधि उत्तर-वस्तिके समान करनी चाहिये ॥ ७६ ॥

स्त्रियोंके लिये उत्तरवस्ति ।

स्त्रीणामार्तवकाले तु योनिर्गृह्णात्यपावृतेः ७७॥
विदधीत तदा तस्मादनृतावपि चात्यये ।
योनिविभ्रंशशूलेषु योनिव्यापदसृग्दरे ॥ ७८ ॥

स्त्रियोंके ऋतुकालमें गर्भाशयका मुख खुला होनेके कारण उत्तरवस्तिका प्रयोग करनेसे गर्भाशयका यथार्थ शोधन हो सकता है।इस कारण स्त्रियोंके उत्तर-वस्तिका प्रयोग ऋतुकालमें करना चाहिये । परन्तु योनिविभ्रंश,योनिशूल,योनिव्यापत्ति और प्रदर आदि योनिरोगोंमें आवश्यकता हो तो ऋतुकालसे विना भी उत्तरवस्ति करनी चाहिये ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

स्त्रियोंके लिये उत्तरवस्तिमें वस्तिनेत्रका परिमाण ।

नेत्रं दशांगुलं मुद्गप्रवेशं चतुरंगुलम् ।
अपत्यमार्गे योज्यं स्याद् द्व्यंगुलं मूत्रवर्त्मनि ।
मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ७९ ॥

स्त्रियोंकी उत्तरवस्तिके लिये वस्तिनेत्र दश अंगुलका होना चाहिये । और उस नेत्र (नेत्रनलिका) का प्रवेशस्थान अर्थात् अग्रभागकी मोटाई मूंगके दानेके समान होनी चाहिये । पृष्ठभाग क्रमसे किंचित् मोटा होना चाहिये। यदि वस्तिका प्रयोग गर्भाशयकी शुद्धिके लिये करना हो तो वस्तिनेत्र चार अंगुल भीतर प्रवेश करना चाहिये । यदि मूत्रमार्गकी शुद्धिके लिये वस्तिप्रयोग करना हो तो दो अगुल वस्तिनेत्रका प्रवेश करना चाहिये ।

छोटी उमरकी लड़कियोंके मूत्रकृच्छ्रादि विकारोंमें यदि उत्तरवस्ति करना अत्यावश्यक हो तो वस्तिनेत्रका प्रवेश एक अंगुलसे अधिक नहीं करना चाहिये। अथवा अवस्थानुसार इससे न्यून या अधिक कल्पना करनी चाहिये ॥ ७९ ॥

स्त्रियोंकी अवस्थाविशेषसे स्नेहकी मात्रा ।

प्रकुंचो मध्यमा मात्रा बालानां शुक्तिरेव तु८०

स्त्रियोंकी उत्तरवस्तिमें स्नेहकी मात्रा १ एक पल अर्थात् मध्यमा मात्राका प्रयोग करना चाहिये । और छोटी उमरकी स्त्रियोंके लिये स्नेहकी मात्रा दो (२) कर्ष होनी चाहिये ॥ ८० ॥

स्त्रियोंके लिये उत्तरवस्तिका क्रम ।

उत्तानायाःशयानायाःसम्यक् संकोच्य सक्थिनी
ऊर्ध्वजान्वास्त्रिचतुरानहोरात्रेण योजयेत्॥८१॥
बस्तींस्त्रिरात्रमेवं च स्नेहमात्रां विवर्धयेत् ।
त्र्यहमेव च विश्रम्य प्रणिदध्यात् पुनस्त्र्यहम् ।

जिस स्त्रीकी योनिमें उत्तरवस्ति करना हो उसको सीधी उत्तान लेटाकर उसकी दोनों टांगोंको सुकोड़कर दोनों जानु ऊपरको कर देवे । फिर रोगानुसार सिद्ध किये हुए तैलादिकी भरी उत्तरवस्ति जिसमें पवनका प्रवेश न हो उस वस्तिके नेत्रको ऊपर लिखे परिमाणके अनुसार प्रवेश कर विधिपूर्वक स्नेहादि द्रव्य योनिमें पहुँचा देवे । इस प्रकार तीन या चार वस्तियें एकदिनरातमें करनी चाहिये । इस प्रकार तीन दिनतक बराबर वस्तियें करते रहें और किंचित् स्नेहकी मात्रा भी बढ़ाते रहना चाहिये ।

फिर तीन दिन वस्तिकर्म छोड़कर विश्राम करनेके अनन्तर फिर तीन दिन इसी विधिसे उत्तरवस्तिका प्रयोग करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

वमनादिका नियम ।

पक्षाद्विरेको वमिते ततः पश्चान्निरूहणम् ।
सद्यो निरूढश्चाऽन्वास्यः सप्तरात्राद्विरेचितः ८३

वमन करानेके अनन्तर पेयादि क्रमसे प्रकृति भोजन तक पहुँच जाय तो विधिपूर्वक स्नेहन कराकर वमनसे पन्द्रहवें दिन विरेचन कराना चाहिये । फिर विरेचनके अनन्तर सात दिनमें प्रकृति भोजन-तक पहुँचकर फिर क्रमसे अनुवासन कराकर विरेचनके दिनसे पन्द्रहवें दिन निरूहणवस्ति करनी चाहिये । क्योंकि विरेचन करानेके दिनसे सात दिनके अनन्तर अनुवासन करनेकी विधि है । सात दिनमें अनुवासनद्वारा यथार्थ स्निग्ध हो जानेपर विरेचनसे पन्द्रहवें दिन ही निरूहणका ठीक क्रम है ॥ ८३ ॥

दृष्टान्त ।

यथा कुसुंभादियुतात्तोयाद्रागं हरेत्पटः ।
तथा द्रवीकृताद्देहाद्वस्तिर्निर्हरते मलान् ॥८४॥

जैसे कुसुंभादि रंग मिले हुए जलमेंसे वस्त्र रंगको ग्रहण कर लेता है और पुष्पोंको ग्रहण नहीं करता, उसी प्रकार स्वेदन स्नेहनादिसे द्रवीभूत हुए दोषोंको वस्ति हरण कर लेती है, परन्तु धातुओंको हरण नहीं करती है ॥ ८४ ॥

शाखादिगत रोगोंमें वायुका हेतुत्व ।

शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगा
मर्मोर्ध्वसर्वावयवांगजाश्च ।
ये संति तेषां नतु कश्चिदन्यो
वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति ॥ ८५ ॥

बाहु जंघा आदि शरीरकी शाखाओंमें अथवा रक्तादि शाखाओंमें होनेवाले शाखागत रोग, महास्रोतादिमें होनेवाले कोष्ठगत रोग, मर्मस्थानोंमें होनेवाले रोग, ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, सब अंगोंमें होनेवाले ज्वरादि रोग और शरीरके अवयवोंमें होनेवाले संपूर्ण रोगोंकी उत्पत्तिमें वात विकृतिके विना और कोई भी कारण नहीं है, क्योंकि पित्त और कफ ये दोनों दोष विना वायुसे अनुबल प्राप्त किये कुछ भी नहीं कर सकते। इस कारण सब रोगोंकी उत्पत्तिमें वायु ही परम कारण है ॥ ८५ ॥

वायुके हेतुत्वमें कारण ।

विट्श्लेष्मपित्तादिमलाचयानां
विक्षेपसंहारकरः स यस्मात् ।
तस्याऽतिवृद्धस्य शमाय नान्य-
द्वस्तेर्विना भेषजमस्ति किंचित् ॥ ८६ ॥

विष्ठा, कफ, पित्त आदि सब मलोंके सञ्चयको इधर उधर विक्षेपण करना या संहार करना वायुके ही अधीन है, इस कारण वायु ही सब रोगोंका हेतु है। इस वायुकी अतिवृद्धिरूप महाव्याधिको वस्तिकर्मके विना कोई भी औषध यथार्थरूपसे शमन नहीं कर सकता ॥ ८६ ॥

वस्तिकर्मका श्रेष्ठत्व ।

तस्माच्चिकित्सार्ध इति प्रदिष्टः
कृत्स्ना चिकित्साऽपि च वस्तिरेकैः ।
तथा निजागंतुविकारकारि-
रक्तौषधत्वेन शिराव्यधोऽपि ॥ ८७ ॥

इस कारण सम्पूर्ण व्याधियोंकी संपूर्ण चिकित्साओंमें आधी चिकित्सा केवल एक वस्तिकर्म ही है। कोई आचार्य वस्तिकर्मको ही सम्पूर्ण चिकित्सा मानते है। जैसे सम्पूर्ण व्याधियोंमें आधी चिकित्सा केवल वस्तिकर्म है, वैसे ही निज और आगन्तुक विकारोंके करनेवाले रक्तको शमन करनेवाली शिरावेधनद्वारा रक्त मोक्षण करना भी सम्पूर्ण चिकित्साओंमें आधी चिकित्सा है ॥ यहां पर अरुणदत्तजीने लिखा है कि पित्त और कफके सब विकार मिलानेपर सम्पूर्ण संख्या दोनों दोषोंके विकारोंकी स्थूलरूपसे साठ (६०) हो सकती है। और वातविकारोंकी स्थूल संख्या चौरासी (८४) कही है। इस कारण यदि वस्तिकर्मको विशेषरूपसे वातनाशक ही माना जाय तो भी सम्पूर्ण रोगोंकी चिकित्साओंमें वस्तिकर्मको आधी चिकित्सा कथन करना ठीक ही है। इसी प्रकार विसर्प, विद्रधि आदि अनेक निज और आगन्तुक दंशादि रोगोंमें रक्त ही प्रधान है। शिरावेधनद्वारा उसको शमन करदेना ही सम्पूर्ण अन्य चिकित्साओंके बराबर है ॥ ८७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां,
वैद्यरत्न-पण्डित-श्रीरामप्रसादात्मज-विद्या-
लङ्कारवैद्य-शिवशर्मविरचित-शिवदीपि
काख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो नस्यविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम नस्यकर्मकी विधिवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं:--

नस्यकर्मकी प्रधानता ।

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु विशेषान्नस्यमिष्यते ।
नासा हि शिरसो द्वारं तेन तद्व्याप्य हंति तान् १

ऊर्ध्वजत्रुगत विकारोंमें नस्यकर्म विशेषरूपसे लाभकारी होता है, क्योंकि नासामार्ग ही शिरका द्वार है। इसलिये नासाद्वारा ओषधि शिरमें जाकर शिरोगत और ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंको शमन कर देती है ॥ १ ॥

त्रिविध नस्य ।

विरेचनं बृंहणं च शमनं च त्रिधाऽपि तत् ।

वह नस्य विरेचन, बृंहण और शमन भेदसे तीन प्रकारका होता है ॥--

विरेचन नस्य ।

विरेचनं शिरःशूलजाडयस्यंदगलामये ।
शोफगंडकृमिग्रंथिकुष्ठाऽपस्मारपीनसे ॥ २ ॥

इनमें शिरःशूल, शिरकी जड़ता, अभिष्यन्द, गलके रोग, ऊर्ध्वगत शोथ, गलगंड, नासा और मस्तकगत कृमि, ग्रन्थि, कुष्ठ, अपस्मार और पीनस इन रोगोंमें विरेचन नस्यका प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

बृंहण नस्य ।

बृंहणं वातजे शूले सूर्यावर्ते स्वरक्षये ।
नासाऽस्यशोषे वाक्संगे कृच्छ्रबोधेऽवबाहुके३॥

वातज मस्तकपीड़ामें, अनन्त वातादि शूलोंमें, सूर्यावर्तमें, अर्धाऽवभेदकमें, स्वरक्षयमें, नासाशोषमें, मुखशोषमें, वाणीकी रुकावटमें, कष्टसे नेत्रोन्मीलनेमें और अवबाहुक रोगमें बृंहण नस्यका प्रयोग करना चाहिये ३॥

शमन नस्य ।

शमनं नीलिकाव्यंगकेशदोषाक्षिराजिषु ॥ ४ ॥

नीलिका व्यंग आदि मुखपर होनेवाले छांई, सिध्म आदि रोगोंमें, केशपतन, अकालपलित खालित्यादि रोगोंमें और नेत्रोंमें होनेवाली रक्तरेखा आदि रोगोंमें शमन नस्यका प्रयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

त्रिविध नस्यमें द्रव्यकल्पना ।

यथास्वं यौगिकैः स्नेहैर्यथास्वं च प्रसाधितैः ।
कल्कक्काथादिभिश्चाद्यं मधुपट्वासवैरपि ॥ ५ ॥

दोष दूष्यादि विचारकर दोषानुसार ओषधियोग कल्पना कर सिद्ध किये हुए तैलादि स्नेहोंसे अथवा दोषानुसार कल्पना किये हुए द्रव्योंके कल्क, चूर्ण, काथादिकोंसे अथवा मधु, लवण और आसवोंसे विरेचन नस्य देना चाहिये ॥ ५ ॥

बृंहण तथा शमन नस्य ।

बृंहणं धन्वमांसोत्थरसासृक्खपुरैरपि ।
शमनं योजयेत्पूर्वैः क्षीरेण च जलेन च ॥ ६ ॥

जांगल जीवोंके मांसरस, रक्त, वृक्षोंके निर्यास आदिसे तथा बृंहण द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए तैलादिकोंसे बृंहण नस्य देना चाहिये ॥

---

१ तत्तु नस्यं देयं वाताभिभूते शिरसि दन्तकेशश्मश्रुप्रपातदारुणकर्णशूलकर्णक्ष्वेडतिमिरस्वरोपघातनासारोगास्यशोषावबाहुकाऽकालजवलीपलितप्रादुर्भावदारुणप्रबोधेषु वातपैत्तिकेषु चान्येषु मुखरोगेषु वातपित्तहरद्रव्यासिद्धेन स्नेहेनेति । शिरोविरेचनं श्लेष्मणाऽभिव्याप्ततालुकंठशिरसामरोचकशिरोगौरवशूलपीनसाऽर्धावभेदककृमिप्रतिश्यायाऽपस्मारगंधाज्ञानेष्वन्येषु चोर्ध्वजत्रुगतेषु कफजेषु विकारेषु शिरोविरेचनद्रव्यैस्तत्सिद्धेन वा स्नेहेनेति । तथा सम्यग्विशुद्ध शिरस सर्पिर्नस्यं निषिञ्चयेत् । अवपीडस्तु शिरोविरेचनवदाभिष्यन्दसर्पदष्टविसंज्ञेभ्यो दद्याच्छिरोविरेचनद्रव्याणामन्यतममवपीड्याऽवपिष्य चेतोविकारकृमिविषाभिपन्नानां चूर्णं प्रधमेत् । शर्करेक्षुरसक्षीरघृतमांसरसानामन्यतमं क्षीणानां शोणितपित्ते च विदध्यात् । "कृशदुर्बलभीरूणां सुकुमारस्य योषिताम्। शृता: स्नेहा: शिरः शुद्ध्यै कल्कस्तेभ्यो यथा हितः॥" इति सर्वांगसुन्दरायाम्।

प्रथम कथन किये हुए तीक्ष्ण स्नेह घृतादि अथवा बृंहण मांसरसादि या दूध और जल आदिसे शमन नस्य देना चाहिये ॥ ६ ॥

मर्श और प्रतिमर्श नस्य ।

मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्विधा स्नेहोऽत्र मात्रया।

नस्य कर्ममें तैलादि स्नेहोंकी नस्यविधि मर्श और प्रतिमर्श भेदसे दो प्रकारकी होती है । यह मर्श और प्रतिमर्श स्नेहकी मात्राभेदसे ही दो प्रकारकी हो जाती है ।

अवपीडक नस्य ।

कल्काद्यैरवपीडस्तु तीक्ष्णैर्मूर्धविरेचनः ॥ ७ ॥

तीक्ष्ण शुंठी, कायफल या छिकनी आदि तीक्ष्ण द्रव्योंके कल्क आदिसे जो मस्तकको विरेचन करनेवाली नस्य होती है उसको मूर्धविरेचन या अवपीडक नस्य कहते हे ॥ ७ ॥

प्रध्मान नस्य ।

ध्मानं विरेचनश्चूर्णो युंज्यात्तं मुखवायुना ।
षडंगुलद्विमुखया नाड्या भेषजगर्भया ॥
स हि भूरितरं दोषं चूर्णत्वादपकर्षति ॥ ८ ॥

कायफल और मरिच आदिके सूक्ष्म चूर्णसे दी हुई नस्यको प्रध्मान नस्य कहते हैं । यह प्रध्मान नस्य छे अंगुल लम्बी नर्सल आदिकी नाड़ीमें यह चूर्ण भरकर इस नलिकाको नासिकाके छिद्रमें रख मुखसे प्रध्मापन कर (फूंक मार) मस्तकमें पहुँचा देना चाहिये । यह चूर्ण तीक्ष्ण,विरेचक और सूक्ष्म होनेके कारण बहुत दोषोंको अपकर्षण कर निकाल देता है ॥ ८ ॥

मर्श नस्यका परिमाण ।

प्रदेशिन्यंगुलीपर्वद्वयान्मग्नसमुद्धृतात् ॥ ९ ॥
यावत्पतत्यसौ बिंदुर्दशाष्टौ षट् क्रमेण ते ।
मर्शस्योत्कृष्टमध्योना मात्रास्ता एव च क्रमात्।
बिंदुद्वयोनाः कल्कादेः—

प्रदेशिनी अंगुलीके दो पोरुए तैलमें डुबाकर बाहर निकालनेसे जो तैलकी बूंद गिरती वैसी दश बूंदकी नस्य मर्शनस्यकी उत्तम मात्रा है । आठ बूंदकी मध्यम मात्रा और इसी क्रमसे छे बूंदकी मात्राको कनिष्ठ मात्रा कहते हे । यह मात्रा ओषधिसिद्ध तैलादि स्नेहकी कही है और कल्कादिकी मात्रा इससे दो बिन्दु न्यून होती है । जैसे—आठ बिन्दुकी उत्तम मात्रा, छे बिन्दुकी मध्यम मात्रा और चार ४ बिन्दुकी कनिष्ठ मात्रा होती है ॥ ९ ॥ १० ॥—

नस्यके अयोग्य पुरुष ।

—योजयेन्न तु नावनम् ।
तोयमद्यगरस्नेहपीतानां पातुमिच्छताम् ॥११॥
भुक्तभक्तशिरःस्नातस्नातुकामस्रुतासृजाम् ।
नवपीनसवेगार्तसूतिकाश्वासकासिनाम् ॥ १२ ॥
शुद्धानां दत्तवस्तीनां तथा नार्तवदुर्दिने ।
अन्यत्राऽऽत्ययिकाद्व्याधेः—

इन आगे कहे हुए पुरुषोंको नस्य नहीं देना चाहिये। जैसे—जो जल पी चुके हों,जिन्होंने मद्य पिया हो,या विष पिया हो, या स्नेहपान किया हो, अथवा जल, मद्य, गर या स्नेह पीनेवाला हो,या तुरन्त भोजन किया हो, अथवा शिरपर जल डालकर स्नान किया हो, या शिरःस्नान करनेवाला हो, अथवा रक्त निकाला हो; ऐसे पुरुषोंको नस्यकर्म नहीं करना चाहिये । तथा नवीन प्रतिश्यायके वेगवाले, मलमूत्रके वेगवाले पुरुष, प्रसूता-स्त्री, श्वासरोगी, कासरोगी, सद्यः शुद्ध हुए पुरुष, जिसने वस्ति ली हो, वर्षा आदि दुष्ट ऋतुमें और दुर्दिनमें भी नस्य कर्म नहीं करना चाहिये । क्योंकि जल, मद्य आदि पिये ए या पीनेवाले मनुष्योंको नस्य देनेसे शिरोरोग और तिमिर आदि रोग हो जाते हैं। सद्यः भोजन रनेके अनन्तर नस्य देनेसे नस्य ऊर्ध्वस्रोतोंको रोककर छर्दि, श्वास और प्रतिश्याय आदि रोग हो जाते हैं। शिरःस्नानके अनन्तर नस्य कर्मसे अक्षिशूल, कर्णशूल कंठरोग, पीनस, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, अर्दित और शिरःकम्प आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं । स्नानकी कामना करनेवाले मनुष्यको नस्य देनेसे शिरकी जड़ता और पीनसादि रोग हो जाते हैं । रक्तमोक्षणके अनन्तर तुरन्त नस्यकर्मसे स्वरभंग, अरुचि और मन्दाग्नि हो

जाती है। नवीन प्रतिश्यायमें नस्य देनेसे स्रोतोंका रोध होकर दुष्ट प्रतिश्याय, कृमि, कंडू और विचर्चिका आदि रोग होते है। मल मूत्रादिके वेगमें नस्य लेनेसे उदावर्त आदि रोग उत्पन्न हो जाते है। प्रसूताको नस्य देनेसे स्वरभंग, अरुचि तथा अग्निमान्द्यादि रोग उत्पन्न होते है। श्वास कासमें नस्य कर्मसे श्वास कासकी वृद्धि होती है। वमन विरेचनादिसे शुद्ध हुए पुरुषोंको नस्य देनेसे श्वास, कास और इन्द्रियवधादि तथा शिरोरोगादि रोग उत्पन्न हो जाते है। दत्तवस्तिवालोंको नस्य देनेसे श्वास कासादि रोग होते है। दुष्ट ऋतुमें और दुर्दिनमें नस्य देनेसे शिरोरोग, नेत्ररोग, मन्यास्तम्भ और प्रतिश्यायादि रोग हो जाते है। "गर्भिणीको नस्य देनेसे ज्वर, मूर्छा, अर्धावभेदकादि रोग और गर्भविकृति हो जाती है" इस कारण इन उपरोक्त पुरुषोंको विना अत्यावश्यक आत्ययिक व्याधिमें देनेके नस्य नहीं देने चाहिये। अर्थात् कोई शिरःशूलादि इतना कठिन रोग हो जिसमें नस्य देना अत्यावश्यक हो तो अविरोधी क्रियासे नस्यकर्म करे।

यदि नस्यदोषसे उपरोक्त रोग उत्पन्न हो जायँ तो यथादोष स्वेदन, स्नेहन, गंडूष, लेपसेकादिद्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। यदि गर्भवतीको नस्यजनित विकार हो जाय तो पुनर्नवा, काकोली आदिसे शुद्ध किया हुआ दूध पिलावे। तथा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृत तैलादि स्नेहोंसे शिरोबस्ति, कर्णपूरण आदि करना चाहिये और बृंहण अन्नपान देना चाहिये॥११॥१२॥—

नस्यकर्मका काल।

—अथ नस्यं प्रयोजयेत् ॥१३॥
प्रातः श्लेष्मणि मध्याह्ने पित्ते सायंनिशोश्चले।
स्वस्थवृत्ते तु पूर्वाह्णे शरत्कालवसंतयोः॥
शीते मध्यंदिने ग्रीष्मे सायं वर्षासु सातपे॥१४॥

कफके रोगोंमें प्रातःकाल नस्य देना चाहिये, पित्तके रोगोंमें मध्याह्नकालमें नस्य देना चाहिये, वातरोगोंमें सायंकाल अथवा रात्रिको नस्य देना चाहिये। "और लालस्राव, सुप्ति, प्रलाप, दन्तकटकटपन, क्रथन, कर्णनाद, तृष्णा, कृच्छ्रोन्मीलन, पूतिमुख, अर्दित शिरोरोगादिकोंमें तथा निद्रानाशमें और श्वासादिकोंमें रात्रिको नस्य देना चाहिये"॥

स्वस्थ मनुष्यको शरद या वसन्त ऋतुमें पूर्वाह्णकालमें नस्य देना चाहिये तथा हेमन्त और शिशिर ऋतुमें मध्याह्नकालमें, ग्रीष्मऋतुमें सायंकालमें और वर्षाऋतुमें सूर्यकी धूपमें नस्य देना चाहिये॥१३॥१४॥

दोषकी अपेक्षासे नस्यका काल।

वाताभिभूत शिरसि हिध्मायामपतानके॥१५॥
मन्यास्तंभे स्वरभ्रंशे सायंप्रातर्दिने दिने।
एकाहांतरमन्यत्र सप्ताहे च तदाचरेत्॥ १६॥

वातजनित मस्तकपीड़ामें, हिचकीमें, अपतानकमें, मन्यास्तम्भमें और स्वरभंगमें प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल दो बार नस्य देना चाहिये। इन रोगोंके विना अन्य रोगोंमें एक एक दिनका अन्तर देकर सात दिन पर्यन्त नस्यकर्म करना चाहिये। "सात दिनके अनन्तर नस्यकर्म नहीं करना चाहिये"॥ १५॥ १६॥

नस्य देनेका क्रम।

स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्य प्राक्कृतावश्यकस्य च।
निवातशयनस्थस्य जत्रूर्ध्वं स्वेदयेत् पुनः॥१७॥
अथोत्तानर्जुदेहस्य पाणिपादे प्रसारिते।
किंचिदुन्नतपादस्य किंचिन्मूर्धनि नामिते॥
नासापुटं पिधायैकं पर्यायेण निषेचयेत्।
उष्णांबुतप्तं भैषज्यं प्रनाड्या पिचुनाऽथवा॥१८॥

प्रथम शिरका स्नेहन और स्वेदन करनेके अनन्तर मल मूत्रादि त्याग रूप आवश्यक कार्य कर निर्वातस्थानमें स्थित हो फिर ऊर्ध्वजत्रुओंका स्वेदन करे।

---

१ वस्त्रावच्छादितनेत्राय वामहस्तप्रदेशिन्योन्नामितनासिकाग्राय विशुद्धस्रोतसि दक्षिणहस्तेन स्नेहमुष्णांबुप्रतप्त रजतादिशुक्तीनामन्यतमस्थमनवच्छिन्नधारमासिंचेदिति सुश्रुते॥

फिर उस रोगीको निर्वातस्थानमें शय्यापर सीधा लेटा देवे और उसके हाथ पांव भी शय्यापर सीधे पसार देवे। उसकी शय्याको पांवोंकी तर्फसे ऊंचा और शिरकी ओरसे किंचित् नीचा कर देना चाहिये, फिर नस्यकी ओषधिको गर्म जलके ऊपर रख किंचित् गर्म करके या रुईके फोएसे अथवा नाड़ी या पिचकारी आदिसे लेकर उस पुरुषके प्रथम एक नासापुटको बन्द करके दूसरे नासापुटमें ओषधिका सेचन करे। फिर ओषधि दिये हुए नासापुटको बन्द करके पहली नासापुटमें भी नस्यका प्रयोग करे। नस्य लेते समय शिर किंचित् पीछेकी ओर नवा देना चाहिये ॥ १७ ॥१८॥

नस्यके अनन्तर पाद आदिका मर्दन।

दत्ते पादतलस्कंधहस्तकर्णादि मर्दयेत्।
शनैरुच्छिद्य निष्ठीवेत्पार्श्वयोरुभयोस्ततः॥१९॥

नस्य देनेके अनन्तर पादतल, दोनों कंधे, हाथ और कान आदि स्थानोंका मर्दन करना चाहिये। इस प्रकार मर्दनके अनन्तर दोनों ओरके नासापुटोंमेंसे नस्यको ऊर्ध्वश्वास द्वारा ऊपरको खेंचकर धीरेसे निष्ठीवन कर देवे। अर्थात् ऊपरको सूंघकर दोनों नासिकाओंका स्नेहादि श्वासके साथ खेंचकर उसका जो भाग मुखमें चला जाय उसको थूक देवे ॥ १९ ॥

ओषधिके क्षय होनेपर दो या तीन बार नस्य प्रयोग।

आभेषजक्षयादेवं द्विस्त्रिर्वा नस्यमाचरेत्॥२०॥

जब पहले दिया हुआ नस्यमार्गका तैलादि क्षय हो जाय अर्थात् शिरकी ओर चला जाय तो दो या तीन बार और नस्य देना चाहिये। किन्तु हीन मात्रामें नस्यकी औषध नहीं देना चाहिये। हीन मात्राकी औषध दोषोंको उत्क्लेशित तो कर देती है, परन्तु निकालनेमें असमर्थ होनेसे शिरमें भारीपन, प्रतिश्याय, अरुचि, लालास्राव, छर्दि और कंठरोगोंको उत्पन्न करती है। अधिक मात्रामें दी हुई अतियोगजनित विकारोंको उत्पन्न करती है। एक कालमें ही एकदम सम्पूर्ण ओषधि देनेसे शिरोरोग, श्वासोपरोध आदि रोगोंको उत्पन्न करती है। अत्यन्त उष्ण देनेसे दाह, पाक, मूर्छा आदिको उत्पन्न करती है। अत्यन्त शीत होनेसे हीनताके दोषोंको उत्पन्न करती है। ऊंचा शिर रहनेसे मस्तकको ओर न जाकर हीन मात्राके दोषोंको करती है। अति अवनत शिर होनेसे ओषधि शीघ्र मस्तकमें जाकर मूर्छादि रोगोंको करती है। हाथ, पांव आदि अंगोंके सीधे न रहनेसे धमनी आदियोंमें यथार्थ गुण न कर दोषोंको उत्क्लेशित करती है। इस कारण उपरोक्त विधिसे ही नस्यका प्रयोग करना चाहिये ॥ २० ॥

नस्यसे मूर्छा आदि होने पर प्रतीकार।

मूर्छायां शीततोयेन सिंचेत्परिहरन् शिरः॥२१॥

यदि नस्यके मिथ्या प्रयोगसे मूर्छा हो जाय तो शिरके विना बाकी सब अंगोंको शीतल जलसे सेचन करना चाहिये। कारण कि नस्यके अनन्तर शिरमें जल डालनेसे मस्तकशूल, प्रतिश्याय, कास, तिमिर, खालित्य, पलित और व्यंगादिरोग हो जाते हैं। इस कारण मूर्छा होनेपर भी नस्यकर्मके अनन्तर शिरपर जल नहीं डालना चाहिये, किन्तु मूर्छानिवृत्त्यर्थ अन्य अंगोंको शीतल जलसे सिंचन करे ॥ २१ ॥

नस्यान्तमें स्थितिका प्रकार।

स्नेहं विरेचनस्यांते दद्याद्दोषाद्यपेक्षया।
नस्यांते वाक्शतं तिष्ठेदुत्तानो धारयेत्ततः॥
धूमं पीत्वा कवोष्णांबुकवलान् कंठशुद्धये॥२२॥

शिरोविरेचनके अनन्तर दोषादिकी अपेक्षासे स्नेहका प्रयोग करना चाहिये। अर्थात् तीक्ष्ण नस्यद्वारा शिरोविरेचन होनेके अनन्तर तीक्ष्ण नस्यजनित

दोषनिवृत्तिके लिये नस्यविधिके अनुसार सीधा लेटाकर दोषानुसार सिद्ध किये हुए तैल आदि स्नेहको उचित मात्रासे नासिकामें प्रयुक्त करना चाहिये ॥

स्नेह नस्यके अनन्तर सौ संख्या बोलनेतक सीधा लेटा रहे, तदनन्तर दोषानुसार यथायोग धूम पान करे और धूमपानके अनन्तर उष्ण जलको मुखमें धारण कर कुरले करे। इससे कंठकी शुद्धि हो जाती है ॥२२॥

स्नेहन नस्यद्वारा सम्यक् स्निग्धाके लक्षण ।

सम्यक्स्निग्धेसुखोच्छ्वासस्वप्नबोधाक्षपाटवम्॥२३

सम्यक् स्निग्ध हो जानेसे अर्थात् शिरोविरेचनके अनन्तर स्नेहन नस्यद्वारा मस्तकके यथार्थ स्निग्ध होनेसे सुखपूर्वक श्वास और उच्छ्वासका आना, सुखपूर्वक निद्राका आना, सुखपूर्वक जागना और इन्द्रियोंकी स्वच्छता तथा हलकापन प्रतीत होना ये लक्षण होते है ॥ २३ ॥

अस्निग्धके लक्षण ।

रूक्षेऽक्षिस्तब्धता शोषो नासास्ये मूर्धशून्यता।

रूक्ष होनेसे अर्थात् शिरोविरेचनके अनन्तर यथार्थ स्नेहन न करनेसे नेत्रोंमें स्तब्धता, नासिका और मुखका शोष तथा मस्तकका शून्य सा प्रतीत होना ये लक्षण होते है ॥—

अतिस्निग्धके लक्षण ।

स्निग्धेऽतिकंडूगुरुताप्रसेकारुचिपीनसाः॥२४॥

अतिस्निग्ध होनेसे कंडू, मस्तकमें भारीपन, मुखसे लारका गिरना, अरुचि और पीनस रोग ये लक्षण हो जाते है ॥ २४ ॥

सुविरिक्त और दुर्विरिक्तके लक्षण ।

सुविरिक्तेऽक्षिलघुतास्वरवक्त्रविशुद्धयः।
दुर्विरिक्ते गदोद्रेकः क्षामतातिविरेचिते ॥२५॥

नस्यद्वारा यथार्थ शिरोविरेचन हो जानेसे नेत्रोंमें हलकापन, स्वरमें शुद्धता और मुखका विशुद्ध होना ये लक्षण होते हैं ।

यदि यथार्थरूपसे शिरोविरेचन न हो अर्थात् शिरोविरेचनका अयोग या हीनयोग हो तो शिरोगुरुत्व और प्रतिश्याय आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

यदि अति शिरोविरेचन हो जाय तो क्षीणता आदि विकार उत्पन्न हो जाते है ॥ २५ ॥

प्रतिमर्श नस्यका प्रयोग ।

प्रतिमर्शः क्षतक्षामबालवृद्धसुखात्मसु ।
प्रयोज्योऽकालवर्षेऽपि—

क्षतयुक्त, क्षीण, बालक, वृद्ध और सुखके अभ्यासी पुरुषोंको प्रतिमर्श नस्यका प्रयोग करना चाहिये। प्रतिमर्श नस्यका अकालमें और दुर्दिनमें भी प्रयोग किया जा सकता है ॥—

प्रतिमर्श निषेध ।

—न त्विष्टो दुष्टपीनसे॥२६॥
मद्यपीतेऽबलश्रोत्रे कृमिदूषितमूर्धनि ।
उत्कृष्टोत्क्लिष्टदोषे च—
—हीनमात्रतया हि सः॥२७॥

परन्तु दुष्ट पीनसमें, मद्य पीनेके अनन्तर, श्रोत्रमार्गके रुद्ध होनेमें, श्रवण शक्तिकी दुर्बलतामें, कृमियोंसे पीड़ित शिरोरोगमें, दोषोंकी अतिवृद्धिमें और उत्क्लेशित दोषोंमें प्रतिमर्श नस्य नहीं प्रयुक्त करना चाहिये। क्योंकि प्रतिमर्श नस्य अल्प मात्रावाली होनेके कारण उदीर्ण या उत्क्लेशित हुए दोषोंका शमन नहीं कर सकती ॥ २६ ॥ २७ ॥

प्रतिमर्शके योग्य काल ।

निशाहर्भुक्तवांताहःस्वप्नाध्वश्रमरेतसाम् ।
शिरोऽभ्यंजनगंडूषप्रस्रवांजनवर्चसाम् ॥ २८ ॥
दंतकाष्ठस्य हासस्य योज्योऽन्तेऽसौ द्विबिंदुकः।
पंचसु स्रोतसां शुद्धिः क्लमनाशस्त्रिषु क्रमात् ॥
दृग्बलं पंचसु ततो दंतदार्ढ्यं मरुच्छमः॥२९॥

रातके अन्तमें, दिनके अन्तमें, भोजनके अन्तमें, वमनके अन्तमें, दिनमें सोनेके अनन्तर, मार्ग चलनेके अनन्तर, व्यायामादि श्रमके अनन्तर, स्त्रीसंगके अनन्तर, शिरोऽभ्यंगके अनन्तर, गण्डूषके अनन्तर,

मूत्र त्यागके अनन्तर, अञ्जन डालनेके अनन्तर, मल त्यागके अनन्तर, दन्तधावनके अनन्तर और हास्यके अनन्तर, दो बिन्दुमात्र प्रतिमर्श तैलका नस्य लेना हितकारी होता है ॥

प्रथम पांच कालोंमें अर्थात् रातके अन्तसे दिनके सोने पर्यंत पांच कालोंमें प्रतिमर्श नस्य लेनेसे स्रोतोंकी शुद्धि होती है। मार्ग चलनेके अनन्तर, व्यायामके अनन्तर और स्त्रीसंगके अनन्तर, इन तीन कालोंमें प्रतिमर्श नस्य लेनेसे क्लमका नाश होता है। शिरोऽभ्यंगसे लेकर मल त्याग पर्यंत पांच कालोंमें प्रतिमर्श लेनेसे दृष्टिका बल बढ़ता है। दन्तधावनके अनन्तर प्रतिमर्शसे दांतोंकी दृढ़ता होती है। और हास्यके अनन्तर प्रतिमर्शसे वायुका शमन होताहै। इस प्रकार प्रतिमर्शके पञ्चदश काल और उनका फल कहा है ॥ २८ ॥ २९ ॥

नस्यादिका अवस्थाभेदसे नियम।

न नस्यमूनसप्ताब्दे नाऽतीताऽशीतिवत्सरे ३०॥
न चोनाऽष्टादशे धूमः कवलो नोनपंचमे।
न शुद्धिरूनदशमे न चाऽतिक्रांतसप्ततौ ॥३१॥

इस प्रकारका नस्यकर्म सात वर्षसे कम आयुमें और अस्सी वर्षसे ऊपरकी आयुमें नहीं करना चाहिये। तथा अठारह वर्षसे कम आयुमें धूमपान नहीं करना चाहिये। और पांच वर्षसे कम आयुमें कवल अर्थात् गण्डूष नहीं कराना चाहिये। तथा दश वर्षसे कम आयुमें और सत्तर ७० वर्षसे ऊपरकी आयुमें वमन विरेचनादि क्रमसे शुद्धि नहीं करानी चाहिये ३०॥३१

प्रतिमर्श और वस्तिकर्मकी श्रेष्ठता।

आजन्ममरणं शस्तः प्रतिमर्शस्तु वस्तिवत्।
मर्शवच्च गुणान् कुर्यात्स हि नित्योपसेवनात् ॥
न चाऽत्र यंत्रणा नाऽपिव्यापद्भ्योमर्शवद्भयम् ३२

जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त वस्तिके समान प्रतिमर्श नस्य भी हितकारी होता है। प्रतिमर्श नस्यके सेवन करनेसे गुण तो मर्श नस्यके समान ही होते हैं। परन्तु मर्शके समान पथ्य आदिकी नियन्त्रणा या अयोग और अतियोग आदिसे होनेवाली व्यापत्तियोंका भय नहीं होता ॥ ३२ ॥

प्रतिमर्शमें तैलकी श्रेष्ठता।

तैलमेव च नस्यार्थे नित्याभ्यासेन शस्यते।
शिरसः श्लेष्मधामत्वात्स्नेहाः स्वस्थस्य नेतरे ३३

प्रतिमर्श नस्यके लिये नित्य तैलका प्रयोग करना ही हितकारी होता है। "दो अंगुलियोंको तैलमें भिगोकर दोनों नासापुटमें लगाना ही प्रतिमर्श नस्य कहा जाता है" शिर कफका स्थान होनेके कारण प्रतिमर्श नस्यमें जैसे तैल श्रेष्ठ होता वैसे इतर घृत वसादि स्नेह हितकारी नहीं होते ॥ ३३ ॥

मर्श और प्रतिमर्शके भेदादिका वर्णन।

आशुकृच्चिरकारित्वं गुणोत्कर्षापकृष्टता।
मर्शे च प्रतिमर्शे च विशेषो न भवेद्यदि ॥३४॥
को मर्शं सपरीहारं सापदं च भजेत्ततः ॥३५॥

मर्श नस्यसे गुण शीघ्र और अधिक होता है। प्रतिमर्श नस्यसे गुण अल्प और देरमें होता है। यदि प्रतिमर्श नस्यसे मर्श नस्यमें इस प्रकार गुणकी विशेषता न होती तो व्यापत्तियुक्त और परिहारवाली मर्श नस्यका कौन प्रयोग करता? अर्थात् कोई नहीं करता ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अच्छपानविचाराख्यौ कुटीवातातपस्थिती।
अन्वासमात्रावस्ती च तद्वदेव च निर्दिशेत् ३६॥

मर्श और प्रतिमर्शके समान ही अच्छ स्नेहपान और विचारणा स्नेहपानमें गुणोंकी विशेषता नहीं होती तो अच्छ स्नेहपान भी कोई नहीं करता। इसी प्रकार कुटीप्रवेश रसायनमें और वात आतपकी यन्त्रणारहित सेवन करने योग्य च्यवनप्राशादि रसायनमें गुणोंकी उत्कृष्टताका भेद नहीं होता तो आपत्ति दोषके भयवाली कुटीप्रवेशकी रसायन क्रियाको भी कोई नहीं करता। तथा अनुवासन वस्ति और मात्रावस्तिमें भी यदि शीघ्र स्नेहनादि गुणोंकी उत्कृष्टताका भेद नहीं होता तो मात्रा वस्तिको छोड़कर अनुवासन वस्ति भी कोई नहीं करता ॥ ३६ ॥

अणु तैल।

जीवंतीजलदेवदारुजलदत्वक्सेव्यगोपीहिमं
दार्वीत्वङ्मधुकप्लवागुरुवरापुंड्राह्वबिल्वोत्पलम्
धावन्यौ सुरभिः स्थिरे क्रिमिहरं पत्रं त्रुटिं रेणुकं
किंजल्कं कमलाह्वयंशतगुणेदिव्येऽम्भसिक्वाथयेत्
तैलाद्रसं दशगुणं परिशेष्य तेन
तैलं पचेच्च सलिलेन दशैव वारान्।
पाके क्षिपेच्च दशमे सममाजदुग्धं
नस्यं महागुणमुशंत्यणुतैलमेतत्॥ ३८॥

जीवन्ती, नेत्रवाला, देवदारु, नागरमोथा, दारुचीनी, खस, सारिवा, चन्दन सफेद, दारुहलदीकी छाल, मुलैठी, क्षुद्र मोथा, अगर, त्रिफला, पुंडरीक, बिल्व, कमल, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, रास्ना, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वायविडंग, पत्रज, इलायची, रेणुक, लाल कमलकी केशर और श्वेत कमलकी केशर, ये सब द्रव्य दो दो तोले लेकर साढ़े सरसठ सेर जलमें पकाकर जब सत्रह सेर जल बाकी रहे तो उतार कर छान लेवे। १ एक सेर ग्यारह छटांक एक तोला तैलमें दश बार डालकर अग्निपर सुखावे। और प्रतिवार काथ तैलके बराबर ही डालते रहना चाहिये। अर्थात् जितना तैल हो उतना ही काथ मिलाकर पकावे। फिर जब यह काथ तैलमें शोषण हो जाय तो उतना ही काथ डालकर पकावे और दशमें पाकमें तैलके बराबर बकरीका दूध डालकर पकावे। इस प्रकार दशवार पकाकर तैलको सिद्ध करे। कोई चिकित्सक इसमें तैलसे चौथा भाग जीवन्ती आदि द्रव्योंका कल्क भी डालते है। कोई विना कल्कसे ही दश वार पाक करना मानते हैं। यह महागुण करनेवाला अणु तैल नस्यकर्ममें सबसे श्रेष्ठ माना जाता है॥ ३७॥ ३८॥

नस्य सेवनका फल।

घनोन्नतप्रसन्नत्वक्स्कंधग्रीवास्यवक्षसः।
दृढेंद्रियास्त्वपलिता भवयुर्नस्यशीलिनः॥ ३९॥

अणु तैलका नित्य नस्य लेनेसे घन, उन्नत, प्रसन्न त्वचावाले स्कन्ध, ग्रीवा, मुख और वक्षस्थल हो जाते है। तथा इन्द्रियें दृढ़ हो जाती है। एवं वली और पलित रोग नहीं होते॥ ३९॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्न-पण्डित-श्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कारवैद्य-शिवशर्मविरचित-शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने विंशोऽध्यायः॥ २०॥

एकविंशतितमोऽध्यायः।

—*—

अथाऽतो धूमपानविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम धूमपान विधिवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं:—

धूमपानका गुण।

जत्रूर्ध्वं कफवातोत्थविकाराणामजन्मने।
उच्छेदाय च जातानां पिबेद्धूमं सदात्मवान्॥ १॥

जो विकार ऊर्ध्वजत्रुओंमें कफ और वातसे उत्पन्न हो जाते है वे उत्पन्न ही न हों तथा जो उत्पन्न हो गये हों वे शमन हो जायँ, इस कारण अपना हित चाहनेवाले पुरुषको सदा धूमपान करना

---

१ संग्रहे तु अणुतैलविधानं मंजिष्ठा-मधुक-प्रपौंडरीक-जीवकर्षभक-काकोली-द्वय-पयस्या-सारिवाऽनंतानी--लोत्पलांजन-रास्ना-विडंग-तंडुल-मधुपर्णी-श्रावणीमेद-काकनासा-सरल-शीतभद्र-दारु-चंदनः सुपिष्टैरष्टगुणं षड्गुणेन पयसा तैलं विपचेत्। घृतं वा पित्तोल्बणेषु दोषेषु अथवा चंदनागरुपत्रदार्वीत्वङ्मधुक-बलैला-द्वय-पद्मोत्पल-पद्मकेशर--प्रपौंडरीक-विडंगोशीर-ह्रीवेर-बलात्वङ्-मुस्ता-सारिवा-बृहती-द्वयांशुमतीद्वय-जीवंती-देवदारु-सुरभि--शतावरीः शतगुणे दिव्येऽम्भसि दशभागावशिष्टं क्वाथयेत्। ततस्तस्य क्वाथस्य दशमांशेन समांशं तैलं साधयेत्। दशमे चात्र पाके तैलतुल्यमाजमपि पयो दद्यात्। एतदप्यणुतैलं पूर्वस्माद्विशेषेणेंद्रियदार्ढ्यकरं केश्यं त्वच्यं प्रीणनं बृंहणं दोषत्रयघ्नं चेति। तंत्रांतरात्--"नस्यं विदध्याद्गुडनागरं वा ससैंधवां मागधिकामथो वा। घ्राणास्यमन्या हनुबाहुपृष्ठ्या शिरोऽक्षिकंठश्रवणामयेषु॥" इति।

चाहिये, अर्थात् धूमपान करनेसे कफ-वात-जनित ऊर्ध्वजत्रुगत रोग उत्पन्न ही नहीं होते । और जो उत्पन्न हो गये हों वे भी नष्ट हो जाते है ॥ १ ॥

त्रिविध धूम्र ।

स्निग्धो मध्यः स तीक्ष्णश्च वाते वातकफे कफे२

वह धूमपान स्निग्ध, मध्य और तीक्ष्ण, इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है । केवल वातविकारमें स्निग्ध धूपमान करना चाहिये । वातकफके विकारोंमें मध्य धूमपान करना चाहिये और केवल कफके विकारमें तीक्ष्ण धूमपान करना चाहिये ॥२॥

धूमपानके अयोग्य पुरुष ।

योज्यो-

न रक्तपित्तार्तिविरिक्तोदरमेहिषु ॥
तिमिरोर्ध्वाऽनिलाऽऽध्मानरोहिणीदत्तवस्तिषु ।
मत्स्यमद्यदधिक्षीरक्षौद्रस्नेहविषाशिषु ॥
शिरस्यभिहते पांडुरोगे जागरिते निशि ॥ ३॥

रक्तपित्तसे पीड़ित, सद्योविरिक्त, उदररोगी, प्रमेही, तिमिररोगी, ऊर्ध्ववातरोगी, आध्मानरोगी, अग्निरोहिणीवाला, गृहीत वस्तिवाला तथा जिन लोगोंने मत्स्य, मद्य, दधि, दूध, मधु, स्नेह और विष इनमेंसे कोई वस्तु खायी हुई हो, या जिसके शिरमें चोट लगी हो, पाण्डुरोगमें और जिसने रात्रिको जागरण किया हो इन सब पुरुषोंको धूमपान नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥

धूमपानके मिथ्यायोगसे दोष ।

रक्तपित्तांध्यबाधिर्यतृण्मूर्च्छामदमोहकृत् ।
धूमोऽकालेऽतिपीतो वा-
-तत्र शीतो विधिर्हितः॥ ४ ॥

विना समय धूमपान करनेसे और अति धूमपान करनेसे रक्तपित्त, नेत्रान्ध्य, बाधिर्य, तृषा, मूर्छा, मद और मोह ये रोग उत्पन्न हो जाते है । इस कारण विना समय अथवा अतिमात्रामें धूमपान नहीं करना चाहिये ।

यदि धूमपानके मिथ्यायोगसे रक्तपित्तादि रोग उत्पन्न हो जायँ तो रोगानुसार औषधकी कल्पना कर सम्पूर्ण शीतल क्रियाका प्रयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

धूमपानके काल ।

क्षुतजृंभितविण्मूत्रस्त्रीसेवाशस्त्रकर्मणाम् ।
हासस्य दन्तकाष्ठस्य धूममन्ते पिबेन्मृदुम् ॥५॥
कालेष्वेषु निशाऽऽहारनावनांते च मध्यमम् ।
निद्रानस्यांजनस्नानच्छर्दितांते विरेचनम्॥ ६॥

छींक लेनेके अनन्तर, जम्भाईके अनन्तर, मलत्यागके अनन्तर, मूत्रत्यागके अनन्तर, स्त्रीसेवनके अनन्तर, शस्त्रकर्मके अनन्तर, हंसनेके अनन्तर, दांतन करनेके अनन्तर, इन आठ कालोंमें यदि धूमपान करना हो तो मृदु (स्निग्ध) धूमपान करना चाहिये ॥

उपरोक्त आठ कालोंमें और रात्रिमें आहारके अन्तमें और जिस प्रकारके नस्यकर्ममें मध्यम धूमपानकी विधि हो उस नस्यकर्मके अनन्तर इन एकादश कालोंमें मध्यम धूमपान करना चाहिये । अधिक निद्राके अनन्तर, तीक्ष्ण धूमपान योग्य नस्यके अनन्तर, अंजन लगानेके अनन्तर, स्नानके अनन्तर और वमनके अनन्तर विरेचन (तीक्ष्ण) धूमपान करना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

धूमपानकी नलिकाका स्वरूप ।

वस्तिनेत्रसमद्रव्यं त्रिकोशं कारयेदृजु ।
मूलाग्रेऽङ्गुष्ठकोलास्थिप्रवेशं धूमनेत्रकम् ॥७॥

स्वर्ण रौप्यादि धातु अथवा काष्ठ आदिसे धूमपान करनेका नेत्र (नलिका) बनाना चाहिये । वह धूमपानकी नलकीके सीधे तीन टुकड़ोंको जोड़कर खमदार तीनपर्ववाली धूमपानकी नलकी

१ आचार्योपदेशाच्च क्षुताद्यंतेषु च स्निग्धं धूमं पिबेत्। मध्याह्नस्यांते मध्यम धूमं पिबेत् । कालेष्विति बहुवचनाच्च क्षुदादीनामष्टानामंतादिषु च मध्यमं धूमं पिबेत्। एवं निद्रानस्यांते विरेचनं धूमं पिबेत् । कालेष्विति वचनान्निशाशब्दोऽत्र विरेचनपर्यायः । इत्यरुणदत्तः।
२ त्रयः कोशाः पर्वाणि यस्य तत्त्रिकोशमित्यरुणदत्तः।

बनानी चाहिये । इसका मूलभाग (जिस ओर धूमद्रव्य रक्खा जाय) अंगुष्ठप्रमाण मोटे छिद्रवाला होना चाहिये । और अग्रभाग (जिस ओरसे धूमपान किया जाय) झड़बेरीके छोटे बेरकी गुठलीके समान होना चाहिये । यह धूमनेत्रका स्वरूप होता है ॥ ७ ॥

तीक्ष्णस्नेहनमध्येषु त्रीणि चत्वारि पञ्च च ।
अंगुलानां क्रमात्पातुः प्रमाणेनाऽष्टकानि तत् ८॥

तीक्ष्ण धूमपान करनेके लिये धूमनलिका चौबीस अंगुल लम्बी होनी चाहिये। स्नेहन धूमपान करनेके लिये बत्तीस अंगुलकी नाली होनी चाहिये । और मध्यम धूमपान करनेके लिये चालीस ४० अंगुल लम्बी धूमनलिका होनी चाहिये । इस प्रकार क्रमसे धूमपान करनेवाले पुरुषकी अंगुलियोंसे धूमनलिकाकी लम्बाईका प्रमाण जानना चाहिये ॥ ८ ॥

धूमपानकी विधि ।

ऋजूपविष्टस्तच्चेता विवृतास्यस्त्रिपर्ययम् ।
पिधायच्छिद्रमेकैकं धूमं नासिकया पिबेत् ९

सीधे आसनपर बैठकर मुखको बन्द करके धूमपानमें ध्यान लगाकर नासिकाके वाम छिद्रको रोककर दक्षिण छिद्रमें धूमनलिका लगाकर धूमको खैंचे और मुखद्वारा धूमको निकाल देवे। फिर वाम छिद्रसे धूमको खैंचकर मुखके ही द्वारा धूमको निकाल देवे । यह धूमका एक विपर्यय अर्थात् विपरिवर्त हुआ । इस प्रकार तीन बार विपर्यय करके नासिकाद्वारा धूमपान करना चाहिये ॥ ९ ॥

नासादिगत दोषमें धूमपानप्रकार और धूमोत्सर्गविधि ।

प्राक् पिबेन्नासयोत्क्लिष्टे दोषे घ्राणशिरोगते ।
उत्क्लेशनार्थं वक्त्रेण विपरीतं तु कण्ठगे ॥१०॥
मुखेनैव वमेद्धूमं नासया दृग्विघातकृत् ॥ ११॥

यदि दोष नासिका और शिरमें उत्क्लेशित हो तो पहले दोनों ही नासाछिद्रोंसे धूम पीकर मुखमेंसे धूम निकाल देना चाहिये। यदि दोष उत्क्लेशित अर्थात् चलायमान करने हो तो प्रथम मुखसे धूमपान करके मुखसे ही धूम निकाल देना चाहिये । फिर नासिकासे पीकर मुखद्वारा धूम निकाल देना चाहिये । यदि कंठमें दोष स्थित हो तो प्रथम नासिकासे धूमपान कर मुखसे धूम निकाल देवे। फिर मुखसे धूमपान कर मुखसे ही धूमका निकाल देना चाहिये ॥

मुख अथवा नासिकासे धूमपान कर यदि नासिका द्वारा निकाला जाय तो दृष्टिका नाश कर देता है । इस कारण धूमको मुखसे ही निकाल देना श्रेष्ठ होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

धूमका आदान विसर्ग और स्निग्धादि धूमपानका निर्देश ।

आक्षेपमोक्षैः पातव्यो धूमस्तु त्रिस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
अह्नः पिबेत्सकृत् स्निग्धं द्विर्मध्यं शोधनं परम्॥
त्रिश्चतुर्वा-

धूमपानका आकर्षण और मोक्षण तीन २ बार करना चाहिये । जैसे नवम श्लोकमें विपर्यय कह आये है, सब प्रकारके धूमपानोमें वैसे ही तीन २ बार धूम खैंचना और छोड़ना चाहिये ।

एक दिनमें स्निग्ध धूमपान उपरोक्त विधिसे एक बार ही पीना चाहिये । मध्यम धूमपान एक दिनमें दो बार पान करना चाहिये । और तीक्ष्ण धूम एक दिनमें तीन वार या चार बार पीना चाहिये ॥ १२॥

मृदु धूमके द्रव्य ।

मृदौ तत्र द्रव्याण्यगुरु गुग्गुलुः ।
मुस्तस्थौणेयशैलेयनलदोशीरवालकम् ॥ १३ ॥
वरांगकौतीमधुकबिल्वमज्जैलवालुकम् ।
श्रीवेष्टकं सर्जरसो ध्यामकं मदनं प्लवम् १४ ॥
शल्लकी कुंकुमं माषा यवाः कुंदुरकं तिलाः ।
स्नेहः फलानां साराणां मेदोमज्जावसाघृतम्१५॥

इनमें मृदु धूमके ये द्रव्य है । जैसे—अगर,गुगुल, नागरमोथा, स्थौणेय (गंधस्थौणेय), छारछरीला,

१ मधुकमदनयोरेकयोनित्वादुक्तस्योपयोगो मदनस्यात्र विरुद्ध इति केचित् । तच्चायुक्तम् । द्रव्यान्तर—

मांसी, खस, सुगन्धवाला, दारचीनी, कौन्ती (हरेणु), मुलैठी, बिल्वकी मज्जा, एलवालुक (गन्धद्रव्य), श्रीवेष्टक, सर्जरस (राल), ध्यामक (कत्तृण), मदन, प्लव (क्षुद्रमुस्तक), शल्लकी वृक्षका गोंद, केशर, माषान्न, यव, कुन्दरु (नलकुन्दरु गोंद), तिल, पियाल, बादाम आदि फलोंका तेल, देवदारु, खदिर, विजयसार आदि वृक्षोंका तेल, मेद, मज्जा, वसा और घृत इन द्रव्योंका मृदु धूमपानमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १३-१५ ॥

शमन धूमके द्रव्य ।

शमनं शल्लकी लाक्षा पृथ्वीका कमलोत्पलम् ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षरोध्रत्वचः सिता १६॥
यष्टीमधुः सुवर्णत्वक् पद्मकं रक्तयष्टिका ॥१७॥
गंधाश्चाकुष्ठतगराः-

मध्यम (शमन) धूमपानेके ये द्रव्य हैं । जैसे-शल्लकी वृक्षका निर्यास, लाक्षा, जीरा, कमल, नील कमल, वटवृक्षकी छाल, गूलरकी छाल, अश्वत्थकी छाल, पिलखनकी छाल, पठानी लोध, मिसरी, मुलैठी, सुवर्णत्वक्, पद्मकाष्ट, मंजीठ, छारछरीला आदि गंधद्रव्य, मीठा कूठ और तगरको त्यागकर अन्य सब गन्धद्रव्योंका मध्यम धूमपानमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥-

तीक्ष्णधूमपानके द्रव्य ।

--तीक्ष्णे ज्योतिष्मती निशा ।
दशमूलमनोह्वालं लाक्षाश्वेताफलत्रयम् ।
गन्धद्रव्याणि तीक्ष्णानि गणो मूर्धविरेचनः१८

तीक्ष्ण धूमपानके ये द्रव्य है, जैसे मालकांगनी, हलदी, दशमूलके दश द्रव्य, मनोह्वा (मनशिल), आल (हरिताल), लाक्षा, श्वेता (कटभी), त्रिफला, कूठ, तगर, छारछरीला आदि गन्धद्रव्य, कंकोलादि, वेला, अपामार्गादि शिरोविरेचन द्रव्य इन सबका तीक्ष्ण धूमपानमें प्रयोग करने चाहिये ॥ १८॥

धूमवर्ती बनानेकी विधि ।

जले स्थितामहोरात्रमिषीकां द्वादशांगुलाम् ।
पिष्टैर्धूमौषधैरेवं पञ्चकृत्वः प्रलेपयेत् ॥ १९ ॥
वर्तिरंगुष्ठवत्स्थूला यवमध्या यथा भवेत् ।
छायाशुष्कां विगर्भां तां स्नेहाभ्यक्तां यथायथम्
धूमनेत्रार्पितां पातुमग्निप्लुष्टां प्रयोजयेत् २० ॥

जलमें खड़े हुए कांसके पुष्पके नीचेकी एक बारह अंगुल लम्बी सींक ले लेवे, इस सींकके ऊपर धूमपानके द्रव्योंको बारीक पीसकर लेप कर देवे और छायामें सुखा देवे । इस प्रकार पांच बार लेप करके छायामें सुखाता रहे । यह बत्ती इन पांच लेपोंसे अंगूठेके समान मोटी हो जानी चाहिये और इसके बीचकी सींक यवके समान मोटी होनी चाहिये । जब वह छायामें सूख जाय तो बत्तीके बीचसे वह कांसकी सींक निकाल देना चाहिये । फिर उस बत्तीको जिस प्रकारके धूमवाले द्रव्योंसे बनायी हो और जिस दोषानुसार उसका प्रयोग करना हो वैसे स्नेहमें चिकनी कर धूमनेत्रके ऊपर लगाकर उसकी एक ओर अग्नि लगा देवे, फिर धूम पीनेवालेको धूम पीनेके लिये दे देवे और उपरोक्त धूमपानकी विधिका उपदेश कर देवे ॥ १९ ॥ २० ॥

धूमपानका अन्य प्रकार ।

शरावसंपुटाच्छिद्रे नाडीं न्यस्य दशांगुलाम् ॥
अष्टांगुलां वा वक्त्रेण कासवान् धूममापिबेत् २१

यदि खांसीवाले मनुष्यको धूमपान कराना हो तो दो २ मट्टीके शराव लेकर उन दोनों शरावोंके बीचमें धूमपानकी ओषधि रखकर शरावमें छिद्र कर उसमें आठ या दश अंगुलकी धातु या काष्टकी नली लगाकर मुखसे धूमपान कराना चाहिये । धूम, पान करनेसे प्रथम धूमद्रव्यको शरावसम्पुटमें रख अग्नि लगा देवे ॥ २१ ॥

वान्मदनस्य पिण्याकादिवत्तिलादेरित्यरुणदत्तः ॥ मदनं मधूच्छिष्टमिति हेमाद्रिः ॥ १ सुवर्णत्वक् आरग्वध इति हेमाद्रिः । सुवर्णं नागकेसरं इति पदार्थचन्द्रिका । २ आलं हरितालमिति हेमाद्रिः । ३ श्वेता किणहीति हेमाद्रिः । कटभीति पदार्थचन्द्रिका ।

धूमपानका फल ।

कासः श्वासः पीनसो विस्वरत्वं
पूतिर्गंधः पांडुता केशदोषः ।
कर्णाऽस्याक्षिस्रावकंडूर्तिजाड्यं
तन्द्रा हिध्मा धूमपं न स्पृशंति ॥ २२ ॥

विधिपूर्वक धूमपान करनेसे खांसी, श्वास, पीनस, स्वरभंग, मुखकी दुर्गंधि, पाण्डुता, केशोंके रोग, कान, मुख और नेत्रोंके स्राव, कण्डू, पीड़ा और जड़ता ये सब दूर होते है। तथा उस मनुष्यको तन्द्रा और हिचकी स्पर्शतक नहीं करती ॥ २२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्य-रत्न-पण्डितश्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कारवैद्य-शिवशर्मविरचित-शिवदीपिकाख्य-व्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने एक-विंशोऽध्याय: ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

अथाऽतो गंडूषादिविधिमध्यायं व्याख्यास्याम

अब हम गंडूष, कवल, लेप आदिकी विधिवाले अध्यायकी व्याख्या करते है:-

चतुर्विध गंडूष और गंडूषकी योजना ।

चतुष्प्रकारो गंडूषः स्निग्धः शमनशोधनौ ।
रोपणश्च -
-त्रयस्तत्र त्रिषु योज्याश्चलादिषु ॥ १ ॥
अंत्यो व्रणघ्नः-

गंडूष-स्निग्ध, शमन, शोधन और रोपण इन भेदोंसे चार प्रकारका होता है ।

इनमें वातज रोगोंमें स्निग्ध, पित्तज रोगोंमें शमन और कफज रोगोंमें शोधनका प्रयोग किया जाता है । और मुखके व्रणोंको रोपण गंडूष दूर करता है । "मुखमें जलादि द्रवपदार्थको इतना भर लेवे जिसको हिला नहीं सके उसको गंडूष कहते हैं और जो मुखमें जलादि पदार्थ इतना भरा जाय जिसको बहुत अच्छी तरहसे हिला सके उसको कवल कहते है" ॥ १ ॥-

स्निग्ध और शमन गंडूष ।

-स्निग्धोऽत्र स्वाद्वम्लपटुसाधितैः ।
स्नेहैः-
-संशमनस्तिक्तकषायमधुरौषधैः ॥ २ ॥

इनमें स्निग्धगंडूष-मधुर, अम्ल और लवण रस-वाले द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए तैलादिकोंमे धारण करना चाहिये ।

सशमन गंडूष-तिक्त, कषाय और मधुररसवाली ओषधियोंसे बनाये हुए कल्क क्वाथादिमे धारण करना चाहिये ॥ २ ॥

शोधन और रोपण गंडूष ।

शोधनस्तिक्तकट्वम्लपटूष्णैः-
-रोपणः पुनः ॥ ३ ॥
कषायतिक्तकैः-

शोधन गंडूष तिक्त, कटु, अम्ल, लवण और उष्ण स्वभाववाले द्रव्योंके कल्क क्वाथादिमे धारण करना चाहिये ।

और रोपणगंडूष कषाय और तिक्त द्रव्योंके कल्क क्वाथादिसे धारण करना चाहिये ॥ ३ ॥-

गंडूषके लिये स्नेहादि द्रवद्रव्य ।

-तत्र स्नेहः क्षीरं मधूदकम् ।
शुक्तं मद्यं रसो मूत्रं धान्याम्लं च यथायथम् ।
कल्कैर्युक्तं विपक्वं यथास्पर्शं प्रयोजयेत् ४॥

उन गंडूष द्रव्योंको दोषदूष्यादिके अनुसार तैलादिस्नेह, दूध, मधु, जल, सिरका, मद्दी, रस, गोमूत्र, और धान्याम्ल इनमेंसे जो द्रव दोषानुसार उचित हो उस द्रवके साथ कल्क, क्वाथ, स्नेहादि सिद्ध करके स्पर्शमें शीत या उष्ण जैसा दोषानुसार उचित हो वैसा द्रव गंडूषके लिये मुखमें धारण करना चाहिये ॥ ४ ॥

वातज मुखरोगनाशक गंडूष ।

दन्तहर्षे दन्तचाले मुखरोगे च वातिके ।
सुखोष्णमथवा शीतं तिलकल्कोदकं हितम् ॥
गंडूषधारणे नित्यं तैलं मांसरसोऽथवा ॥ ५ ॥

वातज दन्तहर्षमें, दन्तचलमें और वातज मख-रोगोंमें सुखोष्ण अथवा शीत तिलकल्क मिला हुआ जल मुखमें धारण करना हितकारी होता है।

अथवा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ तैल या मांसरस मुखमें धारण करना वातज मुखरोगोंको दूर करता है ॥ ५ ॥

पित्तज मुखपाकादिनाशक गंडूष ।

ऊषादाहान्विते पाके क्षते वाऽऽगंतुसंभवे ।
विषक्षाराऽग्निदग्धे च सर्पिर्धार्यं पयोऽथवा ॥६॥

ऊषा, चसक और दाहयुक्त मुखपाकमें अथवा आगन्तुक मुखके क्षतमें अथवा विष, क्षार, या अग्निसे दग्ध हुए मुखमें संशमन द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृत अथवा दूधके गंडूष मुखमें धारण करना हितकारी होता है ॥ ६ ॥

माक्षिक गंडूष ।

वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणान् ।
दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगंडूषधारणम् ॥ ७ ॥

मधुको मुखमें भरकर धारण करनेसे मुखमें विशदता, मुखके व्रणोंका रोपण, दाह और प्यास-का शमन होना ये शुभ गुण होते हैं ॥ ७ ॥

धान्याम्ल गंडूष ।

धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गंध्यनाशनम् ॥
तदेवाऽलवणं शीतं मुखशोषहरं परम् ॥ ८ ॥

धान्याम्ल (कांजी) को सुखोष्ण मुखमें भरकर धारण करनेसे मुखकी विरसता, मुखका मल और दुर्गन्धि दूर होती है ॥

वही धान्याम्ल यदि लवणरहित और शीतल मुखमें धारण किया जाय तो मुखशोषके दूर करनेमें परमोत्तम ओषधि है ॥ ८ ॥

क्षारांबु और कोष्ण पानीय गंडूषके गुण ।

आशु क्षारांबुगंडूषो भिनत्ति श्लेष्मणश्चयम् ।
सुखोष्णोदकगंडूषैर्जायते वक्त्रलाघवम् ॥९॥

सज्जी आदि क्षार और जल मिलाकर मुखमें धारण करना कफके सञ्चयको शीघ्र नष्ट करता है।

केवल गर्म जलका गंडूष धारण करना मुखमें हलकापन करनेवाला होता है ॥ ९ ॥

गंडूषधारणविधि ।

निवाते सातपे स्विन्नमृदितस्कंधकंधरः ।
गंडूषमपिबन् किंचिदुन्नतास्यो विधारयेत् ॥१०॥

जिस मनुष्यने प्रथम कन्धे और गर्दनको प्रथम स्वेदन और फिर मर्दन किया हुआ हो ऐसा पुरुष सूर्यकी धूपवाले निर्वात स्थानमें बैठकर किंचित् मुखको ऊपर करके गंडूषद्रव्यको पीकर मुखमें धारण करे ॥ १० ॥

गंडूषधारणका काल ।

कफपूर्णास्यता यावत्स्रवद्घ्राणाक्षताऽथवा ।
असंचार्यो मुखे पूर्णे गंडूषः कवलोऽन्यथा ॥११॥

जबतक मुखमें कफका प्रभाव रहे अथवा जबतक नासिका और नेत्रोंसे स्राव होता हो तबतक गंडूषोंको धारण करते रहना चाहिये ॥

जो द्रव मुखमें भरनेसे हिले नहीं इतना अधिक भर लिया जाय उसको गंडूष कहते है। इससे विपरीत जो द्रव मुखमें यथेच्छ हिलाया जा सके उसको कवल कहते हैं ॥ ११ ॥

कवलसाध्य रोग ।

मन्याशिरःकर्णमुखाक्षिरोगाः
प्रसेककण्ठमयवक्त्रशोषाः ।
हृल्लासतन्द्रारुचिपीनसाश्च
साध्या विशेषात्कवलग्रहेण ॥ १२ ॥

गडूष या कवल धारण करनेसे मन्यास्तम्भ, शिरो-रोग, कर्णरोग, मुखरोग, अक्षिरोग, लालाप्रसेक, कंठ-रोग, मुखशोष, हृल्लास, तन्द्रा, अरुचि और पीनस ये सब रोग दूर होते हैं। इन रोगोंकी चिकित्सा कवल धारण करने द्वारा विशेषरूपसे हो सकती है ॥१२॥

त्रिविध प्रतिसारण।

कल्को रसक्रिया चूर्णस्त्रिविधं प्रतिसारणम्।
युंज्यात्तत् कफरोगेषु गण्डूषविहितौषधैः १३॥

कल्क, रसक्रिया और चूर्ण इन भेदोंसे प्रतिसारण तीन प्रकारका होता है। जलादिके योगसे पीसा हुआ कल्क होता है। मधुमें मिलाकर पतला किये हुएको रसक्रिया कहते हैं। सूखा पीसा हुआ चूर्ण होता है। गलशुंडिका आदि मुखके भीतरके शोथपर लगाकर शोथको दूर करनेवाली ओषधिको प्रतिसारण कहते हैं।

गंडूषमें कही हुई कफनाशक ओषधियोंके योगसे बनाया हुआ प्रतिसारणका कफरोगोंमें प्रयोग करना चाहिये॥ १३॥

मुखपर करनेके तीन प्रकारके लेप और वातकफादि विकारोंमें लेपकी योजना।

मुखालेपस्त्रिधा दोषविषहा वर्णकृच्च सः।
उष्णो वातकफे शस्तः शेषेष्वत्यर्थशीतलः १४

दोषनाशक विषनाशक, और वर्णकारक इन भेदोंसे मुखपर करनेके लेप तीन प्रकारके होते हैं।

इनमें वात कफके विकारोंमें उष्ण लेप करना अच्छा होता है। और शेष पित्तविकारमें, वातपित्तविकारमें और विषविकारमें अत्यन्त शीतल लेप करना श्रेष्ठ होता है। तथा वर्णकारक लेप भी शीतल ही करना अच्छा होता है॥ १४॥

मुखलेपकी मोटाईका प्रमाण।

त्रिप्रमाणश्चतुर्भागत्रिभागार्धांगुलोन्नतिः।
अशुष्कस्य स्थितिस्तस्य शुष्को दूषयति च्छविम्

लेपकी मोटाईका प्रमाण भी तीन प्रकारका होता है। जैसे—एक अंगुलका चौथा भाग, एक अंगुलका तीसरा भाग और अर्धांगुल। इन तीन प्रकारके लेपोंमेंसे दोष दूष्य भेदसे विचार कर जिस विकारमें जितना मोटा उचित हो उतना लेप करना चाहिये।

मुखके ऊपर किया हुआ लेप सूखनेसे पहले ही उतार देना चाहिये। कारण कि सूख जानेसे लेप मुखकी कांतिको बिगाड़ देता है॥ १५॥

लेप उतारनेकी क्रिया तथा दिवास्वापादिका निषेध।

तमार्द्रयित्वाऽपनयेत्तदंतेऽभ्यंगमाचरेत्।
विवर्जयेद्दिवास्वप्नभाष्याऽग्न्यातपशुक्क्रुधः १६।

मुखके ऊपरका लेप जलसे या तद्गुणकारक द्रव्योंके जलसे भिगोकर उतारना चाहिये। और लेप उतारनेके अनन्तर मुखपर ओषधिसिद्ध तैल या घृतादि लगा देना चाहिये।

मुखपर लेप किये हुए पुरुषको दिनमें सोना, बहुत बोलना, अग्निके समीप या धूपमें बैठना, शोच करना और क्रोध करना त्याग देना चाहिये॥ १६॥

मुखपर लेप करनेके अयोग्य पुरुष।

न योज्यः पीनसेऽजीर्णे दत्तनस्ये हनुग्रहे १७॥

प्रतिश्यायमें, अजीर्णमें, नस्यकर्मके अनन्तर, हनुस्तम्भमें, अरोचकमें और रातको जगे हुए पुरुषके मुखपर लेप नहीं करना चाहिये॥ १७॥

विधिपूर्वक मुखपर लेप करनेके फल।

अरोचके जागरिते—

—स च हंति सुयोजितः॥
अकालपलितव्यंगवलीतिमिरनीलिकाः॥१८॥

विधिपूर्वक मुखपर लेप करनेसे अकालमें बालोंका सफेद होना, व्यंग, वलि (झुर्रियां), तिमिर, नीलिका और मुहांसे आदि दूर होकर त्वचाका सुन्दर वर्ण हो जाता है॥ १८॥

लेप करनेके छे योग।

कोलमज्जा वृषान्मूलं शाबरं गौरसर्षपाः॥
सिंहीमूलं तिलाः कृष्णा दार्वीत्वङ्निस्तुषा यवाः
दर्भमूलहिमोशीरशिरीषमिशितंडुलाः॥ १९॥
कुमुदोत्पलकह्लारदूर्वामधुकचंदनम्।
कालीयकतिलोशीरमांसीतगरपद्मकम्॥ २०॥
तालीसगुंद्रापुंड्राह्वयष्टीकाशनतागुरुः।
इत्यर्धार्धोदिता लेपा हेमंतादिषु षट् स्मृताः॥

(१) बेरकी गुठलीकी मज्जा, बांसेकी जड़का छिलका, शाबरलोध और पीली सर्सों। (२) कटेलीकी

जड़, काले तिल, दारुहलदीका छिलका और छिले हुए जौ। (३) कुशाकी जड़, सफेद चन्दन, खस, शिरीषकी छाल, सौंफ और साठीके चावल। (४) कुमुद, कमल, कह्लार, दूब, मुलैठी और सफेद चन्दन। (५) अगर, तिल, खस, बालछड़, तगर और पद्मकाष्ठ। (६) तालीसपत्र, गुन्द्रपटेर, पुंडरीक, मुलैठी, कांस, तगर और अगर। ये आधे २ श्लोकमें कहे हुए लेप हेमन्त आदि छे ऋतुओंमें करने चाहिये। जैसे-हेमन्तमें बेरकी मज्जा आदि लेप, शिशिरमें कटेलीकी जड़ आदि लेप। वसन्तमें कुशमूलादि लेप। ग्रीष्ममें कुमुदादि लेप, वर्षामें अगर आदि लेप और शरद् ऋतुमें तालीसपत्रादि लेप करना चाहिये॥ १९-२१ ॥

मुखालेपनका फल।

मुखालेपनशीलानां दृढं भवति दर्शनम्।
वदनं चाऽपरिम्लानं श्लक्ष्णं तामरसोपमम् २२

मुखपर लेप करनेवाले पुरुषोंके मुखकी कांति स्थिर, सुन्दर, म्लानतारहित तथा चिकनी होती है। और मुख कमलके समान सुन्दर हो जाता है॥ २२ ॥

चतुर्विध मस्तकपर लगानेके तैल।

अभ्यंगसेकपिचवो वस्तिश्चेति चतुर्विधम्।
मूर्धतैलं बहुगुणं तद्विद्यादुत्तरोत्तरम् ॥ २३ ॥

मस्तकपर तैल मलना, मस्तकपर तैलका सेचन करना, मस्तकपर तैलका भिगोया हुआ पिचु (रूईका फौआ) रखना और मस्तकपर तैलवस्तिका प्रयोग करना; इस प्रकार चार भेदोंसे शिरमें तैलका प्रयोग किया जाता है। इनमें तैल मलनेसे सेचन, सेचनसे पिचु, पिचुसे वस्ति उत्तरोत्तर विशेष गुणकारी होते हैं॥ २३ ॥

मस्तक पर तैलोंका चतुर्विध प्रयोग।

तत्राऽभ्यंगः प्रयोक्तव्यो रौक्ष्यकंडूमलादिषु।
अरूंषिकाशिरस्तोददाहपाकव्रणेषु तु ॥ २४ ॥
परिषेकः-
-पिचुः केशशातस्फुटनधूपने।
नेत्रस्तंभे च-
-वस्तिस्तु प्रसुप्त्यर्दितजागरे॥
नासाऽस्यशोषे तिमिरे शिरोरोगे च दारुणे२५

मस्तककी रूक्षता, कंडू और मलादि निवृत्तिके लिये मस्तकपर तैलाभ्यंग करना चाहिये।

अरूंषिका, शिरःशूल, दाह, शिरपाक और शिरके व्रणोंमें तैलका सेचन करना हितकारी होता है।

केशोंके गिरनेमें, शिरके स्फुटनमें, शिरमेंसे धुआं सा निकलनेसे और नेत्रोंके स्तम्भमें शिरपर तैलका भिगोया हुआ फोआ रखना हितकारी होता है।

शिरकी प्रसुप्तिमें, अर्दितरोगमें, निद्रानाशमें, नासाशोषमें, मुखशोषमें, तिमिर रोगमें और दारुण शिरोरोगमें शिरपर तैलवस्ति धारण करना हितकारी होता है॥ २४ ॥ २५ ॥

शिरो वस्तिकी विधि।

विधिस्तस्य निषण्णस्य पीठे जानुसमे मृदौ।
शुद्धास्तिस्विन्नदेहस्य दिनांते गव्यमाहिषम्॥
द्वादशांगुलविस्तीर्णं चर्मपट्टं शिरःसमम्॥२७॥
आकर्णबंधनस्थानं ललाटे वस्त्रवेष्टिते।
चैलवेणिकया बद्ध्वा माषकल्केन लेपयेत् २८॥
ततो यथाव्याधि शृतं स्नेहं कोष्णं निषेचयेत्।
ऊर्ध्वं केशभुवो यावद् द्व्यंगुलम्-
-धारयेच्च तम्॥ २९ ॥

जिस मनुष्यके शिरपर तैलवस्ति धारण करना हो उसको वमन, विरेचनादिसे शुद्ध कर स्वेदन और स्नेहन करनेके अनन्तर सायंकाल जानुसमान ऊंचे मृदुल गद्देवाले चौकी आदि आसनपर बिठा देवे। फिर एक गौके या भैंसके चर्मकी बारह अंगुल चौड़ी और जितनी शिरके चारों ओर लिपट सके उतनी लम्बी पट्टी लेकर बैठे हुए पुरुषके मस्तक पर लपेट दे। इसको इस प्रकार लपेटना चाहिये कि कानोंके ऊपरका

भाग और सम्पूर्ण मस्तक इसके भीतर आ जावे। फिर उसको कपड़ेकी पट्टीसे मजबूत लपेटकर कपड़ेसे बनायी हुई डोरीसे बांध दे। तथा उस पट्टीकी मस्तकसे लगी हुई सन्धिको माष (उरद) के आटेके कल्कसे इस प्रकार लेपन कर दे, जिससे शिरपर भरा हुआ तैल बाहर न निकल सके॥

फिर इसमें (शिरके ऊपर) व्याधि अनुसार द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए तैलको सुखोष्ण करके इस प्रकार भरे जिससे वह तैल भ्रुकुटी, केश और कपालके दो अंगुल ऊपरतक भर जाय।

फिर उसको इतनी देरतक शिरपर धारण कर रक्खे जबतक मुख और नासासे क्लेदका स्राव नहीं हो॥ २६–२९॥

संख्या परिमाण।

आवक्त्रनासिकोत्क्लेदात्–
–दशाऽष्टौ षट् चलादिषु।
मात्रासहस्राणि–
अरुजे त्वेकम्–
–स्कंधादि मर्दयेत्॥३०॥

यदि इस प्रकार वस्ति धारण करने पर मुख और नासिकासे क्लेदका स्राव नहीं हो तो वातकी व्याधिमें दश हजार संख्या गिनने पर तैलवस्तिको शिरपर धारण करके रखना चाहिये। पित्तकी व्याधिमें आठ हजार संख्यातक और कफकी व्याधिमें छे सहस्र संख्या गिनने तक शिरपर तैल धारण करना चाहिये।

यदि नीरोग मनुष्यको शिरोवस्ति धारण कराना हो तो एक सहस्र संख्या गिननेतक तैलको धारण करावे। फिर शिरपरसे तैल उतारकर स्कन्ध और गर्दनका हाथसे धीरे धीरे मर्दन करे॥ ३०॥

वस्तिसेवनका नियम।

मुक्तस्नेहस्य–
–परमं सप्ताहं तस्य सेवनम्॥ ३१॥

इस प्रकार स्नेह (तैल) शिरपरसे उतारनेके अनन्तर हस्त प्रक्षालनादिमें उष्ण जलका ही प्रयोग करना चाहिये। ऐसी शिरोवस्तियें तीन या पांच अथवा अधिकसे अधिक सात दिन वस्तिसेवन करना चाहिये। इससे अधिक शिरोवस्तिधारण नहीं करना चाहिये॥ ३१॥

कर्णपूरण।

धारयेत्पूरणं कर्णे कर्णमूलं विमर्दयन्।
रुजः स्यान्मार्दवं यावन्मात्राशतमवेदने॥३२॥

दोष दूष्य विचारकर कर्णरोगनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ तैल कानमें भरकर कानके मूल स्थानको अंगुलीसे धीरे २ मर्दन करना चाहिये। और जबतक कानकी वेदना मन्द नहीं हो जाय तबतक इस सुखोष्ण तैलको कानमें भरा रहने देना चाहिये। यदि कानमें विना किसी पीड़ाके तैल भरा हो तो सौ मात्रा तक प्रतीक्षा करना चाहिये॥ ३२॥

मात्राकालका प्रमाण।

यावत्पर्येति हस्ताग्रं दक्षिणं जानुमंडलम्।
निमेषोन्मेषकालेन समं मात्रा तु सा स्मृता३३

जितने समयमें हाथका अग्रभाग दक्षिण जानुमंडलका स्पर्श कर आये इस कालको मात्रा कहते हैं। यह मात्रा आक्षिनिमेषोन्मेष कालके समान होती है ३३

मस्तकपर तैलप्रयोगका फल।

कचसदनसितत्वपिंजरत्वं
परिफुटनं शिरसः समीररोगान्।
जयति जनयतींद्रियप्रसादं
स्वरहनुमूर्धबलं च मूर्धतैलम्॥ ३४॥

मस्तकपर तैल डालनेसे शिरके बाल गिरते नहीं, सफेद नहीं होते और कपिलवर्ण नहीं होते। तथा मस्तकका परिस्फुटन और वायुके रोग दूर हो जाते हैं। एवं सब इन्द्रियोंका प्रसादन, स्वरमें बल, हनु और मस्तकमें बलकी प्राप्ति होती है॥ ३४॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताऽष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्न-पण्डित-श्रीरामप्रसादात्मज–विद्यालंकार-वैद्य-शिवशर्म्मविरचित-शिवदीपिकाख्य-व्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।
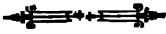
अथाऽत आश्च्योतनांजनविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम आश्च्योतन और अंजनकी विधिवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं:–

आश्चोतन कर्मके गुण ।

**सर्वेषामक्षिरोगाणामादावाश्च्योतनं हितम् ।
रुक्तोदकंडूघर्षाश्रुदाहरोगनिबर्हणम् ॥ १ ॥**

सब प्रकारके नेत्ररोगोंमें आश्चोतन कर्म नेत्ररोगनाशक द्रव्योंकी पोटली आदिसे नेत्रको सेचन करना हितकारी होता है । क्योंकि आश्चोतनसे नेत्रकी पीड़ा, नेत्रशूल, नेत्रकंडू, नेत्रघर्ष, और नेत्रोंके अश्रु, दाह आदि रोग निवृत्त हो जाते है ॥ १ ॥

दोषपरत्वसे आश्चोतन ।

उष्णं वाते कफे कोष्णं तच्छीतं रक्तपित्तयोः२

वातके नेत्ररोगोंमें उष्ण आश्चोतन कर्म करना चाहिये । कफके रोगोंमें किंचित् उष्ण आश्चोतन करना चाहिये । रक्त और पित्तके नेत्ररोगोंमें शीतल आश्चोतन कर्म करना चाहिये ॥ २ ॥

आश्चोतनकी विधि ।

**निवातस्थस्य वामेन पाणिनोन्मील्य लोचनम् ।
शुक्त्या प्रलंबयाऽन्येन पिचुवर्त्या कनीनिके ।
दश द्वादश वा बिन्दून् द्व्यंगुलादवसेचयेत्३॥
ततः प्रमृज्य मृदुना चैलेन कफवातयोः ।
अन्येन कोष्णपानीयप्लुतेन स्वेदयेन्मृदु ॥४॥**

निर्वात स्थानमें लेटेहुए नेत्ररोगीके नेत्रको बायें हाथसे खोलकर नेत्रोंके अधोभागमें पात्र रखके दाहिने हाथसे आश्चोतन द्रव्ययुक्त शिप्पी (शुक्ति), चमचा अथवा रूईका फोआ या कपड़ेकी बत्ती लेकर उससे नेत्रकी कनीनिकापर दस या बारह बूंद दहिने हाथकी अंगुलियोंसे सेचन करे । ऐसे ही दोनो नेत्रोंमें सेचन करना चाहिये । इसके अनन्तर कोमल रेशम आदिके वस्त्रसे नेत्रोंको कोमल रूपसे मर्दन करे । जिससे सम्पूर्ण नेत्रमें ओषधिका संचार हो सके । यदि कफवातसे नेत्रविकार हुआ हो तो अन्य कोमल वस्त्र या रूईके फोएको औषधयुक्त कोष्ण जलमें भिगोकर नेत्रोंका मृदुस्वेदन करना चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

अत्युष्णादि आश्चोतनके दोष ।

**अत्युष्णतीक्ष्णं रुग्रागदृङ्नाशायाऽक्षिसेचनम् ।
अतिशीतं तु कुरुते निस्तोदस्तंभवेदनाः ॥५॥
कषायवर्मतां घर्षं कृच्छ्रादुन्मेषणं बहु ।
विकारवृद्धिमत्यल्पं संरंभमपरिस्रुतम् ॥ ६ ॥**

अत्यन्त उष्ण या अतितीक्ष्ण आश्चोतन करनेसे नेत्रोंमें पीड़ा, रक्तता और दृष्टिका नाश हो जाता है ।

अतिशीतल आश्चोतनसे नेत्रोंमें चमके, स्तम्भ, शूल, कषायवर्त्मता और घर्षादि होते हैं। अधिक आश्चोतन करनेसे कष्टसे नेत्रोन्मीलनादि रोग होते है।

अत्यल्प आश्चोतनसे विकारकी वृद्धि होती है । और अपरिस्रुत नेत्रोंमें आश्चोतनसे नेत्रोंमें क्षोभ होने लगता है । इस कारण विधिपूर्वक ही नेत्रोंका ओषधिसे सेचन (आश्चोतन) करना चाहिये॥५॥६॥

आश्चोतनके फल ।

**गत्वा संधिशिरोघ्राणमुखस्रोतांसि भेषजम् ।
ऊर्ध्वगान्नयने न्यस्तमपवर्तयते मलान् ॥ ७ ॥**

आश्चोतनसे नेत्रोंमें डाली हुई ओषधि नेत्रोंकी सन्धि, शिर, घ्राण और मुखके स्रोतोंमें प्रवेश करके ऊर्ध्वगत दोषोंको शीघ्र निकालकर रोग शांत कर देती है ॥ ७ ॥

अंजनका प्रयोग ।

**अथाञ्जनं शुद्धतनोर्नेत्रमात्राश्रये मले ।
पक्वलिंगेऽल्पशोफार्तिकंडूपैच्छिल्यलक्षिते ॥८॥**

---

१ यद्यप्यत्र सर्वाङ्गसुन्दराकारोऽरुणस्त्वतिशब्दं सम्मनुते, किन्तु हेमाद्रिकृतायुर्वेदरसायने "शोफाद्यल्पत्वम्" इति पाठेन शोफोत्तरवर्तिकण्ड्वादिष्वप्यल्पशब्दप्रयोगादर्तित्वमेव सङ्गच्छते, नत्वति । मिथोविरुद्धपदयोरेकत्र समावेशस्यासामञ्जस्यादिति ॥

मंदघर्षाश्रुरोगेऽक्षिण प्रयोज्यं घनदूषिके।
आर्ते पित्तकफासृग्भिर्मारुतेन विशेषतः॥ ९॥

आश्चोतनके अनन्तर अंजनका प्रयोग करना चाहिये। जिस मनुष्यका शरीर तो सर्वथा नीरोग हो किन्तु दोष केवल नेत्रोंके आश्रित हो और उस दोषका भी परिपाक हो जानेसे नेत्रोंमें सूजन, पीड़ा, कंडू और पिच्छलता ये सब कम हो गये हों, तथा पलकोंका घर्ष और अश्रुस्राव भी अल्प रह गया हो और नेत्रोंका मल गाढ़ा पड़ गया हो, इस प्रकार दोषोंके परिपक्व लक्षण होने पर अंजनका प्रयोग करना चाहिये। वह अंजन पित्तके नेत्ररोगमें, कफके नेत्ररोगमें और रक्तके नेत्ररोगमें तथा विशेष कर वातके नेत्ररोगमें प्रयुक्त करना चाहिये॥ ८॥ ९॥

अंजनके तीन भेद।

लेखनं रोपणं दृष्टिप्रसादनमिति त्रिधा।
अंजनम्—
—लेखनं तत्र कषायाम्लपटूषणैः॥
रोपणं तिक्तकैर्द्रव्यैः—
—स्वादुशीतैः प्रसादनम्॥ १०॥

नेत्रोंमें डालनेका अंजन लेखन, रोपण और दृष्टिप्रसादन; इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है।

इनमें लेखनांजन कषाय, अम्ल, लवण और ऊषण द्रव्योंके योगसे बनता है तथा नेत्रके शुक्र और अर्म आदि रोगोंमें प्रयुक्त किया जाता है।

तिक्त कषाय द्रव्योंके योगसे रोपण अंजन होता है। और मधुर शीत द्रव्योंके योगसे प्रसादनांजन बनाया जाता है। प्रसादनांजनका ही लेखनांजनके अनन्तर प्रयोग करनेसे प्रत्यंजन भी कहा जाता है॥ १०॥

अंजन डालनेकी शलाका।

दशांगुला तनुर्मध्ये शलाका मुकुलानना ११॥
प्रशस्ता लेखने ताम्री रोपणे काललोहजा।
अंगुली च सुवर्णोत्था रूप्यजा च प्रसादने १२

नेत्रोंमें अंजन डालनेके लिये दश अंगुलकी लम्बी सलाई बनानी चाहिये। वह सलाई मध्यमें मोटी और दोनों किनारोंके अग्रभाग चमेलीकी कलीके समान होने चाहिये। यह सलाई लेखन कर्ममें ताम्रकी बनानी चाहिये। रोपणांजन डालनेको अंगुली अथवा लोहेकी सलाई लेनी चाहिये। तथा प्रसादनांजन डालनेके लिये सुवर्णकी सलाई अथवा चांदीकी सलाई श्रेष्ठ होती है॥ ११॥ १२॥

अंजनके भेद।

पिंडो रसक्रिया चूर्णस्त्रिधैवांजनकल्पना।
गुरौ मध्ये लघौ दोषे ताः क्रमेण प्रयोजयेत् १३

पिंड, रसक्रिया और चूर्णांजन; इन भेदोंसे अंजनोंकी तीन प्रकारकी कल्पना है। गुरु अर्थात् अधिक दोषमें पिंड अंजनका प्रयोग करना चाहिये। मध्य दोषमें रसांजनादि रसक्रियाका प्रयोग करना चाहिये। और अल्प दोषमें स्रोतोऽञ्जनादिका सूक्ष्म-चूर्ण डालना चाहिये॥ १३॥

आंखमें तीक्ष्ण चूर्णादिकोंके डालनेका प्रमाण।

हरेणुमात्रं पिंडस्य वेल्लमात्रा रसक्रिया।
तीक्ष्णस्य द्विगुणं तस्य मृदुनः
चूर्णितस्य च॥
द्वे शलाके तु तीक्ष्णस्य तिस्रः स्युरितरस्य च१४

तीक्ष्ण द्रव्यसे बनाये हुए पिंड अंजनको हरेणु बीजके समान मात्रामें घिसकर डालना चाहिये। रसांजनादि रसक्रियाकी मात्रा वेलके बराबर डालनी चाहिये। यदि पिंडांजन मृदु द्रव्योंसे बना हो तो दो हरेणुके समान मात्रा डालनी चाहिये॥

चूर्णांजन यदि तीक्ष्ण हो तो उसकी दो सलाई मात्र नेत्रोंमें डालना चाहिये। यदि चूर्णांजन मृदु हो तो तीन सलाई मात्रासे नेत्रोंमें डालना चाहिये॥ १४॥

अंजन डालनेका काल।

निशि स्वप्ने न मध्याह्ने म्लानेनोष्णगभस्तिभिः।
अक्षिरोगाय दोषाः स्युर्वर्धितोत्पीडितद्रुताः।
प्रातःसायं च तच्छांत्यै व्यभ्रेऽर्केऽतोऽञ्जयेत्सदा॥

अंजनका प्रयोग रात्रिको और सोनेके समय नहीं करना चाहिये, क्योंकि निद्रासे बढ़े हुए दोष नेत्ररोगोंको उत्पन्न करते है। मध्याह्नमें भी अंजनका प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि मध्याह्नमें सूर्यकी गर्मीसे द्रवीभूत हुए दोष और अन्नसे पीड़ित हुए दोष नेत्ररोगोंको उत्पन्न कर देते हैं। इस कारण प्रातःकाल और सायंकाल उन दोषोंकी शांतिके लिये अंजन डालना चाहिये। और नित्य स्वच्छ दिनमें प्रातःकाल और सायंकाल अंजन डालना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

अन्यआचार्योंका मत।

वदंत्यन्ये तु न दिवा प्रयोज्यं तीक्ष्णमंजनम्।
विरेकदुर्बलं चक्षुरादित्यं प्राप्य सीदति ॥१७॥
स्वप्नेन रात्रौ कालस्य सौम्यत्वेन च तर्पिता।
शीतसात्म्या दृगाग्नेयी स्थिरतां लभते पुनः १८

कोई चिकित्सक ऐसा मानते है कि दिनमें तीक्ष्णांजनका प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि तीक्ष्णांजनसे नेत्रस्राव होकर दृष्टि दुर्बल हो जाती है। वह दुर्बल दृष्टि सूर्यके प्रकाशको पाकर व्याकुल हो जाती है।

इसलिये सायंकाल यदि तीक्ष्णांजन डाला जाय तो रात्रिके सोनेसे और रात्रिको सौम्य गुणकी अधिकतासे वह शीतसात्म्य आग्नेयी दृष्टि तर्पित होकर फिर स्थिर हो जाती है ॥ १७ ॥ १८ ॥

प्रथम मतको दूषण।

अत्युद्रिक्ते बलासे तु लेखनीयेऽथवा गदे।
काममह्न्यपिनात्युष्णेतीक्ष्णमक्षिणप्रयोजयेत् १९

यदि कफ अधिक बढ़ा हुआ हो अथवा नेत्रोंका रोग लेखनके योग्य हो तो अति उष्ण काल न होनेपर दिनमें भी नेत्रोंमें तीक्ष्णांजनका अवश्य प्रयोग करना चाहिये ॥ १९ ॥

उपमा।

अश्मनो जन्म लोहस्य तत एव च तीक्ष्णता।
उपघातोऽपि तेनैव तथा नेत्रस्य तेजसः ॥२०॥

जैसे लोह पत्थरसे पैदा होता है और उस लोहेका शस्त्र पत्थरपर घिसनेसे ही तीक्ष्ण हो जाता है। तथा वह तीक्ष्ण लोहशस्त्र पत्थरपर मारनेसे नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। उसी प्रकार नेत्र भी तेजसे ही उत्पन्न होते हैं। तेजका ही यथार्थ बल प्राप्त कर प्रकाशित रहते है। और तेजके ही दुरुपयोगसे नेत्रोंका विनाश हो जाता है। इस कारण दिनमें विना अत्यावश्यकताके तीक्ष्णांजनका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥

रात्रिको अतिशीतमें अंजन डालनेका निषेध।

न रात्रावपि शीतेति नेत्रे तीक्ष्णांजनं हितम्।
दोषमस्रावयत्स्तंभकंडूजाड्यादिकारि तत् २१॥

शीतकालमें रात्रिको भी तीक्ष्णांजनका प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि अतिशीतके कारण दोषोंका यथार्थ स्राव न होकर स्तम्भ, कंडू और जड़ता आदि रोग उत्पन्न हो जाते है। इसलिये प्रायः सब साधारणांजन प्रातःकाल आंजने चाहिये ॥ २१ ॥

अंजनके अयोग्य मनुष्य।

नांजयेद्भीतवमितविरिक्ताऽशीतवेगिते।
क्रुद्धज्वरिततांताक्षिशिरोरुक्शोकजागरे ॥२२॥
अदृष्टेऽर्के शिरःस्नाते पीतयोर्धूममद्ययोः।
अजीर्णेऽग्न्यर्कसंतप्ते दिवा सुप्ते पिपासिते॥२३॥

भयातुर मनुष्यको, वमन करनेके अनन्तर, विरेचनके अनन्तर, भोजनके अनन्तर, मलादि वेगवालेको, क्रुद्धको, ज्वरवालेको, राजीयुक्त नेत्ररोगमें, अक्षिरोगवालेको, शिरोरोगवालेको, शोकयुक्तको और रात्रिको जागे हुए मनुष्यको नेत्रोंमें अंजन नहीं डालना चाहिये। तथा दुर्दिनमें, शिरःस्नानके अनन्तर, धूमपानके अनन्तर, मद्य पीनेके अनन्तर, अजीर्ण रोगमें, अग्नि या सूर्यसे तपे हुए मनुष्यको, दिनमें सोनेके अनन्तर और प्यासयुक्त मनुष्यको अंजन नहीं डालना चाहिये ॥ २२ ॥ २३ ॥

निषिद्धांजन।

अतितीक्ष्णमृदुस्तोकबहुच्छघनकर्कशम्।
अत्यर्थशीतल तप्तमंजनं नावचारयेत् ॥ २४ ॥

अति तीक्ष्ण, अति मृदु, अत्यल्प, अत्यधिक, अति मोटा, अति कठोर, अत्यन्त शीतल और तपा हुआ अंजन नेत्रोंमें नहीं डालना चाहिये ॥ २४ ॥

अंजन आंजनेकी विधि ।

अथानुन्मीलयन् दृष्टिमन्तः संचारयेच्छनैः ।
अंजिते वर्त्मनी किंचिच्चालयेच्चैवमंजनम् ॥२५॥
तीक्ष्णं व्याप्नोति सहसा न चोन्मेषनिमेषणम् ।
निष्पीडनं च वर्त्मभ्यां क्षालनं वा समाचरेत् २६

नेत्रोंको खोलकर दृष्टिको अन्दरकी ओर करके धीरेसे पलकके नीचेकी ओर अंजन डालना चाहिये। फिर उस अंजनको धीरे धीरे सम्पूर्ण नेत्रमें चलायमान करना चाहिये। जिससे अंजन तीक्ष्णरूपसे व्याप्त हो जावे, किन्तु नेत्रोंको उन्मेष, निमेषादि और पलकोंको इस प्रकार सहसा पीड़न नहीं करना चाहिये; जिससे अंजन नेत्रमें प्रसारको प्राप्त न होकर बाहर निकल जाय। और नेत्रोंको जलसे शीघ्र ही धो डालना भी नहीं चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥

अंजनके पश्चात् जलादिसे प्रक्षालन ।

अपेतौषधसंरम्भं निर्वृतं नयनं यदा ।
व्याधिदोषर्तुयोग्याभिरद्भिः प्रक्षालयेत्तदा २७॥

जब अंजनका क्षोभ स्वयं शांत हो जाय और नेत्र भी स्वयं स्वच्छ होकर यथार्थ अवस्थामें आजायँ तब व्याधि, दोष और ऋतुकालादिके योग्य जलादिकोंसे प्रक्षालन कर देना चाहिये ॥ २७ ॥

नेत्रशोधनका प्रकार ।

दक्षिणांगुष्ठकेनाऽक्षि ततो वामं सवाससा ।
ऊर्ध्ववर्त्मनि संगृह्य शोध्यं वामेन चेतरत् ॥
वर्त्मप्राप्तांजनाद्दोषो रोगान्कुर्यादतोऽन्यथा २८॥

फिर प्रक्षालनके अनन्तर वामनेत्रकी पलकको ऊपर उठाकर मृदु वस्त्र लिपटे हुए दहने अंगूठेसे शुद्ध करे। इसी प्रकार दक्षिण नेत्रकी पलक उठाकर वाम अंगुष्ठसे ऊपरकी वर्त्मको साफ करना चाहिये। क्योंकि यदि वर्त्मको साफ न किया जाय तो वर्त्मके नीचे पहुँचा हुआ अंजन दोषप्रकोप और रोगोंको उत्पन्न कर देता है ॥ २८ ॥

कंडू जड़तादिमें तीक्ष्णांजनका प्रयोग ।

कंडूजाड्येऽजनं तीक्ष्णं धूमं वा योजयेत् पुनः।
तीक्ष्णांजनाऽभितप्ते तु पूर्णं प्रत्यंजनं हितम् २९

यदि नेत्रोंमें कंडू और जड़ता आदि हों तो तीक्ष्णांजन अथवा तीक्ष्णधूमका पुनः प्रयोग करना चाहिये ॥ यदि तीक्ष्णांजनके प्रयोगसे नेत्रोंमें अभिताप हो तो मधुर शीतल द्रव्योंसे बनाये हुए प्रत्यंजनका प्रयोग करना चाहिये ॥ २९ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायाम्, वैद्यरत्न-पण्डित-श्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कार-वैद्य-शिवशर्मविरचित-शिवदीपिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

अथाऽतस्तर्पणपुटपाकविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम तर्पण और पुटपाककी विधिवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैः—

नेत्रतर्पण कराने योग्य पुरुष ।

नयने ताम्यति स्तब्धे शुष्के रूक्षेऽभिघातिते ।
वातपित्तातुरे जिह्मे शीर्णपक्ष्माविलेक्षणे ॥१॥
कृच्छ्रोन्मीलशिराहर्षशिरोत्पाततमोऽर्जुनैः ।
स्यंदमंथान्यतोवातवातपर्यायशुक्रकैः ॥ २ ॥
आतुरे शांतरागाश्रुशूलसंरंभदूषिके ।
निवाते तर्पणं योज्यं शुद्धयोर्मूर्धकाययोः ॥३॥

इतने प्रकारके नेत्ररोगोंमें तर्पणका प्रयोग करना चाहिये। जैसे—म्लान नेत्रोंमें, अकड़े हुए नेत्रोंमें, सूखे हुए नेत्रोंमें, रूक्ष नेत्रोंमें, अभिघातित नेत्रोंमें, वातपित्तके नेत्ररोगमें, नेत्रोंकी जिह्मतामें, जिन नेत्रोंके पक्ष्म गिर गये हों और नेत्र आविल (गन्धले) रहते हों, जो नेत्र कष्टसे खुल सकते हों तथा नेत्रोंमें होनेवाले शिरोहर्ष, शिरोत्पात, तम, अर्जुन,

अभिष्यन्द, मन्थ, अन्यतोवात, वातपर्याय और शुक्र-रोग इन रोगोंमें, एवं जिस रोगीके नेत्रोंका राग, अश्रु, शूल, सूजन और दूषिका स्वयं शांत हो गये हों; इन सब प्रकारके नेत्रोंमें तर्पणका प्रयोग करना चाहिये ॥ १-३ ॥

नेत्रतर्पणकी विधि ।

कालं साधारणे प्रातः सायं चोत्तानशायिनः ।
यवमाषमयीं पालीं नेत्रकोशाद्बहिः समाम् ॥४॥
द्व्यंगुलोच्चां दृढां कृत्वा यथास्वं सिद्धमावपेत्।
सर्पिर्निमीलिते नेत्रे तप्तांबुप्रविलापितम् ॥ ५॥

जिस पुरुषको नेत्रतर्पण कराना हो उसको प्रथम वमनादिसे शरीरकी शुद्धि और नस्यादिसे मस्तककी शुद्धि करा देनेके अनन्तर जब शरीर स्वास्थ्य लाभ कर ले तब तर्पणयोग्य पुरुषको निर्वात स्थानमें तर्पण करावे । तर्पण वसन्तादि सामान्य कालमें प्रातःकाल या सायंकाल कराना चाहिये । जिसके नेत्रका तर्पण करना हो उसको सीधे लेटाकर उसके नेत्रके चारों ओर जौ और उर्दके आटेकी एक पाली (सीमा) बना देवे । यह नेत्र-पाली नेत्रकोषके बाहर सीधी दो अंगुल ऊंची दृढ़ ऐसी बनानी चाहिये, जिसमें नेत्रतर्पणका द्रव पदार्थ नेत्रके ऊपर डाल देनेसे इधर उधर नहीं बिखरे। फिर दोष दूष्यानुसार विचार कर उचित द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ घृत जो गर्म जलके ऊपर रखकर पिघला लिया हो और नेत्रपर डालनेके योग्य न बहुत ठंढा, न बहुत गर्म हो ऐसा घृत मिचे हुए नेत्रके ऊपर उस माषसे बनायी हुई पालीके भीतर भर देना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

राज्यंधादिरोगोंमें वसादिका प्रयोग ।

नक्तांध्यवाततिमिरकृच्छ्रबोधादिके वसाम् ।
आपक्ष्माग्रात्-
-अथोन्मेषं शनकैस्तस्य कुर्वतः ॥६॥

नक्तांध रोगमें, वाततिमिरमें, नेत्रके कृच्छ्र, बोध आदि रोगोंमें दोषादि विचार कर सिद्ध की हुई वसा-को नेत्रोंपर तर्पणके लिये डालना चाहिये । नेत्रपालीमें घृत या वसा इतनी डालनी चाहिये जो नेत्रकी पलकोंके ऊपर तक आजावे ॥

जब नेत्रके ऊपर घृतादि डाल दिया जावे तब वह रोगी धीरेसे नेत्रोंको खोल लेवे ॥ ६ ॥

मात्रागणनादिका निर्देश ।

मात्रां विगणयेत्तत्र वर्त्मसंधिसितासिते ।
दृष्टौ च क्रमशो व्याधौ शतं त्रीणि च पञ्च च ७
शतानि सप्त चाऽष्टौ च दश मन्थे दशानिले ।
पित्ते षट् स्वस्थवृत्ते च बलासे पञ्च धारयेत् ८॥

यदि वर्त्मरोगमें तर्पणका प्रयोग किया हो तो सौ मात्रा गिननेके कालतक तर्पणघृत नेत्रपर रखना चाहिये । यदि नेत्रसन्धिविकारमें तर्पण किया हो तो तीन सौ मात्रा गणना करनेतक नेत्रपर घृतादि रहने देने चाहिये । यदि सित भागके रोग निवृत्त्यर्थ तर्पण हो तो पांचसौ मात्रा कालतक घृतादि नेत्रपर रखने चाहिये । यदि नेत्रके कृष्णभागके विकार शांत्यर्थ तर्पणका प्रयोग हो तो सात सौ मात्रा गणना कालतक नेत्रपर घृतादि रखने चाहिये । तथा दृष्टिरोगमें आठसौ, मंथरोगमें दशसौ, वातज नेत्ररोगमें दशसौ, पित्तज नेत्ररोगमें छसौ, स्वस्थ मनुष्यके नेत्रोंपर छे सौ और कफके नेत्ररोगोंमें पांचसौ मात्रा कालतक नेत्रपर घृतादि धारण करने चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

अपांगदेशमें द्वारकरणादिका प्रकार ।

कृत्वाऽपांगे ततो द्वारं स्नेहं पात्रे तु गालयेत् ।
पिबेच्च धूमं नेक्षेत व्योम रूपं च भास्वरम् ९॥

इसके अनन्तर पालीके एक किनारे परसे उर्दके आटेमें द्वार बनाकर नेत्रके ऊपरका सब स्नेह किसी पात्रमें निकाल लेवे । तदनन्तर सक्तुपिंडिका आदिसे नेत्रके ऊपरकी चिकनाई पोंछ डाले, फिर उचित रीति-पर धूमपान करे । तथा आकाश, सूर्य और अन्य प्रकाशवाली वस्तुकी ओर नहीं देखे ॥ ९ ॥

नेत्रतर्पणके नियम ।

इत्थं प्रतिदिनं वायौ पित्ते त्वेकांतरं कफे ।
स्वस्थे च द्व्यंतरं दद्यादातृप्तेरिति योजयेत् १०॥

इस प्रकार वातजनित नेत्ररोगोंमें प्रतिदिन, पित्तके नेत्ररोगोंमे एक दिन छोड़कर, कफके नेत्ररोगोंमें दो दिन छोड़कर और स्वस्थ पुरुषके नेत्रोंपर भी दो दिन छोड़कर तर्पण करना चाहिये। तर्पण जबतक यथार्थ नेत्रोंकी तृप्ति न हो जाय तबतक करना चाहिये ॥ १० ॥

यथार्थ तृप्तके लक्षण।

प्रकाशक्षमता स्वास्थ्यं विशदं लघु लोचनम् ।
तृप्ते विपर्ययोऽतृप्तेऽतितृप्ते श्लेष्मजा रुजः ॥११॥

नेत्रोंका यथार्थ तर्पण हो जानेसे नेत्रोंमें प्रकाशको सहन करनेकी शक्ति, नीरोगता, स्वच्छता और हलकापन ये लक्षण हो जाते है ॥

यथार्थ तर्पण न होनेसे इससे विपरीत लक्षण होते हैं। और अति तृप्त हो जानेसे कफके रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ११ ॥

पुटपाकका विधान।

स्नेहपीता तनुरिव क्लांता दृष्टिर्हि सीदति ।
तर्पणानन्तरं तस्माद्दृग्बलाधानकारिणम् ॥१२॥
पुटपाकं प्रयुंजीत पूर्वोक्तेष्वेव यक्ष्मसु ।
स वाते स्नेहनः श्लेष्मसाहिते लेखनो हितः ॥
दृग्दौर्बल्येऽनिले पित्ते रक्ते स्वस्थे प्रसादनः १३।

जैसे स्नेहपानके अनन्तर शरीर क्लांत हो जाता है उसी प्रकार तर्पणके अनन्तर दृष्टि भी व्याकुल सी हो जाती है। इसलिये जिन रोगोंमें तर्पण किया जाय उनमें तर्पणके अनन्तर दृष्टिमें बलकी प्राप्तिके लिये पुटपाकका प्रयोग करना चाहिये ॥

वातके रोगोंमें स्नेहन पुटपाक और वातकफके रोगोमें लेखन पुटपाक तथा दृष्टिकी दुर्बलतामें, वातमें, पित्तमें, रक्तविकारमें और स्वस्थपुरुषोंके नेत्रोंपर प्रसादन पुटपाकका प्रयोग करना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

स्नेहन पुटपाक द्रव्य।

भूशयप्रसहानूपमेदोमज्जावसामिषैः ।
स्नेहनं पयसा पिष्टैर्जीवनीयैश्च कल्पयेत् ॥१४॥

भूशय जन्तु, प्रसह जन्तु और आनूप जीवोंके मेद, मज्जा, वसा और मांसोंसे तथा जीवनीयगणके द्रव्योंसे दूधमें रगड़कर पिंड बनाकर स्नेहन पुटपाक बनाना चाहिये ॥ १४ ॥

लेखनपुटपाक द्रव्य।

मृगपक्षियकृन्मांसमुक्तायस्ताम्रसैंधवैः ।
स्रोतोजशंखफेनालैर्लेखनं मस्तुकल्पितैः १५ ॥

हरिण आदि मृगोंके और विष्किर आदि पक्षियोंके यकृत् और मांस तथा मोती, लोह, ताम्र, सेंधा लवण, स्रोतोंजन, शंख, समुद्रफेन और हरिताल; इनको दहीके पानीके साथ रगड़कर लेखनपुटपाककी कल्पना करनी चाहिये ॥ १५ ॥

प्रसादन पुटपाकके द्रव्य।

मृगपक्षियकृन्मज्जावसांत्रहृदयामिषैः ।
मधुरैः सघृतैः स्तन्यक्षीरपिष्टैः प्रसादनम् ॥१६॥

मृग और पक्षियोंके यकृत्, मज्जा, वसा, आन्त्र, हृदय और मांस तथा मधुर द्रव्य, घृत और स्तनोंका दूध मिलाकर प्रसादन पुटपाकका पिंड बनाना चाहिये ॥ १६ ॥

पुटपाककी युक्ति।

बिल्वमात्रं पृथक्पिंडं मांसभेषजकल्कयोः १७॥
उरुबूकवटांभोजपत्रैः स्नेहादिषु क्रमात् ।
वेष्टयित्वा मृदा लिप्तं धवधन्वनगोमयैः ॥१८॥
पचेत्प्रदीप्तैरग्न्याभं पक्कं निष्पीड्य तद्रसम् ।
नेत्रे तर्पणवद्युंज्यात्–
–शतं द्वे त्रीणि धारयेत् ॥१९॥
लेखनस्नेहनांत्येषु–
–पूर्वौ कोष्णौ हिमोऽपरः ।
धूमपोऽन्ते तयोरेव–
–योगास्तत्र च तृप्तिवत् ॥ २० ॥

मांस या ओषधि आदिके कल्कोंका अलग अलग बिल्वप्रमाण गोल पिंड बना लेना चाहिये। एरंडके पत्रमें स्नेहन पिंडको, वटपत्रमें लेखन पिंडको और कमलपत्रमें प्रसादन पिंडको लपेटकर ऊपर दो

दो अंगुल मट्टीका गारा चढ़ा देवे। फिर इस गीले ही पिंडको अग्निमें पुटपाक करे। यदि स्नेहन पिंडका पुटपाक करना हो तो धवकी लकड़ियोंकी प्रदीप्त अग्निमें, लेखनपिंडको धामनकी अग्निमें और प्रसादनपिंडको गोमयकी अग्निमें डालकर पकावे। जब वह पिंड प्रज्वलित अग्निके समान लाल हो जाय तो इसको अग्निमेंसे निकाल लेवे। सुखोष्ण रहने पर मिट्टी आदि उतारकर पुटपाक द्रव्यको निचोड़ कर रस निकाल लेवे। इस रसका नेत्रोंमें तर्पणकी विधिसे प्रयोग करना चाहिये ॥

लेखन पुटपाकके रसको सौ मात्रा गिननेतक नेत्रों-पर धारण करना चाहिये। स्नेहन पुटपाकके रसको दोसौ मात्रा कालतक और प्रसादन पुटपाकके रसको तीनसौ मात्रा कालतक नेत्रों पर धारण करना चाहिये ॥

स्नेहन और लेखन पुटपाकोंका रस सुखोष्ण नेत्रोंपर धारण करना चाहिये और प्रसादन पुटपाकका रस शीतल ही नेत्रोंपर डालना चाहिये। पुटपाकका रस तर्पणके समान ही उर्देके आटेकी पाली बनाकर धारण करे और मात्राप्रमाण कालके अनन्तर उसी प्रकार निकालकर पालीको दूर कर देना चाहिये ॥

लेखन और स्नेहन पुटपाकका रस नेत्रोंपर धारण कर त्याग देनेके अनन्तर धूमपान कराना चाहिये, किन्तु प्रसादनके अनन्तर धूमपान नहीं करना चाहिये ॥

पुटपाकके रस धारण करनेमें सम्यग्योग, अयोग और अतियोग तर्पणके समान ही जानने चाहिये ॥ ॥ १७—२० ॥

नस्यायोग्य पुरुषोंको तर्पणादिका निषेध।

तर्पणं पुटपाकं च नस्यानर्हे न योजयेत् २१॥

जो पुरुष नस्यकर्मके अयोग्य बीसवें अध्यायमें कहे हुए हैं उनको तर्पण और पुटपाकका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥

तर्पणादि पर्यंत हितसेवन।

यावंत्यहानि युञ्जीत द्विस्ततो हितभाग्भवेत्।
मालतीमल्लिकापुष्पैर्बद्धाक्षो निवसेन्निशि २२॥

जितने दिनतक तर्पण और पुटपाक रसका प्रयोग किया जाय उससे दोगुने दिनों तक हित आहार विहारका सेवन करना चाहिये ॥

तथा रात्रिको मल्लिकाके पुष्प अथवा चमेलीके पुष्प नेत्रोंपर बांधकर निवास करना चाहिये ॥ २२॥

नेत्रोंको सबल रखनेका यत्न।

सर्वात्मना नेत्रबलाय यत्नं
कुर्वीत नस्यांजनतर्पणाद्यैः।
दृष्टिश्च नष्टा विविधं जगच्च
तमोमयं जायत एकरूपम् ॥ २३ ॥

मनुष्यको नस्य, अंजन, तर्पण आदिकोंसे सब प्रकारसे नेत्रोंको बलवान् रखनेका यत्न करना चाहिये क्योंकि दृष्टिके नाश होनेसे यह विविध प्रकारका सम्पूर्ण जगत् अंधकारमय एकरूप होजाता है ॥२३॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्य-रत्न-पण्डित-श्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कार-वैद्य-शिवशर्मविरचित-शिवदीपिकाख्य-व्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने चतु-र्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥

पंचविंशतितमोऽध्यायः।

अथाऽतो यंत्रविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम यन्त्रविधिवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं:—

यन्त्रप्रकारका निर्देश।

नानाविधानां शल्यानां नानादेशप्रबाधिनाम्।
आहर्तुमभ्युपायो यस्तद्यंत्रं यच्च दर्शने ॥ १ ॥
अर्शोभगंदरादीनां शस्त्रक्षाराऽग्नियोजने।
शेषांगपरिरक्षायां तथा वस्त्यादिकर्मणि २ ॥

अनेक प्रकारके शल्य, जो शरीरके अनेक भागोंमें अनेक प्रकारसे पीड़ा देनेवाले होते हैं, उनके निकालनेमें जो उपाय किया जाता है, अथवा

जिसके द्वारा किया जाता है उसको यंत्र कहते हैं। वह यंत्र शरीरमें छिपे हुए पूय, कंटकादिको देखनेमें, अर्श और भगन्दर,नाडीव्रणादि रोगोंमें, शस्त्र, क्षार, अग्नि आदि प्रयोग करते समय शेष अंगोंकी रक्षाके लिये तथा वस्ति आदि कर्ममें प्रयोग किये जाते है १।२

यंत्रोंके स्वरूप।

घटिकालाबुशृंगं च जांबवोष्ठादिकानि च।
अनेकरूपकार्याणि यंत्राणि विविधान्यतः॥
विकल्प्य कल्पयेद्बुद्ध्या–
–यथास्थूलं तु वक्ष्यते ॥ ३ ॥

घटिकायंत्र, अलाबु (तुम्बी) यंत्र, शृंग (सिंगी), जांबवोष्ट (जम्बूर) आदि अनेक प्रकारके यंत्र–अनेक रूप और कार्यवाले शरीर और रोगभेदसे अनेक प्रकारसे लघु दीर्घादि होते है। उनको अपनी बुद्धिसे शरीर और व्याधिके अनुसार कल्पना कर बनाना चाहिये ॥ ३ ॥

यद्यपि इन यंत्रोंके असंख्य प्रकार है, जिन सबका यहां पूर्णरूपसे लिखना असम्भव सा है तथापि यथास्थूल थोड़ेसे यंत्रोंका आकार कथन करते है॥ ३ ॥

स्वस्तिक यंत्र।

तुल्यानि कंकसिंहर्क्षकाकादिमृगपक्षिणाम् ४ ॥
मुखैर्मुखानि यंत्राणां कुर्यात्तत्संज्ञकानि च।
अष्टादशांगुलायामान्यायसानि च भूरिशः॥५॥
मसूराकारपर्यंतैः कंठे बद्धानि कीलकैः।
विद्यात्स्वस्तिकयंत्राणि मूलेऽकुशनतानि च॥
तैर्दृढैरस्थिसंलग्नशल्याहरणमिष्यते ॥ ६ ॥

स्वस्तिक–संदंश, ताल, नाडी, शलाका और अनुयंत्रादि भेदसे अनेक प्रकारके होते है। उनमें स्वस्तिक यन्त्र कंकमुख, सिंहमुख, ऋक्षमुख, काकमुख आदि यंत्र इन्हीं कंक, सिंह, ऋक्ष और काक आदिके मुखके समान आकारवाले बनाये जाते है। एसे ही अन्य मृग पाक्षियोंके मुखोंके आकारवाले यंत्र उन्हींके नामवाले होते हैं॥

प्रायः कंकमुखादि यंत्र अठारह अंगुल लम्बे उत्तम लोहेके होते हैं। उन यंत्रोंके जोड़के ऊपर मसूरकी आकृतिवाली कीलें लगी हुई होती हैं। ये यंत्र प्रायः जम्बूरकी तरह होते है। इनके हाथकी ओरके भाग अंकुशके समान मुड़े हुए होते है। इन दृढ यंत्रोंसे अस्थिमें चुभे हुए लोहकील आदिको पकड़कर खचकर निकाल दिया जाता है। तथा दांत निकालनेमें और कठिन शल्यको खैंचकर निकालनेमें काम आते है। इन्हें स्वस्तिक यन्त्र कहते है॥ ४––६ ॥

संदंश यन्त्र।

कीलबद्धविमुक्ताग्रौ संदंशौ षोडशांगुलौ।
त्वक्शिरास्नायुपिशितलग्नशल्यापकर्षणौ ॥७॥

सोलह अंगुलके लम्बे उत्तम लोहसे बने हुए दो प्रकारके संदंश यन्त्र होते है। इनका मूल कीलसे स्थिर जुड़ा हुआ होता है और अग्रभागमेंसे दोनों भाग खुले रहते है। ये छोटी किस्मकी चिमटियें त्वचा, शिरा, स्नायु और मांसमें गडे हुए कंटकादिको खैंचकर निकालनेमें काम आते है॥ ७ ॥

लघु संदंश।

षडंगुलोऽन्यो हरणे सूक्ष्मशल्योपपक्ष्मणाम् ८॥

अन्य छे अंगुलका लम्बा उत्तम मुखवाला संदंश नेत्रकी पलक आदिमें लगे हुए सूक्ष्म शल्यको निकालनेमें काम आता है॥ ८ ॥

मुचुंडी यन्त्र।

मुचुंडी सूक्ष्मदंतर्जुमूले रुचकभूषणा।
गंभीरव्रणमांसानाममर्मणः शोषितस्य च ॥ ९ ॥

सूक्ष्म दन्तवाली मोचनेके आकारकी मूलमेंसे सीधी मुचुंडी (नकचुंडी) होती है। इसके मूलमें एक छल्लासा रहता है। जब इसके मुखमें शल्य आ जाय तो उस छल्लेके मुखकी ओर खसका दिया जाता है। इससे उस मुचुंडीके मुखमें आया हुआ शल्य छूट नहीं सकता। इस मुचुंडी यन्त्रसे गम्भीर व्रणका मांस, अतिमांस, अर्मण और शल्यहरणमें शेष रहे हुए शल्यादि निकाले जाते है॥ ९ ॥

ताल यन्त्र।

द्वे द्वादशांगुले मत्स्यतालवद् ह्येकतालके।
तालयंत्रे स्मृते कर्णनाडी शल्यापहारिणी१०॥

बारह अंगुल लम्बे, मत्स्य ताल (मत्स्यगल-ताल) के समान दो तालवाले और एक तालवाले दो प्रकारके तालयन्त्र होते है। तालयंत्र कर्ण-नाडीके शल्यके निकालनेमें काम आते है ॥ १० ॥

नाडीयन्त्र।

नाडीयंत्राणि शुपिराण्यकानेकमुखानि च।
स्रोतोगतानां शल्यानामामयानां च दर्शने ११
क्रियाणां सुकरत्वाय कुर्यादाचूषणाय च।
तद्विस्तारपरीणाहदैर्घ्यं स्रोतोऽनुरोधतः॥ १२॥

नाडी (नाली) यन्त्र अन्दरसे पोले और अनेक प्रकारके होते है। ये नाडी यन्त्र वस्ति नेत्रके समान **चिकनी सुन्दर नलकियां (पोली सलाइयां) कोई** एक मुखवाली, कोई अनेक मुखवाली होती है। इनके द्वारा स्रोतोंमें गत शल्य और स्रोतगत रोग देखे और ढूंढे जाते है। तथा इनसे स्रोतोंमें क्रियाका सौकर्य और आचूपणादि कर्म किये जाते है। ये नाडीयंत्र जैसे स्रोतमें प्रवेश करना हो उस स्रोतके अनुसार इनकी लम्बाई, मोटाई आदि होनी चाहिये ११॥१२॥

नाड़ी प्रमाण और नाड़ी यन्त्रके पञ्चमुखादि भेद।

दशांगुलार्धनाहांतः कंठशल्यावलोकने।
नाडी—
—पंचमुखच्छिद्रा चतुष्कर्णस्य संग्रहे।
वारंगस्य द्विकर्णस्य त्रिच्छिद्रा तत्प्रमाणतः १३

दश अंगुल लम्बी और आध अंगुल मोटी नाडी कण्ठके अन्दर लगे हुए शल्यके देखनेमें काम आती है।

पञ्चमुख और पांच छिद्रोंवाला यन्त्र चतुर्मुख वारंग (शर) को निकालनेमें काम आता है। और द्विकर्णवाले शरको तीन छिद्रोंवाले नालीयंत्रसे निकाला जाता है। यह पांच छिद्रोंवाला या तीन छिद्रोंवाला नाडीयंत्र शल्यस्थानके प्रमाणका ही होता है ॥ १३ ॥

शल्य दर्शनार्थ अन्य नाड़ियोंका वर्णन।

वारंगकर्णसंस्थानानाहदैर्घ्यानुरोधतः।
नाडीरेवंविधाश्चाऽन्या द्रष्टुं शल्यानि कारयेत्१४

वारंग (तीरविशेष) के चिह्ले समान मोटाई और लम्बाईवाले गोल सुमृदुल अन्य नाडीयन्त्र वारंगादि शल्योंको ढूंडनेके लिये बनाने चाहिये। ये शरीरगत शल्योंको जांचनेवाले नाडीयन्त्र (एषणी शलाका) भी अनेक प्रकारके होते है ॥ १४ ॥

शल्य निर्घातिनी नाड़ी।

पद्मकर्णिकया मूर्ध्नि सदृशी द्वादशांगुला।
चतुर्थसुषिरा नाडी शल्यनिर्घातिनी मता १५॥

निश्चल शल्य निकालनेके लिये द्वादश अंगुल लम्बी मस्तक परसे कमलकी कलीके समान नोक और गोलाईवाली; जिसका चौथा भाग सुषिर (पोला) हो ऐसी नाड़ी शल्योंको हनन करनेवाली होती है। यह शल्यघातिनी नाड़ी भी संस्थान प्रमाणादिसे अनेक प्रकारकी होती है ॥ १५ ॥

अर्शोयन्त्रका निर्देश।

अर्शसां गोस्तनाकारं यंत्रकं चतुरंगुलम् १६॥
नाहे पंचांगुलं पुंसां प्रमदानां षडंगुलम्।
द्विच्छिद्रं दर्शने व्याधेरेकच्छिद्रं तु कर्मणि १७॥
मध्येऽस्य त्र्यंगुलं छिद्रमंगुष्ठोदरविस्तृतम्।
अर्धांगुलोच्छ्रितावृत्तकर्णिकं तु तदूर्ध्वतः॥१८॥

अर्श (बवाशीर) के अंकुरों (मस्सों) को काटने या क्षार लगानेसे प्रथम गुदामें लगानेका अर्शोयन्त्र होता है। अर्शोयन्त्र गोस्तनके समान आकारका बनाना चाहिये। यह यन्त्र पुरुषोंके लिये चार अंगुल लम्बा और पांच अंगुल सारी गोलाईके दाय-रेवाला होता है। स्त्रियोंके लिये यह यन्त्र छे अंगुल लम्बा बनाना चाहिये। यह अर्शोयन्त्र भी दो प्रका-

---

१ तत्र शरादिदण्डप्रवेशः शिखाकारः कीलको वारंग उच्यते।

रका होता है, एक दोनों ओर छिद्रोंवाला और एक केवल एक छिद्रवाला। इनमें दो छिद्रवाला अर्शको देखनेके लिये प्रयुक्त किया जाता है और एक ओर छिद्रवाला यन्त्र क्षार आदि लगाने अथवा शस्त्रकर्म करनेमें प्रयुक्त किया जाता है।

इस अर्शोयन्त्रके मध्यमें तीन अंगुल लंबा और अगुष्ठके मध्यभाग समान मोटा छिद्र होता है। इस यन्त्रके मूलभागके किनारे पर आधा अंगुल ऊंची गोल कर्णिका बनी हुई होती है, जो क्षारादि कर्मके समय इधर उधर तेजाब आदि लगनेसे और यंत्रको अंदर अधिक जानेसे बिचाये रखती है ॥ १६-१८ ॥

शमी और भगन्दर यन्त्र।

शम्याख्यं तादृगच्छिद्रं यंत्रमर्शःप्रपीडनम् ।
सर्वथाऽपनयेद्दोषं छिद्रादूर्ध्वं भगंदरे ॥ १९ ॥

अर्शको प्रपीडन करनेके लिये जो गोस्तनाकार अर्शोयंत्रके समान तीसरा यंत्र विना छिद्रका होता है उसको शमी यन्त्र कहते हैं ॥

भगन्दर रोगको दूर करनेके लिये जो भगन्दर नामक यत्र होता है उसके कर्णिका (वाली) और आकार सब अर्शोयंत्रके समान ही होते हैं, परन्तु भगन्दर यत्रका ओष्ठ छिद्रसे आध अंगुल ऊपर ले जाना चाहिये ॥ १९ ॥

घ्राणार्श और घ्राणार्बुद यन्त्र।

घ्राणार्बुदार्शसामेकच्छिद्रा नाड्यंगुलद्वया ।
प्रदेशिनीपरीणाहा स्याद्भगंदरयंत्रवत् ॥२०॥

नासिकाके स्रोतमें जो अर्श या रसौलीको निकालनेका नाडीयंत्र एक छिद्रवाला होता है। उसकी लंबाई दो अंगुल और मोटाई तर्जनी अंगुलीके समान होती है । इसका आकार भगन्दर यन्त्रके समान होता है ॥ २० ॥

अंगुलित्राण यंत्र।

अंगुलित्राणकं दांतं वार्क्षं वा चतुरंगुलम् ।
द्विच्छिद्रं गोस्तनाकारं तद्वक्त्रविवृतौ सुखम् २१

किसी उन्माद आदि रोगीके अथवा अन्य कर्मके लिये मुख खोलकर वैद्य जो अंगुलियें रोगीके मुखमें डाले तो अंगुलियोंकी रक्षाके लिये अंगुलित्राण यंत्र अंगुलियोंमें पहन लेना चाहिये । यह अंगुलित्राण यंत्र हाथी दांत या उत्तम काष्ठ अथवा "धातुका" बनाना चाहिये। यह यंत्र चतुरंगुल प्रमाण और दोनों ओर छिद्रोंवाला, गोस्तनाकार होता है तथा मुख खोलने आदिमें काम आता है ॥ २१ ॥

योनिव्रणेक्षण यंत्र।

योनिव्रणेक्षणं मध्ये सुषिरं षोडशांगुलम् ।
मुद्राबद्धं चतुर्भित्तमंभोजमुकुलाननम् ॥
चतुःशलाकमाक्रांतं मूले तद्विकसेन्मुखे ॥२२॥

योनिके भीतरके व्रणादि देखनेके लिये १६ सोलह अंगुल लंबा, बीचमेंसे पोला, मुखकी ओरसे खुल जानेवाली चार भित्तियोंसे बंद मुखवाला, कमलकी कलीके समान मुखवाला और चार शलाका उसके मुख खोलनेवाली यंत्रके मूलमें लगी हुई हों, जिनके द्वारा यंत्रमुख योनिमें अंदर खोल दिया जाता है। इसको योनिव्रणेक्षण यन्त्र कहते हैं ॥ २२ ॥

व्रणाऽभ्यंग और व्रणप्रक्षालन यंत्र।

यंत्रे नाडीव्रणाभ्यंगक्षालनाय षडंगुले ।
बस्तियंत्राकृती मूले मुखेऽङ्गुष्ठकलायखे ।
अग्रतोऽकर्णिके मूले निबद्धमृदुचर्मणी ॥२३॥

नाडीव्रणोंको धोने और तेल लगानेके लिये दो प्रकारके नाडीयंत्र होते हैं। ये छे अंगुल लंबे बस्तियंत्रके समान आकारवाले मूलमेंसे अंगुष्ठ समान छिद्र और मुखकी ओर मटरके समान छिद्रवाले होते है। इनमें मुखकी ओर कोई कर्णिका नहीं होती, मूलकी ओर मृदुल चर्मसे बँधे हुए होते हैं ॥२३॥

जलोदर यंत्र।

द्विद्वारा नलिका पिच्छनलिका वोदकोदरे२४॥

जलोदरका पानी निकालनेके लिये दोनों ओर छिद्रवाला नलिकायंत्र होता है। अथवा पिच्छनलिका "आभ्यन्तर शलाका" युक्त नाडीयंत्र जलोदर यंत्र होता है ॥ २४ ॥

धूमयंत्रादि यंत्र।

धूमवस्त्यादियंत्राणि निर्दिष्टानि यथायथम् २५

धूमपानकी विधिवाले अध्यायमें धूमयंत्र और वस्तिकर्मवाले अध्यायमें वस्तियंत्रोंका प्रकार यथा-योग्य रीतिसे कह आये है ॥ २५ ॥

शृंगयंत्र।

त्र्यंगुलास्यं भवेच्छृंगं चूषणेऽष्टादशांगुलम्।
अग्रे सिद्धार्थकच्छिद्रं सुनद्धं चूचुकाकृति २६॥

अठारह अंगुल लंबा, अग्रभागमेंसे तीन अंगुल चौड़ा मुखवाला शृंग (सिंगी) यंत्र होता है। यह विस्तृत ओरसे दुष्ट रक्तवाले स्थानपर लगाकर ऊपरकी ओरसे स्तनके समान चूसा जाता है। चूसनेकी ओरसे इसमें सर्षपके समान छिद्र रहता है। उस छिद्रपर पतला सा जाला या वस्त्र लगाकर चूसनेसे दुष्ट स्थानके वातको आकर्षण करता है। यदि पछने लगाकर उसपर इस शृंगयंत्रसे चूसा जाय तो यह यंत्र रक्तको भी पछनोंमेंसे खैंच लेता है ॥ २६ ॥

तुम्बीयंत्र।

स्याद्द्वादशांगुलोऽलाबुर्नाहे त्वष्टादशांगुलः।
चतुस्त्र्यंगुलवृत्तास्यो दीप्तोऽन्तःश्लेष्मरक्तहृत् ॥

अलाबु (तुंबी) यंत्र बारह अंगुल लंबा, अठारह अगुल समस्त परिणाह (मोटाई) के विस्तारवाला, तीन या चार अंगुल चौड़ा और गोल मुखवाला होता है। इसमें प्रज्वलित धूम भरकर दुष्ट रक्तके या दुष्ट कफके स्थानपर लगा देवे तो यह कफरक्तका आकर्षण कर (खैंच) लेता है ॥ २७ ॥

घटीयंत्र।

तद्वद् घटी हिता गुल्मविलयोन्नमने च सा २८

तुम्बीयंत्रके समान ही घटीयंत्र होता है। यह घटीयंत्र विलय (छिपे) हुए गुल्मको ऊपर ले आनेमें काम आता है। यह तुम्बीके समान प्रज्वलित धूम भरकर गुल्मस्थानपर लगानेसे अंदर छिपे हुए गुल्मको बाहर खैंच लाता है ॥ चकार शब्दसे कफ और रक्तके आचूषणमें भी काम आता है ॥ २८ ॥

शलाकायंत्रोंका निर्देश।

शलाकाख्यानि यंत्राणि नानाकर्माकृतीनि च।
यथायोगप्रमाणानि—
—तेषामेषणकर्मणी।
उभे गंडूपदमुखे—
—स्रोतोभ्यः शल्यहारिणी ॥
मसूरदलवक्त्रे द्वे स्यातामष्टनवांगुले ॥ २९ ॥

शलाका (सलाई) नामक यंत्र अनेक प्रकारके आकारवाले बनाये जाते है और अनेक कर्मोंमें युक्त किये जाते है। यह अनेक प्रकारकी शलाका स्थान कर्म विशेषसे लंबी मोटी आदि बनायी जाती है। अर्थात् जिन २ स्थानोंमें इनका प्रयोग होता है उन स्थान और कर्मके अनुसार इनकी लंबाई आकारादि बनाना चाहिये ॥

इनमें एषण कर्ममें दो प्रकारकी शलाका प्रयुक्त होती है। इन दोनों प्रकारकी शलाकाके मुख गडोए (गंडूपद) के समान होते है। यह शलाका व्रणकी गति आदि जाननेमें काम आती है।

ये दो प्रकारकी शलाकायें कान, नाक आदि स्रोतोंमेंसे शल्यको हरण करनेके काम आती है। इनका मुख मसूरके दल समान आकारवाला होता है और इनकी लम्बाई आठ या नौ अंगुल होती है ॥ २९ ॥

शंकुयंत्रोंका वर्णन।

शंकवः षट्—
उभौ तेषां षोडशद्वादशांगुलौ ॥ ३०॥
व्यूहनेऽहिफणावक्त्रौ—
—द्वौ दशद्वादशांगुलौ।
चालने शरपुंखास्यौ—
—आहार्ये बडिशाकृती ॥ ३१ ॥

अग्रभागमेंसे मुड़े हुए छे प्रकारके शंकु यंत्र होते है ॥

इन शंकु नामक शलाकाओंमें दो २ प्रकारके शंकु १६ सोलह अंगुल या १२ बारह अंगुल लंबे और सांपके फण समान मुखवाले होते है। ये दोनों प्रकारके शंकु व्यूहन कर्ममें काम आते है ।

दो प्रकारके शंकु दश या बारह अंगुल लंबे और शरपुंखके समान मुखवाले होते है। ये शल्यके चालन करनेमें काम आते हैं ॥

बडिश समान आकारके मुखवाले दो प्रकारके शंकु होते है। ये शल्यको खैंचकर निकालनेमें काम आते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

गर्भशंकु ।

नतोऽग्रे शंकुना तुल्यो गर्भशंकुरिति स्मृतः ।
अष्टांगुलायतस्तेन मूढगर्भं हरेत् स्त्रियाः ॥३२॥

अग्रभागमेंसे शंकुके समान मुडा हुआ, आठ अंगुल लंबा गर्भशंकु होता है। इससे स्त्रियोंका मूढगर्भ निकाला जाता है ॥ ३२ ॥

सर्पफणाख्य और दन्तपातन यन्त्र ।

अश्मर्याहरणे सर्पफणावद्वक्रमग्रतः ।
शरपुंखमुखं दंतपातनं चतुरंगुलम् ॥ ३३ ॥

मूत्राशयसे अश्मरी निकालनेका यंत्र अग्रभागमेंसे सर्पफणके समान मुखवाला होता है ॥

शरपुंखके समान मुखवाला और चार अगुल लंबा दन्तपातन यंत्र होता है । इससे हिला हुआ दांत निकाला जाता है ॥ ३३ ॥

प्रमार्जनशलाका यंत्र ।

कार्पासविहितोष्णीषाः शलाकाः षट् प्रमार्जने ।
पायावासन्नदूरार्थे द्वे दशद्वादशांगुले ॥ ३४ ॥

जिनके मुखपर रूई लपेटकर कान आदि साफ किये जाते है, ऐसी प्रमार्जन शलाका छे प्रकारकी होती है ॥

पायुस्थान (गुदा) में प्रमार्जन करनेकी दो प्रकारकी शलाका होती है। समीप ही प्रमार्जन करना हो तो दश अंगुलकी शलाका और दूर (अंदर) प्रमार्जन करना हो तो बारह अंगुलकी शलाका काम आती है ॥ ३४ ॥

द्वे षट्सप्तांगुले घ्राणे द्वे कर्णेऽष्टनवांगुले ।

दो प्रकारकी शलाका नासिकामें प्रमार्जनादि काममें युक्त की जाती है। इनमें एक छे अंगुल लंबी होती है और एक सात अंगुल लंबी होती है ॥

दो प्रकारकी शलाका कानमें प्रमार्जनादिके काम आती है। इनमें एक आठ अंगुल और एक नव अंगुल लंबी होती है-

कर्णशोधनशलाका ।

कर्णशोधनमश्वत्थपत्रप्रांतं स्रुवाननम् ॥ ३५ ॥

कर्णशोधन यंत्र पीपलके पत्रकी डंडीके समान लंबा और मुखपरसे स्रुवके समान गोल और गहरे मुखवाला होता है ॥ ३५ ॥

शलाकादिकोंका उपयोग ।

शलाका जांबवोष्ठानां क्षारेऽग्नौ च पृथक् त्रयम् ।
युंज्यात् स्थूलाणुदीर्घाणाम्-
-शलाकामंत्रवध्मानि ॥
मध्योर्ध्ववृत्तदंडां च मूले चार्धेंदुसंनिभाम् ३६॥

क्षारकर्म और अग्निकर्ममें प्रयोग करनेके लिये अलग अलग तीन तीन प्रकारकी शलाका और जांबवोष्ठ होते है। वे सूक्ष्म और छोटे, स्थूल और लंबे एवं मध्य दर्जेके भेदसे तीन प्रकारकी शलाका और तीन ही प्रकारके जांबवोष्ठ होते है ।

अंत्रवृद्धि रोगमें जो शलाका युक्त की जाती है वह मध्यभागसे ऊपर गोल दण्डवाली तथा मूलमेंसे अर्धचन्द्राकार होती है ॥ ३६ ॥

नासार्बुददाहक यन्त्र ।

कोलास्थिदलतुल्यास्या नासार्शोऽर्बुददाहकृत्

बेरकी गुठलीके अंदरके पत्र समान मुखवाली शलाका नाकके अंदरकी रसौलीको दाह करनेमें काम आती है ॥ ३७ ॥

क्षार (तेजाब) लगानेकी शलाका ।

अष्टांगुला निम्नमुखास्तिस्रः क्षारौषधक्रमे ।
कनीनीमध्यमानामिनखमानसमैर्मुखैः ॥ ३८ ॥

आठ अंगुल लंबी और कड़छीके समान निम्नमुखवाली तीन प्रकारकी शलाका क्षार (तेजाब) लगानेके कार्यमें प्रयोग की जाती है। यह शलाका कनिष्ठिका अंगुलीके नख समान मुखवाली तथा मध्यमा अंगुलीके नख समान मुखवाली एवं अनामिकाके नख समान मुखवाली होती है ॥ ३८ ॥

अन्य मेढ्रशोधनादि यन्त्र ।

स्वंस्वमुक्तानि यंत्राणि मेढ्रशुद्ध्यंजनादिषु ३९॥

उत्तरबस्तिक्रममें मेढ्रशोधन यंत्र कह आये है। और अञ्जन आदिके प्रकरणमें नेत्रशोधन यन्त्र कह आये है ॥ ३९ ॥

अनुयन्त्र ।

अनुयंत्राण्ययस्कांतरज्जुवस्त्राश्ममुद्गराः।
वर्ध्रांत्रजिह्वावालाश्च शाखानखमुखद्विजाः।
कालः पाकः करः पादो भयं हर्षश्च तत्क्रियाः
उपायवित्प्रविभजेदालोच्य निपुणं धिया ४० ॥

यह यन्त्रोंका दिग्दर्शन कह आये है। अब अनुयन्त्रोंका निर्देश करते है। जैसे—अयस्कांत(चुंबक पत्थर), रज्जु, वस्त्र, पत्थर, मुद्गर, वर्ध्र (चर्म), अंत्र, जिह्वा, बाल, शाखा, नख, मुख, दन्त, काल, पाक, हाथ, पांव, भय, हर्ष; यह १९ प्रकारके अनुयन्त्र होते है। उपायके जाननेवाला वैद्य अपनी निपुण बुद्धिसे विचार कर समयानुसार इन अनुयंत्रोंका विभाग कर प्रयोग करे ॥ ४० ॥

यंत्रोंके कर्म ।

निर्घातनोन्मथनपूरणमार्गशुद्धि-
संव्यूहनाहरणबंधनपीडनानि ।
आचूषणोन्नमननामनचालभंग-
व्यावर्तनर्जुकरणानि च यंत्रकर्म ॥ ४१ ॥

निर्घातन, उन्मथन, पूरण, मार्गशोधन, संव्यूहन, आहरण, बंधन, पीडन, आचूषण, उन्नमन, नामन, चालन, भंजन, व्यावर्तन और ऋजुकरण; ये यंत्रोंके कर्म होते है, जो इन यंत्रों द्वारा किये जाते है ॥ ४१ ॥

कंकमुखकी प्रधानता ।

निवर्तते साध्ववगाहते च
ग्राह्यं गृहीत्वोद्धरते च यस्मात् ।
यंत्रेष्वतः कंकमुखं प्रधानं
स्थानेषु सर्वेष्वधिकारि यच्च ॥ ४२ ॥

निवर्तन करनेमें, ठीक अवगाहनमें, शल्यको ग्रहण करनेमें और शल्यको पकड़कर निकाल देनेमें; इन सब कामोंमें विशेषरूपसे काम देनेके कारण और सब स्थानोंमें प्रायः यह प्रयोग किया जा सकता है, इस कारण कंकमुख सब यंत्रोंमें प्रधान होता है ॥ ४२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्न-पण्डित-श्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कार-वैद्य–शिवशर्मविरचित–शिवदीपिका-स्वव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः शस्त्रविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम शस्त्रविधिवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं:—

छब्बीस प्रकारके शस्त्र ।

षड्विंशतिः सुकर्मारैर्घटितानि यथाविधि ।
शस्त्राणि रोमवाहीनि बाहुल्येनांगुलानि षट् १
सुरूपाणि सुधाराणि सुग्रहाणि च कारयेत् ।
अकरालानि सुध्मातसुतीक्ष्णावर्तितेऽयसि ॥२॥

१ ह्रस्वदीर्घमूलतनुवक्रविषमग्राहमार्दवशिथिलतेत्यष्टौ यंत्रदोषा इति वृद्धवाग्भटसंग्रहे ।

समाहितमुखाग्राणि नीलांभोजच्छवीनि च
नामानुगतरूपाणि सदा सन्निहितानि च ॥३॥
स्वोन्मानार्धचतुर्थांशफलान्येकशोऽपि च ।
प्रायो द्वित्राणि युंजीत तानि स्थानविशेषतः ॥

शस्त्रकर्ममें कुशल वैद्योंने छब्बीस प्रकारके शस्त्र कहे हैं। वे शस्त्र यथाविधि निर्माण किये हुए, लोम काटनेमें समर्थ धारवाले और प्रायः छे अंगुल लंबे होते है। ये शस्त्र सुन्दर स्वरूपवाले, उत्तम धारवाले, उत्तम डंडी आदि पकड़नेके स्थानोंवाले बनाने चाहिये। और इनके फलक कराल नहीं होने चाहिये। अच्छे तीक्ष्ण लोहेके अग्निमें सुन्दर रीतिपर आवर्तित कर ध्मायमान करके पाण दिये हुए, सुन्दर मुखाग्रवाले, नील कमलके समानवाले, शस्त्र नामके समान ही सुन्दर स्वरूपवाले और सदा सावधानीसे शस्त्रानुरूप कोशादिमें रक्खे हुए होने चाहिये ॥

इन शस्त्रोंमें जिस शस्त्रकी जितनी लंबाई हो उससे आधे लम्बे या चौथाई लंबे इनके फल होने चाहिये। अथवा शस्त्रकी सम्पूर्ण लंबाईसे आधेका चौथा भाग अर्थात् अष्टम भाग फलकी लंबाई होनी चाहिये ॥

इन शस्त्रोंका रोग, स्थान, कर्म विशेषसे कहीं एक शस्त्रका, कहीं दो शस्त्रोंका और कहीं तीन शस्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये, अर्थात् जिस स्थान कर्म सौकर्यके लिये जिस प्रकार आवश्यकता उस प्रकार उन शस्त्रोंका प्रयोग करे ॥ १–४ ॥

मण्डलाग्र शस्त्र ।

मंडलाग्रं फले तेषां तर्जन्यंतर्नखाकृति ।
लेखने छेदने योज्यं पोथकीशुंडिकादिषु ॥५॥

इन शस्त्रोंमें मण्डलाग्र शस्त्र फल स्थानमेंसे तर्जनी अंगुलीके अन्तर्नख समान आकारवाला होता है। यह शस्त्र पोथकी रोग और गलशुंडिकादि रोगोंमें, लेखन और छेदन कर्ममें प्रयोग किया जाता है ॥ ५ ॥

वृद्धिपत्र शस्त्र ।

वृद्धिपत्रं क्षुराकारं छेदभेदनपाटने ।
ऋज्वग्रमुन्नते शोफे गंभीरे च तदन्यथा ॥६॥
नताग्रं पृष्ठतो—

वृद्धिपत्र शस्त्र छुरेके आकार होता है। यह शस्त्र छेदन, भेदन और पाटन कर्ममें प्रयोग किया जाता है। इसके दो भेद है। एक सीधी धारवाला और दूसरा पृष्ठभागमेंसे किंचित् आगेको मुड़ा हुआ। इनमें ऊंचे उठे हुए पक्वशोथमें सीधे मुखवाला वृद्धिपत्र प्रयोग किया जाता है और गंभीर शोथमें नताग्र शस्त्रका प्रयोग करना चाहिये ॥ ६ ॥—

उत्पल और अध्यर्धधार शस्त्र ।

—दीर्घह्रस्ववक्त्रं यथाशयम् ।
उत्पलाध्यर्धधाराख्ये छेदने भेदने तथा ॥७॥

उत्पल और अध्यर्धधार शस्त्र प्रमाणानुसार यथाक्रम दीर्घमुख और ह्रस्वमुखवाले होते हैं। अर्थात् उत्पल दीर्घमुखवाला और अर्धधार छोटे मुखवाला होता है। ये दोनों प्रकारके शस्त्र छेदन और भेदन कर्ममें प्रयोग किये जाते है ॥ ७ ॥

सर्पास्य शस्त्र ।

सर्पास्यं घ्राणकर्णार्शश्छेदनेऽर्धांगुलं फले ।

अर्धांगुलमात्र फलवाला सर्पास्य शस्त्र होता है। यह नासिका और कानके अंदरके मस्से काटनेमें प्रयोग किया जाता है ॥—

एषणी शस्त्र ।

गतेरन्वेषणे श्लक्ष्णा गंडूपदमुखैषिणी ॥ ८ ॥

व्रणकी गंभीरता और गति देखनेके लिये गंडोयेके समान मुखवाली श्लक्ष्ण (चिकनी साफ मृदुल) शलाका प्रयोग की जाती है। इस शलाकासे व्रणकी गति एषणा की जाती है, इस कारण इसको एषणी कहते हैं ॥ ८ ॥

सूचीमुखादि शस्त्रोंका वर्णन ।

भेदनार्थेऽपरा सूचीमुखामूलनिविष्टखा ।
वेतसं व्यधने-
-स्राव्ये शरार्यास्यं त्रिकूर्चके ॥ ९ ॥

अन्य शलाका, जिसका मुख सूईके समान सूक्ष्म होता है और मूलमें छिद्र होता है, उसको सूचीमुख कहते है, यह भेदनकर्ममें प्रयोग किया जाता है ॥

वेतसाग्र सूचीमुख वींधनेमें प्रयोग किया जाता है ॥

शरारिमुख और त्रिकूर्चक रक्तादि स्रावण करनेमें प्रयोग किये जाते है ॥ ९ ॥

कुशाटा और अन्तर्मुख शस्त्र ।

कुशाटा वदने स्राव्ये द्व्यंगुलं स्यात्तयोः फलम् ।
तद्वदंतर्मुखं तस्य फलमध्यर्धमंगुलम् ॥ १० ॥

मुखके मसूढ़े आदिके स्रावण करनेमें कुशाटा नामक शस्त्र प्रयोग किया जाता है। शरारी और कुशाटा इन दोनों शस्त्रोंके फल दो अंगुल लंबे होते है ॥

इन्हींके समान अंतर्मुख शस्त्र होता है। इसका फल चौथाई अंगुल प्रमाण लंबा होता है ॥ १० ॥

अर्धचंद्रमुख और व्रीहिमुख ।

अर्धचन्द्राननं चैतत्तथाऽध्यर्धांगुलं फले ।
व्रीहिवक्त्रं प्रयोज्यं च तच्छिरोदरयोर्व्यधे ११॥

कुशाटाके समान ही अर्धचन्द्रास्य शस्त्र होता है, परन्तु इसका मुख अर्धचन्द्राकार होता है ॥

चौथाई अंगुलके फलवाला व्रीहिमुख शस्त्र होता है। यह सिरावेधन और उदरवेधनके काममें प्रयोग किया जात है ॥ ११ ॥

कुठारिका ।

पृथुः कुठारी गोदन्तसदृशार्धांगुलानना ।
तयोर्ध्वदंडया विध्येदुपर्यस्थ्नां स्थितां शिराम्

गोदन्तके समान आकारवाली अर्ध अंगुल प्रमाण मुखवाली यथार्थ विस्तीर्ण दण्डयुक्त कुठारिका शस्त्र होता है। इस ऊर्ध्वदण्डवाली कुठारीसे अस्थिके ऊपर स्थित शिराका वेधन करना चाहिये ॥ १२ ॥

ताम्रमयी शलाका ।

ताम्री शलाका द्विमुखी मुखे कुरुबकाकृतिः ।
लिंगनाशं तया विध्येत्-

दो मुखवाली ताम्रकी शलाका जो मुखपरसे कुरुवक (रक्तसहचरकलिका) के आकारवाली होती है। लिंगनाश नामक नेत्ररोगमें वेधनके लिये प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥

अंगुलिशस्त्र ।

-कुर्यादंगुलिशस्त्रकम् ॥
मुद्रिकानिर्गतमुखं फले त्वर्धांगुलायतम् ॥
योगतो वृद्धिपत्रेण मण्डलाग्रेण वा समम् १४॥
तत्प्रदेशिन्यग्रपर्वप्रमाणार्पणमुद्रिकम् ।
सूत्रबद्धं गलस्रोतोरोगच्छेदनभेदने ॥ १५ ॥

प्रदेशिनी अंगुलीके अगले पोरुएमें ठीक आ सके ऐसे प्रमाणकी मुद्रिकाके साथ लगा हुआ अर्धांगुल लंबा और वृद्धिपत्र या मण्डलाग्रके समान आकारके फलवाला और सूक्ष्म दृढ रेशमके धागेसे बँधा हुआ अंगुलिशस्त्र होता है। वैद्य इसको प्रदेशिनीके पोरुएमें पहनकर गलस्रोतके रोगोंके छेदन या भेदनमें प्रयोग करें ॥ १४ ॥ १५ ॥

बडिश और करपत्र शस्त्र ।

ग्रहणे शुंडिकार्मादेर्बडिशं सुनताननम् ॥
छेदेऽस्थ्नां करपत्रं तु खरधारं दशांगुलम् ॥
विस्तारे द्व्यंगुलं सूक्ष्मदन्तं सुत्सरुबन्धनम् १६॥

अन्दरको अंकुशके समान मुड़े हुए मुखवाला बडिश शस्त्र होता है। यह शुण्डिका और अर्म आदिके ग्रहण करनेमें काम आता है ॥

करपत्र शस्त्र अस्थियोंके छेदन करनेके काममें आता है। करपत्र शस्त्र खर धारवाला, दश अंगुल लंबा, दो अंगुल चौड़ा, सूक्ष्म दाँतोंवाला और उत्तम त्सरुबंधन (मुष्टि बांधने या पकड़नेके स्थान) वाला होता है ॥ १६ ॥

कर्तरी शस्त्र ।

स्नायुसूत्रकचच्छेदे कर्तरी कर्तरीनिभा ॥ १७॥

स्नायु, सूत्र और कचादि काटनेके लिये कैंचीके समान कर्तरी शस्त्र होता है ॥ १७ ॥

नखशस्त्र ।

वक्रर्जुधारं द्विमुखं नखशस्त्रं नवांगुलम् ।
सूक्ष्मशल्योद्धृतिच्छेदभेदप्रच्छन्नलेखने ॥१८॥

टेढ़े मुख और सीधी धारवाला, नौ अंगुल लंबा नखशस्त्र होता है। नखशस्त्र सूक्ष्म शल्यके निकालनेमें, छेदन कर्ममें, भेदनमें, पछने लगानेमें और लेखन कर्ममें प्रयोग किया जाता है ॥ १८ ॥

दन्तलेखन शस्त्र ।

एकधारं चतुष्कोणं प्रबद्धाकृति चैकतः ।
दन्तलेखनकं तेन शोधयेद्दंतशर्कराम् ॥ १९ ॥

एक धारवाला, चतुष्कोण और एक ओरसे बँधे हुए आकारवाला दन्तलेखन शस्त्र होता है। इससे दांतोंमें लगा हुआ दंतशर्करा उतार दिया जाता है और दांत स्वच्छ किये जाते हैं ॥ १९ ॥

सूचियें (सूइये) ।

वृत्ता गूढदृढाः पाशे तिस्रः सूच्योऽत्र सीवने ।
मांसलानां प्रदेशानां त्र्यस्रा त्र्यंगुलमायता२०
अल्पमांसाऽस्थिसंधिस्थव्रणानां द्व्यंगुलायता ।
व्रीहिवक्त्रा धनुर्वक्रा पक्कामाशयमर्मसु ॥२१ ॥
सा सार्धद्व्यंगुला–

शस्त्रकर्म चिकित्सामें सीवनेके लिये तीन प्रकारकी सूचियें होती हैं। ये सूचियें गोल सूक्ष्म मुखवाली तथा जिस ओर धागा (सूत्र) डाला जावे उस ओरसे गंभीर और दृढ सूत्रवाली होनी चाहिये। इनमें (१) पुष्ट मांसवाले स्थानको सीनेके लिये तीन कोरवाली और तीन अंगुल लंबी सूची (सूई) होनी चाहिये। (२) अल्प मांसवाले स्थानका मांस सीनेको तथा अस्थि और संधिस्थ व्रणोंके सीनेके लिये दो अंगुल लंबी सूची होती है। (३) पक्काशय और मर्मस्थान आदि स्थानोंके मांसादि सीनेके लिये व्रीहि धानके सूकसमान मुखवाली, धनुषसमान खमदार और ढाई अंगुल लंबी सूची होनी चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥–

कूर्चके लक्षण ।

–सर्ववृत्तास्ताश्चतुरंगुलाः ।
कूर्चो वृत्तैकपीठस्थाः सप्ताऽष्टौ वा सुबंधनाः ।
संयोज्यो नीलिकाव्यंगकेशशातनकुट्टने ॥२२॥

एक गोल पीठमें लगी हुई चार चार अंगुल लंबी और गोल सात या आठ सूइयें जो उस गोल काष्ठादि या लोहमय पीठमें अच्छी तरह बँधी (जड़ी) हुई हों उसको कूर्च कहते है। यह कूर्च–नीलिका व्यंग और केशोंके गिरानेवाले इन्द्रलुप्तादि रोगोंमें कुट्टनके काममें आता है ॥ २२ ॥

खज ।

अर्धांगुलैर्मुखैर्वृत्तैरष्टाभिः कण्टकैः खजः ।
पाणिभ्यां मथ्यमानेन घ्राणात्तेन हरेदसृक् २३

आध अंगुल प्रमाण मुखवाले और गोल आठ लोह कंटकोंवाला खज होता है। प्रथम हाथोंसे मर्दन की हुई नासिकासे रक्त निकालनेके लिये खज शस्त्रका प्रयोग किया जाता है ॥ २३ ॥

यूथिकानामक शस्त्र ।

व्यधने कर्णपालीनां यूथिका मुकुलानना ।
आराऽर्धांगुलवृत्तास्या तत्प्रवेशा तथोर्ध्वतः२४

कर्णपालियोंके वेधन करनेके लिये, अर्थात् कानकी पेपड़ीमें छिद्र करनेके लिये जूहीकी कलीके समान आकारवाले मुखकी सूची लेनी चाहिये॥२४॥

आरा शस्त्र और कर्णवेधनी सूची ।

चतुरस्रा तया विध्येच्छोफं पक्कामसंश्रये ॥२५॥
कर्णपालीं च बहुलाम्–

–बहुलायाश्च शस्यते ।
सूची त्रिभागसुषिरा त्र्यंगुला कर्णवेधनी २६॥

प्रवेशके लिये अर्धांगुल लम्बा और गोल अग्रभागवाला अर्धांगुल ही प्रवेश योग्य और अर्धांगुल प्रवेशसे ऊपर चौकोर, इस प्रकारके आरा नामक शस्त्रसे बहुल (मांसल) कर्णपाली तथा कच्चे या पक्के शोथके संशय होनेपर वेधन करना चाहिये ।

तथा बहुला अतिमांसला कर्णपालीमें तीन अंगुल लंबी प्रान्तभागसे तीन भाग पोली अग्रभागमेंसे सुंदर सूक्ष्म मुखवाली सूचीसे कर्णवेधन करना श्रेष्ठ होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

अनुशस्त्र ।

जलौकःक्षारदहनकाचोपलनखादयः ।
अलौहान्यनुशस्त्राणि तान्येवं च विकल्पयेत् ॥
अपराण्यपि यन्त्रादीन्युपयोगं च यौगिकम् २७

जोंक, क्षार, अग्नि, कांच, पत्थर और नख दन्तादि जो लोहादि धातुके नहीं होते और समयपर शस्त्रका सा काम देते है उनको अनुशस्त्र कहते है । इन अनुशस्त्रोंका यथादोष कालादि विचारकर प्रयोग करना चाहिये, तथा अन्य यंत्रादिकोंका भी भद्रयौगिक रीतिपर प्रयोग करना चाहिये ॥ २७ ॥

छब्बीस प्रकारके शस्त्रोंके कर्म ।

उत्पाटचपाटचसीव्यैष्यलेख्यप्रच्छन्नकुट्टनम् ।
छेद्यं भेद्यं व्यधो मन्थो ग्रहो दाहश्च तत्क्रिया २८

ऊपरको खैंचकर शल्य निकालना, फाड़ना, सीवन करना, एषण करना, लेखन करना, पछने लगाना, कुट्टन करना, छेदन करना, भेदन करना, बींधना, मंथन करना, ग्रहण करना और दाह आदि करना, ये शस्त्रोंके कर्म है, अर्थात् इन शस्त्रों द्वारा ये काम किये जाते है ॥ २८ ॥

शस्त्रोंके दोष ।

कुण्ठखण्डतनुस्थूलह्स्वदीर्घत्ववक्रताः ।
शस्त्राणां खरधारत्वमष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः २९॥

१ शस्त्रकी धार कुंठित होना, २ शस्त्रकी धारआदि खण्डित होना, ३ बहुत पतला होना, ४ बहुत स्थूल होना, ५ बहुत छोटा, अथवा ६ बहुत बड़ा होना, ७ टेढ़ा मेढ़ा होना, ८ धारका खरदरा होना ये आठ दोष शस्त्रोंके कथन किये है । इन दोषोंसे रहित शस्त्र लेना चाहिये ॥ २९ ॥

शस्त्रग्रहणविधि ।

छेदभेदनलेख्यार्थं शस्त्रं वृन्तफलांतरे ।
तर्जनीमध्यमांगुष्ठैर्गृह्णीयात्सुसमाहितः ॥ ३०॥

छेदन, भेदन और लेखन कर्ममें शस्त्रको डंडी और फलके मध्यमेंसे तर्जनी, मध्यमा और अंगुष्ठके साथ सावधानीसे पकड़ना चाहिये और तन्मना रहना चाहिये ॥ ३० ॥

विस्रावणानि वृन्ताग्रे तर्जन्यंगुष्ठकेन च ॥ ३१॥

विस्रावण कर्ममें शस्त्रको डंडीके अग्रभागमेंसे तर्जनी और अंगूठेसे पकड़ना चाहिये ॥ ३१ ॥

तलप्रच्छन्नवृंताग्रं ग्राह्यं व्रीहिमुखं मुखे ।
मूलेष्वाहरणार्थे तु क्रियासौकर्यतोऽपरम् ३२॥

व्रीहिमुख शस्त्रकी डंडीको हाथकी हथेलीके नीचे छिपाकर शस्त्रके मुखको तर्जनी और अंगुष्ठसे पकड़ना चाहिये ॥

आहरण (शल्यको खचकर निकालने) में शस्त्रको मूलमेंसे दृढ पकड़ना चाहिये । इसके अतिरिक्त जिस प्रकार क्रियामें सौकर्य रहे उस प्रकार शस्त्रोंको पकड़कर प्रयोग करना चाहिये ॥ ३२ ॥

शस्त्रोंके कोश ।

स्यान्नवांगुलविस्तारः सुघनो द्वादशांगुलः ।
क्षौमपत्रोर्णकौशेयदुकूलमृदुचर्मजः ॥ ३३ ॥
विन्यस्तपाशः सुस्यूतः सांतरोर्णास्थशस्त्रकः ।
शलाकापिहितास्यश्च शस्त्रकोशः सुसंचयः ३४

शस्त्र रखनेके कोश नौ अंगुल विस्तारवाले और बारह अंगुल लंबे होने चाहिये । अथवा शस्त्रानुरूप विस्तारादिक होने चाहिये । यह कोश उत्तम रेशम, या भोजपत्र, अथवा शणिया, या मखमलादि वस्त्र, अथवा मृदु चर्मसे बनाए हुए होने चाहिये और उत्तम रीतिसे सीये हुए बंद करनेका फीता आदि ठीक लगे हुए होने चाहिये । इन कोशोंमें अंदर ऊन आदि लगाकर मृदुलता होनी चाहिये । इन कोशोंमें शस्त्रानुसार स्थानमें शस्त्र रहना चाहिये । तथा शलाका शस्त्रका कोश शलाकाके समान आकार पोला और मुखपर ढकना युक्त होना चाहिये । इस प्रकार सुन्दर सचयादियुक्त शस्त्रकोश होने चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

जलौकाप्रयोग ।

जलौकसस्तु सुखिनां रक्तस्रावाय योजयेत् ३५

सुखमें रहनेवाले पुरुषोंके विकृत रक्त हरण करनेको जलौका (जोंक) लगानी चाहिये ॥ ३५ ॥

त्याज्य जोंकें ।

दुष्टांबुमत्स्यभेकाहिशवकोथमलोद्भवाः ।
रक्ताः श्वेता भृशं कृष्णाश्चपलाः स्थूलपिच्छिलाः
इन्द्रायुधविचित्रोर्ध्वराजयो रोमशाश्च ताः ।
सविषा वर्जयेत्--
--ताभिः कंडूपाकज्वरभ्रमाः ॥ ३७ ॥

दूषित जलमें उत्पन्न हुई, मत्स्य, मेंडक और सांप आदिके मृत शरीरकी सड़नमे उत्पन्न हुई, अन्य दुष्ट कोथ और मल आदिमें उत्पन्न हुई जोंकें रक्तस्रावके लिये प्रयोग नहीं करनी चाहिये। तथा लाल वर्णकी, श्वेत वर्णकी, अत्यंत कृष्ण वर्णकी, अति चपल, अति स्थूल, अति पिच्छल, इन्द्रधनुष समान रंगबिरंगी, ऊर्ध्व रेखावाली और बालोंवाली जोंकें सविष होती है। इन सब प्रकारकी जोंकोंका रक्त निकालनेमें प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥

क्योंकि इन सविष जोंकोंके लगानेसे खुजली, पाक, ज्वर और भ्रम आदि रोग उत्पन्न हो जाते हे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

सविष जोंकके विकारोंकी चिकित्सा ।

विषपित्तास्रनुत्कार्यं तत्र--

विषयुक्त जोंकोंके प्रयोगसे उत्पन्न हुए रोगोंमें विषनाशक लेपादि तथा पित्त और रक्तके जीतनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥--

निर्विष जोंकें ।

--शुद्धांबुजाः पुनः ।
निर्विषाः शैवलश्यावा वृत्ता नीलोर्ध्वराजयः ।
कषायपृष्ठास्तन्वंग्यःकिञ्चित्पीतोदराश्च याः ३८

जो जोंकें शुद्ध जलमें उत्पन्न होती है तथा जो शैवालके समान श्याव (नीललोहित) वर्णवाली, गोल मुखादिवाली, नील ऊर्ध्व रेखाओंवाली, कषायवर्णकी पीठवाली, पतली और किंचित् पीत उदरवाली होती है वे जोंकें निर्विष होती है ॥ ३८ ॥

रक्तमत्त जोंकोंका त्याग ।

ता अप्यसम्यग्वमनात्प्रततं च निपातनात् ।
सीदन्तीः सलिलं प्राप्य रक्तमत्ता इति त्यजेत् ॥

इन निर्विष जोंकोंमें भी जो दुष्ट रक्त पीकर सम्यक् वमन न होनेसे या निरंतर दुष्ट रक्त पीते रहनेसे दुष्ट रक्त पानसे दूषित होनेके कारण जलमें गेरी हुई भी व्याकुल सी पड़ी रहें ऐसी जोंक भी त्याग देने योग्य होती है, क्योंकि यह जोंक रक्तको पान नहीं कर सकती, इस कारण नहीं लगानी चाहिये॥३९॥

जोंक लगानेकी विधि ।

अथतरा निशाकल्कयुक्तेऽम्भसि परिप्लुताः ४०
अवन्तिसोमे तक्रे वा पुनश्चाऽऽश्वासिता जले ।
लागयेद्घृतमृत्सांगशस्त्ररक्तनिपातनैः ॥
पिबन्तीरुन्नतस्कंधाश्छादयेन्मृदुवाससा ॥४१॥

जो जोंकें इस प्रकार परीक्षा करनेपर अच्छी रहें उनको प्रथम हलदीके कल्क मिले जलमें डाल देवे। फिर कांजी तथा तक्रमें थोड़ी थोडी देर डुबावे, तदनन्तर निकालकर मट्टीके पात्रमें डाले हुए स्वच्छ जलमें इन जोंकोंको आश्वासन देवे, फिर जलमेंसे निकालकर जिस स्थानपर लगाना हो लगावे। यदि नहीं लगे तो उस स्थानपर किंचित् घृत या मट्टी लगावे, अथवा शस्त्रकी नोकसे उस स्थानपर किंचित् रक्त निकाल दे; उस पर जोंक लगावे। जब जोंक मुख गड़ाकर उन्नत स्कंध होकर रक्त पीने लगे तो उस जोंकके ऊपर पानीमें भिगोकर सूक्ष्म वस्त्रका आच्छादन कर देवे॥४०॥४१॥

जोंकोंके दुष्टरक्त ग्रहणमें दृष्टांत ।

संपृक्ताद्दुष्टशुद्धास्राज्जलौका दुष्टशोणितम् ।
आदत्ते प्रथमं हंसः क्षीरं क्षीरोदकादिव ॥४२॥

दुष्ट और शुद्ध रक्त मिले हुए रक्तोंमेंसे जोंक प्रथम दुष्ट रक्तको ही पीती है। जैसे दूध और पानी मिलाकर हंसके आगे रख देनेसे हंस प्रथम दूध पी लेता है। उसी प्रकार जोंक भी प्रथम दुष्ट रक्तको पीकर पीछे शुद्ध रक्तको पीती है॥४२॥

दंशस्य तोदे कण्डूां वा मोक्षयेद्वामयेच्च ताम्॥४३

अथवा जोंकके दंश स्थानमें यदि खुजली होने लगे तो जोंकको स्वयं उतार कर उसको वमन करा देना चाहिये। यदि वह धीरेसे उतारनेपर न उतरे तो उसके मुखके स्थानपर हलदी और लवणका चूर्ण लगा देनेसे जोंक दंश स्थानको स्वयं छोड़ देती है। दंश स्थानमें खुजली होना शुद्ध रक्तके आकर्षण होनेका लक्षण है। इस कारण रक्त निस्सारणके अतियोगसे बचानेके लिये और शुद्ध रक्तकी रक्षाके लिये यह स्वयं जोंक उतारनेका क्रम कहा है॥४३॥

जोंक लगानेका फल।

गुल्मार्शोविद्रधीकुष्ठवातरक्तगलामयान्।
नेत्ररुग्विषवीसर्पान् शमयंति जलौकसः॥४४॥

जोंकें रक्तपान कर गुल्म, अर्श, विद्रधि, कुष्ठ, वातरक्त, गलके रोग, नेत्ररोग, विषविकार और विसर्प आदि रक्तविकारोंमें लगा देनेसे रक्त पीकर उन विकारोंको शांत कर देती है॥ ४४ ॥

जोंकोंकी रक्षाविधि।

पटुतैलाक्तवदनां श्लक्ष्णकंडनरूक्षिताम्।
रक्षन् रक्तमदाद्भूयः सप्ताहं ता न पातयेत्॥४५॥

जब जोंक रक्त पीकर हट जावे तब उसके मुखपर सैन्धवलवणयुक्त तैल लगाकर चावलोंके सूक्ष्म कंडनमें गेरकर रूखी बनावे। फिर उसको पुच्छकी ओरसे बांये हाथके साथ पकड़कर दहिने हाथसे मुखकी ओर सूत डाले। जिससे पिया हुआ रक्त मुखद्वारा निकल जावे। तदनन्तर मट्टीके पात्रमें मट्टी, शेवाळ और स्वच्छ जल डालकर रक्खे। इन जोंकोंको रक्तके मदसे बचानेके लिये सात दिनतक रक्त पान करनेके लिये नहीं लगाना चाहिये॥४५॥

जोंकोंके सम्यग्वातादि लक्षण।

पूर्ववत् पटुता दार्ढ्यं सम्यग्वांते जलौकसाम्।
क्लमोऽतियोगान्मृत्युर्वा–
–दुर्वांते स्तब्धता मदः॥ ४६ ॥

जोंकोंको ठीक वमन करा देनेसे उनमें पहलेके समान पटुता और दृढ़ता आ जाती है।

जोंकोंको अत्यन्त सूतकर वमनका अतियोग करानेसे जोंकें व्याकुल हो जाती है अथवा मर जाती है॥

जिन जोंकोंको ठीक वमन नहीं करायी जाती अर्थात् वमनका हीनयोग करानेसे उनमें स्तब्धता और मद उत्पन्न हो जाते है॥ ४६ ॥

जोंक रखनेका नियम।

अन्यत्राऽन्यत्र ताः स्थाप्या घटे मृत्स्नांबुगर्भिणि
लालादिक्वोथनाशार्थं सविषाः स्युस्तदन्वयात्।

जोंकोंको तीन २ या पांच २ दिनके बाद अलग २ घटोंमें नयी मिट्टी और नया जल डालकर बदलते रहना चाहिये। ऐसे बदलनेसे जोंकोंकी लाल मूत्रादिसे उत्पन्न हुआ दुष्ट क्लेदादि दूर हो जाते है। ऐसा नहीं करनेसे ये निर्विष जोंकें भी दुष्ट क्लेदके योगसे सविष हो जाती है॥ ४७ ॥

दंश स्रावादिके अनन्तर पिचु आदिकी योजना।

अशुद्धौ स्रावयेद्दंशान् हरिद्रागुडमाक्षिकैः।
शतधौताज्यपिचवस्ततो लेपाश्च शीतलाः ४८

यदि दंश स्थानमें रक्तकी शुद्धिके से लक्षण प्रतीत न होकर दुष्ट रक्तके लक्षण प्रतीत हों तो जोंकके दंश स्थानपर हरिद्रा, गुड़ और शहत लगाकर दंशोंको फिर स्रावण करे॥

तदनन्तर सौ वार धोये हुए घृतका फोआ लगावे। तथा रक्तप्रसादन करनेवाले शीतळ लेपोंका प्रयोग करे॥ ४८ ॥

दुष्ट रक्तके आगमनसे रोगकी शांति और अशुद्ध रक्तका पुनः स्राव।

दुष्टरक्तापगमनात्सद्योरोगरुजां शमः।
अशुद्धं चलितं स्थानात्स्थितं रक्तं व्रणाशये॥
अम्लीभवेत्पर्युषितं तस्मात्तत्स्रावयेत्पुनः॥४९॥

दुष्ट रक्तके निकल जानेसे शीघ्र ही रोग (व्रण स्थानकी सुर्खी) और पीड़ा शान्त हो जाती है ॥

अशुद्ध रक्त अपने स्थानसे चलकर व्रण स्थानमें स्थित हो जाता है । वह व्रणस्थानमें पर्युषित होकर खट्टा हो जाता है। इस कारण उस खट्टे रक्तको निकालनेके लिये दूसरे दिन फिर जोंकें लगा देनी चाहिये ॥ ४९ ॥

अलाबु घटिकाकी अयोजना तथा योजनाका वर्णन ।

युंज्यान्नालाबुघटिका रक्ते पित्तेन दूषिते ।
तासामनलसंयोगात् युंज्याच्च कफवायुना ५०

पित्तसे दूषित रक्तमें तुम्ब या घटिका यन्त्र नहीं लगाने चाहिये । क्योंकि तुम्ब और घटिका अग्निके योगसे लगाये जाते हैं । इसलिये इनका प्रयोग कफ और वायुसे दूषित हुए रक्त निकालनेमें करना चाहिये ॥ ५० ॥

शृंगकी अयोजना तथा योजनाका निर्देश ।

कफेन दुष्टं रुधिरं न शृंगेण विनिर्हरेत् ।
स्कन्नत्वाद्-
-वातपित्ताभ्यां दुष्टं शृंगेण निर्हरेत् ॥ ५१॥

कफसे दूषित हुए रक्तको शृङ्गके साथ नहीं निकालना चाहिये । क्योंकि शृङ्ग स्निग्धगुणवाला होनेके कारण कफसे सन्न हुए रक्तको नहीं निकाल सकता ॥

इस कारण वात, पित्तसे दूषित हुए रक्तको शृङ्गके द्वारा निकालना चाहिये ॥ ५१ ॥

प्रच्छान (पाछने) का प्रकार ।

गात्रं बद्ध्वोपरि दृढं रज्ज्वा पट्टेन वा समम् ।
स्नायुसंध्यस्थिमर्माणि त्यजन् प्रच्छानमाचरन् ।
अधोदेशप्रविसृतैः पदैरुपरिगामिभिः ।
न गाढघनतिर्यग्भिर्न पदे पदमाचरेत् ॥ ५३ ॥
प्रच्छानेनैकदेशस्थं ग्रंथितं जलजन्मभिः ।
हरेच्छृंगादिभिः सुप्तमसृग्व्यापि शिराव्यधैः ५४

जिस स्थानसे शृङ्गी आदिके द्वारा दूषित रक्तका निर्हरण करना हो, उससे कुछ ऊपरके अवयवको रस्सी वा कपड़ेसे बांध देवे और उस प्रच्छनीय प्रदेशके स्नायु, सन्धि, हड्डी और मर्मको छोड़कर पाछने (एक प्रकारका यन्त्रविशेष) से नीचेकी ओर मुँहवाले, (ऐसा होनेसे शोणितास्रावमें सुविधा होती है) एवं ऊपरमें एकके पीछे दूसरा स्थान पानेवाले कितने एक पद अर्थात् त्वचापर क्षतोंके चिह्न बनावे । जो अत्यन्त गहरे, जाड़े और टेढ़े न हों तथा एक क्षतके चिह्नपर ही दूसरा न लग सके । इस प्रकार एक देशमें स्थित रक्तको प्रच्छानके द्वारा गांठ, रसौली आदिमें ग्रन्थिरूपसे जमे हुएको जलौकाओंसे एवं सुप्त अर्थात् निश्चेष्ट पड़े हुएको शृंग आदिसे और समस्त शरीरमें फैले हुए विकृत रुधिरको सिरा-व्यध (फस्त खोलने) की विधिसे निकाल डाले ॥ ५२-५४ ॥

रक्तके पिण्डादि भेदसे प्रच्छानादि लगानेका वर्णन ।

प्रच्छानं पिंडिते वा स्यादवगाढे जलौकसः ।
त्वक्स्थेऽलाबुघटीशृंगं शिरैव व्यापकेऽसृजि५५

अथवा पिण्डसे बन्धे हुए रक्तमें प्रच्छान (पाछने), अवगाढ (जमे हुए) रक्तमें जलौका और त्वचामें निश्चेष्ट स्थित हुए रक्तमें तुम्बी, कुलड़ी और सिंगीका प्रयोग करे । और सारे शरीरमें व्याप्त हुए विकृत रुधिरको तो सिरावेध करके ही निकाल डाले ॥ ५५॥

वातादि दोषभेदसे शृंगादिसे रक्तका निर्हार ।

वातादिधाम वा शृंगजलौकोलांबुभिः क्रमात्

अथवा वायु, पित्त और कफमें स्थित हुए रक्तको क्रमसे सींगी, जोंक और तुम्बीके द्वारा खैंच ले ५६॥

१ सिरायां मतविकल्पो नास्त्येवेत्येवशब्दार्थः । इति सर्वाङ्गसुन्दरायामरुणदत्तः ।

स्रुतरक्त मनुष्यके शोफ (सूजन) में उष्ण घृतका सेचन ।

स्रुतासृजः प्रदेहाद्यैः शीतैः स्याद्वायुकोपतः ।
सतोदकंडूशोफस्तं सर्पिषोष्णेन सेचयेत् १७॥

पर्याप्त मात्रामें रक्तके निकल जानेपर उस क्षत-स्थानमें ठण्डे लेप आदि करे, कदाचित् किसीको इस शीत प्रयोगसे वायु कुपित होकर तोद (सूईके चुभानेकी सी पीडा), कण्डू (खाज) युक्त सूजन होने लगे तो उसे गर्म घीके परिषेकसे शान्त करे ॥ १७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतायामष्टाङ्गहृदयसंहितायाम्, वैद्यरत्न-पण्डित-श्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कार-वैद्य-शिवशर्मविरचित-शिवदीपिकाख्य-व्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

—:०:—

अथाऽतः सिराव्यधविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः

अब हम सिराव्यध विधि अर्थात् सिरा वेधन कर रक्त निकालनेकी विधिवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैः—

शुद्ध रक्तका स्वरूप ।

मधुरं लवणं किंचिदशीतोष्णमसंहतम् ।
पद्मेंद्रगोपहेमाविशशलोहितलोहितम् ॥
लोहितं प्रवदेच्छुद्धं तनोस्तेनैव च स्थितिः॥१॥

रक्त-मधुर और लवण रसवाला । किंचित् शीत और किंचित् उष्ण स्वभाववाला, पतला तथा कमल, इन्द्रगोप (बीरबहूटी कीट), सुवर्ण, भेड़के रक्त और शशेके रक्तके समान वर्णवाला उत्तम शुद्ध होता है, इस शुद्ध रक्तके आधीन ही मनुष्योंके शरीरकी स्थिति है ॥ १ ॥

रक्त दूषित होनेका कारण ।

तत्पित्तश्लेष्मलैः प्रायो दूष्यते-

वह रक्त क्षार उष्ण तीक्ष्णादि पित्तकारक और माषादि कफकारक पदार्थोंके अधिक खानेसे दूषित हो जाता है ॥

दूषित रक्तसे रोग ।

-कुरुते ततः ।
विसर्पविद्रधिप्लीहगुल्माऽग्निसदनज्वरान् ॥२॥
मुखनेत्रशिरोरोगमदतृड्लवणास्यताः ।
कुष्ठवाताऽस्रपित्तास्रकट्वम्लोद्गीरणभ्रमान् ॥३॥

फिर वह दूषित हुआ रक्त-विसर्प, विद्रधि प्लीहरोग, गुल्म, अग्निमान्द्य, ज्वर, मुखरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, मद, तृषा, मुखमें लवणता, कुष्ठ, वातरक्त, रक्तपित्त, कटु और अम्लउद्गार और भ्रम आदि रोगोंको उत्पन्न कर देता है ॥ २ ॥ ३ ॥

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैरुपक्रांताश्च ये गदाः ।
सम्यक् साध्या न सिध्यंति ते च रक्तप्रकोपजाः॥

जो रोग शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष आदि उपचारों द्वारा यथार्थ चिकित्सा करने पर भी शमन नहीं हो सकें उन्हे रक्तके प्रकोपसे उत्पन्न हुए जानने चाहिये ॥ ४ ॥

रक्तज रोगोंकी चिकित्सा ।

तेषु स्रावयितुं रक्तमुद्रिक्तं व्यधयेत्सिराम् ॥५॥

इन विसर्पादि रक्त विकारोंमें उदीर्ण हुए रक्तको सिरावेधन (फस्त खोल) कर निकाल देना चाहिये ॥ ५ ॥

शिरावेधनके अयोग्य प्राणी ।

न तूनषोडशाऽतीतसप्तत्यब्दस्रुतासृजाम् ।
अस्निग्धास्वेदितात्यर्थस्वेदितानिलरोगिणाम्६॥
गर्भिणीसूतिकाजीर्णपित्तास्रश्वासकासिनाम् ।
अतीसारोदरच्छर्दिपांडुसर्वांगशोफिनाम् ॥७॥
स्नेहपीते प्रयुक्तेषु तथा पचसु कर्मसु ।
नायंत्रितां सिरां विध्येन्न तिर्यङ्नाप्यनुत्थिताम्॥
नातिशीतोष्णवाताभ्रेष्वन्यत्राऽत्ययिकाद्गदात् ८

सोलह वर्षसे कम आयुमें और सत्तर वर्षसे ऊपरकी आयुमें सिरा वेधन कर रक्त निकालना उचित नहीं है।

तथा रक्त निकाले हुए पुरुष, रूक्ष पुरुष, विना स्वेदित, अत्यंत स्वेदित और केवल वात रोगियोंका भी सिरा वेधन कर रक्त नहीं निकालना चाहिये ॥

तथा गर्भिणी और प्रसूता स्त्रीका भी सिरावेधन नहीं करना चाहिये। एवं अजीर्णरोगी, रक्तपित्तरोगी, श्वासरोगी, कासरोगी, अतिसाररोगी, उदररोगी, वमनरोगी, पाण्डुरोगी और सर्वांगशोथरोगीको भी सिरावेधन नहीं करना चाहिये ॥

तथा स्नेह पानके अनन्तर और पंच कर्मके प्रयोगमें भी सिरावेधन नहीं करना चाहिये ॥

एवं विना रक्तमोक्षणके स्थानको ऊपरसे बांधे भी रक्त न निकाले। तथा तिरछा, टेढ़ा बैठ कर, या विना सिराको उठाये भी रक्त नहीं निकालना चाहिये। ऐसे ही अतिशीत या अति उष्ण कालमें, अधिक वातयुक्त स्थानमें और दुर्दिनमें भी अत्यन्तावश्यकताके विना रक्त नहीं निकालना चाहिये ॥ ६-८ ॥

रोग विशेषसे पृथक् २ सिरावेधन।

शिरोनेत्रविकारेषु ललाट्यां मोक्षयेत्सिराम् ९
अपांग्यामुपनास्यां वा[1]—

शिरके रोगोंमें और नेत्ररोगोंमें यदि रक्त निकालना आवश्यक हो तो मस्तककी सिराका वेधन कर रक्त निकालना चाहिये। अथवा अपांग या उपनासाकी सिरावेधन करना चाहिये ॥ ९ ॥—

कर्णरोगोंमें सिरावेधन।

-कर्णरोगेषु कर्णजाम्।

कानके रोगोंमें सिरावेधन करना हो तो कानकी सिरावेधन कर रक्त निकाले ॥

[1] अपांग्या उपनास्याः कनीनिके भवा इति हेमाद्रिः।

नासारोगोंमें सिरावेधन।

नासारोगेषु नासाग्रे स्थिताम्—
—नासाललाटयोः ॥१०॥

नासा रोगमें रक्त निकालना हो तो नासिकाके अग्रभागकी सिरा वेधन करे ॥

पीनसरोगमें सिरावेधन।

पीनसे—

पीनस रोगमें नासिका और ललाटकी सिरावेधन करना चाहिये ॥ १० ॥—

मुखरोगोंमें सिरावेधन।

—मुखरोगेषु जिह्वौष्ठहनुतालुगाः।

मुख रोगोंमें जिह्वा, होठ, हनु और तालुमें गमन करनेवाली सिराका वेधन करना चाहिये ॥—

ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंमें सिरावेधन।

जत्रूर्ध्वं ग्रंथिषु ग्रीवाकर्णशंखशिरःश्रिताः ११॥

ऊर्ध्वजत्रुओंकी संधिसे ऊपर यदि रक्तज ग्रन्थियें हों तो ग्रीवा, कान, शंख और शिरके आश्रित सिराका वेधन करना चाहिये ॥ ११ ॥

उन्माद रोगमें उर आदि स्थानोंकी सिरावेधन।

उरोऽपांगललाटस्था उन्मादे—

उन्माद रोगमें छाती, अपांग और ललाटकी सिरावेधन कर रक्त निकालना चाहिये ॥

अपस्मार रोगमें सिरावेधन।

—अपस्मृतौ पुनः।
हनुसंधौ समस्ते वा सिरां भ्रूमध्यगामिनीम् १२

और अपस्मार रोगमें समस्तहनुकी सन्धिमें फैली हुई सिराका अथवा मुकुटीके मध्यकी सिराका वेधन कर रक्त निकालना चाहिये ॥ १२ ॥

विद्रध्यादि रोगोंमें पार्श्वादिस्थ सिराओंका वेधन।

विद्रधौ पार्श्वशूले च पार्श्वकक्षास्तनांतरे।

विद्रधिरोगमें और पार्श्व शूलमें पार्श्व, कक्षा और स्तनोंके बीचमें फैली हुई सिराका वेधन करे ॥

तृतीयकज्वरमें सिरावेधन ।

तृतीयकेंऽसयोर्मध्ये

तृतीयक ज्वरमें दोनों स्कंधोंके मध्यकी सिरा वेधन करे ॥–

चातुर्थिक ज्वरमें सिरावेधन ।

स्कंधस्याधश्चतुर्थके ॥ १३ ॥

चातुर्थिक ज्वरमें स्कंधोंसे नीचेकी सिराका वेधन करे ॥ १३ ॥

प्रवाहिका शुक्रमेढ्रादिगत रोगोंमें सिराव्यध ।

प्रवाहिकायां शूलिन्यां श्रोणितो द्व्यंगुले स्थिताम्।
शुक्रमेढ्रामये मेढ्रे–

शूलयुक्त प्रवाहिका रोगमें श्रोणि (कटि) स्थानसे दो अंगुल पर स्थित सिराका वेधन करे ॥

वीर्य और शिश्नेन्द्रियके उपदंशादि रोगमें मेढ्र (शिश्न) की सिरा वेधन करे ॥–

गलगण्ड रोगमें सिरा वेधन ।

–ऊरुगां गलगंडयोः ॥ १४ ॥

गलगण्ड और गण्डमाला रोगमें ऊरुस्थानमें गमन करनेवाली सिराका रक्त निकालना चाहिये ॥ १४ ॥

गृध्रसी रोगमें सिरावेधन ।

गृध्रस्यां जानुनोऽधस्तादूर्ध्वं वा चतुरंगले ।

गृध्रसी रोगमें जानुके नीचेकी सिराको वेधन करे अथवा जानुसे चार अंगुल ऊपरसे इसी सिराका वेधन करे ॥

अपची रोगमें सिरावेधन ।

इंद्रबस्तेरधोऽपच्यां द्व्यंगुल–

अपची रोगमें इन्द्रवस्तिसे दो अंगुल नीचेकी सिरा वेधन करे ॥

१ अत्र द्वित्वं चिन्त्यं गलगण्डरोगस्याभेदेनोक्तत्वात्। यद्वाऽत्र एकशेषसमासाश्रयणेन गण्डमालारोगस्यापि ग्रहणम् ।

सक्थिकी पीड़ामें और क्रोष्टुशीर्षमें सिरावेधन ।

–चतुरंगुले ।
ऊर्ध्वं गुल्फस्य सक्थ्यर्तौ तथा क्रोष्टुकशीर्षके ॥

सक्थिकी पीड़ामें गुल्फसे चार अंगुल ऊपर सिरावेधन करे । तथा क्रोष्टुशीर्षमें भी गुल्फसे चार अंगुल ऊपर सिरावेधन करे ॥ १५ ॥

पाददाहादि रोगोंमें शिरावेधन ।

पाददाहे खुडे हर्षे विपाद्यां वातकंटके ।
चिप्पे च द्व्यंगुले विध्येदुपरि क्षिप्रमर्मणः॥१६॥

पाददाह रोगमें, खुडरोगमें, पादहर्षमें, विपादिका (बिवाई) में, वातकण्टक रोगमें और चिप्य नामक नखरोगमें अंगुष्ठ और अंगुलीके मध्यमें जो क्षिप्र मर्मस्थान है उससे दो अंगुल ऊपर सिरावेधन करना चाहिये ॥ १६ ॥

विश्वाचीरोगमें शिरावेधन ।

गृध्रस्यामिव विश्वाच्याम्–

विश्वाचीरोगमें जानुके अधोभागमें अथवा जानुसे चार अंगुल ऊपर सिरावेधन करना चाहिये ॥–

अदृश्यशिरावेधनप्रकार ।

–यथोक्तानामदर्शने ।
मर्महीने यथासन्ने देशेऽन्यां व्यधयेत् सिराम्१७

यदि रोगविशेषमें पृथक् पृथक् कही हुई सिरावेधनके लिये बाहर दिखायी न देवे और बंधनादिसे भी ऊपर न उठ सके तो अन्य सिरा जो उस व्याधिसे संबन्ध रखती हो और मर्मस्थानसे रहित हो उस सिराका ही वेधन कर रक्त निकालना चाहिये ॥ १७ ॥

शिरावेधनकी आद्य विधि ।

अथ स्निग्धतनुः सज्जसर्वोपकरणो बली १८ ॥
कृतस्वस्त्ययनः स्निग्धरसान्नप्रतिभोजितः ।
अग्नितापाऽतपस्विन्नो जानूच्चासनसंस्थितः १९.
मृदुपट्टात्तकेशांतो जानुस्थापितकूर्परः ।
मुष्टिभ्यां वस्त्रगर्भाभ्यां मन्ये गाढं निपीडयेत् ।
दंतप्रपीडनोत्कासगंडाऽऽध्मानानि चाचरेत्२०

अब सिरावेधनका क्रम कहते है। जिसका रक्त निकालना हो उस स्निग्ध शरीरवाले और सब उपकरणवाले पुरुषको स्वस्तिवाचनादि मंगल कर्म करनेके अनन्तर किंचित् स्निग्ध रसोंके साथ शाल्यन्नादि भोजन करावे फिर उसको अग्निके ताप या सूर्यके तापमें बिठावे। जब यह गर्माईसे स्वेदनसा हो जाय तो इसको जानुसमान ऊंचे आसनपर बिठावे और इसके केशोंको मस्तकके ऊपर २ मृदुल रेशम आदिकी पट्टीसे सँवारकर बांध देवे। फिर यह पुरुष अपने दोनों जानुओंपर दोनों कूर्पर (कोहनियें) रखकर अपने दोनों हाथोंकी मुट्ठियोंसे गर्दनकी मन्या नाड़ियोंको खूब दबावे। इन दोनों हाथोंकी मुट्ठियोंके बीचमें वस्त्र होना चाहिये। फिर यह पुरुष दांतोंको कसकर दबावे तथा खांसे और गण्डस्थलोंको फुलावे "यह सब उपाय मस्तक आदिकी सिरा उठानेके लिये करने चाहिये" ॥ १८–२० ॥

शिरायंत्रणविधि।

पृष्ठतो यंत्रयेच्चैनं वस्त्रमावेष्टयन्नरः ॥ २१ ॥
कंधरायां परिक्षिप्य न्यस्यांतर्वामतर्जनीम्।
एषोऽन्तर्मुखवर्जानां सिराणां यंत्रणे विधिः २२

फिर इस पुरुषको गर्दनमें वस्त्र डालकर पीठकी ओर वस्त्रको बांधकर यंत्रण करे। कपड़ेको गर्दनमें बांधते समय वाम हाथकी तर्जनी अंगुली मन्या नाड़ीके साथ लगाकर ऊपरसे गर्दन पीड़न करनेवाला वस्त्र बांधे। यह यंत्रण केवल बहिर्मुख सिराओंके वेधनार्थ बाहर प्रगट करनेके लिये है ॥२१॥२२॥

ताड़नविधि।

तथा मध्यमयांऽगुल्या वैद्योंऽगुष्ठविमुक्तया।
ताडयेत्–

फिर इस प्रकार यंत्रणके अनन्तर वैद्य जिस ललाटादि स्थानमें सिरावेधन करनेवाला हो उस स्थानमें अपने बायें हाथकी मध्यमांगुलीको अंगुष्ठसे गुलेलके समान मुक्त कर ताड़न करे ॥–

शिरामोक्षणप्रकार।

–उत्थितां ज्ञात्वा स्पर्शांगुष्ठप्रपीडनैः ॥ २३ ॥
कुठार्या लक्षयेन्मध्ये वामहस्तगृहीतया।
फलोद्देशे सुनिष्कंपं सिरां तद्वच्च मोक्षयेत् ॥
ताडयन् पीडयेच्चैनां

तदनन्तर अंगुलिस्पर्शसे या अंगूठेसे दबानेपर जब सिरा ऊपर उठी हुई जंचे तो उस उठी हुई सिराके ठीक मध्य भागमें लक्ष्यकर वैद्य अपने वाम हाथमें ग्रहण की हुई कुठारिका शस्त्रके फलको निष्कम्प हाथसे सिराके मध्य लक्षित भागमें रखकर इस कुठारिकाको अंगुली आदिसे ताड़न करे और दबावे इस प्रकार इससे सिरावेधन करे।

पुनः व्रीहिमुखसे शिरावेधन।

विध्येद्व्रीहिमुखेन तु ॥ २४ ॥

जो सिरा कुठारिका शस्त्रसे वेधन की जाती है उसको व्रीहिमुखशस्त्रसे भी वेधन कर सकते हैं। यद्यपि व्रीहिमुख मांसल स्थानोंकी सिरा वेधन करनेमें प्रयोग किया जाता है और कुठारिका अस्थिके ऊपरकी सिरा वेधन करनेमें प्रयोग होता है परन्तु व्रीहिमुखका मांसल स्थानमें तो प्रयोग होता ही है। किन्तु कुठारिकासे सिरावेधनके स्थानमें भी प्रयोग किया जा सकता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

नासिकाकी शिरावेधन।

अंगुष्ठेनोन्नमय्याऽग्रे नासिकामुपनासिकाम् २५

यदि नासिकाका रक्त निकालना हो तो नासिकाके अग्रभागको अंगूठेसे ऊपरको करके उपनासिकाकी सिरा वेधन करे ॥ २५ ॥

मुखरोगमें शिरावेधन।

अभ्युन्नतविदष्टाग्रजिह्वस्याधस्तदाश्रयाम्॥२६॥

मुखरोगोंमें यदि जिह्वाका सिरावेधन करना हो तो जीभके अग्रभागको दांतोंसे किंचित् काटकर जीभको तालुवेकी ओर उलटा लेवे फिर जीभके नीचेकी सिराका वेधन करे ॥ २६ ॥

ग्रीवाश्रितशिरावेधनप्रकार।

यंत्रयेत्स्तनयोरूर्ध्वं ग्रीवाश्रितासिराव्यधे ॥
पाषाणगर्भहस्तस्य जानुस्थे प्रसृते भुजे।
कुक्षेरारभ्य मृदिते विध्येद्बद्धोर्ध्वपट्टके ॥ २७ ॥

यदि गर्दनके आश्रित शिराका वेधन करना हो तौ उस पुरुषके दोनों स्तनोंसे ऊपर वस्त्रको कसकर बांधे। फिर वह रोगी दोनों हाथोंमें छोटे पत्थर लेकर अपनी दोनों बाहोंको जानुओंपर रख सीधी पसार लेवे। फिर इसकी कुक्षियोंसे लेकर ऊपर गर्दन पर्यन्त मर्दन करे, जिससे बँधे हुए वस्त्रसे ऊपर गर्दनकी सिरा उठ जावे। फिर उस उठी हुई सिराका वेधन करे ॥ २७ ॥

हस्तशिरावेधन।

विध्येद्धस्तसिरां बाहावनाकुंचितकूर्परे।
बद्धा सुखोपविष्टस्य मुष्टिमंगुष्ठगर्भिणीम् ॥
ऊर्ध्वं वेध्यप्रदेशाच्च पट्टिकां चतुरंगुले ॥ २८ ॥

यदि बाहोंकी सिरा वेधन करना हो तो बाहू (बांह) को जानुपर रख सीधी करके अंगूठा मुट्ठीमें लेकर कसकर मुट्ठी बांधे और सुखपूर्वक बैठकर विना कोहनीको संकुचित किये सीधी बांह रक्खे। फिर जो सिरा-वेधनका स्थान हो उससे चार अंगुल ऊपर कसकर पट्टी बांध देवे। जब इस उपायसे सिरा उठ आवे तो हस्तसिराको वेधन कर रक्त निकाले ॥ २८ ॥

पार्श्वशिरावेधनप्रकार।

विध्येदालंबमानस्य बाहुभ्यां पार्श्वयोःसिराम् २९

यदि पार्श्वभागकी सिरा वेधन करना हो तो दोनों बाहोंसे किसी वल्ली टहने आदिमें लटके हुए पुरुषके पार्श्व (पसवाड़े) की सिरा वेधन करे ॥ २९ ॥

मेढ्रशिरावेधन।

प्रहृष्टे मेहने–

शिश्नेन्द्रियकी सिरा वेधन करना हो तो शिश्नेन्द्रियको प्रहृष्ट कर खड़ी सिराका वेधन करे ॥–

–जंघाशिरावेधन।

जंघासिरां जानुन्यकुंचिते ॥ ३० ॥

जंघाकी शिरा वेधन करना हो तो जानुओंको संकुचित न करके सीधी टांग रखकर बाहु-सिरा वेधनके क्रमसे वेष्टनादि करके सिरा-वेधन करे ॥ ३० ॥

पादसिरावेधन प्रकार।

पादे तु सुस्थितेऽधस्ताज्जानुसंधेर्निपीडिते।
गाढं कराभ्यामागुल्फं चरणे तस्य चोपरि।
द्वितीये कुंचिते किंचिदारूढे हस्तवत्ततः॥३१॥
बद्धा विध्येत्सिराम्

पांवकी सिरा वेधन करना हो तो रोगी साधारण आसनादि पर बैठ जावे और जिस पांवकी सिरा वेधन करना हो उसको सीधा पसार लेवे तथा दूसरे पांवको जरा सकोड़ लेवे। फिर जिस पांवका सिरावेधन करना है उसको जानुकी संधिसे लेकर गुल्फ तक दोनो हाथोंसे खूब पीड़न करना चाहिये। फिर हाथकी सिराके समान वेधन स्थानसे चार अंगुल ऊपर कपड़ेकी रस्सी या पट्टी कसकर बांधे और पांवपर किंचित् जोर देवे, फिर उठी हुई सिराका वेधन करे ॥ ३१ ॥–

अनुक्त स्थानोंमें कल्पनाप्रकार।

–इत्थमनुक्तेष्वपि कल्पयेत्।
तेषु तेषु प्रदेशेषु तत्तद्यंत्रमुपायवित् ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार विना कहे स्थानोंमें सिरावेधनकी आवश्यकतानुसार कल्पना कर लेनी चाहिये। तथा जिन जिन स्थानोंमें शिरावेधन करना हो उनके समान ही यंत्रादिकी कल्पना कर लेनी चाहिये ॥ ३२ ॥

मांसलादि स्थानोंमें व्रीहिमुखादि शस्त्र-निक्षेपप्रकार।

मांसले निक्षिपेद्देशे व्रीह्यास्यं व्रीहिमात्रकम्।
यवार्धमस्थ्नामुपरि सिरां विध्यन्कुठारिकाम् ३३

अधिक मांसवाले स्थानमें व्रीहिमुख शस्त्रको व्रीही धान्यके समान गहरा प्रयोग कर सकते है। इसी प्रकार अस्थियोंके ऊपरकी सिराके वेधनमें आधे यवके समान गहरी कुठारिका शस्त्रका प्रयोग कर सकते है ॥ ३३ ॥

सम्यक् विद्धका लक्षण।

सम्यग्विद्धं स्रवेद्धारां यंत्रे मुक्ते तु न स्रवेत्। अल्पकालं वहत्यल्पं—

यथार्थ सिरावेधन हो जानेसे रक्तधाराका स्राव होता है, जब वेधनादि यंत्रणा खोल देते है तो धारास्राव बंद हो जाता है ॥—

दुर्विद्ध और अतिविद्ध।

—दुर्विद्धा तैलचूर्णनैः। सशद्धमतिविद्धा तु स्रवेद्दुःखेन धार्यते ॥३४॥

दुर्विद्धा सिरामेंसे आगे ३६ के श्लोकमें कहे रक्तस्रावक चूर्ण और तैल लगानेपर भी अल्पकाल और बहुत थोड़ा रक्तस्राव होता है ॥

अतिविद्ध सिरासे शब्दसहित अधिक रक्त निकलता है और वह बड़ी कठिनाईसे बंद किया जाता है ॥ ३४ ॥

रक्तस्राव न होनेके कारण।

भीमूर्च्छायंत्रशैथिल्यकुंठशस्त्रातितृप्तयः। क्षामत्ववेगितास्वेदा रक्तस्याऽस्रुतिहेतवः॥३५॥

भय, मूर्छा, यंत्रणका ढीलापन, शस्त्रका कुंठितपन, अतितृप्त होकर भोजन करना, क्षीणता, मलमूत्रादि वेगका होना और स्वेदन न करना, इन कारणोंसे रक्तका यथार्थ स्राव नहीं हो सकता ॥ ३५ ॥

असम्यक् स्रावकी चिकित्सा।

असम्यगस्रे स्रवति वेल्लव्योषनिशानतैः। सागारधूमलवणतैलैर्दिह्याच्छिरामुखम् ॥ ३६॥

यदि यथार्थ रक्तस्राव न हुआ हो तो बायविडंग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हलदी, तगर, गृहधूम, लवण और तैल मिलाकर सिराके मुखपर लेप करे ॥ ३६॥

सम्यक् स्रावमें लेप।

सम्यक्प्रवृत्ते कोष्णेन तैलेन लवणेन च ॥३७॥

सम्यक् (ठीक) स्राव हो जाय तो सिरामुखको लवणयुक्त कोष्ण तैलसे लेपन करे ॥ ३७ ॥

दुष्टादुष्टके स्रावादिका निर्देश।

अग्रे स्रवति दुष्टास्रं कुसुंभादिव पीतिका। सम्यक्स्रुत्य स्वयं तिष्ठेच्छुद्धं तदिति नाहरेत्॥३८

सिरावेधनसे जब दुष्ट रक्तस्राव किया जाता है तो कुसुंभेके जलकी पीलाईके समान प्रथम दुष्ट रक्तका ही स्राव होता है ॥

जब रक्त सम्यक् स्रावको प्राप्त होकर स्वयं ठहर जाता है तो अब शुद्ध रक्त रह गया ऐसा जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

मूर्छामें यंत्र विमोचनादि प्रकार।

यंत्रं विमुच्य मूर्छायां वीजिते व्यजनैः पुनः। स्रावयेन्मूर्छति पुनस्त्वपरेद्युरुयहेऽपि वा॥३९॥

यदि उस रोगीको रक्त मोक्षणके समय मूर्छा आ जाय तो उसका यंत्रणादि खोलकर उसको पंखेसे शीतल पवनादि कर उसकी मूर्छा दूर करे। यदि फिर मूर्छा हो जाय तो उस मूर्छाके दिन रक्त नहीं निकाले। किन्तु दूसरे या तीसरे दिन फिर दुष्ट रक्तको निकालना चाहिये ॥ ३९ ॥

वातादि भेदोंसे रक्तके लक्षण।

वाताच्छ्यावारुणं रूक्षं वेगस्राव्यच्छफेनिलम्।

वायुसे श्याव (नीललोहित) वर्ण, अथवा अरुण वर्णका तथा रूक्ष रक्त होता है, एवं अच्छ और फेनिल (झागदार) होता है तथा वेगके साथ स्राव होता है ॥

पित्तसे रक्तके लक्षण।

पित्तात्पीतासितं विस्रमस्कंद्यौष्ण्यात्सचंद्रकम्॥

पित्तसे पीला, काला, दुर्गन्धयुक्त, पतला, उष्ण और चन्द्रिकायुक्त रक्त होता है ॥ ४० ॥

कफसे रक्तके लक्षण।

कफात् स्निग्धमसृक्पांडु तंतुमत्पिच्छिलं घनम्।

कफसे स्निग्ध, पाण्डुवर्ण, तन्तुयुक्त, पिच्छिल और गाढ़ा रक्त होता है ॥

दोषोंके संसर्गसे संसृष्ट लक्षण।

संसृष्टलिंगं संसर्गात्—

दो दोषोंके मिले हुए लक्षणोंवाला दो दोषोंसे होता है ॥—

त्रिदोषसे रक्तके लक्षण ।

–त्रिदोषं मलिनाविलम् ॥ ४१ ॥

और तीनों दोषोंसे तीनों दोषोंके लक्षणोंवाला मलिन और गंधला होता है ॥ ४१ ॥

अशुद्धरक्त निकालेनकी मात्रा ।

अशुद्धौ बलिनोऽप्यस्रं न प्रस्थात्स्रावयेत्परम् ।
अतिस्रुतौ हि मृत्युःस्याद्दारुणावा चलामयाः४२

अशुद्ध रक्त बलवान् पुरुषका भी एक सेरसे अधिक नहीं निकालना चाहिये । कारण कि अधिक रक्त निकालनेसे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है अथवा दारुण वातज रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

अधिक रक्तस्रावजनित रोगोंकी चिकित्सा।

तत्राऽभ्यंगरसक्षीररक्तपानानि भेषजम् ।

अधिक रक्तस्रावसे उत्पन्न हुए विकारोंमें तैलाभ्यंग कराना तथा मांसरस, दूध और नीरोगजीवोंका रक्त अथवा रक्तवर्धक द्रव्य पिलाना चाहिये ॥

रक्तमोक्षणके अनन्तर कर्म ।

स्रुते रक्ते शनैर्यंत्रमपनीय हिमांबुना ।
प्रक्षाल्य तैलप्लोतार्क्तं बंधनीयं सिरामुखम्॥४३

रक्त मोक्षणके अनन्तर धीरेसे उस पुरुषका बंधनादि खोलकर शीतल जलसे सिरामुखको धो डाले और सिराके मुखपर तैलका फोहा रखकर पट्टीसे बांध देना चाहिये ॥ ४३ ॥

अशुद्ध रक्तका पुनः स्राव ।

अशुद्धं स्रावयेद्भूयः सायमह्न्यपरेऽपि वा॥४४॥

यदि दुष्ट रक्त अवशेष हो और वह स्राव कराने योग्य हो तो फिर दूसरी बार उसी दिन सायंकाल अथवा दूसरे दिन रक्तमोक्षण करावे ॥ ४४ ॥

स्नेहयुक्त शरीरमें पुनः रक्तस्राव ।

स्नेहोपस्कृतदेहस्य पक्षाद्वा भृशदूषितम् ।

अथवा स्नेहसे भावित देहवाले पुरुषका अत्यन्त दुष्ट रक्त १५ पन्द्रह दिनके अनन्तर फिर निकाल देना चाहिये । इस प्रकार दुष्ट रक्तको दूसरे दिन या तीसरे दिन अथवा पन्द्रहवें दिन निकालकर शुद्ध कर देवे, परन्तु एक सेरसे अधिक सब रक्त नहीं निकालना चाहिये । यहांपर एक प्रस्थ साढे तेरेह पलका लेना चाहिये ॥

किंचित् दुष्ट रक्त शेष रहनेपर रक्तस्रावका निषेध ।

किंचिद्धि शेषे दुष्टास्रे नैव रोगोऽतिवर्तते ॥
सशेषमप्यतो धार्यं न चातिस्रुतिमाचरेत्॥४५॥

यदि दुष्ट रक्त किंचित् शेष रह जावे तो भी दुष्ट रक्तसे उत्पन्न हुई व्याधि मार्गान्तरादिमें जाकर कोई उपद्रवादि नहीं करती, अर्थात् शमन ही हो जाती है। इस कारण किंचित् दुष्ट रक्त शेष रहते हुए ही रक्त निकालना बंद कर देना चाहिये । किन्तु अधिक मात्रामें रक्त निकालना अच्छा नहीं है, क्योंकि अतिरक्तस्रावसे प्राणनाशका भय है । और जो दुष्ट रक्त शेष रह जावे तो उसको संशमन औषधियोंसे जीतना चाहिये । सुश्रुतमें भी ऐसा ही लिखा है कि "रक्तं सशेषदोषं तु कुर्यादपि विचक्षणः । न चातिप्रस्रुतं कुर्याच्छेषं संशमनैर्जयेदिति" अर्थात् रक्त अधिक मात्रामें नहीं निकाले । यदि दुष्ट रक्त शेष रहे तो संशमन द्रव्योंका सेवन कराकर जीतना चाहिये ॥ ४५ ॥

शेष दुष्ट रक्तका शृंगादिसे हरण ।

हरेच्छृंगादिभिः शेषम्–

यदि सिरावेधनसे निकाला हुआ दुष्ट रक्त कुछ शेष रह गया हो और उसका निकालना आवश्यक हो तो उस रक्तको शृङ्ग या जोंक आदिसे निकाल दे, परन्तु सिरावेधन द्वारा अधिक या सम्पूर्ण दुष्टका हरण नहीं करना चाहिये ।–

शीतोपचारादिसे रक्तका प्रसादन ।

–प्रसादमथवा नयेत् ॥४६॥

शीतोपचारपित्तास्रक्रियाशुद्धिविशोषणैः ।
दुष्टं रक्तमनुद्रिक्तमेवमेव प्रसादयेत् ॥ ४७ ॥

अथवा उस शेष रहे रक्तको प्रसादन कर देना

(१) "वमने च विरके च रक्तातिसारयोरपि । सार्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥" इत्यरुणदत्तः ॥

चाहिये। रक्तको शमन करनेवाले शीत उपचार, रक्तपित्तनाशक क्रिया, वमन विरेचनादि शोधन और निंबादि द्रव्योंके प्रयोगसे विशोषण आदि क्रियाओंसे दुष्ट रक्तको उदीर्ण होनेसे प्रथम ही प्रसादन कर देना चाहिये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

स्तंभनी क्रियाका आचरण।

रक्ते त्वतिष्ठति क्षिप्रं स्तंभनीमाचरेत्क्रियाम् ४८

यदि सिरावेधनके अनन्तर रक्तस्राव बंद नहीं हो तो उसको शीघ्र स्तम्भन करनेका यत्न करना चाहिये ॥ ४८ ॥

रक्तस्तम्भक चिकित्सा।

रोध्रप्रियंगुपत्तंगमाषयष्ट्याह्वगैरिकैः।
मृत्कपालांजनक्षौममपीक्षीरित्वगंकुरैः॥
विचूर्णयेद्व्रणमुखं पद्मकादिहिमं पिबेत् ॥४९॥

पठानी लोध्र, प्रियंगुपुष्प, पतंग, माष, मुलैठी, गेरू, मट्टीके ठीकरेका चूर्ण, स्रोतोंऽजन, रेसमके कपडेकी भस्म, वटादि क्षीरवाले वृक्षोंकी छाल और अंकुर इन सब द्रव्योंका बारीक चूर्ण कर रक्त निकलनेवाले व्रणके मुखपर लगाकर पट्टी बांध देवे। और रोगीको पद्मकादि गणका हिम पिलावे ॥ ४९ ॥

पुनः सिरावेधन।

तामेव वा सिरां विध्येद्व्यधात्तस्मादनंतरम्।

अथवा यदि वह शिराका स्राव बंद न हो तो विना नियंत्रणके उसी सिराको रक्तस्रावके दो तीन अंगुल नीचेसे वेधन कर दे, जिससे रक्तका वेग दूसरी ओर होनेसे पहला छिद्र बन्द हो जावे, फिर दूसरा भी बंद कर देवे ॥—

शिरामुखका दाह।

सिरामुखं च त्वरितं दहेत्तप्तशलाकया ॥ ५० ॥

अथवा तप्तशलाकासे सिराके मुखको शीघ्र ही दाग (दहन कर) देवे, जिससे रक्तका बहना बंद हो जावे ॥ ५० ॥

स्वास्थ्यपर्यन्त हिताहारविहारका सेवन।

उन्मार्गगा यंत्रनिपीडनेन
स्वस्थानमायांति पुनर्न यावत्।
दोषाः प्रदुष्टा रुधिरं प्रपन्ना—
स्तावद्धिताहारविहारभाक्स्यात् ॥ ५१ ॥

दुष्ट दोष जो रुधिरमें प्राप्त होनेसे दुष्ट रक्तको निकालते समय यंत्रादि पीड़न करनेसे उन्मार्गगामी हो जाते हैं वे दोष शुद्धरूपसे जबतक अपने अपने स्थानमें प्राप्त न हो जावें तबतक हित आहार विहारका सेवन करते रहना चाहिये ॥ ५१ ॥

रक्तस्रावके अनन्तर अत्युष्ण आहारादिका त्याग।

नात्युष्णशीतं लघु दीपनीयं
रक्तेऽपनीते हितमन्नपानम्।
तदा शरीरं ह्यनवस्थितास्र-
मग्निर्विशेषादिति रक्षणीयः ॥ ५२ ॥

रक्त निकालनेके अनन्तर न बहुत शीत और न बहुत उष्ण तथा हलके और अग्निको चैतन्य रखनेवाले हित अन्न पानोंका सेवन करना चाहिये, कारण कि शरीरमें रक्तकी अनवस्थिति होनेसे जठराग्नि भी निर्बल होती है, इसलिये जठराग्निको विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ५२ ॥

विशुद्ध रक्त पुरुषके लक्षण।

प्रसन्नवर्णेंद्रियमिंद्रियार्था-
निच्छंतमव्याहतपक्तृवेगम्।
सुखान्वितं पुष्टिबलोपपन्नं
विशुद्धरक्तं पुरुषं वदंति ॥ ५३ ॥

वर्ण और इंद्रियोंका प्रसन्न होना, रूप रसादि सब इंद्रियोंके विषयोंकी यथार्थ इच्छा होना, जठराग्निका वेग अव्याहत होना, सुखयुक्त शरीरकी पुष्टि और बलकी वृद्धि होना, यह सब लक्षण विशुद्ध रक्तवाले पुरुषके कहे जाते हैं ॥ ५३ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्न-पण्डित—श्रीरामप्रसादात्मज-विद्यालङ्कार-वैद्य-शिव-शर्म-विरचित-शिवदीपिकाख्यव्याख्या-सहितायां सूत्रस्थाने सप्तविंशो-ऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथातःशल्याहरणविधिमध्यायंव्याख्यास्यामः

अब हम शल्यको निकालनेकी विधिवाले अध्याय की व्याख्या करते हैं:-

शल्योंकी पांच गति ।

वक्रर्जुतिर्यगूर्ध्वाधः शल्यानां पंचधा गतिः । ध्यामं शोफं रुजावंतं स्रवंतं शोणितं मुहुः १॥

शल्योंकी पांच प्रकारकी गति होती है । जैसे-- वक्र (टेढी) गति, ऋजु (सीधी) गति, तिर्यक् (तिरछी) गति, ऊर्ध्व, (ऊपर) गति और अधः (नीची) गति ॥ १ ॥

अन्तःशल्यके लक्षण ।

अभ्युद्गतं बुद्बुदवत्पिटिकोपचितं व्रणम् । मृदुमांसं विजानीयादंतःशल्यं समासतः ॥२॥

जो व्रण श्याम वर्णवाला, शोथयुक्त, पीडायुक्त, वार वार रक्तस्राव करनेवाला, ऊपरको उठा हुआ, जिसमेंसे बुल्बुले से निकलते हों और चारो ओरसे पिटिकाओंसे युक्त हों तथा मृदुल मांसवाला हो उस व्रणमें लोहादिशल्य विद्यमान है,ऐसा जानना चाहिये । यह अन्तःशल्यके सामान्य लक्षण है ॥ २ ॥

त्वगादिगत शल्यके लक्षण ।

विशेषात्त्वग्गते शल्ये विवर्णः कठिनायतः । शोफो भवति-

त्वचागत शल्यमें अन्तःशल्यके सब लक्षणोंके अतिरिक्त व्रणकी सूजन विवर्ण, कठिन और लंबी सी विस्तारवाली होती है ॥

मांसगतशल्यके लक्षण ।

मांसस्थे चोषः शोफो विवर्धते ॥३॥ पीडनाक्षमता पाकः शल्यमार्गो न रोहति ।

मांसगत शल्यमें चोष (चूषणकी सी पीड़ा) और सूजनकी वृद्धि होती है । तथा दबानेसे सहन न होना, पकना और शल्यमार्गका न भरना; ये लक्षण सामान्य लक्षणोंसे अधिक होतेहै ॥

पेशीमध्यगत शल्यके लक्षण ।

पेश्यंतरगते मांसप्राप्तवच्छ्वयथुं विना ॥ ४ ॥

पेशीके अनन्तरगत शल्य हो तो शोथके विना मांस गत शल्यके सब लक्षण होते है ॥ ३ ॥ ४ ॥

स्नायुगत शल्यके लक्षण ।

आक्षेपः स्नायुजालस्य संरंभस्तंभवेदनाः । स्नायुगं दुर्हरं चैतत्-

स्नायुगत यदि शल्य हो तो स्नायु जालका आक्षेपण होता है तथा स्नायुमें क्षोभ और पीड़ा होती है। स्नायुगत शल्य निकालना कठिन होता है । उन सामान्य लक्षणोंसे इसमें अधिक लक्षण होते है ॥

सिराश्रित शल्यके लक्षण ।

सिराध्मानं सिराश्रिते॥५॥

सिरागत शल्यमें सिराका विशेष फूलना अधिक लक्षण होता है ॥ ५ ॥

स्रोतोगत शल्यके लक्षण ।

स्वकर्मगुणहानिः स्यात्स्रोतसां स्रोतसि स्थिते।

यदि स्रोतगत शल्य हो तो जिस स्रोतमें शल्य होगा वह स्रोत अपना स्वाभाविक काम नहीं कर सकता, अर्थात् उस स्रोतका कर्म रुक जावेगा । और उसके गुणकी हानि होगी । जैसे कण्ठस्रोतमें शल्य हो तो अन्नपानका निरोध और वाणीका बंद हो जाना ये लक्षण होते है ॥

धमनिस्थ शल्यके लक्षण ।

धमनिस्थेऽनिलो रक्तं फेनयुक्तमुदीरयेत् ॥ निर्याति शब्दवान् स्याच्च हृल्लासः सांगवेदनः ६

धमनीमें शल्य हो तो उसमेंसे वायु झागदार रक्तको निकालती है तथा इससे वायु शब्दयुक्त निकलती है, एवं हृल्लास और अंगोंमें पीड़ा ये विशेष लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

अस्थिसंधिप्राप्त शल्यके लक्षण।

संघर्षो बलवानस्थिसंधिप्राप्तेऽस्थिपूर्णता ॥७॥

अस्थियोंकी सन्धिमें शल्य हो तो अस्थियोंमें अत्यन्त क्षोभ और अस्थियोंका भरा हुआ प्रतीत होना ये विशेष लक्षण होते है॥ ७ ॥

अस्थिस्थ शल्यके लक्षण।

नैकरूपा रुजोऽस्थिस्थे शोफः—

अस्थिमें गत शल्य हो तो उस अस्थिमें अनेक प्रकारकी दारुण पीड़ा और अस्थिम सूजन होती है॥

संधिगत शल्यके लक्षण।

—तद्वच्च संधिगे।

चेष्टानिवृत्तिश्च भवेत्॥

यदि सन्धिमें शल्य हो तो सन्धिमें अनेक प्रकारकी दारुण पीड़ा और सूजन होती है तथा उस सन्धिकी चेष्टा बन्द हो जाती है। यहां अरुणदत्त लिखते है कि प्रथम अस्थिकी सन्धि कह आये है, यह उस सन्धिसे अन्य शरीरकी सन्धि है॥

कोष्ठगत शल्यके लक्षण।

आटोपः कोष्ठसंश्रिते॥ ८॥

आनाहोऽन्नशकृन्मूत्रदर्शनं च व्रणानने।

कोष्ठ (उदर)में प्राप्त शल्य हो तो आटोप, आनाह तथा शल्य व्रणके मुखमें अन्न, मल और मूत्रका दिखायी देना ये लक्षण होते है।

मर्मस्थ शल्यके लक्षण।

विद्यान्मर्मगतं शल्यं मर्मविद्धोपलक्षणैः॥ ९॥

यदि मर्मगत शल्य हो तो मर्मविद्धके लक्षण होते है, जैसे—देहप्रसुप्ति, गुरुता, संमोह, शीतल छायादिकी कामना, स्वेद, मूर्छा, वमन और श्वास ये लक्षण होते है॥ ८॥ ९॥

त्वगादिस्थ शल्यके लक्षण।

यथास्वं च परिस्रावैस्त्वगादिषु विभावयेत्।

त्वचा आदिकोंमें जहां शल्य हो उसके सामान्य और विशेष लक्षणोंसे तथा परिस्राव आदिसे शल्यको जान लेना चाहिये॥—

असम्यक् शल्यके रोहणादिसे पुनः शल्यस्थानमें पीडा।

रुह्यतेऽशुद्धदेहानामनुलोमस्थितं तु तत्।
दोषकोपाऽभिघातादिक्षोभाद्भूयोऽपि बाधते१०

शुद्ध देहवालोंके शरीरमें यदि अनुलोममार्गमें शल्य हो तो वह व्रण भरकर अच्छा सा हो जाता है और शल्य भीतर ही छिप जाता है। परन्तु कालान्तरमें दोषप्रकोपसे या चोट आदि अभिघातसे क्षोभको प्राप्त होकर पुनः कष्ट देने लगता है॥१०॥

त्वचामें नष्ट हुए शल्यकी परीक्षा।

त्वङ्नष्टे यत्र तत्र स्युरभ्यंगस्वेदमर्दनैः।
रागरुग्दाहसंरंभा यत्र चाज्यं विलीयते॥
आशु शुष्यति लेपो वा तत्स्थानं शल्यवद्वदेत्११

त्वचामें जहांपर नष्ट होकर छिपा हुआ शल्य होगा उस स्थानमें अभ्यंग, स्वेदन और मर्दनसे राग (सुर्खी), पीडा, दाह और सूजन उत्पन्न हो जावेगी। तथा उस स्थानमें लगाया हुआ स्नेह या लेप शीघ्र सूख जावेगा। इन लक्षणोंवाले स्थानमें शल्य जानना चाहिये॥ ११ ॥

मांसमें प्रनष्ट शल्यके लक्षण।

मांसप्रनष्टं संशुद्ध्या कर्शनाच्छ्लथतां गतम् १२
क्षोभाद्रागादिभिः शल्यं लक्षयेत्—

मांसमें यदि शल्य प्रनष्ट हो गया हो तो वमनादि शोधनकर्म द्वारा कृश करनेसे शिथिलता होनेपर शरीरक्षोभादिसे जिस स्थानमें राग शोथादि प्रतीत हों वहां शल्य है ऐसा जानना चाहिये॥१२॥

पेश्यादिकोंमें नष्ट हुए शल्यके लक्षण।

—तद्वदेव च।

पेश्यस्थिसंधिकोष्ठेषु नष्टम्—

मांसमें प्रनष्ट शल्यके समान ही पेशी, अस्थिसन्धि और कोष्ठके प्रनष्ट शल्यकी जांच करना चाहिये ॥

अस्थिमें नष्ट हुए शल्यकी परीक्षा ।

अस्थिषु लक्षयेत् ॥ १३ ॥

अस्थ्नामभ्यंजनस्वेदबन्धपीडनमर्दनैः । प्रसारणाकुञ्चनतः

अस्थिमें नष्ट हुए शल्यको अस्थियोंपर तैलमर्दन, स्वेदन, बंधन, पीडन, मर्दन और आकुंचन, प्रसारणसे जान लेना चाहिये ॥

संन्धिमें नष्ट हुए शल्यकी परीक्षा ।

संधिनष्टं तथाऽस्थिवत् ॥१४॥

अस्थिमें नष्ट शल्यके समान ही तैलाभ्यंग,स्वेदन, बन्धनादिसे सन्धिमें नष्ट हुए शल्यकी जांच करना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

स्नाय्वादिकोंमें नष्ट हुए शल्यके लक्षण ।

नष्टे स्नायुशिरास्रोतोधमनीष्वसमे पथि। अश्वयुक्तं रथं खंडचक्रमारोप्य रोगिणाम् ॥ शीघ्रं नयेत्ततस्तस्य संरंभाच्छल्यमादिशेत्१५॥

स्नायु, सिरा, स्रोत और धमनीमें यदि शल्य नष्ट हो गया हो तो उस पुरुषको टूटे हुए और ऊंचे नीचे मार्गमें खण्डित पहियेवाले रथादिमें बिठाकर उस गाड़ीमें घोड़ा लगाकर उसे विषम मार्गमें शीघ्र गतिसे चलावे । ऐसा करनेसे जहां संरम्भादि प्रतीत हों वहांपर शल्य जान लेना चाहिये ॥ १५ ॥

मर्मनष्टं पृथङ्नोक्तं तेषां मांसादिसंश्रयात् १६ ॥

मर्मस्थान मांसादिकोंके ही आश्रित होते है इस कारण उपरोक्त परीक्षा-क्रमसे अतिरिक्त मर्ममें नष्ट शल्यकी पृथक् परीक्षा नहीं कही है ॥ १६ ॥

नष्ट शल्यके सामान्य लक्षण ।

सामान्येन सशल्यं तु क्षोभिण्या क्रियया सरुक्

क्षोभ आदि क्रियासे जिस स्थानमें पीडा आदि हो जाय उस स्थानमें शल्य जानना । यह संक्षेपसे शल्यज्ञानका लक्षण है ॥

अदृश्य शल्यके आकारका ज्ञान ।

वृत्तं पृथु चतुष्कोणं त्रिपुटं च समासतः ॥ अदृश्यशल्यसंस्थानं व्रणाकृत्या विभावयेत् १७

गोल, पृथुल, चतुष्कोण या त्रिकोण आदि व्रणके आकारसे अदृश्य शल्यके संस्थानको जान लेना चाहिये। यह संक्षेपसे शल्यका आकार संस्थान जाननेका क्रम है ॥ १७ ॥

शल्य निकाल देनेका क्रम ।

तेषामाहरणोपायौ प्रतिलोमानुलोमकौ ॥ अर्वाचीनपराचीने निर्हरेत्तद्विपर्ययात् ॥ सुखाहार्यं यतश्छित्त्वा ततस्तिर्यग्गतं हरेत् १८

उन शल्योंको निकालनेके अनुलोम और प्रतिलोम भेदसे दो प्रकारके उपाय होते है, अर्थात् जिस मार्गसे शल्य(कंटकादि) प्रवेश हुआ हो उसी मार्गसे पीछे खेंचकर निकालना अथवा जिस ओर शल्यका मुख हो उस ओरसे निकालना । ये दो प्रकारसे शल्य निकालनेके उपाय है ॥

शरीरमें प्रविष्ट हुए नये शल्यको प्रतिलोम अर्थात् उसके प्रवेशमार्गसे पीछे खेंचकर निकाल देना चाहिये और पुराने नष्ट हुए शल्यको जिस ओर शल्यका मुख,निकलनेके लक्षण हों उस ओर अनुलोम मार्गसे निकालना चाहिये ॥

अथवा जिस ओरसे शल्यने प्रवेश किया है उस ओर शल्य हो तो उधरसे पीछेको खेंचकर निकाल ले । मुखकी ओर अधिक आगे लग गया हो तो उधरसे निकाल दे । तात्पर्य यह हुआ कि जिस ओरसे शल्य समीप हो और सुखसे निकल सके उधरसे निकाल देना चाहिये ॥

तिर्यक् (तिरछा) गया हुआ शल्य होय तो प्रतिलोम या अनुलोम जिस मार्गसे वह सुखसे निकल सके उस ओरसे उसके ऊपरकी त्वचा छेदन कर शल्य(तीर, गोली, कंटकादि) को निकाल देना चाहिये ॥ १८ ॥

अनिर्घातनीय शल्य ।

शल्यं न निर्घात्यमुरःकक्षावंक्षणपार्श्वगम् । प्रतिलोममनुत्तुंडं छेद्यं पृथुमुखं च यत् ॥१९॥

---

(१) मर्मप्रनष्टेऽप्यनन्यभावान्मांसादिभ्यो मर्मणामुक्तं परीक्षणं भवतीति संग्रहे ।

उर (छाती) मेंके शल्यको तथा कक्षा, वंक्षण और पार्श्वभागके शल्यको, प्रतिलोम शल्यको, बाहरको न उठे हुए शल्यको, छेदन योग्य शल्य और विस्तृत मुखवाले शल्यको निर्घातन नहीं करना चाहिये किन्तु जिस प्रकार प्राणरक्षा हो सके उस प्रकारसे धीरेसे युक्तिपूर्वक निकाल देना चाहिये १९॥

न निकालने योग्य शल्य ।

नैवाहरेद्विशल्यघ्नं नष्टं वा निरुपद्रवम् ॥ २० ॥

विशल्यघ्न अर्थात् जिस शल्यके निकालनेसे प्राण नष्ट हो जायँ और न निकालनेसे प्राण बने रहें ऐसे शल्यको नहीं निकालना चाहिये। तथा जो शल्य शरीरमें ही नष्ट (लीन) हो गया हो और कोई कष्ट न देता हो उस शल्यको भी निकालनेका यत्न नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥

निकालने योग्य शल्योंको निकालनेकी विधि ।

अथाऽऽहरेत्करप्राप्यं करेणैव–

जो शल्य (तीर, कंटकादि) हाथसे पकड़कर निकला जा सकता हो उसको हाथसे ही निकालना चाहिये ॥–

यन्त्रोंसे शल्यका आहरण ।

–इतरत्पुनः ॥

दृश्यं सिंहाहिमकरवर्मिकर्कटकाननैः ॥ २१ ॥

जो हाथके साथ नहीं निकल सकें और दिखाई देते हों उनको सिंहमुख, अहिमुख, मकरमुख, वर्मिमुख और कर्कटाख्य नामक जंबूरोंकी जातिके शस्त्रोंमेंसे जो शस्त्र उस शल्यके निकालने योग्य हो उस जंबूरसे पकड़कर निकाल देवे ॥ २१ ॥

अदृश्य शल्यका कंकमुखादिसे आहरण ।

अदृश्यं व्रणसंस्थानाद्ग्रहीतुं शक्यते यतः ॥
कंकभृंगाह्वकुरराशरारीवायसाननैः ॥ २२ ॥

जो शल्य व्रणस्थानमें अदृश्य हो उसको कंकमुख, भृंगमुख, कुररमुख, शरारीमुख और काकमुख नामक नोकीले मुखवाले जंबूरकी जातिके शस्त्रोंमेंसे जिससे ठीक पकड़ा जाय उससे पकड़कर निकालना चाहिये ॥ २२ ॥

त्वचादिगत शल्यका संदंशसे हरण ।

सन्दंशाभ्यां त्वगादिस्थम्–

त्वचा, सिरा, स्नायु, मांस आदिके शल्यको संदंश (नोकीली सुहाणी) शस्त्रोंसे पकड़कर निकालना चाहिये ॥

सुषिर (पोले) शल्यका तालशस्त्रसे हरण ।

–तालाभ्यां सुषिरं हरेत् ॥

त्वचादिगत सुषिर (पोले) शल्यको तालशस्त्रसे पकड़कर निकालना चाहिये ॥

सुषिरस्थ शल्यका नाड़ीयन्त्रोंसे निर्हार ।

सुषिरस्थं तु नलकैः–

शरीरके स्रोतोंमें स्थित शल्योंको नाड़ीशस्त्रसे निकालना चाहिये ॥

शेष शल्योंका यथायोग्य शस्त्रोंसे हरण ।

–शेषं शेषैर्यथायथम् ॥ २३ ॥

बाकी शेष शल्योंको जो जिस प्रकारके शस्त्रसे ठीक निकाला जा सके उसके द्वारा निकालना चाहिये ॥२३॥

शस्त्रसे छेदनादि ।

शस्त्रेण वा विशस्याऽदौ ततो निर्लोहितं व्रणम्॥
कृत्वा घृतेन संस्वेद्य बद्ध्वाऽऽचारिकमादिशेत्२४

अथवा जो शल्य निकालना कठिन हो उसके ऊपरका मांस शस्त्रसे छेदन कर उस व्रणके रक्तको साफ करके उस व्रणपर घृतादि लगाकर पुलटिस बांध देवे "जिससे शल्य स्वयं बाहर आजावे" फिर परिचारकको व्रणवालेकी सेवाका यथार्थ उपदेश देकर सावधान कर देवे । दूसरे तीसरे दिन शल्यको निकाल देवे ॥ २४ ॥

शिरादिगत शल्यका हरण ।

सिरास्नायुविलग्नं तु चालयित्वा शलाकया२५॥

सिरा या स्नायुमें लगे हुए शल्यको शलाकासे हिला चलाकर निकाल देना चाहिये ॥ २५ ॥

हृदयगत शल्यके निर्हरणका उपाय।

हृदये संस्थितं शल्यं त्रासितस्य हिमांबुना।
ततः स्थानांतरं प्राप्तमाहरेत्तद्यथायथम् ॥२६॥

हृदयगत शल्यको शीतल जलकी धारासे हिलाकर जब वह हृदयको छोड़ दे फिर जैसे सुगमतासे निकले, निकाल देवे। "यह सामान्यरूपसे हृदयके ऊपरके भागका सामान्य शल्य जो निकल सके उसका विधान है, हृदय तीरादि शल्यसे विद्ध हो जाय तो सद्यः प्राणनाश हो जाता है" ॥ २६ ॥

दुराकर्ष शल्यके हरणका उपाय।

यथामार्गं दुराकर्षमन्यतोऽप्येवमाहरेत्।

जो शल्य अपने यथामार्गसे निकालना कठिन हो या न निकल सके तो उस शल्यको अन्य स्थानमेंसे जैसे साध्य रीतिपर आसानीसे निकल सके वैसे अन्य-मार्गसे निकाल देना चाहिये ॥–

अस्थिदष्ट शल्यका हरण।

अस्थिदष्टे नरं पद्भ्यां पीडयित्वा विनिर्हरेत् २७

यदि अस्थिमें गड़ा हुआ तीरादि शल्य हो तो अस्थिको पावोंके बलसे रोककर शल्यको हाथोंसे खैंच-कर निकाल देवे ॥ २७ ॥

निकालनेमें अशक्य शल्यका कर्षण-प्रकार।

इत्यशक्ये सुबलिभिः सुगृहीतस्य किंकरैः२८॥

यदि इस प्रकार अस्थिमें लगे हुए शल्यको न निकाल सके तो बलवान् भृत्योंसे शल्यवाले पुरुषको दृढ़रूपसे पकड़वाकर वैद्य उस शल्यको पकड़कर खैंचकर निकाल देवे। हाथसे पकड़ने योग्य शल्य न हो तो कंकमुखादि शस्त्रसे पकड़कर निकाल देवे ॥ २८ ॥

निकालनेमें अत्यन्त कठिन शल्यका कर्षण-प्रकार।

तथाऽप्यशक्ये वारंगं वक्रीकृत्य धनुर्ज्यया।
सुबद्धं वक्त्रकटके बध्नीयात्सुसमाहितः॥
सुसंयतस्य पञ्चांग्या वाजिनः कशयाऽथ तम्२९
उद्धरेच्छल्यम्–
ताडयेदिति मूर्धानं वेगेनोन्नयमयन् यथा।

यदि इस प्रकार भी निकल न सके तो उस अस्थिमें गड़े हुए लोह तीरादिको मूलकी ओरसे टेढ़ा कर या बांधने योग्य बना धनुषकी ज्या (डोरी) से बांधकर वह डोरी घोड़ेके मुखमें बांध देवे और घोड़े-को सावधानीसे उसके चारो पांओंमें इस प्रकार रस्सियें बांधकर खड़ा रक्खे जिससे वह इधर उधर भाग न सके। और शल्यवाले पुरुषके शल्यस्थान और पुरुषको भी बलवाले पुरुष सावधानीसे पकड़ रक्खें। फिर उस घोड़ेको कोड़ेसे ताड़न करे; जिससे वह अपने मुखको वेगसे ऊपरको उठावे और शल्य भी साथ ही निकल जावे ॥ २९ ॥—

वृक्षकी शाखासे शल्यका निर्हरण।

एवं वा शाखायां कल्पयेत्तरोः॥ ३०॥

अथवा शल्यको इसी प्रकार रस्सीसे बांधकर वृक्षके बलपूर्व नवाये हुए टहनेसे बांधकर टहनेको छोड़ देवे तो वह टहना ऊपरको उठते समय शल्यको खैंच ले जायेगा ॥ ३० ॥

दुर्बल शल्यका निर्हार।

बद्ध्वा दुर्बलवारंगं कुशाभिः शल्यमाहरेत्।

यदि दुर्बल सा तीर आदि लगा हुआ हो तो उसको कुशा (कंबिका) से बांधकर सीधा खैंचकर निकाल देवे ॥–

शोथग्रस्त शल्यका निर्हरण।

श्वयथुग्रस्तवारंगं शोफमुत्पीड्य युक्तितः ३१॥

यदि वारंग (लोहशलाका) जिस स्थानमें गड़ा हुआ हो उस स्थानपर सूजन भी हो तो सूजनको युक्तिपूर्वक ऊपरको पीड़न कर उस शल्यको निकाल देना चाहिये ॥ ३१ ॥

उत्तुंडित शल्यका निर्हरण।

मुद्गराहतया नाड्या निर्घात्योत्तुंडितं हरेत्।
तैरेव चानयेन्मार्गममार्गोत्तुंडितं तु यत् ॥३२॥

ऊपरको उत्तुण्डित शल्यको हथौड़ीसे ताड़ित किये हुए नाड़ीयंत्रसे निर्घातन करके निकाल देना चाहिये ॥

तथा हथौड़ी आदिसे युक्तिपूर्वक धीरेसे आहत किये हुए नाड़ीशस्त्रसे हीं विमार्गमें उत्तुण्डित (ऊपरको उठे) शल्यको मार्गमें लाकर निकाल देना चाहिये ॥ ३२ ॥

कर्णिकायुक्त शल्योंका निर्हरण ।

मृदित्वा कर्णिनां कर्णं नाड्यास्येन निगृह्य वा ।

कर्णिका (किनारे) वाले शल्यको यदि किनारे बाहर हो तो मसलकर निकाल देवे, अथवा नाड़ी-शस्त्रके मुखसे उस शल्यकी कोरें उखाड़कर निकाल दे । अथवा पीछे कहे हुए पंचमुखादि नाड़ीयंत्रके छिद्रोंमें कर्णिकावाले शल्यको फँसाकर निकाल देना चाहिये ॥—

अयस्कान्तसे शल्यका निर्हरण ।

अयस्कांतेन निष्कर्णं विवृतास्यमृजुस्थितम् ३३

और जो विना कोरका सीधा शल्य शरीरमें लग-कर बंद हो गया हो और सीधा हीं मांसमें स्थित हो तो उसको अयस्कांत (चुम्बक पत्थर) लगाकर निकाल देना चाहिये ॥ ३३ ॥

विरेकसे शल्यका निर्हरण ।

पक्वाशयगतं शल्यं विरेकेण विनिर्हरेत् ।

पक्वाशयमें गये हुए शल्यको स्निग्ध द्रव्योंके द्वारा विरेचन कराकर निकाल देना चाहिये ॥—

दुष्ट वातादिकोंका चूषणसे निर्हरण ।

दुष्टवातविषस्तन्यरक्ततोयादिचूषणैः ॥ ३४ ॥

यदि शरीरमें दुष्ट वायु या विष, शल्यरूपसे स्थित हों तो उनको सिंगी आदिसे चूसकर निकाल देवे । यदि स्तनोंमें दूषित दूध शल्यरूपसे स्थित हो तो उसको भी यंत्रद्वारा चूषण कर निकाल देवे । इसी प्रकार दुष्ट रक्त या जलादि दूषित होकर शरीरके किसी भागमें शल्यरूपसे स्थित हों तो उनको भी यंत्रद्वारा चूसकर निकाल देवे ॥ ३४ ॥

कण्ठगत शल्यका निर्हरणप्रकार ।

कण्ठस्रोतोगते शल्ये सूत्रं कंठे प्रवेशयेत् ।
बिसेनाक्ते ततः शल्ये बिसं सूत्रं समं हरेत् ३५॥

कण्ठस्रोतमें यदि शल्य हो तो कमलकी भिस कण्ठानुरूप लेकर उसमें सूत लगाकर उस भिस और सूत्रको कण्ठमें प्रवेश करे, जब शल्य भिसमें लग जावे तो सूत्र और भिसको एक बार हीं धीरेसे निकाल लेवे, जिससे कण्ठका शल्य भिस और सूतके साथ हीं बाहर आ जावे ॥ ३५ ॥

जातुष (लाख) मय शल्यका निर्हरण ।

नाड्याऽग्नितापितां क्षिप्त्वा शलाकामप्स्थिरी-कृताम् ।

यदि कण्ठमें लाखका शल्य हो तो कण्ठमें प्रथम नाडीयंत्र प्रवेश कर फिर आगमें तपायी हुई शलाका पानीमें भिगोकर उस नालीयंत्रको गलेमें प्रवेश कर जतु (लाख) के शल्यको कण्ठमेंसे निकाल लेवे ॥

दारु वेण्वादिमय शल्यका निर्हरण।

आनयेज्जातुषं कण्ठाज्जतुदिग्धामजातुषम् ३६॥

लाखके सिवाय यदि अन्य प्रकारका शल्य हो तो उसको लाख लिपटी हुई गर्म सलाई नाडीयंत्रमेंसे कण्ठमें प्रवेश कर कण्ठके शल्यको निकाल लेवे, अथवा मोम आदिसे लिपटी हुई सलाई लेना । यह उपलक्षणसे जानना चाहिये ॥ ३६ ॥

कण्ठस्रोतमें स्थित कंटकका निर्हरण-प्रकार ।

केशोंदुकेन पीतेन द्रवैः कण्टकमाक्षिपेत् ।
सहसा सूत्रबद्धेन वमतः

यदि मच्छी आदिका कण्टक कण्ठमें लगा हुआ हो तो बालोंको गुच्छा सा बनाकर उसमें पक्का धागा बांधकर धागेका एक सिरा बाहर रख वह बालोंकी गोली सी जलादि द्रवसे पी जावे, अथवा वमनद्रव्य मैनफलादिके काथसे पी जावे

फिर वमन होते समय साथ ही उस केशोंकी गोलीको भी खैंच लेवे तो गलमें लगा हुआ कांटा इसके साथ निकल आवेगा ॥–

प्रमादसे पिये हुए शल्योंका हरण ।

–तेन चेतरत् ॥ ३७ ॥–

ऐसे ही अन्य प्रमादसे खारा पिये शल्यादि भी उस केशोंकी गेंदसे निकाले जा सकते हैं । सुश्रुतमें लिखा है कि अस्थिका टुकड़ा आदि वा अन्य शल्य जो कण्ठमें तिरछे फँस जावें तो उनको जांचकर एक दृढ़ (पक्के) सूतके डोरेसे बँधा हुआ केशोंका गुच्छा खिचड़ी, लपसी आदि पतले अन्नमें लपेटकर वमन द्रव्यके क्वाथसे साथ पिला देवे और कण्ठ पर्यन्त रज कर मैनफलादिका क्वाथ पिलाकर वमन करावे जब कण्ठगत शल्य उस केशोंके गुच्छेमें फँस जाय तो बाहरसे डोरा खैंचकर शल्य निकाल देवे ॥ ३७ ॥

मुख और नासासे निकालनेमें अशक्य शल्यको कोष्ठमें प्राप्त करना ।

अशक्यं मुखनासाभ्यामाहर्तुं परतो नुदेत ।

जो शल्य मुखद्वारसे या नासिकाद्वारसे न निकाला जा सके उसको भक्ष्य पदार्थादिकोंके योगसे आमाशयकी ओर ले जावे ॥–

ग्रास शल्यके प्रवेशका उपाय ।

अपानस्कंधघाताभ्यां ग्रासशल्यं प्रवेशयेत ३८॥

यदि भोजनका ग्रास कण्ठमें फँस जावे तो पानी पिलाकर और स्कंध स्थानपर मुक्किये मारकर उस अन्नशल्यको गलेसे नीचे उतार देवे ॥ ३८ ॥

नेत्र और व्रण शल्योंके निर्हणका उपाय ।

सूक्ष्माक्षिव्रणशल्यानि क्षौमवालजलैर्हरेत् ३९॥

नेत्र या व्रणमें अति सूक्ष्म कण आदि शल्य हो तो उसको रेसमी कपड़ेसे पोंछकर निकाल देवे। अथवा जलके छपके देकर या जल डाल धोकर निकाल देवे । अथवा घोड़ेकी पूंछका बाल लेकर उस बालको मोड़कर उससे नेत्र या व्रणका सूक्ष्म कण आदि शल्य निकाल देवे ॥ ३९ ॥

डूबनेसे पेटमें जल भर जानेकी चिकित्सा ।

अपां पूर्णं विधुनुयादवाक्शिरसमायतम् ।
वामयेद्वाऽऽमुखं भस्मराशौ वा निखनेन्नरम् ४०

जिस मनुष्यके पेटमें जलमें डूबनेके कारण जल भर गया हो उसको शिरकी ओरको उलटा लटकाकर उसकी पीठ और पेटको दबावे और कँपावे, जिससे मुखके रास्तेसे सब पानी निकल जावे । या वमन द्रव्योंसे वमन करावे । अथवा उस पुरुषको मुख पर्यन्त भस्ममें दवा देवे, जिससे पेटका जल निकल जावे ॥ ४० ॥

जलसे पूरित कर्णकी चिकित्सा ।

कर्णेऽम्बुपूर्णे हस्तेन मथित्वा तैलवारिणी ।
क्षिपेदधोमुखं कर्णं हन्याद्वा चूषयेत वा ॥४१॥

यदि कानमें जल भर गया हो तो कानमें तेल और पानी हाथसे मथकर डाल देवे और कानको अधोमुख करके उसको हिलाकर जलको निकाल देवे । अथवा पिचकारी आदिसे या शृंगादिसे आचूषण कर पानी खैंचकर निकाल देवे ॥ ४१ ॥

कर्णगत कीटकी चिकित्सा ।

कीटस्रोतोगते कर्णं पूरयेल्लवणांबुना ।
शुक्तेन वा सुखोष्णेन मृते क्लेदहरो विधिः ४२॥

यदि कानके छिद्रमें कोई कीट चला जाय तो कानको लवण युक्त कोष्ण जलसे अथवा सुखोष्ण किये हुए सिरकेसे भर देवे । जब कानमें कीट मर जावे तो मैल निकालनेकी विधिसे या वस्ति (पीचकारी) आदिसे आचूषण कर निकाल देवे ॥४२॥

देहज ऊष्मासे लीन होनेवाले जातुषादि शल्य ।

जातुषं हेमरूप्यादिधातुजं च चिरस्थितम् ।
ऊष्मणा प्रायशः शल्यं देहजेन विलीयते ४३॥

लाख, सुवर्ण और रौप्य आदि धातु शल्य यदि शरीरमें चिरकाल तक रह जाय तो वह शरीरकी गर्मीसे प्रायः लीन होजाता है, अर्थात् देहमें ही मिल जाता है ॥ ४३ ॥

शरीरमें नहीं विलय होनेवाले मृद्वेण्वादि शल्य।

मृद्वेणुदारुशृंगास्थिदंतवालोपलानि च।
शल्यानि न विशीर्यंते शरीरे मृन्मयानि च॥४४

मट्टी, वांस, लकड़ी, शृंग, अस्थि, दन्त, वाल और पत्थरका टुकड़ा यदि शरीरमें शल्यरूपसे प्रवेश कर गये हों तो वे देहकी गर्मीसे शरीरमें लीन नहीं हो सकते तथा अन्य कपालादिके मृन्मय पक्के टुकड़े भी शरीरमें लीन नहीं होते ॥ ४४ ॥

विषाणादि शल्योंके विलयका अभावादि निरूपण।

विषाणवेण्वयस्तालदारुशल्यं चिरादपि।
प्रायो निर्भुज्यते तद्धि पचत्याशु पलासृजी४५

सींग, वांस, लोह, ताल और काष्ठके शल्य शरीरमें प्रायः देरतक रहने पर भी शरीरमें लीन न होकर अलग ही रहते है। ये सींग आदि तो जिस स्थानमें शल्यरूपसे स्थित होते है उस स्थानके मांस रक्तको शीघ्र पकाकर प्रायः शरीरकी धातुओंसे अलग हो जाते है ॥ ४५ ॥

मांसान्तर्गत शल्यके हरणका प्रकार।

शल्य मांसावगाढं च स देशो न विदह्यते।
ततस्तं मर्दनस्वेदशुद्धिकर्षणबृंहणैः ॥ ४६ ॥
तीक्ष्णोपजाहपानान्नघनशस्त्रपदांकनैः।
पाचयित्वा हरेच्छल्यं पाटनैषणभेदनैः ॥ ४७॥

यदि शल्य अधिक मांसवाले स्थानमें छिप जावे और उस स्थानमें परिपाक आदि कुछ न होवे तो उस शल्यस्थानको मर्दन स्वेदन आदिसे अथवा शल्ययुक्त पुरुषको वमनादिसे शोधन करावे तथा कभी कर्षण कभी बृंहण करे। एव शल्य स्थानपर तीक्ष्ण उपनाह स्वेदन करे। उस पुरुषको तीक्ष्ण अन्नपान करावे तथा शल्य स्थानमें शस्त्रसे गहरे पछने लगावे। इस प्रकार शल्यस्थानको पकाकर उत्पाटन, एषण और भेदन कर शल्यको निकाल देवे ॥ ४६ ॥४७॥

शल्यादिकोंका ज्ञानपूर्वक निर्हरण।

शल्यप्रदेशयंत्राणामवेक्ष्य बहुरूपताम्।
तैस्तैरुपायैर्मतिमान् शल्यं विद्यात्तथा हरेत् ॥

वैद्यको उचित है कि धातु, शृंग, बांस आदि शल्योंके और त्वचा मांसादि शल्यस्थानोंके तथा शस्त्र यंत्रोंके अनेक रूप अर्थात् अनेक प्रकारोंको देखकर जिस स्थानमें प्राप्त हुआ जिस प्रकारका शल्य जिस प्रकारके यंत्र शस्त्रसे निकालना हितकारी हो उस प्रकारसे उस शल्यका हरण कर देना चाहिये ॥४८॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्न-पण्डित-श्रीरामप्रसादात्मज-विद्या-लङ्कारवैद्य-शिवशर्मविरचित-शिवदीपि-काख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः।

अथाऽतः शस्त्रकर्मविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः

अब हम शस्त्रकर्मके विधानवाली अध्यायकी व्याख्या करेंगेः—

व्रणका आदिम उपचार।

"व्रणः संजायते प्रायः पाकाच्छ्वयथुपूर्वकात्।
तमेवोपचरेत्तस्माद्रक्षन्पाकं प्रयत्नतः ॥
सुशीतलेपसेकास्रमोक्षसंशोधनादिभिः ॥ १ ॥

शस्त्र चिकित्साका प्रयोग बहुधा व्रणोंमें होता है और वह व्रण प्रायः श्वयथुपूर्वक पाकसे उत्पन्न होता है, अर्थात् पहले किसी स्थानमें सूजन होती है और वही पककर पीछे व्रण (घाव) बन जाता है। इस-लिये पहले पहल ठण्डे लेप, सेक, रक्तमोक्षण, संशो-धन आदि क्रियाओंके द्वारा पाककी सावधानीसे

रक्षा करते हुए उस शोथकी ही चिकित्सा करनी चाहिये । यहां प्रायः शब्दका ग्रहण इसलिये है कि सूजनके पके विना भी शस्त्र आदिके अभिघात(चोट) से व्रण हो जाता है ॥ १ ॥

आम (कच्चे) व्रण-शोथका लक्षण ।

शोफोऽल्पोऽल्पोष्णरुग्सामःसवर्णःकठिनःस्थिरः

व्रणशोथकी आमादि भेदसे तीन प्रकारकी अवस्थायें होती है । उनमें सर्व प्रथम आमशोथके लक्षण ये है । आम (कच्चा) शोथ प्रमाणमें थोड़ा, थोडी गर्मीवाला और बहुत कम पीड़ावाला होता है और रंग रूपमें त्वचाके समान वर्णवाला, एवं छूनेमें कठिन और स्थिर होता है । "साम:" इस पदमें 'स आमः' इस प्रकारपदच्छेद करना चाहिये। शब्दसिद्धि नीचेकी टिप्पणीमें देखो ॥ २ ॥

पच्यमान (पकते हुए) व्रणशोथके लक्षण ।

पच्यमानो विवर्णस्तु रागी वस्तिरिवाततः ।
स्फुटतीव सनिस्तोदः सांगमर्दविजृंभिकः ॥
संरंभारुचिदाहोषातृड्ज्वरानिद्रतान्वितः ॥३॥
स्त्यानं विष्यंदयत्याज्यं व्रणवत्स्पर्शनासहः ।
पक्केऽल्पवेगता म्लानिः पांडुता बलिसंभवः॥४॥

पकते हुए शोथका वर्ण त्वचाके वर्णसे कुछ विरूप हो जाता है । वह प्रायः लालरंगका, वायुसे भरी हुई चमड़ेकी थैलीके समान विस्तृत, चमके युक्त पीड़ासे कटता हुआ सा प्रतीत होता है । इसमें अंगमर्द (देहका टूटना), जम्भाई, संरंभ (आशु-वृद्धिशील), अरुचि, दाह (सर्वांगमें) उषा, तृष्णा, ज्वर और निद्रानाश ये उपद्रव होते हैं । पकते हुए शोथके ऊपर जमे हुए घीका पिण्ड रख देनेसे वह पिघल जाता है तथा घावकी तरह अंगुली आदिके स्पर्शको नहीं सह सकता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

पक्व (पके हुए) व्रणशोथके लक्षण ।

नामोऽन्तेषून्नतिर्मध्ये कंडूशोफादिमार्दवम् ।
स्पृष्टे पूयस्य संचारो भवेद्वस्ताविवांभसः ॥ ५ ॥

व्रणशोथके पक जानेपर उसका वेग कम हो जाता है, उसमें म्लानि, पाण्डुता और वलियां (सलवट) पड़ जाती है । व्रणके चारों ओर किनारोंमें नमा और बीचमें ऊपरको उकसा हुआ सूजन रहता है, उसमें खाज और सूजन कम होने लगती है और उसे छूते ही पानीसे भरी हुई वस्ति (चमड़ेकी थैली) के समान उसमेंसे पूय (राध) बहने लगती है ॥ ५ ॥

व्रणशोथके पाककालमें सब दोषोंका समावेश।

शूलं नर्तेऽनिलाद्दाहः पित्ताच्छोफःकफादयात् ।
रागो रक्ताच्च पाकः स्यादतो दोषैःमशोणितैः६

व्रणमें वायुके विना शूल, पित्तके विना दाह, कफके विना शोथ और रक्तके विना रंग नहीं होता और ये सब बातें व्रणके पकनेके समयमें होती हैं, इसलिये व्रणका पाक इन चारों दोषोंसे ही होता है ६

शोथके पक जानेपर न संभालनेसे बिगड़े हुए व्रणका लक्षण।

पाकेऽतिवृत्ते सुषिरस्तनुत्वग्दोपभक्षितः ।
वलीभिराचितः श्यावः शीर्यमाणतनूरुहः ॥७॥

व्रणपाकके पीछे कुछ काल निकल जानेपर उस-मेंका दोष (पूय वा राध) व्रणके भीतरकी वस्तु-ओंको खाने लगता है। अतएव वह शोथस्थान सुषिर अर्थात् पोला वा खोखला हो जाता है । एवं उसके ऊपरकी पतली खालपर वलियां (सलें झुर्रियां) पड़ जाती हैं । उसका वर्ण सांवला सा हो जाता है। उस स्थानके रोम गिरने लगते हैं ॥ ७ ॥

रक्तपाकके लक्षण ।

कफजेषु तु शोफेषु गंभीरं पाकमेत्यसृक् ।
पक्कलिंगं ततोऽस्पष्टं यत्र स्याच्छीतशोफता ८॥

---

१ स आमः साम इति "सोऽचि लोपे चेत्पादपूरण-म्" इति सुलोपः ।

१ दोषशब्देनात्र पूय उच्यते, तेन भक्षितत्वात् सुषि-रत्वं तनुत्वक्त्वं चास्येति सर्वाङ्गसुन्दरायामरुणदत्तः ।

देहके जिन प्रदेशोंमें कफ उत्पन्न होता है वहां कफजन्य शोथके भीतर बहुत नीचे छिपा हुआ रक्त गंभीर और दुर्लक्ष्य होकर पकने लगता है, अत एव उसके पक्वलक्षण बराबर स्पष्ट नहीं दीख पड़ते है॥८॥

त्वक्सावर्ण्यं रुजोऽल्पत्वं घनस्पर्शत्वमश्मवत्।
रक्तपाकमिति ब्रूयात्तं प्राज्ञो मुक्तसंशयः॥९॥

उसे इस प्रकार जाने कि जहां शीतगुणप्रधान कफके संयोगसे जो शोथ शीतल और त्वचाके समान वर्णवाला, अल्पवेदनाविशिष्ट और छूनेमें पत्थरके समान कठिन स्पर्शवाला हो, उसे विद्वान् वैद्य निस्सन्देह "रक्तका पाक है" ऐसा स्पष्ट बोलें, किन्तु यह पक्वशोथ (पकी हुई सूजन) है. ऐसा कभी न कहे॥ ९॥

व्रणके दारण और पाटनका विधान।

अल्पसत्त्वेऽबले बाले पाके चाऽत्यर्थमुद्धते।
दारणं मर्मसंध्यादिस्थिते चाऽन्यत्र पाटनम् १०

अल्पसत्त्व, दुर्बल और बालक रोगियोंमें तथा व्रणके अत्यन्त अधिक पक जानेपर व्रणप्रतिषेधीय अध्यायमें लिखे गूगल, अलसी आदि दारण द्रव्योंके द्वारा शोथका विदारण करे तथा मर्म और सन्धि आदिमें उत्पन्न हुए फोड़ेको भी दारण द्रव्योंसे ही तोड़ देना चाहिये, इनके अतिरिक्त स्थलोंमें शस्त्रके द्वारा पाटन अर्थात् चीर फाड़ करना उचित है॥ १०॥

आम (कच्चे) शोथके छेदनसे उत्पन्न हुए विकार।

आमच्छेदे सिरास्नायुव्यापदोऽसृगतिस्रुतिः॥
रुजोऽतिवृद्धिर्दरणं विसर्पो वा क्षतोद्भवः ११॥

शस्त्रके द्वारा कच्चे शोथके छेदन करनेसे सिरा और स्नायुमें बिगाड़, रक्तका अधिक बहना, व्रणमें वेदनाका बढ़ जाना, घावका फटना वा फैल जाना। अथवा क्षतजनित विकार उत्पन्न हो जाते है॥ ११॥

अन्तःस्थित पूयसे सिरादिकोंमें दाह होना।

तिष्ठन्नंतः पुनः पूयः सिरास्नाय्वसृगामिषम्।
विवृद्धो दहति क्षिप्रं तृणोपलमिवानलः॥१२॥

व्रणके भीतर बढ़ा हुआ पूय, सिरा, स्नायु, रक्त और मांसको बहुत शीघ्र जला देता है, जैसे सूखे घासको अग्नि॥ १२॥

आम और पक्व शोथके छेदन और उपेक्षणमें वैद्यका दोष।

यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते।
श्वपचाविव विज्ञेयौ तावनिश्चितकारिणौ॥१३॥

जो पुरुष अज्ञानता (बेवकूफी) से कच्चे सूजनको काट डालता है और जो शोथके पक जाने पर भी अपनी मूर्खतावश उसे और पकानेकी उपेक्षामें बैठा रहता है, उन दोनों व्यक्तियोंको चाण्डालके समान जानना चाहिये, कारण कि वे अपनी अयोग्यतासे आतुरकी कभी २ बड़ी भारी हानि कर डालते है॥ १३॥

शस्त्रोपचारसे पहले रोगीको अभीष्ट वस्तुका खिलाना।

प्राक् शस्त्रकर्मणश्चेष्टं भोजयेदन्नमातुरम्।
पानपं पाययेन्मद्यं तीक्ष्णं यो वेदनाक्षमः॥१४॥
न मूर्छत्यन्नसंयोगान्मत्तः शस्त्रं न बुध्यते।
अन्यत्र मूढगर्भाश्ममुखरोगोदरातुरात्॥१५॥

शस्त्रक्रियाके पहले रोगीको उसकी इच्छानुसार भोजन (चाहे वह अपथ्य हो तो भी बल रक्षाके लिये) खिलाना चाहिये। तथा जो रोगी शस्त्रकी व्यथाको सह सके उसे तीक्ष्ण मद्य पिलावे, (यदि वह मद्यका पीनेवाला ही हो तो, अन्यथा किसी नये और स्वधर्मनिष्ठ हिन्दूके हिन्दुत्वको मद्यसे नष्ट नहीं करना चाहिये) कारण अन्नके संयोगसे प्राणी मूर्च्छित (बेहोश) नहीं होता और मद्यके नशेमें शस्त्रकी वेदनाको जान नहीं सकता है; किन्तु मूढगर्भ, पथरी, मुखरोग और उदररोगके रोगियोंको उल्लिखित अभीष्ट भोजन और मद्य पानका निषेध है॥ १४॥ १५॥

शस्त्रक्रिया करनेकी सामान्य रीति ।

अथाहृतोपकरणं वैद्यः प्राङ्मुखमातुरम् ॥ १६ ॥
संमुखो यंत्रयित्वाऽशु न्यस्येन्मर्मादि वर्जयन् ।
अनुलोमं सुनिशितं शस्त्रमापूयदर्शनात् ॥ १७ ॥
सकृदेवाऽऽहरेत्तच्च—

वैद्य अपने सामने सब सामग्रियोंसे सम्पन्न रोगीको पूर्वाभिमुख बैठाकर मर्म आदि स्थानोंका परित्याग करता हुआ अपने अत्यन्त पैने शस्त्रका सीधे मार्गसे शीघ्र प्रयोग करे । जब उसमें पूय निकलने लगे तो शस्त्रको तत्काल निकाल लेवे अर्थात् पूय निकलने पर भी उस शस्त्रको और आगे अधिक न घुसेड़े । और उसका एक बार ही प्रयोग करे, अर्थात् बारंबार उसीको न घुसेड़ता रहे॥ १६ ॥ १७॥

व्रणके पाटनकर्मका परिमाण ।

—पाके तु सुमहत्यापि—
पाटयेद् द्व्यंगुलं सम्यग्द्व्यंगुलत्र्यंगुलांतरम् ।
एषित्वा सम्यगेषिण्या परितः सुनिरूपितम् १८
अंगुलीनालवालैर्वा यथादेशं यथाशयम् १९ ॥

शोथके बहुत विस्तृत क्षेत्रमें परिपक्व हो जाने पर भी शस्त्रसे छेदन तो दो अंगुल परिमाण ही करना चाहिये । इससे अधिक नहीं । यदि एक छेदसे पर्याप्त पूय नहीं निकल सके तो दो वा तीन अंगुलके अन्तर पर दूसरा व्रण बना लेवे, किन्तु इससे निकट नहीं । छेदनसे पहले सलाई, अंगुली, कमलनाल अथवा वराह आदिके वालसे शोथकी पोलको भली भांति जांच करे । देश और आशयके अनुकूल व्रण बनावे ॥ १८ ॥ १९ ॥

व्रण्य प्रदेशका वर्णन ।

यतो गतां गतिं विद्यादुत्संगो यत्र यत्र च ।
तत्र तत्र व्रणं कुर्यात्सुविभक्तं निराशयम् ॥
आयतं च विशालं च यथा दोषो न तिष्ठति२०

एषिणी आदिके द्वारा जिस प्रदेशमें जितनी लम्बी नाड़ी जान पड़े उसी स्थानमें व्रण करना चाहिये और श्वयथु प्रदेशमें जहां २ उभरा हुआ भाग दिखायी देवे वहां २ विभागात्मक, पूय आदि दोषोंके स्थान रहित, लम्बे और चौड़े व्रण बनावे । ऐसा करनेसे उस स्थानमें पूय (राधलोहू) नाम का दोष नहीं ठहरता है ॥ २० ॥

वैद्यके शस्त्रकर्ममें शौर्य आदि गुणोंकी प्रशंसा ।

शौर्यमाशुक्रिया तीक्ष्णं शस्त्रमस्वेदवेपथुः ।
असंमोहश्च वैद्यस्य शस्त्रकर्मणि शस्यते ॥२१॥

(शौर्य) वीरता वा धैर्य, आशुक्रिया अर्थात् चतुरहस्तता, तीक्ष्ण शस्त्र पसीने और कम्पका न होना, समय पड़ने पर देश और कालके अनुसार तुरन्त ही उचित कार्य करनेमें स्फूर्ति; ये समस्त सद्गुण शस्त्र वैद्यकी चिकित्सामें अत्यन्त उत्तम और आवश्यक कहे जाते हैं ॥ २१ ॥

ललाट आदि स्थानोंमें छेदका स्वरूप ।

तिर्यक्छिंद्याल्ललाटभ्रूदंतवेष्टकजत्रुणि ।
कुक्षिकक्षाक्षिकूटौष्ठकपोलगलवंक्षणे ॥ २२ ॥
अन्यत्र छेदनात्तिर्यक् सिरास्नायुविपाटनम् २३

ललाट (मस्तक), भौंह, मसूढे, जत्रु (हँसली) कूख, कांख, नेत्रगोलक, होठ, गाल, गल और वंक्षणसन्धि इनमें यदि छेदन क्रियाकी आवश्यकता पड़े तो टेढा छेद बनावे । इन स्थानोंके अतिरिक्त स्थलोंमें तिर्यक् छेदसे सिरा और स्नायुओंका कट जाना संभवित है ॥ २२ ॥ २३ ॥

शस्त्रोपचारके उत्तर कर्म ।

शस्त्रेऽवचारिते वाग्भिः शीतांभोभिश्च रोगिणम्
आश्वास्य परितोऽङ्गुल्या परिपीड्य व्रणं ततः
क्षालयित्वा कषायेण प्लोतेनांभोऽपनीय च ।
गुग्गुल्वगुरुसिद्धार्थहिंगुसर्जरसान्वितैः ।
धूपयेत्पटुषड्ग्रंथानिंबपत्रैर्घृतप्लुतैः ॥ २५ ॥

शस्त्रसे छेदन क्रियाके हो चुकने पर रोगीको शाबास शाबास ! तुम अब ठीक हो गये हो, सब

दोष निकल गया इत्यादि तत्कालोचित मीठी २ बातों तथा ठण्डे पानीके परिषेकसे आश्वासन देवे और फिर पूय आदि दोषोंको निकालनेके लिये व्रणको चारों ओर अंगुलीसे दबावे और मुलेठी आदिके कषाय (व्रणप्रक्षालनीय जन्तुनाशक क्वाथ) से धोवे । फिर रूई वा कपड़े आदिसे जलको पोंछकर व्रणको सुखावे और गूगल, अगर, सरसों, हींग, राल, सैंधव नमक, वच और निम्बके सूखे पत्ते, इनका चूर्ण बनाकर घृतमें मिलाय धूप बनावे और उससे रोगीके व्रणको (कपड़े, पलँग और स्थानको भी दिनमें दोबार) धूप देवे ॥ २४ ॥ २५ ॥

व्रणमें दबानेकी बत्तीका विधान ।

तिलकल्काज्यमधुभिर्यथास्वं भेषजेन च ।
दिग्धां वर्तिं ततो दद्यात्तैरेवाऽच्छादयेच्च तम्‌२६

व्रण यदि गहरा और नाडी व्रण हो तो उसकी पोलमें बत्ती लगानी चाहिये, जिससे घावको शीघ्र भरने और सूखनेमें सहायता मिलती है । उसके बनानेकी विधि यह है कि रूई अथवा कपड़ेकी बत्तीको तिलकल्क, घृत, मधु और अपनी मुख्य ओषधिमें सानकर अर्थात् वातव्रणमें तिलपिष्टाक्त, पित्तव्रणमें घृतप्लुत और कफव्रणमें मधुदिग्ध अथवा किसी २ के मतमें सब द्रव्योंमें सनी हुई बत्तीको फिर किसी प्रधान औषधमें भिगोकर व्रणके अन्दर सलाईसे बिठा दे और उन्हीं ऊपर लिखे हुए तिलकल्क आदिसे उसे ढांक देवे ॥ २६ ॥

व्रणपर पट्टी बांधनेकी रीति ।

घृताक्तैः सक्तुभिश्चोर्ध्वघनां कवलिकां ततः२७॥
निधाय युक्त्या बध्नीयात्पट्टेन सुसमाहितम् ।
पार्श्वे सव्येऽपसव्ये वा नाऽधस्तान्नैव चोपरि२८

फिर उसे घृतयुक्त सत्तुओंसे ढांक दे । इस प्रकार व्रणके भीतर प्रविष्ट की हुई बत्तीको ढांक देनेके अनन्तर कपड़ेकी दो चार वा आठ पुटोंसे बनायी हुई कवलिका (गद्दी) को उसके ऊपर रखकर कपड़ेसे व्रणको सावधानीके साथ युक्तिपूर्वक बांध देवे, जो व्रणके दाहिने, बांये, पसवाड़े और ऊपर वा नीचे नहीं हो अर्थात् व्रणके ठीक मध्यस्थान पर उस कवलिकाका निवेश होना चाहिये ॥ २७ ॥ २८

व्रणपर बांधनेकी पट्टी और गद्दियोंके लक्षण ।

शुचिसूक्ष्मदृढाः पट्टाः कवल्यः सविकेशिकाः ।
धूपिता मृदवः श्लक्ष्णा निर्वलीका व्रणे हिताः॥

पट्टी और गद्दीके वस्त्र पतले, पुष्ट और पवित्र (स्वच्छ) होने चाहिये । जो पूर्वोक्त जन्तुघ्न, धूपसे धूपित, नरम, चिकने और सलोंसे रहित हों अर्थात उन्हें सदा साबुन आदिसे धोकर इस्तरीसे निर्वलीक बना लेना चाहिये । इस प्रकारकी पट्टी और गद्दी व्रणमें हितकारी होती है ॥ २९ ॥

व्रणकी राक्षसोंसे रक्षा करनी ।

कुर्वीताऽनंतरं तस्य रक्षां रक्षोनिषिद्धये ॥३०॥
बलिं चोपहरेत्तेभ्यः--

शस्त्र कर्म कर चुकने पर व्रण (घाव) का सावधानीसे रक्षण करना चाहिये, कारण कि राक्षस आदि दुर्जन प्राणी व्रणको हानि पहुँचाते है । इसलिये उनको बलि देनी चाहिये ॥ ३० ॥--

व्रणरक्षार्थ शिरमें रखने योग्य औषध ।

--सदा मूर्ध्नावधारयेत् ।
लक्ष्मीं गुहामतिगुहां जटिलां ब्रह्मचारिणीम् ।
वचां छत्रामतिच्छत्रां दूर्वां सिद्धार्थकानपि ३१

लक्ष्मी (पद्मचारिणी) अर्थात् तुलसी, पृश्निपर्णी, शालपर्णी, जटामांसी, ब्रह्मचारिणी (ब्राह्मी) वच, सौंफ, सोयाके बीज, दूर्वा और सरसों इनमेंसे कोई एक वा जितने मिल सके रोगीके मस्तकपर निरन्तर बँधे रहने चाहिये ॥ ३१ ॥

शस्त्रोपचारके अनन्तर व्रणरोगीके लिये कुछ हित उपचार ।

ततः स्नेहदिनेहोक्तं तस्याचारं तमादिशेत् ।
दिवास्वप्नो व्रणे कंडूरागरुक्शोफपूयकृत् ३२॥

स्त्रीणां तु स्मृतिसंस्पर्शदर्शनैश्चलितस्रुते ।
शुक्रे व्यवायजान् दोषानसंसर्गेऽप्यवाप्नुयात् ३३

फिर स्नेहपान करनेके दिन " उष्णोदकोपचारी स्यात् " इत्यादि जो उपचार स्नेहपानकी विधिमें कहे गये है, वे सब आचार व्रणके रोगीको अवश्य पालन करने चाहिये । दिनमें सोनेसे व्रणमें खाज, लाली, पीड़ा, सूजन और राध उत्पन्न हो जाती है, इसलिये व्रणवालेको दिनमें कभी नहीं सोना चाहिये। व्रणवाले रोगीको स्त्रीका स्मरण और दर्शन भी नहीं करना चाहिये । कारण कि उनके साथ संसर्ग (संभोग) नहीं करने पर भी स्त्रीके स्मरण आदिसे वीर्य पतला पड़कर चंचल वा स्थानच्युत हो जाता है । " जैसा **भावप्रकाश** ग्रन्थमें लिखा है–"स्त्रीस्मरणकीर्तन-स्पर्शन–स्पर्शन–चुम्बनाऽऽलिङ्गनादिभिः शुक्रस्य प्रवर्तनम् " तथा **शार्ङ्गधरमें** भी–" प्रवर्तनी स्त्री शुक्रस्य" ऐसा लिखा है । और वह मैथुनोत्थ दोषों (रोगों) को उत्पन्न करता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

व्रणरोगीके लिये भोजनादिका नियम ।

भोजनं तु यथासात्म्यं यवगोधूमषष्टिकाः ।
मसूरमुद्गतुवरीजीवन्तीसुनिषण्णकाः ॥ ३४ ॥
बालमूलकवार्ताकतंडुलीयकवास्तुकम् ।
कारवेल्लककर्कोटपटोलकटुकाफलम् ॥ ३५ ॥
सैंधवं दाडिमं धात्री घृतं तप्तहिमं जलम् ।
जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवोत्तरम् ॥
भुञ्जानो जांगलैर्मांसैः शीघ्रं व्रणमपोहति ३६॥

घाववाले रोगीको भोजन जहांतक बन सके सात्त्विक और सादा ही देना चाहिये । जैसे-जौ, गेहूं, साठीके चावल, मसूर, मूंग, अरहर, जीवन्ती (डोडी), चोपतिया शाक, छोटी (कच्ची) मूली, बैंगन, चौलाई, बथुआ, करेला, ककोड़े, परवल और दूधी (घीया) का शाक, सेंधा नमक, अनार, आमले, घी और उबालकर ठण्डा किया हुआ पानी, ये सब पदार्थ सात्त्विक है । इनमेंसे जिस पदार्थपर खानेकी रुचि हो उसे खिलाना चाहिये । अथवा जिस प्राणीको अपने देश, काल और स्वभावके अनुकूल जो अन्नआदि सात्म्य (अभ्यस्त) हो उसे खावे । अथवा पुराने शाली चावलोंके भातमें घी डालकर जंगली जीवोंके मांसके साथ खाय और ऊपरसे गरम जल पीवे तो व्रणरोग शीघ्र मिट जाता है॥ ३४–३६॥

व्रणीके भोजनमें प्रामाणिकता ।

अशितं मात्रया काले पथ्यं याति जरां सुखम् ३७
अजीर्णे त्वनिलादीनां विभ्रमो बलवान् भवेत्।
ततः शोफरुजापाकदाहानाहानवाप्नुयात् ३८॥

व्रणवाले रोगीको यथासमय मात्रानुसार पथ्य हितकारक भोजन करना उचित है, कारण कि वह शीघ्र ही सुखसे पच जाता है । जो कदाचित् व्रणके रोगीको भोजनका अजीर्ण (बदहजमी) हो जाय तो वायु आदि दोषोंके प्रकोपसे व्रणमें सूजन, पीड़ा, पाक, जलन और आनाहआदि उपद्रव हो जाते है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

व्रणीको नवधान्यादिवर्गका निषेध ।

नवधान्यं तिलान् माषान् मद्यं मांसं त्वजांगलम्।
क्षीरेक्षुविकृतीरम्लं लवणं कटुकं त्यजेत्॥ ३९॥
यच्चाऽन्यदपि विष्टंभि विदाहि गुरु शीतलम् ।
वर्गोऽयं नवधान्यादिर्व्रणिनः सर्वदोषकृत ४०॥

नवीनधान्य, तिल, उड़द, मद्य (सुरा), मांस (जो जंगली जीवोंका न हो), दूध, ईखके विकार (गुड़, खांड़, सक्कर आदि पदार्थ), खट्टे, नमकीन और कटु पदार्थ, ऐसे पदार्थ व्रण रोगीको नहीं खाना चाहिये ।

तथा और भी द्रव्य जो विष्टंभी (मलावरोध वा कब्जी करनेवाले) विदाही (लोहीको तपाकर उसमें जलन करनेवाले), भारी और ठण्डे हों, ऐसे पदार्थ नहीं खाने चाहिये । यह नवधान्यादिवर्ग व्रण-रोगीके सम्पूर्ण दोषोंको बढ़ानेवाला है, अतः इसका परित्याग करना चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥

व्रणीको तीक्ष्ण मद्यका निषेध।

मद्यं तीक्ष्णोष्णरूक्षाम्लमाशु व्यापादयेद्व्रणम् ४१

मद्य (सुरा), उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, अम्ल और आशुकारी गुणोंसे व्रणको बहुत हानि पहुँचती है, अतः व्रणरोगीको ऐसी तीव्र मद्य नहीं पिलानी चाहिये। द्राक्षासव आदि सौम्यगुणविशिष्ट मद्योंके थोड़ी मात्रामें सेवनसे कुछ हानि नहीं होती, अतः इन्हींका उचित प्रयोग प्रशस्त है ॥ ४१ ॥

कुछ व्रण्य उपचारोंका विशिष्ट वर्णन।

वालोर्शीरेश्च वीज्येत न चैनं परिघट्टयेत्।
न तुदेन्न च कण्डूयेच्चेष्टमानश्च पालयेत् ४२॥
स्निग्धवृद्धद्विजातीनां कथाः शृण्वन्मनःप्रियाः॥
आशावान् व्याधिमोक्षाय क्षिप्रं व्रणमपोहति ४३

व्रणमें कदाचित् कुछ वेदना होती हो तो उसे खसके पंखेसे हवा करे, व्रणको कभी न दबावे, नोंचे और खुजलावे नहीं। तथा व्रणका प्रयत्नपूर्वक पालन करे अर्थात् उसे हिलने डोलने आदि व्यापारसे कुछ आपत्ति होनी हो तो वैसे काम न करे। तथा स्नेही, वृद्ध और विद्वान् ब्राह्मणोंके मुखसे मनोहर कथायें श्रीमद्भागवतादि वा सुमधुर लौकिक बातें सुननी और रोगसे मुक्त होनेकी पूर्ण आशा रखनी चाहिये। ऐसा करनेसे घाव शीघ्र भर जाता है ४३॥

पट्टीआदि व्रणकर्मके परिवर्तन करनेका काल।

तृतीयेऽह्नि पुनः कुर्याद्व्रणकर्म च पूर्ववत्।
प्रक्षानलादि दिवसे द्वितीये नाचरेत्तथा॥
तीव्रव्यथो विग्रथितश्चिरात्संरोहति व्रणः॥४४॥

व्रणपर शस्त्रोपचार किये पीछे बांधे हुए पट्टेको तीसरे दिन खोले और घावको जन्तुघ्न क्काथादिसे धोकर उसमें फिर दवा बत्ती आदिकी योजना करे और पूर्वोक्त विधिसे व्रणबन्धनका उपचार सावधानीसे करना चाहिये। शस्त्रक्रियाके दूसरे ही दिन व्रणके पाटेको नहीं खोलना चाहिये कारण कि दूसरे दिन ही व्रणके प्रक्षालनादिसे व्रणमें तीव्र वेदना उत्पन्न हो जाती है और उस स्थानपर गांठे बँध जाती हैं, तथा घावके भरनेमें देर लगती है ॥ ४४ ॥

व्रणमें नहीं लगाने योग्य बत्ती।

स्निग्धां रूक्षां श्लथां गाढां दुर्न्यस्तां च विकेशिकाम्
व्रणे न दद्यात्कल्कं च—
—स्नेहात्क्लेदो विवर्धते॥४५॥
मांसच्छेदोऽतिरुग्रौक्ष्याद्दरणं शोणितागमः।
श्लथातिगाढदुर्न्यासैर्व्रणवर्त्मावघर्षणम् ॥४६॥

घावके भीतर जो बत्ती दी जाती है वह बहुत चिकनी, रूखी, ढीली और कठिन नहीं होनी चाहिये। एवं व्रणके भीतर वह दुर्न्यस्त अर्थात् बांकी चूकी वा टेढ़ी नहीं लगानी चाहिये। उसका व्रणके नियमानुसार प्रमितप्रवेश ही उत्तम है। इसी प्रकार व्रणमें यदि औषधकल्कके भरनेकी आवश्यकता पड़े तो वह भी अत्यन्त स्निग्धत्वादि दुर्गुणोंसे रहित ही प्रयुक्त करना चहिये, कारण कि बत्तीआदिकी बहुत चिकनाहटसे व्रणमें क्लेदन अर्थात् बदबद वा गीलापन उत्पन्न हो जाता है। रूखी बत्तीके लगानेसे व्रणका मांस टूटकर उसमें पीड़ा होने लगती है और मांस फटकर उसमेंसे खून बहने लगता है। तथा ढीली, कठिन और दुर्न्यस्त बत्तीके प्रयोगसे व्रणके मार्गका अवघर्षण होता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

व्रणमें बत्ती लगानेका प्रयोजन।

सपूतिमांसं सोत्संगं सगतिं पूयगर्भिणम्।
व्रणं विशोधयेच्छीघ्रं स्थिता ह्यंतर्विकेशिका ४७

घावके अन्दर रक्खी गयी बत्ती बिगड़े हुए मांसको बाहर निकाल फेंकती है, तथा सोत्सङ्ग अर्थात् मध्योन्नत (बीचमें उभरे हुए) व्रणको अवनत करता है अर्थात् वहांकी शोथको दबा देता है। यदि व्रणमें पूय अर्थात् राधआदि दोष भरे हुए हों तो वें मांसको खाते है और व्रणको भीतरसे खोखला बना देते

हैं, ये बातें वत्ती लगानेसे रुक जाती हैं एवं घावके भीतर वत्तीके लगानेसे वह घावको बहुत शीघ्र शुद्ध (साफ) कर देती है ॥ ४७ ॥

कच्चे शोथको फाड दिया हो तो उसकी चिकित्सा ।

व्यम्लं तु पाटितं शोफं पाचनैः समुपाचरेत् ।
भोजनैरुपनाहैश्च नातिव्रणविरोधिभिः ॥४८॥

यदि कोई मूर्ख वैद्य अपनी अज्ञानतासे कच्चे फोड़ेको चीर या फाड़ डाला हो तो उस व्रणको पकानेके लिये उचित उपचार भोजन उपनाह पुलटिस आदि करने चाहिये,किन्तु जो व्रणके अत्यन्त विरोधी न हो, जैसे--तीक्ष्ण अम्लादिप्राय उनका प्रयोग न करे ॥ ४८ ॥

सद्योव्रणकी चिकित्सा ।

सद्यः सद्योव्रणान् सीव्येद्विवृतानभिघातजान् ।
मेदोजाँल्लिखितान्ग्रन्थीन्ह्रस्वाः पालीश्चकर्णयोः ।
शिरोऽक्षिकूटनासौष्ठगंडकर्णोरुबाहुषु ॥ ४९ ॥
ग्रीवाललाटमुष्कस्फिङ्मेढ्रपायूदरादिषु ।
गम्भीरेषु प्रदेशेषु मांसलेष्वचलेषु च ॥ ५० ॥

चोट आदिके लगनेसे जो व्रण होता है वह सद्योव्रण कहा जाता है। जो घाव भीतरसे खोखला अर्थात् पोला होता है उसे तुरन्त सी देना चाहिये। कुछ समय बीतने पर घावका मुँह बहुत चौड़ा हो गया हो तो उसे सीना नहीं चाहिये । मेदोग्रन्थि अर्थात् चर्बीवाली गाठें (रसौली आदि) में व्रण हो गया हो अथवा उन्हें चीरकर व्रण बनाया गया हो तो उनमें से चरबी निकालनेके पश्चात् उन्हें तुरन्त सी देना चाहिये । दोनों कानोंकी छोटी पाली (लोलें), शिर, अक्षिगोलक, नाक, होंठ, गाल, कान, साथल, बाहु, ग्रीवा, ललाट, अण्डकोश (फौते) स्फिक् नितम्बके ऊपरका भाग, मेढ (लिङ्ग), गुदा और उदर आदि गंभीर मांसवाले तथा स्थिर प्रदेशोंमें यदि ऐसा घाव हो जावे तो उसे शीघ्रातिशीघ्र सी डालना चाहिये । सीने योग्य घावोंके खुले रहनेसे उनमें बहुत व्यापत्ति होती है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

न सीने योग्य स्थलविशेषका वर्णन ।

न तु वंक्षणकक्षादावल्पमांसचले व्रणान् ।
वायुनिर्वाहिणः शल्यगर्भान्क्षारविषाग्निजान् ॥

वंक्षण कांख आदि स्थानोंमें, जिस स्थानमें मांस थोड़ा हो, अथवा जो अंग स्थिर नहीं रहता हो ऐसे स्थानोंमें उत्पन्न हुए व्रणोंको नहीं सीवना चाहिये । कारण कि जो भाग हिलता रहता है उसमें टेभ लगाते समय उन टेभोंके टूट जानेका सम्भव रहता है । तथा जिन व्रणोंमें शल्य (कांटे, तीर आदि बाहरी वस्तु) के फँसे रहनेसे वायुका संचार होता हो ऐसे तथा जो क्षार, विष और अग्निसे उत्पन्न हुए हों उन सब व्रणोंको वैद्य न सीवें ॥ ५१ ॥

टेभ मारनेसे पहले करने योग्य उपचार ।

सीव्येच्चलास्थिशुष्कास्रतृणरोमापनीय तु ।
प्रलंबि मांसं विच्छिन्नं निवेश्य स्वनिवेशने ५२
संध्यस्थ्यवस्थिते रक्ते स्नाय्वा सूत्रेण वल्कलैः ।
सीव्येन्न दूरे नासन्ने गृह्णन्नाल्पं न वा बहु ५३

जो कदाचित् घावमें हड्डी टूट कर अलग हो गयी हो तो उसे निकाल डाले । व्रणपर सूखा हुआ खून, कचरा और रोम अथवा बालआदि ऊपरी वस्तुओंको हटाकर घावको स्वच्छ कर लेना चाहिये । शस्त्रके उपचारसे जो मांस व्रणमें लटक रहा हो अथवा जो कटकर पृथक् हो गया हो उसे अपने स्थानपर यथास्थित जमाना चाहिये । कदाचित् संधिमेंसे हड्डी खिसक गयी हो तो उसे भी अपनी जगहमें लगावे । और जब इनमेंसे खूनका बहना बन्द हो जावे तब उसे स्नायु, सूत्र, रेशम अथवा वृक्षकी वल्कलके तन्तुओंसे सी डाले । सीते समय टेभ बहुत दूर और

बहुत निकटमें भी नहीं मारना तथा व्रणकी चमड़ीको बहुत ज्यादा और संकोचसे बहुत थोड़ी भी नहीं सीना चाहिये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

सूचीकर्म करनेके पीछे कर्तव्य विधि ।

सांत्वयित्वा ततश्चार्तं व्रणं मधुघृतद्रुतैः ।
अंजनक्षौमजमषीफलिनीशल्लकीफलैः ॥ ५४ ॥
सरोध्रमधुकैर्दिग्धं युंज्याद्बंधादि पूर्ववत् ॥ ५५ ॥

घावके भलीभांति सीये जानेके अनन्तर रोगीको ठंडे पानी और शीतोपचारसे शान्ति देवे । तदनन्तर सुरमा, रेसमकी राख, प्रियंगु, शल्लकी वृक्षके फल, पठानी लोध और मुलेठी इन ओषधियोंके चूर्णमें घी और मधु मिलाकर उसका व्रणपर लेप करे और पूर्वोक्त व्रणोपचारके पद्धतिसे पट्टी आदि बांध देवे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

लोहीवाले घावका सीना ।

व्रणा निःशोणितौष्ठो यः किंचिदेवावलिख्य तम्
संजातरुधिरं सीव्येत्संधानं ह्यस्य शोणितम् ५६

प्रायः व्रणका जख्म बहते हुए खूनसे ही रुक जाता है, इसलिये जहांतक बन सके ताजे घावको ही सीना चाहिये, किन्तु यदि कुछ देर लग गयी हो और व्रणके चारों ओरके किनारे सूख गये हों तो उसे शस्त्रसे जरा खुरचकर खून निकाल लेवे और सी डाले । ऐसा करनेसे व्रणके किनारे तुरन्त मिल जाते है ॥ ५६ ॥

टेभोंपर पट्टा बांधनेकी युक्ति ।

बंधनानि तु देशादीन् वीक्ष्य युंजीत तेषु च ।
आविकाजिनकौशेयमुष्णं क्षौमं तु शीतलम् ५७
शीतोष्णं तूलसंतानकार्पासस्नायुवल्कजम् ।
ताम्रायस्त्रपुसीसानि व्रणे मेदःकफाधिके ॥
भङ्गे च युंज्यात्फलकं चर्मवल्ककुशादि च ५८

उन टेभोंके ऊपर देश, काल आदिका विचार करके पट्टी बांधनी चाहिये । बकरेका चमड़ा, मृगचर्म तथा रेसमी वस्त्र ये तीनों गरम बन्धन हैं । क्षौम (वनस्पतिविशेषके तन्तुओंसे बना हुआ वस्त्र शीतल होता है तथा रुई सूत्रादि, कपास, स्नायु और वृक्षकी वल्कलसे बनाया हुआ बन्धन वस्त्र (पट्टी) शीतोष्ण होता है । जिस व्रणके स्थानमें चरबी तथा कफ अधिक हो उसमें तामे, लोहे, कलई अथवा शीसेकी पट्टी बाँधनी चाहिये और टूटे हुए हाडोंके बांधनेके लिये लकड़ीकी पट्टियां, चमड़ा, वृक्षकी छाल और कुशा आदि बांधनी चाहिये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

बन्धनोंके नाम, आकार और प्रकार ।

स्वनामानुगताकारा बन्धास्तु दश पञ्च च ५९
कोशस्वस्तिकमुत्तोलीचीनदामानुवेल्लितम् ।
खट्वाविबन्धस्थगिकावितानोत्सङ्गगोफणाः ६०
यमकं मण्डलाख्यं च पञ्चांगी चेति योजयेत् ।
यो यत्र सुनिविष्टः स्यात्तं तेषां तत्र बुद्धिमान् ६१

व्रणपर बांधनेके पट्टे प्रायः पन्द्रह प्रकारके होते हैं । उनके नाम स्थान और आकारके अनुसार रक्खे गये है, जिस प्रकारका बन्धन जहां ठीक रीतिसे बँध सकें उसी प्रकार बन्धनकी योजना करनी चाहिये । यह बात पट्टा बांधनेवाले शस्त्र वैद्यकी बुद्धिपर निर्भर है । १ पहला कोशबंध–जो अंगुलीके पर्वोपर बांधा जावे । २ स्वस्तिक–जो संधि, कूर्च, भ्रमर, दोनों स्तनोंके मध्यभाग, कांख, मस्तक, गाल, कान इत्यादि स्थानोंका बंधन । ३ मुत्तोली–जो ग्रीवा (गर्दन) तथा लिंगके ऊपर बांधा जाता है । ४ चीन–जो नेत्रोंके अपांगोंमें बांधा जाता है । ५ वां दाम–जो संधि और साथलमें बांधा जाता है । ६ अनुवेल्लिता बन्धन–जो हाथ पांवमें ठीक बँध सके । ७ वां खट्वा—जो ठोड़ी वा जबाडेकी संधि और गलोंपर बांधा जाता है । ८ वां विबन्ध—जो पेट, छाती और पीठके ऊपर बांधा जाय । ९ वां स्थगिका–जो अंगुली, अंगूठा, लिंग, आंतके

और अन्त्रवृद्धि नामक रोग (Hernia) में ठीक रीतिसे बांधा जा सके। १० वां वितान—जो मस्तक आदि अंगोंपर बांधा जाता है। ११ वां उत्संग—जो बाहु आदि लटकते हुए भागोंपर बांधा जाता है। १२ वां गोफण—जो नाक, होंठ, हनु (टोड़ी वा नीचेका जवाड़ा) और साथल इन स्थानोंमे बांधा जाता हो। १३ वां यमक—जो अत्यन्त निकटमें होनेवाले दो घावोंपर एक ही बंधन बांधा जाय। १४ वां मण्डल—जो शरीरके गोलाकार स्थानोंमें बांधा जाता है। १५ वां पंचांगो नामका बंधन होता है—जो जत्रु अर्थात् हँसलीसे ऊपरके भागोंमें बांधा जाता है॥ ५९–६१॥

बंधनके विषयमें कुछ विशेष उपयोगी सूचनायें।

बध्नीयाद्गाढमूरुस्फिक्कक्षावंक्षणमूर्धसु।
शाखावदनकर्णोरःपृष्ठपार्श्वगलोदरे॥ ६२॥
समं मेहनमुष्के च नेत्रे संधिषु च श्लथम्।
बध्नीयाच्छिथिलस्थानेवातश्लेष्मोद्भवं समम्६३
गाढमेव समस्थाने भृशं गाढं तदाश्रये।
शीते वसन्ते च तथा मोक्षणीयौ त्र्यहात्त्र्यहात्६४
पित्तरक्तोत्थयोर्बंधो गाढस्थाने समो मतः।
समस्थाने श्लथो नैव शिथिलस्याशये तथा ६५
सायंप्रातस्तयोर्मोक्षो ग्रीष्मे शरदि चेष्यते।
अबद्धो दंशमशकशीतवातादिपीडितः॥६६॥
दुष्टीभवेच्चिरं चाऽत्र न तिष्ठेत्स्नेहभेषजम्।
कृच्छ्रेण शुद्धिं रूढिं वा याति रूढो विवर्णताम्६७
बद्धस्तु चूर्णितो भग्नो विश्लिष्टः पाटितोऽपि वा।
छिन्नस्नायुसिरोऽप्याशु सुखं संरोहति व्रणः६८
उत्थानशयनाद्यासु सर्वेहासु न पीडयेत्।
उद्वृत्तौष्ठः समुत्सन्नो विषमः कठिनोऽतिरुक्६९
समो मृदुररुक् शीघ्रं व्रणः शुध्यति रोहति।
स्थिराणामल्पमांसानां रौक्ष्यादनुपरोहताम्७०
प्रच्छाद्यमौषधं पत्रैर्यथादोषं यथर्तु च।
अजीर्णतरुणाऽच्छिद्रैः समन्तात्सुनिवेशितैः॥
धौतैरकर्कशैः क्षीरिभूर्जार्जुनकदम्बजैः॥७१॥

जांघ, नितम्बोंके ऊपरका भाग, कांख, वंक्षण और मस्तक इन स्थानोंमें पाटेको खैंचकर बांधना चाहिये, अर्थात् ढीला नहीं बांधे। हाथ, पांव, मुँह, कान, छाती, पीठ, पसवाड़े, गला, पेट, लिंग और अण्डकोष अर्थात् फोतें; इन स्थानोंका बंधन समान स्थितिमें रहना उचित है, अर्थात् इनमेंका बंधन न तो बहुत खैंचा हुआ और न बहुत ढीला ही होना चाहिये। आखें और सन्धि स्थानोंमें पट्टा सदा ढीला बांधा जाता है। वायु तथा कफके व्रणमें जो पट्टी बांधनेकी आवश्यकता पड़े तो जहां ढीला पट्टा बांधनेका विधान कहा गया है वहां सामान्य बन्धनका उपयोग करना। एवं जहां सामान्य बन्धनका विधान हो वहां खैंचकर बांधना और जहां खैंचकर बांधनेको ही कहा गया हो वहां खूब जोरसे खैंचकर पट्टा बांधना चाहिये। वायु तथा कफके व्रणोंपर ठण्डी और वसन्त ऋतुमें तीन २ दिनके अन्तरसे पट्टाके खोलने और फिर बाँधनेका शास्त्रोंमें विधान है। पित्त तथा रक्तके व्रणोंमें जहां पट्टेको तानकर बांधनेका विधान है वहां समान और जहां समान बन्धन कहा गया हो वहां ढीला पट्टा बांधना चाहिये और जहां ढीला बांधनेको कहा गया है वहां पट्टा ही नहीं बांधे। पित्त तथा रक्त संबन्धी व्रणके बन्धनको गरमी और शरद् ऋतुमें दो पहर और सन्ध्याके समय दिनमें दो बार खोलना चाहिये। जो घावके ऊपर पट्टी नहीं बांधे तो डांस, मच्छर, मक्खी आदि जन्तुओं तथा ठण्ड, वायु, धूल और कचरे आदिसे वह बिगड़ जाता है। और जो विना बन्धनके व्रणमें तेल वा और कोई तरल ओषधि डाली गयी हो तो वह भी बहुत समयतक वहां टिक नहीं सकती। तथा कदाचित् कोई व्रण पट्टी बांधे विना ही मलम आदि दवाओंके लगानेसे किसी प्रकार ठीक भी हो जाय तो भी उस

व्रणके स्थानमे व्रणचिह्न तो पड़ा ही रहेगा, अर्थात् पट्टेके विना वह स्थान त्वक्सवर्ण नहीं होता है । व्रण पर पट्टी बांधनेसे उल्लिखित आपत्तियां (अड़चनें) नहीं होतीं । कदाचित् व्रणकी हड्डी चूर्णित वा टूट गयी हो अथवा जोड़ उतर गया हो वा व्रणके चीरने पर स्नायु वा सिरा काटी वा कट गयी हो तो ऐसे व्रणोंको बांधनेसे वे बहुत शीघ्र और सुखसे रुझ आते है । तथा उठने, बैठने और शयनादि सब प्रकारकी चेष्टा करनेमें पीड़ा नहीं होती। जो कदाचित् किसी घावमें चारों ओरके गोल किनारे ऊँचे आ रहे हों अथवा सब घाव भर ही उत्पन्न अर्थात् उभरा हुआ हो जो विषम अर्थात् समान आकारमें नहीं हो, तथा स्पर्शमें कठिन हो, एवं जिसमें पीड़ा बहुत अधिक होती हो, ऐसे व्रणका जो विधिपूर्वक बंधनादिसे उपचार किया जाय तो वे समान, कोमल एवं पीडारहित होकर बहुत शीघ्र अच्छे हो जाते है । जो व्रण बहुत पुराने पड़ जानेसे नहीं रुझते हों, थोड़े मांसवाले स्थानमें हों, अथवा रूक्षता होनेके कारण व्रण नहीं भरता हो उनमें दोष और ऋतुकालके अनुसार औषधका उपयोग कर उन्हें बड़ आदि क्षीरी वृक्षोंके पत्ते अथवा अर्जुन (कोह) कदम्ब और भोजपत्र आदि वृक्षोंके पत्तोंसे ढांक कर ऊपरसे पट्टा बांध देवे । ध्यान रहे कि ये पत्ते कोने और छेदोंसे रहित हों तथा नरम और नये, एवं पानीसे धोकर साफ कर लिये गये हों ॥ ६२—७१ ॥

बन्धन (पट्टी) न बांधने योग्य व्रण ।

कुष्ठिनामग्निदग्धानां पिटिका मधुमेहिनाम् ।
कर्णिकाश्चोंदुरुविषे क्षारदग्धा विषान्विताः ७२
न मांसपाके च बध्नीयाद्गुदपाके च दारुणे ।
शीर्यमाणाःसरुग्दाहाःशोफावस्थाविसर्पिणः७३

कोढ़ीके व्रण, आगसे जले हुए, वा विषैली वस्तुके संयोगसे उठे हुए फफोलेदार व्रण, मधुमेहकी पिटिकाओंके व्रण, जहरी मूसेके शरीरपर फिर जानेसे चक्राकार सकर्णिक व्रण, क्षारसे उत्पन्न हुए व्रण, विषविशेषसे उत्पन्न हुए गहरे घाव, जिनमेंका मांस सड़ने लगे ऐसे व्रण, गुदा (मलद्वारा) के पक जानेसे उत्पन्न हुए दारुण व्रण, जिन व्रणोंमेंसे मांस सड़कर बाहर निकलने लगे, जिनमें पीड़ा और जलन बहुत अधिक होती हो, तथा सूजनवाले विसर्प रोगके व्रण; इनको पट्टीसे कभी बाँधना नहीं चाहिये॥ ७२॥७३॥

व्रणपर मक्षियोंके बैठनेसे हानि और उसकी चिकित्सा ।

अरक्षया व्रणे यस्मिन् मक्षिकानिक्षिपेत्कृमीन् ७४
ते भक्षयंतः कुर्वंति रुजाशोफास्रसंस्रवान् ।
सुरसादि प्रयुंजीत तत्र धावनपूरणे ॥ ७५ ॥
सप्तपर्णकरंजार्कनिंबराजादनत्वचः ।
गोमूत्रकल्कितो लेपः सेकः क्षारांबुना हितः ॥
प्रच्छाद्य मांसपेश्या वा व्रणं तानाशु निर्हरेत् ७६

व्रणकी रक्षा अर्थात् सम्हाल न करनेसे उसमें मक्खियं कीड़ोंको ला डालती है और वे जन्तु व्रणको खाने लगते है, तब उसमें पीड़ा, सूजन और रक्तका बहाव होता है । मक्खी आदिके द्वारा जन्तुओंके निवेशसे विगड़े हुए व्रणको सुरसादि गणके काढ़ेसे धोकर उसीके कल्कको व्रणके अन्दर भर देवे । सतवन, करंजबीज, आक, नीम, ढाक अथवा अमलतासकी छालको गोमूत्रमें पीसकर उसका लेप व्रणके ऊपर करना चाहिये तथा क्षारवाले पानीका व्रणके ऊपर सेचन करना हित है । अथवा मांसके टुकड़ेको व्रणपर रख देवे तो व्रणमेंसे राध और वे जीव जन्तु सब बाहर आ जाते है । मांस बहुत जलदी सड़ने लगता है, इसलिये जब व्रणपर रक्खा हुआ मांस सड़ने लगे तो उसे फेंककर दूसरा टुकड़ा रख देवे॥ ७४—७६॥

घावको जल्दीसे नहीं रुझाना चाहिये ।

न चैनं त्वरमाणोऽन्तःसदोषमुपरोहयेत् ।
सोऽल्पेनाप्यपचारेण भूयो विकुरुते यतः ७७॥

जबतक व्रणके भीतरमें पूयआदि विगाड़ स्थित रहें तबतक उस व्रणको ऊपरसे मरहम आदि लगा-

कर जलदी रुझ आनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये। कारण कि व्रणके अन्दरमें बाकी रहा हुआ थोड़ा भी दोष जरासे कुपथ्यसे फिर उमड़ आता है, जैसे-भगंदर आदिमें इसलिये घावके शोधनादि किये विना रोपण क्रियाका करना अनुचित और अशास्त्रीय है ॥ ७७॥

घावके रुझ जानेपर भी पथ्यसे रहनेका उपदेश।

रूढेऽप्यजीर्णव्यायामव्यवायादीन् विवर्जयेत् ७८
हर्षं क्रोधं भयं वापि यावदास्थैर्यसंभवात्।
आरोहणानुवर्त्योऽयं मासान्षट् सप्त वा विधिः ७९
उत्पद्यमानासु च तासु तासु
वार्तासु दोषादिबलानुसारी।
तैस्तैरुपायैः प्रयतश्चिकित्से-
दालोचयन् विस्तरमुत्तरोक्तम् ॥ ८० ॥

व्रणके भलीभांति भर जानेपर भी अजीर्ण, व्यायाम, मैथुन, हर्ष, क्रोध, भय आदि कर्मोंका सर्वथा परित्याग करना चाहिये। घावमें आयी हुई रुझ जबतक पक्कर दृढ़ न हो जाय तबतक रुझनेके बाद भी कमसे कम ६ मासतक इन ऊपर लिखी वस्तुओंका परिहेय (परहेज) करना अत्यंत आवश्यक है। व्रणका उपचार करते हुए जो जो विकार होते है उनमें दोषादिके बलको विचारकर तथा इससे आगेके प्रकरणमें कहे जानेवाले विस्तारपर लक्ष्य रखते हुए व्रणका प्रतीकार करना चाहिये ॥ ७८—८० ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्न–पण्डित–श्रीरामप्रसादात्मज–विद्या-लङ्कार–वैद्य–शिवशर्माविरचित–शिवदी-पिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः।

अथाऽतः क्षाराग्निकर्मविधिमध्यायं व्याख्या-स्यामः।

अब हम क्षार कर्म(तेजाब लगाने) और अग्निकर्म (दाह करने) वाले अध्यायकी व्याख्या करते है:—

क्षार कर्मकी प्रधानता।

सर्वशस्त्रानुशस्त्राणां क्षारः श्रेष्ठो बहूनि यत्।
छेद्यभेद्यादिकर्माणि कुरुते विषमेष्वपि ॥ १ ॥
दुःखावचार्यशस्त्रेषु तेन सिद्धिमयात्सु च।
अतिकृच्छ्रेषु रोगेषु यच्च पानेऽपि युज्यते ॥२॥

सब शस्त्र और अनुशस्त्रोंमें क्षार (तेजाब) श्रेष्ठ है। कारण कि क्षार विषम स्थानोंमें भी छेदन, भेदन आदि बहुतसे कामोंको करता है। क्योंकि नासार्श, नासार्बुदादि विषम स्थानोंके ऐसे रोगोंमें जो शस्त्रसे सिद्ध नहीं हो सकते तथा दुष्ट व्रणादि कृच्छ्रसाध्य रोगोंमें, एवं अन्य क्षारसाध्य रोगोंमें क्षारप्रयोगसे ही रोगकी निवृत्ति होती है और आभ्यन्तर गुल्मादि-कोंमें क्षार पीनेमें भी प्रयुक्त होता है। इस कारण क्षार सब शस्त्रादिकोंसे प्रधान माना जाता है ॥ १ ॥ २॥

दो प्रकारके क्षार।

स पेयोऽर्शोऽग्निसादाश्मगुल्मोदरगरादिषु।

क्षार दो प्रकारका होता है–एक पेय और दूसरा प्रतिसारणीय। इनमें पेय क्षार--आभ्यन्तरार्श, मन्दाग्नि, अश्मरी, गुल्म, उदररोग और गर आदि रोगोंमें पिया जाता है ॥

प्रतिसारण क्षार।

योज्यः साक्षान्मषश्वित्रबाह्यार्शःकुष्ठसुप्तिषु।
भगंदरार्बुदग्रंथिदुष्टनाडीव्रणादिषु ॥ ३ ॥

प्रतिसारण क्षार–त्वचापरके मस्से, श्वित्र, बाह्यार्श, कुष्ठ, त्वचाशून्यता, भगन्दर, रसौली, ग्रन्थि और दुष्ट नाडीव्रण आदि रोगोंमें साक्षात् ऊपर लगाया जाता है ॥ ३ ॥

क्षारके अयोग्य प्राणी।

न तूभयोऽपि योक्तव्यः पित्ते रक्ते बलेऽबले४
ज्वरेऽतिसारे हृन्मूर्धरोगे पाण्ड्वामयेऽरुचौ।
तिमिरे कृतसंशुद्धौ श्वयथौ सर्वगात्रगे ॥५॥
भीरुगर्भिण्यृतुमतीप्रोद्वृत्तफलयोनिषु।

अजीर्णेऽन्ने शिशौ वृद्धे धमनीसंधिमर्मसु ॥६॥
तरुणास्थिसिरास्नायुसेवनीगलनाभिषु ।
देशेऽल्पमांसे वृषणमेढ्रस्रोतोनखांतरे ॥
वर्त्मरोगादृतेऽक्ष्णोश्च शीतवर्षोष्णदुर्दिने ॥७॥

दोनों प्रकारके क्षारोंका बलवान् या निर्बल पित्तमें और रक्तमें प्रयोग नहीं करना चाहिये । "हेमाद्रि और पदार्थचन्द्रिकामें 'बले'के स्थानमें 'चले' पाठ है। तब ऐसा अर्थ हुआ कि दोनों प्रकारके क्षारोंका पित्तमें, रक्तमें और वात तथा निर्बल पुरुषके शरीरमें प्रयोग नहीं करना चाहिये। तथा ज्वरमें, अतिसारमें, हृद्रोगमें, शिरोरोगमें, पाण्डुरोगमें, अरुचिमें, तिमिररोगमें, वमनादि शुद्धिके अनन्तर, सर्वशरीरगत सूजनमें, भीरुके शरीरमें, गर्भिणी तथा ऋतुमतीके शरीरमें, अथवा उद्वृत्तका अर्थ ऊपरको हट गया मासिक धर्म जिसका उसको भी क्षार कर्म नहीं करना चाहिये। सुश्रुतमें 'अववृत्तोद्वृत्तफलयोनयः' ऐसा पाठ है । इसपर निबन्ध संग्रहमें लिखा है कि फल और योनिके साथ अलग २ अपवृत्त और उद्वृत्तका सम्बन्ध है । तब इसका यह अर्थ हुआ कि जिसके अण्डकोष ऊपरको चढ़ गये हों या उतर गये हों उस पुरुषको और जिस स्त्रीकी योनि अपने स्थानसे ऊपर या नीचेको हट गयी हो उस स्त्रीको भी क्षार कर्म नहीं करना चाहिये । और अन्नके अजीर्णमें भी क्षारका प्रयोग नहीं करना । एवं बालक और वृद्धको भी क्षार प्रयोग नहीं करना चाहिये । ऐसे ही धमनीमें, संधियोंमें, मर्मस्थानमें, तरुणास्थिमें, सिरामें, स्नायुमें, सेवनीमें, गलेमें, नाभिमें, अल्प मांसवाले स्थानमें, वृषणोंपर, मेढ़्रपर, स्रोतोंमें, नखोंके बीचमें, वर्त्मरोगके विना सब नेत्ररोगोंमें तथा शीतकालमें, वर्षामें और दुर्दिनमें भी क्षार कर्म नहीं करना चाहिये ॥ ४–७ ॥

मध्यम क्षार बनानेकी विधि ।

कालमुष्ककशम्याककदलीपारिभद्रकान् ॥८॥
अश्वकर्णमहावृक्षपलाशास्फोतवृक्षकान् ।
इंद्रवृक्षार्कपूतीकनक्तमालाश्वमारकान् ॥ ९ ॥
काकजंघामपामार्गमग्निमंथाग्नितिल्वकान् ।
सार्द्रान् समूलशाखादीन् खंडशः परिकल्पितान्
कोशातकीश्चतस्रश्च शूकनालं यवस्य च ।
निवाते निचयीकृत्य पृथक्तानि शिलातले ११
प्रक्षिप्य मुष्ककचये सुधाश्मानि च दीपयेत् ।
ततस्तिलानां कुंतालैर्दग्ध्वाऽग्नौ विगतेपृथक्१२
कृत्वा सुधाश्मनां भस्म द्रोणं त्वितरभस्मनः ।
मुष्ककोत्तरमादाय प्रत्येकं जलमूत्रयोः ॥१३॥
गालयेदर्धभारेण महता वाससा च तत् ।
यावत्पिच्छिलरक्ताक्षस्तीक्ष्णो जातस्तदा च तम्
गृहीत्वा क्षारनिस्यंदं पचेल्लौह्यां विघट्टयन् ।
पच्यमाने ततस्तस्मिंस्ताःसुधाभस्मशर्कराः१५॥
शुक्तिक्षारपंकशंखनाभीश्चाऽयसभाजने ।
कृत्वाग्निवर्णान् बहुशः क्षारोत्थे कुडवोन्मिते१६
निर्वाप्य पिष्ट्वा तेनैव प्रतीवापं विनिक्षिपेत् ।
श्लक्ष्णं शकृद्दक्षशिखिगृध्रकंककपोतजम्॥१७॥
चतुष्पात्पक्षिपित्तालमनोह्वालवणानि च ।
परितः सुतरां चाऽतो दर्व्या तमवघट्टयेत् १८॥
सबाष्पैश्च यदोत्तिष्ठेद्बुद्बुदैर्लेहवद्घनः ।
अवतार्य ततः शीतो यवराशावयोमये ॥१९॥
स्थाप्योऽयं मध्यमः क्षारो—

कालामोखा वृक्ष, अमलतास, कदली, पारिभद्र, अश्वकर्ण (शालका भेद), महावृक्ष (थूहर), पलास, आस्फोत (कोविदार), वृक्षक (कुटज), अर्जुन, आक, पूतिकरञ्ज, लताकरञ्ज, कनेर, काकजंघा, अपामार्ग, अग्निमन्थ, चित्रक, तिल्वक (लोध्र) इन सबको जड़ और शाखादि समेत शुभ कालमें गीले ही उखाड़कर इनको टुकड़े टुकड़ेकर अच्छे स्थानमें अलग २ रख देवे । तथा चारों प्रकारकी कोशातकी (धामार्गव आदि कड़वी तोरियोंकी चारों जातियें), यवोंकी शूकनालें; इन सबको निर्वात स्थानमें पृथक् २ संचय कर शिलाओंपर रख देवे ॥

फिर मोखा वृक्षकी लकड़ियोंके ढेरपर चूनेके पत्थरोंको डालकर उनमें तिलोंकी तिलछड़ोंसे आग लगाकर भस्म करे ।

जब अग्नि शांत हो जाय तो चूनेके पत्थरोंकी भस्म (चूना) अलग करके एक द्रोण लेवे । तथा अन्य अमलतास आदि सब द्रव्योंकी भस्म बनाकर एक द्रोण लेवे । इन सबमें काले मोखेकी भस्म अधिक होनी चाहिये। यहां हेमाद्रिने लिखा है कि अमलतास आदि सब द्रव्योंकी भस्म चार आढक और अकेले मोखेकी भस्म एक आढक लेवे । इन सबमें आधाभार (सवामन) जल और सवामन गोमूत्र मिलाकर घोल देवे। अर्थात् काले मोखेकी लकड़ियोंमें भस्म किया हुआ सफेद पत्थरका चूना १६ सेर, मोखेकी भस्म ४ सेर, अमलतास आदि सब बाकी द्रव्योंकी समभाग भस्म मिलाकर कुल १६ सेर। इन सबको एकत्र मिलाकर उस सब भस्मको ५० पचास सेर जल और ५० पचास सेर पानीमें घोल देवे, फिर इसको एक बड़े वस्त्रमें डालकर इसका जल एक बड़े लोहेके कड़ाहेमें चुवावे । इसको बार २ वस्त्रद्वारा चुवाकर भस्मरहित स्वच्छ क्षार जल निकाल लेवे। जबतक बार बार छाननेसे यह क्षार जल पिच्छल, लालवर्ण, भस्मरहित स्वच्छ और तीक्ष्ण न हो जावे तबतक छानता (चुवाता) रहे ।

फिर इस क्षार जलको लोहकटाहमें डालकर लोहेकी कड़छीसे धीरे धीरे हिलाते हुए अग्निपर पकावे । फिर इस पकते हुएमेंसे आठ पल परिमाण क्षार जल निकालकर उसमें मोखेकी लकड़ीसे भस्म किये हुए चूनेकी शर्करा (कंकडियें), सीप, सफेद खड़िया और शंखकी नाभि इनको अग्निमें लालवर्ण कर लोहपात्रमें डाले हुए आठ पल क्षार जलमें बुझावे । इस प्रकार दो तीन बार इन द्रव्योंको अग्नि वर्ण कर उस क्षार जलमें बुझावे । फिर उसी क्षारमें इन सबको पीसकर उस पकते हुए क्षारमें डाल देवे, इसको प्रतिवाप कहते हैं ॥

इसके अनन्तर मुर्गा, मोर, गृध्र, कंक और कबूतर इन पक्षियोंकी विष्ठा और चतुष्पाद जानवरोंका पित्त, हरिताल, मनसिल और लवण इन सबको बारीक पीसकर उस पकते हुए क्षारमें चारों ओरसे बुरकाकर डाल देवे और कड़छीसे हिलाता रहे । जब पकते पकते उसमेंसे भाप निकलने लगे और बुल्बुलेसे उठें तथा वह लेहके समान गाढ़ा हो जावे तो इसको उतारकर लोहघटमें डालकर मुख बंद करके यवोंके ढेरमें दबाकर रख देवे । इसको मध्यम क्षार कहते हैं ॥ ८–१९ ॥

मृदु क्षार ।

–न तु पिष्ट्वा क्षिपेन्मृदौ ॥ २० ॥
निर्वाप्यापनयेत्–

यदि क्षारमें प्रतिवाप द्रव्य (चूनेकी कंकड़ी, सीपी, शंखादि) पीसकर न डाली जावें केवल अग्निवर्ण कर उसमें बुझाकर बाहर निकाल दिये जावें तो यह क्षार मृदु क्षार कहा जाता है ॥ २० ॥–

तीक्ष्ण क्षार ।

–तीक्ष्णे पूर्ववत् प्रतिवापनम् ।
तथा लांगलिकादंतिचित्रकातिविषावचाः ।
स्वर्जिकाकनकक्षीरीहिंगुपूतीकपल्लवाः ।
तालपत्री बिडं चेति सप्तरात्रात्परं तु सः ॥२१॥
योज्यः–

तीक्ष्ण क्षार बनानेके लिये उपरोक्त मध्यम क्षारमें शुक्ति शंखादि प्रतिवापसे अधिक लांगलीकंद, दन्ती, चित्रक, अतीस, वच, सज्जीखार, धतूरेके बीज, थूहरका दूध, हींग, पूतिकरंजके पत्र, तालपत्री और विड्लवण इन सबको भी प्रतिवाप रूपसे डालना चाहिये और फिर उतारकर लोहघटमें बंद कर यवोंके ढेरमें दबा कर रक्खे तो यह तीक्ष्ण क्षार हो जाता है। क्षारका सात दिनके अनन्तर प्रयोग करना चाहिये ॥ २१ ॥–

तीक्ष्णक्षारका प्रयोग ।

–तीक्ष्णोऽनिलश्लेष्ममेदोजेष्वर्बुदादिषु ॥ २२ ॥

तीक्ष्ण क्षारका बढ़े हुए वात–कफसे और मेदसे उत्पन्न हुए अर्बुद (रसौली) आदि बलवान् रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ २२ ॥

मध्यम क्षारका प्रयोग ।

मध्येष्वेव च मध्यः–

इन्हीं वात, कफ और मेदज अर्बुदादि मध्य बलवाले रोगोंमें मध्यम क्षारका प्रयोग करना चाहिये ॥

मृदु क्षारका प्रयोग ।

–अन्यः पित्तासृगुदजन्मसु ।

मृदु क्षारका पित्तरक्तप्रधान अर्शादिकोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥–

पानीय क्षारका प्रयोग ।

बलार्थं क्षीणपानीये क्षारांबु पुनरावपेत् ॥२३॥

जठराग्निके बल बढ़ाने आदि काममें जो पीनेमें क्षार प्रयोग किया जाता है उसको बनाते समय विना कोई प्रतिवाप डाले जब क्षारका पानी अग्निसे क्षीण हो जावे तो उसमें विना पकाया क्षार जल मिलाकर रख लेवे । यह शीतल जलमें मिलाकर अल्पमात्रासे पिलाया जाता है ॥ २३ ॥

दशगुणयुक्त क्षारकी श्रेष्ठता ।

नातितीक्ष्णोमृदुःश्लक्ष्णःपिच्छिलःशीघ्रगःसितः
शिखरी सुखनिर्वाप्यो न विष्यंदी न चातिरुक्
क्षारो दशगुणः शस्त्रतेजसोरपि कर्मकृत् ॥२४॥

क्षारमें ये दश गुण होने चाहिये, जैसे–न अति तीक्ष्ण, न अति मृदु, न बहुत मसृण, न अति गाढ़ा, शीघ्र व्याप्त होनेवाला, श्वेत, लगानेसे चचापर छोटी २ शिखराकर पिटिका उत्पन्न कर देनेवाला, जिस स्थानपर लगाया जाय उस स्थानकी दाह कांजी आदिसे सुखपूर्वक हट जावे ऐसे गुणवाला, स्राव न करनेवाला और अति पीड़ा न करनेवाला इन दश गुणोंसे युक्त क्षार क्षारकर्ममें श्रेष्ठ होता है । यह दश गुण युक्त क्षार शस्त्रकर्म लेखनादिसे और अग्निदाह (दाग) कर्मसे साध्य होनेवाले रोगोंको भी शमन करनेमें समर्थ होता है ॥ २४ ॥

क्षारके गुण ।

आचूषन्निव संरंभाद्गात्रमापीडयन्निव ॥ २५ ॥
सर्वतोऽनुसरन् दोषानुन्मूलयति मूलतः ।
कर्म कृत्वा गतरुजः स्वयमेवोपशाम्यति ॥२६॥

क्षार जिस स्थानपर लगाया जाय उसको क्षोभपूर्वक चूसता हुआ और रोगयुक्त स्थानको पीड़न करता हुआ सर्वतः व्याप्त होकर दोषको जड़से नाश कर देता है । फिर दोषनाशरूप कर्म करके जब रोग नाश होजाय तो क्षारजनितव्यथा स्वयं शांत हो जाती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

क्षार लगानेकी विधि ।

क्षारसाध्ये गदेछिन्नेलिखितेस्राविते़ऽथवा ।
क्षारं शलाकया दत्त्वा प्लोतप्रावृतदेहया ॥२७॥
मात्राशतमुपेक्षेत–

क्षार–प्रायः अर्शआदिके मस्से छेदन करनेके अनन्तर छिन्नस्थानपर, अथवा ग्रन्थिआदिमें लेखन क्रिया स्थानपर या रक्तस्रावित स्थानपर प्रयोग किया जाता है । सो जिस क्षारसाध्य व्याधिमें छिन्न या लिखित अथवा स्रावित स्थानपर क्षार लगाना हो तो क्षार लगानेकी सलाईके मुखपर रूईका फोहा या वस्त्रखण्ड लपेट कर उसको क्षारमें डुबाकर युक्तिसे व्याधिस्थानपर लगा देवे और शतमात्रा कालतक उपेक्षा करता रहे ॥ २७ ॥–

अर्शमें क्षारप्रयोग ।

–तत्रार्शःस्वावृताननम् ।
हस्तेन यंत्रं कुर्वीत–

यदि अर्श रोगमें क्षार लगाना हो तो अर्शवाले पुरुषकी गुदामें खुले मुखवाला गोस्तनाकार

अर्शोयन्त्र लगाकर उस यंत्रके अन्दरसे क्षारयुक्त शलाका लेजाकर अर्शच्छेदन किये हुए स्थानपर क्षार लगा देवे और क्षारशलाका हटा देनेके अनन्तर उस अर्शोयन्त्रके मुखको हाथसे ढककर शतमात्रा कालतक प्रतीक्षा करे ।

नेत्रमें क्षारप्रयोग ।

-वर्त्मरोगेषु वर्त्मनी ॥ २८ ॥

निर्भुज्य पिचुनाच्छाद्य कृष्णभागं विनिक्षिपेत् । पद्मपत्रतनुः क्षारलेपो घ्राणार्बुदेषु च ॥ २९ ॥

नेत्रके वर्त्म रोगोंमें क्षार लगाना हो तो नेत्रको खोलकर पलकको पसारकर सूक्ष्म भीगे हुए वस्त्रसे नेत्रके कृष्ण भागको इस प्रकार ढक देवे जिससे क्षार कृष्णभागादि अन्यस्थानमें न लग जाय । फिर वर्त्मस्थानके जिस भागपर क्षार लगाना हो युक्तिसे उसी स्थानपर पद्मपत्र समान पतला सा लेप क्षारका कर देवे और २९ मात्रातक प्रतीक्षाकरे ॥

इसी प्रकार घ्राणआदि स्थानमें क्षार लगाना हो तो घ्राणस्थानकी रसौलीके स्थान पर भी पतला लेप ही करना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

नासिकामें क्षारप्रयोग ।

प्रत्यादित्यं निषण्णस्य समुन्नम्याग्रनासिकाम् । मात्रा विधार्यः पंचाशत्-

जिसकी नासिकामें क्षार लगाना हो उसको सूर्यके सम्मुख बैठा कर नासिकाके अग्रभागको ऊपर उठाकर उचित स्थानपर क्षार लगाकर पचास मात्रातक प्रतीक्षा करे ॥-

कर्णज अर्शमें क्षारका प्रयोग ।

-तद्वदर्शसि कर्णजे ॥ ३० ॥

इसी प्रकार कानके अर्शमें भी नासिकाके समान कानको सूर्यकी ओर करके क्षार लगाकर पचास मात्रातक प्रतीक्षा करे ॥ ३० ॥

क्षार लगानेके अनन्तर क्रिया ।

क्षारं प्रमार्जनेनानु परिमृज्याऽवगम्य च । सुदग्धं घृतमध्वक्तं तत्पयोमस्तुकांजिकैः ॥ निर्वापयेत्ततः साज्यैः स्वादुशीतैः प्रदेहयेत् ३१॥

इसी प्रकार क्षार लगाकर प्रतीक्षा करनेके कालके अनन्तर क्षारदग्धस्थानको मृदु वस्त्रसे पोछ देवे फिर सम्यक् दग्ध हुए स्थानपर घृत, मधु लगाकर फिर उस स्थानको दूध या मस्तु अथवा कांजी या अन्य मधुर शीतल द्रव्योंमें घृत मिलाकर लेपन करे ॥ ३१ ॥

क्लेदनार्थ भोजन ।

अभिष्यंदीनि भोज्यानि भोज्यानि क्लेदनाय च॥

इसके अनन्तर इसको दूध दधि आदि मिलाकर घृतयुक्त कृशरादि क्लेदकारी पदार्थ खिलाते रहना चाहिये, जिससे क्षार दग्धस्थानका क्लेदन हो, दग्धस्थानसे क्षारका जाला स्वयं उतरकर गिर जावे ॥ ३२ ॥

आलेपन प्रकार ।

यदि च स्थिरमूलत्वात्क्षारदग्धं न शीर्यते । धान्याम्लबीजयष्ट्याह्वतिलैरालेपयेत्ततः ॥ ३३॥

यदि क्षारदग्धस्थानकी दग्धत्वचा स्थिरमूल होनेके कारण क्लेदी पदार्थोंके खानेसे भी न गिरे तो उस स्थानपर धान्याम्लके नीचेकी गाद, मुलैठी और तिल इनका लेप करे । इस धान्याम्ल (कांजी) में मिरच नहीं डाली जाती । धान्याम्लके नीचे बैठा हुआ पदार्थ लेना चाहिये ॥ ३३ ॥

क्षारदग्धके व्रणकी चिकित्सा ।

तिलकल्कः समधुको घृताक्तो व्रणरोपणः ।

क्षारदग्धके व्रणको दूर करनेके लिये मुलैठी और तिलोंका कल्क घृत मिलाकर व्रणपर लेपन करना चाहिये । इससे व्रणरोपण हो जाता है ॥

सम्यक् क्षारदग्धके लक्षण ।

पक्वजंब्वसितं सन्नं सम्यग्दग्धम्-

क्षारसे दग्धस्थान जंबुफलके समान काला सा हो जावे और दग्धस्थान नीचा सा हो जाय तथा व्याधिकी शान्ति प्रतीत हो तो यह सम्यक् दग्धके लक्षण हैं ॥ ३४ ॥

दुर्दग्धके लक्षण।

–विपर्यये ॥

ताम्रतातोदकंड्वाद्यैर्दुर्दग्धम्–

दुर्दग्ध हो अर्थात् हीन हो तो क्षारदग्धस्थान सम्यक् दग्धसे विपरीत लक्षणोंवाला और ताम्रवर्णका होता है तथा उसमें चमके और खुजली आदि होते है। ऐसे दुर्दग्धको पुनः विधिवत् दग्ध करना चाहिये ॥

अतिदग्धके लक्षण।

–तं पुनर्दहेत् ।

अतिदग्धे स्रवेद्रक्तं मूर्छादाहज्वरादयः ॥३५॥

क्षारसे अतिदग्ध हो जाय तो दग्धस्थानसे रक्तका स्राव होने लगता है और मूर्छा, दाह, एवं ज्वरादि उपद्रव हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

अतिदग्धके स्थानविशेषसे उपद्रव।

गुदे विशेषाद्विण्मूत्रसंरोधोऽतिप्रवर्तनम्।
पुंस्त्वोपघातो मृत्युर्वा गुदस्य शातनाद्ध्रुवम्॥

गुदामें क्षारके अतियोगसे अतिदग्ध हो जाय तो विशेषकर विष्ठा मूत्रका रुक जाना या अति प्रवृत्ति होना और पुंस्त्व शक्तिका नाश होना तथा गुदाके विदीर्ण होनेसे मृत्यु हो जाना यह विशेष लक्षण होते है ॥ ३६ ॥

नासिका और श्रोत्रादिकोंमें क्षारके अतियोगसे उपद्रव।

नासायां नासिकावंशदरणाकुंचनोद्भवः।
भवेच्च विषयाज्ञानम्–

–तद्वच्छ्रोत्रादिकेष्वपि॥३७॥

नासिकामें क्षारका अतियोग होनेसे अत्यन्त दग्ध होकर नासिका वंशका दरण होना (गिरने लगना), या सुकड़ जाना तथा गन्धज्ञानका नाश होना; ये लक्षण होते हैं ॥

यदि कानमें क्षारसे अतिदग्ध हो जाय तो कानका गल जाना या सुकड़ जाना तथा शब्दज्ञान नष्ट हो जाना; ये लक्षण होते हैं ॥ ३७ ॥

अतिदग्धकी चिकित्सा।

विशेषादत्र सेकोऽम्लैर्लेपो मधुघृतं तिलाः।
वातपित्तहरा चेष्टा सर्वैव शिशिरा क्रिया ३८॥

क्षारसे अतिदग्ध होनेसे उत्पन्न हुए विकारोंमें कांजी आदि अम्ल द्रवसे सेचन करना तथा मधु, घृत और तिलोंका कल्क बनाकर लेप करना हितकारी होता है। एवं सम्पूर्ण क्रिया वातपित्तनाशक और शीतल करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

कांजी आदिमें निर्वापन।

अम्लो हि शीतः स्पर्शेन क्षारस्तेनोपसंहितः।
यात्याशु स्वादुतां तस्मादम्लैर्निर्वापयेत्तराम् ॥

अम्ल (कांजी) आदि स्पर्शमें शीतल होता है। उस अम्लके योगसे क्षार शीघ्र ही मृदुताको ग्रहण कर लेता है। इस कारण क्षारके अतियोगमें विशेषरूपसे कांजी आदि अम्ल शीतल द्रव्यका प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ ३९ ॥

अग्निकर्मकी श्रेष्ठता।

अग्निः क्षारादपि श्रेष्ठस्तद्दग्धानामसंभवात्।
भेषजक्षारशस्त्रैश्च न सिद्धानां प्रसाधनात्॥४०॥

अग्निसे दग्ध किया हुआ विकार फिर उत्पन्न नहीं हो सकता तथा औषध, शस्त्र और क्षार प्रयोगसे भी जो रोग शान्त नहीं हो सकते उनकी भी अग्निदग्ध करनेसे शांति हो जाती है। इस कारण अग्निदग्ध करना (दाग देना) क्षारकर्मसे भी श्रेष्ठ माना जाता है ॥ ४० ॥

त्वचादिकोंमें अग्निदाहका प्रयोग।

त्वचि मांसे सिरास्नायुसंध्यस्थिषु स युज्यते।

अग्निदाह–त्वचा, सिरा, स्नायु, संधि और अस्थि पर अवस्थानुसार प्रयोग किया जाता है।

त्वग्दाह ।

मषांगग्लानिमूर्धार्तिमंथकीलतिलादिषु ॥
त्वग्दाहो वर्तिगोदंतसूर्यकांतशरादिभिः ॥४१॥

वह अग्निदाह शरीरके ऊपरवाले मस्से, अंगकी शिथिलता, मस्तकपीडा, अधिमन्थ, बाह्य त्वचाके कीलक और तिलआदि रोगोंमें बत्ती, गोदन्त, स्फटिक और शर आदिके साथ त्वचादाह किया जाता है ॥ ४१ ॥

मांसदाह ।

अर्शोभगंदरग्रंथिनाडीदुष्टव्रणादिषु ।
मांसदाहो मधुस्नेहजांबवोष्ठगुडादिभिः ॥ ४२॥

अर्श, भगन्दर, ग्रन्थि, नाड़ीव्रण और दुष्ट व्रणादिकोंमें मधु, घृतादि स्नेह, जांबवोष्ठ शस्त्र और गुड़ आदिसे मांसदाह किया जाता है ॥ ४२ ॥

सिरादाह ।

श्लिष्टवर्त्मन्यसृक्स्रावनीलयसम्यग्व्यधादिषु ४३
सिरादिदाहस्तैरेव—

श्लिष्टवर्त्म, रक्तस्राववाले स्थानपर, नीलिकापर और सिराके दुर्वेधनपर भी उन्हीं मधु घृतादिसे सिरा आदिका दाह किया जाता है ॥ ४३ ॥—

अग्निसे दग्ध करनेके अयोग्य प्राणी ।

—न दहेत्क्षारवारितान् ॥
अंतःशल्यासृजो भिन्नकोष्ठान् भूरिव्रणातुरान् ॥

जिन रोगोंमें क्षार लगानेका निषेध है उन रक्तपित्तादिकोंमें अग्निदाह भी नहीं करना चाहिये। तथा अन्तःशल्यमें, अंतःपूरित रक्तमें, भिन्न कोष्ठमें और बहुत से व्रणोंवाले शरीरमें भी अग्निसे दाह नहीं करना चाहिये ॥ ४४ ॥

अग्निदाहानन्तर क्रिया ।

सुदग्धं घृतमध्वक्तं स्निग्धशीतैः प्रदेहयेत् ।

जब अग्निसे सम्यक् दग्ध हो चुके तो दग्ध स्थानपर घृत और मधु लगावे। तदनन्तर मधुयष्टि आदि स्निग्ध शीत द्रव्योंके घृतयुक्त कल्कका लेप करे ॥—

सुदग्धके लक्षण ।

तस्य लिंगं स्थिते रक्ते शब्दवल्लसिकान्वितम् ।
पक्वतालकपोताभं सुरोहं नातिवेदनम् ॥ ४५ ॥

दग्धस्थानका रक्त बन्द हो जावे तथा उस स्थानमें लसिकाके साथ त्वचाके जलनेसे चड़चड़ शब्द होकर वह स्थान पक्के ताल फलके समान वर्णवाला हो जावे तथा वह दग्धस्थान सम्यक् अच्छा होने लगे और उसमें अधिक पीड़ा न हो; यह सम्यक् दग्धके लक्षण है ॥ ४५ ॥

दुर्दग्ध और अतिदग्धका लक्षण ।

प्रमाददग्धवत्सर्वं दुर्दग्धात्यर्थदग्धयोः ॥ ४६ ॥

दुर्दग्ध और अतिदग्धके प्रमाद दग्ध हुएके समान सब लक्षण जानने ॥ ४६ ॥

प्रमाद दग्ध ।

चतुर्धा तत्तु तुत्थेन सह—

प्रमाद दग्ध चार प्रकारका होता है। जैसे—अकस्मात् सम्यक् दग्ध, दुर्दग्ध, अतिदग्ध और तुत्थ दग्ध ।—

तुत्थ दग्धके लक्षण ।

—तुत्थस्य लक्षणम् ।
त्वग्विवर्णोष्यतेऽत्यर्थं न च स्फोटसमुद्भवः ४७

इनमें जिस दग्धसे त्वचाका वर्ण बिगड़ जावे, ऊषणवत् (चिमचिमाहटवाली) पीड़ा अत्यन्त हो, फोड़े उत्पन्न न हों; ये तुत्थ दग्धके लक्षण है ॥ ४७ ॥

दुर्दग्धके लक्षण ।

सस्फोटदाहतीव्रोषं दुर्दग्धम्—

दुर्दग्धमें फोड़े, दाह, तीव्र चिमचिमाहटवाली पीडा; ये लक्षण होते हैं ॥

अतिदग्धके लक्षण ।

—अतिदाहतः ।
मांसलंबनसंकोचदाहधूपनवेदनाः ॥
सिरादिनाशस्तृण्मूर्छाव्रणगांभीर्यमृत्यवः ॥४८॥

अतिदग्धमें मांसका लटकना, सिराओंका संकोच, दाह, धुंआ निकलनेकी सी प्रतीति, पीड़ा होना,

दग्धस्थानकी सिरा आदिका नाश, तृषा, मूर्छा और व्रणका गहरा होना; ये लक्षण होते है तथा मृत्यु तक भी हो जाती है ॥ ४८ ॥

तुत्थ दग्धकी चिकित्सा ।

तुत्थस्याऽग्निप्रतपनं कार्यमुष्णं च भेषजम् ।
स्त्यानेऽस्त्रे वेदनात्यर्थं विलीने मंदता रुजः ४९

तुत्थ दग्धमें अग्निपर तपाना, उष्ण घृतादि लगाके और सब उष्ण ओषधियोंका प्रयोग करना चाहिये । क्योंकि तुत्थ दग्धमें रक्त दग्धस्थानमें स्थिर सा हो जाता है, इस कारण उस स्थानमें अधिक पीड़ा होती है । उष्णक्रियासे वह रक्त विलीन हो जाता है, इस कारण पीड़ा मन्द पड़ जाती है ॥ ४९ ॥

दुर्दग्धकी चिकित्सा ।

दुर्दग्धे शीतमुष्णं च युंज्यादादौ ततो हिमम्॥

दुर्दग्धमें प्रथम शीत उष्ण मिली हुई क्रिया करे, अर्थात् शीत स्वभाववाले द्रव्योंको उष्ण करके प्रयोग करे । तदनन्तर शीतल लेपादिका प्रयोग करे ॥५०॥

सम्यक् दग्धपर लेप ।

सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरिप्लक्षचंदनगैरिकैः ।
लिंपेत्साज्यामृतैरूर्ध्वं पित्तविद्रधिवत्क्रिया५१॥

सम्यक् दग्धमें वंशलोचन, पिलखन, चन्दन, गेरू और गिलोय इनके कल्कको घृतमें मिलाकर लेप करे, पश्चात् पित्त विद्रधिके समान सब क्रिया करे ॥५१॥

अतिदग्धमें पित्त-विसर्पवत् चिकित्सा ।

अतिदग्धे द्रुतं कुर्यात्सर्वं पित्तविसर्पवत् ।

अतिदग्धमें शीघ्र ही सब क्रियायें पित्तके विस-के समान करनी चाहिये ॥—

स्नेहदग्धमें रूक्ष औषधकी योजना ।

स्नेहदग्धे भृशतरं रूक्षं तत्र तु योजयेत्॥५२॥

स्नेहदग्धमें विशेषरूपसे रूक्षक्रिया करनी चाहिये ॥ ५२ ॥

सूत्रस्थानका उपसंहार ।

समाप्यते स्थानमिदं हृदयस्य रहस्यवत् ।
अत्रार्थाः सूत्रिताः सूक्ष्माः प्रतन्यंते हि सर्वतः ॥

इति वैद्यपतिसिंहगुप्तसूनुवाग्भटविरचिता-यामष्टांगहृदयसंहितायां प्रथमं सूत्र-स्थानं संपूर्णम् ।
अ० ॥ ३० ॥ श्लो० ॥ १५९१ ॥
समाप्तमिदं सूत्रस्थानम् ।

यह सूत्रस्थान जो हृदयके रहस्यके समान अथवा अष्टांगहृदय ग्रन्थके रहस्यसे भरा हुआ है उसे समाप्त करते है ।

इसमें जानने योग्य आवश्यक सूक्ष्म (गम्भीर) संपूर्णविषय सूत्रित कर दिये है, जिनका इस सम्पूर्ण ग्रन्थमें विस्तार किया जावेगा ॥ ५३ ॥

अष्टाङ्गहृदयस्यास्य व्याख्येयं शिवदीपिका ।
वेदाष्टनवचन्द्रेऽब्दे माघे मासे भृगोर्दिने ॥ १ ॥
शुक्लपक्षस्य पञ्चम्यां पूरिता शिवशर्मणा ।
अनुवादमिमं दृष्ट्वा हृष्यन्ति सात्त्विका जनाः ॥२॥
परञ्च हीर्ष्यया दग्धा नित्यनिन्दापरायणाः ।
वृथा निन्दां करिष्यन्ति धूर्ताः पण्डितमानिनः॥ ३॥
यतो वंशोद्भवा दुष्टिर्विद्यते तेषु सर्वदा ।
स्वभावो बलवाँल्लोके तत्र खेदो न मे हृदि ॥ ४ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां, वैद्यरत्न-पण्डित-श्रीरामप्रसादात्मज-विद्या-लङ्कार-वैद्य-शिवशर्म्मविरचित-शिवदी-पिकाख्यव्याख्यासहितायां सूत्रस्थाने त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इति सूत्रस्थान समाप्तम् ।

अथ

अष्टाङ्गहृदयम् ।

शिवदीपिका-भाषाटीकासहितम् ।

शारीरस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

टीकाकारका मंगलाचरण ।

नमामि गिरिजाकान्तं देवं वाग्भटदं शिवम् ।
प्रसादाद्यस्य बालोऽपि वाग्भटेषु विशिष्यते ॥ १ ॥

प्रथम सूत्रस्थानमें काय आदि आयुर्वेदके आठ अंगोंका सूत्ररूपसे कथनकर आये हैं. काय अर्थात् शरीर सम्पूर्ण निज और आगन्तुक रोगोंका अधिष्ठान है उस काया द्वाराही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है. तथा काया (शरीर) के पालन और रक्षाके लियेही हेतु, लक्षण और औषध इन तीन स्कंधोंवाले आयुर्वेदकी प्रवृत्ति है. इस कारण सूत्रस्थानके अनन्तर व्याधि और चिकित्साके आश्रयभूत शारीर स्थानका वर्णन करते हैं-

अथातो गर्भावक्रान्तिशारीरं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अब हम गर्भावक्रान्ति नामक शारीरकी व्याख्या करते हैं । इस प्रकार आत्रेयआदि महर्षि कहने लगे.

गर्भोत्पत्ति क्रम ।

शुद्धे शुक्रार्त्तवे सत्वः स्वकर्म्मक्लेशचोदितः ।
गर्भः संपद्यते युक्तिवशादग्निरिवारणौ ॥ १ ॥

निर्दोष शुद्ध शुक्र धातु और स्त्रीके शुद्ध मासिक रजका गर्भाधान क्रमसे संयोग होनेपर अपने कर्मजनित क्लेशसे प्रेरितहुआ सत्व (आत्मा) प्रवेश कर गर्भत्वको प्राप्त होता है. जैसे मथ्य मन्थन और मन्थानके संयोगसे अग्नि उत्पन्न हो जाती है वैसेही काल, युक्ति, शुद्धशुक्र, शुद्धरज और कर्माधीन प्राप्तहुए सत्वके संयोगसे गर्भ उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

गर्भवृद्धिक्रम ।

बीजात्मकैर्महाभूतैः सूक्ष्मैः सत्त्वानुगैश्च सः ।
मातुश्चाहाररसजैः क्रमात्कुक्षौ विवर्द्धते ॥ २ ॥

वह गर्भ सत्वके साथही प्राप्तहुए बीजरूप सूक्ष्म पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश इन पांच महाभूतोंके योगसे तथा माताके आहारजनित रसोंसे पाञ्चभौतिक सहायताको प्राप्त होकर माताकी कुक्षि (गर्भाशय) में वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

आत्माके प्रवेशमें दृष्टान्त ।

तेजो यथार्करश्मीनां स्फटिकेन तिरस्कृतम् ।
नेन्धनं दृश्यते गच्छत्सत्वो गर्भाशयं तथा ॥ ३ ॥

जैसे सूर्यकान्तमणिसे ढकेहुए वस्त्रादिमें प्रवेश करता हुवा सूर्यकी किरणोंका तेज दिखाई नहीं देता, वैसेही गर्भाशयमें सत्वका प्रवेश दिखाई नहीं देता । परन्तु शुक्र और रजके संयोग होतेही पूर्वसञ्चित कर्म्मोंके बलसे प्रेरितहुआ आत्मा बीजात्मक सूक्ष्म पांच महाभूतोंके साथ तत्काल प्रवेश हो जाता है ॥ ३ ॥

गर्भके आकारका कारण ।

कारणानुविधायित्वात्कार्याणां तत्स्वभावतः ।
नानायोन्याकृतीः सत्वो धत्तेऽतो द्रुतलोहवत् ॥

क्योंकि संसारमें कारणानुरूप ही कार्य होते हैं । अर्थात् जैसे कारण होते हैं उनहीके स्वभाववाले संसारमें कार्य भी होते हैं । इस लिये सत्वभी गर्भमें प्रवेश करतेसमय जैसी योनिको कर्माधीन प्राप्त होता है वैसेही आकारके शरीरको धारण कर लेता है । जिस प्रकार अग्निके योगसे पिघलाहुआ लोहआदि धातु जैसे

आकारवाले साँचेमें डाल दिया जाता है उसी प्रकारकी मूर्ति या आकारको धारणकर लेता है। उसी प्रकार गर्भ भी जिस प्रकारकी योनिको प्राप्त होता है उसी प्रकारके स्वरूपको धारण करता है ॥ ४ ॥

गर्भमें पुरुष स्त्री और नपुंसक होनेका कारण।

अत एव च शुक्रस्य बाहुल्याज्जायते पुमान्।
रक्तस्य स्त्री तयोः साम्ये क्लीबः–॥ ५ ॥

इसी लिये कार्य कारण भावको प्रधान रखतेहुए यदि गर्भाधानके समय शुक्रकी अधिकता हो तो पुरुष उत्पन्न होता है। यदि रजकी अधिकता हो तो कन्या उत्पन्न होती है। और यदि स्त्रीका रज और पुरुषका शुक्र गर्भाधानके समय समान भाग हो तो नपुंसक संतान उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥

एक गर्भसे अनेक बालक होनेमें हेतु।

–शुक्रार्त्तवे पुनः।
वायुना बहुशो भिन्ने यथास्वं बह्वपत्यता ॥६॥

यदि शुक्र और रजके संयोग होने पर गर्भाशयकी वायु गर्भाधान होते ही शुक्र रजके संयोगके दो या अधिक खंड कर देवे तो एकही गर्भसे दो अथवा अधिक संतान उत्पन्न होती हे। उस समय भी यदि एक भाग अधिक रजवाला और एक भाग अधिक शुक्रवाला हो जाय तो उस एक गर्भसे एक कन्या और एक पुत्र यमलरूपसे उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार गर्भाधानके समय जिस प्रकार वायु शुक्र रजके संयोगको जितने भागोंमें विभक्त कर देता है उसी प्रकारकी उतनीही संतानें एक ही गर्भसे उत्पन्न हो जाती हैं ॥ ६ ॥

गर्भकी विकृतिके कारण।

वियोनिविकृताकारा जायन्ते विकृतैर्मलैः ॥७॥

गर्भाधानके समय कुपित हुए वातादि दोषोंके संयोगसे वियोनि और विकृत आकारवाले गर्भ हो जातेहैं॥ ७

स्त्रीके ऋतुधर्मका समय।

मासिमासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम्।
वत्सराद्द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम्॥८

स्त्री द्वादश वर्षकी अवस्थासे लेकर पचास वर्षकी अवस्था तक प्रतिमास तीन दिनतक रसजनित रज (रक्त) का स्राव करती है यह प्रतिमास जो योनिद्वारा रक्तका स्राव होता है इसको स्त्रियोंका मासिक रज कहा जाता है. यह मासिक रज बारह वर्षसे आरम्भ होकर प्रतिमास तीन दिन स्राव होता है। पचास वर्षकी अवस्था पूर्ण होनेपर स्वयं स्राव होना बन्द होजाता है। यह सामान्य मर्यादा है, कहीं देशभेदसे इस काल प्रमाणमें न्यूनाधिकता भी होजाती है ॥ ८ ॥

गर्भाधानका समय।

पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन संगता।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि ॥
वीर्यवन्तं सुतं सूते–॥ ९ ॥

पूर्ण सोलह वर्षकी स्त्री पूर्ण विंशति वर्षके पुरुषके साथ संयोग करनेपर यदि शुद्ध गर्भाशयमें शुद्ध गर्भाशयके मार्गद्वारा शुद्ध रक्त और शुद्ध शुक्रके संयोगसे गर्भको धारण करे और गर्भाधानके समय स्त्री और पुरुषका हृदय शुद्ध हो तथा रज और शुक्रके संयोगके समय शरीरकी वायु शुद्ध और साम्यावस्थामें हो तो उस गर्भसे स्त्री बलवान् योग्य वीर्यसंपन्न सुन्दर पुत्रको उत्पन्न करती है ९॥

अल्पावस्थामें गर्भाधानके दोष।

–ततो न्यूनाब्दयोः पुनः।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा। १०

उपरोक्त अवस्थासे न्यून अवस्थावाले स्त्री-पुरुषके संयोगसे या तो गर्भाधानही नहीं होता, यदि गर्भाधान होजावे तो उस गर्भसे रोगी अथवा अल्पायु अथवा निन्दित शरीरवाली अल्पवीर्य सन्तान उत्पन्न होती है १०

गर्भाधानके अयोग्य शुक्र और रज।

वातादिकुणपग्रन्थिपूयक्षीणमलाह्वयम्।
बीजासमर्थं रेतोऽस्रम् ॥ ११ ॥–

यदि पुरुषका शुक्र वातादि दोषोंसे दूषित होनेपर दुर्गन्धित हो, या ग्रन्थियुक्त हो अथवा पूययुक्त हो, या क्षीण हो, अथवा मल मूत्रयुक्त हो, या रक्तयुक्त हो तो वह शुक्र गर्भाधान करनेमें समर्थ नहीं हो सकता ॥

यदि इसी प्रकार वातादि दोषोंसे दूषित स्त्रीका मासिक रज हो तो वहभी गर्भाधान करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ११ ॥

दोषोंसे दूषित शुक्र और रजके लक्षण।

-स्वलिङ्गैर्दोषजं वदेत् ॥
रक्तेन कुणपं श्लेष्मवाताभ्यां ग्रन्थिसन्निभम्।
पूयाभं रक्तपित्ताभ्यां क्षीणं मारुतपित्ततः॥
कृच्छ्राण्येतान्यसाध्यं तु त्रिदोषं मूत्रविट्प्रभम्॥

वातादि दोषोंसे दूषितहुए शुक्र और रजको उनके लक्षणोंसे जानना चाहिये। जैसे यदि वायुसे दूषित शुक्र अथवा रज हो तो उसमें रूक्षता, श्यावता, अरुणता आदि लक्षण होंगे। यदि पित्तसे दूषित हो तो दुर्गन्धित और उष्णता आदि लक्षण होंगे। एवं कफसे दूषितमें स्निग्धता, पिच्छिलता और पांडुता आदि लक्षण होते हैं। रक्तसे दूषितमें मुर्देकीसी गन्ध होती है। कफवातसे दूषित ग्रन्थिके समान वर्णवाला रज या वीर्य होता है। रक्तपित्तसे दूषित पूयके समान वर्णवाला होता है। वातपित्तसे दूषित क्षीण होजाता है. ये सब प्रकारके दूषित लक्षणोंवाले रज और वीर्य प्रायः कष्टसाध्य होते है।

और त्रिदोषसे दूषित रज और वीर्य विष्टा तथा मूत्रके समान वर्णवाले होते हैं प्रायः त्रिदोषसे दूषित रज वीर्य असाध्य होते है॥ १२॥

दूषित वीर्य और रजकी चिकित्सा।

कुर्याद्वातादिभिर्दुष्टे स्वौषधम्-
-कुणपे पुनः॥
धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनसाधितम्।
पाययेत्सर्पिरथवा विपक्वमसनादिभिः॥ १३॥
पलाशभस्माश्मभिदा ग्रंथ्याभे-

वात दूषित रज वीर्यको शुद्ध करनेके लिये वात नाशक घृत पान करावे। पित्त दूषितमें पित्त शमन करनेवाले हिम कल्कादिकोंका प्रयोग करे। कफदूषित रज वीर्यमें कफनाशक द्रव्योंके योगसे चिकित्सा करे। तथा वात दूषित रज वीर्यमें स्नेहवस्ति आदिका प्रयोग करे। पित्तदूषितमें रेचन कराकर गोक्षुर, गुडूचि, विदारीकन्दादिसे सिद्ध दुग्धादिका प्रयोग करावें। कफदूषितमें वमन कराकर त्रिकटु आदिसे सिद्ध औषध प्रयोग करावें।

रक्तदूषित मुर्देकीसी गंधवाला रज वीर्य होय तो धावेके फूल, कत्था, अनारका छिलका और अर्जुनवृक्षकी छालके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया घृत पान करावे। अथवा असनादि (विजयसारादि) गणसे सिद्ध कियाहुवा घृतपान करावे॥ १३॥

ग्रन्थियुक्त रजवीर्य होय तो पलाशकी भस्म और पाषाणभेदसे सिद्ध कियाहुआ घृतपान कराना चाहिये।

-पूयरेतसि।
परूषकवटादिभ्याम्॥ १४॥-

यदि पूय (पीप) युक्त वीर्य होय तो परूषकादि गण और वटादि गण (जो सूत्रस्थान अध्याय १९ में कह आए हे) इनसे सिद्ध कियाहुआ घृतपान कराना चाहिये॥ १४॥

-क्षीणे शुक्रकरी क्रिया॥
स्निग्धं वान्तं विरिक्तं च निरूढमनुवासितम्।
योजयेच्छुक्रदोषार्तं सम्यगुत्तरबस्तिभिः॥१५॥

क्षीण वीर्य होय तो वीर्यको बढानेवाली क्रियाओंका प्रयोग करे। तथा वीर्यवर्द्धक घृतपान करावे और गोक्षुर, सतावर, तालमखाणा, कौंचबीजोंकी गिरी, वलाके बीज (खरेटीके बीज) गंगेरणकी छाल और मिलावेकी मज्जा इनका चूर्ण दूधसे खिलावे।

दूषित वीर्यवाले मनुष्यको प्रथम स्नेहन कराकर वमन विरेचन करावे, फिर निरूहण और अनुवासन वस्तिकर्म करावे, तदनन्तर उत्तरवस्तियोंका प्रयोग कराकर शुद्ध देह होनेपर वीर्यवर्द्धक घृत पान करावे॥ १५॥

विष्टाकीसी गन्धवाले वीर्यकी चिकित्सा।

संशुद्धो विट्प्रभे सर्पिर्हिंगुसेव्यादिसाधितम्।
पिबेत्॥ १६॥-

विष्टाके समान वीर्यवाले मनुष्यको स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन और वस्तिकर्मसे शुद्ध देह होनेपर हींग, खस, चित्रक, प्रियंगु, मजीठ, मृणाल और वाराहीकन्दसे सिद्ध घृतमें दारचीनी इलायची वंशरोचन और तेजपत्रका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना चाहिये॥ यहां अरुणदत्त लिखते हैं कि, विष्टा समान और मूत्र-

समान वीर्य असाध्य होता है परन्तु मूत्रसमान सर्वथा असाध्य होनेसे वाग्भटने मूत्रसमानकी चिकित्सा नहीं लिखी है। किन्तु स्नेहन स्वेदनादिके अनन्तर वमनादि पञ्चकर्मसे शुद्धशरीर होनेपर हिंगु आदि घृत दोनों प्रकारके वीर्य विकारोंमें हितकर होता है ॥ १६॥

ग्रन्थि और दुर्गन्धादि दोषयुक्त मासिक रजकी चिकित्सा।

–ग्रंथ्यार्तवे पाठाव्योषवृक्षकजं जलम् ॥
पेयं कुणपपूयास्रे चन्दनं वक्ष्यते तु यत्।
गुह्यरोगे च तत्सर्वं कार्यं सोत्तरबस्तिकम् ॥१७

ग्रन्थिसमान रक्तवाले मासिकधर्ममें पाठा, सोंठ, मिर्च, पीपल और कुटजसे सिद्ध कियाहुवा जल पिलाना चाहिये॥

मुर्देकीसी गंधवाले अथवा पूय समान रजमें चन्दनादिचूर्ण जलके साथ पीना चाहिये। तथा गुह्यरोगोंमें जो पिचुधारण आदि विधि कथन करेंगे वह सब करना चाहिये। और उत्तरबस्ति आदिका विधिवत् प्रयोग करना चाहिये।

यदि रक्त क्षीण होगया होय तो रक्तवर्द्धक और रक्तप्रवर्तक योगोंका प्रयोग करना चाहिये। रज वीर्यकी शुद्धिके लिये देश, काल, दोष, दूष्य और अवस्थादि विचार कर चिकित्सा करनी चाहिये॥ १७॥

गर्भकारक शुद्ध वीर्यके लक्षण।

शुक्रं शुक्लं गुरु स्निग्धं मधुरं बहुलं बहु।
घृतमाक्षिकतैलाभं सद्गर्भाय ॥ १८ ॥–

पुरुषका वीर्य–श्वेत, भारी, चिकना, मधुर, गाढा बहुत, घृतके समान, मधुके समान अथवा तैलके, समान वर्णवाला होतो शुद्ध और गर्भके करनेवाला जानना चाहिये। यहांपर वीर्य गर्भाधानमें प्रधान कारण होनेसे इसके वर्णादि कथन किये है. जैसे दूधमेंसे मन्थन करनेसे घृत अथवा पीडन करनेसे गन्नेका रस निकल आताहै ऐसेही स्त्रीसंगमें हर्षद्वारा सर्वशरीरगत वीर्य वीर्यधरा कलाद्वारा होताहुवा शरीरसे बाहर आकर गर्भाधान कर देताहै। यदि वीर्य घृतसमान वर्णवाला हो तो गौरवर्ण सन्तानको उत्पन्न करताहै। यदि मधुसमान वर्णवाला हो तो मध्यमवर्णवाली सन्तान उत्पन्न करताहै। और तैलसमान वर्णवाला होतो कृष्णवर्णवाली सन्तान पैदा करताहै ॥ १८ ॥

शुद्ध रजके लक्षण।

--आर्तवं पुनः ॥
लाक्षारसशशास्राभं धौतं यच्च विरज्यते ॥१९॥

जो स्त्रीका मासिक रज लाक्षारस अथवा शशेके रक्तके समान लाल वर्णका होय और धोडालनेसे वस्त्र परसे उतरजाय तथा वस्त्रपर धोनेके अनन्तर रजका कोई चिह्न न रहे उस मासिक रजको शुद्ध जानना चाहिये. ऐसा रज गर्भाधानमें कारण होता है॥१९॥

गर्भाधानका क्रम।

शुद्धशुक्रार्तवं स्वस्थं संरक्तं मिथुनं मिथः।
स्नेहैः पुंसवनैः स्निग्धं शुद्धं शीलितबस्तिकम्।
नरं विशेषात्क्षीराज्यैर्मधुरौषधसंस्कृतैः ॥
नारीं तैलेन माषैश्च पित्तलैः समुपाचरेत् ॥२०॥

जिन स्त्री पुरुषोंका वीर्य और मासिक रज शुद्ध हो ऐसे स्वस्थ स्त्री और पुरुषको जो धर्मानुकूल परस्पर प्रेम रखते हों ऐसे स्त्री-पुरुषको स्निग्ध और शुद्ध-काय होने पर बस्ती आदिसे शुद्ध होकर स्वस्थ होजानेके अनन्तर स्नेहपान और पुसवन कारक द्रव्योंको सेवन कराकर गर्भाधानके लिये मैथुनकी आज्ञा दे।

पुरुषको विशेष रूपसे वीर्यवर्धक औषधियोंके साथ सिद्ध कियेहुए दूध और घृत पान कराकर पुष्टवीर्य बनाना चाहिये.

स्त्रीको विशेष रूपसे तैल और माषान्न (उडद) आदि पित्तवर्द्धक पदार्थोंका सेवन कराकर गर्भाधानके लिये उसके रजको पुष्ट करना चाहिये।

इस प्रकार पुष्ट रज वीर्यवाले स्त्रीपुरुषोंके संयोगसे निरोग और उत्तम गर्भ होता है॥ २०॥

गर्भधारण करने योग्य स्त्रीके लक्षण।

क्षामप्रसन्नवदनां स्फुरच्छ्रोणिपयोधराम्।
स्रस्ताक्षिकुक्षिं पुंस्कामां विद्यादृतुमतीं स्त्रियम्॥

जिस स्त्रीका मुख प्रसन्न और किंचित् लज्जासे क्षाम हो और उस स्त्रीके कटिभाग और स्तन प्रस्फु-

रित हों. दोनों नेत्र और कुक्षिभाग कामातुर होनेके कारण स्रस्तसे प्रतीत हों तथा यह स्त्री ऋतुसे शुद्ध होकर पुरुषके कामनावाली हो ऐसी स्त्रीको गर्भधारण करनेके योग्य जानना चाहिये ॥ २१ ॥

गर्भाधानके समयमें हेतु ।

पद्मं संकोचमायाति दिनेऽतीते यथा तथा ।
ऋतावतीते योनिः सा शुक्रं नातः प्रतीच्छति २२

जैसे दिन व्यतीत होनेपर सूर्यविकासी कमल रात्रिके समय संकुचित होजाता है उसी प्रकार मासिकधर्मके दिनसे सोलहवीं रात्रिको गर्भाशयका मुखभी सर्वथा संकुचित हो जाता है फिर योनि पुरुषके वीर्यको ग्रहण नहीं कर सकती. इस कारण ऋतु स्नानके दिनसे बारह रात्रि पर्यन्त गर्भाधानका समय जानना चाहिये. इसके अनन्तर गर्भाधान नहीं होता ॥ २२ ॥

मासिकधर्म होनेमें कारण ।

मासेनोपचितं रक्तं धमनीभ्यामृतौ पुनः ।
ईषत्कृष्णं विगन्धं च वायुर्योनिमुखान्नुदेत् २३॥

महीने भरमें संचितहुआ स्त्रीके रजको धमनियों द्वारा मासिकऋतुके समय किंचित् कृष्ण और गन्ध रहित योनिके मुखसे रजप्रवर्तकवायु निकालता है ॥ २३ ॥

ऋतुमती स्त्रीका कर्तव्य ।

ततः पुष्पेक्षणादेव कल्याणध्यायिनी त्र्यहम् ।
मृजालंकाररहिता दर्भसंस्तरशायिनी ॥ २४ ॥
क्षैरेयं यावकं स्तोकं कोष्ठशोधनकर्षणम् ।
पर्णे शरावे हस्ते वा भुञ्जीत ब्रह्मचारिणी २५॥

जिस समयसे मासिकधर्मका रज दिखाईदे उसी समयसे कल्याणकी इच्छावाली स्त्री तीन दिन तक निम्न लिखित नियमोंका पालन करे, जैसे स्नान-अलङ्कारादिसे रहित होकर कुशाके विस्तरपर भूमिपर शयन करे और दूध या यवान्नसे सिद्ध यवागू आदि जो कोष्ठको शोधन करनेवाले और रजको निकालनेवाले हलके द्रव्य पत्रमें अथवा मट्टीके शरावमें डालकर हाथमें भोजन करे और यथार्थ ब्रह्मचर्यका पालन करे. यहांपर कोष्ठके शोधन कर्षणसे प्रयोजन केवल मलशुद्धिके साथ साथ गर्भाशयके शोधनसे है. इसी कारण यवागू आदिका पान करना हितकारी होताहै २४–२५

चतुर्थेऽह्नि ततः स्नात्वा शुक्लमाल्यांबरा शुचिः।
इच्छन्ती भर्तृसदृशं पुत्रं पश्येत्पुरःपतिम् २६॥

इसके अनन्तर चौथे दिन स्नान करके शुद्ध श्वेत वस्त्र माला आदि धारण कर अपने पतिके समान गुण–रूपवाले पुत्रकी इच्छावाली स्त्री ऋतु स्नानके अनन्तर प्रथम अपने पतिके दर्शन करे क्योंकि ऋतुस्नाता स्त्री प्रथम जिस पुरुषका दर्शन करती है उस स्त्रीके गर्भसे उसीके समान गुण स्वरूपवाला पुत्र उत्पन्न होता है २६

गर्भाधानके दिन पुत्र तथा पुत्री होनेमें हेतु ।

ऋतुस्तु द्वादश निशाः पूर्वास्तिस्रश्च निन्दिताः ।
एकादशी च युग्मासु स्यात्पुत्रोऽन्यासु कन्यका

आचार्योंने ऋतुदर्शनसे बारह रात्रियें गर्भाधानके लिये मानी हैं. इनमें पहली तीन रात्रि तो निन्दित है हीं. क्योंकि प्रथम ३ दिन रात्रिमें रजकी अधिक प्रवृत्तिसे एकतो गर्भाधान ही नहीं हो सकता, दूसरे इन रात्रियोंमें स्त्रीसंग करनेसे अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है, तीसरे यदि प्रथम तीन रात्रियोंमें गर्भाधान हो जाय तो उस गर्भसे रोगी दुष्ट और उत्पन्न होते ही मरजानेवाली दूषित संतान उत्पन्न होती है—इस कारण प्रथम तीन रात्रियोंमें स्त्रीपुरुषको परस्पर दर्शन करनेका भी निषेध है. इसी प्रकार एकादशी और त्रयोदशीकी रात्रिको किसीके मतमें ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रिको गर्भाधान नहीं करना चाहिये. क्योंकि इन दो रात्रियोंमें भी जो गर्भाधान होता है उससे नपुंसक हीनाङ्ग और दुर्बल संतान उत्पन्न होती है । अब बाकी जो अवशिष्ट रात्रियोंमें यदि चौथी छठी आठवी और दशवीं रात्रिको गर्भाधान होगा तो सम रात्रियोंमें स्वाभाविक वीर्यकी अधिकताके कारण इस गर्भसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार पांचवीं सातवीं और नववीं रात्रिके धारण कियेहुए गर्भसे मासिक रजकी स्वाभाविक अधिकताके कारण कन्याकी उत्पत्ति होती है ॥ २७ ॥

गर्भाधानका क्रम ।

उपाध्यायोऽथ पुत्रीयं कुर्वीत विधिवद्विधिम् ।

नमस्कारपरायास्तु शूद्राया मंत्रवर्जितम्॥२८॥
अवंध्य एवं संयोगः स्यादपत्यं च कामतः२९॥

गर्भाधानके लिये उपाध्याय पुत्रेष्टि यज्ञ विधिपूर्वक करावे यदि ब्राह्मण क्षत्री और वैश्यवर्णके यहां यज्ञ कराना हो तो वैदिक मंत्रोंके द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराना चाहिये. यदि शूद्रास्त्रीसे यज्ञ कराना हो तो वैदिक मंत्रोंको छोडकर नमस्कार पूर्वक सत्र विधि कराना चाहिये. इस प्रकार विधिपूर्वक स्त्रीपुरुषका संयोग होनेसे इच्छानुसार योग्य संतानकी उत्पत्ति होती है और स्त्रियोंमें वंध्यापनका दोष नहीं होता ॥२८॥ २९ ॥

सन्तोऽप्याहुरपत्यार्थं दंपत्योः संगतं रहः ।
दुरपत्यं कुलाङ्गारो गोत्रे जातं महत्यपि ॥३०॥

महात्मा पुरुषभी सन्तानके लिये एकान्तमें धर्मानुसार स्त्री संगको श्रेष्ठ मानते हैं। क्योंकि विना विधिसे उत्पन्नहुई दुष्टसन्तान बडे भारी अच्छे कुल और गोत्रमें उस वंश और गोत्रको दूषित करनेमें हेतुभूत कुलाङ्गार रूप उत्पन्न होती है । इस कारण शास्त्रानुसार धर्मकी मर्यादाकी रक्षा करतेहुए ही योग्य सन्तानके लिये गर्भाधान करना चाहिये ॥ ३० ॥

इच्छानुसार सन्तान पैदा करनेकी विधि ।

इच्छेतां यादृशं पुत्रं तद्रूपचरितौ च तौ ।
चिन्तयेतां जानपदांस्तदाचारपरिच्छदान्॥३१

स्त्री पुरुष जिस प्रकारकी सन्तान उत्पन्न करना चाहे उसके अनुरूप गुण और चरित्रोंको धारणकरते हुए तदनुरूप देश कालका स्मरण करतेहुए तथा उसी प्रकारके आचार और वस्त्रादिकको धारण करें तथा तदनुसार पुत्रेष्टि यज्ञ आदि विधान करें ॥ ३१ ॥

कर्मान्ते च पुमान्सर्पिःक्षीरशाल्योदनाशितः।
प्राग्दक्षिणेन पादेन शय्यां मौहूर्तिकाज्ञया ३२
आरोहेत् स्त्री तु वामेन तस्य दक्षिणपार्श्वतः ।
तैलमाषोत्तराहारा तत्र मंत्रं प्रयोजयेत् ॥
"अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धाता।
त्वां दधातु विधाता त्वां दधातु ब्रह्मवर्चसा भवेति
ब्रह्मा बृहस्पतिर्विष्णुःसोमःसूर्यस्तथाश्विनौ ।
भगोऽथ मित्रावरुणौ वीरं ददतु मे सुतम्"॥३३

पुत्रेष्टि यज्ञ करनेके अनन्तर उत्तम पुत्रकी इच्छावाला पुरुष घृत दूध और शालि चावलका भोजन करे और स्त्री तैल तथा माषान्न प्रधान आहार करे. आहारके परिपाकके अनन्तर रात्रिके समय यथोक्त मुहूर्तमें पुरुष प्रथम दहना पांव शय्यापर रखकर चढे और स्त्री पुरुषके दहिनी ओर शय्यापर प्रथम वाम पांवको रखकर चढे । तदनन्तर गर्भाधानसे पूर्व—(अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धाता त्वां दधातु विधाता त्वां दधातु ब्रह्मवर्चसा भवेति । ब्रह्मा बृहस्पतिर्विष्णु सोमः सूर्यस्तथाश्विनौ । भगोऽथ मित्रावरुणौ वीरं ददतु मे सुतम्)॥ इस मंत्रका उच्चारण करे ॥ ३२॥३३ ॥

गर्भ ग्रहण करनेकी विधि ।

सांत्वयित्वा ततोऽन्योन्यं संविशेतां मुदान्वितौ
उत्ताना तन्मना योषित्तिष्ठेदंगैः सुसंस्थितैः ॥
तथा हि बीजं गृह्णाति दोषैः स्वस्थानमास्थितैः

फिर आपसमें प्रेमपूर्वक प्रसन्न होतेहुए एक दूसरेको सान्त्वना देवें तदनन्तर स्त्री शय्यापर उत्तान शयन करके अपने सब अगोंको सीधे रक्खे. इस प्रकार उत्तान शयन करतेहुए प्रसन्न चित्तवाले धर्मयुक्त पुरुषसे स्त्री वीर्यको ग्रहण करनेसे निर्दोष गर्भको धारण करतीहै क्योंकि यदि स्त्री औंधी शयन करे तो गर्भा धानके समय वायु बढ़कर गर्भको विकृत करता है. यदि दक्षिण करवट लेवे तो गर्भाशयको कफ दूषित कर देती है और वाम करवट लेटनेसे पित्त गर्भको दूषित करता है. इस कारण उत्तान शयन करके ही गर्भको धारण करना चाहिये ॥ ३४ ॥

सद्योगृहीतगर्भाके लक्षण ।

लिङ्गं तु सद्योगर्भाया योन्यां बीजस्य संग्रहः ।
तृप्तिर्गुरुत्वं स्फुरणं शुक्रास्नानुबन्धनम् ।
हृदयस्पंदनं तंद्रा तृड्ग्लानिर्लोमहर्षणम्॥३५॥

तुरन्त गर्भधारण की हुई स्त्रीकी योनि वीर्यको ग्रहण करके रोक लेती है और स्त्रीको तृप्तिपनसा प्रतीत

होने लगता है तथा गर्भाशयमें किंचित् भारीपन और स्फुरण प्रतीत होता है तथा वीर्य और रज योनिसे बाहर नहीं निकलते. स्त्रीके हृदयमें फडकन, तन्द्रा, ग्लानि और रोमांच होना ये लक्षण होते हैं ॥ ३५ ॥

पुंसवन संस्कारका प्रयोजन ।

अव्यक्तः प्रथमे मासि सप्ताहात्कलली भवेत् । गर्भःपुंसवनान्यत्र पूर्वं व्यक्तेः प्रयोजयेत् ॥ ३६ ॥

प्रथम मासमें गर्भके सब लक्षण छिपेहुए रहतेहैं क्योंकि गर्भाधानके दिनसे सात दिनके अनन्तर हर-एक मास पर्यन्त गर्भ कलल (कीचड) केसे रूपमें रहता है इसलिये गर्भके लक्षण प्रगट होनेसे प्रथम जबतक कललभूत गर्भ व्यक्तताको धारण करे तबतक पुंसवन संस्कार किया जासकता है। पुंसवन गर्भमें पुरुष बनानेके संस्कारको कहते हैं । इस संस्कारसे कललरूप गर्भ योग्य पुरुषके अंगोंको धारणकर योग्यपुत्र होकर प्रगट होता है ॥ ३६ ॥

दैव और पुरुषार्थकी व्याख्या ।

बली पुरुषकारो हि दैवमप्यतिवर्तते ॥ ३७ ॥

संसारमें मनुष्योंका जीवन, मरण, सुख और दुःख ये सब दैव और पुरुषार्थके आधीन हैं । मनुष्यके पूर्वज-न्मके कियेहुए कर्मको दैव (प्रारब्ध) कहते हैं और इस जन्मके कियेहुए कर्मको पुरुषार्थ कहते हैं. बलवान् दैव निर्बल पुरुषार्थको दबाकर अपने फलको करता है. इसी प्रकार बलवान् पुरुषार्थ निर्बल दैवके कार्यको नष्ट-कर अपने फलको कर देता है । इस कारण प्रचण्ड पुरुषार्थ द्वारा मनुष्य अपने कार्यकी सिद्धि करही लेता है इसी लिये गर्भाधानके अनन्तर योग्य पुत्र उत्पन्न करनेके लिये पुंसवन संस्कार करना चाहिये ॥ ३७ ॥

पुंसवन संस्कारकी विधि ।

पुष्ये पुरुषकं हैमं राजतं वाथवाऽऽयसम् । कृत्वाऽग्निवर्णं निर्वाप्य क्षीरे तस्यांजलिं पिबेत्

पुष्य नक्षत्रमें सुवर्ण अथवा चान्दीका पुरुषाकार पुत्तला बनाकर अथवा कान्तलोहका पुरुषाकार पुत्तल बनाकर अग्निमें तपाकर लालवर्ण होनेपर चार पल दूधमें इस पुत्तलको बुझावे इस पुत्तलके बुझाए हुए दूधके पीनेसे गर्भमें पुंसवन संस्कार होकर गर्भसे पुत्र उत्पन्न होता है यहांपर बछडेवाली निरोग गौका दूध लेना चाहिये ३८

गौरदण्डमपामार्गंजीवकर्षभसैर्यकान् । पिबेत्पुष्ये जले पिष्टानेकद्वित्रिसमस्तशः ॥ ३९

अथवा १ सफेद डंडीका अपामार्ग, २ जीवक, ३ ऋषभक और श्वेतपुष्पकी कटसरैया इन चार द्रव्यों-मेंसे एक या दो अथवा तीन या चार लेकर पुष्य नक्षत्रमें जलके योगसे पीसकर गर्भवती स्त्री प्रथम मासमें पीवे तो गर्भसे योग्य पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ३९

क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे स्वयम् । पुत्रार्थं दक्षिणे सिञ्चेद्वामे दुहितृवांछया ॥ ४० ॥

अथवा सफेद फूलकी कटेलीकी जडको गौके दूधमें पीसकर दाहिनी नासिकाके छिद्रसे गर्भवती स्त्री प्रथम या द्वितीय मासमें पीवे तो गर्भसे पुत्र उत्पन्न होता है । यदि इसी योगको वामनासा पुटसे पीवे तो गर्भसे कन्या उत्पन्न होती है. इस कारण सफेद कटे-लीके मूलको गर्भवती स्त्री यदि पुत्रकी इच्छा करे तो दहिने नासा पुटसे पीवे. यदि कन्याकी इच्छा रखती हो तो वाम नासा पुटसे पीवे ॥ ४० ॥

पयसा लक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पादस्थितिप्रदम् । नासयाऽऽस्येन वा पीतं वटशृङ्गाष्टकं तथा ॥ ४१ औषधीर्जीवनीयाश्च बाह्यांतरुपयोजयेत् ॥ ४२ ॥

लक्ष्मणाकी जडको दूधमें रगडकर दहिनी नासि-कासे पीनेसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है । ऐसे ही वट-वृक्षके ८ सूंगों (तोतेके चोंचके समान निकलनेवाली वटकी कोंपल) को गोदूधमें पीसकर नासिकाके द्वारा अथवा मुखके द्वारा पीनेसे भी गर्भसे पुत्र उत्पन्न होताहै ।

इसी प्रकार जीवनीयगणकी दश औषधियें खाने, पीने और उद्वर्तन स्नानादि योगसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है यहांपर जीवनी, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक,

१ प्रभावस्याऽचिंत्यत्वादेतत्सत्यावच्छिन्नत्वम् । जीवनीया या औषध्यो जीवन्ती काकोल्याद्या दश शोधनादिगणसंग्रहोक्तास्ता बाह्यान्तरुपयोजयेत् । तत्र स्नानोद्वर्तनादिना बाह्य उपयोगः । आहारपानादिनाऽन्तरुपयोगः इति सर्वाङ्गसुन्दरयामरुणदत्तः ॥

ऋषभक, मेदा महामेदा, माषपर्णी, मुद्गपर्णी और मुलहठी इन दश द्रव्योंको जीवनीयदशक कहते हैं. इस जीवनीयगणके द्रव्योंको दूधसे पीना आदि आभ्यन्तर उपयोग और उद्वर्तन स्नानादिमें प्रयोग करना गर्भसे पुत्रकी उत्पत्ति और गर्भकी स्थितिका कारण कहा है. स्नानादिका बाह्य प्रयोग अचिन्त्य प्रभावके कारण ही हितकर मानागया है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

गर्भवतीके साथ उपचार।

उपचारः प्रियहितैर्भर्त्रा भृत्यैश्च गर्भधृक्।
नवनीतघृतक्षीरैः सदा चैनामुपाचरेत् ॥ ४३॥

गर्भवती स्त्रीके साथ पति और भृत्यादिकोंका प्रिय और हित उपचार गर्भके स्थिर रखनेमें और पुष्ट करनेमें हितकारी होता है तथा गर्भवती स्त्रीको घृत मक्खन और दूध आदि हितकारक पदार्थोंका प्रयोग कराते रहना चाहिये, जिससे गर्भका बालक सुन्दर पुष्ट और सर्वगुणसंपन्न हो ॥ ४३ ॥

गर्भवतीके लिये अहित पदार्थोंका निषेध।

अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु।
अकालजागरस्वप्नकठिनोत्कटकासनम् ॥ ४४॥
शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धाविधारणम्।
उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णगुरुविष्टंभिभोजनम् ॥४५
रक्तं निवसनं श्वभ्रकूपेक्षां मद्यमामिषम्।
उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो नेच्छंति तत्त्यजेत्।
तथा रक्तस्रुतिं शुद्धिं बस्तिमामासतोऽष्टमात्।
एभिर्गर्भःस्रवेदामः कुक्षौ शुष्येन्म्रियेत वा ।४६

गर्भवती स्त्रीको मैथुन अतिव्यायाम और अति भार उठाना नहीं चाहिये तथा सीधे लेटकर भारी वस्त्रको ऊपर धारण करना, विना समय जागना, विना समय सोना, कठिन पदार्थोंका खाना, कठोर आसनपर बैठना, पावोंके भार बैठना, बहुत जोरसे खांसना, शोक, क्रोध, भय और उद्वेग करनेवाले हेतुवोंका सेवन करना, मल मूत्रादि वेगोंका रोकना, अपनी शुभ इच्छाओंको रोकना, उपवास करना, रास्ता चलना, तीक्ष्ण, उष्ण, भारी, और विष्टम्भीपदार्थोंका भोजन करना त्याग देना चाहिये। ऐसे ही रक्तादिका देखना, प्रवास करना, आकाशकी ओर और कूयेंकी तरफ देखना, मद्य और मांस खाना उत्तान शयन करना तथा अन्य जिन अनुचित वस्तुओंको वृद्धस्त्रियें उचित नहीं समझती हों अथवा गर्भवतीको जिन वस्तुओंसे द्वेष हो उन सबको त्याग देना चाहिये. ऐसेही गर्भवती स्त्रीको रक्तस्राव कराना वमन विरेचन आदि शुद्धि और अष्टम मासमें प्रथम वस्तिकर्म नहीं कराना चाहिये। गर्भवती स्त्रीके लिये अष्टम मासमें केवल अनुवासनवस्तिका सुखप्रयोग करना हितकर होता है। इसके अतिरिक्त वस्तिकर्म भी नहीं करना. क्योंकि इन रक्तस्राव और वमन विरेचनादिसे तथा मैथुनादि उपरोक्त अहित आचरणसे कच्चे गर्भका तो स्राव होनेका भय है और पक्क गर्भका पतन होना या सूख जाना अथवा मृत्यु हो जानेका भय होता है इस कारण गर्भवती स्त्रीको यह मैथुनादि अहित आचरण नहीं करना चाहिये ॥ ४४—४६ ॥

वातलैश्च भवेद्गर्भः कुब्जान्धजडवामनाः।
पित्तलैःखलतिःपिंगःश्वित्री पांडुःकफात्मभिः४७

वातकारक अधिक पदार्थोंको गर्भवती अधिक सेवन करे तो उसके गर्भाशयमें वायु प्रकुपित होकर गर्भके बालकको कुबड़ा, अन्ध, जड अथवा वामन बना देता है। ऐसेही अधिक पित्तकारक आहार विहारसे गर्भका बालक खल्वाट अथवा पिंगलवर्णवाला होजाता है। एवं कफकारक अधिक आहार विहारसे श्वित्ररोगी या पांडुवर्णवाला बालक उत्पन्न होता है. इस कारण किसीभी दोषको प्रकुपित करनेवाले आहार विहारका अतिसेवन नहीं करना चाहिये ॥ ४७ ॥

व्याधींश्चास्यामृदुसुखैरतीक्ष्णैरौषधैर्जयेत् ॥४८

यदि गर्भवती स्त्रीको कोई व्याधि उत्पन्न होजाय तो उसको मृदु और सुखकारी स्वल्प तथा कोमल औषधिसे चिकित्सा करना चाहिये तथा रोगके चिकित्साके समयभी कोई तीक्ष्ण पदार्थ या औषधि ऐसी नहीं देनी चाहिये जो गर्भके लिये हानिकर हो ॥ ४८ ॥

गर्भसे पुरुष स्त्री या नपुंसक होनेका क्रम।

द्वितीये मासि कललाद्घनः पेश्यथवाऽर्बुदम्।
पुंस्त्रीक्लीबाः क्रमात्तेभ्यः—॥ ४९ ॥

दूसरे महीनेमें उस गर्भरूप कललका घन अथवा पेशी अथवा अर्बुदकासा रूप बन जाता है. यदि उस कललका घन पिण्ड बने तो उसका पुरुषगर्भ होता है यदि पेशी बन जाय तो उस गर्भसे कन्या उत्पन्न होती है और यदि अर्बुदाकार बन जायतो उस गर्भसे नंपुसक बालक उत्पन्न होता है ॥ ४९ ॥

व्यक्त गर्भके लक्षण ।

—तत्र व्यक्तस्य लक्षणम् ।

क्षामता गरिमा कुक्षौ मूर्छा छर्दिररोचकः ॥५०
जृंभा प्रसेकः सदनं रोमराज्याः प्रकाशनम् ।
अम्लेष्टता स्तनौ पीनौ सस्तन्यौ कृष्णचूचुकौ ।
पादशोफो विदाहोऽन्ये श्रद्धाश्च विविधात्मिकाः

गर्भ व्यक्त हो जानेसे गर्भवती स्त्रीके ये लक्षण होते है, जैसे मुखपर क्षामता, कुक्षिमें भारीपन, मूर्च्छा, छर्दी, अरुचि, जम्भाई आना, मुखसे लारका गिरना, अंगोंका सोयासा जाना और रोम राजिका प्रकाशित होना, खट्टीचीजों पर इच्छा होना, स्तनोंका पुष्ट और दूध युक्त होना, स्तनोंके अग्र भागका कृष्ण वर्ण होना, पावोंपर सूजनसी प्रतीत होना, अन्नका विदाही परिपाक होना, और अनेक दैवाधीन अनेक वस्तुओंपर इच्छाका चलायमान होना॥ ५० ॥५१ ॥

गर्भवतीको इच्छितपदार्थ देनेका क्रम ।

मातृजं ह्यस्य हृदयं मातुश्च हृदयेन तत् ।
संबद्धं तेन गर्भिण्या नेष्टं श्रद्धावमाननम् ॥५२॥
देयमप्यहितं तस्यै हितोपहितमल्पकम् ।
श्रद्धाविघाताद्गर्भस्य विकृतिश्च्युतिरेव वा ॥५३

गर्भके बालकका हृदय मातासे बनता है इस कारण गर्भका हृदय माताके हृदयसे संबन्ध रखता है । इसीलिये गर्भवतीकी जिस समय जैसी इच्छा हो वह पूरण कर देनी चाहिये. गर्भके हृदयसे संबन्ध रखनेवाला गर्भवतीका हृदय होनेसेही गर्भवतीको दो हृदयवाली मानाजाता है । इस दौहृद कालमें गर्भवतीकी इच्छाका विघात नहीं करना चाहिये । गर्भवती स्त्रीका मन यदि कुपथ्यपर चले तो उसकी इच्छानुसार वह अहित पदार्थ भी उसको हितकारी बना कर थोडा थोडा दे देना चाहिये. जिससे गर्भवतीकी इच्छाका विघात न होवे. क्योंकि गर्भवतीकी इच्छाका विघात करने (उसकी जिस पदार्थ पर उत्कट इच्छा हो उसको न देने) से गर्भकी विकृति हो जाती है अथवा गर्भपात भी हो सकताहै. इस कारण गर्भवतीका मन जिस वस्तुपर चले उसको वही पदार्थ पथ्यरूपमें परिणत कर दे देना चाहिये । "जिस गर्भवतीकी सब इच्छाएँ यथासाध्य पूर्ण कर दी जाती है उसके गर्भसे योग्य बल वीर्य सम्पन्न सन्तान उत्पन्न होती है" ॥५२॥५३॥

तीसरे महीनेमें अंगोंकी व्यक्ति ।

व्यक्तीभवति मासेऽस्य तृतीये गात्रपञ्चकम्५४
मूर्धा द्वे सक्थिनी बाहू सर्वसूक्ष्माङ्गजन्म च ।
सममेव हि मूर्धाद्यैर्ज्ञानं च सुखदुःखयोः॥५५॥

तीसरे महीनेमें गर्भके हाथ पांव और मस्तक ये पांच अंग प्रगट हो जाते है तथा गर्भमें होनेवाले सूक्ष्म अंग प्रत्यंग भी प्रगट होजाते हैं और मस्तक आदिके साथही सुख दुःखके अनुभव करनेवाले ज्ञानतन्तु भी प्रगट हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

गर्भकी पुष्टिका क्रम ।

गर्भस्य नाभौ मातुश्च हृदि नाडी निबध्यते ।
यया स पुष्टिमाप्नोति केदार इव कुल्यया॥५६

गर्भकी नाभीमें जो नाल लगी रहती है वह गर्भकी माताके हृदयसे बंधी रहती है उसके द्वारा माताके आहारजनित रससे गर्भ पुष्ट होता रहता है जैसे किसी खेतमें जलकी कूलसे खेतके अन्दरके शस्यकी पुष्टि होतीरहती है उसी प्रकार गर्भकी नाभिसे लगेहुए नालद्वारा माताके आहारजनित रसका उपस्नेह उस गर्भको पुष्ट करता रहता है ॥ ५६ ॥

चौथे महीने आदिसे संपूर्ण अंगोंकी व्यक्तता आदि ।

चतुर्थे व्यक्तताङ्गानां चेतनायाश्च पञ्चमे ।
षष्ठे स्नायुसिरारोमबलवर्णनखत्वचाम् ।
सर्वैःसर्वाङ्गसंपूर्णो भावैःपुष्यति सप्तमे ॥ ५७॥

चौथे महीनेमें सम्पूर्ण अंग प्रगट हो जाते है. पांचवें महीनेमें गर्भमें चेतना शक्ति आजाती है छठे

महीनेमें स्नायु, सिरा, रोम बल, वर्ण और त्वचा ये सब उत्पन्न हो जाते हैं. सातवें महीनेमें सब भावोंसे सर्वाङ्ग सम्पूर्ण गर्भ पुष्ट हो जाता है ॥ ५७ ॥

सातवें महीनेमें गर्भिणीके शरीरमें होनेवाले खुजली आदिके उपाय।

गर्भेणोत्पीडिता दोषास्तस्मिन् हृदयमाश्रिताः।
कण्डूं विदाहं कुर्वंति गर्भिण्याःकिक्किसानिच ॥
नवनीतं हितं तत्र कोलांबुमधुरौषधैः।
सिद्धमल्पपटुस्नेहं लघु स्वादु च भोजनम्॥५९
चन्दनोशीरकल्केन लिंपेदूरुस्तनोदरम्।
श्रेष्ठया चैणहरिणशशशोणितयुक्तया ॥ ६०॥
अश्वघ्नपत्रसिद्धेन तैलेनाभ्यज्य मर्दयेत्।
पटोलनिंबमंजिष्ठासुरसैः सेचयेत्पुनः ॥
दार्वीमधुकतोयेन मृजां च परिशीलयेत्॥६१॥

गर्भवती स्त्रीके हृदयाश्रित दोष गर्भसे उत्पीडित होकर गर्भवतीके शरीरमें खुजली दाह और किक्किस (कौंचके फलीके लग जानेसे जो कष्ट और खुजली होती है उसके समान होनेवाली पीड़ा) उत्पन्न कर देते है।

तब इन खुजली विदाहादिकोंके ऊपर- जलसे धुला हुआ मक्खन लगाना अथवा मधुर औषधियोंसे सिद्ध-कियेहुए जलसे धोना हितकारी होता है, या मक्खन और मधुर गणसे सिद्ध थोडा सेंधानमक मिले हुए हलके और मधुर भोजन देना चाहिये। तथा चन्दन और खसके कल्कका उरू, स्तन और उदरपर लेप करना हितकारी होता है। ऐसे ही स्थलपद्मके रसमें एण, हरिण और शसेका रक्त मिलाकर लेप करना हितकारी होता है।

अथवा कनेरके पत्तोंसे सिद्ध कियाहुआ तेल लगाकर ऊपरसे पटोल पत्र, मजीठ, नीम और बोल (गन्ध द्रव्य) को बारीक पीसकर मर्दन करे फिर दारूहलदी और मुलहठीके जलसे सेचन करे और स्नानादिसे शुद्ध शरीर रक्खे. यहांपर वृद्धवाग्भट्टमें मुलहठी और चमेलीके जलसे सेचन करना लिखा है। गर्भवतीको इस प्रकारकी खुजली आदिमें खुजलाना नहीं चाहिये किन्तु इस उपरोक्त विधिसे खुजली और दाहको शमन करनेका उपाय करना चाहिये५८-६१॥

आठवें महीनेमें ओजकी अस्थिरता।

ओजोऽष्टमे संचरति मातापुत्रौ मुहुःक्रमात् ६२
तेन तौ म्लानमुदितौ तत्र जातो न जीवति।
शिशुरोजोऽनवस्थानान्नारी संशयिता भवेत्६३

रससे लेकर वीर्य पर्यन्त जो सात धातुयें हैं, उनका जो परम तेज है उनको ओज कहते हैं इस ओजकी विशेष व्याख्या सूत्रस्थानमें की जाचुकी है। आठवें महीनेमें यह ओज माता और गर्भके शरीरमें वार बार संचार करता है. इसलिये वे दोनों कभी मुदित और कभी म्लान हो जाते हैं। जब ओजका संचार गर्भमें होता है तब माता म्लान और क्लान्तसी होजाती है तथा गर्भ प्रसन्न होजाता है. जब ओज मातामें आजाता है तो गर्भ क्लान्त होजाता है यही कारण है कि आठवें महीनेमें ओज स्थिर न होनेके कारण आठवें महीनेमें उत्पन्नहुआ बालक जीवित नहीं रह सकता, किन्तु स्त्रीके जीवनमें संशय रहता है. यदि अष्टम मासमें बालककी उत्पत्तिके समय स्त्रीका ओज गर्भके सहित निकल जाता है तो स्त्रीकी भी मृत्यु होजाती है अन्यथा स्त्री जीवित रहती है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अष्टम मासका कर्तव्य।

क्षीरपेया च पेयाऽत्र सघृतान्वासनं हितम्।
मधुरैः साधितं शुद्ध्यै पुराणशकृतस्तथा॥६४
शुष्कमूलककोलाम्लकषायेण प्रशस्यते।
शताह्वाकल्कितो बस्तिः सतैलघृतसैन्धवः ६५

आठवें महीनेमें गर्भवती स्त्रीको दूध और घृतसे सिद्ध कीहुई पेया पिलाना चाहिये. तथा मधुर द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृतका सेवन कराना चाहिये, एव पुराने मलको शुद्ध करनेके लिये अनुवासन वस्ति करना हित-कारी होता है। तथा सूखीहुई मूली और उन्नाबके क्काथमें मीठी सौंफका कल्क डालकर और उसमें मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए तैल घृत और सेंधानमक मिला-कर वस्ति करना हितकारी होता है। इस वस्तिके करनेसे शुष्क मल निकलनेसे कोष्ठमें दोषका प्रकोप नहीं होता और वातशमनार्थ अनुवासन करदेनेसे प्रस-

वकालमें भी सुख रहता है। इसलिये अष्टम मासमें यह वस्तिकर्म करदेना चाहिये ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

प्रसवका कार्य ।

तस्मिंस्त्वेकाहयातेऽपि कालः सूतेरतः परम् ।
वर्षाद्विकारकारी स्यात्कुक्षौ वातेन धारितः ६६

आठवां महीना व्यतीत होनेके अनन्तर नवम मासका एक दिन लग जानेपरभी प्रसव काल माना-जाता है. इस कारण नवम और दशम मास तथा एकादश और द्वादश मासभी प्रसवकालके मास कहे जातेहैं.

एक वर्षसे अनन्तर यदि वायुसे शोषण या धारण किया जाकर गर्भ स्थिर रहे तो वह गर्भ विकारकारी हो जाता है ॥ ६६ ॥

नवम मासमें कर्तव्य ।

शस्तश्च नवमे मासि स्निग्धो मांसरसौदनः ।
बहुस्नेहा यवागूर्वा पूर्वोक्तं चानुवासनम्॥६७॥
तत एव पिचुं चाऽस्या योनौ नित्यं निधापयेत्।
वातघ्नपत्रभङ्गांभः शीतं स्नानेऽन्वहं हितम् ।
निस्नेहाङ्गीं न नवमान्मासात्प्रभृति वासयेत्।६८

नववें महीनेमें घृत दूध आदि अधिक स्नेहवाले पदार्थ मांस रस शालिभात और यवागूका सेवन कराना हितकारी होता है. तथा अष्टम मासमें कहे हुए घृत तैलोंसे अनुवासन कर्म करना (चिकनाईकी पिच-कारी लगाना) हितकारी होता है ।

नवमें महीनेसे लेकर गर्भवतीकी योनिमें स्निग्ध पिचु (फोहा) तैल या घृतमें भिगोया हुआ नित्य धारण करना चाहिये तथा वातनाशक पत्रोंके काथको शीतलकर उससे नित्य स्नान कराना चाहिये ।

तथा नववें महीनेसे लेकर गर्भवती स्त्रीको सदैव तैलादिसे अपने सब अंग चिकने रखने चाहिये इससे वायुका प्रकोप न होकर यथाकाल ठीक प्रसव हो जाता है इस कारण नववें महीनेसे विना चिकने अंगोंके गर्भवतीको नहीं रखना चाहिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

गर्भमें पुत्र पुत्री और नपुंसकके व्यक्त लक्षण ।

प्राग्दक्षिणस्तनस्तन्या पूर्वं तत्पार्श्वचेष्टिनी ६९
पुन्नामदौहृदप्रश्नरता पुंस्त्वप्रदर्शिनी।
उन्नते दक्षिणे कुक्षौ गर्भे च परिमण्डले॥७०॥
पुत्रं सूतेऽन्यथा कन्यां या चेच्छति नृसंगतिम्
नृत्यवादित्रगांधर्वगंधमाल्यप्रिया च या॥७१॥

जो गर्भवती स्त्री सब चेष्टाए प्रथम दहिने अगसे करे और जिसके दहिने स्तनमें प्रथम दूधका संचार हो और दौहृदके समय जो पुरुषसंज्ञक फल आदिकी इच्छा करे और स्वप्नमेंभी पुरुष सज्ञकही वस्तुओंको देखे तथा उस गर्भवतीको दक्षिण कुक्षिमें ऊंचापन प्रतीत हो और गर्भ दहिनी कुक्षिमें व्यक्तप्रतीत हो. उसके गर्भसे पुत्र उत्पन्न होता है ।

इससे विपरीत अर्थात् जिस गर्भवतीकी इच्छा स्त्रीसंज्ञक वस्तुओंपर हो जिसको स्वप्नमें स्त्रीसंज्ञक वस्तुयें दिखाई दें जो सब चेष्टायें वाम अंगोंसे प्रथम करे तथा पुरुषके संगकी इच्छा करे. एव नाचना, गाना, बाजा बजाना, गंध, माल्य आदिको प्रेमसे चाहती हो उसके गर्भमे कन्या उत्पन्न होती है ॥ ६९-७१ ॥

क्लीबं तत्संकरे तत्र मध्यं कुक्षे : समुन्नतम् ।
यमौ पार्श्वद्वयोन्नामात्कुक्षौ द्रोण्यामिव स्थिते ॥

जिस गर्भवती स्त्रीमें पुत्र और पुत्रीवाले दोनोंके सम्मिलित लक्षण प्रतीत हों और पेटके मध्यभागमें ऊंचापन प्रतीत हो उस गर्भसे नपुंसक सन्तान उत्पन्न होती है ।

यदि स्त्रीकी दोनों कुक्षियें पृथक् २ उन्नतसी प्रतीत हों और मध्यभाग द्रोणीके समान निम्न हो उस गर्भसे दो सन्तान उत्पन्न होती हैं ॥ ७२ ॥

प्रसुतिका गृहनिर्माण विधि ।

प्राक् चैव नवमान्मासात्सूतिकागृहमाश्रयेत् ।
देशे प्रशस्ते संभारैः संपन्नं साधकेऽहनि ।
तत्रोदीक्षेत सा सूतिं सूतिकापरिवारिता ॥७३

नवम महीना लगनेसे प्रथमही स्त्रीको प्रसूतिका गृहमें निवास करलेना चाहिये इसलिये किसी अच्छे देशमें शुभ पुण्य नक्षत्रमें शुभ मुहूर्त दिन देखकर प्रस-वके समयपर काम आनेयोग्य सम्पूर्ण वस्तुयें उस प्रस-वगृहमें सम्पादन करलेना चाहिये और इस प्रसू-

तिका गृहमें शुभ मुहूर्तमें मङ्गलाचरण पूर्वक प्रवेश करना चाहिये.

गर्भवती स्त्रीको इस घरमें प्रसन्नतापूर्वक अपनी विश्वा-सपात्र हितैषी चतुर स्त्रियोंके साथ प्रसवके समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये ॥ ७३ ॥

आसन्न प्रसवाके लक्षण।

अद्यश्वःप्रसवे ग्लानिःकुक्ष्यक्षिश्लथता क्लमः ७४
अधोगुरुत्वमरुचिः प्रसेको बहुमूत्रता।
वेदनोरूदरकटीपृष्ठहृद्बस्तिवंक्षणे ॥ ७५ ॥
योनिभेदरुजातोदस्फुरणस्रवणानि च।
आवीनामनुजन्मातस्ततो गर्भोदकस्रुतिः ७६॥

जिस स्त्रीको आज-कलहीमें प्रसव होनेवाला हो उसको ग्लानि, कुक्षि और नेत्रोंमें शिथिलता, क्लम, अधोभागमें भारीपन, अरुचि, मुंहसे लार बहना, वार-वार मूत्रका आना, उरुस्थल, उदर, कटिप्रदेश, पीठ, हृदय, वस्ति और वंक्षणकी सन्धिओंमें वेदना होना, तथा योनिमें भेदनकीसी पीड़ा, सुई चुभनेकेसे चुभके, फड़कन और स्रावका आरम्भ होना ये लक्षण हो जाते है।

इसके अनन्तर आवी (प्रसव वेदना) का प्रगट और गर्भाशयसे जलका स्राव होना ये सद्यःप्रसव होनेके लक्षण हैं ॥ ७४-७६ ॥

प्रसव समयका कर्तव्य।

अथोपस्थितगर्भां तां कृतकौतुकमङ्गलाम्।
हस्तस्थपुन्नामफलां स्वभ्यक्तोष्णांबुसेचिताम्।
पाययेत्सघृतां पेयां-
-तनौ भूशयने स्थिताम्।
आभुग्नसक्थिमुत्तानामभ्यक्ताङ्गीं पुनःपुनः ७८
अधोनाभेर्विमृद्गीयात्कारयेज्जृंभचंक्रमम्।
गर्भः प्रयात्यवागेवं तल्लिङ्गं हृद्विमोक्षतः॥७९॥
आविश्य जठरं गर्भो बस्तेरुपरि तिष्ठति।
आव्यो हि त्वरयंत्येनां खट्वामारोपयेत्ततः८०
अथ संपीडिते गर्भे योनिमस्याः प्रसारयेत्।
मृदु पूर्वं प्रवाहेत बाढमाप्रसवाच्च सा ॥८१॥
हर्षयेत्तां मुहुः पुत्रजन्मशब्दजलानिलैः।
प्रत्यायान्ति तथा प्राणाः सूतिक्लेशावसादिताः

जब प्रसवका समय उपस्थित प्रतीत हो तो उस स्त्रीको मङ्गलाचरण करके और रक्षा आदि करके उसके हाथमें पुरुषसंज्ञक कोई नारिकेल आदि फल देकर उसको तैलादिसे स्नेहन कर गर्मजलसे सेचन करनेके अनन्तर घृतयुक्त पेया पिलावे, अथवा औषधि सिद्ध घृत और दुग्ध पिलावे.

फिर पृथ्वीपर उत्तम शयनस्थान विस्तरादिपर सीधी लेटाकर और उसकी दोनों सक्थियोंको ऊपरको टेढा करके उसकी योनि आदि अंगोंको बार बार तैलसे स्निग्ध करके नाभिके अधोभागमें तैल आदिसे मर्दन करे. यदि प्रसवमें कुछ विलम्ब प्रतीत हो तो गर्भवती स्त्री जम्भाई लेवे और थोडा उठकर फिरे। ऐसा करनेसे गर्भ शीघ्र उत्पन्न होनेके वेगको करताहै और हृदयकी ओरसे छोडकर वस्तिके ऊपरीभागमें पेटसे नीचेके भागमें स्थिर हो जाताहै। ऐसा होनेपर गर्भवती स्त्रीको शूलादि प्रसवकालकी वेदना शीघ्र बालकको उत्पन्न करनेके लिये नीचेको आती है तब स्त्रीको शय्यापर लेटा देवे।

फिर इस प्रसववेदनासे पीडित स्त्रीकी योनिको प्रसारित कर स्त्रीको थोडासा प्रवाहण करनेको कहे और जब गर्भ योनिके मुखमेसे बाहर आनेवाला हो तब एकही कालमें विशेष प्रवाहण करनेका यत्न करे।

उस समय चतुर सिद्धहस्ता परिचारिका स्त्री इसको सान्त्वना देती हुई बार बार हर्ष उत्पन्न करनेका प्रयत्न करे और प्रसूता स्त्रीसे कहे कि, ईश्वरको धन्यवाद है कि बड़ा सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ है इत्यादि हर्षोत्पादक शब्दोंसे और व्यजनादिकोंसे प्रसवकालकी वेदनाके क्लमको निवृत्त करनेका यत्न करे. इस प्रकार आश्वासन आदि देनेसे प्रसव वेदनासे क्लेशितहुए प्राण फिर सुखसे संचार करने लगते हैं ॥ ७७-८२ ॥

आसन्न प्रसवाके प्रसवमें विलम्ब होनेपर चिकित्सा।

धूपयेद्गर्भसंगे तु योनिं कृष्णाहिकञ्चुकैः।
हिरण्यपुष्पीमूलं च पाणिपादेन धारयेत् ८३॥

सुवर्चलां विशल्यां वा जराय्वपतनेऽपि च ।
कार्यमेतत्तथोत्क्षिप्य बाह्वोरेनां विकंपयेत् ८४
कटिमाकोटयेत्पार्ष्ण्या स्फिजौ गाढं निपीडयेत्
तालुकण्ठं स्पृशेद्वेण्या मूर्ध्नि दद्यात्स्नुहीपयः ॥

यदि आसन्न प्रसवकालमेंभी बालक पैदा होता-होता रुकजाय तो उस स्त्रीकी योनिको काले सांपकी कांचुलीकी धूनि देवे । अथवा सत्यानाशीकी जडको हाथोंमें और पावोंमें लेकर दबावे। अथवा कलिहारीकी जड या सुवर्चलाको दोनों हाथोंमें आसन्न प्रसवा स्त्री दबावे ऐसा करनेसे बालक शीघ्र उत्पन्न होजाताहै और यदि आमर (जेर) का पतन न होता हो तबभी यही प्रयोग करना हितकारी होता है ।

इस प्रकार यह धूनी आदि कार्य करनेके अनन्तर यदि आमरा (आवल) का पातन न हो तो इसके दोनों बाहोंको ऊपरको करके कंपावे तथा इसकी कमरको नीचेको मले और इसको सीधी लेटाकर इसके दोनों नितम्बोंपर अपनी दोनों पांवकी एडियोंसे सिद्ध-कर्मा स्त्री जोरसे पीडन करे ।

अथवा स्त्रीके वेणीके अग्रभागसे इस स्त्रीका तालु और कंठ स्पर्श करे । अथवा इस स्त्रीके मस्तकपर थोडासा थूहरका दूध लगावें ॥ ८३-८५ ॥

भूर्जलाङ्गलिकीतुंबीसर्पत्वक्कुष्ठसर्षपैः ।
पृथग्द्वाभ्यां समस्तैर्वा योनिलेपनधूपनम् ८६
कुष्ठतालीसकल्कं वा सुरामण्डेन पाययेत् ।
यूषेण वा कुलत्थानां बिल्वजेनासवेन वा८७॥

अथवा भोजपत्र, लांगलीकंद, कटुतुंबी, सर्पकी कांचुली और सरसों इन द्रव्योंमेंसे किसी एक या दो अथवा सम्पूर्ण द्रव्योंको योनिपर लेपन करनेसे अथवा धूनी देनेसे शीघ्र प्रसव हो जाता है और आमरा पातन हो जाती है.

ऐसेही मीठा कूठ और तालीसपत्रके कल्कको सुरा-मण्डके साथ या कुल्थीके यूषके साथ अथवा बिल्वा-सवके साथ पिलावे तो शीघ्र जरायुका पतन होजाता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

शताह्वासर्षपाजाजीशिग्रुतीक्ष्णकाचित्रकैः ।
सहिंगुकुष्ठमदनैर्मूत्रे क्षीरे च सार्षपम् ॥ ८८ ॥
तैले सिद्धं हितं पायौ योन्यां वाप्यनुवासनम् ।
शतपुष्पावचाकुष्ठकणासर्षपकल्कितः॥ ८९ ॥
निरूहः पातयत्याशु सस्नेहलवणोऽपराम् ।
तत्सङ्गे ह्यनिलो हेतुः सा निर्यात्याशु तज्जयात्।
कुशला पाणिनाऽक्तेन हरेत्कॢप्तनखेन वा९०॥

अथवा सौंफ, सरसों, जीरा, सुहौंजना, सफेद सरसों, चित्रक, हींग, कूठ और मैनफल इनके कल्क गोमूत्र और दूधसे सिद्ध कियाहुआ सरसोंका तेल योनिमें और गुदामें धारण करना अथवा इस तेलसे अनुवासन कर्म करना, आमराको पातन करदेताहै ॥

अथवा सौंफ, वच, कूठ, पीपल और सरसोंका कल्क मिलाकर तथा लवण और तैल मिलाकर निरू-हणवस्ति करना भी आमराको पातनकर देताहै क्योंकि प्रसवमें रुकावट होना या आमराका पातन न होना वायुके प्रकोपसे होता है. इन उपरोक्त उपायोंद्वारा वायुको जीत लेनेसे प्रसवभी शीघ्रहो जाता है और आमराभी निकल जाती है ॥

कुशल दाई जिसके हाथोंके नख कटे हुए हों वह अपने स्वच्छ और औषधि सिद्ध घृतसे चिकने हाथों द्वारा बालक और आमराको सावधानी पूर्वक ग्रहण करे ॥ ८८-९० ॥

प्रसवके अनन्तर कर्तव्य ।

मुक्तगर्भापरां योनिं तैलेनाङ्गं च मर्दयेत् ९१॥

जब प्रसूतास्त्रीकी योनिसे गर्भ और आमरा निकल जाय तब उसकी योनि और अंगोंको वातनाशक तैलसे चुपड देवे और पेटपर वस्त्र लपेट देवे ॥९१॥

मकल्लादि शूलोंकी चिकित्सा ।

मकल्लाख्ये शिरोबस्तिकोष्ठशूले तु पाययेत् ।
सुचूर्णितं यवक्षारं घृतेनोष्णजलेन वा ॥
धान्याम्बु वा गुडव्योषत्रिजातकरजोन्वितम् ॥

यदि प्रसवके अनन्तर शिरमें, वस्तिमें, अथवा कोष्ठमें शूल उत्पन्न होजाय अथवा मकल्ल नामक शूल

उत्पन्न होजाय तो उस स्त्रीको यवक्षारका चूर्ण गर्म घृत अथवा गर्म जलसे पिलावे. अथवा गुड, सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची और तेजपत्रका चूर्ण मिलाकर गर्म कियाहुआ धान्याम्बु पिलावे ॥ ९२ ॥

बालकका उपचार ।

अथ बालोपचारेण बालं योषिदुपाचरेत् ९३ ॥

बालोपचारविधिसे इस बालकका पालन पोषण आदि करना चाहिये जो बालरक्षाविधिमें आगे कथन करेंगे ॥ ९३ ॥

प्रसूताका उपचार ।

सूतिका क्षुद्वती तैलाद्घृताद्वा महतीं पिबेत् ।
पंचकोलकिनीं मात्रामनु चोष्णं गुडोदकम् ॥
वातघ्नौषधतोयं वा तथा वायुर्न कुप्यति ।
विशुध्यति च दुष्टास्रं द्वित्रिरात्रमयं क्रमः ९५॥
स्नेहायोग्या तु निःस्नेहममुमेव विधिं भजेत् ।
पीतवत्याश्च जठरं यमकाक्तं विवेष्टयेत् ॥९६॥

प्रसूता स्त्रीको औषधिसिद्धतैल अथवा पंचकोलका चूर्ण मिलाकर घीकी अधिक मात्रा पिलावे और ऊपरसे गुड और घृत तथा सोंठ अजवायन युक्त गरम क्वाथ (इन द्रव्यों युक्त जल) पिलावे । अथवा वातनाशक औषधियोंका जल पिलावे. जिससे प्रसूताके शरीरमें वायुका प्रकोप न हो तथा दूषित रक्तभी साफ होजावे. दो तीन दिन इस घृतपानादिक क्रमका ही पालन करना चाहिये (जो स्त्री घृतका पान करने योग्य न हो या घृतपान करना न चाहती हो उसको विना घृत-पान करायेभी यह पंचकोल गुड आदि वात नाशक द्रव्योंकी पेया पिलानी चाहिये. तदनन्तर इस स्त्रीके पेटपर घी और तेलकी मालिसकर पेटको कपडेसे लपेट देना चाहिये ॥ ९४–९६ ॥

जीर्णे स्नाता पिबेत्पेयां पूर्वोक्तौषधसाधिताम्
त्र्यहादूर्ध्वं विदार्यादिवर्गक्वाथेन साधिता ॥
हिता यवागूः स्नेहाढ्या सात्म्यतः पयसाथवा
सप्तरात्रात्परं चास्यै क्रमशो बृंहणं हितम् ९७॥

जब घृतपान आदि स्नेहकी मात्रा पच जाय तब पंचकोल आदि औषधियोंसे सिद्ध कीहुई यवागू घृत मिलाकर पिलावे । तीसरे दिनके अनन्तर विदार्यादि-वर्गके क्वाथसे सिद्ध कीहुई यवागू घृत मिलाकर अथवा सात्म्य अनुसार दूध घृत आदि पिलावे । ऐसे सात दिन पर्यन्त स्नेह पान कराना और इसके शरी-रको पुष्ट करनेवाली पेया यवागू आदि घृत मिलाकर हितकारी होताहै. इस प्रकार क्रमसे इसको पुष्ट कर-नेका यत्न करे ॥ ९७ ॥

द्वादशाहेऽनतिक्रांते पिशितं नोपयोजयेत् ९८॥

यदि मांस सेवन करनेवाली जातीभी हो, तो भी बारह दिन पर्यन्त इसको मांसका भोजन नहीं देना चाहिये ॥ ९८ ॥

यत्नेनोपचरेत्सूतां दुःसाध्या हि तदामयाः ।
गर्भवृद्धिप्रसवरुक्क्लेदास्रस्रुतिपीडनैः ॥ ९९ ॥

प्रसूता स्त्रीका उपचार बुद्धिपूर्वक यत्नसे और साव-धानीसे करना चाहिये. क्योंकि-गर्भके बढने फिर प्रस-वके क्लेश सहने तथा रक्त स्राव होने आदि पीडाओंसे क्षीण होनेके कारण प्रसूताके रोग असाध्य हो जाते है. इस कारण प्रसूताके सब उपचार ऐसी विधिसे करने चाहिये जिससे उसके शरीरमें कोई रोग उत्पन्न न होजाय ॥ ९९ ॥

एवं च मासादध्यर्धान्मुक्ताहारादियंत्रणा ।
गतसूताभिधाना स्यात्पुनरार्तवदर्शनात् १००॥

इस प्रकार ४० दिन पर्यन्त आहारादि यन्त्रणासे विमुक्त होकर स्त्री सुखसे रहने लगती है और दूसरे महीनेका जब रजोदर्शन होजाय तो प्रसूताके निय-मोंका पालन करनेकी आवश्यकता नहीं रहती॥ १००

इति श्री वाग्भट्टाचार्यप्रणीत अष्टाङ्गहृदय संहितायां शारीरस्थाने पं० शिवशर्म्मकृतशिवप्रकाशिका व्याख्यायां प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः।
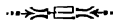
अथाऽतो गर्भव्यापदं शारीरं व्याख्यास्यामः।

अब हम गर्भव्यापद अर्थात् गर्भमें होनेवाली व्यापत्तियोंके शारीरकी व्याख्या करते है।

गर्भस्राव आदिके कारण तथा चिकित्सा।

गर्भिण्याः परिहार्याणां सेवया रोगतोऽपि वा।
पुष्पे दृष्टेऽथवा शूले बाह्यान्तःस्निग्धशीतलम् १

गर्भिणीके लिये जिन अहित आहार विहारोंका परित्याग कथन किया है उन अहित आहारादिकोंके सेवनसे अथवा किसी रोग विशेषसे यदि गर्भवर्तीकी योनिसे रक्तका स्राव हो अथवा शूल आदि कोई उपद्रव गर्भमें हो जाय तो उस गर्भवतीको स्निग्ध और शीतल उपचारका बाह्य और आभ्यन्तर सेवन करना चाहिये. बाह्यसे प्रयोजन स्नान लेपनादिका है, आभ्यन्तरसे भोजन पानादिका प्रयोजन है ॥ १ ॥

सेव्यांभोजहिमक्षीरिवल्ककल्काज्यलेपितान्।
धारयेद्योनिबास्तिभ्यामार्द्रार्द्रान् पिचुनक्तकान्

यदि गर्भवतीकी योनिसे रक्तस्राव हो या शूल हो तो उसको वन्दा, कमल, चन्दन, गूलर वट आदि क्षीरी वृक्षोंके छिल्कोंसे शीतल जलमें रगडकर बनाया हुआ कल्क घृत मिलाकर योनिमें धारण करना अथवा मृदु वस्त्रके टुकडेको इसी कल्कमें भिगोकर योनिमें रखना हितकारी होता है ॥ २ ॥

शतधौतघृताक्तां स्त्रीं तदंभस्यवगाहयेत्।
ससिताक्षौद्रकुमुदकमलोत्पलकेसरम् ॥ ३ ॥
लिह्यात् क्षीरघृतं खादेच्छृंगाटककसेरुकम्।
पिबेत्कांताब्जशालूकबालोदुंबरवत्पयः ॥ ४॥
शृतेन शालिकाकोलीद्विबलामधुकेक्षुभिः।
पयसा रक्ताशाल्यन्नमद्यात्समधुशर्करम् ॥
रसैर्वा जाङ्गलैः ॥ ५ ॥–

अथवा सौवार जलमें धोए हुए घृतसे योनिआदिको लेपनकर शीतल जलमें अवगाहन आदि करना योनिसे रक्तस्राव निवृत्त करता है।

अथवा कुमुद, कमल और नीलकमलके केशरको मिश्री और शहदमें मिलाकर चाटना दूध और घी पीना, सिंघाडे और कसेरूको घी और दूधके साथ खानाभी गर्भवर्तीके रक्तस्रावको निवृत्त करता है।

अथवा नागरमोथाका कन्द, कमलकी जड और कच्चे गूलड़ इन सबको दूधमें मिलाकर पीवें तो गर्भवतीकी योनिका रक्तस्राव निवृत्त होजाता है।

अथवा शालिचावलोंके धानोंकी जड, काकोली, क्षीरकाकोली, बला, अतिबला, मुलहठी और ईखकी जडसे सिद्ध किएहुए दूधके साथ लाल शालि चावलोंका भात मधु और मिश्री मिलाकर खाय अथवा देश और सात्म्यके अनुसार जाङ्गल जीवोंके मांसरस लालशालि चावलोंका भात खावें ॥ ३–५ ॥

–शुद्धिवर्जं चास्रोक्तमाचरेत् ॥ ६ ॥

रेचनादि शुद्धिके विना सम्पूर्ण क्रिया रक्तपित्तमें कही हुई चिकित्साके अनुसार करनी चाहिये ॥ ६ ॥

असंपूर्णत्रिमासायाः प्रत्याख्याय प्रसाधयेत् ॥
आमान्वये च ॥ ७ ॥–

जब ३ माससे पहले २ गर्भवती स्त्रीका रक्तस्राव हो तो वैद्य रोगिणीस्त्रीके पतिसे यह कहकर कि, इस कच्चे गर्भकी स्थिर रहनेकी सम्भावना तो नहीं है तथापि आपके कहनेसे यथासाध्य चिकित्सा करताहूँ चिकित्साकरे।

यदि उस गर्भस्रावके लक्षणवालीस्त्रीको आमका विकारभी साथही हो तबभी उपरोक्त रीतिसे उत्तर देनेके अनन्तर ही चिकित्सा करना चाहिये ॥ ७ ॥

आम और रक्तस्रावमें अविरुद्ध चिकित्साका उपदेश।

–तत्रेष्टं शीतं रूक्षोपसंहितम्।
उपवासो घनोशीरगुडूच्यरलुधान्यकाः ॥
दुरालभापर्पटकचन्दनातिविषाबलाः।
क्वथिताः सलिले पानं तृणधान्यादिभोजनम् ॥
मुद्गादियूषैरामे तु जिते स्निग्धादि पूर्ववत्॥८॥

आमदोषयुक्त गर्भवती स्त्रीकी योनिसे यदि रक्तस्राव हो तो उस स्त्रीको रूक्ष, शीत अन्न पानादिका प्रयोग कराना हितकारी होता है, तथा उपवास कराना

और नागरमोथा, खस, गिलोय, सोनापाठा और धनियाका क्वाथ पिलाना अथवा जवासा, पापडा, चन्दन, अतीस और बलाका शीत कषाय पिलाना और तृण धान्य (श्यामाकादि) का भोजन कराना और मूंग आदिका यूष देना हितकारी होता है । जब आमका दोष शमन होजाय तो पूर्ववत् घृत दुग्धादि स्निग्ध पदार्थोंका प्रयोग कराना चाहिये ॥ ८ ॥

गर्भपातके अनन्तरकी क्रिया ।

गर्भे निपतिते तीक्ष्णं मद्यं सामर्थ्यतः पिबेत् ९
गर्भकोष्ठविशुद्धयर्थमार्तिविस्मरणाय च ।
लघुना पंचमूलेन रूक्षां पेयां ततः पिबेत्॥१०
पेयाममद्यपा कल्के साधितां पांचकौलिके ।
बिल्वादिपंचकक्काथे तिलोद्दालकतंडुलैः॥११॥
मासतुल्यदिनान्येवं पेयादिः पतिते क्रमः ।
लघुरस्नेहलवणो दीपनीययुतो हितः ॥ १२ ॥

यदि गर्भपात होजाय तो उसके अनन्तर तीक्ष्ण मद्यका पान रोगीकी सामर्थ्यानुसार कराना चाहिये जिससे गर्भाशय और कोष्ठकी शुद्धि होजाय तथा गर्भपातकी पीडाका मद्यके मदसे ध्यान न रहे ।

तथा लघुपंचमूल (कटेली, बडीकटेली, शालपर्णी, पृष्टपर्णी और गोखरू) से सिद्ध कीहुई रूक्ष पेया पिलावे। यदि वह स्त्री मद्य पीना न चाहती हो तो उसको पंचकोलके कल्कसे सिद्ध कीहुई पेया अथवा बिल्वादि बृहत्पंचमूलके क्वाथमें तिल और उद्दालक तृण घासके चावलोंसे सिद्ध कीहुई पेया पिलावे ।इस प्रकार जितने महीनेके गर्भका पात हो उतने दिन पर्यन्त इस पेयादि क्रमका सेवन करावे और यह हलकीपेया घृत और लवणसे रहित पंचकोल आदि दीपनीय द्रव्योंसे सिद्धकरके पिलाना चाहिये ॥ ९-१२ ॥

दोषधातुपरिक्लेदशोषार्थं विधिरित्ययम् ।
स्नेहान्नबस्तयश्चोर्ध्वं बल्यजीवनदीपनाः ॥१३॥

इस प्रकार गर्भपातके अनन्तर दीपनीय द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई पेया दोष धातुओंके परिक्लेदको शोषण करनेके लिये सेवन कराई जाती है ।

जब यह विधि यथोचित समाप्त होजाय तब उस पतितगर्भाकी क्षीणता आदि निवृत्तिके लिये स्निग्धान्न स्नेहपान कराना तथा बलकारक जीवनदायक और अग्निको दीपक रखनेवाले द्रव्योंका सेवन कराना चाहिये ॥ १३ ॥

उपविष्टक गर्भके लक्षण ।

संजातसारे महति गर्भे योनिपरिस्रवात् ।
वृद्धिमप्राप्नुवन् गर्भः कोष्ठे तिष्ठति सस्फुरः ॥
उपविष्टकमाहुस्तं वर्धते तेन नोदरम् ॥ १४ ॥

जिस स्त्रीका गर्भ योनिस्रावसे बचकर सारयुक्त होकर भी वृद्धिको न प्राप्तहोकर कुक्षिमें स्फुरण होता हुआ स्थित रहे और गर्भ पुष्ट न होनेसे उदरकी वृद्धि न हो इस प्रकारके गर्भको उपविष्टकगर्भ कहते हैं ॥ १४ ॥

नागोदरके लक्षण ।

शोकोपवासरूक्षाद्यैरथवा योन्यतिस्रवात् १५॥
वाते क्रुद्धे कृशः शुष्येद्गर्भो नागोदरं तु तत् ।
उदरं वृद्धमप्यत्र हीयते स्फुरणं चिरात् ॥१६॥

गर्भवती स्त्रीके उपवासादि करनेसे अथवा रूक्ष पदार्थोंका अतिसेवन करनेसे या योनिसे रक्तका अति स्राव हो जानेसे कृश हुआ गर्भ वायुके प्रकोपसे सूखसा जाता है इसमें भी उपविष्टक गर्भके समान उदरकी वृद्धि नहीं होती. भेद केवल इतना है कि,उपविष्टक गर्भ सदैव स्फुरण होता रहता है किन्तु यह बहुत दिनमें कभी कभी स्फुरण होता है। इस गर्भको नागोदर कहते हैं १५-१६

उपविष्टक और नागोदरकी चिकित्सा ।

तयोर्बृंहणवातघ्नमधुरद्रव्यसंस्कृतैः ।
घृतक्षीररसैस्तृप्तिरामगर्भैश्च खादयेत् ॥
तैरेव च सुतृप्तायाः क्षोभणं यानवाहनैः ॥१७॥

उपविष्टक और नागोदरवाली स्त्रियोंको बृंहण बातनाशक और मधुर द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए घी दूध और रसोंका सेवन कराना चाहिये तथा तर्पणद्रव्य या अण्डादि आमगर्भ खिलाकर तृप्त करे । ऐसे द्रव्योंसे गर्भ और शरीरको पुष्ट करनेके अनन्तर प्रसव कालके महीनोंमें रथ आदि यान वाहनकी सवारी करावे.

जिससे वह पुष्टहुआ गर्भ हिलचलकर यथासमय उत्पन्न हो सके ॥ १७ ॥

लीनगर्भकी चिकित्सा ।

लीनाख्ये निस्फुरे श्येनगोमत्स्योत्क्रोशबर्हिजाः
रसा बहुघृता देया माषमूलकजा अपि ।
बालबिल्वं तिलान्माषान्सक्तूंश्च पयसा पिबेत् ॥
समेद्यमांसं मधु वा कटयभ्यङ्गं च शीलयेत् ।
हर्षयेत्सततं चैनामेवं गर्भः प्रवर्धते ॥
पुष्टोऽन्यथा वर्षगणैः कृच्छ्राज्जायेत नैव वा२०॥

यदि गर्भवतीका गर्भ कुक्षिमें फडके नहीं और लीन होजाय तो उसको सिकरा, मछली, उत्क्रोश और मोर आदि जीवोंके मांसरसमें घृत मिलाकर पिलावे. अथवा उडद और मूलीके यूषमें बहुतसा घी मिलाकर पिलावे. अथवा कच्चा बिल्वफल तिल उडद और सत्तुओंको दूधमें मिलाकर पिलावे. अथवा मेदवर्धक द्रव्य या मेदवाले जीवोंका मांस और मधुर द्रव्योंका सेवन करावे तथा कमर आदिपर नित्यप्रति तैल आदिकी मालिस करावे ।

और इस गर्भवती स्त्रीको नित्य तथा निरन्तर प्रसन्न रक्खे इससे वह लीनगर्भ वृद्धिको प्राप्त हो जाताहै ।

यदि इन रूक्ष शुष्क गर्भोंमे उपरोक्त विधिसे पुष्टि आदि नहीं की जाय तो ये कुक्षिमेंही रहतेहुए या तो वर्षोंतक उत्पन्न नहीं होते अथवा बडे कष्टसे उत्पन्न होते है या उस गर्भवतीके आजीवन पेटमे रहकर उसके जीवनके साथही नष्ट होजाते है ।

इस कारण इस उपरोक्त विधिका पालन करके गर्भको पुष्ट बनाकर यथासमय उत्पन्न करानेका यत्न करना चाहिये ॥ १८-२० ॥

गर्भिणीके उदावर्तमें चिकित्साका उपदेश ।

उदावर्तं तु गर्भिण्याः स्नेहैराशुतरां जयेत् ॥
योग्यैश्च बस्तिभिर्हन्यात्सगर्भां स हि गर्भिणीम्

यदि गर्भवतीस्त्रीको उदावर्त होजाय तो उसके उदावर्तको स्नेहपान तथा स्नेहवस्ति आदिसे योग्य उपायों द्वारा शीघ्र जीत लेना चाहिये । अन्यथा विलम्ब करनेसे वह उदावर्त गर्भवतीको शीघ्र मार डालता है । इस कारण पूर्वोक्त वस्तिके नियमकी अपेक्षा न करके योग्य उपायोंका अवलम्बन करते हुए गर्भिणीके उदावर्तको जीतकर उसके जीवनकी रक्षा करे ॥ २१ ॥

मृतगर्भके लक्षण ।

गर्भेऽतिदोषोपचयादपथ्यैर्दैवतोऽपि वा ॥
मृतेऽन्तरुदरं शीतं स्तब्धं ध्मातं भृशव्यथम् ॥
गर्भास्पन्दो भ्रमस्तृष्णा कृच्छ्रादुच्छ्वसनं क्लमः॥
अरतिः स्रस्तनेत्रत्वमावीनामसमुद्भवः ॥ २३ ॥

गर्भमे दोषोंके अतिसंचयसे अथवा कुपथ्य सेवनसे या दैवयोगसे गर्भ उदरमेही जब मर जाता है तब उस स्त्रीका उदर शीतल स्तब्ध अफारायुक्त और अत्यन्त व्यथायुक्त होजाताहै तथा गर्भ स्पन्दरहित होजाता है । और उस स्त्रीको भ्रम, प्यास, कष्टसे श्वास आना, व्याकुलता, बेचैनी, नेत्रोंका अस्तव्यस्त होना और प्रसववेदनाका न होना आदि उपद्रव होजाते है २२॥२३॥

अन्तर्मृतगर्भाकी चिकित्सा ।

तस्याः कोष्णांबुसिक्तायाःपिष्ट्वा योनिं प्रलेपयेत्
गुडं किण्वं सलवणं तथान्तः पूरयेन्मुहुः ।
घृतेन कल्कीकृतया शाल्मल्यतसिपिच्छया ॥
मंत्रैर्योग्यैर्जरायुक्तैर्मूढगर्भो न चेत्पतेत् ।
अथापृच्छ्येश्वरं वैद्यो यत्नेनाशु तमाहरेत्॥२६
हस्तमभ्यज्य योनिं च साज्यशाल्मलिपिच्छया।
हस्तेन शक्यं तेनैव-
-गात्रं च विषमं स्थितम्॥२७॥
आंछनोत्पीडसंपीडविक्षेपोत्क्षेपणादिभिः ।
अनुलोम्य समाकर्षेद्योनिं प्रत्यार्जवागतम् २८॥

अन्तरमृतगर्भाके उदरपर कोष्ण जलसे सेचन करनेके अनन्तर गुड, किण्व, सुराबीज और लवणकी मोटी वत्ती बनाकर घी और सेमल और अलसीके कल्ककी पिच्छासे लिप्तकर बार २ योनिमें भरे । तथा जरायुके बाहर निकालनेवाले अथर्ववेदके सिद्धमंत्रोंका[1] उच्चारण करे ।

[1] वृद्धवाग्भट्टमें क्षिति जल आदि मंत्र मूढगर्भको निकालनेके लिये कथन कियेगये है. उनका उच्चारण कर मूढगर्भको निकाले

यदि इन क्रियाओंसे शीघ्रही मृतगर्भ बाहर नहीं आजाय तो उस स्त्रीके पतिकी आज्ञा लेकर और राजाज्ञाकी सहायतासे वैद्य शीघ्रही उस अन्तर्मृत गर्भको निकालदेवे. मृतगर्भ निकालनेके समय अपने नख रहित स्वच्छ हाथोंको घृत और सेमलकी पिच्छा लगाकर यदि हाथसे निकाल सकेतो शीघ्र निकाल डाले।

यदि मृतगर्भ उदरमें टेढा स्थित होनेके कारण सीधा नहीं निकलसके तो उसको उदरमेंही अंछन, उत्पीडन, संपीडन, विक्षेपण और उत्क्षेपणादि क्रियासे सीधा अनुलोमन करके योनिमेंसे सीधा होनेपर निकाल डाले ॥ २४–२८ ॥

शस्त्रद्वारा निकालने योग्य अन्तर्मृत गर्भ।

हस्तपादशिरोभिर्यो योनिं भुग्नः प्रपद्यते।
पादेन योनिमेकेन भुग्नोऽन्येन गुदं च यः॥२९॥
विष्कंभौ नाम तौ मूढौ शस्त्रदारणमर्हतः।
मण्डलाङ्गुलिशस्त्राभ्यां तत्र कर्म प्रशस्यते॥३०॥

जो बालक हाथ, पांव और शिरसे टेढा होकर योनिमें अड़ जाता है जिससे एक पांव योनिमेसे बाहर होजाताहै और एक पांव गुदाकी ओर टेढा होजाता है अथवा एक बाँह योनिसे बाहर आजाय और पांव और शिर भीतर अडजांय इन दोनों प्रकारके मूढ गर्भोंको विष्कंभ कहते हैं। ऐसे मूढगर्भ हाथों द्वारा बाहर निकालने कठिन होजाते है. उनको मण्डलाग्र-शस्त्र और अंगुलिशस्त्र द्वारा निकाल देना चाहिये यह शस्त्र प्रयोग अभ्यास द्वारा सिद्धहस्त चिकित्सको-ही करना चाहिए ॥ २९ ॥ ३० ॥

वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं न योनाववचारयेत्।
पूर्वं शिरःकपालानि दारयित्वा विशोधयेत्॥३१
कक्षोरस्तालुचिबुके प्रदेशेऽन्यतमे ततः।
समालंब्य दृढं कर्षेत्कुशलो गर्भशंकुना॥३२॥
अभिन्नशिरसं त्वाक्षिकूटयोर्गण्डयोरपि।
बाहुं छित्त्वांससक्तस्य वाताध्मानोदरस्यतु।३३
विदार्य कोष्ठमंत्राणि बहिर्वासं निरस्य च।
कटीसक्तस्य तद्वच्च तत्कपालानि दारयेत्॥३४
यद्यद्वायुवशादङ्गं सज्जेद्गर्भस्य खण्डशः।
तत्तच्छित्त्वा हरेत्सम्यग्रक्षेन्नारीं च यत्नतः॥३५

वृद्धिपत्र और तीक्ष्णाग्र शस्त्र योनिमें प्रवेश नहीं करना चाहिये किन्तु मंडलाग्र या अंगुलिशस्त्रसेही कर्मका प्रयोग करना चाहिये।

पहले शिर सम्बन्धी कपालोंको काटकर शोधन कर देना चाहिये फिर कक्षा तालु चिबुक आदि किसी देशसे गर्भशंकु शस्त्र द्वारा कुशल वैद्य शिरको विना अलग किये अक्षिकूट या गण्डस्थलमेंसे पकडकर निकालदेवे. यदि अंसभागसे योनिमें अड़ा हुआ होतो बाहुका छेदनकर पीछे गर्भको निकाल देना चाहिये. यदि गर्भके मृतबालकका उदर वायुसे पूरा हुआ होतो उसके कोष्ठको विदीर्णकर आँतोंको बाहर निकाल कर गर्भको निकाल देवे।

यदि कटिदेशसे मृत गर्भ योनिमें अडा हुआ हो तो उसके कटिदेशके कपालोंको काटकर मृतगर्भको निकालदेवे।

गर्भका जो अंश या जो अंग वायुके वशसे योनिमे अडजाय उसीको काटकर खंड खंड बनाकर निकाल देवे इस प्रकार सिद्ध हस्त चिकित्सक जिस अंगको जिस प्रकार काटकर निकाल देनेमें स्त्रीके जीवनकी रक्षा देखताहो उसी प्रकार गर्भके अंगोंको छेदन करके निकालकर स्त्रीकी सावधानी पूर्वक यत्नसे रक्षा करे॥ ३१–३५ ॥

गर्भस्य हि गतिं चित्रां करोति विगुणोऽनिलः।
तत्राऽनल्पमतिस्तस्मादवस्थापेक्षमाचरेत्॥३६

विगुण हुआ वायु गर्भकी गतिको अनेकप्रकारसे विचित्र बना देता है इसलिये विशालबुद्धिवाला अनुभवी वैद्य मूढगर्भकी अवस्थाविशेष विचार करके कर्मका प्रयोग करे॥ ३६ ॥

जीवित गर्भको छेदन करनेका निषेध।

छिंद्याद्गर्भं न जीवन्तं मातरं स हि मारयेत्।
सहात्मना न चोपेक्ष्यःक्षणमप्यस्तजीवितः ३७

जीवित गर्भको शस्त्र द्वारा छेदन नहीं करना चाहिये

क्योंकि जीवितगर्भ शस्त्रप्रयोग करनेसे गर्भवती माताको जीवन सहित नाश करडालता है. इस कारण जीवितगर्भको शस्त्रसे छेदन नहीं करना चाहिये किन्तु मृतगर्भको निकालनेमें क्षणकाभी विलम्ब नहीं करना चाहिये ॥ ३७ ॥

असाध्य मूढगर्भाका लक्षण ।

योनिसंवरणभ्रंशमकल्लश्वासपीडिताम् ।
पूत्युद्गारां हिमाङ्गीं च मूढगर्भां परित्यजेत् ३८

जिस अन्तर्मृतगर्भाकी योनि संवृत हो और बाहर निकली हुई हो मकल्ल शूल और श्वास करके पीडित हो जिसको दुर्गन्धित उद्गार आती हो और सब अंग शीतल पड गये हों ऐसी मूढगर्भा स्त्रीको असाध्य जानकर त्यागदेवें ॥ ३८ ॥

अपहृत शल्याके लिये कर्तव्य ।

अथापतन्तीमपरां पातयेत्पूर्ववद्भिषक् ।
एवं निर्हृतशल्यां तु सिंचेदुष्णेन वारिणा॥३९
दद्यादभ्यक्तदेहायै योनौ स्नेहपिचुं ततः ।
योनिर्मृदुर्भवेत्तेन शूलं चास्याः प्रशाम्यति ४०

यदि मूढगर्भ निकालनेके अनन्तर अमरा न निकली हो तो उसको प्रथमाध्यायमें कही हुई विधिके अनुसार निकाल देना चाहिये. इसके अनन्तर जिस स्त्रीका शल्यरूप गर्भ निकल चुका हो उसको गर्म जलसे सिंचन करनेके अनन्तर उसके शरीरपर वातनाशक तेल चुपडकर योनिमें तेलका फोहा धारण करावे, इससे योनिमें नरमाई आजाती है और इसका शूल शमन होजाता है ॥ ३९ । ४० ॥

दीप्यकादियोग ।

दीप्यकातिविषारास्नाहिंग्वेलापंचकोलकान् ।
चूर्णं स्नेहेन कल्कं वा क्राथं वा पाययेत्ततः॥४१
कटुकातिविषापाठाशाकत्वग्घिङ्गुतेजिनीः ।
तद्वच्च दोषस्यन्दार्थं वेदनोपशमाय च ॥४२ ॥
त्रिरात्रमेवं सप्ताहं स्नेहमेव ततः पिबेत् ।
सायं पिबेदरिष्टं वा तथा सुकृतमासवम् ॥४३॥

इसके अनंतर अजवायन, अतीश, राम्ना, हींग, बडी इलायची, पीपल, पिपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ इनके चूर्ण या कल्क अथवा काथमें घृत मिलाकर पिलावे ।

अथवा कुटकी, अतीस, पाठा, शाकवृक्ष, दालचीनी, हींग और तेजोवतीके चूर्ण काथ या कल्कमें घृत मिलाकर पिलावे इससे दोष यथास्थान संचार करते है और वेदना शान्त हो जाती है तथा दूषित रक्तादिका स्राव होकर गर्भाशय स्वच्छ होजाता है ।

इस प्रकार दीप्यकादि दोनों योगोंमेंसे किसी योगको तीन रात्रितक घृतमें मिलाकर पान करे फिर सातदिन पर्यन्त केवल उपरोक्त द्रव्य मिलाकर घृतपान करे. तदनन्तर सायङ्काल अरिष्ट अथवा उत्तम आसवका पान किया करे ॥ ४१ । ४२ । ४३ ॥

शिरीषककुभकाथपिचून् योनौ विनीक्षिपेत् ।
उपद्रवाश्च येऽन्ये स्युस्तान् यथास्वमुपाचरेत्॥

इसके अनन्तर शिरस और अर्जुन वृक्षकी छालके काथमें भिगोया हुआ फोहा योनिमें धारण करना चाहिये । इनके अतिरिक्त यदि कोई और उपद्रव हो तो उसको उस रोगकी चिकित्साके अनुसार चिकित्सा करके शमन करना चाहिये ॥ ४४ ॥

पयो वातहरैः सिद्धं दशाहं भोजने हितम् ।
रसो दशाहं च परं लघुपथ्याल्पभोजना॥४५॥

इसके अनन्तर दशमूल आदि वातनाशक द्रव्योंमे सिद्ध किया हुआ दूध दशदिनतक भोजनके लिये देना चाहिये. इसके अनन्तर दशदिन पर्यन्त वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ रस पान कराना चाहिये फिर क्रमसे हलका स्निग्ध और पथ्य भोजन सेवन करना चाहिये ॥ ४५ ॥

स्वेदाभ्यङ्गपरा स्नेहान् बलातैलादिकान् भजेत्।
ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः सा क्रमेण सुखानि च॥

फिर क्रमसे स्वेदन और तैलाभ्यंग आदि करती हुई बलातेल आदि स्नेहन द्रव्योंका सेवन करे फिर चार महीनेके अनन्तर क्रमसे यथासुख अन्नपान आदि आहार विहारका सेवन करे ॥ ४६ ॥

बलातैल।

बलामूलकषायस्य भागाः षट् पयसस्तथा।
यवकोलकुलत्थानां दशमूलस्य चैकतः ॥४७॥
निःक्वाथभागो भागश्च तैलस्य च चतुर्दशः।
द्विमेदादारुमंजिष्ठाकाकोलीद्वयचन्दनैः ॥ ४८॥
सारिवाकुष्ठतगरजीवकर्षभसैन्धवैः।
कालानुसार्यशैलेयवचागुरुपुनर्नवैः ॥ ४९ ॥
अश्वगन्धावरीक्षीरशुक्लायष्टीवरारसैः।
शताह्वाशूर्पपर्ण्यैलात्वक्पत्रैःश्लक्ष्णकल्कितैः ५०
पक्वं मृद्वग्निना तैलं सर्ववातविकारजित्।
सूतिकाबालमर्मास्थिक्षतक्षीणेषु पूजितम्॥५१
ज्वरगुल्मग्रहोन्मादमूत्राघातान्त्रवृद्धिजित्।
धन्वंतरेरभिमतं योनिरोगक्षयापहम् ॥ ५२ ॥

बलाकी जड़ोंका काथ छः भाग, दूध छः भाग, यव, उन्नाब और कुलथीका काथ एक एक भाग, दशमूलका काथ एक एक भाग, तिल तैल चौदह भाग इन सबको एकत्र कर इनमें निम्न लिखित द्रव्योंका कल्क मिलाकर तैल पाकविधिसे तैलको सिद्ध करे। कल्कद्रव्य ये हैं जैसे मेदा, महामेदा, देवदारु, मजीठ, काकोली, क्षीर काकोली, सफेदचन्दन, लालचन्दन, अनन्तमूल, कूठ, तगर, जीवक, ऋषभक, सेंधानमक, तगर, छारछरीला, वच, आगर, पुनर्नवा, असगन्ध, शतावर, क्षीरविदारी, मूलहठी, त्रिफला, बोल, सौंफ, नखद्रव्य (गन्धद्रव्य) शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, इलायची, तज और पत्रज इनका बारीक चूर्णकर कल्क बनावे. इस कल्क और उपरोक्त काथादि मिलाकरके तैलको मृदु अग्निसे सिद्ध करे। यह तैल सम्पूर्ण वातविकारोंको जीतनेवाला है. प्रसूता स्त्रियोंके लिये बालकोंके लिये, हृदयादि मर्मस्थानके रोगियोंके लिये, अस्थिके रोग-वालोंके लिये, क्षत और क्षीण रोगियोंके लिये अत्यन्त हितकारी है। तथा ज्वर, गुल्म, ग्रहरोग, उन्मादरोग. मूत्राघात और अन्त्रवृद्धिको जीतनेवाला है. यह बला-तैल धन्वन्तरिजीका अभिमत है और योनिरोग तथा क्षयरोगको दूर करनेवाला है। इसमें दशमूलकी दश औषधियोंका काथ एक एक भाग होनेसे दशमूलका दश भाग काथ लेना चाहिये ॥ ४७–५२ ॥

मृतस्त्रीका जीवितगर्भ निकालनेका उपदेश।

बस्तिद्वारे विपन्नायाःकुक्षिः प्रस्पंदते यदि।
जन्मकाले ततःशीघ्रं पाटयित्वोद्धरेच्छिशुम्५३

यदि मरीहुई स्त्रीका पूर्ण गर्भ कुक्षिमें फड़कता हो और प्रसवका समय हो चुका हो तब ऐसी मरी हुई स्त्रीके फडकतेहुए गर्भको जो वस्तिस्थानमें जन्म लेनेके लिये उपस्थित हुआ हो. मरी हुई स्त्रीकी कुक्षिको भेदनकर बालकको निकाल लेना चाहिये यह कार्य सिद्धहस्त अनुभवी वैद्यकोही करना चाहिये ॥ ५३ ॥

सात महीनेतक प्रतिमासमें गर्भस्रावकी चिकित्साके लिये सात योग।

मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च।
अश्मन्तकःकृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी५४।
वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा।
अनन्ता सारिवा रास्ना पद्मा च मधुयष्टिका५५
बृहतीद्वयकाश्मर्यः क्षीरिशृङ्गत्वचो घृतम्।
पृश्निपर्णी बला शिग्रुः श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका५६।
शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कसेरु मधुकं सिता।
सप्तैतान् पयसा योगानर्धश्लोकसमापनान्।
क्रमात्सप्तसु मासेषु गर्भे स्रवति योजयेत्॥५७॥

१ प्रथम मासमें यदि गर्भस्रावके लक्षण प्रतीत हो तो मुलहठी, शाकबीज, क्षीरविदारी और देवदारुसे सिद्ध किया हुआ दूध पिलावे तो स्राव बन्द हो जाता है।

२ दूसरे महीनेमें अश्मन्तक, कालेतिल, ताम्रपर्णी और शतावरिसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिलाना चाहिये।

३ तीसरे महीनेमें क्षीरकाकोली, वृक्षादिनी, शारिवा, कमल और कृष्णशारिवा इनसे सिद्ध किया हुआ दूध पिलाना चाहिये।

४ चौथे महीनेमें शारिवा, कृष्णसारिवा, रास्ना गेन्देके पत्र और मुलहठीसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिलाना चाहिये।

५ पाचवे महीनेमें बडी कटेली, छोटी कटेली, काश्मरी, बट आदि क्षीरी वृक्षोंकी त्वचा और शुङ्ग इन

सबसे सिद्ध किया हुआ घृत दूध मिलाकर पिलावे।

६ छठें महीनेमें पृष्ठपर्णी, बला, सहिंजनेका छिलका गोखुरू और मुलहठीसे सिद्ध कियाहुआ घी और दूध पिलावे।

७ सातवे महीनेमें सिंघाडे कमलकी जड, द्राक्षा, कसेरू, मुलहठी और मिश्री इनसे सिद्ध कियाहुवा घृत और दुग्ध पिलाना चाहिये।

यह आधे आधे श्लोकमें कहे हुए सातयोग क्रमसे सात महीनेमें होनेवाले गर्भस्रावमें प्रयोग करने चाहिये ॥ ५४–५७ ॥

कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिजैः।
मूलैः शृतं प्रयुंजीत क्षीरं मासे तथाऽष्टमे ॥५८॥

आठवें महीनेमें कपित्थ, बिल्व, कटेली, पटोल, ईखकी जड और छोटी कटेली इन सबकी जडोंके कल्कसे सिद्ध किया हुआ दूध सेवन करनेसे आठवें महीनेके गर्भस्राव और शूल दूर होते है ॥ ५८ ॥

नवमे सारिवाऽनन्तापयस्यामधुयष्टिभिः॥५९॥

नववें महीनेमें श्वेतसारिवा, कृष्णसारिवा, क्षीरकाकोली और मुलहठीसे सिद्ध कियाहुआ दूध गर्भकी पीडा और स्रावको शमन करता है ॥ ५९ ॥

योजयेद्दशमे मासि सिद्धं क्षीरं पयस्यया।
अथवा यष्टिमधुकनागरामरदारुभिः ॥ ६० ॥

दशवें महीनेमें क्षीर विदारी, अथवा मुलहठी सोंठ और देवदारुसे सिद्ध किया हुआ दूध रक्तस्रावादिको दूर करनेमें हितकारी होता है ॥ ६० ॥

गर्भज्ञानविषयक उपदेश।

अवस्थितं लोहितमङ्गनाया
वातेन गर्भं ब्रुवतेऽनभिज्ञाः।
गर्भाकृतित्वात्कटुकोष्णतीक्ष्णैः
स्रुते पुनः केवल एव रक्ते ॥ ६१ ॥
गर्भं जडा भूतहृतं वदन्ति
मूर्तेर्न दृष्टं हरणं यतस्तैः।
ओजोशनत्वादथवाऽव्यवस्थै-
र्भूतैरुपेक्ष्येत न गर्भमाता ॥ ६२ ॥

कभी कभी स्त्रियोंका मासिकधर्म वायुके प्रकोपसे रुककर गुल्मादिके रूपमें स्थित होजाता है तब अनभिज्ञ लोग उसको गर्भकीसी आकृतिवाला समझकर गर्भ मान बैठते हैं. फिर जब वह रक्त कटु उष्ण तीक्ष्णादि पदार्थोंके सेवनसे केवल रक्तस्राव होजाता है तब मूढलोग उस गर्भको भूतोंने हरलिया ऐसा कह देते है. क्योंकि जब रक्तस्राव होजानेसे गर्भका शरीर वे जड नहीं देखते तब उस गर्भको भूत ले गये ऐसा मानते है. यदि कोई भूत गर्भके बालकके शरीरको खानेवाले होते तो वे उसकी माताको क्योंन हीं खाजाते. यदि कहो कि वे केवल ओजको ही खाते है तोभी गर्भकी माताके ओजको खाकर उसको क्यों नहीं मार डालते ? इस कारण कोई भूत गर्भ आदिको नहीं ले जाता किन्तु वायुसे रुकाहुआ रक्त पित्तकारक पदार्थोंके सेवनसे द्रवीभूत होकर निकल जाता है यथार्थमें वह गर्भ होताही नहीं है ॥ ६१-६२ ॥

इति श्री वाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टांगहृदयसंहितायां शारीरस्थाने प. शिवशर्म्मकृत शिवप्रकाशिकाव्याख्यायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः।

अथातोऽङ्गविभागं शारीरं व्याख्यास्यामः।

अब हम अङ्गविभाग नामक शारीराध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥

शरीरके छः अंग।

शिरोऽन्तराधिर्द्वौ बाहू सक्थिनी च समासतः।
षडङ्गमङ्गं प्रत्यङ्गं तस्याक्षिहृदयादिकम् ॥ १॥

शरीरके प्रधान छः अंग होते हैं. जैसे—शिर १, दो भुजा, २ टांगें और एक बीचका भाग ६ संक्षेपसे इन छः स्थूल अंगोंकोही षडङ्ग शरीर कहते हैं बाकी नेत्र हृदयादि इसके प्रत्यङ्ग माने जाते हैं ॥ १ ॥

पांच महाभूतोंके गुण।

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धः क्रमाद्गुणाः।
खाऽनिलाग्न्यम्भुवामेकगुणवृद्ध्यन्वयःपरे ॥२॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये क्रमसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पांच महाभूतोंके क्रमसे गुण कहे जाते हैं। इनमेंभी क्रमसे उत्तरोत्तर पूर्ववालेसे परमें एक एक गुण अधिक होता है जैसे आकाशका गुण शब्द है, वायुका गुण स्पर्श है, अग्निका गुण रूप है, जलका गुण रस है और पृथ्वीका गुण गन्ध है ये तो इन पचमहाभूतोंके अपने अपने स्वतन्त्र गुण है परन्तु वायुमें स्पर्श गुण अपना और शब्द आकाशका मिलजानेसे वायु शब्द स्पर्शवान् होजाती है। अग्निमें रूप गुण अपना और शब्द आकाशका स्पर्श वायुका यह दो पूर्ववाले महाभूतोंके गुण मिलनेसे शब्द स्पर्श और रूप ये तीन गुण अग्निमें होजाते हैं ऐसेही जलमें रस गुण अपना शब्द स्पर्श और रूप ये तीन गुण पहले महाभूतोंके आजानेसे जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये चार गुण हो जाते हैं। ऐसेही पृथ्वीमें गन्ध गुण अपना और शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस यह चार गुण पूर्ववाले महाभूतोंके मिलजानेसे पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच गुण हो जाते है। सृष्टिके आविर्भावके समयभी आकाशके अनन्तर वायु, वायुके अनन्तर अग्नि, अग्निके अनन्तर जल, और जलके अनन्तर पृथ्वीका क्रमसे आविर्भाव होताहै॥ २॥

मनुष्यकी देहमें पृथक् पृथक् पाञ्चभौतिक अंग।

तत्र खात् खानि देहेऽस्मिन् श्रोत्रं शब्दो विविक्तता
वातात्स्पर्शत्वगुच्छ्वासा वह्नेर्दृग्रूपपक्तयः।
आप्या जिह्वारसक्लेदा घ्राणगन्धास्थि पार्थिवम्

मनुष्यके देहमें सम्पूर्ण छिद्रसमूह श्रोत्रेन्द्रिय शब्द और विविक्तता ये सब आकाशसे होते है। स्पर्शनेन्द्रिय त्वचा और उच्छ्वासादि वायुसे उत्पन्न होते हैं।

चक्षु, रूप और पाचनशक्ति आदि अग्निसे बनते हैं। जिह्वा रस और क्लेदादि जलसे बने हुए हैं। घ्राणेन्द्रिय गन्ध और अस्थि आदिक पार्थिव होते हैं।

इस प्रकार मनुष्यके शरीरमे इन पांच महाभूतोंसे उत्पन्न होनेवाले ये पृथक् पृथक् भाव होतेहैं॥ ३॥

देहमें मातृज-पितृज और आत्मज आदि भाव।

मृद्वत्र मातृजं रक्तमांसमज्जगुदादिकम्।
पैतृकं तु स्थिरं शुक्रं धमन्यस्थिकचादिकम्॥
चैतनं चित्तमक्षाणि नानायोनिषु जन्म च॥४॥

शरीरमे रक्त, मांस, मज्जा और गुदा आदि सब मृदु अवयव मातासे बनते हैं। वीर्य, धमनियें, अस्थियें और केशादि स्थिर अवयव सब पितासे बनते है। तथा चित्त इन्द्रियें और नाना योनियोंमें जन्म होना आदि आत्मजनित होते हैं॥ ४॥

सात्म्यज आदि भाव।

सात्म्यजं चायुरारोग्यमनालस्यं प्रभा बलम्५।

आयु, आरोग्य, आलस्यका न होना, प्रभा और बल आदिसे सब सात्म्यज होते है। अर्थात् सात्म्य आहार विहार सेवनसे इनकी वृद्धि होती है॥ ५॥

राजसं वपुषो जन्म वृत्तिर्वृद्धिरलोलता॥ ६॥

शरीर जन्म परिवर्तन वृद्धि और स्थैर्य आदि रसजनित होते है॥

और ऐसेही उत्साह पुष्टि और तृप्ति आदिभी रसजनित होते हैं॥ ६॥

सात्विकं शौचमास्तिक्यं शुक्लधर्मरुचिर्मतिः।
राजसं बहुभाषित्वं मानक्रुद्दंभमत्सराः॥
तामसं भयमज्ञानं निद्राऽऽलस्यं विषादिता॥
इति भूतमयो देहः॥ ७॥-

पवित्रता, आस्तिकता, पवित्र धर्ममें रुचि और मति आदि शरीरमें सत्त्वजनित होते हैं अर्थात् ये भाव सत्त्वगुणसे आते हैं॥

बहुत बोलना, मानकी इच्छा होना, क्रोध, दम्भ और मत्सरता ये शरीरमें रजोगुणसे आते है।

देहमे ऐसेही भय, अज्ञान, निद्रा, आलस्य, विषाद आदिभाव तमोगुणके होते है।

इस प्रकार यह मनुष्यदेह पांचभौतिक और त्रिगुणात्मक भावोंसे बना हुआ होता है॥ ७॥

सात त्वचा।

-तत्र सप्त त्वचोऽसृजः।
पच्यमानात्प्रजायन्ते क्षीरात्सन्तानिका इव।८।

इस शरीरमें रक्तके परिपाकसे सात त्वचायें (झिल्लें) उत्पन्न होती हैं. जैसे दूधके परिपाकसे ऊपर मलाई आजाती है वैसेही रक्त धातुके परिपाकसे शरीरमें सात त्वचायें हो जाती है. इन सात त्वचामे पहिलीका नाम अवभासिनी, दूसरी लोहिता, तीसरी श्वेता, चौथी ताम्रा, पांचवीं वेदिनी, छठी रोहिणी और सातवीं मांसधरा कही जातीहै ॥ ८ ॥

सात कला ।

धात्वाशयान्तरक्लेदो विपक्वः स्वंस्वमूष्मणा ।
श्लेष्मस्नाय्वपराच्छन्नः कलाख्यः काष्ठसारवत् ९

रसादि धातुओंके आधारभूत धात्वाशयोंके अन्तर जो क्लेद है वह उन उन रस रक्तादि धातुओंकी उष्मासे परिपक्व होकर श्लेष्मा, स्नायु और अपरासे आच्छन्न हुआ हुआ कला कहा जाता है. यह कला काष्ठके सारके समान एक धातुको दूसरी धातुसे पृथक् रखनेके लिये कला नामसे शरीरमे होती है । कला धातुओंके आशयोंके बीचकी मर्यादारूप होती है । जैसे छेदन किएहुए काष्ठमे उसकी त्वचा आदि और सारके अभ्यन्तर पृथक् मर्यादा होती है उसी प्रकार कलाभी धात्वाशयोंके पृथक् रखनेवाली मर्यादाही होती है ॥ ९ ॥

आशयोंका वर्णन ।

ताः सप्त सप्त चाधारा रक्तस्यादः क्रमात् परे ।
कफामपित्तपक्वानां वायोर्मूत्रस्य च स्मृताः१०
गर्भाशयोऽष्टमः स्त्रीणां पित्तपक्वाशयान्तरे ॥११

इन कलाओंके मांसधरा, रक्तधरा, मेदोधरा, श्लेष्मधरा, पुरीषधरा, पित्तधरा और शुक्रधरा ये सात नाम हैं । जैसे देहमें सातकला होती है वैसेही सात आधार अर्थात् आशय होते है. जैसे वे क्रमसे रक्ताधार, कफाधार, आमाधार, पित्ताधार, पक्वाधार, वाय्वाधार और मूत्राधार इन नामोंसे सात आधार कहेजाते है इन्हींको रक्ताशय, कफाशय, आमाशय, पित्ताशय, पक्वाशय (मलाशय) वाय्वाशय और मूत्राशयभी कहते है । स्त्रियोंके गर्भाशय आठवां आशय माना जाताहै तथा दोनों स्तनोंको स्तन्याशय मान कर स्त्रियोंमें पुरुषोंसे तीन आशय अधिक होतेहै । गर्भाशय स्त्रियोंके पित्ताशय और पक्वाशयके मध्यमें होताहै ॥ १०-११ ॥

कोष्ठाङ्गानि स्थितान्येषु हृदयं क्लोमफुप्फुसम् ।
यकृत्प्लीहोन्दुकं वृक्कौ नाभिडिंभांत्रबस्तयः॥१२

इनही रक्तादिकोंके आधारोंमें अन्य कोष्ठांग स्थित रहतेहै. जैसे हृदय, क्लोम, फुप्फुस, यकृत्, प्लीहा, उन्दुक दोनों वृक्, नाभि, डिम्भ, अन्त्र और वस्तियां है हृदय चेतनाका स्थान दो कोशोंके समान अधोमुखवाला रक्तकमलके समान होता है । हृदयके वामभागमें ऊपरकी ओर क्लोम होता है। हृदयके उभयपार्श्व संलग्न पृष्ठकी ओर दोनों फुप्फुस (फेफडे) होते हैं। दाहिनी ओर यकृत् और वामभागमें प्लीहा होती है । कफ और रक्तके प्रसादसे हृदय बनता है । हृदय चेतना और ओजका परमस्थान है। यकृत् (जिगर) रंजक पित्तादिका स्थान है। प्लीहा रक्तवाही शिराओंका मूलकन्द है। क्लोम पिपासास्थान है । दोनों फुप्फुस अपने संकोच विकाससे पवनको प्रध्मापित करते है। रक्तकिट्टसे उन्दुक बनताहै । रक्तके फेनसे फुप्फुस बनते हैं। मेद और रक्तके परिपाकसे दोनों वृक (गुर्दे) बनते है. ये मूत्रवाही शिराओंकी मूलभूत होते है । इनसे संलग्न दोनों मूत्रवाही स्रोत मूत्राशय तक जाते है । सब शिराओंका आधारभूत नाभि होती है । डिम्भ और अन्त्र रक्त और मांसके प्रसादसे बनते हैं और इसी प्रकार मूत्राशय बनताहै । ये हृदय, क्लोम, फुप्फुस, यकृत्, प्लीहा, उन्दुक, वृक्, नाभि, डिम्भ और वस्ति षडंग शरीरके धड रूप बृहदंगके अन्दर प्रत्यंग है ॥ १२ ॥

जीवके आधार स्थान ।

दश जीवितधामानि शिरोरसनबंधनम् ।
कण्ठोऽस्रंहृदयंनाभिर्बस्तिःशुक्रौजसी गुदम् १३

जीवनके दश आधार होते है. जैसे शिर, रसनबंधन, कंठ, रक्त, हृदय, नाभि, वस्ति, शुक्र, ओज और गुदा ये स्थान " शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगधारी जीवित " अर्थात् जीवनके आधार हैं ॥ १३ ॥

शरीरमें जालकण्डरा आदिकोंका वर्णन ।

जालानि कंडराश्चान्ये पृथक् षोडश निर्दिशेत्। षट् कूर्चाः सप्त सीवन्यो मेढ्रजिह्वाशिरोगताः॥१४ शस्त्रेणैताः परिहरेच्चतस्रो मांसरज्जवः। चतुर्दशास्थिसंघाताः सीमंता द्विगुणा नव॥१५

शरीरमें जालीके समान १६ जाल होते हैं। १६ कंडरा होती है. ६ कूर्च होते हैं. मेढ् आदि स्थानोंमें सात सीवनी होती है जो मेढ् जिह्वा और शिरमे स्थित है इनको शस्त्रादि लगनेसे बचाना चाहिए। चार मांसकी रज्जुयें होती है. ये चारों स्त्रियोंके निबंधनके लिए होती हैं। चौदह अस्थिसंघात होते है वे इस देहमें गुल्फ, जानु, वंक्षण, मणिबंध, कूर्पर, कक्षात्रिक और शिरमें अस्थि समूह स्थानरूप होते हैं। १८ सीमन्त होते है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अस्थियोंकी और संधियोंकी संख्या ।

अस्थ्नां शतानि षष्टिश्च त्रीणि दंतनखैः सह। धन्वंतरिस्तु त्रीण्याह संधीनां च शतद्वयम्॥ दशोत्तरं-

-सहस्रे द्वे निजगादाऽत्रिनंदनः ॥ १६ ॥

अस्थियें दन्त और नखों सहित ३६० होतीहै। धन्वतरिजीके मतमें तो अस्थियें ३०० ही होती है। यद्यपि वेदवादी ३६० अस्थिये यौगिक ज्ञानसे मानते है परन्तु शल्य शालक्य तंत्रके विज्ञानसे अस्थियें केवल ३०० ही होती हैं. जैसे १२० अस्थियें चारों हाथ पावोंमें होती हैं ११७ कमर, पार्श्व, पीठ, उदर और छाती आदिमें होती है. ६३ अस्थियें ग्रीवासे ऊपर मस्तकादिकोंमें होती है. इनका विस्तार इस प्रकार है:- जैसे एक एक पांवकी उंगलीयें ३ तीन २ अस्थियां होती है ऐसे पांच उंगलियोंमें १५ हुई पांवके तलवे पंजे और टकनेमे १० एडीमें एक जंघामें दो जानुमे एक सॉंथलमें ऐसे सब मिलाकर एक पांवमें ३० अस्थियां हुई. दोनों पावोंकी अस्थियें ६० दोनों बाहोंकी ६० मिलानेसे १२० हुई। कमरमें पांच, पसवाडेमें ३६, दूसरे पसवाडेमें ३६ पीठमें, ३०, छातीमें ८, हसलीमें २, ये सब मिलकर ११७ हुई. ग्रीवामें ९, कंठनाडिमें चार, दाँतोंके ऊखल ३२.ठोडीमें २, नासिकामें ३, तालुमें १, गलाधारमे दोनों ओर २, कानोंमें २, कनपटेमें २, शिरमें ६, इस प्रकार सबको मिलानेसे ६३ होजाती हैं. सबको जोडनेसे ३०० अस्थियां हो जाती है. जो धन्वन्तरिजीने सर्जरीके लिए मानी है इनमें ३२ दांत, २० नख और ८ नखास्थि मिला देनेसे पूरी ३६० होकर कोई विरोध नहीं होता है.

धन्वन्तरिजी २१० सन्धियें मानते हैं. वे संधियें दो प्रकारकी होती हैं. एक स्थिर दूसरी हिलना आदि चेष्टा करनेवाली इनमें हाथों पावोंमे ठोडीमें और कमरमें चेष्टा करनेवाली सधियाँ होती हैं (इनका विशेष वर्णन सुश्रुत शारीरके पांचवे अध्यायमें किया है) ये संधियेभी कोर, उदूखल, सामुद्र, प्रतर तुन्नसेविनी, काकतुंड, मंडल और शंखावर्त इन आठ भेदोंवाली होती है। ये सब २१० संधियें अस्थियोंकी होती है।

आत्रेय भगवान् तो दो सहस्र और २ सो संधियें मानते है उन्होंने २१० अस्थियोंकी नौ सो स्नायुओंकी ५०० पेशियोंकी ७०० शिराओंकी संधियें एकत्रित कथन करके दो सहस्र दो सो २२०० संधियें मानी हैं इससे इन दोनोंके मतमें संधियोंमें कोई भेद नहीं रहता ॥ १६ ॥

स्नायु और पेशियोंका वर्णन ।

स्नाय्वांनवशती पंच पुंसां पेशीशतानि च। अधिका विंशतिःस्त्रीणां योनिस्तनसमाश्रिताः

शरीरमें स्नायु (नसे) ९०० नौसो हैं जैसे ६०० चारों हाथों पावोंमें। २३० धडमें। ७० गर्दनसे ऊपर चेहरेमें। इस प्रकार मिलकर ९०० होते है। ये स्नायुयें चार प्रकारकी होती हैं जैसे प्रतानवाली, वृत्त,पृथुल और सुषिर इनमें हाथपांवमें प्रतानवाले और सन्धियोंमेंभी प्रतानवाले होते हैं। गोल स्नायुओंको कंडरा कहते हैं। आमाशय पक्वाशय आदिमें सुषिर (पोली) स्नायुयें होती हैं और पस-

वाड़े, छाती, पीठ तथा शिरमें पृथुल स्नायुएं होती हैं ॥

पुरुषोंके शरीरमें ५०० पेशी होती है जैसे हाथों पैरोंमें चारसौ, धड़में ६६ और गर्दनसे ऊपर ३४ पेशियां हुई, कुल मिलानेसे ५०० होती हैं, स्त्रियोंके शरीरमें २० बीस पेशियां अधिक होती है जो योनि और दो स्तनोंके कारण पुरुषोंसे अधिक हैं जो ५ पांच पांच दोनों स्तनोंमें, चार योनिमे, ३ गर्भाशयमें, ३ गर्भाशयके छिद्रमे जो है सब मिलानेसे ये बीस होजाते है. ये पेशियें अस्थिपञ्जर और स्नायु आदिकोंके स्थिर रखनेके लिये मांसके छोटे या बडे टुकडे होते है. ये कोई गोल, कोई छोटे, कोई बडे, कोई मोटे, कोई लम्बे, कोई मृदु, कोई कठोर और कोई श्लक्ष्ण आदि स्वभाववाले होते है ॥ १७ ॥

सिराओंका वर्णन ।

दश मूलसिरा हृत्स्थास्ताः सर्वं सर्वतो वपुः ।
रसात्मकं वहंत्योजस्तन्निबद्धं हि चेष्टितम् ॥१८

हृदयसे लगीहुई दश मूल सिरा ये है जो अन्य सिराओंके मूलभूत होनेके कारण सम्पूर्ण देहमें सब ओरसे व्याप्त है, ये दश शिरायें रसरूप ओजका वहन करती है इन्हींके आश्रय सम्पूर्ण वाणी शरीर और मनकी चेष्टाका व्यापार निबद्ध है ॥ १८ ॥

संपूर्ण शिराओंकी गणना ।

स्थूलमूलाः सुसूक्ष्माग्राः पत्ररेखाप्रतानवत् ।
भिद्यन्ते तास्ततः सप्तशतान्यासां भवन्ति तु१९
तत्रैकैकं च शाखायां शतं तस्मिन्न वेधयेत् ।
सिरांजालन्धरांनामतिस्रश्चाभ्यन्तराश्रिताः२०

स्थूल मूल शिराओंके सूक्ष्म अग्रभाग पत्र रेखा और प्रतानवाले भेदोंको प्राप्त होते हुए ७०० सिरायें हो जाती हैं । उनमे एक एक हाथ पांवमें एक एक सौ सिरा हो जाती है । उन सौ सिराओंमें एक सिरा जालंधरा नामकी होती है जो जालके समान फैलकर उस अंगको धारण किये हुए रहती है । सिरावेधनके समय इस सिराको वेधन नहीं करना चाहिये इसके अतिरिक्त तीन सिरायें आभ्यन्तर गयी हुई रहती है उनको भी वेधन नहीं करना चाहिये, इन प्रत्येक हाथ पांवकी चारचार सिरा वेधन योग्य न होनेसे १६ सिरा अवेध्य कही हैं इनके वेधन करनेसे ओजके निकल जानेका भय रहता है, इस कारण अवेध्य है ॥ १९ ॥ २० ॥

श्रोणी, पसवाडों और पृष्ठवंशकी शिरायें ।

षोडशद्विगुणाः श्रोण्यां तासां द्वे द्वे तु वंक्षणे२१
द्वे द्वे कटीकतरुणे शस्त्रेणाष्टौ स्पृशेन्न ताः ।
पार्श्वयोःषोडशैकैकामूर्ध्वगां वर्जयेत्सिराम्॥२२
द्वादशद्विगुणाः पृष्ठे पृष्ठवंशस्य पार्श्वगे ।
द्वे द्वे तत्रोर्ध्वगामिन्यो न शस्त्रेण परामृशेत्२३

बत्तीस सिरा श्रोणीमें होती है उनके मध्यसे दो दो सिरायें वक्षणकी सधियोंमें, दो दो कटिक तरुण मर्मोके ऊपर जाती हैं । इन सिराओंको भी शस्त्रप्रयोगसे बचाना चाहिये, ये दोनों भागकी आठ सिरायें अवेध्य हैं अर्थात् वेधन नहीं करनी चाहिये ॥

दोनों पसवाड़ोंमें १६ सिराये होती हैं, इनमेंसे एक एक सिरा पार्श्व सन्धिके ऊपरको जाती है, ये दोनों सिरा भी वेधन नहीं करनी चाहिये ।

चौबीस सिरा पृष्ठवंशके दोनों पार्श्वोंमें फैलीहुई है, इनमेंसे दो दो दोनों ओर ऊपरको गयी हुई सिरायें भी अवेध्य है इनको भी शस्त्रका स्पर्श नहीं कराना चाहिये ॥ २१ ॥ २२॥ २३ ॥

उदर, छाती, गर्दन, आदिकी शिराओंका वर्णन ।

पृष्ठवज्जठरे तासां मेहनस्योपरि स्थिते ।
रोमराजीमुभयतो द्वे द्वे शस्त्रेण न स्पृशेत्॥२४
चत्वारिंशदुरस्यासां चतुर्दश न वेधयेत् ।
स्तनरोहिततन्मूलहृदये तु पृथग्द्वयम् ॥ २५ ॥
अपस्तंभाख्ययोरेकां तथापालापयोरपि ।
ग्रीवायां पृष्ठवत्तासां नीले मन्ये कृकाटिके॥२६
विधुरे मातृकाश्चाष्टौ षोडशेति परित्यजेत् ।
हन्वोः षोडश तासां द्वे संधिबंधनकर्मणी॥२७

पीठके समान ही चौबीस सिरा उदरके ऊपर फैली हुई है, उनमेंसे दो दो शिरा दोनों ओरसे शिश्नेन्द्रियके ऊपरको रोमराजिके दोनों ओरसे आती हैं, इन चार सिराओंको भी शस्त्रसे स्पर्श नहीं करना चाहिये।

चौवीस सिरायें छातीपर फैलीहुई हे उनमें १४ सिरायें अवेध्य हैं जैसे दो दो दोनों स्तनोंके मूलमें दो दो स्तन रोहितोंके ऊपर दो हृदयमें जानेवाली एक एक अपस्तम्भकी सिरा एक एक अपालापकी सिरायें सब १४ सिरा हुई. ये १४ सिरा भी अवेध्य हैं इनको शस्त्रस्पर्श नहीं करना चाहिये।

गर्दनमें चौवीस सिरायें होती है. उनमें दो नील सिरायें दो मन्याकी सिरायें २कृकाटिकाकी सिरायें दो विधुरकी सिराये और आठ मातृका सिरायें ये १६ सिरायें भी शस्त्र स्पर्शके योग्य नहीं है।

ठोडीपर १६ सिरायें हे उनमें २ सिरायें सन्धिबंधन कर्ममें लगी हुई हे. इनको भी शस्त्रसे स्पर्श नहीं करना चाहिये. ये अवेध्य हैं ॥ २४–२७ ॥

जिह्वा और नासिकाकी शिराओंका वर्णन।

जिह्वायां हनुवत्तासामधो द्वे रसबोधने।
द्वे च वाचः प्रवर्तिन्यौ–
--नासायां चतुरुत्तरा।
विंशतिर्गन्धवेदिन्यौ तासामेकां च तालुगाम्२८

जीभमेंकी ठोडीके समानही १६ सिरायें हे उनमें जिह्वाके नीचे रसके बोधकरानेवाली जो दो सिरायें हे वे और दो सिराये जो वाणीको प्रवृत्त करती है इन चार सिराओंको भी शस्त्रका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

नासिकामें २४ सिराये होती हैं उनमें दो गंधके ज्ञान करानेवाली और एक तालुवेकी ओर गईहुई इन तीन सिराओंको शस्त्र स्पर्श नहीं करना चाहिये२८

नेत्रगत शिराये।

षट्पञ्चाशन्नयनयोर्निमेषोन्मेषकर्मणी।
द्वे द्वे अपाङ्गयोर्द्वे च तासां षडिति वर्जयेत्॥२९

दोनों नेत्रोंमें ५६ शिरायें होती है इनमे निमेष और उन्मेष (पलकका खोलना और बन्द करना) कर्ममें प्रवृत्त दो दो सिराये हे दोनों अपाङ्गोमें दो सिरायें हैं इन६सिराओंको भी शस्त्रसे स्पर्श नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥

नासा और नेत्रगत अवेध्य शिरायें।

नासानेत्राश्रिताः षष्टिर्ललाटे स्थपनीश्रिताम्।
तत्रैकां द्वौ तथाऽऽवर्तौ चतस्रश्च कचांतगाः॥
सप्तैवं वर्जयेत्तासाम् ॥ ३० ॥–

जो ६० सिरायें नासा और नेत्रगत कही है उनमेंसे जो एक सिरा ललाटमे स्थपनीके आश्रित हे उसको शस्त्रसे स्पर्श नहीं करना चाहिये. जो दो सिराये दोनों आवर्त मर्मोमें हे वे भी अवेध्य हे तथा चार सिरायें जो केशोंके अन्तस्थ हैं वेभी वेधन नहीं करने चाहिये। इस प्रकार मस्तककी ७ सिरायें अवेध्य हैं ॥३० ॥

कानोंकी शिराये।

–कर्णयोः षोडशाऽत्र तु॥३१॥
द्वे शब्दबोधने शंखौ सिरास्ता एव चाश्रिताः।
द्वे शंखसंधिगे तासाम्--
--मूर्ध्नि द्वादश तत्र तु ॥ ३२ ॥
एकैकां पृथगुत्क्षेपसीमन्ताधिपतिस्थिताम्।
इत्यवेध्यविभागार्थं प्रत्यङ्गं वर्णिताः सिराः३३

दोनों कानोंमे १६ सिरायें हैं उनमे दो शब्दज्ञानमें काम देती है और जो कानकी सिरायें दोनों शंखोंमे गईहुई हे उनमेंसे दो शंखकी सन्धियोंकी सिराये ये चार सिराभी अवेध्य हे।

बारह सिरा मूर्धामें हे. इनमेंसे आठ सिराये अवेध्य हे जो प्रत्येक उत्क्षेपमें एक २ होनेसे दो और एक एक पांचों सीमान्तोंमे और एक अधिपतिमे है ये आठ सिराभी अवेध्य है जिनको शस्त्रका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार अवेध्य शिराओंके विभाग करनेके लिये प्रत्येक अगकी सिराओंका वर्णन कर दियाहै३१-३३

अन्य अवेध्य शिराये।

अवेध्यास्तत्र कात्स्न्र्येन देहेऽष्टानवतिस्तथा।
संकीर्णा ग्रथिताः क्षुद्रा वक्राः संधिषु चाश्रिताः

ये सिरायें सम्पूर्ण देहमें ९८सिरा है सम्पूर्ण रूपसेही अवेध्य है किन्तु इन सिराओंके अतिरिक्त जो संकीर्ण शिरायें गठीली क्षुद्र टेढी और सन्धियोंमें

आश्रित जो शिरायें है वेभी शस्त्रादिके स्पर्शसे बचानी चाहिये ॥ ३४ ॥

रक्त, वात, पित्त और कफ वहन करनेवाली सिरायें ।

तासां शतानां सप्तानां पादोऽस्रं वहते पृथक् ।
वातपित्तकफैर्जुष्टं शुद्धं चैवं स्थिता मलाः ।
शरीरमनुगृह्णंति पीडयंत्यन्यथा पुनः ॥ ३५॥

उन ७०० सात सौ शिराओंमें १७५ रक्तको वहन करती है । १७५ वातको वहन करती है । १७५ पित्तको वहन करती है । १७५ कफको वहन करती है इस प्रकार सम्पूर्ण सिराये शुद्ध रक्त, शुद्ध वात, शुद्ध पित्त, शुद्ध कफको वहन करतीहुई शरीरको पालन करती है । इन ७०० सात सौ सिराओंके आश्रित शुद्ध रक्त, वात, पित्त और कफ शरीरका पालन करते हैं तथा आयुकी वृद्धि आदि करते है । परन्तु शुद्धतामे विपरीत मलीन होनेसे ये चारों शरीरको पीडन करते हैं ॥ ३५ ॥

उपरोक्त शिराओंकी पहचान ।

तत्र श्यावारुणा रूक्षाः पूर्णरिक्ताः क्षणात्सिराः।
प्रस्पन्दिन्यश्च वातास्रं वहंते ॥ ३६ ॥–
–पित्तशोणितम् ।
स्पर्शोष्णाःशीघ्रवाहिन्यो नीलपीताःकफं पुनः।
गौर्यःस्निग्धाःस्थिराःशीताःसंसृष्टंलिंगसंकरे३७

इनमें श्याम और अरुणवर्णकी सिरायें जो सूक्ष्म हैं वे क्षण क्षणमें पूर्ण होतीहुई और रिक्त होतीहुई फडकतीहुई वात और रक्तको वहन करती हैं ।

जो सिरायें स्पर्शमें उष्ण और शीघ्र वहन करनेवाली हैं तथा वर्णमें नील पीत है वे पित्त और रक्तको वहन करती है ।

जो सिरायें गौरवर्णकी स्निग्ध स्थिर और शीत स्पर्शवाली है वे सिरायें शुद्ध कफको वहन करती हैं ।

इनमें जो मिश्रित लक्षणोंवाली है वे मिलेहुए वातपित्त, वातकफ, और पित्तकफ आदिको वहन करनेवाली जाननी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

गूढाःसमस्थिताःस्निग्धारोहिण्यःशुद्धशोणितम्

जो सिरायें गूढ समस्थित स्निग्ध और व्रणादिकोंको रोहण करनेवाली हैं वे शुद्ध रक्तको वहन करतीहै॥ ३८

धमनियोंका वर्णन ।

धमन्यो[१] नाभिसंबद्धा विंशतिश्चतुरुत्तराः ।
ताभिः परिवृतो नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ॥
ताभिश्चोर्ध्वमधस्तिर्यग्देहोऽयमनुगृह्यते ॥३९॥

मनुष्यकी देहमें नाभिसे सम्बद्ध २४ धमनियें हैं इन २४ धमनियोंसे नाभिकन्द और रथचक्र नाभिके समान परिवृत हैं । इन २४ धमनियोंमें १० ऊपरको गमन करती है १० नीचेको गमन करती हैं और ४ तिर्यक् गमन करनेवाली हैं. इन २४ धमनियोंसे शरीर पालित रहता है. दश ऊपर गमन करनेवाली शब्द, स्पर्श, रूप, रस,गंध, श्वास, उच्छ्वास हास्यादिको धारण करती है । ये हृदयमें पहुंचकर दशकी ३ गुनी होजाती हैं । दश अधोगामी, वात, मूत्र, पुरीष, शुक्र, आर्तवादिके वहन करती हैं । तिरछा गमन करनेवाली चार धमनियां आगे जाकर एक एकसे सैकडों विभाग होकर अनेक प्रकारके कामोंको करती है । इस प्रकार धमनियोंसे सम्पूर्ण शरीर व्याप्त होकर शरीरका अनुग्रह होता है ॥ ३९ ॥

---

१ अत्र विशेषः सग्रहे चोक्तम् । तासां खलु धमनीनां मध्याद्दश धमन्य ऊर्ध्वं प्रसृताः दशाऽधः प्रसृतास्तिर्यक् चतस्रः। ताभिर्यथास्वमङ्गावयवा ऊर्ध्वाधस्तिर्यक् समाश्रिता धार्यंते आप्याय्यंते च । तासामूर्ध्वगा हृदयमभिप्रपन्नाः प्रत्येकं त्रिधा जायंते । एव तास्त्रिंशत् । ततस्त्रिंशतो मध्याद्द्वे द्वे वातपित्तकफरक्तरसान्वहतः । एवं दश । द्वे द्वे शब्दरूपरसगंधान् गृह्णीतः । एवमष्टाभिः शब्दरूपरसगंधा गृह्यते । द्वाभ्यां द्वाभ्यां भाषते घोषं करोति स्वपिति प्रतिबुध्यते च एवमष्टौ । द्वे चाश्रु वहतः । तथैव द्वे स्तनाश्रिते नार्याः स्तन्यं नरस्य शुक्रं वहतः । अधोगमाः पक्वाशयस्था दश त्रिधा जायंते । एवं ता अपि त्रिंशत् । तत्राद्याः पूर्ववद्दश द्वे द्वे वातपित्तकफरक्तरसान्वहतः । द्वे वहतोऽन्नमन्नाश्रयेण द्वे मूत्रं द्वे तोयं द्वे शुक्रं वहतः । द्वे च मुंचतः । ते एव नारीणामार्तवं वहतः । द्वे वर्चोनिरसने स्थूलांत्रप्रतिबद्धे । एव द्वादश । शेषास्त्वष्टौ धमन्यस्तिरश्चीनाः स्वेदमभिवर्धयन्ति । तिर्यग्गामिन्यस्तु चतस्रो भिद्यमानाः सुबहुधा भवन्तीति ।

स्रोतोंका वर्णन ।

स्रोतांसि नासिके कर्णौ नेत्रे पाय्वास्यमेहनम्।
स्तनौ रक्तपथश्चेति नारीणामाधिकं त्रयम्॥४०

मनुष्यके शरीरमें दो प्रकारके स्रोत होते हैं। एक दृश्य, एक अदृश्य. उनमें कान, नेत्र, मुख, नासिका, गुदा और मेढ़ू ये नव स्रोत अर्थात् द्वार पुरुषोंके शरीरमें बहिर्मुख स्रोत कहे जातेहै। जैसे दो कानके स्रोत दो नेत्रोंके स्रोत दो नासिकाके स्रोत एक गुदाका स्रोत एक लिंगका स्रोत और एक मुखका स्रोत ये नव स्रोत होते हैं. स्त्रियोंके शरीरमें ३ स्रोत अधिक रहते है। जैसे दो स्तनोंके और एक मासिक धर्मके वहनेका स्रोत होते हैं ॥ ४० ॥

आभ्यन्तर स्रोतोंका वर्णन ।

जीवितायतनान्यंतः स्रोतांस्याहुस्त्रयोदश ।
प्राणधातुमलांभोऽन्नवाहीनि ॥ ४१ ॥–
–अहितसेवनात् ।
तानि दुष्टानि रोगाय विशुद्धानि सुखाय च ४२
स्वधातुसमवर्णानि वृत्तस्थूलान्यणूनि च ।
स्रोतांसि दीर्घाण्याकृत्या प्रतानसदृशानिच४३

जीवनके आयतन रूप १३ स्रोत आभ्यन्तर स्रोत कहे जाते है. जो स्रोत प्राण, धातु, मल, जल और अन्नका वहन करते है ॥ ४१ ॥

वे स्रोत अहितपदार्थोंके सेवन करनेसे दुष्ट होकर अनेक रोगोंको उत्पन्न करते हैं और विशुद्ध रहनेसे शरीरमें सब प्रकार सुखके करनेवाले होते हैं।

वे सब स्रोत अपनी अपनी धातुके समानवर्णवाले होते है. कोई वृत्त, कोई स्थूल, कोई अणु, कोई दीर्घ, कोई आकारमें प्रतानके सदृश होते है ॥४२॥४३॥

स्रोतोंके दूषित होनेमें हेतु ।

आहारश्च विहारश्च यः स्याद्दोषगुणैः समः ।
धातुभिर्विगुणो यश्च स्रोतसां स प्रदूषकः॥४४॥

जो आहार विहार दोषोंके समान गुणवाले होते है अर्थात् रूक्ष आदि वातवर्धक उष्ण तीक्ष्णादि पित्तवर्धक और गुरु स्निग्धादि कफवर्धक उनके अधिक सेवनसे जिस दोषके समानगुणवाले अधिक सेवन किया जाय वही दोष वृद्धिको प्राप्त होकर स्रोतको दूषित कर देता है। इसी प्रकार रस रक्तादि धातुओंके विपरीतगुणवाले आहार विहारका सेवन करनाभी स्रोतोंको दूषित करता है ॥ ४४ ॥

दूषित स्रोतोंके लक्षण ।

अतिप्रवृत्तिः संगो वा सिराणां ग्रंथयोऽपि वा ।
विमार्गतो वा गमनं स्रोतसां दुष्टिलक्षणम्॥४५

जो स्रोत जिस मलमूत्रादिके वहन करनेवाला हो, उसकी अतिप्रवृत्ति होना या रुक जाना अथवा शिराओंमें ग्रन्थियें होना, या उस स्रोतमें गमन करनेवाले मूत्रादिका विमार्गगामी होना ये स्रोतोंके दूषित होनेके लक्षण है।

जैसे—मूत्रवाही स्रोतके दूषित होनेसे मूत्रका अधिक आना या आविल आदि विवर्ण होकर आना, अथवा मूत्राघात आदि रोग होकर मूत्रका रुकना, या कष्टसे आना, अथवा उदावर्त होजाना आदि लक्षण हों तो मूत्रवाही स्रोतको दूषित हुआ जानना। ऐसेही मलकी अधिक प्रवृत्ति होना, वारवार आना, या विकृत रूपसे आना, अथवा रुक जाना, अथवा उदावर्तादि होकर विमार्ग गामी होना आदि लक्षण हों तो मलवाही स्रोतको दूषित जानना चाहिये। इसी प्रकार रस रक्तादि वहन करनेवाले स्रोतोंकी दुष्टिको रसरक्तादिकी विकृतिसे जानलेना चाहिये ॥ ४५ ॥

सूक्ष्म स्रोतोंमें दृष्टान्त ।

बिसानामिव सूक्ष्माणि दूरं प्रविसृतानि च ।
द्वाराणि स्रोतसां देहे रसो यैरुपचीयते ॥४६॥

जैसे कमलकी दडियोंमें सूक्ष्म छिद्र दूरतक विस्तृत रहते हैं उसी प्रकार देहमें स्रोतोंके द्वारभी विस्तृत होकर शरीरमें फैले हुए हैं. जिन सूक्ष्म स्रोतों द्वारा आहारका रस शरीरमें उपचित होता है और वहन किया जाता है ॥ ४६ ॥

विद्ध स्रोतके उपद्रव ।

व्यधे तु स्रोतसां मोहकंपाध्मानवमिज्वराः ।
प्रलापशूलविण्मूत्ररोधो मरणमेव वा ॥ ४७ ॥

स्रोतोविद्धमतो वैद्यः प्रत्याख्याय प्रसाधयेत् । उद्धृत्य शल्यं यत्नेन सद्यःक्षतविधानतः॥४८॥

स्रोतोंमें इसी प्रकारसे वेधन आदिकी चोटसे या व्रण हो जानेसे मनुष्यको मोह, कम्प, आध्मान, वमन, ज्वर, प्रलाप, शूल, विष्ठा या मूत्रका निरोध होजाता है अथवा मनुष्यकी मृत्युभी होजाती है । इस कारण जिस मनुष्यका स्रोत विंध गया हो उसकी चिकित्सा करनीपडे तो प्रथम उस रोगीके मालिकको कह देवे कि 'इस रोगकी चिकित्सा मेरी शक्तिसे बाहर है' फिर यदि चिकित्सा करनी पडे तो युक्ति पूर्वक जिस तीर आदिसे स्रोत विद्ध हुआ हो उस शल्यको यत्न पूर्वक निकाले और शीघ्रही क्षतकी चिकित्सा विधिसे युक्ति पूर्वक चिकित्सा करे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

पाचकाग्निका वर्णन ।

अन्नस्य पक्ता पित्तं तु पाचकाख्यं पुरेरितम् । दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनम्॥४९॥

अन्नके परिपाक करनेवाला पित्तको पाचक पित्त नामसे पहले सूत्रस्थानमें कह आये हैं । इस पित्तको धन्वन्तरिजीने पक्वाशय और आमाशयके मध्यमें रहकर पाचक पित्त नामसे आहारका परिपाक करनेवाली अग्नि माना है--परन्तु आत्रेयजी वातादि दोष, रसादि धातु और मलादिकोंकी ऊष्माको ही अन्नके परिपाकका कारण मानते हैं । आत्रेयजीका मत है कि, दोष धातुओं आदिकी ऊष्मा ही अन्नका यथार्थ परिपाक करनेमें कारण है ॥ ४९ ॥

ग्रहणी कलाका वर्णन ।

तदधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद्ग्रहणी मता । सैव धन्वन्तरिमते कला पित्तधराह्वया ॥५०॥ आयुरारोग्यवीर्यौजोभूतधात्वग्निपुष्टये । स्थिता पक्वाशयद्वारि भुक्तमार्गार्गलेव सा ५१॥

उस पाचकाग्निका अधिष्ठान होनेसे तथा अन्नका ग्रहण करनेके कारण ग्रहणी कला कही जाती है। इसी ग्रहणी कलाको धन्वंतरिजीके मतमे पित्तधरा कला माना है । ये कला आयु आरोग्य वीर्य और ओजरूप धातुओंको तथा अग्निको पुष्ट करनेके लिए पक्वाशयके द्वारपर भुक्तमार्गकी अर्गलाके समान स्थित रहती है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

भुक्तमामाशये रुद्ध्वा सा विपाच्य नयत्यधः । बलवत्यबला त्वन्नमाममेव विमुंचति ॥ ५२ ॥

वह ग्रहणी कला यदि यथार्थ बलवती हो तो भोजन किए हुए आहारको आमाशयमें रोककर उसका यथार्थ परिपाक करके नीचे ले जाती हैं । यदि यह ग्रहणी निर्बल हो तो उस आहार किए हुए अन्नको विना यथार्थ परिपाक किए कच्चेकोही त्याग देती है ५२॥

जठराग्नि और ग्रहणीका सम्बन्ध ।

ग्रहण्या बलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीबलः । दूषितेऽग्नावतो दुष्टा ग्रहणी रोगकारिणी ५३

ग्रहणीके बलमे हेतु जठराग्नि ही है, जितनी अच्छी जठराग्नि रहती है उतनीही अच्छी ग्रहणी कलाभी रहती है । जैसे ग्रहणी कलाके बलमें जठराग्निका बल हेतु है उसी प्रकार जठराग्निके बलमेंभी ग्रहणीकलाका बल कारण है । इस लिये जठराग्निके दूषित होनेपर ग्रहणी कलाभी दुष्ट होकर रोगका कारण हो जाती है. क्योंकि ग्रहणीके द्वारा यथार्थ अन्नका परिपाक और ग्रहण न होकर कच्चाही अन्न निकलजानेमें रसादिकोंकी यथार्थ उत्पत्ति नहीं होती ॥ ५३ ॥

देहधात्वादिकोंकी वृद्धिमें यथार्थ परिपाकही हेतु है ।

यदन्नं देहधात्वोजोबलवर्णादिपोषणम् । तत्राऽग्निर्हेतुराहारान्न ह्यपक्वाद्रसादयः ॥ ५४ ॥

जो अन्न देह, धातु, ओज, बल और वर्णादिकोंको पुष्ट करनेवाला है वह सम्पूर्ण पुष्टि जठराग्निद्वारा यथार्थ परिपाक होजानेपरही हो सकती है । यदि जठराग्निद्वारा यथार्थ परिपाक न हो तो किसी प्रकारके पुष्ट अन्नभी अपक्व रहनेसे या अपक्व रसादिक देह धातु आदिकोंकी पुष्टि नहीं कर सकते. किन्तु अपक्व होनेसे रोगोंका कारण हो जाते हैं ।

---

१ क्षेपकः--वामपार्श्वाश्रितं नाभेः किंचित्सूर्यस्य मण्डलम् । तन्मध्ये मंडलं सौम्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः । जरायुमात्रप्रच्छन्नः काचकोशस्थदीपवत् ॥ १ ॥

इस कारण जठराग्निद्वारा अन्नका यथार्थ परिपाक होनाही देह धातु, ओज और बल वर्णादिका पोषक होता है ॥ ५४ ॥

परिपाकका क्रम ।

अन्नं कालेऽभ्यवहृतं कोष्ठं प्राणानिलाहृतम् ।
द्रवैर्विभिन्नसंघातं नीतं स्नेहेन मार्दवम् ॥ ५५॥
संधुक्षितः समानेन पचत्यामाशयस्थितम् ।
औदर्योऽग्निर्यथा बाह्यः स्थालीस्थं तोयतण्डुलम्

ठीक समयमें खाया हुआ अन्न प्रथम प्राणवायुद्वारा लियाजाकर आमाशयमें जाता है फिर वहांपर जल आदि द्रवोंमें भेदन होकर भिन्न संघात हो जाता है फिर स्नेह आदिमें मृदुताको प्राप्त होजाता है वहां पर आमाशयमें स्थित हुए इस अन्नके समान वायुसे संधुक्षितहुई जठराग्नि पकाती है। जैसे किसी पात्रमें चावल और जल आदि डालकर अंगीठी आदिकी अग्निपर रखदेते है उसी प्रकार आमाशय रूपपात्रमें पहुंचेहुए अन्न जल स्नेह जठराग्निरूप अंगीठीकी अग्निमें परिपाकको प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

आदौ षड्रसमप्यन्नं मधुरीभूतमीरयेत् ।
फेनीभूतं कफं यातं विदाहादम्लतां ततः।५७।
पित्तमामाशयात्कुर्याच्च्यवमानं च्युतं पुनः ।
अग्निना शोषितं पक्वं पिण्डितं कटुमारुतम्५८
भौमाप्याग्नेयवायव्याः पंचोष्माणः सनाभसाः।
पंचाहारगुणान्स्वान् स्वान् पार्थिवादीन्पचंत्यनु
यथास्वं ते च पुष्णंति पक्त्वा भूतगुणान्पृथक्।
पार्थिवाः पार्थिवानेव शेषाः शेषांश्च देहगान्५९

प्रथम आमाशयमें गयाहुआ आहार छः रसोंवाला होता हुआभी अथवा छःरसोंमेंसे किन्हीं रसोंवाला होता हुआभी प्रथम परिपाकको प्राप्त होता हुआ मधुर हो जाता है। यह मधुर होनेके कारण फेनभूत कफको उदीर्ण करदेता है।

फिर प्रथमावस्थाके अनन्तर मध्यम परिपाकके समय जठराग्निके बलसे पकताहुआ विदाहके कारण अम्लताको प्राप्त हो जाताहै। तब विदाहके कारण च्यवमान होता हुआ पित्तको उदीर्ण करदेता है।

फिर आमाशयसे च्युतहुआ अर्थात् चलायमान हुआ पक्काशयकी ओर जाताहुआ जठराग्नि द्वारा शोषित होकर पक्वपिंडके समान भावको प्राप्त होताहै तब कटु होकर वायुको उदीर्ण करदेता है।

उस समय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांच महाभूतोंकी ऊष्मायें (अग्नियें) अपने अपने पार्थिवादि महाभूतके गुणवाले आहारका परिपाक करती है। ये पांच महाभूतोंकी अग्नियें अपने अपने महाभूतके गुणवाले रसका परिपाक करके अपने अपने महाभूतके गुणको पुष्ट करती हैं। जैसे पार्थिव द्रव्योंके रससे पार्थिव ऊष्मा शरीरमें रहनेवाले पार्थिव भावोंको पुष्टकरती है वैसेही जलीय गुणवाले द्रव्योंके रसको लेकर शरीरमें होनेवाले जलीय भावोंको जलकी ऊष्मा पुष्ट करती है। इसी प्रकार अग्निकी ऊष्मा आग्नेय भावोंको वायुकी ऊष्मा वायवीय भावोंको और आकाशकी ऊष्मा शरीरके आकाशीय भावोंको पुष्टकरती हैं। यद्यपि पृथ्वी आदि चार महाभूतोंके कार्यमें सौकर्यका कारण होनेसेही आकाशको पांचवा भूत माना है। परन्तु कान, नासिका आदि स्रोतोंमें जो ऊष्मा काम करती है वह आकाशीय छिद्रोंके कार्यको करनेवाली होनेके कारण और लघुतादि गुणको पोषण करनेके कारण पांचवीं आकाशीय ऊष्मा मानीगयी है. इस प्रकार पांच महाभूतोंकी पांच अग्नियें एक जठराग्नि और सात आगे कही हुई रसादि धातुओंकी ऊष्मायें इन १३ तेरह अग्नियोंसे अन्नका यथार्थ परिपाक होकर शरीरका पालन होता है ॥ ५७-५९ ॥

अन्नके किट्ट और सारका वर्णन ।

किट्टं सारश्च तत्पक्वमन्नं संभवति द्विधा ।
तत्राऽच्छं किट्टमन्नस्य मूत्रं विद्याद्घनं शकृत् ॥

इस प्रकार जठराग्नि और पांच महाभूतोंकी ऊष्माओंसे परिपाक होकर आहार कियेहुये अन्नके

दो भाग होजाते हैं। एक किट्ट (निःसार मल) और दूसरा सारभूत रस।

इनमें किट्टकेभी दो भाग होजाते हैं जैसे घन और द्रव. इनमें अन्नके घन किट्टको मल (विष्ठा) और द्रव किट्टको मूत्र कहते हैं ॥ ६० ॥

सारका वर्णन।

सारस्तु सप्तभिर्भूयो यथास्वं पच्यतेऽग्निभिः ६१

अन्नका सार सात धातुओंकी ऊष्माओंसे क्रमसे परिपाकको प्राप्त होकर अपनी अपनी धातुओंमें परिणत होजाता है. इस प्रकार प्रथम जठराग्निसे फिर पांच महाभूतोंकी अग्नियोंसे तदनन्तर सारभूत होजानेपर रसादि सात धातुओंकी अग्नियोंसे परिपाक होकर त्रयोदशाग्नि द्वारा परिणत होता हुआ आहार, रस, शरीरादिको पालन करता है ॥ ६१ ॥

रसादि सात धातुओंका उत्पत्ति क्रम।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदस्ततोऽस्थि च।
अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्गर्भः प्रजायते ६२

आहारके सारभूत रससे रक्त बनता है। रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे शुक्र क्रमपूर्वक पुष्टिको प्राप्त होते हे। शुक्रसे गर्भ बनता है ॥ ६२ ॥

धातुओंके मल।

कफः पित्तं मलाः खेषु प्रस्वेदो नखरोम च।
स्नेहोऽक्षित्वग्विशामोजो धातूनां क्रमशो मलाः।

मुखमेंसे गिरनेवाला कफ अर्थात् थूंक और जो मका जल आदि रस धातुका मल होता है। रंजकपित्त रुधिरका मल होता है. कान, नाक आदिका मैल मांसका मल होता है। शरीरका पसीना और जीभ, दांत, काँख और शिश्नकी मैल मेदधातुका मल होता है। नख और रोम अस्थियोंके मल होते हैं. मुखकी चिकनाई नेत्रोंकी चिकनाई ये मज्जा धातुके मल होते हैं, यौवन पीडिका (मोहांसे) और मनुष्यके शरीरका तेज शुक्रका मल कहे जाते हे ॥ ६३ ॥

रसादि धातुओंके मल आदिका वर्णन।

प्रसादकिट्टौ धातूनां पाकादेवं द्विधर्च्छतः।
परस्परोपसंस्तंभाद्धातुस्नेहपरंपरा ॥ ६४ ॥

इस प्रकार रसादि धातुओंके भी प्रसाद और किट्ट दो प्रकारके मल होजाते हे अर्थात् जैसे पहले आहारका परिपाक होनेपर किट्ट और सार दो प्रकारके विभाग कह आये हे ऐसेही रसादि धातुओंकेभी स्वाभाविक परिपाकसे एक प्रसादभूत और एक मलभूत दो प्रकारके विभाग हो जाते हे। यह रसादि धातुओंका सारभूत स्नेह परस्पर परिणाम और परिपाकको प्राप्त होतेहुए धातु-स्नेहकी परम्परा क्रमसे उत्कर्षको प्राप्त होती रहती है. जैसे आहारका सारभूत रस अपने स्वोष्मासे परिपाकको प्राप्त होकर अपने स्नेह भावसे रक्तको बढाता है ऐसेही रक्त मांसको, मांस मेदको, मेद अस्थिको, अस्थि मज्जाको और मज्जा शुक्रको बल देतीरहती है। इस प्रकार स्वाभाविक परिणतिसे पूर्व धातुसे परधातु पुष्ट होता रहता है ॥ ६४ ॥

धातुओंका परिणाम काल।

केचिदाहुरहोरात्रात्षडहादपरे परे ॥ ६५ ॥
मासेन याति शुक्रत्वमन्नं पाकक्रमादिभिः।
सततं भोज्यधातूनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत् ६६

कोई कहते हे कि, आहारका सारभूत रस एक दिन रात्रिमें शुक्र बन जाता है। कोई कहते हे कि, आहारका सारभूत रस शुद्ध रसके स्वरूपमें परिणत होनेके अनन्तर ६ दिनमें शुक्र बन जाते हे। कोई कहते हे एक महीनेमें रसादि धातुका यथार्थ परिपाक होकर शुक्र बन जाता है। पाराशरने तो आठ दिनमे रसका शुक्ररूपमें परिणाम होना माना है–जैसे " आहारोऽद्यतनो यश्च श्वो रसत्व स गच्छति। शोणितत्वं तृतीयेऽह्नि चतुर्थे मांसतामपि ॥ मेदस्त्वं पञ्चमे षष्ठे त्वस्थित्वं सप्तमे व्रजेत्। मज्जत्वं शुक्रतामेति दिवसेऽष्टमे नृणाम् ॥ " अर्थात् " आजके आहारका रस कल तक बन जाता है इस रसका तीसरे दिन रक्त बन जाता है। रक्त चौथे दिनमें मांस रूपमे परिणत हो जाते है। पांचवे दिन मेद, छठवें दिन अस्थि, सातवें दिन मज्जा और आठवे दिन शुक्र बन जाताहै" परन्तु वाग्भटाचार्य एक दिनमे रसका होना फिर

एक एक धातुका पांचवें पाचवें दिन यथार्थ रूपसे दूसरी धातुमें परिणत हो जाना. ऐसे सात धातुओंके परिणामसे एक महीनेमें शुक्र होना मानते हैं।

इस प्रकार भोजन कियेहुए आहारसे बनेहुए शुद्ध रसकी निरन्तर क्रमसे रक्तादि धातुओंमें चक्रवत् परिणति होती रहती है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

द्रव्य स्वभावसे शीघ्र शुक्रादिकोंकी उत्पत्ति।

वृष्यादीनि प्रभावेण सद्यः शुक्रादि कुर्वते।
प्रायः करोत्यहोरात्रात्कर्मान्यदपि भेषजम् ६७

शतावरि कौंचबीज आदि वृष्य द्रव्य अपने प्रभावसे शीघ्र ही शुक्रादिकोंकी उत्पत्ति कर देते हैं। इस द्रव्यके अचिन्त्य दुर्लक्ष्य प्रभावके कारण वृष्यद्रव्य सद्य ही वीर्यके बलको बढा देते हैं।

वृष्यद्रव्योंके अतिरिक्त अन्य औषधिये भी अपने प्रभावसे दिन रात्रिमें अथवा सद्यः ही अपने पाचन, रेचन आदि कर्मोंको करदेती हैं ॥ ६७ ॥

सर्वाङ्गव्यापक रस और दोषोंसे एक अंगमें रोगोत्पत्तिका कारण।

व्यानेन रसधातुर्हि विक्षेपोचितकर्मणा।
युगपत्सर्वतोऽजस्रं देहे विक्षिप्यते सदा ॥६८॥
क्षिप्यमाणः खवैगुण्याद्रसः सज्जति यत्र सः।
तस्मिन्विकारं कुरुते खे वर्षमिव तोयदः।
दोषाणामपि चैवं स्यादेकदेशप्रकोपणम्॥६९॥

उचित विक्षेप आदि कर्म करनेवाले व्यानवायुद्वारा विक्षेप कियाहुआ रस धातु एक ही कालमें सम्पूर्ण देहमें निरन्तर गमन करता रहता है। वह रस व्यानवायुसे विक्षेप कियाहुआ शरीरके जिस भागमें अपनी स्वाभाविक गतिसे रुक कर ठहर जाता है उसी स्थानमें विकारको उत्पन्न कर देता है। जैसे आकाशमें जिस स्थानमें मेघ एकत्रित हो जाता है उसी स्थानमें वृष्टिको करता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण देहमे विचरण करताहुआ जिस देशमें विकृत होकर ठहर जाता है उसी स्थानमें रोगको उत्पन्न कर देता है। इसी कारण सर्व शरीरव्यापी रससे भी एक देशमें रोग उत्पन्न होजाता है।

इसी प्रकार सर्व देहमें व्यापक रहनेवाले वातादि दोष भी शरीरके जिस अंगमें विकृत होकर ठहरते हैं उसी अंगमें रोगको उत्पन्न कर देते हैं ॥६८॥६९॥

जठराग्निका प्रधानत्व।

अन्नभौतिकधात्वग्निकर्मेति परिभाषितम्॥७०॥
अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तृणामधिको मतः।
तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः ७१
तस्मात्तं विधिवद्युक्तैरन्नपानेन्धनैर्हितैः।
पालयेत्प्रयतस्तस्य स्थितौ ह्यायुर्बलस्थितिः॥७२

यद्यपि पांचभौतिक अन्नके परिपाकमें, जठराग्नि, भौतिकाग्नि और धात्वग्नि ये त्रयोदशाग्नियें कारण मानी है परन्तु इन सब अग्नियोंमें अन्नके परिपाकके लिये जठराग्नि ही प्रधान है। इस जठराग्निकी वृद्धिसे अन्य द्वादश अग्नियोंकी वृद्धि और इसकेही क्षयसे अन्य द्वादश अग्नियोंका क्षय होता है। तात्पर्य यह हुआ सम्पूर्ण भौतिकाग्नि और धात्वग्नियोंका वृद्धि क्षय जठराग्निके आधीन है। इस कारण उस जठराग्निको उत्तम रखनेके लिये योग्य अन्न-पानरूपी इंधन और हित आहार, विहारसे जठराग्निको निरन्तर यत्नपूर्वक पालन करते रहना चाहिये। क्योंकि इसकी स्थितिके आधीन ही मनुष्यकी आयु और बलकी स्थिति रहती है ७०-७२

जठराग्निकी सम आदि चार अवस्था।

समः समाने स्थानस्थे विषमोऽग्निर्विमार्गगे।
पित्ताभिमूर्च्छिते तीक्ष्णो मंदोऽस्मिन्कफपीडिते
समोऽग्निर्विषमस्तीक्ष्णो मंदश्चैवं चतुर्विधः॥७३

समानवायुकी साम्यावस्था रहनेसे जठराग्नि सम रहती है। समानवायुके विगुण होनेपर जठराग्नि विषम हो जाती है। पित्ताधिक्यसे जब समानवायु पित्त मिश्रित हो जाती है वह जठराग्नि तीक्ष्ण होती है। इसी प्रकार कफसे अभिभूत समानवायु होनेसे जठराग्नि मन्द पड़ जाती है।

इस प्रकार सम विषम तीक्ष्ण और मन्द इन चार भेदोंसे जठराग्नि चार प्रकारकी हो जाती है ॥७३॥

चतुर्विध जठराग्निके लक्षण ।

यः पचेत्सम्यगेवान्नं भुक्तं सम्यक् समस्त्वसौ७४
विषमोऽसम्यगप्याशु सम्यक् क्वापि चिरात्पचेत
तीक्ष्णोवह्निःपचेच्छीघ्रमसम्यगपि भोजनम्७५
मंदस्तु सम्यगप्यन्नमुपयुक्तं चिरात्पचेत् ।
कृत्वाऽऽस्यशोषाटोपांत्रकूजनाऽऽध्मानगौरवम्

जो अग्नि भोजन कियेहुए पथ्य आहारको ठीक प्रकारसे पाचन कर देवे उस अग्निको समअग्नि कहते है। जो अग्नि सम्यक् भोजन कियेहुएको कभी शीघ्र परिपाक कर देवे और कभी विलम्बसे परिपाक कर देवे उसको विषमाग्नि कहते है। जो अग्नि अधिक और अपथ्य भोजनको भी शीघ्र पाचन कर देवे उसको तीक्ष्णाग्नि जानना चाहिये । जो अग्नि यथार्थ पथ्य कियेहुए भोजनको भी बहुत देरमें और मुखशोष, आटोप, अंत्रकूजन, आध्मान और भारीपन आदि करके पचावे उसको मंदाग्नि कहते है ॥ ७४–७६॥

मनुष्योंमें त्रिविध बल ।

सहजं कालजं युक्तिकृतं देहबलं त्रिधा ।
तत्र सत्त्वशरीरोत्थं प्राकृतं सहजं बलम् ॥ ७७॥
वयस्कृतमृतूत्थं च कालजं युक्तिजं पुनः ।
विहाराहारजनितं तथोर्जस्करयोगजम् ॥ ७८॥

मनुष्योंके शरीरमें बल ३ प्रकारसे होता है। जैसे:- सहज, कालजनित और युक्तिकृत । इनमें सत्त्वगुणके उत्कर्षसे जन्मसेही जो स्वाभाविक बल होताहै उसे सहजबल कहते हैं। जो अवस्थाजनित और ऋतुजनित बल होताहै उसको कालजनित बल कहते हैं। और जो आहार विहारजनित अथवा रसायनादि योगजनित बल होता है उसको युक्तिजनित बल कहते है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

तीन प्रकारका देश ।

देशोऽल्पवारिद्रुनगो जाङ्गलः स्वल्परोगदः ।
आनूपो विपरीतोऽस्मात्समः साधारणःस्मृतः॥

देश ३ प्रकारका होताहै। जैसे:—जांगल, आनूप और साधारण. जिस देशमें जल थोडा हो, वृक्षभी थोडे हों और छोटी या कम पहाडियां हों उसको जांगल देश कहते है। जाङ्गलदेशके मनुष्य अल्परोगवाले और चिरजीवी होते है। जिस देशमें जल, वृक्ष और पर्वत अधिक हों उसको आनूप कहते है। इस देशमें जलकी अधिकताके कारण रोगोंकी अधिकता होतीहै। जिस देशमें जांगल और आनूप दोनों देशके लक्षण मिलते हों उसको साधारण देश कहते है ॥ ७९ ॥

मनुष्योंके शरीरमें मज्जा आदि धातुओंका मान

मज्जमेदोवसामूत्रपित्तश्लेष्मशकृत्यसृक् ॥ ८० ॥
रसो जलं च देहेऽस्मिन्नेकैकाञ्जलिवर्धितम् ।
पृथक्स्वप्रसृतं प्रोक्तमोजोमस्तिष्करेतसाम्॥८१
द्वावञ्जली तु स्तन्यस्य चत्वारो रजसः स्त्रियाः ।
समधातोरिदं मानं विद्याद्वृद्धिक्षयावतः ॥८२॥

मनुष्यके शरीरमें मज्जा एक अंजलि, मेद दो अंजलि, वसा तीन अंजलि, मूत्र चार अंजलि, पित्त पांच अंजलि,कफ ६ अंजलि,शकृत् ७ अंजलि,रक्त ८ अंजलि, रस नौ अंजलि और जल १० अंजलि होताहै ॥

इनके अतिरिक्त ओज मस्तिष्क और वीर्य ये पृथक् पृथक् एक एक प्रसृति प्रमाण होताहै। यहांपर कहे हुए ओजसे भिन्न हृदयमें होनेवाला अष्टबिंदु ओज पृथक् होताहै। यहां मस्तिष्कशब्दसे मस्तकमें होनेवाले मस्तुलुंगका ग्रहण है। स्त्रियोंके शरीरमें उपरोक्त मज्जा आदिके अतिरिक्त दो अंजलि प्रमाण स्तन्य (दूध) और चार अंजलि प्रमाण रज रहताहै ।

इस प्रकार समधातु मनुष्यके शरीरमें यह मज्जा आदिका मान साधारणतया होता है किन्तु आहार विहारादिके कारण इसमें क्षय और वृद्धि होती रहती है॥ ८०--८२ ॥

शरीरकी प्रकृतियोंका वर्णन ।

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयर्तुषु ।
यःस्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिःसप्तधोदिता८३

गर्भाधानके समयमें वीर्य अथवा रजमें या दोनोंमे जिस दोषकी अधिकता हो अथवा गर्भिणीके आहार विहार आदिके कारण गर्भाशय या मासिक ऋतुमें जिस दोषकी अधिकता हो उस दोषकी प्रधानतासे उसके शरीरकी प्रकृति बनती है। वह प्रकृति सात

प्रकारकी कही है। यद्यपि आत्रेय भगवान्ने किसी दोषकी अधिकताको प्रकृति नहींमाना, क्योंकिदोषका न्यूनाधिक होना विकृति अर्थात् विकारही होताहै इस लिये दोषोंकी साम्यावस्था होनाही प्रकृति कहा जाता है। परन्तु जन्मसे होनेवाले मनुष्योंके सहजशरीर और स्वभावोंके भेदकोही यहां प्रकृति कहकर सात प्रकारकी प्रकृतियें कही है॥ ८३॥

वात प्रकृतिके लक्षण।

विभुत्वादाशुकारित्वाद्बलित्वादन्यकोपनात्।
स्वातंत्र्याद्बहुरोगत्वाद्दोषाणां प्रबलोऽनिलः८४
प्रायोऽत एव पवनाध्युषिता मनुष्या
दोषात्मकाः स्फुटितधूसरकेशगात्राः।
शीतद्विषश्चलधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टा-
सौहार्ददृष्टिगतयोऽतिबहुप्रलापाः॥ ८५॥
अल्पपित्तबलजीवितनिद्राः
सन्नसक्तचलजर्जरवाचः।
नास्तिका बहुभुजः सविलासा
गीतहासमृगयाकलिलोलाः॥ ८६॥
मधुराम्लपटूष्णसात्म्यकांक्षाः
कृशदीर्घाकृतयः सशब्दयाताः।
न दृढा न जितेन्द्रिया न चार्या
न च कान्तादयिता बहुप्रजा वा॥ ८७॥
नेत्राणि चैषां खरधूसराणि
वृत्तान्यचारूणि मृतोपमानि।
उन्मीलितानीव भवन्ति सुप्ते
शैलद्रुमांस्ते गगनं च यांति॥ ८८॥
अधन्या मत्सराध्माताःस्तेनाःप्रोद्बद्धपिंडिकाः
श्वशृगालोष्ट्रगृध्राखुकाकानूकाश्च वातिकाः८९

विभु औ आशुकारी होनेसे सब दोषोंमें बलवान् होनेसे अन्य दोषादिकोंके प्रकोपका कारण होनेसे स्वयं स्वतंत्र होनेसे अधिक रोगकारी होनेसे सब दोषोंमें प्रबल वायु ही होता है। इस कारण प्रथम वातप्रकृतिका वर्णन करते है-

वातप्रकृति मनुष्य सम्पूर्ण जीवनभर वातप्रधान शरीर और स्वभाववाला और फटेहुए और धूसर केश तथा अंगोंवाला शीतसे द्वेष करनेवाला अर्थात् उष्ण पदार्थोंकी अभिलाषावाला तथा जिसकी धारणा, स्मृति, बुद्धि और चेष्टा चलस्वभावकी हों अर्थात् थोडी थोडी देरमें बदलनेवाली और चंचल हों जिसकी सौहार्दता, गति औ दृष्टि सबही चचल हों, तथा अस्थिर हों जो बहुत बकवाद करनेवाला हो जिसके शरीरमें पित्त, बल, आयु और निद्रा कम हों अर्थात् वातप्रकृतिके शरीरमे पित्त, बल, निद्रा और जीवन प्रायः अल्प होते है। तथा जिसकी वाणी बोलते बोलते रुकनेवाली अस्थिर और जर्जरशब्दवाली हो जो स्वभावका नास्तिक हो बहुत खानेवाला हो विलास युक्त हो, गाना, हंसना, मृगया आदिमें अति चंचल हो तथा मधुर अम्ल और लवणरसप्रधान द्रव्य उसको सात्म्य हों और ऐसे ही रसोंकी उसकी इच्छा भी हो, उसका शरीर कृश, और लम्बीसी आकृतिवाला हो जिसके चलने फिरनेमे या हाथ पांवके हिलनेमें जोड शब्दकरते हों, जिसका स्वभाव और अंग दृढ न हों अजितेन्द्रिय और आचारभ्रष्ट जो स्त्रियोंका प्यारा न हो जिसके स्त्री सन्तानादि कम हों तथा इसके नेत्र खर, धूसर, वृत्त कुरूप और मृतप्रायसे हों। जिसके सोतेहुए नेत्र फूलेहुएसे प्रतीत हों जिसको स्वप्नमें पर्वतों और वृक्षों तथा आकाशमें अपने आप उडताहुआ दिखाई देवे जिसका स्वाभव बुरा मत्सरतायुक्त हो तथा चोरी आदि करनेवाला हो जिसकी पिंडलियां ऊपरको उठीसी हों जो गीदड, उष्ट्र, गृध्र और मूषकके से स्वभाववाला हो ऐसे मनुष्योंको वातप्रकृति जानना चाहिये॥ ८४--८९॥

पित्तप्रकृतिके लक्षण।

पित्तं वह्निर्वह्निजं वा यदस्मात्
पित्तोद्रिक्तस्तीक्ष्णतृष्णाबुभुक्षः।
गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्ताङ्घ्रिवक्त्रः
शूरो मानी पिङ्गकेशोऽल्परोमा॥ ९०॥
दयितमाल्यविलेपनमण्डनः
सुचरितः शुचिराश्रितवत्सलः।
विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो

भवति भीषुगोतिर्द्विषतामपि ॥ ९१ ॥
मेधावी प्रशिथिलसन्धिबन्धमांसो
नारीणामनभिमतोऽल्पशुक्रकामः ।
आवासः पलिततरङ्गनीलिकानां
भुङ्क्तेऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ ९२ ॥
धर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगन्धि-
र्भूर्युच्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः ।
सुप्तः पश्येत्कर्णिकारान्पलाशान्
दिग्दाहोल्काविद्युदर्कानलांश्च ॥ ९३ ॥
तनूनि पिङ्गानि चलानि चैषां
तन्वल्पपक्ष्माणि हिमप्रियाणि ।
क्रोधेन मद्येन रवेश्च भासा
रागं व्रजन्त्याशु विलोचनानि ॥ ९४ ॥
मध्यायुषो मध्यबलाः पण्डिताः क्लेशभीरवः ।
व्याघ्रर्क्षकपिमार्जारयक्षानूकाश्च पैत्तिकाः॥९५

पित्त, अग्नि अथवा अग्निजनित होनेसे पित्तप्रधान मनुष्य तीक्ष्ण स्वभावके अधिक भूख और प्यासवाले गौर वर्णके उष्ण अंगोंवाले,ताम्रवर्णके हाथ पांव और मुखवाले, शूर वीर, मानवाले, पिंगवर्णके केशोंवाले तथा अल्परोमवाले होते हैं। ये पुष्पमाला आदि धारण और चन्दन लेपन आदि मंडन करनेमें प्रेम रखनेवाले अच्छे चरित्रवाले पवित्र जिसके आश्रयमें रहें उसको प्यार करनेवाले अथवा अपने आश्रितसे प्रेम रखनेवाले विभव, साहस, बुद्धि और बल करके युक्त और द्वेषियोंपर आयेहुए भयको भी निवृत्त करनेमें अग्रेसर होनेवाले होते हैं। तथा मेधावी प्रशिथिल संधिबंधन और मांसवाले स्त्रियोंको अप्रिय अल्पवीर्य और अल्प कामशक्तिवाले पलितरोग और नीलिकादि युक्त शरीरवाले प्रायः मधुर, कषाय, तिक्त और शीतल आहारकी इच्छावाले, धर्मद्वेषी, अधिक पसीनेवाले,पूतिगंधवाले, अधिक दस्त आनेवाले अधिक क्रोधवाले अधिक पान, अशन और ईर्ष्यावाले पित्तप्रकृति होते हैं. इनको स्वप्नमें दिशाका दाह होना, उल्का, बिजली, सूर्य और अग्नि दिखायी देते हैं. इनके नेत्र छोटे पिंग वर्णके चल स्वभाववाले छोटी और थोडी पलकोंवाले होते हैं। इनके नेत्र ठंढी वस्तुसे प्रेम रखते हे तथा क्रोधसे मद्यसे सूर्यके प्रकाशसे और अन्य ऊष्मप्रकाशसे लाल वर्णके होजाते हे। ये पित्तप्रधान मनुष्य मध्यायुवाले, मध्यबलवाले, पण्डित, क्लेश न सहन करनेवाले तथा व्याघ्र, रीछ, बन्दर, बिलावके स्वभाववाले होते हे. इन लक्षणोंवाले मनुष्यको पित्तप्रकृतिवाला जानना चाहिये ॥ ९०–९५ ॥

कफप्रकृतिके लक्षण ।

श्लेष्मा सोमः श्लेष्मलस्तेन सौम्यो
गूढस्निग्धश्लिष्टसंध्यस्थिमांसः ।
क्षुत्तृड्दुःखक्लेशधर्मैरतप्तो
बुद्ध्या युक्तः सात्त्विकः सत्यसन्धः॥९६॥
प्रियङ्गुदूर्वाशरकाण्डशस्त्र-
गोरोचनापद्मसुवर्णवर्णः ।
प्रलंबबाहुः पृथुपीनवक्षा
महाललाटो घननीलकेशः ॥ ९७ ॥
मृद्वङ्गः समसुविभक्तचारुवर्ष्मा
बह्वोजोरतिरसशुक्रपुत्रभृत्यः ।
धर्मात्मा वदति न निष्ठुरं च जातु
प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरं च वैरम् ॥ ९८ ॥
समदद्विरदेन्द्रतुल्ययातो
जलदाम्भोधिमृदङ्गसिंहघोषः ।
स्मृतिमानभियोगवान् विनीतो
न च बाल्येऽप्यतिरोदनो न लोलः ॥९९॥
तिक्तं कषायं कटुकोष्णरूक्ष-
मल्पं स भुङ्क्ते बलवांस्तथापि ।
रक्तान्तसुस्निग्धविशालदीर्घ-
सुव्यक्तशुक्लासितपक्ष्मलाक्षः ॥ १०० ॥
अल्पव्याहारक्रोधपानाशनेर्ष्यः
प्राज्यायुर्वित्तो दीर्घदर्शी वदान्यः ।
श्राद्धो गम्भीरः स्थूललक्ष्यः क्षमावा-
नार्यो निद्रालुर्दीर्घसूत्रः कृतज्ञः ॥ १०१ ॥
ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सलज्जो
भक्तो गुरूणां स्थिरसौहृदश्च ।

स्वप्ने सपद्मान्सविहङ्गमालां-
स्तोयाशयान् पश्यति तोयदांश्च ॥ १०२॥
ब्रह्मरुद्रेन्द्रवरुणतार्क्ष्यहंसगजाधिपैः ।
श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथा सिंहाश्वगोवृषैः ॥

श्लेष्मा सोमात्मक है. इस कारण श्लेष्मप्रकृतिका मनुष्य सौम्यस्वभाववाला, गूढ-स्निग्ध, श्लिष्ट, संधि, अस्थि और मांसवाला, क्षुधा, तृषा, दुःख और क्लेशको सहन करनेवाला, बुद्धियुक्त, सात्विक स्वभाववाला, सत्य बोलनेवाला प्रियंगु धान्य, दूर्वा, सरकंडा, गोरोचन, कमल और सुवर्ण इनसे मिलने जुलनेसे वर्णवाला, लम्बी बाँहवाला, गोल और पुष्ट वक्षःस्थलवाला, बडे मस्तकवाला, घन और नील केशवाला, मृदु अंगोंवाला, सम, सुडौल और सुन्दर, सुविभक्त, गात्रावयवोंवाला होता है तथा अधिक ओजवाला अधिक कामशक्ति अधिक वीर्य, अधिकपुत्र और भृत्योंवाला धर्मात्मा, निष्ठुर न बोलनेवाला,प्रच्छन्न दृढ और देरतक वैर रखनेवाला मतवाले हाथीके समान चलनेवाला, मेघ,समुद्र,मृदङ्ग और सिंहके समान शब्दवाला स्मृति और मानको धारण करनेवाला विनीत बाल्यावस्थामें भी अधिक न रोनेवाला और न चंचलस्वभाववाला होता है और यह कफ प्रकृति मनुष्य तिक्त, कषाय, कटु, उष्ण, रूक्ष और अल्प भोजन करनेसे सुखी रहनेवाला बलवान् होता है. इसके नेत्र अन्तके कोनोंमें सुर्खी लियेहुए स्निग्ध, विशाल, लम्बे, सुविभक्त, श्वेत कृष्ण पलकोंवाले होते हैं. यह अल्प फिरनेवाला अल्प क्रोध करनेवाला अल्प खाने पीनेवाला और अल्प ईर्ष्यावाला होता है। कफप्रकृति मनुष्यके आयु और धन अधिक होते हैं. ये दीर्घदर्शी विचार करके कार्यकरनेवाला, दाता, श्रद्धावाला, गंभीर, किसी विशेष बातपर दृष्टि डालनेवाला; क्षमावान्, श्रेष्ठ स्वभावका अधिक सोनेवाला देरमें काम करनेवाला कृतज्ञ रहनेवाला, सरल स्वभाव, पंडित, ऐश्वर्यवान्, लज्जायुक्त, गुरुओंका भक्त, मित्रताको स्थिर रखनेवाला होता है. कफप्रकृतिमनुष्य स्वप्नमें कमल और पक्षियोंसे युक्त जलाशयोंको और मेघोंको देखता है । यह पुरुष ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, गरुड, हंस,हस्ती, सिंह, घोडा, गौ और बैलकेसे स्वभाववाला होता है। इन उपरोक्त लक्षणोंसे सम्पन्न पुरुषको कफप्रकृतिवाला जानना चाहिये ॥ ९६–१०३ ॥

दो दोषों अथवा तीन दोषोंकी प्रकृतिवाले मनुष्यके लक्षण।

प्रकृतीर्द्वयसर्वोत्था द्वन्द्वसर्वगुणोदये ।
शौचास्तिक्यादिभिश्चैवंगुणैर्गुणमयीर्वदेत् १०४

जिस मनुष्यमें वातप्रकृति और पित्तप्रकृतिके लक्षण हों उसको वातपित्तप्रकृतिवाला जानना। वातकफ लक्षणवालेको वात कफ प्रकृति और कफपित्त प्रकृतिके मिलेहुये लक्षणवालेको कफपित्त प्रकृतिवाला जानना चाहिये । इसी प्रकार जिसमें वात पित्त कफ इन तीनों प्रकृतियोंके लक्षण हों उसको त्रिदोष प्रकृतिवाला जानना चाहिये ।

इस प्रकार वातादि दोषोंके भेदसे सात प्रकारकी प्रकृतियां होती हैं ।

इसी प्रकार सत्त्व, रज और तमके गुणोंकी अधिकतासे शौच आस्तिकता आदि गुणोंका उत्कर्ष देखकर सात्विक, राजस और तामस ये सत्त्वादि गुणोंकी प्रकृतियें जानना चाहिये । इनमें भी द्वन्द्वजादि भेदसे कल्पना करनेपर गुणोंसे भी सात प्रकारकी प्रकृतियें होती हैं ॥ १०४ ॥

अवस्था--भेद ।

वयस्त्वाषोडशाद्बालं तत्र धात्विंद्रियौजसाम् ।
वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रावृद्धिः परं क्षयः॥१०५॥

अवस्था—सोलह वर्षसे पूर्व बाल्यावस्था कही जाती है, यह बाल्यावस्था भी तीन प्रकारकी होती है। अल्पावस्थामें क्षीराद, किञ्चित् बडे होनेपर दूध और अन्न खानेवाले और उसके ऊपर सोलह वर्षतक अन्नाद बालक कहे जाते हैं । सोलह वर्षसे २० वर्षतकके ४ वर्ष वृद्धि अवस्था कहे जाते हैं. इन ४ वर्षोंमें धातु इन्द्रिय और ओजकी वृद्धि होती है और सब इन्द्रियें बलवान् होती है. इसलिये इसको वृद्धि अवस्था कहते

हैं। २० से ७० वर्ष तक मध्यावस्था कही जाती है ७० से उपरान्त शरीरका क्षय होता है इस अवस्थाको वृद्धा या जीर्णावस्था कहते है ॥ १०५ ॥

शरीरका प्रमाण ।

स्वं स्वं हस्तत्रयं सार्धं वपुः पात्रं सुखायुषोः । न च यद्युक्तमुद्रिक्तैरष्टाभिर्निन्दितैर्निजैः । अरोमशासितस्थूलदीर्घत्वैः सविपर्ययैः॥१०६॥

प्रत्येक मनुष्यका शरीर उसके अपने अपने साढे तीन हाथका लम्बा होना उसकी सुखायुका पात्र होता है ।

यदि किसी मनुष्यका शरीर उसके साढे तीन हाथका लंबा ही हो परन्तु अधिक दोषोंके निमित्तसे निन्दित हो और सहज आठ गुणोंसे विपरीत निन्दित गुणोंसे युक्त हो तथा रोमरहित असित आदि स्थूल दीर्घत्वादि विपरीत गुणोंकरके युक्त हो वह ठीक साढे तीन हाथका लम्बा होनेपर भी सुखायुका पात्र नहीं होता है ॥ १०६ ॥

श्रेष्ठ कचादि अवयवोंके लक्षण ।

सुस्निग्धा ऋजवः सूक्ष्मानैकमूलाः स्थिराः कचाः। ललाटमुन्नतं श्लिष्टशंखमर्धेन्दुसंनिभम् । कर्णौ नीचोन्नतौ पश्चान्महान्तौ श्लिष्टमांसलौ॥ नेत्रे व्यक्तासितासिते सुबद्धे घनपक्ष्मणी । उन्नताग्रा महोच्छ्वासा पीनर्जुर्नासिका समा ॥ ओष्ठौ रक्तावनुद्वृत्तौ महत्यौ नोल्बणे हनू । महदास्यंघना दंताःस्निग्धाःश्लक्ष्णाःसिताःसमाः जिह्वा रक्ताऽऽयता तन्वी मांसलं चिबुकं महत् । ग्रीवा ह्रस्वा घनावृत्ता स्कन्धावुन्नतपीवरौ १११ उदरं दक्षिणावर्तगूढनाभि समुन्नतम् । तनुरक्तोन्नतनखं स्निग्धमाताम्रमांसलम् ११२॥ दीर्घाच्छिद्रांगुलि महत्पाणिपादं प्रतिष्ठितम् ॥

मनुष्यके सुन्दर चिकने, मृदु, सूक्ष्म अनेक मूलवाले और स्थिर केश श्रेष्ठ होते है ।

उन्नत सुन्दर दोनों शंखोंतक पहुँचाहुआ अर्धचन्द्राकार ललाट श्रेष्ठ होता है ।

दोनों कान नीचेकी सुन्दर पालीवाले, ऊपरको उन्नत, पीछेसे बडे यथार्थ रूपवाले और पुष्ट मांसवाले श्रेष्ठ होते है ।

दोनों नेत्र व्यक्त सुन्दर स्पष्ट यथार्थ कृष्णभाग और श्वेतभागवाले सुबद्ध और घन पलकोंवाले श्रेष्ठ होते है।

नासिका अग्रभागमेंसे उन्नत पुष्ट और सीधे वंशावाले, सीधी सुन्दर आकारवाली और लम्बा श्वासलेनेवाली श्रेष्ठ होती है ।

ओष्ठ लालवर्णके गोलाई रहित सुन्दर होते है । हनु विना ऊपरको उठीहुई सुन्दर आकारकी श्रेष्ठ होती है । मुख विशाल अच्छा होता है । दन्तपंक्ति घन चिकनी श्वेत और सम अच्छी होती है । जिह्वा लालवर्णकी चपटी और पतली अच्छी होती है । चिबुक मांसयुक्त और पुष्ट अच्छे होते है । ग्रीवा छोटी पुष्ट और गोल अच्छी होती है । स्कन्ध उन्नत और पुष्ट अच्छे होते है । उदर दक्षिणावर्त गूढनाभिवाला और पुष्ट अच्छा होता है । हाथ, पांव पतले, उन्नत और लाल वर्णके नखोंवाले छिद्रयुक्त लम्बी अंगुलियोंवाले, पुष्ट मांसवाले चिकने और ताम्रवर्णके श्रेष्ठ होते है ॥ १०७–११३ ॥

गूढवंशं बृहत्पृष्ठं निगूढाः संधयो दृढाः । धीरः स्वरोऽनुनादी च वर्णः स्निग्धःस्थिरप्रभः। स्वभावजं स्थिरं सत्त्वमविकारि विपत्स्वपि ११४

पृष्ठवंश गूढ अर्थात् पीठमें छिपाहुआ श्रेष्ठ होता है पीठ बडी अच्छी होती है । संधियें गूढ और दृढ अच्छी होती है । स्वर धीर और अनुनादी अच्छा होता है । वर्ण स्निग्ध अच्छा होता है । प्रभा स्थिर अच्छी होती है । स्वभाव सात्त्विक, स्थिर, विपत्तिमें भी विकारको प्राप्त न होनेवाला श्रेष्ठ होता है ॥ ११४॥

श्रेष्ठ शरीरके लक्षण ।

उत्तरोत्तरसुक्षेत्रं वपुर्गर्भादिनीरुजम् । आयामज्ञानविज्ञानैर्वर्धमानं शनैः शुभम् ११५॥ इति सर्वगुणोपेते शरीरे शरदां शतम् । आयुरैश्वर्यमिष्टाश्च सर्वे भावाः प्रतिष्ठिताः ११६

इस प्रकार जो शरीर उत्तरोत्तर अच्छे क्षेत्र, अच्छे शरीर,अच्छे गर्भ आदि गुणोंको प्राप्त होकर ऊपर कहे हुए आयाम अर्थात् साढे तीन हाथ आदि श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त होकर ज्ञान विज्ञान आदिकोंसे युक्त शनैः शनैः वृद्धिको प्राप्त होताहुआ निरोग रहता है वह शरीर शुभ माना जाता है ॥

इस प्रकारके सर्व गुण सम्पन्न शरीरमें आयु ऐश्वर्य और सम्पूर्ण इष्टभाव सौ वर्षतक प्रतिष्ठित रहते है। इस प्रकारकी आयुको सुखायु कहते है॥११५॥११६

आठ प्रकारके सारवान पुरुष।

त्वग्रक्तादीनि सत्त्वान्तान्यग्राण्यष्टौ यथोत्तरम्।
बलप्रमाणज्ञानार्थं साराण्युक्तानिदेहिनाम्११७
सारैरुपेतः सर्वैः स्यात्परं गौरवसंयुतः।
सर्वारम्भेषु चाशावान्सहिष्णुः सन्मतिःस्थिरः॥

मनुष्य आठ प्रकारके सारवाले होते है। जैसे त्वक्‌सार, रक्तसार, मांससार, मेदसार, अस्थिसार, मज्जासार, शुक्रसार और सत्त्वसार इन सारे सारों करके युक्त मनुष्य परम गौरव करके संयुक्त रहताहुआ सम्पूर्ण आरम्भोंमें फलको प्राप्त कर लेता है और सहन शक्तिवाला, श्रेष्ठ मतिमान् और स्थिर बुद्धिवाला होता है११८

सात्त्विक राजस और तामस स्वभाव।

अनुत्सेकमदैन्यं च सुखं दुःखं च सेवते।
सत्त्ववांस्तप्यमानस्तु राजसो नैव तामसः ११९

सात्त्विक प्रकृतिवाला मनुष्य सुखके समय उत्कर्ष न दिखाकर और दुःखके समय दीनता न दिखाकर शान्त स्वभावसे आयुका सुख भोगता है।

राजस स्वभाववाला पुरुष सुखको घमण्डके साथ और दुःखको दीनताके साथ अनुभव करता है अर्थात् सुखसे सुखी और दुःखसे दुःखी रहता है। परन्तु तमोगुणी प्रकृतिवाला मनुष्य अकारण ही सर्वदा दुःखाक्रान्त रहता है ॥ ११९ ॥

पुण्यायु कारक गुण।

दानशीलदयासत्यब्रह्मचर्यकृतज्ञताः।
रसायनानि मैत्री च पुण्यायुर्वृद्धिकृद्गुणः॥१२०

दान देनेका स्वभाव रखना, दयावान् रहना, सत्य-बोलना, ब्रह्मचर्यका पालन करना, किये हुए उपकारको सदा स्मरण रखना, रसायन औषधियोंका सेवन करना और श्रेष्ठ पुरुषोंसे मैत्री रखना, ये सब गुण पुण्यायुकी वृद्धि करनेवाले होते है ॥ १२० ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां शारीरस्थाने प. शिवशर्म्मकृतशिवप्रकाशिका-व्याख्यायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः।

मर्मोकी संख्या।

अथाऽतो मर्मविभागं शारीरं व्याख्यास्यामः।

अब हम मर्मोंके विभागवाले शारीराध्यायकी व्याख्या करते है।

सप्तोत्तरं मर्मशतम्-
-तेषामेकादशादिशेत्।
पृथक्सक्थ्नोस्तथा बाह्वोस्त्रीणि कोष्ठे नवोरसि।
पृष्ठे चतुर्दशोर्ध्वं तु जत्रोस्त्रिंशच्च सप्त च ॥१॥

१०७ मर्म आयुर्वेदके जाननेवालोंने कहे है। उनमेंसे दोनों सक्थियोंमें तथा दोनों बाहोंमें ग्यारह ग्यारह मर्म होते है. इस प्रकार दोनों बाहों और टांगोंके मर्म मिलाकर ४४ मर्म होते है। उदर कोष्ठमें ३ मर्म होते है। छातीमें नव मर्म होते है। पीठमें १४ मर्म होते है। जत्रुओंसे ऊपर ३७ मर्म होते है. इस प्रकार कुल मिलाकर १०७ होते है।

ये मर्म ५ प्रकारके होते है। जैसे मांसमर्म, शिरामर्म, स्नायुमर्म, अस्थिमर्म और संधिमर्म ॥ १ ॥

तलहृत् और क्षिप्र मर्म।

मध्ये पादतलस्याहुरभितो मध्यमाङ्गुलिम्॥२॥
तलहृन्नाम रुजया तत्र विद्धस्य पञ्चता।
अङ्गुष्ठाङ्गुलिमध्यस्थं क्षिप्रमाक्षेपमारणम् ॥३॥

पादतलके मध्य प्रदेशमें मध्यमांगुलिके दोनों ओर तलहृत् नामक मर्म होते है। इन मर्मोंके वेधनसे अत्यन्त पीडा होकर मनुष्यकी मृत्यु होसकती है।

अंगुष्ठ और अंगुलिके मध्यमें क्षिप्रनामक मर्म होताहै।

१ यह आठ प्रकारके सार चरकमें वर्णन किये है।

उसके विद्ध होनेसे आक्षेपक वातव्याधिके समान आक्षेप होकर मनुष्यकी मृत्यु होजाती है ॥२॥३॥

कूर्च, कूर्चशिर, गुल्फ और इन्द्रवस्ति नामक मर्म ।

तस्योर्ध्वे द्व्यङ्गुले कूर्चः पादभ्रमणकंपकृत् ।
गुल्फसंधेरधः कूर्चशिरः शोफरुजाकरम् ॥४॥
जंघाचरणयोः संधौ गुल्फो रुक्स्तंभमांद्यकृत् ।
जङ्घान्तरे त्विन्द्रबस्तिर्मारयत्यसृजः क्षयात्५॥

अंगुष्ठ और अंगुलीके मध्यमें होनेवाले क्षिप्र मर्मसे दो अंगुल ऊपरकी ओर कूर्च नामक मर्म होता है। उसमें वेधन होनेसे पांवका भ्रमण या कम्पन रोग उत्पन्न होजाता है। गुल्फके संधिके नीचे कूर्चशिर नामक मर्म होता है। उसमें चोट लगनेसे सूजन और पीडा उत्पन्न हो जाती है. पाँव और जंघाकी संधिमें गुल्फ नामक मर्म होता है उसमें चोट लगनेसे पीडा पांवकी गतिका स्तम्भ अथवा मन्दता उत्पन्न होजाती है। जंघाके अन्तरमें इन्द्रवस्ति नामक मर्म होता है. उसके विद्ध होनेसे रक्तका क्षय होकर मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

जानु, ऊर्ध्वमणि, ऊर्वी, तथा लोहित नामक मर्म।

जंघोर्वोः संगमे जानु खञ्जता तत्र जीवतः ।
जानुनस्त्र्यंगुलादूर्ध्वमाण्यूरुस्तंभशोफकृत्॥६।
ऊर्व्यूरुमध्ये तद्वेधात्सक्थिशोषोऽस्रसंक्षयात् ।
ऊरुमूले लोहिताख्यं हंति पक्षमसृक्क्षयात्॥७॥

जंघा और उसकी संधिमें जानु नामक मर्म होता है। जानु मर्ममें चोट लगनेसे मनुष्यकी मृत्यु होजाती है। यदि जीवित रह जाय तो लंगडा होजाता है। जानुसे ३ अंगुल ऊपर ऊर्ध्वमणि नामक मर्म होता है। इस मर्मके वेधनसे ऊरुस्तम्भ और सूजनका रोग उत्पन्न होजाता है। उरूस्थलके मध्यमें ऊर्वी नामक मर्म होता है। उसके वेधनसे सक्थिका सूखना और उसकी कृशता रक्तके क्षय होनेसे हो जाती है। उसके मूलमें लोहित नामक मर्म होता है। उसके वेधनसे रक्तक्षय होकर पक्षाघात होजाता है ॥६ ॥७॥

वंक्षण संधि तथा बाँहके मर्म।

मुष्कवंक्षणयोर्मध्ये विटपं षण्ढताकरम् ।
इति सक्थ्नोस्तथा बाह्वोर्मणिबंधोऽत्र गुल्फवत्॥
कूर्परं जानुवत्कौण्यं तयोर्विटपवत्पुनः ।
कक्षाक्षमध्ये कक्षाधृक् कुणित्वं तत्र जायते९॥

मुष्क और वंक्षणकी संधिमें विटप नामक मर्म होता है। उसके विद्ध होनेसे मनुष्य नपुंसक हो जाता है। इस प्रकार जांघके मर्मोंको कथन करदिया है। पांवसे लेकर एक एक टांगमें ग्यारह ग्यारह मर्म हुए, इसी क्रमसे बाहोंमें भी ग्यारह मर्म जानने। बाहोंमें गुल्फके समान मणि बन्ध मर्म होताहै और जानुके समान बाहुमें कूर्पर मर्म होताहै। जैसे गुल्फ और जानुके मर्मवेधनसे टांग निरर्थक हो जाती है वैसेही मणिबंध और कूर्परके विद्ध होनेसे बाँह मारीजाती है। कक्षा और अक्षके मध्यमें विटप मर्मके समान ही कक्षाधृक् मर्म होताहै। उस कक्षाधृक् मर्मके विद्ध होनेसे सम्पूर्ण बाँहु सिकुड जाती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

गुदमर्म, वस्तिमर्म, नाभिमर्म और हृदयमर्मका वर्णन।

स्थूलान्त्रबद्धः सद्योघ्नो विड्वातवमनो गुदः ।
मूत्राशयो धनुर्वक्रो बस्तिरल्पास्रमांसगः॥१०॥
एकाधोवदनो मध्ये कट्याः सद्यो निहन्त्यसून्।
ऋतेऽश्मरीव्रणाद्विद्धस्तत्राप्युभयतश्च सः॥११।
मूत्रस्राव्येकतो भिन्नो व्रणो रोहेच्च यत्नतः ।
देहामपक्वस्थानानां मध्ये सर्वसिराश्रयः ॥१२॥
नाभिः सोऽपि हि सद्योघ्नो–
–द्वारमामाशयस्य च ।
सत्त्वादिधाम हृदयं स्तनोरःकोष्ठमध्यगम् ॥१३

स्थूलान्त्रसे सम्बन्ध रखनेवाला गुदमर्म होता है उसमें वेधन होनेसे विड्विघात और वमन होकर मनुष्यका सद्यः प्राण नाश होजाताहै। मूत्राशय, धनुषके समान गोलाई लियेहुए कुटिलसा होता है उसमें रक्त और मांस अल्प होताहै। उसमें वस्तिनामक मर्मस्थान है वह कटिके मध्यमें नीचेको मुखकिये रहता है। उसके वेधनसे सद्यः प्राण नाश हो जाते है। वस्तिमें पथरी निकालनेके अतिरिक्त किसी प्रकारका वेधन नहीं होना चाहिये, क्योंकि एकतो वस्तिमें मांस और रक्तकी

कमीके कारण व्रणका रोहण होना कठिन होता है दूसरे एक ओर मूत्रका स्राव होता रहताहै इस कारण वस्तिको मर्म स्थलके अतिरिक्त भी पथरी आदि कठिन रोग निवृत्तिके विना वेधन नहीं करना चाहिये। यदि पथरी निकालनेके लिये मूत्राशयमें व्रण करना भी पडे तो शीघ्र रोहण करनेका यत्न करना चाहिये।

देहके मध्य प्रदेशमे आमाशय और पक्वाशयके मध्य भागमें सम्पूर्ण शिराओंका आश्रयभूत नाभि नामक मर्म होताहै.उसके विद्ध होनेसे सद्यः प्राणघात होजाताहै। आमाशयके मुखरूप मर्मके वेधनसे भी सद्यः प्राणनाश होता है। स्तन छाती और कोष्ठके मध्यमें हृदय नामक मर्म होता है। वह हृदय सत्त्वादि गुणोंका स्थान होता है। इसको शास्त्रकारोंने प्रधान मर्म माना है इसके वेधनसे सद्यः प्राण नाश होजाते है।१०-१३॥

स्तनरोहित और स्तनमूल नामक मर्म।

स्तनरोहितमूलाख्ये द्व्यङ्गुले स्तनयोर्वदेत्।
ऊर्ध्वाधोऽस्रकफापूर्णकोष्ठो नश्येत्तयोः क्रमात्॥

दोनों स्तनोंके दो अंगुल ऊर्ध्वभागमें और दोनों स्तनोंके दो अंगुल अधोभागमें स्तनरोहित और स्तनमूल नामक मर्म होते है. इनके वेधनसे रक्त और कफसे कोष्ठ परिपूर्ण होकर मनुष्यकी मृत्यु होजाती है॥१४॥

अपस्तम्भ और नाडी मर्म।

अपस्तंभावुरःपार्श्वे नाड्यावनिलवाहिनी।
रक्तेन पूर्णकोष्ठोऽत्र श्वासात्कासाच्च नश्यति१५

छातीके दोनों पार्श्वोंमें अपस्तम्भ और नाडी नामक मर्म होते है। इनमें अपस्तम्भ रक्त वहन करनेवाला और नाडी पवन वहन करनेवाला मर्म होता है। अपस्तम्भ और नाडी मर्मोंके विद्ध होनेसे रक्तसे पूर्ण कोष्ठ होकर और श्वास काससे मनुष्यका विनाश हो जाता है॥ १५॥

पृष्ठवंश, उरःस्थल तथा श्रोणिके मर्म।

पृष्ठवंशोरसोर्मध्ये तयोरेव च पार्श्वयोः।
अधोंऽसकूटयोर्विद्यादपालापाख्यमर्मणी॥१६
तयोः कोष्ठेऽसृजा पूर्णे नश्येद्यातेन पूयताम्।
पार्श्वयोः पृष्ठवंशस्य श्रोणीकर्णौ प्रतिष्ठिते१७
वंशाश्रिते स्फिजोरूर्ध्वं कटीकतरुणे स्मृते।
तत्र रक्तक्षयात्पांडुर्हीनरूपो विनश्यति॥१८॥

पृष्ठवंश और उरस्थलके मध्यमें तथा दोनों पार्श्वोंमें और पृष्ठवंश तथा उरस्थलके ऊपरी भागमें दोनों असंकूटोंके अधः अपालाप नामक मर्म होते है। उनके वेधनसे कोष्ठ रक्तमे परिपूर्ण होकर जब उस रक्तकी पूय बन जाती है तब मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है।

पृष्ठवंशके दोनों पार्श्वमें श्रोणी कर्ण नामक मर्म प्रतिष्ठित रहते है, तथा नितम्बसे ऊर्ध्वमें पृष्ठवंशके आश्रित कटीकतरुण नामक दो मर्म होते है। इन दोनों मर्मोंके विद्ध होनेसे रक्त क्षय होनेसे पाण्डुवर्ण और हीन रूप होकर मनुष्यका नाश होजाता है॥ १६-१८॥

पृष्ठवंशं ह्युभयतो यौ संधी कटिपार्श्वयोः।
जघनस्य बहिर्भागे मर्मणी तौ कुकुंदरौ॥१९॥
चेष्टाहानिरधःकाये स्पर्शाज्ञानं च तद्व्यधात्।
पार्श्वांतरनिबद्धौ यावुपरि श्रोणिकर्णयोः २०॥
आशयच्छादनौ तौ तु नितंबौ तरुणास्थिगौ।
अधःशरीरे शोफोऽत्र दौर्बल्यं मरणं ततः२१॥

पृष्ठवंशके दोनों ओर जो कटि पार्श्वकी दोनों संधियें है वहांपर जघनके बहिर्भागमें कुकुन्दर नामक दो मर्म होते है। उनका वेधन होनेसे अधःकायकी चेष्टा नष्ट होजाती है तथा स्पर्शका ज्ञान नहीं रहता।

दोनों पार्श्वोंमें जो श्रोणी कर्णोंके ऊपर पार्श्वोंके अन्तर्भागमें तरुणास्थिके मध्य आशयको छादन किये-हुए नितम्ब नामक मर्म है। इनमें वेधन होजानेसे शरीरके अधोभागमें सूजन और दुर्बलता होकर मृत्यु हो जाती है॥ १९-२१॥

पार्श्व, पृष्ठवंश तथा ग्रीवासे संबद्ध अन्य मर्म।

पार्श्वांतरनिबद्धौ च मध्ये जघनपार्श्वयोः।
तिर्यगूर्ध्वं च निर्दिष्टौ पार्श्वसंधी तयोर्व्यधात्॥
रक्तपूरितकोष्ठस्य शरीरान्तरसंभवः।
स्तनमूलार्जवे भागे पृष्ठवंशाश्रये सिरे॥ २३॥

बृहत्यौ तत्र विद्धस्य मरणं रक्तसंक्षयात् ।
बाहुमूलाभिसंबद्धे पृष्ठवंशस्य पार्श्वयोः ॥२४॥
अंसयोः फलके बाहुस्वापशोषौ तयोर्व्यधात् ।
ग्रीवामुभयतः स्नाव्नी ग्रीवाबाहुशिरोन्तरे ॥२५
स्कन्धांसपीठसम्बन्धावंसौ बाहुक्रियाहरौ ।
कण्ठनाडीमुभयतः सिरा हनुसमाश्रिताः २६॥
चतस्रस्तासु नीले द्वे मन्ये द्वे मर्मणी स्मृते ।
स्वरप्रणाशवैकृत्यं रसाज्ञानं च तद्व्यधे ॥ २७॥

दोनों पार्श्वोंके मध्यमें बन्धेहुए जघन पार्श्वोंके मध्यमें तिरछे और ऊपरको पार्श्वसम्बन्धी दो मर्म होते है । इनके वेधनसे कोष्ठ रक्तपूरित होकर शरीरका नाश होजाता है ।

दोनों स्तनोंके मूलमे सीधे भागमें पृष्ठवंशके आश्रित बाहुके सिरेमें बृहती नामक दो मर्म होते है । इनके वेधनसे रक्त क्षय होकर मृत्यु हो जाती है ।

बाहुके मूलमें संलग्न पृष्ठवंशके दोनों पार्श्वोंमे दो अंसफलकनामक मर्म होते है. इनके विद्ध होनेसे बाहोंका शून्य होना या सूख जाना ये रोग होते है ।

गर्दनकी दोनों ओर ग्रीवा बाहु और शिरके अन्तोंमें दो स्नाव्नी मर्म है. जो स्कन्ध अंस और पीठसे सम्बन्ध रखते है. इन दोनोंका नाम अंसमर्म है । इनमें चोट लगनेसे भी बाहुकी क्रिया नष्ट होजाती है ।

कण्ठनाडीके दोनों ओर जो ठोडीके आश्रित ४ शिरायें हैं उनमें दो नीला नामकी है, दो मन्या नामके मर्म है । इनके विद्ध हो जानेसे स्वरभंग या स्वरकी विकृति और रसका ज्ञान न रहना ये रोग हो जाते हैं ॥ २२–२७ ॥

मातृका, कृकाटिका और विधुर नामक मर्म ।

कण्ठनाडीमुभयतो जिह्वानासागताः सिराः ।
पृथक् चतस्रस्ताःसद्यो घ्नन्त्यसून्मातृकाह्वयाः॥

कंठनाडीके दोनों ओर जिह्वा और नासिकामें गयीहुई जो चार सिरायें है. उनको मातृकानामक मर्म कहते है. इनके विद्ध होनेसे सद्यः प्राणनाश हो जाता है ॥ २८ ॥

कृकाटिके शिरोग्रीवासन्धी तत्र चलं शिरः ।
अधस्तात्कर्णयोर्निम्ने विधुरे श्रुतिहारिणी॥२९

शिर और गर्दनकी संधिमें जो दोनों ओर कृकाटिकानामक मर्म है, इनमें चोट लगनेसे या विद्ध होनेसे शिरःकम्परोग उत्पन्न हो जाता है ।

दोनों कानोंके अधोभागमें दो विधुर नामक मर्म होते है. उनके वेधनसे श्रवणशक्तिका नाश हो जाता है ॥ २९ ॥

फणावुभयतो घ्राणमार्गे श्रोत्रपथानुगौ ।
अन्तर्गलस्थितौ वेधाद्गन्धविज्ञानहारिणौ ३०॥
नेत्रयोर्बाह्यतोऽपाङ्गौ भ्रुवोः पुच्छान्तयोरधः ।
तथोपरि भ्रुवोर्निम्नावावर्तावान्ध्यमेषुतु ॥३१॥

घ्राणमार्गसे दोनों ओर श्रोत्रमार्गमें गयेहुए अन्तर्गलमें स्थितहुए दो फण नामक मर्म होते है । इनके वेधनसे गधज्ञान नष्ट हो जाता है ॥

दोनों नेत्रोंके बाहरके भागमें अपाङ्ग नामक दो मर्म है, तथा भृकुटीके पुच्छ भागसे ऊपर नीचेको गयेहुए आवर्त नामक दो मर्म होते हे । इनके वेधनसे मनुष्य अन्धा हो जाता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अनुकर्णं ललाटान्ते शङ्खौ सद्योविनाशनौ ।
केशान्ते शङ्खयोरूर्ध्वमुत्क्षेपौ स्थपनी पुनः ३२
भ्रुवोर्मध्ये त्रयेऽप्यत्र शल्ये जीवेदनुद्धृते ।
स्वयं वा पतिते पाकात्सद्यो नश्यति तूद्धृते३३

अनुकर्ण और ललाटकी सीमापर शंखनामक दोनों ओर दो मर्म है । इनके विद्ध होनेसे सद्यः प्राण नाश हो जाता है ।

दोनों शंखोंके ऊपर केशोंकी सीमाके नीचे उत्क्षेप नामक मर्म है. और दोनों भृकुटियोंके मध्यमें स्थपनी नामक मर्म है । इन तीनों मर्मोंमें शल्य होनेसे जबतक शल्य नहीं निकाला जाय तबतक तो मनुष्य जीवित रह सकता है. यदि इन मर्मोंको विद्ध करनेवाले तीर आदि शल्य निकाल लिये जाएं या स्वयं निकल पडे अथवा विद्ध स्थानका परिपाक हो जाय तो मनुष्यके प्राण शीघ्र ही नष्ट हो जाते है ॥ ३२॥३३॥

शृङ्गाटक, सीमन्त और अधिप मर्म ।

**जिह्वाक्षिनासिकाश्रोत्रखचतुष्टयसङ्गमे ।
तालुन्यास्यानि चत्वारि स्रोतसां तेषु मर्मसु ॥
विद्धः शृङ्गाटकाख्येषु सद्यस्त्यजति जीवितम्।
कपाले संधयः पञ्च सीमन्तास्तिर्यगूर्ध्वगाः३५
भ्रमोन्मादमनोनाशैस्तेषु विद्धेषु नश्यति ।
आन्तरो मस्तकस्योर्ध्वं सिरासंधिसमागमः ।
रोमावर्तोऽधिपो नाम मर्म सद्यो हरत्यसून्॥३६**

जिह्वा, नेत्र, नासिका और श्रोत्र इन चारोंकी चार सिरायें तालुमें स्थित है । इन चारों स्रोतोंके चार शृंगाटक नामक मर्म होते है । इन मर्मोंमें वेधन हो जानेसे सद्यः प्राण नाश होता है ।

कपालास्थिकी पांच सन्धियें कपालके पांच टुकडोंके जोड जो तिरछे और ऊपरको गयेहुए है उन पांच संधियोंको सीमन्त नामक मर्म कहते है । इनके वेधनसे भ्रम-उन्माद और ज्ञाननाश होकर प्राणोंका नाश होता है। मस्तकके अभ्यन्तर भागमें ऊपरकी ओर जो सिरा सधियोंका समागम है वह रोमावर्तके समान अधिप नामक मर्म है। इसके विद्ध होनेसे सद्यः प्राण नाश होता है ॥ ३४—३६ ॥

मर्मका लक्षण ।

विषमं स्पन्दनं यत्र पीडिते रुक् च मर्म तत्३७

देहके जिस भागमे विषमरूपसे स्फुरण हो और उस स्थानको दबाने आदिसे अत्यन्त पीडा हो वह मर्मस्थान जानना. मर्मस्थान पांच प्रकारके होते है. जैसे सद्यःप्राणहर मर्म, कालान्तर प्राणहर मर्म, विशल्यघ्न मर्म, वैकल्यकर मर्म और रुजाकर मर्म ॥ ३७ ॥

मर्मोके भेद ।

**मांसास्थिस्नायुधमनीसिरासन्धिसमागमः ।
स्यान्मर्मेति च तेनाऽत्र सुतरां जीवितं स्थितम्**

मांस, अस्थि, स्नायु, धमनी, सिरा और संधि इनका जिस स्थानमें विचित्र समागम होता है वह मर्म स्थान है. जैसे मांसमर्म, अस्थिमर्म, स्नायुमर्म, धमनीमर्म, सिरामर्म और संधिमर्म. इन मर्मस्थानोंमें निरन्तर जीवनका आधार है. इसलिये इन स्थानोंको वेधन नहीं करना तथा चोट लगनेसे बचाना चाहिये ।

यद्यपि सुश्रुतमें मर्म पांच प्रकारके ही लिखे है और यहांपर मर्मोंके ६ भेद करदिये है । परन्तु सुश्रुतमें धमनीमर्मको नहीं माना है इसका समाधान इसी अध्यायके ४५ और ४६ श्लोकमें दिया है ॥३८॥

षट् प्रधान मर्म ।

**बाहुल्येन तु निर्देशः षोढैवं मर्मकल्पना ।
प्राणायतनसामान्यादैक्यं वा मर्मणां मतम्३९**

१०७ मर्मोंमें षट् मर्म ही प्रधानमर्म होते है । क्योंकि मांस अस्थि आदि समागमवाले मर्मोंके छः प्रकारकी कल्पना हो सकती है ।

प्राणोंका आश्रयस्थान मर्म कहनेसे सब मर्मोंमें सामान्यरूपसे एकत्व ही आजाता है । इस कारण केवल मर्म कहनेसे मर्ममे एकत्व होता है. मांस—अस्थि आदिकोंकी संधि समागमके भेदसे षट्त्व भी ठीक है और सूक्ष्मरूपसे मर्मोंकी १०७ संख्या होती है॥ ३९॥

मांसजादि मर्मोके भेद ।

मांसजानि दशेन्द्राख्यतलहृत्स्तनरोहिताः ।

जंघाओंमे होनेवाले इन्द्रनामक दो मर्म, दोनों बाहोंके दो इन्द्रमर्म, हाथों पावोंके चारों तलभागोंके तलहृत् नामक चार मर्म और दोनों स्तनोंके स्तनरोहितनामक दो मर्म, ये दश मांसजमर्म कहे जाते है ४०

अस्थि और स्नायुमर्म ।

**शङ्खौ कटीकतरुणे नितम्बावंसयोः फले॥४०॥
अस्थ्न्यष्टौ-**

**-स्नायुमर्माणि त्रयोविंशतिराणयः ।
कूर्चकूर्चशिरोऽपाङ्गक्षिप्रोत्क्षेपांसबस्तयः॥४१॥**

दोनों शंखमर्म, दो कटीकतरुण मर्म, दो नितम्ब मर्म और दो अंसफलक मर्म ये आठ मर्म अस्थिमर्म कहे जाते है ।

चार आणि मर्म-जो दो ऊरुके मध्यमें और दो दोनों बाहूके मध्यमें होते है । ये चार आणि मर्म और

(१) सप्तोत्तरं मर्मशतम् । तानि मर्माणि पञ्चात्मकानि । तद्यथा मांसमर्माणि । शिरामर्माणि । स्नायुमर्माणि । आस्थिमर्माणि । संधिमर्माणि चेति । न खलु मांसशिरास्नाय्वास्थिसंधिव्यतिरेकेणान्यानि मर्माणि भवन्ति यस्मान्नोपलभ्यन्ते ।

कूर्च जो दो हाथोंमें, दो पावोंमे होते हैं,चार कूर्च-शिर दो अपांग जो नेत्रोंके बाह्य भागमें होते है, चार क्षिप्र नामक मर्म जो चारों हाथों पावोंके अंगुष्ठ और अंगुलिके मध्यमें होते है ।

दो उत्क्षेप मर्म जो केशान्त भागमें शंखोंके ऊपर होते है । दो अंस मर्म जो कंधे और पीठसे सम्बन्ध रखते है और एक वस्तिमर्म जो मूत्राशयमें रहता है इन २३ मर्मोंको स्नायु मर्म कहते है ॥४० ॥ ४१ ॥

धमनीस्थ, सिराश्रित और संधिमर्मोंका वर्णन ।

गुदापस्तम्भविधुरशृङ्गाटानि नवादिशेत् । मर्माणि धमनीस्थानि ॥ ४२ ॥--

स्थूलांत्रसे संबन्ध रखनेवाला गुदमर्म, दोनों पार्श्वोंके दो अपस्तम्भ मर्म, वातवाही दो नाडी मर्म, कानोंके नीचेके दो विधुर मर्म और चार शृंगाटक नामक मर्म ये नव मर्म धमनीस्थ मर्म कहेजाते है ॥ ४२ ॥

--सप्तत्रिंशत्सिराश्रयाः ॥ बृहत्यौ मातृका नीले मन्ये कक्षाधरौ फणौ । विटपे हृदयं नाभिः पार्श्वसन्धी स्तनान्तरे । अपालापौ स्थपन्यूर्व्यश्चतस्रो लोहितानि च४३

दोनों बृहती, आठ मातृका, दो नीलाख्य, दो मन्याख्य, दो कक्षाधर, दो फण, दो विटप, एक हृदय, एक नाभि, दो पार्श्वसंधि, दो स्तनाधार, दो अपालाप, एक स्थपनी, चार ऊर्वियें और दो लोहित नामक मर्म, ये सब मिलाकर ३७ मर्म सिराश्रित मर्म कहे जातेहै ४ ३

सन्धौ विंशतिरावर्तौ मणिबन्धौ कुकुन्दरौ । सीमन्ताःकूर्परौ गुल्फौ कृकाटचौजानुनी पतिः

आवर्त नामक दो मर्म, दो मणिबंध, दो कुकुन्दर नामक मर्म, पांच सीमन्त मर्म, दो कूर्पर मर्म, दो गुल्फ मर्म, दो कृकाटिका, दो जानु और एक पतिनामक मर्म, ये २० मर्म संधि मर्म कहे जाते है ॥ ४४ ॥

मांसमर्म गुदोऽन्येषां स्नाव्नी कक्षाधरौ तथा४५ विटपौ विधुराख्ये च श्रृङ्गाटानि सिरासु तु । अपस्तम्भावपाङ्गौ च धमनीस्थं न तैः स्मृतम्

सुश्रुतादि आचार्योंने गुदको मांसमर्म माना है और कक्षाधरोंको स्नायु आश्रित माना है । दोनों विटप, दोनों विधुर और शृंगाटक, अपस्तम्भ और अपांग इनको सिराश्रित माना है. इस कारण धमनीमर्म उनके मतमें नहीं होते ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मांसादि मर्मोंके विद्ध होनेके लक्षण ।

विद्धेऽजस्रमसृक्स्रावो मांसधावनवत्तनुः । पाण्डुत्वमिन्द्रियाज्ञानं मरणं चाशु मांसजे॥४७

मांसस्थ मर्मके विद्ध होनेसे निरन्तर मांस धोवनके समान पतले रक्तका स्राव होता रहता है तथा पाण्डु वर्ण होजाता है और इन्द्रियोंका ज्ञान नाश हो जाता है तथा शीघ्र मृत्यु हो जाती है ॥ ४७ ॥

अस्थि, स्नायु, धमनी, और सिरा मर्मोंके विद्ध होनेके लक्षण।

मज्जान्वितोऽच्छो विच्छिन्नस्रावो रुक्चा--
--स्थिमर्मणि ॥ ४८ ॥

अस्थिमर्मके विद्ध होनेसे मज्जायुक्त स्वच्छ स्राव होता है और स्राव गाढा होनेके कारण विच्छिन्न होकर होता है तथा अत्यन्त शूल होता है ॥ ४८ ॥

आयामाक्षेपकस्तम्भा स्नावजेऽभ्यधिकं रुजा । यानस्थानासनाशक्तिर्वैकल्यमथवान्तकः । रक्तं सशब्दफेनोष्णं धमनीस्थे विचेतसः॥४९॥

स्नायुमर्ममें विद्ध होनेसे आयाम, आक्षेपक, स्तम्भ शूल, यान आदिमें बैठनेसे या आसनपर बैठनेमें अशक्ति और विकलता उत्पन्न हो जाती है अथवा मृत्यु ही हो जाती है ।

धमनी मर्मके विद्ध होनेसे शब्द और फेन युक्त उष्ण रक्तका स्राव होना तथा मूर्च्छा होजाना ये लक्षण होते है ॥ ४९ ॥

सिरामर्मव्यधे सान्द्रमजस्रं बह्वसृक्स्रवेत् । तत्क्षयात्तृड्भ्रमश्वासमोहहिध्माभिरन्तकः ॥५०

सिरामर्मके वेधन हो-जानेसे निरन्तर सान्द्र और अधिक रक्तका स्राव होता है फिर रक्तस्राव होनेके कारण रक्तका क्षय होकर तृषा, भ्रम, श्वास, मूर्च्छा और हिचकी आदि उपद्रव होकर प्राणान्त हो जाता है ५०

संधिमर्मविद्ध होनेके लक्षण ।

वस्तु शूकैरिवाकीर्णे रूढे च कुणिखञ्जता । बलचेष्टाक्षयः शोषः पर्वशोफश्च सन्धिजे॥५१॥

संधिमर्ममें वेधन हो जानेसे संधिमें काँटेसे आकीर्ण प्रतीत होते है और उस संधिके शल्यव्रण अच्छा होजाने पर भी कुणि या खंजता अथवा उस संधिके कर्मका नाश संधिके बल और चेष्टाका क्षय, जोडमें शोष या सूजन होना ये लक्षण होते है ॥ ५१ ॥

मर्मविद्धके जीवनका प्रमाण ।

नाभिशङ्खाधिपापानहृच्छृङ्गाटकबस्तयः ।
अष्टौ च मातृकाः सद्यो निघ्नन्त्येकोनविंशतिः॥
सप्ताहः परमस्तेषां कालः कालस्य कर्षणे॥५२॥

नाभि १, शंख२, अधिपति १, अपान १, हृदय१, शृंगाटक ४, वस्ति १, मातृका ८ ये १९ मार्ममें कोई-सा मर्म विद्ध होनेपर सद्यः प्राणोंका नाश करता है अर्थात् ये १९ मर्म विद्ध होनेसे सद्यः प्राण घातक होते है । इनके विद्ध होनेपर यदि अधिकसे अधिक कोई जीवित रहसके तो भी सप्ताहके आभ्यन्तर ही मृत्युके मुखमें चला जाता है ॥ ५२ ॥

कालान्तर प्राणहर विशल्यघ्न और वैकल्यकर मर्म ।

त्रयस्त्रिंशदपस्तम्भतलहृत्पार्श्वसन्धयः ।
कटीतरुणसीमन्तस्तनमूलेन्द्रबस्तयः ॥ ५३ ॥
क्षिप्रापालापबृहतीनितम्बस्तनरोहिताः ।
कालान्तरप्राणहरा मासमासार्धजीविताः ॥५४

तैंतीस मर्म विद्ध होनेसे कालान्तरमें प्राणोंका नाश होता है. जैसे अपस्तम्भ २, तलहृत् मर्म ४, पार्श्वसंधि २, कटीकतरुण २, सीमन्त ५, स्तनमूल २, इन्द्र-वस्ति ४, क्षिप्र नामक मर्म ४, अपालाप २, बृहती २, नितम्ब २, स्तनरोहित २ ये ३३ मर्म विद्ध होनेसे एक महीना अथवा १५ दिनमें प्राणोंका नाश करदेते है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

उत्क्षेपौ स्थपनी त्रीणि विशल्यघ्नानि–तत्र हि
वायुर्मांसवसामज्जमस्तुलुङ्गानि शोषयन् ।
शल्यापाये विनिर्गच्छन् श्वासात्कासाच्च–
–हन्त्यसून् ॥५६॥

दोनों उत्क्षेप और एक स्थपनी ये ३ मर्म विशल्यघ्न कहे जाते है. अर्थात् इन मर्मोंमे तीर आदि शस्त्र लगा हुआ जबतक निकाला नहीं जाता तबतक ही जीवन रहता है. जब शल्यको निकाल लेतेहैं तब उस छिद्र द्वारा वायु, जीवन, मांस, वसा, मज्जा और मस्तुलुंगको शोषण करतीहुई निकलती है और श्वास तथा खांसी उत्पन्न करतीहुई प्राणोंका नाश करदेती है ॥५५-५६

फणावपाङ्गौ विधुरौ नीले मन्ये कृकाटिके ।
अंसांसफलकावर्तविटपोर्वीकुकुन्दराः ॥ ५७ ॥
सजानुलोहिताख्याऽऽणिकक्षाधृक्कूर्चकूर्पराः ।
वैकल्यमिति चत्वारि चत्वारिंशच्च कुर्वते ॥
हरन्ति तान्यपि प्राणान् कदाचिदभिघाततः५८

चौवालिस मर्म विद्ध होनेपर विकलताको उत्पन्न करनेवाले होते है. जैसे–दो फण, दो अपांग, दो विधुर, दो नील, दो मन्या, दो कृकाटिका, दो अंस, दो फलक, दो आवर्त, दो विटप, चार ऊर्वी, दो कुकुन्दर, दो जानु, चार लोहित, चार आणि, दो कक्षाधर, चार कूर्च और दो कूर्पर ये ४४ मर्म विद्ध होनेसे शरीरमें विकलताको उत्पन्न कर देते है और कदाचित् विशेष अभिघातके लगनेसे प्राणोंका भी नाश करदेते है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

रुजाकर मर्मोंका वर्णन ।

अष्टौ कूर्चशिरोगुल्फमणिबन्धा रुजाकराः ५९

चार कूर्चसिर, दो गुल्फ और दो मणिबंध ये आठ मर्म चोट आदि लगनेसे अधिक पीडाके करनेवाले होते है । इस कारण इन मर्मोंको रुजाकरमर्म कहते है ॥५९

मर्मोंका संस्थानादि प्रमाण ।

तेषां विटपकक्षाधृगुर्व्यः कूर्चसिरांसि च ।
द्वादशाङ्गुलमानानि द्व्यङ्गुले मणिबन्धने ॥६०॥
गुल्फौ च स्तनमूले च त्र्यङ्गुलौ जानुकूर्परौ ।
अपानबस्तिहृन्नाभिनीलाःसीमन्तमातृकाः ६१
कूर्चशृङ्गाटमन्याश्च त्रिंशदेकेन वर्जिताः ।
आत्मपाणितलोन्मानाः–
–शेषाण्यर्धांगुलं वदेत् ॥ ६२ ॥
पंचाशत्षट् च मर्माणि तिलव्रीहिसमान्यपि ।
इष्टानि मर्माण्यन्येषाम् ॥ ६३ ॥–

विटपमर्म, कक्षाधृक्, ऊर्वी और कूर्चसिर नामक मर्म १ १ अंगुल प्रमाण होते है। मणिबन्ध नामक मर्म, गुल्फ नामक मर्म और स्तनमूलनामक मर्म २ अंगुल प्रमाण होते है। जानुमर्म और कूर्परमर्म ३ अंगुल प्रमाण होते है।

१ अपानमर्म, १ वस्तिमर्म, १ हृदयमर्म, १ नाभि २ नीला, ५ सीमन्त, ८ मातृका, ४ कूर्च, ४ शृंगाटक और २ मन्या, ये २९ मर्म मनुष्यके अपने पाणितल भागके समान अर्थात् हथेलीके मध्य भागके समान प्रमाणके होते है।

शेष ५६ मर्म अर्धांगुल प्रमाण होते है इनमें भी कोई तिल कोई व्रीहिके समान मर्म मानते है॥ ६०—६३॥

मर्माभिघातजनितमृत्युका क्रम।

—चतुर्धोक्ताः सिरास्तु याः॥
तर्पयन्ति वपुः कृत्स्नं ता मर्माण्याश्रितास्ततः।
तत्क्षतात्क्षतजात्यर्थप्रवृत्तेर्धातुसंक्षये॥ ६४॥
वृद्धश्चलो रुजस्तीव्राः प्रतनोति समीरयन्।
तेजस्तदुद्धृतं धत्ते तृष्णाशोषमदभ्रमान्॥ ६५॥
स्विन्नस्रस्तश्लथतनुं हरत्येनं ततोऽन्तकः ६६॥

प्रथम वात पित्त कफ और रक्तके वहन करनेवाली सिराओंका वर्णन कियाजाचुका है। ये चारों प्रकारकी सिरायें जो शुद्ध वात पित्त कफजुष्ट शुद्ध रक्तके वहन करनेवाली है, वे सम्पूर्ण शरीरको तर्पण करती रहती है। वे सिरायें मर्मस्थानोंके आश्रित रहती है। उनमें क्षत पहुँचनेसे उस क्षतकेद्वारा रक्तादि धातुका अत्यन्त क्षय होजानेसे बढ़ाहुआ वायु गमन करता हुआ तीव्र पीड़ाको उत्पन्न कर देता है। फिर वह पीड़ा करता हुआ वायु पित्तको उदीर्ण करके प्यास, शोष, मद और भ्रमको उत्पन्न करदेता है। तब इस शिथिल स्रस्त और स्विन्नशरीरवाले मनुष्यको काल हरण कर लेता है॥ ६४॥ ६५॥ ६६॥

मर्माभिघातकी चिकित्सा।

वर्धयेत्संधितो गात्रं मर्मण्यभिहते द्रुतम्।
छेदनात्संधिदेशस्य संकुचन्ति सिरा ह्यतः।
जीवितं प्राणिनां तत्र रक्ते तिष्ठति तिष्ठति॥ ६७
सुविक्षतोऽप्यतो जीवेदमर्माणि न मर्मणि।
प्राणघातिनि जीवेत्तु कश्चिद्वैद्यगुणेन चेत्॥ ६८
असमग्राभिघाताच्च सोऽपि वैकल्यमश्नुते।
तस्मात्क्षारविषाग्न्यादीन् यत्नान्मर्मसु वर्जयेत्॥

जिस मर्मके अभिघात होनेसे शरीरके शीघ्र नाश होनेका भय हो उस मर्मवाले हाथ पांवको मर्मविद्ध होनेपर शीघ्रही काट देना चाहिये। मर्माभिघातवाला अंग काट देनेसे संधिदेशकी सिरा संकुचितमुख होजानेसे रक्त शरीरमें ठहर जाता है। रक्तके क्षय न होनेसे वह अंग हीन मनुष्य भी जीवित रह सकता है। इस कारण मर्मविद्ध अंगको काटकर भी मनुष्यका जीवन बचालेना अच्छा होता है। क्योंकि मर्ममें क्षत होनेसे मनुष्यका प्राण शीघ्र नष्ट होजाता है और मर्मरहित स्थानमें विशेष क्षत होनेपर भी प्राण नष्ट नहीं होते, इस कारण मर्म रहित स्थानसे अंगको काट देना हानिकारक नहीं होता। मर्म रहित स्थानमें अनेक प्राणघातक शस्त्रोंके लग जानेपर भी योग्य वैद्यद्वारा चिकित्सा कियेजानेपर मनुष्य बच सकता है. परन्तु प्राणहर मर्ममें विद्ध होनेसे मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। कोई पुण्यवान् पुरुष मर्म स्थानमें अल्पाभिघात होनेसे योग्य वैद्यद्वारा चिकित्सा कियाजानेपर बच भी जाते है, परन्तु विकलता उनको भी सहन करनी ही पडती है। इस कारण क्षार, विष, अग्नि और शस्त्रादिके लगनेसे मर्म स्थानोंको बचाकर ही रखना चाहिये॥ ६७—६९॥

मर्माभिघातःस्वल्पोऽपि प्रायशो बाधतेतराम्।
रोगा मर्माश्रितास्तद्वत्प्रक्रान्ता यत्नतोऽपि च ७०

क्योंकि स्वल्प मर्माभिघात भी प्रायः अधिक पीड़ाके देनेवाला हो जाता है। इस कारण मर्मके आश्रित अल्प रोग भी विशेष बाधाको देनेवाले होजाते है। विशेष यत्नसे उनकी चिकित्सा कियेजानेपर भी मर्माश्रित रोग बाधा देते ही है इस कारण मर्मोंकी विशेष रक्षा करनी चाहिये॥ ७०॥

इति श्री वाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टाङ्गहृदय संहितायां-शारीरस्थाने पं० शिवशर्मकृतशिवप्रकाशिका-व्याख्यायां चतुर्थोऽध्यायः।

पञ्चमोऽध्यायः।

अथाऽतो विकृतिविज्ञानीयं शारीरं व्याख्यास्यामः।

अब हम विकृति विज्ञानीय शारीराध्यायकी व्याख्या करते है।

रिष्टका लक्षण।

पुष्पं फलस्य धूमोऽग्नेर्वर्षस्य जलदोदयः। यथा भविष्यतो लिङ्गं रिष्टं मृत्योस्तथा ध्रुवम् १

जैसे भविष्यमें होनेवाले फलका बोध पुष्पसे होता है, जैसे धूमसे अग्निका बोध होता है, जैसे मेघसे वृष्टि होनेका अनुमान होता है वैसे ही होनेवाली मृत्युका चिह्नरूप रिष्ट होता है॥ १॥

मृत्युज्ञानमें रिष्टकी प्रधानता और उसके भेद।

अरिष्टं नास्ति मरणं दृष्टरिष्टं च जीवितम्। अरिष्टे रिष्टविज्ञानं न च रिष्टेऽप्यनैपुणात्॥२॥

विना रिष्टके अर्थात् मृत्युके पूर्वरूपरूपी चिह्नके विना मरण नहीं देखागया, ऐसे ही रिष्टको प्रत्यक्ष लक्षण देखेजानेपर किसीको जीवित रहते भी नहीं देखागया, किन्तु यह बात अलग है कि, अनुभव और शास्त्रज्ञानहीन पुरुषको रिष्टके विना ही रिष्टके लक्षण प्रतीतहुए हों और रिष्टके लक्षण हो जानेपर भी उसको रिष्टज्ञान न हुआ हो क्योंकि विना रिष्टके लक्षणोंके मृत्यु और रिष्टके लक्षण प्रतीत होनेके बाद जीवित नहीं हो सकता॥ २॥

केचित्तु तद्द्विधेत्याहुःस्थाय्यस्थायिविभेदतः। दोषाणामपि बाहुल्याद्रिष्टाभासः समुद्भवेत्॥ स दोषाणां शमे शाम्येत्स्थाय्यवश्यं तु मृत्यवे ३

कोई आचार्य स्थायी और अस्थायीभेदसे रिष्टको दो प्रकारका मानते है। जैसे--कभी दोषोंकी बहुत अधिकताके कारण रिष्टका आभाससा उत्पन्न हो जाता है और उन दोषोंके शमन होनेपर वह रिष्टका लक्षण भी शान्त होजाता है। इसको अस्थायी रिष्ट कहते है किन्तु स्थायीरिष्ट तो अवश्य ही मृत्युका कारण होता है॥ ३॥

रिष्टका सामान्य स्वरूप।

रूपेन्द्रियस्वरच्छायाप्रतिच्छायाक्रियादिषु॥४ अन्येष्वपि च भावेषु प्राकृतेष्वनिमित्ततः। विकृतिर्या समासेन रिष्टं तदिति लक्षयेत्॥५॥

शरीरका वर्ण, इन्द्रियें, स्वर, छाया, प्रतिच्छाया और क्रिया आदिमें तथा अन्य प्राकृत अर्थात् स्वाभाविकभावोंमे अकारण और अचानक विकृति उत्पन्न होजाना अर्थात् शरीरके वर्ण आदि स्वाभाविकभावोंका एकदम बदल जाना सामान्यरूपमे रिष्टका लक्षण जानना चाहिये॥ ४॥ ५॥

केशोंमे रिष्टकी परीक्षा।

केशरोम निरभ्यङ्गं यस्याऽभ्यक्तमिवेक्ष्यते॥६॥

जिस मनुष्यके केश और रोम विना ही तैल लगाये अकारण तैलाभ्यक्तके समान प्रतीत होने लगे उसको रिष्टका लक्षण जानना चाहिये॥ ६॥

इन्द्रिय आदिकी विकृतिजनित रिष्टके लक्षण।

यस्यात्यर्थं चले नेत्रे स्तब्धान्तर्गतानिर्गते। जिह्मे विस्तृतसंक्षिप्ते संक्षिप्तविनतभ्रुणी। उद्भ्रान्तदर्शने हीनदर्शने नकुलोपमे॥ ७॥ कपोताभे अलाताभे स्रुते लुलितपक्ष्मणी। नासिकाऽत्यर्थविवृता संवृता पिटिकाचिता। उच्छूना स्फुटिता म्लाना॥ ८॥--

जिस मनुष्यके दोनों नेत्र निश्चल हो जाँय या अत्यन्त जल्दी जल्दी चलायमान होने लगे या नेत्रगोलकोंमें अन्दर गड़जांय या बाहर निकल आवें अथवा कुटिल होजांय या बहुत विस्तारके साथ खुल जांय अथवा बिलकुल छोटे होजांय और भृकुटियें नीचेको लटक जांय अथवा सिकुड़ जांय, जिसकी दृष्टि विभ्रान्त हो जाय, जिसकी दृष्टि नकुलके समान होजाय अथवा जिसको अचानक दिखायी देना बन्द होजाय, जिसके नेत्र कपोतके समान अथवा अलात पक्षीके समान हो जांय और विना ही निमित्त अश्रुस्राव होने लगे, जिसकी पलकें वायुसे उद्धूत हुईके समान खिच जांय, जिसकी

नासिका निर्निमित्त बहुत विवृत अथवा संवृत होजांय और पिटिकाओंसे व्याप्त होजाय तथा ऊर्ध्व सूजनसे आक्रान्त हो तथा स्फुटित और म्लान हो उसको अरिष्टका लक्षण जानना ॥ ७ ॥ ८ ॥

ओष्ठकी विकृतिसे रिष्टके लक्षण ।

-यस्यौष्ठौ यात्यधोऽधरः ।
ऊर्ध्वं द्वितीयः स्यातां वा पक्वजंबूनिभावुभौ॥९॥

जिसका नीचेका ओष्ठ नीचेको लटक जाय दूसरा ओष्ठ ऊपरको खिच जाय अथवा पक्व जम्बूफलके समान कृष्णवर्णके होजांय विना ही निमित्तसे ऐसे ओष्ठोंका होना रिष्टका लक्षण जानना ॥ ९ ॥

दाँतों और जिह्वाकी विकृतिसे रिष्टलक्षण ।

दन्ताःसशर्कराःश्यावास्ताम्राःपुष्पितपङ्क्तिताः।
सहसैव पतेयुर्वा जिह्वा जिह्मा विसर्पिणी॥१०॥
श्वेता शुष्का गुरुः श्यावा लिप्ता सुप्ता सकंटका।

जिसके दांत अकारण दन्तशर्करासे युक्त हो जांय तथा काले ताम्रवर्णके पुष्पोंकेसे आकारवाले और कीचड़से लिपेहुएसे होजाय अथवा अकारण शीघ्र ही दन्तपंक्तिका पतन होजाय तो रिष्टका लक्षण जानना चाहिये ।

जिस मनुष्यकी जिह्वा टेढी, विसर्पिणी, श्वेत, शुष्क, भारी, कृष्णवर्णकी, लिपायमानसी, सोई हुईसी और कांटोंकरके युक्त हो ऐसे लक्षण जिह्वामें विना ही निमित्त होजानेसे रिष्टका चिह्न जानना ॥ १० ॥ ११ ॥

ग्रीवा तथा छिद्रादिकोंकी विकृतिसे रिष्टलक्षण ।

शिरः शिरोधरा वोढुं पृष्ठं वा भारमात्मनः ।
हनू वा पिण्डमास्यस्थं शक्नुवन्ति न यस्य च।
यस्यानिमित्तमङ्गानि गुरूण्यतिलघूनि वा॥१२
विषदोषाद्विना यस्य खेभ्यो रक्तं प्रवर्तते ।
उत्सिक्तं मेहनं यस्य वृषणावतिनिःसृतौ ॥
अतोन्यथा वा यस्य स्यात्सर्वे ते कालचोदिताः॥

जिस मनुष्यकी ग्रीवा शिरको धारण करनेमें असमर्थ होजाय अथवा जिसकी पीठ अपने शरीरको न संभालसके अथवा जिसकी हनु मुखमें रखेहुये ग्रासादिपिंडको धारण करनेमें असमर्थ हो अथवा जिसके भारी अङ्ग विनानिमित्त हलके होजाय अथवा हलके अङ्ग अत्यन्त भारी होजाय तो रिष्टका चिह्न जानना ।

जिस मनुष्यके मुख नासिका नेत्र कर्णादि छिद्रोंमेंसे विना ही विषदोषके रक्तकी अति प्रवृत्ति हो अथवा जिसकी शिश्नेन्द्रिय अकारण सुकडकर ऊपरको चलीजाय और वृषण बाहरको अत्यन्त निकल आवें अथवा जिसकी शिश्नेन्द्रिय एकदम बाहरको लटक जाय और वृषण लुप्तप्राय होजांय इन लक्षणोंवाले उपरोक्त सर्व मनुष्योंको कालके आधीन अर्थात् अवश्य मरनेवाले जानना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

मस्तक आदिमेंरिष्टलक्षण ।

यस्याऽपूर्वाः सिरालेखा बालेन्द्वाकृतयोऽपि वा।
ललाटे बस्तिशीर्षे वा षण्मासान्न स जीवति१४

जिस मनुष्यके मस्तक आदिमें बालचन्द्रमाके समान अथवा अपूर्व आकारवाली सिरालेख अर्थात् सिराराजियें प्रगट हो जांय अथवा ऐसी ही सिराराजिये वस्तिके उपरिभागमें उत्पन्न होजांय वह मनुष्य ६ महीनेके अन्दर मृत्युको प्राप्त होजाता है ॥ १४ ॥

पद्मिनीपत्रवत्तोयं शरीरे यस्य देहिनः ।
प्लवते प्लवमानस्य षण्मासं तस्य जीवितम्॥१५

जिस मनुष्यके जलमें स्नान करतेहुये कमलिनीके पत्र पर गिरेहुए जलके समान जल गिरे अर्थात् शरीरको विना गीलाकिये जल अलग गिरता हुआसा प्रतीत होवे उसको ६ मासके अन्दर मरजानेवाला जानना चाहिये ॥ १५ ॥

हरितवर्ण सिराओंसे रिष्टलक्षण ।

हरिताभाः सिरा यस्य रोमकूपाश्च संवृताः ।
सोऽम्लाभिलाषी पुरुषःपित्तान्मरणमश्नुते॥१६

जिस मनुष्यके शरीरमें हरितवर्णकी सिरा दिखायी देने लगें और समस्त रोमकूप संवृतसे प्रतीत होनेलगें और इस मनुष्यको खट्टे पदार्थोंकी अधिक अभिलाषा हो तो ऐसे मनुष्यकी पित्ताधिक्यसे मृत्यु होनेवाली जाननी चाहिये ॥ १६ ॥

मस्तक पर अन्य रिष्टलक्षण।

यस्य गोमयचूर्णाभं चूर्णं मूर्ध्नि मुखेऽपि वा।
सस्नेहं मूर्ध्नि धूमो वा मासान्तं तस्य जीवितम् १७

जिस मनुष्यके मस्तक अथवा मुखपर गोबरके चूर्णके समान चूर्ण बिखरा हुआसा हो और मस्तकपर अत्यन्त चिकनाई तथा धूमसा प्रतीत हो उस मनुष्यकी एक मासमें मृत्यु होजाती है॥ १७॥

मण्डलाकार सीमन्तोंमें रिष्टलक्षण।

मूर्ध्नि भ्रुवोर्वा कुर्वन्ति सीमन्तावर्तका नवाः।
मृत्युं स्वस्थस्य षड्रात्रात्त्रिरात्रादातुरस्य तु १८

जिस मनुष्यके मस्तक अथवा भृकुटियोंपर अपूर्व सीमन्तावर्तक (मंडलाकार सीमन्त) उत्पन्न होजाय यदि वह स्वस्थ होतो ६ दिनमें, यदि रोगी होतो ३ दिनमें मृत्युको प्राप्त होजाता है॥ १८॥

जिह्वा और मुखादिसे रिष्टलक्षण।

जिह्वा श्यावा मुखं पूति सव्यमक्षि निमज्जति।
खगा वा मूर्ध्नि लीयन्ते यस्य तं परिवर्जयेत्। १९।

जिस मनुष्यकी जिह्वा श्याम वर्णकी हो जाय और मुखसे दुर्गन्ध आती हो तथा वामनेत्र भीतरको गड़ जाय उस मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है अथवा जिसके मस्तकपर काक आदि पक्षी बैठने लगें ऐसे मनुष्यका भी जीवनान्त समझना चाहिये॥ १९॥

चन्दन लेपनादिमें रिष्टलक्षण।

यस्य स्नातानुलिप्तस्य पूर्वं शुष्यत्युरो भृशम्।
आर्द्रेषु सर्वगात्रेषु सोऽर्धमासं न जीवति॥२०॥

जिस मनुष्यका स्नान या चन्दनादिलेपन करनेपर प्रथम उरस्थल सूख जाय और अन्य सब अंग गीले रहें वह मनुष्य १५ दिन भी जीवित नहीं रह सकता॥ २०॥

समस्तशरीरसे रिष्टलक्षण।

अकस्माद्युगपद्गात्रे वर्णौ प्राकृतवैकृतौ।
तथैवोपचयग्लानिरौक्ष्यस्नेहादि मृत्यवे॥२१॥

जिस मनुष्यके शरीरमें एक कालमें ही प्राकृत और विकृत वर्ण उत्पन्न हो जाय अथवा शरीरका उपचय और ग्लानि एक कालमें ही दिखाई देने लगे अथवा जिसके शरीरमें रूक्षता और स्नेहादि भाव एक कालमें दिखाई देने लगे उसके ये लक्षण शीघ्र मृत्युके लिये होते है॥ २१॥

अंगुलीस्फुटनसे रिष्टलक्षण।

यस्य स्फुटेयुरंगुल्योऽनाकृष्टा न स जीवति२२।

जिस मनुष्यकी अंगुलियें विना ही खैंचेहुए स्फुट बोलने लगें अर्थात् चट चट करनेलगें वह मनुष्यभी मृत्युको प्राप्त होता है॥ २२॥

छींक, खांसी आदिमें रिष्टलक्षण।

क्षवकासादिषु तथा यस्याऽपूर्वो ध्वनिर्भवेत्।
ह्रस्वो दीर्घोऽति वोच्छ्वासःपूतिःसुरभिरेव वा२३
आप्लुतानाप्लुते काये यस्य गन्धोऽतिमानुषः।
मलवस्त्रव्रणादौ वा वर्षान्तं तस्य जीवितम् २४॥

जिसकी छींक और खांसी आदिमें अकस्मात् अपूर्व ध्वनि उत्पन्न होजाय और जिसका श्वास अत्यन्त बैठजाय या अत्यन्त लम्बा चलनेलगे या जिसके श्वाससे अत्यन्त दुर्गन्धि अथवा सुगंधि आने लगे अथवा जिसके शरीरसे स्नान करनेपर अथवा विना स्नान किये अत्यन्त सुगन्धि या दुर्गंधि आने लगे अथवा रोगीके मल वस्त्र या व्रण आदिमेसे अत्यन्त सुगन्धि या दुर्गन्धि आने लगे उस मनुष्यका अधिकसे अधिक एक वर्षपर्यन्त जीवन समझना चाहिये॥२३।२४॥

यूका, मक्षिका आदि लगनेसे रिष्टलक्षण

भजन्तेऽत्यङ्गसौरस्याद्यं यूकामक्षिकादयः।
त्यजंति वाऽतिवैरस्यात्सोपि वर्षं न जीवति२५

जिस मनुष्यके शरीरमें अत्यन्त सुस्वादु रस पैदा होजानेसे उसके शरीरमें यूका और मक्षिका आदि बहुत लगने लगें, अथवा अत्यन्त विरसताके कारण यूका, मक्षिका आदि शरीरका सर्वथा स्पर्श न करे. उस मनुष्यका जीवन एक वर्ष पर्यन्त भी नहीं होता २५

उष्ण और शीत भावोंसे रिष्टज्ञान।

सततोष्मसु गात्रेषु शैत्यं यस्योपलक्ष्यते।
शीतेषु भृशमौष्ण्यं वा स्वेदः स्तंभोऽप्यहेतुकः

जिस मनुष्यके शरीरमें सदैव उष्णता रहतेहुए

अकस्मात् शीतता आजाय अथवा सदैव शैत्यभाव रहतेहुए अकस्मात् अत्यन्त उष्णता आजाय अथवा विना कारण अधिक पसीना आने लगें या पसीना आनेवाले शरीरमें सर्वथा अकारण ही पसीना रुक जाय तो उसकी मृत्यु एक वर्षके भीतर जानना चाहिये ॥ २६ ॥

शीतस्पर्शादिसे रिष्टज्ञान ।

यो जातशीतपिटिकः शीताङ्गो वा विदह्यते ।
उष्णद्वेषी च शीतार्तः स प्रेताधिपगोचरः २७॥

जिस मनुष्यके शरीरमें शीतस्पर्शवाले बहुतसी पिड़िका उत्पन्न होजांय अथवा जिसका सम्पूर्ण शरीर शीतल होतेहुए उसके शरीरमें अत्यन्त दाह उत्पन्न होजाय अथवा शीत करके पीड़ित होनेपर भी उष्ण पदार्थोंसे द्वेष हो उस मनुष्यको यमराजके आधीन जानना चाहिये ॥ २७ ॥

छाती और पेटके भिन्न स्पर्शआदिसे रिष्टज्ञान ।

उरस्यूष्मा भवेद्यस्य जठरे चातिशीतता ।
भिन्नं पुरीषं तृष्णा च यथा प्रेतस्तथैव सः २८

जिसकी छातीमें अत्यन्त गरमी हो और पेटमें अत्यन्त शीतता हो उसकी अतिसार और प्यास ये दो उपद्रव भी हो ऐसे मनुष्यको प्रेतके तुल्य ही समझना चाहिये ॥ २८ ॥

मलोंकी परीक्षाद्वारा रिष्टज्ञान ।

मूत्रं पुरीषं निष्ठ्यूतं शुक्रं वाप्सु निमज्जति ।
निष्ठ्यूतं बहुवर्णं वा यस्य मासात्स नश्यति २९

जिस मनुष्यके मूत्र विष्टा थूक और वीर्य जलमें डूब जाय और जिसके थूकके अनेक वर्ण हो ऐसा मनुष्य एक महीनेमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

ज्ञानविपर्ययसे रिष्टलक्षणोंका कथन ।

घनीभूतमिवाकाशमाकाशमिव यो घनम् ।
अमूर्तमिव मूर्तं च मूर्तं चामूर्तवत्स्थितम् ३०॥
तेजस्व्यतेजस्तद्वच्च शुक्लं कृष्णमसच्च सत् ।
अनेत्ररोगश्चन्द्रं च बहुरूपमलाञ्छनम् ॥ ३१॥

जिस मनुष्यको स्वच्छ आकाशसे विना ही मेघोंके मेघोंसे व्याप्त प्रतीत हो अथवा मेघोंसे आच्छन्न आकाश मेघरहित स्वच्छ प्रतीत हो उसको मरणाभिमुख जानना चाहिये ।

जिस मनुष्यको अग्नि आदि मूर्तिमान् पदार्थ मूर्ति रहित दिखाई दें और अमूर्त वायु आदि मूर्तिवाले दिखाई दें तथा जिसको सूर्य अग्नि आदि तेजवाले पदार्थ तेजरहित प्रतीत हों वैसे ही श्वेत पदार्थ कृष्णवर्णके प्रतीत हों जो वस्तु नहीं है उसको वह विद्यमान प्रतीत हो जो विद्यमान हो वह दिखाई न देवे विना ही नेत्ररोगके अनेक रूपवाला और लांछनरहित चन्द्रमाको देखै ऐसा मनुष्य यमराजके लोकको जानेवाला जानना चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

प्रेत आदि दर्शनसे रिष्टलक्षण ।

जाग्रद्रक्षांसि गन्धर्वान्प्रेतानन्यांश्च तद्विधान् ।
रूपं व्याकृति तद्वच्च यः पश्यति स नश्यति ३२

जो मनुष्य जागते हुए ही राक्षस, गन्धर्व प्रेत और अन्य ऐसेही प्रकारके रूपोंको देखे तथा विकृतआकृतिवाले रूपोंको देखे वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होताहै॥ ३२

तारोंके अदर्शनसे रिष्टपरीक्षा ।

सप्तर्षीणां समीपस्थां यो न पश्यत्यरुन्धतीम् ।
ध्रुवमाकाशगङ्गां वा स न पश्यति तां समाम्

जिस मनुष्यको आकाशमें होनेवाले सप्तऋषिनामक तारोंके समीप रहनेवाला अरुन्धतीनामक तारा दिखाई न देवे अथवा ध्रुवतारा तथा आकाश गंगा दिखाई न देवे उस मनुष्यको भी अवश्य मरनेवाला जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

शब्द विपर्ययसे रिष्टका ज्ञान ।

मेघतोयौघनिर्घोषवीणापणववेणुजान् ।
शृणोत्यन्यांश्च यः शब्दानसतो न सतोपि वा ।
निष्पीड्य कर्णौ शृणुयान्न यो धुकधुकस्वनम्

जो मनुष्य मेघका शब्द, समुद्रका शब्द, वीणाका शब्द, पणवका शब्द और वेणुका शब्द अविद्यमान होते हुए अकस्मात् सुने अथवा इन शब्दोंको विद्यमान होतेहुए भी न सुने अथवा जिस मनुष्यको दोनों कानोंपर हाथ रखकर वन्द करनेसे, स्वाभाविक धुक् धुक् होनेवाला शब्द सुनाई न देवे उसको मृत्युका पूर्व रिष्ट जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

तद्वद्गन्धरसस्पर्शान् मन्यते यो विपर्ययात्।
सर्वशो वा न यो यश्च दीपगन्धं न जिघ्रति३५॥

इसी प्रकार जिस मनुष्यको गन्ध, रस और स्पर्शमें सर्वथा विपरीतज्ञान हो अथवा सर्वथा ज्ञान नाश हो जाय या दीपकके बुझानेकी गन्ध न आती हो वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

विधिना यस्य दोषाय स्वास्थ्यायाविधिना रसाः
यः पांसुनेव कीर्णाङ्गो योऽङ्गघातं न वेत्ति वा।

जिस मनुष्यको शास्त्रविधिके अनुसार सेवन करायेहुए रस रोगकारक हों और कुपथ्य सेवन कियेहुए लाभकारी हों तथा सम्पूर्ण अंगोंपर पांसु विखराहुआसा प्रतीत हो जिसको अपने अंगपर लगाहुआ आघात प्रतीत न होता हो उसकी भी मृत्यु समीप जाननी ३६

अकस्मात् दिव्यज्ञानसे रिष्टलक्षण।

अन्तरेण तपस्तीव्रं योगं वा विधिपूर्वकम्।
जानात्यतीन्द्रियं यश्च तेषां मरणमादिशेत्३७॥

जो मनुष्य विना तीव्र तपके किये अथवा विना विधिपूर्वक योगके साधन किये ही अतीन्द्रिय अर्थात् दिव्यज्ञानकी बातोंको जानने लगे उसको भी मरणासन्न ही जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

विकृत स्वरसे रिष्टज्ञान।

हीनो दीनःस्वरोऽव्यक्तो यस्य स्याद्गद्गदोऽपि वा
सहसा यो विमुह्येद्वा विवक्षुर्न स जीवति ॥३८॥

जिस मनुष्यका स्वर अकस्मात् हीन, दीन, अव्यक्त अथवा गद्गद होनेलगे तथा जब वह बोलनेकी इच्छा करे तो मूर्च्छा आजाय वह मनुष्य जीवित नहीं रह सकता॥ ३८ ॥

हीनबलवर्णादिसे रिष्टज्ञान।

स्वरस्य दुर्बलीभावं हानिं वा बलवर्णयोः।
रोगवृद्धिमयुक्त्या च दृष्ट्वा मरणमादिशेत्॥३९

जिस मनुष्यका स्वर विना क्रमसे दुर्बल होताजाय बल और वर्ण हीन हो जाय रोगकी अकस्मात् वृद्धि होनेलगे ऐसे लक्षणोंको देखकर रोगीकी मृत्यु समीप जाननी ॥ ३९ ॥

बारर मृत्युकी प्रतीक्षासे रिष्टज्ञान।

अपस्वरं भाषमाणं प्राप्तं मरणमात्मनः।
श्रोतारं चास्य शब्दस्य दूरतः परिवर्जयेत् ॥४०

जो मनुष्य स्वाभाविक शब्दसे विपरीत स्वरके साथ बारबार अपनी मृत्युको ये कहे कि "मैं अवश्य मरूंगा मैं अवश्य मरूंगा" ऐसे शब्द कहनेवाले और सुननेवाले दोनों मनुष्योंको दूरसे ही त्यागदेना चाहिये ॥ ४० ॥

छाया संस्थान-आदिसे मृत्युज्ञान।

संस्थानेन प्रमाणेन वर्णेन प्रभयापि वा।
छाया विवर्तते यस्य स्वप्नेऽपि प्रेत एव सः॥४१

जिस मनुष्यकी छाया, संस्थान, प्रमाण और वर्ण तथा प्रभा प्रकृतिसे विपरीत होजाय तो उसको प्रेतके समान समझना चाहिये ॥ ४१ ॥

छाया और प्रतिच्छायाके भेद।

आतपादर्शतोयादौ या संस्थानप्रमाणतः ॥४२
छायाङ्गात्संभवत्युक्ता प्रतिच्छायेति सा पुनः
वर्णप्रभाश्रया या तु सा छायैव शरीरगा ॥४३॥

जो शरीरकी छाया धूप, दर्पण और जल आदिमें संस्थान और प्रमाणके अनुसार होती है उसको प्रतिच्छाया कहते हैं और जो छाया शरीरके वर्ण और प्रभारूप शरीरमें रहती है उसको छाया कहते है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

छायादिकोंकी विकृतिसे रिष्ट लक्षण।

भवेद्यस्य प्रतिच्छाया छिन्ना भिन्नाधिकाऽकुला।
विशिरा द्विशिरा जिह्मा विकृता यदि वाऽन्यथा।
तं समाप्तायुषं विद्यान्न चेल्लक्ष्यानिमित्तजा।
प्रतिच्छायामयी यस्य न चाक्ष्णीक्ष्येत कन्यका

जिस मनुष्यकी प्रतिच्छाया छिन्न भिन्न अधिक अथवा व्याकुल अथवा शिररहित अथवा दो शिरोंवाली या विकृत अथवा टेढ़ी या अन्य छिद्रादि विकारी दिखाई दे उसको गतायु जानना चाहिये। परन्तु यह छाया यदि अन्य लक्ष्य आदिसे बनायी हुई न हो किन्तु देखनेवाले मनुष्यको यथार्थ प्रतिच्छायामें ये विकृतियें हों तो उसको गतायु जानना चाहिये।

जिस मनुष्यकी प्रतिच्छायामयी कन्यका अर्थात् आँखकी पुतलीमें विना काँचविन्दु आदि रोगके पुतली दिखाई नहीं देवे उसको भी गतायु जानना चाहिये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

पाञ्चभौतिक शरीरकी छाया-(प्रभा) के लक्षण।

खादीनां पञ्च पञ्चानां छाया विविधलक्षणाः ।
नाभसी निर्मलाऽऽनीला सस्नेहा सप्रभेव च॥४६॥
वाताद्रजोऽरुणा श्यावा भस्मरूक्षा हतप्रभा ।
विशुद्धरक्ता त्वाग्नेयी दीप्ताभा दर्शनप्रिया॥४७॥
शुद्धवैदूर्यविमला सुस्निग्धा तोयजा सुखा ।
स्थिरा स्निग्धा घना शुद्धा श्यामा श्वेता-
-च पार्थिवी ॥४८॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इनकी छाया पृथक् पृथक् लक्षणोंवाली होती है ।

जैसे आकाशकी अधिकतावाले मनुष्यकी छाया निर्मल नीलता लियेहुए किंचित् चिकनी और कान्तिवाली होती है ।

वायुकी छाया—धूसर, अरुण, श्याववर्ण, भस्मके समान रूक्ष और कान्तिरहित होती है ।

अग्निकी छाया—विशुद्ध, लालवर्णकी , प्रकाशमान् और देखनेमें प्रिय होती है ।

जलकी छाया—शुद्ध वैडूर्यमणिके समान निर्मल चिकनी और सुन्दर सुखद होती है ।

पृथ्वीकी छाया—स्थिर, स्निग्ध, घन, शुद्ध, श्याम और श्वेत वर्णकी होती है । इस प्रकार मनुष्यके शरीरमें पांच महाभूतोंकी पृथक् पृथक् छायाके लक्षण जानने चाहिये ॥ ४६—४८ ॥

वायवी रोगमरणक्लेशायान्याः सुखोदयाः॥४९॥

इन पांचप्रकारकी छायाओंमें वायुकी छाया रोग, क्लेश और मृत्युका कारण होती है । अन्य चार महाभूतोंकी छाया सुखके देनेवाली होती हैं ॥ ४९ ॥

प्रभाके सात प्रकार ।

प्रभोक्ता तेजसी सर्वा सा तु सप्तविधा स्मृता ।
रक्ता पीतासिता श्यामा हरिता पाण्डुरा सिता॥
तासांयाःस्युर्विकासिन्यः स्निग्धाश्चविमलाश्चया
ताःशुभा मलिना रूक्षाःसंक्षिप्ताश्चासुखोदयाः॥

सब प्रकारकी प्रभा तैजसी अर्थात् अग्निगुणवाली होती है, वह प्रभा सात प्रकारकी कही है जैसे—रक्त, पीत, श्वेत, श्याम, हरित, पाण्डुर और असित इन सातोंमें जो छाया प्रकाशवाली स्निग्ध निर्मल होती हैं वे शुभ जाननी चाहिये। और मलिन, रूक्ष, तथा संक्षिप्त दुःखकारी छाया होती है ॥ ५० ॥

छाया और प्रभाका भेद ।

वर्णमाक्रामति छाया प्रभा वर्णप्रकाशिनी ।
आसन्ने लक्ष्यते छाया विकृष्टे भाः प्रकाशते॥५१

छाया शरीरके वर्णसे संबन्ध रखती है और प्रभा वर्णको प्रकाश करनेवाली होती है । तथा छाया निकटसे प्रतीत होती है और प्रभा दूरसे,भी प्रकाशित होती है ॥ ५१ ॥

प्रत्येक शरीरमें छायाकी व्याप्ति ।

नाच्छायो नाप्रभःकश्चिद्विशेषाश्चिह्नयन्ति तु ।
नृणां शुभाशुभोत्पत्तिं काले छायासमाश्रयाः५२

संसारमें कोई मनुष्य भी ऐसा नहीं, जिसके शरीरमें किसी प्रकारकी छाया या प्रभा न हो। वह छाया और प्रभा मनुष्योंके शुभ और अशुभ लक्षणोंको समयपर ज्ञान करा देती है ॥ ५२ ॥

शिथिलता आदिसे रिष्टलक्षण ।

निकषन्निव यःपादौ च्युतांसः परिसर्पति ॥५३॥
हीयते बलतः शश्वद्योऽन्नमश्नन् हितं बहु ।
योऽल्पाशी बहुविण्मूत्रो बह्वाशी चाल्पमूत्रविट् ।
योऽल्पाशी वा कफेनार्तो दीर्घं श्वसिति चेष्टते ।
दीर्घमुच्छ्वस्य यो ह्रस्वं निःश्वस्य परिताम्यति ॥

जो मनुष्य दोनों पावोंको शिथिलतासे घर्षणसा करता हुआ परिसर्पण करता है और जिसके दोनों अंस शिथिल या गिरसे जांय अथवा जिसका बल निरन्तर हित और बहुतसा अन्न खातेहुए भी निर्बल होता जाय अथवा जो थोडा खाय और बहुत अधिक विष्ठा और मूत्रका त्याग करे अथवा बहुत खाय और विष्ठा मूत्र बहुत कम त्यागन करे अथवा जो बहुत कम खाय कफसे

पीडित हो और लंबा श्वास लेनेकी चेष्टा करता हो अथवा जो लंबा श्वास लेवे और निःश्वास बहुत छोटा लेवे तथा परिताम्यमान (ससकना) हो, ऐसे लक्षणोंवाला मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ५३-५५ ॥

श्वासलेने आदिमें रिष्टके लक्षण ।

ह्रस्वं च यः प्रश्वसिति व्याविद्धं स्पन्दते भृशम्। शिरोविक्षिपते कृच्छ्राद्योऽञ्चयित्वा प्रपाणिकौ ॥ यो ललाटात्स्रुतस्वेदः श्लथसन्धानबन्धनः । उत्थाप्यमानःसंमुह्येद्यो बली दुर्बलोऽपि वा ५७

जो मनुष्य छोटा श्वास लेवे और तीरसे विंधेहुएके समान फडकता हो तथा शिरको कष्टके साथ इधर उधर मारता हो और दोनों हाथोंको संकुचित करता हो उस मनुष्यको भी मरणोन्मुख जानना चाहिये ।

जिस मनुष्यके मस्तकसे पसीनेका स्राव होरहा हो और सम्पूर्ण जोडोंके बंधन ढीले पड गये हों वह मनुष्य बलीहो अथवा दुर्बल हो परन्तु उसको उठाकर बिठा-नेसे मूर्च्छा आजाती हो वह भी मरणोन्मुख जानना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

लेटने आदिमें रिष्टके लक्षण ।

उत्तान एव स्वपिति यः पादौ विकरोति च । शयनासनकुड्यादौ योऽसदेव जिघृक्षति॥५८॥ अहास्यहासी संमुह्यन् यो लेढि दशनच्छदौ । उत्तरोष्ठं परिलिहन् फूत्कारांश्च करोति यः॥५९

जो मनुष्य उत्तान ही लेट सकता हो अर्थात् करवट न ले सके और उसके पांव सीधे लेटे ही खींचकर टेढे या विकृत हो जांय वह मनुष्य भी मृत्युको प्राप्त होता है ।

जो मनुष्य शय्या, आसन और दीवार आदिमें अवि-द्यमान गन्धोंको सूंघता है और विना हास्यकी बातमें हंसता है तथा मोहको प्राप्त होताहुआ दांत ओठ आदिकोंको चाटता है अथवा ऊपरके ओठको, चाटता हुआ फूत्कारोंको करता है वह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

छायावर्णसे रिष्टज्ञान ।

यमभिद्रवति च्छाया कृष्णा पीताऽरुणाऽपि वा। भिषग्भेषजपानान्नगुरुमित्रद्विषश्च ये । वशगाः सर्व एवैते विज्ञेयाः समवर्तिनः ॥६० ॥

जिस मनुष्यके साथ काली, पीली अथवा अरुण छाया गमन करती है तथा जो मनुष्य औषधि, जल, अन्न, गुरु और मित्र इन सबको द्वेषकी दृष्टिसे देखता है इन सब मनुष्योंको मृत्युके मुखमें जानेवाले जानना चाहिये ॥ ६० ॥

शीतल पसीने और तेजके क्षयसे रिष्टका ज्ञान ।

ग्रीवाललाटहृदयं यस्य स्विद्यति शीतलम्॥६१ उष्णोऽपरः प्रदेशश्च शरणं तस्य देवता । योऽणुज्योतिरनेकाग्रो दुश्छायो दुर्मनाः सदा॥

जिस मनुष्यकी ग्रीवा, मस्तक और हृदय पर शीतल पसीना चल रहा हो और अन्य सब अंग अत्यन्त गर्म हों उसकी रक्षा ईश्वरही कर सकता है।

जिस मनुष्यका तेज क्षीण हो गया हो और चित्त व्याकुल रहता हो, शरीरकी छाया विवर्ण पड गयी हो और सदा खिन्न मन रहता हो उसकोभी मरणोन्मुख जानना चाहिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

विचित्र मेधा आदिकी उत्पत्तिसे रिष्ट ज्ञान ।

बलिं बलिभृतो यस्य प्रणीतं नोपभुञ्जते । निर्निमित्तं च यो मेधां शोभामुपचयं श्रियम् । प्राप्नोत्यतो वा विभ्रंशं स प्राप्नोति यमक्षयम्६३

जिस मनुष्यके हाथकी दी हुई बलि काग आदि न खाते हों अथवा जिसके शरीरमें मेधा, शोभा, पुष्टि और कान्ति अकारण ही विचित्ररूपसे उत्पन्न होगयी हो अथवा स्वाभाविक मेधा, शोभा, कान्ति और पुष्टि आदि स्वाभाविक गुण अकारण नाश होजांय वह मनुष्य यमराजके लोकको प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥

गुण दोष विपर्ययसे रिष्टके लक्षण ।

गुणदोषमयी यस्य स्वस्थस्य व्याधितस्य वा । यात्यन्यथात्वं प्रकृतिः षण्मासान्न स जीवति६४

जिस मनुष्यके स्वाभाविक गुण अथवा दोष स्वस्था-वस्थामें अथवा रुग्णावस्थामें विपरीत होजांय अर्थात जो उसका जन्मसे ही स्वभाव हो वह अचानक बदल

जाय तो वह मनुष्य छः महीनेके भीतर ही मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥

भक्ति आदिके विपर्ययसे रिष्ट लक्षण।

भक्तिः शीलं स्मृतिस्त्यागो बुद्धिर्बलमहैतुकम्॥
षडेतानि निवर्तंते षड्भिर्मासैर्मरिष्यतः।
मत्तवद्गतिवाक्कंपमोहा मासान्मरिष्यतः ॥६६॥

जिस मनुष्यके भक्ति, शील, स्मृति, त्याग, बुद्धि और बल ये छः गुण अकारण ही बदल जांय उसको छः महीनेमें मरनेवाला जानना चाहिये।

जिस मनुष्यकी गति, वाणी, मत्तके समान हो जाय और उसको मूर्च्छा आने लगे वह एक मासमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

सिर नोचने आदिसे रिष्ट्ज्ञान।

नश्यत्यजानन् षडहात्केशलुञ्चनवेदनाम्।
न याति यस्य चाहारः कण्ठं कण्ठामयादृते।६७
प्रेष्याः प्रतीपतां यान्ति प्रेताकृतिरुदीर्यते।
यस्य निद्रा भवेन्नित्यं नैव वा न स जीवति॥६८
वक्त्रमापूर्यतेऽश्रूणां स्विद्यतश्चरणौ भृशम्।
चक्षुश्चाकुलतां याति यमराज्यं गमिष्यतः।
यैः पुरा रमते भावैररतिस्तैर्न जीवति ॥ ६९ ॥

जो मनुष्य ज्ञानरहित होकर अपने शिरके केशोंको उखाडे और उसको सिरके बालके उखडनेकी कुछभी पीड़ाका ज्ञान न हो वह ६ दिनमें मृत्युको प्राप्त होता है।

जिस मनुष्यके विना किसी कंठरोगके खायाहुआ आहार कंठके नीचे नहीं जाय और विपरीत होकर बाहर निकल आवे तथा जितने आज्ञाकारी अंग हैं वे विपरीत हो जांय ऐसे लक्षणोंवाला मनुष्य शीघ्रही मृत्युको प्राप्तहोताहै।

जिसको हर समय महागाढ निद्रा बनी रहे अथवा सर्वथा निद्रानाश हो जाय, वह मनुष्यभी मृत्युको प्राप्त होता है।

जिस मनुष्यका अश्रुओंसे अकारण ही मुख भर जाय और दोनों चरणोंमें अत्यन्त पसीना आवे दोनों नेत्र व्याकुलताको प्राप्त हो जांय वह मनुष्य यमराजके लोकको जानेवाला होता है।

जिस मनुष्यको सदैव जिन जिन वस्तुओंमें सदासे प्रेम हो अकारण ही उन सब भावोंसे विरक्ति आजाय वह मनुष्यभी अधिक कालतक जीवित नहीं रह सकता ॥ ६७ । ६८ । ६९ ॥

त्रिदोषलक्षणसे रिष्टज्ञान।

सहसा जायते यस्य विकारः सर्वलक्षणः।
निवर्तते वा सहसा सहसा स विनश्यति ॥७०॥

जिस मनुष्यके शरीरमें त्रिदोषके लक्षणोंवाले विकार सहसा उत्पन्न हो जांय अथवा उत्पन्न हुए सम्पूर्ण विकार सहसा निवृत्त हो जांय वह मनुष्य भी जीवित नहीं रह सकता ॥ ७० ॥

ज्वरसे होनेवाले रिष्टके लक्षण।

ज्वरो निहंति बलवान् गम्भीरो दैर्घरात्रिकः॥७१
सप्रलापभ्रमश्वासः क्षीणं शूनं हतानलम्।
अक्षामं सक्तवचनं रक्ताक्षं हृदि शूलिनम्॥७२॥
संशुष्ककासः पूर्वाह्णे योऽपराह्णेऽपि वा भवेत्।
बलमांसविहीनस्य श्लेष्मकाससमन्वितः ॥७३॥

जिस मनुष्यको गंभीरज्वर दीर्घ कालसे चला आता हो अथवा त्रिदोषज बलवान् ज्वरहो और प्रलाप, भ्रम तथा श्वास करके युक्त ज्वर हो ऐसा ज्वरक्षीण पुरुषको, सूजनसे व्याप्तको, नष्टाग्निवालेको नष्टकर देता है। अथवा जो क्षीण हो जिसकी वाणी बोलनेमें समर्थ न हो नेत्र लाल होगये है और हृदयमें अत्यन्त शूल हो ऐसे पुरुषको बलवान्ज्वर मारडालता है।

जिस मनुष्यको पूर्वाह्णमें सूखी खांसी हो अथवा अपराह्णमें सूखी खांसी हो तथा बल और मांस क्षीण हो चुके हों ऐसे मनुष्यको अथवा जो कफकी खांसीसे युक्त बल मांसहीन मनुष्य हो ऐसे मनुष्यको गंभीर ज्वर नाश करदेता है ॥ ७१ ७३ ॥

रक्तपित्तसे होनेवाले रिष्टके लक्षण।

रक्तपित्तं भृशं रक्तं कृष्णमिंद्रधनुः प्रभम्।
ताम्रहारिद्रहरितं रूपं रक्तं प्रदर्शयेत् ॥
रोमकूपप्रविसृतं कण्ठास्यहृदये सृजत्।

वाससो रंजनं पूति वेगवच्चातिभूरि च।
वृद्धं पाण्डुज्वरच्छर्दिकासशोफातिसारिणम्॥७४

जिस मनुष्यके रक्तपित्तका रक्त बहुत लाल कृष्णवर्णका इन्द्रधनुषके समान नानावर्णका, ताम्रवर्णका, हलदीके समान तथा हरित वर्णका हो और उस मनुष्यको सम्पूर्ण संसार रक्तवर्ण ही दिखाई देता हो, ऐसा मनुष्य रक्त-पित्तसे शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होता है।

जिस रक्तपित्तवालेके सम्पूर्ण रोमकूपोंसे रक्तस्राव होता हो और कंठ तथा हृदयमें रक्त जमजाय वह मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है।

जिस मनुष्यके रक्तसे रंगा हुआ वस्त्र पानीमें धोनेसे स्वच्छ न हो, रक्तसे दुर्गंधि आती हो और अत्यन्त वेगसे तथा बहुत अधिक रक्तपित्तका रक्त निकलता हो ऐसे मनुष्यकी रक्तपित्तरोगसे शीघ्र मृत्यु होती है।

जो मनुष्य पांडु, ज्वर, छर्दी, खांसी, सूजन और अतीसारसे पीडित हो ऐसे मनुष्यको विशेषकरके वृद्धको उदीर्णहुआ रक्तपित्त शीघ्र नाश करदेता है॥ ७४॥

श्वास काससे रिष्ट।

कासश्वासौ ज्वरच्छर्दितृष्णातीसारशोफिनम्॥

श्वास, कासरोग, ज्वर, छर्दि, प्यास, अतीसार और सूजन होजाने पर मनुष्यको शीघ्र मार देते हैं॥ ७५॥

यक्ष्मासे रिष्ट।

यक्ष्मा पार्श्वरुजानाहरक्तच्छर्द्यंसतापिनम्॥७६।

जिस मनुष्यके पार्श्वमें शूल हो, अफरा हो, रक्तकी छर्दि हो और दोनों अंसोंमें विशेष उष्णता हो, ऐसा राजयक्ष्मावाला मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है॥७६॥

छर्दिसे रिष्ट।

छर्दिर्वेगवती मूत्रशकृद्गन्धिः सचान्द्रिका।
सास्रविट्पूयरुक्कासश्वासवत्यनुषङ्गिणी॥७७॥

जिस मनुष्यको अत्यन्त वेगसे छर्दि आवे और उस छर्दिमें मूत्र तथा विष्ठाकी गंध हो, मोर पंखके समान चन्द्रिकायें हों, रक्त हो, विष्ठा और पीप हो, तथा इस मनुष्यको ऐसी छर्दिके साथ, श्वास, खांसी और शूल हो ऐसे मनुष्यकी शीघ्रही मृत्यु होजाती है॥ ७७॥

तृषासे रिष्ट।

तृष्णाऽन्यरोगक्षपितं बहिर्जिह्वं विचेतनम्॥७८

जो मनुष्य ज्वरादि रोगसे क्षीण होगया हो मूर्च्छाको प्राप्त होता हो और जिह्वा बाहर निकल आयी हो ऐसा मनुष्य अत्यन्त तृषाकरके युक्त हो तो वह मृत्युको प्राप्त होता है॥ ७८॥

मदात्ययसे रिष्ट।

मदात्ययोऽतिशीतार्तं क्षीणं तैलप्रभाननम्॥७९॥

जिस मदात्ययवाले मनुष्यको अत्यन्त शीत पीडित कर रहा हो और शरीर अत्यन्त क्षीण होगया हो और मुख तैलके समान वर्णवाला हो ऐसा मनुष्य मदात्यय रोगसे शीघ्र मरजाता है॥ ७९॥

अर्शसे रिष्ट।

अर्शांसि पाणिपन्नाभिगुदमुष्कास्यशोफिनम्।
हृत्पार्श्वाङ्गरुजाछर्दिपायुपाकज्वरातुरम्॥८०॥

जिस अर्शवाले मनुष्यके हाथ, पांव, नाभि, गुदा-अंडकोष और मुखपर सूजन आगयी हो तथा हृदय, पार्श्व और अंगोंमें शूल हो, छर्दि, गुदाका पकना और ज्वरसे व्याकुलता हो ऐसे मनुष्यको अर्शरोग शीघ्र मार डालता है॥ ८०॥

अतिसारसे रिष्ट।

अतीसारो यकृत्पिंडमांसधावनमेचकैः।
तुल्यस्तैलघृतक्षीरदधिमज्जवसासवैः।
मस्तुलुङ्गमषीपूयवेसवाराम्बुमाक्षिकैः॥ ८१॥
अतिरक्तासितस्निग्धपूत्यच्छघनवेदनः।
कर्बुरः प्रस्रवन् धातून् निष्पुरीषोऽथवातिविट्॥
तन्तुमान्माक्षिकाक्रांतो राजीमांश्चन्द्रकैर्युतः।
शीर्णपायुवलिं मुक्तनालं पर्वास्थिशूलिनम्॥
स्रस्तपायुं बलक्षीणमन्नमेवोपवेशयेत्।
सतृट्श्वासज्वरच्छर्दिदाहानाहप्रवाहिकः॥८२॥

जिस मनुष्यको अतिसाररोगमें मल, यकृत् पिंडके समान मांस धोवनके सदृश तैल, घृत, दूध, दही, मज्जा, वसा, आसव, मस्तुलुंग (भेजा) मषीवर्ण पूय वेशवारका जल और मधुके समान अतिसार आता हो

वह मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है। अथवा, अत्यन्त रक्त, अत्यन्त कृष्ण, अतिस्निग्ध, अतिदुर्गंधित, अति स्वच्छ, बहुत शूलकरके युक्त, कर्बुर वर्णका जिसमें विना मलसे अथवा अत्यन्त मलके सहित रक्तादि धातुवे स्राव होती हों तारदार मक्खियोंसे आक्रान्त राजि मान् और चन्द्रिका युक्त मल हो ऐसा अतिसार मनु ष्यको मार डालता है।

जिस मनुष्यकी गुदाकी वलि बाहर निकलकर भीतर न जा सकती हो जिसकी नालका बंधन गिर चुका हो, पार्श्व और अस्थियोंमें शूल हो ऐसे मनुष्यको उपरोक्त लक्षणोंवाला अतिसाररोग शीघ्र मार डालताहै।

जिस मनुष्यकी गुदा बाहर निकल गयी हो, बल क्षीण हो गया हो, जैसा अन्न खाया हो वैसाही अपक्व मलद्वारसे निकल जाता हो तथा प्यास, श्वास, ज्वर, छर्दि, दाह, आनाह और प्रवाहिका इन उपद्रवोंसे युक्त रोगी हो ऐसा मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है॥ ८१-८३॥

अश्मरीसे रिष्ट।

अश्मरी शूनवृषणं बद्धमूत्रं रुजार्दितम् ॥८४॥

जिस पथरीरोगवाले मनुष्यके वृषणोंपर सूजन हो जाय मूत्र रुक जाय पीडा करके युक्त हो ऐसा मनुष्य क्षीण हो तो अश्मरी रोगसे मृत्युको प्राप्त होता है॥ ८४

प्रमेहसे रिष्ट।

मेहस्तृड्दाहपिटिकामांसकोथातिसारिणम्॥८५॥

जो प्रमेह रोगी प्यास, दाह, पिटिका मांसकी सडन और अतिसार करके युक्त हो वह प्रमेहसे शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है॥ ८५॥

प्रमेह पिडिकासे रिष्ट।

पिटिका मर्महृत्पृष्ठस्तनांसगुदमूर्धगाः।
पर्वपादकरस्था वा मन्दोत्साहं प्रमेहिणम्॥८६॥
सर्वं च मांससङ्कोचदाहतृष्णामदज्वरैः।
विसर्पमर्मसंरोधहिध्माश्वासभ्रमक्लमैः ८७॥

जिस मनुष्यके पिडिका मर्मस्थान पर, हृदय पर, पीठ पर, स्तनों पर, गुदा पर, मूर्धा पर, जोडोंमें, पावों पर और हाथोंपर हो जावे और उस प्रमेहरोगीका उत्साह जाता रहे ऐसे मनुष्यको प्रमेह पिडिका शीघ्र मार देती है।

जो मनुष्य मांस संकोच, दाह, प्यास, मद और ज्वरसे पीडित हो अथवा विसर्प, मर्मसंरोध, हिचकी, श्वास, भ्रम और क्लम इन करके पीडित हो ऐसा पिडिकावाला मनुष्य प्रमेहरोगी हो अथवा न हो तो भी मृत्युको प्राप्त होता है॥ ८६॥ ८७॥

गुल्मसे रिष्ट।

गुल्मः पृथुपरीणाहो घनः कूर्म इवोन्नतः।
सिरानद्धो ज्वरच्छर्दिहिध्माध्मानरुजान्वितः॥
कासपीनसहृल्लासश्वासातीसारशोफवान्॥८८॥

जो गुल्म, लम्बे चौडे आकारवाला हो, कठोर हो, कच्छूके समान ऊपरको उठा हुआ हो, गुल्मस्थान सिराजालसे व्याप्त हो और यह गुल्मरोगी ज्वर छर्दि हिचकी आध्मान और शूलकरके युक्त हो अथवा खांसी, पीनस, हल्लास, श्वास, अतीसार और सूजन करके युक्त हो ऐसा मनुष्य गुल्म रोगसे शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है॥ ८८॥

उदर व्याधिसे रिष्ट।

विण्मूत्रसंग्रहश्वासशोफहिध्माज्वरभ्रमैः।
मूर्च्छाछर्द्यतिसारैश्च जठरं हन्ति दुर्बलम्॥८९
शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम्।
विरेचनहतानाहमानाह्यन्तं पुनः पुनः॥९०॥

जिस कठोदर जलोदर आदि उदररोगवालेके विष्ठा और मूत्र रुकजाय तथा श्वास, सूजन, हिचकी, ज्वर, भ्रम, मूर्च्छा, छर्दि और अतीसार हों तथा वह रोगी दुर्बल हो वह उदर रोगसे शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है। अथवा जिस उदररोगीके नेत्रोंपर सूजन होजाय तथा शिश्नेन्द्रिय कुटिल होजाय अर्थात् संकोच विकास रहित होजाय, देह और त्वचा उपक्लिन्न तथा पतली पड जाय, विरेचन द्रव्य देनेसे अफारा होजाय, वारम्वार आनाहसे व्याकुल हो ऐसा उदर रोगी शीघ्रही मृत्युको प्राप्त हो जाता है॥८९॥९०

पाण्डुरोगसे रिष्ट।

पाण्डुरोगः श्वयथुमान् पीताक्षिनखदर्शनम्९१

जिस पांडुरोगीके शरीरमें सूजन आगयी हो नेत्र नख आदि पीले पडगये हों और उसको पीलेही वर्णका सब कुछ दिखाई देता हो वह पाण्डुरोगी शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥

सूजनसे रिष्ट।

तन्द्रादाहारुचिच्छर्दिमूर्च्छाध्मानातिसारवान्।
अनेकोपद्रवयुतः पादाभ्यां प्रसृतो नरम्॥९२॥
नारीं शोफो मुखाद्धन्ति कुक्षिगुह्यादुभावपि।
राजीचितः स्रवंश्छर्दिज्वरश्वासातिसारिणम्॥९३

जिस शोथरोगीको तन्द्रा, दाह, अरुचि, छर्दि, मूर्च्छा, आध्मान और अतिसार आदि अनेक उपद्रव हों और सूजन पावोंसे आरंभ होकर शरीरतक फैली हो वह मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है।

इसी प्रकार स्त्रीको मुखकी ओरसे सूजन उत्पन्न होकर सारे शरीरमें फैली हो और उपरोक्त उपद्रव हों तो वह स्त्री मृत्युको प्राप्त होती है।

इसी प्रकार कुक्षिस्थान गुह्यस्थानसे उत्पन्न होकर सब शरीरमें सूजन फैलजाय और सारे शरीरमें अभूतपूर्व रेखायें दिखाई देने लगें तथा स्राव, छर्दि, ज्वर, श्वास और अतीसारकरके युक्त हो ऐसे लक्षणोंवाला स्त्री या पुरुष मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ९२ ॥९३॥

ज्वरातिसारौ शोफान्ते श्वयथुर्वा तयोः क्षये।
दुर्बलस्य विशेषेण जायन्तेऽन्ताय देहिनः॥९४॥

जिस मनुष्यको ज्वर और अतीसार देरसे हो और हाथों पावोंमें सूजन आजाय अथवा ज्वरातिसार निवृत्त होनेपर हाथों पावोंमें सूजन आकर बढनेलगे और रोगी विशेष दुर्बल हो ये लक्षण इसके शीघ्र अन्तके लिये होते हैं ॥ ९४ ॥

श्वयथुर्यस्य पादस्थः परिस्रस्ते च पिण्डिके।
सीदतः सक्थिनी चैव तं भिषक् परिवर्जयेत्॥९५

जिस रोगीके दोनों पांवपर सूजन हो और दोनों पिंडलियें अपने स्थानसे ढीली पडजाँय और दोनों सक्थियें असमर्थ हो जांय उस रोगीको वैद्य असाध्य समझकर त्याग देवे ॥ ९५ ॥

आननं हस्तपादं च विशेषाद्यस्य शुष्यतः।
शूयेते वा विना देहात्स मासाद्याति पञ्चताम्॥९६

जिस मनुष्यके अन्यदेहके विना मुख और हाथ, पांव विशेष रूपसे सूखते हों अथवा मुख और हाथ पांवपर विशेष सूजन आगयी हो वह मनुष्य भी एक महीनेमें देहका त्याग कर देता है ॥ ९६ ॥

विसर्प रोगमें रिष्ट।

विसर्पः कासवैवर्ण्यज्वरमूर्छाङ्गभङ्गवान्।
भ्रमास्यशोषहृल्लासदेहसादातिसारवान् ॥९७॥

जिस विसर्पवाले रोगीको खांसी, विवर्णता, ज्वर, मूर्च्छा और अंगभंगकी पीडा हो अथवा भ्रम, मुखशोष, हृल्लास, अंगसाद और अतीसार हो वह रोगी विसर्पसे मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ९७ ॥

कुष्ठ रोगमें रिष्ट।

कुष्ठं विशीर्यमाणाङ्गं रक्तनेत्रं हतस्वरम्।
मन्दाग्निं जन्तुभिर्जुष्टं हन्ति तृष्णातिसारिणम्॥

जिस कुष्ठरोगीके अंग विशीर्ण होकर गिर रहे हों, नेत्र लालवर्णके हों, स्वर बैठ गया हो, मन्दाग्नि हो, व्रणोंमें कृमि पडगये हों, प्यास और अतिसार करके युक्त हो ऐसे रोगीको कुष्ठ मार देता है ॥ ९८ ॥

वात व्याधिमें रिष्ट।

वायुः सुप्तत्वचं भग्नं कफशोफरुजातुरम्।
वातास्रं मोहमूर्च्छायमदस्वप्नज्वरान्वितम् ॥९९

जिस वात रोगीकी त्वचा सोगई हो अंगभंग हो गये हों कफ सूजन और शूल करके युक्त हो ऐसे मनुष्यको वायु मार डालता है।

जिस वातरक्तरोगीको मोह मूर्च्छा मद निद्रानाश और ज्वरादि उपद्रव हों उसको वात रक्त रोग नाश कर देता है ॥ ९९ ॥

शिरके रोगमें रिष्ट।

शिरोग्रहारुचिश्वाससङ्कोचस्फोटकोथवत्।
शिरोरोगारुचिश्वासमोहविड्भेदतृड्भ्रमैः।१००

जिस शिरोग्रह रोगवालेको अरुचि श्वास संकोच स्फोट और कोथ आदि उपद्रव हो जाय वह मृत्युको प्राप्त होता है। तथा जिस शिरोरोगवालेको अरुचि

श्वास, मोह, अतिसार, प्यास और भ्रम ये उपद्रव हों वह शिरोरोगवाला मनुष्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १००॥

अन्य प्रकारके रिष्ट ।

घ्नन्ति सर्वामयाः क्षीणस्वरधातुबलानलम् १०१

जिस मनुष्यके स्वर धातु बल और जठराग्नि यह सब क्षीण होजांय ऐसे मनुष्यको सम्पूर्ण रोगही नाश कारक हो जाते हैं ॥ १०१ ॥

वातव्याधिरपस्मारी कुष्ठी रक्त्युदरी क्षयी ।
गुल्मी मेही च तान्क्षीणान्विकारेल्पेपिवर्जयेत्॥

वातव्याधिवाला, अपस्माररोगी, कुष्ठी, रक्तपित्तवाला, उदररोगी, क्षयरोगी, गुल्मरोगी और प्रमेहरोगी, यदि इन रोगियोंमेंसे किसी रोगवालेके भी बल, मांस, धातु और स्वर ये क्षीण होगये हों तो ऐसे मनुष्यके शरीरमें थोडा विकार होनेपरभी जीवनकी आशा नहीं रखनी चाहिये ॥ १०२ ॥

बलमांसक्षयस्तीव्रो रोगवृद्धिररोचकः ।
यस्यातुरस्यलक्ष्यंते त्रीन् पक्षान्न स जीवति १०३

जिस मनुष्यके बल और मांस क्षीण होगये हों, अरुचि बढगई हो, रोगमें अत्यन्तवृद्धि होती हो ऐसा मनुष्य तीन पक्ष तक भी जीवित नहीं रह सकता १०३

वाताष्ठीलाऽतिसंवृद्धा तिष्ठन्ती दारुणा हृदि ।
तृष्णया तु परीतस्य सद्यो मुष्णाति जीवितम्॥

जिस मनुष्यके शरीरमें वाताष्ठीला रोग बढकर वह बढीहुई वाताष्ठीला हृदयके ऊपर दारुणरूपसे स्थित होजाय और रोगी प्यासके उपद्रवसे व्याकुल हो यह मनुष्य जीवनको शीघ्र त्यागदेता है ॥ १०४ ॥

शैथिल्यं पिण्डिकेवायुर्नीत्वा नासांच जिह्मताम्
क्षीणस्यायम्यमन्ये वा सद्यो मुष्णाति जीवितम्

जिस वातरोगपीडित मनुष्यके दोनों पिंडिकाको वायु शिथिल बना देवे और नासिकाको टेढी कर देवे और दोनों मन्याओंको भीतरको खैंचले इन उपद्रवोंवाला क्षीण मनुष्य शीघ्रही अपने जीवनको त्याग देता है ॥ १०५ ॥

नाभी गुदान्तरं गत्वा वंक्षणौ वा समाश्रयन् ।
गृहीत्वा पायुहृदये क्षीणदेहस्य वा बली ।
मलान् बस्तिशिरो नाभिं विबद्ध्य जनयन् रुजम्

जिस मनुष्यके शरीरमें वायु नाभि और गुदाके अन्दरमें जाकर अथवा दोनों वंक्षणकी संधियोंमें पहुँचकर पायुस्थान और हृदयको आकर्षण करे इस वायुके उपद्रववाला क्षीणमनुष्य अपने जीवनको शीघ्र ही त्याग देता है । अथवा वायु मलोंको रोककर वस्ति–शिर और नाभिको बांधकर तीव्रशूलको पैदा करे इस उपद्रववाला मनुष्य शीघ्र जीवनको त्याग देता है ॥ १०६ ॥

वायु, संताप, ज्वरादिसे रिष्ट लक्षण ।

कुर्वन् वंक्षणयोः शूलं तृष्णां भिन्नपुरीषताम् ।
श्वासं वा जनयन् वायुर्गृहीत्वा गुदवंक्षणम्॥१०७

जिस मनुष्यके शरीरमें वायु वंक्षणकी संधियोंमें शूलको उत्पन्न करके तृषा और अतिसारके उपद्रवको करदेता है तथा श्वासको पैदा करके गुदा और वंक्षणको आकर्षण करता है वह मनुष्य शीघ्र अपने जीवनको त्याग देता है ॥ १०७ ॥

वितत्य पर्शुकाग्राणि गृहीत्वोरश्च मारुतः ।
स्तिमितस्याततासस्य सद्यो मुष्णाति जीवितम्

जिस मनुष्यके शरीरमें वायु पार्श्व अस्थियोंको और हृदयको ग्रहण करके विस्तारित करदेवे और उस मनुष्यके सम्पूर्ण शरीरमेंसे प्रस्वेद चल रहा हो और नेत्र विस्तारित होगये हो, ऐसा मनुष्य शीघ्र जीवनको त्याग देता है ॥ १०८ ॥

सहसा ज्वरसन्तापस्तृष्णा मूर्च्छा बलक्षयः ।
विश्लेषणं च सन्धीनां मुमूर्षोरुपजायते॥ १०९॥

जिस मनुष्यको ज्वर, संताप, तृषा, मूर्च्छा और बल क्षय ये सहसा उत्पन्न हो जांय तथा संधियोंका विश्लेषण होजाय अर्थात् सब संधियें ढीली पडजांय वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होनेवाला जानना चाहिये॥ १०९॥

गोसर्गे वदनाद्यस्य स्वेदः प्रच्यवते भृशम् ।
लेपज्वरोपतप्तस्य दुर्लभं तस्य जीवितम्॥ ११०॥

जिस मनुष्यके श्लेष्मज्वरसे उत्तप्त होनेपर प्रातःकाल गौओंको छोडनेके समय मस्तकादि शरीरसे

अत्यन्त प्रस्वेद टपकनेलगे उसका जीवन दुर्लभ जानना चाहिये ॥ ११० ॥

मसूरिका उत्पन्न होकर उत्पन्न होनेवाले मृत्युके लक्षण।

प्रवालगुलिकाभासा यस्य गात्रे मसूरिकाः ।
उत्पद्याशु विनश्यन्ति नचिरात्सविनश्यति १११

जिस मनुष्यके शरीरमें मूंगाकी गुलिकाके समान अर्थात् मूङ्गेके दानेके समान वर्णवाली मसूरिका उत्पन्न होकर शीघ्रही स्वयं शरीरमें लीन होजाय ऐसा मसूरिकावाला मनुष्य शीघ्र जीवनको त्याग देताहै १११

चार प्रकारके विस्फोटकमें रिष्ट।

मसूरविदलप्रख्यास्तथा विद्रुमसन्निभाः ।
अंतर्वक्राः किणाभाश्च विस्फोटा देहनाशनाः ॥

मसूरकी दालके समान तथा विद्रुमके समान तथा भीतरको टेढे तथा क्षतव्रणके समान ये चार प्रकारके विस्फोटक उत्पन्न होजांय वह देहको नष्ट करनेवाले जानने चाहिये ॥ ११२ ॥

कामलाऽक्ष्णोर्मुखं पूर्णं शङ्खयोर्मुक्तमांसता ।
सन्त्रासश्चोष्णताङ्गे च यस्य तं परिवर्जयेत् ११३

जिस मनुष्यके नेत्र और मुख कामला रोगसे परिपूर्ण होजाय अर्थात् हारिद्रवर्णके होजांय और दोनों शंखोंके ऊपरसे मांस शिथिल पडजाय, शरीर उष्ण और संत्रस्त हो ऐसे मनुष्यको असाध्य समझकर त्याग देना चाहिये ॥ ११३ ॥

त्वचाघर्षणके चिह्नोंसे रिष्टलक्षण।

अकस्मादनुधावच्च विघृष्टं त्वक्समाश्रयम्[१] ११४

जिस मनुष्यके शरीरमें अकस्मात् त्वचाघर्षण होनेके समान सम्पूर्ण त्वचापर घर्षणकेसे चिह्न उत्पन्न हो जांय उसको भी असाध्य जानना चाहिये ॥ ११४॥

व्रणोंकी असाध्यता।

यो वातजो न शूलाय स्यान्न दाहाय पित्तजः ।
कफजो न च पूयाय मर्मजश्च रुजे न यः ॥
अचूर्णश्चूर्णकीर्णाभो यत्राकस्माच्च दृश्यते ॥
रूपं शक्तिध्वजादीनां सर्वास्तान्वर्जयेद्व्रणान् ॥

जिस व्रणमें वातजनित होतेहुए भी शूल न हो और पित्तके व्रणमें दाह न हो अथवा कफके व्रणमें पूय न हो अथवा मर्मस्थानके व्रणमें पीडा न हो, या जो व्रण विना ही चूर्णके चूर्ण बुरकाया हुआसा प्रतीत हो अर्थात् जिस व्रणमें विना कोई औषधि डाले चूर्ण छिडकाहुआसा प्रतीत हो या व्रणमें अकस्मात् ध्वजा शक्ति आदिके रूप दिखाई दें ऐसे सब प्रकारके व्रणोंको असाध्य जानना चाहिये॥ ११५ ॥

विण्मूत्रमारुतवहं कृमिणं च भगन्दरम्॥११६॥

जिस भगन्दरके व्रणमेंसे विष्ठा, मूत्र और पवन वहने लगे और कृमि पडगये हों वह भगन्दर असाध्य जानना चाहिये ॥ ११६ ॥

अन्य असाध्य लक्षण।

घट्टयन् जानुना जानु पादावुद्यम्य पातयन् ।
योऽपास्यति मुहुर्वक्त्रमातुरो न स जीवति ११७

जो मनुष्य अपने एक जानुसे दूसरे जानुको कटकटाये और पड़ाहुआ पावोंको वार वार उठाकर फेंके और अपने मुखको इधर उधर विना ही कारण घुमावे वह मनुष्य जीवित नहीं रह सकता ॥ ११७ ॥

दन्तैश्छिन्दन्नखाग्राणि तैश्च केशांस्तृणानि च।
भूमिं काष्ठेन विलिखन् लोष्टं लोष्टेन ताडयन् ॥
हृष्टरोमा सान्द्रमूत्रः शुष्ककासी ज्वरी च यः।
मुहुर्हसन् मुहुः क्ष्वेडन् शय्यां पादेन हन्ति यः॥
मुहुश्छिद्राणि विमृशन्नातुरो न सजीवति ११९

जो मनुष्य अपने दांतोंसे नखोंके अग्रभागको काटता हो और केशोंको काटता हो, तिनकोंको काटता हो, भूमिको लकडीसे कुरेदता हो, लोष्टको लोष्टसे ताडन करता हो और जिस मनुष्यके रोमांच खडे हों, सान्द्र मूत्रका स्राव होता हो, सूखी खांसी हो और ज्वर हो ऐसे लक्षणवाला मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है।

जो मनुष्य ज्वरमें वारम्वार हँसे, वारम्वार शब्द करे और वारम्वार पावोंसे शय्याको ताडन करता हो

---

१ क्षेपकः—चन्दनोशीरमदिराकुणपध्वाङ्क्षगन्धयः ।
शैवालकुङ्कुटशिखाकुन्दशाल्मियप्रभाः ।
अन्तर्दाहा निरूष्माणः प्राणनाशकरा व्रणाः ॥ १ ॥

और बारम्बार नासिका आदि छिद्रोंको मर्दन करता हो वह मनुष्य जीवित नहीं रह सकता ११८।११९

अन्य असाध्य लक्षण ।

मृत्यवे सहसातस्य तिलकव्यङ्गविप्लुवः ।
मुखे दंतनखे पुष्पं जठरे विविधाः सिराः॥१२०।

जिस रोगी मनुष्यके शरीरमें तिलकालक, व्यंग, और विप्लु ये सहसा उत्पन्न होजांय तथा मुख दांत और नखोंपर पुष्पोंके आकार बनजांय और उदरपर अनेक सिराओंका आभास हो वह मनुष्य अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १२० ॥

ऊर्ध्वश्वासं गतोष्माणं शूलोपहतवंक्षणम् ।
शर्म वाऽनधिगच्छंतं बुद्धिमान् परिवर्जयेत्१२१

जिस रोगीको ऊर्ध्वश्वास चलरहा हो, शरीरकी उष्मा नष्ट होगई हो, शूलसे वंक्षण उपहत हो और किसीप्रकार भी शान्तिको न प्राप्त होता हो उस रोगीको असाध्य जानकर त्यागदेना चाहिये॥१२१॥

सहसा विकारके बढनेसे रिष्ट लक्षण ।

विकारा यस्य वर्धन्ते प्रकृतिः परिहीयते ।
सहसा सहसा तस्य मृत्युर्हरति जीवितम्।१२२

जिस रोगीके विकार सहसा बढजांय और स्वाभाविकगुण सहसा नष्ट हो जांय उस मनुष्यके जीवनको मृत्यु सहसा हरणकर लेती है ॥ १२२ ॥

रोगीके लिये औषध न बननेमें रिष्ट ।

यमुद्दिश्यातुरं वैद्यः सम्पादयितुमौषधम् ।
यतमानो न शक्नोति दुर्लभं तस्य जीवितम्१२३

जिस रोगीके लिये वैद्य बारंबार औषध बनानेका यत्न करे परन्तु अनेक प्रकारसे यत्न करनेपर भी औषध तैयार न करसके उस रोगीका जीवन दुर्लभ जानना चाहिये ॥ १२३ ॥

रोगीको लाभ न होनेमें रिष्ट ।

विज्ञातं बहुशः सिद्धं विधिवच्चावतारितम् ।
न सिध्यत्यौषधं यस्य नास्ति तस्य चिकि-
-त्सितम् ॥१२४॥

जिस रोगीकी चिकित्सा करते समय यथार्थ औषधि और रोगके ज्ञानपूर्वक अनेक प्रकारसे चिकित्सा की जाय परन्तु विधिवत् चिकित्सा करनेपर भी रोगीको कोई लाभ न हो उसकी फिर कोई भी चिकित्सा नहीं है ॥ १२४ ॥

पथ्यके विपरीतगुण होनेमें रिष्ट ।

भवेद्यस्यौषधेऽन्ने वा कल्प्यमाने विपर्ययः ।
अकस्माद्वर्णगंधादेः स्वस्थोऽपि न स जीवति ॥

जिस रोगीको औषध अन्न आदि जो पथ्यपदार्थ दियाजाय वह सब विपरीत गुणकरे और जिसके शरीरमें स्वाभाविक वर्ण गंधादिकके विपरीत अकस्मात् वर्णगंधादि उत्पन्न होजांय वह स्वस्थ भी जीवित नहीं रह सकता ॥ १२५ ॥

अन्य रिष्ट लक्षण ।

निवाते सेन्धनं यस्य ज्योतिश्चाप्युपशाम्यति॥
आतुरस्य गृहे यस्य भिद्यन्ते वा पतन्ति वा ।
अतिमात्रममत्राणि दुर्लभं तस्य जीवितम्।१२७

जिस रोगी मनुष्यके घरमें तेल बत्ती आदि रहते हुए भी निर्वात स्थानमें रक्खाहुआ दीपक अकस्मात् बुझजाय और उसके घरके पात्र अस्मात् अधिक संख्यामें फूंटें ऐसे मनुष्यका जीवन दुर्लभ जानना चाहिये ॥ १२६ ॥ २७ ॥

अकस्मात् रोग निवृत्तिमें रिष्ट ।

यं नरं सहसा रोगो दुर्बलं परिमुञ्चति ।
संशयं प्राप्तमात्रेयो जीवितं तस्य मन्यते॥१२८

जिस दुर्बल रोगीके शरीरसे विना ही क्रम अकस्मात् रोगनिवृत्त हो जाय आत्रेय भगवान् कहते है कि उसके जीवनमें संशय जानना चाहिये ॥१२८॥

वैद्यको उपदेश ।

कथयेन्नैव पृष्टोऽपि दुःश्रवं मरणं भिषक् ।
गतासोर्बंधुमित्राणां न चेच्छेत्तं चिकित्सितुम्॥

यदि चिकित्सक रोगीको असाध्य समझकर उसकी चिकित्सा न करना चाहे तो पूंछनेपर भी रोगीके बंधु और मित्रोंको या रोगीके पास सुननेमें दुःख दायक रोगीके मरणकी बात न कहे ॥ १२९ ॥

यमदूतपिशाचाद्यैर्यत्परासुरुपास्यते ।
घ्नद्भिरौषधवीर्याणि तस्मात्तं परिवर्जयेत्॥१३०

क्योंकि मरणाभिमुख रोगीको यमराजके दूत, पिशाच आदि उपासना करते हुए औषधियोंके वीर्यका नाश करते रहते है. इस कारण अपने यशकी इच्छासे ऐसे असाध्य रोगीकी चिकित्सामें हाथ नहीं डालना चाहिये ॥ १३० ॥

रिष्टज्ञानका कारण ।

आयुर्वेदफलं कृत्स्नं यदायुर्ज्ञे प्रतिष्ठितम् ।
रिष्टज्ञानादृतस्तस्मात्सर्वदैव भवेद्भिषक् ॥१३१॥

आयुर्वेदका सम्पूर्ण फल आयुके ज्ञानमें प्रतिष्ठित है तथा आयु सम्बन्धी सब ज्ञानको प्राप्त करलेना ही है। इस कारण वैद्यको सदाही रिष्टके ज्ञानमें आदर रखना चाहिये ॥ १३१ ॥

मरणमें आयु और पुण्यकी क्षीणताकी कारण ।

मरणं प्राणिनां दृष्टमायुः पुण्योभयक्षयात् ।
तयोरप्यक्षयाद्दृष्टं विषमापरिहारिणाम् १३२॥

संसारमें प्राणियोंका मरण आयु और पुण्यके क्षय होनेपर होता है। यही कारण है कि सब प्रकारके विषम संकटोंसे बचनेके साधन जिन पुरुषोंको भगवान्ने दिये हैं उनका भी मरण देखा जाता है। इस कारण सबका मरण आयु और पुण्यक्षीण होजाने पर होता है ॥ १३२ ॥

इति श्री वाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टाङ्गहृदयसंहितायां शारीरस्थाने वैद्यशास्त्री प. शिवशर्म्मकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातो दूतादिविज्ञानीयं शारीरं व्याख्यास्यामः।

अब हम दूतादि विज्ञानीयनामक शारीराध्यायकी व्याख्या करते हैं।

पाखण्डाश्रमवर्णानां सवर्णाः कर्मसिद्धये ।
त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपत्तये ॥ १॥

पाखण्ड (व्रात्यादि), आश्रम (ब्रह्मचर्यादि), वर्ण (ब्राह्मणादि) इनमें कोई रोगी हो तो जिस श्रेणीका जो रोगी हो उसीकी जातिका दूत वैद्यको बुलानेके लिये आवे तो श्रेष्ठ शकुन जानना चाहिये। यदि इससे विपरीत अर्थात् जिस जातिका जो रोगी हो उसी जातिका दूत न हो तो यह शकुन श्रेष्ठ नहीं ॥ १ ॥

अशुभ दूतके लक्षण ।

दीनं भीतं द्रुतं त्रस्तं रूक्षामङ्गलवादिनम् ।
शस्त्रिणं दण्डिनं षण्ढं मुण्डश्मश्रुं जटाधरम् २॥
अमङ्गलाह्वयं क्रूरकर्माणं मलिनं स्त्रियम् ।
अनेकव्याधितं व्यङ्गं रक्तमाल्यानुलेपनम्॥३॥
तैलपङ्काङ्कितं जीर्णविवर्णार्द्रैकवाससम् ।
खरोष्ट्रमहिषारूढं काष्ठलोष्टादिमर्दिनम् ॥ ४ ॥
नानुगच्छेद्भिषग्दूतमाह्वयन्तं च दूरतः ।
अशस्तचिन्तावचने नग्ने छिन्दति भिन्दति॥५॥
जुह्वाने पावकं पिण्डान् पितृभ्यो निर्वपत्यपि।
सुप्ते मुक्तकचेऽभ्यक्ते रुदत्यप्रयते तथा ।
वैद्ये दूता मनुष्याणामागच्छन्ति मुमूर्षताम्॥६

वैद्यको बुलानेके लिये जो दूत आवे यदि वह दीन, भयभीत और भागा हुआ आता हो अथवा त्रस्त या रूक्ष और अमंगल शब्द बोलता हो, हाथमें शस्त्र या दंड लियेहुए हो अथवा नपुंसक, या दाढी, मूँछ और शिर मुँडा हुआ हो या जटाधारण किये हो अथवा यम चांडालादि नामवाला हो, या क्रूरकर्मा हो, मलिन हो, या स्त्रीहो या अनेक व्याधियोंसे युक्त हो, अथवा टेढीप्रकृतिका हो या लालवर्णकी फूलमाला और चन्दनादि लालवर्णकेही धारणकियेहुएहों अथवा तेल, कीचड आदिसे लिपे हुए अंगवाला हो, या पुराने. फटे हुए गीले एकवस्त्रको धारणकिये हो अथवा खर, उष्ट्र, या महिषपर चढाहुआ हो, या काष्ठ और मिट्टीका डेला आदि मर्दनकर रहा हो या दूरसेही बुलाता आता हो ऐसे अशुभ लक्षणोंवाले दूत यदि वैद्यको बुलाने आवे तो ऐसे दूतके साथ वैद्यको नहीं जाना चाहिये।

ऐसेही निन्दित और चिन्तायुक्त वचन कहनेवाले अथवा नग्न या छेदन करता है या भेदन करता है इत्यादि वाक्य बोलनेवाला अथवा अग्निमें हवन करते हुए समय पितरोंके पिंड अर्पण करते हुऐ समय अथवा

सोते समय या क्षौर कराते समय, तैल मलतेहुए अप-वित्रावस्थामें या अन्यचिन्ता युक्त रोदनादिके समय वैद्यको बुलाने दूत आवे तो वह रोगीके कल्याणके लिये नहीं होता-इस कारण ऐसे समय दूतके साथ जाना अशुभ होता है ।। २–६ ।।

विकारसामान्यगुणे देशे कालेऽथवा भिषक् ।
दूतमभ्यागतं दृष्ट्वा नातुरं तमुपाचरेत्॥ ७ ॥

जिस देशमें विकारके सामान्य गुण हों अर्थात् देश काल विकारयुक्त (महामारी आदि रोगोंसे आक्रान्त) हो तो ऐसे समय वैद्य दूतके साथ रोगीको देखने न जाकर उसको स्थान परिवर्तन करावे ।

अथवा जिस देश कालमें रोगकेसे सामान्य गुण हों जैसे—सेतुके भंग होनेके समय छर्दि अथवा अतीसार रोगवालेका दूत आवे या मध्याह्न समयमें संतप्त कालमें पित्तके रोगीका दूत आवे तो वह भी अशुभ जानना चाहिये ।। ७ ॥

स्पृशन्तो नाभिनासास्यकेशरोमनखद्विजान् ।
गुह्यपृष्ठस्तनग्रीवाजठरानामिकाङ्गुलीः ॥ ८ ॥
कार्पासबुससीसास्थिकपालमुशलोपलम् ।
मार्जनीशूर्पचैलान्तभस्माङ्गारदशातुषान् ॥९॥
रज्जूपानत्तुलापाशमन्यद्वा भग्नविच्युतम् ।
तत्पूर्वदर्शने दूता व्याहरन्ति मरिष्यताम् १०॥

जब दूत वैद्यको बुलाने आवे उस समय वह दूत अपने नाभिको अथवा नासिकाको या मुख,केश, रोम, नख या दन्तोंको स्पर्श कियेहुए हों. अथवा गुह्यस्थान पीठ, स्तन,गर्दन, उदर, अनामिका अंगुलि, कपास, छिल्का, शिर, अस्थि, कपाल, मुशल, उपल, मार्जनी, सूर्प, फटाहुआ वस्त्रका कोना, भस्म, अंगार, कपडेकी बत्ती, तुष, रज्जु, जूता, तुला, पाश या अन्य टूटी फूटीहुई गिरी वस्तु हाथसे स्पर्श कियेहुए हो ऐसा दूत प्रथम दर्शनमें अर्थात् जब पहले ही पहल वैद्यको बुलाने आवे तो वह अशुभ होता है ॥ ८–१० ॥

तथार्धरात्रे मध्याह्ने सन्ध्ययोःपूर्ववासरे ॥११॥
षष्ठीचतुर्थीनवमीराहुकेतूदयादिषु ।
भरणीकृत्तिकाऽऽश्लेषापूर्वार्द्रापैत्र्यनैर्ऋते ॥ १२

जो दूत आधीरात्रिके समय या मध्याह्नके समय या दोनों संधियोंमें षष्ठी, चतुर्थी और नवमी तिथिके दिन अथवा राहु केतुके उदय अर्थात् ग्रहणादिके समय भरणी, कृत्तिका, आश्लेषा, पूर्वाषाढा, आर्द्रा, मघा और मूलनक्षत्रयुक्त उपरोक्त षष्ठी आदि तिथिमें यह रवि वारको प्रथमही प्रथम आवे वह दूतभी अशुभ जानना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥

यस्मिंश्च दूते ब्रुवति वाक्यमातुरसंश्रयम् ।
पश्येन्निमित्तमशुभं तं च नानुव्रजेद्भिषक् ॥१३।

जिस दूतके साथ रोगी सम्बन्धी बातचीत करते समय अशुभ निमित्त प्रतीत हों ऐसे दूतके साथभी रोगीको देखने नहीं जाना चाहिये ॥ १३ ॥

अशुभ निमित्त ।

तद्यथा विकलः प्रेतः प्रेतालङ्कार एव वा ।
छिन्नं दग्धं विनष्टं वा तद्वादीनि वचांसि वा॥१४

जैसे दूतसे बात करते समय विकलप्रेत, प्रेतालंकार छिन्न, दग्ध और विनष्ट, ऐसे शब्द दूतके मुँहसे निकल जाय या अन्य कोई उसी समय ऐसे शब्द कहे ये शब्द रोगीकेलिये अशुभ जानने चाहिये ॥ १४ ॥

रसो वा कटुकस्तीव्रो गन्धो वा कौणपो महान् ।
स्पर्शो वा विपुलः क्रूरो यद्वान्यदपि तादृशम् १५
तत्सर्वमभितो वाक्यं वाक्यकालेऽथवा पुनः ।
दूतमभ्यागतं दृष्ट्वा नातुरं तमुपाचरेत् ॥ १६ ॥

जब दूत वैद्यके पास आवे उसी समय कटु या तीव्र गंध या मुर्देकीसी गंध या क्रूर स्पर्श अथवा ऐसेही क्रूर या अनिष्टरूप रस गंधादिका स्पर्श उसी समय होना जब दूत आया हो अथवा रोगी संबंधी बातचीत हो ये सब निमित्त दूतागमनके समय रोगीके लिये अशुभ होते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

मार्ग गमनमें अशुभ शकुन ।

हाहाक्रंदितमुत्क्रुष्टं रुदितं स्खलनं क्षुतम् ।
वस्त्रातपत्रपादत्रव्यसनं व्यसनीक्षणम्॥ १७ ॥

चैत्यध्वजानां पात्राणां पूर्णानां च निमज्जनम् ।
हतानिष्टप्रवादाश्च दूषणं भस्मपांसुभिः॥ १८ ॥

जब वैद्य रोगीको देखनेकेलिये चले उस समय हाहाकार, चिल्लाहट, छींक, रोना, विलापकरना, गिरना अथवा चलते समय वस्त्र, छत्र या जूते आदिका विनाश हो जाना या किसी विपत्तिका देखना, किसी चैत्यध्वजा पूर्णपात्र आदिका डूबजाना या नष्ट हो जाना. हत और अनिष्ट आदि वचनोंका सुनना, भस्म और पांसु आदिका ऊपर गिरना ये सब शकुन मार्गमें होना रोगीकेलिये अनिष्टकारी होतेहैं ॥ १७-१८ ॥

पथश्छेदोऽहिमार्जारगोधासरठवानरैः ।
दीप्तां प्रतिदिशं वाचं क्रूराणां मृगपक्षिणाम्१९
कृष्णधान्यगुडोदश्विल्लवणासवचर्मणाम् ।
सर्षपाणां वसातैलतृणपङ्केन्धनस्य च ॥२० ॥
क्लीबक्रूरश्वपाकानां जालवागुरयोरपि।
छर्दितस्य पुरीषस्य पूतिदुर्दर्शनस्य च ॥२१॥
निःसारस्य व्यवायस्य कार्पासादेररेरपि ।
शयनासनयानानामुत्तानानां तु दर्शनम् ॥
न्युब्जानामितरेषां च पात्रादीनामशोभनम् २२

वैद्यके जाते समय मार्गमें सांप, बिल्ली, सरट, गोधा और वानर इनमेंसे कोईभी मार्गको छेदकर सामनेसे लखे ये शकुनभी रोगीके लिये अनिष्टकारी होते हैं । इसी प्रकार रोगीको देखने जाते समय सम्मुख दिशाका दीप्त होना क्रूर मृग पक्षी आदिकोंके क्रूर शब्द सुनना सामनेसे कृष्णधान्य (तिल, उड़द), गुड, उदश्वित्, लवण, आसव, चर्म, सरसों, वसा, शुष्कतृण, इंधन, कीचड, क्लीब (हिजडा), क्रूर, चांडाल, मच्छी पकड़ने आदिका जाल, हरिणके बांधनेकी वागुरा, छर्दित,पुरीष दुर्गंधित वस्तु, निःसार वस्तु, कपास, शत्रु आदिका रास्तेमें मिलना तथा शय्या, आसन और यानका उलट जाना अन्य पदार्थ पात्रोंकाभी औंधे मिलना ये सब अशुभ शकुन होतेहैं १९-२२॥

शुभाशुभ शकुन ।

पुंसंज्ञाः पक्षिणो वामाः स्त्रीसंज्ञा दक्षिणाः शुभाः।
प्रदक्षिणं खगमृगा यान्तो नैवं श्वजंबुकाः॥२३॥
अयुग्माश्च मृगाःशस्ताः शस्ता नित्यं च दर्शने॥
चाषभासभरद्वाजनकुलच्छागबर्हिणः ॥ २४ ॥

पुरुषसंज्ञक पक्षियोंका वाम भागमें मिलना और स्त्रीसंज्ञक पक्षियोंका दाहिनी ओर मिलना शुभ होता है । खग और मृगोंका वामभागसे दक्षिण ओर जाना शुभ होता है कुत्ते और गीदडका दहिनी ओरसे बाईं ओरका जाना शुभ होता है । हरिणका अकेले मिलना वाम और दक्षिण दोनों भागमें शुभ होते हैं ऐसेही चाष, भास, भरद्वाज, नकुल छाग और मोर ये सब जन्तु वाम अथवा दक्षिण दोनों भागमें शुभ होते हैं२३।२४

अशुभं सर्वथोलूकबिडालसरठेक्षणम् ॥ २५ ॥

उल्लू, बिडाल और सरट इनका गमनसमय वाम दक्षिण या सम्मुख किसी ओर दिखाई देना सर्वथा अशुभ होता हैं ॥ २५ ॥

प्रशस्ताः कीर्तने कोलगोधाहिशशजाहकाः ।
न दर्शने न विरुते वानरर्क्षावतोऽन्यथा ॥२६॥

गमन समयमें सूकर, गोधा, सांप और शशक आदिका कीर्तन अर्थात् बोलना तो शुभ होता है परन्तु दिखाई देना अशुभ होता हे । इससे विपरीत वानर और रीछका दर्शन होना शुभ होता है किन्तु बोलना अशुभ है ॥ २६ ॥

धनुरैन्द्रं च लालाटमशुभं शुभमन्यतः ।
अग्निपूर्णानि पात्राणि भिन्नानि विशिखानि च॥

इन्द्र धनुषका चलते समय सम्मुख होना अशुभ है किन्तु बायें दहिने या पीठकी ओर होना शुभ होताहै। अग्निसे पूर्णपात्रका अथवा शून्यपात्रका अथवा फूटे हुए पात्रका सम्मुख मिलना अशुभ होताहै ॥ २७ ॥

रोगीके घरमें प्रवेश करतेहुए शुभाशुभ शकुन ।

दध्यक्षतादि निर्गच्छन् वक्ष्यमाणं च मङ्गलम् ।
वैद्यो मरिष्यतां वेश्म प्रविशन्नेव पश्यति ॥२८॥
दूताद्यसाधु दृष्ट्वैवं त्यजेदार्तमतोऽन्यथा ।
करुणाशुद्धसंतानो यत्नतः समुपाचरेत्॥ २९ ॥

यदि आगे लिखेहुए दधि, अक्षत आदि मंगल वस्तु वैद्यके प्रवेशके समय रोगीके घरसे बाहर जाते

हों तो अशुभ होते है ऐसे अशुभ और असाधु दूतादि देखकर रोगीकी चिकित्सा न करे किन्तु इससे विपरीत शुभ दूतादिका देखकर और रोगीके घरमें मंगल वस्तु आदि आती देखकर प्रेमपूर्वक रोगीकी यत्नसे चिकित्सा करे ॥ २८ ॥ २९ ॥

मंगलशकुन ।

दध्यक्षतेक्षुनिष्पावप्रियङ्गुमधुसर्पिषाम् ।
यावकाञ्जनभृंगारघंटादीपसरोरुहाम् ॥ ३० ॥
दूर्वार्द्रमत्स्यमांसानां लाजानां फलभक्षयोः ॥
रत्नेभपूर्णकुंभानां कन्यायाः स्यन्दनस्य च ३१॥
नरस्य वर्धमानस्य देवतानां नृपस्य च ।
शुक्लानां सुमनोवालचामरांबरवाजिनाम् ॥३२॥
शंखसाधुद्विजोष्णीषतोरणस्वस्तिकस्य च ।
भूमेः समुद्धृतायाश्च वह्नेः प्रज्वलितस्य च ३३॥
मनोज्ञस्यान्नपानस्य पूर्णस्य शकटस्य च ।
नृभिर्धेन्वाःसवत्साया वडवायाःस्त्रिया अपि ३४
जीवंजीवकसारंगसारसप्रियवादिनाम् ।
रुचकादर्शसिद्धार्थरोचनानां च दर्शनम् ॥ ३५॥
गन्धः सुसुरभिर्वर्णः सुशुक्लो मधुरो रसः ।
गोपतेरनुकूलस्य स्वरस्तद्वद्गवामपि ॥ ३६ ॥
मृगपक्षिनराणां च शोभिनां शोभना गिरः ।
छत्रध्वजपताकानामुत्क्षेपणमभिष्टुतिः ॥ ३७॥
भेरीमृदङ्गशंखानां शब्दाः पुण्याहनिःस्वनाः ।
वेदाध्ययनशब्दाश्च सुखो वायुः प्रदक्षिणः॥३८
पथि वेश्मप्रवेशे च विद्यादारोग्यलक्षणम् ।
इत्युक्तं दूतशकुनं स्वप्नानूर्ध्वं प्रचक्षते ॥ ३९॥

दधि, अक्षत, इक्षुदंड, मटर, प्रियंगु, मधु, घृत, अखंडितधान्य, यव, अंजन; अलक्तक, भृंगार (पीले आद्र), घण्टा, दीपक, कमल, दूर्वा, ताजी गीली मछली, ताजा मांस, ताजा फल, भक्ष्य पदार्थ, रत्न, हस्ती, जलसे भरा कलश, कन्या, रथ, वृद्धिको प्राप्त होताहुआ मनुष्य (शुभगुणयुक्त) देवता, राजा, श्वेतपुष्प, बालक, चामर, सुन्दर वस्त्र, श्वेत घोड़ा, शंख, सत्पुरुष, ब्राह्मण, उष्णीक, तोरण, स्वस्तिक, खोदीहुई पृथ्वी, प्रज्वलित अग्नि, मनोज्ञ अन्नपान, मनुष्योंसे भरीहुई गाडी, बछड़ेवाली गौ, सवत्सा घोडी, सवत्सा स्त्री, जीवंजीवक पक्षी, सारंग और सारस आदि पक्षियोंका मधुर बोलना, रुचक (वलय) नामक आभूषण, सीसा, सफेद सरसों, रुचिकारक सुन्दर दर्शन, सुन्दर सुगन्ध, श्वेत और मधुररस, गवेन्द्र और गौवोंका अनुकूल तथा मधुर शब्द, सुन्दर मृग और पक्षियोंका सुन्दर शब्द, छत्र, ध्वजा और पताकाओंका ऊपर चढाये जाना, जय जय स्तुतिका शब्द, भेरी, मृदंग और शंखोंका शब्द, पुण्याहवाचनका शब्द, वेदाध्ययनका शब्द, शुभकारी वायुका चलना ये सब शकुन रोगीके घरमें प्रवेश करते समय मार्गमें दक्षिण या सम्मुख शुभ होते हैं और आरोग्यकारी होते है । इस प्रकार दूतादि शकुन कह दिये हैं ।

इससे आगे स्वप्नसम्बन्धी शुभाशुभका कथन करते हैं ॥ ३०-३९ ॥

स्वप्न विचार ।

स्वप्ने मद्यं सह प्रेतैर्यः पिबन् कृष्यते शुना ।
स मर्त्यो मृत्युना शीघ्रं ज्वररूपेण नीयते४०॥

स्वप्नमें प्रेतोंके साथ बैठकर जो मनुष्य मद्य पीता हुआ कुत्तोंद्वारा खींचा जाय वह शीघ्र ही ज्वररूप मृत्युसे ले जाया जाता है ॥ ४० ॥

रक्तमाल्यवपुर्वस्त्रो यो हसन् ह्रियते स्त्रिया ।
सोऽस्रपित्तेन—
—महिषश्ववराहोष्ट्रगर्दभैः ॥४१॥
यः प्रयाति दिशं याम्यां मरणं तस्य यक्ष्मणा।
लता कंटकिनी वंशस्तालो वा हृदि जायते४२॥
यस्य तस्याशु गुल्मेन—
—यस्य वह्निमनार्चिषम् ।
जुह्वतो घृतसिक्तस्य नग्नस्योरसि जायते॥४३॥
पद्मं स नश्येत्कुष्ठेन—
—चण्डालैः सह यः पिबेत् ।
स्नेहं बहुविधं स्वप्ने स प्रमेहेण नश्यति ॥ ४४॥

जो रोगी मनुष्य स्वप्नमें लाल वस्त्र और माला

धारण कीहुई स्त्रीकेद्वारा हंसता हंसता हरण कियाजावे वह रक्तपित्तसे मृत्युको प्राप्त होता है।

जो मनुष्य स्वप्नमें महिष, अश्व, वराह, उष्ट्र और गधा इनमेंसे किसीपर चढ़कर दक्षिण दिशाको जाता हो वह राजयक्ष्मा रोगसे मृत्युको प्राप्त होता है।

जिस मनुष्यको स्वप्नमें अपने हृदयमें कांटेवाली लता, बांस अथवा तालवृक्ष उत्पन्न हुआ दिखाई देवे वह गुल्मरोगसे शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है।

जिस मनुष्यको स्वप्नमें आर्चिरहित अग्निमें हवन करना और सम्पूर्ण शरीर घृतसे सिक्त दिखाई देवे तथा उसको अपने नग्नशरीरकी छातीमें कमळ उत्पन्नहुआ दिखाई देवे वह कुष्ठरोगसे मृत्युको प्राप्त होजाता है।

जो मनुष्य स्वप्नमें चांडालोंके साथ बैठकर घृत तैलादि अनेक प्रकारके स्नेहपान करे वह प्रमेहरोगसे मृत्युको प्राप्त होता है॥ ४१–४४॥

उन्मादेन जले मज्जेद्यो नृत्यन् राक्षसैः सह।
अपस्मारेण यो मर्त्यो नृत्यन् प्रेतेन नीयते॥४५

जो मनुष्य स्वप्नमें राक्षसोंके साथ नाच करताहुआ जलमें डूबजाय वह मनुष्य उन्मादरोगसे मृत्युको प्राप्त होता है।

जो मनुष्य स्वप्नमें नाचताहुआ प्रेतोंद्वारा ले जाया जाय वह अपस्मार रोगसे मृत्युको प्राप्त होता है॥ ४५

यानं खरोष्ट्रमार्जारकपिशार्दूलसूकरैः।
यस्य प्रेतैःशृगालैर्वा स मृत्योर्वर्तते मुखे॥४६॥

जो मनुष्य स्वप्नमें खर, ऊँट, बिलाव, बन्दर, शार्दूल, सूकर अथवा शृगालकी सवारीपर प्रेतोंके साथ जाय उसकी मृत्यु मुखमें विद्यमान जानना ४६

अपूपशष्कुलीर्जग्ध्वा विबुद्धस्तद्विधं वमन्।
न जीवति–

–अक्षिरोगाय सूर्येन्दुग्रहणेक्षणम्।
सूर्याचन्द्रमसोःपातदर्शनं दृग्विनाशनम्॥४७॥

जो मनुष्य स्वप्नमें बड़ा पूड़ा और पूड़ी आदि पकान्न खावे और जागजानेपर उसी प्रकारका वमन करे वह जीवित नहीं रह सकता।

जो मनुष्य स्वप्नमें सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणको देखे उसको नेत्र रोग उत्पन्न हो जाता है।

जो मनुष्य सूर्य और चन्द्रमाको स्वप्नमें आकाशसे गिरताहुआ देखे उसकी दृष्टिका नाश हो जाता है॥ ४७

मूर्ध्नि वंशलतादीनां सम्भवो वयसां तथा॥४८॥
निलयो मुण्डता काकगृध्राद्यैः परिवारणम्।
तथा प्रेतपिशाचस्त्रीद्रविडान्ध्रगवाशनैः॥४९॥
सङ्गो वेत्रलतावंशतृणकण्टकसङ्कटे।
श्वभ्रश्मशानशयनं पतनं पांसुभस्मनोः॥५०॥
मज्जनं जलपंकादौ शीघ्रेण स्रोतसा हृतिः।
नृत्यवादित्रगीतानि रक्तस्रग्वस्त्रधारणम्॥५१॥

जिस मनुष्यको अपने शिरमें वंश लतादिकी उत्पत्ति दिखाई देवे अथवा शिरके ऊपर पक्षियोंका घोंसला दिखाई देवे या शिरका मुंडन अथवा काक, गृध्र आदि पक्षियोंसे परिवारित होना अथवा प्रेत, पिशाच, स्त्री, द्रविड, आन्ध्र और गोभक्षक आदिकोंसे अपना आप परिवृत दिखाई देवे अथवा वेत्र, लता, बाँस, तृण, कंटक इनके संकटमें अपने आपको फंसा हुआ देखे अथवा श्वभ्र और श्मशान भूमिमें अपने आपको सोताहुआ देखे अथवा अपने शरीरको पांसु, या भस्ममें गिरतेहुए देखे अथवा कीचड़ या जलमें स्वप्नमें डूबजावे अथवा शीघ्रगामी स्रोतमें बहजाय अथवा नाचना, गाना, बजाना, रक्तवस्त्रोंको धारण करना स्वप्नमें देखे तो स्वस्थमनुष्य रोगी होजाता है. यदि रोगी ऐसे स्वप्नोंको देखे तो मृत्यु अथवा महाकष्टको प्राप्त होता है॥ ४८–५१॥

वयोऽङ्गवृद्धिरभ्यङ्गो विवाहः श्मश्रुकर्म च।
पक्वान्नस्नेहमद्याशः प्रच्छर्दनविरेचने॥५२॥
हिरण्यलोहयोर्लाभः कलिर्बन्धपराजयौ।
उपानद्युगनाशश्च प्रपातः पादचर्मणोः॥५३॥
हर्षो भृशं प्रकुपितैः पितृभिश्चावभर्त्सनम्।
प्रदीपग्रहनक्षत्रदन्तदैवतचक्षुषाम्॥ ५४॥
पतनं वा विनाशो वा भेदनं पर्वतस्य च।
कानने रक्तकुसुमे पापकर्मनिवेशने॥ ५५॥

जो मनुष्य स्वप्नमें अपनी आयु या अंगोंको बढते हुए देखे अथवा तैलाभ्यंग करे अथवा विवाह देखे या क्षौर कर्म करावे अथवा पक्वान्न घृत तैलादि और मद्यका सेवन करे या छर्दि या विरेचन करे अथवा सुवर्ण या लोहको प्राप्त करे अथवा किसी लडाईमें बंधन या पराजयको प्राप्त हो, अथवा स्वप्नमें दोनों उपानह नाश होकर पावोंके चरणका पतन हो, अथवा स्वप्नमें अत्यन्त खुशी हो या प्रकुपित हुए पितर ताडन करें अथवा दीप, ग्रह, नक्षत्र, दांत, देवतोंकी ध्वजा आदि और नेत्र इनका स्वप्नमे पतन होना या विनाश होना, स्वप्नमें पर्वतका फूटना, या लाल फूलोंका जंगल दिखाई देना अथवा पापकर्ममें प्रवेश होना ये सब प्रकारके स्वप्न अनिष्टकारी होते हैं ॥ ५२-५५ ॥

चितान्धकारसम्बाधे जनन्यां च प्रवेशनम् ।
पातः प्रासादशैलादेर्मत्स्येन ग्रसनं तथा॥५६॥
काषायिणामसौम्यानां नग्नानां दण्डधारिणाम्
रक्ताक्षाणां च कृष्णानां दर्शनं जातु नेष्यते५७

स्वप्नमें चिता या अन्धकारसे पीडित होना, या पृथ्वीमें प्रवेश होना अथवा किसी महल या पर्वत आदिसे नीचे गिरना अथवा मत्स्यद्वारा निगलाजाना अथवा स्वप्नमें कषाय वस्त्रोंवाले असौम्य, नग्न, दंडधारी, रक्तनेत्रोंवाले और काले वर्णके यमदूतादिकोंका दर्शन होना, ये सब प्रकारके स्वप्न अनिष्टकारी होते है॥५६।५७॥

कृष्णा पापाननाचारा दीर्घकेशनखस्तनी ।
विरागमाल्यवसना स्वप्नकालनिशा मता॥५८॥

स्वप्नमें यदि काले वर्णकी स्त्री, पापाचरणवाली, विकट मुखवाली, बडे लम्बे केश, नख और स्तनोंवाली, लालवर्णके माला और वस्त्र धारण कियेहुए जिस मनुष्यको दिखाई देवें वह उसकेलिये कालनिशा अर्थात् मृत्यु समझना चाहिये ॥ ५८ ॥

दुःस्वप्नों द्वारा रिष्टके हेतु ।

मनोवहानां पूर्णत्वात्स्रोतसां प्रबलैर्मलैः ।
दृश्यन्ते दारुणाः स्वप्ना रोगी यैर्याति पञ्चताम्
अरोगः संशयं प्राप्य कश्चिदेव विमुच्यते॥५९॥

जब मनके वहनकरनेवाले स्रोत प्रबल दोषों द्वारा पूर्ण हो जाते हैं और अनिष्टकारी अवस्थामें पहुंच जाते है तब मनुष्योंको इस प्रकारके दारुण स्वप्न आने लगते है, जिनसे रोगी मृत्युको प्राप्त होता है. यदि ऐसे स्वप्न स्वस्थ मनुष्यको आजांय तो उनमेंसे कष्टको प्राप्त होकर कोई ही बचता है। इस कारण ऐसे अनिष्टकारी स्वप्न स्वस्थके लिये रोगादि संकटमें डालनेवाले और रोगीके लिये मृत्युका कारण होते है ॥ ५९ ॥

स्वप्नके सात भेद ।

दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कल्पितस्तथा ।
भाविको दोषजश्चेति स्वप्नः सप्तविधो मतः६०॥

स्वप्न-१ दृष्ट २ श्रुत, ३ अनुभूत. ४ प्रार्थित,५ कल्पित,६ भाविक ७ दोषज इस भांति सात प्रकारके स्वप्न होते है। देखेहुए विषयका दिखाई देना दृष्ट, सुनेहुएका दिखाई देना श्रुत, अनुभव कियेहुए विषयका दिखाई देना अनुभूत, जिस वस्तुकी अधिक इच्छा हो उसका दिखाई देना प्रार्थित, अपनी कल्पनासे कल्पित किये हुए विषयका दिखाई देना कल्पित, भविष्यत् विषयको कहानेवाला स्वप्न भाविक और दोषोंके स्वभाववाले स्वप्नको दोषज कहते है॥६०॥

तेष्वाद्या निष्फलाः पञ्च यथास्वप्रकृतिर्दिवा ।
विस्मृतो दीर्घह्रस्वोऽति ॥ ६१ ॥--

इन सात प्रकारके स्वप्नोंमें पहले पांच स्वप्न निष्फल होते हैं तथा दिनका स्वप्न अथवा प्रकृतिके अनुसार।स्वप्न. जैसे कफप्रकृतिवालेको जलादि दिखाई देना, वात प्रकृतिवालेको आकाशमें उडना आदि, पित्त प्रकृतिवालेको अग्नि आदि दिखाई देना,ये प्राकृतिक स्वप्न बहुत लम्बा स्वप्न बहुत छोटा स्वप्न और जो स्वप्न शीघ्रही विस्मृत हो जाय ऐसे सब स्वप्न निष्फल जानने चाहिये ॥६१॥

-पूर्वरात्रे चिरात्फलम् ।
दृष्टः करोति तुच्छं च ॥ ६२ ॥-

रात्रिके प्रथम भागमें देखा हुआ स्वप्न देरमें फल करनेवाला होता है अथवा तुच्छ फल करता है॥६२

-गोसर्गे तदहर्महत् ।
निद्रया चानुपहतः प्रतीपैर्वचनैस्तथा ॥ ६३॥

प्रातःकालका स्वप्न, जिस स्वप्नके आनेसे निद्रा भंग हो जाय, अथवा स्वप्नमें सुनेहुए शुभ वचनोंद्वारा

निद्राभंग हो जाय, ऐसा प्रातःकालका शुभ स्वप्न, विशेष और शीघ्र फलके करनेवाला होता है ॥६३॥

याति पापोऽल्पफलतां दानहोमजपादिभिः६४

ऐसे ही प्रातःकालका आयाहुआ अशुभ स्वप्न अशुभ फलको करता है परन्तु दान, जप, होम आदिके करनेसे पापस्वप्नका फल अल्प हो जाता है ॥ ६४ ॥

अकल्याणमपि स्वप्नं दृष्ट्वा तत्रैव यः पुनः ।
पश्येत्सौम्यं शुभं तस्य शुभमेवं फलं भवेत्६५॥

यदि हानिकारी दुष्ट स्वप्न देखनेके अनन्तर दूसरा स्वप्न उसी रात्रिमें शुभ और सौम्य दिखाई देवे तो दुष्ट स्वप्नका फल नष्ट होकर सौम्य स्वप्नका शुभही फल होताहै॥६५

सौम्य स्वप्न ।

देवान् द्विजान् गोवृषभान् जीवतःसुहृदो नृपान्
साधून् यशस्विनोवह्निमिद्धंस्वच्छान्जलाशयान्
कन्यां कुमारकान् गौरान् शुक्लवस्त्रान्सुतेजसः ।
नराशनं दीप्ततनुं समन्ताद्रुधिरोक्षितः ॥ ६७॥
यः पश्येल्लभते यो वा छत्रादर्शविषामिषम् ।
शुक्लाःसुमनसो वस्त्रममेध्यालेपनं फलम्॥६८॥

जो मनुष्य स्वप्नमें देवता,ब्राह्मण,गौवें,वृषभ, जीवित सुहृद्, राजा, साधु और यशस्वी पुरुषोंको देखता है अथवा प्रज्वलित अग्नि,स्वच्छ जलाशय गौर वर्णके कन्या और बालक, श्वेत वर्णवाले तेजस्वी पुरुषोंको देखता है अथवा प्रकाशित शरीरवाले, नराशी चारों ओरसे रुधिर छिडकेहुए पुरुषोंको स्वप्नमें देखे अथवा छत्र, दर्पण, विष, मांस, श्वेतपुष्प, श्वेत वस्त्र, स्वच्छलेपन और फलोंको स्वप्नमें ग्रहण करता है । यदि इन स्वप्नोंको देखनेवाला मनुष्य रोगी होतो निरोग हो जाता है और निरोग मनुष्यको धनादिकीप्राप्ति होती है ॥६६–६८

शैलप्रासादसफलवृक्षसिंहनरद्विपान् ।
आरोहेद्गोऽश्वयानं च तरेन्नदहृदोदधीन्॥६९॥
पूर्वोत्तरेण गमनमगम्यागमनं मृतम् ।
सम्बाधान्निःसृतिर्देवैःपितृभिश्चाभिनन्दनम्७०
रोदनं पतितोत्थानं द्विषतां चावमर्दनम् ।
यस्य स्यादायुरारोग्यं वित्तं बहु च सोऽश्नुते७१

जो मनुष्य स्वप्नमें पर्वत या ऊंचे महल या फलवाले वृक्षके ऊपर चढता है अथवा सिंह, नर, हाथी, श्वेतबैल या श्वेत घोडेपर चढता है अथवा नदी, नद, तलाव, समुद्र आदिको तरकर पारकरजाता है अथवा पूर्व और उत्तरकी दिशाको गमन करता है अथवा अगम्यास्त्रीसे गमन करता है अथवा स्वप्नमें मृत्युको देखता है अथवा किसी संकट आदिसे बाहर होता है अथवा देवता और पितरों आदिका स्वप्नमें आशीर्वाद लेता है अथवा स्वप्नमें रोता है या गिरकर उठता है अपने द्वेषियोंको मर्दन करता है ऐसे शुभ स्वप्नोंको देखनेवाला मनुष्य दीर्घायु धन और सुखको भोग करता है ॥ ६९--७१ ॥

आरोग्यके लक्षण ।

मङ्गलाचारसम्पन्नः परिवारस्तथातुरः ।
श्रद्दधानोऽनुकूलश्च प्रभूतद्रव्यसंग्रहः ॥ ७२ ॥
सत्त्वलक्षणसंयोगो भक्तिर्वैद्यद्विजातिषु ।
चिकित्सायामनिर्वेदस्तदारोग्यस्यलक्षणम् ७३।

जो मनुष्य मंगलाचार सम्पन्न हो शुभपरिवारसे संयुक्त हो वैद्यमें तथा धर्मादिमें श्रद्धा रखनेवाला हो सब प्रकारसे अनुकूल हो बहुत द्रव्य युक्त हो सात्त्विक लक्षणणोंसे युक्तहो वैद्य ब्राह्मणादिकोंमें भक्ति रखनेवाला हो चिकित्सा करानेमें कष्ट नहीं मानता हो और उत्साही हो ये सब लक्षण आरोग्यके जानने चाहिये॥७२॥७३

शारीर स्थानकी निरुक्ति ।

इत्यत्र जन्ममरणं यतः सम्यगुदाहृतम् ।
शरीरस्य ततः स्थानं शारीरमिदमुच्यते॥७४॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तसूनोर्वाग्भटस्य कृताष्टाङ्गहृदयसंहितायां शारीरस्थानं समाप्तमध्यायश्च षष्ठः ॥ ६ ॥ अ० ६ ॥ श्लो० ५५८ ॥

इस स्थानमें मनुष्य शरीरके जन्म मरण सम्बन्धी सब विषय यथार्थ रूपसे अच्छी भांति कथन किये गये हैं इस कारण इस स्थानको शारीरस्थान कहतेहैं॥७४

इति श्रीवाग्भटाचार्य प्रणीत–अष्टांगहृदयसंहितायां शारीरस्थाने वैद्यरत्न रामप्रसादात्मज पं,शिवशर्म-वैद्यशास्त्रिकृत भाषाटीकायां षष्ठोध्यायः॥६॥

॥ समाप्तश्चेदं शारीरस्थानम् ॥

अष्टाङ्गहृदयम् ।

शिवदीपिका–भाषाटीकासहितम् ।

निदानस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

अथाऽतः सर्वरोगनिदानं व्याख्यास्यामः । इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अब हम सम्पूर्ण रोगोंके निदानको कथन करते हैं इस प्रकार आत्रेयादि महर्षि कथन करने लगे ।

रोगके पर्यायवाचक शब्द ।

रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुःखमामयः। यक्ष्मातङ्कगदाबाधशब्दाः पर्यायवाचिनः॥१ ॥

रोग, पाप्मा, ज्वर, व्याधि, विकार, दुःख, आमय, यक्ष्मा, आतङ्क, गद और आबाध ये सब शब्द रोग अथवा ज्वरके पर्यायवाचक कहे है । यद्यपि कुछ लोग रोग पाप्मा ज्वर आदि शब्दोंसे पृथक् पृथक् कार्य लेनेका यत्न करते हैं परन्तु पीड़ा करनेवाले होनेसे सामान्य प्रवृत्तिके लिये ऋषियोंने इन सब शब्दोंको एकार्थवाचक ही माना है ॥ १ ॥

निदान पंचक ।

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा । संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम्२

रोगोंके विज्ञानका उपाय ऋषियोंने पांच प्रकारके कहे है । जैसे, निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति इन पांचों प्रकारके विज्ञानोंमेंसे किसी एक एकसे पृथक् पृथक्, या कुछ मिलेहुओंसे अथवा संपूर्ण रोगोंका पांचोंसे यथार्थ ज्ञान अर्थात् इन पांचोंके द्वारा सम्पूर्ण रोगोंका यथार्थ ज्ञान होना ऋषियोंने कहा है । इस श्लोकमें–"उपशयस्तथा" यह जो पदलिखा है इसका यह आशय है कि, जैसे निदान पूर्वरूप और रूपसे रोग जानाजाता है । उसी प्रकार उपशयसे और संप्राप्तिसे भी रोग जानाजाता है । "संप्राप्ति- श्चेति" इस पदमें च और इतिके रखनेसे यह प्रयोजन है कि, रोग जाननेके इन पांचोंसे विशेष कोई उपाय नहीं है । अब कहते हैं कि, रोगीका निदान संनिकृष्ट (समीप) और विप्रकृष्ट (दूर) इन भेदोंसे दो प्रकारका है । संनिकृष्ट उसे कहते है. जैसे–कुपित वातादिक ज्वरादिक रोगोंको प्रकट करते है और विप्रकृष्ट उसे कहते हैं. जैसे–हेमन्तऋतुमें संचितहुआ कफ वसन्त ऋतुमें कुपित होता है । पूर्वरूप उसे कहते हैं जैसे-ज्वरमें आलस्य आदि धर्म । रूप उसे कहते हैं जैसे–१८ वें श्लोकमें लिखा है "स्वेदावरोध" इति अर्थात् पसीनेका अवरोध होना इत्यादि, उपशय उसे कहते हैं–जो रोगके हेतु और रोगको शमन करनेवाला आहार विहार हो । सम्प्राप्ति उसे कहते है-जिससे रोगकी उत्पत्ति और संचारक क्रमका यथार्थ ज्ञान हो. यदि कहो कि, केवल एक निदानसे ही रोगका ज्ञान होनेसे बाकी पूर्वरूपादि चार वृथा हो जाते है सो यह बात नहीं । क्योंकि इन पांचोंके प्रयोजन पृथक् पृथक् है । जैसे निदान अर्थात् हेतुका ज्ञान होनेसे सबसे प्रथम रोगकी चिकित्सामें रोगोत्पादक हेतुका त्याग करना पडता है । जैसे पाण्डुरोगका हेतु जहां, मिट्टी खाना है वहां निदान ज्ञानसे मिट्टीका खाना रोकदिया जाता है । इस कारण निदानका जानना आवश्यक है । ऐसे ही

पूर्वरूपके ज्ञान होनेपरही वातज्वरके पूर्वरूपमें घृत-पान आदिका विधान सुश्रुतादिने कहा है। यदि पूर्व-रूपका ज्ञान न हो तो कैसे घृतपानादि व्यवस्था हो सकती है ? इस कारण पूर्वरूपका जानना भी आव-श्यक है।

रूपके ज्ञानसे ही साध्य असाध्य और कष्टसाध्यका ज्ञान हो सकता है। ऐसे ही गूढलिंग व्याधि जिसका निदान पूर्वरूपादि ज्ञान यथार्थ न हो सके वहांपर उपशय और अनुपशयसे ही व्याधिका ज्ञान हो सकता है। ऐसे ही सम्प्राप्तिके ज्ञानसे ही रोगका बल काल और अंशादि कल्पना करके चिकित्सा हो सकती है। इस कारण इन पांचोंका पृथक् पृथक् प्रयोजन होनेसे पांचोंका ही ज्ञान होना आवश्यक है।

यहांपर निदानशब्दसे केवल हेतु और व्याधि निश्च-यकरनेवाला निदानशब्द होनेके कारण इन पांचोंको भी निदान कहते है। तात्पर्य यह हुआ कि, केवल हेतुको भी निदान कहते है और इन पांचोंको भी निदान कहते हैं॥ २ ॥

निदानके पर्याय।

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः।
निदानमाहुः पर्यायैः ॥ ३ ॥-

निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण यह ६ शब्द एक ही अर्थके बतलानेवाले है। शास्त्र-व्यवहारके लिये इन सब शब्दोंसे निदानका ही अर्थ लेना चाहिये ॥ ३ ॥

-प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥
उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः।
लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम्॥४

जिस लक्षणसे दोषोंकी विशेषताके लक्षणरहित उत्पन्न होनेवाला रोग जानाजाय उसको पूर्वरूप कहते है। इस कारण व्याधियोंकी अल्पावस्थामें जिस जिस ज्वर आदि व्याधिका जो जो छिपाहुआ चिह्न हो वह वह उस उस व्याधिका पूर्वरूप जानना चाहिये। पूर्व-रूप सामान्य और विशेष भेदसे दो प्रकारका होता है जो लक्षण सामान्यरूपसे सम्पूर्ण ज्वर आदि व्याधिका हो उसको सामान्य पूर्वरूप कहते है। जो पूर्वरूप पृथक् पृथक् व्याधिका हो उसको विशेष पूर्वरूप कहते है। जैसे-श्रम-अरति-विवर्णता आदि सम्पूर्ण ज्वरोंके पूर्वरूपमें होनेसे सामान्य पूर्वरूप कहा जाता है और वातज्वरमें केवल जृम्भा, पित्तज्वरमें नेत्रदाह और कफमें अरुचि विशेष पूर्वरूप कहेजाते हैं ॥ ४ ॥

रूपके लक्षण।

तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते।
संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः॥५॥

पूर्वरूपमें जो चिह्न अप्रकटसे होते है उनका यथार्थ रूपसे प्रकट होजाना रूप कहा जाता है। संस्थान, व्यंजन, लिंग, लक्षण चिह्न और आकृति ये सब शब्द रूपके पर्याय वाचक हैं॥ ५ ॥

उपशयके लक्षण।

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम्।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम्।
विद्यादुपशयं-
-व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः॥६॥

हेतुसे विपरीत जो औषध, अन्न, विहार व्याधिसे विपरीत जो औषध, अन्न, विहार, हेतु और व्याधि दोनोंसे विपरीत जो औषध, अन्न, विहार, तथा हेतुसे विपरीत अर्थके करनेवाले जो औषध, अन्न, विहार, व्याधिसे विपरीत अर्थके करनेवाले जो औषध, अन्न, विहार और हेतु और व्याधि दोनोंसे विपरीत अर्थके करनेवाले जो औषध, अन्न, विहार उनके सुखकारी उपयोगको उपशय कहते है उसीको व्याधिके लिये सात्म्यभी कहते है। इसके विशेष ज्ञानकेलिये नीचे चक्र दे दिया है॥ ६ ॥

उपशयके उदाहरणार्थ चक्र ।

नाम	औषध	अन्न	विहार
हेतु विपरीत	शीतज्वरमें उष्ण औषध मोण्ठ आदि	श्रमसे वर्द्धित वायुमें दूध घी आदि ।	दिवास्वापसे कफकी वृद्धि होनेपर रात्रि जागरण ।
व्याधि विपरीत	अतिसारमें कर्पूर अहिफेनादि	अतिसारमें चावल मसूरादि	कफकी वृद्धि मेदरोग, आमवातमें व्यायामादि ।
हेतु व्याधि विपरीत	वातज शोथमें दशमूलका क्वाथ वात तथा शोथ दोनोंको नष्ट करता है ।	कफकी संग्रहणीमें तक्र कफ और संग्रहणी दोनोंको नष्ट करता है ।	दिवास्वापसे बढी हुई कफसे उत्पन्न हुई तंद्रामें रात्रि जागरण कफ और तंद्रा दोनोंको नष्ट करता है ।
हेतु विपर्य-स्तार्थकारी	पित्तप्रधान व्रणशोथमें विना विम्लापनहुवेस्थिररक्तकोपाचनकरनेकेलिये गरम पुल्टस बांधना	व्रणशोथके पाचनके समय विदाही अन्न	वातज उन्मादमें त्रास देना ।
व्याधि विपर्य्य-स्तार्थकारी	छर्दिरोगमें वमनकारक मैनफलादि	अतिसारमें रेचक दुग्धादिसे मलको निकाल देना।	छर्दिमें वमनके लिये प्रवाहण करना ।
हेतुव्याधिविप-र्य्यास्तार्थकारी	विष रोगमें विष अथवा अग्नि दग्धपर गरम अगर आदिका लेप ।	मदात्ययमें मदकारक मद्य ।	व्यायाम जनित मूढवातमें जल प्रतरण रूप व्यायाम.

अनुपशयके लक्षण ।

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्याभिसंज्ञितः॥७

उपशयसे विपरीत लक्षणोंवाले औषधान्न विहारको अनुपशय कहते हैं। इसीका दूसरा नाम व्याध्यसात्म्य भी है । पंचनिदानमें हेतुके अन्तर्गत ही होनेके कारण अनुपशयको छठा निदान नहीं माना है इस कारण निदान अर्थात् रोगविज्ञानमें "निदानंपंचधास्मृतम्" यह प्रतिज्ञा ठीकही है ॥ ७ ॥

सम्प्राप्तिका लक्षण ।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
निर्वृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥८

जैसे दुष्ट हुए वातादि दोष ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक् आदि गमन करतेहुये जिस रसादि धातु या स्थान या सम्पूर्ण शरीरमें जिस प्रकार विसर्पण करतेहुए रोगको उत्पन्न करते है । इस सम्पूर्ण ज्ञानको सम्प्राप्ति कहते है । जाति और आगति यह सम्प्राप्तिके पर्याय-वाचक है ॥ ८ ॥

सम्प्राप्तिके ५ भेद ।

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।
सा भिद्यते यथाऽत्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति॥९

वह सम्प्राप्ति संख्यासम्प्राप्ति, विकल्पसम्प्राप्ति, प्राधान्य सम्प्राप्ति, बलसम्प्राप्ति और कालसम्प्राप्ति इन पांच विशेष भेदोंसे पांच प्रकारकी होजाती है । जैसे यही कहेंगे कि, ज्वर आठ प्रकारके होते हैं जैसे–वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, वातपित्तज्वर, वातकफज्वर, पित्तकफज्वर, सन्निपातज्वर और आ-गन्तुकज्वर इस प्रकार ज्वरके आठ भेद हैं. इस प्रकार एक रोगकी पृथक् पृथक् संख्यापूर्वक संप्राप्तिको संख्या संप्राप्ति कहते हैं ॥ ९ ॥

विकल्प सम्प्राप्तिके लक्षण ।

दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना१०

मिलेहुए वातादिदोषोंकी अंशांशकल्पना करनेको विकल्प संप्राप्ति कहते हैं इस अंशांश कल्पना करनेसे ही एक रोगके अनेक भेद हो जाते है। जैसे—रूखी, शीतल, हलकी और फैलानेवाली इत्यादि गुण युक्त जो पवन उसका रूक्ष आदि गुणयुक्त कसैला रस वातको सर्वांशकरके बढानेवाला है। ऐसेही कटु रस सर्वभावसे पित्तको बढानेवाला है अर्थात् कटु उष्ण तीक्ष्णत्व करके हींग पित्तको बढानेवाली है। ऐसेही मधुररस जैसे भैंसका दूध यह सर्व भावसे कफ बढानेवाला है इत्यादि। ऐसेही एकत्रिदोषज ज्वरमें अंशोंकी न्यूनाधिक कल्पनासे कहीं वाताधिक्य-कहीं पित्ताधिक्य आदि अंश होनेसे एक सन्निपातकेही अनेक भेद होजाते है ॥ १०॥

प्राधान्यरूप सप्राप्तिके लक्षण।

स्वातंत्र्यपारतंत्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्य--मादिशेत्।

व्याधिके स्वतंत्रता और परतंत्रतासे प्रधानता और अप्रधानता कही है। जैसे-स्वतंत्र ज्वरको प्रधानताहै और ज्वराधीन श्वास आदि रोगोंको अप्रधानता है। अर्थात् व्याधिकी स्वतंत्रासे प्रधानता और परतंत्रतासे अप्रधानता जाननी चाहिये। जैसे अभिघातके व्रणमें अभिघात व्रण प्रधान होता है और उसमें ज्वर हो जाना अप्रधान होता है। प्रधानकी चिकित्सासे अप्रधान स्वयं भी शमन होजाता है ॥ ११ ॥

बलरूप सम्प्राप्तिके लक्षण।

हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणम् ॥ १२॥

हेतु आदि शब्दोंसे हेतु पूर्वरूप और रूप इनके सर्व अवयव (लक्षण) अधिक बलवान् होनेसे व्याधिको बलवान् जानना और थोड़े या निर्बल लक्षण मिलनेसे निर्बल जानना, जैसे रोगके प्रति जो निदान कहा है वह निदान यदि बलवान् कारण युक्त हो और पूर्वरूप भी सम्पूर्ण बलवान् लक्षणोंसे युक्त हो तथा रूप भी सम्पूर्ण बलवान् लक्षणवाले हों तो वह व्याधि अतिबलवान् और मारक होती है जैसे सर्व सम्पूर्ण लक्षणवान् सन्निपात ज्वर असाध्य होता है। तथा जिस व्याधिके निदान पूर्वरूपादि सब अवयव निर्बल हों वह व्याधि निर्बल होती है ॥ १२ ॥

कालरूप सम्प्राप्तिके लक्षण।

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम्॥१३॥

नक्त (रात्रि) दिन (दिवस) ऋतु (वसन्तादि) भुक्त (आहार) इनके अंश अर्थात् एकदेशको दोष (वात पित्त कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटने बढनेके हेतुका समय जाने. जैसे-रात्रिके तीन भाग करे. प्रथम, मध्य, अन्त, तो रात्रिका प्रथम भाग कफका है, मध्य भाग पित्तका है, अंत्य भाग वातका है। ऐसे ही दिनका भी तीन भाग करे तो पूर्वाह्न कफका, मध्याह्न पित्तका, अपराह्न वातका है। ऐसेही ऋतु. जैसे—वसन्तऋतुमें कफ, शरद ऋतुमें पित्त और वर्षामें वात कुपित होता है। ऐसेही भोजनका, जैसे—भोजन करनेके समय कफका काल और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल जब भले प्रकार परिपक्व होगया तब वातका काल. इसके जाननेसे यह प्रयोजन है कि, जिस दोष (वात पित्त कफ) का जो काल कहा है उसका उसी कालमें प्रकोप या वृद्धि होनेसे उस दोषजनित व्याधि भी उसी कालमें बढती है या उत्पन्न होती है। यह व्याधिकी कालसम्प्राप्ति है ॥ १३ ॥

इति प्रोक्तो निदानार्थः तं व्यासेनोपदेक्ष्यते॥१४

इस प्रकार संक्षेपसे सम्पूर्ण रोगोंके निदानको सूत्र रूपसे कहदियागया है। अब इसीको आगे विस्तारसे कथन करेंगे ॥ १४ ॥

सम्पूर्ण रोगोंका निदान।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम्॥१५

सम्पूर्ण रोगोंका निदान अर्थात् कारण वातादि दोषोंका प्रकोप होना ही है और उन वातादि दोषोंके प्रकोपका कारण अनेक प्रकारके अहित आहार विहारका सेवन करना है ॥ १५ ॥

अहितकी व्याख्या।

अहितं त्रिविधो योगस्त्रयाणां प्रागुदाहृतः१६॥

पहले सूत्र स्थानमें आहार विहारके अहित योगको

तीन प्रकारसे कह आये है। जैसे—काल, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और एक मन इनका अयोग, अतियोग और मिथ्यायोग होना ही अहित कहा जाता है। इस अहित सेवनसेही दोष प्रकोप होकर रोगोंकी उत्पत्ति होती है ॥ १६ ॥

वातप्रकोपके कारण।

तिक्तोषणकषायाल्परूक्षप्रमितभोजनैः ।
धारणोदीरणनिशाजागरात्युच्चभाषणैः ।
क्रियातियोगभीशोकचिन्ताव्यायाममैथुनैः ।
ग्रीष्माहोरात्रिभुक्तांते प्रकुप्यति समीरणः१७॥

तिक्त, कटु और कषाय तथा अल्प रूक्ष और प्रमित (जैसे चान्द्रायणादि) भोजनके करनेसे, मल मूत्रादिके आयेहुए वेगको धारण करनेसे, रात्रिको जागनेसे, बहुत ऊंचा और अधिक बोलनेसे, वमन विरेचनादि क्रियाओंके अतियोगसे, भयसे, शोकसे, चिन्तासे, अधिक व्यायामसे और अधिक मैथुन इत्यादि कारणोंसे तथा ग्रीष्मकालमें दिनके अन्तमें, रात्रिके अन्तमें और भोजनके परिपाकके अन्तमें वायुका प्रकोप होता है१७

पित्त प्रकोपके कारण।

पित्तं कट्वम्लतीक्ष्णोष्णपटुक्रोधविदाहिभिः ।
शरन्मध्याह्नरात्र्यर्धविदाहसमयेषु च ॥ १८ ॥

कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और लवण रस प्रधान आहारके करनेसे, क्रोधसे और विदाही पदार्थोंका सेवनकरनेसे तथा शरदृऋतुमें मध्याह्नमें अर्धरात्रिमें और भोजनके परिपाकके समय पित्तका स्वाभाविक कोप होता है ॥ १८ ॥

कफ प्रकोपके कारण।

स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वभिष्यन्दिशीतलैः ।
आस्यास्वप्नसुखाजीर्णदिवास्वप्नातिबृंहणैः ।
प्रच्छर्दनाद्ययोगेन भुक्तमात्रवसन्तयोः ।
पूर्वाह्णे पूर्वरात्रे च श्लेष्मा ॥ १९ ॥–

मधुर, अम्ल, लवण रसवाले, स्निग्ध, भारी, अभिष्यन्दी और शीतल पदार्थोंके अधिक सेवनसे आरामसे बैठे रहनेसे, बहुत सोनेसे, सुखकी अधिकतासे अजीर्णमें भोजन करनेसे दिनमें सोनेसे अतिपुष्टिकारक पदार्थोंके खानेसे वमन आदि कफ नाशक क्रियाओंके न करनेसे भोजन करते ही वसन्तऋतुमें प्रातःकाल और रात्रिके पूर्व भागमें कफका स्वाभाविक कोप होता है१९

द्विदोष प्रकोपके कारण।

–द्वन्द्वं तु संकरात् ॥ २० ॥

दो दोषोंके प्रकोप करनेवाले हेतुओंके संसर्गसे दो दोषोंका प्रकोप होता है ॥ २० ॥

त्रिदोष कोपके कारण।

मिश्रीभावात्समस्तानां सन्निपातस्तथा पुनः ।
सङ्कीर्णाजीर्णविषमविरुद्धाध्यशनादिभिः ॥
व्यापन्नमद्यपानीयशुष्कशाकाममूलकैः ।
पिण्याकमृद्यवसुरापूतिशुष्ककृशामिषैः ॥
दोषत्रयकरैस्तैस्तैस्तथाऽन्नपरिवर्ततः ।
धातोर्दुष्टात्पुरोवाताद् ग्रहावेशाद्विषाद्गरात् ॥
दुष्टान्नात्पर्वताश्लेषाद्ग्रहैर्जन्मर्क्षपीडनात् ।
मिथ्यायोगाच्च विविधात्पापानां च निषेवणात्
स्त्रीणां प्रसववैषम्यात्तथा मिथ्योपचारतः२१॥

त्रिदोषकारक सम्पूर्ण भावोंके सेवन करनेसे, संकीर्ण पदार्थोंको खानेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, विषम भोजन करनेसे, विरुद्ध आहारके सेवनसे, अध्यशन (खाये हुएपर खाना) आदि कारणोंसे, ऋतुविकृतिसे, दूषित मद्य जलआदि पीनेसे, सूखे शाक, आमकारक पदार्थ और कच्चे मूलआदि खानेसे, तिलकुट, माटी, यवसुरा, दुर्गन्धित सूखे और कृश मांसोंके खानेसे, तीनोंदोषोंके प्रकोप करनेवाले सम्पूर्ण आहार विहारादिसे, ऋतुओंके परिवर्तनसे, धातुओंके दूषित होनेसे, पूर्वकी वायुसे, दुष्ट ग्रहोंके आवेशसे, दूषित विष या कृत्रिमविषके खायेजानेसे, कानकी मैलआदि गर खाये जानेसे, दूषित अन्नके सेवनसे, पर्वत आदि ऊँचे स्थानसे गिरजानेसे, दुष्टग्रहोंद्वारा जन्म नक्षत्रके पीडित होजानेसे, पंचकर्मके मिथ्योपयोगसे अथवा कालार्थकर्मोंके मिथ्यायोगसे तथा पापकर्मोंके सेवनसे त्रिदोषका प्रकोप होता है। स्त्रियोंके शरीरमें इन कारणोंके अति-

रिक्त प्रसवकी विषमतासे और प्रसवकालके मिथ्या उपचारसे त्रिदोषका कोप हो जाता है ॥२१॥

दोषोंद्वारा रोगोत्पत्तिका क्रम।

प्रतिरोगमिति क्रुद्धा रोगाधिष्ठानगामिनीः ॥
रसायनीः प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते ॥ २२ ॥

प्रकुपित हुए दोष प्रतिरोगमें रोगके स्थानमें रसायनी नाडी द्वारा पहुंचकर रोगको उत्पन्न कर देते है। जब किसी मिथ्या आहार विहारादिसे दोषोंकी साम्यावस्था बिगडकर विकृतावस्था होजाती है तब स्थान-भ्रष्ट हुए दोष रसवाही नाडी आदि द्वारा जिस रोगके उत्पन्न होनेके भाव बनगये हों उस रोगके आधार स्थानमें पहुंचकर रोगको उत्पन्न कर देते है ॥२२॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां निदानस्थाने वैद्यरत्न प. रामप्रसादात्मज वैद्य-शास्त्रि प. शिवशर्म्मकृत शिवदीपिका भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः।

अथाऽतो ज्वरनिदानं व्याख्यास्यामः।

अब हम ज्वरनिदानकी व्याख्या करते है।

ज्वरकी प्रधानता।

ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युरोजोऽशनोऽन्तकः।
क्रोधो दक्षाध्वरध्वंसी रुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः ॥१॥
जन्मान्तयोर्मोहमयः सन्तापात्माऽपचारजः।
विविधैर्नामभिः क्रूरो नानायोनिषु वर्तते ॥२॥

ज्वर, रोगपति, पाप्मा, मृत्यु, ओजोशन, अन्तक, दक्षकी यज्ञको ध्वंस करनेवाला, रुद्रके तीसरे नेत्रसे उत्पन्न हुआ क्रोध, जन्म और मरणमें मोहके करनेवाला, संतापात्मा और अपचारज इत्यादि अनेक नामोंसे यह क्रूर ज्वर अनेक योनियोंमें विद्यमान रहता है। यह ज्वर कृतयुगमें महादेवके तीसरे नेत्रसे उत्पन्न हुआ था। त्रेतायुगमें परिग्रह दोषसे, द्वापरमें अपचारसे और कलियुगमें मिथ्या-आहार विहारसे उत्पन्न होता है। यद्यपि यह ज्वर अनेक योनियोंमें अनेक प्रकारसे होता है। जैसे हाथीके शरीरमें पाकल नामसे, घोडेके शरीरमें अभितापका नामसे, गौवोंके शरीरमें गोकर्णक नामसे, पक्षियोंके शरीरमें मकर नामसे, कुत्तेके शरीरमें अलर्क नामसे, मछलियोंके शरीरमें इन्द्रमद नामसे, जडीबूटियोंमें ज्योति नामसे, धान्योंमें चूर्णक नामसे, जलमें नीलिका नामसे, पृथ्वीमें चूष नामसे और मनुष्योंमें ज्वर नामसे रहता है। परन्तु मनुष्य देवलोकसे आयाहुआ या पतनहुआ होनेके कारण इस ज्वरको मनुष्य जन्मवाला ही दैवी भावोंके कारण सहन कर सकता है। अन्य प्राणी ज्वर होजानेपर जीवित नहीं रह सकते ॥ १ ॥ २ ॥

ज्वरके आठभेद।

स जायतेऽष्टधा दोषैः पृथङ्मिश्रैः समागतैः।
आगन्तुश्च ॥ ३ ॥–

वह ज्वर वातादि दोषोंके भेदसे सात प्रकारका और एक आगन्तुज ऐसे आठ प्रकारका होता है। जैसे– १ वायुसे २ पित्तसे ३ कफसे ४ वातपित्तसे ५ वातकफसे ६ कफपित्तसे ७ वातपित्तकफसे ८ आगन्तुज॥३॥

ज्वरकी सम्प्राप्ति।

–मलास्तत्र स्वैः स्वैर्दुष्टाः प्रदूषणैः ॥
आमाशयं प्रविश्याममनुगम्य पिधाय च।
स्रोतांसि पक्तिस्थानाच्च निरस्य ज्वलनं बहिः॥४॥
सह तेनाभिसर्पन्तस्तपन्तः सकलं वपुः।
कुर्वन्तो गात्रमत्युष्णं ज्वरं निर्वर्तयंति ते ॥
स्रोतोविबंधात्प्रायेण ततः स्वेदो न जायते॥५॥

अपने अपने कारणोंसे दुष्ट हुए दोष, आमाशयमें जाकर स्रोतोंमें प्रवेशकर स्रोतोंको रोक देते हैं तदनन्तर पक्तिस्थान पाचकाग्निकी गर्मिको बाहर निकाल कर उसके साथ मिलकर सारे शरीरमें फिरतेहुए सम्पूर्ण शरीरको गर्म करके ज्वरको उत्पन्न कर देते है। इसी कारण स्रोतोंके मार्ग रुकेहुए होनेसे प्रायः स्वेदकी प्रवृत्ति नहीं होती अर्थात् सामान्यरूपसे प्रायः पसीना आना ज्वरमें बन्द हो जाता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

ज्वरका पूर्वरूप।

तस्य प्राग्रूपमालस्यमरतिर्गात्रगौरवम्।
आस्यवैरस्यमरुचिर्जृम्भा सास्राकुलाक्षता॥६॥

अङ्गमर्दोऽविपाकोऽल्पप्राणता बहुनिद्रता ।
रोमहर्षो विनमनं पिण्डिकोद्वेष्टनं क्लमः ॥ ७ ॥
हितोपदेशेष्वक्षांतिः प्रीतिरम्लपटूषणे ।
द्वेषः स्वादुषु भक्ष्येषु तथा बालेषु तृड् भृशम्८
शब्दाग्निशीतवातांबुच्छायोष्णेष्वनिमित्ततः ।
इच्छा द्वेषश्च तदनु ज्वरस्य व्यक्तता भवेत्९॥

उस ज्वरके पूर्वरूपमें ये लक्षण होते हैं. जैसे-आलस्य, चित्तका न लगना शरीरमें भारीपन, मुखकी विरसता, अरुचि, जम्भाई, नेत्रोंसे स्राव होना और नेत्र व्याकुल होना, अंगमर्द, अन्नका परिपाक न होना, शरीरमे बलकी हानि, निद्राकी अधिकता, रोमहर्ष, अगोंकी नमन, पिण्डरियोंमें उद्वेष्टनकीसी पीडा, क्लम, हित और मीठी बातोंको भी न सहना, अम्ल, लवण और चरपरे पदार्थोंमें इच्छा होना, मधुर पदार्थोंसे द्वेष होना, बालकोंका बोलना बुरा प्रतीत होना, अधिक प्यास लगना तथा शब्द, अग्नि, शीतता, वायु, जल, छाया, और उष्णतामें अकारण द्वेष होना और अकारण ही इनमें इच्छा होना इसके अनन्तर ज्वरका प्रकट होजाना ये लक्षण होते हैं ॥ ६–९ ॥

वातज्वरका लक्षण ।

आगमापगमक्षोभमृदुतावेदनोष्मणाम् ।
वैषम्यं तत्र तत्राङ्गे तास्ताः स्युर्वेदनाश्चलाः१०
पादयोः सुप्तता स्तम्भः पिण्डिकोद्वेष्टनं श्रमः॥
विश्लेष इव संधीनां साद ऊर्वोः कटीग्रहः११॥
पृष्ठं क्षोदमिवाप्नोति निष्पीड्यत इवोदरम् ॥
छिद्यन्त इव चास्थीनि पार्श्वगानि विशेषतः१२
हृदयस्य ग्रहस्तोदः प्राजनेनेव वक्षसः ।
स्कन्धयोर्मथनं बाह्वोर्भेदः पीडनमंसयोः१३ ॥
अशक्तिर्भक्षणे हन्वोर्जृंभणं कर्णयोः स्वनः ।
निस्तोदः शङ्खयोर्मूर्ध्नि वेदना विरसास्यता १४॥
कषायास्यत्वमथवा मलानामप्रवर्तनम् ।
रूक्षारुणत्वगास्याक्षिनखमूत्रपुरीषता ॥ १४ ॥
प्रसेकारोचकाश्रद्धाविपाकास्वेदजागराः ।
कंठौष्ठशोषस्तृट्शुष्कौ छर्दिकासौ विषादिता।
हर्षो रोमाङ्गदन्तेषु वेपथुः क्षवथोर्ग्रहः ।
भ्रमःप्रलापो घर्मेच्छा विनामश्चानिलज्वरे॥१७

ज्वरके आने जानेमें क्षोभमें मृदुतामें वेदनामें और उष्णतामें विषमता होना अर्थात् ज्वरके आगमन आदिकी गति विषमरूपसे हो और सब अंगोंमे वायुकी तोद भेदादि वेदनाका होना और उन वेदनाओंका कभी किसी अंगमें होना, कभी नहीं होना, दोनों पावोंका सोना, स्तम्भ, पिंडिकोद्वेष्टन, श्रम, संधियोंका विश्लेष, ऊरु स्थलोंका शून्यसा होना, कटिमें पीड़ा होना, पीठका संक्षुण्ण होना, उदरका पीडितसा होना, पार्श्वकी अस्थियोंका विशेषरूपसे छेदनकीसी पीडावाला होना, हृदयका अकडन और तोदयुक्त होना, वक्षस्थलमें सूचीवेधनकीसी पीडा होना, स्कंधोंका मथनके समान पीडित होना, दोनों बाहोंमें भेदनकीसी पीडा होना, दोनों अंसोंका पीडित होना, हनुकी संधियोंका भक्षण करनेमें असमर्थ होना, जंभाईका आना, कानोंमें शब्द होना, दोनों कनपटियोंमें चुभनेकी पीडा होना, मस्तकमें पीडा, मुखमें विरसता अथवा कषायता होना, मलोंकी प्रवृत्ति न होना, त्वचा, नेत्र, मुख, नख, मूत्र और मलका रूक्ष तथा अरुणवर्णका होना, लार गिरना, अरुचि, अन्नपर श्रद्धा न होना, अन्नका परिपाक न होना, पसीना न आना, निद्रा न आना, कण्ठ और ओठोंका सूखना, प्यास, सूखी खांसी और सूखी छर्दी, मनमें विषाद, रोमहर्ष होना, दन्तहर्ष, कम्प, छींकका रुकना, भ्रम, प्रलाप, धूपमें बैठनेकी इच्छा होना और अगोंका विनामसा होना ये सब लक्षण वातज्वरके होते हैं ॥ १०–१७ ॥

पित्त ज्वरके लक्षण ।

युगपद्व्याप्तिरङ्गानां प्रलापः कटुवक्त्रता ॥ १८॥
नासास्यपाकःशीतेच्छा भ्रमो मूर्च्छा मदोऽरतिः
विट्स्रंसः पित्तवमनं रक्तष्ठीवनमम्लकः ॥१९॥
रक्तकोठोद्गमः पीतहरितत्वं त्वगादिषु ।
स्वेदो निःश्वासवैगंध्यमतितृष्णा च पित्तजे२०

सारे अंगोंमें एक ही कालमें ज्वरका व्याप्त हो जाना, प्रलाप, मुखमें कटुता, नासा और मुखका परिपाक, शीतकी इच्छा, भ्रम, मूर्च्छा, मद, चित्तका न लगना, मलका पतला होकर निकलना, पित्तकी वमन होना,

मुँहसे रक्तका थूँकना, खट्टी जलनवाले डकारका आना, लाल रंगके शरीरपर कोठ (चप्पड) होना. त्वचा, नेत्र, मल, मूत्रका पीत और हलदीकासा वर्ण होना, पसीना आना, श्वासमें दुर्गंधि आना, अधिक तृषाका होना ये लक्षण पित्त ज्वरके होते है ॥ १८-२० ॥

कफज्वरके लक्षण।

विशेषादरुचिर्जाड्यं स्रोतोरोधोऽल्पवेगता।
प्रसेको मुखमाधुर्यं हृल्लेपश्वासपीनसाः ॥ २१ ॥
हृल्लासश्छर्दनं कासः स्तम्भः श्वैत्यं त्वगादिषु।
अङ्गेषु शीतपिटिकास्तन्द्रोदर्दः कफोद्भवे॥२२॥

विशेष अरुचि, जडता, स्रोतोंका निरोध ज्वरका मन्दवेग, मुखसे लार गिरना, मुखमें मीठापन, हृदयका लिपायमानसा होना, श्वास, पीनस, हृल्लास, छर्दि, खांसी, स्तम्भ, त्वचानेत्रादिकोंमे श्वेतता, अगोंमें शीत-पिडिकाओंका उत्पन्न होना, तन्द्रा और उदर्द ये लक्षण कफके ज्वरमें होते है ॥ २१ ॥ २२ ॥

काले यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा।
निदानोक्तानुपशयो विपरीतोपशायिता ॥२३॥

इस प्रकार पृथक् पृथक् दोषोंके ज्वर अपने अपने कालमे उत्पन्न होते है अथवा बढते है इनमें निदानोक्त अर्थात् हेतुभूत द्रव्योंके सेवनसे अनुपशय अर्थात् रोग-वृद्धि होती है और ज्वरके कारणोंसे विपरीत आहार विहारके सेवनसे उपशय अर्थात् विकार शान्ति होती है२३

द्वन्द्वजज्वरोंके लक्षण।

यथास्वलिङ्गसंसर्गे ज्वरः संसर्गजोऽपि च ॥२४

जहा दो दोषोंके लक्षणोंका संसर्ग हो वहा द्वन्द्वज-ज्वर जानना चाहिये। इसके अतिरिक्त द्वन्द्वजज्वरोंके पृथक् पृथक् लक्षणभी कहते है ॥ २४ ॥

वातपित्त ज्वरके लक्षण।

शिरोऽर्तिमूर्च्छावमिदाहमोह-
कण्ठास्यशोषारतिपर्वभेदाः।
उन्निद्रता तृड्भ्रमरोमहर्षा
जृम्भातिवाक्त्वं च चलात्सपित्तात् ॥२५

शिरमें शूल, मूर्च्छा, वमन, दाह, मोह, कण्ठ और मुखका सूखना, चित्त न लगना, जोडोंमें दर्द होना, निद्रानाश, प्यास, भ्रम, रोमहर्ष, जम्भाई और प्रलाप ये वातपित्तज्वरके लक्षण होते हैं ॥ २५ ॥

वातकफज्वरके लक्षण।

तापहान्यरुचिपर्वशिरोरुक्
पीनसश्वसनकासविबन्धाः।
शीतजाड्यतिमिरभ्रमतन्द्राः
श्लेष्मवातजनितज्वरलिङ्गम् ॥ २६ ॥

संतापका कम होना, अरुचि, जोडोंमें और शिरमें पीडा, पीनस, श्वास, खांसी, मलका विबन्ध, शीतता, जडता, नेत्रोंके आगे अंधकार प्रतीत होना, भ्रम और तन्द्रा ये वातकफजनित ज्वरके लक्षण होतेहैं ॥२६॥

कफपित्तज्वरके लक्षण।

शीतस्तम्भस्वेददाहाव्यवस्था-
स्तृष्णा कासः श्लेष्मपित्तप्रवृत्तिः।
मोहस्तन्द्रा लिप्ततिक्तास्यता च
ज्ञेयं रूपं श्लेष्मपित्तज्वरस्य ॥ २७ ॥

शीत, स्तम्भ, स्वेद और दाहकी अव्यवस्था होना अर्थात् कभी होना कभी न होना तथा प्यास, खाँसी, कफ पित्तका निकलना मोह, तन्द्रा, मुखका लिपायमान और कडुवा होना ये लक्षण पित्तकफज्वरके होते है॥२७

सन्निपातज्वरके लक्षण।

सर्वजो लक्षणैः सर्वैर्दाहोऽत्र च मुहुर्मुहुः।
तद्वच्छीतं महानिद्रा दिवा जागरणं निशि ॥
सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदोऽति नैव वा।
गीतनर्तनहास्यादिविकृतेहाप्रवर्तनम् ॥ २८ ॥
साश्रुणी कलुषे रक्ते भुग्ने लुलितपक्ष्मणी।
अक्षिणी पिंडिकापार्श्वमूर्धपर्वास्थिरुग्भ्रमः २९
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवाचितः।
परिदग्धा खरा जिह्वा गुरुः स्रस्ताङ्गसंधिता३०
रक्तपित्तकफष्ठीवो लोलनं शिरसोऽतिरुक्।
कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानांच दर्शनम्३१
हृद्व्यथा मलसंसर्गः प्रवृत्तिर्वाल्पशोऽति वा।
स्निग्धास्यता बलभ्रंशः स्वरसादः प्रलापिता३२
दोषपाकश्चिरात्तंद्रा प्रततं कण्ठकूजनम्।
सन्निपातमभिन्यासं तं ब्रूयाच्च हृतौजसम्३३॥

सब दोषोंके सारे लक्षणोंवाले ज्वरको सन्निपात-ज्वर जानना सन्निपाज्वरमें वारम्बार दाह होना, वारम्वार शीत लगना, दिनमें महानिद्राका आना, रात्रिको जागना अथवा दिन रात सोते रहना या दिन रात निद्रा नहीं आना, अत्यन्त स्वेदका आना अथवा स्वेदका सर्वथा न आना, गीत गाना, नाचना, हंसना आदि-विकृतचेष्टाओंका करना, नेत्रोंका लालवर्ण, कलुषितवर्ण, स्रावयुक्त और टेढे होना, पलकोंका कुटिलसा होना तथा दोनों पिण्डली, पार्श्वभाग, मस्तक, पर्व और अस्थियोंमें पीडा होना, भ्रम होना तथा दोनों कानोंमें शब्द और शूल होना, कंठ शूकोंसे युक्तके समान होना, जिह्वा परिदग्ध और खरदरी होना, अंगों और संधियोंका भारी तथा ढीले पड जाना, मुखमे रक्तपित्तमिश्रित कफका थूकना, शिरको इधर उधर मारना, मस्तकमें अतिपीडा होना, शरीर पर काले और लाल वर्णके, कोठ तथा मडलोंका दिखाई देना, हृदयमें व्यथा होना, मलका रुक जाना अथवा बहुत थोडा दिखाई देना, या अत्यन्त प्रवृत्ति होना मुखका चिकना होना, बलकी हानि, स्वरका बैठना, प्रलाप, दोषोंका देरमें परिपाक होना, तन्द्रा, निरन्तर कंठका कूजना ऐसे लक्षणोंवाले ओजनाशक सन्निपातज्वरको अभिन्यास अथवा हतौजस सन्निपात कहते है ॥ २८—३३ ॥

सन्निपात ज्वरकी असाध्यता ।

दोषे विबद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः ।
असाध्यः सोऽन्यथा कृच्छ्रो भवेद्वैकल्यदोऽपि वा

जिस सन्निपातज्वरमें दोष विबद्ध हों अर्थात् परिपाक होकर चलायमान न हुए हों, अग्नि नष्ट होगयी हो और तीनों दोषोंके सम्पूर्ण लक्षण हों ऐसे लक्षणोंवाला सन्निपातज्वर असाध्य होता है, इससे विपरीत अर्थात् न्यून लक्षणोंवाला सन्निपातज्वर जिसमें दोषोंका परिपाक हो गया हो और अग्नि भी कम होगयी हो ऐसा सन्निपातज्वर कष्टसाध्य या विकलता करनेवाला होता है ॥ ३४ ॥

दाहशीतादि ज्वरोंके लक्षण ।

अन्यश्च सन्निपातोत्थो यत्र पित्तं पृथक् स्थितम्
त्वचि कोष्ठेऽथवा दाहं विदधाति पुरोऽनु वा३५

जिस सन्निपातज्वरमें पित्त पृथक् रहकर त्वचामें स्थित हो जाती है । उस ज्वरमें दाह ज्वरसे पूर्व उत्पन्न हो जाती है और जिस ज्वरमें त्वचामें न जाकर कोष्ठमें पित्त रहती है तो ज्वरके पीछेसे अधिक दाह उत्पन्न करती है ॥ ३५ ॥

तद्वद्वातकफौ शीतं दाहादिर्दुस्तरस्तयोः ।
शीतादौ तत्र पित्तेन कफे स्यंदितशोषिते३६॥
शीते शांतेऽम्लको मूर्च्छा मदस्तृष्णा च जायते
दाहादौ पुनरंते स्युस्तंद्राष्ठीववमिक्लमाः ॥३७॥

यदि वातकफ सन्निपातज्वरमें अलग रहकर त्वचामें स्थित होजांय तो ज्वरसे पूर्वशीतको पैदा करते है । यदि कोष्ठमें स्थित रहे तो ज्वरके अन्तमें शीतको पैदा करते है। इन दोनों प्रकारके ज्वरोंमें जिसमें प्रथम दाह हो और पीछेसे शीत हो वह ज्वर दुस्तर होता है ।

जिस ज्वरके आदिमें शीत होता है उसमें पित्त द्वारा कफके स्पन्दित और शोषित होनेपर शीत, शान्त होजाता है और उसके अनन्तर पित्तके वेगसे खट्टी डकार, मूर्च्छा, मद और प्यास उत्पन्न होजाती है ।

इसी प्रकार जिस ज्वरमें प्रथम दाह होती है उसमें पित्तका वेग शमन होनेपर कफके वेगसे तन्द्रा, मुखसे लार गिरना, वमन और क्लमका होना ये लक्षण होते है ॥ ३६—३७ ॥

आगन्तुक ज्वरका लक्षण ।

आगन्तुरभिघाताभिषङ्गशापाभिचारतः ।
चतुर्धा—
—अत्र क्षतच्छेददाहाद्यैरभिघातजः ॥ ३८॥
श्रमाच्च तस्मिन्पवनः प्रायो रक्तं प्रदूषयन् ।
सव्यथाशोफवैवर्ण्यं सरुजं कुरुते ज्वरम् ॥ ३९ ॥

देश चोट आदि अभिघातसे, भूतादि-अभिषंगसे, गुरुजन आदिकोंके शापसे और जादूटोना आदिके अभिचारसे आगन्तुकज्वर चार प्रकारका होता है ।

इनमें क्षत, छेद, दाह आदिसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरको अभिघात कहते हैं ।

अभिघातज्वरमें श्रमसे प्रकोपहुआ वायु, रक्तको दूषित करता हुआ व्यथा, सूजन, विवर्णताको उत्पन्न करके पीड़ायुक्त ज्वरको उत्पन्न कर देता है३८-३९॥

ग्रहावेशौषधिविषक्रोधभीशोककामजः ।
अभिषङ्गात्-
-ग्रहेणाऽस्मिन्नकस्माद्धासरोदने ॥४० ॥

ग्रहादिकोंके आवेश, औषधि, गंध, विष, क्रोध, शोक और कामसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरको अभिषंगज ज्वर कहते हैं। अभिषंगज्वरोंमें किसी ग्रहके आवेशसे उत्पन्नहुए ज्वरमें अकस्मात् हास्य, रोदन, कम्पन आदि होते हैं ॥ ४० ॥

ओषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वेपथुः क्षवः ।
विषान्मूर्च्छातिसारास्यश्यावतादाहहृद्रुदाः४१

औषधिगन्धजनितज्वरमें मूर्छा, शिरमें पीडा, कम्प और छींकका आना ये लक्षण होते हैं। विषजनितज्वरमें मूर्च्छा, अतीसार,मुखका श्यामवर्ण होना, दाह और हृदयमें व्यथा ये लक्षण होते हैं ॥ ४१ ॥

क्रोधात्कंपः शिरोरुक् च प्रलापो भयशोकजे ।
कामाद्भ्रमोऽरुचिर्दाहो ह्रीनिद्राधीधृतिक्षयः

क्रोधसे उत्पन्नहुए ज्वरमें कम्प और मस्तकपीडा होती है भय और शोकसे उत्पन्नहुए ज्वरमें प्रलाप होता है।

कामजनितज्वरमें भ्रम, अरुचि, दाह तथा लज्जा, निद्रा, बुद्धि और धारणाशक्तिका नाश होता है॥४२॥

ग्रहादौ सन्निपातस्य भयादौ मरुतस्त्रये ।
कोपः कोपेऽपि पित्तस्य ॥ ४३ ॥-

ग्रहादिकके आवेशसे उत्पन्नहुए ज्वरमें त्रिदोषका प्रकोप होता है । ऐसे ही भय, शोक और कामज्वरमें वायुका प्रकोप होता है। क्रोधजनितज्वरमें पित्तका प्रकोप होता है ॥ ४३ ॥

शाप और अभिचार-जनित-ज्वर ।

-यौ तु शापाभिचारजौ ॥
सन्निपातज्वरौ घोरौ तावसह्यतमौ मतौ॥४४॥

जो शाप और अभिचारसे ज्वर उत्पन्न होते हैं । इनमें त्रिदोषका प्रकोप होता है और ये दोनों प्रकारके ज्वर महाअसह्य होजाते हैं ॥ ४४ ॥

तत्राभिचारिकैर्मंत्रैर्हूयमानस्य तप्यते ।
पूर्वं चेतस्ततो देहस्ततो विस्फोटतृड्भ्रमैः ।
सदाहमूर्च्छैर्ग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्धते ज्वरः ॥
इति ज्वरोऽष्टधा दृष्टः ॥ ४५ ॥-

अभिचारजनित ज्वर किसी शत्रुके द्वारा कियेहुए आभिचारिक मंत्रोंसे होता है । जब अभिचारके मंत्रोंद्वारा ज्वरवाले मनुष्यके विपरीत हवन किया जाता है उससे इस अभिचारजनित-ज्वरवालेके चित्तमें प्रथम सताप बढ़ता है तदनन्तर देहमे सताप होता है । फिर विस्फोटक, तृषा, भ्रम, दाह और मूर्छासे ग्रस्त होकर प्रतिदिन ज्वर बढता रहता है । इस प्रकार ज्वर आठ प्रकारका कहा है ॥४५॥

ज्वरोंके दो दो भेद ।

-समासाद्द्विविधस्तु सः ।
शारीरो मानसः सौम्यस्तीक्ष्णोऽन्तर्बहिराश्रयः॥
प्राकृतो वैकृतः साध्योऽसाध्यः सामो निरामकः

संक्षेपसे ज्वरके दो भेद होते हैं जैसा--शारीरक तथा मानसिक ये दो भेद हैं। सौम्य और तीक्ष्ण ये दो भेद हैं, अन्तर्वेगी और बहिर्वेगी ये दो भेद हैं। प्राकृत और वैकृत ये दो भेद हैं । साध्य और असाध्य दो भेद हैं, साम और निराम ये दो भेद हैं ॥ ४६ ॥

शारीरक और मानसिक ज्वर ।

पूर्वं शरीरे शारीरे तापो मनसि मानसे ॥
पवने योगवाहित्वाच्छीतं श्लेष्मयुते भवेत् ।
दाहः पित्तयुते मिश्रं मिश्रे ॥ ४७ ॥--

शारीरक ज्वरमें--प्रथम शरीरमे सन्ताप होकर पीछे मनमे सन्ताप होता है ।

मानसिक ज्वरमें--प्रथम मनमें सन्ताप होकर पीछे शरीरमें संताप होता है । पवन योगवाही होनेसे कफके साथ मिलनेसे सौम्य अर्थात् शीतप्रधान ज्वरको उत्पन्न करता है ।

पवन पित्तके साथ मिलकर दाह प्रधान तीक्ष्ण पित्तज्वरको उत्पन्न करता है।

दोनोंके साथ मिलनेसे मिलेहुए लक्षणोंवाले ज्वरको करता है॥ ४७॥

अन्तर्वेगी ज्वर।

--अन्तःसंश्रये पुनः।
ज्वरेऽधिकविकाराःस्युरन्तःक्षोभो मलग्रहः॥४८॥

अन्तर्वेगी ज्वरमे-दोष अन्तराश्रित होनेके कारण ज्वरमें अधिकता आदि-आभ्यन्तर विकारोंकी अधिकता, अन्तर्दाह, मल-मूत्रादिकोंका रुकना आदि उपद्रवोंको करते है यह ज्वर दुःसाध्य होता है॥ ४८॥

बहिर्वेगी ज्वर।

बहिरेव बहिर्वेगे तापोऽपि च सुसाध्यता॥४९॥

बहिर्वेगी ज्वरमें-दोषोंका वेग बाहर होनेके कारण बाहरका ताप अधिक होता है और बहिर्वेगी ज्वर सुखसाध्य होता है॥ ४९॥

प्राकृत वैकृत ज्वरोंके लक्षण।

वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात्।
वैकृतोऽन्यःसदुःसाध्यःप्रायश्च प्राकृतोऽनिलात्

वर्षाऋतुमें वायुका ज्वर, शरद ऋतुमें पित्तका ज्वर और वसन्त ऋतुमें कफका ज्वर क्रमसे प्राकृत ज्वर होता है। इसमे विपरीत अर्थात् वर्षाऋतुमें पित्त या कफका ज्वर शरद ऋतुमें वात या कफका ज्वर, वसन्त ऋतुमें वात या पित्तका ज्वर वैकृत कहा जाता है। अपनी अपनी ऋतुओंमे होनेवाले प्राकृत ज्वर सुखसाध्य होते है और वैकृतज्वर अर्थात् दूसरेके कालमें उत्पन्न होनेवाले ज्वर कष्टसाध्य होते है। परन्तु वात ज्वर लंघनकी विपरीतताके कारण प्राकृत होनेपर भी कष्ट साध्य ही होता है॥ ५०॥

वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम्।
कुर्यात्–

–पित्तं च शरदि तस्य चानुबलं कफः॥५१॥
तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम्।
कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु॥ ५२॥

वर्षाऋतुमें-वायु दूषित होकर ज्वरको करता है और पित्त तथा कफ इसके अनुगामी होजाते हैं। यदि इसमें लंघन करे तो वात प्रकोप बढनेका भय है। यदि लंघन न करे तो इसके अनुगामी पित्त और कफका प्रकोप हो सकता है। इस कारण वातज्वर प्राकृत होनेपर भी कष्टसाध्य होता है।

पित्त शरदऋतुमें प्रकुपित होकर ज्वरको उत्पन्न करता है कफ उसके अनुबल होता है। इस कारण इस पित्तज्वरमें स्वाभाविक विसर्गकाल होनेसे और इस ऋतुमें पित्तके उदीर्णका काल होनेसे इस समय लंघन करनेमे कोई भय नहीं होता अर्थात् इस ज्वरमें लंघन करनेसे सुख होता है और कोई विपरीतता उत्पन्न नहीं होती इसलिये यह ज्वर सुखसाध्य होता है।

कफ वसन्तऋतुमें प्रकोपको प्राप्त होकर ज्वरको उत्पन्न करती है और वातपित्त उसके अनुगामी होते है॥ ५१॥ ५२॥

साध्य और असाध्य ज्वरोंके लक्षण।

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः।
सर्वथा विकृतिज्ञाने प्रागसाध्य उदाहृतः॥५३॥

बलवान् शरीरवाले और अल्पदोषवाले मनुष्यका उपद्रव रहित ज्वर साध्य होता है।

विकृति विज्ञानीय शारीराध्यायमें सर्वथा असाध्य ज्वरोंके लक्षण कह आयेहै॥ ५३॥

साम ज्वरके लक्षण।

ज्वरोपद्रवतीक्ष्णत्वमग्लानिर्बहुमूत्रता।
न प्रवृत्तिर्न विड् जीर्णा न क्षुत्सामज्वराकृतिः॥५४

जिस ज्वरमें प्रलाप, भ्रम आदि ज्वरके उपद्रव तीक्ष्ण हों, ग्लानि न हो-मूत्र अधिक आता हो, दोषकी और मलकी प्रवृत्ति न हो और क्षुधा न हो ऐसे लक्षणोंवाले ज्वरको साम ज्वर जानना चाहिये॥ ५४॥

पच्यमान-ज्वरके लक्षण।

ज्वरवेगोऽधिकं तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम्॥५५॥

ज्वरका वेग अधिक हो, प्यास हो, प्रलाप, श्वास, भ्रम, मलकी प्रवृत्ति और जी मचलाना ये पकतेहुए ज्वरके लक्षण होते है॥ ५५॥

निराम ज्वरके लक्षण।

जीर्णताऽऽमविपर्यासात्सप्तरात्रं च लंघनात्॥५६

जिस ज्वरमें आमके उपद्रव न रहे हों, ज्वर जीर्ण होगया हो, सात रात्रियें व्यतीत हो चुकीं हों, लंघनसे दोष पच चुके हों, शरीरमें लघुत्वादि गुण आगये हों ये निराम ज्वरके लक्षण है। यद्यपि सात दिनमें प्रायः सब ज्वर जीर्ण हो जाते हैं परन्तु सन्निपात ज्वर सात दिनमें जीर्ण नहीं होता, इस कारण मूलमें "जीर्णताऽऽमविपर्यासात्" शब्द दिया है॥ ५६॥

विषमज्वरके लक्षण।

ज्वरः पञ्चविधः प्रोक्तो मलकालबलाबलात्।
प्रायशः सन्निपातेन भूयसा तूपदिश्यते।
सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ॥५७॥

प्रायः मल (वातादि) काल (पूर्वाह्णादि) बल और अबलतादि भेदसे ज्वरोंका भेद कह चुके है।

अब सन्निपातसे होनेवाले पांच प्रकारके विषम ज्वरोंको कथन करते है। जैसे-सतत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक, ये पांच प्रकारके विषम ज्वर कहे जाते है। ये ज्वर मल कालके बलाबल भेदसे पांच प्रकारके होते है॥ ५७॥

सन्ततज्वरकी सम्प्राप्ति।

धातुमूत्रशकृद्वाहिस्रोतसां व्यापिनो मलाः।
तापयन्तस्तनुं सर्वां तुल्यदूष्यादिवर्धिताः॥५८॥
बलिनो गुरवः स्तब्धा विशेषेण रसाश्रिताः।
सन्ततं निष्प्रतिद्वंद्वा ज्वरं कुर्युःसुदुःसहम्॥५९॥

रसादि धातु मूत्र और विष्ठाके वहन करनेवाले स्रोतोंमें व्याप्तहुए वातादिदोष तुल्य गुणवाले दूष्यादिकोंसे वृद्धिको प्राप्त होकर सम्पूर्ण शरीरको तपायमान करते है, विशेष करके रसाश्रित दोष बलवान्, भारी और स्तब्ध होकर दुःसह और प्रत्यनीकरहित संतत-ज्वरको उत्पन्न करते है, इस ज्वरमें मलोंसे बल प्राप्त होनेके कारण दोष बलवान् होते है, साम होनेके कारण भारी होते हैं, निस्सरण न होनेके कारण स्तब्ध होते हैं॥ ५८॥ ५९॥

मलं ज्वरोष्मा धातून्वा स शीघ्रं क्षपयेत्ततः।
सर्वाकारंरसादीनां शुद्ध्यशुद्ध्यापिवाक्रमात्॥
वातपित्तकफैः सप्तदशद्वादशवासरान्।
प्रायोऽनुयाति मर्यादां मोक्षाय च वधाय च॥६१
इत्यग्निवेशस्य मतं हारीतस्य पुनः स्मृतिः।
द्विगुणा सप्तमी यावन्नवम्येकादशी तथा॥६२॥
एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च।
शुद्ध्यशुद्धौ ज्वरः कालं दीर्घमप्यनुवर्तते॥६३।

यदि कदाचित् दैवयोगसे मलको पकाकर शोधन करदेवे अथवा शीघ्रही रसादिक धातुओंका पाक करदेवे तो यह ज्वर मलपाकी होनेसे सम्पूर्ण रसादिकोंकी शुद्धि करदेनेसे यदि वातप्रधान हो तो सातदिनमें, पित्तप्रधान हो तो १० दिनमें और कफ प्रधान हो तो १२ दिनमें, रोगीको ज्वर मुक्त कर देता है और यदि दोषोंको परिपाककर शुद्ध न करे और धातुपाकी हो जाय तो इसी मर्यादासे रोगीको मार डालता है। यह सात दिन १० दिन और १२ दिनकी मर्यादा वात पित्त और कफकी प्रधानतापर निर्भर है, ऐसा अग्निवेशका मत है। किन्तु हारीत इससे दो गुणे कालकी मर्यादा मानते है। जैसे वात प्रधान सन्निपातकी १४ दिन, पित्तप्रधानकी १८ दिन और कफप्रधानकी २२ दिनकी मर्यादा त्रिदोष ज्वरकी है। इस अवधिमें मलपाकी होनेसे मनुष्य निरोग होजाता है और धातुपाकी होनेसे मृत्युको प्राप्त होता है।

इससे दीर्घकाल तक भी सन्तत ज्वरकी शुद्धि अशुद्धिमें लग जाता है अर्थात् कदाचित् सन्ततज्वर दोष धातुओंकी यथार्थ शुद्धि न होनेसे २२ दिनसे और अधिककाल आगे तक भी बना रहता है॥ ६०-६३॥

सतत आदि विषमज्वरकी सम्प्राप्ति।

कृशानां व्याधिमुक्तानां मिथ्याहारादिसेविनाम्
अल्पोऽपि दोषो दूष्याद्यैर्लब्ध्वान्यतमताबलम्।
सविपक्षो ज्वरं कुर्याद्विषमं क्षयवृद्धिभाक्॥६४॥
दोषः प्रवर्तते तेषां स्वे काले ज्वरयन् बली६५

निवर्तते पुनश्चैष प्रत्यनीकबलाबलः ।
क्षीणे दोषे ज्वरः सूक्ष्मो रसादिष्वेव लीयते ।
लीनत्वात्कार्श्यवैवर्ण्यजाड्यादीनादधाति सः॥

जो मनुष्य कृश होते है या व्याधिसेयुक्त होनेपर कृश होते है वे यदि मिथ्या आहार विहारका सेवन करे तो उनके शरीरका अल्प दोष भी रसादि दूष्य धातुओंमेंसे किसी धातुसे बलप्राप्तकर लब्धबल होनेपर किसी भी धातुमें प्राप्त होनेपर बढने और घटनेवाले सतत आदि विषम ज्वरको उत्पन्न कर देता है ।

उन कृश तथा व्याधिमुक्त पुरुषोंके शरीरमें जब वह बलवान् दोष अपने कालबलको प्राप्त करता है तो बडे वेगसे उत्पन्न करदेता है । फिर अपने विपरीतकालके बलसे निर्बलहोकर निवृत्त हो जाता है ।

दोषके क्षीण होनेके कारण अपने वेगको निवृत्त करनेपर वह सूक्ष्मज्वर रसादि धातुओंमें लीन हो जाता है इस कारण वह लीनहुआ सूक्ष्म ज्वर शरीरमें कृशता विवर्णता और जडता आदिको कर देता है ६४–६६

आसन्नविवृतास्यत्वात्स्रोतसां रसवाहिनाम् ।
आशु सर्वस्य वपुषो व्याप्तिर्दोषेण जायते ।
सन्ततः सततस्तेन विपरीतो विपर्ययात् ॥६७

रसवाही स्रोतोंके मुख आसन्न और विवृत होनेके कारण रसमें व्याप्तहुआ दोष सारे शरीरमें शीघ्र और निरन्तर फैलकर सन्तत अथवा सततज्वरको उत्पन्न कर देता है । इससे विपरीत मांसवाही आदि स्रोतों, प्राप्तहुआ दोष अन्येद्यु तृतीय और चतुर्थक तथ चतुर्थकविपर्यय ज्वरोंको करता है ॥ ६७ ॥

विषमज्वरकी निरुक्ति ।

विषमो विषमारंभक्रियाकालोऽनुषङ्गवान्।६८ ॥

जिस ज्वरका आरम्भ और क्रियाका काल विषम क्रमवाला हो और दीर्घकाल तक बना रहे उसको विषमज्वर कहते है ॥ ६८ ॥

सततज्वरकी सम्प्राप्ति और लक्षण ।

दोषो रक्ताश्रयः प्रायः करोति सततं ज्वरम् ।
अहोरात्रस्य स द्विः स्यात् ॥ ६९ ॥–

जैसे रसाश्रित दोष सन्ततज्वरको उत्पन्न करते है वैसेही रक्ताश्रित दोष प्रायः सततज्वरको उत्पन्न करदेतेहै । सततज्वर कभी दिनमें कभी रात्रिमें दो बार आजाता है अथवा दिनरातमें दोवार आजाता है । इस प्रकार दिनरात्रिमें दोवार आनेवाले ज्वरको सततज्वर कहते है ॥ ६९ ॥

अन्येद्यु ज्वर ।

–सकृदन्येद्युराश्रितः ।
तस्मिन्मांसवहा नाडीः ॥ ७० ॥–

जब दोष मांसवाहीनाडीमें आश्रित होते है तब दिनरात्रिमें एकबार आनेवाले ज्वरको उत्पन्न करते है इस ज्वरको अन्येद्युज्वर कहते है ॥ ७० ॥

तृतीयक ज्वर ।

–मेदोनाडीस्तृतीयके ।
ग्राही पित्तानिलान्मूर्ध्नस्त्रिकस्य कफपित्ततः ।
सपृष्ठस्यानिलकफात्स चैकाहान्तरःस्मृतः ॥७१

जब ज्वरकारक दोष मेदस्थनाडीमें स्थित रहते है तब तीसरे दिन आनेवाले ज्वरको उत्पन्न करते है यह तृतीयकज्वर ३ प्रकारका होता है. जैसे वातपित्तप्रधान ज्वरके वेगके समय प्रथम मस्तकको ग्रहणकर अधिक पीडा देते है । कफपित्त प्रधान हो तो प्रथम त्रिकस्थानको ग्रहण करते है । यदि वातकफ प्रधान हो तो प्रथम पृष्ठभागको ग्रहण करते है । इस प्रकार एक दिनका अन्तर देकर होनेवाला यह तृतीयकज्वर तीन प्रकारका होता है ॥ ७१ ॥

चातुर्थिक ज्वरके लक्षण ।

चतुर्थको मले मेदोमज्जास्थ्यन्यतमस्थिते ।
मज्जस्थ एवेत्यपरे प्रभावं स तु दर्शयेत् ॥
द्विधा कफेन जंघाभ्यां स पूर्वं शिरसोऽनिलात्

जब दोष, मेद, मज्जा, अस्थि इनमेंसे किसी एकमें किसीके मतमें केवल मज्जामें ही स्थित होते है तो चतुर्थकज्वरको उत्पन्न कर देते हैं । वह चातुर्थिक ज्वर दोप्रकारके प्रभावोंको दिखता है । जैसे कफप्रधान हो तो पहलेज्वर जंघाओंसे आरम्भ होता है । यदि वातप्रधान हो तो पहले शिरसे आरम्भ होता है॥।७२॥

चातुर्थिकविपर्यय ज्वरके लक्षण ।

अस्थिमज्जोभयगते चतुर्थकविपर्ययः ।
त्रिधाद्व्यहं ज्वरयति दिनमेकं तु मुञ्चति॥७३ ॥

अस्थि और मज्जामें प्राप्तहुए दोष चातुर्थिकज्वरसे विपरीत ज्वरको करते हैं । जैसे चातुर्थिक ज्वरमें दो दिन ज्वर नहीं आता और दो दिनोंका अन्तर देकर एकदिन आता है । वैसे ही चातुर्थिकविपर्ययमें दो दिन बराबर ज्वर बना रहता है और एक दिन ज्वर नहीं आता । यह ज्वर वातप्रधान, पित्तप्रधान और कफप्रधान इन तीन भेदोंमें तीन प्रकारका होता है ७३

बलाबलेन दोषाणामन्नचेष्टादिजन्मना ॥७४ ॥
ज्वरः स्यान्मनसस्तद्वत्कर्मणश्च तदा तदा ।
दोषदूष्यर्त्वहोरात्रप्रभृतीनां बलाज्ज्वरः॥७५॥

शरीरमें आहार विहार आदि कारणोंसे बलाबल पाये हुए दोष जब जब जिस जिस दोष दूष्यऋतु दिन रात्रि आदिके समय जो दोष बल प्राप्तकर जाता है वही वही दोष अपने अपने समयमें बलप्राप्त करके ज्वरको उत्पन्न करते हैं । जैसे शारीरक दोष आहार विहार और समयसे जब जब बल पाते हैं उसी प्रकार मानसिक दोषोंसे अथवा पूर्वजन्मके कियेहुए कर्मसे जिस जिस समय उस कर्मका परिपाकका समय आता है उस उस समय मानसिक विकारभी उत्पन्न होकर पीडा देते हैं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

मनसो विषयाणां च कालं तं तं प्रपद्यते ।
धातून् प्रक्षोभयन् दोषो मोक्षकाले विलीयते ॥
ततो नरः श्वसन् स्विद्यन् कूजन् वमति चेष्टते।
वेपते प्रलपत्युष्णैः शीतैश्चाङ्गैर्हतप्रभः ॥ ७७ ॥
विसंज्ञो ज्वरवेगार्तः सक्रोध इव वीक्षते ।
सदोषशब्दं च शकृद्द्रवं सृजति वेगवत् ॥७८॥

शारीरक दोष मोक्ष कालमें अर्थात् ज्वर मुक्ति कालमें धातुओंको क्षोभित करतेहुए जब विलीन होते हैं तब मनुष्य श्वास लेता है, पसीना आने लगता है । आन्त्रकूजन होता है, वमन होनेलगती है वह मनुष्य चेष्टा करता है, काँपता है और प्रलाप करता है, तथा उसके अंग कोई शीतल, कोई गर्म होनेसे हतप्रभा हो जाते हैं । ज्वरके वेगसे व्याकुल संज्ञाहीन क्रोधीके समान इधर उधर देखता है तथा दोष और शब्दयुक्त पतले मलको वेगके साथ त्यागता है । ये सब लक्षण बलवान् ज्वरके उतरनेके समय हो जाते हैं ॥ ७६ ॥ ७८ ॥

विगतज्वरके लक्षण ।

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः
पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् ।
स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगि मनोऽन्नलिप्सा
कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥७९॥

देहमें लघुता, क्लम, मोह और तापका दूर होना, मुखका पकजाना, इन्द्रियोंमें निर्मलता होना, व्यथाका न होना, पसीना आना, छींक आना, स्वाभाविक प्रकृतिके अनुसार मनका प्रसन्न होना, अन्नकी इच्छा होना और शिरमें खुजली होना ये विगतज्वर अर्थात् ज्वर रहित मनुष्यके लक्षण हैं ॥ ७९ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीते अष्टाङ्गहृदये निदानस्थाने पं. शिवशर्मकृतशिवदीपिका--भाषाव्याख्यायां ज्वर निदानं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो रक्तपित्तकासनिदानं व्याख्यास्यामः

अब हम रक्त पित्त और खांसीके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

रक्तपित्तकी संप्राप्ति ।

भृशोष्णतीक्ष्णकट्वम्ललवणादिविदाहिभिः ।
कोद्रवोद्दालकैश्चान्नैस्तद्युक्तैरतिसेवितैः ॥ १ ॥
कुपितं पित्तलैः पित्तं द्रवं रक्तं च मूर्च्छिते ।
ते मिथस्तुल्यरूपत्वमागम्य व्याप्नुतस्तनुम्॥२॥

अत्यन्त उष्ण अत्यन्त तीक्ष्ण अत्यन्त चरपरे अत्यन्त अम्ल और अत्यन्त लवणादि विदाही पदार्थोंके अधिक सेवनसे तथा कोद्रव और उद्दालक आदि अन्न, उष्ण तीक्ष्ण विदाही आदि पदार्थोंके साथ

अधिक सेवन करनेसे तथा अन्य अधिक पित्तवर्धक पदार्थोंके सेवनसे कुपितहुआ पित्त पतला होकर रक्तमें मिल जाता है। ये दोनों रक्त और पित्त तुल्य रूपवाले होकर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होजाते हैं ॥ १-२॥

पित्तं रक्तस्य विकृतेः संसर्गाद्दूषणादपि ।
गन्धवर्णानुवृत्तेश्च रक्तेन व्यपदिश्यते ॥ ३ ॥
प्रभवत्यसृजः स्थानात्प्लीहतो यकृतश्च तत्॥४॥

रक्तकी विकृतिसे और संसर्गसे तथा पित्तद्वारा रक्तके शीघ्र दूषित होजानेके कारण और पित्त रक्तका ही मलभी कहाहै। इन कारणोंसे पित्त गंध और वर्णमें रक्तके समानही होकर रक्तपित्तरोगको उत्पन्न करताहै।

उस पित्तकी उत्पत्ति रक्तके स्थानसे तथा यकृत् और प्लीहाके स्थानसे होकर विशेष वृद्धिको प्राप्त होजाते है। इस कारण विशेष रक्त आने लगताहै ३-४

रक्तपित्तके पूर्वरूप।

शिरोगुरुत्वमरुचिः शीतेच्छा धूमकोऽम्लकः ।
छर्दिश्छर्दितबैभत्स्यं कासः श्वासो भ्रमः क्लमः।
लोहलोहितमत्स्यामगंधास्यत्वं स्वरक्षयः ॥ ५॥
रक्तहारिद्रहरितवर्णता नयनादिषु ।
नीललोहितपीतानां वर्णानामविवेचनम् ॥
स्वप्ने तद्वर्णदर्शित्वं भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥६॥

शिरमें भारीपन, अरुचि, शीतलचीजोंकी इच्छा, कंठसे धूमका निकलना, खट्टीउद्गार होना, छर्दी, छर्दित मलका बीभत्स होना, खांसी, श्वास, भ्रम, क्लम, मुखका लाल होना, तथा रक्त, मत्स्य और आमकीसी गन्ध आना, स्वरका क्षय होना, नेत्र नखादिकका वर्ण लाल पीला और हरितसा होना तथा स्वप्नमें नील लोहित और पीले वर्णोंका दिखाई देना तथा रक्तवर्णके आकार दिखाई देना ये लक्षण रक्तपित्तके पूर्वरूपमें होते है ॥ ५॥ ६ ॥

रक्तपित्तकी त्रिविध गति।

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ॥ ७ ॥

नासिका, नेत्र, कान और मुखसे ऊर्ध्वगामी रक्त पित्तका रक्त निकलता है। अधोगामी रक्तपित्तका रक्त, मेढ्र योनि और गुदाके द्वारा निकलता है। अत्यन्त कुपितहुआ रक्तपित्त सम्पूर्णरोमकूपोंसे निकलने लगता है। इस प्रकार रक्तपित्तकी त्रिविध गति कही है ॥७ ॥

ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तकी चिकित्साका निर्देश।

ऊर्ध्वं साध्यं कफाद्यस्मात्तद्विरेचनसाधनम् ८॥
बह्वौषधं च पित्तस्य विरेको हि वरौषधम् ।
अनुबन्धी कफो यश्च तत्र तस्यापि शुद्धिकृत् ९
कषायाः स्वादवोऽप्यस्य विशुद्धश्लेष्मणोहिताः।
किमु तिक्ताः कषाया वा ये निसर्गात्कफापहाः॥

ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त साध्य होता है क्योंकि ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तके साथ कफका संसर्ग होनेसे होता है। इस कारण विरेचनादि द्वारा वह शीघ्र अच्छा हो सकता है। रक्तपित्तके निवृत्त करनेकी अनेक औषधियें हैं परन्तु विरेचन कराना इस रोगमें सबसे श्रेष्ठ औषधि है। ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें कफका अनुबंध होता है। इस कारण रेचनद्वारा कफकी भी शुद्धि हो जाती है और रक्तकी ऊर्ध्वगति भी बन्द हो जाती है।

जब रेचन द्वारा अनुबंधी कफ और रक्तपित्त शुद्ध हो जांय तब इसको कषाय और मधुररसवाले द्रव्य सेवन कराना हितकारी होते है। अथवा तिक्त कषाय रसोंका सेवन कराना चाहिये क्योंकि ये स्वभावसे ही कफनाशक होते है ॥ ८-१० ॥

अधोगामी रक्तपित्तका साधन।

अधो याप्यं चलाद्यस्मात्तत्प्रच्छर्दनसाधनम् ।
अल्पौषधं च पित्तस्य वमनं न वरौषधम्॥११॥
अनुबन्धी चलो यश्च शान्तयेऽपि न तस्य तत् ।
कषायाश्च हितास्तस्य मधुरा एव केवलम्१२॥

अधोगामी रक्तपित्त याप्य होता है क्योंकि अधोगामी रक्तपित्तमें वायुका संसर्ग होता है और अधोगामी वेगको रोकनेकेलिये प्रतिलोम चिकित्सा छर्दन कराना हो सकता है, परन्तु छर्दन करानेसे वायुका शमन नहीं हो सकता और अधोगामी पित्तको वमन कराना श्रेष्ठ नहीं हो सकता और इसके शमन करनेकी औषधियें भी थोडी है तथा इस रक्त पित्तके साथ वायुका अनुबंध होनेसे वमनद्वारा इसकी शान्ति भी नहीं हो

सकती। इस कारण अधोगामी रक्तपित्तमें केवल कषाय और मधुररसप्रधान द्रव्योंका सेवन करानाही हित हो सकता है। इस प्रकार कषाय मधुर रसद्वारा और पथ्य आहार विहारद्वारा यापन करनेसे यह रक्तपित्त याप्य कहा जाता है॥ ११-१२॥

असाध्य रक्तपित्त।

कफमारुतसंसृष्टमसाध्यमुभयायनम्।
अशक्यप्रातिलोम्यत्वादभावादौषधस्य च १३

जो रक्तपित्त ऊर्ध्वगामी और अधोमार्गसे अर्थात् दोनों मार्गोंसे गमन करता हो वह कफ और वायु इन दोनों दोषोंसे संसृष्ट होता है। इस कारण प्रतिलोम चिकित्सा हो नहीं सकती और इस प्रकारकी चिकित्सा विरोधी पडती है। इस कारण उभयगामी रक्त पित्त असाध्य होता है॥ १३॥

नहि संशोधनं किञ्चिदस्त्यस्य प्रतिलोमगम्।
शोधनं प्रतिलोमं च रक्तपित्ते भिषग्जितम्१४।
एवमेवोपशमनं सर्वशो नास्य विद्यते।
संसृष्टेषु हि दोषेषु सर्वजिच्छमनं हितम्॥१५॥

रक्तपित्तकी प्रधान चिकित्सा प्रतिलोम शोधन है अर्थात् ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें विरेचन और अधोगामी रक्तपित्तमें वमन कराना हितकारी होता है। परन्तु उभयगामीरक्तपित्तमें कोई भी ऐसा प्रकार नहीं है जिससे प्रतिलोम शोधन कियाजाय इस कारण प्रतिलोम-शोधनाभावसे तो इसकी चिकित्सा करना असाध्य ही है। परन्तु संशमनचिकित्सा करना चाहिये। संशमन चिकित्सा भी सर्वथा उपशम करनेवाली नहीं है। क्योंकि वातजित् चिकित्सा कफको उदीर्ण करती है और कफजित् वायुको उदीर्ण करती है और उभयगत रक्तपित्तमें दोनोंका संसर्ग होता है। इस कारण उभयगामी रक्तपित्तमे तीनों दोषोंको शमन करनेवाले मधुर कषाय आदि रसोंका यथावत् प्रयोगकर शमन करनेका यत्न करना चाहिये॥ १४॥१५॥

रक्तपित्तमें दोषादि निःसरणके लक्षण।

तत्र दोषानुगमनं सिरास्र इव लक्षयेत्।
उपद्रवांश्च विकृतिज्ञानतः॥ १६॥—

रक्तपित्तमें वात पित्त और कफका अनुबंध तथा गति शिरा वेधनके रक्तस्रावमें कहेहुए विधानसे जानना चाहिये। तथा रक्तपित्तमे उपद्रवोंको शारीरस्थानके विकृतिविज्ञानीय अध्यायमें कहेहुए प्रकारसे जानना चाहिये॥ १६॥

कासनिदान।

—तेषु चाधिकम्॥
आशुकारी यतः कासस्तमेवाऽतः प्रवक्ष्यति।
पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः॥
क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम्॥१७॥

रक्तपित्तके सब उपद्रवोंमें कास (खांसी) ही शीघ्र हानि करनेवाली और प्रधान उपद्रव होता है। इस कारण प्रथम कास निदान ही कथन करते हैं। वह कास ५ प्रकारकी होती है–१ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ क्षतसे और ५ क्षयसे। ये सब खांसियें उत्तरोत्तर बलवान् होती हैं जैसे वातसे पित्तकी, पित्तसे कफकी, कफसे क्षतकी और क्षतसे क्षयकी कास विशेष बलवान् होती है और इनकी देरतक चिकित्सा न करनेसे ये सब क्षयको करनेवाली होजाती हैं॥ १७॥

कासके पूर्वरूप।

तेषां भविष्यतां रूपं कण्ठे कण्डूररोचकः।
शूकपूर्णाभकण्ठत्वम्॥ १८॥—

कंठमें खुजली चलना, अरुचि और कंठका शूकोंसे पूर्णसा प्रतीत होना, ये सम्पूर्ण लक्षण कासोंके पूर्वरूपमें होते हैं॥ १८॥

कासरोगकी सम्प्राप्ति।

—तत्राधो विहतोऽनिलः।
ऊर्ध्वं प्रवृत्तः प्राप्योरस्तस्मिन्कन्ठे च संसृजन्॥
शिरःस्रोतांसि सम्पूर्य ततोऽङ्गान्युत्क्षिपन्निव।
क्षिपन्निवाक्षिणी पृष्ठमुरः पार्श्वे च पीडयन्२०॥
प्रवर्तते स वक्त्रेण भिन्नकांस्योपमध्वनिः।
हेतुभेदात्प्रतीघातभेदो वायोः सरंहसः॥
यद्रुजाशब्दवैषम्यं कासानां जायते ततः॥२१।

उन कासोंमें नीचेसे विहतहुआ वायु ऊपरको प्रवृत्त

होकर क्रमसे उरस्थानमें प्राप्त होकर ठहरताहुआ शिर और स्रोतोंको पूर्ण करके अंगोंको उत्क्षेपणसा करता-हुआ तथा पृष्ठ उरस्थान और नेत्रोंको विक्षेपसा करता हुआ तथा दोनों पार्श्वोंको पीडा करताहुआ मुखसे फूटे-हुए कांस पात्रके समान शब्द करते हुए निकलता है।

वायुकी खांसीमें वात प्रकोपके हेतु भेदसे वायुके वेग प्रतिघातमें भी भेद हो जाता है। इस कारण वायुके रोग और शब्द आदिमें विषमता हो जाती है। यही कारण है कि, वायुकी खांसीमें शब्द और पीडादि विषम रीतिके होते हैं और अन्य कासोंमें अन्य प्रकारके होते हैं ॥ १९–२१ ॥

वातकासका निदान।

कुपितो वातलैर्वातः शुष्कोरःकण्ठवक्त्रताम्।
हृत्पार्श्वोरःशिरःशूलं मोहक्षोभस्वरक्षयान्॥२२॥
करोति शुष्कं कासं च महावेगरुजास्वनम्।
सोऽङ्गहर्षीकफंशुष्कंकृच्छ्रान्मुक्त्वाल्पतांव्रजेत्।

वातको कुपितकरनेवाले आहार विहारके सेवनसे कुपितहुआ वायु छाती, कंठ और मुखमें शोषको करता हुआ तथा हृदय, पार्श्व, उरःस्थल और शिरमें शूलको करताहुआ मोह, क्षोभ और स्वरका क्षय करता हुआ, सूखी खांसीको उत्पन्न करता है।. इस खांसीमें वेग, पीडा और शब्द विशेष होते हैं। तथा अंगहर्ष और सूखी कफको मुश्किलसे निकालकर खांसी किंचित् कम हो जाती है। यह वायुकी खांसीके लक्षण हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

पित्तकी खांसीके लक्षण।

पित्तात्पीताक्षिकफता तिक्तास्यत्वं ज्वरो भ्रमः।
पित्तासृग्वमनं तृष्णा वैस्वर्यं धूमको मदः॥२४॥
प्रततं कासवेगेन ज्योतिषामिव दर्शनम् ॥२५॥

पित्तकी खासीमें नेत्र और कफ पीले वर्णके होते हैं तथा मुखका कडुआ होना, ज्वर, भ्रम, रक्तपित्तका मुखसे निकलना, तृषा, स्वरका बिगडना, कंठमें जलन होना, मद, और कासके वेगके समय तारा आदि ज्योतिसी दिखाई देना, ये लक्षण होते हैं॥२४॥२५॥

कफकी खांसीके लक्षण।

कफादुरोऽल्परुङ्मूर्ध्नि हृदयं स्तिमितं गुरु।
कण्ठोपलेपः सदनं पीनसच्छर्द्यरोचकाः।
रोमहर्षो घनस्निग्धश्वेतश्लेष्मप्रवर्तनम् ॥ २६ ॥

कफकी खांसीमें छातीमें अल्प पीडा होना, मस्त-कमें अल्प पीडा होना, हृदयका विबद्ध और भारीसा होना, कंठका लिपायमान होना, अंगसाद, पीनस, छर्दि अरुचि और रोमहर्ष होना तथा घन, स्निग्ध और श्वेत कफका निकलना ये लक्षण होते हैं ॥ २६ ॥

क्षतकासके लक्षण।

युद्धाद्यैः साहसैस्तैस्तैःसेवितैरयथाबलम्॥२७॥
उरस्यन्तःक्षते वायुः पित्तेनानुगतो बली।
कुपितःकुरुते कासं कफं तेन सशोणितम्॥२८॥
पीतं श्यामं च शुष्कं च ग्रथितं कुथितं बहु।
ष्ठीवेत्कण्ठेन रुजता विभिन्नेनेव चोरसा ॥२९॥
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना।
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यकम्पवान्॥ ३० ॥
पारावत इवाकूजन् पार्श्वशूली ततोऽस्य च।
क्रमाद्वीर्यं रुचिः पक्तिर्बलं वर्णश्च हीयते॥३१॥

युद्ध आदिकोंमें अति बल और साहस पूर्वक युद्ध आदि करना, तथा अपने बलसे अधिक भागना, भार उठाना आदि साहस करनेसे उरःस्थलमें क्षत हो जाता है। उस क्षतमें पित्तयुक्त वायु बल प्राप्त करके कुपित हो जाता है। फिर खांसीको उत्पन्न करता है। इस खांसीमें कफ रक्त युक्त, पीले वर्णका, श्याम वर्णका, शुष्क, ग्रथित और कुथित निकलता है तथा बहुत कफ निक-लता है। कंठमें पीडा होती है और छातीमें भेदन-कीसी पीड़ा होती है। जैसे कोई तीक्ष्ण सूइयोंसे छातीमें तोद कर रहा हो इस प्रकारके शूलवाली छातीसे मनुष्य पीड़ित होता है। यह मनुष्य पर्वभेद, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभंग और कम्प इन उपद्रवोंकरके युक्तहुआ कपोतके समान कूजताहुआ पार्श्वशूलसे पीडित होता है। फिर इस मनुष्यके क्रमसे वीर्य, रुचि, पाचनशक्ति, बल और वर्ण ये सब क्षीण होने लगते हैं ॥ २७–३१ ॥

क्षीणस्य सासृङ्मूत्रत्वं स्याच्च पृष्ठकटीग्रहः ३२

यदि मनुष्य बहुत अधिक स्त्रीसंगकरनेसे क्षीण होजाता है तो ऐसे मनुष्यको भी उपरोक्त लक्षणोंवाली खांसी होजाती है तथा मूत्रमें रक्तका आना और पीठ तथा कमरमें पीडाका होना, ये लक्षण अधिक हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

क्षयज कासके लक्षण।

वायुप्रधानाः कुपिता धातवो राजयक्ष्मिणः।
कुर्वन्ति यक्ष्मायतनैः कासं ष्ठीवेत्कफं ततः ;
पूतिपूयोपमं पीतं विस्रं हरितलोहितम् ॥३३॥
लुंच्येते इव पार्श्वे च हृदयं पततीव च।
अकस्मादुष्णशीतेच्छा बह्वाशित्वं बलक्षयः ३४
स्निग्धप्रसन्नवक्त्रत्वं श्रीमद्दर्शननेत्रता।
ततोऽस्य क्षयरूपाणि सर्वाण्याविर्भवन्ति च ॥
इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः ३५

राजयक्ष्मावाले मनुष्यके शरीरमें वात प्रधान दोष यक्ष्माके कारणोंसे प्रकुपित होकर खांसीको उत्पन्न करते हैं। तब मनुष्य दुर्गंधयुक्त पूयके समान पीली, मुर्दे-कीसी गंधवाली, हरित और लोहित वर्णकी कफको थूकने लगता है। इसके दोनों पार्श्व अपने स्थानसे गिरेसे जाते हैं। हृदय निकलासा जाता है। इसको अकस्मात् उष्ण और शीत वस्तुओंकी इच्छा होती है अधिक पदार्थ खानेकी इच्छा होती है। बल क्षीण होताजाता है। मुख स्निग्ध और प्रसन्न प्रतीत होता है। नेत्र और दांत सुन्दर प्रतीत होते हे फिर क्रमसे सब क्षयके रूप प्रकट हो जाते हैं। यह क्षय जनित कास क्षीण पुरुषोंकी देहका नाश कर देती है३३-३५॥

असाध्य कासके लक्षण।

याप्यो वा बलिनां तद्वत् क्षतजोऽभिनवौ तु तौ।
सिध्येतामपि सानाथ्यात् ॥ ३६ ॥-

क्षयजनित कास और क्षतजकास यदि बलवान् मनुष्योंको हो और थोडे दिनोंको हो तथा इस खांसी-वाले मनुष्यके परिचारक और धन आदि सम्पत्ति सब श्रेष्ठ हों तो यह साध्य भी हो सकती है या याप्य होती है अन्यथा मारदेनेवाली होती है ॥ ३६ ॥

साध्यकासके लक्षण।

-साध्या दोषैः पृथक् त्रयः।
मिश्रा याप्या द्वयात्सर्वे जरसा स्थविरस्य च॥३७

वात पित्त और कफकी पृथक्, पृथक् तीनों कास साध्य होती है और मिलेहुए दोषोंकी खांसी याप्य होती है तथा बुढापेकी खांसी भी याप्य होती है३७॥

कासाच्छ्वासक्षयच्छर्दिस्वरसादादयो गदाः।
भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ३८

खांसीकी चिकित्सा न करनेसे श्वास क्षय, छर्दी, और स्वरभेद आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं। इस कारण खांसीकी शीघ्र ही चिकित्सा करदेनाचाहिये अन्यथा श्वासादि उपद्रव होकर असाध्य होनेका भय हो जाता है। इस कारण जब खांसी हो तभी शीघ्र चिकित्सा करके इसको निवृत्त कर देना चाहिये॥३८

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टांगहृदयसहितायां निदानस्थाने रक्तपित्तकासनिदाने पं० शिवशर्मवैद्यशास्त्रिकृत शिवदी-पिका भाषाव्याख्यायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः।

अथाऽतः श्वासहिध्मानिदानं व्याख्यास्यामः।

अब हम श्वास और हिचकीके निदानका कथन करते हैं।

श्वासरोगका निदान।

कासवृद्ध्या भवेच्छ्वासः पूर्वैर्वा दोषकोपनैः।
आमातिसारवमथुविषपाण्डुज्वरैरपि ॥ १ ॥
रजोधूमानिलैर्मर्मघातादतिहिमाम्बुना।
क्षुद्रकस्तमकश्छिन्नो महानूर्ध्वश्च पञ्चमः ॥२॥

खांसी पुराना होकर बढजानेसे अथवा अपने अपने कारणोंसे वातादि दोषोंका प्रकोप होजानेसे तथा आमातिसार, वमन, विष, पाण्डुरोग और ज्वरकी अधिकतासे, गरदेके पड़नेसे, धूमसे, वायुके स्पर्शसे हृदयादि मर्मके अभिघातसे और अतिशीतल जलके अधिक सेवनसे प्रकुपितहुआ दोष क्षुद्र, तमक, छिन्न, महान् और ऊर्ध्व इन पांच प्रकारके श्वासोंको करता है। अर्थात्

क्षुद्रश्वास, तमकश्वास, छिन्नश्वास, महाश्वास और ऊर्ध्वश्वास ये पांच प्रकारके श्वासरोग होते हैं ॥ १-२॥

श्वासरोगकी समाप्ति ।

कफोपरुद्धगमनः पवनो विष्वगास्थितः ।
प्राणोदकान्नवाहीनि दुष्टः स्रोतांसि दूषयन् ॥
उरःस्थः कुरुते श्वासमामाशयसमुद्भवम् ॥ ३॥

कफके द्वारा पवनके वहनकरनेवाली नाड़ियोंके रुक जानेसे सम्पूर्णदेहमें व्यापक होकर स्थितहुआ पवन दुष्ट होकर प्राण जल और अन्नके वहन करनेवाले स्रोतोंको दूषित करताहुआ छातीमे स्थित होकर आमाशयसे पैदाहुए श्वासरोगको उत्पन्न कर देता है ॥ ३॥

श्वासका पूर्वरूप ।

प्राग्रूपं तस्य हृत्पार्श्वशूलं प्राणविलोमता ।
आनाहः शङ्खभेदश्च ॥ ४ ॥-

हृदय पार्श्वमें शूल प्राणवायुके गमनमे विलोमभाव, आनाह और शंखस्थानमें भेदनकीसी पीडा, ये सब लक्षण श्वासरोग होनेसे पूर्व उत्पन्न होजाते है ॥ ४ ॥

क्षुद्रश्वासके लक्षण ।

-तत्रायासातिभोजनैः ।
प्रेरितः प्रेरयेत् क्षुद्रं स्वयं संयमनं मरुत् ॥ ५॥

उनमें व्यायामादि-आयास करनेसे और अतिभोजनसे प्रेरितहुआ पवन क्षुद्रश्वासको उत्पन्न कर देता है । यह क्षुद्रश्वास विनाही चिकित्साके स्वयं शमन हो जाता है । यह व्यायामादि कारणजनित आयाससे अल्पबलवाला और आरामकरनेसे स्वयं शमन होजानेवाला होनेसे क्षुद्रश्वास कहाजाता है ॥ ५ ॥

तमक श्वासके लक्षण ।

प्रतिलोमं सिरा गच्छन्नुदीर्य पवनः कफम् ।
परिगृह्य शिरोग्रीवमुरःपार्श्वे च पीडयन् ॥ ६ ॥
कासं घुर्घुरकं मोहमरुचिं पीनसं तृषम् ।
करोति तीव्रवेगं च श्वासं प्राणोपतापिनम् ॥ ७॥
प्रताम्येत्तस्य वेगेन निष्ठ्यूतान्ते क्षणं सुखी ।
कृच्छ्राच्छयानः श्वसिति निषण्णः स्वास्थ्य-
-मृच्छति॥ ८॥
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमर्तिमान् ।
विशुष्कास्यो मुहुःश्वासी कांक्षत्युष्णं सवेपथुः॥
मेघाम्बुशीतप्राग्वातैःश्लेष्मलैश्च विवर्धते ।
स याप्यस्तमकः साध्यो नवो वा बलिनो भवेत्॥

प्रतिलोम होकर स्रोतोंमें गमन करतेहुए वायु कफको उदीर्ण करके और ग्रहणकरके शिर, ग्रीवा, छाती और पसवाडोंको पीडन करतेहुए घुर्घुरशब्दवाले कास, मोह, अरुचि, पीनस और तृषासे युक्त, प्राणोंको उपतापित करनेवाले, तीव्र वेगवाले श्वासको उत्पन्न कर देता है ।

इस श्वासके वेगसे मनुष्य व्याकुल होकर ससकता है । जब कफ निकलजाय तो क्षण भरकेलिये सुखी होता है । सीधा लेटने पर बडेकष्टसे श्वास लेता है फिर बैठ जानेपर किंचित् शान्तिको प्राप्त होता है । श्वासके वेगमे इसके नेत्र उच्छ्रितसे होजाते है मस्तक पर स्वेद आता है अत्यन्त कष्ट होता है मुख सूख जाता है बारम्बार श्वास चलता है उष्ण चीजोंकी इच्छा करता है और कांपता है ।

यह तमकश्वास मेघोंके समय, वृष्टिके समय शीतल और पूर्वकी वायुसे तथा कफकारक आहारोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है यह तमकश्वास याप्य होता है । यदि बलवान् पुरुषके शरीरमें थोड़े दिनसे हुआ हो तो साध्य होता है ॥ ६-१० ॥

प्रतमकके लक्षण ।

ज्वरमूर्च्छायुतःशीतैःशाम्येत्प्रतमकस्तु सः॥ ११

यदि तमक श्वास ज्वर और मूर्च्छा करके युक्त हो तथा शीतल पदार्थोंके सेवनसे शमन हो तो इस श्वासरोगको प्रतमकश्वास कहते हैं ॥ ११ ॥

छिन्नश्वासके लक्षण ।

छिन्नाच्छ्वसिति विच्छिन्नं मर्मच्छेदरुजार्दितः ।
सस्वेदमूर्च्छः सानाहो बस्तिदाहनिरोधवान् १२॥
अधोदृग्विप्लुताक्षश्च मुह्यन् रक्तैकलोचनः ।
शुष्कास्यः प्रलपन् दीनो नष्टच्छायो विचेतनः॥

छिन्नश्वाससे पीडितहुआ पुरुष कटेहुए श्वासको लेता है । इस श्वासमें हृदयके छेदनकीसी पीड़ासे व्याकुल होजाता है तथा पसीना, मूर्च्छा आनाह और

बस्तिमें दाह करकेयुक्त होता है। मल मूत्रादि वेग रुक जाते है। दृष्टि नीचेको होती है नेत्र निकलसे जाते हैं। बारबार बेहोसी होती है, एक नेत्र लाल होजाता है मुखशोष, प्रलाप, विकलता, प्रभारहित और विचेतनसा हो जाता है। इन लक्षणोंवाले श्वासको छिन्न श्वास कहते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

महाश्वासके लक्षण।

महता महता दीनो नादेन श्वसिति क्रथन्।
उद्धूयमानः संरब्धो मत्तर्षभ इवानिशम्।
प्रणष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रान्तनयनाननः ॥१४॥
बक्षः समाक्षिपन् बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक्।
शुष्ककण्ठो मुहुर्मुह्यन् कर्णशङ्खशिरोऽतिरुक्१५

महाश्वाससे पीडितहुआ मनुष्य व्याकुल होकर किणचता हुआ महाशब्दयुक्त श्वासको लेता है। उस श्वाससे पीडित कपायमान और क्षुभितहुआ पुरुष मतवाले बैलके समान निरन्तर शब्दवाले श्वासको लेता है। इस मनुष्यका ज्ञान विज्ञान नाश होजाता है मुख और नेत्र विभ्रान्त हो जाते हैं वक्षःस्थल श्वास द्वारा बाहर फेंकासा जाता है। मूत्र और मल रुक जाते हैं आवाज फट जाती है, कण्ठ सूख जाता है। बारबार बेहोसी आती है। कान कनपटे तथा शिरमें अत्यन्त पीडा होती है। इन लक्षणोंवाला श्वास महा श्वास कहा जाता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

ऊर्ध्वश्वासके लक्षण।

दीर्घमूर्ध्वं श्वसित्यूर्ध्वान्न च प्रत्याहरत्यधः।
श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥
ऊर्ध्वदृग्वीक्षते भ्रान्तमाक्षिणी परितः क्षिपन्।
मर्मसु च्छिद्यमानेषु परिदेवी निरुद्धवाक् ॥१६॥

ऊर्ध्वश्वाससे पीडित, मनुष्य ऊपरको तो लंबा श्वास लेता है परन्तु उस श्वासको फिर भीतर नहीं खैंच सकता कफसे मुखका स्रोत रुक जाता है कुपित हुई वायुसे पीडित होता है दृष्टि ऊपरको होजाती है नेत्र भ्रम जाते हैं। सम्पूर्ण शरीरको जैसे बाहर फेंका जाता हो ऐसा प्रतीत होने लगता है। हृदयमें छेदन-कीसी पीड़ा होती है दुःखसे पीड़ित होकर वाणी रुक जाती है ॥ १६ ॥

एते सिद्ध्येयुरव्यक्ता व्यक्ताःप्राणहरा ध्रुवम् ॥

इन छिन्नादि श्वासोंमें यदि अव्यक्तावस्थामें अर्थात् पूर्वरूपमें ही चिकित्सा करली जाय तो ये शान्त हो सकते हैं अन्यथा प्रकटलक्षणवाले होजानेसे अवश्य ही प्राणोंके नाश करनेवाले होते हैं ॥ १७ ॥

हिचकीके लक्षण।

श्वासैकहेतुप्राग्रूप-संख्या-प्रकृति-संश्रयाः।
हिध्मा भक्तोद्भवा क्षुद्रा यमला महतीति च।
गम्भीरा च ॥ १८ ॥--

श्वासके समान ही कारण पूर्वरूप संख्या-प्रकृति और आश्रयवाली हिचकी होती है। यह हिचकी अन्नो-द्भवा, क्षुद्रा, यमला, महती और गभीरा ये पाच प्रकारकी होती है ॥ १८ ॥

अन्नजा-हिचकीके लक्षण।

--मरुत्तत्र त्वरयाऽयुक्तिसेवितैः।
रूक्षतीक्ष्णखरासात्म्यैरन्नपानैः प्रपीडितः॥१९
करोति हिध्मामरुजां मन्दशब्दां क्षवानुगाम्।
शमं सात्म्यान्नपानेन या प्रयाति च साऽन्नजा॥

विना युक्तिसे शीघ्र शीघ्र सेवन कियेहुए अन्न पानोंसे तथा रूक्ष, तीक्ष्ण, खर और असात्म्य अन्न पानोंसे पीडितहुआ वायु अन्नजा हिचकीको उत्पन्न करता है। यह हिचकी पीडारहित मन्दशब्दवाली और कभी कभी छींकके साथ आनेवाली होती है तथा सात्म्य अन्नपानके सेवन करनेसे शमन होजाती है ऐसी हिचकीको अन्नजा अथवा भक्तोद्भवा हिचकी कहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

क्षुद्रा-हिचकीके लक्षण।

आयासात्पवनःक्षुद्रः क्षुद्रां हिध्मां प्रवर्तयेत्२१
जत्रुमूलप्रविसृतामल्पवेगां मृदुं च सा।
वृद्धिमायास्यतो याति भुक्तमात्रे च मार्दवम्२२

आयाससे कुपितहुई क्षुद्र पवन क्षुद्रा नामक हिचकीको उत्पन्न करदेती है. यह हिचकी जत्रुमूलसे प्रवृत्त होकर अल्प और मृदुवेगवालीहोती है। इसी

प्रकारका आयास करनेसे वृद्धिको प्राप्त होती है और भोजन करनेसे मन्द पड जाती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

यमलाके लक्षण ।

चिरेण यमलैर्वेगैराहारे या प्रवर्तते ।
परिणामोन्मुखे वृद्धिं परिणामे च गच्छति२३
कम्पयन्ती शिरोग्रीवमाध्मातस्यातितृष्यतः ।
प्रलापच्छर्द्यतीसारनेत्रविप्लुतजृम्भिणः ॥
यमला वेगिनी हिध्मा परिणामवती च सा२४॥

जो हिचकी देरदेरके अनन्तर दो दो वेगोंके साथ आवे और आहारके परिणामकालमें तथा परिणाम होनेके अनन्तर वृद्धिको प्राप्त हो तथा शिर और ग्रीवाको कम्पायमान करतीहुई दो दो वेगोंसे आवे एवं आध्मान, प्यास, प्रलाप, छर्दी, अतिसार, नेत्रोंका बाहरको आना और जंभाई इन लक्षणोंको करे ऐसी हिचकीको यमला अथवा वेगिनी अथवा परिणामवती कहते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

महाहिचकीके लक्षण ।

स्तब्धभ्रूशंखयुग्मस्य सास्रविप्लुतचक्षुषः॥२५
स्तम्भयन्ती तनुं वाचं स्मृतिं संज्ञां च मुष्णती।
रुन्धती मार्गमन्नस्य कुर्वती मर्मघट्टनम् ॥२६॥
पृष्ठतो नमनं शोषं महाहिध्मा प्रवर्तते ।
महामूला महाशब्दा महावेगा महाबला ॥२७॥

जो हिचकी भृकुटी और दोनों शखस्थानोंको स्तब्ध कर देवे नेत्रोंको स्रावयुक्त और विप्लुत कर देवे तथा शरीर और वाणीको स्तम्भित कर देवे स्मृति और ज्ञानको नाश करदेवे, अन्नके मार्गको रोक देवे, हृदयको विघट्टन कर देवे, पीठको नमन करके महा शब्दको करती हुई प्रवृत्त हो मुखशोष करे ऐसी हिचकी महावेगवाली महामूलवाली महाबलवाली और महाशब्दको करनेवाली महतीनामकी हिचकी होती है ॥ २५-२७ ॥

गम्भीरहिचकीका लक्षण ।

पक्वाशयाद्वा नाभेर्वा पूर्ववद्या प्रवर्तते ।
तद्रूपा सा मुहुः कुर्याज्जृम्भामङ्गप्रसारणम् ॥
गम्भीरेणानुनादेन गम्भीरा ॥ २८ ॥-

जो हिचकी नाभि या पक्वाशयसे प्रवृत्त हो तथा महाहिचकीके समान उपद्रवोंवाली हो बारबार जंभाई और अंगोंको प्रसादकरनेवाली हो तथा गंभीर अनुनादिका शब्दकरनेवाली हो ऐसी हिचकीको गंभीरा हिचकी कहते है ॥ २८ ॥

हिचकीका साध्यासाध्य ।

-तासु साधयेत् ।
आद्ये द्वे वर्जयेदन्त्ये सर्वलिङ्गां च वेगिनीम्२९
सर्वाश्च संचितामस्य स्थविरस्य व्यवायिनः ।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य भक्तच्छेदक्षतस्य वा३०

इनमें पहली दो हिचकियें अन्नजा और क्षुद्रा साध्य होती है पिछली महाहिका और गंभीरा ये दोनों असाध्य होती है । तथा सम्पूर्णलक्षणोंवाली यमला हिचकी भी असाध्य होती है ।

जिस मनुष्यके शरीरमें आम संचित हो अतिव्यवायसे क्षीण होगया हो अतिवृद्ध हो अथवा व्याधियोंसे देह क्षीण होगया हो और भोजन करनेकी शक्ति न रहगयी हो और क्षतरोगवाला इन मनुष्योंकी सपूर्ण हिचकियें ही असाध्य होती है ॥ २९ ॥ ३० ॥

सर्वेऽपि रोगा नाशाय नत्वेवं शीघ्रकारिणः ।
हिध्माश्वासौ यथा तौ हि मृत्युकाले कृतालयौ॥

यद्यपि सम्पूर्ण रोगही स्थिरमूल होनेसे नाशके करनेवाले होते हैं परन्तु मृत्युकालमें घर बनायेहुए हिचकी और श्वास जैसे शीघ्र नाश करते है ऐसे दूसरा रोग नहीं करता है। इस कारण हिचकी और श्वासकी शीघ्रही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीते अष्टाङ्गहृदये निदानस्थाने श्वासहिध्मानिदानं पण्डितशिवशर्मवैद्यशास्त्रिकृत शिवदीपिकायां भाषाव्याख्यायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो राजयक्ष्मादिनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब हम राजयक्ष्मा आदिके निदानको कथन करते है । यहां आदिशब्दसे स्वरभेदादिका ग्रहण है ।

राजयक्ष्माके पर्याय।

अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः।
राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति च स्मृतः॥१

अनेक ज्वरादिरोगोंसे परिवृत बहुतसे रोगोंमें प्रधान जो राजयक्ष्मा रोग है इसीको क्षय, शोष और रोगराज भी कहते है॥ १॥

नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा।
यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः॥२
देहौषधक्षयकृतेः क्षयस्तत्संभवाच्च सः।
रसादिशोषणाच्छोषो रोगराट् तेषु राजनात्॥

जिस कारण नक्षत्रोंके और द्विजोंके राजा चन्द्रमाको पहले यह राजरोग हुआ इसलिये इसको राजरोग कहते हैं उक्त कारणसे ही यह राजा यक्ष्मा है अर्थात् यक्ष्मा जो रोग उनमें राजा है इसलिये इसको राजयक्ष्मा कहते है। क्योंकि यह रोग देह और औषधके वीर्यको क्षय कर देनेवाला है इस कारण इसको क्षय कहते है। रसादि धातुओंके शोषण करनेवाला होनेसे इसको शोष कहते है। सम्पूर्ण रोगोंका राजा होनेसे रोगराज कहते हैं॥ २॥ ३॥

राजयक्ष्माकी सम्प्राप्ति।

साहसं वेगसंरोधः शुक्रौजःस्नेहसंक्षयः।
अन्नपानविधित्यागश्चत्वारस्तस्य हेतवः॥ ४॥
तैरुदीर्णोऽनिलः पित्तं कफं चोदीर्य सर्वतः।
शरीरसंधीनाविश्य तान् सिराश्च प्रपीडयन्॥५॥
मुखानि स्रोतसां रुध्वा तथैवातिविवृत्य च।
सर्पन्नूर्ध्वमधस्तिर्यग्यथास्वं जनयेद्गदान्॥६॥

इस राजरोगके चार हेतु हैं. १ जैसे-अपने बलसे अधिक साहस करना, २ मल मूत्रादि वेगोंको रोकना, ३ अति स्त्रीसंगादिसे शुक्र ओज और देहकी चिकनाई आदिका क्षय होना, ४ अन्नपानविधिका त्याग करना। इन उपरोक्त चार कारणोंसे उदीर्णहुआ वायु पित्त और कफको भी सर्वथा उदीर्णकरके शरीरकी सन्धियो और शिराओंसे प्रवेशकर पीड़न करताहुआ स्रोतोंके मुखोंको रोक देता है अथवा अत्यन्त खोल देता है। तब ये तीनों ऊर्ध्व अधः और तिर्यक् गमन करतेहुए शरीरमें अपने अपने स्वभाववाले रोगोंको उत्पन्न कर देते है॥ ४॥ ५॥ ६॥

राजयक्ष्माके पूर्वरूप।

रूपं भविष्यतस्तस्य प्रतिश्यायो भृशं क्षवः।
प्रसेको मुखमाधुर्यं सदनं वह्निदेहयोः॥ ७॥
स्थाल्यमत्रान्नपानादौ शुचावप्यशुचीक्षणम्।
मक्षिकातृणकेशादिपातः प्रायोऽन्नपानयोः८॥
हृल्लासश्छर्दिररुचिरश्नतोऽपि बलक्षयः।
पाण्योरवेक्षा पादास्यशोफोऽक्ष्णोरतिशुक्लता ९
बाह्वोः प्रमाणजिज्ञासा काये बैभत्स्यदर्शनम्।
स्त्रीमद्यमांसप्रियता घृणित्वं मूर्धगुण्ठनम् १०॥
नखकेशातिवृद्धिश्च स्वप्ने चाभिभवो भवेत्।
पतङ्गकृकलासाहिकपिश्वापदपक्षिभिः॥ ११॥
केशास्थितुषभस्मादिराशौ समधिरोहणम्।
शून्यानां ग्रामदेशानां दर्शनं शुष्यतोऽम्भसः॥
ज्योतिर्गिरीणां पततां ज्वलतां च महीरुहाम् १२

राजयक्ष्मा-रोग उत्पन्न होनेसे पहले ये लक्षण हो जाते हैं जैसे प्रतिश्यायकी अधिकता, छींके, मुखसे लार गिरना, मुखका मीठा होना, अग्निका मन्द होना, देहका शून्यसा होना, पात्रमें अन्न पान आदि पवित्र होते हुए भी अपवित्रताकी शंका होना, भोजनमें जल आदिमें मक्षिका तृण केश आदिका गिरना, हृल्लास, छर्दी और अरुचिका होना, अच्छा भोजन करतेहुए भी बलका क्षय होना। प्रायः यह पुरुष अपने हाथोंको विशेष रूपसे देखा करे. पांवोंपर सूजन होना, नेत्रोंका अतिश्वेत होना, यहां पुरुष अपनी बाहुओंकी लम्बाई मोटाई जाननेकी इच्छा करता रहे, अपने शरीरमें बीभत्स चिह्नोंको देखा करे, स्त्री, मद्य और मांससे स्नेह करे, हर मनुष्य और वस्तुको देखकर घृणा करे। मस्तकको ढक लिया करे, अर्थात् हरेक मनुष्यको देखकर घृणासे मुख छिपा लियाकरे, नख केशोंकी अति वृद्धि हो, स्वप्नमें पतंग, कृकलास, सांप, बन्दर, कुत्ता और पक्षियोंसे यह पराजित हो, स्वप्नमें केश अस्थि तुष भस्मादिके ढेरपर चढ़कर बैठे तथा शून्यग्राम जनरहित देश और सूखेहुए जलाशय देखे तथा आकाशसे

ज्योति और पर्वतोंका गिरना देखे, एवं वृक्षोंको स्वप्नमें जलतेहुए देखे इन लक्षणोंवाला मनुष्य शीघ्र ही राजयक्ष्मारोगसे ग्रस्त होजाता है ॥ ७–१२ ॥

यक्ष्माके एकादश लक्षण ।

पीनसश्वासकासांऽसमूर्धस्वररुजोऽरुचिः ॥
ऊर्ध्वं विड्भ्रंशसंशोषावधश्छर्दिश्च कोष्ठगे१३॥
तिर्यक्स्थे पार्श्वरुग्दोषे संधिगे भवति ज्वरः ॥
रूपाण्येकादशैतानि जायन्ते राजयक्ष्मिणः १४

१ पीनस, २ श्वास, ३ कास, ४ अंसमस्तक और स्वरमें रोग अर्थात् अंसताप मस्तकपीडा और स्वरभंग ५ अरुचि ये पांच लक्षण उर्ध्वगत दोषोंद्वारा, तथा १ विट्ध्वंस, २ संशोष, ३ मन्दाग्नि और ४ छर्दी ये चार उपद्रव कोष्ठगतदोषोंद्वारा १ पार्श्वशूल तिरछे सन्धियोंमें गयेहुए दोषद्वारा और १ ज्वर सर्व देहगत दोषोंद्वारा ये ११ रूप राजयक्ष्मामें उत्पन्न हो जाते है ॥ १३ । १४ ॥

तेषामुपद्रवान् विद्यात्कण्ठोद्ध्वंसमुरोरुजम् ।
जृम्भाङ्गमर्दनिष्ठीववह्निसादास्यपूतिता ॥ १५॥

यह ११ रूप उत्पन्न होनेके अनन्तर ७ उपद्रव और होजाते है. जैसे–१ कंठका उध्वंस, २ छातीमे पीड़ा, ३ जृम्भा, ४ अंगमर्द, ५ निष्ठीवन, ६ अग्निमांद्य और ७ मुखसे दुर्गंधि आना इत्यादि ॥१५॥

वातादिभेदसे उपद्रव ।

तत्र वाताच्छिरःपार्श्वशूलमंसाङ्गमर्दनम् ॥१६॥
कण्ठोध्वंसः स्वरभ्रंशः पित्तात्पादांसपाणिषु ।
दाहोऽतिसारोऽसृक्छर्दिर्मुखगन्धोज्वरो मदः१७।
कफादरोचकश्छर्दिः कासो मूर्धाङ्गगौरवम् ।
प्रसेकःपीनसःश्वासःस्वरसादोल्पवह्निता ॥१८॥

राजयक्ष्मामें शिरःशूल, पार्श्वशूल, अंसपीड़ा, अंगमर्द, कंठका उध्वंस और स्वरभंग ये विकार वायुसे होते हैं । हाथपावोंमें और अंसोंमें दाह, अतीसार, रक्तकी छर्दी, मुखसे दुर्गन्ध आना, ज्वर और मद ये पित्तसे होते है । अरुचि, छर्दी, खांसी, मस्तक और अंगोंमें भारीपन, मुहसे लारका गिरना, प्रतिश्याय, श्वास, स्वरका बैठना और मंदाग्नि, ये लक्षण कफसे होते है । इस प्रकार राजयक्ष्मामें त्रिदोषज लक्षण होते है ॥ १६ । १७ । १८ ॥

यक्ष्मामें रसादि धातुओंके क्षीण होनेका कारण ।

दोषैर्मन्दानलत्वेन सोपलेपैः कफोल्बणैः ।
स्रोतोमुखेषु रुद्धेषु धातूष्मस्वल्पकेषु,च॥१९॥
विदह्यमानः स्वस्थाने रसस्तांस्तानुपद्रवान् ।
कुर्यादगच्छन्मांसादीनसृक् चोर्ध्वं प्रधावति२०
पच्यते कोष्ठ एवान्नमन्नपक्त्रैव चाऽस्य यत् ।
प्रायोस्मान्मलतां यातं नैवालं धातुपुष्टये ॥२१।
रसोऽप्यस्य न रक्ताय मांसाय कुत एव तु ।
उपस्तब्धः स शकृता केवलं वर्तते क्षयी॥२२॥

जब यक्ष्मारोगमें मँदाग्नि हो जानेके कारण कफप्रधान वातादिदोष स्रोतोंके मुखोंमें उपलेपको करते हुए रसवाही स्रोतोंके मुखोंको रोक देते है, तब धातु अग्निके स्वल्प होनेके कारण अपने स्थानमेंही विदह्यमानहुआ रस उन उन कंठोध्वंसादि उपद्रवोंको करता है । तब अपने स्थानमें रुककर विदह्यमान रस शुद्ध रक्तको बल नहीं दे सकता । इसी प्रकार रक्तभी विदह्यमान होकर मांसादि धातुओंको पुष्ट न करताहुआ अपनेही स्थानमें विदग्ध होकर ऊर्ध्वगामी हो जाता है । ऐसी अवस्थामें इस पुरुषद्वारा किया हुआ आहार इसके कोष्ठमे जठराग्नि द्वारा जो भी परिपाक होता है वह प्रायः मलरूप ही होकर निकल जाता है । तब यह अन्नरसादि धातुओंको पुष्ट करनेसे समर्थ नहीं हो सकता ।

इसके शरीरका रसभी शुद्ध रक्तको नहीं बना सकता. फिर मांसादिकी पुष्टि तो कैसे हो सकती है ? इस कारण क्षयरोगवाला मनुष्य केवल मलके आश्रय ही अपने अल्प जीवनको व्यतीत करता है ॥ १९-२२ ॥

यक्ष्माके साध्यासाध्य लक्षण ।

लिङ्गेष्वल्पेष्वपि क्षीणं व्याध्यौषधबलाक्षमम् ।
वर्जयेत्–
–साधयेदेव सर्वेष्वपि ततोऽन्यथा ॥ २३ ॥

यदि यक्ष्माके चिह्न शरीरमें थोडे भी हों परन्तु

रोगी इतना क्षीण हो कि व्याधि और औषधके बलको भी न सहन करसके ऐसे रोगीको असाध्य जानकर त्याग देना चाहिये।

यदि यक्ष्माके सम्पूर्ण लक्षण भी प्रतीत हों परन्तु रोगीका शरीर मांस और बल करके युक्त हो तो वह चिकित्सा करनेके योग्य होनेसे साध्य हो सकता है॥२३

स्वरभेदके लक्षण।

दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च क्षयात् षष्ठश्च मेदसा।
स्वरभेदो भवेत् तत्र क्षामो रूक्षश्चलः स्वरः॥२४
शूकपूर्णाभकण्ठत्वं स्निग्धोष्णोपशयोऽनिलात्।
पित्तात्तालुगले दाहः शोष उक्तावसूयनम्॥२५॥

स्वरभेद ६ प्रकारका होता है—१ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ सन्निपातसे, ५ क्षयसे और ६ मेदसे। इनमें वायुके स्वरभेदमें स्वर, क्षाम, रूक्ष और चलस्वभाववाला होता है। तथा मनुष्यका कंठ शूकपूर्णसा प्रतीत होता है तथा ये स्वरभंग स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे अच्छा हो जाता है। इन लक्षणोंवाले स्वरभंगको वातका स्वर भंग जानना।

पित्तके स्वर भंगमें तालु और गलमें दाह तथा शोष होना और वाक्यबोलनेकी असमर्थता होती है २४॥२५

लिंपन्निव कफात्कण्ठं मन्दः खुरखुरायते।
स्वरो विबद्धः-
-सर्वस्तु सर्वलिंगः-
क्षयात्कषेत्॥ २६॥
धूमायतीव चात्यर्थम्-
-मेदसा श्लेष्मलक्षणः।
कृच्छ्रलक्ष्याक्षरश्च-
-अत्र सर्वरतयं च वर्जयेत्॥२७॥

कफके स्वरभंगमें--मुख कफसे लिपायमान होता है। स्वरभेद और विबद्ध होता है कठमें थोडी थोडी खुजलीसी प्रतीति होती है।

सन्निपातके स्वरभंगमें--तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं।

क्षयजनित स्वरभंगमें कंठसे अत्यन्त धूमसा निकलता-हुआ प्रतीत होता है और स्वर विध्वस्तसा होता है।

मेदजनित स्वरभेदमें--गलगलशब्दवाला कष्टसे समझने योग्य शब्द उच्चारण होता है और कफके स्वरभंगकेसे सब लक्षण होते है।

इन छः स्वरभेदोंमें सन्निपात और मेदका स्वरभंग असाध्य होता है। बाकी चार चिकित्सायोग्य होते हे॥ २६। २७॥

अरोचक निदान।

अरोचको भवेद्दोषैर्जिह्वाहृदयसंश्रयैः।
सन्निपातेन मनसः सन्तापेन च पञ्चमः॥२८॥

जब दोष हृदय और जिह्वाके आश्रित होजाते हे तब अरोचक रोगको उत्पन्न करदेते हे. वह अरोचक एक वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ सन्निपातसे और ५ मनके सन्तापसे होता है॥ २८॥

कषायतिक्तमधुरं वातादिषु मुखं क्रमात्।
सर्वोत्थे विरसंशोकक्रोधादिषु यथामलम्॥२९॥

वायुके अरोचकमें मुख कषाय होता है, पित्तके अरोचकमें मुखका स्वाद तिक्त होताहै और कफके अरोचकमें मुख मधुर होता है, सन्निपातसे उत्पन्नहुए अरोचकमें मुख विरस होता है तथा शोक क्रोधादिसे उत्पन्नहुए अरोचकमें मुखका रस यथादोष जानना चाहिये। अन्नपर रुचि न होनेको अरोचक रोग कहते है॥२९॥

छर्दि रोग।

छर्दिर्दोषैः पृथक्सर्वैर्द्विष्टैरर्थैश्च पञ्चमी।
उदानो विकृतो दोषान् सर्वानप्यूर्ध्वमस्यति३०

छर्दि रोग--१ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ सन्निपातसे और ५ द्वेषयुक्त पदार्थोंसे होता है। इस प्रकार वमन रोग ५ प्रकारका होता है।

जब उदानवायु विकृत होकर सम्पूर्ण दोषोंको ऊपरको फेंकती है तब छर्दी (वमन) हो जाती है॥ ३०

तासूत्क्लेशास्यलावण्यप्रसेकारुचयोऽग्रगाः३१॥

उत्क्लेश, मुखसे लारका गिरना और अरुचि, ये लक्षण सम्पूर्ण छर्दियोंके पूर्वरूपमें हो जाते है॥३१॥

वायुके छर्दीके लक्षण।

नाभिपृष्ठं रुजन्वायुः पार्श्वे चाहारमुत्क्षिपेत्।

ततो विच्छिन्नमल्पाल्पं कषायं फेनिलं वमेत् ॥
शब्दोद्गारयुतं कृष्णमच्छं कृच्छ्रेण वेगवत् ।
कासास्यशोषहृन्मूर्धस्वरपीडाक्रमान्वितः॥३२।

जब वायु नाभि पृष्ठ और पार्श्वभागमें पीडाको करतीहुई आहारको मुखद्वारा बाहर फेंकती है तब विच्छिन्न अल्प अल्प कषायरसवाले झागदार वमनको करती है । वायुकी वमनमें उद्गारयुक्त कृष्ण वर्णका अच्छ मल कष्टके साथ और वेगके साथ निकलता है तथा खांसी, मुखशोष, हृदय, मस्तक और कंठमें पीडा तथा क्रम ये लक्षण होते है ॥ ३२ ॥

पित्तकी छर्दीके लक्षण ।

पित्तात्क्षारोदकनिभं धूम्रं हरितपीतकम् ।
सासृगम्लं कटूष्णं च तृण्मूर्छातापदाहवत्३३॥

पित्तकी छर्दीमें क्षारके जलके समान धूम्रयुक्त हरित और पीतवर्णवाला, रक्तयुक्त, थोडा, कटु और उष्ण मल निकलता है तथा छर्दिवाले मनुष्यको प्यास, मूर्च्छा, ताप और दाह ये उपद्रव होते है ॥ ३३ ॥

कफकी छर्दीके लक्षण ।

कफात् स्निग्धं घनं शीतं श्लेष्मतन्तुगवाक्षितम् ।
मधुरं लवणं भूरि प्रसक्तं लोमहर्षणम् ।
मुखश्वयथुमाधुर्यतन्द्राहृल्लासकासवत् ॥ ३४ ॥

कफकी छर्दीमें चिकना,गाढा, शीतल, कफके तन्तुओंसे युक्त, मधुर लवण रस युक्त और बहुत अधिक वमन होती है । तथा लोमहर्ष, मुखपर सूजन, मुखमाधुर्य्य, तन्द्रा, हृल्लास और खांसी ये उपद्रव भी होते है ॥ ३४ ॥

सन्निपातकी छर्दी ।

सर्वलिङ्गा मलैः सर्वैरिष्टोक्ता या च तां त्यजेत्३५

सम्पूर्ण दोषोंसे सम्पूर्ण लक्षणोंवाली छर्दी उत्पन्न होती है । इसका वर्णन शारीरस्थानके विकृति विज्ञानीयाध्यायमें कह आये हैं। यह छर्दी तथा रिष्टरूप जो छर्दी पहले कह आये है इनको त्याग देना चाहिये अर्थात् ये असाध्य हैं ॥ ३५ ॥

द्विष्टार्थ योगज छर्दी ।

पूत्यमेध्याशुचिद्विष्टदर्शनश्रवणादिभिः ।
तप्ते चित्ते हृदि क्लिष्टे छर्दिर्द्विष्टार्थयोगजा॥३६॥

दुर्गन्ध, अमेध्य, अपवित्र और द्वेषयुक्त द्रव्यके देखने और सुनने आदिसे चित्त तपायमान होकर हृदयमें उत्क्लेश होकर जो छर्दी होती है वह द्वेषयुक्त द्रव्यके योगसे उत्पन्नहुई कहीजाती है ॥ ३६ ॥

अन्य छर्दियें ।

वातादीनेव विमृशेत्कृमितृष्णामदौहृदे ।
शूलवेपथुहृल्लासैर्विशेषात् कृमिजां वदेत् ।
कृमिहृद्रोगलिङ्गैश्च ॥ ३७ ॥—

कृमिजनित, तृषाजनित, आमजनित और दौर्हृद जनित (गर्भवतीकी छर्दि,) ये सब छर्दियें वातादि दोषोंके अन्तर्गत ही जाननी चाहिये । किन्तु कृमिजनित छर्दिमें शूल कम्प और हृल्लास विशेष रूपसे होते है । तथा कृमिजनित हृद्रोगकेसे लक्षण होतेहैं ॥३७॥

हृद्रोगके लक्षण ।

—स्मृताः पञ्च तु हृद्गदाः ।
तेषां गुल्मनिदानोक्तैः समुत्थानैश्च सम्भवः ३८

हृद्रोग पांच प्रकारके होते है जैसे—१ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ सन्निपातसे और ५ कृमियोंसे. इनमें सम्पूर्ण हृद्रोगके कारण गुल्मरोगके हेतुओंके समान जानने ॥ ३८ ॥

वायुके हृद्रोगके लक्षण ।

वातेन शूल्यतेऽत्यर्थं तुद्यते स्फुटतीव च ।
भिद्यते शुष्यति स्तब्धं हृदयं शून्यता द्रवः३९॥
अकस्माद्दीनता शोषो भयं शब्दासहिष्णुता ।
वेपथुर्वेष्टनं मोहः श्वासरोधोऽल्पनिद्रता ॥४०॥

वायुके हृद्रोगमें हृदयमें अत्यन्त शूल और तोद होता है तथा हृदयमें फटनेकीसी और भेदनकीसी पीडा होती है । तथा हृदय सूखाहुआ, स्तब्ध, शून्य और द्रवीभूतसा प्रतीत होता है. इस मनुष्यमें अकस्मात् दीनता, सूजन, भय, शब्दके सहनकी शक्ति न होना, कम्प, वेष्टनकीसी पीडा, मोह और श्वासका रुकना तथा निद्राका कम आना ये लक्षण होते है॥३९-४०॥

पित्तके हृद्रोगके लक्षण ।

पित्तात्तृष्णा भ्रमो मूर्छा दाहः स्वेदोऽम्लकः क्लमः
छर्दनं चाम्लपित्तस्य धूमकः पीतता ज्वरः॥४१॥

पित्त हृद्रोगमें प्यास, भ्रम, मूर्च्छा, दाह, पसीनेका आना, खट्टी और जलनवाली डकार आना, व्याकुलता होनी, अम्लपित्तकी छर्दी होना, कंठसे धूमकासा निकलना, नेत्रादिकोंमें पीतता होनी और ज्वर होना ये लक्षण होते हैं ॥ ४१ ॥

कफके हृद्रोगके लक्षण।

श्लेष्मणा हृदयं स्तब्धं भारिकं साश्मगर्भवत्। कासाग्निसादनिष्ठीवनिद्रालस्यारुचिज्वराः ४२

कफके हृद्रोगमें हृदय अकडाहुआसा होता है और पत्थरके गर्भके समान भारी होता है तथा इस मनुष्यको खांसी, मन्दाग्नि, मुखसे लार गिरना, निद्राकी अधिकता, आलस्य, अरुचि और ज्वर ये विकार होते हैं ॥ ४२ ॥

सन्निपातज हृद्रोगके लक्षण।

सर्वलिङ्गस्त्रिभिर्दोषैः ॥ ४३ ॥–

सब दोषोंके लक्षण मिलेहुए होनेसे त्रिदोषज हृद्रोग जानना चाहिये ॥ ४३ ॥

क्रमिजनित हृद्रोगके लक्षण।

–क्रिमिभिः श्यावनेत्रता। तमःप्रवेशो हृल्लासः शोषः कण्डूः कफस्रुतिः। हृदयं प्रततं चात्र क्रकचेनेव दार्यते ॥ चिकित्सेदामयं घोरं तं शीघ्रं शीघ्रकारिणम् ४४

क्रमिजनित हृद्रोगमें अंधकारमें प्रवेश होना, सूखी वमन आना, मुखशोष, हृदयमें कण्डू, कफका मुखसे गिरना, हृदयमें कैंचीसे या आरेसे काटनेकीसी पीडा होना ये लक्षणहोते हैं।

इस घोर व्याधि हृदयरोगकी शीघ्र चिकित्सा करना चाहिये. चिकित्सा न करनेसे यह शीघ्र ही शरीरका नाश करदेता है ॥ ४४ ॥

तृषाके लक्षण।

वातात्पित्तात्कफात्तृष्णा सन्निपाताद्रसक्षयात्। षष्ठी स्यादुपसर्गाच्च ॥ ४५ ॥–

तृषारोग (प्यास)–१ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ सन्निपातसे, ५ क्षयसे और ६ उपसर्गसे होती है। आमोद्भवा आदि वातादिकोंमें आजानेसे तृषाओंके ६ प्रकारसे अधिक कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ४५ ॥

–वातपित्ते तु कारणम्। सर्वासु–

–तत्प्रकोपो हि सौम्यधातुप्रशोषणात्। सर्वदेहभ्रमोत्कम्पतापतृड्दाहमोहकृत् ॥ ४६ ॥

सब प्रकारके तृषाओंमें वातपित्तका प्रक्षेप ही कारण होता है. रसादि सौम्य धातुके शोषण होनेसे वातपित्तका प्रकोप होकर सम्पूर्ण देहमें भ्रम, कम्प, ताप, तृषा, दाह और मोहके करनेवाला होता है ॥ ४६ ॥

जिह्वामूलगलक्लोमतालुतोयवहाः सिराः। संशोष्य तृष्णा जायन्ते ॥ ४७ ॥–

फिर ये वातपित्त दोष जिह्वामूल, गल, क्लोम, तालु और जलके वहन करनेवाली सिराओंको शोषण कर देते हैं तब तृषाकी उत्पत्ति होती है ॥ ४७ ॥

तृषाके सामान्य लक्षण।

–तासां सामान्यलक्षणम्। मुखशोषो जलातृप्तिरन्नद्वेषः स्वरक्षयः ॥ ४८॥ कण्ठौष्ठजिह्वाकार्कश्यं जिह्वानिष्क्रमणं क्लमः। प्रलापश्चित्तविभ्रंशस्तृड्ग्रहोक्तास्तथाऽमयाः ४९

सब तृषाओंमें मुखशोष जल पीनेसे अतृप्ति अन्नद्वेष, स्वरका क्षीण होना, कठ, ओठ, जिह्वाका कर्कश होना जिह्वाका बाहर निकलेसे जाना, क्लम, प्रलाप, चित्तका विभ्रंश और तृषारोकनेसे होनेवाले उपद्रव, जो सूत्रस्थानमें रोगानुत्पादनीय अध्यायमें कह आये हैं यह विकार प्रायः सब प्रकारकी तृषाओंमें आते है ॥ ४८ । ४९ ॥

वायुके तृषाके लक्षण।

मारुतात् क्षामता दैन्यं शंखतोदः शिरोभ्रमः। गन्धाज्ञानास्यवैरस्यश्रुतिनिद्राबलक्षयाः ॥ शीताम्बुपानाद्वृद्धिश्च ॥ ५० ॥–

वायुकी तृषामें स्वरका बैठना, दीनता, कनपटियोंमें तोद, शिरमें चक्कर, गंधज्ञान नाश, मुखमें विरमता, श्रवण शक्तिका ह्रास, निद्रा और बलका क्षय ये लक्षण होते हैं। तथा यह तृषा शीतलजलपान करनेसे और भी वृद्धिको प्राप्त होती है ॥ ५० ॥

पित्तकी तृषाके लक्षण ।

-पित्तान्मूर्च्छास्यतिक्तता ।

रक्तेक्षणत्वं प्रततं शोषो दाहोऽतिधूमकः ९१॥

पित्तकी तृषामें मूर्च्छा, मुखका कडुआहोना, नेत्रोंका लाल होना, मुखका निरन्तर सूखना, दाह होना और कण्ठसे अधिक धूमका निकलनासा प्रतीत होना ये लक्षण होते है ॥ ९१ ॥

कफकी तृषाके लक्षण ।

कफो रुणद्धि कुपितस्तोयवाहिषु मारुतम् ।
स्रोतःसु सकफस्तेनपङ्कवच्छोष्यते ततः ॥
शूकैरिवाचितः कण्ठो निद्रा मधुरवक्रता ।
आध्मानं शिरसो जाड्यं स्तैमित्यच्छर्द्यरोचकाः
आलस्यमविपाकश्च ॥ ९२ ॥-

कफ कुपितहोकर जलके वहन करनेवाले स्रोतोंमें वायुको रोक देता है. तब वह कफ उस रुकेहुए वायुसे शोषण होजाता है जैसे कीचड वायुसे सूखजाता है उसी प्रकार यह कफ भी वायुसे शोषण होजाता है। फिर तृषाको उत्पन्न करता है। इस तृषामें कंठ काँटोंसे युक्तसा प्रतीत होता है, निद्रा अधिक आती है मुख, मीठा होता है अफारा, शिरमें जडता, स्तैमित्य, छर्दी अरुचि, आलस्य और अन्नका परिपाक न होना, ये लक्षण कफकी तृषामें होते हैं ॥ ९२ ॥

सन्निपातकी तृषा ।

-सर्वैः स्यात्सर्वलक्षणा ॥९३॥

सम्पूर्ण दोषोंके लक्षणोंवाली सन्निपातज तृषा होती है ॥ ९३ ॥

अन्य तृषायें ।

आमोद्भवा च भक्तस्य संरोधाद्वातपित्तजा९४॥

आमसे उत्पन्नहोनेवाली तृषा और आहारके संरोधसे उत्पन्नहोनेवाली तृषा वातपित्त जनित होती है॥९४

उष्णक्लान्तस्य सहसा शीताम्भो भजतस्तृषम् ।
ऊष्मा रुद्धो गतः कोष्ठं या कुर्यात्पित्तजैव सा॥
याचपानातिपानोत्था तीक्ष्णाग्नेःस्नेहजा च या

अत्यन्त उष्णतासे व्याकुल हुआ मनुष्य जब सहसा शीतल जल पी लेता है तो वह जल कोष्ठमें जाकर उष्माको रोक देता है वह उष्मा जिस तृषाको उत्पन्न करती है वह पित्तजनित ही जाननी चाहिये । तथा मद्यके अतिपीनेसे जो तृषा उत्पन्न होती है अथवा तीक्ष्णाग्निवालेपुरुषको स्नेहपानजनित जो तृषा उत्पन्न होती है वह भी पित्तकी ही जाननी चाहिये ॥ ९५ ॥

स्निग्धगुर्वम्ललवणभोजनेन कफोद्भवा ॥९६॥

स्निग्ध, भारी, अम्ल और पक्वान्न आदि भोजन करनेसे जो तृषा उत्पन्न होती है उसको कफजनित जानना चाहिये ॥ ९६ ॥

तृष्णा रसक्षयोक्तेन लक्षणेन क्षयात्मिका॥९७॥

क्षयकी तृषा रसके क्षयमें कहेहुए लक्षणोंवाली होती है ॥ ९७ ॥

शोषमोहज्वराद्यन्यदीर्घरोगोपसर्गतः ।
या तृष्णा जायते तीव्रा सोपसर्गात्मिकास्मृता॥

शोष, मोह, ज्वर आदि अन्य दीर्घ रोगोंकी उपसर्गसे जो तीव्र तृषा उत्पन्न होती है उसको उपसर्ग जनित तृषा कहते है ॥ ९८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टाङ्गहृदयसंहितायां निदानस्थाने यक्ष्मादिनिदाने प०शिवशर्म्मवैद्यशास्त्रिकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽतो मदात्ययनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब हम मदात्यय रोगके निदानको कथन करते हैं ।

मदात्ययका निदान ।

तीक्ष्णोष्णरूक्षसूक्ष्माम्लं व्यवाय्याशुकरं लघु ।
विकाशि विशदं मद्यमोजसोऽस्माद्विपर्ययः ॥१॥

मद्य--तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी, आशुकारी, विकाशी और विशद होती है इस कारण मनुष्योंके ओजसे विपरीतगुणवाली होती है ॥ १ ॥

तीक्ष्णादयो विषेऽप्युक्ताश्चित्तोपप्लाविनो गुणाः
जीवितान्ताय जायन्ते विषे तूत्कर्षवृत्तितः ॥२॥

यही तीक्ष्णादि १० गुण विषके भी कहे हैं जो चित्तको बिगाड देनेवाले होते हैं। किन्तु विषमें इन गुणोंकी अधिक उत्कर्ष वृत्ति होनेसे विष जीवनका नाश करदेता है ॥ २ ॥

तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्मद्यं मन्दादीनोजसो गुणान् ।
दशभिर्दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम्३॥
आद्ये मदे--
--द्वितीये स प्रमादायतने स्थितः ।
दुर्विकल्पहतो मूढः सुखमित्यधिमुच्यते ॥ ४ ॥

मद्य--तीक्ष्ण आदि अपने दश गुणोंसे ओजके मन्द शीत आदि विपरीत गुणोंको संक्षोभित करके चित्तको विकृत कर देता है तब मनुष्यको मद होता है।

प्रथम श्रेणीका मद आद्य मद कहाजाता है। इस मदमें मनुष्यका सम्पूर्णरूपसे ज्ञान नष्ट नहीं होता तथा अन्नपर रुचि और काम सुखादिकी प्राप्ति होती है।

दूसरी श्रेणीका मद अर्थात् किंचित् अधिक मद्य पीनेसे जो दूसरे दर्जेका जो मद होता है इस मदमें चित्तकी वृत्तिबिगड़कर मनुष्य प्रमाद करने लगता है दुष्ट विकल्पोंसे उपहत होता है इस मदसे मूढ-हुआ साहस आदिको करताहुआ अपने आपमें सुख मानता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

मध्यमोत्तमयोः संधिं प्राप्य राजसतामसः ।
निरङ्कुश इव व्यालो न किंचिन्नाचरेज्जडः॥५॥
इयं भूमिरवद्यानां दौःशील्यस्येदमास्पदम् ।
एकोऽयं बहुमार्गाया दुर्गतेर्देशिकः परम ॥६॥

दूसरे और तीसरे मदकी संधिमें मनुष्य राजस और तामस गुणोंको प्राप्त होके निरंकुश मत्त हस्तीके समान होकर ऐसे कौन उपद्रव हैं जिनको यह मूर्ख न करसके अर्थात् दूसरे और तीसरे मदकी संधिमें प्राप्तहुआ मतवाला पुरुष ज्ञानरहित होकर अनेक उपद्रवोंको करता है।

अत एव यह मद नालायक पुरुषोंके मदकी भूमि है, दुःशीलताका स्थान है यह एक ही दुर्गुण अनेक सुखके मार्गवाले देशकी परम दुर्गतिका कारण है और सम्पूर्ण सुखोंके नाश करनेवाले दुर्गुणियोंका आचार्य है ॥ ५ ॥ ६ ॥

निश्चेष्टः शववच्छेते तृतीये तु मदे स्थितः ।
मरणादपि पापात्मा गतः पापतरां दशाम्॥७॥

तीसरे मदमें मूढहुआ मनुष्य निश्चेष्ट मुर्देके समान पृथ्वीपर गिरकर शयन करता है । इस मदसे उपहत-हुआ पापात्मा पुरुष मृत्युसे भी अधिक पापतर दशाको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

धर्माधर्मं सुखं दुःखमर्थानर्थं हिताहितम् ।
यदासक्तो न जानाति कथं तच्छीलयेद्बुधः॥८॥

जिस मद्यके सेवनसे धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, अर्थ अनर्थ, हित और अनहित इन किसीका भी ज्ञान न रखसके ऐसी पापशील मद्यको कौन बुद्धिमान् पुरुष सेवन कर सकता है अर्थात् कोई नहीं ॥ ८ ॥

मद्ये मोहो भयं शोकः क्रोधो मृत्युश्च संश्रिताः।
सोन्मादमदमूर्छायाः सापस्मारापतानकाः॥९॥
यत्रैकः स्मृतिविभ्रंशस्तत्र सर्वमसाधु यत् ।
अयुक्तियुक्तमन्नं हि व्याधये मरणाय वा ॥
मद्यं त्रिवर्गधीधैर्यलज्जादेरपि नाशनम् ॥१०॥

मद्यमें--मोह, भय, शोक, क्रोध और मृत्यु स्थित रहते हैं तथा उन्माद, मद, मूर्छा अपस्मार और अपतानक आदि रोग स्थित रहते हैं। जिस मद्यमें यह मोह भयादि अनेक दुष्ट उपद्रव रहते हैं और इनके अतिरिक्त एक स्मृतिभ्रंश अर्थात् ज्ञाननाश रहता है उसमें सब बुरी बात ही रहती है ।

विना युक्तिसे सेवन कियाहुआ अन्न भी रोग अथवा मृत्युका कारण हो जाता है फिर जो मद्य धर्म, अर्थ, काम, बुद्धि, धैर्य और लज्जा आदि सबके नाश करनेवाली है उसका अयुक्तिसे सेवन करना तो कितना हानिकारक हो सकता है उसका कहना ही क्या ॥ ९ ॥ १० ॥

नातिमाद्यन्ति बलिनः कृताहारा महाशनाः११
स्निग्धाः सत्त्ववयोयुक्ता मद्यनित्यास्तदन्वयाः।
मेदःकफाधिका मन्दवातपित्ता दृढाग्नयः ॥१२॥

बलवान् पुरुष जिसने आहार करलिया हो और बहुत खानेवाला हो, अत्यन्त स्निग्धशरीरवाला, सत्त्व और अवस्था करके युक्त, मद्यपीनेवालेके वंशमें उत्पन्न-

हुआ, नित्य मद्यके अभ्यासवाला, मेद और कफकी अधिकतावाला, मन्द वातपित्तवाला और अधिक दृढ अग्निवाला मनुष्य यदि उचित मद्यका सेवन करे तो उसको मद्य अधिक मद नहीं करती ॥ ११॥१२ ॥

विपर्ययेऽतिमाद्यन्ति विश्रब्धाः कुपिताश्च ये ।
मद्येन चाम्लरूक्षेण साजीर्णे बहु नाति च१३॥

इससे विपरीतगुणवाले पुरुषोंको मद्य अपने तीक्ष्णादिगुणोंसे अधिक मदको करदेती है तथा जो मनुष्य मद्यपीनेवाले नहीं उनको झूंठे गुण गाकर मद्य पिलाया जाय अथवा कुपित पुरुषोंको मद्य पिलायाजाय अथवा अजीर्णमें या अधिक मात्रामें मद्य पान कराया जाय अथवा अम्ल रूक्ष पदार्थोंके साथ मद्य पिलाया जाय तो वह मद्य अधिक मदको करती है ॥१३॥

मदात्ययके चार भेद ।

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैश्चत्वारः स्युर्मदात्ययाः ।
सर्वेऽपि सर्वैर्जायन्ते व्यपदेशस्तु भूयसा॥१४॥

मदात्ययरोग-वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे, चार प्रकारका होता है । यद्यपि सम्पूर्ण मदात्ययोंमें त्रिदोषका ही कोप होता है परन्तु दोषके उत्कर्षसे उनके चार प्रकारके भेद किये गये हैं ॥ १४ ॥

मदात्ययके सामान्य लक्षण ।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रमोहो हृदयव्यथा ।
विड्भेदः प्रततं तृष्णा सौम्याग्नेयो ज्वरोऽरुचिः।
शिरःपार्श्वास्थिहृत्कम्पो मर्मभेदस्त्रिकग्रहः ।
उरोविबन्धस्तिमिरं कासः श्वासःप्रजागरः१६॥
स्वेदोऽतिमात्रं विष्टम्भः श्वयथुश्चित्तविभ्रमः ।
प्रलापच्छर्दिरुत्क्लेशो भ्रमो दुःस्वप्नदर्शनम्१७॥

मदात्यय रोगमें मोह (गस पड़ना) हृदयमें व्यथा, पतले दस्त आना, निरन्तर तृषा, शीत या दाहवाला ज्वर होना, अरुचि, शिरःकम्प, पार्श्वकम्प, अस्थिकम्प, हृत्कम्प, हृदयमें पीड़ा, त्रिकस्थानका अकड़जाना, छातीका बंधेहुए और भारीसा होना, नेत्रोंके आगे अंधकार होना, खांसी, श्वास, नींदका न आना, अत्यन्त पसीना निकलना, मलका रुकना, सूजन, चित्तका विभ्रम, प्रलाप, छर्दी, जी मचलाना, भ्रम और बुरे स्वप्नोंका दिखाई देना ये लक्षण सामान्यरूपसे होते हे ॥ १५ । १६ । १७ ॥

वायुके मदात्ययके लक्षण ।

विशेषाज्जागरश्वासकम्पमूर्धरुजोऽनिलात् ।
स्वप्ने भ्रमत्युत्पतति प्रेतैश्च सह भाषते ॥ १८ ॥

वायुके मदात्ययमें सामान्यलक्षणोंके अतिरिक्त ये विशेष लक्षण होते हे. जैसे-नींदका न आना, श्वास, कम्प, मस्तकपीडा, सोते सोते भ्रमका होना, या उठकर गिर जाना, अथवा स्वप्नमें आकाश आदिमें गमन करना, गिरना और प्रेतोंसे भाषण करना ये लक्षण होते हैं ॥ १८ ॥

पित्तके मदात्ययके लक्षण ।

पित्ताद्दाहज्वरस्वेदमोहातीसारतृड्भ्रमाः ।
देहो हरितहारिद्रो रक्तनेत्रकपोलता ॥ १९ ॥

पित्तके मदात्ययमें दाह,ज्वर, पसीनेका आना, मोह अतीसार, प्यास और भ्रम होते हे तथा देहका हरित या पीतवर्ण होना, नेत्र और कपोलोंका लालवर्ण हो जाना ये लक्षण होते हे ॥ १९ ॥

कफ और सन्निपातके मदात्ययोंके लक्षण ।

श्लेष्मणश्छर्दिहृल्लासनिद्रोदर्दाङ्गगौरवम् ।
सर्वजे सर्वलिङ्गत्वम् ॥ २० ॥-

कफके मदात्ययमें छर्दी, हृल्लास, निद्राकी अधिकता,उदर्दरोग, तथा अंगोंमें भारीपन ये लक्षण होते हे ।

सन्निपातके मदात्ययमें सब दोषोंके मिलेहुए लक्षण होते हे ॥ २० ॥

ध्वंसक और विक्षय रोग निदान ।

-मुक्त्वा मद्यं पिबेत्तु यः ।
सहसाऽनुचितं चान्यत्तस्य ध्वंसकविक्षयौ ।
भवेतां मारुतात्कष्टौ दुर्बलस्य विशेषतः ॥२१॥

जो मनुष्य मद्यको बहुत काल त्याग दे फिर सहसा अनुचितरूपसे पीना आरम्भ करदे उसको वायुकी अधिकतासे ध्वंसक और विक्षय नामक कष्टदायक व्याधियां उत्पन्न होजाती हैं । ये व्याधियां दुर्बलको विशेषरूपसे होती हैं ॥ २१ ॥

ध्वंसके श्लेष्मनिष्ठीवः कण्ठशोषोऽतिनिद्रता ।
शब्दासहत्वं तन्द्रा च--
--विक्षयेऽङ्गशिरोतिरुक् ।
हृत्कण्ठरोगः संमोहःकासस्तृष्णा वमिर्ज्वरः२२

ध्वंसकरोगमें कफका थूकना, कंठका सूखना, निद्राका अधिक आना, शब्दको सहन न करसकना तथा तन्द्रा ये लक्षण होते हैं ।

विक्षयरोगमें अंगोंमें और शिरमें अत्यन्त पीड़ा होती है और हृदय कंठमें रोग उत्पन्न होजाते हैं तथा मूर्च्छा, खांसी, तृषा, वमन और ज्वर ये उत्पन्न हो जाते है ॥ २२ ॥

बुद्धिपूर्वकमद्यत्यागका फल ।

निवृत्तो यस्तु मद्येभ्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकृत् ।
विकारैःस्पृश्यते जातु न स शारीरमानसैः॥२३॥

जो जितात्मा मनुष्य बुद्धिपूर्वक मद्यका त्यागकर देता है उसको कभी भी शारीरिक और मानसिक विकार स्पर्श नहीं कर सकते ॥ २३ ॥

मदादिरोग ।

रजोमोहाहिताहारपरस्य स्युस्त्रयो गदाः ॥२४॥
रसासृक्चेतनावाहि-स्रोतोरोधसमुद्भवाः ।
मदमूर्च्छायसंन्यासा यथोत्तरबलोत्तराः ॥२५॥

रजोगुणकी अधिकतावाले, मोहरोगवाले तथा अहित आहार विहार करनेवाले मनुष्यके शरीरमें रस रक्त और चेतनाके वहनकरनेवाले स्रोतोंके अवरोधसे उत्पन्नहुए ३ प्रकारके रोग होते है. जैसे--१ मद, २ मूर्च्छा, ३ संन्यास ये तीनों रोग उत्तरोत्तर बलवान् होते हैं. जैसे--मदसे मूर्च्छा और मूर्च्छासे संन्यासरोग अधिक बलवान् और हानिकारक होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

मदके भेद ।

मदोऽत्र दोषैः सर्वैश्च रक्तमद्यविषैरपि ॥ २६ ॥

मदरोग--१ वात, २ पित्त, ३ कफ, ४ सन्निपात, ५ रक्त, ६ मद्य और ७ विषसे. इस प्रकार सात भेदोंवाले होते हैं ॥ २६ ॥

वातादि--भेदसे मदके लक्षण ।

सक्तानल्पद्रुताभाषश्चलः स्खलितचेष्टितः ॥
रूक्षश्यावारुणतनुर्मदे वातोद्भवे भवेत् ।
पित्तेन क्रोधनो रक्तपीताभः कलहप्रियः॥२७॥
स्वल्पासम्बद्धवाक्पाण्डुःकफाद्ध्यानपरोऽलसः।
सर्वात्मा सन्निपातेन--
--रक्तात्स्तब्धाङ्गदृष्टिता ॥ २८॥
पित्तलिङ्गं च--
--मद्येन विकृतेहास्वराङ्गता ।
विषे कम्पोऽतिनिद्रा च सर्वेभ्योऽभ्यधिकस्तु सः
लक्षयेल्लक्षणोत्कर्षाद्वातादीन् शोणितादिषु॥२९

वायुसे उत्पन्नहुए मदमें मनुष्यका बोलना, अकड़ा हुआ बहुत और जल्दी जल्दी होता है तथा उसकी सब चेष्टायें चलायमान और स्खलित होती है तथा शरीरका वर्ण, रूक्ष, श्याव और अरुण होता है ।

पित्तके मदमें मनुष्य अधिक क्रोधवाला लाल और पीले नेत्रोंवाला तथा हर समय कलह करनेवालाहोताहै ।

कफके मदमें जो बात कहे सो थोडी और असम्बन्ध बोले, ध्यानसा लगाये रहे, आलसी हो और शरीरका वर्ण पाण्डु हो. ये लक्षण होते हैं ।

सन्निपातके मदमें तीनों दोषोंके मिलेहुए लक्षण होते हैं।

रक्तके मदमें अंग और दृष्टी अकडे हुएसे हों तथा पित्तके मदवाले सारे लक्षण होते है ।

मद्यके मदमें विकृतरूपसे हँसना स्वर और अंगोंका विकृत होना ये लक्षण होते है ।

विषके मदमें कम्प और अति निद्रा होती है यह मद सम्पूर्ण मदोंसे अधिक हानिकारक होता है ।

रक्त और विषके मदमें वातादि दोषोंका विचार दोषोंकी उत्कर्षतासे जानना चाहिये ॥ २७-२९ ॥

वात मूर्च्छाका लक्षण ।

अरुणं कृष्णनीलं वा खं पश्यन्प्रविशेत्तमः॥३०
शीघ्रं च प्रतिबुध्येत हृत्पीडा वेपथुर्भ्रमः ।
कार्श्यं श्यावारुणाछाया मूर्छाये मारुतात्मके३१

वायुसे उत्पन्नहुई मूर्च्छासे मनुष्य मूर्छित होते समय अरुण कृष्ण अथवा नीलवर्णके आकाशको देखते हुए अन्धकारमें प्रवेश करता है और शीघ्रही चैतन्य होजाता है इस मनुष्यके हृदयमें पीडा, शरीरमें कम्प,

भ्रम, कृशता, शरीरका वर्ण काला या लाल होना ये लक्षण होते है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

पित्तकी मूर्च्छाका लक्षण ।

पित्तेन रक्तं पीतं वा नभः पश्यन् विशेत्तमः ।
विबुध्येत च सस्वेदो दाहतृट्तापपीडितः ॥
भिन्नविण्नीलपीताभो रक्तपीताकुलेक्षणः॥३२।

पित्तकी मूर्च्छामें मनुष्य लाल और पीले वर्णके आकाशको देखताहुआ अन्धकारमें प्रवेश करता है। जब मूर्च्छा निवृत्त होकर होश आवे तो शरीरमेंसे पसीना निकलता हो तथा यह मनुष्य दाह प्यास और तापसे पीडित हो पतले दस्त आते हों नील और पीतसा वर्ण शरीरका हो जाय नेत्र लाल, पीले और व्याकुलसे हों ये लक्षण होते हैं ॥ ३२ ॥

कफकी मूर्च्छाके लक्षण ।

कफेन मेघसंकाशं पश्यन्नाकाशमाविशेत् ॥३३।
तमश्चिराच्च बुध्येत सहृल्लासः प्रसेकवान् ।
गुरुभिः स्तिमितैरङ्गैरार्द्रचर्मावनद्धवत् ॥ ३४ ॥

कफकी मूर्च्छामें मेघोंसे भरेहुए आकाशको देखता हुआ अन्धकारमें प्रवेश करता है और बहुत देरमें चैतन्य होता है तथा हृल्लास मुखसे लार गिरना, गीली चर्मसे वेष्टितके समान और भारी शरीरके अंगोंका होना ये लक्षण होते है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

त्रिदोषज मूर्च्छाके लक्षण ।

सर्वाकृतिस्त्रिभिर्दोषैरपस्मार इवाऽपरः ।
पातयत्याशु निश्चेष्टं विना बीभत्सचेष्टितैः॥३५॥

तीनों दोषोंकी मूर्च्छामें तीनों दोषोंके मिलेहुए लक्षण होते हैं। इस मूर्च्छामें अपस्माररोगके समान मनुष्य निश्चेष्ट होकर गिर जाता है। यह त्रिदोषज मूर्च्छा मृगीरोगके समान ही होती है परन्तु मृगीरोगके समान मुखादिकी चेष्टा बीभत्स नहीं होती ॥ ३५ ॥

संन्यास रोगके लक्षण ।

दोषेषु मदमूर्च्छायाः कृतवेगेषु देहिनाम् ।
स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना ।३६

मनुष्योंके शरीरमें मद और मूर्च्छारोगमें दोष अपना वेग करनेके अनन्तर स्वयं शान्त होजाते हैं। अर्थात् दोषोंके वेगके अनन्तर मद और मूर्च्छाकी स्वयं निवृत्ति हो जाती है परन्तु संन्यासरोग औषधिके शीघ्र प्रयोगके विना निवृत्त नहीं होता ॥ ३६ ॥

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः ।
संन्यासं सन्निपतिताः प्राणायतनसंश्रयाः ३७॥
कुर्वन्ति तेन पुरुषः काष्ठभूतो मृतोपमः ।
म्रियेत शीघ्रं शीघ्रं चेच्चिकित्सा न प्रयुज्यते३८

संन्यासरोगमें अत्यन्त बलवाले वातादि दोष प्राणोंके स्थानमें स्थितहुए वाणी, देह और मनकी चेष्टापर आक्षेप करके तीनों मिलकर संन्यासरोग उत्पन्न करदेते हे। इस रोगसे पीडित मनुष्य लकडीके समान गिराहुआ और मरेहुए मनुष्यके समान सर्वथा निश्चेष्ट हो जाता है. यदि इस रोगमें शीघ्र चिकित्सा न की जाय तो यह रोगी शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अगाधे ग्राहबहुले सलिलौघ इवातटे ।
संन्यासे विनिमज्जन्तं नरमाशु निवर्तयेत्॥३९॥

जैसे बहुतसे मगर मच्छोंवाले अगाध जलके तटमें गिरे हुए मनुष्यको बहुत जल्दी निकाल लेना चाहिये उसी प्रकार संन्यास रोगमें डूबतेहुए मनुष्यको भी शीघ्र ही उद्धार करलेना चाहिये ॥ ३९ ॥

अयुक्ति और युक्तिका मद्यपान ।

मदमानरोषतोष-
प्रभृतिभिररिभिर्निजैः परिष्वङ्गः ।
युक्तायुक्तं च समं
युक्तिवियुक्तेन मद्येन ॥ ४० ॥

युक्तिसे मद्यपान करनेसे मान और संतोष आदिकोंसे सयोग होता है और अयुक्तियुक्त मद्य पीनेसे मद और रोष आदि दुर्गुणवाले रोगरूपी शत्रुओंसे संयोग होता है। इस प्रकार मद्य सेवनमें दोनों ओर समानता है, किन्तु अयुक्तिपूर्वक मद्य पीनेसे रोगरूपी शत्रुओंसे ही अतिसंग होता है ॥ ४० ॥

युक्तियुक्तमद्य सेवन ।

बलकालदेशसात्म्य-
प्रकृतिसहायामयवयांसि ।

प्रविभज्य तदनुरूपं
यदि पिबति ततः पिबत्यमृतम् ॥ ४१ ॥

यदि मनुष्य बल, काल, देश, सात्म्य, प्रकृति, सहायता, रोग, अवस्था आदि सम्पूर्ण अशोंपर विचारकर तदनुरूपगुणवाली मद्यको उचितमात्राके साथ सेवन करता है उसको मद्य अमृतके समान गुणकारी होती है। परन्तु इसमें विपरीत मद्यसेवनसे विषप्रयोगके समान हानि होकर शरीरका नाश होजाता है। इस कारण बल काल आदि और रोग अवस्था आदि विना विचार किये अनुचितरूपपर मद्यपान नहीं करना चाहिये॥ ४१

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां निदानस्थाने मदात्ययरोगनिदानं षष्ठशाखि प. शिवशर्म्मकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथाऽर्शसां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब हम अर्शरोग (बवासीर) के निदानका कथन करते हैं:-

अर्शकी निरुक्ति ।

अरिवत्प्राणिनो मांसकीलका विशसन्ति यत्।
अर्शांसि तस्मादुच्यंते गुदमार्गनिरोधतः॥ १ ॥

जैसे मनुष्यको अरि रोककर कष्ट देता है उसी प्रकार मांसकीलक (मस्से) गुदाके मार्गको रोककर कष्टदेनेवाले होते हैं इस कारण इनको अर्श कहाजाता है ॥ १ ॥

अर्शके सामान्य लक्षण ।

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन्।
मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वंत्यर्शांसि तान् जगुः २

वातादिदोष त्वचा, मांस और मेदको दूषितकर अनेक आकृतिवाले मांसके अंकुर गुदाकी त्रिवलीमें उत्पन्न कर देते हैं उनको अर्श कहते हैं ॥ २ ॥

अर्शके दो भेद ।

सहजन्मोत्तरोत्थानभेदाद्द्वेधा समासतः ।
शुष्कस्राविविभेदाच्च ॥ ३ ॥-

अर्श सहज और जन्मके उत्तरकाल होनेसे दो प्रकारकी होती है। तथा सूखी और स्राववाली होनेसे भी दो प्रकारकी होती है ॥ ३ ॥

गुदका प्रमाण ।

-गुदः स्थूलान्त्रसंश्रयः ॥
अर्धपंचांगुलस्तास्मिंस्तिस्रोऽध्यर्धांगुलाःस्थिताः
वल्यः प्रवाहिणी तासामंतर्मध्ये विसर्जनी ॥४॥
बाह्या संवरणी तस्या गुदोष्ठो बहिरंगुले ।
यवाध्यर्धप्रमाणेन रोमाण्यत्र ततः परम् ॥ ५ ॥

गुदा स्थूलान्त्रके साथ सम्बन्ध रखती है। स्थूलान्त्रका अपानके मुखवाला भाग साढेपांच अंगुल लम्बा गुदस्थान कहाजाता है। उसमें डेढ डेढ अंगुलके अन्तरमें ३ वलियें होती हैं। पहली वलीका नाम प्रवाहिणी है उसके नीचे विसर्जिनी है विसर्जिनीसे नीचे बाहरके भागमें संवरणी नामक वली है उस वलीसे एक अंगुल बाहरकी तरफ गुदोष्ठ होता है। गुदोष्ठ डेढ यव प्रमाण होता है इसके बाहर फिर रोम आरम्भ होजाते हैं यह तीन वलियें अर्शका स्थान होती हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

सहज अर्श ।

तत्र हेतुः सहोत्थानां वलीबीजोपतप्तता ।
अर्शसां बीजतप्तिस्तु मातापित्रपचारतः॥ ६ ॥
दैवाच्च ताभ्यां कोपो हि सन्निपातस्य तान्यतः।
असाध्यान्येवमाख्याताःसर्वे रोगाः कुलोद्भवाः।
सहजानि विशेषेण रूक्षदुर्दर्शनानि च ।
अन्तर्मुखानि पाण्डूनि दारुणोपद्रवाणि च॥ ७ ॥

इन सहज और जन्मोत्तरकाल भेदोंवाली अर्शोमें सहज अर्शका कारण वलिवाले बीजके अंशमें दोषका उपतप्त होता है। इस अर्शके बीजकी तप्ति मातापिताके अपचारसे होती है अथवा प्रारब्धसे और मातापिताके अपचारसे सहज अर्शकी उत्पत्ति होती है इसी कारण सहज अर्श त्रिदोषज होते हैं और असाध्य होते हैं। अर्शके अतिरिक्त अन्यरोग भी जो वंशपरम्परासे अथवा बीजदोषसे चलेआते हैं वह असाध्य होते हैं।

सहज अर्शके मांसाङ्कुर विशेषतासे रूक्ष देखनेमें दुर्दर्श, अन्तर्मुखवाले, पाण्डु वर्णके और दारुण उपद्रवोंवाले होते हैं ॥ ७ ॥

अर्शके छः भेद ।

षोढान्यानि पृथग्दोषसंसर्गनिचयास्रतः ॥८॥

अर्शरोग—१ वात, २ पित्त, ३ कफ, ४ द्वन्द्वज, ५ सन्निपातज और ६ रक्तज इन भेदोंमें ६ प्रकारके होते है ॥ ८ ॥

शुष्काणि वातश्लेष्मभ्यामार्द्राणि त्वस्रपित्ततः॥९

इनमें कफ और वायुके सूखे मांसाङ्कुर (मस्से) होते हैं और रक्तपित्तके गीले मांसाङ्कुर होते हैं ॥९॥

दोषप्रकोपहेतुस्तु प्रागुक्तस्तेन सादिते ।
अग्नौ मलेऽतिनिचिते पुनश्चातिव्यवायतः॥१०॥
यानसंक्षोभविषमकठिनोत्कटकासनात् ।
बस्तिनेत्राश्मलोष्ठोर्वीतलचैलादिघट्टनात्॥११॥
भृशं शीताम्बुसंस्पर्शात्प्रततातिप्रवाहणात् ।
वातमूत्रशकृद्वेगधारणात्तदुदीरणात् ॥ १२ ॥
ज्वरगुल्मातिसारामग्रहणीशोफपाण्डुभिः ।
कर्षणाद्विषमाभ्यश्च चेष्टाभ्यो योषितां पुनः१३
आमगर्भप्रपतनाद्गर्भवृद्धिप्रपीडनात् ।
ईदृशैश्चापरैर्वायुरपानः कुपितो मलम् ॥ १४॥
पायोर्वलीषु सन्धत्ते तास्वभिष्यण्णमूर्तिषु ।
जायन्तेऽर्शांसि ॥ १५ ॥—

दोषोंके प्रकोपके हेतु पहले कहआये है उन मिथ्या आहार विहारादिके कारण संचितहुए दोषों द्वारा अग्निके मन्द हो जानेपर आहारका यथार्थ परिपाक न होकर मलका संचय होजाता है. फिर अति स्त्रीसंगसे, शीघ्रगामी यानके संक्षोभसे, विषम कठिन और उत्कट आसनपर बैठनेसे, बस्तिके नेत्रसे, अथवा पत्थरसे, अथवा डलेसे, अथवा दूषित कपडे आदिके टुकडेसे गुदाद्वारका घर्षण करनेसे तथा अत्यन्त शीतल जलके संस्पर्शसे अथवा निरन्तर प्रवाहण (किनछना) करनेसे वात, मूत्र और मलके वेगको रोक रखनेसे या बलपूर्वक विना आयेहुये वेगको निकालनेका यत्न करनेसे अथवा ज्वर, गुल्म, अतिसार, आमविकार, ग्रहणीविकार, सूजन और पाण्डुरोग आदिके देरतक रहनेसे, वमन विरेचनादि द्वारा शरीरके कर्षण करनेसे, पंचकर्मका विषमोपचार होनेसे या विषम चेष्टाके करनेसे पुरुषोंके शरीरमें अपानवायु प्रकुपित होकर गुदाकी वलीमें दोषोंका सचय करदेती है । उससे गुदाकी त्रिवली दूषित होकर उसमें अर्शके अंकुर पैदा होजाते है ।

स्त्रियोंको इन उपरोक्त मिथ्या विहारादिकोंके अतिरिक्त कच्चे गर्भके गिर जानेसे या गर्भकी वृद्धिके कारण नाडियोंमें पीडा होनेसे गुदाकी त्रिवलीमें अर्शके अंकुर उत्पन्न हो जाते है ॥ १०-१५ ॥

अर्शके पूर्वरूप ।

—तत्पूर्वलक्षणं मन्दवह्निता ॥
विष्टम्भः सक्थिसदनं पिण्डिकोद्वेष्टनं भ्रमः ।
सादोऽङ्गे नेत्रयोःशोफःशकृद्भेदोऽथवा ग्रहः१६।
मारुतः प्रचुरो मूढः प्रायो नाभेरधश्चरन् ।
सरुक् सपरिकर्तश्च कृच्छ्रान्निर्गच्छति स्वनन्१७
अन्त्रकूजनमाटोपः क्षामतोद्गारभूरिता ।
प्रभूतं मूत्रमल्पा विट् श्रद्धा धूमकोऽम्लकः॥१८
शिरःपृष्ठोरसां शूलमालस्यं भिन्नवर्णता ।
तथेन्द्रियाणां दौर्बल्यं क्रोधो दुःखोपचारता ।
आशङ्का ग्रहणीदोषपाण्डुगुल्मोदरेषु च॥१९॥

अर्शरोग जब उत्पन्न होनेवाला होता है तो उसके पूर्वरूपमें ये लक्षण हो जाते है. जैसे-मंदाग्नि, विष्टम्भ, सक्थिप्रसाद, पिंडलियोंका उद्वेष्टन, भ्रम, अंगोंका शून्यसा होना, नेत्रोंपर सूजन, मलका फटकर आना या रुक जाना, वायुका विशेष रूपसे मूढ होकर प्रायः नाभिके अधोभागमें विचरना, शूल, परिकर्तिकायुक्त कष्टके साथ शब्द करतेहुए निकलना, अन्त्रकूजन, आटोप, स्वरका मन्द होना, उद्गारकी अधिकता होना, मूत्रकी अधिकता, मलका कम आना, अनेक रसोंपर इच्छा होना, कण्ठसे धूआंसा निकालना, खट्टी डकार आना, शिर, पीठ और छातीमें पीडा प्रतीत होना, आलस्य, वर्णका बदलना, इन्द्रियोंमें दुर्बलता, क्रोध, चिकित्सा करानेमें दुःख मानना या शरीरसम्बन्धी कृत्योंके करनेमें कष्ट मानना तथा ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, गुल्मरोग और उदररोगकीसी शङ्का होना ये लक्षण अर्शरोगके पूर्वरूपमें हो जाते है ॥ १६-१९ ॥

अर्शके सामान्य रूप ।

एतान्येव विवर्धंते जातेषु हतनामसु॥ २० ॥

यही अर्शके पूर्वरूपमें कहेहुए विकार अर्शके अंकुर उत्पन्न होजानेके अनन्तर वढजाते है और विशेष कष्ट देते हैं ॥ २० ॥

अर्शके लक्षण ।

निवर्तमानोऽपानो हि तैरधोमार्गरोधतः ।
क्षोभयन्ननिलानन्यान् सर्वेन्द्रियशरीरगान्२१॥
तथा मूत्रशकृत्पित्तकफान् धातूंश्च साशयान् ।
मृद्नात्यग्निं ततःसर्वो भवति प्रायशोऽर्शसः२२॥
कृशो भृशं हतोत्साहो दीनःक्षामोऽतिनिष्प्रभः ।
असारो विगतच्छाया जन्तुजुष्ट इव द्रुमः॥२३॥
कृत्स्नैरुपद्रवैर्ग्रस्तो यथोक्तैर्मर्मपीडनैः ।
तथा कासपिपासास्यवैरस्यश्वासपीनसैः॥२४॥
क्लमाङ्गभङ्ग-वमथु-क्षवथु-श्वयथु-ज्वरैः ।
क्लैब्यबाधिर्यतैमिर्यशर्कराश्मरिपीडितः ॥२५॥
क्षामभिन्नस्वरो ध्यायन्मुहुः ष्ठीवन्नरोचकी ।
सर्वपर्वास्थिहृन्नाभिपायुवंक्षणशूलवान् ॥ २६ ॥
गुदेन स्रवता पिच्छां पुलाकोदकसन्निभाम् ।
विबद्धमुक्तं शुष्कार्द्रं पक्कामं चान्तरान्तरा ॥
पाण्डुं पीतं हरिद्रक्तं पिच्छिलं चोपवेश्यते२७॥

उन अर्शके अंकुरोंसे मार्ग रुक जानेपर अपानवायु निकलताहुआ रुक जाता है तब वह अपान अन्य सम्पूर्ण शरीरमें गमन करनेवाले वायुओंको तथा मूत्र, मल, पित्त, कफ, धातुओं और आशयोंको क्षोभित कर देता है फिर सब प्रकारके ही अर्श जठराग्निको मन्द कर देते हे और सम्पूर्ण पांचभौतिकाग्नि और धात्वग्नि भी निर्बल हो जाती है । तब मनुष्य कृश, उत्साह रहित, दीन, क्षाम, प्रभारहित, साररहित और कान्तिहीन हो जाता हे जैसे कृमियोंसे खायेजानेपर वृक्ष निष्प्रभ हो जाता है उसी प्रकार मनुष्य भी अर्शके उपद्रवोंसे पीडित हो जाता है । सम्पूर्ण उपद्रवोंसे ग्रस्तहुआ मनुष्य, हृदयादि मर्मकी पीडासे पीडित होता है तथा खांसी, प्यास, मुखकी विरसता, श्वास, पीनस, क्लम, अंगोंकी व्यथा, वमन, छींक, सूजन, ज्वर, क्लीवता, बाधिर्य, तिमिर, शर्करा और अश्मरीसे पीडित होता है इस मनुष्यका स्वर हीन होजाता है चिन्तामें ध्यान लगाये रहता है वारम्वार थूकता है अरुचि होजाती है, संपूर्ण संधियोंमें, हृदयमें, नाभिमें, गुदामें, वंक्षणकी संधियोंमें, शूल होने लगता है । गुदासे चावलोंके धोवनके समान पिच्छाका स्राव होता है । तब मनुष्य, विबद्ध, सूखा या ढीला, पकाहुआ अथवा कच्चा, थोडा थोडा पाण्डु वर्णका, पीले वर्णका, हारिद्र वर्णका, रक्त वर्णका और पिच्छिल मलको त्यागता है ॥ २१–२७ ॥

वातार्शके लक्षण ।

गुदाङ्कुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः॥
म्लानाःश्यावारुणाःस्तब्धाविषमाःपरुषाःखराः
मिथोविसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः॥
बिम्बीकर्कन्धूखर्जूरकार्पासीफलसन्निभाः ।
केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः॥
शिरःपार्श्वांसकटचूरुवंक्षणाभ्यधिकव्यथाः ।
क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहारोचकप्रदाः ॥ ३१ ॥
कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः ।
तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम्३२॥
रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते ।
कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते ।
गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासम्भवस्तत एव च ॥३३॥

वायुकी अर्शमें गुदाके नससे सूखे चिमचिमाहट करके युक्त, म्लान श्याम और लाल वर्णके अकडेहुये विषम आकारके कठोर खरदरे आपसमें एक दूसरेसे भिन्न आकारवाले, टेढे, फटेहुये मुखवाले, तीक्ष्ण, तथा बिम्बाफल, बेर, खजूर और कपासके फलके सदृश आकारवाले, कोई कदम्बके पुष्पके समान और कोई सरसोंके समानआकारवाले होते है । इन वातप्रधान मांसांकुरोंके उत्पन्न होजानेसे रोगीके शिरमें, पार्श्वमें, अंस स्थानमें, कटिमें, ऊरु स्थलमें और वंक्षणकी संधियोंमें अधिक व्यथा होती है तथा छींक, उद्गार, विष्टम्भ, हृद्ग्रह, अरुचि, खांसी, श्वास, अग्निकी विषमता, कर्ण नाद और भ्रम ये उत्पन्न हो जाते है। इन अर्शके मस्सोंसे पीडितहुआ मनुष्य गंठीला, थोडा शब्द करके युक्त, प्रवाहिकाके साथ, शूल, फेन, और पिच्छा

करके अनुगत, बंधेहुये मलको त्याग करता है। इस मनुष्यके त्वचा, नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र और मुख ये कृष्ण वर्णकेसे हो जाते है। इस वातार्शसे गुल्म प्लीहा, उदररोग और वातष्ठीला ये रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २८-३३ ॥

पित्तार्शके लक्षण ।

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः॥३४॥
तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ।
शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकावक्त्रसन्निभाः ॥३५
दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छारुचिमोहदाः।
सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः ॥३६॥
यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥३७॥

पित्तप्रधान अर्शके मस्से नीलमुखवाले, लाल पीले और असितवर्णके होते है तथा पतले रक्तके स्रावकरने वाले दुर्गन्धित छोटे, मृदु, ढीले, तोतेकी जिह्वाके समान जिगरके टुकडेके समान,अथवा जलौकाके मुखके समान आकारवाले होते हैं। तथा दाह, पाक, ज्वर, स्वेद, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि और मोहके करनेवाले होते है इस अर्शवाले रोगीको उष्ण-द्रव-नील पीतरक्त और कच्चा मल आने लगता है अर्शके मस्से गरम रहते है और ये मस्से यवके समान बीचमेंसे मोटे और ऊपर नीचेसे हीन होते हैं। तथा इस रोगीके त्वचा, नख, नेत्रादि हरित, पीत और हारिद्रवर्णके हो जाते है ॥ ३४-३७ ॥

कफके अर्शके लक्षण ।

श्लेष्मोल्बणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः।
उच्छूनोपचिताःस्निग्धाःस्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः।
पिच्छिलाः स्तिमिताःश्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याः-
-स्पर्शनप्रियाः ॥ ३८॥
करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ।
वंक्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्तिनः ३९॥
सकासश्वासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ।
मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः ४०॥
क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ।
वसाभाः सकफप्राज्यपुरीषाः सप्रवाहिकाः ॥
न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः४१

कफप्रधान अर्शके मस्से महामूलवाले, घन, मन्द-पीडावाले, सित, ऊपरको उठेहुए, पलेहुए, चिकने, अकडेहुए, गोल, भारी, स्थिर, पिच्छिल, विबद्ध, गीले कपडेसे वेष्टितके समान, चिकने, कंडूयुक्त और स्पर्श-नमें प्रिय होते हैं। तथा आकारमें करीर अथवा पन-सकी गुठलीके समान या गोस्तनके समान होते हैं। ये मस्से वंक्षणकी संधियोंमें अफारा करनेवाले तथा पायु, वस्ति और नाभिको खैंचसे रखनेवाले तथा खांसी, श्वास हृल्लास, लालाप्रसेक, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, शिरकी जडता, शीततायुक्त ज्वर, क्लीबता, मन्दाग्नि, छर्दी और आमप्रधान विकारोंको करनेवाले होते है। इस अर्शमें वसाके समान कफयुक्त घृतके समान मल प्रवाहिकाके साथ आता है। ये मस्से न तो स्रावको करते है और न फूटते है. इनमें त्वचा, नेत्र नख-आदि पाण्डु वर्णके और स्निग्ध होते है ॥ ३८-४१ ॥

संसर्गज और त्रिदोषज अर्शके लक्षण ।

संसृष्टलिङ्गाः संसर्गात्-

दो दोषोंसे उत्पन्नहुए अर्शमें दो दोषोंके मिलेहुए लक्षण होते है ।

-निचयात्सर्वलक्षणाः ॥ ४२ ॥

त्रिदोषके अर्शमें सम्पूर्ण दोषोंके मिलेहुए लक्षण होते है ॥ ४२ ॥

रक्तार्शके लक्षण ।

रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः।
वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः ॥ ४३ ॥
तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्प्रतिपीडिताः ।
स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः॥४४॥
भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसम्भवैः ।
हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः४५ ॥

रक्तप्रधान गुदाके मस्से पित्तकी अर्शके समान आकारवाले होते है तथा वटके अंकुरके समान या गुंजा अथवा मूंगेके समान लालवर्णवाले होते हैं। ये मस्से जब कठोर विष्ठासे पीडित होते है तो सहसा रक्तका

स्राव करते हैं उस रक्तकी अतिप्रवृत्तिसे मनुष्य रक्त-क्षयजनित दुःखोंसे पीड़ित होकर मेंढकके समान वर्ण-वाला होजाता है तथा बल, वर्ण, उत्साह और ओज ये सब हीन होजाते हैं और इन्द्रियें कलुषित होजाती हैं ॥ ४२-४५ ॥

अर्शज उदावर्त।

मुद्गकोद्रवचूर्णाह्वकरीरचणकादिभिः।
रूक्षैः संग्राहिभिर्वायुःस्वस्थाने कुपितो बली४६
अधोवहानि स्रोतांसि संरुध्याधः प्रशोषयन्।
पुरीषं वातविण्मूत्रसङ्गं कुर्वीत दारुणम॥४७॥
तेन तीव्रा रुजा कोष्ठपृष्ठहृत्पार्श्वगा भवेत्।
आध्मानमुदरावेष्टो हृल्लासः परिकर्तनम्॥४८॥
बस्तौ च सुतरां शूलं गण्डश्वयथुसम्भवः।
पवनस्योर्ध्वगामित्वं ततश्छर्द्यरुचिज्वराः॥४९॥
हृद्रोगग्रहणीदोषमूत्रसंगप्रवाहिकाः।
बाधिर्यतिमिरश्वासशिरोरुक्कासपीनसाः॥ ५०॥
मनोविकारस्तृष्णास्रपित्तगुल्मोदरादयः।
ते ते च वातजा रोगा जायन्ते भृशदारुणाः५१
दुर्नाम्नामित्युदावर्तः परमोऽयमुपद्रवः।
वाताभिभूतकोष्ठानां तैर्विनाऽपि स जायते५२।

मुद्ग, कोद्रव चूर्ण, करीर, चणक आदि रूखे और संग्राही अन्नोंको खानेसे बलवान् वायु अपने स्थानमें प्रकुपित होकर अधोवाही स्रोतोंको रोककर उनमे मलको शोषण करके मलमूत्र और वायुका दारुण निरोध कर-देता है। इससे कोष्ठ, पीठ, हृदय और पार्श्वोंमें तीव्र पीड़ा होने लगती है। तथा आध्मान, उदरावेष्ट, हृल्लास, परिकर्तनकीसी पीड़ा, वस्तिमें निरन्तर शूल, गंड-स्थलोंपर सूजन, पवनका ऊर्ध्वगामी होना और उससे छर्दी, अरुचि तथा ज्वरका होजाना एवं हृद्रोग, ग्रह-णीरोग, मूत्रावरोध, प्रवाहिका, बाधिर्य, तिमिर, श्वास, मस्तकपीड़ा, खासी, पीनस, मनकी विकृति, तृषा, रक्तपित्त, गुल्म और उदररोगादि अनेक प्रकारके दारुण वातजनित रोग उत्पन्न होजाते हैं यह अर्शजनित उदावर्त परम उपद्रव होता है।

कभी २ यह उदावर्त वायुकी अधिकतासेयुक्त कोष्ठ-वालोंको विना अर्शसे भी होताजाता है॥४९-५२॥

अर्शकी साध्यासाध्यता।

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरे वलौ।
स्थितानितान्यसाध्यानियाप्यंतेऽग्निबलादिभिः

जो अर्श जन्मसे ही हो, अथवा त्रिदोषज हो या जो आभ्यन्तर वलिमें उत्पन्न हो यह तीनों प्रकारकी अर्श असाध्य होती है। परन्तु यदि अग्निबलादियुक्त बलवान् पुरुषके शरीरमें यह अर्श हो तो याप्यसाध्य होती है ॥ ५३ ॥

द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च।
कृच्छ्रसाध्यानितान्याहुःपरिसंवत्सराणिच॥५४

दो दोषोंकी अथवा दूसरी वलीमें आश्रित और एक वर्षकी पुरानी अर्श कष्टसाध्य होती है ॥ ५४ ॥

बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्वणानि च।
अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च॥

बाहरकी वलीमें जो अर्श उत्पन्न हो और एकदोष प्रधान हो तथा थोड़े ही दिनकी हो ऐसी अर्श सुख-साध्य होती है ॥ ५५ ॥

मेढ्रार्श और नाभ्यर्श।

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं-

गुदाके अतिरिक्तका मेढ्र आदिमें जो मासांकुर हो-जांय उनको मेढ्रार्श कहते हैं।

-नाभिजानि तु।
गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च५६

जो अंकुर नाभिके ऊपर होजांय उनको नाभ्यर्श कहते हैं ये अंकुर गंडोयके मुखके समानरूपवाले पिच्छल और मृदु होते हैं ॥ ५६ ॥

चर्मकील।

व्यानोगृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचोबहिः।
कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तं विदुः॥५७॥
वातेन तोदः पारुष्यं पित्तादसितरक्तता।
श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता५८

व्यानवायु कफको ग्रहण करके त्वचाके बाहर मांसके अंकुरोंको उत्पन्न करती है वह अंकुर कीलके समान

स्थिर और खर होते हैं इन मांसांकुरोंको चर्मकील कहते हैं।

इन अंकुरोंमें वायुकी अधिकता हो तो तोद और परुषता होती है, पित्तकी अधिकता हो तो नील या रक्तवर्णके होते हैं, यदि कफकी अधिकता हो तो स्निग्धता गठीलापन और त्वचाके वर्णके समान वर्णवाले होते हैं ॥ ५७ । ५८ ॥

अर्शसां प्रशमे यत्नमाशु कुर्वीत बुद्धिमान् ।
तान्याशु हि गुदं बध्वा कुर्युर्बद्धगुदोदरम् ॥५९॥

अर्शकी निवृत्तिके लिये बुद्धिमान्को शीघ्र यत्न करना चाहिये. यदि इनकी चिकित्सा न की जाय तो ये कालान्तरमें गुदाको रोककर बद्धगुदोदर रोगको उत्पन्न करदेते हैं इस कारण अर्शकी शीघ्र ही चिकित्सा कर डालना चाहिये ॥ ५९ ॥

इति श्रीअष्टांगहृदयेसंहितायां निदानस्थाने अर्शनिदानं प० शिवशर्मकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोऽतीसारग्रहणीरोगयोर्निदानं व्याख्या-स्यामः ।

अब हम अतिसार और ग्रहणीरोगके निदानको कथन करते हैं।

दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च भयाच्छोकाच्च षड्विधः ।
अतीसारः ॥ १ ॥-

अतिसार रोग-१ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ सन्निपातसे, ५ भयसे और ६ शोकसे इन भेदोंसे ६ प्रकारका होता है ॥ १ ॥

अतिसारकी सम्प्राप्ति ।

-स सुतरां जायतेऽत्यम्बुपानतः ।
कृशशुष्कामिषासात्म्यतिलपिष्टविरूढकैः ।
मद्यरूक्षातिमात्रान्नैरर्शोभिः स्नेहविभ्रमात् ॥२॥
कृमिभ्यो वेगरोधाच्च तद्विधैः कुपितोऽनिलः ।
विस्रंसयत्यधोऽब्धातुं हत्वा तेनैव चानलम् ॥
व्यापद्यानुशकृत्कोष्ठं पुरीषं द्रवतां नयन् ।
प्रकल्पतेऽतिसाराय ॥ ४ ॥--

वह अतीसार निरन्तर अधिक जलपीनेसे, कृश और शुष्क मांसके खानेसे, असात्म्य पदार्थके सेवनसे, तिल, पिष्टपदार्थ विरूढ धान्य, मद्य और रूक्ष पदार्थोंके खानेसे, अधिकमात्रामें अन्नके खानेसे, अर्श विकारसे, स्नेह पानमें विभ्रम हो जानेसे, कृमियोंसे, मल मूत्रादि वेगोंको रोकनेसे तथा अन्य ऐसे ही उदरके विगाडनेवाले कारणोंसे कुपितहुआ वायु जलरूप द्रव धातुको विस्रंसन करके उसीसे जठराग्निको हनन करके कोष्ठको विगाडकर पुरीषको पतला बनाकर अतीसार रोग उत्पन्न कर देता है ॥ २--४ ॥

अतीसारके पूर्वरूप ।

-लक्षणं तस्य भाविनः ।
तोदो हृद्गुदकोष्ठेषु गात्रसादो मलग्रहः ।
आध्मानमविपाकश्च ॥ ५ ॥--

जब अतीसाररोग होनेवाला होता है तो उसके पूर्वरूपमें हृदय और कोष्ठमें तोदके समान चमके गात्रावसाद, मलका रुकना, आध्मान और अन्नका परिपाक न होना ये लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

वातातिसारके लक्षण ।

-तत्र वातेन विड्जलम् ॥
अल्पाल्पं शब्दशूलाढ्यं विबद्धमुपवेश्यते ।
रूक्षं सफेनमच्छं च ग्रथितं वा मुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥
तथा दग्धगुडाभासं सपिच्छापरिकर्तिकम् ।
शुष्कास्यो भ्रष्टपायुश्च हृष्टरोमा विनिष्टनन् ७॥

वायुके अतीसारमें विष्ठा पतला होकर थोडा थोडा शब्द और शूलकरकेयुक्त, गांठ और जलवाला, रूक्ष, झागदार, चिकनाई रहित अथवा गठीला वारवार दस्त आता है तथा दग्धहुए गुडके समान काले वर्णका पिच्छा और परिकर्तिकायुक्त होता है। इस मनुष्यका मुख सूखासा होता है गुदा बाहर निकल आती है रोमांच खडे हो जाते ह और दस्तके समय पीडा होनेके कारण किनछिनेका शब्द करता है ये लक्षण होते है ॥ ६ ॥ ७ ॥

पित्तके अतीसारके लक्षण ।

पित्तेन पीतमसितं हारितं शाद्वलप्रभम् ।
सरक्तमतिदुर्गन्धं तृण्मूर्छास्वेददाहवान् ॥
सशूलपायुसन्तापं पाकवान् ॥ ८ ॥-

पित्तके अतीसारमें पीत, नील और हरित वर्णका तथा हरे घासके समान, रक्तयुक्त और दुर्गंधित मलको त्यागता है। इस मनुष्यको तृषा, मूर्च्छा, स्वेद और दाह ये होते हैं तथा शूल, गुदामें सन्ताप और गुदाका पकना ये लक्षण होजाते हैं ॥ ८ ॥

कफके अतिसारका लक्षण ।

-श्लेष्मणा घनम् ।
पिच्छिलं तन्तुमच्छ्वेतं स्निग्धमामं कफान्वितम्
अभीक्ष्णं गुरु दुर्गन्धं विबद्धमनुबद्धरुक् ॥९॥
निद्रालुरलसोऽन्नद्विडल्पाल्पं सप्रवाहिकम् ॥
सरोमहर्षः सोत्क्लेशो गुरुबस्तिगुदोदरः ॥
कृतेऽप्यकृतसंज्ञश्च ॥ १० ॥-

कफके अतीसारमें मल पिच्छल, तन्तुदार, श्वेत, स्निग्ध, कच्चा कफ करकेयुक्त निरन्तर भारी, दुर्गन्धित, बन्धाहुआसा, पीड़ाकरके युक्त और थोड़ी २ प्रवाहिकाके साथ दस्त आता है इस मनुष्यको निद्रा, आलस्य, अन्नमे द्वेष, रोमहर्ष और उत्क्लेश ये उपद्रव होते है तथा वस्ति गुदा और उदर भारी रहते है. एवं मल त्याग करनेपर भी जैसे मलत्याग किया ही नहीं ऐसा प्रतीत होता रहता है ॥ ९ ॥ १० ॥

त्रिदोषज अतिसारका लक्षण ।

--सर्वात्मा सर्वलक्षणः ॥ ११ ॥

त्रिदोषज अतीसारमे तीनों दोषोंके मिलेहुए लक्षण रहते है ॥ ११ ॥

भयजनित अतिसारके लक्षण ।

भयेन क्षोभिते चित्ते सपित्तो द्रावयेच्छकृत् ।
वायुस्ततोऽतिसार्येत क्षिप्रमुष्णं द्रवं प्लवम् ॥
वातपित्तसमं लिङ्गैराहुस्तद्वच्च शोकतः॥ १२ ॥

भयसे चित्तके क्षोभ होनेसे पित्त युक्त वायु मलको पतला बनाकर अतिसाररोगको उत्पन्न कर देता है तब दस्त शीघ्र शीघ्र उष्ण, पतले और प्लावित आने लगते है। इस अतीसारमें वातपित्तकेसे लक्षण होते है। इसीके समान शोकसे चित्तके अभिभूत होनेसे बढा-हुआ वायु पित्तको साथ लेकर शोकजनित अतिसार रोगको उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

अतीसारः समासेन द्विधा सामो निरामकः ॥
सासृङ्निरस्रः ॥ १३ ॥-

सक्षेपसे अतिसार रोग दो प्रकारका होता है-१ साम, २ निराम, इसी प्रकार-१ रक्तयुक्त, २ विना रक्तका ॥ १३ ॥

आमातिसारके लक्षण ।

-तत्राद्ये गौरवादप्सु मज्जति ।
शकृद्दुर्गन्धमाटोपविष्टम्भार्तिप्रसेकिनः ॥
विपरीतो निरामस्तु कफात्पक्वोऽपि मज्जति १४

इनमें भारीपन और मलका जलमें डूबजाना, विष्टा, दुर्गंधित होना, आटोप, विष्टम्भ, पीड़ा और मुखसे लारका गिरना ये लक्षण आमातिसारमें होते है ॥

आमातिसारसे विपरीत लक्षणोंवाला निराम अर्थात् पक्वातिसार होता है। पक्वातिसारका मल हलका होता है और जलपर तैर जाता है परन्तु कफके अतिसारमें कफका भारी स्वभाव होनेके कारण कभी पक्वमल भी डूब जाता है किन्तु आटोपादि आमातिसारके लक्षण परिपक्व कफातिसारमें भी नहीं रहते ॥ १४ ॥

ग्रहणी रोगकी सम्प्राप्ति ।

अतीसारेषु यो नातियत्नवान् ग्रहणीगदः ।
तस्य स्यादग्निविध्वंसकरैरन्यस्य सेवितैः॥१५॥

अतिसारके निवृत्त करनेमें जो पुरुष यत्न नहीं करता उसको ग्रहणीरोग हो जाता है। ग्रहणीरोग अतिसारके निवृत्त होनेपर भी मंदाग्निवाले पुरुषको अथवा विना अतीसारके भी मंदाग्निवाले पुरुषको जठराग्निके विध्वस-करनेवाले पदार्थोंके सेवनसे हो जाता है ॥ १५ ॥

अतीसार और ग्रहणीमें भेद ।

सामं शकृन्निरामं वा जीर्णे येनातिसार्यते ॥
सोऽतिसारोऽतिसरणादाशुकारी स्वभावतः १६

जिस रोगमें साम अथवा निराम मल अन्नके जीर्ण होनेपर अतिसरण हो वह वारवार अतिसरण होनेके

कारण अतिसार रोग कहा जाता है। अतीसार रोग स्वभावसे ही शीघ्रकारी होता है ॥ १६ ॥

सामं सान्नमजीर्णेऽन्ने जीर्णे पक्कं तु नैव वा१७॥
अकस्माद्वा मुहुर्बद्धमकस्माच्छिथिलं मुहुः ।
चिरकृद्ग्रहणीदोषः संचयाच्चोपवेशयेत् ॥ १८ ॥

जिस रोगमें साम अन्न विना पाचन कियाहुआ अजीर्णावस्थामें ही दस्तद्वारा निकलता हो और यदि अन्न परिपाक होजाय तो बीच बीचमें उस प्रकारका रेचन नहीं हो अथवा अकस्मात् कच्चेअन्नके दस्त आने लगे अकस्मात् मल बंधकर आनेलगे ऐसे वारवार कभी बंधकर कभी अजीर्ण और पतले दस्त आने लगे फिर देरमें ग्रहणीकलाके अन्दर दोषोंका संचय होकर पतले दस्त आनेलगे इस प्रकार देरतक रहनेवालेरोगको ग्रहणीरोग कहते है ॥ १७ ॥ १८ ॥

ग्रहणीके भेद ।

स चतुर्धा पृथग्दोषैः सन्निपाताच्च जायते ।
प्राग्रूपं तस्य सदनं चिरात्पचनमम्लकः ॥१९॥

वह ग्रहणी रोग वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे इन भेदोंसे चार प्रकारका होता है ॥ १९ ॥

ग्रहणीके पूर्वरूप ।

प्रसेको वक्त्रवैरस्यमरुचिस्तृट् क्लमो भ्रमः ।
आनद्धोदरता छर्दिः कर्णक्ष्वेडोऽन्त्रकूजनम्२०

ग्रहणीरोगके पूर्वरूपमें अंगोंका सोना, अन्नका परिपाक देरमें होना, खट्टी डकारें आना, मुखसे लार गिरना, मुखका विरस होना, अरुचि, प्यास, क्लम, भ्रम, अफारा, छर्दी, कर्णपीड़ा और अन्त्र कूजन ये लक्षण होते हैं ॥ २० ॥

ग्रहणीके सामान्य लक्षण ।

सामान्यं लक्षणं कार्श्यं धूमकस्तमको ज्वरः ।
मूर्च्छा शिरोरुग्विष्टम्भः श्वयथुः करपादयोः२१

शरीरमें कृशता, कंठसे धूमका निकलना, आंखोंके आगे अंधकार प्रतीत होना, ज्वर, मूर्च्छा, शिरमें पीडा, हाथ पांवमें सूजन और समय समय पर कच्चे अन्नका विरेक होना ये लक्षण सामान्य रूपसे सब ग्रहणी रोगमें होते हैं ॥ २१ ॥

वातज ग्रहणीके लक्षण ।

तत्राऽनिलात्तालुशोषस्तिमिरं कर्णयोः स्वनः ।
पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुजाऽभीक्ष्णं विषूचिका ।२२
रसेषु गृद्धिः सर्वेषु क्षुत्तृष्णा परिकर्तिका ।
जीर्णेजीर्यतिचाध्मानं भुक्तेस्वास्थ्यं समश्नुते२३
वातहृद्रोगगुल्मार्शःप्लीहपाण्डुत्वशङ्कितः ।
चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् ॥
पुनःपुनः सृजेद्वर्चः पायुरुक्श्वासकासवान्२४॥

वायुके ग्रहणीमें तालुवेका सूखना, अधकारका प्रतीत होना, कानोंमें शब्द होना तथा पार्श्व, ऊरुस्थल, वंक्षण और ग्रीवामें निरन्तर पीडा होना, विसूचिकाके समान उदरादिमें पीडा होना, रसोंके खानेकी इच्छा होना, क्षुधा और प्यास लगना, परिकर्तिकासी पीड़ा होना, अन्नके जीर्ण होनेपर या जीर्ण होतेसमय आध्मान होना, भोजनकर लेनेसे आध्मानका शान्त होना, इस मनुष्यको वायुके हृद्रोग, गुल्म, अर्श, प्लीहा और पाण्डुरोगकेसे लक्षणोंकी शका होना, देरमें कष्टके साथ पतला, सूखा, थोड़ा, कच्चा, शब्द और झागवाला मल वार वार आना, गुदास्थानमें पीड़ा होना और इस पुरुषको श्वास और खांसी होना ये लक्षण होते है॥ २२-२४॥

पित्तकी ग्रहणीके लक्षण ।

पित्तेन नीलं पीताभं पीताभः सृजति द्रवम् ।
पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः ॥२५॥

पित्तकी ग्रहणीमें नीले और पीले वर्णका पतला मल दस्तमें निकलता है और यह मनुष्य पीले वर्णका होजाता है तथा दुर्गंधित और खट्टी डकार, हृदय और कंठमें दाह, अरुचि और प्यास इन लक्षणोंकरके पीड़ित होता है ॥ २५ ॥

कफकी ग्रहणीके लक्षण ।

श्लेष्मणा पच्यते दुःखमन्नं छर्दिररोचकः ।
आस्योपदेहनिष्ठीवकासहृल्लासपीनसाः ।
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु ॥२६॥
उद्गारो दुष्टमधुरः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ।

भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चः प्रवर्तनम् ।
अकृशस्यापि दौर्बल्यम ॥ २७ ॥–

कफकी ग्रहणीमें अन्न कष्टसे पचता है तथा छर्दी, अरुचि, मुखका लिपायमान होना, लार गिरना, खांसी, हल्लास और पीनस होना तथा हृदयका पिडितसा होना, उदरका विबद्ध और भारी होना, दुष्ट और मधुर उद्गारका आना, अंगोंका सोना, स्त्रीमें इच्छा न होना, फटाहुआ कच्चा कफसे मिलाहुआ और भारी दस्तका आना, शरीरके कृश न होनेपर भी दुर्बलता प्रतीत होनी. ये लक्षण होते हैं ॥ २६ । २७ ॥

सन्निपातज ग्रहणी ।

–सर्वजे सर्वसङ्करः ॥ २८ ॥

सन्निपातकी ग्रहणीमें तीनों दोषोंके मिलेहुए लक्षण होते हैं ॥ २८ ॥

ग्रहणीके अन्य प्रकार ।

विभागेऽङ्गस्य ये चोक्ता विषमाद्यास्त्रयोऽग्नयः।
तेऽपि स्युर्ग्रहणीदोषाः–
–समस्तु स्वास्थ्यकारणम् ॥ २९ ॥

अंगविभागमें जो विषम तीक्ष्ण और मन्द तीन प्रकारकी अग्नियें कही हैं वे तीनों प्रकारकी जठराग्नियें भी ग्रहणी दोष ही कहीजाती हैं ।

चौथी अग्नि जो सम कही है वह स्वास्थ्य कारक होती है ॥ २९ ॥

आठ महारोग ।

वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगन्दराः ।
अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः सुदुस्तराः ॥ ३० ॥

वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर अर्श और ग्रहणीरोग ये आठ प्रकारके रोग महारोग कहेजाते हैं और ये रोग अतिदुस्तर अर्थात् कठिनतासे जीते जा सकते हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतअष्टाङ्गहृदयसंहितायां निदानस्थाने अतिसारग्रहणीरोगनिदानं पं. शिवशर्म्मवैद्यशास्त्रिकृतपदार्थदीपिकाभाषाव्याख्यायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथाऽतो मूत्राघातनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब हम मूत्राघातके निदानकी व्याख्या करते हैं ।

बस्तिर्बस्तिशिरोमेढ्रकटीवृषणपायवः ।
एकसम्बन्धनाः प्रोक्ता गुदास्थिविवराश्रयाः ॥ १ ॥

बस्ति, बस्तिशिर, मेढ्र, कटि, वृषण और पायुस्थान ये सब एक ही स्थानसे सम्बन्ध रखतेहुए गुदाके अस्थिविवरके आश्रित रहते हैं ॥ १ ॥

मूत्राघातादि रोगोंकी सम्प्राप्ति ।

अधोमुखोऽपि बस्तिर्हि मूत्रवाहिसिरामुखैः ।
पार्श्वेभ्यः पूर्यते सूक्ष्मैः स्यन्दमानैरनारतम् ॥ २ ॥
यैस्तैरेव प्रविश्यैनं दोषाः कुर्वन्ति विंशतिम् ।
मूत्राघातान् प्रमेहांश्च कृच्छ्रान्मर्मसमाश्रयान् ॥ ३ ॥

मूत्राशय अधोमुख होतेहुए भी दोनों पार्श्वोंमें दोनों ओरसे मूत्रवाही शिरामुखोंसे पूरित रहता है उसमें सूक्ष्म स्यन्दमान सिरामुखोंद्वारा निरन्तर मूत्र आता रहता है । उन सिरामुखोंद्वारा ही दोष मूत्राशयमें प्रवेश करके बीस प्रकारके प्रमेह तथा मूत्राघात एवं मूत्रकृच्छ्ररोगोंको उत्पन्न करते हैं जो बस्ति मर्माश्रित होते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

वातजादि मूत्र कृच्छ्रोंके लक्षण ।

बस्तिवङ्क्षणमेढ्रार्तियुक्तोऽल्पाल्पं मुहुर्मुहुः ।
मूत्रयेद्वातजे कृच्छ्रे–

बस्ति वङ्क्षण और मेढ्रमें पीड़ा करतेहुए थोड़ा थोड़ा वार वार मूत्र आवे तो वातजनित मूत्रकृच्छ्र जानना चाहिये ।

–पैत्ते पित्तं सदाहरुक् ॥ ४ ॥
रक्तं वा–

पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रमें मूत्रत्यागके समय दाह और शूल होता है अथवा रक्त भी आता है ।

–कफजे बस्तिमेढ्रगौरवशोफवान् ।
सपिच्छं सविबन्धं च– .

कफजनित मूत्र कृच्छ्रमें बस्ति और मेढ्रमें भारीपन

तथा सूजन होती है। एवं मूत्र पिच्छायुक्त और विबन्ध युक्त रुक रुककर आता है।

--सर्वैः सर्वात्मकं मलैः ॥ ५ ॥

सन्निपातके मूत्रकृच्छ्रमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

अश्मरी निदान।

यदा वायुर्मुखं बस्तेरावृत्य परिशोषयेत्।
मूत्रं सपित्तं सकफं सशुक्रं वा तदा क्रमात्॥६॥
सञ्जायतेऽश्मरी घोरा पित्ताद्गोरिव रोचना।
श्लेष्माश्रया च सर्वा स्यात् ॥ ७ ॥--

जब वायु बस्तिके मुखको आवृतकरके मूत्र पित्त और कफ अथवा वीर्यको जब क्रमसे शोषण करदेती है तो घोर अश्मरी (पथरी) रोग उत्पन्न होजाता है। जैसे गऊके मस्तकमें पित्तसे गोरोचन बनजाता है वैसे ही मनुष्योंके मूत्राशयमें या वृक्कोंमें अश्मरी बन जाती है यह सम्पूर्ण अश्मरीयें श्लेष्माश्रित होती हैं। क्योंकि जब मूत्र पित्त कफ या शुक्र वायुसे शोषण, पित्तसे पाचन और कफसे बन्धनको प्राप्त होते हैं तभी अश्मरी रोग होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

अश्मरीका पूर्वरूप।

--अथाऽस्याः पूर्वलक्षणम् ॥
बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक्।
मूत्रे च बस्तगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः॥८

बस्तिमें आध्मान होना, पथरीके आसन्न देशमें सब ओरसे पीड़ा होना, मूत्रमें बकरेकीसी गन्ध होना तथा मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और अरुचि ये लक्षण पथरीहोनेके पूर्वरूपमें होजाते हैं ॥ ८ ॥

अश्मरीके सामान्य लक्षण।

सामान्यलिङ्गं रुङ् नाभिसेवनीबस्तिमूर्धसु।
विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने॥९॥
तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम्।
तत्संक्षोभात् क्षतेसास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत्१०

अश्मरीरोगमें सामान्यरूपसे ये लक्षण होते हैं. जैसे-- नाभि, सेवनी और बस्तिके शिरोभागमें पीड़ा होना, मूत्रकी धाराका फटेहुए होना, जब पथरीसे मूत्रका मार्ग रुक जाय तो ये लक्षण होते हैं। जब पथरी मूत्रमार्गसे हटजाय तो मूत्र सुखसे स्वच्छ और गोमेदके समान वर्णवाला आता है। पथरीके संक्षोभसे यदि बस्तिद्वारमें क्षत होजाय तो रक्तयुक्त मूत्र उतरता है और मूत्र त्यागनेकेलिये अधिक प्रयास करनेसे उस स्थानमें अत्यन्त पीडा होनेलगती है ॥ ९ ॥ १० ॥

वाताश्मरीके लक्षण।

तत्र वाताद्भृशार्त्यार्तो दन्तान् खादति वेपते।
मृद्गाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन्११॥
सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः।
श्यावा रूक्षाऽश्मरी चास्य स्याच्चिता कण्टकैरिव

वायुके अश्मरीमें अत्यन्त पीड़ा होती है, उस पीडासे व्याकुल मनुष्य दांतोंको दबाता है और कांपता है तथा शिश्नेन्द्रियको मलता है और पथरीको बाहर निकालनेके लिये जोर लगाता हुआ अपने नाभिस्थानकी दोनों ओरसे दबाता है इस पीडाके समय वायुयुक्त मलको त्यागता है और बारबार बूँद २ मूत्र आता है. जब यह पथरी निकालीजाय तो इस वायुके पथरीका वर्ण काला रूखा होता है और यह पथरी कटकोंसे लिप्त होती है ११-१२

पित्तकी अश्मरीके लक्षण।

पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान्।
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्तपीताऽसिताऽश्मरी।

पित्तकी पथरीसे बस्तिमें दाह होती है और अग्निमें पकानेके समान गरमी होती है। यह पथरी भिलावेकी गुठलीके समान संस्थानवाली तथा लाल पीले और नीले वर्णकी होती है ॥ १३ ॥

कफकी अश्मरीके लक्षण।

बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः।
अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथवा सिता १४

कफकी अश्मरीमें बस्तिमें विशेष तोद होता है तथा यह अश्मरी शीतल, भारी, बड़ी, चिकनी, मधुवर्णकी अथवा श्वेत होती है ॥ १४ ॥

एता भवन्ति बालानां तेषामेव च भूयसा।
आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखाः ॥१५॥

प्रायः ये पथरियें बालकोंके होती हैं उस अवस्थामें पथरीका आश्रय और उपचय अल्प होनेके कारण यह

अश्मरी शस्त्रद्वारा पकडने और निकालनेमें आसानी रहती है ॥ १५ ॥

शुक्राश्मरीके लक्षण ।

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ।
स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः॥१६
शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुष्कमश्मरी ।
बस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्वमुष्कश्वयथुकारिणी ॥१७॥
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ।
पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन् ॥ १८ ॥--

शुक्राश्मरी बडी आयुवाले पुरुषोंके शरीरमें होती है । यह अश्मरी जब मनुष्य अपने स्थानसे चलेहुए वीर्यको रोक लेता है तब उस वीर्यको अंडकोषोंके अन्तरालमें ही वायु ग्रहण करके शोषण करदेती है । वह अमुक्त शुक्रका अश्मरी बन जाती है । इस अश्मरीमें वस्तिमें पीडा, मूत्रका कष्टसे आना तथा अंडकोषोंपर सूजनका होजाना ये लक्षण होते हैं । जब यह पथरी उत्पन्न होजाती है तो वीर्य शुक्राश्मरीके स्थानमें ही विलीन हो जाता है ॥ १६--१८ ॥

शर्करारोगके लक्षण ।

--अश्मर्येव च शर्करा ॥
अणुशो वायुना भिन्ना सा त्वस्मिन्ननुलोमगे ।
निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते ॥ १९ ॥

वह ही अश्मरीवाले दूष्य यदि कफसे बंधन किये जायें किन्तु वायुद्वारा अणु, सिकताके समानभिन्न भिन्न होजायं तो इसको शर्करा कहते हैं. यदि यह शर्करा अनुलोम गतिसे निकले तो मूत्रके साथ यह अणु निकल जाते हैं । यदि वायु इनको अनुलोम गतिमें न चलने दे तो ये रुक जाते हैं । अश्मरीमें और शर्करामें इतना ही भेद है कि अश्मरी बंधीहुई होनेसे वायुके अनुलोम होनेपरभी साधारण रीतिसे नहीं निकल सकती और शर्करा यदि वायु अनुलोम हो तो मूत्रके साथ निकल जाती है ॥ १९ ॥

वातवस्ति आदिरोगोंके लक्षण ।

मूत्रसन्धारिणः कुर्याद्रुद्ध्वा बस्तेर्मुखं मरुत् ।
मूत्रसङ्गं रुजं कण्डूं कदाचिच्च स्वधामतः॥२०॥
प्रच्याव्य बस्तिमुद्वृत्तं गर्भाभं स्थूलविप्लुतम् ।
करोति तत्र रुग्दाहस्यंदनोद्वेष्टनानि च ॥२१॥
बिन्दुशश्च प्रवर्तेत मूत्रं बस्तौ तु पीडिते ।
धारया द्विविधोऽप्येष वातबस्तिरिति स्मृतः ।
दुस्तरो दुस्तरतरो द्वितीयः प्रबलानिलः ॥२२॥

जो मनुष्य मूत्रके वेगको रोक रखता है उसके मूत्राशयमें विगुण हुआ वायु वस्तिके मुखको रोककर मूत्रको रोक देता है तब मूत्राशयमें पीडा और खुजली होने लगती है । कभी बढाहुआ वायु वस्तिको अपने स्थानमें हिलाकर वस्तिको उलटाकर देता है । तब वस्ति गर्भके समान स्थूल और विप्लुतसी हो जाती है उसमें पीडा, दाह, स्पंदन, उद्वेष्टन आदि पीडा होने लगती है । इस वस्तिरोगमें मूत्र बून्द बून्द आता रहता है । यदि हाथसे वस्तिस्थानको दबायाजाय तो मूत्रकी धारभी आने लगती है ये दोनों प्रकारके वस्तिरोग वातवस्ति ही कहे जाते हैं । इनमें पहला दुस्तर होता है दूसरा अतिदुस्तर होता है. क्योंकि इसमें वायु अत्यन्त प्रबल होता है ॥ २०--२२ ॥

वाताष्ठीलाके लक्षण ।

शकृन्मार्गस्य बस्तेश्च वायुरन्तरमाश्रितः॥२३
अष्ठीलाभं घनं ग्रन्थिं करोत्यचलमुन्नतम् ।
वाताष्ठीलेति साऽऽध्मानविण्मूत्रानिलसंगकृत् ॥

मलमार्ग और वस्तिके मध्यमें आश्रित हुआ वायु अष्ठीलाके समान घन, अचल और उन्नत ग्रन्थिको कर देता है । इस ग्रंथिको वाताष्ठीला कहते हैं । यह वाताष्ठीला अफारा तथा विष्ठा मूत्र और अपानवायुको रोक देती है ॥ २३ ॥ २४ ॥

वातकुंडलिकाके लक्षण ।

विगुणः कुण्डलीभूतो बस्तौ तीव्रव्यथोऽनिलः।
आविश्य मूत्रं भ्रमति सस्तम्भोद्वेष्टगौरवः ।
मूत्रमल्पाल्पमथवा विमुञ्चति शकृत्सृजन् ।
वातकुण्डलिकेत्येषा ॥ २५ ॥--

मूत्राशयमें विगुणहुआ वायु मूत्रमें प्रवेश करके कुण्डलके समान चक्कर खाताहुआ मूत्रकोभी कुण्डलाकार भ्रमण करता है । उससे मूत्राशयमें तीव्र व्यथा

होती है। तथा स्तम्भ उद्वेष्टनकीसी पीड़ा और भारीपन रहता है। इससे मूत्र रुक जाता है अथवा मूत्रवेगसे पीड़ितहुआ मनुष्य मलको त्यागताहुआ अल्प अल्प मूत्रको भी त्यागता है। इस रोगको वातकुण्डलिका कहते हैं॥ २९ ॥

मूत्रातीत रोगके लक्षण।

--मूत्रं तु विधृतं चिरम्।
न निरेति विबद्धं वा मूत्रातीतं तदल्परुक् २६॥

मूत्रका वेग बहुत देरतक रोकलेनेसे मूत्र रुक जाता है अथवा थोड़ी थोड़ी पीडा करतेहुए रुक रुककर आता है। इस मूत्रावरोधजनित रोगको मूत्रातीत कहते हैं. २६

मूत्र जठरके लक्षण।

विधारणात्प्रतिहतं वातोदावर्तितं यदा ॥२७॥
नाभेरधस्तादुदरं मूत्रमापूरयेत्तदा।
कुर्यात्तीव्ररुगाध्मानमपाक्तिमलसंग्रहम्।
तन्मूत्रजठरम् ॥ २८॥-

मूत्रके वेगको बहुत देरतक रोकलेनेसे प्रतिहतहुआ वायु जब ऊपरको चक्कर खाता है तब मूत्रको रोककर नाभिसे नीचे उदरको मूत्रसे पूर्णसा करदेताहै। उससे तीव्र पीडा, आध्मान, अन्नका परिपाक न होना और मलका रुक जाना ये लक्षण होते हैं। इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं॥ २७ ॥ २८ ॥

मूत्रोत्सगके लक्षण।

--छिद्रवैगुण्येनानिलेन वा।
आक्षिप्तमल्पं मूत्रं तु बस्तौ नालेऽथवा मणौ२९
स्थित्वा स्रवेच्छनैः पश्चात्सरुजं वाऽथवाऽरुजम्।
मूत्रोत्सङ्गः स विच्छिन्नतच्छेषगुरुशेफसः ३०॥

यदि मूत्रवाही छिद्रके भीतर वायु विगुण होजाय तो यह वायु मूत्र वस्तिमें अथवा नालमें या मणिस्थानमें थोडा आक्षेप करके मूत्रको रोकता है। तब मूत्र रुक रुक कर थोडा थोडा धीरे धीरे आने लगता है इसमें मूत्र आनेके समय पीडा होती है अथवा नहीं भी होती है इस रोगमें मूत्र आते आते रुक जाता है पीछेसे मूत्र शेष रहजानेपर शिश्नेन्द्रियमें भारीसा प्रतीत होता रहता है॥ २९ ॥ ३० ॥

मूत्रग्रंथिके लक्षण।

अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तःस्थिरोऽल्पःसहसा भवेत्।
अश्मरीतुल्यरुक् ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिःस उच्यते३१

वस्तिके अन्तर्मुखमें गोल स्थिर और छोटी ग्रंथि सहसा हो जाय उसमें अश्मरीके समान पीड़ा होनेलगे इस रोगको मूत्रग्रंथि कहते हैं॥ ३१ ॥

मूत्रशुक्रके लक्षण।

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम्।
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद्वा प्रवर्तते॥
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥३२॥

जो मनुष्य मूत्रके आयेहुए वेगको रोककर स्त्रीभंग करता है उसका शुक्र वायुसे उद्धत होकर अपने स्थानसे चलायमानहुआ भस्मके जलके समान पतला होकर मूत्रत्यागके समय मूत्रसे प्रथम अथवा पीछे प्रवृत्त होता है इस रोगको मूत्रशुक्र कहते हैं॥ ३२ ॥

विड्विघातके लक्षण।

रूक्षदुर्बलयोर्वातादुदावृत्तं शकृद्यदा ॥ ३३ ॥
मूत्रस्रोतोऽनुपर्येति संसृष्टं शकृता तदा।
मूत्रं विट्तुल्यगन्धं स्याद्विड्विघातं तमादिशेत्

रूक्ष या दुर्बलशरीरवाले मनुष्योंके शरीरमें जब मल वायुद्वारा उदावृत्त होकर मूत्रवाही सूक्ष्म सिराओंद्वारा मूत्राशयमें उसका दुर्गन्धित रस पहुंच जाता है तो उस मलमें मिलाहुआ मूत्र विष्टाकी गंधके समान गंधवाला आनेलगता है। इस रोगको विड्विघात रोग कहते हैं॥ ३३ ॥ ३४ ॥

उष्णवातके लक्षण।

पित्तं व्यायामतीक्ष्णोष्णभोजनाध्वातपादिभिः।
प्रवृद्धं वायुना क्षिप्तं बस्त्युपस्थांतिदाहवत्३५॥
मूत्रं प्रवर्तयेत्पीतं सरक्तं रक्तमेव वा।
उष्णं पुनःपुनःकृच्छ्राद्गुष्णवातं वदन्तितम्३६

कसरतकरनेसे, तीक्ष्ण और उष्ण भोजन करनेसे, गर्मीमें मार्गचलनेसे, तेजधूपके लगनेसे, बढाहुआ पित्त वायुद्वारा जब वस्तिमें फेंका जाता है तब यह वायुसे मिलाहुआ पित्त वस्ति और शिश्नेन्द्रियमें पीड़ा और दाहको करता है तब पीला लालवर्णका मूत्र आने लगता है। अथवा रक्तआनेलगता है यह मूत्र या रक्त

उष्ण वारवार और कष्टसे आता है इस मूत्ररोगको उष्णवात कहते हैं ॥ ३६ ॥३१ ॥

मूत्रक्षयके लक्षण।

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ।
मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ ३७ ॥

रूक्ष और दुर्बलदेहवाले मनुष्यके शरीरमें बस्तिस्थानमें स्थित पित्त और वायु मूत्रको क्षय करदेते हैं तथा पीडा और दाहको उत्पन्न करदेते हैं। इस रोगको मूत्रक्षयरोग कहते हैं ॥ ३७ ॥

मूत्रसादके लक्षण।

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत्।
कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत्३८
सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेच्च तत्।
शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम्॥३९॥

पित्त अथवा कफ या पित्त और कफ दोनों वायुसे हनन होकर मूत्राशयमें स्थित होते हैं तब मूत्र कष्टसे पीला लालवर्णका अथवा श्वेत या गाढा दाहके साथ आने लगता है। जिस स्थानमें वह मूत्र कियाजाय तो सूखनेपर गोरोचन या शंखके चूर्णके वर्णका अथवा दोनों वर्णवाला होजाता है। इस रोगको मूत्रसाद कहते हैं ॥ ३८ ॥३९ ॥

इति विस्तरतः प्रोक्ता रोगा मूत्राप्रवृत्तिजाः।
निदानलक्षणैरूर्ध्वं वक्ष्यन्तेऽतिप्रवृत्तिजाः॥४०॥

इस प्रकार मूत्रके रुकनेसे होनेवाले रोग विस्तारसे कथन करदियेगये हैं। अब इससे आगे अधिक मूत्र आनेसे होनेवाले रोगोंके निदान और लक्षणोंको कथन करेंगे ॥ ४० ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टाङ्गहृदयसंहितायां निदानस्थाने मूत्राघातनिदाने प. शिवशर्म वैद्यशास्त्रिकृतशिवदीपिका भाषाव्याख्यायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः।

अथाऽतः प्रमेहनिदानं व्याख्यास्यामः।

अब हम प्रमेह निदानकी व्याख्या करते हैं।

प्रमेहोंके भेद।

प्रमेहा विंशतिस्तत्र श्लेष्मतो दश पित्ततः।
षट् चत्वारोऽनिलात् ॥ १ ॥--

प्रमेह २० प्रकारके होते हैं-इनमें कफसे १० प्रकारके होते हैं, पित्तसे ६ प्रकारके होते हैं और वायुसे चार प्रकारके होते हैं ॥ १ ॥

प्रमेहोंके कारण।

--तेषां मेदोमूत्रकफावहम् ॥
अन्नपानक्रियाजातं यत्प्रायस्तत्प्रवर्तकम्।
स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुरुपिच्छिलशीतलम् ॥२॥
नवधान्यसुरानूपमांसेक्षुगुडगोरसम्।
एकस्थानासनरतिः शयनं विधिवर्जितम् ॥३॥

उन प्रमेहोंकी जो अन्नपान क्रिया आदि भेद मूत्र और कफको उत्पन्न करनेवाले हैं और जो इनके प्रवर्तक हैं वे प्रमेहके कारण होते हैं. जैसे--मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध, भारी, पिच्छल और शीतल पदार्थोंका अधिक सेवन करना तथा नवीन धान्य, सुरा, अनूपसंचारी जीवोंका मांस, इक्षु, गुड, मिठाई, गोरस आदिका अधिक सेवन करना तथा आलस्यवश एक ही स्थानमें दिनभर बैठे रहना और विधिको छोडकर अधिक शयनकरना ये सब प्रमेहोंके कारण होते हैं ॥२॥३॥

बस्तिमाश्रित्य कुरुते प्रमेहान् दूषितः कफः।
दूषयित्वा वपुः क्लेदस्वेदमेदोरसामिषम् ॥ ४ ॥

ऐसे कारणोंसे दूषितहुआ कफ वस्तिस्थानमें प्राप्त होकर शरीरका क्लेद, स्वेद, मेद, रस और मांसको दूषित करके प्रमेहोंको पैदा करता है ॥ ४ ॥

पित्तं रक्तमपि क्षीणे कफादौ मूत्रसंश्रयम्।
धातून् बस्तिमुपानीय तत्क्षयेऽपि च मारुतः॥५॥

इसी प्रकार आदिमें कफके क्षीण हो जानेसे पित्त या रक्त बल प्राप्त करके मूत्रमें प्रवेश करके प्रमेहका कारण हो जाता है।

ऐसे ही धातुओंके क्षीण होनेसे प्रकोपको प्राप्त हुआ वायु प्रमेहकारक धातुओंको वस्तिके मुखमें लाकर प्रमेहोंको करता है ॥ ५ ॥

प्रमेहोंकी साध्यासाध्यता ।

साध्ययाप्यपरित्याज्या मेहास्तेनैव तद्भवाः ।
समासमक्रियतया महात्ययतयाऽपि च ॥ ६ ॥

इन कफ, पित्त और वायुसे उत्पन्न हुए प्रमेह क्रमसे साध्य याप्यसाध्य और असाध्य इन भेदोंसे तीन प्रकारके होते हैं. इनमें कफके दश प्रमेह समक्रिय होनेसे अर्थात् जो औषधादि प्रमेहको नाश करनेवाले हैं वे प्रमेहके हेतुभूत कफको भी शमन करते हे. इस कारण कफके प्रमेह समक्रिय होनेसे साध्य होते हैं ।

पित्तके प्रमेहोंमें जो क्रिया कफको शमन करनेवाली है वह पित्त या रक्तको दूषित न करे इस विचारसे चिकित्सा की जाती है इस कारण पित्तके प्रमेह याप्य साध्य होते है ।

वायुके प्रमेहोंमें जितनी क्रिया प्रमेहके दूष्योंको शुद्ध कर कफको शमन करनेवाली है वे सब रूक्ष होनेसे वायुको बढानेवाली है इस लिये विरुद्धक्रियावाले होनेसे वायुके प्रमेह असाध्य होते हैं ॥ ६ ॥

प्रमेहोंके सामान्य लक्षण ।

सामान्यलक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ।
दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ।
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥ ७ ॥

सब प्रकारके प्रमेहोंके सामान्यलक्षण अधिक और आविल मूत्रका आना ही है अर्थात् सम्पूर्ण प्रमेहोंमें मूत्र अधिक आता है और आविल आता है. ये प्रमेहके सामान्य लक्षण हे ।

यद्यपि प्रमेहके दोष और दूष्योंमें विशेष अन्तर नहीं है परन्तु दोष और दूष्योंके संयोग विशेषसे तथा मूत्रके वर्णादि भेदसे प्रमेहोंके भेद कल्पना किये गये है॥७॥

कफके दश प्रमेह ।

अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ॥८।
मेहत्युदकमेहेन किञ्चिच्चाविलपिच्छिलम् ।
इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः॥ ९ ॥
सान्द्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेही प्रमेहति ।
सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् ॥१०॥
संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ।
शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ॥११॥
मूत्राणून् सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ।
शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् ॥ १२॥
शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ।
लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम्१३।

१—उदकमेहमें निर्मल, बहुत, सफेद, शीत, निर्गंध, जलके समान, किंचित् आविल, किंचित् पिच्छिल अधिक मूत्र आता है. इसको उदकमेह कहते हे ।

२—जिस प्रमेहमें इक्षुके रसके समान मधुर और अधिक मूत्र आवे उसको इक्षुमेह कहते हे ।

३—जिस प्रमेहमें मूत्र पात्रमें रखकर पर्युषित करनेसे सान्द्र होजाय. उसको सान्द्रमेह कहते है ।

४—जिस प्रमेहमें मूत्र पात्रमें रखदेनेसे मूत्रका ऊपरका भाग पतला स्वच्छ हो और सुराके समान वर्णवाला हो तथा नीचेका भाग गाढा हो उसको सुरामेह कहते हे ।

५—जिस प्रमेहमे पिसेहुए मेदेके समान घुला हुआसा श्वेत और अधिक मूत्र आवे और इस प्रमेहवाले मनुष्यके रोमांच खडे होजांय इन लक्षणोंवाले प्रमेहको पिष्टमेह कहते हे ।

६—शुक्रमेहमें वीर्यके समान वर्णवाला अथवा वीर्य मिश्रित मूत्र आता है।

७—सिकतामेहमें वालूके कणके समान मिलेहुए सिकतावाला मूत्र आता है । इस मेहमे सिकताके समान दोष आनेसे इसको सिकतामेह कहते हे ।

८—जिस प्रमेहमें बहुत अधिक और अधिक शीतल मधुर बहुतसा मूत्र आता हो उसको शीतमेह कहते हैं ।

९—जिस प्रमेहमें धीरे धीरे मन्द मन्द मूत्र देरतक आता रहता है उसको शनैःमेह कहते हे ।

१०—जिस प्रमेहमें मूत्र पिच्छिल लाला और तन्तुयुक्त होता है उसको लालामेह कहते हैं ।

इस प्रकार ये दश प्रमेह कफके कहेजाते हैं ८-१३

पित्तके ६ प्रमेहोंके लक्षण ।

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ।
नीलमेहेन नीलाभं-

-कालमेही मषीनिभम् ॥ १४ ॥
हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत्।
विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम्।
विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः ॥१५॥

१–जिस प्रमेहमें मूत्र गंध, वर्ण, रस और स्पर्शमें क्षारके जलके समान हो उसको क्षारमेह कहते हे।

२–नीलमेहमे मूत्र नीलवर्णका होता है।

३–कालमेहमे मूत्रका वर्ण स्याहीके समान काले वर्णका होता हे।

४–जिस प्रमेहमें मूत्र हलदीके समान पीले वर्णका कटु और दाहवाला होता है उसको हारिद्रमेह कहतेहैं.

५–जिस प्रमेहमे मूत्र मजीठके जलके समान लाल वर्णका और मुर्देकीसी गंधवाला हो उसको मांजिष्ठ मेह कहते है।

६–जिस प्रमेहमें मूत्र दुर्गंधित उष्ण लवण रसवाला और रक्तके समान वर्णवाला होता हे उसको रक्तमेह कहते हे।

इस प्रकार पित्तके ६ प्रमेह होते हैं॥१४॥१५॥

वायुके चार प्रमेहोंके लक्षण।

वसामेही वसामिश्रं वसां वा मूत्रयेन्मुहुः।
मज्जानं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः॥ १६॥
हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम्।
सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति।
मधुमेही मधुसमम् ॥ १७ ॥-

१–जिस प्रमेहमें वसाके समान अथवा वसासे मिलाहुआ मूत्र बार बार आता है उसको वसामेह कहते हैं।

२–जिस प्रमेहमें मज्जाके समान वर्णवाला अथवा मज्जामे मिश्रित मूत्र बार बार आता है उसको मज्जामेह कहते हे।

३–जिस प्रमेहमे मत्त हस्तीके समान निरन्तर वेग रहित लसीकायुक्त और विबद्धसा मूत्र बराबर चलता रहे उस प्रमेहको हस्तीमेह कहते हे।

४–जिस प्रमेहमें मधुके समान वर्ण और रसवाला मूत्र आता हो उसको मधुमेह कहते हे. ये चार प्रकारके प्रमेह वायुके कहे जाते हे ॥ १६ ॥ १७ ॥

-जायते स किल द्विधा।
क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा ॥१८॥
आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयेत्।
क्षीणःक्षणात्क्षणात्पूर्णो भजतेकृच्छ्रसाध्यताम्

इनमें मधुमेह दो प्रकारका होता है. एक तो धातुक्षयसे वायुके प्रकोपसे होता है. दूसरा दोषोंद्वारा मूत्र मार्गके रुक जानेसे होता है।

इनमे दोषावृतमार्ग होनेसे जो मधुमेह होता है वह अकारण ही दोषोंके लक्षणोंको दिखाया करता हे।

और धातुओंके क्षीण होनेसे जो मधुमेह होताहै वह क्षणमें क्षीण और क्षणमें पूर्णलक्षणोंवाला होजाताहै। ये दोनों प्रकारके मधुमेह कष्टसाध्य होजाते हे ॥१८।१९

कालेनोपेक्षिताः सर्वे यद्यांति मधुमेहताम्॥२०
मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विव मेहति।
सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः॥२१॥

बहुत समय तक चिकित्सा न करनेसे सम्पूर्ण प्रमेह ही मधुमेह होजाते है। सम्पूर्ण मधुमेहोंमें मूत्र मधुके समान मधुर रसवाला आनेलगता है। सब प्रकारके मधुमेह शरीरमें मीठेपनसे व्यापक रहते है। इस कारण इनको मधुमेह कहते हे। प्रायः सम्पूर्ण मधुमेह कष्टसाध्य होते हे ॥ २० ॥ २१ ॥

प्रमेहोंके उपद्रव।

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः।
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम्॥२२।

अन्नका परिपाक न होना, अरुचि, छर्दी, निद्राकी अधिकता, खांसी और प्रतिश्याय ये उपद्रव कफके प्रमेहोंमें होते हैं ॥ २२॥

वस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः।
दाहस्तृष्णाम्लकोमूर्च्छाविड्भेदःपित्तजन्मनाम्

वस्ति और मेहनमें तोद होना, अंडकोषोंमें पीड़ा या परिपाक होना, ज्वर, दाह, तृषा, खट्टी डकार, मूर्च्छा, पीला और पतला दस्त आना ये उपद्रव पित्तके प्रमेहोंमें होजाते हे ॥ २३ ॥

वातिकानामुदावर्तकण्ठहृद्ग्रहलोलताः ।
शूलमुन्निद्रता शोषःकासःश्वासश्च जायते।२४॥

उदावर्त होना, कंठ और हृदयका पकड़ेसे जाना तथा हृदयमें फड़कन होना, शूल, निद्रानाश, मुखशोष, खांसी और श्वास ये उपद्रव वातजनित प्रमेहमें हो जाते है ॥ २४ ॥

प्रमेहपिडिकाओंके लक्षण ।

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी ।
मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका॥२५॥
विद्रधिश्चेति पिटिकाः प्रमेहोपेक्षया दश ।
सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु॥२६॥

शराविका, कच्छपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, विदारिका और विद्रधि ये १० प्रकारकी पिडिका प्रमेहपिडिका कहीजाती हैं। ये पिडिकायें संधिमर्मोंमें और मांसवाले स्थानोंमें होती हे। प्रमेहरोगकी बहुत समय तक चिकित्सा न करनेसे ये प्रमेहपिडिका उत्पन्न होती हैं। ये पिडिकायें दुष्टमेदवाले मनुष्योंके शरीरमें विना प्रमेहसेभी उत्पन्न हो जातीहैं २६

शराविकाके लक्षण ।

अन्तोन्नता मध्यनिम्ना श्यावा क्लेदरुजान्विता।
शरावमानसंस्थाना पिटिकास्याच्छराविका २७

जो पिडिका किनारोंसे ऊची, मध्यमेंसे नीची, शरावके समान आकारवाली, श्यामवर्णकी क्लेद और पीडाकरके युक्त होती है उसको शराविका कहते हे ॥२७

कच्छपिकाके लक्षण ।

अवगाढार्तिनिस्तोदा महावास्तुपरिग्रहा ।
श्लक्ष्णा कच्छपपृष्ठाभा पिटिका कच्छपी मता॥

जो पिडिका बराबर गाढपीडा करके युक्त हो और जिसमें निस्तोद अर्थात् चमके पड़ते हों जिसका परिग्रहस्थान बड़ा हो पिडिकाका वर्ण स्वच्छ हो और कच्छूकी पीठके समान आकारवाली हो उसको कच्छपिका कहते हे ॥ २८ ॥

जालिनीके लक्षण ।

स्तब्धा सिराजालवती स्निग्धस्रावा महाशया ।
रुजानिस्तोदबहुला सूक्ष्मच्छिद्रा च जालिनी ॥

जो पिड़िका स्तब्ध हो, सिराओंके जालसे युक्त हो, चिकना स्राव करनेवाली हो, भीतरको गहरी हो जिसमें पीड़ा और चमके अधिक हों मुखका छिद्र छोटा हो उसको जालिनी कहते हैं ॥ २९ ॥

विनताके लक्षण ।

अवगाढरुजाक्लेदा पृष्ठे वा जठरेऽपि वा ।
महती पिटिका नीला विनता विनता स्मृता३०।

जिसमें अधिक पीड़ा हो क्लेद अधिक बहता हो पीठ या उदरपर उत्पन्न हुई हो, बड़ी पिड़िका हो, नील वर्णकी हो, चपटी हो, अर्थात् ऊची न हो उसको विनता कहते हैं ॥ ३० ॥

अलजीके लक्षण ।

दहति त्वचमुत्थाने भृशं कष्टा विसर्पिणी ।
रक्तकृष्णातितृट्स्फोटदाहमोहज्वराऽलजी३१।

जो पिड़िका उत्थानके समय त्वचामे अत्यन्त दाहको उत्पन्न करे और फैलनेवाली हो, अत्यन्त कष्ट देनेवाली हो रक्त और कृष्णवर्णकी हो, जिस मनुष्यके शरीरमें हो उसको तृषा, स्फोट (हड़फूटन) दाह, मोह और ज्वर ये उपद्रव होजांयउस पिड़िकाको अलजी कहते हे ॥ ३१ ॥

मसूरिका ।

मानसंस्थानयोस्तुल्या मसूरेण मसूरिका ॥३२॥

जो पिड़िका मान संस्थान और वर्णमें मसूरके समान हो उसको मसूरिका कहते हे ॥ ३२ ॥

सर्षपिका ।

सर्षपामानसंस्थाना क्षिप्रपाका महारुजा ।
सर्षपा सर्षपातुल्यपिटिकापरिवारिता ॥ ३३ ॥

जो पिड़िका सरसोंके समान संस्थान और वर्णवाली हो और सरसोंके समान ही वर्णवाली पिड़िकाओंसे परिवृत हो शीघ्र पकनेवाली और अधिक पीडा करनेवाली हो उसको सर्षपिका कहते हे ॥ ३३ ॥

पुत्रिणी ।

पुत्रिणी महती भूरिसुसूक्ष्मपिटिकावृता ॥३४॥

जो पिड़िका बहुतसी छोटी छोटी पिड़िकाओंसे आवृत हो, स्वयं इन छोटी २ पिडिकाओंके मध्यमे बड़े आकारवाली हो उसको पुत्रिणी कहते हैं ॥३४॥

विदारिका।

विदारीकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ॥३५॥

जो पिडिका विदारीकन्दके समान कठिन और गोल हो उसको विदारिका कहते हैं ॥ ३५ ॥

विद्रधि।

विद्रधिर्वक्ष्यतेऽन्यत्र ॥ ३६ ॥–

विद्रधि पिड़िकाका वर्णन अन्यत्र करेंगे. यह विद्रधि रोगकेसे लक्षणोंवाली पिडिका होती है ॥ ३६ ॥

–तत्राद्यं पिटिकात्रयम्।
पुत्रिणी च विदारी च दुःसहा बहुमेदसः।
सह्याःपित्तोल्बणास्त्वन्याःसम्भवन्त्यल्पमेदसः।
तासु मेहवशाच्च स्याद्दोषोद्रेको यथायथम्।
प्रमेहेण विनाप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः।
तावच्च नोपलक्ष्यन्ते यावद्वस्तुपरिग्रहः॥ ३७ ॥

इनमें प्रथम तीन प्रकारकी पिड़िका अर्थात् शराविका कच्छपिका और जालिनी तथा पुत्रिणी और विदारिका ये पांच प्रकारकी पिडिका अधिकमेदवाले मनुष्योंके शरीरमें होनेसे दुःसह और कष्टसाध्य होती है।

इनसे अतिरिक्त अन्य पिडिकायें पित्तोल्बण होनेसे और अल्प मेदवाले मनुष्योंके शरीरमें उत्पन्न होनेसे सह्य और सुखसाध्य होती हैं। इन सब पिडिकाओंमें प्रमेहके समान ही दोषोंकी अधिकता होती है अर्थात् जिस दोषके प्रमेहमें जो पिडिका उत्पन्न होती है वह उसी दोषकी पिड़िका जाननी चाहिये।

ये पिडिकायें विना प्रमेहसे भी दुष्ट मेदवाले मनुष्यके शरीरमें उत्पन्न होजाती हैं। जबतक ये पिडिकायें अपने स्थान और परिग्रहको नहीं बना लेती तब तक दिखाई नहीं देती है ॥ ३७ ॥

हारिद्रवर्णं रक्तं वा मेहप्राग्रूपवर्जितम्।
यो मूत्रयेन्न तं मेहं रक्तपित्तं तु तद्विदुः॥ ३८ ॥

जिस मनुष्यको प्रमेहके पूर्वरूपोंके विना ही हल्दीके समान वर्णवाला अथवा लालवर्णका मूत्र आता हो उसको प्रमेह नहीं कहना चाहिये किन्तु वह रक्तपित्तका प्रकोप जानना चाहिये ॥

प्रमेहके पूर्वरूपके लक्षण।

स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलत्वमङ्गे
शय्यासनस्वप्नसुखाभिषङ्गः।
हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो
घनाङ्गता केशनखातिवृद्धिः।
शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो
माधुर्यमास्ये करपाददाहः।
भविष्यतो मेहगणस्य रूपं
मूत्रेऽभिधावन्ति पिपीलिकाश्च ॥ ३९ ॥

शरीरमें पसीना आना, शरीरसे गन्धका आना, अंगोंमें शिथिलता होना, बैठे रहना, पडे रहना, सोना और सुखकी अभिलाषा रहना, हृदयमें नेत्रोंमें जिह्वापर और कानोंमें उपलेपसा होना, अंगोंका घन होना, केश और नखोंकी अत्यन्त वृद्धि होना, शीतल वस्तुसे प्यार होना, गल और तालुका सूखना, मुखमें मीठापन, हाथों पावोंमें दाह, मूत्रपर चींटियोंका लगना ये सब लक्षण २० प्रकारके प्रमेहोंके होनेसे पूर्व होजाते हैं ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सपिच्छं
मधूपमं स्याद् द्विविधो विचारः।
सन्तर्पणाद्वा कफसम्भवः स्यात्
क्षीणेषु दोषेष्वनिलात्मको वा ॥ ४० ॥

प्रमेहमें मधुरता अर्थात् मधुके समान रस वर्णके होजानेसे अथवा शाल्मलिके रसके समान पिच्छायुक्त हो जानेसे दो प्रकारके विचार होते हैं या तो अधिक संतर्पणसे कफकी वृद्धि होकर ऐसे प्रमेहकी उत्पत्ति होती है अथवा दोषोंके क्षीण होजानेपर वायुकी वृद्धि होनेसे इस प्रकारका प्रमेह होता है। तात्पर्य यह है कि पिच्छायुक्त मधुमेहमें कफकी अधिकता होती है अथवा वायुकी अधिकतासे होती है ऐसी अवस्थामें मूर्ख मनुष्य चिकित्साके भ्रममें पड़ जाता है तब बुद्धि-

१ यद्यपि निदानानन्तर पूर्वरूपं वक्तव्यं तथापि निदानलक्षणानन्तरमत्र निदानलिङ्गयोश्चिकित्साङ्गत्वप्रतिपादनार्थं त्वनयोः पूर्वमभिधानम्। अथवा। अवश्यं च वक्तव्यानां कामचारमभिधानम्। एवमन्यत्रापि व्यतिक्रमे द्रष्टव्यम्। इति मधुकोशभाष्ये।

मान् मनुष्यको प्रमेहके साथ अन्य लक्षण जो प्रमेह रोगीके शरीरमें होते हैं उनसे कफप्रधान मधुमेह अथवा वातप्रधान मधुमेहका विचार करलेना चाहिये ॥ ४० ॥

सपूर्वरूपाः कफपित्तमेहाः
क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः ।
साध्या न ते पित्तकृतास्तु याप्याः
साध्यास्तु मेदो यदि नातिदुष्टम् ॥ ४१ ॥

जो कफ और पित्तके प्रमेह क्रमपूर्वक सम्पूर्ण पूर्वरूपोंको धारण करतेहुए वृद्धिको प्राप्त होकर समयकी अधिकतासे मधुमेह आदि लक्षण धारण करचुके हैं वे कफ पित्तके प्रमेह और वायुके प्रमेह ये सब साध्य नहीं होते किन्तु केवल पित्तके जिन्होंने कालके अतियोगसे मधुमेहपन धारण नहीं किया तो याप्य होते हैं और यदि पित्तके मेहोंमें मेद अत्यन्त दुष्ट न होगयी हो तो साध्य होते हैं । एवं कफके मेह तो समक्रिय होनेसे साध्य होते ही हैं ॥ ४१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टांगहृदयसंहितायां निदानस्थाने प्रमेहनिदाने प० शिवशर्म वैद्यशास्त्रिकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथाऽतो विद्रधिवृद्धिगुल्मनिदानं-
-व्याख्यास्यामः ।

अब हम विद्रधि वृद्धि और गुल्मके निदानकी व्याख्या करते हैं ।

विद्रधिरोगका निदान ।

भुक्तैः पर्युषितात्युष्णरूक्षशुष्कविदाहिभिः ।
जिह्मशय्याविचेष्टाभिस्तैस्तैश्चासृक्प्रदूषणैः ॥ १ ॥
दुष्टत्वं मांसमेदोऽस्थिस्नावासृक्कण्डराश्रयः ।
यः शोफो बहिरन्तर्वा महामूलो महारुजः ॥ २ ॥
वृत्तःस्यादायतो यो वा स्मृतः षोढा स विद्रधिः ।
दोषैः पृथक्समुदितैः शोणितेन क्षतेन च ॥ ३ ॥

पर्युषित (बासी) अत्युष्ण, रूक्ष, शुष्क शाकादि और विदाही पदार्थोंके खानेसे तथा टेढ़े विकृत शयन-चेष्टादि करनेसे और अन्य रक्तके दूषण करनेवाले कारणोंसे दुष्टहुए त्वचा मांस मेद अस्थि स्नायु रक्त और कंडराके आश्रित जो सूजन शरीरके अन्दर या बाहर किसी एकदेशमें उत्पन्न होती है तथा वह सूजन महामूलवाली, महापीड़ा देनेवाली, गोल और कुछ लंबाई लियेहुए होती है, उसको विद्रधि कहते हैं । यह विद्रधि- १ वात, २ पित्त, ३ कफ, ४ सन्निपात, ५ रक्त और ६ क्षत इन ६ कारणोंके भेदसे ६ प्रकारकी होती है ॥ १ । २ । ३ ॥

द्विविध विद्रधिके लक्षण ।

बाह्योऽत्र तत्रतत्राङ्गे दारुणो ग्रथितोन्नतः ।
आन्तरो दारुणतरो गम्भीरो गुल्मवद्घनः ॥ ४ ॥
वल्मीकवत्समुच्छ्रायी शीघ्रघात्यग्निशस्त्रवत् ।

बाह्य विद्रधि जिस जिस अंगमें होती है वह ग्रंथिके समान उन्नत और दारुण होती है । अन्तर्विद्रधि गंभीर और गुल्मके समान घन तथा दारुणतर होती है यह विद्रधि सांपकी बांबीके समान उच्छ्रायवाली तथा अग्नि और शस्त्रके समान शीघ्र नाशकरनेवाली होती है ॥ ४ ॥

विद्रधिके स्थान ।

नाभिबस्तियकृत्प्लीहक्लोमहृत्कुक्षिवंक्षणे ।
स्याद्वृक्कयोरपाने च ॥ ५ ॥-

विद्रधि नाभि, वस्ति, यकृत्, प्लीहा, क्लोम, हृदय, कुक्षि, वंक्षणकी संधि, अंडकोषकी संधि और अपानस्थान इन स्थानोंमें उत्पन्न होकर दारुण कष्टको देती है ५

वातादिभेदसे विद्रधिके लक्षण ।

-वातात्तत्राऽतितीव्ररुक् ।
श्यावारुणश्चिरोत्थानपाको विषमसंस्थितिः ।
व्यधच्छेदभ्रमानाहस्पन्दसर्पणशब्दवान् ॥ ६ ॥

वातकी विद्रधि अति तीव्र शूलवाली, श्याम और अरुणवर्णकी देरमें उत्थान और परिपाकको प्राप्त होनेवाली, विषमस्थितिवाली तथा वेधन और छेदनकीसी पीड़ा करनेवाली एवं भ्रम, आनाह और स्पन्दन करनेवाली तथा सर्पणकेसे शब्द करनेवाली होती है ॥ ६ ॥

रक्तताम्रासितः पित्तात्तृण्मोहज्वरदाहवान् ।
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च ॥ ७ ॥-

पित्तकी विद्रधि रक्त और ताम्रवर्णकी होती है तथा

शीघ्र उत्थान और परिपाकको प्राप्त होजाती है। इस विद्रधिमें तृषा, मोह, ज्वर और दाह ये उपद्रव होते हैं ७

-पाण्डुः कण्डूयुतः कफात्।
सोत्क्लेशशीतकस्तम्भजृम्भारोचकगौरवः।
चिरोत्थानविदाहश्च--

कफकी विद्रधि पाण्डुवर्णकी कण्डूयुक्त, देरमें उत्थान और परिपाकको प्राप्तहोनेवाली होती है. इस विद्रधिवाले रोगीको उत्क्लेश, शीत, ज्वर और स्तम्भ, जृम्भा, अरुचि और भारीपन ये उपद्रव होते हैं।

-सङ्कीर्णः सन्निपाततः॥ ८॥

जिस विद्रधिमें तीनों दोषोंके लक्षण सम्मिलित हों उसको सन्निपातज विद्रधि जानना चाहिये ॥ ८ ॥

सामर्थ्याच्चात्र विभजेद्बाह्याभ्यन्तरलक्षणम्॥९॥

इसी प्रकार लक्षणज्ञान सामर्थ्यसे बाह्य और आभ्यन्तर विद्रधियोंमें वातादिदोषोंके पृथक् पृथक् लक्षणोंकी कल्पना करलेना चाहिये ॥ ९ ॥

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः।
पित्तलिङ्गोऽसृजा बाह्यः स्त्रीणामेव तथान्तरः१०

जो विद्रधि श्यामवर्णकी हो तथा कृष्णवर्णके स्फोटोंमें आवृत हो, तीव्रदाह शूल और ज्वरके करनेवाली हो, एवं पित्तकी विद्रधिके समानलक्षणोंवाली हो वह बाह्यविद्रधि रक्तकी जाननी चाहिये। ऐसी ही रक्तकी विद्रधि अन्तर्विद्रधि होती है। यह रक्तकी अन्तर्विद्रधि स्त्रियोंके शरीरमे ही उत्पन्न होती है पुरुषोंके शरीरमें नहीं होती है ॥ १० ॥

शस्त्राद्यैरभिघातेन क्षते वाऽपथ्यकारिणः।
क्षतोष्मा वायुविक्षिप्तःसरक्तं पित्तमीरयन्॥११॥
पित्तासृग्लक्षणं कुर्याद्विद्रधिं भूर्युपद्रवम्।
तेषूपद्रवभेदश्च स्मृतोऽधिष्ठानभेदतः॥ १२॥

किसी शस्त्र आदिके घाव लगजानेसे क्षत होजानेपर जब मनुष्य कुपथ्य करनेलगता है तो उस कुपथ्यके कारण वायुसे सयुक्तहुई क्षतस्थानकी उष्मा रक्तयुक्त पित्तको उदीर्णकरके पित्त और रक्तके लक्षणोंवाली महाउपद्रवोंसे युक्त विद्रधिको करता है। इन सब प्रकारकी विद्रधियोंमें स्थान और आश्रयभेदसे उपद्रवोंमें भी भेद हो जाता है॥ ११ ॥ १२ ॥

नाभ्यां हिध्मा भवेद्वस्तौ मूत्रं कृच्छ्रेण पूति च।
श्वासो यकृति रोधस्तु प्लीह्न्युच्छ्वासस्य तृट् पुनः
गलग्रहश्च क्लोम्नि स्यात्सर्वाङ्गप्रग्रहो हृदि।
प्रमोहस्तमकः कासो हृदये घट्टनं व्यथा॥१४॥
कुक्षिपार्श्वान्तरांसार्तिः कुक्षावाटोपजन्म च।
सक्थ्नोर्ग्रहो वंक्षणयोर्वृक्कयोः कटिपृष्ठयोः।
पार्श्वयोश्च व्यथा पायौ पवनस्य निरोधनम् १५

यदि नाभिस्थानमें विद्रधि उत्पन्न हो तो उसके साथ हिचकी उत्पन्न हो जाती है। यदि मूत्रस्थानमें विद्रधि होजाय तो दुर्गंधित और कष्टसे मूत्र आनेलगता है। यकृत्में विद्रधि हो तो श्वासरोग और प्लीहामें विद्रधि हो तो उर्ध्वश्वासका निरोध होजाता है। क्लोम स्थानमें विद्रधि हो तो गलग्रह और तृषा यह उपद्रव होजाते हैं। यदि हृदयमें होजाय तो सर्वांगग्रह, मूर्च्छा, तमक, श्वास, खांसी और हृदयमें घट्टनकीसी पीड़ा होने लगती है। कुक्षिस्थानमें उत्पन्न होजाय तो दोनों पार्श्व और अंसस्थानके मध्यमे पीड़ा तथा दोनों कुक्षियोंमें आटोप होजाता है। वक्षणकी संधियोंमें विद्रधि होनेसे दोनों सक्थि अकड़ जाते हैं. वृक्कोंके संधिमें विद्रधि होनेसे कमर और पीठमें तथा दोनों पार्श्वोंमें अकड़न होजाती है. पायुस्थानमें विद्रधि होनेसे अपानवायुका निरोध होजाता है ॥ १३-१५ ॥

आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोफवदादिशेत्॥१६॥

विद्रधियोंमें कच्चापन और पक्व तथा विदग्धके लक्षण सूजनके समान जान लेना चाहिये (शस्त्रकर्म विधिमें आमपक्वादि शोथके लक्षण लिख आये हैं) ॥ १६ ॥

नाभेरूर्ध्वं मुखात्पक्वाः प्रस्रवन्त्यधरे गुदात्।
उभाभ्यां नाभिजो--

आभ्यन्तर विद्रधि यदि नाभिसे ऊपरके भागमें उत्पन्न होकर परिपाकको प्राप्त हो तो उसका स्राव मुखके द्वारा निकलता है और नाभिसे अधोभागमें यदि विद्रधि उत्पन्न होकर पक जाती है तो गुदाद्वारा उसका

स्राव होता है. यदि नाभिमें आभ्यन्तर विद्रधि उत्पन्न होकर पके तो उसका स्राव दोनों मार्गोंसे होता है।

-विद्याद्दोषं क्लेदाच्च विद्रधौ ॥
यथास्वं व्रणवत् ॥ १७ ॥-

विद्रधिके क्लेद स्रावसे उसमें वातादि दोषोंका निश्चय करलेना चाहिये । जैसे पुलाकोदक समान पतला और अल्पस्राव वायुकी विद्रधिसे मूत्र किंशुक भस्मका जल और तैलके समान वर्णवाला उष्ण और अधिक पित्तकी विद्रधिसे और श्वेत घन आदि स्राव कफकी आभ्यन्तर विद्रधिसे हुआ करता है ॥ १७॥

असाध्य विद्रधिके लक्षण ।

--तत्र विवर्ज्यः सन्निपातजः ।
पक्वो हृन्नाभिवस्तिस्थो भिन्नोऽन्तर्बहिरेव वा ।
पक्वश्चान्तःस्रवन्वक्त्रात्क्षीणस्योपद्रवान्वितः १८

सन्निपातकी विद्रधि असाध्य होती है तथा हृदय नाभि और वस्तीकी विद्रधि पककर आभ्यन्तर या बाह्यस्राव करे और अन्तर्विद्रधि पककर मुखके द्वारा स्राव करे. इन विद्रधिवाला मनुष्य क्षीण और उपद्रव-युक्त होतो ये विद्रधियें भी असाध्य हो जाती हैं॥ १८॥

स्तनविद्रधिके लक्षण ।

एवमेव स्तनसिरा विवृताःप्राप्य योषित।मु१९॥
सूतानां गर्भिणीनां वा सम्भवेच्छ्वयथुर्घनः ।
स्तने सदुग्धेऽदुग्धे वा बाह्यविद्रधिलक्षणः ।
नाडीनां सूक्ष्मवक्त्रत्वात्कन्यानां तु न जायते२०

इसी प्रकार दोष स्त्रियोंके स्तनकी सिराओंमें प्राप्त होकर गार्भिणीस्त्रीके अथवा बालकवाली स्त्रीके स्तन पर घन शोथ उत्पन्न कर देते हैं । वह स्तन दूधयुक्त हो अथवा विना दूधवाला हो उसमें बाह्यविद्रधिके लक्षणोंवाली विद्रधि हो जाती है ।

यह स्तनविद्रधि छोटी अवस्थाकी कन्याओंके स्तनोंकी सिरा अत्यन्तसूक्ष्म मुखवाली होनेके कारण कन्याओंके स्तनोंपर नहीं होती है ॥ १९ ॥ २० ॥

वृद्धिके लक्षण ।

क्रुद्धो रुद्धगतिर्वायुः शोफशूलकरश्चरन् ॥२१॥
मुष्कौ वंक्षणतः प्राप्य फलकोशाभिवाहिनीः ।
प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोशयोः २२॥

जब कुपितहुआ वायु रुद्धगति होनेके कारण शोथ शूलको करताहुआ वंक्षण और अंडकोषकी संधिमें प्राप्त होकर फलकोशवाहिनी नाड़ीको पीड़ितकर फल-कोशकी धमनीमें प्राप्त हो जाता है तब अंडकोषोंकी वृद्धिको कर देता है ॥ २१ ॥ २२॥

अण्ड वृद्धिके सात प्रकार।

दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः स वृद्धिः सप्तधा गदः ।
मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम्॥२३॥

अंडवृद्धिरोग सात प्रकारका होता है. जैसे-वातज अंडवृद्धि, पित्तज अंडवृद्धि, कफज अंडवृद्धि, रक्तज अंड-वृद्धि, मेदज अंडवृद्धि, मूत्रावरोधज अंडवृद्धि, आन्त्रज अंडवृद्धि. यद्यपि मूत्रजनित और आंत्रजनित अंडवृद्धियें वातज अंडवृद्धिसे पृथक् नहीं है परन्तु हेतु और चिकित्सा भेदके लिये इनकी अलग कल्पना कीगयी है ॥२३ ॥

वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ।
पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् २४।

वायुसे पूर्ण मशकके समान स्पर्शवाली रूक्ष और अकस्मात् शूलवाली अंडवृद्धि वायुसे होती है ।

पकेहुए गूलरके फलके समान लाल वर्णवाली, दाह, उष्णता और परिपाकवाली, अंडवृद्धि पित्तसे होती है ॥ २४ ॥

कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डूमान्-
-कठिनोऽल्परुक् ।
कृष्णस्फोटावृतःपित्तवृद्धिलिङ्गश्च रक्ततः॥२५

शीतल, भारी, चिकनी, खुजलीयुक्त, कठिन और अल्प पीड़ावाली अंडवृद्धि कफसे होती है ।

कृष्णवर्णके स्फोटोंसे युक्त पित्तकी अंडवृद्धिके लक्ष-णवाली रक्तज अंडवृद्धि होती है ॥ २५ ॥

कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ।
मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः॥२६॥
अम्भोभिः पूर्णदृतिवत्क्षोभं याति सरुङ्मृदुः ।
मूत्रकृच्छ्रमधस्ताच्च वलयं फलकोशयोः ॥२७॥

कफकी अंडवृद्धिके समान लक्षणवाली स्पर्शमें मृदु

और तालफलके समान अंडवृद्धि मेदजनित होती है।

जो मनुष्य मूत्रके वेगको रोककर मार्ग चलता रहता है उसके अंडकोशोंमें मूत्रजनित वृद्धि होती है यह अडवृद्धि जलसे भरीहुई मशकके समान क्षोभको प्राप्त होती है तथा पीडायुक्त और स्पर्शमें मृदु होती है. इसमें मूत्र कष्टसे उतरता है और अंडकोषोंके नीचे वलय-कासा आकार होता है॥ २६॥ २७॥

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः।
धारणेरणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्तनैः॥ २८॥
क्षोभणैः क्षुभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा।
पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत्।
कुर्याद्वंक्षणसंधिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा२९॥
उपेक्ष्यमाणस्य च मुष्कवृद्धि-
माध्मानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः।
प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान् प्रयाति
प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः॥ ३०॥
अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः३१।

वातकारक आहार विहारोंके सेवन करनेसे शीत जलमें अवगाहन करनेसे, युद्धमें असमर्थावस्थातक खड़े रहनेसे, अधिक बोझ उठानेसे, मलमूत्रके वेगको धारण करनेसे, अंगोंकी विषम चेष्टा करनेसे, तथा अन्य वायु और अन्त्रावयवोंके क्षोभण करनेसे जब वायु क्षुभित होकर क्षुद्र अन्त्रावयवोंको विगुण करके अपने निवेशस्थानसे नीचेको ले जाता है तो वंक्षणोंकी संधियोमें ग्रंथिके आकारकी सूजनको कर देता है। उस सूजनकी कोई चिकित्सा न कर बे परवाह रहनेसे वायु अंडकोषकी वृद्धिको करता है। यह वृद्धि आध्मान शूल और स्तम्भवाली होती है। जब इन अंडकोषोंको दबाते है तो पीड़ितहुआ वायु शब्द करताहुआ ऊपरको ओर जाता है फिर छोड़देनेसे प्रध्मापन करताहुआ नीचेको आजाता है। यह वातवृद्धिके समान लक्षणोंवाला अंत्रवृद्धि रोग प्रायः असाध्य होता है॥ २८-३१॥

गुल्म रोगके लक्षण।

रूक्षकृष्णारुणसिरातन्तुजालगवाक्षितः।
गुल्मोऽष्टधा पृथग्दोषैः संसृष्टैर्निचयं गतैः।
आर्तवस्य च दोषेण नारीणां जायतेऽष्टमः॥३२॥

रूक्ष कृष्ण और अरुणवर्णकी सिराओं और तन्तु-जालसे युक्त ग्रन्थिके आकारका गुल्मरोग होता है। वह गुल्मरोग वातसे, पित्तसे, कफसे, वातपित्तसे, वात-कफसे, पित्तकफसे और सन्निपातसे इन भेदोंसे ७ प्रकारका होता है और आठवां गुल्म स्त्रियोंके शरीरमें मासिक रजके विकृत हो जानेसे होता है इस प्रकार गुल्मरोग आठ प्रकारका कहा है॥ ३२॥

गुल्मका निदान।

ज्वरच्छर्द्यतिसाराद्यैर्वमनाद्यैश्च कर्मभिः।
कर्शितो वातलान्यत्ति शीतं वाम्बु बुभुक्षितः३३
यः पिबत्यनु चान्नानि लंघनं प्लवनादिकम्।
सेवते देहसंक्षोभिश्छर्दिं वा समुदीरयेत्॥ ३४॥
अनुदीर्णामुदीर्णान्वा वातादीन्न विमुञ्चति।
स्नेहस्वेदावनभ्यस्य शोधनं वा निषेवते॥ ३५॥
शुद्धो वाऽऽशुविदाहीनि भजते स्यन्दनानि वा।
वातोल्बणास्तस्य मलाः पृथक् क्रुद्धा द्विशोथवा
सर्वे वा रक्तयुक्ता वा महास्रोतोऽनुशायिनः।
ऊर्ध्वाधोमार्गमावृत्य कुर्वते शूलपूर्वकम्॥३७॥
स्पर्शोपलभ्यं गुल्माख्यमुत्प्लुतं ग्रन्थिरूपिणम्
कर्शनात्कफविट्पित्तैर्मार्गस्यावरणेन वा।
वायुःकृताशयःकोष्ठे रौक्ष्यात्काठिन्यमागतः॥

ज्वर, छर्दी और अतीसार आदिसे अथवा वमन आदि पंचकर्मसे कृशहुआ मनुष्य यदि वातकारक अथवा शीतपदार्थोंको सेवन करता है अथवा अधिक क्षुधाके समय प्रथम बहुतसा शीतल जल पीता है और पीछेसे अन्नको खाता है अथवा कृश मनुष्य लंघन या प्लवनादि शरीरके क्षोभित करनेवाले कर्मोंको करता है अथवा विना आईहुई छर्दीको बलपूर्वक छर्दन करनेका यत्न करता है अथवा उदीर्णहुये वायु, मल मूत्रके वेगको त्याग नहीं करता है अथवा विना ही स्नेहन स्वेदन किये वमनविरेचनादि शोधनको करता है अथवा वमनादिसे शुद्ध होनेपर शीघ्र ही विदाही अथवा क्लेदकारक पदार्थोंका सेवन करता है उसके

शरीरमें वात प्रधान दोष अलग अलग अथवा दो दो मिलकर अथवा तीनों या रक्त करके युक्त महास्रोतका आश्रय लियेहुए ऊर्ध्व और अधोमार्गको आवृत करके शूलपूर्वक ग्रंथिके समान ऊँचे गुल्म (गोला) रोगको उत्पन्न करते है जो हाथके स्पर्शसे प्रतीत होता है ॥ ३३–३८ ॥

वातके गुल्मकी सम्प्राप्ति और लक्षण ।

स्वतन्त्रः स्वाश्रये दुष्टः परतन्त्रः पराश्रये॥३९॥
पिण्डितत्वादमूर्तोऽपि मूर्तत्वमिव संश्रितः ।
गुल्म इत्युच्यते बस्तिनाभिहृत्पार्श्वसंश्रयः॥४०॥

रस-रक्तादि धातुओंके क्षीण होनेसे,कफ मल और पित्त द्वारा वायुके मार्ग रुक जानेसे, कोष्ठमें बढाहुआ वायु रूक्षतासे कठिनताको प्राप्त होकर यदि अपने आश्रयमें दुष्ट हो तो स्वतंत्ररूपसे यदि अन्य दोष धातुके आश्रित होकर दुष्ट हो तो परतत्ररूपसे पिंडाकार होकर अमूर्त वायु भी मूर्तिमान् गुल्मके रूप धारण करलेता है । यह गुल्म वस्ति,नाभि, हृदय और पार्श्व आदि किसी स्थानमें उत्पन्न होकर गोलेके रूपमें स्थित रहता है । इस लिये इसको गुल्म कहते है ३९॥४०॥

वातगुल्मके लक्षण ।

वातान्मन्याशिरःशूलं ज्वरप्लीहान्त्रकूजनम् ।
व्यधः सूच्येव विट्संगःकृच्छ्रादुच्छ्वसनं मुहुः४१
स्तम्भो गात्रे मुखे शोषः कार्श्यं विषमवह्निता ।
रूक्षकृष्णत्वगादित्वं चलत्वादनिलस्य च॥४२॥
अनिरूपितसंस्थानस्थानवृद्धिक्षयव्यथः ।
पिपीलिकाव्याप्त इव गुल्मः स्फुरति तुद्यते४३॥

वायुका गुल्म होनेपर मनुष्यके मन्या और शिरमें शूल होता है तथा ज्वर, प्लीहा, अंत्रकूजन, सूचीसे वेधनकीसी पीड़ा, विड्विघात, कष्टसे वारम्वार उच्छ्वास लेना, अंगोंमें अकडन, मुखमें शोष, कृशता और विषमाग्नि ये लक्षण होते है तथा त्वचा, नेत्र, नखादि रूखे और कृष्णवर्ण हो जाते है वायुकी चलगति होनेके कारण गुल्मका प्रमाण स्थान वृद्धि क्षय और व्यथामें निश्चितरूप न रहकर अनिरूपितावस्था रहती है यह गुल्म पिपीलिकासे व्याप्तहुएके समान पीडावाला फड़कनेवाला और तोदयुक्त होता है, ये लक्षण वातगुल्ममें होते है ॥ ४१–४३ ॥

पित्तगुल्मके लक्षण ।

पित्ताद्दाहोऽम्लको मूर्छाविड्भेदस्वेदतृड्ज्वराः।
हारिद्रत्वं त्वगाद्येषु गुल्मश्च स्पर्शनासहः ॥
दूयते दीप्यते सोष्मा स्वस्थानं दहतीव च॥४४

पित्तके गुल्ममें दाह, खट्टीडकार, मूर्च्छा, विड्भेद, स्वेद, तृषा और ज्वर ये उपद्रव होते है तथा गुल्मवाले रोगीके त्वचा, नेत्र, नखादि हलदीकेसे वर्णवाले होते हैं । गुल्म स्पर्शको सहन नहीं करसकता गुल्मके स्थानमें संताप, जलन, उष्णता और दाह प्रतीत होती रहती है ये लक्षण पित्त गुल्ममें होते है ॥ ४४ ॥

कफके गुल्मके लक्षण ।

कफात्स्तैमित्यमरुचिः सदनं शिशिरज्वरः ॥
पीनसालस्यहृल्लासकासशुक्लत्वगादिताः ।
गुल्मोवगाढः कठिनोगुरुः सुप्तःस्थिरोऽल्परुक्॥

कफके गुल्ममें गीलापनके समान स्पर्श,अरुचि, अंगसाद, शीतज्वर, पीनस, आलस्य, हृल्लास और खांसी ये उपद्रव होतेहैं, त्वचा नख नेत्रादि श्वेतवर्णके होतेहैं और गुल्म भारी कठिन अवगाढ स्थिर सुप्तके समान और अल्पपीडावाला होता है ये कफके गुल्मके लक्षण है ॥ ४५

द्विदोषज और त्रिदोषज गुल्म ।

स्वदोषस्थानधामानः स्वे स्वे काले च रुक्कराः ।
प्रायः ॥ ४६ ॥--

ये सब गुल्म प्रायः अपने अपने दोषके स्थानमें उत्पन्न होते है और अपने अपने दोषप्रकोप कालमें वृद्धि और पीड़ाके करनेवाले होते हैं ॥ ४६ ॥

--त्रयस्तु द्वन्द्वोत्था गुल्माः संसृष्टलक्षणाः ॥
सर्वजस्तीव्ररुग्दाहः शीघ्रपाकी घनोन्नतः ।
सोऽसाध्यो ॥ ४७ ॥--

इन गुल्मोंमें दो दो लक्षणोंके मिलेहुए लक्षणोंवाले तीन प्रकारके द्विदोषज गुल्म होते है ।

जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलेहुए हों, तथा

तीव्रपीड़ा और दाह हो, शीघ्रपाकी, घन और उन्नत हो यह त्रिदोषज गुल्म असाध्य होता है ॥ ४७ ॥

रक्तगुल्मके लक्षण।

-रक्तगुल्मस्तु स्त्रिया एव प्रजायते ॥ ४८ ॥
ऋतौ वा नवसूता वा यदि वा योनिरोगिणी ।
सेवते वातलानि स्त्री क्रुद्धस्तस्याः समीरणः॥४९
निरुणद्ध्यार्तवं योन्यां प्रतिमासमवस्थितम् ।
कुक्षिं करोति तद्गर्भलिङ्गमाविष्करोति च॥५०॥
हृल्लासदौहृदस्तन्यदर्शनं क्षामतादिकम् ।
क्रमेण वायुसंसर्गात्पित्तयोनितया च तत्॥५१॥
शोणितं कुरुते तस्या वातपित्तोत्थगुल्मजान् ।
रुक्स्तम्भदाहातीसारतृड्ज्वरादीनुपद्रवान् ५२
गर्भाशये च सुतरां शूलं दुष्टासृगाश्रये ।
योन्याश्च स्रावदौर्गन्ध्यतोदस्यन्दनवेदनाः ५३
न चाङ्गैर्गर्भवद्गुल्मः स्फुरत्यपि तु शूलवान् ।
पिंडीभूतः स एवास्याः कदाचित्स्पन्दते चिरात्
न चास्या वर्धते कुक्षिर्गुल्म एव तु वर्धते॥५४॥

रक्तगुल्म केवल स्त्रियोंके ही शरीरमें होता है। मासिक धर्मके समय अथवा नवीन प्रसवके समय अथवा प्रदरादि योनिरोगवाली स्त्री जब वातकारक आहार विहारका विशेष सेवन करती है तब उसके शरीरमें कुपितहुआ वायु प्रतिमास आनेवाले मासिक धर्मके रजको रोककर गर्भकेसे लक्षणोंवाले रक्तके गुल्मको कुक्षिमें उत्पन्न करता है। तत्र स्त्रीको हृल्लास दौहृदके लक्षण स्तनोंमें दूधका आना और क्षामता आदि गर्भकेसे लक्षणोंको करता है। जब क्रमसे वह वायुके संसर्गयुक्त रक्तपित्तयोनि होनेके कारण वह रक्त उस स्त्रीके रक्तगुल्ममें वातपित्त जनित गुल्मके लक्षणोंको उत्पन्न कर देता है। तब शूल, स्तम्भ, दाह, अतीसार, तृषा और ज्वरादि उपद्रवोंको करता है। तथा दुष्टरक्तके आश्रयभूत गर्भाशयमें निरन्तर शूल योनिसे दुर्गन्धित स्राव, तोद, स्पंदन और वेदनाको करता है।

यह गर्भकेसे अंगोंवाला नहीं होता परन्तु यह स्फुरगुल्म ण होता है इसमें शूल भी होता है यह पिण्डीभूत हुआ गुल्म कभी कभी गर्भके समान फडकता है इस गुल्मके कुक्षिमें बढनेसे स्त्रीके अंग या कुक्षिमें गर्भके समान तो वृद्धि नहीं होती किन्तु उस गुल्मकी कुक्षिमें वृद्धि होती रहती है ॥४८-५४॥

गुल्म और विद्रधिमें भेद।

स्वदोषसंश्रयो गुल्मः सर्वो भवति तेन सः ॥
पाकं चिरेण भजते नैव वा विद्रधिः पुनः॥५५॥
पच्यते शीघ्रमत्यर्थं दुष्टरक्ताश्रयत्वतः ॥
अतः शीघ्रविदाहित्वाद्विद्रधिः सोऽभिधीयते५६

जिस दोषसे जो गुल्म उत्पन्न होता है उस गुल्मका वही दोष आश्रय मानाजाता है। इससे वातजगुल्मका वात आश्रय, कफगुल्मका कफ आश्रय, पित्तगुल्मका पित्त आश्रय त्रिदोषगुल्मका त्रिदोष आश्रय, द्विदोषगुल्मका द्विदोष आश्रय, और रक्तगुल्मका रक्ताश्रय मानाजाता है। गुल्ममें और विद्रधिमें इतनाही अन्तर है कि, गुल्म अपने दोषाश्रित होनेसे बहुत समयतक रहनेपरभी परिपाकको प्राप्त नहीं होता परन्तु विद्रधि अत्यन्त दुष्ट समाश्रित होनेके कारण शीघ्र पकजाती है। अतएव शीघ्र विदाह (पाक) को प्राप्त होनेके कारण इसको विद्रधि कहते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अन्तर्गुल्म और बाह्य गुल्म।

गुल्मेऽन्तराश्रये बस्तिकुक्षिहृत्प्लीहवेदनाः ॥
अग्निवर्णबलभ्रंशो वेगानां चाप्रवर्तनम् ॥५७॥
अतो विपर्ययो बाह्ये कोष्ठाङ्गेषु तु नातिरुक् ॥
वैवर्ण्यमवकाशस्य बहिरुन्नतताऽधिकम्॥५८॥

यदि गुल्म अन्तराश्रित हो तो वस्ति कुक्षि हृदय और प्लीहामें वेदना होती है। तथा अग्नि,वर्ण और बलका भ्रंश होता है एवं मलादि वेगोंका यथार्थ गमन नहीं होता. ये लक्षण आभ्यन्तराश्रित गुल्मके होते है।

इससे विपरीत लक्षण बाह्यगुल्ममे होते हैं, बाह्यगुल्म होनेसे कोष्ठ और अंगों में अधिकपीड़ा नहीं होती! गुल्म बाहरको अधिक उन्नत दिखाईदेता है और गुल्मस्थानपर विवर्णता होती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

आनाहके लक्षण ।

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरे भृशम् ।
ऊर्ध्वाधो वातरोधेन तमानाहं प्रचक्षते ॥ ५९ ॥

उदरमें आध्मान शूल और अफारा अधिक हो, उर्ध्ववात और अधोवातका निरोध हो, इन लक्षणोंवाले वातावरोधको आनाह कहते हैं ॥ ५९ ॥

अष्ठीला और प्रत्यष्ठीलाके लक्षण ।

घनोऽष्ठीलोपमो ग्रन्थिरष्ठीलोर्ध्वं समुन्नतः ।
आनाहलिङ्गस्तिर्यक् तु प्रत्यष्ठीलातदाकृतिः ६०

उदरमें पत्थरकीसी गांठके समान घन, उन्नत और ऊपरको किंचित् लंबी गांठसी वायुसे उत्पन्न होजाय और आनाहकेसे लक्षणोंवाली हो उसको अष्ठीला कहते हैं ।

इन्ही लक्षणोंवाले ग्रंथि उदरमें तिरछी और अष्ठीलाके आकारवाली हो उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं॥ ६०

तूनी प्रतितूनीके लक्षण ।

पक्वाशयाद्गुदोपस्थं वायुस्तीव्ररुजः प्रयान् ।
तूनी प्रतूनी तु भवेत्स एवातो विपर्यये ॥ ६१ ॥

वायु पक्वाशयसे उठकर गुदा और उपस्थमें तीव्र पीड़ा करतीहुई गमनकरे इस रोगको तूनी कहते हैं।

यदि प्रथम उपस्थसे उठकर गुदा और पक्वाशयमें शूल करताहुआ गमन करे तो इसको प्रतितूनीरोग कहते हैं ॥ ६१ ॥

आसन्न गुल्मके लक्षण ।

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्ध-
तृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि ।
आटोपमाध्मानमपक्तिशक्ति-
मासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ६२ ॥

उद्गारका बहुत आना, मलका रुकना, अन्नकी इच्छा न होना, सहनशक्ति कम होना, अँतड़ियोंका कूजना, आटोप, आध्मान और मन्दाग्नि ये लक्षण आसन्न गुल्ममें होते हैं ॥ ६२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टांगहृदयसंहितायां निदानस्थानस्थविद्रधिगुल्मनिदाने पं० शिवशर्मवैद्यशास्त्रिकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथाऽत उदरनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब हम उदररोग निदानकी व्याख्या करते हैं ।

रोगाःसर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि तु ।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसञ्चयात् ॥१

सम्पूर्णरोग जठराग्निके मन्द होजानेसे उत्पन्न होते हैं और उदररोग तो विशेषरूपसे अग्निकी मंदतासे ही उत्पन्न होते हैं तथा अजीर्णसे, मलिन अन्नोंके खानेसे मलका सचय होजानेपर उदररोग हो जाता है ॥१॥

ऊर्ध्वाधो धातवो रुध्वा वाहिनीरम्बुवाहिनीः ।
प्राणाग्न्यपानान् सन्दूष्य कुर्युस्त्वङ्मांससन्धिगाः
आध्माप्य कुक्षिमुदरम् ॥ २ ॥–

त्वचा और मांसकी सन्धियोंमें गमन करतेहुए वातादिदोष ऊर्ध्व और अधोभागसे जलवाही सिराओंके मुखोंको रोककर प्राण अग्नि और अपानको दूषित करके कुक्षियोंको आध्मापित करके उदररोगको उत्पन्न कर देते हैं ॥ २ ॥

–अष्टधा तच्च भिद्यते ।
पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः ॥ ३ ॥

वह उदररोग--१वातोदर, २पित्तोदर, ३कफोदर, ४ सन्निपातोदर, ५ प्लीहोदर, ६ बद्धोदर, ७क्षतोदर, ८ जलोदर इन भेदोंसे८ प्रकारका होताहै ॥ ३॥

तेनार्ताः शुष्कताल्वोष्ठाः शूनपादकरोदराः ।
नष्टचेष्टाबलाहाराः कृशाः प्रध्मातकुक्षयः ।
स्युः प्रेतरूपाः पुरुषाः ॥ ४ ॥--

उदररोगसे पीड़ित मनुष्योंके ये लक्षण होते हैं, जैसे-- तालु और ओष्ठोंका सूखना, पांव हाथ और उदरपर सूजन होना, चेष्टा बल और आहारकी शक्ति नष्ट हो जाना, शरीरका कृश होना, उदरकी दोनों कुक्षियोंका फूलेहुए होना ये लक्षण होते हैं। इन लक्षणोंवाले पुरुष प्रेतरूप अर्थात् मरणाभिमुख ही जानने चाहिये ॥४॥

उदररोगके पूर्वरूप ।

–भाविनस्तस्य लक्षणम् ।
क्षुन्नाशोऽन्नं चिरात्सर्वं सविदाहं च पच्यते॥५॥

जीर्णाजीर्णं न जानाति सौहित्यं सहते न च ।
क्षीयते बलतःशश्वच्छ्वसित्यल्पेऽपि चेष्टिते॥६॥
वृद्धिर्विंशोऽप्रवृत्तिश्च किञ्चिच्छोफश्च पादयोः।
रुग्बस्तिसन्धौ ततता लघ्वल्पाभोजनैरपि ।
राजीजन्म वलीनाशो जठरे ॥ ७ ॥-

जब उदररोग होनेवाला होता है तब ये लक्षण होजाते हैं. जैसे-क्षुधानाश, अन्नका परिपाक देरमें होना और विदाही पाक होना, अन्न जीर्ण हुआ कि नहीं इसका यथार्थ ज्ञान न होकर पेट भारी मालूम देना, साधारण भोजनका भी सहन न करना, बलका क्षीण होने लगना, थोड़ीसी चेष्टा करनेपर भी श्वासका चढ जाना, उदरका बढना, मलकी प्रवृत्ति न होनी, पावोंपर किंचित् शोथ होना, लघु और अल्प भोजन करनेपर भी पेटका तनजाना, वस्तिके सन्धिमें पीडा होनी, पेटके ऊपर रेखाओंका उत्पन्न होना और उदरकी वलीका नाश होना ये लक्षण हो जाते हैं६-७

-जठरेषु तु।
सर्वेषु तन्द्रा सदनं मलसङ्गोऽल्पवह्निता ।
दाहः श्वयथुराध्मानमन्ते सलिलसंभवः ॥ ८ ॥

सम्पूर्ण उदररोगोंमें तन्द्रा, अंगसाद, मलावरोध, मदाग्नि, दाह, सूजन, आध्मान ये लक्षण होते है तथा सब उदररोग पुराने होजानेपर उनमें जल उत्पन्न होकर जलोदर हो जाता है ॥ ८ ॥

जलरहित उदररोगके लक्षण।

सर्वं त्वतोयमरुणमशोफं नातिभारिकम् ॥ ९ ॥
गवाक्षितं सिराजालैः सदा गुडगुडायते ।
नाभिमन्त्रं च विष्टभ्य वेगं कृत्वा प्रणश्यति१०।
मारुतो हृत्कटीनाभिपायुवंक्षणवेदनः ।
सशब्दो निश्चरेद्वायुर्विड्बन्धो मूत्रमल्पकम् ।
नातिमन्दोऽनलो लौल्यं न च स्याद्विरसं मुखम्॥

जलरहित उदररोगमे सूजन नहीं होती तथा अधिक भारीपन नहीं होता तथा कहीं कहीं सिराजालके चिह्न दिखाई देते है और सदा गुड गुड शब्द होता रहता है । नाभि और आंत्रको विष्टब्ध करके वायु हृदय कटि नाभि पायु और वंक्षणमें वेदना करताहुआ वेगकरके नाश हो जाता है। वायु शब्दके साथ विचरण करता है । मूत्र अल्प अल्प आता है, मल रुकसा जाता है, अग्नि किंचित् मन्द हो जाती है किन्तु तीक्ष्ण नहीं होती है और मुख विरस रहता है ॥ ९-११ ॥

वातोदरके लक्षण।

तत्र वातोदरे शोफः पाणिपान्मुष्ककुक्षिषु१२॥
कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक् पर्वभेदनम् ।
शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधोगुरुता मलसंग्रहः ॥१३
श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्रासवत् ।
सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णसिराततम् ॥ १४ ॥
आध्मातदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ।
वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत्सर्वतोगतिः १५॥

वायुके उदररोगमें हाथ पांव अंडकोष और कुक्षियोंमें सूजन होती है । कुक्षि, पार्श्व, उदर, कटि और पीठमे पीडा होती है, सन्धियोंमें भेदनकीसी पीडा होती है, सूखी खांसी, अगमर्द, अधोभागमें भारीपन मलका संग्रह, श्याम और अरुणवर्णकी त्वचा आदिका होना उदरको अकस्मात् अधिक वृद्धि और ह्रास होना, उदरमे तोद और भेदकीसी पीड़ा होनी, बारीक और कृष्णवर्णकी सिराओंका उदरपर व्याप्त होना, हवासे भरीहुई मशकपर हाथ मारनेमें जैसा शब्द होताहै वैसाही शब्द उदरपर अगुलिके मारनेसे होता है और सम्पूर्ण शरीरमे गमन करनेवाला वायु इस उदरमें पीडा और शब्द करताहुआ विचरता है ये लक्षण वायुके उदररोगमें होते है ॥ १२-१५ ॥

पित्तके उदररोगके लक्षण।

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता ।
भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित्॥१६॥
पीतताम्रसिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते ।
धूमायति मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १७ ॥

पित्तके उदररोगमें ज्वर, मूर्च्छा, दाह, तृषा, मुखमें कडुवापन, भ्रम, अतीसार, त्वचा नखादिकोंका पीलापन, उदरका हरितवर्णहोना तथा पीत और ताम्रवर्णकी सिराओंसे व्याप्त होना, स्वेदका आना, उष्णताके साथ दाह होना, धूआंसा निकलता प्रतीत होना,

उदर स्पर्शमें मृदु होना, शीघ्र उदररोगका बढना और उपतप्त होना ये लक्षण होते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

कफके उदररोगका लक्षण ।

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापश्वयथुगौरवम् । निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता उदरं स्तिमितं श्लक्ष्णं शुक्लराजीततं महत् । चिराभिवृद्धि कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् १९

कफके उदररोगमें अंगसाद, अंगोंका सोना, सूजन, भारीपन, निद्राकी अधिकता, उत्क्लेश, अरुचि, श्वास, खांसी, त्वचानखादिकोंका श्वेत होना, उदरका विबद्ध, श्लक्ष्ण, बड़ा और श्वेत रेखाओंसेयुक्त होना, उदरकी वृद्धि अधिकसमयमें होना, उदर कठिनशीतस्पर्शवाला, भारी और स्थिर होना ये लक्षण होते है ॥ १८ ॥ १९ ॥

सन्निपातोदरके लक्षण ।

त्रिदोषकोपनैस्तैस्तैः स्त्रीदत्तैश्च रजोमलैः । गरदूषीविषाद्यैश्च सरक्ताः संचिता मलाः॥२०॥ कोष्ठं प्राप्य विकुर्वाणाःशोषमूर्च्छाभ्रमान्वितम् । कुर्युस्त्रिलिङ्गमुदरं शीघ्रपाकं सुदारुणम् ॥२१॥ बाधते तच्च सुतरां शीतवाताभ्रदर्शने ॥ २२ ॥

त्रिदोषके कुपितकरनेवाले अनेक प्रकारके आहार-विहारोंके सेवनकरनेसे, वशकरनेकी इच्छासे मूर्खा स्त्रीद्वारा दियेहुए रज, मल या कानकी मैल आदि मलोंके खायेजानेसे, शत्रुओंके दियेहुए गर और दूषी-विष आदिके खायेजानेसे, रक्तसहित वातादि तीनों दोष कोष्ठमें प्राप्त होकर विकृत होजाते है. तब शोष, मूर्च्छा और भ्रम युक्त तीनों दोषोंके लक्षणोंवाले दारुण उदर-रोगको उत्पन्नकर देते है. यह उदररोग शीघ्र ही वृद्धिको प्राप्तहोकर अन्तमें जलोदर होजाता है यह उदररोग शीत, वात और मेघदर्शनके समय निरन्तर वृद्धिको प्राप्त होकर कष्ट देता है ॥ २०–२२ ॥

प्लीहोदरादिकोंके लक्षण ।

अत्याशितस्य संक्षोभाद्यानयानादिचेष्टितैः ॥ अतिव्यवायकर्माध्ववमनव्याधिकर्शनैः । वामपार्श्वाश्रितः प्लीहा च्युतः स्थानाद्विवर्धते २३ शोणितं वा रसादिभ्यो विवृद्धं तं विवर्धयेत् । सोऽष्ठीलेवातिकठिनः प्राक्ततः कूर्मपृष्ठवत् ॥२४ क्रमेण वर्धमानश्च कुक्षावुदरमावहेत् । श्वासकासपिपासास्यवैरस्याध्मानरुग्ज्वरैः ॥२५॥ पाण्डुत्वच्छर्दिमूर्च्छार्तिदाहमोहैश्च संयतम् । अरुणाभं विवर्णं वा नीलहारिद्रराजिमत् ॥२६॥ उदावर्तरुगानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः । गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्रमलान् क्रमात् २७

बहुत भोजन करनेके अनन्तर तुरन्त ही तीक्ष्ण भागनेवाले और क्षोभित करनेवाले उष्ट्र आदिकी सवारी करनेसे तथा संक्षोभ कारक चेष्टाओंसे, अतिस्त्रीसंगसे, बहुतमार्ग चलनेसे, तथा वमनादिद्वारा या ज्वरादि-द्वारा शरीरके कृश होजानेसे वामपार्श्वमें आश्रित रहने-वाली प्लीहा अपने स्थानसे नीचेको बढनेलगती है अथवा रसादिकोंसे वृद्धिको प्राप्तहुआ रक्त इस प्लीहाको बढा देता है । वह प्लीहा प्रथम पत्थरके समान अति-कठिन होकर फिर क्रमसे कच्छूके पीठके समान बढने लगती है फिर वह क्रमसे बढतीहुई कुक्षि और उदरमें फैलने लगती है उससे श्वास, कास, प्यास, मुखकी विरसता, आध्मान, शूल, ज्वर, पाण्डुरोग, छर्दी, मूर्च्छा, पीड़ा, दाह और मोह ये उपद्रव होनेलगते है तथा उदरपर लालवर्णकी विवर्ण अथवा नील और हरितवर्णकी रेखायेंसी होजाती है इस प्लीहाजनित-उदररोगको प्लीहोदर कहते है ।

इस प्लीहोदरमें उदावर्त शूल और आनाह हो तो वातकी प्रधानता जाननी चाहिये । मोह,तृषा, दाह और ज्वर ये पित्तकी प्रधानतासे होते है तथा भारीपन, अरुचि और काठिन्य कफकी अधिकतासे होते है । इस प्रकार क्रमसे प्लीहोदरमें वातादिकोंके लक्षणोंसे दोषोंका प्रकोप जानना चाहिये ॥ २३–२७ ॥

यकृतोदरके लक्षण ।

प्लीहवद्दक्षिणात्पार्श्वात् कुर्याद्यकृदपि च्युतम् ॥

जैसे बाँई ओर प्लीहा बढकर उदररोगको करती है उसीप्रकार दक्षिण पार्श्वसे यकृत् बढकर नीचेकी ओरको आकर उदररोगको कर देता है ॥ २८ ॥

बद्धोदरके लक्षण ।

पक्ष्मवालैः सहान्नेन भुक्तैर्बद्धायने गुदे ।
दुर्नामभिरुदावर्तैरन्यैर्वान्त्रोपलेपिभिः ।
वर्चःपित्तकफान् रुध्वा करोति कुपितोऽनिलः ॥
अपानो जठरं तेन स्युर्दाहज्वरतृट्क्षवाः ।
कासश्वासोरुसदनं शिरोहृन्नाभिपायुरुक् ॥ ३० ॥
मलसंगोऽरुचिश्छर्दिरुदरं मूढमारुतम् ।
स्थिरं नीलारुणसिराराजिवद्धमराजि वा ३१ ॥
नाभेरुपरि च प्रायो गोपुच्छाकृति जायते ३२

जब पलकों या शिर आदिके बाल अन्नके साथ मनुष्य खा जाता है. अथवा अर्शके अंकुर बढकर गुदाके मार्गको रोक देते हैं अथवा अन्य कारणोंसे या आंत्रके उपलेप होनेसे गुदाका मार्ग रुकजाता है तो अपान वायु कुपित होकर पुरीष पित्त और कफको रोककर उदररोगको करदेता है. उससे दाह, ज्वर, तृषा, क्षय, खांसी, श्वास ऊरुस्थलोंका शिथिल होना, शिर, हृदय, नाभि और पायुस्थानमें शूल होना, मलका रुकना, अरुचि, छर्दी, उदरमें मूढवायुका फिरना, तथा उदर पर स्थिर नील अरुण सिराओंका जाल प्रतीत होना, अथवा विना सिराजालसे भी उदरका आनद्धसा होना, और नाभिके उपरिभागमें गोपुच्छके आकारसे ऊंचा प्रतीत होना ये लक्षण होते हैं ॥ २९–३२ ॥

छिद्रोदरके लक्षण ।

अस्थ्यादिशल्यैः सान्नैश्चेद्भुक्तैरत्यशनेन वा ॥
भिद्यते पच्यते वान्त्रं तच्छिद्रैश्च स्रवन्बहिः ।
आम एव गुदादेति ततोऽल्पाल्पं स विड्रसः ३३
तुल्यः कुणपगन्धेन पिच्छिलः पीतलोहितः ।
शेषश्चापूर्य जठरं जठरं घोरमावहेत् ॥ ३४ ॥
वर्धते तदधो नाभेराशु चैति जलात्मताम् ।
उद्रिक्तदोषरूपं च व्याप्तं च श्वासतृड्भ्रमैः ।
छिद्रोदरमिदं प्राहुः परिस्रावीति चापरे ॥ ३५ ॥

यदि मनुष्य आहारके साथ अस्थि या लोह कीलक आदि कोई शल्य खाजाय या बहुत अधिकभोजन करे ऐसे कारणोंसे उदरमें आंत्रका कोई भाग फटजाता है या पक जाता है. उसके छिद्रोंसे बाहर स्राव होकर गुदाद्वारा आम ही निकलता है फिर वह विड्रस आन्त्र द्वारा मुर्देके समान गंधवाला पिच्छल पीत और लालवर्णका गुदासे थोड़ा थोड़ा निकलता है जो शेष रह जाता है वह धीरे धीरे उदरको भरकर घोर उदर-रोगको उत्पन्न करदेता है तब वह उदर नाभिके अधो-भागमें वृद्धिको प्राप्त होकर जलोदरके रोगको धारण करलेता है जब दोषोंके उद्रेकसे व्याप्त होता है तो श्वास तृषा और भ्रमको उत्पन्न करदेता है । इसमें वात पित्त और कफकी अधिकताके अनुसार दोषोंकी कल्पना करना चाहिये अर्थात् जिस दोषको अधिक लक्षण हो उसी दोषका यह छिद्रोदर जानना चाहिये । इस उदर-रोगको कोई छिद्रोदर कहते हैं और कोई परिस्रावी उदर कहते हैं ॥ ३३-३५ ॥

जलोदरके लक्षण ।

प्रवृत्तस्नेहपानादेः सहसाऽऽमाम्बुपायिनः ।
अत्यम्बुपानान्मन्दाग्नेःक्षीणस्यातिकृशस्य वा ॥
रुध्वाऽम्बुमार्गाननिलः कफश्च जलमूर्च्छितः ।
वर्धयेतां तदेवाम्बु तत्स्थानादुदराश्रितौ ॥ ३७ ॥
ततः स्यादुदरं तृष्णागुदस्रुतिरुजायुतम् ।
कासश्वासारुचियुतं नानावर्णसिराततम् ॥ ३८ ॥
तोयपूर्णदृतिस्पर्शशब्दप्रक्षोभवेपथु ।
दकोदरं महत्स्निग्धं स्थिरमावृत्तनाभि तत् ३९ ॥

जो मनुष्य पचकर्मके स्नेह पानादि कर्म करताहुआ सहसा और अधिक कच्चे जलका पान करता है अर्थात् स्नेहपानादिकमें अतिशीतल जल सहसा अधिक पी जाता है अथवा मन्दाग्निवाला और अतिकृश या क्षीण मनुष्य अत्यन्त जल पीता रहे तो वायु और कफ मूर्च्छित होकर जलके वहनकरनेवाले स्रोतोंको रोक-कर उस जलको उदरमेंही बढा देते हैं वह जल और वात कफ मिलकर उदरमें जलोदररोगको उत्पन्न कर देते है फिर तृषा, गुदस्राव और शूलयुक्त, उदररोगकी वृद्धि होने लगती है तथा इसमें कास, श्वास और अरुचि हो जाती है। उदर अनेक वर्णकी सिराओंसे व्याप्त रहता है तथा स्पर्श शब्द क्षोभ और कम्पमें जलसे भरी मशककेसमान लक्षणोंवाला होता है यह

जलोदर बडा, स्निग्ध, स्थिर और गोल नाभि करके युक्त होता है। इसको जलोदर या दकोदर कहते हैं ॥ ३६–३९ ॥

जलोदरकी सम्प्राप्ति ।

उपेक्षया च सर्वेषु दोषाः स्वस्थानतश्च्युताः ।
पाकाद्द्रवा द्रवीकुर्युःसन्धिस्रोतोमुखान्यपि४०॥
स्वेदश्च बाह्यस्रोतःसु विहतस्तिर्यगास्थितः ।
तदेवोदकमाध्माप्य पिच्छां कुर्यात्तदा भवेत्४१
गुरूदरं स्थिरं वृत्तमाहत च न शब्दवत् ।
मृदु व्यपेतराजीकं नाभ्यां स्पृष्टं च सर्पति ४२
तदनूदकजन्मास्मिन्कुक्षिवृद्धिस्ततोऽधिकम् ।
सिरान्तर्धानमुदकजठरोक्तं च लक्षणम् ॥४३॥

सब प्रकारके उदररोगोंकी समय पर चिकित्सा न करनेसे दोष अपने स्थानसे चलायमान होकर कालके परिपाकसे द्रव हो जाते है फिर संधि और स्रोतोंके मुखोंको भी द्रवीभूत कर देते हैं तब स्वेद भी बाह्य स्रोतोंमें विहत होकर तिर्यग्गामी होजाता है तब वह दोषोंसे युक्त जल उदरको फुलाकर पिच्छायुक्त बना देता है तब उदर भारी, स्थिर, गोल, आहत होनेपर भी शब्द न करनेवाला, मृदु, स्पर्श, राजीरहित होता है तथा नाभिमें और पीठकी ओर फैलता है फिर इसमें जल उत्पन्न होने और बढ़ने लगता है, फिर इससे दोनों कुक्षियोंकी वृद्धि होजाती है और उदर अत्यन्त बढ़जाता है इसमें सिराओंका जाल नही दिखाई देता तथा जलोदरमें कहेहुए सब लक्षण होजाते है॥ ४०–४३॥

उदररोगोंमें साध्यासाध्य ।

वातपित्तकफप्लीहसंनिपातोदकोदरम् ॥ ४४ ॥
कृच्छ्रं यथोत्तरम्–
–पक्षात्परं प्रायोऽपरे हतः ।
सर्वं च जातसलिलं रिष्टोक्तोपद्रवान्वितम्॥४५॥

वातोदरसे पित्तोदर, पित्तोदरसे कफोदर, कफोदरसे प्लीहोदर, प्लीहोदरसे सन्निपातोदर, सन्निपातोदरसे जलोदर यथाक्रम उत्तरोत्तर कष्टसाध्य होते है। बद्धोदर और क्षतोदर पूर्ण लक्षणवान् होनेसे एक पक्षके अनन्तर मारक अर्थात् असाध्य हो जाते है। सम्पूर्ण उदर जलयुक्त होजानेसे असाध्य होते हैं तथा रिष्टके लक्षणवाले उदररोग भी असाध्य और मारक होते है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम् ।
बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम्४६

यद्यपि सम्पूर्ण उदररोग उत्पन्न होते ही अत्यन्त कष्टसाध्य होते है परन्तु यदि थोड़े ही दिनका उदररोग हो उसमें जल उत्पन्न न हुआ हो तथा इस उदररोगवाला पुरुष बलवान् और रेचनादिक्रिया सहन करनेयोग्य हो तो यथार्थ यत्न करनेपर यह उदररोग साध्य होता है ॥ ४६ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत-अष्टाङ्गहृदयसंहितायां निदानस्थानस्थ-उदररोगनिदाने प०शिवशर्मवैद्यशास्त्रिकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथाऽतः पाण्डुरोगशोफविसर्पनिदानं–
–व्याख्यास्यामः ।

अब हम पाण्डुरोग शोथरोग और विसर्परोगके निदानोंकी व्याख्या करते है ॥

पाण्डुरोगका निदान ।

पित्तप्रधानाः कुपिता यथोक्तैः कोपनैर्मलाः ।
तत्रानिलेन बलिना क्षिप्तं पित्तं हृदि स्थितम् १
धमनीर्दश संप्राप्य व्याप्नुवत्सकलां तनुम् ।
श्लेष्मत्वग्रक्तमांसानि प्रदूष्यान्तरमाश्रितम २
त्वङ्मांसयोस्तत्कुरुते त्वचि वर्णान् पृथग्विधान्
पाण्डुहारिद्रहरितान् पाण्डुत्वं तेषु चाधिकम् ।
यतोऽतः पाण्डुरित्युक्तः स रोगः ॥ ३ ॥–

अहित विहार आहार-आदिके करनेसे कुपितहुए पित्तप्रधान दोष प्रकुपित हो जाते हैं तब वायु अपने बलको प्राप्तकर हृदयमें स्थित पित्तको प्रक्षिप्त करदेता है तब उस पित्तको लेकर जो सम्पूर्ण शरीरमे व्याप्त दश धमनियें हैं उनमे प्राप्त होकर कफ, त्वचा, रक्त और मांस जो अन्तराश्रित है उनको दूषित करदेता है तब वह बलवान् वायुसे बल लियाहुआ पित्त त्वचा और

मांसको प्राप्त होकर त्वचाके वर्णोंको अनेकप्रकारका कर देता है। वह त्वचाका वर्ण पाण्डु, हारिद्र और हरित वर्णका हो जाता है इन वर्णोंमें पाण्डुवर्णकी अधिकता होती है इस कारण इस रोगको पाण्डुरोग कहतेहैं॥ १-३

पाण्डुरोगके सामान्य लक्षण।

—तेन गौरवम्।
धातूनां स्याच्च शैथिल्यमोजसश्च गुणक्षयः॥४॥
ततोऽल्परक्तमेदस्को निःसारः स्याच्छ्लथेन्द्रियः।
मृद्यमानैरिवाङ्गैर्ना द्रवता हृदयेन च॥ ५॥
शूनाक्षिकूटः सदनः कोपनःष्ठीवनोऽल्पवाक्।
अन्नद्विट् शिशिरद्वेषी शीर्णरोमा हतानलः।
सन्नसक्थो ज्वरी श्वासी कर्णक्ष्वेडी भ्रमीश्रमी॥

उस पाण्डुरोगसे शरीरमें भारीपन, रसादि धातुओंमें भारीपन, शिथिलता और ओजके गुणोंका क्षय होजाता है। फिर वह मनुष्य रक्त और मेदकी अल्पताके कारण निःसार और शिथिल इन्द्रियोंवाला हो जाता है उसको अपना सारा शरीर और अंग मर्दन कियेहुएसे प्रतीत होते हैं। तथा हृदयमें द्रवतासी प्रतीत होती है दोनों अक्षिकूटोंपर सूजन, अंगोंका सदन, स्वभावका कुपित होना, मुखमें लार गिरना, बोलनेकी शक्ति कम होना, अन्नसे द्वेष, शीतल चीजोंसे द्वेष, रोमोंका गिर जाना, जठराग्निका मन्द पडजाना, दोनों सक्थियोंका अकडसा जाना, ज्वर, श्वास, कर्णक्ष्वेड, भ्रम और श्रमका प्रतीत होना, ये लक्षण हो जाते हैं। इस रोगको पाण्डुरोग कहते है॥ ४—६॥

पाण्डुरोगके ५ भेद।

स पञ्चधा पृथग्दोषैः समस्तैर्मृत्तिकादनात्॥७॥

वह पाण्डुरोग—१ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ सन्निपातसे, ५ मिट्टीके खानेसे इन भेदोंसे ५ प्रकारके होते हैं। यद्यपि मिट्टीके खानेसे होनेवाले पाण्डुरोगमें भी यहां वातादि दोष प्रकुपित होते हैं परन्तु रोगकी सम्प्राप्ति और चिकित्सामें भेद होनेसे मृद्भक्षणजनित पाण्डुरोग अलग कहा जाता है॥ ७॥

पाण्डुरोगके पूर्वरूप।

प्राग्रूपमस्य हृदयस्पन्दनं रूक्षता त्वचि।
अरुचिः पीतमूत्रत्वं स्वेदाभावोऽल्पवह्निता।
सादः श्रमः॥ ८॥—

हृदयमें स्पदन, त्वचामें रूक्षता, अरुचि, मूत्र नख-आदिका पीतवर्ण होना, पसीना नहीं आना, जठराग्निका मन्द होना अवसाद और श्रमका होना, ये लक्षण पाण्डुरोगके पूर्वरूपमें होजाते है॥ ८॥

वातज पाण्डुरोगके लक्षण।

—अनिलात्तत्र गात्ररुक्तोदकम्पनम्।
कृष्णरूक्षारुणसिरानखविण्मूत्रनेत्रता।
शोफानाहास्यवैरस्यविट्शोषाः पार्श्वमूर्धरुक्॥९॥

वायुके पाण्डुरोगमें शरीरमें शूल तोद और कम्पन होता है तथा सिरा, नख, विष्ठा, मूत्र और नेत्र ये सब काले रूखे और लालवर्णकेसे हो जाते हैं तथा सूजन, आनाह, मुखकी विरसता, मलका सूखाहुआ आना, पार्श्वमें और मस्तकमें पीडा होना ये लक्षण होते हैं॥ ९॥

पित्तके पाण्डुरोगके लक्षण।

पित्ताद्धरितपीताभसिरादित्वं ज्वरस्तमः।
तृट्स्वेदमूर्च्छाशीतेच्छा दौर्गन्ध्यंकटुवक्त्रता।
वर्चोभेदोऽम्लको दाहः॥ १०॥

पित्तके पाण्डुरोगमें सिरा नख विष्ठा मूत्र और नेत्र पीतवर्ण होजाते है, तथा ज्वर, नेत्रोंके आगे अन्धकार, तृषा, स्वेद, मूर्च्छा, शीतपदार्थोंकी इच्छा, शरीरसे दुर्गन्धिका आना, मुखका कडुआ होना, पीले दस्त आना, खट्टी डकार आना और दाह होना ये लक्षण होते है॥ १०॥

कफके पाण्डुरोगके लक्षण।

कफाच्छुक्लसिरादिता॥
तन्द्रा लवणवक्त्रत्वं रोमहर्षः स्वरक्षयः।
कासश्छर्दिश्च॥ ११॥—

कफके पाण्डुरोगमें सिरा नख विष्ठा मूत्र और नेत्रोंका श्वेतवर्ण होता है। तथा तन्द्रा, मुखका नमकीन होना, रोमहर्ष, स्वरका क्षय, खांसीऔर छर्दी ये लक्षण होते है॥ ११॥

सन्निपातज पाण्डुरोगके लक्षण ।

--निचयान्मिश्रलिङ्गोऽतिदुःसहः ॥ १२॥

सन्निपातके पाण्डुरोगमें तीनों दोषोंके लक्षण मिले हुए होते हे यह त्रिदोषज पाण्डुरोग अत्यन्त दुःसह होता है ॥ १२ ॥

मृद्भक्षणजनितपाण्डुरोग ।

मृत्कषायाऽनिलं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ।
दूषयित्वा रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तं विरूक्ष्य च१३
स्रोतांस्यपक्वैवापूर्य कुर्याद्रुध्वा च पूर्ववत् ।
पाण्डुरोगं ततः शूननाभिपादास्यमेहनः ॥
पुरीषं कृमिमन्मुञ्चेद्भिन्नं सासृक्कफं नरः ॥१४॥

मिट्टी तीन प्रकारके रसोंवाली होती है । इनमें कषायरसवाली मिट्टीके खानेसे वायुका प्रकोप होता है । खारी मिट्टी पित्तका प्रकोप करती है और मधुररसवाली मिट्टी कफका प्रकोप करती है । भक्षण कीहुई मिट्टी रसरक्तादिकोंको दूषित करके और अपने रूक्ष स्वभावसे खायेहुए आहारको विशेष रूक्ष बनाकर विना पके ही स्रोतोंको भरकर रोक देती है फिर क्रमसे शरीरमें पाण्डुरोगको उत्पन्न करदेती है । फिर नाभि पाव मुख और शिश्नेन्द्रियपर सूजन हो जाती है मल कृमियुक्त होजाता है । यदि पतला आवे तो उसमें कफ और रक्त मिला रहता है और शरीरका वर्ण पाण्डु हो जाताहै । इन लक्षणोंवाला पाण्डु मिट्टीके भक्षण करनेसे उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

कामलाके लक्षण ।

यः पाण्डुरोगी सेवेत पित्तलं तस्य कामलाम् ॥
कोष्ठशाखाश्रयं पित्तं दग्ध्वासृङ्मांसमावहेत्१५
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वङ्नखवक्त्रशकृत्तया ।
दाहाविपाकतृष्णावान् भेकाभोदुर्बलेन्द्रियः१६
भवेत्पित्तोल्बणस्याऽसौ पाण्डुरोगादृतेऽपि च१७

जो पाण्डुरोगवाला मनुष्य अधिकपित्तकरनेवाले पदार्थोंको अधिक सेवन करता है उसके शरीरमें प्रकोपको प्राप्तहुआ पित्त रक्त और मांसको दग्धकरके कोष्ठ और शाखादिकोंमें आश्रित कामलारोगको उत्पन्न करदेता है । कामला रोगमें नेत्र, मूत्र, त्वचा, नख, मुख और विष्ठा ये सब हल्दीके समानवर्णवाले होजाते हैं तथा शरीरमें दाह होना, अन्नका परिपाक न होना और तृषा लगना, मनुष्यका वर्ण पीलेमेंढकके समान होना और इन्द्रियोंका दुर्बल होजाना ये लक्षण होते है इस रोगको कामला कहते हे यह कामला रोग पित्तकी अधिकतासे पाण्डुरोगके विना भी होजाता है ॥ १५-१७ ॥

कुम्भकामलाके लक्षण ।

उपेक्षयाच शोफाढ्या सा कृच्छ्रा कुम्भकामला।

यदि इसकी चिकित्सा न कीजाय तो यह कुछ कालके अनन्तर सूजनकरके युक्त होजानेपर कुम्भकामलारोग कहाजाता है. यह कुम्भकामला कष्टसाध्य रोग होता है ॥ १८ ॥

हलीमकके लक्षण ।

हरितश्यावपीतत्वं पाण्डुरोगे यदा भवेत् ॥
वातपित्ताद्भ्रमस्तृष्णा स्त्रीष्वहर्षो मृदुर्ज्वरः ।
तन्द्रा बलानलभ्रंशो लोढरं तं हलीमकम् ॥
अलसं चेति शंसंति ॥ १९ ॥--

वातपित्तकी अधिकतासे जब पाण्डुरोगमें शरीरका वर्ण हरित श्याम और पीत होजाय तथा भ्रम, तृषा, स्त्रीकी अनिच्छा, मन्दज्वर, तन्द्रा, जठराग्नि और बलकी क्षीणता उत्पन्न होजाय तो इस रोगको हलीमक रोग कहते हे । कोई इसी हलीमकरोगको लोढर कोई अलस कहते हैं ॥ १९ ॥

शोथरोगका निदान ।

--तेषां पूर्वमुपद्रवाः ।
शोफप्रधानाः कथिताः स एवातो निगद्यते२०

पाण्डुरोगोंमें पहले सूजन आदि उपद्रव कह आये हैं इस कारण यहां सूजनरोगका वर्णन करते है॥२०॥

शोथकी सम्प्राप्ति ।

पित्तरक्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहिः सिराः ।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम्२१
उत्सेधं संहतं शोफं तमाहुर्निचयादतः ।
सर्वं--
हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् ॥ २२ ॥

दुष्ट हुआ वायु दूषित पित्त, रक्त, और कफको

बाहरकी सिराओंमें लेजाकर उन्हींके द्वारा रुद्धगति होकर त्वचा और मांसके आश्रित निश्चल उँचाईको उत्पन्न कर देता है इस निश्चल उँचाईको शोफ या सूजन कहते है क्योंकि सूजनके उत्पन्न करनेमें वायु पित्त रक्त और कफकी दूषित अवस्थामें मिश्रित होकर ही सूजनको उत्पन्न करता है। इस कारण शोथरोग सम्पूर्ण दोषोंसे ही होता है।

परन्तु हेतुभेदसे और रूपभेदसे शोथरोग नौ प्रकारका हो जाता है। इसमें जो वातादिदोषोंसे भेद कहे है वे दोषोंके प्रधानतासे कल्पना कियेगये है॥२१॥२२॥

शोथोंके भेद।

दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि।
द्विधा वा निजमागन्तुं सर्वाङ्गैकाङ्गजं च तम्।
पृथून्नतग्रथितताविशेषैश्च त्रिधा विदुः॥२३॥

शोथरोग नौ प्रकारका होता है. जैसे—वातसे, पित्तसे, कफसे, वातपित्तसे, वातकफसे और पित्तकफसे, सन्निपातसे, अभिघातसे और विषसे।

यह नौ प्रकारकी सूजन ही निज और आगन्तुक भेदसे दो प्रकारकी होती है। सर्वांगज और एकांगज होनेसे भी दो प्रकारकी होती है, परन्तु पृथु, उन्नत और ग्रथित इन तीन भेदोंसे तीन प्रकारकी मानी जाती है॥ २३॥

सामान्यहेतुः शोफानां दोषजानां विशेषतः॥२४
व्याधिकर्मोपवासादिक्षीणस्य भजतो द्रुतम्।
अतिमात्रमथान्यस्य गुर्वम्लस्निग्धशीतलम्॥२५
लवणक्षारतीक्ष्णोष्णं शाकाम्बु स्वप्नजागरम्।
मृद्ग्राम्यमांसवल्लूरमजीर्णश्रममैथुनम्॥ २६॥
पदातेर्मार्गगमनं यानेन क्षोभिणाऽपि वा।
श्वासकासातिसारार्शोजठरप्रदरज्वराः॥ २७॥
विषूच्यलसकच्छर्दिगर्भवीसर्पपाण्डुताः।
अन्येच मिथ्योपक्रान्तास्तैर्दोषावक्षसि स्थिताः।
ऊर्ध्वं शोफमधोबस्तौ मध्ये कुर्वन्ति मध्यगाः।
सर्वाङ्गगाः सर्वगतं प्रत्यङ्गेषु तदाश्रयाः॥२९॥

सामान्यरूपसे सम्पूर्ण शोथोंके और विशेषरूपसे दोषज शोथोंके ये कारण होते हैं. जैसे—व्याधिसे शरीरका कृश होना, पचकर्मसे शरीरका कृश होना अथवा अन्य उपवास आदि कारणोंसे देहका कृश होना, ऐसी कृश अवस्थामें सहसा भारी, अम्ल, स्निग्ध और शीतल पदार्थोंका अतिमात्रामें खाना अथवा लवण, क्षार, तीक्ष्ण शाक और जल जल्दी और अधिक मात्रामें सेवन करना, दिनमें सोना, रातको जागना, मिट्टी खाना, ग्राम्यसंचारी जीवोंका मांस खाना, सूखा मांस खाना, अजीर्णमें भोजन करना, अधिक श्रमके कार्य करना, मैथुन, पावोंसे मार्ग गमन अधिक करना, क्षोभित करनेवाली सवारी करना, तथा श्वास, कास, अतीसार, अर्श उदररोग, प्रदर, ज्वर, विसूचिका, अलसक, छर्दी, विसर्प और पाण्डु इन रोगोंमेंसे किसी रोगके कारण गर्भवतीस्त्रीको या अन्य मिथ्या उपचारोंके कारण वक्षःस्थलमें स्थितहुए दोष कुपित होकर शरीरके ऊपरीभागमें सूजनको उत्पन्न कर देते है। यदि इन्ही कारणोंसे दोषोंका प्रकोप बस्तिस्थानमें हो तो शरीरके अधोभागमें शोथरोग होता है। यदि यही दोष इन्ही कारणोंसे नाभिके लगभग कुपित हो तो शरीरके मध्यभागमें शोथको करते है। इसी प्रकार सर्वांगगत दोष सर्वांगमें और एकांगगत दोष एक अंगमें तथा प्रतिअंगमें प्राप्तहुआ दोष प्रत्यंगमें शोथको उत्पन्न करता है॥ २४-२९॥

शोथके पूर्वरूप।

तत्पूर्वरूपं दवथुः सिरायामोऽङ्गगौरवम्॥३०॥

सम्पूर्ण शोथरोगोंमें जिस स्थानमें शोथ उत्पन्न होनेवाला हो उस स्थानमें शोथ उत्पन्नहोनेसे पहले दाह, सिराओंका आयाम और उष्ण अंगमें भारीपन ये लक्षण होते है॥ ३०॥

वातशोथके लक्षण।

वाताच्छोफश्चलो रूक्षः खररोमारुणासितः।
सङ्कोचस्पन्दहर्षार्तितोदभेदप्रसुप्तिमान्।
क्षिप्रोत्थानशमः शीघ्रमुन्नमेत्पीडितस्तनुः॥३१
स्निग्धोष्णमर्दनैःशाम्येद्रात्रावल्पो दिवा महान्
त्वक् च सर्षपलिप्तेव तस्मिंश्चिमिचिमायते॥३२॥

वायुकी सूजन स्थिर नहीं होती तथा रूक्ष, खर,

रोमांचयुक्त, अरुण और असितवर्णकी तथा संकोच, स्पन्द, हर्ष, पीड़ा, तोद भेद और प्रसुप्तियुक्त होती है। यह सूजन शीघ्र उत्पन्न और शीघ्र ही शमन हो जाती है। यदि इस सूजनको अंगुलीसे दबाकर छोड़ाजाय तो उसी समय वह स्थान बराबर हो जाताहै। इस सूजनपर यदि स्निग्ध और उष्णद्रव्योंका लेप या मर्दन कियाजाय तो यह शमन हो जाती है। रात्रिके समय अल्प रहती है और दिनमें बढजाती है। इस सूजनमें त्वचा जैसे सरसोंके लेप करनेसे चुनचुनाहट होता है वैसे चिमचिम करती रहती है ॥ ३१॥३२॥

पित्तशोथके लक्षण।

पीतरक्तासिताभासः पित्तादाताम्ररोमकृत्।
शीघ्रानुसारप्रशमो मध्ये प्राग्जायते तनुः ॥३३
सतृड्दाहज्वरस्वेदद्रवक्लेदमदभ्रमः।
शीताभिलाषी विड्भेदी गन्धीस्पर्शासहोमृदुः॥

पित्तकी सूजन पीले वर्णकी लाल वर्णकी और नीले वर्णकीसी होती हैं। इस सूजनके ऊपर ताम्रवर्णकी रोमावलि होती है यह सूजन शीघ्र ही बढ जाती है और शीघ्रही शमन हो जाती है। यह सूजन प्रथम मध्यस्थानमें थोड़ीसी उत्पन्न होकर फिर अन्यस्थानमें फैलती है। इसमें तृषा, दाह, ज्वर, स्वेद, चोष, क्लेद, मद और भ्रम ये उपद्रव हो जाते हैं तथा इस मनुष्यको शीत वस्तुओंकी अभिलाषा रहती है पतले दस्त आते हैं शरीरसे दुर्गंध आती है और ये सूजन स्पर्शको सहन नहीं कर सकती और मृदु होती हैं॥३३॥३४॥

कफकी सूजनके लक्षण।

कण्डूमान् पाण्डुरोमत्वक्कठिनः शीतलो गुरुः।
स्निग्धः श्लक्ष्णः स्थिरः स्त्यानो निद्राच्छर्द्य-
-ग्निसादकृत् ॥ ३५ ॥
आक्रान्तो नोन्नमेत्कृच्छ्रशमजन्मा निशाबलः।
स्रवेन्नासृक्चिरात्पिच्छां कुशशस्त्रादिविक्षतः।
स्पर्शोष्णकांक्षी च कफात् ॥ ३६ ॥–

कफकी सूजन खुजली युक्त पाण्डुवर्णके रोम और त्वचावाली, शीतल, भारी, चिकनी, श्लक्ष्ण, स्थिर, स्त्यान होती है। तथा निद्रा, छर्दी और मंदाग्निके करनेवाली होती है। इस सूजनको यदि अंगुलीसे दबायाजाय तो वह गहरा चिह्न थोड़ी देर बना रहता है। यह सूजन देरमें ही उत्पन्न होती है और देरमें ही शमन होती है तथा रात्रिको बढ जाती है इसमेंसे रक्तका स्राव नहीं होता। बहुत देरमे यदि कुश या शस्त्रादिसे इसमें क्षत होजाय तो पिच्छाके समान स्राव आने लगता है यह मनुष्य इस सूजनपर उष्ण स्पर्श करनेकी इच्छा रखता है इन लक्षणोंवाली कफकी सूजन होती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

द्विदोषज और त्रिदोषजसूजनके लक्षण।

–यथास्वं द्वन्द्वजास्त्रयः।
संकराद्धेतुलिङ्गानाम्--
–निचयान्निचयात्मकः॥३७॥

जिस सूजनमें दो दोषोंके हेतु और लक्षणोंका समावेश हो वह द्विदोषज जाननी चाहिये। दो दो दोषोंके संयोगसे तीन प्रकारकी सूजन होती है. जैसे- वातपित्तसे, वातकफसे और पित्तकफसे, तीनों दोषोंके संयोगसे त्रिदोषके लक्षणवाली सूजन होती है॥३७॥

अभिघातजसूजनके लक्षण।

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः।
हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः॥३८॥
रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान्।
भृशोष्मा लोहिताभासःप्रायशःपित्तलक्षणः३९

शस्त्रादिकी चोट छेद भेद क्षत आदि होनेसे अथवा शीतल पवनके स्पर्शसे अथवा समुद्रकी दूषित वायुसे या भल्लातकके तेल या रस आदिलगजानेसे अथवा कौंचके शूक आदि लगजानेसे जो सूजन होतीहै यह सब अभिघातज कहीजाती है। यह सूजन फैलने वाली अत्यन्तगर्म, लालवर्णकी और प्रायः पित्तके लक्षणवाली होती है॥ ३८ ॥ ३९ ॥

विषजनितसूजनके लक्षण।

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात्।
दंष्ट्रादन्तनखापातादविषप्राणिनामपि ॥ ४० ॥
विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसंकरात्।
विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात्।

मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः॥४१॥

किसी विषयुक्त कीट आदि जीवके शरीरपर स्पर्श होजानेसे अथवा विषवाले जंतुके मूत्र, दंष्ट्रा दंत और नखके लगजानेसे, अथवा विषरहित प्राणीके दन्त नखादि लगनेसे अथवा विष्ठा मूत्र वीर्य आदिसे उपहतहुए वस्त्र या अत्यन्त मलवाले वस्त्रके स्पर्शसे अथवा विषवाले वृक्षकी पवनके लगनेसे अथवा कृत्रिम विषको किसी मनुष्यके शरीर पर बुरका देनेसे जो मृदु, चल, अविलम्बी, शीघ्रफैलनेवाली, दाह और पीड़ाके करनेवाली सूजन उत्पन्न होती है इस सूजनको विषजनित सूजन कहते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

सूजनकी साध्यासाध्यता।

नवोऽनुपद्रवःशोफःसाध्योऽसाध्यःपुरेरितः ४२

जो सूजन नवीन और उपद्रवरहित होती है वह साध्य होती है। असाध्यका वर्णन शारीरस्थानके विकृतिविज्ञानीयाध्यायमें कह आये हैं ॥ ४२ ॥

विसर्परोगका निदान।

स्याद्विसर्पोऽभिघातान्तैर्दोषैर्दूष्यैश्च शोफवत्। त्र्यधिष्ठानं च तं प्राहुर्बाह्यान्तरुभयाश्रयात्। यथोत्तरं च दुःसाध्याः॥ ४३ ॥-

विसर्परोग अभिघातसे और आहार विहारादिके कुपितहुए आभ्यन्तर दोषोंसे तथा दुष्टहुए रक्तादि दूष्योंसे उत्पन्न होता है। इसके दोष दूष्यादि और उत्पत्तिक्रम सब शोथरोगके समान जानना चाहिये। यह रोग शीघ्र फैलजानेवाला होनेके कारण विसर्प कहा जाता है।

इस विसर्प रोगके तीन प्रकारके अधिष्ठान अर्थात् आश्रय मानेजाते हैं, जैसे बाह्याश्रय, आभ्यन्तराश्रय और उभयाश्रय, इनमें बाह्यविसर्पसे अन्तर्विसर्प और अन्तराश्रितसे उभयाश्रितविसर्प दुःसाध्य होता है॥४३

-तत्र दोषा यथायथम्। प्रकोपनैः प्रकुपिता विशेषेण विदाहिभिः। देहे शीघ्रं विसर्पन्ति तेऽन्तरन्तःस्थिता बहिः। बहिःस्था द्वितये द्विस्थाः॥ ४४ ॥-

विसर्परोगमें दोष अपने अपने प्रकोप करनेवाले हेतुओंसे प्रकुपित होकर विशेष रूपसे विदाही पदार्थोंसे कुपित होकर देहमें शीघ्र विसर्पण करते हैं। यदि यह दोष शरीरके बाह्यभागमें स्थित हो तो बाह्यविसर्प अंतर्भागमें स्थित होंतो अंतर्विसर्प और दोनों भागोंमें स्थित हों तो उभयाश्रितविसर्परोगको उत्पन्न करतेहैं ४४

अन्तराश्रितविसर्पके लक्षण।

-विद्यात्तत्रान्तराश्रयम्। मर्मोपतापात्संमोहादयनानां विघट्टनात्॥४५॥ तृष्णातियोगाद्वेगानां विषमं च प्रवर्तनात्। आशु चाग्निबलभ्रंशादतो बाह्यं विपर्ययात्४६॥

अन्तराश्रितविसर्पमें हृदयादि मर्मोके उपतापित होनेसे बेहोशी, कर्णआदि अयनोंका विघट्टन, अधिक तृषा, मलमूत्रादिवेगोंका विषमरीतिसे प्रवृत्त होना, अग्नि और बलका शीघ्र भ्रंश होना, ये लक्षण होते हैं।

इससे विपरीत लक्षणोंवाला बाह्यविसर्प होता है ॥ ४५॥४६ ॥

वातजविसर्पके लक्षण।

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः। शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामार्तिहर्षवान्॥४७॥

वायुके विसर्पमें वातज्वरके समान सब व्यथायें होती हैं तथा शोथ, स्फुरण, निस्तोद, भेद, आयाम, अर्ति और रोमहर्ष ये सब लक्षण विसर्पकी सूजनमें होते है॥४७॥

पित्तजविसर्पके लक्षण।

पित्ताद्द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः४८

पित्तका विसर्प शीघ्र फैलनेवाला,पित्तज्वरके समान लक्षणोंवाला और अतिलालवर्णका होता है ॥४८ ॥

कफजविसर्पका लक्षण।

कफात्कण्डूयुतःस्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ४९

कफका विसर्प खुजलीयुक्त, चिकना और कफके ज्वरके समान लक्षणोंवाला होता है ॥ ४९ ॥

स्वदोषलिङ्गैश्चीयन्ते सर्वे स्फोटैरुपेक्षिताः। ते पक्वभिन्नाः स्वं स्वं च बिभ्रति व्रणलक्षणम्॥

यदि इन विसर्पोंमें शीघ्र चिकित्सा न कीजाय तो जिस दोषका विसर्प हो उसी दोषके लक्षणोंवाले उसमें फोड़े उत्पन्न होजाते हैं। जब वे फोड़े पककर फूटते हैं तो वह जिस दोषके फोड़े हों उसी उसी दोषके व्रणके

लक्षणोंवाले होजाते है । जैसे वायुके विसर्पमें श्याम, अरुण, रूक्ष, तोद आदि लक्षणोंवाले, पित्तमें दाहादि लक्षणोंवाले,कफमें कण्डू आदि लक्षणोंवाले होते है॥५०

अग्निविसर्पके लक्षण ।

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः ।
अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ।
करोति सर्वमङ्गं च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत् ॥५१
यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स सः ।
शान्ताङ्गारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशु च चीयते
अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्द्रुतं च सः ।
मर्मानुसारी वीसर्पःस्याद्वातोऽतिबलस्ततः५३॥
व्यथयताङ्गं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ।
हिध्मां च स गतो ऽवस्थामीदृशीं लभते न ना५४
कचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ।
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहश्रमोद्भवाम् ।
दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते५५

वातपित्तके विसर्पमें ज्वर, छर्दी, अतीसार, मूर्च्छा, तृषा, भ्रम, अस्थिभेद, तमक और अरुचि ये लक्षण होते है तथा सम्पूर्ण अंग दीप्त अंगारसे अवकीर्णके समान प्रतीत होने लगता है। यह विसर्प जिस जिस अंगमें फैले वह वह अंग दीप्तांगारोंसे अवकीर्णके समान प्रतीत होने लगता है। यह विसर्प कोयलेके समान काला या लाल वर्णका होकर शीघ्र इकट्ठा हो जाता है तथा अग्निदग्धके समान फोड़ शीघ्र गतिवाले होनेसे शीघ्रही यदि वायुकी अधिकता हो तो मर्मानुसारी विसर्प हो जाता है। जब वायुकी अधिकतासे यह विसर्प हृदयकी ओर गमन करता है तब अंगोंमें व्यथा संज्ञानाश और निद्रानाश हो जाते है तथा श्वास और हिचकी चलने लगते हैं, जब ऐसी अवस्थामें मनुष्य पहुँच जाता है तब अरतिसे ग्रस्त हुआ मनुष्य भूमि शय्या आसन आदिमें कहीं भी शान्तिको प्राप्त नहीं होता फिर इस प्रकार व्याकुलहुआ चेष्टा करते रहनेसे मन और देहके श्रमसे उत्पन्न हुई दुष्प्रबोध निद्राको प्राप्त होता है। इन लक्षणोंवाले इस विसर्पको अग्निविसर्प कहते है ॥ ५१–५५ ॥

ग्रन्थिविसर्पके लक्षण ।

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम्५६
रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्सिरास्नावमांसगम् ।
दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् ५७
ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ।
श्वासकासातिसारास्यशोषहिध्मावमिभ्रमैः ५८
मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ।
इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥५९॥

कफसे रुद्धगति हुआ पवन उस कफको अनेक प्रकारसे भेदन करके अथवा जिस मनुष्यके शरीरमें रक्त बढ़ाहुआ हो तो उसके त्वचा सिरा स्नायु और मांसगत रक्तको दूषित करके ये कफयुक्त वात लम्बी छोटी गोल, स्थूल, खरदरी ग्रंथियोंकी माला उत्पन्न कर देता है ; ये ग्रथियें लालवर्णकी तीव्र पीड़ा और ज्वरके करनेवाली होती है तथा इनमें श्वास, खांसी, अतीसार मुखशोष, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, विवर्णता, मूर्च्छा, अंगभंगकीसी पीड़ा और अग्निसाद (मन्दाग्नि) ये उपद्रव हो जाते है । इस कफ और वायुके प्रकोपसे उत्पन्नहुए विसर्पको ग्रंथिविसर्प कहते है ॥ ५६–५९ ॥

कर्दमाविसर्पके लक्षण ।

कफपित्ताज्ज्वरःस्तम्भो निद्रातन्द्राशिरोरुजः ।
अङ्गावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ॥ ६० ॥
मूर्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् ।
आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति ॥६१॥
प्रायेणामाशये गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ।
पिटकैरवकीर्णोऽति पीतलोहितपाण्डुरैः ॥६२॥
मेचकाभोऽसितास्निग्धो मलिनःशोफवान् गुरुः ।
गम्भीरपाकःप्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते॥
पङ्कवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुसिरागणः ।
शवगन्धिश्च वीसर्पं कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ६४

कफपित्तकी अधिकतासे जो विसर्प उत्पन्न होता है उसमें ज्वर, स्तम्भ, निद्रा, तन्द्रा, शिरमें पीड़ा, अंगावसाद, अंगोंका विक्षेपण करना, प्रलाप, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मंदाग्नि, अस्थियोंमें भेदनकीसी पीड़ा, तृषा, इन्द्रियोंमें भारीपन, मलमें आमका आना और स्रोतोंका

लिपायमानसा होना ये उपद्रव होते हैं प्रायः यह विसर्प आमाशयमें फैलता है। तथा किसी एक देशको ग्रहण करके अधिक पीड़ाको नहीं करता है इस विसर्पमें पीले, लोहित और पाण्डुवर्णकी पिडिकायें सब शरीरपर फैलती हैं तथा वे पिडिकायें मेचकवर्णकी असित, स्निग्ध, मलिन, शोथयुक्त और भारी होती है। ये पिडिकायें गंभीरपाकवाली घृतके समान स्राव करनेवाली, स्पर्शमें उष्ण होती हैं अवदीर्ण होनेपर क्लेदित और कीचड़के समान शीर्ण मांसवाली हो जाती है। इनमें स्नायु और सिरा दिखाई देने लगती है मुरदेकीसी गंध आती है इस कफ और पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न हुए विसर्पको कर्दमविसर्प कहते है ॥ १०—१४॥

त्रिदोषज विसर्पके लक्षण।

सर्वजो लक्षणैः सर्वैः सर्वधात्वतिसर्पणः॥६५॥

सम्पूर्ण दोषोंके लक्षणोंवाले और सब धातुओंमें फैलनेवाले विसर्पको सन्निपातजविसर्प जानना चाहिये ॥ १५

बाह्यविसर्पके लक्षण।

बाह्यहतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन्।
विसर्प मारुतः कुर्यात् कुलत्थसदृशैश्चितम्।
स्फोटैःशोफज्वररुजादाहाढ्यंश्यावलोहितम्६६

बाहरके हेतुओं और क्षत आदिसे कुपितहुआ वायु रक्तसहित पित्तको उदीर्ण करके बाह्य त्वचामें विसर्पको उत्पन्न करता है इस विसर्पमें कुलथीके समान आकारवाले फोड़े उत्पन्न होजाते है उनमें सूजन होती है तथा ज्वर पीड़ा और दाहकरकेयुक्त होते है। वर्ण उनका श्याम और लोहितसा होता है ॥ १६॥

विसर्पका साध्यासाध्य।

पृथग्दोषैस्त्रयः साध्या द्वन्द्वजाश्चानुपद्रवाः।
असाध्यौ क्षतसर्वोत्थौ सर्वे चाक्रान्तमर्मका।
शीर्णस्नायुसिरामांसाःप्रक्लिन्नाः शवगन्धयः६७

वात, पित्त और कफके एक एक दोषवाले पृथक् पृथक् तीनों विसर्प साध्य होते है। तथा उपद्रवरहित दो दो दोषोंके विसर्प भी साध्य होते हैं। क्षतजनित विसर्प और त्रिदोषजविसर्प यह दोनों विसर्प असाध्य होते है। तथा जो विसर्प चिकित्साके समयको लख गये हों तथा उनमें स्नायु सिरा और मांस शीर्ण होगये हों (गलकर गिरते हों) तथा अधिक सड़नयुक्त और मुरदेकीसी गंधवाले होगये हों ऐसे लक्षणवाले सब प्रकारके विसर्प असाध्य होते है ॥ १७॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टांगहृदयनिदानस्थाने पाण्डुशोथविसर्पनिदाने पं. शिवशर्मकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः।

अथाऽतःकुष्ठश्वित्रक्रिमिनिदानं व्याख्यास्यामः।

अब हम कुष्ठ, श्वित्र और कृमियोंके निदानकी व्याख्या करते है॥

कुष्ठ निदान।

मिथ्याहारविहारेण विशेषेण विरोधिना।
साधुनिन्दावधान्यस्वहरणाद्यैश्च सेवितैः॥१॥
पाप्मभिः कर्मभिःसद्यःप्राक्तनैः प्रेरिता मलाः।
सिराःप्रपद्य तिर्यग्गास्त्वग्लसीकासृगामिषम् २
दूषयन्ति श्लथीकृत्य निश्चरन्तस्ततो बहिः।
त्वचःकुर्वन्ति वैवर्ण्यं दुष्टाः कुष्ठमुशन्ति तत् ३

मिथ्या आहारविहारके करनेसे विरुद्ध आहारके सेवनसे सत्पुरुषोंकी निन्दा करनेसे, निर्दोष परपुरुषका धन हरण करलेने आदिसे अथवा पापकर्मोंके करनेसे या पूर्वजन्मके कियेहुए कुकर्मोंके फलसे प्रेरितहुए वात आदि दोष सिराओंमें प्राप्तहोकर उलटी गतिवाले हो जाते है। तब त्वचा लसीका रक्त और मांसको दूषितकर देते है। फिर इन त्वचादिकोंको विकृतकरके विचरण करतेहुए विवर्णता कर देते हैं उस त्वचा लसीका रक्त और मांसमें जो विकृति करके जिस विवर्णताको उत्पन्न करदेते है उसको कुष्ठ कहते हैं॥ १॥ २॥ ३॥

कुष्ठके उपद्रव, निरुक्ति और भेद।

कालेनोपेक्षितं यस्मात्सर्वं कुष्णाति तद्वपुः।
प्रपद्य धातून्व्याप्यान्तःसर्वान् संक्लेद्य चावहेत्४
सस्वेदक्लेदसंकोथान् कृमीन्सूक्ष्मान्सुदारुणान्।
रोमत्वक्स्नायुधमनीतरुणास्थीनि यैःक्रमात्५॥

भक्षयेच्छ्वित्रमस्माच्च कुष्ठबाह्यमुदाहृतम् ।
कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्विश्रैः समागतैः ।
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः ॥६॥

शीघ्र चिकित्सा न करनेके कारण जिस लिये यह रोग सम्पूर्ण शरीरको कुष्ठित करदेता है इसलिये इस रोगको कुष्ठ कहते हैं । यह रोग सम्पूर्ण धातुओंके अन्दर पहुंचकर और सबको क्लेदित करके स्वेद क्लेद और कोथको उत्पन्न करदेताहै । तथा शरीरमें सूक्ष्म और दारुण कृमियोंको उत्पन्न करदेता है । ये कृमि क्रमसे रोम, त्वचा, स्नायु, धमनी और तरुणास्थियोंको खाने लगते हैं । इस प्रकार आभ्यन्तर स्थित दोषसे यह कुष्ठरोग उत्पन्न होता है । यदि केवल बाह्य त्वचादिकमें दोषदूषित होता है तो श्वित्रकुष्ठको उत्पन्न कर देता है ।

दोषोंके भेदसे कुष्ठरोग ७ सात प्रकारका होता है जैसे वातसे, पित्तसे, कफसे, वातपित्तसे, वातकफसे, पित्तकफसे और सन्निपातसे ।

यद्यपि सम्पूर्ण कुष्ठ त्रिदोषज होते है परन्तु जिस दोषकी जिस कुष्ठमें अधिकता होती है उसी दोषके नामसे वह कुष्ठ कहाजाता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

वातजादि कुष्ठोंके नाम ।

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तादौदुम्बरं कफात् ॥७॥
मण्डलाख्यं विचर्चीं च ऋक्षाख्यं वातपित्तजम् ।
चर्मैककुष्ठं किटिभसिध्मालसविपादिकाः ॥ ८ ॥
वातश्लेष्मोद्भवा श्लेष्मपित्ताद्दद्रुशतारुषी ।
पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा ॥९॥
सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं दद्रु सकाकणम् ।
पुण्डरीकर्क्षजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥१०॥

वायुसे कापालकुष्ठ होता है, पित्तसे औदुम्बरकुष्ठ होता है, कफसे मण्डलकुष्ठ होता है तथा विचर्चिकुष्ठ होता है, वातपित्तसे ऋक्षजिह्व वातकफकी अधिकतासे चर्मकुष्ठ, एक कुष्ठ, किटिभ, सिध्म अलस और विपादिका ये कुष्ठ होते हैं । कफपित्तकी अधिकतासे दद्रु शतारु, पुण्डरीक, विस्फोट, पामा और चर्मदल ये कुष्ठ उत्पन्न होते हैं । तीनों दोषोंकी अधिकातसे काकण कुष्ठ उत्पन्न होता है इस प्रकार ये १८ प्रकारके कुष्ठ होते हैं ।

इन अष्टादश कुष्ठोंमें कापाल औदुम्बर, मण्डल, काकण, दद्रु, पुण्डरीक और ऋक्षजिह्व ये सात कुष्ठ महाकुष्ठ कहे जाते है ॥ ७–१० ॥

कुष्ठके पूर्वरूप ।

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णताः ।
दाहःकण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदःकोठोन्नतिःश्रमः
व्रणानामाधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ।
रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् ॥
रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥१३॥

कुष्ठके पूर्वरूपमें त्वचा अत्यन्त चमकीली, खर, स्पर्श करनेसे पीड़ा करनेवाली, विवर्ण, स्वेदयुक्त और दाहयुक्त होती है तथा त्वचामें खुजली, शून्यता, तोद, कोठका होना, थकावट प्रतीत होना, व्रणोंमें अधिक शूल होना, व्रणकी उत्पत्ति शीघ्र होना और परिस्थिति देरतक रहना, यदि व्रण भरकर अच्छे भी होजाय तब भी त्वचामें रूक्षपन और अल्पसा कारण होजानेपर व्रण पुनः प्रकोप होजाना, रोमहर्ष, रक्तमें कृष्णता ये सब लक्षण होते है ॥ ११–१३ ॥

कापालकुष्ठके लक्षण ।

कृष्णारुणकपालाभं रूक्षं सुप्तं खरं तनु ।
विस्तृतासमपर्यन्तं दूषितैर्लोमभिश्चितम् ।
तोदाढ्यमल्पकण्डूकं कापालं शीघ्रसर्पि च १४

कापालकुष्ठके फोड़े काले और लालवर्णके तथा कपालके आकारवाले, रूक्ष, सुप्त, खर, छोटे, विस्तृत, समान किनारेवाले, दूषितलोमोंकरकेयुक्त, तोदयुक्त और अल्प कंडूवाले होते है कापालकुष्ठ शीघ्र शरीरमें फैलजानेवाला होता है ॥ १४ ॥

उदुम्बरकुष्ठके लक्षण ।

पक्वोदुम्बरताम्रत्वग्रोमगौरसिराचितम् ।
बहलं बहुलक्लेदं रक्तं दाहरुजाधिकम् ।
आशूत्थानावदरणकृमिं विद्यादुदुम्बरम् ॥१५॥

उदुम्बरकुष्ठके फोड़े पकेहुए गूलरके फलके समान ताम्रवर्णकी त्वचा और रोमयुक्त तथा गौरवर्णकी सिरा-

ओंसे व्याप्त बहल (गाढा) और बहुत क्लेद तथा रक्तके स्रावबाले और इसमें दाह, और पीड़ा अधिक हो तथा इस कुष्ठका शीघ्र उत्थान हो शीघ्र ही फटनेलगे और शीघ्रही उसमें कृमियोंकी उत्पत्ति होजाय इस कुष्ठको उदुम्बर कुष्ठ कहते हैं ॥ १५ ॥

मण्डलकुष्ठके लक्षण ।

स्थिरं स्त्यानं गुरु स्निग्धं श्वेतरक्तमनाशुगम् १६
अन्योन्यसक्तमुत्सन्नं बहुकण्डुस्रुतिक्रिमि ।
श्लक्ष्णपीताभपर्यन्तं मण्डलं परिमण्डलम् १७॥

मडलकुष्ठ स्थिर, चपटा, भारी, चिकना, श्वेतरक्त वर्णवाला, किंचित् देरकी गतिवाला, इसके स्फोट एक दूसरेसे मिलेहुए ऊपरको उठेहुए अधिक खुजली स्राव और कृमियोंसे युक्त होते हैं इनके किनारे चिकने और पीलेसे वर्णवाले होते है। इस प्रकारके मण्डलवाले कुष्ठको मडलकुष्ठ कहते हैं॥ १६ ॥ १७ ॥

विचर्चिकाकुष्ठके लक्षण ।

सकण्डूपिटिका श्यावा लसीकाढ्या विचर्चिका

जिस कुष्ठकी पिड़िका कण्डूयुक्त, श्यामवर्णकी और लसीकायुक्त होती है उसको विचर्चिका कहते है॥ १८॥

ऋक्षजिह्वके लक्षण ।

परुषं तनु रक्तान्तमंतःश्यावं समुन्नतम् ।
सतोददाहरुक्क्लेदं कर्कशैः पिटिकैश्चितम् ।
ऋक्षजिह्वाकृति प्रोक्तमृक्षजिह्वं बहुक्रिमि ॥१९॥

जो कुष्ठ परुष, पतला, लाल किनारेवाला, मध्य मेंसे उठा ऊचा और श्यामवर्णका तथा तोद, दाह, पीड़ा और क्लेदकरकेयुक्त एवं कर्कश पिड़िकाओंसे सचित रीछकी जिह्वाके समान आकारवाला और बहुतसे कृमियोंवाला होता है उसको ऋक्षजिह्व कहते हैं॥ १९

चर्मकुष्ठ एककुष्ठ और किटिभकुष्ठके लक्षण ।

हस्तिचर्मखरस्पर्शं चर्म-
-एकाख्यं महाश्रयम् ।
अस्वेदं मत्स्यशकलसंनिभम्-
-किटिभं पुनः ।
रूक्षं किणखरस्पर्शं कण्डूमत्परुषासितम्॥२०॥

हस्तिचर्मके समान खरस्पर्शवाले कुष्ठको चर्मकुष्ठ कहते हैं।

जो कुष्ठ बड़े आशयवाला, स्वेदरहित, मछलीके त्वचाखंडके समान आकारवाला होता है उसको एक-कुष्ठ कहते है।

जो कुष्ठ रूक्ष, किणके समान खरस्पर्शवाला, खुजली-युक्त, परुष और असितवर्णका होता है उसको किटिभ-कुष्ठ कहते हैं॥ २० ॥

सिध्मकुष्ठके लक्षण ।

सिध्मं रूक्षं बहिः स्निग्धमन्तर्घृष्टं रजः किरेत् ।
श्लक्ष्णस्पर्शं तनु श्वेतताम्रं दौग्धिकपुष्पवत् ।
प्रायेण चोर्ध्वकाये स्यात् ॥ २१ ॥-

सिध्मकुष्ठ रूक्ष, बाहरसे स्निग्ध, भीतरसे घर्षण करने-पर रजके समान झड़नेवाला, स्पर्शमे श्लक्ष्ण, पतला, श्वेत, ताम्रवर्णका, घीयाके फूलके समान, प्रायः छाती गर्दन आदि शरीरके ऊपरी भागमें होनेवाला होता है। इसको छींप भी कहते है ॥ २१ ॥

अलसककुष्ठके लक्षण ।

-गण्डैः कण्डूयुतैश्चितम् ।
रक्तैरलसकम् ॥ २२ ॥-

लालवर्णकी और खुजलीयुक्त ग्रंथियोंसे व्याप्त कुष्ठको अलसककुष्ठ कहते है ॥ २२ ॥

विपादिकाके लक्षण ।

-पाणिपाददार्यो विपादिकाः ।
तीव्रार्त्यो मन्दकण्ड्वश्च सरागपिटिकाचिताः२३

हाथों और पावोंमें जो विपादिका (बिवाई) तीव्र पीड़ावाली, मन्दखुजलीवाली और किंचित् रागयुक्त पिडिकाओंसे व्याप्त हों उनको विपादिका कुष्ठ कहते है ॥ २३ ॥

दद्रुकुष्ठके लक्षण ।

दीर्घप्रतानदूर्वावदतसीकुसुमच्छविः ।
उत्सन्नमण्डला दद्रूः कण्डूमत्यनुषङ्गिणी ॥२४

लम्बी जड़ोंवाली दूर्वाके समान फैलनेवाली, अल-सीके पुष्पके समानवर्णवाली, उन्नतमंडलवाली, खुजली और अनुषंगयुक्त दाहको दद्रुकुष्ठ कहते है॥ २४ ॥

शतारु कुष्ठके लक्षण ।

स्थूलमूलं सदाहार्ति रक्तश्यावं बहुव्रणम् ।
शतारुः क्लेदजंत्वाढ्यं प्रायशःपर्वजन्म च॥२५॥

जो कुष्ठ स्थूल मूलवाला, दाह और पीडाकरके युक्त, रक्त, श्याववर्णवाला बहुतसे व्रणों करके युक्त तथा क्लेद और जन्तुओंसे युक्त प्राय: जोडोंमें उत्पन्न होनेवाला होता है उसको शतारुकुष्ठ कहते है ॥२५॥

पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण ।

रक्तान्तमन्तरा पाण्डु कण्डूदाहरुजान्वितम् ।
सोत्सेधमाचितं रक्तैः पद्मपत्रमिवांशुभिः ।
घनभूरिलसीकासृक्प्रायमाशु विभेदि च ।
पुण्डरीकम् ॥ २६ ॥–

जो कुष्ठ किनारेसे लालवर्णका, मध्यमेसे पाण्डुवर्णका खुजली दाह और पीडा करके युक्त, बीचमेंसे ऊचा, चारों ओरसे लालवर्णकी कमलपत्रके समान रेखाओंसे व्याप्त हो तथा गाढी और अधिक लसीका और रक्तको बहानेवाला शीघ्र फटजानेवाला होता है उस कुष्ठको पुण्डरीक कहते है ॥ २६ ॥

विस्फोट कुष्ठके लक्षण ।

–तनुत्वग्भिश्रितं स्फोटैः सितारुणैः ।
विस्फोटम् ॥ २७ ॥–

पतली त्वचावाले श्वेत और अरुण विस्फोटकोंसे व्याप्त कुष्ठको विस्फोटकुष्ठ कहते है ॥ २७ ॥

पामाकुष्ठके लक्षण ।

–पिटिकाः पामा कण्डूक्लेदरुजाधिकाः ।
सूक्ष्माः श्यावारुणा बह्व्यः प्रायः स्फिक्–
–पाणिकूर्परे ॥२८॥

खुजली क्लेद और पीडा इनकी अधिकतायुक्त सूक्ष्म श्याव और अरुणवर्णकी बहुतसी छोटी छोटी पिड़िकायें नितम्ब हाथ और कूर्परोंपर उत्पन्न होजाय ऐसी खुजलीवाली पिड़िकाओंका पामाकुष्ठ कहते हैं २८

चर्मदलकुष्ठके लक्षण ।

सस्फोटमस्पर्शसहं कण्डूषातोददाहवत् ।
रक्तं दलश्चर्मदलम् ॥ २९ ॥–

फोड़ोंसे युक्त स्पर्शको न सहन करनेवाले खुजली ऊषा (चूषणवत् पीडा) तोद और दाहवाले लाल वर्णके दलको चर्मदलकुष्ठ कहते है ॥ २९ ॥

काकण कुष्ठके लक्षण ।

–काकणं तीव्रदाहरुक् ।
पूर्वं रक्तं च कृष्णं च काकणन्तीफलोपमम् ।
कुष्ठलिङ्गैर्युतं सर्वैर्नैकवर्णं ततो भवेत्॥ ३० ॥

तीव्र दाह शूलवाली पहले लाल पीछे कृष्णवर्णकी रक्तिकाओंके फलकेसमान आकारवाली, अनेक वर्णोवाली तथा कुष्ठके लक्षणोंवाली पिड़िकाओंसे व्याप्त कुष्ठको काकणकुष्ठ कहते है ॥ ३० ॥

कुष्ठोंमें दोष और साध्यासाध्य विज्ञान ।

दोषभेदीयविहितैरादिशेल्लिङ्गकर्मभिः ।
कुष्ठेषु दोषोल्बणताम्–
–सर्वदोषोल्बणं त्यजेत् ॥३१ ॥
रिष्टोक्तं यच्च यच्चाऽस्थिमज्जशुक्रसमाश्रयम् ।
याप्यं मेदोगतम्–
–कृच्छ्रं पित्तद्वन्द्वास्रमांसगम्॥३२॥
अकृच्छ्रं कफवाताढ्यं त्वक्स्थमेकमलंच यत्३३

कुष्ठोंमें दोषभेदीयअध्यायमें कहेहुए दोषोंके लक्षण और कर्मोंके चिह्नोंसे दोषोंकी प्रधानताका विचार कर लेना चाहिये ।

सम्पूर्ण दोषोंके लक्षणोंवाले कुष्ठको तथा विकृतिविज्ञानीय अध्यायमें कहेहुए रिष्टके चिह्नवाले कुष्ठको और अस्थि मज्जा अथवा शुक्रगत कुष्ठको असाध्य जानकर त्याग देना चाहिये ।

मेदोगतकुष्ठ याप्यसाध्य होता है वातपित्त और वातकफका कुष्ट तथा रक्तगत और मांसगत कुष्ठ कष्टसाध्य होता है ।

कफवातजनित कुष्ठ, त्वचागतकुष्ठ और एक दोषज कुष्ठ सुखसाध्य होते है ॥ ३१–३३ ॥

भिन्न २ धातुगत कुष्ठोंके लक्षण ।

तत्र त्वचि स्थिते कुष्ठे तोदवैवर्ण्यरूक्षताः ।
स्वेदस्वापश्वयथवः शोणिते पिशिते पुनः ।
पाणिपादाश्रिताःस्फोटाःक्लेदःसंधिषुचाधिकम्
कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां दलनं स्याच्च मेदसि ।

नासाभङ्गोऽस्थिमज्जस्थे नेत्ररागः स्वरक्षयः ३५
क्षते च कृमयः शुक्रे स्वदारापत्यबाधनम् ।
यथापूर्वं च सर्वाणि स्युर्लिङ्गान्यसृगादिषु ३६॥

त्वचागतकुष्ठमें तोद, विवर्णता और रूक्षता होती है । रक्तस्थकुष्ठमें स्वेद स्वाप और सूजन होती है ।

मांसगतकुष्ठमें हाथों, पावोंमें फोड़े होते हैं संधिगत कुष्ठमें क्लेद अधिक होता है ।

मेदगतकुष्ठमें कुणिता और गतिका क्षय होता है तथा अंगोंमे दलन और छेदनकीसी पीड़ा होती है ।

अस्थि और मज्जागतकुष्ठमें नासिकाका भंग हो जाना, नेत्रोंमें लालिमा होना, स्वरका बैठ जाना और व्रणोंमें कृमियोंका उत्पन्न होजाना ये लक्षण होते हैं ।

शुक्रागतकुष्ठमें कुष्ठीके अस्थि मज्जागत लक्षण होनेके अतिरिक्त कुष्ठीके स्त्री पुत्रादिकोंमें भी कुष्ठरोगके उपद्रवोंका हो जाना ये लक्षण होते है परन्तु उनके स्त्रीपुत्रादिकोंमें कुष्ठके लक्षण यथापूर्वलक्षणोंवाले रक्तादिकोंमें जानने चाहिये ॥ ३४-३६ ॥

श्वित्र कुष्ठके लक्षण ।

कुष्ठैकसंभवं श्वित्रं किलासं दारुणं च तत् ।
निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥३७॥

कुष्ठोंके समान ही कारणों और उत्पत्तिवाला श्वित्रकुष्ठ होता है यह श्वित्रकुष्ठ अन्यकुष्ठोंके समान स्राव करनेवाला नहीं होता अर्थात् सर्वथा स्रावरहित होता है । उसके किलास और दारुण ये भेद होते हैं यह कुष्ठ वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंसे उत्पन्न होता है और रक्तादि तीनधातुओंके आश्रित होता है ॥ ३७

दोषभेदसे श्वित्रकुष्ठके लक्षण ।

वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् ।
सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥३८॥
सकण्डु च क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चादिशेत् ।
वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३९ ॥

वातकी अधिकतासे उत्पन्नहुआ श्वित्रकुष्ठ अरुण वर्णका और रूक्ष होता है । पित्तप्रधान श्वित्रकुष्ठ कमलकी पंखड़ीके समान वर्णवाला, दाहयुक्त और रोमरहित होता है । कफका श्वित्र श्वेत, घन, भारी और खुजलीयुक्त होता है । इनमें वातज श्वित्र रक्ताश्रित, पित्तज मांसाश्रित और कफज मेदाश्रित श्वित्र होता है। ये दोनों प्रकारके श्वित्र वर्णमे और आश्रयभेदसे रक्ताश्रित अरुण, मांसाश्रित ताम्रवर्ण और मेदाश्रित श्वेतवर्णके होते हैं और क्रमसे वातजसे पित्तज और पित्तजसे कफज कष्टसाध्य होते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

श्वित्रकी साध्यासाध्यता ।

अशुक्लरोमाऽबहुलमसंसृष्टं मिथो नवम् ।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥
गुह्यपाणितलोष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम् ॥४०॥

जिस श्वित्र कुष्ठमें रोम श्वेत न हुए हों और श्वेत दाग मोटे न हों, आपसमें दो श्वित्रके दाग मिलेहुए न हों, थोड़े दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो और अग्निदग्धजनित नहीं हो तो श्वित्र साध्य होता है । इससे विपरीत लक्षणोंवाला तथा गुह्यस्थान और हाथकी हथेलीमें तथा ओष्ठोंपर उत्पन्नहुआ और बहुत कालका श्वित्र असाध्य होता है ॥ ४० ॥

रोगसंक्रमण ।

स्पर्शैकाहारशय्यादिसेवनात्प्रायशो गदाः ।
सर्वे संचारिणो नेत्रत्वग्विकारा विशेषतः ॥४१॥

स्पर्शसे, एक जगह आहार करनेसे, एक शय्यादिके ऊपर इकट्ठे रहने आदिसे, सम्पूर्ण रोग एक पुरुषसे दूसरे पुरुषको लगजाते हैं परन्तु नेत्र और त्वचाके विकार तो विशेषरूपसे एक पुरुषसे दूसरे पुरुषमें सचार करजाते है ॥ ४१ ॥

कृमिनिदान ।

कृमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥
बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ।
नामतो विंशतिविधाः ॥ ४२ ॥-

कृमि बाह्याधिष्ठान और आभ्यन्तराधिष्ठान भेदसे दो प्रकारके होते है ।

वे उनमें बाहरके मल, कफ, रक्त और विष्टा इनमें जन्म होनेके भेदसे चार प्रकारके कहे है और नामके भेदसे २० प्रकारके है ॥ ४२ ॥

बाह्यकृमि ।

—बाह्यास्तत्राऽसृजोद्भवाः ।
तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः ४३ ॥
बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिक्षाश्च नामतः ॥
द्विधा ते कोठपिटिकाकण्डूगण्डान् प्रकुर्वते ४४

उनमें बाह्य मलसे उत्पन्नहुए कृमि तिलके समान संस्थान और वर्णवाले केशों और वस्त्रोंके आश्रित रहनेवाले बहुतसे पावों अथवा विना पावोंवाले सूक्ष्म होते है यह यूका (जूंवें) और लिक्षा (लीख) इन दो नामके होते है । ये दोनों प्रकारके कृमि कोठ (ददफड़) पिटिका (फुन्सियें) खुजली और ग्रंथियोंको उत्पन्न कर देते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

आभ्यंन्तर कृमि ।

कुष्ठैकहेतवोऽन्तर्जाः श्लेष्मजास्तेषु चाधिकम् ।
मधुरान्नगुडक्षीरदधिसक्तुनवोदनैः ॥ ४५ ॥

मधुरान्न, गुड, क्षीर, दधि, सत्तू और नवीनान्नके सेवनसे आभ्यन्तर कृमि उत्पन्न होते है, । ये सब आभ्यन्तर कृमि कुष्ठरोगके हेतुभूत होते है। इनमें कफजनितकृमि मधुरान्न गुड़ादिके सेवनसे अधिक उत्पन्न होते हैं ॥ ४५ ॥

पुरीषजकृमियोंका निदान।

शकृज्जा बहुविड्धान्यपर्णशाकोलकादिभिः ४६

अधिक मलके पैदाकरनेवाले धान्य पत्रशाक और बेरआदिकोंके खानेसे पुरीषज कृमि उत्पन्न होते हे ॥ ४६

कफजनित कृमि ।

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः ।
पृथुब्रध्ननिभाः केचित् केचिद्गण्डूपदोपमाः ४७॥
रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः ।
श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते॥४८
अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुहाः ।
चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते॥४९॥
हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् ।
मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान् ५०

कफजकृमि आमाशयमें उत्पन्न होकर फिर बढकर स्थूलांत्रमें सब ओर फिरते हैं वे कृमि कोई गोल, कोई ब्रध्नके समान कोई गंडोयेके समान, कोई रूढधान्यके अंकुरके समान आकारवाले होते हैं इनमें कोई पतले, कोई लम्बे, कोई अणु होते हैं । वर्णमें श्वेत या ताम्र वर्णके होते है, नामसे ये सात प्रकारके होते है. जैसे-१ अन्त्राद, २ उदरावेष्ट, ३ हृदयाद, ४ महागुह, ५ चुरव, ६ दर्भकुसुम और ७ सुगंध, ये सातों प्रकारके कृमि जब उदरमें पैदा होते है तो हृल्लास, मुखस्राव, अविपाक, अरोचक, मूर्च्छा, छर्दी, आनाह, कृशता, क्षवथु और पीनस इनको उत्पन्न करदेते है ॥ ४७—५०

रक्तजनितकृमि ।

रक्तवाहिशिरोत्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः ।
अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥
केशादा लोमविध्वंसा लोमद्वीपा उदुम्बराः ।
षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः ॥ ५२॥

रक्तवाहीसिराओंसे उत्पन्नहुए कृमि रक्तज कहे जाते हे ये कृमि अणु, पादरहित, गोल और ताम्रवर्णके होते हे. इनमें कुछ ऐसें कृमि भी होते है जो सूक्ष्म होनेके कारण विना अणुवीक्षण यंत्रके दिखाई नहीं देते ये कृमि १ केशाद, २ लोमविध्वंस, ३ लोमद्वीप, ४ उदुम्बर, ५ सौरस, ६ मातर इन भेदोंसे ६ प्रकारके होते हैं और केवल कुष्ठके ही उत्पन्न करनेवाले नहीं होते किन्तु कुष्ठके साथ साथ केश, लोम, सिरा, स्नायु, मांस और तरुणास्थिको भी खानेवाले होते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

पुरीषजकृमियोंके लक्षण।

पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः ।
वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुखाः ॥
तदास्योद्गारनिःश्वासा विड्गंधानुविधायिनः ।
पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः ॥५४
ते पञ्च नाम्ना कृमयः ककेरुकमकेरुकाः ।
सौसुरादाः सलूनाख्या लेलिहा जनयन्ति च ५५
विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः ।
रोमहर्षाग्निसदनगुदकण्डूर्विनिर्गमात् ॥ ५६ ॥

पुरीषज कृमि मलाशयमें उत्पन्न होकर अधोमार्गमें विसर्पण करते है. जब ये बढकर आमाशयकी ओर ऊपरको जाते है तब मुखसे उद्गारसे और निश्वाससे विष्टाकीसी गंधको उत्पन्न करते हैं । ये कृमि पुष्ट, गोल, पतले और स्थूल होते हैं । वर्णमें श्याम, पीले, श्वेत और नीले होते है । ये कृमि नामसे ५

प्रकारके होते हैं. जैसे—१ ककेरुक, २ मकेरुक, ३ सौसुराद, ४ सद्रुन, ५ लेलिह ये सब कृमि विड्भेद, शूल, विष्टम्भ, कृशता, परुषता, पाण्डुवर्ण, रोमहर्ष और अग्निमांद्यके करनेवाले होते हैं तथा अपनी गमनशक्तिसे गुदामें खुजलीको उत्पन्न करदेते हैं ॥५३–५६॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां निदानस्थानान्तर्गत कुष्ठश्वित्र क्रिमिनिदाने प. शिवशर्म्म वैद्यशास्त्रिकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः।

अथाऽतो वातव्याधिनिदानं व्याख्यास्यामः।

अब हम वातव्याधिके निदानको कथन करते है।

सर्वार्थानर्थकरणे विश्वस्यास्यैककारणम्।
अदुष्टदुष्टः पवनः शरीरस्य विशेषतः॥ १ ॥

यदि वायु दोषरहित शुद्ध हो तो इस विश्वके सम्पूर्ण अर्थोंको करनेवाला होता है यदि यह वायु दुष्ट हो तो सम्पूर्ण अनर्थोंका कारण होजाता है। शरीरस्थवायु तो शुद्ध रहनेसे विशेषरूपसे शरीरका कल्याण करता है और दुष्ट होनेसे विशेष रूपसे ही शरीरमें अनर्थके करनेवाला हो जाता है ॥ १ ॥

स विश्वकर्मा विश्वात्मा विश्वरूपः प्रजापतिः।
स्रष्टा धाता विभुर्विष्णुः संहर्ता मृत्युरन्तकः २
तद्दुष्टौ प्रयत्नेन यतितव्यमतः सदा।
तस्योक्तं दोषविज्ञाने कर्म प्राकृतवैकृतम् ॥३॥
समासाद्व्यासतो दोषभेदीये नाम धाम च।
प्रत्येकं पञ्चधा चारो व्यापारश्च ॥ ४ ॥–

यह वायु ही विश्वकर्मा, विश्वात्मा, विश्वरूप, प्रजापति, रचनेवाला, पालन कर्ता, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मृत्यु और काळ इन सब कर्मोंके करनेवाला होता है इस कारण सदा प्रयत्नपूर्वक जिस प्रकार वायु दुष्ट होकर शुद्ध रहे वैसा यत्न करते रहना चाहिये।

उस वायुका दोषविज्ञानीयाध्यायमें प्राकृत और वैकृतकर्म संक्षेपसे कह आये है. फिर उसीको दोषभेदीयाध्यायमें विशेषरूपसे नामधामके सहित कहआये है। उस वायुको पांच प्रकारका चरण अर्थात् गति और व्यापार पृथक् भेदसे दोषभेदीयाध्यायमें कहचुकेहैं॥

–इह वैकृतम्।
तस्योच्यते विभागेन सनिदानं सलक्षणम् ॥५॥

यहांपर स्थानादि विभागपूर्वक विकृतवायुके निदान और लक्षणोंको कथन करते है ॥ ५ ॥

वायुके प्रकोपका क्रम।

धातुक्षयकरैर्वायुः कुप्यत्यतिनिषेवितैः।
चरन् स्रोतःसु रिक्तेषु भृशं तान्येव पूरयन्।
तेभ्योऽन्यदोषपूर्णेभ्यः प्राप्य वाऽऽवरणं बली६

रसादि धातुओंको क्षय करनेवाले आहार विहारके अधिक सेवनसे रसादि धातु क्षय होकर जब उनके स्रोत रिक्त हो जाते है तो वायु बढकर उनके स्रोतोंको पूर्ण करके अथवा उन स्रोतोंमें स्थित अन्य दोषोंसे आवरणको प्राप्त होकर वायु प्रकोपको प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥

पक्वाशयगत कुपितवायुके कर्म।

तत्र पक्वाशये क्रुद्धः शूलानाहान्त्रकूजनम्।
मलरोधाश्मवर्ध्मार्शस्त्रिकपृष्ठकटीग्रहम्।
करोत्यधरकायेषु तांस्तान्कृच्छ्रानुपद्रवान्॥७॥

पक्वाशयमें प्रकुपित हुआ वायु शूल,आनाह, अन्त्रकूजन, मलावरोध, अश्मरी, वर्ध्म, अर्श, त्रिकशूल, पृष्ठग्रह, कटिग्रह तथा अधःकायमें होनेवाले अन्य कष्टसाध्य उपद्रवोंको करता है ॥ ७ ॥

आमाशय गत प्रकुपितवायुके कर्म।

आमाशये तृड्वमथुश्वासकासविषूचिकाः।
कण्ठोपरोधमुद्गारान् व्याधीनूर्ध्वं च नाभितः ८

आमाशयमें प्रकुपितहुआ वायु तृषा, वमन, श्वास, खांसी, विसूचिका, कंठावरोध, उद्गार आदि नाभिसे ऊपरकी व्याधियोंको उत्पन्न करता है ॥ ८ ॥

श्रोत्रादि इन्द्रियगत और त्वचागत वायुके लक्षण।

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं–
–त्वचि स्फुटनरूक्षणे ॥ ९॥

श्रोत्रादि इन्द्रियोंमें कुपितहुआ वायु जिस इन्द्रियस्थानमें प्रकोपको प्राप्त होता है उस इन्द्रियका नाश कर देता है।

त्वचामें प्रकुपितहुआ वायु त्वचाको रूक्ष और फटीहुईसी बना देता है॥ ९ ॥

रक्तगतवायुके लक्षण ।

रक्ते तीव्रा रुजः स्वापं तापं रागं विवर्णताम्।
अरूंष्यन्नस्य विष्टम्भमरुचिं कृशतां भ्रमम् १०

रक्तमें प्रकुपितहुआ वायु, तीव्र, पीडा, स्वाप, ताप, विवर्णता, फुसिये, अन्नका विष्टम्भ, अरुचि, कृशता और भ्रमको उत्पन्न कर देता है ॥ १० ॥

मांसगतवायुके लक्षण ।

मांसमेदोगतोग्रन्थींस्तोदाढ्यान्कर्कशान्भ्रमम्
गुर्वङ्गं चातिरुक्स्तब्धमुष्टिदण्डहतोपमम्॥११॥

मांस और मेदगतवायु तोदयुक्त और कर्कश ग्रंथियोंको उत्पन्न करता है तथा अंगोंमें भारीपन अत्यन्त पीडा स्तब्धता मुष्टि और दंडसे उपहतके समान पीड़ाको करता है ॥ ११ ॥

अस्थि और मज्जागतवायुका लक्षण ।

अस्थिस्थःसक्थिसन्ध्यस्थिशूलं तीव्रंबलक्षयम्
मज्जस्थोऽस्थिषु सौषिर्यमस्वप्नं स्तब्धतां रुजम्

अस्थिगत प्रकुपितवायु सक्थियोंमें संधियोंमें और अस्थियोंमें तीव्र शूलको उत्पन्न करता है तथा बलका क्षय करता है ।

मज्जामें कुपितहुआ वायु अस्थियोंके भीतरके भागको पोला बना देता है तथा निद्रानाश स्तब्धता और पीडाको उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

शुक्र और शिरागत वायुके लक्षण ।

शुक्रस्य शीघ्रमुत्सर्गं सङ्गं विकृतिमेव वा ।
तद्वद्गर्भस्य शुक्रस्थः--
--सिरास्वाध्मानरिक्तते ।
तत्स्थः ॥ १३ ॥--

शुक्रगत कुपित वायु शुक्रका बारबार निकालना या शीघ्र निकालना अथवा वीर्यको रोकदेना, वीर्यको विकृत करना या गर्भको विगाड देना इन लक्षणोंको करता है ।

शिराओंमें प्रकुपितहुआ वायु सिराओंको फुला देता है अथवा रिक्त कर देता है ॥ १३ ॥

स्नायुगतवातके लक्षण ।

--स्नावस्थितः कुर्याद् गृध्रस्यायामकुब्जताः१४

स्नायुगत वायु गृध्रसीरोग अथवा आभ्यन्तरायाम या बाह्यायाम और कुब्जताको करता है ॥१४॥

संधिगतवातके लक्षण ।

वातपूर्णदृतिस्पर्शं शोफं सन्धिगतोऽनिलः ।
प्रसारणाकुञ्चनयोः प्रवृत्तिं च सवेदनाम् ॥१५॥

संधिगत कुपित वायु वातपूर्ण मशकके समान स्पर्शवाले शोथयुक्त संधिस्थानको बनादेता है । तथा उस संधिके प्रसारण और आकुंचनकी प्रवृत्तिको बिगाड देता है और संधिमें वेदनाको करता है ॥ १५ ॥

सर्वाङ्गगतवातके लक्षण ।

सर्वाङ्गसंश्रयस्तोदभेदस्फुरणभञ्जनम् ।
स्तम्भमाक्षेपणं स्वापं सन्ध्याकुञ्चनकंपनम्१६।

सर्वांगगत वायु तोद, भेद, स्फुरण, भंजन, स्तम्भ, आक्षेपण, स्वाप, संधियोंका आकुंचन और कम्पन इन लक्षणोंको करता है ॥ १६ ॥

आक्षेपकके लक्षण ।

यदा तु धमनीः सर्वाः क्रुद्धोऽभ्येति मुहुर्मुहुः ।
तदाङ्गमाक्षिपत्येष व्याधिराक्षेपकःस्मृतः१७॥

जब कुपितहुआ वायु सब धमनियोंमें प्राप्त होता है तब वारबार अंगोमें आक्षेपको करता है इस कारण इस अंगोंमें आक्षेपकरनेवाले वायुरोगको आक्षेपक कहते हैं ॥ १७ ॥

अपतंत्रकके लक्षण ।

अधःप्रतिहतो वायुर्व्रजत्यूर्ध्वं हृदाश्रयाः ।
नाडीःप्रविश्य हृदयं शिरः शङ्खौ च पीडयन् ।
आक्षिपेत्परितो गात्रं धनुर्वच्चास्य नामयेत्१८
कृच्छ्रादुच्छ्वसिति स्तब्धस्रस्तमीलितदृक्ततः ।
कपोत इव कूजेत्स निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः१९॥

नीचेसे प्रतिहतहुआ वायु उर्ध्वगतिसे चलताहुआ जब हृदयाश्रित नाडीमें प्रवेश करता है तब हृदय शिर और कनपटियोंको पीडित करताहुआ शरीरमें सब ओरसे आक्षेप करता है तथा इसके शरीरको धनुषके समान नवा देता है उस समय यह मनुष्य कष्टसे श्वासलेता है और इसके नेत्र स्तब्ध स्रस्त या निर्मीलितसे होजाते हैं । यह मनुष्य उस अवस्थामें सज्ञा रहित होकर कपोतके समान कूजन करता है इस रोगको अपतंत्रक कहते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

अपतानकके लक्षण।

स एव चापतानाख्यो मुक्ते तु मरुता हृदि।
अश्नुवीत मुहुःस्वास्थ्यं मुहुरस्वास्थ्यमावृते२०॥

यदि यही अपतंत्रक इस प्रकारसे हो कि, जब कुपित वायु हृदयकी नाड़ीमें गमन करे तब यह मनुष्य मोह आदि अपतंत्रककेसे लक्षणवाला होजाय और जब वायु हृदयको छोड देवे तब मनुष्य सर्वथा स्वस्थ होजाय, इस प्रकार समयसमयपर बारबार वेग करनेवाले इस वातरोगको अपतानक कहते है ॥ २० ॥

गर्भपातसमुत्पन्नः शोणितातिस्रवोत्थितः।
अभिघातसमुत्थश्च दुश्चिकित्स्यतमो हि सः२१

यह अपतानक रोग स्त्रीको यदि गर्भपात होकर अतिरक्त स्रावहोनेके कारण उत्पन्न हो अथवा शस्त्रादि अभिघातसे अधिक रक्तस्रावसे उत्पन्न हो तो अपतानकरोग अत्यन्त दुश्चिकित्स्य होता है ॥ २१ ॥

अन्तरायामके लक्षण।

मन्ये संस्तभ्य वातोऽन्तरायच्छन्धमनीर्यदा।
व्याप्नोति सकलं देहं जत्रुरायम्यते तदा॥२२॥
अन्तर्धनुरिवाङ्गं च वेगैः स्तम्भं च नेत्रयोः।
करोति जृम्भां दशनं दशनानां कफोद्गमम्२३॥
पार्श्वयोर्वेदनां वाक्यहनुपृष्ठशिरोग्रहम्।
अन्तरायाम इत्येष ॥ २४ ॥–

जब कुपितहुआ वायु दोनों मन्या नाडियोंको स्तंभितकरके भीतरको नवाकर धमनीको प्राप्तहोजाता है उस समय सम्पूर्ण देहको और जत्रुओंको भीतरको नवा देताहै तब मुखकी ओरसे पावोंतक सम्पूर्ण शरीरको धनुषके समान टेढा कर अपने वेगसे नेत्रोंको स्तम्भित कर देता है।तथा जृम्भा, दांतोंका कटकटाना,कफका मुखसे गिरना, दोनोंपार्श्वोंमें वेदना होना, वाणीका रुक जाना, हनु पीठ और शिरमें पीडा होना इन लक्षणोंवाले रोगको अन्तरायाम कहते है ॥ २२–२४ ॥

बाह्यायामके लक्षण।

–बाह्यायामश्च तद्विधः।
देहस्य बहिरायामात्पृष्ठतो नीयते शिरः।
उरश्चोत्क्षिप्यते तत्र कन्धरा चावमृद्यते॥२५॥
दन्तेष्वास्ये च वैवर्ण्यं प्रस्वेदः स्रस्तगात्रता।
बाह्यायामं धनुष्कम्भं ब्रुवते वेगिनं च तम्२६॥

अन्तरायामके समान ही शरीरको पीठकी ओर बाहरको धनुषके समान नमजानेको बाह्यायाम कहते है। इसमें शिर पीठकी ओरको मुड जाता है, छाती ऊँची हो जाती है, गर्दन पीछेको नम जाती है, दांत और मुख विवर्ण होजाते हैं, स्वेद आनेलगता है अंग ढीले पडजाते है, इस वेगवाले रोगको बाह्यायाम या धनुष्कम्भ कहते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

व्रणायामके लक्षण।

व्रणं मर्माश्रितं प्राप्य समीरणसमीरणात्।
व्यायच्छन्ति तनुं दोषाः सर्वामापादमस्तकम्।
तृष्यतःपाण्डुगात्रस्यव्रणायामःस वर्जितः॥२७

वायुके प्रकोपसे उदीर्णहुए दोष मर्माश्रित व्रणमें प्राप्त होकर सम्पूर्ण शिरसे पाँवतक देहको धनुषके समान आयामयुक्त कर देते है, इस पुरुषको तृषा और पाण्डु वर्ण ये उपद्रव हो जाते है। यह व्रणायाम रोग असांध्य होनेसे त्याज्य है ॥ २७ ॥

गते वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकेषु च ॥२८॥

सम्पूर्ण वातवेगवाले आक्षेपकरोगके वेगके चले जानेपर मनुष्योंका शरीर स्वस्थ प्रतीत होताहै और वेग आनेपर फिर पूर्ववत् लक्षण वेगके समय दिखाई देतेहै॥ २८॥

हनुस्रंसके लक्षण।

जिह्वातिलेखनात् शुष्कभक्षणादभिघाततः।
कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनू२९॥
करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम्।
हनुस्रंसःस तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम्३०॥

जिह्वाका अतिलेखन करनेसे,सूखी चीजोंको खानेसे या चोट लगनेसे, हनुकी संधियोंके मूलमें स्थितहुआ वायु कुपितहोकर हनुको ढीला करके मुखको खुला ही रख देता है अथवा बन्द करदेता है, इस रोगको हनुस्रंस कहते है। इससे मनुष्य कष्टसे चर्वण और भाषण करता है अर्थात् खाने और बोलनेमें असमर्थ होजाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

जिह्वास्तम्भके लक्षण।

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः।
जिह्वास्तम्भःसतेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ३१

वाणीके वहन करनेवाली सिरामें प्राप्तहुआ कुपित वात जिह्वाको स्तंभित करदेता है, इससे मनुष्य खाने पीने और बोलनेमें असमर्थ होता है । इसको जिह्वा स्तम्भ कहते है ॥ ३१ ॥

अर्दितरोगके लक्षण ।

शिरसा भारहरणादतिहास्यप्रभाषणात् ।
उत्रासवक्त्रक्षवथुखरकार्मुककर्षणात् ॥ ३२ ॥
विषमादुपधानाच्च कठिनानां च चर्वणात् ।
वायुर्विवृद्धस्तैस्तैश्च वातलैरूर्ध्वमास्थितः ३३ ॥
वक्रीकरोति वक्त्रार्धमुक्तं हसितमीक्षितम् ।
ततोऽस्य कम्पते मूर्धा वाक्संगः स्तब्धनेत्रता॥
दन्तचालः स्वरभ्रंशः श्रुतिहानिः क्षवग्रहः ।
गन्धाज्ञानं स्मृतेर्मोहस्त्रासः सुप्तस्य जायते॥३५॥
निष्ठीवः पार्श्वतो यायादेकस्याक्ष्णो निमीलनम्
जत्रोरूर्ध्वं रुजा तीव्रा शरीरार्धेऽधरेऽपि वा ।
तमाहुरर्दितं केचिदेकायाममथापरे ॥ ३६ ॥

शिरके ऊपर बहुत भार उठानेसे, अत्यन्त हसनेसे, अत्यन्त बोलनेसे मुखको ऊपरको कर कष्ट देनेसे, छींक लेनेसे, कठोर धनुष आदिको खैंचनेसे शिरके नीचे टेढा मेढा और कठोर तकिया होनेसे, कठिन पदार्थोंको चबानेसे तथा अन्य वातकारक आहार विहारसे बढ कर कुपितहुआ वायु ऊपरकी नाडियोंमें स्थित होकर आधेमुखको टेढा करदेता है । उससे हंसना, देखना आदि आधेमुखके कार्य सब टेढे हो जाते हैं । इससे मस्तक कांपता है, वाणी रुक जाती है, नेत्र अकड जातें है, दांत चलायमान हो जाते है तथा स्वरका भ्रंश, श्रवण-शक्तिकी हीनता, छींकका रुकना, गंधका ज्ञान न रहना स्मरणशक्तिका हीन होना, सोतेहुये शरीरमें त्रास होना, मुखसे थूक गिरना, एक ओरको एक आंखका हर समयपर खोले रहना, उर्ध्व जत्रुओंमें तीव्र पीडा होना तथा आधे शरीरमें और आधे अधरमें भी पीडा होना इन लक्षणों वाले रोगको अर्दित रोग कहते हैं । कोई इसी रोगको एकायाम (लकवा) कहते हैं ॥ ३२–३६ ॥

सिराग्रहके लक्षण ।

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराः सिराः ।
रूक्षाःसवेदनाःकृष्णाःसोऽसाध्यःस्यात्सिराग्रहः

रक्तके आश्रितहुआ पवन मस्तकके धारण करने-वाली सिराओंमें प्रवेश करके सिराको रूक्ष कृष्णवर्णकी और शूलयुक्त करदेता है इसको सिराग्रह कहते हैं. यह रोग असाध्य होता है ॥ ३७ ॥

पक्षाघातके लक्षण ।

गृहीत्वार्धं तनोर्वायुः सिराः स्नायूर्विशोष्य च॥
पक्षमन्यतरं हन्ति संधिबंधान् विमोक्षयन् ३८
कृत्स्नोऽर्धकायस्तस्यस्यादकर्मण्यो विचेतनः॥
एकाङ्गरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः॥ ३९॥

सम्पूर्ण आधेशरीरको वायुग्रहण कर उस आधे शरी-रकी सिरा और स्नायुओंको शोषण करके और संधि बन्धनोंको ढीलेकरके आधे शरीरको हनन कर देता है। इससे जिस ओरके आधे शरीरको वायु अकर्मण्य और अचेतन बना देता है वह ही सारे शरीरका बायां अथवा दहिना भाग अचेतन हो जाता है। इसको कोई एकांग रोग कोई पक्षवध या पक्षाघात अथवा अर्धाङ्गवात (फालेज) कहते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

सर्वांग वातका लक्षण ।

सर्वाङ्गरोगं तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले॥ ४० ॥

इसी प्रकार संपूर्ण शरीरमें वात प्रकोप होकर सपूर्ण देह अकर्मण्य और निश्चल होजानेसे सर्वांगरोग उत्पन्न हो जाता है अर्थात् जैसे पक्षाघातमें आधा शरीर निश्चेष्ट होता है ऐसे सर्वांगवातमें संपूर्ण शरीर निश्चेष्ट हो जाता है इसको सर्वांगवात कहते है ॥ ४० ॥

पक्षाघात आदिकोंकी साध्यासाध्यता ।

शुद्धवातहतः पक्षः कृच्छ्रसाध्यतमो मतः ।
कृच्छ्रस्त्वन्येन संसृष्टो विवर्ज्यः क्षयहेतुकः ४१॥

केवल शुद्धवातसे हुआ पक्षाघात अत्यन्त कष्टसाध्य होता है किसी कफ या पित्तसे युक्त होनेपर पक्षाघात कष्टसाध्य होता है और रक्तक्षयादिजनित पक्षाघात सर्वथा असाध्य होता है ॥ ४१ ॥

दण्डकका लक्षण ।

आमबद्धायनः कुर्यात्संस्तभ्याङ्गं कफान्वितः।
असाध्यं हतसर्वेहं दंडवद्दंडकं मरुत् ॥ ४२ ॥

आमद्वारा स्थगितहुए मार्ग होनेसे कुपितहुआ कफ-युक्तवायु सम्पूर्ण शरीरको चेष्टारहित दण्डके समान

करदेता है इस रोगको दण्डक कहते हैं। यह असाध्य होता है॥ ४२॥

अवबाहुकके लक्षण।

अंसमूलस्थितो वायुः सिराः संकोच्य तत्रगाः। बाहुप्रस्पंदितहरं जनयत्यवबाहुकम्॥ ४३॥

अंसोंके मूलमें स्थितहुआ वायु अंसगत सिराओंका संकोच करके दोनों बाहुओंको ऊपरको कर बाहुओंकी स्पंदना शक्तिको हरलेता है। इस रोगको अवबाहुक कहते हैं॥ ४३॥

विश्वाचीके लक्षण।

तलं प्रत्यङ्गुलीनां या कण्डरा बाहुपृष्ठतः। बाहुचेष्टापहरणी विश्वाची नाम सा स्मृता॥४४

जो प्रत्येक अंगुलिके साथ लगीहुई कंडरा बाँहके पृष्ठभागसे आती है उसमें प्राप्त होकर वायु जब कंडराके कार्यको विगाड देता है तब वह बाहु अपनी चेष्टा नहीं करसकती इस रोगका नाम विश्वाची है॥४४॥

खज और पंगुके लक्षण।

वायुः कट्यां स्थितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा तदा खञ्जो भवेज्जन्तुः पङ्गुः सक्थ्नोर्द्वयोरपि॥४५

जब कटिमें स्थितवायु कुपित होकर सक्थि (सांथल) की कंडरामें प्रवेशकर आक्षेप करता है तब मनुष्य एक टांगकी क्रिया रुक जानेसे लंगड़ा होजाता है। इस एक सक्थिबंध रोगको खंज कहते है यदि इसी प्रकार दोनों टाँगोंकी सक्थियोंमें वायु कंडराश्रित होकर सक्थियोंका बल वध करता है तब दोनों टांग निश्चेष्ट होनेके कारण मनुष्य पंगु कहाजाता है अर्थात् दोनों टाँगोंके मारेजानेको पंगु कहते हैं॥ ४५॥

कलाय खंजके लक्षण।

कंपते गमनारंभे खंजन्निव च याति यः। कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसंधिप्रबंधनम्॥४६॥

जिस मनुष्यका शरीर गमनके आरम्भमें खंजन पक्षीके समान कम्पायमान होकर चलता है उस मनुष्यके शरीरमें वायु संधिबंधनोंको ढीले करदेती है। इस रोगको कलायखंज कहते हैं॥ ४६॥

ऊरुस्तम्भके लक्षण।

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः। जीर्णाजीर्णे तथाऽऽयाससंक्षोभस्वप्नजागरैः ४७

सश्लेष्ममेदःपवनमाममत्यर्थसंचितम्। अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत्प्रतिपद्यते॥ ४८॥

सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यांतः श्लेष्मणा स्तिमितेन तत् तदा स्कभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ४९ परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ। ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः५०॥ संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः। तमूरुस्तंभमित्याहुराढ्यवातमथापरे॥ ५१॥

अत्यन्तशीतल, उष्ण, द्रव, सूखे, भारी और चिकने पदार्थोंको अतिसेवन करनेसे तथा जीर्णाजीर्णका विचार न कर अर्थात् किंचित् जीर्ण होनेपर बीचमें ही भोजन कर लेना, कुछ जीर्ण, कुछ अजीर्ण इस प्रकारका आहार होना, शीतोष्णादि पदार्थोंका अधिक सेवन करना, अधिक परिश्रम करना, संक्षुभितकरनेवाली सवारीकरना, दिनमें सोना और रात्रिको जागना इत्यादि कारणोंसे कफ और मेदकरकेयुक्त वायु अत्यन्त संचितहुए आमको लेकर वात और कफको दबाकर जब दोनों ऊरुओंमें पहुंच जाता है तब दोनों सक्थियों (साथलों) की अस्थियोंको भीतरसे मंदकफके द्वारा पूर्णकरके दोनों ऊरुस्थलोंको स्तंभित करदेता है इससे दोनों ऊरु अकड़े हुए, शीतल, चेतनारहित, अत्यन्त पीड़ावाले, अकर्मण्य, परायेके समान होजाते हे तथा इस मनुष्यको ध्यानसा लगे रहना, अंगमर्द, स्तैमित्य, तन्द्रा, छर्दी, अरुचि और ज्वर ये उपद्रव होजाते हे तथा पावोंका शून्यसा होना और सोयेहुएसा होना, एवं कष्टसे उठाये हिलाये जाना ये उपद्रव होते है, इन लक्षणोंवाले रोगको कोई ऊरुस्तम्भ कहते हे और कोई आढयवात कहते हैं॥ ४७-५१॥

क्रोष्टुशीर्षके लक्षण।

वातशोणितजः शोफो जानुमध्ये महारुजः। ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षश्च स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत्५२

जानु (घुटने) के मध्यमें अत्यन्त पीडावाला वात और रक्तजनित शोथ उत्पन्न हो जाता है वह शोथ गीदडके शिरके समान स्थूल आकारवाला होनेसे क्रोष्टुशीर्ष कहाजाता है॥ ५२॥

वातकण्टकके लक्षण।

रुक् पादे विषमन्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा।
वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकंटकम्॥५३॥

चलते समय पांवका टेढा मेढा रखेजानेसे अथवा बहुतमार्ग चलनेसे गुल्फ (गिट्टा) में वायु प्रकुपित होकर सूजन और पीडा हो जाती है इस रोगको वातकण्टक कहते है॥ ५३॥

गृध्रसीके लक्षण।

पार्ष्णि प्रत्यङ्गुलीनां या कण्डरा मारुतार्दिता।
सक्थ्युत्क्षेपं निगृह्णाति गृध्रसीं तां प्रचक्षते ५४

पांवकी एड़ी और पांवकी उंगलियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली कंडरा जो कटितक टांगमे रहती है इसमें जब कमरसे पीडा करताहुआ वायु क्रमसे पांवतककी कंडरामें आक्षेप करता है उससे सांथलमें पीड़ा होती रहती है इस रोगको गृध्रसी कहते है॥ ५४॥

खल्लीके लक्षण।

विश्वाची गृध्रसी चोक्ता खल्ली तीव्ररुजान्विता

जैसे एक बाहुके कर्मको क्षय करनेवाला विश्वाची रोग होता है उसी प्रकार एक टांगकी कडरामें वायुका आक्षेप होनेसे गृध्रसीरोग होता है इस गृध्रसीऔर विश्वाचीमें अर्थात् हाथ या पांवकी कंडरामें तीव्र पीड़ायुक्त जो खिंचाव होता है उसको खल्लीरोग कहते है॥ ५५॥

पादहर्षके लक्षण।

हृष्येते चरणौ यस्य भवेतां च प्रसुप्तवत्।
पादहर्षः स विज्ञेयः कफमारुतकोपजः॥५६॥

जिस मनुष्यके दोनों पांव प्रसुप्तसे प्रतीत होते हुए हर्षको प्राप्त होते है अर्थात् रोमांच होनेके समान दोनों पांव प्रसुप्तिपूर्वक हर्षयुक्त हो यह कफ और वायुके प्रकोपसे उत्पन्नहुआ रोग पादहर्ष कहा जाताहै॥५६॥

पाददाहके लक्षण।

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः॥
विशेषतश्चंक्रमिते पाददाहं तमादिशेत्॥५७॥

पित्त रक्तसेयुक्त वायु दोनों पावोंमें दाहको उत्पन्न करता है, विशेष करके बहुत भ्रमण करनेवाले मनुष्यके पांवोंमें दाह करता है. इस रोगको पाददाह कहते है ५७

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टाङ्गहृदयान्तर्गत निदानस्थाने वातव्याधिनिदाने पं. शिवशर्म वैद्यशास्त्रिकृतशिवदीपिका व्याख्यायां पंचदशोऽध्यायः॥ १५॥

षोडशोऽध्यायः।

अथाऽतो वातशोणितनिदानं व्याख्यास्यामः।

अब हम वातरक्त निदानकी व्याख्या करते हैं।

वातरक्तकी सम्प्राप्ति।

विदाह्यन्नं विरुद्धं च तत्तच्चासृक्प्रदूषणम्।
भजतां विधिहीनं च स्वप्नजागरमैथुनम्॥१॥
प्रायेण सुकुमाराणामचंक्रमणशीलिनाम्।
अभिघातादशुद्धेश्च नृणामसृजि दूषिते॥२॥
वातलैः शीतलैर्वायुर्वृद्धः क्रुद्धो विमार्गगः।
तादृशेनासृजा रुद्धः प्राक्तदेव प्रदूषयेत्॥३॥
आढ्यरोगं खुडं वातबलासं वातशोणितम्।
तदाहुर्नामभिस्तच्च पूर्वं पादौ प्रधावति॥
विशेषाद्यानयानाद्यैः प्रलंबौ॥४॥—

विदाही अन्नके खानेसे, विरुद्ध भोजन करनेसे तथा अन्य रक्तको प्रकोपकरनेवाले आहारविहारसे, विधिविहीन सोने जागने और मैथुन करनेसे, प्राय: जो सुकुमार स्वभावके कारण घूमते फिरते नहीं है उनके शरीरमें अथवा चोट आदि लगनेसे, शरीरमें दोष मलादिक संचित होनेसे मनुष्योंके शरीरमें जब रक्तदूषित होता है तब शीतल रूक्ष आदि वातप्रकोपकारक पदार्थोंके सेवनसे वायु बढकर कुपित होजाता है. वह वायु विमार्गगामी होकर उस संचित और दूषितरक्तसे रुद्धगति होकर प्रथम उस रक्तको ही विशेष दूषितकर देता है तब यह रक्त और वायु एकत्रित होकर प्रथम दोनों पांवोंमें संचित होते है विशेषकर घोडे आदिपर सवारी करनेवाले मनुष्योंके लटकतेहुए पांवोंमें यह वातरक्त (यदि पहले संचित होनेके कारण शरीरमें उपस्थित हो तो) संचित होजाता है। इस रोगको आढ्य रोग खुडरोग वातबलास और वातरक्त कहते हैं॥ १-४

वातरक्तके पूर्वरूप।

—तस्य लक्षणम्।

भविष्यतः कुष्ठसमं तथा सादः श्लथाङ्गता।
जानुजंघोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसंधिषु॥५॥
कण्डूस्फुरणनिस्तोदभेदगौरवसुप्तताः॥
भूत्वा भूत्वा प्रणश्यंति मुहुराविर्भवन्ति च॥६॥

जब वातरक्त रोग होनेवाला होता है तो पूर्व रूपमें कुष्ठके समान लक्षण होते है तथा जानु, जंघा, ऊरु, कटि, अंस, हाथ, पांव और अंगकी संधियोंमें सुप्तिसी प्रतीति होती है और अंग ढीलेसे होते है। तथा इन स्थानोंमें खुजली, स्फुरण, निस्तोद, भेद, भारीपन और सुप्ति ये लक्षण बार बार प्रगट होकर नष्ट होजांय और फिर बार बार प्रगट हों ये लक्षण वातरक्तके पूर्वरूपमें होते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

वातरक्तके लक्षण।

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि।
आखोरिव विषं क्रुद्धं कृत्स्नं देहं विधावति॥७॥

यह वातरक्त–दोनों पांवोंके मूलमें स्थित होकर कभी दोनों हाथोंके मूलमें स्थित होकर मूषकके विषके समान प्रकुपित हो सम्पूर्ण देहमें प्राप्त हो जाताहै७॥

त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं तत्पूर्वं जायते ततः।
कालान्तरेण गंभीरं सर्वान् धातूनभिद्रवत्॥८॥

उत्तान वातरक्त–प्रथम सीधे रूपसे त्वचा और मांसके आश्रित होता है तदनन्तर चिकित्सा न करनेसे कालान्तरमें गंभीर होकर सम्पूर्ण धातुओंमें प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥

उत्तानवात रक्त।

कण्ड्वादिसंयुतोत्ताने त्वक्ताम्रश्यावलोहिता॥
सायामा भृशदाहोषा ॥ ९ ॥–

उत्तान वातरक्तमें खुजली, स्फुरण, तोद, भेद, गुरुता और सुप्ति होते है तथा त्वचा, ताम्रवर्णकी श्याववर्णकी और लोहित वर्णकी हो जाती है और खिचाव, दाह तथा ऊषा करकेयुक्त होती है ॥ ९ ॥

गंभीरवातरक्त।

–गंभीरेऽधिकपूर्वरुक्।
श्वयथुर्ग्रथितः पाकी वायुः संध्यस्थिमज्जसु१०॥
छिन्दन्निव चरत्यंतर्वक्रीकुर्वंश्च वेगवान्।
करोति खञ्जं पङ्गुं वा शरीरे सर्वतश्चरन्॥११॥

गंभीरवातरक्तमें प्रथम अधिक पीड़ा होती है तथा सूजन और गठीलापन होता है वातरक्त पकजाता है वायु संधि, अस्थि और मज्जामें छेदनकीसी पीड़ा करताहुआ विचरता है तथा वह वेगवान् वायु हाथों पांवोंको वातरक्तकी अधिकतासे अन्दरको टेढे बना-देता है तथा सम्पूर्ण शरीरमें विचरण करताहुआ रोगीको खंज या पंगु बना देता है ॥ १० ॥ ११ ॥

वाताधिकवातरक्त।

वातेऽधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणतोदनम्।
शोफस्य रौक्ष्यकृष्णत्वश्यावतावृद्धिहानयः१२
धमन्यङ्गुलिसन्धीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक्।
शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः ॥ १३ ॥

वातरक्तमें यदि वायुकी अधिकता हो तो शूल स्फुरण और तोद अधिक होते है और सूजन, रूखी काली श्यामवर्णकी तथा बढने घटनेवाली होती है। धमनी और अंगुलियोंकी संधियोंका संकोच, अंगग्रह, अत्यन्त पीडा, शीतसे द्वेष और शीतल रूक्ष पदार्थोंसे रोगकी वृद्धि स्तम्भ कम्प और अंगसुप्ति ये लक्षण वातप्रधान वातरक्तमें होते है ॥ १२ ॥ १३ ॥

रक्ताधिकवातरक्त।

रक्ते शोफोऽतिरुक् तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते।
स्निग्धरूक्षैःशमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः॥१४॥

रक्तकी अधिकतावाले वातरक्तमें सूजन, अत्यन्त शूल, तोद, ताम्रवर्णका होना, चिमचिमाहट, स्निग्ध और रूक्षपदार्थोंसे शान्त न होना, कण्डू और क्लेदका होना ये लक्षण होते है ॥ १४ ॥

पित्ताधिकवातरक्त।

पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदःसतृट्।
स्पर्शाक्षमत्वं रुग्रागः शोफपाको भृशोष्मता१५

पित्ताधिक वातरक्तमें विदाह, संमोह, पसीना, मूर्च्छा, मद, तृषा, स्पर्शका सहन न होना, त्वचामें शूल रक्तवर्ण सूजन पाक और अत्यन्त उष्मता (गर्मी) ये लक्षण होते हैं ॥ १५ ॥

कफाधिक और द्विदोषज तथा सन्निपातज वातरक्त।

कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः।
कण्डूर्मन्दा च रुग्–
–द्वन्द्वसर्वलिङ्गं च संकरे॥१६॥

कफाधिक वातरक्तमें स्तैमित्य, गुरुता, सुप्ति, स्निग्धता और त्वचाका शीतल होना, खुजली और मन्दपीडा ये लक्षण होते हैं।

दो दोषोंके लक्षण हो तो द्विदोषज, तीन दोषोंके लक्षण हों तो त्रिदोषज जानना चाहिये ॥ १६ ॥

एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् ।
त्रिदोषजं त्यजेत्स्रावि स्तब्धमर्बुदकारि च१७॥

नवीन और एकदोषानुग वातरक्त साध्य होता है, दो दोषोंका याप्य होता है, तीन दोषोंका असाध्य होता है तथा जिस वातरक्तमें स्राव, स्तब्धता और अर्बुद उत्पन्न होजाय वह भी असाध्य होता है ॥ १७ ॥

वातद्वारा शूल होनेका कारण ।

रक्तमार्गं निहत्याशु शाखासन्धिषु मारुतः ।
निविश्यान्योन्यमावार्य वेदनाभिर्हरत्यसून् १८

वायु शाखा और संधियोंमें प्राप्त होकर जब शीघ्र रक्तके मार्गको रोक देता है तब आपसमें परस्पर वायु रक्तको और रक्त-वायुको प्रतिहत करने लगता है उससे अत्यन्त वेदना होकर शरीरका नाश हो जाता है ॥ १८ ॥

विकृत प्राण वायुके कर्म ।

वायौ पञ्चात्मके प्राणो रौक्ष्यव्यायामलङ्घनैः ।
अत्याहाराभिघाताध्ववेगोदीरणधारणैः ॥१९॥
कुपितश्चक्षुरादीनामुपघातं प्रवर्तयेत् ।
पीनसार्दिततृट्कासश्वासादींश्चामयान्बहून् २०

वायु पंचात्मक होतेहुये भी प्राणवायु रूक्ष पदार्थोंके खानेसे, कसरत करनेसे, लंघन करनेसे, अधिक आहारके करनेसे, अभिघातसे, रास्ता चलनेसे, मलमूत्रादिवेगोंको रोकनेसे कुपित होकर जब चक्षु आदिकोंका उपघात करनेमें प्रवृत्त होता है तब पीनस, अर्दितवात, तृषा, खांसी और श्वास आदि ऊर्ध्वमार्गके अन्य बहुतसे रोगोंको पैदा कर देता है ॥ १९॥२० ॥

विकृत उदान वायुके कर्म ।

उदानः क्षवथूद्गारच्छर्दिनिद्राविधारणैः ।
गुरुभारातिरुदितहास्याद्यैर्विकृतो गदान् ॥२१।
कण्ठरोधमनोभ्रंशच्छर्द्यरोचकपीनसान् ।
कुर्याच्च गलगण्डादींस्तांस्तान् जत्रूर्ध्वसंश्रयान् ।

छींक, उद्गार, छर्दी और निद्राके वेगोंको रोकनेसे, भारी बोझके उठानेसे, अत्यन्त रोनेसे, अत्यन्त हसने आदि कारणोंसे विकृत हुआ उदानवायु कंठावरोध, मनका भ्रंश होना, छर्दी, अरुचि, पीनस और गलगंडादि तथा अन्य ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

विकृत व्यानवायुके कर्म ।

व्यानोऽतिगमनध्यानक्रीडाविषमचेष्टितैः ।
विरोधिरूक्षभीहर्षविषादाद्यैश्च दूषितः ॥२३॥
पुंस्त्वोत्साहबलभ्रंशशोफचित्तोत्प्लवज्वरान् ।
सर्वाङ्गरोगनिस्तोदरोमहर्षाङ्गसुप्तताः ।
कुष्ठं विसर्पमन्यांश्च कुर्यात्सर्वाङ्गगान् गदान्२४

अत्यन्त मार्ग चलनेसे, अधिक चिन्ता करनेसे, अधिक क्रीडा करनेसे, विषम चेष्टाओंसे, विरुद्ध आहार करनेसे तथा रूक्ष आहार करनेसे, भयसे, हर्षसे और विषाद आदि कारणोंसे कुपितहुआ व्यानवायु पुंस्त्व-शक्ति उत्साह और बलका नाश करताहै तथा सूजन चित्तका बिगड़ना,ज्वर, सर्वांग रोग, तोद, रोमहर्ष, अंगसुप्ति, कुष्ठ, विसर्प और अन्य सर्वांगोंमें होनेवाले रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

विकृत समानवायुके कर्म ।

समानो विषमाजीर्णशीतसंकीर्णभोजनैः ॥२५॥
करोत्यकालशयनजागराद्यैश्च दूषितः ।
शूलगुल्मग्रहण्यादीन् पक्वामाशयजान् गदान्॥

विषम भोजन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, शीतलभोजन करनेसे और संकीर्णभोजन करनेसे तथा दिनमें सोना, रातको जागना आदि कारणोंसे दूषित हुआ समानवायु शूल, गुल्म और ग्रहणी आदि तथा पक्वाशय और आमाशयसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य रोगोंको उत्पन्न कर देता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

विकृत अपानवायुके कर्म ।

अपानो रूक्षगुर्वन्नवेगघातातिवाहनैः ।
यानयानासनस्थानचंक्रमैश्चातिसेवितैः ॥२७॥
कुपितः कुरुते रोगान् कृच्छ्रान् पक्वाशयाश्रयान्
मूत्रशुक्रप्रदोषार्शोगुदभ्रंशादिकान्बहून् ॥२८॥

रूक्ष और भारी अन्नोंके सेवनसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे घोड़े आदि सवारीपर बहुत चलनेसे, अतिभार उठानेसे, एक स्थानमें बैठे रहनेसे, बहुत अधिक चलनेसे, तथा अन्य ऐसेहीकारणोंसे कुपितहुआ अपान वायु पक्वाशयके आश्रित होनेवाले अनेक कष्टसाध्य रोगोंको तथा मूत्रके रोगोंको, वीर्यके रोगोंको, अर्श और गुदभ्रंश आदि रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ २७॥२८ ॥

वायुकी साम और निराम अवस्था।

सर्वं च मारुतं सामं तन्द्रास्तैमित्यगौरवैः।
स्निग्धत्वारोचकालस्यशैत्यशोफाग्निहानिभिः।
कटुरूक्षाभिलाषेण तद्विधोपशयेन च।
युक्तं विद्यान्निरामं तु तन्द्रादीनां विपर्ययात् २९।

सब प्रकारकी वायुएं आमयुक्तहोनेसे तन्द्रा, स्तैमित्य और भारीपनको करती है आमदोषसे स्निग्धहोनेके कारण अरुचि, आलस्य, शीतता, सूजन और मन्दाग्निको करती है।

इस सामवातमें कटु और रूक्ष पदार्थोंकी अभिलाषा होती है और कटु रूक्ष पदार्थोंसे ही आमका शमन होता है इन लक्षणोंवाले वायुको सामवात जानना चाहिये।

सामवातसे विपरीत लक्षणोंवाला वायु जिसमें तन्द्रा, स्तैमित्य, गुरुता, अरुचि, आलस्यादि आमदोष नहीं होते है उसको निराम वायु जानना चाहिये ॥ २९ ॥

वायुके आवरण।

वायोरावरणं चातो बहुभेदं प्रवक्ष्यते ॥ ३० ॥

वायुके आवरण अनेक प्रकारके होते है इस कारण यहां पर पित्त आदिसे आवृतहुए वायुके लक्षणोंको कहते हैं ॥ ३० ॥

पित्तावृत वायुके लक्षण।

लिङ्गं पित्तावृते दाहस्तृष्णा शूलं भ्रमस्तमः।
कटुकोष्णाम्ललवणैर्विदाहः शीतकामता ३१॥

यदि वायु पित्तसे आवृत हो तो दाह, तृषा, शूल, भ्रम और नेत्रोंके आगे अंधकारको उत्पन्न करता है। इसमें कटु, उष्ण, अम्ल और लवण पदार्थोंके खानेसे विदाह उत्पन्न होजाता है तथा शीतपदार्थोंकी इच्छा होती है ॥ ३१ ॥

कफावृतवायुके लक्षण।

शैत्यगौरवशूलानि कट्वाद्युपशयोऽधिकम्।
लंघनायासरूक्षोष्णकामता च कफावृते ॥ ३२॥

यदि वायु कफसे आवृत हो तो उसमें शीतता, भारीपन और शूल आदि लक्षण हो जाते है तथा कटु उष्ण आदि पदार्थ अधिक हितकारी होते है एवं लंघन आयास और रूक्षोष्ण पदार्थोंकी कामना होती है और ये हितकारी होते है ॥ ३२ ॥

रक्तावृत वायुके लक्षण।

रक्तावृते सदाहार्तिस्त्वङ्मांसान्तरजा भृशम्।
भवेच्च रागी श्वयथुर्जायन्ते मण्डलानि च॥३३॥

यदि वायु रक्तसे आवृत हो तो त्वचा मांसके अन्तरमें अत्यन्त दाह और पीड़ाको करती है तथा त्वचा पर राग सूजन और मंडलोंको करदेती है॥ ३३ ॥

मांसावृत वायुके लक्षण।

मांसेन कठिनः शोफो विवर्णः पिटिकास्तथा।
हर्षः पिपीलिकानां च सञ्चार इव जायते ॥३४॥

यदि वायु मांससे आवृत हो तो मांसमें कठिनता, सूजन, विवर्णता, पिटिका, लोमहर्ष और चींटियोंके चलनेके समान मांसमें प्रतीत होना ये लक्षण होते है ३४

मेदावृतवायुके लक्षण।

चलः स्निग्धो मृदुः शीतःशोफो गात्रेष्वरोचकः।
आढ्यवात इति ज्ञेयः स कृच्छ्रो मेदसाऽऽवृते ३५

यदि वायु मेदसे आवृत हो तो अंगोंमें चिकना, मृदु और शीतल शोथ हो जाता है तथा अरुचि हो जाती है। इस कष्टसाध्य रोगको आढ्यवात भी कहते है ॥३५॥

अस्थ्यावृतवायुके लक्षण।

स्पर्शमस्थ्यावृतेऽत्युष्णं पीडनं चाभिनन्दति।
सूच्येव तुद्यतेऽत्यर्थमङ्गं सीदति शूल्यते ॥३६।

यदि वायु अस्थिसे आवृत हो तो अस्थिका स्पर्श अत्यन्त ऊष्म होता है और दबानेकी इच्छा रहती है अर्थात् उस स्थानको पीड़न करनेसे सुखप्रतीत होता है। सूईके चुभनेके समान अत्यन्त तोद होता है तथा वह अंग शूलसे भेदन किये हुएके समान व्याकुल होता है ॥ ३६ ॥

मज्जावृत वातके लक्षण।

मज्जावृते विनमनं जृम्भणं परिवेष्टनम्।
शूलं च पीडयमानेन पाणिभ्यां लभते सुखम् ॥

मज्जासे आवृत वायु हो तो अगोंका नमना, जंभाई, वेष्टनकीसी पीड़ा तथा हाथोंसे उस स्थानको पीड़न करनेसे सुख प्रतीत होना, ये लक्षण होते है ॥३७॥

शुक्रावृत वायुके लक्षण।

शुक्रावृतेऽतिवेगो वा न वा निष्फलताऽपि वा ३८

शुक्रावृत वात हो तो वीर्यका अतिवेग होना अथवा वीर्यका वेग न होना और वीर्यका गर्भाधानमें निष्फलता होना ये लक्षण होते है ॥ ३८ ॥

अन्नावृत वायुके लक्षण।

भुक्ते कुक्षौ रुजा जीर्णे शाम्यत्यन्नावृतेऽनिले॥

भुक्तान्नसे आवृत वात हो तो कुक्षियोंमें शूल होता है और अन्नके जीर्ण होजानेपर वह शूल भी निवृत्त हो जाता है॥ ३९॥

मूत्रावृत वायुके लक्षण।

मूत्राप्रवृत्तिराध्मानं बस्तौ मूत्रावृते भवेत्॥४०॥

यदि मूत्रसे आवृत वायु हो तो मूत्रका रुकना और वस्तिमें आध्मान होना ये लक्षण होते हैं॥ ४०॥

विष्ठावृत वायुके लक्षण।

विडावृते विबन्धोऽधः स्वस्थाने परिकृन्तति।
व्रजत्याशु जरां स्नेहो भुक्ते चानह्यते नरः।
शकृत्पीडितमन्नेन दुःखं शुष्कं चिरात्सृजेत्४१

विष्ठासे आवृत यदि वात हो तो विबन्ध अर्थात् अधोभागसे मलका रुकना और अपानस्थानमें कर्तनकी-सी पीड़ा होना, स्नेह शीघ्र जीर्ण हो जाना, भोजन करनेपर अफारा होना, भोजनसे पीडितहुआ पुरीष सूखाहुआ और कष्टसे बहुत देरमें आना ये लक्षण होते हैं॥ ४१॥

सर्वधात्वावृत वायुके लक्षण।

सर्वधात्वावृते वायौ श्रोणीवंक्षणपृष्ठरुक्।
विलोमो मारुतोऽस्वस्थं हृदयं पीड्यतेऽपि च॥

सब धातुओंसे आवृत यदि वायु हो तो श्रोणी, वंक्षण और पीठमें पीडा होती है तथा वायु विलोम होकर अस्वस्थ हृदयको अधिक पीड़ित करता है॥ ४२॥

पित्तावृत प्राण उदानादि वायुओंके लक्षण।

भ्रमो मूर्च्छा रुजा दाहः पित्तेन प्राण आवृते।
विदग्धेऽन्ने च वमनम्-
-उदानेऽपि भ्रमादयः।
दाहोऽन्तरूर्जोभ्रंशश्च-
-दाहो व्याने च सर्वगः॥४३॥
क्लमोऽङ्गचेष्टासङ्गश्च ससन्तापः सवेदनः।
समान ऊष्मोपहतिरतिस्वेदोऽरतिःसतृट्॥४४॥
दाहश्च स्यादपाने तु मले हारिद्रवर्णता।
रुजोऽतिवृद्धिस्तापश्च योनिमेहनपायुषु॥४५॥

यदि प्राणवायु पित्तसे आवृत हो तो भ्रम, मूर्च्छा, शूल और दाहको करता है तथा अन्नके विदग्ध होने पर वमनको करता है।

उदानवायु यदि पित्तसे आवृत हो तो भ्रम, मूर्च्छा, शूल, दाह और ओजका भ्रंश इन लक्षणोंको करता है।

व्यानवायु यदि पित्तसे आवृत हो तो सम्पूर्ण अंगोंमें गमन करता हुआ क्लम, अंगोंकी चेष्टाओंका रुकना, शरीरमें सन्ताप और पीड़ाको करता है।

समानवायु यदि पित्तसे आवृत हो तो अग्निका नाश, अति स्वेद और चित्तका न लगना तथा तृषा लगना इन लक्षणोंको करता है।

अपानवायु यदि पित्तसे आवृत हो तो अपानस्थानमें दाह, मलका हारिद्रवर्ण होना, मलाशयमें शूलकी अतिवृद्धि, योनिमें अथवा शिश्नमें या पायुस्थानमें संताप होना ये लक्षण होते है॥ ४३-४५॥

कफसे आवृत प्राणआदि वायुओंके लक्षण।

श्लेष्मणा त्वावृते प्राणे सादस्तन्द्रारुचिर्वमिः।
ष्ठीवनक्षवथूद्गारनिःश्वासोच्छ्वाससंग्रहः॥ ४६॥
उदाने गुरुगात्रत्वमरुचिर्वाक्स्वरग्रहः।
बलवर्णप्रणाशश्च-
-व्याने पर्वास्थिवाग्ग्रहः॥४७॥
गुरुताङ्गेषु सर्वेषु स्खलितं च गतौ भृशम्।
समानेऽतिहिमाङ्गत्वमस्वेदो मन्दवह्निता॥ ४८॥
अपाने सकफं मूत्रशकृतः स्यात्प्रवर्तनम्।
इति द्वाविंशतिविधं वायोरावरणं विदुः॥ ४९॥

यदि प्राणवायु कफसे आवृत हो तो अंगसाद, तन्द्रा अरुचि, वमन, मुखसे लार गिरना, छींक आना, उद्गार, निश्वास और उच्छ्वासका रुकना ये लक्षण होते हैं।

उदानवायु यदि कफसे आवृत हो तो अंगोंमें भारीपन, अरुचि, वाणी और स्वरका रुकना, बल और वर्णका नाश ये लक्षण होते है।

व्यानवायु यदि कफसे आवृत हो तो पर्वोंमें तथा अस्थियोंमें पीडा होना, वाणीका रुकना, सब अंगोंमें भारीपन और चलनेमें गतिका स्खलित होना ये लक्षण होते हैं।

अपानवायु यदि कफसे आवृत हो तो मूत्र और मलमें कफकेसे लक्षण होते है अर्थात् ये कफयुक्त आते हैं।

इस प्रकार वायुके आवरण २२ प्रकारके जानने चाहिये ॥ ४१-४९ ॥

वायुके परस्पर आवृत होनेसे २० प्रकारके लक्षण।

प्राणादयस्तथाऽन्योन्यमावृण्वन्ति यथाक्रमम्।
सर्वेऽपि विंशतिविधं विद्यादावरणं च तत् ॥ ५०

प्राण, उदान, व्यान, समान और अपान ये पांचों जब आपसमें एक दूसरेसे आवृत होजाते हैं उनके भी यथाक्रम २० प्रकारके आवरण जानने चाहिये। पांचोंका आपसमें अलग अलग एक एकको चार चारके साथ मिलानेसे चार पंचक मिलाकर बीस प्रकारके आवरण होजाते है ॥ ५० ॥

निःश्वासोच्छ्वाससंरोधः प्रतिश्यायःशिरोग्रहः।
हृद्रोगो मुखशोषश्च प्राणेनोदान आवृते॥५१॥
उदानेनाऽऽवृते प्राणे वर्णौजोबलसंक्षयः।
दिशाऽनया च विभजेत्सर्वमावरणं भिषक्।
स्थानान्यवेक्ष्यवातानांवृद्धिं हानिं च कर्मणाम्॥

प्राणवायु यदि उदानवायुसे आवृत होजाय तो निश्वास और उच्छ्वासका सरोध, प्रतिश्याय, शिरोग्रह, हृद्रोग और मुखशोष ये लक्षण होते है।

उदानवायुसे यदि प्राणवायु आवृत होजाय तो वर्ण, ओज और बलका क्षय करता है।

इस प्रकार वैद्य इस रीतिके अनुसार वायुओंके स्थान वृद्धि और हानि तथा कर्मोका विचार करके आवरणके प्रकारोंके भेदोंकी कल्पना करे॥५१॥५२॥

प्राणादीनां च पञ्चानां मिश्रमावरणं मिथः।
पित्तादिभिर्द्वादशभिर्मिश्राणां मिश्रितैश्च तैः५३

प्राणादि पांचों वायुओंका आपसमे मिलकर पित्त, आदि कफ, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, भुक्तान्न, मूत्र, विष्ठा और सर्वधातु इन १२ से मिलकर आवरण होनेसे मिलेहुए लक्षणोंवाले उपद्रव होते है॥

मिश्रैः पित्तादिभिस्तद्वन्मिश्रणाभिरनेकधा।
तारतम्यविकल्पाच्च यात्यावृत्तिरसंख्यताम् ॥
तां लक्षयेदवहितो यथास्वं लक्षणोदयात्।
शनैःशनैश्चोपशयाद्गूढमपि मुहुर्मुहुः॥ ५५ ॥

पित्तादिकोंसे मिलेहुए आवरणविशेषसे और प्राणादि पंचवायुओंके मिश्रण तथा तारतम्य विकल्पसे अनेक आवरणोंकी कल्पना करनेसे आवरणोंके प्रकार असंख्य होजाते है। इस कारण सावधान होकर आवरणके लक्षणोंको यथादोष और यथाधातु प्रत्यक्ष लक्षणोंसे तथा शनैः शनैः बार बार उपशय आदिके प्रयोगसे समझ लेनेका यत्न करे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

विशेषाज्जीवितं प्राण उदानो बलमुच्यते।
स्यात्तयोःपीडनाद्धानिरायुषश्च बलस्य च॥५६

यद्यपि जीवितका आधार पांचों वायु है परन्तु विशेषरूपसे प्राणवायु मनुष्यका जीवन है और उदान वायु मनुष्यका बल है, इस कारण प्राण और उदानके पीडनसे जीवन और बलकी विशेष हानि होती है॥५६॥

आवृता वायवोऽज्ञाता ज्ञाता वा वत्सरं स्थिताः।
प्रयत्नेनापि दुःसाध्या भवेयुर्वानुपक्रमाः ॥५७॥

आवृतहुई वायुमें चाहे जानीजाय अथवा अज्ञात रूपमें रहजाय परन्तु एकवर्षसे ऊपर उसी प्रकार आवृत रहनेसे अत्यन्त प्रयत्न करनेपर भी दुःसाध्य हो जाती है अथवा असाध्य ही हो जाती है। इस कारण स्थिर आवरण होनेसे प्रथम ही चिकित्सा कर देना चाहिये ॥ ५७ ॥

विद्रधिप्लीहहृद्रोगगुल्माग्निसदनादयः।
भवन्त्युपद्रवास्तेषामावृतानामुपेक्षणात् ॥५८॥

इति श्रीसिंहगुप्तसूनुवाग्भटविरचितायामष्टाङ्गहृदयसंहितायां तृतीयं निदानस्थानं समाप्तम् ॥

अ० ॥ १६ ॥ श्लो० ॥ ७८४ ॥

उन आवृतहुई वायुओंकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् चिकित्सा न करनेसे उनसे विद्रधि, प्लीहा, हृद्रोग, गुल्म और अग्निसादआदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते है, इस कारण भी विशेष ज्ञानपूर्वक इनके आवरणकी शीघ्र चिकित्सा करदेना चाहिये ॥ ५८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्य प्रणीत अष्टांगहृदयसंहितायां निदान-स्थानान्तर्गत वातरक्तनिदाने वैद्यरत्न पं. राम-प्रसादात्मज वैद्यशास्त्रि पं० शिवशर्म्मकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

समाप्तं चेदं निदानस्थानम् ॥

अष्टाङ्गहृदयम् ।

शिवदीपिका-भाषाटीकासहितम् ।

चिकित्सास्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

अथाऽतो ज्वरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अब हम ज्वरचिकित्साको कथन करते हैं इस प्रकार आत्रेयादि महर्षि कहने लगे।

लंघनकी आज्ञा ।

आमाशयस्थो हत्वाऽग्निं सामो मार्गान्-
-पिधाय यत् ।
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्मात्कुर्वीत लङ्घनम् ॥ १ ॥
प्राग्रूपेषु ज्वरादौ वा बलं यत्नेन पालयन् ।
बलाधिष्ठानमारोग्यमारोग्यार्थः क्रियाक्रमः ॥ २

सामदोष आमाशयमें स्थित हुआ जठराग्निको हनन करके और मार्गोंको रोककर ज्वरको कर देता है इस कारण लंघन करना चाहिये । यह लंघन ज्वरके पूर्वरूपमें अथवा ज्वरके आदिमें ही रोगीके बलको यत्न पूर्वक रक्षा करतेहुए करना चाहिये । क्योंकि आरोग्य बलके आश्रित ही रहता है उस आरोग्य (स्वास्थ्य) की रक्षाके लिये ही यह सम्पूर्ण चिकित्साक्रम किया जाता है ॥ १ ॥ २ ॥

लंघनके गुण ।

लङ्घनैः क्षपिते दोषे दीप्तेऽग्नौ लाघवे सति ।
स्वास्थ्यं क्षुत्तृड्रुचिः पक्तिर्बलमोजश्च जायते ॥

लंघनद्वारा दोषके क्षय होजानेपर अग्नि दीप्त होकर शरीरमें हलकापन हो जाता है तब दोषनिवृत्तिके कारण शरीरमें स्वास्थ्य, क्षुधा, तृषा अन्नपर रुचि, पाचनशक्ति, बल और ओज ये सब उत्पन्न होजाते हैं ॥ ३ ॥

कफप्रधान सामज्वरमें वमनका क्रम ।

तत्रोत्कृष्टे समुत्क्लिष्टे कफप्राये चले मले ।
सहृल्लासप्रसेकान्नद्वेषकासविषूचिके ॥ ४ ॥
सद्योभुक्तस्य सञ्जाते ज्वरे सामे विशेषतः ।
वमनं वमनार्हस्य शस्तं कुर्यात्तदन्यथा ।
श्वासातिसारसंमोहहृद्रोगविषमज्वरान् ॥ ५ ॥

यदि कफप्रधान दोष उत्क्लेशित और बढाहुआ हो और मल चलायमान हो अर्थात् दोष मल अतिवृद्धिके कारण चलायमान और शिथिल हो तथा हृल्लास, मुखसे लारका गिरना, अन्नद्वेष और उदरमें विसूचिकाके समान पीडा हो और यह ज्वर सद्यः भोजन करनेके अन्तमें उत्पन्न होगया हो विशेष करके सामज्वर हो तो ऐसे ज्वरमें यदि रोगी वमन करानेके योग्य हो तो उसको वमन करादेना चाहिये । (वमन कराने योग्य पुरुषके लक्षण सूत्रस्थानमें वमन विरेचन विधिमें कह आये है) अन्यथा वमन नहीं कराना चाहिये । यदि वमनके अयोग्य विधिविरुद्ध वमन करादिया जाय तो वह वमन रोगीके श्वास, अतीसार, सम्मोह, हृद्रोग और विषमज्वरको कर देता है ॥ ४-५

वमनद्रव्य ।

पिप्पलीभिर्युतान् गालान् कलिङ्गैर्मधुकेन वा ६
उष्णाम्भसा समधुना पिबेत्सलवणेन वा ।
पटोलनिम्बकर्कोटवेत्रपत्रोदकेन वा ॥ ७ ॥
तर्पणेन रसेनेक्षोर्मद्यैः कल्पोदितानि वा ।
वमनानि प्रयुञ्जीत बलकालविभागवित् ॥ ८ ॥

मैनफलके बीजोंके चूर्णको पीपलके साथ अथवा इन्द्रयव और मुलहठीका चूर्ण मिलाकर मधुयुक्त गर्मजलसे अथवा लवणयुक्त गर्मजलसे अथवा पटोलपत्र, निम्ब कर्कोटक और वेत्र इनके पत्रोंके क्वाथके साथ अथवा किसी तर्पण जलके साथ अथवा ईखके रसके

साथ अथवा मद्यके साथ या वमन कल्पमें कही हुई विधिके साथ, बल काल विभागके जाननेवाला वैद्य उ‍क्त कफप्रधान रोगीको विधिपूर्वक वमन करावे।६-८

कृतेऽकृते वा वमने ज्वरी कुर्याद्विशोषणम्।
दोषाणां समुदीर्णानां पाचनाय शमाय च ॥९॥
आमेन भस्मनेवाग्नौ छन्नेऽन्नं न विपच्यते।
तस्मादादोषपचनाज्ज्वरितानुपवासयेत् ॥१०॥

ज्वरवाला मनुष्य यदि वमन कराने योग्य हो तो वमन कराकर यदि वमन कराने योग्य न हो तो विना वमन कराये ही उदीर्ण दोषोंको पाचन और शमन करनेकेलिये लंघन (उपवास) करावे।

क्योंकि जैसे भस्म द्वारा अग्नि दबी रहनेसे वह ऊपर रखेहुए अन्नपात्रके अन्नको पाचन नहीं करती उसी प्रकार आमदोषसे आच्छन्न जठराग्नि अपने पाचन-क्रियाको नहीं करसकती इस कारण आमदोषको पाचन करनेकेलिये ज्वरवाले रोगीको उपवास कराना चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥

उष्णजल पीनेके गुण।

तृड्वानल्पाल्पमुष्णाम्बु पिबेद्वातकफज्वरे।
तत्कफं विलयं नीत्वा तृष्णामाशु निवर्तयेत्११
उदीर्य चाऽग्निं स्रोतांसि मृदूकृत्य विशोधयेत्।
लीनपित्तानिलस्वेदशकृन्मूत्रानुलोमनम् ॥१२॥
निद्राजाड्यारुचिहरं प्राणानामवलंबनम्।
विपरीतमतः शीतं दोषसंघातवर्धनम् ॥ १३ ॥

वातकफज्वरमें यदि ज्वरवालेको तृषा हो तो उसको थोड़ा थोड़ा उष्णजल पिलाते रहना चाहिये। वह उष्ण-जल कफको विलीन करके तृषाको शीघ्र निवृत्त करदेता है तथा अग्निको उदीर्ण करदेता है और स्रोतोंको मृदु बनाकर शुद्ध करदेता है तथा गर्मजलका पीना स्रोतोंमें लीनहुए पित्त, वात, स्वेद, विष्ठा और मूत्रको अनुलोमन करदेता है तथा तन्द्रा, जड़ता और अरुचिको हरता है एवं प्राणोंको आश्रय देता है। इस कारण सामज्वरमें उष्णजल पिलाना चाहिये इससे विपरीत अर्थात् शीतल जल सामज्वरमें और वात-कफप्रधान ज्वरमें दियाहुआ दोषोंके समूहको बढ़ा देता है ॥ ११-१३ ॥

उष्णजलका निषेध।

उष्णमेवङ्गुणत्वेऽपि युंज्यान्नैकान्तपित्तले।
उद्रिक्तपित्ते दवथुदाहमोहातिसारिणि।
विषमद्योत्थिते ग्रीष्मे क्षतक्षीणेऽस्रपित्तिनि१४।

उष्णजलपानके इतने गुण होतेहुए भी केवल पित्तके ज्वरमें उष्ण जलपान नहीं कराना चाहिये, क्योंकि केवल बढ़ी और चलीहुई पित्तमें यदि उसके संग वात या कफका सम्बन्ध न हो तो गर्मजलपान करनेसे वह पित्त और भी उद्रेकको प्राप्त होकर जलन, दाह, मोह और अतीसार रोगको कर देता है।

इसी प्रकार विषसे और मद्यसे उत्पन्नहुए ज्वरमें ग्रीष्मऋतुके ज्वरमें क्षत और क्षीण पुरुषको तथा रक्तपित्तमें भी उष्णजल नहीं देना चाहिये ॥ १४ ॥

मुस्तकादि शृतशीतजल।

घनचन्दनशुंठ्यम्बुपर्पटोशीरसाधितम्।
शीतं तेभ्यो हितं तोयं पाचनं तृड्ज्वरापहम्॥

जिनको उष्णजल देनेके निषेध है उनको नागर-मोथा, चन्दन, सोंठ, नेत्रवाला, पापड़ा और खस इनसे सिद्ध कियाहुआ जल शीतल करके पिलाना चाहिये यह सिद्ध शीतजल पाचन है तृषा और ज्वरको हरनेवाला होता है ॥ १५ ॥

ज्वरमें पित्तवर्द्धक आहार विहारका निषेध।

ऊष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्यू-
-ष्मणा विना।
तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत् पित्ता-
धिकेऽधिकम् ॥ १६ ॥

शरीरमें उष्मा पित्तके विना नहीं होसकती और ज्वर उष्माके विना नहीं होता। इस कारण ज्वरमें पित्तको बिगाड़नेवाले आहार विहार नहीं करने चाहिये। और पित्ताधिकज्वरमें तो अधिकरूपसे पित्तको बिगाड़-नेवाली आहारविहार विशेषरूपसे नहीं करने चाहिये १६

ज्वरमें अन्य वस्तुओंका निषेध ।

स्नानाभ्यंगप्रदेहांश्च परिशेषं च लंघनम् ॥१७॥

ज्वरमे स्नान, अभ्यग (तैलादि मर्दन करना) प्रदेह (चन्दनादि लेपन) और परिशेष अर्थात् लंघनविधिमें कहीहुई लंघनकी मर्यादासे विपरीत लंघन भी नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥

आमज्वरमें ज्वरघ्न औषधिका निषेध ।

अजीर्ण इव शूलघ्नं सामे तीव्ररुजि ज्वरे ।
न पिबेदौषधं तद्धि भूय एवाममावहेत् ।
आमाभिभूतकोष्ठस्य क्षीरं विषमहेरिव ॥ १८॥

जैसे सामाजीर्णमें आमको पाचन कियेविना तीव्रशूलमें भी शूलघ्न औषधि नहीं पीना चाहिये उसी प्रकारआमयुक्त ज्वरमें भी ज्वरघ्न औषधि नहीं खानी पीनी चाहिये. क्योंकि, वह औषध उस आमको उदीर्ण करदेती है उस आमाभिभूत कोष्ठ होनेसे रोगीको सामज्वरमें दी हुई औषधि जैसे सांपके शरीरमें दूध जाकर भी विष बन जाता है. वैसे ही विषके समान हानिकारक होजाती है ॥ १८ ॥

वातकफात्मक ज्वरमें स्वेदनकर्मका विधान ।

सोदर्दपीनसश्वासे जंघापर्वास्थिशूलिनि ।
वातश्लेष्मात्मके स्वेदःप्रशस्तःसम्प्रवर्तयेत्॥१९
स्वेदमूत्रशकृद्वातान् कुर्यादग्नेश्च पाटवम् ।
स्नेहोक्तमाचारविधिं सर्वशश्चानुपालयेत् ॥२०॥

जिस वातकफात्मक ज्वरमें उदर्द, पीनस, श्वास तथा जंघा, पर्व और अस्थियोंमें शूल हो ऐसे ज्वरमें ज्वरवालेको स्वेदन करना हितकारी होता है वह स्वेदनकर्म (वालुकास्वेदादि) रोगीके शरीरसे स्वेद, मूत्र और वायुको अनुलोमन करके निकालता है । तथा अग्निको चैतन्य करता है ।

तथा स्नेहपान विधिके अध्यायमें कहीहुई आचारविधिका सर्वथा पालन करना चाहिये ॥१९॥२०॥

लंघनादिके गुण ।

लङ्घनं स्वेदनं कालो यवागूस्तिक्तको रसः ।
मलानां पाचनानि स्युर्यथावस्थं क्रमेण वा २१

लंघन (उपवासादि), स्वेदन (वालुकादि), काल (छः दिन आदिलंघनकाल), यवागू (पेया), तिक्तरस (नागरमुस्तादिका जल), ये सब यथावस्था ज्वरको क्रमसे पाचन करनेवाले है. जैसे—प्रथम आम॰ ज्वरमें लंघन या कफप्रधानमें वमन करना, उदर्द पीनस आदियुक्त ज्वरमें स्वेदन करना, ज्वरके दिनसे छः दिन तक अवश्य ज्वरमें उपवास करना, लंघन स्वेदनादिके अनन्तर लंघितके यथार्थ लंघनके लक्षण होजानेपर यवागू पान करना और अधिकपित्तके उद्रेकमें नागरमुस्तकादिद्रव्योंसे सिद्ध किया तिक्तजल पिलाना ये सब क्रमसे अवस्थानुसार ज्वरवालेके मलोंको पाचन करनेवाले होते है ॥ २१ ॥

लंघनका निषेध ।

शुद्धवातक्षयागन्तुजीर्णज्वरिषु लङ्घनम् ।
नेष्यते—
—तेषु हि हितं शमनं यन्न कर्शनम् ॥ २२ ॥

केवल शुद्धवातके ज्वरमें, क्षयज ज्वरमें, आगन्तुज ज्वरमें और जीर्ण ज्वरमें लंघन नहीं कराना चाहिये।

इन ज्वरोंमें जो क्रिया शरीरको कृश नहीं करे और ज्वरादिको शमन करे वह क्रिया करनी चाहिये ॥२२॥

लंघनके योगायोगके लक्षण ।

तत्र सामज्वराकृत्या जानीयादविशोषितम् ।
द्विविधोपक्रमज्ञानमवेक्षेत च लङ्घने ॥ २३ ॥

यदि सामज्वरके आकार (लक्षण) प्रतीत हो तो लंघन ठीक नहींहुआ जानना चाहिये ।

यदि विमलेन्द्रियता आदि लक्षण हो जाय तो लंघन ठीकहुआ जानना चाहिये । परन्तु द्विविधोपक्रमणीयाध्याय (सूत्र. अ. १४) मे कहेहुए क्रमके अनुसार यथार्थ लंघन और अतिलंघन आदि जानलेना चाहिये॥२३॥

ज्वरमें पेयादिक्रम ।

युक्तं लङ्घितलिङ्गैस्तु तं पेयाभिरुपाचरेत् ।
यथास्वौषधसिद्धाभिर्मण्डपूर्वाभिरादितः २४॥
तस्याग्निर्दीप्यते ताभिः समिद्भिरिव पावकः ।
षडहं वा मृदुत्वं वा ज्वरो यावदवाप्नुयात्॥२५॥

ठीक लंघनके लक्षण अर्थात् विमलेन्द्रियता, मलोंका निकलना, शरीरमें हलकापन, क्षुधातृषाका लगना,

हृदय उद्गार और कंठका शुद्ध होना, उसकी चिन्ता, उत्साह और तन्द्रानाश ये लक्षण होनेपर पेया आदिका उपचार करना चाहिये। वह पेया यथादोष औषधोंसे सिद्धकरके बनाये हुए मंडआदि क्रमसे आरम्भ करनी चाहिये। प्रथम मंड फिर पेया आदि औषधसिद्ध देनेसे इस प्रकार अग्नि चैतन्य होजाती है जैसे शुष्क काष्ठके लगानेसे अग्नि चैतन्य होजाती है यह पेयाक्रम छः दिन अथवा जबतक ज्वर मृदु न हो तबतक देते रहना चाहिये ॥२४॥ २५॥

प्राग्लाजपेयां सुजरां सशुण्ठीधान्यपिप्पलीम्
ससैंधवां तथाऽम्लार्थी तां पिबेत्सहदाडिमाम्॥२६॥

प्रथम लाजासे बनाया हुआ मंडरूप पेया जो शीघ्र जीर्ण होजानेवाली हो अर्थात् पतला हो उसमें सोंठ, धनिया, पीपल और सेंधानमक मिलाकर पिलावे। यदि रोगी इसमें खटाई मिलाना चाहे तो दाड़िमका रस मिलाकर पिलावे ॥ २६ ॥

सृष्टविड् बहुपित्तो वा सशुंठीमाक्षिकां हिमाम्॥२७॥

यदि पित्तकी अधिकतावाला ज्वर हो और उसमें पतले दस्त भी होते हो तो उसको लाजासे बनाई-हुई पेया ठंढी करके शीतल होनेपर सोंठका चूर्ण और शहद मिलाकर पिलावे ॥ २७ ॥

बस्तिपार्श्वशिरःशूली व्याघ्रीगोक्षुरसाधिताम्॥

यदि ज्वरसे वस्ति, पार्श्व शिरमें शूल भी हो तो कटेलीकी जड और गोखुरू मिलाकर सिद्ध कीहुई पेया पिलाना चाहिये ॥ २८ ॥

पृश्निपर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधान्यकैः।
सिद्धां ज्वरातिसार्यम्लां पेयां दीपनपाचनीम् ॥

यदि ज्वरमें अतीसार हो तो पृश्निपर्णी, बला, बिल्व, सोंठ, कमल और धनिया इनसे सिद्ध कीहुई पेया दाड़िमके रससे अम्ल करके पिलावे। यह पेया अग्निको दीपन करती है और दोषका पाचन करती है ॥ २९ ॥

ह्रस्वेन पञ्चमूलेन हिक्कारुक्श्वासकासवान्।
पञ्चमूलेन महता कफार्तो यवसाधिताम्।
विबद्धवर्चाः सयवां पिप्पल्यामलकैः कृताम्।
यवागूं सर्पिषा भृष्टां मलदोषानुलोमनीम्॥३०॥

हिचकी, शूल, श्वास और खांसीसे युक्त रोगीको लघुपंचमूलसे सिद्ध की हुई पेया देनी चाहिये।

कफसे पीड़ित मनुष्यको बृहत्पंचमूलके क्वाथमें यवोंसे बनाईहुई पेया देनी चाहिये।

मलके विबन्धमें पीपल और आंवलोंसे सिद्ध की हुई यवोंकी यवागू घृतमें छौंकदेकर दोषानुलोमन करनेके लिये देनी चाहिये ॥ ३० ॥

चविकापिप्पलीमूलद्राक्षामलकनागरैः।
कोष्ठे विबद्धे सरुजि ॥ ३१ ॥–

यदि शूलयुक्त और विबद्ध कोष्ठ हो तो चव्य, पीपलामूल, मुनक्कादाख, आवले और सोंठसे सिद्ध की हुई पेया पिलाना चाहिये ॥ ३१ ॥

–पिबेत्तु परिकर्तिनि।
कोलवृक्षाम्लकलशीधावनीश्रीफलैः कृताम्॥३२॥
अस्वेदनिद्रस्तृष्णार्तः सितामलकनागरैः।
सितावदरमृद्वीकासारिवामुस्तचन्दनैः।
तृष्णाच्छर्दिपरो दाहज्वरघ्नीं क्षौद्रसंयुताम्॥३३॥

परिकर्तिका अर्थात् कतरनेके समान पीड़ावाली प्रवाहिका ज्वरमें हो तो उनाव, अम्लवेत, पृष्ठपर्णी, कण्टकारी और बिल्वसे सिद्ध कीहुई पेया पिलाना चाहिये यदि निद्रा न आती हो और पसीना न आता हो और तृषा अधिक हो तो मिश्री आवले और सोंठसे सिद्ध कीहुई पेया पिलावे।

तृषा, छर्दी, दाह और ज्वर हो तो मिश्री उन्नाब, मुनक्का, शारिवा, नागरमोथे और चन्दनसे सिद्ध की हुई पेया शहद मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ३२॥३३॥

कुर्यात्पेयौषधैरेव रसयूषादिकानपि ॥ ३४ ॥

पेयामें कहीहुई औषधियोंसेही पृथक् पृथक् रस और यूषादिकोंकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

पेयाका निषेध।

मद्योद्भवे मद्यनित्ये पित्तस्थानगते कफे।
ग्रीष्मे तयोर्वाधिकयोस्तृट्छर्दिदाहपीडिते॥३५॥
ऊर्ध्वं प्रवृत्ते रक्ते च पेयां नेच्छन्ति–

—तेषु तु ।
ज्वरापहैः फलरसैरद्भिर्वा लाजतर्पणम् ।
पिबेत्सशर्कराक्षौद्रम् ॥ ३६ ॥—

मद्यसे उत्पन्नहुए ज्वरमें जो मनुष्य नित्य मद्य पीनेवाला हो अथवा पित्तके स्थानमें कफ गयाहुआ हो और ग्रीष्मऋतु हो अथवा जिनको अधिक कफपित्त हो तथा तृषा छर्दी और दाह करके पीडित हो एवं ऊर्ध्व मार्गोसे रक्तपित्तकी प्रवृत्ति हो ऐसे रोगियोंको पेया नहीं पिलानी चाहिये। इनको तो ज्वरनाशक फलोंके रसमें अर्थात् द्राक्षा अनार आदिके रसोंमें लाजासे बनाया हुआ तर्पण मिश्री और शहद मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

—ततो जीर्णे च तर्पणे ।
यवाग्वामोदनं क्षुद्वानश्नीयाद्भ्रष्टतण्डुलम् ॥ ३७
दकलावणिकैर्यूषै रसैर्वा मुद्गलावजैः ।
इत्ययं षडहो नेयो बलं दोषं च रक्षता ॥ ३८ ॥

जब यह तर्पणरस जीर्ण होजाय अथवा जिनको यवागू पान करायागया है उनका यवागू जीर्ण होजाने पर जब अन्नके दूसरे कालमें क्षुधा चैतन्य हो तब भुनेहुए चावलोंसे बनायाहुआ भात लवणजलयुक्त मूंगोंके यूषके साथ अथवा लावाके थोडे मांसवाले मांसरसके साथ देवे । यहांपर दकलावणिकाके सर्वांगसुंदराने दो अर्थ किये हैं-एकतो जिस मांसरसमें रस पतला हो और मांस थोडा हो तथा लवणमिलाहुआ हो दूसरा जिसमें मांस लवण और चिकनाई थोडी हो ऐसे रस या यूषको दकलावणिक कहते हे. यथार्थमें अधिकजल और लवण मिलाहुआ पतला यूष इस शब्दका अर्थ है । इस कारण रस या यूषके जीर्ण होनेके अनन्तर जब दूसरे कालमें भोजन दिया जाय तो भुनेहुए चावलोंका भात अधिक जलवाले पतले यूष या रसके साथ देवे ।

इस प्रकार बलकी रक्षा करतेहुए और दोषको साम्यावस्थामें लानेका यत्न करतेहुए ६ दिन तक लंघन या पेयादि क्रमका पालन करे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

लंघनसे दोषपरिपाकके अनन्तर क्राथोंका विधान।

ततः पक्केषु दोषेषु लंघनाद्यैः प्रशस्यते ।
कषायो दोषशेषस्य पाचनः शमनोऽथवा ॥ ३९ ॥

इस प्रकार लंघनादिकोंसे जब दोषोंका परिपाक हो जाय तब शेषदोषको पाचन या शमन करनेके लिये क्राथ पिलावे ॥ ३९ ॥

तिक्तः पित्ते विशेषेण प्रयोज्यः कटुकः कफे ।
पित्तश्लेष्महरत्वेऽपि कषायस्तु न शस्यते ॥ ४० ॥
नवज्वरे मलस्तंभात्कषायो विषमज्वरम् ।
कुरुतेऽरुचिहृल्लासहिध्माध्मानादिकानपि ४१ ॥

पित्तकी अधिकतामें नीम आदि कडुवेरसवाले और कफकी अधिकतामें सोंठ पीपल आदि चरपरेरसवाले द्रव्योंसे बनायेहुए क्राथोंका प्रयोग करना चाहिये ।

पित्तकफको हरनेवाला होनेपर भी कषायरसवाले द्रव्यका प्रयोग करना हितकारी नहीं होता. क्योंकि, नवज्वरमें मलस्तंभित होता है. उसमें कषायरस जाकर ज्वरकी गतिको विषम बना देता है तथा अरुचि, हृल्लास, हिचकी और आध्मान आदिको उत्पन्न करताहै ४० । ४१

ज्वरनाशक क्राथ देनेका समय ।

सप्ताहादौषधं केचिदाहुरन्ये दशाहतः ।
केचिल्लघ्वन्नभुक्तस्य योज्यमामोल्बणे न तु ४२

कोई आचार्य सातदिनके अनन्तर ज्वरनाशक क्राथ देना उचित समझते हैं । किसीके मतमें दश दिनके अनन्तर ज्वरनाशक क्राथ देना उचित है और कोई कहते हे कि, जब आमदोष जीर्ण होकर क्षुधा चैतन्य होनेपर हलका अन्न भोजन करने लगे तभी ज्वरनाशक क्राथ देनेका काल होता है. परन्तु जबतक आमदोष पडाहुआ है तबतक ज्वरनाशकक्राथ नहीं देना चाहिये ॥ ४२ ॥

अतिज्वरमें औषधका निषेध ।

तीव्रज्वरपरीतस्य दोषवेगोदये यतः ।
दोषेऽथवाऽतिनिचिते तन्द्रास्तैमित्यकारिणि ॥
अपच्यमानं भैषज्यं भूयो ज्वलयति ज्वरम् ४३

जब मनुष्य तीव्रज्वरके वेगसे पीडित हो और दोषोंका वेग बढाहुआ हो अथवा दोषोंके अतिसंचय करनेके

कारण तन्द्रा और स्तैमित्य ये बढेहुयेहों उस समय दी हुई औषधि आमदोषाच्छन्न अग्नि होनेके कारण औषधिका परिपाक न होकर वह औषधि और भी अधिक ज्वरके बढानेवाली होजाती है ॥ ४३ ॥

मृदुज्वरमें औषधका विधान।

मृदुज्वरो लघुर्देहश्चलिताश्च मला यदा।
अचिरज्वरितस्यापि भेषजं कारयेत्तदा ॥४४॥

जिस समय ज्वर मृदु होजाय देह हलका होजाय और मल मूत्रादि यथार्थ अनुलोमन होकर चलायमान होजाय ऐसी अवस्थामे छः दिनसे पहले भी ज्वर नाशक औषधका प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ ४४ ॥

मुस्तया पर्पटं युक्तं शुंठ्या दुःस्पर्शयाऽपि वा।
पाक्यं शीतकषायं वा पाठोशीरं सवालकम्।
पिबेत्तद्वच्च भूर्निबगुडूचीमुस्तनागरम् ॥ ४६ ॥
यथायोगमिमे योज्याः कषाया दोषपाचनाः।
ज्वरारोचकतृष्णास्यवैरस्यापक्तिनाशनाः ४७॥

नागरमोथा और पित्तपापडा अथवा सोंठ और जवासा अथवा पाठा, खस और नेत्रवाला अथवा चिरायता, गिलोय, नागरमोथा और सोंठ इनमेंसे किसी एक योगको काथ करके अथवा शीतकाथ (हिम) बनाकर दोषानुसार पिलावे।

ये कषाय दोषानुसार विचारकर प्रयोग करनेसे दोषोंको पाचन करते है। ज्वर, अरुचि, तृषा मुखकी विरसता और मन्दाग्निको शमन करते है ॥ ४५–४७ ॥

विषमज्वरनाशक पंचयोग।

कालिङ्गकाः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ४८॥
पटोलं सारिवा मुस्ता पाठा कटुकरोहिणी।
पटोलनिंबत्रिफलामृद्वीकामुस्तवत्सकाः ॥४९॥
किराततिक्तममृता चन्दनं विश्वभेषजम्।
धात्रीमुस्तामृताक्षौद्रमर्धश्लोकसमापनाः ॥
पञ्चैते संततादीनां पञ्चानां शमना मताः॥५०॥

१-इन्द्रयव, पटोलपत्र और कुटकी. २-पटोलपत्र, सारीवा, नागरमोथा, पाठा और कुटकी. ३-पटोलपत्र, नीमकी छाल, हरड़, बहेडा, आमला, द्राक्षा, नागरमोथा और इन्द्रयव. ४-चिरायता, गिलोय, लालचन्दन और सोंठ. ५-आवले, नागरमोथा, गिलोय और शहद इन आधे आधे श्लोकमें कहेहुए पांच योगोंसे १ संतत, २ सतत, ३ अन्येद्यु, ४ तृतीयक, ५ चातुर्थिक ये पाच विषमज्वर क्रमसे शमन होते है ४८–५०

वातज्वर नाशक काथ।

दुरालभाऽमृता मुस्ता नागरं वातजे ज्वरे।
अथवा पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वभेषजम् ॥
कनीयः पञ्चमूलं च ॥ ५१ ॥–

जवासा, गिलोय, नागरमोथे और सोंठ इनका काथ वातज्वरमें देना चाहिये। अथवा पिप्पलीमूल, गिलोय और सोंठका काथ अथवा छोटी कटेली, बडी कटेली, सालिपर्णी, पृश्निपर्णी और गोखुरू इनका काथ वातज्वरमे देना चाहिये ॥ ५१ ॥

पित्तज्वरमें काथ।

–पित्ते शक्रयवा घनम् ॥
कटुका चेति सक्षौद्रं मुस्ता पर्पटकं तथा।
सधन्वयासभूर्निंबम् ॥ ५२ ॥–

पित्तज्वरमें इन्द्रयव, नागरमोथे और कुटकीका काथ शीतलकर शहद मिलाकर पिलाना चाहिये। अथवा नागरमोथा, पित्तपापड़ा जवासा और चिरायता इनका काथ पिलाना चाहिये ॥ ५२ ॥

कफज्वरमें काथ।

–वत्सकाद्यो गणः कफे ॥
अथवा वृषगाङ्गेयीशृंगवेरदुरालभाः ॥ ५३ ॥

कफ ज्वरमें इन्द्रजव, मूर्वा, भारङ्गी, कुटकी, मिर्च, अतीस, थूहर, इलायची, पाठा, जीरा, सोना पाठा, मैनफल, अजमोद, सरसों, वच, जीरा, हींग, विडङ्ग, अजवायन और पचकोलका काथ, अथवा बांसा (अडूसा) नागरमोथा, सोंठ और जवासेका काथ पिलाना चाहिये ॥ ५३ ॥

वात कफज्वरमें काथ।

रुग्विबन्धानिलश्लेष्मयुक्ते दीपनपाचनम् ॥
अभया पिप्पलीमूलशम्याककटुकाघनम् ५४॥

जिस वात कफयुक्त ज्वरमें शूल और विबन्ध भी हो उसमें हरीतकी, पिप्पलीमूल, अमलतास, कुटकी

और नागरमोथेका काथ, अग्निको दीपन और पाचन करनेके लिये देना चाहिये ॥ ५४ ॥

वातपित्तज्वर पर द्राक्षादि हिम ।

द्राक्षामधूकमधुकं रोध्रकाश्मर्यसारिवाः ॥५५॥
मुस्तामलकह्रीबेरपद्मकेसरपद्मकम् ।
मृणालचन्दनोशीरनीलोत्पलपरूषकम् ॥५६॥
फांटो हिमो वा द्राक्षादिर्जातीकुसुमवासितः ।
युक्तो मधुसितालाजैर्जयत्यनिलपित्तजम् ५७॥
ज्वरं मदात्ययं छर्दिं मूर्च्छां दाहं श्रमं भ्रमम् ।
ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं च पिपासां कामलामपि ५८॥

द्राक्षा, महुआ, मुलहठी, लोध्र, काश्मरी, शारिबा, नागरमोथा, आंवले, नेत्रवाला, कमलकी केशर, पद्माख, मृणाल, चन्दन, खस, नीलोफर और फालसा इनका बनायाहुआ फांट या हिम चमेलीके फूलोंसे सुगंधित कर इसमें शहद मिश्री और लाजा मिलाकर पीनेसे यह हिम वातपित्तज्वरको दूर करता है तथा मदात्यय, छर्दी, मूर्च्छा, दाह, श्रम, भ्रम, ऊर्ध्वगत रक्तपित्त, पिपासा और कामलाको भी शमन करता है ॥ ५५-५८ ॥

पाचयेत्कटुकां पिष्ट्वा कर्परेऽभिनवे शुचौ ।
निष्पीडितो घृतयुतस्तद्रसो ज्वरदाहजित् ५९॥

कुटकीको जलमें पीसकर एक नये पवित्र मृण्मयपात्रमें पकावे फिर इसको कपडेमें डालकर निचोड़ लेवे। यह रस घृतयुक्त करके पियाहुआ ज्वर और दाहको दूर करता है ॥ ५९ ॥

कफवातज्वरपर काथ ।

कफवाते वचातिक्तापाठाऽऽरग्वधवत्सकाः ।
पिप्पलीचूर्णयुक्तो वा काथश्छिन्नोद्भवोद्भवः ६०

कफवातज्वरमें वच, कुटकी, पाठा, आरग्वध (अमलतास) और इन्द्रयव इनका काथ पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये अथवा गिलोयका काथ पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ६० ॥

व्याघ्रीशुंठ्यमृताकाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।
वातश्लेष्मज्वरश्वासकासपीनसशूलजित् ॥६१॥

कटेली, सोंठ और गिलोयका क्वाथ पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे वातकफज्वर, श्वास, खांसी, पीनस और शूलको नाश कर देता है ॥ ६१ ॥

पथ्याकुस्तुबरीमुस्ताशुंठीकट्तृणपर्पटम् ।
सकट्फलवचाभार्ङ्गीदेवाह्व मधुहिंगुमत् ॥६२॥
कफवातज्वरेष्वेव कुक्षिहृत्पार्श्ववेदनाः ।
कण्ठामयास्यश्वयथुकासश्वासान्नियच्छति ६३॥

हरीतकी, धनिया, नागरमोथा, सोंठ कट्तृण पृश्निपर्णी, पित्तपापड़ा, कायफलकी छाल, वच, भारंगी और देवदारु इनके काथमें मधु और हींग मिलाकर पीवे तो कफवातज्वर दूर होता है तथा कुक्षि, हृदय और पार्श्वकी पीडा, गलग्रह, मुखकी सूजन, खांसी और श्वास इन सबको शमन करता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

कफपित्तज्वरपर काथ ।

आरग्वधादिः सक्षौद्रः कफपित्तज्वरं जयेत् ।
तथा तिक्तावृषोशीरत्रायन्तीत्रिफलामृताः ६४॥

सूत्रस्थानके १५ हवे अध्यायमें कहेहुए आरग्वधादिगण (आरग्वध, इन्द्रयव, पाढ, मजीठ, नीम, गिलोय, मूर्वा, विकंकत, सोनापाठा, चिरायता, सहचर, पटोल, करंज, लताकरंज, सप्तच्छद, चित्रक, मेढ़ासींगी, मैनफल, कालाबांसा और उन्नाव) के काथमें मधु मिलाकर पीनेसे कफपित्तज्वर दूर होता है तथा कुटकी अडूसा, खस, त्रायमाण, त्रिफला और गिलोयके काथमें शहद मिलाकर पीनेसे कफपित्तज्वर दूर होता है॥६४

सन्निपातज्वर पर काथ।

संनिपातज्वरे व्याघ्री देवदारुनिशाघनम् ।
पटोलपत्रनिंबत्वक्त्रिफलाकटुकायुतम् ॥६५॥

सन्निपातज्वरमें कटेली, देवदारु, हल्दी, नागरमोथा, पटोलपत्र, नीमकी छाल, हरड, बहेडा, आंवला और कुटकी इन द्रव्योंका काथ हितकारी होता है ६५

नागरं पौष्करं मूलं गुडूची कण्टकारिका ।
सकासश्वासपार्श्वार्तौ वातश्लेष्मोत्तरे ज्वरे॥६६॥

सोंठ, पोकरमूल, गिलोय और कटकारिका क्वाथ वातकफाधिक सन्निपातज्वरको दूर करता है, तथा इस ज्वरमें होनेवाले खांसी श्वास और पार्श्वपीडाको भी शमन करता है ॥ ६६ ॥

मधूकपुष्पं मृद्वीका त्रायमाणा परूषकम्।
सोशीरतिक्ता त्रिफला काश्मर्यं कल्पयेद्धिमम्॥
कषायं तं पिबन् कालेज्वरान्सर्वान्व्यपोहति६७

महुवेके फूल, द्राक्षा, त्रायमाण, फालसा, खस, कुटकी, त्रिफला और काश्मरीका हिम या क्वाथ समयपर देनेसे सब प्रकारके ज्वरोंको शमन करता है६७

जात्यामलकमुस्तानि तद्वद्धन्वयवासकम्॥
बद्धविट् कटुकाद्राक्षात्रायन्तीत्रिफलागुडान्६८

चमेलीके पत्र, आंवले नागरमोथे और जवासेका हिम ज्वरनाशक होता है। तथा कुटकी द्राक्षा त्रायमाण त्रिफला और गुड इनको मिलाकर बनायाहुआ शीतकषाय मलावरोध युक्त ज्वरको शमन करताहै॥६८॥

जीर्णौषधोऽन्नं पेयाद्यमाचरेच्छ्लेष्मतान्तु॥६९॥
पेया कफं वर्धयति पङ्कं पांसुषु वृष्टिवत्।
श्लेष्माभिषन्नदेहानामतःप्रागपि योजयेत्७०॥
यूषान् कुलत्थचणकदाडिमादिकृतान् लघून्।
रूक्षांस्तिक्तरसोपेतान् हृद्यान् रुचिकरान् पटून्

जब औषध जीर्ण होजाय तब पेयादि अन्नका सेवन कराना चाहिये।

परन्तु कफकी अधिकतामें पेयाका पान कराना उचित नहीं. क्योंकि, जैसे धूलमें वृष्टि होनेसे कीचड होजाता है वैसे ही पेयासे विलीन कफ पुनः वृद्धिको प्राप्त होकर हानिकारक हो जाती है।

इस कारण कफसे क्लेदित देहवालोंको पेया न देकर प्रथमसेही कुलथीका यूष अथवा चनेका यूष, दाडिमके रससे खट्टा करके देवे तथा हलके, रूखे, तिक्तरसयुक्त हृदयको हितकारी रुचिकारक और नमक युक्त देवे॥ ६९–७१॥

ज्वरघ्न अन्न।

रक्ताद्याः शालयो जीर्णाः षष्टिकाश्च ज्वरे हिताः
श्लेष्मोत्तरे वीततुषास्तथा भ्राष्ट्रकृता यवाः७२

ज्वरमें पुराने साठीके चावल अथवा लालशाली चावल हितकारी होते है।

परन्तु कफाधिकज्वरमें छिलेहुए यवोंका दलिया भूनकर उसकी बनाईहुई यवागू हितकारी होती है॥७२

ओदनस्तैः शृतो द्वित्रिः प्रयोक्तव्यो यथायथम्।
दोषदूष्यादिबलतो ज्वरघ्नक्वाथसाधितः॥७३॥

ज्वरमें यथादोष पुराने सांठीके चावल आदि या छिलेहुए भुनेहुए यव दो वार उबालकर अथवा दो वारका जल फेंककर तीसरी वार उबाल कर बनाया हुआ पेया या यूष दोष दूष्य आदिका बल विचारके देना चाहिये। यह जल दोषानुसार ज्वरघ्न द्रव्योंके साथ सिद्ध करके उस जलमें पेया या यूष बनाकर देना चाहिये॥ ७३॥

ज्वरमें यूष।

मुद्गाद्यैर्लघुभिर्यूषाः कुलत्थैश्च ज्वरापहाः॥७४॥

मूंग आदि हलके अन्नके यूष, कुलथी आदिके ज्वरघ्न यूष, यथादोष कल्पना करके देने चाहिये॥७४

ज्वरघ्न शाक।

कारवेल्लककर्कोटबालमूलकपर्पटैः।
वार्ताकनिंबकुसुमपटोलफलपल्लवैः।
अत्यन्तलघुभिर्मांसैर्जाङ्गलैश्च हिता रसाः॥७५॥
व्याघ्रीपरूषकक्षीरीद्राक्षामलकदाडिमैः।
संस्कृताः पिप्पलीशुण्ठीधान्यजीरकसैन्धवैः७६॥

करेला, ककौडा, कच्चीमूली, पापडा, कोमलबैंगन, नीमके फूल, पटोलपत्र और पटोलफल ये सब शाक पथ्यमें हितकारी होते है तथा अत्यन्त हलके जांगलजीवोंके मांसका रस हितकारी होता है. ये शाक और रस कटेली, फालसा, जीवन्ती, द्राक्षा, आमले, दाडिम पीपल, सोंठ, धनियां, जीरा और सेंधानमक ये युक्तिपूर्वक मिलाकर देने चाहिये॥ ७५॥ ७६॥

सितामधुभ्यां प्रायेण संयुता वा कृताकृताः।
अनम्लतक्रसिद्धानि रुच्यानिव्यञ्जनानि च ७७
अच्छान्यनलसंपन्नानि–

–अनुपानेऽपि योजयेत्।
तानि क्वथितशीतं च वारि मद्यं च सात्म्यतः७८

कोई यूष या रस संस्कार कियेहुए अथवा दाडिम

आदिके रस विना संस्कार कियेहुए ही मिश्री और मधु मिलाकर भी दिये जा सकते है ।

इसी प्रकार विना खट्टे तक्रमें बनाये हुए रुचिकारक व्यंजन जो पतले और अग्निपर सिद्ध कियेहुए हों दोषानुसार दे सकते है ।

इन उपरोक्त रसोंको या क्राथकर शीतल कियेहुए जलको अथवा सात्म्यके अनुसार मद्यको अनुपानके लिये भी देना चाहिये ॥ ७७ । ७८ ॥

ज्वरमें भोजनका काल ।

सज्वरं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेल्लघु ।
श्लेष्मक्षयविवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ७९ ॥

मन्दज्वरवालेको अथवा ज्वरमुक्त पुरुषको दिनके अन्तमें हलका भोजन करना चाहिये क्योंकि दिनके अन्तमें अर्थात् तीसरे प्रहरमें कफका क्षय होनेसे ऊष्मा बढकर जठराग्नि बलवान् होती है ॥ ७९ ॥

यथोचितेऽथवा काले देशसात्म्यानुरोधतः ।
प्रागल्पवह्निर्भुञ्जानो न ह्यजीर्णेन पीड्यते ॥८०॥

अथवा देश और सात्म्यके अनुसार यथोचित कालमें हलका भोजन देवे क्योंकि प्रथम अल्पवह्नि होनेसे पेया या यूष आदि हलका अन्न देनेसे ज्वरसे क्षीण रोगी अजीर्णसे पीड़ित नहीं होता ॥ ८० ॥

ज्वरमें घृत देनेका समय ।

कषायपानपथ्यान्नैर्दशाह इति लंघिते ।
सर्पिर्दद्यात्कफे मन्दे वातपित्तोत्तरे ज्वरे ॥ ८१ ॥
पक्केषु दोषेष्वमृतं तद्विषोपममन्यथा ।
दशाहे स्यादतीतेऽपि ज्वरोपद्रववृद्धिकृत् ।
लंघनादिक्रमं तत्र कुर्यादाकफसंक्षयात् ॥८२॥

इस प्रकार लंघनके अनन्तर १० दिनतक कषाय पान और पथ्य अन्नोंसे शरीरको रक्षा और पालन करे। जब दोष जीर्ण होकर कफहीन होजाय और वातपित्त अधिक हों उस अवस्थामें पथ्य अन्नोंके साथ उचित रूपपर घृतपान कराना चाहिये। दोषोंके परिपक्क होजानेपर घृत अमृतके समान हितकारी होता है। परन्तु सामदोषमें तो घृत विषके समान हानिकारक होता है। यदि १० दिन बीतजानेपर भी दोष साम हो तो दिया हुआ घृत ज्वरके उपद्रवोंको बढा देता है। ऐसी अवस्थामें फिर आम और कफके क्षीण होनेपर्यंत लंघनादि क्रमका पालन करना चाहिये ॥ ८१।८२ ॥

जीर्णज्वरकी चिकित्सा ।

देहधातुबलत्वाच्च ज्वरो जीर्णोऽनुवर्तते ॥ ८३ ॥
रूक्षं हि तेजो ज्वरकृत्तेजसा रूक्षितस्य च ।
वमनस्वेदकालाम्बुकषायलघुभोजनैः ॥ ८४ ॥
यः स्यादतिबलो धातुः सहचारी सदागतिः ।
तस्य संशमनं सर्पिर्दीप्तस्येवाम्बु वेश्मनः ॥८५॥

जब मनुष्यके देह और धातु निर्बल होते हे तब शरीरमें रहाहुआ ज्वर बहुत कालतक चला जाता है। ऐसे पुराने ज्वरको जीर्णज्वर कहते हे ।

जीर्णज्वरमें ज्वरकरनेवाला जो तेज अर्थात् गरमी होती है वह रूक्ष होती है। उस तेजसे रूक्षित शरीरवाले मनुष्यके शरीरमें वमन, स्वेदन, औषधसिद्धजल, कषाय और हलके भोजनोंसे जो अतिबलवान्, सहचारी, सदागतिवाला वायु बढकर उस ज्वरका कारण बनजाता है उसको शमन करनेकेलिये घृतके समान दूसरा औषध नहीं है. जैसे-अग्निसे प्रज्वलित घरको जल शान्त करदेता है उसी प्रकार इस जीर्णज्वरमें वायुके बलसे स्थिरहुए ज्वरको घृत शमन करदेता है। इस कारण जीर्णज्वरमें औषधसिद्धघृत पिलाना चाहिये॥ ८३–८५

वातपित्तजितामग्र्यं संस्कारमनुरुध्यते ।
सुतरां तद्धयतो दद्याद्यथास्वौषधसाधितम् ।
विपरीतं ज्वरोष्माणं जयेत्पित्तं च शैत्यतः ।
स्नेहाद्वातं घृतं तुल्ययोगसंस्कारतःकफम् ॥८६

घृत वात और पित्तको तो स्वभावसे ही शमन करनेवाला होता है।इसके अतिरिक्त वातपित्तको जीतनेवाले द्रव्योमें अग्रणीय होनेपर भी अन्य द्रव्योंके संस्कार द्वारा घृतमें दूसरे द्रव्योंका गुण लेलेनेका भी स्वाभाविक गुण है इस कारण औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत जीर्णज्वरमें निरन्तर देना चाहिये ।

घृत स्वभावसे ही शीतगुणभूयिष्ठ होनेके कारण पित्तको जीतता है. ज्वरकी उष्माके विपरीत होनेके कारण ज्वरको शमन करता है, चिकना स्वभाववाला

होनेके कारण वायुको शमन करता है और कफनाशक द्रव्योंके द्वारा संस्कार कियाहुआ होनेके कारण कफके साथ मिश्रित होकर कफको शमन कर देता है। इस कारण जीर्णज्वर त्रिदोषज होनेपर भी औषधसे संस्कार कियाहुआ घृत जीर्णज्वरोंको शमन करदेता है और मनुष्योंके शरीरमें बल भी देता है ॥ ८६ ॥

पूर्वे कषायाः सघृताः सर्वे योज्या यथामलम् ८७

पहले जो हम प्रत्येक ज्वरकी निवृत्तिके लिये क्वाथ कह आये हैं जीर्णज्वरोंमें वातादि दोषोंकी अधिकताके अनुसार उन्हीं क्वाथोंसे घृत मिलाकर पिलाना भी जीर्ण ज्वरोंको शमन करता है ॥ ८७ ॥

त्रिफलापिचुमन्दत्वङ्मधुकं बृहतीद्वयम् ।
समसूरदलं क्वाथः सघृतो ज्वरकासहा ॥ ८८ ॥

त्रिफला, नीमकी छाल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और मसूरकी दाल इनका क्वाथ घृत मिलाकर पीया हुआ ज्वर और खांसीको दूर करता है ॥ ८८ ॥

पिप्पलीन्द्रयवव्याघ्रीतिक्ता-
सारिवामलकतामलकीभिः ।
बिल्वमुस्तहिमपाटलिसेव्यै-
र्द्राक्षयातिविषया स्थिरया च ॥ ८९ ॥
घृतमाशु निहन्ति साधितं
ज्वरमग्निं विषमं हलीमकम् ।
अरुचिं भृशतापमंसयो-
र्वमथुं पार्श्वशिरोरुजं क्षयम् ॥ ९० ॥

पीपल, इन्द्रयव, कटेली, कुटकी, सारिवा, आमले, भूमि आंवला, बिल्व, नागरमोथा, चन्दन, कालापाटिया खस, द्राक्षा, अतीस और शालपर्णी इनके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत ज्वर, विषमाग्नि, हलीमक, अंसोंका अधिक तपना, अरुचि, वमन, पार्श्वपीड़ा मस्तक पीड़ा, क्षिकोंका अधिक आना इन सब रोगोंको शमन करता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

तैल्वकं पवनजन्मनि ज्वरे
योजयेत्त्रिवृतया वियोजितम् ।
तिक्तकं वृषघृतं च पैत्तिके
यच्च पालनिकया शृतं हविः ॥ ९१ ॥

आगे वातव्याधिकी चिकित्सामें कहेहुए तैल्वकघृतके द्रव्योंमेंसे निशोथ निकालकर अन्य द्रव्योंसे सिद्ध किया-हुआ घृत अथवा तिक्तकघृत (जो कुष्ठचिकित्सामें कहेंगे) अथवा रक्तपित्तचिकित्सामें कहाहुआ वृषघृत या त्रायमाणसे सिद्ध कियाहुआ घृत पित्तप्रधान जीर्ण-ज्वरमें देना हितकारी होता है ॥ ९१ ॥

विडङ्गसौवर्चलचव्यपाठा-
व्योषाग्निसिन्धूद्भवयावशूकैः ।
पलांशकैः क्षीरसमं घृतस्य
प्रस्थं पचेज्जीर्णकफज्वरघ्नम् ॥ ९२ ॥

वायविडङ्ग, सौवर्चलनमक, चव्य, पाठा, सोंठ, मिर्च, पीपल चित्रक सेंधानमक और जवाखार ये सब द्रव्य एक एक पल, घी १ सेर, दूध १ सेर लेकर प्रथम वायविडङ्गादि द्रव्योंको जलमें पीसकर घृतमें मिलावे इसी घृतमें १ सेर दूध भी डालदेवे फिर मन्दाग्निसे पकावे जब घृतमात्र शेष रहे तो घृतको छानलेवे यह घृत कफके जीर्णज्वरको शमन करता है ॥ ९२ ॥

गुडूच्या रसकल्काभ्यां त्रिफलाया वृषस्य च ।
मृद्वीकाया बलायाश्च स्नेहाः सिद्धा ज्वरच्छिदः ॥

१—गिलोयके रस और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा २ त्रिफलेके रस और कल्कसे सिद्ध किया-हुआ घृत ३-अथवा अडूसेके रस और कल्कसे सिद्ध किया हुआ घृत. अथवा ४-द्राक्षाके रस और कल्कसे सिद्ध किया हुआ घृत. ५-या बलाके कल्क और क्वा-थसे सिद्ध किया हुआ घृत जीर्णज्वरको दूर करनेवाला होता है ॥ ९३ ॥

जीर्णे घृते च भुञ्जीत मृदु मांसरसौदनम् ।
बलं ह्यलं दोषहरं परं तच्च बलप्रदम् ॥ ९४ ॥

घृतकी मात्रा पानकरनेके अनन्तर जब घृत जीर्ण होकर क्षुधा लगे तो मृदुजीवोंका मांसरस अथवा यूष और भातका पथ्य देना हितकारी होता है। इस प्रकारका क्रम जीर्णज्वरके दोषको हरनेमें अतिश्रेष्ठ होता है तथा मनुष्यके शरीरमें बलके देनेवाला होता है ॥ ९४ ॥

कफपित्तहरा मुद्गकारवेल्लादिजा रसाः ।
प्रायेण तस्मान्न हिता जीर्णे वातोत्तरे ज्वरे ।
शूलोदावर्तविष्टम्भजनना ज्वरवर्धनाः ॥ ९५ ॥

मूंग और करेले आदिके रस प्रायः कफपित्तको हरनेवाले होते है इस कारण ये वातप्रधान जीर्णज्वरमें हितकारी नहीं होते वातप्रधान जीर्णज्वरमें इनका देना शूल, उदावर्त और विष्टम्भको उत्पन्न करता है तथा ज्वरको बढानेवाला होता है ॥ ९५ ॥

न शाम्यत्येवमपि चेज्ज्वरः कुर्वीत शोधनम्॥९६
शोधनार्हस्य वमनं प्रागुक्तं तस्य योजयेत् ।
आमाशयगते दोषे बलिनः पालयन्बलम् ॥९७

यदि इस प्रकार घृतादि पान कराने पर भी जीर्णज्वर शमन नहीं हो तो यदि रोगी शोधनयोग्य हो तो उसको विधिपूर्वक प्रथम कहीहुई विधिसे वमन कराकर आमाशयगतदोषको निकाल देवे परन्तु जीर्णज्वरवाले बलवान् रोगीके भी बलकी रक्षा करते हुएही वमनादि शोधन करना चाहिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

पक्वे तु शिथिले दोषे ज्वरे वा विषमद्यजे ।
मोदकं त्रिफलाश्यामात्रिवृत्पिप्पलिकेसरैः ॥९८
ससितामधुभिर्दद्याद्व्योषाद्यं वा विरेचनम् ।
आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा॥९९॥
त्रिफलां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः पिबेत् ।
विरिक्तानां च संसर्गी मण्डपूर्वा यथाक्रमम् ॥१००

यदि दोष पककर शिथिल होगये हों उसमें अथवा विषजनित या मद्यजनित ज्वरमें त्रिफला, निशोथ, काली-निशोथ, पीपल और नागकेशरमें मिश्री और मधु मिलाकर मोदक बनावे यह मोदक खिलाकर विरेचन करावे अथवा सोंठ, मिर्च, पीपल, इलायची, दालचीनी, तजपत्र, नागरमोथा, वायविडंग, आंवले और निशोथ इनके चूर्णमें मिश्री और शहद मिलाकर बनायाहुआ मोदक खिलाकर विरेचन करावे अथवा दूधमें आरग्वध (अमलतास) घोलकर पिलावे या द्राक्षाके रसमें अमलतास घोलकर पिलावे ।

अथवा त्रिफला या त्रायमाणा दूधमें मिलाकर पिलावे इस प्रकार ज्वरवालेको विरेचन करानेके अनन्तर प्रथम क्रमसे औषधसिद्ध मंड पेया आदि पिलाकर विधिपूर्वक क्रमसे यूष अन्नादि सेवन करावे ॥९८-१००॥

च्यवमानं ज्वरोत्क्लिष्टमुपेक्षेत मलं सदा ।
पक्वोऽपि हि विकुर्वीत दोषः कोष्ठे कृतास्पदः ॥
अतिप्रवर्तमानं वा पाचयन्संग्रहं नयेत्॥१०१॥

ज्वररोगमें उत्क्लेशितहुआ मल जब पतले दस्तके रूपमें निकलता है उसको रोकना नहीं चाहिये यदि वह मल पक्व भी हो तब भी स्तम्भन औषधि द्वारा रोक देनेसे कोष्ठमें स्थित होकर विकारको करता है यदि अत्यन्त प्रवृत्त दोष होनेसे या अतीसार होनेसे ज्वररोगीको क्षीण होता देखे तब भी पाचन औषधियों द्वारा मलको पाचनकरके अतीसारको रोकनेका यत्न करे ॥ १०१ ॥

आमसंग्रहणे दोषा दोषोपक्रम ईरिताः॥१०२॥

आमदोषको रोकदेनेसे शरीरमें जो आमसंग्रह होनेसे दोष होते है वे सब उत्पन्न होजाते हैं । उनकी चिकित्साका विधान दोषोपक्रमणीयाध्यायमें[1] कह आये हैं१०२

पाययेद्दोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः ।
प्रसुप्तं कृष्णसर्पं स कराग्रेण परामृशेत् ॥१०३

आमज्वरमें भी कफ दोषोंको हरण करनेवाली औषध नहीं देना चाहिये. यदि कोई अज्ञानवश आमज्वरमें ज्वरको हरण करनेकेलिये रेचन आदिका प्रयोग करता है वह सोतेहुए काले सांपको हाथके अग्रभागसे स्पर्श करनेके समान अनुचित करता है ॥ १०३ ॥

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं च विरेचनम् ।
कामं तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् १०४

ज्वरसे क्षीण मनुष्यको क्षीणदेह होनेके कारण वमन और विरेचन कराना हितकारी नहीं होता परन्तु औषधसिद्ध दूध पिलाकर अथवा निरूहणबस्तिके द्वारा यथेच्छ मलोंको हरण करदेना चाहिये ॥ १०४ ॥

क्षीरोचितस्य प्रक्षीणश्लेष्मणो दाहतृड्वतः ।
क्षीरं पित्तानिलार्तस्य पथ्यमप्यतिसारिणः१०५
तद्ध्युल्लङ्घनोत्तप्त प्लुष्टं वनमिवाग्निना ।
दिव्यांबु जीवयेत्तस्यज्वरं चाशु नियच्छति ॥

[1] सूत्रस्थानका १३ वां अध्याय ।

जो मनुष्य दूध देनेके योग्य है अथवा कफक्षीण होनेपर पित्त और वायुकी वृद्धिसे दाह और प्यास अतीसाररोगवालेको भी दूध देना पथ्य है। क्षीण कफवाले और वातपित्तवाले ज्वररोगीको दूध अमृतके समान हितकारी होता है क्योंकि लंघनसे व्याकुल-हुआ शरीर दूधके देनेसे इस प्रकार अच्छा होजाता है जैसे अग्निसे प्लुष्ट वन दिव्यजलकी वृष्टिसे जीवनको प्राप्त करता है उसी प्रकार क्षीणपुरुषकी दूध जीवन बल देकर ज्वरको शीघ्र दूर कर देता है॥ १०५॥ १०६॥

संस्कृतं शीतमुष्णं वा तस्माद्धारोष्णमेव वा।
विभज्य काले युञ्जीत ज्वरिणं हन्त्यतोऽन्यथा॥१०७॥

दूधको दोष बल काल विचारकर औषधियोंसे संस्कारकरके शीतल कियाहुआ अथवा धारोष्ण दूध देना हितकारी होता है। यह विचारपूर्वक दियाहुआ दूध बलवर्धक और ज्वरनाशक होता है परन्तु यदि विना विचारके आमदोषमें पर्युषित आदि दूध दियाजाय तो ज्वरवालेको मारडालता है॥१०७॥

पयः सशुण्ठीखर्जूरमृद्वीकाशर्कराघृतम्।
शृतशीतं मधुयुतं तृड्दाहज्वरनाशनम्॥१०८॥

सोंठ, छुहारे, द्राक्षा, शर्करा और घृत मिलाकर सिद्ध कियाहुआ दूध शीतल करके मधु मिलाकर पीनेसे तृषा दाह और ज्वरको नाश करता है॥१०८

तद्वद् द्राक्षाबलायष्टीसारिवाकणचन्दनैः।
चतुर्गुणेनाम्भसा वा पिप्पल्या वा शृतं पिबेत्॥१०९॥

इसी प्रकार द्राक्षा, बला, मुलहठी, सारिवा, जीरा और चन्दन ये मिलाकर चारगुना जल मिलाकर सिद्ध कियाहुआ दूध अथवा केवल पिप्पली और चारगुने जलमें सिद्ध कियाहुआ दूध शीतलकर पीनेसे तृषा दाह और ज्वर शमन होते हैं॥१०९॥

कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलाच्चिरज्वरात्।
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः॥११०॥

लघुपंचमूलसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीनेसे ज्वरवाला मनुष्य खांसी, श्वास, मस्तकपीड़ा, पार्श्वशूल और ज्वरसे मुक्त होजाता है॥११०॥

शृतमेरण्डमूलेन बालबिल्वेन वा ज्वरात्।
धारोष्णं वा पयः पीत्वा विबद्धानिलवर्चसः॥
सरक्तपिच्छातिसृतेःसतृट्शूलप्रवाहिकात्॥१११॥

एरण्डकी जड़से सिद्ध कियाहुआ दूध अथवा बिल्वके बहुत कच्चे फलसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीनेसे मनुष्यका जीर्णज्वर दूर होजाता है।

धारोष्ण गोदुग्धके पीनेसे मल और मूत्रका रुकना दूर होता है तथा मलमें रक्त, पिच्छाका अधिक आना, प्यास, शूल और प्रवाहिकाको बिल्वसे सिद्ध कियाहुआ दूध शमन कर देता है॥१११॥

सिद्धं शुण्ठीबलाव्याघ्रीगोकण्टकगुडैः पयः।
शोफमूत्रशकृद्वातविबन्धज्वरकासजित्॥११२॥

सोंठ, बला, कटेली, गोखुरू और गुड़से सिद्ध कियाहुआ दूध सूजन तथा मूत्र मल और वातका रुकना ज्वर और खांसी इन सब विकारोंको शमन करता है॥११२॥

वृश्चीवबिल्ववर्षाभूसाधितं ज्वरशोफनुत्॥

रक्तपुनर्नवा, बिल्व और श्वेतपुनर्नवा इनसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीनेसे ज्वर और सूजन दूर होते हैं॥

शिंशिपासारसिद्धं वा क्षीरमाशु ज्वरापहम्॥११३॥

शीशमके सारसे सिद्ध कियाहुआ दूध शीघ्र ज्वरको दूर करता है॥११३॥

ज्वरमें निरूहण वस्तिका विधान।

निरूहस्तु बलं वह्निं विज्वरत्वं मुदं रुचिम्।
दोषे युक्तः करोत्याशु पक्वे पक्वाशयं गते॥११४॥

जब दोष पककर पक्वाशयमें गयेहुए हों तब औषधसे सिद्ध कियेहुए दूध आदिसे निरूहणवस्ति करना चाहिये इस वस्तिसे शीघ्रही बल और अग्निकी वृद्धि होती है ज्वर दूर हो जाता है तथा प्रसन्नता और रुचि उत्पन्न होजाते हैं॥११४॥

पित्तं वा कफपित्तं वा पक्वाशयगतं हरेत्।
स्रंसनं त्रीनपि मलान् वस्तिः पक्वाशयाश्रयान्॥

पित्त अथवा कफ जो मलाशयमें पहुँचेहुए हों अथवा रेचन औषधि पक्वाशयमें पहुंचीहुई हो इन सबके ही निहणवस्ति निरूकाल देती है॥११५॥

प्रक्षीणकफपित्तस्य त्रिकपृष्ठकटिग्रहे ।
दीप्ताग्नेर्बद्धशकृतः प्रयुञ्जीतानुवासनम् ॥ ११६ ॥

यदि मनुष्यका कफ और पित्त क्षीण होगया हो तथा त्रिक पीठ और कटिस्थानमें अकड़न या पीड़ा हो और इस मनुष्यकी अग्नि बलवान् हो तथा मलबद्ध हो तो ऐसे पुरुषको अनुवासनवस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ ११६ ॥

पटोलनिम्बच्छदनकटुकाचतुरङ्गुलैः ॥ ११७ ॥
स्थिराबलागोक्षुरकमदनोशीरवालकैः ।
पयस्यर्धोदके क्वाथं क्षीरशेषं विमिश्रितम् ११८।
कल्कितैर्मुस्तमदनकृष्णामधुकवत्सकैः ।
बस्तिं मधुघृताभ्यां च पीडयेज्ज्वरनाशनम् १९

पटोलपत्र, नीमके पत्र, कुटकी, अमलतास, शालिपर्णी, बला, गोखुरू, मैनफल, खस और नेत्रवाला इनको दूध और दूधके समान जलमें मिलाकर पकावे दूधमात्र शेष रहनेपर इस दूधमें नागरमोथे, मैनफल, पीपल, मुलहठी और इन्द्रयवका कल्क मिलाकर तथा मधु और घृत मिलाकर इससे वस्तिकर्म करे तो ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ ११७–११९ ॥

चतस्रः पर्णिनीर्यष्टीफलोशीरनृपद्रुमान् ।
क्वाथयेत्कल्कयेद्यष्टीशताह्वाफलिनीफलम् ।
मुस्तं च बस्तिःसगुडक्षौद्रसर्पिर्ज्वरापहः १२०॥

सालपर्णी, पृष्टपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, मुलहठी, मैनफल, खस और अमलतास इनके क्वाथमें मुलहठी, सौंफ, प्रियंगु, मैनफल और नागरमोथे तथा गुड़, शहद और घी मिलाकर वस्तिकर्म करनेसे ज्वर दूर हो जाता है ॥ १२० ॥

जीवन्तीं मदनं मेदां पिप्पली मधुकं वचाम् १२१
ऋद्धिं रास्नां बलां बिल्वं शतपुष्पां शतावरीम्।
पिष्ट्वा क्षीरं जलं सर्पिस्तैलं चैकत्र साधितम् ।
ज्वरेऽनुवासनं दद्याद्यथास्नेहं यथामलम् ॥ १२२

जीवन्ती, मैनफल, मेदा, पीपल, मुलहठी, वच, ऋद्धि, रास्ना, बला, बिल्वफल, सौंफ और शतावरी इनको पीसकर कल्क बना उसको विधिवत् दूध जल घृत और तैलमें मिलाकर एकत्र सिद्धकरे इस स्नेहसे ज्वरमें अनुवासनवस्ति देवे अथवा इन्हीं जीवन्ती आदि द्रव्योंके कल्कसे विधिपूर्वक सिद्धकियाहुआ घृत या तैल यथादोष विचारकर अनुवासनमें प्रयोगकरे ॥ १२१॥१२२ ॥

जीर्णज्वरमें नस्यकर्म ।

ये च सिद्धिषु वक्ष्यंते बस्तयो ज्वरनाशनाः १२३

कल्पस्थानमें वस्तिकल्पनाके अध्यायमें जो वस्तियें कथन की है वे यथादोष प्रयोग करनेसे ज्वरको नाश करती हैं ॥ १२३ ॥

शिरोरुग्गौरवश्लेष्महरमिन्द्रियबोधनम् ।
जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्यान्नस्यं विरेचनम् ।
स्नैहिकं शून्यशिरसो दाहार्ते पित्तनाशनम् १२४

जीर्णज्वरमें यदि शिरमें पीड़ा और भारीपन हो तो कफनाशक और इन्द्रियोंको चैतन्य करनेवाली रुचिकर विरेचन नस्य (छींकके लानेवाली नस्य) देवे ।

यदि शिर शून्यसा प्रतीत हो तो औषधिसिद्ध तैलसे स्नेहन नस्य देवे ।

यदि शिरमें दाह हो तो पित्तनाशक नस्य देना चाहिये ॥ १२४ ॥

जीर्णज्वरमें गण्डूष ।

धूमगण्डूषकवलान् यथादोषं च कल्पयेत् ।
प्रतिश्यायास्यवैरस्यशिरःकण्ठामयापहान् १२५

जीर्णज्वरमें प्रतिश्याय, मुखकी विरसता शिर और कंठके भारीपन आदि रोगोंको दूर करनेके लिये यथा दोष धूम गंडूष और कवलोंकी कल्पनाकर प्रयोग करे ॥ १२५ ॥

अरुचौ मातुलुङ्गस्य केसरं साज्यसैन्धवम् ।
धात्रीद्राक्षासितानां वा कल्कमास्येन धारयेत्॥

अरुचिमें बिजौरेनींबूकी केशर, घृत और सेंधानमक मिलाकर कल्कबना मुखमें धारण करनेसे अथवा आँवले द्राक्षा और मिश्रीका कल्क मुखमें धारण करनेसे अरुचि दूर होती है ॥ १२६ ॥

यथोपशयसंस्पर्शान् शीतोष्णद्रव्यकल्पितान्॥
अभ्यङ्गलेपसेकादीन् ज्वरे जीर्णे त्वगाश्रिते ।
कुर्यादञ्जनधूमांश्च तथैवागन्तुजेऽपि तान् १२८

यदि जीर्णज्वर त्वचाके आश्रित हो तो यथादोष और उपशयके अनुसार शीतल या उष्ण द्रव्योंसे कल्पना कियेहुए शीतल या उष्ण स्पर्शवाले अभ्यग लेप और सेकादिका प्रयोग करना चाहिये। तथा इसी प्रकार अंजन या धूमको यथादोष द्रव्योंको कल्पना कर प्रयोग करनेसे जीर्णज्वर दूर होता है। ऐसे ही आगन्तुजज्वरोंमें भी नस्य और अजनोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

दाहे सहस्रधौतेन सर्पिषाऽभ्यङ्गमाचरेत्।
सूत्रोक्तैश्च गणैस्तैस्तैर्मधुराम्लकषायकैः ॥१२९
दूर्वादिभिर्वा पित्तघ्नैः शोधनादिगणोदितैः।
शीतवीर्यैर्हिमस्पर्शैःक्वाथकल्कीकृतैःपचेत् १३०
तैलं सक्षीरमभ्यङ्गात्सद्यो दाहज्वरापहम्।
शिरो गात्रं च तैरेव नाऽतिपिष्टैःप्रलेपयेत् १३१॥

यदि ज्वरमें दाह बढगयी हो तो सहस्र बार शीतल जलमें धोयेहुए घृतका लेपन दाहशान्तिके लिये करे। सूत्रस्थानके १९ वे अध्यायमे कहेहुए मधुर अम्ल और कषायरसवाले पित्तनाशक गणोंके अथवा दूर्वादिगणके अथवा पित्तनाशक शोधनादिगणके द्रव्योंके अथवा शीतवीर्य और शीतस्पर्शवाले द्रव्योंके कल्क और क्वाथोंसे सिद्ध कियेहुए तैल दूध मिलाकर शरीरपर लगानेसे शीघ्रही त्वचागत दाह और ज्वर शमन होजाते है।

अथवा इन्हीं द्रव्योंके कल्कसे शिर और शरीरपर लेपकरनेसे दाह और ज्वर शमन होजाते है १२९-१३१

तत्क्वाथेन परीषेकमवगाहं च योजयेत्।
तथाऽऽरनालसलिलक्षीरशुक्तघृतादिभिः १३२॥

इन गणोंके क्वाथसे शरीरपर परिसेचन करनेसे अथवा इन्हीं द्रव्योंके क्वाथमें बैठने या अवगाहन करनेसे त्वचा गत ज्वर शमन होजाता है।

तथा काजीका जल दूध सिरका और घृतादि मिलाकर शरीरपर लगानेसे दाह शमन होजाती है॥१३२॥

कपित्थमातुलुंगाम्लविदारीरोध्रदाडिमैः।
बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टजेन वा।
लिप्तेऽङ्गे दाहरुङ्मोहछर्दिस्तृष्णा च शाम्यति १३

कपित्थका रस, बिजौरे नीम्बूका रस, विदारीकन्दका रस, पठानीलोधका रस और अनारका रस अथवा इन्हीं द्रव्योंका कल्क अथवा बेरीके पत्रोंके फेन या नीमके पत्रोंके फेन अंगोंपर लेपन करनेसे दाह पीड़ा मोह छर्दी और तृषा ये सब शमन होजाते है ॥१३३॥

यो वर्णितः पित्तहरो दोषोपक्रमणे क्रमः।
तं च शीलयतःशीघ्रं सदाहो नश्यति ज्वरः १३४

जो दोषोपक्रमणीयाध्याय (सूत्रस्थान अ. १३) मे पित्तनाशकक्रम कथन किया है उसके परिशीलनसे भी शीघ्रही दाहयुक्तज्वर शमन होजाता है ॥ १३४ ॥

शीतज्वरक यत्न।

वीर्योष्णैरुष्णसंस्पर्शैस्तगरागुरुकुङ्कुमैः १३५॥
कुष्ठस्थौणेयशैलेयसरलामरदारुभिः।
नखरास्नामुखचाचण्डेलाद्वयचोरकैः ॥ १३६ ॥
पृथ्वीकाशिग्रुसुरसाहिंस्राध्यामकसर्षपैः।
दशमूलामृतैरण्डद्वयपत्तूररोहिषैः ॥ १३७ ॥
तमालपत्रभूनिम्बशल्लकीधान्यदीप्यकैः।
मिशिमाषकुलत्थाग्निप्रकीर्यानाकुलीद्वयैः १३८
अन्यैश्च तद्विधैर्द्रव्यैः शीते तैलं ज्वरे पचेत्।
कथितैःकल्कितैर्युक्तैःसुरासौवीरकादिभिः १३९
तनाभ्यंज्यात्सुखोष्णेन-
-तैः सुपिष्टैश्च लेपयेत्।
कवोष्णैस्तैः परीषेकमवगाहं च कल्पयेत् ॥
केवलैरपि तद्वच्च शुक्तगोमूत्रमस्तुभिः।
आरग्वधादिवर्गं च पानाभ्यञ्जनलेपनैः॥४०॥

अत्यन्त शीतयुक्त ज्वरमें उष्णवीर्यवाले और उष्णस्पर्शवाले द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तैलका शरीरपर कोष्ण लेपनादि करना चाहिये। जैसे तगर, अगर, केशर, कूठ, थुनेरा, भूरिछरीला, सरलकाष्ठ, देवदारु, नख, रास्ना, लकुच, वच, दोनोंप्रकारकी चंडा, चोरक, कलौंजी, सोहांजना, तुलसी, हींग, ध्यामक तृण, सरसों, दशमूलकी दशऔषधियें, गिलोय, श्वेतएरण्ड, लालएरण्ड, पत्तूर, रोहेडा, तमालपत्र, चिरायता, छल्लवृक्ष, धनियां, अजवायन, सौफ माषान, कुलथी चित्रक, रीठा, नाकुलीकन्द, गंधनाकुली और अन्य

ऐसे ही द्रव्योंके कल्क और काथोंसे मद्य और कांजी मिलाकर सिद्धकिये हुए तैलको सुखोष्ण शरीरपर लेपन करनेसे शीतकी अधिकतावाले ज्वर शमन होजाते हैं।

तथा ऐसे ही द्रव्योंको पीसकर कोष्ण लेपकरनेसे अथवा इन्हीं द्रव्योंके क्वाथसे सुहाता सुहाता सेचन करनेसे अथवा इनके किंचित् उष्ण क्वाथमें बैठने या अवगाहन करनेसे अथवा केवल सिरका गोमूत्र और मस्तुके कोष्ण सेचनसे अथवा आरग्वधादि गणके क्वाथको पीने और अभ्यंग करने और लेपनकरनेसे शीतज्वर शमन होजाता है॥ १३९-१४० ॥

धूपानगरुजान्यांश्च वक्ष्यन्ते विषमज्वरे॥ १४१॥

जो अगर आदिकी धूप विषमज्वरकी चिकित्सामें कहेंगे उन धूपद्रव्योंका धुवां देना भी शीतज्वरको शमन करता है॥ १४१ ॥

अग्न्यनग्निकृतान्स्वेदान् स्वेदिभेषजभोजनम् ४२
गर्भभूवेश्मशयनं कुथाकम्बलरल्लकान् ।
निर्धूमदीप्तैरङ्गारैर्हसन्तीश्च हसन्तिकाः॥ १४३॥
मद्यं सत्र्यूषणं तक्रं कुलत्थव्रीहिकोद्रवान् ।
संशीलयेद्वेपथुमान् यच्चाऽन्यदपि पित्तलम् १४४
दयिताः स्तनशालिन्यः पीना विभ्रमभूषणाः।
यौवनासवमत्ताश्च तमालिङ्गेयुरङ्गनाः ॥
वीतशीतं च विज्ञाय तास्ततोऽपनयेत्पुनः १४५

अग्निके द्वारा बालुका-स्वेदादि स्वेद अथवा भारी कम्बलादि लेकर अग्निरहितस्वेद अथवा स्वेदप्रवर्तक या औषधादिका सेवनकरना चाहिये अथवा पृथ्वीके भीतरके मकानमें रजाई या कम्बल आदि लपेटकर उसके द्वारा पसीना लेना चाहिये या दीप्त अंगारोंसे युक्त निर्धूम अग्निसे भरीहुई अंगीठियोंका सेकलेना ये सब स्वेदादि शीतज्वरको शमन करनेवाले होते हैं।

तथा मद्य सोंठ मिर्च पीपल युक्त तक्र कुलथी व्रीहि और कोद्रव आदि अन्य भी जो पित्तकारक आहार हों उनका सेवन करना भी शीतके कम्पको शमन करता है। अथवा पीन और पुष्टस्तनवाली तथा उत्तम वस्त्रभूषणादि युक्त यौवनके मदसे मत्त स्त्रियोंसे लिपटकर सोनेसे भी शीत शमन हो जाता है जब शीत निवृत्त होजाय तो इन स्त्रियोंको अलग करदेना चाहिये (किन्तु ऐसी अवस्थामें भी ज्वरितमनुष्यको ब्रह्मचर्यका यथार्थ पालन करना चाहिये) ॥ १४२-१४५ ॥

सन्निपातज्वरमें चिकित्सा क्रम।

वर्धनेनैकदोषस्य क्षपणेनोच्छ्रितस्य च ।
कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यकक्षाञ्जयेन्मलान्॥

तीनों दोषोंके ज्वरमें जो दोष सब दोषोंमें क्षीण हो उसको बढातेहुए और जो दोष अधिक बढ़ाहुआ हो उसको शमन करतेहुवे चिकित्सा करना चाहिये। अथवा जो दोष क्षीण हो उस दोषस्थानमें दूसरे बढे हुए दोषको क्षीणदोषकी वृद्धिद्वारा साम्यावस्थामें लावे जैसे क्षीणवातसन्निपातमें बढेहुए कफको रूक्ष लघु आदि द्रव्योंसे शमनकर हीनवातको साम्यावस्थामें लावे इत्यादि-यदि कफस्थानमें वातपित्त हों तो प्रथम कफको जीते फिर पित्तको जीते तदनन्तर वायुको जीते. यदि त्रिदोषमें तीनों दोष समान बढ़कर ज्वरका कारण हों तो भी इसी क्रमसे प्रथम कफको फिर पित्तको फिर वायुको जीतना चाहिये।

सम्पूर्ण सन्निपातज्वरोंमें प्रथम आम और कफको जीतना चाहिये। तदनन्तर पित्तको और तदनन्तर वायुको अथवा जो दोष बलवत्तर हों प्रथम उसको शमन करके फिर क्रमसे चिकित्सा करे परन्तु यदि दोष कफ स्थान गत हों या समकक्षावाले हों अथवा इस ज्वरमें सामज्वरके लक्षण हों ऐसी अवस्थाओंमें प्रथम कफको ही जीतना चाहिये। तदनन्तर पित्त और वातको क्रमसे जीते ॥ १४६ ॥

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ।
शोफः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते १४७॥

सन्निपातज्वरके अन्तमें कानके मूलमें दारुण शोथ उत्पन्न होजाता है। इस दारुण शोथ होजाने पर कोई भाग्यवान् पुरुष ही बचता है अन्यथा यह कर्णमूलशोथ सन्निपातज्वरवालेको मारडालता है ॥ १४७ ॥

रक्तावसेचनैः शीघ्रं सर्पिःपानैश्च तं जयेत् ।
प्रदेहैः कफपित्तघ्नैर्नावनैः कवलग्रहैः ॥ १४८॥

इस कर्णमूल शोथमें दोषानुसार जोंक या सिंगी आदि

द्वारा रक्त निकालना औषधसिद्धघृत पानकराना तथा कफपित्तनाशक लेपकरना नस्यदेना और अदरखके रसादियुक्त द्रवद्रव्यसे कवल धारण कराना आदि उपायोंसे शीघ्र इस शोथको जीतलेना चाहिये ॥ १४८॥

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्ज्वरो यस्य न शाम्यति।
शाखानुसारी तस्याशु मुञ्चेद्वाह्वोः क्रमाच्छिराम्

यदि शीत उष्ण स्निग्ध और रूक्ष आदि क्रियाओंसे ज्वर शमन नहीं हो तो उस मनुष्यका ज्वर शाखानुसारी होनेसे उसकी एक या दोनों बाहोंकी शिराछेदन कर रक्तनिकाल देवे ॥ १४९ ॥

विषमज्वरोंकी चिकित्सा ।

अयमेव विधिः कार्यो विषमेऽपि यथायथम् ।
ज्वरे विभज्य वातादीन् यश्चानन्तरमुच्यते१९०

यही विधि विषमज्वरकी निवृत्तिके लिये भी यथादोष करनी चाहिये तथा आगे कहेहुए क्वाथादियोग वातादिदोषोंकी अधिकताके अनुसार कल्पनाकर प्रयोग करना चाहिये जो अब आगे कहते है ॥ १९० ॥

पटोलकटुकामुस्ताप्राणदामधुकैः कृताः ।
त्रिचतुःपञ्चशः क्वाथा विषमज्वरनाशनाः १९१

पटोलपत्र, कटुकी, नागरमोथा हरीतकी और मुलहठी इन पांच औषधियोंमेंसे तीन या चार अथवा पांचोंका ही कियाहुआ क्वाथ विषमज्वरको शमन करता है ॥ १९१ ॥

योजयेत्त्रिफलांपथ्यांगुडूचींपिप्पलींपृथक्१९२

अथवा त्रिफला या हरीतकी अथवा गुडूची या केवल पिप्पली इनमेंसे किसी एक एकका पृथक् पृथक् प्रयोग कराना भी सतत आदि विषमज्वरोंको शमन करता है ॥ १९२ ॥

तैस्तैर्विधानैः सगुडैर्भल्लातकमथाऽपि वा ।
लंघनं बृंहणं चाऽपि ज्वरागमनवासरे ॥ १९३॥

रसायनादिविधिमें कहेहुए विधानसे गुड़ और भल्लातकका सेवन कराना भी विषमज्वरको दूर करता है अथवा ज्वरके आगमनके दिन दोषानुसार लंघन या बृंहण कराना भी विषमज्वरको शमन करता है॥१९३

प्रातः सतैलं लशुनं प्रागभक्तं वा तथा घृतम् ।
जीर्णं तद्वद्दधिपयस्तक्रं सर्पिश्च षट्पलम् ॥
कल्याणकं पञ्चगव्यं तिक्ताख्यं वृषसाधितम् ॥

विषमज्वरमें प्रातःकाल तैलयुक्त लहसुनका सेवन कराना अथवा पुराना घृत सेवनकराना विषमज्वरोंको शमन करता है । अथवा प्रातःकाल भोजनसे प्रथम दधि या दूध अथवा क्षयचिकित्सामें कहाहुआ षट्पलघृत अथवा उन्मादरोगमें कहाहुआ कल्याणघृत अथवा अपस्माररोगमें कहाहुआ पंचगव्यघृत अथवा कुष्ठचिकित्सामें कहाहुआ तिक्तकघृत अथवा रक्तपित्तचिकित्सामें कहाहुआ अडूसेका घृत भोजनसे प्रथम सेवनकराना विषमज्वरोंको शमन करता है ॥ १९४ ॥

त्रिफलाकोलतर्कारीक्काथदध्ना शृतं घृतम् ।
तिल्वकत्वक्कृतावापं विषमज्वरजित्परम् १९५

त्रिफला उन्नाव और जयन्तीके कल्क और क्वाथसे दही मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत सावरलोध्रकी छाल मिलाकर पिलानेसे अवश्य ही विषमज्वर दूर होजाता है ॥ १९५ ॥

सुरां तीक्ष्णं च यन्मद्यं शिखितित्तिरिकुक्कुटान्॥
मांसं मध्योष्णवीर्यं च सहान्नेन प्रकामतः१९६
सेवित्वा तदहः स्वप्यादथवा पुनरुल्लिखेत् ॥
सर्पिषो महतीं मात्रां पीत्वा तच्छर्दयेत्पुनः१९७

तीक्ष्णमद्य या सुरा, मोर, तीतर और कुक्कुटका मांस मध्यमश्रेणीके उष्णवीर्यमांस अन्नके साथ इच्छानुसार खाकर सोजाय इस प्रकार करनेसे भी विषमज्वर शमन होजाता है । अथवा इन मद्यादि भक्षण करानेके अनन्तर वमन करावे तब भी विषमज्वर शमन हो जाता है।

अथवा घृतकी महतीमात्राका पानकर फिर वमन करे तो विषमज्वर शमन होजाता है ॥ १९६॥ १९७॥

नीलिनीमजगन्धां च त्रिवृतां कटुरोहिणीम् ।
पिबेज्ज्वरस्यागमने स्नेहस्वेदोपपादितः ॥१९८॥

स्नेहन और स्वेदन कियाहुआ मनुष्य नीलिनीके बीज, अजवायन, निशोथ और कुटकीके चूर्णको ज्वरके दिन

प्रातःकाल गरमजलसे पीवे तो रेचन होकर विषमज्वर दूर होजाता है ॥ १५८ ॥

विषमज्वरनाशक अंजन ।

मनोह्वां सैन्धवं कृष्णा तैलेन नयनाञ्जनम् । योज्यं ॥ १५९ ॥–

मनःशिला, सेंधानमक और पीपल इनको कटुतैल मिलाकर नेत्रोंमें अंजन डालनेसे तृतीयकादि विषमज्वर दूर होजाते हैं ॥ १५९ ॥

विषमज्वर नाशक नस्य ।

–हिङ्गुसमा व्याघ्रीवसा नस्यं ससैन्धवम् । पुराणसर्पिः सिंहस्य वसा तद्वत्ससैन्धवा १६० ॥

हींगके समान सेरिनीकी चर्बी मिलाकर उसमें सेंधानमक मिलाकर नस्य देनेसे अथवा पुराना घृत, शेरकी चर्बी और सेंधानमक मिलाकर नस्य देनेसे विषमज्वर दूर होता है ॥ १६० ॥

विषमज्वर नाशक धूप ।

पलंकषा निम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी । सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपो विङ्वा बिडालजा । पुरध्यामवचासर्जनिम्बार्कागरुदारुभिः । धूपो ज्वरेषु सर्वेषु प्रयोक्तव्योऽपराजितः ॥ १६१

गूगल, नीमके पत्ते, बच, कूठ, हरीतकी, सरसों, यव और घृत मिलाकर धूनी देनेसे विषमज्वर दूर हो जाते है अथवा बिडालकी विष्ठाके धूनीसे विषमज्वर दूर होते है ।

अथवा, गूगल, ध्यामकतृण, वच्छ, राल, नीमके, पत्ते, अगर, आक इन सबको कूटकर बनायीहुई यह अपराजिताधूप घृत मिलाकर धूनी देनेसे विषमज्वर नाश होजाता है ॥ १६१ ॥

धूपनस्याञ्जनत्रासा ये चोक्ताश्चित्तवैकृते १६२ ॥

जो धूनियें अंजन और त्रासादिक उन्मादि और अपस्माररोगमें कहे हैं वे भी विषमज्वरोंको शमन करनेके लिये हितकारी होते हैं ॥ १६२ ॥

दैवाश्रयं च भैषज्यं ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति । विशेषाद्विषमान्प्रायस्ते ह्यागंत्वनुबन्धजाः १६३

मणिमंत्रादि धारण करना, रुद्राभिषेकके जलसे छींटे देना तथा मंत्रपाठादि दैवाश्रय औषधियें भी ज्वरोंको शमन करती हैं विशेषकर विषमज्वरोंको शमन करती हैं क्योंकि विषमज्वर आगन्तुज भूतादिके संसर्गसे उत्पन्न होते है ॥ १६३ ॥

यथास्वं च सिरां विध्येदशान्तौ विषमज्वरे १६४

अथवा यदि विषमज्वर शान्त न हो तो यथादोष सिरावेधनकर रक्त निकाले. यहांपर वृद्धवाग्भट्टमें रसगतज्वरमें वमन लंघन और रक्तगतज्वरमें सेचन, आलेपन और रक्तमोक्षण, मांसगत मेदगतज्वरमें तीक्ष्ण विरेचन, अस्थिगतज्वरमें वातनाशक अभ्यंजन और स्वेदनके अनन्तर वस्तिकर्म करना लिखा है परन्तु मज्जा और शुक्रगतज्वरको असाध्य मानकर उसकी विशेष चिकित्सा नहीं लिखी है ॥ १६४ ॥

केवलानिलवीसर्पविस्फोटाभिहतज्वरे । सर्पिःपानहिमालेपसेकमांसरसाशनम् । कुर्याद्यथास्वमुक्तं च रक्तमोक्षादिसाधनम् १६५

केवल वायुके ज्वरमें घृतपान कराना, विसर्पवाले ज्वरमें शीतल द्रव्योंका लेप कराना, विस्फोटकवाले ज्वरमें सेचन कराना और अभिघातजनित ज्वरमें मांस रसपिलाना हितकारी होता है अथवा यथादोष रक्तमोक्षण कराना हितकारी होता है ॥ १६५ ॥

ग्रहोत्थे भूतविद्योक्तं बलिमन्त्रादिसाधनम् १६६

भूतादि और ग्रहोंसे उत्पन्नहुए ज्वरोंमें भूतविद्यामें कहेहुए बलिमंत्रादिका प्रयोग करना चाहिये ॥ १६६ ॥

औषधीगन्धजे पित्तशमनं विषजिद्विषे । इष्टैरर्थैर्मनोज्ञैश्च यथादोषशमेन च ॥ हिताहितविवेकैश्च ज्वरं क्रोधादिजं जयेत् १६७ ॥

औषधिगंधजनितज्वरमें पित्तशमन करनेवाली चिकित्सा करना चाहिये और विषजनितज्वरमें विषनाशक चिकित्सा करना हितकारी होता है ।

क्रोधादि जनित ज्वरोंको इष्ट अर्थ और मनोज्ञ विषयोंकी प्राप्तिसे तथा यथादोष चिकित्सासे और हितसाधन अहितके त्यागसे जीतना चाहिये ॥ १६७ ॥

क्रोधजो याति कामेन शान्तिं क्रोधेन कामजः । भयशोकोद्भवौ ताभ्यां भीशोकाभ्यां तथेतरौ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुआ ज्वर कामके वेगसे शमन होजाता है कामसे उत्पन्न हुआ ज्वर क्रोधके आवेशसे शमन होजाता है । भय और शोकसे उत्पन्नहुए ज्वर काम और क्रोधके वेगसे शान्त हो जाते हैं। इसी प्रकार काम और क्रोधके ज्वर भय और शोकसे शमन हो जाते है ॥ १६८ ॥

शापाथर्वणमंत्रोत्थे विधिर्दैवव्यपाश्रयः॥१६९॥

गुरुजन आदिकोंके शापसे उत्पन्नहुआ ज्वर अथर्ववेदके मंत्रोंसे तथा दैवव्यपाश्रित बलि मंत्र जप होमादि विधिसे शमन होजाते है ॥ १६९ ॥

ते ज्वराः केवलाः पूर्वं व्याप्यन्तेऽनन्तरं मलैः।
तस्माद्दोषानुसारेण तेष्वाहारादि कल्पयेत् ।
नहि ज्वरोऽनुबध्नाति मारुताद्यैर्विनाकृतः १७०।

आगन्तुजज्वर प्रथम आगन्तुजकारणोंसे शरीरमें व्यापक होते है तदनन्तर वातादिदोषोंसे इनका अनुबंध होजाता है, इस कारण विषम ज्वरोंमें भी आहारादिविधि दोषानुसारही कल्पना करनी चाहिये क्योंकि ज्वर वातादि अनुबंधके विना नहीं होसकता इस कारण ही विषमज्वरोंमें भी वातादिदोषोंको विचारकर रोगीकेलिये आहारादिकल्पना आवश्यक होता है ॥ १७० ॥

ज्वरकालं स्मृतिं चास्य हारिभिर्विषयैर्हरेत् ।
करुणार्द्रं मनःशुद्धं सर्वज्वरविनाशनम्॥१७१॥

विषमज्वरवाले रोगीको जिस दिन ज्वरके आनेका समय हो उस दिन किसी क्रीडन आदिमें लगाकर ज्वरका समय भुलादेना चाहिये. क्योंकि किसी नाटकादिखेलमें करुणासे आर्द्रहुआ मन शुद्ध होकर सब ज्वरोंको शमन करदेता है ॥ १७१ ॥

ज्वरमुक्तके लिये कृत्य ।

त्यजेदाबललाभाच्च व्यायामस्नानमैथुनम् ।
गुर्वसात्म्यविदाह्यन्नंयच्चान्यज्ज्वरकारणम् १७२

जब मनुष्य ज्वरसे मुक्त होजाय तो जबतक यथार्थ बलकी प्राप्ति न करलेवे तबतक व्यायाम, स्नान, स्त्रीसंग, भारी असात्म्य और विदाही अन्नोंका सेवन तथा अन्यभी जो ज्वरके करनेवाले अहित आहार विहारादि हों उनको त्याग दे ॥ १७२ ॥

न विज्वरोऽपि सहसा सर्वान्नीनो भवेत्तथा ।
निवृत्तोऽपि ज्वरः शीघ्रं व्यापादयति दुर्बलम्॥

सर्वथा ज्वररहित होनेपरभी सहसा सब प्रकारके भारी आदि अन्न खाने नहीं चाहिये क्योंकि ज्वरनिवृत्त होनेपरभी दुर्बल शरीरको कुपथ्यजनित विकारसे नाश कर देता है ॥ १७३ ॥

सद्यः प्राणहरो यस्मात्तस्मात्तस्य विशेषतः ।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्तत्कुर्याद्भिषग्जितम्।

क्योंकि ज्वर सद्यः प्राणनाशक होता है इस कारण विशेषरूपसे उसकी हरएक अवस्थामें युक्तिपूर्वक शरीर और बलकी रक्षाकेलिये और रोगनिवृत्तिके लिये विधिवत् चिकित्सा करना चाहिये ॥ १७४ ॥

ओषधयो मणयश्च सुमन्त्राः
साधुगुरुद्विजदैवतपूजाः ।
प्रीतिकरा मनसो विषयाश्च
घ्नन्त्यपि विष्णुकृतं ज्वरमुग्रम् ॥१७५॥

दिव्यौषधियोंका सेवन करना, मणिमंत्रोंका धारण करना, साधु गुरु ब्राह्मण और देवताओंका पूजन करना, तथा मनको हित करनेवाले और प्रीतिकर कथा आदि श्रवण करना उग्र विष्णुज्वरको भी शमन करदेते है १७५

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतेऽष्टांगहृदयसंहितायां चिकित्सास्थानान्तर्गतज्वरचिकित्सिते वैद्यरत्नपं. रामप्रसादात्मजपं० शिवशर्मवैद्यशास्त्रिकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो रक्तपित्तचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

अब हम रक्तपित्तकी चिकित्साको कथन करते हैं ॥

साध्यरक्तपित्तके लक्षण ।

ऊर्ध्वगं बलिनो वेगमेकदोषानुगं नवम् ।
रक्तपित्तं सुखे काले साधयेन्निरुपद्रवम् ॥ १ ॥

बलवान् पुरुषके शरीरमें उर्ध्वगामी और एकदोषका नवीन वेगरहीत रक्तपित्त हो और उपद्रवरहित हो ऐसा

रक्तपित्त यदि हेमन्त या शिशिरऋतुमें हो तो साध्य होता है। ऐसे रक्तपित्तकी शीघ्र चिकित्सा करदेनेसे वह शीघ्र ही शान्त होजाता है ॥ १ ॥

याप्य रक्तपित्तके लक्षण।

अधोगं यापयेद्रक्तं यच्च दोषद्वयानुगम्॥ २ ॥

जो रक्तपित्त अधोगामी हो और दो दोषोंसे युक्त हो अथवा ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त भी दो दोषोंसे युक्त हो तो इसको याप्य समझकर शमन करनेवाली अविरोधी चिकित्सा करते रहना चाहिये ॥ २ ॥

असाध्य रक्तपित्तके लक्षण।

शान्तं शान्तंपुनःकुप्यन्मार्गान्मार्गान्तरं च यत्
अतिप्रवृत्तं मन्दाग्नेस्त्रिदोषं द्विपथं त्यजेत् ॥३॥

जो रक्तपित्त कई कई बार शान्त होकर फिर बारंबार प्रकोप करताहुआ कभी ऊर्ध्वमार्ग कभी अधोमार्गसे अतिप्रवृत्त हो अथवा दोनों मार्गोंसे ऊर्ध्व और अधः प्रवृत्त हो ऐसा रक्तपित्त यदि त्रिदोषज हो और मन्दाग्निवालेके शरीरमें हो तो असाध्य समझकर त्यागदेना चाहिये ॥ ३ ॥

रक्तपित्तकी चिकित्सा।

सन्तर्पणोत्थं बलिनो बहुदोषस्य साधयेत्।
ऊर्ध्वभागं विरेकेण वमनेन त्वधोगतम्।
शमनैर्बृंहणैश्चान्यल्लंघ्यबृंह्यानवेक्ष्य च ॥ ४ ॥

यदि सन्तर्पणसे अर्थात् अधिक रक्तवर्धक कारणोंसे बलवान् मनुष्यके शरीरमें बहुत दोषोंवाला रक्तपित्त भी हो तो भी विधिवत् चिकित्सा करनेपर साध्य हो सकता है. ऐसे बलवान् मनुष्यके रक्तपित्त यदि वह ऊर्ध्वगामी हो अर्थात् नासिका आदिसे रक्त आता हो तो विरेचनद्वारा शमन करना चाहिये। यदि गुदा आदि मार्गसे रक्तपित्तका रक्त आता हो तो वमनद्वारा शमन करदेना चाहिये तथा शमन और बृंहण द्रव्योंसे अथवा अन्य लंघनके या बृंहणके योग्य अवस्था विचारकर जैसा उचित हो वैसा प्रयत्न करके रक्तपित्तको जीते अर्थात् यदि अधिक दोषवाले और बलवान् पुरुषके शरीरमें रक्तपित्त उदीर्ण हो तो वमन विरेचनद्वारा क्रमसे शमनकरे तदनन्तर यदि लंघनसे उत्पन्न अधोगामी रक्तपित्त होतो शमनद्रव्योंसे चिकित्सा करनी चाहिये। यदि बृंहणसे उत्पन्नहुआ उर्ध्वगामी रक्तपित्त हो तो उसको लंघनसे शमन करना चाहिये ४॥

ऊर्ध्वे प्रवृत्ते शमनौ रसौ तिक्तकषायकौ।
उपवासश्च निःशुण्ठीषडङ्गोदकपायिनः ॥ ५ ॥

उर्ध्वगामी रक्तपित्तमें शमन करनेकेलिये तिक्त और कषायरसवाले द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये तथा उपवास और शुंठीरहित षडंगजलका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५ ॥

अधोगे रक्तपित्ते तु बृंहणो मधुरो रसः।
ऊर्ध्वगे तर्पणं योज्यं प्राक्च पेया त्वधोगते ।६॥

अधोगामी रक्तपित्तमें बृहण करनेके लिये मधुररसका सेवन कराना हितकारी होता है।

अधोगामी रक्तपित्तमें पहले पेयाका प्रयोग करना चाहिये और उर्ध्वगामी रक्तपित्तमें प्रथम तर्पण पिलाना चाहिये ॥ ६ ॥

अश्नतो बलिनोऽशुद्धं न धार्यं तद्धि रोगकृत्।
धारयेदन्यथा शीघ्रमग्निवच्छीघ्रकारि तत्॥७॥

जिस मनुष्यके शरीरमें यथार्थ बल हो और वह यथार्थ भोजन भी करता हो ऐसे पुरुषका अशुद्धरक्त शीघ्र नहीं रोकना चाहिये।

परन्तु इससे विपरीत अर्थात् निर्बल और मंदाग्निवाले पुरुषका रक्त शीघ्र रोकदेना चाहिये क्योंकि वह क्षीण पुरुषको अग्निके समान शीघ्र विनाशकारी होता है॥७

ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें रेचनयोग।

त्रिवृच्छ्यामाकषायेण कल्केन च सशर्करम्।
साधयेद्विधिवल्लेहं लिह्यात्पाणितलं ततः॥ ८ ॥

लालनिशोथ और कालीनिशोथके क्वाथ या कल्कमें मिश्री मिलाकर अवलेह बनावे इस अवलेहको १ मासे अथवा मनुष्यके बल शरीरके अनुसार खिलावे इससे रेचन होकर रक्तपित्तका उर्ध्ववेग शमन होजाता है ॥८

त्रिवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु।
मोदकः सन्निपातोर्ध्वरक्तशोफज्वरापहः।
त्रिवृत्समसिता तद्वत् पिप्पलीपादसंयुता ॥९॥

लालनिशोथ, त्रिफला, कालीनिशोथ और पीपल इनका चूर्ण खांड और मधुमें मिलाकर मोदक बनावे यह मोदक मात्रानुसार खानेसे सन्निपात, उर्ध्वगामी रक्तपित्त ज्वर और सूजन दूर होते हैं।। इसीप्रकार चारभाग निशोथ, एक भाग पीपल और दोनोंके समान मिश्री मिलाकर दो टंक प्रमाण या उचितमात्रासे खावे तो रेचन होकर सन्निपात, उर्ध्वगतरक्तपित्त, सूजन और ज्वर दूर होते है ॥ ९ ॥

अधोगामी रक्तपित्तमें वमन योग।

वमनं फलसंयुक्तं तर्पणं ससितामधु।
ससितं वा जलं क्षौद्रयुक्तं वा मधुकोदकम्।
क्षीरं वा रसमिक्षोर्वा ॥ १० ॥–

मैनफलका चूर्ण या कल्क खिलाकर ऊपरसे मिश्री और शहद मिलाकर तर्पण पिलावे अथवा मैनफलके चूर्णके साथ मिश्रीका जल. अथवा मधुका जल या दूध अथवा गन्नेका रस पिलावे। इसके पीनेसे वमन होकर अधोगामी रक्तपित्तका वेग शमन होजाता है ॥ १० ॥

शुद्धहोनेके अनन्तर कार्यक्रम।

–शुद्धस्यानन्तरो विधिः॥
यथास्वं मन्थपेयादिः प्रयोज्यो रक्षता बलम् ११

जब विरेचन या वमनसे शरीर शुद्ध होजाय तदनन्तर उर्ध्वगत रक्तपित्तमें मंथादि पिलावे और अधोगतमें पेया आदिका पान करावे. इस प्रकार यथाक्रम बलकी रक्षा करतेहुए मंथ या पेया देतेहुए शरीरके बलको बढावे ॥ ११ ॥

मंथ या तर्पण।

मन्थो ज्वरोक्तो द्राक्षादिःपित्तघ्नैर्वा फलैःकृतः१२

ज्वररोगमें कहेहुए द्राक्षादि मंथको पिलावे अथवा पित्तनाशक फलोंसे बनायाहुआ मंथ पिलाना चाहिये १२

मधुखर्जूरमृद्वीकापरूषकसिताम्भसा।
मन्थो वा पञ्चसारेण सघृतैर्लाजसक्तुभिः।
दाडिमामलकाम्लो वा मन्दाग्न्यम्लाभिला–
–षिणाम् ॥ १३ ॥

मधु, खजूर, द्राक्षा, फालसा, मिश्री और जल मिलाकर बनायाहुआ मंथ पिलावे. अथवा इस पंचसार मंथमे घी और लाजाके सत्तू मिलाकर पिलावे. अथवा घी और लाजाके सत्तुओंमें अनार और आंवलेका रस मिलाकर पिलावे. अथवा मन्दाग्निवाले और खट्टीचीजकी इच्छावाले रोगीको केवल अनार और आंवलेका रस पिलावे। इस रसमें भी मिश्री मिलालेनी चाहिये॥ १३

रक्तपित्तमें पेया।

कमलोत्पलकिञ्जल्कपृश्निपर्णीप्रियंगुकाः।
उशीरं शाबरं रोध्रं शृङ्गबेरं कुचन्दनम् ॥१४॥
ह्रीबेरं धातकीपुष्पं बिल्वमध्यं दुरालभा।
अर्धार्धैर्विहिता पेया वक्ष्यन्ते पादयौगिकाः१५
भूनिम्बसेव्यजलदा मसूराः पृश्निपर्ण्यपि।
विदारिगन्धा मुद्गाश्च बला सर्पिर्हरेणुका ॥१६॥

१ लालकमल और श्वेतकमलकी केशर, पृश्निपर्णी और प्रियंगु. २ खस, सावरलोध, अदरख और लाल चन्दन. ३ नेत्रबाला, धावेके फूल, कच्चेबेलकी गिरी और यवासा, इनमेंसे किसी एक योगके क्वाथसे बनायीहुई पुराने शालिचावलोंकी पेया अधोगत रक्तपित्तमें देनी चाहिये। इस प्रकार आधे आधे श्लोकमें तीन योग पेयाके कहे है। अब आगे श्लोकके पादमें कहेहुए योगोंको कहते है।

१ चिरायता खस नागरमोथा, २ अथवा मसूर और पृश्निपर्णी, ३ अथवा विदारीगंधा और मुद्ग. अथवा ४ बला, घृत और हरेणु इनमेंसे किसी १ योगके साथ बनायीहुई शालिचावलोंकी पेया अधोगतरक्त पित्तमें वमनके अनन्तर प्रयोग करानी चाहिये ॥ १४-१६॥

रक्तपित्तमें पथ्य।

जाङ्गलानि च मांसानि शीतवीर्याणि साधयेत्।
पृथक्पृथग्जले तेषां यवागूः कल्पयेद्रसे॥१७॥
शीताः सशर्कराक्षौद्रास्तद्वन्मांसरसानपि।
ईषदम्लाननम्लान्वा घृतभृष्टान्सशर्करान्१८॥

उपरोक्त पेयामें कहीहुई औषधियोंके जलमें पृथक् पृथक् जांगलजीवोंके शीतवीर्य मांसोंको सिद्ध करके वह मांसरस देने हितकारी होते है। अथवा ऊपर लिखेहुए पेयाके योगोंमें बनायीहुई यवागू शीतल करके मिश्री और शहद मिलाकर पिलानी

चाहिये इसी प्रकार उन्हीं कमलादिवाले योगोंके जलमें यवागू या मांसरस बनाकर उनको किंचित् अनारके रससे खट्टाकर अथवा विना खटाईके ही घृतमें छौंककर और मिश्री मिलाकर पिलावे ॥ १७ ॥ १८ ॥

शूकशिम्बीभवं धान्यं रक्ते शाकं च शस्यते ।
अन्नस्वरूपविज्ञाने यदुक्तं लघु शीतलम् ॥ १९ ॥

रक्तपित्तमें कौंचके कच्चे बीजोंका शाक तथा अन्नस्वरूपविज्ञानीयाध्यायमें कहेहुए अन्य शीतल स्वभाववाले हलके शाक हितकारी होते हैं ॥ १९ ॥

पूर्वोक्तमम्बु पानीयं पञ्चमूलेन वा शृतम् ।
लघुना शृतशीतं वा मध्वम्भो वा फलांबु वा २० ॥

रक्तपित्तमें शुण्ठीरहित षडंगजल अथवा लघुपंचकमूलसे सिद्धकर शीतल कियाहुआ जल अथवा मधुयुक्त शीतलजल अथवा द्राक्षा आदि फलोंके रसवाला जल हितकारी होता है ॥ २० ॥

शशः सवास्तुकः शस्तो विबन्धे तित्तिरिः पुनः ।
उदुंबरस्य निर्यूहे साधितो मारुतेऽधिके ।
प्लक्षस्य बर्हिणस्तद्वन्न्यग्रोधस्य च कुक्कुटः २१ ॥

रक्तपित्तमें यदि मलका विबन्ध हो तो वाथूका शाक मिला हुआ शशेका मांसरस हितकारी होता है। यदि रक्तपित्तमें वायुकी बहुत अधिकता हो तो गूलरके क्वाथमें सिद्ध कियाहुआ तीतरका मांस अथवा पिलखनके क्वाथमे सिद्ध कियाहुआ मोरका मांस अथवा वटवृक्षकी छाल या फलोंके क्वाथमें सिद्ध किया हुआ कुक्कुटका मांस हितकारी होता है ॥ २१ ॥

यत्किञ्चिद्रक्तपित्तस्य निदानं तच्च वर्जयेत् २२ ॥

रक्तपित्तमें प्रथम चिकित्सा निदान परिवर्जन करना चाहिये अर्थात् जिस हेतुसे या जिन आहारविहारोंसे रक्तपित्तकी उत्पत्तिहुई हो उनको त्याग देना चाहिये २२

रक्तपित्तमें नाशकयोग ।

वासारसेन फलिनी मृद्रोध्राञ्जनमाक्षिकम् ।
पित्तासृक् शमयेत्पीतं निर्यासो वाऽटरूषकात् ॥
शर्करामधुसंयुक्तः केवलो वा शृतोऽपि वा ।
वृषः सद्यो जयत्यस्रं स ह्यस्य परमौषधम् २४ ॥

अडूसेके रसमें प्रियंगु, मुल्तानी मिट्टी, पठानी लोध, काला सुरमा और शहद मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त शमन हो जाता है. अथवा अडूसेके स्वरस या क्वाथमें मिश्री और मधु मिलाकर पीनेसे अथवा केवल अडूसेका क्वाथ या रस पीनेसे रक्तपित्त शमन हो जाता है। अडूसा (वांसा वसूटा) रक्तपित्तकी परमौषधि है। इस कारण वांसेका क्वाथ, रस, फांट, पुटपाक ये सब ही रक्तपित्तको जीतनेवाले हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

पटोलमालतीनिम्बचन्दनद्वयपद्मकम् ।
रोध्रो वृषस्तंदुलीयः कृष्णामृन्मदयन्तिका २५
शतावरी गोपकन्या काकोल्यौ मधुयष्टिका ।
रक्तपित्तहराः क्वाथास्त्रयः समधुशर्कराः ॥ २६ ॥

१ पटोल, चमेली, नीम, लालचन्दन, सफेद चन्दन और पद्मकाष्ठ. २ पठानी लोध, अडूसा, चौलाईके पत्र, काली मिट्टी, मुलतानी मिट्टी और मल्लिका. ३ शतावरी, शारिवा, काकोली, क्षीरकाकोली और मुलहठी इन तीन योगोंमेंसे किसी एकका हिम या क्वाथ शीतल कर मिश्री और शहद मिलाकर पिलानेसे रक्तपित्त शमन हो जाता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

पलाशवल्कक्वाथो वा सुशीतः शर्करान्वितः ।
पिबेद्वा मधुसर्पिर्भ्यां गवाश्वशकृतो रसम् ॥ २७ ॥

अथवा पलाश वृक्षके छिलकेके क्वाथको शीतलकर मिश्री मिलाकर पीवे अथवा गोबरके रस अथवा घोडेकी लीदके रसमें मधु घृत मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त शमन हो जाता है ॥ २७ ॥

सक्षौद्रं ग्रथिते रक्ते लिह्यात्पारावतं शकृत् २८

यदि रक्तपित्तके रक्तमें गाठें बंधनेलगें तो रक्तपित्तमें कबूतरकी बीठ शहद मिलाकर चटानी चाहिये २८

अतिनिःसृतरक्तश्च क्षौद्रेण रुधिरं पिबेत् ।
जाङ्गलं भक्षयेद्वाजमामपित्तयुतं यकृत् ॥ २९ ॥

यदि रक्तपित्तका रक्त बहुत अधिक निकल गया हो तो जंगली जीवोंका रक्त शहद मिलाकर पिलावे, अथवा बकरेका जिगर पित्तयुक्त कच्चा ही खिलावे २९

चन्दनोशीरजलदलाजमुद्गकणायवैः ।
बलाजले पर्युषितैः कषायो रक्तपित्तहा ॥ ३० ॥

चन्दन, खस, नागरमोथा, धानकी खील, मुञ्ज, पीपल और यव इन सब चीजोंको खरैंटीके क्वाथमें भिगोकर शामको रखदेवे सवेरे इस पर्युषित शीतल जलको पिलावे तो यह शीतकषाय रक्तपित्तनाशक होता है ॥ ३० ॥

प्रसादश्चन्दनाम्भोजसेव्यमृद्भृष्टलोष्टजः।
मुशीतः ससिताक्षौद्रः शोणितातिप्रवृत्तिजित्॥

चन्दन, कमल, खस और आगमें भुनीहुई मिट्टीकी डलीको शीतल जलमें रातको भिगोदेवे प्रातःकाल इस जलको ऊपरसे स्वच्छ नितारकर इसमें मिश्री और शहद मिलाकर पीवे तो यह रक्त पित्तकी अति-प्रवृत्तिको निवृत्त कर देता है ॥ ३१ ॥

आपोथ्य वा नवे कुम्भे प्लावयेदिक्षुगण्डिकाः।
स्थितं तद्गुप्तमाकाशे रात्रिं प्रातः स्रुतं जलम्३२
मधुमद्विकसांभोजकृतोत्संसं च तद्गुणम्।
ये च पित्तज्वरे चोक्ताः कषायास्तांश्च योजयेत्

नये मिट्टीके घटमें गन्नेकी गण्डीलियोंको छेदकर डालदेवे और उसमें पानी डालदेवे इस घटको किसी लकड़ीकी तिपाईपर रात्रिको बाहर ओसमे रखदेवे और ढकदेवे प्रातःकाल इस जलको छानकर पीवे. अथवा शहद द्राक्षा और कमल इनसे इसी प्रकार बनायाहुआ शीतल जल रक्तपित्त नाशक होता है।

इनके अतिरिक्त जो पित्तज्वर शमन करनेके लिये क्वाथ कहे है उनको भी शीतकषाय बनाकर प्रयोग करनेसे रक्तपित्त शमन होजाता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

कषायैर्विविधैरेभिर्दीप्तेऽग्नौ विजिते कफे।
रक्तपित्तं न चेच्छाम्येत्तत्र वातोल्बणे पयः३४
युंज्याच्छागं श्रृतं तद्वद्गव्यं पञ्चगुणेऽम्भसि।
पञ्चमूलेन लघुना श्रृतं वा ससितामधु ॥३५॥

यदि इस प्रकार ये अनेक कषायादि देनेसे अग्नि दीप्त हो और कफ शमन होचुका हो परन्तु वातकी अधि-कताके कारण रक्तपित्तका रक्त निकलनेसे बन्द न हो तो गौका दूध अथवा बकरीका दूध लघुपंचमूल और पांचगुना जल मिलाकर सिद्धकियाहुआ दूध शीतल कर मिश्री और मधुमिलाकर पिलावे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

जीवकर्षभकद्राक्षाबलागोक्षुरनागरैः।
पृथक्पृथक् शृतं क्षीरं सघृतं सितयाऽथवा३६॥

अथवा जीवक ऋषभक द्राक्षा बाला गोखुरू और नागरमोथा इनमेंसे किसी एकसे अलग अथवा सबसे गौका दूध अथवा बकरीका दूध पांचगुना जल मिला कर पकावे दूधमात्र शेष रहनेपर छानकर उसमें घृत और मिश्री मिलाकर पिलावे तो वातप्रधान रक्तपित्त शमन हो जाता है ॥ ३६ ॥

गोकण्टकाभीरुशृतं पर्णिनीभिस्तथा पयः।
हन्त्याशु रक्तं सरुजं विशेषान्मूत्रमार्गगम् ॥ ३७

इसीप्रकार गोखुरू और शतावरीसे सिद्ध कियाहुआ दूध अथवा शालपर्णी पृष्ठपर्णी माषपर्णी मुद्गपर्णी इन चारों पर्णियोंसे सिद्ध किया हुआ दूध अथवा गोखुरू शतावरी और चारों पर्णी मिलाकर पांचगुने जलसे सिद्ध कियाहुआ दूध अधोगामी शूलयुक्त रक्तपित्तको विशेषकर मूत्रमार्गसे जानेवाले शूलयुक्त रक्तको शमन करता है ॥ ३७ ॥

विण्मार्गगे विशेषेण हितं मोचरसेन तु।
वटप्ररोहैः शृङ्गैर्वा शुंठ्युदीच्योत्पलैरपि।
रक्तातिसारदुर्नामचिकित्सां चाऽत्रकल्पयेत् ३८

यदि गुदामार्गसे रक्तपित्तकी प्रवृत्ति हो तो मोच-रस अथवा वटके शुङ्ग और वटके अंकुरोंसे सिद्ध किया हुआ दूध अथवा सोंठ नेत्रवाला और कमलसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिलाना हितकारी होता है। यह दूध गुदामार्गसे जानेवाले रक्तको विशेष हितकारी होता है।

गुदाद्वारा निकलनेवाले रक्तपित्तमें रक्तार्श और रक्ता-तिसारमें कहीहुई चिकित्साविधि करना भी हितकारी होता है ॥ ३८ ॥

पीत्वा कषायान् पयसा भुञ्जीत पयसैव च।
कषाययोगैरेभिर्वा विपक्वं पाययेद्घृतम्३९॥

अथवा पूर्वोक्त रक्तपित्त नाशक क्वाथ या रक्राति-सार नाशक क्वाथोंको दूधमें सिद्धकर पीवे. अथवा रक्तपित्त नाशक कषाय और दूधोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीवे तो रक्तपित्त शमन होजाता है ॥ ३९ ॥

वांसाघृत ।

समूलमस्तकं क्षुण्णं वृषमष्टगुणेऽम्भसि ॥ ४० ॥
पक्त्वाष्टांशावशेषेण घृतं तेन विपाचयेत् ।
पुष्पगर्भं च तच्छीतं सक्षौद्रं पित्तशोणितम् ४१
पित्तगुल्मज्वरश्वासकासहृद्रोगकामलाः ।
तिमिरभ्रमवीसर्पस्वरसादांश्च नाशयेत् ॥४२ ॥

वांसेके पंचांगको लेकर आठ गुने जलमें पकावे अष्टावशेष जल रहनेपर क्वाथ छानलेवे । इस क्वाथ और अडूसे (वांसे) के फूलोंका कल्क मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत शीतलकर मधु मिलाकर पीनेसे रक्त-पित्त, पित्तगुल्म, ज्वर, श्वास, खांसी, हृद्रोग, कामला तिमिररोग, भ्रम, विसर्प और स्वरभंग ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ४०-४२ ॥

पलाशघृत ।

पालाशवृन्तस्वरसे तद्गर्भं च घृतं पचेत् ।
सक्षौद्रं तच्च रक्तघ्नं तथैव त्रायमाणया ॥ ४३ ॥

इसी प्रकार पलाशके फूलोंकी वृन्तों (डंडियों) का स्वरस और कल्क डालकर सिद्ध कियाहुआ घृत शीतलकर शहद मिला पीनेसे रक्तपित्त शमन होता है। तथा इसी प्रकार त्रायमाणाके रस और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत रक्तपित्तनाशक होता है ॥ ४३ ॥

रक्ते सपिच्छे सकफे ग्रथिते कण्ठमार्गगे ।
लिह्यान्माक्षिकसर्पिर्भ्यां क्षारमुत्पलनालजम् ।
पृथक्पृथक् तथांभोजरेणुश्यामामधूकजम् ४४ ॥

यदि रक्तपित्तमें पिच्छा और कफ मिलेहुए हों रक्त-ग्रंथि युक्त हो और कंठमार्गसे आता हो तो कमलकी नालोंका क्षार घृत और शहद मिलाकर चाटना चाहिये। अथवा कमल रेणुका निशोथ या महुआ इनमेंसे किसीका बनायाहुआ क्षार मधु और घृतमें मिलाकर चाटना चाहिये ॥ ४४ ॥

रक्तपित्तमें वस्तिकर्म।

गुदागमे विशेषेण शोणिते बस्तिरिष्यते ॥ ४५ ॥

गुदाद्वारा निकलनेवाले रक्तमें विशेषकर रक्तपित्त नाशकद्रव्योंके क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ दूध और कल्क क्वाथादिसे वस्तिकर्म करना चाहिये ॥ ४५ ॥

रक्तपित्तमें सेवन ।

घ्राणगे रुधिरे शुद्धे नावनं चानुषेचयेत् ।
कषाययोगान् पूर्वोक्तान् क्षीरेक्ष्वादिरसाप्लुतान्
क्षीरादीन्ससितांस्तोयं केवलं वा जलं हितम् ।
रसो दाडिमपुष्पाणामाम्रोत्थः शाड्वलस्य वा ।
कल्पयेच्छीतवर्गं च प्रदेहाभ्यञ्जनादिषु ॥ ४७ ॥

यदि नासिकागत रक्तपित्त शुद्ध होचुकाहो तो नाकमें रक्तपित्तनाशक रसका सेचन करना चाहिये ।

तथा प्रथम कहेहुए रक्तपित्तनाशक क्वाथ दूध और इक्षुरस आदिको वस्त्रादिसे भिगोकर अथवा अडूसेके रसको नाकमें सेचनकरे। या मिश्रीमिला दूध या केवल शीतलजल अथवा अनारके फूलोंका रस अथवा आमके केवल पत्रोंका रस अथवा दूबका रस नाकमें और मस्तकपर सेचन करना चाहिये । ऐसा करनेसे नासिकासे आनेवाला रक्त शमन हो जाता है तथा अन्य चन्दनादि शीतवर्गका लेपन और अभ्यंगादि करना रक्तपित्तमें हितकारी होता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

यच्च पित्तज्वरे प्रोक्तं बहिरन्तश्च भेषजम् ।
रक्तपित्ते हितं तच्च क्षतक्षीणे हितं च यत् ॥ ४८ ॥

जो क्रियायें पित्तज्वरमें पित्तकी दाह और ज्वरको शमन करनेकेलिये बाह्यलेपनादि अथवा आभ्यन्तर क्रियामें कषायपानादि कही है और जो क्षत और क्षीणरोगमें शीतलक्रियायें तथा पथ्यादि कहे हैं वे सब रक्तपित्तरोगमें हितकारी होते है ॥ ४८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत-अष्टांगहृदयसंहितायां चिकित्सास्थानान्तर्गतरक्त पित्तचिकित्सिते वैद्यरत्नपं० रामप्रसादात्मज पं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाव्याख्यायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातः कासचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब हम कास (खांसी) की चिकित्साको कथन करते है ।

वातकासकी चिकित्सा ।

केवलानिलजं कासं स्नेहैरादावुपाचरेत् ।

वातघ्नसिद्धैः स्निग्धैश्च पेयायूषरसादिभिः।
लेहैर्धूमैस्तथाभ्यङ्गैः स्वेदसेकावगाहनैः॥ १॥

केवल वायुकी खांसीमें प्रथम वातघ्न द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृतादि स्नेह पदार्थोंद्वारा चिकित्साकरे। तथा वातघ्नद्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृत पेया रस यूष आदिकोंसे तथा वातघ्न लेह धूम अभ्यंग स्वेद सेक और अवगाहनोंसे वायुकी खांसीको जीतना चाहिये॥ १॥

बस्तिभिर्बद्धविड्वातं सपित्तं त्वौर्ध्वभक्तिकैः।
घृतैः क्षीरैश्च सकफं जयेत्स्नेहविरेचनैः॥ २॥

यदि वातज कासमें मलका विबन्ध भी हो तो वस्तिद्वारा, यदि पित्तका संसर्ग हो तो भोजनोत्तर घृतपानद्वारा तथा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्धकिये हुए दूधद्वारा खांसीको जीतना चाहिये. यदि वातजकासमें कफका संसर्ग हो तो एरण्डतैलादिसे स्निग्धविरेचन कराकर खांसीको जीतना चाहिये॥ २॥

गुडूच्यादि घृत।

गुडूचीकण्टकारीभ्यां पृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे।
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातकासनुद्वह्निदीपनः॥३॥

गिलोय और कंटकारीका तीस तीस पल रस लेकर उसमें एकसेर घीको सिद्ध करे इस घृतके पान करनेसे वायुकी खांसी दूर होती है और अग्निदीपन होती है ३

क्षारादि घृत।

क्षाररास्नावचाहिङ्गुपाठायष्ट्याह्वधान्यकैः॥४॥
द्विशाणैः सर्पिषः प्रस्थं पञ्चकोलयुतैः पचेत्।
दशमूलस्य निर्यूहे पीतो मण्डानुपायिना।
सकासश्वासहृत्पार्श्वग्रहणीरोगगुल्मनुत्॥ ५॥

जवाखार, रास्ना, वच, हींग, पाठा, मुलहठी और धनियां इनको दो दो शाण प्रमाण लेवे तथा पञ्चकोल (पीपल पीपलामूल चव्य चित्रक सोंठ) दो दो शाण लेकर इन सबको एकत्र कर कल्क करे फिर एक सेर घृत और चार सेर दशमूलका क्वाथ मिलाकर घृतको सिद्धकरे। यह घृत पीकर ऊपरसे ऊष्णमंडका अनुपान करे तो खांसी श्वास हृदयकी पीडा पार्श्वशूल ग्रहणीरोग और गुल्म ये सब नष्ट होते हैं॥ ४॥ ५॥

रास्नादि घृत।

द्रोणेऽपां साधयेद्रास्नादशमूलशतावरीः॥ ६॥
पलोन्मिता द्विकुडवं कुलत्थं बदरं यवम्।
तुलार्धं चाजमांसस्य तेन साध्यं घृताढकम्॥७
समक्षीरं पलांशैश्च जीवनीयैः समीक्ष्य तत्।
प्रयुक्तं वातरोगेषु पाननावनबस्तिभिः॥ ८॥
पञ्चकासान् शिरःकम्पं योनिवंक्षणवेदनाम्।
सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च सप्लीहोर्ध्वानिलान् जयेत्९॥

रास्ना एकपल, दशमूलकी दश ओषधियां दशपल, शतावरी एकपल, कुलथी दो कुडव, बेर (उन्नाव) दो कुडव, यव दो कुडव, बकरेका मांस ढाईसेर, जल एक द्रोण इनका क्वाथकरे जब चौथा भाग जल शेष रहे तो इस क्वाथमें एक आठक घृत, एक आढक दूध और जीवनीयगणके द्वादश द्रव्योंका दश पल कल्क मिलाकर घृतको सिद्धकरे यह घृत वातरोगोंमें दोषबलादि अनुसार विचारकर पीनेमें, नस्यमें और वस्तिकर्ममें प्रयोग करे तो यह घृत पांच प्रकारकी खांसी, शिरका कांपना, योनि और वंक्षणकी पीडा, सर्वांग या एकांगगत वातरोग, प्लीहा और ऊर्ध्ववातके रोगोंको दूर करता है॥६-९॥

विदार्यादिघृत।

विदार्यादिगणक्वाथकल्कसिद्धं च कासजित् १०

इसीप्रकार विदार्यादिगण (विदारीकन्द; एरंड, मेढ़ासींगी, वर्षाभू, देवदारु, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, कौंचके बीज, शतावरी, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कटेली, बड़ी कटेली, सारिबा और हंसपदी) के कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया घृत खांसीको जीतता है॥ १०॥

अशोकादिघृत और चूर्ण।

अशोकबीजक्षवकजन्तुघ्नाञ्जनपद्मकैः।
सबिडैश्च घृतं सिद्धं तच्चूर्णं वा घृतप्लुतम्।
लिह्यात्पयश्चानुपिबेदाजं कासाभिपीडितः ११

अशोकके बीज, अपामार्गके बीज, बायबिडंग, रसौंत पद्मकाष्ठ और बिडलवण इन द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा इन द्रव्योंका चूर्ण घृत मिलाकर चाटे और ऊपरसे बकरीका दूधपीवे तो वातजखांसी दूरहोतीहै ११

विडङ्गं नागरं रास्ना पिप्पली हिंगुसैन्धवम् ।
भार्गी क्षारश्च तच्चूर्णं पिबेद्वा घृतमात्रया ।
सकफेऽनिलजे कासे श्वासहिध्माहताग्निषु॥ १२॥

वायविडंग, सोंठ, रास्ना, पीपल, हींग, सेंधानमक, भारंगी और जवाखार इनका चूर्ण घीकी मात्रामें मिलाकर कफयुक्त वायुकी खांसीमें पीवे तो श्वास, खांसी, हिचकी और मंदाग्नि ये नष्ट होजाते हे ॥ १२ ॥

दुरालभां शृङ्गवेरं शठीं द्राक्षां सितोपलाम् ।
लिह्यात्कर्कटशृङ्गीं च कासे तैलेन वातजे॥ १३॥

जवासा, सोंठ, कचूर, द्राक्षा, मिश्री तथा काकड़ासिंगी इन सबका चूर्णकर तैलमें मिलाकर चाटनेसे वातजखांसी दूर होती है ॥ १३ ॥

दुस्पर्शां पिप्पलीं मुस्तां भार्गीं कर्कटकीं शठीम्
पुराणगुडतैलाभ्यां चूर्णितान्यवलेहयेत् ।
तद्वत्सकृष्णां शुण्ठीं च सभार्गीं तद्वदेव च ॥१५

कटेली, पीपल, नागरमोथा, भारंगी, काकड़ासिंगी और कचूर इन सबका चूर्णकर पुरानेगुड़ और तेलमें मिलाकर चाटे तो वातज खांसी दूर होती है ऐसे ही पीपल और शुंठीका चूर्ण अथवा भारंगी और शुंठीका चूर्ण पुरानेगुड़ और तैलमें मिलाकर चाटनेसे वातज खांसी दूर होती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

पिबेच्च कृष्णां कोष्णेन सलिलेन ससैन्धवाम् ।
मस्तुना ससितां शुण्ठीं दध्ना वा कणरेणुकाम्१६

पीपल और सेंधानमकका चूर्ण गरमजलके साथ पीवे अथवा सोंठ और मिश्रीका चूर्ण मस्तुके साथ पीवे अथवा पीपल और रेणुकाका चूर्ण दहीके साथ पीवे तो वातज कास दूर होती है ॥ १६ ॥

पिबेद्बदरमज्ज्ञो वा मदिरादधिमस्तुभिः ।
अथवा पिप्पलीकल्कं घृतभृष्टं ससैन्धवम्१७॥

बेरकी मज्जाको मद्य अथवा दहीके जलसे पीवे अथवा पिप्पलीके कल्कको घीमें भूंजकर सेंधानमक मिलाकर खावे तो वातजकास दूर होती है ॥ १७ ॥

पीनसयुक्त कासरोगकी चिकित्सा ।

कासी सपीनसो धूमं स्नैहिकं विधिना पिबेत् ।
हिध्माश्वासोक्तधूमांश्च क्षीरमांसरसाशनः १८॥

जिस खांसीवालेको पीनस भी साथमें हो उसको धूमपान विधिके अनुसार स्नैहिक धूमपान करना चाहिये स्नैहिक धूमपानकर गरमदूध या मांसरसका पथ्य सेवन करे तो प्रतिश्यायुक्त खांसी दूर होती है जो स्नैहिकधूम हिचकी और श्वासरोगमें कथन किये हे इसी प्रकार उन धूमोंके पीनेसे भी पीनसयुक्त खांसी दूर होती है ॥ १८ ॥

कास रोगीके लिये पथ्य ।

ग्राम्यानूपोदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् ।
रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धितान् ॥१९

खांसीवाले रोगीको ग्राम्यसंचारी, अनूपसंचारी और जलसंचारी जीवोंके मांसरसके साथ अथवा उड़द और कौंचके यूषके साथ शालिधान्य, यव, गेहूं और सांठी चावल इनके बनायेहुए भात, दलिया, रोटी आदि भोजन कराना चाहिये ॥ १९ ॥

यवानीपिप्पलीबिल्वमध्यनागरचित्रकैः ।
रास्नाजाजीपृथक्पर्णीपलाशशठिपौष्करैः २०॥
सिद्धां स्निग्धाम्ललवणां पेयामनिलजे पिबेत् ।
कटिहृत्पार्श्वकोष्ठार्तिश्वासहिध्माप्रणाशनीम् ॥

अजवायन, पीपल, बिल्वकी गिरी, सोंठ, चित्रक, रास्ना, जीरा, पृश्निपर्णी, पलाश, कचूर और पोहकरमूल इनके जलमें सिद्ध कीहुई पेया घृतसे स्निग्ध, अनारसे अम्ल और लवणयुक्त बनाकर पीनेसे खांसी, कटिशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कोष्ठशूल, श्वास और हिचकी शमन होते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

वातज कासनाशक पेया ।

दशमूलरसे तद्वत् पञ्चकोलगुडान्विताम् ।
पिबेत्पेयां समतिलां क्षैरेयीं वाससैन्धवाम्२२॥

इसी प्रकार दशमूलके रसमें पंचकोलका चूर्ण, गुड़ और तिल मिलाकर बनायीहुई पेया अथवा दशमूलके रसमें पंचकोल और दूध मिलाकर बनायीहुई पेया अथवा दशमूलके रसमें पंचकोल और सेंधानमक मिलाकर बनायीहुई पेया वातजकासको दूर करती है ॥२२॥

मात्स्यकौक्कुटवाराहैर्मांसैर्वा साज्यसैन्धवाम् २३

वातकासमें मछलीके मांससे अथवा मुर्गेके मांससे

या सूकरके मांससे बनायेहुए मांस रससे घृत और सैंधव मिलाकर बनायीहुई पेया मांसाहारियोंके लिये हितकारी होती है ॥ २३ ॥

वास्तुको वायसी शाकं कासघ्नः सुनिषण्णकः । कण्टकार्याः फलं पत्रं बालं शुष्कं च मूलकम् । स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः । दधिमस्त्वारनालाम्लफलांबुमदिराः पिबेत् २४

बाथूका साग, मकोयका साग, कसौंदीका साग, चौलाईका साग, कटेलीके फलोंका और पत्रोंका साग, सूखीहुई बालमूलीका साग, तैलादिस्नेह, दूध, इक्षुरस, गुडकी मद्य, दधि, मस्तु, आरनाल, दाडिमफलोंका रस और मद्य ये सब वातजकासमे हितकारी होते हैं ॥ २४

इति वातकासचिकित्सा ।

पित्तकी खांसीकी चिकित्सा ।

पित्तकासे तु सकफे वमनं सर्पिषा हितम् ॥२५॥ तथा मदनकाश्मर्यमधुककथितैर्जलैः । फलयष्ट्याह्वकल्कैर्वा विदारीक्षुरसाप्लुतैः ॥२६॥

पित्तकी खांसी यदि कफयुक्त हो तो उसको वामकघृत पान कराकर वमन कराना हितकारी होता है। तथा मैनफल, काश्मरी और मुलहठीके क्वाथमें घृत मिलाकर वमनकराना हितकारी होता है अथवा मैनफल और मुलहठीके कल्कको विदारीकन्दके रस और गन्नेके रसमें घोलकर पिलाकर वमन कराना हितकारी होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम् । युंज्याद्विरेकाय युतां घनश्लेष्मणि तिक्तकैः २७

यदि पित्तकी खांसीमें पतले कफका ससर्ग हो तो निशोथके चूर्णको मधुरद्रव्योंमें मिलाकर विरेचनके लिये देवै। यदि पित्तके साथ गाढकफका संसर्ग हो तो निशोथके चूर्णको तिक्तद्रव्योंके साथ देकर रेचन कराना चाहिये ॥ २७ ॥

हृतदोषो हिमं स्वादु स्निग्धं संसर्जनं भजेत् । घने कफे तु शिशिरं रूक्षं तिक्तोपसंहितम् ॥२८

जब विरेचन दोष हरलिया जाय तब मधुर, शीतल, स्निग्ध पेयादिक्रमका सेवनकरे. यदि कफ घन साथमें हो तो पित्तकी खांसीमें शीतल रूक्ष और तिक्त पदार्थोंसे बनायीहुई पेयादिका सेवन करावे ॥२८ ॥

लेहः पित्ते सिताधात्रीक्षौद्रद्राक्षाहिमोत्पलैः । सकफे साब्दमरिचः सघृतः सानिले हितः२९॥

पित्तकी खांसीमें-मिश्री, आंवले, शहद, द्राक्षा, पद्माख और कमलसे बनायीहुई चटनी चटानी चाहिये । यदि पित्तकी खांसीमें कफका संसर्ग हो तो नागरमोथे और मिरच मिलाकर चटनी चटानी चाहिये. यदि वायुका संसर्ग साथ हो तो घृत मिलाकर उपरोक्त चटनी चटानी चाहिये ॥ २९ ॥

मृद्वीकार्धशतं त्रिंशत्पिप्पलीः शर्करा पलम् । लेहयेन्मधुना गोर्वा क्षीरपस्य शकृद्रसम् ॥३०॥

बड़ी मुनक्का ५०, पीपल ३०, मिश्री ५तोले इन सबको बारीक पीसकर शहदमें मिलाकर चाटे. अथवा बछड़ेके गोबरके रसको शहद मिलाकर चाटे तो पित्तकी खांसी शमन होती है ॥ ३० ॥

त्वगेलाव्योषमृद्वीकापिप्पलीमूलपौष्करैः । लाजमुस्ताशठीरास्नाधात्रीफलबिभीतकैः ॥ शर्कराक्षौद्रसर्पिर्भिर्लेहो हृद्रोगकासहा ॥ ३१॥

दालचीनी, इलायची, सोंठ, मिर्च, पीपल, बड़ीद्राक्षा, पीपलामूल, पोहकरमूल, धानकी खील, नागरमोथा, कचूर, रास्ना, आंवलेके फल और बहेडे इन सबके चूर्णको खांड, मधु और घृतमें मिलाकर चाटनेसे हृद्रोग और खांसी दूर होते है ॥ ३१ ॥

मधुरैर्जाङ्गलरसैर्यवश्यामाककोद्रवाः ॥ ३२ ॥ मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तकैर्मात्रया हिताः । घनश्लेष्मणि लेहाश्च तिक्तका मधुसंयुताः ३३

पित्तकी खांसीमें मधुररसोंके साथ अथवा जांगलजीवोंके मांस रसके साथ या मुद्गआदिके यूषके साथ अथवा तिक्तरसवाले शाकोंके साथ यव, श्यामाक और कोद्रव अन्न देना हितकारी होता है ।

यदि पित्तकी खांसीमें गाढ़े कफका संसर्ग हो तो तिक्तद्रव्योंका लेह मधु मिलाकर देना चाहिये ३२-३३

शालयः स्युस्तनुकफे षष्टिकाश्च रसादिभिः । शर्कराम्भोऽनुपानार्थं द्राक्षेक्षुस्वरसाः पयः॥३४

यदि पित्तकी खांसीमें पतले कफका संसर्ग हो तो शालिचावल या सांठीके चावलोंका भात रसयूष आदिकोंके साथ देना चाहिये।

पीनेके लिये खांडवाला जल, द्राक्षारस, गन्नेका रस और दूध ये अनुपानकेलिये हितकारी होते हैं ॥ ३४॥

काकोलीबृहतीमेदाद्वयैः सवृषनागरैः ।
पित्तकासे रसक्षीरपेयायूषान् प्रकल्पयेत् ॥३५॥

काकोली, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, मेदा, महामेदा, अडूसा और सोंठ इन द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए रस, दूध या पेया अथवा यूष पित्तकी खांसीमें हितकारी होते हैं ३५

द्राक्षां कणां पञ्चमूलं तृणाख्यं च पचेज्जले ।
तेन क्षीरं शृतं शीतं पिबेत्समधुशर्करम् ।
साधितां तेन पेयांवा सुशीतांमधुनाऽन्विताम् ३६

द्राक्षा, पीपल और तृण पंचमूलको जलमें पकाकर उस जलमें सिद्ध कियाहुआ दूध ठंढाकर खांड और शहद मिलाकर पीवे तथा इसी जलसे सिद्ध की हुई पेया शीतलकर मधुमिला पीना पित्तकी खांसीमें हितकारी होती है ॥ ३६ ॥

शठींह्रीबेरबृहतीशर्कराविश्वभेषजम् ।
पिष्ट्वा रसं पिबेत्पूतं वस्त्रेण घृतमूर्च्छितम्॥३७॥

कचूर, नेत्रवाला, बडी कटेली, सोंठ और मिश्री इनका चूर्णकर इससे सिद्ध कियाहुआ जल वस्त्रसे छानकर घीमें छौंककर पीवे तो पित्तकी खांसी शमन होतीहै ३७

शर्करां जीवकं मुद्गमाषपर्ण्यौ दुरालभाम् ।
कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः क्षीरेणाष्टगुणेन तत् ३८
पानभोजनलेहेषु प्रयुक्तं पित्तकासजित् ।
लिह्याद्वा चूर्णमेतेषां कषायमथवा पिबेत्॥३९॥

खांड, जीवक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी और जवासा इन सबके कल्कमें औषधियोंके मानसे चारगुना घृत और घृतसे आठगुना दूध मिलाकर पकावे इस घृतको पीनेमें भोजनमें और अवलेहमें मिलाकर सेवन करनेसे पित्तकी खांसी दूर होती है। इन दवाइयोंके चूर्णको घृत-मधुमें मिलाकर चाटे अथवा इन्हींका क्वाथ पीवे तो पित्तकी खांसी दूर होती है ॥ ३८ ॥३९ ॥

कफकी खांसीकी चिकित्सा।

कफकासी पिबेदादौ सुरकाष्ठात्प्रदीपितात्॥४०॥
स्नेहं परिस्रुतं व्योषयवक्षारावचूर्णितम् ।
स्निग्धं विरेचयेदूर्ध्वमधो मूर्ध्नि च युक्तितः॥४१॥
तीक्ष्णैर्विरेकैर्बलिनं संसर्गीं चास्य योजयेत् ।
यवमुद्गकुलत्थान्नैरुष्णरूक्षैः कटूत्कटैः ॥४२॥
कासमर्दकवार्ताकव्याघ्रीक्षारकणान्वितैः ।
धान्वबैलरसैः स्नेहैस्तिलसर्षपनिम्बजैः ॥ ४३ ॥

कफकी खांसीवाला मनुष्य देवदारुकी लकड़ीको आगमें जलानेसे उस लकड़ीमेंसे जो तेल टपके उस तेलको सोंठ, मिर्च, पीपल और जवाखारका चूर्ण मिलाकर चाटे तथा युक्तिपूर्वक स्निग्धद्रव्योंसे ऊर्ध्व-विरेचन अर्थात् वमन और विरेचन तथा नस्यद्वारा शिरोविरेचन करावे ।

यदि मनुष्य बलवान् हो तो उसको तीक्ष्ण वमन विरेचन कराकर शुद्धकाय करे। उसके अनन्तर पेया-दिक्रमका पालन करावे वे पेया आदि यव, मूङ्ग और कुलथी आदि उष्ण तथा रूखे अन्नोंसे बनाना चाहिये और उसको त्रिकटुसे तीक्ष्ण बनाकर पिलावे तथा कसौंदी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, जवाखार और पीपल इन द्रव्योंसे तीक्ष्ण बनाकर पेयादिका पान करावे तथा जांगल और बिलेशय जीवोंके मांसरसोंका सेवन करावे और तिल, सर्षप तथा नीम्बके बीजोंका तेल मिलाकर स्निग्धकर पेया यूषादि देवे॥४०-४३॥

दशमूलाम्बु घर्माम्बु मद्यं मध्वम्बु वा पिबेत् ।
मूलैःपौष्करशम्याकपटोलैःसंस्थितं निशाम् ।
पिबेद्वारि सहक्षौद्रं कालेष्वन्नस्य वा त्रिषु॥४४॥

पीनेके लिये दशमूलसे सिद्ध कियाहुआ जल अथवा गर्मजल मद्य अथवा शहदका जल अथवा दशमूल या पोकरमूल शम्याक और पटोल भिगोकर रात्रिभर रखाहुआ जल छानकर शहद मिलाकर कफ-कासरोगीको अन्नके तीनोंकालोंमें देना चाहिये॥४४॥

(१) सूत्रस्थानके अध्याय १८ में पेयादिक्रम तीनों कालोंका वर्णन करचुके हैं

पिप्पली पिप्पलीमूलं शृङ्गवेरं बिभीतकम् ।
शिखिकुक्कुटपिच्छानां मषी क्षारोयवोद्भवः॥४५
विशाला पिप्पलीमूलं त्रिवृता च मधुद्रवाः ।
कफकासहरा लेहास्त्रयःश्लोकार्धयोजिताः ॥४६

१ पीपल, पिप्पलीमूल, सोंठ और बहेडा, २ अथवा मोरकी और कुकुटकी पूंछकी भस्म और जवाखार, ३ अथवा इन्द्रायण, पिप्पलीमूल और निशोथ इन आधे आधे श्लोकमें कहे तीन प्रकारके योगोंमेंसे किसी एकके चूर्णको मधुमें मिलाकर चाटनेसे कफकी खांसी दूर होती है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मधुना मरिचं लिह्यान्मधुनैव च जोङ्गकम्॥४७॥
पृथग्रसांश्च मधुना व्याघ्रीवार्ताकभृङ्गजान् ।
कासघ्नस्याश्वशकृतःसुरसस्यासितस्य च ॥४८॥

मधुके साथ मरिचका चूर्ण अथवा अगरका चूर्ण अथवा कटेलीका रस और मधु अथवा बडी कटेलीका रस और मधु अथवा भृंगराजका रस और मधु अथवा कसौंदीका रस और मधु अथवा घोडेकी लीदका रस और मधु अथवा काली तुलसीका रस और मधु मिलाकर चाटनेसे कफकी खांसी दूर होती है ॥४७॥४८॥

देवदारुशठीरास्नाकर्कटाख्यादुरालभाः ।
पिप्पली नागरं मुस्तं पथ्या धात्रीसितोपला॥४९
लाजा सितोपला सर्पिः शृङ्गी धात्रीफलोद्भवा ।
मधुतैलयुता लेहास्त्रयो वातानुगे कफे॥ ५० ॥

देवदारु, कचर, रास्ना, काकड़ासिंगी और जवासा अथवा पीपल, सोंठ, नागरमोथा, हरीतकी, आंवले और मिश्री अथवा धानकी खील, मिश्री, घृत, काकड़ासिंगी और आंवले इन तीन योगोंमेंसे किसी एकको मधु और तैलमें मिलाकर चाटनेसे वातके संसर्गवाली कफकी खांसी शमन होजाती है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

द्वे पले दाडिमादष्टौ गुडाद्व्योषात्पलत्रयम् ।
रोचनं दीपनं स्वर्यं पीनसश्वासकासजित्॥५१॥

दाडिमफलका छिलका २ पल, सोंठ १ पल, मरिच १ पल, पीपल १ पल, गुड ८ पल इनकी बनायी हुई गोली मुखमें रखकर रस चूसनेसे रुचि, जठराग्नि और स्वर बढते है तथा पीनस, श्वास और खांसी दूर होती है ॥ ५१ ॥

गुडक्षारोषणकणादाडिमं श्वासकासजित् ।
क्रमात्पलद्वयार्धाक्षकर्षाक्षार्धपलोन्मितम् ॥५२॥

गुड़ २ पल, जवाखार ६ मासे, कालीमिर्च १ तोला, पीपल १ तोला और अनारफलका छिलका आधापल इनसे बनायीहुई गोली मुखमें रखकर रस चूसनेसे कफकी खांसी दूर होती है ॥ ५२ ॥

पिबेज्ज्वरोक्तं पथ्यादि सशृङ्गीकं च पाचनम् ।
अथवा दीप्यकत्रिवृद्विशालाघनपौष्करम् ।
सकणं क्वथितं मूत्रे कफकासी जलेऽपि वा ५३॥

कफकी खांसीमें ज्वररोगमें कहाहुआ पथ्यादि पाचन काकड़ासिंगी मिलाकर पीना चाहिये अथवा अजवायन, निसोथ, इन्द्रायणकी जड, नागरमोथा, पोकरमूल और पीपल इनको गोमूत्रमें अथवा जलमें पकाकर पीवे तो कफकी खांसी शमन होती है ॥ ५३ ॥

तैलभृष्टं च वैदेहीकल्काक्षंससितोपलम् ।
पाययेत्कफकासघ्नं कुलित्थसलिलाप्लुतम्५४॥

पीपलके कल्कको तेलमें भूनकर मिश्री मिलाकर १ तोला लेवे इसको कुलथीके क्वाथमें मिलाकर पीनेसे कफकी खांसी दूर होती है ॥ ५४ ॥

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत्॥५५॥
पुष्कराह्वशठीबिल्वसुरसाव्योषहिंगुभिः ।
पेयानुपानं तत्सर्पिर्वातश्लेष्मामयापहम् ॥५६॥

चार सेर दशमूलके क्वाथमें १ सेर घृत तथा पोकरमूल, कचूर, बेलगिरी, तुलसी, सोंठ, मिर्च, पीपल और हींग ये सब एक एक तोला लेकर कल्क बना घृत सिद्धकरे इस घृतको पेयामें मिलाकर पिलावे अथवा घृतपानकर पेयाका अनुपानकरे तो यह घृत कफकी खांसीको दूर करता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

निर्गुंडीपत्रनिर्याससाधितं कासजिद्घृतम् ।
घृतं रसे विडंगानां व्योषगर्भं च साधितम्५७

निर्गुंडीके स्वरससे सिद्ध किया घृत कफकी खांसीको दूर करताहै । ऐसे ही वायविडंगके रस और त्रिकटुके

कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत कफकी खांसीको दूर करता है ॥ ५७ ॥

पुनर्नवाशिवाटिकासरलकासमर्दामृना-
पटोलबृहतीफणिज्जकरसैः पयःसंयुतैः ।
घृतं त्रिकटुना च सिद्धमुपयुज्य संजायते
न कासविषमज्वरक्षयगुदांकुरेभ्यो भयम् ५८॥

पुनर्नवा, श्वेत पुनर्नवा, सरलकाष्ठ, कसौंदी, गिलोय, पटोलपत्र, बड़ी कटेली और पोदीनाके क्वाथ और दूध तथा त्रिकटुका कल्क मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करनेसे खांसी विषमज्वर क्षय और अर्शका भय नहीं होसकता ॥ ५८ ॥

कंटकारिघृत ।

समूलफलपत्रायाः कण्टकार्या रसाढके ।
घृतप्रस्थं बलाव्योषविडंगशठिदाडिमैः ॥५९॥
सौवर्चलयवक्षारमूलामलकपौष्करैः ।
वृश्चीवबृहतीपथ्यायवानीचित्रकार्द्धिभिः ॥ ६०
मृद्वीकाचव्यवर्षाभूदुरालंभाम्लवेतसैः ।
शृङ्गीतामलकीभार्गीरास्नागोक्षुरकैः पचेत् ।
कल्कैस्तत्सर्वकासेषु श्वासहिध्मासु चेष्यते ६१

कटेलीके मूलपत्रादि पंचांग लेकर उसका चार सेर रस या क्वाथ लेवे तथा घृत १ प्रस्थ और नीचे लिखी हुई दवाइयोंका कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे. कल्कद्रव्य ये हे जैसे-बला, त्रिकटु, विडंग, कचूर, दाड़िम, सौवर्चल नमक, यवक्षार, पोकरमूल, आंवले, पीपलामूल, पुनर्नवा, बड़ीकटेली, हरीतकी, अजवायन, चित्रक, ऋद्धि, द्राक्षा, चव्य, सफेद पुनर्नवा, जवासा, अम्लवेत, काकड़ासिंगी, भूमिआंवला, भारंगी, रास्ना और गोखरू इन सब द्रव्योंको मिलाकर १ पाव लेवे इनका कल्क कर घृत और कटेलीके क्वाथमें मिलाकर घृत सिद्ध करे यह घृत सब प्रकारके खांसी श्वास और हिचकियोंको शमन करता है ॥ ५९–६१ ॥

कंटकारि अवलेह ।

पचेद्व्याघ्रीतुलां क्षुण्णां वहेऽपामाढकस्थिते ६२॥
क्षिपेत् पूते तु संचूर्ण्य व्योषरास्नामृताग्निकान्।
शृङ्गीभार्गीघनग्रन्थिधन्वयासान् पलार्धकान्॥
सार्पिषः षोडशपलं चत्वारिंशत्पलानि च ।
मत्स्यंडिकायाःशुद्धायाःपुनश्च तदधिश्रयेत्६४
दर्वीलेपिनि शीते च पृथक् द्विकुडवं क्षिपेत् ।
पिप्पलीनां तवक्षीर्या माक्षिकस्यानवस्य च६५।

५ सेर कटेलीके पंचांगको कूटकर ४ द्रोण जलमें पकावे जब उसका १ आढ़क जल रहजाय तो उसको छानकर उस जलमें सोंठ, मिर्च, पीपल, रास्ना, गिलोय, चित्रक, काकड़ासिंगी, भारंगी, नागरमोथ, पिप्पलीमूल और जवासा इन प्रत्येक द्रव्योंका चूर्ण आधा आधा पल, घृत १६ पल, शुद्ध खांड ४० पल इन सबको मिलाकर पुनः अग्निपर चढा अवलेह बनावे जब यह अवलेह गाढा होकर कड़छीपर लिपटने लगे तब इसको नीचे उतारकर शीतलकरे फिर इस लेहमें २ कुडव पीपलका चूर्ण, २ कुडवं वंशलोचनका चूर्ण और २ कुडव पुराना शहद मिलावे यह अवलेह खानेसे गुल्म हृद्रोग अर्श श्वास और खांसीको जीतता है ॥ ६२–६५ ॥

लेहोऽयं गुल्महृद्रोगदुर्नामश्वासकासजित् ।
शमनं च पिबेद्धूमं शोधनं बहुले कफे ॥ ६६ ॥

कफकी खांसीमें यदि कफ पतला हो तो शमन धूमपान करना चाहिये । यदि कफ गाढा हो तो शोधन धूमपान करना चाहिये ॥ ६६ ॥

मनःशिलालमधुकमांसीमुस्तेङ्गुदीत्वचः ।
धूमं कासघ्नविधिना पीत्वा क्षीरं पिबेदनु ॥६७॥
निष्ठ्यूतान्ते गुडयुतं कोष्णं धूमो निहन्ति सः ।
वातश्लेष्मोत्तरान् कासानचिरेण चिरन्तनान्६८

मैनशिल, हरिताल, मुलहठी, बालछड, नागरमोथा और गोंदनीका छिलका इन सबको मिलाकर सूत्रस्थानमें कही विधिके अनुसार कासघ्न विधिसे इनका धूमपान करे। धूमपान करनेके अनन्तर जब नाक मुखसे कफका स्राव होचुके तब गुड मिलाहुआ गर्म दूध पीवे यह धूमपान करना वातकफप्रधान पुरानी खांसियोंको भी शीघ्रही शमन कर देता है ॥ ६७ । ६८ ॥

तमकः कफकासे तु स्याच्चेत्पित्तानुबन्धजः ।
पित्तकासक्रियां तत्र यथावस्थं प्रयोजयेत्६९॥

यदि कफकी खांसीमें पित्तके अनुबंधसे तमकके लक्षण होजाय तो अवस्थानुसार पित्तकी खांसीमें कहीहुई चिकित्सा करे ॥ ६९ ॥

कफानुबन्धे पवने कुर्यात्कफहरां क्रियाम् ।
पित्तानुबन्धयोर्वातकफयोःपित्तनाशनीम्॥७०॥

यदि वातकी खांसीमें कफका अनुबंध हो तो कफकासनाशक चिकित्सा करे । यदि वात और कफकी खांसीमें पित्तका अनुबंध हो तो पित्तकासनाशक चिकित्सा करना चाहिये ॥ ७० ॥

वातश्लेष्मात्मके शुष्के स्निग्धं चार्द्रे विरूक्षणम्।
कासे कर्म सपित्ते तु कफजे तिक्तसंयुतम्॥७१॥

वात कफकी खांसी यदि सूखी हो तो उसमें स्निग्ध चिकित्सा करनी चाहिये. यदि खांसी आर्द्र हो तो उसमे रूक्षचिकित्सा करनी चाहिये. यदि कफकी खांसीमें पित्तका संसर्ग हो तो तिक्तद्रव्योंसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७१ ॥

उरःक्षतकी चिकित्सा ।

उरस्यन्तःक्षते सद्यो लाक्षां क्षौद्रयुतां पिबेत् ।
क्षीरेण शालीन् जीर्णेऽद्यात्क्षीरेणैव सशर्करान्॥

यदि उरःस्थानमें क्षत होगया हो तो शीघ्र ही शहद-मिलाहुआ लाखका रस पीना चाहिये. जब लाक्षारस जीर्ण होकर भूख लगे तो शालिचावलोंका भात दूध और खांड मिलाकर खाना चाहिये ॥ ७२ ॥

पार्श्वबस्तिसरुक्चाल्पपित्ताग्निस्तांसुरायुताम्।
भिन्नविट्कःसमुस्तातिविषापाठां सवत्सकाम् ७३

यदि उरःक्षतवालेके शरीरमें पार्श्वशूल और वस्तिशूल हो और पित्त क्षीण हो तथा अग्निमन्द हो तो ऐसे पुरुषको लाखका रस सुरा मिलाकर पिलाना चाहिये । यदि उरःक्षतवालेको पतले दस्त आतेहों तो नागरमोथा, अतीस, पाठा और इन्द्रयवके क्वाथमें लाक्षारस मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ७३ ॥

लाक्षां सर्पिर्मधूच्छिष्टं जीवनीयं गणं सितम् ।
त्वक्क्षीरीसंमितं क्षीरे पक्त्वा दीप्तानलःपिबेत्॥
इक्ष्वारिकाबिसग्रन्थिपद्मकेसरचन्दनैः ।
शृतं पयो मधुयुतं सन्धानार्थं क्षती पिबेत्७५

लाख, घृत, मोम, जीवनीयगणकी औषधियें, मिश्री और वंशलोचन इनको दूधमे पकाकर दीप्ताग्निवाला क्षतरोगी पीवे तो क्षत और क्षतकी खांसी शमन होती है । अथवा विनाबोये स्वयं उत्पन्न ईखकीजड, कमलकी जड, कमलकी केशर और चन्दन इनसे सिद्ध-कियाहुआ दूध शीतलकर मधुमिलाकर पीवे तो उरःक्षतका व्रण संधान होजाता है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

यवानांचूर्णमामानां क्षीरे सिद्धं घृतान्वितम् ।
ज्वरदाहे सिताक्षौद्रसक्तून्वा पयसा पिबेत्७६॥

कच्चे यवोंके चूर्णको दूधमें पकाकर घृतमिला क्षत-रोगीको देने चाहिये अथवा यदि क्षतमें ज्वर और दाह भी हो तो मिश्री और शहद मिलाकर जवोंके सत्तू दूध मिलाकर पीवे ॥ ७६ ॥

कासवांश्च पिबेत्सर्पिर्मधुरौषधसाधितम् ।
गुडोदकं वा क्वथितं सक्षौद्रमरिचं हिमम्॥७७॥
चूर्णमामलकानां वा क्षीरपक्वं घृतान्वितम् ।
रसायनविधानेन पिप्पलीर्वा प्रयोजयेत् ॥७८॥

क्षतवाली खांसीमें मधुर रसवाली औषधियोंसे सिद्ध किया घृतका पान करे । अथवा औषधियोंसे सिद्ध गुड़वाला क्वाथ पीवे. अथवा शहद और मिर्च मिला-हुआ हिम पीवे.अथवा आमलोंका चूर्ण दूधसे सिद्ध किये-हुए घृतमें मिलाकर पीवे. अथवा रसायन विधिसे पिप्प-लीका सेवनकरे ॥ ७७ ॥७८ ॥

कासी पर्वास्थिशूली च लिह्यात्सघृतमाक्षिकान्
मधूकमधुकद्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्पलीबलान् ७९॥

जिस खांसीवालेके पर्वोंमें और अस्थियोंमें शूल हो वह मुलहठी, महुआ, द्राक्षा, वंशलोचन, पीपल और बलाके चूर्णको घृत और शहदमें मिलाकर चाटे॥७९

त्रिजातमर्धकर्षांशं पिप्पल्यर्धपलं सिता ।
द्राक्षा मधूकं खर्जूरं पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम्८०।
मधुना गुटिका घ्नन्ति ता वृष्याःपित्तशोणितम्
कासश्वासारुचिच्छर्दिमूर्च्छाहिध्मावमिभ्रमान् ।
क्षतक्षयस्वरभ्रंशप्लीहशोफाढ्यमारुतान् ।
रक्तनिष्ठीवहृत्पार्श्वरुक्पिपासाज्वरानपि ॥ ८२ ॥

इलायची १ कर्ष, दालचीनी १ कर्ष, पत्रज १कर्ष,

पीपल आधापल, मिश्री १ पल, द्राक्षा १ पल, मुलहठी १ पल, छुहारे १ पल इनको बारीक पीसकर मधुमें मिला गोलियां बनावे। ये गोलियें वृष्य है रक्तपित्तको शमन करती है तथा खांसी, श्वास, अरुचि, छर्दि, मूर्च्छा, हिचकी, वमन, भ्रम, क्षत, क्षय, स्वरभंग, प्लीहा, सूजन, आढ्यवात, रक्तका मुंहसे गिरना, हृदय और पार्श्वकी पीडा, तृषा और ज्वरको शमन करती है ॥ ८०-८२ ॥

वर्षाभूशर्करारक्तशालितण्डुलजं रजः ।
रक्तष्ठीवी पिबेत्सिद्धं द्राक्षारसपयोघृतैः ।
मधूकमधुकक्षीरसिद्धं वा तण्डुलीयकम् ॥८३॥

श्वेतपुनर्नवा, खांड और लालशालिचावलोंका चूर्ण इनको द्राक्षाके रस दूध और घीके साथ पीनेसे मुखसे रक्तका गिरना बंद हो जाता है. अथवा मुलहठी, महुआ और दूधमें सिद्ध कियाहुआ शालिचावलोंका चूर्ण भी मुखसे रक्त गिरना बंद करदेता है ॥८३॥

यथास्वं मार्गविसृते रक्ते कुर्याच्च भेषजम् ॥८४॥

क्षतका रक्त जिस मार्गसे निकले उसी मार्गसे निकलनेवाले रक्तपित्तके रक्तकी चिकित्साके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८४ ॥

मूढवातस्त्वजामेदःसुराभृष्टं ससैन्धवम् ॥ ८५ ॥

यदि मूढवात हो तो बकरीके मेदको सुरामें मिला किंचित् सेंधानमक मिलाकर पीवे ॥ ८५ ॥

क्षामःक्षीणक्षतोरस्को मन्दनिद्रोऽग्निदीप्तमान् ।
शृतक्षीरसरेणाद्यात्सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ ८६ ॥

जो मनुष्य क्षामस्वरवाला, क्षीण शरीरवाला, उरःक्षतवाला और अल्प निद्रावाला हो परन्तु उसकी अग्नि दीप्त हो तो उसको दूध उबालकर उसके बनायेहुए तोडमें घृत मधु और मिश्री मिलाकर पिलावे ॥८६॥

शर्करां यवगोधूमं जीवकर्षभकौ मधु ।
शृतक्षीरानुपानं वा लिह्यात्क्षीणःक्षतःकृशः ८७

क्षत और क्षीण पुरुष खांड, यव, गेहूँ, जीवक, ऋषभक और मधु इनको चाटकर ऊपरसे गर्म कियेहुए दूधको ठण्ढा करके पीवे तो क्षत और क्षीणकी खांसी शमन होती है ॥ ८७ ॥

क्रव्यात्पिशितनिर्यूहं घृतभृष्टं पिबेच्च सः ।
पिप्पलीक्षौद्रसंयुक्तं मांसशोणितवर्धनम् ॥८८॥

मांसाहारी जीवोंके क्वाथको घीमें भूनकर पीपल और शहद मिलाकर पीवे तो यह क्षत और क्षीणसे कृश मनुष्यके मांस और रक्तको बढाता है ॥८८ ॥

न्यग्रोधोऽदुम्बराश्वत्थप्लक्षशालाप्रियङ्गुभिः ।
तालमस्तकजम्बूत्वक्प्रियालैश्च सपद्मकैः ॥
साश्वकर्णैः शृतात्क्षीरादद्याज्जातेन सर्पिषा ।
शाल्योदनं क्षतोरस्कः क्षीणशुक्रबलेन्द्रियः ८९।

क्षत क्षीणवालेको वट, गूलर, अश्वत्थ, पिलखन, शाल, प्रियगु, तालमस्तक, जामुन, दालचीनी, चिरौंजी, पद्माख, अश्वकर्ण और पलास इन वृक्षोंके छिल्कोंसे सिद्ध कियेहुए दूध और घीके साथ शालिचावलोंका भात खानेको देवे तो उरःक्षतवाले तथा जिसका वीर्य बल और इन्द्रियें क्षीण होगयी हों उनके क्षत और क्षीणता निवृत्त होकर शरीरमें बलवीर्यकी उत्पत्ति होती है॥८९

वातपित्तार्दितेऽभ्यङ्गो गात्रभेदे घृतैर्मतः ।
तैलैश्चानिलरोगघ्नैःपीडिते मातरिश्वना ॥९० ॥

यदि क्षतक्षीणवाला वातपित्तसे पीड़ित हो और उससे अंगोंमें पीडा हो तो घृतसे शरीरपर मालिश करनी चाहिये. यदि केवल वातसे पीड़ित हो तो वातरोग नाशक औषधोंसे सिद्ध कियेहुए तैल मर्दन करना चाहिये ॥ ९० ॥

हृत्पार्श्वार्तिषु पानं स्याज्जीवनीयस्य सर्पिषः ।
कुर्याद्वा वातरोगघ्नं पित्तरक्ताविरोधि यत्॥९१॥

यदि क्षतवालेके खांसीमें हृदय और पार्श्वमें पीड़ा भी हो तो उसको जीवनीय गणसे सिद्ध कियाहुआ घृत पिलाना चाहिये. अथवा जो क्रिया रक्तपित्तका तो प्रकोप होने नहीं दे और वातनाशक हो वह भी हितकारी होती है ॥ ९१ ॥

यष्ट्याह्वनागबलयोः क्वाथे क्षीरसमे घृतम् ।
पयस्यापिप्पलीवांसीकल्कैःसिद्धं क्षते हितम्९२

मुलहठी और नागबलाके क्वाथको मिलाकर तथा समानभाग दूध मिलाकर क्षीरकाकोली, पीपल

और वंशलोचनके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत क्षत रोगमे हितकारी होता है ॥ ९२ ॥

अमृतप्राशघृत।

जीवनीयो गणः शुण्ठी वरी वीरा पुनर्नवा॥९३॥
बला भार्गी स्वगुप्ताह्वा शठी तामलकी कणा।
शृङ्गाटकं पयस्या च पञ्चमूलं च यल्लघु॥९४॥
द्राक्षाक्षोडादि च फलं मधुरस्निग्धबृंहणम्।
तैःपचेत्सर्पिषःप्रस्थं कर्षांशैःश्लक्ष्णकल्कितैः९५
क्षीरधात्रीविदारीक्षुच्छागमांसरसान्वितम्।
प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करार्धतुलारजः॥९६॥
पलार्धकं च मरिचं त्वगेलापत्रकेसरम्।
विनीय चूर्णितं तस्माल्लिह्यान्मात्रां यथाबलम्॥
अमृतप्राशमित्येतन्नराणाममृतं घृतम्।
सुधामृतरसं प्राश्यं क्षीरमांसरसाशिना॥९८॥
नष्टशुक्रक्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकर्शितान्।
स्त्रीप्रसक्तान् कृशान् वर्णस्वरहीनांश्च बृंहयेत् ९९
कासहिध्माज्वरश्वासदाहतृष्णास्रपित्तनुत्।
पुत्रदं छर्दिमूर्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम्॥१००॥

जीवनीय गणकी सब औषधियां, सोंठ, शतावर क्षीरविदारी, पुनर्नवा, बला, भारंगी, कौंचके बीज, कचूर भूमिआंवला, पीपल, सिंघाड़, क्षीरीवृक्षोंकी छाल, लघु पंचमूलकी औषधियां, द्राक्षा आदि मधुर स्निग्ध और बृंहण फल इन सब द्रव्योंको एक एक तोला लेकर कल्क करे इस कल्कमें १ सेर घृत, १ सेर दूध, १ सेर आंवलेका रस, १ सेर विदारीकन्दका रस, १ सेर गन्नेका रस और १ सेर बकरेके मांसका रस मिलाकर सिद्ध करे. जब घृत सिद्ध होजाय तो इसमें आधासेर शहद, ढाईसेर मिश्री, आधा आधा पल मिर्च, दालचीनी, इलायची, पत्रज और नागकेशरका चूर्ण मिलावे इन सबको मिलाकर बनायाहुआ अवलेह शरीरबलानुसार मात्रासे खावे तो यह अमृतप्राशघृत मनुष्योंके लिये साक्षात् अमृत है।

यह सुधामृतघृत खातेहुए दूध या मांसरसका सेवन करना चाहिये. इस घृतके सेवनसे नष्टशुक्र, क्षत क्षीण, दुर्बल, व्याधियोंसे कृशहुए मनुष्य, स्त्रीसंगसे कृशहुए मनुष्य, वर्ण और स्वरसे हीन मनुष्य, शीघ्र ही बल और पुष्टियुक्त हो जाते हैं। यह घृत खांसी, हिचकी, ज्वर श्वास, दाह, तृषा, रक्तपित्त, छर्दी, मूर्च्छा, हृद्रोग, योनिरोग और मूत्राशयके रोगोंको दूर करता है तथा सन्तान रहित स्त्रीपुरुषोंको पुत्रके देनेवाला है॥९३-१००॥

गोक्षुरादि घृत।

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाश्मर्यकत्तृणम्।
दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिरा॥१०१
पालिकानि पचेत्तेषां रसे क्षीरचतुर्गुणे।
कल्कैः स्वगुप्ताजीवन्तीमेदर्षभकजीवकैः।१०२॥
शतावर्यर्द्धिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीबिसैः।
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रोगशूलनुत् १०३॥
मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापहः।
धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलमांसदः १०४।

गोखरू, खस, मजीठ, बला, काश्मरी, कत्तृण, दाभका मूल, पृष्णिपर्णी, पलाश, ऋषभक और शालपर्णी ये प्रत्येक एक एक पल लेकर इनका क्राथ करे इनके क्राथ तथा कौंचके बीज, जीवन्ती, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, शतावरी, ऋद्धि, द्राक्षा, खांड, मुंडी, कमलकी जड़ें ये सब दो दो कर्ष लेकर कल्क बनावे यह कल्क उपरोक्त क्राथ और चार सेर दूध मिलाकर एक सेर घृत सिद्धकरे यह घृत वात, पित्त, हृद्रोग, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, कास शोष और क्षयको दूर करता है तथा धनुष स्त्री मद्य भार और मार्ग चलनेसे खिन्न या कृशहुए मनुष्योंको बल और मांसके बढानेवाला है॥ १०१-१०४ ॥

मधुकाष्टपलद्राक्षाप्रस्थक्वाथे पचेद्घृतम्।
पिप्पल्यष्टपले कल्के प्रस्थं सिद्धे च शीतले१०५
पृथगष्टपलं क्षौद्रशर्कराभ्यां विमिश्रयेत्।
समसक्तु क्षतक्षीणरक्तगुल्मेषु तद्धितम्॥१०६॥

मुलहठी आठपल, द्राक्षा १ सेर इनका क्राथकर उसमें आठ पल पीपलका कल्क और १ सेर घृत मिलाकर घृत सिद्धकरे जब यह घृत शीतल होजाय तो इसमें आठ पल शहद और आठ पल मिश्री मिलावे। यह घृत बराबरके

सत्तू मिलाकर खानेसे क्षत क्षीण और रक्तगुल्ममें हित-कारी होता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

धात्रीफलविदारीक्षुजीवनीयरसाद्घृतात् ।
गव्याजयोश्च पयसोःप्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत् ॥
सिद्धपूते सिताक्षौद्रं द्विप्रस्थं विनयेत्ततः ।
यक्ष्मापस्मारपित्तासृक्कासमेहक्षयापहम् ।
वयःस्थापनमायुष्यं मांसशुक्रबलप्रदम्।१०८॥

आंवलेका रस १ सेर, विदारीकन्दका रस १ सेर, गन्नेका रस १ सेर, जीवनीयगणकी औषधियोंका रस १ सेर, गोघृत १ सेर, गौका दूध १ सेर, बकरीका दूध १ सेर इन सबको मिलाकर घृतपाकविधिसे पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर इसमें १ सेर मिश्री और १ सेर शहद मिलावे इसको खानेसे यक्ष्मा, अपस्मार, रक्त-पित्त, खांसी, प्रमेह और क्षय ये सब दूर होते हैं तथा अवस्था स्थिर होती है आयु बढ़ती है । मांस, वीर्य और बल बढ़ता है॥१०७॥१०८॥

घृतं तु पित्तेऽभ्यधिके लिह्याद्वाताधिके पिबेत् ॥
लीढं निर्वापयेत्पित्तमल्पत्वाद्धंति नानलम् ।
आक्रामत्यनिलं पीतमूष्माणं निरुणद्धि च १०

यदि शरीरमें पित्तकी अधिकता हो तो घृतको चाट-ना चाहिये और वायुकी अधिकता हो तो घृतको पीना चाहिये क्योंकि चाटाहुआ घृत पित्तको तो शमन करता है परन्तु थोड़ा थोड़ा चाटनेके कारण जठराग्निको नष्ट नहीं करता और यदि वायु बढ़ाहुआ हो तो वायुको पीयाहुआ घृत अपने वेगसे दबा लेता है और शमन करदेता है परन्तु ऊष्माको अर्थात् जठराग्निको किंचित् मंद करदेताहै इस कारण बढ़ीहुई वायुमें तो घृत पीना चाहिये किन्तु अल्पाग्निवाले मनुष्यको पित्ताधिक्यमें चाटना चाहिये ॥ १०९ ॥ ११० ॥

क्षामक्षीणकृशाङ्गानामेतान्येव घृतानि तु ।
त्वक्क्षीरीपिप्पलीलाजचूर्णैःपानानि योजयेत् ॥
सर्पिर्गुडान्समध्वंशान् कृत्वा दद्यात्पयो नु च ।
रेतो वीर्यं बलं पुष्टिं तैराशुतरमाप्नुयात् ॥ १२॥

जो रोगी म्लान क्षीण और कृशशरीरवाले हैं उनको ये घृत जो ऊपर कह आये हैं दालचीनी, वंशलोचन, पीपल और धान्यकी खीलका चूर्ण मिलाकर चटाने चाहिये अथवा अन्य पेय पदार्थ और भोजनोंमें घृत गुड़ मधु मिलाकर देवे तदनन्तर दूध पिलावे ऐसा करनेसे शुक्र वीर्य बल और पुष्टि इन सबकी शीघ्र वृद्धि होकर शरीर पुष्ट और बलवान् होजाता है ॥ १११॥११२॥

कूष्माण्डावलेह ।

वीतत्वगस्थिकूष्माण्डतुलां स्विन्नां पुनःपचेत् ।
घट्टयन् सर्पिषःप्रस्थे क्षौद्रवर्णेऽत्र च क्षिपेत्१३।
खण्डाच्छतं कणाशुण्ठ्योर्द्विपलं जीरकादपि ।
त्रिजातधान्यमरिचं पृथगर्धपलांशकम्॥ १४॥
अवतारितशीते च दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्धकम् ।
खजेनामथ्य च स्थाप्यं तन्निहन्त्युपयोजितम्॥
कासहिध्माज्वरश्वासरक्तपित्तक्षतक्षयान् ।
उरःसन्धानजननं मेधास्मृतिबलप्रदम् ।
अश्विभ्यां विहितं हृद्यं कूष्माण्डकरसायनम्१६

बड़े पकेहुए पेठेको लेकर उसको छीलकर ऊपरका छिलका और बीज अलग करे फिर इस स्वच्छपेठेको कद्दूकसमें घिसकर चावलोंके समान बारीक बारीक मिलालेवे इसमेंसे जितना पानी निकलाहो वह पानीभी कपड़ेमें छानकर इसमें डाल देवे । फिर थोड़ा और पानी डालकर उबाले जब यह पकजाय इसको कपड़ेमें डालकर निचोड़ लेवे इस प्रकार स्वेदित कियाहुआ पेठा ५ सेर लेकर एक सेर घीमे डालकर मन्द मन्द अग्निसे खुली कड़ाहीमें डालकर भूने. जब यह मधुके समान लालवर्ण होजाय तो इसमें १०० पल मिश्री इसके छनेहुए पानीमें स्वच्छकर पकाईहुईकी चास डाले फिर इसमें पीपलका चूर्ण दोपल, सोंठका चूर्ण २ पल, जीरा २ पल, दालचीनी, इलायची, धनियां, मरिच यह आधा आधा पलका चूर्ण मिलावे फिर इसके शीतल होनेपर इसमें आधासेर मधु मिलाकर पलटेसे खूब मिलादेवे. इस कूष्मांडावलेहके खानेसे खांसी, हिचकी, ज्वर, श्वास, रक्तपित्त, क्षत और क्षय ये सब नष्ट होते हैं। यह अवलेह छातीके व्रणको भरदेनेवाला है मेधा स्मृति और बलके देनेवालाहै वह

हृदयको हितकारी कूष्मांडरसायन अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है॥ ११३-११६ ॥

पिबेन्नागबलामूलस्यार्धकर्षाभिवर्धितम् ।
पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरवृत्तिरनन्नभुक्॥ १७ ॥
एष प्रयोगः पुष्ट्यायुर्बलवर्णकरः परम ।
मण्डूकपर्ण्याःकल्पोऽयं यष्ट्या विश्वौषधस्य च

नागबलाकी जड़के छिल्केको आधाकर्षसे आरम्भकर आधा आधा कर्ष नित्य बढाते हुए एक पल तक होजाने पर एक पलमात्र नित्य खायाकरे । इसको दूधके साथ रगडकर खाना चाहिये और दूध, घी नित्य पीना चाहिये केवल दूधके आहारपरही एक मासपर्यंत रहना चाहिये और अन्न नहीं खाना चाहिये । इस प्रकार एक मास केवल दूधका आहार करतेहुए नागबलाके मूलको खानेसे पुष्टि आयु बल और उत्तमवर्णकी वृद्धि होती है । इसी प्रकार मण्डूकपर्णीका कल्प अथवा मधुयष्टिका कल्प अथवा सोंठका कल्प करनेसे पुष्टि आदिकी वृद्धि होती है ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

नागबलाघृत ।

पादशेषं जलद्रोणे पचेन्नागबलातुलाम् ॥१९॥
तेन क्वाथेन तुल्यांशं घृतं क्षीरेण पाचयेत् ।
पलार्धिकैश्चातिबलाबलायष्टीपुनर्नवैः ॥१२०॥
प्रपौण्डरीककाश्मर्यप्रियालकपिकच्छुभिः ।
अश्वगन्धासिताभीरुमेदायुग्मत्रिकण्टकैः॥१२१॥
काकोलीक्षीरकाकोलीक्षीरशुक्लाद्विजीरकैः।
एतन्नागबलासर्पिःपित्तरक्तक्षतक्षयान् ॥ २२ ॥
जयेत्तृड्भ्रमदाहांश्च बलपुष्टिकरं परम् ।
वर्ण्यमायुष्यमोजस्यं वलीपलितनाशनम्।
उपयुज्य च षण्मासान् वृद्धोऽपि तरुणायते ॥

५ सेर नागबलाको लेकर १ द्रोण जलमें पकावे जब चौथाभाग शेष रहे तो उतारकर छानलेवे फिर इस क्वाथके समान घी और दूध मिलावे तथा अतिबला, बला, मुलहठी,पुनर्नवा, प्रपौंडरीक, काश्मरी, चिरौंजी, कौंचके बीज, असगंध, मिश्री, शतावरी, मेदा, महामेदा, गोखरू, काकोली, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द, जीरा और कालाजीरा ये प्रत्येक द्रव्य आधा आधा पल लेकर कल्क बनावे इस कल्कको नागबलाके क्वाथ घी और दूध मिलाकर घृतपाकविधिसे घृत सिद्ध करे इस घृतके सेवनसे रक्तपित्त, क्षत, क्षय, तृषा, भ्रम और दाह ये सब दूर होते है । यह नागबलाघृत बल और पुष्टिके करनेमें परमोत्तम तथा वर्ण आयु और ओजके बढानेवाला शरीरके वलि और अकालमें श्वेतबाल होना इनको दूर करता है। इस घृतके छः महीने प्रयोग करनेसे वृद्धपुरुष भी तरुणके समान होजाता है ॥ ११९-१२३ ॥

दीप्तेऽग्नौ विधिरेष स्यान्मन्दे दीपनपाचनः ।
यक्ष्मोक्तःक्षतिनां शस्तो ग्राही शकृति तु द्रवे ॥

यह विधि दीप्त अग्निवालोंके लिये है. यदि अग्नि मंद हो तो यक्ष्मारोगमें कहेहुए दीपन पाचन विधानका प्रयोग करना चाहिये. यदि क्षतवाले मनुष्यको पतले दस्त आनेलगें तो मलको बांधनेवाली ग्राही चिकित्सा करना चाहिये ॥ १२४ ॥

अगस्त्य हरीतकी ।

दशमूलं स्वयंगुप्तां शङ्खपुष्पीं शठीं बलाम्२५॥
हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ।
भार्गीं पुष्करमूलं च द्विपलांशान् यवाढकम्२६।
हरीतकीशतं चैकं जले पञ्चाढके पचेत् ।
यवस्विन्ने कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम्।२७॥
पचेद्गुडतुलां दत्त्वा कुडवं च पृथग्घृतात् ।
तैलात्सपिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात्।
लेहं द्वे चाभये नित्यमतः खादेद्रसायनात् ।
तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णायुर्बलवर्धनम् ॥ २९ ॥
पञ्चकासान् क्षयं श्वासं सहिध्मं विषमज्वरम् ।
मेहगुल्मग्रहण्यर्शोहृद्रोगारुचिपीनसान् ।
अगस्तिविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम्॥३०॥

दशमूलकी दश औषधियें, कौंचके बीज, शंखपुष्पी, कचूर, बला, गजपिप्पली, अपामार्ग, पिप्पलीमूल, चित्रक, भारंगी और पोकरमूल ये प्रत्येक द्रव्य दो दो पल ले यव १ आढक, बडी और सुन्दर हरडें १०० इन सबको मिलाकर ५ आढक जलमें पकावे

जब यव गलजांय तब इस जलको छानलेवे और उन सौ १०० हरडोंको भी निकाललेवे फिर शुद्ध जलमें ५ सेर गुड़ मिलाकर उसीमें १०० हरड़ भी डालदेवे और मन्दाग्निसे पकावे इसमें पकते समय पाव भर घृत भी डालदेवे और १ पाव तैल तथा १ पाव पीपलका चूर्ण मिलाले जब अवलेह तैयार हो जाय तब नीचे उतारकर शीतल होजानेपर एकपाव मधु मिलावे इस अवलेहको दो हरड़ों सहित नित्य प्रातः-काल विधिपूर्वक सेवनकरे इससे वली और पलित दूर होकर वर्ण आयु और बलकी वृद्धि होती है। इसके सेवनसे पांच प्रकारकी खांसी, क्षय, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, प्रमेह, गुल्म, ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, अरुचि और पीनस ये सब रोग दूर होते है। यह श्रेष्ठ रसायन अगस्त्यजीकी निर्माण कीहुई है इस धन्य रसायनको अगस्त्यहरीतकी कहते हैं ॥ १२९--१३० ॥

वासिष्ठ हरीतकी।

दशमूलं बलां मूर्वां हरिद्रे पिप्पलीद्वयम् ॥३१॥
पाठाश्वगन्धापामार्गस्वगुप्तातिविषामृतम्।
बालबिल्वं त्रिवृद्दन्तीमूलं पत्रं च चित्रकात्३२
पयस्यां कुटजं हिंस्रां पुष्पं सारं च बीजकात्।
बोटस्थविरभल्लातविकङ्कतशतावरीः ॥ ३३ ॥
पूतीकरञ्जशम्याकचन्द्रलेखासहाचरम्।
सौभाञ्जनकनिम्बत्वगिक्षुरं च पलांशकम्३४॥
पथ्यासहस्रं सशतं यवानां चाढकद्वयम्।
पचेदष्टगुणे तोये यवस्वेदेऽवतारयेत् ॥ ३५ ॥
पूते क्षिपेत्सपथ्ये च तत्र जीर्णगुडात्तुलाम्।
तैलाज्यधात्रीरसतःप्रस्थं प्रस्थं ततःपुनः। ३६॥
अधिश्रयेन्मृदावग्नौ दर्वीलेपेऽवतार्य च।
शीते प्रस्थद्वयं क्षौद्रात्पिप्पलीकुडवं क्षिपेत् ३७
चूर्णीकृतं त्रिजाताच्च त्रिपलं निखनेत्ततः।
धान्ये पुराणकुम्भस्थं मासं खादेच्च पूर्ववत्३८
रसायनं वसिष्ठोक्तमेतत्पूर्वगुणाधिकम्।
स्वस्थानां निष्परीहारं सर्वर्तुषु च शस्यते ३९॥

दशमूलकी १० औषधियें १० पल, बला १ पल, हलदी १पल, दारुहलदी १ पल, मूर्वा १ पल, पीपल १ पल, गजपीपल १ पल, पाठा १ पल, अश्वगन्धा १ पल तथा अपामार्ग, कौंचके बीज, अतीस-गिलोय, छोटे बिल्वका गूदा, निशोथ, जमालगोटेकी जड, चित्रकी जड और पत्ते, क्षीरकाकोली, कुटज, हिंस्रा, नागकेशर, विजयसारका सार, अलम्बुषा, शैलेयक, भिलावे, विककत, शतावरी, दूतिकरंज, अमलतास, बावर्ची, सहचर, सौभांजन, दालचीनी और तालमखाने ये सब एक एक पल, बड़ी और सुन्दर हरीतकी १ सहस्र, यव दो आढक, जल सबसे आठगुणा इन सबको मिलाकर पकावे. जब यव पकजांय तब इसको उतारकर छानले। इस छनेहुए जलमें पांच सेर पुराना गुड़ और वे एक सहस्र १००० हरड़ें तथा एक सेर तेल, एक सेर घी और एक सेर आंवलोंका रस मिलाकर मदाग्निसे पकावे, जब अवलेह गाढा हो जाय और कड़छीसे लिपटने लगे तो उतारकर शीतल करे फिर इसमे २ सेर मधु, १ कुडव पीपलका चूर्ण, ३ पल त्रिजातका चूर्ण मिलादेवे. फिर इसको चिकनेपात्रमें डालकर फिर मुख बन्द करके धान्यकी राशिमें एक महीनातक गाड़कर रक्खे। तदनन्तर निकालकर पूर्ववत् अगस्त्यहरीतकीके समान दो हरड़े नित्य प्रातःकाल सेवन करे. यह वशिष्ठजीकी कहीहुई हरीतकी रसायन अगस्त्यहरीतकीसे भी गुणमें अधिक है। इसको यदि स्वस्थमनुष्य सेवन करना चाहे तो विना किसी परहेजके सम्पूर्ण ऋतुओंमें सेवन करसकते है। इससे बलवर्णादिककी वृद्धि होकर श्वासकासक्षयादि सम्पूर्ण रोग दूर होते है ॥ १३१--१३९ ॥

पालिकं सैन्धवं शुण्ठी द्वे च सौवर्चलात्पले।
कुडवांशानि वृक्षाम्लं दाडिमं पत्रमार्जकम्४०
एकैकां मरिचाजाज्योर्धान्यकाद् द्वे चतुर्थिके।
शर्करायाःपलान्यत्र दश द्वे च प्रदापयेत्॥४१॥
कृत्वा चूर्णमतो मात्रामन्नपानेषु दापयेत्।
रुच्यं तद्दीपनं बल्यं पार्श्वार्तिश्वासकासजित्४२

सेंधानमक १ पल, सोंठ २ पल, सौवर्चलनमक २ पल, अम्लवेत ४ पल, अनारदाना १ पल

पोदीना १ पल, मरिच १ कर्ष, जीरा १ कर्ष, धनियां २ कर्ष, खांड १२ पल इन सबको मिलाकर चूर्णकरे इस चूर्णको अन्न पानादिमे सेवनकरे. यह रुचिकारक दीपन बलकारक तथा पार्श्वपीड़ा श्वास और खांसीको जीतनेवाला है ॥ १४०-१४२ ॥

खांडव चूर्ण।

एकां षोडशिकां धान्याद् द्वे द्वे चाऽजाजि-
-दीप्यकात्।
ताभ्यां दाडिमवृक्षाम्लैर्द्विर्द्विः सौवर्चलात्पलम्।
शुण्ठ्याः कर्षं दधित्थस्य मध्यात्पञ्च पलानि च।
तच्चूर्णं षोडशपलैः शर्कराया विमिश्रयेत्।
खाण्डवोऽयं प्रदेयः स्यादन्नपानेषु पूर्ववत् ॥४४

धनियां १ कर्ष, जीरा २ कर्ष, अजवायन २ कर्ष, अनारदाना और अम्लवेत चार चार कर्ष, संचरनमक १ पल, सोंठ १ कर्ष, कपित्थफलका गूदा ५ पल, खांड १६ पल इस चूर्णको खांडव कहते है। यह अन्नपानमे दियाहुआ रुचिकारक बलकारक अग्नि दीपन करनेवाला तथा श्वास कास और पार्श्वपीडाको जीतनेवाला है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

विधिश्च यक्ष्मविहितो यथावस्थं क्षते हितः॥४५

यक्ष्मारोगमे कहीहुई विधि अवस्थानुसार विचार कर प्रयोग करना क्षतरोगमे भी हितकारी होता है १४५

निवृत्ते क्षतदोषे तु कफे वृद्धे उरः शिरः।
दाल्यते कासिनो यस्य स धूमानापिबेदिमान् ॥

जिस क्षतरोगवाले मनुष्यके क्षत निवृत्त होजानेपर कफ बढ़कर छाती और शिरमें पीड़ाको उत्पन्नकरे ऐसा खासीवाला मनुष्य आगे कहेहुए द्विमेदादि धूमोंका पान करे ॥ १४६ ॥

द्विमेदाद्विबलायष्टीकल्कैः क्षौमे सुभाविते।
वर्तिं कृत्वा पिबेद्धूमं जीवनीयघृतानुपः ॥४७॥

मेदा, महामेदा, बला अतिबला और मुलहठी इनके कल्कमे वस्त्रको भिगोकर सुखालेवे फिर इस वस्त्रको बत्ती बनाकर इनका धूमपान करे। धूमपानके अनन्तर जीवनीयगणसे सिद्ध कियाहुआ घृतपान करे १४७

मनःशिलापलाशाजगन्धात्वक्क्षीरनागरैः।
तद्वदेवाऽनुपानं तु शर्करेक्षुगुडोदकम् ॥ ४८ ॥

अथवा मनशिल, पलाश, अजवायन, वंशलोचन और सोंठ इनके कल्कसे लिपटेहुए वस्त्रकी बत्तीका धूमपान करके तदनन्तर खांडका शरबत अथवा गन्नेका रस या गुडका शरबत पीवे ॥ १४८ ॥

पिष्ट्वा मनःशिलां तुल्यामार्द्रया वटशृङ्गया।
ससर्पिष्कं पिबेद्धूमं तित्तिरिप्रतिभोजनम्॥४९॥

अथवा मनशिलके बराबर वटवृक्षके अंकुर लेकर उनको बारीक पीसकर घृतमें मिलाकर कपड़ेके योगसे बत्तीबनावे इस धूमको पानकर तदनन्तर तितिरीके मांसरसका भोजन करे ॥ १४९ ॥

क्षयजे बृंहणं पूर्वं कुर्यादग्नेश्च वर्धनम्।
बहुदोषाय सस्नेहं मृदु दद्याद्विरेचनम् ॥ ५० ॥

क्षयजनित खांसीमें प्रथम मनुष्यको बृंहण अर्थात् उसके शरीरको पुष्टकरे तथा जठराग्निको बलवान् बनावे। यदि क्षयकी खांसीवाला बहुतदोषोंसे युक्त हो और रेचनकरनेके योग्य हो तो उसको चिकने द्रव्योंसे मृदुविरेचन करादेवे ॥ १५० ॥

शम्याकेन त्रिवृतया मृद्वीकारसयुक्तया।
तिल्वकस्य कषायेण विदारीस्वरसेन च।
सर्पिःसिद्धं पिबेद्युक्त्या क्षीणदेहो विशोधनम्५१

क्षयवालेको खांसीमें मृदुविरेचन करानेकेलिये ये योग अच्छे है. जैसे—अमलतास अथवा निसोथके कल्क और द्राक्षाके रस, तिल्वकलोधके क्वाथ और विदारीकन्दके स्वरसके साथ घृतको सिद्ध करे। यह घृत युक्तिपूर्वक देकर क्षीणदेहवाले पुरुषको शोधन कराना चाहिये ॥ १५१ ॥

पित्ते कफे धातुषु च क्षीणेषु क्षयकासवान्।
घृतं कर्कटकीक्षीरद्विबलासाधितं पिबेत् ॥५२॥

यदि क्षयकी खांसीमें पित्त और कफ क्षीण होगये हों तथा अन्य धातुयें भी क्षीण हों तो काकड़ासिंगी, बला, अतिबला और दूध इनसे सिद्ध कियेहुए घृत क्षयकी खांसीवाले मनुष्यको पीनाचाहिये ॥ १५२ ॥

विदारीभिः कदम्बैर्वा तालसस्यैश्च साधितम्।
घृतं पयश्च मूत्रस्य वैवर्ण्ये कृच्छ्रनिर्गमे ॥ ५३॥

यदि क्षयकी खांसीमें मूत्रकी विवर्णता होजाय अथवा मूत्र कष्टसे उतरे तो विदारी आदि गणसे अथवा धाराकदम्बआदि या तालके कोमलफलोंसे सिद्ध कियेहुए घृत और दूध पिलानेचाहिये ॥ १५३ ॥

शूने सवेदने मेढ्रे पायौ सश्रोणिवंक्षणे।
घृतमण्डेन लघुनाऽनुवास्यो मिश्रकेण वा ॥५४॥

यदि ऐसे रोगीके शिश्नेन्द्रियमें, गुदामें, श्रोणीमें और वंक्षणोंमें सूजन और शूल होजाय तो घृतके हलके मंडसे अथवा औषधिसिद्ध घृत और तैलसे अनुवासनबस्ति करना चाहिये ॥ १५४ ॥

जाङ्गलैः प्रतिभुक्तस्य वर्तकाद्या बिलेशयाः।
क्रमशःप्रसहास्तद्वत्प्रयोज्याःपिशिताशिनः५५।
औष्ण्यात्प्रमाथिभावाच्च स्रोतोभ्यश्च्यावयंतिते
कफं शुद्धैश्च तैःपुष्टिं कुर्यात्सम्यग् वहन् रसः५६

जो मांसाहारी मनुष्य हों उनको अनुवासन करनेके अनन्तर हरिण आदि जांगलजीवोंका मांसरस देवे तथा बटेराआदि बिलेशय और प्रसहजीवोंका मांस देना चाहिये. ये मांस उष्ण और प्रमाथी होनेके कारण स्रोतोंमेसे कफको पतला करके निकाल देतेहै. तब स्रोतोंके शुद्धहोजानेसे वे स्रोत रसको यथार्थ वहन करते हुए शरीरको यथार्थ पुष्ट करदेते हैं ॥ १५५ ॥ १५६॥

चविकात्रिफलाभार्गीदशमूलैःसचित्रकैः ॥५७॥
कुलत्थपिप्पलीमूलपाठाकोलयवैर्जले।
श्रृतैर्नागरदुःस्पर्शापिप्पलीशठिपौष्करैः॥५८॥
पिष्टैः कर्कटश्रृङ्ग्या च समैः सर्पिर्विपाचयेत्।
सिद्धेऽस्मिंश्चूर्णितौ क्षारौ द्वौ पञ्चलवणानि च।
दत्वा युक्त्या पिबेन्मात्रां क्षयकासनिपीडितः॥

चव्य, हरड, बहेडा, आमला, दशमूलकी दश-औषधियें, चित्रक, कुलथी, पिप्पलीमूल, पाठा, बेर, (उन्नाव) और यव इन सबको १६ गुने जलमें पकाकर काथ बनावे तथा सोंठ, जवासा, पीपल, कचूर, पोकरमूल और काकडासिंगी इन सबको सम भाग लेकर कल्क बनावे इस कल्क और काथसे घृतपाकविधिके अनुसार घृतको सिद्ध करे इस घृतके सिद्ध होजानेपर इसमें जवाखार और सज्जीखार तथा पांच नमकोंका चूर्ण बुरकाकर युक्तिपूर्वक घृतकी मात्राका पानकरे यह घृत क्षयकी खांसीसे पीड़ित मनुष्यको विशेष लाभकारी होताहै ॥ १५७-१५९ ॥

कासमर्दाभयामुस्तापाठाकट्फलनागरैः।
पिप्पल्या कटुरोहिण्या काश्मर्याः स्वरसेन च॥
अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं क्षीरद्राक्षारसाढके ॥
पचेच्छोषज्वरप्लीहसर्वकासहरं शिवम् ॥ १६१॥

कासमर्द, हरीतकी, नागरमोथा, पाठा, कायफल, पीपल, कुटकी और काश्मरीका स्वरस ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर कल्क बनावे इस कल्कमें १ सेर घृत, २ सेर द्राक्षाका रस और २ सेर दूध मिलाकर घृत सिद्धकरे. इस घृतके पीनेसे शोष, ज्वर प्लीहा और सब प्रकारकी खांसी दूर होती है तथा यह घृत कल्याणकारी है ॥ १६० ॥ १६१ ॥

वृषव्याघ्रीगुडूचीनां पत्रमूलफलाङ्कुरान्।
रसकल्कैर्घृतं पक्वं हन्ति कासज्वरारुचीः१६२॥

बांसा, कटेली और गिलोय इन तीनोंके पत्र, मूल फल अंकुरादि पंचांग लेकर इनके रस और कल्कसे घृतको सिद्ध करे ये घृत खांसी ज्वर और अरुचिको दूर करदेता है ॥ १६२ ॥

द्विगुणे दाडिमरसे सिद्धं वा व्योषसंयुतम्१६३
पिबेदुपरि भुक्तस्य यवक्षारघृतं नरः।
पिप्पलीगुडसिद्धं वा छागक्षीरयुतं घृतम्१६४

अथवा त्रिकटुके कल्क और दोगुने दाडिमके रसके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत यवक्षारका चूर्ण मिलाकर भोजनके उपरान्त पीवे. अथवा पिप्पली और गुडका कल्क और बकरीका दूध मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत भी भोजनोत्तर पीनेसे खांसी ज्वर और अरुचिको दूर करताहै ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

एतान्यग्निविवृद्ध्यर्थं सर्पींषि क्षयकासिनाम्।
स्युर्दोषबद्धकण्ठोरःस्रोतसां च विशुद्धये१६५॥

ये ऊपर कहेहुए घृत क्षयकी खांसीवालोंकी जठराग्निको बढानेके लिये तथा दोषोंसे बद्धकंठ और छातीके स्रोतोंको शुद्ध करनेके लिये परमोत्तमकहे हैं १६५

प्रस्थोन्मिते यवक्काथे विंशतिर्विजयाः पचेत् ।
स्विन्नामृदित्वातास्तस्मिन्पुराणात्षट्पलंगुडात्
पिप्पल्या द्विपलं कर्षं मनोह्वाया रसाञ्जनात् ।
दत्त्वार्धाक्षं पचेद्भूयः स लेहः श्वासकासनुत्१६७

एक सेर जवोंके काथमे बीस बड़ी बड़ी विजया हरडोंको पकावे । इन पकीहुई हरडोंको इसी जलमें रगड़कर इसमें ६ पल पुराना गुड़ मिलावे फिर दो पल पीपल और एक तोला मनसिलकी भस्म और आधा-तोला रसौत मिलाकर फिर पकावे अवलेह तैयार होनेपर इस अवलेहको चाटनेसे श्वास और खांसी दूर होतीहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

श्वाविधां सूचयो दग्धाः सघृतक्षौद्रशर्कराः ।
श्वासकासहरा बर्हिपादौ वा मधुसर्पिषा ॥
एरण्डपत्रक्षारं वा व्योषतैलगुडान्वितम्१६८॥

सेहकी सूचियें (श्वाविधनामक जन्तुके तकवे) भस्मकर घृत शहद और खांडमें मिलाकर चाटनेसे अथवा मोरके पावोंको भस्मकर मधु घृतमें मिलाकर चाटनेसे श्वास और खांसी दूर होते है ॥ १६८ ॥

लेहयेत् क्षारमेवं वा सुरसैरण्डपत्रजम् ।
लिह्यात् त्र्यूषणचूर्णं वा पुराणगुडसर्पिषा१६९

इसी प्रकार एरंडके पत्रोंका क्षार त्रिकटुतेल और गुडमे मिलाकर चाटनेसे अथवा तुलसी और एरण्डके पत्रोंकी भस्म त्रिकटुतैल और गुड़ मिलाकर चाटनेसे अथवा त्रिकटुका चूर्ण पुराने गुड़ और घृतमें मिलाकर चाटनेसे श्वास और खांसी दूर होती है ॥ १६९॥

पद्मकं त्रिफला व्योषं विडङ्गं देवदारु च १७०
बला रास्ना च तच्चूर्णं समस्तं समशर्करम् ।
खादेन्मधुघृताभ्यां च लिह्यात्कासहरं परम ॥
तद्वन्मरिचचूर्णं वा सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥१७१॥

अथवा पद्मकाष्ठ, हरड, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग, देवदारु, बला और रास्ना इन सबको समान भागलेकर चूर्ण बनावे इस चूर्णके समान खांड मिलावें इसको मधु और घृतमें मिलाकर चाटे तो यह खांसीको निवृत्तकरनेमें परमोत्तम योग है । इसी प्रकार कालीमिर्चका चूर्ण मधु घृत और खांडमें मिलाकर चाटनेसे खांसीको दूरकरता है ॥ १७० ॥ १७१ ॥

पथ्याशुण्ठीघनगुडैर्गुटिकां धारयेन्मुखे ।
सर्वेषु श्वासकासेषु केवलं वा बिभीतकम् १७२

हरीतकीका छिल्का, सोंठ, नागरमोथा और गुड इनकी बनायीहुई गोली मुखमें रखकर चूसनेसे श्वास और खांसी दूर होते हैं। इसी प्रकार केवल बहेडेका छिल्का मुँहमें रखकर रस चूसनेसे भी सब प्रकारके श्वास खांसी दूर होते है ॥ १७२ ॥

पत्रकल्कं घृतभृष्टं तिल्वकस्य सशर्करम् ।
पेयावोत्कारिका छर्दितृट्कासामातिसारनुत्१७३

तिल्वक लोधके पत्रोंके कल्कको घीमें भूनकर खावे अथवा इसीकी बनायीहुई पेया या पूडियें खावे तो छर्दी खांसी और अतीसार रोग निवृत्त होते हैं॥ १७३

कासनाशक यूष ।

कण्टकारीरसे सिद्धो मुद्गयूषः सुसंस्कृतः ।
सगौरामलकःसाम्लःसर्वकासभिषग्जितम् १७४

कटेलीके रसमें सिद्ध कियाहुआ मूंगका यूष, हींग सैंधवयुक्त और बड़े आमलेसे अम्लकर घृतमें भूनकर पीवे तो सब प्रकारकी खांसी निवृत्त होती है । यह यूष कासनाशक है ॥ १७४ ॥

वातघ्नौषधनिःक्काथे क्षीरं यूषान् रसानपि ।
वैष्किरान् प्रातुदान् बैलान् दापयेत्क्षयकासिने॥

इसी प्रकार वातनाशक औषधियोंके काथमें सिद्ध कियेहुए दूध, यूष अथवा विष्किर प्रतुद और बिलेशय पक्षियोंके मांसरस क्षयकी खांसीकी निवृत्तिके लिये देना चाहिये ॥ १७५ ॥

क्षतकासे च ये धूमाः सानुपाना निदर्शिताः ।
क्षयकासेऽपि ते योज्या वक्ष्यते यच्च यक्ष्मणि ॥
बृंहणं दीपनं चाग्नेः स्रोतसां च विशोधनम् ।
व्यत्यासात्क्षयकासिभ्यो बल्यं सर्वं प्रशस्यते ॥

क्षतकी खांसीमें जो द्विमेदा आदि धूमपान कहे है वे धूम उन्हीं अनुपानोंके साथ क्षयकी खांसीमें भी प्रयोग करने चाहिये तथा जो यक्ष्मारोगमें बृंहण अग्निको दीपनकरनेवाले और स्रोतोंको शुद्धकरनेवाले तथा बल-

कारक योग कहे हैं वे सब क्षयकी खांसीवालेको तथा अन्य बलकारकयोग क्षयकी खांसीवालेको युक्तिपूर्वक अविरोधी क्रमसे प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

संनिपातोद्भवो घोरः क्षयकासो यतस्ततः ।
यथा दोषबलं तस्य संनिपातहितं हितम्॥१७८

क्षयरोगमें खांसी त्रिदोषज होनेसे अत्यन्त घोर और हानिकारक होती है. इस कारण यथादोष बल विचारकर सन्निपातके चिकित्साके क्रमसे ही दोषोंके न्यूनाधिक्य पर विचारकर इस खांसीकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १७८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टांगहृदये चिकित्सास्थाने कासचिकित्सिते पं. रामप्रसादात्मज वैद्यशास्त्रि पं० शिवशर्म्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातः श्वासहिध्माचिकित्सितंव्याख्यास्यामः

अब हम श्वास और हिचकीकी चिकित्साको कथन करते है ।

श्वासहिध्मा यतस्तुल्यहेत्वाद्याः साधनं ततः १॥
तुल्यमेव–

क्योंकि श्वास और हिचकीके हेतुआदिक और चिकित्सा आदिक प्रायः तुल्य होते है । इस कारण उनका वर्णन एक ही अध्यायमें कहते हैं ॥ १ ॥

श्वास और हिचकीके पहले स्वेदनकर्म्मका गुण ।

–तदार्तं च पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत् ।
स्निग्धैर्लवणतैलाक्तं तैः खेषु ग्रथितः कफः॥२॥
सुलीनोऽपि विलीनोऽस्य कोष्ठं प्राप्तः सुनिर्हरः।
स्रोतसां स्यान्मृदुत्वं च मारुतस्यानुलोमता३॥

श्वास और हिचकीके रोगीको पहले स्वेदन करना चाहिये वे स्वेदन चिकने तथा लवण तैल करके युक्त करने चाहिये । जो प्रथम श्वासवाही छिद्रोंमें कफग्रथितहुआ लीनहुआ रहता है वह इन स्वेदनों द्वारा विलीन होकर कोष्ठमें प्राप्त होजानेसे निकालदेनेमें आसान होजाता है तथा स्रोत मृदु होजाते हैं और वायु अनुलोमन होजाती है इस कारण श्वास और हिचकी रोगमें प्रथम स्निग्धस्वेदन करना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

स्विन्नं च भोजयेदन्नं स्निग्धमानूपजै रसैः ।
दध्युत्तरेण वा दद्यात्ततोऽस्मै वमनं मृदु ॥४॥

जब स्वेदन होजाय तो इस रोगीको चिकना अन्न और अनूपसचारी जीवोंका मांसरस अथवा दहीका जल आदि देकर इसको मृदु वमन कराना चाहिये ॥४॥

वामकयोग ।

विशेषात्कासवमथुहृद्ग्रहस्वरसादिने ।
पिप्पलीसैन्धवक्षौद्रयुक्तं वाताविरोधि यत् ॥५॥

विशेषकर स्वेदन करनेके अनन्तर कास, वमन और हृद्रोग, श्वास और हिचकीवाले रोगीको वमन करानेमें पीपल, सेंधानमक और मधु मिलाकर मैनफलके क्काथसे वमन कराना चाहिये. परन्तु इस वमनमें जो वायुसे अविरोधी हो अर्थात् वमनानन्तर वात प्रकोप न करे ऐसी वस्तुओंका ही प्रयोग करना चाहिये ॥ ५ ॥

निर्हृते सुखमाप्नोति सकफे दुष्टविग्रहे।
स्रोतःसु च विशुद्धेषु चरत्यविहतोऽनिलः ॥६॥

जब यथार्थ वमन होकर दुष्टकफका संग्रह दूर हो जाता है तब स्रोतोंके विशुद्ध होजानेसे वायु अविहतगति होकर सुखसे सचार करता है और मनुष्य श्वासादिकके सुखपूर्वक गमनकरनेसे सुखी होता है ॥ ६ ॥

ध्मानोदावर्ततमके मातुलुङ्गाम्लवेतसैः।
हिङ्गुपीलुबिडैर्युक्तमन्नं स्यादनुलोमनम्।
ससैन्धवं फलाम्लं वा कोष्णं दद्याद्विरेचनम्७॥

यदि हिचकी और श्वासरोगमें आध्मान और उदावर्त तथा तमक, श्वास भी हो तो विजौरा नींबू, अम्लवेत, हींग, पीलु और विडनमक मिलाकर वायुको अनुलोमन करनेवाला भोजन करावे अथवा सेंधानमक और विजौरे आदिके रससे युक्त उष्ण विरेचन करावे जिससे वायु अनुलोमन होकर स्रोत शुद्ध होजाय ॥७॥

एते हि कफसंरुद्धगतिप्राणप्रकोपजाः ।
तस्मात्तन्मार्गशुद्ध्यर्थमूर्ध्वाधःशोधनं हितम्८

क्योंकि ये श्वास और हिचकी कफसे संरुद्धहुए प्राणवायुके प्रकोपसे उत्पन्न होते है। इसलिये प्राणकी गतिके मार्ग विशुद्ध करनेकेलिये स्निग्धोष्ण द्रव्योंसे वमन विरेचन कराना चाहिये ॥ ८ ॥

उदीर्यते भृशतरं मार्गरोधाद्वहज्जलम् ।
यथाऽनिलस्तथा तस्य मार्गमस्माद्विशोधयेत्९
अशान्तौ कृतसंशुद्धेर्धूमैर्लीनं मलं हरेत् ॥१०॥

जैसे मार्गके रोकदेनेसे बहनेवाला जल रुककर बहुत इकट्ठा होजाता है इसी प्रकार अपने मार्गके रुकनेसे वायुका भी विशेष प्रकोप होजाता है। इस कारण वात वहन करनेवाले स्रोतोंमें चिपटेहुए कफको स्वेदन कर वमन विरेचनद्वारा निकालदेना चाहिये। जिससे वायुके मार्ग स्वच्छ होजानेसे वह यथार्थ गतिसे वहन करने लगे।

यदि वमन विरेचनसे शुद्धदेह करदेने पर भी स्रोतोंमें लीनहुआ कफ नहीं निकले तो धूम्रपानद्वारा उस कफको निकालना चाहिये। कफके निकालनेवाले धूम्रपानके योग आगे कहते है ॥ ९ ॥ १० ॥

कफनाशक धूम्रपानके योग।

हरिद्रापत्रमेरण्डमूलं द्राक्षां मनःशिलाम् ।
सदेवदार्वलं मांसीं पिष्ट्वा वर्तिं प्रकल्पयेत्॥११॥
तां घृताक्तां पिबेद्धूमं यवान्वा घृतसंयुतान् ।
मधूच्छिष्टं सर्जरसं घृतं वा गुरु वाऽगुरु॥१२॥
चन्दनं वा तथा शृङ्गं वालान्वा स्नावान् गवाम्।
ऋक्षगोधाकुरङ्गैणचर्मशृङ्गखुराणि वा ॥ १३॥
गुग्गुलुं वा मनोह्वां वा शालनिर्यासमेव वा ।
शल्लकीं गुग्गुलुं लोहं पद्मकं वा घृतप्लुतम्१४

हलदी, पत्रज, एरंडकी जड़, द्राक्षा, मनशिल, देवदारु, हरिताल और जटामांसी इन सबको पीसकर बत्ती बनावे इस बत्तीको घीमें चिकनी करे धूमपान विधिसे धूम्रपान करे अथवा यवोंकी बत्तीबना घीमें चिकनीकर उनका धूमपान करे. अथवा मोम राल और घृत मिलाकर धूमपान करे. अथवा श्रेष्ठ भारी काली अगरका धूमपान करे. अथवा चन्दनका धूम पान करे अथवा गौके सींग अथवा गौके गरदनके नीचेके बालोंका धूमपान करे। अथवा ऋक्ष गोधा कुरंग और एण इनके चर्म या शृंग या खुरोंका धूमपान करे. अथवा गुग्गुलका धूमपान करे या मनशिलका धूम पान करे। अथवा रालका धूमपान करे अथवा शल्लकी गुग्गुल लोह और पद्मकाष्ठ इनको चूर्णकर घीमें भिगोकर धूमपान करे। इन धूमोंके पीनेसे स्रोतोंमें लीनहुआ कफ निकलकर स्रोत शुद्ध हो जाते हैं तब श्वासकी गति भी यथार्थ हो जाती है ॥ ११-१४ ॥

अवश्यं स्वेदनीयानामस्वेद्यानामपि क्षणम् ।
स्वेदयेत्ससिताक्षीरैः सुखोष्णस्नेहसेचनैः ॥१५॥
उत्कारिकोपनाहैश्च स्वेदाध्यायोक्तभेषजैः ।
उरःकण्ठं च मृदुभिःसामे त्वामविधिं चरेत्१६॥

स्वेदन करनेयोग्य मनुष्योंको तो अवश्य ही स्वेदन करना चाहिये परन्तु जो स्वेदन करनेके योग्य न हों तो उनके भी छाती और कंठादिको मृदु स्वेदनसे थोड़ी देर अवश्य स्वेदन करना चाहिये वह स्वेदन मिश्री दूध तैलादिको सुखोष्णकर सेचन करनेसे अथवा उत्कारिका और उपनाह आदिद्वारा छाती और कंठको मृदु स्वेदन करे ये स्वेदनके द्रव्य और विधि सूत्रस्थानके स्वेदाध्यायमें कहीहुई औषधियों और विधिसे करनी चाहिये यदि दोष साम हो तो आम पाचन करनेका यत्न करना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

अतियोगोद्धतं वातं दृष्ट्वा पवननाशनैः ।
स्निग्धै रसाद्यैर्नात्युष्णैरभ्यङ्गैश्च शमं नयेत्१७

यदि वमनविरेचनके अतियोगसे वायुका प्रकोप हो जाय तो वातनाशक चिकने रस आदि जो अत्यन्त उष्ण न हो वह पिलावे और वातनाशक तैलाभ्यङ्गादिसे वायुको शमन करे ॥ १७ ॥

अनुत्क्लिष्टकफास्विन्नदुर्बलानां हि शोधनात् ।
वायुर्लब्धास्पदो मर्मसंशोष्याशु हरेदसून्॥१८॥

जिन मनुष्योंके शरीरका कफ उत्क्लेशित न हुआ हो और उनको स्नेहन स्वेदनकर कफको कोष्ठमें विना लाये जो दुर्बलमनुष्योंको वमन विरेचन करादिये जांय तो उन दुर्बलमनुष्योंके शरीरमें वायु अधिक बलको प्राप्त होकर मर्मस्थानमें प्राप्त हो मर्मोंका शोषण

करता है । तब शीघ्र ही दुर्बलमनुष्यके प्राणोंको हर-लेता है ॥ १८ ॥

कषायलेहस्नेहाद्यैस्तेषां संशमयेदतः ।
क्षीणक्षतातिसारासृक्पित्तदाहानुबन्धजान् १९
मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिध्माश्वासानुपाचरेत् ।
कुलत्थदशमूलानां क्वाथे स्युर्जाङ्गला रसाः ।
यूषाश्च ॥ २० ॥–

जिन मनुष्योंके शरीरमें स्नेहन-स्वेदन द्वारा कफको उत्क्लेशित नहीं कियागया है या जो अतिक्षीण होनेसे वमन विरेचनके योग्य न हो उनके कषाय अवलेह और घृतादिकके योगसे हिचकी और श्वासको शमन करना चाहिये ।

जो मनुष्य क्षीण क्षत अतिसार रक्तपित्त और दाह-वाले हों ऐसे मनुष्योंके हिचकी और श्वासको मधुर स्निग्ध और शीतलगुणवाले द्रव्योंके योगसे शमन करे। तथा कुलत्थ और दशमूलके क्वाथमें सिद्ध किये जांगलजीवोंके मांसरस अथवा मूंगआदिके यूष देना हितकारी होता है ॥ १९ ॥ २० ॥

हिचकीनाशक पेया ।

–शिग्रुवार्ताककासघ्नवृषमूलकैः ।
पल्लवैर्निम्बकुलकबृहतीमातुलुङ्गजैः ॥ २१ ॥
व्याघ्रीदुरालभाशृङ्गीबिल्वमध्यत्रिकण्टकैः ।
पेया च चित्रकाजाजीशृङ्गीसौवर्चलैः कृता ॥
दशमूलेन वा कासश्वासहिध्मारुजापहा॥२२॥

मुहांजना, बैंगन, कसौंदी, बांसा, मूलियें, मूलीके पत्र, नीमके पत्र, कुलकके पत्र, बड़ीकटेलीके पत्र, बिजौरेके पत्र, कटेली, जवासा, काकड़ासिंगी, बेलकी गिरी और गोखरू इन द्रव्योंके क्वाथमें बनायीहुई पेया अथवा चित्रक, जीरा, काकड़ासिंगी और संचरनमक इनके क्वाथमें बनायीहुई पेया अथवा दशमूलके क्वाथमें बनायीहुई पेया श्वास, खांसी और हिचकीको दूरकर-नेवाली होती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

दशमूलशठीरास्नाभार्गीबिल्वर्द्धिपुष्करैः ॥ २३
कुलीरशृङ्गीचपलातामलक्यमृतौषधैः ।
पिबेत्कषायं जीर्णेऽस्मिन्पेयां तैरेव साधिताम् ॥

दशमूलकी दशऔषधियें, कचूर, रास्ना, भारंगी, बिल्व, ऋद्धि, पोकरमूल, काकड़ासिंगी, पीपल, भूमि-आंवला और गिलोय इन सब औषधोंसे सिद्ध किया-हुआ क्वाथ पीवे जब क्वाथ पचजाय तब इन्हीं द्रव्योंके क्वाथमें बनायीहुई पेया पीना चाहिये इससे श्वास और हिचकी शमन होते है ॥ २३ । २४ ॥

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गकुलत्थभुक् ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिहिध्माश्वासप्रशान्तये ॥ २५

शालिचावल, सांठीचावल, गोधूम, यव, मूंग और कुलथी इन अन्नोंका पथ्य खांसी, हृद्रोग, पार्श्वपीडा, हिचकी और श्वासकी शान्तिके लिये पेया, यूष अन्ना-दिमें देना चाहिये ॥ २५॥

सक्तून् वाऽर्काङ्कुरक्षीरभावितानां समाक्षिकान्।
यवानां दशमूलादिनिःक्वाथलुलितान् पिबेत्२६

प्रथम यवोंको आकके अंकुर और आकके दूधमें भावना दे । फिर इन यवोंको भूनकर सत्तू बनावे इन सत्तुओंको दशमूलसे सिद्धकियेहुए जलमें मिलाकर पीनेसे हिचकी और श्वास शमन होता है ॥ २६ ॥

अन्ने च योजयेत् क्षारं हिंग्वाज्यबिडदाडिमान्।
सपौष्करशठीव्योषमातुलुङ्गाम्लवेतसान् ॥ २७

हिचकी और श्वासरोगमें जवखार, हींग, घी, बिड-लवण, अनारदाना, पोकरमूल, कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपल, बिजौरा और अम्लवेतका चूर्ण मिलाकर यूष और अन्न देने चाहिये ॥ २७ ॥

दशमूलस्य वा क्वाथमथवा देवदारुणः ।
पिबेद्वा वारुणीमण्डं हिध्माश्वासीपिपासितः२८

हिचकी और श्वासमें प्यासकी निवृत्तिके लिये दश-मूलका क्वाथ अथवा देवदारुका क्वाथ अथवा वारु-णीका मंड पिलाना चाहिये ॥ २८ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलपथ्याजन्तुघ्नचित्रकैः ।
कल्कितैर्लेपिते रूढे निःक्षिपेद् घृतभाजने ॥
तक्रं मासस्थितं तद्धि दीपनं श्वासकासजित्२९

पीपल, पीपलामूल, हरड, वायविडंग और चित्रक इनके कल्कको किसी घीके पात्रमें लेपन करे जब वह लेप सूख जाय तो इस पात्रमें दहीका तक्र डालकर विधिवत् ढककर रखदेवे एक महीनेके अनन्तर इसको

पीवे तो यह अग्निको दीपन करता है और श्वास कासको जीतता है ॥ २९ ॥

पाठां मधुरसां दारु सरलं निशि संस्थितम् ॥३०॥
सुरामण्डेऽल्पलवणं पिबेत्प्रसृतिसंमितम् ।
भार्गीशुंठ्यौ सुखाम्भोभिः क्षारं वा मरिचान्वितम्
स्वक्काथपिष्टां लुलितां बाष्पिकां पाययेत वा ३१

पाठा, काश्मरी, देवदारु और सरलकाष्ठ इन सबका चूर्णकर सुरामंडमें डालकर रात्रिको रखदेवे. प्रातःकाल इसमें थोडासा लवण मिलाकर एक प्रसृतिप्रमाण पीवे. अथवा भारगी और सोंठके चूर्णको सुखोष्ण जलके साथ पीवे. अथवा जवाखार और मिर्चके चूर्णको सुखोष्ण जलसे पीवे अथवा हिंगुपत्रीके क्वाथमें हिंगुपत्रीके पत्रोंको पीसकर पीवे तो श्वास और हिचकीकी निवृत्ति होती है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

स्वरसः सप्तपर्णस्य पुष्पाणां वा शिरीषतः ।
हिध्माश्वासे मधुकणायुक्तः पित्तकफानुगे ३२॥

सप्तपर्णका स्वरस अथवा सिरसके फूलोंका रस, पीपल और मधुमें मिलाकर पित्त और कफयुक्त हिचकी तथा श्वासरोगमें चाटना चाहिये ॥ ३२ ॥

उत्कारिका तुगाकृष्णामधूलीघृतनागरैः ॥३३
पित्तानुबन्धे योक्तव्या पवने त्वनुबन्धिनि ।
श्वाविच्छशामिषकणा घृतशल्यकशोणितैः ३४
चतुर्गुणाम्बुसिद्धं वा पयः सगुडनागरम् ।
सुवर्चलादिसिद्धं वा तयोः शाल्योदनादनु ३५॥

पित्तके अनुबंधवाले श्वास और हिचकीमें वंशलोचन, पीपल, गेहूँका आटा, घी और सोंठ इनसे बनायी हुई उत्कारिकाका सेवन कराना चाहिये. यदि श्वास और हिचकीमें वायुका विशेष अनुबंध हो तो श्वावित् और शशेके मांस, पीपल, घृत और शल्यकके रक्तसे बनायी हुई उत्कारिका देवे. अथवा बकरीके दूधमें चार गुना जल मिलाकर सिद्धकरे उसमें गुड और सोंठ मिलाकर पीवे। यदि वातपित्त दोनोंका विशेष अनुबंध हो तो सुवर्चलाके रस आदिसे सिद्ध कियाहुआ दूध शालिचावलोंका भात खाकर पीवे ॥ ३३-३५ ॥

पिप्पलीमूलमधुकगुडगोश्वशकृद्रसान् ।
हिध्माभिष्यंदकासघ्नाँल्लिह्यान्मधुघृतान्वितान् ।

पिप्पलीमूल, मुलहठी, गुड और गोबरका रस इनको मधु घृतमें मिलाकर चाटनेसे हिचकी अभिष्यन्द और खांसी दूर होते है ॥ ३६ ॥

गोगजाश्ववराहोष्ट्रखरमेषाजविड्रसम् ।
समध्वेकैकशो लिह्याद्बहुश्लेष्माऽथवा पिबेत् ३७

जिसके श्वास या हिचकीमें कफका अधिक अनुबंध हो वह गौ, हस्ति, अश्व, वराह, उष्ट्र, खर, मेढा, बकरी इन जानवरोंमेंसे किसी एकके गोबरके रसको मधुमें मिलाकर चाटे तो कफकी अधिकतावाले श्वास आदि शमन होते हैं ॥ ३७ ॥

चतुष्पाच्चर्मरोमास्थिखुरशृङ्गोद्भवां मषीम् ।
तथैव वाजिगन्धाया लिह्याच्छ्वासी कफोल्बणः।

चतुष्पादजीवोंके चर्म, रोम, अस्थि, खुर और शृंग इनमेंसे किसीको दग्धकर बनायीहुई भस्म अथवा असगंधकी भस्म मधुमें मिलाकर चाटनेसे कफोल्बण श्वासरोग शमन होता है ॥ ३८ ॥

शठीं पुष्करधात्रीर्वा पौष्करं वा कणान्वितम् ।
गैरिकाञ्जनकृष्णां वा स्वरसं वा कपित्थजम् ३९
रसेन वा कपित्थस्य धात्रीसैन्धवपिप्पलीः ।
घृतक्षौद्रेण वा पथ्याविडङ्गोषणपिप्पलीः॥ ४०
कोललाजामलद्राक्षापिप्पलीनागराणि वा ।
गुडतैलनिशाद्राक्षाकणारास्नोषणानि वा ॥
पिबेद्रसाम्बुमद्याम्लैर्लेहौषधरजांसि वा ॥४१॥

कचूर, पोकरमूल और आंवले अथवा पोकरमूल और पीपल अथवा गेरू स्रोतोंजन और पीपल इनके चूर्णको घृत और मधुमें मिलाकर चाटे. अथवा कपित्थका स्वरस घृत मधुके साथ अथवा आवले सेंधानमक और पीपल कपित्थके रसके साथ अथवा हरीतकी वायविडंग गोलमिर्च और पीपल घृत और शहदके साथ चाटे. अथवा उन्नाव, धानकी खील, आवले, द्राक्षा पीपल और सोंठके चूर्णको घृत शहदके साथ चाटे। अथवा गुड़, तैल हलदी, द्राक्षा, पीपल, रास्ना और काली मिर्च मिलाकर चाटे अथवा श्वासनाशक लेहके

द्रव्योंका चूर्ण मांसरस अथवा उष्णजल या मद्य अथवा अम्ल रसके साथ पीवे तो कफप्रधान श्वासरोग शमन होता है ॥ ३९-४१ ॥

जीवन्तीमुस्तसुरसत्वगेलाद्वयपौष्करम् ॥४२॥
चण्डातामलकीलोहभार्गीनागरवालकम् ।
कर्कटाख्या शठी कृष्णा नागकेसरचोरकम्॥४३॥
उपयुक्तं यथाकामं चूर्णं द्विगुणशर्करम् ।
पार्श्वरुग्ज्वरकासघ्नं हिध्माश्वासहरं परम्॥४४॥

जीवन्ती, नागरमोथा, तुलसी, दालचीनी, छोटी-इलायची, बडी इलायची, पोकरमूल, चंडा, भूमिआंवला लोहभस्म, सोंठ,नेत्रवाला, काकडासिंगी, कचूर, पीपल, नागकेशर और चोरक इन सब द्रव्योंका चूर्ण दुगुनी खांड मिलाकर यथेच्छ खानेसे पार्श्वपीड़ा, ज्वर, खांसीको नष्ट करता है. तथा हिचकी और श्वासरोगको हरनेमें परमोत्तम औषधि है ॥ ४२-४४ ॥

शठी तामलकी भार्गी चण्डावालकपौष्करम् ।
शर्कराष्टगुणं चूर्णं हिध्माश्वासहरं परम् ॥४५॥

कचूर, भूमिआंवले, भारंगी, चडा, नेत्रवाला,पोकरमूल और दोगुनी खांड मिलाकर कियाहुआ चूर्ण हिचकी और श्वासके हरनेमें परम गुणकारी होता है ॥४५॥

तुल्यं गुडं नागरं च भक्षयेन्नावयेत वा।
लशुनस्य पलाण्डोर्वा मूलं गृञ्जनकस्य वा॥४६
चन्दनाद्वा रसं दद्यान्नारीक्षीरेण नावनम् ।
स्तन्येन मक्षिकाविष्ठामलक्तकरसेन वा ॥४७॥

गुड और सोंठ बराबर लेकर खानेसे अथवा नस्य-लेनेसे हिचकी और श्वासको शमन करता है. अथवा लहसन या प्याजके रसको अथवा गृञ्जन (लाल लहसुन) के रसको अथवा चंदनके रसको स्त्रीके दूधमें मिलाकर नस्य देनेसे अथवा मक्खीकी विष्ठा स्त्रीके दूधके साथ या लाखके रसके साथ नस्यदेनेसे हिचकी और श्वास शमन होते है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

कणासौवर्चलक्षारवयस्याहिङ्गुचोरकैः ।
सकायस्थैर्घृतं मस्तुदशमूलरसे पचेत् ।
तत्पिबेज्जीवनीयैर्वा लिह्यात्समधुसाधितम्॥४८॥

पीपल, संचरनमक, जवखार, हींग, चोरक और हरीतकी इनके कल्क तथा दहीके जल और दशमूलके क्काथसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीनेसे श्वास और हिचकी शमन होते हैं. अथवा जीवनीयगणके द्रव्योंके कल्क और क्काथसे सिद्ध कियाहुआ घृत मधुमें मिलाकर चाटनेसे श्वास और हिचकी शमन होजाते है ४८

तेजोवत्यभया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी ।
भूतिकं पौष्करं मूलं पलाशश्चित्रकःशठी॥४९॥
पटुद्वयं तामलकी जीवन्ती बिल्वपेशिका ।
वचा पत्रं च तालीसं कर्षांशैस्तैर्विपाचयेत्॥५०॥
हिङ्गुपादैर्घृतप्रस्थं पीतमाशु निहन्ति तत् ।
शाखानिलार्शोग्रहणीहिध्माहृत्पार्श्ववेदनाः॥५१॥

तेजोवन्ती, हरीतकी, कूठ, पीपल, कुटकी, कायफल, पोकरमूल, पलाश, चित्रक, कचूर, सेंधालवण, संचरलवण, भूमि आंवला, जीवन्ती, बहुत छोटा कचा बिल्व फल, वच, पत्रज और तालीसपत्र इनको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे. इसमें १ टंक हींग डाले इस कल्कसे १ सेर घीको सिद्धकरे यह घृत पान किया हुआ शाखावात, अर्श, ग्रहणी, हिचकी, हृद्रोग और पार्श्वपीड़ाको शीघ्र ही नष्ट कर देता है ॥४९-५१॥

अर्धांशेन पिबेत्सर्पिः क्षारेण पटुनाऽथवा ।
धान्वन्तरं वृषघृतं दाधिकं हपुषादि वा ॥५२॥

प्रमेहमें कहेहुए धन्वंतरिघृत, रक्तपित्तमें कहेहुए वांसाघृत, गुल्मरोगमें कहेहुए दाधिकघृत अथवा उदर-रोगमें कहेहुए हपुषादिघृत इन घृतोंमेंसे किसी एक घृतको घृतसे आधाभाग जवाखार अथवा लवण मिलाकर चाटनेसे हिचकी,श्वास, पार्श्वपीड़ा शाखावात, अर्श और ग्रहणी शमन होते है ॥ ५२ ॥

शीताम्बुसेकः सहसा त्रासविक्षेपभीशुचः ।
हर्षेर्ष्योच्छ्वाससंरोधा हितं कीटैश्च दंशनम्॥५३॥

जिस हिचकी और श्वासका कारण प्रतीत न हो और अचानक श्वास या हिचकीका वेग हो जाय ऐसे रोगीको शीतल जलसे सेचन करना अथवा त्रासदेना या उसके अंगोंको हिलाना अथवा भय या शोचकी

बात कहना, हर्षका उत्पन्न करना, थोडीदेरके लिये नाक बंदकर श्वासका रोकना तथा पिपीलिका आदिसे कटवाना ये सब उपाय अवस्थानुसार हिचकीको निवृत्त करनेके लिये तथा सहसा उत्पन्नहुए श्वासको शमन करनेकेलिये हितकारी होते है ॥ ९३ ॥

यत्किंचित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम् ।
तत्सेव्यं प्रायशो यच्च सुतरां मारुतापहम् ९४॥

जो द्रव्य कफवातनाशक उष्ण वायुको अनुलोमन करनेवाले या निरन्तर वायुको शमनकरनेवाले होते हैं प्रायः उन सबका सेवन करना श्वास और हिचकीको शमन करनेवाला होता है ॥ ९४ ॥

सर्वेषां बृंहणे ह्यल्पः शक्यश्च प्रायशो भवेत् ।
नात्यर्थं शमनेऽपायो भृशोऽशक्यश्च कर्षणे ।
शमनैर्बृंहणैश्चातो भूयिष्ठं तानुपाचरेत् ॥९५॥

क्योंकि सब प्रकारके श्वास और हिचकीवालोंको यदि बृंहण करनेसे कोई उपद्रव होजाय तो वह साध्य होसकता है और यदि शोधन करनेसे कोई उपद्रव होजाय तो वह उपद्रव प्रायः असाध्य होजाताहै इस कारण हिचकी और श्वासवालेको जहांतक होसके बृंहण और शमन उपायोंसे ही अच्छा करना चाहिये ९५

कासश्वासक्षयच्छर्दिहिध्माश्चान्योन्यभेषजैः ९६

खांसी, श्वास, क्षय, छर्दी और हिचकी ये सब परस्पर औषधियोंद्वारा शमन करने चाहिये.जैसे खांसीकी औषधिसे श्वासको भी लाभ होता है ऐसे ही श्वासरोग नाशक औषधि खांसीको शमन करती है तथा ऐसे ही क्षयरोगमें कहीहुई औषधियें खांसी और श्वासको शमन करती है। छर्दीरोगमें कहीहुई औषधि हिचकीको शमन करती है । इस प्रकार दोष दूष्य औषध काल आदिपर विचारकर श्वास और हिचकीकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ ९६ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत अष्टांगहृदयसंहितायां चिकित्सास्थानान्तर्गत हिध्माश्वासचिकित्सिते पं०शिवशर्मवैद्यशास्त्रिकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो राजयक्ष्मादिचिकित्सितं -
-व्याख्यास्यामः ।

अब हम राजयक्ष्मारोगकी चिकित्साका कथन करते हैं ।

बलिनो बहुदोषस्य स्निग्धस्विन्नस्य शोधनम् ।
ऊर्ध्वाधो यक्ष्मिणः कुर्यात्सस्नेहं यन्न कर्शनम् ॥ १

यदि यक्ष्मारोगवाला मनुष्य बलवान् हो और उसके शरीरमें दोषोंका संचय अधिक हो तो इस रोगीको प्रथम स्नेहन स्वेदन करके स्निग्ध और मृदु द्रव्योंद्वारा वमनविरेचन कराकर शुद्ध शरीर बनावे । परन्तु यह विशेष ध्यान रखना चाहिये कि यक्ष्मारोगवाला मनुष्य इन शोधनोंद्वारा कृश नहीं होना चाहिये ॥ १ ॥

राजयक्ष्मामें वमन ।

पयसा फलयुक्तेन मधुरेण रसेन वा ।
सर्पिष्मत्या यवाग्वा वा वमनद्रव्यसिद्धया ।
वमेत् ॥ २ ॥-

मैनफलके चूर्णयुक्त दूधसे अथवा मैनफलका चूर्ण मिलेहुए रससे अथवा वमन द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई यवागूमें घृत मिलाकर पिलावे और युक्तिपूर्वक वमन करावे २

राजयक्ष्मामें विरेचन ।

-विरेचनं दद्यात्त्रिवृच्छ्यामानृपद्रुमान् ।
शर्करामधुसर्पिर्भिः पयसा तर्पणेन वा ।
द्राक्षाविदारीकाश्मर्यमांसानां वा रसैर्युतान् ॥३

राजयक्ष्मावालेको यदि विरेचन देना हो तो निशोथ अथवा कालीनिशोथ अथवा अमलतासका गूदा, खांड, मधु, घृतमें मिलाकर दूधके साथ लेवे अथवा किसी तर्पण रसके साथ अथवा द्राक्षा, विदारीकन्द, काश्मरी और मांसोंके रसके साथ निशोथ आदिका चूर्ण लेवे तो उत्तम विरेचन होकर दोष शमन होजाता है और बलकी हानि नहीं होती ॥ ३ ॥

शुद्धकोष्ठस्य युञ्जीत विधिं बृंहणदीपनम् ॥ ४॥
हृद्यानि चान्नपानानि वातघ्नानि लघूनि च ।
शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गं समोषितम् ॥ ५॥

जब कोष्ठ शुद्ध होजाय तो शरीरको पुष्ट और अग्निको दीपन करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये। तथा हृदयको प्यारेलगनेवाले हलके और वातनाशक अन्नपानोंका सेवन कराना चाहिये। एवं शालिचावल, साँठीचावल, गेहूं, जव और मूंग इन अन्नोंको यथा विधि सेवन कराना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

आजं क्षीरं घृतं मांसं क्रव्यान्मांसं च शोषजित्।
काकोलूकवृकद्वीपिगवाश्वनकुलोरगम् ॥ ६ ॥
गृध्रभासखरोष्ट्रं च हितं छद्मोपसंहितम्।
ज्ञातं जुगुप्सितं तद्धि छर्दिषे न बलौजसे ॥७॥

बकरीका दूध, बकरीका घृत और बकरीका मांस तथा क्रव्यादजीवोंका मांस सेवन करना शोषरोगको नाश करता है।

अथवा काक, उल्लुक, भेडिया, हस्ती, गवय, घोड़ा, नकुल, बड़ा सांप, गृध्र, भास, खर और ऊंट इनके मांसोंसे सिद्धकियेहुए धृतादि युक्तिपूर्वक रोगीको बिना बतलाये देने चाहिये क्योंकि ये मांस निन्दित होनेसे रोगीको यदि इनका पता लगजाय तो वमन हो सकती है और उसके मनमें खेद होनेसे बल और ओजकी वृद्धि नहीं होती ॥ ६ ॥ ७ ॥

मृगाद्याः पित्तकफयोः पवने प्रसहादयः।
वेसवारीकृताः पथ्या रसादिषु च कल्पिताः॥८॥
भृष्टाः सर्षपतैलेन सर्पिषा वा यथायथम्।
रसिका मृदवःस्निग्धा मृदुद्रव्याभिसंस्कृताः।
हिता मौलककौलत्थास्तद्वद्यूषाश्च साधिताः॥९॥

राजयक्ष्मामें यदि पित्तकफकी अधिकता हो तो हरिण आदिके मांससे बनायेहुए। यदि वायुकी अधिकता हो तो प्रसहपक्षियोंके मांससे बनाये हुए वेसवार और मांसरसादि कल्पनाकर सरसोंके तेलमें छौंककर अथवा घृतमें छौंककर दोषानुसार देना चाहिये.

तथा सुन्दररसवाले मृदु स्निग्ध पदार्थ मधुर द्रव्योंसे बनायेहुए देना भी हितकारी होता है। इसी प्रकार बालमूली कुलथी आदिके बनायेहुए यूष घृतमें छोंककर देना हितकारी होता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम्॥१०॥
सदाडिमं सामलकं स्निग्धमाजं रसं पिबेत्।
तेन षड्विनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः॥११॥

पीपल, यव, कुलथी, सोंठ डालकर सिद्धकियाहुआ बकरेका मांसरस अनारके रस और आमलेसे अम्लकर घृतमें छौंककर पीवे तो इससे पीनस, श्वास, खांसी, मस्तकपीडा, स्वरभंग और अरुचि यक्ष्मारोगीके ये छः विकार शमन होजाते हे ॥ १० ॥ ११ ॥

पिबेच्च सुतरां मद्यं जीर्णं स्रोतोविशोधनम्।
पित्तादिषु विशेषेण मध्वरिष्टाः सवारुणीः१२॥

बहुत पुरानी द्राक्षादिसे बनीहुई मद्य युक्तिपूर्वक नित्य पीना यक्ष्मारोगीके स्रोतोंको शुद्धकर बल देती है। इसी प्रकार पित्तकी अधिकतावाले यक्ष्मारोगीको मध्वरिष्ट, द्राक्षारिष्ट, आसव और वारुणीमद्य हितकारी होती है ॥ १२ ॥

सिद्धं वा पंचमूलेन तामलक्याथवा जलम्।
पर्णिनीभिश्चतसृभिर्धान्यनागरकेण वा ॥
कल्पयेच्चानुकूलोऽस्य तेनान्नं शुचि यत्नवान्१३

अथवा पचमूलसे सिद्ध कियाहुआ जल या भूमिआंवलेसे सिद्ध कियाहुआ जल अथवा शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी और मुद्गपर्णीसे सिद्ध कियाहुआ जल अथवा धनिया और सोंठसे सिद्ध कियाहुआ जल यक्ष्मारोगीके दोषानुसार कल्पनाकर उसके अन्नपानमें प्रयोग करे। पवित्रतामें यत्न रखनेवाले मनुष्योंको विधि पूर्वक इन जलोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥

दशमूलेन पयसा सिद्धं मांसरसेन वा ॥ १४ ॥
बलागर्भं घृतं योज्यं क्रव्यान्मांसरसेन वा।
सक्षौद्रं पयसा सिद्धं सर्पिर्दशगुणेन वा ॥१५॥

दशमूलके क्काथ तथा कल्क और दूधसे सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा बलाके कल्क और मांसरससे सिद्ध किया हुआ घृत अथवा मांसाहारी जीवोंके मांसरस और बलाके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा बलाके कल्क और दशगुने दूधमें सिद्ध कियाहुआ घृत मधु मिलाकर सेवन करना राजयक्ष्मा रोगमें हितकारी होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च ।
पुष्कराह्वं शठीं कृष्णां व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ॥
नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम् ।
कल्कीकृत्य घृतं पक्वं रोगराजहरं परम् ॥१७॥

जीवन्ती, मुलहठी, द्राक्षा, इन्द्रयव, पोकरमूल, कचूर, पीपल, कटेली, गोखरू, खरेंटी, नीलकमल, भूमिआंवला, त्रायमाण और जवासा इनके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत राजयक्ष्माको हरनेमें परमोत्तम औषध है ॥ १६ ॥ १७ ॥

घृतं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरूषकैः ।
सपिप्पलीकं वैस्वर्यकासश्वासज्वरापहम् ॥१८॥

खजूर, द्राक्षा, मुलहठी, खालसा और पीपल इनके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीपलका चूर्ण मिलाकर चाटनेसे स्वरभंग, खांसी, श्वास और ज्वरको दूर करता है॥ १८ ॥

दशमूलशृतात्क्षीरात्सर्पिर्यदुदियान्नवम् ।
सपिप्पलीकं सक्षौद्रं तत्परं स्वरबोधनम् ॥१९॥
शिरःपार्श्वांसशूलघ्नं कासश्वासज्वरापहम् ।
पञ्चभिः पञ्चमूलैर्वा शृताद्यदुदियाद् घृतम् २०

दशमूलसे सिद्ध कियेहुए दूधसे बनायाहुआ घृत पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर चाटनेसे स्वरको परमोत्तम बनादेता है तथा शिरपीडा, पार्श्वपीडा, खांसी, श्वास और ज्वरको दूर करता है ।

इसी प्रकार पांच पचमूलोंसे सिद्ध कियेहुए दूधसे निकालाहुआ घृत पीपल और शहद मिलाकर चाटनेसे स्वरभंग मस्तकपीड़ा, श्वास, पार्श्वशूल, खासी और ज्वरको दूर करता है ॥ १९ ॥ २० ॥

पञ्चानां पञ्चमूलानां रसे क्षीरचतुर्गुणे ।
सिद्धं सर्पिर्जयत्येतद्यक्ष्मिणःसप्तकंबलम् ॥२१॥

पांच पचमूल, (लघुपचमूल, बृहत्पंचमूल, तृण-पचमूल आदि) के काथ और कल्कसे तथा चारगुने दूधसे सिद्ध कियाहुआ घृत राजयक्ष्मावाले रोगीके पीनस आदि सात उपद्रवोंको दूर करता है ॥ २१ ॥

पञ्चकोलयवक्षारषट्पलेन पचेद् घृतम् ।
प्रस्थोन्मितं तुल्यपयः स्रोतसां तद्विशोधनम् ॥
गुल्मज्वरोदरप्लीहग्रहणीपाण्डुपीनसान् ।
श्वासकासाग्निसदनश्वयथूर्ध्वानिलाञ्जयेत् ॥२३॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ और यवक्षार इन छः द्रव्योंको एक एक पल लेकर १ सेर घी और १ सेर दूध मिलाकर घृतको सिद्ध करे यह घृत स्रोतोंको शुद्ध करता है तथा गुल्म, ज्वर, उदररोग, प्लीहा, ग्रहणी, पाण्डुरोग, पीनस, श्वास, खांसी, मन्दाग्नि, सूजन और ऊर्ध्ववातको जीतता है २२ ॥ २३

रास्नाबलागोक्षुरकस्थिरावर्षाभुवारिणि ।
जीवन्तीपिप्पलीगर्भं सक्षीरं शोषजिद् घृतम् ।
अश्वगन्धाच्छृतात्क्षीराद् घृतं च ससितापयः॥

रास्ना, बला, गोखरू, शालपर्णी और पुनर्नवा इनके काथ तथा जीवन्ती और पीपलका कल्क एवं दूध मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत शोषरोगको दूर करता है ।

अथवा अश्वगन्धासे सिद्धकियेहुए दूधमेंसे निकला हुआ घृत मिश्री और दूध मिलाकर पीनेसे शोषरोगको जीतता है ॥ २४ ॥

साधारणामिषतुलां तोयद्रोणद्वये पचेत् ॥२५॥
तेनाष्टभागशेषेण जीवनीयैः पलोन्मितैः ।
साधयेत्सर्पिषः प्रस्थं वातपित्तामयापहम् २६॥
मांससर्पिरिदं पीतं युक्तं मांसरसेन वा ।
कासश्वासस्वरभ्रंशशोषहृत्पार्श्वशूलजित् ॥२७॥

पाच सेर साधारण बकरे आदिका मांस लेकर दो द्रोण जलमे पकावे जब आठवा भाग शेष रहे तो इस रसको छान लेवे इसमे जीवनीयगणकी प्रत्येक औषधिको एक एक पल लेकर उसका कल्क बना मिलावे. इस कल्क और काथसे एक सेर घृत सिद्ध करे इस घृतको पीनेसे वातपित्तके सब रोग दूर होते है इस मांस घृतको यदि मांस रसमे मिलाकर पीवे तो खांसी, श्वास, स्वरभग, शोष, हृदय और पार्श्वकी पीड़ा ये सब दूर होजाते है ॥२५-२७॥

एलाजमोदात्रिफलासौराष्ट्रीव्योषचित्रकान् ।
सारानरिष्टगायत्रीशालबीजकसंभवान् ॥ २८ ॥

भल्लातकं विडङ्गं च पृथगष्टपलोन्मितम् ।
सलिले षोडशगुणे षोडशांशस्थिते पचेत् २९॥
पुनस्तेन घृतप्रस्थं सिद्धे चास्मिन्पलानि षट् ।
तवक्षीर्याःक्षिपेत्त्रिंशत्सिताया द्विगुणं मधु ॥३०
घृतात्त्रिजातात्त्रिपलं ततो लीढं खजाहतम् ।
पयोनुपानं तत्प्राह्णे रसायनमयन्त्रणम् ॥ ३१ ॥
मेध्यं चक्षुष्यमायुष्यं दीपनं हन्ति चाचिरात् ।
मेहगुल्मक्षयव्याधिपाण्डुरोगभगन्दरान्॥३२॥

इलायची, अजमोदा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सौराष्ट्री, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक, जवाखार, नीम, कत्था, शालका सार, विजयसार, भिलावे और वायबिड़ंग ये सब आठ आठ पल लेवे इनको १६ गुने जलमें पकावे जब १६ हवां भाग रहजाय तो उस क्काथको छानकर उसमे एक सेर घृतको सिद्ध करे जब घृत सिद्ध होजाय तो उस घृतमें ६ पल वंशलोचन, ३० पल मिश्री, २ सेर मधु और ३ पल इलायची, दालचीनी और पत्रजका चूर्ण मिलावे इसको अच्छीप्रकार मिलादेनेके अनन्तर नित्य प्रातःकाल चाटकर ऊपरसे दूध पीवे तो यह विना किसी पथ्यादि यन्त्रणासे भी सेवन कीहुई रसायन बुद्धिको बढाती है नेत्रोंको बल देती है आयुवर्धक होती है और दीपन है तथा प्रमेह, गुल्म, क्षयरोग, पाण्डुरोग और भगन्दरको शीघ्रही दूर करदेती है ॥ २८-३२ ॥

ये च सर्पिर्गुडाःप्रोक्ताःक्षते योज्याःक्षयेऽपि ते ॥

जो क्षतरोगमें घृत और गुड़ कथन किये है उनका प्रयोग क्षयरोगमें भी हितकारी होता है ॥ ३३ ॥

त्वगेलापिप्पलीक्षीरीशर्कराद्विगुणाः क्रमात् ।
चूर्णिता भक्षिताः क्षौद्रसर्पिषा चाबले हिताः ।
स्वर्याःकासक्षयश्वासपार्श्वरुक्कफनाशनाः॥३४॥

दालचीनी, इलायची, पीपल, वंशलोचन और मिश्री ये उत्तरोत्तर क्रमसे दोगुनी लेनी चाहिये जैसे दालचीनी १ तोला, इलायची २ तोले, पीपल ४ तोले, वंशलोचन आठ तोले और मिश्री १६ तोले इनको पीसकर चूर्ण बनावे यह चूर्ण मधु और घृतमें मिलाकर चाटनेसे स्वरको बढ़ाताहै तथा खांसी, क्षय, श्वास, पार्श्वपीड़ा और कफको शमन करता है ॥३४॥

विशेषात्स्वरसादेऽस्य नस्यधूमादि योजयेत् ।
तत्राऽपि वातजे कोष्णं पिबेदौत्तरभाक्तिकम्३५

क्षयरोगवालेके स्वरभंगमें विशेषरूपसे नस्य और धूमादिका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३५ ॥

कासमर्दकवार्ताकीमार्कवस्वरसैर्घृतम् ।
साधितं कासजित्स्वर्यं सिद्धमार्तगलेन वा॥३६।

वायुके स्वरभंगमें कोष्ण कियाहुआ भोजनसे उत्तर घृतपान करना चाहिये (वह घृत कसौंदी, बड़ीकटेली और भृंगराजके रससे सिद्ध कियाहुआ होना चाहिये अथवा नीलपुष्पके सहचर (कालावांसा) से सिद्ध-कियाहुआ होना चाहिये इस घृतको भोजनोत्तर पान करनेसे खांसी और स्वरभंग दूर होते हैं ॥ ३६ ॥

बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् ॥ ३७ ॥

अथवा बेरीके पत्रोंका कल्क घीमें भूनकर सेंधा-नमक मिलाकर खानेसे स्वरभंग दूर होता है ॥ ३७ ॥

तैलं वा मधुकं द्राक्षापिप्पलीकृमिनुत्फलैः ।
हंसपाद्याश्च मूलेन पक्वं नस्तो निषेचयेत्॥३८॥

अथवा मुलहठी, द्राक्षा, पीपल, वायबिडंग, मैन-फल और हंसपदीकी जड़के कल्कसे सिद्ध कियाहुआ तेल नाकमें डालनेसे अर्थात् इस तेलकी नस्य लेनेसे भी स्वरभंग दूर होता है ॥ ३८॥

सुखोदकानुपानं च ससार्पिष्कं गुडौदनम् ।
अश्नीयात्पायसं चैवं स्निग्धं स्वेदं नियोजयेत्३९

गुड़ मिलेहुए जलमें बनायाहुआ घृतयुक्त अन्न (दलिया, मीठा, पलाव आदि) या खीरको खाकर ऊपरसे गर्मजल पीना चाहिये। इस प्रकार उष्णोदकके अनुपानसे स्निग्धोष्ण भोजन करना तथा स्नेहन स्वेदन करना भी स्वरभंगको शमन करता है ॥ ३९ ॥

पित्तोद्भवे पिबेत्सर्पिःशृतशीतपयोनुपः ।
क्षीरिवृक्षाङ्कुरक्काथकल्कसिद्धं समाक्षिकम् ।
अश्नीयाच्च ससर्पिष्कंयष्टीमधुकपायसम् ॥४०॥

पित्ताधिक स्वरभंगमें अंकुरोंके क्काथ और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत मिलाकर पीवे, अथवा घृत मिला

हुआ मुलहठीयुक्त दूधमें बनायाहुआ पायस खाकर ऊपरसे उबालकर ठंढा कियाहुआ दूध पीवे ॥ ४० ॥

बलाविदारिगन्धाभ्यां विदार्या मधुकेन च।
सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्यं स्वर्यमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥

बला, शालपर्णी, विदारीकंद और मुलहठी इनसे सिद्ध किया हुआघृत सेंधालवण मिलाकर नस्य लेनेसे राजयक्ष्माका स्वरभंग दूर होता है यह घृत स्वरको उत्तम बनाता है ॥ ४१ ॥

प्रपौण्डरीकं मधुकं पिप्पली बृहतीं बला।
साधितं क्षीरसर्पिश्च तत्स्वर्यं नावनं परम्।
लिह्यान्मधुरकाणां च चूर्णं मधुघृताप्लुतम्॥४२

प्रपौंडरीक, मुलहठी, पीपल, बड़ी कटेली और बलासे सिद्धकियेहुए घृत और दूधका नस्य लेना स्वरको बहुत उत्तम बनाता है. तथा मधुरगणके द्रव्योंका चूर्ण मधु घृत मिलाकर चाटनेसे भी स्वर उत्तम होता है ४२

पिबेत्कटूनि मूत्रेण कफजे रूक्षभोजनः ॥४३॥
कट्फलामलकव्योषं लिह्यात्तैलमधुप्लुतम्।
व्योषक्षाराग्निचविकाभार्गीपथ्यामधूनि वा॥४४॥

कफप्रधान स्वरभगमें त्रिकटुका चूर्ण गोमूत्रमें मिलाकर पीना चाहिये और रूक्ष भोजन करना चाहिये तथा कायफल, आंवले, सोंठ, मिरच और पीपलका चूर्ण तेल और मधुमें मिलाकर चाटना चाहिये। अथवा सोंठ, मिर्च, पीपल, जवखार, चित्रक, चव्य, भारंगी और हरड़का चूर्ण, मधुमें मिलाकर चाटना चाहिये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

यवैर्यवागूं यमके कणाधात्रीकृतां पिबेत्।
भुक्त्वाद्यात्पिप्पलीं शुण्ठीं तीक्ष्णं वा वमनं-
-भजेत् ॥ ४५ ॥

कफके स्वरभंगमें पीपल और आंवलेके क्वाथमें सिद्ध कीहुई यवोंकी यवागू, तैल और घृतमें सिद्धकर पीवे अथवा भोजन करनेके अनन्तर पीपल और सोंठको खावे अथवा तीक्ष्ण वमन करावे तो कफका स्वरभेद शमन होजाता है ॥ ४५ ॥

शर्कराक्षौद्रमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह।
पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतःस्वरः॥४६॥

यदि बहुत ऊंचा बोलनेके कारण स्वर बैठगया हो तो खांड और शहद मिलाकर मधुरगणसे सिद्धकिया हुआ दूध पीवे ॥ ४६ ॥

रुचिकारक पथ्य।

विचित्रमन्नमरुचौ हितैरुपहितं हितम्।
बहिरन्तर्मृजा चित्तनिर्वाणं हृद्यमौषधम्॥४७॥
द्वौ कालौ दन्तधवनं भक्षयेन्मुखधावनैः।
कषायैःक्षालयेदास्यं धूमं प्रायोगिकं पिबेत्॥४८॥

अरुचिमें सुस्वादु चित्रविचित्र आहारोंमें रुचिकारक हितकारी औषधोंका सेवन कराना चाहिये।

तथा उत्तम सुगंधित जलआदिसे स्नान, मार्जन आदिकर शरीरको शुद्ध रखना अन्तःकरणको प्रसन्न रखना हृदयको हितकारी रुचिकारक औषधि सेवन करना दोनों समय उत्तम और अनुकूल (दांतन) से दांतोंको साफ करना मुखके धोने योग्य द्रव्योंके क्वाथसे मुख धोना और प्रायोगिक धूमपान करना ये सब उपाय अरुचिको दूर करते है तथा रुचिको उत्पन्न करते है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

तालीसचूर्णवटकाः सकर्पूरसितोपलाः।
शशाङ्ककिरणाख्याश्च भक्ष्या रुचिकरा भृशम्॥

तालीसपत्रका चूर्ण मिलेहुए बड़े, कापूर, मिश्री और कर्पूर मिश्रित सुन्दर भक्ष्यपदार्थ रुचिकारक होते है ४९

वातादरोचके तत्र पिबेच्चूर्णं प्रसन्नया।
हरेणुकृष्णाकृमिजिद्द्राक्षासैन्धवनागरात्।
एलाभार्गीयवक्षारहिङ्गुयुक्तघृतेन वा।
छर्दयेद्वा वचाम्भोभिः ॥ ५० ॥-

वायुके अरोचकमें हरेणु, पीपल, वायविडग, द्राक्षा, सेंधानमक और सोंठका चूर्ण. प्रसन्नामद्यके साथ पीवे अथवा इलायची, भारंगी, यवक्षार और हींगसे युक्त कियाहुआ घृत पान करे अथवा वच मिले जलसे वमन करे ॥ ५० ॥

-पित्ताच्च गुडवारिभिः।
लिह्याद्वा शर्करासर्पिर्लवणोत्तममाक्षिकम्॥५१॥

पित्तके अरोचकमें गुड़ और जलके योगसे वमन करावे तथा खांड, घृत, लवण, दुग्धिका और सोनामक्खीकी भस्म मिलाकर चाटना चाहिये ॥ ५१ ॥

कफाद्वमेन्निम्बजलैर्दीप्यकारग्वधोदकम् ॥५२॥
पानं समध्वरिष्टाश्च तीक्ष्णाः समधुमाधवाः ।
पिबेच्चूर्णं च पूर्वोक्तं हरेण्वाद्युष्णवारिणा॥५३॥

कफकी अरुचिमें निम्बके जलके योगसे वमन कराना चाहिये तथा अजवायन और अमलतासका जल पिलाना चाहिये मधु मिलेहुए अरिष्ट तथा तीक्ष्ण मद्य या द्राक्षासे बनी मद्य पीना चाहिये तथा वातकी अरुचिमें कहाहुआ हरेणु आदि चूर्ण उष्णजलसे पीना चाहिये ॥ ५२–५३ ॥

एलात्वङ्नागकुसुमतीक्ष्णकृष्णामहौषधम् ।
भागवृद्धं क्रमाच्चूर्णं निहन्ति समशर्करम् ।
प्रसेकारुचिहृत्पार्श्वकासश्वासगलामयान् ॥५४॥

इलायची, दालचीनी, नागकेशर, कालीमिर्च, पीपल और सोंठ ये एक एक भाग वृद्धि क्रमसे लेकर अर्थात् इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग, नागकेशर ३ भाग, मरिच ४ भाग, पीपल ५ भाग और सोंठ ६ भाग इन सबका चूर्ण कर चूर्णके समानभाग खांड मिलाकर इस चूर्णका सेवन करे तो यह लालास्राव, अरुचि, पार्श्वपीड़ा, हृद्रोग, खांसी, श्वास और सम्पूर्ण गलके रोगोंको दूर करता है ॥ ५४ ॥

यवानीतित्तिडीकाम्लवेतसौषधदाडिमम् ५५॥
कृत्वा कोलं च कर्षांशं सितायाश्च चतुष्पलम् ।
धान्यसौवर्चलाजाजीवराङ्गं चार्धकार्षिकम् ५६।
पिप्पलीनां शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ।
चूर्णमेतत्परं रुच्यं ग्राहि हृद्यं हिनस्ति च ।
विबन्धकासहृत्पार्श्वप्लीहार्शोग्रहणीगदान् ॥५७

अजवायन, तिन्तडीक, अम्लवेत, सोंठ, अनारदाना और बेर इन सबको एक एक कर्ष लेवे मिश्री चार पल, धनियां, संचरनमक, जीरा और दालचीनी प्रत्येक आधा आधा कर्ष, छोटी पीपल एकसौ, गोल मिर्च दो सौ इन सबको मिलाकर चूर्ण करे यह चूर्ण रुचिकारक ग्राही हृदयको परमप्रिय होता है तथा विबंध, कास, हृद्रोग, पार्श्वपीड़ा, प्लीहा, अर्श तथा ग्रहणीरोग इन सबको दूर करता है ॥ ५५–५७ ॥

दीपन चूर्ण ।

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली कणा॥५८॥
यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्धभागिके ।
तद्द्रव्यं दीपनं चूर्णं कणाष्टगुणशर्करम्॥ ५९ ॥
कासश्वासारुचिच्छार्दिप्लीहहृत्पार्श्वशूलनुत् ।
पाण्डुज्वरातिसारघ्नं मूढवातानुलोमनम्॥६०॥

तालीसपत्र १ भाग, मिर्च २ भाग, सोंठ ३ भाग, मघपीपल ४ भाग, दालचीनी आधाभाग, इलायची आधाभाग और खांड १६ भाग इनका चूर्ण दीपन होता है तथा खांसी, श्वास, अरुचि, छर्दी, प्लीहा, हृदयशूल, पार्श्वशूल, पाण्डु ज्वर और अतीसारको नाश करता है तथा मूढवातको अनुलोमन करता है ५८-६०

अर्कामृताक्षीरजले शर्वरीमुषितैर्यवैः ।
प्रसेके कल्पितान्सक्तून् भक्ष्यांश्चाद्याद्बली वमेत्
कटुतिक्तैस्तथा शूल्यं भक्षयेज्जाङ्गलं पलम् ।
शुष्कांश्च भक्ष्यान् सुलघूँश्चणकादिरसानुपः ६२!

आकके दूध और गिलोयके जलमें रात्रिको यव भिगोकर रखदेवे सवेरे सुखाकर इन यवोंको भूनलेवे इन यवोंके सत्तु बनाकर या अन्य यवागू आदि बनाकर बलवान् अरुचिवाले रोगीको खिलाकर वमन करावे. अथवा कटुतिक्त रसवाले द्रव्योंके रसको पिलाकर वमन करावे अथवा जांगलजीवोंके मांसको शूलपर लगाकर भूजकर खिलावे तथा सूखे हलके भोजन कराकर चणक आदिके रसका अनुपान करावे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेन वायुः श्लेष्माणमस्यति ।
कफप्रसेकं तं विद्वान्स्निग्धोष्णैरेव निर्जयेत् ६३।

कफके अत्यन्त निकलनेसे वायु कफके ऊपर आक्षेप करता है इस कारण कफके अत्यन्त निकलनेके रोगमें स्निग्ध और उष्णद्रव्योंसे चिकित्सा करना चाहिये ६३

पीनसेऽपि क्रममिमं वमथौ च प्रयोजयेत्।६४॥

यही क्रम अधिक पीनसमें या वमनके रोगमें वायुकी वृद्धि रोकनेके लिये करना चाहिये अर्थात् प्रतिश्यायमें अधिक कफ निकलनेसे अथवा वमनमें अधिक कफ निकलनेसे भी वायुका प्रकोप होजाता है इस कारण

विद्वान् वैद्य इन रोगोंमें भी स्निग्ध और उष्ण चिकित्साकरे ॥ ६४ ॥

विशेषात्पीनसेऽभ्यङ्गान् स्नेहस्वेदांश्च शीलयेत् ।
स्निग्धानुत्कारिकापिण्डैः शिरःपार्श्वगलादिषु ।
लवणाम्लकटूष्णांश्च रसान् स्नेहोपसंहितान् ६५।

पीनसरोगमे विशेषकर अभ्यंग और स्निग्धस्वेदका प्रयोग करे तथा चिकनी उत्कारिका या पिंड बनाकर उनसे शिर पार्श्व और गल आदिमें सेक करना चाहिये तथा लवण, अम्ल कटु और उष्णस्वभाववाले द्रव्योंसे बनायेहुए रसोंको चिकनाकर उनसे स्वेदनकरे और उनका सेवनकरे ॥ ६५ ॥

शिरःशूलकी चिकित्सा।

शिरोंसपार्श्वशूलेषु यथादोषविधिं चरेत् ।
औदकानूपपिशितैरुपनाहाः सुसंस्कृताः ।
तत्रेष्टाः सचतुःस्नेहाः ॥ ६६ ॥–

क्षयमें शिरःशूल हो या पार्श्वशूल हो उनकी यथादोष चिकित्सा करना चाहिये शिरःशूल और अंसशूलमें उदकसंचारी तथा अनूपसचारी जीवोंके मांसकी पिष्टिको घृतादिमें चिकना करके और गरमकरके उपनाहस्वेद करना चाहिये। तथा घृत, तेल, वसा, मज्जा इनसे संस्कृत मांसोंमे उपनाहस्वेद करना चाहिये॥६६

–दोषसंसर्ग इष्यते ।
प्रलेपो नतयष्ट्याह्वशताह्वाकुष्ठचन्दनैः ।
बलारास्नातिलैस्तद्वत्ससर्पिर्मधुकोत्पलैः ॥६७॥

यदि दोदोषोंका ससर्ग हो तो तगर मुलहठी शतावरी कूठ और चन्दन इनका लेप करना चाहिये अथवा बला, रास्ना, तिल इनको पीसकर इनमें घृत, मधु और कमलके पुष्प मिलाकर लेप करे तो मस्तकपीडा शमन होती है ॥ ६७ ॥

पुनर्नवाकृष्णगन्धाबलावीराविदारिभिः ।
नावनं धूमपानानि स्नेहाश्चौत्तरभक्तिकाः ।
तैलान्यभ्यङ्गयोगीनि बस्तिकर्म तथा परम्६८

पुनर्नवा, शोभांजन, बला, शतावरी और विदारीकन्द इनके रस अथवा इनसे सिद्धकियेहुए तैलका नस्य लेना, इन पुनर्नवादिके कल्कसे बनाईहुई बत्तीका धूम पान करना अथवा इन द्रव्योंसे सिद्धकिये घृतको भोजनोत्तर पान करना, मस्तकपीडानाशकतैलोंका मर्दन करना तथा वस्तिकर्म करना ये सब मस्तकपीडाको दूरकरनेवाले उपाय हैं ॥ ६८ ॥

शृङ्गाद्यैर्वा यथादोषं दुष्टमेषां हरेदसृक् ॥६९॥

यदि मस्तकशूलमें इन सब उपायोंसे भी पीडा शमन न हो और किसी स्थानमें वात पित्त कफसे दूषित रक्त हो तो उसको शृंगी, तुम्बी या जोंक लगाकर निकाल देना चाहिये ॥ ६९ ॥

प्रदेहः सघृतैः श्रेष्ठः पद्मकोशीरचन्दनैः ।
दूर्वामधुकमाञ्जिष्ठाकेसरैर्वा घृतप्लुतैः ॥ ७० ॥

तथा पद्मकाष्ठ, खस और चन्दनके कल्कका घृत मिलाकर लेप करना अथवा दूर्वा, मुलहटी, मंजीठ और नागकेसरको घृत मिलाकर लेप करना मस्कक पीडा या अंसपीड़ाको शमन करता है ॥ ७० ॥

वटादिसिद्धतैलेन शतधौतेन सर्पिषा ।
अभ्यङ्गः पयसा सेकः शस्तश्च मधुकाम्बुना७१

वटादिगणसे सिद्ध कियेहुए तैल अथवा १०० वार धोयेहुए घृतसे अभ्यंग करना तथा दूध या मुलहठीके काथसे सेचन करना भी मस्तकपीड़ा और असपीडाको शमन करता है ॥ ७१ ॥

राजयक्ष्माकी चिकित्सा।

प्रायेणोपहताग्नित्वात्सपिच्छमतिसार्यते ।
तस्यातिसारग्रहणीविहितं हितमौषधम् ॥७२॥

जिन क्षयरोगियोंकी अग्नि उपहत होनेके कारण पिच्छायुक्त अतीसार होगये हों उन रोगियोंकी अतीसार और सग्रहणी रोगमें कहीहुई चिकित्साके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये॥ ७२ ॥

पुरीषं यत्नतो रक्षेच्छुष्यतो राजयक्ष्मिणः ।
सर्वधातुक्षयार्तस्य बलं तस्य हि विड्बलम्७३

राजयक्ष्माके कारण सूखतेहुए मनुष्यके मलकी विशेष रक्षा करना चाहिये क्योंकि सब धातुओके क्षय होनेसे उसका बल केवल मलके बलके आश्रित ही होता है इस कारण यक्ष्मावालेके मलजनित बलकी विशेष रक्षा करना चाहिये ॥ ७३ ॥

मांसमेवाश्नतो युक्त्या मार्द्वीकं पिबतोऽनु च ।
अविधारितवेगस्य यक्ष्मा न लभतेऽन्तरम्॥७४॥

यक्ष्मारोगवाला मनुष्य यदि युक्तिपूर्वक मांस अथवा मांसवर्धक द्रव्योंको खाताहुआ और युक्तिपूर्वक द्राक्षाकी मद्यको पीता रहे तथा मलमूत्रादि वेगोंको विना रोके यथासमय त्यागता रहे तो यक्ष्मारोगको उसके शरीरमें मृत्युकारक अवकाश नहीं मिलता ॥ ७४ ॥

सुरां समण्डां मार्द्वीकमरिष्टान्सीधुमाधवान्॥७५॥
यथार्हमनुपानार्थं पिबेन्मांसानि भक्षयन् ।
स्रोतोविबन्धमोक्षार्थं बलौजःपुष्टये च तत्॥७६॥

यक्ष्मारोगीके स्रोतोंके विबन्धको खोलनेके लिये बल और ओजकी पुष्टिके लिये मांस भक्षण करताहुआ सुरा, सुरामण्ड मार्द्वीक (द्राक्षा) मद्य अरिष्ट सीधु और माधव मद्योंका अनुपान करता रहे॥७५॥७६॥

स्नेहक्षीराम्बुकोष्ठेषु स्वभ्यक्तमवगाहयेत् ।
उत्तीर्णं मिश्रकैः स्नेहैर्भूयोऽभ्यक्तं सुखैः करैः ॥
मृद्गीयात्सुखमासीनं सुखं चोद्वर्तयेत्परम्॥७७॥

यक्ष्मावाला रोगी बलवर्धक तैलोंका अभ्यंग कराकर तैल दूध और जलकी कोष्ठी भरवाकर उसमें अवगाहन करे ।

तथा अवगाहनके अनन्तर मिश्रकस्नेहोंसे पुनः मालिस करावे तथा इस रोगीको सुखपूर्वक बैठेहुए जिस प्रकार किंचित् भी कष्ट न हो उस प्रकार इसके शरीरपर स्नेहोंसे युक्त उद्वर्तन करे ॥ ७७ ॥

जीवन्तीं शतवीर्यां च विकसां सपुनर्नवाम् ।
अश्वगन्धामपामार्गं तर्कारीं मधुकं बलाम्॥७८॥
विदारीं सर्षपान् कुष्ठं तण्डुलानतसीफलम् ॥
माषांस्तिलांश्च किण्वं च सर्वमेकत्र चूर्णयेत्॥७९॥
यवचूर्णं त्रिगुणितं दध्ना युक्तं समाक्षिकम् ।
एतदुद्वर्तनं कार्यं पुष्टिवर्णबलप्रदम् ॥ ८० ॥

जीवन्ती, शतावरि, मजीठ, पुनर्नवा, अश्वगंधा, अपामार्ग, जयन्ती, मुलहठी, बला, विदारीकन्द, सरसों, कूठ, तंदुल, अलसी, उड़द, तिल और सुराबीज इन सबका एकत्र चूर्ण करे इस चूर्णसे तीनगुना यवोंका चूर्ण मिलावे । इसमें दही और मधु मिलाकर उद्वर्तन करने (उवटन मलने) से शरीरकी पुष्टि, वर्ण और बलकी वृद्धि होती है ॥ ७८-८० ॥

गौरसर्षपकल्केन स्नानीयौषधिभिश्च सः ।
स्नायादृतुसुखैस्तोयैर्जीवनीयोपसाधितैः॥८१॥
गन्धमाल्यादिकैर्भूषामलक्ष्मीनाशनीं भजेत् ।
सुहृदां दर्शनं गीतवादित्रोत्सवसंश्रुतिः ॥ ८२॥

श्वेत सरसोंके कल्कमें स्नान करनेके योग्य गंधद्रव्योंका चूर्ण मिलाकर, शरीरपर मालिस करनेके अनन्तर जीवनीयगणके सिद्धकिये हुए जलके साथ ऋतुके अनुसार सुखपूर्वक स्नान करे तथा गंध, पुष्प माल्य आदि शुद्ध वस्त्रादि धारण करना शरीरकी अलक्ष्मीका नाशक कान्तिजनक द्रव्योंका सेवन करना चाहिये तथा मित्रोंका दर्शन करना, गीत, वादन, उत्सव आदिके श्रवणसे चित्तको प्रसन्नरखना, ये सब क्षय रोगनाशक उपाय है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

बस्तयः क्षीरसर्पींषि मद्यमांससुशीलता ।
दैवव्यपाश्रयं तत्तदथर्वोक्तं च पूजितम् ॥८३॥

तथा दूध और घीकी वस्तियें करना दूध, घी, मद्य और मांसका सेवन करना भी क्षयको नाश करता है ।

एवं अथर्ववेदमें कहेहुए मंत्रोंसे यज्ञादि देवपूजन और दानादि करना भी क्षयरोगसे बचानेवाला होता है ॥ ८३ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदये चिकित्सास्थानान्तर्गतराजरोगचिकित्सिते पं. शिवशर्म्मवैद्यशास्त्रिकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽतश्छर्दिहृद्रोगतृष्णाचिकित्सितं-
-व्याख्यास्यामः ।

अब हम छर्दि, हृद्रोग और तृषारोगकी चिकित्साकी व्याख्या करते हैं ।

छर्दी (वमन) रोगकी चिकित्सा ।

आमाशयोत्क्लेशभवाः प्रायश्छर्द्यो हितं ततः ।

लङ्घनं प्रागृते वायोर्वमनं तत्र योजयेत् ॥ १ ॥
बलिनो बहुदोषस्य वमतः प्रततं बहु ॥ २ ॥

प्रायः सब प्रकारकी छर्दि (वमन) आमाशयमें दोषके उत्क्लेशित होनेसे उत्पन्न होती है इस कारण वायुकी छर्दिको छोड़कर सम्पूर्ण छर्दियोमें लंघन कराना हितकारी होताहै। यदि वमन करनेवाला रोगी बलवान् हो और उसके आमाशयमें दोषोंका विशेष संचय हो तथा वमनका वेगभी निरन्तर रहे तो उसको वामक औषध देकर वमन करादेना हितकारी होता है॥१॥२॥

छर्दिरोगमें विरेचन।

ततो विरेकं क्रमशो हृद्यं मद्यैः फलाम्बुभिः।
क्षीरैर्वा सह स ह्यूर्ध्वं गतं दोषं नयत्यधः।
शमनं चौषधं रूक्षदुर्बलस्य तदेव तु ॥ ३ ॥

तदनन्तर हृदयको हितकारी मद्य या द्राक्षाफल आदिके रसमें शीरखिस्त (यवनालशर्करा) या निशोथ आदि मिलाकर अथवा दूधमें शतपत्री (गुलाब) या शीरखिस्त आदि मिलाकर विरेचन करावे क्योंकि रेचनद्रव्य ऊपरको जानेवाले दोषको नीचेके मार्गसे निकाल देता है तब छर्दिरोग शमन होजाताहै। यह वमन विरेचनका क्रम बलवान् रोगीके दोषोंका सचय निकालनेके लिये कहाहै। यदि रोगी निर्बल और रूक्षकाय हो तो शमन औषध देकर ही छर्दिरोगकी निवृत्ति करना चाहिये रूक्ष और दुर्बल मनुष्यको वमन विरेचन नहीं कराना चाहिये ॥ ३ ॥

छर्दिरोगमें पथ्य।

परिशुष्कं प्रियं सात्म्यमन्नं लघु च शस्यते।
उपवासस्तथा यूषा रसाः काम्बलिकाः खलाः॥४
शाकानि लेहभोज्यानि रागखाण्डवपानकाः।
भक्ष्याःशुष्का विचित्राश्चफलानिस्नानघर्षणम्५
गन्धाः सुगन्धयो गन्धफलपुष्पान्नपानजाः।
भुक्तमात्रस्य सहसा मुखे शीताम्बुसेचनम्॥६॥

सब प्रकारकी छर्दीमें जब अन्न देनेका समय हो तो हलके सूखे और सात्म्य अन्न देना चाहिये। तथा छर्दिरोगमें उपवास कराना हितकारी होता है। ऐसेही उपवासके अनन्तर यूष, रस, कांबलिक, खल, शाक, लेह, राग, खाण्डव और पानक ये सब प्रकारके भक्ष्यपदार्थ हृदयको हितकारी और हलके देने चाहिये। इसी प्रकार अनार आदि फल भुनेहुए चावल आदि सूखे तथा सुस्वादु रुचिकर विचित्र पदार्थ भी देना हितकारी होता है।

तथा स्नान करना, सुगन्धित उबटन मलना, सुगंधका सूंघना, सुगन्धित पुष्प, फल, अन्न और सुगन्धितजलका सेवन तथा भोजनके अनन्तर सहसा शीतलजलका मुखपर सेचन करना यह सब छर्दिरोगमें हितकारी होते है ॥ ४—६ ॥

वातज छर्दिकी चिकित्सा।

हन्ति मारुतजां छर्दिं सर्पिः पीतं ससैन्धवम्।
किञ्चिदुष्णं विशेषेण सकासहृदयद्रवाम्॥ ७ ॥
व्योषात्रिलवणाढ्यं वा सिद्धं वा दाडिमाम्बुना।
सशुण्ठीदधिधान्येन शृतं तुल्याम्बु वा पयः॥८॥
व्यक्तसैन्धवसर्पिर्वा फलाम्लो वैष्किरो रसः।
स्निग्धं च भोजनं शुण्ठीदधिदाडिमसाधितम्।
कोष्णं सलवणं चात्र हितं स्नेहविरेचनम्॥९॥

सेन्धानमक मिलाया हुआ घृत किंचित् गर्मकरके पीवे तो वातजछर्दि शमन होजाती है तथा वातज कास और वायुसे दिलका बैठासाजाना भी शमन हो जाता है।

अथवा सोंट, मिर्च, पीपल, सेंधालवण, संचरलवण और विडलवणका चूर्ण मिलाकर पीयाहुआ घृत वातजछर्दि, कास और हृदयकी द्रवता (बैठनासा प्रतीत होने) को शमन कर देता है।

अथवा सोंठ और धनियेके कल्क तथा दाड़िमका जल और दधि मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत पीनेसे वातजछर्दि, कास और हृदयद्राव शमन होते है।

अथवा तुल्यजल मिलाकर पकायाहुआ दूध दूधमात्र शेष रहनेपर पीनेसे वातजछर्दि शमन होती है।

अथवा विष्किर पक्षियोंके मांसरसमे बहुतसा घृत और सेन्धालवण मिलाकर तथा अनारके रससे खट्टा कर इन मांसरसको किंचित् उष्ण पीवे तो वातज छर्दि शमन होती है।

वातजछर्दिमें सोंठ, दही, दाड़िम और सेंधालवण युक्त स्निग्ध तथा उष्ण भोजन देना हितकारी होता है। एवं स्निग्ध विरेचन कराना हितकारी होता है ७-९

पित्तज छर्दिकी चिकित्सा।

पित्तजायां विरेकार्थं द्राक्षेक्षुस्वरसैस्त्रिवृत्॥१०॥
सर्पिर्वा तैल्वकं योज्यं वृद्धं च श्लेष्मधामगम्।
ऊर्ध्वमेव हरेत् पित्तं स्वादुतिक्तैर्विशुद्धिमान्११
पिबेन्मंथं यवागूं वा लाजैः समधुशर्कराम्।
मुद्गजाङ्गलजैरद्यादृव्यञ्जनैः शालिषष्टिकम् १२॥
मृद्भृष्टलोष्टप्रभवं सुशीतं सलिलं पिबेत्।
मुद्गोशीरकणाधान्यैः सह वा संस्थितं निशाम्।
द्राक्षारसं रसं वेक्षोर्गुडूच्यम्बुपयोऽपि वा॥१३॥

पित्तकी छर्दिमें द्राक्षाके रस और गन्ने (इक्षु) के रससे निशोथका चूर्ण खाकर विरेचन करावे। अथवा तैल्वकघृत (तिल्वकलोध "गुलार्चीन" के कल्कसे सिद्धकिया घृत) पीकर रेचन करावे तो पित्तकी छर्दि शमन होजाती है।

यदि पित्तकी छर्दिमें कफ बढीहुई हो और पित्त कफस्थानगत होकर बढा हुआ हो तो मधुर और तिक्त द्रव्योंके योगसे वमन कराकर पित्तकफको ऊर्ध्व मार्गसे निकाल देवे तब वमनविरेचनसे शुद्ध काय पुरुषको मथ या यवागू अथवा लाजासे बनाया मन्थ मधु और मिसरी मिलाकर पिलावे।

पित्तकी छर्दिमें मुद्गके यूष (मूगकी दाल) या जांगलजीवोंके मांसरसके साथ शालीचावल या सांठी-चावलोंका भात खिलावे। तथा मिट्टीकी डलीको आगमें लालकर जलमें बुझावे इस जलको शीतल कर यह शीतलजल पिलावे। अथवा मूंग, खस, पीपल और धनियां पानीमें भिगोकर रातको रखदेवे सबेरे इस शीतल जलको छानकर पिलावे। अथवा द्राक्षाका रस या गन्नेका रस अथवा गिलोयका रस पिलावे अथवा शीतल दूध पिलावे तो पित्तकी छर्दि शमन होती है॥ १०-१३॥

जम्ब्वाम्रपल्लवोशीरवटशुङ्गावरोहजः॥१४॥
क्वाथः क्षौद्रयुतः पीतः शीतो वा विनियच्छति।
छर्दिं ज्वरमतीसारं मूर्च्छां तृष्णां च दुर्जयाम्१५

जामनके पत्र, आमके पत्र, खस, वटवृक्षके अंकुर और वटके शुङ्ग इन सबका शीतकषाय मधु मिलाकर पीनेसे छर्दि, ज्वर, अतीसार, मूर्च्छा और दुर्जय प्यास ये सब शमन होते है॥ १४॥ १५॥

धात्रीरसेन वा शीतं पिबेन्मुद्गदलाम्बु वा।
कोलमज्जसितालाजामक्षिकाविद्कणाञ्जनम्१६

मूंगके पत्रोंका शीतकषाय आमलेका रस मिलाकर पीवे अथवा केवल मूङ्गके पत्रोंके शीतकषाय पीवे तो पित्तजछर्दि शमन होती है। अथवा बेरकी मज्जा, मिश्री लाजा (धानकी खील) मक्षिकाकी बीठ, पीपल और अञ्जन (सुर्मा) इन सबको मधुमें मिलाकर चाटनेसे छर्दि शमन होजाती है अथवा हरीतकीका चूर्ण मधुमें मिलाकर चाटे या द्राक्षाको मधुमें मिलाकर चाटे या बेरका चूर्ण मधुमें मिलाकर चाटे तो पित्तकी छर्दि शमन होती है॥ १६॥

कफज छर्दिकी चिकित्सा।

लिह्यात्क्षौद्रेण पथ्यां वा द्राक्षां वा बदराणि वा।
कफजायां वमेन्निम्बकृष्णापिण्डतसर्षपैः १७॥
युक्तेन कोष्णतोयेन दुर्बलं चोपवासयेत्।
आरग्वधादिनिर्यूहं शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत्१८॥
मन्थान्यवैर्वा बहुशश्छर्दिघ्नौषधभावितैः।
कफघ्नमन्नं हृद्यं च रागाः सार्जकभूस्तृणाः१९
लीढं मनःशिलाकृष्णामरिचं बीजपूरकात्।
स्वरसेन कपित्थाच्च सक्षौद्रेण वमिं जयेत्॥
खादेत्कपित्थं सव्योषं मधुना वा दुरालभाम्२०

कफकी छर्दिमे नींबकी छाल, पीपल, मैनफल और सरसोंका कल्क कोष्ण जलसे पिलाकर वमन करा देना चाहिये। यदि रोगी दुर्बल हो तो उसको उपवास करादेना चाहिये। क्योंकि दुर्बलरोगी वमनके वेगको सहन नहीं कर सकता। तदनन्तर सूत्रस्थानमें कहेहुए आरग्वधादिगणका शीतकषाय मधु मिलाकर पिलावे॥

अथवा छर्दिनाशक द्रव्योंसे बहुत वार भावना दिये

यवोंके सत्तुओंका मन्थ बनाकर पिलावे तो कफज छर्दि शमन हो जाती है।

कफकी छर्दिमें कफनाशक यवादि अन्नोंको हृद्य (हृदयको प्रिय) बनाकर देना चाहिये। तथा तुलसी और भूस्तृण मिलाकर राग (शर्बतविशेष) बनाकर पीना भी छर्दिका शमन करता है। अथवा मनशिलकी भस्म, पीपल, मरिच और विजौरेका रस मधु मिलाकर चाटनेसे अथवा मनशिलकी भस्म, पीपल, मरिच और कपित्थका रस मधु मिलाकर चाटनेसे वमन रोग शमन होजाता है। अथवा त्रिकटु और मधु मिलाकर कपित्थफलको खावे या त्रिकटु और मधु मिलाकर जवासेका चूर्ण चाटे तो कफकी वमन शांत हो जाती है॥ १७-२०॥

द्विष्टज छर्दिकी चिकित्सा।

अनुकूलोपचारेण याति द्विष्टार्थजा शमम्॥२१॥

किसी द्वेषयुक्त पदार्थके खानेसे उत्पन्नहुई छर्दि अनुकूल उपचार करनेसे अर्थात् उसकी रुचिवाले हितकारी पदार्थोंके देने और अनुकूल विहारादिसे शमन हो जाती है॥ २१॥

कृमिजनित छर्दिकी चिकित्सा।

कृमिजा कृमिहृद्रोगगदितैश्च भिषग्जितैः।
यथास्वं परिशेषाश्च तत्कृताश्च तथामयाः॥२२॥

कृमियोंसे उत्पन्नहुई छर्दिमें कृमिजनित हृद्रोगके समान चिकित्सा करना चाहिये। अन्य भी जो कृमियोंसे होनेवाले विकार हों उनको भी कृमिजनित हृद्रोगमें कहीहुई चिकित्सा द्वाराही जीतना चाहिये॥२२

छर्दिप्रसङ्गेन हि मातरिश्वा
धातुक्षयात्कोपमुपैत्यवश्यम्।
कुर्यादतोऽस्मिन् वमनातियोग-
प्रोक्तं विधिं स्तम्भनबृंहणीयम्॥२३॥
सर्पिर्गुडा मांसरसा घृतानि
कल्याणकत्र्यूषणजीवनानि।
पयांसि पथ्योपहितानि लेहा-
श्छर्दिं प्रसक्तां प्रशमं नयन्ति॥ २४॥

छर्दिरोगके बराबर बनेरहनेसे धातुओंकी क्षीणता होजानेसे वायुका प्रकोप भी अवश्य ही होजाता है। इस कारण वमनके अतियोग होजानेसे जो उपद्रव हो जाते है उनको शमन करनेके लिये जो स्तम्भन और बृंहण चिकित्सा वमनातियोगमें कही है उसी विधिका पालन करना चाहिये।

तथा दोष दूष्यादि विचारकर सर्पि (घृत), गुड़, मांसरस, कल्याणघृत, त्र्यूषणादिघृत, जीवनीय द्रव्योंसे सिद्धकियेहुए घृत और दूधोंका पिलाना हितकारी द्रव्योंसे बनायेहुए लेह चटाना ये सब क्रियायें छर्दिके बढेहुए वेगको शमन करती है। तथा अन्य तंत्रोंमें कहेहुए स्रोताञ्जन, चन्दन, खस, बेरकी मज्जा, लाखका रस, मिसरी और जल तथा लाजाका चूर्ण मिलाकर बनायाहुआ मन्थका पीना बढीहुई छर्दिके वेगको शमन करता है। कोई इसमें लाक्षारसके स्थानमें खरगोशका रक्त मिलाते है॥ २३॥ २४॥

वातजहृद्रोगकी चिकित्सा।

हृद्रोगे वातजे तैलं मस्तुसौवीरतक्रवत्।
पिबेत्सुखोष्णं सविडं गुल्मानाहार्तिजिच्च तत्।
तैलं च लवणैः सिद्धं समूत्राम्लं तथागुणम्॥२५॥

वायुके हृद्रोगमे मस्तु, कांजी, तक्र और विड-लवण मिलाहुआ तिलतैल सुखोष्ण करके पीवे तो इस तैलके पीनेसे वातज हृद्रोग, गुल्म, आनाह और वात-पीड़ा शमन होती है। अथवा पांचलवण, गोमूत्र और काजी मिलाकर सिद्ध कियाहुआ तैल पीनेसे वातज गुल्म, आनाह और हृद्रोग शमन होजाता है॥२५॥

बिल्वादि तैल।

बिल्वं रास्नां यवान्कोलं देवदारुं पुनर्नवाम्॥२६॥
कुलत्थान्पञ्चमूलं च पक्त्वा तस्मिन्पचेज्जले।
तैलं तन्नावने पाने बस्तौ च विनियोजयेत्॥२७॥

बिल्व, रास्ना, यव, बेर, देवदारु, पुनर्नवा, कुलथी और पंचमूल इन सब द्रव्योंके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ तेल नस्यमें पीनेमे और वस्तिकर्ममें प्रयोग करनेसे वातज हृद्रोग, गुल्म और आनाह दूर होते है॥ २६॥ २७॥

शुंठ्यादिघृत ।

शुण्ठीवयस्थालवणकायस्थाहिङ्गुपौष्करैः ।
पथ्यया च शृतं पार्श्वहृद्रुजागुल्मजिद् घृतम् ॥

सोंठ, वयस्था (गिलोय) सौवर्चललवण, कायस्था (आमले), हींग, पोहकरमूल और हरीतकी इनके कल्क और क्राथसे सिद्ध किया घृत पार्श्वपीड़ा हृद्रोग और गुल्मको जीतनेवाला होता है । यहां सर्वांगसुन्दरामें कायस्थाका अर्थ काकोली और वयस्थाका अर्थ आमले किया है ॥ २८ ॥

सौवर्चलादि घृत. ।

सौवर्चलस्य द्विपले पथ्यापञ्चाशदन्विते ।
घृतस्य साधितःप्रस्थो हृद्रोगश्वासगुल्मजित् २९

सौवर्चल (संचर) लवण दो पल और सुन्दर हरड़ें पचास (५०) इनका कल्क कर उस कल्कसे एक सेर घृत सिद्ध करे इस घृतके पीनेसे हृद्रोग श्वास और गुल्म शमन होजाते हैं ॥ २९ ॥

हृदयकी पीडाकी चिंकित्सा ।

पुष्कराह्वशठीशुण्ठीबीजपूरजटाभयाः ।
पीताःकल्कीकृताःक्षारघृताम्ललवणैर्युतः ३०॥
विकर्तिकाशूलहराःक्राथःकोष्णश्च तद्गुणः ।
यवानीलवणक्षारवचाजाज्यौषधैः कृतः ।
सप्तपर्णदारुबीजाह्वविजयाशठिपौष्करैः॥ ३१ ॥

पोहकरमूल, कचूर, सोंठ, विजौरेकी जड़ और हरीतकी इन सबका कल्क करके इस कल्कमें जवखार ,घृत, दाड़िमका रस और लवण मिलाकर पीवें तो हृदयमें होनेवाली कतरनकीसी पीड़ा और शूल दूर होते हैं । अथवा अजवायन, संचरनमक, जौखार, बच, जीरा, सोंठ, सप्तपर्ण, देवदारु, विजौरेकी जड़, हरीतकी, कचूर और पोहकरमूल इनका क्राथ किश्चित् उष्ण (सुहाता गर्म) पीवे तो हृदयमें होनेवाली कतरनकीसी पीड़ा और हृदयका शूल दूर होते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

पञ्चकोलशठीपथ्यागुडबीजाह्वपौष्करम् ।
वारुणीकल्कितं भृष्टं यमके लवणान्वितम् ।
हृत्पार्श्वयोनिशूलेषु खादेद्गुल्मोदरेषु च ॥ ३२॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कचूर, हरीतकी, गुड़, बिजौरेकी जड़ और पोहकरमूल इनको वारुणीमद्यमें रगडकर कल्क बनावे इसमें सेंधानमक मिलाकर तैल और घृतमें छौंककर खावे तो हृच्छूल, पार्श्वशूल, योनिशूल, गुल्म और उदररोग दूर होते है ॥ ३२ ॥

स्निग्धाश्चेह हिताःस्वेदाःसंस्कृतानि घृतानि च॥

पंचकोलादिसे सिद्ध कियेहुए घृत पान करना और स्निग्ध द्रव्योंसे स्वेदन करना भी हृदयके शूलको शमन करता है ॥ ३३ ॥

लघुना पञ्चमूलेन शुण्ठ्या वा साधितं जलम् ।
वारुणीदधिमण्डं वा धान्याम्लं वा पिबेत्तृषि ॥

हृदयके शूलमें यदि तृषा हो तो लघुपञ्चमूलसे सिद्ध कियाहुआ जल या सोंठसे सिद्ध किया जल, अथवा वारुणीमद्यका मण्ड, या दहीका मण्ड अथवा धान्योंकी कांजी पीना हितकारी होता है ॥ ३४ ॥

सायामस्तम्भशूलामे हृदि मारुतदूषिते ।
क्रियैषा ॥ ३५ ॥–

यदि वातसे दूषित हृदयमें आयाम (खिचाव) स्तम्भ और शूल हों तो यह उपरोक्त क्रियायें करनी चाहिये ॥ ३५ ॥

–सद्रवायामप्रमोहे तु हिता रसाः ।
स्नेहाढ्यास्तित्तिरिक्रौञ्चशिखिवर्तकऋक्षजाः ३६

यदि वातके हृद्रोगमें हृदयमें द्रवता (हृदयका बैठासा जाना) युक्त आयाम हो या हृदयकी धड़कनके साथ२ प्रमोह (बेहोशी) भी हो तो स्निग्ध रसोंका पिलाना हितकारी होता है तथा तित्तिरीका मांसरस अथवा क्रौंच पक्षीका मांसरस या मोर अथवा वटेर या ऋक्षका मांसरस बहुतसा घृत मिलाकर पिलाना चाहिये॥३६॥

बलातैलं सहृद्रोगः पिबेद्वा सुकुमारकम् ।
यष्ट्याह्वशतपाकं वा महास्नेहं तथोत्तमम् ॥३७॥

वातज हृद्रोगवालेको बलातैल पीना चाहिये अथवा सुकुमारघृत या मधुयष्टीके कल्कसे सौवार पकाया हुआ घृत अथवा महास्नेहको उत्तम मात्रासे पान करना चाहिये ॥ ३७ ॥

१ बीजाह्वः बीजसारं बीजपूरकमित्यन्ये । इत्यरुणदत्तः ।

महास्नेह।

रास्नाजीवकजीवन्तीबलाव्याघ्रीपुनर्नवैः।
भार्गीस्थिरावचाव्योषैर्महास्नेहं विपाचयेत्॥ ३८
दधिपादं तथाम्लैश्च लाभतः स निषेवितः।
तर्पणो बृंहणो बल्यो वातहृद्रोगनाशनः॥ ३९॥

रास्ना, जीवक, जीवन्ती, बला, कटेली, पुनर्नवा (सांठी) भारंगी, शालपर्णी, बच, सोंठ, मिर्च और पीपल इनके कल्क और चार भाग दही तथा कांजी आदि अम्लरस मिला कर सिद्ध किया घृत (अथवा तैल मेद, मज्जा) सेवन करनेसे शरीरको तृप्त और पुष्ट करता है बल बढाता है तथा वायुके हृदयरोगको नाश करता है॥ ३८॥ ३९॥

दीप्तेऽग्नौ सद्रवायामे हृद्रोगे वातिके हितम।
क्षीरं दधि गुडःसर्पिरौदकानूपमामिषम्॥ ४०॥
एतान्येव च वर्ज्यानि हृद्रोगेषु चतुर्ष्वपि।
शेषेषु स्तम्भजाडयामसंयुक्तेऽपि च वातिके।
कफानुबन्धे तस्मिंस्तु रूक्षोष्णामाचरेत्क्रियाम

यदि वायुके हृदयरोगवाले रोगीके हृदयमें हृदयद्रावके साथ २ हृदयमे खिचावसा प्रतीत होता हो और रोगीकी जठराग्नि बलवान् हो तो ऐसे रोगीको दूध दही, गुड, घृत और उदकसचारी मच्छली आदिका मांस देना हितकारी होता है।

परन्तु वायुके हृद्रोगको छोडकर अन्य चार प्रकारके ही हृदय रोगोंमें दूध, दही, गुड, घृत और जलसंचारी तथा अनूपसचारी जीवोंका मांस नहीं देना चाहिये।

यदि वायुके हृद्रोगमे भी स्तम्भ, जड़ता आदि कफके लक्षणोंका अनुन्बध हो तो वायुके हृद्रोगमें भी दूध, दही, गुड, घृत और अनूपसंचारी जीवोंके मांसादि नहीं देनाचाहिये। स्तम्भादियुक्त वातज हृद्रोगमे कफका अनुबन्ध होनेसे उसमें रूक्ष और उष्णक्रिया करना हितकारी होता है॥ ४०॥ ४१॥

पित्तके हृद्रोगकी चिकित्सा।

पैत्ते द्राक्षेक्षुनिर्यासासिताक्षौद्रपरूषकैः।
युक्तो विरेको हृद्यः स्यात्क्रमःशुद्धे च पित्तहा॥ ४२
क्षतपित्तज्वरोक्तं च बाह्यान्तःपरिमार्जनम्।
कट्वीमधुककल्कं च पिबेत्सासितमम्भसा॥ ४३॥

पित्तके हृदयरोगमें प्रथम द्राक्षारस, इक्षुरस, मिसरी, मधु और फालसेका रस इन द्रव्योंसे युक्त हृदयको हितकारी विरेचन करावे जब विरेचनसे कोष्ठ शुद्ध होजावे तब पित्तनाशक पेयादिक्रमका पालन करे। तथा क्षतरोगमें और पित्तज्वरमें जो आभ्यन्तर और बाह्य चिकित्सा कही है वह करना चाहिये। अथवा कुटकी और मुलहठीका कल्क मिसरी मिले जलके साथ पीवे॥ ४२॥ ४३॥

श्रेयसीशर्कराद्राक्षाजीवकर्षभकोत्पलैः॥ ४४॥
बलाखर्जूरकाकोलीमेदायुग्मैश्च साधितम्।
सक्षीरं माहिषं सर्पिः पित्तहृद्रोगनाशनम्॥ ४५॥

हरड, खांड, द्राक्षा, जीवक, ऋषभक, कमल, बला, खजूर, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा और महामेदा इनका कल्क और भैंसका दूध डालकर सिद्ध किया हुआ भैंसका घृत सेवन करनेसे पित्तका हृदयरोग नाश होजाता है॥ ४४॥ ४५॥

प्रपौण्डरीकमधुकबिसग्रन्थिकसेरुकाः।
सशुण्ठीशैवलास्ताभिः सक्षीरं विपचेद् घृतम्॥
शीतं समधु तच्चेष्टं स्वादुवर्गकृतं च यत्।
बस्तिं च दद्यात्सक्षौद्रं तैलं मधुकसाधितम् ४७

प्रपौण्डरीक, मुलहठी, कमलका कन्द, कसेरू, सोंठ, पानीका शैवाल इनका कल्क और चारगुणा दूध मिला मिलाकर सिद्ध किया घृत शीतल कर मधु मिलाकर खानेसे पित्तका हृदयरोग दूर होता है। ऐसे ही द्राक्षा आदि मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत पित्तके हृद्रोगको शमन करता है।

पित्तके हृद्रोगमें मुलहठीके कल्कसे सिद्ध किये तैलमें मधु मिलाकर वस्तिकर्म करना चाहिये॥ ४६॥ ४७॥

कफके हृदयरोगकी चिकित्सा।

कफोद्भवे वमेत्स्विन्नः पिचुमन्दवचाम्बुना।
कुलत्थधन्वोत्थरसतीक्ष्णमद्ययवाशनः॥ ४८॥

कफके हृद्रोगमें प्रथम स्वेदन करनेके अनन्तर नीमकी छाल और वचके काथमें मैनफल मिलाकर वमन करावे। फिर वमनसे शुद्ध होकर यवागु आदि क्रमका पालन करे। तदनन्तर कुलथीका यूष जांगल

जीवोंका मांसरस तीक्ष्ण मद्य और यवोंका अन्न सेवन करना चाहिये ॥ ४८ ॥

पिबेच्चूर्णं वचाहिङ्गुलवणद्वयनागरान् ।
सैलायवानीककणायवक्षारान् सुखाम्बुना॥४९॥
फलधान्याम्लकौलत्थयूषमूत्रासवैस्तथा ।
पुष्कराह्वाभयाशुण्ठीशठीरास्नावचाकणाः ५०

कफके हृद्रोगमें वच, भुनीहुई हींग, सेन्धानमक, संचरनमक, सोंठ, इलायची, अजवायन, पीपल और जवाखारका चूर्ण गर्म जलसे या त्रिफलेके जलसे अथवा कांजीसे या कुलथीके क्काथसे अथवा गोमूत्र या आसवके साथ पीवे तो कफका हृद्रोग शमन होता है ।

अथवा पोहकरमूल, हरीतकी, सोंठ, कचूर, रास्ना, बच और पीपलके चूर्णको गर्मजल, त्रिफलेके क्काथ, कांजी, कुलथीके यूष गोमूत्र और आसव इनमेंसे किसी एकके साथ पीवे तो कफका हृद्रोग शमन होता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

क्काथंतथाऽभयाशुण्ठीमाद्रीपीतद्रुकट्फलात्५१

अथवा हरीतकी, सोंठ, अतीस, दारुहलदी और कायफल इनका क्काथ पीनेसे कफका हृद्रोग शमन होता है ॥ ५१ ॥

क्काथे रोहीतकाश्वत्थखदिरोदुम्बरार्जुने ।
सपलाशवटे व्योषत्रिवृच्चूर्णान्विते कृतः ।
सुखोदकानुपानस्य लेहः कफविकारहा ॥५२॥

रोहीतक, अश्वत्थ, खदिर, गूलर, अर्जुन, पलाश और बट इन सब वृक्षोंकी छाल लेकर क्काथ करे फिर इस क्काथमें सोंठ, मिर्च, पीपल और निशोथका चूर्ण मिलाकर इसका अवलेह सिद्ध करे. इस अवलेहको उष्णजलके साथ खावे तो कफका हृद्रोग शमन हो जाता है ॥ ५२ ॥

श्लेष्मगुल्मोदिताज्यानिक्षारांश्चविविधान् पिबेत्

कफके गुल्मरोगमें कहेहुए घृत और क्षारोंका पान करनेसे भी कफका हृद्रोग शमन हो जाता है ॥ ५३॥

हृदयरोगोंमें रसायनप्रयोग ।

प्रयोजयेच्छिलाह्वं वा ब्राह्मं चात्र रसायनम् ॥
तथामलकलेहं वा प्राश्यं वाऽगस्तिनिर्मितम्५४

हृद्रोगमें शिलाजतुको सेवन करना चाहिये । तथा ब्राह्मरसायन अथवा आमलकरसायन या अगस्त्य रसायनका सेवन करना सम्पूर्ण हृद्रोगोंमें हितकारी होता है ॥ ५४ ॥

शूलकी चिकित्सा ।

स्याच्छूलं यस्य भुक्तेऽन्ने जीर्यत्यल्पं जरां गते ।
शाम्येत्सकुष्ठकृमिजिल्लवणद्वयतिल्वकैः ।
सदेवदार्वतिविषैश्चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत् ॥५५॥

जिस मनुष्यके भोजन करनेके अनन्तर अन्न जीर्ण होते समय शूल उत्पन्न होजाय और अन्नके यथार्थ जीर्ण होजानेके अनन्तर शूल शमन होजावे ऐसे मनुष्यको कूठ, वायविडंग, संचरनमक, सेंधानमक, तिल्वकलोध्र, देवदारु और अतीसका चूर्ण गर्मजलसे पीना चाहिये । इससे यह विकार शमन हो जाताहै ५५

यस्य जीर्णेऽधिकं स्नेहैः स विरेच्यः फलैः पुनः।
जीर्यत्यन्ने तथा मूलैस्तीक्ष्णैः शूले सदाधिके५६

जिस मनुष्यके कियेहुए आहारके जीर्ण हो जाने पर अधिक शूल उत्पन्न हो उसको रेचनकर्ता द्रव्योंसे सिद्धकिये घृतों या एरण्ड तैलादि स्निग्ध द्रव्योंसे विरेचन करावे ।

जिस पुरुषके अन्न जीर्ण होते समय शूलकी अधिकता हो उसको त्रिफला, अमलतास, कालादाना आदि रेचक फलोंके योगसे रेचन कराना चाहिये ।

जिसके अन्न जीर्ण या अजीर्णका कोई समय न बचाकर बराबर शूलकी अधिकता रहे उसको इन्द्रायण, दन्ती और निशोथ आदि मूलद्रव्योंसे रेचन कराना चाहिये ॥ ५६ ॥

प्रायोऽनिलो रुद्धगतिः कुप्यत्यामाशयं गतः ।
तस्यानुलोमनं कार्यं शुद्धिलङ्घनपाचनैः॥५७॥

प्रायः जब वायु रुद्धगति होकर आमाशयमें प्रकोपको प्राप्त होता है तब शूलादि उत्पन्न करता है इस कारण शोधन, लंघन और पाचनादिसे वायुको अनुलोमन कर देना ही शूलादिकोंकी श्रेष्ठ चिकित्सा है ॥५७॥

कृमिज हृद्रोगकी चिकित्सा ।

कृमिघ्नमौषधं सर्वं कृमिजे हृदयामये ॥५८॥

कृमिजनित हृद्रोगमें कृमिघ्न औषधियोंद्वारा सम्पूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५८ ॥

तृषाकी चिकित्सा।

तृष्णासु वातपित्तघ्नो विधिः प्रायेण युज्यते । सर्वासु शीतो बाह्यान्तस्तथा शमनशोधनम्५९

प्रायः सब प्रकारकी तृषामें वातपित्तघ्न विधिका प्रयोग करना चाहिये । तथा बाह्य और आभ्यन्तर शीतक्रियाका प्रयोग करना चाहिये और दोषतृष्णानुसार शमन और शोधन करना चाहिये ॥ ५९ ॥

दिव्याम्बु शीतं सक्षौद्रं तद्वद्भौमं च तद्गुणम् ॥ निर्वापितं तप्तलोष्टकपालसिकतादिभिः । सशर्करं वा क्वथितं पञ्चमूलेन वा जलम्॥६०॥ दर्भपूर्वेण मन्थश्च प्रशस्तो लाजसक्तुभिः। वाटचश्चामयवैः शीतःशर्करामाक्षिकान्वितः६१

प्यास (तृषा) की अधिकतामें शुद्ध आंतरिक्ष जल शीतल और मधुयुक्त पिलाना चाहिये । अथवा कूपोदकादिजल तपायेहुए लोष्ट, मृत्कपाल, सिकता आदिसे बुझाकर स्वच्छ और शीतल करके मिसरी मिलाकर पिलाना चाहिये । अथवा कुशा आदि तृणपञ्चमूलसे सिद्ध किया जल शीतल कर पीना तृषारोगको शमन करता है । अथवा धानकी खीलोंके सत्तुओंका मन्थ या भुने और कच्चे यवोंके सत्तुओंका मन्थ खांड और मधु मिलाकर पीना चाहिये यह भी तृषाको शमन करता है ॥ ६०-६१ ॥

यवागूः शालिभिस्तद्वत्कोद्रवैश्च चिरन्तनैः। शीतेन शीतवीर्यैश्च द्रव्यैः सिद्धेन भोजनम्६२ हिमाम्बुपरिषिक्तस्य पयसा सासितामधु । रसैश्चानम्ललवणैर्जाङ्गलैर्घृतभर्जितैः ॥ ६३ ॥ मुद्गादीनां तथा यूषैर्जीवनीयरसान्वितैः । नस्यं क्षीरघृतं सिद्धं शीतैरिक्षोस्तथा रसे६४॥

तृषारोगमें पुराने शालिचावलोंसे अथवा पुराने कोद्रवधान्यसे बनाईहुई यवागू तथा तृषातुरको शीतल जलसे सेचन (स्नान) कराकर शीतवीर्य द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए जलमें बनाये हुए शालिचावल आदिका भोजन मिसरी और मधु मिलेहुए दूधके साथ देना चाहिये । अथवा खटाई और लवण रहित जांगल जीवोंके मांसरसको घृतमें छौंक कर उस रसके साथ भात देना चाहिये । अथवा जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए मूंगके यूषके साथ शालिचावलोंका भात भोजनके लिये देना चाहिये ।

तथा शीतवीर्य द्रव्योंके कल्क और ईखके रससे सिद्ध कियेहुए क्षीर घृतकी नस्य देना भी तृषाकी अधिकताको शमन करता है यहां दूधको बिलो कर निकाले हुए घृतको क्षीरघृत कहते है इस क्षीरघृतको ही ईखके रस और शीतवीर्य द्रव्योंके कल्कसे घृतपाक विधिसे सिद्ध करना चाहिये ॥ ६२-६४ ॥

निर्वापणाश्च गण्डूषाः सूत्रस्थानोदिता हिताः। दाहज्वरोक्ता लेपाद्या निरीहत्वं मनोरतिः ॥ महासरिद्ध्रदादीनां दर्शनस्मरणादि च ॥ ६५ ॥

सूत्रस्थानमें कहेहुए मुखमें धारणकरनेके रोपण गंडूष (कुर्ले) करनेके द्रव्योंका मुखमें धारण कर कुर्ले करना भी तृषाको शमन करता है । तथा दाहज्वरमें कहेहुए पित्तघ्नलेप आदि करना तृषाको शमन करता है । एवं मनको शान्तकर शान्तिसे किसी महानदी या महाह्रदके किनारे बैठना और ऐसे जलाशयोंका ध्यान करना भी तृषाको शमन करता है ॥ ६५ ॥

वातज तृषाकी चिकित्सा ।

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते । रसाश्च बृंहणाःशीता विदार्यादिगणाम्बु वा६६॥

वायुकी तृषामें गुड मिलाहुआ दही पीना हितकारी होता है तथा बृंहणरस शीतल करके पीना अथवा विदारि आदि गणसे सिद्ध कियाहुआ जल पीना वायुकी तृषाको शमन करता है ॥ ६६ ॥

पित्तजतृषाकी चिकित्सा ।

पित्तजायां सितायुक्तःपक्वोदुम्बरजो रसः॥६७ तत्क्वाथो वा हिमस्तद्वत्सारिवादिगणाम्बु वा । तद्विधैश्च गणैः शीतकषायान् सासितामधून्६८ मधुरैरौषधैस्तद्वत् क्षीरिवृक्षैश्च कल्पितान् । बीजपूरकमृद्वीकावटवेतसपल्लवान् ॥ ६९ ॥

मूलानि कुशकाशानां यष्ट्याह्वं च जले श्रृतम्।
ज्वरोदितं वा द्राक्षादिपञ्चसाराम्बु वा पिबेत्॥७०॥

पित्तकी तृषामें पकेहुए गूलरका रस मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिये. अथवा गूलरके फलोंका क्वाथ शीतल करके पिलाना चाहिये। अथवा शारिवादिगणका शीतकषाय या अन्य पित्तनाशक द्रव्योंका शीतकषाय मिसरी या मधु मिलाकर पिलाना चाहिये। अथवा द्राक्षाआदिके मीठे रसका पान करावे। या वट, अश्वत्थ आदि क्षीरी वृक्षोंकी त्वचा या फलोंसे बनाये शीतकषाय अथवा बिजौरेके पत्र, द्राक्षाके पत्र वटके पत्र और वेतसके पत्रोंको जलमें उबालकर, जलको शीतलकर छानकर पिलावे। या कुशाकी जड, काशकी जड और मुलहठीको जलमें उबालकर यह जल शीतलकर पिलावे। अथवा ज्वरचिकित्सामें कहाहुआ द्राक्षा मुलैटी आदिका शीतकषाय या रक्त पित्तरोग चिकित्सामें कहाहुआ मधु खजूर, मुनक्का-आदिका पंचसार जल पिलाना पित्तकी तृषाको शमन करता है॥ ६७-७० ॥

कफकी तृषाकी चिकित्सा।

कफोद्भवायां वमनं निम्बप्रसववारिणा।
बिल्वाढकीपञ्चकोलदर्भपञ्चकसाधितम्।
जलं पिबेद्रजन्या वा सिद्धं सक्षौद्रशर्करम्॥
मुद्गयूषं च सव्योषपटोलीनिम्बपल्लवम्।
यवान्नं तीक्ष्णकवलनस्यलेहांश्च शीलयेत्॥७१॥

कफकी तृषामें निंबके पत्रोंसे बनायेहुए क्काथसे वमन कराना हितकारी होता है। तथा बिल्व, अडहर, पंचकोल और दर्भादिपंचक इनसे सिद्ध किये जलको पीनेसे कफकी तृषा शान्त होती है। अथवा हल्दीका जल, मधु और खांड मिलाकर पीना कफ तृषाको शमन करता है। या मूंगकी दालका यूष, त्रिकटु, पटोलपत्र और निंबपत्र मिलाकर पीना कफतृषाको शमन करता है तथा कफकी तृषामें यवोंका अन्न खाना, अदरख आदि तीक्ष्ण द्रव्योंका कवल मुखमे धारण कराना, कायफलादिकी तीक्ष्ण नस्य लेना और कायफलादि तीक्ष्णद्रव्योंकी चटनी चाटना ये सब कफकी तृषाको शमन करते है॥ ७१ ॥

सर्वैरामाच्च तद्धन्त्री क्रियेष्टा वमनं तथा।
त्र्यूषणारुष्करवचाफलाम्लोष्णाम्बुमस्तुभिः॥

त्रिदोषज और आमजनित तृषामें त्रिदोषज नाशक तथा आमविकारनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। तथा त्र्यूषण, भिलावे, बच और अम्लवेतके कल्क मिले गर्मजलमें मैनफल मिलाकर वमन करावे अथवा इन द्रव्योंका कल्क मिलाकर गर्म कियेहुए दहीके जल (मस्तु) को पिलाकर वमन करावे। "यदि आम-विकारसे वमनके साथ ही श्वास हो और रोगी वमन कराने योग्य न हो तो लवङ्गका क्काथ पिलाकर तृषाको शमन करे॥ ७२ ॥

अन्नात्ययान्मंडमुष्णं हिमं मंथं च कालवित्॥७३॥

यदि भोजन न मिलनेके कारण अतिक्षुधासे व्याकुलता होनेसे तृषा बढी हो तो उसको उष्ण मण्ड पिलावे अथवा समयका विचार रखते हुए शीतल मन्थ पिलावे॥ ७३ ॥

तृषि श्रमान्मांसरसं मद्यं वाससितं पिबेत्॥७४॥

यदि किसी अधिक काम करने या मार्ग चलने आदि अधिक श्रमसे तृषा उत्पन्न हुई हो तो उसको मांसरस या मिसरी मिला गर्म दूध अथवा खांडयुक्त मद्य पिलाना चाहिये॥ ७४ ॥

आतपात्ससितं मन्थं यवकोलाम्बुसक्तुभिः।
सर्वाण्यंगानि लिंपेच्च तिलपिण्याककाञ्जिकैः॥

यदि अधिक धूप (आतप) लगनेके कारण तृषाकी वृद्धि हुईहो तो उसको शीतल जलमें मिसरी मिलाकर उसमे यवोंके सत्तू और बेरका चूर्ण मिलाकर बनाया हुआ मन्थ पिलावे। तथा उसके सारे शरीरपर तिलोंका कल्क और काञ्जीका लेपकरे तो सूर्यकी तेज धूपसे उत्पन्न हुई तृषा आदि विकार शमन होते हैं॥ ७५॥

शीतस्नानात्तु मद्याम्बु पिबेत्तृण्मान् गुडाम्बु वा।
मद्यादर्धजलं मद्यं स्नातोऽम्ललवणैर्युतम्॥७६॥

ग्रीष्मकालमें शीतजलसे स्नानकरनेपर यदि तृषाकी वृद्धि हो तो जलमें मिलाकर मद्य पीवे अथवा गुडका शर्बत पीना चाहिये।

यदि मद्यपीनेसे तृषाकी वृद्धि हुई हो तो स्नानकरके आधाजल मिलीहुई मद्य अनारके रसमें अम्लकर किञ्चित् लवण मिलाकर पीवे ॥ ७६ ॥

स्नेहतीक्ष्णतराग्निस्तु स्वभावशिशिरं जलम् ।
स्नेहादुष्णांबु जीर्णात्तु जीर्णान्मण्डंपिपासितः॥

यदि स्नेहपानके अनन्तर स्नेहजीर्ण होकर जठराग्नि तीक्ष्ण हो तब प्यास लगे तो स्वभावसे ही शीतल जल पीवे ॥

यदि स्नेहपान कियाहुआ जीर्ण न हुआ हो और प्यास लगे तो उष्णजल पीना चाहिये। यदि स्नेह जीर्ण होकर प्यास लगे तो मण्ड पीना चाहिये ॥ ७७ ॥

पिबेत्स्निग्धान्नतृषितो हिमस्पर्धि गुडोदकम् ।
गुर्वाद्यन्नेन तृषितः पीत्वोष्णांबु तदुल्लिखेत्॥७८

चिकने भोजन करनेके अनन्तर प्यास उत्पन्न हुई हो और अतिशीतल जल स्थानादिकी अधिक इच्छा हो तो उसको गुड़का शर्बत पिलाना चाहिये ॥

यदि गरिष्ट भोजन करनेके अनन्तर अधिक तृषा बढ़जावे तो उसको उष्णजल पिलाकर वमन करादेना चाहिये ॥ ७८ ॥

क्षयजायां क्षयहितं सर्वं बृंहणमौषधम् ॥

क्षयजनित तृषामें क्षयमें हित करनेवाले रस और दूध आदि देने चाहिये तथा द्राक्षारस, मासरस आदि बृंहण पदार्थ देना चाहिये ।

कृशदुर्बलरूक्षाणां क्षीरं छागो रसोऽथवा ॥७९॥

कृश और दुर्बल तथा रूक्ष पुरुषको तृषा हो तो उसको बकरीका दूध या मांसरस देना चाहिये ७९॥

क्षीरं च सोर्ध्ववातायां क्षयकासहरैः शृतम्॥८०

ऊर्ध्ववातवाले रोगीकी तृषामें क्षयकासनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिलाना चाहिये ॥८०॥

रोगोपसर्गजातायां धान्याम्बु ससितामधु ।
पाने प्रशस्तं सर्वाश्च क्रिया रोगाद्यपेक्षया॥८१।

पित्तादिरोगकी उपद्रवभूत तृषा हो तो उसमें मिसरी और मधु मिलाकर धनियेका जल पिलाना चाहिये । अथवा जैसा जो रोग हो उसके अनुसार औषध कल्पना कर पिलाना हितकारी होता है ॥ ८१ ॥

तृष्यन् पूर्वामयक्षीणो न लभेत जलं यदि ।
मरणं दीर्घरोगं वा प्राप्नुयात्त्वरितं ततः ॥८२॥
सात्म्यान्नपानभैषज्यैस्तृष्णां तस्य जयेत्पुरः ।
तस्यां जितायामन्योऽपि शक्यो व्याधि-
-श्चिकित्सितुम ॥ ८३॥

यदि किसी रोगसे पहले ही पुरुष क्षीण हो तदनन्तर उसको प्यास लगनेपर जल न दिया जाय तो वह मृत्यु या किसी दीर्घ रोगको प्राप्त होता है । इस कारण पहले शीघ्र ही सात्म्य अन्न, पान, औषधसे तृषाको शमन करदेना चाहिये जब तृषा शमन होजाय तो अन्यव्याधिकी भी आसानीसे चिकित्सा हो सकती है ८२-८३

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत-अष्टांगहृदयसंहितायां चिकित्सास्थाने छर्दितृषाचिकित्सितेषं० शिवशर्मायुर्वेदाचार्यकृतशिवदीपिकाभाषायां षष्ठोऽध्यायः॥६॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथाऽतो मदात्ययचिकित्सितंव्याख्यास्यामः।

अब हम मदात्ययरोग चिकित्साका कथन करते हैं।

त्रिदोषज मदात्ययकी चिकित्सा ।

यं दोषमधिकं पश्येत्तस्यादौ प्रतिकारयेत् ।
कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यदोषे मदात्यये ।
पित्तमारुतपर्यन्तः प्रायेण हि मदात्ययः ॥१॥

मदात्ययरोगमें जो दोष अधिक हो प्रथम उसकी चिकित्सा करना चाहिये । यदि मदात्ययमें सब दोष समान प्रतीत हों तो प्रथम कफस्थानानुपूर्वी चिकित्सा कर कफको जीतना चाहिये. तदनन्तर क्रमानुसार अन्य दो दोषोंको जीतना चाहिये क्योंकि मदात्ययरोगमें प्रायः पित्त और वात पर्यन्त ही दोषप्रकोप समाप्त होजाता है इस कारण कफको जीतनेके अनन्तर जो पित्त और वातका प्रकोप रहे उसको शमन करदेना चाहिये । " कफस्थानानुपूर्वी चिकित्सा प्रथम ज्वरचिकित्सामें कह आये है दोषोंके समान प्रकोपमें उसी प्रकार चिकित्सा करना चाहिये " ॥ १ ॥

हीनमिथ्यातिपीतेन यो व्याधिरुपजायते ।
समपीतेन तेनैव स मद्येनोपशाम्यति ।
मद्यस्य विषसादृश्यात् ॥ २ ॥–

मद्यको हीनयोग और मिथ्यायोगसे पीनेके कारण जो व्याधि उत्पन्न होजाती है वह मद्यको समयोगसे पीवे तो शमन होजाती है क्योंकि मद्यका स्वभावभी विषके समान तीक्ष्णादि गुणोंवाला है इस कारण मिथ्यापानसे हुए विकार उसी मद्यके समयोगद्वारा शमन होजाते है ॥ २ ॥

–विषं तूत्कर्षवृत्तिभिः ।
तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्योगाद्विषान्तरमपेक्षते ॥ ३ ॥

यद्यपि विषसे उत्पन्न हुआ विकार अन्य विषके योगसे शमन होताहै क्योंकि विषके जो तीक्ष्णादि गुणोंकी अधिक शक्ति है वह अन्य विषके योग विना शमन नहीं होता । परन्तु मद्यमें जो दश विषके गुण है वे हीनवृत्तिवाले होनेके कारण मद्यके हीनमिथ्यादियोगसे उत्पन्न हुए विकारको उसी मद्यके समयोगसे शमन करदेते हैं किसी अन्य विषकी अपेक्षा नहीं रखते ॥३॥

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेण पीतेनाम्लविदाहिना ४
मद्येनान्नरसक्लेदो विदग्धः क्षारतां गतः ।
यान्कुर्यान्मदतृण्मोहज्वरान्तर्दाहविभ्रमान् ॥५॥
मद्योत्क्लिष्टेन दोषेण रुद्धः स्रोतःसु मारुतः ।
सुतीव्रा वेदना याश्च शिरस्यस्थिषु संधिषु॥६
जीर्णाममद्यदोषस्य प्रकांक्षालाघवे सति ।
यौगिकं विधिवद्युक्तं मद्यमेव निहंति तान्॥७॥

क्योंकि स्वभावसे ही मद्य, तीक्ष्ण, अम्ल और विदाही होनेसे वह पियाहुआ मद्य अन्नजनित रसके क्लेदको विदग्ध कर क्षार बनादेता है । वह क्षार भावको प्राप्तहुआ रस जिन मद, तृषा, मोह, ज्वर, अन्तर्दाह और विभ्रम आदि विकारोंको करता है तथा मद्यसे उत्क्लिष्ट दोषद्वारा स्रोतोंमें रुद्धगति हुआ वायु जो शिर अस्थि और सन्धियोंमें तीव्र पीड़ाको करता है उन सब विकारोंको जो पुरुषके शरीरमें मद्यके अनुचितपानसे जीर्ण और आम मद्य दोष उत्पन्न होते है उनको विधिवत् यौगिक मद्यका पान करना शमन करदेता है । " यद्यपि मदात्ययके सब विकारोंको अन्य चिकित्साओं द्वारा शमन किया जा सकता है । परन्तु मद्यपान करनेवालोंके लिये अनुचित मद्यपानसे उत्पन्नहुए विकारोंको शमन करनेकेलिये समयोगसे मद्य पीना और मिथ्यायोगसे मद्य पीनेको त्याग देना ही सामान्य चिकित्सा है "॥ ४–७ ॥

क्षारो हि याति माधुर्यं शीघ्रमम्लोपसंहितः ।
मद्यमम्लेषु च श्रेष्ठं दोषविष्यन्दनादलम् ॥८॥

क्योंकि क्षार अम्लरसके उपयोगसे शीघ्र माधुर्यको प्राप्त होजाता है इस कारण मद्यके मिथ्योपयोगसे बनाहुआ अन्नके रसका क्षार मद्यके यथार्थयोग करनेसे माधुर्यभावको प्राप्त होजाता है । मद्य दोषको यथार्थ विष्यन्दन कर देनेवाली होनेके कारण क्षारके विकारको शमन करनेमें सम्पूर्ण अम्ल पदार्थोंमें श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥

तीक्ष्णोष्णाद्यैःपुरा प्रोक्तैर्दीपनाद्यैस्तथा गुणैः।
सात्म्यत्वाच्च तदेवास्य धातुसाम्यकरं परम्॥९

मदात्यय निदानमें मद्यके तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष आदि दश गुण कहे हैं और मद्यवर्गमें दीपन आदि गुण मद्यके कहे हैं दुरुपयुक्तमद्यसे उत्पन्नहुए विकारोंको दीपन आदि गुणोंसे सात्म्य होनेके कारण समयोगसे सेवन कीहुई मद्य शमन कर देती है और वही मद्य धातुओंकी साम्यावस्था करदेनेमें श्रेष्ठ होजातीहै ९॥

पानात्ययमें चिकित्साकी अवधि ।

सप्ताहमष्टरात्रं वा कुर्यात्पानात्ययौषधम् ।
जीर्यत्येतावता पानं कालेन विपथाश्रितम्॥१०

मद्यपानसे उत्पन्नहुए पानात्ययरोगमें सात दिन या आठ दिनतक ही चिकित्सा करनी चाहिये. इसके अनन्तर विमार्गाश्रित मद्यपानज दोष जीर्ण होजाता है १०

परं ततोनुबध्नाति यो रोगस्तस्य भेषजम् ।
यथायथं प्रयुञ्जीत कृतपानात्ययौषधः ॥११॥

आठ दिनके अनन्तर पानात्ययकी चिकित्सा करनेपर भी जिस रोगका अनुबन्ध रह जाय फिर उस रोगकी यथादोष चिकित्सा करना चाहिये । " यह पानात्ययकी चिकित्साका सामान्य क्रम है "॥११॥

वातज मदात्ययकी चिकित्सा।

तत्र वातोल्बणे मद्यं दद्यात्पिष्टकृतं युतम्।
बीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमदीप्यकैः ॥१२॥
यवानीहपुषाजाजीव्योषत्रिलवणार्द्रकैः।
शूल्यैर्मांसैर्हारितकैः स्नेहवद्भिश्च सक्तुभिः ॥१३॥
उष्णास्निग्धाम्ललवणा मेध्यमांसरसा हिताः।
आम्राम्रातकपेशीभिःसंस्कृता रागखाण्डवाः॥
गोधूममाषविकृतीर्मृद्वीचित्रा मुखप्रियाः।
आर्द्रिकार्द्रककुल्माषसूक्तमांसादिगर्भिणी १५॥
सुरभिर्लवणा शीता निगदा वाच्छवारुणी।
स्वरसो दाडिमात् क्वाथःपञ्चमूलात्कनीयसः१६
शुण्ठी धान्यात्तथा मस्तुसूक्ताम्भोऽथाम्ल-
—काञ्जिकम्।
अभ्यङ्गोद्वर्तनस्नानमुष्णं प्रावरणं घनम्॥१७॥
घनश्चागुरुजो धूपः पङ्कश्चागुरुकुङ्कुमः।
कुचोरुश्रोणिशालिन्यो यौवनोष्णाङ्गयष्टयः।
हर्षेणालिङ्गनैर्युक्ताः प्रियाः संवाहनेषु च॥१८॥

वाताधिक मदात्ययमे पिष्टकमद्य समयोगसे देना चाहिये, तथा इस मद्यके साथ देशकालादि विचार कर विजौरानीम्बू, अम्लवेत, बेर, दाड़िम, अजमोद, अजवायन, हाऊबेर, जीरा, त्रिकटु, सेंधानमक, संचर-नमक, विडनमक और आद्रक इन द्रव्योंमेंसे सबका चूर्ण या कुछ थोडे द्रव्योंका चूर्ण देना चाहिये। तथा शूल-प्रोतसिद्ध मांस हारितकपक्षीका मांस या घृतयुक्त सत्तू देना चाहिये। वातप्रधान मदात्ययमें उष्ण, स्निग्ध, अम्ल और लवण युक्त मेदवाले जीवोंका मांसरस हित-कारी होता है,तथा आम्र और आम्रातककी पेशियोंसे सस्कार कियेहुए रागखाण्डव हितकारी होते हैं। गोधूम और माषान्नसे बनाए हुए मुस्वादु मधुर और विचित्र सुन्दर प्रिय भोजन देना चाहिये। अदरक, कुल्माष, सूक्त और मांसादियुक्त सुगन्धित लवणरहित और शीतद्रव्यरहित अच्छ वारुणी, दाड़िमका स्वरस, लघु-पञ्चमूलका क्वाथ, सोंठ और धनियेका क्वाथ, मस्तु, सिर्का, खट्टी कांजी इन द्रव्योंका पीना, तेल मलना, उबटन मलना, गर्मजलसे स्नान करना, गर्म कम्बल आदि घनवस्त्र धारण करना, अगर आदिकी घन (बहुत गाढी) धूप लेना, अगर और केशरका घन-लेप करना, एवं कुच, ऊरुस्थल और श्रोणिवाली तथा यौवनकी गर्माईसे उष्णाङ्गवाली स्त्रियोंका आलिङ्गन करना और उनसे शरीरको दबवाना भी वातप्रधान मदात्यको शमन करता है॥ १२-१८ ॥

पित्तप्रधान मदात्ययकी चिकित्सा।

पित्तोल्बणे बहुजलं शार्करं मधुना युतम्।
रसैर्दाडिमखर्जूरभव्यद्राक्षापरूषकैः ॥ १९ ॥
सुशीतं ससितासक्तु योज्यं तादृक् च पानकम्।
स्वादुवर्गकषायैर्वा युक्तं मद्यं समाक्षिकम् ॥२०
शालिषष्टिकमश्नीयाच्छशाजैणकपिञ्जलैः।
सतीनमुद्गामलकपटोलीदाडिमैरपि ॥ २१ ॥

पित्तप्रधान मदात्ययमें शार्करमद्य बहुतसा जल मिलाकर पिलावे. अथवा दाड़िम, खजूर, भव्यफल, द्राक्षा और फालसेके रसोंमें मधु मिलाकर पान करना भी हितकारी होता है। पित्तप्रधान मदात्ययमें मिसरी, सत्तू और दाड़िमादि फलोंका रस मिलाकर बनायाहुआ शीतल पानक पिलाना हितकारी है। तथा मधुरवर्गके क्वाथोंको मिलाकर और मधु मिलाकर मद्यको समयोगसे सेवन करना हितकर होता है। पित्तप्रधान मदात्ययमें शालीचावल या सांठीके चावलोंका भात, शसा, एण और कपिञ्जलका मांसरस, सतीन और मूगका यूष (दाल), आमले और पटोलका शाक तथा अनार-फल ये सब हितकारी होते हैं॥ १९–२१ ॥

पित्तप्रायमदात्ययके उपद्रवोंकी चिकित्सा।

कफपित्तं समुत्क्लिष्टमुल्लिखेत्तृड्विदाहवान्।
पीत्वाम्बु शीतं मद्यं वा भूरीक्षुरससंयुतम्॥२२॥
द्राक्षारसं वा संसर्गी तर्पणादिपरं हितः।
तथाग्निर्दीप्यते तस्य दोषशेषान्नपाचनः॥२३॥

जिस मदात्ययरोगमें कफ और पित्त उत्क्लिष्ट हो तथा रोगीको तृषा और दाह भी हो तो उसको प्रथम शीतल जलयुक्त मद्य अथवा बहुतसा ईखका रस मिला-कर मद्य या द्राक्षारस पिलाकर वमन करावे. तदनन्तर मिलेहुए तर्पण पिलाना चाहिये। ऐसा करनेसे अग्नि-

दीप्त होती है तथा शेष दोष और अन्न पाचन होजाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

कासे सरक्तनिष्ठीवे पार्श्वस्तनरुजासु च ।
तृष्णायां सविदाहायां सोत्क्लेशे हृदयोरसि २४॥
गुडूचीभद्रमुस्तानां पटोलस्याथवा रसम् ।
सशृङ्गवेरं युञ्जीत तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥२५॥

यदि पित्तमदात्ययमें खांसीके साथ रक्त आनेलगे और पार्श्वपीड़ा, स्तनस्थानमें पीड़ा, तृषा, दाह, हृदयोत्क्लेश और छातीमें उत्क्लेश होता हो तो गिलोय और भद्रमोथेका रस अथवा पटोलका रस अदरखका रस मिलाकर पिलावे तथा छोटी तित्तिरीका रस भोजनमे देवे ॥ २४ ॥ २५ ॥

तृष्यते चाऽतिबलवद्वातपित्ते समुद्धते ॥ २६ ॥
दद्याद् द्राक्षारसं पानं शीतं दोषानुलोमनम् ।
जीर्णेऽद्यान्मधुराम्लेन छागमांसरसेन च॥२७॥

यदि वातपित्तप्रधान मदात्ययमें वातपित्तकी अधिकताके कारण तृषा बढ़गयी हो तो दोषानुलोमन करनेको द्राक्षाका शीतल रस पिलावे, और क्षुधा लगनेपर मधुर अम्ल रसवाले यूषोंके साथ अथवा छागमांसरसके साथ शालिभातका भोजन देवे ॥ २६ ॥ २७ ॥

मदात्ययकी तृषाकी चिकित्सा ।

तृष्यल्पशः पिबेन्मद्यं मेदं रक्षन् बहूदकम् ।
मुस्तदाडिमलाजाम्बु जलं वा पर्णिनीशृतम् ।
पटोल्युत्पलकन्दैर्वा स्वभावादेव वा हिमम्२८॥

तृषाकी शान्तिके लिये थोड़ी मद्यमें बहुतसा जल मिलाकर पीवे तो मदात्ययकी तृषा भी शान्त होती है और मेदकी भी रक्षता रहती है । अथवा मुस्ता, दाड़िमका रस और धानकी खीलोंका जल पीवे । या शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी और मुद्गपर्णीसे सिद्ध कियाहुआ जल पीवे अथवा पटोलपत्र और कमलकन्दसे सिद्धकिया जल या स्वभावसे ही शीतलजल पीवे तो मदात्ययकी तृषा शान्त होती है ॥ २८ ॥

मद्यातिपानादब्धातौ क्षीणे तेजसि चोद्धते।२९
यः शुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य चेष्टते ।
पाययेत्कामतोऽम्भस्तं निशीथपवनाहतम्॥३०

अतिमद्यपीनेसे जलीय धातु क्षीण होकर तेज धातुके उद्धत होनेपर जिस मनुष्यके गल, तालु और ओष्ठ सूखकर जीभ निकलीसी जावे इस प्रकारके तृषातुरको रातकी शीतल पवनमें लेटाकर रक्खे और यथेच्छ शीतलजल पिलावे ॥ २९ ॥ ३० ॥

कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रीकाचुक्रिकारसः ।
पञ्चाम्लको मुखालेपःसद्यस्तृष्णां नियच्छति॥

बेर, दाड़िम, अम्लवेत, इमली और चूका इन पांच अम्लद्रव्योंका मुखमें लेप करना मदात्ययकी तृषाको शीघ्र शमन कर देता है ॥ ३१ ॥

मद्यपानसे उत्पन्नहुई दाहकी चिकित्सा ।

त्वचं प्राप्तश्च पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः ।
दाहं प्रकुरुते घोरं तत्राऽतिशिशिरो विधिः ।
अशाम्यति रसैस्तृप्ते रोहिणीं व्यधयेच्छिराम्॥

मद्यपीनेसे उत्पन्नहुई (गर्मी), ऊष्मा पित्त और रक्तमें मिलकर घोर दाहको उत्पन्न करदेती है तब उस दाहको शमन करनेके लिये सब विधियें अतिशीतल करनी चाहिये यदि अत्यन्त शीतल लेप सेचन आदिसे भी दाह शमन न होवे तो उस रोगीको प्रथम स्निग्ध रस (मांसरसादि) पिलाकर तृप्तहोनेपर रोहिणी शिराको वेधनकर रक्त निकाल देना चाहिये ॥ ३२ ॥

कफाधिक मदात्ययकी चिकित्सा ।

उल्लेखनोपवासाभ्यां जयेच्छेष्मोल्बणं पिबेत् ।
शीतं शुण्ठीस्थिरोदीच्यदुःस्पर्शान्यतमोदकम्॥

कफकी अधिकतावाले मदात्ययमें प्रथम वमन कराना चाहिये या उपवास अथवा वमन और उपवास करावे । तथा सोंठ, शालपर्णी, नेत्रवाला और जवासा इनमेसे किसी एकसे या सबसे सिद्ध कियाहुआ शीतल जल (हिम) पिलावे ॥ ३३ ॥

निरामं क्षुधितं काले पाययेद्बहुमाक्षिकम्।३४॥
शार्करं मधु वा जीर्णमरिष्टं सीधुमेव च ।
रूक्षतर्पणसंयुक्तं यवानीनागरान्वितम् ॥ ३५॥

जब वमन और उपवाससे कफ शमन होकर निराम होनेपर क्षुधा लगे तब यथोचित समयमें शर्करासे बना हुआ पुराना अरिष्ट या सीधु अथवा अधिक मधु मिला-

हुआ द्राक्षारिष्ट पिलावे तथा अजवायन और सोंठयुक्त रूक्ष तर्पण पिलावे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

यूषेण यवगोधूमं तनुनाऽल्पेन भोजयेत्।
उष्णाम्लकटुतिक्तेन कौलत्थेनाल्पसर्पिषा ३६।
शुष्कमूलकजैश्छागै रसैर्वा धन्वचारिणाम्।
साम्लवेतसवृक्षाम्लपटोलव्योषदाडिमैः॥३७॥

तथा कुलथीके यूषके साथ भुनीहुई गेहूँका पतलासा दलिया भोजनके लिये देवे। इस कुलथीके यूषको सोंठ और अनार आदि कटु उष्ण अम्ल तिक्त द्रव्योंसे युक्त और किंचित् स्निग्धकर गेहूके दलिये आदिके साथ देनाचाहिये. अथवा सूखीमूलीके शाक या छागके मांसरस या जांगलजीवोंके मांसरस तथा अम्लवेत, वृक्षाम्ल, पटोल, सोंठ, मिर्च, पीपल और दाड़िमसे युक्तकर यूष रसादि भोजनमें देना चाहिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

प्रभूतशुण्ठीमरिचहरितार्द्रकपेशिकम्।
बीजपूररसाद्यम्लभृष्टनीरसवर्तितम्॥ ३८॥
करीरकरमर्दादिरोचिष्णु बहुशालनम्।
प्रव्यक्ताष्टाङ्गलवणं विकल्पितनिमर्दकम्।
यथाग्नि भक्षयन्मांसं माधवं निगदं पिबेत्॥ ३९

कफप्रधान मदात्ययमें अधिक सोंठ, मरिच और ताजे आर्द्रककी काटकर बनाईहुई बारीक पेशियें, बिजौरेनींबूके रससे अम्लकर भूनेहुए सूखे व्यंजन खाने चाहिये। तथा करीर और करौंदे आदिके रुचिप्रद अचार और रुचिकारक शालन और आगे कहे हुए अष्टाङ्गलवणयुक्त अधिक सोंठ आदि मिलेहुए चटनी आदि खावे। एवं अग्निके बलानुसार मांस सेवन करतेहुए पुरानी माध्वीकनिगद पीवे तो कफप्रधान मदात्यय शमन होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अष्टाङ्ग लवण।

सितासौवर्चलाजाजीतिंतिडीकाम्लवेतसम् ४०
त्वगेलामरिचार्धांशमष्टाङ्गलवणं हितम्।
स्रोतोविशुद्ध्यग्निकरं कफप्राये मदात्यये॥४१

मिसरी २तोले, सौवर्चल लवण २ तोले, जीरा २ तोले, तिंतिडीक २ तोले, अम्लवेत २ तोले, दालचीनी १ तोला, इलायची १ तोला, मरीच १ तोला, इन आठ वस्तुओंको बारीक पीसकर चूर्ण बनावे इसको अष्टाङ्गलवण कहते हैं। यह कफप्रधान मदात्ययमें हितकारी, स्रोतोंका शुद्ध करनेवाला तथा जठराग्निको बढानेवाला है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

रूक्षोष्णोद्वर्तनोद्धर्षस्नानभोजनलङ्घनैः।
सकामाभिः सह स्त्रीभिर्युक्त्या जागरणेन च।
मदात्ययःकफप्रायः शीघ्रं समुपशाम्यति ४२॥

रूक्ष और उष्ण उद्वर्तन (उबटन) शरीरपर मलनेसे शरीरको रगड़कर स्नान करनेसे, रूक्ष भोजन या लंघन करनेसे और कामयुक्त स्त्रियोंके साथ युक्तिपूर्वक जागते रहनेसे कफप्रधान मदात्याय शीघ्र शमन होजाता है ॥ ४२ ॥

यदिदं कर्म निर्दिष्टं पृथग्दोषबलं प्रति।
संनिपाते दशविधे तच्छेषेऽपि विकल्पयेत्॥४३

यह जो अलग २ दोषोंके मदात्ययोंमें अलग २ दोष बलानुसार चिकित्सा कह आये है दश[१] प्रकारके सन्निपातज मदात्ययोंमें भी इसी चिकित्सापद्धतिको दोषोंका बलाबल देखकर कल्पना करना चाहिये अर्थात् दोषोंके मिलानके अनुसार मिलाकर चिकित्सा करना चाहिये ॥ ४३ ॥

संपूर्ण मदात्यय नाशक पानक।

त्वङ्नागपुष्पमगधामरीचाजाजिधान्यकैः।
परूषकमधूकैलासुराह्वैश्च सितान्वितैः ॥ ४४॥
सकपित्थरसं हृद्यं पानकं शशिबोधितम्।
मदात्ययेषु सर्वेषु पेयं रुच्यग्निदीपनम्॥ ४५॥

दालचीनी, नागकेशर, पीपल, मरिच, जीरा, धनियां, फालसा (परूषक), महुवा, इलायची और

---

१ उत्कर्षेण यदात्वेको मध्येन द्वौ तदादिमः। उत्कर्षेण यदा द्वा तु मध्येनैको द्वितीयकः॥ एको मध्येन दोषः स्याद् द्वावेल्पन तृतीयकः। उत्कर्षेणक एव स्यादल्पेन द्वौ चतुर्थकः॥ उत्कर्षेण यदा द्वौ तु अल्पेनैकश्च पञ्चमः। एकोल्पेन तु मध्येन द्वौ दोषाविति षष्ठकः॥ उत्कर्षिणः समस्ताः स्युरेवं भवति सप्तमः। मध्येन सर्वेपि यदा तदा भवति चाष्टमः॥ अल्पेन सर्वेऽपि यदा तदा तु नवमः स्मृतः। अल्पेनैको मध्येनैकस्तदात्वन्त्य इति स्फुटाः। सन्निपातस्य मुनिना दशभेदाः प्रकीर्तिताः॥

देवदारु इनको पानीमें भिगोकर मिसरी मिलाकर पानक (शर्वत) बनावे इसमें कपित्थका रस मिलाकर और कपूरसे सुगन्धितकर रस पानकको पीवे। यह पानक हृदयको हितकारी, रुचिकारक, अग्निको दीपन करनेवाला और सम्पूर्णमदात्ययोंको दूर करनेवाला है ॥ ४४--४५ ॥

नाविक्षोभ्य मनो मद्यं शरीरमविहन्य वा ।
कुर्यान्मदात्ययं तस्मादिष्यते हर्षणी क्रिया४६

क्योंकि मद्य अयुक्तिपूर्वक पीनेसे मनको विक्षोभित कर और शरीरको हनन करके ही मदात्ययरोगको उत्पन्न करती है इस कारण सम्पूर्ण मदात्ययोंमें हर्ष उत्पन्न करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ ४६ ॥

संशुद्धिशमनाद्येषु मददोषः कृतेष्वपि ।
न चेच्छाम्येत्कफे क्षीणे जाते दौर्बल्यलाघवे४७
तस्य मद्यविदग्धस्य वातपित्ताधिकस्य च ।
ग्रीष्मोपतप्तस्य तरोर्यथा वर्षं तथा पयः ॥४८॥

जिस मदात्ययसे पीड़ित मनुष्यको संशोधन, संशमन चिकित्सा करनेपर भी मदके दोष शमन न होसके और रोगी कफके क्षीण होजानेसे दुर्बल तथा कृश होजावे ऐसे मद्यसे विदग्ध वातपित्तप्रधान रोगीको दूधका प्रयोग करना इस प्रकार हितकारी होता है जैसे—ग्रीष्मकालसे मुर्झाये हुऐ वृक्षको वृष्टिका जल हितकारी होता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

मद्यक्षीणस्य हि क्षीणं क्षीरमाश्वेव पुष्यति ।
ओजस्तुल्यं गुणैः सर्वैर्विपरीतं च मद्यतः॥४९॥

दूध ओजके तुल्य गुणवाला होनेसे और मद्यके विपरीत गुणवाला होनेसे, मद्यसे क्षीण पुरुषकी क्षीणताको शीघ्र दूरकर पुरुषको पुष्ट कर देता है॥४९॥

पयसा विजिते रोगे बले जाते निवर्तयेत्॥५०॥
क्षीरप्रयोगं मद्यं च क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ।
न विड्क्षयध्वंसकोत्थैः स्पृश्येन्नोपद्रवैर्यथा।५१॥

दूधके योगसे क्षीणता दूर होजानेपर जब शरीरमें बल आजावे फिर क्रमसे दूधका प्रयोग हटाता जावे और क्रमसे बहुत थोड़ी २ मद्यका सेवन करावे जिससे मल क्षयजनित और ध्वसकसे उत्पन्नहुए उपद्रव शरीरमें स्पर्श न करसके ॥ ५० ॥ ५१ ॥

विड्क्षय और ध्वंसककी चिकित्सा ।

तयोस्तु स्याद्घृतं क्षीरं बस्तयो बृंहणाः शिवाः।
अभ्यङ्गोद्वर्तनस्नानमन्नपानं च वातजित्॥५२॥

विड्क्षय और ध्वंसकरोगवालेको घृत और बृंहण-दूधका सेवन कराना तथा बृंहण बस्तियोंका प्रयोग करना हितकारी होता है एवं तैलमर्दन, उबटन मलना, स्नान और वात नाशक अन्नपानका सेवन कराना हितकारी होता है ॥ ५२ ॥

युक्तिपूर्वक मद्यपानके गुण ।

युक्तमद्यस्य मद्योत्थो न व्याधिरुपजायते ।
अतोऽस्य वक्ष्यते योगो यः सुखायैव केवलम्५३

युक्तिपूर्वक मद्य पीनेसे मद्यजनित रोग उत्पन्न नहीं होते इस कारण जिस प्रकार मद्य पीनेसे केवल सुख ही हो और रोग उत्पन्न न होसके उस प्रकार मद्य सेवनकी विधि कहते हैं ॥ ५३ ॥

आश्विनं या महत्तेजो बलं सारस्वतं च या ।
दधात्यैन्द्रं च या वीर्यं प्रभावं वैष्णवं च या५४।
अस्त्रं मकरकेतोर्या पुरुषार्थो बलस्य या ।
सौत्रामण्यां द्विजमुखे या हुताशे च हूयते॥५५॥
या सर्वौषधिसम्पूर्णान्मथ्यमानात्सुरासुरैः ।
महोदधेःसमुद्भूता श्रीशशाङ्कामृतैः सह ॥५६॥
मधुमाधवमैरेयसीधुगौडासवादिभिः ।
मदशक्तिमनुज्झन्ती या रूपैर्बहुभिःस्थिता॥५७
यामासाद्य विलासिन्यो यथार्थं नाम बिभ्रति।
कुलाङ्गनाऽपि यां पीत्वा नयत्युद्धतमानसा५८
अनङ्गालिङ्गितैरङ्गैः काऽपि चेतो मुनेरपि ।
तरङ्गभङ्गभ्रूकुटीतर्जनैर्मानिनीमनः ॥ ५९ ॥
एकं प्रसाद्य कुरुते या द्वयोरपि निर्वृतिम् ।
यथाकामं भटावाप्तिपरिहृष्टाप्सरोगणे ॥ ६० ॥
तृणवत्पुरुषा युद्धे यामासाद्य त्यजन्त्यसून् ।
यां शीलयित्वाऽपि चिरं बहुधा बहुविग्रहाम् ॥
नित्यं हर्षातिवेगेन तत्पूर्वमिव सेवते ।
शोकोद्वेगारातिभयैर्या दृष्ट्वा नाभिभूयते ॥६१॥

गोष्ठीमहोत्सवोद्यानं न यस्याः शोभते विना।
स्मृत्वास्मृत्वा च बहुशोवियुक्तःशोचतेययाध६३
अप्रसन्नाऽपि या प्रीत्यै प्रसन्ना स्वर्ग एव या।
अपीन्द्रं मन्यते दुःस्थं हृदयस्थितया ययाद६४।
अनिर्देश्यसुखास्वादा स्वयंवेद्यैव या परम्।
इति चित्रास्ववस्थासु प्रियामनुकरोति या६५॥
प्रियाऽतिप्रियतां याति यत्प्रियस्य विशेषतः।
या प्रीतिर्या रतिर्यावाग्या पुष्टिरिति च स्तुता॥
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषैः।
पानप्रवृत्तौ सत्यां तां सुरां तु विधिना पिबेत्॥

जो मद्य आश्विनकेसे तेजको धारण करती है, जो सरस्वतीके समान वाणीमें बल देतीहै,जो मद्य इन्द्रकासा वीर्य और विष्णुकासा प्रभाव देती है, जो कामदेवका अस्त्र है, जिसमें बलभद्रकासा पुरुषार्थ है, जो मद्य सौत्रामणियज्ञमें अग्निमें और ब्राह्मणोंके मुखमें हवन की जाती है। जो मद्य सुरासुरोंके मथन करनेपर सर्वौषधि सम्पूर्ण समुद्रमेंसे अमृत और चन्द्रमा आदि रत्नोंके साथ उत्पन्न हुई थी, जो मद्य मधु, माधव, मैरेय, सीधु, गौड़ी और आसव आदि भेदोंसे अनेक रूपोंमें मदको धारणकर स्थित है जिस मद्यके सेवनसे विलासिनीस्त्रियें यथार्थ विलासिनी हो सकती हैं,जिसके पीनेसे कुलाङ्गनास्त्रियें भी मर्यादा त्यागकर उद्धतमनवाली व्यभिचारिणी होकर कामदेवके चिन्होवाली तरङ्गोंसे मुनियोंके चित्तको भी विचलित कर सकती है जो मद्य स्त्रियोंके कामतरंगसे भंगहुई भ्रुकुटिके कुटिलनिरीक्षणद्वारा एक पुरुषको प्रसन्नकर फिर दोनों स्त्री और पुरुषको परम आनन्द प्राप्त कर देती है। जिस मद्यके सेवनसे पुरुष युद्धमें योग्य शूरवीरके समान प्रसन्नता पूर्वक प्राणोंको त्याग करताहुआ अप्सराओंद्वारा अभिनन्दित हो स्वर्गको जाता है। जिस मद्यको नित्यप्रति बहुत कालतक सेवन करताहुआ भी नित्य अति हर्षपूर्वक नवीनसी मानताहुआ अपूर्व आनन्दको मानता है। जिस मद्यके सेवनसे शोक, उद्वेग, अरति और भय ये कोई भी कष्ट नहीं दे सकते, जिस मद्यके विना गोष्ठी, महोत्सव और उपवनकी सैर शोभा नहीं देती। जिस मद्यका अभ्यास होजानेपर मद्यप पुरुषको विना मद्यसे रहना कठिन होकर बार २ वह मद्यका स्मरणकरता है। जो मद्य मलीन भी मनुष्यको प्रसन्न करदेती है और प्रसन्ना स्वच्छ मद्य तो स्वर्गकासा सुख देती है। जिस मद्यके मदमें अन्धमनुष्य तुच्छ होताहुआ भी इन्द्रको अपनेसे भी तुच्छ मानने लगता है। जिस मद्यके सुखको मद्यपीनेवाला स्वय अनुभव करनेके अतिरिक्त वर्णन भी नहीं कर सकता इस प्रकार कहताहुआ अपनी प्रियाके अनुकरण आदि अवितथभाव दिखाने लगता है। जिस मद्यके प्यारेको प्रिया अत्यन्त प्यारी प्रतीत होने लगती है। जो मद्य मद्यपोंके लिये प्रीति, रति, वाणी और पुष्टिरूप है। जो मद्य देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और मनुष्योंद्वारा स्तुति की गयी है उस मद्यको मद्यपीपुरुष मद्यपीनेके समय विधिपूर्वक पीवे ॥ ६४-६७ ॥

सम्भवन्ति च ये रोगा मेदोऽनिलकफोद्भवाः।
विधियुक्तादृते मद्यात्ते न सिध्यन्तिदारुणाः६८

विधिरहित मद्यपीनेसे जो रोग उत्पन्न होकर असाध्यावस्थामे पहुँच जाते हैं वे मेद, वात और कफके रोग विधिपूर्वक मद्यपीनेसे उत्पन्न ही नहीं होते इस कारण मद्यपीनेवाले पुरुषोंको मद्यका विधिपूर्वक सेवन करना चाहिये। "विनापीनेवालोंको कभी भी नहीं पीनी चाहिये" ॥ ६८ ॥

अस्ति देहस्य सावस्था यस्यां पानं निवार्यते।
अन्यत्र मद्यात्रिगदाद्विविधौषधसम्भृतात्६९॥

मद्यपीनेवाले मनुष्योंके शरीरकी भी वह अवस्था है जिसमें सर्वथा मद्यपानका त्याग करादेना पडता है उस अवस्थामें मद्यविहीन पुरुषको अनेक औषधियोंसे बनाए निगदका प्रयोग करना चाहिये अर्थात् मद्य पीनेवालेकी मद्यको छुडादेनेके अनन्तर मद्यसे उत्पन्नहुए उसके शारीरिक रोगोंको रोगानुसार औषधियोंसे बनायेहुए योग देकर निरोग बना देना चाहिये॥६९॥

आनूपं जाङ्गलं मांसं विधिनाऽप्युपकल्पितम्।
मद्यं सहायमप्राप्य सम्यक् परिणमेत्कथम्७०॥

मांस खानेवाले मनुष्योंके लिये मद्यका पीनाभी आवश्यक हो जाता है क्योंकि आनूप और जांगल जन्तुओंके मांसको अनेक प्रकारके संस्कारोंसे बनाकर खानेपर भी वह मांस मद्यकी सहायता विना यथार्थ परिपाकको प्राप्त होकर रसरक्तादिमें परिणत नहीं हो सकता. इस कारण मांस खानेवालोंको साथमें मद्य पीना भी आवश्यक होजाता है (इसी प्रकार मद्य मांसके साथ अन्य पापोंका लग जाना भी आवश्यक ही हो जाता है) ॥ ७० ॥

सुतीव्रमारुतव्याधिघातिनो लशुनस्य च ।
मद्यमांसवियुक्तस्यप्रयोगः स्यात्कियान् गुणः॥

मद्यमांसेके सेवन करनेवालेको लसुन खाना भी आवश्यक है क्योंकि जो पुरुष मद्यमांसका सेवन नहीं करता उसको तीव्र वातविकारके शमन करनेवाले लशुनके खानेसे भी क्या लाभ है अर्थात् मद्य-मांस खानेवालोंको जो वातके रोग उत्पन्न होते है । उनको शमन करनेके लिये ही ऐसे पुरुषोंको लशुन खाना पडता है । अन्यथा लशुन खानेकीभी आवश्य-कता नहीं है ॥ ७१ ॥

मद्यपानके गुण ।

निगूढशल्याहरणे शस्त्रक्षाराग्निकर्मणि ।
पीतमद्यो विषहते सुखं वैद्यविकत्थनाम्॥७२॥

प्रनष्टशल्यको निकालनेमे और विषसे उपहत स्थानके काटने आदिमे शस्त्र, क्षार और अग्निका प्रयोग आदि करनेमें चिकित्सा संबन्धी कष्टको मद्य पियाहुआ पुरुष सुखपूर्वक सहन करसकता है ॥ ७२ ॥

अनलोत्तेजनं रुच्यं शोकश्रमविनोदकम् ।
न चाऽतःपरमस्त्यन्यदारोग्यबलपुष्टिकृत्॥७३
रक्षता जीवितं तस्मात्पेयमात्मवता सदा ।
आश्रितोपाश्रितहितं परमं धर्मसाधनम्॥७४॥

मद्य जठराग्निको उत्तेजित करती है रुचिकारक है शोक और श्रमको दूर करती है तथा चित्तमें आन-न्दको उत्पन्न करती है। इस कारण मद्य पीनेवालोंके लिये मद्यके समान दूसरा द्रव्य आरोग्य बल और पुष्टिके करनेवाला नहीं हो सकता है । इस कारण जितेन्द्रिय पुरुषको अपने जीवनकी रक्षाके लिये सदैव मद्यको विधिपूर्वक पीना चाहिये । यह मद्य मद्यपान करनेवालोंके घरपर आयेहुए आश्रित उपाश्रितोंका भी हित करनेवाली और मद्यप पुरुषोंको यह आश्रित सेवादि धर्मको साधन करने वाली है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

मद्य पीनेकी विधि ।

स्नातः प्रणम्य सुरविप्रगुरून्यथास्वं
वृत्तिं विधाय च समस्तपरिग्रहस्य ।
आपानभूमिमथ गन्धजलाभिषिक्ता-
माहारमण्डपसमीपगतां श्रयेत ॥ ७५ ॥

स्वास्तृतेऽथ शयने कमनीये
भृत्यमित्ररमणीसमवेतः ।
स्वं यशः कथकचारणसङ्घै-
रुद्गतं निशमयन्नतिलोकम् ॥ ७६ ॥

विलासिनीनां च विलासशोभि
गीतं सनृत्तं कलतूर्यघोषैः ।
काञ्चीकलापैश्चलकिङ्किणीकैः
क्रीडाविहङ्गैश्च कृतानुनादम् ॥ ७७ ॥

मणिकनकसमुत्थैरावनेयैर्विचित्रैः
सजलविविधलेखक्षौमवस्त्रावृताङ्गैः ।
अपि मुनिजनचित्तक्षोभसम्पादिनीभि-
श्चकितहरिणलोलप्रेक्षणीभिः प्रियाभिः ॥७८॥

स्तननितम्बकृतादतिगौरवा-
दलसमाकुलमीश्वरसम्भ्रमात् ।
इति गतं दधतीभिरसंस्थितं
तरुणचित्तविलोभनकार्मणम् ॥ ७९ ॥

यौवनासवमत्ताभिर्विलासाधिष्ठितात्मभिः ।
संचार्यमाणं युगपत्तन्वङ्गीभिरितस्ततः॥८०॥

तालवृन्तनलिनीदलानिलैः
शीतलीकृतमतीव शीतलैः ।
दर्शनेऽपि विदधद्दशानुगं
स्वादितं किमुत चित्तजन्मनः ॥ ८१ ॥

चूतरसेन्दुमृगैः कृतवासं
मल्लिकयोज्ज्वलया च सनाथम् ।

स्फाटिकशुक्तिगतं सतरङ्गं
कान्तमनङ्गमिवोद्वहदङ्गम् ॥ ८२ ॥
तालीसाद्यं चूर्णमेलादिकं वा
हृद्यं प्राश्य प्राग्वयःस्थापनं वा ।
तत्मार्थिभ्यो भूमिभागे सुमृष्टे
तोयोन्मिश्रं दापयित्वा ततश्च॥८३॥
धृतिमान् स्मृतिमान्नित्यमन्यूनाधिकमाचरन् ।
उचितेनोपचारेण सर्वमेवोपपादयन् ॥ ८४ ॥
जितविकासितासितसरोज-
नयनसंक्रान्तिवर्धितश्रीकम् ।
कान्तामुखमिव सौरभ-
हृतमधुपगणं पिबेन्मद्यम् ॥ ८५ ॥

स्नान करके देवता, ब्राह्मण, गुरु आदिकोंको प्रणामादि अभिवादन करके सम्पूर्ण परिग्रह मित्र आदि साथ लेकर आहारमण्डपके समीप मद्यपीनेके स्थानको सुगन्धित जल आदिसे सुवासितकर मद्यपीनेके स्थानमें बैठे । जिस स्थानमे सुन्दर शय्याआदि बिछेहुए हों बैठने आदिके सुन्दर सामान हों, वहांपर नौकर सेवक मित्र और रमणी उपस्थित हों तथा कत्थक, चारण आदि खुशामदियोंके समूहसे अपनी बड़ाई सुनताहुआ और वेश्या आदि विलासिनी स्त्रियोंके विलासको शोभा देनेवाले गीत, नृत्य, बाजे आदि सुनताहुआ उस स्थानके कपोत, सारसादि क्रीड़ा करनेवाले पक्षियोंके अनेक आमोदप्रमोदको देखताहुआ, सुन्दर शब्दआदि सुखका अनुभव करे । तथा हीरे-मोतीयुक्त सुवर्णके आभूषण पहनेहुए, सुन्दर रेशमी विचित्र शोभावाले वस्त्रपहने हुए सुगन्धयुक्त सुन्दर स्त्रियोंके कटाक्ष जो मुनियोंके चित्तमेंभी क्षोभ उत्पन्न करदेवें ऐसी सुन्दर प्यारी स्त्रियोंके चकित हरिणीके समान नेत्रोंकी चंचलतायुक्त नेत्रोंके कटाक्षवाली तथा स्तन और नितम्बोंके भारसे विचित्र गतिसे चलनेवाली एवं तरुण पुरुषोंके चित्तको लुभायमान करनेवाली, यौवनके मदसे मत्त, विलासयुक्त सुन्दर अंगोंवाली स्त्रियें हाथोंमें शीतल जलसे सिक्त तालपत्र और कमल लेकर इधर उधर फिरती हुई, अपने हाथके शीतल व्यजनपुष्पादिसे शीतलकरतीहुई, अपने दर्शनमात्रसे ही कामातुरको वशमें करें तो आश्चर्य ही क्या है ऐसी स्त्रियोंके हाथोंसे आम्र, कपूरादि सुगन्धियुक्त और शीतल कीहुई मद्य इनके हाथसे स्फटिकमणीके पात्रमें डालीहुई मद्य देखनेसे भी पुरुषके मनमें कामदेवको उत्पन्न कर देती है । ऐसी मद्यको पीनेसे प्रथम तालीसादि या एलादि चूर्ण जो हृदयको हितकारी और वयस्थापक हों खाकर प्रथम थोड़ी मद्य जल मिलाकर लिपीहुई सुन्दर भूमीपर मद्यके देवताओंको प्रदान करे । तदनन्तर अपनी धारणा और स्मृतिको स्थिर रखते हुए सात्म्य आहार आदिके साथ उचित मात्रासे मद्य सेवनकरे ऐसी मद्य विकसित श्वेत कमलोंकी शोभाको जीतनेवाले नेत्रोंकी कान्तियुक्त कान्ताके मुखकी सुगन्धको बढा देती है ऐसी सुगन्धि युक्त मद्यको उचित मात्रासे पीवे ॥ ७९-८५ ॥

पीत्वैवं चषकद्वयं परिजनं संमान्य सर्वं ततो
गत्वाहारभुवं पुरःसुभिषजो भुञ्जीत भूयोऽत्र च।
मांसापूपघृतार्द्रकादिहरितैर्युक्तं ससौवर्चलै-
र्द्विस्त्रिर्वा निशि चाल्पमेव वनितासं-
-चालनार्थं पिबेत्॥८६॥

इस प्रकार दो घूंट मद्यके पीकर और अपने मित्र आदिकोंका सन्मानकर आहारस्थानमें जाकर वैद्यकी आज्ञानुसार भोजन करे और यहांपर मांस, पूडे, घृतके बने पदार्थ, आर्द्रक, हरे शाक, संचरनमक आदियुक्त सुन्दर भोजन करे और बीच२में स्त्रियोंके मद भंजन करनेको एक दो वार थोड़ी २ मद्य पीवे ॥ ८६ ॥

रहसि दयितामङ्के कृत्वा भुजान्तरपीडनात्
पुलकिततनुं जातस्वेदां सकम्पपयोधराम् ।
यदि सरभसं सीधूद्गारं न पाययते कृती
किमनुभवति क्लेशप्रायं ततो गृहतन्त्रताम् ८७॥

(पीछे इसी अध्यायके ७०-७१ श्लोकमें कह आए हैं कि मांस भक्षण करनेके साथ २ मद्यका लगजाना भी आवश्यक है मद्यमांस पीनेखानेके अनन्तर व्यभिचारादिभी इसके अग होनेसे उसका क्रमभी कहते है) जैसे उपरोक्त विधिसे मद्यमांस सेवनके अनन्तर एकान्तमें स्त्रीको अंकमें बिठाकर दोनों भुजाओंसे

कसकर पुलकित शरीर तथा स्वेद और स्तनोंमें कम्प होजानेपर विलासीपुरुष यदि बल और प्रेमपूर्वक मद्यको उद्गार नहीं पिलाता तो उसका गृहस्थ वृथा क्लेशके लिये है ॥ ८७ ॥

वरतनुवक्त्रसङ्गतिसुगन्धितरं सरकं
द्रुतमिव पद्मरागमणिमासवरूपधरम् ।
भवति रतिश्रमेण च मदः पिबतोऽल्पमपि
क्षयमतनुमोजसःपरिहरन् स शयीत परम्॥८८॥
इत्थं युक्त्या पिबन्मद्यं न त्रिवर्गाद्विहीयते ।
असारसंसारसुखं परमेवाधिगच्छति ॥ ८९ ॥
ऐश्वर्यस्योपभोगोऽयं स्पृहणीयः सुरैरपि ॥९०॥

शरीरको सुन्दर करनेवाली मुखकी कान्ति और गन्धको बढानेवाली, सरक तथा पद्मरागमणिके द्रावके समान रूपवाली मद्यको पान कर रतिश्रमके अनंतर फिर अल्प मद्य भी न पीकर शरीर और ओजकी रक्षा करताहुआ शयनकर निद्रा लेवे अन्यथा स्त्रीसंग करनेसे और मद्य पीते रहनेमे शरीर और ओजका क्षय होजाता है ।

इस प्रकार युक्तिसे मद्य पीतेहुए मद्यपान करनेवालोंका त्रिवर्ग भी नाश नहीं होता और वे अपनी समझमें असार संसारका सुख भी अच्छे प्रकार भोग लेते है और उनके मतमें इस सुखकी देवताओंको भी स्पृहा करनी चाहिये ॥ ८८–९० ॥

अन्यथा हि विपत्सु स्यात्पश्चात्तापेन्धनं धनम् ।
उपभोगेन रहितोऽभोगवानिति निन्द्यते ।
निर्मितोऽतिकदर्योऽयं विधिना निधिपालकः ॥
तस्माद्व्यवस्थया पानं पानस्य सततं हितम् ।
जित्वा विषयलुब्धानामिन्द्रियाणां स्वतन्त्रताम्
विधिर्वसुमतामेष भविष्यद्वसवस्तु ये ।
यथोपपत्ति तैर्मद्यं पातव्यं मात्रया हितम् ॥९३
यावद्दृष्टेर्न सम्भ्रान्तिर्यावन्न क्षोभते मनः ।
तावदेव विरन्तव्यं मद्यादात्मवता सदा॥ ९४ ॥

इस नियमसे विपरीत अधिक मद्यपीनेवाले विपत्तिमें पडकर पश्चात्ताप करते है उनके धनरूपी ईंधनकी इसीमें भस्म होजाती है, उसके धन शरीर सबका नाश होनेसे वह अभागा कहा जाता है । धनवाला मद्यपी लोगोंमें बैठकर उस धनसे मद्य नहीं पीता पिलाता तो यह कंजूस धनपालक आदि शब्दों द्वारा मद्यपार्टीवालोंसे निन्दाका पात्र बनता है । इस कारण मद्यपीनेवालोंको भी इन्द्रियोंको विषयकी ओरसे हटाकर जितेन्द्रिय होकर निरंतर विधिपूर्वक मद्यपान करना चाहिये । विधिवत् मद्य भी बडे २ राजा रईसोंको औषधरूपसे मात्रानुसार यथाकाल हित मद्यका सेवन करना चाहिये. यह भी जिनके वंशमे चला आया हो सो पुरुष ही सेवन करे अन्यथा मद्य नहीं पीना चाहिये ।

मद्य जबतक दृष्टिमें भ्रांति और मनमें क्षोभ न करे तबतक पीवे । भ्रांति और क्षोभ करनेवाली मात्रामें मद्य नहीं पीना चाहिये अर्थात् जितनी मात्रासे क्षोभ होनेवाला हो उससे पहले ही मद्यका त्याग करदेवे अधिक न पीवे । सदैव मद्य पीनेवालोंको इसी मात्रामें मद्य पीना चाहिये ९१-९४ ॥

वातप्रकृतिको मद्यपान क्रम ।

अभ्यङ्गोद्वर्तनस्नानवासधूपानुलेपनैः ।
स्निग्धोष्णैर्भावितश्चान्नैःपानं वातोत्तरःपिबेत्॥

वातप्रधान मनुष्य प्रथम तैल मलकर उबटनमले फिर स्नानकर सुगन्धित धूप लेकर अगर कस्तूरी आदि लेपन कर स्निग्ध उष्ण द्रव्योंसे भावित अन्नोंके साथ मद्य पान करे ॥ ९५ ॥

पितप्रकृतिको मद्यपानक्रम ।

शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्धशीतलैः ।
पैत्तिको भावितश्चान्नैःपिबेन्मद्यं न सीदति ९६॥

पितप्रधानमनुष्यको शीतल उपचारोंके साथ अनेक मधुर, स्निग्ध और शीतल द्रव्योंके तथा मधुर शीतल अन्नोंके साथ मद्य पीना चाहिये जिससे वह पित्तप्रकोपसे कष्ट न उठावे ॥ ९६ ॥

कफप्रधानको मद्यपान क्रम ।

उपचारैरशिशिरैर्यवगोधूमभुक् पिबेत् ।
श्लैष्मिको जाङ्गलैर्मांसैर्मद्यं मरिचकैः सह॥९७॥

कफप्रधानमनुष्यको गर्म उपचार करतेहुए गेहूं, यव आदि अन्नके साथ तथा जांगल जीवोंके मांसके

साथ कालीमिर्च, सोंठ आदि मिलाकर मद्य पीना चाहिये ॥ ९७ ॥

वातादिभेदसे मद्यभेद।

तत्र वाते हितं मद्यं प्रायः पैष्टिकगौडिकम्।
पित्ते साम्भो मधु कफे मार्द्वीकारिष्टमाधवम् ९८
प्राक् पिबेच्छ्लैष्मिको मद्यं भुक्तस्योपरि पैत्तिकः।
वातिकस्तु पिबेन्मध्ये समदोषो यथेच्छया ॥९९

वातप्रधान पुरुषको पैष्टिक और गौड़ी मद्य पीना चाहिये। पित्तप्रधान पुरुषको जल मिलीहुई माध्वींक मद्य पीना चाहिये। कफप्रधान मनुष्यको मार्द्वीकमद्य द्राक्षारिष्ट और माध्वींकमद्य पीना चाहिये।

कफप्रधान मनुष्यको भोजनसे पहले मद्य पीना चाहिये। पित्तप्रधान मनुष्यको भोजनके अनन्तर मद्य पीना चाहिये।

वातप्रधान पुरुषको भोजनके मध्यमें मद्य पीना चाहिये और समदोषवाले मनुष्यको अपनी इच्छानुसार उचित मात्रामें मद्य पीना चाहिये ॥ ९८-९९ ॥

मदमूर्छाकी चिकित्सा।

मदेषु वातपित्तघ्नं प्रायो मूर्च्छासु चेष्यते।
सर्वत्रापि विशेषेण पित्तमेवोपलक्षयेत्॥ १०० ॥

मद और मूर्च्छामें प्रायः वातपित्तनाशक चिकित्सा करना चाहिये। क्योंकि मद और मूर्छामें सर्वत्र ही पित्तकी अधिकता होती है ॥ १०० ॥

शीताः प्रदेहा मणयः सेका व्यजनमारुताः।
सिताद्राक्षेक्षुखर्जूरकाश्मर्यैःस्वरसाःपयः ॥ १ ॥
सिद्धं मधुरवर्गेण रसा यूषाः सदाडिमाः।
षष्टिकाःशालयो रक्ता यवाःसर्पिश्च जीवनम्२॥
कल्याणकं महातिक्तं षट्पलं पयसाग्निकः।
पिप्पल्यो वा शिलाह्वं वा रसायनविधानतः॥३॥
त्रिफला वा प्रयोक्तव्या सघृतक्षौद्रशर्करा ॥४॥

मद और मूर्छामें शीतल चन्दनादि लेप करना, मुक्ता आदि मणियोंका धारण करना, शीतलजलका सेचन, शीतल पंखेकी पवन, मिसरी, द्राक्षा, इक्षुरस, खर्जूर और काश्मरीफलोंका स्वरस, दूध तथा मधुरवर्गसे सिद्धकियेहुए रस और यूष, दाडिमका रस, सांठीके चावलोंका भात, लाल शालीचावलोंका भात, यव, जीवनीय द्रव्योंसे सिद्ध घृत उन्मादमें कहाहुआ कल्याण घृत, कुष्ठचिकित्सामें कहाहुआ महातिक्तक घृत, राजयक्ष्मामें कहाहुआ षट्पलघृत, तथा दूधके साथ चित्रक, या रसायनविधिसे पिप्पली अथवा रसायन विधिसे शिलाजीत अथवा घृत, मधु और खांड मिलाकर त्रिफला सेवन कराना चाहिये इन प्रयोगोंसे मद और मूर्छा शांत होजाते है ॥ १०१-१०४ ॥

प्रसक्तवेगेषु हितं मुखनासावरोधनम्।
पिबेद्वा मानुषीक्षीरं तेन दद्याच्च नावनम्।
मृणालबिसकृष्णा वा लिह्यात्क्षौद्रेण साभयाः॥

मद और मूर्छामें वेगके समय रोगीके मुख और नासिका बन्द करनेसे मूर्छा दूर हो जाती है। तथा स्त्रीका दूध पिलाना या स्त्रीके दूधकी नस्य देना भी मद, मूर्छाको शमन करता है। अथवा कमलकी जड़ और डंडी, पीपल और हरीतकीका चूर्ण मिलाकर मधुके साथ चाटनेसे मद, मूर्छा दूर होते है ॥१०५॥

दुरालभां वा मुस्तां वा शीतेन सलिलेन वा।
पिबेन्मरिचकोलास्थिमज्जोशीराहिकेसरम् ॥६॥
धात्रीफलरसे सिद्धं पथ्याक्वाथेन वा घृतम्।
कुर्यात्क्रियां यथोक्तां च यथादोषबलोदयम्७॥

अथवा जवासा या नागरमोथा मधुमें मिलाकर चाटे। या मरिच, बेरकी गुठलीकी मज्जा, खस और नागकेशरको शीतलजलसे पीवे तो मद मूर्च्छा शमन होते है। अथवा आमलेके रस और हरड़के क्वाथसे सिद्ध किया घृत पीनेसे मद, मूर्छा शमन हो जाते हैं। अथवा मदमूर्छामें दोष और दोषबलादिका उच्छ्राय देखकर दोष बलानुसार जो क्रिया करना उचित हो सो करे ॥ १०६ ॥१०७॥

पञ्चकर्माणि चेष्टानि सेचनं शोणितस्य च।
सत्त्वस्यालम्बनं ज्ञानमगृद्धिर्विषयेषु च ॥ ८ ॥

मद और मूर्छाकी निवृत्तिके लिये स्नेहन स्वेदनादि पंचकर्म करना हितकारी होता है। अथवा रक्तमोक्षण कराना या सत्त्वगुण प्रधान गुणोंका आश्रयलेना तथा

दार्शनिक ज्ञान प्राप्तकरना और विषयोंका त्याग करना ये सब मद और मूर्छाको शमन करते है ॥ १०८॥

मदेष्वातिप्रवृद्धेषु मूर्च्छायेषु च योजयेत् ।
तीक्ष्णं संन्यासविहितं विषघ्नं विषजेषु च ॥ ९॥

अत्यन्त बढ़ेहुए मद या मूर्छामें संन्यासरोगमें कही हुई तीक्ष्ण नस्य देना चाहिये । यदि विषजनित मद या मूर्छा हो तो विषघ्न नस्य (नसवार)आदिका प्रयोग करना चाहिये ॥ १०९॥

संन्यासकी चिकित्सा ।

आशु प्रयोज्यं संन्यासे सुतीक्ष्णं नस्यमञ्जनम्।
धूमप्रधमनं तोदः सूचीभिश्च नखान्तरे॥ १०॥
केशानां लुञ्चनं दाहो दंशो दशनवृश्चिकैः ।
कटुम्लगालनं वक्त्रे कपिकच्छ्वघर्षणम् ॥ ११

संन्यासरोगमें होश (चैतन्य) लानेके लिये तीक्ष्ण-नस्य और तीक्ष्ण अंजनका प्रयोग करना चाहिये तथा नासिकामें तीक्ष्ण धूम या कायफल आदिका चूर्ण प्रधमन करना चाहिये । अथवा नखोंके अन्दर सूचीसे तोद (सूईचुभाना) करना चाहिये । केशोंका खैंचना अग्निसे दाह (दाग) करना, बीछू (वृश्चिक) आदिसे डसाना, चरपरी और खट्टीचीजोंका रस मुखमें डालना कौंचफलीका कहीं त्वचापर लगादेना आदि तीक्ष्ण-कर्म संन्यासकी मूर्छा निवृत्त करनेके लिये करना चाहिये ॥ ११० ॥ १११ ॥

उत्थितो लब्धसंज्ञश्च लशुनस्वरसं पिबेत् ।
खादेत्सव्योषलवणं बीजपूरककेसरम् ॥ १२ ॥
लघ्वन्नं प्रति तीक्ष्णोष्णमद्यात्स्रोतोविशुद्धये १३

जब मूर्छा निवृत्त होकर चैतन्य लाभ हो तो उठते ही लशुनका स्वरस पिला देना चाहिये । तथा सोंठ, मिर्च, पीपल और लवण मिलाकर विजौरे नींबूकी केशर खिलाना चाहिये । और स्रोतोंकी शुद्धिके लिये तीक्ष्ण उष्ण तथा हलका भोजन कराना चाहिये।११२॥११३

विस्मापनैः संस्मरणैः प्रियश्रवणदर्शनैः ।
पटुभिर्गीतवादित्रशब्दैर्व्यायामशीलनैः ।
स्रंसनोल्लेखनैर्धूमैःशोणितस्यावसेचनैः॥ १४ ॥
उपाचरेत्तं प्रततमनुबन्धभयात्पुनः ।
तस्य संरक्षितव्यं च मनः प्रलयहेतुतः ॥ १५ ॥

तथा मूर्छाको भुलानेवाले और प्यारे श्रवण दर्शन आदिका स्मरण करानेवाले सुन्दर गीत, बाजे आदिमें चित्त लगाना चाहिये । प्यारीलगनेवाली बातों और खेल आदिमें चित्त लगाना चाहिये । दोषोंको उल्ले-खन (उखाड़) कर निकालनेवाले धूम आदिकोंका प्रयोग, रक्तमोक्षण आदि कर्मोंद्वारा इसकी इस प्रकार रक्षा करें जिससे दूसरीवार फिर इसको मूर्छाका वेग न आवे तथा इसके मनपर किसी प्रकारका तीक्ष्ण आघात न आने देवे जिससे पुनः मूर्च्छा आदि न होसकें इस प्रकार सावधानीसे चिकित्सा करनेपर मद, मूर्छा और संन्यास रोग निवृत्त होजाते है।११४॥११५

इति श्रीवाग्भटाचार्य प्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां आयु-र्वेदाचार्य पं० शिवशर्म्मकृतशिवदीपिकाभाषायां चिकित्सास्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोऽर्शसां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब हम अर्शरोग (बवासीर) की चिकित्साको कथन करते है ॥

अर्शकी चिकित्सा ।

काले साधारणे व्यभ्रे नातिदुर्बलमर्शसम् ।
विशुद्धकोष्ठं लघ्वल्पमनुलोमनमाशितम् ॥ १ ॥
शुचिं कृतस्वस्त्ययनं मुक्तविण्मूत्रमव्यथम् ।
शयने फलके वान्यनरोत्सङ्गे व्यपाश्रितम्॥२॥
पूर्वेण कायेनोत्तानं प्रत्यादित्यगुदं समम् ।
समुन्नतकटीदेशमथ यन्त्रणवाससा ॥३॥
सक्थ्नोः शिरोधरायां च परिक्षिप्तमृजुस्थितम् ।
आलम्बितं परिचरैः सर्पिषाभ्यक्तपायवे ॥४॥
ततोऽस्मै सर्पिषाभ्यक्तं निदध्यादृजुयन्त्रकम् ।
शनैरनुसुखं पायौ ततो दृष्ट्वा प्रवाहणात् ॥५॥
यन्त्रे प्रविष्टं दुर्नाम प्लोतगुण्ठितयाऽनु च ।
शलाकयोत्पीड्य भिषग् यथोक्तविधिना दहेत्

क्षारेणैवार्द्रमितरत्क्षारेण ज्वलनेन वा।
महद्वा बलिनश्छित्त्वा वीतयन्त्रमथातुरम् ॥७॥
स्वभ्यक्तपायुजघनमवगाहे निधापयेत्।
निर्वातमन्दिरस्थस्य ततोऽस्याचारमादिशेत् ॥
एकैकमिति सप्ताहात्सप्ताहात्समुपाचरेत् ॥८॥

यदि अर्शरोगवाला मनुष्य अधिक दुर्बल न हो तो उसको जब शीत और उष्णता साम्यावस्थामें हो ऐसे शरद या वसन्त ऋतुमें विधिपूर्वक साधारण शोधन कराकर शुद्धकोष्ठ होनेपर हलका और अनुलोमन भोजन करावे। फिर इसको मल मूत्र त्याग करनेके अनन्तर प्रसन्न और व्यथारहित अवस्थामें पवित्र होकर स्वस्त्ययन मंगल कर्मादि कराकर गद्दे तकियेदार शय्यापर अथवा मनुष्यकी गोदमें आरामसे उत्तान लेटा देवे। तदनन्तर इसके गुदाद्वारको सूर्यके प्रकाशकी ओर करके कटिभागको किंचित् ऊंचा करे और इसकी दोनों सक्थि (सांथले) वस्तुसे पीछेको इस प्रकार बांध दे जिससे मलद्वार (गुदा) साफ दिखाई देवे और सांथलोंमें बन्धाहुआ वस्तु गर्दनमें बांध दियाजाय इस प्रकार सीधा लेटाकर परिचारकों द्वारा संभाल रखना चाहिये। तब इस गुदाको घृतसे चिकना करके इसकी स्निग्ध गुदामें धीरेसे सीधा अर्शोयन्त्र सुखपूर्वक चढादेवे। जब यन्त्रमें अर्शका मांसांकुर (बवासीरका मस्सा) आजावे तब उस मस्सेका चारों ओर क्वाथमें भिगोयाहुआ रूईका फोहा या नर्म वस्त्र इस प्रकार लगादे जिससे उस एक मस्सेके अतिरिक्त क्षारादि अर्शोयन्त्रके बाहर न जासके और उस अंकुरपर ही औषध क्षार या अग्नि कर्म हो सके तब उस अंकुरको शलाकासे एक ओरको पीडन कर उसपर क्षार लगाकर दग्ध करे. अथवा यदि अर्शांकुर अशुष्क हो तो क्षारसे अथवा अग्नितप्त लोहशलाकासे दग्ध करे। यदि बहुत बडा मस्सा हो और पुरुष बलवान् हो तो प्रथम मस्सेको काटकर निकाल दे फिर उसके मूलस्थानको क्षार या अग्निसे दग्ध करदेवे। तदनन्तर रोगीकी पायुस्थान और जघन स्थानको चिकना कर औषध सिद्ध शीतल जलके कटाहमें बिठावे तदनन्तर निर्वात स्थानमें सुखसे लेटावे और परिचारकको सावधानतासे उसकी परिचर्या आदि समझादेवे। इस प्रकार सात २ दिनके अनन्तर एक २ मस्सा काटना चाहिये ॥ १-८ ॥

प्राग्दक्षिणं ततो वाममर्शः पृष्ठाग्रजं ततः॥
बह्वर्शसः ॥ ९ ॥-

यदि कई अंकुर हों तो पहले दक्षिण ओरका मस्सा काटे फिर बाईं ओरका मस्सा काटे उससे पीछे पीठकी ओरको और सबसे पीछे अग्रभागका मस्सा काटना चाहिये ॥ ९ ॥

सम्यक्दग्धके लक्षण।

-सुदग्धस्य स्याद्वायोरनुलोमता।
रुचिरन्नेऽग्निपटुता स्वास्थ्यं वर्णबलोदयः॥१०

अर्शका अंकुर ठीक (यथार्थ) दग्ध होजावे तो वायु यथार्थ अनुलोमन होजाती है, अन्नपर रुचि, जठराग्निकी चैतन्यता, शरीरमें स्वास्थ्यका होना तथा शरीरमें बल और वर्णका बढना ये लक्षण होते हैं ॥ १०

अर्शरोगीकी वस्तिके शूलका यत्न।

बस्तिशूले त्वधोनाभेर्लेपयेच्छ्लक्ष्णकल्कितैः।
वर्षाभूकुष्ठसुरभिमिशिलोहामराह्वयैः॥११॥

यदि अर्शरोगीकी वस्तिस्थानमें शूल उत्पन्न हो जावे तो पुनर्नवा, कूट, मुरा, सौंफ अगर और देवदारु इन सबको जलके योगसे बारीक पीसकर कल्क बनावे इस कल्कको नाभिसे नीचे लेप करे तो वस्तिशूल शमन होता है ॥ ११ ॥

मलमूत्रके रुकनेकी चिकित्सा।

शकृन्मूत्रप्रतीघाते परिषेकावगाहयोः।
वरणालम्बुषैरण्डगोकण्टकपुनर्नवैः॥ १२ ॥
सुषवीसुरभीभ्यां च क्वाथमुष्णं प्रयोजयेत्।
सस्नेहमथवा क्षीरं तैलं वा वातनाशनम् ॥
युञ्जीतान्नं शकृद्भेदि स्नेहान् वातघ्नदीपनान्१३

यदि अर्शरोगीका मल, मूत्र रुक जावे तो वरुणवृक्षकी छाल, लाजवन्ती, एरंडकी जड, गोखरू, पुनर्नवा, कालाजीरा और मुरा इन सात द्रव्योंके क्वाथमें बिठाना और इसी कोष्ण क्वाथसे सेचन करना चाहिये तथा बादामके तेलयुक्त गर्म दूध पिलाना चाहिये।

अथवा एरण्ड तैल आदि वातनाशक तैल पिलाना या मलको भेदन कर निकालनेवाले (पालकका शाक, त्रिफलेका शाक आदि) अन्न भोजनमें देना चाहिये तथा वातनाशक और अग्निदीपक औषधसिद्ध घृतादि स्नेहपान कराना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥

क्षारादिसे दाधकरनेके अयोग्य अर्शकी चिकित्सा ।

अथाऽप्रयोज्यदाहस्य निर्गतान् कफवातजान्॥
संस्तम्भकण्डूरुक्शोफानभ्यज्य गुदकीलकान् ।
बिल्वमूलाग्निकक्षारकुष्टैः सिद्धेन सेचयेत्॥१५॥
तैलेनाहिबिडालोष्ट्रवराहवसयाथवा ।
स्वेदयेदनुपिण्डेन द्रवस्वेदेन वा पुनः ॥ १६ ॥
सक्तुना पिण्डिकाभिर्वा स्निग्धानां तैलसर्पिषा ।
रास्नाया हपुषाया वा पिण्डैर्वा काष्ठगन्धिकैः

जिन मनुष्योंके अर्शके मस्से क्षारादिसे दग्ध करने योग्य न हों अथवा कफवातज अर्शके मस्से बाहर निकले हुए हों उनमें स्तम्भ, पीडा, खुजली और सूजन होगयी हो तो ऐसे अर्शके मस्सोंको-बिल्व, सूरणकन्द, चित्रक, सज्जीखार और कूट इन पांच द्रव्योंके कल्कसे सिद्ध कियेहुए तैलसे स्निग्धकरे और इसी तैलसे मस्सों पर कोष्ण २ सेचन करे। अथवा सांप, बिडाल, उष्ट्र और वराह इनमेंसे किसी एक या सबकी वसा (चर्बी) से इन अर्शके मस्सोंको सेचन करे और सेचन या चिकना करनेके अनन्तर आगे कहेहुए द्रव्योंके पिण्डसे या द्रवस्वेदसे स्वेदन करे। प्रथम अर्शाकुरोंको तैल, चर्बी आदिसे स्निग्धकर भूनेहुए यवोंके चूर्णमें उपरोक्त स्नेह और जल मिलाकर अग्निपर गर्मकर एक पिण्ड बनाले इस गर्मपिण्डसे सुहाता २ मस्सोंपर सेक करे। अथवा रास्ना और हाऊबेरके चूर्णका पिण्ड या सुहांजनेकी छालका पिण्ड बनाकर उससे सुहाता २ सेक करे ॥ १४–१७ ॥

अर्शनाशक धूनी ।

अर्कमूलं शमीपत्रं नृकेशाः सर्पकञ्चुकम् ।
मार्जारचर्मसर्पिश्च धूपनं हितमर्शसाम् ॥
तथाश्वगन्धा सुरसा बृहती पिप्पली घृतम् १८॥

आकको जड, शमीवृक्ष (जंड) के पत्र, मनुष्यके केश, सांपकी कांचुली, बिलीका चर्म और घृत इन सबको मिलाकर अर्शके मस्सोंपर धूनीदेनेसे मस्से सूख जाते हैं। इसी प्रकार असगंध, तुलसी, बडीकटेली, और पीपलके चूर्णमें गौ घृत मिलाकर धूनीदेनेसे अर्शके मस्से शमन होजाते है ॥ १८ ॥

अर्शनाशक बत्ती ।

धान्याम्लपिष्टैर्जीमूतबीजैस्तज्जालकं मृदु ।
लेपितं छायया शुष्कं वर्तिर्गुदजशातनी ॥१९॥

जीमूत (कडवीतोरी) के बीजोंको धान्याम्लमें बारीक पीसकर कल्क बनावे फिर इसी जीमूतके फल (कवडीतोरी) के फलको कूटकर उसकी नम्र जाली निकाल कर बत्ती बनावे इस बत्तीपर इसके बीजोंका कल्क लेपकर छायामें सुखावे। इस बत्तीको अर्शवालेकी गुदामें देकर रखनेसे अर्शके मस्से नाश होजाते है१९॥

सजालमूलजीमूतलेहे वा क्षारसंयुते ।
गुञ्जासूरणकूष्माण्डबीजैर्वर्तिस्तथागुणा ॥ २०

अथवा जीमूत (कडवीतोरी) की जड और फलकी जालीको कूटकर लेह (चटनीसा कल्क) बनाले इसमें सज्जीखार मिलावे फिर इसमें रत्तकोंके बीज, जिमीकन्द और पेठेके बीज इनका बारीक चूर्ण मिलाकर अंगुलीके समान मोटी बत्ती बनाकर छायामें सुखाले। यह बत्ती भी गुदामें रखनेसे अर्शके अंकुरोंका शमन करदेती है ॥ २० ॥

अर्शनाशक लेप ।

स्नुक्क्षीरार्द्रनिशालेपस्तथा गोमूत्रकल्कितैः ।
कुक्कवाकुशकृत्कृष्णानिशागुञ्जाफलैस्तथा२१॥

हारिद्रा (हलदी) के बारीक चूर्णको थोहरके दूधमें रगडकर लेप करनेसे अथवा मुर्गेकी बीट, पीपल, हलदी और रत्तकोंके बीज इन चार द्रव्योंका गोमूत्रमें कल्क कर लेप करनेसे अर्शके मस्से नष्ट हो जाते है॥२१॥

स्नुक्क्षीरपिष्टैः षड्ग्रंथाहलिनीवारणास्थिभिः ।
कुलीरशृङ्गीविजयाकुष्ठारुष्करतुत्थकैः ॥ २२॥
शिग्रुमूलकजैर्बीजैः पत्रैरश्वघ्ननिम्बजैः ।
पीलुमूलेन बिल्वेन हिंगुना च समन्वितैः२३॥

१ बच, लांगलीकन्द, और हस्तीकी अस्थि ।

२ काकड़ा सिंगी, विजया (भांग) कूठ, मिलावे और नीलाथोथा । ३सुहांजनेके बीज, मूलीके बीज, कनेरके पत्र और नीमके पत्र। ४पीलुवृक्षकी जड़, बिल्वकी जड़ और हींग इन चार योगोंमेंसे किसी एकको या सबको मिलाकर थोहरके दूधमें रगडकर लेप करनेसे मस्से नष्ट होजाते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

कुष्ठं शिरीषबीजानि पिप्पल्यः सैन्धवं गुडः ।
अर्कक्षीरं सुधाक्षीरं त्रिफला च प्रलेपनम्॥२४॥

कूठ, सिरसके बीज, पीपल, सेंधानमक, गुड़, आकका दूध थोहरका दूध और त्रिफला, इन सबको बारीक पीसकर लेप करनेसे अर्शके मस्से नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥

आर्कं पयः स्नुहीकाण्डं कटुकालाबुपल्लवाः२५

आकका दूध, थोहरका काण्ड, कडवेतूम्बेके पत्र, करंजके बीज और बकरेका मूत्र इन सबका कल्ककर लेपन करनेसे अर्शके अंकुर नष्ट हो जाते हैं॥ २५॥

करञ्जो बस्तमूत्रं च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ।
आनुवासनिकैर्लेपः पिप्पल्याद्यैश्च पूजितः२६॥

आगे जो पिप्पली, मैनफल आदि द्रव्य अनुवासन कर्ममें कहेंगे उन द्रव्योंका लेप करना भी अर्शांकुरोंको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

अभ्यंग और स्रावका फल।

एभिरेवौषधैः कुर्यात्तैलान्यभ्यञ्जनानि च ।
धूपनालेपनाभ्यङ्गैः प्रस्रवन्ति गुदाङ्कुराः ॥
सञ्चितं दुष्टरुधिरं ततः संपद्यते सुखी ॥२७॥

इन ही ऊपर कहेहुए लेपनके द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ तेल मस्सों पर लगाना हितकारी होता है।

इन धूपन, आलेपन और अभ्यङ्गसे अर्शांकुरोंमेंसे संचितहुआ दुष्टरुधिर निकल जाता है तब मनुष्य सुखी रहता है ॥ २७ ॥

रक्तस्रावणके गुण ।

अवर्तमानमुच्छूनकठिनेभ्यो हरेदसृक् ।
अर्शोभ्यो जलजाशस्त्रसूचीकूर्चैः पुनःपुनः २८

यदि अर्शके मस्से सूजनयुक्त कठोर हों उनमेंसे रक्तस्राव न होता हो तो उनपर जोंक लगाकर या शस्त्रसे अथवा सूई या कूर्चसे उन मस्सोंमेंसे बार २ रक्त निकाल देवे जिससे इनकी सूजन और कठिनता शमन हो जावे ॥ २८ ॥

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्न व्याधिरुपशाम्यति।
रक्ते दुष्टे भिषक् तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत्॥२९॥

क्योंकि यदि दुष्ट रक्त अर्शके अंकुरोंमें स्थित हो तो कोई भी शीत, रूक्ष, उष्ण या स्निग्धक्रिया करनेसे अर्शांकुरोंमें शान्ति नहीं आसकती इस कारण वैद्यको उचित है कि रक्तसे अकड़ेहुए मस्सोंका रक्त अवश्य निकाल देवे ॥ २९ ॥

अर्शमें तक्रयोग।

यो जातो गोरसः क्षीराद्दह्निचूर्णावचूर्णितात् ।
पिबंस्तमेव तेनैव भुञ्जानो गुदजान् जयेत्३०॥

एक मट्टीके पात्रमें चित्रककी जडका छिलका बारीक पीसकर लेप करे उसमें गोदुग्ध जमावे. दही जमनेपर इसका तक्र बनाकर पीवे और इसी तक्रसे भोजन करे अथवा गोदुग्धमें चित्रककी जड़का चूर्ण बुरकाकर उस दूधसे जमाकर बनायाहुआ तक्र पीने खानेमें प्रयोग करनेसे अर्शरोग शमन होजाता है ॥ ३० ॥

अर्शनाशक अन्ययोग।

कोविदारस्य मूलानां मथितेन रजः पिबेत् ।
अश्नन् जीर्णे च पथ्यानि मुच्यते हतनामभिः३१

कचनारकी जड़का चूर्ण विनाजलके मथेहुए तक्रके साथ पीवे और क्षुधा लगनेपर पथ्य भोजन करे तो अर्शरोग शमन होजाता है ॥ ३१ ॥

गुदश्वयथुशूलार्तो मन्दाग्निर्गौल्मिकान् पिबेत् ।
हिंग्वादीननुतक्रां वा खादेद्गुडहरीतकीम् ।
तक्रेण वा पिबेत्पथ्याविल्लामिकुटजत्वचः ॥३३॥
कलिङ्गमगधाज्योतिःसूरणान्वांशवर्धितान् ।
कोष्णांबुनावात्रिपटुव्योषहिंग्वम्लवेतसम् ३४

यदि अर्शरोगवालेकी गुदामें सूजन हो तथा शूल और मन्दाग्नि भी हो तो गुल्मरोगमें कहेहुए हिंग्वादिचूर्णको तक्रके साथ पीवे । अथवा गुड हरीतकीको तक्रके साथ सेवन करे । अथवा हरीतकी,

वायविडंग, चित्रक और कुडाकी छाल इन सबके चूर्णको तक्रके साथ सेवन करे अथवा इन्द्रजव एक भाग, पीपल दो भाग, मेथी तीन भाग और सूरण-कन्द चार भाग इन सबका चूर्ण कर तक्रके साथ पीवे अथवा सेंधानमक, संचरनमक, विडनमक, सोंठ. मिर्च, पीपल, हींग और अम्लवेत इन सबके चूर्णको गर्मजलसे सेवन करे तो अर्शरोग शमन होता है तथा शूल और मन्दाग्नि दूर होते हैं ॥ ३२-३४ ॥

युक्तं बिल्वकपित्थाभ्यां महौषधबिडेन वा ।
आरुष्करैर्यवान्या वा प्रदद्यात्तक्रतर्पणम् ३५॥
दद्याद्वा हपुषा हिङ्गु चित्रकं तक्रसंयुतम् ।
मासं तक्रानुपानानि खादेत्पीलुफलानि वा ३६
पिबेद्हरहस्तक्रं निरन्नो वा प्रकामतः ।
अत्यर्थं मन्दकायाग्नेस्तक्रमेवावचारयेत् ॥३७॥

यवोंके सत्तु मिलाहुआ पीने योग्य पतला तक्र बिल्व और कपित्थका चूर्ण मिलाकर पीवे । अथवा सोंठ और विड़लवणयुक्त तक्रका तर्पण पीवे । या भिलावेका चूर्ण और अजवायन मिलाकर तक्रका तर्पण पीवे । अथवा हाउबेर, हींग और चित्रकका चूर्ण तक्रके साथ एक महीनेतक सेवन करे । अथवा पीलुफलोंको तक्रके साथ सेवन करे । या केवल तक्रका ही पान करे और अन्न न खावे तो अर्श रोग शमन होजाता है ।

जिस मनुष्यका शरीर निर्बल हो और जठराग्नि मन्द हो ऐसे अर्श रोगीको केवल तक्रका ही अत्यन्त प्रयोग कराना चाहिये ॥ ३५--३७ ॥

तक्रपानकी मर्यादा ।

सप्ताहं वा दशाहं वा मासार्धं मासमेव वा ।
बलकालविकारज्ञो भिषक् तक्रं प्रयोजयेत् ३८॥
सायं वा लाजसक्तूनां दद्यात्तक्रावलेहिकाम् ।
जीर्णे तक्रे प्रदद्याद्वा तक्रपेयां ससैंधवाम् ॥३९
तक्रानुपानं सस्नेहं तक्रौदनमतः परम् ।
यूषैरसैर्वा तक्राढ्यैः शालीन् भुञ्जीत मात्रया४०

सात दिन अथवा दश दिन या पन्द्रह दिन अथवा एक महीना तक बल, काल और रोगके जाननेवाला वैद्य अर्शरोगीको यथोचित रीतिपर तक्रका सेवन करावे। अथवा सायंकाल धानकी खीलोंके सत्तू तक्रमें मिलाकर खिलावे । अथवा प्रातःकालका पियाहुआ तक्र पच जा-नेपर सेंधालवणयुक्त तक्रकी पेया बनाकर पिलावे । फिर क्रमसे किंचित् स्नेहयुक्त तक्र पिलावे । तदनन्तर शा-लिचावलोंका भात अधिक तक्रके साथ खिलावे अथवा तक्रयुक्त यूष या रसोंके साथ उचितमात्रासे शाली-चावलोंका भात देवे । (जब निरन्न रखकर केवल तक्रका प्रयोग करावे तब तक्रपानकी अवधिके अनन्तर तक्र पेया आदि देते हुए क्रमसे अन्नपर लाना चाहिये) ॥ ३८-४० ॥

तक्रके भेद ।

रूक्षमर्धोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम् ।
तक्रं दोषाग्निबलवत्त्रिविधं तत्प्रयोजयेत् ॥४१॥

तक्र तीन प्रकारका होता है. जैसे-१ रूक्षतक्र २ अर्धोद्धतस्नेह और ३ अनुद्धृतस्नेह. जिस तक्रमेंसे घृत निकालकर फोकी छाँछ रहजावे उस छाँछको रूक्षतक्र कहते हैं । आधा मक्खन निकालकर आधी चिकनाईयुक्त छाछको अर्धोद्धृतस्नेहतक्र कहते हैं । और विना चिकनाई निकाले चौथा भाग जल मिलाकर बिलोयेहुए दहीको अनुद्धृतस्नेहतक्र कहते हैं. ये तीनों प्रकारके तक्र दोष, जठराग्नि और बलको देखकर जहां जिस प्रकारके तक्रको प्रयोग करना उचित हो उस प्रकारके तक्रका प्रयोग करे (तक्रके विशेष गुणदोष निघण्टुमें कहे है) ॥ ४१ ॥

तक्रप्रयोगके गुण ।

न प्ररोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहताः ।
निषिक्तं तद्धि दहति भूमावपि तृणोलुपम्॥४२

तक्रके प्रयोगसे शमनहुए अर्शके मस्से फिर उत्पन्न नहीं हो सकते । तक्रके सेवन करनेसे भूमिमें उत्पन्न हुए तृणोंके अंकुर भी नष्ट होजाते है । अर्शके अंकुर तो तक्रके प्रयोगसे नष्ट होकर फि उत्पन्नर ही नहीं हो सकते ॥ ४२ ॥

स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसो धातुनुपैति यः ।

तेन पुष्टिर्बलं वर्णः परं तुष्टिश्च जायते ।
वातश्लेष्मविकाराणां शतं च विनिवर्तते ॥४३॥

तक्र पीनेसे सब सिराओंके स्रोत शुद्ध होजाते है । तब आहारका रस रससे रक्तादिधातुओंमें परिणत होता हुआ शरीरमे पुष्टि, बल और वर्णको अत्यन्त उत्तम बनाता है । तथा तक्रके पीनेसे बात और कफके सैकडों विकार निवृत्त होजाते है ॥ ४३ ॥

मथित तक्रका योग ।

मथितं भाजने क्षुद्रबृहतीफललेपिते ।
निशां पर्युषितं पेयमिच्छद्भिर्गुदजक्षयम्॥४४॥

छोटी कटेलीके फलोंको पीसकर तक्र रखनेके पात्रमें लेपकरके सुखावे । फिर इस पात्रमे दहीका मथित तक्र डालकर रातभर रहने दे यह तक्र अर्शको नाश करनेकी इच्छावाले मनुष्यको पीना चाहिये । अर्थात् इस तक्रके पीनेसे अर्श (बवासीर) रोग नाश हो जाता है ॥ ४४ ॥

तक्रारिष्ट ।

धान्योपकुंचिकाजाजीहपुषापिप्पलीद्वयैः ।
कारवीग्रन्थिकशठीयवान्यग्नियवानकैः ॥४५॥
चूर्णितैर्घृतपात्रस्थं नात्यम्लं तक्रमासुतम् ।
तक्रारिष्टं पिबेज्जातं व्यक्ताम्लकटु कामतः ४६
दीपनं रोचनं वर्ण्यं कफवातानुलोमनम् ।
गुदश्वयथुकंड्वार्तिनाशनं बलवर्धनम् ॥ ४७ ॥

धनियाँ, कालाजीरा, सफेदजीरा, हाऊबेर, छोटी पीपल, गजपीपल, कलौंजी, पीपलीमूल, कचूर, अजमोद, चित्रक और अजवायन ये सब एक एक तोला लेकर चूर्ण करे. यह चूर्ण और चार सेर तक्र एक घृतके चिकने पात्रमें डाले जो तक्र बहुत खट्टा न हो ऐसा तक्र डालना चाहिये । फिर इस पात्रका मुख बन्द करके रखदे जब इसमें अम्लकटुरस व्यक्त होजावे, तो इस तक्रारिष्टको इच्छानुसार पीवे । यह तक्रारिष्ट दीपन है, पाचन है, रुचिकारक, वर्णकर्त्ता, कफवातको अनुलोमन करनेवाला, गुदाकी सूजन, खुजली और शूलको नष्ट करनेवाला तथा बलको बढानेवाला है ॥ ४५-४७ ॥

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत् ।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत्॥४८॥
भार्ग्यास्फोतामृतापञ्चकोलेष्वप्येष संविधिः ॥

चित्रककी जडकी छालको पीसकर एक घडेमें लेप करके सुखा दे इस घटमें जमाई हुई दही या बनाया हुआ तक्र पीनेसे अर्शरोग नाश होता है ।

इसीप्रकार भार्गी, आस्फोता, गिलोय और पञ्चकोल इनके लेप कियेहुए घटमें बनायेहुए दही या तक्रके प्रयोगसे भी अर्शरोग नाश होजाता है ॥ ४८॥४९ ॥

अन्य अर्शनाशक योग ।

पिप्पलीगजकणापाठाकारवीपञ्चकोलकैः ।
तुंबर्वजाजीधनिकाबिल्वमध्यैश्च कल्पयेत् ।
फलाम्लान्यमकस्नेहान् पेयायूषरसादिकान् ।
एभिरेवौषधैःसाध्यं वारि सर्पिश्च दीपनम्॥५०॥

गजपीपल, पाठा, काला जीरा, पीपल, पीपलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, धनियां, सफेद जीरा, नेपाली धनिया और बिल्वकी गिरी इनको पीसकर चूर्ण या कल्क बनाकर नींबू या दाडिम आदि फलके रसके साथ घृत, तैल, पेया, यूष, रस आदि बनाकर सेवन करे । इन ही द्रव्योंसे सिद्धकिया जल या घृत सेवनकरना अर्शको शमन करताहै और अग्निको दीपन करता है ॥ ५० ॥

क्रमोयं भिन्नशकृतां वक्ष्यते गाढवर्चसाम्॥५१॥

जिन अर्शरोगियोंका मल पतला या फटकर आता है ये उपरोक्त औषधोंके योग उन अर्शरोगियोंके लिये कथन किये है । परन्तु जिन अर्शरोगियोंको मल बद्धहोकर कठिन मल आता है उनके लिये आगे कहते है ॥ ५१ ॥

अर्शमें मल और वातको अनुलोमन करनेवाले योग ।

स्नेहाढ्यैः सक्तुभिर्युक्तां लवणां वारुणीं पिबेत् ।
लवणा एव वा तक्रसीधुधान्याम्लवारुणीः॥५२

जिन अर्शरोगियोंका मल बंधकर कठोर आता हो उनको बहुतसा घृत मिलेहुए सत्तुओंके साथ लवणयुक्त वारुणीमद्य पीना चाहिये । अथवा लवणयुक्त तक्र पीना चाहिये । या सीधु, धान्याम्ल या वारुणी, लवण मिलाकर पीना चाहिये ॥ ५२ ॥

प्राग्भक्तं यमके भृष्टान् सक्तुभिश्चावचूर्णितान् ।
करञ्जपल्लवान् खादेद्वातवर्चोनुलोमनान् ॥५३॥

करञ्जके पत्तोंको यमक (घृत, तेल) में भूनकर इन भूनेहुए पत्रोंपर सत्तू बुरकाकर भोजनसे प्रथम खावे तो अर्शरोगीका अपानवायु और मल अनुलोमन होकर ठीक निकलता रहता है ॥ ५३ ॥

सगुडं नागरं पाठां गुडक्षारघृतानि वा ।
गोमूत्राध्युषितामद्यात्सगुडां वा हरीतकीम्५४

इसी प्रकार गुड़के साथ सोंठ या पाठा खानेसे वायु और मल अनुलोमन होते हैं । अथवा गुड़, यवक्षार और घृत मिलाकर खानेसे या गोमूत्रमें भिगोकर रक्खीहुई हरीतकीको गुड़ मिलाकर खानेसे वातानुलोमन और मलका निस्सरण यथार्थ हो जाता है॥५४॥

गोमूत्रपक्व हरीतकी ।

पथ्याशतद्वयं मूत्रद्रोणेनाऽऽमूत्रसंक्षयात् ।
पक्वान् खादेत्समधुना द्वे द्वे हन्ति कफोद्भवान्५५
दुर्नामकुष्ठश्वयथुगुल्ममेहोदरक्रुमीन् ।
ग्रंथ्यर्बुदापचीस्थौल्यपांडुरोगाढ्यमारुतान्५६

दो सौ २०० हरड़ोंको लेकर एक द्रोण (१६ सेर) गोमूत्रमें डालकर पकावे जब गोमूत्र सूखजावे तो हरड़ोंको निकालकर रखले । इनमेंसे दो हरीतकी नित्य मधुके साथ खावे तो कफके अर्श, मस्से, कुष्ठ, सूजन, गुल्म, प्रमेह, उदररोग, कृमिरोग, ग्रन्थिरोग, अर्बुद, अपची, मेदरोग, पाण्डु और आढ्यवात ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अर्शनाशक अन्य योग ।

अजशृङ्गीजटाकल्कमजामूत्रेण यः पिबेत् ।
गुडवार्ताकभुक्तस्य नश्यन्त्याशु गुदाङ्कुराः५७

जो मनुष्य गुड़के साथ बड़ी कटेलीके फलोंका आहार करता है और मेढाशृंगीकी जड़के कल्कको बकरीके मूत्रसे पीता है उसके गुदांकुर (मस्से) शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ ५७ ॥

श्रेष्ठारसेन त्रिवृतां पथ्यां तक्रेण वा सह ।
पथ्यां वा पिप्पलीयुक्तां घृतभृष्टां गुडान्वितम्
अथवा सत्रिवृद्दन्तीं भक्षयेदनुलोमनीम् ।
हृते गुदाश्रये दोषे गुदजा यान्ति संक्षयम्५९॥

त्रिफलेके रसके साथ अथवा गेंदापुष्पकी पत्तियोंके रसके साथ निशोथका चूर्ण पीवे । अथवा तक्रके साथ हरीतकीका चूर्ण सेवनकरे । या छोटी हरड़ोंको घीमें भूनकर उसके साथ पीपल और गुड़ मिलाकर खावे अथवा हरीतकीको निशोथ और दन्तीके साथ खावे तो दोष और मल अनुलोमन होकर निकल जाता है। जब गुदाश्रितदोष नष्ट होजाता है तो गुदांकुर स्वयं ही नाश होजाते हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

दाडिमस्वरसाजाजीयवानीगुडनागरैः ।
पाठया वा युतं तक्रं वातवर्चोनुलोमनम्॥६०॥
सीधुं वा गौडमथवा सचित्रकमहौषधम् ।
पिबेत्सुरां वा हपुषां पाठासौवर्चलान्विताम्६१

दाड़िमका स्वरस, जीरा, अजवायन, गुड़ और सोंठ इनके साथ तक्रको पीवे अथवा केवल पाठाका चूर्ण मिलाकर तक्र पीवे तो वात और मलका अनुलोमन होता है । अथवा सीधु या गौडी मद्यको चित्रक और सोंठ डालकर पीवे । या हाऊबेर, पाठा और संचरलवण मिलाकर सुरा पीवे तो अर्शरोगीके वात और मल यथार्थ अनुलोमन होजाते हे ॥ ६० ॥ ६१ ॥

तिलपिप्पली प्रयोग ।

दशादिदशकैर्वृद्धाः पिप्पलीर्द्विपिचुं तिलान् ।
पीत्वा क्षीरेण लभते बलं देहहुताशयोः ॥६२॥

प्रथमदिन दश छोटी पीपल और दो कर्ष तिल दूधके साथ खावे। दूसरे दिन दश पिप्पली और दो कर्ष तिल और बढावे इस प्रकार दश दिन बढावे और इसी क्रमसे दशदिनमें घटाते घटाते दशतक रहनेपर छोड़ देवे इस प्रकार बीसदिनमें इस पीपल और तिलके सेवनको समाप्त करदे और दूधका ही सेवन करे तो क्षीणहुए मनुष्यके शरीरमे बलकी वृद्धि, देहकी पुष्टि और जठराग्निका बल बढ़ता है । यहांपर अरुणदत्त लिखते हैं कि-" **अत्र कालस्याऽनिर्दिष्टत्वात्–देहाग्न्योर्बलमिच्छता यथेष्टकालः प्रयोगः कार्यः।**

क्षीरस्य चात्र प्रमाणेऽनुक्ते सामान्यपरिभाषया पेष्यस्य कर्षमालोड्यं तद्द्रवस्य पलत्रयमिति परिमाणं कल्प्यम् । " यहांपर पिप्पलीसेवनका काल नहीं कहा है इस कारण जितना काल उचित समझे उतने कालतक देह और अग्निके बलकी इच्छासे सेवन करावे । तथा दूधका परिमाण एक कर्ष घोलनेके द्रव्यमें तीन पल द्रवकी परिभाषासे लेना चाहिये । यह सर्वांगसुन्दरामें लिखा है । परन्तु मैंने इस सेवनकी प्रचलित प्रथाके अनुसार क्रम लिखदिया है मेरे मतमें इसी प्रकार यह वीस दिन सेवनका ही योग है । यद्यपि " दशादिदशकैर्वृद्धाः " से कोई बीसदिनकी मर्यादा या क्रमसे घटाकर दशपर लानेका अर्थ नहीं निकलता परन्तु इस क्रमका प्रयोग देखा जानेसे ऐसा लिख दिया है ॥ ६२ ॥

पाठायोग ।

दुस्पर्शकेन बिल्वेन यवान्या नागरेण वा ।
एकैकेनाऽपि संयुक्ता पाठाहन्त्यर्शसां रुजम् ६३

जवासा, बिल्व, अजवायन और सोंठ इन चार द्रव्योंमेंसे किसी एकके साथ मिलाकर पाठाका सेवन करनेसे अर्शकी पीडा दूर होजाती है ॥ ६३ ॥

अभयारिष्ट ।

सलिलस्य वहे पक्त्वा प्रस्थार्धमभयात्वचम् ६४
प्रस्थं धात्र्या दशपलं कपित्थानां ततोऽर्धतः ।
विशालां रोध्रमरिचकृष्णावेल्लैलवालुकम् ॥ ६५ ॥
द्विपलांशं पृथक्पादशेषे पूते गुडात्तुले ।
दत्त्वा प्रस्थं च धातक्याः स्थापयेद् घृतभाजने
पक्षात्स शीलितोऽरिष्टः करोत्यग्निं निहन्ति च ।
गुदजग्रहणीपाण्डुकुष्ठोदरगरज्वरान् ।
श्वयथुप्लीहहृद्रोगगुल्मयक्ष्मवमीकृमीन् ॥ ६७ ॥

अच्छी बड़ी हरड़ोंका छिलका आधसेर, आमले गुठलीरहित एकसेर, कपित्थके फल दशपल, इंद्रायण पांच पल, पठानीलोध दो पल, मरिच दो पल, पीपल दो पल, वायविडङ्ग दो पल, एलवालुक दो पल, इन सबको चार द्रोण जलमें पकावे जब चौथाभाग शेष रहे तो इस कोउतारकर छान लेवे । फिर इसमें पांच सेर गुड़ और एक सेर धावेके फूल मिलाकर घृतके चिकने घड़ेमें डालकर बंद करके पन्द्रह दिन रखदेवे पन्द्रह दिनके अनन्तर इस अरिष्टका सेवन करे यह अरिष्ट सेवन करनेसे जठराग्नि बलवती होती है तथा अर्श, ग्रहणी, पाण्डु, कुष्ठ, उदररोग, गर, ज्वर, सूजन, प्लीहा, हृद्रोग, गुल्म, यक्ष्मा, वमन और कृमिरोग ये सब नष्ट होते है ॥ ६४–६७ ॥

दन्त्याद्यरिष्ट ।

जलद्रोणे पचेद्दन्तीदशमूलवराग्निकान् ॥ ६८ ॥
पालिकान्पादशेषे तु क्षिपेद्गुडतुलां परम् ।
पूर्ववत्सर्वमस्य स्यादानुलोमितरस्त्वयम् ॥ ६९ ॥

दन्ती, बिल्व, श्योनाक, गम्भारी, पाटला, अग्निमन्थ, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडीकटेली, छोटीकटेली, गोखरू, हरड़, बहेड़े, आमले और चित्रक इन प्रत्येकको एक एक पल लेकर कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे चौथा भाग शेष रहने पर इसमें पांचसेर गुड़ और एकसेर धावेके फूल डालकर पन्द्रह दिन बन्द करके रक्खे यह दन्त्याद्यरिष्ट भी अभयारिष्टके समान सब गुण करता है तथा यह अभयारिष्टसे विशेष अनुलोमन करने वाला है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

दुरालभारिष्ट ।

पचेद्दुरालभाप्रस्थं द्रोणेऽपां प्रासृतैः सह ।
दन्तीपाठाग्निविजयावासामलकनागरैः ॥ ७० ॥
तस्मिन् सिताशतं दद्यात्पादस्थेऽन्यच्च पूर्ववत् ।
लिम्पेत्कुम्भं तुफलिनीकृष्णाचव्याज्यमाक्षिकैः

जवासा एक सेर, तथा दन्ती, पाठा, चित्रक, विजया, बांसा, आमले और सोंठ ये प्रत्येक द्रव्य दो दो पल लेवे । इन सबको कूटकर एकद्रोण जलमें पकावे चौथा भाग शेष रहनेपर एक तुला मिसरी डालकर एक चिकने घटमें प्रियंगु, पीपल, चव्य, घृत और मधुका लेपकर उस घटमें डालकर अभयारिष्टके समान मुख बन्दकर १५ दिन रख छोडे अरिष्ट सिद्ध होनेपर अभयारिष्टके समान सेवन करे तो सब पूर्वोक्त गुण होते हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

फलाम्लघृत ।

प्राग्भक्तमानुलोम्याय फलाम्लं वा पिबेद् घृतम्
चव्यचित्रकसिद्धं वा यवक्षारगुडान्वितम् ।
पिप्पलीमूलसिद्धं वा सगुडक्षारनागरम् ॥७२॥

अथवा वात और मलको अनुलोमन करनेके लिये बिजौरेनींबू आदि फलोंके रससे सिद्ध कियाहुआ घृत भोजनसे पहले पीना चाहिये । अथवा चव्य और चित्रकके कल्कसे सिद्ध किया घृत यवक्षार और गुड़ मिला कर भोजनसे पहले पीवे । अथवा पीपलामूलसे सिद्ध किया घृत गुड़, जवखार और सोंठ मिलाकर भोजनसे पहले पीवे तो अर्शरोगीका वात और मल अनुलोमन होकर यथार्थ निकलने लगता है ॥ ७२ ॥

पिप्पल्यादिघृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलधानकादाडिमैर्घृतम ।
दध्ना च साधितं वातशकृन्मूत्रविबन्धहृत् ॥ ७३

पीपल, पीपलामूल, धनियां और दाड़िमका रस तथा दही इनसे सिद्ध कियाहुआ घृत वात मूत्र और मलके विबंधको हरनेवाला होता है ॥ ७३ ॥

पलाश क्षारादि घृत ।

पलाशक्षारतोयेन त्रिगुणेन पचेद् घृतम् ।
वत्सकादिप्रतीवापमर्शोघ्नं दीपनं परम् ॥७४ ॥

एक सेर गोघृत, तीन सेर पलाशक्षारका जल, और एक पाव वत्सकादिगण (कुटज, मूर्वा, भारंगी, कुटकी, मिरच, अतीस, गण्डोर, इलायची, पाठा, जीरा, श्योनाक, मैनफल, अजमोद, सर्सों, बच, कालाजीरा, हींग, वायबिडंग, अजवायन, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) के मिलेहुए चौबीस द्रव्योंका कल्क मिलाकर घृत सिद्धकरे यह घृत अर्शको नष्ट करता है और जठराग्निको दीपन करनेमें अतिश्रेष्ठ है ॥ ७४॥

पञ्चकोलादि घृत ।

पञ्चकोलाभयाक्षारयवानीबिडसैन्धवैः ।
सपाठाधान्नमरिचैःसबिल्वैर्दधिमद्घृतम् ॥७५
साधयेत् तज्जयत्याशु गुदवंक्षणवेदनाम् ।
प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् ॥७६॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, हरड़, यवक्षार, जवआयन, वायबिडंग, सेन्धालवण, पाठा, धनियाँ, मरिच और बिल्व इनके कल्क और चारगुणी दही मिला कर सिद्ध कियाहुआ घृत पीनेसे गुदा और वंक्षणकी पीड़ा, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृछ्र और मूत्रस्राव इन सब रोगोंको दूर करता है ॥७५॥७६॥

पाठादि घृत ।

पाठाजमोदधनिकाश्वदंष्ट्रापञ्चकोलकैः ।
सबिल्वैर्दधि चाङ्गेरीस्वरसे च चतुर्गुणे ॥ ७७ ॥
हन्त्याज्यं सिद्धमानाहं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ।
गुदभ्रंशार्तिगुदजग्रहणीगदमारुतान् ॥ ७८ ॥

पाठा, अजमोद, धनियाँ, गोखरू, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, और बिल्व इन सबको एक पाव लेकर कल्क बनावे फिर इसमें चारसेर दही, चारसेर चांगेरीका स्वरस और एकसेर गोघृत इन सबको मिलाकर घृतपाकविधिसे पकावे सिद्ध होनेपर इस घृतका सेवन करनेसे आनाह, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, गुदशूल, अर्श, ग्रहणी और वातविकार ये सब दूर होते हैं ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

शिखितित्तिरिलावानां रसानम्लान् सुसंस्कृतान्
दक्षाणां वर्तकानां वा दद्याद्विड्वातसंग्रहे ॥७९ ॥

मांसाहारी मनुष्योंके अपान वायु और मलकी रुकावटको दूर करनेके लिये मोर, तित्तर, लवा, मुर्गा और वटेर इनमेंसे किसीके मांसरसको घृतादिमें संस्कार कर अनारके या नींबूके रसकी खटाई मिलाकर पिलावे ७९

शाकादि व्यंजन ।

वास्तुकाग्निमन्त्रिवृद्दंतीपाठाम्लीकादिपल्लवान्८०
अन्यच्च कफवातघ्नं शाकं च लघु भेदि च ।
सहिङ्गु यमके भृष्टं सिद्धं दधिसरैः सह ॥ ८१ ॥
धनिकापञ्चकोलाभ्यां पिष्टाभ्यां दाडिमाम्बुना
आर्द्रिकायाः किसलयैः शकलैरार्द्रकस्य च॥८२
युक्तमङ्गारधूपेन हृद्येन सुरभीकृतम् ।
सजीरकं समरिचं बिडसौवर्चलोत्कटम् ॥ ८३ ॥
वातोत्तरस्य रूक्षस्य मन्दाग्नेर्बद्धवर्चसः ।
कल्पयेद्रक्तशाल्यन्नं व्यञ्जनं शाकवद्रसान् ।
गोगोधाछागलोष्ट्राणां विशेषात्क्रव्यभोजिनाम्।

जो मनुष्य वातप्रधान और रूक्षकोष्ठवाला तथा

मन्दाग्निवाला हो और उसका मल रुक जाता हो बद्धकोष्ठ हो तो उस मनुष्यको वाथू, चित्रक, निशोथ, दन्ती, पाठा और इमली आदिके कोमल पत्रोंका शाक तथा अन्य कफ वातनाशक पत्रोंका शाक, यमक स्नेह (घृत तैल) में भूनकर उस पत्रशाकमें दहीका तोड़ डालकर शाक बनावे इस शाकमें धनियां और पंचकोल दाड़िमके रसमें पीसकर मिलावे तथा धनियेंके हरेपत्र और अदरकके बारीक टुकडे मिलावे। इस शाकमें हृदयको प्रिय लगनेवाले सुगंधित द्रव्यको निर्धूम अंगारपर गेरकर धूनी देवे और जीरा, मिर्च, बिडलवण और संचरलवण मिलावे इस प्रकार ही इन ही द्रव्यों आदिसे बनाए और संस्कार कियेहुए शाक व्यंजनादि लाल शालीचावलोंके साथ खानेको देवे। यदि पुरुष मांसाहारी हो तो उसको लाल शालीचावलोंके भातके साथ बकरा, गोधा और ऊष्ट्रके मांसरसको धनियां पंचकोल आदि मिलाकर संस्कार करके देवे ॥ ८०-८४ ॥

पेय पदार्थ।

मदिरां शार्करं गौडं सीधुं तक्रं तुषोदकम्।
अरिष्टं मस्तु पानीयं पानीयं वाऽल्पकं शृतम् ॥
धान्येन धान्यशुंठीभ्यां कण्टकारिकयाऽथवा।
अन्तेभक्तस्य मध्ये वा वातवर्चोऽनुलोमनम्८६

अर्शरोगीको जलादि पीनेके पदार्थ जो वायु और मलको अनुलोमन करनेवाले हों पीनेके लिये देना चाहिये जैसे-खांड या गुड़से बनीहुई मदिरा, सीधु, तक्र, छाछ, तुषोदक, अरिष्ट, दहीका जल, उबालकर स्वच्छ शीतलजल, या धनियेंसे सिद्ध जल अथवा धनियां और सोंठसे सिद्ध जल या कंटकारीसे सिद्धकिया जल भोजनके मध्य या अन्तमें पीनेको देना चाहिये ८५॥८६

अनुलोमनका फल।

विड्वातकफपित्तानामानुलोम्ये हि निर्मले।
गुदे शाम्यन्ति गुदजाःपावकश्चाभिवर्धते॥८७॥

जब विष्ठा, वात, कफ और पित्त अनुलोमन होजानेसे गुदा दोषरहित शुद्ध होजाती है तो मांसांकुर स्वयं शमन होजाते है और जठराग्नि बलवती हो जाती है ॥ ८७ ॥

अर्शमें अनुवासन।

उदावर्तपरीता ये ये चात्यर्थं विरूक्षिताः।
विलोमवाताःशूलार्तास्तेष्विष्टमनुवासनम् ॥८८

जिन मनुष्योंको वायु और मलका उदावर्त हो और जो अत्यन्त रूक्षशरीरवाले हों तथा जिनका वायु विलोम (उलटी) गतिवाला हो और शूलसे पीडित मनुष्य हों ऐसे पुरुषोंको अनुवासन (स्नेह) वस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८८ ॥

अनुवासनार्थ तैल।

पिप्पलीं मदनं बिल्वं शताह्वां मधुकं वचाम् ॥८९
कुष्ठं शुण्ठीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च।
पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम्॥९०॥
अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम्।
गुदनिःसरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम्॥९१॥
कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वंक्षणाश्रयम्।
पिच्छास्रावं गुदे शोफं वातवर्चोविनिग्रहम्।
उत्थानं बहुशो यच्च जयेत्तच्चानुवासनात् ॥९२।

पीपल, मैनफल, बिल्व, सौंफ, मुलहठी, बच, कूठ, सोंठ, पोहकरमूल, चित्रक और देवदारु ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर कल्क करे। तिल तैल १सेर और दूध दो सेर इनको मिलाकर तैल सिद्धकरे। यह तेल अर्शरोगवाले और मूढवातवाले रोगीकेलिये अनुवासनवस्तिमें प्रयोग करना चाहिये। इसके अनुवासनसे गुदाका बाहर निकलआना, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, कटिशूल, कमर और ऊरुस्थलकी दुर्बलता, पीठकी दुर्बलता, आनाह, वंक्षणका आनाह, पिच्छास्राव, गुदाकी सूजन, अपानवायु और मलकी रुकावट और गुदाकी सूजन ये सब रोग दूर होते है ॥८९-९२॥

निरूहणवस्ति प्रयोग।

निरूहं वा प्रयुञ्जीत सक्षीरं पाञ्चमूलिकम्।
समूत्रस्नेहलवणं कल्कैर्युक्तं फलादिभिः ॥९३॥

अथवा बृहत्पंचमूलके क्वाथमें समानभाग दूध, गोमूत्र, अनुवासनमें कहेहुए पीपल आदिसे सिद्ध तैल और मैनफलादिका कल्क तथा लवण मिलाकर निरूहणवस्ति करनेसे भी अनुवासनवाले सब गुण होते हैं तथा मूढवात और अर्श शमन होजाते है ॥९३॥

रक्तार्शकी चिकित्सा।

अथ रक्तार्शसां वीक्ष्य मारुतस्य कफस्य वा।
अनुबन्धं ततः स्निग्धं रूक्षं वा योजयेद्धिमम्॥९४

सूखे अर्श (मस्सों) की चिकित्सा कहचुके है अब रक्तस्राव करनेवाले मस्सोंकी चिकित्सा कहते है—रक्तार्श (खूनी बवासीर) में भी वात या कफका अनुबन्ध होता है। यदि रक्तार्शमें वातका अनुबन्ध हो तो स्निग्ध शीतक्रिया करना चाहिये। यदि रक्तार्शमे कफका अनुबन्ध हो तो रूक्ष शीतक्रिया करना चाहिये ॥ ९४ ॥

रक्तार्शमें वातानुबन्ध और कफानुबन्धके लक्षण।

शकृच्छ्यावं खरं रूक्षमधो निर्याति नानिलः॥९५
कट्यूरुगुदशूलं च हेतुर्यदि च रूक्षणम्।
तत्रानुबन्धो वातस्य श्लेष्मणो यदि विट् श्लथा
श्वेता पीता गुरुःस्निग्धा सपिच्छःस्तिमितो गुदः
हेतुःस्निग्धगुरुर्विद्याद्यथास्वं चास्रलक्षणात् ९७

यदि रक्तार्शवाले पुरुषका विष्ठा काला, खर और रूक्ष हो, अधोवायुका निस्सरण न होता हो, कटिदेश ऊरुस्थल और गुदामें शूल होता हो तथा यह सब कष्ट रूक्ष हेतुओंसे उत्पन्न होता हो तो इस रक्तार्शमें वायुका अनुबन्ध जानना चाहिये।

यदि रक्तार्शमें मलशिथिलसा आता हो विष्ठा श्वेत, पीत, भारी, चिकना और पिच्छायुक्त हो गुदा विबद्ध या स्तिमित रहती हो यह सब कष्ट स्निग्ध और गुरुपदार्थोंके सेवनसे उत्पन्न हुआ हो तो रक्तार्शमें कफका अनुबन्ध जानना चाहिये।

यदि अर्शका रक्त श्याव अरुण आदि वातके लक्षणोंवाला हो तो वातका अनुबन्ध होता है। यदि स्निग्ध पिच्छलादि हो तो कफका अनुबन्ध होता है ॥ ९५–९७ ॥

दुष्टेऽस्रे शोधनं कार्यं लङ्घनं च यथाबलम्।
यावच्च दोषैः कालुष्यं स्रुतेस्तावदुपेक्षणम्॥९८

रक्तार्शमें दूषितरक्त होनेसे रोगीके बलानुसार शोधन और लंघन कराना चाहिये। जबतक अर्शके रक्तमें दोषोंकी कलुषता रहे तबतक अर्शके रक्तको बन्द नहीं करना चाहिये ॥९८॥

दोषाणां पाचनार्थं च वह्निसंधुक्षणाय च।
संग्रहाय च रक्तस्य परं तिक्तैरुपाचरेत् ॥९९॥

जब रक्तमें दोषोंकी कलुषता न रहे तब दोषोंके पाचनार्थ और जठराग्निको चैतन्यकरनेके लिये तथा रक्तस्रावको रोकदेनेकेलिये तिक्तरसवाले द्रव्योंका सेवन विशेषरूपसे कराना चाहिये ॥ ९९ ॥

यत्तु प्रक्षीणदोषस्य रक्तं वातोल्बणस्य वा।
स्नेहैस्तच्छोधयेद्युक्तैः पानाभ्यञ्जनबस्तिषु१००

जिस मनुष्यके दोष क्षीण होगयेहों अथवा वातकी प्रधानतायुक्त पुरुष हो उसके रक्तार्शके रक्तस्रावको युक्तिपूर्वक स्नेह (घृतादि) पिलाने और लेपनादिमें प्रयोगकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १०० ॥

यत्तु पित्तोल्बणं रक्तं घर्मकाले प्रवर्तते।
स्तंभनीयं तदेकान्तान्न चेद्वातकफानुगम् १०१

जो केवल पित्तप्रधान रक्त ग्रीष्मकालमें स्राव होता हो और इस रक्तमें वात या कफका अनुबन्ध न हो तो वह रक्तस्राव शीतल द्रव्योंद्वारा शीघ्र रोकदेना चाहिये ॥ १०१ ॥

सकफेऽस्रे पिबेत्पाक्यं शुण्ठीं कुटजवल्कलम्।
किराततिक्तकं शुण्ठीं धन्वयासं कुचन्दनम्।
दार्वीत्वङ्निंबसेव्यानि त्वचं वा दाडिमोद्भवाम्

यदि रक्तार्शमें कफका अनुबन्ध हो तो कुटजकी छाल और सोंठका क्वाथ पीना चाहिये। अथवा चिरायता, सोंठ, जवासा, लालचन्दन, दारुहलदीकी छाल, नींबकी छाल और खस, इन सबका क्वाथ पीवे। अथवा केवल अनारके छिलकेका क्वाथ पीवे ॥१०२॥

कुटजत्वक्फलं तार्क्ष्यं माक्षिकं घुणवल्लभाम्।
पिबेत्तंडुलतोयेन कल्कितं वा मयूरकम् १०३॥

अथवा कुटजकी छाल, इन्द्रयव, दारुहलदी, अतीस और मधु इनको तण्डुलजलके साथ पीवे। अथवा अपामार्गके कल्कको तण्डुलजलसे पीवे तो कफके संसर्गवाला रक्तार्श शमन हो जाताहै ॥ १०३ ॥

कुटजावलेह।

तुलां दिव्याम्भसि पचेदार्द्रायाःकुटजत्वचः॥४॥
नीरसायां त्वचि क्वाथे दद्यात्सूक्ष्मरजीकृतान्।
समङ्गाफलिनीमोचरसान्मुष्टचंशकान्समान्॥५॥
तैश्च शक्रयवान्पूते ततो दर्वीप्रलेपनम्।
पक्त्वावलेहं लीढ्वा च तं यथाग्निबलं पिबेत्॥६॥
पेयां मण्डं पयश्छागं गव्यं वा छागदुग्धभुक्।
लेहोऽयं शमयत्याशु रक्तातीसारपायुजान्।
बलवद्रक्तपित्तं च स्रवदूर्ध्वमधोऽपि वा॥१०७॥

दो द्रोण आकाशके शुद्ध जलमें पांचसेर कुटजकी गीली (ताजी) छालको कूटकर डाले और क्वाथ बनावे आठवां भाग शेष रहनेपर इस जलको छान लेवे फिर इसको रसांजनके समान पकावे और इसमें बला, प्रियंगु और मोचरस ये तीनों एक एक पल लेकर बारीक चूर्ण करके मिलावे और तीन पल इन्द्रयवोंका बारीक चूर्ण मिलावे। फिर पकते २ जब कड़छीसे लिपटने लगे तब इस अवलेहको उतारकर रखलेवे। इसमेंसे १ मासे तक मात्रा खाकर ऊपरसे अग्निबलानुसार पेया, मण्ड, बकरीका दूध, या गौका दूध पीवे। दिनमें भी केवल बकरीका दूधही पीवे इस कुटजावलेहके सेवनसे शीघ्रही रक्तातिसार और रक्तार्श शमन होजाते हैं तथा बलवान् ऊर्ध्वगामी और अधोगामी रक्तपित्त दूर हो जाते है॥१०४-१०७॥

कुटजत्वक्तुलां द्रोणे पचेदष्टांशशेषिताम्॥८॥
कल्कीकृत्य क्षिपेत्तत्र तार्क्ष्यशैलं कटुत्रयम्।
रोध्रद्वयं मोचरसं बलां दाडिमजां त्वचम्॥९॥
बिल्वकर्कटिका मुस्तं समङ्गां धातकीफलम्।
पलोन्मितं दशपलं कुटजस्यैव च त्वचः॥१०॥
त्रिंशत्पलानि गुडतो घृतात्पूते च विंशतिः।
तत्पक्वं लेहतां यातं धान्ये पक्षस्थितं लिहन्।
सर्वार्शोग्रहणीदोषश्वासकासान्नियच्छति॥११॥

कुटजकी पांचसेर छालको कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे जब आठवां भाग शेष रहे तो इस जलको छानकर इसमें रसौंत, सोंठ, मिर्च, पीपल, लोध्र, पठानीलोध, मोचरस, बला, अनारका छिलका, बालबिल्व, नागरमोथा, मंजीठ और धावेके फूल ये प्रत्येक एक एक पल और कुड़ाकी छाल दश पल इन सबको बहुत बारीक पीसकर मिलावे फिर इसमें तीस पल गुड़ और बीस पल घृत मिलाकर अवलेह बनावे। जब अवलेह सिद्ध होजावे तो इसको चिकने पात्रमें बन्द करके धान्यकी राशिमें पन्द्रह दिनतक गाड़कर रक्खे। फिर इसके सेवनसे सब प्रकारके अर्श, ग्रहणीरोग, श्वास और खांसी दूर होते हैं॥१०८-१११॥

रोध्रं तिलान्मोचरसं समङ्गां चन्दनोत्पलम्।
पाययित्वाऽजदुग्धेन शालींस्तेनैव भोजयेत्॥१२॥

पठानीलोध, तिल, मोचरस, मंजीठ, लालचन्दन और कमल, इनका कल्क या चूर्ण बकरीके दूधसे पीवे और बकरीके दूधके साथ शालीचावलोंका भात खावे तो रक्तातिसार और रक्तार्श शमन होते है॥११२॥

यष्ट्याह्वपद्मकानन्तापयस्याक्षीरमोरटम्।
ससितामधु पातव्यं शीततोयेन तेन वा॥१३॥

मुलहठी, पद्मकाष्ठ, शारिवा, क्षीरकाकोली और क्षीरमोरटा (मोरटवेल) इनके चूर्णमें मिसरी और मधु मिलाकर शीतल जलके साथ खावे या बकरीके दूधसे खावे तो रक्तार्श दूर होती है॥११३॥

रोध्रकट्वङ्गकुटजसमङ्गाशाल्मलीत्वचम्।
हिमकेसरयष्ट्याह्वसेव्यं वा तण्डुलाम्बुना॥१४॥

पठानीलोध, श्योनाक, कुटज, बला और सेमलकी छाल इनके चूर्णको अथवा चन्दन, नागकेशर, मुलहठी और खस इनके चूर्णको तण्डुल जलके साथ सेवन करनेसे रक्तार्श और रक्तातिसार दूर होते है॥११४

यवानीन्द्रयवाः पाठा बिल्वं शुण्ठी रसाञ्जनम्।
चूर्णश्च लेहितःशूले प्रवृत्ते चाऽतिशोणिते॥१५॥

अजवायन, इन्द्रजौ, पाठा, बिल्व, सोंठ और रसौंत इनके चूर्णको जलके साथ लेनेसे अत्यन्त रक्त प्रवृत्तिके साथ उत्पन्न हुआ शूल शमन हो जाता है॥११५॥

दुग्धिकाकंटकारीभ्यां सिद्धं सर्पिःप्रशस्यते॥१६॥
अथवा धातकीरोध्रकुटजत्वक्फलोत्पलैः।
सकेसरैर्यवक्षारदाडिमस्वरसेन वा॥१७॥

अतिरक्त प्रवृत्त होकर साथमें शूल उत्पन्न होजाय तो उसके शमन करनेको दूधलीबूटी और कटेलीके काथसे सिद्ध किया दूध पीनाचाहिये । अथवा धावेके फूल, पठानीलोध, कुटजकी छाल, इन्द्रजव, कमल, नागकेशर और यवक्षार इनके चूर्णको अनारके रसके साथ लेना चाहिये ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

शर्कराम्भोजकिञ्जल्कसहितं सह वा तिलैः ।
अभ्यस्तं रक्तगुदजान् नवनीतं नियच्छति १८

मिसरी और कमलकी केशरको नवनीत (मक्खन)में मिलाकर बहुतदिन सेवन करनेसे अथवा तिल और मिसरी मक्खनके साथ बहुत दिन सेवन करनेसे रक्तार्श नष्ट होजाता है ॥ ११८ ॥

रक्तार्शमें पथ्य ।

छागानि नवनीताज्यक्षीरमांसानि जाङ्गलः ।
अनम्लो वा कदम्लो वा सवास्तुकरसो रसः१९
रक्तशालिः सरो दध्नः षष्टिकस्तरुणी सुरा ।
तरुणश्च सुरामण्डः शोणितस्यौषधं परम्॥२०॥

बकरीका मक्खन, घृत, दूध और मांसरस, तथा जांगलजीवोंका मांसरस या खटाईरहित अथवा किंचित् अनारकी खटाईयुक्त वाथूशाकका रस, लाल शाली-चावल, दहीका पानी, सांठीके चावल, मधुररसयुक्त तरुणीसुरा और तरुणसुरामण्ड (जिसमें खटाई न उत्पन्न हुई हो और माधुर्यरस उत्पन्न हो चुका हो) ये सब पदार्थ रक्तार्शकी परम औषध हैं अर्थात् पथ्य है ॥ ११९ ॥ १२० ॥

पेयायूषरसाद्येषु पलाण्डुः केवलोऽपि वा ।
स जयत्युल्बणं रक्तं मारुतं चप्रयोजितः ॥२१

पेया, रस और यूष आदिमें पलाण्डुका प्रयोग करना अथवा केवल पलाण्डु (प्याज) का शाक देना भी बढ़ेहुए रक्तार्श और वातको शमन करता है १२१

वातोल्बणानि प्रायेण भवन्त्यस्रेऽतिनिःसृते ।
अर्शांसि तस्मादधिकं तज्जये यत्नमाचरेत्॥२२

रक्तार्शसे अधिक रक्त निकल जानेसे प्रायः रक्तार्शमें वायुकी वृद्धि होजाती है इस कारण रक्तार्शके साथ २ वायुको जीतनेका यत्न करते रहना चाहिये१२२

दृष्ट्वाऽस्रपित्तं प्रबलमबलौ च कफानिलौ ।
शीतोपचारःकर्तव्यःसर्वथा तत्प्रशान्तये॥२३॥

यदि रक्तार्शमें रक्त और पित्तकी प्रबलता हो और वातकफ निर्बल हों तो उसकी शान्तिके लिये सर्वथा शीत उपचार ही करना चाहिये ॥ १२३ ॥

यदा चैवं शमो न स्यात् स्निग्धोष्णैस्तर्पयेत्ततः
रसैः कोष्णैश्च सर्पिर्भिरवपीडकयोजितैः ।
सेचयेत्तं कवोष्णैश्च कामं तैलपयोघृतैः ॥२४॥

यदि इस प्रकार यत्न करनेसे रक्तका वेग शमन न हो तो स्निग्ध उष्ण द्रव्योंसे उस पुरुषको तर्पण करना चाहिये. तथा कोष्णरस और रोगानुत्पादनी-याध्यायमें कहेहुए अवपीडक घृतका प्रयोग करना चाहिये तथा किंचित् उष्ण तैल, दूध और घृतसे सेचन करना चाहिये ॥ १२४ ॥

पिच्छावस्ती प्रयोग ।

यवासकुशकाशानां मूलं पुष्पं च शाल्मलेः१२५
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ।
त्रिप्रस्थे सलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थे च साधयेत्२६
क्षीरशेषे कषाये च तस्मिन्पूते विमिश्रयेत् ।
कल्कीकृतं मोचरसं समङ्गां चन्दनोत्पलम् २७
प्रियङ्गुं कौटजं बीजं कमलस्य च केसरम् ।
पिच्छाबस्तिरयं सिद्धः सघृतक्षौद्रशर्करः ॥
प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्रावज्वरापहः ॥ १२८ ॥

जवासेकी जड़, कुशाकी जड़, कांसकी जड़, सेमलके फूल, वटके शुंग, गूलरके शुंग और पीपल-वृक्ष (अश्वत्थ) के शुंग (नईकोंपलें) ये सब मिलाकर दो पल, जल तीनसेर, दूध एकसेर इन सबको मिलाकर पकावें जब दूधमात्र शेष रहे तो इस दूधको छान लेवे । फिर इस दूधमें मोचरस १। तोला खरेटीके पत्र १। तोला, चन्दन १। तोला, कमल १। तोला, प्रियंगु १। तोला, इन्द्रजौ १। तोला, और कमलकी केशर १। तोला इन सबको बारीक पीसकर कल्क करके मिलावे तथा इसी दूधमें घृत,

मधु और मिसरी आधा आधा पल मिलाकर मथ डाले फिर इसकी पिच्छावस्ति करे। इस वस्तिके करनेसे प्रवाहिका, गुदभ्रंश, रक्तस्राव और ज्वर ये सब दूर होते है ॥ १२५-१२८ ॥

अनुवासन स्नेह।

यष्टयाह्वपुण्डरीकेण तथा मोचरसादिभिः ।
क्षीराद्विगुणितः पक्को देयः स्नेहोऽनुवासनम् १२९

मुलहठी, कमल, मोचरस, समंगा, चन्दन, नीलकमल, फूलप्रियंगु, इन्द्रयव और कमलकेशर इनके कल्क और दोगुणे दूधसे सिद्ध कियाहुआ तेल अनुवासन वस्तिमें देनेसे प्रवाहिका गुदभ्रंश और रक्तस्राव दूर होते है ॥ १२९ ॥

मधुकादि घृत।

मधुकोत्पलरोध्रांबुसमङ्गा बिल्वचन्दनम्॥१३०
चविकातिविषा मुस्तं पाठा क्षारो यवाग्रजः ।
दार्वीत्वङ्नागरं मांसी चित्रको देवदारु च॥१३१॥
चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिः साधितं तैस्त्रिदोषजित् ।
अर्शोऽतिसारग्रहणीपांडुरोगज्वरारुचौ ॥१३२॥
मूत्रकृच्छ्रे गुदभ्रंशे बस्त्यानाहे प्रवाहणे ।
पिच्छास्रावेऽर्शसां शूले देयं तत्परमौषधम् १३३

मुलहठी, कमल, लोध, नेत्रवाला, मजीठ, बिल्व, चन्दन, चव्य, अतीस, नागरमोथे, पाठा, यवक्षार, दारुहलदीकी छाल, सोंठ, बालछड़, चित्रक और देवदारु इनके कल्क और चांगेरीके स्वरससे सिद्ध कियाहुआ घृत तीनों दोषोंको जीतता है तथा अर्श, अतीसार, ग्रहणी, पाण्डुरोग, ज्वर, अरुचि मूत्रकृच्छ्र, गुदभ्रंश, वस्तिस्थानका आनाह, प्रवाहिका पिच्छास्राव और अर्शका शूल इन सबको दूर करनेमें परमोत्तम औषध है ॥ १३०-१३३ ॥

व्यत्यासान्मधुराम्लानिशीतोष्णानिचयोजयेत्
नित्यमग्निबलापेक्षी जयत्यर्शःकृतान् गदान्३४

अर्शरोगी अपनी अग्निके और बलके अनुसार नित्य मधुर और अम्लप्रधान द्रव्योंको और शीत उष्ण द्रव्योंको बदल बदलकर सेवन करताहुआ अर्शके विकारोंको जीते ॥ १३४ ॥

उदावर्तकी चिकित्सा।

उदावर्तार्तमभ्यज्य तैलैः शीतज्वरापहैः ।
सुस्निग्धैः स्वेदयेत्पिण्डैर्वर्तिमस्मै गुदे ततः १३५
अभ्यक्तां तत्कराङ्गुष्ठसंनिभामनुलोमनीम् ।
दद्याच्छयामात्रिवृद्दन्तीपिप्पलीनीलिनीफलैः॥
विचूर्णितैर्द्विलवणैर्गुडगोमूत्रसंयुतैः ।
तद्वन्मागधिकाराठगृहधूमैः ससर्षपैः ॥ १३७ ॥

उदावर्तवाले रोगीको प्रथम उष्ण स्वभाववाले तैलोंसे स्निग्ध (अभ्यंग) कर फिर शीतज्वर नाशक स्निग्धपिण्ड आदिसे स्वेदन करे। तदनन्तर इसकी गुदाको चिकनी कर इस रोगीके हाथके अंगूठे समान बत्ती अनुलोमनार्थ इसकी गुदामे देवे। अनुलोमनार्थ बत्तीके द्रव्य ये है. जैसे-काली निशोथ, लाल निशोथ, दंती, पीपल और कालादाना इनका बारीक चूर्ण कर इसमें सेंधालवण, विड़लवण, गुड़ और गोमूत्र मिलाकर रोगीके हाथके अंगूठे समान बत्ती बनाकर चिकनी गुदामें देवे तो इससे मल और वात अनुलोमन होकर उदावर्तरोग नष्ट होजाता है।

इसी प्रकार पीपल, मैनफल, गृहधूम और सर्सोको बारीक पीसकर गुड़ और गोमूत्रके योगसे बत्ती बनाकर गुदामें देनेसे उदावर्तको नाशकर मल और वातको अनुलोमन करती है ॥ १३५-१३७ ॥

एतेषामेव वा चूर्णं गुदे नाड्या विनिर्धमेत् ।
तद्विघाते सुतीक्ष्णं तु बस्तिं स्निग्धं प्रपीडयेत्
ऋजू कुर्याद्गुदशिरो विण्मूत्रमरुतोऽस्य सः।
भूयोऽनुबन्धे वातघ्नैर्विरेच्यः स्नेहरेचनैः ॥
अनुवास्यश्च रौक्ष्याद्धि सङ्गोमारुतवर्चसोः१३९

अथवा इन ही निशोथ आदि द्रव्योंका चूर्ण कर नलकीमें रख गुदामें प्रधमन करे।

यदि नलकीद्वारा चूर्ण गुदामें न दिया जासके तो तीक्ष्ण अनुलोमन करनेवाले द्रव्योंसे बनायेहुए तेलकी स्नेहवस्तिका प्रयोग करे। इस वस्तीसे गुदाका शिर सीधा हो जानेसे विष्ठा, मूत्र और वायुका अनुलोमन होजाताहै। यदि फिर भी मल रुक जावे तो वातघ्न स्नेह (एरण्ड तैलादि) से स्निग्ध विरेचन करावे। तथा

बार २ स्निग्ध वस्तीसे अनुवासनकर्म करे। क्योंकि रूक्षकोष्ठ होनेसे ही रूक्षताके कारण मल और वायुमें रुकावट होती है ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

कल्याण क्षार।

त्रिकटुत्रिपटुश्रेष्ठादन्त्यरुष्करचित्रकम्॥१४०॥
जर्जरं स्नेहमूत्राक्तमन्तर्धूमं विपाचयेत्।
शरावसन्धौ मृल्लिप्ते क्षारः कल्याणकाह्वयः।
स पीतः सर्पिषा युक्तो भक्ते वा स्निग्धभोजिना
उदावर्तविबन्धार्शोगुल्मपाण्डूदरक्रमीन्॥
मूत्रसङ्गाश्मरीशोफहृद्रोगग्रहणीगदान्।
मेहप्लीहरुजानाहश्वासकासांश्च नाशयेत् १४२॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधालवण, संचरलवण, विड-लवण, हरड़, बहेड़ा, आमला, दन्ती, भिलावे और चित्रक इन सबको कूटकर घृत और गोमूत्रसे भिगोकर एक मिट्टीके पात्रमे डाल मुख बन्दकर कपड़ मिट्टी करदे फिर इसको आगमे रखदे स्वांगशीतल होनेपर यह कल्याणक्षार निकालकर रखलेवे। इस क्षारको भोजनसे पहले घृतमें मिलाकर खावे और स्निग्धभोजन करे अथवा भोजनके साथ घृतमे मिलाकर खावे तो इसके सेवनसे उदावर्त, विबन्ध, अर्श, गुल्म, पाण्डु, उदर-रोग, कृमिरोग, मूत्राघात, पथरी, सूजन, हृद्रोग, ग्रहणीरोग, प्रमेह, प्लीहा, आनाह, श्वास और कास ये सब रोग नाश होते हैं ॥ १४०—१४२ ॥

सर्वं च कुर्याद्यत्प्रोक्तमर्शसां गाढवर्चसाम् १४३

जो अर्शरोगमें कठोर मलवालोंके लिये चिकित्सा कही है वह सब भी उदावर्तको शमन करनेवाली है इस कारण इसी अध्यायमें कठोरमलवालोंके लिये कही हुई चिकित्साका प्रयोग उदावर्तरोगमें भी करना चाहिये ॥ १४३ ॥

अनुलोमनशुक्त (सिर्का)।

द्रोणेऽपां पूतिवल्काद्द्वितुलमथ पचे-
त्पादशेषे च तस्मिन्
देयाशीतिर्गुडस्य प्रतनुकरजसो
व्योषतोऽष्टौ पलानि।
एतन्मासेन जातं जनयति परमा-
-मूष्मणः पक्तिशक्तिं
शुक्तं कृत्वाऽनुलोम्यं प्रजयति गुदज-
प्लीहगुल्मोदराणि ॥ १४४ ॥

पूतिकरञ्जकी छाल दोसौ पल (१० सेर) लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब जल चौथाभाग शेष रहे तो उसको छानकर इस जलमें अस्सी पल गुड़ और आठ पल त्रिकटुका चूर्ण मिलाकर घटमें डालकर मुख बन्द करके रखदे. एक महीनेके अनन्तर इसको निकाल लेवे यह महीनेमें उत्तम शुक्त (सिर्का) बन जाता है इसके सेवनसे जठराग्नि बलवान् होकर पाचनशक्ति बढ-जातीहै, वात और मलका अनुलोमन होताहै तथा अर्श, प्लीहा, गुल्म और उदररोग नाश होते हैं ॥ १४४ ॥

दूसरा सिर्का।

पचेत्तुलां पूतिकरञ्जवल्काद्
द्वे मूलतश्चित्रककण्टकार्योः।
द्रोणत्रयेऽपां चरणावशेषे
पूते शतं तत्र गुडस्य दद्यात् ॥४५॥
पलिकं च सुचूर्णितं त्रिजात-
त्रिकटुग्रन्थिकदाडिमाश्मभेदम्।
पुरपुष्करमूलधान्यचव्यं
हपुषामार्द्रकमम्लवेतसं च ॥ १४६ ॥
शीतीभूतं क्षौद्रविंशत्युपेत-
मार्द्रद्राक्षाबीजपूरार्धकैश्च।
युक्तं कामं गण्डिकाभिस्तथेक्षोः
सर्पिःपात्रे मासमात्रेण जातम्॥१४७॥
चुक्रं क्रकचमिवेदं दुर्नाम्नां वह्निदीपनं परमम्।
पाण्डुगरोदरगुल्मप्लीहानाहाश्मकृच्छ्रघ्नम् १४८

पूतिकरंजकी छाल १ तुला (५ सेर), चित्रककी जड़ ५ सेर, कटेलीकी जड़ ५ सेर इन तीनोंको कूट-कर तीन द्रोण जलमें पकावे। जब जल पककर चौथा भाग रहे तब इसको छानकर इसमें पांच सेर गुड़ मिलावे। फिर इसमें इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, अनारदाना, पाषा-णभेद, पोहकरमूल, धनियां, चव्य, हाऊबेर, अदरख और अम्लवेत इन प्रत्येकका एक एक पल चूर्ण मिलावे

तथा मधु बीस पल, ताजे अंगूर (द्राक्षा) पांच पल, बिजौरेनींबूका रस पांच पल और जितनी उचित समझे गन्नेकी गनेरियां डालकर चिकने घड़ेमें डाल मुख बन्दकर एक महीना रख छोड़े। यह एक मासके अन्तरमें उत्तम चुक्र (खट्टा सिर्का) बन जावेगा। यह सेवन करनेसे अर्शको क्रकचके समान काटनेवाला अर्थात् पीनेसे अर्शके मस्सोंको नाश करदेताहै तथा अग्निको तीक्ष्ण करताहै। एवं पाण्डु, गर, उदररोग, गुल्म, प्लीहा, आनाह, पथरी और मूत्रकृच्छ्रको दूर करताहै ॥ १४९-१४८ ॥

पीलु आदियुक्त।

द्रोणं पीलुरसस्य वस्त्रगलितं न्यस्तं हविर्भाजने युञ्जीत द्विपलैर्मदामधुफलाखर्जूरधात्रीफलैः। पाठामाद्रिदुरालभाम्लविदुलव्योषत्वगेलोलकैः स्पृक्काकोलवङ्गवेल्लचपलामूलाग्निकैः पालिकैः
गुडपलशतयोजितं निवाते
निहितमिदं प्रपिबंश्च पक्षमात्रात्।
निशमयति गुदाङ्कुरान् सगुल्मा-
ननलबलं प्रबलं करोति चाशु ॥१५०॥

पीलुके फलोंका रस एक द्रोण लेकर वस्त्रसे छान कर चिकने घड़ेमें डाले, फिर इसमें धावेके फूल दो पल, द्राक्षा दो पल, खजूर दो पल और आमले दो पल, तथा पाठा, अतीस, जवासा, अम्लवेत, सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, स्पृक्का(असवर्ग), बेर, लवंग, मिर्च, पीपलामूल और चित्रक इन प्रत्येकका एक एक पल चूर्ण डाले फिर इसमें सौ १०० पल गुड़ मिलाकर पात्रका मुख बन्दकर निर्वातस्थानमें रक्खे। फिर (१५) पन्द्रह दिनके अनन्तर इसको पीवे इसको १५ दिन पीनेसे अर्शके अंकुर और गुल्म नष्ट होते है तथा जठराग्नि शीघ्र प्रबल बलवाली हो जातीहै ॥ १४९ ॥ १५० ॥

दशमूलादि गुड़।

एकैकशो दशपले दशमूलकुम्भ-
पाठादलार्कघुणवल्लभकट्फलानाम्।
दग्धे स्रुते नु कलशेन जलेन पक्के
पादस्थिते गुडतुलां पलपञ्चकं च१५१॥
दद्यात्प्रत्येकं व्योषचव्याभयानां
वह्नेर्मुष्टी द्वे यवक्षारतश्च।
दर्वीमालिम्पन् हन्ति लीढो गुडोऽयं
गुल्मप्लीहार्शःकुष्ठमेहाग्निसादान् ॥ १५२ ॥

बिल्व, अग्निमन्थ, श्योनाक, काश्मरी, पाढल, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू, निशोथ, पाठा, अजवायन, आकके पत्र, अतीस और कायफल ये प्रत्येक द्रव्य दश १० पल लेकर एक द्रोण दही और जलमें पकावे जब चौथा भाग शेष रहे तो छानकर इसमें पांच सेर गुड़ मिलावे और सोंठ, मिर्च, पीपल, चव्य और हरीतकी ये पांच ५ पल मिलावे तथा चित्रक दो पल और जवाखार दो पल इन सबका बारीक चूर्णकर मिलावे और अवलेह पकावे। जब कड़छीसे लिपटने लगे तो इसको उतारकर चिकने पात्रमें रक्खे। इस दशमूलादि गुड़के खानेसे गुल्म, प्लीहा, अर्श, कुष्ठ, प्रमेह और मन्दाग्नि दूर होते है ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

चित्रकावलेह।

तोयद्रोणे चित्रकमूलतुलार्धं
साध्यं यावत्पादजलस्थमपीदम्।
अष्टौ दत्त्वा जीर्णगुडस्य पलानि
क्वाथ्यं भूयःसान्द्रतया सममेतत् ॥ १५३ ॥
त्रिकटुकमिसिपथ्याकुष्ठमुस्तावराङ्ग-
कृमिरिपुदहनैलाचूर्णकीर्णोऽवलेहः।
जयति गुदजकुष्ठप्लीहगुल्मोदराणि
प्रबलयति हुताशं शश्वदभ्यस्यमानः १५४॥

आधातुला (२॥ सेर) चित्रककी जड़ोंको एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथाभाग रहे तो इसको उतारकर छान लेवे फिर इसमें आठ पल पुराना गुड़ मिलाकर पकावे जब जल गुड़ पककर गाढ़ा होजावे तो इसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, सौंफ, हरीतकी, कूठ, मोथे, दालचीनी, वायविडंग, चित्रक और इलायची इन सबको समभाग लेकर चूर्ण बनावे यह तीन पल चूर्ण उस अवलेहमें मिलावे। इस अवलेहके सेवनसे

अर्श, कुष्ठ, प्लीहा, गुल्म और उदररोग नष्ट होते है तथा इसके अभ्याससे शीघ्रही जठराग्नि बलवती होती है ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

गुडादि वटी ।

गुडव्योषवरावेल्लतिलारुष्करचित्रकैः ।
अर्शांसि हन्ति गुटिका त्वग्विकारं च शीलिता

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, वायविडंग, भिलावे और चित्रक इन सबका चूर्ण कर दो गुणे गुड़में कूटकर गोलियें बनाले इन गोलियोंको सेवन करनेसे अर्श और त्वचाके विकार दूर होते है ॥१९५॥

सूरणकन्द योग ।

मृल्लिप्तं सौरणं कन्दं पक्त्वाऽग्नौ पुटपाकवत् ।
अद्यात्सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये ॥ १९६॥

सूरणकन्द (जिमीकन्द) को मट्टीसे लेपकर पुटपाक विधानसे पकावे फिर शीतलकर छीलकर टुकड़े करे । इसको तेल और सेंधालवण मिलाकर भूनकर खावे तो अर्श रोग दूर होताहै ॥ १९६ ॥

सूरण गुडक ।

मरिचपिप्पलिनागरचित्रकान्
क्रमविवर्धितभागसमाहृतान् ।
शिखिचतुर्गुणसूरणयोजितान्
कुरु गुडेन गुडान् गुदजच्छिदः ॥ १९७ ॥

मिर्च एक भाग, पीपल दो भाग, सोंठ तीन भाग, चित्रक चार भाग, शुद्ध सूरणकन्द सुखायाहुआ सोलह भाग, गुड़ ३२ भाग सबको मिलाकर एक तोलाके गोले बनावे इनके खानेसे अर्शरोग दूर होता है१९७

अन्य सूरण वटक ।

चूर्णीकृताः षोडश सूरणस्य
भागास्ततोऽर्धेन च चित्रकस्य ।
महौषधाद्द्वौ मरिचस्य चैको
गुडेन दुर्नामजयाय पिण्डी ॥ १९८ ॥

सूरणकन्दका चूर्ण सोलह भाग, चित्रकका चूर्ण आठ भाग, सोंठ दो भाग, मिर्च एक भाग इन सबका चूर्ण कर दो गुणे गुड़में मोदकसे बनालेवे इसके खानेसे अर्श रोग दूर होता है ॥ १९८ ॥

पथ्यादि चूर्ण ।

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जवेल्लाग्निभिःसितातुल्यैः
वडवामुख इव जरयति बहुगुर्वपि भोजनंचूर्णम्॥

हरीतकी, सोंठ, पीपल, करंजुवेकी गिरी, वायविडंग और चित्रक इन सबको समान भाग लेकर सबके बराबर मिसरी मिलाकर चूर्ण करे यह वड़वामुखचूर्ण बहुत और भारी आहारको भी शीघ्र जीर्ण कर देता है ॥ १९९ ॥

कलिङ्गादि वटी ।

कलिङ्गलाङ्गलीकृष्णावह्निचपामार्गतण्डुलैः ।
भूनिम्बसैन्धवगुडैर्गुडा गुदजनाशनाः ॥१६०॥

इन्द्रजव, लांगलीकन्द, पीपल, चित्रक, अपामार्गके बीज, चिरायता और सेंधालवण इन सबका चूर्णकर दोगुणे गुड़से गोलियें बनाले इनके सेवनसे अर्शरोग नाश होजाता है ॥ १६० ॥

सैन्धवादि चूर्ण ।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गयवां-
श्चिरबिल्वमहापिचुमन्दयुतान् ।
पिब सप्तदिनं मथितालुडितान्
यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुहान्॥१६१

सेन्धालवण, चित्रक, इन्द्रयव, करञ्जके बीज और बकायनके फल इनका चूर्ण तक्रमें घोलकर वह मनुष्य पीवे जो अर्शरोगका नाश करना चाहता हो ॥१६१

शुष्केषु भल्लातकमग्र्यमुक्तं
भैषज्यमार्द्रेषु तु वत्सकत्वक् ।
सर्वेषु सर्वर्तुषु कालशेय-
मर्शःसु बल्यं च मलापहं च ॥१६२॥

सूखी अर्शमें भिलावेका सेवन सब औषधोंमें श्रेष्ठ है । गीली अर्शमें कुटजकी छालका प्रयोग सर्वोत्तम होता है और दोनों प्रकारकी अर्शमें अर्थात् सूखे रहनेवाले और स्राव करनेवाले दोनों प्रकारके मस्सोंवाली अर्शमें तक्रका प्रयोग सबसे श्रेष्ठ है तथा बलवर्धक और दोषनाशक होता है ॥ १६२ ॥

भित्त्वा विबन्धानानुलोमनाय
यन्मारुतस्याऽग्निबलाय यच ।

तदन्नपानौषधमर्शसेन
सेव्यं विवर्ज्यं विपरीतमस्मात् ॥१६३॥

अर्शरोगीको अन्न पान और औषध वे सेवन करने चाहिये जो मलके विबन्धको भेदन करके मल और वातको अनुलोमन करें तथा जठराग्निको बल देवें। जो अन्नपान औषध इससे विपरीत हों उनका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ १६३ ॥

अर्शोतिसारग्रहणीविकाराः
प्रायेण चान्योन्यनिदानभूताः।
सन्नेऽनले सन्ति न सन्ति दीप्ते
रक्षेदतस्तेषु विशेषतोऽग्निम् ॥ १६४ ॥

अर्शरोग, अतीसार और ग्रहणी विकार ये सब रोग प्रायः एक दूसरेके कारण हो जाते हैं और ये तीनों रोग जठराग्निकी मन्दतासे ही होते है। इस कारण इन रोगोंसे बचनेके लिये जठराग्निकी ही विशेष रक्षा रखना चाहिये ॥ १६४ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां चिकित्सास्थाने आयुर्वेदाचार्यशिवशर्म्मकृत–शिवदीपिकाभाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः।

अथातोऽतीसारचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

अब हम अतिसार रोगकी चिकित्साको कथन करते हैं।

अतीसारमें चिकित्साक्रम।

अतीसारो हि भूयिष्ठं भवत्यामाशयान्वयः।
हत्वाग्निं वातजेऽप्यस्मात्प्राक् तस्मिंल्लंघनं–
–हितम् ॥ १ ॥

अतिसार रोगका विशेष रूपसे आमाशयसे सम्बन्ध होता है क्योंकि अतीसार जठराग्निको हनन करके ही उत्पन्न होता है इस कारण वातज अतीसारमें भी प्रथम लंघन करना ही हितकारी होता है ॥ १ ॥

शूलानाहप्रसेकार्तं वामयेदतिसारिणम् ॥ २ ॥

यदि अतीसाररोगवालेके उदरमें शूल आनाह और मुखसे लार वहना यह उपद्रव हो तो इस रोगीको वमन करादेना चाहिये ॥ २ ॥

दोषाः संनिचिता ये च विदग्धाहारमूर्छिताः।
अतीसाराय कल्पन्ते तेषूपेक्षैव भेषजम्।
भृशोत्क्लेशप्रवृत्तेषु स्वयमेव चलात्मसु ॥ ३ ॥

जब दोष संचित होकर विदग्ध हुए आहारसे मिल जाते है तब अतिसार रोगको उत्पन्न करते हैं। ऐसी अवस्थामें कोई पाचन या संग्राही औषध न देकर केवल उपेक्षा (लंघन) करना ही परमौषध है। क्योंकि अत्यन्त उत्क्लेशितहुए दोष स्वयं ही चलायमान होनेके लिये प्रवृत्त होते हैं उनमें उपेक्षा करना ही हितकारी होता है। उपेक्षाका अर्थ यहां कोई पाचक या ग्राही औषध न खाकर लंघन मात्र करना और हित सेवन मात्र ही है ॥ ३ ॥

आमातिसारकी चिकित्सा।

प्रयोज्यं नतु संग्राहि पूर्वमामातिसारिणि ॥४॥

आमातिसारमें पहले ही कोई अतिसारको रोकनेवाली औषध नहीं देना चाहिये। क्योंकि रुकाहुआ आमदोष अनेक उपद्रवोंको उत्पन्न कर देता है ॥४॥

विबद्धदोषमें हरीतकी प्रयोग।

अपि चाध्मानगुरुताशूलस्तैमित्यकारिणि।
प्राणदा प्राणदा दोषे विबद्धे सम्प्रवर्तिनी ॥ ५॥

यदि अतिसाररोगमें आध्मान, गुरुता, शूल और स्तैमित्य हों तथा रुक रुक कर थोड़ा २ दस्त आता हो ऐसी अवस्थामें हरीतकीका प्रयोग करना प्राणदायक और लाभकारी होता है ॥ ५ ॥

मध्यदोषमें चिकित्सा।

पिबेत्प्रक्वथितांस्तोये मध्यदोषो विशोषयन्।
भूतीकपिप्पलीशुण्ठीवचाधान्यहरीतकीः।
अथवा बिल्वधनिकामुस्तानागरवालकम्।
बिडपाठावचापथ्याकृमिजिन्नागराणि वा।
शुण्ठीघनवचामाद्रीबिल्ववत्सकहिङ्गु वा ॥ ६ ॥

अतिसाररोगमें यदि दोष मध्यावस्थामें हों तो दोषको शोधन करनेके लिये लंघन करतेहुए भूतिकतृण, पीपल, सोंठ, वच, धनियां और हरीतकीका क्वाथ बनाकर पीवे। अथवा बिल्व, धनियां, नागरमोथा, सोंठ और सुगन्धवालाका क्वाथ पीवे। अथवा बिड-

लवण, पाठा, बच, हरीतकी, वायविडंग और सोंठका काथ पीवे या सोंठ, नागरमोथा, बच, अतीस, बिल्व, इन्द्रजौ और हींगका काथ पीवे ॥ ६ ॥

लंघन ।

शस्यते त्वल्पदोषाणामुपवासोऽतिसारिणाम्॥७॥

जिस अतिसार रोगीके शरीरमें दोष अल्प ही हों उसको केवल लंघन (उपवास) करना ही हितकारी होता है ॥ ७ ॥

अतिसारमें पेयजल ।

वचाप्रतिविषाभ्यां वा मुस्तापर्पटकेन वा ।
ह्रीबेरनागराभ्यां वा विपक्कं पाययेज्जलम्॥ ८ ॥

अतिसाररोगीको प्यास लगे तो बच और अतीस डालकर उबालाहुआ जल या नागरमोथे और पापड़ेसे सिद्ध जल अथवा लाजवन्ती और सोंठसे सिद्ध जल शीतल करके पिलावे ॥ ८ ॥

अतीसारमें भोजन ।

युक्तेऽन्नकाले क्षुत्क्षामं लघ्वन्नं प्रतिभोजयेत् ।
तथा स शीघ्रं प्राप्नोति रुचिमग्निबलं बलम्॥९॥

अन्नके समय यदि अधिक क्षुधासे व्याकुलता हो तो बहुत हलका थोड़ासा भोजन देना चाहिये जिससे अन्नपर रुचि, अग्निकी वृद्धि और बलकी प्राप्ति हो ॥९॥

तक्रेणावन्तिसोमेन यवाग्वा तर्पणेन वा ।
सुरया मधुना वाऽथ यथासात्म्यमुपाचरेत्१०॥

इस रोगीको, पान करनेके लिये भोजनके साथ तक्र, कांजी, यवागू, लाजाका तर्पण, सुरा या मधु इनमेंसे जो सात्म्य और उचित हो सो देना चाहिये॥१०॥

सामान्याचिकित्सा ।

भोज्यानि कल्पयेदूर्ध्वं ग्राहिदीपनपाचनैः ।
बालबिल्वशठीधान्यहिङ्गुवृक्षाम्लदाडिमैः॥११
पलाशहपुषाजाजीयवानीबिडसैन्धवैः ।
लघुना पञ्चमूलेन पञ्चकोलेन पाठया॥ १२ ॥

इस क्रमके अनन्तर अतिसाररोगवालेको भोजन ग्राही, दीपन और पाचन द्रव्योंसे सिद्ध करके देना चाहिये । जैसे बहुत कच्चा बालबिल्व, कचूर, धनियां, हींग, अम्लवेत, अनारका रस, पलाश, हाऊबेर, जीरा, अजवायन, बिडलवण, सेन्धालवण, लघु पञ्चमूल, पञ्चकोल, और पाठा इनसे सिद्ध जलमें पेयादि बनाकर पथ्य देना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥

शालिपर्णीबलाबिल्वैः पृश्निपर्ण्या च साधिता॥
दाडिमाम्ला हिता पेया कफपित्ते समुल्बणे ।
अभयापिप्पलीमूलबिल्वैर्वातानुलोमनी ॥१४ ॥

यदि अतिसारमें कफ पित्तकी अधिकता हो तो शालिपर्णी, बला, बिल्व और पृश्निपर्णीके जलमें सिद्ध कीहुई पेया दाड़िमके रससे खट्टी करके देना हितकारी होता है ।

यदि वायुकी अधिकता हो तो हरीतकी, पीपलामूल और बिल्वसे सिद्ध कीहुई पेया वातको अनुलोमन करनेको देना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

विबद्धं दोषबहुलो दीप्ताग्निर्योऽतिसार्यते ।
कृष्णाविडङ्गत्रिफलाकषायैस्तं विरेचयेत् ।
पेयां युंज्याद्विरिक्तस्य वातघ्नैर्दीपनैःकृताम्१५।

यदि अतिसारवाले रोगीकी जठराग्नि दीप्त हो और दोषकी अधिकता हो तथा मल थोड़ा थोड़ा बार २ आताहो तो पीपल, वायबिडंग और त्रिफलेका काथ पिलाकर विरेचन करावे । तदनन्तर वातनाशक और दीपन द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई पेया पिलाना चाहिये ॥ १५

आमे परिणते यस्तु दीप्तेऽग्नावुपवेश्यते ॥१६॥
सफेनपिच्छं सरुजं सविबन्धं पुनः पुनः ।
अल्पाल्पमल्पं समलं निर्विड्वा सप्रवाहिकम्१७
दधितैलघृतक्षीरैः स शुण्ठीं सगुडां पिबेत् ।
स्विन्नानि गुडतैलेन भक्षयेद्वदराणि वा ॥१८॥
गाढविड्विहितैः शाकैर्बहुस्नेहैस्तथा रसैः ।
क्षुधितं भोजयेदेनं दधिदाडिमसाधितैः ॥१९॥
शाल्योदनं तिलैर्माषैर्मुद्गैर्वा साधु साधितम् ।
शुण्ठ्या मूलकपोतायाःपाठायाःस्वस्तिकस्य वा
सुषायवानीकर्कारुक्षीरिणीचिर्भटस्य वा ।
उपोदकाया जीवंत्या वाकुच्या वास्तुकस्य वा॥
सुवर्चलायाश्चुंचोर्वा लोणिकाया रसैरपि ।
कूर्मवर्तकलोपाकशिखितित्तिरिकौक्कुटैः॥ २२ ॥

जिस अतिसारवालेको आमके परिणत होनेपर

अग्नि दीप्त होतेहुए भी फेनयुक्त, पिच्छायुक्त पीड़ाको साथ थोड़ा थोड़ा बार बार अतिसार होता हो, फेन और पिच्छाके साथ रुक रुक कर प्रवाहिका होकर विष्ठायुक्त अथवा विना मल ही प्रवाहिकामें फेन और पिच्छा आती हो ऐसे रोगीको सोंठका चूर्ण गुड़ मिलाकर दही, तैल, घृत और दूध इनमेंसे किसीके साथ खाना चाहिये। अथवा गुड़ और तेलमें पकायेहुए बेर खाने चाहिये। अथवा मलके विबंधमें कहेहुए शाकोंमें बहुतसी चिकनाई मिलाकर उनके साथ क्षुधाके समय शाली चावलोंका भात देना चाहिये। अथवा दही और दाड़िमका रस मिलाकर सिद्ध कियेहुए रसोंसे शाली चावलोंका भात देवे। या तिल, माष और मुद्ग मिलाकर यथार्थ साधन कियेहुए शाली चावल देवे। अथवा शाली चावलोंका भात सोंठ और पोईके शाकके साथ, या पाठाके शाकसे, या स्वस्तिकशाकसे, अथवा उपोदकी, जीवन्ती, बाकुचीके पत्र, बाथूके पत्र, सुवर्चलाके पत्र, सुनिषण्णकके पत्र और लोणियाशाक इनमेंसे किसी शाकके रसके साथ शाली चावलोंका भात देवे। यदि मांसाहारी रोगी हो तो उसको कूर्म, वतक लोपाकमृग, मोर, तित्तिर और मुर्गा इनमेंसे किसीके मांसरसके साथ शाली चावलोंका भात देवे ॥ १६-२२ ॥

पक्वातिसारकी चिकित्सा।

बिल्वमुस्ताक्षिभैषज्यधातकीपुष्पनागरैः।
पक्वातीसारजित्तक्रे यवागूर्दाधिकी तथा॥२३॥
कपित्थकच्छुराफञ्जीयूथिकावटशैलुजैः।
दाडिमीशणकार्पासीशाल्मलीमोचपल्लवैः २४॥

पक्वातिसारको निवृत्त करनेके लिये बिल्व, नागरमोथा, पठानीलोध, धावेके फूल और सोंठ इनसे सिद्धकीहुई यवागू पीना चाहिये। तथा तक्रमें बनायी हुई कपित्थ, जवासा, भारंगी, जुही, वट लिसोड़ा, दाडिम, कपास, सेमल और सौभांजन इनके कोमल पत्र डालकर दाधिकी यवागू पीनेसे पक्वातिसारको दूर करती है ॥ २३ ॥ २४ ॥

दध्नःसरोऽम्लःसस्नेहःखलो हंति प्रवाहिकाम्२५

बालबिल्वफलका कल्क और कल्क समान ही तिलकल्क इनको मिलाकर दहीके घृतयुक्त सर (तोड़) के साथ खावे इस खलके खानेसे प्रवाहिका रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ २५ ॥

अपराजितखल।

मरिचं धनिकाजाजीतिंत्तिडीकशठीबिडम्।
दाडिमं धातकी पाठा त्रिफला पञ्चकोलकम्॥
यावशूकं कपित्थाम्रजम्बूमध्यं सदीप्यकम्।
पिष्टैःषड्गुणबिल्वैस्तैर्दध्नि मुद्गरसे गुडे ॥२७॥
स्नेहे च यमके सिद्धः खलोऽयमपराजितः।
दीपनः पाचनो ग्राही रुच्यो बिम्बिशिनाशनः॥

मिर्च, धनियां, जीरा, तिंतिडीक, कचूर, विडलवण, अनारदाना, धावेके फूल, पाठा, हरड़, बहेड़ा, आमला, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, जवक्षार, कपित्थफलका मध्य भाग, आमकी गुठली, जामनकी गुठली और अजवायन इन सबके चूर्णसे छः गुणी बिल्वकी गिरी इन सबको दही, मूंगका रस और गुड़ मिलाकर यमकस्नेह (घृत तैल)में सिद्ध करे। यह अपराजित खल खानेसे अग्नि दीपन होती है तथा यह पाचन है, ग्राही है, रुचिकारक है और प्रवाहिकाको नाश करती है ॥ २६-२८ ॥

कोलानां बालबिल्वानां कल्कैःशालियवस्य च।
मुद्गमाषतिलानां च धान्ययूषं प्रकल्पयेत्२९॥
ऐकध्यं यमके भृष्टं दधिदाडिमसारिकम्।
वर्चःक्षये शुष्कमुखं शाल्यन्नं तेन भोजयेत्३०॥
दध्नः सरं वा यमके भृष्टं सगुडनागरम्।
सुरां वा यमके भृष्टां व्यञ्जनार्थं प्रयोजयेत् ३१॥

बेर और बालबिल्वफलोंका कल्क कर उस कल्कके साथ शाली चावल, मूंग, माष और तिल मिलाकर धान्य यूष बनावे इस यूषको यमक स्नेहमें छौंक कर इसमें दही और दाड़िमका रस मिलावे। यह धान्ययूष शालीचावलोंके भातके साथ उस अतिसार रोगीको देवे जिसका विष्ठा क्षय होकर मुखशोष होरहा हो। अथवा दहीका मट्ठा सोंठ और गुड़ मिलाकर यमक स्नेहमें छौंककर पिलावे या शाली चावलोंके भातके

साथ खिलावे । अथवा यमकस्नेहमें भून कर सुरा ही व्यंजनार्थ प्रयोग करे ॥ २९--३१ ॥

फलाम्लं यमके भृष्टं यूषं गृञ्जनकस्य वा ।
भृष्टान्वा यमके सक्तून् खादेद्व्योषावचूर्णितान् ॥
माषान् सुसिद्धांस्तद्वद्वा घृतमण्डोपसेवनान् ।
रसं सुसिद्धपूतं वा छागमेषान्तराधिजम् ॥ ३३ ॥
पचेद्दाडिमसाराम्लं सधान्यस्नेहनागरम् ।
रक्तशाल्योदनं तेन भुञ्जानः प्रपिबंश्च तम् ।
वर्चःक्षयकृतैराशु विकारैः परिमुच्यते ॥ ३४ ॥

अथवा अनार आदि खट्टे फलोंका रस अथवा सलगमका यूष यमकस्नेहमें छौंक कर व्यंजनार्थ देवे । अथवा यमकमें भूनेहुए सत्तू त्रिकुटेका चूर्ण बुरका कर खावे । अथवा माषान्नको यूषरूपसे बनाकर उसका यूष घृत मिलाकर शाली चावलोंके साथ खावे । अथवा मेढे या बकरेके कलेजेका मांसरस बनाकर इस रसमे अनारका रस, धनियां और सोंठ मिलाकर घृतमें छौंक कर लाल शाली चावलोंके भातके साथ खाने या पीनेसे विष्ठाक्षयजनित विकारोंसे मनुष्य शीघ्र छूट जाता है ॥ ३२–३४ ॥

प्रवाहिकाका यत्न ।

बालबिल्वं गुडं तैलं पिप्पलीविश्वभेषजम् ।
लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूलःसप्रवाहिकः ॥ ३५ ॥

यदि प्रवाहिकामें वायु प्रतिलोम होकर शूल होता हो तो बालबिल्वफल, गुड़, तैल, पीपल और सोंठ मिलाकर चाटनेसे शूलादियुक्त प्रवाहिका शमन हो जाती है ॥ ३५ ॥

वल्कलं शाबरं पुष्पं धातक्या बदरीदलम् ।
पिबेद्दधिसरक्षौद्रकपित्थस्वरसाप्लुतम् ॥ ३६ ॥

लोधकी छाल, धावेके फूल, वेरीकी छालको चूर्णकर दधिसर (तोड़) मधु, कपित्थ स्वरस मिलाकर पीवे तो प्रवाहिका दूर होती है ॥ ३६ ॥

विबद्धवातवर्चास्तु बहुशूलप्रवाहिकः ।
सरक्तपिच्छस्तृष्णार्तःक्षीरसौहित्यमर्हति ॥ ३७
यमकस्योपरि क्षीरं धारोष्णं वा प्रयोजयेत् ।
श्रृतमेरण्डमूलेन बालबिल्वेन वा पुनः ॥ ३८ ॥

जिस रोगीको प्रवाहिकामें वायु और मल कष्टके साथ रुक रुक कर प्रवाहिका (नवाही) के साथ आवे साथमें शूल होता हो और रक्त भी आता हो ऐसे रोगीको औषध सिद्ध दूधका सेवन कराना चाहिये । अथ वा यमकस्नेह (घृत, तैल मिलाकर) पिलावे उपरसे धारोष्ण दूध पिलाना चाहिये या एरण्डकी जड़ और बालबिल्व मिलाकर सिद्धकियाहुआ दूध पिलावे तो शूलादियुक्त प्रवाहिका शमन होती है ॥ ३७॥ ३८॥

पयस्युत्क्वाथ्य मुस्तानां विंशतिं त्रिगुणेऽम्भसि ।
क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्यादामं सवेदनम् ॥ ३९ ॥

नागरमोथेके बीस कन्द (गांठ), आधसेर दूध और डेढसेर जल मिलाकर पकावे जब जल जलकर दूधमात्र शेष रहे तो इस दूधके पीनेसे आम (आँ) और शूल युक्त प्रवाहिका शमन होजाती है ॥ ३९ ॥

पिप्पल्याःपिबतःसूक्ष्मं रजो मरिचजन्म वा ।
चिरकालानुषक्तापि नश्यत्याशु प्रवाहिका ॥ ४०

यदि पिप्पलीका बारीक चूर्ण अथवा कालीमिर्चका बारीक चूर्ण जलके साथ पीवे तो देरसे ठहरीहुई प्रवाहिका भी नष्ट होजाती है ॥ ४० ॥

निरामरूपं शूलार्तं लङ्घनाद्यैश्च कर्षितम् ।
रूक्षकोष्ठमपेक्ष्याग्निं सक्षारं पाययेद् घृतम् ४१

यदि अतीसाररोगी निराम होतेहुए भी शूलयुक्त हो और लंघन आदिसे कृश होचुका हो तथा रूक्षकोष्ठवाला हो तो उसको जवखार मिलाकर घी पिलाना चाहिये ॥ ४१ ॥

सिद्धं दधिसुरामण्डे दशमूलस्य चाम्भसि ।
सिन्धूत्थपञ्चकोलाभ्यां तैलं सद्योऽर्तिनाशनम्

दही, सुरामण्ड और दशमूलके क्वाथमें सेन्धानमक और पंचकोलका कल्क मिलाकर सिद्ध कियाहुआ तिलतैल पीलाना, यह प्रयोग बस्तिमें शीघ्र ही शूलको नष्ट कर देता है ॥ ४२ ॥

षड्भिःशुण्ठ्याःपलैर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां–
–ग्रन्थ्यग्निसैन्धवात् ।
तैलप्रस्थं पचेद्दध्ना निःसारकरुजापहम् ॥ ४३ ॥

सोंठ छः पल, भद्रमोथा दो पल, चित्रक दो पल

और सेन्धालवण दो पल इनका कल्क कर एक सेर तेल और चार सेर दही मिलाकर तैल सिद्ध करे इस तेलको वस्तिकर्म और पीनेमें प्रयोग करनेसे प्रवाहिकाका शूल और गुदभ्रंश दूर होते है ॥ ४३ ॥

एकतो मांसदुग्धाज्यं पुरीषग्रहशूलजित् ।४४॥
पानानुवासनाभ्यङ्गप्रयुक्तं तैलमेकतः ।
तद्धि वातजितामग्र्यं शूलं च विगुणोऽनिलः४५

जैसे मांस, दूध और घृत एक ओर मलकी रुकावट और शूलको हरनेवाले है उसी प्रकार दूसरी ओर तैलका पीने, अनुवासन और अभ्यंगमें प्रयोग करनेसे शूल नष्ट होजाता है । क्योंकि विगुणवात ही शूल है सो वह तैल घृतादिसे अनुलोमन होजाता है इस कारण शूल नष्ट होजाता है ॥४४॥४५॥

धात्वन्तरोपमर्दाद्धि चलो व्यापी स्वधामगः ।
तैलं मन्दानलस्यापि युक्त्या शर्मकरं परम् ।
वाय्वाशये सतैले हि विबिसी नावतिष्ठते ॥४६॥

कफ और पित्तके क्षय होनेसे अथवा अन्य धातुओंके क्षय होजानेसे वायुका प्रकोप होजाता है । वह वायु सर्वशरीरव्यापी होते हुए भी पक्काशयमें विशेष वृद्धिको प्राप्त होता है इस कारण तैलसे वस्तिकर्म करने या पीनेसे जब तैल पक्काशयमें पहुंच जाता है तो वातका शूल या प्रवाहिका नहीं रह सकते । इस कारण मन्दाग्निवालेको भी युक्तिपूर्वक तैलका प्रयोग कल्याणकारी होता है ॥ ४६ ॥

क्षीणे मले स्वायतनच्युतेषु
दोषान्तरेष्वीरण एकवीरे ।
को निष्टनन्प्राणिति कोष्ठशूली
नान्तर्बहिस्तैलपरो यदि स्यात् ॥४७॥

जब मल क्षीण होगया हो और कफ पित्त अपने स्थानसे भ्रष्ट होगए हों तथा एक वीर वायु ही शरीरमें भ्रष्ट धातुओंका नायक होकर विचरण करता हो ऐसी अवस्थामें यदि आभ्यन्तर और बाहर तैलका प्रयोग कर वायुको न जीताजाय तो प्रवाहिका और कोष्ठशूलसे किणछताहुआ कौन पुरुष जीवित रहसकता है अर्थात् कोई नहीं इस कारण तैलका प्रयोग करना ही इस अवस्थामें श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥

गुदरुग्भ्रंशयोर्युञ्ज्यात्सक्षीरं साधितं हविः ।
रसे कोलाम्लचाङ्गेर्योर्दध्नि पिष्टे च नागरे॥४८॥

गुदाके शूल और गुदभ्रंशरोगमे दूध, बेर फलोंका क्काथ और चांगेरीका रस तथा दहीमें पीसकर बनाया हुआ सोंठका कल्क मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत प्रयोग करना चाहिये ॥ ४८ ॥

तैरेव चाम्लैः संयोज्य सिद्धं सुश्लक्ष्णकल्कितैः ।
धान्योषणबिडाजाजीपांचकोलकदाडिमैः ४९

बेरफलोंका क्काथ, चांगेरीका रस और दही तथा धनियां,कालीमिर्च, बिड़लवण, जीरा, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ और दाड़िम इन सबका कल्क मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत गुदाके शूल और गुदभ्रंशको दूर करता है ॥ ४९ ॥

योजयेत्स्नेहबस्तिं वा दशमूलेन साधितम् ।
शठीशताह्वाकुष्ठैर्वा वचया चित्रकेण वा ॥५०॥

अथवा दशमूलसे सिद्ध कियेहुए घृतकी स्नेहवस्ती देनेसे गुदाका शूल दूर होजाता है । या कचूर, सौंफ और कूठसे सिद्ध किया घृत अथवा बच और चित्रककी जड़के कल्कसे सिद्ध किया घृत वस्तीद्वारा प्रयोग करनेसे गुदशूल और गुदभ्रंशको दूर करता है॥५०॥

प्रवाहणे गुदभ्रंशे मूत्राघाते कटिग्रहे ।
मधुराम्लैः शृतं तैलं घृतं वाप्यनुवासनम्॥५१॥

प्रवाहिकाके कष्टमें, गुदभ्रंशमें, मूत्राघातमें और कटिके शूलमें मधुर और अम्ल द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ घृत या तेल अनुवासनद्वारा प्रयोग करनेसे प्रवाहिकादि विकारोंको शमन करता है ॥ ५१ ॥

गुदभ्रंशकी चिकित्सा ।

प्रवेशयेद्गुदं ध्वस्तमभ्यक्तं स्वेदितं मृदु ।
कुर्याच्च गोःफणाबन्धं मध्याच्छिद्रेण चर्मणा५२

यदि गुदा बाहर निकल आई हो और स्वयं भीतर न जावे तो गुदाको स्निग्धकरके मृदु स्वेद देकर भीतर प्रवेश करदे और ऊपरसे गोफणाकार

चर्मको बीचमें छेद करके गुदापर बांध देवे जिससे वायु न रुके और गुदा भी बाहर न आवे ॥ ९२ ॥

उन्दरु तैल ।

पञ्चमूलस्य महतः क्वाथं क्षीरे विपाचयेत् ।
उंदुरुं चांत्ररहितं तेन वातघ्नकल्कवत् ॥
तैलं पचेद्गुदभ्रंशं पानाभ्यङ्गेन तज्जयेत् ॥९३॥

बृहत्पञ्चमूलके क्वाथको दूधमें पकावे तथा उन्दरु (मूषक) को आन्त्ररहित कर दूधमें पकावे यह दूध और रास्ना, एरंड आदि वातनाशक द्रव्य तथा आंत रहित मूषक इन सबको तेलमें डालकर तैल पाक विधिसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलके पीने और गुदामें लगानेसे गुदभ्रंश रोग दूर हो जाता है॥९३॥

पित्तातिसारकी चिकित्सा ।

पैत्ते तु सामे तीक्ष्णोष्णवर्ज्यं प्रागिव लंघनम् ९४

पित्तके अतिसारमें पहले लंघन करना चाहिये तथा तीक्ष्ण उष्णपदार्थ छोड़कर अन्य सब जल और पेयादि विधि पूर्वोक्त वातातिसारके आदिक्रमके अनुसार करना चाहिये ॥ ९४ ॥

तृड्वान् पिबेत् षडङ्गाम्बु सभूनिंबं ससारिवम् ।
पेयादि क्षुधितस्यान्नमग्निसन्धुक्षणं हितम् ।
बृहत्यादिगणाभीरुद्विबलाशूर्पपर्णिभिः ॥९५॥

पित्तातिसारमें प्यास लगे तो ज्वरचिकित्सामें कहे हुए षडग जलके द्रव्य नागरमोथा, चन्दन, सोंठ, नेत्रवाला, पापड़ा, खस तथा चिरायता और शारिवा इन द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ शीतल जल पीनेको देवे । यदि क्षुधा लगे तो बृहत्यादिगण, अभीरु आदि गण, बला, अतिबला, माषपर्णी और मुद्गपर्णीसे सिद्ध किये जलमें बनायीहुई अग्निको चैतन्य रखनेवाली पेया आदि पथ्य आहार देवे ॥ ९५ ॥

पाययेदनुबन्धे तु सक्षौद्रं तन्दुलांभसा ।
वत्सकस्य फलं पिष्टं सवल्कं सघुणप्रियम् ९६॥
पाठावत्सकबीजत्वग्दार्वीग्रन्थिकशुण्ठि वा ।
क्वाथं चाऽतिविषाबिल्ववत्सकोदीच्यमुस्तजम्॥
अथवाऽतिविषामूर्वानिशेन्द्रयवतार्क्ष्यजम् ।
समध्वातिविषाशुण्ठीमुस्तेन्द्रयवकट्फलम् ९८॥

यदि लंघन पाचनादि करनेके अनन्तरभी पित्तका अतिसार निवृत्त न होसके तो इन्द्रयव, कुड़ाकी छाल और अतीसका चूर्ण मधुयुक्त तण्डुल जलके साथ पीवे । अथवा—पाठा, इन्द्रयव, कुड़ाकी छाल, दारुहलदी, नागरमोथा और सोंठका चूर्ण तण्डुलजलके साथ पीवे ।

अथवा अतीस, बिल्व, इन्द्रयव, नेत्रवाला और नागरमोथेका क्वाथ पीवे तो पित्तातिसार शांत होता है । अथवा-अतीस, मूर्वा, दारुहलदी, इन्द्रयव और रसांजनका क्वाथ पीवे या अतीस, सोंठ, नागरमोथे, इन्द्रयव और कायफलका क्वाथ मधु मिलाकर पीवे तो पित्तातिसार शमन होता है ॥ ९६-९८ ॥

पित्तातिसार नाशक योग ।

पलं वत्सकबीजस्य श्रपयित्वा रसं पिबेत् ।
यो रसाशी जयेच्छीघ्रं स पैत्तं जाठरामयम् ९९
मुस्ताकषायमेवं वा पिबेन्मधुसमायुतम् ।
सक्षौद्रं शाल्मलीवृन्तकषायं वाहिमाह्वयम् १०॥

जो पित्तातिसारवाला मनुष्य एक पल इन्द्रयवके बीजोंको कूटकर क्वाथ बनाकर पीवे और केवल मांसरस या पेयाका आहार करे तो उसका अतीसार रोग शीघ्र शमन हो जाता है । अथवा इसी प्रकार नागरमोथेका क्वाथ ठंढाकर मधु मिलाकर पीवे । अथवा शाल्मली (सेमल) के फूलोंके वृन्तोंका शीतकषाय (हिम) मधु मिलाकर पीवे तो पित्तातिसार शमन होजाता है ॥ ९९ ॥ १० ॥

किराततिक्तकं मुस्तं वत्सकं सरसांजनम् ।
कटंकटेरीं ह्रीबेरं बिल्वमध्यं दुरालभाम् ॥११॥
तिलान् मोचरसं रोध्रं समङ्गां कमलोत्पलम् ।
नागरं धातकीपुष्पं दाडिमस्य त्वगुत्पलम् ।
अर्धश्लोकैः स्मृता योगाः सक्षौद्रास्तण्डुलांबुना

१ चिरायता, नागरमोथे, इन्द्रजौ और रसौंत । २ कटेली, नेत्रवाला, कच्चे बिल्वका मध्य भाग और जवासा । ३ तिल, मोचरस, पठानीलोध, मजीठ, कमल और नीलोत्पल । ४ सोंठ, धावेके फूल, अनारका छिलका और नीलोत्पल इन आधे २ श्लोकोंमें कहेहुए चार योगोंमेंसे किसी एकके चूर्णको मधुयुक्त तण्डुल

जलसे सेवन करे तो पित्तातिसार शमन हो जाता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

निशेन्द्रयवरोध्रैलाक्वाथः पक्वातिसारनुत्॥६३॥

दारुहलदी, इन्दजौ और पठानीलोध इलायचीका क्वाथ पक्वातिसारको नष्ट करदेता है ॥ ६३ ॥

रोध्रांबष्ठाप्रियंग्वादिगणांस्तद्वत् पृथक् पिबेत्
कट्वङ्गवल्कयष्ट्याह्वफलिनीदाडिमांकुरैः ।
पेयाविलेपीखलकान् कुर्यात्सदधिदाडिमान् ॥

अथवा रोध्रादि गणका क्वाथ या अम्बष्ठादि गणका क्वाथ अथवा प्रियग्वादि गणका क्वाथ भी पक्व अतिसारको नष्ट कर देता है ॥ ६४ ॥

अतिसार नाशक पेयादि ।

तद्वद्दधित्थबिल्वाम्रजम्बुमध्यैःप्रकल्पयेत्६५॥

श्योनाककी छाल, मुलहठी, प्रियंगु और दाड़िमके अंकुरोंसे सिद्ध पेया या विलेपी या खल दही और दाड़िमका रस मिलाकर देवे अथवा कपित्थ, बिल्वफलका मध्य भाग, आमकी गुठली और जामनकी गुठली इनसे बनाईहुई पेया विलेपी, खल और चूर्ण अतिसार रोगको शमन करदेते हैं ॥ ६५ ॥

अजापयः प्रयोक्तव्यं निरामे तेन चेच्छमः ।
दोषाधिक्यान्न जायेत बलिनं तं विरेचयेत् ६६

निराम अतिसारमें बकरीका दूध पिलाना चाहिये. यदि इस प्रकार चिकित्सा करनेपर भी दोषोंकी अधिकताके कारण अतिसार शमन न हो तो बलवाले रोगीको विरेचन करादेना चाहिये ॥ ६६ ॥

व्यत्यासेन शकृद्रक्तमुपवेश्येत योऽपि वा ।
पलाशफलनिर्यूहं युक्तं वा पयसा पिबेत्॥६७॥
ततोऽनु कोष्णं पातव्यं क्षीरमेव यथाबलम् ।
प्रवाहिते तेन मले प्रशाम्यत्युदरामयः ॥ ६८॥

यदि अतिसारमें मलसे पहले या पीछे रक्त आता हो तो उस रोगीको पलाशके बीजोंका क्वाथ पिलावे अथवा इस क्वाथमें दूध मिलाकर पिलावे अनन्तर कोष्ण दूध पिलावे तो दूधके बलसे मल निकलकर उदरविकार शमन हो जाता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

पलाशवत्प्रयोज्या वा त्रायमाणा विशोधनी६९

पलाशके समानही त्रायमाणाका क्वाथ पीकर ऊपरसे कोष्ण दूध पीनेसे मल शुद्ध होकर अतिसार शमन होजाता है ॥ ६९ ॥

अनुवासनकी आज्ञा ।

संसर्ग्यां क्रियमाणायां शूलं यद्यनुवर्तते ।
स्रुतदोषस्य तं शीघ्रं यथावह्न्यनुवासयेत्॥७०॥

यदि क्रमसे पाचन, शोधन और पेयादि क्रमके यथार्थ करनेपर भी अधिक मल या दोष निकल जानेसे गुदा या उदरमें शूल होने लगे तो जठराग्निके बलानुसार अनुवासनवस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥७०॥

अनुवासन घृत ।

शतपुष्पावरीभ्यां च बिल्वेन मधुकेन च ।
तैलपादं पयोयुक्तं पक्वमन्वासनं घृतम् ॥७१॥

सौंफ एक पल, सतावर एक पल, बिल्वकी मज्जा एक पल, मुलहठी एक पल और दूध चार सेर तथा तेल १ पाव और घृत तीन पाव मिलाकर घृत सिद्ध करे इस घृतसे अनुवासनवस्ति करना चाहिये ॥७१॥

पिच्छावस्ति ।

अशान्तावित्यतीसारे पिच्छाबस्तिः परं हितः॥

यदि इस प्रकार चिकित्सा करनेपर भी अतिसार शमन न हो तो पिच्छावस्तिका प्रयोग करना चाहिये७२

परिवेष्टय कुशैरार्द्रैरार्द्रवृन्तानि शाल्मलेः ।
कृष्णमृत्तिकयाऽऽलिप्य स्वेदयेद्गोमयाग्निना ।
मृच्छोषे तानि संक्षुद्य तत्पिण्डं मुष्टिसंमितम् ॥
मर्दयेत्पयसः प्रस्थे पूतेनास्थापयेत्ततः ।
नतयष्ट्याह्वकल्काढ्यक्षौद्रतैलवताऽनु च ।
स्नातो भुञ्जीत पयसा जाङ्गलेन रसेन वा ॥७४॥

पित्तातिसारज्वरशोफगुल्म-
समीरणास्रग्रहणीविकारान् ।
जयत्ययं शीघ्रमतिप्रवृत्तिं
विरेचनास्थापनयोश्च बस्तिः ॥ ७५ ॥

शाल्मलीके पुष्पोंके ऊपरके वृन्त लेकर उनको गीले कुशाके पत्रोंमें लपेटकर गोलासा बना के उस पर काली चिकनी मट्टीका एक अंगुल मोटा लेप करे। फिर इस मट्टी लिपेहुए गोलेको गोबरीकी आगमें पुट-

पाक करे । जब अग्निमें मट्टी सूखजावे तो इस मट्टीके ठंढा होनेपर मट्टी उतारकर कुशाके पत्रोंको उतार कर उसमेंसे शाल्मलीके वृन्त निकालकर बारीक पीस लेवे यह पिसाहुआ कल्क एक सेर दूधमें डालकर मथ डाले फिर इसको छानकर इसमें तगर और मुलहठीका कल्क मिलावे तथा घृत, तैल और मधु मिलाकर इससे आस्थापनवस्ति करे । जब वस्तिद्रव्य निकल जावे तब स्नान करनेके अनन्तर दूध या जांगल मांसरससे पुराने शाली चावलोंका भोजन करे । इस वस्तिकर्मसे पित्तातिसार, ज्वर, सूजन, गुल्म, वातविकार, रक्तविकार, ग्रहणी और प्रवाहिका तथा दोषकी अतिप्रवृत्ति यह आस्थापन बस्ति इनको जीत लेती है ॥ ७३–७५ ॥

फाणितं कुटजोत्थं च सर्वातीसारनाशनम् ।
वत्सकादिसमायुक्तं साम्बष्ठादि समाक्षिकम् ७६

कुटजसे बनायाहुआ फाणित वत्सकादिगण और अम्बष्ठादि गणकी औषधियोंसहित मधु मिलाकर खानेसे सब प्रकारके अतिसार दूर होते है ॥ ७६ ॥

निरुङ्निरामं दीप्ताग्नेरपि सास्रं चिरोत्थितम् ।
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ७७ ॥
त्वक्पिण्डाद्दीर्घवृन्तस्य श्रीपर्णीपत्रसंवृतात् ।

यदि रक्तयुक्त पुराना अतिसार निराम और पीड़ारहित हो तथा अनेकवर्णका अतिसारका मलहो रोगीकी जठराग्नि बलवाली हो तो ऐसे अतिसारको श्योनाकके वल्कलादिके पुटपाक रस देकर जीतना चाहिये॥७७॥

मृल्लिप्तादग्निना स्विन्नाद्रसं निष्पीडितं हिमम् ।
अतीसारी पिबेद्युक्तं मधुना सितयाऽथवा ॥७८

श्योनाक वृक्षकी छालको तत्क्षण लाकर कूट पीस कर गोला बनावे इसको काश्मरीके पत्रोंमें लपेटकर ऊपरसे मट्टी लपेटकर अग्निमें पुटपाक करे । फिर इसका सर निकालकर ठंढा करके मधु या मिसरी मिलाकर अतिसार रोगी पीवे तो अतिसार निवृत्त होता है । (यदि छिलका बहुत आर्द्र न हो तो उसको तण्डुलजलमें पीसकर गोला बनाकर पुटपाक करनाचाहिये) ॥ ७८ ॥

एवं क्षीरद्रुमत्वग्भिस्तत्प्ररोहैश्च कल्पयेत्॥७९॥

इसी प्रकार वट गूलर आदि क्षीरीवृक्षोंकी छाल अथवा कोमल अकुरोंका पुटपाक करके उसका रस पीनेसे अतिसार रोग निवृत्त होजाता है ॥ ७९ ॥

कट्वङ्गत्वग्घृतयुता स्वेदिता सलिलोष्मणा ।
सक्षौद्रा हन्त्यतीसारं बलवन्तमपि द्रुतम्॥८०॥

श्योनाककी छालको पीसकर घृत मिलाकर गोला बना गर्म जलकी ऊष्मासे पाककर फिर ठंढाकर मधु मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारके बढ़ेहुए अतिसार नष्ट होजाते है ॥ ८० ॥

रक्तातिसारके लक्षण और चिकित्सा ।

पित्तातिसारी सेवेत पित्तलान्येव यः पुनः ।
रक्तातिसारं कुरुते तस्य पित्तं सतृड्ज्वरम्॥८१॥
दारुणं गुदपाकं च तत्र छागं पयो हितम् ।
पद्मोत्पलसमङ्गाभिः शृतं मोचरसेन वा॥ ८२ ॥
सारिवायष्टिरोध्रैर्वा प्रसवैर्वा वटादिजैः ।
सक्षौद्रशर्करं पाने भोजने गुदसेचने ॥ ८३ ॥

पित्तातिसारवाला रोगी यदि अत्यन्त पित्तकारक द्रव्योंका अधिक सेवन करता है तब बढाहुआ पित्त तृषा और ज्वरसहित रक्तातिसार रोगको उत्पन्न कर देता है उस दारुण अतिसारमें गुदा पक जाती है । ऐसे रोगीको बकरीका दूध पिलाना परम हितकारी होता है । यह बकरीका दूध कमल, नीलोत्पल और मंजीठसे सिद्ध करके अथवा मोचरससे सिद्ध करके या सारिवा, मुलहठी और पठानीलोधसे सिद्ध कियाहुआ पीना चाहिये । तथा वट आदि क्षीरी वृक्षोंके अंकुरोंका काथ मधु और मिसरी मिलाकर पीने और गुदापर सेचन करनेमें प्रयोग करना चाहिये ८१–८३॥

तद्वद्रसादयोऽनम्लाः साज्याः पानान्नयोर्हिताः ।
काश्मर्यफलयूषश्च किञ्चिदम्लः सशर्करः॥८४॥

इसी प्रकार श्योनाक मोचरसादिसे सिद्ध कियेहुए रस और यूष खटाईके विना ही पीनेखानेमें प्रयोग करने चाहिये । तथा काश्मरीके फलोंका यूष किंचित अनारका रस और मिसरी मिलाकर पीने खानेमे देना चाहिये ॥ ८४ ॥

पयस्यर्धोदके छागे ह्रीबेरोत्पलनागरैः ।
पेया रक्तातिसारघ्नी पृश्निपर्णीरसान्विता ।
प्राग्भक्तं नवनीतं वा लिह्यान्मधुसितायुतम् ८५

आधा जल मिलेहुए बकरीके दूधमें नेत्रवाला, कमल और सोंठ मिलाकर बनायी हुई पेया पृश्निपर्णीके क्वाथसे युक्तकर पीनेसे अतिसार रोग नाश होता है। अथवा भोजनसे पहले मक्खन, मधु और मिसरी मिलाकर चाटे तो भी अतिसार रोग दूर होजाता है ८५

बलिन्यस्रेऽस्रमेवाजं मार्गं वा घृतभर्जितम् ८६॥
क्षीरानुपानं क्षीराशी त्र्यहं क्षीरोद्भवं घृतम् ।
कपिञ्जलरसाशी वा लिहन्नारोग्यमश्नुते ॥८७॥

यदि रक्तातिसारमे अधिक रक्त निकल गया हो और निकल रहा हो तो उस रोगीको बकरेका अथवा हरिणका रक्त घृतमे भूनकर पिलाना चाहिये ऊपरसे दूधका अनुपान करावे और तीनदिनतक दूध ही पिलावे। अथवा दूधसे निकालाहुआ घृत. चटक, कपिंजल पक्षीका मांसरस पीवे तो रक्तकी अति प्रवृत्तिका विकार शमन होता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

पीत्वा शतावरीकल्कं क्षीरेण क्षीरभोजनः ।
रक्तातिसारं हन्त्याशु तया वा साधितं घृतम् ८८

शतावरीके कल्कको दूधके साथ पीवे और दूध ही आहार करे। अथवा शतावरीसे सिद्ध घृतका सेवन करे तो शीघ्र ही रक्तातिसार नष्ट होजाता है ॥८८॥

लाक्षानागरवैदेहीकटुकादार्विवल्कलैः ।
सर्पिः सेन्द्रयवैः सिद्धं पेयामण्डावचारितम् ।
अतीसारं जयेच्छीघ्रं त्रिदोषमपि दारुणम् ८९॥

लाख, सोंठ, पीपल, कुटकी, दारुहलदीकी छाल और इन्द्रयव इनसे सिद्ध किया घृत पेया और मण्डादिमें प्रयोग कियाहुआ त्रिदोषज दारुण अतिसारको भी जीतता है ॥ ८९ ॥

कृष्णमृच्छंखयष्ट्याह्वक्षौद्रासृक्तण्डुलोदकम् ।
जयत्यस्रं प्रियङ्गुश्च तण्डुलाम्बुमधुप्लुता ॥९०

काली मृत्तिका, शंखभस्म, मुलहठी और सहद इनको तण्डुलजलमें घोलकर पीनेसे अथवा प्रियंगुका कल्क मधुयुक्त तण्डुल जलमें घोलकर पीवे तो रक्तातिसार दूर होता है ॥ ९० ॥

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्करापांचभागिकः।
आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति९१

कालेतिलोंके कल्कमें पांचगुनी खांड मिलाकर बकरीके दूधसे पीवे तो शीघ्र ही रक्तातिसार दूर होता है ॥ ९१ ॥

पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्बुना ।
दाहतृष्णाप्रमोहेभ्यो रक्तस्रावाच्च मुच्यते ९२॥

जो मनुष्य सफेदचन्दनको घिसकर मधु और मिसरी मिला तण्डुलजलसे पीता है वह दाह, तृषा और मोहयुक्त रक्तातिसारसे विमुक्त हो जाता है अर्थात् उसके दाह आदि रोग दूर होजाते हैं ॥ ९२ ॥

गुदस्य दाहे पाके वा सेकलेपा हिता हिमाः९३

गुदाके दाह और पाकमें शीतल क्वाथोंसे सेचन करना और शीतल लेप करना हितकारी होता है॥९३॥

अल्पाऽल्पं बहुशो रक्तं सशूलमुपवेश्यते ।
यदा विबद्धो वायुश्च कृच्छ्राच्चरति वा न वा ।
पिच्छाबस्तिं तदा तस्य पूर्वोक्तमुपकल्पयेत्९४

यदि रोगीको बार २ शूलयुक्त थोड़ा २ रक्त आवे तथा वायुका निःसरण रुकजावे अथवा कष्टसे सरण हो तो इसी अध्यायमें पीछे कहीहुई विधिके अनुसार पिच्छावस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ ९४ ॥

अन्य पिच्छावस्तियोग ।

पल्लवान् जर्जरीकृत्य शिंशिपाकोविदारयोः ।
पचेद्यवांश्च स क्वाथो घृतक्षीरसमन्वितः॥९५॥
पिच्छास्रुतौ गुदभ्रंशे प्रवाहणरुजासु च ।
पिच्छाबस्तिःप्रयोक्तव्यः क्षतक्षीणबलावहः९६

सीसम और कांचनारके पत्रोंको कूटकर यव मिलाकर क्वाथ करे इस क्वाथको छानकर घृत और दूध मिलाकर पिच्छा स्राव (आंवका गिरना), गुदभ्रंश और प्रवाहिकाकी पीड़ामें वस्तिद्वारा प्रयोग करे ये वस्ति क्षत और क्षीण पुरुषोंको भी बल देनेवाली है ॥९५॥९६॥

अनुवासन ।

प्रपौण्डरीकसिद्धेन सर्पिषा चाऽनुवासनम्९७॥

प्रपौण्डरीकके कल्क और क्वाथसे सिद्ध घृत अनुवासनवस्तिमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ९७ ॥

रक्तं विट्सहितं पूर्वं पश्चाद्वा योऽतिसार्यते ।
शतावरीघृतं तस्य लेहार्थमुपकल्पयेत् ॥९८॥

जिसको विष्ठाके साथ अथवा विष्ठासे पहले या पीछे रक्त अधिक आता हो उसको शतावरीसे सिद्ध किया घृत चाटनेको देना चाहिये ॥ ९८ ॥

शर्कराधांशकं लीढं नवनीतं नवोद्धृतम् ।
क्षौद्रपादं जयेच्छीघ्रं तं विकारं हिताशिनः९९॥

यदि ताजा नवनीत (मक्खन), मक्खनसे आधी खांड और चौथा भाग मधु मिलाकर चाटे तो पथ्याशी पुरुषका रक्तातिसार शीघ्र दूर हो जाता है ॥ ९९ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशृङ्गानापोथ्य वासयेत् ।
अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनाम्भसा पचेत्॥१००
तदर्धशर्करायुक्तं लेहयेत्क्षौद्रपादिकम् ।
अधो वा यदि वाप्यूर्ध्वं यस्य रक्तं प्रवर्तते१०१

वट, अश्वत्थ और गूलरके शुंग लेकर कूटकर गर्मजलमें डालदेवे एक दिन रात्रि इस जलमें रखकर इस जलसे घृत सिद्ध करे इस घृतसे आधी खांड और चौथाई मधु मिलाकर चाटनेसे अधोगामी और ऊर्ध्व गामी रक्तकी प्रवृत्ति दूर होजाती है॥१००॥१०१॥

कफातिसारकी चिकित्सा ।

श्लेष्मातिसारे वातोक्तं विशेषादामपाचनम् ।
कर्तव्यमनुबन्धेऽस्य पिबेत्पक्त्वाऽग्निदीपनम् ॥
बिल्वकर्कटिकामुस्तप्राणदाविश्वभेषजम् ।
वचाविडङ्गभूतीकधानकामरदारु वा ॥
अथवा पिप्पलीमूलपिप्पलीद्वयचित्रकाः १०३

कफके अतिसार रोगमें वातातिसारमें कहीहुई आमको पाचन करनेवाली विधिका प्रयोग करना चाहिये । यदि यथार्थ पाचनादि क्रमके सेवनसे कफातिसार शमन न हो तो उसमें बिल्वका बालफल, नागरमोथा, हरीतकी और सोंठ इनका क्वाथ पीवे । अथवा वच, वायविड़ंग, भूतिकतृण, धनियां और देवदारु अथवा पीपलामूल, पीपल, गजपीपल और चित्रकका क्वाथ पीना चाहिये ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

पाठाग्निवत्सकग्रन्थितिक्ताशुण्ठीवचाभयाः ।
क्वथिता यदि वा पिष्टाः श्लेष्मातीसारभेषजम् ॥

पाठा चित्रक, इन्द्रजव, पीपलामूल, कटुकी, सोंठ वच और हरड इनका क्वाथ या कल्क कफातिसारका परमौषध है ॥ १०४ ॥

सौवर्चलवचाव्योषहिङ्गुप्रतिविषाभयाः ।
पिबेच्छ्लेष्मातिसारार्तश्चूर्णिताः कोष्णवारिणा ॥

संचरलवण, बच, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, अतीस और हरड़ इनका चूर्ण गर्मजलसे पीवे तो कफातिसार शमन होता है ॥ १०५ ॥

मध्यं लीढ्वा कपित्थस्य सव्योषक्षौद्रशर्करम् ।
कट्फलं मधुयुक्तं वा मुच्यते जठरामयात्॥६॥

कपित्थ फलका मध्यभाग त्रिकटु मधु और खांड मिलाकर खावे अथवा कायफलका चूर्ण मधु मिलाकर खावे तो कफातिसार शमन हो जाता है ॥ १०६ ॥

कणां मधुयुतां लीढ्वा तक्रं पीत्वा सचित्रकम् ।
भुक्त्वा वा बालबिल्वानि व्यपोहत्युदरामयम् ॥

पीपलका चूर्ण मधुमें चाटकर ऊपरसे चित्रकके चूर्णयुक्त तक्र पीवे । अथवा बिल्वके बालफल खावे तो अतिसार रोग दूर होता है ॥ १०७ ॥

पाठामोचरसाम्भोदधातकीबिल्वनागरम् ।
सुकृच्छ्रमप्यतीसारं गुडतक्रेण नाशयेत् ॥ ८ ॥

पाठा, मोचरस, नागरमोथा, धावेके फूल, बिल्व और सोंठ इनका कल्क या चूर्ण गुड़युक्त तक्रसे पीवे तो कृच्छ्रसाध्य अतीसार भी शमन होजाता है १०८॥

कपित्थाष्टक चूर्ण ।

यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः ॥ ९ ॥
मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः ।
वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमदीप्यकैः१०
त्रिगुणैः षड्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ।
चूर्णोऽतिसारग्रहणीक्षयगुल्मोदरामयान् ।
कासश्वासाग्निसादार्शः पीनसारोचकाञ्जयेत्११

अजवायन, पीपलामूल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, सोंठ, मरिच, चित्रक, नेत्रवाला, जीरा, धनियां और सौवर्चल लवण ये सब मिलाकर

एक भाग अम्लवेत, धावेके फूल, पीपल, बिल्व, दाड़िम और अजमोद ये सब मिलाकर तीन भाग, मिसरी छः भाग, कपित्थफलका मध्यभाग आठ भाग इन सबको मिलाकर चूर्ण करे। इस चूर्णके सेवनसे अतिसार, ग्रहणी, क्षय, गुल्म, उदररोग, कास, श्वास, अग्निमांद्य, अर्श, पीनस और अरोचक ये सब रोग दूर होते है ॥ १०९--१११ ॥

दाड़िमाष्टक।

कर्षोन्मिता तवक्षीरी चातुर्जातं द्विकार्षिकम्॥११२॥
यवानीधान्यकाजाजीग्रन्थिव्योषं पलांशकम्।
पलानि दाडिमादष्टौ सितायाश्चैकतःकृतः॥११३॥
गुणैः कपित्थाष्टकवच्चूर्णोऽयं दाडिमाष्टकः।
भोज्यो वातातिसारोक्तैर्यथावस्थं खलादिभिः॥

वंसलोचन एक कर्ष, चातुर्जात एक कर्ष, अजवायन दो कर्ष, धनियां दो कर्ष, जीरा दो कर्ष, पीपलामूल चार कर्ष, त्रिकटु चार कर्ष, अनारदाना आठ पल और मिसरी सबके समानभाग इन सबका चूर्ण बनाले। यह दाड़िमाष्टक चूर्ण कपित्थाष्टक चूर्णके समान ही गुणकारी है इसको वातातिसारमें कहेहुए खल आदिके साथ सेवन करना चाहिये ॥ ११२-११४ ॥

सविडङ्गः समरिचः सकपित्थः सनागरः।
चाङ्गेरीतक्रकोलाम्लःखलःश्लेष्मातिसारजित्॥

वायबिडंग, मरिच, कपित्थ, सोंठ, चांगेरी, तक्र और बेरकी खटाई इन सबको मिलाकर बनायाहुआ खल कफातिसारको नष्ट करता है ॥ ११५ ॥

क्षीणे श्लेष्मणि पूर्वोक्तमम्लं लाक्षादिषट्पलम्।
पुराणं वा घृतं दद्याद्यवागूं मण्डमिश्रिताम् ॥११६॥

यदि अतिसारमें कफ क्षीण होजाय तो इसी अध्यायके ४८ श्लोकमें कहाहुआ अम्लघृत इसी अध्यायके ८९ श्लोकमें कहाहुआ लाक्षादियोग और यक्ष्मारोगमें कहा हुआ षट्पलघृत अथवा पुराणाघृत यवागू या मण्डमें मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ११६॥

वातश्लेष्मविबन्धे च स्रवत्यतिकफेऽपि वा।
शूले प्रवाहिकायां वा पिच्छाबस्तिः प्रशस्यते।
वचाबिल्वकणाकुष्ठशताह्वालवणान्वितः॥११७॥

यदि वात और कफका विबन्ध हो या मलद्वारसे अधिक कफका स्राव होता हो अथवा शूलके साथ प्रवाहिका होती हो तो शिंशिपा और कचनारके पत्रोंको कूटकर उनमें यव मिलाकर काथ करे इस काथमें घृत और दूध मिलावे तथा वच, बिल्व, पीपल, कूठ, सौंफ और लवण मिलाकर पिच्छाबस्तिका प्रयोग करे ॥ ११७ ॥

बिल्वतैलेन तैलेन वचाद्यैः साधितेन वा।
बहुशःकफवातार्ते कोष्णेनान्वासनं हितम्॥११८॥

बिल्वके बीजोंका तेल अथवा वच, बिल्व, पीपल, कूठ, सौंफ और लवणसे सिद्ध कियाहुआ तिलतैल कोष्ण २ लेकर अनुवासन वस्ति देनेसे कफवातकी पीड़ा शमन होजाती है ॥ ११८ ॥

क्षीणे कफे गुदे दीर्घकालातीसारदुर्बले॥ ११९ ॥
अनिलः प्रबलोऽवश्यं स्वस्थानस्थः प्रजायते।
स बली सहसा हन्यात्तस्मात्तं त्वरया जयेत्॥१२०॥
वायोरनन्तरं पित्तं पित्तस्याऽनन्तरं कफम्।
जयेत्पूर्वं त्रयाणां वा भवेद्यो बलवत्तमः॥१२१॥

अतिसार रोगमे जब दीर्घ कालतक अतिसार रहनेसे कफ क्षीण होजाती है और गुदा दुर्बल होजाती है तब मलाशयमें वायु अति प्रबल होजाता है। वह बलवान् वायु शीघ्र ही शरीरका नाश कर देता है। इस कारण प्रथम शीघ्र ही वायुको जीतना चाहिये। अतिसार रोगमें प्रथम वायुको जीतना चाहिये वायुके अनन्तर पित्तको जीतना चाहिये सबसे पीछे कफको जीतना चाहिये। अथवा इन तीनोंमें जो सबसे बली हो उसको जीतना चाहिये ॥ ११९--१२१ ॥

भय और शोकातिसारकी चिकित्सा।

भीशोकाभ्यामपि चलः शीघ्रं कुप्यत्यतस्तयोः।
कार्या क्रिया वातहरा हर्षणाश्वासनानि च॥१२२॥

रोगीके शरीरमें भय और शोकसे भी वायुका प्रकोप होता है इस कारण भयजनित अतिसार और शोकजनित अतिसारवालेकी सब क्रिया वात नाशक करनी चाहिये तथा प्रसन्न करने और आश्वासन देनेवाली बातें करनी चाहिये ॥ १२२ ॥

अतिसार निवृत्तिके लक्षण।

यस्योच्चाराद्विना मूत्रं पवनो वा प्रवर्तते ।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य शान्तस्तस्योदरामयः ॥१२३

जिसको मलसे विना यथार्थ मूत्र आनेलगे और अपानवायु यदार्थ सरण हो, अग्नि दीप्त हो और कोष्ठ हलका हो उसके उदरका विकार शमन होगया जानना चाहिये ॥ १२३ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत-अष्टांगहृदयसहितायां चिकित्सास्थाने आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषायां अतिसार चिकित्सानामक नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथाऽतोग्रहणीदोषचिकित्सितंव्याख्यास्यामः

अब हम ग्रहणीदोषकी चिकित्सा कथन करते है ।

आमदोषका पाचन ।

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् ।
अतीसारोक्तविधिना तस्यामं च विपाचयेत् ।१

ग्रहणीके आश्रित दोषको अजीर्णरोगके समान पाचन करे तथा अतिसार रोगमें कही विधिके अनुसार आमको पाचन करना चाहिये ॥ १ ॥

पेयादिप्रयोग।

अन्नकाले यवाग्वादि पञ्चकोलादिभिर्युतम् ।
वितरेत्पटुलघ्वन्नं पुनर्योगांश्च दीपनान् ॥ २ ॥

ग्रहणीरोगवालेको अन्नके समय पचकोल आदि दीपन द्रव्योंसे सिद्धकीहुई यवागू पेया आदि लवण मिलाकर देनाचाहिये तदनन्तर अन्य दीपन योग प्रयोग करने चाहिये ॥ २ ॥

दद्यात्सातिविषां पेयामामे साम्लां सनागराम्।
पानेऽतीसारविहितं वारि तक्रं सुरादि च ॥३॥

यदि ग्रहणीमें आम दोष हो तो अतीस और सोंठसे सिद्धकीहुई पेया दाड़िमसे अम्ल करके देवे । तथा अति सार रोगमें कहेहुए जल, तक्र और सुरा आदि पीनेको देना चाहिये ॥ ३ ॥

तक्रप्रयोग ।

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनग्राहिलाघवात् ।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रदूषणम् ॥ ४ ॥
कषायोष्णविकाशित्वाद्रूक्षत्वाच्च कफे हितम् ।
वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहि तत्५

ग्रहणी रोगवालोंको दीपन, ग्राही और लघुपाकी होनेसे तक्रका पिलाना सर्वोत्तम औषध है । तक्र मधुरपाकी होनेसे पित्तको दूषित नहीं करता । कषाय, उष्ण, विकाशी और रूक्ष होनेसे कफको भी शमन करता है । स्वादु और अम्ल होनेसे वातको शमन करता है । तथा ताजा होनेसे विदाही भी नहीं होता। इस कारण तक्र ग्रहणीरोगमें परम हितकारी है (ग्रहणीमें तक्र घृत रहित छाछ लेना चाहिये) ॥४॥५॥

खटमीठाचूर्ण ।

चतुर्णां प्रस्थमम्लानां त्र्यूषणाच्च पलत्रयम् ।
लवणानां च चत्वारि शर्करायाः पलाष्टकम्॥६
तच्चूर्णं शाकसूपान्नरागादिष्ववचारयेत् ।
कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पार्श्वामयशूलनुत् ॥७

बेर, अनारदाना, अम्लवेत और चुक्र इन चार द्रव्योंको एक सेर लेवे । सोंठ, मिर्च, पीपल तीन पल लेवे । सैन्धवादि पांच लवण चार पल और खांड आठ पल इन सबका चूर्णकर इस चूर्णको शाक, सूप, अन्न और राग आदिमें मिलाकर सेवन करनेसे कास, अजीर्ण, अरुचि, श्वास हृच्छूल और पार्श्वशूल ये सब रोग दूर होते है ॥ ६ ॥ ७ ॥

नागरातिविषामुस्तं पाक्यमामहरं पिबेत् ।
उष्णाम्बुना वा तत्कल्कं नागरं वाऽथवाऽभयाम्
ससैन्धवं वचादिं वा तद्वन्मदिरयाऽथवा ॥८ ॥

सोंठ, अतीस और नागरमोथेका क्वाथ पीनेसे अथवा इनका कल्क गर्मजलसे पीनेसे आमविकार शमन होता है । अथवा सोंठ या हरीतकीका चूर्ण गर्मजलसे पीवे । अथवा वचादि गणका चूर्ण सेन्धा-लवण मिलाकर गर्मजलसे अथवा मदिरासे पीवे तो आमदोष शमन होजाता है ॥ ८ ॥

वर्चस्यामे सप्रवाहे पिबेद्वा दाडिमाम्बुना ॥ ९ ॥
बिडेन लवणं पिष्टं बिल्वचित्रकनागरम् ।
सामे कफानिले कोष्ठरुक्करे कोष्णवारिणा ॥ १०

यदि कच्चा मल प्रवाहिकाके साथ आता हो तो बिडलवण दाड़िमके रसके साथ पीना चाहिये। यदि कफ और वायु आमयुक्त हो और कोष्ठमें पीड़ा करते हों तो बिल्व, चित्रक और सोंठका चूर्ण कोष्ण जलके साथ पीना चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥

कालिङ्गहिंग्वतिविषावचासौवर्चलाभयम् ।
छर्दिहृद्रोगशूलेषु पेयमुष्णेन वारिणा ॥
पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णं मरिचसंयुतम् ॥ ११

इन्द्रजौ, हींग, अतीस, वच, सौवर्चल लवण और हरड़का चूर्ण गर्मजलसे पीवे। अथवा हरड़, सौवर्चललवण, जीरा और काली मिर्चका चूर्ण गर्म जलसे पीवे तो छर्दि, हृद्रोग और शूल दूर होते है ११

पिप्पलीं नागरं पाठां सारिवां बृहतीद्वयम् ।
चित्रकं कौटजं क्षारं तथा लवणपञ्चकम् ॥ १२ ॥
चूर्णीकृतं दधिसुरातन्मण्डोष्णाम्बुकाञ्जिकैः ।
पिबेदग्निविवृद्ध्यर्थं कोष्ठवातहरं परम् ॥ १३ ॥

पीपल, सोंठ, पाठा, सारिवा, दोनों कटेली, चित्रक, इन्द्रजौ, जवखार और पांचों लवण इन सबका चूर्ण कर दही, सुरामण्ड गर्मजल या कांजीके साथ पीवे तो जठराग्निकी वृद्धि होती है और यह कोष्ठकी वायुको हरनेमें परमोत्तम औषध है ॥ १२ ॥ १३ ॥

लवणपंचकादिवटी।

पटूनि पञ्च द्वौ क्षारौ मरिचं पञ्चकोलकम् ॥ १४
दीप्यकं हिङ्गुगुलिका बीजपूररसे कृता ।
कोलदाडिमतोये वा परं पाचनदीपनी ॥ १५ ॥

पांचों लवण, सोंठ, पाठा, शारिवा, जवखार, सज्जीखार मिर्चे पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, अजवायन, और हींग इन सबका चूर्ण कर बिजौरे नीम्बूके रससे गोली बनावे अथवा बेरके रस या दाड़िमके रसमें गोली बनावे यह गोली अग्निको दीपन करनेवाली और परम पाचनी है ॥ १४ ॥ १५ ॥

तालीसादि वटक।

तालीसपत्रचविकामरिचानां पलं पलम् ।
कृष्णा तन्मूलयोर्द्वे द्वे पले शुण्ठी पलत्रयम् १६
चतुर्जातमुशीरं च कर्षांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
गुडेन वटकान्कृत्वा त्रिगुणेन सदा भजेत् १७॥
मद्ययूषरसारिष्टमस्तुपेयापयोनुपः ।
वातश्लेष्मात्मनां छर्दिग्रहणीपार्श्वहृद्रुजाम १८॥
ज्वरश्वयथुपाण्डुत्वगुल्मपानात्ययार्शसाम् ।
प्रसेकपीनसश्वासकासानां च निवृत्तये ॥ १९॥
अभयां नागरस्थाने दद्यात्त्रैव विड्ग्रहे ।
छर्द्यादिषु च पैत्तेषु चतुर्गुणसितान्विताः॥ २०॥
पक्केन वटकाः कार्या गुडेन सितयापि वा ।
परं हि वह्निसंपर्काल्लघिमानं भजन्ति ते ॥ २१ ॥

तालीसपत्र एक पल, चव्य एक पल, मरिच एक पल, पीपल दो पल, पीपलामूल दो पल, सोंठ तीन पल, दालचीनी एक कर्ष, इलायची एक कर्ष, तेजपत्र एक कर्ष, नागकेशर एक कर्ष और खस एक कर्ष इन सबको बारीक पीसकर चूर्ण करे इस चूर्णमे तीन गुणे गुड़मे बटिका बनाले इस बटिकाको मद्य, यूष, रस, अरिष्ट मस्तु, पेया या दूधके साथ लेवे तो वातकफजनित छर्दि, ग्रहणी पार्श्व शूल, हृच्छूल, ज्वर, सूजन, पाण्डु, गुल्म, मदात्यय, अर्श लालास्राव, पीनस, श्वास और कास ये सब निवृत्त होते है यदि इसी योगको विड्ग्रह (कब्जी) मे देना हो तो सोंठके स्थानमे हरीतकी डालना चाहिये। यदि पित्तकी छर्दि आदिमे इसका प्रयोग करना हो तो गुड़के स्थानमे चार गुणी मिसरी डालना चाहिये। जब इस चूर्णको मिसरी या गुड़मे मिलाकर बटिका बनाना हो तो मिसरी गुड़की अग्निपर चासनी बनाकर उसमे गोली बनाना चाहिये क्योंकि अग्निके सयोगसे इनमे लघुत्व आजाता है ॥ १६--२१ ॥

परिपक्क वातज ग्रहणीकी चिकित्सा।

अथैनं परिपक्वाममारुतग्रहणीगदम् ।
दीपनीययुतं सर्पिः पाययेदल्पशो भिषक् २२॥
किञ्चित्सन्धुक्षिते त्वग्नौ सक्तविण्मूत्रमारुतम् ।

द्व्यहं त्र्यहं वा संस्नेह्य स्विन्नाभ्यक्तं निरूहयेत् २३
तत एरण्डतैलेन सर्पिषा तैल्वकेन वा।
सक्षारेणाऽनिले शान्ते स्रस्तदोषं विरेचयेत् २४

जब ग्रहणीका आमदोष परिपक्क होचुका हो तब वातज ग्रहणीवालेको दीपनीय (पंचकोलादि) द्रव्योंसे युक्त थोड़ा २ घृत सेवन करावे । जब कुछ जठराग्नि बल पकड़जाय और विष्ठा, मूत्र तथा पवन यथार्थ न आवे तब तीसरे तीसरे दिन स्नेहन स्वेदन और अभ्यंग करके निरूहण वस्ति देवे इसके अनन्तर जब दोष शमन होजाय और वायु शांत होजावे तब यव-क्षार युक्त एरण्ड तैलसे अथवा तैल्वक घृतसे विरेचन करावे ॥ २२-२४ ॥

शुद्धरूक्षाशयं बद्धवर्चस्कं चाऽनुवासयेत् ।
दीपनीयाम्लवातघ्नसिद्धतैलेन तं ततः ॥२५॥
निरूढं च विरिक्तं च सम्यक्चाऽप्यनुवासितम् ।
लघ्वन्नप्रतिसंयुक्तं सर्पिरभ्यासयेत्पुनः ॥ २६ ॥

जब शुद्ध और रूक्ष आशय होजावे और मल बन्धकर आने लगे तब दीपन अम्ल और वातघ्न द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तेलसे अनुवासन वस्ति देना चाहिये । इस प्रकार १-दोषपाचन, २-निरूहण, ३-विरेचन और ४-अनुवासन ये सब क्रमसे यथार्थ हो जानेपर पेया आदि हलके भोजनका सेवन करावे तदनन्तर दीपन घृतका अभ्यास बढ़ाते रहना चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥

पंचमूलादि घृत ।

पञ्चमूलाभयाव्योषपिप्पलीमूलसैन्धवैः ।
रास्नाक्षारद्वयाजाजीविडङ्गशठिभिर्घृतम् ॥२७॥
शुक्तेन मातुलुङ्गस्य स्वरसेनार्द्रकस्य वा।
शुष्कमूलककोलाम्लचुक्रिकादाडिमस्य च २८।
तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुषोदकैः ।
काञ्जिकेन च तत्पक्वमग्निदीप्तिकरं परम् ।
शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम् ॥२९॥

बृहत्पंच मूल, हरीतकी, त्रिकटु, पीपलामूल, सेंधा-लवण, रास्ना, जवाखार, सज्जीखार, जीरा, वायविडंग और कचूर इनके कल्क तथा शुक्त (खट्टासिर्का) बिजौरे नींबूका रस अथवा अदरकका रस तथा सूखी मूली, बेरोंकी खटाई, चुक्रिका, दाड़िमका रस, तक्र, मस्तु, सुरामण्ड, सौवीर, तुषोदक और काञ्जी इनसे सिद्ध कियाहुआ घृत अग्निको परम दीप्त करता है. तथा शूल, गुल्म, उदररोग, श्वास, खांसी और वात-कफके विकारोंको नाश करता है ॥ २७-२९ ॥

सबीजपूरकरसे सिद्धं वा पाययेद्घृतम् ॥ ३० ॥

अथवा बिजौरे नींबूके रसमें सिद्ध कियाहुआ घृत पीनेसे भी जठराग्नि दीप्त होती है ॥ ३० ॥

तैलमभ्यञ्जनार्थं च सिद्धमेभिश्चलापहम् ॥३१॥

पञ्चममूलादि घृतमें कहीहुई औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ तैल मालिस आदिमें प्रयोग करनेसे वायुके विकारोंको जीतता है ॥ ३१ ॥

एतेषामौषधानां वा पिबेच्चूर्णं सुखाम्बुना ।
वातश्लेष्मावृते सामे कफे वा वायुनोद्धते॥३२॥

पंचमूलादि घृतमें जो कल्ककी औषधियें कही है उनका चूर्णकर कोष्ण जलसे पीवे तो कफावृत साम-वात अथवा वायुसे उद्धत कफ ये सब शमन होते है ॥ ३२ ॥

पित्तज ग्रहणीकी चिकित्सा ।

अग्नेर्निर्वापकं पित्तं रेकेण वमनेन वा ।
हत्वा तिक्तलघुग्राहिदीपनैरविदाहिभिः ।
अम्लैः सन्धुक्षयेदग्निं चूर्णैःस्नेहैश्च तिक्तकैः ३३

यदि पित्त बढ़कर जठराग्निको नष्ट करे तो प्रथम वमन और विरेचन कराकर दुष्ट पित्तको शमन करे तदनन्तर तिक्त, हलके,ग्राही, दीपन, अविदाही और अम्ल द्रव्योंके चूर्ण खिलाकर अथवा तिक्तादि द्रव्योंसे सिद्ध घृत पिलाकर जठराग्निको चैतन्य करना चाहिये ॥ ३३ ॥

पटोलादि चूर्ण ।

पटोलनिम्बत्रायन्तीतिक्तातिक्तकपर्पटम् ।
कुटजत्वक्फलं मूर्वामधुशिग्रुफलं वचा ॥ ३४ ॥
दार्वीत्वक्पद्मकोशीरयवानीमुस्तचन्दनम् ।
सौराष्ट्र्यातिविषाव्योषत्वगेलापत्रदारु च॥३५॥

चूर्णितं मधुना लेह्यं पेयं मद्यैर्जलेन वा।
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगगुल्मशूलारुचिज्वरान्।
कामलां संनिपातं च मुखरोगांश्च नाशयेत् ३६॥

पटोलपत्र, नीमकेपत्र, त्रायमाण, कुटकी, चिरायता, पित्तपापड़ा, कुड़ाकी छाल, इन्द्रयव, मूर्वा, मीठे सुहांजनेके फल, वच, दारुहलदीकी छाल, पद्मकाष्ठ, खश, अजवायन, नागरमोथे, चन्दन, सौराष्ट्री, अतीस, सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र और देवदारु इन सबका चूर्ण कर मधुसे चाटे या मद्य अथवा जलसे लेवे तो हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणी, गुल्म, शूल, अरुचि, ज्वर, कामला, सन्निपात और मुखरोग ये सब रोग नाश होजाते है ॥ ३४–३६ ॥

भूनिम्बादिचूर्ण।

भूनिम्बकटुकामुस्ताऽयूषणेन्द्रयवान् समान्।
द्वौ चित्रकाद्वत्सकत्वग्भागान् षोडश चूर्णयेत्॥
गुडशीताम्बुना पीतं ग्रहणीदोषगुल्मनुत्।
कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारजित् ॥३८

चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, सोंठ, मिर्च, पीपल, और इन्द्रजव ये सब एक एक भाग, चित्रककी जड़ दो भाग और कुड़ाकी छाल सोलह भाग इन सबको कूटकर बारीक चूर्ण बनावे इस चूर्णको गुड़ मिले शीतल जलके साथ पीवे तो ग्रहणीदोष, गुल्म, कामला, ज्वर, पाण्डुरोग, प्रमेह, अरुचि और अतिसार ये सबरोग शमन होते है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

नागरादि चूर्ण।

नागरातिविषामुस्तापाठाबिल्वं रसाञ्जनम्।
कुटजत्वक्फलं तिक्ता धातकी च कृतं रजः३९।
क्षौद्रतण्डुलवारिभ्यां पैत्तिके ग्रहणीगदे।
प्रवाहिकार्शोगुदरुग्रक्तोत्थानेषु चेष्यते ॥४०॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, पाठा, बिल्व, रसोंत, कुड़ाकी छाल, कुटकी और धावेके फूल इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णको मधुयुक्त तण्डुल जलसे पीवे तो पित्तकी प्रहणी, प्रवाहिका, अर्श, गुदाका शूल और रक्तार्श ये सब विकार शमन होते हे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

चन्दनं पद्मकोशीरं पाठां मूर्वां कुटन्नटम्॥४१॥
षड्ग्रन्थासारिवाऽऽस्फोतासप्तपर्णाटरूषकान्।
पटोलोदुम्बराश्वत्थवटप्लक्षकपीतनम् ॥ ४२ ॥
कटुकां रोहिणीं मुस्तां निम्बं च द्विपलांशकान्
द्रोणेऽपां साधयेत्तेन पचेत्सर्पिःपिचून्मितैः ४३
किराततिक्तेन्द्रयववीरामागधिकोत्पलैः।
पित्तग्रहण्यां तत्पेयं कुष्ठोक्तं तिक्तकं च यत्४४

चन्दन, पद्मकाष्ठ, खस, पाठा, मूर्वा, सोनापाठा, वच, शारिवा, कृष्णसारिवा, सप्तपर्ण, अडूसा पटोलपत्र, गूलरकी कोंपल, अश्वत्थके शुंग, वटके शुंग, पिलखनके शुंग, बिल्व, हरीतकी, कुटकी, नागरमोथा और नीम ये प्रत्येक दो दो पल लेना चाहिये इन सबको कूट कर एक द्रोण जलमें पकावे चौथा भाग जल शेष रहने पर छान कर इसमें एक सेर घृत और चिरायता दो तोले, इन्द्रजव दो तोले, शतावरी दो तोले, पीपल दो तोले और कमल दो तोले इनका कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे यह घृत पीनेसे पित्तकी ग्रहणीको दूर करता है। तथा कुष्ठरोग चिकित्सामें कहाहुआ तिक्तक घृत भी पित्तके ग्रहणी रोगको दूर करता है ॥ ४१--४४ ॥

कफके ग्रहणी रोगकी चिकित्सा।

ग्रहण्यां श्लेष्मदुष्टायां तीक्ष्णैः प्रच्छर्दने कृते।
कट्वम्ललवणक्षारैः क्रमादग्निं विवर्धयेत् ॥४५॥

कफके ग्रहणी रोगमें प्रथम तीक्ष्ण द्रव्यों द्वारा वमन कराकर फिर कटु, अम्ल, लवण और क्षार द्रव्योंसे क्रमपूर्वक जठराग्निको बढाना चाहिये ॥४५॥

पञ्चकोलाभयाधान्यपाठागन्धपलाशकैः।
बीजपूरप्रवालैश्च सिद्धैः पेयादि कल्पयेत्॥४६॥

तथा पंचकोल, हरीतकी, धनियां, पाठा और कचूरसे सिद्ध पेयादि बिजौरेका रस मिलाकर सेवन करना चाहिये ॥ ४६ ॥

मधूकाद्यासव।

द्रोणं मधूकपुष्पाणां विडङ्गं च ततोऽर्धतः।
चित्रकस्य ततोऽर्धं च तथा भल्लातकाढकम् ४७
मञ्जिष्ठाऽष्टपलं चैतज्जलद्रोणत्रये पचेत्।

द्रोणशेषं शृतं शीतं मध्वर्धाढकसंयुतम् ॥४८॥
एलामृणालागुरुभिश्चन्दनेन च रूषिते ।
कुम्भे मासं स्थितं जातमासवं तं प्रयोजयेत्४९
ग्रहणीं दीपयत्येष बृंहणः पित्तरक्तनुत् ।
शोषकुष्ठकिलासानां प्रमेहाणां च नाशनः५०॥

महुवेके फूल एक द्रोण, वायबिडंग दो आढक, चित्रककी जड़ एक आढ़क, मिलावे एक आढ़क और मंजीठ आठ पल इन सबको तीन द्रोण जलमें पकावे जब एक द्रोण जल शेष रहे तो उतार कर शीतल करे फिर इसमें दो प्रस्थ मधु डाल देवे तथा इलायची, खस, अगर और चन्दन ये एक एक पल मिलाकर एक महीना मुखबन्द करके रख छोड़े जब आसव बन जाय तो छान कर बोतलोंमें भरकर रखले । इसके पीनेसे ग्रहणीवाला बलवान् होजाता है, अग्नि दीप्त होती है, शरीर बलवान् होता है तथा पित्तरक्त, शोष, कुष्ठ, किलासकुष्ठ और प्रमेह ये सब नष्ट होजाते हैं ॥ ४७-५० ॥

अन्यआसव ।

मधूकपुष्पकुडवं शृतमर्धक्षयीकृतम् ।
क्षौद्रपादयुतं शीतं पूर्ववत्संनिधापयेत् ॥
तत्पिबन् ग्रहणीदोषान् जयेत्सर्वान् हिताशनः॥

एक कुडव महुवेके फूल लेकर चारगुणे जलमें पकावे आधा जल शेष रहने पर शीतल करके दो पल मधु मिलाकर इलायची, खस, अगर और चन्दन इन सबका एक तोला चूर्ण पात्रमें मलकर उसमे डाले और एक मास रक्खे. इसको पीकर हित आहारका सेवन करे तो ग्रहणी रोग शमन होजाता है ॥ ५१ ॥

तद्वद्द्राक्षेक्षुखर्जूरस्वरसानासुतान् पिबेत्॥५२॥

इसी प्रकार द्राक्षारस, इक्षुरस अथवा खजूरके रससे बनायाहुआ आसव भी ग्रहणीरोगको शमन करता है ॥ ५२ ॥

हिंग्वादिक्षार ।

हिङ्गुतिक्तावचामाद्रीपाठेन्द्रयवगोक्षुरम् ।
पञ्चकोलं च कर्षांशं पलांशं पटुपञ्चकम्॥५३॥
घृततैलद्विकुडवे दध्नः प्रस्थद्वये च तत् ।
आपोथ्य क्राथयेदग्नौ मृदावनुगते रसे ॥ ५४ ॥
अन्तर्धूमं ततो दग्ध्वा चूर्णीकृत्य घृताप्लुतम् ।
पिबेत्पाणितलं तस्मिन् जीर्णे स्यान्मधुराशनः॥
वातश्लेष्मामयान् सर्वान् हन्याद्विषगरांश्च सः५५

हींग, कुटकी, वच, अतीस, पाठा, इन्द्रजव, गोखरू, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ ये प्रत्येक एक एक कर्ष, पांचों लवण मिलाकर पांच पल, घृत एक कुडव, तैल एक कुडव, दही दो प्रस्थ लेवे । प्रथम सब औषधोंको कूटकर घृत तैल और दहीमें मिलाले फिर इनको एक पात्रमें डाल अग्निपर पकावे । जब दहीका रस जल जावे फिर इस पात्रका मुख बन्द कर इसको अन्तर्धूम दग्ध करे फिर स्वांगशीतल होनेपर निकाल कर चूर्ण करे । इस चूर्णको घृतमें मिलाकर एक कर्ष प्रमाण नित्य सेवन करे । क्षुधा लगने पर मधुर भोजन करे तो इसके सेवनसे सब प्रकारके वात कफजनित रोग शमन होते हैं तथा यह चूर्ण विष और गर विकारको भी शमन करता है ॥५३-५५॥

अन्यक्षार ।

भूनिम्बं रोहिणीं तिक्तां पटोलं निम्बपर्पटम् ।
दग्ध्वा महिषमूत्रेण पिबेदग्निविवर्धनम् ॥ ५६॥

चिरायता, हरीतकी, कुटकी, पटोलपत्र, निंबपत्र और पित्तपापड़ा, इन सबको अन्तर्धूम दग्ध करके माहिषमूत्रसे पीवे तो अग्निकी वृद्धि हो और ग्रहणीविकार नाश होता है ॥ ५६ ॥

द्वे हरिद्रे वचा कुष्ठं चित्रकः कटुरोहिणी ।
मुस्ता च छागमूत्रेण सिद्धः क्षारोऽग्निवर्धनः५७

हलदी, दारुहलदी, बच, कूठ, चित्रक, नागर मोथा और कुटकी इनको बकरेके मूत्रमें मिलाकर दग्धकर क्षार बनावे यह क्षार खानेसे जठराग्निको तीक्ष्ण कर देता है ॥ ५७ ॥

क्षारवटिका ।

चतुःपलं सुधाकाण्डात्त्रिपलं लवणत्रयात् ॥५८
वार्ताककुडवं चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले ।
दग्ध्वा रसेन वार्ताकाद्गुटिका भोजनोत्तराः ५९

भुक्तमन्नं पचन्त्याशु कासश्वासार्शसां हिताः।
विसूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगशमनाश्च ताः॥ ६०

थोहरके काण्ड चार पल, तीनों लवण तीन पल, बड़ीकटेलीके फल एक कुडव, आकका पञ्चाङ्ग आठ पल और चित्रक दो पल इन सबको कूट कर एक पात्रमें डालकर अन्तर्धूम दग्ध करे। फिर इस क्षारको कटेलीके रसमें रगड़ कर गोलियें बनाले। यह एक गोली भोजनोत्तर खावे तो खायाहुआ अन्न शीघ्र जीर्ण हो जाता है तथा इसके सेवनसे खांसी, श्वास, विसूचिका, प्रतिश्याय, और हृद्रोग शमन होजाता है॥ ५८-६०॥

मातुलुंगादिचूर्ण।

मातुलुङ्गशठी रास्ना कटुत्रयहरीतकी।
स्वर्जिकायावशूकाख्यौ क्षारौ पञ्चपटूनि च॥
सुखाम्बुपीतं तच्चूर्णं बलवर्णाग्निवर्धनम्॥६१॥

बिजौरे नींबूकी केशर, कचूर, रास्ना, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, सज्जीखार, जवाखार और पांचों लवण इन सबका चूर्णकर सुखोष्ण जलसे पीवे तो बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होती है॥ ६१॥

सवातकफग्रहणीरोगपर घृत।

श्लैष्मिके ग्रहणीदोषे सवाते तैर्घृतं पचेत्।
धान्वन्तरं षट्पलं च भल्लातकघृताभयम्॥६२॥

वातयुक्त कफके ग्रहणीरोगमें इन ही बिजौरे नींबू-आदि चूर्णकी औषधियोंसे घृत सिद्ध करके वह घृत पिलाना चाहिये। अथवा प्रमेह चिकित्सामें कहाहुआ धान्वन्तर घृत या राजयक्ष्मा चिकित्सामें कहाहुआ षट्पल घृत अथवा गुल्मरोगचिकित्सामें कहाहुआ भल्लातकघृत और उदररोगचिकित्सामें कहाहुआ-"**हरीतकीसूक्ष्मरजः प्रस्थयुक्तं घृताढकम्।**" आदि घृत इनमेंसे किसी घृतके सेवनसे कफ वातका ग्रहणी-विकार शमन होजाता है॥ ६२॥

क्षारघृत।

बिडकाचोषलवणस्वर्जिकायावशूकजान्।
सप्तलां कण्टकारीं च चित्रकं चैकतो दहेत्६३
सप्तकृत्वः स्रुतस्याऽस्य क्षारस्याऽर्धाढके पचेत्।
आढकं सर्पिषः पेयं तदग्निबलवृद्धये॥६४॥

बिडलवण, सीसालवण, खारीलवण, सज्जीखार, जवाखार, सातला, कटेली और चित्रक इन सबको दग्धकर जलमें घोल देदे इस जलको सात वार वस्त्रमें चुवाकर आधा आढ़क क्षार लेवे और एक आढ़क घृत मिलाकर पकावे जब घृत सिद्ध होजाय तो इस क्षारघृतको जठराग्निका बल बढ़ानेकेलिये पीना चाहिये॥ ६३॥ ६४॥

सन्निपातजग्रहणीकी चिकित्सा।

निचये पञ्चकर्माणि युञ्ज्याच्चैतद्यथाबलम्॥६५॥

सन्निपातके ग्रहणीरोगमें वमन विरेचनादि पंचकर्म करना चाहिये तथा वातादि ग्रहणीविकारोंकी चिकित्सामें कहेहुए योगोंको मिलाकर उचित रूपसे प्रयोग करना चाहिये॥ ६५॥

मन्दाग्निकी पृथक् पृथक् चिकित्सा।

प्रसेके श्लैष्मिकेऽल्पाग्नेर्दीपनं रूक्षतिक्तकम्।
योऽग्यं कृशस्य व्यत्यासात्स्निग्धरूक्षं कफोदये॥
क्षीणक्षामशरीरस्य दीपनं स्नेहसंयुतम्।
दीपनं बहुपित्तस्य तिक्तं मधुरकैर्युतम्॥६७॥

यदि कफजनित मन्दाग्निमें मुखसे लार बहती हो उस पुरुषको रूक्ष और तिक्त द्रव्योंके प्रयोग कराकर अग्निको चैतन्य करना चाहिये।

यदि कफकी मन्दाग्निवाला अति कृश हो तो उसको कभी तीक्ष्ण द्रव्योंसे सिद्ध घृत, कभी रूक्षचूर्ण बदल बदलकर प्रयोगकर जठराग्निको बलवती करनी चाहिये।

क्षीण और क्षामशरीरवाले पुरुषकी मंदाग्निको दीपन करनेकेलिये घृत युक्त ही दीपन द्रव्य देना चाहिये।

अधिक पित्तवाले पुरुषकी मन्दाग्निको चैतन्य करनेके लिये तिक्त और मधुर द्रव्योंके योगसे अग्निको दीपन करना चाहिये॥ ६६॥६७॥

स्नेहोऽम्ललवणैर्युक्तो बहुवातस्य शस्यते।
स्नेहमेव परं विद्याद्दुर्बलानलदीपनम्।
नाऽलं स्नेहसमिद्धस्य शमायान्नं सुगुर्वपि॥६८॥

वातकी अधिकतावाले पुरुषकी जठराग्निको दीपन

करनेके लिये अम्ल लवणद्रव्योंसे युक्त दीपन घृतका पान कराना चाहिये ।

दुर्बल पुरुषोंकी जठराग्निको बलवान् करनेकेलिये दीपन औषधोंसे सिद्ध घृत ही परमोत्तम औषध है। क्योंकि घृतद्वारा चैतन्यहुई अग्नि फिर साधारण गुरु आदि पदार्थोंके खानेसे मन्द नहीं होती है ॥ ६८॥

योऽल्पाग्नित्वात्कफे क्षीणे वर्चःपक्वमपि श्लथम्।
मुञ्चेद्यद्द्रौषधयुतं स पिबेदल्पशो घृतम्॥६९॥
तेन स्वमार्गमानीतः स्वकर्मणि नियोजितः ।
समानो दीपयत्यग्निमग्नेः सन्धुक्षको हि सः॥७०

जो मनुष्य कफके क्षीण होनेपर भी दुर्बलाग्निवाला होनेके कारण पक्व मलको भी सिथिल (ढीला) त्याग करता है उसको अल्प मात्रासे दीपन घृत पिलाना चाहिये और पीते समय घृतमें लवण और सोंठ मिलालेना चाहिये । इस घृतके पीनेसे समानवायु अपने मार्गमें आकर अपने काममें नियुक्त होनेसे अग्निको दीप्तकर देती है क्योंकि समान वायुका ही कर्म जठराग्निको संधुक्षण करना है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

पुरीषं यश्च कृच्छ्रेण कठिनत्वाद्विमुञ्चति ।
स घृतं लवणैर्युक्तं नरोऽन्नावग्रहं पिबेत् ॥७१॥

यदि मन्दाग्निवाला पुरुष शुष्क मल होनेके कारण कठिनतासे मलका त्यागकरे तो उसको भोजनसे पहले लवणयुक्त घृत पीकर ऊपरसे भोजन करना चाहिये ७१

रौक्ष्यान्मन्देऽनले सर्पिस्तैलं वा दीपनैःपिबेत् ॥

यदि रूक्षताके कारण मन्दाग्नि हो तो दीपन द्रव्योंसे सिद्ध तैल या घृत पीना चाहिये ॥ ७२ ॥

क्षारचूर्णासवारिष्टान् मन्दे स्नेहातिपानतः ।
उदावर्तात्प्रयोक्तव्या निरूहस्नेहबस्तयः॥७३॥

यदि अतिस्नेहपानसे अग्नि मन्द होगयी हो तो क्षार, चूर्ण, आसव और अरिष्ट सेवन कराकर जठराग्निचैतन्य करना चाहिये । यदि उदावर्तके कारण जठराग्नि मन्द हो तो निरूहणबस्ति और स्नेह बस्तियोंका प्रयोगकर जठराग्निको दीप्त रखना चाहिये॥७३

दोषाऽतिवृद्ध्याऽमन्देऽग्नौसंशुद्धोऽन्नाविधिंचरेत्
व्याधिमुक्तस्य मन्देऽग्नौ सर्पिरेव तु दीपनम् ७४

यदि दोषोंकी अतिवृद्धिसे मन्दाग्नि हो तो वमन विरेचनादिसे दोषोंका शोधन करनेके अनन्तर पेयादि क्रमका यथार्थ पालनकर जठराग्निको दीपन करना चाहिये । यदि रोगसे मुक्त होनेपर कृशताके कारण अग्नि मन्द हो तो उसको दीपन घृत पिलाकर जठराग्निको बलवाली करनी चाहिये ॥ ७४ ॥

अध्वोपवासक्षामत्वैर्यवाग्वा पाययेद् घृतम् ।
अन्नावपीडितं बल्यं दीपनं बृंहणं च तत्॥७५॥

यदि मार्ग चलने और उपवास करने आदिके कारण अग्नि मंद हो तो उसको यवागूमें मिलाकर दीपन घृत पिलाना चाहिये । वह घृत अन्न (यवागू) के मध्यवर्ती होनेसे बलकारक, दीपन और बृंहण होता है ॥ ७५ ॥

दीर्घकालप्रसङ्गात्तु क्षामक्षीणकृशान्नरान् ।
प्रसहानां रसैःसाम्लैर्भोजयेत्पिशिताशिनाम्७६
लघूष्णकटुशोधित्वाद् दीपयन्त्याशु तेऽनलम् ।
मांसोपचितमांसत्वात्परं च बलवर्धनम् ॥ ७७ ॥

यदि मांसाहारी मनुष्यको दीर्घ कालसे मन्दाग्नि हो और मनुष्य क्षाम तथा क्षीण हो तो उसको प्रसह पक्षियोंका मांसरस दाड़िमके रससे अम्ल करके पिलावे । क्योंकि मांसाहारी प्रसह पक्षी लघु ऊष्ण कटु और शोधनकर्तृत्व होनेसे जठराग्निको शीघ्र दीपन कर देते है और मांससे पुष्टि पायेहुए होनेसे बलको भी बढा देते हैं ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

स्नेहासवसुरारिष्टचूर्णक्वाथहिताशनैः ।
सम्यक् प्रयुक्तैर्देहस्य बलमग्नेश्च वर्धते ॥ ७८ ॥

स्नेह, आसव, सुरा, अरिष्ट, चूर्ण और क्वाथ यदि यथार्थ रूपसे सेवन किये जावे और पथ्य भोजन किया जाय तो देह और जठराग्निके बलकी यथार्थ वृद्धि होती है ॥ ७८ ॥

दीप्तो यथैव स्थाणुश्च बाह्योऽग्निः सारदारुभिः।
सस्नेहैर्जायते तद्वदाहारैः कोष्ठगोऽनलः॥ ७९ ॥

जैसे बाह्य अग्नि घृतयुक्त खैर आदिकी लकड़ी लगादेनेसे बलवती और स्थिर हो जाती है उसी

प्रकार कोष्ठकी जठराग्नि घृतयुक्त पथ्याहारके सेवनसे बलवान् और स्थिर होजाती है ॥ ७९ ॥

नाऽभोजनेन कायाग्निर्दीप्यते नाऽतिभोजनात्। यथा निरिन्धनो वह्निरल्पोवाऽतीन्धनावृतः॥८०॥

यदि भोजन न करे और उपवास करे अथवा बहुत अधिक भोजन करे तो इन दोनों क्रमोंसे जठराग्नि यथार्थ दीपन नहीं रह सकती जैसे-बाह्य अग्निपर इंधन न लगावे तब भी वह नष्ट होजाती है यदि थोड़ी अग्निपर बहुत बड़ा काष्ठ लगा दे तब भी वह थोड़ी अग्नि दब कर नष्ट होजाती है ॥ ८० ॥

भस्मकाग्निके विकार।

यदा क्षीणे कफे पित्तं स्वस्थाने पवनानुगम्। प्रवृद्धं वर्धयत्यग्निं तदाऽसौ सानिलोऽनलः॥८१॥ पक्त्वान्नमाशु धातूंश्च सर्वानोजश्च संक्षिपन्। मारयेत्स्याशनात्स्वस्थो भुक्ते जीर्णे तु ताम्यति तृट्कासदाहमूर्छाद्याव्याधयोऽत्यग्निसम्भवाः॥

जब मनुष्यके शरीरमें कफके क्षीण होनेपर पित्त अपने स्थानमें वायुसे बल प्राप्त करके बढ़ जाता है। तब वह वायु सहित पित्त अग्निको बहुत बढा देता है। तब वह बहुत बढ़ी हुई जठराग्नि खायेहुए अन्नको शीघ्र पाचन कर फिर रसादि धातुओं और ओजको भी शोषण करतीहुई मनुष्यको मार डालती है यदि उसी समय उसको भोज्य मिल जाय तो मनुष्य स्वस्थसा हो जाता है। और आहारके जीर्ण होनेपर ससकने लगता है, तथा इस अत्यग्निसे प्यास-कास दाह और मूर्च्छा आदि रोग उत्पन्न हो जाते है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

तमत्यग्निं गुरुस्निग्धमन्दसान्द्रहिमस्थिरैः। अन्नपानैर्नयेच्छांतिं दीप्तमग्निमिवाम्बुभिः॥८३॥

ऐसी अत्यग्निको भारी स्निग्ध, मन्द, सान्द्र, शीतल और स्थिर अन्नपानोंसे शान्त करना चाहिये जैसे बाह्य दीप्ताग्निको जलसे शमन किया जाता है॥८३॥

मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यान्यस्योपहारयेत्। निरिन्धनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैनं स विपादयेत्॥

इस रोगीको प्रथम अन्नकी अजीर्णावस्थामें भी बार बार भोजन देना चाहिये। जिससे इसकी अत्यग्नि अवकाश पाकर शरीरको नाश न कर सके॥ ८४ ॥

कृशरां पायसं स्निग्धं पैष्टिकं गुडवैकृतम्। अश्नीयादौदकानूपपिशितानि घृतानि च॥८५॥ मत्स्यान्विशेषतःश्लक्ष्णान् स्थिरतोयचराश्च ये। आविकं सुभृतं मांसमद्यादत्यग्निवारणम्॥८६॥

इस अत्यग्निवालेको खिचड़ी, खीर, हलुवा, मिठाई आदि स्निग्ध और गुरु पदार्थ खिलाने चाहिये। यदि मनुष्य मांसाहारी हो तो इसको जलसञ्चारी और अनूपसञ्चारी जीवोंका मांस तथा जो जलमें स्थिर रूपसे रहनेवाले मत्स्यादि हैं उनका मांस विशेषरूपसे देना चाहिये। अथवा मेंढकका मांस अधिक खाना भी अत्यग्निको शमन करता है॥ ८५ ॥८६ ॥

पयः सहमधूच्छिष्टं घृतं वा तृषितः पिबेत्॥८७॥ गोधूमचूर्णं पयसा बहुसर्पिःपरिप्लुतम्। आनूपरसयुक्तान्वा स्नेहांस्तैलविवर्जितान्॥८८॥

अत्यग्निवालेको, प्यास लगनेपर मधूच्छिष्ट (मोम) या घृत मिलाकर दूध पिलावे। अथवा गेहूंका आटा और बहुतसा घी मिलाहुआ दूध पिलावे। या तैल-वर्जित अनूपसञ्चारी जीवोंका मांस रस, घृत या मोम मिलाकर पिलावे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

श्यामात्रिवृद्विपक्कं वा पयो दद्याद्विरेचनम्। असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् ॥८९॥

अथवा पिप्पली और काली निशोथसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिला कर विरेचन करावे और बार बार पित्त-नाशक दूध आदि या खीर आदिका भोजन करावे ॥ ८९ ॥

यत्किञ्चिद्गुरु मेद्यं च श्लेष्मकारि च भोजनम्। सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा च स्वपनं दिवा॥९०॥

इसके अतिरिक्त जो कुछ भी गुरू मेदवर्द्धक और कफकारक पदार्थ हैं उन सब पदार्थोंका भोजन अत्य-ग्निवालेके लिये हितकारी है। तथा भोजन करते ही दिनमें सोजाना भी हितकारी होता है॥ ९० ॥

आहारमग्निः पचति दोषानाहारवर्जितः ।
धातून् क्षीणेषु दोषेषु जीवितं धातुसंक्षये॥९१॥

जठराग्नि प्रथम आहारको पाचन करती है यदि आहार न मिले तो दोषोंको पाचन करती है जब दोष क्षीण होजाय तो रसादि धातुओंका शोषण करती है जब धातु क्षीण हो जाते है तब मनुष्यके जीवनको नाश करती है ॥ ९१ ॥

एतत्प्रकृत्यैव विरुद्धमन्नं
संयोगसंस्कारवशेन चेदम् ।
इत्याद्यविज्ञाय यथेष्टचेष्टा-
श्चरन्ति यत्साऽग्निबलस्य शक्तिः॥९२॥
तस्मादग्निं पालयेत्सर्वयत्नै-
स्तस्मिन्नष्टे याति ना नाशमेव ।
दोषैर्ग्रस्ते ग्रस्यते रोगसङ्घै-
र्युक्ते नु स्यान्नीरुजो दीर्घजीवी ॥९३॥

मनुष्य जो स्वभावसे ही विरुद्ध अन्न जो संयोगविरुद्ध मानविरुद्ध संस्कार विरुद्ध आदि होते हैं उनको खाता है तथा विना ही जाने इच्छानुसार चेष्टा आदि करता है इस सब अपथ्याशन आदिको सहन करलेना जठराग्निके बलकी ही शक्ति है । इस कारण मनुष्यको उचित है कि सम्पूर्ण यत्नोंसे जठराग्निका यथार्थ पालन करे । क्योंकि जठराग्निके नष्ट होनेपर मनुष्यका भी नाश हो जाता है। यदि जठराग्नि दोषोंसे ग्रस्त होजाय तो मनुष्य भी रोगोंके समूहसे व्याप्त होजाता है । और यदि जठराग्नि यथार्थ दीप्त रहे तो मनुष्य भी दीर्घजीवी और निरोग रहता है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां चिकित्सास्थाने आयुर्वेदाचार्य-शिवशर्म्मकृतशिवदीपिकाभाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथाऽतो मूत्राघातचिकित्सितं व्याख्यास्यामः

अब हम मूत्राघातकी चिकित्साको कथन करते है ।

वातज मूत्राघातकी चिकित्सा ।

कृच्छ्रे वातघ्नतैलाक्तमधोनाभेः समीरजे ।
सुस्निग्धैःस्वेदयेदङ्गं पिण्डसेकावगाहनैः॥ १ ॥

वातजमूत्रकृच्छ्रमें नाभिसे नीचे वातनाशक तैलकी मालिश करके स्निग्ध पिण्ड सेक और अवगाहनसे स्वेदन करना चाहिये ॥ १ ॥

दशमूलादि स्नेह ।

दशमूलबलैरण्डयवाभीरुपुनर्नवैः ।
कुलत्थकोलपत्तूरवृश्चीवोपलभेदकैः ॥ २ ॥
तैलसर्पिर्वराहर्क्षवसाः क्वथितकल्कितैः ।
सपश्चलवणाःसिद्धाःपीताःशूलहराःपरम् ॥३॥

दशमूलकी दश औषधियें, बला, एरण्डकी जड़, जवाखार, शतावर, पुनर्नवा, कुलथी, बेर, शान्तिशाकके पत्र, श्वेतपुनर्नवा और पाषाणभेद इनके कल्क और क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ तैल या घृत अथवा वराहकी या रीछकी मेद, पांचलवण मिलाकर पीनेसे वातज मूत्रकृच्छ्र या मूत्रघातके शूलको शमन कर देता है ॥ २ ॥ ३ ॥

द्रव्याण्येतानि पानान्ने तथा पिण्डोपनाहने ।
सहतैलफलैर्युंज्यात्साम्लानि स्नेहवन्ति च ॥४॥

यहही दशमूल आदि द्रव्य अन्नपानके योगोंमें देनेसे तथा तिल, अम्ल और स्नेहके साथ मिलाकर पिण्डस्वेद और उपनाहस्वेद करनेमें प्रयोग करने चाहिये। यहां तैल फलसे कोई अखरोट, नारियल आदि तैलवालेफल मानते है।कोई केवल तिल लेते है परन्तु एरण्डफलकी मज्जा सबसे अधिक लाभकारी है ॥ ४ ॥

सौवर्चलाढ्यां मदिरां पिबेन्मूत्ररुजापहाम्॥५॥

सौवर्चल नमक मिलाकर मदिरा पीना भी वातज मूत्राघातकी पीड़ाको शमन करता है ॥ ५ ॥

पित्तजमूत्राघातकी चिकित्सा ।

पैत्ते युञ्जीत शिशिरं सेकलेपावगाहनम् ।
पिबेद्वरीं गोक्षुरकं विदारीं सकसेरुकाम् ।
तृणाख्यं पञ्चमूलं च पाक्यं समधुशर्करम्॥६॥

पित्तके मूत्रकृच्छ्रमें सेचन, लेप और अवगाहन (जलमे बैठनाआदि) सब शीतल प्रयोग करने चाहिये।

तथा शतावरी, गोखरू, विदारीकन्द, कसेरु और तृणपंचमूल इन सबका काथ कर ठंढा करके मधु और मिसरी मिलाकर पीना चाहिये इससे पित्तका मूत्राघात शमन होजाता है ॥ ६ ॥

वृषकं त्रपुसैर्वारु लट्वाबीजानि कुङ्कुमम् ।
द्राक्षाम्भोभिःपिबेत्सर्वान्मूत्राघातानपोहति ७॥

वांसा, खीरेके बीज, ककड़ीके बीज, कर्ड (कुसुंभे) के बीज और चन्दन इनको द्राक्षाके रसमें रगड़ कर पीवे तो सब प्रकारका मूत्राघात शमन होजाता है॥७

एर्वारुबीजयष्टयाह्वदार्वीर्वा तण्डुलाम्बुना ।
तोयेन कल्कं द्राक्षायाः पिबेत्पर्युषितेन वा॥८॥

अथवा ककड़ीके बीज, मुलहठी और दारुहलदी इनका चूर्ण तण्डुल जलके साथ अथवा इनका कल्क द्राक्षारसके साथ पीवे अथवा इनका हिम बनाकर पीवे तो मूत्राघात दूर होता है ॥ ८ ॥

कफजमूत्राघातकी चिकित्सा।

कफजे वमनं स्वेदं तीक्ष्णोष्णकटुभोजनम् ।
यवानां विकृतीःक्षारं कालशेयं च शीलयेत्॥९॥

कफके मूत्राघातमें वमन कराना, स्वेदन करना, तीक्ष्ण उष्ण और कटु पदार्थोंका भोजन करना, यवान्नका भोजन, क्षार और तक्रका सेवन करना चाहिये ॥९

पिबेन्मद्येन सूक्ष्मैलां धात्रीफलरसेन वा ।
सारसास्थिश्वदंष्ट्रैलाव्योषं वा मधुमूत्रवत्॥१०॥
स्वरसं कण्टकार्या वा पाययेन्माक्षिकान्वितम्।
शितिवारकबीजं वा तक्रेण श्लक्ष्णचूर्णितम्११

तथा छोटी इलायचीका चूर्ण मद्यके साथ अथवा आमलेके रसके साथ पीवे । अथवा कमलगट्टेकी गिरी, गोखरू, इलायची और त्रिकटुका चूर्ण मधुमिलाकर गोमूत्रके साथ पीवे। अथवा कण्टकारीका स्वरस मधुमिलाकर पीवे। अथवा सुनिषण्णक शाक (उठंगन) के बीजोंका बारीक चूर्ण तक्रसे पीवे तो कफजमूत्राघात होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

धवसप्ताह्वकुटजं गुडूचीचतुरङ्गुलम् ।
कटुकैलाकरञ्जं च पाक्यं समधुसाधितम १२॥
तैर्वा पेयां प्रवालं वा चूर्णितं तण्डुलाम्बुना ।
सतैलं पाटलाक्षारं सप्तकृत्वोऽथवा स्रुतम्॥१३

अथवा धववृक्षकी छाल, सप्तला, कुटज, गिलोय, अमलतास, कटुकी, इलायची और करञ्जका क्वाथ मधु मिलाकर पीवे । अथवा इन धवादि द्रव्योंसे सिद्ध पेया पीवे अथवा प्रवालका सूक्ष्म चूर्ण या भस्म तण्डुल जलसे पीवे । अथवा पाटलाका क्षार सातबार चुवाकर तैल मिलाकर पीवे तो कफजमूत्राघात शमन होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

पाटलियावशूकाभ्यां पारिभद्रात्तिलादपि ।
क्षारोदकेन मदिरां त्वगेलोषकसंयुताम् ।
पिबेद्गुडोपदंशान्वा लिह्यादेतान् पृथक् पृथक्.॥

अथवा पाटलाके क्षार और जवाखारके साथ पारिभद्रका कल्क पीवे। या तिलक्षारके जलसे पारिभद्रका कल्क पीवे। अथवा तिलक्षारजलमें मदिरा मिलाकर उसके साथ दालचीनी,इलायची और जवाखारका चूर्ण पीवे । अथवा गिलोय और सौभाञ्जन वृक्षकी छालका कल्क ये मधु मिलाकर अलग सेवन करे तो कफका मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ १४ ॥

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा।

संनिपातात्मके सर्वं यथावस्थमिदं हितम ।
अश्मन्यथ चिरोत्थाने वातबस्त्यादिकेषु च१५

सन्निपातके मूत्रकृच्छ्रमें वातादिजनित तीनों मूत्रकृच्छ्रोंमें कहीहुई चिकित्साको मिला जुलाकर करे । यही चिकित्सा अल्पकालसे उत्पन्नहुई पथरीमें भी हितकारी होती है । तथा यही चिकित्सा वातकुण्डलिकाआदि मूत्रा घातरोगोंमें हितकारी होती है ॥ १५ ॥

अश्मरी (पथरीकी) चिकित्सा।

अश्मरी दारुणो व्याधिरन्तकप्रतिमो मतः ।
तरुणो भेषजैः साध्यः प्रवृद्धश्छेदमर्हति ॥१६॥

अश्मरी रोग कालके समान दारुण व्याधि है । यदि यह अश्मरी (पथरी) तरुण अवस्थामें हो तो औषध द्वारा खारकर निकाल देना चाहिये। यदि बढ़कर पक्की होगयी हो तो शस्त्रसे छेदन या उत्पाटन करके निकाल देवे ॥ १६ ॥

तस्य पूर्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम इष्यते ॥ १७ ॥

पथरीके पूर्वरूपमें स्नेहन और स्वेदन करनेके अनन्तर काथादि पीकर इसको शोधन करदेना चाहिये ॥ १७ ॥

वातज अश्मरीकी चिकित्सा।

पाषाणभेदो वसुको वशिरोऽश्मन्तको वरी।
कपोतवङ्कातिबलाभल्लूकोशीरकन्तकम् ॥ १८ ॥
वृक्षादनी शाकफलं व्याघ्री गुण्ठस्त्रिकण्टकम्।
यवाःकुलत्थाःकोलानि वरुणःकतकात्फलम् ॥
ऊषकादिप्रतीवापमेषां काथे शृतं घृतम्।
भिनत्ति वातसम्भूतां तत्पीतं शीघ्रमश्मरीम् २०

पाषाणभेद, वसुक शाकके पत्र, गजपीपल, अश्मन्तक, शतावरी, ब्राह्मी, अतिबला, श्योनाक, खस, विकन्तक, वृक्षादनी (वृन्दा), शाकवृक्षके फल, कटेली, गुण्ठ (सुगन्धित रोहिष तृण), गोखरू, यव, कुलथी, वेर, वरुणवृक्षकी छाल और निर्मलीके फल इनके काथ और ऊषकादिगणका कल्क मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत पीनेसे वातज अश्मरी शीघ्र नाश हो जाती है ॥ १८-२० ॥

गन्धर्वहस्तबृहतीव्याघ्रीगोक्षुरकेक्षुरात्।
मूलकल्कं पिबेद्दध्ना मधुरेणाऽश्मभेदनम्॥२१॥

एरण्डकी जड़, बड़ीकटेलीकी जड़, छोटी कटेलीकी जड़, गोखरूकी जड़ और तालमखानेकी जड़ इनका कल्ककर मीठी दहीके साथ पीनेसे वातज अश्मरी दूर होती है ॥ २१ ॥

पित्ताश्मरीकी चिकित्सा।

कुशःकाशःशरो गुण्ठ इत्कटो मोरटोऽश्मभित्।
दर्भो विदारी वाराही शालीमूलं त्रिकण्टका२२॥
भल्लूकः पाटली पाठा पत्तूरः सकुरण्टकः।
पुनर्नवा शिरीषश्च तेषां काथे पचेद्घृतम्॥२३॥
पिष्टेन त्रपुसादीनां बीजेनेन्दीवरेण वा।
मधुकेन शिलाजेन तत्पित्ताश्मरिभेदनम्॥२४॥

कुशा, कांस, शरकण्डा, गुण्ठघास, इत्कटघास, मोरट, पाषाणभेद, दाभ, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, शालीधानकी जड़, गोखरू, श्योनाक, पाटलालता, पाठा, पत्तूर, कुरंटक, पुनर्नवा और शिरीष इन सबके काथ और खीरे, ककडी, घीया और पेठेके बीजोंका कल्क या कमलके बीज, मुलहठी और शिलाजीतके कल्क और कुशादि द्रव्योंके काथसे सिद्ध किया घृत पित्तकी अश्मरीको भेदनकर निकाल देता है ॥ २२-२४ ॥

कफाश्मरीकी चिकित्सा।

वरुणादिः समीरघ्नौ गणावेला हरेणुका।
गुग्गुलुर्मरिचं कुष्ठं चित्रकः ससुराह्वयः।
तैःकल्कितैः कृतावापमूषकादिगणेन च।
भिनत्ति कफजमाशु साधितं घृतमश्मरीम्२५॥

सूत्रस्थानके १९ वें अध्यायमें कहेहुए वरुणादि और वीरतर्वादि गणकी सब औषधियें तथा इलायची, हरेणु, गुग्गुल, मिर्च, कूठ, चित्रक और देवदारु इनके कल्क और काथ तथा ऊषकादि गणके कल्कसे सिद्ध किया घृत कफज अश्मरीको भेदन कर शीघ्र निकाल देता है ॥ २५ ॥

विशेष कल्पना।

क्षारक्षीरयवाग्वादिद्रव्यैःस्वैःस्वैश्च कल्पयेत्२६

वातादिजनित अश्मरीनाशक योग जो पृथक् पृथक् कह आये है इन ही योगोंके द्रव्योंसे कल्पना कियेहुए क्षार या दूध सिद्धकर पीनेसे भी वातादिदोषोंकी पथरियें नष्ट होजाती हे ॥ २६ ॥

शर्करारोग चिकित्सा।

पिचुकाङ्कोल्लकतकशाकेन्दीवरजैः फलैः।
पीतमुष्णाम्बु सगुडं शर्करापातनं परम्॥२७॥

नीलोत्पल, अंकोल, निर्मलीके फल, शाकवृक्षके फल और कमलके फल इन सबका चूर्ण गुड़ मिलाकर गर्म जलसे पीवे तो शर्करा रोग शर्करा निकलकर शान्त होजाता है ॥ २७ ॥

क्रौञ्चोष्ट्ररासभास्थीनि श्वदंष्ट्रा तालपत्रिका।
अजमोदा कदम्बस्य मूलं बिल्वस्य चौषधम्।
पीतानि शर्करां भिन्द्युःसुरयोष्णोदकेन वा२८॥

क्रौञ्च (लालकमलकेबीज) उष्ट्र (वरुणवृक्षके-

१ कोई क्रौंचपक्षी, ऊंट और गधेकी अस्थिका चूर्ण मिलाना अर्थ करते हैं सो ठीक नहीं है।

—बीज), रासभ (श्वेतकमलके बीज), श्वदंष्ट्रा (गोखरूबीज),सफेद मुसली, अजमोद, कदम्बकी जड़ और बिल्वकी जड़ इनका चूर्ण सुरा या गर्मजलसे सात दिन पीनेसे शर्करा रोग नाश होजाता है ॥ २८

नृत्यकुण्डलबीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।
अविक्षीरेण सप्ताहं पीतमश्मरिपातनम् ॥ २९॥

गोखरूके चूर्णको मधु मिलाकर खावे ऊपरसे भेड़का दूध पीवे ऐसे सात दिन औषध सेवनसे अश्मरी और शर्करा निकलकर पीड़ा शान्त होजाती है॥२९॥

क्राथश्च शिग्रुमूलोत्थःकदूष्णोऽश्मरिपातनः ३०

सौमाजन (सुहांजना) की जड़का क्राथ सुहाता २ गर्म पीनेसे अश्मरी नष्ट होजाती है॥ ३० ॥

तिलापामार्गकदलीपलाशयवसंभवः ।
क्षारःपेयोऽविमूत्रेण शर्करास्वश्मरीषु च ॥३१॥

तिल, अपामार्ग, कदली, पलाश और यव इन सबका खार भेड़के मूत्रसे पीवे तो शर्करा और पथरीका नाश होता है ॥ ३१ ॥

कपोतवङ्कामूलं वा पिबेदेकं सुरादिभिः ।
तत्सिद्धं वा पिबेत्क्षीरं वेदनाभिरुपद्रुतः ॥३२ ॥
हरीतक्यस्थिसिद्धं वा साधितं वा पुनर्नवैः।
क्षीरान्नभुग्बर्हिशिखामूलं वा तण्डुलाम्बुना३३॥

कपोतवङ्का (ब्राह्मी) की जड़को सुराआदिके साथ पीवे या इससे सिद्ध कियाहुआ दूध पीवे। अथवा हरीतकीकी गुठलीके कल्कसे सिद्ध दूध या पुनर्नवासे सिद्ध दूध पीवे। अथवा मोरशिखाकी जड़का चूर्ण तण्डुलजलसे पीवे तो शर्करा या अश्मरीकी पीड़ा शान्त होजाती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अन्य मूत्ररोगोंकी चिकित्सा।

मूत्राघातेषु विभजेदतःशेषेष्वपि क्रियाम्॥३४॥

ऊपर जो मूत्रकृच्छ्रमे चिकित्सा कह आये हैं वह अन्य मूत्रातीतादि रोगोंमें भी दोषानुसार कल्पना करलेना चाहिये ॥ ३४ ॥

बृहत्यादिगणे सिद्धं द्विगुणीकृतगोक्षुरे ।
तोयं पयो वा सर्पिर्वा सर्वमूत्रविकारजित् ॥३५॥

बृहत्यादिगणके द्रव्य एक भाग, गोखरू दो भाग लेकर इनसे सिद्धकिया जल, दूध या घृत पीनेसे सब प्रकारके मूत्रविकार दूर होते हैं ॥ ३५ ॥

देवदारुं घनं मूर्वां यष्टीं मधु हरीतकीम् ।
मूत्राघातेषु सर्वेषु सुराक्षीरजलैःपिबेत् ॥ ३६ ॥

देवदारु, नागरमोथा, मूर्वा, मुलहठी और हरीतकी इनका कल्क सुरा या जल अथवा दूधके साथ पीनेसे सब प्रकारके मूत्राघात दूर होते है ॥ ३६ ॥

रसं वा धन्वयासस्य कषायं ककुभस्य वा ।
सुखाम्भसा वा त्रिफलां पिष्टां सैन्धवसंयुताम् ॥
व्याघ्रीगोक्षुरकक्काथे यवागूं वा सफाणिताम् ।
क्राथे वीरतरादेर्वा ताम्रचूडरसेऽपि वा ।
अद्यादीरतराद्येन भावितं वा शिलाजतु॥ ३८ ॥

अथवा जवासेका रस पीवे या अर्जुनकी छालका क्राथ पीवे अथवा त्रिफलेका चूर्ण सेंधालवण मिलाकर कोष्ण जलसे पीवे अथवा कटेली और गोखरूके क्राथमें यवागू बनाकर फाणित मिलाकर पीवे। या वीरतरादिगणके क्राथमें अथवा मुर्गेके मांसरसमें बनायीहुई फाणितयुक्त यवागू पीवे। या वीरतरादि गणसे भावना दीहुई शिलाजीत खावे तो सब प्रकारके मूत्रविकार शमन होजाते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मद्यं वा निगदं पीत्वा रथेनाश्वेन वा व्रजन् ।
शीघ्रवेगेन संक्षोभात्तथाऽस्य च्यवतेऽश्मरी३९॥

पुरानी मद्य पीकर शीघ्रवेगवाले रथ या घोड़ा आदि पर चढ़कर चले तो औषधोंसे शिथिलहुई अश्मरी क्षोभित होकर निकल जाती है ॥ ३९ ॥

सर्वथा चोपयोक्तव्यो वर्गो वीरतरादिकः ।
रेकार्थं तैल्वकं सर्पिर्बस्तिकर्म च शीलयेत् ।
विशेषादुत्तरान् बस्तीन् ॥४०॥—

अश्मरी और सब प्रकारके मूत्ररोगोंमें वीरतरुआदि गणका क्राथ, जल, घृत, दूध आदि सिद्धकर सब प्रकार प्रयोग करना चाहिये। तथा रेचनके लिये

१ भृङ्गकंटकबीजचूर्णमिति सम्यक् पाठः। सुश्रुतस्तु—"त्रिकंटकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम्। अविक्षीरेण सप्ताहमश्मरीभेदनं परम॥" इति पठति।

तिल्वकका घृत आदि प्रयोग करे । तथा बस्तिकर्मका प्रयोग करे विशेषकर उत्तरबस्तिका प्रयोग करन चाहिये ॥ ४० ॥

शुक्राश्मरी चिकित्सा ।

–शुक्राश्मर्यां च शोधिते ।
तैर्मूत्रमार्गे बलवान् शुक्राशयविशुद्धये ॥ ४१ ॥
पुमान् सुतृप्तो वृष्याणां मांसानां कुक्कुटस्य च ।
कामं सकामाः सेवेत प्रमदा मददायिनीः ॥४२॥

शुक्राश्मरीमें प्रथम उत्तरबस्ति द्वारा मूत्रमार्गको शुद्ध करे तदनन्तर वृष्य पदार्थोंका सेवनकर मांसाहारी हो तो कुक्कट मांसादि यथेच्छ सेवन कर मदमाती यौवनवती स्त्रीका यथेच्छ सेवनकरे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

सिद्धैरुपक्रमैरेभिर्न चेच्छान्तिस्तदा भिषक् ।
इति राजानमापृच्छ्य शस्त्रं साध्ववचारयेत् ४३

यदि इस प्रकारके सिद्ध यत्नों द्वारा भी पथरी खर कर न निकले तो राजाज्ञाप्राप्त कियाहुआ वैद्य विधिपूर्वक अभ्याससिद्ध क्रियासे शस्त्रद्वारा पथरीको निकाल देवे ॥ ४३ ॥

अक्रियायां ध्रुवो मृत्युःक्रियायां संशयो भवेत् ।
निश्चितस्याऽपि वैद्यस्य बहुशःसिद्धकर्मणः ४४

क्योंकि यदि पथरी न निकाली जावे तो अवश्य ही मृत्युका भय है । यद्यपि सिद्धहस्तवैद्य द्वारा पथरी शस्त्रसे निकाल देनेमें कोई भय नहीं परन्तु कभी २ सिद्धहस्तद्वारा कार्य करनेमें भी शस्त्रकर्ममें भय होता है इस कारण राजाज्ञाप्राप्त वैद्यको ही शस्त्रक्रिया करनी चाहिये ॥ ४४ ॥

शस्त्रसे पथरी निकालनेका क्रम ।

अथाऽऽतुरमुपस्निग्धं शुद्धमीषच्च कर्शितम्।४५॥
अभ्यक्तस्विन्नवपुषमभुक्तं कृतमङ्गलम् ।
आजानुफलकस्थस्य नरस्याङ्के व्यपाश्रितम् ॥
पूर्वेण कायेनोत्तानं निषण्णं वस्त्रचुम्भले ।
ततोऽस्याकुञ्चिते जानुकूर्परे वाससा दृढम्४७॥
सहाश्रयमनुष्येण बद्धस्याश्वासितस्य च ।
नाभेः समन्तादभ्यज्यादधस्तस्याश्चवामतः ४८
मृदित्वा मुष्टिना कामं यावदश्मर्यधोगता ।
तैलाक्ते वर्धितनखे तर्जनीमध्यमे ततः ॥ ४९॥
अदक्षिणे गुदेऽङ्गुल्यौ प्रणिधायाऽनुसेवनीम् ।
आसाद्य वलयं ताभ्यामश्मरीं गुदमेढ्रयोः॥५०॥
कृत्वान्तरे तथा बस्तिं निर्वलीकमनायतम् ।
उत्पीडयेदङ्गुलिभ्यांयावद्ग्रन्थिरिवोन्नतम् ५१॥
शल्यं स्यात्सेवनीं मुक्त्वा यवमात्रेण पाटयेत् ।
अश्ममानेन न यथा भिद्यते सा तथा हरेत्५२॥
समग्रं सर्पवक्त्रेण स्त्रीणां बस्तिस्तु पार्श्वगः ।
गर्भाशयाश्रयस्तासां शस्त्रमुत्सङ्गवत्ततः ॥५३॥
न्यसेदतोऽन्यथा ह्यासां मूत्रस्रावी व्रणो भवेत् ।
मूत्रप्रसेकक्षरणान्नरस्याऽप्यपि चैकधा ।
बस्तिभेदोऽश्मरीहेतुःसिद्धिं याति न तु द्विधा५४

जिस रोगीकी अश्मरी निकालना हो उसको स्निग्ध, शुद्ध और किंचित् रेचनादि कराकर शरीरको चिकना और स्वेदन करावे तदनन्तर विना भोजन कराये मङ्गल कर्म स्वस्ति वाचनादि कराकर जानुपर्यन्त मनुष्यकी गोदमें आश्रितकर इसको सीधा लेटावे और इसके दोनों जानुओंको संकुचितकर वस्त्रके चुंभलसे जानु कूर्पर पर्यन्त ऊपरको दृढ बांध देवे जिससे वस्ति-स्थानमें शस्त्रकर्म यथेष्ट होसके । फिर मनुष्यके आश्रयसे लेटेहुएको आश्वासनादि देकर नाभीके चारों ओर तैलसे चिकनाकर नाभीसे नीचे वाम भागकी ओर मुष्टिसे मर्दनकरे जिससे पथरी नीचेको ओर आजावे. तैलसे चिकनी कीहुई बायें हाथकी तर्जनी और मध्यमा दोनों अंगुलियोंको गुदामें प्रवेशकर पथरीको सीवनीके मध्यमें वस्तिस्थानमे लाकर दोनों वामहस्तकी अंगुलियोंसे पथरीको उन्नतकर पीडन करे जिससे पथरी ग्रन्थिके समान ऊपरको होजावे । फिर सीवनी छोड़ कर उसके समीपको उतना चीरा देकर उत्पाटन करे जिससे पथरी बाहर आसके फिर उस पथरीको शस्त्रसे पकड़कर इस प्रकार निकालले जिससे वह टूट न जावे । इस पथरीको सर्पफण यंत्रसे पकड़कर निकाल ले । यदि स्त्रियोंकी पथरी निकालनी हो तो वस्तिके पार्श्व-भागमें जो गर्भाशय है उससे बचाकर उत्संगवत् शस्त्रसे निकालना चाहिये अन्यथा स्त्रियोंके मूत्रस्रावी व्रण

होनेका भय है। पुरुषोंकी वस्तिमें मर्मस्थान छिद जानेसे पुरुषकी मृत्यु होजाती है। यदि अश्मरी निकालते समय दोनों ओर व्रण होजाय तो वह भी असाध्य होजाता है। इस कारण सिद्धकर्मा वैद्य सावधानसे शस्त्र प्रयोग करे ॥ ४९–५४ ॥

विशल्यमुष्णपानीयद्रोण्यां तमवगाहयेत्।
तथा न पूर्यतेऽस्रेण बस्तिः पूर्णे तु पीडयेत्।
मेढ्रान्तः क्षीरिवृक्षाम्बु ॥ ५५ ॥–

पथरी निकालनेके अनन्तर शल्यरहित होनेपर इसको गर्म जलके टप (कड़ाहविशेष) में बैठावे जिससे इसकी वस्तिमें रक्त न भरजावे। यदि वस्तिस्थानमें रुधिर चलागया हो तो वटादि क्षीरीवृक्षोंके क्वाथसे उत्तरवस्ती करके मेढ्रके द्वारा शोधन कर देवे॥५५॥

–मूत्रसंशुद्धये ततः ॥ ५६ ॥
कुर्याद्गुडस्य सौहित्यं मध्वाज्याक्तव्रणःपिबेत्।
द्वौ कालौ सघृतां कोष्णां यवागूं मूत्रशोधनैः॥
त्र्यहं दशाहं पयसा गुडाढ्येनाऽल्पमोदनम।
भुञ्जीतोर्ध्वं फलाम्लैश्च रसैर्जाङ्गलचारिणाम्५८

तदनन्तर मूत्रशुद्धिकेलिये गुड़से तृप्त करे और व्रणको मधु घृतसे लेपन करे। फिर दोनों काल घृतयुक्त कोष्ण यवागू मूत्रशोधनके लिये पीवे। तीसरे दिनसे दश दिनपर्यन्त दूधके साथ गुड़ मिलाकर थोड़ा २ भात खावे। दश दिनके अनन्तर अनार आदि अम्ल फलोंके रससे जांगलजीवोंका मांसरस भोजन करे ॥ ५६–५८ ॥

क्षीरिवृक्षकषायेण व्रणं प्रक्षाल्य लेपयेत्।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठायष्ट्याह्वनयनौषधैः ॥५९॥
व्रणाभ्यङ्गे पचेत्तैलमेभिरेव निशान्वितैः॥६०॥

व्रणको क्षीरीवृक्षोंके क्वाथसे धोकर प्रपौंडरीक, मजीठ, मुलहठी और पठानीलोधका लेप करे अथवा इनके कल्क और हलदीसे सिद्ध कियाहुआ तैल लगावे। कोई यहां नयनौषधका अर्थ कासीस करते हैं५९।६०

दशाहं स्वेदयेच्चैनं स्वमार्गे सप्तरात्रतः।
मूत्रे त्वगच्छति दहेदश्मरीव्रणमग्निना।
स्वमार्गप्रतिपत्तौ तु स्वादुप्रायैरुपाचरेत् ॥६१॥
तं बस्तिभिः–

इस पुरुषके अश्मरीवाले व्रणको स्वेदन करता रहे. यदि सात दिनमें मूत्र अपने मार्गसे सीधा न निकले तो अश्मरीके व्रणको अग्निसे दग्ध करे। जब अपने मार्गसे यथार्थ मूत्र आनेलगे तो मधुरप्राय द्रव्योंसे सिद्ध क्वाथ आदिसे उत्तरवस्तियोंका प्रयोग करे॥६१॥

–न चारोहेद्वर्षं रूढव्रणोऽपि सः।
नगनागाश्ववृक्षस्त्रीरथान्नाप्सु प्लवेत सः ॥६२॥

जब अश्मरीका व्रण भरजावे तब उसके अनन्तर भी एक वर्षतक पर्वत, हाथी, घोड़ा, वृक्ष और रथ आदिपर न चढे और स्त्रीसंग न करे तथा जलमें न तैरे ॥ ६२ ॥

मूत्रशुक्रवहौ बस्तिवृषणौ सेवनीं गुदम्।
मूत्रप्रसेकं योनिं च शस्त्रेणाऽष्टौ विवर्जयेत्६३॥

शस्त्रकर्म करते समय मूत्रवाही नाड़ी, शुक्रवाही नाड़ी, वस्तिमर्म, वृषण, सेवनी, गुदमर्म, मूत्रप्रसेक मार्ग और योनी इन आठ स्थानोंको बचा लेना चाहिये. इनमें शस्त्र लगनेसे अनेक उपद्रव होकर मरणका भय है ॥ ६३ ॥

इति श्रीवाग्भटप्रणीताष्टांगहृदय संहितायां चिकित्सास्थाने आयुर्वेदाचार्य पं. शिवशर्मकृत शिवदीपिकाभाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः।

अथाऽतः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः।

अब हम प्रमेह चिकित्साके अध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥

मेहिनो बलिनः कुर्यादादौ वमनरेचने।
स्निग्धस्य सर्षपारिष्टनिकुम्भाक्षकरञ्जकैः ॥१॥
तैलैस्त्रिकण्टकाद्येन यथास्वं साधितेन वा।
स्नेहेन मुस्तदेवाह्वनागरप्रतिवापवत् ॥ २ ॥
सुरसादिकषायेण दद्यादास्थापनं ततः।
न्यग्रोधादेस्तु पित्तार्तं रसैःशुद्धं च तर्पयेत्॥३॥

प्रमेह रोगीको यदि वह बलवान् हो तो प्रथम सर्सों, नीम्ब, निकुम्भ, बहेड़ा और करञ्ज इन तैलोंसे स्निग्ध कर वमन विरेचन करावे। अथवा आगे कहे-हुए त्रिकंटकादि तेलसे स्निग्धकर यथादोषनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए स्नेहसे स्नेहनकरव मन विरेचन करावे। तदनन्तर नागरमोथे, देवदारु और सोंठका कल्क मिलाकर मुरसादिगणके क्वाथसे आस्थापन वस्ति देवे। तदनन्तर न्यग्रोधादिगणसे सिद्ध यूषादिसे पित्तप्रमेहवालेको और वातकफनाशकरसोंसे वातज तथा कफज मेहवालोंको तर्पण करे ॥ १--३ ॥

शमनयोगोंकी आवश्यकता।

मूत्रग्रहरुजागुल्मक्षयाद्यास्त्वपतर्पणात्।
ततोऽनुबन्धरक्षार्थं शमनानि प्रयोजयेत् ॥४॥

वमन विरेचनादि विशेष कर्षणसे वायु बढ़कर मूत्रकी रुकावट शूल, गुल्म और क्षयादि उत्पन्न कर देता है इस कारण अनुबन्ध रक्षाके लिये शमनयोगोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

असंशोध्यरोगियोंको शमन।

असंशोध्यस्य तान्येव सर्वमेहेषु पाययेत् ॥५॥

जो रोगी शोधन योग्य न हो उनको वमन विरेचन कराकर शमन योगही प्रयोग करने चाहिये ॥ ५ ॥

शमन योग।

धात्रीरसप्लुतां प्राह्णे हरिद्रां माक्षिकान्विताम्।
दार्वीसुराह्वत्रिफला मुस्ता वा क्वथिता जले।
चित्रकत्रिफलादार्वीकलिङ्गान्वा समाक्षिकान्।
मधुयुक्तं गुडूच्या वा रसमामलकस्य वा ॥६॥

आमलेके रसमें मधु और हलदीका चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल सेवन करनेसे प्रमेह शमन होता है। अथवा दारुहलदी, देवदारु, त्रिफला और नागरमोथेका जलमें क्वाथकर पीवे तो प्रमेह शमन करता है। अथवा चित्रक, त्रिफला, दारुहलदी और कुटजका क्वाथ मधु मिलाकर पीवे या आमलेका रस अथवा गिलोयका रस मधु मिलाकर पीवे तो प्रमेहरोग दूर होता है ॥ ६ ॥

कफमेहनाशक योग।

रोध्राभयातोयदकट्फलानां
पाठाविडङ्गार्जुनधान्यकानाम्।
गायत्रिदार्वीकृमिहृद्वचानां
कफे त्रयः क्षौद्रयुताः कषायाः ॥ ७ ॥

१—पठानी लोध, हरड़, नागरमोथे और कायफलका क्वाथ; २-या पाठा, वायबिड़ंग, अर्जुन और धनियेंका क्वाथ; अथवा ३-कत्था, दारुहलदी, वायबिडंग और वचका क्वाथ ये तीनों प्रकारके क्वाथ मधु मिलाकर पीयेहुए कफके प्रमेहोंको दूर करते हैं ॥७॥

पित्तमेहनाशक योग।

उशीररोध्रार्जुनचन्दनानां
पटोलनिम्बामलकामृतानाम्।
रोध्राम्बुकालीयकधातकीनां
पित्ते त्रयः क्षौद्रयुताः कषायाः ॥ ८ ॥

१—खस, लोध्र, अर्जुन और चन्दन; अथवा २—पटोल, निम्ब, आमले और गिलोय; या ३—लोध्र, नेत्रवाला, दारुहलदी और धावेके फूल. इन तीन योगोमेंसे किसी एकका क्वाथ मधु मिलाकर पीनेसे पित्तज मेह शमन होते हैं ॥ ८ ॥

यथास्वमेभिः पानान्नं यवगोधूमभावनाः ॥९॥

ये कफादि मेहनाशक जो लोध्रादियोग कहे है इनसे भावितजल और यव गेहूँ आदि अन्न पीने खानेमें प्रयोग करने चाहिये ॥ ९ ॥

वातोल्बणेषु स्नेहांश्च प्रमेहेषु प्रकल्पयेत् ॥१०॥

वातप्रधान प्रमेहोंमें प्रमेहनाशक द्रव्योंसे घृतादि सिद्ध करके सेवन कराना चाहिये ॥ १० ॥

प्रमेहोंमें पथ्य।

अपूपसक्तुवाट्यादिर्यवानां विकृतिर्हिता।
गवाश्वगुदमुक्तानामथवा वेणुजन्मनाम्।
तृणधान्यानि मुद्गाद्याः शालिजीर्णः सषष्टिकः।
श्रीकुक्कुटोऽम्लः खलकस्तिलसर्षपकिट्टजः ॥११
कपित्थं तिन्दुकं जम्बूस्तत्कृता रागखाण्डवाः।
तिक्तं शाकं मधु श्रेष्ठा भक्ष्याःशुष्काःससक्तवः॥
धन्वमांसानि शूल्यानि परिशुष्काण्ययस्कृतिः।
मध्वरिष्टासवा जीर्णाः सीधुः पक्वरसोद्भवः।
तथाऽसनादिसाराम्बु दर्भाम्भो माक्षिकोदकम् ॥

यवान्नके बनायेहुए पूड़े सत्तू वा अन्य आदि पदार्थ अथवा जो यव हाथी घोड़े आदिने खाकर लीदद्वारा निकाले हों उन यवोंको धो सुखाकर उनके बनायेहुए सत्तू आदि पदार्थ या बांसके यवों (बीजोंसे) बनायेहुए सत्तू आदि, श्यामाक आदि तृणधान्य, मूंग आदि, पुराने साठी या शालीचावल, अम्ल, खड्क, तिल, सर्षपादिसे बनायाहुआ अम्ल खल, कपित्थ, तिन्दुक, जामनके फल तथा कपित्थादिसे बनायेहुए शाग खाण्डव, तिक्तशाक, मधु, सूखे सत्तू, जांगलजीवोंके मांस शूलपर भूनेहुए, आगे इसी अध्यायमें कहाहुआ अयस्कृति आसव, मध्वरिष्ट, पुराने आसव पक्करससे बनायीहुई पुरानी सीधु तथा विजयसारका जल, कुशाका जल और मधुयुक्त जल ये सब पदार्थ प्रमेहरोगीके लिये पथ्य होते है ॥ ११–१३ ॥

वासितेषु वराक्काथे शर्वरीं शोषितेष्वहः ।
यवेषु सुकृतान्सक्तून्सक्षौद्रान्सीधुना पिबेत्१४।

यवान्नको त्रिफलेके काथमें भिगोकर रात्रीभर रक्खे सबेरे इन यवोंको धूपमें सुखावे जब सूख जावे तो इनको भून संवारकर इनके सत्तू बनावे इन सत्तुओंको मधु और सीधु मिलाकर पीवे तो यह प्रमेहरोगीके लिये परम हितकारी पथ्य है ॥ १४ ॥

शालसप्ताह्वकम्पिल्लवृक्षकाक्षकपित्थजम्॥१५॥
रोहीतकं च कुसुमं मधुनाऽद्यात्सुचूर्णितम् ।
कफपित्तप्रमेहेषु पिबेद्धात्रीरसेन वा ॥ १६ ॥

शाल, सप्तपर्ण, कामल, वृक्षक, बहेड़ा, कपित्थ और रुहेड़ेके पुष्पोंका चूर्ण मधुमें मिलाकर चाटे या आमलेके रससे खावे तो कफ और पित्तके प्रमेह शमन होजाते है ॥ १५ । १६ ॥

त्रिकंटकादि स्नेह ।

त्रिकण्टकनिशारोध्रसोमवल्कवचार्जुनैः ।
पद्मकाश्मन्तकारिष्टचन्दनागुरुदीप्यकैः ॥१७॥
पटोलमुस्तमञ्जिष्ठामाद्रीभल्लातकैः पचेत् ।
तैलं वातकफे पित्ते घृतं मिश्रेषु मिश्रकम्॥१८॥

गोखरू, हलदी, लोध, श्वेतखैर, वच, अर्जुन, पद्मकाष्ठ, अश्मन्तक, नीम, चन्दन, अगर, अजवायन, पटोल, नागरमोथे, मजीठ, अतीस और भिलावे इनसे सिद्ध कियाहुआ तेल वातकफके प्रमेहोंमें प्रयोग करना चाहिये। पित्तके प्रमेहोंमें इन ही द्रव्योंसे बनायाहुआ घृत सेवन कराना चाहिये । मिलेहुए दोषोंमें घृत तेल मिलाकर प्रयोग करना चाहिये ॥ १७॥ १८॥

धान्वन्तर घृत ।

दशमूलं शठीं दन्तीं सुराह्वं द्विपुनर्नवम् ।
मूलं स्नुगर्कयोःपथ्यां भूकदम्बमरुष्करम्॥१९॥
करञ्जवरुणान्मूलं पिप्पल्याः पौष्करं च यत् ।
पृथग् दशपलं प्रस्थान् यवकोलकुलत्थतः२०॥
त्रींश्चा ष्टगुणिते तोये विपचेत्पादवर्तिना ।
तेन द्विपिप्पलीचव्यवचानिचुलरोहिषैः ॥ २१॥
त्रिवृद्विडङ्गकम्पिल्लभार्गीबिल्वैश्च साधयेत् ।
प्रस्थं घृताज्जयेत्सर्वांस्तन्मेहान् पिडिकाविषम्॥
पाण्डुविद्रधिगुल्मार्शः शोफशोषगरोदरम् ।
श्वासं कासं वमिं वृद्धिं प्लीहानं वातशोणितम्॥
कुष्ठोन्मादावपस्मारं धान्वन्तरमिदं घृतम् ॥२४

दशमूलकी दश औषध, कचूर, दन्ती, देवदारु, लालपुनर्नवा, श्वेतपुनर्नवा, थोहरकी जड़, आककी जड़, हरड़, भूकदम्ब, भिलावे, करंज, वरुणवृक्षकी जड़, पीपल, और पोहकरमूल ये प्रत्येक द्रव्य दश दश पल, जौ एक सेर, बेर एक सेर, कुलथी एक सेर, इन सबको आठगुणे जलमें पकावे जब चौथाभाग शेष रहे तो उतार कर छान लेवे इस काथमें-पीपल, गजपीपल, चव्य, वच, वेतस, रोहिषतृण, निशोथ, वायबिडंग, कमीला, भारंगी और बिल्व इनका एक पाव चूर्णकर कल्क बनावे यह कल्क दशमूलादि काथ और एकसेर घृत मिलाकर घृत सिद्ध करे इस घृतके सेवनसे सब प्रकारके प्रमेह, प्रमेह-पिटिका, विष, पाण्डु, विद्रधि, गुल्म, अर्श, सूजन, शोष, गर, उदररोग, श्वास, कास, वमन, अंत्रवृद्धि, प्लीहा, वातरक्त, कुष्ठ, उन्माद और अपस्मार ये सब रोग नष्ट होते है इसको धान्वन्तर घृत कहते हैं ॥ १९–२४ ॥

रोध्रासव ।

रोध्रमूर्वाशठीबेल्लभार्गीनतनखप्लवान् ।
कलिङ्गकुष्ठक्रमुकप्रियंग्वतिविषाग्निकान् ।

द्वे विशाले चतुर्जातं भूनिम्बं कटुरोहिणीम् २५
यवानीं पौष्करं पाठां ग्रन्थिं चव्यं फलत्रयम् ।
कर्षांशमम्बुकलशे पादशेषे शृते हिमे ॥२६॥
द्वौ प्रस्थौ माक्षिकात्क्षिप्त्वा रक्षेत्पक्षमुपेक्षया ।
रोध्रासवोऽयं मेहार्शःश्वित्रकुष्ठारुचिकृमीन् ।
पांडुत्वं ग्रहणीदोषं स्थूलतां च नियच्छति॥२७

लोध, मूर्वा, कचूर, वायबिंडग, भारंगी, तगर, नखद्रव्य, केवटी, मोथा, इन्द्रजौ, कूठ, सुपारी, प्रियंगु, अतीस, चित्रक, इन्द्रायण, अजमोद, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, चिरायता, कुटकी, अजवायन, पोहकरमूल, पाठा, पिप्पलामूल, चव्य, हरड़, बहेड़ा और आमला इन प्रत्येकको एक एक कर्ष लेकर एक द्रोण जलमें पकावे चौथाभाग शेष रहनेपर छानकर ठंढा करे फिर इसमें दोसेर मधु डालकर १५ दिन तक मुखबन्द करके रक्खे फिर सेवन करे यह रोध्रासव प्रमेह, अर्श, श्वित्रकुष्ठ, अरुचि, कृमिरोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी और मेदरोगको दूर करता है ॥ २५–२७ ॥

अयस्कृति आसव ।

साधयेदसनादीनां पलानां विंशतिं पृथक् २८॥
द्विवहेऽपां क्षिपेत्तत्र पादस्थे द्वे शते गुडात् ।
क्षौद्राढकार्धं पलिकं वत्सकादि च कल्कितम् २९
तत्क्षौद्रपिप्पलीचूर्णं प्रदिग्धे घृतभाजने ।
स्थितं दृढे जतुस्तृते यवराशौ निधापयेत् ॥३०॥
खदिराङ्गारतप्तानि बहुशोऽत्र निमज्जयेत् ।
तनूनि तीक्ष्णलोहस्य पत्राण्यालोहसंक्षयात् ।
अयस्कृतिः स्थिता पीता पूर्वस्मादधिकागुणैः॥

विजयसार, तिनिस, भोजपत्र, अर्जुन, पूतिकरंज, खैर, श्वेतखैर, सिरीश, शीसम, मेढ़ासींगी, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, पीतचन्दन, तालवृक्ष, मलाश, अगर, शाकवृक्ष, शालवृक्ष, सुपारी, धव, कुटज, विधारा और अश्वकर्णवृक्ष ये प्रत्येक द्रव्य वीस वीस पल लेकर आठ द्रोण जलमे पकावे जब दो द्रोण जल शेष रहे तो उतार छानकर इसमें दो सौ पल गुड़ मिलावे और दो सेर मधु मिलावे. तथा कुटज, मूर्वा, भारंगी, कुटकी, मिर्च, अतीस, गंडीर, इलायची, पाठा, जीरा, श्योनाक, मैनफल, अजमोद, सर्सों, वच, कालाजीरा, हींग, विडंग, अजवायन, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ ये प्रत्येय एक एक पल लेकर पीसकर मिलावे फिर घृतके चिकने पात्रमें पीपलका चूर्ण और मधुका लेप करके इस सब द्रव्यको उस पात्रमें डाल पात्रका मुख लाखसे बन्द करके जौके ढेरमें १५ दिन रख छोड़ फिर निकालकर इसमें खैरके अंगारोंमें तपा तपा कर तीक्ष्ण लोहके वारीक पत्र बुझावे जब बार बार तप्त कर बुझानेसे वे सूक्ष्म लोहपत्र नष्ट होजाय तब इसको सिद्ध जाने। यह अयस्कृति आसव पीनेसे रोध्रासवसे बहुत अधिक गुण करता है २८-३१

रूक्षमुद्वर्तनं गाढं व्यायामो निशि जागरः ।
यच्चाऽन्यच्छ्लेष्ममेदोघ्नं बहिरन्तश्च तद्धितम् ३२

प्रमेह रोगवालेको रूक्ष उबटन मलना, अधिक व्यायाम करना और रातको जागना तथा अन्य भी जो कफमेदनाशक बाह्य या आभ्यन्तर उपाय है वे सब हितकारी होते है ॥ ३२ ॥

शिलाजतुप्रयोग ।

सुभावितांसारजलैस्तुलां पीत्वा शिलोद्भवात् ३३
साराम्बुनैव भुञ्जानः शालिं जाङ्गलजै रसैः ।
सर्वानभिभवेन्मेहान् सुबहूपद्रवानपि ॥३४॥
गण्डमालार्बुदग्रन्थिस्थौल्यकुष्ठभगन्दरान् ।
कृमिश्लीपदशोफांश्च परं चैतद्रसायनम् ॥ ३५ ॥

पांच सेर शिलाजीतको विजयसार आदिके क्वाथमें भावना देकर विजयसार आदिके क्वाथके साथ सेवन करे और शालीचावलोंका भात मूंगके यूष या जांगल रसोंके साथ भोजन करे तो सब प्रकारके प्रमेह, प्रमेहोंके अनेक उपद्रव, गण्डमाला, अर्बुद, ग्रन्थि, मेदरोग, कुष्ठ, भगन्दर, कृमिरोग, श्लीपद और सूजन ये सब दूर होते है तथा यह योग आयुवर्धक और रसायन है ॥ ३३–३५ ॥

निर्धन प्रमेहीकी चिकित्सा।

अधनश्छत्रपादत्ररहितो मुनिवर्तनः।
योजनानां शतं यायात्खनेद्वा सलिलाशयान्।
गोशकृन्मूत्रवृत्तिर्वा गोभिरेव सह भ्रमेत्॥३६॥

यदि प्रमेहरोगी निर्धन हो तो छतरी और जूता धारण न करके मुनियोंके समान वृत्ति रखतेहुए सौ योजन पैदल चले अथवा स्वयं तालाब खोदे। अथवा गौवोंके गोबर गोमूत्रमें ही रहे और गोपालन करताहुआ उनके साथ जगलमे विचरे तो प्रमेहरोग दूर होता है॥ ३६॥

बृंहयेदौषधाहारैरमेदोमूत्रलैः कृशम्॥ ३७॥

यदि प्रमेहरोगी कृश हो तो उसको जो मेद और मूत्रके बढानेवाले आहार न हों ऐसे औषध सिद्ध आहारोंसे पुष्ट करना चाहिये॥ ३७॥

प्रमेहपिटिकाओंकी चिकित्सा।

शराविकाद्याः पिटिकाः शोफवत्समुपाचरेत्।
अपक्वा व्रणवत्पक्वाः॥ ३८॥-

प्रमेहमे जो शराविका आदि पिटिका उत्पन्न हो जाती है यदि वे कच्ची हों तो शोथकी चिकित्साके समान चिकित्सा करे यदि पकजावें तो व्रणके समान चिकित्सा करना चाहिये॥ ३८॥

-तासां प्राग्रूप एव च॥
क्षीरिवृक्षाम्बु पानाय बस्तमूत्रं च शस्यते।
तीक्ष्णं च शोधनं प्रायो दुर्विरेच्या हि मेहिनः॥३९

प्रमेह पिटिकाओंके पूर्वरूपमें क्षीरीवृक्षोंका काथ या बकरेका मूत्र पीना चाहिये। तथा तीक्ष्ण विरेचन कराना चाहिये क्योंकि प्रायः प्रमेहरोगी दुर्विरेच्य होते है॥ ३९॥

तैलमेलादिना कुर्याद्गणेन व्रणरोपणम्।
उद्वर्तने कषायं तु वर्गेणारग्वधादिना।
परिषेकोऽसनाद्येन पानान्ने वत्सकादिना॥४०॥

सूत्रस्थानके पन्द्रहवें अध्यायमें कहेहुए एलादि गणके कल्क काथसे सिद्धकिया तेल प्रमेहपिटिकाके व्रणोंको भर देता है। सूत्रस्थानके १५-अध्यायमें कहे-हुए आरग्वधादि गणका उद्वर्तन (उबटना) मलना प्रमेहमें हितकारी है। असनादिगणके काथसे स्नान सेचन आदि करना हितकर होता है। वत्सकादि गणका सिद्ध जल पीना प्रमेहको शमन करता है॥४०॥

पाठा चित्रकशार्ङ्गेष्टा सारिवा कण्टकारिका४१
सप्ताह्वं कौटजं मूलं सोमवल्कं नृपद्रुमम्।
संचूर्ण्य मधुना लिह्यात्तद्वच्चूर्णं नवायसम्॥४२॥

पाठा, चित्रक, बड़ाकरंज, शारिवा, कटेली, सप्तपर्ण, कुटजकी जड़, सफेद खैर और अमलतास इनका चूर्णकर मधुसे चाटे या नवायस चूर्ण चाटे तो प्रमेह दूर होता है॥ ४१॥ ४२॥

मधुमेहित्वमापन्नो भिषग्भिः परिवर्जितः।
शिलाजतुतुलामद्यात्प्रमेहार्तः पुनर्नवः॥४३॥

जब बहुत पुराना प्रमेह मधुमेह बनगया हो और वैद्योंने असाध्य समझ छोड़दिया हो तो पांच सेर पक्को शिलाजीतका सेवन करनेसे वह पुरुष रोगमुक्त होकर दीर्घायुवाला होता है॥ ४३॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां चिकित्सास्थाने आयुर्वेदाचार्यपंशिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषायां द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः।

अथातो विद्रधिवृद्धिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः

अब हम विद्रधि और वृद्धिकी चिकित्साका कथन करते है-

विद्रधिं सर्वमेवामं शोफवत्समुपाचरेत्।
प्रततं च हरेद्रक्तं पक्वे तु व्रणवत्क्रिया॥ १॥

सब प्रकारकी कच्ची विद्रधियोंमे शोथरोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये। तथा जलौका आदिसे रक्तको निकालदेना चाहिये। तदनन्तर यदि पक-जाय तो व्रणके समान चिकित्सा करना चाहिये॥१॥

पञ्चमूलजलैर्धौतं वातिकं लवणोत्तरैः।
भद्रादिवर्गयष्ट्याह्वतिलैरालेपयेद्व्रणम्॥ २॥

वातप्रधान विद्रधिके व्रणको लवणयुक्त बृहत्पञ्च-मूलके काथसे धोकर सूत्रस्थानके १५ वें अध्यायमें

कहेहुए भद्रदार्वादि गणकी औषधियें, मुलहठी और तिल इनका बारीक कल्क बनाकर व्रणको लेपन करे ॥२॥

वैरेचनिकयुक्तेन त्रैवृतेन विशोध्य च ।
विदारीवर्गसिद्धेन त्रैवृतेनैव रोपयेत् ॥ ३ ॥

यदि विद्रधि शोधनकरनेके योग्य हो तो निशोथ और निकुम्भादिगणकी औषधियोंसे व्रणको शुद्धकर विदारीआदि गण और निशोथसे सिद्ध किये हुए तेल या घृतसे व्रणको रोपणकर देना चाहिये ॥ ३ ॥

क्षालितं क्षीरितोयेन लिम्पेद्यष्टयमृतातिलैः ।
पैत्तं घृतेन सिद्धेन मञ्जिष्ठोशीरपद्मकैः ॥ ४ ॥
पयस्याद्विनिशाश्रेष्ठायष्टीदुग्धैश्च रोपयेत् ।
न्यग्रोधादिप्रवालत्वक्फलैर्वा ॥ ५ ॥–

यदि पित्तकी विद्रधि हो तो क्षीरीवृक्षोंके काथसे व्रणको धोकर मुलहठी, गिलोय और तिलोंके कल्कका लेप करे। तथा मंजीठ, खस, पद्मकाष्ठ, क्षीरकाकोली, हल्दी, दारुहल्दी, गेन्देकी पत्तियें और मुलहठीके कल्क तथा दूध मिलाकर सिद्धकिएहुए घृतसे व्रणको रोपण करे। अथवा वटवृक्षआदि क्षीरीवृक्षोंकी जटा बल्कल और फलोंके कल्क काथसे सिद्धकिये घृतसे पित्तविद्रधिके व्रणको रोपण करे ॥ ४ । ५ ॥

–कफजं पुनः ।
आरग्वधाम्बुना धौतं सक्तुकुम्भनिशातिलैः ।
लिम्पेत्कुलत्थिकादन्तीत्रिवृच्छ्यामा–
–ग्निितिल्वकैः ।
ससैन्धवैःसगोमूत्रैस्तैलं कुर्वीत रोपणम् ॥ ६ ॥

कफजनित विद्रधिके व्रणको अमलतासके जलसे धोकर भूनेहुए जौके सत्तू, निशोथ, हल्दी और तिलोंके कल्कका लेप करे। तथा कुल्थी, दन्ती, निशोथ, कालीनिशोथ, चित्रक, तिल्वकलोध, सेन्धानमक और गोमूत्रसे सिद्ध कियाहुआ तैल लगाकर व्रणको रोपण करे६॥

रक्तागन्तूद्भवे कार्या पित्तविद्रधिवत्क्रिया ॥७॥

रक्तजनित विद्रधिके व्रणमें सब क्रियायें पित्तकी विद्रधिके समान करनी चाहिये ॥ ७ ॥

वरुणादिगणक्काथमपकेऽभ्यन्तरे स्थिते ।
ऊषकादिप्रतीवापं पूर्वाह्णे विद्रधौ पिबेत् ॥ ८ ॥

यदि अन्तर्विद्रधि हो तो उसकी अपक्कावस्थामें वरुणादिगणके काथमे ऊषकादिगणकी औषधियोंका कल्क मिलाकर प्रातःकाल पिलाना चाहिये ॥ ८ ॥

घृतं विरेचनद्रव्यैः सिद्धं ताभ्यां च पाययेत् ।
निरूहं स्नेहबस्तिं च ताभ्यामेव प्रकल्पयेत् ॥९॥

तथा विरेचनगणकी औषधियोंके कल्क और वरुणादि तथा ऊषकादिगणके काथसे सिद्ध किया घृत पिलाना चाहिये। और वरुणादि और ऊषकादि गणसे ही निरूहण वस्ति और स्नेहवस्तिकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ९ ॥

पानभोजनलेपेषु मधुशिग्रुः प्रयोजितः ।
दत्तावापो यथादोषमपकं हन्ति विद्रधिम् ॥१०॥

अन्तर्विद्रधिवालेको पीनेमें, भोजनमे और लेपनमें मीठे सुहांजनेका विशेष प्रयोग करना चाहिये। तथा यथादोष-नाशक द्रव्योंके काथमे मीठे सुहांजनेका कल्क मिलाकर पिलावे तो यह आभ्यन्तर अपक्वविद्रधिका भी नाश कर देता है ॥ १० ॥

त्रायन्तीत्रिफलानिम्बकटुकामधुकं समम् ।
त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां चत्वारोंऽशाःपृथक्पृथक्
मसूरान्निस्तुषादष्टौ तत्काथः सघृतो जयेत् ।
विद्रधीगुल्मवीसर्पदाहमोहमदज्वरान् ।
तृण्मूर्छाछर्दिहृद्रोगपित्तासृक्कुष्ठकामलाः ॥१२॥

त्रायमाणा, त्रिफला, निम्ब, कटुकी, और मुलहठी, यह प्रत्येक एक एक भाग, निशोथ और पटोलकी जड चार चार भाग, निस्तुष मसूर ८ भाग इनका काथ घृत मिलाकर पीनेसे विद्रधि, गुल्म, विसर्प, दाह, मोह, मद, ज्वर, तृषा, मूर्छा, छर्दी, हृद्रोग, पित्तरक्त, कुष्ठ और कामला ये सब रोग दूर होते है ॥ ११–१२ ॥

कुडवं त्रायमाणायाःसाध्यमष्टगुणेऽम्भसि १३॥
कुडवं तद्रसाद्धात्रीस्वरसात्क्षीरतो घृतात् ।
कर्षांशं कल्कितं तिक्तात्रायन्तीधन्वयासकम्॥
मुस्तातामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलम् ।
पचेदेकत्र संयोज्य तद्घृतं पूर्ववद्गुणैः ॥ १५ ॥

१ गायत्रीति पाठान्तरम् (गायत्रीसे कत्था लेना चाहिये

त्रायमाण एक कुडव परिमाण लेकर आठ गुने जलमे पकावे आठवां भाग शेष रहनेपर छान लेवे। इसमें एक कुडव आमलेका रस, दूध १ कुडव, घृत १ कुडव तथा कुटकी १ कर्ष, त्रायमाण १ कर्ष, जवासा १ कर्ष, नागरमोथा १ कर्ष, भूमिआमला १ कर्ष, अतीस १ कर्ष, जीवन्ती १ कर्ष, चन्दन १ कर्ष और कमल १ कर्ष इनका कल्क और त्रायमाणका रस आदि सब मिलाकर घृत सिद्धकरे इस घृतके पीनेसे विद्रधि आदि उपरोक्त संपूर्ण रोग नष्ट होते है १३-१५

द्राक्षा मधूकं खर्जूरं विदारी सशतावरी ।
परूषकाणि त्रिफला तत्क्वाथे पाचयेद्घृतम् ।
क्षीरेक्षुधात्रीनिर्यासे प्राणदाकल्कसंयुतम् ।
तच्छीतं शर्कराक्षौद्रपादिकं पूर्ववद्गुणैः ॥१६॥

द्राक्षा, महुवा, खजूर, विदारीकन्द, शतावर, फालसा और त्रिफला इनके क्वाथमें हरड़का कल्क, दूध, ईखका रस और आमलेका रस मिलाकर घृत सिद्ध करे जब घृत ठंढा होजावे तो इसमें चौथा २ भाग मधु और मिसरी मिलाकर सेवन करे यह घृत विद्रधि गुल्म आदि विकारोंको शमन करके शरीरमें बल और पुष्टि करता है ॥ १६ ॥

हरेच्छृङ्गादिभिरसृक् सिरया वा यथान्तिकम् ॥

विद्रधिमेंसे सिंगी (श्रृंग) लगाकर रक्त निकाले अथवा उससे सम्बन्धवाली शिरा वेधन कर रक्त निकालना चाहिये ॥ १७ ॥

विद्रधिं पच्यमानं च कोष्ठस्थं बहिरुन्नतम् ।
ज्ञात्वोपनाहयेत् ॥ १८ ॥-

यदि विद्रधि पक रही हो और कोष्ठमें होतेहुए भी बाहरको उन्नत (उठीहुई) हो तो उसपर उपनाह स्वेद (पुलटसबांधना आदि) क्रिया करनी चाहिये ॥

-शूले स्थिते तत्रैव पिण्डिते ।
तत्पार्श्वपीडनात्सुप्तौ दाहादिष्वल्पकेषु च ।
पक्वःस्याद्विद्रधिं भित्त्वा व्रणवत्तमुपाचरेत् ॥ १९

यदि उसी पिण्डितस्थानमें शूल हो और उसके पार्श्वभागको दबानेसे शून्यता प्रतीत हो और दाहादिकमें अल्पता प्रतीति होती हो तो उसको परिपक्व जानकर भेदन करे और व्रणको शुद्ध कर व्रणकी क्रियासे रोपण करे ॥ १९ ॥

अन्तर्भागस्य चाप्येतच्चिह्नं पक्वस्य विद्रधेः२०॥

अन्तर्विद्रधिके पकजानेसे भी उसमे दाह चोषादि पक्व विद्रधिके लक्षण हो जाते है ॥ २० ॥

पक्वः स्रोतांसि संपूर्य स यात्यूर्ध्वमधोऽथवा ।
स्वयं प्रवृत्तं तं दोषमुपेक्षेत हिताशिनः ॥२१॥
दशाहं द्वादशाहं वा रक्षन् भिषगुपद्रवान् ।
असम्यग्वहति क्लेदे वरणादिं सुखाम्भसा ।
पाययेन्मधुशिग्रुं वा यवागूं तेन वा कृताम्२२

अन्तर्विद्रधि पककर फूट जानेसे स्रोतोंको क्लेदित कर ऊर्ध्वमार्गसे या अधोमार्गसे पूय आदि निकलने लगते हैं । वह स्वयं निकलता रहे तो केवल हित आहार आदि सेवन करताहुआ दश या बारह दिन देखता रहे । यदि क्लेदका स्राव यथार्थ न हो तो वरणादिगणका कल्क सुखोष्ण जलसे पीवे अथवा मधुर सुहांजनेका क्वाथ या उसीसे सिद्ध यवागू पीना चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

यवकोलकुलत्थोत्थयूषैरन्नं च शस्यते ॥ २३॥

तथा यव, बेर और कुलथीसे बनायेहुए यूष और अन्न खानेको देना हितकारी होता है ॥ २३ ॥

ऊर्ध्वं दशाहात्त्रायन्तीसर्पिषा तैल्वकेन वा ।
शोधयेद्बलतः शुद्धः सक्षौद्रं तिक्तकं पिबेत् २४

जब अन्तर्विद्रधिको फूटेहुए दशदिन व्यतीत हो चुके तब इसी अध्यायमें पीछे कहेहुए त्रायमाणा आदि घृत या तैल्वक घृत पिलाकर रोगीके बलानुसार रेचन करावे फिर शुद्ध होनेके अनन्तर मधुयुक्त तिक्त क्वाथ पिलावे ॥ २४ ॥

सर्वशो गुल्मवच्चैनं यथादोषमुपाचरेत् ॥२५ ॥

अन्तर विद्रधिकी सब चिकित्सा दोषानुसार गुल्मरोगके समान करना चाहिये ॥ २५ ॥

सर्वावस्थासु सर्वासु गुग्गुलुं विद्रधीषु च ।
कषायैर्यौगिकैर्युञ्ज्यात्स्वैःस्वैस्तद्वच्छिलाजतु२६

सब प्रकारकी विद्रधियोंमें सब अवस्थाओंमें यथादोष यौगिक क्वाथोंसे गुग्गुलका सेवन कराते रहाना चाहिये तथा दोषोचित औषधोंके क्वाथोंसे शिलाजीतका सेवन करना भी उसी प्रकार अति गुणकारी होता है ॥२६॥

पाकं च वारयेद्यत्नात्सिद्धिः पक्वे हि दैविकी ।
अपि चाऽऽशु विदाहित्वाद्विद्रधिः सोऽभिधीयते
सति चालोचयेन्मेहे प्रमेहाणां चिकित्सितम् २७

विद्रधिको उत्पन्न होते ही चिकित्सा द्वारा शमन करदेना चाहिये और पकनेकी अवस्थातक पहुंचनेसे पहिले ही शमन करदेना चाहिये. क्योंकि, अन्तर्विद्रधि पकजानेपर रोगीका अच्छा होना दैवाधीन होता है। विद्रधि शीघ्र विदाह पाकको प्राप्त होजानेवाला रोग होनेसे ही विद्रधि कही जाती है इस कारण इसको पकनेसे प्रथम ही शीघ्र शमन कर देना चाहिये। यदि विद्रधिवाले रोगीको प्रमेह भी हो तो प्रमेहकी चिकित्सा (शिलाजित आदिसे जो दोनोंमें हित हो) करना चाहिये ॥ २७ ॥

स्तनविद्रधिकी चिकित्सा ।

स्तनजे व्रणवत्सर्वं न त्वेनमुपनाहयेत् ।
पाटयेत्पालयन्स्तन्यवाहिनीः कृष्णचूचुकौ ।
सर्वास्वामाद्यवस्थासु निर्दुहीत च तत्स्तनम् २८

यदि स्त्रीके स्तनपर विद्रधि होजावे तो उसकी सब चिकित्सा व्रणके समान करना चाहिये। किन्तु इसको उपनाह स्वेद नहीं करना चाहिये। तथा इसको उत्पाटन करनेके समय दूधके वहनकरनेवाली सिराओं और काले चूचक भागको बचा लेना चाहिये। और सब प्रकारकी स्तनविद्रधियोंमे सब आम या पक्व अवस्थामें स्तनको दुहते रहना अर्थात् उस स्तनसे दूध निकालते रहना चाहिये ॥ २८ ॥

वातजअण्डवृद्धिरोगकी चिकित्सा ।

शोधयेत्त्रिवृता स्निग्धं वृद्धौ स्नेहैश्चलात्मके ।
कौशाम्रतिल्वकैरण्डसुकुमारकमिश्रकैः ॥२९॥

यदि वृद्धि (वधरोग और अण्ड) चलनेवाली हो तो उस रोगीको कोशाम्र, तिल्वक स्नेह और एरण्ड तैलसे स्निग्धकर अथवा आगे कहेहुए सुकुमार(या गुल्मचिकित्सामें) कहे मिश्रक स्नेहसे स्नेहनकर निशोथके घृतसे रेचन करावे ॥ २९ ॥

ततोऽनिलघ्ननिर्यूहकल्कस्नेहैर्निरूहयेत् ॥ ३० ॥
रसेन भोजितं यष्टितैलेनान्वासयेदनु ।
स्वेदप्रलेपा वातघ्नाः पक्वे भित्त्वा व्रणक्रियाः३१

फिर वातनाशक निर्यूह (क्वाथ), कल्क और तैलसे निरूहणवस्ति करावे फिर वातनाशक रस यूषआदि भोजन करनेपर मुलहठी आदिसे सिद्ध तैलसे अनुवासन करावे तथा वातनाशक स्वेदन और प्रलेप वृद्धिस्थानपर करनेचाहिये। यदि वृद्धि पक जावे तो भेदनकर व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ ३०॥३१॥

रक्तपित्तजवृद्धिकी चिकित्सा ।

पित्तरक्तोद्भवे वृद्धावामपक्वे यथायथम् ।
शोफव्रणक्रियां कुर्यात् प्रततं च हरेदसृक् ३२

रक्त और पित्तकी वृद्धि कची हो तो उसमेंसे निरन्तर रक्त निकालना चाहिये तथा कची अवस्थामें शोथके समान और पकजानेपर व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

कफजवृद्धिकी चिकित्सा ।

गोमूत्रेण पिबेत्कल्कं श्लैष्मिके पीतदारुजम् ।
विम्लापनादृतेचात्र श्लेष्मग्रंथिक्रमो हितः॥३३

कफजनित वृद्धि (अण्डवृद्धि) में दारुहल्दीका कल्क गोमूत्रमें मिलाकर पीवे इसमें विम्लापन क्रियाके विना बाकी सब क्रिया कफके ग्रन्थिरोगके समान करना हितकारी होता है ॥ ३३ ॥

पक्वे च पाटिते तैलमिष्यते व्रणशोधनम् ।
सुमनोरुष्करकराङ्कोल्लसप्तपर्णेषु साधितम् ।
पटोलनिम्बरजनीविडङ्गकुटजेषु च ॥ ३४ ॥

पकजानेपर चीरा देकर (उत्पाटनकरके) चमेलीके पत्र, भिलावे, अंकोल, सप्तपर्ण, पटोलपत्र, निंबपत्र, हलदी, वायविडंग और कुटज इनके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया तैल लगाकर व्रणको शुद्ध करनाचाहिये ३४

मेदजनित वृद्धिका यत्न ।

मेदोजं मूत्रपिष्टेन सुस्विन्नं सुरसादिना ॥ ३५ ॥
शिरोविरेकद्रव्यैर्वा वर्जयन्फलसेवनीम् ।

दारयेद्वृद्धिपत्रेण सम्यङ्मेदसि सूद्धृते ॥ ३६ ॥
व्रणं माक्षिककासीससैन्धवप्रतिसारितम् ।
सीव्येदभ्यञ्जनं चास्य योज्यं मेदोविशुद्धये ३७
मनःशिलैलासुमनोग्रन्थिभल्लातकैः कृतम् ।
तैलमाव्रणसन्धानात्स्नेहस्वेदौ च शीलयेत् ३८

मेदजनित वृद्धमें सुरसादिगणकी औषधियोंको गोमूत्रमें पीसकर गर्म करके स्वेदन करे अथवा शिरोविरेचनीयगणके द्रव्योंको गोमूत्रमें पीसकर गर्म करके पहले वृद्धिको स्वेदन करे तदनन्तर शिश्नेन्द्रिय और अण्डकोशकी सीवनको बचाकर वृद्धिपत्र शस्त्रसे दारण कर मेद निकाल देवे । फिर मेदको यथार्थ निकालदेनेके अनन्तर व्रणको सहद, कासीस और सैंधव नमकसे प्रतिसारण करके सूईसे सी देवे । तथा मेदकी शुद्धिके लिये मनशिल, इलायची, चमेलीके पत्र, पीपलामूल और भिलावे इनसे सिद्ध किया तैल लगाता रहै और व्रण यथार्थ भर जानेतक स्नेहन और स्वेदनका प्रयोग उस स्थानपर करता रहे ॥ ३६-३८ ॥

मूत्रजवृद्धिका यत्न ।

मूत्रजं स्वेदितं स्निग्धैर्वस्त्रपट्टेन वेष्टितम् ।
विध्येदधस्तात्सेवन्या स्रावयेच्च यथोदरम् ॥
व्रणं च स्थगिकाबद्धं रोपयेत् ॥ ३९ ॥-

मूत्रज अण्डवृद्धि स्निग्ध द्रव्योंसे स्वेदन करके वस्त्रकी पट्टीसे बांधकर सेवनीसे नीचे वेधन करे तथा जलोदरके वेधन समान मूत्रको निकाल देवे तदनन्तर व्रणपर स्थगिकाका बन्धन बांधकर व्रणको रोपण करे ॥ ३९ ॥

अंत्रजवृद्धिका यत्न ।

-अन्त्रहेतुके ।
फलकोशमसंप्राप्ते चिकित्सा वातवृद्धिवत् ४०॥

अन्त्रसे वृद्धिरोग हो तो उसकी वातवृद्धिके समान अण्डकोशोंकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४० ॥

सुकुमार रसायन स्नेह ।

पचेत्पुनर्नवतुलां तथा दशपलाः पृथक् ।
दशमूलपयस्याश्वगन्धैरण्डशतावरीः॥ ४१ ॥
द्विदर्भशरकाशेक्षुमूलपोटगलान्विताः ।
वहेऽपामष्टभागस्थे तत्र त्रिंशत्पलं गुडात्॥ ४२॥
प्रस्थमेरण्डतैलस्य द्वौ घृतात्पयसस्तथा ।
आवपेद्द्विपलांशं च कृष्णातन्मूलसैन्धवम् ४३
यष्टीमधुकमृद्वीकायवानीनागराणि च ।
तत्सिद्धं सुकुमाराख्यं सुकुमारं रसायनम् ४४॥
वातातपाध्वयानादिपरिहार्येष्वयन्त्रणम् ।
प्रयोज्यं सुकुमाराणामीश्वराणां सुखात्मनाम् ॥
नृणां स्त्रीवृन्दभर्तॄणामलक्ष्मीकलिनाशनम् ।
सर्वकालोपयोगेन कान्तिलावण्यपुष्टिदम् ॥४६
वर्ध्मविद्रधिगुल्मार्शोयोनिमेढ्रानिलार्तिषु ।
शोफोदरखुडप्लीहाविड्विबन्धेषु चोत्तमम् ॥ ४७ ॥

पुनर्नवा १०० पल, दशमूलके दश द्रव्य पृथक् पृथक् दश दश पल, क्षीरकाकोली, सुहांजना, एरंडकीजड़, शतावर, कुशा, दर्भ, शरकण्डा, कांसकी जड़ ईखकी जड़ और नरसलकी जड़ इन सबको चार द्रोण जलमें पकावे आठवां भाग शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । इसमें तीस पल गुड़, एक सेर एरण्डतैल, दो सेर घृत, दो सेर दूध, तथा मुलहठी, मुनक्का, अजवायन और सोंठ प्रत्येक दो दो पल डालकर सिद्ध करे । यह सुकुमार रसायन सेवन करनेमें वात, धूप, मार्गचलना और सवारी आदि करना कोई त्याज्य नहीं है. यह सुकुमार पुरुष, राजालोग, सुखीजीवनवाले और अनेक स्त्रियोंके पतियोंको सेवन कराने योग्य रसायन है । इसके सेवनसे अलक्ष्मी और शरीरका कलुषितपन दूर होता है । इसको सब कालमें सेवन करनेसे कान्ति, लावण्य और शरीरकी पुष्टि होती है। तथा वर्ध्म, विद्रधि, गुल्म, अर्श, योनिशूल, मेढ्रशूल, वातरोग, सूजन, उदररोग, खुडरोग, प्लीहा और विष्ठाका विबन्ध ये सब रोग दूर होते हैं यह उत्तम योग है ॥ ४१-४७ ॥

वंक्षणकी वृद्धिकी चिकित्सा ।

यायाद्वर्ध्म न चेच्छान्तिं स्नेहरेकानुवासनैः ।
बस्तिकर्म पुरः कृत्वा वंक्षणस्थं ततो दहेत् ।
अग्निना मार्गरोधार्थं मरुतः ॥ ४८ ॥-

यदि वंक्षण अर्थात् टांगकी जड़की सन्धिमें उत्पन्न हुई वृद्धि (वध) स्नेहन, विरेचन और अनुवासन आदिसे शांत न हो तो प्रथम वस्तिकर्म करके फिर वक्षणस्थ वर्त्मको वायुका मार्ग रोकनेके लिये अग्निसे दग्ध करे ॥ ४८ ॥

—अर्धेन्दुवक्रया ।
अङ्गुष्ठस्योपरि स्नावपीतं तन्तुसमं च यत् ॥४९॥
उत्क्षिप्य सूच्या तत्तिर्यग्दहेच्छित्त्वा यतो गदः।
ततोऽन्यपार्श्वेऽन्येत्वाहुर्दहेद्वानामिकाङ्गुलेः ॥५०॥
गुल्मेऽन्यैर्वातकफजे प्लीह्नि चायं विधिः स्मृतः।
कनिष्ठिकानामिकयोर्विश्वाच्यां च यतो गदः ॥

कोई कहते हैं कि जिस ओरके अण्डकोशमें वृद्धि होने लगे उसी पांवके अंगूठेके ऊपर जो तन्तुके समान नस है उसको अर्धचन्द्राकार सूईसे तिरछी छेदन करके अग्निसे दहन कर देवे तो वृद्धिरोग शमन हो जाता है। किसीके मतमें दूसरे पांवके अंगूठे पर यह क्रिया करनी चाहिये। अथवा अनामिका अंगुली पर इसी नसपर उक्त प्रकारसे दहन करे। कोई कहते हैं-कफवातज गुल्ममें और प्लीहारोगमें अनामिकाके ऊपरके नसको उक्त प्रकारसे छेदन कर दग्ध करे। तथा विश्वाची नामक वातव्याधिमें कनिष्ठिका और अनामिकाके ऊपर उसी ओर सूचीसे छेदन कर दग्ध करे जिस ओरकी बाहूमें विश्वाची रोग हो। (इन ही रोगोंमे इन ही स्थानोंपर चित्रककी जड़के छिलकेका गुल लगानेसे यही गुण होता है) ॥ ४९–५१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां चिकित्सास्थाने आयुर्वेदाचार्य प० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथाऽतो गुल्मचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब हम गुल्म चिकित्साकी व्याख्या करते है ।

वातज गुल्मकी चिकित्सा ।

गुल्मं बद्धशकृद्वातं वातिकं तीव्रवेदनम् ।
रूक्षशीतोद्भवं तैलैःसाधयेद्वातरोगिकैः ॥ १ ॥
पानान्नान्वासनाभ्यङ्गैःस्निग्धस्य स्वेदमाचरेत् ।
आनाहवेदनास्तम्भविबन्धेषु विशेषतः ॥ २ ॥
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम् ।
भित्त्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति॥

वातगुल्ममें जिसमें बल और वायुका वेग रुक जावे और तीव्र शूल भी होता हो तथा रूक्ष शीत कारणोंसे यह गुल्म उत्पन्न हुआ हो या बढ़ता हो तो वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तैलोंके प्रयोगोंसे शमन करना चाहिये। तथा स्निग्ध उष्ण अन्न पानका सेवन, वातनाशक तैलोंसे अनुवासनवस्तिका प्रयोग और स्नेहन कर स्वेदन करना। विशेषकर आनाह, स्तम्भ और विबंधमें तो विशेष स्वेदन स्नेहन करना चाहिये। इस प्रकार स्नेहन और स्वेदनसे स्रोतोंको मृदु बनाकर बढ़ीहुई वायुके विबन्धको भेदन करके वह स्निग्ध पुरुषको किया स्वेद गुल्मरोगको नाश कर देता है॥ १-३

स्नेहपानं हितं गुल्मे विशेषेणोर्ध्वनाभिजे ।
पक्वाशयगते बस्तिरुभयं जठराश्रये ॥ ४ ॥

वातज गुल्मरोगमें स्नेहपान करना चाहिये. यदि वह नाभिसे ऊपर हो तो विशेषरूपसे गुल्मनाशक स्नेह पीना चाहिये। यदि पक्वाशयमें गुल्म हो तो स्नेह वस्ति करना चाहिये। यदि जठराश्रित गुल्म हो तो स्नेहपान और स्नेहवस्ति दोनोंका प्रयोग करना चाहिये. ऐसा करनेसे वातगुल्म शमन हो जाता है ॥ ४ ॥

दीप्तेऽग्नौ वातिके गुल्मे विबन्धेऽनिलवर्चसोः ।
बृंहणान्यन्नपानानि स्निग्धोष्णानि प्रदापयेत् ।
पुनःपुनः स्नेहपानं ॥ ५ ॥—

यदि वायुके गुल्ममें जठराग्नि दीप्तहो और अपान वायु तथा मलका विबंध हो तो बृंहण करनेवाले स्निग्ध उष्ण अन्न पानका प्रयोग कराना चाहिये और बार बार स्नेह पान कराना चाहिये ॥ ५ ॥

वातगुल्ममें वस्तिकर्म ।

—निरूहाः सानुवासनाः ।
प्रयोज्या वातजे गुल्मे कफपित्तानुरक्षिणः॥६॥

वातजगुल्ममें कफ और पित्तकी रक्षा रखतेहुए

निरूहण और अनुवासनवस्तियोंका प्रयोग भी करना चाहिये ॥ ६ ॥

बस्तिकर्म परं विद्याद्गुल्मघ्नं तद्धि मारुतम्।
स्वस्थाने प्रथमं जित्वा सद्यो गुल्ममपोहति॥७॥
तस्मादभीक्ष्णशो गुल्मा निरूहैः सानुवासनैः।
प्रयुज्यमानैः शाम्यन्ति वातपित्तकफात्मकाः॥८॥

वस्तिकर्म करना वातजगुल्ममें विशेष हितकारी है। वह वस्तिकर्म वायुको वायुके स्थानमें प्रथम जीतकर गुल्मको शीघ्र ही नाश कर देता है। इस कारण निरन्तर निरूहण और अनुवासनवस्तियोंका प्रयोग करनेसे वात, पित्त और कफके गुल्म सब ही शमन होजाते है ॥ ७ ॥ ८ ॥

वातगुल्मनाशक हिंग्वादिघृत।

हिङ्गुसौवर्चलव्योषविडदाडिमदीप्यकैः।
पुष्कराजाजिधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः॥९॥
शठीवचाजगन्धैलासुरसैर्दधिसंयुतैः।
शूलानाहहरं सर्पिःसाधयेद्वातगुल्मिनाम्॥१०॥

हींग, संचरलवण, सोंठ, मिर्च, पीपल, विडलवण, दाड़िम, अजवायन, पोहकरमूल, जीरा, धनियां, अम्लवेत, जवखार, चित्रक, कचूर, बच, अजमोद, इलायची और तुलसी इन सबके कल्क और चारगुणी दही मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत पीनेसे वातका गुल्म तथा शूल आनाह नष्ट होजाता है ॥ ९ ॥ १० ॥

हपुषादि घृत।

हपुषोषणपृथ्वीकापञ्चकोलकदीप्यकैः।
साजाजीसैन्धवैर्दध्ना दुग्धेन च रसेन च॥११॥
दाडिमान्मूलकात्कोलात्पचेत्सर्पिर्निहन्ति तत्।
वातगुल्मोदरानाहपार्श्वहृत्कोष्ठवेदनाः।
योन्यर्शोग्रहणीदोषकासश्वासारुचिज्वरान्॥१२

हाऊवेर, कालीमिर्च, कलौंजी, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, जीरा और सेंधालवण इन सबको एक पाव लेकर कल्क बनावे इस कल्कमें एक सेर दही, एक सेर दूध, एक सेर दाड़िमका रस, एक सेर मूलीका रस और एक सेर बेरका रस तथा एक सेर गोघृत मिलाकर घृतपाक विधिसे पकावे घृतमात्र शेषरहनेपर इस घृतको मात्रानुसार पीवे तो वात, गुल्म, उदररोग, आनाह, पार्श्वशूल, हृच्छूल, कोष्ठशूल, योनिरोग, अर्श, ग्रहणीदोष, कास, श्वास, अरुचि और ज्वर ये सब नाश होते हैं ॥ ११-१२ ॥

दशमूलादि घृत।

दशमूलं बलां कालां सुषवीं द्वौ पुनर्नवौ॥१३॥
पौष्करैरण्डरास्नाश्वगन्धभार्ग्यमृताशठीः।
पचेद्गन्धपलाशं च द्रोणेऽपां द्विपलोन्मितम्॥
यवैःकोलैःकुलत्थैश्च माषैश्च प्रास्थिकैः सह।
काथेऽस्मिन्दधिपात्रे च घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥
स्वरसैर्दाडिमाम्रातमातुलुङ्गोद्भवैर्युतम्।
तथा तुषाम्बुधान्याम्लयुतैःश्लक्ष्णैश्च कल्कितैः
भार्गीतुम्बुरुषड्ग्रन्थाग्रन्थिरास्नाग्निधान्यकैः।
यवानकयवान्यम्लवेतसासितजीरकैः॥१७॥
अजाजीहिङ्गुहपुषाकारवीवृषकोषकैः।
निकुम्भकुम्भमूर्वेभपिप्पलीवेल्लदाडिमैः॥१८॥
श्वदंष्ट्रात्रपुसैर्वारुबीजहिंस्राश्मभेदकैः।
मिसिद्विक्षारसुरससारिवानीलिनीफलैः॥१९॥
त्रिकटुत्रिपटूपेतैर्दाधिकं तद्व्यपोहति।
रोगानाशुतरान्पूर्वान्कष्टानपि च शीलितम्।
अपस्मारगरोन्मादमूत्राघातानिलामयान्॥२०॥

दशमूलके दश द्रव्य, खरेटी, काला दाना, कलौंजी, पुनर्नवा पोहकरमूल, एरण्डकी जड़, रास्ना, असगन्ध, भारंगी, गिलोय, कचूर और गन्धपलाश ये प्रत्येक दो दो पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे इसी जलमें जौ एक सेर, बेर एक सेर, कुलथी एक सेर और उड़द(माषान्न) एक सेर ये सब पकनेसे पहले डालदेवे जब चौथा भाग शेषरहे तो छानकर इस काथमें एक सेर घृत तथा चार सेर दही मिलावे इसमें एक सेर दाड़िमका रस, एक सेर आम्रातकका रस, एक सेर बिजौरे नींबूका रस, तुषाम्बु एक सेर, धान्याम्ल एक सेर और भारंगी, नैपाली धनियां, वच, पिप्पलामूल, रास्ना, चित्रक, धनियां, अजवायन, इंद्रजौ, अम्लवेत, काला जीरा, सफेद जीरा, हींग, हाऊवेर, कलौंजी, बांसा, ऊषकक्षार, दन्ती, निशोथ, मूर्वा, गजपीपल, विडंग

दाड़िम, गोखरू, खीरेके बीज, ककड़ीके बीज, हींसकी जड़, पाषाणभेद, सौंफ, जवाखार, सज्जीखार, तुलसी, शारिवा, काला दाना, सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधालवण, सचरलवण, विडलवण इन सबको मिलाकर एक पाव लेकर बारीक पीसकर कल्क बनावे यह कल्क और उपरोक्त सब द्रव्य मिलाकर घृत सिद्ध करे इस दशमूलदाधिक घृतके सेवनसे वात गुल्मादि उपरोक्त सम्पूर्ण रोग कष्टसाध्य होनेपर भी शीघ्र नाश होजाते है. तथा अपस्मार, गर, उन्माद, मूत्राघात और सम्पूर्ण वातरोग शमन, होते है ॥ १३--२० ॥

त्र्यूषणादि घृत ।

त्र्यूषणत्रिफलाधान्यचविकाविल्लचित्रकैः ।
कल्कीकृतैर्घृतं पक्वं सक्षीरं वातगुल्मनुत्॥२१॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, धनिया चव्य, वायविड़ंग और चित्रक इन सबके कल्क और दूधसे पकाकर सिद्ध किया घृत पीनेसे वातगुल्म नाश हो जाता है ॥ २१ ॥

लशुनादि घृत ।

तुलां लशुनकन्दानां पृथक्पञ्चपलांशकम्॥२२॥
पञ्चमूलं महच्चाम्बुभारार्धे तद्विपाचयेत् ।
पादशेषं तदर्धेन दाडिमस्वरसं सुराम्॥ २३ ॥
धान्याम्लं दधि चादाय पिष्टांश्चार्धपलांशकान्
त्र्यूषणत्रिफलाहिङ्गुयवानीचव्यदीप्यकान् २४।
साम्लवेतससिन्धूत्थदेवदारूनपचेद्घृतात् ।
तैःप्रस्थं तत्परं सर्ववातगुल्मविकारजित् ॥२५॥

लशुनकन्द एक सौ पल, बृहत्पञ्चमूलकी प्रत्येक औषध पांच पल इन सबको कूटकर दश सौ पल (पचास सेर) जलमें पकावे जब चौथा भाग जल शेष रहे तो उतारकर छान लेवे तथा दाड़िमका रस, सुरा, धान्याम्ल और दही ये सब मिलाकर एक सौ पचीस पल लेवे । त्र्यूषण, त्रिफला, हींग, अजवायन, चव्य, अजमोद, अम्लवेत, सेन्धालवण, और देवदारु ये सब मिलाकर एक पाव लेवे इनका कल्क और लशुन क्वाथादि उपरोक्त सब द्रवपदार्थ मिलाकर एक सेर घृत सिद्ध करे इस घृतके पीनेसे सब प्रकारके वात गुल्म और वात विकार शमन होते हैं ॥२२--२५॥

अन्य घृत ।

षट्पलं वा पिबेत् सर्पिर्यदुक्तं राजयक्ष्मणि ।
प्रसन्नया वा क्षीरार्थः सुरया दाडिमेन वा ।
घृते मारुतगुल्मघ्नः कार्यो दध्नः सरेण वा॥२६॥

राजयक्ष्मारोगकी चिकित्सामें कहा हुआ षट्पल घृत पीवे तो वातगुल्म नाश होता है। परन्तु इस षट्पल घृतको बनाते समय दूधके स्थानमें प्रसन्ना मद्य या सुरा अथवा दाड़िमका रस या दहीका जल मिलाकर घृत सिद्ध करना चाहिये ॥ २६ ॥

कफके संसर्गयुक्त वातगुल्मकी चिकित्सा ।

वातगुल्मे कफो वृद्धो हत्वाग्निमरुचिं यदि ।
हृल्लासं गौरवं तन्द्रां जनयेदुल्लिखेत्तु तम्॥२७॥

यदि वातगुल्ममें कफ बढकर जठराग्निको मन्द करके अरुचिको उत्पन्न करदे और हृल्लास, गुरुता तथा तन्द्राको उत्पन्न कर देवे तो उस रोगीको प्रथम वमन कराना चाहिये ॥ २७ ॥

शूलानाहविबन्धेषु ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम् ।
निर्यूहचूर्णवटकाः प्रयोज्या घृतभेषजैः ॥२८॥
कोलदाडिमघर्माम्बुतक्रमद्याम्लकाञ्जिकैः ।
मण्डेन वा पिबेत्प्रातश्चूर्णान्यन्नस्य वा पुरः२९

यदि वातगुल्मवालेका आशय चिकना हो और इसको शूल, आनाह तथा विबंध भी हो तो ऐसे रोगीको वातगुल्म नाशक घृतोंमें कहेहुए त्र्यूषणादि द्रव्योंका चूर्ण या क्वाथ अथवा गोलियें करके क्वाथके साथ या दाड़िमके रससे अथवा गर्मजलसे या तक्रके साथ अथवा धान्याम्ल या कांजीके साथ प्रातःकाल पहले सेवन कराना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

चूर्णानि मातुलुङ्गस्य भावितान्यसकृद्रसे ।
कुर्वीत कार्मुकतरान् वटकान् कफवातयोः ३०

गुल्ममें यदि वातकफका संसर्ग हो तो वातकफनाशक द्रव्यों (त्र्यूषणादि) के चूर्णको बिजौरे नींम्बूके रसकी बार बार भावना देकर गोलियें बनालेवे ये गोलियें सेवन करनेसे वातकफका गुल्म शीघ्र दूर होता है ॥ ३० ॥

हिंग्वादिचूर्ण।

हिङ्गुवचाविजयापशुगन्धा-
दाडिमदीप्यकधान्यकपाठाः ।
पुष्करमूलशठीहपुषाग्नि-
क्षारयुगत्रिपटुत्रिकटूनि ॥ ३१ ॥
साजाजिचव्यं सहतित्तिडीकं
सवेतसाम्लं विनिहन्ति चूर्णम् ।
हृत्पार्श्वबस्तित्रिकयोनिपायु-
शूलानि वाय्वामकफोद्भवानि ॥ ३२ ॥
कृच्छ्रान् गुल्मान्वातविण्मूत्रसङ्गं
कण्ठे बन्धं हृद्ग्रहं पाण्डुरोगम् ।
अन्नाश्रद्धाप्लीहदुर्नामहिध्मा-
वर्ध्माध्मानश्वासकासाग्निसादान्॥३३॥

हींग, वच, हरड़, अजवायन, अनारदाना, अजमोद, धनियां, पाठा, पोहकरमूल, कचूर, हाऊबेर, चित्रक, जवाखार, सज्जीखार, सेंधालवण, संचरलवण, विडलवण, सोंठ, मिर्च, पीपल, जीरा, चव्य, तितिडीका और अम्लवेत इन सबको सम भाग लेकर चूर्ण करे इस चूर्णके सेवन करनेसे हृच्छूल, पार्श्वशूल, बस्तिशूल, त्रिकशूल, योनिशूल, पायुशूल, वातशूल, आमशूल, कफजशूल, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, वाताऽवरोध, मलावरोध, मूत्रावरोध, कण्ठग्रह, हृद्ग्रह, पाण्डुरोग, अरुचि, प्लीहा, अर्श, हिचकी, वर्ध्म, श्वास, कास और मन्दाग्नि ये सब रोग दूर होते है ॥ ३१--३३ ॥

वैश्वानर चूर्ण।

लवणयवानीदीप्यक-
कणनागरमुत्तरोत्तरं वृद्धम् ।
सर्वसमांशहरीतकी-
चूर्णं वैश्वानरः साक्षात् ॥३४॥

लवण १ भाग, अजवायन २ भाग, अजमोद ३ भाग, काला जीरा ४ भाग, सोंठ ५ भाग और सबके बराबर हरड़का बकल इन सबका बारीक चूर्ण करे यह चूर्ण अग्निको चैतन्य करनेमे साक्षात् वैश्वानर है और गुल्मादि विकारोंको शमन कर देता है ॥ ३४ ॥

त्रिकट्वादि चूर्ण।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे
समधरणधृतानामष्टमो हिंगुभागः।
प्रथमकवलभोज्यः सर्पिषा चूर्णकोऽयं
जनयति भृशमग्निं वातगुल्मं निहन्ति३५॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवायन, सेंधालवण, सफेद जीरा और काला जीरा ये सात द्रव्य एक एक भाग अर्थात् सातों द्रव्य समान भाग मिलाकर सात भाग और हींग आंठवां भाग अर्थात् एक भाग इन सबका बारीक चूर्णकर भोजनसे प्रथम घृत मिलाकर खावे तो यह जठराग्निको तीक्ष्ण करता है और वातगुल्मको नष्ट करदेता है ॥ ३५ ॥

शार्दूल चूर्ण।

हिंगूग्राविडशुंठ्यजाजिविजयावाट्याभिधा-
-नामयै-
श्चूर्णः कुम्भनिकुम्भमूलसहितैर्भागोत्तरं वर्धितैः।
पीतःकोष्णजलेन कोष्ठजरुजो गुल्मोदरादीनयं
शार्दूलःप्रसभंप्रमथ्यहरतिव्याधीन्मृगौघानिव॥

हींग १ भाग, अजवायन २ भाग, विड़लवण ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हरड़की छाल ६ भाग, पोहकरमूल ७ भाग, कूठ ८ भाग, निशोथ ९ भाग और दन्ती १० भाग इन सबका चूर्णकर ६ मासे चूर्ण गर्म जलके साथ खावे तो इससे रेचन होकर कोष्ठशूल, गुल्म और उदर आदिरोग नष्ट हो जाते हैं. जैसे-शेर बलपूर्वक हरिणादि मृगोंको नाशकर देता है ऐसे ही यह चूर्ण भी रोगोंको बलपूर्वक नष्टकर देता है ॥ ३६ ॥

चतुःसमचूर्ण।

सिंधूत्थपथ्याकणदीप्यकानां
चूर्णानि तोयैः पिबतां कवोष्णैः ।
प्रयाति नाशं कफवातजन्मा
नाराचनिर्भिन्न इवामयौघः ॥३७॥

सेंधानमक, हरीतकी, काला जीरा और अजवायन इन चारोंको समभाग लेकर सुहाते २ गर्म जलसे पीवे

तो यह चूर्ण नाराच (तीरशस्त्र) से भेदन करनेके समान रोगोंका समूह नष्ट करदेता है ॥ ३७ ॥

पूतीकपत्रगजचिर्भटचव्यवह्नि-
व्योषं च संस्तरचितं लवणोपधानम् ।
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुतं प्रयोज्यं
गुल्मोदरश्वयथुपाण्डुगदोद्भवेषु ॥ ३८ ॥

पूतिकरंजके पत्रोंका चूर्ण एक मिट्टीकी हांडीमें डाले, इसके ऊपर गजपीपलका चूर्ण डाले, उसके ऊपर चिर्भटका चूर्ण डाले, इसी प्रकार इसके ऊपर चव्यका चूर्ण फिर चित्रकका चूर्ण डाले उसके ऊपर त्रिकटु डाले सबके ऊपर सेंधालवण डालकर हांडीका मुख बन्द करके अग्निमें फूंक देवे शीतल होनेपर निकाल कर सबका चूर्ण करलेवे इस चूर्णको दहीके मस्तु (जल) के साथ खावे तो यह गुल्म, उदररोग, शोथ और पाण्डुरोगको दूर करता है ॥ ३८ ॥

हिङ्गुत्रिगुणं सैन्धवमस्मात्रिगुणं तु तैलमैरण्डम्
तत्रिगुणरसोनरसं गुल्मोदरवर्ध्मशूलघ्नम् ॥३९॥

हींग एक भाग, सेंधालवण तीन भाग, एरण्ड तैल नौ भाग और रसोन (लसुन) का रस सत्ताईस भाग, इन सबको मिलाकर शरीरबलादि विचारकर सेवन करावे तो गुल्मरोग, उदररोग, वर्ध्म और शूल ये सब नष्ट हो सकते हैं ॥ ३९ ॥

मातुलुङ्गरसो हिंगु दाडिमं बिडसैन्धवम् ।
सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥४०॥

बिजौरेका रस, हींग, दाड़िमका रस, बिडलवण और सेंधालवण सुरामण्डमें मिलाकर पीनेसे वातगुल्मका शूल नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥

शुंठ्याःकर्षं गुडस्य द्वौ धौतात्कृष्णतिलात्पलम्
खादन्नेकत्र संचूर्ण्य कोष्णक्षीरानुपो जयेत् ॥
वातहृद्रोगगुल्मार्शोयोनिशूलशकृद्ग्रहान् ॥४१॥

सोंठ एक कर्ष, गुड दो कर्ष, धुलेहुए कालेतिल एक पल इन सबको मिलाकर खावे ऊपरसे गर्म दूध पीवे तो वायुका हृद्रोग, गुल्म, अर्श, योनिशूल और मलका विबन्ध ये सब नष्ट होजाते है ॥ ४१ ॥

पिबेदेरण्डतैलं तु वातगुल्मी प्रसन्नया ।
श्लेष्मण्यनुबले वायौ पित्ते तु पयसा सह ॥४२॥

वायुके गुल्मरोगमें यदि कफका अनुबल हो तो प्रसन्नामद्यमें मिलाकर एरण्ड तैल पीना चाहिये । यदि पित्तके अनुबलयुक्त वायु हो तो दूधमें मिलाकर एरण्ड तैल पिलाना चाहिये ॥ ४२ ॥

विवृद्धं यदि वा पित्तं सन्तापं वातगुल्मिनः ४३ ।
कुर्याद्विरेचनीयोऽसौ सस्नेहैरानुलोमिकैः ।
तापानुवृत्तावेवं च रक्तं तस्याऽवसेचयेत् ॥४४॥

यदि वातगुल्मवालेके शरीरमें पित्त बढ़ा हुआ हो और अधिक सन्ताप बढ़गया हो तो इसको अनुलोमनकरनेवाले स्नेहयुक्त द्रव्योंद्वारा विरेचन करादेना चाहिये. यदि इस प्रकार विरेचन करादेनेसे भी ताप (दाह) शमन न हो तो रक्त निकाल देना (शिरा मोक्षणकरना) चाहिये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

लसुनसिद्ध दूधका योग ।

साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम् ।
क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषं च पाचयेत् ॥४५॥
वातगुल्ममुदावर्तं गृध्रसीं विषमज्वरम् ।
हृद्रोगं विद्रधिं शोषं साधयत्याशु तत्पयः ४६॥

छीलकर साफ शुद्ध कियाहुआ और सुखाया हुआ लसुन चार पल लेकर आठ गुना दूध और जल मिलाकर पकावे जब पकते २ दूधमात्र शेष रहे तो इस दूधको छानकर पीवे तो वातगुल्म, उदावर्त, गृध्रसी, विषमज्वर, हृद्रोग, विद्रधि और शोषरोग इन सबको यह दूध शीघ्र नाश कर देता है ॥ ४५॥४६ ॥

तैलं प्रसन्नागोमूत्रमारनालं यवाग्रजः ।
गुल्मं जठरमानाहं पीतमेकत्र साधयेत् ॥४७ ॥

तैल, प्रसन्नामद्य, गोमूत्र, कांजी और जवाखार इन सबको एकत्र मिलाकर पीनेसे वातगुल्म उदररोग और आनाहको नाश करता है ॥ ४७ ॥

चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीक्वाथः परं हितः ।
शूलानाहविबन्धेषु सहिङ्गुबिडसैन्धवः ॥ ४८ ॥

चित्रक, पीपलामूल, एरण्डकी जड़ और सोंठके क्वाथमें हींग, बिडलवण और सेन्धालवण, मिला-

कर पीनेसे शूल, आनाह और विबन्ध ये शमन हो जाते है ॥ ४८ ॥

पुष्करैरण्डयोर्मूलं यवधन्वयवासकम् ।
जलेन क्वथितं पीतं कोष्ठदाहरुजापहम् ॥ ४९ ॥

पोहकरमूल, एरण्डकी जड़, जवाखार और जवासा इनका क्वाथ पीनेसे कोष्ठकी दाह और पीड़ा दूर होती है ॥ ४९ ॥

वाटचाह्वैरण्डदर्भाणां मूलं दारु महौषधम् ।
पीतं निःक्वाथ्य तोयेन कोष्ठपृष्ठांसशूलजित् ॥

पोहकरमूल, एरण्डकी जड़, कुशाकी जड़, देवदारु और सोंठ इनके क्वाथको पीनेसे कोष्ठ, पीठ और असभागका शूल शमन होजाता है ॥ ५० ॥

शिलाजं पयसाऽनल्पपञ्चमूलशृतेन वा ।
वातगुल्मी पिबेद्वाटचमुदावर्ते तु भोजयेत्५१॥
स्निग्धं पैप्पलिकैर्यूषैर्मूलकानां रसेन वा ।
बद्धविण्मारुतोऽश्नीयात्क्षीरेणोष्णेन यावकम् ।
कुल्माषान्वा बहुस्नेहान् भक्षयेल्लवणोत्तरान्५२

अथवा शिलाजीतको बृहत्पञ्चमूलसे सिद्ध कियेहुए दूधके साथ खावे तो वातगुल्म शमन होता है । यदि वातगुल्ममें उदावर्त होजाय तो पीपलसे सिद्ध कियेहुए यूषके साथ घृतयुक्त यवमण्ड पीवे । अथवा चिकना कियेहुए मूलक (सलजम) के रसके साथ यवमण्ड भोजन करे । जिस वातगुल्मवालेका मल मूत्र और वायु रुकता हो वह गर्म दूधके साथ यावक (यवान्न) खावे अथवा बहुतसा घृत मिले लवण युक्त कल्माषोंका भोजन करे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

नीलिनीत्रिवृतादन्तीपथ्याकाम्पिल्लकैः सह ।
समलाय घृतं देयं सबिडक्षारनागरम् ॥ ५३ ॥

जिस वातगुल्मवाले रोगीके शरीरमें मलका विशेष सचय हो उसको नीलिनी (कालादाना), निशोथ, दन्ती, हरीतकी, कमीला, बिडलवण जवाखार और सोंठ मिलाहुआ घृत पान कराना चाहिये इससे रेचन होकर मलशुद्ध होजावेगा और गुल्म शमन होजाता है ॥ ५३ ॥

नीलिनी आदि घृत ।

नीलिनीं त्रिफलां रास्नां बलां कटुकरोहिणीम्॥
पचेद्विडङ्गं व्याघ्रीं च पालिकानि जलाढके ।
रसेऽष्टभागशेषे तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥५५॥
दध्नः प्रस्थेन संयोज्य सुधाक्षीरपलेन च ।
ततो घृतपलं दद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम्॥५६॥
जीर्णे सम्यग्विरिक्तं च भोजयेद्रसभोजनम् ।
गुल्मकुष्ठोदरव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वरान् ।
श्वित्रं प्लीहानमुन्मादं हन्त्येतन्नीलिनीघृतम्५७

कालादाना १ पल, हरितकी १ पल, बहेड़ा १ पल, आमला १ पल, रास्ना १ पल, बला १ पल, कुटकी १ पल, वायविडंग १ पल और कटेली १ पल इनको कूटकर एक आढ़क जलमें पकावे जब आठवां भाग जल शेष रहे तो इसको छानकर इसमें एक सेर घृत, एक सेर दही और एक पल थोहरका दूध मिलाकर पकावे सिद्ध होनेपर यह घृत एक पल मात्रासे यवागूमण्डमें मिलाकर पिलावे । जब यह घृत जीर्ण होजाय और रेचन होकर कोष्ठ शुद्ध होजाय तब क्षुधा लगनेपर रसयुक्त पथ्य भोजन करावे इसके सेवनसे गुल्म, कुष्ठ उदररोग, व्यंग (छाँइ) सूजन, पाण्डुरोग, ज्वर श्वित्रकुष्ठ, प्लीहा और उन्माद इन सबको यह नीलनीघृत नष्ट करता है ॥ ५४-५७ ॥

कुक्कुटाश्च मयूराश्च तित्तिरिक्रौञ्चवर्तकाः ।
शालयो मदिराःसर्पिर्वातगुल्मचिकित्सितम्५८

वातगुल्ममें कुक्कुट, मोर, तित्तर, क्रौंच, बटेर शालीचावल, मदिरा और घृत इन द्रव्योंका सेवन करना विशेष हितकारी है ॥ ५८ ॥

मितमुष्णं द्रवं स्निग्धं भोजनं वातगुल्मिनाम् ।
समण्डावारुणीपानं तप्तं वा धान्यकैर्जलम्५९॥

वातगुल्मवाले रोगीको मित, उष्ण, द्रव और स्निग्ध भोजन करना हितकारी होता है तथा मण्डयुक्त वारुणी पीना या धनियेंसे सिद्ध किया जल पीना हित होता है ॥ ५९ ॥

पित्तके गुल्मकी चिकित्सा ।

स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं हितम्।

द्राक्षाऽभयागुडरसं कम्पिल्लं वा मधुद्रुतम् ।
कल्पोक्तं रक्तपित्तोक्तम् ॥ ६० ॥–

यदि स्निग्ध और उष्ण द्रव्योंके सेवनसे पित्तका गुल्म होगया हो तो उसमें स्रंसन (मलका शोधन) कराना हितकारी होता है वह मलशोधन द्राक्षा, हरीतकी और गुड़युक्त रस पिलाकर रेचन करादेनेसे ठीक होजाता है । अथवा मधुमें कमीला घोलकर पीलेनेसे भी ठीक रेचन होकर पित्त गुल्म शमन हो जाता है । अथवा कल्पस्थानमें कहीहुई विधिसे रक्तपित्तमें कहे निशोथ त्रिफला आदिसे विरेचन कराना चाहिये ॥ ६० ॥

–गुल्मे रूक्षोष्णजे पुनः ।
परं संशमनं सर्पिस्तिक्तं वासाघृतं श्रुतम् ६१॥
तृणाख्यपञ्चकक्वाथे जीवनीयगणेन वा ।
शृतं तेनैव वा क्षीरं न्यग्रोधादिगणेन वा॥६२॥

यदि रूक्ष और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे पित्तका गुल्म उत्पन्नहुआ हो तो कुष्ठचिकित्सामें कहेहुए तिक्तक घृत या वासाघृत पिलाकर संशमन चिकित्सा करना चाहिये । अथवा तृणपञ्चमूलके क्वाथ या जीवनीय गणके क्वाथसे सिद्ध घृत दूध पीनेसे या न्यग्रोधादि गणसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीनेसे रूक्षोष्ण कारणोंसे उत्पन्न हुआ पित्तगुल्म शमन होजाता है ॥६२॥

तत्राऽपि स्रंसनं युंज्याच्छीघ्रमात्यायिके भिषक् ।
वैरेचनिकसिद्धेन सर्पिषा पयसाऽपि वा ॥ ६३॥

वैद्यको उचित है यदि रूक्ष उष्ण कारणोंसे उत्पन्न हुए पित्त गुल्ममें भी पित्तबढ़नेसे रोग बढ़ता जाता हो तो त्रिवृतादि रेचक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृत या दूध पिलाकर शीघ्र विरेचन करा देवे ॥ ६३ ॥

रसेनामलकेक्षूणां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥६४॥
पथ्यापादं पिबेत्सर्पिस्तत्सिद्धं पित्तगुल्मनुत् ।
पिबेद्वा तैल्वकं सर्पिर्यच्चोक्तं पित्तविद्रधौ॥६५॥

आमलेका रस ४ सेर, ईखका रस ४ सेर, हरड़की छाल एक पाव, घृत एक सेर इन सबको मिलाकर विधिवत् घृत सिद्ध करे । इस घृतके पीनेसे पित्तका गुल्म शमन होता है । अथवा पित्तकी विद्रधि चिकित्सामें लिखाहुआ तैल्वकघृत पीनेसे पित्तका गुल्म शमन होजाता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

द्राक्षां पयस्यां मधुकं चन्दनं पद्मकं मधु ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन पित्तगुल्मोपशान्तये ॥६६॥

द्राक्षा, क्षीरकाकोली, मुलहठी, चन्दन, पद्मकाष्ठ इनका चूर्ण मधुयुक्त तण्डुल जलसे पीवे तो पित्त गुल्म शमन होजाता है ॥ ६६ ॥

द्विपलं त्रायमाणाया जलद्विप्रस्थसाधितम् ।
अष्टभागस्थितं पूतं कोष्णं क्षीरसमं पिबेत् ६७
पिबेदुपरि तस्योष्णं क्षीरमेव यथाबलम् ।
तेन निर्हृतदोषस्य गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः६८

दो पल त्रायमाणाको लेकर दो सेर जलमें पकावे जब आठवां भाग शेष रहे तो छान कर इस गर्म गर्म क्वाथमें समान भाग गर्म दूध मिलाकर पीवे इसके ऊपर यथाबल गर्म दूध ही पीवे तो रेचन होकर दोष हरण होनेसे पित्तका गुल्म शमन होजाता है ॥ ६७–६८॥

दाहेऽभ्यङ्गो घृतैः शीतैः साज्यैर्लेपो हिमौषधैः ।
स्पर्शः सरोरुहां पत्रैः पात्रैश्च प्रचलज्जलैः॥६९॥

यदि पित्तके गुल्मरोगमें दाह बढ़ जावे तो शीतल द्रव्योंको घृतमें मिलाकर शीतल लेप करना चाहिये । या शीतल द्रव्योंसे सिद्ध किये घृतमें शीतल द्रव्य मिलाकर लेप करे तथा शीतल जलमें भिगोयेहुए कमलोंका स्पर्श करे अथवा शीतल जलसे भरे कांस्यपात्र आदिका स्पर्श करे या जिनमें शीतल जल वह रहा हो ऐसे पात्रादिका शीतल स्पर्श करे ॥ ६९ ॥

विदाहपूर्वरूपेषु शूले वह्नेश्च मार्दवे ।
बहुशोऽपहरेद्रक्तं पित्तगुल्मे विशेषतः॥ ७० ॥

पित्तके गुल्ममें यदि अग्निमन्द हो और विदाह पूर्वक शूल होता हो तथा पित्तगुल्मके पूर्वरूपसे ही दाह हो तो इस पित्त गुल्ममें विशेष करके रक्त मोक्षण कराना चाहिये ॥ ७० ॥

छिन्नमूला विदह्यन्ते न गुल्मा यान्ति च क्षयम् ।
रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चास्ति रुक्

क्योंकि रक्त निकाल देनेसे छिन्नमूलहुआ गुल्म परिपाकको प्राप्त न होकर नाश होजाता है। पित्तगुल्ममें रक्त ही विशेष (खटाई) पनेको प्राप्त होकर गुल्मको उत्पन्न करता है । जब वह गुल्मकारक रक्त ही निकल गया तब फिर उससे होनेवाली पीड़ा स्वयं ही नष्ट होजाती है ॥ ७१ ॥

हृतदोषं परिम्लानं जाङ्गलैस्तर्पितं रसैः ।
समाश्वस्तं सशेषार्तिं सर्पिरभ्यासयेत्पुनः॥७२॥

जब रक्तनिकालनेसे शरीर कमजोर और मुर्झाया हुआसा होगया हो उस पुरुषको जांगलमांस रस आदिसे तृप्त करे । फिर बल आनेपर यदि कुछ दोष या गुल्मका अंश बाकी रहगया हो तो उसको गुल्मनाशक घृत सेवन कराकर जीतना चाहिये ॥ ७२॥

रक्तपित्तातिवृद्धत्वात्क्रियामनुपलभ्य वा ।
गुल्मे पाकोन्मुखे सर्वा पित्तविद्राधिवत्क्रिया७३

पित्त गुल्ममें रक्तपित्तकी अति वृद्धिके कारण या समयपर यथार्थ चिकित्सा न करनेके कारण गुल्म पकनेवाला होजाय तो उसमें पित्तविद्रधिके समान सम्पूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७३ ॥

शालिर्गव्याजपयसा पटोली जाङ्गलं घृतम् ।
धात्री परूषकं द्राक्षा खर्जूरं दाडिमं सिताम् ।
भोज्यं पानेऽबुबलया बृहत्याद्यैश्च साधितम्७४

पित्तके गुल्ममें शाली चावलोंका भात गोघृत, गौका दूध, पटोलका शाक, जांगलघृत, आमले, फालसे, द्राक्षा, खजूर, अनार और मिसरी ये पदार्थ भोजनके लिये हितकारी हैं । तथा बला और बृहत्यादि गणसे सिद्ध किया जल पीनेके लिये हितकारी है७४॥

कफ गुल्मकी चिकित्सा ।

श्लेष्मजे वामयेत्पूर्वमवम्यमुपवासयेत् ॥७५॥
तिक्तोष्णकटुसंसर्ग्या वह्निं सन्धुक्षयेत्ततः ।
हिंग्वादिभिश्च द्विगुणक्षारहिंग्वम्लवेतसैः॥७६॥

कफके गुल्ममें प्रथम वमन करा देना चाहिये । यदि रोगी वमन कराने योग्य न हो तो उसको उपवास कराना चाहिये तदनन्तर तिक्त, कटु और ऊष्ण द्रव्योंके योगसे बनायीहुई पेयासे जठराग्निको दीप्त करे। तथा जिसमें जवाखार, हींग और अम्लवेत दो गुणे मिलेहुए हों ऐसे हिंग्वादि चूर्णको खिलाकर जठराग्निको दीप्त करना चाहिये ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

निगूढं यदि वोन्नद्धं स्तिमितं कठिनं स्थिरम् ।
आनाहादियुतं गुल्मं संशोध्य विनयेदनु ।
घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं कफगुल्मिना ॥७७॥

कफका गुल्म निगूढ़ (छिपा हुआसा) हो या ऊपर उठाहुआ हो, विबद्ध, कठिन और स्थिर हो तो प्रथम वमन द्वारा संशोधन कराकर फिर उपशमन चिकित्सा करनी चाहिये । यदि इसमें गुल्मनाशक घृत पिलाना हो तो जवाखार और त्रिकटुका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ७७ ॥

सव्योषक्षारलवणं सहिङ्गुबिडदाडिमम् ।
कफगुल्मं जयत्याशु दशमूलशृतं घृतम्॥७८॥

दशमूलके काथ और सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार, संचरनमक, हींग, बिडनमक और दाड़िमके कल्कसे सिद्ध किया घृत शीघ्र ही कफके गुल्मको जीत लेता है ॥ ७८ ॥

भल्लातकानां द्विपलं पञ्चमूलं पलोन्मितम्७९॥
अल्पं तोयाढके साध्यं पादशेषेण तेन च ।
तुल्यं घृतं तुल्यपयो विपचेदक्षसंमितैः ॥८०॥
विडङ्गहिङ्गुसिन्धूत्थयावशूकशठीबिडैः ।
सद्वीपिरास्नायष्ट्याह्वषड्ग्रन्थाकणनागरैः८१॥
एतद्भल्लातकघृतं कफगुल्महरं परम् ।
प्लीहपाण्ड्वामयश्वासग्रहणीरोगकासनुत्॥८२॥

[भिलावे] दो पल, लघुपंचमूलका प्रत्येक द्रव्य एक एक पल इन सबको चार सेर जलमें पकावे जब एक सेर जल शेष रहे तो इसको छानकर इस जलमें एक सेर घृत और एक सेर दूध मिलावे तथा वायबिडंग, हींग, सेंधालवण, जवाखार, कचूर, विडलवण, चित्रक, रास्ना, मुलहठी, वच, कालाजीरा और सोंठ ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर कल्क कर मिलाकर इस घृतको सिद्ध करे यह भल्लातक घृत कफके गुल्मको हरनेमें परमौषध है तथा प्लीहा, पाण्डुरोग, श्वास, ग्रहणीरोग और खांसीको दूर करता है ॥ ७९- ८२॥

ततोऽस्य गुल्मे देहे च समस्ते स्वेदमाचरेत् ।
सर्वत्र गुल्मे प्रथमं स्नेहस्वेदोपपादिते ॥
याक्रिया क्रियतेयाति सा सिद्धिं न विरूक्षिते८३

कफके गुल्ममें वमन कराकर अग्निको दीप्त करनेवाली औषध सेवन करावे तदनन्तर भल्लातकादि घृत पान करावे फिर इस रोगीके गुल्म स्थान पर और सम्पूर्ण देहमें स्वेदन करावे क्योंकि गुल्म रोगमें प्रथम स्नेहन और स्वेदन करनेके अनन्तर जो क्रिया की जाती है वह सिद्ध होती है किन्तु रूक्ष गुल्मपर कीहुई क्रिया सिद्ध नहीं होती है ॥ ८३ ॥

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य गुल्मे शैथिल्यमागते८४।
यथोक्तां घटिकां न्यस्येद्गृहीतेऽपनयेच्च ताम् ।
वस्त्रान्तरं ततः कृत्वा छिन्द्याद्गुल्मं प्रमाणवित्॥
विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभं प्रपीडयेत् ।
प्रमृज्याद्गुल्ममेवैकं न त्वन्त्रहृदयं स्पृशेत॥८६॥

जब स्नेहन और स्वेदनके अनन्तर गुल्म शिथिल होजावे तब गुल्म स्थानपर धूमयुक्त घटिका तुम्बीके प्रकारसे लगाकर गुल्मको ऊपर खैंचकर घटिका उतार देवे फिर वस्त्रके अन्तरमें गुल्मको करके प्रमाणके जाननेवाला वैद्य गुल्मको छेदन करे और विमार्गज (लकड़ीसे बनाहुआ चमड़ा मलनेका शस्त्र) या बकरीके खुरके चिकने भागसे उस गुल्मस्थानको पीडन करे । तथा सावधान होकर केवल एक गुल्ममात्रको ही छेदन या पीड़न करे किन्तु अन्त्र या हृदयको स्पर्श मात्र भी नहीं होने देना चाहिये ॥ ८४–८६ ॥

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य वा ।
श्लेष्मगुल्ममयस्पात्रैःसुखोष्णैःस्वेदयेत्ततः ॥ ८७
एवं च विसृतं स्थानात् कफगुल्मं विरेचनैः ।
सस्नेहैर्बस्तिभिश्चैनं शोधयेद्दशमूलकैः ॥ ८७ ॥

अथवा तिल, एरण्डके बीज, अलसी और सरसों, इनका कल्क कफके गुल्मपर लेप करके सुखोष्ण लोहपात्रसे स्वेदन करे । इस लेप और स्वेदनसे जब गुल्म अपने स्थानसे शिथिल पड़जाय तब दशमूलके क्वाथमें एरण्डतैल या रेचक घृत मिलाकर विरेचन और वस्तिकर्मद्वारा शोधनकर देवे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

पिप्पल्यामलकद्राक्षाश्यामाद्यैःपालिकैःपचेत् ।
एरण्डतैलहविषोः प्रस्थौ पयसि षड्गुणे॥८९।
सिद्धोऽयं मिश्रकः स्नेहो गुल्मिनां स्रंसनं हितम् ।
वृद्धिविद्रधिशूलेषु वातव्याधिषु चामृतम्९०॥

पीपल, आमले, द्राक्षा और काली निशोथ आदि एक एक पल लेकर कल्क करे यह कल्क एक सेर एरण्ड तैल और एक सेर घृतमें मिलाकर बारह सेर दूध बीचमें डालकर घृतपाक विधिसे मिश्रक स्नेह सिद्ध करे । यह स्नेह गुल्मरोगवालोंको रेचन करनेमें परमोत्तम है तथा वृद्धिरोग, विद्रधिरोग, शूल और वातव्याधिमें अमृतके समान गुणकारी है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

पिबेद्वा नीलिनीसर्पिर्मात्रया द्विपलीकया ।
तथैव सुकुमाराख्यं घृतान्यौदरिकाणि वा ॥९१

अथवा इसी अध्यायमें कहाहुआ नीलनीघृत दो पल मात्रासे पीवे अथवा विद्रधिरोगमें कहाहुआ सुकुमार घृत या उदररोगमें कहेहुए घृत दो पल मात्रासे गुल्मरोगमें रेचनके लिये पिलाना चाहिये ॥ ९१ ॥

दन्ती हरीतकी ।

द्रोणेऽम्भसः पचेद्दन्त्याः पलानां पञ्चविंशतिम्
चित्रकस्य तथा पथ्यास्तावतीस्तद्रसे स्रुते॥९२
द्विप्रस्थे साधयेत्पूते क्षिपेद्दन्तीसमं गुडम् ।
तैलात्पलानि चत्वारि त्रिवृतायाश्च चूर्णतः९३।
कणाकर्षौ तथा शुण्ठ्याःसिद्धे लेहे तु शीतले।
मधु तैलसमं दद्याच्चतुर्जातााच्चतुर्थिकाम् ॥९४॥
अतो हरीतकीमेकां सावलेहपलामदन् ।
सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः९५॥
गुल्महृद्रोगदुर्नामशोफानाहगरोदरान् ।
कुष्ठोत्क्लेशारुचिप्लीहग्रहणीविषमज्वरान् ।
घ्नन्ति दन्तीहरीतक्यःपाण्डुतां च सकामलाम्।

दन्ती २५ पल, चित्रककी जड़ २५ पल, बड़ी बड़ी सुन्दर हरड़ें २५ इन सबको एक द्रोण जलमें पकावे जब आठवां भाग (दो सेर) शेष रहे तब इस जलको छानकर इसमें वे पकीहुई २५ हरड़ें और २५ पल गुड़ मिलाकर अवलेह पकावे इस अवलेहमें पकते समय चार पल तेल और चार पल निशोथका चूर्ण मिलावे

तथा पीपलका चूर्ण दो कर्ष, सोंठका चूर्ण दो कर्ष मिलावे जब लेह सिद्ध होजावे तो शीतल होनेपर इसमें चार पल मधु और चतुर्जातका चूर्ण एक पल मिला देवे। यह दन्ती हरीतकी अवलेह सिद्धहुआ. इसमेंसे एक हरीतकी और एक पल अवलेह खावे तो स्निग्ध पुरुषको सुखपूर्वक रेचन होजाता है इस एक रेचनमें ही एक प्रस्थ मल निकल जाता है। इसके सेवनसे गुल्म, हृद्रोग, अर्श, सूजन, आनाह, गर, उदररोग, कुष्ठ, उत्क्लेश, अरुचि, प्लीहा, ग्रहणी, विषमज्वर, पाण्डुरोग और कामला ये सब रोग नष्ट होजाते हैं ॥९२-९६॥

सुधाक्षीरद्रवं चूर्णं त्रिवृतायाः सुभावितम्।
कार्षिकं मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वा साधु विरिच्यते९७

निशोथके चूर्णको निशोथके रसकी भावना देकर थोहरके दूधमें मिलावे यह एक कर्ष चूर्ण मधु और घृतमें मिलाकर चाटनेसे अति उत्तम विरेचन होजाता है ॥ ९७ ॥

कुष्ठश्यामात्रिवृद्दन्तीविजयाक्षारगुग्गुलुम्।
गोमूत्रेण पिबेदेकं तेन गुग्गुलुमेव वा ॥ ९८ ॥
निरूहान्कल्पसिद्ध्युक्तान्योजयेद्गुल्म-
-नाशनान् ॥ ९९ ॥

कूठ, कालीनिशोथ, दन्ती, हरड़, जवाखार और गुग्गुल इनको मिलाकर गोमूत्रके साथ पीवे तो गुल्म नाश होजाता है। अथवा कल्पस्थान और सिद्धिस्थानमें कहेहुए गुल्मनाशक निरूहोंका प्रयोग करे ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

कृतमूलं महावास्तुं कठिनं स्तिमितं गुरुम्।
गूढमांसं जयेद्गुल्मं क्षारारिष्टाग्निकर्मभिः १००॥
एकान्तरं द्व्यन्तरं वा विश्रमय्याऽथ वा त्र्यहम्।
शरीरदोषबलयोर्वर्धनक्षपणोद्यतः ॥ १०१ ॥

यदि कफका गुल्म स्थिरमूल होगया हो, अधिक स्थानमें व्याप्त हो, कठिन हो, विबद्ध हो, भारी हो और मांसमें गूढ़ हो तो उस गुल्मको क्षार प्रयोगसे या अरिष्ट सेवनसे अथवा अग्निकर्मसे जीतना चाहिये। यदि क्षार प्रयोग करना हो तो एक दिन या दो दिन अथवा तीन दिनका बीच २ में अन्तर देकर शरीरके दोष और बलको बढ़ाने और क्षीण करनेमें उद्यतहुआ पुरुष विधिवत् क्षारादि प्रयोग करे ॥१००॥१०१॥

अर्शोश्मरीग्रहण्युक्ताःक्षारा योज्याःकफोल्बणे।

कफप्रधान गुल्ममें अर्श, अश्मरी और ग्रहणी रोगमें कहेहुए क्षारोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १०२ ॥

देवदार्वादिक्षारागद।

देवदारुत्रिवृद्दन्तीकटुकापञ्चकोलकम्।
स्वर्जिकायावशूकाख्यौ श्रेष्ठापाठोपकुञ्चिकाः॥
कुष्ठं सर्पसुगन्धा च द्व्यक्षांशंपटुपञ्चकम्१०३॥
पालिकं चूर्णितं तैलवसादधिघृताप्लुतम्।
घटस्यान्तःपचेत्पक्कमग्निवर्णघटे च तम् १०४॥
क्षारं गृहीत्वा क्षीराज्यतक्रमद्यादिभिः पिबेत्।
गुल्मोदावर्तवर्ध्मार्शोजठरग्रहणीकृमीन् १०५॥
अपस्मारगरोन्मादयोनिशुक्रामयाश्मरीः।
क्षारोऽगदोऽयं शमयेद्विषं चाखुभुजङ्गजम्१०६

देवदारु, निशोथ, दन्ती, कुटकी, पंचकोल, सज्जी, जवाखार, त्रिफला, पाठा, कलौंजी, कूठ और नाकुलीकन्द ये प्रत्येक दो दो कर्ष तथा पांचों लवण एक एक पल इन सबको चूर्ण कर तैल, वसा, दही और घृतमें मिलाकर एक मिट्टीके घटमें डालकर घटका मुख बन्द करके अग्निपर चढ़ावे जब घट अग्निके समान लालवर्ण होजावे तब उतारकर शीतल करे। फिर इसमेंसे इस क्षारको निकाल चूर्ण करे यह क्षार दूध, या घृत अथवा तक्र या मद्यके साथ सेवन करनेसे गुल्म, उदावर्त, वर्ध्म, अर्श, उदररोग, ग्रहणी, कृमी, अपस्मार, गर, उन्माद, योनिरोग, शुक्ररोग, अश्मरी, मूषकविष और सर्पविष इन सब रोगोंको यह क्षारागद शमन करता है ॥ १०३-१०६ ॥

श्लेष्माणं मधुरं स्निग्धं रसक्षीरघृताशिनः।
छित्त्वा भित्त्वाऽऽशयं क्षारः क्षारत्वात्पातयत्यधः

रस, दूध घृत खानेवाले पुरुषके शरीरसे क्षार अपने क्षारवाले गुणसे कफाशयको भेदन कर मधुर स्निग्ध गुणवाले कफको अधःपातन करदेता है १०७॥

मन्देऽग्नावरुचौ सात्म्यैर्मद्यैः सस्नेहमश्नताम् ।
योजयेदासवारिष्टान्निगदान्मार्गशुद्धये ॥१०८॥

जिस रोगीकी अग्नि मन्द हो और अरुचि भी हो उस स्निग्ध भोजन करनेवाले मनुष्यको सात्म्य मद्योंके साथ आसव अरिष्ट और निगद स्रोतोंको शुद्ध करनेके लिये सेवन कराना चाहिये ॥ १०८ ॥

शालयःषष्टिका जीर्णाःकुलत्था जाङ्गलं पलम् ।
चिरिबिल्वाग्नितर्कारीयवानीवरुणाङ्कुराः१०९॥
शिग्रुस्तरुणबिल्वानि बालं शुष्कं च मूलकम् ।
बीजपूरकहिंग्वम्लवेतसक्षारदाडिमम् ॥११० ॥
व्योषं तक्रं घृतं तैलं भक्तं पानं तु वारुणी ॥
धान्याम्लं मस्तु तक्रं च यवानीबिडचूर्णितम् ।
पञ्चमूलश्रृतं वारि जीर्णं मार्द्वीकमेव वा॥१११॥

पुराने शालि चावल, षष्टिक चावल, कुलथी, जांगल जीवोंका मास, चिरिबिल्व, चित्रक, अग्निमन्थ, अजवायन, वरुणवृक्षके अंकुर, सुहांजना, कच्चे बिल्वफल. छोटी और सूखीहुई मूली, बिजौरा नींबू, हींग, अम्लवेत, जवाखार, दाडिम, त्रिकुटु, तक्र, घृत और तैल, ये द्रव्य गुल्मरोगीके भोजनमें पथ्य हैं। तथा वारुणी, धान्याम्ल, मस्तु और तक्र इनमें अजवायन और बिडलवण मिलाकर पीनेमें पथ्य है। एवं पंचमूलसे सिद्ध जल और पुरानी मार्द्वीक मद्य ये सब पीनेमें हितकारी हैं ॥ १०९--१११ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकाजाजिसैन्धवैः ।
सुरा गुल्मं जयत्याशु जाङ्गलश्च विमिश्रितः ।

पीपल, पीपलामूल, चित्रक, जीरा और सेंधानमक मिलाकर सुरा पीनेसे अथवा इनसे ही युक्त जांगल रस पीनेसे गुल्मरोग शीघ्र शान्त हो जाता है॥ ११२॥

अग्निदग्ध करनेकी आज्ञा ।

वमनैर्लङ्घनैः स्वेदैःसर्पिःपानैर्विरेचनैः ॥ ११३ ॥
बस्तिक्षारासवारिष्टगुल्मिकापथ्यभोजनैः ।
श्लैष्मिको बद्धमूलत्वाद्यदि गुल्मो न शाम्यति ।
तस्य दाहं हृते रक्ते कुर्यादन्ते शरादिभिः॥११४

यदि वमन, लंघन, स्वेदन, घृतपान विरेचन वस्तिकर्म, क्षारप्रयोग, आसव और अरिष्ट सेवन तथा गुल्मनाशक भोजनादि करनेपर भी कफका गुल्म बद्धमूल होनेसे शमन न होवे तो उसका रक्त निकाल कर गुल्म स्थानपर लोहशलाका आदि या शर आदि अग्निमें लालकर दाग (अग्निकर्म) करना चाहिये ॥ १४ ॥

अग्निदग्धकी विधि ।

अथ गुल्मं सपर्यंतं वाससान्तरितं भिषक्११५॥
नाभिबस्त्यन्त्रहृदयं रोमराजीं च वर्जयन् ।
नातिगाढं परिमृशेच्छरेण ज्वलताऽथवा ।११६॥
लोहेनारणिकोत्थेन दारुणा तैन्दुकेन वा ।
ततोऽग्निवेगे शमिते शीतैर्व्रण इव क्रिया११७॥

जिस गुल्मको अग्निदग्ध करना हो उस गुल्म मात्रको छोड़कर बाकी सब स्थान गीले वस्त्रसे ढक देवे। फिर नाभि, वस्ति, आन्त्र, हृदय और रोमराजीको सर्वथा बचाकर केवल गुल्मके ऊपर अग्नितप्त शर आदिसे अथवा अन्य लोहशलाका या अरणीकाष्ठ तिन्दुक आदिसे जो अति गाढ़ न हो ऐसा अग्निदग्ध करे फिर अग्निवेगके शमन होनेपर शीतल घृतादिसे लेपन कर व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ ११५-११७ ॥

सामगुल्मकी चिकित्सा ।

आमान्वये तु पेयाद्यैः सन्धुक्ष्याग्निं विलङ्घिते ।
स्वं स्वं कुर्यात्क्रमं मिश्रं मिश्रदोषे च कालवित् ॥

यदि गुल्मरोगीके शरीरमें आमदोष हो तो उसको लंघन कराकर अग्नि चैतन्य होनेपर पेयादि क्रमका पालन करे फिर जो दोष गुल्मकारी हो उसकी चिकित्सा करे ॥

यदि दोष मिलेहुए हो तो काल आदिके जाननेवाला वैद्य मिलीहुई चिकित्सा करे ॥ ११८ ॥

रक्तगुल्मकी चिकित्सा ।

गतप्रसवकालायै नार्यै गुल्मेऽस्रसम्भवे ।
स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात्स्नेहविरेचनम् ११९।

स्त्रीके रक्तगुल्ममें प्रसवकाल व्यतीत होकर केवल रक्तगुल्म सिद्ध होजानेपर उस स्त्रीको स्नेहन और स्वेदन करनेके अनन्तर स्निग्ध विरेचन करावे ॥ ११९ ॥

तिलक्काथो घृतगुडव्योषभार्गीरजोऽन्वितः ।
पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषितः १२०॥

जिस स्त्रीका मासिक धर्म नष्ट होगया हो या रक्त-गुल्म हो उस स्त्रीको तिलोंका क्काथ घी, गुड़ तथा त्रिकटु और भारंगीका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये इसके पीनेसे रक्त प्रवृत्त होकर मासिक रज यथार्थ आने लगता है और रक्तका गुल्म भी शमन होजाता है १२०

भार्गीकृष्णाकरञ्जत्वग्ग्रन्थिकामरदारुजम् ।
चूर्णं तिलानां क्काथेन पीतं गुल्मरुजापहम् १२१

भारंगी, पीपल, करंज, दालचीनी, पीपलामूल और देवदारुका चूर्ण तिलोंके क्काथके साथ पीनेसे रक्त-गुल्मको शमन कर देता है ॥ १२१ ॥

पलाशक्षारपात्रे द्वे द्वे पात्रे तैलसर्पिषोः ।
गुल्मशैथिल्यजननीं पक्त्वा मात्रां प्रयोजयेत् ॥

पलाशका क्षार दो आढ़क, तेल और घृत दो आढ़क इनको पकाकर इस यमक स्नेहको मात्रानुसार पीवे तो यह गुल्मको शमन करता है ॥ १२२ ॥

न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविरेचनम् ।
क्षारेण युक्तं पललं सुधाक्षीरेण वा ततः ॥१२३
ताभ्यां वा भावितान्दद्याद्योनौ कटुकमत्स्यकान् ।
वराहमत्स्यपित्ताभ्यां नक्तकान्वा सुभावितान् ॥
किण्वं वा सगुडक्षारं दद्याद्योनौ विशुद्धये ।
रक्तपित्तहरं क्षारं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ १२५ ॥
लशुनं मदिरां तीक्ष्णां मत्स्यांश्चास्यै प्रयोजयेत् ।
बस्तिं सक्षीरगोमूत्रं सक्षारं दाशमूलिकम् १२६॥

यदि इन योगोंसे स्त्रीका गुल्म शमन न होवे तो उसको योनिविरेचन देना चाहिये । उन योनिशोधन करता योगोंको कहते है. जैसे-भुनेहुए तिलोंका चूर्ण क्षार मिलाकर वस्त्रकी पोटलीमें बांध योनिमें रक्खे । अथवा भुनेतिलोंके चूर्णमें थोहरका दूध मिला पोटली या बत्ती बनाकर योनिमें रक्खे । अथवा जवाखार और थोहरके दूधमे भावना दीहुई कटुमत्स्य योनिमें रक्खे । अथवा वाराह और मछलीके पित्तमें भावित किये कटु-मत्स्य या वस्त्रकी बत्ती योनिमें रक्खे, अथवा गुड़ और जवाखार मिलाकर किण्व (सुराबीज) योनिमें रक्खे तो योनि शुद्ध होजाती है । अथवा रक्तपित्त नाशक क्षार घृत और मधु मिला-कर चाटना चाहिये अथवा लशुन, तीक्ष्ण मद्य और मत्स्य सेवन करावे तो भी मासिकधर्म ठीक होकर योनि शुद्ध होजाती हैं । अथवा दूध, गोमूत्र और जवाखार मिलाकर दशमूलके क्वाथसे वस्तिकर्म करे तो स्त्रीकी योनि शुद्ध होजाती है ॥ १२३-१२६ ॥

अवर्तमाने रुधिरे हितं गुल्मप्रभेदनम् ॥१२७॥

यदि इन सब क्रियाओंसे भी रक्त गुल्मका रक्त प्रवृत्त न हो तो गुल्मको भेदन करना चाहिये॥ १२७॥

यमकाभ्यक्तदेहायाः प्रवृत्ते समुपेक्षणम् ।
रसौदनस्तथाऽऽहारः पानं च तरुणी सुरा १२८॥

यदि रक्त गुल्मसे योनिद्वारा रक्त स्राव होनेलग जावे तो उसके शरीर पर यमकस्नेहकी मालिश कर रक्तको स्राव होने देवे तथा इसको मांसरस और भातका पथ्य देवे पीनेको तरुण मद्य देना चाहिये ॥ १२८ ॥

रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहराः क्रियाः ।
कार्या वातरुगार्तायाः सर्वा वातहराः पुनः ।
आनाहादावुदावर्तबलासघ्न्यौ यथायथम् १२९

यदि रक्तकी अधिक प्रवृत्ति होजावे तो रक्तपित्त नाशक क्रिया करनी चाहिये ।

यदि बातकी पीड़ा होजाय तो सब बातनाशक क्रिया करनी चाहिये । इसीप्रकार आनाह आदि होजाय तो उदावर्त और कफकी जीतनेवाली क्रिया यथा दोष करनी चाहिये ॥ १२९ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीत-अष्टांगहृदयसंहितायां चिकित्सास्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां गुल्मचिकित्सते चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथाऽत उदरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब हम उदररोगकी चिकित्साकी व्याख्या करते है॥

उदररोग चिकित्सा ।

दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतोमार्गनिरोधनात् ।
सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥ १ ॥

दोषोंका बहुत अधिक सञ्चय होनेसे स्रोतोंके मार्ग

रुक जाते हैं तब उदररोग उत्पन्न होजाता है क्योंकि अतिदोषोंका संचय और स्रोतोंका अवरोध ही उदर रोगोंका कारण है इसलिये उदर रोगीको नित्य ही विरेचन कराते रहना चाहिये ॥ १ ॥

उदररोगकी सामान्य चिकित्सा ।

पाययेत्तैलमैरण्डं समूत्रं सपयोऽपि वा ।
मासं द्वौ वाथवा गव्यं मूत्रं माहिषमेव वा ॥ २ ॥
पिबेद् गोक्षीरभुक् स्याद्वा करभीक्षीरवर्तनः ।
दाहानाहातितृण्मूर्च्छापरीतस्तु विशेषतः ॥ ३ ॥

उदररोगमें एरण्डतैलको गोमूत्र अथवा दूध मिलाकर एक महीना या दो महीना बराबर पिलाना चाहिये । दोषका विचारकर गोमूत्र अथवा माहिषमूत्र एरण्ड तैलके साथ एक या दो महीना पिलाना चाहिये । और इन दो महीनेमें केवल गोदूध अथवा ऊंटनीका दूध ही पीना चाहिये भोजनके स्थानमें केवल यह दूधका ही पथ्य रखना उचित है। जिस उदररोगीको दाह, आनाह, अतितृषा और मूर्च्छा हो उसको तो यह क्रिया विशेषरूपसे ही करनी चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

उदररोगमें स्नेहन ।

रूक्षाणां बहुवातानां दोषसंशुद्धिकांक्षिणाम् ।
स्नेहनीयानि सर्पींषि जठरघ्नानि योजयेत् ॥४॥

जो उदररोगी अधिक वातवाले और रूक्ष हो तथा उनके दोषोंका शोधन करना आवश्यक हो तो उसको स्नेहन करनेके लिये उदररोगनाशक घृतोंका पान करना चाहिये ॥ ४ ॥

षट्पलघृत ।

षट्पलं दशमूलाम्बु मस्तुद्व्याढकसाधितम् ॥५॥

पंचकोल और यवक्षार ये छः द्रव्य छः पल, दशमूलका क्वाथ चार सेर, दहीका जल चार सेर और घृत एक सेर यह सिद्ध कियाहुआ घृत वाताधिक उदररोगीको स्नेहनार्थ देना हितकर है ॥ ५ ॥

शुंठ्यादि घृत ।

नागरं त्रिपलं प्रस्थं घृततैलात्तथाऽऽढकम् ।
मस्तुनः साधयित्वैतत्पिबेत्सर्वोदरापहम् ।
कफमारुतसम्भूते गुल्मे च परमं हितम् ॥ ६ ॥

सोंठ तीन पल, घृत और तैल एक प्रस्थ, दहीका मस्तु एक आढक इन सबको मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत सब प्रकारके उदररोगोंको दूर करता है । यही घृत कफ और वायुसे उत्पन्नहुए गुल्मरोगको शमन करनेमें भी परमोत्तम है ॥ ६ ॥

चित्रक घृत ।

चतुर्गुणे जले मूत्रे द्विगुणे चित्रकात्पले ।
कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सक्षारं जठरी पिबेत् ॥७॥

चित्रककी जड़ दो पल लेकर कल्क करे इस कल्कमें एक सेर घृत, दो सेर गोमूत्र, चारसेर जल ये सब मिलाकर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर छान लेवे इस घृतमें जवाखार मिलाकर पीनेसे वातज उदररोग शमन होता है ॥ ७ ॥

यवादि घृत ।

यवकोलकुलत्थानां पञ्चमूलस्य चाम्भसा ।
सुरासौवीरकाभ्यां च सिद्धं वा पाययेद्घृतम् ॥८

अथवा जौ, बेर और कुलथीके क्वाथ, पंचमूलके क्वाथ, सुरा और कांजीसे सिद्धकिया घृत उदररोग-वालेको पिलावे तो (वातज) उदररोग शमन होता है ॥ ८ ॥

एभिः स्निग्धाय सञ्जाते बले शान्ते च मारुते ।
स्रस्ते दोषाशये दद्यात्कल्पदृष्टं विरेचनम् ॥ ९ ॥

वातज उदररोगीको इन घृतोंके पिलानेसे स्निग्ध होकर बल आनेपर और वायुके शान्त होनेपर जब दोष अपने स्थानसे स्रस्त होजावे तब कल्पमें कही विधिसे विरेचन करावे ॥ ९ ॥

पटोलादिचूर्ण ।

पटोलमूलं त्रिफलां निशां वेल्लं च कार्षिकम् ।
कंपिल्लनीलिनीकुंभभागान् द्वित्रिचतुर्गुणान् १०
पिबेत्संचूर्ण्य मूत्रेण पेयां पूर्वं ततो रसैः ।
विरक्तो जाङ्गलैर्यात्ततः षड्दिवसं पयः॥११॥
शृतं पिबेद्व्योषयुतं पीतमेवं पुनः पुनः ।
हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ॥१२

पटोलकी जड़, त्रिफला, हलदी और वायविडंग प्रत्येक एक एक कर्ष, कमीला दो भाग, नीलनीके बीज

(काला दाना) तीन भाग, निशोथ चार भाग इन सबका चूर्णकर गोमूत्रके साथ पीवे इससे विरेचन होनेके अनन्तर पेयादि क्रमका पालन करे फिर मांसाहारी मनुष्य जांगल मांसरस पीवे । यथार्थ रेचन होनेके अनन्तर छः दिनतक त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) डाल कर सिद्ध कियाहुआ दूध पीवे ऐसे बार २ विरेचन करावे तो यह चूर्ण सब प्रकारके उदररोगोंको चाहे जलोदर भी हो दूर करदेता है. क्रम यह है-घृतोंसे स्नेहनके अनन्तर पटोलादि चूर्ण गोमूत्रसे पीकर रेचन करावे रेचनके अनन्तर उदररोगघ्न पेया या जांगलरस पीवे फिर छः दिन केवल त्रिकटुसे सिद्ध दूध पीवे सातवें दिन फिर पटोलादि चूर्ण गोमूत्रसे पीवे इस प्रकार बार २ करनेसे उदररोग दूर होजाते है ॥ १०-१२॥

इन्द्रायणादि चूर्ण ।

गवाक्षीं शङ्खिनीं दन्तीं तिल्वकस्य त्वचं वचाम् ।
पिबेत्कर्कन्धुमृद्वीकाकोलांभोमूत्रसीधुभिः१३॥

इन्द्रायण, शंखिनी, दन्ती, तिल्वकलोध (गुला-चीनकी छाल) और वच इन सबका चूर्ण उन्नाब, मुनक्का और बेरके काथके साथ पीवे अथवा गोमूत्र या सीधुके साथ पीवे तो रेचन होकर उदररोग शमन होता है ॥ १३ ॥

नारायण चूर्ण ।

यवानी हपुषा धान्यं शतपुष्पोपकुश्चिका ।
कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शठी वचा॥१४॥
चित्रकाजाजिकं व्योषं स्वर्णक्षीरी फलत्रयम् ।
द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम्१५॥
विडङ्गं च समांशानि दन्त्या भागत्रयं तथा ।
त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला च चतुर्गुणा॥१६।
एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः ।
नैनं प्राप्याभिवर्धन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः१७।
तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना ।
आनाहवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ १८॥
दधिमण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाम्भोभिरर्शसैः ।
परिकर्ते सवृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥१९॥
भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ।
हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मन्देऽनले ज्वरे ॥२०॥
दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे ।
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ २१॥

अजवायन, हाऊबेर, धनियां, सौंफ, जीरा, कलौंजी, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, बच, चित्रक, काला जीरा, सोंठ, मिर्च, पीपल, चोक, हरड़, बहेड़ा, आमला, जवाखार, सज्जीखार, पोहकरमूल, कूठ, पांचों लवण और वायविड़ंग ये प्रत्येक द्रव्य एक एक तोला, दन्ती तीन तोले, निशोथ दो तोले, इन्द्रायणकी जड़ दो तोले, सातला थोहरकी जड़ चार तोले इन सबका चूर्ण करलेवे यह नारायण नामक चूर्ण रोगोंके समूहको नाश करता है. जैसे—विष्णुभगवान्के सन्मुख असुर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो सकते वैसे ही इस चूर्णके सामने रोग भी नहीं रह सकते । यह चूर्ण उदररोगमें तक्रके साथ, गुल्मरोगमें बेरके काथसे, आनाहवातमें सुराके साथ, वातरोगमें प्रसन्नाके साथ, मलावरोधमें दहीके मण्डसे, अर्शरोगमें अनारके रससे, परिकर्तिकामें अम्लवेतके काथसे, अजीर्णमें गर्मजलसे सेवन करे तो ये रोग नाश होजाते हैं । तथा इसके सेवनसे भगन्दर, पाण्डुरोग, कास, श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणीरोग, कुष्ठ, मन्दाग्नि, ज्वर, दन्तविष, मूलविष, गरविष और कृत्रिम विष ये सब रोग दूर होते हैं । स्निग्धकोष्ठवाले मनुष्यको यह चूर्ण यथेष्ट विरेचन करानेके लिये गर्म जल आदिसे लेना चाहिये ॥ १४-२१ ॥

हपुषा काञ्चनक्षीरीं त्रिफलां नीलिनीफलम् ।
त्रायन्तीं रोहिणीं तिक्तां सातलां त्रिवृतां वचाम् ।
सैन्धवं काललवणं पिप्पलीं चेति चूर्णयेत् ।
दाडिमात्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकैः ॥ २३ ॥
पेयोऽयं सर्वगुल्मेषु प्लीह्नि सर्वोदरेषु च ।
श्वित्रे कुष्ठेष्वजरके सदने विषमेऽनले ॥ २४ ॥
शोफार्शःपाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके॥२४
वातपित्तकफांश्चाशु विरेकेण प्रसाधयेत्॥२५॥

हाऊबेर, सत्यानासीकी जड़, त्रिफला, काला दाना, त्रायमाणा, कुटकी, सातला थोहरकी जड़, निशोथ, बच, सेन्धालवण, कालालवण और पीपल इन सबका

चूर्णकर दाड़िमके रससे या त्रिफलेके जलसे अथवा मांसरससे या गोमूत्रसे अथवा सुखोष्ण जलसे इस चूर्णको खावे तो इसके सेवनसे सब प्रकारके गुल्म, प्लीहारोग, सब प्रकारके उदररोग, श्वित्रकुष्ठ, कुष्ठ, अजीर्ण, अंगसाद और विषमाग्नि ये सब दूर होते है तथा सूजन, अर्श, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, वात, पित्त और कफके रोग ये सब इस चूर्णसे विरेचन होकर शमन हो जाते है ॥ २२-२५ ॥

नीलिनीं निचुलं व्योषं क्षारौ लवणपञ्चकम्।
चित्रकं च पिबेच्चूर्णं सर्पिषोदरगुल्मनुत् ॥२६॥

नीलिनी (कालादाना), निचुल (हिज्जलबीज), त्रिकटु, जवाखार, सज्जीखार, पांचों लवण और चित्रक इन सबका चूर्ण घृतके साथ पीवे तो सब प्रकारके उदररोग और गुल्मोंको नाश करता है ॥ २६ ॥

पूर्ववच्च पिबेद्दुग्धं क्षामःशुद्धोऽन्तरान्तरा ।
कारभं गव्यमाजं वा दद्यादात्ययिके गदे ।
स्नेहमेव विरेकार्थे दुर्बलेभ्यो विशेषतः॥ २७ ॥

इन उपरोक्त विरेचक चूर्णोंको खाकर विरेचन होनेके अनन्तर इसी अध्यायमें १०--११, १२, श्लोकोंमें पटोलादि चूर्णमें कहीहुई विधिके अनुसार रेचनके बीच २ में ऊटनीका दूध या गौका दूध अथवा बकरीका दूध पिलाकर छःदिनमें क्षामता दूर कर फिर क्रमसे रेचकचूर्ण खिलाकर विरेचन करावे। यदि रोगी बहुत निर्बल हो और रोग बढ़कर हानिकारक होगया हो तो रेचकघृत पिलाकर विरेचन करावे। दुर्बलरोगीको तो स्नेह ही विरेचनार्थ पिलाना चाहिये ॥ २७ ॥

हरीतकी सूक्ष्मरजःप्रस्थयुक्तं घृताढकम् ।
अग्नौ विलाप्य मथितं खजेन यवपल्लके ॥२८॥
निधापयेत्ततो मासादुद्धृतं गालितं पचेत् ।
हरीतकीनां क्वाथेन दध्ना चाम्लेन संयुतम्२९॥
उदरं गरमष्ठीलामानाहं गुल्मविद्रधिम् ।
हन्त्येतत्कुष्ठमुन्मादमपस्मारं च पानतः ॥३०॥

उत्तम हरीतकीका बारीक चूर्ण एक सेर लेकर चार सेर घृतमें मिलाकर चिकने पात्रमें डाल देवे इस पात्रको अग्नि पर गर्मकर मथानीसे हरीतकी चूर्णको मथ कर घृतमें मिलादे फिर इस घृतपात्रका मुख बन्दकर जौके भुस्सेमें दबा कर एक मास रहने दे एक मासके अनन्तर निकालकर इस घृतमें चार गुणा हरीतकीका क्वाथ और खट्टी दही मिलाकर पकावे सिद्ध होनेपर इस घृतको पीनेसे उदररोग, गर, अष्ठीला, आनाह, गुल्म, विद्रधि, कुष्ठ, उन्माद और अपस्मार ये सब रोग नष्ट होजाते है ॥ २८–३० ॥

स्नुक्क्षीरयुक्ताद्गोक्षीराच्छृतशीतात्खजाहतात्।
यज्जातमाज्यं स्नुक्क्षीरसिद्धं तच्च तथागुणम् ३१

गौ या भैंसके दूधमें थोहरका दूध मिलाकर गरम करे फिर इस दूधको ठंढा करके मथानीसे विलोकर घृत निकाले इस घृतमें समभाग थोहरका दूध मिलाकर अग्निपर सिद्धकरे घृतमात्र शेषरहनेपर घृतको छानले। इस घृतको खानेसे विरेचन होकर उदररोग, गुल्म और विद्रधि आदि रोग शमन होते हैं॥ ३१ ॥

क्षीरद्रोणं सुधाक्षीरप्रस्थार्धेन युतं दधि ।
जातं मथित्वा तत्सर्पिस्त्रिवृत्सिद्धं च तद्गुणम् ॥

गोदूध एक द्रोण, थोहरका दूध आध सेर इन दोनोंको मिलाकर दही जमावे इस दहीको बिलोकर घृत निकाल लेवे इस घृतको निशोथके कल्कसे सिद्ध करके खानेसे विरेचन होकर उदररोग आदि व्याधियें नष्ट होजाती है ॥ ३२ ॥

तथा सिद्धं घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुणे पिबेत् ।
स्नुक्क्षीरपलकल्केन त्रिवृताषट्पलेन च॥३३॥

थोहरका दूध मिलाकर जमायेहुए दूधका घृत एक सेर और गौका दूध आठ सेर मिलाकर इसमें एक पल थोहरका दूध और छः पल निशोथके कल्कको मिलाकर घृत सिद्ध करे. इस घृतके पीनेसे विरेचन होकर उदररोग आदि रोग नष्ट होजाते हैं ॥३३॥

एषां चानु पिबेत्पेयां रसं स्वादु पयोऽथवा३४
घृते जीर्णे विरिक्तश्च कोष्णं नागरसाधितम् ।
पिबेदम्बु ततः पेयां ततो यूषं कुलत्थजम्३५॥

इन उपरोक्त घृतोंको पीकर इनके ऊपर पेया

या मधुररस अथवा दूध पीना चाहिये या इनमें मिलाकर रेचक घृत पीना चाहिये।

जब घृत जीर्ण होकर विरेचनसे शरीर शुद्ध होजाय तब सोंठ उबालकर सिद्ध कियाहुआ कोष्ण जल पीना चाहिये। उसके अनन्तर पेया फिर पेयाके अनन्तर कुलथीका यूष पीना चाहिये॥ ३४॥३५॥

पिबेद्रूक्षत्र्यहं त्वेवं भूयो वा प्रतिभोजितः।
पुनः पुनःपिबेत्सर्पिरानुपूर्व्याऽनयैव च॥३६॥

इस प्रकार तीन दिन रूक्ष हुआ मनुष्य फिर भोजन करे तदनन्तर सातवें दिन इसी प्रकार फिर विरेचन करावे. इस क्रमसे बार २ विरेचन करानेसे उदर रोग शमन होजाता है॥ ३६॥

घृतान्येतानि सिद्धानि विदध्यात्कुशलो भिषक्
गुल्मानां गरदोषाणामुदराणां च शान्तये३७॥

इन विरेचन करनेवाले उपरोक्त सिद्ध कियेहुए घृतोंको योग्य वैद्य-गुल्मरोगमें, गरदोषमें और उदररोगोंको शान्त करनेमें प्रयोग करे॥ ३७॥

पीलुकल्कोपसिद्धं वा घृतमानाहभेदनम्।
तैल्वकं नीलिनीसर्पिःस्नेहं वा मिश्रकं पिबेत्३८।

पीलुफलके कल्कसे सिद्ध किया घृत अथवा तैल्वक लोधसे सिद्ध किया घृत, या नीलनीके कल्क काथसे सिद्ध घृत पीनेसे उदरका आनाह (फुलाव) भेदन होकर शान्त होजाता है॥ ३८॥

हृतदोषः क्रमादश्नन् लघुशाल्योदनं प्रति।
उपयुञ्जीत जठरी दोषशेषनिवृत्तये॥ ३९॥
हरीतकीसहस्रं वा गोमूत्रेण पयोऽनुपः।
सहस्रं पिप्पलीनां वा स्नुक्क्षीरेण सुभावितम्॥
पिप्पलीं वर्धमानां वा क्षीराशी वा शिलाजतु।
तद्वद्वा गुग्गुलुं क्षीरं तुल्यार्द्रकरसं तथा॥४१॥

इस प्रकार विरेचनों द्वारा दोष हरण करनेके अनन्तर पेयादिक्रमका सेवन कर पुराने शालिचावलोंका भात थोड़ा २ खाना आरम्भ करे और क्रमसे हलका भोजन करतेहुए बल प्राप्त करे।

तदनन्तर उदरके शेष दोषकी निवृत्तिके लिये गोमूत्रमें भावना दीहुई एक सहस्र हरीतकीका सेवन करे और ऊपरसे दूधका सेवन (पथ्य) करता रहे। अथवा थोहरके दूधमें भिगोकर सुखायीहुई एक सहस्र पीपलका क्रमसे सेवन करे और दूधका पथ्य करे। या रसायन विधानमें वर्धमान पिप्पलीका सेवन करे। अथवा केवल दूधका आहार करतेहुए शिलाजीतका सेवन करे। अथवा दूधका आहार करतेहुए गुग्गुलका सेवन करे। अथवा समानभाग अदरकका रस मिलाकर दूधका सेवन करे॥ ३९-४१॥

चित्रकामरदारुभ्यां कल्कं क्षीरेण वा पिबेत्।
मासं युक्तस्तथा हस्तिपिप्पलीविश्वभेषजम् ४२

अथवा चित्रककी जड़ और देवदारुके कल्कको दूधके साथ पीवे। अथवा गजपीपल और सोंठके कल्कको दूधके साथ एक मासतक पीवे और दूधका ही आहार करे॥ ४२॥

विडङ्गं चित्रको दन्ती चव्यं व्योषं च तैः पयः।
कल्कैःकोलसमैःपीत्वा प्रवृद्धमुदरं जयेत्॥४३॥

वायबिडंग, चित्रक, दन्ती, चव्य, सोंठ, मिर्च और पीपल इन सबको छः मासे लेकर कल्क बना दूधके साथ पीवे। इसके सेवनसे भी बढ़ा हुआ उदर शमन होजाता है॥ ४३॥

भोज्यं भुञ्जीत वा मासं स्नुहीक्षीरघृतान्वितम्।
उत्कारिकां वा स्नुक्क्षीरपीतपथ्याकणाकृताम्॥

अथवा थोहरके दूधसे सिद्ध किये घृतको भोजनमें मिलाकर एक महीने तक खावे। अथवा थोहरका दूध मिलाकर बनायीहुई और घृतमें पकाईहुई पूड़ियें एक मास तक खावे। या थोहरके दूधमें भावना दी हुई हरड़ें या पीपलें एक मास तक खावे तो उदर रोग शान्त होजाता है॥ ४४॥

पार्श्वशूलमुपस्तम्भं हृद्ग्रहं च समीरणः।
यदि कुर्यात् ततस्तैलं बिल्वक्षारान्वितं पिबेत्॥
पक्वं वा टिण्टुकबलापलाशतिलनालजैः।
क्षारैः कदल्यपामार्गतर्कारीजैः पृथक्कृतैः॥४६॥

यदि उदररोगमें वायु पार्श्वशूल, उपस्तम्भ और हृद्ग्रह को करदेवे तो बिल्व और जवाखार युक्त तैल

पीवे । अथवा सोनापाठा, बला, पलाश और तिलछंड़े इन सबके क्षारसे सिद्ध कियाहुआ तैल अथवा कदली, अपामार्ग और अग्निमन्थके क्षारसे सिद्ध कियाहुआ तैल पिलाना चाहिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

कफे वातेन पित्ते वा ताभ्यां वाप्यावृतेऽनिले ।
बलिनःस्वौषधयुतं तैलमेरण्डजं हितम् ॥४७॥

यदि वायुसे कफ आवृत हो अथवा पित्त आवृत हो या कफ और पित्तसे वायु आवृत हो और रोगी बलवान् हो तो दोषानुसार औषधयुक्त एरण्डतैल पिलाना हितकारी होता है ॥ ४७ ॥

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः ।
साश्वकर्णैःसगोमूत्रैःप्रदिह्यादुदरं बहिः ॥ ४८ ॥

देवदारु, पलाश, आककी जड़की छाल, गजपीपल, सुहांजनेकी जड़की छाल और अश्वकर्ण (शालविशेष) की छाल इन सबको गोमूत्रमें पीसकर रेचनादिसे म्लानहुए उदरपर गर्म करके लेप करे (इस लेपसे उदररोग शमन होता है) ॥ ४८ ॥

वृश्चिकालीवचाशुण्ठीपञ्चमूलपुनर्नवात् ।
वर्षाभूधान्यकुष्ठाच्च क्वाथैर्मूत्रैश्च सेचयेत् ॥४९॥

वृश्चिकाली, वच, सोंठ, पञ्चमूलके पांचों द्रव्य, रक्त पुनर्नवा, श्वेत पुनर्नवा, धनियां और कूठ इन सबके क्वाथमें गोमूत्र मिलाकर उदरपर सुखोष्ण धारा डालकर सेचन करना उदररोगको शमन करता है ॥४९॥

विरिक्तं म्लानमुदरं स्वेदितं साल्वलादिभिः ।
वाससा वेष्टयेदेवं वायुर्नाऽऽध्मापयेत्पुनः॥५०।

इस प्रकार उदररोगीको विरेचन कराकर उदरका विकार विरेचन द्वारा निकल जानेपर उदरपर बाहर लेप और सेचन करनेके अनन्तर शाल्वलादि स्वेद करके मुर्झायेहुए उदरपर वस्त्रकी पट्टी बांध देवे जिससे खाली उदरको अवकाश पाकर वायु आध्मापित न करे॥५०

सुविरिक्तस्य यस्य स्यादाध्मानं पुनरेव तम् ।
सुस्निग्धैरम्ललवणैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥ ५१ ॥

यदि उदररोगीको यथार्थ विरेचन करादेनेके अनन्तर भी आध्मान होजावे तो उस रोगीको अम्ल लवण द्रव्योंसे युक्त तैलादि स्नेह मिलाकर निरूहणवस्तिका प्रयोग करे ॥ ५१ ॥

सोपस्तम्भोऽपि वा वायुराध्मापयति यं नरम् ।
तीक्ष्णाःसक्षारगोमूत्राःशस्यंते तस्य बस्तयः५२

यदि कफ या पित्तके आधारयुक्त वायु ऐसे रोगीको आध्मान करनेवाला हो तो उसको तीक्ष्ण, क्षार और गोमूत्र युक्त वस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥५२॥

इति सामान्यतःप्रोक्ताःसिद्धा जठरिणांक्रियाः॥

इस प्रकार उदररोगवालोंके लिये सामान्यरूपसे सिद्ध चिकित्सा कथन कर चुके हैं (वातादि भेदसे विशेष चिकित्सा आगे कहते है) ॥ ५३ ॥

वातोदरकी चिकित्सा ।

वातोदरेऽथ बलिनं विदार्यादिश्टतं घृतम् ।
पाययेत्तु ततः स्निग्धं स्वेदिनाङ्गं विरेचयेत् ।
बहुशस्तैल्वकेनैनं सर्पिषा मिश्रकेण वा ॥५४॥

वातका उदररोगी यदि बलवाला हो तो उसको प्रथम विदार्यादिगणसे सिद्ध कियाहुआ घृत पिलाकर स्निग्ध करे फिर इसके शरीरको स्वेदन करे, तदनन्तर विशेषरूपसे तैल्वकघृत या मिश्रक घृत पिलाकर विरेचन करावे ॥ ५५ ॥

कृते संसर्जने क्षीरं बलार्थमवचारयेत् ।
प्रागुत्क्लेशान्निवर्तेत बले लब्धे क्रमात्पयः ५५॥

इस प्रकार विरेचन करानेके अनन्तर बलवृद्धिके लिये दूध पिलाता रहे जब देखे कि शरीरमें बल आकर कफका उत्क्लेश होनेलगा है तो क्रमसे दूधका सेवन कम करताहुआ दूध छोड़ देवे ॥ ५५ ॥

यूषै रसैर्वा मन्दाम्ललवणैरेधितानलम् ।
सोदावर्तं पुनः स्निग्धं स्विन्नमास्थापयेत्ततः ।
तीक्ष्णाऽधोभागयुक्तेन दाशमूलिकबस्तिना५६

जब यूष या मांसरस किंचित् अम्लरस युक्त सेवन करतेहुए जठराग्नि बलवान् होजाय ऐसे पुरुषको यदि उदावर्त हो तो उसको पुनः स्निग्धकर और स्वेदन करके दशमूल निशोथ, मैनफल आदिके क्वाथमें गोमूत्र मिलाकर अधोभागसे तीक्ष्ण आस्थापन वस्तिका प्रयोग करे ॥ ५६ ॥

तिलोरुबूकतैलेन वातघ्नाम्लशृतेन च।
स्फुरणाक्षेपसंध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्तिषु॥५७॥
रूक्षं बद्धशकृद्वातं दीप्ताग्निमनुवासयेत्।
अविरेच्यस्य शमना बस्तिक्षीरघृतादयः॥५८॥

जिस रोगीको स्फुरण (फड़कन) और आक्षेप होता हो तथा सन्धि, अस्थि, पार्श्व, पीठ और त्रिकस्थानमें शूल हो एव वह रोगी रूक्ष हो उसके मल और अपानवात बद्धसे हो परंतु जठाग्नि दीप्त हो ऐसे रोगीको वातनाशक और अम्लद्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तिल तैल और एरण्ड तैलसे अनुवासनवस्ति देवे। यदि यह उदररोगी विरेचन करानेयोग्य न हो और स्फुरण आदि विकार इसके शरीरमें हों तो इसको दूध घृत आदिसे शमन वस्तियोंका प्रयोग करे अर्थात् इसको एरण्डतैलादिसे तीक्ष्ण रेचक वस्ति न देवे॥५७-५८

पित्तके उदररोगकी चिकित्सा।

बलिनं स्वादुसिद्धेन पैत्ते संस्नेह्य सर्पिषा।
श्यामात्रिभण्डीत्रिफलाविपक्वेन विरेचयेत्॥५९॥
सितामधुघृताढ्येन निरूहोऽस्य ततो हितः।
न्यग्रोधादिकषायेण स्नेहबस्तिश्च तच्छृतः॥६०

यदि पित्तके उदररोगवाला रोगी बलवान् हो तो उसको मधुरद्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृत पिलाकर स्नेहन करे। तदनन्तर काली निशोथ, लाल निशोथ और त्रिफलेके कल्क क्वाथसे सिद्ध कियेहुए घृतको पिलाकर विरेचन करावे। फिर न्यग्रोधादि गणके क्वाथमें मिसरी, सहद और घृत मिलाकर निरूहण वस्ति करावे। तथा न्यग्रोधादिगणसे सिद्ध कियेहुए तैलसे अनुवासन वस्ति कराना हितकारी होता है॥ ५९ ॥ ६० ॥

दुर्बलं त्वनुवास्यादौ शोधयेत्क्षीरबस्तिभिः।
जाते त्वग्निबले स्निग्धं भूयो भूयो विरेचयेत्॥६१
क्षीरेण सत्रिवृत्कल्केनोरुबूकशृतेन तम्।
सातलात्रायमाणाभ्यां शृतेनाऽऽरग्वधेन वा॥६२

यदि रोगी दुर्बल हो तो उसको प्रथम अनुवासन कराकर दूधकी वस्तिद्वारा उसका मल शोधन करता रहे। जब शरीरमें अग्निबल ठीक होजावे तो इसको घृतपानादिसे स्निग्ध करे तदनन्तर निशोथके कल्क और एरण्डके बीजोंके कल्कसे सिद्ध किया दूध पिलाकर बार २ विरेचन करावे। अथवा सातला और त्रायमाणासे सिद्ध किया दूध पिलाकर या अमलतासकी फलीका गूदा पिलाकर बार २ विरेचन करावे॥ ६१ ॥ ६२ ॥

सकफे वा समूत्रेण सतिक्ताज्येन सानिले॥६३॥

यदि पित्तके उदररोगमें कफका संसर्ग हो तो गोमूत्र मिला दूध पिलाकर विरेचन करावे। यदि पित्तके साथ वायुका ससर्ग हो तो कुष्ठरोगमें कहा तिक्तघृत मिला दूध पिलाकर विरेचन करावे॥ ६३॥

पयसान्यतमेनैषां विदार्यादिशृतेन वा।
भुञ्जीत जठरं चास्य पायसेनोपनाहयेत्॥६४॥

विरेचनके अनन्तर विदार्यादिगणसे सिद्ध कियेहुए दूधसे भोजन करावे तथा पायस (खीर) से इसके उदरपर उपनाह स्वेद करे अर्थात् गर्मखीर सुहाती २ पेटपर लेप करे॥ ६४ ॥

पुनः क्षीरं पुनर्बस्तिं पुनरेव विरेचनम्।
क्रमेण ध्रुवमातिष्ठन्यतः पित्तोदरं जयेत्॥६५॥

इस प्रकार क्रमसे दूध पिलावे फिर वस्तिकर्म करे फिर विरेचन करावे इस प्रकार बार बार इस क्रमका स्थिररूपसे पालन करे तो पित्तका उदररोग शमन होजाता है॥ ६५ ॥

कफके उदररोगकी चिकित्सा।

वत्सकादिविपक्वेन कफे संस्नेह्य सर्पिषा।
स्विन्नं स्नुक्क्षीरसिद्धेन बलवंतं विरेचितम्॥६६॥
संसर्जयेत्कटुक्षारयुक्तैरन्नैः कफापहैः।
मूत्रत्र्यूषणतैलाढ्यो निरूहोऽस्य ततो हितः॥६७
मुष्ककादिकषायेण स्नेहबस्तिश्च तच्छृतः।
भोजनं व्योषदुग्धेन कौलत्थेन रसेन वा॥६८॥

कफके उदररोगमें वत्सकादिगणसे सिद्ध किया हुआ घृत पिलाकर स्नेहन करे तदनन्तर स्वेदनकरके यदि रोगी बलवाला हो तो उसको स्नुही (थोहर) के दूधसे सिद्ध कियाहुआ घृत पिलाकर विरेचन करावे तदनन्तर कटु और क्षारद्रव्योंसे सिद्ध कीहुई पेया आदि अन्नका क्रमपूर्वक सेवन करावे।

तदनन्तर त्रिकटु गोमूत्र और तैल मिलाकर मुष्ककादिगणके काथमे निरूहणवस्ति करावे । और मुष्ककादि गणके कल्क और क्राथसे सिद्ध किये तैलसे अनुवासनवस्ति करना हितकारी होता है. तथा कफके उदररोगीको त्रिकटु (सोंठ, मिर्च पीपल) से सिद्ध किया दूध या कुलथीका यूष भोजनमें देना चाहिये ॥ ६६-६८ ॥

स्तैमित्यारुचिहृल्लासैर्मन्देऽग्नौ मद्यपाय च ।
दद्यादरिष्टान् क्षारांश्च कफस्त्यानस्थिरोदरे ६९॥

यदि कफके उदररोगीको स्तैमित्य, अरुचि, हृल्लास और मन्दाग्नि हो और वह रोगी मद्यपीनेवाला हो तो उसको क्षारयुक्त अरिष्ट पिलाना चाहिये जिसका उदर कफसे स्थिरसा हुआ रहता हो उसको भी क्षार युक्त अरिष्ट पिलाना चाहिये ॥ ६९ ॥

हिंगूपकुल्ये त्रिफलां देवदारु निशाद्वयम् ।
भल्लातकं शिग्रुफलं कटुकां तिक्तकं वचाम्७०॥
शुण्ठीं माद्रीं घनं कुष्ठं सरलं पटुपञ्चकम् ।
दाहयेज्जर्जरीकृत्य दधिस्नेहचतुष्कवत् ॥ ७१ ॥
अन्तर्धूमं ततः क्षाराद्बिडालपदकं पिबेत् ।
मदिरादधिमण्डोष्णजलारिष्टसुरासवैः ॥ ७२ ॥
उदरं गुल्ममष्ठीलां तून्यौ शोफं विसूचिकाम् ।
प्लीहहृद्रोगगुदजानुदावर्तं च नाशयेत्॥७३॥

हींग, पीपल, हरड़, बहेडा, आमला, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, भिलावे, सुहांजनेके बीज, कुटकी, चिरायता, बच, सोंठ, अतीस, नागरमोथा, कूट, सरलकाष्ठ और पांचों लवण इन सबको कूटकर एक मिट्टीके घटमें डालकर उसमें दही और चतुस्नेह मिलाकर घटका मुख बन्दकर अग्निके ऊपर घटको रख जब घट अग्नि समान लालवर्ण होजावे तो स्वांगशीतल होने देवे ठढा होनेपर इसको खोलकर दग्धक्षार निकाल चूर्णकर रख ले इसमेंसे एक कर्ष क्षार मद्य या दहीका जल अथवा गर्मजल या अरिष्ट या सुरा या आसव इनमेंसे किसीके साथ खावे तो उदररोग, गुल्म, अष्ठीला तूनी, प्रतितूनी, सूजन, विसूचिका, प्लीहा, हृद्रोग, अर्श और उदावर्त ये सब रोग नष्ट होते है ७०-७३

जयेदरिष्टगोमूत्रचूर्णायस्कृतिपानतः ।
सक्षारतैलपानैश्च दुर्बलस्य कफोदरम् ॥ ७४ ॥

यदि दुर्बल रोगी हो तो वह अरिष्ट गोमूत्र और प्रमेहरोगमें कहीहुई अयस्कृतिका चूर्ण मिलाकर पीवे । अथवा उपरोक्त हिंग्वादि क्षार तैल मिलाकर पीवे तो कफोदर शमन होता है ॥ ७४ ॥

उपनाह्यं ससिद्धार्थकिण्वैर्बीजैश्च मूलकात् ।
कल्कितैरुदरस्वेदमभीक्ष्णं चात्र योजयेत्॥७५

कफके उदररोगमे उपनाह स्वेद योग्य रोगीको सर्सों, किण्व और मूलीके बीजोंका कल्क बनाकर निरन्तर उदरपर उपनाह स्वेद करे ॥ ७५ ॥

सन्निपातके उदररोगकी चिकित्सा ।

संनिपातोदरे कुर्यान्नातिक्षीणबलानले ।
दोषोद्रेकानुरोधेन प्रत्याख्याय क्रियामिमाम् ।
दन्तीद्रवन्तीफलजं तैलं पाने च शस्यते ।
क्रियानिवृत्ते जठरे त्रिदोषे तु विशेषतः ॥७७॥
दद्यादापृच्छ्य तज्ज्ञातीन् पातुं मद्येन कल्कितम्
मूलं काकादनीगुञ्जाकरवीरकसम्भवम् ॥७८॥

सन्निपातके उदररोगमें यदि मनुष्य अतिक्षीणबल हो और जठराग्नि अतिक्षीण हो तथा दोषोंकी अति प्रबलता हो तो ऐसे रोगीको असाध्य कहे. यदि फिरभी कोई चिकित्सा करनेको कहे तो मेरी शक्तिसे बाहर चिकित्सा है यह साध्यहोना संभव नहीं इत्यादि कहनेके अनन्तर यदि चिकित्सा करनी पड़े तो इसको जमालगोटेका तेल एक बिन्दुमात्र दूधमें डालकर पिलावे जिससे विरेचन हो जावे ।

यदि त्रिदोषज उदररोगमें रोगी चिकित्सा करनेकी अवस्था लख चुकाहो तो उसको जातिबांधव आदिकोंको पूछकर उसको मद्यमे मिलाकर काकादनीकी जड़, गुञ्जाकी जड़ और कनेरकी जड़का कल्क पिलावे (ये विषवाले द्रव्य होनेसे शरीरानुसार विचार कर मात्रा देवे) ॥ ७६-७८ ॥

पानभोजनसंयुक्तं दद्याद्वा स्थावरं विषम् ।
यस्मिन्वा कुपितः सर्पो विमुञ्चति फले विषम्॥

तेनास्य दोषसङ्घातःस्थिरो लीनो विमार्गगः।
बहिःप्रवर्तते भिन्नो विषेणाशु प्रमाथिना॥
तथा व्रजत्यगदतां शरीरान्तरमेव वा॥ ८०॥

अथवा खाने पीनेके द्रव्योंमें बच्छनाग या सखिया आदि स्थावरविष युक्तिपूर्वक प्रयोग करे। अथवा जिस फलपर कुपित सर्प अपने विषको त्यागकरे विचार और युक्तिसे उस फलका भाग इसको देवे जिससे इसके स्थिर दोषोंका सघात और लीनहुए दोष प्रमाथी विषके वेगसे शीघ्र भेदन होकर बाहरकी ओर प्रवृत्त होजावे तथा रोगस्थानसे चलायमान होकर या तो यह रोगी निरोग होजावेगा और यदि यह प्रयोग सावधानीसे न हुआ तो रोगीकी मृत्यु होजावेगी। इस कारण सर्वथा असाध्यावस्थामें इसको जब सब मरणोन्मुख समझलेवें तब सबके कहनेसे सावधानीपूर्वक यह प्रयोग करे॥ ७९॥ ८०॥

हृतदोषं तु शीताम्बुस्नातं तं पाययेत्पयः॥८१॥
पेयां वा त्रिवृतः शाकं मण्डूक्या वास्तुकस्य वा
कालशाकं यवाख्यं वा खादेत्स्वरससाधितम्॥
निरम्ललवणस्नेहं स्विन्नास्विन्नमनन्नभुक्।
मासमेकं ततश्चैवं तृषितःस्वरसं पिबेत्॥ ८३॥

यदि इस रोगीका जमालगोटेके तेल आदिसे दोष हरण होजावे तब इसको शीतल जलसे स्नान कराकर दूध पिलावे अथवा पेया पिलावे। या निशोथके पत्रोंका शाक या मण्डूकपर्णीका शाक अथवा वास्तुकशाक, या कालशाक, या यवशाक नामक शाक विना अन्य जल मिलाये उनके स्वरसमे सिद्धकरके खावे। ये शाक लवण, खटाई और घृतके विनाही खाने चाहिये तथा अन्न नहीं खाना चाहिये। इस प्रकार एक मास इस शाकको ही कच्चा या पकाकर खावे यदि प्यास लगे तो इन शाकोंका स्वरसही पीवे एक मासतक और कुछ न खावे॥ ८१--८३॥

एवं विनिर्हृते शाकैर्दोषे मासात् परं ततः।
दुर्बलाय प्रयुञ्जीत प्राणभृत्कारभं पयः॥८४॥

इस प्रकार शाकों द्वारा दोष हरण होजानेसे एक मासके अनन्तर इस दुर्बल रोगीके प्राणको बल देनेके लिये ऊंटनीका दूध पिलावे॥ ८४॥

प्लीहोदरकी चिकित्सा।

प्लीहोदरे यथादोषं स्निग्धस्य स्वेदितस्य च।
सिरां भुक्तवतो दध्ना वामबाहौ विमोक्षयेत्॥८५

प्लीहोदरमें दोषानुसार स्नेहन स्वेदनके अनन्तर दहीके साथ भोजन कराकर वांये ओरकी बांहकी सिरा वेधनकर रक्त निकाले॥ ८५॥

लब्धे बले च भूयोऽपि स्नेहपीतं विशोधितम्।
समुद्रशुक्तिजं क्षारं पयसा पाययेत्तथा॥ ८६॥
अम्लभृतं बिडकणाचूर्णाढ्यं नक्तमालजम्।
सौभाञ्जनस्य वा क्वाथं सैन्धवाग्निकणान्वितम्
हिंग्वादिचूर्णं क्षाराज्यं युञ्जीत च यथाबलम्॥८७

रक्त मोक्षणके अनन्तर जब बल आजावे तब पुनः स्नेहपान कराकर शोधन करावे शोधनके अनन्तर समुद्रकी सिप्पियोंका खार बनाकर दूधके साथ पिलावे। तथा करञ्जका क्षार विड़लवण और पीपलके चूर्णमें मिलाकर खट्टीकांजीके साथ पिलावे। अथवा सुहांजनेका क्वाथ, सैंधालवण और चित्रकका चूर्ण मिलाकर पिलावे अथवा हिंग्वादि चूर्ण क्षारघृत मिलाकर बलानुसार खिलावे। यहां औषधकी मात्रा सहन योग्य बल देखकर औषधकी मात्रा देनी चाहिये॥८६।८७

पिप्पली नागरं दन्ती समांशं द्विगुणाभयम्।
बिडार्धांशयुतं चूर्णमिदमुष्णाम्बुना पिबेत्॥८८॥

पीपल एक तोला, सोंठ एक तोला, दन्ती एक तोला हरीतकी दो तोले, विड़लवण छः मासे इन सबका चूर्ण बनाकर एक तोला नित्य गर्मजलसे पीवे तो प्लीहा शमन होती है॥ ८८॥

विडङ्गं चित्रकं सक्तून् सघृतान् सैन्धवं वचाम्।
दग्ध्वा कपाले पयसा गुल्मप्लीहापहं पिबेत्॥८९

वायविडंग, चित्रककी जड़, जौके सत्तू, घृत, सेंधालवण और बच इन सबको मट्टीके पात्रमें डाल अग्निपर दग्ध करे फिर चूर्णकर दूधके साथ खावे तो गुल्म और प्लीहा शमन होजाते हैं॥ ८९॥

तैलोन्मिश्रैर्बदरकपत्रैः संमर्दितैः समुपनद्धः ।
मुसलेन पीडितोऽनु याति प्लीहा पयो-
-भुजो नाशम् ॥ ९० ॥

बेरीके पत्रोंपर तेल लगाकर इनको अच्छी तरह मर्दनकरे फिर इन पत्रोंका भुर्तासा बनाकर सुहाता २ प्लीहापर बांधदेवे. ऊपरसे सहता २ मुसलसे दबावे और पथ्यमें केवल दूधमात्र पिलावे ऐसे करते रहनेसे प्लीहारोग नष्ट होजाता है ॥ ९० ॥

रोहीतकलताः कृत्वाः खण्डशः साभया जले ।
मूत्रे वाऽऽसुनुयात्तत्तु सप्तरात्रस्थितं पिबेत् ।
कामलाप्लीहगुल्मार्शःकृमिमेहोदरापहम् ॥९१॥

रोहितक (रुहेड़े घास) की लताके छोटे २ टुकड़े करके उसमें हरड़ोंका चूर्ण मिलाकर जलमें या गोमूत्रमें डालकर पात्रका मुख बन्दकरके सात दिन संधानविधिसे रक्खे । सात दिनके अनन्तर यह जल या गोमूत्र पीवे और हरीतकीको अवलेहके समान चाटे तो कामला, प्लीहा, गुल्म, अर्श, कृमि, प्रमेह और उदररोग शमन होता है ॥ ९१ ॥

रोहीतकत्वचः कृत्वा पलानां पञ्चविंशतिम् ९२।
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत् ।
पालिकैः पञ्चकोलैस्तु तैः समस्तैश्च तुल्यया ९३
हरीतकत्वचा पिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
प्लीहाभिवृद्धिं शमयत्येतदाशु प्रयोजितम् ९४॥

रोहितककी छाल काटकूटकर पच्चीस पल, उन्नाभ दो सेर इनको आठ गुणे जलमें डालकर क्राथ करे यह क्राथ तथा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ ये एक एक पल, हरीतकीका चूर्ण पांच पल इनका कल्क मिलाकर एक सेर घृत सिद्ध करे यह घृतप्रयोग कियाहुआ प्लीहाको शीघ्र ही शमन कर देता है ॥ ९२--९४ ॥

कफवातजप्लीहाकी चिकित्सा ।

कदल्यास्तिलनालानां क्षारेण क्षुरकस्य च ।
तैलं पक्वं जयेत्पानात्प्लीहानं कफवातजम् ९५॥

केला, तिलनाल और तालमखानेके क्षुप इन तीनोंको सुखाकर अग्निसे दग्ध करे फिर इनका क्षार चुवावे इस क्षारसे सिद्ध किया तैल पीनेसे कफ वातकी प्लीहा शमन हो जाती है ॥ ९५ ॥

प्लीहापर अग्निकर्म ।

अशान्तौ गुल्मविधिना योजयेदग्निकर्म च ।
अप्राप्तपिच्छासलिले प्लीह्नि वातकफोल्बणे९६॥

यदि इन उपायोंसे प्लीहा शमन न होवे और प्लीहासे पिच्छायुक्त जल न आने लगे तो इस वात-कफप्रधान प्लीहापर कफके गुल्मरोगमें कही विधिसे अग्निकर्म करदेना चाहिये ॥ ९६ ॥

पित्तज प्लीहाकी चिकित्सा ।

पैत्तिके जीवनीयानि सर्पींषि क्षीरबस्तयः ।
रक्तावसेकः संशुद्धिः क्षीरपानं च शस्यते॥९७॥

पित्तके प्लीहारोगमें जीवनीयगणके द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत पिलाना चाहिये और इनही द्रव्योंसे सिद्ध किये दूधसे आस्थापनबस्ति देना चाहिये तथा सिरा वेधनकर रक्त निकालना चाहिये । (प्रथम शोधन कर दही भात खिलाकर वाम बाहूकी सिरा वेधन करना) और यथार्थ रेचन देना तथा केवल दूधका पथ्य देना चाहिये ॥ ९७ ॥

यकृतरोगकी चिकित्सा ।

यकृति प्लीहवत्कर्म दक्षिणे तु भुजे सिराम् ९८॥

यकृतरोग (यकृतरोगकी वृद्धि) में सब क्रियायें प्लीहाके समान ही करना चाहिये परन्तु सिरा दहनी-ओरकी बाहूमेंसे वेधन करना चाहिये ॥ ९८ ॥

बद्धोदरकी चिकित्सा ।

स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम् ।
सतैलं लवणं दद्यान्निरूहं सानुवासनम् ॥९९॥
परिस्रंसीनि चान्नानि तीक्ष्णं चास्मै विरेचनम् ।
उदावर्तहरं कर्म कार्यं यथानिलापहम् ॥१००॥

बद्धोदररोगवालेको प्रथम स्नेहन स्वेदन करके गोमूत्र और तीक्ष्ण द्रव्योंसे युक्त तथा तैल और लवण मिलाकर निरूहणबस्तियोंका प्रयोग और अनुवासन बस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये । तथा इसको मल निकालनेवाले अन्न देने चाहिये और तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये । एवं उदावर्तरोगनाशक सब कर्म करने

चाहिये और वातनाशक तथा वायुको अनुलोमन करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ ९९ ॥ १०० ॥

छिद्रोदरकी चिकित्सा ।

छिद्रोदरमृते स्वेदाच्छ्लेष्मोदरवदाचरेत् ।
जातं जातं जलं स्राव्यमेवं तद्यापयेद्भिषक् १०१

वैद्यको छिद्रोदरमें स्वेदन नहीं करना चाहिये किन्तु अन्य सब क्रियायें कफोदरके समानही करनी चाहिये. यदि छिद्रोदरमे छिद्रोंसे स्राव हो उदरमें जल उत्पन्न होने लगे तो जितना जितना जल उत्पन्न हो उतना२ जल निकालता रहे तथा अन्य चिकित्सा औषध सेवनादिद्वारा कर यापन करते २ रोगीको आरोग्य करलेवे ॥ १०१ ॥

जलोदरकी चिकित्सा ।

अपां दोषहराण्यादौ योजयेदुदकोदरे ।
मूत्रयुक्तानि तीक्ष्णानि विविधक्षारवान्ति च ।
दीपनीयैः कफघ्नैश्च तमाहारैरुपाचरेत् ॥१०२॥

जलोदरमें प्रथम जलके दोषसचयको हरनेवाले गोमूत्रयुक्त तीक्ष्ण और क्षारवाले द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये तथा जठराग्निको दीपन करनेवाले और कफनाशक आहार आदि देतेहुए उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १०२ ॥

क्षारवटी ।

क्षारं छागकरीषाणां श्रुतं मूत्रेऽग्निना पचेत् ।
घनीभवति तस्मिंश्च कर्षांशं चूर्णितं क्षिपेत्१०३
पिप्पली पिप्पलीमूलं शुण्ठी लवणपञ्चकम् ।
निकुम्भकुम्भात्रिफलास्वर्णक्षीरीविषाणिकाः ॥
स्वर्जिकाक्षारषड्ग्रन्थासातलायवशूकजम् ।
कोलाभा गुटिकाः कृत्वा ततः सौवीरकाप्लुताः
पिबेदजरके शोफे प्रवृद्धे चोदकोदरे ॥ १०६ ॥

बकरीकी मेंगनोंको अग्निमें दग्धकर इनका गोमूत्रमें क्षार चुवावे. वह क्षार अग्निपर चढ़ाकर पकावे जब वह गाढ़ा होजावे तो उसमें पीपल, पीपलामूल, सोंठ, पांचों लवण, दन्ती, निशोथ, त्रिफला, सत्यानासीकी जड़, मेढासिंगी,सज्जीखार, बच, सातला और जवाखार ये प्रत्येक एक एक कर्ष बारीक पीसकर मिलावे फिर इसकी जंगली बेरके समान गोलियें बनाले इनमेंसे एक गोली कांजीमें मिलाकर पीनेसे अजीर्ण, सूजन और बढ़ाहुआ जलोदर शमन होता है॥ १०३-१०६॥

उदररोगमें शस्त्रकर्म ।

इत्यौषधैरप्रशमे त्रिषु बद्धोदरादिषु ।
प्रयुञ्जीत भिषक् शस्त्रमार्तबन्धुनृपार्थितः१०७

इस प्रकार औषध प्रयोग करनेपर यदि बद्धोदर क्षतोदर और जलोदर शमन नहीं होवें तो राजाज्ञा प्राप्त शस्त्रचिकित्सकवैद्य रोगीके बांधवोंद्वारा प्रार्थना कियाजानेपर इन तीनों प्रकारके उदररोगोंमें शस्त्रद्वारा चिकित्सा करे ॥ १०७ ॥

बद्धोदरमें और क्षतोदरमें शस्त्रकर्म ।

स्निग्धस्विन्नतनोर्नाभेरधो बद्धक्षतान्त्रयोः
पाटयेदुदरं मुक्त्वा वामतश्चतुरङ्गुलात् ॥१०८॥
चतुरङ्गुलमानं तु निष्कास्यांत्राणि तेन च ।
निरीक्ष्याऽपनयेद्वालमललेपोपलादिकम् १०९
छिद्रे तु शल्यमुद्धृत्य विशोध्यान्त्रं परिस्रवम् ।
मर्कोटैर्दंशयेच्छिद्रं तेषु लग्नेषु चाहरेत् ॥११०॥
कायं मूर्ध्नोऽनुचान्त्राणि यथास्थानं निवेशयेत्।
अक्तानि मधुसर्पिर्भ्यामथ सीव्येद्बहिर्व्रणम्११
ततः कृष्णमृदाऽऽलिप्य बध्नीयाद्यष्टिमिश्रया ।
निवातस्थः पयोवृत्तिः स्नेहद्रोण्यां वसेत्ततः१२

बद्धोदरवालेको स्नेहन स्वेदन करनेके अनन्तर उदरके वाम भागमें चार अंगुल छोड़कर चीरादेकर चार अगुल प्रमाण आंत्रको बाहर निकालकर उसमें सावधानीसे देखकर वाल, मल, लेप और उपलेप जो कुछ दोष हो उसको निकाल देवे. यदि अन्तड़ीमे छिद्र किया हो तो उस स्थानको मकौडोंसे कटवाकर छिद्रको बन्द करदे और मकौड़का शिरमात्र लगा रहने देवे बाकी भाग काटकर अलग करदे फिर अंतड़ीको घृत मधुसे लिप्तकर उदरमें यथास्थान प्रवेश कर देवे. तदनन्तर उत्पाटनकिये स्थानको सूचीसे सी देवे ऊपर मधुयष्टी मिली कृष्ण मृत्तिकाका लेपकर पट्टी बांधदेवे और निवातस्थानमें रक्खे पीनेको दूध ही देवे ।

इसी प्रकार जिस रोगीको किसी क्षतादि होनेके कारण पेटमें छिद्र होकर उदररोग होगया हो उसको स्नेहन स्वेदनके अनन्तर बद्धोदरके समान ही उदरको उत्पाटनकर छिद्रवाली आन्त्रको निकालकर शुद्ध करे और निचोड़कर अन्तडीके छिद्रवाले स्थानको मकौडोंसे कटवावे । जब मकौड़े छिद्रवाले स्थानको मुखसे दबालेवें तो उनके शिरको छोड़कर बाकी मकौडोंका शरीर अलग करदे और अंतड़ीको घृत मधु लगाकर यथास्थान प्रवेश करदेवे फिर उत्पाटन (चीरे) का स्थान सूईसे सीकर मुलहठीयुक्त काली मट्टी लगाकर पट्टी बांधदेवे फिर रोगीको शुद्ध निर्वातस्थानमें लेटाया रक्खे भोजन केवल दूधमात्र हो देवे ।

इन दोनो प्रकारके रोगियोंको इस प्रकार चिकित्सा करनेके अनन्तर औषध सिद्ध तैलकी द्रोणीमें लेटाना अर्थात् तेल भरेहुए पात्रमें लेटाना चाहिये १०८-११२

जलोदरकी चिकित्सा ।

सजले जठरे तैलैरभ्यक्तस्याऽनिलापहैः ।
स्विन्नस्योष्णांबुनाऽऽकक्षमुदरे परिवेष्टिते ।
बद्धच्छिद्रोदितस्थाने विध्येदंगुलमात्रकम् ११३
निधाय तस्मिन्नाडीं च स्रावयेदर्धमम्भसः ।
अथाऽस्य नाडीमाकृष्य तैलेन लवणेन च ॥
व्रणमभ्यज्य बद्ध्वा च वेष्टयेद्वाससोदरम् ।
तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा यावदाषोडशं दिनम् ११५
तस्य विश्रम्य विश्रम्य स्रावयेदल्पशो जलम् ।
विवेष्टयेद्गाढतरं जठरं च क्षयाक्षयम् ॥
निःस्रुते लंघितः पेयामस्नेहलवणां पिबेत् ११६

जलोदरवाले रोगीको वातनाशक तैलोंसे अभ्यक्त कर गर्मजलसे स्वेदन करे तदनन्तर वस्त्रकी पट्टीसे सारा उदर कांख पर्यन्त कसकर लपेट देना चाहिये फिर बद्धोदरके समान बाईं ओर नाभीसे चार अंगुलपर अंगुलमात्र छेदकर नाड़ीयन्त्र प्रवेशकर उदरका आधा जल निकाल देवे फिर नाड़ीयन्त्र निकाल व्रणस्थानको तेल और लवणसे अभ्यक्तकर पट्टी बांध वस्त्रकी बड़ी पट्टीसे पेटको लपेटकर बांध देवे । फिर तीसरे या चौथे दिन थोड़ासा जल निकाले इसी प्रकार तीन या चार दिनका विश्राम देकर सोलह दिन तक थोड़ा २ जल निकालता रहे और क्रमसे उदरको अधिक गाढ लपेटकर बांधता रहे जैसे २ जल निकालता जावे वैसे २ पेटको कसकर लपेटता जावे जिससे जल भरनेको अवकाश न मिले । जब सब जल निकल जावे तब इस लंघनसे कृशहुए रोगीको विना लवण घृतके पेया पान करावे । यहां अरुणदत्त लिखते है कि किंचित् स्नेह और किंचित् लवणमिली पेया पीना चाहिये. क्योंकि किंचित् स्नेह लवण युक्त पेया होनेसे वातका प्रकोप नहीं होता और क्लेदकी रक्षा रहती है । यहां-"अस्नेहलवणां" में नञ् ईषत्का वाचक है सर्वथा निषेधका नहीं है ॥ ११३-११६॥

जला निकालनेके अनन्तर पथ्य ।

स्यात्क्षीरवृत्तिः षण्मासांस्त्रीन्पेयां पयसा पिबेत्
त्रींश्चान्यान्पयसैवाद्यात् फलाम्लेन रसेन वा ।
अल्पशः स्नेहलवणं जीर्णं श्यामाककोद्रवम् ।
प्रयतो वत्सरेणैवं विजयेत्तज्जलोदरम् ॥११८॥

इस प्रकार जलोदरका जल निकाल देनेके अनन्तर छः महीने केवल दूधका: आहार रखना चाहिये फिर छः महीनेके अनन्तर तीन महीने पेया और दूध इन दो पदार्थोंपर ही निर्वाह करना चाहिये फिर नौ मासके अनन्तर पुराने श्यामाक आदि चावल दूधके ही साथ तीन महीनेतक खाने चाहिये अथवा अनारके रसकी खटाईयुक्त मांसरससे थोड़े २पुराने श्यामाक और कोद्रवका आहार करना चाहिये । इस प्रकार एक वर्षतक जो पुरुष यथार्थ नियमका पालन करता रहे वह इस जलोदररोगको जीतकर आरोग्य होजाता है ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

वर्ज्येषु यन्त्रितो दिष्टे नात्यदिष्टे जितेन्द्रियः॥

उदररोगमें जो अन्न पान वर्जित है उनसे सर्वथा परहेज रखना चाहिये । जिन दूध रसादिकी आज्ञा है वे जितेन्द्रिय रहतेहुए उचितरूपसे सेवन करता रहे ॥ ११९ ॥

सब उदररोगोंमें सामान्य उपदेश ।

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसंघातजं यतः ।
अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वा प्रशस्यते१२०

सब प्रकारके ही उदररोग प्राय:दोषोंके संघातसे उत्पन्न होते हैं इस कारण उदररोगोंमें सब क्रियायें वातादिदोषोंको शामनकरनेवाली ही करना चाहिये॥ १२०॥

उदररोगमें पथ्यापथ्य।

वह्निर्मन्दत्वमायाति दोषैः कुक्षौ प्रपूरिते।
तस्माद्भोज्यानि भोज्यानि दीपनानि लघूनि च
पञ्चमूलान्यल्पाम्लपटुस्नेहकटूनि च।
भावितानां गवां मूत्रे षष्टिकानां च तण्डुलैः १२२
यवागूं पयसा सिद्धां प्रकामं भोजयेन्नरम्।
पिबेदिक्षुरसं चानु जठराणां निवृत्तये।
स्वं स्वं स्थानं व्रजंत्येषां वातपित्तकफास्तथा१२३

जब दोषोंसे उदर पूरण होता है तो मनुष्यकी जठराग्नि मन्द होजाती है इसलिये इसको जो भी भोज्य पदार्थ दियेजावें वे सब हलके और अग्निको दीपन करनेवाले देने चाहिये. और वे भोज्यपदार्थ पंचमूलसे सिद्ध कियेहुए तथा थोड़े २ अम्ल, लवण, स्नेह और सुंठी आदि कटु रस युक्त भोजनके लिये देने चाहिये।

उदर रोगीको गोमूत्रमे भावना दियेहुए साठीके चावलोंकी दूधमें बनायीहुई यवागू इच्छानुसार भोजन करावे। इस यवागूका भोजन करनेके अनन्तर गन्नेका रस पीना चाहिये. इससे उदररोग शान्त होता है तथा वात, पित्त और कफ ये अपने २ स्थानमें चले जाते है॥ १२१-१२३॥

अत्यर्थोष्णाम्ललवणं रूक्षं ग्राहि हिमं गुरु।
गुडं तैलकृतं शाकं वारि पानावगाहयोः॥१२४॥
आयासाध्वदिवास्वप्रयानानि च परित्यजेत् १२५

उदररोगीको अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त अम्ल, अत्यंत लवण, अत्यन्त रूक्ष, अत्यन्त ग्राही, अत्यन्त शीतल, अतिभारी, गुड, तैलके बनेहुए शाक, ये नही खाने चाहिये। जल नहीं पीना चाहिये, जलमें स्नान तैरना आदि भी नहीं चाहिये। तथा आयास, अधिक मार्ग चलना और दिनमें सोना भी त्याग देना चाहिये१२५

उदररोगोंमें तक्रका प्रयोग।

नात्यर्थसान्द्रं मधुरं तक्रं पाने प्रशस्यते।
सकणालवणं वाते पित्ते सोषणशर्करम्॥ १२६॥
यवानीसैन्धवाजाजीमधुव्योषैः कफोदरे।
त्र्यूषणक्षारलवणैः संयुतं निचयोदरे॥ १२७॥
मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः।
प्लीह्नि बद्धे तु हपुषायवानीपटुजादिभिः।
सकृष्णामाक्षिकं छिद्रे त्र्योषवत्सलिलोदरे।१२८॥

वातोदरमें–जो अत्यन्त गाढा न हो ऐसा मधुर तक्र पीपल और सेन्धालवण मिलाकर पीना चाहिये. पित्तके उदर रोगमें–कालीमिर्च और खांड मिला तक्र पीना चाहिये। कफके उदरोगमें–अजवायन, सेंधालवण, जीरा, मधु, सोंठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण मिला तक्र पीना चाहिये। त्रिदोषके उदररोगमें–सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार और लवणयुक्त तक्र पीना चाहिये। प्लीहोदरमें–मधु, तैल, बच, सोंठ, सौंफ, कूठ और सैंधव युक्त तक्र पीना चाहिये। बद्धोदरमे–हाऊबेर, अजवायन लवण और जीरेके चूर्ण युक्त; छिद्रोदरमें–पीपल और मधुयुक्त और जलोदरमें-त्रिकटुके चूर्ण युक्त तक्र पीना चाहिये॥ १२६-१२८॥

गौरवारोचकानाहमन्दवह्न्यतिसारिणाम्।
तक्रं वातकफार्तानाममृतत्वाय कल्पते॥१२९॥

जिन रोगियोंको भारीपन, अरुचि, आनाह, मन्दाग्नि और अतिसार ये रोग हों तथा जो वात कफसे पीड़ित है उनके लिये तक्रका सेवन करना अमृतके समान गुणकारी है॥ १२९॥

दूधका प्रयोग।

प्रयोगाणां च सर्वेषामनु क्षीरं प्रयोजयेत्।
स्थैर्यकृत्सर्वधातूनां बल्यं दोषानुबन्धहृत्१३०

उदररोगोंमे–सब प्रकारके प्रयोगोंमें दूधका अनुपान करना श्रेष्ठ है इससे शरीरकी सब धातुओंनें स्थिरता और बलकी प्राप्ति होती है तथा दोषोंका अनुबन्ध दूर होता है। (यहां मूल श्लोकमें चकारसे अरुणदत्तने दूध और तक्र दोनों लिये हैं)॥ १३०॥

भेषजापचिताङ्गानां क्षीरमेवामृतायते॥३१॥

औषधियोंसे उपचित देहवालोंके लिये केवल दूध ही अमृतके समान गुणकारी होता है ॥ १३१ ॥

इति श्रीवाग्भटप्रणीताष्टांगहृदय संहितायां चिकित्सास्थाने उदररोगचिकित्सायां आयुर्वेदाचार्य पं.शिव-शर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्ययायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

अथाऽतःपाण्डुरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः

अब हम पाण्डुरोगकी चिकित्साको कथन करते है।

पाण्डुरोगकी चिकित्सा।

पाण्ड्वामयी पिबेत्सर्पिरादौ कल्याणकाह्वयम् ।
पञ्चगव्यं महातिक्तं शृतं वाऽऽरग्वधादिना॥१॥

पाण्डुरोगमें-प्रायः पित्त विकृत होता है इस कारण इस रोगीको प्रथम कल्याणघृत पिलावे अथवा पंचगव्यघृत या महातिक्तकघृत अथवा आरग्वधादि गणसे सिद्ध किया घृत पिलाना चाहिये ॥ १ ॥

दाडिमादि घृत।

दाडिमात्कुडवो धान्यात्कुडवार्धं पलं पलम् ।
चित्रकाच्छृङ्गबेराच्च पिप्पल्यर्धपलं च तैः ॥२॥
कल्कितैर्विंशतिपलं घृतस्य सलिलाढके ।
सिद्धं हृत्पांडुगुल्मार्शः प्लीहवातकफार्तिनुत् ॥३
दीपनं श्वासकासघ्नं मूढवातानुलोमनम् ।
दुःखप्रसविनीनां च वन्ध्यानां च प्रशस्यते ॥४॥

दाड़िम एक कुडव, धनियां दो पल, चित्रक एक पल, सोंठ एक पल और पीपल दो कर्ष इन सबका कल्क कर यह कल्क, वीस पल घृत और चार प्रस्थ जल मिलाकर पकावे सिद्ध होनेपर इस घृतके सेवनसे हृद्रोग, पाण्डुरोग गुल्म, अर्श, प्लीहा और वात कफकी पीड़ा नष्ट होती है । यह घृत अग्निको दीपन करता है, श्वास और कासको नष्ट करता है, मूढ़वातको अनुलोमन करता है तथा जिन स्त्रियोंको कष्टसे प्रसव होता है या जो वन्ध्यास्त्रियें हैं उनका हितकरनेवाला है ॥ २-४ ॥

स्नेहितं वामयेत्तीक्ष्णैःपुनःस्निग्धं च शोधयेत् ।
पयसा मूत्रयुक्तेन बहुशः केवलेन वा ॥ ५ ॥

पाण्डुरोगीको प्रथम स्नेहन कराकर तीक्ष्ण वमन करावे । वमनके अनन्तर पुनः स्निग्ध कर फिर विरेचन करावे यह विरेचन गोमूत्रयुक्त दूध पिलाकर करावे अथवा केवल दूधसे ही करावे ॥ ५ ॥

दन्तीपलरसे कोष्णे काश्मर्याञ्जलिमासुतम् ।
द्राक्षाञ्जलिं वा मृदितं तत् पिबेत् पांडुरोगजित्

दन्तीकी जड़के एक पल काथमें काश्मरीका चार पल रस या द्राक्षाका चार पल रस मिलाकर पीवे तो विरेचन होकर पाण्डुरोग शमन होता है ॥ ६ ॥

मूत्रेण पिष्टां पथ्यां वा तत्सिद्धं वा फलत्रयम् ।
स्वर्णक्षीरीत्रिवृच्छ्यामाभद्रदारुमहौषधम् ॥७॥
गोमूत्राञ्जलिना पिष्टं शृतं तेनैव वा पिबेत् ।
साधितं क्षीरमेभिर्वा पिबेद्दोषानुलोमनम् ॥८ ॥

अथवा गोमूत्रमें पीसकर हरीतकीका कल्क पीवे । या गोमूत्रमें भावना दियाहुआ त्रिफलेका चूर्ण गोमूत्रसे पीवे तो दोष अनुलोमन होकर पाण्डुरोग शमन होता है।

अथवा स्वर्णक्षीरीकी जड़, काली निशोथ, देवदारु और सोंठ इनको चूर्णकर चार पल गोमूत्रमें पीसकर अथवा गोमूत्रमें पकाकर पीवे । अथवा इन स्वर्णक्षीरी आदि द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीवे तो पाण्डुरोगीके रेचन होकर दोष अनुलोमन होजाते है ७॥८॥

मूत्रे स्थितं वा सप्ताहं पयसाऽयोरजःपिबेत् ।
जीर्णे क्षीरेण भुञ्जीत रसेन मधुरेण वा ॥ ९ ॥

अथवा गोमूत्रमें लोह भस्म सात दिन भिगोकर रक्खे फिर इसको दूधके साथ खावे क्षुधा लगनेपर दूध या मधुर रसका भोजन करे तो पाण्डुरोग शमन होता है ॥ ९ ॥

शुद्धश्चोभयतो लिह्यात्पथ्यां मधुघृतद्रुताम् १०

पाण्डरोगी वमन विरेचनसे शुद्ध होकर हरीतकीके चूर्णको मधुघृतमें मिलाकर चाटे तो पाण्डुरोग शमन होता है ॥ १० ॥

विशालादि चूर्ण।

विशाला कटुका मुस्ता कुष्ठं दारु कलिङ्गकः ।
कर्षांशाद्विपिचुर्मूर्वा कर्षार्धांशा घुणप्रिया ।
पीत्वा तच्चूर्णमम्भोभिः सुखैर्लिह्यात्ततो मधु ११

पाण्डुरोगं ज्वरं दाहं कासं श्वासमरोचकम।
गुल्मानाहामवातांश्च रक्तपित्तं च तज्जयेत् १२

इन्द्रायणकी जड़, कुटकी, नागरमोथा, कूट, देवदारु और इन्द्रजौ ये छः द्रव्य एक एक कर्ष, मूर्वा दो कर्ष, अतीस आधा कर्ष इन सबका चूर्णकर सुखोष्ण जलके साथ पीवे ऊपरसे मधु चाटे। इसके सेवनसे पाण्डुरोग, ज्वर, दाह, खांसी, श्वास, अरुचि, गुल्म, आनाह, आमवात और रक्तपित्त ये सब रोग दूर होते है॥ ११॥ १२॥

वासादि क्वाथ।

वासागुडूची त्रिफलाकट्वीभूनिंबनिंबजः।
क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्ति पाण्डुपित्तास्रकामलाः

वांसा, गिलोय, त्रिफला, कुटकी, चिरायता और नीमकी छाल इनका क्वाथ ठंढाकर मधु मिलाकर पीनेसे पाण्डुरोग, रक्तपित्त और कामला ये सब रोग नाश होते है॥ १३॥

नवायस चूर्ण।

व्योषाग्निवेल्लत्रिफलामुस्तैस्तुल्यमयोरजः।
चूर्णितं तक्रमध्वाज्यकोष्णांभोभिः प्रयोजितम्
कामलापाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शोमेहनाशनम्॥१४॥

व्योष (त्रिकुटु), चित्रक, वायविडग, त्रिफला और नागरमोथे इन नौ द्रव्योंका चूर्णकर इस चूर्णके समान इसमें लोहभस्म मिलावे इस नवायसचूर्ण तक्रके साथ या मधुघृतके साथ अथवा कोष्ण जलके साथ सेवन करे तो कामला, पाण्डु, हृद्रोग, कुष्ठ, अर्श और प्रमेह रोगको नाश करता है॥ १४॥

गुडादि वटिका।

गुडनागरमण्डूरतिलांशान्मानतः समान्।
पिप्पलीद्विगुणान्दद्याद्गुटिकां पाण्डुरोगिणे १५

गुड़, सोंठ, मण्डूर और तिल ये चार द्रव्य एक एक पल, पीपल दो पल इन सबका चूर्णकर गोलियें बनावे ये गुटिका पाण्डुरोगको नाश करती है॥१५॥

ताप्यादि वटक।

ताप्यं दार्व्यास्त्वचं चव्यं ग्रन्थिकं देवदारु च १६
व्योषादि नवकं चैतच्चूर्णयेद् द्विगुणं ततः।
मण्डूरं चाञ्जनाभं सर्वतोऽष्टगुणेऽथ तत् ॥१७
पृथग्विपक्वे गोमूत्रे वटकीकरणक्षमे।
प्रक्षिप्य वटकान्कुर्यात्तान्खादेत्तक्रभोजनः॥१८॥
एते मण्डूरवटकाः प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम्।
कुष्ठान्यजरकं शोफमूरुस्तम्भमरोचकम्।
अर्शांसि कामलां मेहान् प्लीहानं शमयंति च१९

सोनामक्खीकी भस्म, दारुहलदीकी छाल, चव्य, पीपलामूल, देवदारु, सोंठ, मिर्च, पीपल, विडंग, हरड़, बहेड़ा, आमला, चित्रक और नागरमोथा इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे इस चूर्णसे दो गुणी मण्डूरकी अजन समान बारीक भस्म लेवे. सबसे आठ गुना गोमूत्र लेकर अलग ही गोमूत्रको पकावे जब वह गोमूत्र पकते पकते केवल इतना रहजावे कि उसमें उपरोक्त चूर्ण मिलानेसे गोलियें बनजावे तो इसमें यह चूर्ण मिलाकर वटक बनाले यह वटक खाकर ऊपरसे तक्रका ही सेवन करे। ये मण्डूरवटक पाण्डुरोगवालोंको प्राण देनेवाले है. तथा कुष्ठ, अजीर्ण, शोथ, ऊरुस्तम्भ, अरुचि, अर्श, कामला, प्रमेह और प्लीहा रोगको शमन करते है॥ १६–१९॥

स्वर्णमाक्षिकादि चूर्ण।

ताप्यादिजतुरौप्यायोमलाः पञ्चपलाः पृथक्।
चित्रकत्रिफलाव्योषविडङ्गैः पालिकैः सह२०॥
शर्कराष्टपलोन्मिश्राश्चूर्णिता मधुना द्रुताः।
पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमं ज्वरम् २१
कुष्ठान्यजरकं मेहं शोफं श्वासमरोचकम्।
विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च॥२२

शुद्ध स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध रूपामक्खीकी भस्म लोह भस्म और मण्डूर भस्म ये पांच पल अलग लेवे। चित्रक, हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविडंग ये प्रत्येक एक एक पल लेकर बारीक चूर्ण करे इसमें आठ पल मिसरीका चूर्ण मिलावे सबको मिलाकर चूर्ण बना रक्खे। इसमेंसे नित्य पांच मासे चूर्ण मधुमें मिलाकर, खावे तो पाण्डु, विषविकार, खांसी, राजयक्ष्मा, विषमज्वर कुष्ठ, अजीर्ण, प्रमेह, शोथ, श्वास, अरोचक, अपस्मार, कामल

और अर्श इन सब रोगोंको यह चूर्ण विशेष रूपसे नाश करता है ॥ २०-२२ ॥

शिवागुटिका ।

कौटजत्रिफलानिम्बपटोलघननागरैः ॥२३॥
भावितानि दशाहानि रसैर्द्वित्रिगुणानि वा ।
शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा॥२४॥
त्वक्क्षीरीपिप्पलीधात्रीकर्कटाख्याः पलो-
-न्मिताः
निदिग्ध्याः फलमूलाभ्यां पलं युक्त्या-
-त्रिजातकम् ॥२५॥
मधुत्रिपलसंयुक्तान् कुर्यादक्षसमान्गुडान् ।
दाडिमाम्बुपयःपक्षिरसतोयसुरासवान्॥ २६॥
तान् भक्षयित्वानुपिबेन्निरन्नो भुक्त एव वा ।
पाण्डुकुष्ठज्वरप्लीहतमकार्शोभगन्दरम्॥ २७॥
हृन्मूत्रपूतीशुक्राग्निदोषशोषगरोदरम् ।
कासासृग्दरपित्तासृक्शोफगुल्मगलामयान्।
मेहवर्ध्मभ्रमान् हन्युः सर्वदोषहराः शिवाः२८॥

आठ पल शिलाजीतको इन्द्रजव, त्रिफला, नींब, पटोलपत्र, नागरमोथे और सोंठ इनके अष्टावशेष काथ या स्वरसकी दस दिन तक भावना देवे अथवा बीस दिन या तीस दिन भावना देवे । यह इन्द्रजव आदिके रससे भावना दीहुई शिलाजीत आठ पल, सफेद मिसरी आठ पल, वंसलोचन एक पल, पीपल एक पल, आमले एक पल, काकड़ासिंगी एक पल, कटेलीकी जड़ और फल एक पल, दालचीनी छः मासे, इलायची छः मासे, पत्रज छः मासे और मधु तीन पल इन सबको युक्तिपूर्वक मिलाकर एक एक तोलेके गोले बनावे । एक गोला नित्य खाकर ऊपरसे अनारका रस, या दूध, अथवा पक्षियोंका मांसरस या जल अथवा सुरा या आसव पीवे । यह औषध खाली पेट या भोजन करके सेवन करे इसके सेवनसे पाण्डुरोग, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहा, तमक श्वास, अर्श, भगन्दर, हृद्रोग, मूत्ररोग, दुर्गन्ध, शुक्रदोष, अग्निदोष, शोष, उदररोग, खांसी, प्रदर, रक्तपित्त, सूजन, गुल्म, गलके रोग, प्रमेह, वर्ध्म और भ्रम ये सब रोग दूर होते है. यह शिवा गुटिका सब दोषोंको हरनेवाली परमोत्तम औषध है ॥ २३--२८ ॥

द्राक्षाद्यवलेह ।

द्राक्षाप्रस्थं कणाप्रस्थं शर्करार्धतुलां तथा ॥२९
द्विपलं मधुकं शुण्ठीत्वक्क्षीरीं च विचूर्णितम् ।
धात्रीफलरसद्रोणे तत्क्षिप्त्वा लेहवत्पचेत् ॥३०॥
शीतान्मधुप्रस्थयुतान् लिह्यात्पाणितलं ततः ।
हलीमकं पाण्डुरोगं कामलां च नियच्छति ॥३१

साफ कीहुई द्राक्षा १ सेर, पीपल १ सेर, मिसरी २॥ सेर, मुलहठी, सोंठ और वंसलोचनका चूर्ण दो पल, इन सबको एक द्रोण (१६ सेर) आमलेके फलोंके स्वरसमें डालकर लेहके समान पकावे । जब अवलेह तैयार होजावे तो उतारकर ठंढा करे शीतल होनेपर इसमें एक सेर मधु मिलावे फिर इसमेंसे नित्य एक कर्ष प्रमाण खावे तो हलीमक, पाण्डु और कामला ये सब नष्ट होते हैं ॥२९-३१॥

कनीयःपञ्चमूलाम्बु शस्यते पानभोजने ।
पांडूनां कामलार्तानां मृद्वीकामलकाद्रसः॥३२।

पाण्डुरोगी और कामलारोगीको लघु-पंचमूलका जल पीनेमें और भोजनमें प्रयोग करना चाहिये. तथा अंगूरका रस या आमलेका रस पीना भी गुणकारी होता है ॥ ३२ ॥

इति सामान्यतः प्रोक्तं पांडुरोगाभिषग्जितम् ।
विकल्प्य योज्यं विदुषा पृथग्दोषबलं प्रति ३३

यह सामान्यतासे पाण्डुरोगकी चिकित्सा कह दी-गयी है । विद्वान् वैद्यको रोगीके दोषबल आदि विचार कर यथायोग्य कल्पना कर दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

स्नेहप्रायं पवनजे तिक्तशीतं तु पैत्तिके ।
श्लैष्मिके कटुरूक्षोष्णं विमिश्रं सांनिपातिके॥

चिकित्साका दोषानुसार यह क्रम है कि,-वातज पाण्डुरोगमें स्निग्धचिकित्सा करनी चाहिये । पित्तके पाण्डुमें तिक्त और शीतल द्रव्योंसे, कफके पाण्डुमें

कटु, उष्ण और रूक्ष द्रव्योंसे तथा सन्निपातके पाण्डुमें मिलेहुए द्रव्योंसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

मृज्जनित पाण्डुकी चिकित्सा।

मृदं निर्यापयेत्कायात्तीक्ष्णैः संशोधनैः पुरः।
बलाधानानि सर्पींषि शुद्धे कोष्ठे तु योजयेत् ३५

मिट्टीके खानेसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगमें प्रथम तीक्ष्ण संशोधनों द्वारा शरीरमेंसे मिट्टीको निकाल देवे फिर शुद्ध कोष्ठ होजानेपर बलके बढ़ानेवाले घृतोंको पान कराना चाहिये ॥ ३५ ॥

व्योषबिल्वद्विरजनीत्रिफलाद्विपुनर्नवम्।
मुस्तान्ययोरजःपाठा विडङ्गं देवदारु च॥३६॥
वृश्चिकाली च भार्गी च सक्षीरैस्तैःशृतं घृतम्।
सर्वान्प्रशमयत्याशु विकारान्मृत्तिकाकृतान्।
तद्वत्केसरयष्ट्याह्वपिप्पलीक्षीरशाड्वलैः॥ ३७॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, बिल्व, हलदी, दारुहलदी, हरड़, बहेड़ा, आमला, पुनर्नवा, श्वेतपुनर्नवा, नागरमोथा, लोहभस्म, पाठा, विड़ंग, देवदारु, वृश्चिकाली, और भारंगी इनके कल्क और चार गुने दूधमें सिद्ध किया घृत मृत्तिकाके खानेसे उत्पन्नहुए सब विकारोंको शीघ्र शमन करदेता है।

इसी प्रकार नागकेशर, मुलहटी, पीपल, नीलदूर्वा, और दूधसे सिद्ध किया घृत मृत्तिका खानेसे उत्पन्नहुए सब विकारोंको शमन करता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

मृद्भ्रेषणाय तल्लौल्ये वितरेद्भाविता मृदम्।
वेल्लाग्निनिंबप्रसवैः पाठया मूर्वयाऽथवा॥३८॥

यदि पाण्डुरोगीको मिट्टी खानेकी उत्कट इच्छा हो तो उसको विडंग, चित्रक और नींबके पत्रोंके रसमें भावना दीहुई मिट्टी अथवा पाठा और मूर्वाके रसमें भावना दीहुई मिट्टी थोडी थोडी खानेको देवे॥३८॥

मृद्भेदभिन्नदोषानुगमाद्योज्यं च भेषजम् ३९।

जैसी मिट्टी खानेसे जिस दोष प्रधान पाण्डुरोग हुआहो उस मृद्भक्षणजनित पाण्डुमें उस दोषके अनुसार औषधादि प्रयोगकरे. जैसे—कषाय मिट्टी वायुको, खारी पित्तको और मधुर कफको प्रकुपित करती है उसी विचारसे दोषानुसार इस पाण्डुरोगमें चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥

कामलारोगकी चिकित्सा।

कामलायां तु पित्तघ्नं पाण्डुरोगाविरोधि यत्४०

कामलारोगमें पित्तनाशक और पाण्डुरोगसे अविरोधी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४० ॥

पथ्यादि घृत।

पथ्याशतरसे पथ्यावृन्तार्धशतकल्कितः।
प्रस्थःसिद्धो घृताद्गुल्मकामलापाण्डुरोगनुत्४१

एक सौ हरीतकीके काथमें पचास हरीतकीके वृन्तोंका कल्क मिलाकर एक प्रस्थ घृतको सिद्धकरे यह घृत पीनेसे गुल्म, कामला और पाण्डुरोगको नाश करता है ॥ ४१ ॥

आरग्वधं रसेनेक्षोर्विदार्यामलकस्य वा।
सत्र्यूषणं बिल्वमात्रं पाययेत्कामलापहम् ॥४२

तीन मासे त्रिकटुका चूर्ण अमलतासकी फलीके एक पल गूदेमें मिलाकर इसको गन्नेके रस या विदारीकन्दके रस अथवा आमलेके रसमें मिलाकर पिलावे तो विरेचन होकर कामलारोग शमन होजाता है४२॥

पिबेन्निकुम्भकल्कं वा द्विगुणं शीतवारिणा।
कुम्भस्य चूर्णं सक्षौद्रं त्रैफलेन रसेन वा ॥४३॥

अथवा दन्तीकी जड़का कल्क शीतल जलसे बनाकर दो पल प्रमाण पीवे। अथवा निशोथके चूर्णको मधुयुक्त त्रिफलेके जलसे पीवे तो विरेचन होकर कामलारोग शमन होजाता है ॥ ४३ ॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निंबस्य वा रसम्।
प्रातः प्रातर्मधुयुतं कामलार्ताय योजयेत्॥४४॥

त्रिफलेका रस, या गिलोयका रस अथवा दारुहलदीका रस या निम्बका रस प्रातःकाल मधु मिलाकर पीनेसे कामलारोग निवृत्त हो जाता है ॥ ४४ ॥

निशागैरिकधात्रीभिः कामलापहमञ्जनम् ४५॥

हलदी, गेरु और आमलेका रस इनका कामलावाले रोगीके नेत्रोंमें अंजन करना कामलारोगको दूर करता है ॥ ४५ ॥

तिलपिष्टनिभं यस्तु कामलावान्सृजेन्मलम्।
कफरुद्धपथं तस्य पित्तं कफहरैर्जयेत् ॥ ४६ ॥

जिस कामलावाले रोगीको तिलपिष्टके समान मल

आता हो उसका कफसे अवरुद्धमार्ग जानकर उसके पित्तको कफहरण करनेवाले योगोंसे जीतना चाहिये ॥ ४६ ॥

रूक्षशीतगुरुस्वादुव्यायामबलानिग्रहैः ।
कफसंमूर्छितो वायुर्यदा पित्तं बहिः क्षिपेत् ।
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्श्वेतवर्चास्तदा नरः ।
भवेत्साटोपविष्टम्भो गुरुणा हृदयेन च ॥४७॥
दौर्बल्यात्पाग्निपार्श्वार्तिहिध्माश्वासारुचिज्वरैः।
क्रमेणाल्पेऽनुषज्येत पित्ते शाखासमाश्रिते४८।
रसैस्तं रूक्षकट्वम्लैः शिखितित्तिरिदक्षजैः ।
शुष्कमूलकजैर्यूषैः कुलत्थोत्थैश्च भोजयेत् ४९॥
भृशाम्लतीक्ष्णकटुकलवणोष्णं च शस्यते ।
सबीजपूरकरसं लिह्याद्व्योषं तथाशयम् ॥५०॥
स्वं पित्तमेति तेनाऽस्य शकृदप्यनुरज्यते ।
वायुश्च याति प्रशमं सहाटोपाद्युपद्रवैः ।
निवृत्तोपद्रवस्याऽस्य कार्यःकामलिको विधिः॥

रूक्ष, शीत, गुरु और मधुर पदार्थोंके अधिक सेवनसे, व्यायामकी अधिकतासे बलको रोककर भागने आदिसे कुपितहुआ वात कफके साथ मिलकर जब पित्तको पित्तके स्थानसे बाहर निकाल देता है तब मनुष्यके नेत्र मूत्र और त्वचा हलदीके समान पीले होजाते हे और मल सफेद वर्णका आने लगता है तब उस रोगीको क्रमसे दुर्बलता, मन्दाग्नि, पार्श्वपीड़ा, हिचकी, श्वास, अरुचि और ज्वर ये उपद्रव होजाते हे इस प्रकार अल्प पित्त शाखाश्रित होनेसे इन उपद्रवोंसे युक्त रोगी होजाता है ।

इस अवस्थामें इस रोगीको रूक्ष, कटु और अम्लरस तथा मोर, तित्तिर और मुर्गेके मांसरस अथवा सूखी मूलीका यूष; या कुलथीका यूष भोजनमें देवे। तथा अतिअम्ल, तीक्ष्ण, कटु, लवण और उष्ण द्रव्योंका सेवन करावे । एवं बिजौरेके रसमें त्रिकटुका चूर्ण मिलाकर चटावे। ऐसा करनेसे पित्त अपने पित्ताशयमें पहुंच जाता है तब इसका मल पीले वर्णका होकर आने लगता है और आटोप आदि उपद्रव शमन होकर वायु भी शमन होजाता है । जब इस प्रकार उपद्रव शमन होजावे तब कामलारोगको शमन करनेकी चिकित्सा करे ॥ ४७-५१ ॥

कुम्भकामलाकी चिकित्सा ।

गोमूत्रेण पिबेत्कुम्भकामलायां शिलाजतु ।
मासं माक्षिकधातुं वा किट्टं वाऽथ हिरण्यजम् ॥

कुम्भकामला रोगमें एक महीनेपर्यन्त गोमूत्रके साथ शिलाजीत पीना चाहिये। अथवा सोनामक्खीकी भस्म या रूपामक्खीकी भस्म गोमूत्रके साथ एक महीना पीवे तो कामलारोग शमन हो जात है॥५२॥

हलीमककी चिकित्सा ।

गुडूचीस्वरसक्षीरसाधितेन हलीमकी ।
महिषीहविषा स्निग्धः पिबेद्धात्रीरसेन तु॥५३॥
त्रिवृतां तद्विरिक्तोऽद्यात्स्वादु पित्तानिलापहम् ।
द्राक्षालेहं च पूर्वोक्तं सर्पींषि मधुराणि च॥५४॥
यापनान्क्षीरबस्तींश्च शीलयेत्सानुवासनान् ।
मार्द्वीकारिष्टयोगांश्च पिबेद्युक्त्याग्निवृद्धये५५॥
कासिकं वाऽभयालेहं पिप्पलीमधुकं बलाम् ।
पयसा च प्रयुञ्जीत यथादोषं यथाबलम्॥५६॥

हलीमक रोगवाला मनुष्य गिलोयके स्वरस और दूधसे सिद्ध कियेहुए भैंसके घृतको पानकर स्निग्ध होनेपर निशोथके कल्कको आमलेके स्वरसके साथ पीवे । इससे विरेचन होकर शुद्ध कोष्ठ होनेपर पित्त और वात नाशक मधुर रसोंका सेवन करे । तथा इसी अध्यायमें कहेहुए द्राक्षाद्यवलेह सेवनकरे और मधुर गणोंसे सिद्ध कियेहुए घृत पान करे ।

प्राणोंकी रक्षा करनेवाली क्षीर वस्तियों और अनुवासन वस्तियोंका प्रयोगकरे । तथा द्राक्षादि अरिष्टके योगोंको जठराग्निकी वृद्धिके लिये पीवे । अथवा कास चिकित्सामें कहा अभयावलेह (अगस्त्य हरीतकी) अथवा दूधके साथ यथा दोषबल पीपल या मुलहठी अथवा बलाका सेवन करे ॥ ५३-५६ ॥

पाण्डुरोगेषु कुशलः शोफोक्तं च क्रियाक्रमम्॥

कुशलवैद्य पाण्डुरोगमें शोथ रोगमें कहेहुए चिकित्सा क्रमका पालन करे तो पाण्डु शमन होजाता है ॥१७॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां चिकित्सास्थाने पाण्डुचिकित्सायामायुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथाऽतःश्वयथुचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब हम शोथरोगकी चिकित्साको कथन करते हैं

शोथकी सामान्य चिकित्सा ।

सर्वत्र सर्वाङ्गसरे दोषजे श्वयथौ पुरा ।
सामे विशोषितो भुक्त्वा लघु कोष्णाम्भसा–
–पिबेत् ॥ १ ॥
नागरातिविषादारुविडङ्गेन्द्रयवोषणम् ।
अथवा विजयाशुण्ठीदेवदारुपुनर्नवम् ॥ २ ॥
नवायसं वा दोषाढ्यः शुध्यै मूत्रहरीतकीः ।
वराक्वाथेन कटुकाकुम्भायस्त्र्यूषणानि वा ।
अथवा गुग्गुलुं तद्वज्जतु वा शैलसम्भवम् ॥३॥

दोषजनित सर्वांगोंमे फैलीहुई सूजनमें सब जगह प्रथम दोषोंका शोषण करके रोगी हलका भोजन करे। तदनन्तर सोंठ, अतीस, देवदारु, वायविड़ंग, इन्द्रजौ और काली मिर्चका चूर्ण गर्मजलसे पीवे। अथवा हरीतकी, सोंठ, देवदारु और पुनर्नवा इनका चूर्ण गर्मजलसे पीवे अथवा पाण्डुरोगमे कहाहुआ नवायसचूर्ण सेवन करे । यदि शरीरमे दोषका संचय हो तो गोमूत्रके साथ हरड़का सेवन करे । अथवा कटुकी, निशोथ, लोहभस्म, सोंठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण त्रिफलेके काथसे पीवे या त्रिफलेके काथसे गूगलका सेवन करे। अथवा त्रिफलेके काथसे शिलाजीतका सेवन करे ॥ १--३ ॥

सामशोथकी चिकित्सा ।

मन्दाग्निःशीलयेदामगुरुभिन्नविबद्धविट् ॥ ४ ॥
तक्रं सौवर्चलव्योषक्षौद्रयुक्तं गुडाभयाम् ।
तक्रानुपानामथवा तद्वद्वा गुडनागरम् ॥ ५ ॥

यदि शोथरोगी मन्दाग्निवाला हो और आमयुक्त हो तथा उसको भारी दस्त आता हो या मल रुककर आता हो तो उसको संचरनमक, सोंठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण मधु मिला कर खाना और ऊपरसे तक्र पीना चाहिये । अथवा हरड़का चूर्ण गुड़के साथ या सोंठका चूर्ण गुड़के साथ खाकर ऊपरसे तक्र पीना चाहिये ॥ ४–५ ॥

आर्द्रक गुड़ प्रयोग ।

आर्द्रकं वा समगुडं प्रकुञ्चार्धविवर्धितम् ।
परं पञ्चपलं मासं यूषक्षीररसाशनः ॥ ६ ॥
गुल्मोदरार्शः क्षवथुप्रमेहान्
श्वासप्रतिश्यालसकाविपाकान् ।
सकामलाशोफमनोविकारान्
कासं कफं चैव जयेत्प्रयोगः ॥ ७ ॥

अथवा अदरकके बराबरका गुड़ मिलाकर सेवन करे आधे पलसे आरम्भकर प्रति दिन आधा पल बढ़ाता रहे इस प्रकार पांच पल पूर्ण होनेपर फिर आधा आधा पल इसी प्रकार घटाते घटाते आधे पलपर ले आवे ऐसे एक मासतक बढ़ा घटा बढ़ाकर अदरकका सेवन करे पथ्यमें यूष दूध या रसका सेवन करे तो गुल्म, उदररोग, अर्श, छींके, प्रमेह, श्वास, प्रतिश्याय, अलसक, अजीर्ण, कामला, सूजन, मनके विकार, खांसी और कफ इन सबको यह प्रयोग जीत लेता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

आर्द्रक घृत ।

घृतमार्द्रकनागरस्य कल्क-
स्वरसाभ्यां पयसा च साधयित्वा ।
श्वयथुक्षवथूदराग्निमादै-
रभिभूतोऽपि पिबन् भवत्यरोगः ॥ ८ ॥

अदरकके स्वरस और कल्क तथा दूध मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करे तो सूजन, छींकोंका आना, उदररोग और मन्दाग्निसे पीड़ित हुआ मनुष्य शीघ्र ही रोग रहित होजाता है ॥ ८ ॥

निरामशोथकी चिकित्सा ।

निरामो बद्धशमलः पिबेच्छ्वयथुपीडितः ।
त्रिकटुत्रिवृतादन्तीचित्रकैः साधितं पयः॥९॥

मूत्रं गोर्वा माहिष्या वा सक्षीरं क्षीरभोजनः।
सप्ताहं मासमथवा स्यादुष्ट्रीक्षीरवर्तनः॥ १०॥

जो शोथरोगी आम दोष रहित हो और उसको मल बद्ध हो तो उसको सोंठ, मिर्च, पीपल, निशोथ, दन्ती और चित्रकसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीना चाहिये. अथवा गोमूत्र या भैंसका मूत्र दूध मिलाकर पीना चाहिये और केवल दूधका ही आहार करना चाहिये. अथवा केवल ऊंटनीका दूध पीना चाहिये इस प्रकार सात दिन या एक मास करनेसे मल शुद्ध होजाता है और सूजन शान्त होजाती है॥ ९॥ १०॥

यवानकादि घृत।

यवानकं यवक्षारं यवानीं पञ्चकोलकम्।
मरिचं दाडिमं पाठां धानकामम्लवेतसम्॥११॥
बालबिल्वं च कर्षांशं साधयेत्सलिलाढके।
तेन पक्वो घृतप्रस्थः शोफाऽर्शोगुल्ममेहहा १२

अजमोद, जवाखार, अजवायन, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, दाडिम, पाठा, धनियां, अम्लवेत और बिल्वफल ये सब एक एक कर्ष लेकर एक आढक जलमें पकावे इस क्वाथसे एक प्रस्थ घृतको सिद्धकरे यह घृत सूजन, अर्श, गुल्म और प्रमेहको नष्ट करता है॥ ११॥ १२॥

चित्रकादि घृत।

दध्नश्चित्रकगर्भाद्वा घृतं तक्रसंयुतम्।
पक्वं सचित्रकं तद्वद्गुणैः युंज्याच्च कालवित्।
धान्वतरं महातिक्तं कल्याणमभयाघृतम्॥१३॥

दूधमें चित्रकका चूर्ण डालकर गर्मकरके दही जमावे इस दहीसे निकालेहुए घृतमें चित्रकका कल्क और तक्र डालकर घृतपाकविधिसे घृत सिद्धकरे इस घृतके सेवनसे सूजन, अर्श, गुल्म, और प्रमेह दूर होते है।

इसी प्रकार दोष कालादि जाननेवाला वैद्य धान्वन्तर घृत, महातिक्तक घृत, कल्याण घृत और अभया घृत इनमेंसे जिसको समयानुसार उचित समझे उस घृतका प्रयोग शोथ दूर करनेके लिये करे॥ १३॥

दशमूलादि गुडहरीतकी अवलेह।

दशमूलकषायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत्॥१४॥
दत्त्वा गुडतुलां तस्मिन् लेहे दद्याद्विचूर्णितम्।
त्रिजातकं त्रिकटुकं किञ्चिच्च यवशूकजम्॥१५
प्रस्थार्धं च हिमे क्षौद्रात्तत् निहंत्युपयोजितम्।
प्रवृद्धशोफज्वरमेहगुल्म-
कार्श्यामवाताम्लकरक्तपित्तम्।
वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोष-
श्वासारुचिप्लीहगरोदरं च॥१६॥

दशमूलके एक आढक क्वाथमें एक सौ हरड़ोंको पकावे जब हरड़ें पक जावें तो उसीमें पांच सेर गुड़ डालकर अवलेह बनावे अवलेह होजानेपर त्रिजातका चूर्ण तीन पल, त्रिकटुका चूर्ण चार पल और जवाखार एक कर्ष मिलावे शीतल होनेपर आध सेर मधु मिलावे। इसमें बत्तीस पल दशमूलको लेकर १६ सेर जलसे पकाकर एक आढक (४ सेर) रहनेपर छान लेवे यह सामान्य परिभाषा है। परन्तु कोई दशमूल एक तुला (५ सेर) लेते है। अरुणदत्त लिखते है कि-- यहांपर एक तुला दशमूलको चारगुने जलमें पकावे एक आढक जल शेषरहनेपर यह क्वाथ लेकर इसमें हरड़ोंको पकाकर अवलेह बनावे। इस अवलेहके खानेसे बढ़ीहुई सूजन, ज्वर, प्रमेह, कृशता, आमवात, अम्लपित्त, रक्तपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष, मूढ़वात, शुक्रदोष, श्वास, अरुचि, प्लीहा, गर और उदररोग ये सब दूर होते हैं॥ १४-१६॥

शोथरोगमें पथ्य।

पुराणयवशाल्यन्नं दशमूलाम्बुसाधितम्।
अल्पमल्पपटुस्नेहं भोजनं श्वयथोर्हितम्॥१७॥
क्षारव्योषान्वितैर्मौद्गैः कौलत्थैः सकणै रसैः।
तथा जाङ्गलजैः कूर्मगोधाशल्यकजैरपि।
अनम्लं मथितं पाने मद्यान्यौषधवन्ति च॥१८

दशमूलके जलमें पकायेहुए पुराने यवोंका अन्न या दशमूलके जलमें बनायाहुआ शाली चावलोंका भात थोड़े थोड़े लवण और स्नेहसंयुक्त खाना शोथरोगीके लिये हितकारी है। तथा क्षार और त्रिकटु मिलाहुआ

मूंगोंका यूष, अथवा पीपलका चूर्ण मिला कुलथीका यूष, कूर्म, गोधा और सेहका मांसरस या जांगल मांस रस एवं विना खटाईका मथित (तक्र विशेष) और शोथहरनेवाली औषधयुक्त मद्य पीनेमें हितकारी होते हैं ॥ १७-१८ ॥

शोथहर पेया।

अजाजीशठिजीवन्तीकारवीपौष्करान्निकैः।
बिल्वमध्ययवक्षारवृक्षाम्लैर्बदरोन्मितैः॥१९॥
कृता पेयाऽऽज्यतैलाभ्यां युक्तिभृष्टा परं हिता।
शोफातिसारहृद्रोगगुल्मार्शोऽल्पाग्निमेहिनाम्।

जीरा, कचूर, जीवन्ती, कलौंजी, पोहकरमूल, चित्रक, विल्वकी गिरी, जवाखार और अम्लवेत ये सब एक एक बेर प्रमाण लेकर इनसे सिद्ध जलमें बनायीहुई पेया थोड़े थोड़े घृत तैलमें युक्तिपूर्वक भूनकर पीहुई यह पेया सूजन, अतिसार, हृद्रोग, गुल्म, अर्श, मन्दाग्नि और प्रमेहवालोंको परम हितकारी है ॥ १९ ॥२०॥

गुणैस्तद्वच्च पाठायाः पञ्चकोलेन साधिता २१

इसी प्रकार पाठाकी सिद्ध कीहुई पेया अथवा पञ्चकोलसे सिद्ध कीहुई पेया सूजनआदि विकारोंको शमन करनेवाली होती है ॥ २१ ॥

शोथनाशक अभ्यंग लेप और स्नान।

शैलेयकुष्ठस्थौणेयरेणुकागुरुपद्मकैः।
श्रीवेष्टकनखस्पृक्कादेवदारुप्रियङ्गुभिः॥ २२॥
मासीमागधिकावन्यधान्यध्यामकबालकैः।
चतुर्जातकतालीसमुस्तागन्धपलाशकैः॥२३॥
कुर्यादभ्यञ्जनं तैलं लेपं स्नानाय तूदकम्।
स्नानं वा निंबवर्षाभूनक्तमालार्कवारिणा॥२४॥

छारछरीला, कूठ, स्थौणेयक, रेणुका, अगर, पद्मकाष्ठ, श्रीवास, नखद्रव्य, असवर्ग, देवदारु, प्रियंगु, बालछड़, छोटी इलायची, दालचीनी, धनियां, ध्यामकतृण, सुगन्धवाला, चतुर्जात, तालीसपत्र, नागरमोथे और गन्धपलाश इनसे सिद्ध कियाहुआ तैल मर्दन करना, तथा इनहीं द्रव्योंका लेपकरना और इनके क्काथमें स्नान करना सब प्रकारके शोथोंको शमन करता है।

अथवा निंब, पुनर्नवा, लताकरञ्ज और आक इनसे सिद्धकिये जलमें स्नान करना शोथरोगको शमन करता है॥ २२-२४ ॥

एकाङ्ग शोथनाशक लेप।

एकाङ्गशोफे वर्षाभूकरवीरिकाकिंशुकैः।
विशालात्रिफलारोध्रनलिकादेवदारुभिः॥२५॥
हिंस्राकोशातकीमाद्रीतालपर्णीजयन्तिभिः।
स्थूलकाकादनीशालनाकुलीवृषपर्णिभिः।
वृद्ध्यृद्धिहस्तिकर्णैश्च सुखोष्णैर्लेपनं हितम् २६

किसी एक अंगपर सूजन हो तो पुनर्नवा, कनेर, केशु, इन्द्रायणकी जड़, त्रिफला, पठानीलोध, नलिका, देवदारु, हींसकी जड़की छाल, कड़वी तोरी, अतीस, सोरा, जयन्ती, बढ़ी काकादनी, शालवृक्षकी छाल, नाकुली, बांसेकी जड़, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, ऋद्धि, वृद्धि, हस्तिकर्णपलास इन सबको जलसे या गोमूत्रसे पीसकर सुखोष्ण लेपकरनेसे वह सूजन दूर होजाती है॥ २५-२६ ॥

वातजशोथकी चिकित्सा।

अथाऽनिलोत्थे श्वयथौ मासार्धं त्रिवृतं पिबेत्
तैलमैरण्डजं वातविड्विबन्धे तदेव तु।
प्राग्भक्तं पयसा युक्तं रसैर्वा कारयेत्तथा॥२८॥
स्वेदाभ्यङ्गान्समीरघ्नान् लेपमेकाङ्गगे पुनः।
मातुलुङ्गाग्निमन्थेन शुण्ठीहिंस्रामराह्वयैः॥२९॥

वातसे उत्पन्नहुई सूजनमें पन्द्रह दिनतक निशोथ अथवा एरण्डतैल पीते रहना चाहिये। यदि शोथमें विष्ठाका विबंध हो तो भी निशोथ या एरण्डतैल ही भोजनसे प्रथम दूध या मांसरसमें मिलाकर पीना चाहिये। तथा वातजशोथमें वातनाशक स्वेद और अभ्यग कराने चाहिये। यदि एकाङ्गमें वातज शोथ हो तो विजौरेकी जड़, अग्निमंथ, सोंठ, हींस और देवदारुका लेप करना चाहिये॥ २७-२९ ॥

पित्तज शोथका यत्न।

पैत्ते तिक्तं पिबेत्सर्पिर्न्यग्रोधाद्येन वा शृतम्।
क्षीरं तृड्दाहमोहेषु लेपाभ्यंगाश्च शीतलाः ३०

पित्तकी सूजनमें तिक्तकघृत पीना चाहिये। अथवा

न्यग्रोधादि गणसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीना चाहिये। तथा तृषा, दाह और मोह हो तो न्यग्रोधादि गणसे सिद्ध किया दूध पीवे और शीतल लेप और अभ्यङ्ग करना हितकारी होता है ॥ ३० ॥

पटोलमूलत्रायन्तीयष्ट्याह्वकटुकाभयाः ।
दारु दार्वी हिमं दन्ती विशाला निचुलं कणा३१
तैः क्वाथः सघृतः पीतो हंत्यंतस्तापतृड्भ्रमान्।
ससंनिपातवीसर्पशोफदाहविषज्वरान् ॥ ३२ ॥

पटोलकी जड़, त्रायमाणा, मुलहठी, कटुकी, हरड़, देवदारु, दारुहल्दी, चन्दन, दन्ती, इन्द्रायण, वेतसकी छाल और पीपल इनके क्वाथमें घृत मिलाकर पीवे तो यह क्वाथ ज्वर, प्यास, भ्रम, सन्निपात, वीसर्प, सूजन, दाह और विषम ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

कफजशोथकी चिकित्सा।

आरग्वधादिना सिद्धं तैलं श्लेष्मोद्भवे पिबेत् ।
स्रोतोविबन्धे मन्देऽग्नावरुचौ स्तिमिताशयः ।
क्षारचूर्णासवारिष्टमूत्रतक्राणि शीलयेत् ॥ ३३ ॥

कफकी सूजनमें आरग्वधादि गणके कल्क और क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ तैल पीना चाहिये।

यदि कफज सूजनमें स्रोतोंका विबन्ध, मन्दाग्नि, अरुचि और आशयका विबद्ध होना ये उपद्रव भी हों तो क्षारचूर्ण, आसव, अरिष्ट, गोमूत्र और तक्रका सेवन करते रहना चाहिये ॥ ३३ ॥

कफज शोथपर लेप।

कृष्णापुराणपिण्याकशिग्रुत्वक्सिकतातसीः ।
प्रलेपोन्मर्दने युंज्यात्सुखोष्णा मूत्रकल्किताः॥

कफज शोथपर पीपल, पुराना पिण्याक, सुहांजनेकी छाल, लोणिका शाक और अलसी इनको गोमूत्रमें पीसकर सुखोष्ण लेप करना चाहिये ॥ ३४ ॥

कफज शोथमें स्नान और लेप।

स्नानं मूत्राम्भसी सिद्धे कुष्ठतर्कारिचित्रकैः ।
कुलत्थनागराभ्यां वा चण्डागुरु विलेपने ॥ ३५

कफज शोथमें कूठ, जीवन्ती और चित्रकसे सिद्ध कियेहुए जल और गोमूत्रमें स्नान करना चाहिये। अथवा कुलथी और सोंठसे सिद्ध जल और गोमूत्रसे स्नान करना चाहिये। तथा चण्डा नामक गन्धद्रव्य और अगरका लेप करना हितकारी है ॥ ३५ ॥

कालाजशृङ्गीसरलवस्तगन्धाह्वयाह्वयाः।
एकैषिका च लेपः स्याच्छ्वयथावेकगात्रजे३६॥

यदि कफज शोथ किसी एक अङ्गमें हो तो उसपर नीलनी, मेषशृंगी, सरल काष्ठ, अजवायन, असगंध और निशोथ इनका कल्ककर सुखोष्ण लेप करे ॥ ३६॥

सर्व शोथोंमें रक्तावसेचनादि।

यथादोषं यथासन्नं शुद्धिं रक्तावसेचनम् ।
कुर्वीत मिश्रदोषे तु दोषोद्रेकबलात्क्रियाम्३७॥

शोथ रोगमें जिस दोषसे जिस प्रकारकी सूजन हो उसमें उसी दोष दूष्यानुसार रक्तावसेचन आदि शोधन करना चाहिये यदि मिलेहुए दोषोंसे सूजन हो तो उसमें जो दोष बढ़ाहुआ हो उसकी वृद्धीको प्रथम शमन करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ ३७ ॥

त्रिदोषज शोथनाशक योग।

अजाजिपाठाघनपञ्चकोल-
व्याघ्रीरजन्यः सुखतोयपीताः ।
शोफं त्रिदोषं चिरजं प्रवृद्धं
निघ्नंति भूनिम्बमहौषधैश्च ॥ ३८ ॥

जीरा, पाठा, नागरमोथा, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कटेलीकी जड़, हलदी और दारुहलदी इनका चूर्ण या कल्क सुखोष्ण जलसे पीवे तो बढ़ीहुई त्रिदोषकी सूजन चाहे वह बहुत दिनकी पुरानी भी हो शमन हो जाती है। इसी प्रकार चिरायते और सोंठके सेवनसे त्रिदोषज सूजन दूर होजाती है ॥ ३८॥

अमृताद्वितयं शवाटिका
सुरकाष्ठं सपुरं सगोजलम् ।
श्वयथूदरकुष्ठपाण्डुता-
क्रिमिमेहोर्ध्वकफानिलापहम् ॥ ३९ ॥

गिलोय, हरड़, पुनर्नवा, देवदारु और गूगल इनका कल्क गोमूत्रके साथ पीवे तो सूजन, उदररोग, कुष्ठ, पाण्डुरोग, कृमिरोग, प्रमेह और ऊर्ध्वगत कफवातके रोग ये सब दूर होते है ॥ ३९ ॥

इति निजमधिकृत्य पथ्यमुक्तं
क्षतजनिते क्षतजं विशोधनीयम् ।
स्रुतिहिमघृतलेपसेकरेकै-
र्विषजनिते विषजिच्च शोफ इष्टम्॥४०॥

इस प्रकार यह निजशोथोंकी चिकित्सा कह दी है। अब आगन्तुज शोथोंकी चिकित्सा कहते हैं. जैसे-- क्षतजनित सूजनमें क्षत स्थानका रक्त शुद्ध करना चाहिये वह रक्त यदि उचित हो तो निकाल देना चाहिये अथवा शीतल घृत लेप करके रक्तको शोधन करे या औषधोंसे सेचन या जोंक आदिसे रक्त मोक्षण कराकर क्षतस्थान शुद्ध करदेना चाहिये । एवं विषजनित शोथमें विषको जीतनेवाले लेप आदि क्रियायें करनी चाहिये ॥ ४० ॥

शोथरोगमें त्याज्य वस्तु ।

ग्राम्यानूपं पिशितमबलं शुष्कशाकं तिलान्नम्
गौडं पिष्टान्नं दधि सलवणं विज्जलं मद्यमम्लम्।
धानावल्लूरमशमनमथो गुर्वसात्म्यं विदाहि
स्वप्नं रात्रौ श्वयथुगदवान्वर्जयेन्मैथुनं च ॥४१॥

शोथरोगवालेको ग्राम्यसंचारी जीवोंका मांस, अनूप मांस, निर्बल जन्तुका मांस, सूखे शाक, तिल, गुड़की बनी वस्तुयें, मिठाई, दही, लवण, पिच्छल द्रव्य, मद्य, खटाई, धनियां और सूखे मांस इन पदार्थोंको त्याग देना चाहिये तथा भारी पदार्थ, असात्म्य, विदाही पदार्थ, रात्रिमें सोना और स्त्रीसंग ये सब त्याग देना चाहिये ॥ ४१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां चिकित्सास्थाने शोथचिकित्सिते आयुर्वेदाचार्यप० शिवशर्मकृतशिवदीपिका-भाषाव्याख्यायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथाऽतो विसर्पचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब हम विसर्प रोगकी चिकित्सावाले अध्यायकी व्याख्या करते है ।

विसर्पमें चिकित्साक्रम ।

आदावेव विसर्पेषु हितं लङ्घनरूक्षणम् ।
रक्तावसेको वमनं विरेकः स्नेहनं न तु ॥ १ ॥

विसर्परोगमें प्रथम ही लंघन कराना, रूक्षण करना, रक्त निकालना, वमन और विरेचन कराना ये सब हितकारी होते है । किन्तु विसर्प रोगमें स्नेहन नहीं कराना चाहिये ॥ १ ॥

विसर्पमें वमनद्रव्य ।

प्रच्छर्दनं विसर्पघ्नं सयष्टींद्रयवं फलम् ।
पटोलपिप्पलीनिम्बपल्लवैर्वा समन्वितम् ॥ २॥

विसर्परोगमें मुलहठी और इन्द्रजौ मिलाकर मेनफलके क्वाथ और कल्कसे वमन कराना विसर्प रोगको नाश करता है । अथवा पटोलपत्र, पीपल और नीमपत्रोंको मिलाकर मेन फलके क्वाथ कल्कसे वमन कराना भी विसर्परोगको नष्ट करता है ॥ २ ॥

विसर्पमें विरेचन ।

रसेन युक्तं त्रायन्त्या द्राक्षायास्त्रिफलेन वा ।
विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं पयसा सर्पिषाऽथवा ।
योज्यं कोष्ठगते दोषे विशेषेण विशोधनम् ३॥

विसर्प रोगमें विरेचन करानेके लिये निशोथका चूर्ण या कल्क, त्रायमाणाके रसके साथ या द्राक्षाके रसके साथ अथवा त्रिफलेके रसके साथ पिलाकर विरेचन करावे । अथवा घृत या दूधके साथ निशोथका चूर्ण खिलाकर विरेचन करावे । जब विसर्पकारक दोष कोष्ठमे प्राप्त हो तो विशेष रूपसे शोधन कराना चाहिये ॥ ३ ॥

शमन चिकित्सा ।

अविशोध्यस्य दोषेऽल्पे शमनं चन्दनोत्पलम्॥
मुस्तनिम्बपटोलं वा पटोलादिकमेव वा ।
सारिवामलकोशीरमुस्तं वा क्वथितं जले ॥ ५ ॥

जो रोगी विरेचन या वमनके योग्य न हो उसको दोष शमन करनेकेलिये चन्दन और कमलका क्वाथ पिलावे । अथवा नागरमोथा, निंब और पटोलपत्रका क्वाथ पिलावे । या पटोलादि[1]गणका क्वाथ । या सारिवा, आंमले, उशीर और नागर मोथेका क्वाथ पिलाना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

१- यह गण सूत्रस्थान--अध्याय १५ में लिखे हुए हैं ।

विसर्पकी तृषामें जल ।

दुरालभां पर्पटकं गुडूचीं विश्वभेषजम् ।
पाक्यं शीतकषायं वा तृष्णावीसर्पवान् पिबेत्

जवासा, पापडा, गिलोय, और सोंठका पकाया हुआ क्वाथ या शीतकषाय प्यासयुक्त विसर्पवाला रोगी पीवे तो तृषा और विसर्प शमन होते है ॥ ६ ॥

दार्वी क्वाथ ।

दार्वीपटोलकटुकामसूरत्रिफलास्तथा ।
सनिंबयष्टीत्रायन्तीः क्वथिता घृतमूर्च्छिता॥७॥

दारुहलदी, पटोलकी जड़, कुटकी, मसुरी, हरड़, बहेड़े, आमले, नीमकी छाल, मुलहटी और त्रायमाणा इनका क्वाथ घृत मिलाकर पीवे तो विसर्प आदि विकार शमन होते है ॥ ७ ॥

शाखागत विसर्पकी चिकित्सा ।

शाखादुष्टे तु रुधिरे रक्तमेवादितो हरेत् ।
त्वङ्मांसस्नायुसंक्लेदो रक्तक्लेदाद्धि जायते ८॥

यदि शरीरकी किसी शाखामें विसर्प कारक रक्त दुष्ट हो तो प्रथम उस रक्तको ही हरण करना चाहिये अर्थात् जलौकादिसे रुधिर निकाल देवे। क्योंकि दुष्ट रक्तका क्लेद त्वचा, मांस और स्नायुओंको भी क्लेदित कर देता है इस कारण दुष्ट रक्तको निकाल ही देना चाहिये ॥ ८ ॥

निरामे श्लेष्माणि क्षीणे वातपित्तोत्तरे हितम् ।
घृतं तिक्तं महातिक्तं शृतं वा त्रायमाणया॥९॥

यदि विसर्प निराम हो उसमें कफ क्षीण हो और वातपित्त बढे हुए हों तो उस रोगीको तिक्तक घृत या महातिक्तक घृत अथवा त्रायमाणसे सिद्ध किया धृत पिलाना चाहिये । यद्यपि इसरोगकी चिकित्सामें प्रथम ही घृतपानादि स्नेहनका निषेध किया है परन्तु अवस्थाविशेषमें इस प्रकारका औषध सिद्ध घृत देना विशेष अवस्थामें वात पित्तकी अधिकतामें अनुचित नहीं है॥९॥

निर्हृतेऽस्रे विशुद्धेऽन्तर्दोषे त्वङ्मांससंधिगे ।
बहिःक्रियाः प्रदेहाद्याः सद्यो वीसर्पशान्तये१०

जब विसर्परोगीका रक्त निकालनेसे त्वचा मांसकी संधिके आश्रित दोष शुद्ध होजाता है तब विसर्पके ऊपर कियेहुए लेप आदि विसर्पको शीघ्र शमन कर देते है ॥ १० ॥

वात विसर्पपरलेप ।

शताह्वामुस्तवाराहीवंशार्तगलधान्यकम् ।
सुराह्वा कृष्णगन्धा च कुष्ठं वा लेपनं चले॥११

वायुके विसर्प पर—सौंफ, नागरमोथे, वाराहीकन्द, बांसकी जड़, नीले फूलका कालाबांसा, धनियां, देवदारु, और सुहांजनेकी छाल इनका लेप करे । यह लेप विसर्प या कुष्ठपर करनेसे इन रोगोंको शमन करता है ॥ ११ ॥

पित्त विसर्पपर लेप ।

न्यग्रोधादिगणःपित्ते तथा पद्मोत्पलादिकम्१२

पित्तके विसर्प पर न्यग्रोधादि गणका लेप करना चाहिये । तथा पद्मोत्पलादिगणका लेप भी पित्त विसर्पपर हितकारी है ॥ १२ ॥

न्यग्रोधपादास्तरुणाः कदलीगर्भसंयुताः ।
बिसग्रन्थिश्च लेपः स्याच्छतधौतघृताप्लुतः ।
पद्मिनीकर्दमः शीतः पिष्टं मौक्तिकमेव वा ।
शंखः प्रवालं शुक्तिर्वा गैरिकं वा घृतान्वितम् ॥

वट वृक्षकी नवीन जड़, केलेके वृक्षके भीतरका गोभ, भिसकी गांठ इन तीनोंको बारीक पीसकर सौवार धोयेहुए घृतमें मिलाकर लेप करनेसे पित्तका विसर्प शमन होता है । अथवा पद्मिनीपुष्पका शीतल कल्क या मोतीको जलमें पीसकर लेप करनेसे अथवा शंख, मूंगा, सीप अथवा गेरू इनमेंसे किसीको बारीक पीस कर सौवार धोये हुए घृतमें मिलाकर लेप करनेसे पित्तका विसर्प शमन होता है ॥ १३ ॥

कफविसर्पपर लेप ।

त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम् ।
नलमूलान्यनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा॥१४॥

त्रिफला, पद्मकाष्ठ,[1] खस मजीठ, अर्जुन वृक्षकी छाल, नरसलकी जड़ और शारिवा इनका लेप कफके विसर्पको हरने वाला है ॥ १४ ॥

---

१ पद्मोत्पलशैवालपङ्कदूर्वामृणालशृंगाटककसेरुकशर्कराह्रीबेरचन्दनमुक्तामणिगैरिकपयस्याप्रपौण्डरीकमधुकपद्मकघृतक्षीराणि इति संग्रहे ।

धवसप्ताह्वखादिरदेवदारुकुरण्टकम् ॥ १५ ॥
समुस्तारग्वधं लेपो वर्गो वा वरुणादिकः ।
आरग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मातकोद्भवाः ॥
इन्द्राणीशाकं काकाह्वा शिरीषकुसुमानि च ।
सेकव्रणाभ्यङ्गहविर्लेपचूर्णान् यथायथम् ।
एतैरेवौषधैः कुर्याद्वायौ लेपा घृताधिकाः १७॥

धव वृक्षकी छाल, सप्तपर्ण, कत्था, देवदारु, काला बांसा, नागरमोथा और अमलतासके पत्र इनका लेप अथवा वरुणादि गणका लेप, अथवा अमलतासके पत्रोंका लेप या लिसोढेकी छालका लेप अथवा इन्द्रायणके पत्र, मकोहके पत्र और शिरीषके फूल इनका लेप कफके विसर्पको शमन करता है।

इनहीं कफविसर्प नाशक द्रव्योंके क्राथसे विसर्पके व्रणोंपर सेचन करना । तथा इनसे सिद्ध तैल या घृत लगाना या लेप करना अथवा सूक्ष्म चूर्ण बनाकर गीले व्रणोंपर लगाना चाहिये । ये सब द्रव्य दोषानुसार सेचन, अभ्यंग, लेपनादिमें प्रयोग करने चाहिये । यदि इनका लेप वातज विसर्पमें करे तो घृत अधिक मिलाकर लेप करना चाहिये ॥ १५–१७ ॥

कफस्थानगते सामे पित्तस्थानगतेऽथवा ।
आशीतोष्णा हिता रूक्षा रक्तपित्ते घृतान्विताः।
अत्यर्थशीतास्तनवस्तनुवस्त्रान्तरास्थिताः ।
योज्याः क्षणे क्षणेऽन्येऽन्ये मन्दवीर्यास्त एव च

यदि सामवायु कफके स्थानगत हो तो किंचित् शीतोष्ण और रूक्ष लेप करना चाहिये । यदि पित्तके स्थानमें गयेहुए रक्तपित्त हों तो घृतयुक्त अत्यंत शीतल पतले या बारीक वस्त्रपर लगाकर लेप करने चाहिये. और क्षण क्षणके अनन्तर नया लेप बदलते रहना चाहिये । पहला लेप मन्दवीर्य होनेसे फिर दूसरी वार नहीं लगाना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥

संसृष्टदोषे संसृष्टमेतत्कर्म प्रशस्यते ॥ २० ॥

यदि विसर्पमें मिलेहुए दोष हों तो सर्वदोष नाशक मिली जुली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २० ॥

आग्निविसर्पकी चिकित्सा ।

शतधौतघृतेनाग्निं प्रदिह्यात्केवलेन वा ।
सेचयेद्घृतमण्डेन शीतेन मधुकांबुना ॥ २१ ॥
शीताम्भसाम्भोजजलैः क्षीरेणेक्षुरसेन वा ।
पानलेपनसेकेषु महातिक्तं परं हितम् ॥ २२ ॥

अग्निविसर्प पर--एकसौ बार धोयेहुए घृतका लेप करना चाहिये । अथवा केवल घृतमण्डसे सेचन करना चाहिये । अथवा मुलहठीके जलसे सेचन करे. या वेतस वृक्षके शीतल क्राथसे या नागरमोथेके जलसे । या दूधसे अथवा ईखके रससे अग्निविसर्पपर सेचन करना चाहिये । इस अग्निविसर्पमें--महातिक्तक घृत पीनेमे लेपनमें और सेचनमें परम हितकारी है ॥२१–२२ ॥

ग्रन्थि विसर्पकी चिकित्सा ।

ग्रंथ्याख्ये रक्तपित्तघ्नं कृत्वा सम्यग्यथोदितम् ।
कफानिलघ्नं कर्मेष्टं पिण्डस्वेदोपनाहनम्॥२३॥

ग्रन्थि विसर्पमें--प्रथम सम्पूर्ण क्रिया रक्तपित्त नाशक यथार्थ रूपसे करे तदनन्तर कफ वातनाशक कर्म करना उचित है तथा पिण्डस्वेद और उपनाह स्वेद करे ॥ २३ ॥

ग्रन्थिवीसर्पशूले तु तैलेनोष्णेन सेचयेत् ।
दशमूलविपक्केन तद्वन्मूत्रैर्जलेन वा ॥ २४ ॥

ग्रन्थिविसर्पमें--शूल होता हो तो दशमूलसे सिद्ध कियेहुए गर्म तेलसे सेचन करे । या दशमूलसे सिद्ध गोमूत्रसे या दशमूलके गर्म क्राथसे सेचन करे॥२४॥

सुखोष्णया प्रदिह्याद्वा पिष्टया कृष्णगन्धया ।
नक्तमालत्वचा शुष्कमूलकैः कलिनाऽथवा२५॥

अथवा सुहाजनेकी छालको पीसकर सुखोष्ण लेप करे । या करंजकी छालको पीसकर अथवा सूखी मूलीका कल्क बनाकर या बहेड़े वृक्षकी छालके कल्कका सुखोष्ण लेप करे तो ग्रथि विसर्प शमन होता है और शूल शांत होजाता है ॥ २५ ॥

ग्रन्थिको भेदन करनेवाला लेप ।

दन्ती चित्रकमूलत्वक्सौधार्कपयसी गुडः ।
भल्लातकास्थि कासीसं लेपो भिंद्याच्छिलामपि
बहिर्मार्गाश्रितं ग्रन्थिं किं पुनः कफसम्भवम् ।
दीर्घकालस्थितं ग्रन्थिमेभिर्भिंद्याच्च भेषजैः२७॥

दन्तीकी जड़, चित्रककी जड़का छिलका, थोहरका दूध, आकका दूध, गुड़ मिलावेकी गुठली और कसीस इनको मिलाकर लेप करनेसे पत्थर समान ग्रन्थि भी भेदन होकर फूट जाती है । बहिर्मार्ग स्थित कफकी ग्रन्थिका तो कहना ही क्या है । इन औषधियोंसे कियाहुआ लेप बहुत कालकी स्थिर ग्रन्थिको भेदन कर देता है ॥ २१ ॥ २७ ॥

मूलकानां कुलत्थानां यूषैः सक्षारदाडिमैः ।
गोधूमान्नैर्यवान्नैश्च ससीधुमधुशर्करैः ॥ २८ ॥
सक्षौद्रैर्वारुणीमण्डैर्मातुलुङ्गरसान्वितैः ।
त्रिफलायाः प्रयोगैश्च पिप्पल्याःक्षौद्रसंयुतैः २९
देवदारुगुडूच्योश्च प्रयोगैर्गिरिजस्य च ।
मुस्तभल्लातसक्तूनां प्रयोगैर्माक्षिकस्य च॥३०॥
धूमैर्विरेकैः शिरसः पूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः ।
तप्तायोहेमलवणपाषाणादिप्रपीडनैः ॥३१॥

ग्रन्थि विसर्पकी ग्रंथियोंको नष्ट करनेके लिये मूली और कुलथीके यूषोंमें जवाखार और दाड़िम मिलाकर इन यूषोंके साथ गेहूँ या जौका अन्न खावे तथा मधु और शर्करा मिलाकर सीधु पीवे । अथवा मधु मिलाकर और बिजौरेका रस मिलाकर वारुणीमण्ड पीवे । अथवा मधु मिलाकर त्रिफला या पीपलका प्रयोग करके अथवा देवदारु और गिलोयका प्रयोग करके या शिलाजीतका सेवन करके अथवा नागरमोथे, भिलावे और सत्तुओंका या मधुका प्रयोग करके ग्रंथियोंको नष्ट करे । अथवा धूमपान या शिरोविरेचन करके अथवा पूर्वोक्त गुल्म भेदन करता उपायोंसे एवं तप्त कियेहुए लोह, सुवर्ण, लवण या पाषाण द्वारा पीड़न करनेसे विसर्पकी ग्रंथिको भेदन करना चाहिये ॥ २८-३१ ॥

आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिर्विविधाभिर्बले स्थितः
ग्रन्थिः पाषाणकठिनो यदि नैवोपशाम्यति ॥
अथास्य दाहः क्षारेण शरैर्हेम्नाऽपि वा हितः ।
पाकिभिः पाचयित्वा तु पाटयित्वा तमुद्धरेत् ३३

यदि इन उपरोक्त अनेक सिद्ध उपायोंको करनेसे भी ग्रन्थि अपने बलमें उसी प्रकार पाषाणके समान कठिनहुई स्थित रहे और इन उपरोक्त सिद्ध उपायोंसे भी शमन न हो तो इस ग्रन्थिको क्षारसे या अग्नितप्त शरसे अथवा तप्त सुवर्णसे दाह करदेना चाहिये । अथवा पाचन करनेवाली औषध लगाकर पका डाले फिर शस्त्र द्वारा चीर कर ग्रन्थिको निकाल देना चाहिये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

मोक्षयेद्बहुशश्चास्य रक्तमुत्क्लेशमागतम् ।
पुनश्चापहृते रक्ते वातश्लेष्मजिदौषधम्॥३४॥

जब ग्रन्थिविसर्पमें ग्रन्थिका रक्त उत्क्लेशित हो तो इस ग्रन्थिमेंसे वार वार रक्त निकालदे जब यथार्थ रक्त निकल जावे तब वात कफनाशक औषधियोंका प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ ३४ ॥

प्रक्लिन्ने दाहपाकाभ्यां बाह्यान्तर्व्रणवत्क्रिया ।
दार्वीविडङ्गकंपिल्लैः सिद्धं तैलं व्रणे हितम् ।
दूर्वास्वरससिद्धं तु कफपित्तोत्तरे घृतम् ॥३५॥

यदि दाह और पाकसे ग्रन्थि प्रक्लेदित हो तो सब क्रिया बाह्य और आभ्यन्तर व्रणके समान करना चाहिये । तथा इस ग्रन्थिको शोधन और रोपण करनेके लिये दारुहलदी, वायविडंग और कमीलेसे सिद्ध कियाहुआ तेल लगाना हितकारी होता है। यदि ग्रन्थिका व्रण कफपित्त प्रधान हो तो उसपर दूर्वाके स्वरससे सिद्ध कियाहुआ घृत लगाना चाहिये ॥ ३५ ॥

एकतः सर्वकर्माणि रक्तमोक्षणमेकतः ॥ ३६॥

विसर्परोगमें और विसर्पज ग्रन्थिमें एक ओर अन्य सब प्रकारकी चिकित्सायें हैं और एक ओर केवल रक्तनिकाल देना ही श्रेष्ठ है ॥ ३६॥

विसर्पो न ह्यसंसृष्टः सोऽस्रपित्तेन जायते ।
रक्तमेवाश्रयश्चास्य बहुशोऽस्रं हरेदतः ॥ ३७॥

क्योंकि रक्त और पित्तके संसर्ग विना विसर्प रोग ही हो नहीं सकता, इस विसर्परोगका आश्रय रक्त ही है इस कारण इसका विशेषरूपसे रक्त ही निकालना चाहिये ॥ ३७ ॥

न घृतं बहु दोषाय देयं यन्न विरेचनम् ।
तेन दोषो ह्युपस्तब्धस्त्वग्रक्तपिशितं पचेत् ३८

जिन विसर्पवालेके शरीरमें दोषोंका संचय है उसको विरेचन करता घृतके विना और कोई घृत नहीं देना चाहिये। क्योंकि घृत खानेसे उपस्तब्धहुआ दोष त्वचा, रक्त और मांसको भी पका देता है ॥ ३८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां चिकित्सास्थाने विसर्पचिकित्सिते आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्म्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः।

अथातः कुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम कुष्ठरोगकी चिकित्साके अध्यायकी व्याख्या करते है।

कुष्ठकी चिकित्सा।

कुष्ठिनं स्नेहपानेन पूर्वं सर्वमुपाचरेत्।

सब प्रकारके कुष्ठरोगीको प्रथम स्नेहपान कराकर स्निग्ध करना चाहिये।

वातजकुष्ठकी चिकित्सा।

तत्र वातोत्तरे तैलं घृतं वा साधितं हितम्।
दशमूलामृतैरण्डशार्ङ्गेष्टामेषशृङ्गिभिः ॥ १ ॥

वातप्रधान कुष्ठ हो तो दशमूल, गिलोय, एरण्डकी जड़, काकजंघा और मेषशृंगीके कल्क क्वाथसे सिद्ध किया तेल या घृत पिलावे ॥ १ ॥

पित्तकुष्ठनाशकतिक्तक घृत।

पटोलनिम्बकटुकादार्वीपाठादुरालभाः ॥ २ ॥
पर्पटं त्रायमाणां च पलांशं पाचयेदपाम्।
द्व्याढकेऽष्टांशशेषेण तेन कर्षोन्मितैस्तथा ॥३॥
त्रायन्तीमुस्तभूनिम्बकलिङ्गकणचन्दनैः।
सर्पिषो द्वादशपलं पचेत्तत्तिक्तकं जयेत् ॥ ४ ॥
पित्तकुष्ठपरीसर्पपिटिकादाहतृड्भ्रमान्।
कण्डूपाण्ड्वामयान् गण्डान् दुष्टनाडी–
व्रणापचीः ॥ ५ ॥
विस्फोटविद्रधीगुल्मशोफोन्मादमदानपि।
हृद्रोगतिमिरव्यङ्गग्रहणीश्वित्रकामलाः ॥ ६ ॥
भगन्दरमपस्मारमुदरं प्रदरं गरम्।
अर्शोऽस्रपित्तमन्यांश्च सुकृच्छ्रान्–
–पित्तजान् गदान् ॥ ७ ॥

पटोलकी जड़, निंब, कुटकी, दारुहलदी, पाठा, जवासा, पापड़ा और त्रायमाणा ये प्रत्येक एक एक पल लेकर दो आढ़क जलमें पकावे. आठवां भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले. यह क्वाथ और त्रायमाणा एक कर्ष, नागरमोथा एक कर्ष, चिरायता एक कर्ष, इंद्रजौ एक कर्ष, पीपल और चन्दन एक कर्ष इनका कल्क मिलाकर बारह पल घृत सिद्ध करे। यह तिक्तकघृत पित्तज कुष्ठ, विसर्प, पिटिका, दाह, तृषा, भ्रम, कण्डु, पाण्डुरोग, ग्रन्थिरोग, दुष्टनाड़ीव्रण, अपची, विस्फोट, विद्रधि, गुल्म, सूजन, उन्माद, मद, हृद्रोग, तिमिर, व्यंग, ग्रहणी, श्वित्र, कामला, भगन्दर, अपस्मार, उदररोग, प्रदर, गरविकार, अर्श, रक्तपित्त तथा अन्य कष्टसाध्य पित्तजनित रोग इन सबको शमन करता है ॥ २–७ ॥

महातिक्तक घृत।

सप्तच्छदः पर्पटकः शम्याकः कटुका वचा।
त्रिफला पद्मकं पाठा रजन्यौ सारिवे कणे ॥८॥
निंबचन्दनयष्ट्याह्वविशालेन्द्रयवामृताः।
किराततिक्तकं सेव्यं वृषो मूर्वा शतावरी ॥९॥
पटोलातिविषामुस्तात्रायंतीधन्वयासकम्।
तैर्जलेऽष्टगुणे सर्पिर्द्विगुणामलकीरसे ॥
सिद्धं तिक्तान्महातिक्तं गुणैरभ्यधिकं मतम्॥१०

सप्तपर्ण, पापड़ा, अमलतास, कुटकी, बच, त्रिफला, पद्मकाष्ठ, पाठा, हलदी, दारुहलदी, श्वेत शारिवा, कृष्ण शारिवा, पीपल, जीरा, निंब, चन्दन, मुलहठी, इन्द्रायण, इन्द्रजौ, गिलोय, चिरायता, खस, अडूसा, मूर्वा, शतावर, पटोलकी जड़, अतीस, नागरमोथा, त्रायमाणा और जवासा इन सबके आठगुने क्वाथ और दोगुने आमलेके रसमें सिद्धकिया घृत महातिक्तक घृत कहाजाता है. यह घृत तिक्तक घृतसे अधिक गुण करनेवाला मानागया है ॥ ८–१० ॥

कफजकुष्ठकी चिकित्सा।

कफोत्तरे घृतं सिद्धं निम्बसप्ताह्वचित्रकैः।
कुष्ठोषणवचाशालप्रियालचतुरङ्गुलैः ॥ ११ ॥

कफप्रधान कुष्ठमें–निंब, सप्तपर्ण, चित्रक, कूठ,

पीपल, वच, शाल, प्रियंगु और अमलतासके कल्कसे सिद्ध किया घृत पिलावे ॥ ११ ॥

सब कुष्ठोंकी सामान्य चिकित्सा ।

सर्वेषु चारुष्करजं तौवरं सार्षपं पिबेत् ।
स्नेहं घृतं वा कृमिजित्पथ्याभल्लातकैः शृतम् ॥१२

सब प्रकारके कुष्ठोंमें वायविड़ंग, हरीतकी और भिलावेसे सिद्ध कियाहुआ भिलावेका तेल, या तुवरकका तेल अथवा सरसोंका तेल पिलाना हितकारी होता है । इनमें भिलावेका तेल शोथ आदि उपद्रव कारक है वह युक्तिपूर्वक और जिनको अनुकूल हो अल्पमात्रामें देना चाहिये ॥ १२ ॥

आरग्वध घृत ।

आरग्वधस्य मूलेन शतकृत्वः शृतं घृतम् ।
पिबन्कुष्ठं जयत्याशु भजन् सखदिरं जलम्॥१३

अमलतासकी जड़के कल्कसे सौ वार सिद्ध किया हुआ घृत पीवे और खैरसे सिद्ध किया जल पीया करे तो कुष्ठरोग शीघ्र शमन होजाता है ॥ १३ ॥

स्नेहाभ्यंग ।

एभिरेव यथास्वं च स्नेहैरभ्यंजनं हितम्॥१४॥

इन उपरोक्त घृत तैलोंका दोषानुसार शरीरपर लगाना भी कुष्ठरोगमें हितकारी है ॥ १४ ॥

शोधनक्रम ।

स्निग्धस्य शोधनं योज्यं विसर्पे यदुदाहृतम्१५

इस प्रकार उपरोक्त घृत तैलोंसे स्निग्ध करनेके अनन्तर विसर्परोगमें कहेहुए योगोंद्वारा वमन विरेचन कराकर शरीरका शोधन करे ॥ १५ ॥

रक्तमोक्षण ।

ललाटहस्तपादेषु शिराश्चास्य विमोक्षयेत् ।
प्रच्छानमल्पके कुष्ठे शृंगाद्याश्च यथायथम्१६

कुष्ठरोगवालेके मस्तक, हाथ और पांवकी शिरा वेधनकर रक्त निकाल देना चाहिये । यदि कुष्ठ किसी एक स्थानमें हो या क्षुद्र कुष्ठ हो तो पछने लगाकर दोषानुसार सिंगी तुम्बी आदिसे रक्त निकाल देना चाहिये ॥ १६ ॥

स्नेहैराप्याययेच्चैनं कुष्ठघ्नैरन्तरान्तरा ।
मुक्तरक्तविरिक्तस्य रिक्तकोष्ठस्य कुष्ठिनः ।
प्रभञ्जनस्तथा ह्यस्य न स्याद्देहप्रभञ्जनः ॥ १७

रक्त निकालनेके अनन्तर इस रोगीको कुष्ठनाशक घृतादि स्नेहपान कराकर इसके शरीरका पोषण करता रहे जिससे रक्त निकलकर इस रोगीके रिक्त कोष्ठ होनेपर वायु प्रबल होकर इसके देहका नाश न कर सके ॥ १७ ॥

वासादि (वज्रक) घृत ।

वासामृतानिम्बवरापटोल-
व्याघ्रीकरञ्जोदककल्कपक्वम् ।
सर्पिर्विसर्पज्वरकामलास्र-
कुष्ठापहं वज्रकमामनन्ति ॥ १८ ॥

वांसा, गिलोय, निंब, त्रिफला, पटोलकी जड़, कटेली और करञ्ज इनके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध किया-हुआ घृत विसर्प, ज्वर, कामला, रक्तपित्त और कुष्ठ इन सबको नष्ट करनेमें वज्रके समान है ॥ १८ ॥

महावज्रक घृत ।

त्रिफलात्रिकटुद्विकण्टकारी-
कटुकाकुम्भनिकुम्भराजवृक्षैः ।
सवचातिविषाग्निकैः सपाठैः
पिचुभागैर्नववज्रदुग्धमुष्ट्या ॥ १९ ॥
पिष्टैः सिद्धं सर्पिषः प्रस्थमेभिः
क्रूरे कोष्ठे स्नेहनं रेचनं च ।
कुष्ठश्वित्रप्लीहवर्ध्माश्मगुल्मान्
हन्यात्कृच्छ्रांस्तन्महावज्रकाख्यम्२०॥

त्रिफला, त्रिकटु, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, कुटकी, निशोथ, दन्ती, अमलतास, बच, अतीस, चित्रक और पाठा ये प्रत्येक एक एक कर्ष और थोहरके अग्रभागका दूध एक पल इनके कल्कसे एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे । यह घृत क्रूरकोष्ठवालेके लिये स्नेहन करनेवाला भी है और रेचन करनेवाला भी है । इसके सेवनसे कुष्ठ, श्वित्र, प्लीहा, वर्ध्म, अश्मरी और गुल्म आदि कष्टसाध्य रोग भी नाश होते हैं इसको महावज्रक घृत कहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

१--चौल्मोगरा--कुष्ठहरवृक्ष ।

दन्ती घृत।

दन्त्याढकमपां द्रोणे पक्त्वा तेन घृतं पचेत्। धामार्गवपले पीतं तदूर्ध्वाधो विशुद्धिकृत्॥२१

एक आढक दन्तीको एक द्रोण जलमें पकावे चौथा भाग शेष रहनेपर छानले इस क्वाथ और धामार्गव (कड़वी तोरी) के कल्कसे सिद्ध किया घृत पीनेसे वमन और विरेचन होकर शरीर शुद्ध हो जाता है॥ २१॥

आवर्तकीतुलां द्रोणे पचेदष्टांशशेषितम्। तन्मूलैस्तत्र निर्यूहे घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥२२

पीत्वा तदेकदिवसान्तरितं सुजीर्णे
भुञ्जीत कोद्रवसुसंस्कृतकाञ्जिकेन।
कुष्ठं किलासमपचीं च विजेतुमिच्छन्
इच्छन्प्रजां च विपुलां ग्रहणं स्मृतिं च२३

आवर्तकी (भगदुल्ली) एक सौ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब आठवां भाग जल शेष रहे तो उतारकर छानले यह क्वाथ और अवर्तकीकी जड़का कल्क मिलाकर एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे। इस घृतको एक एक दिनका अन्तर देकर पीवे। घृतके ठीक जीर्ण होकर क्षुधा लगनेपर कोद्रवको यथार्थ संस्कार कर कांजीके साथ भोजन करे तो इसके सेवनसे कुष्ठ, किलास और अपची ये रोग दूर होते हैं तथा इस पुरुषके अच्छी सन्तान होती है और ग्रहण करने तथा स्मरण करनेकी शक्ति बलवाली होती है॥२२॥२३॥

यतेर्लेलीतकवसा क्षौद्रजातीरसान्विता। कुष्ठघ्नी समसर्पिर्वा सगायत्र्यसनोदका॥२४॥

जो मनुष्य यथार्थ ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए गंधकका तेल नीमका मद्य मिलाकर सेवन करता है अथवा खैर और विजयसारका क्वाथ समान भाग घृत मिलाकर सेवन करता है वह कुष्ठ रोगसे छूट जाता है॥ २४॥

कुष्ठमें पथ्यापथ्य।

शालयो यवगोधूमाः कोरदूषाः प्रियङ्गवः। मुद्गा मसूरास्तुवरी तिक्तशाकानि जाङ्गलम्२५। वरापटोलखदिरनिम्बारुष्करयोजितम्। मद्यास्यौषधगर्भाणि मथितं चेक्षुराजितम्२६। अन्नपानं हितं कुष्ठे न त्वम्ललवणोषणम्। दधिदुग्धगुडानूपतिलमाषांस्त्यजेत्तराम्। २७॥

शालीचावल, जव, गेहूं, कोदों, कांगुनी धान्य, मूंगकी दाल, मसूर, अड़हर तिक्तशाक और जांगल रस ये भक्ष्य पदार्थ. त्रिफला, पटोल, खैर, निंब और भिलावे इनके साथ मिलाकर या इनके जलमें सिद्ध करके सेवन करना तथा कुष्ठनाशक औषधियोंके योगसे बनायीहुई मद्य और बावचीके योगसे बनायाहुआ मथित ये सब अन्न पान कुष्ठरोगमें हितकारी है इस कारण इनको सेवन करे। परन्तु खटाई, लवण, उष्ण-पदार्थ, दही, दूध, गुड़, अनूपसंचारीजीवोंके मांस, तिल और उड़द ये सब पदार्थ कुष्ठरोगीको कुपथ्य हैं इस कारण इनको त्याग देना चाहिये॥ २५-२७॥

पटोलादि क्वाथ।

पटोलमूलत्रिफलाविशालाः
पृथक्त्रिभागापचितास्त्रिशाणाः।
स्युस्त्रायमाणा कटुरोहिणी च
भागार्धिके नागरपादयुक्ते॥ २८॥
एतत्पलं जर्जरितं विपक्वं
जले पिबेद्दोषविशोधनाय।
जीर्णे रसैर्धन्वमृगद्विजानां
पुराणशाल्योदनमाददीत॥ २९॥
कुष्ठं किलासं ग्रहणीप्रदोष-
मर्शांसि कृच्छ्राणि हलीमकं च।
षड्रात्रियोगेन निहन्ति चैतद्
हृद्वस्तिशूलं विषमज्वरं च॥ ३०॥

पटोलकी जड़ आठ मासे, हरड़का छिलका आठ मासे, बहेड़ेका छिलका आठ मासे, आमले आठ मासे, इन्द्रायणकी जड़ आठ मासे, त्रायमाणा चार मासे, कटुकी चार मासे और सोंठ दो मासे इस प्रकार पचास मासे द्रव्य हुआ; यहां इस पचास मासेका ही पल मानकर इस पचास मासे द्रव्यको कूटकर जलमें

१ अरुणदत्तने-लेलीतकवसाका अर्थ सौवर्चल लवणका तेल या गंधकका तेल किया है।

क्काथ करके दोषोंको शोधन करनेके लिये पीवे। विरेचन होकर क्षुधा लगनेपर पुराने शाली चावलोंका भात जांगल मांसरस या मृग अथवा पक्षियोंके मांस रससे खावे। इसके सेवनसे कुष्ठ, किलास, ग्रहणीविकार, कष्टसाध्य अर्शके मस्से, हलीमक, बस्तिशूल, हृच्छूल और विषमज्वर ये छः दिनके प्रयोगसे दूर हो जाते हैं जो लोग मांस नहीं खाते उनको पुराने शालीचावलोंके भातके साथ मूंग या मसूरका यूष खाना चाहिये ॥ २८-३० ॥

विडंगसारादि गुड़।

विडङ्गसारामलकाभयानां
पलत्रयं त्रीणि पलानि कुम्भात्।
गुडस्य च द्वादश मासमेष
जितात्मनां हन्त्युपयुज्यमानः॥ ३१ ॥
कुष्ठं श्वित्रं श्वासकासोदरार्शो-
मेहप्लीहग्रन्थिरुग्जन्तुगुल्मान्।
सिद्धं योगं प्राह यक्षो मुमुक्षो-
भिक्षोःप्राणान्माणिभद्रःकिलेमम् ॥ ३२

छिलका रहित वायबिड़ंग एक पल, आमले एक पल, हरीतकी एक पल और निशोथ तीन पल इन सबका बारीक चूर्ण कर बारह पल गुड़में मिलावे। इस औषधको एक मासतक जितेन्द्रिय पुरुष सेवन करे तो कुष्ठ, श्वित्र, श्वास, खांसी, उदररोग, अर्श, प्रमेह, प्लीहा, ग्रन्थिरोग कृमि और गुल्म इन रोगोंको यह मणिभद्र भिक्षुका कहा हुआ सिद्ध योग अवश्य शमन करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापद्मकातिविषाकणाः।
मूर्वापटोलीद्विनिशापाठातिक्तेन्द्रवारुणीः ॥ ३३
सकलिङ्गवचास्तुल्या द्विगुणाश्च यथोत्तरम्।
लिह्याद्दन्तीत्रिवृद्ब्राह्मीश्चूर्णिता मधुसर्पिषा।
कुष्ठमेहप्रसुप्तीनां परमं स्यात्तदौषधम् ॥ ३४ ॥

चिरायता, त्रिफला, पद्मकाष्ठ, अतीस, पीपल, मूर्वा-पटोलकी जड़, हलदी, दारुहलदी, पाठा, कुटकी, इन्द्रायणकी जड़, इन्द्रजव और वच ये प्रत्येक द्रव्य एक कर्ष, दन्ती दो कर्ष, निशोथ चार कर्ष, ब्राह्मी आठ कर्ष इन सबका चूर्ण करके मधु और घृतमें मिलाकर चाटनेसे कुष्ठ, प्रमेह और शरीरका शून्य पड़जाना ये सब रोग दूर करनेको यह परमोत्तम औषध है ॥ ३३॥ ३४ ॥

वराविडङ्गकृष्णा वा लिह्यात्तैलाज्यमाक्षिकैः ३५

अथवा त्रिफला, वायविडंग और पीपलका चूर्ण तैल, घृत और मधुमें मिलाकर चाटनेसे कुष्ठ, प्रमेह और सून्यता दूर होती है ॥ ३५ ॥

काकोदुम्बरिकावेल्लनिम्बाब्दत्र्योषकल्कवान्।
हंति वृक्षकनिर्यूहःपानात्सर्वास्त्वगामयान् ३६॥

काकोदुम्बरिका(कैवरी)की छाल, विड़ंग, निंब, नागरमोथा और त्रिकटुका कल्क मिलाकर कुटजका काथ एक मासतक ब्रह्मचारी रहकर पीवे तो त्वचामें होनेवाले सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

कुटजाग्निनिम्बनृपतरुखदिरासनसप्तपर्णनिर्यूहे
सिद्धा मधुघृतयुक्ताःकुष्ठघ्नीर्भक्षयेदभयाः ॥ ३७

कुड़ाकी छाल, चित्रक, निंब, अमलतास, खैर, विजयसार और सप्तपर्णके काथमें सिद्ध कीहुई हरीतकी मधु और घृत मिलाकर नित्य खानेसे कुष्ठको नाश करती है ॥ ३७ ॥

दार्वीखदिरनिम्बानां त्वक्काथःकुष्ठसूदनः ३८॥

दारुहलदी, खैर और निम्बकी छालका काथ सेवन करनेसे कुष्ठको दूर करता है ॥ ३८ ॥

निशोत्तमानिम्बपटोलमूल-
तिक्तावचालोहितयष्टिकाभिः।
कृतः कषायः कफपित्तकुष्ठं
सुसेवितो धर्म इवोच्छिनत्ति।
एभिरेव च शृतं घृतमुख्यं
भेषजैर्जयति मारुतकुष्ठम्।
कल्पयेत्खदिरनिम्बगुडूची-
देवदारुरजनीः पृथगेवम् ॥ ३९ ॥

हलदी, त्रिफला, निंब, पटोलकी जड़, कुटकी, बच, लालचन्दन और मुलहठी इनका काथ सेवन किया हुआ कफ पित्तके कुष्ठको ऐसे नष्ट कर देता है. जैसे—यथार्थ धर्म सेवन करनेसे कष्ट दूर हो जाते हैं। इन

द्रव्योंके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया घृत वातके कुष्ठको दूर करता है। इसी प्रकार खैर, निंव, गिलोय, देवदारु और हलदीका क्वाथ पीनेसे कफपित्तका कुष्ठ दूर होता है और इनसे सिद्ध किये घृतसे वात कुष्ठ दूर होता है॥ ३९ ॥

पाठादार्वीवह्निघुणेष्टाकटुकाभि-
मूत्रं युक्तं शक्रयवैश्चोष्णजलं च।
कुष्ठी पीत्वा मासमरुक् स्याद्गुदकोली
मही शोफी पाण्डुरजीर्णी कृमिमांश्च॥४०॥

पाठा, दारुहलदी, चित्रक, अतीस, कटुकी और इन्द्रजौ इनका चूर्ण गोमूत्र या गर्मजलसे एक मासतक सेवन करे तो कुष्ठ, अर्श, प्रमेह, सूजन, पाण्डु, अजीर्ण और कृमिरोग ये सब दूर होते हैं॥ ४० ॥

लाक्षादन्तीमधुरसवराद्वीपिपाठाविडङ्गं
प्रत्यक्पुष्पीत्रिकटुरजनीसप्तपर्णाटरूषम्।
रक्ता निम्बं सुरतरुकृतं पञ्चमूल्यौ च चूर्णं
पीत्वा मासं जयति हितभुग्गव्यमूत्रेण कुष्ठम्॥४१॥

लाख, दन्ती, मूर्वा, त्रिफला, चित्रक, पाठा, विडंग, अपामार्ग, त्रिकटु, हलदी, सातला, अडूसा, मजीठ, निंव, देवदारु और दशमूल इन सबका चूर्ण कर गोमूत्रके साथ एक महीने तक सेवन करे और पथ्य भोजनादि हित आहार विहारको सेवन करे तो कुष्ठ-रोग दूर होता है॥ ४१ ॥

निशाकणानागरवेल्लतौवरं
सवह्नितार्प्यं क्रमशो विवर्धितम्।
गवाम्बु पीतं वटकीकृतं तथा
निहन्ति कुष्ठानि सुदारुणान्यपि॥४२॥

हलदी, पीपल, सोंठ, वायविडंग, तुवरक (चौलमोगरा) चित्रक और सोनामक्खीकी भस्म ये सब क्रमसे एक एक भाग अधिक लेकर चूर्ण करे इसको गोमूत्रके साथ सेवन करे या इन सबकी गोली बनाकर सेवन करे तो यह योग दारुण कुष्ठको भी नष्ट करता है॥ ४२ ॥

त्रिकटूत्तमातिलारुष्कराज्य-
माक्षिकसितोपला विहिता।
गुलिका रसायनं स्यात्
कुष्ठजिच्च वृष्या च सप्तसमा॥ ४३ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, तिल, भिलावे, घृत, सहद और मिसरी इनकी गोली बनाकर शुद्धि काय मनुष्य नित्य सेवन करे तो यह कुष्ठको दूर करती है और यह सप्त समावटी वीर्यवर्धक तथा रसायन है॥ ४३ ॥

चन्द्रशकलाग्निरजनी-
विडङ्गतुवरास्थ्यरुष्करत्रिफलाभिः।
वटकागुडांशक्लृप्ताः
समस्तकुष्ठानि नाशयन्त्यभ्यस्ताः॥४४॥

बावची, चित्रक, हलदी, दारुहलदी, वायविडंग, तुवरककी गुठली, भिलावे, त्रिफला और इन सबके चौथा भाग गुड़ मिलाकर बनायी वटी सेवन करते रहनेसे सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते है॥ ४४ ॥

विडङ्गभल्लातकबाकुचीनां
सद्वीपिवाराहिहरीतकीनाम्।
सलाङ्गलीकृष्णतिलोपकुल्या
गुडेन पिण्डी विनिहन्ति कुष्ठम्॥४५॥

वायविडंग, भिलावे, बावची, चित्रक, वाराहीकन्द, हरीतकी, लांगलीकन्द, काले तिल और पीपल इनको गुड़में मिलाकर कूटकर पिण्डी करे यह पिण्डी सेवन करनेसे कुष्ठको नष्ट करती है॥ ४५ ॥

शशाङ्कलेखा सविडङ्गमूला
सपिप्पलीका सहुताशमूला।
सायोमला सामलका सतैला
कुष्ठानि कृच्छ्राणि निहंति लीढा॥४६॥

बावची, वायविड़ंग, पीपल, चित्रककी जड़, मण्डूरकी भस्म, आमले और तैल ये सब मिलाकर चाटनेसे सब प्रकारके कुष्ठ दूर होते है॥ ४६ ॥

पथ्यातिलगुडैः पिण्डी कुष्ठं सारुष्करैर्जयेत्।
गुडारुष्करजन्तुघ्नसोमराजीकृताऽथवा॥४७॥

हरीतकी, तिल, गुड़ और भिलावे मिलाकर कूट कर बनायीहुई पिण्डी अथवा गुड़, भीलावे, वायविडंग और बावची मिलाकर बनायीहुई पिण्डी सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ दूर होते हैं॥ ४७॥

विडङ्गाद्रिजतु क्षौद्रं सर्पिष्मत्खादिरं रजः।
किटिभश्वित्रदद्रुघ्नं खादेन्मितहिताशनः ॥४८॥

वायविडंग, शिलाजीत, मधु और घृतमें मिलाकर शुद्ध खदिरचूर्णको सेवन कर हित और मित आहार सेवन करते रहनेसे किटिभकुष्ठ, श्वित्र, और दद्रु ये सब नाश होते है ॥ ४८ ॥

सितातैलकृमिघ्नानि धात्र्ययोमलपिप्पलीः।
लिह्यानः सर्वकुष्ठानि जयन्त्यतिगुरूण्यपि ॥४९

जो मनुष्य मिसरी, तैल, बायविडंग, आमले, मण्डूरभस्म और पीपल मिलाकर चाटता रहता है वह भारी कुष्ठोंको भी जीत लेता है ॥ ४९ ॥

मुस्तं व्योषं त्रिफला मञ्जिष्ठादारुपञ्चमूले द्वे।
सप्तच्छदनिम्बत्वक् सविशाला चित्रको मूर्वा५०
चूर्णं तर्पणभागैर्नवभिः संयोजितं समध्वंशम्।
नित्यं कुष्ठनिबर्हणमेतत्प्रायोगिकं खादन्॥५१॥
श्वयथुं सपाण्डुरोगं श्वित्रं ग्रहणीप्रदोषमर्शांसि।
वध्मंभगन्दरपिडकाकण्डूकोठापचीर्हन्ति ५२॥

नागरमोथा, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेडा, आमला, मजीठ, देवदारु, दशमूलकी दश औषध, सातला, नीमकी छाल, इन्द्रायणकी जड़, चित्रक, और मूर्वा ये २४ द्रव्य प्रत्येक एक एक पल लेकर चूर्ण करे इस चूर्णमेंसे चूर्ण एक भाग, जौके सत्तू नौ भाग मधुमिलाकर नित्य सेवन करे. यह प्रयोग योग्य चूर्ण खाते रहनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है। तथा सूजन, पाण्डुरोग, श्वित्र, ग्रहणीदोष, अर्श, वध्म, भगन्दर, पिड़िका, खाज और कोठ, अपची ये सब दूर होते है ॥ ५०-५२ ॥

रसायनप्रयोगेण तुवरास्थीनि शीलयेत्।
भल्लातकं बाकुचिकां वह्निमूलं शिलाह्वयम् ५३

रसायनविधिसे तुवरक (चौलमोगरा) की गुठलीका सेवन करनेसे या भिलावे, अथवा बावची, या चित्रककी जड़ अथवा शिलाजीत सेवन करे तो कुष्ठरोग दूर होजाता है ॥ ५३ ॥

इति दोषे विजितेऽन्तस्
त्वक्स्थे शमनं बहिः प्रलेपादि हितम्।
तीक्ष्णालेपोत्क्लिष्टं
कुष्ठं हि विवृद्धिमेति मलिने देहे ॥ ५४ ॥

इस प्रकार कुष्ठकारक आभ्यन्तर दोष जीतलेनेके अनन्तर त्वचामें रहेहुए दोषको बाहरके लेप स्नान-आदिसे जीतना चाहिये। क्योंकि यदि प्रथम आभ्यन्तर दोषको न जीताजावे तो बाहरके तीक्ष्ण लेपों द्वारा उत्क्लेशितहुआ दोष मलिन देहमें कुष्ठको बढ़ा देता है. इस कारण प्रथम भीतरकी शुद्धि वमन विरेचनादि तथा कुष्ठनाशक योगोंसे करनेके अनन्तर बाहरका विकार लेपादि द्वारा जीतना चाहिये ॥ ५४ ॥

स्थिरकठिनमंडलानांकुष्ठानां पोटलैर्हितः स्वेदः
स्विन्नोत्सन्नंकुष्ठंशस्त्रैर्लिखितं प्रलेपनैर्लिम्पेत्५५

जो कुष्ठके मण्डल स्थिर और कठिन हों उनको औषधोंकी पोटलियोंसे स्वेदन करे स्वेदनसे स्विन्न और उत्सन्न मण्डलोंको शस्त्रसे लेखन करके कुष्ठघ्न लेपोंका लेप करे ॥ ५५ ॥

येषु न शस्त्रं क्रमते स्पर्शेन्द्रियनाशनेषु कुष्ठेषु।
तेषु निपात्यः क्षारो रक्तं दोषं च विस्राव्यम्५६

जिन कुष्ठोंमें स्पर्शेन्द्रियज्ञान नष्ट होगया हो और शस्त्रद्वारा लेखन करनेसे कुछ लाभ न हो उन कुष्ठोमे दोष और रक्तको निकाल देना चाहिये और क्षारसे प्रतिसारण करना चाहिये ॥ ५६ ॥

लेपोऽतिकठिने परुषे सुप्ते कुष्ठे स्थिरे पुराणे च।
पीतागदस्य कार्यो विषैः समंत्रोऽगदैश्चानु ५७

जो कुष्ठ अति कठोर, परुष, शून्यत्वचावाले, स्थिर और पुराने हों उनमें प्रथम रोगीको अगद पिलाकर फिर कुष्ठनाशक मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर विषोंका लेप करे तदनन्तर अगदोंका लेप करे ॥५७

स्तब्धातिसुप्तसुप्तान्यस्वेदनकंडुलानि कुष्ठानि।
घृष्टानि शुष्कगोमयफेनकशस्त्रैः प्रदेह्यानि५८॥

जो कुष्ठ, स्तब्ध, अतिसुप्तत्वचावाले, जिनमें पसीना न आता हो और खुजली होती हो ऐसे कुष्ठोंको सूखे गोह, या समुद्रझाग अथवा शस्त्रसे वर्षण करनेके अनन्तर लेप करना चाहिये ॥ ५८ ॥

कुष्ठनाशक स्नानादियोग।

मुस्तात्रिफला मदनं करञ्ज आरग्वधकलिंगयवाः सप्ताह्वकुष्ठफलिनीदार्व्यः सिद्धार्थकं स्नानम्५९ एष कषायो वमनं विरेचनं वर्णकरस्तथोद्धर्षः। त्वग्दोषकुष्ठशोफप्रबोधनः पाण्डुरोगघ्नः॥६०॥

नागरमोथा, त्रिफला, मेनफल, करञ्ज, अमलतास, इन्द्रजौ, सातला, कूठ, प्रियंगु, दारुहलदी और सर्सों इन द्रव्योंके कल्क काथसे स्नान कराना, अथवा इनका काथ पीकर वमन विरेचन कराना या इनका चूर्ण कल्क आदि शरीर पर मलना सम्पूर्ण त्वचाके दोषोंको दूर करता है, वर्णको अच्छा करता है तथा कुष्ठ, सूजन, त्वचाकी सुप्ती और पाण्डुरोगको नष्ट करता है५९-६०

कुष्ठनाशक लेप।

करवीरनिंबकुटजाच्छम्याकाचित्रकाख्यमूलानाम्। मूत्रे दर्वीलेपी काथो लेपेन कुष्ठघ्नः ६१

कनेरकी जड, नीमकी जड़, कुटजकी जड़, अमलतासकी जड़ और चित्रककी जड़ इनको बारीक पीस कर गोमूत्रमें पकावे जब कढ़छीसे लिपटने लगे तो इसका कुष्ठपर लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट होता है॥६१॥

श्वेतकरबीरमूलंकुटजकरंजात्फलं त्वचो दार्व्याः सुमनःप्रवालयुक्तो लेपः कुष्ठापहः सिद्धः ६२॥

सफेदकनेरकी जड़, इन्द्रजौ, करंजके फल, दारुहलदीकी छाल और चमेलीके पत्र इनका लेप कुष्ठको हरनेवाला होता है॥ ६२ ॥

शैरीषीत्वक्पुष्पं कार्पास्या राजवृक्षपत्राणि। पिष्टा च काकमाची चतुर्विधः कुष्ठहा लेपः६३

शिरसकी छाल और फूल,कपासकी जड़, अमलतासके पत्र और मकोह इन चार द्रव्योंको मिलाकर लेप करना कुष्ठको नष्ट करता है ॥ ६३ ॥

व्योषसर्षपनिशागृहधूमै-
र्यावशूकपटुचित्रककुष्ठैः।
कोलमात्रगुटिकार्धविषांशाः
श्वित्रकुष्ठहरणो वरलेपः॥ ६४ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, सर्सों, हलदी, घरका धूम, जवाखार, पटोलकी जड़, चित्रक और कूठ ये प्रत्येक एक एक भाग, तेलिया विष आधाभाग इनको रगड़कर बेरके समान गोलियें बनाले इस गोलीको गोमूत्र या भृंगराजके रसमें घिसकर लेपकरे यह लेप श्वित्र कुष्ठको हरनेमें श्रेष्ठ लेप कहा है ॥ ६४ ॥

कुष्ठनाशकउवटन।

निम्बं हरिद्रे सुरसं पटोलं
कुष्ठाश्वगन्धे सुरदारु शिग्रुः।
ससर्षपं तुम्बरुधान्यवन्यं
चण्डावचूर्णानि समानि कुर्यात्॥६५॥
तैस्तक्रपिष्टैः प्रथमं शरीरं
तैलाक्तमुद्वर्तयितुं यतेत।
तेनास्य कण्डूपिटिकाः सकोठाः
कुष्ठानि शोफाश्च शमं व्रजन्ति॥६६॥

नीम, हलदी, दारुहलदी, तुलसीपत्र, पटोलपत्र, कूठ, असगन्ध, देवदारु, सुहांजना, सर्सों, नैपालीधनियां, वाराहीकन्द और चोरक गन्धद्रव्य इन सबका बारीक चूर्णकर तक्रमें मिलावे। प्रथम रोगीके शरीरपर तैल लगाकर फिर इस तक्र युक्त चूर्णसे उवटन मलनेका यत्न करे इससे शरीरकी खुजली, पिटिका, कोठ, कुष्ठ और सूजन शमन होते है ॥६५॥६६ ॥

मुस्तामृतासंगकटङ्कटेरी-
कासीसकाम्पिल्लककुष्ठरोध्राः।
गन्धोपलः सर्जरसो विडङ्गं
मनःशिलाले करवीरकत्वक्॥ ६७ ॥
तैलाक्तगात्रस्य कृतानि चूर्णा-
न्येतानि दद्यादवचूर्णनार्थम्।
दद्रुः सकण्डूः किटिभानि पामा
विचर्चिका चेति तथा न सन्ति॥६८ ॥

नागरमोथे, गिलोय, मुर्दासंग, दारुहलदी, कसीस, कमीला, कूठ, पठानीलोध, गन्धक, राल, वायविड़ंग, मनसिल, हरिताल और कनेरकी छाल इनका सूक्ष्म चूर्णकर कुष्ठवालेके शरीरपर तैल लगाकर यह चूर्ण बुरकावे तो इससे दद्रुकुष्ठ, खुजली, किटिभ, पामा और विचर्चिका ये सब दूर होते हैं ॥ ६७॥६८ ॥

विचर्चिकाकी चिकित्सा।

**स्नुग्गण्डे सर्षपात्कल्कः कुकूलानलपाचितः ।
लेपाद्विचर्चिकां हन्ति रागवेग इव त्रपाम् ॥६९॥**

थोहरके गीले काण्डमें सर्सोंका कल्क भरकर तुषोंकी अग्निमें पकावे फिर निकालकर इसका लेप करे तो विचर्चिका कुष्ठ इस प्रकार दूर होजाता है जैसे रागके वेगसे लज्जा दूर होजाती है ॥ ६९ ॥

**मनःशिलाले मरिचानि तैल-
मार्कं पयः कुष्ठहरः प्रदेहः ।
तथा करञ्जप्रपुनाटबीजं
कुष्ठान्वितं गोसलिलेन पिष्टम् ॥ ७० ॥**

मनसिल, हरिताल, काली मिर्चे, सर्सोंका तेल, आकका दूध इन सबको मिलाकर लेप करना कुष्ठको हरता है । तथा करंज, पनवाड़के बीज और कूठ इनको गोमूत्रमें मिलाकर लेप करनेसे विचर्चिका नष्ट होती है ॥ ७० ॥

**गुग्गुलुमरिचविडङ्गैःसर्षपकासीससर्जरसमुस्तैः ।
श्रीवेष्टकालगंधैर्मनःशिलाकुष्ठकंपिल्लैः ॥ ७१ ॥
उभयहरिद्रासहितैश्चाक्रिकतैलेन मिश्रितैरेभिः ।
दिनकरकराभितप्तैः कुष्ठं घृष्टं च नष्टं च॥७२॥**

गूगल, काली मिर्चे, विडंग, सर्सों, कसीस, राल, नागरमोथे, श्रीवास, हड़ताल, गंधक, मनशिल, कूठ, कमीला, हलदी, दारुहलदी, इन सबका चूर्ण कोल्हूसे निकालेहुए ताजे तेलमें मिलाकर धूपमें रखदे फिर इसको कुष्ठवालेके शरीरपर मले तो इससे विचर्चिका आदि त्वचाके दोष दूर होते है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

सिध्मकी चिकित्सा ।

**मारिचं तमालपत्रं कुष्ठं समनःशिलं सकासीसम् ।
तैलेन युक्तमुषितं सप्ताहं भाजने ताम्रे ॥ ७३॥
तेनालिप्तं सिध्मं सप्ताहाद्धर्मसेविनोऽपैति ।
मासान्नवं किलासं स्नानेन विना विशुद्धस्य॥७४॥**

काली मिर्चे, तमालपत्र, कूठ, मनसिल और कासीस इनको सर्सोंके तेलमें मिलाकर सात दिन तक ताम्रपात्रमें रक्खे इस तेलको विरेचनादिसे शुद्ध शरीरवाला मनुष्य शरीरपर मलकर धूपमें बैठे तो सात दिनमें सिध्म (छींप) दूर होते है और इसी प्रकार एक मास तक इस तेलको मले और स्नान न करे तो किलासकुष्ठ दूर होता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

**मयूरकक्षारजले सप्तकृत्वः परिस्रुते ।
सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यङ्गात्सिध्मनाशनम्॥**

अपामार्गकी भस्मको जलमें घोलकर सात बार चुवावे फिर इस चुवेहुए क्षारजलको मिलाकर मालकांगुनीका तेल सिद्ध करे । इस तेलके मलनेसे सिध्मरोग दूर होता है ॥ ७५ ॥

**वायसजङ्घामूलं वमनीपत्राणि मूलकाद्बीजम् ।
तक्रेण भौमवारे लेपः सिध्मापहः सिद्धः॥७६॥**

काकजंघाकी जड़, बकायनके पत्र और मूलीके बीज इनको तक्रमें रगड़कर भौमवारके दिन सिध्मों पर लेप करे तो सिध्म दूर होते है ॥ ७६ ॥

**जीवन्तीमञ्जिष्ठादार्वीकाम्पिल्लकं पयस्तुत्थम् ।
एष घृततैलपाकःसिद्धःसिद्धे च सर्जरसः॥७७॥
देयःसमधूच्छिष्टो विपादिका तेन नश्यति ह्यक्ता
चर्मैककुष्ठकिटिभं कुष्ठं शाम्यत्यलसकं च॥७८॥**

जीवन्ती, मंजीठ, दारुहलदी और कमीला इनका कल्क और समान भाग दूधमें नीलाथोथा मिलाकर घृत या तैल सिद्ध करे सिद्धहोनेपर इसमें राल और मोम मिलावे । फिर इसके लगानेसे विपादिका (विवाई) नष्ट होजाती है तथा चर्मैककुष्ठ, किटिभकुष्ठ और अलसक कुष्ठ ये सब शमन होते हैं ॥ ७७॥ ७८ ॥

वज्रक तैल ।

**मूलं सप्ताह्वात्वक् शिरीषाश्वमारा-
दर्कान्मालत्याश्चित्रकास्फोतनिम्बात् ।
बीजं कारञ्जं सार्षपं प्रापुनाटं
श्रेष्ठा जन्तुघ्नं त्र्यूषणं द्वे हरिद्रे॥ ७९ ॥
तिलैस्तैलं साधितं तैः समूत्रै-
स्त्वग्दोषाणां दुष्टनाडीव्रणानाम् ।
अभ्यङ्गेन श्लेष्मवातोद्भवानां
नाशायालं वज्रकं वज्रतुल्यम् ॥ ८० ॥**

सातला, थोहरकी जड़, शिरषकी छाल, कनेरकी छाल, आककी छाल, चमेलीकी छाल, चित्रककी छाल, शारिवा, नींबकी छाल, करंजुवेके बीज, सर्सों, पनवाडके बीज, त्रिफला, विडंग, त्रिकटु, हलदी और दारुहलदी इनका कल्क और गोमूत्र मिलाकर तिल तेलको सिद्ध करे यह तेल त्वचाके दोषों और नाड़ी-व्रणोंको तथा वातकफके दोषोंको मालिस करनेसे नाश कर देता है। यह वज्रकतैल त्वचाके रोगोंको नाश करनेमें वज्रके समान है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

महावज्र तैल।

एरण्डताक्ष्यर्यघननीपकदम्बभार्गी-
कम्पिल्लवेल्लफलिनीसुरवारुणीभिः।
निर्गुण्डयरुष्करसुराह्वसुवर्णदुग्धा-
श्रीवेष्टगुग्गुलुशिलापटुतालविश्वैः ॥ ८१ ॥
तुल्यस्नुगर्कदुग्धं सिद्धं तैलं स्मृतं महावज्रम्।
अतिशयितवज्रकगुणं श्वित्रार्शोग्रंथिमालाघ्नम्।

एरण्डकी जड़, रसौत, नागरमोथा, नीप (कदम्ब), भारंगी, कमीला, वायविडंग, प्रियंगु, इन्द्रायण, सम्भालु, भिलावे, देवदारु, स्वर्णक्षीरी, (पीले फूलकी कण्डयाई) श्रीविष्टक, गुग्गुल, मनसिल, पटोलमूल, हड़ताल और सौंठ ये सब समान भाग लेवे इन सबके समान थोहर और आकका दूध डालकर तैल सिद्धकरे यह महावज्र तैल अतिशय वज्रके समान ही गुणकारी कहा है। यह तेल श्वित्र, अर्श और ग्रन्थिमालाको दूर करता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

कुष्ठाश्वमारभृङ्गार्कमूत्रस्नुक्क्षीरसैन्धवैः।
तैलं सिद्धं विषावापमभ्यंगात्कुष्ठजित्परम् ॥८३

कूठ, कनेर, भांगरा, आकका दूध, थोहरका दूध और सेंधालवण ये सब दो दो पल, तेलिया विष एक कर्ष इनसे सिद्ध कियाहुआ तेल लगानेसे कुष्ठको जीतनेमें परमौषध है ॥ ८३ ॥

सिद्धं सिक्थकसिन्दूरपुरतुत्थकताक्ष्यर्जैः।
कच्छूं विचर्चिकां वाऽशु कटुतैलं नियच्छति८४

मोम, सिंदूर, गूगल, नीलाथोथा और रसौत इनसे सिद्ध कियाहुआ सर्सोंका तेल कच्छू और विचर्चिकाको शमन करता है ॥ ८४ ॥

दद्रुघ्न लेप।

लाक्षाव्योषं प्रापुनाटं च बीजं
सश्रीवेष्टं कुष्ठसिद्धार्थकाश्च।
तक्रोन्मिश्रः स्याद्धरिद्रा च लेपो
दद्रूघ्नः मूलकोत्थं च बीजम् ॥८५॥

लाख, त्रिकटु, पनवाड़के बीज, श्रीवास कूठ और सर्सों इनको बारीक पीस तक्रमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा हलदी या मूलीके बीज तक्रमें मिलाकर लेप करनेसे दद्रूकुष्ठ दूर होता है ॥ ८५ ॥

चित्रकसोभाञ्जनकौगुडूच्यपामार्गदेवदारूणि।
खदिरो धवश्च लेपः श्यामा दन्ती द्रवन्ती च८६
लाक्षारसाञ्जनैला पुनर्नवा चेति कुष्ठिनां लेपाः।
दधिमण्डयुताः पादैःषट् प्रोक्ता मारुतकफघ्नाः

१ चित्रक और सुहांजना, (२) अथवा गिलोय अपामार्ग और देवदारु, (३) अथवा खैर और धव (४) अथवा निशोथ, दन्ती और द्रवंती, (५) या लाख, रसौत, एला (६) अथवा पुनर्नवा ये एक एक पादमें कहे हुए छः लेप है इनमेंसे किसीको दहीके मण्डमें मिलाकर लेपकरे तो ये कफवातके कुष्ठोंको शमन करते हैं ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

जलवाप्यलोहकेसरपत्रप्लवचन्दनमृणालानि।
भागोत्तराणि सिद्धं प्रलेपनं पित्तकफकुष्ठे॥८८॥

नेत्रवाला १ भाग, कूठ २ भाग, लालचन्दन ३ भाग, नागकेशर ४ भाग, तेजपत्र ५ भाग, मोथा ६ भाग, सफेदचन्दन ७ भाग और भिस८ भाग इनका लेप पित्त और कफके कुष्ठोंको शमन करता है ॥८८॥

तिक्तघृतैर्धौतघृतैरभ्यङ्गो दह्यमानकुष्ठेषु।
तैलैश्चन्दनमधुकप्रपौण्डरीकोत्पलयुतैश्च ॥८९॥
क्लेदे प्रपतति चाङ्गे दाहे विस्फोटके च चर्मदले।
शीताः प्रदेहसेका व्यधनविरेकौ घृतं तिक्तम्९०

दाहयुक्त कुष्ठमें तिक्तकघृतोंको सौ वार जलमें धोकर लेपकरे। अथवा चन्दन, मुलहठी, प्रपौंडरीक, और कमल ये तेलमें मिलाकर लेपकरे।

यदि विस्फोटकमें दाह होती हो या दाहयुक्त चर्मदल हो और उसमेंसे क्लेद गिरता हो तो सिराबंधन

कर रक्त निकाले और विरेचन करावे तथा तिक्तक घृत पिलावे और शीतल लेप करे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

खादिरवृषनिम्बकुटजाः
श्रेष्ठा कृमिजित्पटोलमधुपर्ण्यः ।
अंतर्बहिःप्रयुक्ताः
कृमिकुष्ठनुदः सगोमूत्राः॥९१॥

कत्था, वांसा, नींब, कुटज, त्रिफला, वायविडंग, पटोल और गिलोय इनका क्वाथ गोमूत्रमें मिलाकर पीनेसे और गोमूत्रमें मिलाकर इनका ही लेपादि करनेसे कृमियुक्त कुष्ठ नष्ट होजाता है ॥ ९१ ॥

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु ।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं चाग्र्यम् ९२

वातप्रधान कुष्ठमें कुष्ठनाशक घृत पिलाना । कफ प्रधान कुष्ठमें वमन कराना तथा पित्तप्रधान कुष्ठमें विरेचन कराना और रक्त निकालना सबसे उत्तम क्रिया है ॥ ९२ ॥

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यन्ते निर्हृतास्रदोषाणाम् ।
संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवति तेषाम्९३

जो लेप कुष्ठवाले रोगीके रक्तस्थ दोषोंको निकाल कर और वमन विरेचनसे शोधन करनेके अनन्तर किये जाते हैं । वह शीघ्र रोगको नष्टकर आरोग्य कर देते हैं ॥ ९३ ॥

दोषेऽहृतेऽपनीते रक्ते बाह्यान्तरे कृते शमने ।
स्नेहे च कालयुक्ते न कुष्ठमतिवर्तते साध्यम् ९४

जब कुष्ठरोगीके दोषोंको वमनादिसे हरण कर लियाजाता है तथा बाहर और भीतरकी यथार्थ शमन क्रिया की जाती है । एवं ठीक समयपर तिक्तकादि घृतोंका प्रयोग कियाजाता है । तो कुष्ठरोग असाध्य न होकर शमन हो जाता है ॥ ९४ ॥

बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोनुरक्षता प्राणान् ।
दोषे ह्यतिमात्रहृते वायुर्हन्यादबलमाशु ॥९५॥

अधिक दोषोंवाले कुष्ठरोगीको उसके प्राणोंकी रक्षा करतेहुए बार बार शोधन करदेना चाहिये।यदि एक बारमें ही दोष अत्यन्त हरण किये।जाय तो निर्बल मनुष्यके प्राणोंको वायु शीघ्र हरणकर लेता है । इस कारण बीच बीचमें समय देकर दोषोंको क्रमसे हरण करना चाहिये ॥ ९५ ॥

पक्षात्पक्षाच्छर्दनान्यभ्युपेया-
न्मासान्मासाच्छोधनान्यप्यधस्तात् ।
शुद्धिर्मूर्ध्नि स्यात्त्रिरात्रात्त्रिरात्रात्
षष्ठे षष्ठे मास्यसृङ्मोक्षणानि ॥ ९६ ॥

कुष्ठरोगीको १५ दिनके बाद वमन कराना चाहिये और महीने महीनेके पश्चात् विरेचन कराना चाहिये । तथा तीन तीन दिनके बाद शिरोविरेचन करना चाहिये और छठे छठे महीनेमें रक्त निकालना चाहिये ॥ ९६ ॥

यो दुर्वान्तो दुर्विरिक्तोऽथवा स्यात्
कुष्ठी दोषैरुद्धतैर्व्याप्यतेऽसौ ।
निःसन्देहं यात्यसाध्यत्वमेवं
तस्मात्कृत्स्नान्निर्हरेदस्य दोषान् ॥ ९७॥

जिस कुष्ठीको यथार्थरूपसे वमन अथवा विरेचन न करायाजाय तो उसके उद्धत दोष शरीरमें व्यापक होकर कुष्ठको निस्सन्देह असाध्य बना देते है । इस कारण सम्पूर्ण देहके दोषोंको यथार्थरूपसे निकाल देना ही चाहिये ॥ ९७ ॥

व्रतदमयमसेवात्यागशीलाभियोगो
द्विजसुरगुरुपूजा सर्वसत्त्वेषु मैत्री ।
शिवशिवसुततारामास्कराराधनानि
प्रकटितमलपापं कुष्ठमुन्मूलयंति ॥९८॥

व्रतोंका करना, इन्द्रियोंको दमन करना, यम नियमोंका पालन करना, महात्माओंकी सेवा, दान, सदाचार, ब्राह्मण, देवता और गुरुओंकी पूजा करना जीवमात्रपर स्नेह और दया करना, शिवजी, गणेशजी, ध्रुव, सूर्य आदि देवताओंका आराधन करना सब दोषों, पापों और कुष्ठोंको जड़से नाशकर देता है ॥ ९८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्य प्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां चिकित्सास्थाने कुष्ठचिकित्सिते आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृत-शिवदीपिकाभाषायां एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः ।

अथातःश्वित्रकृमिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अब हम श्वित्रकुष्ठ (फुलवहरी) की चिकित्सा और कृमिरोगकी चिकित्साको कथन करते हैं ।

श्वित्रकी चिकित्सा ।

कुष्ठादपि बीभत्सं यच्छीघ्रतरं च यात्यसा-
-ध्यत्वम् ।
श्वित्रमतस्तच्छांत्यै यतेत दीप्ते यथा भवने॥१॥

श्वित्ररोग कुष्ठरोगसे भी भयानक है क्योंकि श्वित्र शीघ्र ही असाध्य होजाता है इस कारण जैसे अग्निलगे मकानकी आग बुझानेका शीघ्र यत्न करनाचाहिये ऐसेही श्वित्रको शान्त करनेका भी शीघ्र ही यत्न करना चाहिये ॥ १ ॥

श्वित्रमें शोधन ।

संशोधनं विशेषात्प्रयोजयेत्पूर्वमेव देहस्य ।
श्वित्रे स्रंसनमग्र्यं मलयूरस इष्यते सगुडः॥२॥
तं पीत्वाऽभ्यक्ततनुर्यथाबलं सूर्यपादसन्तापम्।
सेवेत विरिक्ततनुस्त्र्यहं पिपासुःपिबेत्पेयाम्॥३॥

श्वित्रवालेकी देह शुद्धिके लिये प्रथम वमन, विरेचन कराना चाहिये । श्वित्ररोगमें काकोदुम्बरिकाके फलोंके रसमें थोरहका दूध और गुड़ मिलाकरपिलावे यह पीनेके अनन्तर शरीरपर तेल लगाकर धूपमें बैठजावें और जितना भी सहन करसके सूर्यका संताप सहन करे । जब खूब विरेचन होलेनेके अनन्तर तृषा लगे तो पेया पीना चाहिये और तीन दिन पेयाका ही सेवन करे॥२॥३॥

श्वित्रेऽङ्गे ये स्फोटा जायंते कंटकेन-
-तान् भिन्द्यात् ।
स्फोटेषु निःसृतेषु प्रातःप्रातःपिबेत् त्रिदिनम्४
मलयमसनं प्रियंगुं शतपुष्पां चाम्भसा-
-समुत्क्वाथ्य ।
पालाशं वा क्षारं यथाबलं फाणितोपेतम् ॥५॥

श्वित्र (सफेददाग) वाले स्थानमें जो फफोलेसे स्फोट उत्पन्न होगये हों उनको कंटकसे भेदनकर उनका पानी निकाल देवे इसके अनन्तर तीन दिनतक प्रातः काल सफेद चन्दन, बावची, प्रियंगू और सौंफ जलमें क्वाथकरके पीवे अथवा पलासका क्षार फाणित मिलाकर अपने बलके अनुसार पीवे ॥ ४ ॥ ५ ॥

फल्गवक्षवृक्षवल्कलनिर्यूहेणेन्दुराजिकाकल्कम्
पीत्वोष्णस्थितस्य जाते स्फोटे तक्रेण भोजनं-
-निर्लवणम् ॥ ६ ॥

श्वित्ररोगी फल्गु (कैंवरी) वृक्ष और बहेड़ेके वृक्षकी छालके क्वाथमें बावची मिलाकर पीवे और सूर्यकी धूपमें बैठ जावे जब सफेद त्वचामें स्फोट उत्पन्न होजावे और क्षुधालगे तो लवण रहित तक्रके साथ भोजन करना चाहिये ॥ ६ ॥

गव्यं मूत्रं चित्रकव्योषयुक्तं
सर्पिः कुम्भे स्थापितं क्षौद्रमिश्रम् ।
पक्षादूर्ध्वं श्वित्रिभिः पेयमेतत्
कार्यं चास्मै कुष्ठदृष्टं विधानम् ॥ ७ ॥

घृतके चिकने घड़ेमें चित्रक और त्रिकटुका चूर्ण डालकर गोमूत्र भरदे इसीमे मधुभी मिलादेवे इस घटको एक पक्ष (१५ दिन) ढककर रख छोड़े फिर इसमेंसे श्वित्ररोगी नित्य पीयाकरे । इसके अतिरिक्त कुष्ठरोगमें कहाहुआ सब विधान इसको सेवन करना चाहिये ॥ ७ ॥

मार्कवमथवा खादेद् भ्रष्टं तैलेन लोहपात्रस्थम्।
बीजकशृतं च दुग्धं तदनु पिबेच्छ्वित्रनाशाय ८

अथवा भृंगराजको लोहपात्रमें डाल तेलमें भूनकर लोहपात्रमें रखकर खावे इसके ऊपर विजयसार डालकर उबालाहुआ दूध पीवे तो श्वित्ररोग नाश होता है८

श्वित्रहरलेप ।

पूतीकार्कव्याधिघातस्नुहीनां
मूत्रे पिष्टाः पल्लवा जातिजाश्च ।
घ्नन्त्यालेपाच्छ्वित्रदुर्नामदद्रू-
पामाकोष्ठान्दुष्टनाडीव्रणांश्च ॥ ९ ॥

पूतिकरंजके पत्र, आकके पत्र, अमलतासके पत्र और थोहरके पत्र इन चारोंके पत्रोंको गोमूत्रमें पीसकर लेपकरे । अथवा चमेलीके पत्रोंको गोमूत्रमें पीसकर

लेपकरे तो श्वित्र, अर्श, दद्रु, पामा, कोठ और दुष्टनाड़ीव्रण नष्ट होते है ॥ ९ ॥

द्वैपं दग्धं चर्म मातङ्गजं वा
श्वित्रे लेपस्तैलयुक्तो वरिष्ठः ।
पूतिः कीटो राजवृक्षोद्भवेन
क्षारेणाक्तः श्वित्रमेकोऽपि हन्ति ॥१०॥

व्याघ्रका चर्म या हस्तिका चर्म अग्निमें दग्धकर कटुतेलमें मिलाकर लेप करे तो यह लेप श्वित्रको नाश करनेमें श्रेष्ठ है ।

अथवा वर्षाऋतुमें होनेवाले पूतिकीटको अमलतासके क्षारमें रगड़कर लेपकरे तो श्वित्र नष्ट होता है॥१०॥

रात्रौ गोमूत्रे चासितान् जर्जराङ्गा-
नह्नि च्छायायां शोषयेत्स्फोटहेतून् ।
एवं वारांस्त्रींस्तैस्ततः श्लक्ष्णपिष्टैः
स्नुह्याः क्षीरेण श्वित्रनाशाय लेपः ॥ ११ ॥

मिलावोंको कूटकर जर्जरसे बनाकर रातको गोमूत्रमें भिगोकर रखदे फिर दिनमें निकालकर छायामें सुखालेवे ऐसे रातको भिगोदिया करे और दिनमें छायामें सुखाले ऐसे तीन वार करे फिर इनको थोहरके दूधमें बहुत बारीक पीसकर सफेद दागपर लेपकरे तो सफेद दागके ऊपर फफोला होकर जब वह स्थान अच्छा होगा तो धीरे धीरे श्वित्र नष्ट होजावेगा॥११

अक्षतैलकृतो लेपः कृष्णसर्पोद्भवा मषी ।
शिखिपित्तं तथा दग्धं ह्रीबेरं वा तदाप्लुतम्१२

काले सांपको दग्धकर बनायीहुई कजली बहेड़ेके तेलमें मिलाकर लेपकरे अथवा मोरके पित्तेका लेपकरे या बहेड़ेके तेलमें मिलाकर लाजवन्तीके पत्रोंका लेप करे तो श्वित्र नाश होता है ॥ १२ ॥

कुडवोवल्गुजबीजाद्धरितालचतुर्थभागसंमिश्रः ।
मूत्रेण गवां पिष्टः सवर्णकरणं परं श्वित्रे ॥ १३॥

बावचीके बीज चार पल, हरिताल एक पल इनको गोमूत्रमें पीसकर लेपकरे तो श्वित्र दूर होकर शरीरका वर्ण ठीक होजाता है ॥ १३ ॥

क्षारे सुदग्धे गजलिण्डजे च
गजस्य मूत्रेण परिस्रुते च ।
द्रोणप्रमाणे दशभागयुक्तं
दत्त्वा पचेद्बीजमवल्गुजानाम् ॥ १४ ॥
श्वित्रं जयेच्चिक्कणतां गतेन
तेन प्रलिम्पन्बहुशः प्रघृष्टम् ।
कुष्ठं मषीं वा तिलकालकं वा
यद्वा व्रणे स्यादधिमांसजातम् ॥१५॥

हाथीकी लीदको भस्म कर हाथीके मूत्रमें मिलाकर सात बार वस्त्रमें चुवावे ऐसा क्षारमूत्र एक द्रोण लेकर इसमें दशवां भाग बावचीके बीज मिलाकर पकावे । जब पककर चिकने होजावे तो यह क्षारमें पकीहुई बावचीका लेप—श्वित्रको सूखे गोवरसे घर्षण करनेके अनन्तर श्वित्रपर करे । इस लेपसे श्वित्र, कुष्ठ, मसे, तिलकालक और व्रणोंपरहुए अधिमांस आदि नष्ट होजाते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

भल्लातकद्वीपिसुधार्कमूलं
गुञ्जाफलत्र्यूषणशंखचूर्णम् ।
तुत्थं सकुष्ठं लवणानि पञ्च
क्षारद्वयं लाङ्गलिकां च पक्त्वा ॥१६॥
स्नुगर्कदुग्धं घनमायसस्थं
शलाकया तद्विदधीत लेपम् ।
कुष्ठे किलासे तिलकालकेषु
मांसेषु दुर्नामसु चर्मकीले ॥ १७ ॥

भिलावे, व्याघ्रके चर्मकी भस्म (कजली), थोहरका दूध, आकको जड़, रत्तकें, सोंठ, मिर्च, पीपल, शंखभस्म, नीलाथोथा, कूठ, पांचों लवण, जवाखार, सज्जी और लांगलीकन्द इनको बारीक पीसकर थोहर और आकका दूध मिलाकर मोटे लोहपात्रमें रगड़कर रक्खे इसमेंसे लोहेकी शलाकाके साथ किलासकुष्ठपर या तिलकालकपर, या अधिमांसपर अथवा अर्शपर या चर्मकीलपर लेपकरे तो ये रोग इस लेपसे पककर फिर नष्ट होजाते हैं ॥ १६ । १७ ॥

शुद्ध्या शोणितमोक्षैर्विरूक्षणैर्भक्षणैश्च सक्तूनाम्
श्वित्रं कस्यचिदेव प्रशाम्यति क्षीणपापस्य॥१८

इति श्वित्रचिकित्सा ।

जिस किसी मनुष्यका पाप क्षीण होचुका हो ऐसे पुरुषका श्वित्रकुष्ठ (फुलवहरी) वमनादि शोधन कर-

नेसे, रक्त निकालनेसे, विरूक्षण करनेसे और दोषनाशक योगोंसे सत्तू खानेसे यह रोग किसी भाग्यवालेका शमन होजाता है। किन्तु पापीका श्वित्र कभी शमन नहीं होता ॥ १८ ॥

इसप्रकार श्वित्रकी चिकित्सा कहदीगयी अब कृमिरोगकी चिकित्सा कहते हैं--

कृमिरोगकी चिकित्सा।

स्निग्धस्विन्ने गुडक्षीरमत्स्याद्यैः कृमिणोदरे ।
उत्क्लेशितकृमिकफे शर्वरीं तां सुखोषिते ॥१९॥
सुरसादिगणं मूत्रे क्काथयित्वार्धवारिणि ।
तं कषायं कणागालकृमिजित्कल्कयोजितम् २०
सतैलस्वर्जिकाक्षारं युञ्ज्याद्बस्तिं ततोऽहनि ।
तस्मिन्नेव निरूढं तं पाययेत विरेचनम्॥२१॥
त्रिवृत्कल्कं फलकणाकषायालोडितं ततः ।
ऊर्ध्वाधःशोधिते कुर्यात्पञ्चकोलयुतं क्रमम् २२
कटुतिक्तकषायाणां कषायैः परिषेचनम् ।
काले विडङ्गतैलेन ततस्तमनुवासयेत् ॥ २३ ॥

जिसके उदरमें कृमि हों उस रोगीको स्नेहन और स्वेदन करनेके अनन्तर गुड़ दूध मत्स्य आदि जो कृमियों और कफको उत्क्लेशित करनेवाले पदार्थ हों खिलाकर रात्रि भर आरामसे सोने देवे । फिर प्रातःकाल आधे जल मिले गोमूत्रमें सुरसादिगणका क्काथ कर इस क्काथमें पीपल, मैनफल और वायविड़ंगका कल्क मिलावे तथा तेल और सज्जीखार मिलावे फिर इस सब क्काथादिको मिलाकर इससे निरूहण वस्ति देवे । इस वस्तिकर्मके अनन्तर उसी दिन मैनफल और पीपलके क्काथमें निशोथका कल्क मिलाकर विरेचनार्थ पिलावे इसके पीनेसे जब ऊर्ध्व और अधोभागसे वमन विरेचन द्वारा शुद्ध हो लेवे तो पञ्चकोलयुक्त पेयादि क्रमका पालन करे। तदनन्तर कटु तिक्त आदि कषायोंसे परिषेचन करे । जब जठराग्नि चैतन्य हो जाय तो विडङ्गतैलसे अनुवासन वस्ति करे इस प्रकार करनेसे उदर और मलाशयके कृमि नष्ट हो जाते हे१९-२३

शिरोरोगनिषेधोक्तमाचरेन्मूर्धगेष्वनु ।
उद्रिक्ततिक्तकटुकमल्पस्नेहं च भोजनम्॥२४॥

यदि शिरमें कृमि होगये हों तो शिरोरोग चिकित्सामें कहीहुई क्रिया करे तदनन्तर अधिक तिक्त, कटु, अल्प और स्नेहयुक्त भोजन करे ॥ २४ ॥

विडङ्गकृष्णामरिचपिप्पलीमूलशिग्रुभिः ।
पिबेत्सस्वर्जिकाक्षारं यवागूं तक्रसाधिताम् २५

तथा वायविड़ङ्ग, पीपल, मरिच, पीपलामूल और सोहांजना, इनसे तक्रमें सिद्ध कीहुई यवागू सज्जीखार मिलाकर पीना चाहिये ॥ २५ ॥

रसं शिरीषकिणिहीपारिभद्रककेम्बुकात् ।
पालाशबीजपत्तूरपूतिकाद्वा पृथक् पिबेत् ।
सक्षौद्रं सुरसादीन्वा लिह्यात्क्षौद्रयुतान् पृथक् ॥

तथा शिरीषका रस, किणिही (किरमाण) का रस, पारिभद्रकका रस, अथवा केंबुकका रस या पलाशबीज और पत्तरका रस, अथवा सुरसादिगणका रस मधु मिलाकर चाटना चाहिये ॥ २६ ॥

शतकृत्वोऽश्वविट्चूर्णं विडङ्गक्काथभावितम् ।
कृमिमान्मधुना लिह्याद्भावितं वा वरारसैः ॥२७

घोड़ेकी लीदका चूर्ण वायविड़ङ्गके क्काथमें सौ बार भावना देकर, अथवा त्रिफलेके रसमें सौ भावना देकर, शहद मिलाकर चाटनेसे कृमिरोग दूर होता है॥२७॥

शिरोगतेषु कृमिषु चूर्णं प्रधमनं च तत् ॥२८॥

तथा इसी सौ बार बिड़ंगके क्काथसे भावना दिये हुए घोड़ेकी लीदके चूर्णको शिरोगत कृमियोंमें नासिकाद्वारा प्रधमन नस्य लेना चाहिये । अर्थात् नासिकामें नलिकासे प्रधमन करना चाहिये ॥ २८ ॥

आखुकर्णीकिसलयैः सुपिष्टैः पिष्टमिश्रितैः ।
पक्त्वा पूपालिकां खादेद्धान्याम्लं च पिबेदनु ॥
सपञ्चकोललवणमसान्द्रं तक्रमेव वा ॥ २९ ॥

आखुकर्णी (बुलबला) के कोमलपत्रोंको बारीक पीसकर चावलोंके आटेमें मिलाकर पूड़ियें बनावे । इन पूड़ियोंको खाकर ऊपरसे धान्याम्ल (कांजी) पीवे अथवा पञ्चकोलका चूर्ण और लवण मिलाहुआ पतला तक्र पीवे तो कृमिरोग दूर होता है ॥ २९ ॥

नीपमार्कवनिर्गुण्डीपल्लवेष्वप्ययं विधिः ।
विडङ्गचूर्णमिश्रैर्वा पिष्टैर्भक्ष्यान् प्रकल्पयेत् ३

इसी प्रकार नीप (कदम्ब) के पत्र, भांगरेके पत्र, और संभालूके पत्रोंसे भी पूड़ियें बनाकर खावे, अथवा वायविड़ङ्गके चूर्ण मिलेहुए चावलोंके आटेसे बनायेहुए पूड़ियें पूड़े आदि सेवन करे तो कृमिरोग दूर होता है ॥ ३० ॥

विडङ्गतण्डुलैर्युक्तमर्धांशैरातपस्थितम् ।
दिनमारुष्करं तैलं पाने बस्तौ च योजयेत् ।
सुराह्वसरलस्नेहं पृथगेवं प्रकल्पयेत् ॥ ३१ ॥

भिलावेके तेलमें आधा भाग वायविडंगके स्वच्छ तण्डुल डाल कर सूर्यकी धूपमें रक्खे सात दिनके अनन्तर इस तेलको पोनेमें अथवा वस्तिमें प्रयोग करे । इसी प्रकार देवदारुके वृक्षका तेल, अथवा सरल काष्ठका तेल वायविड़ङ्ग मिलाकर धूपमें रखकर पीवे और बस्तिमें प्रयोग करे तो कृमिरोग दूर होता है ३१॥

पुरीषजेषु सुतरां दद्याद्बस्तिविरेचने ॥ ३२ ॥

विष्ठाके कृमियोंमें निरन्तर वस्तिकर्म्म और विरेचन कृमिनाशक द्रव्यों द्वारा कराना चाहिये ॥ ३२॥

शिरोविरेकं वमनं शमनं कफजन्मसु ॥ ३३ ॥

कफजनित कृमियोंमें शिरोविरेचन, वमन और शमन यह तीनों क्रियायें करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

रक्तजानां प्रतीकारं कुर्यात्कुष्ठचिकित्सितात् ।
इन्द्रलुप्तविधिश्चात्र विधेयो रोमभोजिषु॥३४॥

रक्तजनित कृमियोंमें कुष्ठके अनुसार सब प्रतीकार करना चाहिये । रोमोंको खानेवाले कृमियोंमें इन्द्रलुप्तरोगमें कही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

क्षीराणि मांसानि घृतं गुडं च
दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति ।
समासतोऽम्लान्मधुरान् रसांश्च
कृमीन् जिहासुः परिवर्जयेच्च ॥ ३५ ॥

कृमिरोग नष्ट करनेकी इच्छावाले पुरुषको संक्षेपसे दूध, मांस, घृत, गुड़, दही, पत्रशाक, मधुर और अम्लरस यह सब त्याग देने चाहिये ॥ ३५ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टांगहृदयसंहितायां पं. शिवशर्मकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः ।

अथातोवातव्याधिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः

अब हम वातव्याधिकी चिकित्साका कथन करते है।

वातव्याधिकी चिकित्सा ।

केवलं निरुपस्तम्भमादौ स्नेहैरुपाचरेत् ।
वायुं सर्पिर्वसामज्जातैलपानैर्नरं ततः ॥ १ ॥
स्नेहाक्रान्तं समाश्वास्य पयोभिः स्नेहयेत्पुनः ।
यूषैर्ग्राम्योदकानूपरसैर्वा स्नेहसंयुतैः ॥ २ ॥
पायसैः कृसरैः साम्ललवणैः सानुवासनैः ।
वातघ्नैस्तर्पणैश्चान्नैः सुस्निग्धैः स्नेहयेत्ततः ।
स्वभ्यक्तं स्नेहसंयुक्तैः शङ्कराद्यैः पुनः पुनः ३॥

यदि कफ और पित्तके संसर्ग या आश्रय रहित केवल वायुका विकार हो तो उसको स्नेहन करके जीत लेना चाहिये । केवल वातव्याधिवालेको घृत, वसा, मज्जा और तैल पिलाकर स्नेहन करे । जब स्नेह पानसे आक्रान्त होजावे तो उसको आश्वासन देकर दूध पिला कर स्नेहन करे अथवा स्निग्ध यूष या ग्राम्यसंचारी, उदक संचारी या आनूप मांस रस घृतादि मिलाकर पिलावे । तथा घृतादियुक्त खीर या खिचड़ी, खटाई लवण मिलाकर अच्छी तरह स्निग्ध करके खिलावे । और अनुवासन वस्ति करे तथा वातनाशक तर्पण और अधिक घृत मिले अन्न खिलाकर स्निग्ध करे। तदनन्तर शरीरपर वातनाशक तैलकी मालिश करके शंकर स्वेद करे । इस प्रकार बार बार स्निग्ध करके बार बार शंकर स्वेदका प्रयोग करना चाहिये ॥ १–३॥

स्नेहन स्वेदनका फल ।

स्नेहाक्तं स्विन्नमङ्गं तु वक्रं स्तब्धं सवेदनम् ।
यथेष्टमानामयितुं सुखमेव हि शक्यते ॥ ४ ॥

इस प्रकार स्निग्ध पुरुष तैल लगे हुए चिकने और स्वेदित अंगोंको वे यदि टेढ़े, अकड़ेहुए और पीड़ा युक्त भी हों उनको सुखपूर्वक निवाकर सीधे कर सकता है ॥ ४ ॥

शुष्काण्यपि हि काष्ठानि स्नेहस्वेदोपपादनैः ।
शक्यं कर्मण्यतां नेतुं किमु गात्राणि जीवताम्॥

क्योंकि सूखे हुए काष्ठको चिकना कर स्वेदित किया जाय तब वह काष्ठ भी जैसे चाहे वैसे मोड़ा जासकता है और जीवित पुरुषके जीवित अङ्गोंका तो कहना ही क्याहै ॥ ५ ॥

हर्षतोदरुगायामशोफस्तम्भग्रहादयः ।
स्विन्नस्याशु प्रशाम्यन्ति मार्दवं चोपजायते ६॥

स्वेदन करनेसे वातज हर्ष, तोद, पीड़ा, थकावट, सूजन, स्तम्भ और अकड़न ये शीघ्र दूर होकर अङ्गोंमें मृदुता (नर्माई) आजाती है ॥ ६ ॥

स्नेहैश्च धातून् संशुष्कान् पुष्णात्याशुप्रयोजितः
बलमग्निबलं पुष्टिं प्राणं चास्याभिवर्धयेत् ॥७॥

घृतादि स्नेह पिलाया हुआ सूखी हुई धातुओंको शिघ्र ही पुष्ट कर देता है तथा शरीरमें बल जठराग्निकी वृद्धि, शरीरकी पुष्टि और प्राणबलको बढ़ाता है ॥७॥

असकृत्तं पुनःस्नेहैः स्वेदैश्च प्रतिपादयेत् ।
तथा स्नेहमृदौ कोष्ठे न तिष्ठन्त्यनिलामयाः८॥

इस कारण वातरोगीको वारवार स्नेहन और स्वेदन करते रहना चाहिये जिससे स्नेहनसे मृदुहुवें कोष्ठमें वायुके रोग न ठहर सके ॥ ८ ॥

शोधनकम ।

यद्येतेन सदोषत्वात्कर्मणा न प्रशाम्यति ।
मृदुभिः स्नेहसंयुक्तैर्भेषजैस्तं विशोधयेत्॥ ९ ॥

यदि इस स्नेहन और स्वेदन करनेसे भी रोगीका दोषयुक्त शरीर होनेके कारण पीड़ा शमन न हो तो स्नेह युक्त मृदु औषधियोंसे शोधन करना चाहिये॥९॥

घृतं तिल्वकसिद्धं वा सातलासिद्धमेव वा।
पयसैरण्डतैलं वा पिबेद्दोषहरं शिवम् ॥ १० ॥

शोधनके लिये तिल्वकसे सिद्ध किया घृत या सातलासे सिद्ध किया घृत अथवा एरण्डतैल दूधमें मिलाकर पीना चाहिये ये शोधन दोषको हरनेवाले और कल्याण कारी है ॥ १० ॥

स्निग्धाम्ललवणोष्णाद्यैराहारैर्हि मलश्चितः ।
स्रोतोरुद्ध्वाऽनिलं रुध्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत् ११

क्योंकि स्निग्ध, अम्ल, लवण, और उष्ण आदि आहारोंसे संचित हुआ मल स्रोतोंको रोककर वायुको भी रोक देता है इस कारण अवश्य ही वायुको अनुलोमन करना चाहिये ॥ ११ ॥

निरूहणके योग्यरोगी ।

दुर्बलो यो विरेच्यः स्यात्तं निरूहैरुपाचरेत् १२।
दीपनैः पाचनीयैर्वा भोज्यैर्वा तद्युतैर्नरम् ।
संशुद्धस्योत्थिते चाऽग्नौ स्नेहस्वेदौ पुनर्हितौ १३

जो वातरोगी दुर्बल होनेके कारण विरेचन करनेके योग्य न हो उसको दीपन और पाचन द्रव्योंके कल्क, काथ आदिसे निरूहण वस्ति करे तथा दीपन और पाचन भोजनोंसे उसका पोषण करे। इस प्रकार संशुद्धिसे जठराग्नि चैतन्य होनेके अनन्तर स्नेहन और स्वेदन करे ॥ १२ ॥ १३ ॥

आमाशयादिस्थानगतवातकी चिकित्सा ।

आमाशयगते वायौ वमितप्रातिभोजिते ।
सुखाम्बुना षट्चरणं वचादिं वा प्रयोजयेत् ।
सन्धुक्षितेऽग्नौ परतो विधिः केवलवातिकः १४

यदि वायु आमाशयगत हो तो उसको वमन, करानेके अनन्तर भोजन कराकर दारुहल्दी, इन्द्रजव कटुकी, अतीस, चित्रक और पाठा इनका बारीक चूर्ण एक टङ्कप्रमाण गोमूत्रसे खिलावे अथवा वचादि गणका चूर्ण गर्मजलसे खिलावे जब जठराग्नि चैतन्य होजाय तो उपरोक्त वातनाशक विधिका पालन करे १४

मत्स्यान्नाभिप्रदेशस्थे सिद्धान्बिल्वशलाटुभिः॥

यदि नाभिप्रदेशमें वायुका प्रकोप हो तो बिल्वके बहुत छोटे कचे फलोंके साथ सिद्ध कीहुई मछलियां सेवन करावे ॥ १५ ॥

बस्तिकर्म त्वधोनाभेः शस्यते चावपीडकः ।
कोष्ठगे क्षारचूर्णाद्या हिताः पाचनदीपनाः १६।

यदि नाभिसे अधोभागमें वात प्रकोप हो तो अवपीडक वस्ती कर्म करना चाहिये ।

यदि कोष्ठगत वायुका प्रकोप हो तो क्षार चूर्ण आदि पाचन दीपन योगोंसे चिकित्सा करनी चाहिये१६

हृत्स्थे पयः स्थिरासिद्धम्-

यदि हृदयगत वायु हो तो शालपर्णीसे सिद्ध किया हुआ दूध पिलाना चाहिये ।

–शिरोबास्तिः शिरोगते ।
स्नैहिकं नावनं धूमः श्रोत्रादीनां च तर्पणम् १७

यदि शिरोगत वातविकार हो तो शिरोवस्ति स्नैहिक नस्य तथा धूमपान करना चाहिये ।

यदि श्रोत्रादिकोंमें वायु स्थित हो तो तैलादिसे तर्पण करना चाहिये ॥ १७ ॥

स्वेदाभ्यङ्गानि वा तानि हृद्यं चान्नं त्वगाश्रिते ।

यदि त्वचाके आश्रित वायु हो तो स्वेदन करना और शरीरपर वातनाशक तैलोंका मलना तथा हृदयको प्रिय अन्नोंका सेवन करना आदि क्रिया करनी चाहिये ।

शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्तमोक्षणम् १८

यदि रक्तमें स्थित वात हो तो शीतल लेपकरना विरेचन और रक्त मोक्षण करना हितकारी होता है॥ १८

विरेको मांसमेदःस्थे निरूहाः शमनानि च ।

यदि मांस और मेदमें स्थित वायु हो तो निरूहण वस्ती और विरेचन तथा शमन क्रिया करनी चाहिये ।

बाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्जागतं जयेत् १९॥

यदि मज्जागत वात हो तो बाहर और भीतर स्नेहन आदि करके जीतना चाहिये ॥ १९ ॥

प्रहर्षोन्नं च शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् ।
विबद्धमार्गं दृष्ट्वा तु शुक्रं दद्याद्विरेचनम् ॥
विरिक्तं प्रतिभुक्तं च पूर्वोक्तां कारयेत्क्रियाम् २०

यदि शुक्रगत वात हो तो प्रहर्षण करना और बल वीर्य वर्द्धक अन्नपानका सेवन करना हितकारी होता है । यदि शुक्रका मार्ग रुकगया हो तो उसको स्नेहन और स्वेदन करके विरेचन करावे । विरेचनके अनन्तर भोजनादि यथार्थ करनेलगजानेपर फिर हर्षण आदि पूर्वोक्त क्रिया करे ॥ २० ॥

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां च विशुष्यताम्
सिताकाश्मर्यमधुकैः सिद्धमुत्थापने पयः॥२१॥

यदि वायुके प्रकोपसे गर्भ सूखजावे या सूखे हुए बालक उत्पन्न हों अथवा बालक सूखते हों तो इस स्त्रीको गर्भावस्थामें मिसरी, काश्मरी और मुलहठीसे सिद्धकिया दूध पिलावे । इस दूधके अभ्याससे गर्भ यथार्थ पुष्ट होजाता है ॥ २१ ॥

स्नावसंधिशिराप्राप्ते स्नेहदाहोपनाहनम् ॥२२॥

यदि स्नायु सन्धी अथवा सिरामें स्थित वायु हो तो स्नेहन अथवा दाह कर्म या उपनाह स्वेद करना चाहिये ॥ २२ ॥

तैलं सङ्कुचितेऽभ्यङ्गो माषसैन्धवसाधितम् २३

यदि कोई अंग वायुसे संकुचित होगया हो तो उस अंगपर उड़द और सेन्धानमकसे सिद्ध कियेहुए तैलकी मालिश करना चाहिये ॥ २३ ॥

आगारधूमलवणतैलैर्लेपः स्रुतेऽसृजि ।
सुप्तेऽङ्गे वेष्टयुक्ते तु कर्तव्यमुपनाहनम् ॥२४ ॥

यदि किसी अंगमें शून्यता (सुप्ति) हो अर्थात् अंगका स्पर्शज्ञान जाता रहा हो तो उस स्थानसे रक्त स्राव करके उस अंगपर घरका धूम, लवण और तैलका लेप करना चाहिये तथा उपनाह स्वेद कारक लेप करके पट्टी बांध देना चाहिये ॥ २४ ॥

अपतानककी चिकित्सा ।

अथाऽपतानकेनार्तमस्रस्ताक्षमवेपनम् ।
अस्तब्धमेढ्रमस्वेदं बहिरायामवर्जितम् ।
अखट्वाघातिनं चैनं त्वरितं समुपाचरेत् ॥२५॥
तत्र प्रागेव सुस्निग्धास्विन्नाङ्गे तीक्ष्णनावनम् ।
स्रोतोविशुद्धये युंज्यादच्छपानं ततो घृतम् २६
विदार्यादिगणक्वाथदधिक्षीररसैः शृतम् ।
नाऽतिमात्रं तथा वायुर्व्याप्नोति सहसैव वा२७

जो मनुष्य अपतानक रोगसे पीड़ित हो, नेत्र स्रस्त न हों, कंपन न हो इन्द्री आदि स्तब्ध न हुए हों, बाह्यायाम न हो, खाट आदिपर छटपटाता न हो तो ऐसे रोगीको प्रथम ही यथार्थ स्नेहन और स्वेदन करके स्रोतोंको शुद्ध करनेके लिये तीक्ष्ण नस्य देवे तदनन्तर विदारीआदि गणके क्वाथ दधी दूध और रससे सिद्ध कियाहुआ अच्छ घृतपान करावे जिससे शिघ्र ही वायु बढ़कर शरीरमें व्याप्त न होसके ॥ २५–२७ ॥

कुलत्थयवकोलानि भद्रदार्वादिकं गणम् ।
।निःक्वाथ्यानूपमांसं च तेनाम्लैःपयसापि च२८
स्वादुस्कन्धप्रतीवापं महास्नेहं विपाचयेत् ।

सेकाभ्यङ्गावगाहान्नपानानस्यानुवासनैः ॥
संहन्ति वातं ते ते च स्नेहस्वेदाः सुयोजिताः२९

कुलथी, यव, बेर, भद्रदार्वादि गण और अनूप-संचारी जीवोंका मांस इन सबका क्वाथ कांजी दूध और मधुरगणका कल्क मिलाकर महास्नेह सिद्ध करे । यह स्नेह सेचन, अभ्यंग और अवगाहनमें तथा अन्नपानमें और अनुवासन बस्तीमें प्रयोग करनेसे अपतंत्रक वायुको शमन कर देता है तथा अन्य जो वातनाशक स्नेहन और स्वेदन कहे हैं वह भी अपतंत्रकादि वात विकारोंको शमन करते है ॥२८-२९॥

वेगान्तरेषु मूर्धानमसकृच्चास्य रेचयेत् ।
अवपीडैः प्रधमनैस्तीक्ष्णैः श्लेष्मनिबर्हणैः ।
श्वसनासु विमुक्तासु तथा संज्ञां स विन्दति३०॥

यदि अपतानकका पुनः वेग होजावे तो कफनाशक अवपीडन और प्रधमन तीक्ष्ण नस्यों द्वारा शिरोविरेचन करावे. जब तीक्ष्ण नस्य द्वारा श्वसना नाड़ीका कफ द्रवीभूत होकर निकल जाता है तब इसको मूर्च्छा दूर होकर चैतन्यता आजाती है ॥ ३० ॥

सौवर्चलाभयाव्योषसिद्धं सर्पिश्चलेऽधिके ३१॥

यदि वायु बहुत अधिक हो तो सौवर्चल नमक हरड़, सोंठ, मिर्च और पीपलके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत पिलाना हितकारी होता है ॥ ३१ ॥

तिल्वकादि घृत ।

पलाष्टकं तिल्वकतो वरायाः
प्रस्थं पलांशं गुरुपञ्चमूलम् ।
सैरण्डसिंहीत्रिवृतं घटेऽपां
पक्त्वा पचेत्पादश्रृतेन तेन ॥
दध्नः पात्रे यावशूकात्त्रिबिल्वैः
सर्पिः प्रस्थं हन्ति तत्सेव्यमानम् ।
दुष्टान्वातानेकसर्वाङ्गसंस्थान्
योनिव्यापद्गुल्मवर्ध्मोदरं च ॥ ३२ ॥

तिल्वक लोध आठ पल, त्रिफला एक सेर, अग्निमन्थ एक पल, बिल्व एक पल, स्योनाक एक पल, काश्मरी एक पल, पाढ़ एक पल, एरण्डकी जड़ एक पल, कटेरी एक पल और निशोथ एक पल इन सबको एक द्रोण जलमें पकाकर चौथा भाग जल शेष रहनेपर उतारकर छानले; यह क्वाथ और एक आढ़क दही तथा तीन पल जवाखार मिलाकर एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे इस घृतके सेवनसे वायुके विकार, दुष्ट वात, एकाङ्गगत वात, सर्वांगवात योनिव्यापत गुल्म, वर्ध्म और उदररोग ये सब दूर होते हैं ॥३२॥

विधिस्तिल्वकवज्ज्ञेयो शम्याकाशोकयोरपि३३

इस प्रकार इसी विधिसे तिल्वकके समान ही अमलतास और अशोकसे सिद्ध कियेहुए घृत वातव्याधियोंको दूर करते है इन घृतोंमें भी त्रिफला आदिद्रव्य तिल्वक घृतके समान ही मिलाना चाहिये ॥ ३३ ॥

चिकित्सितमिदं कुर्याच्छुद्धवातापतानके ।
संसृष्टदोषे संसृष्टम् ॥ ३४ ॥--

यह चिकित्सा कफपित्त रहित शुद्ध वातके अपतानककी कही है यदि कफादिसे युक्त वायुसे अपतानक हो तो मिलीहुई चिकित्सा करनी चाहिये ३४

--चूर्णयित्वा कफान्विते ।
तुम्बुरूण्यभयाहिङ्गुपौष्करं लवणत्रयम् ॥३५॥
यवक्वाथाम्बुना पेयं हृत्पार्श्वार्त्यपतन्त्रके ।
हिङ्गु सौवर्चलं शुण्ठी दाडिमं साम्लवेतसम् ।
पिबेद्वा श्लेष्मपवनहृद्रोगोक्तं च शस्यते ॥३६॥

यदि कफयुक्त वायु हो तो नैपाली धनियां,हरड़, हींग, पोहकरमूल, संचरनमक, सेन्धानमक और विड़नमक इनका चूर्ण यवोंके क्वाथसे पीवे तो हृदयकी पीड़ा पार्श्वपीड़ा और अपतन्त्रक ये रोग दूर होते है अथवा हिंग, संचरनमक, सोंठ, अनारदाना और अम्लवेतका चूर्ण यवोंके क्वाथसे पीवे अथवा कफवातके हृद्रोगमें कहीहुई चिकित्सा करना भी कफ वातके अपतन्त्रकमें हितकारी होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

बाह्यायाम और आभ्यन्तरायामकी चिकित्सा ।

आयामयोरर्दितवद्बाह्याभ्यन्तरयोः क्रिया ।
तैलद्रोण्यां च शयनमान्तरोऽत्र सुदुस्तरः ३७॥

बाह्यायाम और आभ्यन्तरायाममें अर्दितवातके समान चिकित्सा करनी चाहिये । तथा वातनाशक तेलकी द्रोणीमें शयन करना चाहिये । इन बाह्यायाम

और आभ्यन्तरायाममें आभ्यन्तरायाम विशेष कष्ट साध्य है ॥ १७ ॥

धनुस्तम्भकी साध्यासाध्य अवस्था।

विवर्णदन्तवदनः स्रस्ताङ्गो नष्टचेतनः।
प्रस्विद्यंश्च धनुष्कम्भी दशरात्रं न जीवति॥३८

धनुःस्तम्भ रोगमें जब मनुष्यके दाँत और मुख विवर्ण होजावें, अंग ढीले पड़जांय, ज्ञान नष्ट होजावे और पसीना आता हो ऐसे लक्षणोंवाला धनुस्तम्भ-रोगी दश दिनतक जीता नहीं रहसकता ॥ ३८ ॥

वेगेष्वतोऽन्यथा जीवेन्मन्देषु विनतो जडः।
खञ्जःकुणिःपक्षहतःपङ्गुलो विकलोऽथवा ३९॥

यदि इससे विपरीत धनुःस्तम्भका वेग हो अर्थात् उसमें मुख और दाँतोंका वर्ण न बिगड़े और ज्ञान नष्ट न हो तो रोगी जीता रह सकता है। यदि मन्द वेग हो तो इससे मनुष्य कुवड़ा, जड़, खंज, कुणि, पक्षाघात युक्त पंगु अथवा विकल रहता है॥ ३९ ॥

हनुस्तम्भकी चिकित्सा।

हनुस्रंसे हनू स्निग्धस्विन्नौ स्वस्थानमानयेत्।
उन्नामयेच्च कुशलश्चिबुकं विवृते मुखे।
नामयेत्संवृते शेषमेकायामवदाचरेत् ॥ ४० ॥

हनुस्रंसरोगमें ठोडीको स्निग्ध और स्विन्न करके अपने स्वस्थानमें लेआवे। यदि मुख खुला ही रहगया हो तो उसको स्नेहन स्वेदन करके तत्काल ही कुशल वैद्य चिबुकको ऊपरको दवाकर मुख ठीक करदेवे। यदि मुख बन्द ही रहगया हो तो उसको स्नेहन स्वेदन कर यन्त्रादिसे शीघ्र खोलदेवे। अन्य सब क्रिया अर्दित रोगके समान करे॥ ४० ॥

जिह्वास्तम्भकी चिकित्सा।

जिह्वास्तम्भे यथावस्थं कार्यं वात-
-चिकित्सितम् ॥ ४१ ॥

जिह्वास्तम्भमें अवस्थानुसार वातनाशक कवलआदि मुखमें धारणकर तथा समयानुसार वातनाशक चिकित्सा करे ॥ ४१ ॥

आर्दितवात (लकवे) की चिकित्सा।

अर्दिते नावनं मूर्ध्नि तैलं श्रोत्राक्षितर्पणम्।
सशोफे वमनं दाहरागयुक्ते सिराव्यधः ॥४२॥

आर्दितवातमें नस्य देना, मस्तकादिपर वातनाशक तेल मलना, कान और नेत्रोंमें तेल डालना ये कर्म करने चाहिये। यदि अर्दितमें सूजन हो तो वमन कराना चाहिये। यदि दाह और लाली हो तो सिरा वेधन कराना चाहिये ॥ ४२ ॥

पक्षाघातकी चिकित्सा।

स्वेदनं स्नेहसंयुक्तं पक्षाघाते विरेचनम् ॥ ४३ ॥

पक्षाघातमें स्नेहन और स्वेदन करनेके अनन्तर स्निग्ध विरेचन कराना चाहिये ॥ ४३ ॥

अपबाहुककी चिकित्सा।

अवबाहौ हितं नस्यं स्नेहश्चोत्तरभक्तिकः ॥४४॥

अपबाहुक रोगमें नस्य देना और भोजनोत्तर घृतपान कराना हितकारी होता है ॥ ४४ ॥

ऊरुस्तम्भ और आमवातकी चिकित्सा।

ऊरुस्तम्भे न च स्नेहो न च संशोधनं हितम्।
श्लेष्मामममेदोबाहुल्याद्युक्त्या तत्क्षपणान्यतः।
कुर्याद्रूक्षोपचारश्च यवश्यामाककोद्रवाः ॥४५॥
शाकैरलवणैः शस्ताः किञ्चित्तैलैर्जलैः शृतैः।
जाङ्गलैरघृतैर्मांसैर्मध्वम्भोरिष्टपायिनः ॥ ४६ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें न तो स्नेहन करना चाहिये और न संशोधन करना ही हितकारी होता है। क्योंकि कफ, आम और मेद ये ऊरुस्तम्भमें विशेष होते हैं इस कारण इनको युक्तिपूर्वक जीतना चाहिये। इसमें रूक्ष उपचार करना चाहिये। तथा जौ, श्यामाक और कोदा अन्न, लवणरहित अल्प तेल और जलसे सिद्ध किये शाक खाना हितकारी है। तथा घृत रहित जांगलमांस, मधुयुक्त जल और अरिष्ट पीना अच्छा है ४५॥४६

वत्सकादिर्हरिद्रादिर्वचादिर्वा ससैन्धवैः।
आमवाते सुखाम्भोभिः पेयः षट्चरणोऽथवा॥

वत्सकादिगणका चूर्ण या हरिद्रादिगणका चूर्ण अथवा वचादिगणका चूर्ण सेन्धानमक मिलाकर सुखोष्ण जलसे पीवे। अथवा षट्चरणचूर्ण (दारुहलदी, इन्द्रजौ, कटुकी, अतीस, चित्रक और पाठा) सुखोष्ण जलसे पीवे तो आमवात और ऊरुस्तम्भ शांत होते हैं ॥ ४७ ॥

लिह्यात्क्षौद्रेण वा श्रेष्ठाचव्यतिक्ताकणाघनान्।
कल्कं समधु वा चव्यपथ्याग्निसुरदारुजम् ।
मूत्रैर्वा शीलयेत्पथ्यां गुग्गुलुं गिरिसम्भवम्४८

अथवा त्रिफला, चव्य, कटुकी, पीपल और नागरमोथेका चूर्ण मधुमें मिलाकर चाटे। या चव्य, हरड़, चित्रक और देवदारुका कल्क मधु मिलाकर सेवन करे। अथवा हरड़का चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करे। या गूगल अथवा शिलाजीत गोमूत्रके साथ सेवन करे तो आमवात और ऊरुस्तम्भ शमन होते हैं ॥ ४८ ॥

व्योषाग्निमुस्तत्रिफलाविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् ।
खादन् सर्वान् जयेद्व्याधीन् मेदः श्लेष्मामवातजान् ॥ ४९ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आमला और वायविड़ंग इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे। इस संपूर्ण चूर्णके समान शुद्ध गूगल मिलावे। इस व्योषादि गूगलके खानेसे मेद, कफ और आमवातकी सम्पूर्ण व्याधियां नष्ट होजाती है ॥४९॥

शाम्यत्येवं कफाक्रान्तःसमेदस्कः प्रभञ्जनः५०
क्षारमूत्रान्वितान् स्वेदान् सेकानुद्वर्तनानि च ।
कुर्याल्लिह्याच्च मूत्राढ्यैः करञ्जफलसर्षपैः॥५१॥
मूलैर्वाप्यर्कतर्कारीनिम्बजैः ससुराह्वयैः ।
सक्षौद्रसर्षपापक्कलोष्टवल्मीकमृत्तिकैः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार इन उपायोंके करनेसे कफ और मेद युक्त वायु शमन हो जाती है। तथा आमवातके स्थानपर क्षार और गोमूत्र मिलाकर सेक और उबटन करने चाहिये। एवं करंजफलोंकी मींगी और सर्सोंको गोमूत्रमें मिलाकर लेप करे। अथवा आककी जड़, अरणीकी जड़, नीमकी जड़, देवदारुकी जड़, सहद, सर्सों, पकीहुई मिट्टी और बंबीकी मिट्टी इन सबको गोमूत्रमें पीसकर सुखोष्ण लेप करे तो आमवातकी सूजन और पीड़ा शमन होती है ॥ ५० ५२ ॥

कफक्षयार्थं व्यायामे सह्ये चैनं प्रवर्तयेत् ।
स्थलान्युल्लङ्घयेन्नारीः शक्तितः परिशीलयेत् ।
स्थिरतोयं सरःक्षेमं प्रतिस्रोतो नदीं तरेत् ।
श्लेष्ममेदः क्षये चात्र स्नेहादीनवचारयेत्॥५३॥

आमवातवाले रोगीको कफके क्षय करनेके लिये जितना जितना सहन होसके व्यायाम करनेमें प्रवृत्त करना चाहिये, यथाशक्ति मार्ग चलना चाहिये, पर्वत लखना चाहिये, किंचित् स्त्रीसेवन करना उचित है, स्थिरजलवाले तालावमें तैरना और नदीके स्रोतकी ओर बलपूर्वक तैरनेका यत्न करना चाहिये। जब इन उपायोंसे कफ और मेदका क्षय होजावे तब वातनाशक स्नेहादि प्रयोगोंका सेवन करे॥ ५३ ॥

अन्यवातरोगोंकी चिकित्सा।

स्थानं दूष्यादि चालोच्य कार्या शेषेष्वपि-
-क्रिया॥५४॥

अन्य वातरोगोंमें भी स्थान दूष्यादि विचार कर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५४ ॥

सहचरं सुरदारु सनागरं
क्वथितमम्भसि तैलविमिश्रितम् ।
पवनपीडितदेहगतिः पिबेद्
द्रुतविलम्बितगो भवतीच्छया॥ ५५ ॥

काला वांसा, देवदारु और सोंठ इनका जलमें क्वाथ कर इस क्वाथमें तैल मिलाकर पीवे तो वातसे पीड़ित देह होनेसे चलनेमें असमर्थ मनुष्य वात नाश होकर अपनी इच्छानुसार चलने योग्य होजाता है ॥५५ ॥

रास्नादि घृत ।

रास्नामहौषधद्वीपिपिप्पलीशठिपौष्करम् ।
पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिर्वातरोगहरं परम् ॥ ५६ ॥

रास्ना, सोंठ, चित्रक, पीपल, कचूर और पोहकरमूल इनके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत वात रोगको हरनेमें श्रेष्ठ है ॥ ५६ ॥

निम्बादि घृत ।

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां
भागान् पृथक् दश पलान् विपचेद्घटेऽपाम् ।
अष्टांशशेषितरसेन पुनश्च तेन
प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कैः॥५७॥
पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्या-
द्विक्षारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः ।
तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्नि-
रोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥५८॥

मञ्जिष्ठयातिविषया विषया यवान्या
संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसंख्यैः ।
तत्सेवितं प्रधमति प्रबलं समीरं
सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक् ॥५९॥
नाडीव्रणार्बुदभगन्दरगण्डमाला-
जत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् ।
यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसकासशोफ-
हृत्पाण्डुरोगमदविद्रधिवातरक्तम् ॥ ६० ॥

निम्ब, गिलोय, बांसा, पटोल और कटेली इन प्रत्येकको दस दस पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब आठवां भाग शेष रहे तो इसको छानकर इस क्वाथमें एक प्रस्थ घृत तथा एक एक कर्ष पाठा, विड़ंग, देवदारु, गजपीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हल्दी, सोंफ, चव्य, कूठ, तेजोवन्ती, मिर्च, इन्द्रजव, अजवायन, चित्रक, कटुकी, भिलावे बच, पीपलामूल, मंजीठ, अतीस, गिलोय, और अजवायन, इनको पीस कर कल्क करे। यह कल्क और पांचपल शुद्ध गूगल, उपरोक्त क्वाथ और घृतमें मिलाकर घृत सिद्ध करे यह घृत सेवन किया हुआ प्रबल वायुको जीतता है। तथा संधि अस्थि और मज्जागत वातविकारोंको शमन करता है। और इसी प्रकार कुष्ठ, नाड़ीव्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला ऊर्ध्वजत्रुगत सम्पूर्ण रोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, खांसी, सूजन, हृद्रोग, पाण्डुरोग, मद, विद्रधि और वातरक्तको नष्ट करता है ॥ ५७-६० ॥

बलाघृत ।

बलाबिल्वशृते क्षीरे घृतमण्डं विपाचयेत् ।
तस्य शुक्तिः प्रकुञ्चो वा नस्यं वाते शिरोगते ६१

बला और बिल्वसे सिद्ध कियेहुए दूधमें घृत मण्डको पकावे इस घृतमण्डके सिद्ध होनेपर इसके दो कर्ष या एक पल नासिका द्वारा पीनेसे शिरोगत वातव्याधि नष्ट हो जाती है ॥ ६१ ॥

तद्वत्सिद्धा वसा नक्रमत्स्यकूर्मचुलूकजा ।
विशेषेण प्रयोक्तव्या केवले मातरिश्वनि॥६२॥

इसी घृतमण्डके समान मगर मच्छ या कूर्म या चुलुककी वसाको सिद्ध करके केवल वातविकारमें प्रयोग करना विशेष हितकर होता है ॥ ६२ ॥

पिण्याक तैल ।

जीर्णं पिण्याकं पञ्चमूलं पृथक्च
क्वाथ्यं क्वाथाभ्यामेकतस्तैलमाभ्याम् ।
क्षीरादष्टांशं पाचयेत्तेन पानाद्
वाता नश्येयुः श्लेष्मयुक्ता विशेषात्॥६३॥

पुरानी पिण्याक (खल) और बृहत्पंचमूलका अलग अलग क्वाथ करे फिर इन दोनों क्वाथोंसे तैलको सिद्ध करे। यह तैल एक भाग और दूध आठ भाग मिलाकर पीवे तो कफयुक्तवायु विशेषरूपसे शमन होजाती है ॥ ६३ ॥

प्रसारिणी तुलाक्वाथे तैलप्रस्थं पयः समम् ।
द्विमेदामिशिमञ्जिष्ठाकुष्ठरास्नाकुचन्दनैः ॥६४॥
जीवकर्षभकाकोलीयुगुलामरदारुभिः ।
कल्कितैर्विपचेत्सर्वमारुतामयनाशनम् ॥ ६५ ॥

प्रसारणीके एक तुला (पांच सेर) क्वाथमें एक प्रस्थ तेल, एक प्रस्थ दूध तथा मेदा, महामेदा, सौंफ, मंजीठ, कूठ, रास्ना, लालचन्दन, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली और देवदारु इन सबका एक कुड़व कल्क डालकर पकावे। तैल सिद्ध होनेपर इस तेलको अभ्यङ्ग आदिमें प्रयोग करनेसे सम्पूर्ण वायुके रोग नष्ट होते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

सहचरादि तैल ।

समूलशाखस्य सहाचरस्य
तुलां समेतां दशमूलतश्च ।
पलानि पञ्चाशदभीरुतश्च
पादावशेषं विपचेद्द्रोणेऽपाम् ॥ ६६ ॥
तत्र सेव्यनखकुष्ठहिमैला-
स्पृक्प्रियङ्गुनलिकाम्बुशिलाजैः ।
लोहितानलदलोहसुराह्वैः
कोपनामिशितुरुष्कनतैश्च ॥ ६७ ॥
तुल्यं क्षीरं पालिकैस्तैलपात्रं
सिद्धं कृच्छ्रान्शीलितं हन्ति वातान् ।

कम्पाक्षेपस्तम्भशोषादियुक्तान्
गुल्मोन्मादौ पीनसं योनिरोगान्॥६८॥

मूलशाखायुक्त सहचर (काला बांसा) एकतुला, दशमूल १ तुला और सतावर पचास पल इनको चार द्रोण जलमें डालकर पकावे. चौथा भाग शेष रहनेपर क्राथको छान लेवे। इस काथमें खस, नख, कूठ, कपूर, इलायची, असवर्ग, प्रियंगु, नलिका, नागरमोथा, छारछरीला, मंजीठ, बालछड़, लालचन्दन, देवदारु, लालकनेर, लोबान और तगर यह प्रत्येक एक एक पल लेकर कल्क बनाकर मिलावे, तथा एक आढक तेल और एक आढक दूध मिलाकर तैल सिद्ध करे। यह तेल सेवन कियाहुआ अत्यन्त कष्टसाध्य वातविकारोंको तथा कम्प, आक्षेप, स्तंभ और शोष आदि युक्त वातविकारोंको गुल्म, उन्माद, पीनस और योनिरोगोंको नष्ट करता है॥ ६६-६८॥

अन्य सहचारादि तेल।

सहाचरतुलायास्तु रसे तैलाढकं पचेत्।
मूलकल्काद्दशपलं पयो दत्त्वा चतुर्गुणम्॥६९॥
अथवा नतषड्ग्रन्थास्थिराकुष्ठसुराह्वयान्।
सैलानलदशैलेयशताह्वारक्तचन्दनान्॥७०॥
सिद्धेऽस्मिन् शर्कराचूर्णादष्टादशपलं क्षिपेत्।
भेडस्य संमतं तैलं तत्कृच्छ्रानानिलामयान्।
वातकुण्डलिकोन्मादगुल्मवर्ध्मादिकान् जयेत्॥

सहचरके एक तुला क्राथमें एक आढक तैल, चार आढक दूध, दस पल दशमूलका कल्क मिलाकर तल सिद्ध करे अथवा तगर, बच, शालपर्णी, कूठ, देवदारु, इलायची, बालछड़, छारछरीला, सौंफ और लालचन्दन इनका कल्क मिलाकर इस तैलको सिद्ध करे। इस तैलके सिद्ध होनेपर इसमें १८ पल खांड मिलाय इसके सेवन करनेसे कष्टसाध्य वातविकार, वातकुण्डलिका, उन्माद, गुल्म और वर्ध्म आदि रोग शमन होते है। यह तेल भेडऋषिका सम्मत योग है॥ ६९--७१॥

बलातैल।

बलाशतं छिन्नरुहापादं रास्नाष्टभागिकम्॥७२॥
जलाढकशते पक्त्वा शतभागस्थिते रसे।
दधिमस्त्विक्षुनिर्यासशुक्लैस्तैलाढकं समैः ७३॥
पचेत्साजपयोर्धांशं कल्कैरेभिः पलोन्मितैः।
शठीसरलदार्वेलामञ्जिष्ठागुरुचन्दनैः॥ ७४॥
पद्मकातिबलामुस्ताशूर्पपर्णीहरेणुभिः।
यष्ट्याह्वसुरसव्याघ्रनखर्षभकजीवकैः॥ ७५॥
पलाशरसकस्तूरीनीलिकाजातिकोशकैः।
स्पृक्काकुङ्कुमशैलेयजातिकाकट्फलाम्बुभिः॥७६
त्वक्कुन्दरुककर्पूरतुरुष्कश्रीनिवासकैः।
लवङ्गनखकङ्कोलकुष्ठमांसीप्रियङ्गुभिः॥७७॥
स्थौणेयतगरध्यामवचामदनकप्लवैः।
सनागकेसरैः सिद्धे दद्याच्चात्रावतारिते॥ ७८॥
पत्रकल्कं ततः पूतं विधिना तत्प्रयोजितम्।
कासश्वासज्वरच्छर्दिमूर्छागुल्मक्षतक्षयान् ७९॥
प्लीहशोषमपस्मारमलक्ष्मीं च प्रणाशयेत्।
बलातैलमिदं श्रेष्ठं वातव्याधिविनाशनम्॥८०॥

बला (खरहटी) १०० पल, गिलोय २५ पल, रास्ना १२॥ पल इन सबको १०० आढक जलमें पकाय १०० वां भाग अर्थात् एक आढक शेष रहनेपर इस क्वाथको छान लेवे। यह क्राथ एक आढ़क दहीका जल, एक आढक, ईखका रस एक आढक, सिरका एक आढक और तेल एक आढ़क तथा बकरीका दूध आधा आढक इन सबको मिलाकर इसमें एक एक पल कचूर, सरल, देवदारु, इलायची, मंजीठ, अगर चन्दन, पद्मकाष्ठ, अतिबला, नागरमोथा, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, हरेणु, मुलहठी, तुलसी, व्याघ्रनखी, जीवक, ऋषभक, पलाशका रस, कस्तूरी, नीलिका, जावित्री, स्पृक्का, केशर, छार्छरीला, चमेली, कायफल, नेत्रबाला, दालचीनी, कुन्दरू, कपूर, तुरुष्कनामक गन्धद्रव्य, श्रीवास, लौंग, नख, कंकोल, कूठ, बालछड़, प्रियंगु, स्थौणेयक, तगर, ध्यामकतृण, बच, मोम, केवटीमोथा और नागकेशर यह सब लेकर कल्क बना कर मिलावे फिर तैलपाक विधिसे तैलको सिद्ध करे। इसको उतारकर इसमें तेजपत्र, कस्तूरी

आदि मिलाकर सुवासित करे । इस तैलको शरीर पर मलनेमें नस्य कर्ममें, वस्तिमें और खानेमें प्रयोग करनेसे यह तैल खांसी, श्वास, ज्वर, छर्दि, मूर्च्छा, गुल्म, क्षत, क्षय, प्लीहा शोष, अपस्मार, अलक्ष्मी और संपूर्ण वातव्याधियोंको नष्ट करता है यह बलातैल वातव्याधि नाशकरनेमें श्रेष्ठ कहा है ॥७२-८० ॥

पाने नस्येऽन्वासनेऽभ्यञ्जने च
स्नेहाः काले सम्यगेते प्रयुक्ताः ।
दुष्टान्वातानाशु शान्तिं नयेयु-
र्वन्ध्या नारीः पुत्रभाजश्च कुर्युः॥८१॥

इस अध्यायमें कहेहुए घृत तैल पीनेमें, नस्यकर्ममें, अनुवासनमें और अभ्यङ्गमें देशकालानुसार यथार्थ प्रयोग करनेसे दुष्ट वातव्याधियोंको शीघ्र शमन कर देते है । तथा इनके सेवनसे बन्ध्यास्त्रियें भी पुत्रवती होजाती है ॥ ८१ ॥

स्नेहस्वेदैर्द्रुतः श्लेष्मा यदा पक्वाशये स्थितः ।
पित्तं वा दर्शयेद्रूपं बस्तिभिस्तं विनिर्जयेत्॥८२॥

जब स्नेहन और स्वेदन करनेसे कफ अथवा पित्त पक्काशयमें आकर अपने रूप दिखावे तो इनको वस्तियों द्वारा शोधन करके जीत लेना चाहिये ॥ ८२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टांगहृदयसंहितायां चिकित्सास्थाने वातव्याधिचिकित्सिते आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो वातशोणितचिकित्सितं-
-व्याख्यास्यामः ॥

अब हम वातरक्तकी चिकित्साको कथन करते है॥

वातरक्तकी चिकित्सा ।

वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् ।
अल्पाल्पं पालयन् वायुं यथादोषं यथाबलम्१

वातरक्त रोगमें रोगीको स्निग्ध करके बार२ थोड़ा थोड़ा रक्त निकालता रहे । रक्त दोष बल आदि विचारकर जिससे वायु भी यथार्थ अवस्थामें रहे इस प्रकार निकालते रहना चाहिये ॥ १ ॥

रुग्रागतोददाहेषु जलौकोभिर्विनिर्हरेत् ।
शृङ्गतुम्बैश्चिमिचिमाकण्डूरुग्दूयनान्वितम् ।
प्रच्छानेन सिराभिर्वा देशाद्देशान्तरं व्रजत्॥२॥

यदि वातरक्तमें पीड़ा, लालिमा, तोद और दाह हो तो इसका रक्त जोंक लगाकर हरण करना चाहिये । यदि चिमिचिमाहट, खुजली, पीड़ा और दूयन युक्त हो तो पछने लगाकर शृंगी और तुम्बीसे रक्त हरण करना चाहिये । अथवा पछने लगाकर सिराओंसे अन्यस्थानमें जातेहुये रक्तको हरण करे ॥ २ ॥

अङ्गम्लानौ तु न स्राव्यं रूक्षं वातोत्तरं च यत्३
गम्भीरं श्वयथुं स्तम्भं कम्पस्नायुसिरामयान् ।
ग्लानिमन्यांश्च वातोत्थान् कुर्याद्वायुर-
-सृक्क्षयात् ॥ ४ ॥

यदि रोगीको अंगग्लानि हो या वाताधिक होनेसे रूक्षता हो तब रक्त नहीं निकालना चाहिये । क्योंकि रक्तक्षय होनेसे बढ़ाहुआ वायु-गंभीर शोथ, स्तंभ, कम्प, स्नायुवोंके रोग, शिराओंके रोग, ग्लानि तथा अन्य वातके रोगोंको उत्पन्न कर देता है ॥३॥४॥

विरेच्यः स्नेहयित्वा तु स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः ।
वातोत्तरे वातरक्ते पुराणं पाययेद्घृतम् ॥५ ॥

यदि वातरक्तका रोगी विरेचन कराने योग्य हो तो प्रथम स्नेहन करके फिर स्नेह युक्त विरेचनोंसे शोधन करना चाहिये ।

यदि वातरक्तमें वातकी अधिकता हो तो उसको पुराणा घृत पिलाना चाहिये ॥ ५ ॥

श्रावणीक्षीरकाकोलीक्षीरिणीजीवकैः समैः ।
सिद्धं सर्षपकैः सर्पिः सक्षीरं वातरक्तनुत् ॥६॥

गोरखमुण्डी, क्षीरकाकोली, शारिवा और जीवक, तथा सर्सों इन सबको सम भाग लेकर कल्क करे. यह कल्क और दूध मिलाकर सिद्ध किया घृत वातरक्तको नष्ट करता है ॥ ६ ॥

द्राक्षामधूकवारिभ्यां सिद्धं वा सासितोपलम् ।
घृतं पिबेत्तथा क्षीरं गुडूचीस्वरसे शृतम् ।
तैलं पयः शर्करां च पाययेद्वा सुमूर्छितम् ॥७॥

द्राक्षा और महुवेके क्वाथमें सिद्ध किया घृत मिसरी मिलाकर पीवे। अथवा गिलोयके स्वरसमें सिद्ध किया दूध पीवे। या गिलोयसे सिद्ध तैल, दूध और खांड मिलाकर पीवे तो वातरक्त शमन होता है॥ ७॥

बलाशतावरीरास्नादशमूलैः सपीलुभिः।
श्यामैरण्डस्थिराभिश्च वातार्तिघ्नं शृतं पयः॥८॥

बला, शतावर, रास्ना, दशमूल, पीलु, निशोथ, एरण्डकी जड़ और शालपर्णीसे सिद्ध कियाहुआ दूध वातरक्तको शमन करता है॥ ८॥

धारोष्णं मूत्रयुक्तं वा क्षीरं दोषानुलोमनम्॥९॥

धारोष्णदूध गोमूत्र मिलाकर पीनेसे रेचन होकर वातरक्तका दोष शमन होता है॥ ९॥

पैत्ते पक्त्वा वरीतिक्तापटोलत्रिफलामृताः।
पिबेद् घृतं वा क्षीरं वा स्वादुतिक्तकसाधितम्॥

वातरक्तमें यदि पित्तकी अधिकता हो तो शतावरी, कुटकी, पटोलपत्र, त्रिफला और गिलोयसे सिद्ध किया हुआ घृत पीना चाहिये। अथवा तिक्त और मधुर द्रव्योंसे सिद्ध दूध पीना चाहिये॥ १०॥

क्षीरेणैरण्डतैलं च प्रयोगेण पिबेन्नरः।
बहुदोषो विरेकार्थं जीर्णे क्षीरोदनाशनः॥११॥

यदि वातरक्तवालेके शरीरमें अधिक दोष हों तो उसको दूधमें मिलाकर एरण्डतेल पिलावे इससे यथार्थ विरेचन होते है विरेचन होजानेके अनन्तर क्षुधा लगने पर दूध और भात खाना चाहिये॥ ११॥

कषायमभयानां वा पाययेद् घृतभर्जितम्।
क्षीरानुपानं त्रिवृताचूर्णं द्राक्षारसेन वा॥१२॥

अथवा विरेचनार्थ हरड़का क्वाथ घृतमें छौंक कर पीवे। अथवा निशोथका चूर्ण दूधके साथ या द्राक्षारसके साथ पीवे तो यथार्थ विरेचन होकर वातरक्तका दोष शमन होता है॥ १२॥

निर्हरेद्वा मलं तस्य सघृतैः क्षीरवस्तिभिः।
नहि बस्तिसमं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम्।
विशेषात्पायुपार्श्वोरुपर्वास्थिजठरार्तिषु॥१३॥

अथवा वातरक्तरोगीका मल घृतयुक्त क्षीरबस्तियोंसे हरण करे। क्योंकि वातरक्तकी चिकित्सामें वस्तिकर्मके समान दूसरी चिकित्सा नहीं है। विशेष कर पायु, पार्श्व, ऊरु, पर्व, अस्थि और उदरकी पीड़ामें तो वस्तिकर्म अत्यन्त लाभकारी है॥ १३॥

मुस्तद्राक्षाहरिद्राणां पिबेत्क्वाथं कफोल्बणे।
सक्षौद्रं त्रिफलाया वा गुडूच्यां वा यथा तथा १४

कफप्रधान वातरक्तमें नागरमोथा, द्राक्षा और हरिद्राका क्वाथ मधु मिलाकर पीवे अथवा त्रिफलेका क्वाथ या गिलोयका क्वाथ मधुमिलाकर पीवे तो कफोल्बण वातरक्त शमन होता है॥ १४॥

यथाऽर्हस्नेहपीतं च वामितं मृदु रूक्षयेत्॥१५॥

कफप्रधान वातरक्तमें यथोचित औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ स्नेहपान कराकर वमन करावे तदनन्तर मृदु रूक्षण करना चाहिये॥ १५॥

त्रिफलाव्योषपत्रैलात्वक्क्षीरीचित्रकं वचाम्।
विडङ्गं पिप्पलीमूलं लोमशं वृषकं त्वचम्॥१६॥
ऋद्धिं लाङ्गलिकं चव्यं समभागानि पेषयेत्।
कल्कैर्लिप्त्वायसीं पात्रीं मध्याह्ने भक्षयेदिदम्।
वातास्रे सर्वदोषेऽपि परं शूलान्विते हितम्१७॥

त्रिफला, त्रिकटु, पत्रज, इलायची, वंसलोचन, चित्रक, बच, वायबिडंग, पीपलामूल, तमालपत्र, बांसा, दालचीनी, ऋद्धि, मधुरलांगलिकन्द और चव्य इन सबको समभाग लेकर बारीक पीस कल्क बनावे यह कल्क प्रातःकाल लोहपात्रमें लेपकरके रखदे और मध्याह्नके समय इसको खावे यह योग सर्वदोषज शूलयुक्त वातरक्तमें भी बहुत हितकारी है॥ १६॥ १७॥

कोकिलाक्षकनिर्यूहः पीतस्तच्छाकभोजिना
कृपाभ्यास इव क्रोधं वातरक्तं नियच्छति।१८॥

तालमखानेका क्वाथ पीकर तालमखानेके पत्रोंका शाक खानेका अभ्यास रखनेसे इस प्रकार वातरक्त नष्ट होजाता है. जैसे—कृपा करनेका अभ्यास रखनेसे क्रोध नष्ट होजाता है॥ १८॥

पञ्चमूलस्य धान्या वा रसैर्लेलीतकीं वसाम्।
खुडं सुरूढमप्यङ्गे ब्रह्मचारी पिबन् जयेत्१९॥

१ कोकिलाक्ष--तालमखानेति प्रसिद्धं बीजम्।

पञ्चमूलके क्वाथमें अथवा आमलेके रसमें लेलीतकीकी वसा मिलाकर पीवे और ब्रह्मचारी रहे तो पांवोंमें सञ्चित और स्थिर खुड्वात (वातरक्त) नष्ट होती है। लेलीतकीकी वसाका अर्थ अरुणदत्त गन्धक या संचरनमकका तेल करते हैं ॥ १९ ॥

इत्याभ्यन्तरमुद्दिष्टं कर्म बाह्यमतःपरम् ॥ २०॥

इस प्रकार वातरक्तकी खानेकी औषधियों द्वारा आभ्यन्तर चिकित्सा कह दी है। अब बाह्य चिकित्साको कथन करते हैं ॥ २० ॥

आरनालाढके तैलं पादसर्जरसं शृतम् ।
प्रभूते खजितं तोये ज्वरदाहार्तिनुत्परम् ॥२१॥

चार सेर काञ्जीमें एक सेर तेल सिद्धकरे। इस तेलमें चौथा भाग राल मिलाकर गरम करे। जब राल और तेल मिलजावे तो इसको बहुतसा जल डाल कर मथे। फिर जलमेंसे रालयुक्त तेलको निकाल कर मलहमकी तरहसे लेपकरे। इससे वातरक्तका ज्वर, दाह और पीड़ा नष्ट होजाती है ॥ २१ ॥

समधूच्छिष्टमञ्जिष्ठं ससर्जरससारिवम् ।
पिण्डतैलं तदभ्यङ्गाद्वातरक्तरुजापहम् ॥२२ ॥

मोम, मंजीठ, राल और शारिवा तथा काञ्जी डालकर सिद्ध कियाहुआ पिण्डतैल लगानेसे वातरक्तकी पीड़ा दूर होती है ॥ २२ ॥

दशमूले शृतं क्षीरं सद्यः शूलनिवारणम् ।
परिषेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा ।२३॥

दशमूलके क्वाथमें डालकर सिद्ध कियाहुआ दूध वातप्रधान वातरक्तपर सुखोष्ण परिषेचन करनेसे वातरक्तका शूल दूर होता है। तथा दशमूलसे सिद्ध कोष्णघृतका सेचन करनेसे भी वातप्रधान वातरक्तका शूल दूर होता है ॥ २३ ॥

स्नेहैर्मधुरसिद्धैर्वा चतुर्भिः परिषेचयेत् ।
स्तम्भाक्षेपकशूलार्तं कोष्णैर्दाहे तु शीतलैः२४

घृत, तैल, वसा और मज्जा इन चारोंको चतुःस्नेह कहते है। इस चतुःस्नेहको मधुरगणकी औषधियोंसे सिद्ध करके स्तम्भ, आक्षेपक और शूलयुक्त वातरक्त पर सुखोष्ण सेचन करना चाहिये। यदि दाह युक्त वातरक्त हो तो यह चतुःस्नेह शीतल लेप करना चाहिये ॥ २४ ॥

तद्वद्गव्याविकच्छागैः क्षीरैस्तैलविमिश्रितैः ।
निःक्वाथैर्जीवनीयानां पञ्चमूलस्य वा लघोः२५

इसी प्रकार गौ अथवा भेड़के दूधको तेल मिलाकर सुखोष्ण सेचन करनेसे स्तम्भ, आक्षेप और शूल युक्त वातरक्तकी पीड़ा शमन होती है और दाहयुक्त वातरक्तमें इसीका शीतल परिषेचन करना चाहिये।

अथवा जीवनीयगणके क्वाथ अथवा लघुपञ्चमूलके क्वाथका यदि कोष्ण सेचन किया जावे तो वह वातरक्तके स्तम्भ, आक्षेप और शूलको दमन करता है। यदि दाहयुक्त वातरक्त हो तो इसी शीतल क्वाथसे सेचन करना चाहिये ॥ २५ ॥

द्राक्षेक्षुरसमद्यानि दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकम् ।
सेकार्थं तण्डुलक्षौद्रशर्कराम्भश्च शस्यते ॥ २६॥

द्राक्षाका रस, गन्नेका रस, मद्य, दहीका जल, खट्टी काञ्जी, तण्डुलजल, शहद मिलाहुआ जल या खांड मिलाहुआ जल दाहवाले वातरक्तमें सेचनके लिये हितकारी होता है ॥ २६ ॥

प्रियाः प्रियंवदा नार्यश्चन्दनार्द्रकरस्तनाः ।
स्पर्शशीताःसुखस्पर्शा घ्नन्ति दाहं रुजं क्लमम्२७

वातरक्तकी दाह और पीड़ाको चन्दनसे चर्चित हाथ और स्तनोंवाली, मीठा बोलनेवाली, प्यारी स्त्रियोंका सुखकारी शीतस्पर्श शमन करता है ॥२७॥

सरागे सरुजे दाहे रक्तं हृत्वा प्रलेपयेत् ।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठादार्वीमधुकचन्दनैः ॥२८॥

सासितोपलकासेक्षुमसूरैरकसक्तुभिः ।
लेपो रुग्दाहवीसर्परागशोफनिबर्हणः ॥ २९ ॥

जो वातरक्त राग, पीड़ा और दाहसे युक्त हो, प्रथम उसके रक्तको निकाल देवे। तदनन्तर प्रपौण्डरीक (पण्डयारा), मंजीठ, दारुहल्दी, मुलहठी, चन्दन, मिसरी, कासकी जड़, ईखकी जड़, मसूर और गुन्द्रपटेरके बीजोंके सत्तू इन सबको मिलाकर लेप कर-

नेसे लालिमा, दाह, विसर्प, पीड़ा और सूजन दूर होते है ॥ २८ । २९ ॥

वातघ्नैः साधितः स्निग्धः कृशरो मुद्गपायसः ।
तिलसर्षपपिण्डैश्च शूलघ्नमुपनाहनम् ॥ ३० ॥

वातरक्तके शूलको वातनाशक द्रव्योंके क्काथमें सिद्ध कीहुई मुद्ग आदिकी खिचड़ी, स्निग्ध कीहुई अथवा वातनाशक तैल घृतयुक्त तिल, मुद्गकी खीर अथवा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तिल और सरसोंसे बनायेहुए पिण्डसे सुहाता सुहाता सेक करना या इनका गरम लेप करना अथवा इनसे स्वेद करना शमन करता है ॥ ३० ॥

औदका प्रसहानूपवेसवाराः सुसंस्कृताः ।
जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताः स्युरुपनाहने ॥ ३१॥
स्तम्भतोदरुगायामशोफाङ्गग्रहनाशनाः ।
जीवनीयौषधैःसिद्धाः सपयस्कावसाऽपि वा ३२

उदकसञ्चारी जीव, प्रसह पक्षी और अनूपसञ्चारी जीवोंके मांसका संस्कार करके बनायाहुआ वेसवार जीवनीयगणके द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृतसे स्निग्ध कर इसके साथ सुहाता २ उपनाहस्वेद करे तो वातरक्तका स्तम्भ, तोद, पीड़ा, संकोच, सूजन और अङ्गग्रह ये सब दूर होते हैं अथवा इसी प्रकार जीवनीयगणसे सिद्ध कीहुई उदकसञ्चारी जीवोंकी वसा दूध मिलाकर सुखोष्ण सेचन करनेसे इन्हीं गुणोंको करती है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

घृतं सहचरान्मूलं जीवन्ती च्छागलं पयः ।
लेपः पिष्टा तिलास्तद्वद्भृष्टाः पयसि निर्वृताः३३

कालेबांसेकी जड़ और जीवन्तीकी जड़का कल्क घृत और बकरीका दूध मिलाकर लेप करे अथवा भूनेहुए तिल दूधमें पीसकर लेपकरे तो वातरक्तके स्तम्भ, दाह, शूल आदि शमन होते है ॥ ३३ ॥

क्षीरपिष्टक्षुमालेपमेरण्डस्य फलानि वा ।
कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थं शताह्वां वाऽनिलेऽधिके३४

दूधमें अलसीके बीज पीस कर अथवा एरण्डके बीज दूधमें पीसकर लेप करनेसे वाताधिक वातरक्तका शूल निवृत्त होता है अथवा सौंफको दूधमें पीसकर वातोल्बण वातरक्तके शूल निवृत्त करनेकेलिये लेप करे ॥ ३४॥

मूत्रक्षारसुरापक्कं घृतमभ्यंजने हितम् ।
सिद्धं समधुशुक्तं वा सेकाभ्यङ्गे ॥ ३५ ॥--

गोमूत्र, जवाखार और सुरा मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत वातरक्तपर लगानेमें हितकारी है। अथवा मधु मिलाहुआ शुक्त (सिर्का) वातरक्तपर सेचनमें और अभ्यंग करनेमें हितकारी है ॥ ३५ ॥

--कफोत्तरे ।
गृहधूमो वचा कुष्ठं शताह्वा रजनीद्वयम् ।
प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते ॥ ३६ ॥--

घरका धूम, बच, कूठ, सौंफ, हलदी और दारुहलदी इनका लेप कफाधिक वातरक्तके शूलको नष्ट करता है ॥ ३६ ॥

--वातकफोत्तरे ।
मधुशिग्रोर्हितं तद्वद्बीजं धान्याम्लसंधुतम् ।
मुहूर्तलिप्तमम्लैश्च सिञ्चेद्वातकफोत्तरे ॥ ३७ ॥

इसी प्रकार मीठे सुहांजनेके बीज धान्याम्लमें पीसकर लेप करनेसे वातकफाधिक वातरक्तका शूल नष्ट होता है । तथा इस सुहांजनेके बीजोंका एक मुहूर्तमात्र लेप किया रहनेके अनन्तर इसपर अम्लकांजीसे सेचन करे तो वातकफाधिक वातरक्तका शूल नष्ट होता है ॥ ३७ ॥

उत्तान और गंभीरवातरक्तकी चिकित्सा।

उत्तानं लेपनाभ्यङ्गपरिषेकावगाहनैः ।
विरेकास्थापनैः स्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत्॥३८॥

वातरक्त उत्तान और गंभीर भेदसे दो प्रकारका कहा है । इनमें उत्तान वातरक्तको लेप, अभ्यंग, परिषेक और अवगाहनों द्वारा जीतना चाहिये ॥

गंभीर वातरक्तमें विरेचन आस्थापन और स्नेहपानोंद्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ ३८ ॥

वातश्लेष्मोत्तरे कोष्णा लेपाद्यास्तत्र शीतलैः ।
विदाहशोफरुक्कण्डूविवृद्धिः स्तम्भनाद्भवेत् ३९

वातकफप्रधान वातरक्तमें जो लेप आदि कहे है

वे सुहाते २ गर्मलेप करने चाहिये । क्योंकि वात कफकी अधिकतामें शीतल लेप करनेसे दोषका स्तम्भन होकर विदाह, शोथ, पीड़ा और खुजली बढ़जाते है ३९

पित्तरक्तोत्तरे वातरक्ते लेपादयो हिमाः ।
उष्णैः प्लोषोपरुग्रागस्वेदावदरणोद्भवः ॥४० ॥

पित्तकफाधिक वातरक्तमें लेपादिक शीतल करने चाहिये क्योंकि पित्तकफाधिक वातरक्तमें उष्ण लेपादि करनेसे वातरक्तके स्थानपर प्लोष, लालिमा, पीड़ा, स्वेद और गलकर गिरना आदि विकार उत्पन्न होजाते है ॥ ४० ॥

मधुयष्ट्यादि तैल ।

मधुयष्ट्याः पलशतं कषाये पादशेषिते ।
तैलाढकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ॥४१
स्थिरातामलकीदूर्वापयस्याभीरुचन्दनैः ।
लोहहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः ॥ ४२ ॥
काकोलीक्षीरकाकोलीशतपुष्पार्द्धिपद्मकैः ।
जीवन्तीजीवर्षभकत्वक्पत्रनखवालकैः ॥ ४३ ॥
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठासारिवेन्द्रीवितुन्नकैः ।
चतुःप्रयोगं वातासृक्पित्तदाहज्वरार्तिनुत् ४४॥

मुलहठी एक सौ पल लेकर इसका दो द्रोण जलमें काथ करे चौथा भाग शेष रहनेपर इसको छानले इस क्काथमें एक आढ़क तैल तथा शालपर्णी, भूमिआंवला, दूर्वा, श्वेतशारिवा, शतावर, सफेद चन्दन, लाल चंदन, हंसपदी, जटामांसी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकोली, क्षीर काकोली, सौंफ, ऋद्धि, वृद्धि, पद्मकाष्ठ, जीवन्ती, जीवक, ऋषभक, दालचीनी, पत्रज, नख, सुगन्धवाला, प्रपौण्डरीक, मंजीठ, कृष्णशारिवा, इन्द्रायण और धनियां ये प्रत्येक एक एक पल लेकर कल्क करे यह कल्क और एक आढक दूध इस मुलहठीके क्काथ और तेलमें मिलाकर तैलपाकविधिसे पकावे सिद्ध होनेपर इस तेलको पीनेमें, नस्यमें, अभ्यंगमें और वस्तिकर्ममें प्रयोग करनेसे इससे वातरक्त, पित्त, दाह, पीड़ा और ज्वर ये सब नष्ट होते है ॥ ४१--४४ ॥

सहस्रपाकी बलातैल ।

बलाकल्ककषायाभ्यां तैलं क्षीरसमं पचेत् ।
सहस्रशतपाकं तद्वातासृग्वातरोगनुत् ॥ ४५ ॥
रसायनं मुख्यतममिन्द्रियाणां प्रसादनम् ।
जीवनं बृंहणं स्वर्यं शुक्रासृग्दोषनाशनम् ॥४६

बलाके कल्क और क्काथसे समभाग दूध मिलाकर सहस्रबार पकाया हुआ या सौवार पकायाहुआ तैल वातरक्त और वातरोगोंको नष्ट करता है तथा मुख्यतम रसायन है, सब इंद्रियोंको प्रसादन करनेवाला है, जीवन है, बृंहण है, स्वरवर्द्धक है, तथा पुरुषोंके वीर्यके और स्त्रियोंके रजके दोषोंको नष्ट करनेवाला है॥ ४५ ॥ ४६ ॥

कुपिते मार्गसंरोधान्मेदसो वा कफस्य वा ।
अतिवृद्ध्यानिले शस्तमादौ स्नेहनबृंहणम् ४७।
कृत्वा तत्राढ्यवातोक्तं वातशोणितिकं ततः ।
भेषजं स्नेहनं कुर्याद्यच्च रक्तप्रसादनम् ॥ ४८ ॥

वातरक्तमें यदि मेद अथवा कफकी अतिवृद्धिसे वातका मार्ग रुकजानेसे वातका अतिप्रकोप होजाय तो प्रथम स्नेहन बृंहण करना चाहिये तदनन्तर आढ्यवातकी चिकित्सा करे. इसके अनन्तर वातरक्त रोगको शमन करनेवाली ऐसी स्नेहन औषधका प्रयोग करे जो रक्तको भी प्रसादन करनेवाली हो ॥४७।४८॥

प्राणादिविकृत वातोंकी चिकित्सा ।

प्राणादिकोपे युगपद्यथोद्दिष्टं यथामयम् ।
यथासन्नं च भैषज्यं विकल्प्यं स्याद्यथाबलम् ॥

यदि प्राणादिक वायुयें एक कालमें कुपित होजावें तो प्राणादिकोंसे यथास्थानमें होनेवाले रोगोंकी जिस प्रकार जिस स्थानमें वायुका विकार उत्पन्न हो, उसके बल और स्थान आदिका विचार करके चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४९ ॥

नीते निरामतां सामे स्वेदलङ्घनपाचनैः ।
रूक्षैश्चालेपसेकाद्यैः कुर्यात्केवलवातनुत् ॥५०॥

यदि वायु सामहो तो उसको स्वेदन, लंघन, पाचन, रूक्षण, आलेपन और सेचन आदिसे आमरहित होनेपर अर्थात् सामता निवृत्त होकर केवल वात रहने-

१ हंसपदी–काजरी ।

पर वातनाशक स्नेहादि चिकित्सा करनी चाहिये॥९०

शोषाक्षेपणसङ्कोचस्तम्भस्वपनकम्पनम् ।
हनुस्रंसोऽर्दितं खाञ्ज्यं पाङ्गुल्यं खुडवातता॥९१
सन्धिच्युतिः पक्षवधो मेदोमज्जास्थिगा गदाः।
एते स्थानस्य गाम्भीर्यात्सिध्येयुर्यत्नतो न वा।
तस्माज्जयेन्नवानेतान् बलिनो निरुपद्रवान्॥९२॥

वायुके प्रकोपसे उत्पन्नहुए शोष, आक्षेपक, संकोच, स्तम्भन, कम्पन, हनुःस्रंस, अर्दित, खञ्जता, पांगुल्य, खुड़वात, सन्धिविश्लेष, पक्षवध, तथा अन्य ऐसे ही मेद, मज्जा और अस्थिगतरोग स्थानके गाम्भीर्यसे शीघ्र और श्रेष्ठ यत्न करनेपर जीते भी जा सकते है। किन्तु किञ्चित् उपेक्षा करनेपर ये रोग असाध्य हो सकते है। इस कारण बलवान् पुरुषके उपद्रव रहित इन रोगोंको उत्पन्न होते ही जीतलेना चाहिये। अन्यथा ये असाध्य होजाते है॥ ९१॥९२॥

पित्तादिकोंसे आवृत वातकी चिकित्सा।

वायौ पित्तावृते शीतामुष्णां च बहुशःक्रियाम्॥
व्यत्यासाद् योजयेत्सर्पिर्जीवनीयं च पाययेत्।
धन्वमांसं यवाःशालिर्विरेकःक्षीरवान्मृदुः॥९४॥

यदि वायु पित्तसे आवृत हो तो बार बार उचितरूपसे शीतल और उष्ण चिकित्सा बदल २ कर करनी चाहिये। तथा जीवनीयगणसे सिद्ध कियाहुआ घृत पिलाना चाहिये। इस रोगीको जाङ्गल मांस, यवान्न और शालीचावलोंका भात भोजनकेलिये हितकारी है। तथा इसको दूध मिलाकर मृदुद्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये॥ ९३॥ ९४॥

सक्षीरा बस्तयः क्षीरं पञ्चमूलबलाशृतम् ।
कालेऽनुवासनं तैलं मधुरौषधसाधितम् ॥९५॥

तथा पित्तसे आवृत वातमें पञ्चमूल और बलासे सिद्ध कियेहुए दूधसे युक्त आस्थापन वस्ति और मधुरगणकी औषधियोंसे सिद्ध तैल यथासमय अनुवासनवस्तिमें प्रयोग करना चाहिये॥ ९५॥

यष्टीमधुबलातैलघृतक्षीरैश्च सेचनम् ।
पञ्चमूलकषायेण वारिणा शीतलेन च ॥९६॥

पित्तावृतवातमें मधुयष्टितैल अथवा बलातैल घृत दूध मिलाकर सेचन करना तथा पञ्चमूलके क्वाथ और शीतल जलसे सेचन करना चाहिये॥ ९६॥

कफावृतवातकी चिकित्सा।

कफावृते यवान्नानि जाङ्गला मृगपक्षिणः।
स्वेदास्तीक्ष्णा निरूहाश्च वमनं सविरेचनम्।
पुराणसर्पिस्तैलं च तिलसर्षपजं हितम्॥९७॥

कफावृत वातमें भोजनके लिये यवान्नका सेवन करना अथवा जाङ्गल मृग पक्षियोंका मांस हितकारी होता है। तथा स्वेदनकर्म, तीक्ष्णनिरूहण वस्ति, वमन और विरेचन कराना हितकारी होता है। इसको पुरानाघृत, तिल और सरसोंका तेल भी हितकारी होता है॥ ९७॥

कफपित्तावृतवातचिकित्सा।

संसृष्टे कफपित्ताभ्यां पित्तमादौ विनिर्जयेत्॥९८

यदि कफ और पित्तसे संसृष्ट वायु हो तो इनमें प्रथम पित्तको जीतनेकी चिकित्सा करनी चाहिये ९८

रक्तादिसे आवृतवातकी चिकित्सा।

कारयेद्रक्तसंसृष्टे वाते शोणितिकीं क्रियाम्।
स्वेदाभ्यङ्गरसाः क्षीरं स्नेहो मांसावृते हितः॥९९॥

यदि वायु रक्तसे संसृष्ट हो तो वातरक्तकी चिकित्सा करनी चाहिये।

यदि वायु मांससे आवृत हो तो स्वेदन करना अभ्यंग करना तथा मांसरस, दूध और वातनाशक स्नेहपान करना चाहिये॥ ९९॥

प्रमेहमेदोवातघ्नमाढ्यवाते भिषग्जितम्।
महास्नेहोऽस्थिमज्जस्थे पूर्वोक्तं रेतसावृते॥१००॥

आढ्यवातमें अर्थात् मेदसे आवृतवातमें प्रमेहरोग नाशक, मेदनाशक और वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये।

अस्थिमज्जागत वातमें महास्नेह जो पीछे कह आये है प्रयोग करना चाहिये। वीर्यावृतवातमें वातव्याधिमें कहीहुई शुक्रस्थानगत वातकी चिकित्सा करनी चाहिये॥ १००॥

अन्नावृतवातकी चिकित्सा ।

अन्नावृते पाचनीयं वमनं दीपनं लघु ।
मूत्रावृते मूत्रलानि स्वेदा उत्तरबस्तयः ॥६१॥

अन्नावृतवातमें पाचन द्रव्योंका सेवन कराना, वमन कराना, दीपन और हलके द्रव्योंका सेवन कराना हितकारी होता है ।

मूत्रावृतवातमें मूत्र लानेवाली औषधियोंका प्रयोग करना, स्वेदन करना तथा उत्तरवस्तियोंका प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ ६१ ॥

मलावृतवातकी चिकित्सा ।

एरण्डतैलं वर्चःस्थे बस्तिस्नेहाश्च भेदिनः॥६२॥

विष्ठागतवातमें एरण्ड तैलका पिलाना, वस्तिकर्म करना और मलको साफकरनेवाले या रेचन करनेवाले घृतादिकोंका प्रयोग करना हितकारी होता है ६२

सब प्रकारकी आवृतवातकी चिकित्सा ।

कफपित्ताविरुद्धं यद्यच्च वातानुलोमनम् ।
सर्वस्थानावृते त्वाशु तत्कार्यं मातरिश्वनि६३॥

सब स्थानोंके आवृत वातमें जो कफपित्तसे विरुद्ध न हों और वायुके अनुलोमन करनेवाले हों, ऐसे द्रव्योंका शीघ्रप्रयोग करके वायुको शमन करना चाहिये॥६३

अनभिष्यन्दि च स्निग्धं स्रोतसां शुद्धिकारणम
पाचना बस्तयः प्रायो मधुराः सानुवासनाः ।
प्रसमीक्ष्य बलाधिक्यं मृदु कार्यं विरेचनम्६४
रसायनानां सर्वेषामुपयोगः प्रशस्यते ।
शिलाह्वस्य विशेषेण पयसा शुद्धगुग्गुलोः ।
लेहो वा भार्ङ्गवस्तद्वदेकादशसितासितः ॥६५॥

सम्पूर्ण धातुओंसे आवृतवातोंमें अनभिष्यन्दि, स्निग्ध, स्रोतोंको शुद्ध करनेवाली, पाचनद्रव्योंसे युक्त, आस्थापन वस्तियें करनी चाहिये. ये पाचनवस्तियें मधुरद्रव्यप्रधान होनी चाहिये । तथा मधुरद्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तैलोंसे अनुवासनवस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये । यदि रोगी यथार्थ बलवान् हो तो उसको मृदुविरेचन देना चाहिये तथा सब प्रकारके रसायनयोगोंका प्रयोग करना हितकारी होता है । रसायनोंमें शिलाजीतका प्रयोग अथवा शुद्ध गुग्गुलका प्रयोग दूधके साथ करना विशेष हितकारी है। अथवा भृगुहरीतकीअवलेह या ब्राह्मरसायन अथवा च्यवनप्राशावलेहका विधिवत् सेवन करना अथवा पिप्पलीरसायनका सेवन करना हितकारी होता है ॥६४॥६५

अपाने त्वावृते सर्वं दीपनं ग्राहि भेषजम् ।
वातानुलोमनं कार्यं मूत्राशयविशोधनम्॥६६॥

यदि अपानवायु किसी अन्य दोषसे आवृत हो तो सब चिकित्सा अग्निको दीपन करनेवाली, ग्राही, वायुको अनुलोमन करनेवाली तथा मूत्राशयको विशोधन करनेवाली करनी चाहिये ॥ ६६ ॥

इति संक्षेपतः प्रोक्तमावृतानां चिकित्सितम् ।
प्राणादीनां भिषक्कुर्याद्वितर्क्यं स्वयमेव तत् ६७

इस प्रकार संक्षेपसे अन्य आधानोंसे आवृत वायुओंकी चिकित्सा कथन करदी है । अब प्राणादि वायुओंके आवृत होनेकी विशेष चिकित्साकी कल्पना बुद्धिमान् वैद्यको स्वयं करलेना चाहिये ॥ ६७ ॥

उदानादि आवृत वातोंकी चिकित्सा ।

उदानं योजयेदूर्ध्वमपानं चानुलोमयेत् ।
समानं शमयेद्विद्वांस्त्रिधा व्यानं च योजयेत्६८
प्राणो रक्ष्यश्चतुर्भ्योऽपि तत्स्थितौ देहसंस्थितिः
स्वं स्वं स्थानं नयेदेवं वृतान्वातान्विमार्गगान्६९

उदानवायुको ऊपरकी ओर शुद्धगतिवाला रखना चाहिये । अपान वायुको नीचेकी ओर अनुलोमन करना चाहिये । समानवायुको विद्वान् वैद्य वातघ्न शमन द्रव्योंसे साम्यावस्थामें स्थित रक्खे । व्यानवायुको ऊर्ध्व अधः और मध्यमें शुद्धगति युक्त रखना चाहिये । प्राणवायुकी उदान, अपान, समान और व्यानसेभी विशेष रक्षा करनी चाहिये । क्योंकि देहकी स्थिति प्राणवायुकेही आधीन है । इस प्रकार इन पांचों वायुओंको यदि ये विमार्गगामी या आवृत हों तो इनको शमन आदि क्रियासे इनके अपने २ स्थानोंमें शुद्धगतियुक्त बनाकर रखना चाहिये ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

सर्वं चावरणं पित्तरक्तसंसर्गवर्जितम् ।
रसायनविधानेन लशुनो हन्ति शीलितः॥७०॥

पित्त और रक्तके संसर्गके विना सब प्रकारकी अन्य आवरणयुक्त वायुओंको रसायनविधानसे सेवन किया हुआ लसुनही शमन कर देता है ॥ ७० ॥

पित्तावृते पित्तहरं मरुतश्चानुलोमनम् ॥ ७१ ॥

पित्तसे आवृत वायुमें पित्तको हरनेवाली और वायुको अनुलोमन करनेवाली औषधियें हितकारी होती हैं ॥ ७१ ॥

रक्तावृतेऽपि तद्वच्च खुडोक्तं यच्च भेषजम् ।
रक्तपित्तानिलहरं विविधं च रसायनम् ॥७२॥

रक्तावृतवातमें वातरक्तमें कही हुई औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये । तथा रक्त पित्त और वायुको शमन करनेवाली अनेक प्रकारकी रसायन औषधियोंका सेवन करना हितकारी होता है ॥ ७२ ॥

यथानिदानं निर्दिष्टमिति सम्यक् चिकित्सितम्
आयुर्वेदफलं स्थानमेतत्सद्योर्तिनाशनम्॥७३॥

इस प्रकार यथानिदान वातरोगोंकी यथार्थ चिकित्सा कथन करदी है । इससे वैद्य यथादोष उत्पन्न हुए विकारके कारणादिका विचारकर चिकित्साकी कल्पना करे। जिससे शीघ्र रोग निवृत्त होजावे । क्योंकि आयुर्वेदका फल शीघ्रही दुःखका नाश करनाहै॥ ७३॥

चिकित्सितं हितं पथ्यं प्रायश्चित्तं भिषग्जितम् ।
भेषजं शमनं शस्तं पर्यायैः स्मृतमौषधम्॥७४॥

अ० ॥ २२ ॥ श्लो० ॥ १९६१ ॥

समाप्तमिदं चिकित्सास्थानम् ।

चिकित्सा, हित, पथ्य, प्रायश्चित्त, भिषग्जित, भेषज, शमन और शस्त ये सब औषधके पर्यायवाचक शब्द कहेगये हैं ॥ ७४ ॥

इति श्री वाग्भटाचार्य्य प्रणीताष्टाङ्गहृदय संहितायां चिकित्सास्थाने वातरक्तचिकित्सिते आयुर्वेदाचार्य्यं० शिवशर्म्मवैद्यकृत-शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

अष्टांगहृदयस्यस्य स्थानमेतच्चिकित्सितम् ।
स्वभाषया समायुक्तं लिखितं शिवशर्म्मणा ॥

समाप्तं चेदं चिकित्सास्थानम् ।

अष्टाङ्गहृदयम् ।

शिवदीपिका–भाषाटीकासहितम् ।

कल्पस्थानम् ।
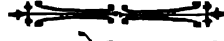
प्रथमोऽध्यायः ।

अथाऽतो वमनकल्पं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

अब हम वमन कल्प अर्थात् वमन करानेकी कल्पनाकी व्याख्या करते हैं । इस प्रकार आत्रेय आदि महर्षियोंने कथन किये ।

वमनमें मैनफलको श्रेष्ठत्व ।

वमने मदनं श्रेष्ठं त्रिवृन्मूलं विरेचने ।
नित्यमन्यस्य तु व्याधिविशेषेण विशिष्टता ॥ १ ॥

वमनद्रव्योंमें सबसे श्रेष्ठ मैनफल होताहै और विरेचन द्रव्योंमें सबसे श्रेष्ठ त्रिवृत (निशोथ) की जड़ होती है । किन्तु व्याधिविशेषमें अन्य जीमूतादिक भी वमन करानेमें श्रेष्ठ मानेजाते है और विरेचनमें भी व्याधिविशेषसे अन्य रेचकद्रव्य प्रधान होते हैं । परन्तु सुखविरेचनके लिये और निर्दोष विरेचनके लिये निशोथ सर्वश्रेष्ठ है और सुखपूर्वक वमन करानेके लिये मैनफलही सर्वश्रेष्ठ है ॥ १ ॥

मैनफलसे वमन करानेकी विधि ।

फलानि तानि पाण्डूनि नचातिहरितान्यपि ।
आदायाऽह्नि प्रशस्तर्क्षे मध्ये ग्रीष्मवसन्तयोः ॥ २ ॥
प्रमृज्य कुशमुत्तोल्यां क्षिप्त्वा बद्ध्वा प्रलेपयेत् ।
गोमयेनानुमुत्तोलीं धान्यमध्येनिधापयेत् ॥ ३ ॥
मृदुभूतानि मध्विष्टगन्धानि कुशवेष्टनात् ।
निष्कृष्य निर्गतेऽष्टाहे शोषयेत्तान्यथातपे ॥ ४ ॥
तेषां ततः सुशुष्काणामुद्धृत्य फलपिप्पलीः ।
दधिमध्वाज्यपललैर्मृदित्वा शोषयेत्पुनः ।
ततः सुगुप्तं संस्थाप्य कार्यकाले प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

मैनफलके उत्तम पकेहुए किञ्चित् पीले और हरे वर्णके फल वसन्त या ग्रीष्मऋतुमें शुभ दिन नक्षत्रमें लेआवे । इन फलोंका गर्दा रज आदि साफ करके एक कुशाकी डलियामें डालकर उसको कुशासे लपेट कर बन्द करके इसके ऊपर गोबरका लेप कर लेवे । फिर इसको किसी धान्यकी राशी (अनाजका ढेर) में दबाकर रख देवे । जब ये आठ दिनके अनन्तर नरम हो जावें और इनमेंसे मधुके समान अच्छी गन्ध आने लगे तो इनको निकाल कर इनके ऊपरसे गोबर और कुशा आदि दूरकर इनको सूर्य्यकी धूपमें सुखा लेवे । जब ये ठीक सूख जावें तो इनके ऊपरका छिलका दूर करके फलोंके अन्दरकी बीजोंसे बनीहुई पिप्पलियोंको निकाल लेवे । तदनन्तर इन बीजोंको दही, मधु, घृत और पललमें मिलाकर खूब मर्दन करे । फिर इन स्वच्छ बीजोंको सुखा लेवे । फिर इनको किसी अच्छे पात्रमें डालकर ढक कर रख देवे और जब वमनादिमें इनके प्रयोग करनेकी आवश्यकता हो तब लेकर प्रयोग करे ॥ २–५ ॥

मैनफलसे वमनकी कल्पनायें ।

अथाऽऽदाय ततो मात्रां जर्जरीकृत्य वासयेत् ।
शर्वरीं मधुयष्ट्या वा कोविदारस्य वा जले ॥ ६ ॥
कर्बुदारस्य बिम्ब्या वा नीपस्य विदुलस्य वा ।
शणपुष्प्याःसदापुष्प्याः प्रत्यक्पुष्प्युदकेऽथवा
ततः पिबेत्कषायं तं प्रातर्मृदितगालितम् ।
सूत्रोदितेन विधिना साधु तेन तथा वमेत् ॥ ८ ॥
प्रच्छर्दयेद्विशेषेण यावत्पित्तस्य दर्शनम् ॥ ९ ॥

जब किसी रोगीको वमन कराना हो तो देश कालानुसार मात्रा कल्पना कर उस मात्राके अनुसार इन मैनफलके बीजोंको लेकर और कूटकर मुलहठी अथवा कोविदारके क्वाथमें भिगोकर एक दिन पहिले

रात्रीके समय रख देवे। अथवा इसीप्रकार करबुदारके जलमें या बिम्बीके क्काथमें अथवा नीपके क्काथमें या विदुलके क्काथमें या शणपुष्पीके क्काथमें अथवा सदापुष्पीके क्काथमें या अपामार्गके क्काथमें भिगोकर रक्खे। फिर प्रातःकाल इस क्काथको मर्दन करके वस्त्रमें छान लेवे। फिर यह क्काथ सूत्रस्थानमें कहीहुई वमन विधिके अनुसार जिस रोगीको वमन कराना हो उसको पिलावे और सूत्रस्थानोक्तविधिसे वमन करावे। वमन कराना कफके ज्वरमें प्रतिश्यायमें, गुल्मरोगमें, अन्तर्विद्रधिमें विशेषरूपसे हितकारी होता है। वमनमें प्रथम अन्नादि मल, फिर कफ और अन्तमें पित्त निकले तो श्रेष्ठ वमन हुआ जानना चाहिये। इस कारण पित्तके दिखाई देने तक प्रच्छर्दन करना चाहिये॥ ६-९॥

फलपिप्पलिचूर्णं वा क्काथेन स्वेन भावितम्।
त्रिभागत्रिफलाचूर्णं कोविदारादिवारिणा॥१०।
पिबेज्ज्वरारुचिष्वेवं ग्रन्थ्यपच्यर्बुदोदरी।
पित्ते कफस्थानगते जीमूतादिजलेन तत्॥११॥

अथवा मैनफलके बीजोंके चूर्णको मैनफलके क्काथमें भावना देवे। फिर यह चूर्ण एक भाग और त्रिफलेका चूर्ण तीन भाग मिलाकर कोविदार (कचनार) आदिके क्काथके साथ ज्वर, अरुचि, ग्रन्थि, अपचि, अर्बुद और उदररोगमें पिलाकर वमन करावे। यदि पित्त कफके स्थानमें गया हुआ हो तो जीमूत (कडवी तोरी) आदिके क्काथके साथ इसी चूर्णको पिलाकर वमन कराना चाहिये॥ १०॥ ११॥

हृद्दाहेऽधोस्रपित्ते च क्षीरं तत्पिप्पलीशृतम्।
क्षैरेयीं वा॥ १२॥–

हृदयके दाहमें और रक्तपित्तमें यदि वमन कराना हो तो मैनफलके बीजोंका चूर्ण मिलाकर सिद्ध किया-हुआ दूध पिलाकर अथवा मैनफलके बीजोंके चूर्णयुक्त दूधकी पेया पिला कर वमन कराना चाहिये औषधिसे दूध सिद्ध करनेकी विधि इस प्रकार है कि, द्रव्यसे आठ गुणा दूध और दूधसे चार गुना जल मिलाकर पकावे जब दूधमात्र शेष रहे तो औषध सिद्ध दूध जानना॥ १२॥

–कफच्छर्दिप्रसेकतमकेषु तु।
दध्युत्तरं वा दधि वा तच्छृतक्षीरसम्भवम्॥१३॥

कफकी छर्दिमें या मुखसे लार गिरनेमें अथवा तमकश्वासमें यदि वमन कराना हो तो मैनफलसे सिद्ध किये हुए दूधसे बनाईहुई दधिकी मलाई अथवा दही खिलाकर वमन कराना चाहिये अथवा मैनफलचूर्णसे सिद्धकियेहुए दूधकी मलाई खिलाकर वमन कराना चाहिये॥ १३॥

फलादिक्काथकल्काभ्यां सिद्धं तत्सिद्धदुग्धजम्
सर्पिःकफाभिभूतेऽग्नौ शुष्यद्देहे च वामनम् १४

जिस रोगीकी जठराग्नि कफसे अभिभूत हो और देह सूखती हो, उसको मैनफल और जीमूतक आदिके क्काथ तथा कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा मैनफल आदिसे सिद्ध कियेहुए दूधसे निकालाहुआ घृत पिलाकर वमन कराना चाहिये॥ १४॥

स्वरसं फलमज्ज्ञो वा भल्लातकविधिशृतम्।
आदर्वीलेपनात्सिद्धं लीढ्वा प्रच्छर्दयेत्सुखम्।
तं लेहं भक्ष्यभोज्येषु तत्कषायांश्च योजयेत्१५

मैनफलकी मज्जा और स्वरसको भल्लातकावलेहकी विधिसे पकाकर अवलेह बनावे। जब यह लेह कड़छीसे लिपटने लगे तब इसको उतार लेवे। इस अवलेहके चाटनेसे सुखपूर्वक वमन हो जाती है। तथा इस मैनफलके अवलेहको अथवा मैनफलके क्काथको भक्ष्य भोज्य आदिकोंमें मिलाकर खानेसे सुखपूर्वक वमन हो जाती है॥ १५॥

वत्सकादिप्रतीवापः कषायः फलमज्जजः।
निम्बार्कान्यतरक्काथसमायुक्तो नियच्छति।
बद्धमूलानपि व्याधीन्सर्वान्सन्तर्पणोद्भवान्१६

मैनफलकी मज्जाके क्काथमें वत्सकादि गणका चूर्ण मिलाकर अथवा निम्ब या आकका क्काथ मिलाकर पीनेसे सन्तर्पणसे उत्पन्न हुई बहुत दिनकी बद्ध मूल व्याधियेंभी नष्ट हो जाती हैं॥ १६॥

राठपुष्पफलश्लक्ष्णचूर्णैर्माल्यं सुरूक्षितम्।
वमेन्मण्डरसादीनां तृप्तो जिघ्रन् सुखं सुखी१७

मैनफलके फल और फूलोंका बहुत बारीक चूर्ण

बनालेवे। यह चूर्ण प्रातःकालके खिलेहुए फूलोंपर बुरकावे या फूलोंकी मालापर बुरकावे. फिर ये फूल या फूलमाला उस मनुष्यको देवे। जिसके दोष उत्क्लेशित हों और उसने मण्डरस आदि तृप्तिपर्यन्त भोजन किया हुआ हो इस फूलमालाके गन्धसे सुकुमार-प्रकृति पुरुषको सुखपूर्वक वमन हो जाता है ॥ १७ ॥

एवमेव फलाभावे कल्प्यं पुष्पं शलाटु वा॥१८॥

यदि मैनफलके फल न मिलें तो मैनफलके फूलों अथवा मैनफलके ताजे कच्चे फलोंसे भी मैनफलके बीजोंके समानही कचनारके क्वाथादिके साथ सेवन करनेसे वमन कराना चाहिये ॥ १८ ॥

जीमूतकल्प।

जीमूताद्याश्च फलवत्–

मैनफलके समान ही जीमूत (बन्दाल डोडे) का प्रयोग वमनार्थ किया जाता है।

–जीमूतं तु विशेषतः।
प्रयोक्तव्यं ज्वरश्वासकासहिध्मादिरोगिणाम् ॥

जीमूत विशेषकर ज्वर, श्वास, कास, हिचकी आदि रोगवालोंको वमनार्थ प्रयोग कराना चाहिये १९

पयःपुष्पेऽस्य निर्वृत्ते फले पेया पयस्कृता२०॥
लोमशे क्षीरसन्तानं दध्युत्तरमलोमशे।
शृते पयसि दध्यम्लं जाते हरितपाण्डुके॥२१॥
आसुत्य वारुणीमण्डं पिबेन्मृदितगालितम्।
कफादरोचके कासे पाण्डुत्वे राजयक्ष्मणि ॥२२

जीमूतके फूलोंसे सिद्धकियाहुआ दूध वमनार्थ प्रयोग करना चाहिये। जीमूतके फलोंसे बनाईहुई दूधकी पेया अथवा जीमूतके लोमयुक्त फलोंसे सिद्धकियेहुए दूधकी मलाई अथवा लोमरहित जीमूतके फलोंसे सिद्ध कियेहुए दूधके दहीकी मलाई प्रयोग करनेसे अथवा जीमूतके किञ्चित् हरे पीले फलोंसे सिद्ध कियेहुए दूधको खट्टी दही अथवा जीमूतके फलोंका, चूर्ण वारुणीमण्डमें मिलाकर उसको मलकर और छानकर पीनेसे सुखपूर्वक वमन होता है. यह जीमूतका प्रयोग कफके अरोचक, खांसी, पाण्डुरोग और राजयक्ष्मामें विशेष हितकारी है ॥ २०--२२ ॥

कडवीतुम्बी और कोशातकी कल्प।

इयं च कल्पना कार्या तुम्बीकोशातकीष्वपि॥

यही कल्पना कड़वी तुम्बी और कड़वी तोरीके पुष्प फलोंसे करना चाहिये ॥ २३ ॥

पर्यागतानां शुष्काणां फलानां वेणिजन्मनाम्।
चूर्णस्य पयसा शुक्तिं वातपित्तार्दितःपिबेत् २४

वातपित्तसे पीड़ित मनुष्यको यदि वमन कराना हो तो यथार्थ परिपक्व होकर सूखेहुए देवदालीके फलोंका चूर्ण दो कर्ष प्रमाण दूधमें मिलाकर पिलावे ॥ २४ ॥

द्वे वा त्रीण्यपि वाऽऽपोथ्य क्वाथे तिक्तोत्तमस्यवा
आरग्वधादिनवकादासुत्यान्यतमस्य वा।
विमृद्य पूतं तं क्वाथं पित्तश्लेष्मज्वरी पिबेत् २५।

जीमूतके दो या तीन फलोंको कूटकर नीमके क्वाथमें अथवा आरग्वधादिगणकी किसी औषधिके क्वाथमें मलकर और छानकर पित्तकफके ज्वरमें वमनार्थ पीना चाहिये ॥ २५ ॥

जीमूतचूर्णं कल्कं वा पिबेच्छीतेन वारिणा।
ज्वरे पैत्ते कवोष्णेन कफवातात्कफादपि॥२६॥

जीमूतका चूर्ण या कल्क पित्तज्वरमें शीतल जलके साथ पीना चाहिये और कफवातमें अथवा केवल कफके ज्वरमें उष्णजलसे पीना चाहिये ॥ २६ ॥

कासश्वासविषच्छर्दिज्वरार्ते कफकर्शिते।
इक्ष्वाकुर्वमने शस्तः प्रताम्यति च मानवे २७॥

जो मनुष्य खांसी, श्वास, विष, छर्दि और ज्वरसे पीड़ित हो और कफसे पीडित हो तथा तमकश्वास आदिसे ससकता हो उस मनुष्यको इक्ष्वाकुसे वमन कराना चाहिये। इक्ष्वाकु--कड़वी तोरीकी गोल फलवाली, जाती है ॥ २७ ॥

फलपुष्पविहीनस्य प्रवालैस्तस्य साधितम्।
पित्तश्लेष्मज्वरे क्षीरं पित्तोद्रिक्ते प्रयोजयेत्२८॥

पित्तकफके ज्वरमें, पित्ताधिक ज्वरमें, इक्ष्वाकुके फलपुष्परहित छोटी बेलके कोमलपत्रोंसे सिद्ध किया-हुआ दूध पिलाकर वमन करना चाहिये ॥ २८ ॥

इक्ष्वाकुफलकल्प ।

हृतमध्ये फले जीर्णे स्थितं क्षीरं यदा दधि ।
स्यात्तदा कफजे कासश्वासे वम्यं च पाययेत्२९

इक्ष्वाकुके पुराने फलका मध्यभाग निकालकर उस फलमें रक्खाहुआ दूध या दही पिलाकर कफजनित श्वासकास रोगमें वमन कराना चाहिये ॥ २९ ॥

मस्तुना वा फलान्मध्यं पाण्डुकुष्ठविषार्दितः ।
तेन तक्रं विपक्वं वा पिबेत्समधुसैन्धवम् ॥३०॥

इक्ष्वाकुके फलका मध्यभाग दहीके मस्तुमें मिलाकर पाण्डुरोगी, कुष्ठरोगी अथवा विषार्दितको वमनार्थ पिलाना चाहिये । अथवा इक्ष्वाकुके फलके मध्यभागको तक्रमें मिलाकर पकावे । इस तक्रको छानकर इसमें मधु और सैन्धानमक डालकर पिलाना चाहिये ॥ ३० ॥

भावयित्वाऽजदुग्धेन बीजं तेनैव वा पिबेत् ।
विषगुल्मोदरग्रन्थिगण्डेषु श्लीपदेषु च ॥३१ ॥

विषरोगमें, गुल्मरोगमे, उदररोगमें, ग्रन्थिरोगमें, गण्डरोगमें और श्लीपदरागमें यदि वमन कराना हो तो जीमूतके बीजोंको पीसकर बकरीके दूधमें भावना देकर बकरीके दूधके साथ ही वमन करना चाहिये॥ ३१

सक्तुभिर्वा पिबेन्मन्थं तुम्बीस्वरसभावितैः ।
कफोद्भवे ज्वरे कासे गलरोगेष्वरोचके ॥ ३२ ॥

कड़वी तूम्बीके रसमें भावना दियेहुए जवोंके सत्तुओंका मन्थ बनाकर कफके ज्वरमे, खांसीमे, गलरोगमें और अरुचिमें वमनार्थ पिलाना चाहिये ॥ ३२ ॥

गुल्मे ज्वरे प्रसक्ते च कल्कं मांसरसैः पिबेत् ।
नरः साधु वमत्येवं न च दौर्बल्यमश्नुते॥ ३३॥

यदि पुराने ज्वर या गुल्ममें वमन कराना हो तो कड़वी तूम्बीके बीजोंके कल्कको मांसरसके साथ पीवे । इससे सुखपूर्वक वमन हो जाती है और दुर्बलता भी नहीं होती ॥ ३३ ॥

तुंब्याः फलरसैः शुष्कैः सपुष्पैरवचूर्णितम् ।
छर्दयेन्माल्यमाघ्राय गन्धसंपत्सुखोचितः ३४॥

कड़वी तूम्बीके फलोंके रसमें और पुष्पोंके रसमें बार २ भावना दिये हुए कड़वी तूम्बीके बीज और फूलोंके चूर्णको पुष्पोंकी मालापर बुरकाकर वमन कराने योग्य बनायेहुए पुरुषको सुंघानेसे सुखपूर्वक वमन हो जाती है ॥ ३४ ॥

कासगुल्मोदरगरे वाते श्लेष्माशयस्थिते ।
कफे च कण्ठवक्त्रस्थे कफसञ्चयजेषु च ।
धामार्गवो गदेष्विष्टः स्थिरेषु च महत्सु च॥३५॥

खांसी, गुल्म, उदररोग, गर, कफके स्थानमें गई हुई वातमें कण्ठ और मुखमें हुए कफके सञ्चयमें तथा कफजनित स्थिर महान् रोगोंमें धामार्गव (कडवी घिया) से वमन कराना श्रेष्ठ होता है ॥ ३५ ॥

जीवकर्षभकौ वीरा कपिकच्छूः शतावरी ।
काकोली श्रावणी मेदा महामेदा मधूलिका३६॥
तद्रजोभिः पृथग्लेहा धामार्गवरजोऽन्विताः ।
कासे हृदयदाहे च शस्ता मधुसिताद्रुताः ३७॥

जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोली, कौञ्चके बीजोंकी गिरी, सतावर, काकोली, गोरखमुण्डी, मेदा, महामेदा और मूर्वा इनमेंसे किसी एकके चूर्णको मधु और मिसरीमें मिलाकर उसीमें धामार्गवका चूर्ण मिलाकर चाटे तो यह अवलेह खांसी और हृदयकी दाहमें विशेष हितकारी है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

धामार्गवकल्प ।

ते सुखाम्भोनुपानाःस्युःपित्तोष्मसहिते कफे३८

इनही जीवकादिकोंके चूर्णको धामार्गवका चूर्ण मिलाकर सुखोष्ण जलसे पित्तकी ऊष्मायुक्त कफके विकारमें पिलाना चाहिये ॥ ३८ ॥

धान्यतुम्बरुयूषेण कल्कस्तस्य विषापहः३९॥

धामार्गवके बीजोंका कल्क धनिये और नैपालीधनियेके क्वाथमें मिलाकर पीनेसे विषविकार दूर होता है ॥ ३९ ॥

बिंब्याः पुनर्नवाया वा कासमर्दस्य वा रसे ।
एकं धामार्गवं द्वे वा मानसे मृदितं पिबेत् ।
तच्छृतक्षीरजं सर्पिः साधितं वा फलादिभिः४०

बिंबीके क्वाथमें या पुनर्नवाके क्वाथमें अथवा कसौंदीके रसमें एक या दो धामार्गवके फलोंको मलकर पीवे तो उन्मादादि मनका विकार शमन होता है ।

अथवा धामार्गव या मैनफल आदिके कल्क काथादिसे सिद्ध दूध या घृत मानसरोगोंमें वमनार्थ पिलाना चाहिये ॥ ४० ॥

क्ष्वेडोऽतिकटुतीक्ष्णोष्णः प्रगाढेषु प्रशस्यते । कुष्ठपाण्ड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु ॥ ४१ ॥

कड़वी तोरी अतिकटु, तीक्ष्ण और उष्ण होनेसे पुराने और स्थिर कुष्ठ, पाण्डुरोग, प्लीहा, शोथ, गुल्म और गरविकारोंमें वमनार्थ प्रयोग करना चाहिये॥ ४१

पृथक् फलादिषट्कस्य काथे मांसमनूपजम् । कोशातक्या समं सिद्धं तद्रसं लवणं पिबेत् ४२

मैनफल आदि छः ६ फलोंके काथमें अनूपसंचारी जीवोंका मांस और कोशातकी तोरी समभाग लेकर पकावे फिर इस रसको लवण मिलाकर पीवे ॥ ४२॥

फलादिपिप्पलीतुल्यं सिद्धं क्ष्वेडरसेऽथवा । क्ष्वेडकाथे पिबेत्सिद्धं मिश्रमिक्षुरसेन वा ॥४३॥

अथवा मैनफल आदिके बीजोंके समानभाग आनूपमांस तोरीके रसमें पकावे अथवा तोरीके काथमें इक्षुका रस मिलाकर पीवे तो कुष्ठादि रोगोंमें यथार्थ वमन होकर दोषोंकी शान्ति होती है ॥ ४३ ॥

कुटज कल्प ।

कुटजं सुकुमारेषु पित्तरक्तकफोदये । ज्वरे विसर्पे हृद्रोगे खुडे कुष्ठे च पूजितम्॥४४॥

जो मनुष्य मैनफल इक्ष्वाकु आदिके काथादिकोंको सहन न कर सके उनको इन्द्रजौके बीजोंके कल्कादिसे वमन करावे, यह कुटजका कल्प वमन पित्त कफकी अधिकतावाले ज्वरमें, विसर्पमें, हृद्रोगमें, वातरक्त और कुष्ठमें सुकुमार पुरुषोंके लिये हितकारी है ॥ ४४॥

सर्षपाणां मधूकानां तोयेन लवणस्य वा । पाययेत्कौटजं बीजं युक्तं कृशरयाऽथवा॥४५॥ सप्ताहं वार्कदुग्धाक्तं तच्चूर्णं पाययेत्पृथक् । फलजीमूतकेक्ष्वाकुजीवन्तीजीवकोदकैः ॥४६॥

कुटजके बीजोंका चूर्ण सरसोंके काथसे, महुवेके काथसे या नमकके जलसे अथवा खिचड़ीके साथ खानेसे वमन हो जाता है । अथवा एक सप्ताह तक आकके दूधसे गीला कियाहुआ कुटजबीजोंका चूर्ण मैनफल, जीमूतक, इक्ष्वाकु, जीवंती और जीवक इनके काथसे खिलावे तो सुखपूर्वक वमन होजाता है ४५॥४६

वमनौषधमुख्यानामिति कल्पदिगीरिता । बीजेनानेन मतिमानन्यान्यपि च कल्पयेत्४७

इस कल्पमें मुख्य २ वामक औषधोंका दिग्दर्शन करादिया है । बुद्धिमान् वैद्यको इस बीजसे और वामक औषधोंकी भी ऐसेही कल्पना करनी चाहिये ॥४७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यकृताष्टाङ्गहृदये कल्पस्थाने पं० शिवशर्म्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां वमनकल्पं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो विरेचनकल्पं व्याख्यास्यामः ।

अब हम विरेचनकी कल्पनाको कथन करते हैं।

निशोथके गुण ।

कषाया मधुरा रूक्षा विपाके कटुका त्रिवृत् । कफपित्तप्रशमनी रौक्ष्याच्चानिलकोपनी ॥ १ ॥

त्रिवृत् (निशोथ) रसमें कषैली और मधुर होती है । विपाकमें कटु है और रूक्षगुणवाली है । इस कारण कफ और पित्तको शमन करनेवाली है किन्तु रूक्ष होनेसे वायुको प्रकुपित करती है ॥ १ ॥

सेदानीमौषधैर्युक्ता वातपित्तकफापहैः । कल्पवैशेष्यमासाद्य जायते सर्वरोगजित् ॥२॥

यह निशोथ इन गुणोंवाली होती हुई भी वात पित्त कफनाशक औषधियोंके साथ कल्पविशेषको प्राप्त होकर अर्थात् वातपित्तकफनाशक द्रव्योंके साथ मिलाई जानेसे योगवाही होकर सम्पूर्ण रोगोंको जीतनेवाली होती है ॥ २ ॥

दो प्रकारकी निशोथ ।

द्विधाख्यातं च तन्मूलं श्यामं श्यामारुणं त्रिवृत् । त्रिवृदाख्यं वरतरं निरपायं सुखं तयोः । सुकुमारे शिशौ वृद्धे मृदुकोष्ठे च तद्धितम् ॥३॥

उस निशोथकी जड़ दो प्रकारकी होती है—एक श्यामवर्णकी दूसरी श्याम और लाल वर्णकी । इन

दोनोंमें लाल वर्णकी निशोथ बहुत श्रेष्ठ होती है, क्योंकि वह किसी प्रकारकी तकलीफ नहीं देती और इससे सुखपूर्वक विरेचन होता है। यह सुकुमार स्वभाववाले बालक वृद्ध और मृदुकोष्ठवालोंके लिये परम हितकारी है॥ ३॥

मूर्च्छासंमोहहृत्कण्ठकर्षणक्षपणप्रदम्॥ ४॥
श्यामं तीक्ष्णाशुकारित्वादतस्तदपि शस्यते।
क्रूरे कोष्ठे बहौ दोषे क्लेशक्षामिणि चातुरे॥ ५॥

काली निशोथ तीक्ष्ण और आशुकारी होनेसे सुकुमार पुरुषोंको मूर्च्छा, मोह, हृदय और कण्ठका कर्षण तथा क्षीणता करनेवाली होती है परन्तु क्रूरकोष्ठ वालोंके अधिक दोषवालोंके लिये और क्लेशको सहन करनेकी शक्तिवाले बलवान् रोगियोंके लिये श्रेष्ठ मानी गई है॥ ४॥ ५॥

श्रेष्ठ निशोथ।

गम्भीरानुगतं श्लक्ष्णमतिर्यग्विसृतं च यत्।
गृहीत्वा विसृजेत्काष्ठं त्वचं शुष्कां निधापयेत्॥६॥

जो निशोथकी जड़ पृथ्वीमें गहरी गईहुई हो, चिकनी और सीधी हो, ऐसी जड़को शुद्ध भूमिमेंसे निकालकर उस जड़के अन्दरकी लकड़ीको फेंक देवे और जड़की त्वचाको सुखाकर रख लेवे॥ ६॥

निशोथके विरेचन योग।

अथ काले तु तच्चूर्णं किञ्चिन्नागरसैन्धवम्।
वातामये पिबेदम्लैः पित्ते साज्यसितामधु॥ ७॥
क्षीरद्राक्षेक्षुकाश्मर्यस्वादुस्कन्धवरारसैः।
कफामये पीलुरसमूत्रमद्याम्लकाञ्जिकैः।
पञ्चकोलादिचूर्णैश्च युक्त्या युक्तं कफापहैः॥८॥

जब किसीको विरेचन करानेकी आवश्यकता हो तब इस निशोथका चूर्ण बनाकर उसमें किञ्चित् सोंठ और सेन्धानमक मिलावे। यह चूर्ण वायुके विकारोंमें विरेचन करानेकेलिये काञ्जी आदि अम्ल द्रव्योंके साथ पीना चाहिये। पित्तके विकारोंमें विरेचनार्थ घृत, मिश्री और मधुमें मिलाकर खावे। इसके ऊपर दूध, गन्नेका रस, द्राक्षाका रस, काश्मरीका रस अथवा मधुरगणका रस पीवे तो विरेचन होकर पित्तविकार शमन होते हैं। कफके विकारोंमें पीलूके रस, गोमूत्र, मद्य अथवा खट्टी काञ्जीमें पञ्चकोलका चूर्ण मिलाकर उसके साथ पीना चाहिये। अथवा अन्य कफनाशक द्रव्योंके साथ सेवन करे तो विरेचन करके कफके रोगोंको शमन करता है॥ ७॥ ८॥

त्रिवृत्कल्ककषायेण साधितःससितो हिमः।
मधुत्रिजातसंयुक्तो लेहो हृद्यं विरेचनम्॥ ९॥

निशोथके कल्क और क्वाथसे मिसरी मिलाकर सिद्ध कियाहुआ निशोथका अवलेह ठण्ढा होनेपर मधु और त्रिजात मिलाकर चाटे। इससे हृदयके लिये हितकारी विरेचन होता है॥ ९॥

अजगन्धा तवक्षीरी विदारी शर्करा त्रिवृत्॥१०॥
चूर्णितं मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वा साधु विरिच्यते।
सन्निपातज्वरस्तम्भपिपासादाहपीडितः॥११॥

अजवायन, वंसलोचन, विदारीकन्द, मिसरी और निशोथ इनका चूर्ण करके मधु और शहदमें मिलाकर चाटे तो सुखपूर्वक विरेचन होजाता है। यह विरेचन सन्निपातज्वर, स्तम्भ, प्यास और दाहसे पीड़ित मनुष्यको विशेष हितकारी है॥ १०॥ ११॥

लिम्पेदन्तस्त्रिवृतया द्विधा कृत्वेक्षुगण्डिकाः।
एकीकृत्य पचेत्स्विन्नं पुटपाकेन भक्षयेत्॥१२॥

एक गन्नेके टुकड़ेको बीचमेंसे चीरकर दो भाग करे। उसके अन्दर निशोथका कल्क भरे। फिर गन्नेके दोनों टुकड़ोंको जोड़कर धागेसे बान्ध देवे। इस पर मिट्टी लगाकर पुटपाक करे। फिर इसको निकालकर भक्षण करे तो सुखपूर्वक विरेचन हो जाता है॥१२॥

त्वगेलाभ्यां समा नीली तैस्त्रिवृत्तैश्च शर्करा।
चूर्णं फलरसक्षौद्रसक्तुभिस्तर्पणं पिबेत्॥१३॥
वातपित्तकफोत्थेषु रोगेष्वल्पानलेषु च।
नरेषु सुकुमारेषु निरपायं विरेचनम्॥ १४॥

दालचीनी एक भाग, इलायची एक भाग, नीली (कालादाना) दो भाग, निशोथ चार भाग और खाण्ड आठ भाग इनका चूर्ण द्राक्षा आदिके फलोंके रसमें मधु और सत्तू मिलाकर बनाएहुए तर्पणमें

मिलाकर पीवे । इससे सुखपूर्वक विरेचन हो जाताहै । यह विरेचन वात, पित्त और कफके रोगोंमें हितकारी । तथा मन्दाग्निवालोंके लिये और सुकुमारस्वभाववालोंके लिये यह निर्दोष विरेचन है॥ १३॥ १४॥

विडंगादियोग ।

विडङ्गतण्डुलवरायावशूककणास्त्रिवृत् ।
सर्वेभ्योऽर्धेन तल्लीढं मध्वाज्येन गुडेन वा॥१५॥
गुल्मं प्लीहोदरं कासं हलीमकमरोचकम् ।
कफवातकृतांश्चान्यान्परिमार्ष्टि गदान्बहून्१६॥

छिलका रहित वायविड़ंग, हरड़, बहेडे, आमले, जवाखार और पीपल इन सबको समानभाग लेकर चूर्ण करे इस चूर्णसे आधा भाग इसमें निशोथका चूर्ण मिलावे । फिर इस चूर्णको मधु और घृतके साथ अथवा गुड़के साथ खावे तो विरेचन होकर इससे गुल्म, प्लीहा, उदररोग, खांसी, हलीमक, अरोचक और अन्य कफवातसे उत्पन्नहुए बहुतसे रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

कल्याण गुड ।

विडङ्गपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्यचित्रकम् ।
मरिचेन्द्रयवाजाजीपिप्पलीहस्तिपिप्पलीः १७॥
दीप्यकं पञ्चलवणं चूर्णितं कार्षिकं पृथक् ।
तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौ चाष्टपलोन्मितौ ॥१८॥
धात्रीफलरसप्रस्थांस्त्रीन् गुडार्धतुलान्वितान् ।
पक्त्वा मृद्वग्निना खादेत्ततो मात्रामयन्त्रणः १९
कुष्ठार्शःकामलागुल्ममेहोदरभगन्दरान् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगांश्च हन्ति पुंसवनश्च सः ।
गुडःकल्याणको नाम सर्वेष्वृतुषु यौगिकः २०।

वायविड़ंग, पीपलामूल, हरड, बहेडे, आमले, धनिया, चित्रक, मरिच, इन्द्रजौ, जीरा, पीपल, गजपीपल, अजवायन और पाचों लवण ये प्रत्येक अलग २ एक एक पल लेवे निशोथ आठ पल लेवे. इनका बारीक चूर्ण बनालेवे । फिर तिलतैल आठ पल, आमलेके फलोंका रस तीन प्रस्थ और गुड़ आधा तुला (२॥ सेर) इनको मिलाकर मृदुअग्निसे पकावे । सिद्ध होनेपर मात्रानुसार खावे । इसके सेवनमें कोई विशेष नियन्त्रण नहीं है इसके सेवनसे कुष्ठ, अर्श, कामला, गुल्म, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर, ग्रहणीरोग और पाण्डुरोग नष्ट होते है । यह कल्याण गुड़ पुंसवन अर्थात् गर्भसे पुत्र उत्पन्न करनेवाला है तथा सब ऋतुओंमें सेवन किया जा सकता है ॥ १७–२० ॥

शुण्ठ्यादियोग ।

व्योषत्रिजातकाम्भोदकृमिघ्नामलकैस्त्रिवृत् ।
सर्वैः समा समसिता क्षौद्रेण गुटिकाःकृताः २१
मूत्रकृच्छ्रज्वरच्छर्दिकासशोषभ्रमक्षये ।
तापे पाण्ड्वामयेऽल्पेऽग्नौ शस्ताःसर्वविषेषु च २२

सोंठ, मिरच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागरमोथा बायविडंग और आमले इन सबको समानभाग लेवे । इन सबके समान निशोथ मिलाकर चूर्ण करे । इस चूर्णके समान इसमें मिसरी मिलावे । फिर मधु मिलाकर इसकी गोलियां बनावे । ये गोलियां मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, छर्दि, खांसी, शोष, भ्रम, क्षय, शरीरका अधिक तपना, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि और सब प्रकारके विषविकारोंको शमन करनेके लिये श्रेष्ठ होती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

वर्षाकालका विरेचन ।

त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् ।
क्षौद्रद्राक्षारसोपेतं वर्षाकाले विरेचनम् ॥ २३ ॥

निशोथ, इन्द्रजौ, पीपल और सोंठ इनका चूर्ण मधु और द्राक्षारसमें मिलाकर पीवे तो सुखपूर्वक विरेचन हो । यह विरेचन वर्षाकालके लिये श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

शरद ऋतुका विरेचन ।

त्रिवृद्दुरालभामुस्ताशर्करोदीच्यचन्दनम् ।
द्राक्षाम्बुना सयष्ट्याह्वं सातलं जलदात्यये २४

निशोथ, जवासा, नागरमोथा, खाण्ड, सुगन्धबाला, चन्दन, मुलहठी और सातला मिलाकर द्राक्षारसके साथ पीवे । यह विरेचन शरद ऋतुके लिये श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥

हेमन्तका विरेचन ।

त्रिवृतां चित्रकं पाठामजाजीं सरलं वचाम् ।
स्वर्णक्षीरीं च हेमन्ते चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत्२५

निशोथ, चित्रक, पाठा, जीरा, सरलकाष्ठ, बच और स्वर्णक्षीरीकी जड़ इनका चूर्ण सुखोष्ण जलके साथ हेमन्त ऋतुमें विरेचन करानेके लिये पीना चाहिये ॥ २५ ॥

ग्रीष्मका विरेचन ।

त्रिवृता शर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् २६

निशोथके चूर्णमें समान भाग खाण्ड मिलाकर ग्रीष्मकालमें विरेचन कराना चाहिये ॥ २६ ॥

सब ऋतुओंमें निशोथके विरेचन ।

त्रिवृत्त्रायन्तिहपुषासातलाकटुरोहिणीः ।
स्वर्णक्षीरीं च संचूर्ण्य गोमूत्रे भावयेत् त्र्यहम् ।
एष सर्वर्तुको योगः स्निग्धानां मलदोषहृत् २७

निशोथ, त्रायमाणा, हाऊबेर, सातला, कटुकी और निशोथकी जड़ इन सबका चूर्णकर इस चूर्णको तीन दिन गोमूत्रमें भावना देवे। यह चूर्ण स्निग्ध पुरुषोंको विरेचन करानेके लिये सब ऋतुओंमें ही श्रेष्ठ है॥ २७॥

श्यामात्रिवृद्दुरालम्भाहस्तिपिप्पलिवत्सकम् २८
नीलिनीकटुकामुस्ताश्रेष्ठायुक्तं सुचूर्णितम् ।
रसाज्योष्णाम्बुभिःशस्तं रूक्षाणामपि सर्वदा ॥

काली निशोथ, जवासा, गजपीपल, इन्द्रजौ, नीलिनीके बीज, कुटकी, नागरमोथे और त्रिफला इनका चूर्ण करे यह चूर्ण मांसरस, घृत या गरम जलके साथ सब ऋतुओंमें विरेचनार्थ देना चाहिये । यह विरेचन रूक्षपुरुषोंके लिये भी हितकारी है ॥ २८ ॥ २९ ॥

अमलतासके विरेचनयोग ।

ज्वरहृद्रोगवातासृगुदावर्तादिरोगिषु ।
राजवृक्षोऽधिकं पथ्यो मृदुर्मधुरशीतलः॥ ३०॥

ज्वर, हृद्रोग, वातरक्त और उदावर्त आदि रोगोंमें मृदु, मधुर और शीतल होनेसे राजवृक्ष ('अमलतास)-से विरेचन कराना विशेष हितकर होता है ॥ ३० ॥

बाले वृद्धे क्षते क्षीणे सुकुमारे च मानवे ।
योज्यो मृदूनपायित्वाद्विशेषाच्चतुरङ्गुलः ॥ ३१॥

बालक, वृद्ध, क्षत, क्षीण और सुकुमार मनुष्योंके लिये मृदु और अनपायी (निर्दोष) होनेसे अमलतासका विरेचन सर्वश्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥

फलकाले परिणतं फलं तस्य समाहरेत् ।
तेषां गुणवतां भारं सिकतासु विनिक्षिपेत् ३२॥
सप्तरात्रात्समुद्धृत्य शोषयेच्चातपे ततः ।
ततो मज्जानमुद्धृत्य शुचौ पात्रे निधापयेत् ३३

जिस समय अमलतासकी फलियें यथार्थ पकचुकी हों उन गुणवाली फलियोंके भारको रेतमें डालकर रक्खे । फिर सात दिनके बाद निकालकर धूपमें सुखा देवे । तदनन्तर इन फलोंकी मज्जा निकालकर उत्तम पात्रमें रख लेवे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

द्राक्षारसेन तं दद्याद्दाहोदावर्तपीडिते ।
चतुर्वर्षे सुखं बाले यावद्द्वादशवार्षिके ॥ ३४ ॥

उस अमलतासकी मज्जा (गुदे) को द्राक्षारसमें मिलाकर दाह और उदावर्तकी निवृत्तिके लिये पिलाना चाहिये । यह विरेचन ४ वर्षसे १२ वर्ष तककी अवस्थावाले बालकके लिये विशेष सुखकारी है ॥ ३४ ॥

चतुरङ्गुलमज्ज्ञो वा कषायं पाययेद्धिमम् ।
दधिमण्डसुरामण्डधात्रीफलरसैः पृथक् ।
सौवीरकेण वा युक्तं कल्केन त्रैवृतेन वा ॥ ३५॥

अमलतासका गुदा लेकर उसका बनाया हुआ शीतकषाय दधिमंडमें मिलाकर अथवा सुरामंडमें मिलाकर अथवा कांजीमें मिलाकर पिलाना चाहिये । अथवा इसमें निशोथका कल्क मिलाकर पिलावे तो सुखपूर्वक विरेचन हो जाता है ॥ ३५ ॥

दन्तीकषाये तन्मज्ज्ञो गुडं जीर्णं च निक्षिपेत् ।
तमरिष्टं स्थितं मासं पाययेत् पक्षमेव वा॥ ३६॥

दन्तीके क्वाथमें अमलतासकी मज्जा और पुराना गुड़ डालकर पात्रका मुख बन्द करके अरिष्टकी विधिसे एक महीना या पन्द्रह दिन रखनेके बाद पिलावे तो इससे सुखपूर्वक विरेचन होता है ॥ ३६ ॥

तिल्वकके विरेचन योग ।

त्वचं तिल्वकमूलस्य त्यक्त्वाभ्यन्तरवल्कलम् ।
विशोष्य चूर्णयित्वा च द्वौ भागौ गालयेत्ततः ३७
रोध्रस्यैव कषायेण तृतीयं तेन भावयेत् ।
कषाये दशमूलस्य तं भागं भावितं पुनः॥ ३८॥

शुष्कं चूर्णं पुनः कृत्वा ततः पाणितलं पिबेत् । मस्तुमूत्रसुरामण्डकोलधात्रीफलाम्बुभिः ॥ ३९

तिल्वककी जड़का छिलका लेकर उसके ऊपरका भाग उतारकर भीतरका शुद्ध छिलका सुखाकर चूर्ण करे इस चूर्णको कपड़ेमें छानकर इसके तीन भाग करे । इनमेंसे दो भागोंको तिल्वकलोधके काथकी भावना देवे और एक भागको दशमूलके काथकी भावना देवे । फिर इनको मिलाकर और सुखाकर चूर्ण करे । इस चूर्णको एक कर्षमात्र मस्तुके साथ अथवा गोमूत्रके साथ या सुरामण्डके साथ अथवा बेरके काथके साथ या आमलेके रसके साथ पीवे तो सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ ३७--३९ ॥

तिल्वकस्य कषायेण कल्केन च सशर्करः । सघृतः साधितो लेहः स च श्रेष्ठं विरेचनम् ४०

तिल्वकके काथ और कल्कसे खाण्ड मिलाकर सिद्ध कियाहुआ अवलेह खानेसे श्रेष्ठ विरेचन होजाता है ॥ ४० ॥

थोहरके विरेचन ।

सुधा भिनत्ति दोषाणां महान्तमपि सञ्चयम् ४१ आश्वेव कोष्ठविभ्रंशान्नैव तां कल्पयेदतः । मृदौ कोष्ठेऽबले बाले स्थविरे दीर्घरोगिणि ४२

सुधा (थोहर) दोषोंके महान् सञ्चयको भी भेदनकर देता है क्योंकि यह शीघ्र ही कोष्ठको विभ्रंश कर देता है। इस कारण इसका विरेचन मृदु कोष्ठवाले, निर्बल, बालक, बूढ़े और दीर्घकालके रोगसे निर्बल हुए मनुष्यको नहीं देना चाहिये ॥४१॥४२॥

कल्प्या गुल्मोदरगरत्वग्रोगमधुमेहिषु । पाण्डौ दूषीविषे शोफे दोषविभ्रान्तचेतसि । सा श्रेष्ठा कण्टकैस्तीक्ष्णैर्बहुभिश्च समाचिता ४३

थोहरका विरेचन गुल्म, उदररोग, गर, त्वचाके रोग, मधुमेह, पाण्डुरोग, दूषीविष, सूजन और दोषोंसे विभ्रान्तचित्तवाले रोगीको देना हितकारी होता है । थोहर तीक्ष्ण काण्टोंसे युक्त डण्डेवाला श्रेष्ठ होता है ॥ ४३ ॥

द्विवर्षां वा त्रिवर्षां वा शिशिरान्ते विशेषतः ४४॥ तां पाटयित्वा शस्त्रेण क्षीरमुद्धारयेत्ततः । बिल्वादीनां बृहत्योर्वा क्काथेन सममेकशः ४५ ॥ मिश्रयित्वा सुधाक्षीरं ततोऽङ्गारेषु शोषयेत् । पिबेत्कृत्वा तु गुटिकां मस्तुमूत्रसुरादिभिः ४६

थोहरका वृक्ष जो दो या तीन वर्षका हो उसको शिशिर ऋतुके अन्तमें विशेषरूपसे अति आवश्यकतामें हरसमय शस्त्रद्वारा थोहरमें चीरा देकर उसमेंसे दूध निकाल लेवे । इस दूधको बिल्वादिके क्काथमें अथवा दोनों कटेलियोंके समभाग क्काथमें मिलाकर अग्निके ऊपर पकनेके लिये रख देवे । जब द्रवभाग सूख जावे तो इसकी गोलियें बनालेवे. इसकी एक छोटीसी गोली दहीके जल अथवा गोमूत्र या मद्य आदि किसी उचित पदार्थके साथ पीवे तो तीक्ष्ण विरेचन होजाता है ॥ ४४--४६ ॥

त्रिवृतादि अनेकयोग ।

त्रिवृतादीन्नव वरान् स्वर्णक्षीरीं ससातलाम् । सप्ताहं स्नुक्पयःपीतान् रसेनाज्येन वा पिबेत्॥

निशोथ, काली निशोथ, अमलतास, तिल्वक, थोहर, शंखिनी, सातला, दन्ती और द्रवन्ती तथा स्वर्णक्षीरी, त्रिफला और सातला इनमेंसे किसी एकको थोहरके दूधमें सात बार भावना देकर मांसरसके साथ या घृतके साथ पीवे तो तीक्ष्ण विरेचन हो जाता है॥४७॥

तद्वद्व्योषोत्तमाकुम्भनिकुम्भादीन्गुडाम्बुना ४८

इसी प्रकार त्रिकटु, त्रिफला, निशोथ और दन्ती आदिकोंको थोहरके दूधमें भावना देकर गुड़के शर्बतके साथ पीवे तो उत्तम विरेचन होजाता है ॥ ४८ ॥

शातला और शंखिनीके विरेचन योग ।

नातिशुष्कं फलं ग्राह्यं शंखिन्या निस्तुषीकृतम् सप्तलायास्तथा मूलं ते तु तीक्ष्णविकाषिणी। श्लेष्मामयोदरगरश्वयथ्वादिषु कल्पयेत् ॥ ४९॥

शंखिनीके किञ्चित् सूखेहुए फल लेकर उनका छिलका दूर करके इन फलोंका चूर्ण शर्बत आदिके साथ लेनेसे तीक्ष्ण विरेचन होजाता है। ऐसे ही सातलाकी जड़ भी तीक्ष्ण विरेचनके करनेवाली है । यह तीक्ष्ण विरेचन बलवान् पुरुषको कफके रोगोंमें उदर-

रोगमें, गरविकारमें और सूजन आदिमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४९ ॥

अक्षमात्रं तयोः पिण्डं मदिरालवणान्वितम् । हृद्रोगे वातकफजे तद्वद्गुल्मे प्रयोजयेत् ॥ ५०॥

शंखिनीके बीज और सातलाकी जड़के कल्कको मदिरा और लवणमें मिलाकर एक कर्षप्रमाण खावे। इसका विरेचन वातकफके हृद्रोगमें और गुल्मरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ५० ॥

दन्तीके विरेचनयोग ।

दन्तिदन्तस्थिरं स्थूलं मूलं दन्तीद्रवन्तिजम् । आताम्रश्यावतीक्ष्णोष्णमाशुकारि विकाशि च गुरु प्रकोपि वातस्य पित्तश्लेष्मविलायनम्॥५१॥

हाथीके दाँतके समान स्थिर-मूलवाली दन्ती और द्रवन्ती लेनी चाहिये यह दन्ती और द्रवन्ती (दोनों प्रकारके अजयपाल वृक्षकी जडें) किञ्चित् ताम्रवर्णकी और श्यामवर्णकी अच्छी होती हैं। ये तीक्ष्ण, उष्ण, आशुकारी और विकाशी होती है। इनसे कियाहुआ रेचन पित्त और कफको नष्ट करता है तथा वायुका अधिक प्रकोप करता है ॥ ५१ ॥

तत्क्षौद्रपिप्पलीलिप्तं स्वेद्यं मृद्दर्भवेष्टितम्॥५२॥ शोष्यंमन्दातपेऽग्न्यर्कौहतौ ह्यस्य विकाशिताम् तात्पिबेन्मस्तुमदिरातक्रपीलुरसासवैः ॥ ५३ ॥ अभिष्यन्नतनुर्गुल्मी प्रमेही जठरी गरी । गोमृगाजरसैःपाण्डुःकृमिकोष्ठी भगन्दरी।५४॥

दन्ती या द्रवन्तीको शहद और पीपलसे लिप्त करके इसके ऊपर कुशाके पत्र लपेट देवे उसके ऊपर गीली मिट्टीका लेप करके पुटपाक विधिसे पकावे। फिर निकाल कर हलकी धूपमें सुखावे ऐसा करनेसे अग्नि और सूर्यके तापके द्वारा इसका विकाशी (शीघ्र विषके समान स्रोतोंको विकासित करनेवाला विषैला भाग) नष्ट होजाता है। इस प्रकारकी शुद्ध दन्तीके कल्क, चूर्ण या क्वाथको मस्तु, मद्य, तक्र, पीलुका रस और आसव इनमेंसे किसी एकके साथ पीवे तो यथार्थ विरेचन होजाता है। यह विरेचन क्लेदितदेहवाला, गुल्मरोगी, प्रमेही अथवा जठररोगी या गररोगवालेको हितकारी है। तथा पाण्डुरोग, कृमिकोष्ठवाले और भगन्दररोगवालेको मृग या बकरीके मांसरसके साथ दन्ती या द्रवन्तीका कल्क देकर विरेचन कराना चाहिये ५२-५४

सिद्धं तत्क्वाथकल्काभ्यां दशमूलरसेन च । विसर्पविद्रध्यलजीकक्षादाहान् जयेद्घृतम्।५५

दन्ती द्रवन्तीका कल्क और क्वाथ तथा दशमूलका क्वाथ मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत विसर्प, विद्रधि, अलजी और कक्षादाहको जीतनेवाला होता है ॥५५

तैलं तु गुल्ममेहार्शोविबन्धकफमारुतान् ।

यदि इन्हीं द्रव्योंसे तैल सिद्ध किया जावे। तो यह तैल गुल्म, प्रमेह, अर्श, विबन्ध, कफ और वायुको शमन करता है।

महास्नेहःशकृच्छुक्रवातसङ्गानिलव्यथाः ॥५६॥

यदि इन्हीं द्रव्योंसे चतुःस्नेह सिद्ध कियाजावे तो यह महास्नेह मलावरोध, शुक्रावरोध और वातावरोध आदि वायुकी पीड़ाओंको शमन करता है ॥ ५६ ॥

त्रिवृतादि नौ द्रव्योंको श्रेष्ठत्व ।

विरेचने मुख्यतमा नवैते त्रिवृदादयः ।

इस प्रकार विरेचन कार्यमें निशोथ, काली निशोथ, अमलतास, तिल्वक, थोहर, शंखिनी, सातला, दन्ती और द्रवन्ती ये नौ द्रव्य विशेषतया मुख्य और श्रेष्ठ माने गये हैं।

हरीतकीके विरेचनयोग ।

हरीतकीमपि त्रिवृद्विधानेनोपकल्पयेत् ॥५७॥

विरेचनकर्ममें निशोथके समान ही हरीतकीके फलकी भी कल्पना करनी चाहिये ॥ ५७ ॥

गुडस्याष्टपले पथ्या विंशतिः स्यात्पलं पलम्। दन्तीचित्रकयोःकर्षौ पिप्पलीत्रिवृतोर्दश॥५८॥ प्रकल्प्य मोदकानेवं दशमे दशमेऽहनि । उष्णाम्भोऽनु पिबेत्खादेत्तान्सर्वान्वि-धिनाऽमुना ॥ ५९॥ एते निःपरिहाराः स्युःसर्वव्याधिनिबर्हणाः । विशेषाद्ग्रहणीपाण्डुकण्डूकोठार्शसां हिताः ६०

गुड़ आठ पल, उत्तम हरड़ें २०, दन्ती एक पल, चित्रक एक पल, पीपल एक कर्ष, निशोथ एक कर्ष,

इन सबको मिलाकर दस मोदक बनावे । एक एक मोदक दसवें दसवें दिन गरम जलके साथ खावे । इस प्रकार ये दस मोदक इस विधिसे खा लिये जावें तो सब रोगोंको दूर करदेते हैं। इनमें विशेष कोई परहेज नहीं है। विशेषकर ये मोदक ग्रहणीरोग,पाण्डु-रोग, कण्डू, कोठ और अलसरोगमें हितकारी हैं ॥६०॥

विरेचनका मिथ्यायोग ।

अल्पस्यापि महार्थत्वं प्रभूतस्याल्पकर्मताम् ।
कुर्यात्संश्लेषविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः ॥६१॥

विरेचनमें कभी २ अल्पमात्रा प्रयोग करने पर भी पित्तका काल होनेके कारण मृदुकोष्ठ होनेके कारण या अनुपान विशेषकी शक्तिसे विशेष रेचन होजाते हैं। या विरेचनका अतियोग होजाता है। इसी प्रकार कभी २ विशेष विरेचन करनेवाला योग रूक्षकोष्ठ या शीतादिके कारण अथवा अनुपानके योगसे हीनवीर्य होजानेके कारण विरेचनके हीनयोगको करता है। इसलिये विरेचनयोगोको संश्लेष, विश्लेष, काल, संस्कार और युक्ति आदि विचार कर ऐसी रीतिसे प्रयोग करे जिससे विरेचनका अतियोग या हीनयोग अथवा मिथ्यायोग न होकर यथार्थयोग होवे और रोगकी निवृत्ति हो जाय ॥ ६१ ॥

त्वक्केसराम्रातकदाडिमैला-
सितोपलामाक्षिकमातुलुङ्गैः ।
मद्यैश्च तैस्तैश्च मनोनुकूलै-
र्युक्तानि देयानि विरेचनानि ॥ ६२ ॥

विरेचनोंके लिये दोष दूष्य काल आदि विचार कर विरेचन द्रव्यको दालचीनी, नागकेशर, आम्रातक, अनार, इलायची, मिसरी, मधु, बिजौरा नीम्बू या मद्य आदि जो रोगीके मनके अनुकूल हों और रोगमें हितकारी हों उनके साथ औषधयोगकी कल्पना करके विरेचन कराना चाहिये ॥ ६२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां कल्पस्थाने विरेचनकल्पे आयुर्वेदाचार्य पं०शिवशर्म्मकृतशिव-दीपिकाभाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिं-
व्याख्यास्यामः ।

अब हम वमन विरेचनमें होनेवाली व्यापत्तियोंको और उनके साधनके उपायोंको कथन करते हैं।

वमनके अयोगमें कर्तव्य ।

वमनं मृदुकोष्ठेन क्षुद्वताऽल्पकफेन वा ।
अतितीक्ष्णहिमस्तोकमजीर्णे दुर्बलेन वा ॥ १॥
पीतं प्रयात्यधस्तस्मिन्निष्टहानिर्मलोदयः ।
वामयेत्तं पुनः स्निग्धं स्मरन् पूर्वमतिक्रमम् ॥२॥

वमनकी औषधी यदि मृदुकोष्ठवालेको क्षुधावा-लेको, जिसके शरीरमें अल्प कफ हो, अजीर्णमें या दुर्बल रोगीको अतितीक्ष्ण औषधि या ठण्ढी औषधी अथवा अल्पमात्रामें पिलाईहुई औषधी अधोमार्गसे निकल जाती है और वमन यथार्थ नहीं होती ऐसा होनेसे जिस कार्यके लिये वमन कराई गई थी एक तो वह रोग निवृत्त नहीं होता, दूसरे मलका प्रकोप हो जाता है। इस कारण ऐसे रोगीको जिसको ऊपर लिखे हेतुओंसे वमनका अयोग हो गया हो उसको फिर स्नेहन और स्वेदन करके पहली बारकी अव्यवस्थाको दृष्टिमें रखतेहुए फिर उचित रीतिपर वमन करावे ॥ १ ॥ २ ॥

विरेचनके अयोगमें कर्तव्य ।

अजीर्णिनः श्लेष्मवतो व्रजत्यूर्ध्वं विरेचनम् ।
अतितीक्ष्णोष्णलवणमहृद्यमतिभूरि वा ।
तत्र पूर्वोदिता व्यापत्सिद्धिश्च न तथापि चेत् ॥३॥
आशये तिष्ठति ततस्तृतीयं नावचारयेत् ।
अन्यत्र सात्म्याद्धृद्याद्वा भेषजान्निरपायतः ॥४॥

जिस मनुष्यके शरीरमें कफकी अधिकता हो और अजीर्णसे युक्त हो उसको यदि विरेचनकी औषधी अति तीक्ष्ण अति उष्ण अधिक लवण करके युक्त या अधिक अरुचिके करनेवाली, जिसको देखने या पीनेसे ग्लानि उत्पन्न होजावे और जो मात्रामें बहुत हो ऐसी औषधि पिलाई जावे तो उससे विरे

चनका योग न होकर वह औषधि वमन द्वारा निकल जाती है। ऐसी अवस्थामें उसको पुनः स्नेहन स्वेदन करानेके अनन्तर पहली अवस्थाको ध्यानमें रखते हुए फिर विरेचनकारक औषधी पिलाकर विरेचन करावे। यदि दूसरी बार यथार्थ औषधि यथार्थ मात्रामें पिलाई जानेपर भी आमाशयमें न रहकर वमन हो जावे तो ऐसे पुरुषको फिर तीसरी बार वहीं औषध नहीं पिलानी चाहिये। यदि कोई औषध सात्म्य हो और वमनादि करनेवाली न हो ऐसी हितकारी औषधके अतिरिक्त फिर विरेचनकी औषधि उसको नहीं देनी चाहिये। (किन्तु आगे लिखे निरूहणादि क्रमके करनेके अनन्तर अनुकूल औषधि द्वारा विरेचन करादेना चाहिये) ॥४॥

अस्निग्धास्विन्नदेहस्य पुराणं रूक्षमौषधम्।
दोषानुत्क्लेश्य निर्हर्तुमशक्तं जनयेद्गदान्॥ ५ ॥
विभ्रंशं श्वयथुं हिध्मं तमसो दर्शनं तृषम्।
पिण्डिकोद्वेष्टनं कण्डूमूर्वोः सादं विवर्णताम्॥६॥

जिस पुरुषकी देहको स्नेहन और स्वेदन न कराया गया हो ऐसे पुरुषको पुरानी और रूक्ष औषध यदि विरेचनके लिये दीजावे तो वह औषध दोषोंको उत्क्लेशित तो कर देती है परन्तु दोषोंको यथार्थ निकालनेमें असमर्थ होनेसे शरीर विभ्रंश, शोथ, हिचकी, नेत्रोंके आगे अन्धकारका आना, तृषा, पिण्डियोंमें उद्वेष्टन, खुजली, ऊरुस्थलोंका शून्य होना और विवर्णता आदि रोगोंको उत्पन्न कर देती है ॥५॥६॥

स्निग्धस्विन्नस्यवाऽत्यल्पं दीप्ताग्नेर्जीर्णमौषधम्
शीतैर्वा स्तब्धमामे वा तमुत्क्लेश्य हरेन्मलान्।
तानेव जनयेद्रोगानयोगः सर्व एव सः॥ ७ ॥

यदि यथार्थ स्नेहन और स्वेदन किये हुए दीप्ताग्निवाले पुरुषको अल्पमात्रामें अथवा पुरानी औषध देदी जावे अथवा शीतसे स्तब्ध या आमसे स्तब्ध हुई देहमें औषध देवे तो वह औषधि दोषोंको उत्क्लेशित करके जब मलोंको हरण करती है तब यथार्थ दोष निकालनेमें समर्थ न होनेके कारण उन्हीं विभ्रंश आदि दोषोंको उत्पन्न कर देती है। इस प्रकारके विरेचनको हीनयोग या अयोग कहते हैं ॥ ७ ॥

अयोगकी चिकित्सा।

तं तैललवणाभ्यक्तं स्विन्नं प्रस्तरशङ्करैः।
निरूढं जाङ्गलरसैर्भोजयित्वाऽनुवासयेत् ॥ ८ ॥
फलमागधिकादारुसिद्धतैलेन मात्रया।
स्निग्धं वातहरैः स्नेहैः पुनस्तीक्ष्णेन शोधयेत्९०

ऐसे पुरुषको शरीरपर तैल और लवणका अभ्यङ्ग करके उसको प्रस्तरस्वेद या शङ्करस्वेदसे स्वेदन करे. तदनन्तर निरूहणवस्ति देकर जांगलमांस-रसादिकोंका भोजन करावे। फिर मैनफल, पीपल और देवदारुसे सिद्ध कियेहुए तैलके द्वारा अनुवासनवस्ति करावे। इसके अनन्तर वातनाशक तैलोंसे स्निग्ध कर फिर इसको तीक्ष्ण विरेचन देकर शोधन करे ॥ ८॥९ ॥

मैनफलकी बत्तीका प्रयोग।

बहुदोषस्य रूक्षस्य मन्दाग्नेरल्पमौषधम्।
सोदावर्तस्य चोत्क्लेश्य दोषान्मार्गं निरुध्य तैः॥
भृशमाध्मापयेन्नाभिं पृष्ठपार्श्वशिरोरुजम्।
श्वासं विण्मूत्रवातानां सङ्गं कुर्याच्च दारुणम्११
अभ्यङ्गस्वेदवर्त्यादिसनिरूहानुवासनम्।
उदावर्तहरं सर्वं कर्माऽऽध्मातस्य शस्यते॥१२॥

जिस रूक्षमनुष्यके शरीरमें दोषोंका सञ्चय बहुत हो उसको मन्दाग्नि और उदावर्त भी हों, ऐसे पुरुषको अल्पवीर्य या अल्पमात्रावाली विरेचन औषधि देनेसे वह औषध दोषोंको उत्क्लेशित कर और उन दोषोंसे मार्गको रोक कर नाभिस्थानमें अत्यन्त आध्मान कर देती है। तथा पार्श्व, पीठ और शिरमें पीड़ा, श्वास, विष्ठा, मूत्र और अपानवायुका दारुणरूपसे रुक जाना आदि विकारोंको उत्पन्न कर देती है। ऐसी अवस्थामें इस रोगीको वातनाशक तैलोंसे अभ्यङ्ग और स्वेदन करनेके अनन्तर मलद्वारसे मैनफल आदिसे बनायीहुई बत्तीका प्रयोग करे तथा निरूहण और अनुवासन बस्तियोंका प्रयोग करे। एवं आध्मानसे पीड़ित मनुष्यके लिये उदावर्तरोगनाशक सम्पूर्ण कर्म हितकारी होते है ॥ १०-१२॥

पंचमूलादि यवागू।

पञ्चमूलयवक्षारवचाभूतिकसैन्धवैः।
यवागूः सुकृता शूलविबन्धानाहनाशनी॥१३॥

पञ्चमूल, जवाखार, बच, भूतिकतृण और सेन्धा-लवण इनसे विधिपूर्वक बनायीहुई यवागू शूल, विबन्ध और आनाहको नष्ट करनेवाली होती है ॥ १३ ॥

पिप्पलीदाडिमक्षारहिङ्गुशुण्ठ्यम्लवेतसान् १४
ससैन्धवान्पिबेन्मद्यैः सर्पिषोष्णोदकेन वा ।
प्रवाहिकापरिस्रावे वेदनापरिकर्तने ॥ १५ ॥

पीपल, दाड़िम, जवाखार, हींग, सोंठ, अम्लवेत और सेन्धानमक इनका चूर्ण मद्यके साथ अथवा घृतके साथ या गरम जलके साथ पीवे तो प्रवाहिका, आमका स्राव, पीड़ा और परिकर्तिका ये सब रोग दूर होते है ॥ १४ ॥ १५ ॥

वमनके वेग रोकनेके दोष ।

पीतौषधस्य वेगानां निग्रहान्मारुतादयः ।
कुपिता हृदयं गत्वा घोरं कुर्वन्ति हृद्ग्रहम् १६
हिध्मापार्श्वरुजाकासदैन्यलालाक्षिविभ्रमैः ।
जिह्वां खादति निःसंज्ञो दन्तान्कटकटाययन्१७

जो मनुष्य वमनकी औषधि पीनेके अनन्तर वमनके आयेहुए वेगको रोक लेता है उसके शरीरमें वातादिदोष कुपित होकर हृदयमें जाकर घोर हृद्-ग्रहको उत्पन्न कर देते है । तथा हिचकी, पार्श्वपीड़ा, खांसी, दीनता, मुखसे लारका गिरना, नेत्रोंमें विभ्र-मका होना यह लक्षण होते है और यह रोगी संज्ञा रहित होनेके कारण अपने दाँतोंको कटकटाता हुआ जीभको खाता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

उसकी चिकित्सा ।

न गच्छेद्विभ्रमं तत्र वामयेदाशु तं भिषक् ।
मधुरैः पित्तमूर्च्छार्तं कटुभिः कफमूर्च्छितम् १८
पाचनीयैस्ततश्चास्य दोषशेषं विपाचयेत् ॥
कायाऽग्निं च बलं चास्य क्रमेणाऽभिप्रवर्धयेत्

ऐसे रोगीको देखकर वैद्य भ्रममें न पड़े किन्तु इसको शीघ्र वमन करा देवे । यदि रोगी पित्तकी मूर्छासे मूर्छित हो तो मधुरद्रव्योंसे वमन करावे. यदि कफसे मूर्छित हो तो कटुद्रव्योंसे वमन करावे । तदनन्तर शेष रहेहुए दोषको पाचन करनेवाले द्रव्योंसे पाचन करे । फिर क्रमसे इसके शरीर जठराग्नि और बलको बढ़ावे ॥ १८ ॥ १९ ॥

वमनके अतियोगकी चिकित्सा ।

पवनेनाऽतिवमतो हृदयं यस्य पीड्यते ।
तस्मै स्निग्धाम्ललवणं दद्यात्पित्तकफेऽन्यथा ।

जिस रोगीको वमन बहुत अधिक होनेके कारण अर्थात् वमनका अतियोग होजानेके कारण वायुसे हृदय पीडित होजाय; ऐसे पुरुषको स्निग्ध, अम्ल और लवण-द्रव्य देकर चिकित्सा करे । यदि पित्त और कफका प्रकोप हो तो मधुर शीतल आदि द्रव्योंसे शमन करना चाहिये ॥ २० ॥

विरेचनका वेग रोकनेके दोष ।

पीतौषधस्य वेगानां विग्रहेण कफेन वा ।
रुद्धोऽतिवा विशुद्धस्य गृह्णात्यङ्गानि मारुतः२१
स्तम्भवेपथुनिस्तोदसादोद्वेष्टार्तिभेदनैः ।
तत्र वातहरं सर्वं स्नेहस्वेदादि शस्यते ॥ २२ ॥

जो मनुष्य विरेचनकी औषधी पीकर आयेहुए विरे-चनके वेगको रोक लेता है अथवा कफसे औषधका वेग रुक जावे अथवा औषधिके तीक्ष्ण वेगसे अति शुद्धि हो जावे तो ऐसी अवस्थामें वायु प्रकुपित होकर स्तम्भ, कम्प, निस्तोद, अंगसाद, पिण्डकोद्वेष्टन, शूल और भेदन इन उपद्रवोंको उत्पन्न कर देता है । ऐसी अवस्थामें सम्पूर्ण वातनाशक स्नेहस्वेदादि क्रिया करनी चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

विरेचनका अतियोग ।

बहुतीक्ष्णं क्षुधार्तस्य मृदुकोष्ठस्य भेषजम् ।
हृत्वाऽऽशु विट्पित्तकफान्धातूनास्रावये-
-द्द्रवान् ॥ २३ ॥

यदि मृदुकोष्ठ और क्षुधासे पीड़ित मनुष्यको बहुत तीक्ष्ण विरेचनकी औषधी पिला दीजावे तो वह औ-षधी शीघ्र ही विष्ठा, पित्त और कफको हरण करनेके अनन्तर शरीरकी द्रवधातुओंका स्राव करने लगती है । इसको विरेचनका अतियोग कहते हैं ॥ २३ ॥

अतियोगकी चिकित्सा ।

तत्रातियोगे मधुरैः शेषमौषधमुल्लिखेत् ।
योज्योऽतिवमने रेको विरेके वमनं मृदु ॥२४॥

विरेचनके अतियोगमें शेष रहेहुए विरेचन द्रव्यको मधुरद्रव्योंसे शान्त करके निकालना चाहिये अथवा

वमनके अतियोगमें मृदुविरेचन और विरेचनके अति योगमें मृदुवमन कराना हितकारी होता है ॥२४ ॥

परिषेकावगाहाद्यैः सुशीतैः स्तम्भयेच्च तम् ।
अञ्जनं चन्दनोशीरमज्जासृक्शर्करोदकम् ।
लाजचूर्णैःपिबेन्मन्थमतियोगहरं परम्॥ २५ ॥

अथवा शीतल परिषेचन और शीतल जलावगाहन आदिसे विरेचनके अतियोगको स्तम्भन करना चाहिये । रसौत, चन्दन, खस, बेलकी गिरी, लालचन्दन और मिसरी इनके जलमें धानकी खील मिलाकर बनाया हुआ मन्थ पिलानेसे विरेचनका अति योग नष्ट हो जाता है ॥ २४॥२५ ॥

वमनस्यातियोगे तु शीताम्बुपरिषेचितः ।
पिबेत्फलरसैर्मन्थं सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ २६ ॥
सोद्गारायां भृशं छर्द्यां मूर्वाया धान्यमुस्तयोः ।
समधूकाञ्जनं चूर्णं लेहयेन्मधुसंयुतम् ॥ २७ ॥

वमनका अतियोग होनेपर शीतल जलसे परिषेचन करना तथा अनार फलके रस युक्त घृत, मधु और मिसरी मिला हुआ शीतल मन्थ पिलाना हितकारी होता है । यदि उद्गारके साथ बहुत वमन होती हो तो मूर्वा, धनियां, नागरमोथा, महुवा और अञ्जनका चूर्ण बना कर मधु मिलाकर चटावे ॥ २६॥२७ ॥

वमतोऽन्तःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहाः ।
स्निग्धाम्ललवणा हृद्या यूषमांसरसा हिताः२८
फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः
निःसृतां तु तिलद्राक्षाकल्कलिप्तां प्रवेशयेत्२९

यदि वमनकरते २ मनुष्यकी जिह्वा भीतरको प्रवेश करजावे तो उसको हृदयको प्रियलगनेवाले चिकने अम्ल और लवण रस युक्त यूष और मांस रसोंका मुखमें कवल धारण करना चाहिये । तथा नीम्बू और अनार आदि खट्टे फलोंको खाना चाहिये । यदि वमन करते हुए जीभ बाहरको निकल आवे तो जीभके ऊपर तिल और द्राक्षाका कल्क लेप करके जीभको हाथसे अन्दर प्रवेश करदेना चाहिये ॥ २८॥२९ ॥

वाग्ग्रहानिलरोगेषु घृतमांसोपसाधिताम् ।
यवागूं तनुकां दद्यात्स्नेहस्वेदौ च कालवित्३०

यदि वमनके अतियोगसे वाणी रुक गयी हो तो वातरोगोंमें कहीहुई वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई घृत मांससे बनायीहुई थोडी२पतली यवागू पिलाना चाहिये तथा दोष कालके जाननेवाला वैद्य स्नेहन और स्वेदनका प्रयोग करे ॥ ३० ॥

अतियोगाच्च भेषज्यं जीवं हरति शोणितम् ।
तज्जीवादानमित्युक्तमादत्ते जीवितं यतः ।३१॥

यदि विरेचनके अतियोगसे औषधि जीवसंज्ञक रक्तका हरण करे तो उसको जीवादान कहते हैं क्योंकि यह रक्तजीवनको धारण करता है इस लिये इसको जीवादान कहा जाता है ॥ ३१ ॥

शुने काकाय वा दद्यात्तेनान्नमसृजा सह ।
भुक्ते तस्मिन् वदेज्जीवमभुक्ते पित्तमादिशेत् ३२
शुक्लं वा भावितं वस्त्रमावानं कोष्णवारिणा ।
प्रक्षालितं विवर्णं स्यात्पित्ते शुद्धं तु शोणिते३३

वमन या विरेचनके अतियोगमें निकले हुए रक्तकी इस प्रकार परीक्षा करनी चाहिये । उस रक्तको अन्नमें लगा कर कुत्ते या कागके आगे रक्खे. यदि वह इस रक्तवाले अन्नको खाजावे तो जीवसंज्ञक रक्त जानना चाहिये । यदि वह न खावे तो वह रक्तपित्त जानना चाहिये । अथवा इस शोधनके अतियोगसे निकले हुए रक्तमें श्वेतवस्त्रको भिगो कर इस वस्त्रको गरम पानीमें धोकर निकाल लेवे यदि वस्त्रका वर्ण विवर्ण हो तो वह रक्त रक्तपित्तका जानना. यदि वस्त्र दाग-रहित स्वच्छ हो जावे तो जीवसंज्ञक रक्त जानना चाहिये ॥ ३२॥३३ ॥

जीवरक्तकी रक्षा ।

तृष्णामूर्छामदार्तस्य कुर्यादामरणं क्रियाम् ।
रक्तपित्तातिसारघ्नीं तस्याशु प्राणरक्षणीम् ३४।
मृगगोमहिषाजानां सद्यस्कं जीवतामसृक् ।
पिबेज्जीवाभिसन्धानं जीवं तद्ध्याशु यच्छति ।
तदेव दर्भमृदितं रक्तं बस्तौ निषेचयेत् ॥३५॥

विरेचनके अतियोगसे तृषा, मूर्छा और मदसे पीड़ित तथा मरणोन्मुख पुरुषकी शीघ्र प्राणोंकी रक्षा करनेवाली तथा रक्तपित्त और अतिसारनाशक क्रिया

करनी चाहिये। और इसको जीतेहुए मृग, महिष, बकरी आदिका तुरंत निकाला हुआ रक्त पिलाना चाहिये। उस शुद्ध रक्तके अन्दर जानेसे जीवरक्तको जीवका अभिसन्धान होनेसे जीवनकी शीघ्र प्राप्ति होती है। और यही तत्काल मृगादिका निकाला हुआ रक्त दर्भसे बस्तिपर मर्दन करके बस्तिमें सेचन करना चाहिये॥

श्यामाकाश्मर्यमधुकदूर्वोशीरैः शृतं पयः।
घृतमण्डाञ्जनयुतं बस्तिं वा योजयेद्धिमम्।
पिच्छाबस्तिं सुशीतं वा घृतमण्डानुवासनम्॥३६

अथवा श्यामाक, काश्मरी, मुलहठी, दूर्वा और खससे सिद्ध कियाहुआ दूध, घृत, मण्ड और अञ्जन मिला कर शीतलवस्तिका प्रयोग करना चाहिये। अथवा शीतल पिच्छावस्तिका प्रयोग करना चाहिये॥ ३६॥

गुदभ्रंशका यत्न।

गुदं भ्रष्टं कषायैश्च स्तम्भयित्वा प्रवेशयेत्॥३७

यदि गुदा बाहर निकल आई हो तो कषायद्रव्योंके क्काथसे सेचन करके उसको भीतर प्रवेश कर देना चाहिये॥ ३७॥

विसंज्ञं श्रावयेत्साम वेणुगीतादिनिस्वनम॥३८

यदि मनुष्य संज्ञाहीन हो तो उसको सुन्दर सामगायन, बांसुरी और गीत आदि मधुर शब्द सुनाने चाहिये॥ ३८॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टांगहृदयसंहितायां कल्पस्थाने वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिकल्पे आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृत-शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां तृतीयोऽध्यायः॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः।

अथाऽतो दोषहरणसाकल्यं बस्तिकल्पं—
—व्याख्यास्यामः।

अब हम सब दोषोंको हरण करनेवाली वस्तियोंकी कल्पनाको कथन करते हैं।

बलादिवस्ति।

बलां गुडूचीं त्रिफलां सरास्नां
द्विपञ्चमूलं च पलोन्मितानि।
अष्टौ फलान्यर्धतुलां च मांसा-
च्छागात्पचेदप्सु चतुर्थशेषम॥ १॥
पूतो यवानीफलबिल्वकुष्ठ-
वचाशताह्वाघनपिप्पलीनाम्।
कल्कैर्गुडक्षौद्रघृतैः सतैलै-
र्युक्तः सुखोष्णो लवणान्वितश्च॥ २॥
बस्तिः परं सर्वगदप्रमाथी
स्वस्थे हितो जीवनबृंहणश्च।
बस्तौ च यस्मिन्पठितो न कल्कः
सर्वत्र दद्यादमुमेव तत्र॥ ३॥

खरेटी, गिलोय, त्रिफला, रास्ना, दशमूलकी दश औषधियें ये प्रत्येक एक एक पल, आठ मैनफल, बकरेका मांस ढाई सेर इन सबको चारगुने जलमें पकावे जब चौथा भाग शेषरहे तो इस काथको उतारकर छान लेवे फिर इस क्काथमें अजवायन, मैनफल, बिल्व, कूठ, बच, सौंफ, नागरमोथे और पीपलका कल्क मिलावे तथा गुड़, शहद, घृत, तैल और लवण मिलावे इन सबको मिलाकर मथ डाले। फिर इस सुखोष्ण द्रवसे वस्तिकर्म करे। यह वस्ति सम्पूर्ण रोगोंको शमन करनेमें परम उत्तम है। स्वस्थ मनुष्यके लिये हित है, जीवनके देनेवाली है और शरीरको पुष्ट करनेवाली है॥

आगे जिस वस्तिमें कल्क द्रव्यका लेख नहीं किया है वहांपर इस वस्तिमें लिखाहुआ ही कल्क मिलाना चाहिये (वस्ति कर्म प्रकार सूत्रस्थानमें यथार्थरूपसे लिख आये है)॥ १-३॥

वातनाशक दशमूलादि वस्ति।

द्विपञ्चमूलस्य रसोऽम्लयुक्तः
सच्छागमांसस्य सपूर्वकल्कः।
त्रिस्नेहयुक्तः प्रवरो निरूहः
सर्वानिलव्याधिहरः प्रदिष्टः॥ ४॥

दशमूलका क्काथ, अम्लरस और छागमांस मिलाकर तथा घृत, मज्जा और बसा मिलाकर प्रथम कहीहुई वस्तिके अनुसार इससे निरूहणवस्ति करे। यह निरूहणवस्ति सब प्रकारकी वातव्याधियोंके हरनेमें सर्व श्रेष्ठ है॥ ४॥

अन्यवातनाशक वस्ति ।

बलापटोलीलघुपञ्चमूल-
त्रायन्तिकैरण्डयवात्सुसिद्धात् ।
प्रस्थो रसाच्छागरसार्धयुक्तः
साध्यः पुनः प्रस्थसमः स यावत् ॥५॥
प्रियङ्गुकृष्णाघनकल्कयुक्तः
सतैलसर्पिर्मधुसैन्धवश्च ।
स्याद्दीपनो मांसबलप्रदश्च
चक्षुर्बलं चोपदधाति सद्यः ॥ ६ ॥

बला, पटोलकी जड, लघु पञ्चमूल, त्रायमाण, एरण्डकी जड़ और इन्द्रजव इनका क्वाथ एक सेर, बकरेका मांसरस आध सेर मिलाकर फिर पकावे। जब एक सेर रहजावे और आध सेर जलजावे तब इसको उतारकर इसमें प्रियंगु, पीपल और नागरमोथेका कल्क मिलाकर तथा तैल, घृत, मधु और सेन्धालवण मिलाकर वस्तिकर्म करे। यह वस्ति अग्निको दीपन करती है, मांस और बलको बढानेवाली है तथा नेत्रोंमें शीघ्र बलको देनेवाली है ॥ ५ ॥ ६ ॥

कफवातनाशक वस्ति ।

एरण्डमूलात्त्रिपलं पलाशात्
तथा पलांशं लघुपञ्चमूलम् ।
रास्नाबलाछिन्नरुहाश्वगन्धा
पुनर्नवारग्वधदेवदारु ॥ ७ ॥
फलानि चाष्टौ सलिलाढकाभ्यां
विपाचयेदष्टमशेषितेऽस्मिन् ।
वचाशताह्वाहपुषाप्रियङ्गु-
यष्टीकणावत्सकबीजमुस्तम् ॥ ८ ॥
दद्यात्सुपिष्टं सहताक्ष्र्यशैल-
मक्षप्रमाणं लवणांशयुक्तम् ।
समाक्षिकस्तैलयुतः समूत्रो
बस्तिर्जयेल्लेखनदीपनोऽसौ ॥ ९ ॥
जंघोरुपादत्रिकपृष्ठकोष्ठ-
हृद्वस्तिशूलं गुरुतां विबन्धम् ।
गुल्माश्मवर्ध्मग्रहणीगुदोत्थां-
स्तांस्तांश्च रोगान्कफवातजातान् १०॥

एरण्डकी जड़ तीन पल, ढाककी जड़ ३ पल तथा लघुपंचमूलकी पांच औषधियें एक एक पल, रास्ना, बला, गिलोय, असगन्ध, पुनर्नवा, अमलतास और देवदारु यह सब औषधियें मिलाकर आठ पल, इनको दो आढक जलमें पकावे, जब आठवां भाग शेष रहे तो इसको छानकर इसमें बच, सौंफ, हाऊबेर, प्रियंगु, मुलहठी, पीपल, इन्द्रजौ और नागरमोथेका एक अक्ष प्रमाण कल्क मिलावे। तथा रसौत और शिलाजतु एक अक्ष प्रमाण मिलावे। इसमें सेन्धा नमक, मधु, तैल और गोमूत्र मिलाकर वस्तिकर्म्म करे। यह वस्ति लेखन और दीपन है। तथा जंघा, ऊरु, पांव, त्रिक, पीठ, कोष्ठ, हृदय और वस्तिके शूलको दूर करती है। एवं भारीपन, विबन्ध, गुल्म, पथरी, वर्ध्म, ग्रहणी, अर्श और कफवातजनित सम्पूर्ण रोगोंको शमन करती है ॥ ७—१० ॥

पित्तरोगनाशक बस्ति ।

यष्ट्याह्वरोध्राभयचन्दनैश्च
शृतं पयोऽग्र्यं कमलोत्पलैश्च ।
सशर्कराक्षौद्रघृतं सुशीतं
पित्तामयान्हंति सजीवनीयम् ॥ ११ ॥

मुलहठी, पठानीलोध, खस और चन्दनसे सिद्ध कियेहुए दूधमें कमल, उत्पल, मिसरी, शहद, घृत और जीवनीयगणकी औषधियें मिलाकर की हुई शीतल वस्ति पित्तके सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करती है ॥ ११ ॥

अन्यवस्ति ।

रास्नां वृषं लोहितिकामनन्तां
बलां कनीयस्तृणपञ्चमूल्यौ ।
गोपाङ्गनाचन्दनपद्मकर्द्धी-
यष्ट्याह्वरोध्राणि पलार्धकानि ॥ १२ ॥
निःक्वाथ्य तोयेन रसेन तेन
शृतं पयोर्धाढकमम्बुहीनम् ।
जीवन्तिमेदर्द्धिवरीविदारी-
वीराद्विकाकोलिकसेरुकाभिः ॥१३॥
सितोपलाजीवकपद्मरेणु-
प्रपौण्डरीकोत्पलपुण्डरीकैः ।

लोहात्मगुप्तामधुयष्टिकाभि-
र्नागाह्वमुञ्जातकचन्दनैश्च ॥ १४ ॥
पिष्टैर्घृतक्षौद्रयुतैर्निरूहं
ससैन्धवं शीतलमेव दद्यात् ।
प्रत्यागते धन्वरसेन शालीन्
क्षीरेण वाऽद्यात्परिषिक्तगात्रः ॥ १५ ॥
दाहातिसारप्रदरास्रपित्त-
हृत्पाण्डुरोगान्विषमज्वरं च ।
सगुल्ममूत्रग्रहकामलादीन्
सर्वामयान् पित्तकृतान्निहन्ति ॥ १६ ॥

रास्ना, बांसा, मंजीठ, कृष्ण शारिवा, खरेटी, लघु पंचमूल, तृणपंचमूल, श्वेत शारिवा, चन्दन, पद्मकाष्ठ, मुलहठी, और पठानीलोध ये प्रत्येक दो दो कर्ष लेकर काथ करे. यह काथ दो प्रस्थ दूधमें मिलाकर फिर पकावे जब काथ जलकर दूधमात्र शेष रहे तो इसमें जीवन्ती, मेदा, शतावर, विदारीकन्द, क्षीरविदारी, काकोली, क्षीरकाकोली, कसेरु, मिसरी, जीवक, कमलकी केशर, प्रपौण्डरीक, कमल, पुण्डरीक कमल, लालचन्दन, कौंचके बीजोंकी गिरी, मुलहठी, नागकेशर, मुञ्जातक और श्वेतचन्दन इन सबका बारीक कल्क मिलाकर इसमें घृत मधु और सैन्धवलवण मिला कर शीतल ही निरूहणवस्ति करे । जब वस्तिका द्रव पीछे वापिस निकलकर शुद्ध होजावे तब स्नान करके जांगल मांसरस या दूधके साथ शाली चावलोंका भात खावे । इस वस्तिके प्रयोगसे दाह, अतिसार, प्रदर, रक्तपित्त, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विषमज्वर, गुल्म, मूत्राघात और कामला तथा पित्तके अन्य सब रोग नष्ट हो जाते है ॥ १२–१६ ॥

मन्दाग्निहर वस्ति ।

कोशातकारग्वधदेवदारु-
मूर्वाश्वदंष्ट्राकुटजार्कपाठाः ।
पक्त्वा कुलत्थान्बृहतीं च तोये
रसस्य तस्य प्रसृता दश स्युः ॥१७॥
तान् सर्षपैलामदनैः सकुष्ठै-
रक्षप्रमाणैः प्रसृतैश्च युक्तान् ।
क्षौद्रस्य तैलस्य फलाह्वयस्य
क्षारस्य तैलस्य ससार्षपश्च ॥
दद्यान्निरूहं कफरोगिताय
मन्दाग्नये चाशनविद्विषे च ॥ १८ ॥

कड़वी तोरी, अमलतास, देवदारु, मूर्वा, गोखरू, कुड़ा, आककी जड़ और पाठा तथा कुलथी और बड़ी कटेली ये सब प्रस्थ प्रमाण लेकर एक तोला जलमें पकावे । चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे यह दस प्रसृत अर्थात् २० पल जल लेकर इसमें एक कर्ष प्रमाण सरसों, इलायची, मैनफल और कूठका कल्क मिलावे. तथा मधु, मैनफलके कल्क और क्षारसे सिद्ध कियाहुआ तैल और घृत ये दो दो पल प्रमाण मिलावे । यह सब मिलाकर मन्दाग्निवाले, अरुचिवाले और कफरोगवाले मनुष्यको निरूहणवस्ति देना चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥

सुकुमारोंके लिये वस्तियें ।

वक्ष्ये मृदून्स्नेहकृतो निरूहान्
सुखोचितानां प्रसृतैः पृथक् स्युः ॥ १९ ॥
अथेमान्सुकुमाराणां निरूहान् स्नेहनान्मृदून्
कर्मणा विप्लुतानां तु वक्ष्यामि प्रसृतैः पृथक्॥

अब सुकुमारप्रकृतिवाले मनुष्योंके लिये दो दो पल मृदु द्रव्योंसे और स्नेहोंसे जो निरूहणवस्तियें अलग अलग होती है उनको पृथक् २ प्रसृतियोंसे कथन करेंगे. ये जो सुकुमार पुरुष है उनकेलिये मृदुद्रव्य और स्नेहोंसे जो निरूहणवस्तियें की जाती हैं उनको कथन करेंगे । तथा वमन आदि कर्मोसे भ्रष्ट हो चुके है उनके लिये प्रसृतमानसे मृदु वस्तियोंका कथन करते है ॥ १९ ॥ २० ॥

प्रसृत वस्तियें ।

क्षीराद् द्वौ प्रसृतौ कार्यौ मधुतैलघृतात्त्रयः ।
खजेन मथितो बस्तिर्वातघ्नो बलवर्णकृत॥२१॥

दूध दो प्रसृत अर्थात् चार पल, मधु दो पल, तेल २ पल, घृत २पल इन दस पल द्रव्योंको मथानीसे मथकर वस्तिकर्म करे तो यह वस्ति बलवर्णके करनेवाली और वातनाशक है ॥ २१ ॥

एकैकः प्रसृतस्तलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिषाम् ।
बिल्वादिमूलक्वाथाद् द्वौ कौलत्थाद् द्वौ स--
--वातजित् ॥२२॥

तैल एक प्रसृत (२ पल), प्रसन्ना एक प्रसृत, मधु एक प्रसृत, घृत एक प्रसृत, बिल्वादि पञ्चमूलका क्वाथ दो प्रसृत, कुलथीका क्वाथ दो प्रसृत इन सबको मथकर कीहुई वस्ति वायुको जीतनेवाली होती है॥२२॥

पटोलनिंबभूतीकरास्नासप्तच्छदाम्भसः ।
प्रसृतः पृथगाज्याच्च बस्तिः सर्षपकल्कवान् ।
सपञ्चतिक्तोभिष्यन्दक्रिमिकुष्ठप्रमेहहा ॥ २३ ॥

पटोल, नीम, भूतिकतृण, रास्ना और सप्तपर्ण इन पाचोंके पृथक् २ क्वाथ एक एक प्रसृत और घृत एक प्रसृत, इसमें सरसोंका कल्क मिलाकर बस्ति करे ये पञ्चतिक्तवस्ति अभिष्यन्द, क्रमि, कुष्ठ और प्रमेहके हरनेवाली है ॥ २३ ॥

चत्वारस्तैलगोमूत्रदधिमण्डाम्लकाञ्जिकात् ।
प्रसृताः सर्षपैः पिष्टैर्विदसङ्गानाहभेदनः ॥ २४ ॥

तैल, गोमूत्र, दधिमण्ड और खट्टी काञ्जी ये चारों चार प्रसृत लेकर इसमें एक कर्ष प्रमाण सरसोंका कल्क मिलाकर वस्तिकर्म करे तो यह वस्ति मलावरोध और आनाहको दूर करती है ॥ २४ ॥

पयस्येक्षुस्थिरारास्नाविदारीक्षौद्रसर्पिषाम् ।
एकैकप्रसृतो बस्तिःकृष्णाकल्को वृषत्वकृत् २५

क्षीरकाकोलीका रस, गन्नेका रस, शालपर्णीका रस, रास्नाका क्वाथ, विदारीकन्दका क्वाथ, मधु और घृत इन सातोंको एक एक प्रसृत लेकर इनमें मघ-पीपलका कल्क मिलाकर बस्ति करे। यह बस्ति पुंस्त्व-शक्तिको बढानेवाली होती है ॥ २५ ॥

सिद्ध वस्तियें ।

सिद्धबस्तीनतो वक्ष्ये सर्वदा यान्प्रयोजयेत् ।
निर्व्यापदो बहुफलान्बलपुष्टिकरान् सुखान् २६

अब इससे आगे उन सिद्ध वस्तियोंका प्रयोग कहेंगे. जो सदा प्रयोग की जाती हैं और किसी प्रकारके विकारको नहीं करती तथा बल पुष्टि और सुख आदि बहुत फलके देनेवाली हैं ॥ २६ ॥

रसायन वस्ति ।

मधुतैले समे कर्षः सैन्धवाद् द्विपिचुर्मिसिः ।
एरण्डमूलक्वाथेन निरूहो मधुतैलिकः ।
रसायनं प्रमेहार्शःक्रिमिगुल्मान्त्रवृद्धिनुत्॥२७॥

मधु चार पल, तेल चार पल, सेन्धानमक एक कर्ष, सौफ दो कर्ष, एरण्डकी जड़का क्वाथ आठ पल, इन सबको मिलाकर यह मधुतैलिक निरूहणवस्ति करे यह वस्ति रसायन है तथा प्रमेह, अर्श, क्रमि, गुल्म और अन्त्रवृद्धिको नष्ट करनेवाली है ॥ २७ ॥

सयष्टिमधुकश्चैष चक्षुष्यो रक्तपित्तजित् ॥२८॥

यदि इसी मधुतैलिकवस्तीमें मुलहठीका कल्क मिलाकर वस्ति कीजावे तो यह वस्तिरक्तपित्तको जीतती है और नेत्रोंकेलिये हितकारी है ॥ २८ ॥

यापन वस्ति ।

यापनो घनकल्केन मधुतैलरसाज्यवान् ।
पायुजङ्घोरुवृषणवस्तिमेहनशूलजित् ॥२९॥

नागरमोथेके कल्कयुक्त मधु, तैल, मांसरस और घृत इन सबको मिलाकर कीहुई वस्ति यापनवस्ति कही जाती है। यह यापनवस्ति गुदा, जंघा, ऊरुस्थल, वृषण, वस्ति और शिश्नके शूलको जीतनेवाली होती है ॥ २९ ॥

प्रसृतांशैर्घृतक्षौद्रवसातैलैः प्रकल्पयेत् ॥३०॥

यापनवस्तिमें घृत, मधु, वसा और तैल दो दो पल प्रमाण मिलाना चाहिये ॥ ३० ॥

युक्तरस वस्ति ।

एरण्डमूलनिःक्वाथो मधुतैलः ससैन्धवः ।
एष युक्तरथो बस्तिः सवचापिप्पलीफलः ३१॥

एरण्डकी जड़के क्वाथमें मधु, तैल, सैन्धालवण, वच, पीपल और मैनफलका कल्क मिलाकर कीहुई वस्तिको युक्तरस वस्ति कहते हैं यह वस्ति कफवातके विकारोंको शमन करती है ॥ ३१ ॥

दोषहर वस्ति ।

सक्वाथो मधुषड्ग्रन्थाशताह्वाहिङ्गुसैन्धवः ।
सुरदारुवचारास्नाबस्तिर्दोषहरः परः ॥३२॥

एरण्डकी जड़के क्वाथमें मधु, कचूर, सौंफ, हींग,

सेन्धालवण, देवदारु, बच और रास्ना इन सबका कल्क मिलाकर कीहुई वस्तिको दोषहरवस्ति कहते है। यह दोष हरण करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥

सिद्धवस्ति ।

पञ्चमूलस्य निःक्काथस्तैलं मागधिका मधु ।
ससैन्धवः समधुकः सिद्धवस्तिरिति स्मृतः ॥ ३३

बृहत्पञ्चमूलके क्काथमें तेल, पीपल, मधु, सेन्धालवण और मुलहठी मिलाकर जो वस्ति की जावे इसको सिद्धवस्ति कहते है ॥ ३३ ॥

युक्तवस्ति ।

द्विपञ्चमूलत्रिफलाफलबिल्वानि पाचयेत् ।
गोमूत्रेण च पिष्टैश्च पाठावत्सकतोयदैः ॥ ३४ ॥
सफलैः क्षौद्रतैलाभ्यां क्षारेण लवणेन च ।
युक्तो बस्तिः कफव्याधिपाण्डुरोगविषूचिषु ३५
शुक्रानिलविबन्धेषु बस्त्याटोपे च पूजितः ॥ ३६

दशमूल, त्रिफला, मैनफल और बिल्व इनको गोमूत्रमें पकावे फिर गोमूत्रको छानकर इसमें पाठा, इन्द्रजौ, नागरमोथा, मैनफल, जवाखार और लवण पीसकर मिलावे, तथा मधु और तैल मिलाकर इन सब द्रव्योंको मथ डाले। इससे कीहुई वस्तिको युक्तवस्ति कहते है। यह वस्ति कफकी व्याधियोंमें, पाण्डुरोगमें, विषूचिकामें, वीर्य और वायुके विबन्धमें और वस्तिके आटोपमें विशेष लाभकारी है ॥ ३४-३६ ॥

रसायनवस्ति ।

मुस्तापाठामृतैरण्डबलारास्नापुनर्नवान् ।
मञ्जिष्ठारग्वधोशीरत्रायमाणाक्षरोहिणीः ।
कनीयः पञ्चमूलं च पालिकं मदनाष्टकम् ॥ ३७ ॥
जलाढके पचेत्तच पादशेषं परिस्रुतम् ।
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं क्षीरशेषं पुनः पचेत् ॥ ३८ ॥
सपादजाङ्गलरसः ससर्पिर्मधुसैन्धवः ।
पिष्टैर्यष्टिमिसिश्यामाकलिङ्गकरसाञ्जनैः ॥ ३९ ॥
बस्तिः सुखोष्णो मांसाग्निबलशुक्रविवर्धनः ।
वातासृङ्मोहमेहार्शोगुल्मविण्मूत्रसंग्रहम् ४० ॥
विषमज्वरवीसर्पवर्ध्माऽऽध्मानप्रवाहिकाः ।
वंक्षणोरुकटीकुक्षिमन्याश्रोत्रशिरोरुजः ॥ ४१ ॥
हन्यादसृग्दरोन्मादशोफकासाश्मकुण्डलान् ।
चक्षुष्यः पुत्रदो राज्ञां यापनानां रसायनम् ४२

नागरमोथा, पाठा, गिलोय, एरण्डकी जड़, बला, रास्ना, पुनर्नवा, मंजीठ, अमलतास, त्रायमाणा, खस, बहेड़े, कुटकी और लघुपंचमूल ये प्रत्येक द्रव्य एक एक पल लेवे, और आठ मैनफल लेवे। इन सबको कूट कर चार प्रस्थ जलमें पकावे। जब एक प्रस्थ शेषरहे तो इसको छान लेवे। यह क्काथ दो प्रस्थ दूधमें डाल कर फिर पकावे जब दूधमात्र शेषरहे तो इसमें चौथा भाग जांगल जीवोंका मांसरस मिलावे तथा घृत, मधु और सेन्धालवण मिलावे. इसीमें मुलहठी, सौंफ, निशोथ, इन्द्रजौ और रसौत इनका कल्क अक्ष प्रमाण मिलावे। सबको मथकर इस सुखोष्ण द्रवसे वस्तिकर्म करे। यह वस्ति मांस, जठराग्नि, बल और वीर्यको पुष्ट करती है तथा वातरक्त, मोह, प्रमेह, अर्श, गुल्म, विष्ठाका रुकना, मूत्राघात, विषमज्वर, विसर्प, वर्ध्म, प्रवाहिका, वंक्षणका शूल, कटिशूल, ऊरुशूल, कुक्षिशूल, मन्यास्तम्भ, कानकी पीड़ा, शिरकी पीड़ा, प्रदर, उन्माद, सूजन, खांसी, पथरी और वातकुण्डलिका आदि सब रोगोंको नष्ट करती है नेत्रोंके लिये हितकारी है पुत्रदेनेवाली है। राजाओंकेलिये और याप्यरोगियोंके लिये रसायन है ॥ ३७-४२ ॥

वृष्यवस्ति ।

मृगाणां लघुबभ्रूणां दशमूलस्य चाम्भसा ।
हपुषामिसिगाङ्गेयीकल्कैर्वातहरः परम् ।
निरूहोत्यर्थवृष्यश्च महास्नेहसमन्वितः ॥ ४३ ॥

छोटे और बड़े दोनों जातिके मृगोंके मांस और दशमूलका क्काथ करे। इस क्काथमें हाऊबेर, सौफ और नागरमोथेका कल्क मिलाकर तथा महास्नेह मिलाकर निरूहणवस्ति करे। यह वस्ति वातविकारको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है तथा अत्यन्त वृष्य है ॥ ४३ ॥

बलवर्द्धक मांसादिवस्तियें ।

मयूरं पक्षपित्तान्त्रपादविट्तुण्डवर्जितम् ॥ ४४ ॥
लघुना पञ्चमूलेन पालिकेन समन्वितम् ।
पक्त्वा क्षीरजले क्षीरशेषं सघृतमाक्षिकम् ४५

तद्विदारीकणायष्टीशताह्वाफलकल्कवत् ।
बस्तिरीषत्पटुयुतः परमं बलशुक्रकृत् ॥४६॥

मोर लेकर उसके पक्ष, पित्त, अन्तड़ी, पांव, विष्ठा, और तुण्ड इनको अलग करदे। शेष रहे मांसको दस पल लेवे और लघुपंचमूलकी पांचों औषधियें पांच पल लेवे। इनको मिलाकर चार प्रस्थ जल और दो प्रस्थ दूधमें पकावे। जब दूधमात्र शेषरहे तो इसको छानकर इसमें घृत और मधु मिलावे तथा विदारीकन्द, पीपल, मुलहठी, सौंफ और मैनफलका कल्क मिलाकर तथा किंचित् लवण मिलाकर वस्ति करे। यह वस्ति बल और वीर्यको अत्यन्त बढ़ानेवाली है ४४॥४६

कल्पनेयं पृथक् कार्या तित्तिरिप्रभृतिष्वपि ।
विष्किरेषु समस्तेषु प्रतुदप्रसहेषु च ।
जलचारिषु तद्वच्च मत्स्येषु क्षीरवर्जिता ॥४७॥

मोरके समान ही पृथक् २ तित्तर आदि विष्किर, प्रतुद और प्रसह पक्षियोंके मांससे उपरोक्त द्रव्य मिलाकर वस्तिकर्म किया जावे तो वह वस्तियें भी बल शुक्रके अत्यन्त बढ़ानेवाली होती है। इसी प्रकार जलचारी मत्स्योंके मांसमें पंचमूल मिलाकर कियेहुए काथसे वस्तिकर्म करना चाहिये। परन्तु मत्स्यादि मांसोंके काथमें दूध नहीं मिलाना चाहिये ॥ ४७ ॥

रसायनवस्ति।

गोधानकुलमार्जारशल्यकोन्दुरजं पलम्॥४८॥
पृथक् दशपलं क्षीरे पञ्चमूलं च साधयेत् ।
तत्पयः फलवैदेहीकल्कक्द्विलवणान्वितम् ॥४९॥
ससितातैलमध्वाज्यो बस्तिर्योज्यो रसायनम् ।
व्यायाममथितोरस्कक्षीणेन्द्रियबलौजसाम् ५०
विबद्धशुक्रविण्मूत्रखुडवातविकारिणाम् ।
गजवाजिरथक्षोभभग्नजर्जरितात्मनाम् ।
पुनर्नवत्वं कुरुते वाजीकरणसत्तमः ॥ ५१ ॥

गोधा, नकुल, मार्जार (बिल्ली), सेह (शल्लकी), मूषक इन सबका पृथक् पृथक् मांस दस पल और पंचमूल तथा दूध, जल, मोर मांसवाली वस्तिके समान मिलाकर दूध सिद्धकरे। इस दूधमें मैनफल और पीपलका कल्क तथा सैन्धव और सञ्चरलवण मिलावे इसीमें मिसरी, तेल, मधु और घृत मिलाकर वस्तिकर्म करे। इसको रसायन वस्ति कहते हैं। जो मनुष्य बहुत कसरत करनेसे या साहससे व्यथित छातीवाले है तथा जिनकी इन्द्रिय बल और ओज क्षीण होचुके है जिनका वीर्य, विष्ठा और मूत्र विबद्ध हों तथा जो वातरक्तके विकारवाले है अथवा जो मनुष्य हाथी, घोड़ा और रथके क्षोभसे भग्न और जर्जरित शरीरवाले है उनके लिये यह रसायनवस्ति पुनः यौवन और नवीनताके करनेवाली है। तथा उत्तम वाजीकरण है ॥ ४८–५१ ॥

वीर्यवर्धक वस्ति।

सिद्धेन पयसा भोज्यमात्मगुप्तोच्चटेक्षुरैः ॥५२॥

कौंचके बीज, उटंगणके बीज और तालमखाने आदि बाजीकरण पदार्थोंसे सिद्ध कियेहुए दूधकी वस्ति अत्यन्त वीर्यवर्धक होती है ॥ ५२ ॥

अनुवासन वस्तियें।

स्नेहांश्चायन्त्रणान् सिद्धान्सिद्धद्रव्यैःप्रकल्पयेत्

स्नेहवस्तियोंके लिये इन ही उपरोक्त सिद्धवस्तियोंके द्रव्योंसे तैल सिद्धकर अनुवासनवस्तियें करना चाहिये ॥ ५३ ॥

दोषघ्नाः सपरिहारा वक्ष्यन्ते स्नेहबस्तयः ।

अब दोषनाशक परिहारके साथ स्नेहवस्तियोंको कथन करेंगे।

वातनाशक स्नेह।

दशमूलं बलां रास्नामश्वगंधां पुनर्नवाम् ।
गुडूच्यैरण्डभूतीकभार्ङ्गीवृषकरोहिषम् ॥५४ ॥
शतावरीं सहचरं काकनासां पलांशकम् ।
यवमाषातसीकोलकुलत्थान्प्रसृतोन्मितान् ५५
वहे विपाच्य तोयस्य द्रोणशेषेण तेन च ।
पचेत्तैलाढकं पेष्यैर्जीवनीयैः[1] पलोन्मितैः ।
अनुवासनमित्येतत्सर्ववातविकारनुत् ॥ ५६ ॥

दशमूल, बला, रास्ना, असगन्ध, पुनर्नवा, गिलोय, एरण्डकी जड़, भूतिक तृण, भारंगी, अडूसा, रोहिषतृण, सतावर, सहचर और काकनासा ये प्रत्येक एक एक

[1] जीवनीयैः पुष्पैः।

पल, जौ, उड़द, अलसी, उन्नाम और कुलथी ये दो दो पल, इन सबको मिलाकर चार द्रोण जलमें पकावे जब एक द्रोण शेषरहे तो इसको छानकर इस काथमें एक आढ़क तेल और जीवनीयगणकी प्रत्येक औषधिका एक एक पल कल्क मिलाकर तेल सिद्ध करे तेलमात्र शेष रहनेपर इस तेलको छानकर रक्खे इससे कीहुई अनुवासनबस्ति सब प्रकारके वातविकारोंको शमन करती है ॥ ५४–५६ ॥

अनूपानां वसा तद्वज्जीवनीयोपसाधिता॥५७॥

इसी प्रकार अनूपसञ्चारी जीवोंकी वसाको जीवनीयगणके द्रव्योंके कल्क और दशमूलादि काथसे सिद्ध करके अनुवासन करनेसे वातविकार शमन होते हैं ॥ ५७ ॥

शताह्वाचिरिबिल्वाम्लैस्तैलं सिद्धं समीरणे ।
सैन्धवेनाग्निवर्णेन तप्तं वाऽनिलजिद्‌ घृतम्५८

सौंफ, करञ्ज और खट्टी कांजीसे सिद्ध कियाहुआ तैल अनुवासनमें प्रयोग करनेसे वायुको शमन करताहै । सैन्धवलवणकी डलीको अग्निमें लालवर्ण करके घृतमें बुझाले । यह घृत भी अनुवासनमें प्रयोग करनेसे वायुको जीतनेवाला होता है ॥ ५८ ॥

बृंहण तैल ।

जीवन्तीं मदनं मेदां श्रावणीं मधुकं बलाम् ।
शताह्वर्षभकौ कृष्णां काकनासां शतावरीम्५९
स्वगुप्तां क्षीरकाकोलीं कर्कटाख्यां शठीं वचाम्।
पिष्ट्वा तैलघृतं क्षीरे साधयेत्तच्चतुर्गुणे ॥ ६० ॥
बृंहणं वातपित्तघ्नं बलशुक्राग्निवर्धनम् ।
रजःशुक्रामयहरं पुत्रीयमनुवासनम् ॥६१॥

जीवन्ती, मैनफल, मेदा, गोरखमुण्डी, मुलहठी, बला, सौंफ, ऋषभक, पीपल, काकनासा, सतावर, कौंचके बीजोंकी गिरी, क्षीरकाकोली, काकड़ासिंगी, कचूर और बच इनका कल्क तथा चारगुना दूध मिलाकर सिद्ध कियाहुआ तेल बृंहण, वातपित्तनाशक, बलवर्धक, वीर्यवर्धक और जठराग्निको चैतन्य करनेवाला होता है । इसके द्वारा कियाहुआ अनुवासन रज और वीर्यके विकारोंको हरता है और पुंसवनके करनेवाला है ॥ ५९--६१ ॥

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वा निचुलो वचा ।
ह्रीबेरं मधुकं भार्गी देवदारुसकट्फलम्॥६२॥
नागरं पुष्करं मेदा चविका चित्रकः शठी ।
विडङ्गातिविषा श्यामा हरेणुर्नीलिनी स्थिरा६३
बिल्वाजमोदचपला दन्ती रास्ना च तैः समैः ।
साध्यमेरण्डतैलं वा तैलं वा कफरोगनुत् ॥६४॥
वर्ध्मोदावर्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान् ।
आनाहमश्मरीं चाशु हन्यात्तदनुवासनम्॥६५॥

सेन्धानमक, मैनफल, कूठ, सौंफ, निचुल, वच, लाजवन्ती, मुलहठी, भारंगी, देवदारु, कायफल, सोंठ, पोहकरमूल, मेद', चव्य, चित्रक, कचूर, विडंग, अतीस, काली निशोथ, हरेणु, नीलिनीके बीज, शालपर्णी, बिल्व, अजवायन, पीपल, दन्ती और रास्ना इन सबको समभाग लेकर सब मिलाकर चार प्रस्थ लेवे । इनको सोलह (१६) प्रस्थ जलमें पकाकर चार प्रस्थ शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इस क्वाथ और इन्हीं द्रव्योंके कल्कसे एरण्डतैल अथवा तिलतैल सिद्ध करे. यह तैल कफके रोगोंको नष्ट करता है तथा अनुवासन करनेसे वर्ध्म, उदावर्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा प्रमेह, आढ्यवात, आनाह और अश्मरी इन सब रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ६२--६५ ॥

कफनाशक तैलवस्ति ।

साधितं पञ्चमूलेन तैलं बिल्वादिनाऽथवा ।
कफघ्नं कल्पयेत्तैलं द्रव्यैर्वा कफघातिभिः ॥
फलैरष्टगुणैश्चाम्लैः सिद्धमन्वासनं कफे ॥६६॥

बृहत्पञ्चमूल अथवा कफनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ तैल कफके विकारोंको नष्ट करता है । तथा कफनाशक द्रव्यों और त्रिफलादि फलोंके कल्क और आठगुनी खट्टी कांजीसे सिद्ध कियाहुआ तैल कफके रोगोंमें अनुवासन करना चाहिये ॥ ६६ ॥

वस्तिके मिथ्यायोगकी चिकित्सा ।

मृदुबस्तिजडीभूते तीक्ष्णोऽन्यो बस्तिरिष्यते ।
तीक्ष्णैर्विकर्षिते स्निग्धो मधुरः शिशिरो मृदुः॥

यदि मृदुवस्ति निरूहणरूपसे दीहुई भीतर ही रहजावे और उसका द्रव बाहर नहीं निकले तो उसको उसी समय तीक्ष्णवस्ति देकर दोष निकाल देना चाहिये। यदि तीक्ष्णवस्ति देनेसे अधिक कर्षण हो जावे तो स्निग्ध मधुर और शीतल मृदुवस्ति देना चाहिये ॥ ६७ ॥

तीक्ष्ण और मृदु वस्तिकी कल्पना।

तीक्ष्णत्वं मूत्रपील्वग्निलवणक्षारसर्षपैः।
प्राप्तकालं विधातव्यं घृतक्षीरैस्तु मार्दवम् ६८॥

गोमूत्र, पीलु, चित्रक, लवण, क्षार और सरसोंके मिलानेसे तीक्ष्ण वस्ति हो जाती है। घृत और दूध मिलानेसे वस्ति मृदु हो जाती है। इस लिये जिस कालमें जैसी वस्ति उचित हो उस प्रकार द्रव्योंकी कल्पना कर लेना चाहिये ॥ ६८ ॥

यथार्थ वस्ति।

बलकालरोगदोषप्रकृतीः,प्रविभज्य योजितो--वस्तिः।
स्वैः स्वैरौषधवर्गैः स्वान् स्वान् रोगान्निवर्तयति

जो वस्ति बल, काल, रोग दोष और प्रकृतिका यथार्थ विचार करनेके अनन्तर तत्तद्दोषनाशक वर्गोंकी औषधियोंसे सिद्ध करके कीजाती है. वह वस्ति उन २ सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट कर सुखके देनेवाली होती है ॥ ६९ ॥

उष्णार्तानांशीतांश्छीतार्तानां तथासुखोष्णांश्च
तद्योग्यौषधयुक्तान्वस्तीन्संतर्क्य युञ्जीत॥७०

जो मनुष्य उष्णरोगोंसे पीड़ित है उनको शीतल द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई शीतल वस्तियें और जो शीतसे पीड़ित मनुष्य हो उनको सुखोष्ण वस्तियें उनके दोष दूष्यादि विचारकर उचित औषधियोंसे वस्तियोंकी कल्पना कर वस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७० ॥

बस्तीन्न बृंहणीयान् दद्याद्व्याधिषु विशोधनीयेषु
मेदास्विनो विशोध्या ये च नराः कुष्ठमेहार्ताः७१

जो व्याधियें शोधन करनेके योग्य हों उनमें बृंहण-वस्तियोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये। मेद, कुष्ठ और प्रमेहसे पीड़ित मनुष्य विशोधन करनेके योग्य होते है। ऐसे मनुष्योंको बृंहणवस्ति नहीं देना चाहिये ॥७१॥

नक्षीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकृशशुष्कशुद्धदेहानाम्
दद्याद्विशोधनीयान् दोषनिबद्धायुषो ये च७२॥

जो मनुष्य क्षीण, क्षत, दुर्बल, मूर्छित, कृश, सूखीहुई देहवाले तथा शुद्ध देहवाले हों अथवा जिनका जीवन शेष दोषके आश्रित हो उनको विशोधन वस्तियें नहीं देना चाहिये। किन्तु बृंहण वस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टांगहृदयसंहितायां कल्पस्थाने दोषहरणसाकल्यवस्तिकल्पे आयुर्वेदाचार्य्य पं० शिवशर्म-कृतशिवदीपिकाभाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः।

अथाऽतो बस्तिव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्यामः।

अब हम वस्तियोंकी असावधानीसे होनेवाले विकार और उनको शमन करनेके उपायोंको कथन करते हैं॥

वस्तिकर्मका हीनियोग।

अस्निग्धस्विन्नदेहस्य गुरुकोष्ठस्य योजितः।
शीतोऽल्पस्नेहलवणद्रव्यमात्रो घनोऽपि वा १॥
बस्तिः संक्षोभ्य तं दोषं दुर्बलत्वादनिर्हरन्।
करोत्ययोगं तेन स्याद्वातमूत्रशकृद्ग्रहः ॥ २ ॥
नाभिबस्तिरुजादाहो हृल्लेपः श्वयथुर्गुदे।
कण्डूर्गण्डानि वैवर्ण्यमरतिर्वह्निमार्दवम् ॥ ३ ॥

जो वस्तिकर्म मनुष्यको विना स्नेहन और विना स्वेदन किये कियाजाय तथा भारी कोष्ठवालेको शीतल, अल्प तैलादि स्नेहयुक्त, अल्प लवण, अल्प द्रव्य या अल्पमात्रासे किया जाय अथवा वस्तिद्रव्य बहुत गाढ़ा हो तो वह वस्तिकर्म जिस दोषके हरण करनेके लिये कियाजाता है उस दोषको संक्षोभित तो कर देताहै परन्तु स्वयं दुर्बल होनेसे दोषको हरण नहीं करता। इसको वस्तिकर्म्मका हीनयोग या अयोग कहते हैं। इस वस्तिके अयोगसे वात, मूत्र और विष्ठाका रुकना, नाभि और वस्तिमें पीड़ा तथा दाहका होना, हृदयमें उपलेप, गुदामें सूजन, शरीरपर खुजली, ग्रन्थियें और विवर्णता होती है तथा बेचैनी और मन्दाग्नि-हो जाती है ॥ १-३ ॥

हीनयोगकी चिकित्सा।

क्वाथद्वयं प्राग्विहितं मध्यदोषेऽतिसारिणि।
उष्णस्य तस्माद्धत्त्रैकस्य तत्र पानं प्रशस्यते ४
फलवर्त्यस्तथा स्वेदाः कालं ज्ञात्वा विरेचनम्।
बिल्वमूलत्रिवृद्दारुयवकोलकुलत्थवान्।
सुरादिमांस्तत्र बस्तिः स प्राक्पेष्यस्तमानयेत् ५

ऐसी अवस्थामें पहले अतीसाररोगमें कहेहुए मध्य दोषमें जो दो भूतिक पिप्पल्यादि क्वाथ और बिल्व-धनिकादि क्वाथ कहे हैं उनमेंसे किसी एकको गरम गरम पिलाना चाहिये। अथवा मैनफलादिसे बनायी हुई वर्तिका प्रयोग करना चाहिये और स्वेदन करना चाहिये। फिर यथार्थ समय पर विरेचन कराना चाहिये। इसके अनन्तर बिल्वकी जड़, निशोथ, देवदारु, जौ, उन्नाम और कुलथीके काथमें सुराआदि मिलाकर उसमें अजवायन, मैनफल, बिल्व, कूठ, बच, सौंफ, नाग-रमोथा और पीपल इनका कर्ष प्रमाण कल्क तथा मधु, घृत, तैल और लवण मिलाकर उचितरूपसे निरू-हण वस्तिकर्म्म करे, जिससे फिर वस्तिका अयोग हो-कर विकार न हो और दोष यथार्थ हरण होजावे॥ ४-५॥

वस्तिका मिथ्यायोग होनेके उपद्रव।

युक्तोऽल्पवीर्यो दोषाढ्ये रूक्षेक्रूराशयेऽथवा ६।
बस्तिर्दोषावृतो रुद्धमार्गो रुंद्ध्यात्समीरणम्।
सोवमार्गोऽनिलःकुर्यादाध्मानंमर्मपीडनम्॥७॥
विदाहं गुदकोष्ठस्य मुष्कवंक्षणवेदनाम्।
रुणद्धि हृदयं शूलैरितश्चेतश्च धावति॥ ८॥

यदि दोषोंसे युक्त रूक्ष और क्रूर कोष्ठवाले मनु-ष्यको यथार्थ मात्रामें अल्पवीर्य बस्ति दीजावे वह वस्ति रूक्षमलादिसे रुद्धमार्ग होकर दोषोंसे आवृत होकर वायुकी गतिको भी रोक देती है। फिर वह रुका हुआ विमार्गगामी वायु, आध्मान, मर्मोंमें पीड़ा, गुदा और कोष्ठमें विदाह, अण्डकोषोंमें और वंक्षणोंकी सन्धि-योंमें पीड़ाको करता है तथा हृदयको रोक देता है और शूल करता हुआ इधर उधर विचरण करता है॥ ६-८॥

उसकी चिकित्सा।

स्वभ्यक्तस्विन्नगात्रस्य तत्र वर्तिं प्रयोजयेत्।
बिल्वादिश्च निरूहः स्यात्पीलुसर्षपमूत्रवान्॥
सरलामरदारुभ्यां साधितं वाऽनुवासनम्॥९॥

ऐसी अवस्थामें इस पुरुषके सारे शरीरपर तेल आदि लगाकर स्वेदन करे फिर मैनफलके चूर्णसे बनायीहुई बत्तीको मलद्वारमें प्रवेश करे। तदनन्तर बिल्वादिसे बनायाहुआ निरूहण उसमें पीलू, सरसों और गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्ति करे। तथा सरल और देवदारुसे सिद्ध किये हुए तैलसे अनुवासन वस्ति करे॥ ९॥

वस्तिवेग रोकनेके दोष।

कुर्वतो वेगसंरोधं पीडितो वाऽतिमात्रया।
अस्निग्धलवणोष्णोवा बस्तिरल्पोल्पभेषजः१०
मृदुर्वा मारुतेनोर्ध्वं विक्षिप्तो मुखनासिकात्।
निरेतिमूर्च्छाहृल्लासतृड्दाहादीन्प्रवर्तयन्॥११

जो मनुष्य मलके वेगको रोकनेवाला हो उसको अतिमात्रासे पीड़न की हुई बस्ति अथवा चिकनाई और लवण रहित तथा उष्णता रहित पीड़न की हुई वस्ति या अल्पमात्रामें या अल्पद्रव्योंसे की हुई वस्ति अथवा मृदुवस्ति तीक्ष्ण वेगके साथ पीड़न की जावे और वह पुरुष वस्तिसे निकलनेवाले मलके वेगको रोक लेवे तो वह वस्तिद्रव्य वायुसे ऊर्ध्वगामी होकर मुख और नासिका द्वारा निकलने लगता है। उससे मूर्च्छा हृल्लास, प्यास और दाह आदि विकार उत्पन्न हो जाते है॥ १०॥ ११॥

उनकी चिकित्सा।

मूर्छाविकारं दृष्ट्वास्य सिञ्चेच्छीताम्बुना मुखम्।
व्यजेदाक्रमनाशाच्च प्राणायामं च कारयेत्।
पृष्ठपार्श्वोदरं मृज्यात्करैरुष्णैरधोमुखम्॥१२॥
केशेषूत्क्षिप्य धुन्वीत भीषयेद्व्यालदंष्ट्रिभिः।
शस्त्रोल्काराजपुरुषैर्बस्तिरेति तथा ह्यधः॥१४॥
पाणिवस्त्रैर्गलापीडं कुर्यान्न म्रियते यथा।
प्राणोदाननिरोधाद्धि सुप्रसिद्धतरायनः॥१५॥
अपानः पवनो बस्तिं तमाश्वेवापकर्षति।

कुष्ठक्रमुककल्कं च पाययेताम्लसंयुतम् ॥ १६॥
औष्ण्यात्तैक्ष्ण्यात्सरत्वाच्च बस्तिं सोऽस्यानुलो-
-मयेत् ।
गोमूत्रेण त्रिवृत्पथ्याकल्कं चाधोनुलोमनम् १७

ऐसी अवस्थामें यदि इस पुरुषको मूर्छा हो तो इसके मुख पर शीतल जलका सेचन करना चाहिये। क्लमको दूरकरनेके लिये पंखेकी पवन करना चाहिये और वायुको अनुलोमन करनेके लिये प्राणायाम करना चाहिये अथवा इसकी पीठ पार्श्व और उदरको गरम हाथ करके मर्दन करे। फिर इस पुरुषको अधोमुख करके इसके केशोंको ऊपरको करे और इसके सिरको धुने। तथा इसको व्याल आदि दंष्ट्रीजीवोंसे डरावे या शस्त्र अथवा उल्का या राजपुरुषोंसे डरावे। ऐसा करनेसे भयसे बस्तिका वेग नीचेको चला जाता है। अथवा वस्त्रसे इसके गलको इतना पीडन करना चाहिये जिसमें मृत्यु न हो जाय। गलके पीडनसे प्राण और उदान रुक जाती है तब अपानवायु अपने मार्गकी ओर शुद्ध गतिवाली होकर बस्तिको शीघ्रही आकर्षण कर लेती है। अथवा कूठ और सुपारीका कल्क खट्टी काञ्जीमें मिलाकर इसको पिलावे। यह भी उष्ण, तीक्ष्ण और सरण करने वाला होनेसे बस्तिको अनुलोमन करदेता है। अथवा गोमूत्रके साथ निशोथ और हरडका कल्क पिलानाभी बस्तिको नीचेको अनुलोमन करता है ॥ १२—१७॥

पक्वाशयस्थिते स्विन्ने निरूहो दशमूलिकः ।
यवकोलकुलत्थैश्च विधेयो मूत्रसाधितैः॥ १८॥
बस्तिर्गोमूत्रसिद्धैर्वा साम्रृतावंशपल्लवैः ।
पूतीकरञ्जत्वक्पत्रशठीदेवाह्वरोहिषैः ॥ १९ ॥
सतैलगुडसिन्धूत्थो विरेकौषधकल्कवान् ।
बिल्वादिपञ्चमूलेन सिद्धो बस्तिरुरःस्थिते ।
शिरःस्थे नावनं धूमः प्रच्छार्द्यं सर्षपैःशिरः२०

यदि बस्तिद्रव्य पक्वाशयमें स्थित हो तो स्वेदन करनेके अनन्तर दशमूल, यव, उन्नाभ और कुलथी इनको गोमूत्रमें सिद्ध करके तैलादिसे स्निग्ध कर निरूहणबस्ति करे। अथवा गोमूत्रमें गिलोय, बांसके पत्ते, पूतिकरञ्जके छाल और पत्र, कचूर, देवदारु और रोहिषतृण इनको सिद्ध करके गोमूत्रको छान लेवे। इस मूत्रमें तैल, गुड, लवण और निशोथ आदि विरेचन द्रव्योंका कल्क मिलाकर बस्तिकर्म्म करे।

यदि बस्तिद्रव्य छातीमें स्थित हो तो बिल्वादि पञ्चमूलसे सिद्ध की हुई बस्तिमें विरेचन औषधियोंका कल्क और तैलादि मिलाकर बस्तिकर्म्म करना चाहिये।

यदि बस्तिका विकार शिरमें पहुंचा हुआ हो तो सिरपर सरसोंका कल्क लेप करनेके अनन्तर इस पुरुषको नस्य देना और धूमपान कराना चाहिये १८-२०

बस्तिका अतियोग।

बस्तिरत्युष्णतीक्ष्णाम्लघनोऽतिस्वेदितस्य वा ।
अल्पेदोषे मृदौ कोष्ठे प्रयुक्तो वा पुनःपुनः२१
अतियोगत्वमापन्नो भवेत्कुक्षिरुजाकरः ।
विरेचनातियोगेन स तुल्याकृतिसाधनः॥२२॥

यदि अल्पदोषवाले और मृदुकोष्ठवाले मनुष्यके शरीरमें बार २ अति उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल और घनबस्तिका प्रयोग किया जावे अथवा अतिस्वेदन करनेके अनन्तर अतितीक्ष्ण और अति उष्ण बस्तिका प्रयोग कियाजावे तो इस प्रकारकी बस्तिसे बस्तिका अतियोग होकर अधिक मलका हरण होजाता है। उससे कुक्षिमें शूल उत्पन्न होजाता है और मलके अनन्तर द्रवधातुयें निकलने लगती हैं। ऐसी अवस्थामें विरेचनके अतियोगमें कहीहुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

उसकी चिकित्सा।

बस्तिः क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णलवणः पैत्तिकस्य वा
गुदं दहन्लिखन् क्षिण्वन्करोत्यस्यपरिस्रवम्२३
सविदग्धं स्रवत्यस्रं वर्णैः पित्तं च भूरिभिः ।
बहुशश्चातिवेगेन मोहं गच्छति सोऽसकृत् ।
रक्तपित्तातिसारघ्नी क्रिया तत्र प्रशस्यते॥२५॥

यदि अधिकपित्तवाले मनुष्यके शरीरमें क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और लवण युक्त बस्तिका प्रयोग कियाजावे तो यह वस्ति गुदामें दाह, लेखन और किनछको पैदा करदेती है। फिर इसकी गुदासे दाहके साथ पित्तके वर्णवाला रक्तस्राव होने लगता है।

इस रक्तके अधिक स्रावसे और वस्तिके अतियोगसे बार २ बहुत वेग होनेके कारण मनुष्य बार२मोहको प्राप्त होता है अर्थात् इसको गश आने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें रक्तपित्तनाशक और पित्तातिसारनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ २३--२५ ॥

दाहादिषु त्रिवृत्कल्कं मृद्वीकावारिणा पिबेत् ।
तद्धि पित्तशकृद्वातान्हृत्वा दाहादिकाञ्जयेत् २६

दाह मोहादिकोंमें निशोथका कल्क द्राक्षाके रसमें मिलाकर पिलाना चाहिये । वह इसके पित्त, मल और वायुको हरण करके दाह आदिको जीत लेता है॥२६

विशुद्धश्च पिबेच्छीतां यवागूं शर्करायुताम् ।
युंज्याद्वातिविरिक्तस्य क्षीणविट्कस्यभोजनम्२७

फिर इसके विशुद्ध शरीर होने पर मिसरी मिली हुई शीतल यवागू पिलाना चाहिये । अथवा यदि मल बहुत क्षीण होगया हो उसको उड़दोंके यूषके साथ कुल्माषोंका भोजन करना चाहिये । पीनेके लिये इसको दही या सुरा देनी चाहिये ॥ २७ ॥

माषयूषेण कुल्माषान्पानं दध्यथवा सुराम् ।
सिद्धिर्वस्त्यापदामेवं स्नेहवस्तेस्तु वक्ष्यते॥२८॥

इस प्रकार निरूहणवस्तिसे होनेवाली आपत्तियोंकी चिकित्सा कथन करदी है । अब स्नेहन बस्तियोंसे होनेवाले विकार और उनकी शान्तिके उपायोंको कथन करते है ॥ २८ ॥

वातावृत स्नेहवस्तिके उपद्रव और चिकित्सा ।

शीतोल्पोवाऽधिके वाते पित्तेत्युष्णःकफेमृदुः ।
अतिभुक्ते गुरुर्वर्चःसञ्चयेऽल्पबलस्तथा ॥२९॥
दत्तस्तैरावृतस्नेहो नायात्यभिभवादपि ।
स्तम्भोरुसदनाध्मानज्वरशूलाङ्गमर्दनैः॥ ३० ॥
पार्श्वरुग्वेष्टनैर्विद्याद्वायुना स्नेहमावृतम् ।
स्निग्धाम्ललवणोष्णैस्तं रास्नापीतद्रुतैलिकैः३१
सौवीरकसुराकोलकुलत्थयवसाधितैः ।
निरूहैर्निर्हरेत्सम्यक् समूत्रैः पञ्चमूलकैः ।
ताभ्यामेव च तैलाभ्यांसायंभुक्तेऽनुवासयेत्३२

यदि वायुकी अधिकतामें शीतल या अल्पस्नेह दिया जावे और पित्तकी अधिकतामें अत्यन्त उष्ण स्नेह दिया जावे अथवा कफकी अधिकतामें मृदुस्नेहसे वस्ति दी जावे अथवा अत्यन्त भोजन करनेके अनन्तर गुरु वस्ति दी जावे तो वह वस्तिमें दियाहुआ तैलादि स्नेह वातादिकोंसे आवृत होकर और उनसे अभिभावित होनेसे वह स्नेह गुदमार्गमें स्थित रहकर यथार्थ गमन नहीं करता है और न यथार्थरूपसे वापिस आता है । तब यह दोषोंसे आवृत होनेके कारण स्तम्भ, ऊरुसाद, आध्मान, ज्वर, शूल, अंगमर्द, पार्श्वशूल, पिण्डिकोद्वेष्टन आदि विकारोंको करता है । इन विकारोंको करनेसे जानना चाहिये कि स्नेहवस्तिका तैल वायुसे आवृत है । स्नेह वायुसे आवृत होकर स्तम्भादि उपद्रवोंको करे तो स्निग्ध, अम्ल, लवण और उष्ण द्रव्योंसे सिद्ध की हुई निरूहणवस्ति रास्ना और दारुहल्दीसे सिद्ध किये हुए तैल तथा सौवीर, सुरा, उन्नाभ, कुलथी और यवोंसे सिद्ध की हुई पंचमूलका काथ और गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्ति करके दोषका हरण करे । फिर दोष यथार्थ शुद्ध होजाने पर सायंकालके भोजनके अनन्तर रास्ना और दारुहल्दीके तेलसे अनुवासन वस्ति करे ॥ २९--३२ ॥

पित्तावृत स्नेहके लक्षण और चिकित्सा ।

तृड्दाहरागसंमोहवैवर्ण्यतमकज्वरैः ॥
विद्यात्पित्तावृतं स्वादुतिक्तैस्तं बस्तिभिर्हरेत्३३

यदि स्नेहवस्तिके अनन्तर प्यास, दाह, लालिमा, मोह, विवर्णता, तमकश्वास और ज्वर हो जावें तो वस्तिका तैल पित्तसे आवृत हुआ जानना चाहिये । ऐसी अवस्थामें मधुर और तिक्तद्रव्योंसे सिद्ध कीहुई निरूहणवस्तियोंसे यह पित्तदूषित तैल हरण करना चाहिये ३३

कफावृतस्नेहके लक्षण और चिकित्सा ।

तन्द्राशीतज्वरालस्यप्रसेकारुचिगौरवैः ।
संमूर्च्छाग्लानिभिर्विद्याच्छ्लेष्मणास्नेहमावृतम्३४
कषायतिक्तकटुकैः सुरामूत्रोपसाधितैः ।
फलतैलयुतैः साम्लैर्बस्तिभिस्तं विनिर्हरेत्।३५

यदि तन्द्रा, शीत ज्वर, आलस्य, मुखसे लारका गिरना, भारीपन, मूर्छा और ग्लानि हो तो अनुवास-

नका स्नेह कफसे आवृत हुआ जानना चाहिये । इस विकारमें कषाय, कटु और तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए क्वाथमें सुरा और गोमूत्र मिलाकर तथा मैनफलका तेल अथवा मैनफलका कल्क और तैल तथा काञ्जी मिला कर निरूहणबस्ति करके दोषका हरण करे ॥ ३४॥३५ ॥

मलावृतस्नेहके लक्षण और चिकित्सा ।

छर्दिमूर्छारुचिग्लानिशूलनिद्राङ्गमर्दनैः ।
आमलिंगैः सदाहैस्तं विद्यादत्यशनावृतम्।३६।
कटूनां लवणानां च क्वाथैश्चूर्णैश्च पाचनम् ।
मृदुर्विरेकः सर्वं च तत्रामविहितं हितम् ॥३७॥

यदि अनुवासनके अनन्तर छर्दि, मूर्छा, अरुचि, ग्लानि, शूल, निद्रा, अङ्गमर्द और आमके लक्षण तथा दाह हो तो अनुवासनका तेल आहारसे आवृत हुआ जानना चाहिये । ऐसी अवस्थामे त्रिकटु आदि कटु और लवण द्रव्योंके क्वाथों और चूर्णोंसे पाचन कराना तथा मृदु विरेचन कराना और आमदोषनाशक विधिका पालन करना हितकारी होता है ३६॥३७

मलावृतस्नेहके लक्षण और चिकित्सा ।

विण्मूत्रानिलसंगार्तिगुरुत्वाध्मानहृद्ग्रहैः॥३८॥
स्नेहं विडावृतं ज्ञात्वा स्नेहस्वेदैः सवर्तिभिः ।
श्यामाबिल्वादिसिद्धैश्च निरूहैःसानुवासनैः ॥
निरूहोद्दिष्टविधिना सम्यगुदावर्तहरेण च ॥ ३९ ॥

यदि स्नेहबस्तिके अनन्तर विष्ठा, मूत्र और वायुका रुकना, पीड़ा, भारीपन, आध्मान, और हृदयका जकड़ासा जाना ये लक्षणहों तो बस्तिका स्नेह विष्ठासे आवृत हुआ जानना चाहिये । ऐसी अवस्थामें स्नेहन, स्वेदन, फलवर्तिका प्रयोग करना तथा निशोथ और बिल्वादिसे सिद्ध किये हुये निरूहोंसे मलको निकाले तथा निशोथ आदिसे सिद्ध किये हुए तैल द्वारा अनुवासन करे । और उदावर्तनाशक विधिका सेवन करना चाहिये ॥३८॥३९॥

ऊर्ध्वगतस्नेहके लक्षण और चिकित्सा ।

अभुक्ते शूनपायौ वा पेयामात्राशितस्य च।४०।
गुदे प्रणिहितः स्नेहो वेगाद्धावत्यनावृतः ।
ऊर्ध्वं कायं ततः कंठादूर्ध्वेभ्यः खेभ्य एत्यपि४१
मूत्रश्यामात्रिवृत्सिद्धो यवकोलकुलत्थवान् ।
तत्सिद्धतैलो देयः स्यान्निरूहःसानुवासनः।४२।
कण्ठादागच्छतः स्तंभकण्ठग्रहविरेचनैः ।
छर्दिघ्नीभिःक्रियाभिश्च तस्य कुर्यान्निबर्हणम् ४

यदि बिना भोजन किये हुए अनुवासन बस्ति दी जावे या गुदामें सूजन हो तब अनुवासन बस्ति दीजावे या निरूहणके अनन्तर पेयामात्र पान करने पर ही स्नेहबस्ति दीजावे तो वह स्नेह अनावृतमार्ग होनेसे सीधा ऊपरके भागमें चला जाता है । फिर वह कण्ठ आदि ऊपरके मार्गोंसे निकलने लगता है । ऐसा होनेपर गोमूत्र, काली निशोथ, जौ, उन्नाम और कुलथीसे सिद्ध किये हुए क्वाथ तथा इनही द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए तैलसे निरूहण और अनुवासन करे ।

यदि कण्ठमेंसे तेल आता हो तो कण्ठको रोकना प्राणायाम करना, या वस्त्रसे प्राणोंकी रक्षा करतेहुए गलको बान्धना और छर्दिनाशकक्रिया आदि करके दोषको अनुलोमन करना चाहिये ॥ ४०--४३ ॥

अपक्वतैलके दोष और चिकित्सा ।

नापक्वं प्रणयेत्स्नेहं गुदं स ह्युपलिंपति ।
ततः कुर्यात्सतृण्मोहकंडूशोफान् क्रियाऽत्र च ।
तीक्ष्णो बस्तिस्तथा तैलमर्कपत्ररसे शृतम् ४४

अनुवासनमें अपक्व तैल अर्थात् तैलपाक विधिसे सिद्ध करते समय कचारहाहुआ तेल गुदामें नहीं देना चाहिये । वह कच्चातेल गुदामार्गमें उपलेप कर देता है फिर उससे पीड़ा, मोह, खुजली और सूजन हो जाते है । ऐसा होनेपर तीक्ष्णबस्तिका प्रयोग करना तथा तदनन्तर समयपर अर्कपत्रोंके रससे सिद्ध किये हुए तैलसे अनुवासन करना चाहिये ॥ ४४ ॥

मूढ प्रयुक्त बस्तिके दोष तथा चिकित्सा ।

अनुच्छ्वास्य तु बद्धे वा दत्ते निःशेष एव वा।४५
प्रविश्य क्षुभितो वायुः शूलतोदपरो भवेत् ।
तत्राभ्यंगो गुदे स्वेदो वातघ्नान्यशनानि च४६

बस्ति देतेसमय बस्तिके अन्दरकी सम्पूर्ण हवा बिना निकाले यदि बस्ति देदीजावे अथवा बस्तिका द्रव या

तैल भीतर चले जानेके अनन्तर खाली वस्तिको दबावे तो उसके भीतरसे वायु गुदामार्गसे अन्दर जाकर शूल और तोदको करने लग जाती है। ऐसी अवस्थामें गुदा-पर गरम तेलसे अभ्यंग करना और सेचन करना तथा वातनाशक भोजनोंका करना हितकारी होताहै४ ५।४ ६

द्रुतं प्रणीते निष्कृष्टे सहसोत्क्षिप्त एव वा।
स्यात्कटीगुदजंघोरुबस्तिस्तंभार्तिभेदनम्।
भोजनं तत्र वातघ्नं स्वेदाभ्यङ्गाः सबस्तयः ४७

वस्ति करते समय वस्तिको बहुत तीक्ष्ण वेगसे शीघ्र किया जावे तो वह सहसा तीक्ष्ण वेगसे पीड़ित की हुई वस्ति कमर, गुदा, जङ्घा, ऊरुस्थल और मूत्राशयमें पीड़ा और भेदनकीसी पीड़ाको उत्पन्न कर देती है। ऐसी अवस्थामें वातनाशक भोजन करना स्वेदन और अभ्यङ्ग करना तथा पिच्छावस्ति करना हितकारी होता है॥ ४७॥

पीड्यमानेऽन्तरा मुक्ते गुदे प्रतिहतोऽनिलः ४८
उरःशिरोरुजं सादमूर्वोश्च जनयेद्बली।
बस्तिःस्यात्तत्र बिल्वादिफलैःश्यामादिमूत्रवान्।

यदि अपान वायुके वेगको रोककर उसी समय बस्ति करदी जावे तो वह वस्तिसे प्रतिहतहुआ वायु विगुण और बलवान् होकर उरःस्थलमें और शिरमें पीडाको उत्पन्न करदेता है तथा दोनों ऊरुस्थलोंमें शून्यता उत्पन्न कर देता है। ऐसा होनेपर बिल्वादिगण, मैनफल और काली निशोथ आदिसे सिद्ध की हुई वस्तिमें गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्ति करना चाहिये॥४८॥४९॥

अतिप्रपीडितः कोष्ठे तिष्ठत्यायाति वा गलम्।
तत्र बस्तिर्विरेकश्च गलपीडादि कर्म च॥५०॥

अत्यन्त पीड़न की हुई वस्ति, कोष्ठमें स्थित हो जाती है या गलमें चली जाती है ऐसी अवस्थामें वस्तिद्रव्यको विरेचन कराना अथवा गलपीड़न या प्राणायाम आदि कर्म्मसे शान्ति करना चाहिये॥५०

वमनाद्यैर्विशुद्धं च क्षामदेहबलानलम्।
यथाण्डं तरुणं पूर्णं तैलपात्रं यथा तथा।
भिषक् प्रयत्नतो रक्षेत्सर्वस्मादपवादतः॥५१॥

वमन आदि पञ्च कर्मसे विशुद्धहुए पुरुषको जिसका वमनादिसे शोधन होनेपर देह, बल और जठराग्नि निर्बल हो गये है ऐसे पुरुषको सब प्रकारकी आप-त्तियोंसे प्रयत्न पूर्वक वैद्य इस प्रकार रक्षा करे. जैसे अण्डेकी रक्षा पक्षी करता है और परिपूर्ण तैलपात्रको इधर उधर हिलनेसे और गिरनेसे बचाकर मनुष्य रखता है. क्योंकि इस प्रकार शोधन की हुई देहकी सावधानीपूर्वक रक्षा न करनेसे हानिका भय है। शोध नके अनन्तर सूत्रस्थानमें कहीहुई विधिका यथार्थ पालन करना चाहिये॥ ५१॥

दद्यान्मधुरहृद्यानि ततोऽम्ललवणौ रसौ।
स्वादुतिक्तौ ततो भूयः कषायकटुकौ ततः५२

शोधनके अनन्तर शुद्ध देहवालेको प्रथम मधुर और हृदयको हितकारी रसोंका सेवन कराना चाहिये. फिर अम्ल, लवण तदनन्तर मधुर, तिक्त तदनन्तर कषाय और कटुरसोंका सेवन करना चाहिये॥ ५२॥

अन्योन्यप्रत्यनीकानां रसानां स्निग्धरूक्षयोः।
व्यत्यासादुपयोगेन क्रमात्तं प्रकृतिं नयेत्॥५३॥

इस प्रकार एकसे दूसरा रस विपरीत गुणोंवाला बदल २ कर देते हुए ऐसेही स्निग्ध और रूक्ष पदा-र्थोंको बदल २ कर देते हुए मनुष्यको अपने आहार विहार करने योग्य यथार्थ अवस्थामें लेआना चाहिये अर्थात् प्रकृतिस्थ बनाना चाहिये॥ ५३॥

सर्वसहः स्थिरबलो विज्ञेयः प्रकृतिं गतः॥५४॥

जब मनुष्य स्थिर बलवाला होकर सब प्रकारके आहार विहार आदि यथार्थरूपसे करसके और सब कुछ सहन करसके अर्थात् सब प्रकारके आहार इसको पाचन होने लगें और कष्ट सहन करनेकी भी सामर्थ्य आजावे। यह सामर्थ्य स्वाभाविक प्रकृतिके अनुसार स्थिर रूपसे हो तो मनुष्यको प्रकृतिस्थ जानना चाहिये॥ ५४॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टांगहृदयसंहितायां कल्पस्थाने वस्ति-व्यापत्सिद्धौ आयुर्वेदाचार्यपं० शिवशर्मकृतशिवदी-पिकाभाषाव्याख्यायां पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः।

अथाऽतो भेषजकल्पं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम औषधि कल्पना विधानकी व्याख्या करतेहै।

उत्तम वनौषधिके लक्षण।

धन्वसाधारणे देशे समे सन्मृत्तिके शुचौ।
श्मशानचैत्यायतनश्वभ्रवल्मीकवर्जिते ॥ १ ॥
मृदौ प्रदक्षिणजले कुशरोहिषसंस्तृते।
अफालकृष्टेऽनाक्रान्ते पादपैर्बलवत्तरैः ॥ २ ॥
शस्यते भेषजं जातं युक्तं वर्णरसादिभिः।
जंत्वजग्धं दवादग्धमविदग्धं च वैकृतैः ॥ ३ ॥
भूतैश्छायातपाम्ब्वाद्यैर्यथाकालं च सेवितम्।
अवगाढमहामूलमुदीचीं दिशमाश्रितम् ॥ ४ ॥

जाङ्गल तथा साधारण और समदेशमें जिस स्थानकी मट्टी श्रेष्ठ हो, जो स्थान पवित्र हो, जिसमें श्मशान, चैत्यस्थान और छिद्र, साँपकी बम्बी आदि न हों ऐसे स्थानमे अच्छी मट्टीमें पैदा हुई और समय पर यथोचित जलसे बल पायीहुई तथा कुशा और रोहिषतृण युक्त भूमिमें उत्पन्नहुई जो हल आदिसे उखाड़ो न गयी हो तथा दूसरे बलवान् वृक्षोंकी छायामें नीचे दबो हुई न हो और वर्ण रस आदिसे युक्त हो तथा जन्तु आदियोंसे खायीहुई न हो और हिम अथवा दावाग्निसे दग्ध हुई न हो और किसी प्रकारसे विकृत न हो तथा स्वाभाविक पाञ्चभौतिक धम और छाया धूप जल आदिसे यथाकाल यथार्थरूपसे पालित हो, जिसका मूल पृथ्वीमें गहरा गयाहुआ हो और यह वनौषधी उत्तर दिशामें उत्पन्न हुई हो ऐसी ओषधी श्रेष्ठ होती है ॥ १—४ ॥

ओषध ग्रहणकी विधि।

अथ कल्याणचरितः श्राद्धः शुचिरुपोषितः।
गृह्णीयादौषधं सुस्थं स्थितं काले च कल्पयेत् ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर पवित्र चरित्रवाला स्वस्तिवाचनादि मङ्गल कर्म करनेके अनन्तर श्रद्धायुक्त पुरुष प्रथम दिनके निमन्त्रण दी हुई तथा प्रातःकाल यथार्थरूपमें सुन्दर स्थित हुई औषधिको यथाकाल अर्थात् जड़ी बूटी आदिको शरद् ऋतुमें और मैनफल आदिको वसन्त ऋतुमें ग्रहण करे ॥ ५ ॥

ग्राह्य द्रव्य।

सक्षीरं तदसंपत्तावनतिक्रान्तवत्सरम्।
ऋते गुडघृतक्षौद्रधान्यकृष्णाविडङ्गतः ॥ ६ ॥

जो औषधियें निशोथ आदि लाना हो उनको तत्काल उखाड़कर दूधयुक्त लेआना चाहिये। यदि ऐसी तत्काल ग्रहण कीहुई औषधि न मिलसके तो जिस विधिपूर्वक उखाड़ी हुई और सुखायी हुई औषधिको एक वर्षका समय न व्यतीत हुआ हो उसको लेकर औषध कल्पनामें प्रयोग करे। यद्यपि सब औषधियें एक वर्षके भीतरकी और नयी ही लेनी चाहिये. परन्तु गुड़, घृत, मधु, धान्य, पीपल और बायविडंग ये एक वर्षके पुराने ही लेने चाहिये ॥ ६ ॥

पयो बाष्कयणं[1] ग्राह्यं विण्मूत्रं तच्च नीरुजम्।
वयोबलवतां धातुपिच्छश्रृङ्गखुरादिकम् ॥ ७॥

दूध, जवान बछड़ेवाली नीरोग गौका लेना चाहिये। गोमूत्र या गोबर निरोग बलवान् और युवावस्थावाली गऊ आदिका लेना चाहिये।

इसी प्रकार जिन जन्तुओंका धातु, पिच्छा, शृंग, खुर आदि लेने हों वे भी निरोग युवावस्थावाले और बलवान् जन्तुओंके ही लेने चाहिये ॥ ७ ॥

कषाययोनि और कषाय।

कषाययोनयः पञ्च रसा लवणवर्जिताः।
रसः कल्कः शृतः शीतः फांटश्चेति प्रकल्पना।
पञ्चधैव कषायाणां पूर्वं पूर्वं बलाधिका ॥ ८ ॥

लवणरसको छोड़कर मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त और कषाय ये पांच रस कषाययोनि कहे जाते है।

रस, कल्क, शृत, शीत और फांण्ट ये पांच प्रकारकी कषायों (काथों) की कल्पना है। इन पांचोंमें फाण्टसे शीतकषाय, शीतकषायसे शृतकाथ, शृतकाथसे कल्क और कल्कसे स्वरस ये क्रमपूर्वक अधिक बलवाले होते है ॥ ८ ॥

---

१ बाष्कयणं नाम-तरुणवत्साया गोः सम्बधीत्यर्थः।

स्वरसकी कल्पना।

सद्यःसमुद्धृतात्क्षुण्णाद्यः स्रवेत्पटपीडितात्।
स्वरसः स समुद्दिष्टः॥ ९॥—

तत्काल उखाडकर लायेहुए काष्ठद्रव्यको कूटकर वस्त्रसे निचोडे. उसमेंसे जो बिना जल मिलाए रस निकलता है उसको स्वरस कहते है॥ ९॥

कल्क, चूर्ण, क्वाथ और हिमकी कल्पना।

—कल्कः पिष्टो द्रवाप्लुतः।
चूर्णोऽप्लुतः—

औषधिको जल आदि द्रव पदार्थ मिलाकर पीस लेवे इसको कल्क कहते हैं।

बिना जल मिलाए पिसीहुई दवाईको कल्पना-कषाय चूर्ण कहते हैं।

—शृतः क्वाथः—

जिस द्रव्यको कूटकर पानीमें डालकर अग्निपर पकाया जावे और अष्टावशेष या चतुर्थावशेष आदि रहनेपर छान लियाजावे इसको शृत या क्वाथ कहते है।

—शीतो रात्रिं द्रवे स्थितः॥१०॥

जो द्रव्य कूटकर शामको शीतल जलमें भिगो दियाजावे और रात्रिभर रखनेके अनन्तर प्रातःकाल शीतल ही छान लियाजावे; इसको हिम या शीत-कषाय कहते है॥ १०॥

फांटकी कल्पना।

सद्योभिषुतपूतस्तु फांटस्तन्मानकल्पने।
युंज्याद्व्याध्यादिबलतस्तथा च वचनं मुनेः ११

उबलतेहुए जलमें औषधिका चूर्ण डालकर उसको उसी समय उतार कर छान लेवे उसको फाण्ट कहते हैं; यह फाण्ट, हिम, क्वाथादि व्याधिके और दोषके बलाबल तथा रोगीके बलाबलको विचार कर प्रयोग करना चाहिये। ऐसा आत्रेय भगवान्का कथन है॥ ११

स्वरसादिकोंकी मात्राका विचार।

मात्राया न व्यवस्थाऽस्तिव्याधिं कोष्ठंबलंवयः।
आलोच्य देशकालौच योज्यातद्वचकल्पना १२

इन स्वरस कल्कादिकोंकी मात्राका एक मान नहीं। दोष, दूष्य, व्याधि, कोष्ठ, बल, आयु, देश और काल इन सबका विचार कर जिस पुरुषके लिये जितनी मात्रा उचित हो उतनी मात्राकी कल्पना करनी चाहिये॥ १२॥

मध्यं तु मानं निर्दिष्टं स्वरसस्य चतुःपलम्।
पेष्यस्य कर्षमालोड्यं तद्द्रवस्य पलत्रये॥१३॥

साधारण रूपसे स्वरसका मान चार पलका कथन किया है परन्तु देश, काल, अवस्था आदि विचार कर और जिस द्रव्यका स्वरस हो उसकी मृदुता और तीक्ष्णतापर विचार करके मात्रामें न्यूनता या अधिकता कल्पना करनी चाहिये।

इसी प्रकार जिस द्रव्यका कल्क बनाना हो उस द्रव्यको एक कर्ष मात्र लेकर बारीक पीस तीन पल जलमें घोलकर पीवे। यह कल्ककी पूर्ण मात्रा है। इसमें भी अवस्थानुसार न्यूनाधिक करलेना चाहिये॥१३॥

क्वाथं द्रव्यपले कुर्यात्प्रस्थार्धं पादशोषितम्।

एक पल द्रव्यको आठ पल जलमें डालकर पकावे जब चौथा भाग शेष रहे तो उतारकर छान लेवे; इसको क्वाथ कहते हैं और यही क्वाथकी पूर्ण मात्रा है।

शीतं पले पलैः षड्भिः--

इसी प्रकार एक पल द्रव्यके चूर्णको छःपल जलमें रातभर भिगोकर रक्खे और प्रातःकाल छान लेवे। इसको हिम या शीत कषाय कहते है और यही इसकी पूर्ण मात्रा है।

—चतुर्भिश्च ततोऽपरम्॥१४॥

एक पल सूखे द्रव्यके चूर्णको चार पल उबलते-हुए जलमें डालकर उसी समय छान लेवे इसको फाण्ट कहते हैं और इसकी यही पूर्णमात्रा है॥ १४॥

तैल घृत निर्माण प्रकार।

स्नेहपाके त्वमानोक्तौ चतुर्गुणविवर्धितम्।
कल्कस्नेहद्रवं योज्यम्॥ १९॥—

तैल और घृतके बनानेकी सामान्य विधि इस प्रकार है कि—जहांपर तेल या घृत बनानेमें कल्क क्वाथादिका कोई मान न कहा हो वहां कल्कसे चारगुना घृत या

१ वर्तमानकाले एतन्मानस्यापि द्वित्रिचतुरंशकल्पना देशकालप्रकृत्यादिना कार्या।

तैलादि स्नेह और स्नेहसे चारगुना क्राथादि द्रवपदार्थ मिलाकर स्नेहपाक विधिसे तैल घृतादि सिद्ध करे १५॥

—अधीते शौनकः पुनः ॥

स्नेहे सिद्ध्यति शुद्धाम्बुनिःक्काथस्वरसैःक्रमात्। कल्कस्य योजयेदंशं चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ पृथक् स्नेहसमं दद्यात्पञ्चप्रभृति तु द्रवम् १६॥

इस स्नेहपाकको शौनक ऋषि इस प्रकार कहते हैं—यदि घृतादि स्नेह शुद्ध जल डालकर सिद्ध करना हो तो कल्क स्नेहसे चौथा भाग मिलाना चाहिये। यदि स्नेहमें क्राथ मिलाकर सिद्ध कियाजावे तो कल्क छठा भाग मिलाना चाहिये। यदि स्वरस मिलाकर सिद्ध किया जावे तो कल्क आठवां भाग मिलाना चाहिये। यदि घृतादि स्नेहमें द्रवपदार्थ, क्राथ, दूध, रस आदि चार या पांच या इससे अधिक द्रव डालने हों तो स्नेहके समान भाग ही डालने चाहिये ॥ १६ ॥

पाकलक्षण।

नाङ्गुलिग्राहिता कल्के न स्नेहेऽग्नौ सशब्दता। वर्णादिसंपच्च यदा तदैनं शीघ्रमाहरेत् ॥ १७ ॥

जब स्नेहपाकमें पकते २ जल आदि द्रवपदार्थ विलीन हो जावें और कल्क हाथमें चिपटे नहीं तथा अग्निमें डालनेसे चिड़ चिड़ शब्द नहीं करे तथा घृत तैलादिमें यथार्थ वर्णगन्ध उत्पन्न हो जावें तो इसको शीघ्र अग्निसे उतारलेना चाहिये ॥ १७ ॥

घृतादि पाकोंकी परीक्षा।

घृतस्य फेनोपशमस्तैलस्य तु तदुद्भवः। लेहस्य तन्तुमत्ताऽप्सु मज्जनं शरणं न च ॥१८

साधारण रूपसे घृत बनाते समय जब घृतमेंसे क्राथादि द्रव लीन होकर आग शान्त हो जावे तो घृतको सिद्ध जानना चाहिये।

जब द्रवपदार्थ लीन होकर फेन बढ़ने लगे तो तैलको सिद्ध जानना चाहिये।

जिस अवलेहको पानीमें डालनेसे अवलेह डूब जावे और बिखरे नहीं तथा तारें निकलने लगें तो अवलेहको सिद्ध जानना चाहिये ॥ १८ ॥

पाकस्तु त्रिविधो मन्दश्चिक्कणः खरचिक्कणः १९ मंदः कल्कसमे किञ्चिच्चिक्कणो मदनोपमे। किञ्चित्सीदति कृष्णे च वर्तमाने च पश्चिमः२० दग्धोत ऊर्ध्वं निःकार्यःस्यादामस्त्वग्निसादकृत् मृदुर्नस्ये खरोऽभ्यङ्गे पाने बस्तौ च चिक्कणः२१

पाक तीन प्रकारका होता है-एक मन्दपाक, दूसरा चिक्कणपाक, तीसरा खरचिक्कणपाक. जिस स्नेहमेंसे निकालाहुआ कल्क अंगुलीसे न लगे और कल्कके समान जलयुक्तसा प्रतीत हो उसको मन्दपाक कहते है। जिस स्नेहका कल्क हाथमें गोलीसी बनानेसे हाथमें चिपटे उसको चिक्कणपाक कहते है। जिस स्नेहका कल्क हाथसे दबानेसे बत्तीके समान खड़ा रहे और किञ्चित् कृष्णवर्णका हो और उसकी बत्ती बन सके, उसको खरचिक्कणपाक कहते हैं. इसके उपरान्त जो कल्क रेतके समान जलजावे वह दग्धपाक होता है। वह किसी कार्यके करनेवाला नहीं रहता. यदि बिल्कुल कचा रह जावे वह स्नेह अग्निको मन्दकरनेवाला होताहै.

इनमें मृदुपाकवाला स्नेह नस्यकर्ममें प्रयोग करना चाहिये। चिक्कणपाकवाला बस्तिकर्म और पीनेमें प्रयोग करना चाहिये और खरपाकवाला अभ्यङ्गमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १९-२१ ॥

मान परिभाषा।

शाणं पाणितलं मुष्टिः कुडवं प्रस्थमाढकम्। द्रोणं वहं च क्रमशो विजानीयाच्चतुर्गुणम्॥२२

(आठ रत्तिका एक माशा होता है) चार माशेका एक पाणितल चार पाणितलका एक मुष्टि, चार मुष्टिका एक कुड़व, चार कुड़वका एक प्रस्थ, चार प्रस्थका एक आढ़क, चार आढ़कका एक द्रोण और चार द्रोणका एक वह होता है। इस प्रकार क्रमसे प्रथम मानसे दूसरा चतुर्गुण मान (तोल) जानना चाहिये ॥ २२ ॥

द्रव्यमान कल्पना।

द्विगुणं योजयेदार्द्रं कुडवादि तथा द्रवम्। पेषणालोडने वारि स्नेहपाके च निर्द्रवे ॥२३ ॥

सब काष्ठद्रव्य नये और सूखे डालने चाहिये। यदि सूखे द्रव्य न मिलें तो गीले द्रव्य दो गुणे डालने चाहिये।

गुञ्जासे लेकर कुड़व पर्यन्त सब द्रव्य समभागही लेने चाहिये । परन्तु कुडवसे लेकर यदि शुष्कद्रव्य न मिलें तो ताजे गीले द्रव्य दो गुणे डालने चाहिये ।

यदि शुष्कद्रव्योंके पीसने या घोलनेके लिये कोई द्रव पदार्थ न कहे हों तो स्नेहपाकमें काष्ठद्रव्योंको पीसने या घोलनेके लिये जल लेना चाहिये ॥ २३ ॥

कल्पयेत्सदृशान्भागान्प्रमाणं यत्र नोदितम् ।
कल्कीकुर्याच्च भेषज्यमनिरूपितकल्पनम् २४॥

जिस योगमें औषधिका कोई तोल पृथक् पृथक् न कहा हो वहांपर सब औषधियां पृथक् पृथक् समान भाग लेनी चाहिये ।

जहांपर औषधिके सेवनमें क्वाथचूर्णादि कोई यथार्थ विवरण न हो वहांपर उस द्रव्यका कल्क बनाकर प्रयोग करना चाहिये ॥ २४ ॥

कोलादि मान ।

द्वौ शाणौ वटकः कोलं बदरं द्रंक्षणश्च तौ ।
अक्षं पिचुः पाणितलं सुवर्णं कवलग्रहः ॥२५॥
कर्षो बिडालपदकं तिन्दुकः पाणिमानिका ।
शब्दान्यत्वमभिन्नेऽर्थे शुक्तिरष्टमिका पिचू २६
पलं प्रकुंचो बिल्वं च मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ।
द्वे पले प्रसृतस्तौ द्वावञ्जलिस्तौ तु मानिका२७
आढकं भाजनं कंसो द्रोणः कुम्भो घटोर्मणम् ।
तुला पलशतं तानि विंशतिर्भार उच्यते॥२८॥

दो शाणका एक वटक होता है इसको कोल, बदर और द्रंक्षण भी कहते हैं. दो द्रंक्षणोंका एक अक्ष होता है इसको पिचु, पाणितल, सुवर्ण, कवलग्रह, कर्ष, विड़ालपदक, तिन्दुक और पाणिमानिका भी कहते हैं । दो कर्षोंको शुक्ति तथा अष्टमिका कहते है दो शुक्तियोंका एक पल होता है । इसको प्रकुञ्च, बिल्व, मुष्टि, आम्र और चतुर्थिका कहते है । दो पलोंका एक प्रसृत होता है । दो प्रसृतोंकी एक अञ्जलि होती है । इसको कुड़व भी कहते है । दो कुडवोंकी एक मानिका होती है दो मानिकाओंका एक प्रस्थ होता है । चार प्रस्थोंका एक आढ़क होता है । इसको भाजन भी कहते हैं और कंस भी कहते हैं । चार आढ़कोंका एक द्रोण होता है । इसको कुम्भ, घट और अर्मण भी कहते है । सौ पलका एक तुला होता है । २० तुलाका एक भार होता है ॥ २५ -२८ ॥

हिमवद्विंध्यशैलाभ्यां प्रायो व्याप्ता वसुन्धरा ।
सौम्यं पथ्यं च तत्राद्यमाग्नेयं वैन्ध्यमौषधम्२९
अ० ॥६॥ श्लो० ॥३१२॥
समाप्तमिदं कल्पस्थानम् ।

हिमाचल और विन्ध्याचलसे प्रायः सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त है । इनमें हिमाचलकी औषधियें सौम्य अर्थात् सौम्यगुणवाली और पथ्य होती है तथा विन्ध्याचलकी औषधियें आग्नेय अर्थात् अग्निगुणभूयिष्ठ होती हैं २९

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां कल्पस्थाने भेषजकल्पव्याख्याने आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृत शिवदीपिका भाषाव्याख्यायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

समाप्तमिदं कल्पस्थानम् ।
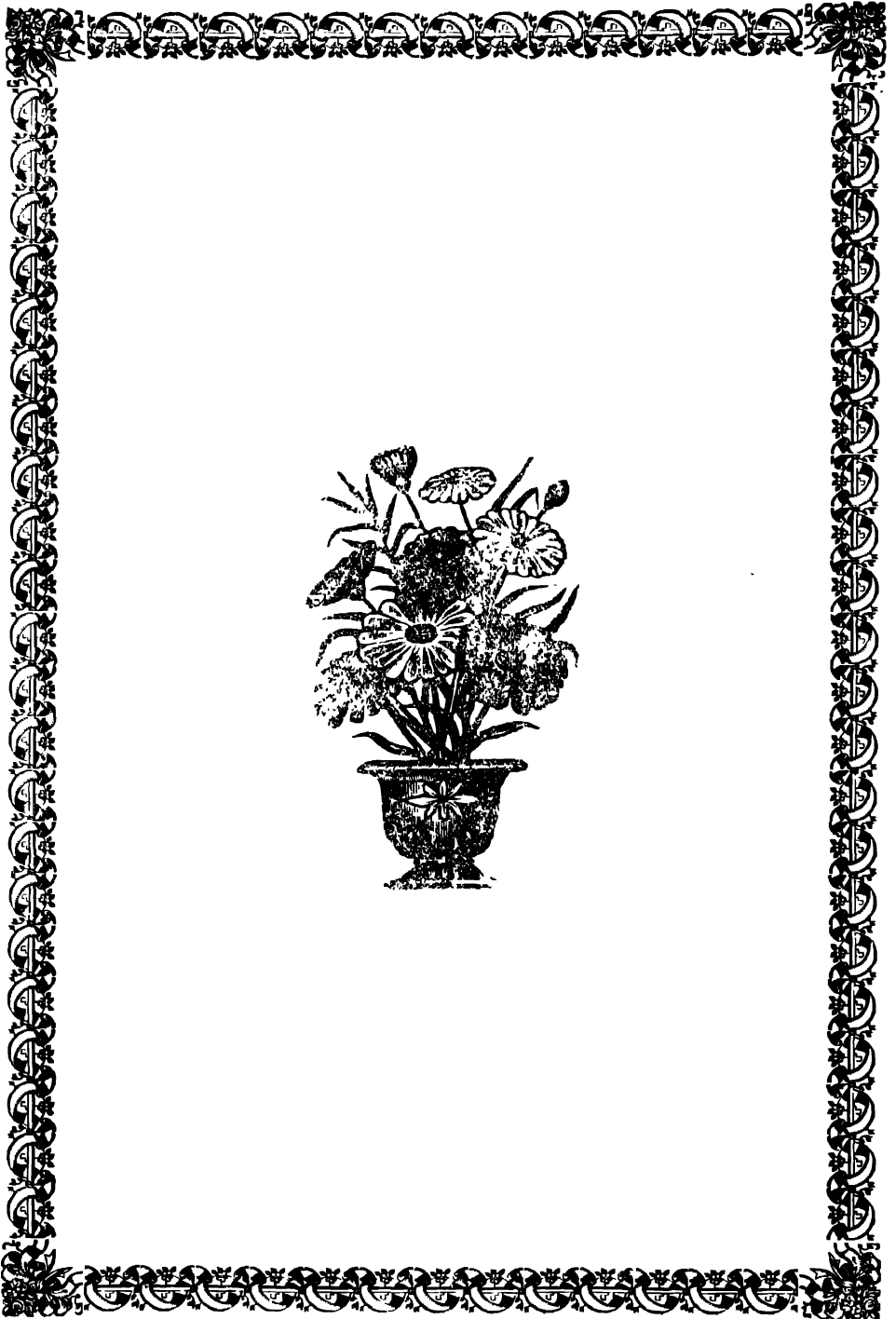
अष्टाङ्गहृदयम् ।

शिवदीपिका-भाषाटीकासहितम् ।

उत्तरस्थानम् ।
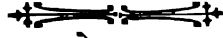
प्रथमोऽध्यायः ।

अथाऽतो बालोपचरणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः । इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

अब हम बालकोंके उपचारोंके वर्णनवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं, इस प्रकार आत्रेय आदि महर्षि कहने लगे ।

बालक उत्पन्न होनेपर कर्तव्य ।

जातमात्रं विशोध्योल्बाद्बालं सैन्धवसर्पिषा ।
प्रसूतिक्लेशितं चानु बलातैलेन सेचयेत् ॥ १ ॥
अश्मनोर्वादनं चास्य कर्णमूले समाचरेत् ।
अथास्य दक्षिणे कर्णे मन्त्रमुच्चारयेदिमम् ॥ २ ॥
" अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादभिजायसे"
"आत्मा वै पुत्रनामासि स जीवशरदां शतम् ३
" शतायुः शतवर्षोऽसि दीर्घमायुरवाप्नुहि" ।
"नक्षत्राणि दिशो रात्रिरहश्च त्वाभिरक्षतु" ॥ ४ ॥

बालकके उत्पन्न होते ही उसकी आंवल आदि साफ करके और सेन्धालूण तथा घृतसे उसके जाले आदि साफ करदे फिर प्रसवके क्लेशको निवृत्त करनेकेलिये इसके शरीरपर बलातैलका सेचन करे और इसके कानके समीप दो पत्थरोंको खटखटावे । तदनन्तर इसके कानमें 'अङ्गादङ्गात्' आदि मंत्र पढे। इन दोनों मन्त्रोंका यह अर्थ है:—तुम अंग अंगसे पैदा हुए हो और हृदयसे पैदा हुए हो, आत्माही पुत्र नाम वाला है । तुम १०० वर्षतक जीते रहो सौ वर्षकी आयुवाले हो, सौ वर्षके हो, दीर्घ आयुको प्राप्त हो, सब नक्षत्र, दिशायें, रात्रि और दिन तुम्हारी रक्षा करें ॥ १-४ ॥

नाभि कृन्तन विधि ।

स्वस्थीभूतस्य नाभिं च सूत्रेण चतुरङ्गुलात् ।
बद्ध्वोर्ध्वं वर्धयित्वा च ग्रीवायामवसञ्जयेत् ॥ ५ ॥
नाभिं च कुष्ठतैलेन सेचयेत्स्नपयेदनु ।
क्षीरिवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा ॥
कोष्णेन तप्तरजततपनीयनिमज्जनैः ॥ ६ ॥

जब यह बालक स्वस्थ हो जाय तो इसकी नाभिको नाभिस्थानसे चार अंगुल छोडकर सूतके डोरेसे कसकर बान्ध देवे बन्धनके स्थानसे थोडासा छोड़ कर औऊ लगी हुई नाभिको छेदन करके अलग कर देवे । और वह सूतका डोरा इस बालकके गलेकी ओर लपेट देवे फिर नाभिको कूठके तेलसे सेचन करे । इसके अनन्तर क्षीरीवृक्षोंके क्वाथ और सर्वगन्धके जलमें चान्दी और सोना अग्निमें तप्त करके बुझावे । इस सोने और चान्दीके बुझानेसे हुए कोष्ण जलसे इस बालकको स्नान करावे ॥ ५ ॥ ६ ॥

तालु अवगुण्ठन विधि ।

ततो दक्षिणतर्जन्या तालून्नम्यावगुण्ठयेत् ।
शिरसि स्नेहपिचुना प्राश्यं चास्य प्रयोजयेत् ७
हरेणुमात्रं मेधायुर्बलार्थमभिमान्त्रितम् ।
ऐन्द्रीब्राह्मीवचाशंखपुष्पीकल्कं घृतं मधु ॥ ८ ॥

फिर दहने हाथकी तर्जनी अंगुलीसे इस बालकके तालुस्थानको अवगुण्ठन करे । फिर इसके शिरपर तेलसे भिगोया हुआ फोहा रख देवे और इस बालकको हरेणुके दाने समान इन्द्रवारुणी, ब्राह्मी वच और शङ्खपुष्पीका कल्क मधु घृत मिलाकर मेधा, आयु और बलकी वृद्धिकेलिये पूर्वोक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके चटावे ॥ ७ ॥ ८ ॥

सुवर्णादि प्राशन ।

चामीकरवचाब्राह्मीताप्यपथ्या रजीकृताः ।
लिह्यान्मधुघृतोपेता हेमधात्रीरजोऽथवा ॥ ९ ॥

अथवा सुवर्णकी भस्म, बच, ब्राह्मी, सोनामक्खीकी भस्म और हरीतकी इनका बारीक चूर्ण मधु घृत मिलाकर हरेणुके बीज समान चटावे, अथवा सुवर्णभस्म और आमलेका चूर्ण मधु घृतमें मिलाकर चटावे ॥ ९ ॥

गर्भजल निस्सारण।

गर्भाम्भः सैन्धववता सर्पिषा वामयेत्ततः ।
प्राजापत्येन विधिना जातकर्माणि कारयेत् १०

तदनन्तर सैन्धवलवणयुक्त घृत चटाकर गर्भके अन्दरका जल निकालनेको वमन करावे ।

इसके अनन्तर जातकर्म संस्कार प्राजापत्य विधिके साथ कराना चाहिये ॥ १० ॥

तीन दिन दूधका निषेध ।

सिराणां हृदयस्थानां विवृतत्वात्प्रसूतितः ।
तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते।११।

स्त्रियोंके हृदयसे संबन्ध रखनेवाली शिरायें प्रसवके समयसे विवृतमुखवाली होती है इस कारण स्त्रियोंके स्तनोंमें तीसरे अथवा चौथे दिन दूधकी प्रवृत्ति होती है ॥ ११ ॥

मधुघृत प्राशन ।

प्रथमे दिवसे तस्मात्रिकालं मधुसर्पिषी ।
अनंतामिश्रिते मंत्रपाविते प्राशयेच्छिशुम् १२

इस कारण प्रथम दिन बालकको शारिवा मिले मधु घृतको तीन कालमें मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके चटाना चाहिये ॥ १२ ॥

द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं तृतीये च घृतं ततः१३
प्राङ्निषिद्धस्तनस्यास्य तत्पाणितलसंमितम् ।
स्तन्यानुपानं द्वौ कालौ नवनीतं प्रयोजयेत् १४

दूसरे दिन और तीसरे दिन लक्ष्मणासे सिद्धघृत पिलाना चाहिये. तदनन्तर स्त्रीका प्रथम दूध पृथ्वीपर निकालकर इस बालकको दो काल थोड़ा थोड़ा दूध पिलावे (चुंघावे) और ऊपरसे नवनीत (मक्खन) चटा देवे ॥ १३ ॥ १४ ॥

धात्री (धायके) गुण ।

मातुरेव पिबेत्स्तन्यं तत्परं देहवृद्धये ।
स्तन्यधात्र्यावुभे कार्ये तदसंपदि वत्सले॥१५॥
अव्यङ्गे ब्रह्मचारिण्यौ वर्णप्रकृतितः समे ।
नीरुजे मध्यवयसौ जीवद्वत्से न लोलुपे ।
हिताहारविहारेण यत्नादुपचरेच्च ते ॥ १६ ॥

बालकको उसकी माताका ही दूध पिलाना चाहिये माताका दूध बालकके लिये हितकारी और सर्वश्रेष्ठ होता है. यदि कोई ऐसा कारण हो कि, माताका दूध बालकको न मिलसके तो इसके लिये दूध पिलानेवाली दो स्त्रियें धायरूपसे रखनी चाहिये यह स्त्रियें बालकसे सच्चा स्नेह करनेवाली ब्रह्मचारिणी सौम्य प्रकृतिवाली वर्ण और प्रकृतिमें समान, निरोग, मध्य अवस्थावाली, जिनके बच्चे जीते हो, जो चञ्चल और लोभग्रस्त न हों ऐसी धायस्त्रियें हित आहार विहारके साथ इस बालकका यत्नपूर्वक सावधानीसे पालन करे ॥ १५ ॥ १६ ॥

दूधके न्यूनाधिक होनेमें कारण।

शुक्क्रोधलंघनायासाःस्तन्यनाशस्य हेतवः १७

सोच चिन्ता करना, क्रोध करना, लंघन और आयास यह स्त्रियोंके स्तनोंके दूधको नष्ट करनेवाले हेतु है ॥ १७ ॥

स्तन्यस्य सीधुवर्ज्यानि मद्यान्यानूपजा रसाः।
क्षीरं क्षीरिण्य ओषध्यःशोकादेश्च विपर्ययः१८

सीधुके विना मद्य, अनूपसञ्चारी जीवोंके मांसरस, दूध, क्षीरविदारी, सतावर आदि दूध वर्द्धक औषधियें, निश्चिन्तता और प्रसन्नता आदि स्तनोंमें दूधके बढ़ानेवाले होते हे ॥ १८ ॥

बालकके लिये रोगोत्पादक दूध ।

विरुद्धाहारभुक्तायाः क्षुधितायाः विचेतसः ।
प्रदुष्टधातोर्गर्भिण्याःस्तन्यं रोगकरं शिशोः।१९

जो स्त्री विरुद्ध आहार कर चुकी हो अथवा क्षुधातुर हो या उसका चित्त किसी चिन्ता आदिमें लगा हुआ हो अथवा जिसके धातु दूषित हों, या गर्भवती स्त्री हो ऐसी स्त्रियोंका दूध पीनेसे बालकको रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ १९ ॥

स्त्रीके दूधके अभावमें बकरी या गौका दुध ।

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ।
हृस्वेन पंचमूलेन स्थिरया वा सितायुतम् २०

यदि स्त्रीका दूध न मिलसके तो उसीके समान गुणोंवाला बकरीका दूध या गौका दूध, लघुपञ्चमूलसे सिद्ध करके अथवा शालपर्णी और पृश्नपर्णीसे सिद्ध करके मिसरीयुक्त दूध पिलाना चाहिये ॥२०॥

छठे दिनका कर्तव्य ।

षष्ठीं निशां विशेषेण कृतरक्षाबलिक्रियाः ।
जागृयुर्बान्धवास्तस्य दधतःपरमां मुदम् ॥२१

बालकके जन्मसे छठी रात्रिको बालककी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये, और इससे बलिकर्म्मादि करादेना चाहिये । इस रात्रिको इस बालकके सब बान्धव परम आनन्द और प्रसन्नताको मनाते हुए जागरण करे ॥ २१ ॥

नामकरणसंस्कार ।

दशमे दिवसे पूर्णे विधिभिः स्वकुलोचितैः ।
कारयेत्सूतिकोत्थानं नामबालस्य चार्चितम् २२
बिभ्रतोऽङ्गैर्मनोह्वालरोचनागुरुचन्दनम् ।
नक्षत्रदेवतायुक्तं बान्धवं वा समाक्षरम् ॥२३॥

इसके अनन्तर पूरे दस दिन होनेपर अपने कुलके रिवाजके अनुसार मङ्गलकर्म्म करके प्रसूता स्त्रीका उत्थान करे।और बालकका शुभ नामसंस्कार करे, तथा उस बालकके अंगोंको मनसिल,हरताल,गोरोचन,अगर और चन्दनसे चर्चित करे और वह नाम नक्षत्र और देवताके अनुसार अपने बान्धव या जातिके समान सम अक्षरोंवाला नाम रक्खे ॥ २२, २३, ॥

अन्य रक्षाविधि ।

ततः प्रकृतिभेदोक्तरूपैरायुःपरीक्षणम् ।
प्रागुदक्शिरसःकुर्यात् बालस्य ज्ञानवान्भिषक्
शुचिधौतोपधानानि निर्वलीनि मृदूनि च ।
शय्यास्तरणवासांसि रक्षोघ्नैर्धूपितानि च॥२४॥

इसके अनन्तर वैद्य प्रकृतिके भेदोंसे कहेहुए लक्षणोंसे बालककी आयुकी परीक्षा करे । बुद्धिमान वैद्य बालकका शिर पूर्वकी ओर करके पवित्र शुद्ध धुले हुए, सलवट रहित, मृदु रक्षोघ्न धूपोंसे धूपित वस्त्रोंसे बिछायीहुई शय्याके ऊपर बालकको लिटावे ॥२४॥

काको विशस्तःशस्तश्च धूपने त्रिवृतान्वितः२५

रक्षोघ्न धूपमें मारा हुआ काक और निशोथका चूर्ण मिलाना श्रेष्ठ कहा जाता है ॥ २५ ॥

धारणीय द्रव्य ।

जीवत्खड्गादिशृंगोत्थान् सदा बालः--
--शुभान् मणीन् ।
धारयेदौषधीःश्रेष्ठाब्राह्म्यैन्द्रीजीवकादिकाः २६
हस्ताभ्यां ग्रीवया मूर्ध्ना विशेषात्सततं वचाम् ।
आयुर्मेधास्मृतिस्वास्थ्यकरीं रक्षोभिरक्षिणीम्॥

बालकको सदैव शुभकारक मणियें धारण करना चाहिये । और जीते हुए गैण्डेके सींगसे बनेहुए छल्ला आदि धारण करने चाहिये । तथा ब्राह्मी, ऐन्द्री, जीवक आदि श्रेष्ठ औषधि हाथमें अथवा; गर्दनमें या मस्तकपर धारण करनी चाहिये, विशेष करके वचका धारण करना हितकारी होता है । बच आयु, मेधा, स्मृति और स्वास्थ्यके करनेवाली है तथा राक्षसोंसे रक्षा करने वाली है ॥ २६, २७ ॥

उपवेशन और अन्नप्राशन ।

पञ्चमे मासि पुण्येऽह्नि धरण्यामुपवेशयेत् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि क्रमात्तत्र प्रयोजयेत् ॥२८॥

इस बालकको पाचवें महीनेमें शुभ दिन मुहूर्तमें पृथ्वी पर बिठाना चाहिये । और छठे महीनेमें अन्नप्राशन कराना चाहिये फिर क्रमसे जैसे उचितहो उस प्रकार अन्नका प्रयोग कराना चाहिये ॥ २८ ॥

कर्णवेधन विधि ।

षट्सप्तमाष्टमासेषु नीरुजस्य शुभेऽहनि ।
कर्णौ हिमागमे विध्येद्धात्र्यङ्कस्थस्य सात्वयन्॥

छठे सातवें, अथवा आठवें महीनेमें निरोग बालकके शुभ दिनमें और हेमन्त ऋतुमें बालकको धात्रीकी गोदमें बिठाकर सांत्वना देते हुए कर्ण वेधन करना चाहिये ॥ २९ ॥

प्राग्दक्षिणं कुमारस्य भिषग्वामं तु योषितः३०
दक्षिणेन दधत्सूचीं पालिमन्येन पाणिना ।

मध्यतः कर्णपीठस्य किञ्चिद्गण्डाश्रयं प्रति ३१
जरायुमात्रप्रच्छन्ने रविरश्म्यवभासिते ।
धृतस्य निश्चलं सम्यगलक्तकरसाङ्किते ॥ ३२ ॥
विध्येद्दैवकृते छिद्रे सकृदेवर्जु लाघवात् ।
नोर्ध्वं न पार्श्वतो नाधःशिरास्तत्र हि संश्रिताः ॥
कालिका मर्मरी रक्ता॥ ३३ ॥--

यदि लड़का हो तो प्रथम दहिना कान वेधन करना चाहिये । यदि लड़की हो तो प्रथम वाम कर्ण वेधन करना चाहिये । वैद्य दहने हाथमें सूई लेकर और बायें हाथसे बालककी कर्णपालीको पकड़ कर कर्णपीठके मध्य भागमें किंचित् गण्डस्थलकी ओर जालामात्रसे संछन्न दैवकृत छिद्र रहता है उसको सूर्य्यकी किरणोंके सन्मुख देखकर शान्तिसे निश्चल बैठेहुए बालकके लाखके रसके साथ अङ्कित किये हुए दैवकृत छिद्रमें सिद्ध हाथसे एक कालमें ही सीधा छेद करदेवे यह सूचीसे वेधन दैवकृत छिद्रसे न ऊपर होना चाहिये, न किनारे पर होना चाहिये और न अधोभागमें होना चाहिये.क्योंकि दैवकृत छिद्रसे इधर उधर कालिका, मर्मरी और रक्ता ये शिरायें होती हे ॥ ३०-३३॥

-तद्व्यधाद्रागरुग्ज्वराः ।
सशोफदाहसंरम्भमन्यास्तम्भापतानकाः॥३४॥

उनमें वेधन होजानेसे लालिमा, पीड़ा, ज्वर, सूजन, दाह, संरंभ, मन्यास्तंभ और अपतानक ये रोग हो सकते हे ॥ ३४ ॥

तेषां यथामयं कुर्याद्भिषज्याशु चिकित्सितम् ।
स्थाने व्यधान्न रुधिरं न रुग्रागादिसम्भवः ३५

यदि इन शिराओंमें वेधन होजाय तो जो रोग हो उसकी शीघ्र चिकित्सा कर देनी चाहिये ।

यदि दैवकृत छिद्रमें यथास्थान ठीक वेधन किया जाय तो न रुधिर निकलता हे और न पीड़ा तथा लालिमा आदि उत्पन्न होते हे ॥ ३५ ॥

स्नेहाक्तं सूच्यनुस्यूतं सूत्रं चानु निधापयेत् ।
आमे तैलेन सिञ्चेच्च बहलां तद्वदारया ॥ ३६॥
विध्येत्पालीं हितभुजः संचार्याथ स्थवीयसी ।
वर्तिस्त्र्यहात्ततो रूढं वर्धयेत शनैःशनैः ॥३७ ॥

कर्णपाली वेधन करते समय सूईमें अच्छा धागा डालकर उसको तेलमें भिगो देना चाहिये । कर्णवेधनके पश्चात् वह तेलसे चिकना डोरा कानमें छोटासा हिस्सा छोड़कर बाकी डोरा काट लेना चाहिये और इस वेधन कियेहुए, कान और डोरेके ऊपर कचे तेलको सेचन करते रहना चाहिये. यदि कर्णपाली मोटी हो तो उसको आरसे या जिस्तकी मुर्कीसे वेधन करना चाहिये. इस बालकको हितभोजन कराते रहना चाहिये और कानका छेद किञ्चित् बड़ा करनेके लिये तीसरे २ दिन पहले डोरेसे सूत्रकी बनाईहुई किञ्चित् मोटी वत्ती कर्णपालीके छिद्रमें बदलता रहे इस प्रकार धीरे२अच्छी हुई कर्णपालीको बढ़ाता रहे ॥ ३७ ॥

स्त्रीका दूध छुडवानेका क्रम।

अथैनं जातदशनं क्रमेणापनयेत्स्तनात् ।
पूर्वोक्तं योजयेत्क्षीरमन्नं च लघु बृंहणम्॥३८॥

इसके अनन्तर जब बच्चेके दाँत पैदा हो जांय तब इसको धीरे २ स्तनोंका दूध पीनेसे हटाताजाय और शरीरको पुष्ट करनेवाला हलका अन्न और दूध सेवन कराता रहे ॥ ३९ ॥

बालकके लिये पथ्य भोजन ।

प्रियालमज्जमधुकमधुलाजसितोपलैः ।
अपस्तनस्यसंयोज्यःप्रीणनो मोदकःशिशोः३९
दीपनो बालबिल्वैलाशर्करालाजसक्तुभिः ।
संग्राही धातकीपुष्पशर्करालाजतर्पणैः ॥४०॥

जब बालकसे स्तनोंका दूध छुडवा दिया जावे तब इसको चिरौंजी, मुलहठी, सहद और धानकी खील तथा मिसरी मिलाकर मोदक बनाकर शरीर पुष्टकरनेकेलिये खानेको देवे अथवा बालबिल्व (बिल्वका कचाफल), इलायची, खाण्ड और धानकी खीलके सत्तू इनके मोदक अग्निको दीपन करनेकेलिये खिलाया करे । यदि बालकको बहुत रेचन होकर मल आता हो तो धावेके फूल, मिसरी और धानकी खीलोंके सत्तू मिलाकर यह संग्राही तर्पण पिलाकर उसके शरीरका पालन करे॥ ३९-४०॥

बालककी चिकित्सा ।

रोगांश्चास्य जयेत्सौम्यैर्भेषजैरविषादकैः ।
अन्यत्रात्ययिकाद्व्याधेर्विरेकं सुतरां त्यजेत् ४१

यदि इस बालको कोई रोग होजाय तो उसको विषाद न करनेवाली सौम्य औषधोंके साथ उसके रोगोंको शमन करना चाहिये और किसी व्याधिमें विरेचन कराना आवश्यक ही हो तो विरेचन करावे अन्यथा इसको विरेचनकी औषधियें नहीं पिलाना चाहिये ॥ ४१ ॥

सर्वदा रक्षाविधि ।

त्रासयेन्नाविधेयं तं त्रस्तं गृह्णन्ति हि ग्रहाः ।

बालकको भय या त्रास नहीं देना चाहिये क्योंकि भयभीत और त्रस्त बालकको बालग्रह शीघ्र ग्रहण कर लेते है ।

वस्त्रवातात्खरस्पर्शात् पालयेल्लंघिताच्च तम् ४२

तथा इस बालकको कठोर और खर्दरे वस्त्र नहीं पहनाना चाहिये और तीक्ष्ण पवनके स्पर्शसे भी बचाकर रखना चाहिये तथा भूखा नहीं रहने देना चाहिये ॥ ४२ ॥

कुमारकल्याण घृत ।

ब्राह्मीसिद्धार्थकवचासारिवाकुष्ठसैन्धवैः ।
सकणैः साधितं पीतं वाङ्मेधास्मृतिकृद्घृतम् ।
आयुष्यं पाप्मरक्षोघ्नं भूतोन्मादनिबर्हणम् ४३ ॥

ब्राह्मी, सर्सों, बच, शारिवा, कूठ, सेंधालवण, और पीपलसे सिद्धकिया घृत बालकोंको पिलानेसे इनकी वाणी, मेधा और स्मरणशक्ति बढती है यह घृत आयुको बढ़ाता है तथा पाप, राक्षस भूत और उन्मादको नाश करनेवाला है ॥ ४३ ॥

अष्टमङ्गलघृत ।

वचेन्दुलेखा मण्डूकी शंखपुष्पी शतावरी ।
ब्रह्मसोमामृताब्राह्मीः कल्कीकृत्य पलांशिकाः
अष्टाङ्गं विपचेत्सर्पिःप्रस्थं क्षीरं चतुर्गुणम् ।
तत्पीतं धन्यमायुष्यं वाङ्मेधास्मृतिबुद्धिकृत् ।

बच, बावची, मण्डूकपर्णी, शंखपुष्पी, शतावर, विधायरा, गिलोय और ब्राह्मी ये प्रत्येक एक एक पल लेकर कल्क करे इसमें एक सेर घृत और चार सेर दूध मिलाकर घृत सिद्धकरे यह अष्टांगघृत पीनेसे बालकोंकी शारीरिक सम्पत्ति, आयु, वाणी, मेधा, स्मृति और बुद्धिको बढ़ाता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

सारस्वत घृत ।

अजाक्षीराभयाव्योषपाठोग्राशिग्रुसैन्धवैः ।
सिद्धं सारस्वतं सर्पिर्वाङ्मेधास्मृतिवह्निकृत् ४६

बकरीका दूध ४ सेर, घृत १ सेर, तथा हरड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, पाठा, बच, सुहांजना और सेन्धालवण ये प्रत्येक एक पल लेकर कल्क बनावे इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे. यह सारस्वतघृत पीनेसे वाणी, मेघा, स्मृति और बुद्धिको बढ़ाताहै ॥ ४६ ॥

वचादिघृत ।

वचामृताशठीपथ्याशंखिनीवेल्लनागरैः ।
अपामार्गेण च घृतं साधितं पूर्ववद्गुणैः ॥४७॥

ऐसे ही बच, गिलोय, कचूर, हरड़, शंखपुष्पी, वायविडंग, सोंठ और अपामार्गसे सिद्ध किया घृत वाणी मेधा, स्मृति और बुद्धिको बढ़ाता है ॥ ४७॥

सुवर्णयुक्त चार योग ।

हेमश्वेतवचा कुष्ठमर्कपुष्पी सकाञ्चना ।
हेममत्स्याक्षकः शंखः कैडर्यः कनकं वचा४८॥
चत्वार एते पादोक्ताः प्राश्या मधुघृतप्लुताः ।
वर्षं लीढा वपुर्मेधाबलवर्णकराः शुभाः ॥४९॥

१—स्वर्णभस्म, सफेदबच और कूठ । २—अर्कपुष्पी और सुवर्णभस्म । ३—सुवर्णभस्म ब्राह्मी और शंखपुष्पी । ४—कायफल, सुवर्णभस्म और वच; ये एक एक पादमें कहेहुए चार योगोंमेंसे किसी एक योगको मधु घृतमें मिलाकर एक वर्षतक चाटते रहनेसे बालकोंके शरीर, मेधा, बल और वर्ण बढ़ते हे ये शुभकारी योग है ॥ ४९ ॥

वचादि चूर्ण ।

वचायष्ट्याह्वसिन्धूत्थपथ्यानागरदीप्यकैः ।
शुद्ध्यते वाग्घविर्लीढैः सकुष्ठकणजीरकैः ॥५०

वच, मुलहठी, सेंधालवण, हरीतकी, सोंठ, अजवायन, कूठ, पीपल और जीरेका चूर्ण घृतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंकी वाणी शुद्ध होजाती है॥५०

इति श्रीवाग्भटाचार्यकृताष्टाङ्गहृदयसंहितायां उत्तरतन्त्रे बालोपचरणीयाध्याये आयुर्वेदाचार्य पं.शिवशर्म्म-कृताशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयऽध्यायः।

अथातो बालामयप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम बालकोंके रोगोंके उपायोंवाले अध्यायकी व्याख्या करते है।

तीन प्रकारके बालक।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तनः।
स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यांरोगसंभवः॥

बालक तीनप्रकारके होते हैं. एक केवल दूधका आहार करनेवोले, एक दूध और अन्नके आश्रित रहनेवाले, एक केवल अन्नके आश्रित रहनेवाले।

जन्मसे लेकर सोलह वर्षतककी अवस्थाको बाल्यावस्था कहते हैं। उनमें एक वर्ष तककी अवस्था केवल दूध पीनेवाली कही जाती है। दो वर्षतककी अवस्था दूध और अन्नका आहारकरनेवाली कही जाती है। इसके उपरान्तकी अवस्थाको अन्नखानेवाली अवस्था कही जाती है।

बालकका स्वास्थ्य उसके आहार पर निर्भर है। इस कारण यदि दूध और अन्न ये दोनों शुद्ध निरोग और विधिपूर्वक सेवन करायाजाय तो बालक निरोग रहता है और यदि अन्न और दूध दूषित मिले तो बालकको रोग उत्पन्न हो जाते हैं॥ १ ॥

शुद्ध दूधकी परीक्षा।

यदाप्स्वेकतां याति न च दोषैरधिष्ठितम्।
तद्विशुद्धं पयः॥ २ ॥–

जो दूध पानीमें डालनेसे पानीमें मिल जावें और डालते ही एकरूपहो जाय उसको दोषरहित और शुद्ध दूध जानना चाहिये॥ २ ॥

वातदूषित दूधके लक्षण।

–वाताद्दुष्टं तु प्लवतेऽम्भसि।
कषायं फेनिलं रूक्षं वर्चोमूत्रविबन्धकृत॥३॥

वायुसे दूषित दूध जलमें डालनेसे जलके ऊपर तैरने लगता है। तथा रसमें कषाय झागदार रूक्ष और मलमूत्रके विबन्धको करनेवाला होता है॥३॥

पित्तदूषित दूधके लक्षण।

पित्ताद्दुष्टाम्लकटुकं पीतराज्यप्सु दाहकृत्॥४॥

पित्तसे दूषित दूध उष्ण, खट्टा, कटुरसयुक्त, जलमें डालनेसे पीले वर्णकी राजियोंको त्याग करनेवाला और दाहके करनेवाला होता है॥ ४ ॥

कफदूषित दूधके लक्षण।

कफात्सलवणं सान्द्रं जले मज्जति पिच्छिलम्॥५॥

कफसे दूषित दूध किञ्चित् लवणरसयुक्त तारोंवाला और गाढ़ा होता है तथा जलमें डालनेसे डूब जाता है॥ ५ ॥

त्रिदोषसे दूषित दूधके लक्षण।

संसृष्टलिंगं संसर्गात्त्रिलिंगं सांनिपातिकम्॥६॥

तीनों दोषोंके मिलेहुए लक्षणोंसे सन्निपातसे दूषित दूध जानना चाहिये॥ ६ ॥

आहार दोषज व्याधि।

यथास्वलिंगांस्तद्व्याधीन् जनयत्युपयोजितम्।

जैसे जैसे दोषवाला दूध बालकको पिलाया जाता है उन्हीं दोषोंके लक्षणोंवाली व्याधियोंको उत्पन्न कर देता है॥ ७ ॥

बालकके रोगोंको जाननेकी विधि।

शिशोस्तीक्ष्णामतीक्ष्णां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम्।
सोऽयं स्पृशेद्भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः।
तत्र विद्याद्रुजम्–

बालकके शरीरमें रोगकी मन्दता और तीक्ष्णता उसके रोदनसे जानलेना चाहिये। यदि वह बहुत रोदन करे तो रोग बलवान् जानना चाहिये। यदि किञ्चित् रोदन करे तो रोग अल्प जानना चाहिये।

बालकके सम्पूर्ण शरीरपर हाथ फेरकर देखे जिस स्थानपर हाथके स्पर्शको बालक सहन न करसके और जिस स्थानको बालक वारंवार स्पर्श करै उस स्थानमें रोग जानना चाहिये।

–मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात्।
हृदि जिह्वौष्ठदशनश्वासमुष्टिनिपीडितैः।
कोष्ठे विबन्धवमथुस्तनदंशान्त्रकूजनैः॥
आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि।
बस्तौ गुह्ये च विण्मूत्रसंगत्रासादिगीक्षणैः॥८॥

यदि बालकके शिरमें पीड़ा हो तो वह अपने नेत्रोंको निमीलन करलेता है ।

यदि बालकके हृदयमें पीड़ा हो तो जिह्वा और होठोंको दबाता है. दोनों हाथोंकी मुट्ठियां बन्द करलेता है । और उसको श्वास लेनेमें कष्ट होता है ।

यदि बालकके कोष्ठमें विकार हो तो मलका विबन्ध, वमन और अपनी माताके स्तनोंको काटना तथा अन्तड़ीका गूंजना, अथवा आध्मान, पीठका भीतरको नमना, उदरका ऊपरको उठना आदि लक्षण होते हैं ।

यदि मूत्राशय या मलद्वारमें पीड़ा हो तो विष्ठा मूत्रका रुकना तथा विष्ठा मूत्रत्यागनेके समय इधर उधर देखना यह लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

बालकोंके रोगोंकी चिकित्सा ।

अथ धात्र्याःक्रियां कुर्याद्यथादोषंयथामयम् ९

छोटे बालकोंके ऐसे रोगोंमें रोगानुसार और दोषानुसार बालकको दूध पिलानेवाली माता या धाईकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९ ॥

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलं त्र्यहं पिबेत् ।
अथवाग्निवचापाठाकटुकाकुष्ठदीप्यकम् ।
सभार्गीदारुसरलवृश्चिकालीकणेषणम् ॥ १०॥

वातदूषित दूधमें धाईको तीन दिन तक दशमूलका काथ पिलाना चाहिये अथवा चित्रक, बच, पाठा, कुटकी, कूठ, अजवायन, भारङ्गी, देवदारु, सरलकाष्ठ, वृश्चिकाली, पीपल और मिर्चका काथ तीन दिनतक पिलाना चाहिये ॥ १० ॥

ततः पिबेदन्यतमं वातव्याधिहरं घृतम् ।
अनु चाच्छसुरामेवं स्निग्धं मृदु विरेचयेत् ।
बस्तिकर्म ततःकुर्यात्स्वेदादींश्चानिलापहान् ११

इसके अनन्तर कोई वातव्याधिनाशक घृत पिलाना चाहिये। उसके ऊपर अच्छा सुरा पिलाकर स्निग्ध और मृदु विरेचन कराना चाहिये । तदनन्तर वातनाशक वस्तिकर्म और स्वेदन आदि करने चाहिये । यह सब चिकित्सा दूध चुंघानेवाली माता या धाईकी करनी चाहिये ॥ ११ ॥

रास्नाजमोदासरलदेवदारुरजोऽन्वितम् ।
बालो लिह्याद् घृतं तैर्वा विपक्कं ससितोपलम् १२

रास्ना, अजमोद, सरल, देवदारुका चूर्ण और मिसरी मिलाकर बालकको घृत चटावे । अथवा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत बालकको चटावे ॥१२॥

पित्तदूषित स्तन्यकी चिकित्सा ।

पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलीनिम्बचन्दनम् ।
धात्री कुमारश्च पिबेत् क्राथयित्वा सशारिवम् १
अथवा त्रिफलामुस्तभूनिंबकटुरोहिणीः ।
सारिवादिं पटोलादिं पद्मकादिं तथा गणम् १४

यदि पित्तदूषित दूध धाईका हो तो उसको गिलोय, सतावर, पटोलपत्र, निंब, चन्दन और शारिवा इनका काथ धाई और बालक दोनोंको पिलावे अथवा त्रिफला, नागरमोथा, चिरायता और कुटकीका काथ पिलावे। अथवा शारिवादिगण या पटोलादि गण और पद्मकादिगणका काथ पिलावे ॥ १३–१४ ॥

घृतान्येभिश्च सिद्धानि पित्तघ्नं च विरेचनम् ।
शीतांश्चाभ्यंगलेपादीन् युंज्यात् ॥ १५ ॥–

अथवा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृत पिलावे तथा पित्तनाशक विरेचन करावे और शीतल अभ्यङ्ग लेपनादिका प्रयोग करना चाहिये ॥ १५ ॥

कफ दूषित स्तन्यकी चिकित्सा ।

–श्लेष्मात्मके पुनः ।
यष्ट्याह्वसैन्धवयुतं कुमारं पाययेद् घृतम्॥१६
सिंधूत्थपिप्पलीमद्यां पिष्टैः क्षौद्रयुतैरथ ।
राठपुष्पैः स्तनौ लिंपेच्छिशोश्चं दशनच्छदौ ।
सुखमेवं वमेद्बालः ॥ १७ ॥–

यदि कफसे दूषित धाईका दूध हो तो बालकको मुलहठी और सेन्धालवण युक्त घृत पिलावे । अथवा सेन्धालवण और पीपल मिला घृत पिलावे । तदनन्तर मैनफलके फूलोंको पीसकर मधुमें मिलाकर धाईके स्तनोंपर लेप करे और बालकके दन्तच्छदों (मसूडों) पर लेप करे । इससे वमन होकर बालकका कफविकार शमन हो जाता है ॥ १६–१७ ॥

--तीक्ष्णैर्धात्रीं तु वामयेत्।
अथाचरितसंसर्गां मुस्तादिं क्वथितं पिबेत् १८॥
तद्वत्तगरपृथ्वीकासुरदारुकलिङ्गकान्।
अथवाऽतिविषामुस्तषड्ग्रन्थापञ्चकोलकम् १९

इसके अनन्तर दूध चुंघानेवाली स्त्रीको तीक्ष्ण द्रव्योंसे वमन करावे। वमनके अनन्तर पेयादि पानक्रमसे स्वस्थ होजाने पर मुस्तकादि गणका क्वाथ पिलावे। अथवा तगर, कलौंजी, देवदारु और इन्द्रजौका क्वाथ पिलावे। अथवा अतीस, नागरमोथे, बच और पञ्चकोलसे सिद्ध किया हुआ क्वाथ पिलावे॥ १८॥ १९॥

क्षीरालसकके लक्षण।

स्तन्ये त्रिदोषमलिने दुर्गन्ध्यामं जलोपमम्।
विबद्धमच्छं विच्छिन्नं फेनिलं चोपवेश्यते२०॥
शकृन्नानाऽव्यथावर्णं मूत्रं पीतं सितं घनम्।
ज्वरारोचकतृट्छर्दिशुष्कोद्गारविजृम्भिकाः २१
अङ्गभङ्गोऽङ्गविक्षेपः कूजनं वेपथुर्भ्रमः।
घ्राणाक्षिमुखपाकाद्या जायन्तेऽन्येऽपि तं गदम्
क्षीरालसकमित्याहुरत्ययं चातिदारुणम् ॥२२॥

यदि त्रिदोषसे दूषित दूध बालक पीवे तो उस बालकको दुर्गन्धित, कच्चा, जलकी समान बन्धा हुआ अच्छ, विच्छिन्न, झागदार और नानावर्णका विष्ठा आता है। और इस बालकका मूत्र पीतवर्णका, श्वेत, गाढ़ा और अनेक वर्ण तथा अनेक प्रकारकी व्यथावाला होता है। इस लड़केको ज्वर, अरुचि, प्यास, छर्दि, सूखी उद्गार, जंभाई, अङ्गभङ्ग, अंगविक्षेपण, कूजन, कम्प, भ्रम तथा नासिका, नेत्र और मुखका पकना आदि अनेक विकार इस बालकको हो जाते हैं। इस अतिदारुण विनाशकारी रोगको क्षीरालसक कहते है॥ २०—२२॥

क्षीरालसककी चिकित्सा।

तत्राशु धात्रीं बालं च वमनेनोपपादयेत् ॥२३॥
विहितायां च संसर्ग्यां वचादिं योजयेद्गणम्।
निशादिं वाऽथवा माद्रीपाठातिक्ताघनामयान्।

इस क्षीरालसकरोगमें बालक और दूध पिलानेवाली धायको शीघ्र वमन करा देना चाहिये। धायको वमन करानेके अनन्तर पेया पान आदिसे स्वस्थ होनेपर बचादिगण अथवा निशादिगणका क्वाथ पिलावे। अथवा अतीस, पाठा, कटुकी, नागरमोथे और कूठका क्वाथ पिलावे॥ २३॥ २४॥

पाठादि क्वाथ।

पाठाशुण्ठ्यमृतातिक्तातिक्तादेवाह्वसारिवाः।
समुस्तमूर्वेन्द्रयवाः स्तन्यदोषहराः परम्॥२५॥

पाठा, सोंठ, गिलोय, चिरायता, कटुकी, देवदारु, शारिवा, नागरमोथा, मूर्वा और इन्द्रजौ ये सब द्रव्य मिलाकर क्वाथ करे. यह क्वाथ स्त्रियोंके दूधके दोषोंको हरनेमें सर्वश्रेष्ठ है॥ २५॥

अनुबन्धे यथाव्याधि प्रतिकुर्वीत कालवित्२६

यदि बालकको किसी रोगका अनुबन्ध हो तो दोषकालादिके जाननेवाला वैद्य उस रोगके अनुसार चिकित्सा करे॥ २६॥

दन्तोद्भेदक रोग।

दन्तोद्भेदश्च रोगाणां सर्वेषामपि कारणम्।
विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजाम्।
अतिस्पन्दस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते२७

बालकोंके दांतोंका निकलना प्रायः सब रोगोंका कारण होता है। पर विशेषरूपसे ज्वर, अतीसार, खांसी, छर्दि, मस्तकपीड़ा, नेत्र दुखना, पोथकी और वीसर्प इनका कारण होता है॥ २७॥

पृष्ठभङ्गे बिडालानां बर्हिणां च शिखोद्गमे।
दन्तोद्भवे च बालानां नहि किञ्चिन्न दूयते २८॥

बिल्लीके बच्चेकी पीठकी अस्थि बढ़नेके समय, मोरके शिखा निकलनेके समय, और बालकोंके दांतनिकलनेके समय कोई ऐसा अंग बाकी नहीं रहता जिसमें कोई पीड़ा न हो॥ ॥ २८॥

बालरोगोंकी चिकित्साक्रम।

यथादोषं यथारोगं यथोद्रेकं यथाशयम्।
विभज्य देशकालादींस्तत्र योज्यं भिषग्जितम्॥

बालकोंके दन्तोद्भेदक रोगमें जैसा दोष, जैसा रोग, जैसा दोषोंका उद्रेक और जैसा आशय हो उसके अनुसार देश काल आदि विचारकर उन रोगोंकी चिकित्सा करदेनी चाहिये॥ २९॥

त एव दोषा दूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च यत् ।
अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा त्वस्य कनीयसी ।
सौकुमार्याल्पकायत्वात्सर्वान्नानुपसेवनात् ३०॥

जो दोष, दूष्य और ज्वर आदि व्याधियें पुरुषोंको होती हैं वह ही दोष दूष्य आदि और ज्वरादि व्याधियें बालकोंको होती है ! इसलिये जो चिकित्सा पुरुषोंके रोगोंकी है वही बालकोके रोगोंकी है किन्तु बालकोंके लिये सुकुमार होनेसे अल्पशरीरवाले होनेसे और सब प्रकारके अन्नादि सेवन करनेकी सामर्थ्य न होनेसे बालकोंके लिये उन ही औषधियोंकी अल्प मात्रा होती है ॥ ३० ॥

स्निग्धा एव सदा बाला घृतक्षीरनिषेवणात् ॥
सद्यस्तान्वमनं तस्मात्पाययेन्मतिमान् मृदु ।
स्तन्यस्य तृप्तं वमयेत् क्षीरक्षीरान्नसेविनम् ३१

इसके अतिरिक्त बालक सदैव स्निग्ध रहते हैं क्योंकि उनका दूध घृत ही आहार है. इस कारण बुद्धिमान् वैद्य इनको शीघ्र वमन करा सकता है ।

केवल स्तन्यपान करनेवालेको तथा क्षीर और अन्न सेवनकरनेवावालेको अर्थात् दो वर्षकी अवस्था तक जब बालकको वमन कराना हो तो उसको वमन करानेसे पहले पेट भरकर दूध पिलालेना चाहिये॥ ३१॥

पीतवन्तं तनुं पेयामन्नादं घृतसंयुताम् ॥ ३२ ॥

जो अन्नाद बालक हैं अर्थात् दो वर्षसे ऊपरकी अवस्थावाले है उनको घृत मिलाकर पतलीसी पेया पिलानेके अनन्तर वमन कराना चाहिये ॥ ३२ ॥

बस्तिं साध्ये विरेकेण मर्शेन प्रतिमर्शनम् ।
युंज्याद्विरेचनादींस्तु धात्र्या एव यथोदितान् ३३

यदि बालकका रोग विरेचनद्वारा साध्य हो तो उसको वस्तिकर्मद्वारा शमन करना चाहिये । यदि मर्श नस्यद्वारा साध्य हो तो प्रतिमर्श नस्य देनी चाहिये विरेचनादिविधि तो बालकको दूध पिलानेवाली धायको ही यथाक्रम करानी चाहिये ॥ ३३ ॥

स्तन्यजरोगनाशक मूर्वादिचूर्ण ।

मूर्वाव्योषवराकोलजम्बूत्वग्दारुसर्षपाः ।
सपाठा मधुना लीढाः स्तन्यदोषहराः परम् ३४

मूर्वा, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, जामुनके वृक्षका छिलका, देवदारु, सरसों और पाठा इनका चूर्ण मधु मिलाकर चाटनेसे सब प्रकारके स्तन्य (दूध) दोष दूर होते हैं ॥ ३४ ॥

दन्तोद्भेदककी चिकित्सा ।

दन्तपालीं समधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् ।
पिप्पल्या धातकीपुष्पधात्रीफलकृतेन वा ३५॥

दन्तोद्भेदक रोगमें दांत निकालनेके स्थानको पीपलका चूर्ण और मधु मिलाकर मर्दन करना चाहिये । अथवा धावेके फूल और आमलेका चूर्ण मधुमें मिलाकर मर्दन करना चाहिये ॥ ३५ ॥

लावतित्तिरवल्लूररजः पुष्परसप्लुतम् ।
द्रुतं करोति बालानां दन्तकेसरवन्मुखम् ॥३६॥

लवा और तीतरके सूखेहुए मांसका चूर्ण मधुमें मिलाकर बालकोंकी दन्तपालीमें मर्दन करना बालकोंके मुखको शीघ्र ही दांतरूपीके शरसे युक्त करदेता है ॥ ३६ ॥

वचादि घृत ।

वचाद्विबृहतीपाठाकटुकातिविषाघनैः ।
मधुरैश्च घृतं सिद्धं सिद्धं दशनजन्मनि ॥ ३७ ॥

बच, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, पाठा, कुटकी, अतीस, नागरमोथे और मधुगणकी औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत दांत निकालनेमे सिद्ध योग है ॥३७॥

हरिद्रादि चूर्ण ।

रजनी दारु सरलः श्रेयसी बृहतीद्वयम् ॥३८॥
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ।
ग्रहणीदीपनं श्रेष्ठं मारुतस्यानुलोमनम् ॥३९॥
अतीसारज्वरश्वासकामलापाण्डुकासनुत् ।
बालस्य सर्वरोगेषु पूजितं बलवर्णदम् ॥ ४० ॥

हल्दी, देवदारु, सरल, हरड़, छोटी कटेली, बड़ी कटेली पृष्ठपर्णी और सौंफ इनका चूर्ण मधुघृत मिलाकर चाटना ग्रहणी विकारको शमन करता है । जठराग्निको दीपन करता है, वायुको अनुलोमन करनेमें श्रेष्ठ है। तथा अतीसार, ज्वर, श्वास, कामला, पाण्डु और खांसीको नष्ट करता है । यह बालकके

सब रोगोंमें दिया जासकता है तथा बल और वर्णको बढ़ानेवाला है ॥ ३८--४० ॥

काश्यप घृत ।

समङ्गाधातकीरोध्रकुटंनटबलाह्वयैः ।
महासहाक्षुद्रसहाक्षुद्राबिल्वशलाटुभिः ॥ ४१ ॥
सकार्पासीफलैस्तोये साधितैः साधितं घृतम् ।
क्षीरमस्तुयुतं हन्ति शीघ्रं दन्तोद्भवोद्भवान् ।
विविधानामयानेतद्वृद्धकश्यपनिर्मितम् ॥ ४२॥

मंजीठ, धावेके फूल, लोध, भद्रमोथा, खरेटी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, बिल्वका छोटा कचा कोमल फल और कपासके फल इन सबके क्काथमें दूध और मस्तु मिलाकर सिद्धकिया घृत बालकोंके दांत निकलनेके समय होनेवाले विविध प्रकारके रोगोंको शमन करता है; यह घृत वृद्धकश्यप ऋषिका कहा हुआ है॥४१॥४२

दन्तोद्भवेषु रोगेषु न बालमतियन्त्रयेत् ।
स्वयमप्युपशाम्यन्ति जातदन्तस्य यद्गदाः॥४३

दन्तोद्भदक रोगोंमें बालकका अति नियन्त्रण नहीं करना चाहिये। क्योंकि दांत निकलजानेके वाद दांत निकलनेके समय उत्पन्नहोनेवाले रोग स्वयं शान्त हो जाते है ॥ ४३ ॥

बालकके शोषेका कारण।

अत्यहःस्वप्नशीताम्बुश्लैष्मिकस्तन्यसेविनः ।
शिशोःकफेन रुद्धेषु स्रोतःसु रसवाहिषु॥४४॥
अरोचकः प्रतिश्यायो ज्वरः कासश्च जायते ।
कुमारः शुष्यति ततः स्निग्धशुक्लमुखेक्षणः ४५

यदि बालक दिनमें बहुत सोवे और बहुत शीतल जल पीवे तथा कफदूषित दूध पीवे उस बालकके रसवाही स्रोत कफसे रुद्ध हो जाते हैं तब बालकको अरोचक,प्रतिश्याय, ज्वर और खांसी उत्पन्न होजाते है तब बालकका शरीर सूखने लगता है और मुख चिकनासा रहता है तथा नेत्र सफेद होजाते है ॥४४॥४५॥

बालकके शोषकी चिकित्सा ।

सैन्धवव्योषशार्ङ्गेष्टापाठागिरिकदम्बकान् ।
शुष्यतो मधुसर्पिर्भ्यामरुच्यादिषु योजयेत् ४६

इस सूखतेहुए और अरुचि आदिसे युक्त बालकको सेंधालवण, सोंठ, मिर्च, पीपल, काकजंघा, पाठा और गिरिकदम्ब इनका चूर्ण घृत और मधु मिलाकर चटाते रहना चाहिये ॥ ४६ ॥

अशोकरोहिणीयुक्तं पञ्चकोलं च चूर्णितम् ।
बदरीधातकीधात्रीचूर्णं वा सर्पिषा द्रुतम्॥४७

अथवा अशोककी छाल, कटुकी और पंचकोलका चूर्ण या उन्नाभ, धावेके फूल और आमलेका चूर्ण घृतमें मिलाकर चटावे तो बालकोंका शोष रोग दूर होता है ॥ ४७ ॥

शोषनाशक घृत ।

स्थिरावचाद्विबृहतीकाकोलीपिप्पलीनतैः ।
निचुलोत्पलवर्षाभूभार्गीमुस्तैश्च कार्षिकैः ।
सिद्धं प्रस्थार्धमाज्यस्य स्रोतसां शोधनं परम्॥

शालपर्णी, वच, कटेली, बड़ी कटेली, काकोली, तगर, वेतसवृक्षकी छाल, कमल, श्वेतपुनर्नवा, भारंगी और नागरमोथा ये प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर इनसे आधसेर घृत सिद्ध करे यह घृत बालकोंके स्रोतोंको शुद्ध करके बालकोंके सूखनेको दूर करता है ॥४८॥

सिंह्यश्वगन्धा सुरसा कणागर्भं च तद्गुणम् ४९

बड़ी कटेली, अश्वगंधा, तुलसी और पीपलसे सिद्ध किया घृत बालकोंके स्रोतोंको शुद्ध कर शोषरोगको दूर करता है ॥ ४९ ॥

यष्ट्याह्वपिप्पलीरोध्रपद्मकोत्पलचन्दनैः ।
तालीसशारिवाभ्यांच साधितं शोषजिद्घृतम्॥

मुलहठी, पीपल, लोध, पद्मकाष्ठ, कमल, चन्दन, तालीसपत्र और शारिवा इनसे सिद्ध किया घृत बालकोंके शोषरोगको दूर करता है ॥ ५० ॥

भृङ्गीमधूलिकाभार्गीपिप्पलीदेवदारुभिः ।
अश्वगन्धाद्विकाकोलीरास्नर्षभकजीवकैः॥५१॥
शूर्पपर्णीविडङ्गैश्च कल्कितैः साधितं घृतम् ।
शशोत्तमाङ्गनिर्यूहे शुष्यतः पुष्टिकृत्परम्॥५२॥

काकड़ासिंगी, मुलहठी, भारंगी, पीपल, देवदारु, असगंध, काकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना, ऋषभक, जीवक,माषपर्णी,मुद्गपर्णी,और वायविडंग इनके कल्क

और शशेके शिरके काथमें सिद्ध कियाहुआ घृत सूखते-हुए बालकोंको पुष्ट बनादेता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

शोषनाशक तैल ।

वचावयस्थातगरकायस्थाचोरकैः शृतम् ।
बस्तमूत्रसुराभ्यां च तैलमभ्यञ्जने हितम्॥५३॥

वच, हरीतकी, तगर, आमले और चोरकके कल्क तथा बकरेके मूत्र और सुरा मिलाकर सिद्ध किया तैल शरीरपर मलनेसे बालकका शोष रोग दूर होता है॥५३

लाक्षादि तैल ।

लाक्षारससमं तैलप्रस्थं मस्तुचतुर्गुणम् ॥ ५४ ॥
अश्वगन्धानिशादारुकौन्तीकुष्ठाब्दचन्दनैः ।
समूर्वारोहिणीरास्नाशताह्वामधुकैः समैः ॥ ५५ ॥
सिद्धं लाक्षादिकं नाम तैलमभ्यञ्जनादिदम् ।
बल्यं ज्वरक्षयोन्मादश्वासापस्मारवातनुत् ।
यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीनां च शस्यते ॥५६॥

लाखका रस १ सेर, तेल १ सेर, दहीका मस्तु ४ सेर इनको मिलाकर इनमें असगन्ध, हल्दी, दारुहल्दी, रेणुका, कूठ, नागरमोथे, चन्दन, मूर्वा, कुटकी, रास्ना, सौंफ और मुलहठी, ये प्रत्येक दो दो कर्ष लेकर कल्क करके मिलावे । तैलपाकविधिसे इस लाक्षादि तैलको सिद्ध करे । यह तैल बालकके शरीरपर मालिश आदिके लिये हितकारी है और बलकारक है तथा ज्वर, क्षय, उन्माद, श्वास, अपस्मार, वातविकार, यक्षभय, राक्षसभय और भूत इन सबको नष्ट करता है; तथा गर्भवती स्त्रियोंके लिये हितकारी है॥ ५४-५६॥

अतीसादि चूर्ण खांसी और ज्वरपर ।

मधुनाऽतिविषाशृंगीपिप्पलीर्लेहयेच्छिशुम् ।
एकां वातिविषां कासज्वरच्छर्दिरुपद्रुतम्॥५७॥

अतीस, काकड़ासिंगी और पीपल शहदमें मिलाकर चटानेसे बालकके खांसी, ज्वर और छर्दि दूर हो जाते है ॥ ५७ ॥

बालकोंकी वमनका यत्न ।

पीतं पीतं वमति यः स्तन्यं तं मधुसर्पिषा ॥५८
द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत् ।
पिप्पली पञ्चलवणं कृमिजित्पारिभद्रकम्॥५९॥
तद्वाल्लिह्यात्तथा व्योषं मषीं वा रोमचर्मणाम् ।
लाभतः शल्यकश्वाविद्गोधर्क्षशिखिजन्मनाम् ॥

जो बालक स्तनका दूध पी पीकर वमन करता रहे उसको पञ्चकोलका चूर्ण तथा छोटी और बड़ी कटेलीके फलोंका रस मधु घृतमें मिलाकर चटावे । अथवा पीपल, पांचों लवण, वायविडंग और पारिभद्रका चूर्ण मधु घृतमें मिलाकर चटावे अथवा त्रिकटु मधु घृतमें मिलाकर चटावे अथवा सेह, शशक, गोधा, रीछ और मोर इननेंसे जो मिलसके उसके रोम और चर्मको भस्म करके बनायीहुई कज्जली मधुमें मिलाकर चटावे ॥ ५८-६० ॥

खादिरार्जुनतालीसकुष्ठचन्दनजे रसे ।
सक्षीरं साधितं सर्पिर्वमथुं विनियच्छति ॥६१॥

खैर, अर्जुन, तालीसपत्र, कूठ और चन्दन इनके काथमें दूध मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत बालकोंके वमन रोगको शमन करता है ॥ ६१ ॥

दुष्ट दांतोंवाले बालकका शान्तिकर्म ।

सदन्तो जायते यस्तु दन्ताः प्राग्यस्य चोत्तराः
कुर्वीत तस्मिन्नुत्पाते शान्तिकं च द्विजातये ।
दद्यात्सदक्षिणं बालं नैगमेषं च पूजयेत्+॥६२॥

जो लड़का दांतों समेत उत्पन्न हो अथवा जिसके ऊपरके दांत पहले उत्पन्न हों तो उसको उत्पात समझ कर इसमें शान्तिकर्म करना चाहिये । लड़का दक्षिणा सहित ब्राह्मणको दान करके देदेना चाहिये और नैगमेषग्रहकी पूजा करनी चाहिये ॥ ६२ ॥

तालुकण्टकके लक्षण और चिकित्सा ।

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम् ।
तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते॥६३॥
तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम् ।
तृडास्यकण्ठाक्षिरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः॥६४॥

+ क्षेपकावत्र—

" हनुमूलगतो वायुर्दन्तदेशेऽस्थिगोचरः ।
यदा शिशोः प्रकुपितो नोत्तिष्ठन्ति तदा द्विजाः ॥ १ ॥
रूक्षाशिनो वातिकस्य चालयत्यनिलः शिराः ।
हन्वाश्रयाः प्रसुप्तस्य दन्तैः शब्दं करोत्यतः " ॥ २ ॥

बालकके तालुवेंके मांसमें कुपित हुआ कफ तालुकण्टकरोगको उत्पन्न करता है उससे शिरमें तालुप्रदेशमें निम्नता आजाती है । उससे तालुका नीचेको गिरना, स्तनोंसे द्वेष, कष्टसे थोड़ा दूध पीना, मलका पतला आना, प्यास, मुखमें खाज, नेत्रोंमें पीड़ा गर्दनको धारण न करना और वमन होना ये लक्षण होते हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

तत्रोत्क्षिप्य यवक्षारक्षौद्राभ्यां प्रतिसारयेत् ।
तालु तद्वत्कणाशुण्ठीगोशकृद्रससैन्धवैः ॥६५॥

इस रोगमें तालुवेको ऊपरको उठाकर जवाखार और शहद मल देना चाहिये । अथवा तालुवेको उठाकर पीपल सोंठ गोबरका रस और सेन्धानमक मलदेना चाहिये ॥ ६५ ॥

शृङ्गबेरनिशाभृङ्गकल्कितं वटपल्लवैः ॥ ६६ ॥
बद्धा गोशकृता लिप्तं कुकूले स्वेदयेत्ततः ।
रसेन लिम्पेत्ताल्वास्यं नेत्रे च परिषेचयेत्॥६७॥

अदरक, हल्दी और भांगरेका कल्क बनाकर उसको बटके पत्रोंमें लपेटकर गोलासा बनावे. फिर उसके ऊपर गौके गोबरका लेप करके तुषोंकी आंचमें स्वेदन करे । फिर निकालकर इसका रस निचोड़ लेवे । यह रस तालु, मुख और नेत्रोंपर लगावे तो तालुकण्टकका विकार शमन हो जाता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् ।
पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकंटकात् ॥

हरीतकी, वच और कूठके कल्कको मधु मिलाकर बालकको स्तनोंके दूधके साथ पिलावे तो तालुकण्टकरोग दूर होता है ॥ ६८ ॥

बालकके पूतनारोगके लक्षण और चिकित्सा ।

मलोपलेपात्स्वेदाद्वा गुदे रक्तकफोद्भवः ।
ताम्रो व्रणोऽन्तःकण्डूमान् जायते भूर्युपद्रवः
केचित्तं मातृकादोषं वदन्त्यन्येऽपि पूतनम् ।
प्रष्टारुर्गुदकुन्दं च केचिच्च तमनामिकम् ॥७०॥

बालकके मलके उपलेपसे या पसीना आनेसे गुदामें रक्त और कफसे उत्पन्न हुआ ताम्रवर्णसा हो जाता है उसमें खुजली बहुत होती है और बहुत उपद्रव होता है । कोई इसको मातृकादोष कहते हैं, कोई इसको पूतना कहते हैं, कोई प्रष्टारु, कोई गुदकन्द, कोई तमनामिक कहते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

तत्र धाऱ्याः पयः शोध्यं पित्तश्लेष्महरौषधैः ।
शृतशीतं च शीताम्बुयुक्तमन्तरपानकम् ७१॥

इस रोगमें दूधपिलानेवाली धाईके दूधको पित्त कफनाशक औषधियोंसे शोधन करना चाहिये॥७१॥

सक्षौद्रतार्क्ष्यशैलेन व्रणं तेन च लेपयेत् ।
त्रिफलाबदरीप्लक्षत्वक्क्वाथपरिषेचितम् ॥७२
कासीसरोचनातुत्थमनोह्वालरसाञ्जनैः ।
लेपयेदम्लपिष्टैर्वा चूर्णितैर्वावचूर्णयेत् ॥७३ ॥
सुश्लक्ष्णैरथवा यष्टीशंखसौवीरकाञ्जनैः ।
सारिवाशङ्खनाभिभ्यामसनस्य त्वचाऽथवा ७४

शहद और रसौंत मिलाकर उसमें उबाल कर ठण्ढा कियाहुआ जल डालकर उस बालकके गुदा आदि स्थानको धोवे और शहद और रसौतको ही शृतशीत जलमें घोलकर लेप करे । तथा इस अहिपूतनाके व्रणको त्रिफला, बेरीकी छाल और पिलखनकी छालके काथसे सेचन करे अथवा कसीस, गोरोचन, नीलाथोथा, मनसिल, हड़ताल और रसौंत इनको काञ्जीमें पीस कर लेप करे अथवा बारीक चूर्ण बनाकर बुरकावे अथवा मुलहठी, मुर्दासिंग सफेद सुर्मा और काला सुर्मा इनका बारीक चूर्ण बुर्कावे अथवा शारिवा, शङ्खकी नाभि और विजयसारकी छाल इनका बारीक चूर्ण बुरकावे ॥ ७२-७४ ॥

रागकण्डूत्कटे कुर्याद्रक्तस्रावं जलौकसा ।
सर्वं च पित्तव्रणजिच्छस्यते गुदकुट्टके ॥७५॥

यदि इस तमनामिक (गुदकुट्टक) रोगमें, गुदामें खाज और लालिमा बहुत अधिक हो तो जलौका लगा कर रक्तस्राव कराना चाहिये तथा सम्पूर्ण पित्तव्रण नाशक क्रियायें करनी चाहिये ॥ ७५ ॥

मीट्टी खानेसे उत्पन्न हुए रोगोंकी चिकित्सा ।

पाठावेल्लद्विरजनीमुस्तभार्गीपुनर्नवैः ।
सबिल्वत्र्यूषणैः सर्पिर्वृश्चिकालीयुतैः शृतम् ॥
लिहानो मात्रया रोगैर्मुच्यते मृत्तिकोद्भवैः ७६

पाठा, वायविडंग, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, भारंगी, पुनर्नवा, बिल्व, सोंठ, मिरच,पीपल और वृश्चिकाली इनके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत मात्रानुसार बालकको चटानेसे मृत्तिका खानेसे उत्पन्नहुए बालकके रोग दूर होते है ॥ ७६ ॥

सम्पूर्ण रोगोंमें औषध देनेका क्रम ।

व्याधेर्यद्यस्य भैषज्यं स्तनस्तेन प्रलेपितः ।
स्थितो मुहूर्तं धौतोऽनु पीतस्तं तं जयेद्गदम् ॥

जिस २ रोगकी जो २ औषधि है उसके कल्कको धायके स्तनोंपर लेप करे । उसको एक मुहूर्त रखनेके अनन्तर धो डाले फिर वह स्तन बालकको चुंघावे तो बालकका वह रोग शमन होजाता है ॥ ७७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टांगहृदयसंहितायामुत्तरतन्त्रे बालरोगप्रतिषेधनीयाध्याये आयुर्वेदाचार्य पं०-शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो बालग्रहप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अब हम बालग्रहोंके प्रतिषेधवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं ।

बालग्रहोंकी उत्पत्ति ।

पुरा गुहस्य रक्षार्थं निर्मिताः शूलपाणिना ।
मनुष्यविग्रहाः पञ्च सप्त स्त्रीविग्रहा ग्रहाः॥१॥

पुराकालमें महादेवजीने स्वामी कार्तिककी रक्षाके लिये जो ग्रह निर्माण किये थे उनमें पांच तो पुरुषशरीरवाले हैं और सात स्त्री शरीरवाले कहेगये हैं ॥ १ ॥

ग्रहोंकी स्त्री-पुरुष जाति ।

स्कन्दो विशाखो मेषाख्यःश्वग्रहःपितृसंज्ञितः ।
शकुनिः पूतना शीतपूतना दृष्टिपूतना ।
मुखमण्डलिका तद्वद्रेवती शुष्करेवती ॥ २ ॥

इनमें स्कन्दग्रह विशाखग्रह, मेषग्रह, श्वग्रह और पितृग्रह ये पांचों पुरुषशरीरवाले हैं । शकुनि, पूतना, शीतपूतना, दृष्टिपूतना, मुखमण्डलिका, रेवती और शुष्करेवती ये सातों स्त्रीशरीरवाले हैं ॥ २ ॥

ग्रहजुष्टके लक्षण ।

तेषां ग्रहीष्यतां रूपं प्रततं रोदनं ज्वरः ॥ ३ ॥

उनके ग्रहण करनेसे निरन्तर रोना और ज्वर ये लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

ग्रहजुष्टके सामान्य लक्षण ।

सामान्यं रूपमुत्त्रासजृम्भाभ्रूक्षेपदीनताः ।
फेनस्रावोर्ध्वदृष्ट्योष्ठदन्तदंशप्रजागराः ॥ ४ ॥
रोदनं कूजनं स्तन्यविद्वेषः स्वरवैकृतम् ।
नखैरकस्मात्परितःस्वधात्र्यङ्गविलेखनम् ॥ ५ ॥

सामान्यरूपसे उन ग्रहोंसे जुष्ट बालकके यह लक्षण होते हैं--बच्चेको त्रास होना, जंभाइयें बहुत आना, भ्रुकुटियोंको ऊपरको चढ़ाना, डरे हुयेके समान दीन होना, मुखसे झागका गिरना, दृष्टिका ऊपरको होना, अपने होठोंको दाँतोंसे काटना, जागते ही रहना, रोना, कूजन करना, स्तनोंसे विद्वेष, स्वरका विकृत होना, अपने नखोंसे धायके अङ्गोंको अकस्मात् उत्पाटन करना ॥ ४ ॥ ५ ॥

स्कन्दग्रहजुष्टके लक्षण ।

तत्रैकनयनस्रावी शिरो विक्षिपते मुहुः ।
हतैकपक्षः स्तब्धाङ्गः सस्वेदो नतकन्धरः ॥६॥
दन्तखादी स्तनद्वेषी त्रस्यन् रोदिति विस्वरः ।
वक्रवक्त्रो वमेल्लालां भृशमूर्ध्वं निरीक्षते ॥ ७ ॥
वसासृग्गन्धिरुद्विग्नो बद्धमुष्टिशकृच्छिशुः ।
चलितैकाक्षिगण्डभ्रूः संरक्तोभयलोचनः ।
स्कन्दार्तस्तेन वैकल्यं मरणं वा भवेद्ध्रुवम् ॥८

जिस बालकके एक नेत्रसे स्राव होता हो, शिरको बार २ इधर उधर मारे, एक पक्ष हत होगया हो, अंग अकड़ जावे, पसीना आवे, गरदन नीचेको होजावे, दाँतोंसे होठोंको काटता हो, स्तन नहीं पीवे, त्रासके साथ रोदन करे, स्वर बठ जावे, मुख टेढ़ा होजाय, मुखसे लार गिरे, प्रायः ऊपरको दृष्टि रक्खे, शरीरसे चर्बी और रक्तकीसी गन्ध आवे, उद्विग्न हो, हाथकी मुष्टियें बांधकर रक्खे, मलबद्ध हो, एक ओरका नेत्र, गण्डस्थल और भृकुटी चलायमान हो और दोनों नेत्र लालवर्णके होजावे इन लक्षणोंवाले बालकको

स्कन्दग्रहजुष्ट जानना चाहिये॥ जिसको स्कन्दग्रहने ग्रहण किया हो वह विकल होता है अथवा अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ६-८ ॥

स्कन्दापस्मारके लक्षण।

संज्ञानाशो मुहुः केशलुञ्चनं कन्धरानतिः॥९॥
विनम्य जृम्भमाणस्य शकृन्मूत्रप्रवर्तनम्।
फेनोद्वमनमूर्ध्वेक्षा हस्तभ्रूपादनर्तनम् ॥ १० ॥
स्तनस्वजिह्वासन्दंशसंरम्भज्वरजागराः।
पूयशोणितगन्धिश्च स्कन्दापस्मारलक्षणम् ११

जिस बालककी संज्ञा नाश होजाय, बार बार अपने शिरके बालोंको पकड़कर खैंचे, गरदन नम जाय, मुखको नीचेको नमाकर जम्भाई लेवे, विष्ठा, मूत्र बहुत आता रहे, मुखसे झाग गिरता रहे, यह बालक मस्तक नेत्र और हाथ पावोंको मारता रहे, माताके स्तनों और अपनी जिह्वाको काटे तथा संरम्भ, ज्वर, निद्रानाश और इसके शरीरमें पूय रक्तकी गन्धका होना ये लक्षण हों तो इस बालककी स्कन्दापस्मार जानना चाहिये ॥ ९-११ ॥

नैगमेष ग्रहजुष्टके लक्षण।

आध्मानं पाणिपादास्यस्पन्दनं फेननिर्वमः।
तृण्मुष्टिबन्धातीसारस्वरदैन्यविवर्णताः ॥१२॥
कूजनं सततं छर्दिः कासहिध्माप्रजागराः।
ओष्ठदंशाङ्गसंकोचस्तम्भबस्तामगन्धताः ।१३
ऊर्ध्वं निरीक्ष्य हसनं मध्ये विनमनं ज्वरः।
मूर्च्छैकनेत्रशोफश्च नैगमेषग्रहाकृतिः ॥ १४ ॥

जिस बालकको आध्मान, हाथों पावोंका फड़कना, मुखसे झाग गिरना, प्यास, हाथोंकी मुट्ठियें बांधना, अतिसार, स्वरका बैठना, विवर्णता, निरन्तर कूजन, छर्दि, खांसी, हिचकी, नींद न आना, होठोंको काटना, अंगोंका संकोच, अंगोंका स्तम्भ, शरीरमेंसे बकरे और आमके समान गन्ध आना, दृष्टि ऊपरको रखना, हंसना, मध्यमेंसे नमजाना, ज्वर, मूर्छा और एक नेत्र पर सूजन होना ये लक्षण हों उसको नैगमेषग्रह जुष्ट जानना चाहिये ॥ १२-१४ ॥

श्वग्रहजुष्टके लक्षण।

कम्पो हृषितरोमत्वं स्वेदश्चक्षुर्निमीलनम्।
बहिरायामनं जिह्वादंशोऽन्तः कण्ठकूजनम्।
धावनं विट्समगन्धत्वं क्रोशनं श्वानवच्छुनि १५

जो बालक कांपे, उसके रोमाञ्च खड़े होजांय, पसीना आवे, नेत्रोंको बन्द करके रक्खे, शरीर बाहरको नम जाय, बालक अपनी जीभको काटे, कंठ कूजता रहे, उठ २ कर भागनेको उद्यत हो, शरीरमेंसे विष्ठाके समान गन्ध आवे और कुत्तेके समान चिल्लाता रहे इन लक्षणोंवाले बालकको श्वानग्रहजुष्ट जानना चाहिये ॥ १५ ॥

पितृग्रहजुष्टके लक्षण।

रोमहर्षो मुहुस्त्रासः सहसा रोदनं ज्वरः।
कासातीसारवमथुजृम्भातृट्शवगन्धताः ॥ १६
अङ्गेष्वाक्षेपविक्षेपः शोषस्तम्भविवर्णताः।
मुष्टिबन्धः स्रुतिश्चाक्ष्णोर्बालस्य स्युः पितृग्रहे ॥

यदि बालक पितृग्रहसे युक्त हो तो उसके रोमांच खड़े होजाते है तथा बार २ त्रास करे, सहसा रोने लगे, ज्वर हो, खांसी, अतिसार, वमन, जम्भाई, तृषा, शरीरमें मुर्देके समान गन्ध, अंगोंका इधर उधर मारना, शोष, स्तम्भ, विवर्णता, हाथोंकी मुट्ठियाँ बांधना और नेत्रोंसे पानी बहना ये लक्षण होते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

शकुनिग्रहजुष्टके लक्षण।

स्रस्ताङ्गत्वमतीसारो जिह्वाताल्लुगले व्रणाः।
स्फोटाः सदाहरुक्पाकाः सन्धिषु स्युः-
-पुनः पुनः ॥ १८ ॥
निश्यह्नि प्रविलीयन्ते पाको वक्त्रे गुदेऽपि वा।
भयं शकुनिगन्धत्वं ज्वरश्च शकुनिग्रहे॥ १९ ॥

बालकके सब अङ्ग ढीले पड़जावें, अतिसार लगें, तथा जीभ, तालु और गलमें व्रण होजावें, शरीरकी सन्धियोंपर फोड़े हों उनमें दाह पीड़ा और पाक हो, जब ये फोड़े फूटजावें तो पहले लीन होजावे और नये और फोड़े निकल आवें, मुख पकजावे और गुदाभी पक जावे, बालक डरे, उसके शरीरसे शकुनिके समान

गन्ध आवे और ज्वर हो इन लक्षणोंवाले बालकको शकुनिग्रहसे पीड़ित जानना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥

पूतनाग्रहसे पीडितके लक्षण ।

पूतनायां वमिः कम्पस्तन्द्रा रात्रौ प्रजागरः२०
हिध्माध्मानं शकृद्भेदः पिपासा मूत्रनिग्रहः ।
स्रस्तहृष्टाङ्गरोमत्वं काकवत्पूतिगन्धता ॥२१॥

पूतनाग्रहसे पीड़ित बालकको वमन, कम्प, तन्द्रा, रात्रिमें नीन्द न आना, हिचकी, आध्मान, पतले दस्त, प्यासकी अधिकता, मूत्रका रुकना, अंगोंका ढीलेसे होना, रोमहर्ष और काकके समान शरीरसे दुर्गन्ध आना ये लक्षण होते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

शीतपूतनासे पीडितके लक्षण ।

शीतपूतनया कम्पो रोदनं तिर्यगीक्षणम् ।
तृष्णान्त्रकूजोऽतीसारो वसावद्विस्रगन्धता ॥
पार्श्वस्यैकस्य शीतत्वमुष्णत्वमपरस्य च ॥२२॥

शीतपूतनाग्रहसे पीड़ित बालक कांपता है, रोता है, तिर्छा देखता है तथा इसको प्यास, अन्त्रकूजन, अतिसार, शरीरसे वसासमान गन्ध आना, शरीरका एक ओर आधा भाग शीतल होना और एक ओरका आधा शरीर उष्ण होना ये लक्षण होते हैं ॥ २२॥

अन्धपूतनाग्रस्तके लक्षण ।

अन्धपूतनया छर्दिर्ज्वरः कासोऽल्पवह्निता २३
वर्चसो भेदवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यान्यङ्गशोषणम् ।
दृष्टिसादोऽतिरुकण्डूपोथकीजन्मशून्यताः २४
हिध्मोद्वेगस्तनद्वेषवैवर्ण्यं स्वरतीक्ष्णता ।
वेपथुर्मत्स्यगन्धित्वमथवा साम्लगन्धिता ॥२५

बालक अन्धपूतनाग्रहसे ग्रस्त हो तो छर्दि, ज्वर, खांसी,मन्दाग्नि,मलका फटकर आना, विवर्णता, शरीरसे दुर्गन्ध आना, किसी ओरका अंग सूखजाना, दृष्टिका मन्दसा होजाना, नेत्रोंमें अत्यन्त पीड़ा, नेत्रोंमें खुजली, नेत्रोंमें पोथकी रोगहोना, नेत्रोंका शून्यसा होना, हिचकी, उद्वेग, स्तनोंसे द्वेष, विवर्णता स्वरका तेज होना, कांपना, शरीरसे मछलीके समान या खट्टी गन्ध आना ये लक्षण होते हैं ॥ २३–२५ ॥

मुखमण्डिकाग्रस्तके लक्षण ।

मुखमण्डितया पाणिपादस्य रमणीयता ।
सिराभिरसिताभाभिराचितोदरता ज्वरः ।
अरोचकोऽङ्गग्लपनं गोमूत्रसमगन्धता ॥२६॥

यदि बालक मुखमण्डिकाग्रहसे ग्रस्त हो तो उसके हाथों पावोंमें सुंदरता, उदरपर नीले वर्णकी सिराओंका जालसा होना, ज्वर, अरुचि, अंगोंमें ग्लानि और शरीरसे गोमूत्रके समान गन्ध आना ये लक्षण होते हैं ॥ २६ ॥

रेवती ग्रहग्रस्तके लक्षण ।

रेवत्यां श्यावनीलत्वं कर्णनासाक्षिमर्दनम् ।
कासाहिध्माक्षिविक्षेपवक्रवक्त्रत्वरक्तताः ।
बस्तगन्धो ज्वरः शोषः पुरीषं हरितं द्रवम् २७

रेवतीग्रहग्रस्त बालकका वर्ण काला या नीलासा पड़जाता है, बालक अपने कान, नासिका और नेत्रोंको मर्दन करता है. इसको खांसी, हिचकी, अंगोंका विक्षेपण करना, मुखका टेढा होना तथा लालवर्ण होना, शरीरमें बकरेकीसी गंध आना, तथा ज्वर, शोष और मलका हरेवर्णका होना तथा पतला होना ये लक्षण होते हैं ॥ २७ ॥

शुष्करेवती ग्रस्तके लक्षण ।

जायते शुष्करेवत्यां क्रमात्सर्वाङ्गसंक्षयः ॥२८॥

जिस बालकको शुष्करेवतीने ग्रहण किया हो उसके सब अंग सूखने लगते हैं ॥ २८ ॥

केशशातोऽन्नविद्वेषः स्वरदैन्यं विवर्णता ।
रोदनं गृध्रगन्धित्वं दीर्घकालानुवर्तनम् ॥२९॥
उदरे ग्रन्थयो वृत्ता यस्य नानाविधं शकृत् ।
जिह्वाया निम्नता मध्ये श्यावं तालु च तं त्यजेत्

यदि शुष्करेवतीग्रस्त बालकके केश गिरने लगें, वह दूध न पीवे, स्वर बैठ जाय, शरीर विवर्ण होजाय, रोवे, शरीरसे गृध्रके समान गन्ध आवे, रोग बहुत देरसे शरीरमें व्याप्त हो, उदरमें गोल २ ग्रन्थियें उत्पन्न होगयीं हों, विष्ठा अनेक वर्णका आता हो, जिह्वा मध्यभागमेंसे निम्न होजाय और तालु श्याम वर्णका होजाय इन लक्षणोंवाले बालकको असाध्य जानना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥

भुञ्जानोऽन्नं बहुविधं यो बालः परिहीयते।
तृष्णागृहीतः क्षामाक्षो हन्ति तं शुष्करेवती ३१

अथवा जो बालक बहुत बार भोजन करे परन्तु उसका शरीर सूखता ही जावे तथा प्यास अधिक लगे और नेत्र भीतरको बैठजाय इन लक्षणोंवाले बालकको शुष्करेवती नष्ट करदेती है ॥ ३१ ॥

ग्रहोंका बालकोंमें प्रवेश होनेका हेतु।

हिंसारत्यर्चनाकांक्षा ग्रहग्रहणकारणम् ॥ ३२॥

बालकोंको बालग्रह हिंसाकी इच्छासे या अधिक पूजन करानेकी इच्छासे ग्रहण करते है ॥ १२ ॥

हिंसकग्रहग्रस्त बालकके लक्षण।

तत्र हिंसात्मके बालो महान् वा स्रुतनासिकः।
क्षतजिह्वः क्कणेद् बाढमसुखी साश्रुलोचनः ३३
दुर्वर्णो हीनवचनः पूतिगन्धिश्च जायते।
क्षामो मूत्रपुरीषं स्वं मृद्गाति न जुगुप्सते॥३४॥
हस्तौ चोद्यम्य संरब्धो हन्त्यात्मानं तथा परम्।
तद्वच्च शस्त्रकाष्ठाद्यैरग्निं वा दीप्तमाविशेत्॥३५॥
अप्सु मज्जेत्पतेत्कूपे कुर्यादन्यच्च तद्विधम्।
तृड्दाहमोहान् पूयस्य छर्दनं च प्रवर्तयेत्।
रक्तं च सर्वमार्गेभ्यो रिष्टोत्पत्तिश्च तं त्यजेत् ३६

जब ग्रह हिंसाकी इच्छासे बालकको ग्रहण करता है तब बालककी नासासे महान् स्राव होता है, जीभ फट जाती है, बालक बहुत किणछता है, दुःखी होता है, नेत्रोंसे आंसु गिरते हैं तथा विवर्ण होजाता है, आवाज बैठ जाती है, शरीरसे दुर्गन्ध आता है, शरीर क्षीण होजाता है, यह बालक अपने मूत्र पुरीषको अपने हाथोंसे मल लेता है या शरीरपर मल लेता है, दोनों हाथोंको ऊपरको उठाकर क्रोधसे अपने या दूसरेके शरीरपर मारता है तथा शस्त्र लकड़ी आदि जो वह उठासके वह अपने शरीरपर मारता है तथा प्रज्वलित अग्निमें गिरना चाहता है अथवा कूपमें गिरने या जलमें डूबनेका यत्न करे तथा ऐसे ही अन्य मरनेकीसी चेष्टायें करे तथा इसको प्यास, दाह, मोह, पूयका छर्दन और सब अंगोंसे रक्तका निकलना ये सब लक्षण मरणोन्मुख असाध्य बालकके होते हैं इस कारण यह चिकित्सा करनेयोग्य नहीं है ३३-३६

रतिकामीग्रह ग्रस्तके लक्षण।

रहः स्त्रीरतिसंलापगंधस्रग्भूषणप्रियः।
हृष्टः शांतश्च दुःसाध्यो रतिकामेन पीडितः ३७

यदि बालक रतिकामीग्रहसे पीड़ित हो तो बालक एकान्तस्थानमें रहकर प्रसन्न रहे, स्त्रियोंमें चित्त लगाये रहे, स्त्रीसे वार्तालाप करके प्रसन्न, रहे सुगंध पुष्पमाला और आभूषणोंसे प्रेम करे, प्रसन्न रहे और शान्त रहे। यह रतिकामीग्रहसे पीड़ित बालक कष्टसाध्य होता है ॥ ३७ ॥

पूजाकी कामनावाले ग्रहग्रस्तके लक्षण।

दीनः परिमृशेद्वक्त्रं शुष्कोष्ठगलतालुकः।
शंकितं वीक्षते रौति ध्यायत्यायाति दीनताम्
अन्नमन्नाभिलाषेऽपि दत्तं नात्ति बुभुक्षते।
गृहीतं बलिकामेन तं विद्यात्सुखसाधनम् ३९

यदि पूजन आदिकी कामनावाले ग्रहसे ग्रस्त बालक हो तो वह बालक दीन रहता है तथा अपने मुखको मलता है और इसके कोष्ठ, जल और तालु सूखेहुए रहते हैं, यह शंकितसा इधर उधर देखता है, रोताहै ध्यानसा लगाता है फिर दीन होजाता है, वार २ अन्नकी अभिलाषा करे पर जब इसको भोजन देवे तो कुछ न खावे ऐसे बालकको बलिकी कामनासे बाल· ग्रहने ग्रहण किया जानना चाहिये,यह बलि आदि देनेसे अच्छा होजाताहै इस कारण सुखसाध्यहै ॥ ३८॥ ३९॥

हंतुकामं जयेद्धोमैः सिद्धमंत्रप्रवर्तितैः।
इतरौ तु यथाकामं रतिबल्यादिदानतः ॥४०॥

जो ग्रह हिंसाकी कामनासे प्रवेश हुआ हो उसको सिद्ध पुरुषोंद्वारा उच्चारण किये हुए मन्त्रोंसे होम आदि कर्म करके जीतना चाहिये और रतिकामनावाले तथा बलिकामनावाले ग्रहोंको यथाकाम बलिदान आदि देकर जीतना चाहिये ॥ ४० ॥

बालकोंका ग्रहोंसे बचाकर रखनेकी विधि।

अथ साध्यग्रहं बालं विविक्ते शरणे स्थितम्४१
त्रिरह्नः सिक्तसंसृष्टे सदा सन्निहितानले।

विकीर्णभूतिकुसुमपत्रबीजान्नसर्षपे ॥ ४२ ॥
रक्षोघ्नतैलज्वलितप्रदीपहतपाप्मनि ।
व्यवायमद्यपिशितानिवृत्तपरिचारके ॥ ४३ ॥
पुराणसर्पिषाभ्यक्तं परिषिक्तं सुखाम्बुना ।
साधितेन बलानिम्बवैजयन्तीनृपद्रुमैः ॥ ४४ ॥
पारिभद्रककट्वङ्गजम्बूवरुणकट्तृणैः ।
कपोतवङ्कापामार्गपाटलामधुशिग्रुभिः ॥४५ ॥
काकजङ्घामहाश्वेताकपित्थक्षीरपादपैः ।
सकदम्बकरञ्जैश्च धूपं स्नातस्य चाचरेत् ।
द्वीपिव्याघ्राहिसिंहर्क्षचर्मभिर्घृतमिश्रितैः॥४६॥

यदि साध्यग्रहसे पीड़ित बालक हो तो उसको ऐसे एकान्त और पवित्रस्थानमें रक्खे जो स्थान पवित्र हो जिसमें दिनमें तीनकाल अर्थात् प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल लेपन, शोधन और सेचन होता हो तथा सदैव अग्नि स्थापित रहे, तथा भूति कुसुम, निंबपत्र, बीज, अन्न और सर्सों ये सब उस स्थानमें विखरे हुए रहें, इस स्थानमें राक्षसोंके भयको नष्ट करनेवाले तेलका दीपक जलते रहनेसे घरका पाप नाश होचुका हो इस घरमें मद्य मांसके सेवन करनेवाले या मैथुन करनेवालेका आना जाना आदि संसर्ग या परिचर्या नहीं होना चाहिये। ऐसे स्थानमे बालकके संपूर्ण शरीरपर पुराना घृत लगाकर सुखोष्ण जलसे स्नान करावे, यह स्नान करानेका जल बला, निंब, अग्निमन्थ, अमलतास, पारिभद्र, श्योनाक, जामनवृक्ष, वरुणवृक्ष, कत्तृण, ब्राह्मी, अपामार्ग, पाटला मीठा सुहांजना, काकजंघा, कटभी, कपित्थ, वट आदि क्षीरीवृक्ष, कदम्ब और करञ्ज इनसे सिद्ध किया जल स्नानार्थ होना चाहिये । फिर स्नानके अनन्तर हाथी, शेर, व्याघ्र और रीछके सूखे चर्मके चूर्णमें घृत मिलाकर धूप (धूनी) देवे ॥४१-४६॥

ग्रहनाशक धूप ।

पूतीदशाङ्गीसिद्धार्थवचाभल्लासदीप्यकैः ।
सकुष्ठैः सघृतैर्धूपः सर्वग्रहविमोक्षणः ॥ ४७ ॥

पूतीकरञ्ज, दशाङ्गी[1] (आमलासारगन्धक १० भाग, भैंसा गुग्गुल १० भाग, चन्दन ४ भाग, जटामांसी ४ भाग, राल ३ भाग, सुगन्धवाला ३ भाग, खश २ भाग, घृतमें भुना नखनामक गन्ध द्रव्य २ भाग, मुश्क-कपूर १ भाग, कस्तूरी १ भाग), सफेद सर्सों, वच, भिलावे, अजवायन और कूठ इन सबका चूर्ण घृत मिलाकर धूप देनेसे सब ग्रह दूर होजाते हैं ॥४७ ॥

दशाङ्गधूप ।

वचाहिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली ।
पाठा प्रतिविषा व्योषं दशाङ्गः कश्यपोदितः ॥

वच, हींग, वायविड़ंग, सेंधालवण, गजपीपल, पाठा, अतीस, सोंठ, मिर्च और पीपल इनका चूर्ण कर घृत मिलाकर धूप देवे यह काश्यपऋषिकी कही हुई दशांग धूप है ॥ ४८ ॥

सर्षपादि धूप ।

सर्षपा निम्बपत्राणि मूलमश्वखुरा वचा ।
भूर्जपत्रं घृतं धूपः सर्वग्रहनिवारणः ॥ ४९ ॥

सर्सों, नीमके पत्र, पीपलामूल, नख, वच और भोजपत्र इनके चूर्णमें घृत मिलाकर धूप देवे तो यह धूप सब ग्रहोंका निवारण करती है ॥ ४९ ॥

शारिवादि घृत ।

अनन्ताऽऽम्रास्थितगरं मरिचं मधुरो गणः५०
शृगालविन्ना मुस्ता च कल्कितैस्तैर्घृतं पचेत्।
दशमूलरसक्षीरं युक्तं तद्ग्रहजित्परम् ॥ ५१ ॥

शारिवा, आमकी गुठली, तगर, कंकोल, मधुर-गणके द्रव्य, पृश्निपर्णी और नागरमोथा इन सबका कल्क, दशमूलका काथ और दूध मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत पीनेमें और लेपनाभ्यङ्गमें प्रयोग करनेसे सब ग्रह शमन होजाते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

रास्नादिघृत ।

रास्नांशुमतीवृद्धपञ्चमूलवचाघनात् ।
क्वाथे सर्पिःपचेत्पिष्टैःसारिवाव्योषचित्रकैः ५२।
पाठाविडङ्गमधुकपयस्याहिङ्गुदारुभिः ।

[1] दशांगीसे कोई केवटीमोथा ही लेते हैं । यहांपर आगे ४८-श्लोकमें कही दशांग धूपके दशद्रव्य अर्थ भी होसकता है

सग्रन्थिकैः सेन्द्रयवैः शिशोस्तत्सततं हितम् ।
सर्वरोगग्रहहरं दीपनं बलवर्णदम् ॥ ९३ ॥

रास्ना, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहत्पञ्चमूलके पांचों द्रव्य, बच और नागरमोथेके क्वाथ, तथा शारिवा, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक, पाठा, विडंग, मुलहठी, क्षीरकाकोली, हींग, देवदारु, पीपलामूल और इन्द्रजौ इनके कल्कसे सिद्ध किया घृत बालकोंके लिये निरंतर हितकारी है तथा सब रोगों और ग्रहोंको दूर करता है। अग्निको दीपन करता है और बल वर्णको देनेवाला है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

सर्वग्रहनाशक घृत ।

शारिवासुरभीब्राह्मीशङ्खिनीकृष्णसर्षपैः ॥९४॥
वचाश्वगन्धासुरसायुक्तैः सर्पिर्विपाचयेत् ।
तन्नाशयेद्ग्रहान्सर्वान्पानेनाभ्यञ्जनेन च ॥९५॥

शारिवा, रास्ना, ब्राह्मी, शंखिनी कालीसर्सों, वच, असगंध और तुलसी इनके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीनेसे और शरीरपर मलनेसे. सब ग्रह नष्ट होते हैं ॥ ९४ ॥ ९५॥

ग्रह-भूतादिनाशक धूप ।

गोशृङ्गसोमबालाहिनिर्मोकवृषदंशविट् ।
निम्बपत्राज्यकटुका मदनं बृहतीद्वयम् ॥९६॥
कार्पासास्थियवच्छागरोमदेवाह्वसर्षपम् ।
मयूरपत्रश्रीवासं तुषकेशं सरामठम् ॥ ९७ ॥
मृद्भाण्डे बस्तमूत्रेण भावितं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
धूपनार्थं हितं सर्वं भूतेषु विषमे ज्वरे ॥ ९८ ॥

गौके पुराने सींग, बाल, छोटेसांपकी काँचुली, बिडालकी विष्ठा, नीमके पत्र, घृत, कटुकी, मैनफल, कटेली, बड़ीकटेली, कपासका बीज (बिनौले), जौ, बकरेके बाल, देवदारु, सर्सों, अपामार्गके पत्र, श्रीवास, बहेड़ेकी छाल, सुगन्धबाला और हींग इनका चूर्णकर मिट्टीके पात्रमें डाल बकरेके मूत्रसे भावना देवे फिर चूर्णकर इसकी धूनी देवे. यह धूनी सब ग्रह, भूत और विषमज्वरोंको दूर करती है ॥ ९६-९८ ॥

घृतानि भूतविद्यायां वक्ष्यन्ते यानि तानि च ।
युंज्यात्तथा बलिं होमं स्नपनं मन्त्रतन्त्रवित्॥९९

भूतविद्यामें जिन घृतोंका कथन किया जावेगा मंत्र तंत्रके जाननेवाला वैद्य उन घृतोंका बालग्रहोंमें प्रयोग करे तथा बली, होम और मंत्रयुक्त स्नानोंसे बालकको सुरक्षित करे ॥ ९९ ॥

ग्रहदोषनाशक स्नान ।

पूतीकरञ्जत्वक्पत्रं क्षीरिभ्यो बर्बरादपि ।
तुम्बीविशालारलुकाशमीबिल्वकपित्थकाः ।
उत्क्वाथ्य तोयं तद्रात्रौ बालानां स्नपनं शिवम्॥

पूतीकरञ्जके पत्र और छाल, क्षीरीवृक्षोंकी छाल और पत्र काली तुलसीकी छाल. पत्र,तुम्बी, इन्द्रायण, श्योनाक, शमीवृक्ष, बिल्व और कपित्थ इनको जलमें पकाकर इस जलसे बालकको स्नान कराना ग्रहनाशक और हितकारी है ॥ ६० ॥

अनुबन्धान्यथाकृच्छ्रं ग्रहापायेप्युपद्रवान् ।
बालामयनिषेधोक्तभेषजैः समुपाचरेत्॥ ६१ ॥

इत्यष्टांगहृदये कौमारतन्त्रं द्वितीयं समाप्तम् ।

ग्रहोंकी यथार्थ चिकित्सा करनेपर भी यदि ज्वरादि रोग शरीरमें रहजावे तो उनको बालरोग प्रतिषेधनीयाध्यायमें कहीहुई चिकित्साके अनुसार चिकित्सा करके शमन करना चाहिये ॥ ६१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टांगहृदयसंहितायां उत्तरतंत्रे बालग्रहप्रतिषेधनीयाध्याये आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो भूतविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

अब हम भूतविज्ञानीय अध्यायकी व्याख्या करते हैं।

भूतग्रस्तके सामान्य लक्षण ।

लक्षयेज्ज्ञानविज्ञानवाक्चेष्टाबलपौरुषम् ।
पुरुषेऽपौरुषं यत्र तत्र भूतग्रहं वदेत् ॥ १ ॥

जिस पुरुषमें ज्ञान, विज्ञान, वाणी, चेष्टा, बल, और पौरुष मनुष्योंसे विचित्र हों और अकस्मात् ही उत्पन्न होजाय उस पुरुषमें भूतग्रहका प्रवेश जानना यह सामान्य लक्षण भूतग्रस्तका है ॥ १ ॥

भूतस्य रूपप्रकृतिभाषागत्यादिचेष्टितैः ।
यस्यानुकारं कुरुते तेनाविष्टं तमादिशेत्
सोऽष्टादशविधो देवदानवादिविभेदतः ॥ २ ॥

जिस मनुष्यमें भूत प्रवेश करे उसके रूप, आकार, भाषा और गति आदि चेष्टाओंको देखकर जिस प्रकारकी चेष्टायें हों उसे भूतग्रहसे आविष्ट जानना चाहिये. ये भूत देवदानवादि भेदोंसे अठारह प्रकारके होते हैं ॥ २ ॥

१८ प्रकारके भूतादिग्रहोंके प्रवेशके हेतु ।

हेतुस्तदनुषक्तौ तु सद्यः पूर्वकृतोऽथवा ॥ ३ ॥
प्रज्ञापराधः सुतरां तेन कामादिजन्मना ।
लुप्तधर्मव्रताचारः पूज्यानप्यतिवर्तते ॥ ४ ॥
तं तथा भिन्नमर्यादं पापमात्मोपघातिनम् ।
देवादयोऽप्यनुघ्नन्ति ग्रहाश्छिद्रप्रहारिणः ॥ ५ ॥

इनके प्रवेश करनेमें मनुष्यका पूर्वकृत अथवा तत्कालकृत प्रज्ञापराध (पाप) ही कारण होता है । जो मनुष्य निरन्तर कामादिके वश होकर व्रत, धर्म और आचारका नाश करडालते हैं तथा गुरु, माता, पिता आदि पूज्यजनोंका अनादर करते हैं ऐसे पापी, मर्यादाभ्रष्ट, आत्मघाती पुरुषमें छिद्र पाकर प्रहार करनेवाले देवादि ग्रह, भूत प्रवेशकर उसको हनन करते है ॥ ३–५ ॥

भूतग्रह प्रवेश होनेमें छिद्र ।

छिद्रं पापक्रियारम्भः पाकोऽनिष्टस्य कर्मणः ।
एकस्य शून्येऽवस्थानं श्मशानादिषु वा निशि ॥ ६ ॥
दिग्वासस्त्वं गुरोर्निन्दा रतेरविधिसेवनम् ।
अशुचेर्देवतार्चादिपरसूतकसंकरः ॥ ७ ॥
होममन्त्रबलीज्यानां विगुणं परिकर्म च ।
समासाद्दिनचर्यादिप्रोक्ताचारव्यतिक्रमः ॥८॥

किसी पाप क्रियाका आरम्भ करना या किसी अनिष्ट कर्मके फलका समय प्राप्त होना अथवा रात्रिके समय अकेले शून्य स्थान या श्मशानादिमें गमन करना, नंगे रहना, गुरुजनोंकी निन्दा करना, विधि रहित स्त्रीसंग करना, अपवित्र होकर देवार्चन करना, पराये सूतक आदिसे भ्रष्ट होजाना, होम, मंत्र, बलि कर्म और यज्ञका विपरीत रीतिसे कर्म करना, दिनचर्यादि आचारका व्यतिक्रम करना यह संक्षेपसे भूतोंके प्रवेश करनेके लिये मनुष्यके आचरणका छिद्र है जिसको पाकर भूतग्रह प्रवेश करते है ॥ ६–८ ॥

देवादि ग्रहोंके प्रवेश काल ।

गृह्णन्ति शुक्लप्रतिपत्त्रयोदश्योः सुरा नरम् ।
शुक्लत्रयोदशीकृष्णद्वादश्योर्दानवा ग्रहाः ॥९॥
गन्धर्वास्तु चतुर्दश्यां द्वादश्यां चोरगाः पुनः।
पञ्चम्यां शुक्लसप्तम्येकादश्योस्तु धनेश्वराः १०।
शुक्लाष्टपञ्चमीपूर्णमासीषु ब्रह्मराक्षसाः ।
कृष्णे रक्षःपिशाचाद्या नवद्वादशपर्वसु ॥११॥
दशमावास्ययोरष्टनवम्योः पितरोऽपरे ।
गुरुवृद्धादयः प्रायःकालं सन्ध्यासु लक्षयेत् १२

शुक्लपक्षकी त्रयोदशी और प्रतिपदाको छिद्र पाकर देवग्रह प्रवेश करते है शुक्लपक्षकी त्रयोदशी और कृष्णपक्षकी द्वादशीको दानवग्रह प्रवेश करते है । चतुर्दशी और द्वादशीको गन्धर्वग्रह प्रवेश करते हैं । पंचमीको नागग्रह प्रवेश करते हैं । शुक्लपक्षकी सप्तमी और एकादशीको यक्षग्रह प्रवेश करते हैं । शुक्लपक्षकी अष्टमी और पूर्णमासीको ब्रह्मराक्षस प्रवेश करते है । कृष्णपक्षकी नवमी और द्वादशीके संध्या समय राक्षस और पिशाच ग्रहण करते हैं । दशमी और अमावस्याको पितृग्रह प्रवेश करते है । अष्टमी और नवमीमें गुरु वृद्ध आदि अन्य प्रवेश करते हैं। प्रायः इन सबके प्रवेशका काल संध्या समय ही जानना चाहिये ॥ ९–१२ ॥

देवग्रहजुष्टके लक्षण ।

फुल्लपद्मोपममुखं सौम्यदृष्टिमकोपनम् ।
अल्पवाक्स्वेदविण्मूत्रं भोजनानभिलाषिणम् ॥
देवद्विजातिपरमं शुचिसंस्कृतवादिनम् ।
मीलयन्तं चिरान्नेत्रे सुरभिं वरदायिनम्॥१४॥
शुक्लमाल्याम्बरसरिच्छैलोच्चभवनप्रियम् ।
अनिद्रमप्रधृष्यं च विद्याद्देववशीकृतम् ॥१५॥

जो पुरुष प्रफुल्लित कमलके समान प्रसन्न मुख-

वाला हो, सौम्य दृष्टि हो, किसीपर क्रोध न करे, बहुत थोड़ा बोले, इसको पसीना, मल और मूत्र अल्प ही हों, भोजनकी कुछ इच्छा न हो, देवता और ब्राह्मणोंमें भक्ति हो, पवित्र रहे, संस्कृत बोले, बहुत देरमें नेत्र झबके, शरीरसे सुगन्धआवे, वर देवे तथा सफेद माला, श्वेतवस्त्र, नदी, पर्वत और ऊंचे महलोंसे स्नेह हो, इसको नीन्द न आवे और दूसरेसे हराया न जासके इन लक्षणोंवाले पुरुषको देवग्रहके वशहुआ जानना चाहिये ॥ १३–१५ ॥

दैत्यग्रहग्रस्तके लक्षण।

जिह्मदृष्टिं दुरात्मानं गुरुदेवद्विजद्विषम्।
निर्भयं मानिनं शूरं क्रोधनं व्यवसायिनम्॥१६॥
रुद्रःस्कन्दो विशाखोऽहमिन्द्रोऽहमिति वादिनम्।
सुरामांसरुचिं विद्याद् दैत्यग्रहगृहीतकम् १७॥

जो पुरुष निन्दित दृष्टिवाला हो, दुरात्मा हो, गुरु देवता और ब्राह्मणोंसे द्वेष करे, निर्भय हो, अभिमानी हो तथा शूर, क्रोधी, जिस काममें लगे उसीमें लगा रहे. मैं रुद्रहूँ, मैं स्कन्द हूँ, मैं विशाख हूं, मैं इन्द्रहूं इस प्रकार कहता हो, मद्य और मांसमें विशेष रुचि रखता हो उसको दैत्यग्रहसे गृहीत जानना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

गन्धर्वग्रहग्रस्तके लक्षण।

स्वाचारं सुरभिं हृष्टं गीतनर्तनकारिणम्।
स्नानोद्यानरुचिं रक्तवस्त्रमाल्यानुलेपनम्।
शृंगारलीलाभिरतं गन्धर्वाध्युषितं वदेत्॥१८॥

जो मनुष्य गन्धर्व ग्रहग्रस्त होनेपर सुन्दर आचारवान् हो शरीरसे सुन्दर गन्ध आता हो, प्रसन्न रहे, नित्य गाता नाचता रहे, स्नान करनेमें और बागमें रहनेकी रुचिवालाहो, लाल वस्त्र-माला और अनुलेपनको धारण करे, शृंगार और लीलामें लगा रहे उसको गन्धर्व ग्रहके वश जानना चाहिये ॥ १८ ॥

सर्पग्रहग्रस्तके लक्षण।

रक्ताक्षं क्रोधनं स्तब्धदृष्टिं वक्रगतिं चलम्।
श्वसन्तमनिशं जिह्वालालिनं सृक्किणीलिहम्॥१९॥
प्रियदुग्धगुडस्नानमधोवदनशायिनम्।
उरगाधिष्ठितं विद्यात्त्रस्यन्तं चातपत्रतः॥२०॥

जिसके नेत्र लाल हों, क्रोधी हो, स्तब्ध दृष्टि हो, टेढ़ी गतिसे चलता हो, निरन्तर फुंकारके समान श्वास लेता रहे, जीभको निकालकर दोनों होठोंको चाटे तथा दूध गुड़ और स्नानसे प्यार हो, अधोमुख होकर सोता हो और छत्रको देखकर त्रास मानता हो उसको सर्प (नाग) ग्रहसे ग्रस्त जानना चाहिये ॥ १९॥२०॥

यक्षग्रह ग्रस्तके लक्षण।

विप्लुतं त्रस्तरक्ताक्षं शुभगन्धं सुतेजसम्॥२१॥
प्रियनृत्यकथागीतस्नानमाल्यानुलेपनम्।
मत्स्यमांसरुचिं हृष्टं तुष्टं बलिनमव्यथम्॥२२॥
चलिताग्रकरं कस्मै किं ददामीति वादिनम्।
रहस्यभाषिणं वैद्यद्विजातिपरिभाविनम्।
अल्परोषं द्रुतगतिं विद्याद्यक्षगृहीतकम्॥२३॥

जिसके नेत्र विप्लुत, त्रस्त और लालवर्णके हों, शरीरसे शुभगन्ध आता हो, शरीर तेजयुक्त हो तथा नृत्य, कथा, गीत, स्नान, माला और चन्दन लेपनसे प्यार हो, मांस मछलीमें रुचि हो, हृष्ट पुष्ट शरीर हो, तुष्ट हो, बलवान् हो, व्यथारहित हो, हाथोंके अग्रभाग चलते रहें। किसको क्या देदूं इस प्रकार देनेके लिये कहता हो रहस्यकी बात करता हो, वैद्य और ब्राह्मणोंका तिरस्कार करे, अल्परोषवाला हो और गंभीर गतिवाला हो इन लक्षणोंवाले पुरुषको यक्ष ग्रहसे पीड़ित जानना चाहिये ॥ २१–२३ ॥

ब्रह्मराक्षसग्रस्तके लक्षण।

हास्यनृत्यप्रियं रौद्रचेष्टं छिद्रप्रहारिणम्।
आक्रोशिनं शीघ्रगतिं देवद्विजभिषग्द्विषम् २४
आत्मानं काष्ठशस्त्राद्यैर्घ्नंतं भोःशब्दवादिनम्।
शास्त्रवेदपठं विद्याद् गृहीतं ब्रह्मराक्षसैः॥२५॥

जिस मनुष्यका हास्य और नाचमें प्यार हो, भयानक चेष्टायें करे, छिद्र (मौका) पाकर प्रहार करे, चिल्लावे, शीघ्र गतिसे चले, देवता, ब्राह्मण और वैद्योंसे द्वेष करे, अपने आपको काष्ठ शस्त्रादिसे स्वयं मारे, भोः शब्दका उच्चारण करे तथा वेद शास्त्रका पाठ करे इन लक्षणोंवाला मनुष्य ब्रह्मराक्षसे ग्रस्त जानना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

राक्षसग्रहग्रस्तके लक्षण ।

सक्रोधदृष्टिं भ्रुकुटिमुद्वहन्तं ससंभ्रमम् ॥ २६ ॥
प्रहरन्तं प्रधावन्तं शब्दन्तं भैरवाननम् ।
अन्नाद्विनापि बलिनं नष्टनिद्रं निशाचरम् २७॥
निर्लज्जमशुचिं शूरं क्रूरं परुषभाषिणम् ।
रोषणं रक्तमाल्यस्त्रीरक्तमद्यामिषप्रियम्॥२८॥
दृष्ट्वा च रक्तं मांसं वा लिहानं दशनच्छदौ ।
हसन्तमन्नकाले च राक्षसाधिष्ठितं वदेत्॥२९॥

जिसकी क्रोधभरी दृष्टि हो, भृकुटी चढ़ीहुई रहे, संभ्रमसे देखता हो, प्रहण करे, बोलता हुआ भागता रहे, मुखका आकार भयानक हो, विना अन्न खाये भी शरीर बलवान् रहे, नीन्द नष्ट होगयी हो, रात्रिमें फिरता रहे, निर्लज्ज हो, अपवित्र हो, शूरवीर हो, क्रूरस्वभाव हो, परुषबोलनेवाला हो, क्रोधी हो तथा लालवर्णकी माला, स्त्री, रक्त, मांस और मद्यसे स्नेह करता हो अथवा रक्त मांसको देखकर जीभसे दाँतोंके मसूढ़े चाटने लगे, अन्नके समय हंसे इन लक्षणोंवाले मनुष्यको राक्षसग्रहसे ग्रहण कियाहुआ जानना चाहिये ॥ २६–२९ ॥

पिशाचग्रस्तके लक्षण ।

अस्वस्थचित्तं नैकत्र तिष्ठन्तं परिधाविनम् ।
उच्छिष्टनृत्यगांधर्वहासमद्यामिषप्रियम् ॥ ३० ॥
निर्भर्त्सनादीनमुखं रुदन्तमनिमित्ततः ।
नखैर्लिखंतमात्मानं रूक्षध्वस्तवपुःस्वरम्। ३१॥
आवेदयन्तं दुःखानि संबद्धाबद्धभाषिणम् ।
नष्टस्मृतिं शून्यरतिं लोलं नग्नं मलीमसम् ३२
रथ्याचैलपरीधानं तृणमालाविभूषणम् ।
आरोहन्तं च काष्ठाश्वं तथा संकरकूटकम् ।
बह्वाशिनं पिशाचेन विजानीयादधिष्ठितम् ३३

जिसका चित्त स्वस्थ न रहे, कहीं एक स्थानमें न ठहरे, इधर उधर भागता रहे, जिसको उच्छिष्ट, नृत्य, गायन, हंसना, मद्य और मांस प्यारे हों, झिडकनेसे मुख दीनसा होजाय, अकारण ही रोने लगे, अपने नाखूनोंसे अपने शरीरको खूर्चे, शरीर रूखा हो, स्वर फटाहुआसा हो, अपने दुःखोंका कथन करता रहे, संबद्ध या असंबद्ध बोलता रहे, स्मरणशक्ति नष्ट होगयी हो, शून्य स्थानमें रति हो, चंचल हो, नंगा रहे, मैला रहे, रास्तेमें पड़े चीथडे पहन लेवे, तिनकोंकी माला पहन लेवे, लकडीके घोड़े पर चढ़े, कबाड़के ढेरपर चढ़कर बैठे और बहुत खावे, इन लक्षणोंवाले पुरुषको पिशाचने ग्रहण किया हुआ जानना चाहिये ॥ ३०–३३ ॥

प्रेतग्रस्तके लक्षण ।

प्रेताकृतिक्रियागंधं भीतमाहारविद्विषम् ।
तृणच्छिदं च प्रेतेन गृहीतं नरमादिशेत्॥३४॥

जो मनुष्य प्रेतकेसे आकारवाले काम करे, प्रेतकीसी शरीरसे गन्ध आवे, भयभीत हो, आहारसे द्वेष करे, तिनकोंको छेदन करे ऐसे मनुष्यको प्रेतने ग्रहण किया जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

कूष्माण्डग्रस्तके लक्षण ।

बहुप्रलापं कृष्णास्यं प्रविलंबितयायिनम् ।
शूनप्रलंबवृषणं कूष्मांडाधिष्ठितं वदेत्॥३५॥

जो मनुष्य बहुत प्रलाप (बकवाद) करे, मुख काले वर्णका होजाय, ठहर २ कर चले, अण्डकोशोंपर सूजन होनेसे नीचेको अण्डकोश लटके हुए हों उसको कूष्माण्डग्रहसे ग्रस्त जानना चाहिये॥ ३५ ॥

निषादग्रस्तके लक्षण ।

गृहीत्वा काष्ठलोष्टादि भ्रमंतं चीरवाससम्३६॥
नग्नं धावन्तमुग्रस्तदृष्टिं तृणविभूषणम् ।
श्मशानशून्यायतनं रथ्यैकद्रुमसेविनम् ॥३७॥
तिलान्नमद्यमांसेषु सततं सक्तलोचनम् ।
निषादाधिष्ठितं विद्याद् वदन्तं परुषाणि च३८

जो पुरुष लकड़ी या ढेला उठाकर भ्रमण करे, फटेहुए चीथड़े पहने, नग्न रहे, ऊपरको दृष्टि रक्खे, भागता फिरे, तिनके लेकर आभूषणके समान पहने, मशान या शून्यस्थानमें रहे, या रास्तेके किसी एक वृक्षके नीचे बैठा रहे तथा तिल, अन्न, मद्य और मांसपर निरन्तर दृष्टि लगाये रहे और कठोरशब्द बोलता रहे इन लक्षणोंवाले पुरुषको निषादग्रहने ग्रहण किया हुआ जानना चाहिये ॥ ३६–३८ ॥

आकिरणग्रस्तके लक्षण।

याचन्तमुदकं चान्नं त्रस्तालोहितलोचनम्।
उग्रवाक्यं च जानीयान्नरमौकिरणार्दितम् ३९

जो मनुष्य अन्न और जलकी याचना करता रहे, नेत्र त्रस्त और लालवर्णके हों और उग्र वचन बोलता हो उसको औकिरणग्रहसे पीड़ित जानना चाहिये ३९

वेतालग्रस्तके लक्षण।

गन्धमाल्यरतिं सत्यवादिनं परिवेपिनम्।
बहुच्छिद्रं च जानीयाद्वेतालेन वशीकृतम्॥४०

जिस पुरुषकी गन्धमाल्यमें रति हो, सत्य बोलता हो, कांपता हो, बहुतसे दोष देखता हो उसको वेताल ग्रहने वश किया हुआ जानना चाहिये॥ ४० ॥

पितृग्रह ग्रस्तके लक्षण।

अप्रसन्नदृशं दीनवदनं शुष्कतालुकम्।
चलन्नयनपक्ष्माणं निद्रालुं मंदपावकम् ॥४१॥
अपसव्यपरीधानं तिलमांसगुडप्रियम्।
स्खलद्वाचं च जानीयात् पितृग्रहवशीकृतम्४२

जिसकी दृष्टि अप्रसन्न हो, दीनवचन बोलता हो, तालु सूखाहुआ हो, नेत्रकी पलकें चलायमान हों, बहुत सोवे, जठराग्नि मन्द हो, वस्त्रादि अपसव्य पहने, तथा तिल, मांस और गुड़पर स्नेह करे एवं बोलते २ वाणी स्खलन हो इन लक्षणोंवाले मनुष्यको पितृग्रहने वश किया हुआ जानना चाहिये ॥४१॥४२॥

गुरुवृद्धादिग्रस्तके लक्षण।

गुरुवृद्धर्षिसिद्धाभिशापचिन्तानुरूपतः।
व्याहाराहारचेष्टाभिर्यथास्वं तद्ग्रहं वदेत्॥४३॥

मनुष्यके व्यवहार, आहार और चेष्टादि देखकर वह गुरु, वृद्ध, ऋषि, सिद्ध आदिके शाप चिन्ता आदि जिससे पीड़ित हो उस प्रकारके ग्रहसे ग्रस्त जानना चाहिये ॥ ४३ ॥

असाध्यके लक्षण।

कुमारवृन्दानुगतं नग्नमुद्धतमूर्धजम्।
अस्वस्थमनसं दैर्घ्यकालिकं तं ग्रहं त्यजेत्४४॥

जो ग्रहग्रस्त पुरुष बालकोंके समूहके पीछे भागे, नग्न हो और सिरके बाल खड़े हों, उसका मन अस्वस्थ हो और ये लक्षण बहुत देरसे चले आते हों इन लक्षणोंवाले पुरुषको असाध्य जानना चाहिये ४४॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरतन्त्रे आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृत शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां भूतविज्ञानीयो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः।

अथाऽतो भूतप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अब हम भूतादिग्रहोंके प्रतिषेध करनेके विधानको कथन करते है ॥

भूतग्रहोंकी सामान्य चिकित्सा।

भूतं जयेदहिंसेच्छं जपहोमबलिव्रतैः।
तपःशीलसमाधानज्ञानदानदयादिभिः ॥ १ ॥

जो भूत हिंसाकी इच्छासे प्रवेश न हुआ हो उसको जप, होम, बलिदान, व्रत, तप, शील, समाधान, ज्ञान, दान और दया आदिसे जीतना चाहिये॥ १॥

ग्रहभूतनाशक हिंग्वादियोग।

हिङ्गुव्योषालनेपालीलशुनार्कजटाजटाः।
अजलोमी सगोलोमी भूतकेशी वचा लता॥२॥
कुक्कुटी सर्पगन्धाख्या तिलाः कालविषाणिके।
वज्रप्रोक्ता वयस्था च शृंगी मोहनवल्ल्यपि॥३॥
स्रोतोजाञ्जनरक्षोघ्नं रक्षोघ्नं चान्यदौषधम्।
खराश्वश्वाविदृक्षर्क्षगोधानकुलशल्यकान् ॥ ४॥
द्वीपिमार्जारगोसिंहव्याघ्रसामुद्रसत्वतः।
चर्मपित्तद्विजनखा वर्गेऽस्मिन् साधयेद्घृतम्॥५॥
पुराणमथवा तैलं नवं तत्पाननस्ययोः।
अभ्यङ्गे च प्रयोक्तव्यमेषां चूर्णं च धूपने॥६॥
एभिश्च गुटिकां युंज्यादञ्जने सावपीडने।
प्रलेपे कल्कमेतेषां क्वाथं च परिषेचने।
प्रयोगोऽयं ग्रहोन्मादान्सापस्मारान्छमं नयेत्७

हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरिताल, कस्तूरी, लसुन, आककी जड़, जटामांसी, अजलोमी, सफेद दूर्वा, नीलासंभालू, वच, प्रियंगु, शितिवार, नाकुलीकन्द, तिल, काकोली, क्षीरकाकोली, श्वेत कुशा, गिलोय, काकड़ासिंगी, त्रिपुरमल्ली, स्रोतोंजन, सफेद सर्सों,

गूगल, हरीतकी, मंजीठ आदि अन्य रक्षोघ्न द्रव्य तथा गधा, घोड़ा, खर्गोश, रीछ, गोधा, नकुल, शेह गैंडा, बिड़ाल, बैल, शेर, व्याघ्र और मकर आदि जलजजीवोंके यथालाभ चर्म, पित्त, दांत और नख लेवे इन सबके कल्कसे पुराना घृत सिद्ध करे अथवा तैल सिद्ध करे; यह घृत पीनेमें, नस्यमें और अभ्यंगमें प्रयोग करनेसे तथा इन हींग आदि सम्पूर्ण द्रव्योंके चूर्णकी धूप देनेसे अथवा इनके चूर्णकी गोली बनाकर घिसकर नेत्रोंमें अंजन करनेसे इनकी अवपीड़न नस्य देनेसे इनका कल्क लेप करनेसे और इनके काथसे स्नान या सेचन करनेसे ग्रह, भूत, उन्माद और अपस्मार दूर हो जाते हैं. यह प्रयोग ग्रहादि दूर करनेमें श्रेष्ठ हैं ॥ २--७ ॥

भूतग्रहनाशक नस्य ।

गजाह्वापिप्पलीमूलव्योषामलकसर्षपान् ॥ ८॥
गोधानकुलमार्जारझषपित्तप्रपेषितान् ।
नावनाभ्यंगसेकेषु विदधीत ग्रहापहान् ॥ ९॥

गजपीपल, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, आमले और सर्सोंको; गोधा, नकुल, बिडाल और मगर-मच्छके पित्तमें पीसकर नस्य, अभ्यङ्ग और सेचनमें प्रयोग करनेसे भूतादिग्रहदोष दूर होते है८॥९॥

सिद्धार्थक घृत ।

सिद्धार्थकं वचा हिङ्गु प्रियङ्गुरजनीद्वयम् ।
मंजिष्ठा श्वेतकटभी वचा श्वेताद्रिकर्णिका १०
निंबस्य पत्रं बीजं तु नक्तमालशिरीषयोः ।
सुराह्वं त्र्यूषणं सर्पिर्गोमूत्रे तैश्चतुर्गुणे ॥ ११ ॥
सिद्धं सिद्धार्थकं नाम पाने नस्येचयोजितम् ।
ग्रहान्सर्वान्निहंत्याशु विशेषादासुरान् ग्रहान् ।
कृत्यालक्ष्मीविषोन्मादज्वरापस्मारपाप्म च १२

सर्सों, बच, हींग, प्रियंगु, हलदी, दारुहलदी, मजीठ, श्वेतकटभी, श्वेतवच, श्वेत गिरिकर्णिका, नीमके पत्र, लताकरंजके बीज, सिरीषके बीज, देवदारु और त्रिकटु इनके कल्क और चार गुणे गोमूत्रसे सिद्ध करे. यह सिद्धार्थकघृत पीनेमें और नस्य कर्ममें प्रयोग करमेसे शीघ्र ही सब ग्रहोंको शमन कर देता है विशेषकर आसुरग्रह, कृत्या, अलक्ष्मी, विष, उन्माद, ज्वर, अपस्मार और पापको शमन करता है ॥ १०-१२ ॥

एभिरेवौषधैर्बस्तवारिणा कल्पितोऽगदः ॥१३॥
पाननस्याञ्जनालेपतनोद्धर्षणयोजितः ।
गुणैः पूर्ववदुद्दिष्टो राजद्वारे च सिद्धिकृत्॥१४॥

इन सिद्धार्थक घृतको सर्सों आदि सब औषध लेकर बकरेके मूत्रमें अगद बनावे. इस अगदको पीनेमें, अंजनमें, लेपमें और शरीरपर उबटन करनेमें प्रयोग करे तो यह सिद्धार्थक घृत सब गुण करता है विशेषकर राजद्वारमें सिद्धिके देनेवाला है॥१३॥१४॥

सिद्धार्थकादि अगद ।

सिद्धार्थकव्योषवचाश्वगन्धा
निशाद्वयं हिंगुपलाण्डुकन्दम् ।
बीजं करंजात्कुसुमं शिरीषात्
फलं च वल्कश्च कपित्थवृक्षात् ॥१५॥
समाणिमन्थं सनतं सकुष्ठं
स्योनाकमूलं किणिही सिता च ।
बस्तस्य मूत्रेण विभावितं तत्
पित्तेन गव्येन गुडान् विदध्यात्॥१६॥
दुष्टव्रणोन्मादतमोनिशान्धा-
नुद्बद्धकान् वारिनिमग्नदेहान् ।
दिग्धाहतान् दर्पितसर्पदष्टां-
स्ते साधयन्त्यंजननस्यलेपैः ॥ १७ ॥

सफेदसर्सों, सोंठ, मिर्च, पीपल, बच, असगंध, हलदी, दारुहलदी, हींग, प्याजका कन्द, करञ्जके बीज, शिरीषके फूल, कपित्थकी छाल और फल, सेंधालवण, तगर, कूठ, श्योनाककी जड़, किणही और मिसरी इन सबको बकरेके मूत्रमें भावना देकर गोपित्तमें रगड़ कर गोलियें बनाले यह गोली घिसकर लगानेसे दुष्ट व्रण, उन्माद, नेत्रोंके आगेका अंधकार और रात्र्यंधको दूर करती है तथा जिनका शरीर जलमें डूबनेसे बद्ध होगया है जो लेप आदिसे शून्य देह होगये है, जिनको मत्त सांपने काटा हो; यह गोली अंजन, नस्य और लेपमें प्रयोग करनेसे उन सबको निरोग कर देती है ॥ १५--१७ ॥

कार्पासबीजादि धूप।

कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतकत्वङ्मांसीवृकदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोचनैः। नागेन्द्रद्विजशृङ्गहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैः कृतं धूपनं स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नं परम् ॥ १८ ॥

कपासके बीज (बिनौले) मोरकी पूंछके छद, बड़ी कटेली, शिवपर चढ़ाहुआ जल, मैनफलकी छाल, बालछड़, बिड़ालकी विष्ठा, तुष, वच केश, सांपकी कांचुली, हाथीदाँतका बुरादा, बैलका सींग, हींग और मिर्च इन सबको समान भाग लेकर धूनी देनेसे स्कन्दग्रह, उन्माद, पिशाच, राक्षस, देवग्रहावेश और ज्वर ये सब दूर होते हैं ॥ १८ ॥

भूतराव घृत।

त्रिकटुकदलकुंकुमग्रन्थिकक्षारसिंही-
निशादारुसिद्धार्थयुग्माम्बुशक्राह्वयैः
सितलशुनफलत्रयोशीरतिक्तावचा-
तुत्थयष्टीबलालोहितैलाशिलापद्मकैः।
दधितगरमधूकसाराप्रियाह्वाविषाख्या-
विषाताक्ष्यशैलैः सचव्यामयैः
कल्कितैर्घृतमनवमशेषमूत्रांशसिद्धं मतं
भूतरावाह्वयं पानतस्तद् ग्रहघ्नं परम् ॥ १९ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, तेजपत्र, केशर, पीपलामूल, जवाखार, कटेली, हलदी, दारुहलदी, सफेदसर्सों, काली सर्सों, नागरमोथे, सुगंधवाला, इन्द्रजौ, सफेद चन्दन, लशुन, हरड़, बहेड़ा, आमला, खस, कुटकी, बच, नीलाथोथा, मुलहठी, बला, मंजीठ, इलायची, मनशिल, पद्मकाष्ठ, दधि, तगर, महुवेका गोंद, प्रियंगु, अतीस, काकोली, रसौंत, छारछरीला, चव्य और कूठ इन सबका कल्क कर गोमूत्र मिलाकर पुराना घृत सिद्ध करे। यह भूतरावनामकघृत पीनेसे ग्रहोंको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ माना जाता है ॥ १९ ॥

महाभूतराव घृत।

नतमधुकरजलाक्षापटोलीसमङ्गावचा-
पाटलीहिङ्गुसिद्धार्थसिंहीनिशायुगकटारोहिणी
बदरकटुफलत्रिकाकाण्डदारुक्रमिघ्नाजगन्धा-
मरांकोलकोशातकीशिग्रुनिम्बाम्बुदेन्द्राह्वयैः।
गदशुकतरुपुष्पबीजोग्रयष्ट्याद्रिकर्णीनिकुम्भा-
ग्निबिल्वैःसमैःकल्कितैर्मूत्रवर्गेण सिद्धं घृतं।
विधिविनिहितमाशु सर्वैः क्रमैर्योजितं हन्ति
सर्वग्रहोन्मादकुष्ठज्वरांस्तन्महाभूतरावंस्मृतम्।

तगर, महुवा, करञ्ज, लाख, पटोलपत्र, मंजीठ, बच, पाटला, हींग, सर्सों, कटेली, हलदी, दारुहलदी, प्रियंगु, कुटकी, बेर, त्रिकटु, त्रिफला, बकायन, देवदारु, वायबिंडग, अजवायन, गिलोय, अंकोल, कड़वीतोरी, सुहांजना, निंब, नागरमोथा, इन्द्रजौ, कूठ, धव, नागकेशर, मैनफल, सुहांजनेके बीज, मुलहठी, गिरिकर्णिका, दन्ती, चित्रक और बिल्व इनको सम भाग लेकर कल्क करे इस कल्क और मूत्रवर्गसे घृत सिद्ध करे. इस महाभूतरावघृतको पीनेमें, नस्यमें और अभ्यंगमें प्रयोग करनेसे यह ग्रहोंद्वारा ग्रसित पुरुषको शीघ्र गुण करता है तथा सब ग्रह, उन्माद, कुष्ठ और ज्वरको नष्ट करता है इसको महाभूतराव कहते हैं॥ २०

ग्रहोंके बलिकर्मका दिन।

ग्रहा गृह्णन्ति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः।
दिनेषु बलिहोमादीन्प्रयुञ्जीत चिकित्सकः २१

जो जो ग्रह जिस जिस दिन मनुष्यमें प्रवेश करता है उस उस दिन उस ग्रहनिमित्तक वैद्यको उचित है कि बलि और होम आदि करावे ॥ २१ ॥

बल्यर्थ द्रव्य।

स्नानवस्त्रवसामांसमद्यक्षीरगुडादि च।
रोचते यद्यदा येभ्यस्तत्तेषामाहरेत्तदा ॥ २२ ॥

स्नान, वस्त्र, वसा, मांस, मद्य, दूध और गुड़ आदि जिन जिन ग्रहोंको जो जो जब अच्छा लगे तब तब उनको वह वह पदार्थ देना चाहिये ॥ २२ ॥

रत्नानि गन्धमाल्यानि बीजानि मधुसर्पिषी।
भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां सामान्यो विधिरित्ययम् २३

रत्न, जौ, तिल आदि बीज, मधु, घृत, अन्य भक्ष्यपदार्थ ये सब सब 'प्रकारके ग्रहोंको सामान्य रूपसे बलिमें देनेकी विधि है ॥ २३ ॥

बलिदेनेके स्थान ।

सुरर्षिगुरुवृद्धेभ्यः सिद्धेभ्यश्च सुरालये ।
दिश्युत्तरस्यां तत्राऽपि देवायोपहरेद्बलिम् २४

देवता, ऋषि, गुरु और वृद्ध पुरुष या सिद्धोंका पूजन या बलि देनी हो तो देवमन्दिरमें पूजनादि कर्म करना चाहिये । वहांपर भी देवताके लिये बलि उत्तर दिशामें देनी चाहिये ॥ २४ ॥

पश्चिमायां यथाकालं दैत्यभूताय चत्वरे ।
गन्धर्वाय गवां मार्गे सवस्त्राभरणं बलिम्॥२५॥

दैत्य और भूतोंके लिये यथा समय पश्चिमदिशाकी ओर चत्वर (चौकोरआंगण) में बलि देनी चाहिये ।

गन्धर्वोंके लिये गौवोंके मार्गमें वस्त्रभूषण युक्त बलि देनी चाहिये ॥ २५ ॥

पितृनागग्रहे नद्यां नागेभ्यः पूर्वदक्षिणे ।
यक्षाय यक्षायतने सरितोर्वा समागमे ॥ २६ ॥

पितरों और नागग्रहोंके लिये नदीमें बलि देनी चाहिये । नागोंके लिये नदीमें भी पूर्व और दक्षिण दिशाके मध्यमें बलि देनी चाहिये ।

यक्षके लिये यक्षके स्थानमें या दो नदियोंके समागममें बलि देनी चाहिये ॥ २६ ॥

चतुष्पथे राक्षसाय भीमेषु गहनेषु च ।
रक्षसां दक्षिणस्यां तु पूर्वस्यां ब्रह्मरक्षसाम् ।
शून्यालये पिशाचाय पश्चिमां दिशमास्थिते२७

राक्षसोंके लिये चौराहेमें या भयानक और गहन स्थानमें दक्षिण दिशाकी ओर बलि देनी चाहिये ।

ब्रह्मराक्षसको गहन स्थानमें पूर्वकी ओर बलि देवे ।

पिशाचके लिये शून्य स्थानमें पश्चिमकी ओर बलि देनी चाहिये ॥ २७ ॥

देवग्रहोंकी बलिमें द्रव्य ।

शुचिशुक्लानि माल्यानि गन्धाः क्षैरेयमोदनम्
दधि छत्रं च धवलं देवानां बलिरिष्यते॥२८॥

देवताओंकी बलिमें पवित्र श्वेत पुष्पमाला, गन्ध, दूधके बनेहुए मोदक, दही और सफेद छत्र ये वस्तुयें देना चाहिये ॥ २८ ॥

देवग्रहनाशक हिंग्वादिघृत ।

हिङ्गुसर्षपषड्ग्रन्थाव्योषैरर्धपलोन्मितैः ।
चतुर्गुणे गवां मूत्रे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
तत्पाननावनाभ्यङ्गैर्देवग्रहविमोक्षणम् ॥ २९ ॥

हींग, पीली सर्सों, बच, सोंठ, मिर्च और पीपल प्रत्येक दो दो कर्ष, घृत एक प्रस्थ, गोमूत्र चार प्रस्थ इन सबको विधिवत् मिलाकर घृत सिद्ध करे इस घृतको नस्यमें, पीनेमें और अभ्यंगमें प्रयोग करनेसे देवग्रह दूर होजाते है ॥ २९ ॥

देवग्रहनाशक नस्य और अंजन ।

नस्याञ्जनं वचाहिङ्गुलशुनं बस्तवारिणा॥३०॥

बच, हींग और लशुनको बकरेके मूत्रमें पीसकर नस्य और अंजनमें प्रयोग करनेसे भी देवग्रह दूर हो जाते हैं ॥ ३० ॥

दैत्योंको बलिमें देनेके द्रव्य ।

दैत्ये बलिर्बहुफलः सोशीरकमलोत्पलः ॥३१॥

दैत्योंके लिये बलिमें बहुतसे फल, खस, कमल-पुष्प और नीलकमल पुष्प देना चाहिये ॥ ३१ ॥

नागग्रहोंकी बलिके द्रव्य और नस्यांजन ।

नागानां सुमनोलाजगुडापूपगुडौदनैः ।
परमान्नमधुक्षीरकृष्णमृन्नागकेसरैः ॥
वचापद्मपुरोशीररक्तोत्पलदलैर्बलिः ॥ ३२ ॥

नागग्रहोंके लिये बलिमें चमेलीके फूल, धानकी खील, गुड़के पूडे, गुड़के चावल, गुड़, खीर, मधु, दूध, काली मिट्टी और नागकेशर, बच, कमलके फूल, गूगल, खश, लालकमलके दल ये द्रव्य रख कर बलि देनी चाहिये ॥ ३२ ॥

श्वेतपत्रं च रोध्रं च तगरं नागसर्षपाः ।
शीतेन वारिणा पिष्टं नावनाञ्जनयोर्हितम्३३॥

तथा श्वेत कमल, रोध्र, बच, तगर, नागकेशर और सर्सों इन सबको शीतल जलमें पीसकर नस्य और अंजनमें प्रयोग करनेसे नागग्रह छोड़ जाते हैं ॥ ३३ ॥

यक्षग्रहोंकी बलि और नस्यांजन ।

यक्षाणां क्षीरदध्याज्यमिश्रकोदनगुग्गुलुः ।

देवदार्वुत्पलं पद्ममुशीरं वस्त्रकाञ्चनम् ।
हिरण्यं च बलिर्योज्यो ॥ ३४ ॥-

यक्षग्रहोंके लिये बलिमें दूध, दही, घृत, मिलेहुए खिचड़ी आदि अन्न, गूगल, देवदारु, कमल, पद्मकाष्ठ, खश सुनहरे वस्त्र और सुवर्ण ये वस्तु रखकर बलि देनी चाहिये ॥ ३४ ॥

-मूत्राज्यक्षीरमेकतः ।
सिद्धं समोन्मितं पाननावनाभ्यञ्जने हितम् ३५

तथा गोमूत्र, दूध और घृत एक समान लेकर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर यह घृत पीनेमें, नस्यमें और अंजनमें प्रयोग करनेसे यक्षग्रह छोड़ जाते है ३५

हरीतकी हरिद्रे द्वे लशुनो मरिचं वचा ।
निम्बपत्रं च बस्ताम्बुकल्कितं नावनाञ्जनम् ३६

तथा हरीतकी, हलदी, दारुहलदी, लशुन, मरिच, बच और नीमके पत्र इन सबको बकरेके मूत्रमें पीसकर नस्य और अंजन करनेसे भी यक्षग्रह दूर होते है ॥ ३६ ॥

ब्रह्मराक्षसबलिके द्रव्य ।

ब्रह्मरक्षोबलिःसिद्धं यवानां पूर्णमाढकम् ।
तोयस्य कुम्भःपललं छत्रं वस्त्रं विलेपनम्॥३७

ब्रह्मराक्षसोंके लिये बलिमें एक आढ़क जौ, जलका भराहुआ घड़ा, मांस, छत्र, वस्त्र और लेपनार्थ घिसा हुआ चन्दन ये द्रव्य देना चाहिये ॥ ३७ ॥

ब्रह्मराक्षसभयनाशक घृत ।

गायत्रीविंशतिपलक्वाथेऽर्धपलिकैः पचेत् ।
त्र्यूषणात्रिफलाहिंगुषड्ग्रन्थामिशिसर्षपैः ।३८॥
सनिम्बपत्रलशुनैः कुडवान्सप्त सर्पिषः ।
गोमूत्रे त्रिगुणे पाने नस्याभ्यङ्गेषु तद्धितम् ३९

बीसपल खैरका क्वाथ करे तथा त्रिकटु, त्रिफला, हींग, बच, सौंफ, सर्सों, निंबपत्र और लशुन ये प्रत्येक द्रव्य दो दो कर्ष लेकर कल्क करे इस क्वाथ और कल्कमे सात कुड़व घृत मिलाकर और २१ कुड़व गोमूत्र मिलाकर घृत सिद्ध करे यह घृत पीनेमें, नस्यमें और अंजनमें प्रयोग करनेसे ब्रह्मराक्षस ग्रह दूर होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

राक्षस ग्रहकी बलि ।

रक्षसां पललं शुक्लं कुसुमं मिश्रकौदनम् ।
बलिःपक्वाममांसानि निष्पावा रुधिरोक्षिताः४०

राक्षसग्रहके लिये बलिमें तिलकुट, श्वेतपुष्प, खिचड़ी आदि मिलेहुए अन्न, कच्चे और पक्के मांस और रक्तसे छींटे दियेहुए मटर ये द्रव्य रखकर बलि देनी चाहिये ॥ ४० ॥

करंजादि अगद ।

नक्तमालशिरीषत्वङ्मूलपुष्पफलानि च ।
तद्वच्च कृष्णपाटल्या बिल्वमूलं कटुत्रिकम् ४१॥
हिंग्विन्द्रयवसिद्धार्थलशुनामलकीफलम् ।
नावनाञ्जनयोर्योज्यो बस्तमूत्रहृतोऽगदः॥४२॥

करंज, शिरीष और कृष्ण पाटला इन तीनोंकी छाल, जड़, फूल और फल लेवे तथा बिल्वकी जड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग इन्द्रजौ, सर्सों, लशुन और आमलेके फल इन सबको बकरेके मूत्रमें पीसकर नस्य और अंजनमें प्रयोग करे; यह अगद राक्षसोंकी बाधाको दुर करता है॥ ४१ ॥ ४२ ॥

एभिरेव घृतं सिद्धं गवां मूत्रे चतुर्गुणे ।
रक्षोग्रहान् वारयते पानाभ्यञ्जननावनैः ॥४३॥

इन ही करंजादि द्रव्योंके कल्कसे घृत सिद्ध करे घृत सिद्ध करते समय चारगुणा गोमूत्र मिलावे । घृत सिद्ध होनेपर पीनेमें, अभ्यङ्गमें, अंजनमें और नस्यमें इस घृतको प्रयोग करे तो यह घृत राक्षस ग्रहको दूर करता है ॥ ४३ ॥

पिशाचग्रहकी बलि आदि कर्म ।

पिशाचानां बलिःसीधुपिण्याकः पललं दधि ।
मूलकं लवणं सर्पिःसभूतोदनयावकम् ॥ ४४ ॥

पिशाच ग्रहके लिये बलिमें सीधु मद्य, तिल, मांस, दही, शलगम, लवण, घृत और कुलथी युक्त खिचड़ी ये सब वस्तु रखकर बलि देवे ॥ ४४ ॥

हरिद्राद्वयमञ्जिष्ठामिशिसैन्धवनागरम् ।
हिङ्गुप्रियङ्गुत्रिकटुरसोनत्रिफला वचा ॥ ४५ ॥
पाटलाश्वेतकटभीशिरीषकुसुमैर्घृतम् ।
गोमूत्रपादिकं सिद्धं पानाभ्यञ्जनयोर्हितम् ४६।
बस्ताम्बुपिष्टैस्तैरेव योज्यमञ्जननावनम् ॥४७॥

हलदी, दारुहलदी, मंजीठ, सौंफ, सेंधालवण, नागरमोथे, हींग, प्रियंगु, सोंठ, मिर्च, पीपल, लशुन, हरड, बहेड़े, आमले, बच, पाटला, श्वेतकटभी और शिरीषके फूल इनका कल्क और चारगुणा गोमूत्र मिलाकर घृत सिद्ध करे. यह सिद्धघृत पीनेमें और अभ्यङ्गमें प्रयोग करनेसे पिशाचग्रह दूर होता है ॥

इनही द्रव्योंको बकरेके मूत्रमें पीसकर अञ्जन और नस्यमें प्रयोग करे तो पिशाच ग्रह दूर होता है ॥ ४९--४७ ॥

देवर्षि आदि जुष्टमें कर्म ।

देवर्षिपितृगन्धर्वे तीक्ष्णं नस्यादि वर्जयेत् ।
सर्पिःपानादिमृद्वस्मिन् भैषज्यमवचारयेत् ॥४८

देवर्षि, पितर और गन्धर्वग्रहग्रस्तको तीक्ष्ण नस्य आदि नहीं देना चाहिये. इनसे ग्रस्तको घृत पानादि मृदु औषधका प्रयोग करना चाहिये ॥ ४८ ॥

सब ग्रहोंको शमन करनेकी विधि ।

ऋते पिशाचान्सर्वेषु प्रतिकूलं च नाचरेत् ।
सवैद्यमातुरं घ्नन्ति क्रुद्धास्ते हि महौजसः ४९॥

पिशाचको छोड़ कर अन्य सब ग्रहोंमें प्रतिकूल चिकित्सा नहीं करनी चाहिये. क्योंकि वे महाबलि ग्रह कुपित होकर वैद्यसहित रोगीको नाश करदेते हैं॥ ४९॥

ईश्वरं द्वादशभुजं नाथमार्यावलोकितम् ।
सर्वव्याधिचिकित्सन्तं जपन् सर्वग्रहान् जयेत् ।
तथोन्मादानपस्मारानन्यं वा चित्तविप्लवम् ।९०

वैद्यको उचित है कि, पार्वतीजीके प्रेमभरे नेत्रोंसे अवलोकित उनके पुत्र षडानन स्वामिकार्तिकजी बारह बाहुओंसे युक्त ईश्वरको सब ग्रहोंकी चिकित्सा करतेहुए ध्यानसे जपतेहुए ग्रहोंकी चिकित्सा करे। इसी प्रकार उन्माद और अपस्मार आदि अन्य चित्तको बिगाड़नेवाले रोगोंकी चिकित्सा करते समय भी भगवान् षडाननका जप और ध्यान करते रहना चाहिये ॥ ९० ॥

महाविद्यां च मायूरीं शुचिं तं श्रावयेत्सदा॥९१॥

तथा ग्रहग्रस्तको पवित्र करके उसको मायूरी महाविद्या सदेव सुनाता रहे ॥ ९१ ॥

भूतेशं पूजयेत् स्थाणुं प्रमथाख्यांश्च तद्गणान् ।
जपन् सिद्धांश्च तन्मन्त्रान् ग्रहान्सर्वानपोहति॥

तथा भूतेश स्थाणु महादेव महादेवजीके प्रमथ नामक गणों और सिद्धोंको उनके मंत्रों द्वारा जप और पूजन करनेसे भी सब ग्रह दूर होते है॥ ९२ ॥

यच्चानन्तरयोः किञ्चिद्वक्ष्यतेऽध्याययोर्हितम् ।
यच्चोक्तमिह तत्सर्वं प्रयुञ्जीत परस्परम् ॥९३॥

जो उन्माद और अपस्मारकी चिकित्सावाले अध्यायोंमें हितकारी योग और चिकित्सा कहेंगे तथा जो यहाँ इस अध्यायमें देवग्रहादिकोंकी चिकित्सा कही है ये परस्पर (आपस) में प्रयोग करना चाहिये अर्थात् भूतग्रहनाशक यहां कहीहुई चिकित्सा भूतोन्मादमें हितकर है और भूतोन्मादमें कही भूतग्रहमें हितकर है तथा उन अध्यायोंमें कहेहुए घृतादि योग भी यहां हितकारी है ॥ ९३ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदये उत्तरतंत्रे आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृतभाषाव्याख्यायां भूतप्रतिषेधो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽत उन्मादप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अब हम उन्माद प्रतिषेधनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं ।

उन्मादके भेद और निरुक्ति ।

उन्मादाः षट् पृथग्दोषनिचयाधिविषोद्भवाः ।
उन्मादो नाम मनसो दोषैरुन्मार्गगैर्मदः ॥१॥

उन्मादरोग वातसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे, मानसिकदुःखसे और विषसे इन भेदोंसे छः प्रकारका होता है ॥

जब दोष उन्मार्गगामी होकर मनमें स्थित हो मदको करते हैं तब इस मानसिक व्याधिको उन्माद कहते हैं ॥ १ ॥

उन्मादकी संप्राप्ति ।

शारीरमानसैर्दुष्टैरहितादन्नपानतः ।
विकृतासात्म्यसमलाद्विषमादुपयोगतः ॥ २ ॥

विषमस्याल्पसत्त्वस्य व्याधिवेगसमुद्गमात्।
क्षीणस्य चेष्टावैषम्यात्पूज्यपूजाव्यतिक्रमात्३।
आधिभिश्चित्तविभ्रंशाद् विषेणोपविषेण च।
एभिर्विहीनसत्त्वस्य हृदि दोषाः प्रदूषिताः॥४॥
धियो विधाय कालुष्यं हत्वा मार्गान् मनोवहान्
उन्मादं कुर्वते तेन धीविज्ञानस्मृतिभ्रमात्॥५॥
देही दुःखसुखभ्रष्टो भ्रष्टसारथिवद्रथः।
भ्रमत्यचिन्तितारम्भः॥ ६॥–

अहित अन्नपानके सेवन करनेसे अथवा विकृत असात्म्य और मलयुक्त आहारके करनेसे अथवा विषम उपयोगके करनेसे अथवा विषम चेष्टाके करनेसे या अल्प सत्त्ववाले शरीरमें व्याधिका वेग उत्पन्न हो जानेसे या क्षीणपुरुषके चेष्टाकी विषमतासे या पूज्यजनोंका अथवा पूजाका व्यतिक्रम होनेसे अथवा धनादिनाशके कारण चित्तके विगड़ जानेसे अथवा विष या उपविषके प्रयोगसे शारीरिक और मानसिकदोष दुष्ट होकर वह दुष्टहुए दोष हीन सत्त्ववाले मनुष्यके हृदयमें प्रवेश करके मनके वहन करनेवाले मार्गोंको बिगाड़कर तथा बुद्धिको कलुषित करके उन्माद रोगको उत्पन्न कर देते है; उससे मनुष्योंकी बुद्धि विज्ञान और स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे देह भी दुःख सुखके ज्ञानसे रहित हो जाती है। जैसे सारथीरहित रथ पथभ्रष्ट होकर इधर उधर घूमती है इसी प्रकार उन्मादग्रस्तरोगी भी विचारहीन आरंभको करताहुआ इधर उधर भ्रमता फिरता है॥ २–६॥

वातोन्मादके लक्षण।

–तत्र वातात्कृशाङ्गता।
अस्थाने रोदनाक्रोशहसितस्मितनर्तनम्।
गीतवादित्रवागङ्गविक्षेपास्फोटनानि च॥७॥
असाम्ना वेणुवीणादिशब्दानुकरणं मुहुः।
आस्यात्फेनागमोजस्रमटनं बहुभाषिता॥८॥
अलङ्कारोनलंकारैरयानैर्गमनोद्यमः।
गृद्धिरभ्यवहार्येषु तल्लाभे चावमानता।
उत्पिण्डतारुणाक्षित्वं जीर्णे चान्ने गदोद्भवः९॥

वायुके उन्मादमें अङ्ग कृश हो जाते है, विनाही कारण यह पुरुष रोता है, चिल्लाता है, हंसता है, मुस्कराता है, नाचता है, गीत गाता है, मुखसे बाजा आदि बजाता है, वाणी और अंगोंका विक्षेपण करता है, अंगोंका स्फोटन करता है, उद्धत होकर वीणा बांसुरी आदिके शब्दोंका बार २ मुखसे अनुकरण करता है, उसके मुखसे फेन गिरता है, निरन्तर घूमता फिरता रहता है, बहुत बकता है, घास चीथड़े आदि उठाकर शरीर पर आभूषणोंकी तरह पहनता है, लकड़ी आदिपर चढ़कर चलनेका उद्यम करता है, जो वस्तु ग्रहण करने योग्य नहीं उसको ग्रहण करता है, वस्तु मिलजानेपर उसको फेंक देता है। उसके नेत्र उत्पिण्डित और लाल वर्णके होजाते है और अन्नके जीर्ण होनेपर उन्मादमें वृद्धि होती है; ये लक्षण होते है॥ ७–९॥

पित्तोन्मादके लक्षण।

पित्तात्सन्तर्जनं क्रोधो मुष्टिलोष्टाद्यभिद्रवः१०॥
शीतच्छायोदकाकांक्षा नग्नत्वं पीतवर्णता।
असत्यज्वलनज्वालातारकादीपदर्शनम्॥११॥

पित्तोन्मादमें ताड़न करना, क्रोध करना, मुट्ठी मीच कर अथवा मिट्टीकी ढेला उठाकर भागना, ठण्डी छाया और जलकी आकांक्षा करना, नग्न होना, पीतवर्ण होना तथा अग्नि ज्वाला, तारे और दीपकके विनाही इनका दिखाई देना. ये लक्षण होते हैं॥ १०॥११॥

कफोन्मादके लक्षण।

कफादरोचकच्छर्दिरल्पेहाहारवाक्यता।
स्त्रीकामता रहःप्रीतिर्लालासिंघाणकस्रुतिः १२
बैभत्स्यं शौचविद्वेषो निद्रा श्वयथुरानने।
उन्मादो बलवान् रात्रौ भुक्तमात्रे च जायते१३

कफोन्मादमें अरुचि, छर्दि, आहार करने और बोलनेमें कम चेष्टा करना, स्त्रीकामता, एकान्तरहनेकी इच्छा, लाला और नासिकामलका गिरना, ग्लानि, शौचसे विद्वेष, निद्रा, मुखकी सूजन ये लक्षण होते हैं; यह उन्माद रात्रिमें और भोजन करतेही वृद्धिको प्राप्त होता है॥ १२॥ १३॥

त्रिदोषज उन्मादके लक्षण ।

सर्वायतनसंस्थानसंनिपाते तदात्मकम् ।
उन्मादं दारुणं विद्यात् तं भिषक्परिवर्जयेत्१४

सन्निपातज उन्मादमें वातज, पित्तज और कफज तीनों उन्मादोंके निमित्त और लक्षण मिलते हैं । यह उन्माद दारुण होता है और इससे ग्रस्त रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ १४ ॥

मानसिक दुःखसे उत्पन्न उन्मादके लक्षण ।

धनकान्तादिनाशेन दुःसहेनाभिषङ्गवान् ।
पाण्डुर्दीनो मुहुर्मुह्यन् हाहेति परिदेवते ॥१५॥
रोदित्यकस्मान्म्रियते तद्गुणान् बहु मन्यते ।
शोकक्लिष्टमना ध्यायन् जागरूको विचेष्टते१६॥

धन, पुत्र, कलत्रादिके असह्य नाशसे हर समय लगा रहनेवाला उन्माद होता है । इससे रोगी पाण्डु वर्ण और दीनमुखवाला होकर बार २ मोहको प्राप्त होता है, हाहाकार करता है, विलाप करता है, रोता है, जो वस्तु नष्ट होगयी हो उसके गुणोंको बहुत मानता हुआ और याद करता हुआ अकस्मात् यह कहता है कि–' मैं मर गया ' तथा शोकातुरमनवाला ध्यान करता हुआ जागता है तथा विचेष्टित हो· जाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

विषोन्माद ।

विषेण श्यावदनो नष्टच्छायाबलेन्द्रियः ।
वेगान्तरेपि सम्भ्रान्तो रक्ताक्षस्तं विवर्जयेत्१७

विषके खानेसे या विषयुक्त जन्तुके काटनेसे जिस विषसे उत्पन्न हुए उन्मादमें मनुष्यका मुख श्यामवर्णका होजावे, शरीरकी कान्ति, बल और इन्द्रियोंका ज्ञान नष्ट होजाय या दूसरे वेगमें भ्रम और नेत्रोंमें लालिमा होजाय तो इस रोगीको असाध्य जानकर यशकी इच्छावाला वैद्य त्याग देवे ॥ १७ ॥

वातोन्मादकी चिकित्सा ।

अथानिलज उन्मादे स्नेहपानं प्रयोजयेत् ।
पूर्वमावृतमार्गे तु सस्नेहं मृदु शोधनम् ॥१८॥

वातजनित उन्मादमें प्रथम स्नेहपान करावे. यदि वायुका मार्ग आवृत हो तो प्रथम स्नेहयुक्त मृदु विरेचन कराना चाहिये ॥ १८ ॥

कफपित्तोन्मादकी चिकित्सा ।

कफपित्तभवेऽप्यादौ वमनं सविरेचनम् ।
स्निग्धस्विन्नस्य वस्तिं च शिरसः सविरेचनम् ।
तथास्य शुद्धदेहस्य प्रसादं लभते मनः ॥१९॥

कफपित्तसे उत्पन्न हुए उन्मादमें प्रथम वमन और फिर विरेचन कराना चाहिये । तथा स्नेहन और स्वेदन करनेके अनन्तर बस्तिकर्म कराना चाहिये । तदनन्तर शिरोविरेचन करावे. इस प्रकार पञ्चकर्म द्वारा शोधन करनेसे मन प्रसन्न होकर उन्मादरोग शान्त होजाता है ॥ १९ ॥

इत्थमप्यनुवृत्तौ तु तीक्ष्णं नावनमञ्जनम् ।
हर्षणाश्वासनोत्रासभयताडनतर्जनम् ॥ २० ॥
अभ्यङ्गोद्वर्तनालेपधूमान् पानं च सर्पिषः ।
युंज्यात्तानि हि शुद्धस्य नयन्ति प्रकृतिं मनः२१

यदि ऐसा शोधन करानेपर भी उन्मादरोग शमन नहीं हो तो इसको तीक्ष्ण नस्य और अञ्जनका प्रयोग करना चाहिये. तथा हर्षण, आश्वासन, त्रासन, भय, ताड़न और तर्जन करके इसके उन्मादको शमन करना चाहिये. तथा उन्मादनाशक उद्वर्तन, अभ्यङ्ग, आलेप, धूमपान और घृतपान कराना चाहिये । इन उपायों द्वारा शुद्ध शरीर हुए मनुष्यका मन प्रकृतिस्थ होकर उन्माद शमन होजाता है ॥ २० ॥ २१॥

हिंग्वादि घृत ।

हिङ्गुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।
सिद्धं समूत्रमुन्मादभूतापस्मारनुत्परम् ॥ २२॥

हींग, संचरनमक, सोंठ, मिरच और पीपल प्रत्येक दो दो पल लेकर कल्क बना एक आढ़क घृतमें मिलावे । फिर इसमें गोमूत्र मिलाकर घृत सिद्ध करे । यह घृत उन्माद, भूतबाधा और अपस्मारको नष्ट करनेमें परमोत्तम है ॥ २२ ॥

ब्राह्मी घृत ।

द्वौ प्रस्थौ स्वरसाद् ब्राह्म्याघृतप्रस्थं च साधितम्
व्योषश्यामात्रिवृद्दन्तीशंखपुष्पीनृपद्रुमैः ॥२३
ससप्तलाकृमिहरैः कल्कितैरक्षसंमितैः ।
पलवृद्ध्या प्रयुञ्जीत परं मात्राचतुष्पलम्॥२४॥

उन्मादकुष्ठापस्मारहरं वन्ध्यासुतप्रदम्।
वाक्स्वरस्मृतिमेधाकृद् धन्यं ब्राह्मीघृतं-
-स्मृतम् ॥ २५ ॥

ब्राह्मीका स्वरस दो सेर, गोघृत १ सेर, सोंठ, मिरच, पीपल, शारिवा, काली निशोथ, दन्ती, शंखपुष्पी, अमलतास, सातला और बायविडंग ये प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे। इन सबको मिलाकर इस घृतको विधिवत् सिद्ध करे। इस घृतको प्रथम दिन एक पल प्रमाण पिलावे। दूसरे दिन दो पल, तीसरे दिन तीन पल और चौथे दिन चार पल मात्रासे पिलावे। फिर नित्य चार पल मात्रा ही पिलाना चाहिये। यह ब्राह्मीघृत सेवन करनेसे उन्माद, कुष्ठ और अपस्मार दूर होते हैं; तथा यह घृत वन्ध्याको पुत्रके देनेवाला है और वाणी, स्वर, स्मृति और मेधाके करनेवाला है तथा धन्य है ॥२३-२५॥

कल्याण घृत।

वराविशालाभद्रैलादेवदार्वेलवालुकैः ॥ २६ ॥
द्विशारिवाद्विरजनीद्विस्थिराफलिनीनतैः।
बृहतीकुष्ठमञ्जिष्ठानागकेसरदाडिमैः ॥ २७ ॥
वेल्लतालीसपत्रैलामालतीमुकुलोत्पलैः।
सदन्तीपद्मकहिमैःकर्षांशैः सर्पिषः पचेत्॥२८॥
प्रस्थं भूतग्रहोन्मादकासापस्मारपाप्मसु।
पाण्डुकण्डूविषे शोफे मोहे मेहे गरे ज्वरे॥२९॥
अरेतस्यप्रजसि वा दैवोपहतचेतसि।
अमेधसि स्खलद्वाचि स्मृतिकामेऽल्पपावके३०
बल्यं मङ्गल्यमायुष्यं कान्तिसौभाग्यपुष्टिदम्।
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च॥३१॥

हरड़, बहेड़, आमले, इन्द्रायण, बड़ी इलायची, देवदारु, एलवालुक, श्वेतशारिवा, कृष्णशारिवा, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, काकोली, प्रियंगु, तगर, कटेली, कूठ, मंजीठ, नागकेशर, दाड़िम, वायविड़ंग, तालीसपत्र, छोटी इलायची, चमेलीकी कलियां, कमलके फूल, दन्ती, पद्मकाष्ठ और सफेद चन्दन इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बना एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे। यह घृत सतग्रह, उन्माद, कास, अपस्मार, पाप, पाण्डु, खुजली, विष, सूजन, मोह, प्रमेह, गर और ज्वरको दूर करता है तथा वीर्यहीन और प्रजारहित तथा दैवसे उपहतचित्तवाले मेधारहित, स्खलितवाणीवाले, अल्पस्मृति और अल्पवाणीवालोंके लिये परम हितकारी है। यह कल्याणक घृत बलवर्धक, मंगलदायक, आयुर्वर्धक, कान्तिप्रद, सौभाग्य और पुष्टिको देनेवाला है। तथा पुंसवन कर्ममें भी श्रेष्ठ है ॥ २६-३१ ॥

महाकल्याण घृत।

एभ्यो द्विशारिवादीनि जले पक्त्वैकविंशतिः।
रसे तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरचतुर्गुणम् ॥३२॥
वीराद्विमेदाकाकोलीकपिकच्छूविषाणिभिः।
शूर्पपर्णीयुतैरेतन्महाकल्याणकं परम्।
बृंहणं सन्निपातघ्नं पूर्वस्मादधिकं गुणैः ॥३३॥

श्वेत शारिवा, कृष्ण शारिवा, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, काकोली, प्रियंगु, तगर, कटेली, कूठ, मंजीठ, नागकेशर, दाड़िम, बायविड़ंग, तालीसपत्र, छोटी इलायची, चमेलीकी कलियें, कमलके फूल, दन्ती, पद्मकाष्ठ और चन्दन इन २१ औषधियोंको घृतसे १६ गुने जलमें पकाकर चतुर्थावशेष रहने पर जलको छान लेवे। इस क्वाथमें क्वाथसे चौथा भाग घी क्वाथके समान पहलून ब्याईहुई (गृष्टि) गौका दूध तथा क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, काकोली, कौञ्चके बीजोंकी गिरी, ऋषभक, माषपर्णी और मुद्गपर्णी इनका कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह महाकल्याणघृत कल्याणघृतसे भी गुणोंमें अधिक है। तथा बृंहण है और सन्निपातनाशक है ॥ ३२॥३३॥

महापैशाचक घृत।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा।
त्रायमाणा जया वीरा चोरकःकटुरोहिणी३४॥
कायस्था शूकरी छत्रा अतिच्छत्रा पलंकषा।
महापुरुषदन्ता च वयस्था नाकुलीद्वयम्॥३५॥
कटम्भरा वृश्चिकाली शालिपर्णी च तैर्घृतम्।
सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम्३६॥

महापैशाचकं नाम घृतमेतद्यथामृतम् ।
बुद्धिमेधास्मृतिकरं बालानां चाङ्गवर्धनम्३७॥

बालछड़,हरीतकी, गन्धमांसी, पद्मचारिणी,कौंचके बीजोंकी गिरी, बच, त्रायमाण, अग्निमन्थ, काकोली चण्डा, कुटकी, आमले, विधारा, धनियां, सौंफ, लाख सतावर, क्षीरकाकोली, नाकुली, गन्धनाकुली, मूर्वा, वृश्चिकाली और शालपर्णी इनसे सिद्ध कियाहुआ घृत, चातुर्थिक ज्वर उन्माद ग्रह और अपस्मारको नष्ट करता है । यह महापैशाचकघृत अमृतके समान गुणकारी है तथा बुद्धि, मेधा और स्मरणशक्तिको बढ़ानेवाला है। एवं बालकोंके बुद्धि आदि और अंगोंका बढ़ानेवाला है ॥ ३४-३७ ॥

उन्मादनाशक वर्ति ।

ब्राह्मीमैन्द्रीविडङ्गानि व्योषं हिङ्गु जटां मुराम्॥
रास्नां विशल्यां लशुनं विषघ्नां सुरसां वचाम् ।
ज्योतिष्मतीं नागविन्नामनन्तांसहरीतकीम्३९
काच्छीं च हस्तिमूत्रेण पिष्ट्वा छायाविशोषिता।
वर्तिर्नस्याञ्जनालेपधूपैरुन्मादसूदनी ॥ ४० ॥

ब्राह्मी, इन्द्रायण, वायविडंग, सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, बालछड़, मुरा, रास्ना, लांगलीकन्द, लसुन, हल्दी, तुलसी, बच, मालकांगणी, बड़ी दन्ती, शारिवा, हरितकी और सौराष्ट्रीमृत्तिका इन सबको हाथीके मूत्रमें पीसकर बत्ती बनाकर छायामें सुखा लेवे । यह बत्ती नस्य, अञ्जन, लेप और धूनीमें प्रयोग करनेसे उन्मादको नष्ट कर देती है ॥ ३८-४० ॥

अवपीडाश्च विविधाः सर्षपाः स्नेहसंयुताः ।
कटुतैलेन चाभ्यङ्गो ध्मापयेच्चास्य तद्रजः ।
साहिङ्गुस्तीक्ष्णधूमश्च सूत्रस्थानोदितो हितः४१

उन्मादरोगमें ब्राह्मी आदि कल्क, सरसों और उन्मादनाशक घृतयुक्त अवपीडन नस्य देना हितकारी होता है तथा सरसोंका तैल शरीरपर मलना और सरसोंका चूर्ण सुंघाना एवं हींग और सूत्रस्थानमें कहेहुए तीक्ष्ण तैलोंका सेवन कराना हितकारी होता है ॥ ४१ ॥

शृगालशल्यकोलूकजलौकावृषबस्तजैः ॥४२॥
मूत्रपित्तशकृल्लोमनखचर्मभिराचरेत् ।
धूपधूमाञ्जनाभ्यङ्गप्रदेहपरिषेचनम् ॥ ४३ ॥

उन्मादमें शृगाल, सेह,उल्लू, जोंक, बैल और बकरेके मूत्र,विष्ठा, पित्त, लोम,नख और चर्म लेकर उनकी धूनी देना, धूमपान कराना, अञ्जन करना, शरीर पर लेप और सेचन करना, हितकारी होताहै॥ ४२॥ ४३॥

वातकफके उन्मादोंमें धूनी ।

धूपयेत्सततं चैनं श्वगोमत्स्यैस्तु पूतिभिः ।
वातश्लेष्मात्मके प्रायः ॥ ४४ ॥–

विशेषरूपसे वातकफके उन्मादमें घोड़ा गौ और मछलीके मल और तीक्ष्णगन्धवाले द्रव्योंसे बार २ धूपन करना चाहिये ॥ ४४ ॥

पित्तोन्मादकी चिकित्सा ।

–पैत्तिके तु प्रशस्यते ।
तिक्तकं जीवनीयं च सर्पिः स्नेहश्च मिश्रकः ।
शिशिराण्यन्नपानानि मधुराणि लघूनि च४५॥

पित्तके उन्मादमें तिक्तकघृत, जीवनीयघृत और मिश्रक स्नेह पिलाना हितकारी होता है।तथामधुर,हल्के और शीतल अन्न पानका सेवन कराना चाहिये ॥४५॥

विध्येच्छिरां यथोक्तां वा तृप्तं मेद्यामिषस्य वा
निवाते शाययेदेवं मुच्यते मतिविभ्रमात् ॥४६॥

अथवा शिरावेधनकर रक्त निकालना चाहिये या मेदवाले जन्तुका मांस खिलाकर निर्वातस्थानमें शयन करावे तो उन्मादरोग शमन हो जाता है ॥ ४६ ॥

सब उन्मादोंमें त्रासन ।

प्रक्षिप्यासलिले कूपे शोषयेद्वा बुभुक्षया।
आश्वासयेत्सुहृत्तं वा वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः ४७॥
ब्रूयादिष्टविनाशं वा दर्शयेदद्भुतानि वा।
बद्धं सर्षपतैलाक्तं न्यस्तं चोत्तानमातपे ॥४८॥
कपिकच्छ्वाऽथवा तप्तैर्लोहतैलजलैः स्पृशेत् ।
कशाभिस्ताडयित्वा वा बद्धं श्वभ्रे विनिःक्षिपेत्
अथवा वीतशस्त्राश्मजने सन्तमसे गृहे ।
सर्पेणोद्धृतदंष्ट्रेण दान्तैः सिंहैर्गजैश्च तम्॥५०॥
अथवा राजपुरुषा बहिर्नीत्वा सुसंयतम् ।

भापयेयुर्वधेनैनं तर्जयन्तो नृपाज्ञया ॥ ९१ ॥
देहदुःखभयेभ्यो हि परं प्राणभयं मतम्।
तेन याति शमं तस्य सर्वतो विप्लुतं मनः।
सिद्धा क्रिया प्रयोज्येयं देशकालाद्यपेक्षया ९२।

उन्मादग्रस्त रोगीको उसके विप्लुत मनके शमन करनेके लिये किसी जलरहित सूखे कूपमें युक्तिसे डालकर भूखा रक्खे। जब उसका प्राणभयसे कुछ चित्त संयत होने लगे तो उसके मित्र उसको निकाल कर आश्वासन देवे। अथवा धर्मार्थयुक्त अच्छे वाक्य सुनाकर शान्ति देवे। अथवा उसकी अति प्रियवस्तुके विनाशकी खबर सुनावे। अथवा अद्भुत वस्तुयें दिखाकर मनको स्थिर करे। अथवा सरसोंके तेलका अभ्यंग कराकर धूपमें उत्तान लिटावे। अथवा कौंचकी फलीका रोम लगावे। या तप्त लोह, तैल जल आदिका स्पर्श करावे। अथवा जिस घरमें शस्त्र, पत्थर और मनुष्य कोई न हो उस घरमें अत्यन्त अन्धकारके समय इस रोगीको रखकर खुले हुए मुखवाले भयानक सर्प या सिंहके गर्जन आदिसे डरावे। अथवा राजाज्ञासे इसको चपरासी आदि पकड़कर बाहर लेजावे और इसको वध करदेने आदिका भय दिखावे। क्योंकि देहके दुःखके भयसे भी प्राणोंका भय अधिक होता है इस कारण ऐसे त्रासोंसे भयभीत होकर विप्लुतहुआ मन शान्त हो-जाता है और उन्मादरोग दूर हो जाता है। इस प्रकारके भयादि दिखानेकी चिकित्सा देश काल और उन्मादके हेतुओंपर विचार करके ही करनी चा-हिये ॥ ४७--९२ ॥

शोकादिजनित-उन्मादोंके उपाय।

इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते।
तस्य तत्सदृशप्राप्तिःसान्त्वाश्वासैःशमं नयेत्९३

जिस मनुष्यका मन अत्यन्त प्रियवस्तुके नाश होनेके कारण विकृत होगया हो उसके मनको तत्स-मान अच्छी वस्तु देकर तथा सान्त्वना और आश्वा-सन देकर शान्त करना चाहिये ॥ ९३ ॥

कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान्।
परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥ ९४ ॥

काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या और लोभसे उत्पन्नहुए उन्मादोंमें इन परस्पर प्रतिद्वन्दि हेतुओंसे शमन करे। अर्थात् कामसे उत्पन्न हुएको क्रोधसे और क्रोधसे उत्पन्न हुएको हर्षसे, हर्षसे उत्पन्न हुएको ईर्ष्यासे शमन करना चाहिये ॥ ९४ ॥

भूतोन्मादोंकी चिकित्सा।

भूतानुबन्धमीक्षेत प्रोक्तलिङ्गाधिकाकृतिम्।
यद्युन्मादे ततः कुर्याद्भूतनिर्दिष्टमौषधम्॥९५॥

यदि उन्मादमें किसी भूतग्रहका अनुबन्ध हो तो उसको चौथे अध्यायमें कहेहुए लक्षणोंसे जिस प्रकारके भूतग्रहका आवेश हो जानकर भूतप्रतिषेध नामक ५ वें अध्यायमें कहीहुई औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥ ९५ ॥

बलिं च दद्यात्पललं यावकं सक्तुपिण्डकाम्९६
स्निग्धं मधुरमाहारं तण्डुलान् रुधिरोक्षितान्।
पक्कामकानि मांसानि सुरामैरेयमासवम् ॥९७॥
अतिमुक्तस्य पुष्पाणि जात्याः सहचरस्य च।
चतुष्पथे गवां तीर्थे नदीनां सङ्गमेषु च ॥९८॥

तथा भूतोन्मादमें तिलचूर्ण, कुलथी सत्तुओंका पिण्ड, मधुर और स्निग्ध आहार, रुधिरके छींटे दिये-हुए चावलोंका भात, पके और कच्चे मांस, सुरा, मैरेय और आसव, तिनसके फूल, चमेलीके फूल और काले बांसेके फूल रखकर यह बलि चौराहेमें अथवा गौओंके मार्गमें अथवा तीर्थस्थानमें या नदियोंके संगममें देवे ॥ ९६-९८ ॥

निवृत्तामिषमद्यो यो हिताशी प्रयतः शुचिः।
निजागन्तुभिरुन्मादैः सत्त्ववान्न स युज्यते९९॥

जो मनुष्य मद्यमांसका सेवन नहीं करते हैं नित्य हित आहार विहारका सेवन करते हैं और पवित्र रहते है तथा सात्विक होते हैं; ऐसे पुरुषोंको दोषज अथवा आगंतुज ये किसी प्रकारके भी उन्माद नहीं होते है९९

प्रसाद इन्द्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसां तथा।
धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम्१००॥

जिस मनुष्यकी इंद्रियें और उनके विषय यथार्थ स्वच्छ हो तथा बुद्धि, आत्मा और मन प्रसन्न हों और रसादि सब धातुयें तथा वातादि दोष अपनी साम्यावस्थामें स्थित हो उसको उन्मादरोग निवृत्त होकर स्वस्थ हुआ जानना चाहिये ॥ १० ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरतन्त्रे उन्मादचिकित्सिते आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृत-शिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।
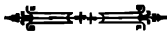
अथातोऽपस्मारप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अब हम अपस्मार (मृगी) रोगके निवृत्त करनेकी चिकित्साको कथन करते हैं।

अपस्मारकी निरुक्ति और सम्प्राप्ति ।

स्मृत्यपायो ह्यपस्मारः सन्धिसत्त्वाभिसंप्लवात्।
जायतेऽभिहते चित्ते चिन्ताशोकभयादिभिः॥१॥

स्मरणशक्तिके विनाश करनेवाले रोगको अपस्मार कहते हैं. वह अपस्मार चिन्ता, शोक और भय आदि कारणोंसे चित्तके अभिहत होनेपर स्मरण शक्तिके वहन-करनेवाली सिराओंमें दोषोंके व्याप्त होनेसे सत्त्व गुणके क्षीण होजानेसे उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

उन्मादवत्प्रकुपितैश्चित्तदेहगतैर्मलैः ।
हते सत्त्वे हृदि व्याप्ते संज्ञावाहिषु खेषु च॥२॥
तमोविशन्मूढमतिर्बीभत्साः कुरुते क्रियाः ।
दन्तान् खादन् वमन् फेनं हस्तौ पादौ च-
-विक्षिपन् ॥ ३ ॥
पश्यन्नसन्ति रूपाणि प्रस्खलन्पतति क्षितौ ।
विजिह्माक्षिभ्रुर्दोषवेगेऽतीते विबुध्यते ॥
कालान्तरेण स पुनश्चैवमेव विचेष्टते ॥ ४ ॥

उन्मादरोगमें जिस प्रकार कुपित दोषोंसे चित्त और देहके मलिन होनेपर सत्त्वगुणका नाश होकर दोष संज्ञावहनकरनेवाले स्रोतोंके छिद्रोंमें व्याप्त होकर संज्ञानाश करदेते है उसी प्रकार अपस्माररोगमें भी कुपितहुए दोष चित्त और देहमें व्याप्त हो सत्त्व गुणको हनन कर देते हैं तब संज्ञावहनकरनेवाले, स्रोतोंमें दोषोंके प्रवेश होनेसे मनुष्य ज्ञानरहित होकर अंधकारमें प्रवेश करता है तब इसके मुख आदिकी सब क्रियायें भयावनी होजाती है और इसके दांत कटकटाकर जुड़ जाते हैं, मुखसे फेनकी वमन होती है, हाथों पावोंको यह गिरा देता है । जो रूप नहीं है उनको देखतेहुए प्रस्खलित होकर पृथ्वीपर गिर जाता है तब इसके नेत्र और भृकुटी टेढे होजाते हैं । जब दोषोंका वेग शमन होजाता है तब इसको पुनः पूर्ववत् ज्ञान होजाता है और रोग शमन होजाता है । परन्तु कालांतरमें उसी प्रकार दोषोंका वेग आनेसे डरावनी चेष्टा करतेहुए मूर्च्छित होजाता है । इसको अपस्मार रोग कहते हैं ॥ २—४ ॥

अपस्मारश्चतुर्भेदो वाताद्यैर्निचयेन तु ॥ ५ ॥

यह अपस्मार रोग वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे इन भेदोंसे चार प्रकारका होता है ॥ ५ ॥

अपस्मारके पूर्वरूप ।

रूपमुत्पित्स्यमानेऽस्मिन् हृत्कम्पः शून्यता भ्रमः
तमसो दर्शनं ध्यानं भ्रूव्युदासोऽक्षिवैकृतम्॥६॥
अशब्दश्रवणं स्वेदो लालासिंघाणकस्रुतिः ।
अविपाकोऽरुचिर्मूर्छा कुक्ष्याटोपो बलक्षयः॥७
निद्रानाशोऽङ्गमर्दस्तृट् स्वप्ने गानं सनर्तनम् ।
पानं मद्यस्य तैलस्य तयोरेव च मेहनम् ॥ ८ ॥

जब अपस्मार रोगहोनेवाला होता है तब उसके पूर्वरूपमें हृत्कम्प, हृदयमें शून्यता, भ्रम, अन्धकारका दिखाई देना, ध्यानसा लगाये रहना, भृकुटियोंका ढीलासा गिरना, नेत्रोंका विकृत होना, कानोंमें विना ही शब्दसे शब्दोंका सुनना, पसीना आना, लाला स्राव होना, नाकसे सिंघाणकका गिरना, अन्नका परिपाक न होना तथा अरुचि, मूर्च्छा, कुक्षिमें आटोप, बलक्षय, निद्रानाश, अंगमर्द, प्यास, स्वप्नमें गाना और नाचना, स्वप्नमे मद्य या तैलका पीना तथा मद्य और तैलका मूत्र मार्गसे निकलना ये लक्षण होते हैं ये सामान्यरूपसे अपस्मारका पूर्वरूप हैं ॥ ६—८ ॥

वातापस्मारके लक्षण ।

तत्र वातात्स्फुरत्सक्थि प्रपतंश्च मुहुर्मुहुः ।

अपस्मारेति संज्ञां च लभते विस्वरं रुदन् ॥९॥
उत्पिण्डिताक्षः श्वसिति फेनं वमति कम्पते ।
आविध्यति शिरो दन्तान् दशत्याध्मातकन्धरः
परितो विक्षिपत्यङ्गं विषमं विनताङ्गुलिः ।
रूक्षश्यावारुणाक्षित्वङ्नखास्यः कृष्णमीक्षते ।
चपलं परुषं रूपं विरूपं विकृताननम् ॥ ११ ॥

इनमें वायुके अपस्मारमें दोनों साथलोंकी सक्थियोंका फड़कना और बार बार फड़कतेहुए गिरजाना और बार बार संज्ञा प्राप्त करना, फटे हुए स्वरसे रोना नेत्रोंका उत्पिण्डितसा होना और अपस्मार नामक रोगको प्राप्त होना, श्वासका चलना और मुखसे फेनका गिरना तथा कांपना, शिर और दांतोंको वेधनसा करना, दांतोंको काटना, गरदनमें खिचाव होना, इधर उधर अंगोंका मारना, अंगुलियोंका विषमरूपसे खींचना तथा नेत्र त्वचा नख और मुख रूक्ष श्याम और अरुण वर्णका होना, एवं नेत्रोंसे कालेवर्णके चपल परुष रूपोंका दिखाई देना मुखका विरूप और विकृत होजाना ये लक्षण होते हैं ॥ ९–११ ॥

पित्तापस्मारके लक्षण ।

अपस्मरति पित्तेन मुहुः संज्ञां च विन्दति ।
पीतफेनाक्षिवक्त्रत्वगास्फालयति मेदिनीम् ।
भैरवादीप्तरुषितरूपदर्शी तृषान्वितः ॥ १२ ॥

पित्तके अपस्मारमें बार बार संज्ञाका प्राप्त होना, मुखसे पीलेवर्णका फेन गिरना तथा नेत्र मुख और त्वचा पीलेवर्णके होना, पृथ्वीको ऊपरको गेरना तथा भैरव दीप्त और रूखे रूपोंका दिखाई देना एवं प्यास युक्त होना ये लक्षण होते हैं ॥ १२ ॥

कफापस्मारके लक्षण ।

कफाच्चिरेण ग्रहणं चिरेणैव विबोधनम् ।
चेष्टाऽल्पा भूयसी लाला शुक्लनेत्रनखास्यता ।
शुक्लाभरूपदर्शित्वम् ॥ १३ ॥–

कफके अपस्मारमें देरसे अपस्मार ग्रस्त होना और बहुत देरमें ही संज्ञा प्राप्त होना, चेष्टाओंका अल्प होना, मुखसे बहुत लारका गिरना, नेत्र मुख और नखोंका श्वेतवर्ण होना तथा श्वेतवर्णके रूपोंका दिखाई देना ये लक्षण होते हैं ॥ १३ ॥

सन्निपातापस्मारके लक्षण ।

–सर्वलिङ्गं तु वर्जयेत् ॥ १४ ॥

जिस अपस्मारमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातका अपस्मार जानना; सन्निपातका अपस्मार असाध्य होनेसे त्याज्य है ॥ १४ ॥

अपस्मारकी चिकित्सा ।

अथावृतानां धीचित्तहृत्स्वानां प्राक्प्रबोधनम् ।
तीक्ष्णैः कुर्यादपस्मारे कर्मभिर्वमनादिभिः ॥ १५ ॥

इसके अनन्तर जिन अपस्मार रोगियोंकी चिकित्सा करनी हो उनमें जिनके बुद्धि चित्त और हृदयके स्रोत दोषोंसे आवृत हों उनको प्रथम वमनादि तीक्ष्ण कर्मों द्वारा प्रथम प्रबोधन करना चाहिये अर्थात् बुद्धि चित्त और हृदयके स्रोतोंको तीक्ष्ण द्रव्योंद्वारा अपस्मार रोगमें शोधन करदेना चाहिये ॥ १५ ॥

शोधन चिकित्सा ।

वातिकं बस्तिभूयिष्ठैः पैत्तं प्रायो विरेचनैः ।
श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मारमुपाचरेत् ॥ १६ ॥

वायुके अपस्मारको प्रायः बस्तिप्रधान चिकित्सा द्वारा जीतना चाहिये. पित्तके अपस्मारको प्रायः विरेचनप्रधान चिकित्साद्वारा जीतना चाहिये और कफके अपस्मारको वमनप्रधान चिकित्सा द्वारा जीतना चाहिये ॥ १६ ॥

शमन चिकित्सा ।

सर्वतस्तु विशुद्धस्य सम्यगाश्वासितस्य च ।
अपस्मारविमोक्षार्थं योगान्संशमनान् शृणु १७

जब अपस्माररोगीका शरीर यथार्थरूपसे शुद्ध होजाय तथा पेयादि कर्मद्वारा शरीर यथावस्था ठीक होजाय तब इसको यथार्थ आश्वासन देनेके अनन्तर अपस्मार रोगकी निवृत्तिके लिये संशमन योगोंका प्रयोग करना चाहिये । जिन प्रयोगोंका हम कथन करते हैं सो श्रवण करो ॥ १७ ॥

पंचगव्य घृत ।

गोमयस्वरसक्षीरदधिमूत्रैः शृतं हविः ।
अपस्मारज्वरोन्मादकामलान्तकरं पिबेत् ॥ १८ ॥

गोबरका स्वरस, गौका दूध, गौका दही और गोमूत्र मिलाकर सिद्ध कियाहुआ गोघृत पीनेसे अपस्मार, ज्वर, उन्माद और कामलाको नष्ट करता है (इसको पंचगव्य घृत कहते हैं) ॥ १८ ॥

महापंचगव्य घृत ।

द्विपञ्चमूलीत्रिफलाद्विनिशाकुटजत्वचः ॥१९॥
सप्तकर्णमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम् ।
शम्याकपुष्करजटाफल्गुमूलदुरालभाः ॥ २० ॥
द्विपलाः सलिलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते ।
भार्गीपाठाढकीकुम्भानिकुम्भव्योषरोहिषैः ॥२१
मूर्वाभूतिकभूनिम्बश्रेयसीसारिवाद्वयैः ।
मदयन्त्यग्निनिचुलैरक्षांशैः सर्पिषःपचेत्॥२२॥
प्रस्थं तद्वद् द्रवैः पूर्वैः पञ्चगव्यमिदं महत् ।
ज्वरापस्मारजठरभगन्दरहरं परम् ।
शोफार्शःकामलापाण्डुगुल्मकासग्रहापहम् २३॥

दशमूलके दश द्रव्य, हरड़, बहेड़ा, आंवला, हळदी, दारुहळदी, कुटजकी छाल, सातला, अपामार्ग, कालादाना, कुटकी, अमलतास, पोहकरमूल, जटामांसी, अंजीरकी जड़ और जवासा ये प्रत्येक द्रव्य दो दो पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथा भाग शेषरहे तो उतारकर छान लेवे। इस क्वाथमें भारंगी, पाठा, आढ़की, निशोथ, दन्ती, सोंठ, मिर्च, पीपल, रोहेड़ावास, मूर्वा, अजवायन, चिरायता, हरीतकी, श्वेतसारिवा, कृष्णसारिवा, मदयन्ती, चित्रक और वेतस ये प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे. यह कल्क और दशमूलादि क्वाथ तथा गोबरका रस, गोमूत्र, गोदुग्ध और दधि तथा एक प्रस्थ गोघृत मिलाकर घृतपाक विधिसे सिद्ध करे। यह महापंचगव्यघृत ज्वर, अपस्मार, उदररोग और भगन्दरके हरनेवाला है तथा सूजन, अर्श, कामला, पाण्डुरोग, गुल्म, खांसी और ग्रहदोषको दूर करता है ॥ १९–२३ ॥

ब्राह्मीघृत ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीशृतं घृतम् ।
पुराणं मेध्यमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्मजित् २४

ब्राह्मीका स्वरस, बच, कूठ और शंखपुष्पीसे सिद्ध कियाहुआ पुराना घृत मेधाको बढ़ाता है तथा उन्माद, अलक्ष्मी, अपस्मार और पापको शमन करता है॥२४॥

यमक स्नेह ।

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयैः पलोन्मितैः ।
क्षीरद्रोणे पचेत्सिद्धमपस्मारविमोक्षणम् ॥२५॥

तैल एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ, दूध एक द्रोण इनको मिलाकर इनमें जीवनीयगणकी प्रत्येक औषधका एक एक पल कल्क मिलाकर घृतपाकविधिसे पकावे सिद्ध होनेपर यह यमकस्नेह सेवन करनेसे अपस्माररोग दूर होता है ॥ २५ ॥

क्षीरादि घृत ।

कंसे क्षीरेक्षुरसयोः काश्मर्येऽष्टगुणे रसे ।
कार्षिकैर्जीवनीयैश्च सर्पिः प्रस्थं विपाचयेत् ।
वातपित्तोद्भवं क्षिप्रमपस्मारं निहन्ति तत्॥ २६

दूध चार सेर, गन्नेका रस चार सेर, काश्मरीका रस आठ सेर और घृत एक सेर लेकर इनमें जीवनीयगणकी प्रत्येक औषध एक एक कर्ष लेकर कल्क करके मिलावे और घृत सिद्ध करे. यह घृत पीनेसे वातपित्तसे उत्पन्नहुए अपस्मारको शीघ्र नष्ट कर देता है ॥२६॥

काशादि दुग्ध ।

तद्वत्काशविदारीक्षुकुशक्वाथशृतं पयः ॥२७॥

इसी प्रकार काश, विदारीकन्द, ईख और कुशाके क्वाथसे सिद्ध किया दूध भी पीनेसे वातपित्तके अपस्मारको नष्ट करता है ॥ २७ ॥

कूष्माण्ड घृत ।

कूष्माण्डस्वरसे सर्पिरष्टादशगुणे शृतम् ।
यष्टीकल्कमपस्मारहरं धीवाक्स्वरप्रदम् ॥२८॥

कूष्माण्ड (श्वेतपेठा) का स्वरस अठारह सेर, गोघृत एक सेर और मुलहठीका कल्क एक पावमिलाकर घृत सिद्ध करे. यह घृत बुद्धि, वाणी और स्वरको देनेवाला है और अपस्मारको नष्ट करता है ॥२८॥

कपिलानां गवां पित्तं नावनं परमं हितम् ।
श्वशृगालबिडालानां सिंहादीनां च पूजितम्२९

अपस्माररोगमें गोपित्तकी नस्य देना परम हितकारी है तथा कुत्ता, गीदड, बिड़ाल और सिंह आदिके पित्तका नस्य देनाभी अपस्मारको दूर करता है॥२९॥

गोधानकुलनागानां वृषमर्क्षगवामपि ।
पित्तेषु साधितं तैलं नस्येऽभ्यङ्गे च शस्यते ३०

गोधा, नकुल, नाग, बैल, रीछ और गौके पित्तोंमें सिद्ध कियाहुआ तैल नस्य देनेसे और शरीरपर मालिस करनेसे अपस्मारको शमन करता है ॥ ३० ॥

त्रिफलाव्योषपीतद्रुयवक्षारफणिज्जकैः ॥३१॥
श्यामापामार्गकारञ्जबीजैस्तैलं विपाचितम् ।
बस्तमूत्रे हितं नस्यं चूर्णं वाध्मापयेद्भिषक् ३२॥

हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, दारुहलदी, जवाखार, फणिज्जक (मरुवा), काला शारिवा, अपामार्ग और करंजके बीज इनके कल्क और बकरेके मूत्रमें सिद्ध कियाहुआ तैल नस्य लेनेसे अपस्माररोग दूर होता है अथवा इन्हीं द्रव्योंका चूर्ण नासिकामें सूंघनेसे अपस्माररोग दूर होता है॥ ३१॥३२

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः ।
तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूममस्य प्रयोजयेत् ॥३३

नेवला, उल्लू, बिलाव, गृध्र, षड्बिन्दुककीट, सांप और काग इन सबके तुंड, पंख और विष्ठा लेकर इनकी अग्निपर धूनी देवे यह धूम अपस्माररोगको शमन करता है ॥ ३३ ॥

शीलयेत्तैललशुनं पयसा वा शतावरीम् ।
ब्राह्मीरसं कुष्ठरसं वचा वा मधुसंयुताम् ॥३४॥

तिलका तैल और लहशुन दूधके साथ सेवन करनेसे अथवा शतावरी दूधके साथ सेवन करनेसे अथवा ब्राह्मीका रस या कूठका रस अथवा वच मधुके साथ सेवन करनेसे अपस्माररोग शमन होता है ॥ ३४ ॥

समं क्रुद्धैरपस्मारो दोषैः शारीरमानसैः ।
यज्जायते यतश्चैष महामर्मसमाश्रयः ॥ ३५ ॥
तस्माद्रसायनैरेनं दुश्चिकित्स्यमुपाचरेत् ।
तदार्तं चाग्नितोयादेर्विषमात्पालयेत्सदा ॥३६॥

क्योंकि अपस्माररोग शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारके दोषोंके कुपित होकर मिल जानेसे उत्पन्न होता है और यह रोग महामर्म (हृदय) के आश्रित रहता है इस कारण इस दुश्चिकित्स्य रोगको रसायन औषधियोंद्वारा जीतना चाहिये तथा इस रोगीको अग्नि और जल तथा विषमस्थानसे सदैव बचाकर रखना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

मुक्तं मनो विकारेण त्वमित्थं कृतवानिति ।
न ब्रूयाद्विषयैरिष्टैः क्लिष्टं चेतोऽस्य बृंहयेत् ३७

इत्यष्टाङ्गहृदये भूततन्त्रं तृतीयं समाप्तम् ।

जब अपस्मार रोगसे रोगी मुक्त होजाय और इसका मन विकार रहित होजाय तब भी इसको रोगका स्मरण नहीं कराना चाहिये तथा तुम रोगकी अवस्थामें ऐसा करतेथे ये बातें कभी नहीं कहनी चाहिये और इसके चित्तको कोई भी क्लेश देनेवाली बात न कहकर हितकारी उपायों द्वारा इसके चित्तको पुष्ट करना चाहिये ॥ ३७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरतंत्रे आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां अपस्मारप्रतिषेधोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोवर्त्मरोगविज्ञानमध्यायं व्याख्यास्यामः

अब हम वर्त्मरोग (नेत्रके वर्त्मभागके रोग) के विज्ञानवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं ।

वर्त्म-(पलकोंके) रोग ।

सर्वरोगनिदानोक्तैरहितैः कुपिता मलाः ।
अचक्षुष्यैर्विशेषेण प्रायः पित्तानुसारिणः ॥१॥
शिराभिरूर्ध्वं प्रसृता नेत्रावयवमाश्रिताः ।
वर्त्मसंधिं सितं कृष्णं दृष्टिं वा सर्वमाक्षि वा ॥
रोगान् कुर्युः ॥ २ ॥-

सब रोगोंके निदानोंमें जो वातादिदोषोंके कोप करनेवाले कारण कहे हैं उनसे कुपितहुए वातादिदोष और विशेषकर नेत्रोंको हानि करनेवाले हेतुओंके सेवनकरनेसे प्रायः पित्तके अनुगामी होकर दोष सिराओं द्वारा ऊपरकी सिराओंमें फैलकर जब नेत्रोंके अवयवोंमें आश्रित होजाते हैं तब वर्त्मभागमें वर्त्मकी संधियोमें नेत्रके श्वेतभागमें, नेत्रके कृष्णभागमें दृष्टिस्नायुमें अथवा सम्पूर्ण नेत्रमें रोगोंको उत्पन्न करदेते हैं॥ १॥२॥

कृच्छ्रोन्मीलनरोगके लक्षण।

—चलस्तत्र प्राप्य वर्त्माश्रयाः सिराः।
सुप्तोत्थितस्य कुरुते वर्त्मस्तम्भं सवेदनम्॥
पांशुपूर्णाभनेत्रत्वं कृच्छ्रोन्मीलनमश्रु च।
विमर्दनात्स्याच्च शमः कृच्छ्रोन्मीलं वदन्ति तम्

उनमें जब वायु वर्त्म (पलक) की सिराओंमें आश्रित होजाता है तब मनुष्यके सोकर उठनेके अनन्तर पलकोंका स्तम्भ होजाता है और उनमें वेदना होती है जैसे नेत्रोंमें किसीने रेत डालाहुआ हो ऐसा प्रतीत होता है नेत्र कष्टसे खोले जाते हैं और नेत्रोंमेंसे आंसूभी निकलते हैं हाथसे पलकोंको मलदिया जाय तो यह कष्ट शमन होजाता है इसको कृच्छ्रोन्मीलन रोग कहते है॥ ३॥

निमेषरोगके लक्षण।

चालयन्वर्त्मनी वायुर्निमेषोन्मेषणं मुहुः।
करोत्यरुङ् निमेषोऽसौ॥ ४॥—

जब वायु वर्त्ममें प्रवेश करके बार बार निमेष उन्मेष अर्थात् वारवार पलकोंका झपकना होने लगे और किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं हो इस वातजरोगको निमेषरोग कहते हैं॥ ४॥

वातहत वर्त्मके लक्षण।

—वर्त्म यत्तु निमील्यते।
विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं हीनं वातहतं हि तत्॥५॥

यदि नेत्रकी पलकें संधिमेंसे निश्चेष्ट होकर और संधि रहित होकर मिलजाती हैं और छोटी होजाती है इसको वताहत रोग कहते हैं॥ ५॥

कुम्भी पिटिकाके लक्षण।

कृष्णाः पित्तेन बह्व्योऽन्तर्वर्त्मकुम्भीकबीजवत्।
आध्मायन्ते पुनर्भिन्नाः पिटिकाः कुंभिसंज्ञिताः

यदि पित्तके प्रकोपसे पलकोंके अन्तर्भागमें कालेरंगकी बहुतसी पिटिका कुम्भीके बीजके समान फूलजायं और फिर फूटजायं इन पिटिकाओंको कुम्भी कहते हैं॥ ६॥

पित्तोत्क्लिष्ट।

सदाहक्लेदनिस्तोदं रक्ताभं स्पर्शनाक्षमम्।
पित्तेन जायते वर्त्म पित्तोत्क्लिष्टमुशन्ति तत्॥७

यदि पित्तसे दाह क्लेद और तोदयुक्त लालवर्णके स्पर्शके न सहनेवाले वर्त्म होजायं उनको पित्तोत्क्लिष्टवर्त्म कहते हैं॥ ७॥

पक्ष्मशात।

करोति कण्डूं दाहं च पित्तं पक्ष्मान्तमास्थितम्।
पक्ष्मणां शातनं चानु पक्ष्मशातं वदन्ति तम् ८

यदि पित्त पलकोंके बालोंके मूलमें स्थित होकर खुजली और दाहको उत्पन्नकरे तथा पक्ष्म (पलकोंके बाल) गिरादेवे इस रोगको पक्ष्मशात रोग कहते हैं॥ ८॥

पोथकी।

पोथक्यः पिटिकाः श्वेताः सर्षपाभा घनाः कफात्
शोफोपदेहरुक्कण्डूपिच्छिलाश्रुसमान्विताः॥९॥

कफसे श्वेतवर्णकी सरसोंके समान और घन पलकोंमें पिटिका होजाती हैं इनसे सूजन, क्लेदका लियाहुआ रहना, खुजली और गाढे अश्रुओंका गिरना ये लक्षण होते हैं इस रोगको पोथकीरोग कहते है॥९॥

कफोत्क्लिष्ट।

कफोत्क्लिष्टं भवेद्वर्त्म स्तम्भक्लेदोपदेहवत्॥१०॥

यदि कफसे वर्त्ममें स्तम्भ क्लेद और उपलेपसा होजाय इसको कफोत्क्लिष्टरोग कहते हैं॥ १०॥

लगण।

ग्रन्थिः पाण्डुररुक्पाकः कण्डूमान्कठिनः कफात्
कोलमात्रः स लगणः किञ्चिदल्पस्ततोऽपि वा

जो ग्रन्थि वर्त्ममें पाण्डुवर्णकी पीड़ारहित और पाकरहित उत्पन्न होजाय वह ग्रंथि जंगलीबेरके समान या उससे छोटी हो इसमें खुजली हो और यह ग्रंथि कठोर हो यह कफसे उत्पन्नहुई ग्रन्थि लगणनामक होती है॥ ११॥

उत्संग।

रक्ता रक्तेन पिटिकास्तत्तुल्यपिटिकाचिताः।
उत्सङ्गाख्याः॥ १२॥—

यदि पलकोंमें रक्तसे लालवर्णकी पिटिका उत्पन्न होजाय और वैसी ही छोटी लालवर्णकी फुंसियोंसे सञ्चित हो इस रोगको उत्संगरोग कहते हैं॥ १२॥

रक्तोत्क्लिष्ट।

–तथोत्क्लिष्टं राजिमत्स्पर्शनाक्षमम् १३॥

यदि रक्तसे लालवर्णकी रेखायें युक्त पिटिका वर्त्ममें होजाय और स्पर्शको सहन न करसके इसको रक्तोत्क्लिष्ट रोग कहते हैं ॥ १३ ॥

नेत्रार्श या अधिमांस।

अर्शोऽधिमांसं वर्त्मान्तःस्तब्धं स्निग्धंसदाहरुक् रक्तं रक्तेन तत्स्रावि छिन्नं छिन्नं च वर्धते॥१४॥

यदि वर्त्मके भीतर मांसका अङ्कुर उत्पन्न होजाय वह स्तब्ध, स्निग्ध और दाहयुक्त हो तथा रक्तवर्णका हो और उसमेंसे रक्तका स्राव भी हो बारबार छेदन करदेनेपर भी फिर बढ़जाय इस रक्तजरोगको वर्त्मार्श कहते हैं ॥ १४ ॥

अंजननामिका।

मध्ये वा वर्त्मनोऽन्ते वा कण्डूषारुग्वती स्थिरा। मुद्गमात्रासृजा ताम्रा पिटिकाञ्जननामिका १५

वर्त्मके मध्यमें अथवा वर्त्मके अन्तमें मूंगके दानेके समान पिटिका होजाय उसमें खुजली और पीड़ा उत्पन्न हो यह पिटिका स्थिर हो इसको अञ्जननामिका कहते है कोई इसको अञ्जनहारी भी कहते है ॥१५॥

बिसवर्त्म।

दोषैर्वर्त्म बहिः शूनं यदन्तः सूक्ष्मखाचितम्। सस्रावमन्तरुदकाबिसाभं बिसवर्त्म तत् ॥ १६॥

वर्त्मके बाहरवाले भागमें दोषोंसे सूजन उत्पन्न होजाय सूजनसे वर्त्मके अन्तर्भागमें सूक्ष्म छिद्र हों इन छिद्रोंमेंसे कमलके बिसके समान जलका स्राव हो इस रोगको बिसवर्त्म कहते है ॥ १६ ॥

उत्क्लिष्ट वर्त्म।

यद्वर्त्मोत्क्लिष्टमुत्क्लिष्टमकस्मान्म्लानतामियात्। रक्तदोषत्रयोत्क्लेशाद् वदन्त्युत्क्लिष्टवर्त्म तत् १७

यदि वर्त्म रक्तके उत्क्लेशसे और प्रदोषके उत्क्लेशसे क्लेदित होतेहुए भी अकस्मात् म्लान होजाय इस रोगको उत्क्लिष्टवर्त्म कहते है ॥ १७ ॥

श्याववर्त्म।

श्याववर्त्म मलैःसास्रैः श्यावं रुक्क्लेदशोफवत् १८

रक्तसहित तीनों दोषोंसे जो वर्त्म पीड़ा क्लेद और सूजन करके युक्त होताहुआ श्यामवर्णका होजाय इसको श्याव वर्त्म कहते हैं ॥ १८ ॥

श्लिष्टवर्त्म।

श्लिष्टाख्यवर्त्मनी श्लिष्टे कण्डूश्वयथुरागिणी १९

यदि वर्त्म एक जगह संलग्न होजाय उसमें खुजली सूजन और लालिमा हो उसको श्लिष्टवर्त्म कहते है१९

सिकतावर्त्म।

वर्त्मनोऽन्तःखरा रूक्षाः पिटिकाःसिकतोपमाः। सिकतावर्त्म ॥ २० ॥–

यदि वर्त्मके आभ्यन्तर खर रूक्ष और बालू रेतके समान पिटिका होजाय इस रोगको सिकतावर्त्म कहते हैं ॥ २० ॥

कर्दम।

–कृष्णं तु कर्दमं कर्दमोपमम् ॥ २१ ॥

यदि वर्त्म काले कीचड़के समान वर्णके होजाय तो इसको कर्दमरोग कहते हैं ॥ २१ ॥

बहल।

बहलं बहलैर्मांसैः सवर्णैश्चीयते समैः ॥ २२ ॥

यदि वर्त्म समानवर्णवाले घनमांसोंसे युक्त होजाय इस रोगको बहल रोग कहते है ॥ २२ ॥

कुकूणक।

कुकूणकः शिशोरेव दन्तोत्पत्तिनिमित्तजः। स्यात्तेन शिशुरुच्छूनताम्राक्षो वीक्षणाक्षमः। स वर्त्मशूलपैच्छिल्यकर्णनासाक्षिमर्दनः॥२३॥

छोटे बालकके दांत उत्पन्न होनेके समय दांतोंके कारण उसके नेत्रोंमें पीड़ा, सूजन, ताम्रकासा वर्ण और देखनेमें असमर्थता ये लक्षण होजाय तथा वर्त्ममें शूल और पिच्छिलता हो बालक अपने नासिका, कान और नेत्रोंको मर्दन करे इस रोगको कुकूणकरोग कहते है ॥ २३ ॥

पक्ष्मोपरोध।

पक्ष्मोपरोधे संकोचो वर्त्मनां जायते तथा। खरतान्तर्मुखत्वं च लोम्नामन्यानि वा पुनः। कण्टकैरिव तीक्ष्णाग्रैर्घृष्टं तैरक्षि सूयते। उष्यते चानिलादिद्विड्लपाहःशान्तिरुद्धृतैः २४

पक्ष्मोपरोधरोगमें वर्त्मोंका संकोच होजाता है तथा

वर्त्मोंके रोम अन्तर्मुख होजाते है और कठोर होजाते है तथा भीतरको अन्यरोम उत्पन्न होजाते हैं। इन कांटेके समान तीक्ष्ण अग्रभागवाले रोमोंसे नेत्र हर्षित होजाते है। उससे नेत्रोंमें दाह होती है और नेत्रोंमें पवनका लगना या धूप आदिका लगना सहन नहीं होता। जब इन अन्तर्मुख पक्ष्म (बालोंको) वर्त्म मेंसे निकाल दिया जाय तो कुछ दिनोंके लिये शान्ति रहती है। जब यह अन्तर्मुख रोम फिर उत्पन्न होजाते हैं तब फिर पहलेके समान कष्ट होनेलगता है। इस रोगको पक्ष्मोपरोध या पड़वाल कहते है ॥ २४ ॥

अलजी।

कनीनके बहिर्वर्त्म कठिनो ग्रन्थिरुन्नतः।
ताम्रःपक्वोऽस्रपूयास्रुदलज्याध्मायते मुहुः २५।

यदि वर्त्मके वहिर्भागमें कठिन और ऊंची उठी हुई नेत्रके कोयेमें ग्रंथि उत्पन्न होजाय यह ग्रंथि ताम्रवर्णकी हो पकनेपर रक्त और पूयका स्राव करे स्राव होनेके अनन्तर बारबार फिर फूल जाया करे इसको अलजी कहते है ॥ २५ ॥

अर्बुद।

वर्त्मान्तर्मांसपिण्डाभः श्वयथुर्ग्रथितो रुजः।
सास्रैः स्यादर्बुदो दोषैर्विषमो बाह्यतश्चलः॥२६

रक्तयुक्त वातादि तीनों दोषोंसे वर्त्मके अन्तर्भागमें मांसपिंडके समान सूजन उत्पन्न होजाय यह सूजन पीड़ा रहित ग्रंथिके समान हो तथा विषम हो और बाहरसे चलायमान होनेवाली हो इस ग्रंथिको नेत्रार्बुद (नेत्रकी रसौली) कहते है ॥ २६ ॥

चतुर्विंशतिरित्येते व्याधयो वर्त्मसंश्रयाः २७॥

इस प्रकार वर्त्म अर्थात् पलकोंके आश्रित चौवीस प्रकारकी व्याधियां कहीं हैं ॥ २७ ॥

वर्त्मरोगोंके साध्यासाध्य।

आद्योऽत्र भेषजैःसाध्यो द्वौ ततोऽर्शश्च वर्जयेत्
पक्ष्मोपरोधो याप्यःस्याच्छेषाञ्छस्त्रेण साधयेत्
कुट्टयेत्पक्ष्मसदनं छिन्द्यात्तेष्वपि चार्बुदम्२८॥

इनमें कृच्छ्रोन्मीलननामक रोग औषधियोंद्वारा शमन होसकता है इसके अनन्तर जो दो रोग कहे हैं अर्थात् निमेष और वातहत ये दो रोग तथा नेत्रार्श ये तीन रोग असाध्य होते है और पक्ष्मोपरोध याप्य होता है। इनके अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण वर्त्मरोगोंको शस्त्रद्वारा चिकित्सा करके शान्त करदेना चाहिये॥२८

सामान्य चिकित्सोपदेश।

भिन्द्याल्लगणकुम्भीकाबिसोत्संगाञ्जनालजीः।
पोथकीश्यावसिकता श्लिष्टोत्क्लिष्टचतुष्टयम्।
सकर्दमं सबहलं विलिखेत्सकुकूणकम् ॥ २९ ॥

इन शस्त्रसाध्य रोगोंमें पक्ष्मशातरोगको सूची या कूर्चसे कुट्टन करना चाहिये। अर्बुदरोगको वृद्धिपत्र आदि शस्त्रसे छेदन करदेना चाहिये। लगण, कुम्भीक, विषवर्त्म, उत्संग, अंजननामिका और अलजी इनको व्रीहिमुख शस्त्रसे, भेदन करना चाहिये। पोथकी, श्याववर्त्म, सिकतावर्त्म, श्लिष्ट, चारों प्रकारके उत्क्लिष्ट, कर्दम, बहल और कुकूणक इन एकादश रोगोंको लेखन अर्थात् खुरचकर ठीक करदेना चाहिये ॥२९॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरतंत्रे आयुर्वेदाचार्यपं० शिवशर्मकृत-शिवदीपिका भाषाव्याख्यायां वर्त्मरोगविज्ञानं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः।

अथातो वर्त्मरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अब हम वर्त्मरोगके प्रतिषेध अर्थात् चिकित्साके अध्यायकी व्याख्या करते है।

कृच्छ्रोन्मीलनकी चिकित्सा।

कृच्छ्रोन्मीले पुराणाज्यं द्राक्षाकल्काम्बु-
-साधितम्।
ससितं योजयेत्स्निग्धं नस्यधूमाञ्जनादि च॥१॥

कृच्छ्रोन्मीलन रोगमें अर्थात् नेत्रकी पलके यदि कष्टसे खुलती हों तो पुराने घृतमें द्राक्षाका कल्क और जल मिलाकर घृत सिद्ध करे। इस घृतमें मिश्री मिलाकर सेवन करे तथा स्निग्ध नस्य, धूम और अंजनादिकोंका प्रयोग करे तो पलकें सुखसे खुलने लगती हैं ॥ १ ॥

कुम्भीकावर्त्मकी चिकित्सा।

कुम्भीकावर्त्म लिखितं सैन्धवप्रतिसारितम्।
यष्टीधात्रीपटोलीनां क्वाथेन परिषेचयेत् ॥ २ ॥

कुम्भीकावर्त्मको प्रथम वृद्धिपत्रशस्त्रसे लेखन करे फिर लेखन कियेहुए स्थानको सैन्धवलवणसे मर्दन करे तदनन्तर मुलहठी आंवले और पटोलपत्रके क्काथसे सेचन करे ॥ २ ॥

लेखन प्रकार।

निवातेऽधिष्ठितस्याप्तैः शुद्धस्योत्तानशायिनः।
बहिःकोष्णाम्बुतप्तेन स्वेदितं वर्त्म वाससा॥३॥
निर्भुज्य वस्त्रान्तरितं वामाङ्गुष्ठाङ्गुलीधृतम्।
न स्रंसते चलति वा वर्त्मैवं सर्वतस्ततः ॥ ४ ॥
मण्डलाग्रेण तत्तिर्यक् कृत्वा शस्त्रपदाङ्कितम्।
लिखेत्तेनैव पत्रैर्वा शाकशेफालिकादिजैः ॥५॥
फेनेन तोयराशेर्वा पिचुना प्रमृजन्नसृक्।
स्थिते रक्ते सुलिखितं सक्षौद्रैःप्रतिसारयेत्॥६॥
यथास्वमुक्तैरनु च प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा।
घृतेनासिक्तमभ्यक्तं बध्नीयान्मधुसर्पिषा ॥७॥
ऊर्ध्वाधः कर्णयोर्दत्त्वा पिण्डिं च यवसक्तुभिः।
द्वितीयेऽहनि मुक्तस्य परिषेकं यथायथम्।
कुर्यात् चतुर्थे नस्यादीन्मुञ्चेदेवाह्नि पञ्चमे॥८॥

वर्त्मको लेखन करनेकी विधि इस प्रकार है-प्रथम जिस पुरुषके वर्त्मको लेखन करना हो उसको वातरहितस्थानमें सीधा लेटावे और उस शुद्धकाय अर्थात् प्रथम वमन विरेचनादिसे शुद्धहुए शरीरवाले वर्त्म रोगीको सीधा लेटानेके अनन्तर योग्य वैद्य गर्मजलमें भिगोकर निचोड़े हुए गर्मवस्त्रसे उसके वर्त्मभागको छेदन करे। तदनन्तर बायें हाथकी अंगुली और अंगूठेसे इसकी पलकको उलटाकर वस्त्रसे नेत्रका दृष्टिवाला भाग ढकदे। तदनन्तर इस वर्त्मको इस प्रकार उलटावे जिससे यह हिलकर चलायमान न होजाय फिर मंडलाग्र शस्त्रसे इसको तिरछा करके वृद्धिपत्र या शेफालिकापत्र या शाकपत्रसे शस्त्रद्वारा अंकित स्थानको लेखनकरे उसमेंसे जो रक्त निकले उसको समुद्रफेन या औषधकाथके जलमें भिगोये हुए फोहेसे पोंछदेवे। जब देखे कि यथार्थ लेखन होगया है तब उस स्थानको शहदसे प्रतिसारण करे अर्थात् उस स्थानपर शहद लगादेवे। तदनन्तर दोषानुसार द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए सुखोष्ण जलसे धो डाले फिर घृतसे सेचन करके और मधु घृत लगाकर उसके ऊपर यवके सत्तुओंकी पिंडी बांधदेवे. उसके ऊपर वस्त्रकी पट्टी कानोंके नीचे ऊपर करके बांध देवे। फिर दूसरे दिन खोलकर दोषानुसार द्रव्यके काथके साथ सेचन करके मधु घृत लगादेवे। चौथे दिन उचित नस्य देवे और पांचवें दिन पट्टी बांधना आदि दूर करदेवे। यह वर्त्मलेखनकी विधि है ॥ ३-८ ॥

यथार्थ लेखनके लक्षण।

समं नखनिभं शोफकण्डूघर्षाद्यपीडितम्।
विद्यात्सुलिखितं वर्त्म लिखेद् भूयो विपर्यये॥९

यदि वर्त्मस्थान नखके समान साफ होजाय और उसमें सूजन खुजली घर्षण आदि कोई विकार शेष न रहे तो ठीक लेखन कर्म होगया जानना चाहिये। यदि सूजन आदि विकार रहगये हों तो पुनः लेखन करदेना चाहिये ॥ ९ ॥

अतिलेखनके दोष।

रुक्पक्ष्मवर्त्मसदनं स्रंसनादतिलेखनात्।
स्नेहस्वेदादिकस्तस्मिन्निष्टो वातहरः क्रमः ॥१०

यदि अधिक लेखन होजाय तो वर्त्मस्थानमें पीड़ा पक्ष्म और पलकोंका शून्य होना या पलकोंका गिरना ये लक्षण होते है। ऐसा होजाने पर स्नेहन स्वेदनादि वातनाशक कर्मका पालन करना चाहिये॥१०॥

अतिलेखनकी चिकित्सा।

अभ्यज्य नवनीतेन श्वेतरोध्रं प्रलेपयेत्।
एरण्डमूलकल्केन पुटपाके पचेत्ततः ॥ ११ ॥
स्विन्नं प्रक्षालितं शुष्कं चूर्णितं पोटलीकृतम्।
स्त्रियाःक्षीरे छगल्या वा मृदितं नेत्रसेचनम्१२

श्वेतलोधको मक्खनसे लेपितकर इस लोधको एरण्डमूलके कल्कमें लपेटकर गोला बनावे फिर इसको मिट्टीसे लपेटकर पुटपाक करे फिर निकालकर धोकर सुखावे इस सूखे लोधका चूर्ण करके एक वस्त्रकी

पोटलीमें बांधे इस पोटलीको बकरीके अथवा स्त्रीके दूधमें भिगोकर इससे नेत्रको सेचनकरे तो अतिलेखनका दोष दूरहोता है ॥ ११ ॥ १२॥

शालितन्दुलकल्केन लिप्तं तद्वत्परिष्कृतम्॥१३॥
कुर्यान्नेत्रेऽतिलिखिते मृदितं दधिमस्तुना ।
केवलेनाऽपि वा सेकं मस्तुना जाङ्गलाशिनः॥१४

इसी प्रकार पठानीलोधको शाली,चावलोंके कल्कसे लेपकरके पुटपाक करे फिर लोधको धोकर सुखालेवे तदनन्तर चूर्णकर पोटली बनाकर दहीके मस्तुमें भिगोकर सेचनकरे अथवा जांगलमांसका भोजन करनेवाला मनुष्य केवल दहीके मस्तुसे सेचनकरे तब भी अतिलेखनके दोष शमन होजाते है ॥ १३॥ १४॥

वर्त्मपिटिकाकी चिकित्सा ।

पिटिका व्रीहिवक्त्रेण भित्त्वा तु कठिनोन्नताः ।
निष्पीडयेदनु विधिः परिशेषस्तु पूर्ववत् ।
लेखने भेदने चायं क्रमः सर्वत्र वर्त्मनि ॥ १५॥

यदि वर्त्मोंपर कठिन और उन्नत पिटिका हों तो उसको व्रीहिमुखशस्त्रसे भेदनकर उसको इस प्रकार पीड़न करे जिससे उसके भीतरका दोष सब निकलजाय. तदनन्तर लेपन बंधनादिविधि लेखन कर्मके समान ही करना चाहिये ।

यह लेखन और भेदनका क्रम सब प्रकारके वर्त्मरोगोंमें इसी प्रकार करना चाहिये ॥ १५ ॥

पित्त और रक्तके उत्क्लिष्टरोगकी चिकित्सा ।

पित्तास्रोत्क्लिष्टयोः स्वादुस्कन्धसिद्धेन सर्पिषा।
सिराविमोक्षः स्निग्धस्य त्रिवृच्छ्रेष्ठं विरेचनम् १६
लिखिते स्रुतरक्ते च वर्त्मनि क्षालनं हितम् ।
यष्टीकषायःसेकस्तु क्षीरं चन्दनसाधितम् १७॥

पित्त और रक्तके उत्क्लिष्टरोगमें मधुरगणसे सिद्ध कियेहुए घृतके साथ पुरुषको स्नेहन करे अर्थात् मधुरगणसे सिद्ध कियाहुआ घृत पिलाकर स्निग्ध करे तदनन्तर सिरामोक्षणद्वारा रक्त निकाले और निशोथसे विरेचन करावे जब विरेचन और रक्तनिकालनेसे शरीर शुद्ध होजाय तब वर्त्मको लेखनकर रक्तनिकलनेके अनन्तर मुलहठीके काथसे वर्त्मको धो डाले तथा चन्दनसे सिद्ध कियेहुए दूधसे नेत्रोंको सेचनकरे १६॥१७॥

पक्ष्मशातकी चिकित्सा ।

पक्ष्मणां सदने सूच्या रोमकूपान् विकुट्टयेत्॥१८
ग्राहयेद्वा जलौकोभिः पयसेक्षुरसेन वा ।
वमनं नावनं सर्पिःशृतं मधुरशीतलैः ॥ १९ ॥

यदि नेत्रोंके पक्ष्म अर्थात् लोम गिरते हों तो रोमके स्थानको सूईके द्वारा विकुट्टन करे अथवा पलकोंपर जोंक लगाकर रक्त निकाले तदनन्तर दूध और ईखका रस पिलाकर मैनफलके कल्कसे वमन करावे अथवा मधुर और शीतलद्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत नस्यकर्ममें प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ १८॥१९॥

संचूर्ण्य पुष्पकासीसं भावयेत्सुरसारसैः।
ताम्रे दशाहं परमं पक्ष्मशाते तदञ्जनम् ॥२०॥

पुष्पकसीसको बारीक पीसकर ताम्रके पात्रमें डालकर तुलसीके रसमें भावना देवे दशदिनके भावना देनेके अनन्तर यह अंजन नेत्रोंमें डालनेसे पक्ष्मशात रोग दूर होता है ॥ २० ॥

पोथकीकी चिकित्सा ।

पोथकीर्लिखिताः शुण्ठीसैन्धवप्रतिसारिताः ।
उष्णाम्बुक्षालिताः सिञ्चेत् खदिराढकिशिग्रुभिः
अप्सिद्धैर्द्विनिशा श्रेष्ठामधुकैर्वा समाक्षिकैः॥२१॥

पोथकीरोगको वृद्धिपत्र आदि शस्त्रसे लेखन करनेके अनन्तर सोंठ और सेंधानमकके चूर्णसे प्रतिसारण करे फिर सुखोष्ण जलसे धोडाले तदनन्तर खैर, आढ़की और सुहांजनेके काथसे सेचन करे अथवा हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला और मुलहठीके काथमें मधु मिलाकर उससे सेचन करे तो पोथकीरोग शमन होता है ॥ २१ ॥

कफोत्क्लिष्टकी चिकित्सा ।

कफोत्क्लिष्टे विलिखिते सक्षौद्रैः प्रतिसारणम् ।
सूक्ष्मैः सैन्धवकासीसमनोह्वाकणतार्क्ष्यजैः ।
वमनाञ्जननस्यादि सर्वं च कफजिद्धितम् ॥२२

कफोत्क्लिष्टरोगमें लेखन करनेके अनन्तर सैंधानमक, कसीस, मनसिल, कालाजीरा और रसौंतके

चूर्णको मधुमें मिलाकर लेखन कियेहुए स्थानपर लगावे तथा कफनाशक द्रव्योंसे वमन, अंजन और नस्यादि सब कर्म करना हितकारी होता है ॥ २२ ॥

लगणकी चिकित्सा।

कर्तव्यं लगणेप्येतदशान्तावग्निना दहेत्॥२३॥

लगणरोगमें प्रथम लेखनादिकर्म करके फिर सैन्धवादि द्रव्योंका चूर्ण मधुमें मिलाकर प्रतिसारण करे और कफनाशक वमनादि करावे। यदि फिरभी शमन न हो तो लगणके स्थानको अग्निसे दग्ध करे ॥२३॥

कुकूणककी चिकित्सा।

कुकूणे खदिरश्रेष्ठानिम्बपत्रैः शृतं घृतम्।
पीत्वा धात्री वमेत्कृष्णायष्टीसर्षपसैन्धवैः।
अभयापिप्पलीद्राक्षाक्वाथेनैनां विरेचयेत्॥२४॥

कुकूणकरोगमे बालकको दूध पिलानेवाली स्त्री खैर, त्रिफला और निम्बके पत्तोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीकर स्निग्धकोष्ठ होनेपर पीपल मुलहठी सरसों और सैंधानमकका कल्क पीकर वमन करे। तदनन्तर इसको हरीतकी पीपल और द्राक्षाका क्वाथ पिलाकर विरेचन करावे ॥ २४ ॥

मुस्ताद्विरजनीकृष्णाकल्केनालेपयेत्स्तनौ।
धूपयेत्सर्षपैः साज्यैः ॥ २५ ॥--

फिर इसके स्तनोंको नागरमोथा, हल्दी, दारुहलदी और पीपलके कल्कसे लेपन करके घृत और सरसोंकी धूनी देवे ॥ २५ ॥

--शुद्धां क्वाथं च पाययेत्।
पटोलमुस्तमृद्वीकागुडूचीत्रिफलोद्भवम् ॥२६॥

इस प्रकार शुद्ध होनेके अनन्तर इस दूध चुघानेवाली स्त्रीको पटोलपत्र, नागरमोथा, द्राक्षा, गिलोय और त्रिफलेका क्वाथ पिलावे ॥ २६ ॥

शिशोस्तु लिखितं वर्त्म स्रुतासृग्वाम्बुजन्मभिः
धात्र्यश्मन्तकजम्बूत्थपत्रक्वाथेन सेचयेत् २७॥

यह तो हुई धात्रीकी चिकित्सा; इसके अनन्तर कुकूणकरोगवाले बालकके नेत्रोंको किंचित् लेखन करके अथवा छोटी जोंक लगाकर रक्तस्राव करनेके अनन्तर आंबलेके पत्र, अश्मन्तकके पत्र और जामुनके पत्रोंके क्वाथसे सेचन करे ॥ २७ ॥

प्रायः क्षीरघृताशित्वाद्बालानां श्लेष्मजा गदाः।
तस्माद्वमनमेवाग्रे सर्वव्याधिषु पूजितम्॥२८॥

बालकोंको दूध और घृतका आहार मिलनेसे प्रायः इनको कफजनित ही रोग होते है; इस कारण बालकोंके सम्पूर्ण रोगोंमें प्रथम वमन करा देना ही सबसे श्रेष्ठ होता है ॥ २८ ॥

सिन्धूत्थकृष्णापामार्गबीजाज्यस्तन्यमाक्षिकम्
चूर्णो वचायाः सक्षौद्रो मदनं मधुकान्वितम् २९
क्षीरं क्षीरान्नमन्नं च भजतः क्रमशः शिशोः।
वमनं सर्वरोगेषु विशेषेण कुकूणके ॥ ३० ॥

बालकोंको वमन करानेके लिये सैंधानमक, पीपल, अपामार्गके बीज, घृत, इसकी माताके स्तनोंका दूध और मधु मिलाकर पिलावे अथवा मधु मिलाकर बचका चूर्ण चटावे अथवा मैनफल और मुलहठीका चूर्ण मधु मिलाकर देवे ये तीन वमनके योग क्रमसे केवल दूधपीनेवाले दूध और अन्न खानेवाले और अन्नखानेवाले बालकोंको वमनार्थ देने चाहिये। बालकोंको यद्यपि सम्पूर्ण रोगोंमें ही वमनकराना हितकर है परन्तु कुकूणकरोगमें विशेष प्रकारसे वमन कराना ही हितकर है ॥ २९ ॥ ३० ॥

सप्तलारससिद्धाज्यं योज्यं चोभयशोधनम् ३१

यदि बालकको वमन और विरेचन दोनों प्रकारका शोधन कराना हो तो सातलाके रससे सिद्धकियाहुआ घृत अवस्थानुसार उचित मात्रासे देना चाहिये ३१

द्विनिशारोध्रयष्ट्याह्वरोहिणीनिम्बपल्लवैः।
कुकूणके हिता वर्तिः पिष्टैस्ताम्ररजोऽन्वितैः।
क्षीरक्षौद्रघृतोपेतं दग्धं वा लोहजं रजः ॥३२॥

कुकूणकरोगमें हलदी, दारुहलदी, पठानीलोध, मुलहठी, हरीतकी और निम्बके पत्र तथा ताम्रभस्म मिलाकर जलमें पीसकर बत्ती बनावे. यह बत्ती जलमें घिसकर नेत्रमें लगानेसे कुकूणकरोग शमन होता है अथवा लोहभस्मको दूध और मधु घृतमें मिलाकर कुकूणकवाले नेत्रोंमें लगावे। कोई समुद्रझाग और सोनामक्खीके भस्मको दूध मधु और घृत मिलाकर नेत्रोंमें लगाते हैं ॥ ३२ ॥

एलारसोनकतकशङ्खोषणफणिज्जकैः ।
वर्तिः कुकूणपोथक्योः सुरापिष्टैः सकट्फलैः॥३३

इलायची, लहसुन, निर्मलीका फल, शंखकी नाभि, कालीमिर्च, मरुवेके पत्र और कायफल, इनको सुरामें पीसकर बत्ती बनावे यह बत्ती जलसे घिसकर कुकूणक और पोथकी रोगमें लगाना हितकारी है॥ ३३ ॥

पक्ष्मरोध (पड़वाल) की चिकित्सा ।

पक्ष्मरोधे प्रवृद्धेषु शुद्धदेहस्य रोमसु ॥ ३४ ॥
उत्सृज्य द्वौ भ्रुवोऽधस्ताद्भागौ भागं च पक्ष्मतः
यवमात्रं यवाकारं तिर्यक्छित्त्वाऽऽर्द्रवाससा ३५
अपनेयमसृक् तस्मिन्नल्पीभवति शोणितम् ।
सीव्येत्कुटिलया सूच्या मुद्गमात्रान्तरैः पदैः३६
बद्धा ललाटे पट्टं च तत्र सीवनसूत्रकम् ।
नातिगाढश्लथं सूच्या निक्षिपेदथ योजयेत्३७॥
मधुसर्पिःकवलिकां न चास्मिन्बन्धमाचरेत् ।
न्यग्रोधादिकषायैश्च सक्षीरैः सेचयेद्रुजि ॥३८॥
पञ्चमे दिवसे सूत्रमपनीयावचूर्णयेत् ।
गैरिकेण व्रणं युंज्यात्तीक्ष्णं नस्याञ्जनादि च३९

पक्ष्मरोधमें बढ़ेहुए रोम हों तो प्रथम रोगीको वमन विरेचन कराकर शुद्ध होनेपर चिकित्सा करे तथा दोनों भृकुटियोंको नीचेसे दो भाग स्थान छोड़कर और पलकोंके ऊपर एक भाग स्थान छोडकर यवके समान यवके आकारका तिरछा चीरा देकर गीले वस्त्रसे उसके रक्तको साफ करदेवे जब रक्त कम होजाय तब खमदार सूईसे मूंगके बराबर अन्तर छोड़कर धागेसे सी देवे ये सीयेहुए धागे मस्तकपर पट्टी बांधकर उस पट्टीमें बांध देवे ये धागे न बहुत ढीले और न बहुत खिंचेहुए रहने चाहिये। तदनन्तर इस चीरेहुए स्थानपर मधु और घृत लगादेवे और पट्टी न बांधे यदि उस स्थानमें पीड़ा हो तो दूध मिलेहुए न्यग्रोधादिगणके क्वाथसे सेचन करे इसके अनन्तर पांचवें दिनके सीयेहुए धागे काटकर व्रणके स्थानपर गेरू लगावे इसके अनन्तर तीक्ष्ण नस्य अंजनादिका प्रयोग करावे॥ ३४-३९ ॥

दहेदशान्तौ निर्भुज्य वर्त्मदोषाश्रयां वलीम् ।
संदंशेनाधिकं पक्ष्म हृत्वा तस्याश्रयं दहेत् ।
सूच्यग्रेणाग्निवर्णेन ॥ ४० ॥–

यदि इस प्रकार चिकित्सा करनेपर भी यह रोग शमन न हो तो वर्त्मके आश्रित वलीको बाहरकी ओ पलटकर उसमेंसे संदंशयंत्रद्वारा बालोंको खैंचकर निकाल देवे और बालोंकी जड़ोंको अग्निमें लाल की हुई सूईसे दग्ध करदेवे ॥ ४० ॥

नेत्रके अलजी और अर्बुदकी चिकित्सा ।

--दाहो बाह्यालजेः पुनः ॥
भिन्नस्य क्षारवह्निभ्यां सुच्छिन्नस्यार्बुदस्य च४१

वर्त्मके बाहर अलजी हो तो उसको भेदन करनेके अनन्तर उस स्थानपर दाहकर्म करदेना चाहिये ।

नेत्रार्बुदरोगमें पहले अर्बुदको शस्त्रसे छेदनकर क्षार अथवा अग्निसे दग्ध करदेना चाहिये ॥ ४१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायां उत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषा-व्याख्यायां वर्त्मरोगप्रतिषेधो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथातः सन्धिसितासितरोगविज्ञानमारभ्यते ।

अब हम नेत्रकी संधिके श्वेतभाग तथा कृष्णभागमें होनेवाले रोगोंके विज्ञानको कथन करते है ।

जलास्रावके लक्षण ।

वायुः क्रुद्धः सिराः प्राप्य जलाभं जलवाहिनीः।
अश्रु स्रावयते वर्त्मशुक्लसन्धेः कनीनकात् ।
तेन नेत्रं सरुग्रागशोफं स्यात्स जलास्रवः ॥१॥

वायु कुपित होकर जब जलके वहन करनेवाली सिराओंमें प्राप्त होजाता है तब वर्त्म और शुक्लभागकी संधिमेंसे तथा कोयेमेंसे जलके समान आंसुओंका स्राव करता है उससे नेत्रपीड़ा लालिमा और सूजन युक्त होजाता है । इसको जलास्रावरोग कहते हैं॥ १॥

कफास्रावके लक्षण ।

कफात्कफस्रवे श्वेतं पिच्छिलं बहलं स्रवेत् ॥२॥

यदि यह जलास्राव कफसे हो तो नेत्रोंसे शीत,

पिच्छिल और गाढ़ा स्राव होता है इसको कफास्राव कहते हैं ॥ २ ॥

उपनाहके लक्षण।

कफेन शोफस्तीक्ष्णाग्रः क्षारबुद्बुदकोपमः।
पृथुमूलबलः स्निग्धः सवर्णमृदुपिच्छिलः।
महानपाकः कण्डूमानुपनाहः स नीरुजः ॥३॥

कफसे नेत्रोंमें तीक्ष्ण अग्रभागवाली सूजन उत्पन्न होजाय इस सूजनका आकार क्षारके बुलबुलेके समान होता है. यह सूजन मूलमेंसे गोल, बलवान्, चिकनी, त्वचाके समानवर्णवाली, मृदु और पिच्छल तथा बड़ी होती है यह सूजन पकती नहीं इसमें खुजली होती है तथा पीड़ा नहीं होती इसको नेत्रका उपनाह रोग कहते है ॥ ३ ॥

रक्तास्रावके लक्षण।

रक्ताद्रक्तस्रवे ताम्रं बहूष्णं चाश्रु संस्रवेत् ४॥

रक्तसे नेत्रमें जो स्राव होता है वह ताम्रवर्णका बहुत और उष्ण अश्रुओंका स्राव होता है; इसको रक्तास्रावरोग कहते हे ॥ ४ ॥

पर्वणीके लक्षण।

वर्त्मसंध्याश्रया शुक्ले पिटिका दाहशूलिनी।
ताम्रा मुद्गोपमा भिन्ना रक्तं स्रवति पर्वणी ५॥

वर्त्मके संधिके आश्रित शुक्लभागमें जो मूंगके दानेके समान पिटिका होजाय उसका वर्ण ताम्रके समान हो इसमें दाह और शूल भी हो इसके फूटनेपर इसमेंसे रक्तका स्राव हो इस रक्तजनित पिटिकाको पर्वणी कहते हैं ॥ ५ ॥

पूयास्रावके लक्षण।

पूयास्रावे मलाः सास्रा वर्त्मसंधेः कनीनकात्।
स्रावयन्ति मुहुः पूयं सास्रत्वङ्मांसपाकतः६॥

जब वातादिदोष रक्तके साथ मिलकर वर्त्मकी संधि और कोयेमेंसे रक्त त्वचा और मांसके परिपाकके कारण बारबार पूयका स्राव करते हैं इस रोगको पूयास्राव कहते हे ॥ ६ ॥

पूयालसकके लक्षण।

पूयालसो व्रणः सूक्ष्मः शोफसंरम्भपूर्वकः।
कनीनसन्धावाध्मायी पूयास्रावी सवेदनः ॥७॥

जो व्रण सूजन और संरंभपूर्वक कनीनिकाकी संधिमें सूक्ष्म मुखवाला होजाता है। वह पूय (पीव) के भरनेसे फूलजाता है उसमेंसे पीवका स्राव होता है और पीड़ा होती है; इसको पूयालस कहते हैं ॥७॥

अलजी।

कनीनस्यान्तरलजी शोफो रुक्तोददाहवान् ८।

कनीनिकाके कोयेके अन्तमें पीड़ा तोद और दाहवाली जो सूजन होती है उसको अलजी कहते हैं ८

कृमिग्रंथि।

अपाङ्गे वा कनीने वा कण्डूषापक्ष्मपोटवान्।
पूयास्रावी कृमिग्रन्थिर्ग्रन्थिःकृमियुतोऽर्तिमान्॥

नेत्रके अपांगमें अथवा कोयेमें जो खुजली और पक्ष्मके पोटवाली ग्रंथि उत्पन्न होती है उस ग्रंथिमें कृमि हों और पीड़ा हो तथा पीवका स्राव हो तो इस ग्रंथिको कृमिग्रंथि कहते है ॥ ९ ॥

संधिगतरोगोंकी साध्यासध्यता।

उपनाहकृमिग्रन्थिपूयालसकपर्वणीः।
शस्त्रेण साधयेत्पञ्च सालजीनास्रवांस्त्यजेत् १०

इनमें उपनाह, कृमिग्रंथि, पूयालस और पर्वणी इन चारोंको शस्त्रद्वारा लेखनकर चिकित्सा करनी चाहिये. इनमें जलास्राव, कफास्राव, रक्तास्राव, पूयास्राव और अलजी ये पांच प्रायः असाध्य होते है; ये नवरोग नेत्रके संधिगतरोग मानेगये है ॥ १० ॥

शुक्लभागके रोग--शुक्तिकाके लक्षण।

पित्तं कुर्यात्सिते बिन्दूनसितश्यावपीतकान्।
मलाक्तादर्शतुल्यं वा सर्वं शुक्लं सदाहरुक्।
रोगोऽयं शुक्तिकासंज्ञः सशकृद्भेदतृड्ज्वरः ११॥

अब नेत्रके सितभागमें होनेवाले रोगोंको कथन करते हैं–

पित्त जब नेत्रके श्वेत भागमें कुपित होकर नील श्याम और पीतवर्णकी बिन्दुओंको उत्पन्न करदेता है। अथवा मलयुक्त सीसेके समान बिन्दुयेंसी उत्पन्न करदेता है; उससे नेत्रके सम्पूर्ण श्वेतभागमें दाह और पीड़ा उत्पन्न होती है। इसके कारण मनुष्यको पतले दस्त आना तथा तृषा और ज्वरका होना ये लक्षण होजाते है इस रोगको शुक्लिका कहते है ॥ ११ ॥

शुक्लार्मके लक्षण ।

कफाच्छुक्ले समं श्वेतं चिरवृद्ध्यधिमांसकम् । शुक्लार्म ॥ १२ ॥--

कफके प्रकोपसे नेत्रके शुक्लभागमें श्वेतवर्णका समतल मांस एकसा बहुत देरमें बढ़े इसको शुक्लार्म कहते हैं ॥ १२ ॥

बलास ग्रथितके लक्षण ।

--शोफस्त्वरुजः सवर्णो बहलो मृदुः । गुरुः स्निग्धोऽम्बुबिन्द्वाभो बलासग्रथितं-स्मृतम् ॥ १३ ॥

यदि नेत्रके शुक्लभागमें पीड़ारहित शुक्लवर्णका गाढ़ा और मृदु सूजन हो वह सूजन ,चिकनी और पानीके बिन्दुके समान आकारवाली हो उसको बलास ग्रथित रोग कहते हैं ॥ १३ ॥

पिष्टकके लक्षण ।

बिन्दुभिःपिष्टधवलैरुत्सन्नैःपिष्टकं वदेत् ॥ १४॥

यदि नेत्रके शुक्लभागमें मैदेके समान श्वेतवर्णकी-ऊंची बिन्दुओंसे युक्त सूजन हो उसको पिष्टकरोग कहते है ॥ १४ ॥

सिरोत्पातके लक्षण ।

रक्तराजीततं शुक्लमुष्यते यत्सवेदनम् । अशोकाश्रूपदेहं च सिरोत्पातःस शोणितात् १५

यदि नेत्रके शुक्लभागमें लालवर्णकी रेखायें उत्पन्न होजाय उनमें दाह और पीड़ा हो परन्तु सूजन अश्रु और उपदेह न हो इस रक्तजनित रोगको शिरोत्पात कहते हैं ॥ १५ ॥

सिराहर्षके लक्षण ।

उपेक्षितः सिरोत्पातो राजीस्ता एव वर्धयन् । कुर्यात्साम्रं सिराहर्षं तेनाक्ष्युद्वीक्षणाक्षमम् १६

यदि इसी सिरोत्पातरोगकी चिकित्सा न कीजाय तो वह लालवर्णकी रेखायें बढ़तीहुई रक्तयुक्त सिरा-हर्ष रोगको उत्पन्न करदेती हैं; इससे मनुष्यके नेत्र देखनेमें असमर्थ होजाते हैं ॥ १६ ॥

सिराजालके लक्षण ।

सिराजाले सिराजालं बृहद्रक्तं घनोन्नतम्॥१७॥

यदि नेत्रमें सिराओंका लालवर्णका जाल उत्पन्न होजाय और वह लालसिरायें बड़ी लालवर्णकी घन और उन्नत हों इस रोगको सिराजाल कहते हैं॥१७॥

शोणितार्मके लक्षण ।

शोणितार्म समं श्लक्ष्णं पद्माभमधिमांसकम्१८

यदि नेत्रके श्वेतभागमें लालवर्णके कमलके समान-वर्णवाला मांससम और श्लक्ष्ण उत्पन्न होजाय उसको शोणितार्म कहते हैं ॥ १८ ॥

अर्जुनके लक्षण ।

नीरुक् श्लक्ष्णोऽर्जुनं बिन्दुःशशलोहितलोहितः

यदि पीड़ारहित शसेके रक्तके समान लालवर्णकी बिन्दु उत्पन्न होजांय उसको अर्जुन कहते हैं ॥१९॥

प्रस्तार्यर्म और स्नाय्वर्मके लक्षण ।

मृद्वाशुवृद्ध्यरुङ्मांसं प्रस्तारि श्यावलोहितम् । प्रास्तार्यर्म मलैः सास्रैः-

जो नेत्रके श्वेत भागमें श्याम और रक्तवर्णका शीघ्र बढ़नेवाला मृदु और पीड़ायुक्त मांस बढ़जाय यह फैलनेवाला मांस रक्त और तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ रोग प्रस्तार्यर्म कहा जाता है ।

-स्नावार्म स्नावसन्निभम् ॥२०॥

जो नेत्रमें स्नायुओंके समान उत्पन्न होजाय उसको स्नाय्वर्म कहते हैं ॥ २०॥

अधिमांसार्मके लक्षण ।

शुक्लासृक्पिण्डवच्छ्यावं यन्मांसं बहलं पृथु । अधिमांसार्म तद् ॥ २१ ॥-

श्वेत और लालवर्ण तथा श्यामवर्णके पिंडके समान जो गाढ़ामांस गोल आकारसे श्वेत भागमें बढ़जाय उसको अधिमांसार्म कहते हैं ॥ २१ ॥

सिरासंज्ञक रोग ।

-दाहघर्षवन्त्यः सिरावृताः । कृष्णासन्नाःसिरासंज्ञाःपिटिकाःसर्षपोपमाः२२

जो नेत्रके कृष्णभागसे लगीहुई सरसोंके समान पिटिकायें दाह, घर्ष युक्त हों तथा सिराओंसे आवृत हों इसको सिरासंज्ञकरोग कहते हैं ॥ २२ ॥

श्वेतभागके रोगोंकी साध्यासाध्यता ।

शुक्तिहर्षसिरोत्पातपिष्टकग्रथितार्जुनम् ।
साधयेदौषधैः षट्कं शेषं शस्त्रेण सप्तकम् ।
नवोत्थं तदपि द्रव्यैः ॥ २३ ॥–

शुक्लिका, सिराहर्ष, सिरोत्पात, पिष्टक, ग्रथित और अर्जुन इन छः रोगोंकी औषधियों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये. शेष शुक्लभागके सात रोगोंको शस्त्रद्वारा शमन करना चाहिये । यदि ये सात रोग भी नवीन हों उनको भी औषधद्वारा ही शमन करदेना चाहिये ॥ २३ ॥

--अर्मोक्तं यच्च पञ्चधा ।
तच्छेद्यमसितप्राप्तं मांसस्रावसिरावृतम् ।
चर्मोद्दालवदुच्छ्रायि दृष्टिप्राप्तं च वर्जयेत्॥२४॥

जो शुक्लार्म, शोणितार्म, प्रस्तार्यर्म स्नाय्वर्म और अधिमांसार्म ये पांच अर्मरोग कहे हैं इनको शस्त्रद्वारा छेदन करदेना चाहिये ।

जो मांस स्राव और सिराओंसे युक्त चर्मके उद्दालके समान उठाहुआ दृष्टिके कृष्णभागमें प्राप्त होकर दृष्टिस्नायुमें प्राप्त होजाय इस प्रकारका अधिमांस या अर्म चिकित्साके योग्य नहीं होता अर्थात् असाध्य होता है ॥ २४ ॥

कृष्णभागके रोगोंके तथा त्रिविध शुक्रके लक्षण ।

पित्तं कृष्णेऽथवा दृष्टौ शुक्रं तोदाश्रुरागवत् ।
छित्त्वा त्वचं जनयति तेन स्यात्कृष्णमण्डलम्।
पक्वजम्बूनिभं किञ्चिन्निम्नं च क्षतशुक्रकम् ।
तत्कृच्छ्रसाध्यं याप्यं तु द्वितीयपटलव्यधात् ।
तत्र तोदादिबाहुल्यं सूचिविद्धाभकृष्णता ।
तृतीयपटलच्छेदादसाध्यं निचितं व्रणैः॥२५॥

अब कृष्णभागके रोगोंको कहते हैं-जब पित्त नेत्रके कृष्ण भागमें अथवा दृष्टिके अग्रभागमें शुक्रको उत्पन्न करदेता है उस शुक्रमें तोद, अश्रु स्राव और लालिमा होकर शुक्र त्वचाको छेदनकर कालेवर्णका मण्डल उत्पन्न करदेता है तब वह कृष्णमंडल पकेहुए जामुनके फलके समान वर्णवाला और बीचमेंसे निम्न होता है । इसको क्षतशुक्र कहते हैं यह कष्टसाध्य होता है । दूसरे पटलको वेधन करदेनेसे याप्य होजाता है. यदि इसमें तोद आदि बहुत होजायं और सूईसे वेधन करनेके समान पीड़ा हो तो या शुक्र तीसरे पटलको छेदन करदेता है तब यह व्रणोंसे युक्त होनेके कारण सर्वथा असाध्य होजाता है ॥ २५ ॥

शुद्ध शुक्रके लक्षण ।

शंखशुक्लं कफात्साध्यं नातिरुक् शुद्धशुक्रकम् ॥

जो नेत्रमें शंखके समान श्वेत अतिपीडारहित शुद्ध शुक्र (फोला) उत्पन्न होता है यह कफजनित शुक्र साध्य होता है ॥ २६ ॥

असृजाजकाके लक्षण ।

आताम्रपिच्छलास्रसृदाताम्रपिटिकातिरुक् ।
अजाविट्सदृशोच्छ्रायकार्ष्ण्या वर्ज्या–
--ऽसृजाजका ॥ २७ ॥

जो नेत्रमें ताम्रवर्णका गाढा रक्त बहानेवाली ताम्रवर्णकी पिटिका बकरीकी मेंगनके समान उठीहुई अतिपीडायुक्त और कृष्णवर्णकी होती है उसको असृजाजका कहते हैं यह असाध्य होता है ॥ २७ ॥

सिराशुक्रके लक्षण ।

सिराशुक्रं मलैः सास्रैस्तज्जुष्टं कृष्णमण्डलम् ।
सतोददाहताम्राभिः सिराभिरवमन्यते ।
अनिमित्तोष्णशीताच्छघनास्रस्रुक् च तत्त्यजेत्

नेत्रका कृष्णमंडल वातादिदोषोंसे रक्तसे और तोद दाहयुक्त ताम्रवर्णकी सिराओंसे व्याप्त होजाय इसमें विना ही कारण उष्ण शीत स्वच्छ और गाढा रक्तस्राव होने लगे इस रोगको सिराशुक्र कहते है यह असाध्य होता है ॥ २८ ॥

पाकात्ययशुक्रके लक्षण ।

दोषैः सास्रैः सकृत्कृष्णं नीयते शुक्ररूपताम् ।
धवलाभ्रोपलिप्ताभं निष्पावार्धदलाकृति ।
अतितीव्ररुजारागदाहश्वयथुपीडितम् ।
पाकात्ययेन तच्छुक्रं वर्जयेत्तीव्रवेदनम् ॥२९॥

रक्तयुक्त तीनों दोष जब एककालमें ही कृष्णभागमें प्राप्त होजाते हैं तब नेत्रका कृष्णमंडल श्वेतवर्णका हो जाता है तथा श्वेतवर्णके बादलसे लिपाहुआसा

बनजाता है वह श्वेतवर्ण मटरके आधे दानेके समान आकारवाला होता है उसमें अतितीव्र पीड़ा, लालिमा दाह और सूजन हो जाती है तथा यह पकजाता है यह तीव्र वेदनावाला शुक्र असाध्य होनेसे त्याज्य है २९

लिंगनाशके लक्षण ।

यस्य वा लिङ्गनाशोऽन्तः श्यावंयद्वासलोहितम्। अत्युत्सेधावगाढं वा सास्रनाडीव्रणावृतम् । पुराणं विषमं मध्ये विच्छिन्नं यच्च शुक्रकम् ३०

जिस मनुष्यके नेत्रका दर्शन स्नायुका लिंगनाश होजाय और अन्तर्भागमेंसे श्याम अथवा लोहितवर्ण होजाय अथवा वह स्थान ऊपरको उठकर अत्यन्त कठिनसा होजाय अथवा उसमेंसे नाड़ीव्रण होकर स्राव होनेलगे अथवा बहुत पुराना और विषमरूपसे स्थित और मध्यमेंसे विच्छिन्न होजाय इस प्रकारका शुक्र असाध्य होनेसे त्याज्य होता है ॥ ३० ॥

पञ्चेत्युक्ता गदाः कृष्णे साध्यासाध्यविभागतः

इस प्रकार नेत्रके कृष्णभागमें होनेवाले साध्यासाध्य विभागसे पांच प्रकारके रोग कहे है ॥ ३१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषा-व्याख्यायां संधिश्रिताश्रितरोगविज्ञानं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातःसन्धिसितासितरोगप्रतिषेधंव्याख्यामः

अब हम संधिके आश्रित सितभाग और कृष्णभागके रोगोंकी चिकित्सा कथन करते हैं ।

उपनाहरोगकी चिकित्सा ।

उपनाहं भिषक् स्विन्नं भित्त्वा व्रीहिमुखेन च । लेखयेन्मण्डलाग्रेण ततश्च प्रतिसारयेत् ॥ १ ॥ पिप्पलीक्षौद्रसिन्धूत्थैर्बध्नीयात्पूर्ववत्ततः । पटोलपत्रामलककाथेनाश्च्योतयेच्च तम् ॥ २ ॥

नेत्रके उपनाहरोगको प्रथम वैद्य स्वेदन करे फिर व्रीहिमुखशस्त्रसे भेदन करे, तदनन्तर मंडलाग्रसे लेखन करे लेखनके अनन्तर पीपल, मधु और सैंधव नमकसे प्रतिसारण करे । तदनन्तर घृत, मधुका लेपकर और यव सत्तुओंकी पिंडी बांधकर नवम अध्यायमें कहीहुई विधिसे पट्टी बांधे तथा पटोलपत्र और आमलेके काथसे आश्च्योतन करे ॥ १ ॥ २ ॥

पर्वणीरोगकी चिकित्सा ।

पर्वणी बडिशेनात्ताबाह्यसंधित्रिभागतः । वृद्धिपत्रेण वर्ध्याऽर्धे स्यादश्रुगतिरन्यथा । चिकित्सा चार्मवत्क्षौद्रसैन्धवप्रतिसारिता ॥३॥

पर्वणीरोगमें प्रथम पर्वणीको बडिशयंत्रसे पकड़ कर बाह्य संधिविभागसे बढ़ाकर वृद्धिपत्रशस्त्र द्वारा इसको आधा छेदन करदेना चाहिये क्योंकि सम्पूर्ण छेदन करनेसे अश्रु बहने लगते है और अश्रुनाडीमें विकार होनेका भय रहता है । इस प्रकार पर्वणी पिटिकाको आधा छेदन करनेके अनन्तर शहद और सेंधानमकसे प्रतिसारण करे बाकी सब चिकित्सा अर्मरोगके समान करनी चाहिये । जैसे छेदनके अनन्तर मधु, त्रिकटु और सैंधवसे प्रतिसारण कर, उष्ण घृतसे सेचनकर, घृत और मधुका लेपन कर, पट्टी बांधे फिर पट्टी तीसरे दिन बदल देनी चाहिये ॥ ३ ॥

पूयालसकी चिकित्सा ।

पूयालसे सिरां विध्येत्ततस्तमुपनाहयेत् । कुर्वीत चाक्षिपाकोक्तं सर्वं कर्म यथाविधि॥४॥

पूयालसरोगमें सिराका वेधन करे तदनन्तर पोटली आदिसे उपनाहकर्म करे फिर यथाविधि सम्पूर्ण क्रिया अक्षिपाकरोगमें कहीहुई करनी चाहिये ॥ ४ ॥

सैन्धवार्द्रककासीसलोहताम्रैः सुचूर्णितैः । चूर्णाञ्जनं प्रयुञ्जीत सक्षौद्रैर्वा रसक्रियाम् ॥५॥

सेंधानमक, अदरख, कसीस, लोहभस्म और ताम्र भस्म इनका चूर्णांजन नेत्रमें डालना पूयालसके लिये हितकारी होता है अथवा रसौतको मधुमें मिलाकर नेत्रमें डालना हितकारी होता है ॥ ५ ॥

कृमिग्रंथिकी चिकित्सा ।

कृमिग्रन्थिं करीषेण स्विन्नं भित्त्वा विलिख्य च। त्रिफलाक्षौद्रकासीससैन्धवैः प्रतिसारयेत् ॥६॥

कृमिग्रंथिरोगको प्रथम गोबर आदिसे स्वेदनकरके भेदन करदेना चाहिये फिर लेखन करके त्रिफला, मधु, कासीस और सेंधानमकसे प्रतिसारण करना चाहिये ॥ ६ ॥

शुक्तिकाकी चिकित्सा ।

पित्ताभिष्यन्दवच्छुक्तिम् ॥ ७ ॥-

शुक्तिका रोगकी सम्पूर्ण चिकित्सा पित्ताभिष्यन्दके समान करनी चाहिये ॥ ७ ॥

बलासग्रथित और पिष्टककी चिकित्सा ।

-बलासाह्वयपिष्टकौ ।
कफाभिष्यन्दवन्मुक्त्वा सिराव्यधमुपाचरेत् ।
बीजपूररसाक्तं च व्योषकट्फलमञ्जनम् ॥८॥

बलास ग्रथित और पिष्टकरोगकी चिकित्सा कफके अभिष्यन्द रोगके समान करनी चाहिये । किन्तु सिरावेधन नहीं करना चाहिये; तदनन्तर बिजौरेके रसमें भिगोयेहुए सोंठ, मिर्च, पीपल और कायफलका अंजन करना हितकारी होता है ॥ ८ ॥

नेत्रकी सूजन और खुजलीकी चिकित्सा ।

जातीमुकुलसिंधूत्थदेवदारुमहौषधैः ।
पिष्टैः प्रसन्नया वर्तिः शोफकण्डूघ्नमञ्जनम् ॥९॥

चमेलीकी कलियें, सेंधानमक, देवदारु, सोंठ इनको प्रसन्नामें बत्ती बनाकर इस बत्तीको घिसकर अंजन करनेसे नेत्रकी सूजन और खुजली दूर होती है ॥९॥

सिरोत्पातादि रोगोंकी चिकित्सा ।

रक्तस्यन्दवदुत्पातहर्षजालार्जुने क्रिया ।

सिरोत्पातरोग, सिराहर्ष, सिराजाल और अर्जुन इन चारों रोगोंमें सामान्यरूपसे रक्ताभिष्यन्दरोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये ।

सिरोत्पाते विशेषेण घृतमाक्षिकमञ्जनम् १०॥

विशेषरूपसे सिरोत्पातरोगमें-घृत और शहदका अंजन करना चाहिये ॥ १० ॥

सिराहर्षे तु मधुना श्लक्ष्णघृष्टं रसाञ्जनम् ।

सिराहर्षरोगमें--रसौतको बहुत बारीक मधुमें पीसकर नेत्रोंमें डालना चाहिये ।

अर्जुने शर्करामस्तुक्षौद्रैराश्च्योतनं हितम् ॥ ११ ॥

अर्जुनरोगमें-मिश्री, दहीका मस्तु और मधु मिलाकर आश्च्योतन कर्म करना चाहिये ॥ ११ ॥

अर्जुनकी चिकित्सा ।

स्फटिकः कुङ्कुमं शंखो मधुको मधुनाञ्जनम् ।
मधुना चाञ्जनं शंखः फेनो वा सितया सह १२

अर्जुनमें स्फटिक, केशर, शंख और मुलहठीका बारीकचूर्ण मधुमें मिलाकर अंजन करना चाहिये. अथवा मधुमें शंखको घिसकर या सौवीरांजनको घिसकर आंखमें डालना हितकारी होता है । अथवा समुद्रझागको मिश्री मिलाकर अंजन करना हितकारी होता है ॥ १२ ॥

अर्मरोगकी चिकित्सा ।

अर्मोक्तं पञ्चधा तत्र तनु धूमाविलं च यत् ।
रक्तं दधिनिभं यच्च शुक्रवत्तस्य भेषजम् ॥ १३॥

पांच प्रकारके जो अर्मरोग कहे है उनमें जो अर्म पतला हो और धूमके समान आविल हो अथवा रक्तवर्णका या दधिके समानवर्णवाला पतला अर्म हो इसमें सब चिकित्सा शुक्र (फूला) के समान करनी चाहिये ॥ १३ ॥

अर्मछेदन प्रकार ।

उत्तानस्येतरत् स्विन्नं ससिन्धूत्थेन चाञ्जितम् ।
रसेन बीजपूरस्य निमील्याक्षि विमर्दयेत् ॥ १४॥
इत्थं संरोषिताक्षस्य प्रचलेऽर्माधिमांसके ।
धृतस्य निश्चलं मूर्ध्नि वर्त्मनोश्च विशेषतः ॥१५
अपाङ्गमीक्षमाणस्य वृद्धेऽर्मणि कनीनकात् ।
वली स्याद्यत्र तत्रार्म बडिशेनावलम्बितम् १६॥
नात्यायतं मुचुण्ड्या वा सूच्या सूत्रेण वा ततः।
समन्तान्मण्डलाग्रेण मोचयेदथ मौक्षिकम् १७॥
कनीनकमुपानीय चतुर्भागावशेषितम् ।
छिन्द्यात्कनीनकेरक्षेद्वाहिनीश्चाश्रुवाहिनीः १८॥
कनीनकव्यधादश्रुनाडी चाक्ष्णि प्रवर्तते ।
वृद्धेऽर्मणि तथा पाङ्गात्पश्यतोऽस्य कनीनकात्।

जिस मनुष्यके अर्मको शस्त्रद्वारा छेदन करना हो उस पुरुषको प्रथम शोधन करानेके अनन्तर उत्तान लेटावे फिर इसके नेत्रको पोटलीसे स्वेदनकर सेंधानमकका अंजन नेत्रमें डाले फिर इस नेत्रमें बिजौरेका रस डालकर नेत्रको मले ऐसा करनेसे अर्मरोग या अधिमांसका मांस ऊपरको उठ आता है फिर इसके शिरको सीधा निश्चल रखकर और यंत्रद्वारा इसकी पलकोंको निश्चल बनाकर अपांगकी ओर देखतेहुए

इसके बढ़ेहुए अर्मको कनीनिकाकी ओरसे बडिश-यंत्रके साथ पकड़े जिस ओर अर्म विशेषरूपसे अवलम्बित हो और बहुत चौड़ा न हो उस ओरसे मुचुंडीके द्वारा अथवा सूईसे या सूत्रसे उठाकर मंडलाग्र शस्त्रसे उठालेवे फिर कोयेकी तरफ लाकर इसका चौथाभाग छोड़देवे और तीनभाग काटकर निकाल देवे। कनीनिकाकी रक्षाके लिये चौथाभाग शेष रहने देना चाहिये क्योंकि वहांपर छेदन होजानेसे यदि अश्रुवाहिनी नाड़ी छिद्जाय तो वह नाड़ी नेत्रमें प्रवृत्त होजाती है। यदि अर्म अपांगकी ओर बढ़ा हुआ हो तो कनीनिकाको देखतेहुए पुरुषके अर्मको अपांग देशसे छेदन करे॥ १४-१९॥

सम्यक् छिन्नं मधु व्योषसैन्धवप्रतिसारितम्।
उष्णेन सर्पिषा सिक्तमभ्यक्तं मधुसर्पिषा॥२०॥
बध्नीयात्सेचयेन्मुक्त्वा तृतीयादिदिनेषु च।
करञ्जबीजसिद्धेन क्षीरेण क्वथितैस्तथा॥ २१॥
सक्षौद्रैर्द्विनिशारोध्रपटोलीयष्टिकिंशुकैः।
कुरण्टमुकुलोपेतैर्मुञ्चेदेवाह्नि सप्तमे॥ २२॥

जब अर्म यथार्थ छेदन होजाय तब मधु, सोंठ, मिर्च, पीपल और सेंधानमक मिलाकर इससे अर्मस्थानको प्रतिसारण करे। तदनन्तर व्यथाको दूर करनेकेलिये उष्ण घृतसे सेचनकर मधु और घृतका लेपकरे फिर विधिपूर्वक पट्टी बांध देवे और तीसरे दिन पट्टी बदल देवे तथा करंजके बीजोंसे सिद्ध कियेहुए दूधसे सेचनकरे तथा हलदी, दारुहलदी, पठानीलोध, पटोलपत्र, मुलहठी, केसू और कालेबांसेकी कलियें इनका काथ कर उसमें मधु मिलाकर सातवें दिन नेत्रमें सेचन करना चाहिये॥ २०-२२॥

सम्यक् छिन्ने भवेत्स्वास्थ्यं हीनातिच्छे--
--दजान्गदान्।
सेकाञ्जनप्रभृतिभिर्जयेल्लेखनबृंहणैः॥ २३॥

यदि अर्म यथार्थ रूपसे छेदन होगया हो तो नेत्र निरोग होजाता है और किसी प्रकारका कष्ट नहीं रहता. यदि हीनछेदन या अतिछेदन होजाय तो इन हीनातिछेदनसे उत्पन्नहुए रोगोंको लेखन और बृंहणकरनेवाले सेक और अंजनादिका यथोचित प्रयोग करके इन रोगोंको जीतना चाहिये॥ २३॥

सब प्रकारके नेत्ररोगोंपर योग।

सितामनःशिलालेयलवणोत्तमनागरम्।
अर्धकर्षोन्मितं तार्क्ष्यं पलार्धं च मधुप्लुतम्।
अञ्जनं श्लेष्मतिमिरपिल्लशुक्लार्मशोषजित्॥२४

मिश्री, मनशिल, सेंधालवण और सोंठ ये प्रत्येक आधा आधा कर्ष लेवे रसौत आधा पल लेवे इनको बारीक पीसकर मधुमें मिला अंजन करनेसे कफका विकार तिमिर पिल्लरोग शुक्लार्म और शोष ये सब नेत्ररोग दूर होते है॥ २४॥

लेखन अञ्जन।

त्रिफलैकतमद्रव्यत्वचं पानीयकल्किताम्॥२५॥
शरावपिहितां दग्ध्वा कपाले चूर्णयेत्ततः।
पृथक्शेषौषधरसैः पृथगेव च भाविता॥ २६॥
सा मषी शोषिता पेष्या भूयो द्विलवणान्विता।
त्रीण्येतान्यञ्जनान्याह लेखनानि परं निमिः॥२७

हरड़, बहेड़ा और आंवला इनमेंसे कोई एक द्रव्य लेकर उसके छिल्केको बारीक पीसकर पानीके योगसे कल्क बना शरावसंपुटमें डालकर दग्धकरे फिर निकालकर इसको मिट्टीके कपालमें बारीक चूर्ण करे फिर त्रिफलेमेंसे शेषरहे दो द्रव्योंके रसोंकी पृथक् पृथक् भावना देवे इसको सुखाकर इसमें सेंधानमक और संचरनमक मिलाकर बारीक अंजन बनालेवे ये तीन प्रकारके अंजन परम लेखन है ऐसा निमिने कहा है॥ २५-२७॥

सिराजालकी चिकित्सा।

सिराजाले सिरा यास्तु कठिना लेखनौषधैः।
न सिद्ध्यन्त्यर्मवत्तासां पिटिकानां च साधनम् २८

सिराजालमें जो कठिन सिरा लेखन औषधियोंके डालनेसे शमन न हो तो उन सिराजालकी पिटिकाओंको अर्मरोगकी चिकित्सासे शमन करना चाहिये॥२८॥

शुक्ररोगकी चिकित्सा।

दोषानुरोधाच्छुक्रेषु स्निग्धरूक्षं वराघृतम् ।
तिक्तमूर्ध्वमसृक्स्रावो रेकसेकादि चेष्यते २९॥

शुक्ररोगोंमें दोषानुसार कभी स्निध त्रिलफाघृत यदि कफकी अधिकता हो तो केवल रूक्ष त्रिफला सेवन कराना चाहिये अथवा तिक्तघृत सेवन कराना चाहिये तथा मस्तककी सिरा बेधनकर रक्तका निकालना और रेचन सेचनादि करना हितकारी होताहै ॥ २९ ॥

क्षतशुक्रकी चिकित्सा।

त्रिस्त्रिवृद्वारिणा पक्वं क्षतशुक्रे घृतं पिबेत् ।
सिद्धेनोत्पलकाकोलीद्राक्षायष्टिविदारिभिः।
सिरया तु हरेद्रक्तं जलौकोभिश्च लोचनात् ३०॥
ससितेनाजपयसा सेचनं सलिले न वा ।
रागाश्रुवेदनाशान्तौ परं लेखनमञ्जनम् ॥ ३१॥

निशोथके कल्कसे तीनवार शुद्ध कियाहुआ घृत नेत्रके क्षतशुक्ररोगमें पिलाना चाहिये तथा सिरा छेदन कर रक्त निकालना चाहिये अथवा जोंक लगाकर नेत्रका रक्त निकालना चाहिये तदनन्तर कमल, काकोली, द्राक्षा, मुलहठी, विदारीकन्द और मिश्री इनके कल्क और बकरीके दूधसे सिद्ध कियाहुआ घृत नेत्रमें सेचन करना चाहिये अथवा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्धकियाहुआ जल नेत्रोंमें सेचन करना चाहिये। जब लालिमा, आंसू और पीड़ा आदि सब शान्त होजांय तब लेखन अंजन नेत्रमें डालना चाहिये॥ ३०॥ ३१॥

वर्तयो जातिमुकुललाक्षागैरिकचन्दनैः ।
प्रसादयन्ति पित्तास्रं घ्नन्ति च क्षतशुक्रकम् ३२

चमेलीकी कलियें, लाख, गेरू और चन्दन इनको बारीक रगड़कर बत्तियें बनाले यह बत्ती स्त्रीके दूधमें घिसकर नेत्रमें लगानेसे पित्तरक्त और क्षत-शुक्रनामक नेत्रके रोग दूर होते है ॥ ३२ ॥

दन्तैर्दन्तिवराहोष्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः ॥ ३३ ॥
सशंखमौक्तिकाम्भोधिफनैर्मरिचपादिकैः ।
क्षतशुक्रमपि व्यापि दन्तवर्तिर्निवर्तयेत् ॥ ३४॥

हाथीका दांत, सूअरका दांत, ऊंटका दांत, गौका दांत, घोड़ेका दांत, बकरीका दांत, गधेका दांत, शंख, मोती, समुद्रझाग ये प्रत्येक एक एक कर्ष कालीमिर्च एक टंक, इन सबको बारीक करके बकरीके दूधमें बत्ती बनावे यह बत्ती पानीमें घिसकर नेत्रमें डालनेसे नेत्रका क्षतशुक्र दूर होता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

तमालपत्रं गोदन्तशंखफेनोऽस्थि गार्दभम्।
ताम्रं च वर्तिर्मूत्रेण सर्वशुक्रकनाशिनी ॥ ३५॥

तमालपत्र, गोदन्त, शंखनाभि, समुद्रझाग, गधेकी हड्डी और ताम्रचूर्ण इनको गोमूत्रमें बारीक पीसकर बत्ती बनावे यह बत्ती घिसकर नेत्रमें डालनेसे सब प्रकारके शुकों (फूकों) को नाश करती है॥ ३५॥

रत्नानि दन्ता शृङ्गाणि धातवस्त्र्यूषणं त्रुटिः।
करञ्जबीजं लशुनो व्रणसादि च भेषजम् ।
सव्रणाव्रणगम्भीरत्वक्स्थशुक्रघ्नमञ्जनम्॥ ३६॥

मोती आदि सब रत्न हाथी आदिके दांत बकरी आदिकें सींग स्वर्णादि सब धातु, सोंठ, मिर्च, पीपल छोटी इलायची, करंजवेके बीज, लहसुन और व्रणनष्टकरनेवाली औषधियें इन सबका बारीक अंजन बनाकर नेत्रमें डालनेसे व्रणयुक्त अथवा व्रणरहित या गंभीर नेत्रकी त्वचामें स्थितहुआ शुक्र नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥

निम्नशुक्रकी चिकित्सा।

निम्नमुन्नमयेत्स्नेहपाननस्यरसाञ्जनैः ।
सरुजं नीरुजं तृप्तिपुटपाकेन शुक्रकम् ॥ ३७॥

निम्नशुक्रवाले रोगीको घृत पिलाकर नस्य और अंजनोंके प्रयोगसे उन्नतकरे अर्थात् निम्नशुक्रवाले रोगीको घी पिलाकर उसको नस्य और अंजनोंको इस प्रकार प्रयोग करे जिससे वह शुक्र नेत्रमें ऊपरको आजाय वह पीड़ायुक्त हो अथवा पीडारहित हो उसको तर्पण और पुटपाकसे ऊपर लाकर अंजनादिके योगसे दूर कर देवे ॥ ३७ ॥

शुद्धशुक्रे निशायष्टीशारिवाशाबराम्भसा ।
सेचनं रोध्रपोटल्या कोष्णाम्भोमग्नयाऽथवा ३८

यदि शुद्ध शुक्र हो तो हलदी, मुलहठी, शारिवा, और सावरलोधके क्राथसे अथवा पठानीलोधकी पोटलीको कोष्णजलमें भिगोकर शुक्रवाले नेत्रमें सेचन करना चाहिये ॥ ३८ ॥

महानीला गुटिका ।

बृहतीमूलयष्ट्याह्वताम्रसैन्धवनागरैः ॥ ३९ ॥
धात्रीफलाम्बुना पिष्टैर्लेपितं ताम्रभाजनम्।
यवाज्यामलकीपत्रैर्बहुशो धूपयेत्ततः ॥ ४० ॥
तत्र कुर्वीत गुटिकास्ता जलक्षौद्रपेषिताः।
महानीला इति ख्याताः शुद्धशुक्रहराः परम् ४१

बडी कटेलीकी जड, मुलहठी, ताम्रभस्म, सेन्धानमक और सोंठ इनका चूर्ण आमलेके रसमें पीसकर ताम्रके पात्रमें लेप कर देवे. फिर इसको यव, घृत और आंवलेके पत्रोंकी धूनिसे बारबार धूपन करे फिर इस लेपको उतारकर इसकी गोलियें बनावे. यह गोली जल और मधुमें पीसकर नेत्रमें डालनेसे नेत्रके शुद्ध शुक्रको हरनेमें सर्व श्रेष्ठ मानी जाती है। इसको महानीला गुटिका कहते हैं॥ ३९-४१ ॥

स्थिरे शुक्रे घने चाऽस्य बहुशोऽपहरेदसृक् ।
शिरःकायविरेकांश्च पुटपाकांश्च भूरिशः ॥४२॥
कुर्यान्मरीचवैदेहीशिरीषफलसैन्धवैः ।
घर्षणं त्रिफलाक्काथपीतेन लवणेन वा ॥४३॥

यदि नेत्रमें शुक्र (फोला) स्थिर हो और घन हो तो प्रथम रोगीकी सिरामोक्षण कर रक्त निकाले फिर शिरोविरेचन तथा कायविरेचन करावे. तदनन्तर पुटपाकोंसे बार बार नेत्रको स्वेदन करे।

तदनन्तर काली मिर्चे, पीपल, सिरोषके बीज और सेंधालवण इनका बारीक चूर्ण कर स्थिर शुक्रपर लगावे अथवा त्रिफलेके क्राथमें भावना दियेहुए सेंधानमकके चूर्णको स्थिर शुक्रवाले नेत्रमें डाले॥ ४३॥

कुर्यादञ्जनयोगौ वा श्लोकार्धगदिताविमौ ।
शंखकोलास्थिकतकद्राक्षामधुकमाक्षिकैः।
सुरादन्तार्णवमलैः शिरीषकुसुमान्वितैः ॥४४॥

अथवा शंख,बेरकी गुठली, निर्मलीका फल, द्राक्षा, मुलहठी और मधु इनका अंजन करे। अथवा सुरा, हाथीदांत आदि दन्त, समुद्रझाग और सिरसके फूल इनका अंजन करे। ये आधेआधे श्लोकमें कहेहुवे दोनों प्रकारके अंजन स्थिरशुक्र नामक नेत्ररोगको शमन करते हैं ॥ ४४ ॥

धात्रीफाणिजकरसे क्षारो लाङ्गलिकोद्भवः ।
उषितः शोषितश्चूर्णः शुक्रहर्षणमञ्जनम् ॥४५॥

आंवले और मरुवेके रसमें लांगलीकन्दका बनाया हुआ क्षार भिगोकर सुखादेवे फिर इसका चूर्णकर नेत्रमें डालनेसे यह अंजन नेत्रमें जमेहुए शुक्रको उखाड़ देता है ॥ ४५ ॥

मुद्गा वा निस्तुषाः पिष्टाः शंखक्षौद्रसमायुताः।
सारो मधूकान्मधुमान् मज्जा वाक्षात्समाक्षिका

अथवा छिलकारहित मूंगको पीसकर शंख और शहदमें मिलाकर नेत्रमें अंजन करे या महुवेके सारको मधुमें मिलाकर नेत्रमें अंजन करे अथवा बहेडेकी मज्जाको मधुमें मिलाकर अंजन करे ॥ ४६ ॥

गोखराश्वोष्ट्रदशनाः शंखः फेनः समुद्रजः ।
वर्तिरर्जुनतोयेन हृष्टशुक्रकनाशिनी ॥ ४७ ॥

गोदन्त, गधेका दांत, घोड़ेका दांत, ऊंटका दांत, शंख और समुद्रझाग इन सबका चूर्ण कर अर्जुनवृक्षके जलसे बत्ती बनावे. यह बत्ती घिसकर नेत्रमें लगानेसे दृष्टिके ऊपरके शुक्र (फोल) को नष्ट करती है ॥४७॥

शल्ययुक्त शुक्रकी चिकित्सा ।

उत्सन्नं वा सशल्यं वा शुक्रं बालादिभिर्लिखेत्४८

यदि शुक्र नेत्रमें ऊपरको उठा हुआ हो या शल्ययुक्त हो उसको बाल अथवा शाक पत्रादिसे लेखन करना चाहिये ॥ ४८ ॥

सिराशुक्रकी चिकित्सा ।

सिराशुक्रे त्वदृष्टिघ्ने चिकित्सा व्रणशुक्रवत् ४९

यदि सिराशुक्र नेत्रमें हो और उससे दृष्टिमें कोई बाधा न हो तो उसकी व्रणशुक्रके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४९ ॥

पुण्ड्र्यष्ट्याह्वकाकोलीसिंहीलोहनिशाञ्जनम् ।
कल्कितं छागदुग्धेन सघृतैर्धूपितं यवैः ।
धात्रीपत्रैश्च पर्यायाद्वर्तिर्नेत्राञ्जनं परम् ॥५०॥

पण्डियारेकी छाल, मुलहठी, काकोली, कटेली, लोहभस्म हलदी और रसौत इनको बकरीके दूधमें पीसकर ताम्रपात्रमें लेप करे, इस लेपको घी यव और आमलेके पत्रोंकी धूनी देकर इसकी बत्ती बनावे। यह बत्ती घिसकर नेत्रमें अंजन करना नेत्रके सिराशुक्रादि रोगोंको दूर करती है ॥ ९० ॥

असृजाजकाकी चिकित्सा।

अशान्तावर्मवच्छस्त्रमजकाख्ये च योजयेत् ९१

नेत्रके असृजाजकरोगमें यदि अंजनादि प्रयोगको करनेसे अजका (टेंटुवा) नष्ट न हो तो उसमें भी अर्मरोगके समान शस्त्रका प्रयोग करके अजकाको निकाल देना चाहिये ॥ ९१ ॥

अजकायामसाध्यायां शुक्रेऽन्यत्र च तद्विधैः।
वेदनोपशमं स्नेहपानासृक्स्रावणादिभिः।
कुर्याद्बीभत्सतां जेतुं शुक्रस्योत्सेधसाधनम्९२

यदि अजकारोग असाध्य हो या शुक्र असाध्य हो या और ऐसेही नेत्रके असाध्य रोग हों तो उनमें स्नेह पान कराकर और रक्तस्राव कराकर पीड़ाको शमन करदेना चाहिये। तदनन्तर नेत्रकी विवर्णता या विकृतिको शमन करनेके लिये शुक्रको उत्सेध करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९२ ॥

नालिकेरास्थिभल्लाततालवंशकरीरजम्।
भस्माद्भिःस्रावयेत्ताभिर्भावयेत्करभास्थिजम्९३
चूर्णं शुक्रेष्वसाध्येषु तद्वैवर्ण्यघ्नमञ्जनम्।
साध्येषु साधनायालमिदमेव च शीलितम् ९४

नारियलकी अस्थि, भिलावे, ताड़, बांस और करीर इन सबकी भस्मकर जलमें घोलकर इनका क्षार चुवावे. इस क्षारमें ऊंटकी अस्थिके चूर्णको भावना देवे इसका बारीक चूर्ण बना नेत्रमें अंजन करनेसे असाध्य शुक्रसे उत्पन्न हुई नेत्रकी विवर्णता दूर हो जाती है। तथा साध्यशुक्रमें भी इसी अंजनका अभ्यास करना उस नेत्रके साध्यशुक्रको शमन करनेके लिये परमोत्तम औषधि है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

अजकां पार्श्वतो विध्वा सूच्या विस्राव्य चोदकम्
समं प्रपीड्याङ्गुष्ठेन वसार्द्रेणानुपूरयेत् ॥९५॥
व्रणं गोमांसचूर्णेन बद्धं बद्धं विमुच्य च।
सप्तरात्राद् व्रणे रूढे कृष्णभागे समे स्थिरे ९६॥
स्नेहाञ्जनं च कर्तव्यं नस्यं च क्षीरसर्पिषा।
तथापि पुनराध्माने भेदच्छेदादिकां क्रियाम्।
युक्त्या कुर्याद्यथा नातिच्छेदेन स्यान्निमज्जनम्

अजिकाको एक पार्श्व भागसे सुईद्वारा वेधन करके उसका जल निकालदेना चाहिये. फिर उसको अंगूठेसे दबाकर समस्थान बनादेवे फिर वसासे व्रणको चिकना करके उसमें बकरीआदिके मांसका चूर्ण भरकर बांधदेवे। ऐसे नित्य चर्बी लगाकर नई पट्टी बांधता रहे। सातवें दिन पट्टी खोलकर जब व्रण भर आया हो और नेत्रका कृष्णभाग सम और स्थिर हो तो नेत्रमें स्नेहांजनका प्रयोग करना चाहिये. तथा दूध और घृतकी नस्य देना चाहिये. यदि फिरभी वह भरकर फूलआवे तो विधिपूर्वक युक्तिसे फिर उसका भेदन और छेदनादि क्रिया करे. किन्तु अति छेदन न करे जिससे अतिछेदन होकर नेत्र बैठ न जावे ॥९५–९७॥

नित्यं च शुक्रेषु शृतं यथास्वं
पाने च मर्शे च घृतं विदध्यात्।
न हीयते लब्धबला तथान्त-
स्तीक्ष्णाञ्जनैर्दृक् सततं प्रयुक्तैः ॥९८॥

नेत्रके शुक्ररोगोंमें यथादोष औषधियोंसे सिद्ध किये हुये घृत पिलाते रहना चाहिये और नेत्रमें सेचन करना चाहिये तथा नस्यमेंभी घृतका प्रयोग करना चाहिये इस घृतके प्रयोगसे बल प्राप्त की हुई दृष्टि तीक्ष्णाजनादिकोंके निरन्तर प्रयोगसे क्षीण नहीं होती इस कारण औषधि सिद्ध घृतोंका शुक्रादि नेत्ररोगोंमें प्रयोग करतेरहना चाहिये ॥ ९८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीतेष्टांगहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृत शिवदीपिकाभाषायां संधिसितासितरोगप्रतिषेधो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।
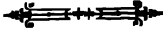
अथाऽतो दृष्टिरोगविज्ञानीयमध्यायं-
-व्याख्यास्यामः ।

अब हम दृष्टिके रोगोंके विज्ञानवाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥

प्रथमपटलगत दोष ।

सिरानुसारिणि मले प्रथमं पटलं श्रिते ।
अव्यक्तमीक्षते रूपं व्यक्तमप्यानिमित्ततः ॥ १ ॥

जब वातादिदोष नेत्रकी सिराओंमें प्राप्त होकर नेत्रके प्रथम पटलके आश्रित होजाते हैं तब मनुष्यको अव्यक्त अर्थात् धुंधलासा दिखाई देने लगता है और जब दोष नेत्रपटलमेंसे हटजाय तो अकारण ही स्पष्ट दिखाई देने लगता है ॥ १ ॥

द्वितीयपटलगत दोष ।

प्राप्ते द्वितीयं पटलमभूतमपि पश्यति ।
भूतं तु यत्नादासन्नं दूरे सूक्ष्मं च नेक्षते ॥ २ ॥
दूरान्तिकस्थं रूपं च विपर्यासेन मन्यते ।
दोषे मण्डलसंस्थाने मण्डलानीव पश्यति॥३॥
द्विधैकं दृष्टिमध्यस्थे बहुधा बहुधा स्थिते ।
दृष्टेरभ्यन्तरगते ह्रस्ववृद्धविपर्ययम् ॥ ४ ॥
नान्तिकस्थमधःसंस्थे दूरगं नोपरि स्थिते ।
पार्श्वे पश्येन्न पार्श्वस्थे तिमिराख्योऽयमामयः॥५

जब दोष दूसरे पटलमें पहुंच जाता है तो जो वस्तु नहीं है वह भी उसको कभी कभी दिखाई देने लगती है और जो वस्तु है वह अत्यन्त समीपसे यत्न पूर्वक दिखाई देती है और दूरसे सूक्ष्म वस्तु दिखाई नहीं देती अथवा दूरकी वस्तु समीप और समीपकी दूर ऐसे विपरीतरूपसे दिखाई देने लगते हैं ।

यदि दोष मंडलाकारमें स्थित होजाय तो उसको मंडलके समान आकार दिखाई देने लगते है ।

यदि दोष दूसरे पटलमें दृष्टिके मध्यभागमें स्थित होजाय और बीचमेंसे दो भागमें हो तो एक वस्तुकी दो वस्तुवें प्रतीत होने लगती हैं ।

यदि दोष दृष्टिके मध्यमें बहुत प्रकारसे स्थित हो तो एकही वस्तु बहुत प्रकारकी दिखाई देने लगती है ।

यदि दोष दृष्टिके अभ्यन्तर स्थित हो तो छोटी वस्तु बड़ी और बड़ी वस्तु छोटी प्रतीत होने लगती है।

यदि दोष दृष्टिके अधोभागमें स्थित हो तो समीपकी वस्तु दिखाई नहीं देती ।

यदि दोष ऊपरके भागमें स्थित हो तो दूरकी वस्तु नहीं दिखाई देती ।

यदि दोष दृष्टिके पार्श्वभागमें हो तो पार्श्वभागकी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती. ये सब प्रकारके दृष्टिदोष तिमिरनामसे कहे जाते हैं ॥ २–५ ॥

तृतीयपटलगत दोष ।

प्राप्नोति काचतां दोषे तृतीयपटलाश्रिते ।
तेनोर्ध्वमीक्षते नाधस्तनु चैलावृतोपमम् ।
यथावर्णं च रज्येत दृष्टिर्हीयेत च क्रमात् ॥ ६ ॥

जब दोष तीसरे पटलमें पहुंच जाता है उससे काच (मोतिया बिन्द) बन जाता है । उससे ऊपरकी ओर तो मनुष्य कुछ देख सकता है. परन्तु नीचेकी ओर कुछ नहीं देख सकता. उस मनुष्यकी दृष्टि पतले कपड़ेसे ढकीहुईसी प्रतीत होती है । फिर वह काच दोषानुसार वर्णको ग्रहण करताहुआ स्थिर होजाता है और क्रमसे दृष्टिका नाश होजाता है॥६॥

चतुर्थपटलगत दोष ।

तथाप्युपेक्षमाणस्य चतुर्थं पटलं गतः ।
लिङ्गनाशं मलः कुर्वन् छादयेद् दृष्टिमण्डलम्॥७

यदि मनुष्य दृष्टिगत दोषकी चिकित्सा न करे तो वह क्रमसे चौथे पटलमें पहुंचकर दृष्टिमण्डलको ढक देता है उससे लिंगनाश अर्थात् दृष्टिका नाश हो जाता है ॥ ७ ॥

वातके तिमिर और लिङ्गनाशके लक्षण ।

तत्र वातेन तिमिरे व्याविद्धमिव पश्यति ॥८॥
चलाविलारुणाभासं प्रसन्नं चेक्षते मुहुः ।
जालानि केशान्मशकान् रश्मींश्चोपेक्षितेऽत्र च
काचीभूते दृगरुणा पश्यत्यास्यमनासिकम् ।
चन्द्रदीपाद्यनेकत्वं वक्रमृज्वपि मन्यते ॥१०॥
वृद्धः काचो दृशं कुर्याद्रजोधूमावृतामिव ।

स्पष्टारुणाभां विस्तीर्णां सूक्ष्मां वा हतदर्शनाम्। स लिङ्गनाशो ॥ ११ ॥-

वायुके तिमिररोगमें मनुष्य व्याविद्धके समान देखता है तथा चलायमान गंधले और अरुणसे आकारके रूप देखता है। बीचबीचमें वार वार प्रसन्न और स्वच्छरूपको देखता है तथा जल, केश, मच्छर, रश्मियोंको देखता है यदि इसकी शीघ्र चिकित्सा न की जाय तो यह दोष काचबिन्दु बनजाता है। तब दृष्टि लाल वर्णकी होजाती है और मुखको नासिकारहित देखता है तथा चन्द्र दीपादि उसको एकके अनेक दिखाई देने लगते हैं और टेढ़ीवस्तु सीधी दिखाई देने लगती है। जब वह काच (मोतियाबिन्दु) बढ़ जाता है तब दृष्टि गरदे और धूयेंसे ढकी हुईसी प्रतीत होने लगती है दृष्टि स्पष्ट और अरुण विस्तीर्ण तथा सूक्ष्मसी होजाती है। इस प्रकार दिखाई देना बन्द होजानेपर 'इस लिंगनाशको वातकलिंगनाश कहते हैं ॥ ८-११ ॥

गंभीरा दृष्टिके लक्षण।

-वाते तु संकोचयति दृक्सिराः। दृग्मण्डलं विशत्यन्तर्गम्भीरा दृगसौ स्मृता १२

वायुके प्रकोपसे दृष्टिकी सिरा संकुचित होकर दृष्टिमंडलके भीतर प्रवेश कर जाती है। इसको गंभीरा दृष्टि कथन किया है ॥ १२ ॥

पित्तके तिमिर, लिङ्गनाश, ह्रस्वादृष्टि और पित्तविदग्ध दृष्टिके लक्षण।

पित्तजे तिमिरं विद्युत्खद्योतोद्योतदीपितम्। शिखितित्तिरिपिच्छाभं प्रायो नीलं च पश्यति॥ काचे दृक् काचनीलाभा तादृगेव च पश्यति। अर्केन्दुपरिवेषाग्निमरीचीन्द्रधनूंषि च ॥१४॥ भृङ्गनीला निरालोका दृक् स्निग्धा लिङ्गनाशत दृष्टिःपित्तेन ह्रस्वाख्या सा ह्रस्वा ह्रस्वदर्शिनी। भवेत्पित्तविदग्धाख्या पीता पीताभदर्शना १५

पित्तके तिमिररोगमें दृष्टिके आगे बिजली, खद्योत, प्रज्वलित दीपक, मोर और तित्तरके पुच्छके समान चन्द्रिकाएं दिखाई देनेलगती है तथा नीलवर्णके रूप दिखाई देने लगते हैं जब पित्तका दृष्टिदोष काच (मोतियाबिन्द) रूपमें दृष्टिमें प्रवेश करता है तो वह काच नीलवर्णका होता है और नीलवर्णके रूपोंको देखता है। तथा सूर्य, चन्द्रमा, प्रकाश, अग्नि, मरीचि और इन्द्रधनुषादि उसको अकारण दिखाई देने लगते है। दृष्टि लिंगनाश होनेसे भ्रमरके समान नील प्रकाश रहित और चिकनी हो जाती है।

जो दृष्टि पित्तसे छोटी हो जाय और छोटाही देखे उसको ह्रस्वा दृष्टि कहते हैं।

यदि दृष्टि पित्तसे विदग्ध होकर मनुष्य पीले वर्णके आकारोंको देखे और दृष्टि पीली पड़जाय इसको पित्तविदग्धा दृष्टि कहते है ॥ १३-१९ ॥

कफके तिमिर काच और लिङ्गनाशके लक्षण।

कफेन तिमिरे प्रायः स्निग्धं श्वेतं च पश्यति। शंखेन्दुकुन्दकुसुमैः कुमुदैरिव चाचितम् ॥१६ काचे तु निष्प्रभेन्द्वर्कप्रदीपाद्यैरिवाचितम्। सिताभा सा च दृष्टिः स्याल्लिङ्गनाशे तु लक्ष्यते। मूर्तः कफो दृष्टिगतः स्निग्धो दर्शननाशनः। बिन्दुर्जलस्येव चलः पद्मिनीपुटसंस्थितः ॥१८ उष्णे संकोचमायाति छायायां परिसर्पति। शंखकुन्देन्दुकुमुदस्फटिकोपमशुक्लिमा ॥१९॥

कफसे उत्पन्न हुये तिमिररोगमें प्रायः मनुष्य चिकना और श्वेत देखता है उसको सब दृश्य शंख चन्द्रमा कुन्दपुष्प और कुमुदपुष्पोंके समान वर्ण युक्त दिखाई देता है।

जब कफका काचबिन्दु दृष्टिके पटलमें आजाता है तब उसको सम्पूर्ण दृश्य प्रभारहित चन्द्रमा सूर्य और दीप आदिकोंसे युक्त दिखाई देने लगता है।

काचबिन्दुसे लिंगनाश होनेपर दृष्टि श्वेतवर्णकी प्रतीत होती है मूर्तिमान् कफ दृष्टिमें प्राप्त होकर स्निग्ध होता है और देखनेकी शक्तिको नाश कर देता है उसकी दृष्टि स्नायुके आगे कफजनित बिन्दु इस प्रकार हिलतीहुई प्रतीत होती है जैसे कमलिनीके पुटमें जलकी बिंदु हिलती प्रतीत होती है।

इस पुरुषकी दृष्टि गर्मी आदिसे संकोचको प्राप्त होती है और छायामें फैल जाती है ।

इस दृष्टिका वर्ण शंख, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा कुमुद और स्फटिकके समान श्वेतवर्ण होजाता है॥१६-१९॥

रक्तके तिमिर और लिंगनाशके लक्षण ।

रक्तेन तिमिरे रक्तं तमोभूतं च पश्यति ॥२०॥
काचेन रक्ता कृष्णा वा दृष्टिस्तादृक् च पश्यति
लिङ्गनाशेऽपि तादृग् दृङ् निःप्रभा हतदर्शना२१

रक्तजनित तिमिररोगमें सम्पूर्ण दृश्य लालवर्णके अंधकारसे भराहुआ प्रतीत होता है ।

रक्तजनित काचबिन्दु होजाने पर दृष्टि लाल या काले वर्णकी होजाती है और उससे लाल या काले रूप प्रतीत होते हैं ।

रक्तसे लिंगनाश होनेपर दृष्टि प्रभारहित लाल या काले वर्णकी होजाती है तथा रूप दिखाई देना बंद होजाता है ॥ २० ॥ २१ ॥

संसर्गज और सन्निपातज लिंगनाशके लक्षण ।

संसर्गसंनिपातेषु विद्यात्संकीर्णलक्षणान् ।
तिमिरादीनकस्माच्च तैः स्याद्व्यक्ताकुलेक्षणम् ।
तिमिरे शेषयोर्दृष्टौ चित्रो रागः प्रजायते॥२२॥

यदि दो दोषोंसे तिमिरादि हो तो दो दोषोंके मिलेहुये लक्षण प्रतीत होते है । यदि सन्निपातसे तिमिर आदि दृष्टि दोष हों तो तीनों दोषोंके मिले हुए लक्षण प्रतीत हुआ करते हैं । इनमें संसर्गज और सन्निपातसे उत्पन्न हुए तिमिरमें कभी अकस्मात् दृष्टि स्पष्ट प्रतीत होती है और कभी दृष्टि दोषोंसे आच्छादित प्रतीत होने लगती है । द्विदोषज और सन्निपातज काचबिन्दु और लिंगनाशमें दृष्टि स्नायुका वर्ण चित्र विचित्र होता है तथा लालिमा होतीहै॥ २२

नकुलान्धके लक्षण ।

द्योत्यते नकुलस्येव यस्य दृङ् निचिता मलैः ।
नकुलान्धः स तत्राह्नि चित्रं पश्यति नो निशि ।

जिस मनुष्यकी दृष्टि दोषोंसे युक्त होनेपर नकुलके समान दिखाई देवे और उसको दिनमें तो चित्र दिखाई देवे परन्तु रातको कुछ नहीं दिखाई दे. उसको नकुलांध कहते हैं ॥ २३ ॥

दोषान्धके लक्षण ।

अर्केऽस्तमस्तकन्यस्तगभस्तौ स्तम्भमागताः ॥
स्थगयन्ति दृशं दोषा दोषांधः स गदोपरः २४
दिवाकरकरस्पृष्टा भ्रष्टा दृष्टिपथान्मलाः ।
विलीनलीना यच्छंति व्यक्तमह्नि दर्शनम्२५

जब सूर्य अस्ताचलके मस्तक पर पहुँचकर अपनी किरणोंको अस्त कर लेता है तब दोष दृष्टिको आच्छादित कर रोक देवें । इस प्रकारकी व्याधिको दोषान्ध कहते है. कोई इसीको रात्र्यंधभी कहते है. फिर दिनमें सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे दोष दृष्टि पथके आगेसे हटकर विलीन होजाते हैं तब मनुष्य दिनमें स्पष्ट देखने लगता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

उष्ण विदग्धा दृष्टि ।

उष्णतप्तस्य सहसा शीतवारिनिमज्जनात् ।
त्रिदोषरक्तसंपृक्तो यात्यूष्मोर्ध्वं ततोऽक्षिणी२६
दाहोषे मलिनं शुक्लमहन्याविलदर्शनम् ।
रात्रावान्ध्यं च जायेत विदग्धोष्णेन सा स्मृता॥

यदि मनुष्य धूप और गर्मी आदिसे तपायमान हुआ. शीघ्र शीतल जलमें निमग्न होजाता है अर्थात् अत्यंत गर्माया हुआ पुरुष शीघ्र शिर सहित शीतल जलमें निमज्जन करे तब वात पित्त कफ और रक्तसे मिश्रित होकर गर्मी ऊपरको जाती है वह ऊष्मा नेत्रोंमें जाकर दाह गर्मी तथा शुक्लभागमें मलिनता उत्पन्न कर देती है । उससे दिनमें मलिनसा दिखाई देता है और रात्रिको दिखाई देना बंद हो जाता है।इस रात्र्यंध रोगको उष्ण विदग्धा दृष्टि कहते हैं॥२६-२७

अम्लविदग्धा दृष्टिके लक्षण ।

भृशमम्लाशनाद्दोषैः सास्रैर्या दृष्टिराचिता ।
सक्लेदकण्डूकलुषा विदग्धाम्लेन सा स्मृता २८

जो मनुष्य अति अधिक खट्टेपदार्थोंका सेवन करता है उसके दोष अधिक अम्लताके कारण रक्त युक्त होकर दृष्टिमेंप्राप्त होजाते हैं उनसे नेत्रोंमेंसे बहुत क्लेद गिरता है तथा खुजली और मैलापन नेत्रोंमें अधिक होता है इस प्रकारकी दृष्टिको अम्लविदग्धा दृष्टि कहते हैं ॥ २८ ॥

धूमर रोगके लक्षण।

शोकज्वराशिरोरोगसंतप्तस्यानिलादयः।
धूमाविलां धूमदर्शी दृशं कुर्युः स धूमरः॥२९॥

शोकज्वर और शिरोरोग होनेसे तथा शिरमें अधिक धूप लगनेसे वातादिदोष दृष्टिको धूमयुक्त और आविल बना देते हैं उससे मनुष्यको दृष्टिके आगे धूमसा प्रतीत होनेलगता है। इसको धूमर-रोग कहते हैं॥ २९॥

औपसर्गिकलिंगनाशके लक्षण।

सहसैवाल्पसत्त्वस्य पश्यतो रूपमद्भुतम्।
भास्वरं भास्करादिं वा वाताद्या नयनाश्रिताः॥३०॥
कुर्वन्ति तेजः संशोष्य दृष्टिं मुषितदर्शनाम्।
वैडूर्यवर्णां स्तिमितां प्रकृतिस्थामिवाव्यथाम्।
औपसर्गिक इत्येष लिङ्गनाशो॥ ३१॥—

जो अल्प सत्त्ववाला मनुष्य सहसा अधिक तेज-वाले बिजली या सूर्य आदि अद्भुतरूपोंको सम्मुख दृष्टि करके देखता है उसके नेत्राश्रित वातादिदोष दृष्टिके तेजको शोषण करके दृष्टिको देखनेसे रहित, वैडूर्यमणिके समानवर्णवाली स्तिमित और प्रकृति-स्थके समान रूपवाली तथा निर्व्यथा बनादेते हैं इससे नेत्रका आकार तो सुन्दर रहता है परन्तु दिखाई देना बन्द होजाता है। इस प्रकारके दृष्टिरोगको औपसर्गिक लिंगनाश कहते है॥ ३०॥ ३१॥

दृष्टिदोष, काच और लिङ्गनाशके साध्यासाध्यादिदोष।

—ऽत्र वर्जयेत्।
विना कफाल्लिङ्गनाशान् गम्भीरां ह्रस्वजामपि
षट् काचानकुलान्धश्चयाप्याः शेषांस्तुसाधयेत
द्वादशेति गदा दृष्टौ निर्दिष्टाः सप्तविंशतिः॥३३॥

इन दृष्टिरोगोंमें कफके लिंगनाशके विना; बाकी सम्पूर्ण वातादिकोंको लिंगनाश, गंभीरादृष्टि, ह्रस्व-जादृष्टि, और औपसर्गिकलिंगनाश इन सबको असाध्य जानकर त्याग देवे।

तथा वात, पित्त, कफ, रक्त, संसर्ग और सन्नि-पात इन छः प्रकारके काच याप्य समझें। इनके अति-रिक्त शेष रहे बारह नेत्रविकारोंको साध्य समझकर चिकित्सा करे इस प्रकार दृष्टिके सत्ताईस रोग कथन किये हे. जैसे—वातज, पित्तज, द्वंद्वज, सन्निपातज, रक्तज और औपसर्गिक ये छःप्रकारके लिङ्गनाश असाध्य होते हे. गंभीरा और ह्रस्वजा दृष्टि भी असाध्य होती है। वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, संसर्गज और सन्निपा-तज ये छः काचबिन्दु और सातवां नकुलान्ध ये याप्य होते हे। तथा वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, संसर्गज और सन्निपातज ये छः प्रकारके तिमिर और सातवां कफका लिङ्गनाश तथा पित्तविदग्धा दृष्टि दोषांध, उष्णविदग्धा दृष्टि, अम्लविदग्धा दृष्टि और धूमर ये बारह रोग साध्य होते हे। इस प्रकार दृष्टि-मंडलगत सत्ताईस रोग कथन किये हैं॥ ३२॥ ३३॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरतन्त्रे
आयुर्वेदाचार्यपं० शिवशर्मकृतशिवदीपिका-
भाषाव्याख्यायां दृष्टिरोगविज्ञानं नाम
द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

त्रयोदशोऽध्यायः।

अथाऽतस्तिमिरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अब हम तिमिररोगको दूर करनेकी चिकित्सावाले अध्यायकी व्याख्या करते है॥

तिमिररोगकी चिकित्सा।

तिमिरं काचतां याति काचोप्यान्ध्यमुपेक्षया।
नेत्ररोगेष्वतो घोरं तिमिरं साधयेद् द्रुतम्॥१॥

यदि नेत्रोंके तिमिररोगकी शीघ्र चिकित्सा न कीजाय तो काचरोग हो जाता है। यदि काचकी चिकित्सा न कीजाय तो मनुष्य शीघ्र नेत्रोंसे अन्धा हो जाता है। इस कारण नेत्ररोगोंमें तिमिरनामक घोररोगकी शीघ्र चिकित्सा करदेनी चाहिये॥१॥

जीवन्त्यादि घृत।

तुलां पचेत जीवन्त्या द्रोणेऽपां पादशेषिते।
तत्क्वाथे द्विगुणक्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ २॥
प्रपौण्डरीककाकोलीपिप्पलीरोध्रसैन्धवैः।

शताह्वामधुकद्राक्षासितादारुफलत्रयैः ।
कार्षिकैर्निशि तत्पीतं तिमिरापहरं परम् ॥३॥

एक तुला (पांच सेर) जीवन्तीको कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे. जब चौथा भाग शेष रहे तो उतार कर छानलेवे । इस चार सेर काथमें दो सेर दूध और एक सेर घृत मिलावे तथा पंडियारेकी छाल, काकोली, पीपल, पठानीलोध, सेंधानमक, सौंफ, मुलहठी, द्राक्षा, मिश्री, दारुहलदी, हरड़, बहेड़ा और आंवला ये प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर कल्क बनाकर मिलावे फिर घृतपाकविधिसे घृत सिद्धकरे. इस घृतको रात्रिके समय पीनेसे तिमिररोग दूर होता है । यह जीवन्त्यादि घृत तिमिर रोग दूर करनेमें सर्व श्रेष्ठ है२।३

द्राक्षादि घृत ।

द्राक्षाचन्दनमञ्जिष्ठाकाकोलीद्वयजीवकैः ।
सिताशतावरीमेदापुण्ड्राह्वमधुकोत्पलैः ॥ ४ ॥
पचेज्जीर्णं घृतप्रस्थं समक्षीरं पिचून्मितैः ।
हन्ति तत्काचतिमिररक्तराजीशिरोरुजः ॥ ५ ॥

द्राक्षा, चन्दन, मंजीठ, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मिश्री, शतावरी, मेदा, पंड़ियाराकी छाल, मुलहठी और कमल इनको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे. इस कल्कमें एक सेर पुराना घृत और समान भाग दूध मिलाकर घृत सिद्ध करो।यह घृत पीने- और नेत्रमें लगानेसे काच, तिमिर, रक्तराजी और शिरकी पीड़ाको दूर करता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

पटोलादि घृत ।

पटोलनिम्बकटुकादार्वीसेव्यवरावृषम् ॥ ६ ॥
सधन्वयासत्रायन्तीपर्पटं पालिकं पृथक् ।
प्रस्थमामलकानां च क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि७॥
तदाढकेऽर्धपलिकैः पिष्टैः प्रस्थं घृतात्पचेत् ।
मुस्तभूनिम्बयष्ट्याह्वकुटजोदीच्यचन्दनैः ॥८॥
सपिप्पलीकैस्तत्सर्पिर्घ्राणकर्णास्यरोगजित् ।
विद्रधिज्वरदुष्टारुर्विसर्पापचिकुष्ठनुत् ।
विशेषाच्छुक्रतिमिरनक्तान्ध्योष्णाम्लदाहनुत्९

पटोल, निम्ब, कटुकी, दारुहलदी, खस, हरड़, बहेड़ा, आंवला, अडूसा, जवासा, त्रायमाणा और पित्तपापड़ा ये एक एक पल लेवे आंवले एक सेर लेवे इन सबको मिलाकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथा भाग जल रहे इसको उतारकर छान लेवे इस चार सेर जलमें एक प्रस्थ घृत तथा नागरमोथा, चिरायता मुलहठी, कुड़ाकी छाल, नेत्रबाला, चन्दन और पीपल ये प्रत्येक दो दो कर्ष ले कल्क बनाकर उस काथ और घृतमें मिलावे इसको घृतपाकविधिसे पकाकर घृत सिद्ध होनेपर सेवन करे. यह घृत नासिका, कान और मुखके रोगोंको जीतता है. तथा विद्रधि, ज्वर, दुष्टारु, विसर्प, अपची और कुष्ठको नष्ट करता है । यह घृत विशेषरूपसे नेत्रोंके शुक्र, तिमिर नक्तांध उष्णदग्ध दृष्टि, अम्लदग्ध दृष्टि और दाहको दूर करता है ॥ ६-९ ॥

त्रिफलादि घृत ।

त्रिफलाष्टपलं क्वाथ्यं पादशेषं जलाढके ।
तेन तुल्यपयस्केन त्रिफलापलकल्कवान् १०॥
अर्धप्रस्थो घृतात्सिद्धः सितया माक्षिकेण वा ।
युक्तं पिबेत्तत्तिमिरी तद्युक्तं वा वरारसम् ॥११॥

त्रिफला आठ पल लेकर एक आढ़क जलमें पकावे जब चौथा भाग शेष रहे तो उतार कर छान लेवे इस काथके समान दूध तथा आधसेर घृत और घृतसे चौथा भाग त्रिफलेका कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे. इस घृतको तिमिररोगवाला मनुष्य वात या पित्तके तिमिरमें मिश्री मिलाकर कफके तिमिरमें मधु मिला- कर और सब प्रकारके तिमिरोंमें त्रिफलेका रस मिला- कर पीवे तो तिमिररोग दूर होते हैं ॥ १०॥११॥

महात्रिफलादि घृत ।

यष्टीमधुद्विकाकोलीव्याघ्रीकृष्णामृतोत्पलैः ।
पालिकैः ससिताद्राक्षैर्घृतप्रस्थं पचेत्समैः ॥१२॥
अजाक्षीरवरावासामार्कवस्वरसैः पृथक् ।
महात्रिफलमित्येतत्परं दृष्टिविकारजित् ॥ १३ ॥

मुलहठी, काकोली, क्षीरकाकोली, कटेली, पीपल, गिलोय और कमल तथा मिश्री और मुनक्का ये प्रत्येक एक एक पल लेकर कल्क बना यह कल्क एक सेर घृत, एक सेर बकरीका दूध एक सेर त्रिफलेका रस, एक सेर

अडूसेका रस और एक सेर भांगरेका रस मिलाकर घृत सिद्ध करे. यह महात्रिफलाघृत पीनेसे सब प्रकारके नेत्रविकारोंको और दृष्टिविकारोंको दूर करता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

त्रैफलेनाथ हविषा लिह्यानस्त्रिफलां निशि ।
यष्टीमधुकसंयुक्तां मधुना च परिप्लुताम् ॥१४॥
मासमेकं हिताहारः पिबन्नामलकोदकम् ।
सौपर्णं लभते चक्षुरित्याह भगवान्निमिः॥१५॥

यदि त्रिफला आदि घृतमें त्रिफलेका चूर्ण, मुलहठीका चूर्ण और मधु मिलाकर रात्रिको चाटे इस प्रकार एक महीनातक इस योगका सेवन करे तथा आंवलेका जल पीवे और हित आहार विहार करे तो मनुष्यकी दृष्टि गरुडके समान दिव्य दृष्टि होजाती है ऐसे भगवान् निमिका कथन है ॥ १४ ॥ १५ ॥

तिमिरनाशक योग ।

ताप्यायोहेमयष्ट्याह्वसिताजीर्णाज्यमाक्षिकैः ।
संयोजिता यथाकामं तिमिरघ्नी वरा वरा॥१६॥

सोनामाखीकी भस्म, लोहभस्म, स्वर्णभस्म, मुलहठी, मिश्री पुराना घी और शहद ये सब युक्तिपूर्वक त्रिफलेमें मिलाकर सेवन करनेसे तिमिररोग नष्ट होता है । इसकी योजना इस प्रकार करना चाहिये-सोना माखीकी भस्म दो रत्ती, लोहभस्म एक रत्ती, स्वर्णभस्म एक रत्ती, मुलहठीका चूर्ण तीन मासे, मिश्री पांच मासे, पुराना घी एक तोला, शहद दो तोले, त्रिफलेका चूर्ण सात मासे सबको मिलाकर चाटलेना चाहिये॥ १६

सघृतं वा वराक्वाथं शीलयेत्तिमिरामयी ।
अपूपसूपसक्तून्वा त्रिफलाचूर्णसंयुतान् ॥१७॥

त्रिफलेके क्वाथमें घृत मिलाकर नित्य सेवन करना अथवा अपूप (पूड़े) या सत्तू, त्रिफलेका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे तिमिररोग दूर होता है ॥ १७ ॥

पायसं वा वरायुक्तं शीतं समधुशर्करम् ॥१८॥
प्रातर्भक्तस्य वा पूर्वमद्यात्पथ्यां पृथक् पृथक् ।
मृद्वीकां शर्कराक्षौद्रैः सततं तिमिरातुरः॥१९॥

अथवा त्रिफलेका चूर्ण मिलीहुई खीर शीतल करके शहद और शर्करा मिलाकर प्रातःकाल खाय अथवा भोजनसे पूर्व हरीतकी या द्राक्षा शर्करा और मधु मिलाकर भोजनसे पूर्व नित्य सेवन करे तो तिमिर रोग दूर होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

तिमिरनाशक चूर्णाञ्जन ।

स्रोतोजांशांश्चतुःषष्टिं ताम्रायोरूप्यकाञ्चनैः ।
युक्तान् प्रत्येकमेकांशैरन्धमूषोदरस्थितान् २०
ध्मापयित्वा समावृत्तं ततस्तच्च निषेचयेत् ।
रसस्कन्धकषायेषु सप्तकृत्वः पृथक् पृथक् २१॥
वैडूर्यमुक्ताशंखानां त्रिभिर्भागैर्युतं ततः ।
चूर्णाञ्जनं प्रयुञ्जीत तत्सर्वं तिमिरापहम्॥२२॥

स्रोतोंजन ६४ भाग, ताम्रभस्म एक भाग, लोहभस्म एक भाग, रौप्यभस्म एक भाग और स्वर्णभस्म एक भाग इन सबको अंधमूषामें रखकर अग्निमें ध्मापन करे फिर इनको मध्वादिगणके क्वाथमें सात बार पृथक् पृथक् भावना देवे तदनन्तर वैडूर्यमणि तीन भाग ,मोती तीन भाग और शंख तीन भाग इन सबको खरलमें पीसकर बारीक अंजन बनावे यह चूर्णाञ्जन नेत्रोंमें लगानेसे सब प्रकारके तिमिररोग दूर होते हैं ॥२०–२२ ॥

अन्य अंजन ।

मांसीत्रिजातकायःकुंकुमनीलोत्पलाभयातुत्थैः।
सितकाचशंखफेनकमरीचाञ्जनपिप्पलीमधुकैः ।
चन्द्रेऽश्विनीसनाथे सुचूर्णितैरञ्जयेद्युगुलमक्ष्णोः
तिमिरार्मरक्तराजीकण्डूकाचादिशममिच्छन्२४

जटामांसी, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, लोहभस्म, केसर, नीलकमल, हरीतकी, नीलाथोथा, सफेदकांच, शंख, समुद्रझाग, मरिच, स्रोतोंजन, पीपल और मुलहठी इन सबका बारीक चूर्णकर सूक्ष्म अञ्जन बनावे यह अंजन जब चन्द्रमा अश्विनी नक्षत्रका हो प्रथम उस दिन दोनों नेत्रोंमें लगावे. इस अंजनके डालनेसे तिमिर, अर्म, रक्तराज खुजली और काच आदि सब रोग शमन होजाते है ॥ २३ ॥ २४ ॥

मरिचवरलवणभागौ
–भागौ द्वौ कणसमुद्रफेनाभ्याम् ।
सौवीरभागनवकं
--चित्रायां चूर्णितं कफामयजित् ॥ २५ ॥

काली मिर्च, सेंधानमक दो भाग, पीपल, समुद्रझाग दो भाग, सौवीरांजन नव भाग इन सबको मिलाकर चित्रानक्षत्रमें बहुत बारीक अंजन बनावे यह अंजन कफके नेत्ररोगोंको दूर करता है ॥ २५ ॥

प्रसादनाञ्जन ।

द्राक्षामृणालीस्वरसे क्षीरमद्यवसासु च ।
पृथक् दिव्याप्सु स्रोतोजं सप्तकृत्वो निषेचयेत्॥
तच्चूर्णितं स्थितं शंखे दृक्प्रसादनमञ्जनम् ।
शस्तं सर्वाक्षिरोगेषु विदेहपातिनिर्मितम् ॥२७॥

स्रोतोंजन (काला सुरमा) लेकर इसको द्राक्षाके रसमें कमलकी डंडी (भिस) के रसमें दूधमें मधुमें वसामें और आकाशके जलमें या गंगाजलमें सात सात बार अलग अलग सेचन करे. फिर इसका बारीक अंजन बनाकर शंखमें रखे । यह अंजन सब प्रकारके नेत्ररोगोंमें हितकारी है और दृष्टिको प्रसादन करनेवाला है । यह अंजन विदेहाधिपतिका कथन कियाहुआ है ॥ २६ ॥ २७ ॥

भास्कराञ्जन ।

निर्दग्धं बादराङ्गारैस्तुत्थं चैत्थं निषेचितम् ।
क्रमादजापयःसर्पिःक्षौद्रे तस्मात् पलद्वयम्२८।
कार्षिकैस्ताप्यमरिचस्रोतोजकटुकानतैः ।
पटुरोध्रशिलापथ्याकणैलाञ्जनफेनिकैः ॥२९॥
युक्तं पलेन यष्ट्याश्च मूषान्तर्ध्मातचूर्णितम् ।
हन्ति काचार्मनक्तान्ध्यरक्तराजीःसुशीलितः।
चूर्णो विशेषात्तिमिरं भास्करो भास्करो यथा३०

बेरीवृक्षकी लकड़ियोंको दग्धकर उसके अंगारोंमें नीले थोथेको दग्ध करके बकरीके दूधसे घृतसे और शहदसे सेचन करे फिर यह नीलाथोथा दो पल तथा सोनामाखी, कालीमिर्च, कालासुरमा, कटुकी, तगर, सेंधानमक, पठानीलोध, मनशिल, हरीतकी, पीपल, रसौत और समुद्रझाग ये प्रत्येक एक एक कर्ष लेवे एक पल मुलहठी लेवे। इन सबको मिलाकर मूसाके संपुटमें रखकर अग्निमें दग्ध करे फिर निकालकर सूक्ष्म चूर्ण करे यह अंजन काच, अर्म, रात्र्यंध, रक्तराजी और विशेष कर तिमिररोगको दूर करता है । यह भास्करांजन नेत्रोंके अंधकारको भास्करके समान दूर करदेता है ॥ २८–३० ॥

त्रिंशद्भागा भुजङ्गस्य गन्धपाषाणपञ्चकम् ।
शुल्वतारकयोर्द्वौ द्वौ वङ्गस्यैकोञ्जनत्रयम्॥३१॥
अन्धमूषीकृतं ध्मातं पक्वं विमलमञ्जनम् ।
तिमिरान्तकरं लोके द्वितीय इव भास्करः ३२॥

सीसा (रांगा) तीस भाग, गंधक पांच भाग, शुद्धताम्बा और चांदी दो दो भाग, वंग एक भाग, सफेद अंजन तीन भाग इन सबको अंधमूसामें रखकर बेरीके कोयलेकी आगमें दग्ध करे फिर इसको बारीक पीसकर नेत्रोंमें अंजन करे । यह तिमिररोगको नष्ट करनेवाला संसारमें दूसरे सूर्यके समान निर्मल अंजन है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

तुत्थांजन ।

गोमूत्रे छगणरसेऽम्लकाञ्जिके च
स्त्रीस्तन्ये हविषि बिसे च माक्षिके च ।
यत्तुत्थं ज्वलितमनेकशो निषिक्तं
तत्कुर्याद्गरुडसमं नरस्य चक्षुः ॥ ३३ ॥

नीलाथोथा लेकर उसको बेरीकी आगमें दग्ध करके तप्त २ को गोबरके रसमें खट्टीकांजीमें स्त्रीके दूधमें घृतमें कमलकी भिसके रसमें और मधुमें अनेकबार पृथक् पृथक् सेचन करे । इस भस्मका अंजन नेत्रोंमें डालना अर्म काच आदिको दूर करता है तथा दृष्टिको गरुड़के समान बनाता है ॥ ३३ ॥

नेत्रमें अंजन करनेकी शलाका ।

श्रेष्ठाजलं भृङ्गरसं सविसाज्यमजापयः ।
यष्टीरसं च यत्सीसं सप्तकृत्वः पृथक् पृथक्३४॥
तप्तं तप्तं पायितं तच्छलाका
नेत्रेयुक्ता साञ्जनानञ्जना वा ।
तैमिर्यार्मस्रावपैच्छिल्यपैल्लं
कण्डूं जाड्यं रक्तराजीं च हन्ति ॥ ३५ ॥

सीसा (रांगा) लेकर उसको अग्निमें पिघला त्रिफलेके रसमें भांगरेके रसमें कमलकी जड़ोंके रसमें घृतमें बकरीके दूधमें और मुलहठीके रसमें पृथक् पृथक् सात सात वार गर्म करके बुझावे फिर इस सीसेकी नेत्रोंमें अजन डालनेकी सलाई बनावे इस सलाईसे अंजन डाले अथवा विनाही अंजनसे इस सलाईको नेत्रोंमें लगाया करे तो यह तिमिररोग, अर्म नेत्रस्राव, नेत्रोंकी पिच्छिलता, पिल्लरोग, खुजली, जड़ता और रक्तराजी (लाल लकीरें) इन सब नेत्ररोगोंको यह शलाका दूर करती है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

नयनामृताञ्जन ।

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ तयोस्तुल्यमथाञ्जनम् ।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तमञ्जनं नयनामृतम्[१] ॥ ३६ ॥

पारद और सीसा सम भाग लेकर प्रथम सीसे (सिक्का) को पिघलावे फिर इसमें इसके समान (पारा) मिलावे दोनोंको खरलमें डालकर रगड़े फिर इसमें पारे और सिक्केके समान अर्थात् दोनोंके बराबर काला सुरमा डाले और थोड़ासा मुश्ककपूर डाले इसको बारीक अंजन बनालेवे । इसको नयनामृतांजन कहते हैं; यह अंजन नेत्रोंमें डालनेसे तिमिर रोगको दूर करता है और नेत्रोंको बल देता है ॥ ३६

गृध्रशिरांजन ।

यो गृध्रस्तरुणरविप्रकाशगल्ल-
स्तस्यास्यं समयमृतस्य गोशकृद्भिः ।
निर्दग्धं समघृतमञ्जनं च पेष्यं
योगोऽयं नयनबलं करोति गार्ध्रम् ॥ ३७ ॥

जिस गृध्रके तरुण सूर्यके समान दोनों गल्ले हों जब वह समयपर मरे तब उसके शिरको काटकर गोहेकी अग्निमें दग्ध करे इस दग्ध कियेहुए गृध्र शिरके समान काला सुरमा मिलाकर बारीक पीसे. इसका अञ्जन नेत्रोंमें डालनेसे नेत्रको बल देता है और गृध्रके समान दृष्टि बना देता है ॥ ३७ ॥

कृष्णसर्पमुखदग्धांजन ।

कृष्णसर्पवदने सहविष्कं
दग्धमञ्जनमनिःसृतधूमम् ।
चूर्णितं नलदपत्रविमिश्रं
भिन्नतारमपिरक्षति चक्षुः ॥ ३८ ॥

काले सांपके मुखमें घृत और काला सुरमा भरकर उसको संपुटमें रखकर अन्तर्धूम दग्ध करे फिर सुरमेको निकालकर उसमें जटामांसीके पत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करे. यह अंजन नेत्रोंमें आंजनेसे फटीहुई दृष्टिको भी रक्षा करता है ॥ ३८ ॥

कुक्कुट विटांजन ।

कृष्णं सर्पं मृतं न्यस्य चतुरश्चापि वृश्चिकान् ।
क्षीरकुम्भे त्रिसप्ताहं क्लेदयित्वाथ मन्थयेत् ॥ ३९ ॥
तत्र यन्नवनीतं स्यात्पुष्णीयात्तेन कुक्कुटम् ।
अन्धस्तस्य पुरीषेण प्रेक्षते ध्रुवमञ्जनात् ॥ ४० ॥

मरेहुए काले सांपको दूधके घड़ेमें डालदे और इसीमें ताजे मरेहुए चार बिच्छू डाले फिर इस घड़ेका मुख बन्द कर इक्कीस दिन रख देवे इसको फिर मथानीसे मन्थ कर मक्खन निकाले । यह मक्खन एक मुर्गेको खिलाया करे । इस मुर्गेकी बीठको नेत्रोंमें अञ्जन करनेसे अन्धको भी अवश्य दिखाईदेने लगता है ॥ ३९-४० ॥

सर्पवसाद्यंजन ।

कृष्णसर्पवसा शंखः कतकात् फलमञ्जनम् ।
रसक्रियेयमचिरादन्धानां दर्शनप्रदा ॥ ४१ ॥

काले सांपकी चर्बी, शंख, निर्मलीके फल और सफेद सुरमा इन सबको बहुत बारीक पीसकर नेत्रमें लगानेसे यह रसक्रिया देरसेहुए अंधेको भी दृष्टि देनेवाली है ॥ ४१ ॥

अप्रतिसारांजन ।

मरिचानि दशार्धपिचु-
स्ताप्यात्तुत्थात्पलं पिचुर्यष्ट्याः ।
क्षीरार्द्रदग्धमञ्जन-
मप्रतिसाराख्यमुत्तमं तिमिरे ॥ ४२ ॥

काली मिर्च दश, सोनामाखी आधा कर्ष, नीलाथोथा एक पल, मुलहठी एक कर्ष इन सबको दूधमें रगड़कर गीलेको ही अग्निमें दग्ध करे फिर निकालकर बारीक अंजन बनावे यह अप्रतिसारनामक अंजन तिमिररोगको दूर करनेमें उत्तम कहा है ॥ ४२ ॥

१ तिमिरापहम् । इति पाठान्तरम् ।

विभीतकाद्यंजन ।

अक्षबीजमरिचामलकत्वक्-
तुत्थयष्टिमधुकैर्जलपिष्टैः ।
छाययैव गुटिकाः परिशुष्का
नाशयन्ति तिमिराण्यचिरेण ॥ ४३ ॥

बहेड़ेके बीज, काली मिर्च, आंवलेकी छिल्का, नीलाथोथा और मुलहठी इनको जलमें बारीक पीसकर गीली बना छायामें सुखावे सूखजानेपर स्त्रीके दूधमें घिसकर लगानेसे यह गोली तिमिररोगको शीघ्र ही नाश करती है ॥ ४३ ॥

षण्माक्षिकयोग ।

मरिचामलकजलोद्भव-
तुत्थाञ्जनताप्यधातुभिः क्रमवृद्धैः ।
षण्माक्षिक इति योग-
स्तिमिरार्मक्लेदकाचकण्डूर्हन्ता ॥ ४४ ॥

काली मिर्च, आमले, शंख, नीलाथोथा, काला सुरमा और मनशिल ये क्रमसे एक एक भाग अधिक लेना चाहिये अर्थात् मिर्च एक भाग, आमले दो भाग, शंख तीन भाग, नीलाथोथा चार भाग, कालासुरमा पांच भाग और मनशिल छः भाग इनको बारीक पीसकर अञ्जन करे यह षण्माक्षिकयोग तिमिर, अर्म, क्लेद, काच और खुजलीको दूर करता है ॥ ४४ ॥

रत्नानि रूप्यं स्फटिकं सुवर्णं
स्रोतोञ्जनं ताम्रमयः सशङ्खम् ।
कुचन्दनं लोहितगैरिकं च
चूर्णाञ्जनं सर्वदृगामयघ्नम् ॥ ४५ ॥

मूङ्गा मोती आदि सम्पूर्ण रत्न, रौप्य, स्फटिक, सुवर्ण, कालासुरमा, ताम्र, लोह, शंख, लालचन्दन और लाल गेरू इन सबको विधिपूर्वक रगड़कर बारीक अंजन बनावे यह चूर्णांजन सम्पूर्ण दृष्टिरोगोंको दूर करता है ॥ ४५ ॥

नस्य ।

तिलतैलमक्षतैलं भृङ्गस्वरसोऽसनाच्च निर्यूहः ।
आयसपात्रविपक्वं करोति दृष्टेर्बलं नस्यम् ४६॥

तिलोंका तेल, बहेड़ेका तेल, भांगरेका स्वरस और असनवृक्ष (विजयसार) का क्वाथ इन सबको मिलाकर लोहपात्रमें पकावे तेल मात्र रहनेपर इस तेलकी नस्य लेनेसे दृष्टिका बल बढ़ता है ॥ ४६ ॥

दोषानुरोधेन च नैकशस्तं
स्नेहास्रविस्रावणरेकनस्यैः ।
उपाचरेदञ्जनमूर्धबस्ति-
बस्तिक्रियातर्पणलेपसेकैः ॥ ४७ ॥

नेत्ररोगवालेको दोषानुसार बार बार स्नेहपान कराना, रक्तनिकालना, रेचन कराना, नस्यकर्म करना, अंजन डालना, शिरोवस्ति करना, निरूहणादिवस्ति करना, तर्पण, लेपन और सेचनादिकर्म करके जैसे भी होसके उचित रीतिपर दोषानुसार चिकित्सा करके आरोग्य (तंदुरुस्त) करना चाहिये ॥ ४७ ॥

वातजतिमिरनाशकघृत ।

सामान्यं साधनमिदं प्रतिदोषमतः शृणु ।
वातजे तिमिरे तत्र दशमूलाम्भसा घृतम् ४८॥
क्षीरे चतुर्गुणे श्रेष्ठाकल्कपक्वं पिबेत्ततः ।
त्रिफलापञ्चमूलानां कषायं क्षीरसंयुतम् ।
एरण्डतैलसंयुक्तं योजयेच्च विरेचनम्॥ ४९ ॥

यह नेत्ररोगोंकी सामान्य चिकित्सा कथन करचुके हैं अब दोषानुसार विशेष चिकित्साको श्रवण करो । वायुके तिमिररोगमें दशमूलके क्वाथ और चारगुने दूधसे तथा त्रिफलेके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीना चाहिये तथा त्रिफलेका और पंचमूलका क्वाथ दूध मिलाकर उसमें एरण्डतैल डालकर विरेचनके लिये प्रयोग करना चाहिये ॥ ४८ । ४९ ॥

जीवन्त्यादितैल ।

समूलजालजीवन्तीतुलां द्रोणेऽम्भसः पचेत्५०
अष्टभागस्थिते तस्मिंस्तैलप्रस्थं पयःसमम् ।
बलात्रितयजीवन्तिवरीमूलैः पलोन्मितैः॥ ५१॥
यष्टीपलैश्चतुर्भिश्च लोहपात्रे विपाचयेत् ।
लोह एव स्थितं मासं नावनादूर्ध्वजत्रुजान् ५२
वातपित्तामयान् हन्ति तद्विशेषाद् दृगाश्रयान् ।
केशास्यकन्धरास्कन्धपुष्टिलावण्यकांतिदम्५३

जीवन्तीका पंचांग पांच सेर लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब आठवां भाग शेष रहे तब उसको उतार कर छान लेवे. इस काथमें एक सेर तेल एक सेर दूध तथा बला, अतिबला, नागबला, जीवती और शतावरी ये प्रत्येक एक एक पल और मुलहठी चार पल इन सबका कल्क मिलाकर लोहपात्रमें तेलको सिद्धकरे फिर इस तेलको एक महीना पर्यन्त लोह पात्रमें रख छोडे. इस तेलकी नस्य लेनेसे ऊर्ध्वजत्रुगत सम्पूर्ण वातपित्तके रोग नष्ट होजाते है । यह तेल विशेषरूपसे दृष्टिके रोगोंके नस्य लेनेसे नष्ट करदेता है । तथा केशोंमें मुखमें गरदनमें और स्कंधोंमे पुष्टि देता है तथा लावण्यता और कान्तिको देनेवाला है ॥९०--९३॥

सितैरण्डजटासिंहीफलदारुवचानतैः ।
घोषया बिल्वमूलैश्च तैलं पक्वं पयोऽन्वितम् ।
नस्यं सर्वोर्ध्वजत्रूत्थवातश्लेष्मामयार्तिजित् ९४

सफेद एरण्डकी जड़, कटेली, त्रिफला, देवदारु, बच, तगर, कडुवी तोरी और बिल्वकी जड़ इनके कल्क और दूधसे सिद्ध कियाहुआ तैल नस्य लेनेसे उर्ध्वजत्रुगत सम्पूर्ण वातकफके रोगोंको दूर करता है॥९४॥

वसाञ्जने च वैयाघ्री वाराही वा प्रशस्यते ।
गृध्राहिकुक्कुटोत्था वा मधुकेनान्विता पृथक्९५

मुलहठी मिलाकर व्याघ्रकी वसा अथवा सूकरकी वसा (चर्वी) या गृध्रकी वसा अथवा सांपकी वसा या मुर्गेकी वसा नेत्रमें डालना दृष्टिको बलवान् करता है ॥ ९९ ॥

प्रत्यंजन ।

प्रत्यञ्जने च स्रोतोजं रसक्षीरघृते क्रमात् ।
निषिक्तं पूर्ववद्योज्यं तिमिरघ्नमनुत्तमम् ॥९६॥

काले सुरमेको भृंगराज आदिके रसमें दूधमें और घृतमें अग्निमें तपा तपाकर सात सात वार बुझावे इस सुरमेको बारीक पीस नेत्रोंमें प्रत्यंजन अर्थात् प्रसादनांजनकी रीतिसे नित्य नेत्रोंमें डाले तो यह तिमिररोग दूर करनेमें परमोत्तम है ॥ ९६ ॥

न चेदेवं शमं याति ततस्तर्पणमाचरेत् ॥ ९७ ॥

यदि इन अंजनोंसे तिमिर रोग दूर न हो तो नेत्रोंमें तर्पण क्रियाका प्रयोग करना चाहिये ॥ ९७ ॥

नेत्रतर्पणयोग ।

शताह्वाकुष्ठनलदकाकोलीद्वययष्टिभिः ।
प्रपौण्डरीकसरलपिप्पलीदेवदारुभिः ।
सर्पिरष्टगुणक्षीरं पक्वं तर्पणमुत्तमम् ॥ ९८ ॥

सौंफ, कूठ, बालछड़, काकोली, क्षीर काकोली, मुलहठी, पंडियारा, सरलकाष्ठ, पीपल और देवदारु इन सबके कल्कसे चारगुना घृत और घृतसे आठ गुना दूध मिलाकर सिद्धकियाहुआ घृत नेत्रतर्पणके लिये उत्तम होता है ॥ ९८ ॥

मेदसस्तद्वदैणेयाद्दुग्धसिद्धात् खजाहतात् ।
उद्धृतं साधितं तेजो मधुकोशीरचन्दनैः॥९९॥

काले हरिणकी चर्वीको दूधमें पकावे फिर इसको मथानीसे विलोकर घृत निकाले. उस घृतको मुलहठी, खस और चन्दनके कल्कसे सिद्धकर नेत्रतर्पणमें प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ ९९ ॥

श्वाविच्छल्यकगोधानां दक्षतित्तिरिबर्हिणाम् ।
पृथक्पृथगनेनैव विधिना कल्पयेद्वसाम् ॥६०॥

इसी प्रकार खरगोश ,सेह (शल्लकी), गोधा, मुर्गा, तित्तर और मोर इनकी चर्बीसे पृथक् पृथक् सिद्ध किये हुए दूधसे निकालेहुए घृतमें मुलहठी, खस, चन्दन मिलाकर घृत सिद्ध करे ये सब प्रकारके घृत भी नेत्र तर्पणमें श्रेष्ठ होते है ॥ ६० ॥

प्रसादनं स्नेहनं च पुटपाकं प्रयोजयेत् ।
वातपीनसवच्चात्र निरूहं सानुवासनम् ॥६१॥

यथासमय नेत्ररोगोंमें प्रसादनांजन, स्नेहन और पुटपाकको यथादोष प्रयोग करना चाहिये ।

तथा नेत्ररोगोंमें वायुके पीनसरोगमें कहेहुए निरूहण और अनुवासनवस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ६१ ॥

पित्तके तिमिरकी चिकित्सा ।

पित्तजे तिमिरे सर्पिर्जीवनीयफलत्रयैः ।
विपाचितं पाययित्वा स्निग्धस्य व्यधये--
--त्सिराम् ॥ ६२ ॥

पित्तके तिमिररोगमें प्रथम जीवनीयगणके द्रव्यों और त्रिफलेसे सिद्ध कियेहुए घृतको पिलाकर रोगीको स्निग्ध करना चाहिये. तदनन्तर उसको सिरा वेधन कर रक्त निकालना चाहिये ॥ ६२ ॥

शर्करैलात्रिवृच्चूर्णैर्मधुयुक्तैर्विरेचयेत ॥ ६३ ॥

पित्तके तिमिरमें खांड इलायची और निशोथके चूर्णमें मधु मिलाकर खिलावे इस योगसे विरेचन कराना चाहिये ॥ ६३ ॥

सुशीतान् सेकलेपादीन् युंज्यान्नेत्रास्यमूर्धसु ६४

तथा नेत्रोंपर और मस्तकपर शीतल लेप और सेचनादि करना भी पित्तके तिमिररोगको शमन करता है ॥ ६४ ॥

सारिवापद्मकोशीरमुक्ताशाबरचन्दनैः ।
वर्तिः शस्ताञ्जने चूर्णस्तथा पत्रोत्पलाञ्जनैः ।
सनागपुष्पकर्पूरयष्ट्याह्वस्वर्णगैरिकैः ॥ ६५ ॥

सारिवा, पद्मकाष्ठ, खस, मोती, सावरलोध और चंदन इनकी बत्ती बना नेत्रोंमें अंजन करना अथवा पत्रज, कमल, सुरमा, नागकेसर, कपूर, मुलहठी, स्वर्ण, गेरू इनका सूक्ष्म चूर्ण कर नेत्रोंमे डालना पित्तके तिमिर रोगको शमन करता है ॥ ६५ ॥

पित्त तिमिरनाशक अंजन।

सौवीराञ्जनतुत्थकशृङ्गी--
--धात्रीफलस्फाटिककर्पूरम् ।
पञ्चांशं पञ्चांशं त्र्यंश-
--मथैकांशमञ्जनंतिमिरघ्नम ॥ ६६ ॥

सफेद सुरमा पांच भाग, नीला थोथा पांच भाग, मेढ़ासिंगी तीन भाग, आमले तीन भाग, स्फटिक मणि और कपूर एक एक भाग इन सबका सूक्ष्म चूर्ण कर नेत्रोंमें अंजन करनेसे पित्तका तिमिर शमन होता है॥ ६६

नस्यं चाज्यं शृतं क्षीरजीवनीयसितोत्पलैः६७॥

दूध, जीवनीयगणके द्रव्योंका कल्क और सफेद कमल इनसे सिद्ध कियाहुआ घृत पित्तके तिमिररोगमें नस्यकर्ममें श्रेष्ठ होता है ॥ ६७ ॥

कफके तिमिरमें सिरावेधन और विरेचन।

श्लेष्मोद्भवेऽमृताक्वाथवराकणशृतं घृतम् ।
विध्येत्सिरां पीतवतो दद्याच्चानुविरेचनम् ।
क्वाथं पूगाभयाशुण्ठीकृष्णाकुम्भनिकुम्भजम्॥

कफके तिमिररोगमें गिलोयके क्वाथ, त्रिफला और पीपलके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत पिलाकर रोगीको स्निग्ध करे फिर सिरावेधन कर रक्त निकाले तदनन्तर सुपारियें, हरड, सोंठ, पीपल, निसोथ और दन्तीका क्वाथ पिलाकर विरेचन करावे ॥ ६८ ॥

नस्य।

ह्रीबेरदारुद्विनिशाकृष्णाकल्कैः पयोन्वितैः ।
द्विपञ्चमूलनिर्यूहे तैलं पक्वं च नावनम् ॥६९॥

नेत्रवाला, देवदारु, हलदी, दारुहलदी और पीपल इनके कल्क दशमूलके क्वाथ और दूध मिलाकर सिद्ध कियाहुआ तैल कफके तिमिररोगमें नस्य देनेके लिये हितकारी होता है ॥ ६९ ॥

विमलावर्ति और कोकिलावर्ति।

शंखप्रियङ्गुनेपालीकटुत्रिकफलात्रिकैः ।
दृग्वैमल्याय विमला वर्तिःस्यात्कोकिला पुनः ।
कृष्णलोहरजोव्योषसैन्धवत्रिफलांजनैः ॥ ७०॥

शंख, फूलप्रियंगु, मनसिल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा और आंवला इनकी बत्ती बनाकर नेत्रोंमें अंजन करे यह विमलानामक बत्ती नेत्रोंके मलको दूर करती है।

काले लोहका चूर्ण, सोंठ, मिर्च, पीपल सेंधानमक हरड़, बहेड़ा, आंवला और काला सुरमा इनकी बनायी हुई बत्ती घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंका मल दूर होता है। इसको कोकिलावर्ति कहते है ॥ ७० ॥

दन्तवर्ति।

शशगोखरसिंहोष्ट्रद्विजा लालाटमस्थि च ।
श्वेतगोवालमरिचशंखचन्दनफेनकम् ।
पिष्टं स्तन्याजदुग्धाभ्यां वर्तिस्तिमिर--
--शुक्रजित् ॥ ७१ ॥

शशेके दांत, गोदन्त, गधेका दांत, शेरका दांत और ऊंटका दांत और ऊंटके मस्तककी अस्थि, सफेद गौके बाल, मिर्च, शंख, चन्दन और समुद्रझाग इन सबको बारीक पीसकर स्त्रीके और बकरीके दूधमें बत्ती

बनावे इसको स्त्रीके या बकरीके दूधमें घिसकर नेत्रमें डाले तो तिमिररोग और नेत्रका फोला दूर होता है ॥ ७१ ॥

रक्तजनिततिमिरकी चिकित्सा ।

रक्तजे पित्तवत्सिद्धिः शीतैश्चास्रं प्रसादयेत्॥७२॥

रक्तजनित तिमिररोगमें पित्तके तिमिररोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये तथा शीतल लेप, सेचन और शीतवीर्य अन्न पानादिका सेवन कराकर रक्तको प्रसादन करना चाहिये ॥ ७२ ॥

द्राक्षादि वर्ति ।

द्राक्षया नलदरोध्रयष्टिभिः
शंखताम्रहिमपद्मपद्मकैः ।
सोत्पलैश्छगलदुग्धवर्तितै-
रस्रजं तिमिरमाशु नश्यति ॥ ७३ ॥

द्राक्षा, बालछड़, पठानीलोध, मुलहठी, शंख, ताम्र, चन्दन, कमल, पद्मकाष्ठ और श्वेतकमल इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनावे. यह बत्ती नेत्रोंमें आंजनेसे कफके तिमिरको नष्ट करदेती है॥७३

द्विदोषजादितिमिरचिकित्सा ।

संसर्गसन्निपातोत्थे यथादोषोदयं क्रिया॥७४॥

द्विदोषज और त्रिदोषज तिमिररोगमें दोषकी न्यूनाधिकता देखकर यथादोष मिलीजुली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७४ ॥

सिद्धं मधूककृमिजिन्मरिचामरदारुभिः ।
सक्षीरं नावनं तैलं पिष्टैर्लेपो मुखस्य च ॥७५॥

महुआ, वायविडंग, मिर्च और देवदारु इनके कल्क और दूधसे सिद्ध कियाहुआ तैल नस्यकर्ममें प्रयोग करना चाहिये तथा इन्हीं द्रव्योंको शीतल जलमें पीसकर मस्तकपर लेप करना चाहिये यह योग संसर्गज तिमिररोगको दूर करता है ॥ ७५ ॥

नतनीलोत्पलानन्तायष्ट्याह्वसुनिषण्णकैः ।
साधितं नावने तैलं शिरोबस्तौ च शस्यते७६

तथा तगर, नीलकमल, सारिवा, मुलहठी और चौलाईके पत्र इनके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ तैल नस्यमें और शिरोवस्तिमें प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ ७६ ॥

त्रिदोषजतिमिरनाशक योग ।

दद्यादुशीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम् ।
तच्छृतं सघृतं भूयः पचेत्क्षौद्रं घने क्षिपेत् ।
शीते चास्मिन् हितमिदं सर्वजे तिमिरेऽञ्जनम्७७

खसके क्राथमें पीपल और सेंधेनमकका चूर्ण मिलाकर पकावे फिर उसमें घी मिलाकर पकावे जब वह गाढ़ा होजाय तो उतारकर ठंढा करे फिर इसमें शहद मिलाकर नेत्रोंमें डाले यह अंजन त्रिदोषज तिमिर रोगको दूर करता है ॥ ७७ ॥

अस्थीनि मज्जपूर्णानि सत्त्वानां रात्रिचारिणाम्।
स्रोतोजांजनयुक्तानि वहत्यम्भसि वासयेत् ७८
मासं विंशतिरात्रं वा ततश्चोद्धृत्य शोषयेत् ।
समेषशृङ्गीपुष्पाणि सयष्ट्याह्वानि तानि तु ।
चूर्णितान्यञ्जनं श्रेष्ठं तिमिरे सांनिपातिके ७९

व्याघ्रादि रात्रिके भ्रमणकरनेवाले जंतुओंकी मज्जासे भरीहुई अस्थियें लेकर उनमें काला सुरमा भर देवे इन अस्थियोंको वहतेहुए जलमें एक महीना या वीस दिन रक्खे. फिर इनमेंसे सुरमेको निकालकर सुखावे इसमेंसे मेढासिंगीके फूल और मुलहठी मिलाकर बारीक चूर्ण करे. इस चूर्णका अंजन सन्निपातके तिमिररोगको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

काचरोगमें सिरावेधनका निषेध ।

काचेऽप्येषा क्रिया मुक्त्वा सिरा यंत्रनिपीडिताः
आंध्याय स्युर्मला दद्यात्स्राव्ये रक्ते जलौकसः।

यह उपरोक्त तिमिर नाशक चिकित्सा काचरोगमें भी की जासकती. है परन्तु काचरोगमें सिरावेधन नहीं करना चाहिये क्योंकि सिरावेधनके यंत्र पीड़नादि क्रमसे कुपितहुए दोष रोगीको अन्धा बना देते हैं । इस कारण काचरोगमें सिरावेधन नहीं करना चाहिये किन्तु यदि रक्त निकालना आवश्यक हो तो जोंक लगाकर निकालना चाहिये ॥ ८० ॥

काचको यापन करनेका अंजन ।

गुडः फेनोऽञ्जनं कृष्णा मरिचं कुंकुमाद्रजः ।
रसक्रियेयं सक्षौद्रा काचयापनमञ्जनम् ॥८१॥

गुड़, समुद्रझाग, रसौत, पीपल, काली मिर्च और

केसर इनका चूर्ण शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आंजना चाहिये यह रसक्रिया काचको यापन करती है ॥८१॥

नकुलांधकी चिकित्सा ।

नकुलांधे त्रिदोषोत्थे तैमिर्यविहितो विधिः८२

त्रिदोषज नकुलांधमें त्रिदोषके तिमिररोगमें कहीहुई क्रिया करनी चाहिये ॥ ८२ ॥

रात्र्यंधकी चिकित्सा ।

रसक्रिया घृतक्षौद्रगोमयस्वरसद्रुतैः ।
तार्क्ष्यगैरिकतालीसैर्निशान्ध्ये हितमञ्जनम् ।
दध्ना विघृष्टं मरिचं रात्र्यान्ध्येञ्जनमुत्तमम्८३॥

घी, शहद और गोबरका रस मिलाकर रसौत गेरू और तालीसपत्रकी रसक्रिया करे । यह अञ्जन रात्र्यंधको दूर करता है ।

अथवा मिर्चको दहीमें घिसकर नेत्रमें अञ्जन करना भी रात्र्यंधको दूर करता है ॥ ८३ ॥

दोषान्धका यत्न ।

करञ्जिकोत्पलस्वर्णगैरिकाम्भोजकेसरैः ।
पिष्टैर्गोमयतोयेन वर्तिर्दोषान्ध्यनाशिनी ॥८४॥

करंज, कमल, स्वर्णगैरिक और कमलकी केसर इनको गोबरके रसमें पीसकर बत्ती बनावे । यह बत्ती नेत्रमें आंजनेसे दोषजनित अंधेपनको दूर करता है॥८४

अजामूत्रेण वा कौन्तीकृष्णास्रोतोजसैन्धवैः ॥

अथवा रेणुका, पीपल, कालासुरमा और सेन्धानमक इनकी बकरीके मूत्रमें बनायी हुई बत्ती दोषज-रात्र्यंधको दूर करती है ॥ ८५ ॥

कालानुसारित्रिकटुत्रिफलालमनःशिलाः ।
सफेनाश्छागदुग्धेन रात्र्यंधे वर्तयो हिताः८६॥

काली अगर, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मनसिल और समुद्रझाग इनकी बकरीके दूधमें बनायीहुई बत्ती नेत्रमें लगानेसे रात्र्यंधको दूर करती है ॥ ८६ ॥

रात्र्यन्धकी चिकित्सा ।

सन्निवेश्य यकृन्मध्ये पिप्पलीरदहन्पचेत् ।
ताःशुष्का मधुना घृष्टा निशांध्ये श्रेष्ठमंजनम्॥

भैंसेके जिगरमें पीपल रखकर उसको इस प्रकार पकावे जिससे यह अग्निमें जल न जाय फिर इन पीपलोंको निकालकर सुखा लेवे । यह पीपल मधुमें घिसकर नेत्रमें आंजनेसे रात्र्यंध दूर होजाता है ॥ ८७ ॥

खादेच्च प्लीहयकृती माहिषे तैलसर्पिषा ॥८८॥

भैंसेके जिगर और तिल्लीको तिल और घीमें भून कर खाना भी रात्र्यंधको दूर करता है ॥ ८८ ॥

घृते सिद्धानि जीवन्त्याः पल्लवानि च भक्षयेत् ।
तथातिमुक्तकैरण्डशेफाल्यभिरुजानि च ।
भृष्टं घृतं कुम्भयोनेः पत्रैःपाने च पूजितम्८९॥

जीवन्तीके पत्र घीमें सिद्ध करके खावे अथवा माधवीके पत्र या एरण्डके पत्र अथवा संभालूके पत्र या शतावरीके पत्र घीमें भूनकर खावे अथवा अगस्तके पत्रोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीवे तो रात्र्यंध दूर होता है ॥ ८९ ॥

धूमरआदिरोगोंकी चिकित्सा ।

धूमराख्याम्लपित्तोष्णविदाहे जीर्णसर्पिषा ।
स्निग्धं विरेचयेच्छीतैःशीतैर्दिह्याच्च सर्वतः९०॥

धूमररोगमें अम्लविदग्धदृष्टिमें पित्तविदग्धदृष्टिमें और उष्णविदग्धदृष्टिमें प्रथम रोगीको पुराना घी पिलाकर स्निग्ध करे. फिर शीतल द्रव्योंसे विरेचन करावे । तदनन्तर शीतल लेप करावे ॥ ९० ॥

गोशकृद्रसदुग्धाज्यैर्विपक्वं शस्यतेऽञ्जनम् ।
स्वर्णगैरिकतालीसचूर्णावापा रसक्रिया ॥९१॥

गोबरका रस, दूध और घृत इनमें पकायाहुआ अजन नेत्रोंमें डालना हितकारी होता है । तथा स्वर्ण गेरू तालीसपत्रका चूर्ण मिलाकर गोबरका रस दूध घी और अंजनसे बनायीहुई रसक्रिया नेत्रोंमें डालनेसे धूमर आदि रोगोंको दूर करता है ॥ ९१ ॥

मेदाशाबरकानन्तामंजिष्ठादार्वियष्टिभिः ।
क्षीराष्टांशं घृतं पक्वं सतैलं नावनं हितम् ॥९२॥

मेदा, सावरलोध, सारिवा, मंजीठ, दारुहलदी और मुलहठी इनके कल्क तथा आठ गुने दूधसे सिद्ध किया हुआ घृत और तेल अर्थात् यमक नस्यकर्ममें हितकारी होते हैं ॥ ९२ ॥

तर्पणं क्षीरसर्पिःस्यादशाम्यति सिराव्यधः९३

यदि इन उपरोक्त उपायोंसे धूमर और विदग्ध-

दृष्टिका विकार शमन न हो तो दूधके घृतसे तर्पण करना और सिरावेधन करना चाहिये ॥ ९३ ॥

चिन्ताभिघातभीशोकरौक्ष्यात्सोत्कटकासनात्।
विरेकनस्यवमनपुटपाकादिविभ्रमात् ।
विदग्धाहारवमनात्क्षुत्तृष्णादिविधारणात् ॥ ९४
अक्षिरोगावसानाच्च पश्येत्तिमिररोगिवत् ।

चिन्तासे अभिघातसे शोकसे बहुत रूक्षपदार्थ खानेसे बहुत तेज खांसनेसे तथा विरेचन नस्य वमन और पुटपाकादिमें भूल या विपरीतता होजानेसे विदग्ध आहारके करनेसे वमनके होजानेसे क्षुधा और प्यास आदि वेगोंके रोकनेसे अथवा नेत्ररोगोंके निवृत्त होनेपर नेत्रोंमे क्षीणता रहजानेसे मनुष्य तिमिररोगीके समान देखने लगजाता है ॥ ९४ ॥

यथास्वं तत्र युञ्जीत दोषादीन् वीक्ष्य भेषजम् ॥

ऐसे होनेपर मनुष्यके दोषादिकोंको देखकर उचित रूपसे दोषानुसार औषधिका प्रयोग करे ॥ ९५ ॥

सूर्योपरागानलविद्युदादि-
विलोकनेनोपहतेक्षणस्य ।
सन्तर्पणं स्निग्धहिमादि कार्यं
तथाऽञ्जनं हेमघृतेन घृष्टम् ॥ ९६ ॥

जिस मनुष्यकी दृष्टि सूर्यकी ओर देखनेसे अथवा अन्य अग्नि विद्युत् आदि अति प्रकाशवाली वस्तुके देखनेसे नष्ट होगयी हो उस मनुष्यको सन्तर्पण स्निग्ध और शीतल चिकित्सा करनी चाहिये तथा सुवर्णको घृतमें घिसकर नेत्रोंमें अंजन करना चाहिये ॥ ९६ ॥

चक्षूरक्षायां सर्वकालं मनुष्यै-
र्यत्नः कर्तव्यो जीविते यावदिच्छा ।
व्यर्थो लोकोऽयं तुल्यरात्रिंदिवानां
पुंसामन्धानां विद्यमानेऽपि वित्ते ॥९७॥

मनुष्यको चाहिये कि, जब तक जीवनकी इच्छा हो तब तक हर समय नेत्रोंकी रक्षामें यत्नवान् रहना चाहिये. क्योंकि, नेत्रोंमें दृष्टि न होनेसे अंधपुरुषोंका जीवन जिनको दिन और रात्रिमें कुछ भेद प्रतीत नहीं होता धन रहते हुए भी यह जीवन व्यर्थ ही होता है॥९७

त्रिफला रुधिरस्रुतिर्विशुद्धि-
र्मनसो निर्वृतिरञ्जनं च नस्यम् ।
शकुनासनता सपादपूजा
घृतपानं च सदैव नेत्ररक्षा ॥ ९८ ॥
अहितादशनात्सदा निवृत्ति-
र्भृशभास्वच्चलसूक्ष्मवीक्षणाच्च ।
मुनिना निमिनोपदिष्टमेतत्
परमं रक्षणमीक्षणस्य पुंसाम् ॥ ९९ ॥

सामान्यरूपसे नेत्रोंकी रक्षाकेलिये त्रिफला सेवन करना, समय पर रक्तस्राव कराना, शरीरको समयपर रेचनादि कराकर शुद्ध रखना, मनको प्रसन्न रखना, नस्य कर्म करना, हित आहारका सेवन करना, पावोंका शुद्ध रखना और धूप कांटे आदिसे बचाकर रखना, घृत पीना और सदैव नेत्रोंकी रक्षा करना । तथा अहित आहार विहारसे निवृत्त रहना अधिक प्रकाशवाली वस्तुको न देखना, बहुत बारीक और दूर जानेवाली वस्तुको न देखना ये सब विधि मनुष्योंकी दृष्टिकी रक्षा करनेके लिये महात्मा निमिने परम हितकारी उपदेश किये है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

इति श्री वाग्भटाचार्य प्रणीताष्टांगहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां तिमिररोगप्रतिषेधो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातो लिङ्गनाशप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अब हम लिंगनाश अर्थात् दृष्टिनाशरोगकी चिकित्साका कथन करते है ॥

लिंगनाशनिकालनेकी आज्ञा ।

विध्येत्सुजातं निःप्रेक्षं लिङ्गनाशं कफोद्भवम् ।
आवर्तक्यादिभिः षड्भिर्विवर्जितमुपद्रवैः ॥१॥

कफके लिंगनाशको जब वह यथार्थ परिपक्व होकर दिखायी देनेसे बन्द होजाय और उसमें आगे कहे आवर्तकी आदि छः उपद्रव न हों तो ऐसे लिंगनाश पक्व कफज मोतियेको वेधन करके साफ करदेवे॥१॥

साध्यकफका लिंगनाश ।

सोऽसञ्जातो हि विषमो दधिमस्तुनिभस्तनुः ।
शलाकयाऽवकृष्टोऽपि पुनरूर्ध्वं प्रपद्यते ॥ २ ॥
करोति वेदनां तीव्रां दृष्टिं च स्थगयेत्पुनः ।
श्लेष्मलैः पूर्यते चाशु सोऽन्यैः सोपद्रवैश्चिरात् ३

क्योंकि ! यदि यह कफका लिंगनाश यथार्थरूपसे पककर स्थिर न होगया हो और दहीके पानीके समान पतला हो या विषम हो तो सलाईसे खींचा-हुआ भी फिर ऊपरको चलाजाता है और तीव्र वेदना करता है तथा फिर दृष्टिको रोक देता है, इसके अतिरिक्त अन्य कफके उपद्रवोंको करदेता है । इस कारण उपद्रव रहित यथार्थ परिपक्व लिंगनाशको ही निकालना चाहिये । अपरिपक्व और उपद्रव युक्तको नहीं छेड़ना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

श्लैष्मिकोलिङ्गनाशो हि सितत्वाच्छ्लेष्मणःसितः
तस्यान्यदोषाभिभवाद्भवत्यानीलता गदः ॥४॥

सब प्रकारके लिंगनाशोंमें केवल कफका लिंग-नाश ही कफके श्वेत होनेसे श्वेतवर्णका होता है । किसी दूसरे दोषका संसर्ग होनेसे यह नीला या काला लिंगनाश होता है । इनमें केवल कफका ही लिंगनाश साध्य होता है अन्य नीलआदि असाध्य होते है ॥४॥

आवर्तकी आदि छः उपद्रव ।

तत्रावर्तचला दृष्टिरावर्तक्यरुणा सिता ।
शर्कराऽर्कपयोलेशनिचितेव घनाति च ॥ ५ ॥

आवर्तकी आदि छः उपद्रवोंमे आवर्तकीमें दृष्टि चक्कर खाकर चलायमान होती है तथा अरुण और नीलवर्णकी होती है ॥

शर्करारोगमें दृष्टि आकके दूधसे ढकीहुई ,पृथ्वीके समान दृष्टि घन होती है ॥ ५ ॥

राजीमती दृङ्निचिता शालिशूकाभराजिभिः।
विषमच्छिन्नदग्धाभा सरुक्छिन्नांशुका स्मृता ६

राजीमती नामक उपद्रवमे दृष्टि शालिधानके शूकोंके समान रेखाओंसे भरीहुई प्रतीत होती है ॥

छिन्नांशुका नामक उपद्रवमें दृष्टि पीड़ायुक्त विषम छेदन करके दग्ध हुईसी प्रतीति होती है ॥ ६ ॥

दृष्टिः कांस्यसमच्छाया चन्द्रकी चन्द्रकाकृतिः।
छत्राभा नैकवर्णा च छत्रकी नाम नीलिका ७॥

जिस दृष्टिमें कांस्यके समान छाया चन्द्रिकाके आकारकी हो उसको चन्द्रकी दृष्टि कहते हैं ।

जिस दृष्टिमें छत्रके समान अनेक वर्णकी नीलिकायें हों उसको छत्रकी दृष्टि कहते हैं ॥ ७ ॥

न विध्येदसिराहार्णां न दृक्पीनसकासिनाम् ।
नाजीर्णिभीरुवमितशिरःकर्णाक्षिशूलिनाम् ८॥

इन उपद्रवोंवाली दृष्टिमें भी शस्त्र कर्म भी नहीं करना चाहिये तथा जिन मनुष्योंकी सिरावेधन करना उचित न हो अथवा जिनके नेत्र दुखते हों या जिनको पीनस अथवा खांसी हो या अजीर्णरोगी भीरु या जिसको वमन होता हो या जिसके शिर, कान अथवा नेत्रमें शूलहो ऐसे पुरुषोंका लिंगनाश यदि साध्यभी हो तबभी नहीं निकालना चाहिये. क्योंकि, ऐसी अव-स्थामें लिंगनाशको निकालनेसे दृष्टिका सर्वथा नष्ट होजानेका भय है ॥ ८ ॥

लिङ्गनाशनिकालनेका क्रम ।

अथ साधारणे काले शुद्धसम्भोजितात्मनः ।
देशे प्रकाशे पूर्वाह्णे भिषग् जानूच्चपीठगः ॥९॥
यन्त्रितस्योपविष्टस्य स्विन्नाक्षस्य मुखानिलैः ।
अङ्गुष्ठमृदिते नेत्रे दृष्टौ दृष्ट्वोत्प्लुतं मलम्॥१०॥
स्वनासां प्रेक्षमाणस्य निष्कम्पं मूर्ध्नि धारिते ।
कृष्णादर्धाङ्गुलं मुक्त्वा तदर्धार्धमपाङ्गतः ११॥
तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैः शलाकां निश्चलं धृताम् ।
दैवाच्छिद्रं नयेत्पार्श्वादूर्ध्वमामन्त्रयन्निव ॥१२॥
सव्यं दक्षिणहस्तेन नेत्रं सव्येन चेतरत् ।
विध्येत् ॥ १३ ॥–

जिस ऋतुमें बहुत गर्मी या शर्दी न हो ऐसे साधारण समयमें शुद्ध भोजन किये हुए और शुद्ध शरीरवाले पुरुषको प्रकाशवाले स्थानमें पूर्वाह्णके समय जानुके समान ऊंची पीठ तख्ता शय्या आदिपर विधिवत् बैठाकर यथार्थ यंत्रित करके मुखकी भाफसे उसका स्वेदन करे तदनन्तर अगूठेसे उसकी दृष्टिको

दृष्टिका विकार शमन न हो तो दूधके घृतसे तर्पण करना और सिरावेधन करना चाहिये ॥ ९३ ॥

चिन्ताभिघातभीशोकरौक्ष्यात्सोत्कटकासनात्।
विरेकनस्यवमनपुटपाकादिविभ्रमात् ।
विदग्धाहारवमनात्क्षुत्तृष्णादिविधारणात्॥९४
अक्षिरोगावसानाच्च पश्येत्तिमिररोगिवत् ।

चिन्तासे अभिघातसे शोकसे बहुत रूक्षपदार्थ खानेसे बहुत तेज खांसनेसे तथा विरेचन नस्य वमन और पुटपाकादिमें भूल या विपरीतता होजानेसे विदग्ध आहारके करनेसे वमनके होजानेसे क्षुधा और प्यास आदि वेगोंके रोकनेसे अथवा नेत्ररोगोंके निवृत्त होने-पर नेत्रोंमे क्षीणता रहजानेसे मनुष्य तिमिररोगीके समान देखने लगजाता है ॥ ९४ ॥

यथास्वं तत्र युञ्जीत दोषादीन् वीक्ष्य भेषजम् ॥

ऐसे होनेपर मनुष्यके दोषादिकोंको देखकर उचित रूपसे दोषानुसार औषधिका प्रयोग करे ॥ ९५ ॥

सूर्योपरागानलविद्युदादि-
विलोकनेनोपहतेक्षणस्य ।
सन्तर्पणं स्निग्धहिमादि कार्यं
तथाऽञ्जनं हेमघृतेन घृष्टम् ॥ ९६ ॥

जिस मनुष्यकी दृष्टि सूर्यकी ओर देखनेसे अथवा अन्य अग्नि विद्युत् आदि अति प्रकाशवाली वस्तुके देखनेसे नष्ट होगयी हो उस मनुष्यको सन्तर्पण स्निग्ध और शीतल चिकित्सा करनी चाहिये तथा सुवर्णको घृतमें घिसकर नेत्रोंमें अंजन करना चाहिये ॥ ९६ ॥

चक्षूरक्षायां सर्वकालं मनुष्यै-
र्यत्नः कर्तव्यो जीविते यावदिच्छा ।
व्यर्थो लोकोऽयं तुल्यरात्रिंदिवानां
पुंसामन्धानां विद्यमानेऽपि वित्ते ॥९७॥

मनुष्यको चाहिये कि, जब तक जीवनकी इच्छा हो तब तक हर समय नेत्रोंकी रक्षामें यत्नवान् रहना चाहिये. क्योंकि, नेत्रोंमें दृष्टि न होनेसे अंधपुरुषोंका जीवन जिनको दिन और रात्रिमें कुछ भेद प्रतीत नहीं होता धन रहते हुए भी यह जीवन व्यर्थ ही होता है॥९७

त्रिफला रुधिरस्रुतिर्विशुद्धि-
र्मनसो निर्वृतिरञ्जनं च नस्यम् ।
शकुनासनता सपादपूजा
घृतपानं च सदैव नेत्ररक्षा ॥ ९८ ॥
अहितादशनात्सदा निवृत्ति-
र्भृशभास्वचलसूक्ष्मवीक्षणाच्च ।
मुनिना निमिनोपदिष्टमेतत्
परमं रक्षणमीक्षणस्य पुंसाम् ॥ ९९ ॥

सामान्यरूपसे नेत्रोंकी रक्षाकेलिये त्रिफला सेवन करना, समय पर रक्तस्राव कराना, शरीरको समयपर रेचनादि कराकर शुद्ध रखना, मनको प्रसन्न रखना, नस्य कर्म करना, हित आहारका सेवन करना, पावोंका शुद्ध रखना और धूप कांटे आदिसे बचाकर रखना, घृत पीना और सदैव नेत्रोंकी रक्षा करना । तथा अहित आहार विहारसे निवृत्त रहना अधिक प्रकाशवाली वस्तुको न देखना, बहुत बारीक और दूर जानेवाली वस्तुको न देखना ये सब विधि मनुष्योंकी दृष्टिकी रक्षा करनेके लिये महात्मा निमिने परम हितकारी उपदेश किये है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

इति श्री वाग्भटाचार्य प्रणीताष्टांगहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां तिमिररोगप्रतिषेधो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातो लिङ्गनाशप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अब हम लिंगनाश अर्थात् दृष्टिनाशरोगकी चिकित्साका कथन करते है ॥

लिंगनाशनिकालनेकी आज्ञा ।

विध्येत्सुजातं निःप्रेक्षं लिङ्गनाशं कफोद्भवम् ।
आवर्तक्यादिभिः षड्भिर्विवर्जितमुपद्रवैः ॥१॥

कफके लिंगनाशको जब वह यथार्थ परिपक्व होकर दिखायी देनेसे बन्द होजाय और उसमें आगे कहे आवर्तकी आदि छः उपद्रव न हों तो ऐसे लिंगनाश पक्व कफज मोतियेको वेधन करके साफ करदेवे॥१॥

साध्यकफका लिंगनाश ।

सोऽसञ्जातो हि विषमो दधिमस्तुनिभस्तनुः ।
शलाकयाऽवकृष्टोऽपि पुनरूर्ध्वं प्रपद्यते ॥ २ ॥
करोति वेदनां तीव्रां दृष्टिं च स्थगयेत्पुनः ।
श्लेष्मलैः पूर्यते चाशु सोऽन्यैः सोपद्रवैश्चिरात् ३

क्योंकि ? यदि यह कफका लिंगनाश यथार्थरूपसे पककर स्थिर न होगया हो और दहीके पानीके समान पतला हो या विषम हो तो सलाईसे खींचा-हुआ भी फिर ऊपरको चलाजाता है और तीव्र वेदना करता है तथा फिर दृष्टिको रोक देता है, इसके अतिरिक्त अन्य कफके उपद्रवोंको करदेता है। इस कारण उपद्रव रहित यथार्थ परिपक्व लिंगनाशको ही निकालना चाहिये । अपरिपक्व और उपद्रव युक्तको नहीं छेड़ना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

श्लैष्मिकोलिङ्गनाशो हि सितत्वाच्छ्लेष्मणःसितः
तस्यान्यदोषाभिभवाद्भवत्यानीलता गदः ॥४॥

सब प्रकारके लिंगनाशोंमें केवल कफका लिंग-नाश ही कफके श्वेत होनेसे श्वेतवर्णका होता है। किसी दूसरे दोषका संसर्ग होनेसे यह नीला या काला लिंगनाश होता है । इनमें केवल कफका ही लिंगनाश साध्य होता है अन्य नीलआदि असाध्य होते है॥४॥

आवर्तकी आदि छः उपद्रव ।

तत्रावर्तचला दृष्टिरावर्तक्यरुणा सिता ।
शर्करार्कपयोलेशनिचितेव घनाति च ॥ ५ ॥

आवर्तकी आदि छः उपद्रवोंमे आवर्तकीमें दृष्टि चक्कर खाकर चलायमान होती है तथा अरुण और नीलवर्णकी होती है ॥

शर्करारोगमें दृष्टि आकके दूधसे ढकीहुई पृथ्वीके समान दृष्टि घन होती है ॥ ५ ॥

राजीमती दृङ्निचिता शालिशूकाभराजिभिः।
विषमच्छिन्नदग्धाभा सरुक्छिन्नांशुका स्मृता६

राजीमती नामक उपद्रवमें दृष्टि शालिधानके शूकोंके समान रेखाओंसे भरीहुई प्रतीत होती है ॥

छिन्नांशुका नामक उपद्रवमें दृष्टि पीड़ायुक्त विषम छेदन करके दग्ध हुईसी प्रतीति होती है ॥ ६ ॥

दृष्टिः कांस्यसमच्छाया चन्द्रकी चन्द्रकाकृतिः।
छत्राभा नैकवर्णा च छत्रकी नाम नीलिका ७॥

जिस दृष्टिमें कांस्यके समान छाया चन्द्रिकाके आकारकी हो उसको चन्द्रकी दृष्टि कहते हैं ।

जिस दृष्टिमें छत्रके समान अनेक वर्णकी नीलिकायें हों उसको छत्रकी दृष्टि कहते हैं ॥ ७ ॥

न विध्येदसिराहार्णां न दृक्पीनसकासिनाम् ।
नाजीर्णिभीरुवमितशिरःकर्णाक्षिशूलिनाम् ८॥

इन उपद्रवोंवाली दृष्टिमें भी शस्त्र कर्म भी नहीं करना चाहिये तथा जिन मनुष्योंकी सिरावेधन करना उचित न हो अथवा जिनके नेत्र दुखते हों या जिनको पीनस अथवा खांसी हो या अजीर्णरोगी भीरु या जिसको वमन होता हो या जिसके शिर, कान अथवा नेत्रमें शूलहो ऐसे पुरुषोंका लिंगनाश यदि साध्यभी हो तबभी नहीं निकालना चाहिये. क्योंकि, ऐसी अव-स्थामें लिंगनाशको निकालनेसे दृष्टिका सर्वथा नष्ट होजानेका भय है ॥ ८ ॥

लिङ्गनाशनिकालनेका क्रम ।

अथ साधारणे काले शुद्धसम्भोजितात्मनः ।
देशे प्रकाशे पूर्वाह्णे भिषग् जानूच्चपीठगः ॥९॥
यन्त्रितस्योपविष्टस्य स्विन्नाक्षस्य मुखानिलैः ।
अङ्गुष्ठमृदिते नेत्रे दृष्टौ दृष्ट्वोत्प्लुतं मलम्॥१०॥
स्वनासां प्रेक्षमाणस्य निष्कम्पं मूर्ध्नि धारिते ।
कृष्णादर्धाङ्गुलं मुक्त्वा तदर्धार्धमपाङ्गतः ११॥
तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैः शलाकां निश्चलं धृताम् ।
दैवच्छिद्रं नयेत्पार्श्वादूर्ध्वमामन्थयन्निव ॥१२॥
सव्यं दक्षिणहस्तेन नेत्रं सव्येन चेतरत् ।
विध्येत् ॥ १३ ॥–

जिस ऋतुमें बहुत गर्मी या शर्दी न हो ऐसे साधारण समयमें शुद्ध भोजन किये हुए और शुद्ध शरीरवाले पुरुषको प्रकाशवाले स्थानमें पूर्वाह्णके समय जानुके समान ऊंची पीठ तख्ता शय्या आदिपर विधिवत् बैठाकर यथार्थ यंत्रित करके मुखकी भाफसे उसका स्वेदन करे तदनन्तर अगूठेसे उसकी दृष्टिको

मलकर दृष्टिके मलको साफ करदेवे फिर रोगीको अपने नाकके सामने देखते हुए मस्तकको न कँपाते हुए टिकाकर नेत्रके कृष्णभागको आधा अंगुल छोड़ कर उस भागसे आधा अपांगकी ओर छोड़कर वैद्य अपने दहने हाथकी तर्जनी मध्यमा और अंगूठेसे धारण कीहुई निश्चल शलाकाको दैवकृत छिद्रमें पार्श्व भागसे ऊपरकी ओर लेजाय। दहने नेत्रमें बायें हाथसे और बायें नेत्रमें दहने हाथसे शेष शलाका लेजाकर लिंगनाशका वेधन करे॥ ९-१३॥

—सुविद्धे शब्दः स्यादरुक्चाम्बुलवस्रुतिः।
सान्त्वयन्नातुरं चानु नेत्रं स्तन्येन सेचयेत्।
शलाकायास्ततोऽग्रेण निर्लिखेन्नेत्रमण्डलम्१४
अबाधमानः शनकैर्नासां प्रतिनुदंस्ततः।
उच्छिङ्घनाच्चापहरेद्दृष्टिमण्डलगं कफम्॥ १५॥
स्थिरे दोषे चले वापि स्वेदयेदक्षि बाह्यतः।
अथ दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः॥१६॥
घृताप्लुतं पिचुं दत्त्वा बद्धाक्षं शाययेत्ततः।
विद्धादन्येन पार्श्वेन तमुत्तानं द्वयोर्व्यधे।
निवाते शयनेऽभ्यक्तशिरःपादं हिते रतम्१७॥

यथार्थ वेधन होजानेसे किंचित् शब्द होता है पीड़ा नहीं होती किंचित् जलका लव स्राव होता है। इसके अनन्तर रोगीको शान्ति देते हुए स्त्रीके दूधसे नेत्रको सेचन करे फिर शलाकाके अग्र भागसे नेत्रमंडलको विना बाधा पहुंचाये युक्तिसे शलाकाके अग्रभागके साथ धीरेसे दृष्टिमंडलके अग्रभागमें आयेहुए कफके लिंगनाशको निकाल देवे फिर नेत्रको यथार्थ द्रव्यसे सेचन करे। जब लिंगनाशका दोष निकालदेनेपर दृष्ट रूपको देखने लगे तो शलाका धीरेसे निकाल देवे। यदि दोष स्थिर हो तो भी यदि चल हो तो भी दृष्टिको बाहरसे स्वेदन करे और घृतका फोहा उसके नेत्रपर रखकर पट्टी बांधे और रोगीको जिस ओरके नेत्रमेंसे लिंगनाश निकाला हो उससे दूसरे पसवाड़ेमें सोने देवे या सीधा सोनेदेवे यदि दोनों नेत्रोंमेंसे दोष निकाला हो तो बिलकुल उत्तान लेटाना चाहिये इसको निर्वातस्थानमें लेटावे इसके शिर और पाँवमें तेल लगावे तथा हितउपचार करे॥ १४-१७॥

लिंगनाश निकालनेके अनन्तर हितचर्या।

क्षवथुं कासमुद्गारं ष्ठीवनं पानमम्भसः॥१८॥
अधोमुखस्थितिं स्नानं दन्तधावनभक्षणम्।
सप्ताहं नाचरेत्स्नेहपीतवच्चात्र यन्त्रणा॥ १९॥

इसके अनन्तर इसको छींक, खांसी, डकार, थूकना और जलका पीना नीचेको मुख करना, स्नान करना और दांतन करना, भोजन करना इन सबका त्याग कर देना चाहिये. क्योंकि, छींक आदिसे सुधारीहुई दृष्टि फिर बिगड़ सकती है। इस प्रकार सात दिनतक इसको बचाकर रखना चाहिये और स्नेहपान किये हुए मनुष्यके समान यंत्रणा रखना चाहिये और उचित पेया आदि पिलाना चाहिये॥ १८॥ १९॥

शक्तितो लङ्घयेत्सेको रुजि कोष्णेन सर्पिषा।
सव्योषामलकं वाट्यमश्नीयात्सघृतं द्रवम्२०॥
विलेपीं वा त्र्यहाच्चास्य क्वाथैर्मुक्त्वाक्षि सेचयेत्
वातघ्नैः सप्तमे त्वह्नि सर्वथैवाक्षि मोचयेत्॥२१॥

इसको शक्तिअनुसार लंघन करावे यदि नेत्रमें पीड़ा हो जाय तो सुखोष्ण घृतसे सेककरे तथा सोंठ, मिर्च, पीपल, आमले मिलाकर यवोंकी यवागू पतलीसी बनाकर घृत मिलाकर पिलावे फिर विलेपी पिलावे।

तथा तीन तीन दिनके अनन्तर नेत्रकी पट्टी खोल-कर वातघ्न क्वाथोंसे सेचन करे तथा फिर उसीप्रकार घृतका फोहा रखकर पट्टी बांधे. यदि कोई विकार उत्पन्न न हो तो सातवे दिन सर्वथा पट्टी खोल देनी चाहिये॥ २०॥ २१॥

अहितका निषेध।

यन्त्रणामनुरुध्येत दृष्टेरास्थैर्यलाभतः।
रूपाणि सूक्ष्मदीप्तानि सहसा नावलोकयेत्२२॥

इसके अनन्तर जबतक दृष्टि यथार्थ स्थिर हो तबतक इसको विशेषरूपसे हित आहार विहारकी यंत्रणामें रहना चाहिये तथा सूक्ष्म व प्रकाशवाले रूप सहसा नहीं देखने चाहिये॥ २२॥

आहित सेवनके दोष।

शोफरागरुजादीनामधिमन्थस्य चोद्भवः।
अहितैर्वेधदोषाच्च यथास्वं तानुपाचरेत्॥२३॥

क्योंकि १ अहित आहार विहारसे और वेधनके दोषसे सूजन, लालिमा, पीड़ा और अधिमंथ आदि उपद्रव होजाते हैं। यदि ऐसा होजाय तो उनकी यथा दोष विधिवत् चिकित्सा करदेनी चाहिये॥ २३॥

उपद्रवोंके यत्न।

कल्किताः सघृता दूर्वायवगैरिकसारिवाः।
मुखालेपे प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये।२४॥

दूर्वा, यव, गेरू और शारिवा इनका कल्क घी मिलाकर नेत्रोंपर लेप करनेसे नेत्रोंकी पीड़ा और लालिमा शान्त होजाती है॥ २४॥

ससर्षपास्तिलास्तद्वन्मातुलुङ्गरसाप्लुताः।
पयस्यासारिवानन्तामञ्जिष्ठामधुयष्टिभिः।
अजाक्षीरयुतैर्लेपः सुखोष्णः शर्मकृत्परम्॥२५॥

सरसों और तिलोंको विजौरे नीम्बूके रसमें भिगोवे यह सरसों और तिल तथा क्षीरकाकोली, शारिवा, कृष्णसारिवा, मंजीठ और मुलहठी इनका बकरीके दूधमें कल्क बना सुखोष्ण लेप करे तो सूजन, लालिमा और पीड़ा आदि नेत्रविकार शमन होजाते हैं॥२५॥

रोध्रसैन्धवमृद्वीकामधुकैश्छागलं पयः।
शृतमाश्च्योतनं योज्यं रुजारागविनाशनम्॥२६॥

पठानी लोध, सेन्धानमक, मुनक्का और मुलहठीको बकरेके दूधमें मिलाकर पकावे इस दूधसे नेत्रोंपर आश्च्योतन करनेसे पीड़ा और लालिमा दूर होती है॥ २६॥

मधुकोत्पलकुष्ठैर्वा द्राक्षालाक्षासितान्वितैः॥२७॥
वातघ्नसिद्धे पयसि शृतं सर्पिश्चतुर्गुणे।
पद्मकादिप्रतीवापं सर्वकर्मसु शस्यते॥ २८॥

अथवा मुलहठी, कमल, कूठ, द्राक्षा, लाख और मिश्री इनके कल्क और वातनाशकद्रव्योंसे सिद्ध किये हुए चार गुने दूधसे घृतको सिद्ध करे। इस घृतमें पद्मकादिगणके द्रव्योंका कल्क मिलाकर नेत्रोंपर लेप करनेसे अथवा आश्च्योतन करनेसे नेत्रोंकी पीड़ा लालिमा सूजन और अधिमंथ दूर होता है २७॥२८

सिरां तथानुपशमे स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत्।
मन्थोक्तां च क्रियां कुर्याद्व्यधे रूढेऽञ्जनं मृदु २९

यदि इन सब उपायोंसे भी नेत्रकी सूजन पीड़ा आदि दूर न हो तो स्नेहन स्वेदन करनेके अनन्तर इसकी सिरावेधनकरके रक्त निकाले. तदनन्तर नेत्राधिमंथमें कहीहुई सम्पूर्ण क्रिया करे. जब नेत्रका व्रण अच्छा होजाय और नेत्रमें विकार न रहे तब मृदु अञ्जनका प्रयोग करे॥ २९॥

आढकीमूलमरिचहरितालरसाञ्जनैः।
विद्धेऽक्ष्णि सगुडा वर्तिर्योज्या-
-दिव्याम्बुपेषिता॥ ३०॥

आढ़कीकी जड़, मिर्च, हड़ताल और रसौत इनको गुड़में मिलाकर बत्ती बनावे. यह बत्ती आकाशके जलमें घिसकर शस्त्रकर्मके अनन्तर रहीहुई शोथादिको निवृत्तकरनेके लिये नेत्रमें डाले॥ ३०॥

जातीशिरीषधवमेषविषाणपुष्प-
वैडूर्यमौक्तिकफलं पयसा सुपिष्टम्।
आजेन ताम्रममुना प्रतनु प्रदिग्धं
सप्ताहतः पुनरिदं पयसैव पिष्टम्॥
पिण्डाञ्जनं हितमनातपशुष्कमक्ष्णि
विद्धे प्रसादजननं बलकृच्च दृष्टेः॥३१॥

चमेलीके फूल, सिरसके फूल, धवके फूल, मेढासिंगीके फूल, वैडूर्यमणि और मोती इनको बकरीके दूधमें गाढ़ी पीसकर ताम्रपात्रमें पतला लेप करे फिर सात दिनके बाद इसको उतारकर बकरीके दूधमें पीस कर पिंडीसी बना लेवे. इसको छायामें सुखालेवे इसको बकरीके दूधमें घिसकर अथवा सूक्ष्म चूर्ण बनाकर संवारेहुए नेत्रमें डाले। यह दृष्टिको प्रसादन करता है और दृष्टिको बल देता है॥ ३१॥

स्रोतोजविद्रुमशिलाम्बुधिफेनतीक्ष्णै-
रस्यैव तुल्यमुदितं गुणकल्पनाभिः॥३२॥

काला सुरमा, मूंगा, मनसिल, समुद्रझाग और

काली मिर्च इनका बनायाहुआ बकरीके दूधमें पूर्ववत् पिंडांजन भी संवारीहुई आंखमें डालनेसे दृष्टिको बल देता है और नेत्रको प्रसादन करता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृत शिवदीपिका भाषाव्याख्यायां लिंगनाशप्रतिषेधो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः।

अथाऽतः सर्वाक्षिरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः।

अब हम सम्पूर्ण नेत्ररोगोंके विज्ञानवाले अध्यायकी व्याख्या करते है ॥

वातजनेत्राभिष्यन्दके लक्षण।

वातेन नेत्रेऽभिष्यन्दे नासानाहोऽल्पशोफता। शङ्खाक्षिभ्रूललाटस्य तोदस्फुरणभेदनम् ॥ १ ॥ शुष्काल्पा दूषिका शीतमच्छमश्रु चला रुजः। निमेषोन्मेषणं कृच्छ्राज्जन्तूनामिव सर्पणम्॥२॥ अक्ष्याध्मातमिवाभाति सूक्ष्मैः शल्यैरिवाचितम् स्निग्धोष्णैश्चोपशमनम् ॥ ३ ॥-

वायुके नेत्राभिष्यन्दरोगमें नासिकाका बन्द रहना थोड़ी सूजन होना तथा कनपटियें नेत्र भृकुटि और मस्तकमे तोद फड़कन और भेदनकीसी पीड़ा होना, नेत्रोंसे थोड़ी और सूखीहुईसी गीद निकलना, नेत्रोंसे शीतल और निर्मल आंसुओंका निकलना तथा चलायमान पीड़ा रहना, नेत्रोंका कष्टसे खुलना और मिचना नेत्रोंपर चींटियें फिरतीहुईसी प्रतीत होना नेत्र आध्मातके समान प्रतीत होना तथा सूक्ष्म शल्योंयुक्तसे प्रतीत होना. एवं स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंसे रोगकी शान्ती होना ये लक्षण होते है ॥ १-३ ॥

वाताधिमन्थके लक्षण।

-सोऽभिष्यन्द उपेक्षितः। अधिमन्थो भवेत्तत्र कर्णयोर्नादनं भ्रमः। अरण्येव च मथ्यन्ते ललाटाक्षिभ्रुवादयः ॥४॥

यदि इस वाताभिष्यन्दकी चिकित्सा न कीजाय तो अधिमंथरोग होजाता है। इस वाताधिमथमें दोनों कानोंमें शब्द होना, भ्रम होना तथा मस्तक, अक्षि और भृकुटियें आदि मथानीसे मथीहुईसी प्रतीत होने लगते हैं. इस रोगको वाताधिमन्थ कहते है ॥ ४ ॥

हताधिमन्थके लक्षण।

हताधिमन्थः सोऽपि स्यात् प्रमादात्तेन वेदनाः। अनेकरूपा जायन्ते व्रणो दृष्टौ च दृष्टिहा ॥ ५ ॥

यदि प्रमादसे वाताधिमंथकी चिकित्सा भी न कीजाय तो इससे नेत्रोंमें अनेक प्रकारकी पीड़ा और दृष्टिके नष्टकरनेवाले दृष्टिमें व्रण उत्पन्न होजाते है इस रोगको हताधिमंथ कहते हे ॥ ५ ॥

अन्यतोवातके लक्षण।

मन्याक्षिशङ्खतो वायुरन्यतो वा प्रवर्तयेत्। व्यथां तीव्रामपैच्छिल्यरागशोफं विलोचनम्। संकोचयति पर्यश्रु सोऽन्यतोवातसंज्ञितः ॥६॥

यदि वायु मन्याकी नाडियें कनपटियें और नेत्रोंमें अथवा ऊर्ध्वगत अन्य स्थानोंमेंसे प्रवृत्त होकर नेत्रोंमें तीव्र पीड़ाको उत्पन्न करे और नेत्रमें क्लेद, लालिमा और सूजन न होवें तथा नेत्रका संकोच हो और अश्रुपात हो इस रोगको अन्यतोवात कहते हे ॥ ६ ॥

वातविपर्ययके लक्षण।

तद्वन्नेत्रं भवेज्जिह्ममूनं वातविपर्यये ॥ ७ ॥

इसी प्रकार वायुसे नेत्रमें टेढापन होजाय और तीव्रपीड़ा हो नेत्र छोटा होजाय इस रोगको वातविपर्यय कहते हैं ॥ ७ ॥

पित्ताभिष्यन्दके लक्षण।

दाहो धूमायनं शोफः श्यावता वर्त्मनो बहिः। अन्तःक्लेदोऽश्रु पीतोष्णं रागः पीताभदर्शनम्। क्षारोक्षितक्षताक्षित्वं पित्ताभिष्यन्दलक्षणम् ८॥

नेत्रोंमें दाह, धूमसा निकलना प्रतीत होना, सूजन. नेत्रोंके पलकोंके बाहर श्यामता, नेत्रोंके भीतर क्लेद, पीले और उष्ण अश्रुओंका गिरना, नेत्रोंमें लालिमा, पीला दिखाई देना, तेजाब डालेहुएके समान नेत्रोंमें दाहवाले व्रणसे प्रतीत होना ये लक्षण पित्ताभिष्यन्द रोगके होते हैं ॥ ८ ॥

पित्ताधिमन्थके लक्षण।

ज्वलदङ्गारकीर्णाभं यकृत्पिण्डसमप्रभम्। अधिमन्थे भवेन्नेत्रम् ॥ ९ ॥-

यदि प्रमादवश पित्ताभिष्यन्दकी चिकित्सा न कीजाय तो नेत्रोंमें पित्ताधिमंथरोग होजाता है पित्ताधिमंथ रोगमें नेत्रोंमें जलतेहुए अंगार डालेहुएसे प्रतीत होना और नेत्रका वर्ण यकृत्पिण्डके समान वर्णवाला होजाता है ॥ ९ ॥

कफजनेत्राभिष्यन्दके लक्षण ।

–स्यन्दे तु कफसम्भवे ।
जाड्यं शोफो महान् कण्डूर्निद्रान्नानभिनन्दनम् ॥ १०॥
सान्द्रस्निग्धबहुश्वेतपिच्छावद्दूषिकाश्रुता ।
अधिमन्थे नतं कृष्णमुन्नतं शुक्लमण्डलम् ।
प्रसेको नासिकाध्मानं पांसुपूर्णमिवेक्षणम् ११॥

कफसे उत्पन्न हुए नेत्राभिष्यन्दमें नेत्रोंमें जडता, सूजन, बहुत खुजली होना, बहुत नींद आना, अन्नपर रुचि न होना, नेत्रोंमेंसे गाढ़ा चिकना बहुत और श्वेत तथा पिच्छाके समान क्लेद और अश्रुओंका बहना इस कफाधिमंथ रोगमें नेत्रका कृष्णभाग निम्नसा प्रतीत होना और शुक्लभाग ऊपरको उठ आना, मुखसे लार गिरना नासिकाका बन्द रहना और बालूरेतसे भरेहुएके समान नेत्रोंका प्रतीत होना ये लक्षण होते हैं॥ १०॥ ११

रक्तजनेत्राभिष्यन्दके लक्षण ।

रक्ताश्रुराजीदूषीकशुक्लमण्डलदर्शनम् ।
रक्तस्यन्देन नयनं सपित्तस्यन्दलक्षणम् ॥ १२॥

रक्तजनित नेत्राभिष्यन्दमें लालवर्णके आंसू गिरना और लालवर्णकी रेखायें लालवर्णका क्लेद गिरना और लालवर्णका ही नेत्रका शुक्लमंडल भी होजाना तथा पित्तके अभिष्यन्दके समान दाहादि प्रतीत होना ये लक्षण होते है ॥ १२ ॥

रक्ताधिमन्थके लक्षण ।

मन्थेऽक्षि ताम्रपर्यन्तमुत्पाटनसमानरुक् ॥ १३॥
रागेण बन्धूकनिभं ताम्यति स्पर्शनाक्षमम् ।
असृङ्निमग्नारिष्टाभं कृष्णमग्न्याभदर्शनम् १४

यदि रक्ताभिष्यन्दकी चिकित्सा न कीजाय तो रक्ताधिमंथ होजाता है । रक्ताधिमंथमें संपूर्ण नेत्र ताम्रवर्णके समान होजाता है और जैसे कोई नेत्रका उत्पाटन कररहा हो ऐसी पीड़ा उत्पन्न होती है बंधूकपुष्पके समान नेत्र लालवर्णका होजाता है । नेत्रोंमें चशक होती है । हाथका स्पर्श नेत्रपर सहन नहीं होसकता नेत्र रक्तमें डूबेहुए रीठेके फलके समान प्रतीत होता है और काला तथा अग्निके समान दिखाई देता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अधिमन्था यथास्वं च सर्वे स्यन्दाधिकव्यथाः।
शङ्खदन्तकपोलेषु कपाले चातिरुक्कराः ॥१५॥

सब प्रकारके अधिमंथ यथादोष अभिष्यन्दोंसे अधिक पीड़ा देनेवाले होते हैं । अधिमंथ प्रायः कनपटियें दांत कपोल और मस्तकमें अधिक पीड़ाको करनेवाले होते है ॥ १५ ॥

शुष्काक्षिपाकके लक्षण ।

वातपित्तोत्तरं घर्षतोदभेदोपदेहवत् ।
रूक्षदारुणवर्त्माक्षिकृच्छ्रोन्मीलनमीलनम् १६॥
विकूणनं विशुष्कत्वं शीतेच्छा शूलपाकवत् ।
उक्तः शुष्काक्षिपाकोऽयम् ॥ १७ ॥–

वातपित्त प्रधान नेत्राभिष्यन्दमें घर्ष, तोद, भेद और उपलेप होता है। तथा वर्त्म, रूक्ष और दारुणसे होजाते है एवं कष्टसे खुलते और मिचते हैं । नेत्रोंका संकोच होता है और नेत्र सूखे रहते हैं । शीतल पदार्थोंकी इच्छा रहती है नेत्रोंमें शूल और पाक होता है । इस वातपित्तजरोगको शुष्काक्षिपाक कहते हैं १६॥ १७

सन्निपातजअभिष्यन्दके लक्षण ।

–सशोफः स्यात्त्रिभिर्मलैः ।
सरक्तैस्तत्र शोफोऽतिरुग्दाहष्ठीवनादिमान् ।
पक्वोदुम्बरसंकाशं जायते शुक्लमण्डलम् ।
अश्रूष्णशीतविशदपिच्छलाच्छघनं मुहुः॥ १८॥

सन्निपातज नेत्राभिष्यन्दमें सूजन होती है यदि इसमें रक्तविकार भी सम्मिलित हो तो सूजन लालवर्णकी होती है नेत्रोंमें अत्यन्त पीड़ा और दाह होती है मुखसे थूंक गिरता है नेत्रका शुक्लमंडल पकेहुए गूलरके समान लालवर्णका होजाता है और नेत्रके आंसू कभी

उष्ण, कभी शीत, कभी निर्मल, कभी पिच्छल, कभी पतले, कभी गाढे होजाते है ॥ १८ ॥

अक्षिपाकात्ययके लक्षण।

अल्पशोफेऽल्पशोफस्तु पाकोऽन्यैर्लक्षणैस्तथा।
अक्षिपाकात्यये शोफःसंरम्भःकलुषाश्रुता १९
कफोपदिग्धमसितं सितं प्रक्लेदरागवत्।
दाहो दर्शनसंरोधो वेदनाश्चानवस्थिताः ॥२०॥

यदि अक्षिपाकात्ययरोग अल्प शोथवाला हो तो उसमें थोड़ी सूजन होती है और शुष्कपाक तथा अक्षिपाकके लक्षण होते हैं तथा अधिक सूजनवाले अक्षिपाकमें सूजन अधिक होना, नेत्रोंसे कलुषित आंसुओंका गिरना, नेत्रोंमें कफका लिपायमान होना, नेत्रका कृष्ण और श्वेतभाग क्लेदयुक्त और लालिमा युक्त होना, आखोंमें दाह दृष्टिका रुकना और अनवस्थित पीड़ा होनी ये लक्षण होते हैं. इसको अक्षिपाकात्यय कहते है ॥ १९ । २० ॥

अम्लोषितनेत्ररोगके लक्षण।

अन्नसारोऽम्लतां नीतः पित्तरक्तोल्बणैर्मलैः।
सिराभिर्नेत्रमारूढः करोति श्यावलोहितम्।
सशोफदाहपाकाश्रु भृशं चाविलदर्शनम्।
अम्लोषितोऽयम् ॥ २१ ॥--

पित्त और रक्तप्रधान दोषोंसे अन्नका सार खट्टा होकर जब सिराओंद्वारा नेत्रोंमें पहुंच जाता है तब नेत्रोंको नील और लाल वर्णके बना देता है। उससे नेत्रोंमें सूजन, दाह, पाक और बहुत आंसुओंका गिरना तथा नेत्रोंसे आविलरूप दिखाई देना ये लक्षण होते है इस रोगको अम्लोषितरोग कहते हैं॥ २१॥

--इत्युक्ता गदाः षोडश सर्वगाः ॥२२॥

इस प्रकार ये नेत्रोंके सोलह रोग सर्वनेत्रगत रोग कहे जाते है ॥ २२ ॥

इनमें साध्यासाध्य।

हताधिमन्थमेतेषु साक्षिपाकात्ययं त्यजेत् २३॥

इनमें हताधिमंथ और अक्षिपाकात्यय ये दो रोग असाध्य होनेसे त्याग देने योग्य हैं ॥ २३ ॥

वातोद्भूतः पञ्चरात्रेण दृष्टिं
सप्ताहेन श्लेष्मजातोऽधिमन्थः।
रक्तोत्पन्नो हन्ति तद्वत्त्रिरात्रात्
मिथ्याचारात् पैत्तिकः सद्य एव ॥२४॥

वातसे उत्पन्नहुआ नेत्राधिमंथ मिथ्या आहार विहारके करनेसे पांच दिनमें दृष्टिका नाश कर देता है। कफका अधिमंथ सात दिनमें दृष्टिका नाश करदेता है। रक्तका अधिमंथ तीन दिनमें दृष्टिका नाश कर देता है और इसी प्रकार मिथ्याचरणसे पित्तका अधिमंथ शीघ्र ही दृष्टिका नाश करदेता है. इस कारण नेत्ररोगमें मिथ्या आचरण न करके नेत्रोंकी रक्षा रखनी चाहिये ॥ २४ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टांगहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां सर्वाक्षिरोगविज्ञानं नाम पंचदशोऽध्यायः॥१५॥

षोडशोऽध्यायः।

अथ सर्वाक्षिरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अब हम सर्वाक्षिगतरोगोंकी चिकित्साको कथन करते हैं ॥

नेत्राभिष्यन्दके पूर्वरूपमें कर्तव्य।

प्राग्रूप एव स्यन्देषु तीक्ष्णगण्डूषनावनम्।
कारयेदुपवासं च कोपादन्यत्र वातजात् ॥ १ ॥

वायुके अभिष्यन्दको छोड़ सम्पूर्ण नेत्रोंके अभिष्यन्द रोगके पूर्वरूपमें तीक्ष्ण गडूष और नस्य कर्म करना चाहिये तथा उपवास करना चाहिये किन्तु वायुके नेत्राभिष्यन्दमें उपवास नहीं कराना चाहिये॥१॥

नेत्राभिष्यन्दकी सामान्य चिकित्सा।

दाहोपदेहरागाश्रुशोफशान्त्यै विडालकम्।
कुर्यात्सर्वत्र पत्रैलामरिचस्वर्णगैरिकैः ॥ २ ॥
सरसाञ्जनयष्ट्याह्वनतचन्दनसैन्धवैः।
सैन्धवं नागरं तार्क्ष्यं भृष्टं मण्डेन सर्पिषः॥३॥
वातजे घृतभृष्टं वा योज्यं शबरदेशजम्।
मांसीपद्मककाकोलीयष्ट्याह्वैः पित्तरक्तयोः।
मनोह्वाफलिनीक्षौद्रैः कफे सर्वैस्तु सर्वजे ॥४॥

सब प्रकारके नेत्राभिष्यन्दोंमें—दाह, उपलेप, आंसू और सूजनको शान्त करनेके लिये पत्रज, इलायची, मिर्चे, स्वर्णगेरू, रसौत, मुलहठी, तगर, चन्दन और सेंधानमकका लेप करना चाहिये।

वायुके नेत्ररोगमें—सैन्धव, सोंठ और रसौत घृतमंडमें भूनकर लेप करे अथवा सावरलोधके कल्कको घृतमें भूनकर लेप करे।

पित्त और रक्तके नेत्राभिष्यन्दरोगमें—बालछड, पद्मकाष्ठ, काकोली और मुलहठीका लेप करे। कफके नेत्राभिष्यन्दमें मनसिल, प्रियंगु और शहद मिलाकर लेप करे।

सन्निपातके अभिष्यन्दमें–दोषानुसार सब औषधियें मिलाकर लेप करे ॥ २-४ ॥

नेत्ररोगपर पोटली।

सितमरिचभागमेकं चतुर्मनोह्वं द्विरष्टशाबरकम्।
संचूर्ण्य वस्त्रबद्धं प्रकुपितमात्रेऽवगुण्ठनं नेत्रे॥५॥

सफेद मिरचें एक भाग, मनसिल चार भाग, साबरलोध सोलह भाग इनको बारीक पीसकर वस्त्रमें बांधकर पोटली बनावे यह पोटली नेत्ररोगके उत्पन्न होते ही नेत्रपर लगाना हितकारी होता है ॥ ५ ॥

कुलथीका चूर्णाञ्जन।

आरण्याच्छगणरसे पटावबद्धाः
सुस्विन्ना नखवितुषीकृताः कुलत्थाः।
तच्चूर्णं सकृदवचूर्णनान्निशीथे
नेत्राणां विधमति सद्य एव कोपम्॥ ६॥

जंगली कुलथीकी पोटली बांधकर गोबरके रसमें दोलायंत्रविधिसे स्वेदन करे फिर इसको निकालकर कुलथीके छिल्कोंको नखोंसे उतार देवे फिर निस्तुष कुलथीकी दालको बारीक पीसकर चूर्ण करे। यह चूर्ण रात्रिके समय नेत्रोंमें एकवार ही डालनेसे सद्यः हुआ नेत्राभिष्यन्द शमन होजाता है ॥ ६ ॥

घोषादि पोटली।

घोषाभयातुत्थकयष्टिरोध्रै-
र्मूती समूक्ष्मैः श्लथवस्त्रबद्धैः।
ताम्रस्थधान्याम्लनिमग्नमूर्ति-
रार्तिं जयत्यक्षिणि नैकरूपाम्॥ ७॥

कडुवी तोरी, हरीतकी, नीलाथोथा, मुलहठी और पठानीलोध इनको बारीक पीसकर बारीक कपडेमें ढीलीसी पोटली बांधे. इस पोटलीको ताम्रके पात्रमें डालेहुए धान्याम्लमें डुबोकर नेत्रोंपर फेरनेसे अनेक प्रकारके नेत्रोंकी पीडाको दूर करती है ॥ ७ ॥

दारुहरिद्राका सेचन।

षोडशभिः सलिलपलैः
पलं तथैकं कटंकटेर्याः सिद्धम्।
सेकोऽष्टभागशिष्टः
क्षौद्रयुतः सर्वदोषकुपिते नेत्रे॥ ८॥

जल १६ पल, दारुहलदीकी छाल १ पल मिलाकर पकावे जब आठवां भाग शेष रहे तो छानकर इसमें मधु मिलाकर नेत्रोंपर सेचन करनेसे सर्वदोष नेत्र पीड़ा दूर होती है ॥ ८ ॥

सौभांजनांजन।

वातपित्तकफसंनिपातजां
नेत्रयोर्बहुविधामपि व्यथाम्।
शीघ्रमेव जयति प्रयोजितः
शिग्रुपल्लवरसःसमाक्षिकः॥ ९॥

सुहांजनेके पत्रोंका रस मधु मिलाकर नेत्रोंमें आंजनेसे वात, पित्त, कफ और सन्निपातसे उत्पन्न हुई नेत्रोंकी अनेक प्रकारकी व्यथा शीघ्र ही दूर होती है ॥९

अन्यपिण्डी।

तरुणमुरुबूकपत्रं
मूलं च विभिद्य सिद्धमाजे क्षीरे।
वाताभिष्यन्दरुजं
सद्यो विनिहन्ति सक्तुपिण्डिका चोष्णा॥१०॥

एरण्डके नवीन पत्र और मूल कूटकर बकरीके दूधमें पकावे इस दूधका नेत्रोंपर सेचन करना वातज अभिष्यन्दकी पीडाको शीघ्र दूर करता है. अथवा इसी दूधमें बनायीहुई सत्तुओंकी सुखोष्ण पिंडी नेत्रोंपर रखनेसे वाताभिष्यन्दकी पीडाका शमन करती है ॥ १० ॥

वाताभिष्यन्दपर सेचन।

आश्च्योतनं मारुतजे क्वाथो बिल्वादिभिर्हितः।
कोष्णः सहैरण्डजटाबृहतीमधुशिग्रुभिः॥११॥

बृहत्पंचमूल, एरण्डकी जड़, बड़ीकटेली और मीठा सुहांजना इनके काथका वातजनित अभिष्यन्दमें नेत्रोंपर सेचन करे तो वाताभिष्यन्दकी पीड़ा शमन होती है॥ ११॥

ह्रीबेरवक्रशार्ङ्गेष्टोदुम्बरत्वक्षु साधितम्।
साम्भसा पयसाजेन शूलाश्च्योतनमुत्तमम्॥१२

नेत्रवाला, तगर, करंज और गूलरकी छाल इनके काथसे सिद्ध कियाहुआ बकरीका दूध नेत्रोंमें आश्च्योतन करनेसे नेत्रोंका शूल दूर होता है॥ १२॥

रक्त और पित्तके अभिष्यन्दपर सेचन।

मञ्जिष्ठारजनीलाक्षाद्राक्षार्द्धिमधुकोत्पलैः।
काथःसशर्करःशीतःसेचनं रक्तपित्तजित्॥१३॥

मजीठ, हलदी, लाख, द्राक्षा, मुलहठी और कमल इनमे अन्य सब वस्तुएं एक एक भाग और मुलहठी दो भाग इन सबको लेकर काथकरे इस काथमें मिश्री मिलाकर ठंढा करके नेत्रोंपर सेचन करे तो इससे रक्त और पित्तकी नेत्रपीड़ा शमन होती है॥ १३॥

रक्त और पित्तके अभिष्यन्दपर पोटलियें।

कसेरुयष्टयाह्वरजस्तान्तवे शिथिलं स्थितम्।
अप्सु दिव्यासु निहितं हितं स्यन्देऽस्रपित्तजे१४

कसेरु और मुलहठीका चूर्णकर वस्त्रमें डाल पोटली बांधे इस पोटलीको आकाशके जलमें भिगोकर नेत्रोंपर लगाना रक्तपित्तके अभिष्यन्दको शमन करता है॥१४

पुण्ड्रयष्टीनिशामृती प्लुता स्तन्ये सशर्करे।
छागदुग्धेऽथवा दाहरुग्रागाश्रुतिवर्तनी॥ १५॥

पंडियारेका छिलका, मुलहठी और हलदी इनके चूर्णको बारीक वस्त्रमें पोटली बना मिश्रीमिले स्त्रीके दूधमे भिगोकर नेत्रपर लगावे अथवा बकरीके दूधमें भिगोकर नेत्रोंपर लगावे तो नेत्रोंकी दाह, पीड़ा और आसुओंका बहना यह सब शमन होता है॥ १५॥

श्वेतरोध्रं समधुकं घृतभृष्टं सुचूर्णितम्।
वस्त्रस्थं स्तन्यमृदितं पित्तरक्ताभिघातजित् १६

पठानीलोध और मुलहठीको घीमें भूनकर बारीक चूर्ण करे इस चूर्णको बारीक वस्त्रमें बांधकर पोटली बनावे यह पोटली स्त्रीके दूधमें भिगोकर नेत्रोंपर लगानेसे पित्त और रक्तकी पीड़ा शमन होजाती है॥ १६॥

कफके अभिष्यन्दकी चिकित्सा।

नागरत्रिफलानिंबवासारोध्ररसः कफे।
कोष्णमाश्च्योतनम्।--

सोंठ, त्रिफला, नीम, वांसा और पठानीलोध इनके रसको किंचित् गर्मकरके नेत्रोंमे डालनेसे कफका अभिष्यन्द शमन होताहै॥

--मिश्रैर्भेषजैः सान्निपातिके॥ १७॥

सन्निपातके अभिष्यन्दमें दोषानुसार औषधियोंका मिलाकर चिकित्सा करनी चाहिये॥ १७॥

नेत्ररोगोंमें विरेचनक्रम।

सर्पिः पुराणं पवने पित्ते शर्करयान्वितम्।
व्योषसिद्धं कफे पीत्वा यवक्षारावचूर्णितम्।
स्रावयेद्रुधिरं भूयस्ततःस्निग्धं विरेचयेत्॥१८॥

वायुके नेत्ररोगोंमें केवल पुराना घी पिलाना चाहिये और पित्तके नेत्ररोगमें मिश्री मिलाहुआ घृत पिलाना चाहिये.कफके नेत्ररोगमें त्रिकटुसे सिद्ध कियाहुआ घृत जवाखारका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये। तदनन्तर स्नेहन होजानेपर रुधिर निकालना चाहिये। इसके अनन्तर फिर स्नेहन करके विरेचन करादेना चाहिये॥ १८॥

नेत्रशूलादिके यत्न।

आनूपवेसवारेण शिरोवदनलेपनम्।
उष्णेन शूले दाहे तु पयःसर्पिर्युतैर्हिमैः॥१९॥

यदि नेत्रोंमे शूल हो तो अनूपसंचारीजीवोंके वेसवारको गर्म करके शिर और नेत्रोंपर लेप करे। यदि नेत्रोंमे दाह हो तो दूध, घी मिलाकर शीतल लेप करे॥ १९॥

तिमिरप्रतिषेधं च वीक्ष्य युंज्याद्यथायथम्।
अयमेव विधिः सर्वो मन्थादिष्वपि शस्यते२०॥

यदि नेत्रोंमें तिमिरादि होजांय तो तिमिररोग प्रतिषेधाध्यायमें कहेहुए योगोंको यथादोष प्रयोग करे.

यही विधि इसी प्रकार नेत्राधिमंथ आदि रोगोंमें भी संपूर्णरूपसे प्रयोग करना चाहिये ॥ २० ॥

नेत्राधिमन्थकी विशेष चिकित्सा ।

अशांतौ सर्वथा मंथे भ्रुवोरुपरि दाहयेत्॥२१॥

यदि इन सब चिकित्साओंके सर्वथा करनेपर भी नेत्राधिमन्थ शान्त नहीं हो तो भ्रुवोंके ऊपर दाह कर्म करना (दाग देना) चाहिये ॥ २१ ॥

रूप्यं रूक्षेण गोदध्ना लिंपेन्नीलत्वमागते ।
शुष्के तु मस्तुना वर्तिर्वाताख्यामयनाशिनी२२

चांदीका पत्र लेकर उसके ऊपर चिकनाई रहित दहीका लेप करदेवे जब वह दही सूखजाय और नीले-वर्णकी होजाय तब उसकी बत्ती बनाले । वह बत्ती दहीके जलमें घिसकर नेत्रमें लगानेसे वातके नेत्र-रोगको शमन करती है ॥ २२ ॥

सुमनःकोरका शङ्खस्त्रिफला मधुकं बला ।
पित्तरक्तापहा वर्तिः पिष्टा दिव्येन वारिणा२३

चमेलीकी कलियें, काकोली, शंख, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुलहठी और बला इनको आकाशके जलमें पीसकर बत्ती बनावे. यह बत्ती नेत्रमें डालनेसे पित्त और रक्तके नेत्रविकारोंको शमन कर देती है ॥ २३ ॥

सैन्धवं त्रिफला व्योषं शङ्खनाभिः समुद्रजः ।
फेनः शैलेयकं सर्जो वर्तिः श्लेष्माक्षिरोगनुत्२४

सेंधानमक, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, शङ्खनाभि, समुद्रफेन, शिलारस और राल इनकी बत्ती बनाकर नेत्रमें प्रयोग करनेसे कफके नेत्र-रोग शमन होते है ॥ २४ ॥

पाशुपत अंजन ।

प्रपौण्डरिकं यष्ट्याह्वं दार्वी चाष्टपलं पचेत् ।
जलद्रोणे रसे पूते पुनः पक्के घने क्षिपेत्॥२५॥
पुष्पाञ्जनाद्दशपलं कर्षं च मरिचात्ततः ।
कृतश्चूर्णोऽथवा वर्तिःसर्वाभिष्यन्दसंभवान्२६॥
हन्ति रागरुजाघर्षान् सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत् ।
अयं पाशुपतो योगो रहस्यं भिषजां परम्२७॥

पंडियारा, मुलहठी, दारुहलदी ये प्रत्येक आठ आठ पल लेकर एक द्रोण जलमे पकावे आठवां भाग शेष रहनेपर छान लेवे फिर इस जलको रसक्रियाके अनुसार पकावे. जब वह गाढा होजाय तो इसमें फूलाहुआ जिस्त[१] आठ पल डालदेवे तथा एक कर्ष गोल मिर्चका सूक्ष्मचूर्ण मिलावे फिर इसकी बत्ती बनालेवे अथवा पीसकर सूखा अञ्जन बनावे यह नेत्रमें डालनेसे सब प्रकारके अभिष्यन्द तथा सब प्रकारके अभिष्यन्दोंसे होनेवाले लालिमा शूल और घर्ष आदि उपद्रवोंको शीघ्र शमन करता है तथा दृष्टिको प्रसादन करता है । यह पाशुपतनामक योग वैद्योंका परम रहस्य योग है ॥ २५-२७ ॥

शुष्काक्षिपाककी चिकित्सा ।

शुष्काक्षिपाके हविषः पानमक्ष्णोश्च तर्पणम् ।
घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन चाणुना ।
परिषेको हितश्चात्र पयःकोष्णं ससैन्धवम्२८॥

शुष्काक्षिपाकरोगमें घृतका पीना और नेत्रोंका तर्पण करना हितकारी होता है तथा जीवनीयगणसे सिद्ध कियेहुए घृतसे नेत्रोंका तर्पण करना और अणु तैलकी नस्य लेना हितकारी होता है। शुष्काक्षिपाकमें सेंधानमकयुक्त उष्ण दूधसे नेत्रोंपर सेचन करना भी हितकारी होता है ॥ २८ ॥

सर्पिर्युक्तं स्तन्यपिष्टमञ्जनं हि महौषधम् ।
वसा चानूपसत्त्वोत्था किञ्चित्सैन्धवनागरा२९।

सोंठको स्त्रीके दूधमें घिसकर घृत मिलाकर अंजन करना अथवा अनूपसंचारी जीवोंकी चर्बीमें सेंधा-नमक और सोंठ घिसकर अंजन करना शुष्काक्षिपाक रोगके लिये हितकारी होता है ॥ २९ ॥

घृताक्तान् दर्पणे घृष्टान् केशान् मल्लकसंपुटे ।
दग्ध्वाज्यपिष्टा लोहस्था सा मषी श्रेष्ठमञ्जनम्॥

मनुष्यके शिरके केश घृतमें डुबोकर सीसे (कांच) के खरलमें रगड़े फिर हाथीदांतके सम्पुटमें रखकर फूकदेवे फिर निकालकर घृतमें पीसकर लोहपात्रमें

१ पुष्पांजन--पंजाबमें जिस्तको अग्निमें फुलाकर श्वेत पुष्पके समान हलकी भस्म विशेष होजाने पर नेत्रोंमें डालते हैं यह पटियाला और मालेरकोटला आदिमें अधिक बनता है ।

रक्खे यह मसी (स्याही) शुष्काक्षिपाकमें श्रेष्ठ अंजन मानागया है ॥ ३० ॥

सशोफे चाल्पशोफे च स्निग्धस्य व्यधयेत्सिराम्।
रेकःस्निग्धैः पुनर्द्राक्षापथ्याक्काथत्रिवृद्घृतैः ३१

सूजनयुक्त अथवा अल्पसूजनयुक्त नेत्रपाकमें प्रथम स्नेहन करके सिरावेधन करे इसके अनन्तर फिर स्नेहन कर द्राक्षा और हरीतकीके काथमें निशोथ और घृत मिलाकर स्निग्ध विरेचन करावे ॥ ३१ ॥

श्वेतरोध्रं घृतभृष्टं चूर्णितं तान्तवस्थितम् ।
उष्णाम्बुना विमृदितं सेकः शूलहरः परम् ३२॥

सावरलोधको घीमें भूनकर चूर्ण करलेवे फिर इस चूर्णको वस्त्रमें पोटली बांधकर गर्मजलम इस पोटलीको मलकर नेत्रोंपर सेक करे तो नेत्रका शूल दूर करनेमें यह परमोत्तम योग है ॥ ३२ ॥

दार्वीप्रपौण्डरीकस्य क्काथो वाऽऽश्च्योतने हितः
सैन्धावांश्च प्रयुञ्जीत घर्षरागाश्रुरुग्घरान् ३३॥

दारुहलदी और पंडियारेका क्काथ नेत्रोंमे आश्च्योतन करना हितकारी होता है। तथा आगे कहेहुए घर्ष लालिमा अश्रु और पीडाके हरनेवाले संधावोंका प्रयोग करना भी हितकारी होता है ॥ ३३ ॥

संधाव।

ताम्रं लोहे मूत्रघृष्टं प्रयुक्तं
नेत्रे सर्पिर्धूपितं वेदनाघ्नम् ।
ताम्रैर्घृष्टो गव्यदघ्नः सरो वा
युक्तः कृष्णासैन्धवाभ्यां वरिष्ठः॥३४॥

ताम्रको लोहपात्रमें गोमूत्रके साथ घिसकर घृतसे धूपित करे इस घिसेहुए ताम्रसे बनीहुए कीचके समान औषधीको नेत्रमें लगानेसे नेत्रपीडा दूर होती है। इसी प्रकार गौके दहीमें या दहीके तोड़ (जल) में पीपल और सेंधालवण डालकर ताम्रसे लोहपात्रमें रगड़े यह औषधिभी घृतसे धूपितकर नेत्रमें डाले तो नेत्रशूलको दूर करनेमें सर्वश्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥

अन्य संधाव।

शङ्खं ताम्रे स्तन्यघृष्टं घृताक्तैः
शम्याः पत्रैर्धूपितं तद्यवैश्च ।
नेत्रे युक्तं हन्ति सन्धावसंज्ञं
क्षिप्रं घर्षं वेदनां चातितीव्राम् ॥३५॥

शंखको ताम्रपात्रमें स्त्रीका दूध डालकर घिसे फिर इस घृष्टको शमीके पत्र और यव घीसे चिकने कर इनकी धूनी देवे। यह संधावनामक औषधि नेत्रमें लगानेसे शीघ्रही घर्ष और तीव्र वेदनाको शमन करदेती है ॥ ३५ ॥

उदुम्बरफलं लोहे घृष्टं स्तन्येन धूपितम् ।
साज्यैःशमीच्छदैर्दाहशूलरागाश्रुहर्षजित्॥३६॥

गूलरके फलको लोहपात्रमे स्त्रीके दूधके साथ रगड़े फिर शमीवृक्षके पत्रोंको घीमें चिकने कर इसको धूनी देवे यह संधाव नेत्रोंमें डालनेसे नेत्रोंके दाह, शूल, लालिमा, अश्रु और घर्षका जीतनेवाला है ॥ ३६ ॥

शिग्रुपल्लवनिर्यासः सुघृष्टस्ताम्रसम्पुटे ।
घृतेन धूपितो हन्ति शोफघर्षाश्रुवेदनाः॥३७॥

सुहांजनेके पत्रोंका रस ताम्रके सपुटमे घर्षण करके घृतसे धूपित करे यह भी नेत्रकी सूजन घर्ष अश्रु और वेदनाको शमन करताहै ॥ ३७ ॥

तिलाम्भसा मृत्कपालं कांस्ये घृष्टं सुधूपितम् ।
निम्बपत्रैर्घृताभ्यक्तैर्घर्षशूलाश्रुरागजित् ॥३८॥

कांसीके पात्रमे तिलोंका जल डालकर उसमें मिट्टीके कपालका पुराना टुकड़ा घिसे फिर इसको घीमें भिगोये हुए निम्ब पत्रोंसे धूनी देवे। यह नेत्रमें डालनेसे घर्ष, शूल, अश्रु और लालिमाको जीतता है ॥ ३८ ॥

सन्धावेनाञ्जिते नेत्रे विगतौषधवेदने ।
स्तन्येनाश्च्योतनं कार्यं त्रिः परं नाञ्जयेच्च तैः३९

इस प्रकार किसी पात्रमें घिस कर धूपित की हुई औषधिको संधाव कहते हैं। यह संधाव नेत्रोंमें डालनेके अनन्तर जब औषध लीन होजाय और नेत्रोंकी वेदना शमन होजाय तो स्त्रीके दूधसे नेत्रोंको आश्च्योतन करना चाहिये। यह संधाव प्रायः तीनवारसे अधिक नेत्रोंमें नहीं डालने चाहिये ॥ ३९ ॥

तालीसपत्रचपलानतलोहरजाञ्जनैः ।
जातीमुकुलकासीससैन्धवैर्मूत्रपेषितैः ॥ ४० ॥

ताम्रमालिप्य सप्ताहं धारयेत्पेषयेत्ततः ।
मूत्रेणैवानु गुटिकाः कुर्याच्छायाविशोषिताः ।
ताःस्तन्यघृष्टा घर्षाश्रुशोफकण्डूविनाशनाः ४१

तालीसपत्र, पीपल, तगर सूक्ष्मलोहचूर्ण, कालासुरमा, चमेलीकी कलियें, कासीस और सेंधानमक इनको गोमूत्रमें पीस कर ताम्रपात्रमें लेप कर देवे फिर सात दिनके अनन्तर इस लेपको उतारकर फिर गोमूत्रमें बारीक पीसे तदनन्तर इसकी गोली बना छायामें सुखावे. ये गोलियें स्त्रीके दूधमें घिस कर नेत्रोंमें डालनेसे घर्ष, अश्रु, सूजन और खुजलीको विनाश करदेती हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

व्याघ्रीत्वङ्मधुकं ताम्ररजोजाक्षीरकाल्कितम् ।
शम्यामलकपत्राज्यधूपितं शोफरुक्प्रणुत् ४२॥

कटेली, दालचीनी, मुलहठी और ताम्रका सूक्ष्म चूर्ण इनको बकरीके दूधमें रगडकर कल्क बनावे इस कल्कको शमीवृक्ष और आंवलेके पत्रोंको घृतसे चिकने कर इन पत्रोंसे धूपित करे यह कल्क नेत्रोंकी सूजन और पीडाको दूर करता है ॥ ४२ ॥

अम्लोषितकी चिकित्सा ।

अम्लोषिते प्रयुञ्जीत पित्ताभिष्यन्दसाधनम् ॥

अम्लोषित नेत्ररोगमें पित्ताभिष्यन्दकी चिकित्साका प्रयोग करना चाहिये ॥ ४३ ॥

पिल्लरोग ।

उत्क्लिष्टाः कफपित्तास्रनिचयोत्थाःकुकूणकाः ।
पक्ष्मोपरोधःशुष्काक्षिपाकःपूयालसो बिसः ४४
पोथक्यम्लोषिताल्पाख्यस्यन्दमन्था—
—विनानिलात् ।
एतेऽष्टादश पिल्लाख्या दीर्घकालानुबन्धिनः ॥

कफका उत्क्लिष्ट, पित्तका उत्क्लिष्ट, रक्तका उत्क्लिष्ट सन्निपातका उत्क्लिष्ट, कुकूणक पक्ष्म रोध, शुष्काक्षिपाक, पूयालस, बिसवर्त्म, पोथकी अम्लोषित, अल्पशोथ और छः प्रकारके अभिष्यन्द और अधिमन्थ यह वायुके विना अठारह प्रकारके नेत्ररोग यदि बहुत कालतक चले- जांय तो इन सबको पिल्लरोग कहाजाता है ॥ ४४ ॥ ४५

चिकित्सा पृथगेतेषां स्वंस्वमुक्ताथ वक्ष्यते ४६

इन नेत्ररोगोंकी चिकित्सा अलग अलग कथन कर चुके हैं । अब इनके पिल्लीभूत होनेपर सामान्य चिकित्साको कथन करते हैं ॥ ४६ ॥

पिल्लरोगकी चिकित्सा ।

पिल्लीभूतेषु सामान्यादथ पिल्लाक्षिरोगिणः ।
स्निग्धस्य छर्दितवतः शिराविद्धहृतासृजः ।
विरिक्तस्य च वर्त्मानु निर्लिखेदाविशुद्धितः ४७

जब नेत्ररोग पुराना होनेपर पिल्लीभूत होजाय तब सामान्यरूपसे नेत्ररोगीको स्निग्ध करके वमन करावे तदनन्तर सिरावेधन करे और विरेचन करावे जब सिरावेधन और वमन विरेचनसे शरीर शुद्ध होजाय तब इसके वर्त्मोंको लेखन करे ॥ ४७ ॥

तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः ।
त्रिंशता काञ्जिकपलैःपिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत् ॥
पिल्लानपिल्लान् कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि ।
तत्सेकेनोपदेहस्तु कण्डूशोफांश्च नाशयेत ४९॥

नीलाथोथा एक पल, सफेद मिर्चें बीस इनको पीसकर तीस पल कांजीमें मिलादेवे फिर ताम्रपात्रमें डालकर रखदेवे इस जलसे नेत्रोंपर सेचन करनेसे बहुत वर्षोंके पुराने पिल्ल, उपदेह, खुजली और सूजन दूर होते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

करञ्जबीजं सुरसं सुमनःकोरकाणि च ।
संक्षुद्य साधयेत्क्वाथे पूते तत्र रसक्रिया ।
अञ्जनं पिल्लभैषज्यं पक्ष्मणां च परोहणम् ५०॥

करंजके बीज, तुलसी और चमेलीकी कलियें इनको कूटकर काथ बनावे उस काथको छानकर फिर पकावे तथा रसौतके समान रसांजन बनादेवे इस अंजनको पिल्लरोगमें पलकोंपर लगा देनेसे यह पक्ष्मोंको उत्पन्न करनेवाला है ॥ ५० ॥

रसाञ्जनं सर्जरसो रीतिपुष्पं मनःशिला ॥५१॥
समुद्रफेनं लवणं गैरिकं मरिचानि च ।
अञ्जनं मधुना पिष्टं क्लेदकण्डूघ्नमुत्तमम् ॥५२॥

रसौत, राल, फूलाहुआ जिस्त, मनसिल, समुद्र- झाग, सेंधानमक, गेरू और गोलमिर्चे इनको बहुत

बारीक पीसकर मधुमें मिलाकर फिर रगड़े। यह अंजन नेत्रोंमें डालनेसे क्लेद और खुजलीको दूर करनेमें परमोत्तम है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अभयारसपिष्टं वा तगरं पिल्लनाशनम्।
भावितं बस्तमूत्रेण सस्नेहं देवदारु च ॥ ५३ ॥

हरीतकीके रसमें तगरको घिसकर नेत्रमें लगाना अथवा देवदारु बकरीके मूत्रमें घिसकर घृत मिलाकर नेत्रमें लगाना पिल्लरोगको दूर करता है ॥ ५३ ॥

सैन्धवत्रिफलाकृष्णाकटुकाशङ्खनाभयः।
सताम्ररजसो वर्तिःपिल्लशुक्रकनाशिनी ॥५४॥

सेंधानमक, हरड़, बहेडा, आंवला, पीपल, कुटकी, शंखकी नाभि और ताम्रभस्म इनकी बनायीहुई बत्ती नेत्रोंके पिल्ल और फोलेको दूर करती है ॥ ५४ ॥

पुष्पकासीसचूर्णो वा सुरसारसभावितः।
ताम्रे दशाहं तत् पैल्ल्यपक्ष्मशातजिदञ्जनम् ५५

पुष्पकासीसके चूर्णको तुलसीके रसमें भावना देकर ताम्रके पात्रमें दश दिन रक्खे फिर इसको नेत्रोंमें लगानेसे यह अंजन पिल्लरोग और पक्ष्मशात रोगको दूर करता है ॥ ५५ ॥

अलं च सौवीरकमञ्जनं च
ताभ्यां समं ताम्ररजश्च सूक्ष्मम्।
पिल्लेषु रोमाणि निषेवितोऽसौ
चूर्णः करोत्येकशलाकयापि ॥ ५६ ॥

हरताल और सौवीरांजन एक एक भाग, ताम्रका सूक्ष्मचूर्ण दो भाग इनको रगडकर सूक्ष्मांजन बनावे इसकी एक सलाई नित्य पिल्लरोगमें लगानेसे पलकोंमें सुन्दर रोम उत्पन्न होजाते हैं ॥ ५६ ॥

लाक्षानिर्गुण्डीभृङ्गदार्वीरसेन
श्रेष्ठं कार्पासं भावितं सप्तकृत्वः।
दीपः प्रज्वाल्यः सर्पिषा तत्समुत्था
श्रेष्ठा पिल्लानां रोपणार्थे मषी सा ॥ ५७ ॥

लाख, सम्भालु, भृंगराज और दारुहलदी इन सबके रसोंमे सात सात बार रूईको भावना देवे फिर इस रूईको बत्ती बनाकर घीमें भिगोकर दीपक जलावे और इस दीपकके ऊपर कोई पात्र रखकर स्याही उतार लेवे। यह स्याही पिल्लरोगियोंके नेत्रोंमें डालनेसे रोपण करती है अर्थात् व्रणोंको भर देती है ॥ ५७ ॥

वर्त्मावलेखं बहुशस्तद्वच्छोणितमोक्षणम्।
पुनःपुनर्विरेकं च नित्यमाश्च्योतनाञ्जनम् ॥५८
नावनं धूमपानं च पिल्लरोगातुरो भजेत्।
पूयालसे त्वशान्तेऽन्तर्दाहःसूक्ष्मशलाकया५९॥

पिल्लरोगीके पलकोंको लेखन करना और बार बार रक्त निकालना, विरेचन देना, नित्य आश्च्योतन कर्म और नेत्रोंमें अंजन डालना तथा नस्य देना और धूमपान कराना ये सब काम पिल्लरोगीको प्रायः करते रहना चाहिये।

यदि पूयालसरोग या पिल्लरोग इन उपायोंसे शान्त न हो तो सूक्ष्म सलाईसे पलकोंके रोमोंके मूलमें दाहकर्म करना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

चतुर्नवतिरित्यक्ष्णोर्हेतुलक्षणसाधनैः।
परस्परमसंकीर्णाःकात्स्न्र्येन गदिता गदाः६०॥

इस प्रकार हेतु, लक्षण और चिकित्सा सहित नेत्रोंके चौरानवे रोग कहे हैं. यह रोग परस्पर एक दूसरेसे मिलेहुए सम्पूर्णरूपसे कथन कर दिये है॥६०

नेत्रोंके लिये हितआहारविहार।

सर्वदा च निषेवेत स्वस्थोऽपि नयनप्रियः।
पुराणयवगोधूमशालिषष्टिककोद्रवान् ॥ ६१ ॥
मुद्गादीन् कफपित्तघ्नान् भूरिसर्पिःपरिप्लुतान्।
शाकं चैवंविधं मांसं जाङ्गलं दाडिमं सिताम्६२
सैन्धवं त्रिफलां द्राक्षां वारि पाने च नाभसम्।
आतपत्रं पदत्राणं विधिवद्दोषशोधनम् ॥६३॥

स्वस्थमनुष्यको भी सदैव नेत्रोंके हितका सेवन करना चाहिये तथा पुराने यव, गेहूं, शालिचावल, साठी चावल, कोद्रव और मूंग आदि कफपित्तनाशक अन्नोंमें बहुतसा घृत मिलाकर खाना चाहिये, तथा इसी प्रकारके शाक, जांगलमांस, अनार, मिश्री, सेंधालवण, त्रिफला और द्राक्षा इनका भोजनमें प्रयोग करना चाहिये। पीनेके लिये आकाशका गांग-

जल श्रेष्ठ होता है तथा नेत्रोंकी रक्षाके लिये छाता और पावोंमें जूता पहन कर चलना चाहिये. ऋतुजनित दोषोंको यथासमय शोधन करदेना चाहिये॥६१-६३॥

वर्जयेद्वेगसंरोधमजीर्णाध्यशनानि च ।
शोकक्रोधदिवास्वप्ननिशाजागरणानि च ।
विदाहि विष्टम्भकरं यच्चेहाहारभेषजम् ॥ ६४ ॥

मनुष्यको मलमूत्रादि वेगोंका रोकना, अजीर्णमें भोजन करना, अध्यशन, शोक, क्रोध, दिनमें सोना, रात्रिको जागना, विदाही अन्नपानका खाना, विष्टम्भकारक आहारका सेवन करना ये सब नेत्रोंके हितके लिये त्याग देना चाहिये ॥ ६४ ॥

द्वे पादमध्ये पृथुसंनिवेशे
सिरे गते ते बहुधा च नेत्रे ।
ता म्रक्षणोद्वर्तनलेपनादीन्
पादप्रयुक्तान्नयनं नयन्ति ॥ ६५ ॥

दोनों पावोंके मध्यमें दो छोटी छोटी सिरायें है जिनका मनुष्यके नेत्रोंका संबंध है। ये दोनों सिरायें पावोंमें मर्दन कियेहुए तेल उद्वर्तन और लेपनादिके गुणको नेत्रतक लेजाते हैं ॥ ६५ ॥

मलोष्णसंघट्टनपीडनाद्यै-
स्ता दूषयन्ते नयनानि दुष्टाः ।
भजेत्सदा दृष्टिहितानि तस्माद्
उपानदभ्यञ्जनधावनानि ॥ ६६ ॥

पावोंमें मल, उष्णता, संघट्टन और पीड़नादिसे ये नाड़ियें दूषित होकर नेत्रोंको भी दूषित कर देती हैं। इस कारण पांवोंमें दृष्टिके हितके लिये नित्य तैलका लगाना, पांवोंको संवार कर धोना और जूता पहिनकर चलना यह सदैव सेवन करना चाहिये ॥६६

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृत-शिवदीपिका भाषाव्याख्यायां सर्वाक्षिरोगप्रतिषेधो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।
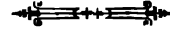
अथाऽतः कर्णरोगविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः ।

अब हम कर्णरोग विज्ञानीय नामक अध्यायकी व्याख्या करते है अर्थात् कानके रोगोंके विज्ञानका कथन करते है ॥

वातज कर्णशूलके लक्षण ।

प्रतिश्यायजलक्रीडाकर्णकण्डूयनैर्मरुत् ।
मिथ्यायोगेन शब्दस्य कुपितोऽन्यैश्च कोपनैः॥१॥
प्राप्य श्रोत्रशिराः कुर्याच्छूलं स्रोतसि वेगवत ।
अर्धावभेदकं स्तम्भं शिशिरानभिनन्दनम्॥२॥
चिराच्च पाकं पक्कं तु लसीकामल्पशः स्रवेत् ।
श्रोत्रं शून्यमकस्माच्च स्यात्सञ्चारविचारवत्॥३॥

प्रतिश्याय होना, जलक्रीड़ा करना और कानोंमें खुजलाना तथा शब्दका मिथ्यायोग करना इनसे और ऐसे ही अन्य बात कोपकारक कारणोंसे कुपितहुआ वायु सुननेवाली नाडियोंमें पहुंचकर वेगपूर्वक शूलको कानके स्रोतमें उत्पन्न कर देता है। तब अर्धावभेदक (आधे शिरमें शूल) और स्तम्भको उत्पन्न करता है। तब शीतल वस्तुपर इसकी इच्छा नहीं होती। कानका देरमें पकना और पक जानेपर लसीकाके समान अल्प स्राव होना, कानमें अकस्मात् शून्यतासी प्रतीत होना और वह शून्यता और शूलसंचारी होना अर्थात् कभी अकस्मात् शूलादि प्रतीत होना और कभी न होना ये वायुके कर्णशूलमें लक्षण होते हैं ॥ १-३ ॥

पित्तजकर्णशूलके लक्षण ।

शूलं पित्तात्सदाहोषा शीतेच्छा श्वयथु ज्वरम् ।
आशु पाकं प्रपक्कं च सपीतलसिकास्रुति ।
सा लसीका स्पृशेद्यद्यत्तत्तत्पाकमुपैति च ॥४॥

पित्तके कानशूलमें दाह, उषणवत् पीड़ा होना, शीतल वस्तुओंकी इच्छा, सूजन और ज्वर होते हैं तथा कानका शीघ्र पकजाना और पकनेपर पीलेवर्णकी लसिकाका स्राव होना यह लसिका जिस जिस स्थानमें स्पर्श करे उस उस स्थानकाभी पकजाना ये लक्षण पित्तके कर्णरोगमें होते हैं ॥ ४ ॥

कफके कर्णशूलका लक्षण।

कफाच्छिरोहनुग्रीवागौरवं मन्दता रुजः।
कण्डूः श्वयथुरुष्णेच्छा पाकाच्छ्वेतघना स्रुतिः५

कफके कर्णरोगमें शिर, हनु और गर्दनमें भारीपन होना, मन्द पीड़ा होना, खुजली, सूजन शीतवस्तुओंकी इच्छा और पकनेपर श्वेत तथा गाढ़ा स्राव होना ये लक्षण होते है ॥ ५ ॥

रक्तके कर्णशूलका लक्षण।

करोति श्रवणे शूलमभिघातादि दूषितम्।
रक्तं पित्तसमानार्तिं किञ्चिद्वाधिकलक्षणम्॥६॥

अभिघातादि कारणोंसे दूषितहुआ रक्त कानमें पित्तके समान पीड़ाको करदेता है। उसमें पित्तसे कुछ अधिक लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

सन्निपातके कर्णशूलका लक्षण।

शूलं समुदितैर्दोषैः सशोफज्वरतीव्ररुक्।
पर्यायादुष्णशीतेच्छं जायते श्रुतिजाड्यवत्।
पक्वं सितासितारक्तघनपूयप्रवाहि च॥ ७ ॥

सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्नहुए कर्णशूलमें सूजन, ज्वर, तीव्रपीड़ा, कभी शीतलवस्तुओंकी कभी गरम वस्तुओंकी इच्छा होना, कम सुनाई देना, पकनेपर श्वेत नील और लालवर्णकी घन पूयका वहना ये लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

कर्णनादरोगके लक्षण।

शब्दवाहिसिरासंस्थे शृणोति पवने मुहुः।
नादानकस्माद्विविधान् कर्णनादं वदन्ति तम् ८

यदि वायु शब्दके वहनकरनेवाली सिराओंमें स्थित होजाय तो मनुष्य बार बार अकस्मात् अनेक प्रकारके शब्दोंको सुनता है। इस प्रकारके कानमें शब्द होनेको कर्णनादरोग कहते हैं ॥ ८ ॥

बाधिर्यकी सम्प्राप्ति।

श्लेष्मणानुगतो वायुर्नादो वा समुपेक्षितः।
उच्चैः कृच्छ्राच्छ्रुतिं कुर्याद्बधिरत्वं क्रमेण च॥९॥

कफसे अनुगत हुआ वायु जब श्रवण करनेवाली नाड़ियोंमें पहुंच जाता है। अथवा कर्णनादकी चिकित्सा न कीजाय तो मनुष्य बहुत ऊंची आवाजसे बोला जाय तब श्रवण करता है फिर धीरे धीरे बधिर होजाता है ॥ ९ ॥

प्रतिनाहके लक्षण।

वातेन शोषितः श्लेष्मा स्रोतो लिंपेत्ततो भवेत्।
रुग्गौरवं पिधानं च स प्रतीनाहसंज्ञितः ॥१०॥

कानमें वायु जब कफको सुखा देता है तो कानको उस सूखेहुए कफसे लेपसा करके भारीपन करदेता है और कानको मंदसा करदेता है। इस रोगको प्रतिनाह कहते है ॥ १० ॥

कर्णकंडू और कर्णशोथके लक्षण।

कण्डूशोफौ कफाच्छ्रोत्रे स्थिरौ तत्संज्ञया स्मृतौ

यदि कफसे कानमें खुजली होजाय तो उसको कर्णकंडू कहते हैं। यदि कानमें कफसे स्थिर सूजन होजाय उसको कर्णशोथ कहते हैं ॥ ११ ॥

पूतिकर्णकके लक्षण।

कफो विदग्धः पित्तेन सरुजं नीरुजं त्वपि।
घनपूतिबहुक्लेदं कुरुते पूतिकर्णकम् ॥ १२ ॥

कानमें पित्तसे विदग्ध हुआ कफ पीड़ायुक्त अथवा विना पीड़ासे कानमेंसे दुर्गंधियुक्त गाढ़ा और बहुतसा क्लेद वहावे इसको पूतिकर्णक कहते हैं ॥ १२ ॥

कृमिकर्णके लक्षण।

वातादिदूषितं श्रोत्रं मांसासृक्क्लेदजां रुजम्।
खादन्तो जन्तवः कुर्युस्तीव्रां स कृमिकर्णकः १३

यदि वातादि दोषोंसे दूषित हुए कर्णमें मांस, रक्त और क्लेद जनित पीड़ाको उत्पन्न करते हुए कृमि खाते हों और तीव्र पीड़ाको उत्पन्न करते हैं; इसको कृमिकर्णकरोग कहते हैं ॥ १३ ॥

कर्णविद्रधिके लक्षण।

श्रोत्रकण्डूयनाज्जाते क्षते स्यात्पूर्वलक्षणः।
विद्रधिः पूर्ववच्चान्यः ॥ १४ ॥--

यदि कानको खुजलानेसे क्षत होकर कानमें विद्रधिके लक्षणोंवाली विद्रधि उत्पन्न होजाय उसको कर्णविद्रधि कहते हैं ॥ १४ ॥

अर्श, अर्बुद और बधिरके लक्षण।

--शोफोऽर्शोर्बुदमीरितम्।
तेषु रुक्पूतिकर्णत्वं बधिरत्वं च बाधते ॥ १५ ॥

पहिले जो अर्श और अर्बुदके लक्षण कह आये हैं सो कानमें अर्श या अर्बुद होजानेसे उनमें यदि पीड़ा और पूतिकर्ण कमी होजाय तो मनुष्यका कान बधिर होजाता है। यह अर्श अधिमांस और अर्बुद नेत्रके वर्त्मरोगमें कह आये हैं ॥ १९ ॥

कूचिकर्णके लक्षण।

गर्भेऽनिलात्संकुचिता शष्कुली कूचिकर्णकः॥१६

यदि गर्भमें ही बालकके कानकी शष्कुली वायुसे संकुचित होजाय उसको कूचिकर्ण कहते हैं ॥ १६ ॥

कर्णपिप्पलीके लक्षण।

एको नीरुगनेको वा गर्भे मांसाङ्कुरः स्थिरः।
पिप्पली पिप्पलीमानः ॥ १७ ॥–

गर्भावस्थामें यदि कानमें पीड़ारहित एक अथवा अनेक स्थिर मांसांकुरोंकी पिप्पली उत्पन्न होजाय इसको कर्णपिप्पली कहते हैं ॥ १७ ॥

विदारिकाके लक्षण।

–सन्निपाताद्विदारिका।
सवर्णः सरुजः स्तब्धः श्वयथुः स उपेक्षितः।
कटुतैलनिभं पक्वः स्रवेत् कृच्छ्रेण रोहति।
सङ्कोचयति रूढा च सा ध्रुवं कर्णशष्कुलीम्॥१८

कानमें त्वचाके वर्णके समानवर्णवाली पीड़ायुक्त स्तब्ध, सूजन सन्निपातसे उत्पन्न होजाती है इसको विदारिका कहते हैं। यदि इस विदारिकाका यत्न न कियाजाय तो यह पककर कटुतैलके समान स्राव करने लगती है और इसका व्रण बड़ी कठिनतासे अच्छा होता है। व्रण अच्छा होजानेपर भी यह कानकी शष्कु-लीको अवश्य संकुचित करदेती है ॥ १८ ॥

पालिशोषके लक्षण।

सिरास्थःकुरुते वायुःपालीशोषं तदाह्वयम्॥१९॥

यदि वायु कानकी सिराओंमें स्थित होजाय तो कानकी पालीको सुखादेता है इसको पालीशोष कहते हैं॥१९॥

कर्ण तांत्रिकाके लक्षण।

कृशा दृढा च तन्त्रीवत् पाली वातेन तन्त्रिका॥२०

यदि वायुसे कर्णपाली कृश और दृढ तथा तंत्रीके समान होजाय इसको तंत्रिका कहते हैं ॥ २० ॥

परिपोटके लक्षण।

सुकुमारे चिरोत्सर्गात्सहसैव प्रवर्धिते।
कर्णे शोफः सरुक्पाल्यामरुणः परिपोटवान्।
परिपोटः स पवनात् ॥ २१ ॥–

यदि बालकके कानमें वेधनकर उसको धीरे धीरे न बढ़ाकर शीघ्र सहसा बढ़ायाजाय तो कर्णपालीमे सूजन, पीड़ा और लालवर्णका स्फोट होजाता है। इस वायुके रोगको परिपोटरोग कहते है ॥ २१ ॥

उत्पातके लक्षण।

–उत्पातः पित्तशोणितात्।
गुर्वाभरणभाराद्यैः श्यावो रुग्दाहपाकवान्।
श्वयथुः स्फोटपिटकारागोषाक्लेदसंयुतः॥२२॥

कानमें बहुत भारी आभूषण आदि पहननेसे कानमें कालेवर्णका शोथ, पीड़ा, दाह, पाक, स्फोट, पिटिका, लालिमा, उषणवत् पीड़ा और क्लेद होजाता हैं इस पित्तरक्तजनित व्याधिको उत्पात कहते है॥२२॥

उन्मंथ या गल्लिरके लक्षण।

पाल्यां शोफोऽनिलकफात्सर्वतो निर्व्यथःस्थिरः
स्तब्धःसवर्णःकण्डूमानुन्मन्थो गल्लिरश्च सः॥२३

कर्णपालीपें वात और कफसे पालीके सब ओर व्यथारहित स्थिर सूजन होजाय वह कठिन हो त्वचाके वर्णके समान वर्णवाली हो खुजलीयुक्त हो इसको उन्मंथ अथवा गल्लिर कहते है ॥ २३ ॥

दुःखवर्धनके लक्षण।

दुर्विद्धे वर्धिते कर्णे सकण्डूदाहपाकरुक्।
श्वयथुः सान्निपातोत्थः स नाम्ना दुःखवर्धनः॥२४

दुर्विद्धसे कानके छिद्रको बढ़ायाजाय तो उसमें खुजली, दाह, पाक, पीड़ा और सूजन उत्पन्न होजाती है इस सन्निपातजरोगको दुःखवर्धन कहते हैं॥२४॥

लेह्यापिटिकाके लक्षण।

कफासृक्कृमिजाः सूक्ष्माः सकण्डूक्लेदवेदनाः।
लेह्याख्याः पिटिकास्ता हि लिह्युः–
--पालीमुपेक्षिताः ॥ २५ ॥

कफ, रक्त और कृमियोंसे उत्पन्नहुई पालीमें छोटी छोटी पिटिका, खुजली क्लेद और वेदना युक्त

होती हैं. यदि इनकी चिकित्सा न कीजाय तो ये कर्णपालिको चाटजातीहैं। इनको लेह्यपिटिका कहते हैं२५

साध्यासाध्य।

पिप्पली सर्वजं शूलं विदारी कूचिकर्णकः।
एषामसाध्यायाप्यैका तन्त्रिकान्यांस्तु साधयेत्
पञ्चविंशतिरित्युक्ताः कर्णरोगा विभागतः २६

कर्णरोगोंमें कर्णपिप्पली त्रिदोषज शूल विदारिका और कूचीकर्णक ये पांच रोग असाध्य होते है। केवल एक तंत्रिका याप्य होती है. शेष सम्पूर्ण रोग साध्य होते है। इस प्रकार साध्यासाध्यादि विभागसे कानके पचीस प्रकारके रोग कथन किये गये है॥२६॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां कर्णरोगविज्ञानीयो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः।

अथाऽतः कर्णरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः॥

अब हम कर्णरोगोंकी चिकित्साके अध्यायकी व्याख्या करते है॥

वातजकर्णशूलकी चिकित्सा।

कर्णशूले पवनजे पिबेद्रात्रौ रसाशितः।
वातघ्नसाधितं सर्पिः कर्णं स्विन्नं च पूरयेत्१॥
पत्राणां पृथगश्वत्थबिल्वार्कैरण्डजन्मनाम्।
तैलसिन्धूत्थदिग्धानां स्विन्नानां पुटपाकतः।
रसैः कवोष्णैस्तद्वच्च मूलकस्यारलोरपि॥ २॥

वातज कर्णशूलमें मांसरस आदि भोजन करनेके अनन्तर रात्रिको वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीवे और कानको स्वेदन करनेके अनन्तर पृथक् पृथक् अश्वत्थ या बिल्व या एरण्ड अथवा आकके पत्रोंका तेल और सेन्धानमक लगाकर पुटपाक करके निकालाहुआ रस सुहाता सुहाता गरम कानमें भरे अथवा इसी प्रकार सलजम या सोनापाठेका रस स्वेदन कियेहुए कानमें सुखोष्ण भरे तो वातज कर्णशूल शमन हो जाता है॥ १॥ २॥

गणे वातहरेऽम्लेषु मूत्रेषु च विपाचितः।
महास्नेहो द्रुतं हन्ति सुतीव्रामपि वेदनाम्॥३॥

वातनाशकगणके द्रव्योंके कल्क अम्लकांजी आदि और गोमूत्रसे सिद्ध कियाहुआ महास्नेह (तेल, घृत, वसा, मज्जा) कानमें डालनेसे कानकी तीव्र पीडाको भी शमन करदेता है॥ ३॥

महतः पञ्चमूलस्य काष्ठात्क्षौमेण वेष्टितात्।
तैलसिक्तात्प्रदीप्ताग्रात् स्नेहः सद्यो रुजापहः।
योज्यश्चैवं भद्रकाष्ठात्कुष्ठात्काष्ठाच्च सारलात् ४

बृहत्पंचमूलकी पृथक् पृथक् लकडियोंपर रेशमी वस्त्र लपेट कर उनपर तिलतैल सेचन कर दीपकके समान जलावे. उनके नीचे एक पात्र रख देवे उनमेंसे नीचे टपका हुआ तेल कानमें डालनेसे कानकी पीडाको तुरन्त शमन करदेता है।

इसी प्रकार देवदारु, कूठ और सरलकाष्ठपर रेशमी वस्त्र लपेटकर अग्निके योगसे टपकायाहुआ तेल, घी कानमें डालनेसे कानकी पीडाको शमन कर देता है॥४

वातव्याधिप्रतिश्यायविहितं हितमत्र च॥ ५॥

कानके शूलमें वातव्याधि और प्रतिश्यायमें कही हुई चिकित्साभी हितकारी होती है॥ ५॥

वातजकर्णशूलमें शीतल जलका निषेध।

वर्जयेच्छिरसा स्नानं शीताम्भःपानमह्न्यपि ६॥

वातजकर्णशूलमें ठंढेजलसे शिरसहित स्नान करना तथा दिनमेंभी शीतल जल पीना त्यागदेना चाहिये६॥

पित्तजकर्णरोगकी चिकित्सा।

पित्तशूले सितायुक्तघृतास्निग्धं विरेचयेत्।
द्राक्षायष्टिशृतं स्तन्यं शस्यते कर्णपूरणम्॥७॥

पित्तके कर्णशूलमें मिश्री मिलाकर घी पीना और स्निग्ध विरेचन कराना हितकारी होता है तथा द्राक्षा और मुलहठीसे सिद्ध कियाहुआ स्त्रीका दूध कानमें डालना हितकारी होता है॥ ७॥

यष्ट्यनन्ताहिमोशीरकाकोलीरोध्रजीवकैः।
मृणालबिसमञ्जिष्ठासारिवाभिश्च साधयेत्॥८॥
यष्टीमधुरसप्रस्थं क्षीरद्विप्रस्थसंयुतम्।
तैलस्य कुडवं नस्यपूरणाभ्यञ्जनैरिदम्।
निहन्ति शूलदाहोषाः केवलं क्षौद्रमेव वा॥९॥

मुलहठी, सारिवा, चन्दन, खश, काकोली, लोध्र, जीवक,, कमलकी डंडी, कमलकंद, मंजीठ और श्वेतसारिवा इनके कल्क तथा मुलहठीका एक सेर रस और दो सेर दूध मिलाकर एक कुडव तेलको सिद्ध करे। यह तैल नस्यदेनेमें कानमें भरनेके लिये और अंजनमे प्रयोग करनेसे कानके शूल दाह और उषणवत्पीड़ाको शमन करता है। इसी प्रकार केवल मधुका प्रयोग करना भी शूलादिकोंका शमन करता है॥८॥९॥

यष्ट्यादिभिश्च सघृतैः कर्णौ दिह्यात्समंततः १०

पित्तके कर्णरोगमें यही उपरोक्त मुलहठी आदि द्रव्य घृतमें मिलाकर कानपर सब ओर लेप करना चाहिये ॥ १० ॥

कफजकर्णरोगकी चिकित्सा।

वामयेत् पिप्पलीसिद्धसर्पिःस्निग्धं कफोद्भवे।
धूमनावनगण्डूषस्वेदान् कुर्यात्कफापहान्११॥

कफके कर्णरोगमें पीपलसे सिद्ध कियाहुआ घृत पिलाकर स्निग्ध करनेके अनन्तर वमन करा देनाचाहिये। उसके अनन्तर कफनाशक धूम, नस्य, गंडूष और स्वेदोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ११ ॥

लशुनार्द्रकशिग्रूणां सुरंग्या मूलकस्य च।
कदल्याःस्वरसःश्रेष्ठःकदुष्णः कर्णपूरणे॥१२॥

कफके कर्णशूलमे लहसुन, अदरख, सुहांजना, लालसुहांजना, मूलक और केला इनमेंसे किसीका स्वरस गर्म कर कानमे भरनेसे कफका कर्णशूल दूर होजाता है ॥ १२ ॥

अर्काङ्कुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्तांल्लवणान्वितान्।
सन्निधाय स्नुहीकाण्डे कोरिते तच्छदावृतान्।
स्वेदयेत्पुटपाकेन स रसः शूलजित्परम् ॥१३॥

आकके अंकुरोंका तैलमें भिगोकर और लवण मिलाकर कांजीमें पीसे फिर इस कल्कको थोहरके काडमे भर कर थोहरके पत्तोंसे लपेटकर पुटपाक करे फिर इसमेंसे निकाल कर इसका रस निचोड लेवे यह सुखोष्णरस कानमे भरना कफका शूल दूर करनेमें परमोत्तम है ॥ १३ ॥

रसेनं बीजपूरस्य कपित्थस्य च पूरयेत्।
सूक्तेन पूरयित्वा वा फेनेनान्ववचूर्णयेत्॥१४॥

कानमें बिजौरेका रस अथवा कपित्थका रस अथवा खट्टा सूक्त भरकर उसमें समुद्रझागका चूर्ण बुरकावे तो कर्णपीड़ा शमन होजाती है ॥ १४ ॥

अजाविमूत्रवंशत्वक्सिद्धं तैलं च पूरणम्।
सिद्धं वा सार्षपं तैलं हिङ्गुतुम्बुरुनागरैः॥१५॥

बकरीका मूत्र और बांसके छिल्केके कल्कसे तैल सिद्ध करके कानमें भरे अथवा हींग, धनियां और सौंफके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ सरसोंका तेल कानमें भरे तो कर्णशूल दूर होता है ॥ १५ ॥

रक्तजकर्णरोगकी चिकित्सा।

रक्तजे पित्तवत्कार्यं सिरां चाशु विमोक्षयेत्१६॥

रक्तजनित कर्णपीड़ामें पित्तके समान सब चिकित्सा करनी चाहिये तथा सिरा वेधनकर रक्त निकाल देना चाहिये ॥ १६ ॥

कर्णपाकका यत्न।

पक्के पूयवहे कर्णे धूमगण्डूषनावनम्।
युंज्यान्नाडीविधानं च दुष्टव्रणहरं च यत्॥१७॥

यदि कान पकजाय और उसमेंसे पीव बहने लगे तो धूमपान करना, गंडूष धारण करना तथा नस्य लेना और दुष्टव्रणनाशक नाडीविधानका प्रयोग करना चाहिये ॥ १७ ॥

स्रोतःप्रमृज्य दिग्धं तु द्वौ कालौ पिचुवर्तिभिः।
पूरयेद्‌ धूपयित्वा तु माक्षिकेण प्रपूरयेत् ॥१८

दोनों समय कानके स्रोतको रुईकी बत्तीके साथ साफ करके व्रणनाशक धूप देनाचाहिये तथा धूपके अनन्तर मधु डालदेना चाहिये ॥ १८ ॥

सुरसादिगणक्काथफाणिताक्तां च योजयेत्।
पिचुवर्तिं सुसूक्ष्मैश्च तच्चूर्णैरवचूर्णयेत् ॥ १९॥

सुरसादि गणके क्वाथमे फाणित मिलाकर उसमें भिगोयीहुई रुईकी बत्ती कानमें प्रयोग करना चाहिये. तथा सुरसादिगणका सूक्ष्मचूर्ण कानमें बुरकाना चाहिये ॥ १९ ॥

शूलक्लेदगुरुत्वानां विधिरेष निवर्तकः ॥ २० ॥

यही विधि कानके शूल क्लेद और भारीपनको दूर करनेके लिये प्रयोग करनाचाहिये ॥ २० ॥

कर्णस्रावका यत्न।

प्रियङ्गुमधुकाम्बष्ठाधातक्युत्पलपर्णिभिः।
मञ्जिष्ठालोध्रलाक्षाभिः कपित्थस्य रसेन च।
पचेत्तैलं तदास्रावं निगृह्णात्याशु पूरणात् २१॥

प्रियंगु, मुलहठी, अम्बष्ठा, धावेके फूल, कमल, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मजीठ, लोध्र और लाख इनके कल्क और कपित्थके रससे सिद्ध कियाहुआ तैल कानमें भर देनेसे कानका स्राव शीघ्र दूर होजाता है २१

कर्णनादका यत्न।

नादबाधिर्ययोः कुर्याद् वातशूलोक्तमौषधम्।

कर्णनाद और बाधिर्यरोगमें वातशूलमें कहीहुई चिकित्सा करनी चाहिये।

श्लेष्मानुबन्धे श्लेष्माणं प्राग्जयेद्वमनादिभिः२२

यदि कर्णनाद और बाधिर्यमें कफका अनुबंध भी हो तो प्रथम वमनादिकोंसे कफको जीतकर फिर कर्णनाद और बाधिर्यनाशक चिकित्सा करनी चाहिये॥ २२॥

एरण्डादितैल।

एरण्डशिग्रुवरुणमूलकात्पत्रजे रसे।
चतुर्गुणे पचेत्तैलं क्षीरे चाष्टगुणान्विते॥२३॥
यष्टयाह्वक्षीरकाकोलीकल्कयुक्तं निहन्ति तत्।
नादबाधिर्यशूलानि नावनाभ्यङ्गपूरणैः॥२४॥

एरण्ड, सुहांजना, वरुण और मूलक इनके पत्रोंका रस ४ सेर, तेल एक सेर, दूध आठ सेर तथा मुलहठी और क्षीरकाकोलीका कल्क एक पल इन सबको मिलाकर तेल सिद्ध करे. यह तेल नस्य, अभ्यंग और कानभरनेमें प्रयोग करे तो कर्णनाद, बहरापन और शूल ये सब नष्ट होजाते है॥ २३॥ २४॥

अतीसादि तैल।

पक्कं प्रतिविषाहिङ्गुमिशित्वक्स्वर्जिकोषणैः
ससूक्तैः पूरणात्तैलं रुक्स्रावश्रुतिनादनुत्॥२५

अतीस, हींग, सौंफ, दालचीनी, सर्जा और कालीमिर्चे इनका कल्क और सूक्त मिलाकर सिद्ध किया हुआ तैल कानमे डालनेसे कानकी पीड़ा, स्राव और कर्णनादको नष्ट करता है॥ २५॥

कर्णनादे हितं तैलं सर्षपोत्थं च पूरणे॥२६॥

कर्णनादरोगमे सरसोंका तेल कानमें डालना हितकारी होता है॥ २६॥

क्षार तैल।

शुष्कमूलकखण्डानां क्षारो हिङ्गु महौषधम्।
शतपुष्पावचाकुष्ठदारुशिग्रुरसाञ्जनम्।
सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकौद्भिदसैन्धवम्॥२७॥
भूर्जग्रन्थिबिडं मुस्ता मधुसूक्तं चतुर्गुणम्।
मातुलुङ्गरसस्तद्वत् कदलीस्वरसश्च तैः॥२८॥
पक्कं तैलं जयत्याशु सुकृच्छ्रानपि पूरणात्।
कण्डूं क्लेदं च बाधिर्यं पूतिकर्णं च रुक्कृमीन्।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयेषु च॥ २९॥

सूखीहुई मूलीके टुकड़ोंका क्षार, हींग, सोंठ-सौंफ, वच, कूठ, देवदारु, सुहांजना, रसौत, सोंचर, नमक, यवाखार, सज्जीखार, औद्भिदनमक, सेंधा, नमक, भोजपत्रकी ग्रंथि, विड़लवण, नागरमोथा, मुलहठी इन सबका कल्क तथा चार गुना सिरका-बिजौरेका रस और केलेका रस मिलाकर तैल सिद्ध करे। यह तैल कानमे भरनेसे कष्टसाध्य कानके रोगोंको भी शमन करता है तथा कानकी खुजली, क्लेद, बाधिर्य, पूतिकर्ण, शूल, कानके कृमि इन सबको दूर करता है। यह क्षारतैल मुख और दांतोंके रोगोंको भी शमन करनेमे श्रेष्ठ है॥ २७–२९॥

अथ सुप्ताविव स्यातां कर्णौ रक्तं हरेत्ततः।

यदि कान सोयेहुएके समान शून्य होजाय तो विधिपूर्वक रक्त निकालना चाहिये।

सशोफक्लेदयोर्मन्दश्रुतेर्वमनमाचरेत्॥ ३०॥

यदि कानोंमें सूजन, क्लेद और मन्द स्राव भी हो तो रोगीको वमन कराना चाहिये॥ ३०॥

असाध्य बाधिर्य।

बाधिर्यं वर्जयेद्बालवृद्धयोश्चिरजं च यत्॥३१॥

बाधिर्यरोग (बहरापन) यदि बालक और वृद्ध पुरुषको हो और बहुत पुराना हो तो उसको असाध्य समझना चाहिये॥ ३१॥

कर्णप्रतिनाहकी चिकित्सा।

प्रतिनाहे परिक्लेद्य स्नेहस्वेदैर्विशोधयेत्।
कर्णशोधनकेनानु कर्णौ तैलस्य पूरयेत्॥३२॥

ससूक्तसैन्धवमधोर्मातुलुङ्गरसस्य वा ।
शोधनाद् रूक्षतोत्पत्तौ घृतमण्डस्य पूरणम् ॥३३॥

कानके प्रतिनाहरोगमें प्रथम स्नेहन स्वेदन करके दोषको क्लेदित कर कर्ण शोधन शलाकासे कानको शोधन करे फिर कानोंको तेलसे पूर्ण करदेवे. अथवा सूक्त सेंधानमक बिजौरेका रस और मधु मिलाकर कानमें डाले. यदि कानको शोधनकरनेसे कानमें रूक्षता उत्पन्न होजाय तो कानमें घृतमंड डालकर कानको भर-देना चाहिये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

कर्णमलादिकी चिकित्सा ।

क्रमोऽयं मलपूर्णेऽपि कर्णे कण्डूं कफापहम् ।
नस्यादि तद्वच्छोफेऽपि कटूष्णैश्चात्र लेपनम् ॥

यदि कान मलसे पूर्ण हो तो भी कानमें प्रतिनाह नाशक क्रिया करनी चाहिये । यदि कानमें खुजली हो तो कफनाशक नस्यकर्मादि चिकित्सा करनी चाहिये । कानकी सूजनमें भी इसी विधिका प्रयोग करना चाहिये । तथा कटु और उष्ण लेपोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३४ ॥

पूतिकर्णादिकी चिकित्सा ।

कर्णस्रावोदितं कुर्यात्पूतिकृमिककर्णयोः ।
पूरणं कटुतैलेन विशेषात् कृमिकर्णके ॥३५॥

पूतिकर्णमें और कृमिकर्णमें कर्णस्रावमें कहीहुई चिकित्सा करनी चाहिये और इन कर्णरोगोंमें विशेष कर कानको कटुतैलसे पूरण करना चाहिये ॥३५॥

कर्णविद्रधिकी चिकित्सा ।

वमिपूर्वा हिता कर्णविद्रधौ विद्रधिक्रिया ।

कर्णविद्रधिरोगमें प्रथम वमन कराकर फिर विद्रधिकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

पित्तोत्थकर्णशूलोक्तं कर्तव्यं क्षतविद्रधौ ॥३६॥

कानकी क्षतविद्रधिमें पित्तजनितकर्णशूलकी चिकित्सामें कहेहुए योगोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३६ ॥

कर्णार्शकी चिकित्सा ।

अर्शोऽर्बुदेषु नासावद् ॥ ३७ ॥

कर्णार्श और कर्णार्बुदरोगमें नासार्श और नासार्बुदमें कहीहुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३७ ॥

कर्णविदारिकाकी चिकित्सा ।

--आमा कर्णविदारिका ।
कर्णविद्रधिवत्साध्या यथादोषोदयेन च ॥३८॥

कर्णविदारिका यदि पकी न हो तो उसको कर्ण-विद्रधिके समान जीतना चाहिये तथा उसके दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

पालीशोषकी चिकित्सा ।

पालीशोषेऽनिलश्रोत्रशूलवन्नस्यलेपनम् ।
स्वेदं च कुर्यात् स्विन्नां च पालीमुद्वर्तयेत्तिलैः ।
प्रियालबीजयष्ट्याह्वहयगन्धायवान्वितैः ।
ततः पुष्टिकरैः स्नेहैरभ्यङ्गं नित्यमाचरेत् ।३९॥

पालीशोषरोगमें वायुके कर्णशूलके समान प्रथम लेपन स्वेदनादि करे फिर स्वेदनके अनन्तर तिल, चिरौंजी, मुलहठी गेहूं और यव इनको बारीक पीसकर इनसे पालीको उद्वर्तन करे तदनन्तर पुष्टिकारक तैल घृतोंसे नित्य पालीको चिकना रक्खे ॥ ३९ ॥

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डजीवकैः ।
तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीनां पुष्टिकृत्परम् ॥४०॥

शतावरी, असगंध, क्षीरकाकोली, एरण्ड और जीवक इनके कल्क और दूधसे सिद्ध कियाहुआ तैल पालियोंको परम पुष्टि देनेवाला है ॥ ४० ॥

कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि पाचितम् ।
आनूपमांसक्वाथे च पालीपोषणवर्धनम् ॥४१॥

जीवनीयगणके कल्क दूध और आनूपसंचारी जीवोंके मांसरससे सिद्ध कियाहुआ तैल सूखीहुई पालीको पुनः बढ़ा देता है ॥ ४१ ॥

पालीं छित्वातिसंक्षीणां शेषां सन्धाय पोषयेत्

यदि पाली बिलकुल सूख गयी हो तो अति क्षीण पालीका छेदन करके नई कर्णपाली संधान कर पोषण करे ।

याप्यैवं तन्त्रिकाख्यापि परिपोटेऽप्ययं विधिः॥

इसी प्रकार तंत्रिकारोगको यापन करना चाहिये और यही विधि कानके परिपोटरोगमें करने चाहिये ४२

उत्पाते शीतलैर्लेपो जलौकोहृतशोणिते ॥४३॥

कानके उत्पातरोगमें जोंक लगाकर रक्त निकाल देनेके अनन्तर शीतल लेप करना चाहिये ॥ ४३ ॥

उत्पातकी चिकित्सा।

जम्ब्वाम्रपल्लवबलायष्टीरोध्रतिलोत्पलैः।
सधान्याम्लैः समञ्जिष्ठैः सकदम्बैः ससारिवैः।
सिद्धमभ्यञ्जनं तैलं विसर्पोक्तघृतानि च॥४४॥

जामनके पत्र, आमके पत्र, बला, मुलहठी, लोध्र, तिल, कमल, मजीठ, कदम्ब और सारिवा इनके कल्क और धान्याम्लसे सिद्ध कियाहुआ तैल उत्पातरोगमे लगाना हितकारी है।

अथवा विसर्परोगमें कहेहुए घृतोंका लेप करना भी उत्पातरोगको शमन करता है ॥ ४४ ॥

उन्मंथकी चिकित्सा।

उन्मन्थेऽभ्यञ्जनं तैलं गोधाकर्कवसान्वितम्।
तालपत्राश्वगन्धार्कबाकुचीतिलसैन्धवैः।
सुरसालाङ्गलीभ्यां च सिद्धं तीक्ष्णं च नावनम्४५

कानके उन्मंथरोगमें तालपत्र, असगंध, आकके पत्र, बावर्ची, तिल और सेंधानमक इनका कल्क मिलाकर सिद्ध कियाहुआ तैल गोधा और केकड़ेकी चर्बी मिलाकर कानपर लगाना हितकारी होता है तथा सुरसा और लांगलीसे सिद्ध कियेहुए तैलसे तीक्ष्ण नस्य देना हितकारी होता है ॥ ४५ ॥

दुर्विद्धकी चिकित्सा।

दुर्विद्धेऽश्मन्तजम्ब्वाम्रपत्रक्वाथेन सेचिताम्।
तैलेन पालीं स्वभ्यक्तां सुश्लक्ष्णैरवचूर्णयेत् ४६
चूर्णैर्मधुकमञ्जिष्ठाप्रपुण्ड्राह्वनिशोद्भवैः।
लाक्षाविडङ्गसिद्धं च तैलमभ्यञ्जने हितम्४७॥

दुर्विद्धपालीमें अश्मन्त, जामुन और आमके पत्तोंके काथसे पालीको सेचन कर तदनन्तर तेल लगाकर उसके ऊपर मुलहठी, मंजीठ, पंडियारा और हलदीका बहुत बारीक कियाहुआ चूर्ण बुरकावे। दुर्विद्धपालीमें लाख और वायविडंगसे सिद्ध कियाहुआ तैल अभ्यंगके लिये हितकारी होता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

परिलेहिकाकी चिकित्सा।

स्विन्नां गोमयजैः पिण्डैर्बहुशः परिलेहिकाम्४८
विडङ्गसारैरालिम्पेदुरभ्रीमूत्रकल्कितैः।
कोटजेङ्गुदकारञ्जबीजशम्याकवल्कलैः॥ ४९॥
अथवाभ्यञ्जने तेषां कटुतैलं विपाचयेत्।
तमालपत्रमरिचमदनैर्लेहिका व्रणे ॥ ५० ॥

परिलेहिकामें प्रथम गोबरको गरम कर उसके पिंडसे बार बार स्वेदन कर वायविडंगके सारको मेढ़के मूत्रमें कल्ककर लेप करे. अथवा इन्द्रजव, इंगुदीके फल, करंजके बीज और अमलतासका छिलका इनको मेढ़के मूत्रमे पीसकर लेपकरे अथवा इन्हीं द्रव्योंमें निम्बपत्र, मिर्च और मैनफल मिलाकर इनसे कटु तैलको सिद्ध करे यह तैल अवलेहिकाके व्रणपर लगानेसे अवलेहिकाको दूर करता है ॥ ४८–५० ॥

छिन्नं तु कर्णं शुद्धस्य बन्धमालोच्य यौगिकम्।
शुद्धासृं लागयेल्लग्ने सद्यश्छिन्ने विशोधनम् ५१

यदि कान कटगया हो तो उसको साफकर यौगिक बंधनसे बांधे यदि कान तुरन्त कटा हो और लगाहुआ हो तो उसको उसी प्रकार जोड़कर यथोचित बंधनसे बांध देवे और मनुष्यको विरेचनादिसे शोधन करावे ॥ ५१ ॥

कर्णसंधान विधि।

अथ ग्रथित्वा केशान्तं कृत्वा छेदमलेखनम्।
निवेश्य संधिं सुषमं न निम्नं न समुन्नतम्॥५२॥
अभ्यज्य मधुसर्पिर्भ्यां पिचुप्लोतावगुण्ठितम्।
सूत्रेणागाढशिथिलं बद्ध्वा चूर्णैरवाकिरन्॥५३॥
शोणितस्थापनैर्व्रण्यमाचारं चादिशेत्ततः।
सप्ताहादामतैलाक्तं शनैरपनयेत् पिचुम्॥५४॥

यदि कान बनाना हो तो प्रथम उसके केशोंको इस प्रकार गांठ देकर जिससे वे कानके समीप न आसके फिर छेदन लेखन आदि उचित रीतिपर करके संधिको यथार्थरूपसे जोड़कर जिससे वह ऊंची या नीची न रहे फिर घृत और मधु लगाकर रुईके फोहेसे या पतले वस्त्रके फोहेसे यथार्थ लपेटकर सूत्रसे यथार्थ रूपसे बांध देवे तथा रक्तको स्थापन करनेवाले और व्रणको अच्छा करनेवाले द्रव्योंके चूर्णको बुरकाकर यथार्थ बांधकर परिचारकको उसकी रक्षाके लिये

नियुक्त करे और रोगीको हित आचारका उपदेश करे. तदनन्तर सातवें दिन कच्चे तेलसे सेचनकर धीरे धीरे सूत्र और फोहा आदि उतारे ॥५२-५४॥

सुरूढं जातरोमाणं श्लिष्टसंधिसमस्थिरम् ।
सुवर्ष्माणं सुरागं च शनैः कर्णं विवर्धयेत् ॥५५॥

जब देखे कि, कान यथार्थ जुड़गये है रोम उत्पन्न होगये हैं सन्धि यथार्थरूपसे जुड़गई है यथार्थ लालिमा आदि उसमें आगयी हो त्वचाका वर्ण श्रेष्ठ होगया हो तब धीरे धीरे उसको बढ़ाना चाहिये ॥ ५५ ॥

कर्णपालीको बढानेवाला तैल ।

जलशूकः स्वयंगुप्ता रजन्यौ बृहतीद्वयम् ।
अश्वगन्धाबलाहस्तिपिप्पलीगौरसर्षपाः ॥५६॥
मूलं कोशातकाश्वघ्नरूपिकासप्तपर्णजम् ।
छुछुन्दरी कालमृता गृहं मधुकरीकृतम् ॥५७॥
जन्तूका जलजन्मा च तथा शाबरकन्दकम् ।
एभिः कल्कैः खरं पक्वं सतैलं माहिषं घृतम् ५८
हस्त्यश्वमूत्रेण परमभ्यङ्गात्कर्णवर्धनम् ॥ ५९ ॥

जलशूक (शैवाल) कौंच, हलदी, दारुहलदी, छोटीकटेली, बड़ीकटेली, असगन्ध, बला, गजपीपल, सफेद सरसों, तोरीकी जड़, कनेरकी जड़, सफेद आककी जड़, सातलाकी जड़, मरीहुई छुछुन्दरी, भृंगीका घर (अञ्जनहारी), चर्मचटिका, जोंक और लहसुन इनके कल्कमें तिल और भैंसका घृत मिला कर तथा हाथी और घोड़ेका मूत्र मिलाकर खरपाक सिद्ध कियाहुआ स्नेह कर्णपालीपर लगानेसे पालीको बढ़ा देता है ॥ ५६-५९ ॥

कटेहुए नाकको नया बनानेकी विधि ।

अथकुर्याद्वयस्थस्य छिन्नां शुद्धस्य नासिकाम् ।
छिन्द्यान्नासासमं पत्रं तत्तुल्यं च कपोलतः ।
त्वङ्मांसं नासिकासन्ने रक्षंस्तत्तनुतां नयेत् ६०
सीव्येद्गण्डं ततः सूच्या सेविन्या पिचुयुक्तया
नासाच्छेदे च लिखिते परिवर्त्योपरि त्वचम् ६१
कपोलबन्धं संदध्यात्सीव्येन्नासां च यत्नतः ।
नाडीभ्यामुत्क्षिपेदन्तः सुखोच्छ्वासप्रवृत्तये ६२
आमतैलेन सिक्त्वा तु पतङ्गमधुकाञ्जनैः ।
शोणितस्थापनैश्चान्यैः सुश्लक्ष्णैरवचूर्णयेत् ६३
ततो मधुघृताभ्यक्तं बध्वा चारिकमादिशेत् ।
ज्ञात्वावस्थान्तरं कुर्यात् सद्योव्रणविधिं ततः ६४

यदि किसी जवान पुरुषकी नासिका कटगयी हो तो जितने मांससे नासिका बनसके उतना बड़ा भोजपत्रका टुकड़ा नासिकापर रखकर उस भोजपत्रको काटकर नासिकाके परिमाणका बना लेवे. फिर इस पत्रको नासिकाके समीप कपोलपर रखकर कपोलमेंसे उस पत्रके समान त्वचा और मांस पतलासा काटलेवे और एक भाग उस मांसका नाकके समीप ही लगा रहनेदेवे फिर गंडस्थलको यथोचित सूचीसे सीवन करके युक्तिपूर्वक त्वचाको रोपणकरनेवाले घृतमें भिगोयाहुआ फोहा उस स्थानपर लगावे तदनन्तर जिस ओरकी नासा कटचुकी है उसको लेखन करके दो नलकियें श्वास आनेकेलिये उसके नाकमें रखकर उस कपोलके मांसको उलटाकर नासिकाका आकार यथार्थरूपसे बनादेवे । तथा यथार्थरूपसे नाक बन जानेके अनन्तर सूईसे दूसरा भाग सीकर आमतेलसे सेचन करे । तथा पतंग मुलहठी और सुरमा आदि रक्त स्थापनकरनेवाले द्रव्योंका बारीक चूर्ण बुरकाकर मधु और घृतका लेपन करके यथार्थ रूपसे पट्टी बांधदेवे और परिचारकको इसके सम्बन्धकी सब शिक्षा दे देवे । यदि और कोई अवस्था हो तो सद्योव्रणके समानचिकित्सा करे ॥६०-६४॥

छिन्द्याद्रूढेऽधिकं मांसं नासोपान्ते च चर्मवत् ।
सीव्येत्ततश्च सुश्लक्ष्णं हीनं संवर्धयेत्पुनः ॥६५॥

जब नासिकाका व्रण अच्छा होजाय तो यदि इसमें किसी ओर बढ़ाहुआ मांस हो तो उसको काटकर सीदेवे यदि किसी ओरसे हीन रहगया हो तो सुन्दर रूपसे उसको बढ़ा देवे ॥ ६५ ॥

सद्यश्छिन्ननासिका और ओष्ठका सन्धान ।

निवेशिते यथान्यासं सद्यश्छेदेऽप्ययं विधिः ।
नाडीयोगाद्विनौष्ठस्य नासासंधानवद्विधिः ६६॥

यदि किसीका नाक उसी समय कटा हो तो उसी

समय उसी नाकको शीघ्र जोडकर भी इसी विधिका पालन करना चाहिये।

यदि किसीका ओष्ठ कटगया हो तो श्वासनलिका लगानेके विना अन्य सम्पूर्ण विधि नासासन्धानके समान ही करना चाहिये ॥ ६६ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं.शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां कर्णरोगप्रतिषेधोनाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः।

अथातो नासारोगविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः॥

अब हम नासारोगविज्ञानीय अध्यायकी व्याख्या कहते हैं ॥

प्रतिश्यायके हेतु।

अवश्यायानिलरजोभाष्यातिस्वप्नजागरैः।
नीचात्युच्चोपधानेन पीतेनान्येन वारिणा ॥ १ ॥
अत्यम्बुपानरमणच्छर्दिबाष्पग्रहादिभिः।
रुद्धावातोल्बणा दोषानासायां स्त्यानतां गताः
जनयन्ति प्रतिश्यायं वर्धमानं क्षयप्रदम् ॥ २ ॥

ओसमें सोनेसे, ठण्ढी वायुके लगनेसे, नाकमें गर्दा पडनेसे, बहुत ज्यादा बोलनेसे, दिनमें सोनेसे, रातको जागनेसे, सिरके नीचेका तकिया बहुत नीचा या बहुत ऊचा होनेसे, दूसरेका झूठा जल पीनेसे, बहुत पानी पीनेसे, बहुत जलक्रीडा करनेसे, वमनका वेग रोकनेसे और बाष्पका वेग रोकने आदिसे वातप्रधान दोष नासिकामें घनताको प्राप्त होकर नासिकाको रोक कर प्रतिश्यायरोगको उत्पन्न कर देते हैं। यह प्रतिश्याय अतिबढ़जानेसे क्षयरोगतकको उत्पन्न करदेता है॥ १॥ २

वातज प्रतिश्यायके लक्षण।

तत्र वातात्प्रतिश्याये मुखशोषो भृशं क्षवः।
घ्राणोपरोधनिस्तोददन्तशङ्खशिरोव्यथाः ॥ ३॥
कीटका इव सर्पन्ति मन्यते परितो भ्रुवौ।
स्वरसादश्चिरात्पाकः शिशिराच्छकफस्रुतिः ४॥

इसमें वायुके प्रतिश्यायमें मुखका सूखना, बहुत छींकें आना, नासिकाका रुकना, चमके मारना, दान्त कनपटियें और शिरमें व्यथा होना, भृकुटियोंके चारों ओर चींटियोंकासा फिरना प्रतीत होना, स्वरका बैठना, देरमें प्रतिश्यायका पकना, ठण्ढा और निर्मल नाकसे कफका स्राव होना, ये लक्षण होते है ॥ ३॥ ४ ॥

पित्तज प्रतिश्यायके लक्षण।

पित्तात्तृष्णाज्वरघ्राणपिटिकासंभवभ्रमाः।
नासाग्रपाको रूक्षोष्णताम्रपीतकफस्रुतिः ५।

पित्तके प्रतिश्यायमें प्यास, ज्वर, नासिकामें पिटिकाओंका होना, भ्रम नासाके अग्रभागका पकना, रूक्ष, उष्ण, ताम्रवर्ण और पीतवर्णका नाकसे कफस्राव होना, ये लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

कफके प्रतिश्यायके लक्षण।

कफात्कासोऽरुचिः श्वासो वमथुर्गात्रगौरवम्।
माधुर्यं वदने कण्डूः स्निग्धशुक्लघना स्रुतिः॥६॥

कफके प्रतिश्यायमे खांसी, अरुचि, श्वास, वमन होना, अंगोंमें भारीपन, मुखमें मीठापन, खुजली और चिकना, श्वेत और गाढ़ा नाकसे स्राव होना, ये लक्षण होते है ॥ ६ ॥

त्रिदोषज प्रतिश्यायके लक्षण।

सर्वजो लक्षणैः सर्वैरकस्माद्वृद्धिशान्तिमान् ॥७

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए प्रतिश्यायमें तीनों दोषोंके लक्षण और प्रतिश्यायमें अकस्मात् वृद्धि और ह्रास, ये लक्षण होते है ॥ ७ ॥

रक्तजप्रतिश्यायके लक्षण।

दुष्टं नासासिराः प्राप्य प्रतिश्यायं करोत्यसृक्।
उरसः सुप्तता ताम्रनेत्रत्वं श्वासपूतिता।
कण्डूःश्रोत्राक्षिनासासु पित्तोक्तं चात्र--
--लक्षणम् ॥ ८ ॥

दूषितहुआ रक्त नासिकाकी शिरामें प्राप्तहोकर दुष्ट प्रतिश्यायको उत्पन्न करता है। इससे छातीमें सुप्ती, नेत्रोंका वर्ण ताम्रके समान होना, श्वासमें दुर्गन्धि, कान, नेत्र और नासिकामें खुजली तथा पित्तके प्रतिश्यायकेसे लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण ।

सर्व एव प्रतिश्याया दुष्टतां यान्त्युपेक्षिताः॥९॥
यथोक्तोपद्रवाधिक्यात्स सर्वेन्द्रियतापनः ।
साग्निसादज्वरश्वासकासोरःपार्श्ववेदनः ॥ १० ॥
कुप्यत्यकस्माद्बहुशो मुखदौर्गन्ध्यशोफकृत् ।
नासिकाक्लेदसंशोषशुद्धिरोधकरो मुहुः ॥ ११ ॥
पूयोपमा सिता रक्तग्रथिता श्लेष्मसंस्रुतिः ।
मूर्छन्ति चात्र कृमयो दीर्घस्निग्धसिताणवः १२

यदि प्रतिश्यायोंकी चिकित्सा न कीजाय तो सब प्रकारके प्रतिश्याय दुष्ट होजाते है। फिर इनमें यथोक्त उपद्रवोंके सिवाय अन्य अधिक उपद्रव उत्पन्न होजाते है तथा सब इन्द्रियोंका तपायमान होना, अग्निकी मन्दता, ज्वर, श्वास, खांसी, छाती और पार्श्वमे पीड़ा होना, अकस्मात् अधिककोप होकर मुखसे दुर्गन्ध आना और मुखपर सूजन होजाना, नासिकाका क्लेद सूखकर नासिकाकी शुद्धिका रुक जाना, बार बार पूयके समान श्वेत, लाल, गठीला, कफका निकलना, यदि यह देरतक रह जाय तो इस रोगमें लम्बे, चिकने, श्वेत और अणु कृमियोंका उत्पन्न होना, ये लक्षण होजाते ह । इसको दुष्ट प्रतिश्याय कहते ह ॥ ९-१२ ॥

परिपक्वप्रतिश्यायके लक्षण ।

पक्वलिङ्गानि तेष्वङ्गलाघवं क्षवथोः शमः ।
श्लेष्मा सचिक्कणःपीतो ज्ञानं च रसगन्धयोः१३

प्रतिश्यायोंके यथार्थ परिपक्व होजानेपर अङ्गोंमे हल्कापन छींकोंका शान्त हो जाना, कफका चिकना और पीला होजाना, रस और गन्धका यथार्थज्ञान होना, ये लक्षण होते है ॥ १३ ॥

क्षवथुरोगके लक्षण ।

तीक्ष्णघ्राणोपयोगार्करश्मिसूत्रतृणादिभिः ।
वातकोपिभिरन्यैर्वा नासिकातरुणास्थिनि १४
विघट्टितेऽनिलः क्रुद्धो रुद्धः शृङ्गाटकं व्रजेत् ।
निवृत्तःकुरुतेऽत्यर्थं क्षवथुं स भृशं क्षवः ॥१५॥

नासिकामे तीक्ष्ण वस्तुके लगनेसे, सूर्यकी किरण लगनेसे, अथवा सूत्र या तृण आदिके नासिकाकी तरुणास्थिमें लगनेसे अथवा अन्य वातकोपकारक कारणोंसे वायु कुपित होकर शृङ्गाटकमें चलाजाता है। फिर वहांसे निवृत्त होनेपर अत्यन्त छींकोंको उत्पन्न करदेता है। इसको क्षवथुरोग कहते है या अतिक्षव रोगकहते हे ॥ १४ ॥ १५ ॥

नासिकाशोषके लक्षण ।

शोषयन्नासिकास्रोतः कफं च कुरुतेऽनिलः ।
शूकपूर्णाभनासात्वं कृच्छ्रादुच्छ्वसनं ततः ।
स्मृतोऽसौ नासिकाशोषो ॥ १६ ॥--

जब वायु नासिकाके स्रोत और कफको शोषण करदेता है तब नासिकाको शूकोंसे भरेहुएके समान बनादेता है। उससे मनुष्य कष्टसे श्वास लेता है। इस रोगको नासिकाशोषरोग कहते है ॥ १६ ॥

नासानाहके लक्षण ।

--नासानाहे तु जायते ।
नद्धत्वमिव नासायाः श्लेष्मरुद्धेन वायुना ।
निःश्वासोच्छ्वाससंरोधात् स्रोतसी संवृते इव१७

नासानाहरोगमें कफसे रुकेहुए वायु द्वारा नासिका रुक कर आनद्धसी हो जाती है। उससे निश्वास और उच्छ्वासके रुक जानेसे नासिकाका स्रोत बन्द हुआसा प्रतीत होता है इसको नासानाहरोग कहते ह ॥ १७॥

नासिकापाक रोग ।

पचेन्नासापुटे पित्तं त्वङ्मांसं दाहशूलवत् ।
स घ्राणपाकः ॥ १८ ॥--

जब पित्त नासिकापुटमें प्राप्त होकर नासिकाकी त्वचा और मांसमे दाह और शूलयुक्त पाकको उत्पन्न करदेता है, तब इसको घ्राणपाकरोग कहते हैं ॥१८॥

नासास्रावके लक्षण ।

--स्रावस्तु तत्संज्ञः श्लेष्मसम्भवः ।
अच्छो जलोपमोऽजस्रं विशेषान्निशि जायते१९

नासिकासे निर्मलजलके समान निरन्तर स्राव होता रहे, विशेषकर रात्रिको स्राव हो इस कफजनित रोगको नासास्राव कहते है ॥ १९ ॥

कफः प्रवृद्धो नासायां रुद्ध्वा स्रोतांस्यपीनसम् ।
कुर्यात्सघुर्घुरं श्वासं पीनसाधिकवेदनम् ॥२०॥

अवेरिव स्रवत्यस्य प्रक्लिन्ना तेन नासिका ।
अजस्रं पिच्छलं पीतं पक्वं सिंघाणकं घनम् २१

बढ़ाहुआ कफ नासिकाके स्रोतोंको रोककर पीनस रोगको उत्पन्न कर देता है उससे घुरघुर शब्दवाला श्वास आने लगता है। पीनसकी अधिकपीड़ा होती है इसकी नासिका भेड़की नासिकाके समान हर समय गीली रहती है। तथा नासिकासे निरन्तर गाढ़ा, पीलेवर्णका पकाहुआ और घन सिंघाणक निकलता रहता है ॥ २० ॥ २१ ॥

नासादीप्तिरोग।

रक्तेन नासादग्धेन बाह्यान्तःस्पर्शनासहा ।
भवेद्धूमोपमोच्छ्वासा सा दीप्तिर्दहतीव च ॥२२॥

रक्तसे यदि नासिका दग्ध हो तो बाहर और अन्दर नासिका स्पर्शको सहन नहीं कर सकती। श्वासमेंसे धूएंके समान निकलता प्रतीत होता है और नासिका दाहसे जलती हुईसी प्रतीत होती है इसको नासादीप्तिरोग कहते हैं ॥ २२ ॥

पूतिनासाके लक्षण।

तालुमूले मलैर्दुष्टैर्मारुतो मुखनासिकात् ।
श्लेष्मा च पूतिर्निर्गच्छेत्पूतिनासं वदन्ति तम् २३

तालुके मूलमें दोषोंके दुष्ट होजानेसे मुख और नासिकासे वायु और कफ दुर्गन्धयुक्त निकले; इस रोगको पूतिनासारोग कहते हैं ॥ २३ ॥

पूयरक्तरोगके लक्षण।

निचयादभिघाताद्वा पूयासृङ्नासिका स्रवेत् ।
तत्पूयरक्तमाख्यातं शिरोदाहरुजाकरम् ॥२४॥

तीनों दोषोंके संचयसे अथवा अभिघातके कारण नासिकासे पूय और रक्तका स्राव हो तथा शिरमें दाह और पीड़ा हो; इस रोगको पूयरक्त रोग कहते है २४

पुटकरोगके लक्षण।

पित्तश्लेष्मावरुद्धोऽन्तर्नासायां शोषयेन्मरुत् ।
कफं सशुष्कपुटतां प्राप्नोति पुटकं तु तत् ॥२५॥

पित्त और कफसे अवरुद्ध हुआ वायु नासिकामे कफको सुखाकर पुटकसा बना देवे; इसको पुटक-रोग कहते हैं ॥ २५ ॥

नासार्बुदादिरोग।

अर्शोऽर्बुदानि विभजेद्दोषलिङ्गैर्यथायथम् २६॥

नासिकामें होनेवाले अर्श और अर्बुदके लक्षणानुसार वातादिदोषोंका विभाग करके यथादोष जानलेना चाहिये ॥ २६ ॥

सर्वेषु कृच्छ्राच्छ्वसनं पीनसः प्रततं क्षवः ।
सानुनासिकवादित्वं पूतिनासः शिरोव्यथा२७॥

सब दोषोंके नासार्श और नासार्बुदरोगमें मनुष्यको कष्टसे श्वास आता है तथा पीनस रहता है, निरन्तर छींकें आती रहती हैं, शब्द सब अनुनासिक बोलेजाते है, नासिकासे दुर्गन्ध आती है और शिरमें व्यथा रहती है ॥ २७ ॥

अष्टादशानामित्येषां यापयेद्दुष्टपीनसम् ॥२८

इन १८ प्रकारके नासारोगोंमें दुष्टपीनसका यापन करतेरहना चाहिये अर्थात् यह याप्य है और अन्य प्रायः यथार्थ चिकित्सा करनेपर साध्य है ॥ २८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषा-व्याख्यायां नासारोगविज्ञानीयो नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

त्रिंशोऽध्यायः।

अथातो नासारोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम नासारोगकी चिकित्साको कथन करते हैं॥

नासारोगोंकी सामान्य चिकित्सा।

सर्वेषु पीनसेष्वादौ निवातागारगो भवेत् ।
स्नेहनस्वेदवमनधूमगण्डूषधारणम् ॥ १ ॥

सब प्रकारके पीनसरोगोंमें प्रथम वातरहित स्थानमें निवास करना चाहिये। तथा स्नेहन, स्वेदन, वमन, धूमपान, गण्डूष धारण करना चाहिये ॥ १॥

वासो गुरूष्णं शिरसः सुघनं परिवेष्टनम् ।
कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णं भोजनमद्रवम् ॥२॥

गरम और भारी वस्त्रोंको धारण करना चाहिये, शिरको घनवस्त्रसे लपेटकर रखना चाहिये, तथा

हल्का, अम्ल, लवणरसयुक्त, स्निग्ध, उष्ण और पतला भोजन करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

धन्वमांसगुडक्षीरचणकत्रिकटूत्कटम् ।
यवगोधूमभूयिष्ठं दधिदाडिमसाधितम् ॥ ३ ॥
बालमूलकजो यूषः कुलत्थोत्थश्च पूजितः ।
कवोष्णं दशमूलाम्बु जीर्णां वा वारुणीं पिबेत् ।
जिघ्रेच्चोरकतर्कारीवचाजाज्युपकुञ्चिकाः ॥ ४ ॥

तथा धन्वदेशसंचारी जीवोंका मांस, गुड, दूध, चना, विशेष करके सोंठ, मिरच, पीपल मिलेहुए अन्न, जौ और गेहूंके पदार्थ, विशेषरूपसे दही और दाडिम डालकर सिद्ध कियेहुए यूष, कच्ची मूलीका यूष, तथा कुलथीका यूष, ये पदार्थ भोजनमें हितकारी होते हैं तथा कोष्णजल या दशमूलका सिद्ध कियाहुआ कोष्णजल या पुरानी वारुणी मद्य पीनेमें हितकारी होती है । एवं चोरक, जीवन्ती, बच, जीरा और कलौंजी इनकी पोटली बनाकर सूंघना अच्छा होता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

व्योषादिवटी ।

व्योषतालीसचविकातित्तिडीकाम्लवेतसम् ।
साग्न्यजाजीद्विपलिको त्वगेलापत्रपादिकम् ॥५
जीर्णाद्गुडात्तुलार्धेन पक्केन वटकीकृतम् ।
पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥६॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, तालीसपत्र, चव्य, तिंतडीक, अम्लवेत, चित्रक और जीरा ये प्रत्येक द्रव्य दो दो पल, दालचीनी, इलायची और पत्रज ये प्रत्येक दो दो कर्ष, पुरानागुड पचास पल लेवे । प्रथम सोंठ आदि सब द्रव्योंका बारीक चूर्णकर गुडकी चासनीमें मिला गोलियें बनावे । यह व्योषादिवटी मुखमें रखकर रस चूसते रहनेसे पीनस, श्वास और कासको नष्ट करती है तथा अरुचि और स्वरको बढ़ाती है॥५॥६॥

प्रतिश्यायनाशक धूमपान ।

शताह्वात्वग्बलामूलं स्योनाकैरण्डबिल्वजम् ७॥
सारग्वधं पिबेद्धूमं वसाज्यमदनान्वितम् ।
अथवा सघृतान्सक्तून् कृत्वा मल्लकसंपुटे ॥८॥

सौंफ, दालचीनी, बला, सोनेपाठेकी जड, एरण्डकी जड, बिल्वकी जड और अमलतास इनके चूर्णमें वसा, घृत और मैनफल मिलाकर धूमपान करे । अथवा घृतयुक्त सत्तुओंको मल्लकसंपुटमें रख कर धूम पान करे तो प्रतिश्याय, पीनस और श्वास कास दूर होती है ॥ ७ ॥ ८ ॥

त्यजेत्स्नानं शुचं क्रोधं भृशं शय्यां हिमं जलम्

प्रतिश्यायमें स्नान, चिन्ता, अधिक क्रोध, दिनमें सोना और शीतल जल ये त्याग देने चाहिये ॥९॥

वातजप्रतिश्यायकी चिकित्सा ।

पिबेद्वातप्रतिश्याये सर्पिर्वातघ्नसाधितम् ।
पटुपञ्चकसिद्धं वा विदार्यादिगणेन वा ।
स्वेदनस्यादिकां कुर्यात् चिकित्सामार्दितोदिताम्

वातजप्रतिश्यायमें वातघ्नद्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीना चाहिये । अथवा सैंधवादि पांच लवणोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत या विदार्यादिगणसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीना चाहिये तथा स्वेदन और नस्यादिक वातनाशक क्रिया और अर्दितरोगमें कहीहुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥

पित्तके प्रतिश्यायकी चिकित्सा ।

पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ।
परिषेकान्प्रदेहांश्च शीतैः कुर्वीत शीतलान् ११

पित्त और रक्तसे उत्पन्न हुए प्रतिश्यायमें मधुरगणसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीना चाहिये । तथा शीतल स्वभाववाले द्रव्योंसे शीतल लेप और परिषेचन करना चाहिये ॥ ११ ॥

प्रतिश्यायमें नस्य ।

धवत्वक्त्रिफलाश्यामाश्रीपर्णीयष्टिबिल्वकैः ।
क्षीरे दशगुणे तैलं नावनं सनिशैः पचेत् ॥१२॥

धव वृक्षकी छाल, त्रिफला, सारिवा, कायफल, मुलहठी और बिल्व तथा हलदी इनके कल्क और दशगुने दूधसे सिद्ध कियाहुआ तैल प्रतिश्यायमें नस्य लेनेके लिये हितकारी होता है ॥ १२ ॥

कफके प्रतिश्यायमें चिकित्सा ।

कफजे लङ्घनं लेपः शिरसो गौरसर्षपैः ।

सक्षारं वा घृतं पीत्वा वमेत् पिष्टैस्तु नावनम् ।
बस्ताम्बुना पटुव्योषवेल्लवत्सकजीरकैः ॥१३॥

कफके प्रतिश्यायमें लंघन करना, मस्तकपर पीली सरसोंका लेप करना तथा यवाखार मिला घृत पीकर वमन करना और नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडङ्ग, इन्द्रजव और जीरा इनको बकरीके मूत्रमें पीस कर नस्य लेना. ये सब हितकारी होते हैं ॥ १३ ॥

सन्निपातज प्रतिश्यायकी चिकित्सा ।

कटुतीक्ष्णैर्घृतैर्नस्यैः कवलैः सर्वजं जयेत् ॥१४॥

सन्निपातके प्रतिश्यायमें कटु और तीक्ष्णद्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृतोंसे नस्य लेना तथा कवलधारण करना सन्निपातज प्रतिश्यायको जीतता है ॥ १४ ॥

दुष्टप्रतिश्यायकी चिकित्सा ।

यक्ष्मकृमिक्रमं कुर्वन् यापयेद्दुष्टपीनसम् ॥१५॥

दुष्टपीनसमें यक्ष्मारोगनाशक और कृमिरोगनाशक चिकित्सा करते रहना चाहिये ॥ १५॥

पीनसनाशक धूमपान ।

व्योषोरुबूककृमिजिद्दारुमाद्रीगदेङ्गुदम् ।
वार्ताकबीजं त्रिवृता सिद्धार्थः पूतिमत्स्यकः ।
अग्निमन्थस्य पुष्पाणि पीलुशिग्रुफलानि च१६
अश्वविड्रसमूत्राभ्यां हस्तिमूत्रेण चैकतः ।
क्षौमगर्भां कृतां वर्तिं धूमं घ्राणास्यतः पिबेत्१७

सोंठ, मिर्च, पीपल, एरण्डकी जड, वायविडङ्ग, देवदारु, अतीस, इगुदीफल, बडी कटेलीके बीज, निशोथ, सरसों, जलपीपल, अग्निमन्थके फूल, पीलू और सुहांजनेके फल इन सबको घोड़ेकी लीदके रस घोडेके मूत्र और हाथीके मूत्रमें रगडकर रेशमीवस्त्रमें लेप करके बत्ती बनावे; इस बत्तीका धूम मुख और नासिकासे पीवे तो पीनसरोग शमन होजाताहै १६-१७

क्षवथुआदिकी चिकित्सा ।

क्षवथौ पुटपाकाख्ये तीक्ष्णैः प्रधमनं हितम् ।
शुण्ठीकुष्ठकणावेल्लद्राक्षाकल्ककषायवत् ।
साधितं तैलमाज्यं वा नस्यं क्षवपुटप्रणुत् १८॥

बहुत छींक आनेमें और नासापुटक और नासापाकमें तीक्ष्ण प्रधमन नस्य लेना हितकारी होता है । अथवा सोंठ, कूठ, पीपल, वायविडंग और द्राक्षा इनके कल्क और क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ तैल घृत नस्य लेनेसे क्षवथुरोग और नासापुटक और नासापाक इन रोगोंको शमन करता है ॥ १८ ॥

नासाशोष और नासानाहकी चिकित्सा ।

नसाशोषे बलातैलं पानादौ भोजनं रसैः ।
स्निग्धो धूमस्तथा स्वेदो नासानाहेऽप्ययं-
-विधिः ॥ १९ ॥

नासाशोषरोगमें बलातेल पीना और नस्यादिकर्ममें प्रयोग करना हितकारी है । तथा स्निग्ध रसोंसे भोजन करना, स्निग्ध धूमपान करना और स्वेदन करना हितकारी होता है नासानाहमेंभी यही विधि सेवन करना चाहिये ॥ १९ ॥

नासापाकादिकोंकी चिकित्सा ।

पाके दीप्तौ च पित्तघ्नं तीक्ष्णं नस्यादि संस्रुतौ ॥

नासापाक और दीप्तरोगमें पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये और नासास्रावमें तीक्ष्ण नस्यादि प्रयोग करना चाहिये ॥ २० ॥

कफपीनसवत्पूतिनासापीनसयोः क्रिया ।

पूतिनासा और पीनसमें कफकी पीनसके समान चिकित्सा करनी चाहिये ।

लाक्षाकरञ्जमरिचवेल्लहिङ्गुकणागुडैः ।
अविमूत्रद्रुतैर्नस्यं कारयेद्वमने कृते ॥ २१ ॥

तथा वमन करानेके अनन्तर लाख, करंज, मिर्च, वायविडंग, हींग, पीपल और गुडको भेडके मूत्रमें बारीक पीसकर नस्य देना चाहिये ॥ २१ ॥

शिग्रुसिंहीनिकुम्भानां बीजैः सव्योषसैन्धवैः
सवेल्लसुरसैस्तैलं नावनं परमं हितम् ॥ २२ ॥

सोहांजना, कटेली, दंतीके बीज, सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधानमक, वायविडंग और तुलसी इनके कल्कसे सिद्ध कियेहुए तैलकी नस्य लेना पूतिनासा और पीनसको शमन करता है ॥ २२ ॥

पूयरक्ते नवे कुर्याद् रक्तपीनसवत्क्रियाम् ।
अतिप्रवृद्धे नाडीवद् ॥ २३ ॥-

नये पूयरक्तमें रक्तपीनसकी समान चिकित्सा करनी चाहिये और अतिबढ़ेहुए पूयरक्तमें नाडीव्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २३ ॥

-दग्धेष्वर्शोऽर्बुदेषु च ।
निकुम्भकुम्भासिन्धूत्थमनोह्वालवणाग्निकैः २४।
कल्किकैर्घृतमध्वाक्तां घ्राणे वर्तिं प्रवेशयेत् ।
शिग्र्वादि नावनं चात्र पूतिनासोऽपि तं-
-भजेत् ॥ २५ ॥

नासार्श और नासार्बुद रोगको दग्ध करनेके अनन्तर-दंती, निशोथ, सुहागा, मनसिल, सेन्धानमक और चित्रक इनके कल्कमें घृत और मधु मिलाकर बत्ती बना नासिकामें प्रवेश करे तथा बाइसवें श्लोकमें कहेहुए सोहांजन आदिसे सिद्ध कियाहुआ तैल नस्यकर्ममें प्रयोग करे. यही विधि पूतिनासामें भी प्रयोग करना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

इति श्री वाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां नासारोगप्रतिषेधो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः ।

अथातो मुखरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम मुखरोगविज्ञाननामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥

मत्स्यमाहिषवाराहपिशितामकमूलकम् ।
माषसूपदधिक्षीरसुक्तेक्षुरसफाणितम् ।
अवाक्शय्यां च भजतो द्विषतो दन्तधावनम् ।
धूमच्छर्दनगण्डूषानुचितं च सिराव्यधम् ।
क्रुद्धाः श्लेष्मोल्बणा दोषाः कुर्वन्त्यन्तर्मुखे-
-गदाम् ॥ १ ॥

मछली, महिष, वराह आदिका मांसखानेसे, कच्चीमूलियां खानेसे, उड़दकी दाल, दही, दूध, सिरका, गन्नेका रस और फाणितका अधिक सेवन करनेसे, नीचेको सिरहानेवाली अर्थात् शिरकी ओरको नीची शय्यापर सोनेसे, दंतधावन न करनेसे, धूम छर्दन और गंडूषको उचितरीतिपर न सेवन करनेसे, यथार्थरूपसे सिरावेधन न करानेसे कुपितहुए कफप्रधान दोष मुखके अन्दर रोगोंको उत्पन्न करदेते है ॥ १ ॥

ओष्ठरोगके लक्षण ।

तत्र खण्डौष्ठ इत्युक्तो वातेनोष्ठो द्विधा कृतः२

मुखरोगोंमें यदि वायुसे ओष्ठ खंडितकरके दो भागमें विभक्त करदियाजाय तो इसको खंडौष्ठ रोग कहते हैं ॥ २ ॥

वातज ओष्ठरोगके लक्षण ।

ओष्ठकोपे तु पवनात् स्तब्धावोष्ठौ महारुजौ ।
दाल्येते परिपाट्येते परुषासितकर्कशौ ॥ ३ ॥

वायुसे ओष्ठकोप होनेपर दोनों ओष्ठ स्तब्ध और महापीड़ायुक्त होजाते हैं उनमें दालन और परिपाटनकीसी पीड़ा होती है तथा वे ओष्ठ परुष नील और कर्कशसे दिखायीदेते है ॥ ३ ॥

पित्तज ओष्ठरोगके लक्षण ।

पित्तात्तीक्ष्णासहौ पीतौ सर्षपाकृतिभिश्च तौ ।
पिटिकाभिर्महाक्लेदावाशुपाकौ ॥ ४ ॥-

पित्तसे उत्पन्न हुए ओष्ठरोगमें ओष्ठ तीक्ष्णपदार्थका सहन नहीं करसकते और पीलेवर्णके होजाते हैं तथा सरसोंको आकारकी पिटिकाओंसे युक्त होते हैं तथा इनमें शीघ्रपाकहोकर बहुतसा क्लेद होजाता है॥४॥

कफज ओष्ठरोगके लक्षण ।

--कफात्पुनः ।
शीतासहौ गुरू शूनौ सवर्णपिटिकाचितौ ॥५॥

कफके ओष्ठरोगमें ओष्ठ शीतस्पर्शके सहन नहीं करसकते तथा भारी सूजनयुक्त और ओष्ठवर्णके समानवर्णवाली पिटिकाओंसे युक्त होते हैं ॥ ५ ॥

सन्निपातज ओष्ठरोगके लक्षण ।

सन्निपातादनेकाभौ दुर्गन्धस्रावपिच्छिलौ ।
अकस्मान्म्लानसंशूनरुजौ विषमपाकिनौ ॥६॥

सन्निपातके ओष्ठरोगमें ओष्ठ अनेकवर्णके होते हैं तथा उनमेंसे गाढा दुर्गंधित स्राव होता है। अकस्मात् सूजन होजाती है और अकस्मात् ओष्ठ म्लान होजाते हैं तथा इनमें विषम परिपाक होता है ॥ ६ ॥

रक्तके ओष्ठरोगके लक्षण।

रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ।

रक्तके ओष्ठरोगमें ओष्ठ रक्तके समान लालवर्णवाले होजाते हैं, तथा उनमेंसे रक्तस्राव होता है।

खर्जूरसदृशं चात्र क्षीणे रक्तेऽर्बुदं भवेत् ॥ ७॥

यदि रक्त क्षीण होजाय तो खजूरके समान आकारवाला अर्बुद होजाता है ॥ ७॥

मांसके ओष्ठरोगके लक्षण।

मांसपिण्डोपमौ मांसात्स्यातां मूर्छत्कृमी क्रमात्

मांसकी विकृतिसे उत्पन्न हुए ओष्ठरोगमें मांसपिंडके समान ओष्ठ होजाते हैं इनकी शीघ्र चिकित्सा न करनेसे ओष्ठोंमें क्रमसे कृमि उत्पन्न होजाते हैं।

तैलाभश्वयथुक्लेदौ सकण्डूौ मेदसा मृदू॥ ८॥

और मेदसे विकृत हुए ओष्ठ तैलके समान वर्णवाले सूजन और खुजलीयुक्त तथा नरम होते हैं ॥ ८॥

क्षतज ओष्ठरोगके लक्षण।

क्षतजाववदीर्येते पाट्येते चासकृत्पुनः।
ग्रथितौ च पुनः स्यातां कण्डूलौ दशनच्छदौ९

क्षतजनित ओष्ठरोगमें ओष्ठ अवदीर्ण होते हैं उनमें पाटनकीसी पीड़ा होती है फिर वह एक कालमें ही गठीले होते हैं इनमें खुजली होती है ॥ ९॥

वातकफसे उत्पन्नहुए रोगके लक्षण।

जलबुद्बुदवद्वातकफाद्दोष्ठे जलार्बुदम्।

वातकफसे ओष्ठ जलके बुलबुलेके समान फूलजाते हैं इसको जलार्बुदरोग कहते हैं।

गण्डालजी स्थिरः शोफो गण्डे दाहज्वरान्वितः

गंडस्थानमें जो स्थिर सूजन होजाय उसमें दाह हो और ज्वर भी हो इसको गंडालजी कहते हैं॥१०

दन्तरोग शीताख्य रोगके लक्षण।

वातादुष्णसहा दन्ताः शीतस्पर्शोधिकव्यथाः।
दाल्यन्त इव शूलेन शीताख्यो दालनश्च सः११

वायुसे दांत उष्णस्पर्शको तो सहन करसके किन्तु शीतस्पर्श होनेसे दाँतोंमें अधिक व्यथा हो और शूलके मारे दांत फटनेसे लगे ऐसा प्रतीत हो इसको शीताख्यरोग कहते हैं; कोई इसीको दालनरोग कहते हैं११

दन्तहर्षके लक्षण।

दन्तहर्षे प्रवाताम्लशीतभक्ष्याक्षमा द्विजाः।
भवन्त्यम्लाशनेनेव सरुजाश्चलिता इव॥ १२॥

दन्तहर्षरोगमें दांत अधिक वात अम्लपदार्थ और शीतल पदार्थोंका स्पर्श सहन नहीं करसकते यह दन्तहर्ष रोग बहुत खट्टा पदार्थ खानेसे उत्पन्न होता है। इसमें दांत पीड़ायुक्त और चलायमानसे प्रतीत होते हैं ॥ १२॥

दन्तभेद और दन्तचालके लक्षण।

दन्तभेदे द्विजास्तोदभेदरुक्स्फुटनान्विताः।
चालश्चलद्भिर्दशनैर्भक्षणादधिकव्यथैः॥ १३॥

दन्तभेदरोगमें दांतोंमें तोद और भेदनकीसी पीड़ा होती है तथा शूल और स्फोटनकीसी पीड़ा होती है।

दन्तचालरोगमे दांत अपने स्थानसे चलायमानसे होजाते हैं और कोई भी वस्तु खानेसे उनमें अधिक पीड़ा होनेलगती है ॥ १३॥

दन्तकरालके लक्षण।

करालः सुकरालानां दशनानां समुद्भवः ॥१४॥

दन्तकराल रोगमें दांत टेढे और ऊंचेसे उत्पन्न होते हैं ॥ १४॥

अधिदन्तके लक्षण।

दन्ताधिकोऽधिदन्ताख्यः स चोक्तः खलु वर्धनः
जायते जायमानेऽतिरुग् जाते तत्र शाम्यति१५

यदि दाँतोंके साथ एक और अधिक दांत निकल आवे जब वह दांत निकलता हो तो उसमें अत्यन्त पीड़ा हो, दांत निकलजानेके बाद पीड़ा शान्त होजाय इस रोगको अधिदन्तरोग कहते हैं और इसीको वर्धन रोग भी कहते हैं ॥ १५॥

दंतशर्कराके लक्षण।

अधावनान्मलो दन्ते कफो वा वातशोषितः।
पूतिगन्धः स्थिरीभूतः शर्करा सोऽप्युपेक्षितः॥

दांतोंको दांतनआदिसे धोकर स्वच्छ न करनेके कारण दांतोंपर मल अथवा कफ वायुसे शोषित होजाता है उसमेंसे दुर्गंध आती है. यदि इसको फिर भी न उतारा जाय तो वही मल स्थिर होकर शर्कराके समान होजाता है इसको दन्त शर्करा कहते हैं॥१६॥

दन्तकपालिकाके लक्षण ।

शातयत्यणुशो दन्तान्कपालानि कपालिका १७

दांतोंपरसे छोटे छोटे कपालके समान अणु टुकड़े गिरे इस रोगको दन्तकपालिका कहते हैं ॥ १७ ॥

श्यावदन्तके लक्षण ।

श्यावः श्यावत्वमायातारक्तपित्तानिलैर्द्विजाः १८

रक्तपित्त और वायुके प्रकोपसे दांत कालेवर्णके होजाय तो उनको श्यावदन्त कहते हैं ॥ १८ ॥

कृमिदन्तकके लक्षण ।

समूलं दन्तमाश्रित्य दोषैरुल्बणमारुतैः ।
शोषिते मज्ज्ञि सुषिरे दन्तेऽन्नमलपूरिते ।
पूतित्वात्कृमयः सूक्ष्मा जायन्ते जायते ततः ।
अहेतुतीव्रार्तिशमः ससंरम्भोऽसितश्चलः ।
प्रभूतपूयरक्तस्तु स चोक्तः कृमिदन्तकः ॥१९॥

वातप्रधान दोष जब दांतके मूलमें स्थिर होजाते है तब वे दांतकी मज्जाको सुखा देते है । तब उस सुषिर दांतमें अन्न और मल भरकर दुर्गंधि उत्पन्न होजाती है तब उसमें सूक्ष्मकृमि उत्पन्न होजाते है उनसे दांतमें अकारण ही तीव्रपीड़ा उत्पन्न होती है । और अकारण ही शान्त होजाती है दांत फूलाहुआसा काला और चलायमान होजाता है । इसमेंसे पीव और रक्त अधिक निकलते है; इस रोगको कृमिदन्तक कहते हैं ॥ १९ ॥

शीतादिके लक्षण ।

श्लेष्मरक्तेन पूतीनि वहन्त्यस्रमहेतुकम् ॥
शीर्यन्ते दन्तमांसानि मृदुक्लिन्नासितानि च।
शीतादोऽसौ ॥ २० ॥-

कफ और रक्तसे दांतोंमेंसे अकारण ही दुर्गंधितरक्त वहनेलगता है उससे दांतोंका मांस गिरनेलगता है तथा वह दांतोंका मांस नर्म, क्लेदित और कालासा पड़जाता है इसको शीतादरोग कहते हैं ॥ २० ॥

उपकुशके लक्षण ।

-उपकुशः पाकः पित्तासृगुद्भवः ।
दन्तमांसानि दह्यन्ते रक्तान्युत्सेधवन्त्यतः २१
कण्डूमन्ति स्रवन्त्यस्रमाध्मायन्तेऽसृजि स्थिते।
चला मन्दरुजो दन्ताः पूतिवक्त्रं च जायते २२

पित्त और रक्तसे दांतोंके मांस पक जांय उनमें दाह हो तथा मांस रक्तवर्णके ऊंचेसे होजांय उनमें खुजली हो रक्तका स्राव हो यदि रक्त स्राव न हो तो मसूढ़े (दन्तमांस) फूलजाय दांत मन्दपीड़ा युक्त रहे और चलायमानसे रहें मुखमेंसे दुर्गन्धि आवे इन लक्षणोंवाले दन्तरोगको उपकुशरोग कहते हैं ॥२१॥२२॥

दन्तपुप्पुटके लक्षण ।

दन्तयोस्त्रिषु वा शोफो बदरास्थिनिभो घनः ।
कफास्रात्तीव्ररुक् शीघ्रं पच्यते दन्तपुप्पुटः २३

दो दाँतोंमें अथवा तीन दाँतोंमें सूजन हो वह बेरकी गुठलीके समान कठिन हों और शीघ्र पक भी जांय इसमें तीव्रवेदना हो यह कफरक्तजनितरोग दन्तपुप्पुटसंज्ञक होता है ॥ २३ ॥

दंतविद्रधिके लक्षण ।

दन्तमांसे मलैः सास्रैर्बाह्यान्तः श्वयथुर्गुरुः ।
सरुग्दाहः स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दन्तविद्रधिः॥२४

दांतोंके मांसमें रक्तयुक्त वातादि तीनों दोषोंसे दांतोंके अन्दर या बाहर भारी सूजन होजाय उसमें पीड़ा और दाह हो इसके फूटजानेपर पीव और रक्तका स्राव हो इस रोगको दन्तविद्रधि कहते हैं ॥ २४ ॥

सुषिररोगके लक्षण ।

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान पित्तरक्तजः ।
लालास्रावीससुषिरो दन्तमांसप्रशातनः॥२५॥

यदि पित्तरक्तसे दांतोंकी जड़ोंमें पीड़ावाली सूजन होजाय और उसमेंसे लालाका स्राव हो यह दन्तमांसको गिरादेनेवाला रोग सुषिर कहाजाता है ॥ २५ ॥

महासुषिरके लक्षण ।

ससंनिपातज्वरवान् सपूयरुधिरस्रुतिः ।
महासुषिर इत्युक्तो विशीर्णद्विजबन्धनः ॥२६॥

यदि इसी सुषिररोगमें ज्वर हो इसमेंसे पूय और रुधिर वहे और दांतोंके बंधनवाला मांस विशीर्ण होजाय इस सन्निपातजरोगको महासुषिर कहते हैं २६

अधिमांसकके लक्षण।

दन्तान्ते कीलवच्छोफो हनुकर्णरुजाकरः।
प्रतिहंत्यभ्यवहृतिं श्लेष्मणा सोऽधिमांसकः२७

दांतोंके अन्तमें कीलके समान सूजन होजाय उससे हनुकी संधि और कानमें पीड़ा हो तथा इससे दन्तपंक्तिका हिलाना और खानापिनाआदि कठिन होजाय इस कफके रोगको अधिमांसक कहते हैं॥ २७॥

विदर्भके लक्षण।

घृष्टेषु दन्तमांसेषु संरम्भो जायते महान्।
यस्मिंश्चलन्ति दन्ताश्च स विदर्भोऽभिघातजः२८

दांतोंके मांसको संघर्षण करनेसे उस मांसमें महान् सूजन होजाय और दांत चलायमान होजांय इस अभिघातजनित रोगको विदर्भ कहते है॥ २८॥

दन्तमांसाश्रितान् रोगान् यःसाध्यानप्युपेक्षते
अन्तस्तस्यास्रवन् दोषः सूक्ष्मां सञ्जनयेद्गतिम्
पूयं मुहुः सा स्रवति त्वङ्मांसास्थिप्रभेदिनी।
ताः पुनः पञ्च विज्ञेया लक्षणैः स्वैर्यथोदितैः३०

यदि वैद्य दन्तमांसोंके आश्रित साध्यरोगोंकी चिकित्सा न करके उपेक्षा करता है तो वह दोष दन्तमांसके अन्तस्थानमें पहुंचकर स्रावकी सूक्ष्मगतिको उत्पन्न करदेता है उसमेंसे बार बार पूयका स्राव होता है यह पूयस्राव त्वचा, मांस और अस्थिको भेदन करता है. वह पूयकी गति वात पित्त कफ सन्निपात और रक्तके भेदसे पांच प्रकारकी होजाती है. इनके अपने अपने दोषोंके अनुसार लक्षण जानलेना चाहिये॥ २९॥ ३०॥

जिह्वारोग।

शाकपत्रखरा सुप्ता स्फुटिता वातदूषिता।
जिह्वापित्तात् सदाहोषा रक्तैर्मांसाङ्कुरैश्चिता३१
शाल्मलीकण्टकाभैस्तु कफेन बहुला गुरुः३२॥

वायुसे दूषित जिह्वा शाक पत्रके समान खर सुप्त और फटीहुईसी होती है।

पित्तसे दूषित जिह्वा लालवर्णके मांसाङ्कुरोंसे जटित तथा दाह और उषणवत् पीड़ावाली होती है।

कफसे दूषित जिह्वा मोटी भारी और सेमलके कांटोंके समान कांटोंसे युक्त होती है॥ ३१॥३२॥

जिह्वालसके लक्षण।

कफपित्तादधः शोफो जिह्वास्तम्भकृदुन्नतः।
मत्स्यगन्धिर्भवेत्पक्वः सोऽलसो मांसशातनः३३

कफ और पित्तसे जिह्वाके अधोभागमें जो जिह्वाको स्तम्भितकरनेवाली ऊंची सूजन उत्पन्न होजाय पकनेपर इसमेंसे मछलीकीसी गंध आवे और गलकर मांस गिरनेलगे इसको जिह्वालसरोग कहते हैं॥३३॥

आधीजिह्वके लक्षण।

प्रबन्धनेऽधो जिह्वायाः शोफो जिह्वाग्रसन्निभः।
साङ्कुरः कफपित्तास्रैर्लालोषास्तम्भवान् खरः।
अधिजिह्वःसरुक्कण्डुर्वाक्याहारविघातकृत् ३४॥

जीभके बधनके अधोभागमें जिह्वाके अग्रभागके समान सूजन उत्पन्न होजाय उसमें अंकुर हों तथा लार गिरती हो दाह और स्तम्भ हों सूजन खरदरी हो उसमें पीड़ा और खुजली हो इस कारणसे बोलनेमें और भोजन करनेमें कठिनाई हो, इस कफपित्त और रक्तजनित रोगको अधिजिह्व कहते हैं॥ ३४॥

तादृगेवोपजिह्वस्तु जिह्वाया उपरि स्थितः॥३५॥

यदि इन्ही लक्षणोंवाला शोथ ऐसा ही जिह्वाके ऊपरके भागमें उत्पन्न हो तो उसको उपजिह्व कहते है॥३५॥

तालुरोग।

तालुमांसेऽनिलाद्दुष्टे पिटिकाः सरुजः खराः।
बह्व्यो घनाः स्रावयुक्तास्तास्तालु-
--पिटिकाः स्मृताः॥ ३६॥

यदि वायुसे तालुका मांस दूषित हो तो खर पीडा युक्त बहुतसी पिटिकायें होजाती है ये पिटिकायें घन और स्राव युक्त होती हैं इनको तालुपिटिका कहते हैं ३६

गलशुण्डिकाके लक्षण।

तालुमूले कफात्सास्रान्मत्स्यबस्तिनिभो मृदुः।
प्रलम्बःपिच्छिलःशोफो नासयाऽऽहारमीरयन्।
कण्ठोपरोधस्तृट्कासवमिकृद्गलशुण्डिका ३७॥

तालुके मूलमें रक्तयुक्त कफसे मछलीकी वस्तीके समान मृदु और लटकनेवाली सूजन उत्पन्न होजाय इस कारणसे आहार नासिकाकी ओर जाय कण्ठ रुकजाय तथा तृषा, खांसी और वमन हो तो इसको गलशुंडिका कहते है॥ ३७॥

तालुसंहतिके लक्षण ।

तालुमध्ये निरुङ्मांसं संहतं तालुसंहतिः ।

तालुके मध्यमें पीड़ारहित दृढमांस उत्पन्न होजाय उसको तालुसंहति कहते है ।

ताल्वर्बुदके लक्षण ।

पद्माकृतिस्तालुमध्ये रक्ताच्छ्वयथुरर्बुदम् ॥ ३८ ॥

तालुके मध्यमें कमलके आकारकी सूजन उत्पन्न होजाय उसको ताल्वर्बुद कहते है ॥ ३८ ॥

तालुकच्छपके लक्षण ।

कच्छपः कच्छपाकारश्चिरवृद्धिः कफादरुक् ।

कफसे पीड़ारहित कच्छपके आकारका देरमें बढ़नेवाला शोथ तालुमें उत्पन्न होजाय उसको तालुकच्छप कहते है ।

कोलाभः श्लेष्ममेदोभ्यां पुप्पुटो नीरुजः स्थिरः ॥

कफ और मेदसे जंगली बेरके समान पीड़ारहित और स्थिर शोथ तालुमें उत्पन्न होजाय उसको तालु पुप्पुट कहते है ॥ ३९ ॥

तालुपाक और तालुशोषके लक्षण ।

पित्तेन पाकः पाकाख्यः पूयास्रावी महारुजः ।

पित्तसे तालुमें पूय और रक्तके स्रावकरनेवाला महापीड़ायुक्त पाक उत्पन्न होजाय उसको तालुपाक कहते है ।

वातपित्तज्वरायासैस्तालुशोषस्तदाह्वयः ॥ ४० ॥

वात और पित्तके प्रकोपसे अथवा ज्वर या आयाससे तालु सूखजाय इसको तालुशोषरोग कहते हैं ४०

रोहिणीके लक्षण ।

जिह्वाप्रबन्धजाः कण्ठे दारुणा मार्गरोधिनः ।
मांसाङ्कुराः शीघ्रचया रोहिणी शीघ्रकारिणी ४१

जो जिह्वाके मूलभागमें उत्पन्न होकर शीघ्र बढ़जानेवाले दारुण और कंठके मार्गके रोकदेनेवाले मांसांकुर कंठमें होजाते है इस शीघ्र मारदेनेवाले रोगको रोहिणीरोग कहते है ॥ ४१ ॥

वातज रोहिणीके लक्षण ।

कण्ठास्यशोषकृद्वातात्सा हनुश्रोत्ररुक्करी ॥ ४२ ॥

वह रोहिणी वायुसे उत्पन्न हो तो कण्ठ और मुखमें शोष तथा हनु और कानोंमें पीड़ाको उत्पन्न करदेती है ॥ ४२ ॥

पित्तजरोहिणीके लक्षण ।

पित्ताज्ज्वरोषातृण्मोहकण्ठधूमायनान्विता ।
क्षिप्रजा क्षिप्रपाकार्तिरागिणी स्पर्शनासहा ४३ ॥

यदि रोहिणी पित्तसे उत्पन्न हुई हो तो उसमें ज्वर, दाह, प्यास, मोह, कंठमेंसे धुवांसा निकलना, तथा रोहिणीका शीघ्र उत्पन्न होना, जल्दी पकना, लालवर्ण होना और स्पर्शको सहन न कर सकना ये लक्षण होते है ॥ ४३ ॥

कफजरोहिणीके लक्षण ।

कफेन पिच्छिला पाण्डुः--

कफकी रोहिणी पिच्छिल और पाण्डुवर्णवाली होती है ।

--असृजा स्फोटकाचिता ।
तप्ताङ्गारनिभा कर्णरुक्करी पित्तजाकृतिः ।

रक्तकी रोहिणी स्फोटकोंसे युक्त स्पर्श और वर्णमें तपेहुए अंगारके समान होती है इससे कानमें पीड़ा होती है तथा पित्तकी रोहिणीके समान लक्षण होते है।

गम्भीरपाका निचयात्सर्वलिङ्गसमन्विता। ४४ ॥

सन्निपातकी रोहिणीमें सब दोषोंके लक्षण होते है और गंभीर पाक होता है ॥ ४४ ॥

कण्ठशालूकके लक्षण ।

दोषैः कफोल्बणैः शोफः कोलवद्ग्रथितोन्नतः ।
शूककण्टकवत्कण्ठे शालूको मार्गरोधनः ॥ ४५ ॥

कफप्रधान दोषोंसे बेरके समान ग्रथित और उन्नत शोथ कंठमें उत्पन्न होजाय इसमें शूकके समान कांटे हों इस कण्ठमार्गको रोकनेवाले रोगको कंठशालूक कहते है ॥ ४५ ॥

वृन्दके लक्षण ।

वृन्दो वृत्तोन्नतो दाहज्वरकृद् गलपार्श्वगः ॥ ४६ ॥

गलके पार्श्वभागमें दाह और ज्वरके करनेवाली गोल और उन्नत शोथ उत्पन्न होजाय इसको वृन्दरोग कहते है ॥ ४६ ॥

तुण्डिकेरिकाके लक्षण ।

हनुसंध्याश्रितः कण्ठे कार्पासीफलसंनिभः ।
पिच्छिलो मन्दरुक् शोफः कठिनस्तुण्डिकेरिका

कण्ठमें हनुके सन्धिके आश्रित कपासके फलके

समान सूजन उत्पन्न होजाय यह सूजन कठिन पिच्छिल और मन्द पीड़ावाली हो इसको तुंडिकेरिका कहते है४७

गलौघके लक्षण।

बाह्यान्तः श्वयथुर्घोरो गलमार्गार्गलोपमः।
गलौघो मूर्धगुरुतातन्द्रालालाज्वरप्रदः॥

गलके मार्गमें अर्गलाके समान बाहर और अन्दर घोर सूजन उत्पन्न होजाय यह सूजन मस्तकमें भारीपन, तन्द्रा, लालास्राव और ज्वरके उत्पन्नकरनेवाली होती है इसको गलौघ कहते है॥

वलयके लक्षण।

वलयं नातिरुक् शोफस्तद्वदेवायतोन्नतः॥४८॥

इसी प्रकार पीड़ारहित वलयाकार आयत और उन्नत शोथ हो उसको वलय कहते है॥ ४८॥

गलायुकके लक्षण।

मांसकीलो गले दोषैरेकोऽनेकोऽथवाल्परुक्।
कृच्छ्रोच्छ्वासाभ्यवहृतिःपृथुमूलो गलायुकः४९

गलमें वातादि दोषोंसे एक अथवा अनेक मांसकीलक उत्पन्न होजाय वह मूलमेंसे विस्तीर्ण हो पीड़ा अल्प हो तथा उच्छ्वास और अन्न भक्षणादिमें कष्ट हो इस रोगको गलायुक कहते हैं॥ ४९॥

शतघ्नीके लक्षण।

भूरिमांसाङ्कुरवृता तीव्रतृड्ज्वरमूर्धरुक्।
शतघ्नी निचिता वर्तिः शतघ्नीवातिरुक्करी॥५०

कंठमें बहुतसे मांसांकुरोंसे आवृत, तीव्रतृषा ज्वर और मस्तकमें पीड़ाके करनेवाली, तथा गलमें अत्यन्त पीड़ाके करनेवाली मांसांकुरयुक्त वर्ति उत्पन्न होजाय यह शतघ्नीके समान नाशकारीरोग शतघ्नी नामक होता है॥ ५०॥

गलविद्रधिके लक्षण।

व्याप्तसर्वगलः शीघ्रजन्मपाको महारुजः।
पूतिपूयनिभस्रावी श्वयथुर्गलविद्रधिः॥ ५१॥

जो शोथ सम्पूर्ण गलेमें व्याप्त हो और शीघ्र उत्पन्न हो तथा शीघ्र पकजावे इसमें अतिपीड़ा हो और इसमेंसे दुर्गन्धित और पूयके समान स्राव हो इस सूजनको गलविद्रधि कहते है॥ ५१॥

गलार्बुदके लक्षण।

जिह्वावसाने कण्ठादावपाकं श्वयथुं मलाः।
जनयन्ति स्थिरं रक्तं नीरुजं तद्गलार्बुदम्॥५२॥

वातादिदोष जीभके मूलस्थानमें और कंठके आदिमें जो पाकरहित, स्थिर, रक्तवर्णवाली, पीड़ारहित शोथ उत्पन्न करते हैं उसको गलार्बुद कहते हैं॥ ५२॥

गलगण्डके लक्षण।

पवनश्लेष्ममेदोभिर्गलगण्डो भवेद्बहिः।
वर्धमानः स कालेन मुष्कवल्लम्बते निरुक्५३॥

वात, कफ और मेदसे गलके बाहर गांठके समान जो शोथ उत्पन्न होता है वह क्रमसे बहुत कालमें बढता २ अण्डकोषके समान और पीड़ारहित गलमें लटकने लगे, इसको गलगण्डरोग कहते हैं॥ ५३॥

वातज गलगण्डके लक्षण।

कृष्णोऽरुणो वा तोदाढ्यः स वातात्—
—कृष्णराजिमान्।
वृद्धस्तालुगले शोषं कुर्याच्च विरसास्यताम् ५४

वह गलगण्डरोग यदि वायुसे हो तो काला, अथवा अरुण होता है, तथा तोदयुक्त कालेवर्णकी रेखाओंसे युक्त होता है। जब यह बढ़जाता है तो तालु और गलमें शोष तथा मुखमें विरसताको उत्पन्न करता है॥ ५४॥

कफज गलगण्डके लक्षण।

स्थिरःसवर्णः कण्डूमान् शीतस्पर्शो गुरुः कफात्
वृद्धस्तालुगले लेपं कुर्याच्च मधुरास्यताम्५५॥

कफसे उत्पन्नहुआ गलगण्ड स्थिर, त्वचाके वर्णके समान वर्णवाला, खुजलीयुक्त, स्पर्शमें शीतल और भारी होता है। जब यह बढ़जाता है तो तालु और गलमें उपलेप तथा मुखमें मीठापनको उत्पन्न कर देता है॥ ५५॥

मेदज गलगण्डके लक्षण।

मेदसः श्लेष्मवद्धानिवृद्ध्योःसोऽनुविधीयते।
देहं वृद्धश्च कुरुते गले शब्दं स्वरेऽल्पताम्॥ ५६

मेदसे उत्पन्नहुआ गलगंड कफके गलगंडके समान लक्षणवाला होता है तथा मनुष्यके शरीरकी मेदवृद्धिसे बढ़ता है और मेदके ह्रास होनेसे कम होजाता है फिर

बढ़कर गलमें घुर्घुरशब्दको करनेलगता है और स्वरमें अल्पता उत्पन्न करदेता है ॥ ५६ ॥

स्वरघ्नरोगके लक्षण ।

श्लेष्मरुद्धानिलगतिः शुष्ककण्ठो हतस्वरः।
ताम्यन् प्रसक्तं श्वसिति येन स स्वरहानिलात् ॥

जब दुष्टहुए कफसे कंठमें वायुकी गति रुकजाती है तब मनुष्यका कंठ सूखजाता है, स्वर बैठजाता है, वह पुरुष व्याकुल होताहुआ कठिनतासे रुकेहुए श्वासको लेता है इस वातज रोगको स्वरघ्नरोग कहते है ॥५७॥

मुखपाकके लक्षण ।

करोति वदनस्यान्तर्व्रणान्सर्वसरोऽनिलः ।
संचारिणोऽरुणान् रूक्षानोष्ठौ ताम्रौ चलत्वचौ
जिह्वा शीतासहा गुर्वी स्फुटिता कण्टकाचिता ।
विवृणोति च कृच्छ्रेण मुखपाको मुखस्य च५९

कुपितहुआ वायु मुखमे सबओर प्रसार करताहुआ मुखके अन्दर रूक्षव्रणोंको उत्पन्न करदेता है. ये व्रण मुखमें फैलनेवाले और लालवर्णके होते है ओष्ठ ताम्रवर्णके और चलित त्वचावाले होजाते है. जिह्वा भारी, शीत स्पर्शको सहन न करनेवाली, फटीहुई और कण्टकोंसे युक्त होजाती है मनुष्य मुखको कष्टसे खोल सकता है इस रोगको मुखपाकरोग कहते है॥५८॥५९

ऊर्ध्वगदके लक्षण ।

अधः प्रतिहतो वायुरर्शोगुल्मकफादिभिः ।
यात्यूर्ध्वं वक्त्रदौर्गन्ध्यं कुर्वन्नूर्ध्वगदस्तु सः ६०

अर्श, गुल्म और कफादिकोंके कारण नीचेसे प्रतिहतहुआ वायु जब ऊपरको जाता है तो मुखमे दुर्गंधको उत्पन्न करता हुआ निकलता है इसको ऊर्ध्वगद कहते है ॥ ६० ॥

पित्तज मुखपाकके लक्षण ।

मुखस्य पित्तजे पाके दाहोषे तिक्तवक्त्रता ।
क्षारोक्षितक्षतसमा व्रणाः—

पित्तके मुखपाकमें दाह, ऊषा, मुखका कडुवापन, तेजाबके जखमोंके समान मुखमें व्रण होना ये लक्षण होते है ।

—तद्वच्च रक्तजे ॥ ६१ ॥

इसीके समान लक्षण रक्तके मुखपाकमें होते हैं।६१॥

कफज मुखपाकके लक्षण ।

कफजे मधुरास्यत्वं कण्डूमत्पिच्छिलाव्रणाः६२

कफके मुखपाकमें मुखमे मीठापन खुजलीवाले और पिच्छिल व्रण होते है॥ ६२ ॥

अन्तःकपोलमाश्रित्यश्यावपाण्डुकफोऽर्बुदम् ।
कुर्यात्तत्पाटितं छिन्नं मृदितं च विवर्धते॥६३॥

मुखके अन्तर्भागमें आश्रित होकर कफ, श्याव और पाण्डुवर्णके अर्बुद (रसौली) को उत्पन्न करदेता है। यदि इसको काटाजाय या इसको उत्पाटित किया-जाय या मर्दन किया जाय तो यह बढजाता है ॥६३॥

मुखपाको भवेत्सास्रैः सर्वैः सर्वाकृतिर्मलैः॥६४॥

वात पित्त कफ और रक्तसे जो मुखपाक होता है अर्थात् रक्तयुक्त तीनों दोषोंसे जो मुखपाक होता है उसमें सब दोषोंके लक्षण होते है ॥ ६४ ॥

पूतिवक्त्रताके लक्षण ।

पूत्यास्यता च तैरेव दन्तकाष्ठादिविद्विषः॥६५॥

जो मनुष्य नित्य दन्तधावन आदिसे दांतोंको साफ नहीं रखता उसके मुखसे दुर्गंध आनेलगती है. इसको पूतिवक्त्रता कहते हे॥ ६५ ॥

ओष्ठे गण्डे द्विजे मूले जिह्वायां तालुके गले ।
वक्त्रे सर्वत्र चेत्युक्ताः पञ्चसप्ततिरामयाः ।
एकादशैको दश च त्रयोदश तथा च षट् ।
अष्टावष्टादशाष्टौ च क्रमात् ॥ ६६॥—

ओष्ठोंके ग्यारहरोग, गंडस्थलका एक रोग, दांतोंके दश रोग, दन्तमूलके तेरह रोग, जिह्वाके छः रोग तालुवेके आठ रोग, गलके अठारह रोग और मुखके आठ रोग इस प्रकार ओष्ठ, गंड, दांत, दन्तमूल, जिह्वा, तालु, गल और मुख इन सबके रोग मिलाकर मुखके ७५ रोग कथन किये हैं ॥ ६६ ॥

असाध्य मुखरोग ।

—तेष्वनुपक्रमाः ।

करालौ मांसरक्तोष्ठावर्बुदानि जलाद्विना ।
कच्छपस्तालुपिटिका गलौघः सुषिरो महान् ।

स्वरघ्नोर्ध्वगदः श्यावःशतघ्नीवलयालसाः ॥६७॥
नाड्योष्ठकोपो निचयात् रक्तात्सर्वैश्च रोहिणी।
दशने स्फुटिते दन्तभेदः पक्वोपजिह्विका ॥६८॥

इनमें करालनामक दन्तरोग, जलार्बुदके विना मांसरक्तजनित ओष्ठार्बुद, तालुकच्छप, तालुपिटिका, गलौघ, महासुषिर, स्वरघ्न, ऊर्ध्वगद, श्यावदन्त, शतघ्नी, वलय, अलस (अधिजिह्व), सन्निपातकी दन्तनाड़ी, सन्निपातज ओष्ठकोप, रक्त और सन्निपातकी रोहिणी, स्फुटितदन्तका दन्तभेद और पक्व उपजिह्विका ये रोग असाध्य होते हैं॥ ६७॥ ६८॥

याप्य और साध्य मुखरोग।

गलगण्डः स्वरभ्रंशः कृच्छ्रोच्छ्वासोऽतिवत्सरः।
याप्यस्तु हर्षो भेदश्च शेषान् शस्त्रौषधैर्जयेत्६९

गलगंड, स्वरभंग और कृच्छ्रोच्छ्वास ये एक वर्षके अनन्तर असाध्य होजाते हैं दन्तहर्ष और दन्तभेद, याप्य होते हैं। शेष रोगोंको शस्त्र और औषधिद्वारा साध्य समझकर जीतना चाहिये ॥ ६९ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टांगहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां मुखरोगविज्ञानीयो नाम एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः।

अथातो मुखरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः॥

अब हम मुखरोगकी चिकित्सा अध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥

खण्ड ओष्ठकी चिकित्सा।

खण्डौष्ठस्य विलिख्यान्तौ स्यूत्वा--
--व्रणवदाचरेत् ॥ १ ॥

खण्डौष्ठको शस्त्रसे लेखनकर रेशमके सूतसे सीकर सद्योव्रणके समान चिकित्सा करे ॥ १ ॥

यष्टीज्योतिष्मतीगोध्रश्रावणीसारिवोत्पलैः।
पटोल्या काकमाच्या च तैलमभ्यञ्जनं पचेत्।

मुलहठी, ज्योतिष्मती (मालकांगुनी), पठानी-लोध, गोरखमुण्डी, शारिवा, कमल, पटोलपत्र और काकमाची इनसे सिद्ध कियाहुआ तैल खंडौष्ठके बनादेनेके अनन्तर अभ्यंग करनेमें प्रयोग करना चाहिये॥ १

नस्यं च तैलं वातघ्नमधुरस्कन्धसाधितम्॥२॥

मधुरगणसे और वातघ्न द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ तैल ओष्ठरोगमें नस्यकर्ममें प्रयोग करना चाहिये॥ २ ॥

वातज ओष्ठरोगकी चिकित्सा।

महास्नेहेन वातौष्ठे सिद्धेनाक्तः पिचुर्हितः।
देवधूपमधूच्छिष्टगुग्गुल्वमरदारुभिः।
यष्ट्याह्वचूर्णयुक्तेन तेनैव प्रतिसारणम् ॥३॥

वायुके ओष्ठरोगमें राल, मोम, गूगुल और देवदारुमे सिद्ध कियेहुए महास्नेहमें भिगोयाहुआ फोहा ओष्ठपर लगाकर रखना चाहिये।

तथा मुलहठीके चूर्ण युक्त महास्नेहसे वातज ओष्ठ रोगमें प्रतिसारण करना चाहिये ॥ ३ ॥

नाड्योष्ठं स्वेदयेद्दुग्धसिद्धैरेरण्डपल्लवैः।
खण्डौष्ठविहितं नस्यं तस्य मूर्ध्नि च तर्पणम् ४

वातज ओष्ठरोगको दूधसे सिद्ध कियेहुए एरण्डके पत्रोंकी बाष्प नाड़ीद्वारा देकर स्वेदन करना चाहिये। तथा खंडौष्ठमें कहेहुए तेलकी नस्य और मस्तकको उसी तेलसे तर्पण करना हितकारी होता है ॥ ४ ॥

पित्त तथा अभिघात ओष्ठरोगकी चिकित्सा।

पित्ताभिघातजावोष्ठौ जलौकोभिरुपाचरेत्।
रोध्रसर्जरसक्षौद्रमधुकैः प्रतिसारणम् ॥ ५ ॥

पित्तजनित और अभिघातजनित ओष्ठरोगमें प्रथम जलौका लगाकर रक्त निकालना चाहिये।

तदनन्तर लोध, राल, मुलहठी और मधु इनका ओष्ठोंपर प्रतिसारण (लेप) करना चाहिये ॥ ५ ॥

गुडूचीयष्टिपत्तङ्गसिद्धमभ्यञ्जने घृतम् ॥ ६ ॥

गिलोय, मुलहठी और पतंगसे सिद्ध कियाहुआ घृत पित्तज ओष्ठरोगपर लगाना चाहिये ॥ ६ ॥

पित्तविद्रधिवच्चात्र क्रिया–

पित्तज और अभिघातज ओष्ठरोगमें पित्तविद्रधिके समान चिकित्सा करनी चाहिये।

–शोणितजेऽपि च ।
इदमेव भवेत्कार्यं कर्म ॥ ७ ॥–

रक्तजनित ओष्ठरोगमेंभी पित्तज ओष्ठरोगमें कहेहुए कार्यक्रमका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७ ॥

कफज ओष्ठरोगकी चिकित्सा ।

–ओष्ठे तु कफोत्तरे ।
पाठाक्षारमधुव्योषैर्हृतास्रे प्रतिसारणम् ।
धूमनावनगण्डूषाः प्रयोज्याश्च कफच्छिदः॥८॥

कफजनित ओष्ठरोगमें रक्त निकालनेके अनन्तर पाठा, जवाखार, सोंठ, मिर्च और पीपल इन सब द्रव्योंका बारीक चूर्णकर मधुमें मिला प्रतिसारण करे तथा कफनाशक धूम, नस्य और गंडूषोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥

मेदजनित ओष्ठरोगकी चिकित्सा ।

स्विन्नं भिन्नं विमेदस्कं दहेन्मेदोजमग्निना ।
प्रियङ्गुरोध्रत्रिफलामाक्षिकैः प्रतिसारयेत् ॥९॥

मेदजनित ओष्ठरोगमें प्रथम स्वेदन करे फिर भेदन कर उसके ओष्ठकी मेदके निकाल देवे फिर अग्निसे दहन कर प्रियंगु, लोध्र और त्रिफलेके चूर्णको मधुमें मिलाकर प्रतिसारण करे ॥ ९ ॥

जलार्बुदकी चिकित्सा ।

सक्षौद्रा घर्षणं तीक्ष्णा भिन्नशुद्धे जलार्बुदे ।
अवगाढेऽतिवृद्धे वा क्षारोऽग्निर्वा प्रतिक्रिया१०

जलार्बुदरोगमें अर्बुदको भेदन करके ओष्ठके शुद्ध होनेपर पीपल, मिर्च आदि तीक्ष्णद्रव्योंके चूर्णको मधुमें मिलाकर घर्षण करे. यदि जलार्बुद अति बढगया हो और स्थिरमूल होगया हो तो क्षार अथवा अग्निसे दहन करना चाहिये ॥ १० ॥

गण्डस्थ अलजीकी चिकित्सा ।

आमाद्यवस्थास्वलजीं गण्डे शोफवदाचरेत् ।
स्विन्नस्य शीतदन्तस्य पालीं विलिखितां दहेत्

गंडस्थलमें उत्पन्नहुई अलजीको शोथरोगके समान कच्चा पक्का आदि विचार कर शोथरोगके समान ही चिकित्सा करे ॥ ११ ॥

शीतदन्तकी चिकित्सा ।

तैलेन प्रतिसार्या च सक्षौद्रघनसैन्धवैः ।
दाडिमत्वग्वरातार्क्ष्यकान्ताजम्ब्वस्थिनागरैः ।
कवलः क्षीरिणां क्वाथैरणुतैलं च नावनम्१२॥

शीतदन्तरोगमें दन्तपालीको स्वेदनकरके व्रीहि· मुखशस्त्रसे दंतपालीमें लेखन करके गरमतेलसे दहन करे. तदनन्तर नागरमोथा, सेंधानमक, दाडिमका छिल्का, त्रिफला, रसौत, प्रियंगु, जामुनकी गुठली और सोंठ इनका चूर्णकर मधुमें मिलाकर प्रतिसारण करे तथा क्षीरीवृक्षोंके क्काथोंसे कवल धारण करे और अणुतैलकी नस्य लेवे ॥ १२ ॥

दन्तहर्ष और दन्तभेदकी चिकित्सा ।

दन्तहर्षे तथा भेदे सर्वा वातहरा क्रिया ।
तिलयष्टीमधुश्रृतं क्षीरं गण्डूषधारणम् ॥१३॥

दन्तहर्षरोगमें और दन्तभेदरोगमें सब क्रियायें वातनाशक करनी चाहिये । तथा तिल मुलहठीसे सिद्ध कियाहुआ दूध मुखमें धारण कर गंडूष (गरारे) करना चाहिये ॥ १३ ॥

प्रचलितदन्तकी चिकित्सा ।

सस्नेहं दशमूलाम्बु गण्डूषः प्रचलद्द्विजे॥१४॥
तुत्थरोध्रकणाश्रेष्ठापत्तङ्गपटुघर्षणम् ।
स्निग्धाः शील्या यथावस्थं नस्या–
–न्नकवलादयः ॥ १५ ॥

प्रचलितदांतरोगमें दशमूलके क्वाथमें वातनाशक तैल मिलाकर गंडूष धारण करना चाहिये. तथा नीला· थोथा, पठानीलोध, पीपल, हरड, बहेडा, आंवला, पतंग और सेन्धानमक इनका चूर्ण दांतोंमे घर्षण करना चाहिये और अवस्थानुसार स्निग्ध नस्य, स्निग्ध अन्न और कवल आदि सेवन करना चाहिये॥ १४-१५

अधिदन्तकी चिकित्सा ।

अधिदन्तकमालिप्तं यदा क्षारेण जर्जरम् ।
कृमिदन्तमिवोत्पाट्य तद्वच्चोपचरेत्तदा ।
अनवस्थितरक्ते च दग्धे व्रण इव क्रिया॥१६॥

अधिदंतरोगमें अधिकदंतको क्षार लगाकर जर्जर बनादेवे फिर कृमिदन्तके समान उत्पाटनकर सब क्रियायें कृमिदन्तके समान ही करे । यदि दग्ध करने-

पर रक्त स्थिर न हो तो व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १६ ॥

दन्तशर्कराकी चिकित्सा ।

अहिंसन् दन्तमूलानि दन्तेभ्यः शर्करां हरेत् ।
क्षारचूर्णैर्मधुयुतैस्ततश्च प्रतिसारयेत् ॥ १७ ॥

दन्तशर्करारोगमें दन्तमूलोंकी हिंसा न करतेहुए शस्त्रसे दांतोंको साफकर दांतोंकी शर्कराको निकाल देवे तदनन्तर क्षार चूर्णोंको मधुमें मिलाकर दांतोंपर मले ॥ १७ ॥

दन्तकपालिकाकी चिकित्सा ।

कपालिकायामप्येवं हर्षोक्तं च समाचरेत्॥१८॥

कपालिकारोगमें भी दांतोंपर यही चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् दन्तशर्कराके समान चिकित्सा करे. तदनन्तर दन्तहर्षरोगके समान क्रिया करनी चाहिये ॥ १८ ॥

कृमिदन्तकी चिकित्सा ।

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदन्तकम् ।
स्निग्धैश्चालेपगण्डूषनस्याहारैश्चलापहैः ॥१९॥
गुडेन पूर्णं सुषिरं मधूच्छिष्टेन वा दहेत् ।
सप्तच्छदार्कक्षीराभ्यां पूरणं कृमिशूलजित् २०

कृमिदन्तरोगमें यदि दन्त निश्चल हो तो प्रथम छेदनकर रक्त विस्रावण करे. तदनन्तर वातनाशक स्निग्ध आलेप गंडूष और आहारोंका सेवन करे। यदि दन्त सुषिर (पोला) हो तो उसको गुडसे अथवा मोमसे भरकर फिर दहन करे अथवा सातला और आकका दूध दांतमें भरनेसे कृमिशूल नष्ट होता है ॥ १९ ॥ २० ॥

दन्तशूलकी चिकित्सा ।

हिङ्गुकट्फलकासीससर्जिकाकुष्ठवेल्लजम् ।
रजो रुजं जयत्याशु वस्त्रस्थं दशने धृतम् २१

हींग, कायफल, कासीस, सज्जी, कूठ और वायविडंग इनका बारीकचूर्ण पतले वस्त्रमे बांधकर दांतमें धारण करनेसे दंतशूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ २१ ॥

गण्डूषं धारयेत्तैलमेभिरेव च साधितम् ।
क्वाथैर्वा युक्तमेरण्डद्विव्याघ्रीभूकदम्बजैः॥२२॥

अथवा इन्हीं हींगआदि द्रव्योंसे सिद्धकियेहुए तैल अथवा एरण्ड, दोनों कटेली और भूकदम्बके क्काथमें मिलाकर यह तेल गंडूषधारण करे तो दंतपीड़ा शमन होजाती है ॥ २२ ॥

क्रियायोगैर्बहुविधैरित्यशान्तरुजं भृशम् ।
दृढमप्युद्धरेद्दन्तं पूर्वं मूलाद्विमोक्षितम्॥ २३ ॥
संदंशकेन लघुना दन्तनिर्घातनेन वा ।
तैलं सयष्ट्याह्वरजो गण्डूषो मधुना ततः॥२४

यदि इन सम्पूर्ण औषधक्रियाओंके करनेसे भी दन्तपीड़ा शमन न हो तो दृढदन्तको भी प्रथम मूलमेंसे शस्त्रद्वारा विमोक्षितकर छोटे संदंशयंत्रसे अथवा दंतनिर्घातनयंत्रसे दांतको निकालदेवे । तदनन्तर मुलहठीका चूर्ण और मधु मिलेहुए तैलसे गंडूष धारण करे ॥ २३ ॥ २४ ॥

ततो विदारियष्ट्याह्वशृङ्गाटककसेरुभिः ।
तैलं दशगुणक्षीरं सिद्धं युञ्जीत नावनम्॥२५॥

तदनन्तर विदारीकन्द, मुलहठी, सिंघाड़े और कसेरूओंके कल्कसे तथा दशगुणे दूधसे सिद्ध कियेहुए तेलकी नस्यका प्रयोग करना चाहिये ॥ २५ ॥

दांतनिकालनेके अयोग्य पुरुष ।

कृशदुर्बलवृद्धानां वातार्तानां च नोद्धरेत् ।
नोद्धरेच्चोत्तरं दन्तं बहूपद्रवकृद्धि सः ।
एषामप्युद्धृतैःस्निग्धः स्वादुः शीतः क्रमो हितः

जो मनुष्य कृश दुर्बल वृद्ध अथवा वातपीड़ित हों उनके दांतोंको नहीं निकालना चाहिये । तथा ऊपरका दांत भी नहीं निकालना चाहिये. क्योंकि उससे अनेक उपद्रव होजाते हैं; यदि कारणवश इन कृशआदि पुरुषोंके दांत निकाले जाय तो तदनन्तर स्निग्ध, स्वादु और शीतल द्रव्योंका प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ २६ ॥

शीतादरोगकी चिकित्सा ।

विस्राविताय शीतादे सक्षौद्रैः प्रतिसारणम्२७
मुस्तार्जुनत्वक्त्रिफलाफलिनीतार्क्ष्यनागरैः ।
तत्क्वाथः कवलो नस्यं तैलं मधुरसाधितम् २८

शीतादरोगमें रक्तनिकालनेके अनन्तर नागरमोथा,

अर्जुनकी छाल, त्रिफला, प्रियंगु, रसौत और सोंठ इनका चूर्ण मधु मिलाकर प्रतिसारण करना चाहिये और इन्हीं नागरमोथा आदिके क्वाथके कवल धारण करना चाहिये। एवं मधुरगणके द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तैलकी नस्य लेना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥

उपकुशरोगकी चिकित्सा।

दन्तमांसान्युपकुशे स्विन्नान्युष्णाम्बुधारणैः।
मण्डलाग्रेण शाकादिपत्रैर्वा बहुशो लिखेत्॥२९
ततश्च प्रतिसार्याणि घृतमण्डमधुद्रुतैः।
लाक्षाप्रियङ्गुपत्तङ्गलवणोत्तमगैरिकैः॥ ३० ॥
सकुष्ठशुण्ठीमरिचयष्टीमधुरसाञ्जनैः।
सुखोष्णो घृतमण्डोऽनु तैलं वा कवलग्रहः।
घृतं च मधुरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः॥३१॥

उपकुशरोगमें दन्तमांसोंको मुखमें गर्मजल धारण करके स्वेदन करे. फिर मंडलाग्रशस्त्रसे अथवा शाकपत्रादिसे बहुत स्थानोंमें लेखन करके फिर लाख, प्रियंगु, पतंग, सेंधानमक, गेरू, कूठ, सोंठ, मिर्च, मुलहठी और रसौतके चूर्णको घृतमंड और मधुमें मिलाकर प्रतिसारण करे। तदनन्तर घृतमंड अथवा तैल सुखोष्णकर मुखमें धारण करे तथा मधुरगणसे सिद्ध कियाहुआ घृत कवल धारण करनेमें और नस्यकर्ममें श्रेष्ठ होता है ॥ २९-३१ ॥

पुप्पुटरोगकी चिकित्सा।

दन्तपुप्पुटके स्विन्नछिन्नभिन्नविलेखिते।
यष्ट्याह्वस्वर्जिकाशुण्ठीसैन्धवैःप्रतिसारणम्३२

दन्तपुप्पुटरोगमें स्वेदन, छेदन, भेदन और लेखन करनेके अनन्तर मुलहठी, सज्जी, सोंठ और सेंधानमकसे प्रतिसारण (मर्दन) करना चाहिये ॥ ३२ ॥

दन्तविद्रधिकी चिकित्सा।

विद्रधौ कटुतीक्ष्णोष्णरूक्षैः कवललेपनम् ३३
घर्षणं कटुकाकुष्ठवृश्चिकालीयवोद्भवैः।
रक्षेत्पाकं हिमैः पक्वः पाट्यो दाह्योऽवगाढकः॥

दन्तविद्रधिरोगमें कटु तीक्ष्ण उष्ण और रूक्ष द्रव्योंसे कवल धारण करना और लेपनकरना चाहिये तथा कुटकी, कूठ, वृश्चिकाली और यवके चूर्णसे घर्षण करना चाहिये। तथा शीतवीर्य औषधियोंके घर्षण आदिसे दन्तविद्रधिको पकनेसे पहले ही शमन करदेवे. यदि पकजाय तो उसको पाटनकर अग्निसे गाढ़दहन करदेना चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

दन्तसुषिरकी चिकित्सा।

सौषिरे छिन्नलिखिते सक्षौद्रैः प्रतिसारणम्।
रोध्रमुस्तमिशिश्रेष्ठाताक्ष्यपत्तङ्गकिंशुकैः।
सकट्फलैः कषायैश्च तेषां गण्डूष इष्यते॥३५

दन्तसौषिररोगमें छेदन और लेखन करनेके अनन्तर लोध्र, नागरमोथा, सौंफ, हरड़, बहेड़े, आंवले, रसौत, पतंग, केसू और कायफल, इनके चूर्णको मधुमें मिलाकर मर्दन करे तथा इन्हीं लोध्र आदि द्रव्योंके क्वाथसे गंडूष करे ॥ ३५ ॥

यष्टीरोध्रोत्पलानन्तासारिवागरुचन्दनैः।
सगैरिकसितापुण्ड्रैः सिद्धं तैलं च नावनम्॥३६

मुलहठी, पठानीलोध, कमल, कालासारिवा, श्वेतसारिवा, अगर, चन्दन, गेरू, मिश्री और पंडियारा इनके कल्क और क्वाथसे सिद्धकिया तैल नस्यमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ३६ ॥

अधिमांसकी चिकित्सा।

छित्त्वाधिमांसकं चूर्णैःसक्षौद्रैः प्रतिसारयेत्३७
वचातेजोवतीपाठास्वर्जिकायवशूकजैः।
पटोलनिम्बत्रिफलाकषायः कवलो हितः ३८॥

अधिमांसको प्रथम छेदनकर फिर बच, तेजोवती, पाठा, सज्जी और जवाखारके चूर्णको मधुमें मिलाकर प्रतिसारण करे। तदनन्तर पटोलपत्र, निम्ब और त्रिफलेका क्वाथ मुखमें धारण करना चाहिये ३७॥३८

विदर्भकी चिकित्सा।

विदर्भे दन्तमूलानि मण्डलाग्रेण शोधयेत्।
क्षारं युंज्यात्ततो नस्यं गण्डूषादि च-
-शीतलम् ॥ ३९ ॥

विदर्भरोगमें दन्तमूलोंको मंडलाग्रशस्त्रसे शोधनकरे तदनन्तर क्षारप्रयोग करे फिर शीतवीर्यद्रव्योंसे सिद्धकियेहुए नस्य और गंडूष आदि सेवन करे ॥ ३९॥

दन्तनाडीकी चिकित्सा।

संशोध्योभयतः कायं शिरश्चोपचरेत्ततः।
नाडीं दन्तानुगां दन्तं समुद्धृत्याग्निना दहेत्॥४०॥

दन्तनाडीरोगमें प्रथम वमनविरेचनादिसे शरीरको शोधनकर तथा नस्यकर्मादिसे मस्तकको शोधनकर तदनन्तर दन्तके अनुगामी दन्तनाडीको और दांतको निकालकर उस स्थानको अग्निसे दहन करे॥ ४०॥

कुब्जां नैकगतिं पूर्णां मदनेन गुडेन वा।
धावनं जातिमदनखदिरस्वादुकण्टकैः।
क्षीरिवृक्षाम्बुगण्डूषो नस्यं तैलं च तत्कृतम्॥४१॥

यदि नाड़ी टेढ़ी और अनेकगतिवाली हो तो उसको गुडसे अथवा मैनफलसे पूर्ण करके दहन करे. तथा चमेलीके पत्र, मैनफल, खैर और कंडियाई, इनसे घर्षण करे. तथा क्षीरीवृक्षोंके क्वाथसे गंडूष धारण करे और क्षीरीवृक्षोंके कल्क क्वाथसे सिद्धकियेहुए तैलकी नस्य लेवे॥ ४१॥

वातज जिह्वाकण्टककी चिकित्सा।

कुर्याद्वातोष्ठकोपोक्तं कण्टकेष्वनिलात्मसु।
जिह्वायाम्॥ ४२॥-

वातके जिह्वाकण्टकरोगमें वातज ओष्ठकोपकी चिकित्साके समान चिकित्सा करनी चाहिये॥ ४२॥

पित्तज जिह्वाकण्टककी चिकित्सा।

-पित्तजातेषु घृष्टेषु रुधिरे स्रुते।
प्रतिसारणगण्डूषनावनं मधुरैर्हितम्॥ ४३॥

पित्तके जिह्वाकंटकमें घर्षण कर रक्त निकालना चाहिये फिर मधुरगणके द्रव्योंसे प्रतिसारण गंडूष और नस्यकर्म करना चाहिये॥ ४३॥

कफके जिह्वाकण्टक तथा जिह्वालसकी चिकित्सा।

तीक्ष्णैः कफोत्थेष्वप्येवं सर्षपत्र्यूषणादिभिः।

कफके जिह्वाकंटकरोगमें घर्षणकर रक्तनिकलनेपर सरसों, सोंठ, मिर्च और पीपल आदि तीक्ष्ण द्रव्योंसे प्रतिसारण और गंडूषादि धारण करने चाहिये।

नवे जिह्वालसेऽप्येवं तं तु शस्त्रेण न स्पृशेत्॥४४॥

यदि जिह्वालसरोग नवीन हो तो उसमेंभी कफके जिह्वाकंटकरोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये और शस्त्रका स्पर्श नहीं करना चाहिये॥ ४४॥

अधिजिह्वाकी चिकित्सा।

उन्नम्य जिह्वामाकृष्टां बडिशेनाधिजिह्विकाम्।
छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादि च॥४५॥

अधिजिह्वारोगमें जिह्वाको ऊपरको ओर उठाकर बडिशके साथ अधिजिह्वाको खैंचकर मंडलाग्रशस्त्रसे छेदन करदेवे तथा तीक्ष्ण और उष्ण स्वभाववाले द्रव्योंसे घर्षणादिकर्म करे॥ ४५॥

उपजिह्वाकी चिकित्सा।

उपजिह्वां परिस्राव्य यवक्षारेण घर्षयेत्॥४६॥

उपजिह्वारोगमें उपजिह्वाके रक्तको स्रावणकरा यवक्षारसे घर्षण करना चाहिये॥ ४६॥

गलशुण्डिकाकी चिकित्सा।

कफघ्नैः शुण्डिका साध्या नस्यगण्डूषघर्षणैः॥४७॥

गलशुंडिकारोगमें साध्यगलशुंडिकाको कफनाशक नस्य गंडूष और घर्षणोंसे शमन करना चाहिये॥४७॥

ऐर्वारुबीजप्रतिमं वृद्धावामाशिराततम्।
अग्रे निविष्टं जिह्वाया बडिशाद्यवलम्बितम्
छेदयेन्मण्डलाग्रेण नात्यग्रे न च मूलतः।
छेदेऽत्यसृक्क्षयान्मृत्युर्हीने व्याधिर्विवर्धते॥४८॥

ककड़ीके बीजके समान आकारवाली तथा कृष्ण वर्ण और फैलीहुई तथा बढ़ीहुई गलशुंडिकाको जो जिह्वाके अग्रभागमें निविष्ट हो ऐसी गलशुंडिकाको बडिश आदि यंत्रसे अवलम्बितकर मंडलाग्रशस्त्रसे यथार्थ-स्थानमें छेदन करदेवे। गलशुंडिकाको छेदन करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि. वह बहुत अग्र-भागमेंसे या बहुत मूलमेंसे न काटी जावे. क्योंकि. मूलमेंसे काटनेसे अधिक रक्त निकलकर प्राण नाश होजानेका भय है और अग्रभागमेंसे काटदेनेसे वह रोग औरभी अधिक बढ़जाता है। इस कारण उचित स्थानसे छेदन करना चाहिये॥ ४८॥

मरिचातिविषापाठावचाकुष्ठकुटन्नटैः।
छिन्नायां सपटुक्षौद्रैर्घर्षणं कवलः पुनः।
कटुकातिविषापाठानिम्बराम्नावचाम्बुभिः॥४९॥

तदनन्तर मिर्च, अतीस, पाठा, वच, कूठ, सोना-पाठा इनके चूर्णमें नमक और मधु मिलाकर गलशुं-

डिकाके छेदन कियेहुए स्थानपर घर्षण करना चाहिये । फिर कटुकी, अतीस, पाठा, निम्ब, रास्ना और वचके क्वाथके कवल धारण करना चाहिये॥ ४९ ॥

सङ्घाते पुप्पुटे कूर्मे विलिख्यैवं समाचरेत् ५०॥

तालु संघात, पुप्पुट और कूर्म इन रोगोंमें भी इसी प्रकार लेखनकरके क्रमसे घर्षणआदि क्रिया करनी चाहिये ॥ ५० ॥

तालुपाककी चिकित्सा ।

अपक्वे तालुपाके तु कासीसक्षौद्रतार्क्ष्यजैः ।
घर्षणं कवलः शीतकषायमधुरौषधैः ॥ ५१ ॥

यदि तालुपाकरोग पकाहुआ न हो तो कासीस, रसौत और शहदसे घर्षण करना चाहिये. तदनन्तर मधुरगणके द्रव्योंसे बनाये हुए शीतकषायके कवल धारण करना चाहिये ॥ ५१ ॥

पक्वेऽष्टापदवद्भिन्ने तीक्ष्णोष्णैः प्रतिसारणम् ।
वृषनिम्बपटोलाद्यैस्तिक्तैः कवलधारणम् ॥ ५२

यदि तालुपाक पकजाय तो शस्त्रसे अष्टापदके समान भेदन करके तीक्ष्ण और उष्ण द्रव्योंसे प्रतिसारण करे. तदनन्तर अडूसा, नीम और पटोल आदि तिक्त द्रव्योंके क्वाथसे कवल धारण करे ॥ ५२ ॥

तालुशोषकी चिकित्सा ।

तालुशोषे त्वतृष्णस्य सर्पिरुत्तरभक्तिकम् ।
कणाशुण्ठीशृतं पानमम्लैर्गण्डूषधारणम् ।
धन्वमांसरसाः स्निग्धाः क्षीरसर्पिश्च नावनम् ॥५३

तालुशोषरोगमें यदि तृषा न हो भोजनोत्तर घृतपान कराना चाहिये तथा पीपल सोंठसे सिद्धकिया हुआ जल पीना चाहिये और अम्लपदार्थोंसे गंडूष धारण करना चाहिये । जांगल मांसरसोंको स्निग्धकर सेवन करना चाहिये तथा दूधसे निकालेहुए घृतकी नस्य लेना चाहिये ॥ ५३ ॥

कण्ठरोगोंकी सामान्य चिकित्सा ।

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादि कर्म च ५४

कंठरोगोंमें रक्तका निकालना और तीक्ष्ण नस्यादि कर्म करना हितकारी होता है ॥ ५४ ॥

क्वाथः पानं च दार्वीत्वङ्निम्बतार्क्ष्यकालिङ्गजः ।
हरीतकीकषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः ॥५५॥

तथा दारुहलदीकी छाल, निम्ब, रसौत और इन्द्रयवका क्वाथ अथवा हरीतकीका क्वाथ मधु मिलाकर पीना चाहिये ॥ ५५ ॥

श्रेष्ठाव्योषयवक्षारदार्वीद्वीपिरसाञ्जनैः ।
सपाठातेजिनीनिम्बैः सूक्तगोमूत्रसाधितैः ।
कवलो गुटिका चाऽत्र कल्पिता-
-प्रतिसारणम् ॥ ५६ ॥

हरड़, बहेड़े, आंवले, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार, दारुहलदी, चित्रक, रसौत, पाठा, तेजोवती और निम्ब इनको सूक्त और गोमूत्रमें पकाकर कवल धारण करना और इन्हींसे बनायीहुई गोलीको घिसकर प्रतिसारण करना कंठरोगोंको शमन करता है ॥ ५६ ॥

निचुलं कटभी मुस्तं देवदारु महौषधम् ।
वचा दन्ती च मूर्वा च लेपः कोष्णोऽर्तिशोफहा॥

निचुल, कटभी, नागरमोथा, देवदारु, सोंठ, मांसरोहिणी, दन्ती और मूर्वा इनका कोष्ण लेप करना सूजन और पीड़ाको दूर करता है ॥ ५७ ॥

वातरोहिणीकी चिकित्सा ।

अथाऽन्तर्बाह्यतः स्विन्नां वातरोहिणिकां लिखेत्
अङ्गुलीशस्त्रकेणाऽशु पटुयुक्तनखेन वा ।
पञ्चमूलाम्बुकवलस्तैलं गण्डूषनावनम् ॥ ५९ ॥

वातरोहिणीको अन्दर और बाहरसे स्वेदन करके अंगुलीशस्त्रके साथ अथवा सेन्धानमक लगेहुए नखशस्त्रके साथ शीघ्र लेखन कर देवे । फिर पंचमूलसे सिद्धकिये हुए जलसे कवल धारण करे पञ्चमूलसे सिद्ध किये हुए तैलसे गण्डूष और नस्यकर्म करे॥५८॥५९॥

पित्तजरोहिणीकी चिकित्सा ।

विस्राव्य पित्तसंभूतां सिताक्षौद्रप्रियङ्गुभिः ।
घर्षेत्सरोध्रपत्तङ्गैः कवलः क्वथितैश्च तैः ।
द्राक्षापरूषकक्वाथो हितश्च कवलग्रहे ॥ ६० ॥

पित्तसे उत्पन्न हुई रोहिणीको विस्रावण करके मिसरी, मधु और प्रियंगुसे घर्षण करे. तथा लोध और पतंगके, क्वाथसे कवल धारण करे । अथवा

द्राक्षा और फालसेका कवल धारण करना भी हितकारी है ॥ ६० ॥

रक्तजरोहिणीकी चिकित्सा।

उपाचरेदेवमेव प्रत्याख्यायास्रसम्भवाम् ॥६१॥

रक्तजनितरोहिणीमें उसको असाध्य कहनेके अनन्तर यदि चिकित्सा करनी ही पड़े तो पित्तकी रोहिणीके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६१ ॥

कफजरोहिणीकी चिकित्सा।

सागारधूमैः कटुकैः कफजां प्रतिसारयेत्।
नस्यगण्डूषयोस्तैलं साधितं च प्रशस्यते।
अपामार्गफलश्वेतादन्तीजन्तुघ्नसैन्धवैः ॥६२॥

कफकी रोहिणीमें घरका धूम, सोंठ, मिरच, और पीपल आदि कटुवर्गकी औषधियोंसे प्रतिसारण करना चाहिये। तथा अपामार्ग, मैनफल, सोंठ, दन्ती, वायविड़ंग और सेंधानमकसे सिद्ध कियेहुए तैलसे नस्य लेना और गण्डूष धारण करना हितकारी होता है ॥ ६२ ॥

वृन्दरोग आदिकी चिकित्सा।

तद्वच्च वृन्दशालूकतुण्डकेरीगिलायुषु ॥ ६३ ॥

इसी प्रकार वृन्दरोग, कण्ठशालूक, गलतुण्डिकेरी और गलायुरोगमें कफकी रोहिणीके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

विद्रधिकी चिकित्सा।

विद्रधौ स्राविते श्रेष्ठारोचनाताक्ष्येगैरिकैः।
सरोध्रपटुपत्तङ्गकणैर्गण्डूषघर्षणे ॥ ६४ ॥

विद्रधिरोगमें विद्रधिको स्रावितकर त्रिफला, लाल कमल, रसौत, गेरू, पठानी लोध, सेन्धानमक, पतंग और पीपल इनसे गण्डूष और घर्षण आदि करना चाहिये ॥ ६४ ॥

वातज गलगण्डकी चिकित्सा।

गलगण्डः पवनजः स्विन्नो निःसृतशोणितः।
तिलैर्बीजैश्च लट्वोमाप्रियालशणसम्भवैः ॥६५॥
उपनाह्यो व्रणे रूढे प्रलेप्यश्च पुनःपुनः।
शिग्रुतिल्वकतर्कारीगजकृष्णापुनर्नवैः।
कालामृतार्कमूलैश्च पुष्पैश्च करहाटजैः।
एकैषिकान्वितैः पिष्टैः सुरया काञ्जिकेन वा॥६६

वातके गलगण्डमें स्वेदन करनेके अनन्तर रक्तस्राव कराना चाहिये. तदनन्तर तिल, कुसुंभेके बीज, चिरौंजी और शणके बीज,इनको पीसकर उपनाह करे। जब व्रण भर जाय तो सोहांजना, तिल्वकलोध,जीवन्ती, गजपीपल, पुनर्नवा, मंजीठ, गिलोय; आककी जड़, मैनफलके फूल और निशोथ इनको सुरा और कांजीमें पीसकर गलगण्डपर बार २ लेप करना चाहिये॥६६

गुडूचीनिम्बकुटजहंसपादीबलाद्वयैः।
साधितं पाययत्तैलं सकृष्णादेवदारुभिः॥६७॥

गिलोय, नींब, कुटज, हंसपादी, बला, अतिबला, पीपल और देवदारु इनसे सिद्ध कियाहुआ तैल वातके गलगण्डवाले रोगीको पिलाना चाहिये ॥ ६७ ॥

कफजगलगण्डकी चिकित्सा।

कर्तव्यं कफजेप्येतत्स्वेदविम्लापने त्वति ॥६८

कफके गलगण्डमें भी स्वेदन और विम्लापन तो बहुत अधिक करना चाहिये, अन्य चिकित्सा वातज गलगण्डके समान ही करनी चाहिये ॥ ६८ ॥

लेपोजगन्धातिविषाविशल्यासविषाणिकाः।
गुञ्जालाबुशुकाह्वाश्च पलाशक्षारकल्किताः ६९

कफके गलगण्डपर अजवायन, अतीस, दन्ती, मेढ़ासिङ्गी, रत्तकें, कड़वीतुम्बी और सोनापाठा इनको पलाशके क्षारमें बारीक पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ६९ ॥

मूत्रश्रृतं हठक्षारं पक्त्वा कोद्रवभुक् पिबेत् ७०

जलकुंभीके क्षारको गोमूत्रमें पकाकर पीवे और कोद्रव अन्नका पथ्य सेवन करे तो कफका गलगण्ड शमन होजाता है ॥ ७० ॥

साधितं वत्सकाद्यैर्वा तैलं सपटुपञ्चकैः।
कफघ्नान् धूमवमननावनादींश्च शीलयेत् ॥७१॥

वत्सकादिगणके कल्क और क्काथ तथा पांचलवणोंसे सिद्ध कियाहुआ तैल नस्यकर्ममें प्रयोग करना चाहिये और कफनाशक धूम, वमन और नस्यादिका परिशीलन करना चाहिये ॥ ७१ ॥

मेदज गलगण्डकी चिकित्सा ।

मेदोभवे सिरां विध्येत्कफघ्नं च विधिं भजेत् ।
असनादिरजश्चैनं प्रातर्मूत्रेण पाययेत् ॥ ७२ ॥

मेदजनित गलगण्डमें प्रथम शिरावेधन करे । फिर सब क्रिया कफके गलगण्डमें कहीहुई करनी चाहिये, तथा इस रोगीको नित्य प्रातःकाल असनादिगणका चूर्ण गोमूत्रके साथ पीना चाहिये ॥ ७२ ॥

अशान्तौ पाटयित्वा च सर्वान् व्रणवदाचरेत् ७३

यदि इन उपायोंसे गलगण्ड शमन न हो तो विधिवत् शस्त्रचिकित्सक वैद्य उत्पाटन करके व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ ७३ ॥

मुखपाककी चिकित्सा ।

मुखपाकेषु सक्षौद्राः प्रयोज्या मुखधावनाः ।
क्वथितास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः ।
निष्ठिव्या भक्षयित्वा वा कुठेरादिगणोऽथवा ७४

मुखपाकरोगोंमें त्रिफला, मुनक्का और चमेलीके पत्रोंका काथकर मुखमें भरकर बार बार कुल्ले करने चाहिये. अथवा त्रिफला, मुनक्का और चमेलीके पत्रोंको मुखमें चबाकर थूकते रहना चाहिये. अथवा कुठेरादिगणके द्रव्योंको मुखमें चबाकर थूकते रहना चाहिये ॥ ७४ ॥

वातजमुखपाककी चिकित्सा ।

मुखपाकेऽनिलात् कृष्णापट्वेलाः प्रतिसारणम् ।
तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥७५॥

वायुके मुखपाकमे पीपल, सेन्धानमक और इलायचीका चूर्ण घर्षण करना चाहिये और वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किया तैल मुखमें धारण करनेमें और नस्यमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ७५ ॥

कफज और पित्त रक्तके मुखपाककी चिकित्सा ।

पित्तास्रे रक्तपित्तघ्नः कफघ्नश्च कफे विधिः ७६॥

पित्तरक्तके मुखपाकमें रक्तपित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये । कफके मुखपाकमें कफनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७६ ॥

लिखेच्छाकादिपत्रैश्च पिटिकाः कठिनाः स्थिराः

मुखकी कठिन और स्थिर पिटिकाओंको शाकपत्र या सेफालिकाके पत्रादिसे लेखन करना चाहिये ७७॥

सन्निपातके मुखपाककी चिकित्सा ।

यथादोषोदयं कुर्यात्सन्निपाते चिकित्सितम् ७८

सन्निपातके मुखपाकमें यथादोष चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७८ ॥

अर्बुदकी चिकित्सा ।

नवेऽर्बुदे त्वसंवृद्धे छेदिते प्रतिसारणम् ।
स्वर्जिकानागरक्षौद्रैः क्वाथो गण्डूष इष्यते ।
गुडूचीनिम्बकल्कोत्थो मधुतैलसमन्वितः ।
यवान्नभुक् तीक्ष्णतैलनस्याभ्यङ्गांस्तथाचरेत् ॥

यदि अर्बुद बढ़ा न हो और नवीन हो तो उसको छेदन करके सज्जी सोंठ और शहदसे प्रतिसारण कर देना चाहिये. तथा गिलोय और निम्बके कल्कसे बनायाहुआ काथ मधु और तैल मिलाकर गण्डूष धारण करना चाहिये और यवान्नका भोजन करना चाहिये, तथा तीक्ष्णतैलसे नस्य और अभ्यङ्ग करना चाहिये॥ ७९

पूतिमुखकी चिकित्सा ।

वमिते पूतिवदने धूमस्तीक्ष्णः सनावनः ।
समङ्गाधातकीरोध्रफलिनीपद्मकैर्जलम् ।
धावनं वदनस्यान्तश्चूर्णितैरवचूर्णनम् ।
शीतादोपकुशोक्तं च नावनादि च शीलयेत् ८०

पूतिमुखरोगमें वमन कराकर तीक्ष्ण धूमपान करना चाहिये. और नस्य लेना चाहिये तथा मंजीठ, धावेके फूल, लोध, प्रियगु और पद्मकाष्ठ इनके काथको मुखमें भरकर मुखमें खूब हिलाकर कुल्ले करने चाहिये तथा इन्ही द्रव्योंके चूर्णको मुखमें बुरकने चाहिये और शीताद तथा उपकुशरोगमें कहेहुए नस्य आदिका सेवन करना चाहिये ॥ ८० ॥

मुखरोगोंकी सामान्य चिकित्सा ।

फलत्रयद्वीपिकिराततिक्त-
यष्ट्याह्वसिद्धार्थकटुत्रिकाणि ।
मुस्ताहरिद्राद्वययावशूक-
वृक्षाम्लकाम्लाग्निमवेतसाश्च ॥ ८१ ॥
अश्वत्थजम्ब्वाम्रधनञ्जयत्वक्
त्वक् चाहिमारात्खदिरस्य सारः ।
क्वाथेन तेषां घनतां गतेन

तच्चूर्णयुक्ता गुटिका विधेयाः ॥ ८२ ॥
ता धारिता घ्नन्ति मुखेन नित्यं
कण्ठौष्ठताल्वादिगदान् सुकृच्छ्रान् ।
विशेषतो रोहिणिकास्यशोष-
गन्धान् विदेहाधिपतिप्रणीताः ॥ ८३ ॥

त्रिफला, चित्रक, चिरायता, मुलहठी, सरसों, त्रिकटु, नागरमोथा, दोनों हलदी, जवाखार, अम्लवेतकाअग्र भाग, अम्लवेत, अश्वत्थ, जामन, आम्र और अर्जुनवृक्षकी छाल, कनेरकी छाल और खैरसार इन सबका काथकर इस काथको छान फिर पकावे; जब वह गाढ़ा होजाय तो इन्हीं त्रिफलादि द्रव्योंका और चूर्ण मिलाकर गोलियें बनालेवें. इन गोलियोंको मुखमें रखनेसे मुख कंठ ओष्ठ तालु आदिके कष्टसाध्यरोग भी नष्ट होजाते हैं विशेषकर रोहिणी मुखशोष और पूतिमुखरोगको ये गोलियें नष्ट करदेती है. ये त्रिफलादिगुटिका विदेहाधिपतिकी निर्माण कीहुई हैं ॥ ८१--८३ ॥

खदिरतुलामम्बुघटे पक्त्वा तोयेन तेन पिष्टैश्च।
चन्दनजोङ्गककुङ्कुमपरिपेलववालकोशीरैः ॥ ८४ ॥
सुरतरुरोध्रद्राक्षामञ्जिष्ठाचोचपद्मकविडङ्गैः ।
स्पृक्कानतनखकट्फलसूक्ष्मैलाध्यामकैः
—सपतङ्गैः ॥ ८५ ॥
तैलप्रस्थं विपचेत्
कर्षांशैः पाननस्यगण्डूषैस्तत् ।
हत्वास्ये सर्वगदान् जनयति
गार्ध्रीं दृशं श्रुतिं च वाराहीम् ॥ ८६ ॥

खदिरवृक्षके पांच सेर छिलकेको सोलह सेर जलमें पकावे चौथाभाग शेष रहनेपर उतारलेवे. इस काथमें चन्दन, अगर, केशर, केवटीमोथा, सुगधवाला, खस, देवदारु, पठानीलोध, द्राक्षा, मंजीठ, दालचीनी, पद्मकाष्ठ, वायविडंग, स्पृक्का, तगर, नख, कायफल, छोटीइलायची, ध्यामकतृण और पतंग इन प्रत्येकको एक एककर्ष लेकर उसी काथमें पीसकर मिलावे, इस काथ और कल्कसे एकप्रस्थ तेलको सिद्ध करे । इस तैलको पीनेसे नस्य लेनेसे और गंडूष धारण करनेसे मुखके सर्व रोग दूर होजाते हैं, तथा गृध्रके समान दृष्टि और वराहके समान श्रवणशक्ति बढजाती है ॥ ८४--८६ ॥

उद्वर्तितं च प्रपुन्नाटरोध्र-
दार्वीभिरभ्यक्तमनेन वक्त्रम् ।
निर्व्यङ्गनीलीमुखदूषिकादि
सञ्जायते चन्द्रसमानकान्ति ॥ ८७ ॥

पनवाड़के बीज, पठानीलोध और दारुहलदी इनको बारीक पीसकर मुखपर उबटन करे. फिर उपरोक्त खदिरादितैलकी मालिस करे तो मुखके ऊपरकी छांई, नीलिका, मुखदूषिका आदि दूर होकर मुखकी चन्द्रमाकी समान कान्ति होजाती है ॥ ८७ ॥

पलशतं बाणात्तोयघटे
पक्त्वा रसेऽस्मिंश्च पलार्धिकैः ।
खदिरजम्बूयष्ट्यानन्ताम्र-
राहिमारनीलोत्पलान्वितैः ॥ ८८ ॥
तैलप्रस्थं पाचयेच्छ्लक्ष्णपिष्टै-
रेभिर्द्रव्यैर्धारितं तन्मुखेन ।
रोगान्सर्वान् हन्ति वक्त्रे विशेषात्
स्थैर्यं धत्ते दन्तपङ्क्तेश्चलायाः ॥ ८९ ॥

नीलेफूलके सहचरको पांच सेर लेकर सोलह सेर जलमें पकावे. चौथाभाग शेष रहनेपर उतारलेवे फिर इसमें दो दो कर्ष खदिरकी छाल, जामुनकी छाल, मुलहठी, सारिवा, आम्रके पत्र, विट्खदिर और नीलकमलका कल्क बनाकर मिलावे. इस काथ कल्कसे एक प्रस्थ तैल सिद्धकरे । इस तेलमें इन्हीं खदिरादि द्रव्योंका बारीक चूर्ण मिलाकर मुखमें धारण करे तो यह तैल मुखके सम्पूर्णरोगोंको दूरकरता है और विशेषकर चलायमान हुई दंतपंक्तिको भी स्थिर करदेता है ॥ ८८ ॥ ८९

खदिरादि गुटिका ।

खदिरसाराद् द्वे तुले पचेत्
वल्कात्तुलां चारिमेदसः ॥
घटचतुष्के पादशेषे
ऽस्मिन् पूते पुनः—काथनाद् घने ९० ॥
आक्षिकं क्षिपेत्सुसूक्ष्मं रजः

सैव्याम्बुपत्तङ्गगैरिकम् ।
चन्दनद्वयरोध्रपुण्ड्राह्वे
यष्ट्याह्वलाक्षाञ्जनद्वयम् ॥ ९१ ॥
धातकीकट्फलद्विनिशा-
त्रिफलाचतुर्जातजोङ्गकम् ।
मुस्तमाञ्जिष्ठान्यग्रोध-
प्ररोहमांसीयवासकम् ॥ ९२ ॥
पद्मकैलेयसमङ्गाश्च शीते
तस्मिंस्तथा पालिकां पृथक् ।
जातिपत्रिकां सजातीफलां
सहलवङ्गकंकोल्लकाम् ॥ ९३ ॥
स्फटिकशुभ्रसुरभिकर्पूरकुडवं च तत्रावपेत्ततः ।
कारयेद्गुटिकाःसदा चैता धार्या मुखेतद्गदापहाः

खदिरसार दश सेर,अरिमेदकी छाल पांच सेर इनको चार द्रोणजलमें पकावे. जब चौथाभाग शेष रहे उसको वस्त्रमें छानकर इस छानेहुए जलको पुनः पकावे. जब जल पकते पकते गाढ़ा होजाय तो इसमें खस, नेत्र-वाला, पतंग, गेरू, लालचन्दन, सफेदचन्दन, पंडि यारा, लोध, मुलहठी, लाख, सफेद सुरमा, काला सुरमा, धावेके फूल, कायफल, हलदी, दारुहलदी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दालचीनी, पत्रज, इलायची, नागकेशर, अगर, नागरमोथा, मंजीठ, वटके अंकुर, जटामांसी, जवासा, पद्मकाष्ठ, एलवालुक और मंजीठ ये प्रत्येक एकएक कर्ष लेकर इनका बारीक चूर्ण करके मिलावे. तथा जावित्री, जायफल, लवंग और कंकोल, इन प्रत्येकका एक एक पल बारीक चूर्ण मिलावे और स्फटिकमणिके समान श्वेत सुगंधित कर्पूर एक कुडव मिलावे फिर विधिवत् मिलाकर गोलियें बनालेवे ये मुखके रोगोंको दूरकरनेवाली गोलियें मुखमें सदा धारण करनी चाहिये॥९०-९४ ॥

अरिमेदादि तैल ।

क्वाथौषधव्यत्यययोजनेन
तैलं पचेत्कल्पनयाऽनयैव ।
सर्वास्यरोगोद्धृतये तदाहु-
र्दन्तास्थिरत्वे त्विदमेव मुख्यम् ॥९५॥

अरिमेदकी छाल दश सेर और खदिरसार पांच सेर इनका चार द्रोण जलमें क्वाथकर एकद्रोण जल शेष रहनेपर क्वाथ उतार लेवे इस क्वाथमें खदिरादि गुटि-काकी खस आदि सम्पूर्ण दवाइयोंका कल्क मिलाकर एक आढक तैल सिद्ध करे इस तैलको मुखमें धारण करनेसे सम्पूर्ण मुखरोग दूर होते हैं और दांतोंको स्थिर करनेमें यह तेल मुख्य माना जाता है ॥९५॥

खदिरेणैता गुटिका-
स्तैलमिदं चारिमेदसा प्रथितम् ।
अनु शीलयन् प्रतिदिनं
स्वस्थोऽपि दृढद्विजो भवति ॥९६॥

उपरोक्त खदिरादि गुटिका मुखमें रखना और इस अरिमेदादि तैलको मुखमें धारण करनेसे स्वस्थ मनु-ष्यके दांत भी निरोग और दृढ़ होजाते हैं ॥ ९६ ॥

क्षुद्रागुडूचीसुमनः प्रवाल-
दार्वीयवासत्रिफलाकषायः ।
क्षौद्रेण युक्तः कवलग्रहोऽयं
सर्वामयान् वक्त्रगतान्निहन्ति ॥ ९७ ॥

कटेली, गिलोय, चमेलीके पत्र, दारुहलदी, ज-वासा और त्रिफलेके क्वाथमें मधु मिलाकर मुखमें धारण करनेसे यह क्वाथ मुखके सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करता है ॥ ९७ ॥

पाठादार्वीत्वक्कुष्ठमुस्तासमङ्गा-
तिक्तापीताङ्गारोध्रतेजोवतीनाम् ।
चूर्णः सक्षौद्रो दन्तमांसार्तिकण्डू-
पाकस्रावाणां नाशनो घर्षणेन ॥ ९८ ॥

पाठा, दारुहलदीकी छाल, कूठ, नागरमोथा, मंजीठ, कुटकी, हलदी, पठानीलोध और तेजोवंतीके चूर्णको मधु मिलाकर दन्तमांसोंमें मलनेसे पीड़ा, खुजली, पाक और स्राव ये सब नष्ट हो जातेहैं॥९८

कालक योग ।

गृहधूमतार्क्ष्यपाठाव्योष-
-क्षाराग्न्ययोवरातेजोह्वैः ।
मुखदन्तगलविकारे
-सक्षौद्रःकालको विधार्यश्चूर्णः ॥ ९९ ॥

घरका धूम, रसौत, पाठा, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार, चित्रक, हरड़, बहेड़ा, आंवला इनका चूर्ण मधु मिलाकर मुखमें धारण करे तो यह कालकनामक योग मुख दांत और गलके विकारोंको शमन करदेता है ॥ ९९ ॥

पीतकचूर्ण ।

दार्वीत्वक्क्षारसिन्धूद्भवमनःशिलायावशूकहरितालैः
धार्यः पीतकचूर्णो दन्तास्यगलामयेसमध्वाज्यः

दारुहलदीकी छाल, सेंधानमक, मनशिल, जवाखार और हरिताल इनका चूर्णकर मधु और घृतमें मिलाकर मुखमें धारण करनेसे दांत मुख और गलके रोगोंको नष्ट करदेता है इसको पीतकचूर्ण कहते हैं ॥ १०० ॥

रसक्रिया गुटिका ।

द्विक्षारधूमवगपञ्चपटुव्योषवेल्लगिरितार्क्ष्यैः ।
गोमूत्रेण विपक्वा गलामयघ्नी रसक्रियैषागुटिका

जवखार, सज्जीखार, गृहधूम, त्रिफला, पांचोंलवण, त्रिकटु, वायविडङ्ग, गेरू, रसौत इन सबको गोमूत्रमें पकाकर गोलियें बनावे. यह रसक्रियागुटिका गलके रोगोंको दूर करती है ॥ १०१ ॥

गोमूत्रक्कथनविलीनविग्रहाणां
पथ्यानां जलमिशिकुष्ठभावितानाम् ।
अत्तारं नरमणवोऽपि वक्त्ररोगाः
श्रोतारं नृपमिव न स्पृशन्त्यनर्थाः॥१०२

जो मनुष्य गोमूत्रमें पकाकर यथार्थ पककर नर्म हुई हरड़ोंको नेत्रवाला सौंफ और कूठके काथोंमें भावना देकर इन हरड़ोंको खाता है उस मनुष्यको किंचित् भी मुखका रोग इस प्रकार नहीं स्पर्श करता जैसे—सर्व शास्त्रोंके जाननेवाले राजाको अनर्थ स्पर्श नहीं कर सकते ॥ १०२ ॥

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्त-
हरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ।
यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च
क्काथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ १०३ ॥

सतला, खस, पटोलपत्र, नागरमोथा, हरीतकी, कुटकी, मुलहठी, अमलतास और चन्दन इनका क्काथ पीनेसे मुखपाकरोग दूर होता है ॥ १०३ ॥

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशाला-
त्रायंतितिक्ताद्विनिशामृतानाम् ।
पीतः कषायो मधुना निहन्ति
मुखस्थितश्चास्यगदानशेषान् ॥ १०४॥

पटोलपत्र, सोंठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, इन्द्रायणकी जड़, त्रायमाण, कुटकी, हलदी, दारुहलदी और गिलोय इनका क्काथ मधु मिलाकर पीनेसे मुखमें होनेवाले सम्पूर्ण मुखरोग नष्ट हो जातेहैं ॥ १०॥

स्वरसः क्कथितो दार्व्या घनीभूतः सगैरिकः ।
आस्यस्थःसमधुर्वक्त्रपाकनाडीव्रणापहः॥१०५॥

दारुहलदीका क्वाथ करके बनाया हुआ स्वरस गाढ़ा होनेपर इसमें गेरू मिलावे फिर इसको मधु मिलाकर मुखमें रखनेसे मुखपाक और नाड़ीव्रण दूर होते है ॥ १०५ ॥

पटोलनिम्बयष्ट्याह्ववासाजात्यरिमेदसाम् ।
खदिरस्य वरायाश्च पृथगेवं प्रकल्पना ॥१०६॥

पटोलपत्र, निम्ब, मुलहठी, अडूसा, चमेलीके पत्र, अरिमेद, खदिर और त्रिफला इनमेंसे प्रत्येक द्रव्यका दारुहलदीके समान घनरस बनाकर गेरू और मधु मिलाकर मुखमें रखनेसे मुखपाक और नाड़ीव्रण दूर होते हैं ॥ १०६ ॥

खदिरायोवरापार्थमदयन्त्याहिमारकैः ।
गण्डूषोऽम्बुश्रुतैर्धार्यो दुर्बलद्विजशान्तये १०७

खदिर, लालचन्दन, त्रिफला, अर्जुन, मदयन्ती और विट्खदिर इनके काथको मुखमें धारण करनेसे दांत दृढ़ होजाते है ॥ १०७ ॥

मुखदन्तमूलगलजाःप्रायोरोगाःकफास्रभूयिष्ठाः
तस्मात्तेषामसकृद् रुधिरं विस्रावयेद्दुष्टम्१०८

मुख और दन्तमूल तथा जलमें उत्पन्न होनेवाले रोग प्रायः कफ और रक्तकी अधिकतासे उत्पन्न होते है । इस कारण इन रोगोंमें बार बार रुधिर निकालते रहना चाहिये ॥ १०८ ॥

---

१ रसक्रियैषा सिद्धा । इति पाठान्तरम्

कायशिरसोर्विरेको वमनं कवलग्रहाश्च–
–कटुकतिक्ताः ।
प्रायः शस्तं तेषां कफरक्तहरं तथा कर्म१०९॥

तथा वमन विरेचनादिसे शरीरकी शुद्धि शिरोविरेचनसे मस्तककी शुद्धि करना तथा कटु तिक्त द्रव्योंको मुखमें धारण करना तथा कफ और रक्तके हरनेवाले कर्म प्राय: सम्पूर्ण मुखरोगोंको दूर करनेके लिये श्रेष्ठ उपाय है ॥ १०९ ॥

यवतृणधान्यं भक्तं विदलैः क्षारोषितैरपस्नेहाः।
यूषा भक्ष्याश्च हिता यच्चान्यच्छ्लेष्मनाशाय११०

यव और श्यामाक आदि तृणधान्योंका भात और मूंग आदिकी दाल इनको क्षारोदकमें बनाकर चिकनाई रहित यूष और भक्ष्योंका सेवन करावे तथा अन्य जो कफनाशक द्रव्य है उनका सेवन करना भी हितकारी होता है ॥ ११० ॥

प्राणानिलपथसंस्थाः श्वसितमपि निरुन्धते -
–प्रमादवतः ।
कण्ठामयाश्चिकित्सितमतो द्रुतं तेषु कुर्वीत१११

प्रमादवाले पुरुषके कण्ठरोग प्राणके वहनकरनेवाले मार्गमें स्थित होकर श्वासको भी रोक सकते है। इस कारण कंठरोगोंकी शीघ्र ही चिकित्सा करदेनी चाहिये ॥ १११ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने
आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषा-
व्याख्यायां मुखरोगप्रतिषेधो नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।
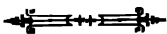
अथातः शिरोरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम शिरके रोगोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्तकरनेके लिये शिरोरोगविज्ञान नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥

शिरके रोगोंका निदान ।

धूमातपतुषाराम्बुक्रीडातिस्वप्नजागरैः ।
उत्स्वेदाधिपुरोवातबाष्पनिग्रहरोदनैः ॥ १ ॥
अत्यम्बुमद्यपानेन कृमिभिर्वेगधारणैः ।
उपधानमृजाभ्यङ्गद्वेषाधःप्रततेक्षणैः ॥ २ ॥
असात्म्यगन्धदुष्टामभाष्याद्यैश्च शिरोगताः ।
जनयन्त्यामयान् दोषाः ॥ ३ ॥–

धूमके लगनेसे, अधिक धूपके लगनेसे, तुषारके लगनेसे, अधिक जलक्रीड़ा करनेसे, बहुत सोने और बहुत जागनेसे अथवा दिनमें सोने और रात्रिको जागनेसे, मस्तकमें पसीने आयेहुएमें पूर्वकी वायु लग जानेसे, बाष्प (आंसुओं) के रोकलेनेसे, बहुत रोनेसे, अधिक जल पीनेसे, अधिक मद्य पीनेसे, कृमिदोषसे, मलमूत्रादिवेगोंके रोकनेसे, तकियेके ऊंचे नीचे होनेसे, सिरपर तेल न लगानेसे, निरन्तर नीचेको देखनेसे, असात्म्य और दुष्ट गन्धके लेनेसे, आमविकारसे और अधिक बोलने आदिसे शिरोगत दोष कुपित होकर शिरमें रोगोंको उत्पन्न करते है ॥ १–३ ॥

वातज शिरोरोगके लक्षण ।

–तत्र मारुतकोपतः ।
निस्तुद्येते भृशं शङ्खौ घाटा सम्भिद्यते तथा ।
भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च पततीवातिवेदनम् ॥ ४॥
बाध्येते स्वनतः श्रोत्रे निष्कृष्येत इवाक्षिणी ।
घूर्णतीव शिरः सर्वं संधिभ्य इव मुच्यते ॥५॥
स्फुरत्यतिशिराजालं कन्धराहनुसंग्रहः ।
प्रकाशासहता घ्राणस्रावोऽकस्माद्व्यथाशमौ६॥
मार्दवं मर्दनस्नेहस्वेदबन्धैश्च जायते ।
शिरस्तापोऽयम् ॥ ७ ॥–

उनमें वातप्रकोपज शिरोरोगमें दोनों कनपटियों (शंखों) में सूई चुभनेकासा अत्यन्त तोद होना, शिरकी पिछली सन्धि (घाटा) में भेदनकीसी पीड़ा होना, भ्रुवोंका मध्यभाग और मस्तक अत्यन्त पीड़ासे पतन होता हुआसा प्रतीत होना, शब्दसे कानोंका बाधितसा होना, नेत्रोंका निकलासा जाना, सिरका घूमना, शिरकी सम्पूर्ण सन्धियोंका मुक्त होनासा प्रतीत होना, सिराओंका जल फड़कतासा प्रतीत होना, गर्दन और हनुका अकड़ जाना, प्रकाशका सहन न

कर सकना, नासिकासे स्राव होना, अकस्मात् व्यथा बढ़ना और अकस्मात् व्यथाका शमन होजाना, मस्तकपर तैलमर्दन, स्नेहपान, स्वेदन और बान्धनेसे पीड़ामें शान्ति प्रतीत होना ये लक्षण होते हैं. इसको वातज शिरस्ताप कहते है ॥ ४–७ ॥

अर्धावभेदक।

–अर्धे तु मूर्ध्नः सोऽर्धावभेदकः।
पक्षात्कुप्यति मासाद्वा स्वयमेव च शाम्यति।
अतिवृद्धस्तु नयनं श्रवणं वा विनाशयेत् ॥८॥

यदि इसी प्रकार आधे सिरमें पीड़ा हो उसको अर्धावभेदक कहते हैं। यह पीड़ा पन्द्रह दिनके बाद अथवा महीनेके बाद उत्पन्न होती है और विना ही चिकित्साके वेग करनेके अनन्तर स्वय शान्त होजाती है। यदि यह अत्यन्त बढ़ जाय तो जिस ओर इस पीड़ाका वेग होता है उसी ओरके नेत्र अथवा कानको नष्ट करदेता है ॥ ८ ॥

पित्तजशिरोऽभितापके लक्षण।

शिरोऽभितापे पित्तोत्थे शिरोधूमायनं ज्वरः।
स्वेदोक्षिदहनं मूर्च्छा निशि शीतैश्च मार्दवम्॥९॥

पित्तप्रकोपसे उत्पन्नहुए शिरोऽभितापमें शिरमेंसे धुआंसा निकलना प्रतीतहोता है। तथा ज्वर, पसीनेका आना, नेत्रोंमें दाह और मूर्छा तथा रात्रिमें और शीतल वस्तुओंसे कुछ शान्ति प्रतीत होना ये लक्षण होते हैं ॥ ९ ॥

कफजशिरोऽभिताप।

अरुचिः कफजे मूर्ध्नो गुरुस्तिमितशीतता।
शिरानिस्पन्दतालस्यं रुङ्मन्दाह्न्यधिका निशि
तन्द्राशून्याक्षिकूटत्वं कर्णकण्डूयनं वमिः १०॥

कफके शिरोऽभितापमें अरुचि, मस्तकमें भारीपन और विबद्धता, शीत लगाना, शिराओंका फड़कना, आलस्य, दिनमें मन्दपीड़ा होना, रात्रिमें अधिक पीड़ा होना, तन्द्रा, अक्षिकूटोंपर सूजन, कानोंमें खुजली और वमन ये लक्षण होते हैं ॥ १० ॥

रक्तजशिरोऽभिताप।

रक्तात् पित्ताधिकरुजः ॥ ११ ॥–

रक्तके शिरोऽभितापमें पित्तके समान लक्षण और पित्तसे अधिक दाह पीड़ा आदि होते हैं ॥ ११ ॥

सन्निपातजशिरोऽभिताप।

–सर्वैः स्यात्सर्वलक्षणः॥ १२ ॥

सन्निपातके शिरोऽभितापमें सब दोषोंके मिलेहुए लक्षण होते है ॥ १२ ॥

कृमिजनितशिरोऽभिताप।

सङ्कीर्णैर्भोजनैर्मूर्ध्नि क्लेदिते रुधिरामिषे।
कोपिते सन्निपाते च जायन्ते मूर्ध्नि जन्तवः।
शिरसस्ते पिबन्तोऽस्रं घोराः कुर्वन्ति वेदनाः।
चित्तविभ्रंशजननीर्ज्वरः कासो बलक्षयः॥१३॥
रौक्ष्यशोफे व्यधच्छेददाहस्फुटनपूतिताः।
कपाले तालुशिरसोः कण्डूः शोषःप्रमीलकः।
ताम्राच्छसिंघाणकता कर्णनादश्च जन्तुजे१४॥

संकीर्ण भोजनोंके करनेसे शिरमें रुधिर और मांसके क्लेदित होनेपर सन्निपातके प्रकोपसे कृमि उत्पन्न होजाते है वे कृमि उत्पन्न होकर रक्तको पीते हुए शिरमें घोर पीड़ाको उत्पन्न करदेते है। उससे चित्तका विभ्रंश, ज्वर, खांसी, बलका क्षय, रूक्षता, सूजन, मस्तकमें वेधन और छेदनकीसी पीड़ा, दाह, स्फोटनकीसी पीड़ा, नाकसे दुर्गन्धका आना, कपाल, तालु और शिरमें खुजली, शोष, तन्द्रा, ताम्रवर्णका और श्वेतवर्णका नाकसे सिंघाणकका गिरना और कानोंमें शब्द होना, ये लक्षण कृमिजनित शिरोऽभितापमें होते हैं॥ १३॥ १४॥

शिरः कम्पके लक्षण।

वातोल्बणाःशिरःकम्पं तत्संज्ञं कुर्वते मलाः१५

वातप्रधान दोष शिरकी नाड़ियोंमें प्राप्त होकर कम्पको उत्पन्न करती है। इस रोगको शिरःकम्प कहते हैं ॥ १५ ॥

शंखकके लक्षण।

पित्तप्रधानैर्वाताद्यैः शङ्खे शोफः सशोणितैः।
तीव्रदाहरुजारागप्रलापज्वरतृड्भ्रमाः ॥ १६ ॥
तिक्तास्यः पीतवदनः क्षिप्रकारी स शङ्खकः।
त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति सिध्यत्यप्याशुसाधितः॥

पित्तप्रधान ,वातादि दोष रक्तको साथ लेकर शंखों (कनपटियों) में सूजनको उत्पन्न करदेते है । इसमें तीव्र दाह, पीड़ा और लालिमा होती है । तथा प्रलाप, ज्वर, प्यास, भ्रम, तिक्तास्यता और मुखका पीलापन यह लक्षण होते है । इस शीघ्रकारी रोगको शंखक कहते हैं । यह मनुष्यके जीवनको तीन दिनमें नाश करदेता है । यदि बुद्धिमान् वैद्य इसकी शीघ्र चिकित्सा करे तो यह शान्त भी होजाता है॥ १६॥ १७

सूर्य्यावर्तके लक्षण ।

पित्तानुबद्धःशङ्खाक्षिभ्रूललाटेषु मारुतः ।
रुजं सस्पन्दनां कुर्यादनुसूर्योदयोदयाम् १८॥
आमध्याह्नं विवर्धिष्णुः क्षुद्वतः सा विशेषतः ।
अव्यवस्थितशीतोष्णसुखा शाम्यत्यतः परम्।
सूर्यावर्तः सः ॥ १९ ॥–

पित्तसे युक्तहुई वायु शंख, नेत्र, भृकुटी और ललाटदेशमें अत्यन्त पीड़ा और फड़कनको उत्पन्न करे। यह शूल सूर्य्योदयसे आरंभ होकर मध्याह्न पर्यन्त बढ़ता जाता है, क्षुधावान् पुरुषके यह शूल अधिक होता है, यह शीतल अथवा उष्णवस्तु सेवन करनेसे किससे लाभ होता है यह निश्चय नहीं होता । मध्याह्नके अनन्तर धीरे २ शमन होताजाता और सायंकालको बिल्कुल शान्त होजाता है । इसको सूर्य्यावर्त्तरोग कहते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

–इत्युक्ता दश रोगाः शिरोगताः ।
शिरस्येव च वक्ष्यन्ते कपाले व्याधयो नव २०॥

इस प्रकार दस रोग शिरमें होनेवाले कहे गये है शिरोरोगोंमें ही नौ प्रकारकी व्याधियें कपालमें होनेवाली होती है. जिनका कथन करते है ॥ २० ॥

उपशीर्षकके लक्षण।

कपाले पवने दुष्टे गर्भस्थस्याऽपि जायते ।
सवर्णो नीरुजः शोफस्तं विद्यादुपशीर्षकम २१

यदि गर्भमें भी दुष्टहुआ पवन कपालमें प्राप्त होजावे तो शिरके वर्णके समान वर्णवाला शोथ उत्पन्न हो जाता है इसमें पीड़ा आदि नहीं हो तो इसको उपशीर्षकरोग कहते है ॥ २१ ॥

कपालपिटिकादि रोग ।

यथादोषोदयं ब्रूयात् पिटिकार्बुदविद्रधीन् २२॥

कपालमें होनेवाली पिटिका, अर्बुद और विद्रधिको उनमें होनेवाले दोषोंके लक्षणोंसे यथादोष जानलेना चाहिये ॥ २२ ॥

अरुंषिकाके लक्षण ।

कपाले क्लेदबहुलाः पित्तासृक्श्लेष्मजन्तुभिः ।
कङ्गुसिद्धार्थकनिभाःपिटिकाःस्युररुंषिकाः २३

कपालमें पित्त रक्त कफ और कृमियोंसे बहुतसे क्लेदवाली कंगुधान्य और सरसोंके समान आकारवाली पिटिका उत्पन्न होजाय उनको अरुंषिका कहते है ॥ २३ ॥

दारुणकके लक्षण ।

कण्डूकेशच्युतिस्वापरौक्ष्यकृत् स्फुटनं त्वचः ।
सुसूक्ष्मं कफवाताभ्यां विद्याद्दारुणकं तु तत् २४

कफ और वायुसे कपालमें खुजली, केशोंका गिरना, कपालकी त्वचाका शून्य और रूक्ष होना तथा कपालकी त्वचाका सूक्ष्म स्फुटन होना इन लक्षणोंवाले रोगको दारुणक कहते हैं ॥ २४ ॥

इन्द्रलुप्तके लक्षण ।

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्छितम् ।
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः।
रोमकूपान् रुणद्ध्यस्य तेनान्येषामसम्भवः ।
तदिन्द्रलुप्तं रूढ्यां च प्राहुश्चाचेति चापरे२५॥

रोमकूपोंमें गयाहुआ पित्त वायुके साथ मिलकर रोमोंको गिरा देता है । तदनन्तर रक्तयुक्त कफ रोम कूपोंको रोक देता है । इससे रोम गिरेहुए स्थानमें नूतन रोम उत्पन्न नहीं हो सकते । इस रोगको इन्द्रलुप्त कहते है । कोई इसीको रूढ्या और कोई चाच कहते हे ॥ २५ ॥

खलतिरोगके लक्षण ।

खलतेरपि जन्मैवं सदनं तत्र तु क्रमात् ॥२६॥

इसीके समान खलति (गञ्ज) रोग उत्पन्न होता है । उसमें इन्द्रलुप्तके समान बाल न गिरकर क्रमसे धीरे २ गिरते रहते हैं ॥ २६ ॥

सा वातादग्निदग्धाभा पित्तात्स्विन्नशिरावृता ।
कफाद्घनत्वग्वर्णाश्च यथास्वं निर्दिशेत् त्वचि२७
दोषैः सर्वाकृतिः सर्वैरसाध्या सा नखप्रभा ।
दग्धाग्निनेव निर्लोमा सदाहा या च जायते२८

वह खलतिरोग यदि वायुसे हो तो कपाल अग्नि दग्धके समान प्रतीत होता है । यदि पित्तसे हो तो स्विन्न शिराओंसे आवृतसा प्रतीत होनेलगता है । यदि कफसे हो तो त्वचा घन होती है । इनके वर्ण दोषानुसार जानने चाहिये । जो खलतिरोग सब दोषोंसे हो वह नखके समान वर्णवाला, सब दोषोंके लक्षणोंवाला, अग्निदग्धके समान रोमरहित और दाहयुक्त होता है । सर्वदोषज खलतिरोग असाध्य होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

पलितके लक्षण ।

शोकश्रमक्रोधकृतःशरीरोष्मा शिरोगतः ।
केशान् सदोषःपचति पलितं संभवत्यतः॥२९॥

शोक, श्रम और क्रोधके कारण शरीरकी ऊष्मा दोषों करके युक्त जब शिरमें प्राप्त होजाती है तो केशोंको पकाकर श्वेत बना देती है; इसको पलित रोग कहते है ॥ २९ ॥

तद्वातात्स्फुटितं श्यावं खरं रूक्षं जलप्रभम् ।
पित्तात्सदाहं पीताभं कफात् स्निग्धं विवृद्धिमत्।
स्थूलं सुशुक्लं सर्वैस्तु विद्याद्यामिश्रलक्षणम् ३०

यह पलितरोग यदि वायुसे हो तो कपालकी त्वचा स्फुटित श्याववर्णकी, खुर्दरी, रूक्ष और जलके समान प्रभावाली होती है । यदि पित्तसे पलितरोग हो तो दाह और पीतवर्ण होता है । यदि कफसे पलितरोग हो तो कपाल स्निग्ध बढाहुआ, स्थूल और श्वेतवर्णका होता है । यदि तीनों दोषोंसे हो तो मिले हुए लक्षण होते है ॥ ३० ॥

शिरोरुजोद्भवं चान्यद्विवर्णं स्पर्शनासहम्।३१॥

एक अन्य पलितरोग होता है जो शिरकी अधिक पीडासे उत्पन्न होता है इसमे कपाल स्पर्शको सहन नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥

साध्यासाध्य ।

असाध्या सन्निपातेन खलतिः पलितानि च३२।

इन सब रोगोंमें सन्निपातसे उत्पन्नहुई खलति और सन्निपातसे उत्पन्नहुआ पलितरोग असाध्य होता है३२

शरीरपरिणामोत्थान्यपेक्षन्ते रसायनम् ॥३३॥

शरीरके परिणामसे अर्थात् बुढापेसे उत्पन्नहुआ पलितरोग रसायनक्रियाकी अपेक्षा करता है । अर्थात् बुढापेका पलित रोग रसायनक्रियाद्वारा शमन होसकता है ॥ ३३ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषा-व्याख्यायां शिरोरोगविज्ञानं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः।

अथाऽतः शिरोरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम शिरोरोगप्रतिषेधनामक अध्यायकी व्याख्या करते है । अर्थात् शिरोरोगकी चिकित्साको कथन करते है ॥

वातजशिरोऽभितापकी चिकित्सा ।

शिरोऽभितापेऽनिलजे वातव्याधिविधिं चरेत ।
घृताभ्यक्तशिरा रात्रौ पिबेदुष्णपयोऽनुपः॥१॥

वातजनित शिरोऽभितापमे वातव्याधिके समान चिकित्सा करनी चाहिये रात्रिको घृतसे शिरको अभ्यक्त कर घृतको पीवे । तदनन्तर गरम दूध पीवे तो शिरःपीडा शमन होती है ॥ १ ॥

माषान् मुद्गान् कुलत्थान्वा तद्वत्खादेद्घृता-
-न्वितान् ।
तैलं तिलानां कल्कं वा क्षीरेण सह पाययेत्।२॥

अथवा माष, मूंग या कुलथीको पकाकर घृत मिलाकर खावे ऊपरसे गर्म दूध पीवे । अथवा गर्मदूधमें मिला तिलोंका तेल या तिलकल्क पीवे तो वातज शिरःपीडा शमन होती है ॥ २ ॥

पिण्डोपनाहस्वेदाश्च मांसधान्यकृता हिताः ।
वातघ्नदशमूलादिसिद्धक्षीरेण सेचनम् ।

तथा वातज शिरोरोगमें मांस और माषान्नके पिण्डसे उपनाह स्वेद करे। एवं वातनाशक द्रव्यों और दशमूलसे सिद्ध किये दूधसे शिरको सेचन करना भी हितकारी है।

स्निग्धं नस्यं तथा धूमः शिरःश्रवणतर्पणम् ३॥

तथा स्निग्ध नस्य, स्निग्ध धूमपान, शिर और कानोंको वातनाशक स्नेहोंसे तर्पण करना ये सब वातजशिरोरोगमें हितकारी है ॥ ३ ॥

वरणादि घृत।

वरणादौ गणे क्षुण्णे क्षीरमर्धोदकं पचेत्।
क्षीरावशिष्टं तच्छीतं मथित्वा सारमाहरेत्।
ततो मधुरकैः सिद्धं नस्यं तत्पूजितं हविः॥४॥

वरणादिगणके द्रव्योंको कूटकर आधे जलमिले दूधमें पकावे, जब पानी जलकर दूधमात्र शेषरहे तब इस दूधको मथानीसे मथकर मक्खन (घृत) निकाल लेवे इस घृतको मधुरगणके क्वाथ कल्कसे सिद्ध कर नस्य लेनेसे शिरोरोग शमन होता है॥ ४ ॥

वर्गेऽत्र पक्वं क्षीरे च पेयं सर्पिः सशर्करम् ॥५॥

वरणादिगणके क्वाथ और कल्क तथा दूधसे सिद्ध किया घृत शर्करा (खांड) मिलाकर पीना भी शिरोरोगको शमन करता है ॥ ५ ॥

कार्पासमज्जात्वङ्मुस्तासुमनःकोरकाणि च।
नस्यमुष्णाम्बुपिष्टानि सर्वमूर्धरुजापहम् ॥६॥

कपासके बीजों (बिनोलों) की मज्जा, दालचीनी, नागरमोथा और चमेलीकी कलियां इनको गरमजलमें पीसकर नस्य लेनेसे सब प्रकारके शिरोरोग दूर होते हैं॥ ६ ॥

संसर्गजवातशिरोऽभितापकी चिकित्सा।

शर्कराकुङ्कुमशृतं घृतं पित्तासृगन्वये।
प्रलेपः सघृतैः कुष्ठकुटिलोत्पलचन्दनैः ॥७॥

वातजशिरोरोगमें यदि पित्तरक्तका संसर्ग हो तो मिसरी और केशरसे सिद्ध कियाहुआ घृत पिलाना हितकारी होता है. तथा कूठ, तगर, कमल और चन्दन इनको पीसकर घृतमें मिलाकर लेप करना हितकारी होता है ॥ ७ ॥

वातोद्रेकभयाद्रक्तं न चास्मिन्नवसेचयेत्।
इत्यशान्तौ चले दाहः कफे चोष्णं यथोदितम्८

पित्त और रक्तके संसर्गवाले वातज शिरोरोगमें रक्त नहीं निकालना चाहिये. क्योंकि, रक्त निकालनेसे इसमें वायुके बढ़जानेका भय होता है।

यदि इन सब उपायोंसे वातजशिरोरोग शान्त न हो तो दाहकर्म करना चाहिये अर्थात् शिरपीड़ासे संबन्ध रखनेवाली शिराको दाग देवे।

यदि वातजशिरोरोगमें कफका संसर्ग हो तो कफ वातनाशक उष्ण क्रिया करनी चाहिये ॥ ८ ॥

अर्धावभेदकका यत्न।

अर्धावभेदकेऽप्येषा यथादोषान्वयात्क्रिया॥९॥

अर्धावभेदक रोगमें भी दोषोंका संबन्ध देखकर इसी प्रकार यथादोष यही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९॥

शिरीषबीजापामार्गमूलं नस्यं बिडान्वितम्।
स्थिरारसो वा लेपे तु प्रपुन्नाटोऽम्लकल्कितः॥

अर्धावभेदकरोगमें सिरीषके बीज, अपामार्गकी जड़ और विड़लवण इनकी नस्य देनी चाहिये। अथवा शालपर्णीके रसकी नस्य देनी चाहिये. और पनवाड़के बीजोंको खट्टी कांजीमें पीसकर लेप करना चाहिये ॥ १० ॥

सूर्यावर्तकी चिकित्सा।

सूर्यावर्ते तु तस्मिंस्तु सिरयापहरेदसृक् ॥ ११ ॥

सूर्यावर्तरोगमें भी अर्द्धावभेदकरोगके समान ही चिकित्सा करनी चाहिये। किन्तु सूर्यावर्तमें शिरामोक्षणकर रक्तभी निकाल देना चाहिये ॥ ११ ॥

पित्तज शिरोऽभितापकी चिकित्सा।

शिरोऽभितापे पित्तोत्थे स्निग्धस्य-
-व्यधयेत्सिराम्।
शीताः शिरोमुखालेपसेकशोधनबस्तयः।
जीवनीयशृते क्षीरसर्पिषी पाननस्ययोः॥१२॥

पित्तजनित शिरोऽभितापमें रोगीको स्निग्ध करनेके अनन्तर शिरावेधन कर रक्त निकाल देना चाहिये। तदनन्तर मस्तक और शिरपर शीतल लेप और शीतल द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए दूध आदि सेचन करने चाहिये।

तथा शोधनवस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये । और जीवनीयगणसे सिद्ध कियेहुए दूध और घृत पीनेमें और नस्यकर्ममें प्रयोग करने चाहिये ॥ १२ ॥

रक्तजशिरोऽभितापकी चिकित्सा ।

कर्तव्यं रक्तजेऽप्येतत्प्रत्याख्याय च शङ्खके १३

रक्तजनित शिरोऽभितापमें भी पित्तजशिरोऽभितापके समान ही चिकित्सा करनी चाहिये ।

और शंखकरोगमें रोगीको असाध्य कहनेके अनन्तर दोषके उच्छ्रायके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

कफके शिरोऽभितापकी चिकित्सा ।

श्लेष्माभितापे जीर्णाज्यस्निग्धितः कटुकैर्वमेत् ।
स्वेदप्रलेपनस्याद्या रूक्षतीक्ष्णोष्णभेषजैः ।
शस्यन्ते चोपवासोऽत्र निचये मिश्रमाचरेत् १४

कफके शिरोऽभितापमें पुराने घृतसे स्नेहन करनेके अनन्तर कटुद्रव्योंके योगसे वमन करावे । तथा रूक्ष, तीक्ष्ण और उष्णद्रव्योंसे स्वेदन और प्रलेपनादि करना चाहिये । तथा कफके शिरोऽभितापमें उपवास करना भी हितकारी होता है ।

त्रिदोषज शिरोऽभितापमें मिश्रित चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १४ ॥

कृमिजनितशिरोऽभितापकी चिकित्सा ।

कृमिजे शोणितं नस्यं तेन मूर्छन्ति जन्तवः ।
मत्ताः शोणितगन्धेन निर्यान्ति घ्राणवक्त्रयोः
सुतीक्ष्णनस्यधूमाभ्यां कुर्यान्निर्हरणं ततः १५॥

कृमिजनित शिरोरोगमें रक्तकी नस्य देना चाहिये । उस रक्तकी नस्यसे कृमि इकट्ठे होकर रक्तकी गन्धसे मत्तहुए नासिका और मुखकी ओर आजाते है । तब तीक्ष्ण नस्य देकर और धूमपान कराकर उन कृमियोंको निकाल देना चाहिये ॥ १५ ॥

कृमिनाशक नस्य ।

विडङ्गस्वर्जिकादन्तीहिङ्गुगोमूत्रसाधितम् ।
कटुनिम्बेङ्गुदीपीलुतैलं नस्यं पृथक् पृथक् ।
अजामूत्रद्रुतं नस्ये कृमिजित्कृमिजित्परम्॥१६

वायविडङ्ग, सज्जी, दन्ती, हींग और गोमूत्र मिलाकर सिद्ध कियाहुआ सरसोंका तेल अथवा निंबका तेल या इंगुदीका तेल या पीलुका तेल इन सब तैलोंमेंसे वायविडंगादिकोंके कल्कके साथ सिद्ध किया हुआ कोई एक तेल नस्य लेनेसे कृमियोंको नष्ट करदेता है । इसी प्रकार वायविडङ्गको बकरीके मूत्रमें पीसकर नस्य लेनेसे भी कृमि नष्ट होजाते है ॥ १६ ॥

पूतिमत्स्ययुतैः कुर्याद् धूमं नावनभेषजैः॥१७॥

इन्हीं विडङ्गादि नस्यकी औषधियोंमें पूतिमत्स्य (मत्स्यगन्धा) मिलाकर धूमपान करनेसे कृमि नष्ट होजाते है ॥ १७ ॥

कृमिभिः पीतरक्तत्वाद्रक्तमत्र न निर्हरेत्॥१८॥

कृमिजनित शिरोऽभितापमें कृमियोंद्वारा रक्त पियाजानेके कारण रक्त नहीं निकालना चाहिये ॥ १८ ॥

शिरःकम्पकी चिकित्सा ।

वाताभितापविहितः कम्पे दाहाद्विना क्रमः१९

शिरःकम्परोगमें दाहकर्मके विना संपूर्ण चिकित्सा वातज शिरोऽभितापके समान करनी चाहिये ॥१९॥

उपशीर्षककी चिकित्सा ।

नवे जन्मोत्तरं जाते योजयेदुपशीर्षके ।
वातव्याधिक्रियां पक्के कर्म विद्रधिचोदितम्२०

यदि उपशीर्षकरोग जन्मकालसे उपरान्त उत्पन्न हुआ हो और नवीन हो तो वातव्याधिके समान चिकित्सा करनी चाहिये ।

यदि उपशीर्षक पक जावे तो विद्रधिके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २० ॥

विद्रधि, पिटिका, अर्बुदकी चिकित्सा ।

आमपक्के यथायोग्यं विद्रधीपिटिकार्बुदे॥२१॥

विद्रधि, पिटिका और अर्बुदमें उनको आम और पक्व देखकर यथायोग्य चिकित्सा करनी चाहिये॥२१

अरुंषिकाकी चिकित्सा ।

अरुंषिका जलौकोभिर्हृतास्रा निंबवारिणा ।
सिक्ता प्रभूतलवणैर्लिम्पेदश्वशकृद्रसैः ॥
पटोलनिम्बपत्रैर्वा सहरिद्रैः सुकल्कितैः ।
गोमूत्रजीर्णपिण्याककृकवाकुमलैरपि ॥ २२ ॥

अरुंषिकारोगमें जलौका लगाकर रक्त निकालना

चाहिये। तदनन्तर निंबके जलसे सेचन करना चाहिये फिर बहुतसा नमक मिलाकर घोड़ेकी लीदके रसका लेप करना चाहिये। अथवा पटोलपत्र, निम्बपत्र और हल्दीका कल्क करके लेप करना चाहिये। अथवा गोमूत्र, पुरानी तिलखल और मुर्गोंकी बीठ मिलाकर लेप करना चाहिये ॥ २२ ॥

कपालभृष्टं कुष्टं वा चूर्णितं तैलसंयुतम्।
रूंषिकालेपनं कण्डूक्लेददाहार्तिनाशनम् ॥२३॥

अथवा कूठको मृत्कपालमें भूनकर बारीक चूर्ण करे फिर तेलमें मिलाकर लेप करनेसे अरुंषिका, खुजली, क्लेद, दाह और पीड़ा ये सब नष्ट होते है ॥ २३ ॥

मालतीचित्रकाश्वघ्ननक्तमालप्रसाधितम्।
त्वचारूंषिकयोस्तैलमभ्यङ्गः क्षुरघृष्टयोः २४॥

चमेलीके पत्र, चित्रक, कनेर और करञ्ज इनसे तैलको सिद्ध करे। प्रथम शिरको उस्तरेसे साफ कर यह तेल लगावे तो त्वक्स्फोट और अरुंषिकाको दूर करता है ॥ २४ ॥

अशान्तौ शिरसःशुद्ध्यै यतेत वमनादिभिः२५

यदि इन उपायोंसे अरुंषिका शमन न हो तो वमन विरेचन आदि कराकर शरीरका शोधन करे॥२५

दारुणककी चिकित्सा।

विध्येच्छिरां दारुणके ललाटयां-
-शीलयेन्मृजाम्।
नावनं मूर्ध्नि बस्तिं च लेपयेच्च समाक्षिकैः।
प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससर्षपैः ॥ २६ ॥
लाक्षाशम्याकपत्रैडगजधात्रीफलैस्तथा।
कोरदूषतृणक्षारवारिप्रक्षालनं हितम् ॥ २७ ॥

दारुणकरोगमें ललाटकी शिरा वेधन करे। तदनन्तर वमनविरेचनादिसे शरीरको शोधन कर नस्य कर्म करे और शिरोबस्तिका प्रयोग करे। तदनन्तर चिरौंजी, मुलहठी, कूठ, माष, सरसों, लाख, अमलतासके पत्र, पनवाड़के बीज और आंमले इनको बारीक पीसकर मधु मिलाकर लेप करे। एवं कोदोंके घासके क्षारजलसे प्रक्षालन किया करे। ऐसा करनेसे दारुणकरोग शान्त हो जाता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

इन्द्रलुप्तकी चिकित्सा।

इन्द्रलुप्ते यथासन्नं सिरां विद्धा प्रलेपयेत्।
प्रच्छाय गाढं कासीसमनोह्वातुत्थकोषणैः २८॥
वन्यामरतरुभ्यां वा गुञ्जामूलफलैस्तथा।
तथा लाङ्गलिकामूलैः करवीररसेन वा ॥ २९ ॥
सक्षौद्रक्षुद्रवार्ताकस्वरसेन रसेन वा।
धत्तूरकस्य पत्राणां भल्लातकरसेन वा ॥ ३०॥
अथ वा माक्षिकहविस्तिलपुष्पत्रिकण्टकैः।
तैलाक्ता हस्तिदन्तस्य मषी वा चौषधं परम्३१

इन्द्रलुप्तरोगमें इन्द्रलुप्त स्थानकी शिरावेधन करे। तथा इन्द्रलुप्त स्थानपर पछने लगाकर कासीस, मनसिल, नीलाथोथा और काली मिर्च इनका लेप करे अथवा रक्तक और देवदारु रगड़कर लेप करे अथवा रत्तककी जड़ और फल मिलाकर लेप करे। अथवा लांगलीकन्द कनेरके रसमें रगड़कर लेप करे। अथवा छोटी कटेलीके स्वरसको मधुमें मिलाकर लेप करे। या धतूरेके पत्रोंके रसका लेप करे. अथवा भिलावेके रसका लेप करे। या मधु, घृत, तिलपुष्प और गोखरू मिलाकर लेप करे. अथ वा हाथीदन्तको अग्निमें दग्ध कर उसकी स्याहीको तेलमें मिलाकर लेप करे। यह इन्द्रलुप्तको दूर करनेमें परमौषध है ॥२८--३१॥

शुक्लरोमोद्भमे तद्वन्मषी मेषविषाणजा।

यदि इन्द्रलुप्त स्थानपर श्वेतरोम निकलने लगे तो मेढ़ेके सींगको फूंककर तेलमें घिसकर लेप करे।

वर्जयेद्वारिणा सेकं यावद्रोमसमुद्भवः ॥ ३२ ॥

परन्तु जब तक इन्द्रलुप्त स्थानपर यथार्थ रोम न उत्पन्न होजांय तब तक उस स्थानपर जलसे सेचन नहीं करना चाहिये ॥ ३२ ॥

खलति आदि रोगोंकी चिकित्सा।

खलतौ पलिते वल्यां हरिल्लोम्नि च शोधितम्।
नस्यवक्त्रशिरोभ्यङ्गप्रदेहैः समुपाचरेत् ॥३३॥

खलतिरोगमें पलितरोगमें बलि (झुर्रियां) रोगमें और हरितलोमरोगमें प्रथम क्रमसे वमन विरेचन कराकर नस्यकर्म मुख और शिरके ऊपर अभ्यंग और लेप कराने चाहिये ॥ ३३ ॥

सिद्धं तैलं बृहत्याद्यैर्जीवनीयैश्च नावनम्।
मासं वा निम्बजं तैलं क्षीरभुङ्नावयेद्यतिः ३४॥

इन खलति आदि सब रोगोंमें शोधनके अनन्तर बृहत्यादिगण और जीवनीयगणसे सिद्ध कियेहुए तैलकी नस्य देवे। अथवा निम्बके तैलकी नस्य देवे। यह नस्य लेतेहुए एक मास पर्यन्त जितेन्द्रिय रहे। और केवल दूधका आहार करे तो खलति और पलित आदि रोग शमन होजाते है॥ ३४॥

नीलीआदि तैल।

नीलीशिरीषकोरण्टभृङ्गस्वरसभावितम्।
शेलवक्षातिलगमाणांबीजं काकाण्डकीसमम् ३५
पिष्टाऽजपयसा लोहाल्लिप्तादर्कांशुतापितात्।
तैलं स्रुतं क्षीरभुजो नावनात् पलितान्तकृत् ३६

नीली, सिरीष, काला बांसा और भृङ्गराज इन सबके स्वरसोंमें लिसोढ़ेके बीज, बहेड़े, तिल और बथुएके बीज इनको भावना देवे. इन सब बीजोंके समान मालकांगुनीके बीज मिलावे इन सबको बकरीके दूधमें पीस कर लोहेके पात्रपर लेप करके सूर्यकी तेज धूपमें रक्खे. इसमेंसे सूर्यकी किरणोंके तापसे जो तलका स्राव हो उस तैलकी नस्य लेकर केवल दूधका आहार करे। ब्रह्मचारी रहकर इसका एक मास सेवन करनेसे पलितरोग दूर होजाता है॥ ३५॥ ३६॥

पलितनाशक नस्य।

क्षीरात्सहचराद् भृङ्गरजसः सौरसाद्रसात्।
प्रस्थैस्तैलस्य कुडवः सिद्धो यष्टीपलान्वितः।
नस्यं शैलोद्भवे भाण्डे श्रृङ्गे मेषस्य वा स्थितः॥

एक कुडव तलमें एक पल मुलहठीका कल्क, एक सेर दूध, एक सेर काले बांसेका रस, एक सेर भांगरेका रस और एक सेर तुलसीका रस मिला कर तैल सिद्ध करे। इस तैलको शिलापात्रमें या मेढ़ेके सींगमें रक्खे इसकी नस्य लेनेसे पलितरोग दूर होता है॥ ३७।

अन्य योग।

क्षीरेण श्लक्ष्णपिष्टौ वा दुग्धिकाकरवीरकौ।
उत्पाटय पलितं देयावाशये पलितापहौ॥ ३८॥

दूधी बूटी और कनेर दूधमें बारीक पीस कर पलित (सफेदबालों) को उखाड़ कर उनकी जड़ोंमें लगावे तो उस स्थानमें फिर कालेबाल उत्पन्न होनेलगते हैं॥ ३८॥

क्षीरं प्रियालं यष्ट्याह्वं जीवनीयो गणस्तिलाः।
कृष्णः प्रलेपो वक्त्रस्य हरिलोपवलीहितः॥ ३९

दूध, चिरौंजी, मुलहठी, जीवनीयगणके द्रव्य और काले तिल इनको पीसकर मुखपर लेप करनेसे इन्द्रलुप्त और बली तथा पलित दूर होते हैं॥ ३९॥

तिलाः सामलकाः पद्मकिञ्जल्को मधुकं मधु।
बृंहयेच्च रजेच्चैतत् केशान्मूर्धप्रलेपनात्॥ ४०॥

कालेतिल, आंवले, कमलकी केशर, मुलहठी और मधु इनको केशोंपर और शिरपर लेप करनेसे केश पुष्ट होते है और स्थिर रहते हैं॥ ४०॥

मांसी कुष्ठंतिलाःकृष्णाःसारिवा नीलमुत्पलम्।
क्षौद्रं च क्षीरपिष्टानि केशसंवर्धनं परम्॥ ४१॥

जटामांसी, कूठ, कालेतिल, शारिवा, नीलाकमल और मधु इनको दूधमें रगड़कर केशोंपर लेप करनेसे केश पुष्ट और बहुत लम्बे होजाते हैं॥ ४१॥

अयोरजो भृङ्गरजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका।
स्थितमिक्षुरसे मासं समूलं पलितं रजेत्॥ ४२॥

लोहचूर्ण भांगरेका रस, त्रिफला, कालीमिट्टी इनको गन्नेके रसमें मिलाकर एक महीना बन्द करके रक्खे। इसको सफेदबालोंपर लगानेसे बाल जड़से काले हो जाते है॥ ४२॥

माषकोद्रवधान्याम्लैर्यवागूस्त्रिदिनोषिता।
लोहशुक्लोत्कटा पिष्टा बलाकामपि रञ्जयेत् ४३॥

उड़द और कोद्रवको धान्याम्लमें मिलाकर यवागू बनावे इसको तीन दिन रख छोड़े फिर लोहचूर्ण और सफेद रत्तके मिलाकर खूब बारीक पीसे, इसका लेप बतकोंको भी रंगकर काला बनादेता है ४३

प्रपौण्डरीकमधुकापिप्पलीचन्दनोत्पलैः॥ ४४॥
सिद्धं धात्रीरसे तैलं नस्येनाभ्यञ्जनेन च।
सर्वान् मूर्धगदान् हन्ति पलितानि च-

-शीलितम्॥ ४५॥

प्रपौण्डरीक, मुलहठी, पीपल, चन्दन और कमल इनके कल्क और आमलेके रससे सिद्ध कियाहुआ तैल नस्यकर्ममें और शिरपर मलनेमें नित्य सेवन करनेसे सब प्रकारके शिरोरोग और पलितरोग दूर होते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

वरीजीवन्तिनिर्यासपयोभिर्यमकं पचेत् ।
जीवनीयैश्च तन्नस्यं सर्वजत्रूर्ध्वरोगजित् ॥४६॥

शतावरी और जीवन्तीके क्वाथ तथा दूध और जीवनीयगणके द्रव्योंके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ तैल नस्य लेनेसे संपूर्ण ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंको जीतता है ४६

मायूर घृत ।

मयूरं पक्षपित्तान्त्रपादविट्तुण्डवर्जितम् ।
दशमूलबलारास्नामधूकैस्त्रिपलैर्युतम् ॥ ४७ ॥
जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत् ।
कल्कितैर्मधुरद्रव्यैः सर्वजत्रूर्ध्वरोगजित् ।
तदभ्यासीकृतं पानबस्त्यभ्यञ्जननावनैः॥४८॥

एक मोरके पक्ष, पित्त, अन्त्र, पांव, बीठ और तुण्ड इनको छोडकर बाकी मांसको दशमूल, बला, रास्ना और मुलहठी ये तीन तीन पल मिलाकर सोलह सेर जलमें क्वाथ करे । चौथाभाग शेष रहनेपर उतारकर छान ले । इस क्वाथमें एक सेर घी, १ सेर दूध, १ पाव मधुरगणके द्रव्योंका कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे । इस घृतको पीने, अभ्यङ्ग, वस्ति और नस्यमें निरन्तर प्रयोग करनेसे संपूर्ण ऊर्ध्वजत्रुगत रोग दूर होजाते हे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

महामायूर घृत ।

एतेनैव कषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥४९॥
चतुर्गुणेन पयसा कल्कैरेभिश्च कार्षिकैः ।
जीवन्तीत्रिफलामेदामृद्वीकाद्विपरूषकैः ॥५०॥
समङ्गाचविकाभार्गीकाश्मरीकर्कटाह्वयैः ।
आत्मगुप्तामहामेदातालखर्जूरमुस्तकैः ॥ ५१ ॥
मृणालबिसखर्जूरयष्टीमधुकजीवकैः ।
शतावरीविदारीक्षुबृहतीसारिवायुगैः ॥ ५२ ॥
दूर्वाश्वदंष्ट्रर्षभकशृङ्गाटककसेरुकैः ।
रास्नास्थिरातामलकीसूक्ष्मैलाशठिपौष्करैः॥५३॥
पुनर्नवातवक्षीरीकाकोलीधन्वयासकैः ।
मधूकाक्षोटवाताममुञ्जाताभिषुकैरपि ॥ ५४ ॥
महामायूरमित्येतन्मायूरादधिकं गुणैः ।
धात्विन्द्रियस्वरभ्रंशश्वासकासार्दितापहम् ।
योन्यसृक्शुक्रदोषेषु शस्तं वन्ध्यासुतप्रदम्५५

पक्षादिरहित मोरका मांस १ सेर, दशमूल, बला, रास्ना और मुलहठी यह प्रत्येक द्रव्य ३ पल इनको १६ सेर जलमें पकावे । ४ सेर जल शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । इस क्वाथमें १ सेर घी, ४ सेर दूध, तथा जीवन्ती, त्रिफला, मेदा, बडी द्राक्षा, छोटी द्राक्षा, फालसे, मंजीठ, चव्य, भारंगी, काश्मरी, काकड़ासिंगी, कौंचके बीज, महामेदा, ताल, खजूर, नागरमोथे, मृणाल, भिस, खजूर, मुलहठी, जीवक, शतावरी, विदारीकन्द, इक्षु, बड़ी कटेली, काला शारिवा, श्वेत शारिवा, दूब, गोखरू, ऋषभक, सिंघाडे, कसेरू, रास्ना, शालपर्णी, भूमिआमला, छोटी इलायची, कचूर, पोहकरमूल, पुनर्नवा, वंशलोचन, काकोली, जवासा, महुआ, अखरोट, बादाम, मुञ्जात और अभिषुक यह प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर इनका कल्क मिला घृत पाकविधिसे पकावे. यह महामायूरघृत उपरोक्त मायूरघृतसे गुणमें अधिक है. तथा धातुभ्रंश, इन्द्रियभ्रंश, स्वरभ्रंश, श्वास, खांसी और अर्दितरोगको दूर करता है । यह घृत योनिरोग, मासिक रजके विकार और शुक्रके विकारोंको दूर करता है और बन्ध्याको भी पुत्र देनेमें परमोत्तम है ॥ ४९–५५ ॥

आखुभिः कर्कटैर्हंसैःशशैश्चेति प्रकल्पयेत्५६॥

इस मायूरघृतके समान मूषक, केकड़े, हंस और शशकके मांससे भी इन्हीं द्रव्योंद्वारा पृथक् २ घी बनाए जावें तो उनमें भी यही गुण है ॥ ५६ ॥

जत्रूर्ध्वजानां व्याधीनामेकत्रिंशशतद्वयम् ।
परस्परमसङ्कीर्णं विस्तरेण प्रकाशितम् ॥ ५७॥

ऊर्ध्वजत्रुओंसे ऊपर २ होनेवाले २३१ रोग कथन किये हैं । ये रोग परस्पर संकीर्ण होतेहुए भी विस्तारसे प्रकाशित करदिये हैं ॥ ५७॥

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमृषयः पुरुषं विदुः।
मूलप्रहारिणस्तस्माद्रोगान् शीघ्रतरं जयेत् ॥

ऋषिलोग पुरुषको ऊर्ध्वमूल और अधःशाखावाला कहते है. इस कारण मूलमें अर्थात् शिरमें प्रहार करनेवाले रोगोंको अतिशीघ्र जीतना चाहिये ॥९८॥

सर्वेन्द्रियाणि येनास्मिन् प्राणा येन च संश्रिताः
तेन तस्योत्तमाङ्गस्य रक्षायामादृतो भवेत्॥९९॥

क्योंकि जिस उत्तमांग (गर्दनसे ऊपर संपूर्ण शिर) में संपूर्ण इन्द्रियां प्रतिष्ठित हैं और जिससे प्राण प्रतिष्ठित है उस उत्तमांगकी रक्षामें मनुष्यको सदा आदर पूर्वक सावधान रहना चाहिये ॥ ९९ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृत-शिवदीपिका-भाषाव्याख्यायां शिरोरोगप्रतिषेधो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः।

अथातो व्रणविज्ञानीयप्रतिषेधं-
-व्याख्यास्यामः।

अब हम व्रणके निदान लक्षण और चिकित्सावाले अध्यायकी व्याख्या करते हैं॥

दो प्रकारके व्रण।

व्रणो द्विधा निजागन्तुदुष्टशुद्धविभेदतः।
निजो दोषैः शरीरोत्थैरागन्तुर्बाह्यहेतुजः।
दोषैरधिष्ठितो दुष्टः शुद्धस्तैरनधिष्ठितः॥ १ ॥

व्रण निज और आगन्तुक भेदसे दो प्रकारके होते हैं. तथा दुष्ट व्रण और शुद्धव्रण इन भेदोंसे भी दो प्रकारके होते हैं इनमें शारीरक वातादि दोषोंसे उत्पन्न हुए व्रणको निज कहते है। और बाहरके अभिघातादि कारणोंसे उत्पन्नहुए व्रणको आगन्तुक कहते है। इसी प्रकार जिन व्रणोंमें प्रकुपित दोष आश्रित हों उन व्रणोंको दुष्टव्रण कहते है और जिन व्रणोंमें दोषप्रकोप न हों उनको शुद्ध कहते है॥ १ ॥

दुष्टव्रणके लक्षण।

संवृतत्वं विवृतता काठिन्यं मृदुतापि वा ॥२॥
अत्युत्सन्नावसन्नत्वमत्यौष्ण्यमतिशीतता।
रक्तत्वं पाण्डुता कार्ष्ण्यं पूतिपूयपरिस्रुतिः॥३॥
पूतिमांससिरास्नायुच्छन्नतोत्संगितातिरुक्।
संरम्भदाहश्वयथुकण्ड्वादिभिरुपद्रुतिः।
दीर्घकालानुबन्धश्च विद्याद्दुष्टव्रणाकृतिम् ॥४॥

जो व्रण बन्दसे हों या खुलेसे हों उनमें कठिनता हो अथवा मृदुता हो यह बहुत ऊपरको उठेहुए हों या बहुत नीचेको दबेहुए हों अत्यन्त उष्ण हों या अत्यन्त शीतल हों लालवर्ण हों, पाण्डुवर्ण हों कृष्णवर्ण हो दुर्गन्ध हो और पीवका स्राव होता हो दुर्गन्धित मांस, शिरा और स्नायुवोंसे आच्छन्न हों व्रण उत्संगी हों और अति पीड़ासे युक्त हों तथा ये व्रण संरम्भ, दाह,सूजन और खुजली आदि उपद्रवोंसे युक्त हों तथा बहुत देरसे हों इन लक्षणोंवाले व्रणको दुष्टव्रण जानना चाहिये ॥ २-४ ॥

स पञ्चदशधा दोषैः सरक्तैः ॥ ५ ॥-

वह व्रण दोषोंके और रक्तके भेदसे १५ प्रकारका होता है. जैसे-(१) वातसे (२) पित्तसे (३) कफसे (४) वातपित्तसे (५) वातकफसे (६) पित्तकफसे (७) वातपित्तकफसे (८) रक्तसे (९) रक्तवातसे (१०) रक्तपित्तसे (११) रक्तकफसे (१२) रक्तवातपित्तसे (१३) रक्तवातकफसे (१४) रक्तपित्तकफसे (१५) रक्त और त्रिदोषसे. इस प्रकार १५ प्रकारके व्रण होते हैं॥५॥

वातव्रणके लक्षण।

-तत्र मारुतात्।
श्यावः कृष्णोऽरुणो भस्मकपोतास्थिनिभो-
-ऽपि च ॥ ६ ॥
मस्तुमांसपुलाकाम्बुतुल्यतन्वल्पसंस्रुतिः।
निर्मांसस्तोदभेदाढ्यो रूक्षश्चटचटायते ॥ ७ ॥

इनमें वायुका व्रण नीला, काला, लाल, भस्मवर्णका, कपोतवर्णका अथवा अस्थिके समान वर्णवाला होता है। इसमेंसे दहीके जल और मांसके धोवनके समान पतला जल तथा अल्प स्राव होता है। मांसकी सड़न रहित तोद और भेद करके युक्त हो तथा रूक्ष और चटचटाहटकीसी पीड़ायुक्त होता है॥ ६ ॥ ७॥

पित्तव्रणके लक्षण ।

**पित्तेन क्षिप्रजः पीतो नीलः कपिलपिङ्गलः ।
मूत्रकिंशुकभस्माम्बुतैलाभोष्णबहुस्रुतिः ।
क्षारोक्षितक्षतसमव्यथो रागोष्मपाकवान् ॥८॥**

पित्तका व्रण शीघ्र उत्पन्न होता है. पीत, नील, कपिल और पिङ्गलवर्णवाला होता है। इसमेंसे गोमूत्र, केसूके जल, भस्मके जल और तैलके समान वर्णवाला उष्ण और बहुत स्राव होता है । इसमें क्षारदग्धसे उत्पन्नहुए व्रणके समान व्यथा, लालिमा, दाह और पाक होता है ये लक्षण पित्तके व्रणके होते हैं ॥८॥

कफव्रणके लक्षण ।

**कफेन पाण्डुः कण्डूमान् बहुश्वेतघनस्रुतिः ।
स्थूलौष्ठः कठिनःस्नायुसिराजालस्ततोऽल्परुक्**

कफका व्रण पाण्डुवर्णका, खुजलीयुक्त, गाढ़ा और श्वेत, बहुत स्राव करनेवाला, मोटे २ किनारेवाला, कठिन स्नायु और सिराके जालयुक्त तथा वात और पित्तके व्रणोंसे अल्पपीड़ावाला होता है ॥ ९ ॥

रक्तजव्रणके लक्षण ।

**प्रवालरक्तो रक्तेन सरक्तं पूयमुद्गिरेत् ।
वाजिस्थानसमो गन्धे युक्तो लिङ्गैश्च पैत्तिकैः१०**

रक्तका व्रण मूंगेके समान लालवर्णवाला, रक्तयुक्त पूयके बहानेवाला, घोड़ेके स्थानके समान गन्धवाला और पित्तके व्रणके समान लक्षणोंवाला होता है॥१०

संसर्गजादि व्रणके लक्षण ।

द्वाभ्यां त्रिभिश्च सर्वैश्च विद्याल्लक्षणसंकरात्११

दो दोषोंके लक्षणोंसे द्विदोषज, तीन दोषोंके लक्षणोंसे त्रिदोषज और तीन दोषों और रक्तसे युक्त लक्षणोंवाले व्रणको संसर्ग जानना चाहिये ॥ ११ ॥

शुद्धव्रणके लक्षण ।

**जिह्वाप्रभो मृदुः श्लक्ष्णः श्यावौष्ठपिटिकःसमः।
किञ्चिदुन्नतमध्यो वा व्रणःशुद्धोऽनुपद्रवः॥१२**

जिह्वाके समान वर्णवाला, मृदु, स्वच्छ, श्याववर्णके किनारे और पिटिकाओंसे युक्त, सम, किंचित् मध्यमेंसे उन्नत और उपद्रवरहितव्रणको शुद्ध व्रण कहतेहैं॥१२

कष्टसाध्यव्रण ।

**त्वगामिषशिरास्नायुसन्ध्यस्थीनि व्रणाशयाः ।
कोष्ठो मर्म च तान्यष्टौ दुःसाध्यान्युत्तरोत्तरम्१३**

त्वचाके आश्रित, मांसके आश्रित, शिराके आश्रित, स्नायुके आश्रित, संधिके आश्रित, अस्थिके आश्रित, कोष्ठके आश्रित और मर्मके आश्रित ये आठ प्रकारके व्रण उत्तरोत्तर अधिक कष्टसाध्य होते हैं ॥ १३ ॥

सुखसाध्यव्रण ।

**सुखसाध्यःसत्त्वमांसाग्निवयोबलवति व्रणः ।
वृत्तो दीर्घस्त्रिपुटकश्चतुरस्राकृतिश्च यः ।
तथा स्फिक्पायुमेढ्रोष्ठपृष्ठान्तर्वक्त्रगण्डयोः१४**

सत्त्व, मांस, जठराग्नि, अवस्था और बलवाले पुरुषके गोल, दीर्घ, त्रिपुट, चतुरस्र आकृतिवाले व्रण तथा स्फिक्, पायु, मेढ्र, ओष्ठ, पृष्ठ, मुखके अन्दर और गण्डस्थलके व्रण सुखसाध्य होते हैं ॥ १४ ॥

कष्टसाध्यव्रण ।

**कृच्छ्रसाध्योऽक्षिदशननासिकापाङ्गनाभिषु ।
सेवनीजठरश्रोत्रपार्श्वकक्षास्तनेषु च ॥ १५ ॥**

नेत्र, दान्त, नासिका, अपांग, नाभि, सेवनी, उदर, श्रोत्र, पार्श्व, कक्षा और स्तनोंमें होनेवाले व्रण कष्टसाध्य होते हैं ॥ १५ ॥

**फेनपूयानिलवहः शल्यवानूर्ध्वनिर्वमी ।
भगन्दरोन्तर्वदनस्तथा कट्यस्थिसंश्रितः१६॥
कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ।
व्रणाः कृच्छ्रेण सिद्ध्यन्ति येषां च–
--स्युर्व्रणे व्रणाः ॥ १७ ॥**

जिन व्रणोंमेंसे फेन, पूय और वायु निकलता हो या जिनमें शल्यहो, ऊपरको पीप बहानेवाला भगन्दर, अन्तर्मुखव्रण, कटिकी अस्थिसे आश्रित तथा कुष्ठियोंके व्रण, विषयुक्त पुरुषोंके व्रण, शोषरोगवालोंके व्रण, मधुमेहवालोंके व्रण और जिन व्रणोंके अन्दर अन्य व्रण हों, ये व्रण बड़ी कठिनाईसे योग्य वैद्य द्वारा चिकित्सा करने पर सिद्ध भी होसकते हैं। और यथा चिकित्सा न होनेसे असाध्य हो जाते हैं ॥१६–१७

असाध्य व्रण ।

**नैव सिद्ध्यति वीसर्पज्वरातीसारकासिनाम् ।
पिपासूनामनिद्राणां श्वासिनामविपाकिनाम् ।
भिन्ने शिरःकपाले वा मस्तुलुङ्गस्य दर्शने १८॥**

वीसर्प, ज्वर, अतीसार, खांसी, तृषा, निद्रानाश,

श्वास और अविपाक इन उपद्रवोंवाले पुरुषके व्रण असाध्य होते हैं। तथा कपालके भेदन हो जानेपर उसमेंसे मस्तुलुंग (भेजा) निकल आवे तो वह व्रण भी असाध्य होता है ॥ १८ ॥

साध्य व्रणोंमें विघातक हेतु।

स्नायुक्लेदात्सिराच्छेदाद्गाम्भीर्यात्कृमिभक्षणात्।
अस्थिभेदात्सशल्यत्वात्सविषत्वादतर्कितात् ॥
मिथ्याबन्धादतिस्नेहाद्रौक्ष्याद्रोमातिघट्टनात।
क्षोभादशुद्धकोष्ठत्वात्सौहित्यादतिकर्शनात २०
मद्यपानाद्दिवास्वापाद् व्यवायाद्रात्रिजागरात्।
व्रणो मिथ्योपचाराच्च नैव साध्योऽपि रोहति॥

स्नायुवोंके क्लेदसे, सिरा छेदन होजानेसे, गम्भीर गतिवाला होनेसे, कृमियोंके भक्षणसे, अस्थिभेदन-होनेसे, शल्ययुक्त होनेसे, विषयुक्त होनेसे, दोषका यथार्थ ज्ञान न होनेसे, मिथ्याबंधसे अतिस्निग्ध या अतिरूक्ष औषध लगानेसे व्रणमें रोम आदिके घर्षण होते रहनेसे, क्षोभसे, अशुद्ध कोष्ठ होनेसे, बहुत खानेसे, अतिकर्षणसे, मद्यपानसे, दिनमें सोनेसे, स्त्रीसंगसे, रातको जागनेसे और मिथ्योपचारसे साध्यव्रण भी अच्छा नहीं हो सकता। इस कारण व्रणरोगीको मिथ्या आहार विहार नहीं करना चाहिये ॥ १९--२१ ॥

अच्छे होतेहुए व्रणके लक्षण।

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः।
स्थिराश्चिपिटिकावन्तो रोहतीति तमादिशेत्२२

जो व्रण कपोतके वर्णके समान वर्णवाला होजाय जिसके भीतर क्लेद न रहे, स्थिर हो और उसमें छोटी २ मांसकी पिटिकासी निकल आवें वह व्रण अच्छा होकर रोपण होरहाहै ऐसा जानना चाहिये॥ २२

व्रणशोथकी चिकित्सा।

अथाऽत्र शोफावस्थायां यथासन्नं विशोधनम्।
यो ऽयं शोफो हि शुद्धानां व्रणश्चाशु-
-प्रशाम्यति ॥ २३ ॥

व्रण उत्पन्न होनेसे प्रथम जब सुजन उत्पन्न हो तबही मनुष्यको वमन विरेचन आदिसे शुद्ध कर देना चाहिये. क्योंकि, वमनादिसे शुद्ध देह होनेपर सुजन स्वयं शान्त हो जाती है। तब व्रण उत्पन्नही नहीं हो सकते ॥ २३ ॥

कुर्याच्छीतोपचारं तु शोफावस्थस्य सन्ततम्।
दोषाग्निरग्निवत्तेन प्रयाति सहसा शमम् ॥२४॥

सूजनकी अवस्थामें निरन्तर शीतोपचार करना चाहिये. इससे दोषाग्नि अग्निके समान शीघ्र शमन होजाती है तब सूजन व्रणावस्थातक नहीं जा सकती ॥ २४ ॥

रक्त निकालनेकी आवश्यकता।

शोफे व्रणे च कठिने विवर्णे वेदनान्विते ॥२५॥
विषयुक्ते विशेषेण जलौकाद्यैर्हरेदसृक्।
दुष्टास्रेऽपगते सद्यः शोफरागरुजां शमः॥२६॥

यदि व्रणकी सूजन कठिन, विवर्ण पीडायुक्त, अथवा विषयुक्त हो तो जोंक आदि लगाकर दुष्ट रक्तको निकाल देना चाहिये. दुष्ट रक्तके निकल जानेसे सूजन, लालिमा और पीडा शीघ्र शमन हो जातीहै २६

रक्त निकालनेके अनन्तर लेप।

हृते हृते च रुधिरे सुशीतैः स्पर्शवीर्ययोः।
सुश्लक्ष्णैस्तदहःपिष्टैः क्षीरेक्षुस्वरसद्रवैः ॥२७॥
शतधौतघृतोपेतैर्मुहुरन्यैरशोषिभिः।
प्रतिलोमं हितो लेपः सेकाभ्यङ्गाश्च तत्कृताः२८

दुष्ट रक्तको बार बार निकालकर शीतस्पर्श और शीतवीर्यवाले द्रव्योंको उसी समय बहुत बारीक पीस कर दूध या गन्नेके रससे मिलाकर अथवा सौ बार धोये घृतमें मिलाकर बार बार लेप करे। तथा अन्य ऐसे ही जो शोषण न करे शीतल लेप करने चाहिये लेप सदैव प्रतिलोम करने चाहिये। इसी प्रकार सेचन और अभ्यङ्गभी प्रतिलोमही करने चाहिये। जिससे औषध रोममार्गसे प्रवेश कर अपना गुण कर सके॥ २७॥ २८

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः।
प्रदेहो भूरिसर्पिर्भिः शोफनिर्वापणः परम् २९॥

वटवृक्ष, गूलर, अश्वत्थ, पिलखण और वेतस इन पांच क्षीरीवृक्षोंकी छालका कल्क घृत मिलाकर लेप करना सूजनको दूर करनेमें परम श्रेष्ठ है ॥ २९॥

उपनाहस्वेद ।

वातोल्बणानां स्तब्धानां कठिनानां महारुजाम्
स्रुतासृजां च शोफानां व्रणानामपि चेदृशाम् ३०
आनूपवेसवाराद्यैः स्वेदः सोमास्तिलाः पुनः ।
भृष्टा निर्वापिताःक्षीरे तत्पिष्टा दाहरुग्घराः ३१॥

जो व्रण वातप्रधान, स्तब्ध, कठिन और अधिक पीड़ावाले हों तथा जिन सूजनोंमेंसे रक्त निकाल दियागया हो फिर भी वह कठिन स्तब्ध और पीड़ायुक्त हो, ऐसे व्रणोंपर आनूपसंचारी जीवोंके मांस आदिसे स्वेदन करे । तथा अलसी और तिलोंको भूनकर दूधमें पीसकर पुल्टस बनाकर लगानेसे या लेप करनेसे व्रणकी दाह और पीड़ा शमन होतीहै॥ ३१

विम्लापनक्रम ।

स्थिरान् मन्दरुजः शोफान् स्नेहैर्वातकफापहैः।
अभ्यज्य स्वेदयित्वा च वेणुनाड्या शनैःशनैः॥
विम्लापनार्थं मृद्नीयात् तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ।
यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ३३ ॥

जो व्रण शोथ स्थिर हों और मन्दपीड़ावाले हों उनको वातकफनाशक तैलोंसे अभ्यक्तकर स्वेदन करे तथा बांसकी नलकी या हाथके अंगूठेसे विम्लापन करनेके लिये शनैः शनैः मर्दन करे । तदनन्तर यव, गेहूं और मूंगको पकाकर पीसकर लेप करे३२॥३३॥

विलीयते स चेन्नैवं ततस्तमुपनाहयेत् ।
अविदग्धस्तथा शांतिं विदग्धःपाकमश्नुते॥३४

यदि इस प्रकार भी वह शोथ नष्ट न हो तो उसपर उपनाह स्वेद (गरमपुलटससे सेक) करे । इससे यदि शोथ अविदग्ध होगा तो शान्त हो जायगा और विदग्ध होगा तो पककर फूट जायगा ॥३४॥

सकोलतिलवल्लोमा दध्यम्ला सक्तुपिण्डिका ।
सकिण्वकुष्ठलवणा कोष्णा शस्तोपनाहने३५॥

बेर, तिल, भूनेहुए जौ, अलसी इन सबको पीसकर इनमें सुराबीज, कूठ और लवण मिलाकर दहीमें मिला सत्तुपिण्डिकाके समान पिण्डी बनाकर गरम करके बान्धना उपनाह स्वेदके लिये श्रेष्ठ माना जाता है ॥ ३५ ॥

उत्पीडन और दारण ।

सुपक्के पिण्डिते शोफे पीडनैरुपपीडिते ।
दारणं दारणार्हस्य सुकुमारस्य चेष्यते ॥ ३६ ॥

जब व्रणशोथ यथार्थ पककर पिण्डित होजाय और पीड़न करनेवाले द्रव्योंसे उपपीड़ित होजाय । यदि दारण करने योग्य हो तो सुकुमार पुरुषके इस पक्कशोथको दारण करके सब दोष निकाल देना चाहिये ॥ ३६ ॥

दारणलेप ।

गुग्गुल्वतसिगोदन्तस्वर्णक्षीरी कपोतविट् ।
क्षारौषधानि क्षाराश्च पक्कशोफविदारणम्॥३७॥

गूगल, अलसी, गोदन्ती हड़ताल, स्वर्णक्षीरी, कबूतरकी बीठ,क्षार औषधियें और क्षार इनको मिलाकर लेप करनेसे पकीहुई सूजन स्वयं फूटजाती है॥३७॥

पूयगर्भानणुद्वारान् सोत्संगान्मर्मगानपि ।
निःस्नेहैःपीडनद्रव्यैःसमन्तात्प्रतिपीडयेत् ३८

जिस व्रणके छोटे छोटे द्वार हों और उनमें पूय स्थित हो । ये व्रण उत्संगी हों अथवा मर्मगत भी हों इनके ऊपर चिकनाई रहित पीड़न द्रव्योंका लेप करके सब ओरसे पीड़न करना चाहिये ॥ ३८ ॥

शुष्यन्तं समुपेक्षेत प्रलेपं पीडनं प्रति ।
न मुखे चैनमालिम्पेत्तथा दोषःप्रसिच्यते ॥३९

पीड़न लेपको व्रणका मुख छोड़ कर सब ओर लेप कर देना चाहिये और इस लेपको यथार्थ सूखने देना चाहिये । जिससे यह लेप सूख कर व्रणको पीड़न करके सब दोषको निकाल देवे ॥ ३९ ॥

कलाययवगोधूममाषमुद्गहरेणवः ।
द्रव्याणां पिच्छिलानां च त्वङ्मूलानि-
-प्रपीडनम ॥ ४० ॥

मटर, जौ, गेहूं, माष, मूंग और हरेणु तथा बला आदि पिच्छिल द्रव्योंके पत्र और मूलकी त्वचा ये सब पीसकर लेप करनेसे व्रणको पीड़न कर देते हे॥४०॥

दुष्टव्रणोंमें प्रयोग ।

समसु क्षालनाद्येषु सुरसारग्वधादिकौ ।
भृशं दुष्टे व्रणे योज्यौ मेहकुष्ठव्रणेषु च ॥४१॥

दुष्टव्रणोंमें और प्रमेहरोगी या कष्टरोगीके व्रणोंमें प्रक्षालन, आलेपन, घृत, तैल, रसक्रिया, चूर्ण और वर्ति इन सातोंमें सुरसादिगण और आरग्वधादि गणके द्रव्योंका विशेष प्रयोग करना चाहिये ॥ ४१ ॥

व्रणशोधनकर्ता योग ।

अथवा क्षालनं क्वाथः पटोलीनिंबपत्रजः ।
अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोधादित्वगुद्भवः॥४२॥

अथवा यदि व्रण शुद्ध न हो तो पटोलपत्र और निंबपत्रोंके क्वाथसे व्रणको प्रक्षालन करना चाहिये । यदि व्रण शुद्ध हो तो न्यग्रोधादि पांच क्षीरीवृक्षोंकी छालके क्वाथसे प्रक्षालन करना चाहिये ॥ ४२ ॥

पटोलीतिलयष्ट्याह्वात्रिवृद्दन्तीनिशाद्वयम् ।
निम्बपत्राणि चालेपःसपटुर्व्रणशोधनः ॥४३॥

पटोलपत्र, तिल, मुलहठी, निशोथ, दन्ती, हलदी, दारुहलदी, नीमके पत्र और सेंधानमक इनका लेप करना व्रणको शुद्ध कर देता है ॥ ४३ ॥

व्रणान्विशोधयेद्वर्त्या सूक्ष्मास्यान् संधिमर्मगान्
कृतया त्रिवृतादन्तीलाङ्गलीमधुसैन्धवैः ॥४४॥

निशोथ, दन्ती, लांगलीकन्द, मधु और सेंधालवण इनकी बारीक बत्ती बनाकर सूक्ष्ममुखवाले सन्धि और मर्मगत व्रणोंमें व्रणोंके मुखमें यह बत्ती देकर व्रणोंको शुद्ध करे ॥ ४४ ॥

वातज व्रणोंमें धूपन ।

वाताभिभूतान् सास्रावान् धूपयेदुग्रवेदनान् ।
यवाज्यभूर्जमदनश्रीवेष्टकसुराह्वयैः ॥ ४५ ॥

जो व्रण वायुसे ग्रस्त हों उनमें रक्तका संसर्ग और पीड़ाकी अधिकता हो उनको जौ, घृत, भोजपत्र, मैनफल, श्रीवेष्टक और देवदारुकी धूनी देनी चाहिये ॥ ४५ ॥

पित्तादिजनित व्रणोंमें लेप ।

निर्वापयेद् भृशं शीतैःपित्तरक्तविषोल्बणान् ।

पित्त, रक्त और विषप्रधान व्रणोंको शीतवीर्य और शीतस्पर्शवाले द्रव्योंसे वार वार लेपन करे ॥ ४६ ॥

शुष्कव्रणोंपर उत्सादन ।

शुष्काल्पमांसे गम्भीरे व्रण उत्सादनं हितम् ॥
न्यग्रोधपद्मकादिभ्यामश्वगन्धाबलातिलैः ।
अद्यान्मांसादमांसानि विधिनोपहितानि च ।
मांसं मांसादमांसेन वर्धते शुद्धचेतसः ॥४७ ॥

सूखेहुए, अल्प मांसवाले गम्भीर व्रणको न्यग्रोधादिगण, पद्मकादिगण, अश्वगन्ध, बला और तिल इनसे उत्सादन (मांसको बढाना) करे । तथा मांस खानेवाले जीवोंके मांसको विधिपूर्वक संस्कार करके खावे. क्योंकि, शुद्धचित्त वाले आदमीके मांसको मांस खानेवाले जीवोंका मांस बढ़ा देता है ॥ ४७ ॥

अवसादन लेप ।

उत्सन्नमृदुमांसानां व्रणानामवसादनम् ।
जातीमुकुलकासीसमनोह्वालपुराग्निकैः ॥ ४८॥

जिन व्रणोंका मांस ऊपरको उठाहुआ और नरम हो । उन व्रणोंपर चमेलीकी कलियें, कासीस, मनसिल, गोदन्ती, हड़ताल, गूगल और चित्रकका लेप करके मांसको अवसादन अर्थात् बढ़े हुए मांसको शमन करदेना चाहिये ॥ ४८ ॥

क्षारकर्म ।

उत्सन्नमांसान् कठिनान् कण्डूयुक्तां-
-श्चिरोत्थितान् ।
व्रणान्सुदुःखशोध्यांश्च शोधयेत्क्षारकर्मणा ४९

जिन व्रणोंपर मांस ऊपरको उठा हुआ हो और कठिन हो तथा खुजली होती हो और व्रण देरके हो, तथा व्रण कष्टसे शुद्ध हो सकता हो, उस व्रणको क्षारकर्म अर्थात् तेजाब लगाकर शोधन करना चाहिये ४९

अग्निकर्म ।

स्रवन्तोऽश्मरिजा मूत्रं ये चान्ये रक्तवाहिनः ।
छिन्नाश्च संधयो येषा यथोक्तैर्ये च शोधनैः५०
शोध्यमाना न शुद्ध्यन्ति शोध्याः
-स्युस्तेऽग्निकर्मणा ।
शुद्धानां रोपणं योज्यमुत्सादाय यदीरितम् ५१

पथरी निकालनेसे हुआ व्रण जिससे मूत्र निकलता हो या और ऐसा व्रण जिसमेंसे रक्त बहता हो तथा सन्धिच्छेद और जो यथोचित शुद्ध करनेपर शोधन न होते हों इन सब पर अग्निकर्म (दाग) करना चाहिये । यदि शुद्ध हों तो उनको तो जो द्रव्य उत्सा-

दनके लिये कहे हैं उन्हींसे शुद्ध व्रणको रोपण कर देना चाहिये ॥ ५० ॥ ५१ ॥

रोपण योग।

अश्वगन्धारुहारोध्रं कट्फलं मधुयष्टिका ।
समङ्गाधातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम् ॥ ५२॥

असगन्ध, दूर्वा, लोध, कायफल, मुलहठी, मंजीठ और धावेके फूल इनका प्रयोग व्रणको रोपण करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ५२ ॥

अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम् ।
कल्कं संरोहणं कुर्यात् तिलानां मधुकान्वितम्

जिन व्रणोंमें दुर्गन्ध और सड़न न हों और व्रण मांसमें स्थित हों, परन्तु रोपण न होता हों, उन पर मुलहठी और तिलोंका कल्क लगाना उनको शीघ्र रोपण करदेता है ॥ ५३ ॥

स्निग्धोष्णतिक्तमधुरकषायत्वैः स सर्वजित् ।
सक्षौद्रनिम्बपत्राभ्यां युक्तः संशोधनं परम् ॥
पूर्वाभ्यां सर्पिषा चासौ युक्तः स्यादाशु-
-रोपणः ॥५४॥

तिल और मुलहठीका कल्क स्निग्ध, उष्ण, तिक्त, मधुर और कषाय होनेसे सब दोषोंको जीतता है। यदि इसीमें मधु और नीमके पत्र मिला दियेजांय तो यह व्रणको परम संशोधन करता है। यदि इसीमें मधु निंबपत्र और घृत मिलादियाजाय तो यही व्रणको शीघ्र रोपण कर देता है ॥ ५४ ॥

तिलवद्यवकल्कं तु केचिदिच्छन्ति तद्विदः॥५५

तिलकल्कके समान ही व्रणचिकित्साके जाननेवाले वैद्य यवकल्कको भी इसी प्रकार मधु आदि मिलानेसे संशोधन और रोपण कथन करते हैं ॥ ५४॥ ५५॥

सास्रपित्तविषागन्तुगम्भीरान्सोष्मणो व्रणान् ।
क्षीररोपणभैषज्यशृतेनाज्येन रोपयेत् ॥ ५६ ॥
रोपणौषधसिद्धेन तैलेन कफवातजान् ॥५७ ॥

जो व्रण रक्तज, पित्तज, आगन्तुज, गम्भीर और ऊष्मायुक्त हों उनको दूध और रोपणद्रव्योंके कल्कसे सिद्ध कियेहुए घृतसे रोपण करना चाहिये। कफ और वायुसे उत्पन्न हुए व्रणोंको रोपणकारक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तैलसे रोपण करना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

काक्षीरोध्राभयासर्जसिन्दूराञ्जनतुत्थकम् ।
चूर्णितं तैलमदनैर्युक्तं रोपणमुत्तमम् ॥ ५८ ॥

सौराष्ट्रमृत्तिका, पठानीलोध, हरड़, राल, सिन्दूर, रसौत और नीलाथोथा इनको बारीक पीस कर मैनफलका तेल लगाकर बुरकानेसे व्रण शीघ्र रोपण होजाता है ॥ ५८ ॥

समानां स्थिरमांसानां त्वक्स्थानां चूर्ण इष्यते ।
ककुभोदुम्बराश्वत्थजम्बूकट्फलरोध्रजैः ।
त्वचमाशु निगृह्णन्ति त्वक्चूर्णैश्चूर्णिता व्रणाः ॥

जो व्रण स्थिरमांस हों और त्वचामें स्थित हों, तथा सम हों, उनपर सौराष्ट्री आदिके चूर्णका प्रयोग करना चाहिये. तथा अर्जुन, गूलर, अश्वत्थ, जामुन, कायफल और पठानीलोध इनकी छालको बारीक पीसकर व्रणोंपर चूर्णित करनेसे व्रण शीघ्र रोपण होजाते हैं ॥ ५९ ॥

वर्णकारक लाक्षादिलेप।

लाक्षामनोह्वामञ्जिष्ठाहरितालनिशाद्वयैः ।
प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः परम्॥६०॥

लाख, मनसिल, मंजीठ, गोदन्ती, हड़ताल, हल्दी और दारुहल्दी इनके चूर्णमें घृत और शहद मिलाकर लेप करे। यह प्रलेप त्वचाको परम शुद्ध करनेवाला है ॥ ६० ॥

कालीयकलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमैः ।
लेपः सगोमयरसः सवर्णकरणः परम् ॥ ६१ ॥

अगर, प्रियंगु, आमकी गुठली, नागकेशर, मंजीठ और रसौत इनको गोबरके रसमें पीसकर लेप करनेसे व्रणका स्थान और त्वचाके समान वर्णवाला होजाता है ॥ ६१ ॥

रोमजनक लेप।

दग्धो वारणदन्तोन्तर्धूमं तैलं रसाञ्जनम्॥६२॥
रोमसञ्जननो लेपस्तद्वत्तैलपरिप्लुता ।
चतुष्पात्त्वग्रोमास्थित्वक्शृङ्गखुरजा मषी ६३

हाथीके दांतको अन्तर्धूम दग्ध करे इस दग्ध कियेहुए हाथीदांत और रसौतको तेलमें रगड़कर लेप करनेसे व्रणमें अच्छेहुए व्रणस्थानमें रोम उत्पन्न होजाते हैं। इसी प्रकार चौपायें जानवरोंके नख, रोम, अस्थि, त्वचा, सींग और खुर इनकी अन्तर्धूम दग्ध मसी रसौत और तेलमें मिलाकर लेप करनेसे व्रणस्थानपर रोम उत्पन्न होजाते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

व्रणरोगीको पथ्यापथ्य।

व्रणिनःशस्त्रकर्मोक्तं पथ्यापथ्यान्नमादिशेत् ६४

व्रणरोगीको शस्त्रचिकित्सामें कहेहुए पथ्यापथ्यके अनुसार पथ्यापथ्यका उपदेश करना चाहिये ॥ ६४ ॥

वातादि दोषोंपर योग।

द्वे पञ्चमूले वर्गश्च वातघ्नो वातिके हितः।

वातके व्रणरोगीको दशमूल और वातनाशक वर्गका सेवन करना हितकारी होता है।

न्यग्रोधपद्मकाद्यौ तु तद्वत्पित्तप्रदूषिते।

पित्तदूषित व्रणमें न्यग्रोधादिगण और पद्मकादिगणका सेवन करना चाहिये।

आरग्वधादिः श्लेष्मघ्नः कफे मिश्रस्तु-
-मिश्रके ॥ ६५ ॥

कफके व्रणमें आरग्वधादि गणका प्रयोग हितकारी होता है। मिलेहुए दोषोंके व्रणमें दोषानुसार मिलेहुए द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ६५ ॥

एभिः प्रक्षालनालेपघृततैलरसक्रियाः।
चूर्णो वर्तिश्च संयोज्या व्रणे सप्त यथायथम् ६६

इन वातादि व्रणोंमें कहेहुए दशमूलादि द्रव्योंको प्रक्षालन, आलेपन, घृत, तैल, रसक्रिया, चूर्ण और बत्ती इन सात प्रकारसे द्रव्य सिद्ध कर प्रयोग करना चाहिये। जिस दोषमें जो द्रव्य गुणकारी हों उनसे बनाएहुए काथोंसे धोना उनके कल्कोंसे लेपन करना आदि उचितरूपपर यथादोष प्रयोग करना चाहिये ६६

जात्यादिघृत।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशासारिवा-
मञ्जिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजान्वितैः
सर्पिःसाध्यमनेनसूक्ष्मवदना मर्माश्रिताःक्लेदिनो
गम्भीराःसरुजो व्रणाः सगतयः शुद्ध्यन्ति-
-रोहन्ति च ॥ ६७ ॥

चमेलीके पत्र, नीमके पत्र, पटोलपत्र, कुटकी, दारुहल्दी, हल्दी, शारिवा, मंजीठ, हरड़, मोम, नीलाथोथा, मुलहठी और लताकरञ्जके पत्र तथा बीज इनके कल्क और काथसे सिद्ध कियाहुआ घृत व्रणोंपर लगानेसे सूक्ष्ममुखवाले व्रण, मर्माश्रित व्रण, क्लेदयुक्त व्रण, गंभीरव्रण, पीड़ायुक्त व्रण, नाड़ीव्रण और उत्संगी व्रण ये सब दूर होते हैं ॥ ६७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं.शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां व्रणप्रतिषेधो नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः।

अथा तः सद्योव्रणप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम सद्योव्रण अर्थात् तात्कालिक उत्पन्न हुए व्रणकी चिकित्साको कथन करते हैं ॥

सद्योव्रणोंके आठ भेद।

सद्योव्रणा ये सहसा संभवंत्यभिघाततः।
अनन्तैरपि तैरङ्गमुच्यते जुष्टमष्टधा ॥ १ ॥
घृष्टावकृत्तविच्छिन्नप्रविलम्बितपातितम्
विद्धं भिन्नं विदलितम् ॥ २ ॥-

जो सहसा चोट आदिसे व्रण उत्पन्न होते हैं उनको सद्योव्रण कहते हैं। यह सद्योव्रण असंख्य और अनन्तरूपसे होतेहुए भी शरीरमें प्राप्तहुए आठ प्रकारके भागोंमें विभक्त करनेसे आठ प्रकारके होते हैं. जैसे-घृष्ट, अवकृत्त, विच्छिन्न, प्रविलम्बित, पतित, विद्ध, भिन्न और विदलित इन भेदोंसे आठ प्रकारके होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

सद्योव्रणोंके अलग २ लक्षण।

-तत्र घृष्टं लसीकया ॥ २ ॥
रक्तलेशेन वा युक्तं सद्योषं छेदनात् स्रवेत्।

अवगाढं ततः कृत्तं विच्छिन्नं स्यात्ततोऽपि च ३
प्रविलम्बि सशेषेऽस्थि पतितं पातितं तनोः ।
सूक्ष्मास्यशल्यविद्धं तु विद्धं कोष्ठविवर्जितम् ४॥
भिन्नमन्यद्विदलितं मज्जरक्तपरिप्लुतम् ।
प्रहारपीडनोत्पेषात्सहास्थ्ना पृथुतां गतम् ॥५॥

१—इनमें घृष्टव्रणमें लसीका अथवा किञ्चित्रक्तका लेशलिये स्राव होता है । घर्षण द्वारा छेदन होनेसे प्लुष्टके समान रक्तयुक्त लसीका स्राव होता है। २—अवकृत्तव्रणमें रक्तका स्राव होता है । ३—विच्छिन्नमें उससे अधिक गाढ़तर रक्तका स्राव होताहै और गहरा कटजाता है । ४—प्रविलंबितमें मांस कटजाता है अस्थि शेष रह जाती है । ५—अवपातितमें कटकर शरीरसे अलग गिर जाता है। ६—सूक्ष्ममुखवाले शस्त्र आदिके शरीरमें चुभ जानेको विद्ध कहते हैं. यह विद्ध कोष्ठको छोड़कर अन्यस्थानोंमें विद्ध कहाजाता है । ७—कोष्ठमें जो विद्ध होता है उसको भिन्न कहते हैं; अथवा अन्यस्थानमें भेदन होनेको भिन्न कहते हैं । ८—यदि प्रहार, पीड़न और उत्पेषण आदिसे अस्थिसहित शरीरका भाग पृथुताको प्राप्त हो जाय उसको विदलित कहते हैं ॥ ३-५ ॥

सद्योव्रणकी चिकित्सा ।

सद्यः सद्योव्रणं सिञ्चेदथ यष्ट्याह्वसर्पिषा ।
तीव्रव्यथं कवोष्णेन बलातैलेन वा पुनः ॥ ६॥

सद्योव्रणको मुलहठी मिले कोष्ण घृतसे शीघ्र सेचन करना चाहिये । अथवा बलाके कोष्णतेलसे सेचन करना चाहिये। ऐसा बार २ सेचन करनेसे सद्योव्रणकी तीव्र पीड़ा शीघ्र दूर होजाती है ॥ ६ ॥

क्षतोष्मणो निग्रहार्थं तत्कालं विसृतस्य च ।
कषायशीतमधुरस्निग्धा लेपादयो हिताः ॥७॥

क्षतकी गर्मीको शान्त करनेके लिये कषाय, शीतल, मधुर और स्निग्धद्रव्योंका तत्काल बनायाहुआ लेप आदि हितकारी होता है ॥ ७ ॥

सद्योव्रणेष्वायतेषु सन्धानार्थं विशेषतः ।
मधु सर्पिश्च युञ्जीत पित्तघ्नीश्च हिमाः क्रियाः ८

यदि सद्योव्रण चौड़ा हो तो उसको सन्धान करनेके लिये मधु और घृतका लेप करना चाहिये । तथा पित्तनाशक शीतक्रिया करनी चाहिये ॥ ८ ॥

ससंरम्भेषु कर्तव्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ।
उपवासो हितं भुक्तं प्रततं रक्तमोक्षणम् ॥ ९॥

सूजनवाले व्रणमें वमन विरेचन कराकर शरीरका शोधन करना चाहिये, उपवास कराना चाहिये तथा भोजन करानेके अनन्तर रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ ९ ॥

घृष्टे विदलिते चैष सुतरामिष्यते विधिः ।
तयोर्ह्यल्पं स्रवत्यस्रं पाकस्तेनाशु जायते॥१०॥

घृष्टमें और विदलितमें भी शोधन अवश्य कराना चाहिये. क्योंकि, घृष्ट और विदलितमें रक्तका स्राव बहुत अल्प होता है । इस कारण उस स्थानमें स्थित-हुआ रक्त शीघ्र पाकको उत्पन्न कर देता है ॥ १० ॥

अत्यर्थमस्रं स्रवति प्रायशोऽन्यत्र विक्षते ।
ततो रक्तक्षयाद्वायौ कुपितेऽतिरुजाकरे ॥११॥
स्नेहपानपरीषेकस्वेदलेपोपनाहनम् ।
स्नेहवस्तिं च कुर्वीत वातघ्नौषधसाधितम् १२॥

घृष्ट और विदलितके विना अन्य प्रकारके क्षतमें प्रायः अधिक रक्तस्राव होजाता है अधिक रक्तस्राव होनेसे रक्तक्षयके कारण कुपितहुआ वायु अधिक पीड़ाको उत्पन्न करदेता है. ऐसी अवस्थामें स्नेहपान परिषेचन, लेप, उपनाह स्वेद और वातनाशक औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए स्नेहकी वस्ति ये सब वात नाशक और स्निग्ध चिकित्सायें करनी चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥

इति साप्ताहिकः प्रोक्तः सद्योव्रणहितो विधिः ।
सप्ताहाद्गतवेगे तु पूर्वोक्तं विधिमाचरेत् ॥१३॥

यह सद्योव्रणकी चिकित्सा सात दिनतक करनी चाहिये । सात दिनसे उपरान्त शेष रहेहुए व्रणको पूर्वोक्त व्रणविधिके समान चिकित्सा करनी चाहिये १३

सद्योव्रणोंकी विशेष चिकित्सा ।

प्रायः सामान्यकर्मेदं वक्ष्यते तु पृथक्पृथक् ।

इस प्रकार सद्योव्रणकी सामान्य चिकित्साको कथन कर दिया, अब उनकी पृथक् २ विशेष चिकित्साको कथन करते हैं ।

घृष्टे रुजं निगृह्याशु व्रणे चूर्णानि योजयेत्१४॥

घृष्टमें घृत और मुलहठीसे पीड़ा शान्त करनेके अनन्तर व्रणके ऊपर व्रणनाशक चूर्णोंको बुरका देना चाहिये ॥ १४ ॥

कल्कादीन्यवकृत्ते तु--

अवकृत्तपर अर्थात् कतरनी आदिसे कटेहुए अवकृत्त नामक सद्योव्रणपर कल्कादिकोंका लेप करना चाहिये।

--विच्छिन्नप्रविलम्बिनोः।
सीवनं विधिनोक्तेन बन्धनं चानुपीडनम् १५

विच्छिन्न और अवलंबित सद्योव्रणको शीघ्र विधिपूर्वक सीवन करके ऊपरसे कसकर पट्टी बांधदेवे॥१५

नेत्रपर सद्योव्रणकी चिकित्सा।

असाध्यं स्फुटितं नेत्रमदीर्णं लम्बते तु यत्।
संनिवेश्य यथास्थानमव्याविद्धसिरं भिषक्।
पीडयेत् पाणिना पद्मपलाशान्तरितेन तत् १६

यदि नेत्र फूट गया हो तो वह असाध्य होता है। यदि नेत्र फूटा न हो और लटकता हो तथा नेत्रकी शिरा भी विद्ध न हुई हो तो वैद्य इस नेत्रको यथास्थान सन्निवेश करके कमलका पत्र ऊपर रखकर हाथकी हथेलीसे दबावे ॥ १६ ॥

ततोऽस्य सेचने नस्ये तर्पणे च हितं हविः।
विपक्कमाजं यष्ट्याह्वजीवकर्षभकोत्पलैः।
सपयस्कैः परं तद्धि सर्वनेत्राभिघातजित्॥१७॥

तदनन्तर इस नेत्रपर बकरीका दूध, मुलहठी, जीवक, ऋषभक और कमलका कल्क मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत सेचन करे। क्योंकि यह घृत सब प्रकारके नेत्रके अभिघातको शमन करनेवाला है॥१७॥

गलाघुटनेसे बाहरआये नेत्रकी चिकित्सा।

गलपीडावसन्नेऽक्षिण वमनोत्क्लेशनक्षवाः।
प्राणायामोऽथवा कार्यःक्रिया च क्षतनेत्रवत्१८

यदि गलाघुटनेसे नेत्र बाहर अवसन्न होगये हों तो वमन, उत्क्लेशन, छींकें और प्राणायाम कराना चाहिये। बाकी सेचनादि सब क्रिया क्षतनेत्रके समान करनी चाहिये ॥ १८ ॥

कानके सद्योव्रणका यत्न।

कर्णे स्थानाच्च्युते स्यूते स्रोतस्तैलेन पूरयेत्१९

यदि कान अपने स्थानसे टूट गया हो तो उसको उसी समय सीकर कानके स्रोतको तैलसे पूर्ण करदेना चाहिये ॥ १९ ॥

कृकाटिकाका यत्न।

कृकाटिकायां छिन्नायां निर्गच्छत्यपि मारुते।
समं निवेश्य बध्नीयात् स्यूत्वा शीघ्रं निरन्तरम्

कृकाटिका यदि छेदन होगयी हो उसमेंसे यदि पवन भी निकलती हो तो उसको शीघ्र यथास्थान बिठाकर सूईसे सी देवे और विधिपूर्वक पट्टी बांध देवे२०

आजेन सर्पिषा चात्र परिषेकः प्रशस्यते।
उत्तानोऽन्नानि भुञ्जीत शयीत च सुयंत्रितः२१

यहांपर बकरीके घृतका परिषेचन करना चाहिये। तथा इस रोगीको सीधे लेटेहुए ही पेया आदि भोजन कराना चाहिये और यथार्थ पट्टी बांधकर सीधे ही लिटाये रखना चाहिये ॥ २१ ॥

हस्तआदि अंगोंके सद्योव्रणादिकी चिकित्सा।

घातं शाखासु तिर्यक्स्थं गात्रे सम्यङ्निवेशिते
स्यूत्वा वेल्लितबन्धेन बध्नीयाद् घनवाससा२२

यदि किसी हाथ आदि शाखामें घातहुआ हो तो उसको तिरछा लेटाकर अङ्गको यथास्थान ठीक करके सूईसे सी देवे और गाढ़े वस्त्रकी पट्टीसे लपेट कर वेल्लितबन्धनसे बांध देवे ॥ २२ ॥

चर्मणा गोष्फणाबन्धः कार्यश्चासङ्क्ते व्रणे २३

यदि अंसस्थानमें सद्योव्रण हुआ हो तो चर्म आदिसे गोफणीबंधन बांधना चाहिये ॥ २३ ॥

अण्डकोशके व्रणकी चिकित्सा।

पादौ विलम्बिमुष्कस्य प्रोक्ष्य नेत्रे च वारिणा।
प्रवेश्य वृषणौ सीव्येत् सेवन्या तुन्नसंज्ञया २४
कार्यश्च गोष्फणाबन्धः कट्यामावेश्य पट्टकम्
स्नेहसेकं न कुर्वीत तत्र क्लिद्यति हि व्रणः २५

यदि अण्डकोश लटकपड़ा हो तो पांव और नेत्रोंको जलसे छीटें देकर अण्डकोषोंको यथास्थान प्रवेश करके तुन्न सेवनीसे सी देवे। तदनन्तर कमरमें पट्टी बान्धकर अण्डकोषोंके ऊपर गोफणीबंधन बांध देवे।

यह गोफणी बन्धन लंगोटके समान बांधकर कमरकी पट्टीमें बांधदेना चाहिये । इस व्रणके ऊपर स्नेह सेचनादि नहीं करना चाहिये । उससे इस व्रणमें क्लेद उत्पन्न हो सकता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

कालानुसार्यगुर्वेलाजातीचन्दनपर्पटैः ।
शिलादार्व्यमृतातुत्थैः सिद्धं तैलं च रोपणम् २६

तगर, अगर, इलायची, चमेली, चन्दन, पर्पट, मनसिल, दारुहल्दी, गिलोय और नीलाथोथा इनसे सिद्ध कियाहुआ तैल वृषणोंके व्रणको रोपण करता है॥२६॥

पतिताङ्गकी चिकित्सा ।

छिन्नां निःशेषतः शाखां दग्ध्वा तैलेन युक्तितः
बध्नीयात् कोशबन्धेन ततो व्रणवदाचरेत् २७॥

यदि अंगुली, हाथ आदि शाखा निःशेषरूपसे कटगयी हो तो शेष रहे स्थानके सद्योव्रणको युक्तिपूर्वक तैलसे दग्ध करके कोषबन्धनसे बांध देवे। तदनन्तर व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ २७ ॥

शल्यकी चिकित्सा ।

कार्या शल्याहृते विद्धे भङ्गाद्विदलिते क्रिया ।
शिरसोपहृते शल्ये वालवर्तिं प्रवेशयेत्॥ २८ ॥
मस्तुलुङ्गस्रुते क्रुद्धो हन्यादेनं चलोऽन्यथा ।
व्रणे रोहति चैकैकं शनैरपनयेत्कचम् ॥२९॥
मस्तुलुङ्गस्रुतौ खादेन्मस्तिष्कानन्यजीवजान् ।
शल्ये हृतेऽङ्गादन्यस्मात्स्नेहवर्तिं निधापयेत्॥३०

विद्धमेंसे शल्य निकालते समय शल्यभङ्ग होजानेसे विदलितवाली क्रिया करनी चाहिये।

यदि शिरमें तीरादि शल्य हो तो उस शल्यको निकालकर व्रणमें छोटीसी बत्ती प्रवेश करे. क्योंकि शल्यमार्गसे यदि मस्तुलुंग निकलजाय तो कुपितहुआ वायु मनुष्यको मार डालता है। जब शिरका व्रण भरताजाय तो एक एक बालके समान बत्तीको धीरे २ कम करता जाय। यदि मनुष्यके मस्तकमेसे मस्तुलुंग (खोपडीके अन्दरकी मज्जा) निकल गयी हो तो इस मनुष्यको किसी अन्य जीवके मस्तिष्कका मस्तुलुंग खिलावे।

यदि शरीरके किसी और अंगमें तीर आदि शल्य निकालनेके अनन्तर उस स्थानमें स्नेहवर्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ २८--३० ॥

अवगाढव्रणकी चिकित्सा ।

दूरावगाढाः सूक्ष्मास्या ये व्रणाः स्रुतशोणिताः।
सेचयेच्चक्रतैलेन सूक्ष्मनेत्रार्पितेन तान् ॥ ३१ ॥

जो व्रण अवगाढ हों, सूक्ष्ममुखवाले हों और उनमेंसे रक्त निकल चुका हो ऐसे व्रणोंको सद्यः निकलेहुए कोल्हूके तेलसे सूक्ष्ममुखवाली पिचकारी द्वारा सेचन करे ॥ ३१ ॥

कोष्ठ भिन्नके लक्षण।

भिन्ने कोष्ठेऽसृजा पूर्णे मूर्छाहृत्पार्श्ववेदनाः ।
ज्वरो दाहस्तृडाध्मानं भक्तस्यानभिनन्दनम् ३२
सङ्गो विण्मूत्रमरुतां श्वासः स्वेदोऽक्षिरक्तता ।
लोहगन्धित्वमास्यस्य स्याद् गात्रे च विगन्धता

यदि कोष्ठ भिन्न हो गया हो और कोष्ठ रक्तसे पूर्ण हो तो मनुष्यको मूर्छा, हृदय और पार्श्वमें वेदना, ज्वर, दाह, प्यास, आध्मान, अरुचि, मल, मूत्र और वायुका रुकना, श्वास, नेत्रोंमे रक्तता, मुखसे रक्तकी गन्धका आना और शरीरमें भी रक्तकी गन्ध आना ये लक्षण होते है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

आमाशयगत रुधिरके लक्षण ।

आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि ।
आध्मानेनातिमात्रेण शूलेन च विशस्यते॥३४

यदि आमाशयमें रुधिर स्थित हो तो रुधिरकी छर्दी होती है। तथा अत्यन्त आध्मान और अधिक शूलसे पीड़ित होकर मनुष्यकी मृत्यु होजाती है ॥ ३४ ॥

पक्काशयगत रुधिरके लक्षण।

पक्काशयस्थे रुधिरे सशूलं गौरवं भवेत् ।
नाभेरधस्ताच्छीतत्वं खेभ्यो रक्तस्य चागमः३५

यदि पक्काशयमें रुधिर स्थित हो तो शूल, भारीपन, नाभिके अधोभागमे शीतता और छिद्रोंसे रक्तका निकलना ये लक्षण होते है ॥ ३५ ॥

सिराओंद्वारा आमाशयगत रक्तके लक्षण ।

अभिन्नोऽप्याशयः सूक्ष्मैः स्रोतोभिरभिपूर्यते ।
असृजा स्यन्दमानेन पार्श्वे मूत्रेण बस्तिवत् ३६

कभी२आशयके भेदन न होनेपर भी स्यन्दमान सूक्ष्म स्रोतों द्वारा आशय रक्तसे भर जाता है. जैसे–पार्श्वके सूक्ष्म स्रोतोंद्वारा मूत्रसे मूत्राशय भर जाता है॥३६॥

तत्रान्तर्लोहितं शीतपादोच्छ्वासकराननम्।
रक्ताक्षं पाण्डुवदनमानद्धं च विवर्जयेत्॥३७॥

ऐसी अवस्थामें जिसके भीतर रक्त भरचुका हो और हाथ, पांव, श्वास और मुख शीतल पड़ गये हों, तथा नेत्र लाल हों, मुखका वर्ण पीला पड़गया हो ऐसे रक्तसे आनद्ध पुरुषको असाध्य समझकर त्याग देना चाहिये॥३७॥

आमाशयादि स्थित रक्तकी चिकित्सा।

आमाशयस्थे वमनं हितं पक्वाशयाश्रये।
विरेचनं निरूहं च निःस्नेहोष्णैर्विशोधनैः॥३८॥

यदि रक्त आमाशयमें स्थित हो तो वमन करादेना चाहिये। यदि पक्वाशयमें स्थित हो तो विरेचन कराना चाहिये। तथा स्नेहरहित उष्ण शोधनद्रव्योंके क्वाथसे निरूहणवस्ति करादेनी चाहिये॥३८॥

यवकोलकुलत्थानां रसैः स्नेहविवर्जितैः।
भुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैन्धवसंयुताम्॥३९॥

इस प्रकार कोष्ठका रक्त निकालनेके अनन्तर जौ, उन्नाभ और कुलथीके रसका घृतरहित भोजन कराना चाहिये। अथवा इन्हीं द्रव्योंकी बनाईहुई यवागू या पेया सेन्धानमक मिलाकर पिलानी चाहिये॥३९॥

रक्तके अधिक निकलजानेपर यत्न।

अतिनिःस्रुतरक्तस्तु भिन्नकोष्ठः पिबेदसृक्॥४०॥

यदि कोष्ठ भेदन होकर अधिकरक्त निकल गया हो तो इस रोगीको अन्य जीवोंका ताजा रक्त पिलाना चाहिये॥४०॥

दोप्रकारका कोष्ठभेद।

छिन्नभिन्नांत्रभेदेन कोष्ठभेदो द्विधा स्मृतः।
मूर्छादयोऽल्पाः प्रथमे द्वितीये त्वतिबाधकाः।
छिन्नान्त्रः संशयी देही भिन्नांत्रो नैव जीवति॥

कोष्ठ भेद दो प्रकारका होता है–एक छिन्नान्त्र और दूसरा भिन्नान्त्र छिन्नांत्रमें मूर्च्छा आदि उपद्रव अल्प होते हैं और भिन्नान्त्रमें अत्यन्त अधिक होते हैं। छिन्नान्त्रवाला रोगी अच्छा हो भी सकता है किन्तु भिन्नान्त्रवाला मनुष्य जीवित नहीं रह सकता॥४१॥

भिन्नान्त्रकी चिकित्सा।

यथास्वं मार्गमापन्ना यस्य विण्मूत्रमारुताः।
व्युपद्रवः स भिन्नेऽपि कोष्ठे जीवत्यसंशयम्॥४२॥

यदि भिन्नान्त्र होनेपर भी विष्ठा, मूत्र और वायु अपने २ मार्गसे यथार्थ गमन करे और मूर्च्छा आदि कोई उपद्रव न हो तो भिन्नान्त्रवाला मनुष्य भी अवश्य जीता रहसकता है॥४२॥

उदरसे बाहर निकली हुई आंत्रका उपाय।

अभिन्नमन्त्रं निष्क्रान्तं प्रवेश्यं न त्वतोऽन्यथा।
उत्पिङ्गिलशिरोग्रस्तं तदप्येके वदन्ति तु॥४३॥

यदि अंत्र भिन्न न हुई हो और बाहर निकल आवे तो यथास्थान प्रवेश करदेना चाहिये। परन्तु यदि अन्त्र भिन्न होगयी हो तो अन्दर प्रवेश नहीं करनी चाहिये। कोई कहते हैं कि, भिन्न अन्त्रको भी मकोड़ेके शिरसे पकड़ाकर अन्त्रके दोनों शिरोंको जोड़कर यथास्थान प्रवेश करदेना चाहिये॥४३॥

प्रक्षाल्य पयसा दिग्धं तृणशोणितपांसुभिः।
प्रवेशयेत्कृत्तनखो घृतेनाक्तं शनैः शनैः॥४४॥

तृण, रक्त और गर्दे आदिसे युक्त निकली हुई अंत्रको दूधसे धोकर घृतसे चिकना करके कटेहुए नखोंवाले हाथोंसे शनैः शनैः अन्दर प्रवेश करे॥४४

क्षीरेणार्द्रीकृतं शुष्कं भूरिसर्पिःपरिप्लुतम्।
अङ्गुल्या प्रमृशेत्कण्ठं जलेनोद्वेजयेदपि।
तथान्त्राणि विशन्त्यन्तस्तत्कालं–
–पीडयन्ति च॥४५॥

यदि अंत्र शुष्क हो तो दूधसे गीली करके बहुतसे घीके साथ चिकनी करके अंतड़ीका प्रवेश करदेवे। फिर गलको अंगुलीसे मर्दन करे और जलके गरारे करावें। ऐसा करनेसे अंतड़ियें अपने यथास्थानमें प्रवेश होजाती है और तत्काल अपनी यथार्थ क्रिया करने लगजाती है॥४५॥

व्रणसौक्ष्म्याद्बहुत्वाद्वा कोष्ठमन्त्रमनाविशत्।
तत्प्रमाणेन जठरं पाटयित्वा प्रवेशयेत्॥४६॥

यथास्थानं स्थिते सम्यगन्त्रे सीव्येदनुव्रणम् ।
स्थानादपेतमादत्ते जीवितं कुपितं च तत्॥४७॥
वेष्टयित्वाऽनु पट्टेन घृतेन परिषेचयेत् ।
पाययेत्तं ततः कोष्णं चित्रातैलयुतं पयः॥४८॥
मृदुक्रियार्थं शकृतो वायोश्चाधः प्रवृत्तये ।
अनुवर्तेत वर्षं च यथोक्तां व्रणयन्त्रणाम्॥४९॥

यदि व्रणके छोटे होनेसे अंतड़ीके बहुत बड़ी होनेसे कोष्ठमें अंतड़ीका प्रवेश न होसके तो प्रमाणानुसार उदरको पाटन करके अंतड़ीको भीतर प्रवेश कर देवे । जब अंतड़ी यथार्थरूपसे अपने ठीकस्थानमें स्थित होजाय तो उदरके व्रणको सी देना चाहिये । क्योंकि जब अंतड़ी अपने यथार्थस्थानमें स्थित न हो तो वायुसे प्रकोपको प्राप्त हो मनुष्यके जीवनको नष्ट करदेती है । इस कारण यथास्थान ठीक स्थित होजानेपर व्रणको रेशमके सूत्रसे सींकर वस्त्रकी पट्टीसे बान्धकर घृतसे सेचन करे, तदनन्तर इसको दन्ती तैलयुक्त दूध पिलावे जिससे इसका विना कष्टसे मल यथार्थरूपसे सरण हो जावे और वायु यथार्थरूपसे प्रवृत्त होती रहे । इस मनुष्यको एक वर्ष पर्यन्त व्रणरोगीके समान हित आहार विहारके साथ सावधानीसे रक्खे ॥ ४६--४९ ॥

मेदवर्तिके उदरसे निकलजानेपर यत्न ।

उदरान्मेदसो वर्तिं निर्गतां भस्मना मृदा॥५०॥
अवकीर्य कषायैर्वा श्लक्ष्णैर्मूलैस्ततः समम् ।
दृढं बद्धा च सूत्रेण वर्धयेत्कुशलो भिषक्॥५१॥
तीक्ष्णेनाग्निप्रतप्तेन शस्त्रेण सकृदेव तु ।
स्यादन्यथा रुगाटोपो मृत्युर्वा छिद्यमानया॥५२
सक्षौद्रे च व्रणे बद्धे सुजीर्णेऽन्ने घृतं पिबेत् ।
क्षीरं वा शर्कराचित्रालाक्षागोक्षुरकैः शृतम्॥५३॥
रुग्दाहजित्सयष्ट्याह्वैः परं पूर्वोदितो विधिः ।
मेदोग्रन्थ्युदितं तत्र तैलमभ्यञ्जने हितम्॥५४॥

यदि उदरसे क्षत होनेके कारण मेदवाली वर्ती बाहर निकल आवे तो उसको बहुत बारीक भस्म या श्लक्ष्ण मृत्तिका, या कषायद्रव्योंकी जड़ोंके सूक्ष्म चूर्णको उस स्थानमें लगाकर सम करे तथा सीधा सूत्रसे दृढ बांध कर अग्निसे गरम शस्त्र द्वारा काट देवे. अन्यथा उस वर्तिमें छेदन हो जानेसे पीड़ा, आटोप अथवा मृत्यु भी होसकती है । फिर उस व्रणको मधु लगाकर बांध दे. जब क्षुधा लगे तब घृत पीवे । अथवा मिसरी, दन्ती, लाख, गोखरू और मुलहठीसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीवे, ऐसा करनेसे पीड़ा और दाहकी शान्ति हो जाती है । इसके अनन्तर उपरोक्त अन्त्रव्रणवाली विधिका सेवन करे और इस व्रणपर मेदजनित ग्रंथिकी चिकित्सामें कहेहुए तेलका अभ्यंग करे ॥ ५०--५४ ॥

तालीसादितैल ।

तालीसं पद्मकं मांसीहरेण्वगुरुचन्दनम् ।
हरिद्रे पद्मबीजानि सोशीरं मधुकं च तैः ।
पक्वं सद्योव्रणेषूक्तं तैलं रोपणमुत्तमम् ॥ ५५॥

तालीसपत्र, पद्मकाष्ठ, जटामांसी, हरेणु, अगर, चंदन, हल्दी, दारुहल्दी, कमलगट्टे, खस और मुलहठी इनसे सिद्ध कियाहुआ तेल सद्योव्रणोंको रोपण करनेमें परमोत्तम है ॥ ५५ ॥

गूढाभिघातकी चिकित्सा ।

गूढप्रहाराभिहते पतिते विषमोच्चकैः ।
कार्यं वातास्रजित्तृप्तिमर्दनाभ्यञ्जनादिकम्॥५६

गूढ प्रहारके लगनेपर जिसमें व्रण आदि न हुए हों या विषम या उच्चस्थानसे गिरनेपर तर्पण, मर्दन और अभ्यंगादि वातरक्तको जीतनेवाली क्रियायें करनी चाहिये ॥ ५६ ॥

विश्लिष्ट या मथितकी चिकित्सा ।

विश्लिष्टदेहं मथितं क्षीणं मर्महताहतम् ।
वासयेत्तैलपूर्णायां द्रोण्यां मांसरसाशिनम्॥५७॥

जिस मनुष्यकी देह विश्लिष्ट हो गयी हो या मथित हो या क्षीण मनुष्य हो या मर्मस्थानसे अभिहत हो; उसको तेलसे भरीहुई द्रोणीमें लिटावे और मांसरस या तत्समान गुणवाले घृतादि सेवन करावे ५७

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृतशिवदीपिका - भाषाव्याख्यायां सद्योव्रणप्रतिषेधो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।
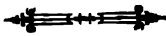
अथाऽतो भङ्गप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम भंगकी चिकित्सावाले भंगप्रतिषेधनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥

अस्थिभंगके दो भेद ।

पातघातादिभिर्द्वेधा भङ्गोऽस्थ्नां सन्ध्यसंधितः॥१

गिरनेसे अथवा चोट आदि लगनेसे अस्थियोंका दो प्रकारसे भंग (टूटना) होता है । एक संधिस्थान (जोड़) परसे टूटना और दूसरा असन्धि (जिस स्थान पर जोड़ न हो) में टूटना ॥ १ ॥

अस्थिभङ्गके लक्षण ।

प्रसारणाकुञ्चनयोरशक्तिः सन्धिमुक्तता ।
इतरस्मिन् भृशं शोफः सर्वावस्थास्वतिव्यथा ।
अशक्तिश्चेष्टितेऽल्पेऽपि पीड्यमाने सशब्दता॥२

यदि संधिपरसे अस्थिभंग हो तो उस स्थलमें प्रसारण (फैलाने) और आकुंचन (सिकोड़ने) की शक्ति नहीं रहती तथा सन्धि मुक्त हो जाती है, अर्थात् जोड़को खुल जाना प्रतीत होता है ।

दूसरे संधिभंगमें अर्थात् यदि विना जोड़के स्थान-पर चोट आदि लगनेसे हड्डी टूट जाय तो सब अव-स्थाओंमें अत्यन्त पीड़ा होती है । थोड़ीसी हिलाने आदिकी चेष्टा करनेमे अशक्ति प्रतीत होती है और पीड़न करनेसे शब्द होता है ॥ २ ॥

समासादिति भङ्गस्य लक्षणं बहुधा तु तत् ।
भिद्यते भङ्गभेदेन तस्य सर्वस्य साधनम् ।
यथा स्यादुपयोगाय तथा तदुपदेक्ष्यते ॥ ३ ॥

यह सक्षेपसे अस्थिभंगका लक्षण कथन करदिया है । भिन्न २ प्रकारके अस्थिभंग होनेसे इसके कई भेद होजाते है । इस सर्वप्रकारके अस्थिभंगकी चिकित्सासे जिस प्रकार लाभ हो वैसे उपदेश करेंगे ॥ ३ ॥

दुःसाध्य अस्थिभग्न ।

प्राज्याणुदारि यच्चास्थि स्पर्शे शब्दं करोति--यत् ॥ ४ ॥
यत्रास्थिलेशः प्रविशेन्मध्यमस्थ्नो विदारितः ।
भग्नं यच्चाभिघातेन किंचिदेवावशेषितम् ॥ ५॥
उत्क्षिप्यमानं क्षतवद्यच्च मज्जानि मज्जति ।
तद्दुःसाध्यं कृशाशक्तवातलाल्पाशिनामपि॥६

जिस अस्थिमें प्रभूतसंख्यामें सूक्ष्म दारण हों, जो अस्थि स्पर्श करनेसे शब्द करती हो, या जहां अस्थिका कुछ भाग टूट कर अस्थिके अन्दर ही प्रवेश कर जाय जो अस्थि अभिघात होनेसे टूट कर थोड़ी ही शेष बचे और अधिकभाग भग्न हो जाय अथवा जो अस्थि क्षतकी भांति ऊपरको उठ आय अथवा जो चोट लगनेपर मज्जामें धँस जाय ऐसे सब अस्थिभंग दुस्साध्य होते है । तथा कृश, अशक्त, वातप्रकृति और अल्प भोजन करनेवाले मनुष्योंके अस्थिभंग भी कष्टसाध्य होते हैं ॥ ४--६ ॥

असाध्य अस्थिभंगके लक्षण ।

भिन्नं कपालं यत् कट्यां संधिमुक्तं च्युतं च यत् जघनं प्रति पिष्टं च भग्नं यत्तद्विवर्जयेत् ॥ ७ ॥

कटिप्रदेशमें यदि अस्थिकपाल टूट जाय, अथवा जिस स्थानपर भग्न होनेसे संधिमुक्त (जोड़का खुलना) होजाय अथवा सधिसे अस्थिभाग च्युत हो जाय अथवा जघन (कटिप्रदेशसे नीचेके भाग) प्रदेशकी हड्डी पिष्ट होजाय या टूट जाय तो ऐसे रोगीको वैद्य त्याग देवे । अर्थात् इन सब प्रकारके अस्थिभंगवाले रोगी असाध्य होते हैं ॥ ७ ॥

असंश्लिष्टकपालं च ललाटं चूर्णितं तथा ।
यच्च भग्नं भवेच्छङ्खशिरःपृष्ठस्तनान्तरे ॥ ८॥

यदि मस्तकका कपाल भिन्न होजावे अथवा चूर्णित (पिष्ट) होजावे अथवा शंख, शिर, पीठ या स्तनोंके मध्यकी हड्डियोंमेंसे कोई टूट जावे तो वैद्य ऐसे भंगोंको असाध्य समझ कर त्याग देवें ॥ ८ ॥

सम्यग्यमितमप्यस्थि दुर्न्यासाद्दुर्निबन्धनात् ।
संक्षोभादपि यद्गच्छेद्विक्रियां तद्विवर्जयेत् ।
आदितो यच्च दुर्जातमस्थि संधिरथापि वा॥९॥

तथा टूट कर अंदरको गयीहुई अस्थि अच्छी प्रकार निकल आनेपर भी ठीक स्थापन न होनेसे,

ठीक बन्धन न होनेसे अथवा संक्षोभ आदि कारणोंसे ठीक क्रियाको प्राप्त न हो सके तो उसको भी असाध्य जान कर त्याग दे। अथवा जो संधि या अस्थि जन्मसे ही विकृत उत्पन्न हुई हो वह भी असाध्य जाननी चाहिये ॥ ९ ॥

तरुणास्थीनि भुज्यन्ते भज्यन्ते नलकानि तु ।
कपालानि विभिद्यन्ते स्फुटन्त्यन्यानि भूयसा ॥

जब कर्ण, अक्षि, नासा आदिकोंकी तरुणास्थियें टेढ़ी मेढ़ी होजाती हैं और नलकास्थियें (टांगों, बाहों आदिकी लंबी अस्थियां) टूट जाती हैं। तथा कपालास्थियें (मस्तक जघन आदिकी चपटी अस्थियें) खंडशः भिन्न हो जाती हैं तथा अन्य अस्थियें फूट जाती है वह भी असाध्य होजाती है ॥ १० ॥

अस्थिभग्नकी चिकित्सा।

अथावनतमुन्नम्यमुन्नतं चावपीडयेत् ।
आञ्छेदतिक्षिप्तमधोगतं चोपरि वर्तयेत् ॥११॥

जो अस्थि कुछ दब गयी हो उसको ऊपर उठाये जो कुछ उठगयी हो उसको पीड़न करके बराबर करे। जो अस्थि बाहर निकल आयी हो उसको नीचे कर देवे और जो अन्दर प्रवेश करगयी हो उसको ऊपर लानेका यत्न करना चाहिये ॥ ११ ॥

सन्धिकी अस्थिको यथास्थान करनेकी विधि।

आञ्छनोत्पीडनोन्नामचर्मसंक्षेपबन्धनैः ।
सन्धीन्शरीरगान्सर्वान्चलानप्यचलानपि १२
इत्येतैःस्थापनोपायैःसम्यक् संस्थाप्य निश्चलम्
पट्टैः प्रभूतसर्पिर्भिर्वेष्टयित्वा सुखैस्ततः ॥१३॥
कदम्बोदुम्बराश्वत्थसर्जार्जुनपलाशजैः ।
वंशोद्भवैर्वा पृथुभिस्तनुभिः सुनिवेशितैः॥१४॥
सुश्लक्ष्णैःसुप्रतिस्तम्भैर्वल्कलैः शकलैरपि ।
कुशाद्यैः समं बन्धं पट्टस्योपरि योजयेत्॥१५

आंछन (नीचे बिठाना), पीड़न, उन्नमन (ऊपर उठाना) और चर्मसंक्षेप (त्वचाको इकट्ठा करके दबाना) से तथा अन्य बन्धनादि स्थापन उपायोंसे शरीरकी चल और अचल सब सन्धियोंको अपने स्थानमें यथार्थ निश्चल स्थापना करके सुखपूर्वक प्रभूत घीमेंसे लिप्त कपड़ेकी पट्टियोंसे उस स्थानको यथाविधि लपेट देवे। फिर उस पट्टियोंसे लिपटेहुए स्थानपर कदंब, गूलर, अश्वत्थ, शालवृक्ष, अर्जुन अथवा ढाकके कोमल और अच्छी प्रकार सहारा देनेयोग्य मोटे छिल्केके टुकड़ोंको अथवा इन्हीं गुणोंवाले बांसके पतले टुकड़ोंको कुशासे बान्ध देवे ॥ १२-१५ ॥

यथार्थ सन्धिबंधन।

शिथिलेन हि बन्धेन सन्धेः स्थैर्यं न जायते ।
गाढेनातिरुजादाहपाकश्वयथुसम्भवः ॥ १६ ॥

बांसके टुकड़े आदिके शिथिल बन्धसे संधिमें स्थिरता उत्पन्न नहीं होती। अत्यन्त कस कर बान्ध देनेसे अत्यन्त पीड़ा, दाह, पाक और सूजन उत्पन्न हो जाते हैं। इस कारण बहुत ढीला या बहुत कम कर बन्धन नहीं बांधना चाहिये ॥ १६ ॥

त्र्यहात्र्यहाद्धर्मे सप्ताहान्मोक्षयेद्धिमे ।
साधारणे तु पञ्चाहाद् भङ्गदोषवशेन वा॥१७॥

इस प्रकारसे बांधाहुआ बन्धन गर्मीकी मौसिममें तीन तीन दिनके अनन्तर, शीत कालमें सात सात दिनके अनन्तर और साधारण शरद वसन्तादि ऋतुओंमें पांच २ दिनके बाद खोल कर बांधना चाहिये। अथवा जैसा दोष विशेष हो उसके अनुसार इससे न्यूनाधिक अवधिपर भी बान्ध सकते हैं ॥ १७ ॥

न्यग्रोधादिकषायेण ततः शीतेन सेचयेत् ।
तं पञ्चमूलपक्वेन पयसा तु सवेदनम् ॥ १८ ॥

फिर इसको न्यग्रोधादिगणके द्रव्योंके शीत कषायसे सेचन करता रहे। यदि भग्नमें वेदना हो तो पंचमूल डालकर पकाये हुए दूधसे सेचन करे ॥ १८ ॥

सुखोष्णं वावचार्यं स्याच्चक्रतैलं विजानता ।
विभज्य देशं कालं च वातघ्नौषधसंयुतम् १९॥

अथवा देश कालादि अवस्थाको देखकर बुद्धिमान् वैद्य वातघ्न औषधियोंसे युक्त सुखोष्ण सद्यः निकले हुए तैलको लगावे ॥ १९ ॥

प्रततं सेकलेपांश्च विदध्याद् भृशशीतलान् २०

फिर निरन्तर शीतल लेप और सेचन आदि करता रहे ॥ २० ॥

भग्नास्थिवालेकी चिकित्सा।

गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम्।
प्रातः प्रातः पिबेद्भग्नः शीतलं लाक्षया युतम्॥२१॥

भग्नास्थिवाले मनुष्यको गृष्टि-गौका मधुर औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ शीत दूधको घी और लाख डाल कर प्रातःकाल पीना चाहिये ॥ २१ ॥

व्रणयुक्त अस्थिभग्नकी चिकित्सा।

सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणो मधुघृतोत्तरैः।
कषायैः प्रतिसार्योऽथ शेषो भङ्गोदितः क्रमः॥२२॥

यदि अस्थिभग्न व्रणसहित हो तो मधु, घृत और कषायद्रव्योंके बारीक चूर्णसे व्रणपर प्रतिसारण (व्रणघर्षण) करना चाहिये। शेष विधि भंगमें कही हुई चिकित्साके अनुसार करनी चाहिये ॥ २२ ॥

लम्बानि व्रणमांसानि प्रलिप्य मधुसर्पिषा।
संदधीत व्रणान् वैद्यो बन्धनैश्चोपपादयेत्॥२३॥

यदि व्रणोंका मांस लटक जाय तो वैद्य मधु और घृतसे व्रणोंको लिप्त करके यथास्थान मांसको स्थापन करके ऊपरसे पट्टी बांध देवे॥ २३ ॥

तान्समान्सुस्थिताञ्ज्ञात्वा फलिनीरोध्रकट्फलैः।
समङ्गाधातकीयुक्तैश्चूर्णितैरवचूर्णयेत्॥२४॥
धातकीरोध्रचूर्णैर्वा रोहन्त्याशु तथा व्रणाः।
इति भङ्ग उपक्रान्तः॥२५॥-

फिर उन व्रणोंको सम और सुस्थित देखकर प्रियंगु, लोध्र, कायफल, मंजीठ, धावेके फूल इनका चूर्ण व्रणोंपर बुरकावे. अथवा धातकी और लोध्र दोनोंका चूर्ण बुरकावे। ऐसे करनेसे व्रण शीघ्र रोपण होजाते है।

इस प्रकार भंगकी चिकित्सा करनी चाहिये २४॥ २५

-स्थिरधातोर्ऋतौ हिमे।
मांसलस्याल्पदोषस्य सुसाध्यो दारुणोऽन्यथा॥

शीतल ऋतुमें स्थिरधातुवाले पुष्टमांसवाले और अल्पदोषवाले पुरुषका व्रण सुखसाध्य होता है। इससे विपरीत पुरुषका व्रण कष्टसाध्य होता है ॥ २६ ॥

अवस्थाविशेषसे सन्धिसंधानका समय।

पूर्वमध्यान्तवयसामेकद्वित्रिगुणैः क्रमात्।
मासैः स्थैर्यं भवेत्सन्धेर्यथोक्तं भजतो विधिम्।

सन्धिको यथार्थ बांधकर यथोचितविधिका पालन करनेसे बाल्यावस्थामें सन्धि एक महीनेमें स्थिर हो जाती है, युवावस्थामें दो महीनेमें और वृद्धावस्थामें तीन महीनेमें सन्धि स्थिर होजाती है ॥ २७ ॥

पृष्ठ या कटिभग्नकी चिकित्सा।

कटीजङ्घोरुभग्नानां कपाटशयनं हितम्।
यन्त्रणार्थं तथा कीलाः पञ्च कार्या निबन्धनाः।
जंघोर्वोः पार्श्वयोर्द्वौ द्वौ तल एकश्च कीलकः।
श्रोण्यां वा पृष्ठवंशे वा वक्त्रस्याक्षकयोस्तथा॥२८॥

कटि भग्न होनेपर या जंघा या ऊरु भग्न होनेपर मनुष्यको लकड़ीके तख्तेपर शयन कराना चाहिये और इस पुरुषको यन्त्रण करनेके लिये तख्तेमें पट्टी या कपड़ा बान्धनेको पांच कील लगाने चाहिये। यह पांच कीलक जंघा और ऊरुओंके पास दोनों ओर दो दो कीलक लगाने चाहिये और एक कीलक तल भागमें लगाना चाहिये। अथवा श्रोणी या पृष्ठवंश भंग हुआ हो तो मुखके समीप और पृष्ठवंशके समीप बन्धनके लिये लकड़ीके तख्तेमें कीलक लगाने चाहिये। जिन कीलकोंमें रोगीके हितके अनुसार बन्धन करना चाहिये ॥ २८ ॥

हिलीहुई संधिका यत्न।

विमोक्षे भग्नसन्धीनां विधिमेवं समाचरेत्॥२९॥

यदि चोट लगनेसे संधियें अपने स्थानसे हिलगयी हों तो इसी विधिके अनुसार प्रयोग करना चाहिये २९

संधींश्चिरविमुक्तांस्तु स्निग्धान्स्विन्नान् -मृदूकृतान्।
उक्तैर्विधानैर्बुद्ध्या च यथास्वंस्थानमानयेत्॥३०॥

यदि संधि देरसे अपने स्थानसे विमुक्त हो तो प्रथम संधिस्थानको स्नेहन और स्वेदन करके मृदु बनाना चाहिये। फिर उक्त विधानसे तथा बुद्धिसे कल्पना करके संधिको यथास्थान ले आना चाहिये। तदन्तर उपरोक्त विधिका पालन करना चाहिये ॥३०

दुर्बद्ध काण्डभग्नका पुनर्बन्धन।

असन्धिभग्ने रूढे तु विषमोल्बणसाधिते।
आपोथ्य भङ्गं यमयेत्ततो भग्नवदाचरेत्॥३१॥

यदि संधि रहित काण्ड आदिमें भग्नहुआ हो और उसको विषम या ऊंचा नीचा बांध दियागया हो तो उस बंधको फिर हिलाकर यथार्थ स्थापन करनेके अनन्तर फिर भग्नके समान बंधनादि विधिका प्रयोग करे ॥ ३१ ॥

भग्नं नैति यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् ।
पक्वमांससिरास्नायुसंधिः श्लेषं न गच्छति॥३२॥

वैद्यको चाहिये कि, भग्नका इस प्रकार यत्न करे जिससे भग्नका स्थान पक न जाय. क्योंकि, पक जानेसे मांस, शिरा, स्नायुमें परिपाक होकर संधिका यथार्थ श्लेष नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥

भग्नपुरुषके लिये पथ्य ।

वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहान् भग्नस्य योजयेत्
चतुःप्रयोगान् बल्यांश्च बस्तिकर्म च शीलयेत्

भग्नपुरुषके लिये वातव्याधिमें कहेहुए घृत तैलादिकोंका प्रयोग करना चाहिये । इन वातनाशक तथा बलकारक तैलघृतादि स्नेहोंको पीनेमें, नस्यमें, अभ्यंगमें और अनुवासनमें इन चार प्रयोगोंमें सेवन करे । तथा प्रागुवस्तिमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ३३ ॥

शाल्याज्यरसदुग्धाद्यैः पौष्टिकैरविदाहिभिः ।
मात्रयोपचरेद्भग्नं संधिसंश्लेषकारिभिः ॥
ग्लानिर्न शस्यते तस्य संधिविश्लेषकृद्धि सा३४

भग्नपुरुषको शालीचावल, घृत, रस और पौष्टिक दुग्ध आदि मात्रानुसार सेवन करावे । यह पौष्टिक पदार्थ ऐसे होनेचाहिये जो विदाही पाकके करनेवाले न हों । तथा जिनसे संधि यथार्थ संश्लेष होसके । इस पुरुषको किसी प्रकार ग्लानि नहीं होनी चाहिये । क्योंकि ग्लानि संधिके यथार्थ संश्लेषको नहीं होने देती किन्तु विश्लेषको करदेती है॥ ३४ ॥

त्याज्यवस्तु ।

लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम् ।
व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षं च भोजनम्३५

भग्नपुरुषको लवण, कटुपदार्थ, क्षार, अम्ल, मैथुन, धूप, व्यायाम और रूक्षभोजन यह सेवन नहीं करने चाहिये ॥ ३५ ॥

गन्ध तैल ।

कृष्णांस्तिलान् विरजसो दृढवस्त्रबद्धान्
सप्त क्षपा वहति वारिणि वासयेत ।
संशोषयेदनुदिनं प्रविसार्य चैतान्
क्षीरे तथैव मधुकक्वथिते च तोये ॥ ३६ ॥
पुनरपि पीतपयस्कां-
स्तान् पूर्ववदेव शोषितान् बाढम् ।
विगततुषानरजस्कान्
संचूर्ण्य सुचूर्णितैर्युञ्ज्यात्॥ ३७ ॥
नलदवालकलोहितयष्टिका-
नखमिशिप्लवकुष्ठबलात्रयैः ।
अगरुचन्दनकुङ्कुमसारिवा
सरलसर्जरसामरदारुभिः ॥ ३८ ॥
पद्मकादिगणोपेतैस्तिलपिष्टं ततश्च तत् ।
समस्तगन्धभैषज्यासिद्धदुग्धेन पीडयेत ॥३९॥
शैलेयरास्नांशुमतीकसेरु-
कालानुसारीनतपत्ररोध्रैः ।
सक्षीरयुक्तैः सपयस्कदूर्वै-
स्तैलं पचेत्तन्नलदादिभिश्च ॥ ४० ॥
गन्धतैलमिदमुत्तममस्थि-
स्थैर्यकृज्जयति चाशु विकारान् ।
वातपित्तजनितानतिवीर्यान्
व्यापिनोऽपि विविधैरुपयोगैः ॥४१॥

काले तिलोंको गर्दे आदि रहित स्वच्छ करके दृढ़ वस्त्रमें बांधकर सात रात्रि बहतेहुए जलमें रक्खे और प्रतिदिन निकालकर इनको स्वच्छ वस्त्रपर बिछाकर सुखा दिया करे । इसी प्रकार सात बार दूधमें भिगोकर सुखाता जावे फिर सात बार मुलहठीके काथमें भिगो २ कर सुखावे, तदनन्तर फिर दूधमें भिगोकर सुखावे फिर इनको बहुत अच्छी तरह सुखाकर इनका छिल्का आदि दूर करके स्वच्छ करे । फिर इनको कूटकर चूर्ण बनावे. इस चूर्णमें जटामांसी सुगंधवाला लालचन्दन, मुलहठी, नखद्रव्य, सौंफ, केवटीमोथा, कूठ, बला, अतिबला, नागबला, अगर, चन्दन, केशर, शारिवा, सरलधूप, राल, देव-

दारु और पद्मकादिगणका चूर्ण मिलाकर पीसे. फिर इसमें समस्त सुगन्धित द्रव्य मिलाकर सिद्ध किया-हुआ दूध मिलाकर कोल्हूमे पीडन करके तेल निकाले इस तेलमें बालछड आदि तथा पद्मकादि औषधि-योंका काथ तथा गन्धद्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ दूध और छाडेरीला, रास्ना, शालपर्णी, कसेरू, अगर, तगर, पत्रज और लोध्र इनको दूधमें रगडकर तथा दूर्वाको दूधमें रगडकर मिलाकर तैल सिद्ध करे। यह गन्धतैल अस्थिको स्थिर करनेमें उत्तम है। तथा वात और पित्तजनित अतिबलवान् विकारोंको जो अनेक उपायोंसे भी शान्त न हुए हों उनको जीतता है ॥ ३९--४१ ॥

इति श्री वाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्य पं०शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्या-ख्यायां भग्नप्रतिषेधो नाम सप्तविंशो-ऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथातो भगन्दरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अब हम भगन्दररोगप्रतिषेधनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥

भगन्दरपिटिकाओंके हेतु ।

**हस्त्यश्वपृष्ठगमनकठिनोत्कटकासनैः ।
अर्शोनिदानाभिहितैरपरैश्च निषेवितैः ॥ १ ॥
अनिष्टाद्दष्टपाकेन सद्यो वा साधुगर्हणैः ।
प्रायेण पिटिकापूर्वो योऽङ्गुले द्व्यङ्गुलेऽपि वा ॥ २
पायोर्व्रणोऽन्तर्बाह्यो वा दुष्टासृङ्मांसगो भवेत् ।
बस्तिमूत्राशयाभ्याशगतत्वात्स्पन्दनात्मकः ।
भगन्दरः सः ॥ ३ ॥–**

हाथी घोडे आदिकी पीठपर सवार होकर गमन करनेसे, कठिन और टेढे आसनपर बैठनेसे, अर्शरोगके निदानमें कहेहुए हेतुओंसे, अन्य ऐसे ही अहित कारणोंके सेवनसे तथा पूर्वजन्मके कियेहुए अनिष्टका परिपाक होनेसे, या साधु महात्माओंकी निन्दा आदि करनेसे प्रायः गुदाके दो अंगुल क्षेत्रके भीतर भीतर पिटिका पूर्वक व्रण होजाते हैं। ये व्रण गुदाके अन्दर या बाहर दुष्ट रक्त और दुष्ट मांसमें प्राप्त होते हैं। ये व्रण वस्ति और मूत्राशयके समीप होनेसे हिलने जुलनेवाले स्वभाववाले होते हे इनको भगन्दर कहते हैं ॥ १-३ ॥

भगन्दरके सामान्यलक्षण ।

**–सर्वश्च दारयत्यक्रियावतः ।
भगबस्तिगुदांस्तेषु दीर्यमाणेषु भूरिभिः ।
वातमूत्रशकृच्छुक्रं खैः सूक्ष्मैर्वमति क्रमात् ॥ ४ ॥**

यदि इन भगन्दरपिटिकाओंकी चिकित्सा न की जाय तो यह भग, वस्ति और गुदामें बहुतसे छिद्र करके उन सूक्ष्म छिद्रोंके द्वारा क्रमसे वात, मूत्र, विष्ठा और वीर्यको निकालने लगजाते हैं ॥ ४ ॥

भगन्दरके आठ भेद ।

**दोषैः पृथग्युतैः सर्वैरागन्तुः सोष्टमः स्मृतः ।
अपक्वं पिटिकामाहुः पाकप्राप्तं भगन्दरम् ॥ ५ ॥**

भगन्दर वात, पित्त, कफ, वातपित्त, वातकफ, पित्तकफ, सन्निपात और आगन्तुक इन भेदोंसे आठ प्रकारके होते है।

जबतक पके नहीं तब तक इसको पिटिका कहते है. पकनेपर भगन्दर कहते हैं ॥ ५ ॥

भगन्दरपिटिकाके लक्षण ।

**गूढमूलां ससंरम्भां रुगाढ्यां रूढकोपिनीम् ।
भगन्दरकरीं विद्यात् पिटिकां न त्वतोऽन्यथा ॥ ६**

जो पिटिका गूढमूलवाली हो, संरम्भयुक्त हो, पीडा करके युक्त हो, अच्छी होनेपर फिर प्रकोप करनेवाली हो, ऐसी पिटिकाको भगन्दररोग उत्पन्न करनेवाली जानना चाहिये। इससे विपरीत लक्षणों-वाली पिटिका भगन्दर करनेवाली नहीं होती ॥ ६ ॥

वातजभगन्दर पिटिका ।

**तत्र श्यावारुणा तोदभेदस्फुरणरुक्करी ।
पिटिका मारुतात् ॥ ७ ॥–**

वायुकी भगन्दर पिटिका श्याव और अरुणवर्णकी तथा तोद भेद, स्फुरण और पीडाके करनेवाली होती है ७

पित्तज भगन्दर पिटिका ।

-पित्तादुष्ट्रग्रीवावदुच्छ्रिता ।
रागिणी तनुरूष्माढया ज्वरधूमायनान्विता॥८॥

पित्तकी भगन्दरपिटिकाकी पीड़ा ऊण्टकी गर्दनके समान ऊपरको उठीहुई लालवर्णकी, पतली ऊष्मा करकेयुक्त ज्वरको करती है और इसमेंसे धूआंसा निकलता प्रतीत होता है ॥ ८ ॥

कफज और संसर्गादि भगन्दर पिटिका ।

स्थिरा स्निग्धामहामूलापाण्डुःकण्डूमतीकफात्
श्यावा ताम्रा सदाहोषा घोररुग् वातपित्तजा॥९

कफकी भगन्दरपिटिका स्थिर, चिकनी, महामूलवाली, पाण्डुवर्णकी और खुजलीयुक्त होती है ।

वातपित्तजनित भगन्दरपिटिका श्यामवर्णकी ताम्रवर्णकी दाह और ऊषा करके युक्त तथा घोर पीड़ाके करनेवाली होती है ॥ ९ ॥

पाण्डुराकिञ्चिदाश्यावाकृच्छ्रपाकाकफानिलात्

कफ और वातसे उत्पन्न हुई भगन्दरपिटिका पाण्डुवर्णकी किंचित् श्यामतायुक्त और कष्टसे पकनेवाली होती है ॥

पादांगुष्ठसमा सर्वैर्दोषैर्नानाविधव्यथा ।
शूलारोचकतृड्दाहज्वरच्छर्दिरुपद्रुता ॥ १०॥

त्रिदोषज भगन्दरपिटिका पैरके अंगूठेके समान मोटी, अनेक प्रकारकी व्यथावाली तथा शूल, अरुचि, प्यास, दाह, ज्वर और छर्दि इन उपद्रवोंसे युक्त होती है ॥ १० ॥

भगन्दरकी संप्राप्ति ।

व्रणतां यान्ति ताः पक्काः प्रमादात् ॥ ११॥-

यदि प्रमादवश उन पिटिकाओंकी चिकित्सा न की जाय तो वे पककर व्रणके रूपको धारण कर लेती है ॥ ११ ॥

शतपोनकके लक्षण ।

-तत्र वातजा ॥
दीर्यतेणुमुखैश्छिद्रैः शतपोनकवत् क्रमात् ।
अच्छं स्रवद्भिरास्रावमजस्रं फेनसंयुतम् ॥
शतपोनकसंज्ञोऽयम्॥ १२ ॥-

उनमें वातजनित भगन्दरकी पिटिका छोटे २ मुखवाले छिद्रोंसे शतपोनकके समान विदीर्ण होती है । इनमेंसे निर्मल तथा झागयुक्त स्राव निरन्तर स्रवता रहता है इसको शतपोनक भगन्दर कहतेहैं१२

उष्ट्रग्रीव और परिस्रावी भगन्दरके लक्षण ।

-उष्ट्रग्रीवस्तु पित्तजः ।

पित्तजनित भगंदर उष्ट्रग्रीव कहा जाता है । इसमेंसे पित्तके लक्षणोंवाला स्राव होता है ।

बहुपिच्छापरिस्रावी परिस्रावी कफोद्भवः॥१३॥

कफके भगन्दरमें बहुत पिच्छाके समान स्राव होता है । इसको परिस्रावि भगंदर कहते हैं ॥ १३ ॥

परिक्षेपी भगन्दरके लक्षण ।

वातपित्तात्परिक्षेपी परिक्षिप्य गुदं गतिः ।
जायते परितस्तत्र प्राकारपरिखेव च ॥ १४ ॥

वात और पित्तसे भगंदर गुदाकी गतिको परिक्षिप्तकर गुदाके चारों ओर परिखाका आकारसा बना देता है । इसको परिक्षेपी भगंदर कहते है॥ १४॥

ऋजुभगन्दरके लक्षण ।

ऋजुर्वातकफादज्व्या गुदो गत्या तु दीर्यते१५

वातकफका भगन्दर गुदाको सीधी गतिसे विदीर्ण करता है । इसको ऋजु भगन्दर कहते है ॥ १५ ॥

अर्शोभगन्दरके लक्षण ।

कफपित्ते तु पूर्वोत्थं दुर्नामाश्रित्य कुप्यतः ॥
अर्शोमूले ततः शोफः कण्डूदाहादिमान् भवेत् ।
स शीघ्रं पक्वभिन्नोस्य क्लेदयन्मूलमर्शसः ।
स्रवत्यजस्रं गतिभिरयमर्शोभगन्दरः ।

कफपित्तके भगन्दरमें प्रथम भगन्दर अर्शका आश्रय लेकर अर्शके मूलमें प्रकुपित होता है । तदनन्तर खुजली और दाहयुक्त सूजन उत्पन्न हो जाती है । फिर वह शीघ्र पककर फूट जाती है और अर्शके मूलको क्लेदित करती हुई निरन्तर अपनी गतिसे रक्तका स्राव करती है । इसको अर्शोभगन्दर कहते हैं ॥ १६ ॥

शम्बुकावर्त भगन्दरके लक्षण ।

सर्वजः शम्बुकावर्तः शम्बुकावर्तसंनिभः ।
गतयो दारयन्त्यस्मिन् रुग्वेगैर्दारुणैर्गुदम्१७॥

त्रिदोषज भगन्दर शंखकी नाभिके समान चक्रा-

कार आवर्त्तवाला होता है। इसमें दारुण पीड़ाके वेगोंसे भगन्दरके छेद गुदाको दारुण करते रहते हैं। यह त्रिदोषज भगन्दर शंबुकावर्त्त कहा जाता है॥१७॥

अस्थिलेशोऽभ्यवहृतो मांसगृद्ध्या यदा गुदम्। क्षिणोति तिर्यङ्‌निर्गच्छन्नुन्मार्गं क्षततो गतिः॥ स्यात्ततः पूयदीर्णायां मांसकोथेन तत्र च१९॥ जायन्ते कृमयस्तस्य खादन्तः परितो गुदम्। विदारयन्ति च चिरादुन्मार्गी क्षतजश्च सः २०

मांसाहारी मनुष्य जब छोटेसे अस्थिके टुकड़े समेत मांसको खा जाता है वह अस्थिका टुकड़ा गुदामें तिरछी गतिसे जाता हुआ उन्मार्गी होकर गुदामें क्षत कर देता है तो उस क्षतमेंसे पूय और मांसकोथके साथ मिलकर कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। यह कृमि शीघ्रही गुदाको चारों ओरसे खातेहुए विदीर्ण कर देते है। इस क्षतजनित भगन्दरको उन्मार्गी भगन्दर कहते है॥ १८-२०॥

भगन्दरोंकी पीड़ा विशेष।

तेषु रुग्दाहकण्ड्वादीन् विन्याद् व्रणनिषेधतः

इन सब भगन्दरोमें पीड़ा दाह कण्डू आदि व्रण-प्रतिषेधाध्यायमे कहेहुए क्रमके अनुसार वातादि दोषोंके जानने चाहिये॥ २१॥

भगन्दरोंका कष्टसाध्य और असाध्यावस्था।

षट् कृच्छ्रसाधनास्तेषां निचयक्षतजौ त्यजेत्। प्रवाहिनीं वलीं प्राप्तं सेवनीं वा समाश्रितम् २२

इन आठ प्रकारके भगन्दरोंमें छः प्रकारके कष्ट-साध्य होते है। सन्निपातज और क्षतज भगन्दर असाध्य होते हैं। तथा जो भगन्दर प्रवाहिणी वलीमे प्राप्त होजाय अथवा सेवनीमें प्राप्त होजाय वह भी असाध्य होता है॥ २२॥

भगन्दरकी चिकित्सा।

अथाऽस्य पिटिकामेव तथा यत्नादुपाचरेत्। शुद्ध्यासृक्स्रुतिसेकाद्यैर्यथापाकं न गच्छति२३

जब भगन्दररोगकी पिटिका उत्पन्न हो तो उस पिटिकाको ही वमन विरेचनादि शोधन रक्तस्राव और सेचन आदिसे जीत लेना चाहिये। जिससे पिटिका पककर भगन्दर होना ही न पावे॥ २३॥

अन्तर्मुख और बहिर्मुख भगन्दरकी चिकित्सा।

पाके पुनरुपस्निग्धं स्वेदितं चावगाहतः। यन्त्रयित्वार्शसमिव पश्येत्सम्यग्भगन्दरम्। अवाचीनं पराचीनमन्तर्मुखबहिर्मुखम्॥ २४॥

यदि पिटिका पकजाय तो उस रोगीको स्नेहन और स्वेदन करनेके अनन्तर अवगाहन कराकर रोगीको अर्शरोगीके समान यन्त्रित करके भगन्दरको देखे कि यह भगन्दर नया है अथवा पुराना, अन्तर्मुख है अथवा बहिर्मुख है॥ २४॥

अथान्तर्मुखमेषित्वा सम्यक् शस्त्रेण पाटयेत्। बहिर्मुखं च निःशेषं ततः क्षारेण साधयेत्॥ अग्निनावा भिषक् साधु क्षारेणैवोष्ट्रकन्धरम्२५

यदि भगन्दर अंतर्मुख हो तो एषणी शलाका द्वारा उसके गहरेपनको देखकर शस्त्रसे पाटन कर-देना चाहिये।

यदि बहिर्मुख हो उसको क्षार लगाकर, अथवा अग्निसे निःशेष दग्धकर देना चाहिये। इसी प्रकार योग्य वैद्य उष्ट्रग्रीव भगन्दरको केवल क्षारसे ही दग्ध करे॥ २५॥

शतपोनकादि भगन्दरोंमें चिकित्साक्रम।

नाडीरेकान्तराः कृत्वा पाटयेच्छतपोनकम्। तासु रूढासु शेषाश्च मृत्युर्दीर्णे गुदेऽन्यथा २६

शतपोनक भगन्दरमें प्रथम एक छिद्रवाली नाड़ीको उत्पाटन करके चिकित्सा करे। जब वह ठीक होजाय तो दूसरी नाड़ीकी चिकित्सा करे। इस प्रकार शत-पोनकमे क्रमसे एक एक नाड़ीको चिकित्सा करनी चाहिये। अन्यथा शतपोनककी सब नाड़ियोंको एक कालमे ही उत्पाटन करदेनेसे गुदा विदीर्ण होकर मनुष्यकी मृत्यु होसकती है॥ २६॥

परिक्षेपिणि चाप्येवं नाड्युक्तैः क्षारसूत्रकैः २७

परिक्षेपी भगन्दरमें भी क्षार सूत्रोंसे इसी प्रकार भगन्दरको नाड़ियोंमे कहीहुई चिकित्साको करे॥ २७॥

अर्शोभगन्दरे पूर्वमर्शांसि प्रतिसाधयेत् ।
त्यक्त्वोपचर्यः क्षतजः शल्यं शल्यवतस्ततः॥२८
आहरेच्च तथा दद्यात् कृमिघ्नं लेपभोजनम् ।
पिण्डनाड्यादयः स्वेदाः सुस्निग्धा रुजि पूजिताः

अर्शोभगंदरमें प्रथम अर्शकी चिकित्सा करे। क्षतजभगंदरमें प्रथम उसको असाध्य कहनेके अनन्तर यदि उसमें शल्य हो तो प्रथम शल्यको निकाले। तदनन्तर कृमिनाशक औषधियोंका लेप करे और कृमिनाशक भोजनका सेवन करे। यदि उसमें अधिक पीड़ा हो तो सुस्निग्ध पिण्डस्वेद और नाड़ीस्वेदादि स्वेदनक्रिया करनी चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

भगन्दरोंमें छेदनके भेद।

सर्वत्र च बहुच्छिद्रे छेदानालोच्य योजयेत् ।
गोतीर्थसर्वतोभद्रदललाङ्गललाङ्गलान् ॥ ३० ॥

यदि भगंदर सब ओर बहुतसे छिद्रोंवाला हो तो उसमें गोतीर्थ, सर्वतोभद्र, दललाङ्गल अथवा लाङ्गल नामक चार प्रकारके छेदनोंमेंसे जो छेदन उचित हो उस छेदनको करे ॥ ३० ॥

पार्श्वे गतेन शस्त्रेण छेदो गोतीर्थको मतः।
सर्वतः सर्वतोभद्रः पार्श्वच्छेदोऽर्धलाङ्गलः ॥३१॥
पार्श्वद्वये लाङ्गलकः ॥ ३१ ॥-

इनमें एक किनारेसे शस्त्र प्रवेश कर छेदन करनेको गोतीर्थक कहते हैं। सब ओरसे छेदन करनेको सर्वतोभद्र कहते हैं। पार्श्व भागसे छेदन करनेको अर्द्धलाङ्गल कहते हैं। दो पार्श्वसे छेदन करनेको लांगलक कहते हैं ॥ ३१ ॥

अग्निदग्धकी आज्ञा।

-समस्तांश्चाग्निना दहेत् ।
आस्रावमार्गान्निःशेषान्नैवं विकुरुते पुनः॥३२॥

छेदनके अनन्तर आस्रावके सम्पूर्ण मार्गोंको अग्निसे दग्ध कर देना चाहिये। जिससे यह व्रण फिर विकारको प्राप्त न हो सके ॥ ३२ ॥

अन्य चिकित्सा।

यतेत कोष्ठशुद्धौ च भिषक् तस्यान्तरान्तरा।
लेपो व्रणे बिडालास्थि त्रिफलारसकल्कितम् ॥

वैद्यको चाहिये कि, बीच २ में रोगीके कोष्ठको विरेचनद्वारा शुद्ध करता रहे।

भगन्दरके व्रणपर त्रिफलेके रसमें बिल्लीकी हड्डीको घिसकर लेप करना चाहिये ॥ ३३ ॥

भगंदरनाशक तैल।

ज्योतिष्मतीमलयुलाङ्गलिशेलुपाठा-
कुम्भाग्निसर्जकरवीरवचासुधार्कैः ।
अभ्यञ्जनाय विपचेत भगन्दराणां
तैलं वदन्ति परमं हितमेतदेषाम्॥३४॥

मालकांगुनी, अंजीर, लांगलीकन्द, लिसोढ़ा, पाठा, निशोथ, चित्रक, राल, कनेर, वचा, थोहर और आक इनसे तैल सिद्ध करके भगन्दरपर अभ्यंजनके लिये प्रयोग करे। यह औषध भगन्दरके रोगियोंके लिये परम हितकारी है ॥ ३४ ॥

मधुयष्ट्यादि तैल।

मधुकरोध्रकणात्रुटिरेणुका-
द्विरजनीफलिनीपटुसारिवाः ।
कमलकेसरपद्मकधातकी-
मदनसर्जरसामयरोध्रकाः ॥ ३५ ॥
सबीजपूरच्छदनैरेभिस्तैलं विपाचितम् ।
भगन्दरापचीकुष्ठमधुमेहव्रणापहम् ॥ ३६ ॥

मुलहठी, लोध्र, पीपल, छोटी इलायची, रेणुका, हल्दी, दारुहल्दी प्रियंगु, नमक, शारिवा, कमल, केसर, पद्माख, आमला, मैनफल, राल, कूठ, लोध, बिजौरा नींबू और तेजपत्र इनसे पकायाहुआ तैल भगंदर, अपची, कुष्ठ और मधुमेहसे उत्पन्नहुए व्रणोंको दूर करता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

विडंगादि चटनी।

मधुतैलयुता विडङ्गसार-
त्रिफलामागधिकाकणाश्च लीढाः ।
कृमिकुष्ठभगन्दरप्रमेह-
क्षतनाडीव्रणरोहणा भवन्ति ॥ ३७ ॥

वायविडंगके चावल, त्रिफला और पीपलके कण बारीक पीसकर मधु और तैलमें मिलाकर चाटनेसे कृमि, कुष्ठ, भगन्दर, प्रमेह, क्षत और नाड़ीव्रण दूर होते हैं ॥ ३७ ॥

गुडूच्यादि चटनी।

अमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं
कलिपथ्यामलकानि गुग्गुलुः।
क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं
पिटिकास्थौल्यभगन्दरान् जयेत्॥३८॥

गिलोय, इलायची, वायविडङ्ग, कुटज, बहेडे, हरडे, आमले और गुग्गुल यह सब क्रमसे एक एक भाग अधिक लेकर मधु मिलाकर चाटे। इससे पिटिका, मेदरोग और भगन्दर दूर होते हैं॥ ३८॥

पिप्पल्यादि चटनी।

मागधिकाग्निकलिङ्गविडङ्ग-
बिल्वघृतैः सवरापलषट्कैः।
गुग्गुलुनां सदशेन समेतैः
क्षौद्रयुतैः सकलामयनाशः॥ ३९॥

पीपल, चित्रक, इन्द्रयव, वायविडंग, बिल्व, घृत, हरड, बहेडे, आमले इन सबके समान गूगल मिलावे सबको बारीक कूटकर मधु मिलाकर चाटे तो पिटिका भगन्दरादि सब रोग दूर होते है॥ ३९॥

गुग्गुलआदि चटनी।

गुग्गुलुपञ्चपलं पलिकांशा
मागधिका त्रिफला च पृथक्क् स्यात्।
त्वक्क् त्रुटिकर्षयुतं मधुलीढं
कुष्ठभगन्दरगुल्मगतिघ्नम्॥ ४०॥

गूगल ५ पल, पीपल, हरड, बहेडे और आमले यह एक एक पल, दालचीनी और इलायची एक एक कर्ष इन सबको बारीक पीसकर मधु मिलाकर चाटे तो कुष्ठ भगंदर और गुल्म नष्ट होते हैं॥ ४०॥

शुंठी योग।

शृङ्गवेररजोयुक्तं तदेव च सुभावितम्।
क्वाथेन दशमूलस्य विशेषाद्वातरोगजित्॥४१॥

सोंठके चूर्णको दशमूलके काथमें भावना देकर सेवन करे। यह चूर्ण विशेषकर वातके भगन्दरको और वातरोगको दूर करता है॥ ४१॥

त्रिफलादि योग।

उत्तमाखदिरसारजं रजः
शीलयन्नसनवारिभावितम्।
हन्ति तुल्यमहिषाख्यमाक्षिकं
कुष्ठमेहपिटिकाभगन्दरान्॥ ४२॥

हरड, बहेडे, आमले खैर और रसौत इन सबका चूर्ण विजयसारके काथमें भावना देकर इसमें बराबरकी गूगल मिलाकर शहदमें मिलाकर चाटे तो कुष्ठ, प्रमेह, पिटिका और भगन्दर दूर होते है॥ ४२॥

भगन्दरमें उपदेश।

भगन्दरेष्वेष विशेष उक्तः
शेषाणि तु व्यञ्जनसाधनानि।
व्रणाधिकारात्परिशीलनाच्च
सम्यग्विदित्वौषधिकं विदध्यात्॥४३॥

यह विधि विशेषरूपसे भगंदरके लिये कथन की है। अन्य पथ्य, आहार विहारादि जो व्रणाधिकारमें कथन किये है उसके अनुसार पथ्य, आहार और दोषानुसार औषधादि भगंदररोगमें भी करने चाहिये ४३

अश्वपृष्ठगमनं चलरोधं
मद्यमैथुनमजीर्णमसात्म्यम्।
साहसानि विविधानि च रूढे
वत्सरं परिहरेदधिकं वा॥ ४४॥

भगंदररोगके व्रण निवृत्त होजानेपर भी, घोड़ेकी पीठपर चढ़ना अपानवायु आदिका वेग रोकना, मद्य मैथुन, अजीर्णमें भोजन, असात्म्य भोजन और अनेक प्रकारका साहस एक वर्षतक अथवा इससेभी अधिक समयतक त्याग देना चाहिये॥ ४४॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषा-व्याख्यायां भगन्दरप्रतिषेधो नाम-ष्टविंशोऽध्यायः॥ २८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः।

अथातो ग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदापचीनाडी-विज्ञानं व्याख्यास्यामः॥

अब हम ग्रन्थि, अर्बुद, श्लीपद, अपची और नाड़ीव्रणके विज्ञानकी व्याख्या करते है॥

ग्रंथिके लक्षण।

कफप्रधानाः कुर्वन्ति मेदोमांसास्रगा मलाः।
वृत्तोन्नतं यं श्वयथुं स ग्रन्थिर्ग्रथनात्स्मृतः॥१॥

कफप्रधान दोष, मेद, मांस और रक्तके आश्रित होकर जो गोल और ऊंची सूजनको उत्पन्न करते हैं इस ग्रथनात्मक सूजनको ग्रन्थि कहते हैं॥ १॥

दोषास्रमांसमेदोस्थिसिराव्रणभवा नव॥ २॥

ये ग्रन्थियें वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, सिरा और व्रण इनसे पैदा होनेवाली होनेसे नौ प्रकारकी होती है॥ २॥

वातज ग्रन्थिके लक्षण।

ते तत्र वातादायामतोदभेदान्वितोऽसितः।
स्थानात्स्थानान्तरगतिरकस्माद्धानिवृद्धिमान्।
मृदुर्बस्तिरिवानद्धो विभिन्नोच्छं स्रवत्यसृक्॥३॥

इनमें वातजग्रन्थि आयाम, तोद और भेदनकीसी पीडावाली, काले वर्णकी, एक स्थानसे दूसरे स्थानमें गति करनेवाली, अकस्मात् हानि या वृद्धिको प्राप्त होनेवाली, मृदु, आनद्ध वस्तिकी समान फूली हुई होती है। जब वह फूट जाती है तो उसमेंसे रक्तका स्राव होता है॥ ३॥

पित्तज ग्रन्थिके लक्षण।

पित्तात्सदाहः पीताभो रक्तो वा पच्यते द्रुतम्।
भिन्नोऽस्रमुष्णं स्रवति॥ ४॥—

पित्तकी ग्रन्थि दाहयुक्त पीलेवर्णकी अथवा लाल-वर्णकी होती है। शीघ्र पक जाती है और फूटनेपर उष्ण रक्तका स्राव होता है॥ ४॥

कफज ग्रन्थिके लक्षण।

—श्लेष्मणा नीरुजो घनः।
शीतः सवर्णःकण्डूमान् पक्वःपूयं स्रवेद्घनम्॥५

कफकी ग्रन्थि पीडारहित घन, शीत स्पर्शवाली, त्वचाके समान वर्णवाली और खुजलीयुक्त होती है। जब यह पककर फूट जाय तो इसमेंसे गाढी पीवका स्राव होता है॥ ५॥

रक्तकी ग्रन्थिके लक्षण।

दोषैर्दुष्टेऽसृजि ग्रन्थिर्भवेन्मूर्छत्सु जन्तुषु।
सिरामांसं च संश्रित्य सस्वापः पित्तलक्षणः॥६॥

जब दोषोंसे रक्त दूषित होजाता है तो उससे रक्तकी ग्रन्थि उत्पन्न होती है। उसमें कृमि उत्पन्न होजाते है। जब ये कृमि बढ जाते हैं तो सिरा और मांसमें प्राप्त होकर शून्यतायुक्त सूजनको करते हैं। इस ग्रन्थिके पित्तके समान लक्षण होते हैं॥ ६॥

मांसज ग्रन्थिके लक्षण।

मांसलैर्दूषितं मांसमाहारैर्ग्रन्थिमावहेत्।
स्निग्धं महान्तं कठिनं सिरानद्धं कफाकृतिम्॥७

मांसवर्द्धक आहारोंके करनेसे दूषितहुआ मांस स्निग्ध, बडी, कठिन, सिराओंसे व्याप्त और कफकेसे लक्षणोंवाली ग्रन्थिको उत्पन्न करता है॥ ७॥

मेदज ग्रन्थिके लक्षण।

प्रवृद्धं मेदुरैर्मेदो नीतं मांसेऽथवा त्वचि।
वायुना कुरुते ग्रन्थिं भृशं स्निग्धं मृदुं चलम्॥
श्लेष्मतुल्याकृतिं देहक्षयवृद्धिक्षयोदयम्।
स विभिन्नो घनं मेदस्ताम्रासितसितं स्रवेत्॥८

मेदवर्द्धक अधिक पदार्थोंके खानेसे बढाहुआ मेद वायुद्वारा त्वचा अथवा मांसमें प्राप्त होकर ग्रन्थिको उत्पन्न करता है। यह ग्रंथि अत्यन्त चिकनी, मृदु, चल स्वभाववाली, कफकी ग्रन्थिके समान आकार-वाली, मेदकी वृद्धि और क्षयके साथ २ बढने और घटनेवाली होती है। जब यह फूट जाती है तो इसमेंसे गाढी मेदका स्राव होता है तथा ताम्रवर्ण, नीलवर्ण और श्वेतवर्णका स्राव होताहै॥ ८॥

अस्थिग्रन्थिके लक्षण।

अस्थिभङ्गाभिघाताभ्यामुन्नतावनतं तु यत्।
सोऽस्थिग्रन्थिः॥ ९॥—

अस्थिके भंग होनेसे अथवा अस्थिमें चोट लगनेसे जो ऊंची अथवा नीची ग्रन्थि उत्पन्न होजाती है उसको अस्थिग्रन्थि कहते हैं॥ ९॥

सिराग्रन्थिके लक्षण।

—पदातेस्तु सहसाऽम्भोवगाहनात्।
व्यायामाद्वा प्रतान्तस्य सिराजालं—
—सशोणितम्॥ १०॥
वायुःसम्पीड्य सङ्कोच्य वक्रीकृत्यविशोष्य च।
निःस्फुरं नीरुजं ग्रन्थिं कुरुते स सिराह्वयः ११

जो मनुष्य पैदल चलते २ सहसा जलमें अवगाहन करने लगता है उससे अथवा अधिक व्यायाम करनेसे क्लान्त देहवालेके शरीरमें रक्तयुक्त सिराजालको वायु पीड़ित संकुचित और टेढ़ा करके और शोषण करके ग्रंथिको उत्पन्न करदेता है। यह पीड़ारहित और स्फुरणरहित ग्रंथि सिराग्रंथि कही जाती है ॥ १० ॥ ११ ॥

व्रण ग्रन्थिके लक्षण ।

अरूढे रूढमात्रे वा व्रणे सर्वरसाशिनः ।
सार्द्रे वा बन्धरहिते गात्रेऽश्माभिहतेऽथवा ॥ १२ ॥
वातास्रमस्रुतं दुष्टं संशोष्य ग्रथितं व्रणम् ।
कुर्यात्सदाहः कण्डूमान् व्रणग्रन्थिरयं स्मृतः ॥

सब प्रकारके रसोंके खानेवाले व्रणरोगीके तात्कालिक अच्छे हुए व्रणमें अथवा विना अच्छे हुए व्रणमें अथवा बंधरहित आर्द्रव्रणमें अथवा शरीरमें पत्थर आदिकी चोट लगनेसे बिना स्रावहुए एकत्रित रक्तको वायु शोषण करके व्रणमें ग्रन्थिको उत्पन्न करदेता है। इस ग्रन्थिमें दाह और खुजली होती है। इसको व्रणग्रंथि कहते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

इनकी साध्यासाध्यता ।

साध्या दोषास्रमेदोजा न तु स्थूलखराश्चलाः ।
मर्मकंठोदरस्थाश्च ॥ १४ ॥–

वातादि दोषजनित तथा रक्त और मेदकी ग्रंथियें साध्य होती है। परन्तु यदि ये भी स्थूल, खर और चल हों तथा मर्म कण्ठ और उदरमें स्थित हों तो साध्य नहीं होती अर्थात् कष्टसाध्य या असाध्य हो जाती है ॥ १४ ॥

अर्बुद रसौलीके लक्षण ।

–महत्तु ग्रन्थितोऽर्बुदम् ।
तल्लक्षणं च मेदोऽन्तैःषोढा दोषादिभिस्तु तत् ।
प्रायोमेदःकफाढ्यत्वात्स्थिरत्वाच्च न पच्यते१५

जो बहुत बड़ी ग्रंथिके आकारका शोथ होता है उसको अर्बुद (रसौली) कहते है। वह अर्बुद वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस और मेदजनित होनेसे छः प्रकारका होता है। परन्तु मेद और कफकी अधिकताके कारण स्थिर होनेसे यह परिपाकको प्राप्त नहीं होता ॥ १५ ॥

शोणितार्बुदके लक्षण ।

सिरास्थं शोणितं दोषःसङ्कोच्यान्तःप्रपीड्य च।
पाचयेत तदानद्धं सास्रावं मांसपिण्डितम् ।
मांसाङ्कुरैश्चितं याति वृद्धिं चाशु स्रवेत्ततः ।
अजस्रं दुष्टरुधिरं भूरि तच्छोणितार्बुदम् ॥ १६

जब दोष सिरामें स्थित रक्तको प्राप्त होकर संकुचित और पीड़न करके रक्तयुक्त मांसपिण्डको आनद्ध करके स्राव सहित पाचन करता है तो वह मांसपिण्ड मांसांकुरोंसे संचित होकर वृद्धिको प्राप्त होकर शीघ्र दुष्ट रुधिरका निरन्तर और बहुत स्राव करता है। इसको शोणितार्बुद कहते हैं ॥ १६ ॥

अर्बुदके साध्यासाध्यभेद ।

तेष्वसृङ्मांसजे वर्ज्ये चत्वार्यन्यानि साधयेत् १७

इनमें रक्तजनित और मांसजनित अर्बुद असाध्य होते हैं। तीनों दोषोंके और मेदवाले चार अर्बुद साध्य होते हैं ॥ १७ ॥

श्लीपदका लक्षण ।

प्रस्थिता वंक्षणोर्वादिमधःकायं कफोल्बणाः ।
दोषा मांसासृगाः पादौ कालेनाश्रित्य कुर्वते ।
शनैःशनैर्घनं शोफं श्लीपदं तत्प्रचक्षते ॥ १८ ॥

शरीरके वंक्षण और ऊरु आदि अधोभागमें स्थित हुए कफप्रधान दोष मांस और रक्तमें पहुंचकर कुछ कालमें दोनों पावोंके आश्रित होकर शनैः २ घन सूजनको उत्पन्न करते हैं। इस सूजनको श्लीपद कहते हैं ॥ १८ ॥

वातके श्लीपदके लक्षण ।

परिपोटयुतं कृष्णमनिमित्तरुजं खरम् ।
रूक्षं च वातात् ॥ १९ ॥–

जो श्लीपद परिपोटयुक्त कालेवर्णका अकारण पीड़ाके करनेवाला खर और रूक्ष होता है वह वातका श्लीपद जानना चाहिये ॥ १९ ॥

पित्तके श्लीपदके लक्षण ।

–पित्तात्तु पीतं दाहज्वरान्वितम् ॥ २० ॥

पित्तका श्लीपद पीलेवर्णका दाह और ज्वर करके युक्त होता है ॥ २० ॥

कफके श्लीपदके लक्षण ।

कफाद्गुरु स्निग्धमरुक् चितं मांसाङ्कुरैर्बृहत् ॥ २१

कफका श्लीपद भारी, स्निग्ध, पीड़ारहित, बड़ा और मांसांकुरोंसे युक्त होता है ॥ २१ ॥

असाध्य श्लीपद ।

तत्त्यजेद्वत्सरातीतं सुमहत्सुपरिस्रुति ॥ २२ ॥

जो श्लीपद एक वर्षसे अधिक पुराना हो बहुत बड़ा और स्रावयुक्त हो वह असाध्य होता है ॥ २२ ॥

अन्यस्थानके श्लीपद ।

पाणिनासौष्ठकर्णेषु वदन्त्येके तु पादवत् ।
श्लीपदं जायते तच्च देशेऽनूपे भृशं भृशम् २३

कोई कहते हैं कि, श्लीपदरोग पांवके समान ही हाथ, नासिका, ओष्ठ और कानोंपर भी होजाता है। प्रायः यह श्लीपद अनूपदेशमें विशेष करके होता है २३

गण्डमाला या अपचीके लक्षण ।

मेदस्थाः कण्ठमन्याक्षकक्षावंक्षणगा मलाः ।
सवर्णान् कठिनान् स्निग्धान् वार्ता-
-कामलकाकृतीन् ।
अवगाढान् बहून् गण्डांश्चिरपाकांश्च कुर्वते ।
पच्यन्तेऽल्परुजस्त्वन्ये स्रवन्त्यन्येऽतिकंडुराः।
नश्यन्त्यन्ये भवन्त्यन्ये दीर्घकालानुबन्धिनः।
गण्डमालापची चेयं दूर्वेव क्षयवृद्धिभाक् ॥२४

मेदमें स्थितहुए दोष कण्ठ, मन्या, अक्ष, कक्षा और वंक्षणोंमें प्राप्त होकर त्वचाके वर्णके समान वर्णवाली, कठिन, स्निग्ध, कटेलीके फल अथवा आमलेके फलके समान आकारवाली बहुतसी अवगाढ़ ग्रन्थियोंको उत्पन्न करदेता है । ये ग्रंथियें बहुत देरमें पकती हैं । कोई पकती हैं तो उनमें अल्प पीड़ा होती है । कोई स्रावयुक्त होती है, कोई अत्यन्त खुजलीयुक्त होती है। पहली नष्ट होजाती है. दूसरी उसकी जागह और उत्पन्न होजाती है । ये ग्रंथियें शरीरमें दीर्घकालतक चली जाती हैं । तथा दूर्वाके समान घटती बढ़ती रहती हैं । इसको गण्डमाला और अपची भी कहते हैं ॥ २४ ॥

असाध्य गण्डमाला ।

तां त्यजेत्सज्वरच्छर्दिपार्श्वरुक्कासपीनसाम् २५

जिस गण्डमालामें ज्वर, छर्दि, पार्श्वशूल, खांसी और पीनस हो उसको असाध्य समझकर त्याग देना चाहिये ॥ २५ ॥

नाड़ीव्रणके लक्षण ।

अभेदात्पक्वशोफस्य व्रणे चापथ्यसेविनः ।
अनुप्रविश्य मांसादीन् दूरं पूयोऽभिधावति ।
गतिः सा दूरगमनान्नाडी नाडीव संस्रुतेः ।
नाड्येकानृजुरन्येषां सैवानेकगतिर्गतिः ॥२६

पकीहुई सूजनको भेदन करके पीव न निकाल देनेसे अथवा व्रणमें अपथ्य सेवन करनेसे शरीरमें व्रणकी पीप मांसादिकोंमें प्रवेश करके दूर तककी गति बना देती है । यह पूयकी गति दूरतक गमनवाली होनेसे नाड़ीके समान स्राव करती है । इसको नाड़ी-व्रण कहते हैं ।

कुछ तंत्रकार इस नाड़ीको केवल टेढ़ी गतिवाली एक प्रकारकी ही मानते हैं । किन्तु वह नाड़ीव्रण दोषसंश्रयादि भेदसे अनेक प्रकारकी गतिवाला होता है ॥ २६ ॥

नाडीव्रणके पांच भेद ।

सा दोषैः पृथगेकस्थैः शल्यहेतुश्च पञ्चमी॥२७

वह नाड़ी वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे तथा शल्यके कारण पांच प्रकारकी होती है ॥२७॥

वातकी नाडीव्रणके लक्षण ।

वातात्सरुक्सूक्ष्ममुखी विवर्णा फेनिलोद्वमा ।
स्रवत्यभ्यधिकं रात्रौ ॥ २८ ॥-

वातकी नाड़ी पीड़ायुक्त, सूक्ष्म मुखवाली, विवर्ण और फेनयुक्त स्रावके करनेवाली, तथा रात्रिको अधिक स्रावकरनेवाली होती है ॥ २८ ॥

पित्तके नाड़ीव्रणका रूप ।

-पित्तात्तृड्ज्वरदाहकृत् ।
पीतोष्णपूतिपूयास्रुर्दिवा चातिनिर्षिचति २९

पित्तका नाड़ीव्रण प्यास, ज्वर और दाहके करनेवाला होता है । तथा पीत, उष्ण और दुर्गन्धित पूयका स्राव करनेवाला होता है । यह स्राव दिनमें अधिक होता है ॥ २९ ॥

कफका नाडीव्रण।

घनपिच्छिलसंस्रावा कण्डूला कठिना कफात्।
निशि चाऽभ्यधिकक्लेदा ॥ ३० ॥-

कफके नाड़ीव्रणसे घन और पिच्छिल स्राव होता है। रात्रिको अधिक क्लेद बहता है तथा नाड़ीव्रण खुजलीयुक्त और कठिन होता है ॥ ३० ॥

त्रिदोषज नाड़ीव्रण।

-सर्वैः सर्वाकृतिं त्यजेत् ॥ ३१ ॥

त्रिदोषका नाड़ीव्रण सब दोषोंके आकारवाला होता है यह नाड़ीव्रण असाध्य होनेके कारण त्याज्य है ॥ ३१ ॥

शल्यज नाड़ीव्रण।

अन्तःस्थितं शल्यमनाहृतं तु
करोति नाडीं वहते च साऽस्य।
फेनानुविद्धं तनुमल्पमुष्णं
सास्रं च पूयं सरुजं च नित्यम् ॥ ३२ ॥

जो शल्य शरीरके अन्दर स्थित हो और वह निकाला न गया हो तो वह शल्य नाडीव्रणको करदेता है। उसमेंसे फेनयुक्त, पतला, अल्प, उष्ण, रक्तयुक्त और पीड़ासहित नित्य पूयका स्राव होता रहता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तर-स्थाने आयुर्वेदाचार्यपं० शिवशर्मकृतशिवदीपि-काभाषाव्याख्यायां ग्रन्थ्यादिविज्ञानं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः।
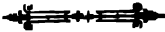
अथातो ग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदापचीनाडीप्रतिषेधं-
-व्याख्यास्यामः ॥

अब हम ग्रंथि, अर्बुद, श्लीपद, अपची और नाड़ी-व्रणकी चिकित्साको कथन करते हैं ॥

ग्रन्थिरोगकी चिकित्सा।

ग्रंथिष्वामेषु कर्तव्या यथास्वं शोफवत् क्रिया १

आम (कची) ग्रंथिमें दोषानुसार शोथ रोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

बृहतीचित्रकव्याघ्रीकणासिद्धेन सर्पिषा।
स्नेहयेच्छुद्धिकामं च तीक्ष्णैः शुद्धस्य लेपनम् २॥

बड़ी कटेली, चित्रक, छोटी कटेली और पीपलसे सिद्ध कियेहुए घृतसे शोधनकी इच्छाकरनेवाले ग्रंथि रोगीको स्नेहन करे तदनंतर वमनादिद्वारा शोधन करे। जब रोगी वमन विरेचनादिसे शुद्ध होजाय तब ग्रंथि-पर तीक्ष्ण द्रव्योंसे लेपन करे ॥ २ ॥

वातादि ग्रंथियोंकी चिकित्सा।

संस्वेद्य बहुशो ग्रन्थिं विमृद्नीयात् पुनः पुनः।
एष वाते विशेषेण क्रमः ॥ ३ ॥-

ग्रंथिको बार २ बहुतसा स्वेदन करके बार २ मर्दन करे। यह क्रम विशेषकर वायुकी ग्रन्थिमें करना चाहिये ॥ ३ ॥

-पित्तास्रजे पुनः।
जलौकसो हिमं सर्वम् ॥ ४ ॥-

पित्तकी और रक्तकी ग्रन्थिमें जोंक लगाकर रक्त निकाल देना चाहिये। तदनन्तर संपूर्ण क्रिया शीतल करनी चाहिये ॥ ४ ॥

-कफजे वातिको विधिः ॥ ५ ॥

कफजनित ग्रंथिमें वायुकी ग्रंथिके समान सब चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५ ॥

ग्रन्थिको शस्त्रसे निकालना।

तथाप्यपक्कं छित्त्वैनं स्थिते रक्तेऽग्निना दहेत्।
साध्वशेषं सशेषो हि पुनराप्यायते ध्रुवम् ॥ ६॥

यदि इन चिकित्साओंसे ग्रंथि विलीन न हो तो उसको छेदन करके निकाल देवे। जिस प्रकार अव-स्थानुसार संपूर्ण ग्रंथि निकले वैसे अच्छी तरह क्रम-पूर्वक ग्रंथिको निकाल देवे। क्योंकि शेष रहीहुई ग्रंथि फिर उसी तरहसे बढ़कर पुष्ट हो सकती है ग्रन्थि निकालनेके अनन्तर यदि रक्तका स्राव बंद न हो तो अग्निसे दाग देकर रक्तके स्रावको रोक देना चाहिये ॥ ७ ॥

मांसव्रणोद्भवौ ग्रन्थी पाटयेदेवमेव च ॥ ७ ॥

मांसमें अथवा व्रणमें उत्पन्न हुई ग्रंथिको भी इसी प्रकार पाटन करके निकाल देना चाहिये ॥ ७ ॥

मेदज ग्रन्थि निकालनेके अनन्तर दग्ध कर्म।

कार्यं मेदोभवेऽप्येतत्तप्तैः फालादिभिश्च तम्।

प्रमृद्यात्तिलदिग्धेन छन्नं द्विगुणवाससा ।
शस्त्रेण पाटयित्वा वा दहेन्मेदसि सूद्धृते ॥८॥

मेदजनित ग्रंथिमें भी यही क्रिया करनी चाहिये। प्रथम मेदजनित ग्रंथिको उत्पाटन करके निकाल देवे फिर इसको मर्दन करके इसपर तिलका कल्क लगाकर और दो गुणा वस्त्र इसके ऊपर रखकर अग्निसे तप्त की हुई थालीसे दग्ध करे अथवा शस्त्रसे ग्रंथिको उत्पाटन कर मेद निकालनेके अनन्तर तप्त थाली आदिसे दग्ध कर देवे ॥ ८ ॥

सिराग्रंथिकी चिकित्सा ।

सिराग्रन्थौ नवे पेयं तैलं साहचरं तथा ।
उपनाहोनिलहरैर्बस्तिकर्म सिराव्यधः ॥ ९ ॥

सिराग्रन्थि यदि नवीन हो तो सहचरसे सिद्ध कियाहुआ तैल पीवे, तथा वातनाशक द्रव्योंसे उपनाह स्वेद करे। तथा वस्तिकर्म और सिरावेधन करना चाहिये ॥ ९ ॥

अर्बुदकी चिकित्सा ।

अर्बुदे ग्रन्थिवत्कुर्याद् यथास्वं सुतरां-
-हितम् ॥ १० ॥

अर्बुदरोगमें दोषानुसार संपूर्ण क्रिया ग्रंथिरोगके समान करनी हितकारी होती है ॥ १० ॥

वातज श्लीपदकी चिकित्सा ।

श्लीपदेऽनिलजे विध्येत् स्निग्धस्विन्नोपनाहिते।
सिरामुपरि गुल्फस्य द्व्यङ्गुले पाययेच्च तम् ।
मासमेरण्डजं तैलं गोमूत्रेण समन्वितम् ।
जीर्णे जीर्णान्नमश्नीयाच्छुण्ठीशृतपयोन्वितम्
त्रैवृतं वा पिबेदेवमशान्तावग्निना दहेत् ।
गुल्फस्याधः सिरामोक्षः ॥ ११ ॥-

वायुके श्लीपदमें स्नेहन, स्वेदन और उपनाहस्वेद करनेके अनंतर गुल्फसे दो अंगुल ऊपर सिराका वेधन करे। तदनंतर उस मनुष्यको एक मास पर्यंत नित्य गोमूत्रमें मिलाकर एरंड तैल पिलावे. जब तैलसे रेचन होकर तैल जीर्ण हो जाय तो सोंठसे सिद्ध कियेहुए दूधके साथ पुराने शालीचावलोंका भात खावे. अथवा निशोथका चूर्ण या क्वाथ पीकर रेचन करावे यदि इन उपायोंसे भी शान्त न हो तो अग्निसे दहन करे और गुल्फके अधोभागकी सिराका रक्त निकाले ११

पित्तके श्लीपदकी चिकित्सा ।

-पैत्ते सर्वं च पित्तजित् ॥ १२॥

पित्तके श्लीपदरोगमें सब क्रियायें पित्तको जीतनेवाली करनी चाहिये ॥ १२ ॥

कफके श्लीपदकी चिकित्सा ।

सिरामङ्गुष्ठके विद्ध्वा कफजे शीलयेद्यवान् ।
सक्षौद्राणि कषायाणि वर्धमानास्तथाभयाः ।
लिम्पेत्सर्षपवार्ताकीमूलाभ्यां धान्ययाथवा१३

कफके श्लीपदरोगमें अंगूठेकी सिराका वेधन करे और यवान्न तथा मधुयुक्त कषायरसवाले द्रव्य सेवन करे और वर्द्धमानपिप्पलीका सेवन करे। सरसों और कटेलीकी जड़का लेप करे अथवा जवासेका लेप करे ॥ १३ ॥

अपची ग्रन्थिमालाकी चिकित्सा ।

ऊर्ध्वाधःशोधनं पेयमपच्यां साधितं घृतम् ।
दन्तीद्रवन्तीत्रिवृताजालिनीदेवदालिभिः ।
शीलयेत्कफमेदोघ्नं धूमगण्डूषनावनम् ।
सिरयाऽपहरेद्रक्तं पिबेन्मूत्रेण तार्क्ष्यजम्॥१४॥

अपचीरोगमें दन्ती, द्रवन्ती, निशोथ, कड़वी तोरी और बन्दालडोडेसे सिद्ध कियाहुआ घृत पिलाकर वमन विरेचन करावे। शुद्धदेह होनेपर कफमेद नाशक धूम, गण्डूष और नस्यका सेवन करे। तथा सिरासे रक्त निकाले और गोमूत्रके साथ रसौतका सेवन करे ॥ १४ ॥

ग्रन्थीनपक्वानालिम्पेन्नाकुलीपटुनागरैः ।
स्विन्नान् लवणपोटल्या कठिनाननुमर्दयेत्१५॥

विनापकी ग्रन्थियोंपर नाकुलीकन्द, सेंधानमक और सोंठका लेप करे। यदि कठिन ग्रन्थियें हों तो सन्धानमककी पोटलीसे स्वेदन करके फिर मर्दन करे ॥ १५ ॥

शमीमूलकशिग्रूणां बीजैः सयवसर्षपैः ।
लेपः पिष्टोऽम्लतक्रेण ग्रन्थिगण्डविलापनः १६

शमी(जड़)के बीज, मूलीके बीज,सोहांजनेके बीज, जौ और सरसों इनको खट्टी छाछमें पीसकर लेप करनेसे ग्रन्थि रोगकी गांठ विलीन होजाती है ॥ १६॥

पाकोन्मुखान् स्रुतास्रस्य पित्तश्लेष्महरैर्जयेत् ।
अपक्कानेव चोद्धृत्य क्षाराग्निभ्यामुपाचरेत् १७॥

पाकोन्मुख ग्रन्थियोंको रक्त निकालकर पित्तकफ-नाशक औषधियोंसे जीतना चाहिये । अथवा विना पकी ग्रन्थियोंको ही निकाल कर ग्रन्थिके स्थानको क्षारसे अथवा अग्निसे दहन करदेना चाहिये॥ १७ ॥

ग्रन्थिमालानाशक तैल ।

काकादनीलाङ्गलिकानहिकोत्तुण्डिकीफलैः ।
जीमूतबीजकर्कोटीविशालाकृतवेधनैः ॥ १८ ॥
पाठान्वितैः पलार्धांशैर्विषकर्षयुतैः पचेत् ।
प्रस्थं करञ्जतैलस्य निर्गुण्डीस्वरसाढके ॥१९॥
अनेन माला गण्डानां चिरजा पूयवाहिनी ।
सिध्यत्यसाध्यकल्पाऽपि पानाभ्यञ्जननावनैः॥

काकादनी (रत्तक), लांगलीकन्द, अहिंका (सींवल), के बीज, करञ्जके फल, बन्दालडोडेके बीज, कड़वीतोरी, इन्द्रायण, कड़वी घीया और पाठा ये प्रत्येक दो २ तोला, बच्छनाग १ तोला इन सबका कल्क कर एक प्रस्थ करंजके तैल और चार सेर संभा-लूके स्वरसमें मिलाकर पकावे इस तेलको सिद्ध होने-पर ग्रन्थिपर लगाने आदिसे पुरानी गंडमाला जिससे पीव वहती हो और असाध्य समझी जाती हो वह गंडमाला भी नष्ट होजाती है । यह तेल गंडमालापर लगानेमें और नस्य देनेमें प्रयोग कियाजाता है कोई इसे अल्पमात्रामें पिलाते भी है॥ १८-२० ॥

लांगली तैल ।

तैलं लाङ्गलिकीकन्दकल्कपादे चतुर्गुणे ।
निर्गुण्डीस्वरसे पक्कं नस्याद्यैरपचीप्रणुत्॥२१॥

लांगलीकन्द एक पल लेकर कल्क बनावे इसमें चार पल तेल और सोलह पल संभालूका रस मिलाकर तैल सिद्धकरे. यह तैल नस्य आदि प्रयोग करनेसे अप-चीको नष्ट कर देता है. यदि यह तेल पीनेमें प्रयोग करना हो तो विषके स्थानमें नागकेशर डालना चाहिये ॥ २१ ॥

चन्दनादि तैल ।

भद्रश्रीदारुमरिचद्विहरिद्रात्रिवृद्घनैः ।
मनःशिलालनलदाविशालाकरवीरकैः ॥ २२ ॥
गोमूत्रपिष्टैः पलिकैर्विषस्यार्धपलेन च ।
ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम् ॥ २३ ॥
प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिद्धमाशु व्यपोहति ।
पानाद्यैः शीलितं कुष्ठं दुष्टनाडीव्रणापचीः॥२४

चन्दन, देवदारु, मिर्च, हलदी, दारूहलदी, निशोथ, नागरमोथा, मनशिल, गोदन्ती हरताल, बालछड़, इन्द्रायण और कनेर ये एक एक पल और नागकेशर आधा पल ब्राह्मीका रस एक सेर आकका दूध एक पल, गोबरका रस एक सेर, दूध एक सेर इनसे एक सेर सरसोंका तेल सिद्ध करे । यह तेल पीनेमें लगानेमें और नस्यमें प्रयोग करनेसे दुष्ट नाड़ी व्रण और अपची दूर होजाते है ॥ २२-२४ ॥

बचादि तैल ।

वचाहरीतकीलाक्षाकटुरोहिणिचन्दनैः ।
तैलं प्रसाधितं पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥२५

बच, हरीतकी, लाख, कटुकी और चन्दन इनसे सिद्ध कियाहुआ तैल पीनेसे अपचीरोग समूल नष्ट होजाता है ॥ २५ ॥

सर्पुंखायोग ।

शरपुङ्खोद्भवं मूलं पिष्टं तन्दुलवारिणा ।
नस्यालेपाच्च दुष्टारुरपचीविषजन्तुजित् ॥२६॥

सरपुंखाकी जड़को तंदुलजलमें पीस कर नस्य लेनेसे लेप करनेसे दुष्टारु (श्लीपद), अपची, विष-विकार और कृमि नष्ट होजाते है॥ २६ ॥

ज्योतिष्मती तैल ।

मूलैरुत्तमकारुण्याः पीलुपर्ण्याः सहाचरात् ।

---

१ सार्धश्लोकः क्षेपकः-

" क्षुण्णानि निंबपत्राणि क्लिन्नैर्भल्लातकैः सह ।
शरावसंपुटे दग्ध्वा सार्धं सिद्धार्थकैः समैः ॥ १ ॥
एतच्छागांबुना पिष्टं गण्डमालाप्रलेपनम् । "

सरोध्राभयष्ट्याह्वशताह्वादीपिचारुभिः।
तैलं क्षीरसमं सिद्धं नस्येऽभ्यंगे च पूजितम् २७

मालकांगनीकी जड़, पीलुपर्णीकी जड़, काले बांसेकी जड़, पठानीलोध, हरड़, मुलहठी, सौंफ, चित्रक और पद्मकाष्ठ इनका कल्क समानभाग दूध मिलाकर सिद्ध कियाहुआ तैल अपचीरोगमे नस्य और अभ्यंगमें प्रयोग करना हितकारी होता है॥ २७॥

अपचीनाशक लेप।

गोव्यजाश्वखुरा दग्धा कटुतैलेन लेपनम्।
ऐङ्गुदेन तु कृष्णाहिर्वायसो वा स्वयं मृतः॥२८

गौ, भेड़, बकरी और घोड़ा इनके सूखेहुए खुरोंको अग्निमें दग्धकर कटुतैलमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा काला सांप या स्वयं मराहुआ काग दग्धकर उसकी स्याही इंगुदीके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे अपचीरोग नष्ट होजाता है॥ २८॥

अन्यचिकित्सा।

इत्यशान्तौ गदस्यान्यपार्श्वे जङ्घासमाश्रितम्।
बस्तेरूर्ध्वमधस्ताद्वा मेदो हृत्वाग्निनादहेत्॥२९

यदि इस प्रकार चिकित्सा करनेपर भी ग्रंथि शमन न हो तो जिस ओर ग्रन्थि हो उसके दूसरे भागकी जंघामें आश्रित वस्तीसे ऊपर अथवा नीचेसे मेदको निकालकर अग्निसे दग्ध करे॥ २९॥

ग्रन्थि और श्लीपदमें सिरावेधनक्रम।

स्थितस्योर्ध्वं पदं मित्त्वा तन्मानेन च पार्ष्णितः
तत ऊर्ध्वं हरेद् ग्रन्थीनित्याह भगवान्निमिः ३०

अथवा पुरुषको पृथ्वीपर खड़ा करके उसके पांवके ऊपरकी शिराका वेधन करे फिर उतना ही एड़ी (पार्ष्णि) के पास वेधन करके तदनन्तर ग्रंथियोंको दग्ध करे ऐसा करनेसे फिर ग्रंथियें उत्पन्न नहीं होतीं तथा श्लीपदरोग नहीं होता ऐसे भगवान् निमि कथन करते हे॥ ३०॥

श्लीपदकी चिकित्सा।

पार्ष्णिं प्रति द्वादश चाङ्गुलानि
मुक्त्वेन्द्रबस्तिं च गदान्यपार्श्वे।
विदार्य मत्स्याण्डनिभानि मध्या-
ज्जालानि कर्षेदिति सुश्रुतोक्तिः॥३१॥

सुश्रुत कहते है कि, पार्ष्णिसे बारह अंगुल छोड़कर और इन्द्रवस्तिको छोड़कर ग्रन्थि या श्लीपदसे दूसरी ओर विदीर्ण करके मत्स्यांडके समान उसमेंसे जालको निकाल देवे तो फिर ग्रंथि और श्लीपदरोग कमी नहीं होता॥ ३१॥

आगुल्फकर्णात्सुमितस्य जन्तो-
स्तस्याष्टभागं खुडकाद्विभज्य।
घ्राणार्जवेऽधः सुरराजबस्ते-
र्भित्त्वाक्षमात्रं त्वपरे वदन्ति॥ ३२॥

कोई कहते है कि, मनुष्यके नासिकासे कान पर्यंत जितने अंगुल हों उतने अंगुल पांवके गुल्फसे लेकर ऊपरको मान करे. फिर उनमेंसे आठ भाग करे तब गुल्फसे ऊपर आठवां भाग छोड़कर इन्द्रवस्तिसे नीचे भेदनकर अक्ष परिमाण जल निकाल देवे तो फिर ग्रन्थि और श्लीपदरोग नहीं होता॥ ३२॥

वातज नाड़ीव्रणकी चिकित्सा।

उपनाह्यानिलान्नाडीं पाटितां साधु लेपयेत्।
प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तैलैः पिष्टैः ससैन्धवैः३३

वायुके नाड़ीव्रणको उपनाहस्वेद करनेके अनन्तर यथार्थ उत्पाटन करे फिर इसपर अपामार्गके बीजोंको तेल और सेंधानमक मिलाकर पीसकर लेप करे॥ ३३॥

पित्तज और कफजनाड़ीव्रणकी चिकित्सा।

पैत्तीं तु तिलमंजिष्ठानागदन्तीशिलाह्वयैः।
श्लैष्मिकीं तिलसौराष्ट्रीनिकुम्भारिष्टसैंधवैः।३४

पित्तके नाड़ीव्रणको उत्पाटन करनेके अनन्तर तिल, मंजीठ, नागदनी और मनशिलाका लेप करे। कफके नाड़ीव्रणको उत्पाटन करनेके अनन्तर तिल, फिटकरी, दन्ती, नीम और सेंधानमकसे लेप करे॥३४

शल्यजनाड़ीव्रणकी चिकित्सा।

शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लेपयेच्छिन्नशोधिताम्॥

शल्यजनित नाड़ीव्रणको शल्य निकालनेके अन-

न्तर छेदन करके शुद्ध करे और उसके ऊपर तिल, मधु और घृतसे लेप करे ॥ ३५ ॥

नाडीव्रणमें क्षारप्रयोग।

अशस्त्रकृत्यामेषिण्या भित्वान्ते सम्यगेषिताम्। क्षारपीतेन सूत्रेण बहुशो दारयेद् गतिम् ॥३६

यदि नाड़ीव्रण शस्त्रसे छेदन करने योग्य न हो तो उसको एषणी शलाकासे अन्ततक देखकर क्षार (तेजाब) में भिगोयेहुए सूत्रसे अन्ततक भेदन कर देवे ॥ ३६ ॥

वर्तिप्रयोग।

व्रणेषु दुष्टसूक्ष्मास्यगंभीरादिषु साधनम्। या वर्त्यो यानितैलानि तन्नाडीष्वपि शस्यते३७

जो व्रण सूक्ष्ममुखवाले दुष्ट और गम्भीर हों उनमें दुष्टव्रणनाशक तैलकी बत्तियोंका प्रवेश करना चाहिये। इसी प्रकार नाड़ीव्रणोंमें भी व्रणनाशक तैलसे भिगोयीहुई वत्तीका प्रवेश करना चाहिये ॥ ३७ ॥

लेप।

पिष्टं चञ्चुफलं लेपान्नाडीव्रणहरं परम् ॥३८॥

चंचु (एरण्ड) के फलको पीसकर लेप करना नाड़ीव्रणको हर लेता है ॥ ३८ ॥

नाड़ीव्रणनाशक बत्ती।

घोण्टाफलत्वग्लवणं सलाक्षं
बूकस्य पत्रं वनितापयश्च।
स्नुगर्कदुग्धान्वित एष कल्को
वर्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम् ॥ ३९॥

बन्दालडोडेका छिलका, सेंधालवण, लाख, एरंडके पत्ते, स्त्रीका दूध, थूहरका दूध और आकका दूध इन सबको मिलाकर बारीक पीसकर बत्ती बनावे. यह बत्ती नाड़ीव्रणमें प्रवेश करनेसे नाड़ीव्रणको शीघ्र नष्ट कर देती है ॥ ३९॥

सामुद्रसौवर्चलसिन्धुजन्म-
सुपक्वघोण्टाफलवेश्मधूमाः।
आम्रातगायत्रिजपल्लवाश्च
कटङ्कटेर्याथ चेतकी च ॥ ४० ॥

कल्केऽभ्यङ्गे चूर्णे
वर्त्यां चैतेषु सेव्यमानेषु।
अगतिरिव नश्यति गति-
श्चपला चपलेषु भूतिरिव ॥ ४१ ॥

सामुद्रनमक, संचरनमक, सैंधवनमक, पकाहुआ बंदालडोडा, घरका धुवां, आम्रातककी गुठली, खैरके पत्र, दारु हल्दी और हरीतकी इन सबको कल्क करके अभ्यंगमें चूर्णमें अथवा बत्तीमें प्रयोग करनेसे नाड़ीव्रणकी गति ऐसे नष्ट होजाती है जैसे लक्ष्मीकी रक्षाके असावधान और चपल रहनेसे धन नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं.शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां ग्रंथ्यर्बुदादिप्रतिषेधो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः।

अथातः क्षुद्ररोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम क्षुद्ररोगोंके विज्ञानको कथन करते हैं ॥

अजगल्लिकाके लक्षण।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसंमिता। पिटिका कफवाताभ्यां बालानामजगल्लिका।

कफ और वायुसे बालकोंके शरीरमें मूंगके समान आकारवाले त्वचाके वर्णवाली स्निग्ध पीड़ारहित और ग्रथित जो पिड़िका होती है उनको अजगल्लिका कहते हैं।

यवप्रख्याके लक्षण।

यवप्रख्या यवप्रख्या ताभ्यां मांसाश्रिता घना१

जो पिड़िका कफ और वातसे यवके आकारकी और मांसके आश्रित तथा घन होती है उसको यवप्रख्या कहते हैं ॥ १ ॥

कच्छापिकाके लक्षण।

अवक्राश्चालजीवृत्तास्तोकपूया घनोन्नताः। ग्रन्थयःपञ्च वा षड्वा कच्छपी कच्छपोन्नता२॥

जो पांच अथवा छः ग्रन्थियें मुख रहित अलजीके

समान गोल किंचित् पीववाली हों घनहों उन्नत हों तथा कच्छपके समान उन्नत हों इनको कच्छपिका कहते हैं ॥ २ ॥

पनसिकाके लक्षण ।

कर्णस्योर्ध्वं समन्ताद्वा पिटिका कठिनोग्ररुक् । शालूकाभा पनसिका ॥ ३ ॥–

कानके ऊपरकी तरफ अथवा कानके सब ओर जो उग्र पीड़ावाली कठिन और शालूकके समान पिटिका होती हैं उनको पनसिका कहते हैं ॥ ३ ॥

पाषाणगर्दभके लक्षण ।

–शोफस्त्वल्परुजः स्थिरः । हनुसन्धिसमुद्भूतस्ताभ्यां पाषाणगर्दभः ॥४॥

जो सूजन अल्प पीड़ावाली स्थिर हनुकी संधिमें उत्पन्न हो इस वात, कफ जनित शोथको पाषाण–गर्दभ कहते हैं ॥ ४ ॥

मुखदूषिकाके लक्षण ।

शाल्मलीकण्टकाकाराःपिटिकाःसरुजो घनाः । मेदोगर्भा मुखे यूनां ताभ्यां च मुखदूषिकाः ५

सेमलके काँटोंके समान आकारवाली पीड़ायुक्त घन मेदसे युक्त जो युवा पुरुषोंके मुखके ऊपर पिटिकायें होती हैं उन कफ वातजनित पिडिकाओंको मुखदूषिका कहते है ॥ ५ ॥

पद्मकण्टकके लक्षण ।

ते पद्मकण्टका ज्ञेया यैः पद्ममिव कण्टकैः । चीयते नीरुजैः श्वेतैः शरीरं कफवातजैः ॥६॥

जो शरीरके ऊपर पीड़ा रहित श्वेतवर्णकी पिड़िकायें कमलके कण्टकोंके समान जटितसी रहती हैं इस कफवातजनित रोगको पद्म कण्टक कहते हैं ६॥

विवृताके लक्षण।

पित्तेन पिटिका वृत्ता पक्वोदुम्बरसंनिभा । महादाहज्वरकरी विवृता विवृतानना ॥ ७ ॥

जो पिटिका पकेहुए गूलरके समान आकारवाली अत्यन्त दाह और ज्वरके करनेवाली गोल तथा बन्द मुखवाली होती है इस पित्तजनित पिटिकाको विवृता कहते है ॥ ७ ॥

मसूरकाके लक्षण ।

गात्रेष्वन्तश्च वक्त्रस्य दाहज्वररुजान्विताः । मसूरमात्रास्तद्वर्णास्तत्संज्ञाः पिटिका घनाः ।

जो पिटिकायें शरीरपर और मुखके अन्तमें मसूरके दानेके समान वर्ण और आकारवाली हों तथा घन हों और दाह, ज्वर, पीड़ाकरके युक्त हों उनको मसूरिका कहते है ।

विस्फोटकके लक्षण ।

ततःकष्टतराः स्फोटा विस्फोटाख्यामहारुजाः ८

मसूरिकासे अधिक कष्टदेनेवाले अतिपीड़ायुक्त स्फोटोंको विस्फोटक कहते है. ये अत्यन्त कष्टके देनेवाले होते हैं ॥ ८ ॥

विद्धाके लक्षण।

या पद्मकर्णिकाकारा पिटिका पिटिकाचिता । सा विद्धा वातपित्ताभ्याम् ॥ ९ ॥–

जो कमल कर्णिकाके आकारकी पिटिका अन्य बहुतसी पिड़िकाओंसे युक्त हो इस वातपित्तजनित पिटिकाको विद्धा पिटिका कहते हैं ॥ ९ ॥

गर्दभी पिटिका ।

––ताभ्यामेव च गर्दभी । मण्डला विपुलोत्सन्ना सरागपिटिकाचिता१०

वातपित्तसे ही गर्दभी पिटिका होती है यह मण्डलके समान आकारवाली, विस्तारयुक्त और ऊपरको उठीहुई तथा लालवर्णकी पिटिकाओंसे आवृत होतीहै१०

कक्षा (कछराली) के लक्षण ।

कक्षेति कक्षासन्नेषु प्रायो देशेषु साऽनिलात् । पित्ताद्भवन्ति पिटिकाःसूक्ष्मा लाजोपमा घनाः॥

वायुसे कांछके अन्दर या कांछ (कक्षा) के समीप जो पिटिका होती है उसको कक्षा (कछराली) कहते है ॥

यदि पित्तसे कांछमें छोटी धानकीखीलके आकारवाली घन पिटिका हो तो उसकोभी कक्षा कहते हैं११

गंध पिटिकाके लक्षण ।

तादृशी महती त्वेका गन्धनामेति कीर्तिता१२

यदि वैसे ही आकारकी बड़ी पिटिका कक्षामें उत्पन्न हो तो उसको गंधपिटिका कहते हैं ॥ १२ ॥

राजिका पिटिकाके लक्षण ।

घर्मस्वेदपरीतेऽङ्गे पिटिकाः सरुजो घनाः ।
राजिकावर्णसंस्थानप्रमाणा राजिकाह्वयाः॥१३॥

जो पिटिका गर्मी और पसीनेसे युक्त शरीरमें पीड़ा-युक्त, घन, राईके समान वर्ण और आकारवाली हो उसको राजिका कहते है ॥ १३ ॥

जालगर्दभके लक्षण ।

दोषैः पित्तोल्बणैर्मन्दैर्विसर्पति विसर्पवत् ।
शोफोऽपाकस्तनुस्ताम्रो ज्वरकृज्जालगर्दभः १४

पित्तप्रधान दोषोंसे सूजन उत्पन्न होकर मन्द गतिसे विसर्पके समान फैले और पके नहीं पतली सूजन हो, ताम्रवर्णकी हो और ज्वरके करनेवाली हो इसको जालगर्दभ कहते हैं ॥ १४ ॥

अग्निरोहिणीके लक्षण ।

मलैः पित्तोल्बणैः स्फोटा ज्वरिणो मांसदारणाः।
कक्षाभागेषु जायन्ते येऽग्न्याभाः साऽग्निरोहिणी
पञ्चाहात्सप्तरात्राद्वा पक्षाद्वा हन्ति जीवितम् १५

पित्तप्रधान तीनों दोषोंसे कक्षा (कांख) के भागमें जो फोड़े उत्पन्न हों उससे मांस दारण होनेलगे तथा उस पुरुषको ज्वर हो, यह स्फोट अग्निके समान कष्ट देता हो इसको अग्निरोहिणी पिटिका कहते हैं। यह पांच दिनमे अथवा सात दिनमें या पन्द्रह दिनमें मनुष्यके जीवनको नाश कर देता है ॥ १५ ॥

इरिवेल्लिका और विदारिका ।

त्रिलिङ्गा पिटिका वृत्ता जत्रूर्ध्वमिरिवेल्लिका ।
विदारीकन्दकठिना विदारी कक्षवंक्षणे ॥१६॥

जो पिटिका तीनों दोषोंके लक्षणवाली हो गोल हो और जत्रुओंसे ऊर्ध्वभागमें हो उसको इरिवेल्लिका कहते है ।

जो पिटिका विदारीकन्दके समान आकारवाली और कठिन हो तथा कक्षा या वंक्षण स्थानमें उत्पन्न हुई हो उसको विदारिका कहते है ॥ १६ ॥

शर्करार्बुदके लक्षण ।

मेदोऽनिलकफैर्ग्रन्थिः स्नायुमांससिराश्रयैः ।
भिन्नो वसाज्यमध्वाभं स्रवेत्तत्रोल्बणोऽनिलः १७
मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करामुपपादयेत् ।
दुर्गन्धं रुधिरं क्लिन्नं नानावर्णं ततो मलाः ।
तां स्रावयन्ति निचितां विद्यात्तच्छर्करार्बुदम्॥

मेद वायु और कफ स्नायु मांस और सिराके आश्रित होकर ग्रंथिको उत्पन्न कर देते है उस ग्रंथिमेंसे फूटनेपर बसा, घृत और मधुके समान स्राव होता है.

यदि उसमें वायु अधिक बढ़जाय तो मांसको शोषण करके गांठदार शर्कराको उत्पन्न कर देती हैं तब इसमेंसे दोष दुर्गंधित रुधिर युक्त क्लेदित अनेक वर्णका स्राव करते हैं । इस मेद वात और कफके रोगको शर्करार्बुद कहते है ॥ १७ ॥ १८ ॥

वल्मीकके लक्षण।

पाणिपादतले सन्धौ जत्रूर्ध्वे वोपचीयते ।
वल्मीकवच्छनैर्ग्रन्थिस्तद्वद्बह्वणुभिर्मुखैः ।
रुग्दाहकंडूक्लेदाढ्यो वल्मीकोऽसौ समस्तजः ॥

हाथों और पावोंके तल भागमें या संधिमें अथवा जत्रुसे ऊपर ग्रन्थि उत्पन्न होकर वह ग्रंथि सांपकी बांबीके समान आकारवाली हो जाय और उस वल्मीकवत् ग्रन्थिमें छोटे २ बहुतसे मुख होजाय इस ग्रंथिमें पीड़ा, दाह, खुजली और क्लेद हो इस त्रिदोषज ग्रंथिको वल्मीक कहते है ॥ १९ ॥

कदर (अट्टन) के लक्षण ।

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः ।
ग्रंथिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरं तु तत् २०

नगे पांव चलनेसे शर्करादिसे मथित हुए पांवमें अथवा पांवमें कण्टक आदिसे क्षत होजानेपर उस स्थानमें जंगली बेरके समान गांठ होजाय उसको कदर कहते हैं ॥ २० ॥

रुद्धगुदके लक्षण।

वेगसंधारणाद्वायुरपानोऽपानसंश्रयम् ।
अणूकरोति बाह्यान्तर्मार्गमस्य ततः शकृत् ।
कृच्छ्रान्निर्गच्छति व्याधिरयं रुद्धगुदो मतः २१

मलमूत्रादि वेगोंको धारण करनेसे कुपित हुआ अपानवायु अपानके आश्रित होकर गुदाके मार्गको अन्दर और बाहरसे छोटा बना देता है उससे कष्टके

साथ मल निकलता है इस व्याधिको रुद्रगुद कहते हैं ॥ २१ ॥

चिप्य और उपनखके लक्षण ।

कुर्यात्पित्तानिलं पाकं नखमांसे सरुग्ज्वरम् ।
चिप्यमक्षतरोगं च विद्यादुपनखं च तम्॥२२॥

पित्त और वायु नखके मांसमें प्रवेश होकर पाकको उत्पन्न कर देता है उससे पीड़ा और ज्वर उत्पन्न होजाते है इसको चिप्यरोग कहते हैं. यह विना क्षतसे उत्पन्न हुआ रोग उपनख कहाजाता है ॥ २२ ॥

कुनखके लक्षण।

कृष्णोऽभिघाताद्रूक्षश्च खरश्च कुनखो नखः २३

नाखूनपर चोट लगनेसे नख कृष्णवर्णका रूक्ष और खर होजाय इसको कुनख कहते हैं ॥ २३ ॥

अलस (वर्षी) के लक्षण ।

दुष्टकर्दमसंस्पर्शात्कण्डूक्लेदान्वितान्तराः ।
अङ्गुल्योऽलसमित्याहुः ॥ २४ ॥-

दुष्ट कीचड़में फिरने घूमनेसे पांवकी अंगुलियोंमें खुजली युक्त क्लेद उत्पन्न होजाय उसको अलस कहते है ॥ २४ ॥

तिलकालकके लक्षण ।

-तिलाभांस्तिलकालकान् ।
कृष्णानवेदनांस्त्वक्स्थान् ॥ २५ ॥-

त्वचाके ऊपर तिलके समान आकारवाले वेदना रहित और कालेवर्णके तिलसे उत्पन्न होजांय उनको तिलकालक कहते हैं ॥ २५ ॥

मषक और चर्मकीलके लक्षण ।

-माषांस्तानेव चोन्नतान् ।
माषेभ्यस्तून्नततरांश्चर्मकीलान् सितासितान् ॥

यदि त्वचा पर माष (उड़द) के समान आकार-वाला अंकुर उत्पन्न होजाय उसको मषक कहते है ।

यदि इस मषक (मस्से) बहुत ऊंचे श्वेत अथवा नीलवर्णके मांसांकुर उत्पन्न होजांय उनको चर्मकील कहते हैं ॥ २६ ॥

जतुमणि और लांछनके लक्षण ।

तथाविधो जतुमणिः सहजो लोहितस्तु सः ।
कृष्णं सितं वा सहजं मण्डलं लाञ्छनं समम्२७

यदि जन्मसे ही लालवर्णका ऐसा अंकुर हो उसको जतुमणि कहते हैं ।

यदि जन्मसे ही श्वेत अथवा कृष्णवर्णका सममण्डल त्वचा पर हो तो उसको लांछन कहते हैं ॥ २७ ॥

व्यंग और नीलिकाके लक्षण ।

शोकक्रोधादिकुपिताद्वातपित्तान्मुखे तनु ।
श्यामलं मण्डलं व्यङ्गं वक्त्रादन्यत्र नीलिका ॥

शोक और क्रोध आदि करनेसे कुपित हुए वात पित्त मनुष्यके मुख पर काले वर्णका पतलासा मण्डल उत्पन्न कर देवें उसको व्यंग कहते है । यदि मुखके अतिरिक्त यही अन्य स्थानमें उत्पन्न हो तो इसको नीलिका कहते है ॥ २८ ॥

परुषं परुषस्पर्शं व्यङ्गं श्यावं च मारुतात् ।
पित्तात्ताम्रान्तमानीलं श्वेतान्तं कण्डुमत्कफात्
रक्ताद्रक्तान्तमाताम्रं शोषं चिमचिमायते २९॥

व्यंगरोग यदि वायुसे हो तो परुष स्पर्शमें खर और कालेवर्णका होता है । यदि पित्तसे हो तो व्यंग किंचित् ताम्रवर्णका किनारों परसे होता है और किंचित् नीलापन युक्त होता है कफका व्यंग किनारोंसे श्वेत और खुजली युक्त होता है । रक्तका व्यंग किनारोंसे लाल ताम्रवर्ण शोषयुक्त और चिमचिमाहट युक्त होता है ॥ २९ ॥

प्रसुप्तिके लक्षण ।

वायुनोदीरितःश्लेष्मा त्वचं प्राप्य विशुष्यति३०
ततस्त्वग्जायते पाण्डुः क्रमेण च विचेतना ।
अल्पकण्डूरविक्लेदा सा प्रसुप्तिः प्रसुप्तितः ३१॥

वायुसे उदीर्ण हुआ कफ त्वचामें जाकर सूख जाता है उससे वह त्वचा पाण्डुवर्णकी और चेतना रहित क्रमसे शून्य होजाती है उसमें किंचित् खुजली होती है और क्लेद आदि सर्वथा नहीं होते इस रो-गको सुप्तस्थान होनेके कारण प्रसुप्ति कहते हैं३०॥३१

उत्कोठ और कोठके लक्षण ।

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ।
मण्डलान्यतिकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ।
उत्कोठःसोऽनुबद्धस्तु कोठ इत्यभिधीयते३२॥

वमनके यथार्थ न होनेसे उदीर्ण हुए पित्त और कफ अन्नसे निगृहीत होकर त्वचामें लालवर्णके अत्यन्त खुजलीयुक्त बहुतसे मंडल उत्पन्न करदेते हैं उनको उत्कोठ कहते हैं। यदि वह मण्डल स्थिर हो उसीको कोठ कहते हैं॥ ३२॥

प्रोक्ताःषट्त्रिंशदित्येते क्षुद्ररोगा विभागशः ३३

इस प्रकार ये ३६ क्षुद्ररोग विभागपूर्वक कथन करदिये हैं॥ ३३॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषा-व्याख्यायां क्षुद्ररोगविज्ञानं नाम एक-त्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः।

अथाऽतः क्षुद्ररोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः।

अब हम क्षुद्ररोगोंकी चिकित्साको कथन करते हैं।

अजगल्लिका और यवप्रख्याआदिका यत्न।

विस्रावयेज्जलौकोभिरपक्वामजगल्लिकाम्।
स्वेदयित्वा यवप्रख्यां विलयाय प्रलेपयेत्।
दारुकुष्ठमनोह्वालैः॥ १॥-

अजगल्लिकारोगमें अपकावस्थामें ही जोंकें लगाकर रक्त निकाल देना चाहिये।

यवप्रख्यामें स्वेदन करके विम्लापन करना चाहिये और उसके ऊपर देवदारु, कूठ, मैनसिल और हरताल का लेप करदेना चाहिये॥ १॥

--इत्यापाषाणगर्दभात्।
विधिस्तांश्चाचरेत्पक्कान् व्रणवत्साजग--
--ल्लिकान्॥ २॥

इसी प्रकार कच्छपिका पनसिका और पाषाणगर्दभकी कची अवस्थामें चिकित्सा करनी चाहिये। परन्तु पकजानेपर अजगल्लिका, यवप्रख्या, कच्छपी, पनसिका और पाषाणगर्दभमें व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये॥ २॥

मुखदूषिकाका यत्न।

रोध्रकुस्तुम्बरुवचाप्रलेपो मुखदूषिके।
वटपल्लवयुक्ता वा नारिकेलोत्थशुक्तयः।
अशांतौ वमनं नस्यं ललाटे च सिराव्यधः॥३॥

पठानीलोध, नैपालीधनियां और वचका लेप करना मुखदूषिकाको दूर करता है अथवा वटके पत्र और नारियलकी सुक्तियें इनको घिसकर लेपकरनेसे मुखदूषिका दूर होती है यदि इन उपायोंसे मुखदूषिका निवृत्त न हो तो वमन, नस्य और ललाटकी सिरा वेधन करके इनको शान्त करदेना चाहिये॥ ३॥

पद्मकंटकका यत्न।

निम्बाम्बुवान्तो निम्बाम्बुसाधितं पद्मकण्टके।
पिबेत्क्षौद्रान्वितं सर्पिर्निम्बारग्वधलेपनम्॥४॥

पद्मकंटकरोगमें नीमका जल पिलाकर वमन करावे और निम्बके जलसे सिद्ध कियाहुआ घृत मधु मिलाकर पीवे तथा निम्बपत्र और अमलतासका लेप करे४॥

विवृताआदिकोंकी चिकित्सा।

विवृतादींस्तु जालान्तांश्चिकित्सेत्सेरिवेल्लिकान्।
पित्तवीसर्पवत्तद्वत् प्रत्याख्यायाग्निरोहिणीम्५॥

विवृता, मसूरिका, विस्फोटक, पद्मकर्णिका, गर्दभी, कक्षा, गन्धनामा और जालगर्दभ तथा इरिवेल्लिका इन सब रोगोंकी पित्तके विसर्पके समान चिकित्सा करनी चाहिये. एवं अग्निरोहिणीको असाध्य कहनेके अनन्तर फिर पित्तके विसर्पके समान चिकित्सा करनी चाहिये॥ ५॥

जालगर्दभकी चिकित्सा।

विलङ्घनं रक्तविमोक्षणं च
विरूक्षणं कायविशोधनं च।
धात्रीप्रयोगान् शिशिरप्रदेहान्
कुर्यात्सदा जालकगर्दभस्य॥ ६॥

जालगर्दभरोगमें लंघन कराना, रक्त मोक्षण कराना, विरूक्षण करना, शरीरको वमन विरेचनसे शुद्ध करना, आंवलेका प्रयोग करना तथा सदैव शीतल लेप करना चाहिये॥ ६॥

विदारिका और शर्करार्बुदकी चिकित्सा ।

विदारिकां हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् । मेदोऽर्बुदक्रियां कुर्यात्सुतरां शर्करार्बुदे ॥ ७ ॥

विदारिकारोगमें रक्त निकालनेके अनन्तर कफकी ग्रंथिके समान चिकित्सा करनी चाहिये ।

शर्करार्बुदरोगमें निरन्तर मेदके अर्बुदके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

वल्मीककी चिकित्सा ।

प्रवृद्धं सुबहुच्छिद्रं सशोफं मर्मणि स्थितम् । वल्मीकं हस्तपादे च वर्जयेत् ॥ ८ ॥–

यदि वल्मीक नामक ग्रंथि बहुत बढ़गयी हो बहुतसे छिद्रों और सूजन करके युक्त हो मर्म स्थानमें स्थित हो अथवा इन्हीं उपद्रवोंसे युक्त हाथों पावोंमें स्थित हो तो असाध्य जानना चाहिये ॥ ८ ॥

–इतरत्पुनः । शुद्धस्यास्रे हृते लिम्पेत् सपट्वारैवतामृतैः । श्यामाकुलत्थिकामूलदन्तीपललसक्तुभिः ॥९॥

यदि इससे विपरीत हो अर्थात् मर्म स्थान रहित और उपद्रव रहित हो तो रक्त निकालकर सेंधानमक, रैवतवृक्ष, गिलोय, निशोथ, कुलथीकी जड़, दन्ती, पलल और सत्तू इनको मिलाकर लेप करे ॥ ९ ॥

पक्के तु दुष्टमांसानि गतीः सर्वाश्च शोधयेत् । शस्त्रेण सम्यगनु च क्षारेण ज्वलनेन वा॥१०॥

यदि यह पकजाय तो इसके दुष्ट मांस और छिद्रोंको शस्त्रसे शोधन करके क्षार अथवा अग्निसे दग्ध कर देवे ॥ १० ॥

कदरकी चिकित्सा ।

शस्त्रेणोत्कृत्य निःशेषं स्नेहेन कदरं दहेत ।

पांवके कदरके शस्त्रके साथ निकालकर तैल आदि स्नेहसे दहन करे ।

रुद्धगुदकी चिकित्सा ।

निरुद्धमणिवत्कार्यं रुद्धपायोश्चिकित्सितम् ११।

रुद्धगुदमें निरुद्धमणिके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

चिप्यकी चिकित्सा ।

चिप्यं शुद्धया जितोष्माणं साधयेच्छस्त्रकर्मणा। दुष्टं कुनखमप्येवम् ॥ १२ ॥–

चिप्यरोगको शस्त्रके द्वारा शोधन कर उसकी गर्मी पित्तरक्त और पीवको निकालकर व्रणके समान चिकित्सा करदेवे । इसी प्रकार दुष्ट कुनखकी भी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

अलसकी चिकित्सा ।

–चरणावलसे पुनः । धान्याम्लसिक्तौ कासीसपटोलीरोचनातिलैः । सनिम्बपत्रैरालिम्पेद् ॥ १३ ॥–

पांवोंकी अंगुलियोंमें हुए अलसरोगमें प्रथम धान्याम्ल (कांजी) से सेचन कर फिर अलस स्थानपर कासीस, पटोलपत्र, रोचना, तिल और नीमके पत्रोंका लेप करे ॥ १३ ॥

तिलकालक और मसककी चिकित्सा ।

–दहेत्तु तिलकालकान् । माषांश्च सूर्यकान्तेन क्षारेण यदि वाऽग्निना१४॥

तिलकालकोंको अथवा माष (मषक) को सूर्यकान्तशीसेसे अथवा क्षारसे या अग्निसे दग्ध करदेना चाहिये ॥ १४ ॥

चर्मकील और जतुमणिकी चिकित्सा ।

तद्वदुत्कृत्य शस्त्रेण चर्मकीलजतूमणी ॥१५॥

इसी प्रकार चर्मकील और जतुमणिको शस्त्रसे काटकर निकाल देवे और उस स्थानपर क्षार अथवा अग्निसे दहन करे ॥ १५ ॥

लांछन व्यंगादिकी चिकित्सा ।

लाञ्छनादित्रये कुर्याद्यथासन्नं सिराव्यधम् । लेपयेत्क्षीरपिष्टैश्च क्षीरिवृक्षत्वगङ्कुरैः ॥ १६ ॥

लांछन व्यंग और नीलिकामें उसके समीपकी सिरामें वेधन करे तथा वट आदि क्षीरीवृक्षोंके त्वचा और अंकुरोंको दूधमें पीसकर लेप करे ॥ १६ ॥

व्यङ्गेषु चार्जुनत्वगवा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका । लेपः सनवनीता वा श्वेताश्वखुरजा मषी॥१७॥

व्यंगरोगमें अर्जुन वृक्षकी छाल अथवा मंजीठको

शहदम मिलाकर लेप करे अथवा सफेद घोड़के खुरको अग्निमें फूंक कर मक्खनमें पीसकर लेप करे ॥ १७ ॥

मुखसुंदरकारक लेप ।

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठाकुष्ठरोध्रप्रियङ्गवः ।
वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः १८॥

लालचन्दन, मंजीठ, कूट, पठानीलोध, प्रियंगु, वटके अंकुर और मसूरका चूर्ण इनको बारीक पीसकर दूध अथवा दहीमें मिलाकर मुखपर लेपकरनेसे व्यंग दूर होता है और मुखकी कान्ति बढ़ती है ॥ १८ ॥

द्वे जीरके कृष्णतिलाः सर्षपाः पयसा सह ।
पिष्टाःकुर्वंति वक्त्रेन्दुमपास्तव्यङ्गलाञ्छनम् १९

कालाजीरा, सफेदजीरा, कालेतिल और सरसों इनको दूधके साथ पीसकर मुखपर लेप करनेसे व्यंग और लांछन दूर होता है और मुख चन्द्रमाके समान कांतिवाला होता है ॥ १९ ॥

मुखसुन्दरकारक उबटन ।

क्षीरपिष्टा घृतक्षौद्रयुक्ता वा भृष्टनिस्तुषाः ।
मसूरा क्षीरपिष्टा वा तीक्ष्णाःशाल्मलिकण्टकाः
सगुडःकोलमज्जा वा शशासृक्क्षौद्रकल्कितः ।
सप्ताहं मातुलुङ्गस्थं कुष्ठं वा मधुनान्वितम् ।२०
पिष्टा वा छागपयसा सक्षौद्रा मौशली जटा ।
गोरस्थि मुशलीमूलयुक्तं वा साज्यमाक्षिकम् २१

भूनकर निस्तुष बनायेहुए मसूरका आटा दूधमें पीसकर मधु मिलाकर लेप करनेसे अथवा सेमलके तीक्ष्ण कण्टक दूधमें पीसकर लेप करनेसे अथवा गुड़ बेरकी मज्जा शशेका रक्त और मधु मिलाकर लेप करनेसे अथवा बिजौरे नींबूमें सात दिन रखी हुई कूठको मधुमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा सेमलकी मुशलीको बकरीके दूध और मधुमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा बैलकी अस्थि, श्वेत मुशली, घृत और शहदमें मिलाकर लेप करनेसे मुखके व्यंग दूर होजाते है ॥ २० ॥ २१ ॥

जम्ब्वाम्रपल्लवा मस्तु हरिद्रे द्वे नवो गुडः ।
लेपः सवर्णकृत् पिष्टं स्वरसेन च तिन्दुकम् २२॥

जामनके पत्र, दहीका जल, हलदी, दारुहलदी, नया गुड़ और तिन्दुकका स्वरस इनको मिलाकर लेप करनेसे त्वचाका वर्ण सुन्दर होजाता है और व्यंग आदि दूर होते हैं ॥ २२ ॥

उत्पलपत्रं तगरं प्रियङ्गुकालीयकं बदरमज्जा ।
इदमुद्वर्तनमास्यं करोति शतपत्रसंकाशम् ।२३॥

कमल पत्र, तगर, प्रियंगु, अगर, बेरकी मज्जा इनको बारीक पीसकर मुखपर उबटन करनेसे मुख गुलाबके फूलके समान सुन्दर होजाता है ॥ २३ ॥

एभिरेवौषधैः पिष्टैर्मुखाभ्यङ्गाय साधयेत् ।
यथादोषर्तुकान् स्नेहान् मधुकक्वाथसंयुतैः२४॥

इन्हीं कमल पत्रादि द्रव्योंको पीसकर कल्क बना इस कल्क और मुलहठीके क्वाथसे सिद्ध कियेहुए दोष ऋतुके अनुसार तैलादि मुखपर मलनेसे मुखकी कान्तिको बढाते हैं ॥ २४ ॥

उबटन ।

यवान् सर्जरसं रोध्रमुशीरं चन्दनं मधु ।
घृतं गुडं च गोमूत्रे पचेदादर्विलेपनात् ॥२५॥
तदभ्यङ्गान्निहन्त्याशु नीलिकाव्यङ्गदूषिकान्।
मुखं करोति पद्माभं पादौ पद्मदलोपमौ ॥२६॥

जौ, राल, लोध, खस, चन्दन, मधु, घृत और गुड़ इनको गोमूत्रमें पकावे. जब ये कड़छीसे लगने लगे तो उतारकर ठंढा करे इसका मुखपर लेप करनेसे नीलिका व्यंग और मुखदूषिका दूर होते है. यदि मुखपर मले तो मुख कमलके समान सुन्दर होजाता है। यदि हाथ पाव पर मले तो हाथ पांव भी कमलके दलके समान सुन्दर होजाता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

कुंकुमादि तैल ।

कुङ्कुमोशीरकालीयलाक्षायष्ट्याह्वचन्दनम् ।
न्यग्रोधपादांस्तरुणान् पद्मकं पद्मकेसरम्॥२७॥
सनीलोत्पलमाञ्जिष्ठं पालिकं सलिलाढके ।
पक्त्वा पादावशेषेण तेन पिष्टैश्च कार्षिकैः२८॥
लाक्षापत्तङ्गमाञ्जिष्ठायष्टीमधुककुङ्कुमैः ।
अजाक्षीराद्द्विगुणितं तैलस्य कुडवं पचेत्॥२९॥

नीलिकापलितव्यङ्गवलीतिलकदूषिकान् ।
हन्ति तन्नस्यमभ्यस्तं मुखोपचयवर्णकृत् ॥३०॥

केशर, खश, अगर, लाख, मुलहठी, चन्दन, वटकी नयी जटा, पद्मकाष्ठ, कमलकी केशर, नीलकमल, लाल कमल और मंजीठ इनको चार सेर जलमें पकावे जब एक सेर जल शेष रहजाय तो उतारकर छान लेवे. इस काथमें लाख, पतंग, मंजीठ, मुलहठी और केशर ये एक एक कर्ष लेकर कल्क बनाकर मिलावे तथा आध सेर बकरीका दूध और एक पाव तेल मिलाकर तैल सिद्ध करे. इस तैलकी नस्य लेनेसे और मुखपर मलनेसे नीलिका, पलित, व्यंग, बली, तिलकालक और मुखदूषिका इन सबको यह तेल नष्ट करता है तथा मुखके उपचय और वर्णको उत्तम बनाता है ॥ २७--३० ॥

मंजिष्ठादि स्नेह ।

मञ्जिष्ठाशबरोद्भवस्तुवरिकालाक्षाहरिद्राद्वयं
नेपालीहरितालकुङ्कुमगदागोरोचनागैरिकम् ।
पत्रं पाण्डु वटस्य चन्दनयुगं कालीयकं पारदं
पत्तङ्गं कनकत्वचं कमलजं बीजं तथा केसरम् ।
सिक्थं तुत्थं पद्मकाद्यो वसाऽऽज्यं
मज्जा क्षीरं क्षीरिवृक्षाम्बु चाग्नौ ।
सिद्धं सिद्धं व्यङ्गनील्यादिनाशे
वक्त्रे छायामैन्दवीं चाशु धत्ते ॥ ३१॥

मंजीठ, सावरलोध, तुवरी, लाख, हलदी, दारुहलदी, मनशिल, हडताल, केशर, कूठ, गोरोचन, गेरू, बटके पीले पत्र, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, अगर, पारद, पतंग, चम्पककी छाल, कमलके बीज, कमलकी केशर, मोम, तुत्थ और पद्मकादि गणके द्रव्य, वसा, घृत, मज्जा, दूध और क्षीरीवृक्षोंका काथ इन सबको मिलाकर घृतपाक विधिसे अग्निपर सिद्ध करे यह सिद्ध स्नेह व्यंग और नीलिका आदिको दूर करके मुखको चन्द्रमाके समान कान्तिवाला बना देता है ३१

मार्कवस्वरसक्षीरतोयपिष्टानि नावने ॥ ३२॥

यही ऊपरवाले मजीठ आदि द्रव्यभांगरेके स्वरस दूध और जलमें पीसकर नस्य लेनेसे व्यङ्ग और नीलिका दूर होजाती है ॥ ३२ ॥

प्रसुप्तिकी चिकित्सा ।

प्रसुप्तौ वातकुष्ठोक्तं कुर्याद्दाहं च वह्निना ॥३३॥

प्रसुप्तिरोगमें वातकुष्ठके समान चिकित्सा करनी चाहिये तथा अग्निसे दाहकर्म करना चाहिये ॥ ३३ ॥

उत्कोठकी चिकित्सा ।

उत्कोठे कफपित्तोक्तं कोठे सर्वं च कौष्ठिकम् ३४

उत्कोठरोगमें कफपित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये, और कोठरोगमें कुष्ठमें लिखी चिकित्साके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपिका - भाषाव्याख्यायां क्षुद्ररोगप्रतिषेधो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो गुह्यरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम गुह्यरोगविज्ञानकी व्याख्या करते हैं ॥

गुह्यरोगका निदान ।

स्त्रीव्यवायनिवृत्तस्य सहसा भजतोऽथवा ।
दोषाध्युषितसंकीर्णमलिनाणुरजः पथाम् ।
अन्ययोनिमनिच्छन्तीमगम्यां नवसूतिकाम् ।
दूषितं स्पृशतस्तोयं रतान्तेष्वपि नैव वा ।
विवर्धयिषया तीक्ष्णान् प्रलेपादीन् प्रयच्छतः ।
मुष्टिदन्तनखोत्पीडाविषवच्छुकपातनैः ।
वेगनिग्रहदीर्घातिखरस्पर्शविघट्टनैः ।
दोषा दुष्टा गता गुह्यं त्रयोविंशतिमामयान् ।
जनयन्त्युपदंशादीन् ॥ १ ॥--

स्त्रीके साथ संभोग करनेके अनन्तर ही फिर अकस्मात् स्त्रीसंग करनेसे, अथवा जिस स्त्रीसे संग किया जाय उसका योनिमार्ग वात पित्तादि दोषोंसे दूषित, संकटयुक्त, मलिन, या बहुत तंग होनेसे, अथवा अन्य योनि (महिषी आदि) के संसर्गसे, भोगकी इच्छा न रखनेवाली स्त्रीके संभोगसे, अगम्या (गमन न करने

योग्य स्त्री) के संगसे या नवप्रसूताके संगसे या विष जन्तु आदिसे दूषित कियेहुए जलके स्पर्शसे, अथवा स्त्रीसंगके अनन्तर जलसे न धोनेसे, अथवा शिश्नेन्द्रियको बढानेकी इच्छा करतेहुए बहुत तीक्ष्ण लेपादिके करनेसे, अथवा मुष्टि, दन्त, नख या विष आदि द्वारा वीर्यपात करनेसे, वीर्यके वेगको रोकनेसे तथा खरस्पर्शवाली योनिके संघर्षसे दुष्टहुए दोष गुह्यस्थानमें प्राप्त होकर उपदंशादि २१ प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

उपदंशके पांच भेद ।

—उपदंशोऽत्र पञ्चधा ।
पृथग्दोषैः सरुधिरैः समस्तैश्च ॥ २ ॥—

इन व्याधियोंमें उपदंश पांच प्रकारका होता है. जैसे-१ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ रक्तसे और ५ सन्निपातसे ॥ २ ॥

वातज उपदंशके लक्षण ।

—अत्र मारुतात् ।
मेढ्रशोफे रुजाश्चित्राः स्तम्भस्त्वक्परिपोटनम् ३

वायुके उपदंशमें शिश्नपर सूजन, विविध प्रकारकी पीडा, अकडन और चमडीका फटना ये लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

पित्तज उपदंशके लक्षण ।

पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्तेन श्वयथुर्ज्वरः ॥ ४ ॥

पित्तके उपदंशमें पकेहुए उदुम्बरके समानवर्णवाली सूजन तथा ज्वर ये लक्षण होते है ॥ ४ ॥

कफज उपदंशके लक्षण ।

श्लेष्मणा कठिनः स्निग्धः कण्डूमान्-
शीतलो गुरुः ॥ ५ ॥

कफके उपदंशमें कठिन, स्निग्ध, खुजलीयुक्त, शीतल, सूजन गुह्यस्थानपर हो जाती है ॥ ५ ॥

रक्तज उपदंशके लक्षण ।

शोणितेनासितस्फोटसंभवोऽस्रस्रुतिर्ज्वरः ॥६॥

रक्तके उपदंशमें काले स्फोट उत्पन्न होजाते है, रक्त बहने लगता है और ज्वर होजाता है ॥ ६ ॥

त्रिदोषज उपदंशके लक्षण ।

सर्वजे सर्वलिङ्गत्वं श्वयथुर्मुष्कयोरपि ।
तीव्रा रुगाशुपचनं दरणं, क्रिमिसंभवः ॥ ७ ॥

सब दोषोंसे उत्पन्नहुए उपदंशके सब दोषोंके मिलेजुले लक्षण होते हैं तथा अण्डकोषोंपर भी सूजन होजाती है, तीव्र पीडा होती है, शीघ्र पाक होता है तथा मांस फट कर क्रिमि उत्पन्न होजाते है ॥ ७ ॥

उपदंशका साध्यासाध्यत्व ।

याप्यो रक्तोद्भवस्तेषां मृत्यवे सन्निपातजः ८॥

इनमें रक्तज उपदंश याप्य तथा सन्निपातज उपदंश असाध्य और मृत्युका हेतुभूत होता है ॥ ८ ॥

मांसकील अर्श ।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्गुह्यासृक्पिशिताश्रयैः ।
अन्तर्बहिर्वा मेढ्रस्य कण्डूला मांसकीलकाः ।
पिच्छिलास्रस्रवा योनौ तद्वच्च छत्रसंनिभाः ।
तेऽर्शांस्युपेक्षया घ्नन्ति मेढ्रपुंस्त्वभगार्तवम् ९॥

कुपितहुए वातादिदोष गुह्यस्थानके रक्त और मांसके आश्रित होकर शिश्नेन्द्रियके अन्दर या बाहर खुजलीवाली मांसकी कीलोंको उत्पन्न करदेते हैं। ऐसे ही योनिमें छत्रके आकारकी गाढ रक्त बहानेवाली मांसकीलोंको उत्पन्न करदेते है। इनको अर्श कहते है। यदि इन मांसकीलोंकी शीघ्र चिकित्सा न कीजाय तो ये जिस पुरुषके मेढ्रपर हों उसके पुंस्त्वको नष्ट करदेती है और स्त्रीकी योनिपर हों उसके ऋतुस्रावको नष्ट कर देती हैं ॥ ९ ॥

सर्षपिकाके लक्षण ।

गुह्यस्य बहिरन्तर्वा पिटिकाः कफरक्तजाः ।
सर्षपामानसंस्थाना घनाःसर्षपिकाःस्मृताः१०।

गुह्यस्थानके बाहर अथवा अन्दर कफ और रक्तसे उत्पन्न हुई सरसोंके समान आकार और संस्थानवाली पिटिकाओंको सर्षपिका कहते है ॥ १० ॥

अवमंथके लक्षण ।

पिटिका बहवो दीर्घा दीर्यन्ते मध्यतश्च याः ।
सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षवान्११

कफ और रक्तसे होनेवाली बडी, लम्बी, वेदना-

युक्त, रोमहर्षयुक्त तथा मध्यमेंसे फूटीहुई जो पिडिका उत्पन्न होती है उसको अवमंथ कहते हैं ॥ ११ ॥

कुम्भीकाके लक्षण ।

कुम्भीका रक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थि-
-निभाऽऽशुजा॥१२॥

शीघ्र उत्पत्तिवाली जामुनकी गुठलीके समान आकारवाली, रक्तपित्तसे उत्पन्न हुई पिड़िकाको कुंभीका कहते है ॥ १२ ॥

अलजीके लक्षण ।

अलजीं मेहवद्विद्यात् ॥ १३ ॥-

जैसे जिन लक्षणोंसे प्रमेहमें अलजी नामक पिटिका होती है वैसे ही गुह्यरोगमें भी जाननी चाहिये॥ १३॥

उत्तमाके लक्षण ।

-उत्तमां रक्तपित्तजाम् ।
पिटिकां माषमुद्गाभाम् ॥ १४ ॥-

रक्तपित्तसे उत्पन्नहुई माषके बराबर और मुद्गकीसी आकृतिवाली पिटिकाको उत्तमा कहते हैं॥ १४॥

पुष्करिकाके लक्षण ।

-पिटिका पिटिकाचिता ।
कर्णिका पुष्करस्येव ज्ञेया पुष्करिकेति सा १५॥

कमलकी कर्णिकाके समान तथा पद्मकन्दके आकारवाली पिटिकाओंसे संचित पिटिकाको पुष्करिका कहते हैं ॥ १५ ॥

संव्यूढपिटिकाके लक्षण ।

पाणिभ्यां भृशसंव्यूढे संव्यूढपिटिका भवेत्१६

हाथोंसे गुह्येन्द्रियको बहुत घर्षण करनेसे उत्पन्न हुई पिड़िकाको संव्यूढपिटिका कहते हैं ॥ १६ ॥

मृदित पिटिकाके लक्षण ।

मृदितं मृदितं वस्त्रसंरब्धं वातकोपतः ॥ १७ ॥

वस्त्रके साथ मलेजानेके क्षोभसे, प्रकुपित वातसे उत्पन्नहुई पिड़िकाको मृदित कहते हैं ॥ १७ ॥

अष्ठीलिकाके लक्षण ।

विषमा कठिना भुग्ना वायुनाऽष्ठीलिका-
-स्मृता ॥ १८ ॥

विषम (ऊंचीनीची), कठोर और कुटिल वायुसे त्पन्नहुई पिड़िकाको अष्ठीलिका कहते हैं ॥ १८ ॥

निवृत्तके लक्षण ।

विमर्दनादिदुष्टेन वायुना चर्म मेढ्रजम् ।
निवर्तते सरुग्दाहं क्वचित्पाकं च गच्छति ।
पिण्डितं ग्रन्थितं चर्म तत्प्रलम्बमधोमणेः ।
निवृत्तसंज्ञं सकफं कण्डूकाठिन्यवत्तु तत्॥१९॥

हाथसे मलने आदिसे दुष्ट हुई वायु मेढ्रके चर्मको पीड़ा, दाह और कहीं कहीं पाकयुक्त भी बना देती है । वह चर्ममणि (शिश्नके अग्रभागकी गांठ) के नीचे पिण्डित और ग्रन्थिसा होकर लटक जाता है । यह कफके कारण हुआ कण्डूयुक्त और कठिन लम्बित चर्म्म निवृत्त कहाजाता है ॥ १९ ॥

अवपाटिकाके लक्षण ।

दुरूढं स्फुटितं चर्म निर्दिष्टमवपाटिका ॥२०॥

जो चर्म फटजाय और रोहण होनेमें न आवे उसको अवपाटिका कहते हैं ॥ २० ॥

निरुद्धमणिके लक्षण ।

वातेन दूषितं चर्म मणौ सक्तं रुणद्धि चेत् ।
स्रोतो मूत्रं ततोऽभ्येति मन्दधारमवेदनम् ।
मणेर्विकाशरोधश्च स निरुद्धमणिर्गदः ॥२१॥

वातसे दूषितहुआ चर्म्म मणिमें सक्त होकर स्रोतको रोक देता है । ऐसा होनेसे मन्दधारवाला और विना वेदनाके मूत्र आता है तथा मणिका विकाश रुक जाताहै।इस रोगको निरुद्धमणि कहते हैं॥ २१ ॥

ग्रथितके लक्षण ।

लिङ्गं शूकैरिवापूर्णं ग्रथिताख्यं कफोद्भवम् २२

कफके प्रकोपसे जब लिंग शूकोंसे आवृतसा होजाय तो उसको ग्रथितरोग कहते हैं ॥ २२ ॥

स्पर्शहानिके लक्षण ।

शूकदूषितरक्तोत्था स्पर्शहानिस्तदाह्वया॥२३॥

शूक (कीटविशेष) आदिके लेपसे दूषित रक्तसे उत्पन्न हुए स्पर्शज्ञान नाशक गुह्यरोगको स्पर्शहानि कहते हैं ॥ २३ ॥

शतपोनकके लक्षण ।

छिद्रैरणुमुखैर्यत्तु मेहनं सर्वतश्चितम् ।
वातशोणितकोपेन तं विद्याच्छतपोनकम्॥२४॥

यदि वात और रक्तके कोपसे मेढ्र सूक्ष्ममुखवाले

स्राववाले छिद्रोंसे चारों ओरसे भरा हुआ हो तो इस रोगको शतपोनक कहते हैं ॥ २४ ॥

त्वक्पाकके लक्षण।

पित्तासृग्भ्यां त्वचः पाकस्त्वक्पाको-
-ज्वरदाहवान् ॥ २५ ॥

पित्त और रक्तके प्रकोपसे त्वचा पक जाय तथा ज्वर और दाह हो तो इस रोगको त्वक्पाक कहते है॥२५

मांसपाकके लक्षण।

मांस्पाकः सर्वजः सर्ववेदनो मांसशातनः॥२६॥

त्रिदोषसे उत्पन्न हुए सब दोषोंकी वेदनावाले तथा मांसको गिरानेवाले गुह्यरोगको मांसपाक कहते हैं॥२६

असृगर्बुदके लक्षण।

सरागैरसितैः स्फोटैः पिटिकाभिश्च पीडितम्।
मेहनं वेदनाश्चोग्रास्तं विद्यादसृगर्बुदम् ॥२७॥

यदि लिङ्ग कुछ रक्तवर्ण लियेहुए कृष्णवर्णके स्फोट और पिटिकाओंसे युक्त हो और उग्रवेदनासे युक्त हो तो इस गुह्यरोगको असृगर्बुद कहते हैं ॥ २७ ॥

मांसार्बुद और विद्रधि।

मांसार्बुदं प्रागुदितं विद्रधिश्च त्रिदोषजः ॥२८॥

ग्रन्थ्यादिरोगविज्ञानीयाध्यायमें कहा हुआ मांसार्बुद और विद्रध्यादि विज्ञानीयाध्यायमें कहीहुई विद्रधि यदि गुह्यस्थानमें हो तो इनको त्रिदोषज जानना चाहिये॥२८

तिलकालकके लक्षण।

कृष्णानि भूत्वा मांसानि विशीर्यन्ते समन्ततः।
पक्वानि सन्निपातेन तान् विद्यात्तिलकालकान्॥

त्रिदोषके कोपसे जब काले मांसके टुकड़े चारों-ओरसे पककर गिरने लगजावें इनको तिलकालक कहते हैं ॥ २९ ॥

गुह्यरोगोंका साध्यासाध्यत्व।

मांसोत्थमर्बुदं पाकं विद्रधिं तिलकालकान्।
चतुरो वर्जयेदेषां शेषांश्छीघ्रमुपाचरेत् ॥ ३० ॥

इन रोगोंमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक, इन चार रोगोंको असाध्य जानकर त्याग देवे। बाकी रोगोंकी शीघ्र चिकित्सा करे। शीघ्र चिकित्सा न करनेसे अन्य गुह्यरोग भी कष्टसाध्य अथवा असाध्य हो जाते हैं॥ ३० ॥

योनिव्यापद भेद।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्जायन्ते दुष्टभोजनात्३१॥

दुष्ट भोजनसे बीस प्रकारके योनिव्यापद अर्थात् योनियोंके रोग उत्पन्न होते है ॥ ३१ ॥

वातिकी व्यापदका निदान और लक्षण।

विषमस्थाङ्गशयनभृशमैथुनसेवनैः।
दुष्टार्तवादपद्रव्यैर्बीजदोषेण दैवतः।
योनौ क्रुद्धोऽनिलः कुर्याद्रुक्तोदायामसुप्तताः।
पिपीलीकासृप्तिमिव स्तम्भं कर्कशतां स्वनम्।
फेनिलारुणकृष्णाल्पतनुरूक्षार्तवस्रुतिम्।
भ्रंशं वंक्षणपार्श्वादौ व्यथां गुल्मं क्रमेण च।
तांस्तांश्च स्वान्गदान्व्यापद्वातिकी नाम--
--सा स्मृता ॥ ३२ ॥

अंगोंकी विषम स्थिति करके सोनेसे, निरन्तर मैथुन करनेसे,दुष्ट आर्त्तवसे,अपद्रव्योंके सेवनसे, बीज दोषसे अथवा पूर्वजन्मके कियेहुए कर्म्मोंसे क्रुद्ध हुआ वायु योनिमें पीड़ा, तोद, आयाम, शून्यता, चीटि-योंका फिरनासा प्रतीत होना, स्तंभ, कठोरता और शब्दको उत्पन्न करदेती है। तथा योनिमेंसे झागदार, अरुण, कृष्णवर्ण, अल्प और पतले रक्तकी स्रुति होती है। तथा वंक्षण और पार्श्वमें पहले भ्रंश, फिर व्यथा फिर क्रमसे गुल्म उत्पन्न होजाता है। फिर यह अनेक प्रकारके योनिव्यापदरोगोंको उत्पन्न करती है। इस व्यापदको वातिकी कहते है ॥ ३२ ॥

अतिचरणाके लक्षण।

सैवातिचरणा शोफसंयुक्तातिव्यवायतः ॥३३॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे यदि सूजन हो जाय तो इसी रोगको अतिचरणा कहते हैं ॥ ३३ ॥

प्राक्चरणाके लक्षण।

मैथुनादतिबालायाः पृष्ठजङ्घोरुवंक्षणम्।
रुजन्संदूषयेद्योनिं वायुः प्राक्चरणेति सा३४॥

अतिबालाके साथ मैथुन करनेसे वायु पृष्ठ, जंघा, और वंक्षणको पीड़ित करतीहुई योनिको दूषित कर-देती है। इसको प्राक्चरणा कहते हैं॥ ३४ ॥

१ "मांस्त्वन्या" इति भाष्यादत्रापि मांसादेशः। मांस-पाकः सर्वजः स्यात्स हि सर्वत्र वेदनः। इति पाठान्तरम्।

उदावृत्ताके लक्षण ।

वेगोदावर्तनाद्योनिं प्रपीडयति मारुतः ।
सा फेनिलं रजः कृच्छ्रादुदावृत्तं विमुञ्चति ।
इयं व्यापदुदावृत्ता ॥ ३५ ॥–

वेगोंके रोकनेसे और उनके उदवर्तन होजानेसे जब वायु योनिको प्रपीडन करती है तो वह झाग-दार उदावृत्त रजको कठिनतासे त्यागती है । इस योनिव्यापदको उदावृत्ता कहते हैं ॥ ३५ ॥

जातघ्नीके लक्षण ।

–जातघ्नी तु यदाऽनिलः ।
जातं जातं सुतं हन्ति रौक्ष्याद्दुष्टार्तवोद्भवम् ३६।

जब कुपितवायु दुष्टार्त्तवसे उत्पन्नहुई रूक्षताके कारण पैदा होते होते पुत्रको मार देती है। इस व्यापदको जातघ्नी कहते हैं ॥ ३६ ॥

अन्तर्मुखीके लक्षण ।

अत्याशितायाः विषमं स्थितायाः सुरते मरुत् ।
अन्नेनोत्पीडितो योनेःस्थितः स्रोतसि वक्रयेत्।
सास्थिमांसं मुखं तीव्ररुजमन्तर्मुखीति सा ३७॥

बहुत भोजन करनेके अनन्तर विषम स्थितिमें मैथुन करनेसे अन्नसे उत्पीडितहुई वायु योनिके स्रोतमें स्थित होकर अस्थि और मांस सहित योनिके मुखको टेढ़ा कर देती है इसको अन्तर्मुखी कहते है ॥ ३७ ॥

सूचीमुखीके लक्षण ।

वातलाहारसेविन्यां जनन्यां कुपितोऽनिलः ।
स्त्रियो योनिमणुद्वारां कुर्यात्सूचीमुखीति सा ३८

पुत्र जननेके अनन्तर वातल आहारके अधिक सेवनसे कुपितहुई वायु योनिके द्वारको अत्यन्त छोटा बना देती है। इसको सूचीमुखी योनि कहते हैं॥ ३८॥

शुष्काख्याके लक्षण ।

वेगरोधादृतौ वायुर्दुष्टो विण्मूत्रसंग्रहम् ।
करोति योनेः शोषं च शुष्काख्या–
–साऽतिवेदना ॥ ३९ ॥

ऋतुके समय मलमूत्रादि वेग रोकनेसे वायु विष्ठा और मूत्रके संग्रहको कर देता है तथा योनिशोष कर देता है तब अतिवेदना होती है इसको शुष्का योनि कहते है ॥ ३९॥

वामिनीके लक्षण ।

षडहात्सप्तरात्राद्वा शुक्रं गर्भाशयान्मरुत् ।
वमेत्सरुङ् नीरुजो वा यस्याः सा वामिनी–
–मता ॥ ४० ॥

छः दिन अथवा ७ दिनके अन्तर पर जब वायु गर्भाशयसे पीड़ाके साथ अथवा विना पीड़ाके शुक्रको निकालती रहती है तो इस स्त्रीकी योनिको वामिनी कहते है ॥ ४० ॥

षंढास्त्रीके लक्षण।

योनौ वातोपतप्तायां स्त्रीगर्भे बीजदोषतः ।
नृद्वेषिण्यस्तनी च स्यात्षण्ढसंज्ञाऽनुपक्रमा ४१

वातसे उपतप्त योनिमें तथा गर्भमें बीजदोषके होनेसे स्त्री नरद्वेषिणी अर्थात् नरकी इच्छा न रखने-वाली और स्तनरहित होजाती है । इस स्त्रीको षंढा कहते हैं और यह असाध्य होती है ॥ ४१ ॥

महायोनिके लक्षण ।

दुष्टो विष्टभ्य योन्यास्यं गर्भकोष्ठं च मारुतः ।
कुरुते विवृतां स्रस्तां वातिकीमिव दुःखिताम्।
उत्सन्नमांसां तामाहुर्महायोनिं महारुजाम्४२॥

दुष्टवायु योनिके मुख और गर्भकोष्ठको रोक कर योनिको खुले मुखवाली, ढीली, वातिकीयोनिकी तरह दुखनेवाली और ऊपरको उठेहुए मांसवाली बना देती है, इसमें अत्यन्तपीड़ा होती है ऐसी योनिको महायोनि कहते हैं ॥ ४२ ॥

पैत्तिकी योनिव्यापदके लक्षण ।

यथास्वैर्दूषणैर्दुष्टं पित्तं योनिमुपाश्रितम् ।
करोति दाहपाकोषापूतिगन्धज्वरान्विताम् ।
भृशोष्णभूरिकुणपनीलपीतासितार्तवाम् ।
सा व्यापत्पैत्तिकी ॥ ४३ ॥–

सर्वरोगनिदानादि अध्यायमें कहेहुए पित्तके प्रकोप-करनेवाले दूषणोंसे दुष्टहुई पित्त योनिमें स्थित होकर दाह, पाक, पूतिगन्ध और ज्वरादिकोंको उत्पन्नकर देती है । तथा योनिमेंसे निरन्तर उष्ण, बहुत मुर्देकीसी गन्धवाला नीला, पीत और कालेवर्णका आर्त्तव बहता है; ऐसी योनिव्यापदको पैत्तिकी कहते है ४३॥

रक्तयोनिके लक्षण।

–रक्तयोन्याख्यासृगतिस्रुतेः॥४४॥

जिस योनिमेंसे अत्यन्त रक्तका स्राव हो उसको रक्तयोनि कहते है॥ ४४॥

श्लैष्मिकी योनिके लक्षण।

कफोभिष्यन्दिभिः क्रुद्धःकुर्याद्योनिमवेदनाम्।
शीतलां कण्डुलां पाण्डुपिच्छिलां तद्विधस्रुतिम्
सा व्यापच्छ्लैष्मिकी॥ ४५॥–

अभिष्यन्दि पदार्थोंके अधिक सेवन करनेसे क्रुद्ध हुआ कफ योनिको वेदनारहित, शीतल, खुजलीयुक्त, पाण्डुवर्णकी और पिच्छिल बना देता है तथा योनिमेंसे पाण्डुवर्णका पिच्छिल स्राव होता है॥ ४५॥

लोहितक्षयायोनिके लक्षण।

–वातपित्ताभ्यां क्षीयते रजः।
सदाहकार्श्यवैवर्ण्यं यस्यां सा लोहितक्षया॥४६॥

जिस योनिमें वात और पित्तके कारण रक्त क्षीण होजाय तथा दाह, कृष्णवर्ण और विवर्णता हो उसको लोहितक्षया योनि कहते हैं॥ ४६॥

परिप्लुतायोनिके लक्षण।

पित्तलाया नृसंवासे क्षवथूद्गारधारणात्।
पित्तयुक्तेन मरुता योनिर्भवति दूषिता।
शूना स्पर्शासहा सार्तिर्नीलपीतास्रवाहिनी।
बस्तिकुक्षिगुरुत्वातीसारारोचककारिणी।
श्रोणिवंक्षणरुक्तोदज्वरकृत्सा परिप्लुता॥४७॥

यदि पित्तप्रकृतिवाली स्त्री नरसे संभोग करतीहुई छींक और डकारके वेगको रोक लेती है तो पित्त युक्त वायुसे योनि दूषित होजाती है. तब योनि सूजनयुक्त, स्पर्शका सहन न कर सकनेवाली, पीडायुक्त और नीले और पीत रक्तका स्रावकरनेवाली होजाती है। तथा बस्ति और कुक्षिमें भारीपन, अतीसार, अरोचक, कमर और वंक्षणमें पीड़ा, तोद और ज्वरको उत्पन्न करदेती है; इस योनिको परिप्लुतायोनि कहते हैं ४७॥

उपप्लुतायोनिके लक्षण।

वातश्लेष्मामयव्याप्ता श्वेतपिच्छिलवाहिनी।
उपप्लुता स्मृता योनिः॥ ४८॥–

वातकफके रोगोंसे व्याप्त श्वेत और पिच्छिल स्राव करनेवाली योनि उपप्लुता कही जाती है॥ ४८॥

विप्लुता योनिके लक्षण।

–विप्लुताख्या त्वधावनात्।
सञ्जातजन्तुःकण्डूला कण्ड्वा चातिरतिप्रिया॥

मैथुन आदिके अनन्तर योनिको न धोनेसे कृमि उत्पन्न होजाते हैं और इस योनिमें खुजली होती है तथा मैथुनकी अत्यन्त इच्छा होती है; इसको विप्लुता योनि कहते हैं॥ ४९॥

कार्णिका योनिके लक्षण।

अकालवाहनाद्वायुः श्लेष्मरक्तविमूर्छितः।
कर्णिकां जनयेद्योनौ रजोमार्गनिरोधिनीम्।
सा कर्णिनी॥ ५०॥–

अकाल प्रवाहण करने (किनछने) से वायु कफ और रक्तसे मिश्रित होकर योनिमें रजके मार्गको रुद्ध-करदेनेवाली कार्णिकाको उत्पन्न कर देती है; इसको कार्णिका कहते हैं॥ ५०॥

सान्निपातिकी योनिके लक्षण।

–त्रिभिर्दोषैर्योनिगर्भाशयाश्रितैः।
यथास्वोपद्रवकरैर्व्यापत्सा सांनिपातिकी॥५१॥

तीनों दोष गर्भ और योनिके आश्रित होकर अपने२ उपद्रवोंको करते हैं; इस व्यापत्को सान्निपातिकी कहते हैं॥ ५१॥

उपसंहार।

इति योनिगदा नारी यैः शुक्रं न प्रतीच्छति।
ततो गर्भं न गृह्णाति रोगांश्चाप्नोति दारुणान्।
असृग्दरार्शोगुल्मादीनाबाधांश्चानिलादिभिः

ये योनिरोग कथन कर दिये हैं इनसे युक्त योनि शुक्रको ग्रहण नहीं करती तथा गर्भको ग्रहण नहीं करती और असृग्दर, अर्श, गुल्मादि दारुण रोगोंको तथा वात आदि दोषोंसे जनित विविध पीडाओंको प्राप्त होती है॥ ५२॥

इति श्री वाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्या-ख्यायां गुह्यरोगविज्ञानीयो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।
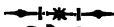
अथाऽतो गुह्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अब हम गुह्यरोगोंकी चिकित्साको कथन करते हैं ।

उपदंश रोगकी चिकित्सा ।

मेढ्रमध्ये सिरां विध्येदुपदंशे नवोत्थिते ।
शीतां कुर्यात् क्रियां शुद्धिं विरेकेण विशेषतः ।
तिलकल्कघृतक्षौद्रैर्लेपः पक्के तु पाटिते ॥ १ ॥

उपदंशरोग यदि नवीन हो तो प्रथम शिश्नेन्द्रियके मध्यकी सिराको वेधन करना चाहिये तदनन्तर शीतल क्रियायें करनी चाहिये तथा वमन विरेचनादि द्वारा विशेष शुद्धि करना चाहिये ।

यदि उपदंश पक गया हो तो विरेचनसे विशेष शोधन करनेके अनन्तर पकेहुए उपदंशको पाटन करके उसपर तिलकल्क घृत और मधुका लेप करे ॥ १ ॥

जम्ब्वाम्रसुमनोनीपश्वेतकाम्बोजिकाङ्कुरान् ।
शल्लकीबदरीबिल्वपलाशातिनिशोद्भवाः ॥२॥
त्वचः क्षीरिद्रुमाणां च त्रिफला च जले पचेत् ।
स क्वाथः क्षालनं तेन पक्वं तैलं च रोपणम् ॥ ३ ॥

जामुनके अंकुर, आमके अंकुर, चमेलीके कोंपल, नीले अशोककी कोंपल, सफेद खदिरके अंकुर, शल्लकी वृक्षकी छाल, बेरीकी छाल, बिल्वकी छाल, पलाशकी छाल, तिनिसकी छाल, वटकी छाल, अश्वत्थकी छाल, गूलरकी छाल, प्लक्षकी छाल, वेतसकी छाल और त्रिफला इन सबको जलमें पकाकर क्वाथ करे । इस क्वाथसे उपदंशके व्रणोंको धोनेसे और इन्हीं द्रव्योंके कल्क और क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ तैल लगानेसे उपदंशके व्रण नष्ट होजाते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

तुत्थगैरिकलोध्रैलामनोह्वालरसाञ्जनैः ।
हरेणुपुष्पकासीससौराष्ट्रीलवणोत्तमैः ।
लेपः क्षौद्रयुतैः सूक्ष्मैरुपदंशव्रणापहः ॥ ४ ॥

नीलाथोथा, गेरु, पठानीलोध, इलायची, मनशिल, हरताल, रसौत, हरेणु, पुष्पकासीस, फिटकिरी और सेंधानमक इनको बारीक पीसकर मधुमें मिलाकर लेपकरनेसे उपदंशके व्रण नष्ट होजाते हैं ॥ ४ ॥

कपाले त्रिफला दग्धा सघृता रोपणं परम् ॥५॥

मिट्टीके कपालमें त्रिफलेको दग्धकर घृतमें मिलाय उपदंशके व्रणोंपर लगानेसे व्रण नष्ट होजाते हैं ॥ ५ ॥

सामान्यं साधनमिदं प्रतिदोषं तु शोफवत् ॥६॥

यह उपदंशकी सामान्य चिकित्सा कथन करदी विशेष चिकित्सा प्रतिदोष शोथरोगके अनुसार करना चाहिये ॥ ६ ॥

न च याति यथा पाकं प्रयतेत तथा भृशम् ।
पक्वैः स्नायुसिरामांसैः प्रायो नश्यति हि ध्वजः ७

उपदंशरोग इस प्रकार परिपाकको प्राप्त न हो ऐसा यत्न करना चाहिये अर्थात् उपदंशके व्रणोंको उत्पन्न होते ही नष्ट करदेना चाहिये. अन्यथा उपदंश विशेष परिपाकको प्राप्त होकर स्नायु सिरा और मांस सहित परिपाकको प्राप्त होकर शिश्नेन्द्रियको भी नष्ट करदेता है ॥ ७ ॥

लिंगार्शकी चिकित्सा ।

अर्शसां छिन्नदग्धानां क्रिया कार्योपदंशवत् ८

लिंगार्शको छेदन करके उपदंशरोगके समान ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

सर्षपिकाकी चिकित्सा ।

सर्षपा लिखिताः सूक्ष्मैः कषायैरवचूर्णयेत् ।
तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेद् व्रणरोपणम् ॥
क्रियेयमवमन्थेऽपि रक्तं स्राव्यं तथोभयोः॥९॥

सर्षपिकारोगको शस्त्रसे लेखन करके ऊपर दोतीन श्लोकमें कहेहुये जामुनके अंकुरादि द्रव्योंके सूक्ष्म चूर्णको बुरकावे तथा उन्हीं द्रव्योंसे सिद्धकियेहुए व्रणरोपणकरनेवाले तैलको लगावे इससे सर्षपिकाके व्रण नष्ट होजाते है ।

यही क्रिया अवमंथरोगमें भी करनी चाहिये । शिश्नेन्द्रियमें होनेवाले सर्षपिका और अवमंथरोगमें सिरावेधनकर रक्त निकालना हितकारी होता है॥९॥

कुम्भिकाकी चिकित्सा ।

कुम्भीकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे ।
तिन्दुकत्रिफलारोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥

नवीन कुम्भिकामें कुम्भिकाका रक्त निकाल देना

चाहिये । यदि कुम्भिका पकगयी हो तो उसको शोधन करके अर्थात् पाटनकर पूय आदि दोष निकाल देनेके अनन्तर तिन्दुक, त्रिफला और पठानीलोध इनका लेप अथवा इनसे सिद्धकियाहुआ तैल लगाकर व्रणको रोपण करे ॥

अलजीकी चिकित्सा ।

अलज्यां सुतरक्तायामयमेव क्रियाक्रमः ॥१०॥

अलजीरोगमें भी रक्त निकालनेके अनन्तर कुम्भिकाके समान ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥

उत्तमा पिटिकाकी चिकित्सा ।

उत्तमाख्यां तु पिटिकां संछिद्य बडिशोद्धृताम् ।
कल्कैश्चूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ११

उत्तमा नामक पिटिकाको छेदन करके बड़िश यंत्रसे निकालदेवे तदनन्तर दूसरे तीसरे श्लोकमें इसी अध्यायमें कहेहुए जामुनके अंकुरादि द्रव्योंके सूक्ष्म कल्कको मधु मिलाकर लेप करे ॥ ११ ॥

पुष्करिका और संव्यूढपिटिकाके चिकित्सा ।

क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करव्यूढयोर्हितः १२॥

पुष्करिका और संव्यूढ पिटिकामें पित्तविसर्पमें कहीहुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

त्वक्पाक और स्पर्शहानिकी चिकित्सा ।

त्वक्पाके स्पर्शहान्यां च सेचयेद्-

त्वक्पाक और स्पर्शहानिरोगमें आगे कहेहुए बलातैलको कोष्ण करके सेचन करे ।

मृदितरोगकी चिकित्सा ।

-मृदितं पुनः ।
बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ १३॥

और मृदितरोगमें भी कोष्णकियेहुए बलातैलसे सेचनकरे तथा मधुर द्रव्योंके सुखोष्ण कल्कसे उपनाह स्वेद करे ॥ १३ ॥

अष्ठीलिकाकी चिकित्सा ।

अष्ठीलिकां हृते रक्ते श्लेष्मग्रंथिवदाचरेत्॥१४॥

अष्ठीलिकारोगमें रक्तनिकालनेके अनन्तर कफकी ग्रन्थिके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १४ ॥

निवृत्तरोगकी चिकित्सा ।

निवृत्तं सर्पिषाऽभ्यज्य स्वेदयित्वोपनाहयेत् ॥
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सुस्निग्धैःशाल्वणादिभिः१५
स्वेदयित्वा ततो भूयः स्निग्धं चर्म समानयेत् ॥
मणिं प्रपीड्य शनकैः प्रविष्टे चोपनाहनम् ॥
मणौ पुनः पुनः स्निग्धं भोजनं चात्रशस्यते१६

निवृत्तनामक शिश्नरोगमें घृतसे चिकनाकर स्वेदन करके तीन दिन अथवा पांच दिन शाल्वणादिगणके द्रव्योंका कल्ककर उस कल्कको स्निग्धकरके उपनाह स्वेद करते रहना चाहिये. तदनन्तर पुनः स्वेदन करके चर्मको मणीके ऊपर लेआना चाहिये' तथा धीरे धीरे मणी (सोपारी) को पड़देके अन्दर प्रवेश करे तथा फिर भी वार वार घृतसे स्निग्धकर उपनाह स्वेद करे और इस पुरुषको स्निग्ध भोजन करते रहना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

अवपाटिकाकी चिकित्सा ।

अयमेव प्रयोज्यः स्यादवपाट्यामपि क्रमः १७

यही विधि अर्थात् निवृत्त (निवर्तितचर्म) रोगके समान स्नेहन, उपनाहस्वेद आदि क्रिया अवपाटिका रोगमें भी करनी चाहिये ॥ १७ ॥

निरुद्धरोगकी चिकित्सा ।

नाडीमुभयतो द्वारां निरुद्धे जतुना सृताम् ।
स्नेहाक्तां स्रोतसि न्यस्य सिञ्चेत्स्नेहैश्चलापहैः ॥
त्र्यहात्त्र्यहात्स्थूलतरां न्यस्य नाडीं विवर्धयेत्।
स्रोतोद्वारमसिद्धौ तु विद्वान् शस्त्रेण पाटयेत् ।
सेवनीं वर्जयन् युंज्यात्सद्यःक्षतविधिं ततः १८

निरुद्धरोग (मूत्रमार्गका छिद्र छोटा होना) में दोनों ओर छिद्रवाली नाडीयन्त्र लेकर लाखका रस लगाकर तथा तैलसे स्निग्ध करके नाडीयन्त्रको मूत्रमार्गसे शिश्नेन्द्रियमें प्रवेश करे और फिर वातनाशक तैलसे सेचनकरे. यह नाडीयन्त्र तीसरे तीसरे दिन पहलेसे दूसरा किञ्चित् स्थूल लेकर मूत्रद्वारमें प्रवेश करते रहना चाहिये । ऐसा करनेसे मूत्रस्रोतका निरुद्धद्वार खुलजाता है । यदि इस उपायसे भी निरुद्धरोग निवृत्त न हो तो सेवनीको बचाकर शस्त्र द्वारा निरुद्धस्थानको पाटनकर सद्यःक्षतके समान चिकित्सा करे ॥ १८ ॥

प्रथितरोगकी चिकित्सा ।

ग्रथितं स्वेदितं नाड्या स्निग्धोष्णै-
-रुपनाहयेत् ॥ १९ ॥

ग्रथितरोगमें नाडीसे स्वेदन करनेके अनन्तर स्निग्ध और उष्ण द्रव्योंसे उपनाह स्वेद करे ॥ १९ ॥

शतपोनककी चिकित्सा ।

लिम्पेत्कषायैःसक्षौद्रैर्लिखित्वा शतपोनकम् २०

शिश्नेन्द्रिके शतपोनकरोगमें प्रथम शस्त्रसे शतपोनकको लेखनकरके फिर दूसरे तीसरे श्लोकमें कहे हुए जामुन आदि द्रव्योंके कल्कमें मधु मिलाकर लेप करे २०

शोणितार्बुदकी चिकित्सा ।

रक्तविद्रधिवत्कार्या चिकित्सा शोणितार्बुदे २१

शोणितार्बुद नामक लिंगरोगमें रक्तविद्रधिके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २१ ॥

लिङ्गरोगोंकी सामान्य चिकित्सा ।

व्रणोपचारं सर्वेषु यथावस्थं प्रयोजयेत्॥२२॥

सब प्रकारके लिंगरोगोंमे कषायद्रव्योंसे धोना और व्रणनाशक तैल आदि यथादोष प्रयोगकर व्रणको निवृत्त करदेना चाहिये. तथा व्रणरोगके समान ही सब उपचार करना चाहिये ॥ २२ ॥

स्त्रीके योनिरोगोंकी सामान्य चिकित्सा ।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित् ।
स्नेहनस्वेदबस्त्यादि वातजासु विशेषतः ॥२३॥
नहि वातादृते योनिर्वनितानां प्रदुष्यति ।
अतो जित्वा तमन्यस्य कुर्याद्दोषस्य भेषजम् ॥

स्त्रीके योनिरोगोंमें स्नेहन, स्वेदन, उत्तरवस्ति आदि सब क्रियायें वातनाशक करनी चाहिये । वातकी योनिमें तो विशेषरूपसे वातनाशक स्नेहन आदि करना चाहिये ।

क्योंकि वातप्रकोपके विना स्त्रीकी योनि दूषित नहीं होती इस कारण प्रथम वायुको जीतकर ही दूसरे दोषकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २३ ॥ २४ ॥

योनिव्यापद रोगकी चिकित्सा ।

पाययेत बलातैलं मिश्रकं सुकुमारकम् ।
स्निग्धस्विन्नां तथा योनिं दुःस्थितां-
-स्थापयेत्समाम ॥
पाणिनोन्नमयेज्जिह्मां संवृतां व्यधयेत्पुनः २५
प्रवेशयेन्निःसृतां च विवृतां परिवर्तयेत् ।
स्थानापवृत्ता योनिर्हि शल्यभूता स्त्रियो भवेत्॥

योनिव्यापदरोगमें स्त्रीको प्रथम बलातैल पिलाना चाहिये अथवा मिश्रक या सुकुमारघृत पिलाना चाहिये । तदनन्तर योनिको स्निग्ध और स्वेदन करके यदि वह अपने स्थानसे हटकर टेढी होगयी हो तो उसको यथास्थान सीधी कर स्थापन करे । यदि नीचेको गिर गयी हो तो उसको हाथसे ऊपरको करके यथास्थान स्थापन करे. यदि उसका मुख बन्द हो तो उसको वेधन कर नाडीयंत्र द्वारा ठीक करे. यदि बाहर निकल आयी हो तो यथास्थान स्थापन करे । यदि आवर्तित होगयी हो तो परिवर्तित कर सीधीकरे. क्योंकि, अपने स्थानसे उलटी या हटीहुई योनि स्त्रीके लिये शल्यके समान कष्टदायक होती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

कर्मभिर्वमनाद्यैश्च मृदुभिर्योजयेत्स्त्रियम् ॥
सर्वतःसुविशुद्धायाः शेषं कर्म विधीयते ।
बस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपपिचुधारणम् ॥ २७॥

स्त्रीके योनिरोगोंमें प्रथम मृदु वमन विरेचन कराकर शरीरके सर्वतः शुद्ध होनेपर वस्ति, अभ्यंग, परिषेक, प्रलेप और पिचु धारण आदि शेषकर्म करना चाहिये ॥ २७ ॥

काश्मर्य्यादि घृत ।

काश्मर्यत्रिफलाद्राक्षाकासमर्दनिशाद्वयैः ।
गुडूचीसैर्यकाभीरुशुकनासापुनर्नवैः ॥ २८ ॥
परूषकैश्च विपचेत्प्रस्थमक्षसमैर्घृतात् ।
योनिवातविकारघ्नं तत्पीतं गर्भदं परम् ॥ २९॥

काश्मरी, हरड, बहेडा, आंवला, द्राक्षा, कसौंदी, हलदी, दारुहलदी, गिलोय, कालाबांसा, शतावरी और सोनापाठा, पुनर्नवा और परूषकादिगणके द्रव्योंको एक एक कर्ष लेकर इनसे एक प्रस्थ घृतको सिद्ध करे यह घृत पीनेसे योनिमें होनेवाले योनिविस्रंसनादि सम्पूर्ण वातविकार नष्ट होते हैं तथा इस घृतके पीनेसे स्त्री गर्भको धारण करती है यह घृत परमगर्भप्रद है ॥ २८ ॥ २९ ॥

वचोपकुंचिकाजाजीकृष्णावृषकसैन्धवम् ।
अजमोदायवक्षारशर्कराचित्रकान्वितम् ॥३०॥
पिष्ट्वा प्रसन्नयाऽऽलोड्य खादेत्तद्घृतभर्जितम्।
योनिपार्श्वार्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये।३१॥

वच, कलौंजी, जीरा, कालाजीरा, पीपल, बांसा, सेंधानमक, अजमोद, यवक्षार, खांड और चित्रक इनको बारीक पीसकर प्रसन्नामें घोलकर घृतमें भर्जित करे। इसके खानेसे योनिशूल, पार्श्वशूल, हृद्रोग, गुल्म और अर्शरोग निवृत्त होजाते है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

योनिशूलकी चिकित्सा ।

वृषकं मातुलुङ्गस्य मूलानि मदयन्तिकाम् ।
पिबेन्मद्यैः सलवणैस्तथा कृष्णोपकुञ्चिके।३२

वांसा, विजौरेकी जड़, मदयन्ती, पीपल और काला जीरा इनको लवण मिलाकर मद्यके साथ पीवे तो योनिविस्रंसनादिक और योनिशूल शमन होजाते है ॥३२॥

रास्नाश्वदंष्ट्रावृषकैः शृतं शूलहरं पयः ।
गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचनम् ॥३३॥

रास्ना,गोखुरू और बांसा इन तीनोंसे सिद्ध किया-हुआ दूध पीनेसे योनिशूल दूर होजाता है ।

गिलोय, त्रिफला और दन्तीके क्वाथसे योनिको सेचन करे तो योनिशूल दूर होता है ॥ ३३ ॥

नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः ।
तैलात्प्रसाधिताद्धार्यः पिचुर्योनौ रुजापहः ३४

तगर, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, कूठ, सेंधानमक और देवदारु इनके कल्कसे सिद्धकियेहुए तैलमें रूईका फोहा भिगोकर योनिमें रखनेसे योनिशूल दूर होता है ॥ ३४ ॥

पित्तके योनिरोगोंकी चिकित्सा ।

पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ।
शीताः पित्तजितः कार्याःस्नेहनार्थं घृतानि च॥

पित्तके योनिरोगोंमे पित्तके जीतनेवाले शीतलसेचन अभ्यंग और पिचु धारण करना चाहिये. तथा स्नेहन करनेकेलिये घृतका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३५ ॥

शतावर्य्यादि घृत ।

शतावरीमूलतुलाचतुष्कात्क्षुण्णपीडितात् ।
रसेन क्षीरतुल्येन पाचयेत घृताढकम् ॥ ३६ ॥
जीवनीयैः शतावर्या मृद्वीकाभिः परूषकैः ।
पिष्टैः प्रियालैश्चाक्षांशैर्मधुकद्विबलान्वितैः ॥३७
सिद्धशीते तु मधुनः पिप्पल्याश्च पलाष्टकम् ।
शर्कराया दशपलं क्षिपेल्लिह्यात्पिचुं ततः ॥३८
योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नं वृष्यं पुंसवनं परम् ।
क्षतं क्षयमसृक्पित्तं कासं श्वासं हलीमकम् ३९
कामलां वातरुधिरं विसर्पं हृच्छिरोग्रहम् ।
अपस्मारार्दितायाममदोन्मादांश्च नाशयेत् ४०

तत्कालाकृष्ट-शतावरीकी जडें चार तुला (वीस सेर) कूटकर उनका स्वरस निकाले इस स्वरसमें समान भाग दूध मिलावे तथा चार सेर घृत मिलावे तथा जीवनीयगणके द्रव्य, शतावरी, द्राक्षा, फालसे चिरौंजी, मुलहठी, बला और अतिबाला, ये प्रत्येक एक एक तोला लेकर कल्क करके मिलावे फिर घृतपाकविधिसे घृत सिद्ध करे. इस घृतको शीतल करके इसमें आठपल मधु, आठ पल पीपल, और दश पल मिश्री मिलावे. इसमेंसे नित्य एक तोला चाटनेसे योनिरोग, मासिकरजोविकार और वीर्यदोष नष्ट होते है। यह घृत परमवीर्यवर्धक और पुंसवनके करनेवाला है. यह घृत नित्य सेवन करनेसे क्षत, क्षय, रक्तपित्त, खांसी, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्रोग, शिरोग्रह, अपस्मार, अर्दितवात, अंत्रायाम, बाह्यायाम, मद और उन्मादको नष्ट करता है ॥ ३६-४० ॥

एवमेव पयःसर्पिर्जीवनीयोपसाधितम् ।
गर्भदं पित्तजानां च रोगाणां परमं हितम्॥४१॥

इसी प्रकार दूध और जीवनीयगणके द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत गर्भको उत्पन्नकरनेवाला है और पित्तके रोगोंको दूर करनेमें परम हितकारी है ॥ ४१ ॥

बलास्नेह ।

बलाद्रोणद्वयक्वाथे घृततैलाढकं पचेत् ।
क्षीरे चतुर्गुणे कृष्णाकाकनासासितान्वितैः ४२
जीवन्तीक्षीरकाकोलीस्थिरावीरर्द्धिजीवकैः।

पयस्याश्रावंणीमुद्गपीलुमाषाख्यपर्णिभिः ॥
वातपित्तामयान् हत्वा पानात् गर्भं दधाति तत्

बलाके दो द्रोण(३२)सेर काथमें चार सेर घृत और तेल मिलावे । और सोलह सेर दूध मिलावे तथा पीपल, काकनासा, मिसरी, जीवन्ती, क्षीरकाकोली, शालपर्णी, काकोली, ऋद्धि, जीरा, क्षीरविदारी, गोरखमुण्डी, मुद्गपर्णी, पीलुपर्णी और माषपर्णी ये प्रत्येक एक एक पल ले कल्क करके मिलावे इन सबको तैलपाक विधिसे पकाकर स्नेह सिद्ध करे. यह बलास्नेह पीनेसे वातपित्तके योनिरोगोंको नष्टकर गर्भके देनेवाला है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

रक्तयोन्यामसृग्वर्णैरनुबन्धमवेक्ष्य च ।
यथादोषोदयं युंज्यात् रक्तस्थापनमौषधम् ४४

रक्तकी योनिमें रक्तके साथ वातादिदोषोंका अनुबन्ध देखकर यथादोष औषध प्रयोगकर रक्तको स्थापन करे ॥ ४४ ॥

पुष्यानुग चूर्ण ।

पाठा जम्ब्वाम्रयोरस्थि शिलोद्भेदं रसाञ्जनम् ॥
अंबष्ठां शाल्मलीपिच्छां समङ्गां वत्सकत्वचम्।
बाह्लीकाबिल्वातिविषारोध्रतोयदगैरिकम्॥४६॥
शुण्ठीमधूकमाचीकरक्तचन्दनकट्फलम् ।
कट्वङ्गवत्सकानन्ताधातकीमधुकार्जुनम्॥४७॥
पुष्ये गृहीत्वा संचूर्ण्य सक्षौद्रं तन्दुलाम्भसा ।
पिबेदर्शःस्वतीसारे रक्तं यश्चोपवेश्यते ॥ ४८ ॥
दोषा जन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत्।
योनिदोषं रजोदोषं श्यावश्वेतारुणासितम् ।
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥४९॥

पाठा, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, पाषाणभेद, रसौत, अंबष्ठा, शाल्मलीके फूलों या छालकी पिच्छा(लवाब), मंजीठ, कुड़ाकी छाल,केशर, बिल्व, अतीस, लोध, नागरमोथा, गेरू, सोंठ, महुवा, मोंई (फांस वृक्षका फल), लालचन्दन, कायफल,सोनापाठा, इन्द्रजव, शारिवा, धावेके फूल,मुलहठी,अर्जुनवृक्षकी छाल इन सब द्रव्योंको पुष्यनक्षत्रमें एकत्रितकर चूर्ण करे; इस चूर्णको मधु मिलाकर तंडुलजलसे पीवे तो इससे अर्श, अतिसार,रक्तातिसार और बालकोंको पेटमें कृमिहोनेसे जो विकार होते है वे सब नष्ट होते हैं । तथा योनिदोष, रजोदोष, योनिसे काला, श्वेत, लाल और नीला रक्तादि स्राव होना इन सबको यह चूर्ण दूर करता है, यह आत्रेयभगवान्का कथन कियाहुआ पुष्यानुगनाम चूर्ण इन सब रोगोंके दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ४५-४९ ॥

कफदूषित योनिरोगकी चिकित्सा ।

योन्यां बलासदुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम्५०

कफदूषित योनिरोगमें सब रूक्ष और उष्ण औषधका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५० ॥

धातक्यामलकीपत्रस्रोतोजमधुकोत्पलैः ।
जम्ब्वाम्रसारकासीसरोध्रकट्फलतिन्दुकैः।५१
सौराष्ट्रिकादाडिमत्वगुदुम्बरशलाटुभिः ।
अक्षमात्रैरजामूत्रे क्षीरे च द्विगुणे पचेत् ॥५२॥
तैलप्रस्थं तदभ्यङ्गपिचुबस्तिषु योजयेत् ।
शूनोत्तानोन्नता स्तब्धा पिच्छिलास्रावणी तथा
विप्लुतोपप्लुता योनिःसिद्ध्येत्सस्फोट-
-शूलिनी ॥ ५३ ॥

धावेके फूल, आंवले, पत्रज, जलवेतस, मुलहठी, कमल, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, कासीस, पठानीलोध. कायफल, तेन्दु, फिटकिरी, दाडिमकी छाल और गूलरके कच्चे फल ये प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । यह कल्क एक सेर तेल, दो सेर गोमूत्र और दो सेर दूध इन सबको मिलाकर तैल सिद्ध करे । यह तैल योनिरोगोंमें अभ्यंग, पिचुधारण और उत्तरवस्तिमें प्रयोग करे. इससे योनिकी सूजन, उत्तानयोनि, उन्नतयोनि, स्तब्धयोनि, पिच्छिलयोनि, स्राविणीयोनि, विप्लुतायोनि, उपप्लुतायोनि तथा स्फोटयुक्त और शूलयुक्त योनिके सब विकार दूर होकर योनि रोगरहित होजाती है ॥ ५१-५३ ॥

यवाश्ममभयारिष्टं सीधुतैलं च शीलयेत् ।
पिप्पल्ययोरजःपथ्याप्रयोगांश्च-
-समाक्षिकान् ॥ ५४ ॥

योनिरोगोंमें यवाम, अभयारिष्ट, सीधु और तैलका अभ्यास रखना चाहिये ।

तथा पीपल, लोहभस्म और हरीतकी इनको मधुमें मिलाकर सेवन करना चाहिये ॥ ५४ ॥

कासीसं त्रिफला कांक्षीसाम्रजम्बवस्थिधातकी।
पैच्छिल्ये क्षौद्रसंयुक्तश्चूर्णो वैशद्यकारकः५५॥

कासीस, हरड़, बहेड़ा, आंवला, फिटकिरी, आमकी गुठली और जामुनकी गुठली इनका चूर्ण मधुमें मिलाकर पिच्छिलयोनिमें लगानेसे योनिको विशद (स्वच्छ) करदेता है ॥ ५५ ॥

स्तंभन चूर्ण ।

पलाशधातकीजम्बूसमङ्गामोचसर्जजः ।
दुर्गन्धे पिच्छिले क्लेदे स्तम्भनश्चूर्ण इष्यते५६॥

पलाशके फूल, धावेके फूल, जामुनकी छाल, मंजीठ, मोचरस और राल इनके चूर्णको योनिमें रखनेसे योनिकी दुर्गन्धता पिच्छिलता और क्लेदको दूर करदेता है इसको स्तम्भन चूर्णकहते हैं ॥ ५६ ॥

आरग्वधादिवर्गस्य कषायः परिषेचनम् ॥५७॥

आरग्वधादिगणके क्वाथको योनिमें सेचन करनेसे योनिके क्लेद और पिच्छिलता दूर होते है ॥ ५७ ॥

स्तब्धयोनिकी चिकित्सा ।

स्तब्धानां कर्कशानां च कार्यं मार्दवकारकम् ।
धारणं वेसवारस्य कृसरापायसस्य च ॥ ५८ ॥

स्तब्धयोनि और कर्कशयोनिमें वेसवार, कृसरा (खिचड़ी) और खीर धारण करनेसे स्तब्धता और कर्कशता दूर होती है ॥ ५८ ॥

दुर्गन्धितयोनिकी चिकित्सा ।

दुर्गन्धानां कषायः स्यात्तैलं वा कल्क एव वा ।
चूर्णो वा सर्वगन्धानां पूतिगन्धापकर्षणः५९॥

दुर्गंधित योनिमें दुर्गंधनाशक सम्पूर्ण गन्ध द्रव्योंका चूर्ण अथवा क्वाथ या तैल अथवा कल्क धारण करना चाहिये; इससे योनिकी दुर्गंधि दूर होजाती है॥५९॥

दोषभेदसे योनिचिकित्सा ।

श्लेष्मलानां कटुप्रायाः समूत्रा बस्तयो हिताः ।
पित्ते समधुकक्षीरा वाते तैलाम्लसंयुताः॥६०॥

कफकी योनिमें—कटुप्रधान द्रव्य और गोमूत्र मिला कर वस्ती (उत्तरवस्ती) करना चाहिये ।

पित्तके योनिरोगमें--मुलहठी और दूध मिलाकर वस्तिकर्म करना चाहिये ।

वातके योनिरोगमें--तैल और अम्ल मिलाकर वस्ति करना चाहिये ॥ ६० ॥

सन्निपातसमुत्थायाःकर्म साधारणं हितम्६१॥

सन्निपातके योनिरोगमें--त्रिदोषनाशक द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ६१ ॥

एवं योनिषु शुद्धासु गर्भं विन्दन्ति योषितः ।
अदुष्टे प्राकृते बीजे जीवोपक्रमणे सति ॥ ६२॥

इस प्रकार दोषरहित शुद्धयोनि होनेपर दोषरहित शुद्धवीर्यके संयोगसे जीवके संसर्ग होजानेसे स्त्री गर्भको धारण करलेती हैं ॥ ६२ ॥

पञ्चकर्मविशुद्धस्य पुरुषस्यापि चेन्द्रियम् ।
परीक्ष्य वर्णैर्दोषाणां दुष्टं तद्घ्नैरुपाचरेत् ॥६३॥

पुरुषको भी पंचकर्मसे शुद्ध शरीर होनेके अनन्तर उसके इन्द्रिय और वीर्यकी परीक्षा करके यदि वीर्य दुष्ट हो तो वर्णादिकोंसे दोषका ज्ञानकर तद्दोषनाशक द्रव्योंसे वीर्यकी चिकित्सा करे ॥ ६३ ॥

फलघृत ।

मञ्जिष्ठाकुष्ठतगरत्रिफलाशर्करावचाः ।
द्वे निशे मधुकं मेदा दीप्यकः कटुरोहिणी ।
पयस्याहिङ्गुकाकोलीवाजिगन्धाशतावरीः ।६४
पिष्ट्वाक्षांशैर्घृतप्रस्थं पचेत्क्षीराच्चतुर्गुणम् ।
योनिशुक्रप्रदोषेषु तत्सर्वेषु च शस्यते ॥ ६५ ॥
आयुष्यं पौष्टिकं मेध्यं धन्यं पुंसवनं परम् ।
फलसर्पिरिति ख्यातं पुष्पे पीतं फलाय यत्६६
म्रियमाणप्रजानां च गर्भिणीनां च पूजितम् ।
एतत्परं च बालानां ग्रहघ्नं देहवर्धनम् ॥ ६७ ॥

मंजीठ, कूठ, तगर, हरड़, बहेड़ा, आंवला, खांड, वच, हलदी, दारुहलदी, मुलहठी, मेदा, अजवायन, कटुकी, क्षीरकाकोली, हींग, काकोली, असगंधा और शतावरी ये प्रत्येक द्रव्य एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे, यह कल्क एक सेर गोघृत और चार सेर दूध

मिलाकर घृत सिद्ध करे. यह घृत सब प्रकारके योनि-रोगोंमें और सब प्रकारके वीर्यदोषोंमें दोषनिवृत्त्यर्थ श्रेष्ठ माना गया है। यह घृत आयुके बढ़ानेवाला, पुष्टि-कारक, मेधाजनक, धन्य और परमपुंसवनकारक है; इस घृतको स्त्री संतानके लिये पुष्यनक्षत्रमें पीवे यह फल घृत वंध्याको पुत्र देनेवाला है. यदि इस घृतको मृत-वत्सा स्त्री गर्भावस्थामें पीवे तो दीर्घायुवाली सन्तान होती है; यदि यह घृत बालक पीवे तो उसके बालग्रह दूर होकर शरीर पुष्ट होता है ॥ १४--१७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तर-स्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपि-काभाषाव्याख्यायां गुह्यरोगप्रतिषेधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो विषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अब हम विषविकारकी चिकित्साको कथन करते है ।

विषकी उत्पत्ति ।

मथ्यमाने जलनिधावमृतार्थं सुरासुरैः ।
जातः प्रागमृतोत्पत्तेः पुरुषो घोरदर्शनः ॥१॥
दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रो हरित्केशोऽनलेक्षणः ।
जगद्विषण्णं तं दृष्ट्वा तेनाऽसौ विषसंज्ञितः ॥२॥
हुंकृतो ब्रह्मणा मूर्ती ततः स्थावरजङ्गमे ।
सोऽध्यतिष्ठन्निजं रूपमुज्झित्वा वञ्चनात्मकम् ॥३॥

जब सुर और असुरोंने अमृतकी प्राप्तिके लिये समुद्रका मंथन किया तब अमृतकी उत्पत्तिसे पहले एक घोरदर्शनवाला और दीप्त तेजवाला चार बडे बडे दांतोंवाला हरे केशोंवाला और अग्नि जैसी आखोंवाला पुरुष उत्पन्न हुआ। उस पुरुषको देखकर जगत् विषा-दको प्राप्त हुआ, इसलिये उसकी विष संज्ञा हुई। जब उसको नष्ट करनेके लिये ब्रह्माने हुंकार किया तब वह ठग स्वभाववाला अपने रूपको नष्ट करके स्थावर और जंगम मूर्तिओंमें स्थित होगया ॥ १–३ ॥

स्थावर विष ।

स्थिरमस्युल्बणं वीर्ये यत्कन्देषु प्रतिष्ठितम् ।
कालकूटेन्द्रवत्साख्यशृंगीहालाहलादिकम् ॥४॥

इनमें स्थिर विष कंदादिकोंमें प्रतिष्ठित होकर अत्यन्त तीक्ष्णवीर्यवाला होगया. वह कन्दविष कालकूट इन्द्रनाभि, वत्सनाभ, सात्तुक, बालक, कर्दमक, वैरा-टविष, मुस्तविष, शृंगियाविष, पुंडरीकविष, महाविष, हालाहल, मर्कटकविष, कासपुष्पविष, तैलविष आदि भेदसे अनेक प्रकारके होते है। (इनके अतिरिक्त पुष्पविष, फलविष तथा आखुपाषाणादि विष अनेक प्रकारके स्थावर विष होते है) ॥ ४ ॥

जंगम विष ।

सर्पलूतादिदंष्ट्रासु दारुणं जङ्गमं विषम् ।

जगमविषोंमें सांप, लूता, वृश्चिक और अनेक दुष्ट जंतुओंके दंष्ट्रा आदिमें प्रवेश कर अनेक जङ्गम-विष कहे जाते है। जो दन्त आदिद्वारा मनुष्यके शरी-रमें प्रवेश कर हानिकारक होते हैं।

प्राकृत विष ।

स्थावरं जङ्गमं चेति विषं प्रोक्तमकृत्रिमम् ॥५॥

स्थावर और जङ्गम ये दो प्रकारके विष अकृत्रिम कहे जाते हैं ॥ ५ ॥

गरविष ।

कृत्रिमं गरसंज्ञं तु क्रियते विविधौषधैः ।
हन्ति योगवशेनाशु चिराच्चिरतराच्च तत् ।
शोफपाण्डूदरोन्माददुर्नामादीन् करोति च ॥६॥

जो अनेक प्रकारके औषधियोंके योगसे कृत्रिम विष बनाया जाता है उसको गर कहते हैं. यह गर संज्ञक विष योगवशसे शीघ्र अथवा कुछ कालमें या बहुत देरमें सूजन, पाण्डु, उदररोग, उन्माद और अर्श आदि रोगोंको उत्पन्न कर देता है अथवा शरीरको नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥

तीक्ष्णोष्णरूक्षविशदं व्यवाय्याशुकरं लघु ।
विकाशि सूक्ष्ममव्यक्तरसं विषमपाकि च ॥७॥

विषं तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष विशद, व्यवायी, आशु-

१ तत्सर्वं विषं तीक्ष्णादिगुणं स्यात् गुणनिर्देशनादस्य रौक्ष्या-द्वातमुष्णत्वात् पित्तं करोतीति ज्ञाप्यते । ननु रौक्ष्यादिभिर्गुणै र्वायोः कोपो ना युज्यते. रौक्ष्यादीनां गुणत्वाद्वायोश्च द्रव्यत्वात् ।

कारी, लघु, विकाशी, सूक्ष्म, अव्यक्तरसवाला और विषमपाकी होता है ॥ ७ ॥

ओजसो विपरीतं तत् तीक्ष्णाद्यैरन्वितं गुणैः ।
वातपित्तोत्तरं नृणां सद्यो हरति जीवितम् ॥८॥

वह विष तीक्ष्ण, उष्ण आदि गुणोंके कारण और वातपित्त प्रधान होनेसे ओजके विपरीत होता है इस कारण मनुष्योंके जीवनको शीघ्र नष्ट कर देता है॥८॥

विषं हि देहं संप्राप्य प्राग्दूषयति शोणितम्॥९
कफपित्तानिलांश्चानु समं दोषान्सहाशयान् ।
ततो हृदयमास्थाय देहोच्छेदाय कल्पते॥१०॥

विष देहमें प्राप्त होकर प्रथम रक्तको दूषित कर देताहै. तदनन्तर कफ, पित्त और वायुको दूषित कर उनके साथ मिलकर उनके आशयोंको भी दूषित कर देता है. फिर हृदयमें प्राप्त होकर देहको नष्ट करनेवाला होजाता है अर्थात् मृत्युको प्राप्त करता है॥९॥१०॥

विषके सात वेगोंके लक्षण ।

स्थावरस्योपयुक्तस्य वेगे पूर्वे प्रजायते ।
जिह्वायाः श्यावता स्तम्भो मूर्च्छा-
-त्रासः क्लमो वमिः ॥ ११ ॥

जब मनुष्यके शरीरमें स्थावर विष प्राप्त हो तो उसके प्रथमवेगमें जिह्वाकी श्यामता, स्तंभ, मूर्च्छा, त्रास, क्लम और वमन ये लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥

द्वितीये वेपथुः स्वेदो दाहः कण्ठे च वेदना ।
विषं चामाशयं प्राप्तं कुरुते हृदि वेदनाम्॥१२॥

विषके दूसरे वेगमें जब वह आमाशयमें प्राप्त होता है तो कम्प, स्वेद, दाह, कण्ठमें वेदना और हृदयमें पीड़ा इन लक्षणोंको करता है ॥ १२ ॥

तालुशोषस्तृतीये तु शूलं चामाशये भृशम् ।
दुर्बले हरिते शूने जायते चास्य लोचने ॥
पक्वाशयगते तोदहिध्माकासान्त्रकूजनम्॥१३॥

विषके तीसरे वेगमें तालुका सूखना, आमाशयमें अत्यन्त शूल, नेत्रोंका दुर्बल, हरितवर्ण युक्त और सूजन युक्त होना ये लक्षण होते हैं ।

यदि विष पक्वाशयमें पहुंचजाय तो इन लक्षणोंके अतिरिक्त तोद हिचकी, खांसी और अन्त्रकूजन भी होता है ॥ १३ ॥

चतुर्थे जायते वेगे शिरसश्चातिगौरवम्॥ १४ ॥

विषके चौथे वेगमें शिरमें अत्यन्त भारीपन होजाता है ॥ १४ ॥

कफप्रसेको वैवर्ण्यं पर्वभेदश्च पञ्चमे ।
सर्वदोषप्रकोपश्च पक्वाधाने च वेदना ॥ १५ ॥

विषके पांचवें वेगमें मुखसे लारका गिरना, विवर्णता, पर्वभेद, सब दोषोंका एक ही कालमें प्रकोप और पक्वाशयमें शूलका होना ये लक्षण होते हैं॥१५

षष्ठे संज्ञाप्रणाशश्च सुभृशं चातिसार्यते ।
स्कन्धपृष्ठकटीभङ्गो भवेन्मृत्युश्च सप्तमे ॥१६॥

विषके छठें वेगमें ज्ञानका नाश होजाना, अधिक दस्तोंका आना ये लक्षण होते हैं ।

विषके सातवें वेगमें कन्धे, पीठ और कमरका भङ्ग होजाना तथा मृत्युको प्राप्त होजाना ये लक्षण होते है ॥ १६ ॥

यथाक्रम विषकी चिकित्सा ।

प्रथमे विषवेगे तु वान्तं शीताम्बुसेचितम् ।
सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्तमगदं पाययेद् द्रुतम् १७॥

विषके प्रथम वेगमें वमन कराकर शीतल जलसे सेचन करके मधु और घीमें मिलाया हुआ अगद शीघ्र पिला देना चाहिये । (अगद इसी अध्यायमें आगे कथन करते हैं) ॥ १७ ॥

द्वितीये पूर्ववद्वान्तं विरिक्तं चाऽनुपाययेत् ।
तृतीयेऽगदपानं तु हितं नस्यं तथाञ्जनम्॥१८॥

विषके दूसरे वेगमें भी प्रथम वेगके समान वमन

क्रमः--वायोर्ये रौक्ष्यादयो गुणास्तेषामेव विषस्थै रौक्ष्यादिभिर्गुणैर्वृद्धिः क्रियते तेच वायोरात्मभूतः। तन्नाशे वायोर्नाशः स्यात् यथा तंतुनाशे पटनाशः। तस्माद्युक्तः पवनस्य रौक्ष्यादिभिर्गुणैः प्रकोपः एवं पित्तेऽपि योज्यम् । कट्वम्लोष्णादिकथनमपि विषस्याव्यक्तरसत्वमनेकरससंभवादेकस्याऽपि च व्यक्तस्याऽनुपलब्धेः व्यवायित्वं चास्य प्रागेवाऽखिलकायस्यव्याप्तेः । तथा अपाकि विषस्य हि मंत्रतंत्राभ्यामन्तरेण पाकाभावात् पक्वेप्यन्ने विषस्यापक्वस्यैवोपलब्धेः अतएव शमितमपि किंचित्कारणं प्राप्य पुनः कुप्यति-इत्यरुणदत्ताः ।

कराकर फिर विरेचन करावे । तदनन्तर उसी प्रकार अगद पिलावे ।

विषके तीसरे वेगमें अगद पिलाना और विषनाशक नस्य देना तथा विषनाशक अञ्जन डालना हितकारी होता है ॥ १८ ॥

चतुर्थे स्नेहसंयुक्तमगदं प्रतियोजयेत् ।
पञ्चमे मधुकक्काथमाक्षिकाभ्यां युतं हितम् १९.

विषके चौथे वेगमें घृतयुक्त अगद पिलादेना चाहिये ।

विषके पांचवें वेगमें मुलहठीके क्काथ और मधुमें मिलाकर अगद पिलाना चाहिये ॥ १९ ॥

षष्ठेऽतिसारवात्सिद्धिः-
-रवपीडस्तु सप्तमे ।
मूर्ध्नि काकपदं कृत्वासासृग्वा पिशितं क्षिपेत्२०

विषके छठें वेगमें अतीसारके समान चिकित्सा करनी चाहिये । तथा अवपीडक नस्य देना चाहिये और अगदका प्रयोग करना चाहिये ।

विषके सातवें वेगमें अवपीडक नस्य देना चाहिये और इसके शिरमें शस्त्रसे काकपदके समान आकार करके उसमें अन्यजीवका शुद्ध मांस और रक्त डालना चाहिये ॥ २० ॥

विषनाशक यवागू ।

कोशातक्यग्निकः पाठा सूर्यवल्ल्यमृताभयाः ।
शेलुः शिरीषः किणिही हरिद्रे क्षौद्रसाह्वया२१
पुनर्नवे त्रिकटुकं बृहत्यौ सारिवे बला ।
एषां यवागूं निर्यूहे शीतां सघृतमाक्षिकाम् ।
युञ्ज्याद्वेगान्तरे सर्वविषघ्नीं कृतकर्मणः ॥२२॥

जङ्गली कड़वी तोरी, चित्रक, पाठा, सूर्य्यवल्ली, गिलोय, हरीतकी, लिसोढ़ा, सिरिस, किणिही, हल्दी, दारुहल्दी, वटमाक्षिक, श्वेतपुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, सोंठ, मिरच, पीपल, छोटी कटेली, बड़ीकटेली श्वेत शारिवा, कृष्ण शारिवा और बला इनके क्काथमें बनायीहुई यवागू शीतलकर मधु और घृत मिलाकर पहले और दूसरे वेगमें पिलावे । ये सब विषोंको नाश करनेवाली है । यह यवागू वमनादिसे शुद्ध काय होनेपर पिलानी चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

तद्वन्मधूकमधुकपद्मकेसरचन्दनैः ॥ २३ ॥

इसीके समान महुवा, मुलहठी, पद्मकेशर और चन्दनके क्काथसे बनायीहुई यवागू वमनादिके अनन्तर पिलाना हितकारी होता है ॥ २३ ॥

चन्द्रोदय अगद ।

अञ्जनं तगरं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।
फलिनी त्रिकटु स्पृक्का नागपुष्पं सकेसरम्२४
हरेणु मधुकं मांसी रोचना काकमालिका ।
श्रीवेष्टकं सर्जरसः शताह्वा कुंकुमं बला ॥२५॥
तमालपत्रतालीसभूर्जोशीरनिशाद्वयम् ।
कन्योपवासिनी स्नाता शुक्लवासा मधुद्रुतैः२६॥
द्विजानभ्यर्च्य तैः पुष्ये कल्पयेदगदोत्तमम् ।
वैद्यश्चात्र तदा मन्त्रं प्रयतात्मा पठेदिमम्॥२७॥
नमः पुरुषसिंहाय नमो नारायणाय च ।
यथासौ नाभिजानाति रणे कृष्णपराजयम्२८।
एतेन सत्यवाक्येन अगदो मे प्रसिद्ध्यतु ।
नमो वैडूर्यमाते हुलुहुलु रक्ष मां-
-सर्वविषेभ्यः ॥ २९ ॥
गौरि गान्धारि चण्डालि मातंगि स्वाहा ।
पिष्टे च द्वितीयो मन्त्रः-
ॐहारिमायि स्वाहा ॥ ३० ॥
अशेषविषवेतालग्रहकार्मणपाप्मसु ।
मरकव्याधिदुर्भिक्षयुद्धाशनिभयेषु च ॥ ३१॥
पाननस्याञ्जनालेपमणिबन्धादियोजितः ।
एष चन्द्रोदयो नाम शान्तिः स्वस्त्ययनं-
-परम् ॥ ३२ ॥

कालासुर्मा, तगर, कूठ, हरिताल, मनशिल, प्रियंगु, सोंठ, मिर्च, पीपल, असवर्ग, नागकेशर, सुवर्णभस्म, हरेणु, मुलहठी, बालछड़, गोरोचन, मकोह, श्रीवेष्ट, राल, सौंफ, केशर, बला, तमालपत्र, तालीसपत्र, भोजपत्र, खस, हल्दी और दारुहल्दी इन सब औषधियोंको कुंवारी कन्या स्नानकर श्वेत वस्त्रोंको

धारणकर और व्रत रखकर ब्राह्मणोंका पूजन करनेके अनन्तर पुष्यनक्षत्रमें मधु मिलाकर इस उत्तम अगदको बनावे। जिस समय यह कन्या इस अगदको बनाती हो उस समय जितात्मा पवित्र वैद्य इस मंत्रको पढ़े—"नमः पुरुषसिंहाय नमो नारायणाय च। यथासौ नाभिजानाति रणे कृष्ण पराजयम्॥ एतेन सत्यवाक्येन अगदो मे प्रसिद्ध्यतु। नमो वैडूर्यमाते हुलुहुलु रक्ष मां सर्वविषेभ्यः। गौरि गांधारि चंडालि मातंगि स्वाहा॥" कन्याके अगद पीसते समय यह मन्त्र पढ़ता रहे; जब अगद पिसकर तैयार होजाय तो॥ "ॐ हरिमायि स्वहा" यह मन्त्र पढकर अगदको वैद्य ग्रहण करे। यह चन्द्रोदय नामक अगद संपूर्ण विष, वेताल, ग्रह, कृत्या, पाप, मारकव्याधि, दुर्भिक्ष, युद्ध और अशनि (बिजली) भयके समय पीनेमें, नस्यमें, अञ्जनमें, आलेपमें, हाथपर बान्ध लेनेमें प्रयोग करनेसे शान्ति और परम कल्याणके देनेवाला है॥ २४-३२॥

दूषीविषके लक्षण।

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा
दावाग्निवातातपशोषितं वा।
स्वभावतो वा सुगुणैर्न युक्तं
दूषीविषाख्यां विषमभ्युपैति॥ ३३॥

जो विष बहुत पुराना होगया हो या विषघ्न औषधियोंसे हतवीर्य होगया हो, या दावाग्नि, वायु, आतप आदिसे शोषण होगया हो, अथवा स्वभावसे ही अपने सपूर्णगुणोंसे युक्त न हो तो इसकी दूषी संज्ञा होजाती है॥ ३३॥

दूषीविषके विकार।

वीर्याल्पभावादविभाव्यमेत-
त्कफावृतं वर्षगणानुबन्धि।
तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो
दुष्टास्त्ररोगी तृडरोचकार्तः॥ ३४॥
मूर्छन् वमन् गद्गदवाक् विमुह्यन्
भवेच्च दूष्योदरलिङ्गजुष्टः।
आमाशयस्थे कफवातरोगी
पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी॥ ३५॥

यह दूषीविष खायाजानेपर अल्पवीर्य होनेके कारण लक्षित न होकर (पहचाना न जाकर) जब कफसे आवृत होकर सालभर तक पेटमें पड़ा रहता है तब इससे पीड़ित मनुष्यको दस्त आते हैं, वर्ण बदल जाता है, दुष्ट रक्तके रोगोंसे युक्त हो जाता है तृषा और अरोचकसे पीड़ित होता है। तथा मूर्च्छा, वमन, गद्गदवाणी और मोहको प्राप्त होताहुआ उन लक्षणोंसे युक्त होजाता है जो दूषीविषयुक्त उदरवालेमें होते है। यदि दूषीविष आमाशयमें स्थित हो तो कफवातके रोगोंको उत्पन्न करता है। यदि पक्वाशयमें स्थित हो तो वातपित्तके रोगोंको उत्पन्न करता है॥ ३४॥ ३५॥

भवेन्नरो ध्वस्तशिरोरुहाङ्गो
विलूनपक्षः स यथा विहङ्गः।
स्थितं रसादिष्वथवा विचित्रान्
करोति धातुप्रभवान् विकारान्॥ ३६॥

जब दूषीविष रसादि धातुओंमें स्थित होजाता है तब अनेक प्रकारके रसादि धातुओंमें होनेवाले रोगोंको उत्पन्न करदेता है. तथा इस मनुष्यके शिरके बाल गिर जाते है। अङ्ग ढील पड़ जाते है। जैसे पक्ष काटदेनेसे पक्षीकी दुर्दशा होती है इस विचारेकी भी वैसी ही दशा होती है॥ ३६॥

दूषीविषका प्रकोप काल।

प्राग्वाताजीर्णशीताभ्रदिवास्वप्नाहिताशनैः।
दुष्टं दूषयते धातूनतो दूषीविषं स्मृतम्॥ ३७॥

पूर्वकी वायुके लगनेसे, अजीर्णसे, शीतसे, आकाश बादलोंसे घिरनेपर, दिनमें सोनेसे, और अहित पदार्थोंके खानेसे वह शरीरमें छिपा हुआ दूषीविष प्रकोपको प्राप्त हो धातुओंको दूषित करता है इस कारण इसको दूषीविष कहते हैं॥ ३७॥

दूषिविषकी चिकित्सा।

दूषीविषार्तं सुस्विन्नमूर्ध्वं चाधश्च शोधितम्।
दूषीविषारिमगदं लेहयेन्मधुना प्लुतम्॥ ३८॥

दूषीविषसे पीड़ित मनुष्यको यथार्थ स्वेदन करके वमन विरेचन करावे । शुद्ध शरीर होनेपर दूषीविषारि अगद मधुमें मिलाकर चटावे ॥ ३८ ॥

दूषीविषारि अगद ।

पिप्पल्यो ध्यामकं मांसी रोध्रमेला सुवर्चिका।
कुटंनटं नतं कुष्ठं यष्टी चन्दनगैरिकम् ॥
दूषीविषारिर्नाम्नाऽयं न चान्यत्रापिवार्यते॥३९

पीपल, ध्यामकतृण, जटामांसी, लोध, इलायची, सज्जीखार, श्योनाक, तगर, कूठ, मुलहठी, चन्दन और गेरू इन सबको पीसकर अगद बनावे । यह दूषीविषारिनामक अगद दूषीविषको नाश करता है । तथा अन्य विषोंमें भी इस अगदका प्रयोग किया जाता है ॥ ३९ ॥

विषाक्त तीरादिसे विद्धके लक्षण ।

विषादिग्धेन विद्धस्तु प्रताम्यति मुहुर्मुहुः॥४०॥
विवर्णभावं भजते विषादं चाशु गच्छति ।
कीटैरिवावृतं चास्य गात्रं चिमिचिमायते॥४१॥
श्रोणिपृष्ठशिरःस्कन्धसंधयः स्युः सवेदनाः ।
कृष्णदुष्टास्रविस्रावी तृण्मूर्छाज्वरदाहवान् ४२॥
दृष्टिकालुष्यवमथुश्वासकासकरः क्षणात् ।
आरक्तपीतपर्यन्तः श्यावमध्योतिरुग्व्रणः॥४३
श्वयते पच्यते सद्यो गत्वा मांसं च कृष्णताम् ।
प्रक्लिन्नं शीर्यतेऽभीक्ष्णं सपिच्छिलपरिस्रवम्४४

विषसे लिपेहुए तीर आदिके लगनेसे मनुष्य बार बार मोहको प्राप्त होता है, शरीरका वर्ण बदल जाता है, मनुष्य शीघ्र विषादको प्राप्त होता है, जैसे चीटियोंसे व्याप्त हो इस प्रकार उसके संपूर्ण शरीरमें चिमचिमाहट होती है, श्रोणी, पीठ, शिर, कन्धे और सन्धियोंमें पीड़ा होती है, विद्धस्थानसे काले और दुष्ट रक्तका स्राव होता है, तथा प्यास, मूर्छा, दाह, नेत्रोंमें कालुष्य, वमन, श्वास और खांसी ये क्षणमें उत्पन्न होजाते हैं; उस विषाक्तशस्त्रसे विद्धस्थानका व्रण किनारेसे लालिमा लियेहुए पीतवर्णका होता है, मध्यमेंसे श्यामवर्णका और अत्यन्त पीड़ायुक्त होता है, यह व्रण चमक करके युक्त शीघ्र पकजाता है; तब इसका मांस काले वर्णका होजाता है, व्रणमेंसे निरन्तर गाढा और क्लेदयुक्त स्राव होता है; रहता व्रण विदीर्ण होता रहता है ॥ ४०-४४ ॥

विषाक्तशस्त्राभिहतकी चिकित्सा ।

कुर्यादमर्मविद्धस्य हृदयावरणं द्रुतम् ।
शल्यमाकृष्य तप्तेन लोहेनानु दहेद्व्रणम्॥४५॥
अथवा मुष्ककश्वेतासोमत्वक्तास्रवल्लितः ।
शिरीषाद् गृध्रनख्याश्च क्षारेण प्रतिसारयेत्४६
शुकनासाप्रतिविषाव्याघ्रीमूलैश्च लेपयेत् ।
कीटदष्टचिकित्सां च कुर्यात्तस्य यथार्हतः ।
व्रणे तु पूतिपिशिते क्रिया पित्तविसर्पवत् ४७॥

विषयुक्त शस्त्रसे मर्म्मरहितस्थानमें वेधन होनेपर भी प्रथम इस मनुष्यके घृतपानादिद्वारा हृदयकी शीघ्र रक्षा करे । तथा शल्यको निकालकर तप्त लोहसे शल्यके व्रणको दग्ध करदेवे ।

अथवा मोखा, श्वेत अपराजिता, करंजुआ, ताम्रवल्ली, सिरिस और गृध्रनखी इनसे सिद्ध कियेहुए क्षार (तेजाब) से प्रतिसारण करे । तथा सोनापाठा, अतीस और कटेलीकी जड़का लेप करे ।

तथा कीटदष्टपुरुषकी चिकित्साके समान इसकी संपूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये ।

यदि व्रण दुर्गन्धित मांसयुक्त होजावे तो पित्तके विसर्पके समान चिकित्सा करनी चाहिये॥४५-४७॥

गरविषके लक्षण ।

सौभाग्यार्थं स्त्रियो भर्त्रे राज्ञे वाऽरातिचोदिताः।
गरमाहारसंपृक्तं यच्छन्त्यासन्नवर्तिनः ॥ ४८ ॥

मूर्खस्त्रियें अपने पतिको वशमें रखनेकेलिये कानका मल आदि आहारमें मिलाकर अपने पतिको खिला-देती है । अथवा शत्रुओंसे प्रेरित कियेहुए राजाके दुष्ट नौकर आहार आदिमें शत्रुओंका दियाहुआ गर (कृत्रिम विष) दे देते हैं ॥ ४८ ॥

नानाप्राण्यङ्गशमलविरुद्धौषधिभस्मनाम् ।
विषाणां चाल्पवीर्याणां योगो गर इतिस्मृतः४९

यह अनेक प्राणियोंके अंग, विष्ठा और विरुद्ध

औषधियोंकी भस्म तथा अल्पवीर्यवाले विषोंके योगसे बनायेहुए विषको गर कहते है ॥ ४९ ॥

गरके विकार।

तेनपांडुःकृशोऽल्पाग्निःकासश्वासज्वरार्दितः५०
वायुना प्रतिलोमेन स्वप्नचिन्तापरायणः।
महोदरयकृत्प्लीही दीनवाग्दुर्बलोऽलसः ॥५१॥
शोफवान्सततध्मातः शुष्कपादकरः क्षयी।
स्वप्ने गोमायुमार्जारनकुलव्यालवानरान् ॥५२॥
प्रायः पश्यति शुष्कांश्च वनस्पतिजलाशयान्।
मन्यते कृष्णमात्मानं गौरो गौरं च कालकः५३
विकर्णनासानयनं पश्येत्तद्विहतेन्द्रियः।
एतैरन्यैश्च बहुभिः क्लिष्टो घोरैरुपद्रवैः॥
गरार्तो नाशमाप्नोति कश्चित्सद्योऽचिकित्सितः॥

इस गरके खानेसे मनुष्य पाण्डुवर्णका, कृश, मन्दाग्निवाला, खांसी श्वास और ज्वरसे पीडित, प्रतिलोमवायुके विकारयुक्त, तथा लेटे रहनेकी इच्छासे युक्त रहता है। इस मनुष्यके शरीरमें उदररोग, यकृत् और प्लीहा बढ़जाते हैं। यह दीन वाणीयुक्त दुर्बल, अलसरोगयुक्त तथा सूजनयुक्त निरन्तर आध्मानयुक्त होजाता है।इसके हाथ पांव सूख जाते हैं। क्षयरोगकेसे लक्षण होजाते है। प्रायः स्वप्नमें श्रृगाल, मार्जार, नकुल और वानरोंको देखता है। तथा स्वप्नमें सूखेहुए वृक्षों और जलाशयोंको देखता है। यदि इसका वर्ण काला हो तो यह अपने आपको दर्पणादिमें गोरा समझने लगजाता है। यदि गौरवर्ण हो तो यह अपने आपको कृष्णवर्णका समझता है। यह अपनी छायाको कान नासिका और नेत्र रहित देखता है। तथा इसकी इन्द्रियें हतप्रायसी होजाती हैं।

यह गरपीड़ित मनुष्य इन उपद्रवों तथा अन्य घोर-उपद्रवोंसे क्लेशित होकर यदि शीघ्र चिकित्सा न कीजाय तो मृत्युको प्राप्त होजाता है ॥५०—५४॥

गरकी चिकित्सा।

गरार्तो वान्तवान् भुक्त्वा तत्पथ्यं पानभोजनम्
शुद्धहृच्छालियेद्धेम सूत्रस्थानविधेः स्मरन्॥५५

गरसे पीडित मनुष्यको वमनादिसे शुद्ध कराकर पथ्य अन्नपान सेवन करातेहुए सूत्रस्थानमें लिखी हुई विधिके अनुसार सुवर्णभस्मका सेवन करावे ॥५५॥

शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं चूर्णं ताप्यसुवर्णयोः।
लेहः प्रशमयत्युग्रं सर्वयोगकृतं विषम् ॥५६॥

सुवर्णमाक्षिक और सुवर्णकी भस्मको शर्करा और शहदमें मिलाकर चाटे तो यह लेह उग्र सर्वयोगज विषको शमन करदेता है ॥ ५६ ॥

गरके उपद्रवोंके यत्न।

मूर्वामृतानतकणापटोलीचव्यचित्रकान् ॥५७॥
वचामुस्तविडङ्गानि तक्रकोष्णाम्बुमस्तुभिः।
पिबेद्रसेन वाम्लेन गरोपहतपावकः ॥ ५८ ॥

मूर्वा, गिलोय, तगर, पीपल, पटोलपत्र, चव्य, चित्रक, बच, नागरमोथा और वायविड़ङ्ग, इनके चूर्णको गरजनित मन्दाग्निवाला मनुष्य तक्र अथवा गरम जल अथवा मस्तु या अम्लरसकी साथ पीवे तो गरसे हुई मन्दाग्नि नष्ट होकर जठराग्नि चैतन्य होजाती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

पारावतामिषशठीपुष्कराह्वं श्रृतं हिमम्।
गरतृष्णारुजाकासश्वासहिध्माज्वरापहम् ॥ ५९

कबूतरका मांस, कचूर और पोहकरमूलको जलमें पकाकर सिद्ध होनेपर इस जलको ठण्ढा करके पीवे तो यह गरजनित प्यास, पीड़ा, खांसी, श्वास हिचकी और ज्वरको दूर करता है ॥ ५९ ॥

विषसंकटके लक्षण।

विषप्रकृतिकालान्नदोषदूष्यादिसङ्गमे।
विषसंकटमुद्दिष्टं शतस्यैकोऽत्र जीवति ॥ ६०॥

विषप्रकृति(पित्तप्रकृति), विषकाल (वर्षाकाल), विषान्न (कोद्रवादि), विषदोष (पित्त), विषदूष्य (रक्त) आदिके एक कालमें संयोग होजानेको विष-संकट कहते है। इस विषसंकटमें गरविषादिसे विषार्त्त मनुष्य सौमेंसे कोई एक ही जीवित रहसकता है॥६०

विषवृद्धिमें हेतु।

क्षुत्तृष्णाघर्मदौर्बल्यक्रोधशोकभयश्रमैः।
अजीर्णवर्चोद्रवतः पित्तमारुतवृद्धिभिः ॥६१॥

तिलपुष्पफलाघ्राणभूबाष्पघनगर्जितैः ।
हस्तिमूषिकवादित्रनिःस्वनैर्विषसंकटैः ॥ ६२ ॥
पुरोवातोत्पलामोदमदनैर्वर्धते विषम् ॥ ६३ ॥

क्षुधा, प्यास, आतप, दुर्बलता, क्रोध, शोक, भय, श्रम, अजीर्ण, अतीसार, पित्तवायुकी वृद्धि, तिलके फल फूलोंकी गन्ध, पृथ्वीकी बाष्प, मेघगर्जन, हस्ती, मूषिका और बाजेका शब्द, विषप्रकृति आदि विषसंकट, पूर्वकी वायु, कमलके फूल, आमोद, प्रमोद और कामेच्छा इन सबसे विषकी वृद्धि होती है ॥ ६१-६३ ॥

विषशमनकाल ।

वर्षासु चांबुयोनित्वात्संक्लेदं गुडवद्गतम् ।
विसर्पति घनापाये तदगस्त्यो हिनस्ति च ।
प्रयाति मन्दवीर्यत्वं विषं तस्माद्घनात्यये ६४॥

वर्षाऋतुमें जलयोनि होनेसे जैसे-गुड़ पिघलकर क्लेदित हो जाता है उसी प्रकार विष भी वर्षाऋतुमें क्लेदित होकर फैलता है फिर कन्याकी संक्रान्तिमें मेघोंके नष्ट होनेपर अगस्त्य ऋषि उदय होकर विषको नष्ट कर देता है; इस कारण शरदऋतुमें विष मन्द-वीर्य होजाता है ॥ ६४ ॥

विषचिकित्सामें वैद्यको उपदेश ।

इति प्रकृतिसात्म्यर्तुस्थानवेगबलाबलम् ।
आलोच्य निपुणं बुद्ध्या कर्मानन्तर-
-माचरेत् ॥ ६५ ॥

इस प्रकार प्रकृति, सात्म्य, ऋतु, स्थान, वेग और बलाबल देखकर बुद्धिमान् वैद्य यथार्थरूपसे विचार करके तदनन्तर चिकित्सा करे ॥ ६५ ॥

कफप्रधानविषकी चिकित्सा ।

श्लैष्मिकं वमनैरुष्णरूक्षतीक्ष्णैः प्रलेपनैः ।
कषायकटुतिक्तैश्च भोजनैः शमयेद्विषम्॥६६॥

कफ प्रधान विषको वमन, उष्ण, रूक्ष और तीक्ष्ण लेपन, तथा कषाय, कटु और तिक्त भोजनोंसे शमन करना चाहिये ॥ ६६ ॥

पित्तप्रधानविषकी चिकित्सा ।

पैत्तिकं स्रंसनैः सेकप्रदेहैर्भृशशीतलैः ।
कषायतिक्तमधुरैर्घृतयुक्तैश्च भोजनैः ॥ ६७ ॥

पित्तप्रधानविषको रेचन कराकर शीतल लेप सेचन आदिकरके तथा घृतयुक्त कषाय, तिक्त और मधुर भोजनोंसे जीतना चाहिये ॥ ६७ ॥

वातप्रधानविषकी चिकित्सा ।

वातात्मकं जयेत्स्वादुस्निग्धाम्ललवणान्वितैः ।
सघृतैर्भोजनैर्लेपैस्तथैव पिशिताशनैः ।
नाघृतं स्रंसनं शस्तं प्रलेपो भोज्यमौषधम् ६८॥

वातप्रधानविषको मधुर, स्निग्ध, अम्ल, लवण और घृतयुक्त भोजनोंसे तथा मधुर स्निग्धादि लेपोंसे, और मांसाशन आदिसे जीतना चाहिये ।

विषविकारोंमें रेचन लेपन, भोजन और औषध विना घृतके नहीं करने चाहिये अर्थात् घृतयुक्त ही करने चाहिये ॥ ६८ ॥

विषोंमें घृतका प्रयोग ।

सर्वेषु सर्वावस्थेषु विषेषु न घृतोपमम् ।
विद्यते भेषजं किंचिद्विशेषात्प्रबलेऽनिले॥६९॥

संपूर्ण विषोंमें और विषकी सम्पूर्ण अवस्थाओंमें घृतके समान कोई भी हितकारी औषधि नहीं वात-प्रधान विषोंमें तो विशेषरूपसे घृत हितकारी होता है ॥ ६९ ॥

दोषभेदसे साध्यासाध्य ।

अयत्नाच्छ्लैष्मिकं साध्यं यत्नात्-
-पित्ताशयाश्रयम ।
सुदुःसाध्यामसाध्यं वा वाताशयगतं-
-विषम् ॥ ७० ॥

कफके आश्रितविष अल्पयत्नसे ही साध्य होते हैं । पित्ताशयगतविष विशेष यत्नसे साध्य होते हैं । और वाताशयगतविष अत्यन्त दुस्साध्य होता है अथवा असाध्य ही होता है ॥ ७० ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषा-व्याख्यायां स्थावरविषप्रतिषेधो नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः।

अथाऽतः सर्पविषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः॥

अब हम सर्पविषोंकी चिकित्साको कथन करते हैं।

सांपोंके संक्षेपसे तीन भेद।

दर्वीकरा मण्डलिनो राजीमन्तश्च पन्नगाः।
त्रिधा समासतो भौमा भिद्यन्ते ते त्वनेकधा।
व्यासतो योनिभेदेन नोच्यंतेऽनुपयोगिनः १॥

पृथ्वीके सांप अनेक प्रकारके होतेहुए भी संक्षेपसे दर्वीकर, मण्डली और राजीमन्त इन तीन भेदोंसे तीन प्रकारके होते हैं।

इन सांपोंकी योनिभेदोंसे विशेष जातियोंका वर्णन यहां उपयोगी न होनेके कारण हम नहीं करते है॥१॥

दर्वीकरआदिसांपोंका विषोंके स्वभाव।

विशेषाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णं स्वादु शीतलम्।
विषं दर्वीकरादीनां क्रमाद्वातादिकोपनम्॥२॥

दर्वीकर सांपोंका विष रूक्ष और कटु तथा वातप्रकोपके करनेवाला होता है। मंडली सांपोंका विष अम्ल और उष्ण तथा पित्तप्रकोपके करनेवाला होता है। राजीमन्त सांपोंका विष स्वादु और शीतल तथा कफके प्रकोपको करनेवाला होता है॥ २॥

दर्वीकरादिसांपोंके अवस्थाभेदसे विष।

तारुण्यमध्यवृद्धत्वे वृष्टिशीतातपेषु च।
विषोल्बणा भवन्त्येते व्यंतरा ऋतुसंधिषु॥ ३॥

दर्वीकरसांपोंका विष तरुणावस्थामें तथा वृष्टिकालमें अधिक बलवान् होता है। मण्डलीसांपोंका विष मध्यावस्थामें तथा ग्रीष्मऋतुमें बलवान् होता है। राजीमन्तसांपोंका विष वृद्धावस्थामें और शीतकालमें बलवान् होता है। जो विजातीय सांप हैं (जो दर्वीकर आदिके संकरसे उत्पन्न होते हैं) उनका विष ऋतुओंकी संधियोंमें बलवान् होता है। (यहां तरुण मध्यादिसे सांपोंकी अवस्थाका निर्देश है)॥ ३॥

दर्वीकरोंके लक्षण।

रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशधारिणः।
फणिनः शीघ्रगतयः सर्पा दर्वीकराः स्मृताः॥४॥

जिन सांपोंके ऊपर रथांग, लांगल, पुष्पाकार-छत्र, स्वस्तिक और अंकुश जैसी आकृतिवाले चिह्न हों, जो फणवाले हों तथा शीघ्र गतिवाले हों उनको दर्वीकर सांप कहते है॥ ४॥

मण्डलीसांपोंके लक्षण।

ज्ञेया मण्डलिनोऽभोगा मण्डलैर्विविधैश्चिताः।
प्रांशवो मन्दगमनाः॥ ५॥-

अल्प भोजनकरनेवाले, अनेकप्रकारके मण्डलोंसे युक्त, शीघ्र अथवा मन्द गतिसे चलनेवाले मण्डली सांप होते हैं॥ ५॥

राजीमन्तोंके लक्षण।

-राजीमन्तस्तु राजिभिः।
स्निग्धा विचित्रवर्णाभिस्तिर्यगूर्ध्वं विचित्रिताः

स्निग्ध और सीधी और तिर्छी विचित्रवर्णोंकी राजियोंसे चित्रित सर्प राजीमंत कहलाते है॥ ६॥

गौधेरके लक्षण।

गोधासुतस्तु गौधेरो विषे दर्वीकरैः समः।
चतुष्पाद्॥ ७॥-

गोधासे उत्पन्न हुआ गौधेर चार पांववाला होता है, इसका विष दर्वीकरोंके विषके समान होता है॥७॥

व्यंतर सांपके लक्षण।

-व्यन्तरान्विद्यादेतेषामेव संकरात्।
व्यामिश्रलक्षणास्ते हि संनिपातप्रकोपनाः॥८॥

इन्हीं दर्वीकर मंडली आदि सांपोंके संकरसे मिले जुले लक्षणोंवाले व्यंतर अर्थात् विजातीय सांप उत्पन्न होते है। इनका विष तीनों दोषोंके प्रकोपको करनेवाला होता है॥ ८॥

सांपोंके काटनेमें हेतु।

आहारार्थं भयात्पादस्पर्शादतिविषात् क्रुधः।
पापवृत्तितया वैराद्देवर्षियमचोदनात्।
दशन्ति सर्पास्तेषूक्तं विषाधिक्यं यथोत्तरम्९॥

आहारके लिये, भयसे, पादस्पर्शसे, अतिविषसे, क्रोधसे, पापवृत्तिसे, वैरसे अथवा देव, ऋषि और यम आदिकी प्रेरणासे सांप काटते है; इनमें उत्तरोत्तर कहेहुए कारणोंसे विषाधिक्य होता है॥ ९॥

आदिष्टात्कारणं ज्ञात्वा प्रतिकुर्याद्यथायथम्॥१०॥

पूर्व कथन कियेहुए आदेशके अनुसार सर्पदंशके कारणोंको जानकर यथायोग्य चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥

व्यंतरकी दुष्टता ।

व्यन्तरः पापशीलत्वान्मार्गमाश्रित्य-
-तिष्ठति ॥ ११ ॥

विजातीय सांप स्वभावसे ही पापशील होनेके कारण मार्गमें बैठकर मनुष्यको काटता है ॥ ११ ॥

दंशके तुण्डाहतादि पांचभेद और उनके साध्यासाध्य भेद ।

यत्र लालापरिक्लेदमात्रं गात्रे प्रदृश्यते ।
न तु दंष्ट्राकृतं दंशं तत्तुण्डाहतमादिशेत् ।
एकं दंष्ट्रापदं द्वे वा व्यालीढाख्यमशोणितम् ।
दंष्ट्रापदे सरक्ते द्वे व्यालुप्तं त्रीणि तानि तु॥१२॥
मांसच्छेदादविच्छिन्नरक्तवाहीनि दंष्ट्रकम्॥१३॥
दंष्ट्रापदानि चत्वारि तद्दष्टनिपीडितम ।
निर्विषं द्वयमत्राद्यमसाध्यं पश्चिमं वदेत् ॥१४॥

जिस जगह जिस काटे हुए स्थानपर केवल लालाका परिक्लेद ही दिखाई पड़ता है और दाँतोंका निशान दिखाई नहीं पड़ता उसको तुण्डाहत दंश कहते हे ।

जिस दंशके स्थानपर रक्त न निकले परन्तु एक या दो दांतोंके निशान हों उसको व्यालीढ दंश कहते है।

यदि रक्तसहित दो दांतोंके निशान हों तो इसको व्यालुप्त कहते है ।

यदि मांस छेदसे विच्छिन्न होकर रक्त वहने लगे उसको दंष्ट्रक कहते हैं ।

यदि दंष्ट्राके पद चार हों उसको दष्टनिपीड़ित कहते हैं ।

इनमें तुण्डाहत और व्यालीढ ये दो निर्विष होते है और व्यालुप्त और दंष्ट्रक कष्टसाध्य होते हैं और अन्तिम अर्थात् दष्टनिपीडित असाध्य होता है १२-१४

विषका प्रवेश ।

विषं नाहेयमप्राप्य रक्तं दूषयते वपुः ।
रक्तमण्वपि तु प्राप्तं वर्धते तैलमम्बुवत् ॥१५॥

सांपका विष जबतक रक्तमें प्रवेश न करे तबतक कोई हानि या विकार नहीं करता, किन्तु अणुमात्र रक्तमें भी यदि इसके विषका प्रवेश होजाय तो वह सम्पूर्ण शरीरमें ऐसे फैल जाता है जैसे पानिपर गिरकर तैलबिन्दु फैल जाता है ॥ १५ ॥

सर्पाङ्गाभिहतके लक्षण ।

भीरोस्तु सर्पसंस्पर्शाद्भयेन कुपितोऽनिलः ।
कदाचित्कुरुते शोफं सर्पाङ्गाभिहतं तु तत्॥१६॥

कभी २ बहुत भयभीत होनेवाले पुरुषके शरीरपर सर्पका स्पर्शमात्र होजानेसे सांपके विना काटे भी उस पुरुषके अतिभयसे कुपित हुआ वायु सूजनको उत्पन्न कर देता है; इसको सर्पांगाभिहतशोथ जानना चाहिये ॥ १६ ॥

शंकाविषके लक्षण ।

दुरन्धकारे विद्धस्य केनचिद्दष्टशंकया ।
विषोद्वेगो ज्वरश्छर्दिर्मूर्छा दाहोऽपि वा भवेत् ।
ग्लानिर्मोहोऽतिसारो वा तच्छङ्का-
-विषमुच्यते ॥१७॥

घोर अन्धकारमें किसी अन्यजंतु आदिसे विद्ध होनेपर जब मनुष्यको सांपसे काटेजानेकी शंका हो जाती है तो उसके शंकायुक्त भयसे उद्वेगको प्राप्त-हुआ विष ज्वर, छर्दी मूर्च्छा, दाह अथवा ग्लानि मोह या अतिसारको उत्पन्न कर देता है; इसको शंका-विष कहते है ॥ १७ ॥

सविषदंशके लक्षण ।

तुद्यते सविषो दंशः कण्डूशोफरुजान्वितः ।
दह्यते ग्रथितःकिञ्चिद्विपरीतस्तु निर्विषः॥१८॥

विषयुक्त जो दंश होता है उसमें तोद, खुजली, सूजन, पीड़ा, दाह और किंचित् जालके समान ग्रथि-तपना होजाता है इससे विपरीत लक्षणवाला अर्थात् तोद आदि रहित निर्विषदंश होता है ॥ १८ ॥

दर्वीकराविषके वेग ।

पूर्वे दर्वीकृतां वेगे दुष्टं श्यावीभवत्यसृक् ।
श्यावता तेन वक्त्रादौ सर्पन्तीव च कीटकाः॥१९॥

दर्वीकरसांपोंके विषके प्रथम वेगमें दुष्ट और

श्यामवर्णके रक्तका स्राव होता है तथा मुख नेत्रादिकोंपर श्यामता आजाती है और शरीरपर चींटियोंका विसर्पण करनासा प्रतीत होता है ॥ १९ ॥

द्वितीये ग्रन्थयो वेगे तृतीये मूर्ध्नि गौरवम्।
दुर्गन्धो दंशविक्लेदश्चतुर्थे ष्ठीवनं वमिः ॥ २० ॥
सन्धिविश्लेषणं तन्द्रा पञ्चमे पर्वभेदनम्।
दाहो हिध्मा च षष्ठे च हृत्पीडा गात्रगौरवम् ॥ २१ ॥
मूर्छा विपाकोऽतीसारः प्राप्य शुक्रं तु सप्तमे।
स्कन्धपृष्ठकटीभङ्गः सर्वचेष्टानिवर्तनम् ॥२२॥

दर्वीकर सांपोंके विषके दूसरे वेगमें शरीरपर ग्रंथियें उत्पन्न होजाती है।

तीसरे वेगमें सिरमें भारीपन मुखसे दुर्गंधिका आना और दंशस्थानका क्लेद युक्त होना ये लक्षण होते है।

चौथे वेगमें मुखसे लार गिरना वमन होना संधियोंका ढीला पड़जाना और तन्द्रा होना ये लक्षण होते है।

पांचवें वेगमें, पर्वभेद दाह और हिचकी उत्पन्न हो जाती है।

छठे वेगमे हृदयमें पीड़ा, अंगोंमें भारीपन, मूर्च्छा, अविपाक और अतिसार होजाते है।

सातवें वेगमें विष वीर्यमें प्राप्त होकर कंधे पीठ और कमरको भंग करदेता है और शरीरकी सम्पूर्ण चेष्टायें निवृत्त होजाती है ॥ २०-२२ ॥

मण्डलीकके ७ विषके वेग।

अथ मण्डलिदष्टस्य दुष्टं पीतीभवत्यसृक्।
तेन पीताङ्गता दाहो द्वितीये श्वयथूद्भवः॥२३॥
तृतीये दंशविक्लेदः स्वेदस्तृष्णा च जायते।
चतुर्थे ज्वर्यते दाहः पञ्चमे सर्वगात्रगः ॥ २४ ॥

मंडलीसांपके काटेहुए मनुष्यके शरीरमें मंडलीसांपके विषका प्रथम वेग होनेपर रक्त दुष्ट और पीला होजाता है उससे सारे अंगोंमें पीलापन होजाता है तथा दाह होती है।

दूसरे वेगमें सूजन उत्पन्न होजाती है।

तीसरे वेगमें दंशस्थानका क्लेद युक्त होना, पसीना और प्यास ये उत्पन्न हो जाते हैं।

चौथे वेगमें ज्वर और पांचवें वेगमें सम्पूर्ण अंगोंमें दाह उत्पन्न हो जाती है।

छठे और सातवें वेगमें सब लक्षण दर्वीकरसांपोंके विषके छठे और सातवें वेगके लक्षणोंके समान लक्षण होजाते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

राजीमन्तोंके विषके ७ वेग।

दष्टस्य राजिलैर्दुष्टं पांडुतां याति शोणितम्।
पाण्डुता तेन गात्राणां द्वितीये गुरुताऽति च ॥
तृतीये दंशविक्लेदो नासिकाक्षिमुखस्रवाः।
चतुर्थे गरिमा मूर्ध्नो मन्यास्तम्भश्च पञ्चमे।
गात्रभङ्गो ज्वरः शीतः शेषयोः पूर्ववद्वदेत् २६॥

राजीमन्त सांपके काटेहुए मनुष्यके शरीरमें इसके विषका प्रथम वेग होते ही रक्त दुष्ट होकर पाण्डुवर्णका होजाता है। इससे संपूर्ण शरीरही पाण्डुवर्णका होजाता है।

इसके दूसरे वेगमें शरीरमें अत्यन्त भारीपन हो जाता है।

तीसरे वेगमें दंशस्थान विक्लेदित होजाता है तथा नासिका नेत्र और मुखसे स्राव होने लगता है।

चौथे वेगमें मस्तकमें भारी पन और मन्यास्तंभ होजाता है. पांचवें वेगमें गात्रभंग, ज्वर और शीत उत्पन्न होजाते हैं।

छठे और सातवेंमें सब लक्षण दर्वीकरसांपके विषके छठे सातवें वेगके समान होते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

कुर्यात्पञ्चसु वेगेषु चिकित्सां न ततः परम्२७

इन तीनों जातिके सांपोंके पांच वेगोंतक तो चिकित्सा करनी चाहिये। छठे और सातवें वेगमें यह विष असाध्य होजाते है ॥ २७ ॥

सांपोंके विषमें न्यूनताके कारण।

जलाप्लुता रतिक्षीणा भीता नकुलनिर्जिताः।
शीतवातातपव्याधिक्षुत्तृष्णाश्रमपीडिताः २८
तूर्णं देशान्तरायाता विमुक्तविषकञ्चुकाः।
कुशौषधीकण्टकवच्चे चरन्ति च काननम्।
देशं च दिव्याध्युषितं सर्पास्तेऽल्पविषा मताः।

जो सांप जलमें डूबे हों अथवा रतिसे क्षीण हों

भयभीत हों या नकुलसे जीतेगये हों अथवा शीत वात आतप व्याधि क्षुधा तृषा और श्रमसे पीड़ित हों या शीघ्रही दूरदेशसे आये हों या जिन्होंने अपने विष और कंचुकीको उसी समय त्याग किये हों या जो सांप कुशा औषधि और कंटकवाले बगीचे या जंगलमें फिरते हों अथवा दिव्यमंत्रादिकोंसे प्रोक्षित कियेगये हों ये सब सर्प ऐसे समयमें न्यूनविषवाले होजाते है ॥ २८॥ २९ ॥

असाध्य दंश ।

श्मशानचितिचैत्यादौ पञ्चमीपक्षसंधिषु ।
अष्टमीनवमीसंध्यामध्यरात्रिंदिनेषु च ॥ ३० ॥
याम्याग्नेयमघाश्लेषाविशाखापूर्वनैर्ऋते ॥
नैर्ऋताख्ये मुहूर्ते च दष्टं मर्मसु च त्यजेत्॥३१॥
दष्टमात्रः सितास्याक्षः शीर्यमाणशिरोरुहः ॥
स्तब्धजिह्वो मुहुर्मूर्छन् शीतोच्छ्वासो न जीवति

श्मशान और चिता आदि स्थानमें पंचमीको पक्षकी संधियोंमें अर्थात् पूर्णिमा और अमावस्या,अष्टमी और नवमीको संध्यामें, मध्यरात्रिके समय, मध्याह्नके समय भरणीनक्षत्र, कृतिकानक्षत्र, मघा, अश्लेषा, विशाखा, पूर्वाषाढ, मूल दोनों कालकी संध्याओंमें और मर्म स्थानमें काटेहुएको असाध्य समझकर त्याग देना चाहिये ।

जिस मनुष्यके साँपके काटेजानेपर तत्काल ही मुख और नेत्र श्वेत होजावें तथा शिरबाल गिरजावें, जीभ अकड़ जावे, वार वार मूर्छा आवे और श्वास शीतल होजावे वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३०-३२ ॥

हिध्मा श्वासो वमिः कासो दष्टमात्रस्य देहिनः ।
जायन्ते युगपद्यस्य स हृच्छूली न जीवति ३३

जिस सांपके काटेहुए मनुष्यको हिचकी, श्वास, वमन, खांसी और हृदयमें शूल ये लक्षण सांपके काटनेके अनन्तर तत्काल एक ही समयमें होजावें वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

फेनं वमति निःसंज्ञः श्यावपादकराननः ।
नासावसादो भङ्गोऽङ्गे विक्लेदः श्लथसंधिता॥३४
विषपीतस्य दष्टस्य दिग्धेनाभिहतस्य च ।
भवन्त्येतानि रूपाणि संप्राप्ते जीवितक्षये ॥३५

जो सांपका काटाहुआ मनुष्य फेनकी वमन करे, संज्ञारहित हो, उसके हाथ, पांव और मुख श्यामवर्णके होगये हों, नासिका बैठ गयी हो, अंग भंग हो गयेहों दष्टस्थानसे क्लेद बहता हो और सन्धिमें शिथिल पड़गयी हों; इन लक्षणोंवाला मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है । यही लक्षण यदि विष पियेहुए मनुष्यके हों या विषाक्त शस्त्रसे अभिहतके हों तो ये लक्षण जीवनके क्षय होनेपर मृत्युके समय होते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

न नस्यैश्चेतना तीक्ष्णैर्न क्षतात्क्षतजागमः ।
दण्डाहतस्य नो राजिः प्रयातस्य यमान्तिकम्

जिस विषग्रस्त मनुष्यको तीक्ष्ण नस्य देनेपर भी चेतना न हो और तीक्ष्णशस्त्रसे काटनेपर भी शरीरमेंसे रक्त नहीं निकले । तथा दण्डसे अभिहत होनेसे शरीरमें डंडेका चिह्न न पड़े तो उस मनुष्यको यमराजके घर पहुंचा हुआ जानना चाहिये ॥ ३६ ॥

साध्यसांपके काटेकीभी अतिशीघ्रचिकित्सोपदेश ।

अतोऽन्यथा तु त्वरया प्रदीप्तागारवद्भिषक् ।
रक्षन् कण्ठगतान् प्राणान् विषमाशु शमं नयेत्

इन असाध्य विषग्रस्तोंके विना अन्य विषग्रस्तोंकी अग्नि लगे हुए घरके समान वैद्य शीघ्र रक्षा करे । तथा उसके कण्ठगत प्राणोंकी शीघ्र रक्षा करताहुआ विषको शीघ्र शमन कर देवे ॥ ३७ ॥

मात्राशतं विषं स्थित्वा दंशे दष्टस्य देहिनः ।
देहं प्रक्रमते धातून् रुधिरादीन् प्रदूषयत् ३८॥

सौ मात्रा गिनने तक विषदष्ट पुरुषके दंशमें यदि

(१) " श्मशानचैत्यवल्मीकयज्ञाश्रयसुरालये ।
चतुष्पथे जलस्थाने जीर्णोद्यानेषु कोटरे ॥
क्षीरद्रुमे निम्बतरौ निर्झरे गिरिगह्वरे ।
चक्रवज्रगदाऽकुन्तात्रिशूलांकजटाधराः ॥
रक्तास्यनयना ये च ते स्युराशीविषोपमाः ।
न तेषु कालनियमो न च वेगेष्वनुक्रमः ॥
मंत्रतन्त्रबलाद्यादि प्रसह्य विनिवर्तनम्॥"

स्थित रहजाय तो इतने समयमें ही रुधिरादि धातुओंको दूषित करताहुआ संपूर्ण देहमें व्याप्त होजाता है॥ ३८

एतस्मिन्नन्तरे कर्म दंशस्योत्कर्तनादिकम् ।
कुर्याच्छीघ्रं यथा देहे विषवल्ली न रोहति ३९॥

इस कारण सौ मात्रासे पहले २ ही इस अल्पकालमें दंशको काटदेना आदि जो क्रिया उचित हो वह शीघ्र करदेना चाहिये जिससे यह विषकी बेल देहमें फैलने नहीं पावे ॥ ३९ ॥

दष्टमात्रो दशेदाशु तमेव पवनाशिनम् ॥ ४०॥
लोष्टं महीं वा दशनैश्छित्त्वा चाऽनु ससंभ्रमम् ।
निष्ठीवेन समालिंपेद्दंशं कर्णमलेन वा॥ ४१ ॥

जिस मनुष्यको सांप काटे वह मनुष्य उसी समय अपने दांतोंसे उस सांपको काट लेवे अथवा जल्दी पृथ्वी या लोष्टको दाँतोंसे काटे तथा कानकी मैलको थूकमें मिलाकर दंशपर लेप करे ॥४०॥४१॥

दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टां चतुरङ्गुले ।
क्षौमादिभिर्वेणिकया सिद्धैर्मंत्रैश्च मन्त्रवित् ४२
अम्बुवत्सेतुबन्धेन बन्धेन स्तभ्यते विषम् ।
न वहन्ति सिराश्चास्य विषं बन्धाभिपीडिताः॥

दंशके चार अंगुल ऊपर रेशमकी या वेणी आदिकी मंत्रके जाननेवाला वैद्य सिद्ध मन्त्रोंसे गांठ बांध देवे । इस गांठके बान्धनेसे जैसे सेतुके बान्धनेसे जल रुक जाता है वैसे ही विष रुक जाता है क्योंकि. बन्धनसे अभिपीड़ित सिरायें विषको शरीरमें वहन नहीं करती ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

बन्धन ।

निष्पीड्यानूद्धरेद्दंशं मर्मसंध्यगतं तथा ।
न जायते विषावेगो बीजनाशादिवाऽङ्कुरः॥४४

बन्धनके अनन्तर दंशस्थानको पीड़ितकर दंशको निकाल देवे यदि वह मर्म्मगत अथवा संधिगत न हो इस प्रकार विषको निकाल देनेसे विषका वेग इस प्रकार नहीं होता जैसे बीजके नाश होजानेसे अंकुर उत्पन्न नहीं होसकता ॥ ४४ ॥

दहन ।

दंशं मण्डलिनां मुक्त्वा पित्तलत्वादथापरम् ।
प्रतप्तैर्हेमलोहाद्यैर्दहेदाशूल्मुकेन वा ॥
करोति भस्मसात्सद्यो वह्निः किं नाम न क्षणात्॥

मण्डलीसांपोंके (दंशनको) छोड़कर क्योंकि यह पित्तप्रधान होते है; अन्य सब सांपोंके दंशको अग्निमें प्रतप्तकिये स्वर्ण लोह आदिकोंसे दहन कर देना चाहिये। अथवा उल्मुक (अंगार) से दग्ध करदेना चाहिये । ऐसा करनेसे अग्नि शीघ्र ही विषको भस्मसात् कर देती है ॥ ४५ ॥

चूषणकम ।

आचूषेत्पूर्णवक्त्रो वा मृद्भस्मागदगोमयैः ॥
प्रच्छायान्तरारिष्टायां मांसलं तु विशेषतः॥४६॥
अङ्गं सहैव दंशेन लेपयेदगदैर्मुहुः ।
चन्दनोशीरयुक्तेन सलिलेन च सेचयेत्॥४७॥

जिस सर्पदंशको दग्ध न करना हो ऐसे पित्तप्रायदंशको अन्य मनुष्य मुखमें मट्टी, भस्म और गोबरका लेप करके सांपेके काटे हुए स्थानको बन्धसे प्रच्छादन करके मुखसे चूसे । यदि मांसल स्थान हों तो विशेष जोरसे चूसे । फिर उस अङ्गको दंशस्थान सहित अगदोंसे बार बार लेपन करे । तथा चन्दन और खसयुक्त जलसे बार बार सेचन करे॥४६॥४७॥

सिरावेधन ।

विषे प्रविसृते विध्येत्सिरां सा परमा क्रिया ।
रक्ते निर्ह्रियमाणे हि कृत्स्नं निर्ह्रियते विषम्४८

यदि विष रक्तमें फैल जाय तो शीघ्रही सिरावेधन करके रक्त निकाल देना चाहिये । क्योंकि रक्तके निकाल देनेसे सम्पूर्ण विषभी निकल जाता है ॥ ४८ ॥

दुर्गन्धं सविषं रक्तमग्नौ चटचटायते ।
यथादोषं विशुद्धं च पूर्ववल्लक्षयेदसृक् ॥४९॥

विषवाला रक्त दुर्गंधित और अग्निमें गेरनेसे चट २ करनेवाला होता है । शुद्ध रक्तको शिरावेधनक्रममें कहे हुए यथादोष विशुद्धरक्तके लक्षणोंसे जानना चाहिये ॥ ४९ ॥

शृङ्गादिसे रक्तहरण ।

सिरास्वदृश्यमानासु योज्याः शृङ्गजलौकसः५०

यदि दंशस्थानके समीप सिरा दिखाई न देती हो

तो दंशस्थानपर शृङ्ग लगाकर या जोंक लगाकर रक्त निकाल देना चाहिये ॥ ९० ॥

शोणितं स्रुतशेषं च प्रविलीनं विषोष्मणा ।
लेपसेकैस्तु बहुशः स्तम्भयेद्धशशीतलैः ॥९१॥

जो विषयुक्त रक्तस्राव न होकर विषकी ऊष्मासे विलीन होकर शरीरमें शेष रहजाय उसको लेप, सेचन आदि शीतल उपायोंसे स्तंभन करे ॥ ९१ ॥

संशमन ।

अस्कन्ने विषवेगाद्धि मूर्छायमदहृद्द्रवाः ।
भवन्ति तान् जयेच्छीतैर्वीजेच्चारोमहर्षतः ९२॥

रक्तके स्राव न होनेसे विष वेगसे मूर्छा, मद और हृदयका बैठजाना आदि उपद्रव होते हैं इन उपद्रवोंको शीत लेपादिकोंसे जीते और जबतक लोमहर्ष न हो जाय तबतक पंखेसे पवन करता रहे ॥ ९२ ॥

स्कन्ने तु रुधिरे सद्यो विषवेगःप्रशाम्यति ९३॥

रुधिरके बहजानेपर तो विष शीघ्र ही शमन हो जाता है ॥ ९३ ॥

विषमें हृदयकी रक्षा ।

विषं कर्षति तीक्ष्णत्वाद् हृदयं तस्य गुप्तये ।
पिबेद्घृतं घृतक्षौद्रमगदं वा घृताप्लुतम् ।
हृदयावरणे चास्य श्लेष्मा हृद्युपचीयते ॥९४॥

विष अत्यन्त तीक्ष्ण होनेके कारण हृदयको कर्षण करता है। इस लिये हृदयको ढकनेके लिये घी और शहद, अथवा घी डालीहुई अगद पीनीचाहिये। ऐसा करनेसे कफका संचय होकर हृदयको आवृत कर देता है ॥ ९४ ॥

वमनक्रम ।

प्रवृत्तगौरवोत्क्लेशहृल्लासं वामयेत्ततः ।
द्रवैः काञ्जिककौलत्थतैलमद्यादिवर्जितैः ।
वमनैर्विषहृद्भिश्च नैवं व्याप्नोति तद्वपुः ॥९५॥

यदि विषसे पीड़ित मनुष्यको गौरव, उत्क्लेश और हृल्लास ये उपद्रव प्रतीत हों तो कांजी, कुलथी, तेल और मद्यादि द्रव्योंको छोड़कर अन्य वामक द्रव्योंसे वमन करा देवे। इस प्रकार वमनद्वारा विषका अपहरण करनेसे विषरोगीके शरीरमें विष नहीं फैलता ॥ ९५ ॥

भुजङ्गदोषप्रकृतिस्थानवेगविशेषतः ।
सुसूक्ष्मं सम्यगालोच्य विशिष्टां वाऽऽ--
--चरेत्क्रियाम् ॥ ९६ ॥

ये सामान्य क्रियायें हैं परन्तु योग्य वैद्यको, सर्प, दोष, प्रकृति, स्थान और वेग आदिको सूक्ष्म बुद्धिसे जानकर विशेष क्रिया भी करनी चाहिये ॥ ९६ ॥

शमनयोग ।

सिन्दुवारितमूलानि श्वेता च गिरिकर्णिका ।
पानं दर्वीकरैर्दष्टे नस्यं मधु सपाकलम् ॥९७॥

संभालूकी जड़का छिल्का और श्वेतपुष्पकी गिरिकर्णिकाको कूठ और शहद मिलाकर दर्वीकरोंके काटेहुएमें नस्य और पीनेमें प्रयोग करना चाहिये ॥९७॥

कृष्णसर्प दष्टकी चिकित्सा।

कृष्णसर्पेण दष्टस्य लिम्पेद्दंशं हृतेऽसृजि॥९८॥
शारटीनाकुलीभ्यां वा तीक्ष्णमूलविषेण वा ।
पानं च क्षौद्रमञ्जिष्ठागृहधूमयुतं घृतम् ॥ ९९॥

काले सांपके काटेहुएमें प्रथम रक्तको निकालकर सफेद रत्तकें और नाकुलीकन्द पीसकर दंशस्थानपर लेप करना चाहिये. अथवा वत्सनाभ आदि तीक्ष्ण मूलविषका दंशपर लेप करना चाहिये। तथा मधु, मंजीठ और गृहधूम मिलाकर घृत पीनाचाहिये९८:९९

मेघनाद अगद ।

तन्दुलीयककाश्मर्यकिणिहीगिरिकर्णिकाः ।
मातुलुङ्गी सिता सेलुः पाननस्याञ्जनैर्हितः ।
अगदः फणिनां घोरे विषे राजीमतामपि ॥१००॥

चौलाई, काश्मरी, किणिही, गिरिकर्णिका, जङ्गली बिजौरेकी जड़, मिसरी और लिसोढ़ा इन सबको पीस कर अगद बनावे । राजीमन्तसांपोंके घोर विषमें यह अगद पीनेमें नस्यमें और अंजनमें प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ १०० ॥

नाकुलि आदि अगद ।

समाः सुगन्धा मृद्वीका श्वेताख्या गज--
--दन्तिका ॥ १०१ ॥
अर्धांशं सौरसं पत्रं कपित्थं बिल्वदाडिमम् ।
सक्षौद्रो मण्डलिविषे विशेषादगदो हितः ॥१०२

नाकुली कन्द, द्राक्षा, श्वेत गिरिकर्णिका और गजदन्ती, ये सब प्रत्येक एक एक भाग, तुलसीके पत्र, कपित्थ, बिल्व और दाडिमकी छाल ये प्रत्येक आधा २ भाग इन सबको बारीक पीसकर मधुमें मिलाकर अगद बनावे. यह अगद मंडलीसांपोंके विषको दूर करनेके लिये श्रेष्ठ है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

हिमवान् अगद।

पञ्चवल्कवरायष्टीनागपुष्पैलवालुकम् ।
जीवकर्षभकोशीरं सिता पद्मकमुत्पलम् ॥६३॥
सक्षौद्रो हिमवान्नाम हन्ति मण्डलिनां विषम् ।
लेपाच्छ्वयथुवीसर्पविस्फोटज्वरदाहहा ॥ ६४ ॥

वट, अश्वत्थ सिरीष, प्लक्ष और वेतस इन पांचोंकी छाल, हरड, बहेडे, आमले, मुलहठी, नागकेशर, एलवालुक, जीवक, ऋषभक, खस, मिसरी, पद्मकाष्ठ और कूठ इनको बारीक पीसकर शहदमें मिलावे। यह हिमवान् नामक अगद लेप करनेसे मण्डलीसांपोंके विषको दूर करता है। तथा सूजन, वीसर्प, विस्फोटक, ज्वर और दाहको शमन करता है ॥६३--६४॥

मण्डलीदष्टकी चिकित्सा।

काश्मर्यवटशृङ्गाणि जीवकर्षभकौ सिता ।
मञ्जिष्ठा मधुकं चेति दष्टो मण्डलिना पिबेत् ६५

काश्मरी, वटके शुङ्ग, जीवक, ऋषभक, मिसरी, मंजीठ, और मुलहठी इनको पीसकर मण्डलीसांपसे डसाहुआ मनुष्य पीवे ॥ ६५ ॥

गोनसविषनाशक अष्टांग अगद।

वंशत्वग्बीजकटुकापाटलीबीजनागरम् ।
शिरीषबीजातिविषे मूलं गावेधुकं वचा ।
पिष्टो गोवारिणाष्टाङ्गो हन्ति गोनसजं-
-विषम् ॥ ६६ ॥

बांसकी छाल और बीज, कटुकी, पाटलाके बीज, सोंठ, सिरिसके बीज, अतीस, गवेधुककी जड और बच इनको गोमूत्रमें पीसकर पीने और लेप करनेसे यह अष्टांग अगद गोनससांपके विषको दूर करता है६६

शमनयोग।

कटुकातिविषाकुष्ठगृहधूमहरेणुकाः ।
सक्षौद्रव्योषतगरा घ्नन्ति राजीमतां विषम् ६७

कटुकी अतीस, कूठ, गृहधूम, हरेणु, सोंठ, मिरच, पीपल और तगर यह मधु मिलाकर पीने और लेप करनेसे राजीमन्तसांपोंके विषको नष्ट करता है ॥६७॥

काण्डचित्राविषकी चिकित्सा।

निखनेत्काण्डचित्राया दंशं यामद्वयं भुवि ।
उद्धृत्य प्रस्थितं सर्पिर्धान्यमृद्भ्यां प्रलेपयेत् ६८
पिबेत्पुराणं च घृतं वराचूर्णविचूर्णितम् ।
जीर्णे विरिक्ते भुञ्जीत यवान्नं यूपसंस्कृतम् ६९

काण्डचित्रा नामक सांपिनीके काटेहुए दंशवाले अंगको दो पहरतक जमीनमें दबावे। फिर निकालकर पछने लगाकर घी, धनियाँ और मट्टीसे लेपन करे। तथा इसको त्रिफलेका चूर्ण मिलाकर पुराना घी पिलावे. विरेचन होनेके अन्तर क्षुधा लगनेपर यूषसे संस्कार कियाहुआ यवान्न खिलावे॥६८॥६९॥

व्यन्तरकी चिकित्सा।

करवीरार्ककुसुममूललाङ्गलिकाकणाः ॥ ७० ॥
कल्कयेदारनालेन पाठामरिचसंयुताः ।
एष व्यन्तरदष्टानामगदः सार्वकार्मिकः॥७१॥

कनेर और आकके फूल तथा जड, लांगलीकन्द, पीपल, पाठा और मिर्च इनको कांजीके साथ कल्क करके अगद बनावे। यह सार्वकार्मिक अगद व्यन्तर सांपोंके दंशपर लेप करना चाहिये ॥७०॥७१॥

सिरीषभावित मिर्च योग।

शिरीषपुष्पस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम् ।
भावितं सर्पदष्टानां पाने नस्याञ्जने हितम् ७२

सिरिसके फूलोंके स्वरसमें सात दिन तक सफेद मिरचोंको भावना देवे। फिर इन मिरचोंको सर्पदष्ट पुरुषोंको पिलानेमें, नस्यमें और अंजनमें प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ ७२ ॥

तगरादियोग।

द्विपलं नतकुष्ठाभ्यां घृतक्षौद्रचतुष्पलम् ।
अपि तक्षकदष्टानां पानमेतत्सुखप्रदम् ॥७३॥

तगर और कूठ दोपल, घृत और मधु चार पल इनको मिलाकर पीना तक्षकसांपके काटेहुएको भी सुखके देनेवाला होता है ॥ ७३ ॥

दर्वीकरके विषवेगोंमें चिकित्सा ।

अथ दर्वीकृतां वेगे पूर्वे विस्राव्य शोणितम् ।
अगदं मधुसर्पिर्भ्यां संयुक्तं त्वरितं पिबेत्॥७४॥
द्वितीये वमनं कृत्वा तद्वदेवागदं पिबेत् ।
विषापहैः प्रयुञ्जीत तृतीयेऽञ्जननावने ॥७५॥
पिबेच्चतुर्थे पूर्वोक्तां यवागूं वमने कृते ।
षष्ठपञ्चमयोः शीतैर्दिग्धं सिक्तमभीक्ष्णशः ७६
पाययेद्वमनं तीक्ष्णं यवागूं च विषापहैः ।
अगदं सप्तमे तीक्ष्णं युंज्यादंजननस्ययोः ७७॥
कृत्वावगाढं शस्त्रेण मूर्ध्नि काकपदं ततः ।
मांसं सरुधिरं तस्य चर्म वा तत्र निक्षिपेत्७८॥

दर्वीकर सांपोंके विषके प्रथम वेगमें—प्रथम रक्तका स्राव करके घृत और मधु मिलाकर अगद शीघ्र पीना चाहिये ।

दूसरे वेगमें—वमन कराकर उसी प्रकार घृत मधु मिलाकर मधु पिलावे ।

तीसरे वेगमें--विषनाशक अञ्जन और नस्यका प्रयोग करे ।

चौथे वेगमें--वमनके अनन्तर प्रथम कही हुई विष नाशक यवागू पिलावे ।

छठे और पांचवे वेगमें--बार २ विषनाशक द्रव्योंसे सेचन करके शीतल लेप करे तथा तीक्ष्ण वमन कराकर विषनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई यवागू पिलावे ।

सातवें वेगमें--अंजन और नस्यमें तीक्ष्ण अगदका प्रयोग करे । तथा मस्तकपर शस्त्रसे काकपदके आकारके गहरे चीरे देकर उसमें अन्य जन्तुका रुधिर और मांस अथवा चर्म भर देवे ॥ ७४--७८ ॥

मण्डलीसांपके विषवेगोंमें चिकित्सा ।

तृतीये वमितः पेयां वेगे मण्डलिनां पिबेत् ।
अतीक्ष्णमगदं षष्ठे गणं वा पद्मकादिकम् ७९॥

मण्डलीसांपोंके विषके तीसरे वेगमें वमन कराकर विषनाशक द्रव्योंकी पेया पीवे ।

और छठे वेगमें--तीक्ष्णता रहित अगद पीवे, अथवा पद्मकादिगणको पीवे ॥ ७९ ॥

राजीमन्तोंके विषवेगोंमें यत्न ।

आद्येवगाढं प्रच्छाय वेगे दष्टस्य राजिलैः ।
अलाबुना हरेद्रक्तं पूर्ववच्चागदं पिबेत् ॥ ८०॥
षष्ठेऽञ्जनं तीक्ष्णतममवपीडं च योजयेत् ।
अनुक्तेषु च वेगेषु क्रियां दर्वीकरोदिताम् ८१॥

राजिल सांपके काटेहुए पुरुषके शरीरमें विषके प्रथम वेगमें-दंशपर पछने लगाकर तुंबीद्वारा रक्तको निकाले और प्रथम कहेहुए क्रमके अनुसार अगदोंको पान करे ।

छठे वेगमें तीक्ष्ण अवपीडन नस्यका प्रयोग करे।

मण्डली और राजिल सांपोंके विषके जिन वेगोंकी क्रिया कथन नहीं की वह दर्वीकरके विषवेगोंके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८० ॥ ८१ ॥

गर्भिण्यादिकी मृदुचिकित्सा ।

गर्भिणीबालवृद्धेषु मृदुं विध्येत्सिरां न च ८२॥

गर्भिणी, बालक और वृद्धोंके विषकी चिकित्सामें मृदु क्रिया करनी चाहिये और सिरावेधन नहीं करना चाहिये ॥ ८२ ॥

त्वगादियोग ।

त्वङ्मनोह्वानिशे वक्रं रसः शार्दूलजो नखः ।
तमालः केसरं शीतं पीतं तन्दुलवारिणा ।
हन्ति सर्वविषाण्येतद्वज्रिवज्रमिवासुरान् ॥८३॥

दालचीनी, मनसिल, हल्दी, दारुहल्दी, तगर, चित्रकका रस, नख, तमालपत्र और नागकेशर इनको तण्डुलजलके साथ शीतल पीनेसे सब विष दूर होते है. जैसे-इन्द्रका वज्र असुरोंका नाश करता है वैसे इससे विषनाश होजाता है ॥ ८१ ॥

बिल्वाद्यगद ।

बिल्वस्य मूलं सुरसस्य पुष्पं
फलं करञ्जस्य नतं सुराह्वम् ।
फलत्रिकं व्योषनिशाद्वयं च
बस्तस्य मूत्रेण सुसूक्ष्मपिष्टम् ॥ ८४ ॥
भुजङ्गलूतोन्दुरवृश्चिकाद्यै-
र्विषूचिकाजीर्णगरज्वरैश्च ।

आर्तांश्वरान् भूतविधर्षितांश्च
स्वस्थीकरोत्यञ्जनपाननस्यैः ॥ ८५ ॥

बेलकी जड़, तुलसीके पुष्प, करञ्जके फल, तगर, देवदारु, हरड़, बहेड़े, आमले, सोंठ, मिरच, पीपल, हल्दी और दारुहल्दी इनको बकरेके मूत्रके साथ बहुत बारीक पीसकर नस्य, अंजन और पीनेमें प्रयोग करनेसे सांपका विष, लूता विष, मूषक विष, बिच्छूका विष, विषूचिका, अजीर्ण, गर और ज्वरसे पीड़ित मनुष्योंको भूत ग्रहादियुक्त मनुष्योंको यह अगद स्वस्थ कर देता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

दंशस्थानका विषहरण।

प्रलेपाद्यैश्च निःशेषं दंशादप्युद्धरेद्विषम्।
भूयो वेगाय जायेत शेषं दूषीविषाय वा॥८६॥

दंशस्थान पर प्रलेपादि करके संपूर्ण विषको निकाल देना चाहिये अन्यथा शेष रहाहुआ विष फिर वेग करता है अथवा दूषीविष बनजाता है ॥ ८६ ॥

विषशमनानन्तर कर्तव्य।

विषापायेऽनिलं क्रुद्धं स्नेहादिभिरुपाचरेत्।
तैलमद्यकुलत्थाम्लवर्ज्यैः पवननाशनैः ॥ ८७॥
पित्तं पित्तज्वरहरैः कषायस्नेहबस्तिभिः।
समाक्षिकेण वर्गेण कफमारग्वधादिना ॥ ८८॥

विषके निवृत्त होनेपर कुपितहुए वायुको शमन करनेके लिये तैल, मद्य, कुलथी और कांजी इन द्रव्योंके विना अन्य वातनाशक स्नेहादिकोंसे चिकित्सा करनी चाहिये।

यदि पित्तका प्रकोप हो तो पित्तज्वर नाशक काथ और स्नेहबस्तियोंसे चिकित्सा करनी चाहिये।

यदि कफका प्रकोप हो तो आरग्वधादिगणके काथमें मधु मिलाकर पिलाना चाहिये ॥८७॥८८ ॥

शंकाविषकी चिकित्सा।

सिता वैगन्धिको द्राक्षा पयस्या मधुकं मधु।
पाने समन्त्रपूताम्बु प्रोक्षणं सान्त्वहर्षणम्।
सर्पाङ्गाभिहते युञ्ज्यात्तथा शङ्काविषार्दिते।८९॥

मिसरी, गन्धक, द्राक्षा, क्षीरकाकोली, मुलहठी और मधु इनको पिलाना, मन्त्रित जलसे प्रोक्षण करना, सान्त्वना देना और हर्ष उत्पन्न करना यह सब सर्पके अंगसे अभिहत तथा शङ्काविषमें प्रयोग करना हितकारी होता है ॥ ८९ ॥

विषनाशकमणिआदि धारण।

कर्केतनं मरकतं वज्रं वारणमौक्तिकम् ॥९०॥
वैडूर्यगर्दभमणिं पिचुकं विषमूषिकाम्।
हिमवद्गिरिसम्भूतां सोमराजीं पुनर्नवाम् ॥९१॥
तथा द्रोणां महाद्रोणां मानसीं सर्पजं मणिम्।
विषाणि विषशान्त्यर्थं वीर्यवन्ति च धारयेत्॥

सर्पके विषको शान्त करनेकेलिये कर्केतन मणि, मरकतमणि, हीरा, गजमुक्ता, वैडूर्यमणि, गर्दभमणि, मैनफल, विषमूषिका, हिमवान्पर्वतपर उत्पन्नहुई सोमराजि, पुनर्नवा, द्रोणा, महाद्रोणा (गूमकी जातियों), मानसी (दुर्गपुष्पी), सांपकी मणि और वीर्यवान् विष, ये मनुष्यको हाथ आदि शरीरके अंगपर धारण करने चाहिये ॥ ९०–९२ ॥

छत्रदण्डधारणके गुण।

छत्री जर्जरपाणिश्च चरेद्रात्रौ विशेषतः।
तच्छायाशब्दवित्रस्ताः प्रणश्यन्ति–
–भुजङ्गमाः ॥ ९३ ॥

मनुष्यको छत्री और सूखेहुए बांसका दण्ड हाथमें लेकर चलना चाहिये। विशेषतया रात्रिमें चलते समय ये दोनों चीजें अवश्य पास रखनी चाहिये। ऐसा करनेसे छत्रीकी छाया और जर्जर बांसके शब्दसे डरकर सांप भागजाते हैं ॥ ९३ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्यपं. शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां सर्पविषप्रतिषेधो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः।

अथाऽतः कीटलूतादिविषप्रतिषेधं–
–व्याख्यास्यामः।

अब हम कीट और लूतादि जंतुओंके विषोंकी चिकित्साको कथन करते हैं।

चार प्रकारके विषकीट ।

सर्पाणामेव विण्मूत्रशुक्राण्डशवकोथजाः ।
दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च युक्ताः कीटाश्चतुर्विधाः॥१

सांपोंके विष्ठा, मूत्र, वीर्य, अण्डे और मरेहुए सांपके कोथसे जो विषकीट विशेष उत्पन्न होते हैं, वे कृमि वात, पित्त, कफ और सन्निपातके भेदसे चार प्रकारके विषोंवाले होते हैं ॥ १ ॥

दोषभेदसे कीटविषोंके लक्षण ।

दष्टस्य कीटैर्वायव्यैर्दंशस्तोदरुजोल्बणः ।
आग्नेयैरल्पसंस्रावो दाहरागविसर्पवान् ॥ २ ॥
पक्वपीलुफलप्रख्यः खर्जूरसदृशोऽथवा ।
कफाधिकैर्मन्दरुजः पक्वोदुम्बरसन्निभः ।
स्रावाढ्यः सर्वलिङ्गस्तु विवर्ज्यः सांनिपातिकैः ३

वातप्रधानकीटके दंशमें तोद और उग्रपीड़ा होती है ।

पित्तप्रधानकीटके दंशमेंसे स्राव होता है । तथा दंश, दाह, लालिमा और विसर्पसे युक्त होता है। दंश-स्थान पकेहुए पीलूके समान अथवा खजूरके समान होजाता है ।

कफप्रधानकीटोंका दंश मन्दपीड़ायुक्त और पके-हुए गूलरके समान होता है ।

त्रिदोषप्रधानकीटका दंश तीनों दोषोंके लक्षणों वाला, स्रावयुक्त और असाध्य होता है ॥ २ ॥ ३॥

वेगाश्च सर्पवच्छोफो वर्धिष्णुर्विस्ररक्तता ।
शिरोऽक्षिगौरवं मूर्छा भ्रमः श्वासोऽतिवेदना ॥४

कीटोंके विषोंमें भी सांपके विषके समान वेग होते हैं इनमें त्रिदोषप्रधान विषमें बढनेवाली सूजन, दुर्ग-न्धित रक्तका स्राव, शिरमें और नेत्रोंमें भारीपन, मूर्च्छा, भ्रम श्वास और अत्यन्त पीड़ा होती है ॥४ ॥

कीटविषके सामान्य लक्षण ।

सर्वेषां कर्णिका शोफो ज्वरःकण्डूररोचकः॥५॥

सब प्रकारके विष कीटोंके दंशमें कर्णिका, सूजन ज्वर, कण्डू और अरुचि ये लक्षण होजाते हैं ॥ ५ ॥

वृश्चिक विषके लक्षण ।

वृश्चिकस्य विषं तीक्ष्णमादौ दहति वह्निवत् ।
ऊर्ध्वमारोहति क्षिप्रं दंशे पश्चात्तु तिष्ठति ।
दंशःसद्योऽतिरुक् श्यावस्तुद्यते स्फुटतीव च६॥

बिच्छूका विष अत्यन्त तीक्ष्ण होता है. यह पहले वह्निकी तरह जलन करता है और जलदी ही ऊपरको चढताहुआ प्रतीत होता है, इसके अनन्तर दंश-स्थानमें स्थित होजाता है, वृश्चिकदंशमें काटते ही अत्यन्त पीड़ा होती है, काला वर्ण होजाता है, तोद होता है और कटनेकीसी पीड़ा होती है ॥ ६ ॥

बिच्छुओंके तीन भेद ।

ते गवादिशकृत्कोथाद्दिग्धदष्टादिकोथतः ।
सर्पकोथाच्च सम्भूता मन्दमध्यमहाविषाः॥७॥

गोबर आदिकी सड़नसे, विषाक्त शस्त्रसे, मरे हुए जन्तुकी सड़नसे, सर्पादिके काटनेसे, मरे हुए जन्तुके कोथसे और मरे हुए सांपके कोथसे, मन्दविष, मध्य-विष और महाविष बिच्छू उत्पन्न होते हैं ॥ ७ ॥

मन्दविष वृश्चिकके लक्षण ।

मन्दाःपीताःसिताःश्यावा रूक्षकर्बुरमेचकाः ।
रोमशा बहुपर्वाणो लोहिताः पाण्डुरोदराः॥८॥

मन्दविषवाले बिच्छू पीतवर्णके, श्वेतवर्णके, श्याम-वर्णके, रूक्ष, कर्बुर और मेचकवर्णके, रोमवाले, बहुतसे पर्वोंवाले, लालवर्णके और पाण्डुवर्णके उदरवाले होते हैं ॥ ८ ॥

मध्य विषवृश्चिकके लक्षण ।

धूम्रोदरास्त्रिपर्वाणो मध्यास्तु कपिलारुणाः ।
पिशङ्गाः शबलाश्चित्राः शोणिताभाः ॥ ९ ॥—

मध्यविषवाले बिच्छू धूम्रवर्णके उदरवाले, तीन पर्ववाले, कपिल, अरुण, पिशंगवर्णके और लालवर्णके तथा बलवाले और चित्रवर्णके होते है ॥ ९ ॥

महाविष वृश्चिकके लक्षण ।

—महाविषाः ।
अग्न्याभा द्व्येकपर्वाणो रक्तासितसितोदराः१०॥

महाविषवाले बिच्छू अग्निके समानवर्णवाले, दो अथवा एक पर्ववाले रक्त, नील और श्वेत उदरवाले होते हैं ॥ १० ॥

महाविषवृश्चिकसे काटेहुए मनुष्यके लक्षण।

तैर्दष्टः शूनरसनः स्तब्धगात्रो ज्वरार्दितः।
खैर्वमन् शोणितं कृष्णमिन्द्रियार्थानसंविदन्॥
स्विद्यन्मूर्च्छन् विशुष्कास्यो विह्वलो वेदनातुरः।
विशीर्यमाणमांसश्च प्रायशो विजहात्यसून्॥१२॥

उन महाविषवाले बिच्छुओंसे काटेहुए मनुष्यकी जिह्वा सूज जाती है, गात्र स्तब्ध होजाता है, ज्वरका वेग होता है, मुख नासिका आदिसे कालारक्त निकलने लगता है, इन्द्रियोंका ज्ञान नष्ट होजाता है, तथा स्वेद, मूर्च्छा, मुखका सूखना, व्याकुलता और तीक्ष्ण पीडासे युक्त हो जाता है, दंशके स्थानसे मांस सडकर गिरने लगता है; इन महाविष बिच्छुओंका काटा हुआ पुरुष प्रायःप्राणोंको त्याग देता है११॥१२

उच्चिटिङ्गदष्टके लक्षण।

उच्चिटिङ्गस्तु वक्त्रेण दशत्यभ्यधिकव्यथः।
साध्यतो वृश्चिकान् स्तम्भं शेफसो-
-हृष्टरोमताम्॥ १३॥
करोति सेकमङ्गानां दंशः शीताम्बुनेव च।
उष्ट्रधूमः स एवोक्तो रात्रिचाराच्च रात्रिकः॥१४॥

उच्चिटिंग नामक वृश्चिक मुखसे काटता है. उसके काटे हुएमें साध्य वृश्चिकोंसे अधिक पीडा होती है। तथा शिश्नेन्द्रियका स्तंभ, रोमोंका खडाहोना, अंगोंमें शीतल जलके सेचनके समान प्रतीत होता है, इस उच्चिटिंगको उष्ट्रधूम भी कहते हैं, और रात्रिको विचरणकरनेवाला होनेसे रात्रिक भी कहते है॥१३॥१४॥

कीटादिकोंमें दोषभेद।

वातपित्तोत्तराःकीटाःश्लैष्मिकाःकणभोन्दुराः।
प्रायो वातोल्बणविषा वृश्चिकाः सोष्ट्रधूमकाः॥

कीट प्रायः वातपित्तप्रधान होते हैं, कणभ और उंदुर कफप्रधान होते हैं, वृश्चिक और उष्ट्रधूमक वातप्रधानविषवाले होते हैं॥ १५॥

यस्य यस्यैव दोषस्य लिङ्गाधिक्यं प्रतर्कयेत्।
तस्य तस्यौषधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम्॥

कीटादि दष्टपुरुषोंमें जिस २ दोषकी अधिकताको देखे उस २ दोषसे विपरीतगुणवाले द्रव्योंसे उनकी चिकित्सा करनी चाहिये॥ १६॥

वातप्रधानविषके लक्षण।

हृत्पीडोर्ध्वानिलस्तम्भः शिरायामोऽस्थिपर्वरुक्।
घूर्णनोद्वेष्टनं गात्रश्यावता वातिके विषे॥१७॥

वातप्रधानविषमें हृदयमें पीडा, उर्ध्ववात, वायुका स्तंभ, शिराओंका आयाम, अस्थि और पर्वोंमें पीडा, नेत्रोंमें घूर्णता, पिण्डिकोद्वेष्टन और शरीरके वर्णमें श्यामता ये लक्षण होते है॥ १७॥

पित्तप्रधानविषके लक्षण।

संज्ञानाशोष्णनिश्वासौ हृद्दाहः कटुकास्यता।
मांसावदरणं शोफो रक्तपीतश्च पैत्तिके॥ १८॥

पित्तप्रधानविषमें संज्ञानाश, उष्णश्वासका आना, हृदयमें दाह, मुखमें कटुता, दंशस्थानसे मांस विदीर्ण होना, सूजनका वर्ण लाल और पीला होना ये लक्षण होते हैं॥ १८॥

कफप्रधान विषके लक्षण।

छर्द्यरोचकहृल्लासप्रसेकोत्क्लेशपीनसैः।
सशैत्यमुखमाधुर्यैर्विद्याच्छ्लेष्माधिकं विषम्॥१९

कफप्रधानविषमें छर्दि, अरुचि, हृल्लास, लालाप्रसेक, उत्क्लेश, पीनस, शीतता और मुखमें माधुर्य ये लक्षण होते हैं॥ १९॥

वातप्रधानदंश विषकी चिकित्सा।

पिण्याकेन व्रणालेपस्तैलाभ्यङ्गश्च वातिके।
नाडीस्वेदः पुलाकाद्यैर्बृंहणैश्च विधिर्हितः॥२०॥

वातप्रधानदंशविषमें तिलकल्कसे व्रणको लेपन करना, तैलका अभ्यंग करना, नाडीस्वेद करना और पुलाक (पलाव) आदि द्रव्योंसे बृंहण करना हितकारी होता है॥ २०॥

पित्तप्रधानदंशविषकी चिकित्सा।

पैत्तिकं स्तम्भयेत्सेकैः प्रदेहैश्चातिशीतलैः।

पित्त प्रधान दंशविषको शीतल प्रदेह और शीतल सेचनोंसे स्तंभन करना चाहिये।

कफप्रधानदंशविषकी चिकित्सा।

लेखनच्छेदनस्वेदवमनैः श्लैष्मिकं जयेत्॥२१॥

कफप्रधानदंशविषको लेखन, छेदन, स्वेदन और वमन द्वारा जीतना चाहिये॥ २१॥

कीटानां त्रिप्रकाराणां त्रैविध्येन प्रतिक्रिया । स्वेदालेपनसेकांस्तु कोष्णान् प्रायोऽवचारयेत् । अन्यत्र मूर्छिताद्दंशपाकतःकोथतोऽथवा॥२२॥

तीन प्रकारके कृमिविषोंमें क्रमसे स्वेदन लेपन और सेचन यह सुहाते सुहाते करने चाहिये । परन्तु मूर्च्छा, पाक और कोथवाले दंशमें कोष्ण स्वेद लेपादि नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥

सामान्य चिकित्सा ।

नृकेशाः सर्षपाः पीता गुडो जीर्णश्च धूपनम् । विषदंशस्य सर्वस्य काश्यपः परमब्रवीत्॥२३॥

मनुष्यके शिरके केश, पीली सरसों और पुराना गुड़ इनसे सब प्रकारके विषदंशको धूपन करना हितकारी होता है; ऐसा काश्यपका कथन है ॥ २३ ॥

विषघ्नं च विधिं सर्वं कुर्यात्संशोधनानि च । साधयेत्सर्पवद्दष्टान् विषोग्रैः कीटवृश्चिकैः॥२४॥

सब प्रकारके विषोंमें विषनाशक वमनादि संशोधन करना हितकारी होता है । तथा सर्पविषचिकित्साके समान ही उग्रविषवाले कीट और वृश्चिकोंके विषकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २४ ॥

तुन्दुलीयकतुल्यांशां त्रिवृतां सर्पिषा पिबेत् । याति कीटविषैः कम्पं न कैलास इवानिलैः॥२५

चौलाई और निशोथको समभाग लेकर घृतके साथ पीनेसे कीटविषोंसे मनुष्य इस प्रकार क्षुभित नहीं हो सकता. जैसे--कैलासपर्वत वायुके वेगसे नहीं हिल सकता ॥ २५ ॥

क्षीरिवृक्षत्वगालेपः शुद्धे कीटविषापहः ॥२६॥

कीटदंशका व्रण रक्तादि निकालकर शुद्ध करनेके अनन्तर वटादि पंचक्षीरी वृक्षोंकी छालका लेप करनेसे कीटविष दूर होता है ॥ २६ ॥

मुक्तालेप ।

मुक्तालेपो वरः शोफतोददाहज्वरप्रणुत् ॥२७॥

मोतीको घिसकर लेप करना सूजन, तोद, दाह, और ज्वरको नाशकरनेवाला श्रेष्ठ योग है ॥ २७ ॥

दशांग अगद ।

वचा हिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली । पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् । दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥२८॥

बच, हींग, वायविडंग, सेन्धानमक, गजपीपल, पाठा, अतीस, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबको बारीक पीसकर अगद बनावे; इस काश्यप ऋषिके निर्माण कियेहुए दशांग अगदको पीकर मनुष्य संपूर्ण कीटविषको जीत लेता है॥ २८ ॥

वृश्चिकके तात्कालिकदंशकी चिकित्सा ।

सद्यो वृश्चिकजं दंशं चक्रतैलेन सेचयेत् । विदारिगन्धासिद्धेन कवोष्णेनेतरेण वा ॥२९॥

वृश्चिकके तात्कालिक दंशको चक्रतैलसे सेचन करना चाहिये. अथवा विदारीगंधादि गणसे सिद्धकियेहुए अन्य कोष्ण तेलसे सेचन करना चाहिये ॥२९॥

लवणोत्तमयुक्तेन सर्पिषा वा पुनः पुनः । सिञ्चेत्कोष्णारनालेन सक्षीरलवणेन वा ॥३०॥

अथवा सेंधानमक युक्त घृतसे वारवार सेचन करे अथवा दूध और सेंधानमकयुक्त कोष्ण कांजीसे सेचन करे ॥ ३० ॥

उपनाहो घृते भृष्टः कल्कोऽजाज्याः-
-ससैन्धवः ॥ ३१ ॥

तथा सेंधानमक युक्त जीरेके कल्कको घृतमें भूनकर उससे उपनाह करे ॥ ३१ ॥

आदंशं स्वेदितं चूर्णैः प्रच्छाय प्रतिसारयेत् । रजनीसैन्धवव्योषशिरीषफलपुष्पजैः ॥३२॥

सम्पूर्ण दंशको स्वेदन करनेके अनन्तर हलदी, सेंधानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, सिरसके फल और पुष्प इनका चूर्णकर दंशके ऊपर रखकर घर्षण करे तो वृश्चिकदंशकी पीड़ा शमन होती है ॥ ३२ ॥

मातुलुङ्गाम्लगोमूत्रपिष्टं च सुरसाग्रजम् । लेपःसुखोष्णश्च हितःपिण्याको गोमयोऽपि वा पाने सर्पिर्मधुयुतं क्षीरं वा भूरिशर्करम् ॥ ३३॥

बिजौरेके रस और गोमूत्रमें तुलसीकी मंजरीको पीसकर वृश्चिक दंशपर लेप करना चाहिये. अथवा तिलकल्क या गोबरका लेप करना हितकारी होता है।

मधु घृत और बहुतसी शर्करा मिलायाहुआ दूध पीना भी वृश्चिकदंशकी पीड़ाको शमन करता है॥ ३३

पारावतशकृत्पथ्या तगरं विश्वभेषजम् ।
बीजपूररसोन्मिश्रः परमो वृश्चिकागदः ।
सशैवलोष्ट्रदंष्ट्रा च हन्ति वृश्चिकजं विषम्॥३४॥

कबूतरकी बीठ, हरीतकी, तगर और सोंठ बिजौरे निंबूके रसमें मिलाकर लेपकरना वृश्चिकविषकी निवृत्तिके लिये परमोत्तम अगद है।

शैवालयुक्त ऊंटकी दंष्ट्राको घिसकर वृश्चिकके दंशपर लगाना बिच्छूके विषको दूर करता है ॥ ३४ ॥

हिङ्गुना हरितालेन मातुलुङ्गरसेन च ।
लेपांजनाभ्यां गुटिका परमं वृश्चिकापहा॥३५॥

हींग, हरिताल और बिजौरेके रससे बनाईहुई गोली वृश्चिक दंशपर लेप करनेसे और आंखमें आंजनेसे वृश्चिकका विष दूर होता है ॥ ३५ ॥

करञ्जार्जुनशैलूनां कटभ्याः कुटजस्य च ।
शिरीषस्य च पुष्पाणि मस्तुना दंशलेपनम्३६

करंज, अर्जुन, लिसोढ़ा, कटभी, कुटज और सिरस इनके फूलोंको दहीके जलमें पीसकर दंशपर लगानेसे वृश्चिकका विष शमन होजाता है ॥ ३६ ॥

यो मुह्यति प्रश्वसिति प्रलपत्युग्रवेदनः ॥ ३७ ॥
तस्य पथ्यानिशाकृष्णामञ्जिष्ठातिविषोषणम् ।
सालाबुवृन्तं वार्ताकरसपिष्टं प्रलेपनम् ॥ ३८॥

जो मनुष्य वृश्चिकदंशकी उग्रवेदनासे मोहको प्राप्त हो श्वास लेवे और विलाप करे उसके दंशस्थान पर हरीतकी हलदी, पीपल, मजीठ, अतीस, काली मिर्च, कड़वीतुम्बीकी डण्डी इनको बड़ी कटेलीके रसमें पीसकर लेपकरे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

वृश्चिकविषकी सामान्य चिकित्सा ।

सर्वत्र चोग्रालिविषे पाययेद्दधिसर्पिषी ।
विध्येत्सिरां विदध्याच्च वमनाञ्जननावनम् ।
उष्णस्निग्धाम्लमधुरं भोजनं चानिलापहम् ३९

सब प्रकारके बिच्छुओंके विषमें उग्रपीड़ा शमन करनेके लिये दधि और घृत पिलाना चाहिये, शिरा वेधन करना चाहिये, तथा वमन, अंजन और नस्यका प्रयोग करना चाहिये. एवं वातनाशक उष्ण स्निग्ध अम्ल और मधुर भोजन कराना चाहिये ॥ ३९ ॥

विषनाशक अगद ।

नागरं गृहकपोतपुरीषं
बीजपूरकरसो हरितालम् ।
सैन्धवं च विनिहन्त्यगदोऽयं
लेपतोलिकुलजं विषमाशु ॥ ४० ॥

सोंठ, घरोंमें रहनेवाले कबूतरोंकी बीठ, बिजौरेका रस, हरिताल और सेंधानमक इनको बारीक पीसकर अगद बनावे. यह अगद लेप करनेसे सब प्रकारके बिच्छुओंके विषको शीघ्र नष्ट करदेता है॥ ४०

अन्ते वृश्चिकदष्टानां समुदीर्णे भृशं विषे ।
विषेणालेपयेद्दंशमुच्चिटिङ्गेऽप्ययं विधिः ॥४१॥

वृश्चिकके काटनेके अनन्तर जब विष उदीर्ण होकर अत्यन्त पीड़ा आदि होनेलगे तो दंशस्थानपर श्रृंगीविष या तेलियाविषका लेप करना चाहिये। उच्चिटिंगके काटनेपर भी यही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४१ ॥

नागपुरीषच्छत्रं रोहिषमूलं च शेलुतोयेन ।
कुर्याद्गुटिकां लेपादियमलिविषनाशनी श्रेष्ठा ॥

हाथीके पुरीषमें उत्पन्न हुआ छत्र और रोहिष तृणका मूल इन दोनोंको लिसोढ़ेके जलमें पीसकर गुटिका बनावे। इसका लेप करनेसे यह गुटिका वृश्चिकके विषको नाश करनेमें श्रेष्ठ मानी जाती है॥ ४२॥

अर्कस्य दुग्धेन शिरीषबीजं
त्रिर्भावितं पिप्पलिचूर्णमिश्रम् ।
एषोऽगदो हन्ति विषाणि कीट-
भुजङ्गलूतोन्दुरवृश्चिकानाम् ॥४३॥

सिरिसके बीजोंको आकके दूधमें तीन भावना देवे. फिर बीजोंके समान पीपल मिलाकर चूर्णकरे.

---

१ अष्टांगसंग्रहे--
" ससैन्धवोष्ट्रदंष्ट्रा च हन्ति वृश्चिकजं विषम् ।
मनोह्वा सैन्धवं हिंगु मालतीपल्लवानि च ॥
गोशकृद्रसपिष्टेयं गुलिका वृश्चिकार्दिते ।
लशुनो मरिचं हिंगु सुरसं विश्वभेषजम् ॥
अर्कक्षीरेण गुटिका वृश्चिकार्दितशकरी । "

यह अगद कीट, सांप, लूता, मूषक और वृश्चिकोंके विषको शमनकरनेवाला कहा है ॥ ४३ ॥

रात्रिकविषनाशक अगद ।

शिरीषपुष्पं सकरंजबीजं
काश्मीरजं कुष्ठमनःशिले च ।
एषोऽगदो रात्रिकवृश्चिकानां
संक्रान्तिकारी कथितो जिनेन ॥ ४४॥

सिरसके फूल, करंजके बीज, अतीस, कूठ और मनशिल इन सबको पीसकर बनायाहुआ अगद रात्रिकनामक वृश्चिकोंके विषको नष्ट करनेवाला है; ऐसा जिनेन्द्र कहते हैं ॥ ४४ ॥

लूताभेद ।

कीटेभ्यो दारुणतरा लताः षोडश ता जगुः ।
अष्टाविंशतिरित्येके ततोऽप्यन्ये तु भूयसीः४५
सहस्ररश्म्यनुचरा वदन्त्यन्ये सहस्रशः ।
बहूपद्रवरूपा तु लूतैकैव विषात्मिका ॥४६॥

कीटोंसे भी अत्यन्त दारुण सोलह प्रकारकी लूता होती है. कोई इनको अठारह प्रकारकी मानते हैं, कोई इनसे भी बहुत अधिक प्रकारकी मानते हैं और सूर्यके अनुचर सहस्रों प्रकारकी मानते है परन्तु ये अनेक प्रकारकी होतेहुए भी लूता(मकड़ी)अनेक उपद्रवयुक्त विषवालेभावसे एक ही प्रकारकी होती है ॥४६

लूतामें दोष भेद ।

रूपाणि नामतस्तस्या दुर्ज्ञेयान्यतिसंकरात् ।
नास्ति स्थानव्यवस्था च दोषतोऽतःप्रचक्षते।
कृच्छ्रसाध्या पृथग्दोषैरसाध्या निचयेन सा४७

लूता रूप और नामसे तथा इनके अनेक रूपों और नामोंमें संकर होनेके कारण इनकी संख्या और भेदका ज्ञान होना कठिन है इस कारण यहांपर विशेष संख्याप्रकारवर्णनका स्थान और प्रयोजन भी नहीं है। अतः केवल दोषभेदसे ही हम लूताविषके भेदको कथन करदेते हैं ।

इन लूताओंका वातप्रधान, पित्तप्रधान और कफप्रधान विष कष्टसाध्य होता है और त्रिदोष प्रधान असाध्य होता है ॥ ४७ ॥

पित्तप्रधान लूताके दंशके लक्षण ।

तद्दंशः पैत्तिको दाहतृट्स्फोटज्वरमोहवान् ।
भृशोष्मा रक्तपीताभःक्लेदी द्राक्षाफलोपमः४८

पित्तप्रधान लूताका दंश दाह, प्यास, स्फोट, ज्वर और मोहको करदेनेवाला होता है । इसके दंशस्थानमें अत्यन्त ऊष्मा होती है और वर्ण लाल और पीला होता है, इसमें क्लेद होता है तथा आकार द्राक्षाफलके समान फूलाहुआ होता है ॥ ४८ ॥

कफप्रधान लूताके दंशके लक्षण ।

श्लैष्मिकः कठिनः पाण्डुः परूषकफलाकृतिः ।
निद्रां शीतज्वरं कासं कण्डूं च कुरुते-
--भृशम् ॥ ४९ ॥

कफप्रधान लूताका दंशस्थान कठिन, पाण्डुवर्णका फालसेके फलके समानआकारवाला होता है; यह निद्रा, शीतज्वर, खांसी और अधिक खुजलीको उत्पन्न करता है ॥ ४९ ॥

वातप्रधान लूतादशके लक्षण ।

वातिकः परुषः श्यावः पर्वभेदज्वरप्रदः ॥ ५०॥

वातप्रधान लूताका दंश खरस्पर्श, श्यामवर्णका, तथा पर्वभेद और ज्वरके करनेवाला होता है ॥५०॥

तद्विभागं यथास्वं च दोषलिङ्गैर्विभावयेत्॥५१॥

उन लूताओंका विभाग वातादिदोषोंके लक्षणोंसे यथादोष जानलेना चाहिये ॥ ५१ ॥

असाध्य लूताविषके लक्षण ।

असाध्यायां तु हृन्मोहश्वासहिध्माशिरोरुजाः ।
श्वेताःपीताःसिता रक्ताःपिटिकाः श्वयथूद्भवाः
वेपथुर्वमथुर्दाहस्तृडान्ध्यं वक्रनासता ।
श्यावोष्ठवक्त्रदन्तत्वं पृष्ठग्रीवावभञ्जनम् ।
पक्वजम्बूसवर्णं च दंशात्स्रवति शोणितम्५२॥

असाध्यलूताके विषमें हृदयका रुकना, मोह, श्वास, हिचकी, शिरमें पीड़ा, तथा श्वेत, पीत, नील और रक्तवर्णकी पिटिकाओंका उत्पन्न होना, सूजनका उत्पन्न होना, कम्प, वमन, दाह, तृषा, नेत्रोंसे दिखाई न देना, नासिकाका टेढ़ा होजाना, होठ, मुख और दांतोंका श्यामवर्ण होना, पीठ और गर्दनका टूटना,

दंशस्थानमेंसे पकेहुए जामुनके फलके समान काले-वर्णका रक्तस्राव होना ये लक्षण होते हैं ॥ ९२ ॥

सर्वापि सर्वजा प्रायो व्यपदेशस्तु भूयसा॥९३॥

यद्यपि सम्पूर्ण लूताओंका विष त्रिदोषकारक ही होता है परन्तु दोषकी विशेषतासे और कष्टसाध्य तथा असाध्य भेद कल्पना करनेके लिये इनके चार भेद कथन करदिये है ॥ ९३ ॥

तीक्ष्णविषादि भेदसे लूताओंके तीन भेद।

तीक्ष्णमध्यावरत्वेन सा त्रिधा हन्त्युपेक्षिता।
सप्ताहेन दशाहेन पक्षेण च परं क्रमात् ॥ ९४॥

उनमें असाध्य लूताओंके भी तीक्ष्ण मध्य और कनिष्ठ भेदसे तीन भेद होते है. यदि इनकी समयपर यथार्थ चिकित्सा न कीजाय तो तीक्ष्ण विषप्रधान सात दिनमें, मध्य विषप्रधान दश दिनमें और कनिष्ठ विषप्रधान पद्रह दिनमे मनुष्यको मार डालतीहैं॥९४

लूतादंशके सामान्य लक्षण।

लूतादंशश्च सर्वोऽपि दद्रूमण्डलसंनिभः।
सितोऽसितोरुणः पीतः श्यावो वा-
-मृदुरुन्नतः ॥ ९५ ॥
मध्ये कृष्णोऽथवा श्यावः पूर्यते जालकावृतः।
विसर्पवाञ्छोफयुतस्तप्यते बहुवेदनः ॥ ९६ ॥
ज्वराशुपाकविक्लेदकोथावदरणान्वितः।
क्लेदेन यत्स्पृशत्यङ्गं तत्राऽपि कुरुते व्रणम्॥९७॥

सम्पूर्ण लूताओंका दश दद्रुमण्डलके समान आकार-वाला श्वेत, नील, अरुण, पीत और श्यामवर्णका तथा मृदु और ऊपरको उठा हुआ होता है। तथा मध्यमेंसे कालेवर्णका अथवा श्यामवर्णका होता है, तथा जालसे आवृतसा होता है, फैलनेवाली सूजनयुक्त होता है इसमे पीड़ा अधिक होती है, तथा ज्वर, शीघ्र पकना, क्लेद, कोथ, मांसका दारण होना ये लक्षण होते है; इसका क्लेद शरीरके जिस अन्यस्थानमें लग जाता है उसीमें व्रण उत्पन्न कर देता है ॥ ९५-९७॥

श्वासदंष्ट्राशकृन्मूत्रशुक्रलालानखार्तवैः।
अष्टाभिरुद्रमत्येषा विषं वक्त्रैर्विशेषतः ॥९८॥

विषयुक्त लूतायें श्वास, दंश, मल, मूत्र, शुक्र, लाला, नख और आर्तव इनमेंसे जिस अंगमें जिस वस्तुका स्पर्श कर देती है उसीसे शरीरमें विष प्रवेश कर जाता है अर्थात् लूताके इन श्वास आदि आठों-मेंसे किसी एकका स्पर्श भी मनुष्यके शरीरपर होजाय तो विष प्रवेश होजाता है। किन्तु मुखसे यदि ये काटे तो विशेष विषका प्रभाव होता है ॥ ९८ ॥

लूता नाभेर्दशत्यूर्ध्वमूर्ध्वं वाऽधश्च कीटकाः।
तद्दूषितं च वस्त्रादि देहे पृक्तं विकारकृत्॥९९॥

लूता प्रायः मनुष्यके शरीरमें नाभिसे ऊपरके भागमें काटती है और कीट प्रायः नाभिसे अधो-भागमें काटते है। लूताका दूषित कियाहुआ वस्त्र भी शरीरपर स्पर्श करनेसे विकारको उत्पन्न कर देता है९९

दंशके प्रथम दिन लूताविषका प्रभाव।

दिनार्धं लक्ष्यते नैवं दंशो लूताविषोद्भवः ॥६०॥
सूचीव्यधवदाभाति ततोऽसौ प्रथमेऽहनि।
अव्यक्तवर्णः प्रचलः किञ्चित्कण्डूरुजान्वितः॥

जब लूता शरीरपर दंश करती है तो अधिक दिन-तक उसके विषका प्रभाव दिखाई नहीं देता तदन-न्तर प्रथम दिन सूचीसे वेधन कियेहुएके समान दिखाई देने लगता है। इसका वर्ण कुछ प्रगट नहीं होता किन्तु किंचित् खुजली और किंचित् पीड़ासहित अल्प सूजन फैलतीसी प्रतीत होती है ॥६०॥६१॥

दंशके दूसरे दिन लूताविषका प्रभाव।

द्वितीयेऽभ्युन्नतोऽन्तेषु पिटकैरिव वाचितः।
व्यक्तवर्णो नतो मध्ये कण्डूमान् ग्रन्थि-
-संनिभः ॥ ६२ ॥

दूसरे दिन—इसके किनारे ऊंचे होजाते है बीचमें छोटी छोटी पिटिकायें दिखाई देती है, वर्ण व्यक्त हो जाता है, मध्यभाग निम्न रहता है. तथा खुजली युक्त ग्रंथिके समान प्रतीत होने लगता है ॥ ६२ ॥

तीसरे दिन लूताविषका प्रभाव।

तृतीये सज्वरो रोमहर्षकृद्रक्तमण्डलः।
शरावरूपस्तोदाढ्यो रोमकूपेषु संस्रवः ॥६३॥

तीसरे दिन—ज्वर, रोमहर्ष, दंशस्थानमें रक्तमंडल,

तथा दंशस्थानका शरावके समान मध्यमेंसे नीचा होना और किनारे ऊंचे होना, इसमें तोद और रोमकूपोंसे स्राव होता है ॥ ६३ ॥

चौथे और पांचवें दिन लूताविषके लक्षण ।

महांश्चतुर्थे श्वयथुस्तापश्वासभ्रममदः ।
विकारान् कुरुते तांस्तान् पञ्चमे विष-
-कोपजान् ॥ ६४ ॥

चौथे दिन-शोथका अधिक बढ़जाना, ताप, श्वास और भ्रमका उत्पन्न होना ये लक्षण होते हैं ।

पांचवें दिन-विषकोपजनित सब प्रकारके विकार जो लूताविषमें ऊपर कह आये हैं वे सब प्रगट हो-जाते हैं ॥ ६४ ॥

छठे दिन लूताविषके लक्षण ।

षष्ठे व्याप्नोति मर्माणि सप्तमे हन्ति जीवितम् ।
इति तीक्ष्णं विषं मध्यं हीनं च विभजेदतः ।
एकविंशतिरात्रेण विषं शाम्यति सर्वथा ॥६५॥

छठे दिन-यह लूताविष सब मर्मोंमें व्याप्त होजाता है और सातवे दिन मनुष्यके जीवनको नष्ट करदेता है ।

इस प्रकार लूताविष तीक्ष्ण मध्य और हीनविभाग पूर्वक जानलेना चाहिये ।

इक्कीस दिनके वाद लूताओंका विष शरीरमेंसे सर्वथा शान्त होजाता है ॥ ६५ ॥

लूताविषकी चिकित्सा ।

अथाशु लूतादष्टस्य शस्त्रेणादंशमुद्धरेत् ।
दहेच्च जाम्बवौष्ठाद्यैर्न तु पित्तोत्तरं दहेत् ॥ ६६॥

अब लूताविषकी चिकित्सा कथन करते हैं-लूता-दष्ट पुरुषके शरीरमेंसे लूताके दंशको शस्त्रसे निका-लकर जाम्बवौष्ठ आदिको अग्निमें लालकर दंशस्था-नको दहन करदेवे; परन्तु पित्तप्रधान दंश होवे तो अग्निसे दहन नहीं करना चाहिये ॥ ६६ ॥

छेदन और दहनके अयोग्य लूतादंश ।

कर्कशं भिन्नरोमाणं मर्मसन्ध्यादिसंश्रितम् ।
प्रसृतं सर्वतोदंशं न छिन्दीत दहेन्न च ॥६७॥

जो लूताका दंश कर्कश हो और रोम फटगये हों, दंश, मर्म, संधि आदि स्थानोंके आश्रित हो और सब ओर फैलगया हो तो ऐसे दंशको छेदन नहीं करना चाहिये और दहन भी नहीं करना चाहिये ॥ ६७ ॥

दहनके अनन्तर कर्म ।

लेपयेद्दग्धमगदैर्मधुसैन्धवसंयुतैः ।
सुशीतैः सेचयेच्चानु कषायैः क्षीरिवृक्षजैः ६८॥

जो दंश दग्ध कियागया हो उसके ऊपर मधु और सैंधानमक युक्त विषनाशक अगदोंका लेप करना चाहिये. तदनन्तर वटआदि क्षीरीवृक्षोंके शीतल क्काथसे सेचन करना चाहिये ॥ ६८ ॥

लूतादंशमें रक्तमोक्षण ।

सर्वतोपहरेद्रक्तं शृङ्गाद्यैः सिरयाऽपि वा ।
सेकालेपास्ततःशीता बोधिश्लेष्मातकाक्षकैः६९

लूतादंशमेंसे शृंग आदिके साथ सब ओरसे रक्त निकाले. अथवा शिरावेधनकर रक्त निकाले तदनन्तर अश्वत्थादि क्षीरीवृक्ष, लिसोड़ा और बहेड़के शीतल क्काथसे सेचनकरे और इन्ही द्रव्योंसे लेपकरे ॥६९॥

पद्मक अगद ।

फलिनीद्विनिशाक्षौद्रसर्पिर्भिः पद्मकाह्वयः ।
अशेषलूताकीटानामगदः सार्वकार्मिकः ॥७०॥

प्रियंगु, हलदी, दारुहलदी, पद्मकाष्ठ इनको बा-रीक पीसकर मधु और घृतमें मिलावे यह पद्मक-नामक अगद लेपमें और खाने आदि सब कामोंमें प्रयोग करनेसे सम्पूर्ण लूता और कीटोंके विषको नाश करता है ॥ ७० ॥

पद्मक अगद ।

हरिद्राद्वयपत्तङ्गमञ्जिष्ठानतकेसरैः ।
सक्षौद्रसर्पिःपूर्वस्मादधिकश्चम्पकाह्वयः ॥७१॥

हलदी, दारुहलदी, पतंग, मंजीठ तगर और नाग-केशर, इनको मधु और घृतमें मिलाकर अगद बनावे यह पंचकाह्वय अगद खानेमें और दंशपर लेप करनेमें प्रयोग करनेसे लूतादि विषोंको दूर करताहै ॥ ७१ ॥

तद्वद्गोमयनीष्पीडाशर्कराघृतमाक्षिजैः ॥ ७२॥

इसीके समान गोवरका रस खांड घृत और मधु मिलाकर पीना और लूतादंशपर लेप करना भी लूता-विषको दूरकरता है ॥ ७२ ॥

मंदर और गन्धमादन अगद ।

अपामार्गमनोह्वालदार्वीध्यामकगैरिकैः ।
नतैलाकुष्ठमरिचयष्ट्याह्वघृतमाक्षिकैः ॥ ७३ ॥
अगदो मन्द्रो नाम तथाऽन्यो गन्धमादनः ।
नतरोध्रवचाकट्वीपाठैलापत्रकुङ्कुमैः ॥ ७४ ॥

अपामार्ग, मनशिल, दारुहलदी, ध्यामकतृण, गेरू, तगर, इलायची, कूठ, मिर्च और मुलहटी, इनका बारीक चूर्ण घृत और मधुमें मिलाकर अगद बनावे यह मन्दरनामक अगद कहाजाता है ।

तथा तगर, लोध्र, वच, कटुकी, पाठा, इलायची, पत्रज और केशर इनके चूर्णको घृत और मधुमें मिलाकर अगद बनावे इसको गंधमादन अगद कहते हैं ।

ये दोनों अगद लूता आदि विषोंको शमन करनेवाले है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

लूताविषमें वमन विरेचनके योग ।

विषघ्नं बहुदोषेषु प्रयुञ्जीत विशोधनम् ।
यष्ट्याह्वमदनाङ्कोल्लजालिनीसिन्दुवारिकाः ॥
कफे श्रेष्ठाम्बुना पीत्वा विषमाशु समुद्वमेत् ।
शिरीषपत्रत्वङ्मूलफलं वाङ्कोल्लमूलवत् ॥७५॥

यदि मनुष्यके शरीरमें दोषोंका संचय अधिक हो तो उसको विषनाशक शोधन कराना चाहिये अर्थात् विषनाशकद्रव्योंसे वमन विरेचन कराना चाहिये ।

कफप्रधान विषमें मुलहठी, मैनफल, अंकोल, कडवीतोरी, सम्भालू इनका चूर्ण कर या कल्ककर त्रिफलेके क्वाथके साथ पीकर शीघ्र विषयुक्त दोषको वमनकरके निकालदेवे ।

अथवा सिरीषवृक्षके पत्र, छाल, मूल और फल तथा अंकोलवृक्षके मूलको मिलाकर त्रिफलाके क्वाथमें मिला पीकर वमन करदेवे ॥ ७५ ॥

विरेचयेच्च त्रिफलानीलिनीत्रिवृतादिभिः॥७६॥

तथा त्रिफला, नीलिनी (कालादाना) और निशोथ आदि द्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये॥७६॥

कार्णिका पातन ।

निवृत्ते दाहशोफादौ कर्णिकां पातयेद्व्रणात् ।
कुसुम्भपुष्पं गोदन्तःस्वर्णक्षीरी कपोतविट् ७७
त्रिवृता सैन्धवं दन्ती कर्णिकापातनं तथा ।
मूलमुत्तरवारुण्या वंशनिर्लेखसंयुतम् ॥ ७८ ॥

जब दंशस्थानकी दाह सूजन आदि निवृत्त होजाय तब व्रणके ऊपरकी कार्णिकाके नीचे लिखेहुए योगोंसे उतार देना चाहिये ।

कुसुंभीके फूल, गोदन्त, सत्यानासीकी जड, कबूतरकीवीठ, निशोथ, सेंधानमक और दन्ती इनका लेप कार्णिकापातन करनेमें श्रेष्ठ है । अथवा इन्द्रायणकी जड और बांसके अंकुरको घिसकर लेपकरनेसे भी कर्णिकापातन होजाता है ॥ ७७ ॥७८ ॥

तद्वच सैन्धवं कुष्ठं दन्ती कटुकदौग्धिकम् ।
राजकोशातकीमूलं किणो वा मथितोद्भवः॥७९॥

इसी प्रकार सेंधानमक, कूठ, दन्ती, कटुकी, दूधीबूटीकी जड, राजकोशातकीकी जड इन सबको मिलाकर लेप करनेसे अथवा तक्रके ऊपरकी झाग लगानेसे लूताव्रणकी कार्णिका उतरजाती है ॥ ७९॥

कर्णिकापातसमये बृंहयेच्च विषापहैः ॥ ८० ॥

कर्णिका उतारनेके समय पुरुषको विषनाशक घृतादि पिलाकर बृंहण करना चाहिये ॥ ८० ॥

विषरोगमें घृतका विधान ।

स्नेहकार्यमशेषं च सर्पिषैव समाचरेत् ।
विषस्य वृद्धये तैलमग्नेरिव तृणोलुपम् ॥ ८१ ॥

विषरोगोंमें सम्पूर्ण स्नेहन कार्य घृतसे ही करने चाहिये क्योंकि तैलके प्रयोगसे विषकी इस प्रकार वृद्धि होती है जैसे घासका पूला अग्निको बढादेता है॥८१॥

पित्तप्रधानलूताविषके लिये अगद ।

ह्रीबेरवैकङ्कतगोपकन्या-
मुस्ताशमीचन्दनटिण्टुकानि ।
शैवालनीलोत्पलवक्रयष्टी-
त्वग्नाकुलीपद्मकराठमध्यम् ॥ ८२ ॥

सुगंधवाला, विकंकत, सारिवा, नागरमोथा, शमीवृक्षकी छाल, चन्दन, सोनापाठा, पानीका शैवाल, नीलकमल, पित्तपापड़ा, मुलहठी, दालचीनी, नाकुलीकंद, पद्मकाष्ठ और मैनफलका मध्यभाग इनसे बनायाहुआ अगद पित्तप्रधान लूताविषको शमन करता है ८२

कफप्रधानलूताविषनाशक अगद ।

रजनीघनसर्षपलोचना-
कणशुण्ठीकणमूलचित्रकाः ।
वरुणागुरुबिल्वपाटली-
पिचुमन्दाभयशेलुकेशरम् ॥ ८३ ॥

हलदी, दारुहलदी, नागरमोथा, गंधनाकुली, पीपल, सोंठ, पीपलामूल, चित्रक, वरुणवृक्षकी छाल, अगर, बिल्व, पाटला, नीम, हरीतकी, लिसोढा और नागकेशर इनसे बनायाहुआ अगद कफप्रधानलूता-विषको शमन करता है ॥ ८३ ॥

वातप्रधानलूताविषनाशक ।

बिल्वचन्दननतोत्पलशुण्ठी-
पिप्पलीनिचुलवेतसकुष्ठम् ।
शुक्तिशाकवरपाटलिभार्गी-
सिन्दुवारकरहाटवराङ्गम् ॥ ८४ ॥

बिल्व, चन्दन, तगर, कमल, सोंठ, पीपल, वेतस, कूठ, चूकाशाक, वथुवाशाक पाटला, भारंगी, सम्भालू, कमलका कन्द और दालचीनी, इनका अगद वात-प्रधान लूताविषको शमन करता है ॥ ८४ ॥

पित्तकफानिललूताः पानाञ्जननस्यलेपसेकेन ।
अगदवरा वृत्तस्थाः कुमतीरिव वारयन्त्येते८५

ये ऊपर कहे वैतालीयवृत्तमें तीनश्लोकोंमें तीन श्रेष्ठ अगद पित्त कफ और वातप्रधान लूतादिकोंमें पीनेमें, अंजनकरनेमें, लेपमें और सेचन करनेमें विषको कुमतिके समान नष्ट करदेते है ॥ ८५ ॥

रोध्रं सेव्यं पद्मकं पद्मरेणुः
कालीयाख्यं चन्दनं यच्च रक्तम् ।
कान्तापुष्पं दुग्धिनीका मृणालं
लूताः सर्वा घ्नन्ति सर्वक्रियाभिः ॥८६॥

पठानीलोध, खस, पद्मकाष्ठ, कमलकी केशर, अगर, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, फूलप्रियंगु, शारिवा और मृणाल इन द्रव्योंको पानलेपादिमें सब प्रकार प्रयोग करनेसे सब प्रकारके लूताविष नष्ट होते हैं ८६

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तर-स्थाने आयुर्वेदाचार्यपं०शिवशर्मकृतशिवदीपि-काभाषाव्याख्यायां कीटलूतादिविषप्रति-षेधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो मूषिकालर्कविषप्रतिषेधं-
-व्याख्यास्यामः ॥

अब हम मूषिका और अलर्क (बावलेकुत्ते) के विषको निवृत्त करनेकी चिकित्साको कथन करते है ।

मूषिकाओंके अठारह भेद ।

लालनश्चपलः पत्रोहसिरश्चिक्किरोजिरः ।
कषायदन्तःकुलकःकोकिलःकपिलोऽसितः।१॥
अरुणः शबलःश्वेतः कपोतः पलितोन्दुरः ।
छुच्छुन्दरो रसालाख्यो दशाष्टौ चेति मूषिकाः२

लालन, चपल, पत्रक, हसिर, चिक्किर, अजिर, कषायदन्त, कुलक, कोकिल, असित, अरुण, शबल, श्वेत, कपोत, पलित, उन्दुर, छुछुन्दर और रसाल ये अठारह प्रकारकी मूषिकायें होती है ॥ १ ॥ २ ॥

मूषिकविष लक्षण ।

शुक्रं पतति यत्रैषां शुक्रदिग्धैः स्पृशन्ति वा ।
सिन्दुवारनतं शिग्रुबिल्वमूलं पुनर्नवा ।
यदङ्गमङ्गैस्तत्रास्रे दूषिते पाण्डुतां गते ॥
ग्रन्थयः श्वयथुःकोथो मण्डलानि भ्रमोऽरुचिः३
शीतज्वरोऽतिरुक्सादो वेपथुः पर्वभेदनम् ॥
रोमहर्षः स्रुतिर्मूर्च्छा दीर्घकालानुबन्धनम् ।
श्लेष्मानुबद्धबह्वाखुपोतकच्छर्दनं सतृट् ॥ ४ ॥

इन अठारह प्रकारके विषयुक्त मूषकोंका जिस स्थानपर वीर्य गिरजाता है अथवा वीर्य गिरेहुए वस्त्र आदिका स्पर्श होजाता है अथवा इनके अंग नख, दांत आदि जिस शरीरके ऊपर लगजाते हैं तो उस शरीरका रक्त दूषित होकर पाण्डुवर्णका होजाता है । तब उस मनुष्यके शरीरमें ग्रंथियें, सूजन, कोथ-मंडल, भ्रम, अरुचि, शीतज्वर, अत्यन्तपीडा, अंग-साद, कम्प, पर्वभेद, रोमहर्ष, रक्तस्राव, मूर्च्छा, रोगका बहुत कालतक शरीरमें अनुबंध रहना, मुखसे कफ-मिलेहुए मूषकोंके बहुत बारीक अणु वमनमें बहुतसे निकलने लगना और प्यास अधिक होना ये लक्षण होते है ॥ ३ ॥ ४ ॥

व्यवाय्याखुविषं कृच्छ्रं भूयो भूयश्च कुप्यति५

मूषकोंका विष व्यवायी और कष्टसाध्य होता है तथा शरीरमें छिपा रहकर बारबार प्रकोप करता है ५॥

असाध्यमूषकविषके लक्षण ।

मूर्च्छाङ्गशोफवैवर्ण्यक्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः ।
शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यलक्षणम् ६

असाध्य मूषकोंके विषमें मूर्च्छा, अंगोंमें सूजन, विवर्णता, क्लेद, शब्दका न सुनना, ज्वर, शिरमें भारीपन, मुखसे लारका गिरना और रक्तकी वमन होना ये लक्षण होते है ॥ ६ ॥

शूनबस्तिं विवर्णोष्ठमाख्वाभैर्ग्रन्थिभिश्चितम् ।
छुच्छुंदरसगन्धं च वर्जयेदाखुदूषितम् ॥ ७ ॥

जिस मूषकसे काटेहुए मनुष्यकी वस्तिमें सूजन हो, ओष्ठ विवर्ण होजाय, सारे शरीरपर मूषकके आकारकी ग्रंथियें निकलआवे, छुछुन्दरके समान शरीरसे गंध आनेलगे ऐसे आखुदष्टमनुष्यको असाध्य जानना चाहिये ॥ ७ ॥

बावले कुत्तेके लक्षण ।

शुनः श्लेष्मोल्बणा दोषाः संज्ञां संज्ञावहाश्रिताः
मुष्णंतः कुर्वते क्षोभं धातूनामतिदारुणम् ॥८॥
लालावानन्धबाधिरः सर्वतः सोऽभिधावति ।
स्रस्तपुच्छहनुस्कन्धशिरोदुःखी नताननः ॥९॥

बावलेकुत्तेका विष कफप्रधानदोषोंवाला होता है इस कारण उसके शरीरमें कफप्रधान दोष ज्ञानके वहनकरनेवाले स्रोतोंके आश्रित होकर संज्ञाको हरण करतेहुए रक्तादि धातुओंमें अतिदारुण क्षोभको उत्पन्न करते है । इस कारण यह मुखसे लारको गिरताहुआ अंध बधिरके समान सब ओरको भागा फिरता है । इसकी पूंछ, हनु, कंधे और शिर स्रस्त होजाते है । यह दुख और नीचेको शिर करके भ्रमता है ८॥९॥

बावले कुत्तेसे काटेहुए पुरुषके लक्षण ।

दंशस्तेन विदष्टस्य सुप्तः कृष्णं क्षरत्यसृक् ।
हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भस्तृष्णामूर्च्छोद्भवोऽनु च।

इससे काटेहुए मनुष्यके दंशस्थानमेंसे कालेवर्णका रक्तस्राव होता है, दंशस्थान सुप्तसा प्रतीत होता है, इस मनुष्यके शिर हृदयमें अतिपीड़ा होती है तदनन्तर ज्वर, स्तम्भ, तृषा और मूर्च्छा उत्पन्न होजाते हैं॥१०॥

अनेनान्येऽपि बोद्धव्या व्याला दंष्ट्राप्रहारिणः॥

इसी प्रकार अन्य गीदड़आदि जो दंशप्रहारकरनेवाले अन्य जंतु है उनके विषको भी जानलेना चाहिये ॥ ११ ॥

कुत्ते गीदड़ आदिसे काटे हुवोंके सामान्य लक्षण ।

कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्लेदज्वरभ्रमाः ।
विदाहरागरुक्पाकशोथग्रन्थिविकुञ्चनम्॥१२॥
दंशावदरणं स्फोटाः कर्णिका मण्डलानि च ।
सर्वत्र सविषे लिङ्गं विपरीतं तु निर्विषे ॥ १३ ॥

सब प्रकारके सविष व्रणोंमें कण्डू, निस्तोद, विवर्णता, सुप्ति, क्लेद, ज्वर, भ्रम, विदाह, लालिमा, पीड़ा, पाक, सूजन, ग्रंथि, संकोच, दंशस्थानका दारण होना, स्फोट, कर्णिका और मण्डल ये उपद्रव होते हैं । इससे विपरीत अर्थात् कण्डूतोदादिरहित निर्विष व्रण होते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

असाध्य अलर्कदष्टके लक्षण ।

दष्टो येन तु तच्चेष्टा रुतं कुर्वन्विनश्यति ।
पश्यंस्तमेव चाकस्मादादर्शसलिलादिषु ॥१४॥

विषैलेकुत्ते आदिका काटाहुआ मनुष्य यदि अकस्मात् वैसे ही कुत्तोंको देखे अथवा आदर्श (सीसा) या जलमें वैसे ही कुत्तोंको देखे तथा उन्हींके समान चेष्टा और शब्दादि करे तो वह विषयुक्त श्वानका काटाहुआ मनुष्य मृत्युको प्राप्त होजाता है ॥१४॥

जलसंत्रासके लक्षण ।

योऽद्भ्यस्त्रस्येददष्टोऽपि शब्दसंस्पर्शदर्शनैः ।
जलसन्त्रासनामानं दष्टं तमपि वर्जयेत् ॥ १५ ॥

जिस श्वान आदिसे काटेहुए मनुष्यका दंशस्थान निरोग होचुका हो अथवा विना ही काटेहुए मनुष्य यदि जलके शब्दसे या जलके स्पर्शसे या जलको देखनेसे डरता हो इस रोगको जलसंत्रास कहते हैं । इस जलसंत्रासरोगीको भी असाध्य जानना चाहिये ॥ १५ ॥

मूषिकदंशकी चिकित्सा ।

आखुना दष्टमात्रस्य दंशं काण्डेन दाहयेत् ।
दर्पणेनाथवा तीव्ररुजा स्यात्कर्णिकान्यथा १६

मूषकके काटनेके अनन्तर उसी समय उसके दंशको सरकंडेके काण्डसे दहन करदेना चाहिये अथवा शीशेसे दहन करदेना चाहिये । यदि उसी समय दग्ध न कियाजाय तो उसमें तीव्रपीड़ा और कर्णिका उत्पन्न होजाती है ॥ १६ ॥

दग्धं विस्रावयेद्दंशं प्रच्छिन्नं च प्रलेपयेत् ।
शिरीषरजनीवक्रकुंकुमामृतवल्लिभिः ॥ १७ ॥

मूषकके दंशको दग्ध करनेके अनन्तर पछने लगाकर रक्तस्राव करे तदनन्तर सिरसके बीज, हलदी, कूठ, केशर और गिलोय इनको रगड़कर दंशव्रणपर लेपकरे ॥ १७ ॥

अगारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः ।
लेपो जयत्याखुविषं कर्णिकायाश्च पातनः १८

घरका धूवां, मंजीठ, हलदी और सेंधानमकसे कियाहुआ लेप मूषकके विषको शीघ्र शमन करदेता है और कर्णिकाको पातन करदेता है ॥ १८ ॥

ततोऽम्लैः क्षालयित्वाऽनु तोयैरनु च लेपयेत् ।
पालिन्दीश्वेतकटभीबिल्वमूलगुडूचिभिः ।
अन्यैश्च विषशोफघ्नैः सिरां वा मोक्षयेद्द्रुतम् १९

तदनन्तर अम्लजलसे धोकर उसके अनन्तर जलसे धोकर निशोथ, श्वेतकटभी, बिल्वकी जड़ और गिलोयके कल्कको विष और सूजननाशक अम्लजलमें मिलाकर लेप शीघ्र करे. अथवा सिरा वेधनकर रक्त निकाले॥१९

छर्दनं नीलिनीक्वाथैः शुकाख्याङ्कोल्लयोरपि २०

मूषक विषमें नीलिनीके काथसे अथवा सिरस और अङ्कोलके काथसे वमन करावे ॥ २० ॥

मूषकविषमें वामकयोग ।

कोशातक्याःशुकाख्यायाः फलं जीमूतकस्य च
मदनस्य च संचूर्ण्य दध्ना पीत्वा विषं वमेत् २१

कड़वीतोरी, सिरसके बीज, वन्दाल डोड़के बीज और मैनफल इन सबका चूर्णकर दहीमें मिलाकर पीवे और विषयुक्त दोषको वमन करके निकाल देवे२१

वचामदनजीमूतकुष्ठं वा मूत्रपेषितम् ।
पूर्वकल्पेन पातव्यं सर्वोन्दुरविषापहम्॥ २२ ॥

अथवा वच, मैनफल, जीमूत और कूठ इनको गोमूत्रमें पीसकर वमनार्थ पीवे तो सब प्रकारके मूषकोंका विष दूर होता है ॥ २२ ॥

विरेचनं त्रिवृन्नीलीत्रिफलाकल्क इष्यते ।
अञ्जनं गोमयरसो व्योषसूक्ष्मरजोऽन्वितः॥२३

निशोथ, नीलिनी और त्रिफलेका कल्क पीकर विरेचन करानेसे विषयुक्त दोष निकलजाता है ।

शिरोविरेचनके लिये शिरीषवृक्षका सार और फल पीसकर नस्य लेवे ।

गोबरका रस और बहुत बारीक पीसाहुआ त्रिकटु नेत्रोंमें डालनेसे मूषकविष शमन होता है ॥ २३ ॥

कपित्थगोमयरसो मधुमानवलेहनम् ॥ २४ ॥

कपित्थका रस मधु मिलाकर चाटनेसे मूषकविष शमन होता है ॥ २४ ॥

मूषकविषनाशक घृत ।

तन्दुलीयकमूलेन सिद्धं पाने हितं घृतम् ।
द्विनिशाकटभीरक्तायष्ट्याह्वैर्वाऽमृतान्वितैः ।
आस्फोतमूलसिद्धं वा पञ्चकापित्थमेव वा ॥२५

चौलाईकी जड़के कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत. अथवा हलदी, दारुहलदी, कटभी, मंजीठ और मुलहठी इनके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत. अथवा आककी जड़के कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा-कपित्थके पंचांगसे सिद्ध किआहुआ घृत पीनेसे मूषकविष शमन होता है ॥ २५ ॥

सिन्दुवारनतं शिग्रुबिल्वमूलं पुनर्नवा ।
वचाश्वदंष्ट्राजीमूतमेषां क्वाथं समाक्षिकम् ।
पिबेच्छाल्योदनं दध्ना भुञ्जानो मूषिकार्दितः२६

सम्भालू, तगर, सुहांजना, बिल्वकी जड़, पुनर्नवा, वच, गोखुरू और कड़वी तोरी इनका काथ मधु मिलाकर पीवे तथा शालिचावलोंका भात और दहीका भोजन करे तो मूषिकाविष शमन होजाता है ॥ २६ ॥

तक्रेण शरपुङ्खाया बीजं संचूर्ण्य वा पिबेत्२७

अथवा शरपुंखाके बीजोंके चूर्णको तक्रके साथ पीवे तो मूषकविष शमन होता है ॥ २७ ॥

अङ्कोलमूलकल्को वा बस्तमूत्रेण कल्कितः ।
पानालेपनयोर्युक्तः सर्वाखुविषनाशनः ॥२८॥

अङ्कोलकी जड़के कल्कको बकरेके मूत्रमें मिलाकर पीने और लेप करनेसे सब प्रकारके मूषकोंका विष नष्ट होता है ॥ २८ ॥

कपित्थमध्यातिलकतिलाङ्कोलजटाः पिबेत् ।
गवां मूत्रेण पयसा मञ्जरी तिलकस्य वा॥२९॥

कपित्थफलका मध्यभाग, मरुवेके पत्र, तिल और अंकोलकी जड़ इनको गोमूत्रमें पीसकर पीवे अथवा मरुवेकी मंजरीको दूधमें पीसकर पीवे तो आखुविष शमन होता है ॥ २९ ॥

अथवा सैर्यकान्मूलं सक्षौद्रं तन्दुलाम्बुना ।
कटुकालाबुविन्यस्तं पीतं वांबु निशोषितम्३०

अथवा काले बांसेकी जड़के चूर्णको मधुयुक्त तंडुल जलके साथ पीवे. अथवा कटुतुम्बीमें जल डालकर इसको रात्रिभर रखे और प्रातःकाल पीवे तो मूषिका विष शमन होता है ॥ ३० ॥

सिन्दुवारस्य मूलानि बिडालास्थिविषं नतम् ।
जलपिष्टो गदो हन्ति नस्याद्यैराखुजं विषम् ३१

सिंदुवारकी जड, विडालकी अस्थि, सिंगिया विष और तगर इनको जलमें पीस नस्य, अञ्जन और दंशपर लेप करनेसे यह अगद आखुविषको शमन करता है ॥ ३१ ॥

सशेषं मूषिकाविषं प्रकुप्यत्यभ्रदर्शने ।
यथायथं वा कालेषु दोषाणां वृद्धिहेतुषु ॥३२॥

मूषिकोंका विष मेघाच्छन्न आकाशके समय विशेष रूपसे प्रकोप करता है। अथवा वातादिदोषोंके वृद्धिके हेतुभूत समयोंमें भी यथादोष प्रकोप करताहै ३२

तत्र सर्वे यथावस्थं प्रयोज्याः स्युरुपक्रमाः।
यथास्वं ये च निर्दिष्टास्तथा दूषीविषापहाः३३

इन सब प्रकारके विषोंमे अवस्थानुसार और दोषानुसार दूषीविषनाशक जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

कुत्तेसे काटेहुए मनुष्यकी चिकित्सा ।

दंशं त्वलर्कदष्टस्य दग्धमुष्णेन सर्पिषा ।
प्रदिह्यादगदैस्तैस्तैःपुराणं च घृतं पिबेत्॥३४॥

कुत्तेके काटेहुए दंशको गर्म किएहुए घीसे दग्ध करना चाहिये. तथा विषनाशकद्रव्योंसे लेप करना चाहिये और उस पुरुषको पुराना घी पीना चाहिये३४

अर्कक्षीरयुतं चास्य योज्यमाशु विरेचनम् ।
अङ्कोल्लोत्तरमूलाम्बु त्रिफलं सहविः पलम् ।
पिबेत्सधत्तूरफलां श्वेतां वाऽपि पुनर्नवाम्३५॥

कुत्तेके काटेहुए पुरुषको आकका दूध मिलेहुए निशोथके कल्कसे सिद्ध विरेचन कराना चाहिये । अथवा अंकोल और उत्तरवारुणीकी जड़का तीन पल क्वाथ एक पल घृत मिलाकर पीना चाहिये, अथवा धतूरेके पांच बीज सफेदनिशोथ और पुनर्नवा जलमें मिलाकर पीना चाहिये ॥ ३५ ॥

ऐकध्यं पललं तैलं रूपिकायाः पयो गुडः ।
भिनत्ति विषमालर्कं घनवृन्दमिवानिलः॥३६॥

भुनेहुए तिलोंका चूर्ण, तेल, सफेद आकका दूध और गुड़ इन सबको एकत्र मिलाकर पीनेसे कुत्तेका विष ऐसे दूर होता है जैसे वायुसे बादल दूर होतेहैं ॥३६

समन्त्रं सौषधीरत्नं स्नापनं च प्रयोजयेत्॥३७॥

कुत्तेसे काटेहुए पुरुषको मन्त्रयुक्त औषधि और रत्नयुक्त जलसे स्नान करावे ॥ ३७ ॥

अन्यजन्तुवोंके विषके लक्षण और चिकित्सा ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखदन्तपरिक्षतम् ।
शूयते पच्यते रागज्वरस्रावरुजान्वितम् ॥३८॥
सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपादिका ।
रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदन्तविषापहः ॥३९॥

इति विषतन्त्रं षष्ठं समाप्तम् ।

चौपाये घोड़ेआदि जन्तुओंके दो पैरोवाले मनुष्य

१ अष्टाङ्गसंग्रहे--
" अष्टोत्तरशतं वारान् सिद्धमंत्राभिमंत्रितैः । अष्टोत्तरशतोन्मानैः पुष्पमालावगुण्ठितैः ॥ गोचर्ममात्रके लिप्ते ज्वलितेऽग्नौ कुशास्तृते । स्थण्डिले सरित्तीरे स्नानं चास्य चतुष्पथे ॥ अलर्काधिपते यक्ष सारमेय गणाधिप । अलर्कं जुष्टमेतन्मे निर्विषं कुरुमाचिरात् ॥ स्वाहेतिमंत्रोऽर्कान्ते सर्वकर्मसु शस्यते ॥ "

कुक्कुट आदिकोंके नख दांत आदिसे क्षत होजानेपर क्षतस्थानमें सूजन, लालिमा, परिपाक, ज्वर, स्राव और पीड़ा होजाती है। ऐसा होनेपर कत्था, राल, बनगोभी, हंसपादी, हलदी, दारुहलदी और गेरूका लेप करनेसे नखविष और दन्तविष दूर होजातेहैं ॥९०॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्य पं० शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां मूषिकालर्कादिविषप्रतिषेधो नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।

अथाऽतो रसायनाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम रसायनाध्यायकी व्याख्या करते है ॥

रसायनसेवनके गुण।

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलोदयम् ॥ १ ॥
वाक्सिद्धिं वृषतां कान्तिमवाप्नोति रसायनात्।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् २

रसायनऔषधको यथार्थरूपसे सेवन कियाजाय तो मनुष्यको दीर्घायु, स्मरणशक्ति, मेधा, आरोग्य, युवावस्था, प्रभाव, वर्ण स्वर, औदार्य देह और इंद्रियोंके बलकी वृद्धि, वाक्सिद्धि, पुंस्त्वशक्ति और कान्तिकी प्राप्ति होती है। रसायन सेवन ही उत्तम रसादि धातुओंको लाभ करनेका उपाय है इस कारण रसायनका कथन करते है ॥ १ ॥ २ ॥

रसायनसेवनकी अवस्था।

पूर्वे वयसि मध्ये वा तत्प्रयोज्यं जितात्मनः।
स्निग्धस्य स्रुतरक्तस्य विशुद्धस्य च सर्वथा ३॥

पहली अवस्थामें अथवा मध्यावस्थामें जितेन्द्रिय पुरुषको स्नेहन स्वेदन करके सूत्रस्थानमें कहेहुए विधानसे वमन विरेचनादि पञ्चकर्म कराकर और सिरा मोक्षण कर आभ्यन्तर और बाहरसे शरीरको सर्वथा शुद्ध करके रसायनका प्रयोग करावे ॥ ३ ॥

अशुद्ध शरीरमें रसायनकी निष्फलता।

अविशुद्धे शरीरे हि युक्तो रासायनो विधिः।
वाजीकरो वा मलिने वस्त्रे रङ्ग इवाफलः ॥४॥

यदि शरीरको यथार्थ शोधन विना किये ही रसायन औषध या वाजीकरण औषधका सेवन कराया जावे तो वह इस प्रकार निष्फल होता है जैसे मलीन वस्त्रपर दियाहुआ रंग निष्फल होता है ॥ ४ ॥

रसायन सेवनके दो प्रकार।

रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृषयो विदुः।
कुटीप्रावेशिकं मुख्यं वातातपिकमन्यथा ॥५॥

रसायनोंके सेवनकरनेके ऋषियोंने दो भेद कथन किये हैं उनमें कुटीप्रवेश होकर रसायन सेवन करना रसायनका मुख्य प्रयोग है और यही श्रेष्ठ होता है। दूसरी वातातपिक अर्थात् आतप और पवनका कोई विचार न रखकर जो रसायन सेवन कियाजाय उसको वातातपिकविधि कहते है. यह कुटीप्रवेशसे न्यून गुणकारी है ॥ ५ ॥

कुटीप्रवेशकर रसायनसेवनकी विधि।

निर्वाते निर्भये हर्म्ये प्राप्योपकरणे पुरे।
दिश्युदीच्यां शुभे देशे त्रिगर्भां सूक्ष्मलोचनाम् ६
धूमातपरजोव्यालस्त्रीमूर्खाद्यविलङ्घिताम्।
सज्जवैद्योपकरणां सुमृष्टां कारयेत्कुटीम् ॥७॥

सब प्रकारके सामान उपकरणयुक्त नगरमें उत्तर दिशाकी ओर बनेहुए निर्भय और निर्वात उत्तम शुभस्थानमें उत्तरकी ओर तीन गर्भवाली कुटी बनावे अर्थात् तीन आवरणवाली कुटी बनावे. इसमें बहुत छोटे झरोखे रखने चाहिये। इस कुटीमें धूम, आतप, रज व्याल स्त्री और मूर्ख आदिका सम्पर्क नहीं होना चाहिये। किन्तु आयुर्वेदिक रसायन सम्बन्धी सब सामान युक्त और सुन्दर इस कुटीको बनाना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ पुण्येऽह्नि संपूज्य पूज्यांस्तां प्रविशेच्छुचिः
तत्र संशोधनैः शुद्धः सुखी जातबलः पुनः ८॥
ब्रह्मचारी धृतियुतः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
दानशीलदयासत्यव्रतधर्मपरायणः ॥ ९ ॥
देवतानुस्मृतौ युक्तो युक्तस्वप्नप्रजागरः।
प्रियौषधः पेशलवाक् प्रारभेत रसायनम् ॥ १० ॥

तदनन्तर शुभ नक्षत्र और पुण्य दिनमें देव, ऋषि गुरु आदि पूज्योंका विधिपूर्वक पूजनकर पवित्र होकर इस कुटीमें प्रवेश करे।

इस कुटीमें संशोधनोंसे शुद्धहुआ यथार्थ बल आजानेपर ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय रहताहुआ, धृति और श्रद्धा करके युक्त, तथा दान, शील, दया, सत्य, व्रत और धर्मपरायण रहताहुआ, देवताओंका स्मरण करताहुवा उचितरीतिपर नियमानुसार शयन और जागरणका पालन करताहुआ, मधुर भाषणकरनेवाला तथा औषधिमें अनुराग और श्रद्धा रखनेवाला मनुष्य रसायन सेवनका प्रारम्भ करे॥ ८-१०॥

रसायनसेवनसे पूर्वसेवनका विरेचन योग।

हरीतकीमामलकं सैन्धवं नागरं वचाम्।
हरिद्रां पिप्पलीं वेल्लं गुडं चोष्णाम्बुना पिबेत्।
स्निग्धः स्विन्नो नरः पूर्वं तेन साधु विरिच्यते॥

हरीतकी, आमले, सेन्धानमक, सोंठ, वच, हल्दी, पीपल, वायविडंग और गुड़ इन सब द्रव्योंको मिलाकर प्रथम स्निग्ध और स्वेदन कियाहुआ मनुष्य गरम जलसे पीवे तो यथार्थ विरेचन होजाता है॥ ११॥

पेयादिक्रम पालन।

ततः शुद्धशरीराय कृतसंसर्जनाय च॥ १२॥
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सप्ताहं वा घृतान्वितम्।
दद्याद्यावकमाशुद्धेः पुराणशकृतोऽथवा॥१३॥

तदनन्तर शुद्ध शरीरवाले पुरुषको पेया आदिक्रम पालन करनेके अनन्तर तीन दिन अथवा पांच दिन या सात दिन घृतयुक्त यवागू पिलावे। अथवा जबतक शरीरसे पुराना मल निकलकर शरीर शुद्ध न होजाय तबतक घृतयुक्त यवागू पिलाना चाहिये॥१२॥१३॥

इत्थं संस्कृतकोष्ठस्य रसायनमुपाहरेत्।
यस्य यद्यौगिकं पश्येत्सर्वमालोच्य सात्म्यवित्॥

इस प्रकार संस्कार कियेहुए मनुष्यको वैद्य सात्म्य आदि विचार करनेके अनन्तर जिस प्रकारके योगकी रसायन सेवन कराना उचित समझता हो वह रसायन सेवन करावे॥ १४॥

ब्रह्मप्राश रसायन।

पथ्यासहस्रं त्रिगुणधात्रीफलसमन्वितम्।
पञ्चानां पञ्चमूलानां सार्धं पलशतद्वयम्॥१५॥
जले दशगुणे पक्त्वा दशभागस्थिते रसे।
आपोथ्य कृत्वा व्यस्थीनि विजयामलकान्यथ।
विनीय तस्मिन्निर्यूहे योजयेत्कुडवांशकम्।
त्वगेलामुस्तरजनीपिप्पल्यगुरुचन्दनम्॥ १७॥
मण्डूकपर्णीकनकशङ्खपुष्पीवचाप्लवम्।
यष्ट्याह्वयं विडङ्गं च चूर्णितं तुल्याधिकम् १८
सितोपलार्धभारं च पात्राणि त्रीणि सर्पिषः।
द्वे च तैलात् पचेत्सर्वं तदग्नौ लेहतां गतम् १९॥
अवतीर्णं हिमं युञ्ज्याद्विंशैः क्षौद्रशतैस्त्रिभिः।
ततः खजेन मथितं निदध्याद् घृतभाजने२०॥
यानोपरुध्यादाहारमेकं मात्रास्य सा स्मृता।
षष्टिकः पयसा चाऽत्र जीर्णे भोजनमिष्यते २१
वैखानसा बालखिल्यास्तथा चाऽन्ये तपोधनाः।
ब्रह्मणा विहितं धन्यमिदं प्राश्य रसायनम् २२
तन्द्राश्रमक्लमवलीपलितामयवर्जिताः।
मेधास्मृतिबलोपेता बभूवुरमितायुषः॥२३॥

प्रथम बहुत उत्तम पकीहुई एक सहस्र हरीतकी और तीन सहस्र आमले लेवे फिर बिल्व, श्योनाक, काश्मरी, पाटला, अग्निमन्थ, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, कुशा, कास, दाभ, सरकण्डा, इक्षुमूल, शतावरी, विदारीकन्द, जीवन्ती, मेढ़ासिंगी, जीवक, बला, पुनर्नवा, एरण्ड, माषपर्णी, मुद्गपर्णी इन पांच पञ्चमूलोंकी सब औषधियें एकत्र मिलाकर साढ़ेपांचसौ पल (२७॥ सेर) लेवे, इन सबको इनसे दसगुणे जलमें पकावे, जब दसवां भाग जल शेष रहे तो उतारकर छान लेवे, इसमें पकते समय हरीतकी और आमलोंको पतले वस्त्रमें ढीला बांधकर डालना चाहिये; फिर निकाल कर इन सब द्रव्योंके छानेहुए काथमें इन हरड़ों और आमलोंको इनकी गुठलियें दूर करके पीसकर मिलावे। तथा दालचीनी, इलायची, नागरमोथा, हल्दी, पीपल, अगर, चन्दन, मण्डूकपर्णी, नागकेशर, शंखपुष्पी,

वच, केवटीमोथा, मुलहठी और वायविड़ंग इन प्रत्येकका चूर्ण एक एक कुडव प्रमाण मिलावे । तथा मिसरी ९९ सेर, घृत १२ सेर, तेल ८ सेर मिलावे इन सबको मिलाकर विधिवत् अवलेह पकावे जब अवलेह तैयार होजाय तो उतारकर ठण्ढा करे फिर इसमें तीन सौ बीस पल मधु मिलाकर मथानीसे मथे तदनन्तर घृतसे चिकने पात्रमें डालकर रखदेवे ।

इस हरीतक्यादि अवलेहमेंसे इतना अवलेह नित्य खावे जिससे स्वाभाविक आहारकी मात्रामें कमी न आवे । यही इसकी यथार्थ मात्राका प्रमाण है। इसको सेवन करते समय क्षुधा लगनेपर दूधके साथ सांठीके चावलोंका भात खाना चाहिये; यह ब्रह्माकी कहीहुई प्राश्य रसायन धन्य है इसके सेवनसे ही वैखानस और बालखिल्यआदि ऋषि तथा अन्य तपोधनऋषि तन्द्रा, क्लम, श्रम, बली, पलित और रोगरहित तथा मेधा, स्मृति और बलयुक्त होकर अमितआयुवाले हुए हैं ॥ १९-२३ ॥

हरीतक्यादि रसायन ।

अभयामलकसहस्रंनिरामयं पिप्पलीसहस्रयुतम् ।
तरुणपलाशक्षारद्रवीकृतं स्थापयेद्द्राण्डे ॥२४॥
उपयुक्ते च क्षारे छायासंशुष्कचूर्णितं योज्यम् ।
पादांशेनसितायाश्चतुर्गुणाभ्यां मधुघृताभ्याम् ॥
तद् घृतकुम्भे भूमौ निधाय षण्मासतस्त्वमुद्धृत्य
प्राह्ने प्राश्य यथानलमुचिताहारो भवेत्सततम्॥
इत्युपयुंज्याऽशेषं वर्षशतमनामयो जरारहितः ।
जीवति बलपुष्टिवपुःस्मृतिमेधाद्यन्वितो-
-विशेषेण ॥ २७ ॥

एक सहस्र सुन्दर हरडें, एक सहस्र उत्तम आमले और एक सहस्र सुन्दर पीपल इन सबको लेकर युवावस्थावाले पलाशवृक्षके क्षारमें भिगोकर मिट्टीके बर्तनमें रक्खे । यथार्थ रूपसे यह क्षारको पान कर लेवें तो इनको निकालकर छायामें सुखावे । फिर इनका बारीक चूर्णकर इस चूर्णसे चौथा भाग मिसरी और चूर्णसे चार गुणे घृत और मधु मिलाकर चिकने घटमें डालकर मुख बन्द करके पृथ्वीमें गाड़ देवे । छः महीनेके अनन्तर निकालकर अग्निबलानुसार जिससे स्वाभाविक आहारमें हानि न हो उतनी मात्रासे नित्य प्रातःकाल खावे । इस विधिसे इस संपूर्ण औषधिको सेवन कियाजाय तो वह मनुष्य सौ बरस तक रोग और बुढ़ापेसे रहित होकर बल और पुष्टिवाले शरीरके साथ सौ वर्षतक जीवित रहता है । और विशेषकर स्मृति और मेधा आदियुक्त होता है ॥ २४-२७ ॥

आमलकी रसायन ।

नीरुजार्द्रपलाशस्य छिन्ने शिरसि तत्क्षतम् ।
अन्तर्द्विहस्तं गम्भीरं पूर्यमामलकैर्नवैः ॥२८॥
आमूलं वेष्टितं दर्भैः पद्मिनीपङ्कलेपितम् ।
आदीप्य गोमयैर्वन्यैर्निर्वाते स्वेदयेत्ततः॥२९॥

स्विन्नानि तान्यामलकानि तृप्त्या
खादेन्नरः क्षौद्रघृतान्वितानि ।
क्षीरं शृतं चानु पिबेत्प्रकामं
तेनैव वर्तेत च मासमेकम् ॥ ३० ॥
वर्ज्यानि वर्ज्यानि च तत्र यत्नात्
स्पृश्यं च शीताम्बु न पाणिनापि ।
एकादशाहेऽस्य ततो व्यतीते
पतन्ति केशा दशना नखाश्च ॥ ३१ ॥
अथाल्पकैरेव दिनैः सुरूप-
स्त्रीष्वक्षयः कुञ्जरतुल्यवीर्यः ।
विशिष्टमेधाबलबुद्धिसत्त्वो
भवत्यसौ वर्षसहस्रजीवी ॥ ३२ ॥

निरोग गीले पलाशवृक्षको ऊपरसे काटकर उसके क्षतमें (कटेहुए ढाकके स्थानमें) दो हाथ गहरा छिद्र बनाकर उसको नये आमलोंसे भर दे । फिर इसको जड़पर्य्यन्त दर्भसे लपेटकर कमलके कीचड़से लेप करके जंगली उपलोंसे ढककर उसको जलाकर आमलोंका निर्वात स्वेदन करे । उन स्वेदित कियेहुए आमलोंको शहद और घृत मिलाकर मनुष्य पेट भरकर खा लेवे । इसके पश्चात् गरम दूध पीवे । और एक मास पर्य्यन्त इसी आहारको करे । इसके सेवन करतेहुए मैथुनादिवर्ज्यकर्मोंको त्यागदेवे और शीतल जलका हाथसे भी स्पर्श न करे । ऐसा करतेहुए

ग्यारह दिन व्यतीतहोनेपर इस पुरुषके केश दाँत और नख झड़ जाते हैं । फिर थोड़े ही दिनोमें (नये केशादि उत्पन्न होकर) सुरूप होजाता है । स्त्रीसंगसे इस पुरुषका क्षय नहीं होता और हाथीके समान वीर्यवाला होजाता है । इसके मेधा, बल, बुद्धि और सत्त्व विशेषबलवान् होजाते हैं और यह सहस्त्रवर्षकी आयुवाला होसकता है ॥ २८–३२ ॥

च्यवनप्राशावलेह ।

दशमूलबलामुस्तजीवकर्षभकोत्पलम् ।
पर्णिन्यौ पिप्पली शृंगी मेदा तामलकी त्रुटिः ३३
जीवन्ती जोङ्गकं द्राक्षा पौष्करं चन्दनं शठी ।
पुनर्नवार्द्धिकाकालीकाकनासामृताह्वयाः ३४ ॥
विदारी वृषमूलं च तदैकध्यं पलोन्मितम् ।
जलद्रोणे पचेत्पञ्चधात्रीफलशतानि च ॥३५॥
पादशेषं रसं तस्माद्स्थीन्यामलकानि च ।
गृहीत्वा भर्जयेत्तैलघृताद् द्वादशभिःपलैः३६॥
मत्स्यण्डिकातुलार्धेन युक्तं तल्लेहवत् पचेत् ।
स्नेहार्धं मधु सिद्धे तु तवक्षीर्याश्चतुष्पलम् ॥३७
पिप्पल्या द्विपलं दद्याच्चतुर्जातं कणार्धितम् ।
अतोऽवलेहयेन्मात्रां कुटीस्थः पथ्यभोजनः ३८
इत्येष च्यवनप्राश्यो यं प्राश्य च्यवनो मुनिः ।
जराजर्जरितोऽप्यासीन्नारीनयननन्दनः ॥३९॥
कासं श्वासं ज्वरं शोषं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
मूत्रशुक्राश्रयान् दोषान् वैस्वर्यं च व्यपोहति ।
बालवृद्धक्षतक्षीणकृशानामङ्गवर्धनः ॥ ४० ॥

मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्व-
मायुःप्रकर्षं पवनानुलोम्यम् ।
स्त्रीषु प्रहर्षं बलमिन्द्रियाणा-
मग्नेश्च कुर्याद्विधिनोपयुक्तः ॥४१ ॥

दशमूलके दश द्रव्य, बला, नागरमोथा, जीवक, ऋषभक, कमल, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, पीपल, काकड़ा सिंगी, मेदा, भूमिआमलकी, इलायची, जीवन्ती, अगर, द्राक्षा, पुहकरमूल, चन्दन, कचूर, पुनर्नवा, श्वेतपुनर्नवा, काकोली, काकनासा, गिलोय, विदारीकन्द और वासेकी जड़ ये प्रत्येक एक एक पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे और इसमें ही पांच सौ आंवले एक महीन वस्त्रमें ढीले बांधकर पकनेके लिये डाल देवे. जब जल चौथा भाग शेष रहे उसमेंसे आंवलोंकी पोटली निकाल लेवे और काथको वस्त्रद्वारा छान लेवे. इन आंवलोंको अलग निकालकर इनकी गुठलियें अलग कर देवे फिर गुठली रहित आंवलोंको पीसकर बारह पल तैल और घृतमें भूने तदनन्तर ढाई सेर मिसरी लेकर उसको उस चार सेर काथमें डालकर पकावे इसीमें भुनेहुए आंवले भी डालकर अवलेह बनावे. जब अवलेह सिद्ध होजाय तो उतार कर शीतल करे तथा इसमें घृत तैलसे आधा मधु मिलावे फिर चार पल वंशलोचन, दो पल पीपल और एक पल चतुर्जातका चूर्ण मिलावे इस अवलेहको कुटीमें प्रवेश कर पथ्य भोजन करता-हुआ मनुष्य मात्रानुसार सेवन करे. यह च्यवनप्राशावलेह खानेसे च्यवनऋषि बुढ़ापेसे जरा जरित शरीरवाला होनेपर भी स्त्रियोंके नेत्रोंको आनंद देनेवाला युवावस्थावाला बन गया था । यह अवलेह खांसी, श्वास, ज्वर, शोष, हृद्रोग, वातरक्त, मूत्रदोष, वीर्यदोष और स्वरभंगको दूर करता है तथा बाल, वृद्ध, क्षत, क्षीण और कृश पुरुषोंके शरीरको पुष्ट करता है तथा मेधा, स्मृति, कांति, आरोग्य और आयुकी वृद्धिको करता है । वायुको अनुलोमन करता है । स्त्रियोंमें हर्ष उत्पन्न करता है । इन्द्रियोंको बल देता है जठराग्निको बल देता है. यह च्यवनप्राश विधिवत् सेवनसे इन गुणोंको करता है ॥ ३३--४१ ॥

त्रिफला रसायन ।

मधुकेन तवक्षीर्या पिप्पल्या सिन्धुजन्मना ।
पृथग्लोहैः सुवर्णेन वचया मधुसर्पिषा ॥४२ ॥
सितया वा समायुक्ता समायुक्ता रसायनम् ।
त्रिफला सर्वरोगघ्नी मेधायुःस्मृतिबुद्धिदा४३॥

त्रिफला सम भाग मुलहठीके साथ अथवा समभाग वंशलोचनके साथ अथवा पीपलके साथ अथवा सैंधानमकके साथ अथवा लोहभस्मके साथ या रौप्यभस्मके साथ या ताम्रभस्मके साथ अथवा वंगभस्मके साथ या नागभस्मके साथ या सुवर्णभस्मके साथ

अथवा बचके साथ अथवा मधु घृतके साथ या समभाग मिश्रीके साथ प्रयोग करनेसे रसायनके गुणोंको करता है।

त्रिफला सब रोगोंको नष्ट करता है मेधा, आयु, स्मृति और बुद्धिको बढाता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

मेधावर्धक रसायन ।

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसं यथाग्नि
क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ।
रसं गुडूच्याः सहमूलपुष्प्याः
कल्कं प्रयुञ्जीत च शङ्खपुष्प्याः॥४४॥
आयुःप्रदान्यामयनाशनानि
बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि ।
मेध्यानि चैतानि रसायनानि
मेध्या विशेषेण तु शङ्खपुष्पी ॥ ४५ ॥

मण्डूकपर्णीका स्वरस जठराग्निके बलके अनुसार पीवे अथवा मुलहठीका चूर्ण दूधके साथ पीवे अथवा गिलोयका स्वरस पीवे या मूल पुष्प सहित शंखपुष्पीका कल्क पीवे तो ये सब योग आयुके देनेवाले हैं रोगोंको नष्ट करते हैं बल, अग्नि, वर्ण और स्वरको बढाते हैं बुद्धिवर्धक हैं और रसायन हैं इन सबमें शंखपुष्पी विशेष कर मेधाको बढानेवाली है ४४॥४५

नलदादिघृत ।

नलदं कटुरोहिणी पयस्या
मधुकं चन्दनसारिवोग्रगन्धाः ।
त्रिफला कटुकत्रयं हरिद्रे
सपटोलं लवणं च तैः सुपिष्टैः ॥४६ ॥
त्रिगुणेन रसेन शङ्खपुष्प्याः
सपयस्कं घृतनल्वणं विपक्वम् ।
उपयुज्य भवेज्जडोऽपि वाग्मी
श्रुतधारी प्रतिभानवानरोगः ॥ ४७ ॥

बालछड़, कटुकी, क्षीरकाकोली, मुलहठी, चन्दन, सारिवा, वच, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, पटोलपत्र और सेंधानमक ये प्रत्येक पांच पांच तोला लेकर पीसकर कल्क बनावे. शंखपुष्पीका रस बारह सेर, दूध चार सेर, घृत चार सेर मिलाकर घृत सिद्ध करे इस घृतके पीनेसे जड़ मनुष्य भी पटुवक्ता, श्रुतधारी, प्रतिमायुक्त और निरामय होता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

पञ्चारविन्दघृत ।

पञ्चैर्मृणालबिसकेसरपत्रबीजैः
सिद्धं सहेमशकलं पयसा च सर्पिः ।
पञ्चारविन्दमिति तत्प्रथितं पृथिव्यां
प्रभ्रष्टपौरुषबलप्रतिभैर्निषेव्यम् ॥४८॥

कमलके कंद, मृणाल, केशर, पत्र और बीज इनके कल्कसे और दूधसे सिद्ध कियाहुआ घृत सुवर्णभस्म और मिश्री मिलाकर सेवन करे यह पृथ्वीमें प्रसिद्ध पंचारविन्द घृत जिन पुरुषोंका पुरुषार्थ बल और प्रतिमा हीन होगयी हो उनको सेवन करना चाहिये अर्थात् इसके सेवनसे पौरुष बल और प्रतिमाकी विशेष वृद्धि होती है ॥ ४८ ॥

चतुष्कुवलय घृत ।

यन्नालकन्ददलकेसरवद्विपक्वं
नीलोत्पलस्य तदपि प्रथितं द्वितीयम् ।
सर्पिश्चतुःकुवलयं सहिरण्यपत्रं
मेध्यं गवामपि भवेत् किमु मानुषाणाम् ॥

इसी प्रकार नीलकमलके नाल, कंद, केशर और पत्रसे सिद्ध कियाहुआ दूसरा घृत चतुष्कुवलय कहा जाता है। इस घृतको मिश्री और सुवर्ण मिलाकर सेवन करे तो बैलकी भी बुद्धि बढ़ा देता है। मनुष्योंका तो कहना ही क्या है ॥ ४९ ॥

ब्राह्मी आदि रसायन योग ।

ब्राह्मीवचासैन्धवशङ्खपुष्पी-
मत्स्याक्षकब्रह्मसुवर्चलेन्द्यः ।
वैदेहिका च त्रियवाः पृथक्स्यु-
र्यवौ सुवर्णस्य तिलो विषस्य ॥५० ॥
सर्पिषश्च पलमेकत एतद्-
योजयेत्परिणते च घृताढ्यम् ।
भोजनं समधु वत्सरमेवं
शीलयन्नधिकधीस्मृतिमेधः ॥ ५१ ॥

अतिक्रान्तजराव्याधितन्द्रालस्यश्रमक्लमः।
जीवत्यब्दशतं पूर्णं श्रीतेजःकान्तिदीप्तिमान् ॥
विशेषतः कुष्ठकिलासगुल्म-
विषज्वरोन्मादगरोदराणि।
अथर्वमन्त्रादिकृताश्च कृत्याः
शाम्यन्त्यनेनातिबलाश्च वाताः ॥ ९३॥

ब्राह्मी, वच, सेंधानमक, शंखपुष्पी, ब्रह्मसुवर्चला, इन्द्रवारुणी और पीपल ये प्रत्येक तीन यव प्रमाण, सुवर्ण दो यव प्रमाण, सिंगिया विष एक तिल प्रमाण, घृत एक पल इनको पीसकर एकत्र मिलावे. इसको प्रातःकाल सेवनकर जब औषध जीर्ण होकर क्षुधा लगे तब बहुतसे घृत युक्त और मधु युक्त भोजन करे इस योगको एक वर्ष तक सेवन करनेसे जरा, व्याधि, तन्द्रा, आलस्य, श्रम और क्लम रहित होकर तेज और कान्ति तथा दीप्ति युक्त होकर सौवर्ष तक सुखसे जीवित रहता है।

इसके सेवनसे विशेषकर कुष्ठ, किलास, गुल्म, विष, ज्वर, उन्माद, गर, उदररोग शत्रुओंसे कराया-हुआ जादू टोना तथा अति बलवान् वायुके रोग ये सब नष्ट होजाते है ॥ ९०--९३ ॥

नागबला रसायन।

शरन्मुखे नागबलां पुष्ययोगे समुद्धरेत्।
अक्षमात्रं ततो मूलाच्चूर्णितात्पयसा पिबेत्॥९४॥
लिह्यान्मधुघृताभ्यां वा क्षीरवृत्तिरनन्नभुक्।
एवं वर्षप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतं बली ॥ ९५ ॥

शरद्ऋतुके आरंभमें पुष्यनक्षत्रके योग होनेपर नागबलाको उखाड़े। इस नागबलाकी जड़का चूर्ण एक कर्ष मधुघृतमें मिलाकर चाटे अथवा दूधकी साथ पीवे और केवल दूधमात्रका आहार करे। दूधके अतिरिक्त अन्नादि कुछ न खावे। इस प्रकार एक वर्ष-तक इसका सेवन करनेसे मनुष्य बलवान् होकर सौ बरस तक जीवित रहता है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

फलोन्मुखो गोक्षुरकः समूल-
श्छायाविशुष्कः सुविचूर्णिताङ्गः।
सुभावितः स्वेन रसेन तस्मा-
न्मात्रां परां प्रासृतिकीं पिबेद्यः॥९६॥
क्षीरेण तेनैव च शालिमश्नन्
जीर्णे भवेत्स द्वितुलोपयोगात्।
शक्तः सुरूपः सुभगः शतायुः
कामी ककुद्मानिव गोकुलस्थः ॥ ९७॥

जब फल आनेलगे तब गोक्षुरको मूल सहित उखा-ड़कर छायामें सुखावे। इसका चूर्ण कर गोखरूके स्वर-सकी भावना देवे। इसकी परम मात्रा एक प्रसृति (दो पल) की है। इसको उचित मात्रानुसार खाकर ऊप-रसे दूध पीवे। औषध जीर्ण होनेपर शालिचावलोंके भातको दूधके साथ सेवन करे। इस प्रकार नित्य सेवन करताहुआ यह दस सेर चूर्ण एक मनुष्य खावे तो वह बलयुक्त, सुरूपवान्, ऐश्वर्यवान्, शतायु और गोकुलमें स्थित ककुद्मानके समान कामी होजाता है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

वाराहीकन्दरसायन।

वाराहीकन्दमार्द्रार्द्रं क्षीरेण क्षीरपः पिबेत्।
मासं निरन्नो मासं च क्षीरान्नादो जरां जयेत् ९८

वाराहीकन्दके ताजे कल्कको दूधमें घोलकर पीवे और क्षुधा लगनेपर दूधही पीवे। इस प्रकार एक महीनेतक केवल दूधका ही आहार करे और वारा-हीकन्दका सेवन करे फिर एक महीनेके अनन्तर एक महीनेतक दूध चावल खाया करे तो मनुष्यपर सौ वर्षतक बुढ़ापा नहीं आता॥

यहांपर सर्वाङ्गसुन्दराकार अरुणदत्तने वाराहीकन्द विधारेकी जड़को माना है ॥ ९८ ॥

तत्कन्दश्लक्ष्णचूर्णं वा स्वरसेन सुभावितम्।
घृतक्षौद्रप्लुतं लिह्यात्तत्पक्वं वा घृतं पिबेत्९९॥

वाराहीकन्दके बारीकचूर्णको वाराहीकन्दके स्वर-सकी भावना देकर घृत और मधुमें मिलाकर चाटे अथवा वाराहीकन्दसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीवे तो भी मनुष्य सौ वर्षतक बुढ़ापा रहित होकर जीवित रहता है ॥ ९९ ॥

विदारीकन्दादिरसायनयोग ।

तद्वद्विदार्यतिबलाबलामधुकवायसीः ।
श्रेयसी श्रेयसी युक्ताः पथ्याधात्री-
-स्थिरामृताः ॥ ६० ॥
मण्डूकीशङ्खकुसुमावाजिगन्धाशतावरीः ।
उपयुञ्जीत मेधावी वयःस्थैर्यबलप्रदाः ॥६१॥

बाराहीकन्दके समान ही विदारीकन्द, अतिबला, बला, मुलहठी, वायसी (मालकांगुनी), पाठा सहित हरड़, अथवा हरीतकी, आमले, शालपर्णी और गिलोय, अथवा मण्डूकपर्णी, शंखपुष्पी, अश्वगन्धा, शतावरी इनमेंसे किसी एक या सबको घृत दुग्धके साथ सेवन करे तो यह मेधा, दीर्घायु, स्थिरता और बलके देनेवाली है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

चित्रकरसायन ।

यथास्वं चित्रकः पुष्पैर्ज्ञेयः पीतसितासितैः ।
यथोत्तरं स गुणवान् विधिना च रसायनम् ६२
छायाशुष्कं ततो मूलं मासं चूर्णीकृतं लिहन् ।
सर्पिषा मधुसर्पिर्भ्यां पिबन् वा पयसा यतिः६३
अम्भसा वा हिताशी शतं जीवति नीरुजः ।
मेधावी बलवान् कान्तो वपुष्मान्-
-दीप्तपावकः ॥ ६४ ॥

चित्रकको यथायोग पीले, श्वेत और कृष्ण पुष्पवाला देखकर उत्तरोत्तर अधिक गुणवाला समझना चाहिये । अर्थात् पीले फूलवाले चित्रकसे श्वेतफूलवाला और श्वेतफूलवालेसे काले फूलवाला चित्रक अधिक गुणकारी होता है । यह चित्रक विधिपूर्वक पियाहुआ रसायन होता है । इस चित्रककी जड़को छायामें सुखाकर इसका चूर्ण कर ले । यह चूर्ण एक मास तक घीसे, घी और शहदसे, दूधसे अथवा हित अन्नका सेवन करताहुआ जलसे पीवे और ब्रह्मचर्यका पालन करे । इसके सेवनसे मनुष्य निरोग होकर सौ वर्षकी आयुवाला होता है । तथा मेधावी, बलवान्, कान्तिवाला, सुन्दर पुष्टशरीरवाला और दीप्ताग्निवाला होजाता है ॥ ६२-६४ ॥

तैलेन लीढो मासेन वातान् हन्ति सुदुस्तरान् ।
मूत्रेण श्वित्रकुष्ठानि पीतस्तक्रेण पायुजान्६५

चित्रककी जड़का चूर्ण एक मास पर्यंत नित्य तैलमें मिलाकर चाटा जाय तो दुस्तर वातरोगोंको नष्ट करता है । यदि गोमूत्रके साथ एक महीनातक सेवन कियाजाय तो श्वित्रकुष्ठोंको दूर करता है और यदि तक्रके साथ पियाजाय तो एक मासमें अर्शरोगको नाश करदेता है ॥ ६५ ॥

भल्लातकरसायनयोग ।

भल्लातकानि पुष्टानि धान्यराशौ निधापयेत् ।
ग्रीष्मे संगृह्य हेमन्ते स्वादुस्निग्धहिमैर्वपुः॥६६॥
संस्कृत्य तान्यष्टगुणे सलिलेऽष्टौ विपाचयेत् ।
अष्टांशशिष्टं तत्काथं सक्षीरं शीतलं पिबेत्६७॥
वर्धयेत्प्रत्यहं चानु तत्रैकैकमरुष्करम् ।
सप्तरात्रत्रयं यावत् त्रीणि त्रीणि ततःपरम्६८॥
आचत्वारिंशतस्तानि ह्रासयेद्वृद्धिवत्ततः ।
सहस्रमुपयुञ्जीत सप्ताहैरिति सप्तभिः ॥ ६९ ॥
यन्त्रितात्मा घृतक्षीरशालिषष्टिकभोजनः ।
तद्वत्रिगुणितं कालं प्रयोगान्तेऽपि चाचरेत्७०
आशिषो लभतेऽपूर्वा वह्नेर्दीप्तिं विशेषतः ।
प्रमेहकृमिकुष्ठार्शोमेदोदोषविवर्जितः ॥ ७१ ॥

पकेहुए और पुष्ट भिलावेके फलोंको ग्रीष्म ऋतुमें ग्रहण करके धान्यके ढेरमे दबा कर रख देवे । हेमन्त ऋतुमें मधुर स्निग्ध और शीतल द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए शरीरवाला पुरुष इनमेंसे आठ भिलावोंको निकाल कर आठ गुणे जलमें पकावे । जब आठवां भाग शेष रहे तो इस काथको शीतल करके दूधमें मिलाकर पीवे । फिर प्रतिदिन एक एक भिलावा अधिक डालकर काथ करके उसी प्रकार पीता रहे । ऐसे सात दिन करनेके अनन्तर फिर तीन तीन भिलावे अधिक डालकर काथ करे और उस काथको शीतल करके दूधमें डालकर पीवे इस क्रमसे ४० भिलावे तक पिलावे । फिर उसी क्रमसे प्रति दिन तीन तीन भिलावे कम करता रहे । अन्तिम सप्ताहमें फिर एक एक कम करे । आठ रहनेपर छोड़ देवे । इस प्रकार सात सप्ताहमें एक

सहस्र मिलावेका प्रयोग होजाता है। इसको सेवन करनेवाले मनुष्यको जितेन्द्रिय और जितात्मा रहतेहुए घृत, दूध, शालिचावलोंका भात या साठी चावलोंका भात भोजन करना चाहिये। इस प्रकार पथ्यसे रहतेहुए इक्कीस सप्ताह तक इसी पथ्यसे प्रयोगके अन्तमें भी रहना चाहिये। इस भल्लातक रसायनके प्रभावसे यह पुरुष अपूर्व सुखका लाभ करता है इसकी जठराग्नि विशेषबलवती होजाती है। इसके सेवनसे मनुष्य प्रमेह, कृमि, कुष्ठ, अर्श और मेद दोषसे रहित हो जाता है ॥ ६९--७१ ॥

अन्य भल्लातक रसायन ।

पिष्टस्वेदनमरुजैः
पूर्णं भल्लातकैर्विजर्जरितैः ।
भूमिनिखाते कुम्भे
प्रतिष्ठितं कृष्णमृल्लिप्तम् ॥ ७२ ॥
परिवारितं समन्तात्
पचेत्ततो गोमयाग्निना मृदुना ।
तत्स्वरसो यश्च्यवते
गृह्णीयात्तं दिनेऽन्यस्मिन् ॥ ७३ ॥
अमुमुपयुज्य स्वरसं
मध्वष्टमभागिकं द्विगुणसर्पिः ।
पूर्वविधियन्त्रितात्मा
प्राप्नोति गुणान्स तानेव ॥ ७४ ॥

शालिचावलोंके पकानेके भाण्डेमें उसके ठीक मध्यभागमें एक छेद करके उसमें मिलावोंको जो पककर पूर्ण और निरोग हों उन मिलावोंको छेदकर भरदेवे। और एक जमीनके अन्दर गाड़ेहुए पात्रके मुखपर उस पात्रका अधोभागका छिद्र नीचेके पात्रके ठीक मध्यभागमें रखकर काली मिट्टीसे जोड़ दे और पात्रका मुख ऊपरसे बन्द कर देवे। फिर इस मिलावेवाले पात्रकी सब ओर जङ्गली सूखे एरने गोहे लगाकर मृदु अग्नि देवे इस अग्निकी गर्मीसे मिलावोंका स्वरस निकलकर नीचेके पात्रमें चलाजावेगा। जब यह स्वांग शीतल होजाय तब दूसरे दिन इसको निकाल लेवे। यह स्वरस लेकर इस स्वरससे आठगुणा मधु और मधुसे दोगुणा घृत मिलाकर सेवन करे और पूर्वोक्त विधिके अनुसार पथ्य सेवन करताहुआ जितात्मा पुरुष उन्हीं गुणोंको प्राप्त होता है ॥ ७२-७४ ॥

अमृतभल्लातक पाक ।

पुष्टानि पाकेन परिच्युतानि
भल्लातकान्याढकसंमितानि ।
घृष्ट्वेष्टिकाचूर्णकणैर्जलेन
प्रक्षाल्य संशोष्य च मारुतेन ॥ ७५ ॥
जर्जराणि विपचेज्जलकुम्भे
पादशेषधृतगालितशीते ।
तद्रसं पुनरपि श्रपयेत
क्षीरकुम्भसहितं चरणस्थे ॥ ७६ ॥
सर्पिः पक्वं तेन तुल्यप्रमाणं
युञ्ज्यात्स्वेच्छं शर्कराया रजोभिः ।
एकीभूतं तत्खजक्षोभणेन
स्थाप्यं धान्ये सप्तरात्रं सुगुप्तम् ॥७७॥

तममृतरसपाकं यः प्रगे प्राशमश्नन्
अनु पिबति यथेष्टं वारि दुग्धं रसं वा ।
स्मृतिमतिबलमेधासत्त्वसारैरुपेतः
कनकनिचयगौरः सोऽश्नुते दीर्घमायुः॥७८

पकेहुए पुष्ट मिलावेके फल जो अपने आप पककर गिरे हों ऐसे सुन्दर मिलावे चार सेर लेकर उनकी टोपियोंको उतार दे। फिर ईंटोंके चूर्णमें उनको मर्दनकर जलसे धो डाले और साफ करके छायामें सुखावे। फिर इनको किञ्चित् कूटकर किंचित् जर्जरी करके एक द्रोण जलमें पकावे। जब चौथा भाग शेष रहे तो उसको उतारकर क्वाथको वस्त्रमें छान लेवे। इस क्वाथके शीतल होजानेपर इसमें एक द्रोण दूध मिलाकर फिर पकावे। जब यह पकते पकते चौथा भाग रहजाय तो इसमें समानभाग घृत मिलाकर पकावे। फिर उसीके समान मिसरीका चूर्ण मिलाकर मथानीसे मथ डाले। जब वह एक होजाय तो इसको चिकने पात्रमें बन्द करके सात दिनतक धान्यकी राशिमें गाड़कर रक्खे। फिर निकालकर इस

अमृत रसपाकको प्रातःकाल सेवन करे । इसके अनन्तर दूध अथवा मांस रस पीवे । यह अमृतरस पाक सेवन करनेसे स्मरणशक्ति, मति, बल, मेधा और सत्त्व सार गुणोंकरकेयुक्त होकर सुवर्णकीसी कान्तिवाला गौर होजाता है और दीर्घायुको प्राप्त होता है ॥ ७५–७८ ॥

भल्लातकतैलयोग ।

द्रोणेऽम्भसो व्रणकृतां त्रिशताद्विपकात्
क्वाथाढके पलसमैस्तिलतैलपात्रम् ।
तिक्ताविषाद्वयवराागिरिजन्मतार्क्ष्यैः
सिद्धं परं निखिलकुष्ठनिबर्हणाय ॥ ७९ ॥

सुन्दर पुष्ट पकेहुए तीन सौ भिलावे लेकर उनमें चाकूसे चीरे देकर सोलह सेर जलमें पकावे । जब यह चार सेर जल शेष रहे उसमें चार सेर तिल तैल मिलावे और एक एक पल कटुकी, काली अतीस, सफेद अतीस, हरड़, बहेड़े, आमले, शिलाजीत और रसौत मिलावे. फिर इसको पकाकर तैल सिद्ध होनेपर सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ दूर होते हैं॥ ७९॥

भल्लातक योग ।

सहामलकशुक्तिभिर्दधिसरेण तैलेन वा
गुडेन पयसा घृतेन यवसक्तुभिर्वा सह ।
तिलेन सह माक्षिकेण पललेन सूपेन वा
वपुष्करमरुष्करं परममेध्यमायुष्करम् ॥ ८० ॥

एक भिलावा नित्य आंवलेके छिल्केके साथ, अथवा दहीके जलके साथ, या तैलके साथ, या गुड़के साथ. अथवा दूध, घृत, जौके सत्तू, तिल, मधु, मांसरस मुद्गयूष इनमेंसे किसी एकके साथ सेवन करे तो यह परम मेधा और आयुको बढ़ानेवाला है तथा शरीरको पुष्ट करता है ॥ ८० ॥

भल्लातकानि तीक्ष्णानि पाकीन्यग्निसमानि च।
भवन्त्यमृतकल्पानि प्रयुक्तानि यथाविधि ८१

भिलावे अग्निके समान तीक्ष्ण और तीक्ष्णपाकके करनेवाले होते है । परन्तु इनको यथाविधि सेवन कियाजाय तो ये अमृतके समान गुणकारी होतेहै ॥ ८१

कफजो न स रोगोऽस्ति न विबन्धोऽस्ति कश्चन।
यं न भल्लातकं हन्याच्छीघ्रमग्निबलप्रदम्॥८२॥

कफजनित कोई भी ऐसा रोग नहीं है और न कोई इस प्रकारका विबन्ध है जिसको भल्लातक शीघ्र नष्ट न करसकते हों । भल्लातक इन रोगोंको नष्टकर जठराग्निको बलके देनेवाले होते है ॥ ८२ ॥

भल्लातकसेवनमें त्याज्य वस्तु ।

वातातपविधानेऽपि विशेषेण विवर्जयेत् ।
कुलत्थदधिसूक्तानि तैलाभ्यङ्गाग्निसेवनम् ८३

यदि भल्लातकको कुटिप्रवेशके नियमोंके विना वातातपिक रसायनविधिके अनुसार भी सेवन कियाजाय तो भी इसमें कुल्थी, दधि, सिरका और तैलाभ्यंग तथा अग्निका सेकना ये विशेषरूपसे त्याग देने चाहिये ॥ ८३ ॥

कुष्ठनाशक तुवरक (चौलमोगरा) रसायन ।

वृक्षास्तुवरका नाम पश्चिमार्णवतीरजाः ।
वीचीतरङ्गविक्षोभमारुतोद्धूतपल्लवाः ॥ ८४ ॥
तेभ्यः फलान्याददीत सुपक्वान्यम्बुदागमे ।
मज्जा फलेभ्यश्चादाय शोषयित्वा-
-ऽवचूर्ण्य च ॥ ८५ ॥
तिलवद् पीडयेद् द्रोण्यां क्वाथयेद्वा कुसुम्भवत्।
तत्तैलं संभृतं भूयः पचेदासलिलक्षयात्॥८६॥
अवतार्य करीषे च पक्षमात्रं निधापयेत् ।
स्निग्धस्विन्नो हृतमलःपक्षादुद्धृत्य तत्ततः ॥८७
चतुर्थभक्तान्तरितः प्रातः पाणितलं पिबेत् ।
मन्त्रेणानेन पूतस्य तैलस्य दिवसे शुभे ॥ ८८॥
मज्जासार महावीर्य सर्वान् धातून् विशोधय ।
शङ्खचक्रगदापाणिस्त्वामाज्ञापयतेऽच्युतः॥८९
तेनास्योर्ध्वमधस्ताच्च दोषा यान्त्यसकृत्ततः ।
सायमस्नेहलवणां यवागूं शीतलां पिबेत् ॥९०॥
पञ्चाहानि पिबेत्तैलमित्थं वर्ज्यानि वर्जयेत् ।
पक्षं मुद्गरसाचाशी सर्वकुष्ठैर्विमुच्यते ॥ ९१ ॥

पश्चिमसमुद्रके किनारे पर तुवरकनामके वृक्ष होते है जो समुद्रकी तरङ्गोंके विक्षोभयुक्त वायुसे हिलनेवाले पत्रोंसे युक्त होते है । उन तुवरक वृक्षोंके पकेहुए

फलोंको बरसातके आनेके समय ले आवे, उन फलोंको सुखाकर और कूटकर तिलोंके समान कोल्हूमें पीडन करके तेल निकाले, अथवा कुसुंभके समान काथ करके तैलको निकाले; उस तैलको फिर पकावे जब उसका जल क्षय होजाय तब उसको उतारकर पात्रमें बन्द करके पन्द्रह दिनतक सूखी गोबरियोंके ढेरमें दबा कर रक्खे फिर एक पक्षके अनन्तर इसको निकालकर जिस पुरुषको प्रयोग कराना हो उसको प्रथम स्नेहन स्वेदनादि कर वमन विरेचनादिसे शोधन करावे। फिर यह क्षुद्रकाय पुरुष इस आगे कहेहुए मंत्रसे अभिमन्त्रित कर शुभ दिनमें प्रातःकाल इस पवित्र तैलका एक कर्षमात्र पीवे, यह तैल चौथे भोजनका अन्तर देकर अर्थात् एक दिन बीचमें छोड़ कर दूसरे दिन प्रातःकाल पीवे. इस प्रकार केवल एक एक दिनका अन्तर देकर पांच दिन तेल पीना चाहिये। तैल पीते समय अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र यह है—" मज्जासार महावीर्य्य सर्वान् धातून् विशोधय। शंखचक्रगदापाणिस्त्वामाज्ञापयतेऽच्युतः ॥ " इसके सेवनसे मनुष्यके शरीरसे दोष ऊर्ध्वभाग और अधोभागसे बार २ गमन करते है। जिस दिन तैलका पान करे उस दिन सायंकाल लवण और स्नेहरहित शीतल यवागूका पान करना चाहिये। इस प्रकार पांच दिन तैलका सेवन करे। और कुपथ्यका त्याग करदेवे। इसके अनन्तर पंद्रह दिनतक मूङ्गके यूषके साथ शालीचावलोंका भात खावे तो मनुष्य सब कुष्ठोंसे छूट जाता है ॥ ८४–९१ ॥

तदेव खदिरक्काथे त्रिगुणे साधु साधितम् ।
निहितं पूर्ववत्पक्षं पिबेन्मासं सुयन्त्रितः ॥९२॥
तेनाभ्यक्तशरीरश्च कुर्वन्नाहारमीरितम् ।
अनेनाशु प्रयोगेण साधयेत्कुष्ठिनं नरम् ॥९३॥

इसी तुवरकके तैलको तीन गुने खदिरके काथमें अच्छी प्रकार सिद्ध करके पहिलेकी भांति पक्षभर सूखे गोबरमें दबाकर रक्खे. तदनन्तर ब्रह्मचर्यादिका पालन करताहुआ एक महीना भर इस तैलको पीवे तथा शरीरपर इसी तेलका अभ्यंग करे और जो आहार (मुद्गआदि) कह आये है उसीका सेवन करे इस प्रयोगसे कुष्ठीनरको शीघ्रही आराम होजाताहै॥९२॥९३॥

सर्पिर्मधुयुतं पीतं तदेव खदिराद्विना ।
पक्षं मांसरसाहारं करोति द्विशतायुषम् ॥९४॥

इसी तुवरक तैलको सब नियमोंका पालन करतेहुए विना ही खदिरसे सिद्ध किये, एक पक्षभर सेवन करे तथा केवल दूधका आहार करे तो इससे दो सौ वर्षकी आयुको प्राप्त होसकता है ॥ ९४ ॥

तदेव नस्ये पञ्चाशद्दिवसानुपयोजितम् ।
वपुष्मन्तं श्रुतधरं करोति त्रिशतायुषम् ॥९५॥

इसी तैलकी पचास दिनतक बराबर नस्य लेनेसे सुन्दर पुष्ट शरीरवाला तथा सुनीहुई बातको धारण करनेवाला और तीनसौवर्षकी आयुवाला होजाताहै९५

पिप्पलीरसायन।

पञ्चाष्टौ सप्त दश वा पिप्पलीर्मधुसर्पिषा ।
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत् ॥९६॥

रसायनगुणवाले पदार्थोंकी खोजकरनेवाला पुरुष एक वर्षतक पांच सात आठ या दश पिप्पलियोंको मधु और घृतके साथ नित्य सेवन करे तथा ब्रह्मचर्यादि नियमोंका पालन करे ॥ ९६ ॥

तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्णे भुक्त्वाग्रे भोजनस्य च ।
पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिताः ।
प्रयोज्या मधुसंमिश्रा रसायनगुणैषिणा ॥९७॥

रसायनगुणवाले पदार्थको ढूंढ़नेवाला पुरुष पलाशके क्षारमें भावित कीहुई पिप्पलियोंमेंसे तीन पूर्वाह्णके समय और तीन भोजनसे पहले घीमें भूनकर मधु मिलाकर सेवन करे ॥ ९७ ॥

वर्धमानपिप्पलीयोग।

क्रमवृद्ध्या दशाहानि दशपैप्पलिकं दिनम् ॥९८
वर्धयेत्पयसा सार्धं तथैवापनयेत्पुनः ।
जीर्णौषधश्च भुञ्जीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा ॥९९॥
पिप्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनम् ।
पिष्टास्ता बलिभिःपेयाःशृता मध्यबलैर्नरैः १००

तद्वच्च छागदुग्धेन द्वे सहस्रे प्रयोजयेत् ।
एभिःप्रयोगैःपिप्पल्यःकासश्वासगलग्रहान्॥१।
यक्ष्ममेहग्रहण्यर्शःपाण्डुत्वविषमज्वरान् ।
घ्नन्ति शोफं वमिं हिध्मां प्लीहानं वात-
-शोणितम् ॥ १०२॥

दश पिप्पलियोंको दूधके साथ आरम्भ करके प्रतिदिन दश पिप्पलियें बढ़ाता चलाजाय जब दश पिप्पलियें बढाते बढ़ाते दशवें दिन सौ पिप्पलियें होजाँय तो दश प्रतिदिन कम करके जब दश पिप्पलियें रहजाँय तो बन्द करदेवे इनको दूधके साथ सेवन करतेहुए जब ये जीर्ण होजाँय तो साठीके चावलोंको घी और दूधमें मिलाकर खावे. यह एक सहस्र पिप्पलियोंका प्रयोग रसायन गुणोंको करनेवाला है ये पिप्पलियें बलवान् मनुष्यको पीसकर खानी चाहिये और मध्यबलवाले पुरुषको क्वाथ करके पीनी चाहिये. इसी प्रयोगको बकरीके दूधसे यदि करे तो दो सहस्र पिप्पलियोंका प्रयोग करना चाहिये. इन प्रयोगोंसे पिप्पली कास, श्वास, गलग्रह, यक्ष्मा, प्रमेह, ग्रहणी, अर्श, पाण्डुरोग, विषमज्वर, सूजन, वमन, हिचकी, प्लीहा तथा वातरक्त इन रोगोंको नष्ट करती है ॥ ९८-१०२ ॥

पिप्पलीयोग ।

बिल्वार्धमात्रेण च पिप्पलीनां
पात्रं प्रलिम्पेदयसो निशायाम् ।
प्रातः पिबेत्तत्सलिलाञ्जलिभ्यां
वर्षं यथेष्टाशनपानचेष्टः ॥ १०३ ॥

आधा पल पिप्पलियें लेकर पीसकर रात्रिको लोहपात्रपर लेप करदे प्रातःकाल इसको उतारकर जलकी अंजलिसे खावे यह प्रयोग इष्ट अन्नपान और चेष्टा करतेहुए एक वर्ष पर्यन्त करे तो रसायनगुणको करनेवाला होता है ॥ १०३ ॥

शुंठ्यादिअन्ययोग ।

शुण्ठीविडङ्गत्रिफलागुडूची-
यष्टीहरिद्रातिबलाबलाश्च ।
मुस्तासुराह्वागुरुचित्रकाश्च
सौगन्धिकं पङ्कजमुत्पलानि ॥ १०४ ॥

धवाश्वकर्णासनबालपत्र-
सारास्तथा पिप्पलिवत्प्रयोज्याः ।
लोहोपलिप्ताः पृथगेव जीवेत्
समाः शतं व्याधिजराविमुक्तः॥१०५॥

सोंठ, वायविडङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुलहठी, हलदी, अतिबला, बला, नागरमोथा, देवदारु, अगर, चित्रक, सौगंधिकतृण, कमल, उत्पल, धववृक्ष, अश्वकर्ण, विजयसार और खदिरसार इनका पृथक् पृथक् लोहपर लेप करके पिप्पलीकी तरह प्रयोग करना चाहिये; इस प्रयोगके करनेसे मनुष्य व्याधि और जरासे मुक्त होकर सौ वर्षतक जीता है॥१०४॥१०५

क्षीराञ्जलिभ्यां च रसायनानि
युक्तान्यमून्यायसलेपनानि ।
कुर्वन्ति पूर्वोक्तगुणप्रकर्ष-
मायुःप्रकर्षाद्द्विगुणं ततश्च ॥ १०६ ॥

यही उपरोक्त शुंठीआदिरसायनद्रव्य जो लोहपात्रमें लेप करनेके अनन्तर आठ पल दूधके साथ सेवन कियेजांय तो पहलेसे अधिक गुणकी प्रकर्षतासे दो गुना आयुके बढ़ानेवाले है ॥ १०६ ॥

बावचीयोग ।

असनखदिरयूषैर्भाविता सोमराजीं
मधुघृतशिखिपथ्यालोहचूर्णैरुपेताम् ।
शरदमवलिहानः पारिणामान् विकारां-
स्त्यजति मितहिताशी तद्वदाहारजातान्१०७॥

विजयसार और खैरके क्वाथमें भावना दीहुई बावचीको मधु, घृत, चित्रक, हरीतकी और लोहभस्म मिलाकर एक वर्ष पर्यन्त सेवन करे तो अवस्थाके परिणामजनित वली पलितादि विकार दूर होकर दीर्घायुवाला होता है । तथा हित और मित आहारके करतेहुए इसका सेवन करना चाहिये । इससे जठराग्निके भी सम्पूर्ण विकार दूर होजाते हैं॥ १०७ ॥

तीव्रेण कुष्ठेन परीतमूर्ति-
र्यः सोमराजीं नियमेन खादेत् ।
संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां
स सोमराजीं वपुषाऽतिशेते ॥ १०८ ॥

यदि तीव्रकुष्ठसे पीड़ितहुआ मनुष्य भी बावचीको काले तिल मिलाकर नियम पूर्वक एक वर्ष सेवन करता है वह चन्द्रमाके समान कान्तिवाले शरीरवाला हो-जाता है ॥ १०८ ॥

ये सोमराज्या वितुषीकृताया-
श्चूर्णैरुपेतात्पयसः सुजातात् ।
उद्धृत्य सारं मधुना लिहन्ति
तक्रं तदेवानुपिबन्ति चान्ते ॥ १०९ ॥
कुष्ठिनःकुथ्यमानाङ्गास्ते जाताङ्गुलिनासिकाः
भान्ति वृक्षा इव पुनःप्ररूढनवपल्लवाः ॥११०॥

जो मनुष्य निस्तुष बावचीके चूर्णको दूधमें डाल-कर गर्म करे फिर इस दूधकी दही जमाकर इसका माखन निकाले इस माखनको मधुमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे यही छाछ पीवे इसका नियमपूर्वक पालन करे तो यह मनुष्य कुथित अंगोंवाला और कुष्ठी होनेपर भी अंगुली, नासिका आदिसे युक्त इस प्रकार सुन्दर होजाता है. जैसे—वृक्ष पुनः प्ररूढ़ नये पल्लवोंसे सुशो-भित होजाता है ॥ १०९॥ ११० ॥

लशुनके रसायनयोग।

जीतवातहिमदग्धतनूनां
स्तब्धभुग्नकुटिलव्यथितास्थ्नाम् ।
भेषजस्य पवनोपहतानां
वक्ष्यते विधिरतो लशुनस्य ॥ १११ ॥

जिन मनुष्योंका शरीर शीत, वात, हिम आदिसे दग्ध होगया हो तथा स्तब्ध, भुग्न, कुटिल और व्यथित अस्थियें हों ऐसे वायुसे उपहत मनुष्योंके लिये लशुनके सेवनकी विधिको कथन करते हैं ॥ १११ ॥

राहोरमृतचौर्येण लूनाद्ये पतिता गलात् ।
अमृतस्य कणा भूमौ ते रसोनत्वमागताः ११२
द्विजा नाश्नन्ति तमतो दैत्यदेहसमुद्भवम् ।
साक्षादमृतसम्भूतेर्ग्रामणीःस रसायनम् ११३॥

जब राहुने अमृत चुराया और उस समय विष्णु भगवान्ने उसका शिर काटदिया उस समय जो उसके कंठमेंसे अमृतकी बिन्दुयें पृथ्वीपर गिरीं उनका रसोन (लशुन) बन गया. इसी कारण दैत्यके देहमेंसे निकलकर उत्पन्नहुआ जानकर द्विजातिलोग इसको नहीं खाते। यह साक्षात् अमृतसे उत्पन्न होनेके कारण श्रेष्ठ रसायनके गुणोंवाला है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

शीलयेल्लशुनं शीते वसन्तेऽपि कफोल्बणः ।
घनोदयेऽपि वातार्तःसदा वा ग्रीष्मलीलया ११४
स्निग्धशुद्धतनुः शीतमधुरोपस्कृताशयः ।
तदुत्तंसावतंसाभ्यां चर्चितानुचराजिरः ११५॥

लशुनको कफप्रधान मनुष्य शीतकालमें या वसन्तकालमें सेवन करे अथवा वातप्रधान मनुष्य वर्षा ऋतुमें भी सेवन करे, वातार्त मनुष्य लशुनको सर्वदा ही सेवन करसकता है किन्तु ग्रीष्म ऋतुमें केवल शीतल मधुरआदि आहार करतेहुए इसका सेवन वह मनुष्य करे जिसके अनुचर(सेवक)लशुनके शेखर और कर्णपूर आदि बनाकर मंडित होरहेहों ॥ ११४। ११५॥

तस्य कन्दान् वसन्तान्ते हिमवच्छकदेशजान् ।
अपनीतत्वचो रात्रौ तीमयेन्मादिरादिभिः ११६
तत्कल्कस्य रसं प्रातः शुचितान्तवपीडितम् ।
मदिरायाःसुरूढायास्त्रिभागेन समन्वितम् ११७
मद्यस्यान्यस्य तैलस्य मस्तुनः काञ्जिकस्य वा।
तत्काल एव वा युक्तं युक्तमालोच्य मात्रया ११८
तैलसर्पिर्वसामज्जक्षीरमांसरसैः पृथक् ।
क्वाथेन वा यथाव्याधि रसं केवलमेव वा ।
पिबेद्द्रणकूषमात्रं प्राक् कण्ठनाडीविशुद्धये ११९

हिमवान् या शाक देशमें उत्पन्नहुए लशुनके कन्दोंको वसन्त ऋतुके अन्तमें लाकर उसका छिल्का दूर करके उन लशुनके छिलेहुए भागोंको मदिरा विजौरेके रस आदिसे रात्रिमें भिगोकर रक्खे। प्रातःकाल उनको रगड़कर वस्त्रसे निचोड़कर स्वरस निकाले. यह स्वरस एक भाग, अच्छी बनीहुई मदिरा तीन भाग अथवा अन्य मद्य या तैल अथवा दहीका मस्तु या कांजी मिलाकर जितनी मात्रा उचित हो उतनी मात्रासे तैल अथवा घृत या मज्जा अथवा बसा या दूध या मांसरस अथवा व्याध्यनुसार बनायेहुए द्रव्योंका क्वाथ मिलाकर जिस समय जो उचित हो उसके साथ लशुनके रसका सेवन करे; अथवा प्रथम

गलकी नाड़ी शुद्ध करनेके लिये गंडूषमात्र केवल रसका पीवे ॥ ११९-११९ ॥

प्रततं स्वेदनं चानु वेदनायां प्रशस्यते ।
शीताम्बुसेकः सहसा वमिमूर्च्छाययोर्मुखे१२०
शेषं पिबेत् क्रमापाये स्थिरतां गत ओजसि१२१
विदाहपरिहाराय परं शीतानुलेपनः ।
धारयेत्साम्बुकणिका मुक्ताःकर्पूरमालिकाः१२२

यदि वातपीड़ित मनुष्यके शरीरमें लशुन सेवन करतेहुए भी वेदना हो तो स्वेदन करे और यदि इसके पीनेसे सहसा वमन या मूर्च्छा होने लगे तो मुखपर शीतल जलका सेचन करना चाहिये।

शेष रस जब मनुष्यका क्रम दूर होकर ओज स्थिर होजाय तब पीना चाहिये।

यदि इसके पीनेसे विदाह होजाय तो उस दाहको शमन करनेके लिये शीतल लेप करने चाहिये तथा जलके छींटोंसे युक्त मोतियोंकी माला या कपूरकी माला धारण करना चाहिये ॥ १२०-१२२ ॥

कुडवोऽस्य परा मात्रा तदर्धं केवलस्य तु ।
पलं पिष्टस्य तन्मज्ज्ञः सभक्तं प्राक् च-
-शीलयेत् ॥ १२३ ॥

लशुनके रसकी यदि वह मद्यादि युक्त हो तो बड़ीसे बड़ी मात्रा एक कुड़वतक हो सकती है। यदि केवल रस हो तो अधिकसे अधिक आधे कुड़व तक मात्रा हो सकती है। यदि उसके मज्जाका कल्क लेना हो तो अधिकसे अधिक एक पल लेना चाहिये यह भातमें मिलाकर भातसे पहले सेवन करना चाहिये ॥ १२३ ॥

जीर्णशाल्योदनं जीर्णे शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम् ।
भुञ्जीत यूषैःपयसा रसैर्वा धन्वचारिणाम् १२४

जब यह जीर्ण होजाय तो क्षुधा लगनेपर शंख, कुन्दपुष्प और चन्द्रमाके समान धवलवर्णका पुराने शालिचावलोंका भात मूंगके यूष अथवा दूधके साथ भोजन करे अथवा जांगल मांसरसके साथ शालिचावलोंका भात भोजन करे ॥ १२४ ॥

मद्यमेकं पिबेत्तत्र तृट्प्रबन्धे जलान्वितम् ।
अमद्यपस्त्वारनालं फलाम्बुपरिसितिथिकाम् १२५

लशुनको सेवनकरते हुए प्यासके समय केवल जल मिलीहुई मद्य ही पीना चाहिये जो पुरुष मद्य नहीं पीते हैं उनको कांजी या फलोंका रस या मंड पीना चाहिये ॥ १२५ ॥

तत्कल्कं वा समघृतं घृतपात्रे खजाहतम् ।
स्थितं दशाहादश्नीयात्तद्वद्वा वसया समम्१२६

लशुनके कल्कके समान घृत मिलाकर मथानीसे मथे फिर दशदिनके अनन्तर इसको खाना आरम्भ करे अथवा लशुनके कल्कको समानभाग वसामें इसी प्रकार मिलाकर दशदिनके अनन्तर सेवन करे॥ १२६

विकञ्चुकप्राज्यरसोनगर्भान्
सशूल्यमांसान् विविधोपदंशान् ।
विमर्दकान्वा घृतशुक्तयुक्तान्
प्रकाममद्याल्लघु तुत्थमश्नन् ॥ १२७ ॥

लशुनकी त्वचारहित और पुष्ट मज्जाको शूलप्रोत-मांसादिमें मिलाकर अथवा अन्य रुचिकर विमर्दक आदिकोंमें मिलाकर अथवा घृत सिरका आदिकोंमें मिलाकर यथेच्छरूपसे खाय हलका और अल्पभोजन करे तो इन लशुनके प्रयोगोंसे वातव्याधि शमन होती है ॥ १२७ ॥

पित्तरक्तविनिर्मुक्तसमस्तावरणावृते ।
शुद्धे वा विद्यते वायौ न द्रव्यं लशुनात्परम् १२८

जिन मनुष्योंके शरीरमें पित्तके और रक्तके संसर्ग या आवरणसे रहित अन्य कफआदिके आवरण युक्त अथवा केवल शुद्धवातके विकार हों उनके लिये लशु-नसे बढ़कर कोई द्रव्य लाभकारी नहीं है ॥ १२८॥

प्रियाम्बुगुडदुग्धस्य मांसमद्याम्लविद्विषः ।
अतितिक्षोरजीर्णं च रसोनो व्यापदे ध्रुवम् १२९

जिन लोगोंको जल गुड़ और दूध प्यारे हैं तथा मांस मद्य और अम्लपदार्थोंसे द्वेष है और जो अजी-र्णको सहन नहीं करसकते उनको लशुनका सेवन करना अवश्य हानिकारक होता है ॥ १२९ ॥

पित्तकोपभयादन्ते युञ्ज्यान्मृदु विरेचनम्।
रसायनगुणानेवं परिपूर्णान्समश्नुते ॥ १३० ॥

लशुन सेवन करनेके अनन्तर पित्तप्रकोपके भयसे मृदुविरेचन करादेना चाहिये। इस प्रकार लशुनके सेवनसे रसायनके पूर्णगुण प्राप्त होजाते हैं ॥ १३० ॥

शिलाजतुकी उत्पत्ति।

ग्रीष्मेऽर्कतप्ता गिरयो जतुतुल्यं वमन्ति यत्।
हेमादिषड्धातुरसं प्रोच्यते तच्छिलाजतु १३१।

ग्रीष्मऋतुमें सूर्यकी तीक्ष्णकिरणोंसे तपायमान पर्वत जो जतु (गोंद) के समान स्वर्णादि छः धातुओंके रसको स्राव करते हैं उस रसको शिलाजतु कहते हैं ॥ १३१ ॥

शिलाजतुका रस-पाक और श्रेष्ठता।

सर्वं च तिक्तकटुकं नात्युष्णं कटुपाकतः।
छेदनं च विशेषेण लौहं तत्र प्रशस्यते ॥१३२॥

सब प्रकारकी शिलाजतु रसमें तिक्त और कटु किंचित् उष्ण पाकमें कटु और छेदन होती हैं। सब शिलाजीतोंमें लोहधातुकी शिलाजीत श्रेष्ठ होती है १३२

उत्कृष्ट शिलाजतुके लक्षण।

गोमूत्रगन्धि कृष्णं
गुग्गुल्वाभं विशर्करं मृत्स्नम्।
स्निग्धमनम्लकषायं
मृदु गुरु च शिलाजतु श्रेष्ठम् ॥ १३३ ॥

जो शिलाजीत गोमूत्रके समान गंधवाली, काले-वर्णकी गुग्गुलके समान कान्तिवाली, पत्थरके कण आदि रहित अंगुलिसे लगनेवाली, स्निग्ध, अम्लता-रहित, कषायतारहित, मृदु और भारी होती है वह सर्वश्रेष्ठ होती है ॥ १३३ ॥

शिलाजतुकी प्रयोगविधि।

व्याधिव्याधितसात्म्यं
समनुस्मरन् भावयेदयःपात्रे।
प्राक् केवलजलधौतं
शुष्कं क्वाथैस्ततो भाव्यम् ॥ १३४ ॥

शिलाजीतको प्रथम केवल जलसे धोकर सुखा देवे फिर लोहपात्रमें डालकर जिस रोगीको देना हो उसके रोग और सात्म्यके अनुसार द्रव्योंके क्वाथोंसे भावना देवे ॥ १३४ ॥

शिलाजीतको भावनादेनेकी विधि।

समगिरिजमष्टगुणिते निःक्वाथ्यं-
-भावनौषधं तोये।
तन्निर्यूहेऽष्टांशे पूतोष्णे प्रक्षिपेद् गिरिजम् १३५
तत्समरसतां यातं संशुष्कं प्रक्षिपेद्रसे भूयः।
स्वैः स्वैरेवं क्वाथैर्भाव्यं वारान् भवेत्सप्त॥१३६॥

शिलाजतुके समान औषधि लेकर उस औषधिको आठ गुने जलमें पकावे जब आठवां भाग शेष रहे तो उस जलको छानकर उसमें शिलाजतुको डालदेवे. वह शिलाजीत उस रसके साथ मिलकर उसके रसकी सम-ताको प्राप्त होकर जब सूख जाय तब पुनः जिस रसकी भावना देनी हो उस रसमें इसी प्रकार डाले। ऐसे ही जिन जिन द्रव्योंके स्वरस या क्वाथोंकी भावना देनी हो उनमें इसी प्रकार सातबार भावना देवे ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

शिलाजीतसेवनकरनेकी विधि।

अथ स्निग्धस्य शुद्धस्य घृतं तिक्तकसाधितम्।
त्र्यहं युञ्जीत गिरिजमेकैकेन तथा त्र्यहम्१३७
फलत्रयस्य यूषेण पटोल्या मधुकस्य च।
योगयोग्यं ततस्तस्य कालापेक्षं प्रयोजयेत् ॥
शिलाजमेवं देहस्य भवत्यत्युपकारकम्।
गुणान्समग्रान् कुरुते सहसा व्यापदं न च१३९

जिस मनुष्यको शिलाजीत सेवन कराना हो उसको शोधन करनेके अनन्तर तिक्त द्रव्योंसे सिद्धकिया हुआ घृत पिलाकर स्निग्ध करे फिर तीन तीन दिन एक एक रसके साथ शिलाजीतको सेवन करावे. प्रथम तीनदिन त्रिफलेके क्वाथसे सेवन करावे, फिर तीनदिन पटोलपत्रके क्वाथके साथ सेवन करावे, तदनन्तर तीन दिन मुलहठीके क्वाथके साथ सेवन करावे तदनन्तर उस पुरुषके दोष दूष्यादि विचारकर और ऋतुकालादि विचारकर जिस अनुपानसे उचित हो शिलाजीत सेवन कराना चाहिये। इस प्रकार सेवन कीहुई शिला-जीत शरीरके लिये परम उपकारी होती है तथा

सम्पूर्ण गुणोंको करती है और सहसा मृत्युके भयको दूर करती है ॥ १३७–१३९ ॥

एकत्रिसप्तसप्ताहं कर्षमर्धपलं पलम् ।
हीनमध्योत्तमो योगःशिलाजस्यक्रमान्मतः १४०

शिलाजीतका सेवन समयकी दृष्टिसे एक सप्ताह अथवा तीन सप्ताह या सात सप्ताह करना चाहिये । एक सप्ताह शिलाजीतका सेवन हीनयोग. तीन सप्ताह मध्ययोग और सात सप्ताह उत्तमयोग कहाजाता है इसी प्रकार एककर्ष हीनमात्रा अर्धपल मध्यमात्रा और एकपल उत्तममात्राका योग माना जाता है ॥ १४० ॥

शिलाजतुसेवनके गुण ।

संस्कृतं संस्कृते देहे प्रयुक्तं गिरिजाह्वयम् ।
युक्तं व्यस्तैः समस्तैर्वा ताम्रायोरूप्यहेमभिः ४१

पंचकर्मसे संस्कार कीहुई देहमें भावना आदिसे संस्कार कीहुई शिलाजीत ताम्र लोह रौप्य और सुवर्ण इन चारों धातुओंके गुणको अथवा इनमेंसे जिसके अंशवाली शिलाजीत हो उसके पूर्ण गुणको करदेती है ॥ १४१ ॥

शिलाजीतसेवनमें पथ्यापथ्य ।

क्षीरेणालोडितं कुर्याच्छीघ्रं रासायनं फलम् ।
कुलत्थान् काकमाचीं च कपोतांश्च-
-सदा त्यजेत् ॥ १४२ ॥

दूधमें घोलकर पीहुई शिलाजीत शीघ्र रसायनके गुणोंको करती है ।

शिलाजीत सेवन करतेहुए कुलथी मकोय और कबूतर आदिकोंको सर्वथा त्याग करदेना चाहिये ४२ ।

शिलाजीतकी प्रशंसा ।

न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्यरूपो
जत्वश्मजं यं न जयेत्प्रसह्य ।
तत्कालयोगैर्विधिवत्प्रयुक्तं
स्वस्थस्य चोर्जां विपुलां दधाति १४३

संसारमें कोई भी ऐसा साध्यरोग नहीं है जिसको यथार्थ योगोंसे विधिवत् प्रयोग कीहुई शिलाजीत बलपूर्वक शमन न करसकती हो. यदि स्वस्थ मनुष्य इसका सेवनकरे तो उसके शरीरमें विपुल बल और ओजको धारण करदेती है ॥ १४३ ॥

कुटिप्रावेशिक और वातातपिकरसायनचिकित्सा ।

कुटीप्रवेशः क्षणिनां परिच्छदवतां हितः ।
अतोऽन्यथा तु ये तेषां सूर्यमारुतिको विधिः ४४

अवकाशवाले और धनआदि युक्त स्वतंत्र पुरुषोंको ही कुटीप्रवेशवाला रसायनकर्म सेवन करना चाहिये । इनसे विपरीत अर्थात् जिनके पास धन या अवकाश आदि नहीं है उनको वातातपिक रसायनविधिका सेवन करना चाहिये ॥ १४४ ॥

वातातपिकरसायनयोग ।

वातातपसहा योगा वक्ष्यन्तेऽतो विशेषतः ।
सुखोपचारा भ्रंशेऽपि ये न देहस्य बाधकाः १४५

इस कारण वायु और धूपादिके सहन करतेहुए सेवन करनेयोग्य रसायन योगोंको कथन करते है । जिनके सेवनमें किसी प्रकारका कुपथ्य होजानेपर भी देहको हानि नहीं होती और सुखपूर्वक सेवन किये जा सकते है ऐसे रसायन योगोंका कथन करते है॥ १४५

शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो द्विशः ।
त्रिशः समस्तमथवा प्राक् पीतं स्थापयेद्वयः ४६

शीतल जल, दूध, मधु और घृत इनमेंसे कोई एक अथवा दो या तीन अथवा सम्पूर्ण मिलाकर प्रातः-काल नित्य पीनेसे आयु स्थिर होती है ॥ १४६ ॥

गुडेन मधुना शुण्ठ्या कृष्णया लवणेन वा ।
द्वे द्वे खादन् सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ १४७

जो मनुष्य दो हरीतकियें गुडके साथ या मधुके साथ अथवा सोंठके साथ या पीपलके साथ या लवणके साथ नित्य सेवन करता है वह सौ वर्ष सुखसे जीवित रह सकता है ॥ १४७ ॥

१--अत्र भूर्लोकग्रहणं सकलभूलोकपरिग्रहार्थम्।अन्यथा कश्चि देव देशो गृह्येत नत्वशेषो भूर्लोकः रूपग्रहणेन साध्यः सविकल्पोऽपि गृह्यते।तेन कृच्छ्रसाध्योऽपि मद्यादिभेदेन भिन्न इह गृह्यते । रूपपदमन्तरेण तु सुखसाध्य एव केवलो गृह्येत । शमयति ततः क्षिप्रतरं निश्चितं च रोगजयं करोतीति गमयति । तदयं भावः--कुष्ठघ्नानि मूत्रकृच्छ्राणि वा यथौषधानि तेषां

हरीतकीं सर्पिषि संप्रताप्य
समश्नतस्तत् पिबतो घृतं च।
भवेच्चिरस्थायि बलं शरीरे
सकृत् कृतं साधु यथा कृतज्ञे ॥१४८॥

हरीतकीको घीमें भूनकर खावे और ऊपरसे वही घृत पीवे तो मनुष्यके शरीरमें बल और आयु इस प्रकार चिरस्थायी हो जाते है. जैसे—एकवार कियाहुआ उपकार कृतज्ञमनुष्यमें साधुरूपसे स्थित होजाता है ॥ १४८ ॥

धात्रीरसक्षौद्रसिताघृतानि
हिताशनानां लिहतां नराणाम्।
प्रणाशमायान्ति जराविकारा
ग्रन्था विशाला इव दुर्गृहीताः ॥१४९॥

आमलेका रस, मधु, मिश्री और घृत मिलाकर नित्य चाटनेवाले और हित आहारका सेवन करनेवाले मनुष्योंके बुढापेके विकार इस प्रकार नष्ट हो जाते है. जैसे-विशाल ग्रंथोंका ज्ञान यथार्थ ग्रहण न करनेसे नष्ट होजाता है ॥ १४९ ॥

--शमयति। ततः क्षिप्रतरं निश्चितं च रोगजयं करोति गिरिजमिति। न स रोगो साध्यरूपो विद्यते यं शिलाजतु प्रसह्य न जयेत्। गिरिजं कालयोगेन च विधिना प्रयुक्तं नीरुजस्य पुरुषस्य महतीमूर्जां च करोति। अतएव संग्रहे उपजात्या जगाद--

" ज्वरी ज्वरघ्नाम्बुदपर्पटादिक्काथेन रक्ती मधुयष्टिकायाः।
शोषी रसैः क्रव्यभुगाभिषोत्थैर्मायूरमांसैः पयसा च कार्श्ये॥
मध्वम्बुना मेदसि संप्रवृद्धे क्षीरेण पर्याकुलबुद्धिसत्त्वः।
पाण्डौ सशोफे जठरे सकृच्छ्रे पिबेच्छिलाजं महिषीजलेन॥"

अश्मवीरतरायेन कुष्ठं खदिरवारिणा।
विषं विषघ्नैरगदैर्हन्त्येवं तद्यथामयम्॥
शैलजात्रिकटुक्षौद्राक्षौद्रधातून्निषेवते।
क्षीरोदनाशी यो जीर्णे यक्ष्मणा स न बाध्यते॥
सुभाविता सारजलैस्तुला पीत्वा शिलोद्भवात।
साराम्बुनैव भुञ्जानः शालीन् जांगलजै रसैः॥
अपोह्यमधुमेहाख्यमन्तकं रोगसंकरम्।
वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः॥

अमरमन्दिरमन्दरसंभवात्पलशतं गिरिजादुपयोजय।
यदिजरामयदुःखविवर्जितां सुचिरमिच्छसि जीवितसंततिम्॥

दशगुणमुपयुंक्ते यः शतं शैलजातात्
लघुहितमितभोजी वर्जयन् वर्जयनीयान्।
सततसमनुषक्तान् वर्जितान् वैद्यवृन्दै--
र्विधमति स गदौघान्वेक्षते चायुषोऽन्तम्" इति।

शिवगुटिका चात्रैवोक्ता। यथा--

" शिलाह्वात् षोडशपलं त्रिस्त्रिरेकत्र भावयेत्।
वराया दशमूलस्य गुडूच्याः कर्कटस्य च॥
बलाया मधुयष्ट्याश्च रसे गव्ये च वारिणि।
क्षीरे सकृत् क्रमेणैवं सप्तकल्कस्तथा पुनः॥

काकोलियुग्मघनपुष्करवन्हिरास्ना--
मेदायुगार्द्धचविकागजपिप्पलीनाम्।
पाठाद्विजीरकनिकुंभविदारियुग्म--
वीरावरीमधुफलांशुमतीद्वयानाम्॥

पलिकानामबूद्रोणे सिद्धानां पादशेषिते क्वाथे।
भावितमित्थं गिरिजं द्विपलैश्चूर्णीकृतैर्युज्यात्॥
कर्कटशृंगीधात्रीव्योषैस्तालीसपत्रकुडवेन।
चूर्णपलेन विदार्यास्त्वक्क्षीर्याः कर्षयुग्मेन॥
कुडवेन चतुर्जातैस्तैलघृतक्षौद्रशर्कराभिश्च।
द्विपलाभिर्द्विगुणाभिः कुर्याद्गुलिकास्ततोऽक्षसमाः॥
ताः शुष्का नवकुंभे जातीपुष्पाधिवासिते स्थाप्याः।
तासामेकां खादेत् प्रतिदिनमनुपानमत्रेष्टम्॥
क्षीररसदाडिमाम्भोमार्द्वीकमुरासवाद्यन्यतमम्।
जीर्णेऽन्नं लघुभोज्यं यूषपयःपिशितनिर्यूहैः॥
सप्ताहमात्रमेवं सर्वाश्नीतः क्रमाद्द्रवत्परतेः।
भक्तस्यान्ते प्राग्वा गुलिका न विरुध्यते चैषाम्॥
निरपाया भूरिफला परिहारसुखोपयोजिता जयति।
प्रबलमपि वातशोणितमूरुस्तम्भ ज्वरं दीर्घम्॥
भगमूत्रशुक्रदोषप्लीहयकृद्रक्तपांडुहृद्रोगान्।
वर्ध्मवमिगुल्मपीनसहिध्माकासारुचिश्वासान्॥
विद्रधिमुदरं कुष्ठं श्वित्रं षांढ्यं क्षयं मदं मूर्च्छाम्।
उन्मादमपस्मारं मुखनेत्रशिरोगदांस्तांस्तान्॥
आनाहमतीसारं हलीमकं कामलां ग्रहणिरोगान्।
ग्रन्थ्यर्बुदान् सपिडकान् भगंदरं गंडमालां च॥
अतिकार्श्यमतिस्थौल्यं स्वेदमपि श्लीपदं गुदे कीलान्।
दंष्ट्राविषं समूलं गरप्रयोगान् सुरोरांश्च।
अभिचारमरातिकृतं दुःस्वप्नं भौतिकीं तथा बाधाम्।
पाप्मालक्ष्मी चेयं गुटिका शमयेच्छिवानाम॥
वृष्याऽऽयुष्या धन्या कांतियशःश्रीविबोधनी मेध्या।
कुरुते नृपवल्लभतां जयति विवादे च वक्रस्था॥
जितखलतिवलीपलितं जीवयति सुखं शतद्वयं शरदान्।
वर्षद्वयप्रयोगाद्वर्षशतचतुष्टयं जीवेत्॥"

ज्वरादेतूक्तम्–

" कनकाद्रजतात्ताम्रादयसः सीसात्तथा त्रपुणः।
गिरिविवरनिःसृतं तत्क्वाथस्निग्धातिमृदुमृत्स्नम्॥

धात्रीकृमिघ्नासनसारचूर्णं
सतैलसर्पिर्मधुलोहरेणु ।
निषेवमाणस्य भवेन्नरस्य
तारुण्यलावण्यमविप्रणष्टम् ॥ १९० ॥

आंवले, वायविडंग और विजयसारका चूर्ण तथा लोहभस्म, तैल, घृत और मधु मिलाकर नित्यचाटनेवाले मनुष्यका तारुण्य और लावण्य अविनाशी होजाता है ॥ १९० ॥

लोहं रजो वेल्लभवं च सर्पिः–
–क्षौद्रद्रुतं स्थापितमब्दमात्रम् ।
सामुद्गके बीजकसारकृप्ते
लिहन् बली जीवति कृष्णकेशः १९१॥

लोहकी भस्मको वायविडंगसे सिद्ध कियेहुए घृत और मधुमें मिलाकर चिकनेपात्रमें डालकर उस पात्रके मुखको बंदकर मूलको विजौरे निम्बूके रसमें रगड़कर सम्पुट करे इसको एक वर्षतक रहनेदेवे फिर निकालकर इसको सेवन करनेवाला मनुष्य दीर्घायु होता है और उसके बाल काले रहते हैं ॥ १९१ ॥

--जत्वाभं च शिलाजतु विद्यादेतज्जडात्मकं गिरिजम् ।
संरक्तपीतवर्णं सतिक्तमधुरं रसे कटुविपाकि ॥
शीतं कनकशिलाजतु विशेषतः श्लेष्मपित्तघ्नम् ।
श्वेतं च तिक्तमधुरं पाचनवल्लेखनं शीतम् ॥
किंचिल्लवणं विद्याद्विशेषतो वातपित्तघ्नम् ।
शितिकंठतुल्यवर्णं तीक्ष्णोष्णं लेखनं विपाककटु ॥
किंचिल्लवणं ताम्रात्मकं स्मृतं कफवृद्धिदोषेण ।
गुग्गुल्वालाभं स्निग्धं तिक्तं लवणं सरं विशदतीक्ष्णम् ॥
कटुपाकिनातिशीतं त्रिमलघ्नं त्वायसं श्रेष्ठम् ।
स्वाकरसमानवर्णे सीसत्रपुसंभवे शिलाजतुनी ॥
अल्पान्तरकर्मगुणे कृष्णायसजाच्छिलाजतुनः ।
गोमूत्रगंधमसितं गुग्गुलकाभं विशर्करं मृत्स्नम् ॥
स्निग्धमनम्लकषायं शिलोद्भवं सर्वकर्मण्यम् ।
इत्यत्र गुरुमृदुगुणौ नोक्तौ । तथोक्तम्--
सस्नेहलवणभावाद्वातघ्नं पित्तनुत्सरत्वात्तत् ।
रसपाकयोः कटुत्वात्तैक्ष्ण्याच्च श्लेष्ममेदोघ्नम् ॥
कटुतीक्ष्णत्वाद्दीपनमग्नेरुद्दीपनान्मलान् पचति ।
तिक्तत्वाद्रक्तघ्नं कटुतीक्ष्ण्यौष्ण्यात्कृमिघ्नं वा ॥
शोभनभावाद्वृष्यं स्निग्धत्वात्पौष्टिकं च बल्यं च ।
आयुष्यं च विषघ्नं मंगल्यममृतान्वयत्वाच्च ॥
शोधनभावात्स्रोतो धात्विन्द्रियबुद्धिशोधनं वर्ण्यम् ।
पुत्र्यं च वृष्यभावान्मेध्यं योनिस्वभावाच्च ॥ इत्यादि ॥
तथा--भावितमन्यैर्द्रव्यैर्वीर्योत्कर्षाद्विशेषकर्मण्यम् ।
तत्स्यात्तस्माद्भाव्यं वातादिहरौषधकषायैः ॥
रास्नादशमूलबला पुनर्नवैरण्डशुंठिमधुकानाम् ।
क्वाथेन भावितं तद्विशेषतो वातरोगघ्नम् ॥
द्राक्षाभीरुपटोलीत्रायति गुडूचिजीवनीयानाम् ।
क्वाथेन भावित तद्विशेषतः पित्तरोगघ्नम् ॥
त्रिफलावचाविडंगकरञ्जघनमुख्यपंचमूलानाम् ।
सहपंचकोलकानां क्वाथेन कफामये भाव्यम् ।
लघुपंचमूलशुंठीद्राक्षाकाश्मर्यवाजिगंधानाम् ॥
सगुडूचिरसबलानां रसेन पित्तानिलगदेषु ।
घनकुष्ठवचात्रिफलासुरदारुविडङ्गपंचकोलानाम् ॥
रजनीमारेचातिविषायुक्तानां वातकफजेषु ।
पाठापटोलनिंबत्रिफलाघनकुष्ठसप्तपर्णानाम् ॥
त्रायंत्यमृताविषासहितानां पित्तकफजेषु ।
त्रिमलेषु यथादोषं योगानेतान् विकल्प्य भाव्यं स्यात् ॥
केवलजलधौतं शुष्कं क्वाथैस्ततो भाव्यम् ।
गिरिजं चतुर्गुणजलं क्वाथ्यं स्याद्भावनौषधं तत्र ॥
चतुर्थशेषे क्वाथे पूतोष्णे प्रक्षिपेद्गिरिजम् ॥ " इति ।
अत्र चतुर्गुणजलस्यौषधस्य क्वाथेन मुक्तरसता न तथा स्यादिति वाग्भटोक्तमेवाष्टगुणजलक्वाथेन कार्यमिति मन्यामहे । तथोक्तम्–
"सलिलविशुद्धाद्गिरिजात् पिबेद्रोगः फलत्रिकरसेन ।
मात्रां क्रमाभिवृद्धां त्र्यहं कषायेण मधुकस्येति ॥
रोगान्वितेषु गिरिजं जलशुद्धं भावितं कषायैश्च ।
दोषव्याधिबलातुरकालापेक्षी प्रयुंजीत ॥
जीर्णौषधः मुखोदकपारिषिक्तमांसरसपयोयूषैः ।
रक्तादिषष्टिकोदनमनवमरोगो गदी वाऽश्नात् ॥
व्याध्यातुरदोषबलं दृष्ट्वा तस्य त्रिधा प्रयोगः स्यात् ।
श्रेष्ठास्त्रिषष्टिरात्रं मासो मध्यास्त्रिसप्तरात्रमवरः ॥
पानावगाहयोः स्याद्दिव्यं शैलोद्भवं कौपम् ॥ "
मुनिस्त्वस्य चतुर्धातुजत्वमेव समगिरत ।
तथा च तद्ग्रंथः--
" अनम्लं च कषाय च कटुपाके शिलाजतु ।
अत्युष्णशीतं धातुभ्यश्चतुर्भ्यस्तस्य संभवः ॥
हेम्नः सरजतात्ताम्राद्वरं कृष्णायसादपि" इति ।
संग्रहे च गुग्गुलकल्पो विहितः । यथा--
"दानवेन्द्रविजितान् पुरा सुरान् भ्रष्टकान्तिघृतिशौर्यतेजसः ।
वीक्ष्य विष्णुरमृतं किलासृजद्गुग्गुलं बलवपुर्जयप्रदम् ॥
अद्याप्यतः सुरगणाः किल धूपमुख्यान्
हित्वा वरागुरुतुरुष्कहिमेन्दुदर्पान् ।
निर्दह्यमानवपुषोऽपि शिखां पिबन्तो

विडङ्गभल्लातकनागराणि
येऽश्नन्ति सर्पिर्मधुसंयुतानि ।
जरानदीं रोगतरङ्गिणीं ते
लावण्ययुक्ताः पुरुषास्तरन्ति ॥१५२॥

वायविडंग, भिलावे और सोंठ इनको घृत और मधुमें मिलाकर नित्य प्रातःकाल जो मनुष्य सेवन करते हैं वे लावण्ययुक्त पुरुष सफेदबालोंकी तरंगोंवाली बुढापेकी नदीको पार करजाते हैं अर्थात् ऐसे पुरुषोंको अकालमें बलीपलितादि बुढापेके विकार नहींहोते १५२

खदिरासनयूषभाविताया-
स्त्रिफलाया घृतमाक्षिकप्लुतायाः ।
नियमेन नरा निषेवितारो
यदि जीवन्त्यरुजः किमत्र चित्रम् १५३

खदिर और विजयसारके काथमें भावना दियाहुआ त्रिफला घृत और मधु मिलाकर नियमसे सेवन करनेवाले मनुष्य यदि निरोग और दीर्घजीवी होते हैं तो इसमें कौनसी विचित्रताकी बात है ॥ १५३ ॥

बीजकस्य रसमङ्गुलिहार्यं
शर्करामधुघृतं त्रिफलां च ।
शीलयत्सु पुरुषेषु जरेता
स्वागतापि विनिवर्तत एव ॥ १५४ ॥

जो पुरुष विजैसारके अंगुलिग्राही गाढेरसको खांड मधु घृत और त्रिफला मिलाकर नित्य सेवन करते हैं उनकी यथार्थ आईहुई जरता भी निवृत्त होजाती है।१५४

पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्य
पिष्टं पिबेद्यः पयसार्धमासम् ।
मासद्वयं तत्त्रिगुणं समां वा
जीर्णोऽपि भूयःस पुनर्नवःस्यात् १५५

जो मनुष्य यथार्थरसवाली पुनर्नवाको दो कर्ष पीसकर नित्य दूधके साथ दो महीने अथवा छः महीने

—गंधेन यस्य मुदिता दधाति प्रसादम् ॥
सयोगवाही सचिवः सशार्वः सर्वर्तुसेव्यः सुखशीलनीयः ।
हन्ता जरां पाप्ममयामयानां कर्ताग्निमेधास्मृतिपाटवानाम् ॥
गन्धोत्कटः सदाहे स्निग्धद्रवपिच्छिलो विगतशल्यः ।
महिष्याख्यः पुष्परागस्फटिकासितनीरुजच्छायः ।
यः पद्मरागरागेयः कनकच्छदपाटलो यो वा ॥
जयतीन्द्रनीलममलं भातोऽप्यतिकान्तिमत्त्वेन ।
ज्येष्ठः प्रयोगोऽस्य तुलापलाग्रैवाधिकं पिबेत् ॥
आत्रेयमुनिगीतश्च मंत्रोऽयं सर्वकर्मकृत ।
भगवान् पुंडरीकाक्षो देवाश्च सपुरन्दराः ॥
आज्ञापयन्ति सम्यक् त्वां प्रभावं चादिशन्ति ते ।
जरामरणदुःखेभ्यो यथातेऽभ्युत्थिताः सुराः ॥
उपयोक्तुस्तथैवास्य भव त्वं हि महाबलः । इति ।
पंचमूलस्य महतः क्वाथेन हितभोजिना ।
गुग्गुलुः शीलितो हन्ति सर्वान् वातकफामयान् ॥
लघीयसोऽपि तद्वच्च मुखोष्णेन जलेन वा ।
मस्तुधान्याम्लमद्यैर्वा वचादेः सलिलेन वा ॥
वरणादेस्तु बाधिर्ये दन्तकर्णशिरोरुजः ।
स्वरभेदोदरश्वासवर्ध्मार्तगुल्मविद्रधीन् ॥
वातपित्तास्ररोगेषु बृंहणार्थिनि चेष्यते ।
क्वाथेन वाजिगन्धाया जीवनीयगणस्य वा ॥
क्वाथेनोत्पलमृद्वीकारक्तचन्दनजन्मना ।
वातपित्तं निहन्त्येष पद्मकादिगणस्य वा ॥
चव्यकुष्ठविडङ्गानां यवान्या नागरस्य वा ।
प्रसारिण्याश्च तोयेन गुग्गुलुः कफवातजित् ॥
त्र्यूषणाग्निघनवेल्लवरामिर्भक्षयत्समघृतं महिषाक्षम् ।
आशुहन्ति कफमारुतमेदोदोषजान् बलवतोऽपि विकारान् ॥
पटोलनिंबत्रिफलागुडूची गायत्रिरात्रिद्वयबीजकानाम् ।
क्वाथैः पृथक् पथ्यपरस्य हन्ति मासेन घोरान् कफपित्तरोगान्॥
विशेषाच्छोपवीसर्पदुष्टव्रणभगन्दरान् ।
शुक्रार्तवमनोदोषप्रमेहश्वित्रपाण्डुताः ।
पटोलारिष्टनिर्यूहपिष्टशुल्यरसाञ्जनः ।
गलरोगापचीव्यङ्गग्रन्थिस्थौल्यकृमिप्रणुत ॥
शिलाजतुसमः पीतः पयसा वातशोणितम् ।
निवर्तयत्यतिबलं क्षीरमांसघृताशिनः ॥
रसेन पयसा मूत्रैर्वातपित्तकफापहः ।
ब्राह्मीमण्डूकशंखानां पृथङ्मेधादिकृद्रसः ॥
मागधिकामिविडंगकलिंगैर्बिल्वघृतैः सवचापलषट्कैः ।
गुग्गुलुना सदशेन समेतैः क्षौद्रयुतैः सकलामयनाशः ॥
पिबेत्पलशतं योऽस्य विधिना नियतो यतिः ।
नाकालमृत्युर्नव्याधिर्न तस्य जरसो भयम् ॥
कल्पयेदौषधैः स्वैः स्वैर्व्याधिषु व्याधिनाशनैः ।
शिलाजतुविधानं च गुग्गुलोः सर्वमिष्यते ॥
गुणनिधिरपि कुर्यात् सोऽतिमात्रोपयुक्तस्तिमिरवदनशोषक्लीबताकार्श्यमेहान् । शमलशिथिलभावं देहरौक्ष्यं च तस्माद्जनिचरनिषेवी स्यान्नरोगेष्वमीषु ॥ इति ।

या एकवर्षतक नियमपूर्वक सेवन करता है वह मनुष्य जीर्णहुआ भी पुनः नवीन होजाताहै ॥ १९९ ॥

मूर्वाबृहत्यंशुमतीबलाना-
मुशीरपाठासनसारिवाणाम् ।
कालानुसार्यागुरुचन्दनानां
वदन्ति पौनर्नवमेव कल्पम् ॥ १९६ ॥

इसीप्रकार मूर्वा, बड़ी कटेली, शालपर्णी, बला, खस, पाठा, विजयसार, सारिवा, तगर, अगर, चन्दन इनमेंसे किसी एकको पुनर्नवाके समान सेवन करनेसे भी वही गुण होते हैं ॥ १९६ ॥

शतावरीकल्ककषायसिद्धं
ये सर्पिरश्नन्ति सिताद्वितीयम् ।
तान् जीविताध्वानमभिप्रपन्ना-
न्न विप्रलुम्पन्ति विकारचौराः ॥१९७॥

जो मनुष्य शतावरीके कल्क और काथसे सिद्ध कियाहुआ घृत मिश्री मिलाकर नित्य पीते हैं उन मनुष्योंको जीवनके मार्गमें गमन करतेहुए विकाररूपी चोर प्रहार नहीं कर सकते ॥ १९७ ॥

पीताश्वगन्धा पयसार्धमासं
घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा ।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते
बालस्य सस्यस्य यथा सुवृष्टिः ॥१९८

अश्वगंधाके मूलको पन्द्रहदिन पर्यन्त दूधके साथ अथवा घृतके साथ या तैलके साथ अथवा सुखोष्ण जलके साथ सेवन करे तो कृश मनुष्यके शरीरकी इस प्रकार पुष्टि कर देता है जैसे छोटीखेतीको सम यकी वरसीहुई सुन्दरवृष्टि बढादेती है ॥ १९८ ॥

दिने दिने कृष्णतिलप्रकुञ्चं
समश्नतां शीतजलानुपानम् ।
पोषः शरीरस्य भवत्यनल्पो
दृढी भवन्त्यामरणाच्च दन्ताः ॥ १९९ ॥

एक पल कालेतिलोंको नित्य प्रातःकाल खाकर ऊपरसे शीतल जल पीवे तो शरीर विशेष पुष्ट होजाता है और दांत जीवन पर्यन्त दृढ रहते हैं ॥ १९९ ॥

चूर्णं श्वदंष्ट्रामलकामृतानां
लिहन्ससर्पिर्मधुभागमिश्रम् ।
वृषः स्थिरः शान्तविकारदुःखः
समाः शतं जीवति कृष्णकेशः ॥१६०॥

गोखरू, आंवले और गिलोयके चूर्णको घृत और मधु मिलाकर नित्य चाटनेसे मनुष्य वीर्ययुक्त, स्थिर और विकारोंके दुःखसे रहित होकर सौ वर्ष जीवित रहता है तथा इसके शिरके केश काले रहते हैं १६०

सार्धं तिलैरामलकानि कृष्णै-
रक्षाणि संक्षुद्य हरीतकीर्वा ।
येऽद्युर्मयूरा इव ते मनुष्या
रम्यं परीणाममवाप्नुवन्ति ॥ १६१ ॥

कालेतिलोंके साथ आमलोंको मिलाकर चूर्णकरे. अथवा कालेतिलोंके साथ हरीतकी मिलाकर चूर्ण करे इस चूर्णको नित्य खानेसे मनुष्य मोरके समान सुन्दर अवस्थाके परिणामको प्राप्त होते हैं ॥ १६१ ॥

शिलाजतुक्षौद्रविडङ्गसर्पि-
र्लोहाभयापारदताप्यभक्षः ।
आपूर्यते दुर्बलदेहधातु-
स्त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः ॥१६२॥

शिलाजीत, मधु, वायविडङ्ग, लोहभस्म, रससिन्दूर और सोनामक्खीकी भस्म इन सबको मिलाकर पन्द्रह दिन सेवन करनेसे दुर्बल मनुष्यकी रसादि धातुयें पुष्ट होकर मनुष्यका स्वरूप चन्द्रमाके समान सुन्दर होजाता है ॥ १६२ ॥

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति
दिने दिने भृङ्गरजःसमुत्थम् ।
क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः
समाः शतं जीवितमाप्नुवन्ति ॥ १६३ ॥

जो मनुष्य एक महीना पर्यन्त नित्य प्रातःकाल भांगरेका रस पिया करे और दूधका ही आहार करे ऐसे एक मास करनेसे मनुष्य बलवीर्ययुक्त होकर सौ वर्ष तक सुखी जीवनको प्राप्त होता है ॥ १६३ ॥

मासं वचामप्युपसेवमानाः
क्षीरेण तैलेन घृतेन वापि ।

भवन्ति रक्षोभिरधृष्यरूपा
मेधाविनो निर्मलमृष्टवाक्याः ॥१६४॥

जो मनुष्य वचको दूध या तैल या घृतके साथ एक महीना पर्यन्त सेवन करते हैं वे राक्षसादिकोंसे विमुक्त होकर बुद्धिमान्, निर्मल और सुन्दर वाणीवाले होजाते हैं ॥ १६४ ॥

मण्डूकपर्णीमपि भक्षयन्तो
भृष्टां घृते मासमनन्नभक्ष्याः।
जीवन्ति कालं विपुलं प्रगल्भा-
स्तारुण्यलावण्यगुणोदयस्थाः ॥१६५॥

जो मनुष्य मण्डूकपर्णीको घीमें भूनकर नित्य एक मासपर्यन्त सेवन करतेहैं और अन्न न खाकर केवल दूधका आहार करते हैं वे प्रगल्भ, तारुण्य लावण्य और गुणोंसे युक्त होकर दीर्घकालतक जीवित रहते हैं १६५

लाङ्गलीत्रिफलालोहपलपञ्चाशतीकृतम्।
मार्कवस्वरसे पष्ट्वा गुटिकानां शतत्रयम् १६६
छायाविशुष्कं गुटिकार्धमद्यात्
पूर्वं समस्तामपि तां क्रमेण।
भजेद्विरिक्तः क्रमशश्च मण्डं
पेयां विलेपीं रसकौदनं च ॥ १६७ ॥
सर्पिः स्निग्धं मासमेकं यतात्मा
मासादूर्ध्वं सर्वथा स्वैरवृत्तिः।
वर्ज्यं यत्नात्सर्वकालं त्वजीर्णं
वर्षेणैवं योगमेवोपयुञ्ज्यात् ॥ १६८ ॥
भवति विगतरोगो योऽप्यसाध्यामयार्तः
प्रबलपुरुषकारः शोभते योऽपि वृद्धः।
उपचितपृथुगात्रश्रोत्रनेत्रादियुक्त-
स्तरुण इव समानां पञ्च जीवेच्छतानि॥१६९॥

लांगलीकन्द, त्रिफला और लोहभस्म, इनको पचास पल लेकर भांगरेके रसमें खरल करके तीन सौ साठ गोलियां बनावे और छायामें सुखाले इसमेंसे आधी-गोली प्रथमदिन खावे फिर क्रमसे सम्पूर्ण गोली खावे, गोली गर्मजलके साथ खाना चाहिये, जब विरेचन होलेवे तो क्रमसे मण्ड, पेया, विलेपी और रसौदन घृतयुक्त खाना चाहिये, इस प्रकार एकमास इन गोलियोंको सेवन करतेहुए जितात्मा रहकर मण्डादि सेवन करतेहुए महीनेके अन्तमें रसौदन खाने लगजावे, महीनेके अनन्तर फिर इच्छानुसार पथ्य भोजन करने लगे, परन्तु अजीर्ण कभी न होनेदेवे। इस प्रकार एक वर्षतक इन तीन सौ साठ गोलियोंको खानेसे असाध्यरोगोंसे पीड़ित मनुष्य भी निरोग होजाता है. तथा प्रबल पुरुषार्थयुक्त होनेसे वृद्धपुरुष भी युवापुरुषके समान उपचितअङ्गोंवाला, पुष्टशरीर-वाला सुन्दर देखने और सुननेकी शक्तिवाला होकर शोभाको पाता है और पांच सौ वर्ष तक जीवित रहसकता है ॥ १६६–१६९ ॥

नारसिंह घृत।

गायत्रीशिखिशिंशिपासनशिवा-
-वेल्लाक्षकारुष्करान्
पिष्ट्वाष्टादशसङ्गुणेऽम्भसि घृतान्-
-खण्डैःसहायोमयैः।
पात्रे लोहमये त्र्यहं रविकरै-
-रालोडयन् पाचये-
द्भौ चानुमृदौ सलोहशकलं-
पादस्थितंतत्पचेत् ॥१७० ॥
पूतस्यांशः क्षीरतोंऽशस्तथांशो
भार्ङ्गीनिर्यासाद्द्वौ वरायास्त्रयोंऽशाः।
अंशाश्चत्वारश्चेह हैयङ्गवीना-
देकीकृत्यैतत्साधयेत्कृष्णलोहे ॥१७१॥
विमलखण्डसितामधुभिः पृथ-
ग्युतमयुक्तमिदं यदि वा घृतम्।
स्वरुचिभोजनपानविचेष्टितो
भवति ना पलशःपरिशीलयन् ॥१७२॥

श्रीमान्निर्धूतपाप्मा वनमहिषबलोवाजिवेगः स्थिराङ्गः केशैर्भृङ्गाङ्गनीलैर्मधुसुरभिमुखोनैक-योषिन्निषेवी। वाङ्मेधाधीसमृद्धः सुपटुहुत-वहोमासमात्रोपयोगाद्धत्तेऽसौ नारसिंहं वपुर-नलशिखातप्तचामीकराभम् ॥ १७३ ॥

अश्मसारं नारसिंहस्य व्याधयो न स्पृशन्त्यपि ।
चक्रोज्ज्वलभुजं भीता नारसिंहमिवासुराः १७४

खैरसार, चित्रक, शीशम, विजयसार, हरीतकी, वायविडंग, बहेडे और भिलावे इन सबको समभाग लेकर पीसकर अठारहगुणे जलमें मिलाकर लोहपात्रमें डाले और इसीमें एक भाग लोहचूर्ण भी डाले । इस पात्रको सूर्यकी धूपमें तीनदिन रखछोडे खैरकी लकडी या लोहके पलटेसे इस औषधिको पात्रमें हिलातारहे फिर इसको सूखेहुए गोहेकी अग्निपर मन्दाग्निसे पकावे जब चौथा भाग शेष रहे तो उतार कर छानलेवे. जब यह स्वच्छ छन जायतो इसमें चौथा-भाग अर्थात् एक अंश दूध, दो अंश भांगरेका क्वाथ, तीन अंश त्रिफलेका क्वाथ और चार अंश घृत सबको मिलाकर कृष्णलोहके कटाहमें डाल फिर मृदुअग्निसे पकावे, सिद्धहोनेपर इस घृतमें मिसरी, निर्मल खाण्ड या मधु और मिसरी मिलाकर एक पल नित्य सेवनकरे और अपनी रुचिके अनुसार भोजन पान चेष्टाकरे; इसके सेवनसे मनुष्य कांतिमान्,पापरहित,वनमहिषके समान बलवाला, घोडेके समान वेगवाला, स्थिर अङ्गोंवाला, भ्रमरके समान केशोंवाला, सुन्दर मुखवाला, अनेक स्त्रियोंके सेवनकी शक्तिवाला, वाणी, मेधा और बुद्धिकरके युक्त और चैतन्य जठराग्निवाला होजाता है. इस नारसिंहघृतको एक महीना सेवन करनेसे अग्निमें तपायमान सुवर्णके समान कान्तिवाला मनुष्य होजाता है इस नारसिंहघृतके खानेवाले पुरुषको व्याधियें इस प्रकार स्पर्श नहीं करसकतीं. जैसे—चक्रसे उज्वल भुजावाले नृसिंहको देखकर भयभीत असुर समीप नहीं आसकते ॥१७०—१७४॥

भृङ्गप्रवालानमुनैव भृष्टान्
घृतेन यः खादति यन्त्रितात्मा ।
विशुद्धकोष्ठोऽसनसारसिद्ध-
दुग्धानुपस्तत्कृतभोजनार्थः ॥ १७५ ॥

मासोपयोगात् स सुखी जीवत्यब्दशतद्वयम् ।
गृह्णाति सकृदप्युक्तमविलुप्तस्मृतीन्द्रियः॥१७६

भृङ्गराजके पत्र इस नृसिंहघृतमें भूनकर जो शुद्धकोष्ठ मनुष्य खाता है तथा जितेन्द्रिय रहतेहुए इस घृतके ऊपर विजयसारसे सिद्ध कियेहुए दूधका अनुपान करता है और एक मासपर्य्यन्त दूधही भोजनार्थ सेवन करता है वह मनुष्य सुखपूर्वक दो सौ वर्ष जीता है । और एकबार कहेहुए पाठको सुनकर याद करलेताहै । तथा उसकी स्मरणशक्ति और इन्द्रियें बलवती होजाती हैं ॥ १७५—१७६ ॥

नारसिंह तैल ।

अनेनैव च कल्पेन यस्तैलमुपयोजयेत् ।
तानेवाप्नोति स गुणान् कृष्णकेशश्च जायते७७

इसी नारसिंहघृतकी औषधियोंसे इसी प्रकार यदि तैल सिद्ध कियाजाय तो नारसिंहघृतके समानही सब-गुण होते है तथा शिरके केश काले होजाते हैं॥१७७

उक्तानि शक्यानि फलान्वितानि
युगानुरूपाणि रसायनानि ।
महानुशंसान्यपि चापराणि
प्राप्त्यादिकष्टानि न कीर्तितानि॥१७८॥

इस प्रकार समयके अनुसार फलके देनेवाले रसायन प्रयोग जो बनाये और सेवन किये जाँय उनका कथन करदिया है. तथा जो महान् फलके देनेवाले और योग है किन्तु उनकी औषधियोंको प्राप्त करना और बनाना तथा सेवन करना अशक्य है उनको यहां कथन नहीं किया ॥ १७८ ॥

रसायनविधिभ्रंशाज्जायेरन् व्याधयो यदि ।
यथास्वमौषधं तेषां कार्यं मुक्त्वा रसायनम्७९

रसायनकी विधिमें कोई बिगाड उत्पन्न होजानेसे या कुपथ्य करनेसे कोई व्याधि उत्पन्न होजाय तो रसायन क्रियाको छोडकर उस रोगकी रोगानुसार चिकित्सा करदेनी चाहिये ॥ १७९ ॥

अन्य आयुवर्धक भाव ।

सत्यवादिनमक्रोधमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ।
शान्तं सद्वृत्तनिरतं विद्यान्नित्यरसायनम्१८०॥

जो मनुष्य सत्य बोलता है, क्रोध नहीं करता जिसकी इन्द्रियें अध्यात्मविद्यामें लगीहुई हों और पुरुष शान्तस्वभाव हो नित्य सद्वृत्तमें रत रहे ऐसे पुरुषका आचरण ही नित्य रसायन है अर्थात् सुखप्रद होता है ॥ १८० ॥

गुणैरेभिः समुदितैः सेवते यो रसायनम् ।
स निर्वृतात्मा दीर्घायुः परत्रेह च मोदते॥१८१

यदि इन गुणोंवाला मनुष्य विधिपूर्वक रसायनका सेवन करे तो वह पुरुष शान्तआत्मा होकर दीर्घायु होता है इस लोकमें और परलोकमें आनन्दको प्राप्त होता है ॥ १८१ ॥

शास्त्रानुसारिणी चर्या चित्तज्ञाः पार्श्ववर्तिनः ।
बुद्धिरस्खलितार्थेषु परिपूर्णं रसायनम्।१८२॥

समाप्तं रसायनतन्त्रम् ।

शास्त्राज्ञाके अनुसार आचरण होना, स्वभावके यथार्थ जाननेवाले पार्श्ववर्त्तियोंका समीप रहना, सब विषयोंमें स्खलित न होनेवाली बुद्धि होना यह भी परिपूर्ण रसायन है ॥ १८२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने आयुर्वेदाचार्य पं०शिवशर्मकृतशिवदीपिका - भाषाव्याख्यायां रसायनंनाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथातो वाजीकरणाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम बाजीकरण अध्यायकी व्याख्या करते है ।

बाजीकरणद्रव्योंका गुण ।

वाजीकरणमन्विच्छेत्सततं विषयी पुमान् ।
तुष्टिः पुष्टिरपत्यं च गुणवत्तत्र संश्रितम् ॥ १॥

बाजीकरणद्रव्योंका निरन्तर सेवन विषयी पुरुषोंको ही करना चाहिये । क्योंकि बाजीकरण योगोंमें तुष्टि पुष्टि और सन्तान देनेका गुण स्थित रहता है१॥

अपत्यसन्तानकरं यत्सद्यः सम्प्रहर्षणम् ।
वाजीवाऽतिबलो येन यात्यप्रतिहतोऽङ्गनाः॥२॥
भवत्यतिप्रियः स्त्रीणां येन येनोपचीयते ।
तद्वाजीकरणं विद्धि देहस्योर्जस्करं परम् ॥३॥

जो द्रव्य पुत्रादि सन्तानको उत्पन्नकरनेवाले हैं, जिनके सेवनसे कामशक्ति बढ़ती है, जिनके सेवनसे घोड़ेके समान अप्रतिहतवेगसे स्त्रीसंग करता है, जिनके कारण स्त्रियोंका अतिप्यारा होता है और जिस द्रव्यसे वीर्यका उपचय होता है तथा जो द्रव्य देहमें ओजको बढ़ाता है उसको बाजीकरण कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

बाजीकरणकथनकरनेका प्रयोजन ।

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम् ।
अनुमोदामहेऽब्रह्मचर्यमेकान्तनिर्मलम् ॥ ४ ॥
अल्पसत्त्वस्य तु क्लेशैर्बाध्यमानस्य रागिणः ।
शरीरक्षयरक्षार्थं वाजीकरणमुच्यते ॥ ५ ॥

यद्यपि धर्म, यश और आयुके देनेवाले तथा इस लोक और परलोकमें सुखके देनेवाले एकान्त निर्मल ब्रह्मचर्यको ही हम श्रेष्ठ मानते है । परन्तु अल्पसत्त्ववाले और क्लेशोंसे बाधित गृहस्थमें फंसेहुए मनुष्यके शरीरकी रक्षाके लिये हम बाजीकरण योगोंका कथन करते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

कल्पस्योदग्रवयसो वाजीकरणसेविनः ।
सर्वेष्वृतुष्वहरहर्व्यवायो न निवार्यते ॥ ६ ॥

जो युवापुरुष समर्थ और यौवनावस्थामें स्थित हों और बाजीकरण औषधका नित्य सेवन करते हों उनको किसी ऋतुमें भी स्त्रीसंगका निषेध नहीं ॥ ६ ॥

बाजीकरणद्रव्योंकी प्रयोगकी विधि ।

अथ स्निग्धविशुद्धानां निरूहान्सानुवासनान् ।
घृततैलरसक्षीरशर्कराक्षौद्रसंयुतान् ॥ ७ ॥
योगाविद्योजयेत्पूर्वं क्षीरमांसरसाशिनाम् ।
ततो वाजीकरान् योगान् शुक्रापत्यविवर्धनान्

जिस पुरुषको बाजीकरणयोगोंका सेवन कराना हो उसको प्रथम स्नेहन स्वेदनकर वमन विरेचनादिसे शुद्धकरे । तदनन्तर योगके जाननेवाला वैद्य प्रथम घृत, तैल, रस, दूध, खाण्ड और मधुयुक्त निरूहण तथा अनुवासन वस्तिकर्म करावे । तदनन्तर दूध मांसरसादि सेवन करातेहुए शुक्रके बढ़ानेवाले और संतानके देनेवाले बाजीकरणयोगोंका प्रयोग कराना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

सन्तानकी महिमा।

अच्छायः पूतिकुसुमः फलेन रहितो द्रुमः।
यथैकश्चैकशाखश्च निरपत्यस्तथा नरः॥ ९॥

जैसे एक ही शाखावाला छायारहित दुर्गन्धित फूलवाला, फलसे रहित वृक्ष शोभा नहीं देता वैसे ही संतानरहित पुरुष भी संसारमें सुखी नहीं मानाजाता ९

स्खलद्गमनमव्यक्तवचनं धूलिधूसरम्।
अपि लालाविलमुखं हृदयाह्लादकारकम्॥१०॥
अपत्यं तुल्यता केन दर्शनस्पर्शनादिषु।
किं पुनर्यद्यशोधर्ममानश्रीकुलवर्धनम्॥ ११॥

यदि किसीके घरमें चलते चलते गिरजानेवाला, जो समझमें न आवे ऐसा अव्यक्त बोलनेवाला, धूलीसे धूसर, लालाओंसे भरेहुए मुखवाला पुत्र हो उसको देखनेसे और छूने आदिसे हृदयको अत्यन्त आनन्द होता है। ऐसे पुत्रकी भी तुलना किसी अच्छीसे अच्छी वस्तुके साथ नहीं कीजासकती. यदि यश, धर्म, मान, लक्ष्मी और कुलके बढ़ानेवाला पुत्र हो तब तो कहना ही क्या है॥ १०॥ ११॥

शुद्धकाये यथाशक्ति वृष्ययोगान् प्रयोजयेत्॥

यह वृष्ययोग शुद्धकाय होनेपर ही यथाशक्ति प्रयोग कराना चाहिये॥ १२॥

अनेक वृष्ययोग।

शरेक्षुकुशकाशानां विदार्या वीरणस्य च।
मूलानि कण्टकार्याश्च जीवकर्षभकौ बलाम्।
मेदे द्वे द्वे च काकोल्यौ शूर्पपर्ण्यौ शतावरीम्१३
अश्वगन्धामतिबलामात्मगुप्तां पुनर्नवाम्।
वीरां पयस्यां जीवन्तीं मृद्वीं रास्नां-
-त्रिकण्टकम्॥ १४॥
मधुकं शालिपर्णींच भागांस्त्रिपलिकान् पृथक्।
माषाणामाढकं चैतच्च द्विद्रोणे साधयेदपाम्१५
रसेनाढकशेषेण पचेत्तेन घृताढकम्।
दत्त्वा विदारीधात्रीक्षुरसानामाढकाढकम्॥१६॥
घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं पेष्याणीमानि चावपेत्।
वीरां स्वगुप्तां काकोल्यौ यष्टीं फल्गूनि-
-पिप्पलीम्॥ १७॥
द्राक्षां विदारीं खर्जूरं मधुकानि शतावरीम्।
तत्सिद्धपूतं चूर्णस्य पृथक् प्रस्थेन योजयेत्१८
शर्करायास्तुगायाश्च पिप्पल्याः कुडवेन च।
मरिचस्य प्रकुञ्चेन पृथगर्धपलोन्मितैः॥१९॥
त्वगेलाकेसरैः श्लक्ष्णैः क्षौद्राद् द्विकुडवेन च।
पलमात्रं ततः खादेत् प्रत्यहं रसदुग्धभुक्।
तेनारोहति वाजीव कुलिङ्ग इव हृष्यति॥२०॥

सर्कण्डा, इक्षु, कुशा, काश, विदारी और वीरणतृणकी जड़ें, कण्टकारी, जीवक, ऋषभक, बला, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, शतावरी, असगन्ध, अतिबला, कौंचके बीज, पुनर्नवा, भूमिआमला, क्षीरविदारी, जीवन्ती, ऋद्धि, रास्ना, गोखरू, मुलहठी, शालपर्णी ये प्रत्येक तीन तीन पल और उड़द (माषान्न) चार सेर इनको दो द्रोण जलमें डालकर पकावे। जब इसका आठवां भाग (चार सेर) जल शेष रहे तो इसको छानकर इस जलमें चार सेर घी तथा विदारीकन्दका रस चार सेर, आमलेका रस चार सेर, गन्नेका रस चार सेर, दूध १६ सेर, मिलावे. तथा भूम्यामलकी, कौंचके बीजोंकी गिरि, काकोली, क्षीरकाकोली, मुलहठी, अंजीर, पीपल, द्राक्षा, विदारीकन्द, खजूर, अन्य मधुरफल और शतावरी इनका कल्क एक सेर मिलाकर घृत सिद्ध करे; घृत सिद्ध होनेपर छानलेवे। इसमें मिसरी और वंशलोचन एक सेर, पीपल एक पाव, मिरच एक पल, दारचीनी, इलायची, नागकेशर प्रत्येक दो कर्ष और मधु आधसेर मिला देवे। इसमेंसे एक पल प्रमाण नित्य खाकर ऊपरसे दूध या मांसरस पीवे। इसके सेवनसे मनुष्य घोड़ेके समान कामके वेगवाला और चिड़ेके समान कामके हर्षवाला होजाता है॥ १३-२०॥

विदार्य्याद्यवलेह।

विदारीपिप्पलीशालिप्रियालेक्षुरकाद्रजः।
पृथक् स्वगुप्तामूलाच्च कुडवांशं तथा मधु२१॥
तुलार्धं शर्कराचूर्णात् प्रस्थार्धं नवसर्पिषः।
सोऽक्षमात्रमतः खादेद्यस्य रामाशतं गृहे॥२२॥

विदारीकन्द, पीपल, शालीचूर्ण, चिरौंजी, तालमखाने और कौंचकी जड़, यह एक एक कुडव लेकर चूर्णकरे। इसमें एक कुडव मधु, ढ़ाईसेर मिसरी, आध सेर नवीनघृत मिलाकर इसमेंसे नित्य एक कर्षप्रमाण वह पुरुष खावे जिसके घरमें सौ स्त्रियें हों॥ २१२२॥

आत्मगुप्ताफलान् क्षीरे गोधूमान्साधितान्-हिमान्॥ २३॥

माषान्वा सघृतक्षौद्रान् खादन् गृष्टिपयोऽनुपः जागर्ति रात्रिं सकलामखिन्नः खेदयन्स्त्रियः॥२४

कौंचके बीजोंको दूधमें पकाकर अथवा गेहूंको दूधमें पकाकर या उड़दोंको दूधमें पकाकर घी और मधु मिलाकर खाय। ऊपरसे गृष्टिगौका दूधपीवे। इसके अभ्याससे पुरुष स्त्रियोंको कष्टदेताहुआ स्वयं खेदरहित होकर सम्पूर्णरात्रि जाग सकता है॥२३२४॥

बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान्।
यःखादेत्ससितान् गच्छेत्स स्त्रीशतमपूर्ववत्॥२५

बकरेके अण्डकोषोंसे सिद्ध कियेहुए दूधमें तिलोंको भावना देकर मिसरी मिलाकर खावे। वह पुरुष स्त्रियोंमें अपूर्वरूपसे गमन करता है॥ २५॥

चूर्णं विदार्या बहुशः स्वरसेनैव भावितम्।
क्षौद्रसर्पिर्युतं लीढ्वा प्रमदाशतमृच्छति॥ २६॥

विदारीकन्दके चूर्णको विदारीकन्दके रसकी अनेक भावना देकर मधु और घृतमें मिलाकर चाटनेवाला मनुष्य सौ स्त्रियोंकी इच्छा करता है॥ २६॥

कृष्णाधात्रीफलरजः स्वरसेन सुभावितम्।
शर्करामधुसर्पिर्भिर्लीढ्वा योऽनु पयः पिबेत्।
स नरोऽशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति॥२७॥

पीपल और आमलेके चूर्णको अथवा केवल आमलेके फलके चूर्णको आमलेके रसकी अनेक भावना देकर मधु और घृतके साथ खावे। ऊपरसे दूधका अनुपान करे तो वह ८० वर्षका बूढ़ा मनुष्य भी युवापुरुषके समान कामान्ध हो जाता है॥ १७॥

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम्।
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत्॥

एक कर्ष मुलहठीके चूर्णको मधुघृतमें मिलाकर खावे और ऊपरसे दूधपीवे तो वह मनुष्य नित्य कामके वेगयुक्त रहता है॥ २८॥

कुलीरशृंग्या यः कल्कमालोड्य पयसा पिबेत्
सिताघृतपयोऽन्नाशी स नारीषु वृषायते॥२९॥

काकड़ासिंगीके कल्कको दूधमें घोलकर जो मनुष्य पीवे तथा मिसरी, घृत और दूधका आहार करे वह पुरुष स्त्रियोंमें हर्षको प्राप्त होता है॥ २९॥

यःपयस्यां पयःसिद्धां खादेन्मधुघृतान्विताम्।
पिबेद्बाष्कयणं चानु क्षीरं न क्षयमेति सः॥३०

जो मनुष्य क्षीरकाकोलीको दूधमें सिद्ध करके मधुघृत मिलाकर खावे और ऊपरसे युवतीगौका दूध पीवे वह मनुष्य वीर्यके क्षयको प्राप्त नहीं होता॥ ३०॥

स्वयंगुप्तेक्षुरकयोर्बीजचूर्णं सशर्करम्।
धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा रासभायते॥३१

कौंचके बीज और तालमखानेके चूर्णको मिसरी मिला धारोष्ण दूधकी साथ पीवे तो मनुष्य गधेके समान कामी होजाता है॥ ३१॥

उच्चटाचूर्णमप्येवं शतावर्याश्च योजयेत्॥ ३२॥

उटंगणके बीजोंका चूर्ण अथवा शतावरीका चूर्ण मिसरी मिलाकर धारोष्ण दूधके साथ पीनेसे भी इसी प्रकार गुण होता है॥ ३२॥

चन्द्रशुभ्रं दधिसरंससितं षष्टिकौदनम्।
पटे सुमार्जितं भुक्त्वा वृद्धोऽपि तरुणायते॥३३॥

चन्द्रमाकी समान श्वेत दधिको कपड़ेमें छानकर मिसरी और सांठीके चावलोंके साथ खावे तो वृद्ध मनुष्य भी तरुणके समान हो जाता है॥ ३३॥

गोक्षुरादि चूर्ण।

श्वदंष्ट्रेक्षुरमाषात्मगुप्ताबीजशतावरीः।
पिबन् क्षीरेण जीर्णोऽपि गच्छति प्रमदाशतम्

गोखरू, तालमखाना, उड़द, कौंचके बीजोंकी गिरी और शतावरी इनके चूर्णको दूधके साथ सेवन करनेसे वृद्ध पुरुष भी सौ स्त्रियोंसे गमन कर सकता है॥ ३४॥

यत्किंचिन्मधुरं स्निग्धं बृंहणं बलवर्धनम्।
मनसो हर्षणं यच्च तत्सर्वं वृष्यमुच्यते॥३५॥

जितने पदार्थ मधुर, स्निग्ध शरीरको पुष्ट करनेवाले, बलको बढानेवाले और मनको प्रसन्नकरनेवाले होते हैं वे सब ही वृष्य (कामशक्तिवर्द्धक) होते हैं ॥ ३५ ॥

द्रव्यैरेवंविधैस्तस्माद्दर्पितः प्रमदां व्रजेत् ।
आत्मवेगेन चोदीर्णः स्त्रीगुणैश्च प्रहर्षितः॥३६॥

इस प्रकारके द्रव्योंसे दर्पित हुआ पुरुष स्त्रीगुणोंसे हर्षित हुआ हुआ तथा आत्मवेगसे उदीर्ण हुआ हुआ स्त्रीसंग करे ॥ ३६ ॥

सेव्याः सर्वेन्द्रियसुखा धर्मकल्पद्रुमाङ्कुराः।
विषयातिशयाः पंच शराः कुसुमधन्वनः॥३७॥

सब इन्द्रियोंके सुख (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) जो धर्मरूपी कल्पवृक्षके अङ्कुररूप हैं उनको सेवन करना चाहिये । अर्थात् यथार्थ नियम सेसब इन्द्रियोंके सुखोंको सेवन करना धर्मरूपी कल्पवृक्षका अंकुर मानाजाता है । परन्तु इन्हीं विषयोंको अधिक सेवन करना कामदेवके तीरोंके नामसे कहा जाता है अर्थात् हानिकर हैं ॥ ३७ ॥

स्त्रीकी प्रशंसा ।

इष्टा ह्येकैकशोऽप्यर्था हर्षप्रीतिकराः परम् ।
किं पुनः स्त्रीशरीरे ये संघातेन प्रतिष्ठिताः॥३८॥

एक एक विषय भी मनुष्यको परम हर्ष और प्रीतीके करनेवाला होता है । स्त्रीके शरीरमें पांचों इन्द्रियोंके विषय संघातरूपसे स्थित रहते हैं ॥ ३८॥

नामापि यस्या हृदयोत्सवाय
यां पश्यतां तृप्तिरनाप्तपूर्वा ।
सर्वेन्द्रियाकर्षणपाशभूता
कान्तानुवृत्तिव्रतदीक्षिता या ॥ ३९ ॥
कलाविलासाङ्गवयोविभूषा
शुचिः सलज्जा रहसि प्रगल्भा ।
प्रियंवदा तुल्यमनःशया या
सा स्त्री वृषत्वाय परं नरस्य ॥४०॥

जिस स्त्रीका नाम लेनेसे भी हृदयमें उत्सवसा होता है और देखतेहुए तृप्ति नहीं होती तथा जो सारी इन्द्रियोंको आकर्षण करनेवाली फांसीभूत स्त्रियें पुरुषको आकर्षण करनेके व्रतमें यथार्थ दीक्षित होती हैं. तथा कला, विलास, अङ्ग, अवस्था और सजावट तथा पवित्रता, लज्जा, एकान्तमें प्रगल्भता, मधुरभाषण, मनके अनुकूलआशयवाली जो स्त्री हो वह पुरुषके लिये कामवर्द्धक होती है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

आचरेच्च सकलां रतिचर्यां
कामशास्त्रविहितामनवद्याम् ।
देशकालबलशक्त्यनुरोधा-
द्वैद्यतन्त्रसमयोक्त्यविरुद्धाम् ॥ ४१॥

पुरुषको उचित है कि, देश, काल, बल और शक्तिके अनुरोधसे तथा आयुर्वेदशास्त्रके कथन कियेहुए समय और आज्ञाके अविरुद्ध कामशास्त्रमें कहीहुई संपूर्णविधिसे संपूर्ण रतिचर्य्याका आचरण करे ॥ ४१ ॥

अन्य कामवर्द्धक भाव ।

अभ्यञ्जनोद्वर्तनसेकगन्ध-
स्रक्पत्रवस्त्राभरणप्रकाराः ।
गान्धर्वकाव्यादिकथाप्रवीणाः
समस्वभावा वशगा वयस्याः॥४२॥
दीर्घिका स्वभवनान्तनिविष्टा
पद्मरेणुमधुमत्तविहङ्गा ।
नीलसानुगिरिकूटनितम्बे
काननानि पुरकण्ठगतानि ॥ ४३ ॥
दृष्टिसुखा विविधा तरुजातिः
श्रोत्रसुखः कलकोकिलनादः ।
अङ्गसुखर्तुवशेन विभूषा
चित्तसुखः सकलः परिवारः ॥४४॥
ताम्बूलमच्छमदिरा
कान्ता कान्ता निशा शशाङ्काङ्का ।
यद्यच्च किञ्चिदिष्टं
मनसो वाजीकरं तत्तत् ॥ ४५ ॥

सुगन्धित तैलमर्दन, उद्वर्त्तन, जलसे सेचन, सुगन्धित गन्ध, पुष्पमाला, वस्त्र, आभूषण आदि, मधुर गायन, काव्य कथा आदिमें प्रवीणता, अपने श्रेयः-- स्वभाववाले और वशमें रहनेवाले मित्र, अपने स्थानके अन्दर या समीप पुष्करिणी, कमलकी रेणु और मधुसे

मत्त विहंगोंसे शोभायमान हरे वृक्षोंसे युक्त पर्वतशृंगके समीपके सुन्दरवन, नगरके समीपके उपवन, दृष्टिको सुखके करनेवाले अनेक प्रकारके वृक्षपुष्पादि कानोंको सुखके देनेवाला कोयल आदिका मधुरशब्द, ऋतुके अनुसार शरीरको सुखके देनेवाले वस्त्रआभूषणादि, चित्तके सुखके करनेवाला सकल परिवार, ताम्बूल, मनको प्यारी लगनेवाली स्त्री, चन्द्रमायुक्त रात्रि तथा अन्य भी जो मनको सुखके देनेवाले भाव है वे सब बाजीकर (कामवर्द्धक) होते है ॥ ४२—४५ ॥

कामेच्छाके पूर्ण करनेवाले भाव ।

मधुमुखमिव सोत्पलं प्रियायाः
कलरणना परिवादिनी प्रियेव ।
कुसुमचयमनोरमा च शय्या
किसलयिनी लतिकेव पुष्पिताग्रा॥४६
देशे शरीरे च न काचिदर्ति-
रर्थेषु नाल्पोऽपि मनोविघातः ।
वाजीकराः संनिहिताश्च योगाः
कामस्य कामं परिपूरयन्ति ॥ ४७ ॥

मधु (मार्द्वीक मद्य) स्त्रीके मुखके समान उत्तम कमल प्रियाके मधुरस्वरके समान मधुरनाद करनेवाली वीणा, फूलोंसे उत्तम रीतिपर सजाईहुई शय्या जो पुष्प और पत्रोंसे शोभायमान प्रतीत होती हो, देशमे और शरीरमें किसी प्रकारका कष्ट न होना, अपनी आवश्यकताओंमें किसी प्रकारका भी विघात न होना और बाजीकरणयोग ये सब कामेच्छाको अवश्य पूर्ण करनेवाले है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

सब व्याधियोंपर एकएक योग ।

मुस्तापर्पटकं ज्वरे तृषि जलं मृद्भृष्टलोष्ठो-
द्भवं लाजाश्छर्दिषु बस्तिजेषु गिरिजं मेहेषु
धात्रीनिशे । पाण्डौ श्रेष्ठमयोऽभयानिलकफे
प्लीहामये पिप्पली सन्धाने कृमिजा विषे
शुकतरुर्मेदोऽनिले गुग्गुलुः ॥ ४८ ॥
वृषोऽस्रपित्ते कुटजोऽतिसारे
भल्लातकोऽर्शःसु गरेषु हेम ।
स्थूलेषु तार्क्ष्यं कृमिषु कृमिघ्नं
शोषे सुराच्छागपयोऽनुमांसम् ॥ ४९॥
अक्ष्यामयेषु त्रिफला गुडूची
वातास्त्ररोगे मथितं ग्रहण्याम् ।
कुष्ठेषु सेव्यः खदिरस्य सारः
सर्वेषु रोगेषु शिलाह्वयं च ॥ ५० ॥

ज्वरमें नागरमोथे और पित्तपापड़ा, प्यासमें भुनीहुई मट्टीके डलेसे बुझायाहुआ जल, छर्दिरोगमें लाजा, बस्तिरोगोंमें शिलाजीत, प्रमेहोंमें आमले और हल्दी, पाण्डुरोगमें उत्तम लोहभस्म, वातकफके रोगोंमें हरीतकी, प्लीहारोगमे पीपल, उरक्षत आदि संधान करनेमें लाख, विषरोगोंमें शिरीषवृक्ष, मेद और कफके रोगोंमें गूगल श्रेष्ठ औषध होती है ।

रक्तपित्तमें अडूसा, अतिसाररोगमें कुटज, अर्शरोगमें भिलावे, गररोगमें सुवर्णभस्म, स्थूलरोगोंमें रसौत, कृमिरोगोंमे वायविड़ंग, शोषरोगमें सुरा, बकरीका दूध और मांस, नेत्ररोगोंमे त्रिफला, वातरक्तमें गिलोय, ग्रहणीरोगमें दहीकी छाछ, कुष्ठरोगमें कत्था और सब रोगोंमें शिलाजतुका सेवन करना श्रेष्ठ है ॥४८—५०॥

उन्मादं घृतमनवं शोकं मद्यं विसंस्मृतिं ब्राह्मी ।
निद्रानाशं क्षीरं जयति रसाला प्रतिश्यायम्॥५१
मांसं काश्यं लशुनः प्रभञ्जनं स्तब्धगात्रतां स्वेदः
गुडमञ्जर्याःखपुरो नस्यात्स्कन्धांसबाहुरुजम्॥
नवनीतखण्डमर्दितमौष्ट्रं मूत्रं पयश्च हन्त्युदरम् ।
नस्यं मूर्धविकारान् विद्राधिमचिरोत्थम—
—स्रविस्रावः ॥ ५३ ॥
नस्यं केवलमुखजान्नस्याञ्जनतर्पणानि नेत्ररुजः
वृद्धत्वं क्षीरघृतं मूर्च्छां शीताम्बुमारुतच्छायाः॥

उन्मादरोगको पुराना घृत, शोकको मद्य, अपस्मारको ब्राह्मी, निद्रानाशको दूध और प्रतिश्यायको दहीका रसाला जीतता है ।

कृशताको मांस, वातवृद्धिको लशुन, अङ्गोंकी अकड़नको स्वेद, स्कन्ध और बाहुकी पीड़ाको कालेसिंबलके निर्य्यासकी नस्य और उदररोगको मक्खन और खाण्डसे युक्त ऊंटनीका दूध और मूत्र शमन करता है।

मस्तकके विकारोंको नस्य, नवीनविद्रधिको रक्त-निकालना, केवल मुखके रोगोंको नस्य, नेत्ररोगोंको तर्पण और नस्य, बुढ़ापेको घी और दूध. और मूर्च्छाको शीतलजल, शीतलपवन और शीतलछाया शमन करते है ॥ ९१–९४ ॥

समशुक्तार्द्रकमात्रा मन्दे वह्नौ श्रमे सुरा स्नानम्।
दुःखसहत्वे स्थैर्ये व्यायामो गोक्षुरुर्हितःकृच्छ्रे॥
कासे निदिग्धिका पार्श्वशूले पुष्करजा जटा।
वयसः स्थापने धात्री त्रिफला गुग्गुलुर्व्रणे९६

मन्दाग्निमें सिरका मिलाहुआ अदरख, श्रममें मद्य-पान और स्नान, आलस्य और स्थिरतामें व्यायाम, मूत्रकृच्छ्रमें गोखरू, खांसीमें कटेर्ला, पार्श्वशूलमें पोह-करमूल, अवस्थास्थापनकरनेमें आमले और त्रिफला; व्रण दूर करनेमें गूगल और त्रिफला श्रेष्ठ होताहै॥९६

बस्तिर्वातविकारान्
पैत्तान् रेकः कफोद्भवान् वमनम्।
क्षौद्रं जयति बलासं
सर्पिः पित्तं समीरणं तैलम् ॥ ९७ ॥

वायुके विकारोंको वस्तिकर्म, पित्तके विकारोंको विरेचन, कफके विकारोंको वमन कराकर शमन करना श्रेष्ठ होता है, कफको मद्य, पित्तको घृत और वायुको तैल जीतता है ॥ ९७ ॥

इत्यग्र्यं यत्प्रोक्तं रोगाणामौषधं शमायालम्।
तद्देशकालबलतो विकल्पनीयं यथायोगम्९८।

इस प्रकार प्रत्येक रोगमें जो यह प्रधान औष-धियें कही है इनका प्रयोग उन उन रोगोंकी निवृ-त्तिके लिये पर्याप्त है। इनके योग और मात्रा देश, काल और बलके अनुसार कल्पना करनी चाहिये॥९८

इत्यात्रेयादागमव्यार्थसूत्रं
तत्सूक्तानां पेशलानामतृप्तः।
मेडादीनां संमतो भक्तिनम्रः
पप्रच्छेदं संशयानोऽग्निवेशः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार सब रोगनिदान और चिकित्सासंबन्धि आत्रेयभगवान्के कहेहुए युक्तियुक्त अर्थसूत्रोंको सुनकर तृप्त न हुआ तथा संशययुक्त होकर अपने सहपाठी मेडादिकोंकी सम्मतिके अनुसार भक्तिभावसे नम्र अग्निवेश विनीतभावसे आत्रेय भगवान्को इस प्रकार पूछने लगा ॥ ९९ ॥

अग्निवेशका प्रश्न।

दृश्यन्ते भगवन् केचिदात्मवन्तोऽपि रोगिणः।
द्रव्योपस्थातृसंपन्ना वृद्धवैद्यमतानुगाः ॥१०॥
क्षीयमाणामयप्राणा विपरीतास्तथापरे।
हिताहितविभागस्य फलं तस्मादनिश्चितम् ११
किं शास्ति शास्त्रमस्मि-
न्निति कल्पयतोऽग्निवेशमुख्यस्य।
शिष्यगणस्य पुनर्वसु-
राचख्यौ कात्स्न्र्यतस्तत्त्वम् ॥ १२ ॥

हे भगवन्! कोई जितेन्द्रिय रोगी हित आहार विहारके करनेवाले यथोचित द्रव्य और उपचारादिसे युक्त होतेहुए तथा योग्य वैद्योंकी आज्ञानुसार रहने-वाले होते हुए भी प्रतिदिन क्षीण होतेहुए तथा रोगमें ही जिनके प्राण हैं ऐसे देखजाते है और अन्य पुरुष इससे विपरीत मिथ्याआहार विहारआदि करनेवाले होनेपर भी और विना चिकित्सा करनेपर भी अच्छे होते देखे जाते है। इस कारण हिताहितसेवन आदि विभागका फल यथार्थ निश्चित प्रतीत नहीं होता। हे भगवन्! इस विषयमे शास्त्रका क्या मत है? ऐसा कथन करते हुए अग्निवेशादि अपने शिष्यगणोंके सन्मुख पुनर्वसु भगवान् सम्पूर्णरूपसे यथार्थ तत्त्वको इस प्रकार कहने लगे ॥ १०--१२ ॥

आत्रेय भगवान्का उत्तर।

न चिकित्साऽचिकित्सा च तुल्या भवितुमर्हति।
विनापि क्रियया स्वास्थ्यं गच्छतां षोडशांशया

हे अग्निवेश! चिकित्सा करना और चिकित्सा न करना ये दोनों बातें समान है, ऐसा नही है जिस रोगमें बिना किसी १६ वां भाग क्रियाके भी स्वास्थ्य प्राप्त होता है वहां भी चिकित्सा करनेसे अति शीघ्र लाभ होसकता है। अर्थात् कुछ रोग अल्प हेतु आदिके कारण सर्वथा साध्य होते हैं। वे साध्यरोग कालके परिपाकसे स्वयं शान्त भी हो जाते है। परन्तु

यथार्थ चिकित्सा करनेसे वे शीघ्र शान्त हो जाते हैं। और कभी लंघनादिसे शान्त होजाना चिकित्साके विना शान्त होना नहीं कहाजाता। वहांपर उस अल्परोगमें लंघनमात्रही चिकित्सा है। कभी रोहिणी आदि साध्यरोग भी विना चिकित्सासे शान्त नहीं हो सकते। इस कारण चिकित्सा करना और न करना बराबर है यह कहना यथार्थ नहीं॥ ६३॥

आतङ्कपङ्कमग्नानां हस्तालम्बो भिषग्जितम्।
जीवितं म्रियमाणानां सर्वेषामेव नौषधात् ६४

क्योंकि रोगरूपी कीचड़में मग्न पुरुषोंके हाथको पकड़कर सहारा देना चिकित्सा है. सब ही अवश्य मरनेवालोंको औषधसे जीवन प्राप्त होजाय यह चिकित्साका फल नहीं॥ ६४॥

चिकित्साकी उपयोगिता।

न ह्युपायमपेक्षन्ते सर्वे रोगा न चान्यथा।
उपायसाध्याःसिध्यन्ति नाहेतुर्हेतुमान् यतः६५
यदुक्तं सर्वसंपत्तियुक्तयापि चिकित्सया।
मृत्युर्भवति तन्नैवं नोपायेऽस्त्यनुपायता॥६६॥

संपूर्ण ही शरीरके रोग उपायकी अपेक्षा नहीं करते अर्थात् जो सर्वथा असाध्य रोग हैं वे चतुष्पाद चिकित्सा करनेपर भी साध्य नहीं होते। परन्तु जो रोहिणी आदि साध्य रोग हैं वे विना चिकित्साके अच्छे नहीं हो सकते। इस कारण जो रोगोंके अच्छे होने और न अच्छे होनेमें संशय होनेका हेतु दिया है वह हेतु प्रामाणिक नहीं। यह जो कहागया है कि सर्व सम्पत्तियुक्त चिकित्सा करनेपर भी मृत्यु हो जाती है यहभी ठीक नहीं क्योंकि उपायमें अनुपायता नहीं। जिस रोगके लिये जो युक्त उपाय कथन किया है उस रोगमें वह अनुपाय नहीं है. जैसे—घटके बनानेमें मृत्, दण्ड, चक्रादि अनुपाय नहीं कहेजाते इस कारण साध्यरोगोंमें ज्ञानपूर्वक यथार्थ चिकित्सा करनेसे अवश्य यथार्थ लाभ होता है। और यथार्थ चिकित्सा न करनेसे तथा अहित आचरणसे अवश्य हानि होती है। इस कारण रोगोंकी यथार्थ चिकित्सा करनी आवश्यक ही है॥ ६५॥ ६६॥

अप्येवोपाययुक्तस्य धीमतो जातुचित्क्रिया।
न सिध्येद्दैववैगुण्यान्न त्वियं षोडशात्मिका ६७

बुद्धिमान् पुरुषकी कदाचित् प्रारब्धकी विगुणतासे षोडशात्मिकचिकित्सा करनेपर भी आराम नहीं होता इसको भी अनुपाय नहीं कहते। क्योंकि आयुविषयक साध्यासाध्य ज्ञानपूर्वक चिकित्सा करना ही वैद्यका धर्म है। यदि यथार्थ ज्ञानपूर्वक साध्यासाध्य विचारकर चिकित्सा कीजाय वह चिकित्सा सिद्ध होती है। दैवकी विगुणता विना विचारे चिकित्साको षोड़शात्मिका चिकित्सा नहीं कहते॥ ६७॥

कस्यासिद्धोऽग्नितोयादिः स्वेदस्तम्भादिकर्मणि
न प्रीणनं कर्शनं वा कस्य क्षीरं गवेधुकम् ६८
कस्य माषात्मगुप्तादौ वृष्यत्वे नास्ति निश्चयः।
विण्मूत्रकरणाक्षेपौ कस्य संशयितौ यवे॥६९॥
विषं कस्य जरां याति मन्त्रतन्त्रविवर्जितम्।
कः प्राप्तः कल्पतां पथ्याहते रोहिणिकादिषु७०

प्रत्यक्षमें भी देखनेमें आता है कि, अग्नि और जल आदि किस पुरुषके शरीरमें प्रवेशकरनेपर स्वेदन स्तंभनादि अपने गुणोंको नहीं करते। दूध किसको प्रीणन नहीं करता और गवेधुक किसको कर्षण नहीं करता। किस पुरुषको उड़द और कौंचके बीज वृष्यत्व नहीं करते। विष्ठा मूत्रको बाहर निकालनेमें यव किसके लिये संशय करते हैं। विष मन्त्रतंत्ररहित होकर किस पुरुषके शरीरमें जीर्णताको प्राप्त होजाता है अर्थात् मारक नहीं होता। रोहिणी आदि रोगोंमें पथ्यके विना कौन सिद्धिको प्राप्त होसकता है? अर्थात् कोई नहीं; इस कारण इन सब उपायादिकोंको देखतेहुए और द्रव्योंके गुणको देखतेहुए चिकित्साको निष्फल नहीं कहा जासकता॥ ६८—७०॥

अपि चाकालमरणं सर्वसिद्धान्तनिश्चितम्।
महतापि प्रयत्नेन वार्यतां कथमन्यथा॥७१॥

इसके अतिरिक्त सर्वशास्त्रोंके सिद्धान्तोंसे अकालमरण भी निश्चित है। चिकित्साशास्त्रके विना बड़े प्रयत्नके साथ भी अकालमृत्युसे बचनेका उपाय कौन करसकता है? अर्थात् कोई नहीं; इस कारण भी

चिकित्सा निष्फल नहीं कही जा सकती ॥ ७१ ॥

चन्दनाद्यपि दाहादौ रूढमागमपूर्वकम् ।
शास्त्रादेव गतं सिद्धिं ज्वरे लंघनबृंहणम् ॥७२॥

दाह आदि रोगोंमें चन्दन आदि लगाकर दाह शान्तकरना आयुर्वेदशास्त्रके अनुसार ही संसारमें प्रचलित है । ज्वरमें लंघन बृंहण आदि सब सिद्धि भी आयुर्वेदसे ही अवगत होती है । इस कारण भी चिकित्सा निष्फल नहीं कही जा सकती ॥ ७२ ॥

चतुष्पाद्गुणसंपन्ने सम्यगालोच्य योजिते ।
माकृथा व्याधिनिर्घातं विचिकित्सां चिकित्सिते

इस कारण चतुष्पादसंपन्न चिकित्साको यथार्थ विचार और ज्ञानपूर्वक प्रयोग करना व्याधिकी निवृत्तिमें फलदायक होनेमें संशय नहीं करना चाहिये ॥ ७३

चिकित्साशास्त्रकी महिमा ।

एतद्धि मृत्युपाशानामकाण्डे छेदनं दृढम् ।
रोगोत्रासितभीतानां रक्षासूत्रमसूत्रकम् ॥७४॥

यह चिकित्साशास्त्र अकालमें आयेहुए ज्वर आदि मृत्युके पाशोंको दृढरूपसे छेदनकरनेमें तथा ज्वरादि रोगोंके त्राससे भयभीतोंकी रक्षाकरनेमें यह सूत्ररहित रक्षासूत्र कथन किया है ॥ ७४ ॥

कुपात्रको चिकित्साशास्त्रमें प्रवेशकरनेका निषेध ।

एतत्तदमृतं साक्षाज्जगत्यायासवर्जितम् ।
याति हालाहलत्वं च सद्यो दुर्भाजनस्थितम् ७५

यह चिकित्साशास्त्र सर्वलोकप्रसिद्ध समुद्रमंथनादि आयाससे रहित साक्षात् अमृत है । यदि इस चिकित्साशास्त्रको मूर्ख या अनाचारीरूपी दुष्टपात्रमें डाल दियाजाय तो यह शीघ्र हालाहलविषके समान हानिकारक और मारक होजाता है ॥ ७५ ॥

अज्ञानशास्त्रसद्भावान् शास्त्रमात्रपरायणान् ।
त्यजेद्दूराद् भिषक्पाशान् पाशान् वैवस्वतानिव

जिन वैद्योंने गुरुमुखसे यथार्थरूपसे शास्त्रके सद्भावोंको नहीं जाना है और यथार्थरूपसे कर्मका अभ्यास नहीं किया है उन केवल शास्त्रमात्रके पाठकरनेवालोंको यमराजकी फांसीके समान समझकर भिषक्पाशोंको दूरसे ही त्याग देवे ॥ ७६ ॥

आशीर्वाद ।

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम् ।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ७७

श्रेष्ठ आचरणवाले वैद्योंका इस लोक और परलोकमें सदैव कल्याण हो, जो वैद्य यथार्थरूपसे शास्त्रके मर्म्मको जानते हैं उनका कल्याण हो, जिन्होंने यथार्थरूपसे अभ्यास किया है उनका कल्याण हो, जो सबका कल्याण चाहते हैं उनका कल्याण हो ॥ ७७ ॥

अष्टांगहृदयग्रंथकी प्रशंसा ।

इति तन्त्रगुणैर्युक्तं तन्त्रदोषविवर्जितम् ।
चिकित्साशास्त्रमखिलं व्यापठ्य परितःस्थितम्
विपुलामलविज्ञानमहामुनिमतानुगम् ।
महासागरगम्भीरसंग्रहार्थोपलक्षणम् ॥ ७९ ॥

इस प्रकार यह अष्टांगहृदयतन्त्र तन्त्रोंके गुणोंसे युक्त तथा तन्त्रोंके अवगुणोंसे रहित संपूर्ण चिकित्साशास्त्रको यथार्थरूपसे पठन करनेके अनन्तर निर्म्माण कियागया है, यह ग्रंथ विपुल अमल विज्ञानवाले महामुनि आत्रेयजीके मतके अनुसार है; तथा आयुर्वेदरूपी महागंभीर सागरका यथार्थ संग्रहका उपलक्षण है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

ग्रन्थका प्रयोजन और प्रामाण्य ।

अष्टाङ्गवैद्यकमहोदधिमन्थनेन
योऽष्टाङ्गसंग्रहमहामृतराशिराप्तः ।
तस्मादनल्पफलमल्पसमुद्यमानां
प्रीत्यर्थमेतदुदितं पृथगेव तन्त्रम् ॥८०॥

अष्टाङ्गआयुर्वेदरूपी महासागरको मन्थनकरनेके अनन्तर जो अष्टांगसंग्रह नामक महाअमृतकी राशि प्रमाणित ग्रन्थ है । उसमेंसे उसके समानफलके देनेवाला यह ग्रन्थ अल्प उद्यम करनेवालोंकी प्रीतिके लिये अलग बना दियागयाहै ॥ ८० ॥

इदमागमसिद्धत्वात्प्रत्यक्षफलदर्शनात् ।
मन्त्रवत्संप्रयोक्तव्यं न मीमांस्यं कथञ्चन ॥८१॥

यह अष्टांगहृदयग्रन्थ आगमसे अर्थात् आर्षवचनोंसे सिद्ध होनेसे और प्रत्यक्ष फलके देनेवाला

होनेसे मंत्रके समान श्रद्धापूर्वक प्रयोग करना चाहिये। और इसमें किसी प्रकार भी कभी तर्क या शङ्का नहीं करनी चाहिये ॥ ८१ ॥

ग्रन्थके अध्ययनका फल।

दीर्घजीवितमारोग्यं धर्ममर्थं सुखं यशः।
पाठावबोधानुष्ठानैरधिगच्छत्यतो ध्रुवम् ॥८२॥

इस कारण इस ग्रन्थको पढ़नेसे इसका यथार्थ ज्ञान होनेसे और इसमे कहेहुए वाक्योंको यथार्थ अनुष्ठान करनेसे पुरुष दीर्घजीवन, आरोग्य, धर्म, अर्थ, सुख और यशको अवश्य प्राप्त होता है ॥८२॥

अन्य ग्रन्थोंसे अष्टाङ्गहृदयकी उत्कृष्टता।

एतत्पठन् संग्रहबोधशक्तः
स्वभ्यस्तकर्मा भिषगप्रकम्प्यः।
आकम्पयत्यन्यविशालतन्त्र-
कृताभियोगान्यदि तन्न चित्रम् ॥८३॥

इस अष्टांगहृदयनामक ग्रन्थको यथार्थ पढ़कर धारण करनेवाला वैद्य और यथार्थ चिकित्सा कर्ममें अभ्यास रखनेवाला वैद्य निर्भीक होकर अन्य विशाल तन्त्रोंके जाननेवालोंको यदि शास्त्रार्थ और चिकित्सामें आकंपित कर देवे तो कोई आश्चर्य नहीं ॥ ८३ ॥

यदि चरकमधीते तद् ध्रुवं सुश्रुतादि
प्रणिगदितगदानां नाममात्रेऽपि बाह्यः।
अथ चरकविहीनः प्रक्रियायामखिन्नः
किमिह खलु करोतु व्याधितानां वराकः॥८४

क्योंकि यदि कोई चरकको पढ़ता है या चरकको यथार्थरूपसे जानता है तो वह सुश्रुतके कहेहुए विशेषरोगोंको नाम मात्रसे भी नहीं जानता। यदि सुश्रुतके जाननेवाला हो और चरकसे अनभिज्ञ हो तो वह यद्यपि सुश्रुतकी प्रक्रियामें और शल्यक्रिया आदिमें प्रगल्भ भी हो परन्तु विचारा कास श्वासादि अभिभूतबीमारियोंमें क्या चिकित्सा कर सकेगा? ॥ ८४ ॥

अभिनिवेशवशादभियुज्यते
सुभणितेऽपि न यो दृढमूढकः।
पठतु यत्नपरः पुरुषायुषं
स खलु वैद्यकमाद्यमनिर्विदः ॥८५॥

यदि यही पक्षपात हो कि, ऋषिप्रणीतग्रन्थोंको ही पढ़ना चाहिये और दृढ़ पक्षपातके कारण सुन्दर बनेहुए और शुभगुणयुक्त ग्रन्थोंको भी यदि ऋषि प्रणीत न हो तो नहीं ग्रहण करना तो आद्यवैद्य अर्थात् ब्रह्मसंहिताका ही सारी आयुपर्यन्त पढता रहे फिर उसको चरक सुश्रुतादि भी नहीं पढ़ने चाहिये। इस कारण मूर्खताजनित पक्षपात छोड़कर जो भी तन्त्रके सुन्दरगुणोंयुक्त ग्रन्थ हो उसको अवश्य ग्रहण करना चाहिये ॥ ८५ ॥

वाते पित्ते श्लेष्मशान्तौ च पथ्यं
तैलं सर्पिर्माक्षिकं च क्रमेण।
एतद् ब्रह्मा भाषते ब्रह्मजो वा
का निर्मन्त्रे वक्तृभेदोक्तिशक्तिः॥ ८६ ॥
अभिधातृवशात् किंवा द्रव्यशक्तिर्विशिष्यते।
अतो मत्सरमुत्सृज्य माध्यस्थ्यमवलंब्यताम् ८७

वातको शमन करनेके लिये तैल, पित्तको शमन करनेके लिये घृत और कफको शमन करनेके लिये मधु पथ्य होता है। इस सत्यवाक्यको ब्रह्मा कथन करे, अथवा ब्रह्माकी सतान सनत्कुमारादि कथन करे, यह तैलादिकोंके गुण किसीके कथनके भेदपात्रसे बढ़ते या घटते नहीं अर्थात् ऋषियोंके ग्रंथोंमे कथन करनेसे उन तैलादिकोंके गुणोंमें कोई विशेष शक्ति नहीं आजाती और हम लोगोंके लिखनेसे कोई शक्ति हीन नहीं होजाती ॥

ग्रन्थकर्त्ताके ग्रन्थविधान करनेके वशसे द्रव्यकी शक्ति बढ़ नहीं सकती। इस कारण मात्सर्य्यको त्याग कर माध्यस्थभाव अर्थात् सत्यका अवलंबन करना चाहिये ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ।
भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते-
-तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम् ॥८८ ॥

यदि ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंमें हा अधिक प्रीति हो तो चरक और सुश्रुतको छोडकर भेड आदि ऋषियोंके ग्रन्थोंको क्यों नहीं पढा जाता ? इस कारण यह सिद्ध हुआ कि, सुभाषित यथार्थतन्त्रोंके गुणयुक्त सुन्दर बने हुए ग्रंथको ग्रहण करना चाहिये ॥ ८८ ॥

हृदयमिव हृदयमेतत्सर्वायुर्वेदवाङ्मयपयोधेः ।
कृत्वा यच्छुभमाप्तं शुभमस्तु परं ततो जगतः८९

इति श्रीसिंहगुप्तसूनुवाग्भटविरचितायामष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थानं समाप्तम् ॥
अ० ४० ॥ श्लो० ॥ २१७९ ॥

॥ आदितः श्लोकसंख्या ॥ ७३८९ ॥

यह अष्टांगहृदय नामक ग्रन्थ संपूर्ण आयुर्वेद-शास्त्रमय समुद्रके हृदयके सदृश हृदय है । जो इस प्रामाणिक और शुभ ग्रंथको देखनेमें परम कल्याण प्राप्त होता है वह इससे सम्पूर्ण जगत्का कल्याण है ८९ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यप्रणीताष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तरस्थाने पटियालानिवासि वैद्यरत्न पण्डित रामप्रसादात्मजआयुर्वेदाचार्यपं. शिवशर्मकृतशिवदीपिकाभाषाव्याख्यायां वाजीकरणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

चारकी सौश्रुती विद्या निम्यादिवचनैर्युता ।
सम्यक् सुयोजिता यत्र विद्वद्भ्यपदाक्षरैः ॥ १ ॥
अष्टाङ्गहृदयस्यास्य टीकेयं शिवदीपिका ।
रसाष्टनवचन्द्रेब्दे(१९८६)ह्याषाढीपूर्णिमातिथौ २
रविदिने च मध्याह्ने पूरिता शिवशर्म्मणा ।
भाषामात्रज्ञवैद्यानां ग्रन्थज्ञानहितेच्छया ॥ ३ ॥
को न जानाति पाण्डित्यं गहनं वाग्भटस्य हि ।
क्षन्तव्यो यत्र बालत्वात् भावो भ्रष्टत्वमागतः॥४॥

शुभं भवतु ॥

अष्टाङ्गहृदयं समाप्तम् ।
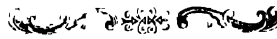
पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
खेतवाडी-बम्बई.

विज्ञापन.

क्रय्य पुस्तकें (वैद्यक-ग्रन्थाः)

नाम.	की० रु० आ०
आयुर्वेदचिन्तामणि-भाषाटीकासहित । पं० बलदेवप्रसाद मिश्र संगृहीत.	२-८
इलाजुल गुरबा-नूतन मथुराका छपा है.	२-०
ओषधीक्रिया-भाषाटीकासहित । "आर्यभिषक्पुस्तकावली" मेंसे यह स्वतन्त्र निकाला गया है । आर्यवैद्यककी पद्धतिसे औषधोंको किस रीतिसे तैयार करना तथा कौनसे रोगपर किस दवाका उपयोग करना इत्यादि इस पुस्तक द्वारा सहजमें मालुम हो सकता है । भाषा जाननेवालोंको परमोपयोगी है.	०-४
करिकल्पलता-छन्दोबद्ध-हिन्दीभाषामें । केशवसिंहजी तअल्लुकेदार रचित । इसमें-हाथियोंके शुभाशुभलक्षण व उनके रोगनाशार्थ अनेक औषधिविधान चित्रों समेत वर्णित हैं.	१-१२
चक्रदत्त--भाषाटीका सहित । इसमें और चिकित्साओंके अलावा तैल साधनादि प्रकार बहुत अच्छा लिखा है.	४-०
द्रव्यगुणशतक-भाषाटीकासमेत । इसमें ओषधिद्रव्योंका गुणदोष वर्णन भली-प्रकार लिखा गया है.	०-६
द्रव्यगुण--बडा । श्रीयुत पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकासहित.	१-०
धन्वन्तरिवैद्यक-लाला शालग्राम वैद्यकृत भाषाटीकासमेत । जिसमें समस्त रोगोंका निदान, कारण,लक्षण और चिकित्सक ओषधि संग्रह कर लिखा है.	८-०
नपुंसकामृतार्णव-भाषाटीकासमेत इसमें नपुंसकोंको नाना प्रकारके तैल, लेप, घृत, वाजी करण ओषधि सर्वोत्तम लिखीगयी है.	१-४
रसरत्नसमुच्चय-मूलमात्र	३-०
रसरत्नसमुच्चय--गुर्जरभाषाटीकासमेत । इसके अक्षर देवनागरी और भाषा मात्र गुजराती हैं । वह रस भस्म आदि सिद्धिका अद्वितीय ग्रन्थ है.	६-०
रसेन्द्रभास्कर--पं० श्रीलक्ष्मीनारायणात्मज पं० शिवप्रसाद शर्मकृत प्रभा नाम भाषाटीकासमेत.	१-८
रसव्यञ्जनप्रकाश--इसमें हरतरहके पक्वान्न और भात, साग, अचार इत्यादि किस रीतिसे तैयार करना यह सुबोध हिन्दीभाषामें अच्छी रीतिसे वर्णन किया गया है.	०-१०
रसायनविधि-भाषा-वैद्यशास्त्री पण्डित गौरीशंकरजी त्रिपाठीद्वारा संगृहीत.	०-१२
रसायनतन्त्र-भाषाटीकासमेत.	०-२
राजवल्लभनिघण्टु-पटियालाराज्यान्तर्गत टकसालग्रामनिवासी आयुर्वेदोद्धारक वैद्यपञ्चानन पं० रामप्रसाद वैद्योपाध्याय विरचित भाषादीपिका नामकी भाषाटीकासहित.	१-१२

नाम.	की० रु० आ०
रसचिन्तामणि-(रसशास्त्रका चमत्कारी ग्रन्थ) फर्रुख नगरनिवासी श्रीयुत पं० मुरलीधरशर्मा राजवैद्यकृत भाषाटीकासमेत।	२-०
रामविनोद-हिन्दीभाषामें-सम्पूर्ण रोगोंकी औषधि प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसार निदान, लक्षण और उत्पत्ति लिखी है.	१-८
वीरसिंहावलोकन-ज्योतिःशास्त्रादि कर्मविपाक चिकित्सा ऐसी उत्तम प्रकारसे की गयी है कि, भिषक लोक इसे देखत ही प्रसन्न होंगे.	९-०
वृन्दवैद्यक-भाषाटीका समेत। इसमें अनेकों प्रकारके ज्वर, ग्रहणी, अर्श, विसूचिका आदि प्रबल २ रोगोंकी चिकित्सा ७२ अधिकारोंमें वर्णित है, और अनेक प्रकारके क्काथ, कषाय, चूर्ण, अवलेह, मोदक, तैल, घृत, नस्य आदिके बनानेकी उत्तम २ रीति भी लिखी है। वैद्योंको अवश्य संग्रह करने योग्य है.	४-०
कोकसार वैद्यक सचित्र-कोकापण्डित कृत वैद्यक ग्रन्थोंका सार यह उत्तम बृहद् वैद्यक ग्रन्थ तैयार हुआ है, आजतक ऐसा और कहीं नहीं छपा था.	२-०
खूबचन्दचिकित्सा-(वैद्यकसार) लाला खूबचन्द आनरेरी मजिस्ट्रेटके ४० वर्षकी अनुभव की हुई तत्काल गुणप्रद स्त्री पुरुष और बच्चोंके लिये उपयोगी एकसे एक बढ़कर १२२ नुस्खोंकी पुस्तक.	०-१४
चिकित्सासमूह-अर्थात् घरू और सफरी वैद्य। इसमें मनुष्य, घोड़े, ऊँट, हाथी, गाय, बैल और भैंसियोंके रोग और उनकी अनुभूत औषध लिखी हुई हैं यह उपयोगी पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके पास रहनी चाहिये	१-४
पाकविलास-नृप जयदेवात्मज श्रीपद्मसिंह कृपापात्र श्रीसाहुनिर्मित। नाना-प्रकारके भोज्य बनानेकी विधि है.	०-८
पारदसंहिता-भाषाटीका समेत। पारदके सिद्ध हो जानेसे मनुष्य अजर अमर हो सकता है, रोगनाश होकर नीरोग देह होना तो साधारण बात है, हजारों रुपयेके व्यय और अनेक वर्षोंके निरन्तर अनुभव करनेसे यह ग्रन्थ तैयार हुआ है, वैद्योंको तो सर्वस्व है, शीघ्र मँगाकर लाभ उठाइये.	१२-०
फिरङ्गादर्श-आतशक रोग गर्मी, सुजाक इलाज.	०-८
भावप्रकाशनिघण्टु-टिप्पणीसहित। महा प्रामाणिक ग्रन्थ है, अङ्गरेजी हिन्दी बँगला आदि भाषामें भी औषधियोंके नाम दिये हैं.	२-०
भावप्रकाश मूल-नूतनमुद्रित। इसबार बड़े बड़े वैद्योंसे शोधन कराकर छापा गया है.	५-०

पुस्तकें मिलनेका पताः-

खेमराज-श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-
मुंबई.

गङ्गाविष्णु-श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" प्रेस-
कल्याण-मुंबई.

श्रीः ।

अष्टांगहृदय (सूत्रस्थान) का शुद्धिपत्र ।

अशुद्ध	शुद्ध	पृ.	पं.
आग्नेय	आत्रेय	२	१८
कछ	कुछ	,,	३३
है	हैं	३	१
रसाली	रसौली	३	१७
हे	है	३	३४
साम्यवास्था	साम्यावस्था	५	२०
कालमें विशेष	कालमें वायुका विशेष	,,	४ (का.२)
भागमें पित्त	भागमें कफ, मध्य भागमें	,,	९ ,,
रोगोंकी	रोगोंका	,,	२३ ,,
आर	और	७	५ ,,
आर	और	,,	१३
आदिके हानि, वृद्धि	आदिके वृद्धि	,,	१९ ,,
बढ़ायी	बढ़ाई	८	२१
तजस	तैजस	,,	२९ ,,
विखेर	बिखेर	,,	३ ,,
विजौरा	बिजौरा	,,	१४ ,,
द्रव्यक	द्रव्यके	९	२५
सव	सब	,,	६ ,,
ओर	और	,,	२९ ,,
विपरीत कममें स्थिर कठिन	विपरीतदृढन कर्ममें कठिन	११	१
व्यथ	व्यर्थ	,,	१० ,,
जैसे आगमें	जैसे यदि आगमें	१२	९
कछ	कुछ	,,	१२
हतो	हतौ	,,	२५
सवसे	सबसे	१३	१५
वलात्कारसे	बलात्कारसे	१४	२३ ,,
तल	तैल	१५	२५
यथाथ	यथार्थ	,,	१ ,,
शत्य	शैत्य	,,	२१(का.२)
देश	देह	,,	२७ ,,
शीघ्र	शीघ्र	१६	२२
विशष	विशेष	,,	२१ ,,
विद्वान	विद्वान्	१७	२४
शास्त्रार्थी	शास्त्रार्थो	,,	३१
चतुर्विंशतितमो	चतुर्विंशतितमे	,,	३८ ,,
बुद्धिमान	बुद्धिमान्	१८	२१
सुसाध्याः	सुसाध्यः	,,	१ ,,
पैतिक	पैत्तिक	,,	३१ ,,
दिनोंकी उत्पन्न हुई	का उत्पन्न हुआ	१९	१
वह किस	वह (रोग) किसी	,,	१३
तारतम्य	तारतम्यकी	,,	२०
अग्निकर्मा	अग्निकर्म	,,	२४
अगेला	अकेला	२०	१८
कार्योंके	कार्योंकी	,,	१९
द्व्युपक्रमः	द्युपक्रमः	,,	६ ,,
ग्रन्थकी	ग्रन्थके	,,	११ ,,
वालोपचरणीय	बालोपचरणीय	,,	१७ ,,
व्यापविधि	व्यापद्विधि	२१	२
ाहक्का	हिक्का	,,	२८
रसानीय	रसायनीय	२२	१
जीभकी	जीभके	,,	३० ,,
करे	करें	२३	१२ ,,
यथाथ	यथार्थ	२४	१५
रहित	हित	२६	३१
लेख	लिखे	,,	२७ ,,
आक्षप	आक्षेप	२७	११
कशलादि	कुशलादि	,,	१ ,,

अशुद्ध	शुद्ध	पृ.	पं.
द्दष्ट	दुष्ट	२८	३१(का.२)
करनी	करना	२९	२८ ,,
अनजुः	अनूजुः	,,	३० ,,
नीचकी	नीचेकी	३०	२
बठ	बैठ	,,	३२
केशाको	केशोंको	,,	३ ,,
सक्तद्रुधृका	सद्दूसका	,,	२६ ,,
कातक	कार्तिक	३१	९ ,,
उतराय	उत्तरायण	,,	२४ ,,
–रभ्ं ङ्गं–	–रभ्यङ्गं–	३२	२१ ,,
प्रवारा–	प्रावारा–	३३	२३
नश्यादि	नस्यादि	३४	४
प्रियर्यार्हितान्	प्रिययार्पितान्	,,	२०
निदाष	निर्दोष	,,	२६
घनि	घनी	,,	११ ,,
कानाको	कानोंको	,,	१५ ,,
पानकर	पानक	३५	९ ,,
सक्तुभि	सक्तुभिः	,,	३३ ,,
चतन्य	चैतन्य	३७	२९
करनेको ओर	करनेकी ओर	,,	२३ ,,
उद्मन्थ	उदमन्थ	३८	२
शरद्म	शरद्में	,,	९ ,,
सूय	सूर्य	,,	२१ ,,
करन	करना	३९	१६
चय्या	चर्य्या	,,	७ ,,
चय्याको	चर्य्याको	,,	१० ,,
वायुक	वायुके	४०	१
वठना	बैठना	,,	१० ,,
हृय	हृदय	४१	३०
जभाई	जँभाई	,,	१६ ,,
संमोहः	संमोहाः	,,	३१ ,,
विट्मं	विड्वमं	४२	२१ ,,
उदीण	उदीर्ण	४३	६
तप्तेयं	तत्पेयं	४५	६ ,,
सूय	सूर्य	४६	९
संश्लष	संश्लेष	,,	१७
वच्छ	स्वच्छ	,,	३३
सूय	सूर्य	४७	३४
अनाह्	आनाह्	४९	२४(का.२)
चूँधने	चूसने	,,	३४ ,,
दुध	दूध	५०	२६
वनी	बनी	५३	२५ ,,
जातें	जाते	५४	७
जायें । उस	जायँ उस	५५	२३ ,,
चर्वी	चर्बी	,,	२६ ,,
चर्वी	चर्बी	,,	२८ ,,
श्लप्म	श्लेष्म	५७	२८
सव	सब	५८	२३ ,,
पतंगा	पतंग	,,	२७ ,,
तपनीया	तपनीय	,,	२८ ,,
बरक	वर्क	५९	१ ,,
कुरुविन्दन	कुरुविन्द	,,	२ ,,
(लोविया)	(लोबिया)	६०	१५ ,,
लेइर्सी	लेईसी	६१	२६ ,,
दुर्वेल	दुर्बल	६२	६
यश्चाम्रेयो	यश्चाम्रेयौ	,,	१०
वना जाय	बनाया जाय	,,	१८
यावकादि	यवकादि	,,	२६
है ।	है	,,	६ ,,
गुण	गुणे	,,	२६ ,,
गरवो	गुरवो	६३	२६
गेहूं [या	[गेहूं या	,,	३१
मूंगे	मूंग	,,	२७
कन्दुक	कन्दु	६४	९
सरभ	शरभ	,,	२१
बारट	वारट	,,	३१
कारंण्ड,	कारण्डव	,,	२८ ,,
वीय	वीर्य	६६	१३
वेंत	बेंत	६८	२७
आष्ठीला	अष्ठीला	६९	३४ ,,
नाचकी	नीचेकी	७०	५
जमिचलाना	जी मचलाना	७१	२

अशुद्ध	शुद्ध	पृ.	पं.
लसुन	लशुन	७२	१६
ग्राह्	ग्राहि	७३	१४
कफा	कफ	”	२९
मज्जाक	मज्जाके	”	२५(का.२)
सव	सर्व	७५	२०
अनाह्	आनाह्	७६	१७
शूपर्णी	शूर्पपर्णी	७९	३१
षष्ठाऽध्यायः	षष्ठोऽध्यायः	”	३२ ”
अथ	अर्थ	८०	२४
हो	हों	”	२० ”
भयभीतस	भयभीत सा	८१	२० ”
जीवनजीव	जीवंजीव	८२	१५
अनक	अनेक	८३	९
हरिद्र	हरिद्रे	”	१७
करनवालोंको	करनेवालोंको	८६	१२
विकारोंकों	विकारोंको	”	२९ ”
दिवार	दीवार	८७	२७
ाह	हि	८८	५
मध्याये	मध्यायं	९०	११ ”
सोऽलसाः	सोऽलसः	९१	२३ ”
जिनके	जिसके	”	२४ ”
वे	वह	”	२५ ”
तियक्	तिर्यक्	९२	६
सुच्छादत	सुच्छादित	”	२६
कुष्टै	कुष्ठै	”	२९
कुठ	कूट	”	१० ”
जीण	जीर्ण	९३	१७
संप्राप्त	संप्राप्ति	९४	३१ ”
स्निग्धोष्णं तन्मनाः	स्निग्धोष्णं लघु तन्मनाः	९५	२१ ”
करान नः	कराननः	”	२३ ”
रहेते	रहते	९८	१० ”
उष्ण	उष्णं	१०१	१०
क्रामात	क्रामति	”	१६
योगाग्रदुदोत	योगाग्रदुदेते	”	६ ”
झुरियें	झुर्रियें	१०४	३२(का.२)
कने	करने	१०५	११
औ	और	”	१३
रोगाको	रोगोंको	”	२३
अधिक	अधिक	”	३०
करोतिं	करोति	”	५ ”
स्रोतावरोध	स्रोतोवरोध	”	१३ ”
बिदारी	विदारी	”	१९ ”
औद्भिद्	औद्भिद	१०६	१०
भलावे	भिलावें	”	२ ”
तिक्तक	तिक्त कटु ।	१०७	१९ ”
मिलाय	मिलायें	१०८	२६
पाटवन	पाटवेन	१०९	९
दृष्टिकम	दृष्टिकर्म	”	२५
गर्भको	गर्भको	”	६ ”
शरीर	शरीरके	”	२० ”
कृच्छ्राण्यरूपि	कच्छ्राण्यरूपि	११०	४ ”
अतिदन्त	अधिदन्त	”	५ ”
शु;	शुक्र ;	११४	१४
पातुएं	धातु	”	१६ ”
व्यापत	व्यापत्	”	३४ ”
आज	ओज	११५	२३
दखते	देखते	”	२६
स्पर्शनेद्रिय	स्पर्शनेन्द्रिय	११६	१५ ”
इद्रियों	इन्द्रियों	११८	१ ”
वायुक	वायुका	”	१८ ”
दोपोंका	दोषोंके	११९	१५ ”
स्वभाववाला	स्वभाववाले	१२०	५
स्वभावोऽयं	स्वभावोऽयम्–	”	१६
अहार	आहार	”	२३
भेदाको	भेदोंको	१२१	६
वषा	वर्षा	”	७ ”
जसे	जैसे	”	२६ ”
उद्दीर्ण	उदीर्ण	१२२	४
बधी	बँधी	”	१९ ”

अशुद्ध	शुद्ध	पृ.	पं.
पूवकृत	पूर्वकृत	१२३	१९(का.२)
तापर्य	तात्पर्य	१२५	७
भद	भेद	१२७	३१
मदन	मर्दन	,,	२८ ,,
वामका	वामक	१३१	३४ ,,
मुखद्वारा	मुखद्वारा	,,	३५ ,,
विसपरोगी	विसर्परोगी	१३५	१९
श्यामक	श्यामाक	१३६	१ ,,
योजयेद्बृंहण	योजयेद्बृंहणं	१३७	११ ,,
हृषणेन	हर्षणेन	,,	१५ ,,
ाव	विपरीत	,,	२९ ,,
स्थल	स्थूल	१३८	१०
सर्ज रस	सर्जरस	१३९	१२
(पयिावांसा)	(पियावांसा)	१४१	१९
कृशा	कुश	,,	२१
रोघ्र	रोध्र	,,	१७ ,,
भार्गी	भार्ङ्गी	१४२	३
भार्गी	भार्ङ्गी	,,	१९
विषभृष्टी	विषमुष्टी	,,	२०
मकोह	मकोय	,,	२३
सुरसाधिगण	सुरसादिगण	,,	२८
वन तुलसी	वनतुलसी	,,	३५
भार्गी	भार्ङ्गी	,,	११ ,,
गिरू	गिरी	१४३	१६
विषाख्या कूठ	विषाख्या, कूठ	,,	२९
मलोक	मलोंका	,,	३२
पुन्नागा	पुन्नाग	,,	१९ ,,
अल्मतास	अम्लतास	१४४	१०
"यथासादृश्य"	"यथासादृश्ये"	१४५	२९
उन्मीलन	उन्मीलित	१४६	५
विरचने	विरेचने	,,	११
उत्क्लेशित	उत्क्लेशित	१४८	१५
गुण	गुड	१५२	१
गुणयुक्त	गुडयुक्त	,,	२७
रास्नेरण्ड-	रास्नैरण्ड-	,,	२९ ,,
दुगन्ध	दुर्गन्ध	१५३	३०
य	या	,,	२०(का.२)
कृच्छादि	कृच्छ्रादि	१५४	२३
मूत्रकृच्छ	मूत्रकृच्छ्र	१५६	२०
स ो भुक्त	सद्योभुक्त	१५७	३४
वृद्धि	वृद्ध	,,	८ ,,
मृदुबाल	मृदुनाल (नली)	१५९	१
होनेकी	होनेको	,,	३४
गोवर	गोबर	१६०	१० ,,
भयः	भूयः	१६१	१४
कर ए	करते हुए	१६२	२६
स्वेदौ-	स्वेदो-	,,	३२
बाध्यत	बाध्यते	,,	,,
शुद्ध्र	शुद्ध	१६३	३ ,,
क्रर	क्रूर	,,	१७ ,,
यस्मिन्नूह्य-	वास्मिन्नूह्य-	१६५	२३
पीया	पिया	१६६	२० ,,
अठरहँवे	अठारहवें	१६७	१० ,,
डालनने	डालने	१६८	२६
सुकेड	सिकोड़	१६९	१०
अंगोको	अंगोंको	,,	७ ,,
निवृत्तिकाला:	निवृत्तिकालः	,,	२० ,,
शुंठीधान्यम्बु-	शुंठीधान्याम्बु	,,	३१ ,,
पांच फल	पांच पल	१७०	१९ ,,
छटवां	छठा	१७१	२ ,,
मर्म	गर्म	,,	३१
उत्कट बैठकर)	(उकरू बैठकर)	,,	१८ ,,
शमना	शमन	१७३	२२ ,,
कहाते	कहते	१७४	२२
नितान्तवस्ति-	निरन्तर एक वस्ति-	,,	२३
बठाकर	बैठाकर	१७५	४ ,,
वत्ती	बत्ती	,,	२९ ,,
एसी	ऐसी	,,	३० ,, ,,
हतु-	हेतु-	१७७	१३

अशुद्ध	शुद्ध	पृ.	पं.
पट्टासवें–	पट्टासवै–	१७८	९ (का.२)
क्षीरण	क्षीरेण	,,	१७ ,,
चार्ध्व–	चोर्ध्व–	,,	२७ ,,
शिरास	शिरसि	,,	२९ ,,
सुकुम । रस्य	सुकुमारस्य	,,	३४ ,,
बदकी	बूंदकी	१७९	३५
योजयेन्न	योजयेन्न तु	,,	८ ,,
पिये ए या	पिये या	,,	२६ ,,
रनेके	करनेके	,,	२८ ,,
विश्रुद्ध–	विशुद्ध–	१८०	३१ ,,
स्निग्धाके	स्निग्धके	१८२	१०
पृश्तिपर्णी	पृश्निपर्णी	१८४	१४
भवयु–	भवेयु–	,,	३३
पिवेद्धमं	पिबेद्धूमं	,,	१५ ,,
करन	करना	,,	१९ ,,
चंदनः	चन्दनैः	,,	२१
विपचन्	विपचेत्	,,	२२
मध्यम धमं	मध्यमं धूमं	१८५	३१ ,,
वमेद्धूम	वमेद्धूमं	१८६	३१
उत्क्लशित	उत्क्लेशित	,,	३२
करने हो	करने हों	,,	१ ,,
धूमका	धूमको	,,	६ ,,
श्रीरेष्टकं	श्रीवेष्टकं	,,	२९ ,,
धूमपानेके	धूमपानके	१८७	१५
वान्मदनस्य	–त्वान्मदनस्य	,,	२९
सुवर्णत्वकू	सुवर्णत्वक्	,,	३०
करने	करना	,,	४ ,,
व्याख्यास्याम	व्याख्यास्यामः	१८८	१७
किय	किया	,,	२८
काधादि	काथादि	१८८	१९ ,,
गोंमूत्र	गोमूत्र	,,	२८ ,,
मख–	मुख–	१८९	५
प्रसेककण्ठमय–	प्रसेककण्ठामय	,,	२८ ,,
बनायां हुआ	बनाये हुए	१९०	११
शेषेष्यत्यर्थ–	शेषेष्वत्यर्थ–	,,	१६
वलि	वली	,,	२२ ,,
शावर	शाबर	,,	३४ ,,

अशुद्ध	शुद्ध	पृ.	पं.
शिरोरागे	शिरोरोगे	१९१	५ (का.२)
पाणिनोन्मलिय	पाणिनोन्मील्य	१९३	२१
नेत्रेरोगमें	नेत्ररोगमें	१९४	१२
विरिक्ताऽशीत–	विरिक्ताशित	१९५	१८ ,,
–शीतल	–शीतलं	,,	३४ ,,
डालन	डालना	१९६	१६
(नन्घले)	(गँदले)	,,	३० ,,
तस्माद्दग्बला–	तस्माद्दृग्बला-	१९८	१८
योजये	योजयेत्	१९९	३०
प्रकारक	प्रकारका	,,	१६ ,,
खचकर	खींचकर	२००	७ ,,
(बवाशीर)	(बवासीर)	२०१	२९ ,,
विचाये	बचाये	२०२	११
त्रिसृत	विसृत	२०३	११
शकवः	शङ्कवः	,,	२८ ,,
है	हैं	२०४	३१
वध्मानि	वर्ध्मानि	,,	१८ ,,
सुकर्मारे–	सुकर्मारै–	२०५	२७ ,,
जात	जाता	२०७	२७
(सुइये)	(सुइयें)	२०८	१७
खचकर	खींचकर	२०९	१३ ,,
सम्यग्वातादि=सम्यग्वान्तादि		२११	३०
अत्यन्त सूतकर	०	,,	३ ,,
जलौकोलांवुभि	–जलौको–ऽलाबुभिः	२१२	३० ,,
विद्रधि	विद्रधि,	२१३	११ ,,
वात	वात–	,,	१३ ,,
पचसु	पञ्चसु	,,	२ ,,
रोगोंमें	रोगोंमें	२१४	१४ ,,
मुकुटी	भ्रुकुटी	,,	२८ ,,
द्व्यंगुल	द्व्यंगुले	२१५	२७
चिप्य	चिप्प	,,	१२ ,,
कुठारिका	कुठारिकाका	२१६	१६ ,,
सशद्व	सशब्द–	२१८	९
छोमें	मूर्च्छामें	,,	७ ,,
पुनऽ	पुनः	२१९	२४
साध–	सार्ध–	,,	३४

अशुद्ध	शुद्ध	पृ.	पं.	
जठराग्निको	जठराग्निकी	२२०	१९(का.२)	
गति ॥ १ ॥	गति ॥-	२२१	११	
युक्त हों	युक्त हो	,,	१८	
लक्षण हैं ॥२॥	लक्षण हैं ॥१॥२॥		२०	,,
अस्थिम	अस्थिमें	२२२	९	
कर्कटारय	कर्कटारय	२२४	२६	
उद्धरेच्छल्यम्-	... ...	२२५	३५	
-यधा ।	-यथा ।			
	उद्धरेच्छल्यम्-	,,	१	,,
वाहर हो	वाहर हों	२२६	११	
खारा	खाए	२२७	६	
प्रवेशयेत	प्रवेशयेत्	,,	२६	
दवा	दबा	,,	१२	,,
कीट	कीटे	,,	२३	,,
(पीच-	(पिच-	,,	२८	,,
प्राया	प्रायो	२२८	१७	
चमके	चमक	२२९	२४	
कटता	फटता	,,	२५	
-संशज्ञ:	संशय:	२३०	६	
बोलें	बोले	,,	११	
कश्च	कश्चे	,,	२८	
तिष्टन्नंत:	तिष्ठन्नन्त:	,,	३	,,
कपड़ें	कपड़े	२३२	६	
सके	सकें	,,	२९	,,
वीय	वीर्य	२३३	११	
कीतन	कीर्तन	,,	१३	,,
अजीण	अजीर्ण	,,	१४	,,
गली	जंगली	,,	२४	,,
गांठे बँध जाती है	गांठें बँध जाती हैं	२३४	२	,,
व्रणम	व्रणमें	,,	२४	,,
करता है अर्थात् वहांकी शोथको दबादेता	करती है अर्थात् वहांके शोथको दबा देती	,,	३०	,,
डाला हो	डाले	२३५	९	
स्वोखला	खोखला	,,	२२	
गाठे	गांठें	,,	२५	
मेढ	मेढ़	,,	३१	
शुष्कास्त्र	शुष्कास्त्र	,,	२०	,,
व्रणोपचारके	व्रणोपचारकी	२३६	१३	
सके उसी प्रकार	सके उसी प्रकारके	,,	१९	,,
त्र्यहात्र्यहात्	त्र्यहात्र्यहात्	२३७	२२	
फोतें	फोते	,,	८	,,
आखें	आंखें	,,	११	,,
पठ्ठे	पट्ठे	२३८	२	
उत्पन्न	उत्सन्न	,,	१२	
मक्षियोंके	मक्खियोंके	,,	९	,,
मक्खिय	मक्खियां	२३८	१८	,,
विगाड़	बिगाड़	,,	३४	,,
उमड्	उभड़	२३९	३	
प्रतिसारिणीय	प्रतिसारणीय	,,	१८	,,
सून्यता	-शून्यता	,,	२५	
सबाष्पेश्च	सबाष्पैश्च	२४०	२०	,,
पानीमें	गोमूत्रमें	२४१	१८	
बचा	त्वचा	२४२	३०	

इति अष्टाङ्गहृदय (सूत्रस्थान) का शुद्धिपत्र समाप्त ।